The Compendium of the Rulings of the Qur'an And the Explainer of what it contains of the Sunnah and the Verses of the Criterion (Qur'an)

Written by Abi Abdullah Muhammad bin Ahmad bin Abi Bakr al-Qurtubi (Died 671 AH)

Edited by Dr. Abdullah bin Abdul Muhsin al-Turki

Participated in the editing of this volume: Muhammad Radwan 'Irqisusi

Part Two

Muassasat al-Risalah

कुरान के नियमों का संग्रह और सुन्नत और कसौटी (कुरान) की आयतों में शामिल बातों का व्याख्याकार

लेखक: अबी अब्दुल्लाह मुहम्मद बिन अहमद बिन अबी बक्र अल-कुर्तुबी (मृत्यु 671 हिजरी)

संपादन: डॉ. अब्दुल्लाह बिन अब्दुल मोहसिन अल-तुर्की

इस भाग के संपादन में भाग लिया: मुहम्मद रिज़वान इरकसुसी

दूसरा भाग

मुअस्ससत अल-रिसाला

الجامع لأحكام القرآن اور اس میں شامل سنت اور آیاتِ فرقان کی وضاحت کرنے والی

تالیف: ابی عبداللہ محمد بن احمد بن ابی بکر القرطبی (وفات ۶۷۱ ھ)

تحقیق: ڈاکٹر عبد اللہ بن عبد المحسن الترکی

اس حصے کی تحقیق میں شریک ہوئے: محمد رضوان عرقسوسی

حصہ دوم

مؤسسة الرسالہ

Nafse Islam Nafse Islam WWW.NAFSEISLAM.COM

Al-Jami' li-Ahkam al-Qur'an (The Compendium of Legal Rulings of the Qur'an) And the Clarifier of what it contains of the Sunnah and the Verses of the Criterion

नफ़से इस्लाम नफ़से इस्लाम WWW.NAFSEISLAM.COM

अल-जामि' ली-अहकाम अल-कुरान (कुरान के कानूनी आदेशों का संग्रह) तथा इसमें समाहित सुन्नत और फ़ुरक़ान (कुरान) की आयतों का स्पष्टीकरण

نفس اسلام نفس اسلام WWW.NAFSEISLAM.COM

الجامع لأحكام القرآن (قرآن کے احکام کا مجموعہ) اور سنت اور فرقان (قرآن) کی آیات میں جو کچھ شامل ہے اس کا بیان کرنے والا

All rights reserved to the publisher First Edition 1427 AH - 2006 AD Al-Resalah Publishers Watay El-Msaytbeh - Habib Abi Shahla Street - Al-Maskan Building, Beirut - Lebanon For printing, publishing and distribution Telefax: 815112-319039 Fax: 818615 P.O. Box: 117460 Email: Resalah@Cyberia.net.lb

प्रकाशक के पास सभी अधिकार सुरक्षित हैं प्रथम संस्करण १४२७ हिजरी - २००६ ईस्वी अल-रिसाला पब्लिशर्स वातय अल-मसायतबेह - हबीब अबी शाहला स्ट्रीट - अल-मस्कन बिल्डिंग, बेरूत - लेबनान मुद्रण, प्रकाशन और वितरण के लिए टेलीफैक्स: 815112-319039 फैक्स: 818615 पी.ओ. बॉक्स: 117460 ईमेल: Resalah@Cyberia.net.lb

تمام حقوق بحق ناشر محفوظ ہیں پہلا ایڈیشن ۱۴۲۷ ھ - ۲۰۰۶ ء مؤسسہ الرسالہ وطی المصیطبہ - شارع حبیب ابی شہلا - بلڈنگ المسکن، بیروت - لبنان طباعت، اشاعت اور تقسیم کے لیے ٹیلی فیکس: 815112-319039 فیکس: 818615 ص.ب: 117460 ای میل:

Resalah@Cyberia.net.lb

In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful

His Almighty's saying: {O Children of Israel, remember My favor which I have bestowed upon you and fulfill My covenant [with you] that I will fulfill your covenant [with Me], and be afraid of [only] Me.} [Al-Baqarah: 40]

His Almighty's saying: {O Children of Israel} is a vocative construction where 'Bani' is the mudaf (possessed). Its mark of being in the accusative case (nasb) is the letter 'ya', and the 'nun' was omitted due to the genitive construction (idafa). The singular form is 'ibn' (son). Its root is originally 'banay', and it was said it is 'banaw'. Those who said the omitted letter was a 'waw' used as evidence the word 'bunuwwah' (sonship), but this is not a strong argument because they also said 'futuwwah' (chivalry), and its root is 'ya'. Al-Zajjaj(1) said: "In my view, the omitted letter is a 'ya', as if it is from 'banaytu' (I built)." Al-Akhfash(2) said: "I prefer that the omitted letter be 'waw' because its omission is more common due to its heaviness." It is said: 'ibn bayyin al-bunuwwah' (a son of clear sonship), and the diminutive form is 'bunayy'. Al-Farra(3) said: It is said: 'Ya Bunayya' and 'Ya Bunayyu', both are linguistic variations, like 'Ya Abati' and 'Ya Abatu', and both have been recited(4). It is derived from 'al-bina' (building), which is placing something upon another. A son is a branch of the father, and is placed upon him.

And Israel: He is Jacob, the son of Isaac, the son of Abraham, peace be upon them. Abu al-Faraj al-Jawzi(5) said: "There is no prophet with two names except him, and our Prophet Muhammad ﷺ, for he has many names." He mentioned this in his book "Fuhum al-Athar".

---

(1) Quoted by al-Nahhas in "I'rab al-Qur'an" 1/217. (2) Quoted by al-Azhari in "Tahdhib al-Lughah" 15/491. (3) Quoted by al-Jawhari in "as-Sihah" (under root b-n-y). (4) Hafs recited: "Ya Bunayya" with a fatha on the 'ya' wherever it occurred. Shu'bah agreed with him in Surah Hud, and al-Bazzi in the last instance in Luqman. Ibn Kathir recited: "Ya Bunayyi" with a sukun on the 'ya' in the first instance in Luqman, and Qunbul did the same in the last instance there. There is no disagreement from Ibn Kathir regarding the kasra on the doubled 'ya' in the middle instance in Luqman, and so did the others recite: {Ya Bunayya} wherever it occurred. Ibn 'Amir recited: "Ya Abati" with a fatha on the 'ta' wherever it occurred, while others recited: "Ya Abati". See "as-Sab'ah" pp. 334 and 344, and "at-Taysir" pp. 124, 127 and 176. (5) Jamal al-Din Abd al-Rahman bin Ali bin Muhammad, whose lineage traces back to Abu Bakr al-Siddiq (may Allah be pleased with him). He was Baghdadi, Hanbali, a preacher, and a prolific

author. He was an undisputed leader in admonition. Among his books are: "Zad al-Masir" and "al-Muntazam fi al-Tarikh". He died in (597 AH). His book mentioned by the author was published in part under the title: "Talqih Fuhum Ahl al-Athar", and the discussion therein is on p. 4. See "as-Siyar" 21/365.

अल्लाह के नाम से, जो अत्यंत दयालु और बहुत कृपालु है

अल्लाह तआला का कथन है: {हे इस्राइल की संतानों! मेरी उस अनुकम्पा को याद करो जो मैंने तुम पर की थी, और मेरे वचन को पूरा करो, तो मैं तुम्हारे वचन को पूरा करूँगा, और केवल मुझसे ही डरो।} [अल-बक़रह: 40]

अल्लाह तआला का कथन: {हे इस्राइल की संतानों} एक संबोधित पद (munada) है जो 'इज़ाफ़त' (genitive construction) की स्थिति में है। इसमें नसब (accusative) का चिन्ह 'या' है, और इज़ाफ़त के कारण 'नुन' को हटा दिया गया है। इसका एकवचन 'इब्न' (पुत्र) है, और इसका मूल रूप 'बनय' था, और कुछ ने 'बनव' कहा है। जिन्होंने कहा कि हटाया गया अक्षर 'वाव' है, उन्होंने 'बनुव्वह' (पुत्रत्व) शब्द का प्रमाण दिया, लेकिन यह कोई ठोस प्रमाण नहीं है, क्योंकि उन्होंने 'फतुव्वह' भी कहा है, जबकि उसका मूल 'या' है। अज़-ज़ज्जाज(1) ने कहा: "मेरे विचार में हटाया गया अक्षर 'या' है, जैसे कि यह 'बनय्तु' (मैंने बनाया) से हो।" अल-अखफश(2) ने कहा: "मैं प्राथमिकता देता हूँ कि हटाया गया अक्षर 'वाव' हो, क्योंकि भारीपन के कारण इसे हटाना अधिक प्रचलित है।" कहा जाता है: 'इब्न बय्यिन अल-बनुव्वह' (स्पष्ट पुत्रत्व वाला पुत्र), और इसका लघु रूप (diminutive) 'बुनय्य' है। अल-फर्रा(3) ने कहा: इसे 'या बुनय्य' और 'या बुनय्यु' कहा जाता है, ये दो भाषाई रूप हैं, जैसे: 'या अबति' और 'या अबतु', और दोनों ही रूपों में पाठ (qira'at) किया गया है(4)। यह 'बिना' (निर्माण) से लिया गया है: जिसका अर्थ है एक चीज़ को दूसरी चीज़ पर रखना। पुत्र पिता की एक शाखा है, और उस पर टिका हुआ है।

और इस्राइल: वे याकूब बिन इसहाक बिन इब्राहिम अलैहिमुस्सलाम हैं। अबू अल-फ़रज अल-जौज़ी(5) ने कहा: "पैग़ंबरों में उनके अलावा किसी के दो नाम नहीं हैं, सिवाय हमारे पैग़ंबर मुहम्मद ﷺ के, क्योंकि उनके कई नाम हैं।" उन्होंने अपनी पुस्तक "फ़ुहूम अल-आथार" में इसका उल्लेख किया है।

---

(1) इसे अल-नह्सास ने 'इराब अल-कुरान' 1/217 में उद्धृत किया है। (2) इसे अल-अज़हरी ने 'तहज़ीब अल-लुग़ह' 15/491 में उद्धृत किया है। (3) इसे अल-जौहरी ने 'अस-सिहाह' (ब-न-य मूल के तहत) में उद्धृत किया है। (4) हफ़्स ने 'या बुनय्या' पढ़ा, जहाँ भी यह आया है, या पर ज़बर के साथ; सूरह हूद में शुअबा ने और लुक़मान के अंतिम स्थान पर अल-बज्ज़ी ने उनके साथ सहमति जताई। इब्न कसीर ने लुक़मान के पहले स्थान पर 'या बुनय्यि' या के सुकून के साथ पढ़ा, और कुनबुल

ने वहाँ अंतिम स्थान पर वैसा ही पढ़ा। लुक़मान के मध्य स्थान में 'या' पर शद्द और ज़ेर के संबंध में इब्न कसीर से कोई मतभेद नहीं है, और शेष ने इसे 'या बुनय्या' पढ़ा जहाँ भी यह आया है। इब्न आमिर ने 'या अबत' पढ़ा जहाँ भी वह आया ता के ज़बर के साथ, और शेष ने 'या अबति' पढ़ा। देखिए 'अस-सबआ' पृष्ठ 334 और 344, और 'अत-तयसीर' पृष्ठ 124, 127 और 176। (5) जमालुद्दीन अब्दुल रहमान बिन अली बिन मुहम्मद, जिनका वंश अबू बक्र अस-सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु तक जाता है। वे बगदादी, हनबली, उपदेशक और कई पुस्तकों के लेखक थे। वे नसीहत देने में बेजोड़ थे। उनकी पुस्तकों में शामिल हैं: 'ज़ाद अल-मसीर' और 'अल-मुंतज़म फ़ी अल-तारीख़'। उनकी मृत्यु वर्ष (597 हिजरी) में हुई। लेखक द्वारा उल्लेखित उनकी पुस्तक का एक हिस्सा 'तल्कीह फुहूम अहल अल-अथार' शीर्षक से छपा है, और उसमें चर्चा पृष्ठ 4 पर है। देखिए 'अस-सियार' 21/365।

بِسْمِ اللَّهِ الرَّحْمَنِ الرَّحِيمِ

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿يَا بَنِي إِسْرَائِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَوْفُوا بِعَهْدِي أُوفِ بِعَهْدِكُمْ وَإِيَّايَ فَارْهَبُونِ ۝﴾ (اے بنی اسرائیل! میری ان نعمتوں کو یاد کرو جو میں نے تم پر کیں اور تم مجھ سے کیا ہوا عہد پورا کرو، میں تم سے کیا ہوا اپنا عہد پورا کروں گا، اور مجھ ہی سے ڈرو)۔ [البقرہ: 40]

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿يَا بَنِي إِسْرَائِيلَ﴾ یہ منادیٰ مضاف ہے، اس میں نصب کی علامت 'یاء' ہے، اور اضافت کی وجہ سے 'نون' حذف کر دیا گیا ہے۔ اس کا واحد 'ابن' ہے، اور اس کی اصل 'بَنَیٌ' ہے، اور کہا گیا ہے کہ 'بَنَوٌ' ہے۔ جن کا کہنا ہے کہ محذوف حرف 'واؤ' ہے انہوں نے لفظ 'بُنُوَّة' (بیٹا ہونا) سے استدلال کیا ہے، لیکن یہ کوئی پختہ دلیل نہیں کیونکہ وہ 'فُتُوَّة' بھی کہتے ہیں جبکہ اس کی اصل 'یاء' ہے۔ زجاج(1) کہتے ہیں: میرے نزدیک محذوف حرف 'یاء' ہے، گویا یہ 'بَنَیْتُ' (میں نے بنایا) سے ہے۔ اخفش(2) کا قول ہے: میں اس بات کو ترجیح دیتا ہوں کہ محذوف 'واؤ' ہو کیونکہ ثقاہت (بھاری پن) کی وجہ سے اس کا حذف زیادہ عام ہے۔ کہا جاتا ہے: 'ابن بَيِّنُ البُنُوَّةِ' (واضح بیٹا ہونا)، اور اس کی تصغیر 'بُنَيٌّ' ہے۔ فراء(3) کہتے ہیں: 'یا بُنَيَّ' اور 'یا بُنَيُّ' کہا جاتا ہے، یہ دو لغات (لہجے) ہیں، جیسے 'یا أبتِ' اور 'یا أبتُ'، اور ان دونوں طرح سے پڑھا گیا ہے(4)۔ یہ 'بناء' سے مشتق ہے، جس کا معنی ہے ایک چیز کو دوسری چیز پر رکھنا۔ بیٹا باپ کی ایک فرع (شاخ) ہے اور وہ اسی پر مبنی ہے۔

اور اسرائیل: یہ حضرت یعقوب بن اسحاق بن ابراہیم علیہم السلام ہیں۔ ابو الفرج الجوزی(5) فرماتے ہیں: انبیاء میں ان کے علاوہ کسی کے دو نام نہیں سوائے ہمارے نبی حضرت محمد ﷺ کے، کیونکہ آپ ﷺ کے تو بہت سے نام ہیں۔ انہوں نے اپنی کتاب "فہوم الآثار" میں اس کا تذکرہ کیا ہے۔

(1) نحاس نے اسے 'اعراب القرآن' 217/1 میں نقل کیا ہے۔ (2) ازہری نے اسے 'تہذیب اللغۃ' 491/15 میں نقل کیا ہے۔ (3) جوہری نے اسے 'الصحاح' (مادہ: بنی) میں نقل کیا ہے۔ (4) حفص نے جہاں کہیں یہ لفظ آیا ہے 'یا بُنَیَّ' (یاء کے فتحہ کے ساتھ) پڑھا ہے، سورہ ہود میں شعبہ نے اور سورہ لقمان کے آخری مقام پر بزی نے ان کی موافقت کی ہے۔ ابن کثیر نے سورہ لقمان کے پہلے مقام پر 'یا بُنَیِّ' (یاء کے سکون کے ساتھ) پڑھا ہے اور اسی طرح قنبل نے وہاں کے آخری مقام پر پڑھا ہے۔ سورہ لقمان کے درمیانی لفظ میں یاء مشدد کے کسرہ کے بارے میں ابن کثیر سے کوئی اختلاف نہیں ہے، اور باقی سب نے جہاں کہیں یہ لفظ آیا ہے ﴿یا بُنَیَّ﴾ پڑھا ہے۔ ابن عامر نے جہاں بھی 'یا أبتِ' آیا ہے اسے تاء کے فتحہ کے ساتھ 'یا أبتَ' پڑھا ہے جبکہ باقی سب نے 'یا أبتِ' پڑھا ہے۔ دیکھئے: 'السبعہ' ص 334 اور 344، اور 'التیسیر' ص 124، 127 اور 176۔ (5) جمال الدین عبد الرحمن بن علی بن محمد، جن کا نسب حضرت ابوبکر صدیق رضی اللہ عنہ تک پہنچتا ہے۔ آپ بغدادی، حنبلی، واعظ اور کئی تصانیف کے مالک تھے، پند و نصائح میں آپ کی قیادت مسلم تھی۔ آپ کی کتب میں 'زاد المسیر' اور 'المنتظم فی التاریخ' شامل ہیں۔ وفات 597ھ میں ہوئی۔ مصنف نے جس کتاب کا تذکرہ کیا ہے اس کا ایک حصہ 'تلقیح فہوم اھل الاثر' کے نام سے طبع ہوا ہے، اس میں یہ گفتگو صفحہ 4 پر ہے، نیز دیکھئے: 'السیر' 365/21۔

Surah Al-Baqarah: Verse 40 6 I said: It has been said of the Messiah: It is a proper name for Jesus, peace be upon him, not derived. Allah named him a Spirit and a Word, and they used to call him the Abil of the Abilin (1). Al-Jawhari mentioned it in "As-Sahah" (2), and Al-Bayhaqi mentioned it in "Dala'il al-Nubuwwah" (3) on the authority of Al-Khalil bin Ahmad: Five of the prophets have two names: Muhammad and Ahmad are our Prophet ﷺ, Jesus and the Messiah, Israel and Jacob, Jonah and Dhu al-Nun, and Elijah and Dhu al-Kifl, may Allah's peace and blessings be upon them. I said: We have mentioned that Jesus has four names, and as for our Prophet ﷺ, he has many names, the explanation of which is in their respective places (5). And Israel: It is a non-Arabic name, therefore it is indeclinable; and it is in the genitive position due to addition (idafa). There are seven dialects for it: Isra'il, which is the language of the Quran; and Isra'il, with a prolonged glottal stop (hamza), narrated by Shanabudh (6) from Warsh (7). And Isra'il, with a prolongation after the 'ya' without a hamza, which is the recitation of Al-A'mash and Isa bin Umar (8). Al-Hasan and Az-Zuhri recited it without hamza or prolongation (9). And Isra'il, without 'ya' with a kasrated hamza, and Isra'al, with an open hamza. Tamim says: Isra'in, with the letter 'nun' (10). The meaning of Israel is: Servant of Allah. Ibn Abbas said: "Isra" in Hebrew is servant, and "El" ...

---

(1) In (D): "Il al-Ilin", and in (Z): "Anbal al-Anbilin", and what is confirmed is from (Za) and (M). (2) As-Sahah: (Masah), (Ruh), and (Abal). (3) 1/159. (4) In the copies: "Dhu", and what is confirmed is from (M). (5) In (Za): its place. (6) Perhaps the author means Ibn Shanabudh, who is Muhammad bin Ahmad bin Ayyub, Abu al-Hasan, the Sheikh of the reciters, who died in (328 AH), As-Siyar 15/264. There is also one known as Ash-Shanabudhi, who is Muhammad bin Ahmad bin Ibrahim Abu al-Faraj al-Baghdadi the reciter, a student of Ibn Shanabudh, who was knowledgeable in Tafsir and the causes of recitations. He died in (388 AH). Ma'rifat al-Qurra' al-Kibar 2/640. (7) He is Uthman bin Said bin Abdullah, Abu Said Al-Ifriqi, the Sheikh of recitation in Egypt. Nafi' nicknamed him "Warsh" because of his extreme fairness. He died in (197 AH). As-Siyar 9/295. The recitation mentioned by the author from him is anomalous (shadhdh), as his recitation is like that of the general group. (8) Mentioned by Ibn Jinni in "Al-Muhtasib" 1/79, and added its attribution to Al-Hasan, Az-Zuhri, and Ibn Abi Ishaq. (9) Meaning: Isral. Mentioned by Ibn Khalawayh in "The Anomalous Recitations" p. 5 and attributed it to Al-Hasan only. (10) I'rab al-Qur'an by An-Nahhas 1/217, see also Al-Mu'arrab by Al-Jawaliqi p. 62.

सूरह अल-बक़रह: आयत 40 6 मैंने कहा: मसीह के बारे में कहा गया है: यह ईसा (उन पर शांति हो) का एक उचित नाम है, व्युत्पन्न (derived) नहीं। अल्लाह ने उन्हें रूह और कलिमा नाम दिया, और वे उन्हें अबीले अबीलीन (1) कहते थे। अल-जौहरी ने "अस-सिहाह" (2) में इसका उल्लेख किया है, और अल-बैहकी ने "दलाइल अल-नुबुवह" (3) में अल-खलील बिन अहमद के हवाले से उल्लेख किया है: पांच नबियों के दो नाम हैं: मुहम्मद और अहमद हमारे नबी ﷺ हैं, ईसा और मसीह, इसराइल और याकूब, यूनुस और ज़ुल-नुन, और इलियास और ज़ुल-किफ़्ल, उन पर अल्लाह की शांति और आशीर्वाद हो। मैंने कहा: हमने उल्लेख किया है कि ईसा के चार नाम हैं, और जहाँ तक हमारे नबी ﷺ का सवाल है, उनके कई नाम हैं, जिनका स्पष्टीकरण उनके संबंधित स्थानों (5) पर है। और इसराइल: यह एक गैर-अरबी नाम है, इसलिए यह अविकारी (indeclinable) है; और यह इज़ाफ़त (addition) के कारण षष्ठी (genitive) स्थिति में है। इसके लिए सात भाषाएँ(बोलियाँ) हैं: इसराइल, जो कुरान की भाषा है; और इसराइल, एक छोटी हमज़ा के साथ, जिसे शनबूज़ (6) ने वर्श (7) से रिवायत किया है। और इसराइल, 'या' के बाद बिना हमज़ा के लंबे स्वर के साथ, जो अल-आमश और ईसा बिन उमर (8) का पाठ (recitation) है। अल-हसन और अल-ज़ुहरी ने इसे बिना हमज़ा या लम्बे स्वर के पढ़ा (9)। और इसराइल, बिना 'या' के और हमज़ा पर ज़ेर के साथ, और इसराआल, हमज़ा पर ज़बर के साथ। तमीम कहते हैं: इसराईन, 'नून' (10) के साथ। और इसराइल का अर्थ है: अल्लाह का बंदा। इब्न अब्बास ने कहा: इब्रानी भाषा में "इसरा" का अर्थ बंदा है, और "ईल" का...

---

(1) (D) में: ईल अल-इलीन, और (Z) में: अंबल अल-अंबीलीन, और पुष्ट पाठ (Za) और (M) से है। (2) अस-सिहाह: (मसह), (रूह), और (अबल)। (3) 1/159। (4) प्रतियों में: 'ज़ू', और पुष्ट पाठ (M) से है। (5) (Za) में: उसका स्थान। (6) शायद लेखक का तात्पर्य इब्न शनबूज़ से है, जो मुहम्मद bin अहमद bin अय्यूब, अबू अल-हसन, क़ारियों के शेख हैं, जिनका निधन (328 हिजरी) में हुआ, अस-सियार 15/264। वहाँ एक और हैं जिन्हें अल-शनबूज़ी के नाम से जाना जाता है, जो मुहम्मद bin अहमद bin इब्राहिम अबू अल-फ़रज अल-बग़दादी क़ारी हैं, इब्न शनबूज़ के शागिर्द, वे तफ़सीर और किराअतों के कारणों के ज्ञाता थे। उनका निधन (388 हिजरी) में हुआ। मारिफ़त अल-कुर्रा अल-किबार 2/640। (7) वह उस्मान bin सईद bin अब्दुल्ला, अबू सईद अल-इफ़्रीकी हैं, मिस्र में किराअत के शेख। नाफ़ी ने उनकी अत्यधिक गोराई के कारण उन्हें "वर्श" की उपाधि दी थी। उनका निधन (197 हिजरी) में हुआ। अस-सियार 9/295। लेखक ने उनसे जो किराअत उद्धृत की है वह

शाज़ (shadhdh) है, क्योंकि उनकी किराअत आम जमात की तरह है। (8) इब्न जिन्नी ने "अल-मुहतसिब" 1/79 में इसका उल्लेख किया है, और इसका श्रेय अल-हसन, अल-ज़ुहरी और इब्न अबी इसहाक़ को भी दिया है। (9) यानी: इसराल। इब्न खालवैह ने "शाज़ किराअतों" पृ. 5 में इसका उल्लेख किया है और इसे केवल अल-हसन के नाम किया है। (10) इ'राब अल-कुरआन, अन-नहस 1/217, अल-जवालिक़ी द्वारा अल-मुअर्रब पृ. 62 भी देखें।

سورہ البقرہ: آیت ٤٠ ٦ میں نے کہا: مسیح کے بارے میں کہا گیا ہے کہ: یہ عیسیٰ علیہ السلام کا ایک علمی نام ہے جو مشتق نہیں ہے، اور اللہ تعالیٰ نے انہیں رُوح اور کلمہ کا نام دیا، اور لوگ انہیں ابیل الأبیلین(١) کہتے تھے۔ جوہری نے «الصحاح»(٢) میں اس کا ذکر کیا ہے اور بیہقی نے «دلائل النبوة»(٣) میں خلیل بن احمد سے نقل کیا ہے کہ: انبیاء میں سے پانچ وہ ہیں جن کے دو دو نام ہیں، ہمارے نبی ﷺ کے نام محمد اور احمد ہیں، اور عیسیٰ اور مسیح، اسرائیل اور یعقوب، یونس اور ذو النون، اور الیاس اور ذو الکفل، اللہ ان پر رحمتیں اور سلامتی نازل فرمائے۔ میں نے کہا: ہم ذکر کر چکے ہیں کہ عیسیٰ کے چار نام ہیں، اور جہاں تک ہمارے نبی ﷺ کا تعلق ہے تو آپ کے بہت سے نام ہیں، جن کی تفصیل ان کے اپنے مقامات (٥) پر ہے۔ اور اسرائیل: یہ ایک عجمی نام ہے، اس لیے یہ غیر منصرف ہے؛ اور یہ اضافت کی وجہ سے حالتِ جر میں ہے۔ اس میں سات لغات (لہجے) ہیں: اسرائیل، اور یہ قرآن کی لغت ہے، اور إسرائیل، ایک مخفی ہمزہ والی مد کے ساتھ، جسے شنبود(٦) نے ورش(٧) سے روایت کیا ہے۔ اور إسرائیل، یاء کے بعد مد کے ساتھ بغیر ہمزہ کے، اور یہ اعمش اور عیسیٰ بن عمر(٨) کی قرات ہے۔ حسن اور زہری نے بغیر ہمزہ اور بغیر مد کے پڑھا ہے(٩)۔ اور إسرائیل، بغیر یاء کے مکسور ہمزہ کے ساتھ، اور إسراءَل، مفتوح ہمزہ کے ساتھ اور بنو تمیم إسرائین، نون(١٠) کے ساتھ کہتے ہیں۔ اور اسرائیل کا معنی ہے: عبد اللہ۔ ابن عباس نے فرمایا: عبرانی زبان میں «إسرا» کا مطلب عبد ہے، اور «إیل» کا...

---

(١) (د) میں: ابیل الاابیلین، اور (ز) میں: انبل الانبیلین، اور (ظ) اور (م) سے ثابت شدہ متن ہے۔ (٢) الصحاح: (مسح) اور (روح) اور (ابل)۔ (٣) ١٥٩/١۔ (٤) نسخوں میں: ذو ہے، اور ثابت شدہ (م) سے ہے۔ (٥) (ظ) میں: موضعہا (اس کا مقام)۔ (٦) شاید مصنف کی مراد ابن شنبود ہے، اور وہ محمد بن احمد بن ایوب، ابو الحسن ہیں، جو قاریوں کے شیخ تھے، ان کی وفات (٣٢٨ھ) میں ہوئی،

السیر ٢٦٤/١٥، اور ایک وہ بھی ہیں جو شنبودی کے نام سے جانے جاتے ہیں، اور وہ محمد بن احمد بن ابراہیم ابو الفرج البغدادی القاری ہیں، جو ابن شنبود کے شاگرد تھے، وہ تفسیر اور قرات کی وجوہات کے عالم تھے۔ ان کی وفات (٣٨٨ھ) میں ہوئی۔ معرفة القراء الکبار ٢/ ٦٤٠۔ (٧) وہ عثمان بن سعید بن عبد اللہ، ابو سعید الافریقی ہیں، مصر میں قرات کے شیخ، نافع نے ان کی انتہائی سفیدی کی وجہ سے انہیں ورش کا لقب دیا تھا، ان کی وفات (١٩٧ھ) میں ہوئی۔ السیر ٢٩٥/٩۔ اور مصنف نے ان سے جو قرات نقل کی ہے وہ شاذ ہے، کیونکہ ان کی قرات عام جماعت کی طرح ہے۔ (٨) ابن جنی نے المحتسب ٧٩/١ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور اس کی نسبت میں حسن، زہری اور ابن ابی اسحاق کا اضافہ کیا ہے۔ (٩) یعنی: إسرال۔ ابن خالویہ نے اسے قراتِ شاذہ ص ٥ میں ذکر کیا ہے اور اس کی نسبت صرف حسن کی طرف کی ہے۔ (١٠) اعراب القرآن للنحاس ٢١٧/١ ، اور الجوالیقی کی المعرّب ص٦٢ بھی دیکھیں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 40 Page 7

He is Allah (1). It was said: "Isra" means the chosen of Allah, and "Il" is Allah. And it was said: "Isra" is from "shadd" (binding/strengthening), so it is as if Israel means: the one whom Allah has strengthened and perfected his creation. Mentioned by Al-Mahdawi (2). Al-Suhayli said (3): He was named Israel because he travelled by night (asra) when he migrated to Allah Almighty, so he was named Israel, i.e.: he travelled (4) to Allah, and something like this. Thus, part of the name is Hebrew and part of it is consistent with Arabic (5). And Allah knows best. His Almighty's saying: {Remember My favor which I have bestowed upon you} [Al-Baqarah: 40]. "Dhikr" (remembrance/ mention) is a shared noun; remembrance by the heart is the opposite of forgetting. And mention by the tongue is the opposite of silence. I mentioned the thing with my tongue and my heart (dhikran). And keep it in your "dhukr" - with a damma on the dhal - meaning: do not forget it. Al-Kisa'i said: whatever is in the mind, it has a damma on the dhal (dhukr), and whatever is on the tongue, it has a kasra on the dhal (dhikr). Others said: they are two dialects, both "dhukr" and "dhikr" are said, and their meaning is one. "Al-dhakar" (male), with a fatha on the dhal, is the opposite of female. "Dhikr" also means: honor/nobility (6), from which is His Almighty's saying: {And indeed, it is an honor (dhikr) for you and for your people} [Al-Zukhruf: 44]. Ibn al-Anbari said: The meaning in the verse is: remember the gratitude for My favor, so the word gratitude was omitted as it is sufficient to mention the favor. It was said: he meant remembrance by the heart, which is what is required, meaning: do not be heedless of My favor which I have bestowed upon you and do not forget it, and this is good. "Al-Ni'mah" (The favor) here is a collective noun, so it is singular in form with the meaning of plural. Allah Almighty said: {And if you should count the favor of Allah, you could not enumerate them} [Ibrahim: 34], meaning: His favors. Among His favors upon them is that He saved them from the people of Pharaoh, made prophets from among them, sent down to them the Books, Manna and Quails, and made water gush from the stone for them, along with what He entrusted to them of the Torah in which there is the description of Muhammad ﷺ, his traits and his message. Favors upon the fathers are favors upon the sons, because they are honored by the honor of their fathers (7). Note: The masters of meanings (scholars of rhetoric) said: He, glory be to Him, linked the Children of Israel to the mention of favor, and dropped it...

(1) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 593/1. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 133/1. (3) Al-Ta'rif wa al-I'lam p. 20. (4) In (m): Asra. (5) See Mir'at al-Zaman 315/1, and Al-Durr al-Masun

310/1. (6) Mujmal al-Lughah 360/2, and Al-Nukat wa al-'Uyun 111/1. (7) Al-Nukat wa al-'Uyun 111/1.

सूरह अल-बकरा: आयत 40 पृष्ठ 7

वह अल्लाह है (1)। कहा गया: "इसरा" का अर्थ है अल्लाह का चुना हुआ, और "इल" अल्लाह है। और यह भी कहा गया: "इसरा" 'शद्द' (मजबूत करना) से है, तो मानो इज़राइल का अर्थ है: जिसे अल्लाह ने मजबूत किया और उसकी रचना को पूर्ण किया। अल-महदवी ने इसका उल्लेख किया है (2)। अल-सुहैली ने कहा (3): उनका नाम इज़राइल रखा गया क्योंकि उन्होंने रात में यात्रा (अस्रा) की थी जब उन्होंने अल्लाह की ओर हिजरत की थी, इसलिए उनका नाम इज़राइल पड़ा, अर्थात: उन्होंने अल्लाह की ओर यात्रा (4) की। इस प्रकार नाम का कुछ हिस्सा इब्रानी है और कुछ हिस्सा अरबी के अनुकूल है (5)। और अल्लाह बेहतर जानता है। अल्लाह तआला का कथन: {मेरी उस नेमत (कृपा) को याद करो जो मैंने तुम पर की है}। "ज़िक्र" (याद/जिक्र) एक साझा संज्ञा है; दिल से याद करना भूलने का विपरीत है। और ज़बान से ज़िक्र करना खामोशी का विपरीत है। मैंने अपनी ज़बान और दिल से चीज़ का ज़िक्र किया। और इसे अपने "धुक्र" में रखो - धाल पर पेश के साथ - यानी: इसे भूलो मत। अल-किसाई ने कहा: जो कुछ मन में हो, उस पर धाल पर पेश (धुक्र) होता है, और जो ज़बान पर हो, उस पर धाल के नीचे जेर (ज़िक्र) होता है। दूसरों ने कहा: ये दो बोलियाँ हैं, धुक्र और ज़िक्र दोनों कहे जाते हैं, और उनका अर्थ एक ही है। "अज़-ज़कर" (पुरुष), धाल पर ज़बर के साथ, स्त्री का विपरीत है। "ज़िक्र" का अर्थ सम्मान/महिमा भी है (6), इसी से अल्लाह तआला का कथन है: {और बेशक यह (कुरआन) तुम्हारे लिए और तुम्हारी कौम के लिए एक सम्मान (ज़िक्र) है} [अज़-ज़ुख़रुफ़: 44]। इब्न अल-अंबारी ने कहा: आयत में अर्थ यह है: मेरी नेमत के शुक्र (आभार) को याद करो, इसलिए शुक्र शब्द को हटा दिया गया क्योंकि नेमत का उल्लेख ही काफी है। यह भी कहा गया: उनका मतलब दिल से याद रखना है, जो कि अपेक्षित है, यानी: मेरी उस नेमत से गाफिल न हों जो मैंने तुम पर की है और उसे भूलो मत, और यह बात अच्छी है। यहाँ "अल-नेमत" एक जातिवाचक संज्ञा है, इसलिए यह एकवचन है लेकिन अर्थ बहुवचन का है। अल्लाह तआला ने फरमाया: {और यदि तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो, तो उन्हें गिन न सकोगे} [इब्राहीम: 34], यानी: उसकी नेमतें। उन पर उसकी नेमतों में से यह है कि उसने उन्हें फिरौन के लोगों से बचाया, उनमें से नबी बनाए, उन पर किताबें, मन्न और सलवा उतारा, और उनके लिए पत्थर से पानी निकाला, साथ ही उन्हें तौरात सौंपी जिसमें मुहम्मद ﷺ के गुण, उनकी विशेषताएं और उनके संदेश का वर्णन है। पूर्वजों पर की गई नेमतें वंशजों पर भी नेमतें हैं, क्योंकि वे अपने पूर्वजों के सम्मान से सम्मानित होते हैं (7)। चेतावनी:

अर्थ के विद्वानों ने कहा: अल्लाह सुब्हानहू व तआला ने बनी इज़राइल को नेमत की याद से जोड़ा, और उसे हटा दिया...

(1) इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 593/1 में उद्धृत किया है। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 133/1। (3) अल-तारीफ व अल-इलाम पृष्ठ 20। (4) (म) में: अस्रा। (5) देखें मिरअत अल-ज़मान 315/1, और अल-दुर्र अल-म़सून 310/1। (6) मुजमल अल-लुग़ह 360/2, और अल-नुक़त व अल-उयून 111/1। (7) अल-नुक़त व अल-उयून 111/1।

سورة البقرہ: آیت 40 صفحہ 7

وہ اللہ ہے (1)۔ اور کہا گیا: «اسرا» اللہ کا برگزیدہ ہے، اور «ایل» اللہ ہے۔ اور کہا گیا: «اسرا» شد (مضبوط کرنے) سے ہے، گویا اسرائیل وہ ہے جسے اللہ نے مضبوط کیا اور اس کی تخلیق کو مکمل کیا۔ اسے المہدوی نے ذکر کیا ہے (2)۔ اور السہیلی نے کہا (3): اسے اسرائیل نام دیا گیا؛ کیونکہ اس نے ہجرت کے وقت اللہ تعالیٰ کی طرف رات کو سفر (اسریٰ) کیا تھا، اس لیے اس کا نام اسرائیل پڑا، یعنی: اللہ کی طرف سفر (4) کیا۔ تو اس نام کا کچھ حصہ عبرانی اور کچھ حصہ عربی کے موافق ہے (5)۔ اور اللہ بہتر جاننے والا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {میری اس نعمت کو یاد کرو جو میں نے تم پر کی} ذکر ایک مشترک نام ہے، دل سے یاد کرنا بھولنے کی ضد ہے۔ اور زبان سے ذکر کرنا خاموشی کی ضد ہے، اور میں نے اپنی زبان اور دل سے چیز کا ذکر کیا۔ اور اسے اپنے «ذُکر» میں رکھو - ذال پر پیش کے ساتھ - یعنی: اسے بھولو مت۔ الکسائی نے کہا: جو چیز ذہن میں ہو اس پر ذال پر پیش (ذُکر) ہوتا ہے، اور جو زبان پر ہو اس پر ذال کے نیچے زیر (ذِکر) ہوتا ہے۔ دوسروں نے کہا: یہ دو لغتیں ہیں، ذُکر اور ذِکر دونوں کہے جاتے ہیں اور ان کا معنی ایک ہی ہے۔ اور «الذَّکر» ذال پر زبر کے ساتھ، مؤنث کی ضد ہے۔ ذکر کا ایک معنی شرف بھی ہے (6)، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {اور بے شک یہ (قرآن) آپ کے لیے اور آپ کی قوم کے لیے ایک شرف (ذکر) ہے} [الزخرف: 44]۔ ابن الانباری نے کہا: آیت میں معنی یہ ہے کہ: میری نعمت کے شکر کو یاد کرو، تو نعمت کے ذکر کو کافی سمجھتے ہوئے شکر کا لفظ حذف کر دیا گیا۔ اور کہا گیا کہ: اس سے دل سے یاد کرنا مراد ہے، اور یہی مطلوب ہے، یعنی: میری اس نعمت سے غافل نہ ہو جو میں نے تم پر کی ہے، اور اسے بھولو مت، اور یہ قول حسن ہے۔ اور نعمت یہاں اسم جنس ہے، پس یہ واحد ہے مگر جمع کے معنی میں ہے، اللہ تعالیٰ نے

فرمایا: {اور اگر تم اللہ کی نعمت کو گننا چاہو تو تم اسے شمار نہ کر سکو گے} [ابراہیم: 34]، یعنی: اس کی نعمتیں۔ اور ان پر اس کی نعمتوں میں سے یہ ہے کہ اس نے انہیں آلِ فرعون سے بچایا، ان میں انبیاء بنائے، ان پر کتابیں اور من و سلویٰ اتارا، اور ان کے لیے پتھر سے پانی جاری کیا، اس کے علاوہ ان کے پاس تورات امانت رکھی جس میں محمد ﷺ کی صفت، ان کے اوصاف اور ان کی رسالت کا ذکر ہے، اور باپ دادا پر نعمتیں بیٹوں پر بھی نعمتیں ہوتی ہیں؛ کیونکہ وہ اپنے باپ دادا کے شرف سے مشرف ہوتے ہیں (7)۔ تنبیہ: اہل معانی نے کہا: اللہ سبحانہ و تعالیٰ نے بنی اسرائیل کو نعمت کے ذکر سے جوڑا، اور اسے گرا دیا...

(1) اسے الطبری نے اپنی تفسیر 1/593 میں روایت کیا ہے۔ (2) المحرر الوجیز 1/133۔ (3) التعریف والإعلام ص 20۔ (4) نسخہ (م) میں: اسریٰ۔ (5) دیکھیے مرآۃ الزمان 1/315، اور الدر المصون 1/310۔ (6) مجمل اللغة 2/360، اور النکت والعیون 1/111۔ (7) النکت والعیون 1/111۔

8 Surah Al-Baqarah: Verse 40

...from the Ummah of Muhammad ﷺ, and He called them to His remembrance, so He said: {So remember Me; I will remember you} [Al-Baqarah: 152] so that the gaze of the nations would be from the blessing to the Bestower, and the gaze of the Ummah of Muhammad ﷺ from the Bestower to the blessing. His saying: {And fulfill My covenant; I will fulfill your covenant} is a command and its response. Al-Zuhri read: "awfi" with a fatha on the 'waw' and a shadda (1) on the 'fa'; for intensification (2). And opinions differed on what this covenant is. Al-Hasan said: His covenant is His saying: {Take what We have given you with strength} [Al-Baqarah: 63] (3), and His saying: {And Allah had already taken a covenant from the Children of Israel, and We delegated from among them twelve leaders} [Al-Ma'idah: 12]. And it was said: It is His saying: {And [recall] when Allah took a covenant from those who were given the Scripture, [saying], "You must make it clear to the people and not conceal it."} [Al-Imran: 188]. Al-Zajjaj said: {And fulfill My covenant} which I covenanted to you in the Torah regarding following Muhammad ﷺ, {I will fulfill your covenant} with what I guaranteed to you for that; if you fulfill it, then for you is Paradise. And it was said: {Fulfill My covenant} in performing the obligations according to the Sunnah and sincerity, {I will fulfill} by accepting them from you and rewarding you for them. And some of them said: {Fulfill My covenant} in acts of worship, {I will fulfill your covenant} meaning: I will bring you to the stations of divine care. And it was said: {Fulfill My covenant} in observing the etiquettes of the outward, {I will fulfill your covenant} by beautifying (4) your inner selves. And it was said: It is general for all His commands, prohibitions, and exhortations, so the mention of Muhammad ﷺ that is in the Torah and elsewhere is included in that. This is the saying of the majority of scholars, and it is the correct one. And His covenant, Glory be to Him and Exalted is He, is that He enters them into Paradise (5). I said: And what was requested from these in terms of fulfillment of the covenant is requested from us. Allah the Almighty said: {Fulfill the contracts} [Al-Ma'idah: 1], {And fulfill the covenant of Allah} [An-Nahl: 91], and it is frequent. And their fulfillment of Allah's covenant is a sign of Allah the Almighty's fulfillment for them, not a cause for it, but rather that is a grace from Him upon them.

(1) In (ظ): and a teshdid. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/218, Al-Qira'at al-Shadhah p. 5, Al-Muhtasab 1/81, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/134. (3) Mentioned by Al-Tabarsi in Majma' al-Bayan 1/207. (4) In (ظ): in beautifying. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/134.

8 सूरह अल-बकरा : आयत 40

...मुहम्मद ﷺ की उम्मत की ओर से, और उन्होंने उन्हें अपनी याद की ओर बुलाया, और कहा: {अतः मुझे याद करो; मैं तुम्हें याद रखूँगा} [अल-बकरा: 152] ताकि राष्ट्रों की दृष्टि वरदान (नेमत) से वरदान देने वाले (मुनइम) की ओर हो, और मुहम्मद ﷺ की उम्मत की दृष्टि वरदान देने वाले से वरदान की ओर हो। अल्लाह का कथन: {और मेरे वादे को पूरा करो; मैं तुम्हारे वादे को पूरा करूँगा} एक आदेश और उसका प्रत्युत्तर है। अल-ज़ुहरी ने इसे 'अफ़्फ़ि' (أوفِّ) पढ़ा है, 'वाव' पर फतह और 'फ़ा' पर शद्द (1) के साथ; बहुलता (2) के लिए। और इस बारे में मतभेद है कि यह वादा क्या है। अल-हसन ने कहा: उनका वादा उनका यह कथन है: {जो कुछ हमने तुम्हें दिया है उसे दृढ़ता से थाम लो} [अल-बकरा: 63] (3), और उनका कथन: {अल्लाह ने बनी इसराइल से वादा लिया था, और हमने उनमें से बारह मुखिया नियुक्त किए थे} [अल-माइदा: 12]। और कहा गया है कि यह उनका कथन है: {और जब अल्लाह ने उन लोगों से वादा लिया जिन्हें किताब दी गई थी कि तुम इसे लोगों के सामने साफ़-साफ़ बयान करोगे और इसे नहीं छिपाओगे} [आल इमरान: 188]। अल-ज़ज्जाज ने कहा: {और मेरे वादे को पूरा करो} जो वादा मैंने तुमसे तौरात में मुहम्मद ﷺ के अनुसरण के बारे में किया था, {मैं तुम्हारे वादे को पूरा करूँगा} उस चीज़ के साथ जिसकी मैंने उस पर तुम्हारे लिए गारंटी दी है; यदि तुम उसे पूरा करोगे, तो तुम्हारे लिए जन्नत है। और कहा गया: {मेरे वादे को पूरा करो} सुन्नत और निष्ठा (इखलास) के साथ अनिवार्य कर्तव्यों को निभाने में, {मैं पूरा करूँगा} उन्हें तुमसे स्वीकार करके और उन पर तुम्हें बदला देकर। और उनमें से कुछ ने कहा: {मेरे वादे को पूरा करो} इबादतों में, {मैं तुम्हारे वादे को पूरा करूँगा} अर्थात: तुम्हें देखभाल (रियायत) के मुकाम तक पहुँचाऊँगा। और कहा गया: {मेरे वादे को पूरा करो} बाहरी शिष्टाचार (आदाब) की रक्षा करने में, {मैं तुम्हारे वादे को पूरा करूँगा} तुम्हारे आंतरिक रहस्यों को सजाकर (4)। और कहा गया: यह उनके सभी आदेशों, निषेधों और वसीयतों में सामान्य है, इसलिए इसमें मुहम्मद ﷺ का उल्लेख भी शामिल है जो तौरात और अन्य जगहों पर है। विद्वानों के बहुमत का यही कहना है, और यही सही है। और अल्लाह सुब्हानहु व तआला का वादा यह है कि वह उन्हें जन्नत में दाखिल करेगा (5)। मैंने कहा: और उन लोगों से वादे को निभाने के लिए जो माँगा गया था, वह हमसे भी माँगा गया है। अल्लाह तआला ने फरमाया: {अनुबंधों को पूरा करो} [अल-माइदा: 1], {और अल्लाह के वादे को पूरा करो} [अन-नहल: 91], और यह बहुत है। और अल्लाह के वादे के प्रति उनकी वफ़ादारी अल्लाह तआला की उनके प्रति वफ़ादारी का एक संकेत है, इसका कारण नहीं, बल्कि यह उनकी ओर से उन पर एक कृपा है।

(1) (ظ) में: और तशदीद। (2) इ'राब अल-क़ुरान अल-नहस 1/218, अल-क़िरात अल-शाज़ा पृ. 5, अल-मुहतासिब 1/81, और अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/134। (3) अल-तबरसी ने मजमा' अल-बयान 1/207 में इसका उल्लेख किया है। (4) (ظ) में: सजाने में। (5) अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/134।

٨ سورة البقره : آیت ۴۰

...امت محمدیہ ﷺ سے، اور اللہ نے انہیں اپنے ذکر کی طرف بلایا، پس فرمایا: ﴿فَاذْكُرُونِي أَذْكُرْكُمْ﴾ [البقرة: ١٥٢] تاکہ اقوام کی نظر نعمت سے منعم (نعمت دینے والے) کی طرف ہو، اور امت محمدیہ ﷺ کی نظر منعم سے نعمت کی طرف ہو۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَأَوْفُوا بِعَهْدِي أُوفِ بِعَهْدِكُمْ﴾ ایک حکم ہے اور اس کا جواب ہے۔ زہری نے اسے 'أوفِّ' پڑھا ہے، 'واؤ' کے فتحہ اور 'فا' کی شد (١) کے ساتھ؛ کثرت (٢) کے لیے۔ اور اس عہد کے بارے میں اختلاف ہے کہ یہ کیا ہے، پس حسن بصری نے کہا: اس کا عہد اللہ کا یہ فرمان ہے: ﴿خُذُوا مَا ءَاتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ﴾ [البقرة: ٦٣] (٣)، اور یہ فرمان: ﴿وَلَقَدْ أَخَذَ اللَّهُ مِيثَاقَ بَنِي إِسْرَاءِيلَ وَبَعَثْنَا مِنْهُمُ اثْنَيْ عَشَرَ نَقِيبًا﴾ [المائدة: ١٢]۔ اور کہا گیا ہے کہ یہ اللہ کا یہ فرمان ہے: ﴿وَإِذْ أَخَذَ اللَّهُ مِيثَاقَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ لَتُبَيِّنُنَّهُ لِلنَّاسِ وَلَا تَكْتُمُونَهُ﴾ [آل عمران: ١٨٨]۔ زجاج نے کہا: ﴿وَأَوْفُوا بِعَهْدِي﴾ یعنی وہ عہد جو میں نے تم سے تورات میں محمد ﷺ کی پیروی کے بارے میں لیا تھا، ﴿أُوفِ بِعَهْدِكُمْ﴾ اس کے بدلے میں جس کی میں نے تمہارے لیے ضمانت دی ہے؛ اگر تم اسے پورا کرو گے تو تمہارے لیے جنت ہے۔ اور کہا گیا: ﴿أَوْفُوا بِعَهْدِي﴾ سنت اور اخلاص کے ساتھ فرائض کی ادائیگی میں، ﴿أُوفِ﴾ انہیں تم سے قبول کر کے اور ان پر تمہیں جزا دے کر۔ اور بعض نے کہا: ﴿أَوْفُوا بِعَهْدِي﴾ عبادات میں، ﴿أُوفِ بِعَهْدِكُمْ﴾ یعنی: تمہیں رعایتوں (عنایات) کی منزلوں تک پہنچاؤں گا۔ اور کہا گیا: ﴿أَوْفُوا بِعَهْدِي﴾ ظاہر کے آداب کی حفاظت میں، ﴿أُوفِ بِعَهْدِكُمْ﴾ تمہارے باطن (سرائر) کو مزین کر کے (۴)۔ اور کہا گیا: یہ اللہ کے تمام احکامات، نواہی اور وصیتوں میں عام ہے، پس اس میں محمد ﷺ کا ذکر بھی شامل ہے جو تورات وغیرہ میں ہے۔ علماء کی اکثریت (جمہور) کا یہی قول ہے اور یہی صحیح ہے۔ اور اللہ سبحانہ و تعالیٰ کا عہد یہ ہے کہ وہ انہیں جنت میں داخل کرے گا (۵)۔ میں کہتا ہوں: ان لوگوں سے

عہد پورا کرنے کا جو مطالبہ کیا گیا، وہی ہم سے بھی مطلوب ہے۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿أَوْفُوا بِالْعُقُودِ﴾ [المائدة: ١]، ﴿وَأَوْفُوا بِعَهْدِ اللَّهِ﴾ [النحل: ٩١]، اور یہ بہت زیادہ ہے۔ اور ان کا اللہ کے عہد کو پورا کرنا اللہ تعالیٰ کے ان کے ساتھ وفائے عہد کی علامت ہے، اس کی علت (وجہ) نہیں، بلکہ یہ اللہ کی طرف سے ان پر ایک فضل و احسان ہے۔

(١) (ظ) میں: اور تشدید۔ (٢) إعراب القرآن للنحاس ٢١٨/١، والقراءات الشاذة ص ٥، والمحتسب ٨١/١، والمحرر الوجيز ١/١٣٤۔ (٣) اسے طبرسی نے مجمع البیان ٢٠٧/١ میں ذکر کیا ہے۔ (۴) (ظ) میں: تزیین (سجاوٹ) میں۔ (٥) المحرر الوجيز ١/١٣٤۔

9 Surah Al-Baqarah: Ayah 41

The Almighty's saying: {and fear Me [alone]} (Waiyyaya Farhabun) meaning: fear Me. Rahb, Rahab, and Rahbah all mean: fear. The command for it implies a threat. The letter 'ya' after the 'nun' was dropped because it is the end of a verse. Ibn Abi Ishaq read it as "Farhabuni" with the 'ya', and likewise "Fattaquni", based on the original form (1). "Iyyaya" (Me alone) is in the accusative case due to an implicit verb, and this is the preferred choice in commands, prohibitions, and interrogations; the estimation being: and fear Me, so fear Me. It is also permissible in speech to say: "and I, so fear Me", as subject and predicate, where (2) "Farhabun" is the predicate based on an implicit deletion, the meaning (3) being: and I am your Lord, so fear Me.

The Almighty's saying: {And believe in what I have sent down confirming that which is [already] with you, and be not the first to disbelieve in it. And do not exchange My signs for a small price, and fear Me [alone]} (41).

The Almighty's saying: {And believe in what I have sent down} meaning: believe, referring to the Quran. {confirming} (musaddiqan) is a circumstantial case (hal) for the pronoun in "Anzaltu" (I sent down); the estimation being: in what I have sent down, it being confirming, and the operator (عامل) for it is "Anzaltu". It is also permissible to be a circumstantial case for "Ma" (what), with the operator being "Aminu" (believe); the estimation: believe in the Quran, it being confirming. It is also possible for it to be a verbal noun (masdariyya); the estimation: believe in the sending down. {that which is [already] with you} meaning from the Torah.

The Almighty's saying: {and be not the first to disbelieve in it}. The pronoun in "bihi" (in it), it is said: it refers back to Muhammad ﷺ. This was said by Abu al-Aliya. And Ibn Jurayj said: it refers back to the Quran, as it is included (4) in His saying: "in what I have sent down" (5). And it is said: [it refers back] to the Torah, as it is included in His saying: "that which is with you". If it is asked: why did He say: "kafir" (disbeliever - singular), and not "kafirin" (disbelievers - plural)? It is said: the estimation is: and be not the first group to disbelieve in it. Al-Akhfash and Al-Farra (6) claimed that...

---

(1) I'rab al-Quran by al-Nahhas 118/1, and al-Muharrar al-Wajiz 134/1, and it is also the reading of Ya'qub from the ten. See al-Nashr 237/2. (2) In (D): fayakun, and in (Z) and (M): wakawn, and what is established is from (Zah). (3) In the copies: kan al-ma'na, and what is established is from (M). (4) In (M): tadamanahu. (5) The saying of Abu al-Aliya and Ibn Jurayj was recorded by al-Tabari in his Tafsir 602/1. And they

were mentioned by al-Mawardi in al-Nukat wa al-'Uyun 112/1. (6) Ma'ani al-Quran 1/ 32-33.

9 सूरह अल-बकरा: आयत 41

अल्लाह का फरमान: {और सिर्फ मुझी से डरो} (व इय्याया फरहबून) यानी: मुझी से डरो। रहब, रहब और रहबा का अर्थ है: डर। इसमें आदेश के साथ धमकी का भाव भी है। 'नून' के बाद 'या' को हटा दिया गया है क्योंकि यह आयत का अंत है। इब्न अबी इशाक ने इसे "फरहबूनी" यानी 'या' के साथ पढ़ा है, और इसी तरह "फत्तकूनी" को भी, जो कि मूल रूप है (1)। "इय्याया" (सिर्फ मुझी को) एक छिपी हुई क्रिया के कारण कर्म कारक (नसब) में है, और आदेश, निषेध और प्रश्न में यही चयन बेहतर है; इसका अनुमानित अर्थ है: और मुझी से डरो, तो मुझी से डरो। बोलचाल में यह भी कहना जायज है: "और मैं, तो मुझी से डरो", उद्देश्य और विधेय (मुब्तदा और खबर) के आधार पर, जहाँ (2) "फरहबून" खबर है एक छिपे हुए भाग के अनुमान पर, अर्थ (3) है: और मैं तुम्हारा रब हूँ, तो मुझी से डरो।

अल्लाह का फरमान: {और उस (किताब) पर ईमान लाओ जो मैंने उतारी है, जो उस (किताब) की तस्दीक करती है जो तुम्हारे पास है, और इसके पहले मुनकिर (इनकार करने वाले) न बनो। और मेरी आयतों को मामूली कीमत पर न बेचो, और सिर्फ मुझी से डरो} (41)।

अल्लाह का फरमान: {और उस पर ईमान लाओ जो मैंने उतारा है} यानी: तस्दीक करो, यानी कुरआन की। {तस्दीक करने वाली} (मुसद्दिकन) "अन्ज़ल्तु" (मैंने उतारा) के सर्वनाम की स्थिति (हाल) है; अनुमानित अर्थ: उस पर जो मैंने उतारा है, तस्दीक करते हुए, और इसमें कार्य करने वाला शब्द "अन्ज़ल्तु" है। यह भी संभव है कि यह "मा" (जो) की स्थिति हो, और कार्य करने वाला शब्द "आमीनू" (ईमान लाओ) हो; अनुमानित अर्थ: कुरआन पर ईमान लाओ तस्दीक करते हुए। और यह भी मुमकिन है कि यह मसदरीया (क्रियात्मक संज्ञा) हो; अनुमानित अर्थ: उतारने पर ईमान लाओ। {जो तुम्हारे पास है} यानी तौरात में से।

अल्लाह का फरमान: {और इसके पहले मुनकिर न बनो}। "बिही" (इसमें/उसका) में सर्वनाम के बारे में कहा गया है: यह मुहम्मद ﷺ की ओर लौटता है। यह अबू अल-आलिया ने कहा है। और इब्न जुरैज ने कहा: यह कुरआन की ओर लौटता है, क्योंकि यह (4) उनके कथन: "जो मैंने उतारा है" (5) में शामिल है। और कहा गया है: तौरात की ओर, क्योंकि वह उनके कथन: "जो तुम्हारे पास है" में शामिल है। अगर यह पूछा जाए: उन्होंने "काफ़िर" (एकवचन) क्यों कहा, "काफ़िरीन" (बहुवचन) क्यों

नहीं? कहा गया है: अनुमान यह है कि: और काफिरों का पहला गिरोह (फरीक) न बनो। अल-अख़्फ़श और अल-फर्रा (6) का दावा है कि...

---

(1) इराब अल-कुरान, अल-नहस द्वारा 118/1, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 134/1, और यह दस में से याकूब का पाठ भी है। देखें अल-नश्र 237/2। (2) (द) में: फयकुन, और (ज़) और (म) में: वकौना, और जो स्थापित है वह (ज़ह) से है। (3) प्रतियों में: कान अल-माना, और जो स्थापित है वह (म) से है। (4) (म) में: तदमनहु। (5) अबू अल-आलिया और इब्न जुरैज का कथन अल-तबारी ने अपनी तफ़सीर 602/1 में दर्ज किया है। और अल-मावर्दी ने अल-नुकात व अल-उयून 112/1 में उनका उल्लेख किया है। (6) मानी अल-कुरान 1/ 32-33।

9 سورہ البقرہ: الآیہ ٤١

ارشادِ باری تعالیٰ ہے: ﴿وَإِيَّٰىَ فَٱرۡهَبُونِ﴾ یعنی: مجھ سے ڈرو۔ الرَّهْبُ، الرَّهَبُ اور الرَّهْبَةُ کے معنی ہیں: خوف۔ اس میں امر کے ساتھ تہدید (دھمکی) کا معنی بھی پایا جاتا ہے۔ 'نون' کے بعد 'یا' کو گرا دیا گیا ہے کیونکہ یہ آیت کا اختتام ہے۔ ابن ابی اسحاق نے اسے "فارھبونی" (یا کے ساتھ) پڑھا ہے، اور اسی طرح "فاتقونی" کو بھی، اصل (1) کے مطابق۔ "إِيَّايَ" فعل کے پوشیدہ ہونے کی وجہ سے منصوب ہے، اور امر، نہی اور استفہام میں یہی پسندیدہ ہے، تقدیر (مراد) یہ ہے: اور مجھ سے ڈرو پس مجھ سے ڈرو۔ کلام میں یہ بھی جائز ہے کہ: "اور میں، پس مجھ سے ڈرو"، مبتدا اور خبر کی بنیاد پر، اور (2) "فارھبون" خبر ہوگی حذف کی تقدیر پر، معنی (3) یہ ہوگا: اور میں تمہارا رب ہوں پس مجھ سے ڈرو۔

ارشادِ باری تعالیٰ ہے: ﴿وَءَامِنُواْ بِمَآ أَنزَلۡتُ مُصَدِّقٗا لِّمَا مَعَكُمۡ وَلَا تَكُونُوٓاْ أَوَّلَ كَافِرِۭ بِهِۦۖ وَلَا تَشۡتَرُواْ بِـَٔايَٰتِي ثَمَنٗا قَلِيلٗا وَإِيَّٰىَ فَٱتَّقُونِ ٤١﴾۔

ارشادِ باری تعالیٰ ہے: ﴿وَءَامِنُواْ بِمَآ أَنزَلۡتُ﴾ یعنی: تصدیق کرو، یعنی قرآن کی۔ ﴿مُصَدِّقٗا﴾ "انزلتُ" میں موجود ضمیر سے حال ہے، تقدیر یہ ہے: اس کی تصدیق کرتے ہوئے جسے میں نے نازل کیا ہے، اور اس میں عامل "انزلتُ" ہے۔ یہ بھی جائز ہے کہ "ما" سے حال ہو، اور اس میں عامل "آمنوا" ہو، تقدیر یہ ہے: قرآن پر تصدیق کی حالت میں ایمان لاؤ، اور یہ بھی جائز ہے کہ مصدریہ ہو، تقدیر یہ ہے: نازل کرنے پر ایمان لاؤ۔ ﴿لِّمَا مَعَكُمۡ﴾ یعنی تورات میں سے۔

ارشادِ باری تعالیٰ ہے: ﴿وَلَا تَكُونُوٓاْ أَوَّلَ كَافِرِۭ بِهِۦۖ﴾ "بہ" میں ضمیر کے بارے میں کہا گیا ہے کہ: یہ محمد ﷺ کی طرف لوٹ رہی ہے۔ یہ قول ابو العالیہ کا ہے۔ اور ابن جریج نے کہا: یہ قرآن کی طرف لوٹ رہی ہے، کیونکہ یہ ان کے قول ﴿بِمَآ أَنزَلۡتُ﴾ کے ضمن میں ہے(4) (5)۔ اور کہا گیا ہے:

تورات کی طرف، کیونکہ وہ ان کے قول ﴿لِّمَا مَعَكُمۡ﴾ کے ضمن میں ہے۔ پس اگر یہ پوچھا جائے کہ: "کافر" (واحد) کیوں فرمایا، "کافرین" (جمع) کیوں نہیں؟ کہا گیا: تقدیر (مراد) یہ ہے: اور کفر کرنے والا پہلا فریق نہ بنو۔ اور اخفش اور فراء (6) کا گمان ہے کہ...

---

(1) إعراب القرآن، نحاس ١١٨/١، اور المحرر الوجيز ١٣٤/١، اور یہ دس قراتوں میں سے یعقوب کی قرات بھی ہے۔ دیکھیے النشر ٢٣٧/٢۔ (2) (د) میں: فیکون، اور (ز) اور (م) میں: وکون، اور جو ثابت شدہ ہے وہ (ظ) سے ہے۔ (3) نسخوں میں: کان المعنی، اور جو ثابت شدہ ہے وہ (م) سے ہے۔ (4) (م) میں: تضمنہ۔ (5) ابو العالیہ اور ابن جریج کا قول طبری نے اپنی تفسیر ٦٠٢/١ میں نکالا ہے۔ اور ماوردی نے ان کا ذکر النکت والعیون ١١٢/١ میں کیا ہے۔ (6) معانی القرآن ١/ ٣٢-٣٣۔

Surah Al-Baqarah: Verse 41 It is carried on the meaning of the verb, because the meaning is: the first who disbelieved in it. And Sibawayh narrated (1): "He is the cleverest of the youths and the most handsome," and the apparent meaning of the speech was: "He is the cleverest youth and the most handsome." He said: "The first disbeliever in it," even though the disbelievers of Quraysh had disbelieved before them; its meaning is: among the People of the Book, as they are looked upon in such matters because they are an authority supposed to have knowledge (2). And "awwal" (first) according to Sibawayh (3) is in the accusative case as the predicate of "kana" (was), and it is among those words from which a verb is not uttered. It is on the pattern of "af'alu," its middle radical (ayn) and first radical (fa) are "waw." It was not uttered as a verb so that it would not become weak (defective) in two places: the ayn and the fa. This is the school of the Basrans. The Kufans said: It is from "wa'ala": meaning if he escaped. So its origin is: "aw'alu," then the hamza was lightened, replaced with a "waw," and merged (idgham), so it was said: "awwal," just as the hamza of "khati'ah" is lightened and said: "khatiyyah" (4). Al-Jawhari said (5): And the plural is "al-awa'il," and also "al-awali" by inversion. A group said: Its origin is "wawalu," on the pattern of "faw'alu," so the first "waw" was turned into a hamza. It was not pluralized as "awa-wul" because they found it heavy for two "waw"s to meet with the alif of plurality between them. It was said: It is "af'alu," from "ala ya'ulu," so its origin is: "a'awwalu," it was inverted and became "a'falu" inverted from "af'alu," then it was eased, replaced, and merged (6). Issue: There is no argument in this verse for those who prohibit the argument by the implication of address (7), who are the Kufans and those who agree with them, because the purpose of the speech is to prohibit disbelief first and last, and the "first" was specified...

(1) Al-Kitab 1/80. The author quoted the sayings of Al-Akhfash, Al-Farra, and Sibawayh through Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/218. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/134. (3) Al-Kitab 3/195, and it was quoted through Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/219. (4) His saying: "so it is said: khatiyyah," is not in (D) and (M). (5) Al-Sihah: (wa'ala). (6) See Tahdhib al-Lughah 15/455-457. (7) It is restricting the rule of what is spoken to what it covers, and the rule for what is unsaid is opposite to it. This is called the concept of disagreement (mafhum al-mukhalafa). Al-Hudud fi al-Usul by Al-Baji, p. 50.

सूरा अल-बकरा: आयत 41 यह क्रिया के अर्थ पर आधारित है, क्योंकि अर्थ है: वह पहला जिसने इसमें अविश्वास किया। और सिबावेह (1) ने वर्णन किया है: "वह युवकों में सबसे चतुर और सबसे सुंदर है," जबकि भाषण का स्पष्ट अर्थ था: "वह सबसे चतुर युवक और सबसे सुंदर है।" उन्होंने कहा: "इसका पहला अविश्वासी," हालांकि कुरैश के काफिर उनसे पहले अविश्वास कर चुके थे; इसका अर्थ है: अहले किताब (किताब वाले) में से, क्योंकि ऐसे मामलों में उनकी ओर देखा जाता है क्योंकि वे एक ऐसा प्रमाण माने जाते हैं जिनके पास ज्ञान होने की उम्मीद है (2)। और सिबावेह (3) के अनुसार "अव्वल" (पहला) 'काना' की खबर के रूप में कर्म कारक (नस्ब) में है, और यह उन शब्दों में से है जिनसे क्रिया का उच्चारण नहीं किया जाता है। यह "अफ़अलु" के पैटर्न पर है, जिसका मध्य मूल अक्षर (ऐन) और पहला मूल अक्षर (फ़ा) "वाव" है। इसे क्रिया के रूप में नहीं बोला गया ताकि यह दो जगहों पर कमजोर (दोषपूर्ण) न हो जाए: ऐन और फ़ा। यह बसरा के विद्वानों का मत है। कूफ़ा के विद्वानों ने कहा: यह "वअला" से है: जिसका अर्थ है यदि वह बच गया। तो इसका मूल है: "अवअलु", फिर हमज़ा को हल्का किया गया, इसे "वाव" से बदल दिया गया और मिला दिया गया (इदग़ाम), तो कहा गया: "अव्वल", जैसे "ख़तीअह" के हमज़ा को हल्का किया जाता है और "ख़तिय्याह" कहा जाता है (4)। अल-जौहरी (5) ने कहा: और बहुवचन "अल-अवाइल" है, और उलटने से "अल-अवाली" भी है। एक समूह ने कहा: इसका मूल "ववलु" है, "फ़ौअलु" के पैटर्न पर, इसलिए पहले "वाव" को हमज़ा में बदल दिया गया। इसे "अवा-वुल" के रूप में बहुवचन नहीं बनाया गया क्योंकि उनके बीच बहुवचन के अलिफ़ के साथ दो "वाव" के मिलन को उन्होंने भारी पाया। कहा गया: यह "अफ़अलु" है, "आला यऊलु" से, इसलिए इसका मूल है: "अअव्वलु", इसे उलट दिया गया और यह "अफ़अलु" से उलट कर "अफ़अलु" बन गया, फिर इसे आसान किया गया, बदला गया और मिलाया गया (6)। मसला: इस आयत में उन लोगों के लिए कोई तर्क नहीं है जो संबोधन के निहितार्थ (दलील अल-ख़िताब) (7) द्वारा तर्क देने से मना करते हैं, जो कूफ़ा के विद्वान और उनके समर्थक हैं, क्योंकि भाषण का उद्देश्य शुरू और अंत में कुफ़्र (अविश्वास) को रोकना है, और "पहले" को विशिष्ट किया गया...

(1) अल-किताब 1/80। लेखक ने इराब अल-कुरान 1/218 में अल-नहास के माध्यम से अल-अख़फ़श, अल-फ़र्रा और सिबावेह के कथनों को उद्धृत किया है। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/134। (3) अल-किताब 3/195, और इसे इराब अल-कुरान 1/219 में अल-नहास के माध्यम से उद्धृत किया गया था। (4) उनका कहना: "तो कहा जाता है: ख़तिय्याह," (द) और (म) में नहीं है। (5) अल-सिहाह: (वअला)। (6) देखें तहज़ीब अल-लुग़ह 15/455-457। (7) यह जो कहा गया है उसके

नियम को केवल उसी तक सीमित करना है जिसे वह कवर करता है, और जो अनकहा है उसके लिए नियम इसके विपरीत है। इसे 'मफ़हूम अल-मुख़ालफ़ा' कहा जाता है। अल-बाजी द्वारा 'अल-हुदूद फ़ी अल-उसूल', पृष्ठ 50।

سورہ بقرہ: آیت ٤١ یہ فعل کے معنی پر محمول ہے، کیونکہ معنی ہے: پہلا جس نے اس کا کفر کیا۔ اور سیبویہ (١) نے حکایت کی ہے: "وہ نوجوانوں میں سب سے زیادہ ذہین اور خوبصورت ہے،" جبکہ کلام کا ظاہر یہ تھا: "وہ سب سے ذہین نوجوان اور خوبصورت ہے۔" اور انہوں نے کہا: "اس کا پہلا کافر،" حالانکہ قریش کے کفار ان سے پہلے کفر کر چکے تھے، تو اس کا معنی ہے: اہل کتاب میں سے، کیونکہ ایسے معاملات میں ان کی طرف دیکھا جاتا ہے، کیونکہ وہ ایک ایسی حجت ہیں جن سے علم کی توقع کی جاتی ہے (٢)۔ اور سیبویہ (٣) کے نزدیک "اوّل" 'کان' کی خبر ہونے کی بنا پر نصب میں ہے، اور یہ ان کلمات میں سے ہے جن سے فعل نہیں بولا جاتا، اور یہ "افعل" کے وزن پر ہے، جس کا عین اور فا کلمہ "واؤ" ہے، اور اس سے فعل اس لیے نہیں بولا گیا تاکہ دو جگہوں سے معتل (کمزور) نہ ہو جائے: عین اور فا، اور یہ بصریوں کا مذہب ہے۔ کوفیوں نے کہا: یہ "وَأَلَ" سے ہے: یعنی جب وہ نجات پا گیا، تو اس کی اصل "أَوْأَل" تھی، پھر ہمزہ کو ہلکا کیا گیا، اور اسے واؤ سے بدل کر ادغام کر دیا گیا، تو "اوّل" کہا گیا، جیسے "خطیئة" کے ہمزہ کو ہلکا کر کے "خطیّة" کہا جاتا ہے (٤)۔ جوہری (٥) نے کہا: اور اس کی جمع "اوائل" ہے، اور قلب (الٹ پھیر) کے ساتھ "اوالی" بھی آتی ہے۔ ایک جماعت نے کہا: اس کی اصل "وَوَل" ہے "فَوْعَل" کے وزن پر، تو پہلی واؤ کو ہمزہ سے بدل دیا گیا، اور اس کی جمع "أواول" اس لیے نہیں لائی گئی کیونکہ جمع کے الف کے درمیان دو واؤ کے اجتماع کو وہ بوجھل سمجھتے تھے۔ اور کہا گیا: یہ "افعل" ہے "آل یؤول" سے، تو اس کی اصل "أأوّل" تھی، قلب ہوا تو "أعفل" ہو گیا جو "افعل" سے مقلوب ہے، پھر اسے سہل کیا گیا، بدلا گیا اور ادغام کیا گیا (٦)۔ مسئلہ: اس آیت میں ان لوگوں کے لیے کوئی دلیل نہیں ہے جو دلیب الخطاب (٧) سے استدلال کرنے سے منع کرتے ہیں، اور وہ کوفی اور ان کے ہمنوا ہیں، کیونکہ کلام کا مقصود اول و آخر کفر سے روکنا ہے، اور "پہلے" کو خاص کیا...

(١) الكتاب ٨٠/١۔ مصنف نے اعراب القرآن ٢١٨/١ میں نحاس کے واسطے سے اخفش، فراء اور سیبویہ کے اقوال نقل کیے ہیں۔ (٢) المحرر الوجیز ١٣٤/١۔ (٣) الکتاب ١٩٥/٣، اور اسے اعراب القرآن ٢١٩/١ میں نحاس کے واسطے سے نقل کیا گیا ہے۔ (٤) ان کا قول: "فقال: خطية"، (د) اور (م) میں نہیں ہے۔ (٥) الصحاح: (وأل)۔ (٦) دیکھیے تہذیب اللغۃ ٤٥٥/١٥-٤٥٧۔ (٧) اس سے مراد منصوص (جو کہا گیا) کے حکم کو اسی تک محدود کرنا ہے، اور مسکوت عنہ (جس کے بارے میں خاموشی ہے) کے لیے اس کے برعکس حکم ہونا۔ اسے مفہوم مخالف کہا جاتا ہے۔ باجی کی الحدود فی الاصول، ص ٥٠۔

11 | Surah Al-Baqarah: Verse 41

...by mention because the priority in it is stricter, so the ruling of the mentioned and the one kept silent about was one, and this is clear.

His Almighty saying: {And do not exchange My signs for a small price} in it there are four issues:

The first: His Almighty saying: {And do not exchange} is conjoined to His saying: {And do not be}. He forbade them from being the first to disbelieve, and from taking a price for the signs of Allah, meaning: for changing the description of Muhammad ﷺ as bribes, and the rabbis used to do that, so they were forbidden from it. This was said by a group of the people of interpretation, including Al-Hasan and others (1).

And it was said: they had stipends they ate for knowledge, like salaries, so they were forbidden from that. And it was said: the rabbis used to teach their religion for a fee, so they were forbidden from that. And in their books: O son of Adam, teach for free as you were taught for free, i.e., in vain without a fee. Abu Al-Aliyah (2) said it.

And it was said: the meaning is: and do not exchange my commands, prohibitions, and signs for a small price, meaning: the world and its duration, and the living which is trifle and of no significance (3), so He called what they substituted for that a price; because they made it a compensation, so the name 'price' was applied to it even if it was not a price. And this meaning has preceded.

And the poet said (4): If you attempted a sin (5) or achieved it, what you gained by leaving the Hajj is no price [compensation].

I said: And this verse, even if it was specific to the Children of Israel, it includes whoever does their action. So whoever takes a bribe for changing a right or nullifying it, or refrains from teaching what is mandatory for him, or performing what he knows - and it has become mandatory for him - until he takes a fee for it, then he has entered into the implication of the verse. And Allah knows best.

(1) Al-Nukat wal-Uyun 1/112, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/135. (2) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 1/603-604. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/135. (4) He is Omar bin Abi Rabia, and the verse is in his Diwan p. 284, and Al-Aghani 1/111 and 8/211. (5) In (T): "a debt", and in the Diwan and Al-Aghani: "a world". (6) In the Diwan: "you took".

११ | सूरह अल-बक़रह: आयत ४१

...उल्लेख द्वारा, क्योंकि इसमें प्राथमिकता अधिक कठोर है, इसलिए जिसका उल्लेख किया गया और जिसके बारे में मौन रहा गया, उनका निर्णय एक ही है, और यह स्पष्ट है।

अल्लाह का कथन: {और मेरी आयतों को थोड़े मूल्य पर न बेचो} इसमें चार मसले (विषय) हैं:

पहला: अल्लाह का कथन: {और न बेचो} उनके कथन {और न बनो} से जुड़ा है। उन्होंने उन्हें पहले कुफ़्र (अविश्वास) करने वाले होने से मना किया, और अल्लाह की आयतों के बदले मूल्य लेने से, यानी: मुहम्मद ﷺ के गुणों को बदलने के लिए रिश्वत लेने से, और यहूदी विद्वान (अहबार) ऐसा किया करते थे, इसलिए उन्हें इससे मना किया गया। यह व्याख्या करने वालों के एक समूह द्वारा कहा गया था, जिनमें अल-हसन और अन्य शामिल थे (१)।

और कहा गया: उनके पास ज्ञान के बदले खाने के लिए वजीफे(वेतन) थे, इसलिए उन्हें उससे मना किया गया। और कहा गया: यहूदी विद्वान अपना धर्म शुल्क लेकर सिखाते थे, इसलिए उन्हें उससे मना किया गया। और उनकी किताबों में है: ऐ आदम के बेटे, मुफ़्त में सिखा जैसे तुझे मुफ़्त में सिखाया गया, यानी: बिना शुल्क के। अबू अल-आलिया (२) ने यह कहा।

और कहा गया: अर्थ यह है: और मेरे आदेशों, निषेधों और आयतों के बदले थोड़ा मूल्य न लो, यानी: दुनिया और उसकी अवधि, और वह जीवन जो तुच्छ है और जिसका कोई महत्व नहीं है (३), तो उन्होंने उस चीज़ को 'मूल्य' कहा जिसके बदले उन्होंने उसे लिया; क्योंकि उन्होंने इसे मुआवजे (बदले) के रूप में बनाया, इसलिए इस पर 'मूल्य' नाम लागू हुआ भले ही वह मूल्य न था। और यह अर्थ पहले आ चुका है।

कवि ने कहा (४): यदि आपने किसी पाप (५) का प्रयास किया या उसे प्राप्त किया, तो हज छोड़कर आपने जो पाया वह कोई मूल्य (मुआवजा) नहीं है।

मैंने कहा: और यह आयत, भले ही बनी इसराइल के लिए विशेष थी, लेकिन यह उन लोगों को भी शामिल करती है जो उनके जैसा काम करते हैं। अतः जो व्यक्ति किसी अधिकार को बदलने या उसे रद्द करने के लिए रिश्वत लेता है, या जो उसे सिखाने से मना करता है जो उस पर अनिवार्य है, या जो वह जानता है उसे करने से बचता है - जबकि वह उस पर अनिवार्य हो गया हो - जब तक कि वह उसके लिए शुल्क न ले ले, तो वह आयत के घेरे में आ गया है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

(१) अन-नुकात वल-उयून १/११२, और अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१३५। (२) तबरी ने अपनी तफसीर १/६०३-६०४ में इसे उद्धृत किया है। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१३५। (४) वह उमर बिन अबी रबीआ हैं, और शेर उनके दीवान पृ. २८४, और अल-अघानी १/१११ और ८/२११ में है। (५) (त) में: 'कर्ज', और दीवान और अल-अघानी में: 'दुनिया'। (६) दीवान में: 'लिया' ।

...ذکر کے ساتھ کیونکہ اس میں تقدیم (پہلے آنا) زیادہ سخت ہے، اس لیے مذکور اور جس سے خاموشی اختیار کی گئی ان دونوں کا حکم ایک ہی ہے، اور یہ واضح ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ وَلَا تَشْتَرُوا بِآيَاتِي ثَمَنًا قَلِيلًا ﴾ (اور میری آیتوں کو تھوڑی قیمت کے بدلے نہ بیچو) اس میں چار مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ وَلَا تَشْتَرُوا ﴾ (اور نہ خریدو/نہ بیچو) کا عطف ان کے قول: ﴿ وَلَا تَكُونُوا ﴾ (اور نہ بنو) پر ہے۔ انہیں سب سے پہلے کفر کرنے والے بننے سے منع کیا گیا، اور اس بات سے کہ وہ اللہ کی آیات پر کوئی قیمت وصول کریں، یعنی: محمد ﷺ کی صفات کی تبدیلی کے بدلے رشوت لینا، اور یہودی علماء (احبار) ایسا کیا کرتے تھے، تو انہیں اس سے منع کر دیا گیا۔ یہ بات اہل تاویل کی ایک جماعت نے کہی ہے، جن میں الحسن اور دیگر شامل ہیں (۱)۔

اور کہا گیا: ان کے پاس علم پر کھانے پینے کے ذرائع تھے جیسے تنخواہیں، تو انہیں اس سے منع کیا گیا۔ اور کہا گیا: علماء (احبار) اپنا دین اجرت پر سکھاتے تھے، تو انہیں اس سے منع کیا گیا۔ اور ان کی کتابوں میں ہے: اے آدم کے بیٹے، مفت میں سکھا جیسے تجھے مفت میں سکھایا گیا، یعنی: بغیر اجرت کے۔ یہ ابو العالیہ (۲) نے کہا۔

اور کہا گیا: معنی یہ ہے: اور میرے احکامات، نواہی اور آیات کے بدلے تھوڑی قیمت نہ لو، یعنی: دنیا اور اس کی مدت، اور وہ زندگی جو حقیر ہے جس کی کوئی قدر نہیں (۳)، تو اللہ نے اس چیز کا نام 'ثمن' (قیمت) رکھا جس سے انہوں نے بدلہ لیا؛ کیونکہ انہوں نے اسے عوض (بدلے) کے طور پر رکھا، تو اس پر ثمن کا اطلاق ہوا اگرچہ وہ ثمن نہ تھا۔ اور یہ معنی پہلے گزر چکا ہے۔

اور شاعر نے کہا (۴): اگر تو نے کسی گناہ (۵) کی کوشش کی یا اس پر غالب آگیا، تو حج چھوڑنے کے بدلے تو نے جو پایا وہ کوئی قیمت (بدلہ) نہیں ہے۔

میں نے کہا: اور یہ آیت اگرچہ بنی اسرائیل کے لیے خاص تھی، لیکن یہ ان لوگوں کو بھی شامل ہے جو ان جیسا عمل کریں۔ پس جس نے کسی حق کو بدلنے یا اسے باطل کرنے کے لیے رشوت لی، یا اس چیز کی تعلیم دینے سے انکار کیا جو اس پر واجب تھی، یا جو کچھ وہ جانتا تھا اسے ادا کرنے سے رکا رہا - جبکہ وہ اس پر متعین (فرض) ہو چکا تھا - یہاں تک کہ وہ اس پر اجرت لے لے، تو وہ آیت کے تقاضے میں داخل ہوگیا۔ واللہ اعلم۔

(۱) النکت والعیون ۱۱۲/۱، اور المحرر الوجیز ۱۳۵/۱۔ (۲) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۶۰۳/۱-۶۰۴ میں بیان کیا ہے۔ (۳) المحرر الوجیز ۱۳۵/۱۔ (۴) وہ عمر بن ابی ربیعہ ہیں اور یہ شعر ان کے دیوان ص ۲۸۴، اور الاغانی ۱۱۱/۱ اور ۲۱۱/۸ میں ہے۔ (۵) (ط) میں: 'ديناً' (قرض)، اور دیوان اور الاغانی میں: 'دنیا'۔ (۶) دیوان میں: 'اخذت' (میں نے لیا)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 41 12

Abu Dawood(1) narrated from Abu Huraira who said: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "Whoever acquires knowledge which is sought for the sake of Allah, Mighty and Majestic, but learns it only to gain some worldly benefit, will not find the fragrance of Paradise on the Day of Resurrection," meaning its scent.

Second: Scholars have differed regarding taking payment for teaching the Quran and knowledge, because of this verse and similar ones. Az-Zuhri and the Ashab al-Ra'y (people of legal opinion) prohibited it, saying: It is not permissible to take payment for teaching the Quran, because teaching it(2) is a duty among those duties that require an intention of drawing near to Allah and sincerity, so no payment should be taken for it, just like prayer and fasting. Allah the Almighty said: {And do not exchange My verses for a small price}.

Ibn Abbas narrated that the Prophet (peace and blessings be upon him) said: "The teachers of your children are the worst of you; they have the least mercy for the orphan, and are the harshest toward the poor"(3). Abu Huraira narrated: I said: O Messenger of Allah, what do you say about teachers? He said: "Their dirham is forbidden, their clothing is ill-gotten (suht), and their speech is ostentation"(4). 'Ubadah ibn al-Samit narrated: I taught some of the people of as-Suffah the Quran and writing, then one of them gifted me a bow. I said: It is not money, and I can shoot with it(5) in the cause of Allah. So I asked the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) about it, and he said: "If it pleases you to be encircled by a collar of fire, then accept it"(6).

Malik, al-Shafi’i, Ahmad, Abu Thawr, and most scholars allowed taking payment for teaching the Quran, because of his (peace be upon him) saying in the hadith of Ibn Abbas - the hadith of Ruqyah -: "The thing for which you most deserve to take payment is the Book of Allah." Recorded by al-Bukhari(7), and it is a text that resolves the dispute, so it should be relied upon.

As for the argument of the opponents by analogy with prayer and fasting, it is invalid; because in...

(1) In his Sunan (3664). Ibn Majah also recorded it (252), and it is in al-Musnad (8457). (2) In (D) and (Z): 'teaching him'. (3) Recorded by Ibn 'Adi 5/1986, and it is a fabricated (mawdhu') hadith, the author will speak about it soon. (4) Fabricated, and the author

will speak about it. (5) In (Z): 'with it'. (6) Its citation will come on page 14. (7) Number (5737).

सूरा अल-बकराह: आयत 41 12

अबू दाऊद (1) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया जिससे अल्लाह की रज़ा चाही जाती है, लेकिन उसने उसे केवल दुनिया का कोई लाभ प्राप्त करने के लिए सीखा, वह क़यामत के दिन जन्नत की खुशबू तक नहीं पाएगा," यानी उसकी महक।

दूसरा: विद्वानों ने इस आयत और इसके जैसी अन्य आयतों के कारण कुरान और ज्ञान सिखाने के लिए पारिश्रमिक लेने के संबंध में मतभेद किया है। अज़-ज़ुहरी और असहाब अर-राय ने इसे मना किया है और कहा है: कुरान सिखाने के लिए पारिश्रमिक लेना जायज़ नहीं है, क्योंकि इसे सिखाना (2) उन कर्तव्यों में से एक कर्तव्य है जिसमें अल्लाह की निकटता और इखलास (निष्ठा) की नियत की आवश्यकता होती है, इसलिए इसके लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए, जैसे नमाज़ और रोज़ा। अल्लाह तआला ने फ़रमाया है: {और मेरी आयतों को थोड़ी सी कीमत पर न बेचो}।

इब्न अब्बास ने रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुम्हारे बच्चों के शिक्षक तुममें से सबसे बुरे लोग हैं, वे अनाथों के प्रति सबसे कम दयालु हैं, और गरीबों के प्रति सबसे कठोर हैं"(3)। अबू हुरैरा ने रिवायत की: मैंने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, आप शिक्षकों के बारे में क्या कहते हैं? उन्होंने फ़रमाया: "उनका दिरहम हराम है, उनके कपड़े सूहत (हराम की कमाई) हैं, और उनकी बातचीत दिखावा है"(4)। उबादा बिन अस-सामित ने रिवायत की: मैंने अहल अस-सुफ़्फ़ा के कुछ लोगों को कुरान और लिखना सिखाया, तो उनमें से एक व्यक्ति ने मुझे एक धनुष उपहार में दिया। मैंने कहा: यह धन नहीं है, और मैं इससे अल्लाह की राह में तीरंदाजी करूँगा(5)। तो मैंने इसके बारे में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से पूछा, तो उन्होंने फ़रमाया: "यदि तुम्हें यह पसंद है कि तुम्हें आग का पट्टा पहनाया जाए, तो इसे स्वीकार कर लो"(6)।

मलिक, अल-शाफ़ई, अहमद, अबू थौर और अधिकांश विद्वानों ने कुरान सिखाने के लिए पारिश्रमिक लेने की अनुमति दी है, क्योंकि इब्न अब्बास की हदीस - रुकिया की हदीस - में उनका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कहना है: "जिस चीज़ पर तुम पारिश्रमिक लेने के सबसे अधिक हकदार हो, वह अल्लाह की किताब है।" इसे बुखारी (7) ने उल्लेख किया है, और यह एक ऐसा पाठ है जो विवाद को खत्म करता है, इसलिए इसी पर भरोसा किया जाना चाहिए।

जहाँ तक नमाज़ और रोज़े से तुलना करके विरोधियों की दलील का सवाल है, तो वह निराधार है; क्योंकि इसमें...

(1) उनकी सुनन (3664) में। इब्न माजाह ने भी इसे उल्लेख किया है (252), और यह अल-मुसनद (8457) में है। (2) (द) और (ज़) में: 'उसे सिखाना'। (3) इब्न अदी ने 5/1986 में इसका उल्लेख किया है, और यह एक मनगढ़ंत (मौज़ू) हदीस है, लेखक जल्द ही इसके बारे में बात करेंगे। (4) मनगढ़ंत, और लेखक इसके बारे में बात करेंगे। (5) (ज़) में: 'उसके साथ'। (6) इसका विवरण पृष्ठ 14 पर आएगा। (7) संख्या (5737)।

سورہ البقرہ: آیت 41 12

ابو داؤد(1) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: ”جس شخص نے ایسا علم حاصل کیا جس سے اللہ عزوجل کی رضا مندی مقصود ہو، لیکن اس نے اسے صرف دنیا کا کوئی فائدہ حاصل کرنے کے لیے سیکھا، تو وہ قیامت کے دن جنت کی خوشبو بھی نہ پا سکے گا“، یعنی اس کی مہک۔

دوسری بات: علمائے کرام کے درمیان قرآن اور علم کی تعلیم پر اجرت لینے کے حوالے سے اس آیت اور اس کے ہم معنی دیگر آیات کی وجہ سے اختلاف پایا جاتا ہے۔ چنانچہ زہری اور اصحاب الرائے نے اسے منع کیا ہے اور کہا ہے: قرآن کی تعلیم پر اجرت لینا جائز نہیں ہے، کیونکہ اس کی تعلیم(2) ان واجبات میں سے ایک واجب ہے جن میں قربت اور اخلاص کی نیت کی ضرورت ہوتی ہے، لہٰذا اس پر اجرت نہیں لی جا سکتی، جیسے نماز اور روزہ۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿اور میری آیات کے بدلے تھوڑی سی قیمت نہ لو﴾۔

حضرت ابن عباس رضی اللہ عنہما سے مروی ہے کہ نبی کریم ﷺ نے فرمایا: ”تمہارے بچوں کے اساتذہ تم میں سب سے برے لوگ ہیں، وہ یتیم پر سب سے کم رحم کرنے والے اور مسکین پر سب سے زیادہ سختی کرنے والے ہیں“(3)۔ حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے روایت کی ہے، وہ کہتے ہیں: میں نے عرض کیا: یا رسول اللہ! آپ اساتذہ کے بارے میں کیا فرماتے ہیں؟ آپ ﷺ نے فرمایا: ”ان کا درہم حرام ہے، ان کا لباس سحت (مال حرام) ہے، اور ان کی گفتگو ریاکاری ہے“(4)۔ حضرت عبادہ بن صامت رضی اللہ عنہ سے مروی ہے، انہوں نے کہا: میں نے اہل صفہ کے کچھ لوگوں کو قرآن اور لکھنا سکھایا، تو ان میں سے ایک آدمی نے مجھے ایک کمان ہدیہ کی۔ میں نے (اپنے دل میں) کہا: یہ کوئی مال تو نہیں ہے، اور میں اسے اللہ کی راہ میں (جہاد کے

لیے) استعمال کروں گا(5)۔ چنانچہ میں نے اس کے بارے میں رسول اللہ ﷺ سے دریافت کیا، تو آپ ﷺ نے فرمایا: "اگر تجھے یہ پسند ہے کہ آگ کا طوق تیرے گلے میں ڈالا جائے تو اسے قبول کر لے"(6)۔

امام مالک، امام شافعی، امام احمد، ابو ثور اور اکثر علماء نے قرآن کی تعلیم پر اجرت لینے کی اجازت دی ہے، کیونکہ حضرت ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث - حدیث رقیہ - میں آپ ﷺ کا ارشاد ہے: "جس چیز پر تم اجرت لینے کے سب سے زیادہ حق دار ہو وہ اللہ کی کتاب ہے"۔ اسے امام بخاری(7) نے روایت کیا ہے، اور یہ ایک ایسی نص (دلیل) ہے جو اختلاف کو ختم کر دیتی ہے، لہٰذا اسی پر اعتماد کرنا چاہیے۔

رہا وہ قیاس جو مخالفین نے نماز اور روزے پر کیا ہے، تو وہ فاسد (غلط) ہے؛ کیونکہ اس میں...

(1) اپنی سنن (3664) میں۔ اسی طرح ابن ماجہ (252) نے بھی اسے روایت کیا ہے، اور یہ مسند (8457) میں ہے۔ (2) (د) اور (ظ) میں: 'تعلمہ' (اس کا سیکھنا) ہے۔ (3) اسے ابن عدی نے 1986/5 میں روایت کیا ہے، اور یہ موضوع (من گھڑت) حدیث ہے، مصنف عنقریب اس پر کلام کریں گے۔ (4) موضوع ہے، اور مصنف اس پر کلام کریں گے۔ (5) (ظ) میں: 'بہا' (اس کے ساتھ) ہے۔ (6) اس کی تخریج ص 14 پر آئے گی۔ (7) نمبر (5737)۔

١٣ Surah Al-Baqarah: Verse 41

Comparing the texts, there is a distinction(1) between them: Prayer and fasting are acts of worship specific to the performer, whereas teaching the Quran is a transitive act of worship for someone other than the teacher. Thus, receiving a wage for the effort(2) of transmission is permissible, like teaching the writing of the Quran.

Ibn al-Mundhir said: Abu Hanifa dislikes teaching the Quran for a wage, but he allows a person to be hired to write a board, poetry, or a known song for a known wage. Thus, he allows hiring(3) for what is a sin and invalidates it for what is(4) an act of obedience.

As for the answer regarding the verse: what is meant by it is the Children of Israel. Is the law of those before us a law for us? There is disagreement on this, and he does not hold that view.

A second answer: It is that the verse refers to one for whom teaching has become an individual obligation, yet he refuses until he takes a wage for it. However, if it is not an individual obligation for him(5), then it is permissible for him to take a wage, based on the evidence of the Sunnah regarding that. It may become an individual obligation for him, except that he does not have enough to spend on himself or his dependents. In that case, teaching is not mandatory for him, and he may turn to his craft and profession. It is obligatory for the Imam (leader) to assist him for the establishment of religion; otherwise, it falls upon the Muslims. This is because when Al-Siddiq (Abu Bakr), may Allah be pleased with him, was appointed to the Caliphate and chosen for it, he did not have enough to support(6) his family. So he took some clothes and went out to the market. When asked about that, he said: "From where shall I spend on my family?" So they brought him back and assigned him a sufficient allowance(7).

As for the hadiths; none of them are sound, and nothing from them is authentic according to the scholars of transmission. As for the hadith of Ibn Abbas; it was narrated by Sa'd(8) bin Tarif, on the authority of Ikrima, from him, and Sa'd is abandoned(9).

---

(1) In the copies: "Furqan," and what is established is from (M). (2) In (M): "his effort." (3) In (Z): "so a wage is permissible." (4) In (D): "in it," in both places. (5) The word: "for him," is not in (D) and (M). (6) In (D): "provide for." (7) Tabaqat Ibn Sa'd 3/184, and Sunan al-Bayhaqi 6/353. (8) In the copies and (M): "Sa'id," which is a mistake. (9) Ibn

Hibban said in Al-Majruhin 1/357: "He used to fabricate hadiths on the spot." Ended.
And Al-Hakim narrated (as in =

१३ सूरह अल-बकरा: आयत ४१

पाठों की तुलना करते हुए, उनके बीच एक अंतर(१) है: नमाज़ और रोज़ा ऐसी इबादतें हैं जो कर्ता तक ही सीमित हैं, जबकि कुरान की शिक्षा देना शिक्षक के अलावा दूसरों के लिए एक विस्तृत इबादत है। इसलिए, संचार के प्रयास(२) के लिए पारिश्रमिक लेना जायज़ है, जैसे कुरान लिखना सिखाना।

इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: अबू हनीफ़ा पारिश्रमिक पर कुरान सिखाना नापसंद करते हैं, लेकिन वे एक व्यक्ति को पारिश्रमिक पर तख्ती, कविता या कोई ज्ञात गीत लिखने के लिए किराए पर लेने की अनुमति देते हैं। इस प्रकार, वह पाप वाले कार्यों के लिए काम पर रखने(३) की अनुमति देते हैं और इबादत(४) वाले कार्यों के लिए इसे अमान्य कर देते हैं।

जहाँ तक आयत के उत्तर की बात है: इससे तात्पर्य बनी इस्राइल से है। क्या हमसे पहले वालों की शरीयत हमारे लिए भी शरीयत है? इस पर मतभेद है, और वे इसे नहीं मानते।

दूसरा उत्तर: वह यह है कि आयत उन लोगों के बारे में हो सकती है जिन पर शिक्षा देना अनिवार्य हो गया हो, फिर भी वे तब तक मना करते हैं जब तक वे इसके लिए पारिश्रमिक न ले लें। लेकिन यदि यह उन पर अनिवार्य(५) नहीं है, तो उनके लिए पारिश्रमिक लेना जायज़ है, जैसा कि इस बारे में सुन्नत के प्रमाणों से पता चलता है। यह उन पर अनिवार्य हो सकता है, सिवाय इसके कि उनके पास अपने या अपने परिवार पर खर्च करने के लिए पर्याप्त धन न हो। ऐसी स्थिति में, उन पर शिक्षा देना अनिवार्य नहीं है, और वे अपने शिल्प और पेशे की ओर मुड़ सकते हैं। इमाम (नेता) का कर्तव्य है कि वह धर्म की स्थापना के लिए उनकी सहायता करे; अन्यथा, यह मुसलमानों पर निर्भर है। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब सिद्दीक़ (अबू बक्र), अल्लाह उनसे प्रसन्न हो, को खिलाफत सौंपी गई और वे इसके लिए चुने गए, तो उनके पास अपने परिवार का भरण-पोषण(६) करने के लिए कुछ नहीं था। इसलिए उन्होंने कुछ कपड़े लिए और बाज़ार की ओर चल दिए। जब उनसे इस बारे में पूछा गया, तो उन्होंने कहा: "मैं अपने परिवार पर कहाँ से खर्च करूँगा?" तो उन्होंने उन्हें वापस बुला लिया और उनके लिए पर्याप्त भत्ता(७) निर्धारित कर दिया।

जहाँ तक हदीसों का सवाल है; उनमें से कोई भी विश्वसनीय नहीं है, और रिवायत के विद्वानों के अनुसार उनमें से कुछ भी प्रामाणिक नहीं है। इब्न अब्बास की हदीस के बारे में; इसे साद(८) बिन तरीफ़ ने इकरिमा के माध्यम से उनसे रिवायत किया है, और साद 'मत़रूक'(९) (अविश्वसनीय) हैं।

(१) प्रतियों में: "फ़ुरकान," और जो प्रमाणित है वह (M) से है। (२) (M) में: "उसका प्रयास।" (३) (Z) में: "तो पारिश्रमिक जायज़ है।" (४) (D) में: "इसमें," दोनों स्थानों पर। (५) शब्द: "उन पर," (D) और (M) में नहीं है। (६) (D) में: "भरण-पोषण करना।" (७) तबकात इब्न साद ३/१८४, और सुनन अल-बैहकी ६/३५३। (८) प्रतियों और (M) में: "सईद," जो कि एक गलती है। (९) इब्न हिब्बान ने अल-मजरूहीन १/३५७ में कहा: "वह तुरंत हदीसें गढ़ा करते थे।" समाप्त। और अल-हाकिम ने (जैसा कि = में है) उल्लेख किया है।

۱۳ سورہ البقرہ: آیت ۴۱

عبارتوں کا مقابلہ کرتے ہوئے، ان کے درمیان ایک فرق(۱) ہے: وہ یہ کہ نماز اور روزہ ایسی عبادات ہیں جو صرف کرنے والے تک محدود ہیں، جبکہ قرآن کی تعلیم دینا معلم کے علاوہ دوسروں تک پہنچنے والی عبادت ہے، اس لیے منتقلی کی کوشش(۲) پر اجرت لینا جائز ہے، جیسے قرآن لکھنا سکھانا۔

ابن المنذر نے کہا: ابو حنیفہ اجرت پر قرآن کی تعلیم کو ناپسند کرتے ہیں، اور وہ اس بات کی اجازت دیتے ہیں کہ آدمی کو اجرت دے کر تختہ، یا شعر، یا کوئی معلوم گانا لکھوایا جائے، پس وہ اس میں اجرت(۳) کی اجازت دیتے ہیں جو گناہ ہے، اور اسے باطل قرار دیتے ہیں جو(۴) اطاعت ہے۔

جہاں تک آیت کا جواب ہے: تو اس سے مراد بنی اسرائیل ہیں، اور ہم سے پہلوں کی شریعت کیا ہمارے لیے شریعت ہے؟ اس میں اختلاف ہے، اور وہ اس کے قائل نہیں۔

دوسرا جواب: وہ یہ کہ آیت ان لوگوں کے بارے میں ہو جن پر تعلیم دینا واجب ہو گیا ہو، پھر وہ اجرت لیے بغیر تعلیم دینے سے انکار کریں، لیکن جب ان پر واجب(۵) نہ ہو، تو ان کے لیے اجرت لینا جائز ہے، اس بارے میں سنت کے دلائل کی بنا پر۔ کبھی ان پر تعلیم دینا واجب ہو جاتا ہے، مگر ان کے پاس اتنا نہیں ہوتا جو وہ اپنی ذات یا اپنے اہل و عیال پر خرچ کریں، تو ان پر تعلیم دینا واجب نہیں رہتا، اور وہ اپنے ہنر اور پیشے کی طرف رجوع کر سکتے ہیں۔ امام (حاکم) پر لازم ہے کہ وہ قیامِ دین کے لیے ان کی مدد کرے؛ ورنہ مسلمانوں پر لازم ہے، کیونکہ جب صدیق رضی اللہ عنہ کو خلافت سونپی گئی اور وہ اس کے لیے متعین ہوئے، تو ان کے پاس اتنا نہ

تھا جس سے وہ اپنے اہل(۶) کا خرچ پورا کرتے، چنانچہ انہوں نے کچھ کپڑے لیے اور بازار کی طرف نکل گئے۔ ان سے اس بارے میں پوچھا گیا تو انہوں نے فرمایا: "میں اپنے اہل و عیال پر کہاں سے خرچ کروں؟" تو لوگوں نے انہیں واپس بلا لیا، اور ان کے لیے کفایت کے بقدر وظیفہ(۷) مقرر کر دیا۔

جہاں تک احادیث کا تعلق ہے؛ تو ان میں سے کوئی بھی مستند نہیں ہے، اور اہل علمِ حدیث کے نزدیک ان میں سے کچھ بھی صحیح ثابت نہیں۔ رہا ابن عباس کی حدیث کا معاملہ؛ تو اسے سعد(۸) بن طریف نے عکرمہ سے، انہوں نے ان سے روایت کیا ہے، اور سعد متروک(۹) ہے۔

---

(۱) نسخوں میں: "فرقان"، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے۔ (۲) (م) میں: "محاولتہ" (اس کی کوشش)۔ (۳) (ظ) میں: "پس اجرت جائز ہے"۔ (۴) (د) میں: "فیہ" (اس میں)، دونوں جگہوں پر۔ (۵) لفظ: "علیہ"، (د) اور (م) میں نہیں ہے۔ (۶) (د) میں: "یقوم" (پورا کرے)۔ (۷) طبقات ابن سعد ۳/۱۸۴ ، اور سنن بیہقی ۶/۳۵۳۔ (۸) نسخوں اور (م) میں: "سعید"، اور یہ غلطی ہے۔ (۹) ابن حبان نے 'المجروحین' ۱/۳۵۷ میں کہا: "وہ فوراً حدیث گھڑ لیا کرتے تھے۔" اھ اور حاکم نے (جیسا کہ = میں ہے) سند بیان کی۔

14 Surah Al-Baqarah: Verse 41

As for the hadith of Abu Huraira, it was narrated by Ali ibn Asim, from Hammad ibn Salama, from Abu Juhm, from him. Abu Juhm is unknown and not recognized, and Hammad ibn Salama did not narrate from anyone named Abu Juhm; rather, he narrated from Abu al-Mahzum, whose hadith is also discarded (matruk), and it is a hadith with no origin.

As for the hadith of Ubada ibn al-Samit, it was narrated by Abu Dawud (1) from the hadith of al-Mughira ibn Ziyad al-Mawsili, from Ubada ibn Nusayy, from al-Aswad ibn Thalaba, from him. Al-Mughira (2) is known for bearing knowledge (3), but he has rejected narrations (manakir), and this is one of them. Abu Umar (4) said this. Then he said: "As for the hadith of the bow, it is well-known among the people of knowledge because it was narrated from Ubada through two paths (5), and it was narrated from Ubay ibn Ka'b, from the hadith of Musa ibn Ali, from his father, from Ubay, and it is interrupted (munqati') (6). There is no hadith in this chapter that must be acted upon in terms of transmission. The hadiths of Ubada and Ubay are subject to interpretation, for it is permissible that he taught him for the sake of Allah, then took a reward for it."

It was narrated from the Prophet ﷺ that he said: "The best of people and the best of those who walk upon the face of the earth are the teachers; whenever the religion becomes worn out, they renew it. Give to them and do not hire them lest you cause them hardship (7); for when the teacher says to the child, 'Say: In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful,' and the child says, 'In the name of Allah, the Most Gracious, the Most Merciful,' Allah writes freedom from the Fire for the child, for the teacher, and for his parents (8)."

= Zafar al-Amani by al-Laknawi p. 431) from Sayf ibn Amr al-Tamimi who said: I was with Sa'd ibn Tarif, and his son came from the school crying. He said: What is wrong with you? He said: The teacher hit me. He said: I will surely humiliate them today: Ikrimah narrated to me from Ibn Abbas in a marfu' form: The teachers of your children are the worst among you, the least merciful to the orphan and the harshest towards the poor. (1) In his Sunan (3416), and also narrated by Ibn Majah (2157), and it is in the Musnad (22689). (2) In the manuscripts: "and Abu al-Mughira," which is an error; the correct version is from (M). (3) In (D) and (M): "is known among the people of knowledge," and the fixed version is from (Z) and (Za), which corresponds to what is in at-Tamhid. (4) He is Ibn Abd al-Barr, and his statement is in at-Tamhid 21/114. (5)

The second path he pointed out: Narrated by Abu Dawud (3417) from the way of Bishr ibn Abdullah ibn Yasar al-Sulami, from Ubada ibn Nusayy, from Junada ibn Abi Umayya, from Ubada ibn al-Samit, and it is in the Musnad (22766). (6) Narrated by Ibn Abi Shaybah 6/225. (7) In (D): "so you make them in need." (8) Narrated by Ibn al-Jawzi in 'at-Tahqiq fi Ahadith al-Khilaf' 2/219 from the hadith of Ibn Abbas, and he said following it: =

14 सूरह अल-बकरा: आयत 41

जहाँ तक अबू हुरैरा की हदीस का संबंध है, इसे अली बिन आसिम ने हमाद बिन सलमा से, उन्होंने अबू जुहम से, उनसे रिवायत किया है। अबू जुहम अज्ञात (मजहूल) है और पहचाना नहीं जाता, और हमाद बिन सलमा ने अबू जुहम नाम के किसी व्यक्ति से रिवायत नहीं की है; बल्कि उन्होंने इसे अबू अल-महज़ूम से रिवायत किया है, जिसकी हदीस भी त्याज्य (मतरूक) है, और यह ऐसी हदीस है जिसका कोई आधार नहीं है।

जहाँ तक उबादा बिन अल-सामित की हदीस का संबंध है, इसे अबू दाऊद (1) ने मुगीरा बिन ज़ियाद अल-मूसली की हदीस से, उन्होंने उबादा बिन नुसय से, उन्होंने असवद बिन सालबा से, उनसे रिवायत किया है। मुगीरा (2) ज्ञान के प्रसार (3) के लिए जाने जाते हैं, लेकिन उनकी कुछ रिवायतें 'मुनकर' (अस्वीकार्य) हैं, और यह भी उनमें से एक है। यह बात अबू उमर (4) ने कही है। फिर उन्होंने कहा: "जहाँ तक धनुष वाली हदीस का संबंध है, वह विद्वानों के बीच प्रसिद्ध है क्योंकि यह उबादा से दो तरीकों (5) से रिवायत की गई है, और उबै बिन काब से मूसा बिन अली की हदीस से, उन्होंने अपने पिता से, उन्होंने उबै से रिवायत की है, और वह खंडित (मुनक़ति') (6) है। इस विषय में संचरण (नक़्ल) के दृष्टिकोण से ऐसी कोई हदीस नहीं है जिस पर अमल करना अनिवार्य हो। उबादा और उबै की हदीस व्याख्या (तावील) की संभावना रखती है; क्योंकि यह संभव है कि उन्होंने अल्लाह के लिए सिखाया हो, फिर उस पर इनाम लिया हो।"

और नबी ﷺ से रिवायत है कि आपने फ़रमाया: "सबसे अच्छे लोग और धरती पर चलने वालों में सबसे बेहतर शिक्षक हैं; जब भी धर्म पुराना पड़ता है, वे उसे नया कर देते हैं। उन्हें (उपहार) दो और उन्हें मजदूरी पर मत रखो कि उन्हें मुश्किल में डाल दो (7); क्योंकि जब शिक्षक बच्चे से कहता है: कहो 'बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम', और बच्चा कहता है 'बिस्मिल्लाहिर रहमानिर रहीम', तो अल्लाह बच्चे के लिए, शिक्षक के लिए और उसके माता-पिता के लिए आग से मुक्ति लिख देता है (8)।"

= ज़फ़र अल-अमानी अल-लखनवी पृष्ठ 431) सैफ़ बिन अम्र अल-तमीमी से जिन्होंने कहा: मैं साद बिन तरीफ़ के पास था, और उनका बेटा स्कूल से रोता हुआ आया। उन्होंने पूछा: तुम्हें क्या हुआ? उसने कहा: शिक्षक ने मुझे मारा। उन्होंने कहा: मैं आज उन्हें ज़रूर अपमानित करूँगा: इकरीमा ने मुझे इब्न अब्बास से मरफ़ू रूप में रिवायत किया: तुम्हारे बच्चों के शिक्षक तुम में सबसे बुरे हैं, अनाथों

के प्रति सबसे कम दयालु और गरीबों के प्रति सबसे कठोर हैं। (1) उनकी सुनन (3416) में, और इब्न माजाह (2157) द्वारा भी रिवायत की गई है, और यह मुसनद (22689) में है। (2) प्रतियों में: "और अबू अल-मुगीरा," जो कि एक त्रुटि है; सही पाठ (M) से है। (3) (D) और (M) में: "विद्वानों के बीच प्रसिद्ध है," और संशोधित पाठ (Z) और (Za) से है, जो अत-तम्हीद में दी गई जानकारी के अनुरूप है। (4) वह इब्न अब्द अल-बर्र हैं, और उनका कथन अत-तम्हीद 21/114 में है। (5) दूसरा तरीका जिसकी ओर उन्होंने संकेत किया: अबू दाऊद (3417) द्वारा बिशर बिन अब्दुल्ला बिन यासर अल-सलमी के मार्ग से रिवायत किया गया, उबादा बिन नुसय से, जुनादा बिन अबी उमैया से, उबादा बिन अल-सामित से, और यह मुसनद (22766) में है। (6) इब्न अबी शयबा 6/225 द्वारा रिवायत किया गया। (7) (D) में: "ताकि तुम उन्हें ज़रूरतमंद बना दो।" (8) इब्न अल-जौज़ी द्वारा 'अत-तहरीक़ फ़ी अहादीस अल-ख़िलाफ़' 2/219 में इब्न अब्बास की हदीस से रिवायत किया गया, और उन्होंने इसके बाद कहा: =

14 سورہ البقرہ: آیت 41

اور جہاں تک ابوہریرہ کی حدیث کا تعلق ہے، تو اسے علی بن عاصم نے حماد بن سلمہ سے، انہوں نے ابوجہم سے، ان سے روایت کیا ہے۔ ابوجہم مجہول ہے، اسے پہچانا نہیں جاتا، اور حماد بن سلمہ نے ابوجہم نامی کسی شخص سے روایت نہیں کی۔ بلکہ انہوں نے اسے ابوالہزم سے روایت کیا ہے، جس کی حدیث بھی متروک ہے، اور یہ ایسی حدیث ہے جس کی کوئی اصل نہیں ہے۔

اور جہاں تک عبادہ بن صامت کی حدیث کا تعلق ہے، تو اسے ابوداؤد (1) نے مغیرہ بن زیاد الموصلی کی حدیث سے، انہوں نے عبادہ بن نُسَی سے، انہوں نے اسود بن ثعلبہ سے، ان سے روایت کیا ہے۔ مغیرہ (2) علم حاصل کرنے (3) کے حوالے سے معروف ہے، لیکن اس کی بعض روایتیں منکر ہیں، اور یہ بھی ان میں سے ایک ہے۔ یہ بات ابوعمر (4) نے کہی ہے۔ پھر انہوں نے کہا: جہاں تک قوس (کمان) والی حدیث کا تعلق ہے، تو وہ اہل علم کے نزدیک معروف ہے کیونکہ وہ عبادہ سے دو طریقوں (5) سے مروی ہے، اور ابی بن کعب سے موسی بن علی کی حدیث سے، انہوں نے اپنے والد سے، انہوں نے ابی سے روایت کی ہے، اور وہ منقطع (6) ہے۔ اس باب میں نقل کے اعتبار سے ایسی کوئی حدیث نہیں ہے جس پر عمل کرنا واجب ہو، اور عبادہ و ابی کی حدیث تاویل کا احتمال رکھتی ہے؛ کیونکہ یہ جائز ہے کہ انہوں نے اللہ کے لیے سکھایا ہو، پھر اس پر اجر لیا ہو۔

اور نبی ﷺ سے روایت ہے کہ آپ نے فرمایا: "بہترین لوگ اور زمین پر چلنے والوں میں سب سے بہتر وہ اساتذہ (معلمین) ہیں، جب بھی دین پرانا پڑتا ہے، وہ اسے تازہ کر دیتے ہیں۔ انہیں دو اور انہیں اجرت پر نہ رکھو کہ انہیں تنگی میں ڈال دو (7)؛ کیونکہ جب استاد بچے سے کہتا ہے: کہو

'بسم الله الرحمن الرحيم'، اور بچہ کہتا ہے 'بسم الله الرحمن الرحيم'، تو الله بچے کے لیے، استاد کے لیے اور اس کے والدین کے لیے آگ سے برات (نجات) لکھ دیتا ہے (8)۔"

= ظفر الأماني للكنوي ص 431) عن سيف بن عمرو التميمي سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: میں سعد بن طریف کے پاس تھا، ان کا بیٹا مدرسے سے روتا ہوا آیا۔ انہوں نے پوچھا: تمہیں کیا ہوا؟ اس نے کہا: استاد نے مجھے مارا۔ انہوں نے کہا: میں آج انہیں ضرور ذلیل کروں گا: عکرمہ نے مجھ سے ابن عباس سے مرفوعاً بیان کیا: تمہارے بچوں کے معلم تم میں سب سے برے ہیں، یتیموں پر سب سے کم رحم کرنے والے اور مسکینوں پر سب سے زیادہ سخت ہیں۔ (1) اپنی سنن (3416) میں، اور اسے ابن ماجہ (2157) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ مسند (22689) میں ہے۔ (2) نسخوں میں: "اور ابو المغیرہ"، جو کہ غلطی ہے؛ درست متن (م) سے ہے۔ (3) (د) اور (م) میں: "اہل علم کے نزدیک معروف ہے"، اور درست متن (ز) اور (ظ) سے ہے، جو التمہید میں موجود متن کے مطابق ہے۔ (4) وہ ابن عبد البر ہیں، اور ان کا قول التمہید 114/21 میں ہے۔ (5) دوسرا طریقہ جس کی طرف انہوں نے اشارہ کیا: اسے ابوداؤد (3417) نے بشر بن عبد الله بن یسار السلمی کے طریق سے، عبادہ بن نُسی سے، جنادہ بن ابی امیہ سے، عبادہ بن صامت سے روایت کیا ہے، اور یہ مسند (22766) میں ہے۔ (6) اسے ابن ابی شیبہ نے 225/6 میں روایت کیا ہے۔ (7) (د) میں: "تاکہ تم انہیں حاجت مند بنا دو۔" (8) اسے ابن الجوزی نے التحقيق في أحاديث الخلاف 219/2 میں ابن عباس کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اس کے بعد کہا: =

Surah Al-Baqarah: Verse 41 15

Third: Scholars disagreed on the ruling of one who leads prayer for a wage: Ashhab narrated from Malik that he was asked about praying behind someone hired in Ramadan to lead people in prayer. He said: I hope there is no harm in it(1), though it is more strongly disliked for him in obligatory prayers. Al-Shafi'i, his companions, and Abu Thawr said: There is no harm in that, nor in praying behind him. Al-Awza'i said: His prayer is invalid. Abu Hanifa and his companions disliked it, as mentioned before. Ibn Abd al-Barr said(2): This issue is connected to the one before it, and their basis is the same. I say: Another basis for it(3) will come from the Book in (Surah) Bara’ah (At-Tawbah), God willing. Ibn al-Qasim disliked taking a wage for teaching poetry and grammar. Ibn Habib said: There is no harm in hiring for teaching poetry, letters, and the history (days) of the Arabs. Disliked is poetry that mentions wine, obscenity, and satire. Abu al-Hasan al-Lakhmi said(4): It follows from his opinion that he should allow hiring for writing them and allow selling their books. As for singing and wailing, it is prohibited in any case. Fourth: Al-Darimi Abu Muhammad narrated in his "Musnad"(5): Ya'qub bin Ibrahim informed us, saying: Muhammad bin Umar(6) bin al-Kumait told us, saying: Ali bin Wahb al-Hamadani told us, saying: Al-Dahhak bin Musa informed us, saying: Suleiman bin Abd al-Malik passed by Madinah while heading to Makkah. He stayed there for some days and said: Is there anyone in Madinah who met any of the Prophet’s (PBUH) companions? They told him: Abu Hazim(7), so he sent for him. When he entered upon him, he said to him: O Abu Hazim, what is this coldness? Abu Hazim said: O Commander of the Faithful, what coldness have you seen from me? He said: The notables of the people of Madinah came to me...

= This hadith is not permissible to use as evidence; because it is the work of Ahmad bin Abdullah al-Harawi, who is al-Juwaybari, and he was a liar who fabricated hadiths. (1) In (Th): that it will not be. (2) Al-Tamhid 21/115. (3) In (M): for this. (4) Ali bin Muhammad al-Rabi'i, known as al-Lakhmi al-Qayrawani, the head of the jurists in his time, died in the year (478 AH). Shajarat al-Nur al-Zakiya p. 117. (5) Number (673). (6) In (D) Imran, and in (Th): Amr. (7) He is Salama bin Dinar, the Sheikh of Madinah, the preacher, it is said: he died in the year (133 AH). Al-Siyar 6/96.

सूरह अल-बकराह: आयत 41 15

तीसरा: विद्वानों ने शुल्क लेकर नमाज़ पढ़ाने वाले के नियम के बारे में मतभेद किया है: अशहब ने मलिक से वर्णन किया है कि उनसे रमज़ान में लोगों को नमाज़ पढ़ाने के लिए किराए पर रखे गए व्यक्ति के पीछे नमाज़ पढ़ने के बारे में पूछा गया। उन्होंने कहा: मुझे उम्मीद है कि इसमें कोई हर्ज नहीं(1) होगा, हालाँकि फर्ज़ नमाज़ों में यह उसके लिए अधिक नापसंद है। अल-शाफ़ई, उनके साथियों और अबू थौर ने कहा: इसमें कोई हर्ज नहीं है, और न ही उनके पीछे नमाज़ पढ़ने में। अल-औज़ाई ने कहा: उसकी कोई नमाज़ नहीं है। अबू हनीफा और उनके साथियों ने इसे नापसंद किया, जैसा कि पहले बताया गया है। इब्न अब्द अल-बर्र ने कहा(2): यह मुद्दा पिछले वाले से जुड़ा है, और दोनों का आधार एक ही है। मैंने कहा: इसके लिए कुरान (सूरह बराह/तौबा) में एक और आधार(3) आएगा, इंशा अल्लाह। इब्न अल-कासिम ने कविता और व्याकरण सिखाने के लिए शुल्क लेने को नापसंद किया। इब्न हबीब ने कहा: कविता, पत्र और अरबों के इतिहास (दिनों) को सिखाने के लिए किराए पर लेने में कोई हर्ज नहीं है। वह कविता नापसंद है जिसमें शराब, अश्लीलता और व्यंग्य हो। अबू अल-हसन अल-लखमी ने कहा(4): उनकी राय के अनुसार यह आवश्यक है कि वह उनके लेखन के लिए किराए पर लेने और उनकी किताबों की बिक्री की अनुमति दें। जहाँ तक गायन और विलाप का सवाल है, यह हर हाल में मना है। चौथा: अल-दारीमी अबू मुहम्मद ने अपनी 'मुसनद'(5) में वर्णन किया: हमें याकूब बिन इब्राहिम ने सूचित किया, कहा: हमें मुहम्मद बिन उमर(6) बिन अल-कुमैत ने बताया, कहा: हमें अली बिन वहब अल-हमदानी ने बताया, कहा: हमें अल-दहहाक बिन मूसा ने सूचित किया, कहा: सुलेमान बिन अब्द अल-मलिक मक्का जाते समय मदीना से गुजरे। वह वहाँ कुछ दिनों तक रहे और पूछा: क्या मदीना में कोई ऐसा व्यक्ति है जिसने पैगंबर (स.अ.व.) के साथियों में से किसी को पाया हो? उन्होंने उससे कहा: अबू हाज़िम(7), तो उन्होंने उसे बुलवाया। जब वे उनके पास पहुँचे, तो उन्होंने (सुलेमान ने) उनसे कहा: ऐ अबू हाज़िम, यह बेरुखी कैसी? अबू हाज़िम ने कहा: ऐ अमीरुल मोमिनीन, आपने मुझसे कौन सी बेरुखी देखी? उन्होंने कहा: मदीना के प्रतिष्ठित लोग मेरे पास आए...

= और इस हदीस को सबूत के तौर पर इस्तेमाल करना जायज़ नहीं है; क्योंकि यह अहमद बिन अब्दुल्ला अल-हरवी का काम है, जो कि अल-जुयबारी है, और वह झूठा था जो हदीस गढ़ता था। (1) (ظ) में: कि यह नहीं होगा। (2) अल-तमहीद 21/115। (3) (م) में: इसके लिए। (4) अली बिन मुहम्मद अल-रबी'ई, जिन्हें अल-लखमी अल-कैरावानी के नाम से जाना जाता है, अपने समय के

फकीहों के प्रमुख थे, जिनका निधन वर्ष (478 हिजरी) में हुआ था। शजरत अल-नूर अल-ज़किया पृष्ठ 117। (5) संख्या (673)। (6) (د) में इमरान, और (ظ) में: अम्र। (7) वह सलमा बिन दीनार हैं, मदीना के शेख, उपदेशक, कहा जाता है: उनका निधन वर्ष (133 हिजरी) में हुआ। अल-सियार 6/96।

سورہ البقرہ : الآية ٤١ ١٥

تیسرا: علماء نے اجرت پر نماز پڑھانے والے کے حکم میں اختلاف کیا ہے: اشہب نے مالک سے روایت کی ہے کہ ان سے رمضان میں لوگوں کی امامت کے لیے اجرت پر رکھے گئے شخص کے پیچھے نماز پڑھنے کے بارے میں پوچھا گیا، تو انہوں نے کہا: مجھے امید ہے کہ اس میں کوئی حرج(١) نہیں ہوگا، اور یہ فرض نمازوں میں ان کے نزدیک زیادہ ناپسندیدہ ہے۔ امام شافعی اور ان کے اصحاب اور ابو ثور نے کہا: اس میں کوئی حرج نہیں ہے، اور نہ ہی ان کے پیچھے نماز پڑھنے میں۔ امام اوزاعی نے کہا: اس کی کوئی نماز نہیں۔ امام ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب نے اسے ناپسند کیا، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے۔ ابن عبد البر نے کہا(٢): یہ مسئلہ پچھلے مسئلے سے جڑا ہوا ہے، اور ان دونوں کی اصل ایک ہی ہے۔ میں نے کہا: اس کے لیے کتاب اللہ میں سورہ براءت (توبہ) سے ایک اور اصل(٣) آئے گی، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ ابن القاسم نے شاعری اور نحو (گرائمر) سکھانے پر اجرت لینے کو ناپسند کیا ہے۔ ابن حبیب نے کہا: شاعری، خطوط اور عربوں کی تاریخ (ایام العرب) سکھانے کی اجرت لینے میں کوئی حرج نہیں ہے۔ شاعری میں وہ ناپسندیدہ ہے جس میں شراب، بے حیائی اور ہجو (برائی) ہو۔ ابو الحسن اللخمی نے کہا(٤): ان کے قول کے مطابق یہ لازم آتا ہے کہ وہ اسے لکھنے کی اجرت اور اس کی کتابوں کی فروخت کو جائز قرار دیں۔ رہا گانا اور نوحہ؛ تو یہ ہر حال میں ممنوع ہے۔ چوتھا: دارمی ابو محمد نے اپنی "مسند"(٥) میں روایت کی ہے: ہمیں یعقوب بن ابراہیم نے بتایا، کہا: ہم سے محمد بن عمر(٦) بن الکمیت نے بیان کیا، کہا: ہم سے علی بن وہب الہمدانی نے بیان کیا، کہا: ہمیں الضحاک بن موسیٰ نے بتایا، کہا: سلیمان بن عبد الملک مکہ جاتے ہوئے مدینہ سے گزرے۔ وہ وہاں کچھ دن رہے اور پوچھا: کیا مدینہ میں کوئی ایسا شخص ہے جس نے نبی کریم ﷺ کے صحابہ میں سے کسی کو پایا

ہو؟ لوگوں نے ان سے کہا: ابو حازم(۷)، تو انہوں نے ان کی طرف پیغام بھیجا۔ جب وہ ان کے پاس آئے تو سلیمان نے کہا: اے ابو حازم، یہ کیسی بے رخی ہے؟ ابو حازم نے کہا: اے امیر المؤمنین، آپ نے مجھ سے کیسی بے رخی دیکھی؟ انہوں نے کہا: مدینہ کے معززین میرے پاس آئے...

= اور اس حدیث سے استدلال کرنا جائز نہیں ہے؛ کیونکہ یہ احمد بن عبد اللہ الہروی کا کام ہے، اور وہ الجویباری ہے، جو جھوٹا تھا اور حدیث گھڑتا تھا۔ (۱) (ظ) میں: کہ یہ نہیں ہو گا۔ (۲) التمہید ۲۱/۱۱۵۔ (۳) (م) میں: اس کے لیے۔ (٤) علی بن محمد الربیعی، جو اللخمی القیروانی کے نام سے مشہور ہیں، اپنے وقت کے فقہاء کے رئیس تھے، ٤٧٨ھ میں وفات پائی۔ شجرۃ النور الزکیہ ص ۱۱۷۔ (٥) نمبر (٦٧٣)۔ (٦) (د) میں عمران، اور (ظ) میں: عمرو۔ (۷) وہ سلمہ بن دینار ہیں، مدینہ منورہ کے شیخ، واعظ، کہا جاتا ہے: ۱۳۳ھ میں وفات پائی۔ السیر ٦/٩٦۔

Page 16 | Surah Al-Baqarah: Verse 41

...and you did not come to me!" He (Abu Hazim) said: "O Commander of the Faithful, I seek refuge in Allah from you saying what did not happen; you did not know me before this day, nor have I seen you!" He (Suleiman) turned to Muhammad ibn Shihab al-Zuhri and said: "The old man is right and I am wrong."

Suleiman said: "O Abu Hazim, why do we hate death?" He said: "Because you have ruined the Hereafter and built up this world, so you hate to move from prosperity to ruin." He said: "You are right, O Abu Hazim. So, how is the coming before Allah Almighty tomorrow?" He said: "As for the doer of good, he is like the absent one returning to his family. As for the evildoer, he is like the runaway slave returning to his master." Suleiman wept and said: "I wish I knew! What do we have with Allah?" He said: "Compare your deeds with the Book of Allah." He asked: "Where can I find it?" He said: "{Indeed, the righteous will be in pleasure, and indeed, the wicked will be in Hell.} [Al-Infitar: 13-14]."

Suleiman said: "Then where is the mercy of Allah, O Abu Hazim?" Abu Hazim said: "The mercy of Allah is near to the doers of good." Suleiman said to him: "O Abu Hazim, which of Allah's servants is most honorable?" He said: "Those of chivalry and wisdom." Suleiman said to him: "Which deeds are best?" Abu Hazim said: "Performing obligatory duties while avoiding prohibitions." Suleiman said: "Which supplication is most heard?" He said: "The supplication of the one who received a favor for the benefactor." He asked: "Which charity is best?" He said: "Giving to the needy person in distress, and the effort of the one who has little, without reminder or injury." He asked: "Which speech is most just?" He said: "Speaking the truth to someone you fear or hope from." He asked: "Which of the believers is the cleverest?" He said: "A man who acts in obedience to Allah and guides people to it." He asked: "Which of the believers is the most foolish?" He said: "A man who falls into the desire of his brother while he is an oppressor, thus selling his Hereafter for someone else's worldly life."

Suleiman said [to him]: "You are right. So what do you say about what we are in?" He said: "O Commander of the Faithful, will you excuse me?" Suleiman said to him: "No. But give me a piece of advice." He said: "O Commander of the Faithful, your ancestors conquered the people with the sword, and they took this kingdom by force without consulting the Muslims or their consent, until they killed a great number of them. They have now departed from it; if only you knew what they said and what was

said to them!" A man from his company said: "What a wretched thing you have said, O Abu Hazim!" Abu Hazim replied: "You lie! Indeed, Allah took a covenant from the scholars that they must make it clear to the people and not hide it."

(1) In the copies: "They said," and what is established is from (M) and Al-Darimi.

पृष्ठ १६ | सूरा अल-बकराह: आयत ४१

...और तुम मेरे पास नहीं आए!" उन्होंने (अबू हाज़िम) कहा: "हे अमीरुल् मोमिनीन, मैं अल्लाह की शरण चाहता हूँ कि आप वह कहें जो नहीं हुआ; आपने मुझे इस दिन से पहले नहीं पहचाना, और न ही मैंने आपको देखा है!" वह (सुलेमान) मुहम्मद इब्न शिहाब अल-जुहरी की ओर मुड़े और कहा: "बुज़ुर्ग सही हैं और मैं गलत हूँ।"

सुलेमान ने कहा: "हे अबू हाज़िम, हम मृत्यु से क्यों घृणा करते हैं?" उन्होंने कहा: "क्योंकि आपने आख़िरत (परलोक) को बर्बाद कर दिया है और इस दुनिया को आबाद किया है, इसलिए आप खुशहाली से बर्बादी की ओर जाने से नफरत करते हैं।" उन्होंने कहा: "आपने सही कहा, हे अबू हाज़िम। तो कल अल्लाह तआला के सामने हाज़िरी कैसी होगी?" उन्होंने कहा: "जहाँ तक नेक आदमी का सवाल है, वह उस मुसाफ़िर की तरह है जो अपने परिवार के पास लौटता है। और जहाँ तक बुराई करने वाले का सवाल है, वह उस भागे हुए गुलाम की तरह है जो अपने मालिक के पास लौटता है।" सुलेमान रोने लगे और कहा: "काश मुझे पता होता! अल्लाह के पास हमारे लिए क्या है?" उन्होंने कहा: "अपने कर्मों को अल्लाह की किताब के सामने रखो।" उन्होंने पूछा: "मुझे यह कहाँ मिलेगा?" उन्होंने कहा: "{बेशक, नेक लोग नेमतों (स्वर्ग) में होंगे, और बेशक, पापी लोग जहन्नुम (नरक) में होंगे।} [अल-इनफितार: १३-१४]।"

सुलेमान ने कहा: "फिर अल्लाह की रहमत कहाँ है, हे अबू हाज़िम?" अबू हाज़िम ने कहा: "अल्लाह की रहमत नेक काम करने वालों के करीब है।" सुलेमान ने उनसे कहा: "हे अबू हाज़िम, अल्लाह के बंदों में सबसे सम्मानित कौन है?" उन्होंने कहा: "मर्यादा और बुद्धि वाले लोग।" सुलेमान ने उनसे कहा: "कौन से कर्म सबसे अच्छे हैं?" अबू हाज़िम ने कहा: "निषिद्ध चीज़ों से बचते हुए फ़र्ज़ (अनिवार्य कर्तव्यों) को पूरा करना।" सुलेमान ने कहा: "कौन सी दुआ सबसे ज़्यादा सुनी जाती है?" उन्होंने कहा: "उपकार प्राप्त करने वाले की उपकार करने वाले के लिए दुआ।" उन्होंने पूछा: "कौन सा दान (सदक़ा) सबसे अच्छा है?" उन्होंने कहा: "बेसहारा ज़रूरतमंद को देना, और कम साधन वाले का अपनी पूरी कोशिश से देना, जिसमें न एहसान जताना हो और न ही तकलीफ पहुँचाना।" उन्होंने पूछा: "कौन सी बात सबसे अधिक न्यायपूर्ण है?" उन्होंने कहा: "उस व्यक्ति के सामने सच बोलना जिससे आप डरते हों या जिससे आपको आशा हो।" उन्होंने पूछा: "मोमिनों (ईमान वालों) में सबसे समझदार कौन है?" उन्होंने कहा: "वह आदमी जिसने अल्लाह की आज्ञाकारिता में काम किया और लोगों को इसकी ओर राह दिखाई।" उन्होंने पूछा: "मोमिनों में सबसे मूर्ख कौन है?" उन्होंने कहा:

"वह आदमी जो अपने भाई की इच्छा पूरी करने के लिए गिर गया जबकि वह ज़ालिम है, इस प्रकार उसने दूसरे की दुनिया के लिए अपनी आख़िरत बेच दी।"

सुलेमान ने [उनसे] कहा: "आपने सही कहा। तो हम जिस स्थिति में हैं उसके बारे में आप क्या कहते हैं?" उन्होंने कहा: "हे अमीरुल् मोमिनीन, क्या आप मुझे माफ़ करेंगे (इस सवाल से)?" सुलेमान ने उनसे कहा: "नहीं। लेकिन मुझे कोई सलाह दें।" उन्होंने कहा: "हे अमीरुल् मोमिनीन, आपके पूर्वजों ने तलवार के बल पर लोगों को वश में किया, और उन्होंने मुसलमानों के परामर्श या उनकी सहमति के बिना ज़बरदस्ती इस राज्य को छीन लिया, यहाँ तक कि उन्होंने उनमें से बड़ी संख्या में लोगों को मार डाला। वे अब इसे छोड़कर चले गए हैं; काश आप जानते कि उन्होंने क्या कहा और उनसे क्या कहा गया!" उनके दरबारियों में से एक व्यक्ति ने कहा: "अबू हाज़िम, आपने कितनी बुरी बात कही है!" अबू हाज़िम ने उत्तर दिया: "तुम झूठ बोलते हो! बेशक, अल्लाह ने विद्वानों से यह वादा लिया है कि वे इसे लोगों के सामने स्पष्ट करेंगे और इसे छिपाएंगे नहीं।"

(१) प्रतियों में: "उन्होंने कहा," और जो स्थापित है वह (म) और अल-दारीमी से है।

صفحہ ١٦ | سورة البقرہ: آیت ٤١

...اور تم میرے پاس نہیں آئے!" انہوں نے (ابو حازم) کہا: "اے امیر المومنین، میں اللہ کی پناہ مانگتا ہوں کہ آپ وہ بات کہیں جو نہیں ہوئی؛ آپ نے مجھے آج کے دن سے پہلے نہیں پہچانا، اور نہ ہی میں نے آپ کو دیکھا ہے!" وہ (سلیمان) محمد بن شہاب الزہری کی طرف مڑے اور کہا: "بزرگ نے درست کہا اور میں نے غلطی کی۔"

سلیمان نے کہا: "اے ابو حازم، ہمیں موت کیوں ناپسند ہے؟" انہوں نے کہا: "اس لیے کہ تم نے اپنی آخرت کو ویران کر دیا ہے اور دنیا کو آباد کیا ہے، لہٰذا تم آبادی سے ویرانی کی طرف منتقل ہونا ناپسند کرتے ہو۔" انہوں نے کہا: "آپ نے درست کہا اے ابو حازم، تو کل اللہ تعالیٰ کے ہاں پیشی کیسی ہوگی؟" انہوں نے کہا: "رہا نیکوکار، تو وہ اس غائب (مسافر) کی طرح ہے جو اپنے گھر والوں کے پاس واپس آتا ہے، اور رہا بدکار، تو وہ اس بھاگے ہوئے غلام کی طرح ہے جو اپنے مالک کے پاس واپس آتا ہے۔" سلیمان رو پڑے اور کہا: "کاش میں جانتا! اللہ کے ہاں ہمارے لیے کیا ہے؟" انہوں نے کہا: "اپنے عمل کو اللہ کی کتاب پر پیش کرو۔" انہوں نے پوچھا: "میں اسے کہاں پاؤں گا؟" انہوں نے کہا: "{بیشک نیک لوگ نعمتوں میں ہوں گے، اور بیشک بدکار لوگ دوزخ میں ہوں گے۔} [الانفطار: ١٣-١٤]۔"

سلیمان نے کہا: "پھر اللہ کی رحمت کہاں ہے اے ابو حازم؟" ابو حازم نے کہا: "اللہ کی رحمت نیکوکاروں کے قریب ہے۔" سلیمان نے ان سے کہا: "اے ابو حازم، اللہ کے بندوں میں کون سب سے زیادہ معزز ہے؟" انہوں نے کہا: "مروت اور عقل والے۔" سلیمان نے ان سے کہا: "کون سا عمل سب سے افضل ہے؟" ابو حازم نے کہا: "حرام کاموں سے بچتے ہوئے فرائض کی ادائیگی۔" سلیمان نے کہا: "کون سی دعا سب سے زیادہ سنی جاتی ہے؟" انہوں نے کہا: "محسن کے لیے اس

شخص کی دعا جس پر احسان کیا گیا ہو۔" انہوں نے پوچھا: "کون سا صدقہ سب سے افضل ہے؟" انہوں نے کہا: "بدحال سائل کے لیے، اور کم مال والے کی محنت (کی کمائی سے صدقہ)، جس میں نہ احسان جتلانا ہو اور نہ اذیت دینا۔" انہوں نے پوچھا: "کون سی بات سب سے زیادہ عدل والی ہے؟" انہوں نے کہا: "حق بات کہنا اس شخص کے سامنے جس سے تمہیں خوف ہو یا جس سے امید ہو۔" انہوں نے پوچھا: "مومنوں میں سب سے زیادہ سمجھدار کون ہے؟" انہوں نے کہا: "وہ شخص جس نے اللہ کی اطاعت میں کام کیا، اور لوگوں کو اس کی طرف رہنمائی کی۔" انہوں نے پوچھا: "مومنوں میں سب سے زیادہ احمق کون ہے؟" انہوں نے کہا: "وہ شخص جو اپنے بھائی کی خواہش (پوری کرنے) میں گر گیا حالانکہ وہ ظالم ہے، پس اس نے اپنی آخرت دوسرے کی دنیا کے بدلے بیچ دی۔"

سلیمان نے [ان سے] کہا: "آپ نے درست کہا، تو ہم جس حال میں ہیں اس کے بارے میں آپ کیا کہتے ہیں؟" انہوں نے کہا: "اے امیر المومنین، کیا آپ مجھے معاف رکھیں گے؟" سلیمان نے ان سے کہا: "نہیں۔ لیکن ایک نصیحت جو آپ میری طرف القا کریں۔" انہوں نے کہا: "اے امیر المومنین، بیشک آپ کے آباؤ اجداد نے لوگوں کو تلوار کے زور پر مغلوب کیا، اور مسلمانوں کے مشورے یا ان کی رضا مندی کے بغیر زبردستی یہ حکومت چھین لی، یہاں تک کہ انہوں نے ان میں سے بڑی تعداد کو قتل کیا، پس وہ اس دنیا سے رخصت ہو گئے، کاش آپ محسوس کرتے کہ انہوں نے کیا کہا اور ان سے کیا کہا گیا!" ان کے ہم نشینوں میں سے ایک شخص نے کہا: "اے ابو حازم! آپ نے کتنی بری بات کہی!" ابو حازم نے کہا: "تم نے جھوٹ کہا، بیشک اللہ نے علماء سے عہد لیا ہے کہ وہ اسے لوگوں کے لیے واضح کریں گے اور اسے چھپائیں گے نہیں۔"

(۱) نسخوں میں ہے: "قالوا" (انہوں نے کہا)، اور متن میں جو ثابت ہے وہ (م) اور الدارمی سے ہے۔

17 Surah al-Baqarah: Verse 41

Sulayman said to him: "How can we reform?" He said: "By abandoning vanity (1), adhering to chivalry, and dividing [wealth] equally." Sulayman said to him: "How can we manage to do that?" Abu Hazim said: "Take it from its lawful source, and put it where it belongs." Sulayman said to him: "Would you like to accompany us, O Abu Hazim, so that you gain from us and we gain from you?" He said: "I seek refuge in Allah!" Sulayman said to him: "Why is that?" He said: "I fear that I might lean toward you even a little, and then Allah would make me taste double [punishment] in life and double [punishment] in death."

Sulayman said to him: "Tell us your needs." He said: "Save me from the Fire and admit me to Paradise!" Sulayman said to him: "That is not within my power!" Abu Hazim said: "Then I have no other need from you." He said: "Then pray for me." Abu Hazim said: "O Allah, if Sulayman is Your friend, then facilitate for him the good of this world and the Hereafter, and if he is Your enemy, then seize his forelock towards what You love and are pleased with." Sulayman said to him: "Enough!" Abu Hazim said: "I have been brief yet comprehensive if you are worthy of it, and if you are not, then it is not appropriate for me to shoot from a bow that has no string."

Sulayman said to him: "Advise me." He said: "I will advise you briefly: Magnify your Lord, and exalt Him above seeing you where He forbade you, or missing you where He commanded you (3)."

When he left him, he sent him a hundred dinars and wrote [to him]: "Spend them, and I have many more like them for you." He returned them to him and wrote to him: "O Leader of the Believers, I seek refuge with Allah from your request to me being a joke, or my rejection of it being a display. I did not approve of it for you, so how [can I approve of it] for myself?! Indeed, when Moses, son of Imran, came to the water of Midian, he found people watering [their flocks], and he found besides them two women keeping back [their flocks]. He asked them, and they said: 'We do not water until the shepherds take away [their flocks], and our father is a very old man.' So he watered for them, then he turned back to the shade and said: 'My Lord, indeed I am in need of whatever good You would send down to me.' [Al-Qasas: 23-24]. This was because he was hungry and fearful, feeling insecure, so he asked his Lord and did not ask people. The shepherds did not notice, but the two women did. When they returned to their father, they told him the story and what he said. Their father, who

was Shu'ayb (peace be upon him), said: 'This is a hungry man.' He said (4) to one of them: 'Go and call him.' When she came to him, she honored him...

(1) Meaning: exceeding the limits of elegance, and claiming more than that out of pride. Mukhtar al-Sihah: (salaf). (2) In (d): for the two goods. (3) In the manuscripts: from where, and what is established is from (m). (4) In the manuscripts: he said, and what is established is from (m).

१७ सुराह अल-बक़रह: आयत ४१

सुलेमान ने [उससे] कहा: "हम सुधार कैसे कर सकते हैं?" उन्होंने कहा: "अहंकार (१) को छोड़कर, शिष्टता को अपनाकर और [धन को] समान रूप से विभाजित करके।" सुलेमान ने उससे कहा: "हम इसे कैसे प्राप्त कर सकते हैं?" अबू हाज़िम ने कहा: "इसे इसके वैध स्रोत से लें, और इसे इसके हक़दारों तक पहुँचाएँ।" सुलेमान ने उससे कहा: "क्या आप हमारे साथ रहना पसंद करेंगे, ऐ अबू हाज़िम, ताकि आपको हमसे लाभ हो और हमें आपसे लाभ हो?" उन्होंने कहा: "मैं अल्लाह की शरण चाहता हूँ!" सुलेमान ने उससे कहा: "ऐसा क्यों?" उन्होंने कहा: "मुझे डर है कि मैं थोड़ा सा भी तुम्हारी ओर झुक न जाऊँ और फिर अल्लाह मुझे जीवन में और मृत्यु में दोहरी [सज़ा] का स्वाद चखाए।"

सुलेमान ने उससे कहा: "अपनी ज़रूरतें हमें बताओ।" उन्होंने कहा: "मुझे आग से बचाओ और मुझे जन्नत में दाखिल करो!" सुलेमान ने उससे कहा: "वह मेरे अधिकार में नहीं है!" अबू हाज़िम ने कहा: "तो मुझे आपसे इसके अलावा और कोई ज़रूरत नहीं है।" उसने कहा: "तो मेरे लिए दुआ करें।" अबू हाज़िम ने कहा: "ऐ अल्लाह, अगर सुलेमान तेरा दोस्त है, तो उसके लिए दुनिया और आखिरत की भलाई (२) आसान कर दे, और अगर वह तेरा दुश्मन है, तो उसे उस चीज़ की ओर मोड़ दे जिसे तू पसंद करता है और जिससे तू राज़ी है।" सुलेमान ने उससे कहा: "बस!" अबू हाज़िम ने कहा: "मैंने संक्षेप में बहुत कुछ कह दिया है अगर तुम इसके योग्य हो, और यदि तुम नहीं हो, तो मेरे लिए ऐसी धनुष से तीर चलाना उचित नहीं है जिसमें डोरी न हो।"

सुलेमान ने उससे कहा: "मुझे वसीयत (नसीहत) करें।" उन्होंने कहा: "मैं आपको संक्षेप में वसीयत करूँगा: अपने रब की बड़ाई बयान करो, और उसे इससे पाक समझो कि वह तुम्हें वहाँ देखे जहाँ उसने तुम्हें मना किया है, या तुम्हें वहाँ (३) न पाए जहाँ उसने तुम्हें आदेश दिया है।"

जब वह उनके पास से चले गए, तो उन्होंने उन्हें सौ दीनार भेजे और [उन्हें] लिखा: "इन्हें खर्च करो, और मेरे पास तुम्हारे लिए ऐसे और भी बहुत हैं।" उन्होंने उन्हें वापस कर दिया और उन्हें लिखा: "ऐ अमीर-उल-मोमिनीन, मैं अल्लाह की पनाह मांगता हूँ कि मेरा आपसे मांगना कोई मज़ाक हो, या मेरा आपको लौटाना कोई दिखावा हो। मैंने इसे आपके लिए पसंद नहीं किया, तो मैं इसे अपने लिए कैसे [पसंद] कर सकता हूँ?! वास्तव में, मूसा बिन इमरान जब मदयन के पानी पर पहुँचे, तो उन्होंने वहाँ लोगों को [अपने जानवरों को] पानी पिलाते हुए पाया, और उनके अलावा दो महिलाओं को पाया जो [अपने जानवरों को] रोके हुए थीं। उन्होंने उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा: 'हम तब तक पानी नहीं

पिलाते जब तक चरवाहे चले न जाएँ और हमारे पिता बहुत बूढ़े हैं।' तो उन्होंने उनके लिए पानी पिलाया, फिर छाया की ओर लौट गए और कहा: 'मेरे रब, वास्तव में तू जो भी भलाई मेरी ओर उतारेगा, मैं उसका मोहताज हूँ।' [अल-क़सस: २३-२४]। यह इसलिए था क्योंकि वह भूखे और डरे हुए थे, असुरक्षित महसूस कर रहे थे, इसलिए उन्होंने अपने रब से माँगा और लोगों से नहीं माँगा। चरवाहों ने ध्यान नहीं दिया, लेकिन उन दो महिलाओं ने ध्यान दिया। जब वे अपने पिता के पास लौटीं, तो उन्होंने उन्हें कहानी और उनकी बात बताई। उनके पिता, जो शुएब (अलैहिस्सलाम) थे, ने कहा: 'यह एक भूखा आदमी है।' उन्होंने (४) उनमें से एक से कहा: 'जाओ और उसे बुला लाओ।' जब वह उनके पास आई, तो उसने उनका सम्मान किया...

(१) यानी: शालीनता की सीमा को पार करना, और अहंकारवश उससे अधिक का दावा करना। मुख्तार अल-सिहाह: (सलफ)। (२) (द) में: दो भलाइयों के लिए। (३) प्रतियों में: जहाँ से, और स्थापित (म) से है। (४) प्रतियों में: कहा, और स्थापित (म) से है।

۱۷ سورہ البقرہ: آیت ۴۱

سلیمان نے [اس سے] کہا: "ہم اصلاح کیسے کر سکتے ہیں؟" انہوں نے کہا: "تکبر (۱) کو چھوڑ کر، مروت کو اپنا کر اور [مال کو] برابری کے ساتھ تقسیم کر کے۔" سلیمان نے ان سے کہا: "ہم اسے کیسے حاصل کر سکتے ہیں؟" ابو حازم نے کہا: "اسے اس کے حلال ذریعے سے لو، اور اسے اس کے حقداروں تک پہنچاؤ۔" سلیمان نے ان سے کہا: "اے ابو حازم، کیا آپ ہمارے ساتھ رہنا پسند کریں گے، تاکہ آپ کو ہم سے فائدہ ہو اور ہمیں آپ سے فائدہ ہو؟" انہوں نے کہا: "میں اللہ کی پناہ مانگتا ہوں!" سلیمان نے ان سے کہا: "ایسا کیوں؟" انہوں نے کہا: "مجھے ڈر ہے کہ میں تھوڑا سا بھی تمہاری طرف نہ جھک جاؤں، اور پھر اللہ مجھے زندگی میں اور موت میں دوہری [سزا] کا ذائقہ چکھائے۔"

سلیمان نے ان سے کہا: "اپنی ضرورتیں ہمیں بتاؤ۔" انہوں نے کہا: "مجھے آگ سے بچاؤ اور مجھے جنت میں داخل کرو!" سلیمان نے ان سے کہا: "وہ میرے بس میں نہیں ہے!" ابو حازم نے کہا: "پھر مجھے آپ سے اس کے علاوہ اور کوئی ضرورت نہیں ہے۔" اس نے کہا: "تو میرے لیے دعا کریں۔" ابو حازم نے کہا: "اے اللہ، اگر سلیمان تیرا دوست ہے، تو اس کے لیے دنیا اور آخرت کی بھلائی (۲) آسان کر دے، اور اگر وہ تیرا دشمن ہے، تو اسے اس چیز کی طرف موڑ دے جسے تو پسند کرتا ہے اور جس سے تو راضی ہے۔" سلیمان نے ان سے کہا: "بس!" ابو حازم نے کہا: "میں نے مختصراً بہت کچھ کہہ دیا ہے اگر تم اس کے اہل ہو، اور اگر تم نہیں ہو، تو میرے لیے ایسی کمان سے تیر چلانا مناسب نہیں ہے جس میں تانت نہ ہو۔"

سلیمان نے ان سے کہا: "مجھے وصیت (نصیحت) کریں۔" انہوں نے کہا: "میں آپ کو مختصراً وصیت کروں گا: اپنے رب کی بڑائی بیان کرو، اور اسے اس سے پاک سمجھو کہ وہ تمہیں وہاں

دیکھے جہاں اس نے تمہیں منع کیا ہے، یا تمہیں وہاں (۳) نہ پائے جہاں اس نے تمہیں حکم دیا ہے۔"

جب وہ ان کے پاس سے چلے گئے، تو انہوں نے انہیں سو دینار بھیجے اور [انہیں] لکھا: "انہیں خرچ کرو، اور میرے پاس تمہارے لیے ایسے اور بھی بہت ہیں۔" انہوں نے انہیں واپس کر دیا اور انہیں لکھا: "اے امیر المومنین، میں اللہ کی پناہ مانگتا ہوں کہ میرا آپ سے مانگنا کوئی مذاق ہو، یا میرا آپ کو لوٹانا کوئی دکھاوا ہو- میں نے اسے آپ کے لیے پسند نہیں کیا، تو میں اسے اپنے لیے کیسے [پسند] کر سکتا ہوں؟! بے شک، موسیٰ بن عمران جب مدین کے پانی پر پہنچے، تو انہوں نے وہاں لوگوں کو [اپنے جانوروں کو] پانی پلاتے ہوئے پایا، اور ان کے علاوہ دو عورتوں کو پایا جو [اپنے جانوروں کو] روکے ہوئے تھیں۔ انہوں نے ان سے پوچھا، تو انہوں نے کہا: 'ہم تب تک پانی نہیں پلاتے جب تک چرواہے چلے نہ جائیں، اور ہمارے باپ بہت بوڑھے ہیں۔' تو انہوں نے ان کے لیے پانی پلایا، پھر سائے کی طرف لوٹ گئے اور کہا: 'اے میرے رب، بے شک تو جو بھی بھلائی میری طرف اتارے گا، میں اس کا محتاج ہوں۔' [القصص: ۲۳-۲۴]۔ یہ اس لیے تھا کیونکہ وہ بھوکے اور ڈرے ہوئے تھے، بے چینی محسوس کر رہے تھے، اس لیے انہوں نے اپنے رب سے مانگا اور لوگوں سے نہیں مانگا۔ چرواہوں نے غور نہیں کیا، لیکن ان دو عورتوں نے غور کیا۔ جب وہ اپنے باپ کے پاس واپس گئیں، تو انہوں نے انہیں کہانی اور ان کی بات بتائی۔ ان کے باپ، جو شعیب (علیہ السلام) تھے، نے کہا: 'یہ ایک بھوکا آدمی ہے-' انہوں نے (۴) ان میں سے ایک سے کہا: 'جاؤ اور اسے بلا لاؤ-' جب وہ ان کے پاس آئی، تو اس نے ان کی تعظیم کی...

(۱) یعنی: شائستگی کی حد سے تجاوز کرنا، اور تکبر کی بنا پر اس سے زیادہ کا دعویٰ کرنا۔ مختار الصحاح: (صلف)۔ (۲) (د) میں: دو بھلائیوں کے لیے۔ (۳) نسخوں میں: جہاں سے، اور ثابت شدہ (م) سے ہے۔ (۴) نسخوں میں: کہا، اور ثابت شدہ (م) سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 41 18

And she covered her face and said: {Indeed, my father invites you that he may reward you for having watered for us} [Al-Qasas: 25].

It was difficult for Moses when she mentioned: "reward for having watered for us," but he found no choice but to follow her; because he was among the mountains, hungry and lonely. When he followed her, the wind blew and began to flap her clothes against her back, describing her backside to him - and she was well-endowed. Moses began to look away at times and lower his gaze at others. When his patience was exhausted, he called out to her: "O handmaid of Allah, stay behind me, and show me the way(1) by your words." When he entered upon Shuaib, dinner was ready. Shuaib said to him: "Sit down, young man, and eat dinner." Moses, peace be upon him, said: "I seek refuge in Allah!" Shuaib asked him: "Why? Are you not hungry??" He said: "Yes, but I fear that this might be a compensation for what I watered for them, and I am from a household that would not sell any part of our religion for the Earth's fill of gold." Shuaib said to him: "No, young man, but it is my custom and the custom of my forefathers: we honor the guest and feed [others] food." So Moses sat and ate.

If these hundred dinars were a compensation for what I have recounted, then [eating] carrion, blood, and the flesh of swine in a state of necessity is more lawful than this. And if it were for a right in the treasury (Bayt al-Mal)(3), then I have peers in it; if you treat us equally, [fine], otherwise, I have no need for it.

I say: This is how following the Book and the Prophets should be. Look at this virtuous Imam and learned scholar; how he did not take compensation for his work, nor a payment for his bequest, nor a gift for his advice(4), rather, he clarified the truth and spoke out, and no fear or panic overtook him in that. The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Let not the prestige of anyone prevent any of you from speaking - or standing - for the truth wherever it may be"(5).

And in the Revelation: {They strive in the cause of Allah and do not fear the blame of a critic} [Al-Ma'idah: 54].

---

(1) Meaning: the path. (2) In (M): "Id" (when). (3) In (D): "And if it were a right for me in," and in (Z): "for a right for me in." (4) Meaning: a gift. (5) Narrated by Ahmad (11017), Al-Tirmidhi (2191), and Ibn Majah (4007) from the hadith of Abu Sa'id al-Khudri. Al-Tirmidhi said: A good (Hasan) authentic (Sahih) hadith.

सूरह अल-बक़रह : आयत ४१ १८

और उसने अपना चेहरा ढँक लिया और कहा: {मेरे पिता आपको बुला रहे हैं ताकि वे आपको हमारे लिए पानी पिलाने का बदला दे सकें} [अल-क़सस: २५]।

जब उसने "हमारे लिए पानी पिलाने का बदला" का ज़िक्र किया तो मूसा के लिए यह कठिन था, लेकिन उनके पास उसका पीछा करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था; क्योंकि वह पहाड़ों के बीच भूखे और अकेले थे। जब वे उसके पीछे चले, तो हवा चली और उनके कपड़ों को उनकी पीठ पर फड़फड़ाने लगी, जिससे उनके शरीर की बनावट दिखाई देने लगी - और वह भारी शरीर वाली थीं। मूसा कभी नज़रें फेर लेते और कभी नीची कर लेते। जब उनका सब्र जवाब दे गया, तो उन्होंने पुकारा: "ऐ अल्लाह की बंदी, मेरे पीछे हो जाओ, और अपनी बातों से मुझे रास्ता(१) बताओ।" जब वे शुऐब के पास पहुँचे, तो (२) रात का खाना तैयार था। शुऐब ने उनसे कहा: "बैठो, जवान आदमी, और रात का खाना खाओ।" मूसा (उन पर शांति हो) ने कहा: "मैं अल्लाह की पनाह माँगता हूँ!" शुऐब ने उनसे पूछा: "क्यों? क्या तुम्हें भूख नहीं लगी है??" उन्होंने कहा: "हाँ, लेकिन मुझे डर है कि यह उस काम का बदला न हो जो मैंने उनके लिए किया था (पानी पिलाना), और मैं उस घराने से हूँ जो अपने दीन (धर्म) का कोई हिस्सा ज़मीन भर सोने के बदले भी नहीं बेचेंगे।" शुऐब ने उनसे कहा: "नहीं, जवान आदमी, बल्कि यह मेरी और मेरे पूर्वजों की आदत है: हम मेहमानों का सत्कार करते हैं और खाना खिलाते हैं।" तो मूसा बैठ गए और खाना खाया।

अगर ये सौ दीनार उस चीज़ का बदला होते जो मैंने बयान की, तो मजबूरी की स्थिति में मुरदार, खून और सूअर का मांस इससे अधिक हलाल होता। और अगर यह (३) बैत अल-माल (सरकारी खज़ाना) में किसी हक़ के लिए होता, तो इसमें मेरे और भी साथी हैं; अगर आप हमारे बीच बराबरी करते हैं, अन्यथा, मुझे इसकी कोई ज़रूरत नहीं है।

मैं कहता हूँ: किताब और नबियों का अनुसरण इसी तरह होना चाहिए। इस गुणी इमाम और विद्वान पंडित को देखें; कैसे उन्होंने अपने काम के लिए कोई मुआवज़ा नहीं लिया, न ही अपनी वसीयत के लिए कोई भुगतान, और न ही अपनी सलाह के लिए कोई उपहार(४)। बल्कि, उन्होंने सत्य को स्पष्ट किया और बेबाकी से बात की, और इसमें उन्हें कोई डर या घबराहट नहीं हुई। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "तुममें से किसी को भी किसी का रुतबा सच्चाई कहने - या उसके लिए खड़े होने - से न रोके, चाहे वह कहीं भी हो"(५)।

और वह्य (प्रकाशना) में है: {वे अल्लाह की राह में जिहाद करते हैं और किसी मलामत करने वाले की मलामत से नहीं डरते} [अल-माइदा: ५४]।

---

(१) यानी: रास्ता। (२) (म) में: 'इज़'। (३) (द) में: 'और अगर यह मेरे लिए हक़ होता', और (ज़) में: 'मेरे हक़ के लिए'। (४) यानी: तोहफा/उपहार। (५) इसे अहमद (११०१७), तिर्मिज़ी (२१९१) और इब्न माजाह (४००४) ने अबू सईद अल-खुदरी की हदीस से रिवायत किया है। तिर्मिज़ी ने कहा: यह हदीस हसन सहीह है।

سورہ البقرہ : آیت ۴۱ ۱۸

اور اس نے اپنا چہرہ ڈھانپ لیا، اور کہا: {بے شک میرے والد آپ کو بلا رہے ہیں تاکہ وہ آپ کو اس کا اجر دیں جو آپ نے ہمارے لیے پانی پلایا} [القصص: ۲۵]۔

موسیٰ پر گراں گزرا جب اس نے ذکر کیا: "اجر جو آپ نے ہمارے لیے پانی پلایا"، لیکن ان کے پاس اس کے پیچھے جانے کے علاوہ کوئی چارہ نہ تھا؛ کیونکہ وہ پہاڑوں کے درمیان بھوکے اور تنہا تھے۔ پھر جب وہ اس کے پیچھے چلے تو ہوا چلی، جس سے اس کے کپڑے اس کی پیٹھ پر اڑنے لگے، جس سے اس کا جسم نمایاں ہونے لگا - اور وہ بھاری بدن والی تھی - موسیٰ کبھی رخ پھیر لیتے اور کبھی نظریں نیچی کر لیتے۔ جب ان کا صبر جواب دے گیا تو انہوں نے پکارا: اے اللہ کی بندی، میرے پیچھے ہو جاؤ، اور اپنی باتوں سے مجھے راستہ(۱) دکھاؤ۔ پھر جب وہ شعیب کے پاس پہنچے تو (۲) رات کا کھانا تیار تھا۔ شعیب نے ان سے کہا: اے نوجوان! بیٹھو اور رات کا کھانا کھاؤ۔ موسیٰ علیہ السلام نے کہا: میں اللہ کی پناہ مانگتا ہوں! شعیب نے ان سے پوچھا: کیوں؟ کیا تم بھوکے نہیں ہو؟؟ انہوں نے کہا: کیوں نہیں، لیکن مجھے ڈر ہے کہ یہ اس کا معاوضہ نہ ہو جو میں نے ان کے لیے پانی پلایا تھا، اور میں اس گھرانے سے ہوں جو اپنے دین کی کوئی چیز زمین بھر سونے کے بدلے بھی نہیں بیچتے۔ شعیب نے ان سے کہا: نہیں اے نوجوان، بلکہ یہ میری اور میرے آباؤ اجداد کی عادت ہے: ہم مہمان کی ضیافت کرتے ہیں اور کھانا کھلاتے ہیں۔ تو موسیٰ بیٹھ گئے اور کھانا کھایا۔

پس اگر یہ سو دینار اس کا معاوضہ ہوتے جو میں نے بیان کیا، تو اضطرار کی حالت میں مردار، خون اور خنزیر کا گوشت اس سے زیادہ حلال ہوتا۔ اور اگر یہ (۳) بیت المال میں کسی حق کی

وجہ سے ہوتا، تو اس میں میرے جیسے اور بھی ہیں؛ اگر آپ ہمارے درمیان برابری کریں، ورنہ مجھے اس کی کوئی حاجت نہیں۔

میں کہتا ہوں: کتاب اور انبیاء کی پیروی اسی طرح ہوتی ہے، اس فاضل امام اور عالِمِ دین کو دیکھو؛ کیسے انہوں نے اپنے کام پر کوئی معاوضہ نہیں لیا، نہ اپنی وصیت پر کوئی صلہ، اور نہ اپنی نصیحت پر کوئی عطیہ(۴)، بلکہ حق کو واضح کیا اور برملا بیان کیا، اور اس میں انہیں کوئی خوف یا گھبراہٹ لاحق نہ ہوئی۔ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "تم میں سے کسی کو کسی کی ہیبت حق کہنے - یا اس پر قائم رہنے - سے نہ روکے جہاں کہیں بھی وہ ہو"(۵)۔

اور قرآن میں ہے: {وہ اللہ کی راہ میں جہاد کرتے ہیں اور کسی ملامت کرنے والے کی ملامت سے نہیں ڈرتے} [المائدہ: ۵۴]۔

---

(۱) یعنی: راستہ۔ (۲) (م) میں ہے: 'إذ'۔ (۳) (د) میں ہے: 'اور اگر یہ میرے لیے حق ہوتا'، اور (ز) میں ہے: 'میرے حق کے لیے'۔ (۴) یعنی: عطیہ۔ (۵) اسے احمد (۱۱۰۱۷)، ترمذی (۲۱۹۱)، اور ابن ماجہ (۴۰۰۷) نے ابوسعید خدری کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔

Page 19

Surah Al-Baqarah: Verse 42

Allah the Almighty's saying: {And fear Me [alone]} (1). The meaning of Taqwa (piety/ fear) has been mentioned previously. And it has been recited as "fattaquni" with the letter 'ya', as also mentioned before (2).

Sahl bin Abdullah said: His saying {And fear Me [alone]} means: the position of My prior knowledge about you. {And dread Me [alone]} (3) means: the position of plot and gradual leading to ruin (istidraj), because of Allah's saying: {We will gradually lead them to ruin from where they know not} [Al-A'raf: 182], and His saying: {But none feels secure from Allah's plan except the people who are losers} [Al-A'raf: 99]. He did not except any prophet or truthful person.

Allah the Almighty's saying: {And do not mix the truth with falsehood or conceal the truth while you know [it] 42}

Allah the Almighty's saying: {And do not mix the truth with falsehood}. Mixing (al-labs) is to blend. "I confused (labastu) the matter for him": when you mix its clarity with its ambiguity, and its truth with its falsehood. Allah the Almighty said: {and We would have obscured for them that which they are obscuring} [Al-An'am: 9]. And in a matter there is "lubsa", meaning: it is not clear. From this meaning is the saying of Ali, may Allah be pleased with him, to Al-Harith bin Hawt (4): "O Harith, it is obscured to you; indeed, truth is not known by men. Know the truth, then you will know its people."

And Al-Khansa said (5): "You see the companion speaking the truth, and you think it is guidance. But alas! Look at what he has obscured. Believe his speech, yet beware of his enmity, and obscure matters for him just as he obscured them." (6)

And Al-'Ajjaj said (7): "When they mixed the truth with false accusations, they became wealthy and took Zaid in exchange for me."

---

(1) 1/248. (2) 2/9. This is the recitation of Ya'qub from the Ten. See Al-Nashr 2/237. (3) Narrated by Abu Nu'aym in Al-Hilya 10/199, and according to him: "{And fear Me [alone]}" is the position of prior knowledge and the position of plot and istidraj, and "{And dread Me [alone]}" is the position of certainty and its knowledge. (4) Mentioned in more detail by Al-Munawi in Fayd al-Qadir 1/210. (5) Tamadhur bint 'Amr bin al-Sharid, the companion, known as Umm al-'Abbas, Khizanat al-Adab 1/433. (6) Cited by

Al-Samin al-Halabi in Al-Durr al-Masun 1/322. (7) Cited by Al-Tabari in his Tafsir 1/605, and Al-Mawardi in Al-Nukat wal-'Uyun 1/112.

पृष्ठ १९

सूरह अल-बक़रह: आयत ४२

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और केवल मुझी से डरो} (१)। तक़वा (डर/परहेज़गारी) का अर्थ पहले बताया जा चुका है। और इसे 'या' के साथ "फ़त्तक़ूनी" भी पढ़ा गया है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (२)।

सहल बिन अब्दुल्ला ने कहा: उनका कहना {और केवल मुझी से डरो} का अर्थ है: तुम्हारे बारे में मेरे पूर्व ज्ञान का स्थान। {और मुझी से खौफ खाओ} (३) का अर्थ है: चाल और धीरे-धीरे बर्बादी (इस्तिदराज) की ओर ले जाने का स्थान, क्योंकि अल्लाह तआला का फ़रमान है: {हम उन्हें धीरे-धीरे (बर्बादी की ओर) वहाँ से ले जाएँगे जहाँ से वे नहीं जानते} [अल-अराफ़: १८२], और उनका कहना: {अल्लाह की चाल से केवल वही लोग बेख़ौफ़ होते हैं जो घाटा उठाने वाले हैं} [अल-अराफ़: ९९]। उन्होंने किसी नबी या सिद्दीक़ को अपवाद नहीं माना।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और सत्य को असत्य के साथ न मिलाओ और न सत्य को छुपाओ जबकि तुम जानते हो ४२}

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और सत्य को असत्य के साथ न मिलाओ (तल्बिसू)}। 'लब्स' का अर्थ है मिलाना या भ्रमित करना। "मैंने उसके लिए मामले को भ्रमित कर दिया (लबस्तु)": जब आप उसकी स्पष्टता को उसकी अस्पष्टता के साथ और उसकी सच्चाई को उसके झूठ के साथ मिला देते हैं। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {और हम उन पर वही भ्रम डाल देते जिसमें वे (स्वयं) भ्रमित हैं} [अल-अनआम: ९]। और किसी बात में 'लुब्सा' होने का अर्थ है: वह स्पष्ट नहीं है। इसी अर्थ से अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) का अल-हारिस बिन हवत (४) से कहना है: "हे हारिस, यह तुम पर भ्रमित है; वास्तव में सत्य पुरुषों द्वारा नहीं पहचाना जाता। सत्य को जानो, फिर तुम उसके लोगों को पहचान लोगे।"

और अल-खंसा (५) ने कहा: "तुम साथी को सच बोलते हुए देखते हो, और तुम इसे मार्गदर्शन समझते हो। लेकिन अफ़सोस! देखो कि उसने क्या भ्रमित किया है। उसकी बात पर विश्वास करो, फिर भी उसकी शत्रुता से सावधान रहो, और उसके लिए मामलों को वैसे ही भ्रमित कर दो जैसे उसने किया।" (६)

और अल-अज्जाज (७) ने कहा: "जब उन्होंने सत्य को झूठे आरोपों के साथ मिला दिया, तो वे समृद्ध हो गए और मेरे बदले ज़ैद को ले लिया।"

---

(१) १/२४८। (२) २/९। यह दस में से याकूब का पाठ है। देखें अन-नश्र २/२३७। (३) अबू नुएम द्वारा अल-हिल्या १०/१९९ में उद्धृत, और उनके अनुसार: "{और केवल मुझी से डरो}" पूर्व ज्ञान और चाल और इस्तिदराज का स्थान है, और "{और मुझी से खौफ खाओ}" निश्चितता और उसके ज्ञान का स्थान है। (४) अल-मुनावी द्वारा फ़ैद अल-क़दीर १/२१० में अधिक विस्तार से उल्लेख किया गया है। (५) तमाज़िर बिन्त अम्र बिन अल-शरीद, साहिबा, जिन्हें उम्म अल-अब्बास के नाम से जाना जाता है, ख़ज़ानत अल-अदब १/४३३। (६) अल-समीन अल-हलबी द्वारा अल-दुर अल-मसून १/३२२ में उद्धृत। (७) अल-तबरी द्वारा अपनी तफ़सीर १/६०५ में और अल-मावर्दी द्वारा अल-नुक़त वल-उयून १/११२ में उद्धृत।

صفحہ ۱۹

سورۃ البقرہ: آیت ۴۲

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور صرف مجھ ہی سے ڈرو} (۱)۔ تقویٰ کا معنی پہلے گزر چکا ہے۔ اور اسے "فاتقونی" یاء کے ساتھ بھی پڑھا گیا ہے، اور یہ بات پہلے ذکر ہو چکی ہے (۲)۔

سہل بن عبداللہ نے کہا: اللہ تعالیٰ کا قول {اور صرف مجھ ہی سے ڈرو} فرمایا: یہ تمہارے بارے میں میرے علمِ سابق کا مقام ہے۔ {اور مجھ ہی سے ڈرو} (۳) فرمایا: یہ مکر اور استدراج (تدریجی پکڑ) کا مقام ہے، کیونکہ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {ہم انہیں بتدریج (تباہی کی طرف) لے جائیں گے جہاں سے وہ نہیں جانتے} [الاعراف: ۱۸۲]، اور اس کا ارشاد: {پس اللہ کے مکر سے وہی لوگ بے خوف ہوتے ہیں جو نقصان اٹھانے والے ہیں} [الاعراف: ۹۹]، چنانچہ اس نے کسی نبی یا صدیق کو مستثنیٰ نہیں کیا۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور حق کو باطل کے ساتھ نہ ملاؤ اور نہ حق کو چھپاؤ جبکہ تم جانتے ہو ۴۲}

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور حق کو باطل کے ساتھ نہ ملاؤ (تلبسوا)}۔ 'لبس' کے معنی خلط ملط کرنے کے ہیں۔ "لبستُ علیہ الامر": جب تم اس کی وضاحت کو اس کی الجھن کے ساتھ اور اس کے حق کو اس کے باطل کے ساتھ ملا دو۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور ہم ان پر وہی مشتبہ کر دیتے جو وہ خود مشتبہ کر رہے ہیں} [الانعام: ۹]۔ اور معاملے میں 'لبسہ' کا مطلب ہے: وہ واضح نہیں ہے۔ اسی معنی سے حضرت علی رضی اللہ عنہ کا حارث بن حوط (۴) سے یہ قول مروی ہے: "اے

حارث، تم پر معاملہ مشتبہ ہو گیا ہے، یقیناً حق مردوں سے نہیں پہچانا جاتا، حق کو پہچانو تو تم حق والوں کو پہچان لو گے۔"

اور الخنساء (۵) نے کہا: "تم ساتھی کو حق بولتے ہوئے دیکھتے ہو اور اسے ہدایت سمجھتے ہو، لیکن افسوس! دیکھو کہ اس نے کیا خلط ملط کیا ہے۔ اس کی بات کی تصدیق کرو مگر اس کی دشمنی سے بچو، اور اس پر معاملات کو ویسے ہی مشتبہ کر دو جیسے اس نے کیے۔" (۶)

اور العجاج (۷) نے کہا: "جب انہوں نے حق کو جھوٹے الزامات کے ساتھ خلط ملط کیا، تو وہ مالدار ہو گئے اور انہوں نے میرے بدلے زید کو چن لیا۔"

---

(۱) ۱/۲۴۸۔ (۲) ۲/۹۔ یہ دس قراءات میں سے یعقوب کی قرأت ہے۔ دیکھیے النشر ۲/۲۳۷۔ (۳) اسے ابونعیم نے الحلیہ ۱۰/۱۹۹ میں روایت کیا ہے، اور ان کے نزدیک: "{اور مجھ ہی سے ڈرو}" علم سابق اور مکر و استدراج کا مقام ہے، اور "{اور مجھ ہی سے خوف کھاؤ}" یقین اور اس کی معرفت کا مقام ہے۔ (۴) المناوی نے فیض القدیر ۱/۲۱۰ میں اسے یہاں سے زیادہ تفصیل سے ذکر کیا ہے۔ (۵) تماضر بنت عمرو بن الشرید، صحابیہ، جن کی کنیت ام العباس ہے، خزانہ الادب ۱/۴۳۳۔ (۶) اسے السمین الحلبی نے الدر المصون ۱/۳۲۲ میں نقل کیا ہے۔ (۷) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۱/۶۰۵ میں اور ماوردی نے النکت والعیون ۱/۱۱۲ میں نقل کیا ہے۔

20 Surah Al-Baqarah: Verse 42

Sa'id narrated from Qatada regarding His saying: {And do not mix the truth with falsehood}, he says: Do not mix Judaism and Christianity with Islam, for you have known that the religion of Allah, which He does not accept any other than and only rewards by, is Islam; and that Judaism and Christianity are innovations, and are not from Allah(1).

The apparent meaning from the saying of 'Antara: "And a battalion I mixed with another battalion"(2) is that it is of this meaning, and it is possible that it is from 'libas' (clothing). This has been said regarding the meaning of the verse, i.e.: do not cover; and from it is 'lubs al-thawb' (wearing a garment), it is said: I wore (labistu) the garment, I am wearing (albasuhu) it. A man's garment is his wife, and her husband is her garment. Al-Ja'di(3) said: "When the bedfellow turns her neck ... she bends over him and becomes a garment [to him]" And Al-Akhtal(4) said: "I have worn for this matter its dark phases ... until greyness covered my head and flared up." And 'Al-labus': is everything that is worn of clothes and armor, Allah Almighty said: {And We taught him the making of metal coats of mail for you} [Al-Anbiya: 80]. And 'I mixed with so-and-so' (labastu fulanan) until I knew his inner self, and in so-and-so there is 'malbas', i.e.: enjoyment. He said: "Behold, after destitution there is acquisition for a person ... and after grey hair, length of life and clothing (enjoyment)"(5). And 'libs' of the Ka'bah and the palanquin: is what is upon them of clothing, with a kasra on the 'lam'(6). His saying Almighty: {with falsehood} 'Al-batil' (falsehood) in the speech of the Arabs: is the opposite of truth, and its meaning is the vanishing. Labid said:

(1) Narrated by Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/147, and Al-Suyuti added in Al-Durr Al-Manthur 1/64 its attribution to Abd ibn Humayd. (2) This is the first half of a verse whose second half is: "Until when it became confused, I shook my hands of it," and we did not find anyone who attributed it to 'Antara, and it has been attributed to Al-Firar al-Sulami as in Al-Hamasah with the commentary of Al-Marzuqi 1/191, Al-Hayawan by Al-Jahiz 5/185, and Al-Iqd al-Farid 1/139. (3) He is Al-Nabighah, and the verse is in his Diwan p. 81. (4) Ghiyath ibn Ghawth of Bani Taghlib, nicknamed Abu Malik, he used to be compared to Al-Nabighah al-Dhubyani, and was famous for praising the Umayyad caliphs until he died. Ash-Shi'r wa ash-Shu'ara' 1/483. And the verse is in his Diwan p. 142. (5) Its speaker is Imru' al-Qais, and the verse is in his Diwan p. 108. Al-qinhwah: what you have acquired of something and made it the basis of wealth. (6) Mujmal al-Lughah 3/801.

20 सूरह अल-बकरा: आयत 42

सईद ने कतादा से अल्लाह के इस फरमान के बारे में रिवायत किया है: {और सत्य को असत्य के साथ न मिलाओ}, वे कहते हैं: यहूदी धर्म और ईसाई धर्म को इस्लाम के साथ न मिलाओ, क्योंकि तुम जानते हो कि अल्लाह का दीन जिसे वह स्वीकार नहीं करता और जिसके बिना कोई बदला नहीं मिलता, वह इस्लाम ही है; और यहूदी धर्म और ईसाई धर्म नवाचार (बिदअत) हैं, और अल्लाह की ओर से नहीं हैं(1)।

अंतरा के इस कथन से स्पष्ट होता है: "और एक सेना की टुकड़ी जिसे मैंने दूसरी टुकड़ी के साथ मिला दिया"(2) कि यह इसी अर्थ में है, और संभव है कि यह 'लिबास' (वस्त्र) से हो। आयत के अर्थ में यह कहा गया है, अर्थात: ढको मत; और इसी से 'लुब्स अल-थौब' (कपड़ा पहनना) है, कहा जाता है: मैंने कपड़ा पहना (लबिस्तु), मैं उसे पहनता हूँ। पुरुष का लिबास उसकी पत्नी है, और उसका पति उसका लिबास है। अल-जदी(3) ने कहा: "जब बिस्तर का साथी उसकी गर्दन मोड़ता है ... तो वह उस पर झुक जाती है और एक लिबास बन जाती है" और अल-अख्तल(4) ने कहा: "मैंने इस मामले के लिए इसके अंधेरे पहलुओं को ओढ़ लिया ... यहाँ तक कि बुढ़ापे की सफेदी ने मेरे सिर को ढँक लिया और भड़क उठी।" और 'अल-लबूस': वह सब कुछ है जो कपड़ों और कवच के रूप में पहना जाता है, अल्लाह तआला ने फरमाया: {और हमने उसे तुम्हारे लिए जिरह बनाने की कला सिखाई} [अल-अंबिया: 80]। और 'मैंने फलां के साथ मेल-जोल रखा' (लाबस्तु फुलानन) यहाँ तक कि मैंने उसके आंतरिक रूप को जान लिया, और फलां में 'मल्बस' है, यानी: आनंद। उसने कहा: "देखो, अभाव के बाद मनुष्य के लिए प्राप्ति है ... और बुढ़ापे के बाद लंबी उम्र और मल्बस (आनंद) है"(5)। और काबा और हौदज का 'लिब्स': वह वस्त्र है जो उन पर होता है, 'लाम' पर कसरा के साथ(6)। अल्लाह तआला का फरमान: {असत्य के साथ} अरबों की भाषा में 'अल-बातिल' (असत्य): सत्य के विपरीत है, और इसका अर्थ है मिट जाने वाला। लबीद ने कहा:

(1) इसे इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/147 में उद्धृत किया है, और अल-सुयुती ने अद-दुर अल-मंसूर 1/64 में इसे अब्द बिन हुमैद से संबंधित बताया है। (2) यह एक शेर का पहला भाग है जिसका दूसरा भाग है: "यहाँ तक कि जब वह उलझ गया, तो मैंने उससे हाथ झाड़ लिए," और हमें कोई ऐसा नहीं मिला जिसने इसे अंतरा से जोड़ा हो, और इसे अल-फ़िरार अल-सुलमी से जोड़ा गया है जैसा कि अल-हमासा में अल-मरज़ूकी की व्याख्या 1/191, अल-जाहिज़ की अल-हैवान 5/185, और अल-इक़्द अल-फ़रीद 1/139 में है। (3) वह अन-नाबिगा है, और शेर उसके दीवान पृष्ठ 81 में

है। (4) गियाथ बिन गौस, बनी तग़लिब से, जिनकी कुनियत अबू मालिक थी, उनकी तुलना अन-नाबिगा अद-ज़ुबयानी से की जाती थी, और वे उमय्यद खलीफाओं की प्रशंसा के लिए प्रसिद्ध थे जब तक कि उनकी मृत्यु नहीं हो गई। अश्-शेर व अश-शुआरा 1/483। और शेर उसके दीवान पृष्ठ 142 में है। (5) इसके कहने वाले इमरुल क़ैस हैं, और शेर उनके दीवान पृष्ठ 108 में है। अल-किनवा: वह चीज़ जो आपने प्राप्त की और उसे अपनी संपत्ति का आधार बना लिया। (6) मुजमल अल-लुग़ा 3/801।

20 سورہ البقرہ: آیت 42

سعید نے قتادہ سے اللہ کے اس قول کے بارے میں روایت کیا ہے: {اور حق کو باطل کے ساتھ خلط ملط نہ کرو}، وہ کہتے ہیں: یہودیت اور نصرانیت کو اسلام کے ساتھ نہ ملاؤ، حالانکہ تم جان چکے ہو کہ اللہ کا وہ دین جسے وہ قبول نہیں کرتا اور جس کے بغیر بدلہ نہیں دیتا وہ صرف اسلام ہی ہے؛ اور یہ کہ یہودیت اور نصرانیت بدعت ہیں، اور وہ اللہ کی طرف سے نہیں ہیں(1)۔

اور عنترہ کے اس قول سے ظاہر ہوتا ہے: "اور ایک لشکر جسے میں نے دوسرے لشکر کے ساتھ گڈ مڈ کر دیا"(2) کہ یہ اسی معنی میں ہے، اور یہ بھی احتمال ہے کہ یہ لباس سے ہو۔ آیت کے معنی میں یہ کہا گیا ہے، یعنی: تم چھپاؤ مت؛ اور اسی سے 'لبس الثوب' (کپڑا پہننا) ہے، کہا جاتا ہے: میں نے کپڑا پہنا (لبست الثوب)، میں اسے پہنتا ہوں۔ مرد کا لباس اس کی بیوی ہے، اور اس کا شوہر اس کا لباس ہے۔ الجعدی(3) نے کہا: "جب بستر کا ساتھی اس کی گردن مروڑتا ہے ... تو وہ اس پر جھک جاتی ہے اور لباس بن جاتی ہے" اور الاخطل(4) نے کہا: "اور میں نے اس معاملے کے لیے اس کے تاریک پہلوؤں کو اوڑھ لیا ... یہاں تک کہ میرے سر پر بڑھاپے کی سفیدی چھا گئی اور بھڑک اٹھی۔" اور 'اللبوس': وہ سب کچھ ہے جو کپڑوں اور زرہ کی صورت میں پہنا جائے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور ہم نے اسے تمہارے لیے زرہ بنانے کی صنعت سکھائی} [الانبیاء: 80]۔ اور 'میں فلاں کے ساتھ رہا' (لابست فلاناً) یہاں تک کہ میں نے اس کے باطن کو جان لیا، اور فلاں میں 'ملبس' ہے، یعنی: برتنے کی جگہ یا لطف۔ اس نے کہا: "خبردار، ناداری کے بعد انسان کے لیے دولت کا حصول ہے ... اور بڑھاپے کے بعد لمبی عمر اور ملبس (لطف) ہے"(5)۔ اور کعبہ اور ہودج کا 'لبس': وہ لباس ہے جو ان پر ہوتا ہے، لام کے نیچے زیر (کسرہ)

کے ساتھ(6)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {باطل کے ساتھ} اہل عرب کے کلام میں باطل حق کی ضد ہے، اور اس کا معنی ہے زائل ہونے والا۔ لبید نے کہا:

(1) اسے ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/147 میں روایت کیا، اور سیوطی نے الدر المنثور 1/64 میں اس کی نسبت عبد بن حمید کی طرف کرنے کا اضافہ کیا۔ (2) یہ ایک شعر کا پہلا مصرع ہے جس کا دوسرا مصرع ہے: "یہاں تک کہ جب وہ خلط ملط ہو گیا تو میں نے اس سے ہاتھ جھاڑ لیے،" اور ہمیں کوئی ایسا نہیں ملا جس نے اس کی نسبت عنترہ کی طرف کی ہو، اور اس کی نسبت الفرار السلمی کی طرف کی گئی ہے جیسا کہ الحماسہ شرح المرزوقی 1/191، الجاحظ کی الحیوان 5/185، اور العقد الفرید 1/139 میں ہے۔ (3) وہ النابغہ ہے، اور شعر اس کے دیوان صفحہ 81 میں ہے۔ (4) غیاث بن غوث، بنی تغلب سے، کنیت ابو مالک، ان کی تشبیہ النابغہ الذبیانی سے دی جاتی تھی، اور وہ اموی خلفاء کی مدح سرائی کے لیے مشہور تھے یہاں تک کہ وفات پا گئے۔ الشعر والشعراء 1/483۔ اور شعر اس کے دیوان صفحہ 142 میں ہے۔ (5) اس کے کہنے والے امرؤ القیس ہیں، اور شعر ان کے دیوان صفحہ 108 میں ہے۔ القنوہ: جو چیز تم نے حاصل کی اور اسے اصل مال بنا لیا۔ (6) مجمل اللغہ | 3/801

21 Surah Al-Baqarah: Verse 42

“Behold, everything besides Allah is vain (baṭil)” (1) Something became vain (baṭala), it becomes vain (yabṭulu) in the sense of vanity (buṭlan), and someone else made it vain (abṭalahu). It is said: his blood was shed in vain (buṭlan), meaning: to no purpose. “Al-Bāṭil” (Falsehood) is the Devil, and “Al-Baṭal” (the Hero) is the brave man; he is named thus because he nullifies (yubṭilu) the bravery of his opponent. Al-Nabigha said: They have a banner held by a noble hero... only his high-reaching gaze traverses the desert. (2) A woman is a “baṭala” (heroine), and a man became brave (baṭula) - with the vowel ‘u’ on the letter ‘ṭa’ - he becomes brave (buṭūla) and heroic (baṭāla), meaning: he became courageous. A laborer became idle (baṭala) - with the vowel ‘a’ - in the sense of idleness (baṭāla), meaning: he was unemployed, so he is idle (baṭṭāl). (3) The scholars of interpretation (tafsir) differed regarding the meaning of His saying: {the truth with falsehood}. It was narrated from Ibn ‘Abbas and others: Do not mix the truth you have in the Scripture with falsehood, which is alteration and substitution. (4) Abu al-‘Aliyah said: The Jews said: Muhammad is a messenger, but to people other than us. So their acknowledgement of his mission is truth, and their denial that he was sent to them is falsehood. Ibn Zaid said: What is meant by truth is the Torah, and falsehood is what they altered in it regarding the mention of Muhammad, peace be upon him, and others. Mujahid said: Do not mix Judaism and Christianity with Islam. (5) Qatadah also said this, as mentioned before. (6) I say: The statement of Ibn ‘Abbas is more correct, as it is general and encompasses all interpretations. And Allah is the One whose help is sought. His saying, Exalted is He: {and conceal the truth}, it is possible that it is grammatically conjoined to "you mix", so it would be...

(1) This is the first half of a famous verse from a poem elegizing Al-Nu'man ibn al-Mundhir, and its second half, as in his Diwan p. 256, is: “And every delight is inevitably fleeting”. (2) His Diwan p. 106, and in it: “in the hands of a noble one”. (3) Al-Sihah: (b-ṭ-l). (4) Reported by Al-Tabari in his Tafsir 1/606 in a similar manner. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/135, and the two statements of Ibn Zaid and Mujahid were reported by Al-Tabari in his Tafsir 1/607. (6) On the previous page.

२१ सूरह अल-बक़रह: आयत ४२

“सावधान! अल्लाह के सिवा हर चीज़ व्यर्थ (बातिल) है” (१) कोई चीज़ व्यर्थ हो गई (बतला), वह व्यर्थ हो जाती है (यब्तुलु), व्यर्थता और शून्यता के अर्थ में, और किसी अन्य ने उसे व्यर्थ कर दिया। कहा जाता है: उसका खून व्यर्थ (बुतलान) गया, अर्थात्: अकारथ। 'अल-बातिल' शैतान है, और 'अल-बतल' (वीर) बहादुर व्यक्ति है; उसे यह नाम इसलिए दिया गया है क्योंकि वह अपने प्रतिद्वंद्वी की बहादुरी को विफल (युबतिलु) कर देता है। अल-नाबिगा ने कहा: उनके पास एक महान वीर के हाथों में एक ध्वज है... केवल उसकी ऊँची दृष्टि ही मरुस्थल को पार करती है। (२) स्त्री 'बतला' (वीर) है, और पुरुष वीर हो गया (बतुला) - 'ता' अक्षर पर उ की मात्रा के साथ - वह वीरता (बुतूला) और पराक्रम (बताला) दिखाता है, अर्थात्: वह साहसी हो गया। और मज़दूर बेकार हो गया (बतला) - 'ता' पर अ की मात्रा के साथ - अर्थात्: वह खाली हो गया, तो वह बेकार (बत्ताल) है। (३) 'व्याख्या के विद्वानों' (मुफ़स्सिरों) ने उनके इस कथन के अर्थ के बारे में मतभेद किया है: {सत्य को असत्य के साथ}। इब्न अब्बास और अन्य से वर्णित है: तुम्हारे पास किताब में जो सत्य है उसे असत्य के साथ न मिलाओ, और वह परिवर्तन और हेर-फेर है। (४) अबू अल-आलिया ने कहा: यहूदियों ने कहा: मुहम्मद भेजे गए हैं, लेकिन हमारे अलावा किसी और के पास। अतः उनका उनकी मिशन को स्वीकार करना सत्य है, और उनका यह इनकार करना कि वे उनके पास भेजे गए हैं, असत्य है। इब्न ज़ैद ने कहा: सत्य से तात्पर्य तौरात है, और असत्य वह है जो उन्होंने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और अन्य के उल्लेख के बारे में उसमें बदल दिया। मुजाहिद ने कहा: यहूदी धर्म और ईसाई धर्म को इस्लाम के साथ न मिलाओ। (५) कतादा ने भी यही कहा, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। (६) मैंने कहा: इब्न अब्बास का कथन अधिक सही है, क्योंकि यह व्यापक है और सभी व्याख्याओं को समाहित करता है। और अल्लाह ही सहायक है। उनका कथन, वह महान है: {और सत्य को छिपाओ}, संभव है कि यह 'तुम मिलाओ' पर व्याकरणिक रूप से जुड़ा हो, तो यह होगा...

(१) यह अल-नुमान इब्न अल-मुन्ज़िर के शोकगीत की एक प्रसिद्ध कविता की पहली पंक्ति है, और इसकी दूसरी पंक्ति, जैसा कि उनके दीवान पृष्ठ २५६ में है: 'और हर आनंद अनिवार्य रूप से क्षणभंगुर है'। (२) उनका दीवान पृष्ठ १०६, और उसमें है: 'एक महान व्यक्ति के हाथों में'। (३) अल-सिहाह: (ब-त-ल)। (४) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर १/६०६ में इसी तरह से उद्धृत किया है। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३५, और इब्न ज़ैद और मुजाहिद के दो कथनों को अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर १/६०७ में उद्धृत किया है। (६) पिछले पृष्ठ पर।

۲۱ سورہ البقرہ: آیت ۴۲

"خبردار! اللہ کے سوا ہر چیز باطل ہے" (۱) چیز باطل ہو گئی (بَطَلَ)، باطل ہوتی ہے (یَبْطُلُ)، بطلاً، بطولاً اور بطلاناً کے معنی میں، اور کسی دوسرے نے اسے باطل کر دیا۔ اور کہا جاتا ہے: اس کا خون باطل (رائگاں) گیا، یعنی: ضائع۔ اور 'الباطل': شیطان ہے، اور 'البطل': بہادر ہے، اسے یہ نام اس لیے دیا گیا کیونکہ وہ اپنے مد مقابل کی بہادری کو باطل (ختم) کر دیتا ہے۔ نابغہ نے کہا: ان کے پاس ایک معزز بہادر کے ہاتھوں میں ایک علم (جھنڈا) ہے... بیابان کو صرف اس کی بلند نگاہ ہی طے کرتی ہے۔ (۲) عورت 'بطلۃ' (بہادر) ہے، اور مرد بہادر بن گیا (بَطُلَ) - حرف ط پر پیش کے ساتھ - وہ بہادری (بطولۃ) اور دلیری (بطالۃ) دکھاتا ہے، یعنی: وہ شجاع ہو گیا۔ اور مزدور فارغ ہو گیا (بَطَلَ) - زبر کے ساتھ - یعنی: وہ معطل ہو گیا، تو وہ 'بطال' (بے کار) ہے۔ (۳) اہلِ تفسیر نے اللہ تعالیٰ کے ارشاد: ﴿الْحَقَّ بِالْبَطِلِ﴾ (حق کو باطل کے ساتھ) کی مراد میں اختلاف کیا ہے۔ ابنِ عباس وغیرہ سے مروی ہے: جو حق تمہارے پاس کتاب میں ہے اسے باطل کے ساتھ نہ ملاؤ، اور وہ تحریف اور تبدیلی ہے۔ (۴) ابو العالیہ نے کہا: یہودیوں نے کہا: محمد (صلی اللہ علیہ وسلم) مبعوث ہوئے ہیں، لیکن ہمارے علاوہ دوسروں کی طرف۔ پس ان کا آپ کی بعثت کا اقرار حق ہے، اور ان کا یہ انکار کہ آپ ان کی طرف مبعوث ہوئے ہیں باطل ہے۔ ابنِ زید نے کہا: حق سے مراد تورات ہے، اور باطل وہ ہے جو انہوں نے اس میں محمد (صلی اللہ علیہ وسلم) کے ذکر وغیرہ کے بارے میں بدلا۔ مجاہد نے کہا: یہودیت اور نصرانیت کو اسلام کے ساتھ نہ ملاؤ۔ (۵) قتادہ نے بھی یہی کہا، اور یہ پہلے ذکر ہو چکا ہے۔ (۶) میں نے کہا: ابنِ عباس کا قول زیادہ درست ہے، کیونکہ یہ عام ہے، پس اس میں تمام اقوال داخل ہو جاتے ہیں۔ واللہ المستعان (اللہ ہی مددگار

ہے)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَتَكْتُمُوا الْحَقَّ﴾ (اور تم حق چھپاتے ہو)، جائز ہے کہ یہ «تلبسوا» پر معطوف ہو، تو یہ ہوگا...

(۱) یہ ایک مشہور شعر کا پہلا مصرع ہے جو نعمان بن منذر کے مرثیے سے ہے، اور اس کا دوسرا مصرع جیسا کہ ان کے دیوان ص ۲۵۶ میں ہے: 'اور ہر نعمت یقیناً زائل ہونے والی ہے'۔ (۲) ان کا دیوان ص ۱۰۶، اور اس میں ہے: 'ایک معزز کے ہاتھوں میں'۔ (۳) الصحاح: (ب-ط-ل)۔ (۴) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۶۰۶/۱ میں اسی طرح نقل کیا ہے۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۳۵/۱، اور ابنِ زید اور مجاہد کے اقوال کو طبری نے اپنی تفسیر ۶۰۷/۱ میں نقل کیا ہے۔ (۶) پچھلے صفحے پر۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 22 ...jussive, and it is permissible for it to be accusative due to the implicit "an". The estimation is: "Let there not be (1) among you any mixing of truth and concealment of it," i.e., "and that you conceal it." Ibn Abbas said: "He means their concealment of the matter of the Prophet ﷺ while they know him (2)."

Muhammad bin Sirin said: "A group from the descendants of Aaron settled in Yathrib when what befell the Children of Israel befell them—the victory of the enemy over them and humiliation. That group were the bearers of the Torah on that day (3). They stayed in Yathrib hoping that Muhammad ﷺ would emerge among them, and they were believers, testifying to his prophethood. Those forefathers passed away while they were believers, and they were succeeded by sons and grandsons. They reached Muhammad ﷺ, but they disbelieved in him while they knew him. This is the meaning of the Almighty's words: 'Then when there came to them that which they recognized, they disbelieved in it' [Al-Baqarah: 89]."

And the Almighty's words: {while you know} is a clause in the position of a circumstantial adverb (hal), i.e., that Muhammad peace be upon him is the truth. Their disbelief in him (4) was a disbelief of stubbornness. The Almighty did not testify to their possessing knowledge, but rather He forbade them from concealing what they knew.

This indicates the severity of the sin for one who commits it with knowledge, and that he is more disobedient than the ignorant one (5). An explanation of this will come at the Almighty's words: {Do you order people to righteousness...} verse [44].

The Almighty's words: {And establish prayer and give zakah and bow with those who bow 43}

It contains thirty-four matters: First: The Almighty's words: {And establish prayer} is a command whose meaning is obligation, and there is no disagreement about it. The discussion on the meaning of establishing prayer, its derivation, and a number of its rulings has preceded (6), and praise be to Allah.

---

(1) In (D) and (Z): "not be" (yakuun). (2) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 1/609. (3) In (Z): "at that time". (4) The word "bihi" (in him/it) is from (D). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/136. (6) 1/253 - 258.

सूरह अल-बकरा: आयत ४३ २२ ...मज़ूम (जज़्म वाला), और यह 'अन' के छुपाव के कारण मन्सूब (ज़बर वाला) भी हो सकता है। अनुमान यह है: "तुममें से सत्य का मिश्रण और उसे छुपाना न हो (१)", अर्थात्: "और यह कि तुम उसे छुपाओ।" इब्न अब्बास ने कहा: "इसका अर्थ है पैगंबर ﷺ के मामले को उनका छुपाना, जबकि वे उन्हें जानते थे (२)।"

मुहम्मद बिन सिरीन ने कहा: "हारून की संतानों का एक समूह यत्रिब (मदीना) में बस गया जब बनी इसराइल पर वह सब बीता जो बीता—दुश्मनों की उन पर जीत और अपमान। वह समूह उस समय तौरात के वाहक थे (३)। वे यत्रिब में इस उम्मीद में रहे कि मुहम्मद ﷺ उनके बीच प्रकट होंगे, और वे उनकी नुबुव्वत (पैगंबरी) की पुष्टि करने वाले मोमिन (विश्वासी) थे। वे पूर्वज मोमिन रहते हुए गुज़र गए, और उनकी जगह पुत्र और पौत्रों ने ली। वे मुहम्मद ﷺ के समय तक पहुँचे, लेकिन उन्होंने उन्हें जानते हुए भी उनका इनकार किया। यही अल्लाह के इस कथन का अर्थ है: {फिर जब उनके पास वह आ गया जिसे उन्होंने पहचान लिया था, तो उन्होंने उसका इनकार कर दिया} [अल-बकरा: ८९]।"

और अल्लाह का कथन: {जबकि तुम जानते हो} हाल (स्थिति) के स्थान पर एक वाक्य है, अर्थात्: कि मुहम्मद सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम सत्य हैं। उनका उनका इनकार करना (४) हठधर्मिता का कुफ्र (इनकार) था। अल्लाह ने उनके ज्ञान की गवाही नहीं दी, बल्कि उन्हें वह छुपाने से मना किया जो वे जानते थे।

यह उस व्यक्ति के लिए पाप की गंभीरता को दर्शाता है जो इसे ज्ञान के साथ करता है, और यह कि वह अज्ञानी से अधिक अवज्ञाकारी है (५)। इसका स्पष्टीकरण अल्लाह के इस कथन पर आएगा: {क्या तुम लोगों को भलाई का आदेश देते हो...} आयत [४४]।

अल्लाह का कथन: {और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो और रुकू करने वालों के साथ रुकू करो ४३}

इसमें चौंतीस मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह का कथन: {और नमाज़ क़ायम करो} एक आदेश है जिसका अर्थ अनिवार्यता (वाजिब) है, और इसमें कोई मतभेद नहीं है। नमाज़ क़ायम करने के अर्थ, इसकी व्युत्पत्ति और इसके कई अहकाम (नियमों) के बारे में पहले चर्चा हो चुकी है (६), और अल्लाह की स्तुति हो।

(१) (द) और (ज़) में: "ला यकूनु" (नहीं होगा)। (२) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर १/६०९ में इसे उद्धृत किया है। (३) (ज़) में: "उस समय"। (४) शब्द "बिही" (उसका/उनका) (द) से है। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३६। (६) १/२५३ - २५८।

سورہ البقرہ: آیت ۴۳ ۲۲ ...مجزوم، اور "اَن" کے اخفاء کی وجہ سے منسوب بھی ہو سکتا ہے، تقدیر یہ ہے: "تم میں سے حق کا خلط ملط کرنا اور اسے چھپانا نہ ہو (۱)"، یعنی: "اور یہ کہ تم اسے چھپاؤ۔" ابن عباس نے فرمایا: "اس سے مراد نبی ﷺ کے معاملے کو ان کا چھپانا ہے جبکہ وہ انہیں پہچانتے تھے (۲)۔"

محمد بن سیرین نے فرمایا: "ہارون علیہ السلام کی اولاد میں سے ایک گروہ یثرب میں آ بسا جب بنی اسرائیل پر وہ مصائب آئے جو آئے—یعنی ان پر دشمنوں کا غلبہ اور ذلت۔ اور وہ گروہ اس وقت تورات کے حاملین تھے (۳)، چنانچہ وہ یثرب میں اس امید پر مقیم رہے کہ محمد ﷺ ان کے درمیان ظہور فرمائیں گے، اور وہ آپ کی نبوت کی تصدیق کرنے والے مومن تھے، پس وہ آباؤ اجداد مومن رہتے ہوئے گزر گئے، اور ان کے بعد ان کے بیٹے اور پوتوں نے جگہ لی، تو انہوں نے محمد ﷺ کو پایا، مگر انہوں نے پہچاننے کے باوجود آپ کا انکار کر دیا، اور یہی اللہ تعالیٰ کے اس قول کا معنی ہے: {پس جب ان کے پاس وہ آگیا جسے انہوں نے پہچان لیا تو انہوں نے اس کا انکار کر دیا} [البقرہ: ۸۹]۔"

اور اللہ تعالیٰ کا قول: {حالانکہ تم جانتے ہو} محلِ حال میں جملہ ہے، یعنی: کہ محمد ﷺ حق ہیں، تو ان کا ان کا انکار کرنا (۴) ضد اور عناد کا کفر تھا، اور اللہ تعالیٰ نے ان کے لیے علم کی گواہی نہیں دی بلکہ انہیں اس چیز کو چھپانے سے روکا جسے وہ جانتے تھے۔

اور یہ اس شخص کے گناہ کی سنگینی پر دلالت کرتا ہے جو جانتے بوجھتے اس کا ارتکاب کرے، اور یہ کہ وہ جاہل سے زیادہ نافرمان ہے (۵)۔ اور اس کا بیان اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس آئے گا: {کیا تم لوگوں کو نیکی کا حکم دیتے ہو...} آیت [۴۴]۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور نماز قائم کرو اور زکوٰۃ دو اور رکوع کرنے والوں کے ساتھ رکوع کرو ۴۳}

اس میں چونتیس مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: {اور نماز قائم کرو} ایسا امر ہے جس کا معنی وجوب ہے، اور اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے، اور نماز قائم کرنے کے معنی، اس کے اشتقاق، اور اس کے احکام کے ایک جملے کے بارے میں کلام پہلے گزر چکا ہے (۶)، والحمد للہ۔

---

(۱) (د) اور (ظ) میں: "لا یکون" ہے۔ (۲) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۱/۶۰۹ میں روایت کیا ہے۔ (۳) (ظ) میں: "حینئذ" (اس وقت) ہے۔ (۴) لفظ "بہ" (د) سے ہے۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/۱۳۶۔ (۶) ۱/۲۵۳ - ۲۵۸۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 23

Second point: Allah Almighty's saying: {And give zakah} is also a command that implies obligation. "Al-Itaa" means giving. "Aataytuhu" means I gave it to him. Allah Almighty said: {If He gives us from His bounty, we will surely give charity} [Al-A'raf: 75]. And "Ataytuhu" - with the short vowel, without elongation - means: I came to him. If coming has the meaning of the future, it is elongated, and from it is the Hadith: "And I will surely come to the Messenger of Allah (peace be upon him) and inform him"(1). And it will come.

Third point: Zakah is taken from "zaka al-shay'": when it grows and increases. It is said: the crop and wealth "yazku": if it becomes plenty and increases. And a "zakiyy" man, i.e., abundant in goodness. Giving from wealth is called "zakah", even though it is a decrease from it, because it grows through blessing, or because of the reward with which the giver is rewarded(2). It is said: a "zakin" crop with clear "zakaa'" (growth). And the she-camel "zakat" with her offspring: when she cast it from between her legs(3). And the single became "zaka": when it became a pair by adding what is extra to it until it became even. The poet said: They were odd or even (khasaa or zakaa) besides four, they were not created, and people's luck struggles(5) The plural of "jadd": which is luck and fortune. "T'taliju" means: rises. The land "i'talajat": its plants grew tall. "Khasaa" is odd, and "zakaa" is even.

It is said: its origin is beautiful praise, and from it: the judge "zakka" (attested to the integrity of) the witness. So it is as if the one who gives zakah earns for himself beautiful praise.

It is said: Zakah is taken from purification, as it is said: So-and-so "zaka", i.e., he was purified from the filth of wounds and negligence. So it is as if what comes out of the wealth purifies it from the consequence of the right that Allah placed in it for the poor. Don't you see that the Prophet (peace be upon him) called what comes out of zakah the "filth of people"(6), and Allah Almighty said: {Take from their wealth a charity by which you purify them and cause them increase} [At-Tawbah: 103].

(1) The Hadith is in the story of Mu'adh lengthening the prayer, recorded by Ahmad (14190), Al-Bukhari (705), and Muslim (465):(178) from the Hadith of Jabir, may Allah be pleased with him, and the wording is for Muslim. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/136. (3) Mujmal al-Lughah 2/437. (4) In copies: "ma", and what is confirmed is from (m) and sources. (5) The verse is in Al-Maqsur wa al-Mamdud by Al-Farra' p. 68, Tafsir al-Tabari 1/612, and Al-Lisan: (khasaa) without attribution. (6) Al-Muharrar al-Wajiz

1/136, and recorded by Ahmad (17518) and Muslim (1072):(168) from the Hadith of Al-Muttalib bin Rabi'a, raised to the Prophet: "These charities are only the filth of people, and they are not permissible for Muhammad or the family of Muhammad."

सूरह अल-बकरा: आयत 43 23

दूसरा बिंदु: अल्लाह तआला का कथन: {और ज़कात दो} यह भी एक आदेश है जो अनिवार्यता (वजीब) को दर्शाता है। "ईता" का अर्थ देना है। "आतयतुहु" का अर्थ है मैंने उसे दिया। अल्लाह तआला ने कहा: {यदि वह हमें अपने अनुग्रह से दे दे, तो हम अवश्य दान करेंगे} [अल-अराफ़: 75]। और "अतयतुहु" - बिना मद (लंबा स्वर) के- का अर्थ है: मैं उसके पास आया। यदि आने का अर्थ भविष्य के लिए हो तो मद दिया जाता है, और इसी से हदीस है: "और मैं अवश्य अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के पास आऊंगा और उन्हें बताऊंगा"(1)। और यह आगे आएगा।

तीसरा बिंदु: ज़कात शब्द "ज़का अल-शय" से लिया गया है: जब वह बढ़ता और विकसित होता है। कहा जाता है: फसल और धन "यज़कू: यदि वह अधिक और बढ़ जाए। और एक "ज़की" व्यक्ति, यानी: भलाई में अधिक। धन से निकालने को "ज़कात" कहा जाता है, हालांकि यह उससे कमी है, क्योंकि यह बरकत (आशीर्वाद) के माध्यम से बढ़ता है, या उस पुण्य (अज्र) के कारण जिससे ज़कात देने वाले को पुरस्कृत किया जाता है(2)। कहा जाता है: एक "ज़ाकिन" फसल जिसमें स्पष्ट "ज़का" (विकास) है। और ऊंटनी अपने बच्चे के साथ "ज़कात": जब वह उसे अपनी टांगों के बीच से गिरा देती है(3)। और अकेला "ज़का" हो गया: जब वह अतिरिक्त जोड़ने से जोड़ा बन गया यहाँ तक कि वह सम (इवन) हो गया। कवि ने कहा: वे चार के अलावा विषम या सम (खसा या ज़का) थे, वे पैदा नहीं हुए थे, और लोगों का भाग्य संघर्ष करता है(5) "जद्द" का बहुवचन: जिसका अर्थ भाग्य और किस्मत है। "तअतलिजु" का अर्थ है: बढ़ता है, ज़मीन "इअतलजत": इसके पौधे लंबे हो गए। तो "खसा": विषम, और "ज़का": सम (जोड़ा)।

कहा गया है: इसका मूल सुंदर प्रशंसा है, और इसी से: न्यायाधीश ने गवाह को "ज़क्का" (उसकी निष्ठा की पुष्टि की)। तो मानो जो ज़कात देता है वह अपने लिए सुंदर प्रशंसा अर्जित करता है।

कहा गया है: ज़कात "पवित्रता" (तथहीर) से लिया गया है, जैसा कि कहा जाता है: फलां "ज़का", यानी: वह घावों और लापरवाही की गंदगी से पवित्र हो गया। तो मानो धन से जो निकलता है वह उसे उस अधिकार के परिणाम से पवित्र करता है जिसे अल्लाह ने इसमें गरीबों के लिए रखा है। क्या आप नहीं देखते कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने ज़कात से निकलने वाली चीज़ को "लोगों की गंदगी" कहा है(6), और अल्लाह तआला ने कहा है: {उनके धन में से सदक़ा (दान) लें जिससे आप उन्हें पवित्र करें और उन्हें शुद्ध करें} [अत-तौबा: 103]।

(1) हदीस मुआज़ के नमाज़ को लंबा करने की कहानी में है, जिसे अहमद (14190), बुखारी (705) और मुस्लिम (465):(178) ने जाबिर (रज़िअल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है, और शब्द मुस्लिम के हैं। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/136। (3) मुजमल अल-लुगा 2/437। (4) प्रतियों में: "मा", और (म) और स्रोतों से पुष्टि की गई है। (5) यह शेर अल-फरा की किताब 'अल-मकसूर वल-ममदूद' पृष्ठ 68, तफ़सीर अल-तबरी 1/612, और अल-लिसान: (खसा) में बिना किसी श्रेय के है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/136, और अहमद (17518) और मुस्लिम (1072):(168) ने मुत्तलिब बिन रबीआ की हदीस से इसे मरफ़ू' (नबी की ओर सप्रमाण) उद्धृत किया है: "ये सदके केवल लोगों की गंदगी हैं, और ये मुहम्मद और मुहम्मद के परिवार के लिए जायज़ नहीं हैं।"

سورہ البقرہ: آیت 43 23

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: {اور زکوٰۃ دو} یہ بھی ایک ایسا حکم ہے جو وجوب (لازم ہونے) کا تقاضا کرتا ہے۔ "ایتاء" کا مطلب ہے دینا۔ "آتیتہ" کا مطلب ہے میں نے اسے دیا۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اگر وہ ہمیں اپنے فضل سے دے گا تو ہم ضرور صدقہ کریں گے} [الاعراف: 75]۔ اور "أتیتہ" - مد کے بغیر، قصر کے ساتھ - کا مطلب ہے: میں اس کے پاس آیا۔ چنانچہ اگر آنے کا مطلب مستقبل کے لیے ہو تو مد دیا جاتا ہے، اور اسی سے یہ حدیث ہے: "اور میں ضرور اللہ کے رسول ﷺ کے پاس آؤں گا اور انہیں بتاؤں گا"(1)۔ اور یہ آگے آئے گا۔

تیسری بات: زکوٰۃ "زکا الشیء" سے ماخوذ ہے: جب وہ بڑھے اور زیادہ ہو۔ کہا جاتا ہے: فصل اور مال "یزکو": جب وہ کثرت اختیار کرے اور بڑھے۔ اور "زکی" آدمی، یعنی: خیر و بھلائی میں زیادہ۔ مال سے نکالنے کو "زکوٰۃ" کہا گیا ہے، حالانکہ یہ اس میں سے کمی ہے، اس لحاظ سے کہ یہ برکت سے بڑھتا ہے، یا اس اجر کی وجہ سے جس سے زکوٰۃ دینے والے کو نوازا جاتا ہے(2)۔ کہا جاتا ہے: "زاکٍ" فصل جس کا بڑھنا (زکاء) واضح ہو۔ اور اونٹنی نے اپنے بچے کے ساتھ "زکا" کیا: جب اس نے اسے اپنی دونوں ٹانگوں کے درمیان سے گرا دیا(3)۔ اور اکیلا "زکا" ہو گیا: جب وہ اضافی اضافے کے ساتھ جوڑا بن گیا یہاں تک کہ وہ جفت (ایون) ہو گیا۔ شاعر نے کہا: وہ چار کے علاوہ طاق یا جفت (خسا یا زکا) تھے، وہ پیدا نہیں ہوئے تھے، اور لوگوں کی خوش قسمتی جفاکشی کرتی ہے(5) "جدّ" کی جمع: جس سے مراد نصیب اور بخت ہے۔ "تعتلج" یعنی: بلند ہونا، زمین "اعتجلت": اس کے پودے لمبے ہو گئے۔ "خسا": طاق، اور "زکا": جفت (جوڑا)۔

اور کہا گیا ہے: اس کی اصل اچھی تعریف ہے، اور اسی سے ہے: قاضی نے گواہ کا "تزکیہ" کیا (اس کی گواہی کو معتبر قرار دیا)۔ تو گویا جو شخص زکوٰۃ نکالتا ہے وہ اپنے لیے اچھی تعریف حاصل کرتا ہے۔

اور کہا گیا ہے: زکوٰۃ "تطہیر" (پاک کرنے) سے ماخوذ ہے، جیسا کہ کہا جاتا ہے: فلاں "زکا" ہوا، یعنی: وہ عیبوں اور غفلت کی گندگی سے پاک ہو گیا۔ تو گویا مال سے جو حصہ نکلتا ہے وہ اسے اس حق کے وبال سے پاک کرتا ہے جو اللہ نے اس میں مسکینوں کے لیے رکھا ہے۔ کیا آپ نہیں دیکھتے کہ نبی ﷺ نے زکوٰۃ سے نکلنے والی چیز کو "لوگوں کی میل کچیل" (اوساخ) کہا ہے(6)، اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {ان کے مالوں میں سے صدقہ لیجیے جس کے ذریعے آپ انہیں پاک کریں اور ان کا تزکیہ کریں} [التوبہ: 103]۔

(1) حدیث معاذ کے نماز لمبی کرنے کے قصے میں ہے، اسے احمد (14190)، بخاری (705) اور مسلم (465):(178) نے حضرت جابرؓ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور الفاظ مسلم کے ہیں۔ (2) المحرر الوجیز 136/1۔ (3) مجمل اللغہ 437/2۔ (4) نسخوں میں: "ما" ہے، اور (م) اور مآخذ سے ثابت شدہ یہی ہے۔ (5) یہ شعر الفراء کی 'المقصور والممدود' ص 68، تفسیر طبری 612/1، اور اللسان: (خسا) میں بغیر کسی نسبت کے ہے۔ (6) المحرر الوجیز 136/1، اور اسے احمد (17518) اور مسلم (1072):(168) نے مطلب بن ربیعہ کی مرفوع حدیث سے روایت کیا ہے: "یہ صدقات محض لوگوں کا میل کچیل ہیں، اور یہ محمد اور آلِ محمد کے لیے حلال نہیں ہیں۔"

Page 24 | Surah Al-Baqarah: Verse 43

Fourth: There is disagreement regarding what is meant by 'Zakat' here. It was said: it is the obligatory Zakat (1), because it is paired with prayer. And it was said: it is Sadaqat al-Fitr. Malik said this in the audition of Ibn al-Qasim.

I say: According to the first view - which is the opinion of most scholars - Zakat in the Book is general, and the Prophet ﷺ clarified it. The Imams narrated from Abu Sa'id al-Khudri that the Prophet ﷺ said: "There is no charity (Zakat) on grain or dates until it reaches five awsuq (camel loads), nor on less than five dhawd (camels) is there charity, nor on less than five awaq (ounces of silver) is there charity" (2). Al-Bukhari said: "Five awaq of wariq (silver)" (3). Al-Bukhari also narrated from Ibn 'Umar from the Prophet ﷺ who said: "On what is watered by the sky and springs, or what is naturally watered (athariyan), a tenth (is due); and on what is watered by irrigation, half of a tenth" (4). The explanation of this chapter will come in [Surah] Al-An'am, God willing (5).

And in [Surah] "Bara'ah" (At-Tawbah), the Zakat on gold/silver and livestock will be discussed, as well as the explanation of wealth from which Zakat is not taken, at His words: "Take, [O, Muhammad], from their wealth a charity" [At-Tawbah: 103].

As for Sadaqat al-Fitr, there is no explicit text for it in the Book (6) except what Malik interpreted here, and His words: "He has certainly succeeded who purifies himself, and mentions the name of his Lord and prays" [Al-A'la: 14-15]. Commentators mention the discussion of it in Surah Al-A'la, and I saw the discussion of it in this Surah when we spoke about the verses of fasting, because the Messenger of Allah ﷺ obligated Zakat al-Fitr in Ramadan, as per the Hadith. It will come (7), as he attributed it to Ramadan.

---

(1) In (D): What is meant by Zakat. (2) Narrated by al-Bukhari (1405), and Muslim - the wording is his - (979): (5). 'Awsunq' is the plural of 'wasq', which is sixty sa'. The origin of 'wasq' is 'load', and everything you have 'wasq-ed', you have loaded. 'An-Nihayah fi Gharib al-Hadith': (wasq). 'Adh-Dhawd' of camels: between two and nine, and it was said: between three and ten. 'An-Nihayah': (dhawd). (3) In narration number (1459) and (1484). 'Wariq' is silver. (4) Sahih al-Bukhari (1483). 'Athari': it is that which drinks with its roots without irrigation. 'Fath al-Bari' 3/349. (5) At His words: "And give its due [Zakah] on the day of its harvest" Verse: 142. (6) In (Z): A text indicating it. (7) At His words: "Not upon you, [O Muhammad], is [responsibility for] their guidance, but Allah

guides whom He wills" [Al-Baqarah: 272], and we did not find his speech on Sadaqat al-Fitr in another place.

पृष्ठ २४ | सूरा अल-बकरा: आयत ४३

चौथा: यहाँ 'ज़कात' से क्या तात्पर्य है, इस बारे में मतभेद है। कहा गया: यह अनिवार्य ज़कात (१) है, क्योंकि इसे नमाज़ के साथ जोड़ा गया है। और कहा गया: यह सदक़तुल फ़ित्र है। इमाम मालिक ने इब्न अल-कासिम के समा (सुनने) में यह बात कही।

मैं कहता हूँ: पहले मत के अनुसार - जो अधिकांश विद्वानों का मत है - कुरान में ज़कात का वर्णन संक्षिप्त है जिसे पैगंबर ﷺ ने स्पष्ट किया। इमामों ने अबू सईद अल-खुदरी से रिवायत की है कि पैगंबर ﷺ ने फरमाया: "अनाज या खजूर पर तब तक कोई ज़कात नहीं है जब तक वह पांच 'औसक' (ऊंट का बोझ) तक न पहुँच जाए, न ही पांच से कम 'धौद' (ऊंटों) पर कोई ज़कात है, और न ही पांच 'अव़ाक' (चांदी के औंस) से कम पर कोई ज़कात है" (२)। अल-बुखारी ने कहा: "चांदी के पांच अव़ाक" (३)। अल-बुखारी ने इब्न उमर के माध्यम से पैगंबर ﷺ से रिवायत की कि उन्होंने फरमाया: "जिसे आकाश और झरनों ने सींचा हो, या जो प्राकृतिक रूप से सिंचित (अथारी) हो, उस पर दसवां हिस्सा (उश्र) है; और जिसे सिंचाई द्वारा सींचा गया हो, उस पर दसवें का आधा (आधा उश्र) है" (४)। इस अध्याय का स्पष्टीकरण इन्शा अल्लाह सूरा अल-अनआम में आएगा (५)।

और "बाराह" (सूरा अत-तौबा) में सोने-चांदी और मवेशियों की ज़कात, और उस धन का विवरण जिससे ज़कात नहीं ली जाती है, अल्लाह के इस कथन पर आएगा: "उनके धन में से सदक़ा (ज़कात) ले लीजिये" [अत-तौबा: १०३]।

जहाँ तक सदक़तुल फ़ित्र का सवाल है, कुरान में इसके लिए कोई स्पष्ट पाठ (नॉस) नहीं है (६), सिवाय इसके जो मालिक ने यहाँ व्याख्या की है, और अल्लाह का यह कथन: "बेशक वह सफल हुआ जिसने स्वयं को शुद्ध कर लिया, और अपने रब के नाम का स्मरण किया और नमाज़ पढ़ी" [अल-आला: १४-१५]। व्याख्याकार सूरा अल-आला में इसके बारे में चर्चा करते हैं, और मैंने इस सूरा में उपवास की आयतों पर चर्चा करते समय इसके बारे में चर्चा देखी है, क्योंकि अल्लाह के रसूल ﷺ ने रमजान में ज़कातुल फ़ित्र अनिवार्य की थी, जैसा कि हदीस में है। यह आगे आएगा (७), उन्होंने इसे रमजान से जोड़ा है।

---

(१) (द) में: ज़कात से तात्पर्य। (२) अल-बुखारी (१४०५) और मुस्लिम द्वारा उद्धृत - शब्द मुस्लिम के हैं - (९७९): (५)। 'औसुक', 'व़सक़' का बहुवचन है: जो साठ 'साअ' के बराबर होता है। 'व़सक़' का मूल अर्थ 'बोझ' (लोड) है। 'अन-निहाया फ़ी गरीब अल-हदीस': (व़सक़)। 'धौद' ऊंटों के लिए: दो से नौ के

बीच, और कहा गया: तीन से दस के बीच। 'अन-निहाया': (धौद)। (३) रिवायत नंबर (१४५९) और (१४८४) में। 'व़रिक' चांदी है। (४) सहीह अल-बुखारी (१४८३)। 'अथारी': वह है जो बिना सिंचाई के अपनी जड़ों से पानी पीता है। 'फ़तह अल-बारी' ३/३४९। (५) अल्लाह के इस कथन पर: "और उसकी कटाई के दिन उसका हक (ज़कात) अदा करो" आयत: १४२। (६) (ज़) में: एक पाठ जो इसका संकेत देता है। (७) अल्लाह के इस कथन पर: "उन्हें मार्गदर्शन देना आपकी ज़िम्मेदारी नहीं है, बल्कि अल्लाह जिसे चाहता है मार्गदर्शन देता है" [अल-बकरा: २७२], और हमें किसी अन्य स्थान पर सदक़तुल फ़ित्र पर उनकी बात नहीं मिली।

چوتھا مسئلہ: یہاں زکوۃ سے کیا مراد ہے، اس میں اختلاف ہے۔ کہا گیا: اس سے مراد فرض زکوۃ (١) ہے، کیونکہ اس کا ذکر نماز کے ساتھ ملا کر کیا گیا ہے۔ اور کہا گیا: اس سے مراد صدقہ فطر ہے۔ امام مالک نے ابن القاسم کے سماع میں یہی فرمایا ہے۔

میں کہتا ہوں: پہلے قول کے مطابق - جو کہ اکثر علماء کا قول ہے - کتاب اللہ میں زکوۃ کا حکم اجمالی ہے جس کی وضاحت نبی ﷺ نے فرمائی۔ ائمہ نے ابو سعید خدری سے روایت کی ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: «کسی غلے یا کھجور میں زکوۃ نہیں جب تک کہ وہ پانچ وسق تک نہ پہنچ جائے، اور نہ ہی پانچ سے کم اونٹوں (ذود) میں صدقہ ہے، اور نہ ہی پانچ اوقیہ سے کم چاندی میں صدقہ ہے» (٢)۔ امام بخاری نے فرمایا: «چاندی کے پانچ اوقیہ» (٣)۔ اور امام بخاری نے ابن عمر کے واسطے سے نبی ﷺ سے روایت کیا کہ آپ ﷺ نے فرمایا: «جس زمین کو آسمان اور چشموں نے سیراب کیا ہو، یا وہ خود بخود سیراب ہونے والی (عثری) ہو، اس میں دسواں حصہ (عشر) ہے، اور جسے کنوؤں وغیرہ کے ذریعے سیراب کیا جائے اس میں بیسواں حصہ (نصف عشر) ہے» (٤)۔ اس باب کی وضاحت انشاء اللہ سورۃ الانعام میں آئے گی (٥)۔

اور سورۃ «براءۃ» (توبہ) میں سونے چاندی اور مویشیوں کی زکوۃ، اور اس مال کا بیان جس سے زکوۃ نہیں لی جاتی، اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس آئے گا: ﴿خُذْ مِنْ أَمْوَالِهِمْ صَدَقَةً﴾ [التوبہ: ١٠٣]۔

جہاں تک صدقہ فطر کا تعلق ہے، تو کتاب اللہ میں اس پر کوئی صریح نص موجود نہیں ہے (٦) سوائے اس کے جس کی امام مالک نے یہاں تاویل کی ہے، اور اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿قَدْ أَفْلَحَ مَن تَزَكَّىٰ ﴿١٤﴾ وَذَكَرَ اسْمَ رَبِّهِۦ فَصَلَّىٰ ﴿١٥﴾﴾ [الاعلیٰ: ١٤ - ١٥]، مفسرین اس پر بحث سورۃ الاعلیٰ میں ذکر کرتے ہیں، اور میں نے اس پر کلام اس سورت میں روزوں کی آیات کی تشریح کے وقت

دیکھا ہے، کیونکہ رسول اللہ ﷺ نے رمضان میں زکوۃ الفطر فرض فرمائی، جیسا کہ حدیث میں ہے۔ اور اس کا ذکر آگے آئے گا (۷)، چنانچہ آپ ﷺ نے اسے رمضان کی طرف منسوب فرمایا۔

---

(۱) نسخہ (د) میں ہے: زکوۃ سے مراد۔ (۲) اسے بخاری (۱٤۰٥) اور مسلم نے روایت کیا - اور لفظ مسلم کے ہیں - (۹۷۹): (٥)۔ اور 'اوسق' 'وسق' کی جمع ہے: اور وہ ساٹھ صاع کا ہوتا ہے۔ اور وسق کا اصل معنی ہے: بوجھ (لوڈ)۔ النہایہ فی غریب الحدیث: (وسق)۔ اور اونٹوں کے لیے 'ذود': دو سے نو کے درمیان، اور کہا گیا: تین سے کس کے درمیان۔ النہایہ: (ذود)۔ (۳) روایت نمبر (۱٤٥۹) اور (۱٤۸٤) میں۔ 'ورق' سے مراد چاندی ہے۔ (٤) صحیح بخاری (۱٤۸۳)۔ 'عثری': وہ پودا ہے جو بغیر کسی کے پانی دیے اپنی جڑوں سے زمین کی نمی پیتا ہے۔ فتح الباری ۳/۳٤۹۔ (٥) اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس: ﴿وَآتُوا حَقَّهُ يَوْمَ حَصَادِهِ﴾ آیت: ۱٤۲۔ (٦) نسخہ (ز) میں ہے: ایسی نص جو اس پر دلالت کرے۔ (۷) اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس: ﴿لَيْسَ عَلَيْكَ هُدَاهُمْ وَلَٰكِنَّ اللَّهَ يَهْدِي مَن يَشَاءُ﴾ [البقرہ: ۲۷۲]، اور ہمیں دوسری جگہ صدقہ فطر پر ان کا کلام نہیں ملا۔

25 Surah Al-Baqarah: Verse 43

The fifth [point]: Allah's saying: {And bow down} Ruku' (bowing) in language is the bending of the person, and everyone who is bent is bowing (raki'). Labid said: I inform of the news of the past centuries I creep as if every time I stand I am bowing (1) Ibn Durayd said (2): Al-Rak'ah: a hollow in the ground, a Yemenite dialect (3). It was said: Bending covers both bowing and prostration, and it is also used metaphorically for a decline in status. The poet said: Do not mistreat the weak, for you might one day bow while time has elevated him (4)

The sixth [point]: People differed regarding the specification of bowing by mention. A group said: Bowing was made, as it is one of the pillars of prayer, an expression for the prayer [itself] (5). I said: This is not exclusive to bowing alone. The Sharia has made recitation an expression for prayer, and prostration an expression for the complete rak'ah. For He said: {and the recitation of dawn} [Al-Isra: 78] meaning: the dawn prayer. And the Messenger of Allah ﷺ said: "Whoever catches a prostration of the prayer has caught the prayer" (6). And the people of Hijaz call a rak'ah a 'sajdah' (prostration). It was said: Bowing was specifically mentioned because the Children of Israel did not have bowing in their prayer (7). And it was said: because it was heavier on the people in the pre-Islamic era (Jahiliyyah), until some who embraced Islam - I think it was Imran ibn Husayn - said to the Prophet ﷺ: [I accept Islam] on the condition that I do not fall except while standing (8). Its interpretation: that I do not bow,

(1) His Diwan p. 171. Before it: Is there not behind me, if my death is delayed, the necessity of a staff on which fingers bend? (2) In (m): and he said. (3) Al-Jamharah 2/385, and see Al-Mujmal 1/397. (4) The verse is by Al-Adhabt ibn Quray', and it is in Hamasa Abi Tammam 3/1151 (Sharh al-Marzuqi), Al-Bayan wa al-Tabyin 3/341, Al-Shi'r wa al-Shu'ara 1/383, Al-Aghani 18/129, and Khizanat al-Adab 11/452. The narration in Hamasa and Al-Shi'r wa al-Shu'ara is: "Do not insult the poor," and the narration in Al-Bayan: "Do not despise the poor." (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/136. (6) Narrated by Ahmad (7665), Al-Bukhari (580), and Muslim (607) (161) from the hadith of Abu Hurairah. (7) Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Tabari 1/9. (8) The hadith was narrated by Ahmad (15312), and al-Nasa'i in Al-Mujtaba 2/205, and in Al-Kubra (675) from the hadith of Hakim bin Hizam, and not Imran bin Husayn as the author thought. Its chain of transmission is broken, as it is from the narration of Yusuf bin Mahak from him, and Yusuf did not hear from Hakim.

25 सूरा अल-बकरा: आयत 43

पाँचवाँ [बिंदु]: अल्लाह का कथन: {और झुक जाओ} भाषा में रुकू (झुकना) व्यक्ति का झुकना है, और हर झुका हुआ व्यक्ति झुकने वाला (राकि') है। लबीद ने कहा: मैं पिछली सदियों की खबर देता हूँ मैं ऐसे रेंगता हूँ जैसे हर बार खड़े होने पर मैं झुक रहा हूँ (1) इब्न दुरैद ने कहा (2): अल-रकअ: ज़मीन में एक गड्ढा, एक यमनी बोली (3)। यह कहा गया: झुकना रुकू और सजदा दोनों को कवर करता है, और इसका उपयोग स्थिति में गिरावट के लिए रूपक के रूप में भी किया जाता है। कवि ने कहा: कमज़ोर के साथ बुरा व्यवहार न करें, क्योंकि आप एक दिन झुक सकते हैं जबकि समय ने उसे ऊंचा कर दिया है (4)

छठा [बिंदु]: लोगों ने उल्लेख द्वारा रुकू को विशेष करने के संबंध में मतभेद किया। एक समूह ने कहा: रुकू को बनाया गया था, क्योंकि यह प्रार्थना के स्तंभों में से एक है, प्रार्थना [स्वयं] के लिए एक अभिव्यक्ति (5)। मैंने कहा: यह केवल रुकू तक ही सीमित नहीं है। शरीयत ने पाठ को प्रार्थना के लिए एक अभिव्यक्ति बनाया है, और सजदा को पूरी रकअत के लिए एक अभिव्यक्ति बनाया है। क्योंकि उसने कहा: {और भोर का पाठ} [अल-इसरा: 78] अर्थ: भोर की प्रार्थना। और अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "जिसने प्रार्थना का एक सजदा पा लिया, उसने प्रार्थना पा ली" (6)। और हिजाज़ के लोग रकअत को 'सजदा' (साष्टांग प्रणाम) कहते हैं। यह कहा गया: रुकू का विशेष रूप से उल्लेख किया गया था क्योंकि बनी इसराइल की प्रार्थना में रुकू नहीं था (7)। और यह कहा गया: क्योंकि यह अज्ञानता के युग (जाहिलिया) में लोगों पर भारी था, यहाँ तक कि इस्लाम स्वीकार करने वाले कुछ लोगों ने - मुझे लगता है कि यह इमरान इब्न हुसैन थे - पैगंबर ﷺ से कहा: [मैं इस्लाम स्वीकार करता हूँ] इस शर्त पर कि मैं खड़े होने के अलावा न गिरूँ(8)। इसकी व्याख्या: कि मैं झुकूँ नहीं,

(1) उनका दीवान पृ. 171। इससे पहले: क्या मेरे पीछे नहीं है, अगर मेरी मौत टल गई है, एक लाठी की आवश्यकता जिस पर उंगलियां झुकती हैं? (2) (m) में: और उन्होंने कहा। (3) अल-जमहरा 2/385, और अल-मुजमल 1/397 देखें। (4) यह पद अल-अधबत इब्न कुरै' का है, और यह हमासा अबी तमाम 3/1151 (शारह अल-मरज़ुकी), अल-बयान वा अल-तबीन 3/341, अल-शेर वा अल-शुअरा 1/383, अल-अघानी 18/129, और खज़ानत अल-अदब 11/452 में है। हमासा और अल-शेर वा अल-शुअरा में विवरण है: "गरीब का अपमान न करें," और अल-बयान में विवरण: "गरीब का तिरस्कार न करें।" (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/136। (6) अहमद (7665), अल-बुखारी (580), और मुस्लिम (607) (161) द्वारा अबू हुरैरा की हदीस से वर्णित। (7) अल-किया अल-तबरी द्वारा

अहकाम अल-कुरान 1/9। (8) हदीस अहमद (15312) और अल-नसाई द्वारा अल-मुजतबा 2/205 में, और अल-कुबरा (675) में हकीम बिन हिज़ाम की हदीस से वर्णित की गई थी, न कि इमरान बिन हुसैन से जैसा कि लेखक ने सोचा था। इसका संचरण क्रम खंडित है, क्योंकि यह यूसुफ बिन महक के माध्यम से है, और यूसुफ ने हकीम से नहीं सुना था।

٢٥ سورة البقرة : الآية ٤٣

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَارْكَعُواْ﴾ (اور رکوع کرو)۔ لغت میں رکوع کا مطلب ہے: انسان کا جھکنا، اور ہر جھکنے والا راکع (رکوع کرنے والا) ہے۔ لبید نے کہا: میں گزشتہ صدیوں کی خبریں دیتا ہوں میں ایسے رینگتا ہوں گویا جب بھی کھڑا ہوتا ہوں تو رکوع کی حالت میں ہوتا ہوں (١) ابن درید نے کہا (٢): الرکعۃ: زمین میں گڑھا، یہ یمنی لغت ہے (٣)۔ اور کہا گیا: جھکنا رکوع اور سجدہ دونوں کو شامل ہے، اور یہ مرتبے میں گراوٹ کے لیے بھی استعارہ کے طور پر استعمال ہوتا ہے۔ شاعر نے کہا: کمزور سے دشمنی نہ کرو، شاید کہ تم کسی دن جھک جاؤ جبکہ زمانے نے اسے بلند کر دیا ہو (٤)

چھٹی بات: لوگوں نے رکوع کو ذکر کے ساتھ خاص کرنے میں اختلاف کیا، ایک گروہ نے کہا: رکوع چونکہ نماز کے ارکان میں سے ہے، اس لیے اسے نماز سے تعبیر کیا گیا (٥)۔ میں کہتا ہوں: یہ صرف رکوع کے ساتھ خاص نہیں ہے، شریعت نے قرات کو بھی نماز سے تعبیر کیا ہے، اور سجدہ کو پوری رکعت سے تعبیر کیا ہے، چنانچہ فرمایا: ﴿وَقُرْءَانَ الْفَجْرِ﴾ [الاسراء: ٧٨] یعنی: نماز فجر۔ اور رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جس نے نماز کا ایک سجدہ پا لیا، اس نے نماز پا لی" (٦)۔ اور اہل حجاز ایک رکعت کو سجدہ کہتے ہیں۔ اور کہا گیا: رکوع کو ذکر کے ساتھ اس لیے خاص کیا گیا کیونکہ بنی اسرائیل کی نماز میں رکوع نہیں تھا (٧)۔ اور کہا گیا: اس لیے کہ یہ زمانہ جاہلیت میں لوگوں پر بہت بھاری تھا، یہاں تک کہ بعض مسلمان ہونے والوں نے - میرا خیال ہے وہ عمران بن حصین تھے - نبی ﷺ سے کہا: [اس شرط پر کہ] میں صرف کھڑے ہو کر ہی گروں (٨)۔ اس کی تاویل یہ ہے کہ: تاکہ میں رکوع نہ کروں،

(١) ان کا دیوان ص ١٧١۔ اس سے پہلے ہے: کیا میرے پیچھے ایسا نہیں ہے کہ اگر میری موت ٹل جائے تو لاٹھی کا سہارا لازم ہو جائے جس پر انگلیاں جھکی ہوں (٢) نسخہ (م) میں ہے: اور کہا۔ (٣) الجمهرة ٢/ ٣٨٥، اور دیکھئے المجمل ١/ ٣٩٧۔ (٤) یہ شعر الاضبط بن قریع کا ہے، اور یہ حماسہ ابی تمام ٣ /١١٥١ (شرح المرزوقی)، البیان والتبیین ٣ /٣٤١، الشعر والشعراء ١/ ٣٨٣، الاغانی ١٨/ ١٢٩، اور خزانۃ الادب ١١/ ٤٥٢ میں ہے۔ حماسہ اور الشعر والشعراء کی روایت ہے: "فقیر کی توہین نہ کرو"، اور البیان کی روایت ہے: "فقیر کو حقیر نہ سمجھو"۔ (٥) المحرر الوجیز ١ / ١٣٦۔ (٦) اسے احمد (٧٦٦٥)، بخاری (٥٨٠) اور مسلم (٦٠٧) (١٦١) نے حضرت ابوہریرہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٧) احکام القرآن للکیا الطبری ٩/١۔ (٨) یہ حدیث احمد (١٥٣١٢) اور نسائی نے المجتبیٰ ٢ /٢٠٥ اور الکبریٰ (٦٧٥) میں حکیم بن حزام کی حدیث سے روایت کی ہے، نہ کہ عمران بن حصین سے جیسا کہ مصنف نے سمجھا، اور اس کی سند منقطع ہے کیونکہ یہ یوسف بن ماہک کی روایت ہے اور انہوں نے حکیم سے نہیں سنا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 | Page 26

When Islam took firm root in his heart, his soul became tranquil (1), and he complied with what he was commanded regarding bowing (Ruku').

Seventh: The Sharia-compliant bowing (Ruku'): It is for a man to bend his back, extend his back and neck, spread his fingers, and grip his knees, then remain still while bowing, saying: "Glory be to my Lord the Most Great" three times, and that is the minimum. Muslim narrated from Aisha that she said: The Messenger of Allah (peace be upon him) used to start the prayer with the Takbir and the recitation of {Praise be to Allah, Lord of the worlds}. When he bowed, he did not raise his head up nor did he lower it, but rather between that (2). Al-Bukhari narrated from Abu Humayd as-Sa'idi who said: I saw the Messenger of Allah (peace be upon him) when he said the Takbir, he placed his hands level with his shoulders, and when he bowed, he gripped his knees with his hands, then he straightened his back. The Hadith (3).

Eighth: Bowing (Ruku') is obligatory, based on the Quran and the Sunnah, and similarly prostration (Sujud); because of the Almighty's saying at the end of [Surah] Al-Hajj: {Bow and prostrate} [Verse: 77]. The Sunnah added tranquility in both of them, and a distinction between them, and the discussion on that has preceded, and we have explained the description of bowing earlier.

As for prostration (Sujud); it has been explained in the Hadith of Abu Humayd as-Sa'idi, that the Prophet (peace be upon him), when he prostrated, he placed his forehead and his nose firmly on the ground, kept his hands away from his sides, and placed his palms level with his shoulders. It was recorded by Al-Tirmidhi, who said: A good and authentic Hadith (4). Muslim (5) narrated from Anas that he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Be balanced in prostration, and let not one of you spread his forearms as a dog spreads them."

---

(1) Ahkam al-Quran 1/21 by Ibn al-Arabi, and the speech is from him excluding his saying: I think it is Imran bin Husayn. An-Nasa'i titled the chapter for the Hadith as: Chapter on how to go down for prostration. Abu Ubaid said in Gharib al-Hadith 2/130-131: People have said much about the meaning of this Hadith, and it has no explanation to me except that he meant by his saying "I do not fall": I do not die; because if he dies, he has fallen. And his saying "except standing": except firm upon Islam, and whoever remains firm on something and holds onto it is "standing" upon it. (2) Sahih Muslim (498), and it preceded in 1/147 and 269. The meaning of "he did

not raise his head up nor did he lower it" means: he did not raise his head so that it appeared raised, nor did he lower it, which is from 'saba' 'yasubu': if it goes down. Al-Mufhim 2/99. (3) Sahih Bukhari (828). See Al-Musnad (23599). His saying: "straightened his back" means: he bent it in a level manner without arching. Fath al-Bari 2/308. (4) Sunan al-Tirmidhi (272), and it was also recorded by Abu Dawud (734). (5) Number (493): (233), and it was also recorded by Al-Bukhari (822). It is in Al-Musnad (12149).

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 | पृष्ठ 26

जब इस्लाम उसके दिल में मज़बूत हो गया, तो उसकी आत्मा उससे शांत हो गई (1), और उसने रुकूअ के बारे में दिए गए आदेश का पालन किया।

सातवाँ: शरीयत के अनुसार रुकूअ: यह है कि व्यक्ति अपनी पीठ झुकाए, अपनी पीठ और गर्दन फैलाए, अपनी उंगलियों को फैलाए, और अपने घुटनों को पकड़े, फिर झुकते हुए स्थिर रहे और कहे: "सुब्हाना रब्बियल अज़ीम" (मेरा महान रब पवित्र है) तीन बार, और यह न्यूनतम है। मुस्लिम ने आयशा से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तकबीर और {अलहम्दुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन} के पाठ के साथ नमाज़ शुरू करते थे। जब आप रुकूअ करते, तो न अपना सिर ऊँचा उठाते और न ही उसे नीचा करते, बल्कि इसके बीच में रहते (2)। अल-बुखारी ने अबू हुमैद अस-सादी से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) को देखा कि जब आपने तकबीर कही, तो अपने हाथ अपने कंधों के बराबर रखे, और जब रुकूअ किया, तो अपने हाथों से अपने घुटनों को मजबूती से पकड़ा, फिर अपनी पीठ सीधी की। हदीस (3)।

आठवाँ: रुकूअ फ़र्ज़ (अनिवार्य) है, कुरान और सुन्नत के अनुसार, और इसी तरह सजदा भी; क्योंकि अल्लाह तआला का सूरह अल-हज्ज के अंत में कहना है: {रुकूअ करो और सजदा करो} [आयत: 77]। सुन्नत ने इन दोनों में इत्मीनान (स्थिरता) और उनके बीच जुदाई को जोड़ दिया, और इस बारे में पहले चर्चा की जा चुकी है, और हमने अभी रुकूअ का वर्णन किया है।

जहाँ तक सजदे का सवाल है; यह अबू हुमैद अस-सादी की हदीस से स्पष्ट हो गया है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) जब सजदा करते, तो अपना माथा और अपनी नाक ज़मीन पर मजबूती से टिकाते, अपने हाथों को अपनी बगल से दूर रखते, और अपनी हथेलियों को अपने कंधों के बराबर रखते। इसे तिर्मिज़ी ने निकाला है और कहा: यह हदीस हसन सहीह है (4)। और मुस्लिम (5) ने अनस से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "सजदे में संतुलन बनाए रखो, और तुममें से कोई भी अपने बाजुओं को कुत्ते की तरह न फैलाए।"

---

(1) इब्न अल-अरबी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/21, और यह बात उन्हीं की है, सिवाय उनके इस कथन के मुझे लगता है कि यह इमरान बिन हुसैन हैं। अन-नसाई ने इस हदीस का अध्याय इस प्रकार रखा है: सजदे के लिए कैसे झुकें। अबू उबैद ने ग़रीब अल-हदीस 2/130-131 में कहा: लोगों

ने इस हदीस के अर्थ के बारे में बहुत कुछ कहा है, और मेरे पास इसका कोई अर्थ नहीं है सिवाय इसके कि उनके"ला अख़ुरु" (मैं नहीं गिरता) कहने का मतलब था: मैं नहीं मरता; क्योंकि जब वह मर जाता है, तो वह गिर जाता है। और उनका कहना "इल्ला क़ाइमन" (सिवाय खड़े होने के): सिवाय इस्लाम पर अडिग रहने के, और जो किसी चीज़ पर अडिग रहता है और उसे थामे रहता है, वह उस पर "क़ाइम" (खड़ा) है। (2) सहीह मुस्लिम (498), और यह 1/147 और 269 में पहले आ चुका है। "न अपना सिर ऊँचा उठाते और न ही उसे नीचा करते" का अर्थ है: सिर को इतना ऊँचा नहीं उठाते थे कि वह उठा हुआ दिखे, और न ही उसे नीचा करते थे। अल-मुफ्हिम 2/99। (3) सहीह बुखारी (828)। और अल-मुसनद (23599) देखें। उनका कहना: "अपनी पीठ सीधी की" अर्थात: उसे बिना झुकाए सीधा किया। फ़तह अल-बारी 2/308। (4) सुनन अल-तिर्मिज़ी (272), और इसे अबू दाऊद (734) ने भी निकाला है। (5) नंबर (493): (233), और इसे बुखारी (822) ने भी निकाला है। यह अल-मुसनद (12149) में है।

پس جب اسلام اس کے دل میں پختہ ہو گیا تو اس سے اس کا نفس مطمئن ہو گیا (۱)، اور اس نے رکوع کے اس حکم کی تعمیل کی جس کا اسے حکم دیا گیا تھا۔

ساتویں بات: شرعی رکوع: یہ ہے کہ آدمی اپنی پیٹھ جھکائے، اپنی کمر اور گردن کو لمبا کرے، اپنی انگلیوں کو کھولے، اور اپنے گھٹنوں کو پکڑ لے، پھر رکوع کی حالت میں اطمینان سے رہے اور کہے: "سبحان ربي العظيم" (پاک ہے میرا رب جو بہت بڑا ہے) تین مرتبہ، اور یہ کم از کم درجہ ہے۔ مسلم نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نماز کا آغاز تکبیر اور ﴿الْحَمْدُ لِلَّهِ رَبِّ الْعَالَمِينَ﴾ کی قراءت سے فرماتے تھے۔ اور جب آپ ﷺ رکوع فرماتے تو نہ اپنا سر اوپر اٹھاتے اور نہ اسے نیچے جھکاتے، بلکہ ان دونوں کے درمیان رکھتے (۲)۔ اور بخاری نے ابو حمید الساعدی رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو دیکھا کہ جب آپ ﷺ نے تکبیر کہی تو اپنے دونوں ہاتھ اپنے کندھوں کے برابر رکھے، اور جب رکوع فرمایا تو اپنے ہاتھوں سے اپنے گھٹنوں کو مضبوطی سے پکڑا، پھر اپنی پیٹھ کو سیدھا کیا۔ حدیث (۳)۔

آٹھویں بات: رکوع قرآن اور سنت سے فرض ہے، اور اسی طرح سجدہ بھی؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ کا سورہ حج کے آخر میں فرمان ہے: ﴿ارْكَعُوا وَاسْجُدُوا﴾ [آیت: ۷۷]۔ اور سنت نے ان دونوں میں اطمینان اور ان کے درمیان فصل (فرق) کا اضافہ کیا ہے، اور اس بارے میں بات پہلے گزر چکی ہے، اور ہم نے ابھی رکوع کی صفت بیان کی ہے۔

رہا سجدہ؛ تو وہ ابو حمید الساعدی کی حدیث سے واضح طور پر ثابت ہے کہ نبی کریم ﷺ جب سجدہ کرتے تو اپنی پیشانی اور ناک کو زمین پر ٹکاتے، اپنے ہاتھوں کو اپنے پہلوؤں سے دور رکھتے، اور اپنی ہتھیلیوں کو اپنے کندھوں کے برابر رکھتے۔ اسے ترمذی نے روایت کیا اور کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے (۴)۔ اور مسلم (۵) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "سجدے میں اعتدال اختیار کرو، اور تم میں سے کوئی بھی اپنے بازوؤں کو کتے کی طرح نہ بچھائے۔"

---

(۱) ابن العربی کی احکام القرآن ۱/۲۱، اور یہ کلام ان کا ہے سوائے ان کے اس قول کے: میرا خیال ہے کہ یہ عمران بن حصین ہیں۔ اور نسائی نے حدیث کا عنوان یوں باندھا ہے: باب سجدے کے لیے کیسے گرے۔ اور ابو عبید نے غریب الحدیث ۲/ ۱۳۰-۱۳۱ میں کہا: لوگوں نے اس حدیث کے معنی میں بہت کچھ کہا ہے، اور میرے نزدیک اس کی کوئی توجیہ نہیں ہے سوائے اس کے کہ انہوں نے اپنے قول "لا اخرّ" (میں نہیں گروں گا) سے مراد لی ہے: میں نہیں مروں گا؛ کیونکہ جب وہ مر جاتا ہے تو گر جاتا ہے۔ اور ان کا قول "إلا قائماً" (مگر کھڑے ہوئے): یعنی اسلام پر ثابت قدم، اور جو کسی چیز پر ثابت قدم رہے اور اسے تھامے رہے وہ اس پر "قائم" ہے۔ (۲) صحیح مسلم (۴۹۸)، اور یہ ۱/۱۴۷ اور ۲۶۹ پر پہلے گزر چکا ہے۔ اور اس کا مطلب: نہ اپنا سر اوپر اٹھاتے اور نہ نیچے جھکاتے، یعنی: اپنا سر اتنا نہیں اٹھاتے تھے کہ وہ اوپر اٹھا ہوا معلوم ہو، اور نہ اسے نیچے کرتے تھے، اور یہ 'صاب یصوب' سے ہے یعنی: جب نیچے اترے۔ المفہم ۲/۹۹۔ (۳) صحیح بخاری (۸۲۸)۔ اور دیکھئے المسند (۲۳۵۹۹)۔ ان کا قول: "اپنی پیٹھ سیدھی کی" یعنی: اسے جھکائے بغیر برابر رکھا۔ فتح الباری ۲/۳۰۸۔ (۴) سنن ترمذی (۲۷۲)، اور اسے ابو داؤد (۷۳۴) نے بھی روایت کیا ہے۔ (۵) نمبر (۴۹۳): (۲۳۳)، اور اسے بخاری نے بھی روایت کیا ہے (۸۲۲)۔ اور یہ المسند (۱۲۱۴۹) میں ہے۔

27 Surah Al-Baqarah: Verse 43

On the authority of Al-Bara, he said: The Messenger of Allah (ﷺ) said: "When you prostrate, place your palms [on the ground] and raise your elbows." (1).

And on the authority of Maymunah, the wife of the Prophet (ﷺ), she said: When the Messenger of Allah (ﷺ) prostrated, he kept his hands apart - meaning he arched them - such that the whiteness of his armpits could be seen from behind him, and when he sat, he settled comfortably on his left thigh (2).

Ninth: The scholars differed regarding one who places his forehead in prostration but not his nose, or his nose but not his forehead: Malik said: He prostrates on his forehead and his nose. This was also said by Ath-Thawri and Ahmad, and it is the opinion of An-Nakha'i. Ahmad said: Prostrating on one without the other is not sufficient. This was also said by Abu Khaythama (3) and Ibn Abi Shaybah (4). Ishaq said: If he prostrates on one without the other, his prayer is invalid. Al-Awza'i and Sa'id ibn Abd al-Aziz said: [He prostrates on seven (limbs), and they pointed with their hands: from the forehead to below the nose, and they said: This is part of the forehead]. It was narrated from Ibn Abbas, Sa'id ibn Jubayr, Ikrimah, and Abd al-Rahman ibn Abi Layla, all of whom commanded prostrating on the nose. A group said: It is sufficient to prostrate on his forehead without his nose. This is the opinion of 'Ata, Tawus, Ikrimah, Ibn Sirin, al-Hasan al-Basri, and it was also said by Ash-Shafi'i, Abu Thawr, Ya'qub, and Muhammad. Ibn al-Mundhir (5) said: A speaker said: If he places his forehead and does not place his nose, or places his nose and does not place his forehead, he has done wrong, but his prayer is complete. This is the opinion of An-Nu'man (6).

---

(1) Reported by Ahmad (18491) and Muslim (494). (2) Reported by Ahmad (26818) and Muslim (497): (238). His words: "whiteness of his armpits," meaning the white skin underneath them. Ibn al-Athir said this in 'An-Nihayah' (Wadhah). (3) Zuhayr ibn Harb ibn Shaddad al-Harashi an-Nasa'i, then al-Baghdadi, one of the prominent figures of Hadith, died in the year (234 AH). As-Siyar 11/491. (4) Abdullah ibn Muhammad ibn al-Qadi Abi Shaybah, Abu Bakr al-Absi, their client from Kufa, author of major books: Al-Musnad, Al-Musannaf, and At-Tafsir, died in the year (235 AH). As-Siyar 11/122. (5) Al-Awsat 3/174-177, and what preceded in brackets is from it. (6) He is Imam Abu Hanifah, may Allah the Almighty have mercy on him.

27 सूरा अल-बक़रह: आयत 43

अल-बरा से रिवायत है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने फरमाया: "जब तुम सजदा करो, तो अपनी हथेलियों को [ज़मीन पर] रखो और अपनी कोहनियों को ऊपर उठाओ।" (1).

और नबी (ﷺ) की पत्नी मैमूनाह से रिवायत है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (ﷺ) जब सजदा करते थे, तो अपने हाथों को फैलाकर रखते थे - यानी उन्हें धनुषाकार रखते थे - जिससे उनके पीछे से उनकी बग़लों की सफेदी देखी जा सकती थी, और जब आप बैठते थे, तो अपनी बाईं जांघ पर आराम से बैठते थे (2)।

नौवां: विद्वानों के बीच उस व्यक्ति के बारे में मतभेद है जो सजदे में अपना माथा तो रखता है लेकिन नाक नहीं, या अपनी नाक रखता है लेकिन माथा नहीं: मलिक ने कहा: वह अपने माथे और अपनी नाक पर सजदा करता है। यही बात अल-थौरी और अहमद ने भी कही है, और यही अन-नख़ई की राय है। अहमद ने कहा: एक के बिना दूसरे पर सजदा करना पर्याप्त नहीं है। यही बात अबू खैथमा (3) और इब्न अबी शयबा (4) ने भी कही है। इशाक ने कहा: यदि वह दूसरे के बिना एक पर सजदा करता है, तो उसकी प्रार्थना (नमाज़) अमान्य है। अल-अवज़ाई और सईद इब्न अब्द अल-अजीज़ ने कहा: [वह सात (अंगों) पर सजदा करता है, और उन्होंने अपने हाथों से संकेत किया: माथे से लेकर नाक के नीचे तक, और उन्होंने कहा: यह माथे का हिस्सा है]। इब्न अब्बास, सईद इब्न जुबैर, इकरामा और अब्द अल-रहमान इब्न अबी लैला से रिवायत है कि उन सभी ने नाक पर सजदा करने का आदेश दिया। एक समूह ने कहा: यह पर्याप्त है कि वह अपनी नाक के बिना अपने माथे पर सजदा करे। यह अता, ताऊस, इकरामा, इब्न सिरीन और अल-हसन अल-बसरी की राय है, और यही बात अल-शाफई, अबू थौर, याकूब और मुहम्मद ने भी कही है। इब्न अल-मुन्ज़िर (5) ने कहा: एक कहने वाले ने कहा: यदि वह अपना माथा रखता है और अपनी नाक नहीं रखता, या अपनी नाक रखता है और अपना माथा नहीं रखता, तो उसने गलत किया है, लेकिन उसकी नमाज़ पूरी है। यह अल-नुमान (6) की राय है।

---

(1) इसे अहमद (18491) और मुस्लिम (494) ने संकलित किया है। (2) इसे अहमद (26818) और मुस्लिम (497): (238) ने संकलित किया है। उनके शब्द: "उनकी बग़लों की सफेदी", जिसका अर्थ है उनके नीचे की सफेद त्वचा। इब्न अल-अथिर ने 'अन-निहाया' (वज़ह) में यह कहा है। (3) जुहैर इब्न हर्ब इब्न शद्दाद अल-हराशी अन-नसाई, फिर अल-बगदादी, हदीस की प्रमुख हस्तियों में से एक, वर्ष

(234 हिजरी) में मृत्यु हुई। अस-सियार 11/491। (4) अब्दुल्ला इब्न मुहम्मद इब्न अल-कादी अबी शयबा, अबू बक्र अल-अब्सी, कूफ़ा के उनके मुवक्किल, प्रमुख पुस्तकों के लेखक: अल-मुसनद, अल-मुसन्नफ और अत-तफ़्सीर, वर्ष (235 हिजरी) में मृत्यु हुई। अस-सियार 11/122। (5) अल-अवसत 3/174-177, और जो कोष्ठकों में पहले दिया गया है वह इसी से है। (6) वे इमाम अबू हनीफा रहमतुल्लाह अलैहि हैं।

۲۷ سورہ بقرہ : آیت ٤٣

براء سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جب تم سجدہ کرو تو اپنی ہتھیلیاں (زمین پر) رکھو اور اپنی کہنیوں کو اٹھائے رکھو۔" (۱)۔

اور نبی ﷺ کی زوجہ میمونہ سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ جب سجدہ کرتے تو اپنے ہاتھوں کو کشادہ رکھتے تھے - یعنی کہنیوں کو دور رکھتے - یہاں تک کہ پیچھے سے آپ کی بغلوں کی سفیدی نظر آتی تھی، اور جب آپ بیٹھتے تو اپنی بائیں ران پر سکون سے بیٹھتے (۲)۔

نویں بحث: اس شخص کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے جس نے سجدے میں اپنی پیشانی تو رکھی لیکن ناک نہیں رکھی، یا ناک رکھی لیکن پیشانی نہیں رکھی: مالک نے کہا: وہ اپنی پیشانی اور ناک پر سجدہ کرے۔ یہی بات ثوری اور احمد نے کہی ہے، اور یہی ابراہیم نخعی کا قول ہے۔ احمد نے کہا: ایک کے بغیر دوسرے پر سجدہ کرنا کافی نہیں۔ یہی بات ابو خیثمہ (۳) اور ابن ابی شیبہ (۴) نے کہی ہے۔ اسحاق نے کہا: اگر اس نے دوسرے کے بغیر کسی ایک پر سجدہ کیا تو اس کی نماز فاسد ہے۔ اوزاعی اور سعید بن عبد العزیز نے کہا: [وہ سات (اعضا) پر سجدہ کرے، اور انہوں نے اپنے ہاتھوں سے اشارہ کیا: پیشانی سے ناک کے نیچے تک، اور کہا: یہ پیشانی میں شامل ہے]۔ ابن عباس، سعید بن جبیر، عکرمہ اور عبد الرحمن بن ابی لیلیٰ سے مروی ہے، ان سب نے ناک پر سجدہ کرنے کا حکم دیا۔ ایک گروہ نے کہا: یہ جائز ہے کہ وہ ناک کے بغیر صرف پیشانی پر سجدہ کرے۔ یہ عطاء، طاوس، عکرمہ، ابن سیرین اور حسن بصری کا قول ہے، اور یہی بات شافعی، ابو ثور، یعقوب اور محمد نے کہی ہے۔ ابن المنذر (۵) کہتے ہیں: ایک قائل نے کہا:

اگر اس نے اپنی پیشانی رکھی اور ناک نہ رکھی، یا ناک رکھی اور پیشانی نہ رکھی، تو اس نے برا کیا لیکن اس کی نماز مکمل ہے۔ یہ امام نعمان (۶) کا قول ہے۔

---

(۱) اسے احمد (۱۸۴۹۱) اور مسلم (۴۹۴) نے روایت کیا ہے۔ (۲) اسے احمد (۲۶۸۱۸) اور مسلم (۴۹۷) : (۲۳۸) نے روایت کیا ہے۔ اور ان کا قول: "ان کی بغلوں کی سفیدی"، یعنی ان کے نیچے کی سفیدی۔ اسے ابن الاثیر نے 'النہایہ' (وضح) میں کہا ہے۔ (۳) زہیر بن حرب بن شداد الحرشی النسائی، پھر البغدادی، علم حدیث کے ائمہ میں سے ایک، وفات سنہ (۲۳۴ھ)۔ السیر ۱۱/۴۹۱۔ (۴) عبد اللہ بن محمد بن قاضی ابی شیبہ، ابو بکر العبسی، اہل کوفہ کے مولیٰ، بڑی کتب کے مصنف: المسند، المصنف، اور التفسیر، وفات سنہ (۲۳۵ھ)۔ السیر ۱۱/۱۲۲۔ (۵) الاوسط ۳/ ۱۷٤ - ۱۷۷، اور جو کچھ قوسین میں گزرا وہ اسی سے ہے۔ (۶) وہ امام ابو حنیفہ رحمہ اللہ تعالیٰ ہیں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 Page 28

Ibn al-Mundhir said: I do not know of anyone who preceded him in this saying, nor followed him in it. I said: The correct view regarding prostration is placing the forehead and the nose [on the ground], due to the hadith of Abu Humayd, which has been mentioned previously. Al-Bukhari (1) narrated from Ibn Abbas that he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "I have been commanded to prostrate on seven bones: on the forehead - and he pointed with his hand to his nose - the two hands, the two knees, and the toes of the two feet, and not to tuck up (2) the clothes or the hair (3)." All of this is an explanation of the general aspects of prayer, so it is necessary to follow it; and Allah knows best. It was narrated from Malik: that it is sufficient for him to prostrate on his forehead without his nose, like the saying of Ata and al-Shafi'i, and the preferred view according to us is the first saying. It is not sufficient according to Malik if he does not prostrate on his forehead. Tenth: It is disliked to prostrate on the fold of the turban, and if it is one or two layers like the clothes that cover the knees and feet, there is no harm. The best is direct contact with the ground or whatever is being prostrated upon. If there is something harmful there, he should remove it before entering prayer. If he did not do so, then let him wipe it once. Muslim (4) narrated from Mu'ayqib (5) that the Messenger of Allah (peace be upon him) said regarding a man who levels the dust where he prostrates: "If you must do so, then once." It was narrated (6) from Anas bin Malik that he said: We used to pray with the Messenger of Allah (peace be upon him) in extreme heat, and if one of us could not firmly place his forehead on the ground, he would spread out his garment and prostrate (7) on it. Eleventh: When Allah Almighty said: {Bow down and prostrate} [Al-Hajj: 77], some said...

Footnotes: (1) Sahih al-Bukhari (812), and also narrated by Muslim (490): (230). It is in al-Musnad (2658). (2) In (d): yakfit, in (z): takfut, in (zha): yakuff, and what is established is from (m). (3) In (m): and the hair. His saying: "and do not tuck up the clothes and hair," meaning: do not gather or fold them to prevent them from spreading. He means gathering the garment with the hands during bowing and prostrating. An-Nihayah: (kafat). (4) Number (546): (49), and also narrated by al-Bukhari (1207), and it is in al-Musnad (15511). (5) Ibn Abi Fatimah al-Dawsi, from the Muhajireen, and he was the keeper of the seal of the Prophet (peace be upon him). He migrated to Abyssinia, lived until the caliphate of Uthman, and it is said: until the year forty. As-Siyar 2/491. (6) Sahih Muslim (620), and also narrated by al-Bukhari (1208), and it is in al-Musnad (11970). (7) In (zha): then he prayed.

सूरा अल-बकराह: आयत 43 पृष्ठ 28

इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जिसने इस कथन में उनसे पहले ऐसा कहा हो, और न ही किसी ने उनका अनुसरण किया हो। मैंने कहा: सजदे के संबंध में सही बात माथा और नाक को [जमीन पर] रखना है, अबू हुमैद की हदीस के कारण, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। अल-बुखारी (1) ने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "मुझे सात हड्डियों पर सजदा करने का हुक्म दिया गया है: माथे पर - और उन्होंने अपने हाथ से अपनी नाक की ओर इशारा किया - दोनों हाथों पर, दोनों घुटनों पर, और दोनों पैरों की उंगलियों के सिरों पर, और कपड़ों या बालों (3) को न समेटने (2) का।" यह सब नमाज़ के सामान्य विवरण की व्याख्या है, इसलिए इस पर अमल करना ज़रूरी है; और अल्लाह बेहतर जानता है। मलिक से रिवायत है कि: उसके लिए नाक के बिना केवल माथे पर सजदा करना काफी है, अता और अल-शाफई के कथन की तरह, और हमारे यहाँ पसंदीदा पहला कथन है। मलिक के अनुसार यदि वह अपने माथे पर सजदा नहीं करता है तो यह काफी नहीं है। दसवाँ: पगड़ी की तह पर सजदा करना नापसंद है, और यदि यह एक या दो तह हो जैसे घुटनों और पैरों को ढंकने वाले कपड़े, तो कोई हर्ज नहीं है। बेहतर यह है कि ज़मीन या जिस चीज़ पर सजदा किया जा रहा हो उससे सीधा संपर्क हो। यदि वहां कोई हानिकारक चीज़ हो, तो नमाज़ शुरू करने से पहले उसे हटा देना चाहिए। यदि उसने ऐसा नहीं किया, तो उसे एक बार पोंछ लेना चाहिए। मुस्लिम (4) ने मुआईकिब (5) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने उस आदमी के बारे में फरमाया जो सजदा करने वाली जगह की मिट्टी को बराबर करता है: "यदि तुम्हें ऐसा करना ही है, तो केवल एक बार करो।" अनस बिन मलिक से रिवायत (6) है कि उन्होंने कहा: हम अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साथ भीषण गर्मी में नमाज़ पढ़ते थे, और यदि हममें से कोई अपना माथा ज़मीन पर अच्छी तरह नहीं रख पाता था, तो वह अपना कपड़ा बिछा देता और उस पर सजदा (7) कर लेता था। ग्यारहवां: जब अल्लाह तआला ने फरमाया: {रुकू करो और सजदा करो} [अल-हज्ज: 77], तो कुछ ने कहा...

पाद-टिप्पणियाँ: (1) सहीह अल-बुखारी (812), और मुस्लिम (490): (230) द्वारा भी उद्धृत। यह अल-मुसनद (2658) में है। (2) (द) में: यकफित, (ज़) में: तकफुत, (ज़्हा) में: यकुफ, और (म) से जो स्थापित है। (3) (म) में: और बाल। उनका कथन: "और कपड़ों और बालों को न समेटें," अर्थात: उन्हें फैलने से रोकने के लिए इकट्ठा या फोल्ड न करें। उनका अर्थ रुकू और सजदे के दौरान हाथों से

कपड़े को इकट्ठा करना है। अन-निहाया: (कफत)। (4) नंबर (546): (49), और अल-बुखारी (1207) द्वारा भी उद्धृत, और यह अल-मुसनद (15511) में है। (5) इब्न अबी फातिमा अल-दौसी, मुहाजिरीन में से थे, और वह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की मुहर के अमीन थे। उन्होंने हबशा की ओर हिजरत की, उस्मान की खिलाफत तक जीवित रहे, और कहा जाता है: वर्ष चालीस तक। अस-सियार 2/491। (6) सहीह मुस्लिम (620), और अल-बुखारी (1208) द्वारा भी उद्धृत, और यह अल-मुसनद (11970) में है। (7) (ज़्हा) में: फिर उसने नमाज़ पढ़ी।

سورہ البقرہ: آیت 43 صفحہ 28

ابن المنذر نے کہا: میں کسی ایسے شخص کو نہیں جانتا جس نے اس قول میں ان سے پہلے یہ بات کہی ہو، اور نہ ہی کسی نے اس میں ان کی پیروی کی۔ میں نے کہا: سجدے کے بارے میں صحیح بات پیشانی اور ناک کو [زمین پر] رکھنا ہے، ابوحمید کی حدیث کی وجہ سے جو پہلے گزر چکی ہے۔ اور بخاری (1) نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "مجھے حکم دیا گیا ہے کہ میں سات ہڈیوں پر سجدہ کروں: پیشانی پر - اور آپ نے اپنے ہاتھ سے ناک کی طرف اشارہ کیا - دونوں ہاتھوں पर، دونوں گھٹنوں پر، اور دونوں پاؤں کی انگلیوں کے کناروں پر، اور یہ کہ کپڑوں اور بالوں (3) کو نہ سمیٹوں (2)۔" اور یہ سب نماز کی تفصیل کا بیان ہے، پس اس پر عمل کرنا ضروری ہے؛ اور اللہ بہتر جانتا ہے۔ اور مالک سے روایت ہے کہ: اس کے لیے ناک کے بغیر صرف پیشانی پر سجدہ کرنا کافی ہے، جیسا کہ عطا اور شافعی کا قول ہے، اور ہمارے ہاں پسندیدہ پہلا قول ہے، اور مالک کے نزدیک اگر اس نے اپنی پیشانی پر سجدہ نہ کیا تو یہ کافی نہیں ہے۔ دسویں بات: عمامے کے پیچ پر سجدہ کرنا مکروہ ہے، اور اگر وہ ایک یا دو تہیں ہوں جیسے گھٹنوں اور پاؤں کو ڈھانپنے والے کپڑے، تو کوئی حرج نہیں۔ اور افضل یہ ہے کہ براہ راست زمین یا جس چیز پر سجدہ کیا جا رہا ہو اس سے رابطہ ہو، اگر وہاں کوئی تکلیف دہ چیز ہو تو نماز میں داخل ہونے سے پہلے اسے ہٹا دے، اگر ایسا نہ کیا تو ایک مرتبہ اسے پونچھ لے۔ مسلم (4) نے معیقیب (5) سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے اس شخص کے بارے میں فرمایا جو سجدے کی جگہ مٹی برابر کرتا ہے: "اگر تمہیں کرنا ہی ہے تو ایک مرتبہ کرو۔" اور انس بن مالک (6) سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: ہم رسول اللہ ﷺ کے ساتھ سخت گرمی میں نماز پڑھتے تھے، پس جب ہم میں سے کوئی اپنی پیشانی زمین پر نہ جما سکتا تو وہ اپنا کپڑا بچھا

دیتا اور اس پر سجدہ (7) کر لیتا۔ گیارہویں بات: جب اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {رُکوع کرو اور سجدہ کرو} [الحج: 77] تو بعض نے کہا...

حواشی: (1) صحیح بخاری (812)، اور اسے مسلم (490): (230) نے بھی روایت کیا ہے۔ اور یہ المسند (2658) میں ہے۔ (2) (د) میں: یکفت، (ز) میں: تکفت، (ظ) میں: یکف، اور (م) سے جو ثابت ہے۔ (3) (م) میں: والشعر۔ ان کا قول: "اور کپڑوں اور بالوں کو نہ سمیٹیں"، یعنی: انہیں پھیلنے سے روکنے کے لیے اکٹھا نہ کریں، اس سے مراد رکوع اور سجدے کے وقت ہاتھوں سے کپڑے کو اکٹھا کرنا ہے۔ النہایہ: (کفت)۔ (4) نمبر (546): (49)، اور اسے بخاری (1207) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ المسند (15511) میں ہے۔ (5) ابن ابی فاطمہ الدوسی، مہاجرین میں سے تھے، اور وہ نبی ﷺ کی مہر کے امین تھے، انہوں نے حبشہ کی طرف ہجرت کی، عثمان کی خلافت تک زندہ رہے، اور کہا گیا: سنہ چالیس تک۔ السیر 491/2۔ (6) صحیح مسلم (620)، اور اسے بخاری (1208) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ المسند (11970) میں ہے۔ (7) (ظ) میں: فصلی (پس اس نے نماز پڑھی)ا

Our scholars and others [said]: What is named bowing (ruku') and prostration (sujud) is sufficient for them (1), and likewise for standing (qiyam). They did not stipulate tranquility (tumaninah) in that, so they took the minimum of the name for it, as if they had not heard the established Hadiths regarding the invalidation of the prayer [without it].

Ibn Abd al-Barr said (2): Neither ruku' nor sujud is valid, nor is standing after ruku', nor sitting between the two prostrations, until one is upright while bowing, standing, prostrating, and sitting. This is the correct [view] based on reports, and the majority of scholars and people of reasoning (Ahl al-Nazar) are upon it. It is the narration of Ibn Wahb and Abu Mus'ab from Malik.

Qadi Abu Bakr ibn al-Arabi said (3): Narrations have multiplied from Ibn al-Qasim and others regarding the obligation of separation and the falling away (4) of tranquility. This is a great illusion/error; because the Prophet ﷺ performed it, commanded it, and taught it. If Ibn al-Qasim had an excuse that (5) he was not aware of it, then what is your excuse when knowledge has reached you, and the evidence has been established against you?!

Al-Nasa'i, al-Daraqutni (6), and Ali ibn Abd al-Aziz (7) narrated from Rifa'ah ibn Rafi' who said: I was sitting with the Messenger of Allah ﷺ when a man came. He entered the mosque and prayed. When he finished the prayer, he came and greeted the Messenger of Allah ﷺ and the people. The Messenger of Allah ﷺ said: "Go back and pray, for you have not prayed." The man began to pray, and we started watching his prayer, not knowing what was wrong with it. When he came and greeted the Prophet ﷺ and the people, the Prophet ﷺ said to him: "And peace be upon you, go back and pray, for you have not prayed." - Hammam said (8): We do not know (9) if he ordered him to do that twice or three times - so he said...

---

(1) In (m): "from them". (2) Al-Kafi 1/203, and what is between brackets is from it. (3) It is similar in Ahkam al-Quran 1/512, and 'Aridat al-Ahwadhi 2/67-68. (4) In (z): "and the obligation". (5) In (z) and (z): "And if it was", and in (d): "And if he did not see". (6) Al-Mujtaba 2/225-226, Al-Kubra (726), and Sunan al-Daraqutni 1/95-96. It is in Al-Musnad (18995), and also narrated by Abu Dawood (858) and Al-Tirmidhi (302). (7) Ibn al-Marzuban, Abu al-Hasan al-Baghawi, the Hafiz, resident of Makkah, died in (286 AH).

Al-Siyar 13/348. (8) He is Ibn Yahya al-'Awdhi, one of the narrators of the chain. (9) In (d) and (z): "I do not know".

सूरह अल-बक़रा: आयत 43 | 29

हमारे विद्वानों और अन्य लोगों ने [कहा]: उनके लिए (1) वह पर्याप्त है जिसे रुकू(झुकना) और सुजूद (सिजदा) कहा जाता है, और इसी तरह कयाम (खड़े होने) के बारे में भी। उन्होंने इसमें इत्मीनान (स्थिरता) को अनिवार्य नहीं माना, इसलिए उन्होंने इसके लिए नाम का न्यूनतम हिस्सा लिया, जैसे कि उन्होंने नमाज़ के अमान्य होने के संबंध में स्थापित हदीसों को नहीं सुना हो।

इब्न अब्द अल-बर्र ने कहा (2): न तो रुकू और न ही सुजूद मान्य है, न ही रुकू के बाद खड़ा होना, और न ही दो सिजदों के बीच बैठना, जब तक कि रुकू खड़े होने, सिजदा करने और बैठने में स्थिरता न हो। और [यह] हदीसों के आधार पर सही है, और अधिकांश विद्वान और तर्क वाले लोग (अहल अल-नज़र) इसी पर हैं। यह मलिक से इब्न वहब और अबू मुसाब का वर्णन है।

काजी अबू बक्र इब्न अल-अरबी ने कहा (3): इब्न अल-कासिम और अन्य से अलगाव की अनिवार्यता और इत्मीनान के हटने (4) के संबंध में कई वर्णन आए हैं। यह एक बड़ा भ्रम है; क्योंकि नबी ﷺ ने इसे किया, इसका आदेश दिया और इसे सिखाया। यदि इब्न अल-कासिम के पास यह बहाना था कि (5) उन्हें इसके बारे में पता नहीं था, तो आपका क्या बहाना है जब ज्ञान आप तक पहुँच गया है, और आपके विरुद्ध प्रमाण स्थापित हो गया है?!

अल-नसाई, अल-दारकुतनी (6), और अली इब्न अब्द अल-अज़ीज़ (7) ने रिफ़ाआ इब्न रफ़ी से वर्णन किया, जिन्होंने कहा: मैं अल्लाह के रसूल ﷺ के साथ बैठा था जब एक आदमी आया। वह मस्जिद में दाखिल हुआ और नमाज़ पढ़ी। जब उसने नमाज़ पूरी कर ली, तो वह आया और अल्लाह के रसूल ﷺ और लोगों को सलाम किया। अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "वापस जाओ और नमाज़ पढ़ो, क्योंकि तुमने नमाज़ नहीं पढ़ी है।" आदमी नमाज़ पढ़ने लगा, और हम उसकी नमाज़ को देखने लगे, यह न जानते हुए कि उसमें क्या दोष था। जब वह आया और नबी ﷺ और लोगों को सलाम किया, तो नबी ﷺ ने उससे कहा: "और तुम पर भी शांति हो, वापस जाओ और नमाज़ पढ़ो, क्योंकि तुमने नमाज़ नहीं पढ़ी है।" - हम्माम ने कहा (8): हमें नहीं पता (9), उन्होंने उसे दो बार या तीन बार ऐसा करने का आदेश दिया - तो उसने कहा...

---

(1) (m) में: "उनसे"। (2) अल-काफी 1/203, और कोष्ठक के बीच की सामग्री वहीं से है। (3) यह अहकाम अल-कुरान 1/512 और आरिदत अल-अहवाज़ी 2/67-68 में इसी तरह है। (4) (z) में: "और अनिवार्यता"। (5) (z) और (z) में: "और अगर वह था", और (d) में: "और अगर उसने नहीं

देखा"। (6) अल-मुजतबा 2/225-226, अल-कुबरा (726), और सुनन अल-दारकुतनी 1/95-96। यह अल-मुसनद (18995) में है, और इसे अबू दाऊद (858) और अल-तिर्मिज़ी (302) ने भी उद्धृत किया है। (7) इब्न अल-मरज़ुबान, अबू अल-हसन अल-बग़वी, हाफ़िज़, मक्का के निवासी, (286 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 13/348। (8) वह इब्न यहया अल-अवदी हैं, जो इसनद (श्रृंखला) के पुरुषों में से एक हैं। (9) (d) और (z) में: "मुझे नहीं पता"।

سورہ البقرہ: آیت 43 | 29

ہمارے علماء اور دیگر [نے کہا]: ان دونوں سے (1) اتنا کافی ہے جسے رکوع اور سجود کہا جاتا ہے، اور اسی طرح قیام سے بھی۔ انہوں نے اس میں اطمینان (طمانیت) کی شرط نہیں لگائی، لہذا انہوں نے اس کے لیے نام کے کم از کم حصے کو لیا، گویا انہوں نے نماز کے باطل ہونے کے بارے میں ثابت شدہ احادیث نہیں سنی تھیں۔

ابن عبد البر نے کہا (2): نہ رکوع جائز ہے اور نہ ہی سجدہ، نہ رکوع کے بعد کھڑا ہونا، اور نہ ہی دونوں سجدوں کے درمیان بیٹھنا، یہاں تک کہ وہ رکوع، قیام، سجدہ اور قعدہ کی حالت میں اعتدال (اطمینان) کے ساتھ نہ ہو۔ اور [یہ] اثر (حدیث) کی رو سے صحیح ہے، اور اسی پر جمہور علماء اور اہل نظر ہیں، اور یہ مالک سے ابن وہب اور ابو مصعب کی روایت ہے۔

قاضی ابو بکر ابن العربی نے کہا (3): ابن القاسم اور دیگر سے فصل (الگ کرنے) کے وجوب اور طمانیت کے ساقط ہونے (4) کے بارے میں روایتیں کثرت سے مروی ہیں۔ یہ ایک بہت بڑا وہم (غلطی) ہے؛ کیونکہ نبی ﷺ نے اسے کیا، اس کا حکم دیا اور اسے سکھایا۔ اگر ابن القاسم کا یہ عذر تھا کہ (5) وہ اس سے واقف نہیں تھے، تو تمہارا کیا عذر ہے جب علم تم تک پہنچ چکا ہے، اور تم پر حجت قائم ہو چکی ہے؟!

نسائی، دارقطنی (6)، اور علی بن عبد العزیز (7) نے رفاعہ بن رافع سے روایت کی، انہوں نے کہا: میں رسول اللہ ﷺ کے پاس بیٹھا تھا کہ ایک شخص آیا۔ وہ مسجد میں داخل ہوا اور نماز پڑھی۔ جب اس نے نماز پوری کر لی، تو وہ آیا اور رسول اللہ ﷺ اور لوگوں کو سلام کیا۔ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "واپس جاؤ اور نماز پڑھو، کیونکہ تم نے نماز نہیں پڑھی۔" وہ شخص نماز پڑھنے لگا، اور

ہم اس کی نماز کو غور سے دیکھنے لگے، ہمیں معلوم نہیں تھا کہ اس میں کیا عیب تھا۔ جب وہ آیا اور نبی ﷺ اور لوگوں کو سلام کیا، تو نبی ﷺ نے اس سے فرمایا: "اور تم پر بھی سلامتی ہو، واپس جاؤ اور نماز پڑھو، کیونکہ تم نے نماز نہیں پڑھی۔" - ہمام نے کہا (8): ہمیں معلوم نہیں (9)، آپ نے اسے دو بار یا تین بار اس کا حکم دیا - تو اس نے کہا...

---

(1) (م) میں: منہا (ان سے)۔ (2) الکافی 1/203 اور جو بریکٹ کے درمیان ہے وہ اسی سے ہے۔ (3) یہ احکام القرآن 1/512 اور عارضۃ الاحوذی 2/ 67-68 میں اسی طرح ہے۔ (4) (ظ) میں: ووجوب (اور وجوب)۔ (5) (ز) اور (ظ) میں: "وإن كان" (اور اگر تھا)، اور (د) میں: "وإن لم يطلع" (اور اگر مطلع نہیں ہوئے)۔ (6) المجتبی 2/ 225-226، الکبری (726)، اور سنن الدارقطنی 1/ 95-96۔ یہ المسند (18995) میں ہے، اور اسے ابو داؤد (858) اور ترمذی (302) نے بھی روایت کیا ہے۔ (7) ابن المرزبان، ابو الحسن البغوی، الحافظ، مکہ کے مقیم، وفات (286ھ)۔ السیر 13/ 348۔ (8) وہ ابن یحییٰ العوذی ہیں، جو اسناد کے راویوں میں سے ایک ہیں۔ (9) (د) اور (ز) میں: "فلا أدری" (پس مجھے نہیں معلوم)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 | 30

The man said to him: "I have not spared any effort, so I do not know what you have found fault with in my prayer?" The Messenger of Allah (PBUH) said: "Indeed, the prayer of any of you is not complete (1) until he performs wudu (ablution) properly as Allah has commanded him, washing his face and his hands up to the elbows, wiping his head and his feet up to the ankles. Then he magnifies Allah (says 'Allahu Akbar') and praises Him, then he recites the Mother of the Quran (Al-Fatihah) and whatever else is allowed and easy for him. Then he magnifies and bows, placing his palms on his knees until his joints are settled and relaxed. Then he says: 'Sami' Allahu liman hamidah' (Allah hears him who praises Him), and stands up straight until his spine is erect and every bone has taken its place. Then he magnifies and prostrates, placing his face – Hammam said: perhaps he said: his forehead – on the ground until his joints are settled and relaxed. Then he magnifies and sits upright on his seat, and straightens his back." He described the prayer like this for four rak'ahs until he finished, then he said: "The prayer of any of you is not complete until he does that." And similar to it is the hadith of Abu Hurayrah; recorded by Muslim, and it has been mentioned before (2).

I say: This is the explanation of the prayer mentioned concisely in the Book (Quran) through the teaching of the Prophet (peace be upon him) and his conveying it to all people. So whoever does not stop at this explanation, and neglects what the Most Merciful has ordained for him, and does not comply with what reached him (3) from his Prophet (peace be upon him), he will be among those who fall under Allah's saying: "But there came after them successors who neglected prayer and pursued desires" [Maryam: 59]. This will be further explained there, if Allah wills.

Al-Bukhari (4) narrated from Zaid bin Wahb, who said: Hudhayfah saw a man who did not complete the bowing (ruku') or the prostration (sujud), so he said: "You have not prayed, and if you were to die, you would die on other than the natural disposition (fitrah) upon which Allah created Muhammad (PBUH)."

Twelfth: Allah's saying: {with those who bow} [Ma'ar-raki'in]. "With" (Ma'a) implies accompaniment and togetherness. For this reason, a group of scholars of Quranic interpretation (5) said: The command to pray initially did not necessitate attending the congregation, so He commanded them with His saying "with" to attend the congregation.

(1) In (D): his prayer was not completed. (2) 1/185. (3) In (D): reaches him. (4) Number (791). (5) In (D): by reading.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 | 30

उस आदमी ने उनसे कहा: "मैंने कोई कसर नहीं छोड़ी, तो मुझे नहीं पता कि आपने मेरी नमाज़ में क्या दोष पाया?" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "वास्तव में, तुम में से किसी की नमाज़ तब तक पूरी नहीं होती (1) जब तक कि वह ठीक से वज़ू न कर ले जैसा कि अल्लाह ने उसे आदेश दिया है, अपना चेहरा और कोहनियों तक हाथ धोना, अपने सिर और टखनों तक पैरों का मसह करना। फिर वह अल्लाह की बड़ाई (अल्लाहु अकबर) करता है और उसकी प्रशंसा करता है, फिर वह कुरान की जननी (अल-फातिहा) पढ़ता है और जो कुछ भी उसके लिए अनुमत और आसान हो। फिर वह तकबीर कहता है और रुकू करता है, अपनी हथेलियों को अपने घुटनों पर रखता है जब तक कि उसके जोड़ स्थिर और शिथिल न हो जाएं। फिर वह कहता है: 'समिअल्लाहु लिमन हमिदह' (अल्लाह ने उसकी बात सुन ली जिसने उसकी प्रशंसा की), और सीधा खड़ा हो जाता है जब तक कि उसकी रीढ़ सीधी न हो जाए और हर हड्डी अपनी जगह न ले ले। फिर वह तकबीर कहता है और सजदा करता है, अपना चेहरा - हम्माम ने कहा: शायद उन्होंने कहा: अपना माथा - ज़मीन पर रखता है जब तक कि उसके जोड़ स्थिर और शिथिल न हो जाएं। फिर वह तकबीर कहता है और अपनी जगह पर सीधा बैठ जाता है, और अपनी पीठ सीधी करता है।" उन्होंने चार रकअतों तक इसी तरह नमाज़ का वर्णन किया, फिर फरमाया: "तुम में से किसी की नमाज़ तब तक पूरी नहीं होती जब तक वह ऐसा न करे।" और इसी तरह की अबू हुरैरा की हदीस है; जिसे मुस्लिम ने संकलित किया है, और इसका उल्लेख पहले (2) किया जा चुका है।

मैं कहता हूँ: यह कुरान में संक्षेप में वर्णित नमाज़ का स्पष्टीकरण है जो नबी (अलैहिस्सलाम) की शिक्षा और सभी लोगों तक उनके पहुंचाने के माध्यम से है। अतः जो कोई इस स्पष्टीकरण पर नहीं रुकता, और रहमान द्वारा उस पर अनिवार्य किए गए कार्यों में कोताही करता है, और अपने नबी (अलैहिस्सलाम) से उसे जो संदेश (3) मिला उसका पालन नहीं करता, वह उन लोगों में से होगा जो अल्लाह के इस कथन के अंतर्गत आते हैं: {फिर उनके बाद ऐसे बुरे उत्तराधिकारी आए जिन्होंने नमाज़ को नष्ट किया और अपनी इच्छाओं के पीछे चले} [मरियम: 59]। इसका विवरण वहां आएगा, इंशा अल्लाह।

अल-बुखारी (4) ने ज़ैद बिन वहब से रिवायत की है, उन्होंने कहा: हुज़ैफा ने एक आदमी को देखा जो रुकू और सजदा ठीक से नहीं कर रहा था, तो उन्होंने कहा: "तुमने नमाज़ नहीं पढ़ी, और अगर

तुम्हारी मृत्यु हो गई तो तुम उस फितरत (प्रकृति) पर नहीं मरोगे जिस पर अल्लाह ने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को पैदा किया था।"

बारहवां: अल्लाह का कथन: {रुकू करने वालों के साथ} [मअर-राकिईन]। "साथ" (मअ) का अर्थ संगति और एकजुटता है। इसी कारण कुरान की व्याख्या करने वालों (5) के एक समूह ने कहा: नमाज़ का आदेश शुरू में जमाअत (समूह) में शामिल होने की आवश्यकता नहीं रखता था, इसलिए अल्लाह ने अपने शब्द "साथ" के माध्यम से उन्हें जमाअत में शामिल होने का आदेश दिया।

(1) (D) में: उसकी नमाज़ पूरी नहीं हुई। (2) 1/185। (3) (D) में: उसे पहुँचता है। (4) संख्या (791)। (5) (D) में: पढ़ने के द्वारा।

اس آدمی نے ان سے کہا: "میں نے کوئی کسر نہیں چھوڑی، تو مجھے نہیں معلوم کہ آپ نے میری نماز میں کیا عیب پایا؟" رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "بیشک، تم میں سے کسی کی نماز اس وقت تک مکمل نہیں ہوتی (1) جب تک کہ وہ اچھی طرح وضو نہ کر لے جیسا کہ اللہ نے اسے حکم دیا ہے، اپنا چہرہ اور کہنیوں تک ہاتھ دھونا، اپنے سر اور ٹخنوں تک پاؤں کا مسح کرنا۔ پھر وہ اللہ کی بڑائی بیان کرتا ہے (اللہ اکبر کہتا ہے) اور اس کی تعریف کرتا ہے، پھر ام القرآن (سورہ فاتحہ) پڑھتا ہے اور جو اسے میسر اور آسان ہو۔ پھر وہ تکبیر کہہ کر رکوع کرتا ہے، اپنی ہتھیلیوں کو اپنے گھٹنوں پر رکھتا ہے یہاں تک کہ اس کے جوڑ پرسکون اور ڈھیلے ہو جائیں۔ پھر وہ کہتا ہے: 'سمع اللہ لمن حمدہ' (اللہ نے اس کی سن لی جس نے اس کی تعریف کی)، اور سیدھا کھڑا ہو جاتا ہے یہاں تک کہ اس کی ریڑھ کی ہڈی سیدھی ہو جائے اور ہر ہڈی اپنی جگہ لے لے۔ پھر وہ تکبیر کہہ کر سجدہ کرتا ہے، اپنا چہرہ - ہمام نے کہا: شاید اس نے کہا: اپنی پیشانی - زمین پر رکھتا ہے یہاں تک کہ اس کے جوڑ پرسکون اور ڈھیلے ہو جائیں۔ پھر وہ تکبیر کہتا ہے اور اپنی جگہ پر سیدھا بیٹھ جاتا ہے، اور اپنی کمر سیدھی کرتا ہے"۔ آپ ﷺ نے اسی طرح چار رکعتوں تک نماز بیان فرمائی، پھر فرمایا: "تم میں سے کسی کی نماز مکمل نہیں ہوتی جب تک وہ ایسا نہ کرے"۔ اور اسی طرح کی ابو ہریرہ کی حدیث ہے؛ اسے مسلم نے روایت کیا ہے، اور یہ پہلے (2) گزر چکی ہے۔

میں کہتا ہوں: یہ کتاب (قرآن) میں بیان کردہ نماز کی تفصیل ہے جو نبی علیہ السلام کی تعلیم اور تمام لوگوں تک ان کی تبلیغ کے ذریعے ہے۔ پس جو شخص اس بیان پر نہیں رکتا، اور رحمان کی طرف سے اس پر فرض کردہ چیزوں میں کوتاہی کرتا ہے، اور اپنے نبی علیہ السلام سے اسے جو

(3) پہنچا اس پر عمل نہیں کرتا، وہ ان لوگوں میں شامل ہوگا جو اللہ تعالیٰ کے اس قول میں داخل ہیں: {فَخَلَفَ مِن بَعْدِهِمْ خَلْفٌ أَضَاعُوا الصَّلَاةَ وَاتَّبَعُوا الشَّهَوَاتِ} [مریم: 59]۔ اس کی وضاحت وہاں آئے گی، ان شاء اللہ۔

بخاری (4) نے زید بن وہب سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: حذیفہ نے ایک آدمی کو دیکھا جو رکوع اور سجدہ مکمل نہیں کر رہا تھا، تو انہوں نے کہا: "تم نے نماز نہیں پڑھی، اور اگر تم مر گئے تو تم اس فطرت پر نہیں مرو گے جس پر اللہ نے محمد ﷺ کو پیدا کیا تھا"۔

بارہویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿مَعَ الرَّٰكِعِينَ﴾ (رکوع کرنے والوں کے ساتھ)۔ "مع" (ساتھ) رفاقت اور اجتماعیت کا تقاضا کرتا ہے، اسی لیے قرآن کی تاویل کرنے والوں (5) کی ایک جماعت نے کہا: نماز کا حکم پہلے باجماعت حاضری کا تقاضا نہیں کرتا تھا، چنانچہ اللہ نے اپنے قول "مع" کے ذریعے انہیں باجماعت حاضری کا حکم دیا۔

(1) (د) میں ہے: اس کی نماز مکمل نہیں ہوئی۔ (2) 1/185۔ (3) (د) میں ہے: اسے پہنچتا ہے۔ (4) نمبر (791)۔ (5) (د) میں ہے: قراءت کے ساتھ۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 31

Scholars have differed regarding attending the congregation (Jama'ah) on two opinions. The majority view is that it is a confirmed Sunnah (Sunnah Mu'akkadah), and it is mandatory to punish someone who persistently stays away from it without a valid excuse. Some people of knowledge have made it an obligation of sufficiency (Fard al-Kifayah). Ibn Abd al-Barr said (1): This is a correct view, because of their consensus that it is not permissible for all mosques to be emptied of congregations. Thus, if a congregation is established in the mosque, then a person's individual prayer in their house is permissible, due to the Prophet's ﷺ saying: "The congregational prayer is better than the individual prayer by twenty-seven degrees." Narrated by Muslim (2) from the hadith of Ibn Umar.

And it was narrated (3) from Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him) that the Messenger of Allah ﷺ said: "The congregational prayer is better than the prayer of one of you alone by twenty-five parts." Dawud (4) said: Praying in congregation is an individual obligation (Fard 'Ayn) for everyone, like the Friday prayer. He argued using the Prophet's ﷺ saying: "There is no prayer for the neighbor of the mosque except in the mosque." Recorded by Abu Dawud, and authenticated by Abu Muhammad Abd al-Haq (5). This is the view of Ata bin Abi Rabah (6), Ahmad bin Hanbal, Abu Thawr, and others. Al-Shafi'i said: I do not excuse anyone who is able to attend the congregation from skipping it except due to a valid reason. This was narrated by Ibn al-Mundhir (7).

Muslim narrated (8) from Abu Hurayrah who said: A blind man came to the Prophet ﷺ and said: O...

(1) At-Tamheed 18/334. (2) No. (650) : (249). Also narrated by Al-Bukhari (645), and it is in Al-Musnad (5332). (3) Sahih Muslim (649) : (245), and also narrated by Al-Bukhari (648), and it is in Al-Musnad (10121). (4) See Al-Muhalla by Ibn Hazm 4/188-196, and At-Tamheed 18/332. (5) The hadith was narrated by Ad-Daraqutni 1/419-420 from the hadith of Jabir and 1/420 from the hadith of Abu Hurayrah. Abu Dawud did not narrate it as mentioned by the author, nor did we find its authentication by Abu Muhammad Abd al-Haq. Rather, he said in Al-Ahkam al-Wusta 1/275 after mentioning it: A weak (da'if) hadith. Al-Hafiz said about it in At-Talkhis 2/31: Well-known among people, but it is weak and has no established chain of transmission... And there is a report on the authority of Ali in this chapter, which is also weak. See Nasb al-Rayah 4/412-413. (6) He is Ata bin Aslam, Abu Muhammad al-Qurashi, their freed slave of

Makkah, Mufti of the Haram. He was born during the caliphate of Uthman and died in the year 115 AH. As-Siyar 5/78. (7) Al-Awsat 4/138. (8) No. (653), and what is between brackets is from it.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 31

जमाअत (सामूहिक प्रार्थना) में शामिल होने के बारे में विद्वानों के बीच दो मत हैं। अधिकांश विद्वानों (जमहूर) की राय यह है कि यह एक पुख्ता सुन्नत (सुन्नत मुअक्कदह) है, और जो व्यक्ति बिना किसी वैध कारण के लगातार इससे दूर रहता है, उसे दंडित किया जाना चाहिए। कुछ विद्वानों ने इसे फ़र्ज़-ए-किफ़ाया (सामूहिक दायित्व) माना है। इब्न अब्दुल बर्र ने कहा (1): "यह एक सही विचार है, क्योंकि विद्वानों के बीच इस बात पर सहमति है कि सभी मस्जिदों को जमाअत से खाली छोड़ना जायज़ नहीं है। इसलिए, यदि मस्जिद में जमाअत कायम हो जाती है, तो किसी व्यक्ति की अपने घर में व्यक्तिगत नमाज़ जायज़ है, क्योंकि पैगंबर ﷺ का फरमान है: 'जमाअत के साथ नमाज़, अकेले नमाज़ पढ़ने से सत्ताईस गुना अधिक बेहतर है'।" इसे मुस्लिम (2) ने इब्न उमर की हदीस से वर्णित किया है।

और अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है (3) कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "जमाअत के साथ नमाज़, तुम में से किसी के अकेले नमाज़ पढ़ने से पच्चीस हिस्से बेहतर है।" दाऊद (4) ने कहा: जमाअत में नमाज़ पढ़ना हर व्यक्ति पर व्यक्तिगत रूप से फ़र्ज़ (अनिवार्य) है, जैसे जुमे की नमाज़। उन्होंने पैगंबर ﷺ के इस कथन से दलील दी: "मस्जिद के पड़ोसी के लिए मस्जिद के अलावा और कहीं नमाज़ नहीं है।" इसे अबू दाऊद ने निकाला है, और अबू मुहम्मद अब्दुल हक़ (5) ने इसे सही करार दिया है। यह अता बिन अबी रबाह (6), अहमद बिन हंबल, अबू थौर और अन्य का मत है। इमाम शाफ़ई ने कहा: "मैं उस व्यक्ति को जो जमाअत में शामिल होने में सक्षम है, बिना किसी वैध कारण के उसे छोड़ने की अनुमति नहीं देता।" इसे इब्न अल-मुन्ज़िर (7) ने उल्लेख किया है।

मुस्लिम ने वर्णित किया है (8) अबू हुरैरा से, जिन्होंने कहा: एक अंधा आदमी नबी ﷺ के पास आया और कहा: ऐ...

(1) अत-तम्हीद 18/334। (2) नंबर (650) : (249)। इसे बुखारी (645) ने भी वर्णित किया है, और यह अल-मुसनद (5332) में है। (3) सही मुस्लिम (649) : (245), और इसे बुखारी (648) ने भी वर्णित किया है, और यह अल-मुसनद (10121) में है। (4) देखें इब्न हज़म की अल-मुहल्ला 4/188-196, और अत-तम्हीद 18/332। (5) हदीस को दारक़ुतनी 1/419-420 ने जाबिर की हदीस से और 1/420 ने अबू हुरैरा की हदीस से निकाला है। अबू दाऊद ने इसे वर्णित नहीं किया जैसा कि लेखक ने उल्लेख किया है, और न ही हमें अबू मुहम्मद अब्दुल हक़ द्वारा इसका प्रमाणीकरण मिला है। बल्कि, उन्होंने अल-अहकाम अल-वुस्ता 1/275 में इसे उल्लेख करने के बाद कहा: यह एक कमजोर

(दईफ) हदीस है। अल-हाफ़िज़ ने अत-तल्ख़ीस 2/31 में इसके बारे में कहा: लोगों के बीच प्रसिद्ध है, लेकिन यह कमजोर है, इसका कोई पुख्ता सनद (शृंखला) नहीं है... और इस अध्याय में अली से भी एक उल्लेख है, वह भी कमजोर है। देखें नसब अल-राया 4/412-413। (6) वह अता बिन असलम, अबू मुहम्मद अल-कुरैशी, मक्का के मुफ़्ती हैं। उनका जन्म उस्मान के खिलाफत काल में हुआ था और उनकी मृत्यु वर्ष 115 हिजरी में हुई। अस-सियार 5/78। (7) अल-अवसत 4/138। (8) नंबर (653), और कोष्ठक के बीच जो है वह उसी से है।

سورة البقرہ: آیت 43 31

جماعت میں حاضری کے بارے میں علماء کا دو اقوال پر اختلاف ہے۔ جمہور کی رائے یہ ہے کہ یہ سنتِ مؤکدہ ہے، اور جو شخص بغیر کسی عذر کے مسلسل اس سے پیچھے رہتا ہے اس پر سزا واجب ہے۔ بعض اہل علم نے اسے فرضِ کفایہ قرار دیا ہے۔ ابن عبد البر نے کہا (1): "یہ ایک صحیح قول ہے، کیونکہ ان کے اس بات پر اجماع کی وجہ سے کہ تمام مساجد کو جماعتوں سے معطل کرنا جائز نہیں ہے۔ چنانچہ جب مسجد میں جماعت قائم ہو جائے، تو منفرد (اکیلے) کی اپنے گھر میں نماز جائز ہے، کیونکہ آپ ﷺ کا ارشاد ہے: 'جماعت کی نماز تنہا نماز سے ستائیس درجے بہتر ہے'۔" اسے مسلم (2) نے ابن عمر کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

اور حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت ہے (3) کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جماعت کی نماز تم میں سے کسی کے اکیلے نماز پڑھنے سے پچیس گنا زیادہ فضیلت رکھتی ہے"۔ اور داؤد (4) نے کہا: جماعت میں نماز پڑھنا ہر ایک پر انفرادی طور پر فرض ہے، جیسے جمعہ کی نماز، اور انہوں نے آپ ﷺ کے اس ارشاد سے استدلال کیا: "مسجد کے پڑوسی کی نماز مسجد ہی میں ہوتی ہے"۔ اسے ابوداؤد نے روایت کیا اور ابو محمد عبدالحق (5) نے اسے صحیح قرار دیا، اور یہی قول عطاء بن ابی رباح (6)، احمد بن حنبل اور ابوثور وغیرہ کا ہے۔ امام شافعی نے فرمایا: "میں اس شخص کو جو جماعت پر قادر ہو، بغیر کسی عذر کے اسے چھوڑنے کی رخصت نہیں دیتا"۔ اسے ابن المنذر (7) نے نقل کیا ہے۔

اور مسلم نے روایت کیا (8) ابوہریرہ سے، انہوں نے کہا: ایک نابینا آدمی نبی ﷺ کی خدمت میں حاضر ہوا اور عرض کی: اے...

(1) التمہید 18/ 334- (2) نمبر (650) : (249)۔ اسے بخاری (645) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ مسند (5332) میں ہے۔ (3) صحیح مسلم (649) : (245)، اور اسے بخاری (648) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ مسند (10121) میں ہے۔ (4) دیکھیے المحلی لابن حزم 4/ 188 - 196، اور التمہید 18/ 332- (5) حدیث کو دارقطنی نے 1/ 419 - 420 حضرت جابر کی حدیث سے اور 1/ 420 حضرت ابوہریرہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اسے ابوداؤد نے روایت نہیں کیا جیسا کہ مصنف نے ذکر کیا ہے، اور ہمیں ابو محمد عبدالحق کی طرف سے اس کی تصحیح نہیں ملی، بلکہ انہوں نے الاحکام الوسطیٰ 1/ 275 میں اسے ذکر کرنے کے بعد کہا: حدیث ضعیف ہے۔ اور حافظ نے التلخیص 2/ 31 میں اس کے بارے میں کہا: لوگوں میں مشہور ہے، لیکن یہ ضعیف ہے، اس کی کوئی ثابت سند نہیں ہے... اور اس باب میں حضرت علی سے بھی روایت ہے، وہ بھی ضعیف ہے۔ دیکھیے نصب الرایہ 4/ 412 - 413۔ (6) وہ عطاء بن اسلم، ابو محمد القرشی، اہل مکہ کے مفتی ہیں۔ عثمان رضی اللہ عنہ کی خلافت میں پیدا ہوئے اور سنہ 115ھ میں وفات پائی۔ السیر 5/ 78- (7) الاوسط 4/ 138- (8) نمبر (653)، اور جو کچھ قوسین (بریکٹ) کے درمیان ہے وہ اسی سے ہے۔

32

Surah Al-Baqarah: Verse 43

Messenger of Allah, I have no guide to lead me to the mosque. So he asked the Messenger of Allah (PBUH) to grant him a concession to pray in his house. He granted it to him, but when he turned away, he called him back and said: "[Do] you hear the call to prayer?" He said: "Yes." He said: "Then respond." Abu Dawood said (1) regarding this Hadith: "I find no concession for you." He extracted it from the Hadith of Ibn Umm Maktum and mentioned that he was the questioner.

It was narrated from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) that he said: The Messenger of Allah (PBUH) said: "Whoever hears the call and no excuse prevents him from following it (2) - they said: 'What is the excuse?' He said: 'Fear or illness' - the prayer he performed will not be accepted from him" (3).

Abu Muhammad Abdul Haqq said (4): This is narrated by Maghra' al-Abdi. The correct position is attributed to Ibn Abbas: "Whoever hears the call and does not come, there is no prayer for him" (5). However, Qasim ibn Asbagh mentioned it in his book, saying: Ismail ibn Ishaq al-Qadi narrated to us, saying: Suleiman ibn Harb narrated to us, saying: Shu'bah narrated to us, from Habib ibn Abi Thabit, from Sa'id ibn Jubayr, from Ibn Abbas that the Prophet (PBUH) said: "Whoever hears the call and does not respond, there is no prayer for him except with an excuse" (6). This chain of narration is sufficient in its authenticity. Maghra' al-Abdi was narrated from (7) by Abu Ishaq (8).

Ibn Mas'ud said: I have seen us when no one would stay behind from it except a hypocrite whose hypocrisy was well known (9). And he (peace be upon him) said: "The difference between us and the hypocrites is attending the Ishā’ and Fajr prayers; they cannot manage them" (10).

---

(1) In his Sunan (552), and it is in Al-Musnad (15490). (2) In (m): "coming to it". (3) Sunan Abi Dawood (551), and in it is Abu Janab Yahya bin Abi Hayya Al-Kalbi, they weakened him for his frequent Tadlees (obfuscation in narration) as the Hafiz said in At-Taqreeb, and he did not explicitly state hearing the narration in Abu Dawood's version. (4) Al-Ahkam al-Wusta 1/274. (5) Narrated by Ibn al-Mundhir in al-Awsat 4/136, with the addition: "without an excuse". (6) Narrated by Ibn Hazm in al-Muhalla 4/190 through the path of Qasim ibn Asbagh, and narrated by Ibn Majah (793) through the path of Hushaym from Shu'bah. (7) In (d): "narrates it". (8) See Bayan al-Wahm wal-Iham by Ibn al-Qattan 2/277-279, and 3/95-96. (9) The author will mention

it in full soon. (10) Narrated by Malik 1/130 from the Hadith of Sa'id ibn al-Musayyib as Mursal. Ibn Abd al-Barr said in at-Tamheed 11/20: Not =

३२

सूरह अल-बक़रह: आयत ४३

अल्लाह के रसूल, मेरे पास मस्जिद तक ले जाने के लिए कोई मार्गदर्शक नहीं है। तो उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से घर में नमाज़ पढ़ने की अनुमति माँगी। आपने उन्हें अनुमति दे दी, लेकिन जब वे मुड़े, तो आपने उन्हें वापस बुलाया और पूछा: "[क्या] तुम नमाज़ की अज़ान सुनते हो?" उन्होंने कहा: "हाँ।" आपने फ़रमाया: "तो उसका उत्तर दो (मस्जिद आओ)।" और अबू दाऊद (१) ने इस हदीस के बारे में कहा: "मैं तुम्हारे लिए कोई अनुमति नहीं पाता।" उन्होंने इसे इब्न उम्म मकतूम की हदीस से निकाला है, और उल्लेख किया है कि वही प्रश्न पूछने वाले थे।

इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने अज़ान सुनी और उसे (मस्जिद) आने से किसी बहाने (उज़्र) ने नहीं रोका (२) - लोगों ने पूछा: 'उज़्र क्या है?' आपने फ़रमाया: 'डर या बीमारी' - तो उसने जो नमाज़ पढ़ी वह उससे स्वीकार नहीं की जाएगी" (३)।

अबू मुहम्मद अब्दुल हक़ (४) ने कहा: इसे मग़रा अल-अब्दी ने रिवायत किया है। सही यह है कि यह इब्न अब्बास का कथन है: "जिसने अज़ान सुनी और नहीं आया, उसकी कोई नमाज़ नहीं" (५)। हालाँकि, क़ासिम बिन असबग़ ने अपनी किताब में इसका उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: हमसे इस्माइल बिन इसहाक़ अल-क़ाज़ी ने बयान किया, उन्होंने कहा: हमसे सुलेमान बिन हर्ब ने बयान किया, उन्होंने कहा: हमसे शुअबा ने हबीब बिन अबी साबित से, उन्होंने सईद बिन जुबैर से, उन्होंने इब्न अब्बास से रिवायत की कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने अज़ान सुनी और जवाब नहीं दिया, उसकी कोई नमाज़ नहीं सिवाय किसी उज़्र के" (६)। यह सनद (रिवायत का सिलसिला) इसकी प्रमाणिकता के लिए पर्याप्त है। मग़रा अल-अब्दी से अबू इसहाक़ (८) ने रिवायत (७) की है।

इब्न मसूद ने कहा: मैंने हमें देखा है कि हमसे केवल वही पीछे रहता था जो जाना-माना मुनाफ़िक़ (पाखंडी) हो (९)। और आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "हमारे और मुनाफ़िक़ों के बीच का अंतर इशा और फ़ज्र की नमाज़ों में हाज़िर होना है, वे इन दोनों को सहन नहीं कर सकते" (१०)।

(१) अपनी सुनन (५५२) में, और यह अल-मुसनद (१५४९०) में है। (२) (म) में: "उसका आना"। (३) सुनन अबू दाऊद (५५१), और इसमें अबू जनाब यह्या बिन अबी हय्या अल-कल्बी हैं, जिन्हें हाफ़िज़ ने तक़रीब में कहा है कि बहुत अधिक तदलीस (छद्म कथन) के कारण उन्हें कमज़ोर माना गया है, और उन्होंने अबू दाऊद के पास स्पष्ट रूप से हदीस सुनने का उल्लेख नहीं किया है। (४) अल-अहकाम अल-वुस्ता १/२७४। (५) इब्न अल-मुन्ज़िर ने अल-औसत ४/१३६ में इस अतिरिक्त शब्द के साथ रिवायत किया है: "बिना किसी उज़्र के"। (६) इब्न हज़म ने अल-मुहल्ला ४/१९० में क़ासिम बिन असबग़ के माध्यम से इसे निकाला है, और इब्न माजह (७९३) ने हुशैम के माध्यम से शुअबा से इसे निकाला है। (७) (द) में: "वह इसे रिवायत करता है"। (८) इब्न अल-क़त्तान की 'बयान अल-वह्म वल-इहाम' २/२७७ - २७९, और ३/९५ - ९६ देखें। (९) लेखक इसे शीघ्र ही पूर्ण रूप से उल्लेख करेंगे। (१०) मालिक ने १/१३० में सईद बिन अल-मुसय्यब की हदीस से इसे मुरसल (अधूरी सनद वाली) के रूप में निकाला है। इब्न अब्दुल बर्र ने अल-तमहीद ११/२० में कहा: नहीं =

۳۲

سورہ البقرہ : آیت ۴۳

رسول اللہ، میرا کوئی قائد (راہنما) نہیں جو مجھے مسجد لے جائے۔ چنانچہ اس نے رسول اللہ ﷺ سے رخصت چاہی کہ وہ اپنے گھر میں نماز پڑھ لیا کرے، آپ ﷺ نے اسے رخصت دے دی، لیکن جب وہ پیٹھ پھیر کر چلا تو اسے بلایا اور فرمایا: "کیا تم نماز کی اذان سنتے ہو؟" اس نے کہا: "جی ہاں۔" آپ ﷺ نے فرمایا: "تو پھر جواب دو (مسجد آؤ)۔" اور ابو داؤد (۱) نے اس حدیث کے بارے میں کہا: "میں تمہارے لیے کوئی رخصت نہیں پاتا۔" اسے ابن ام مکتوم کی حدیث سے روایت کیا گیا ہے، اور ذکر کیا کہ وہی سائل تھے۔

اور ابن عباس رضی اللہ عنہما سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جس نے اذان سنی اور اسے اس کی پیروی (۲) سے کسی عذر نے نہ روکا - لوگوں نے پوچھا: عذر کیا ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: خوف یا بیماری - تو اس کی وہ نماز قبول نہیں ہوگی جو اس نے پڑھی" (۳)۔

ابو محمد عبدالحق (۴) نے کہا: اسے مغراء العبدی روایت کرتے ہیں۔ اور صحیح یہ ہے کہ یہ ابن عباس کا قول ہے: "جس نے اذان سنی اور (مسجد) نہ آیا، اس کی کوئی نماز نہیں" (۵)۔ اس کے باوجود قاسم بن اصبغ نے اپنی کتاب میں اسے ذکر کیا ہے، انہوں نے کہا: ہم سے اسماعیل بن اسحاق القاضی نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہم سے سلیمان بن حرب نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہم سے شعبہ نے حبیب بن ابی ثابت سے، انہوں نے سعید بن جبیر سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "جس نے اذان سنی اور جواب نہ دیا، اس کی کوئی نماز نہیں

سوائے عذر کے" (۶)۔ یہ سند اس کی صحت کے لیے کافی ہے۔ اور مغراء العبدی سے (۷) ابو اسحاق (۸) نے روایت کی ہے۔

ابن مسعود نے کہا: میں نے ہمیں دیکھا ہے کہ ہم میں سے صرف وہی پیچھے رہتا تھا جو کھلا منافق ہو (۹)۔ اور آپ ﷺ نے فرمایا: "ہمارے اور منافقوں کے درمیان فرق عشاء اور صبح کی نمازوں میں حاضری ہے، وہ ان دونوں کی طاقت نہیں رکھتے" (۱۰)۔

---

(۱) اپنی سنن (۵۵۲) میں، اور یہ المسند (۱۵۴۹۰) میں ہے۔ (۲) (م) میں: اس کا آنا۔ (۳) سنن ابی داؤد (۵۵۱)، اور اس میں ابو جناب یحییٰ بن ابی حیہ الکلبی ہیں، جنہیں حافظ نے تقریب میں کہا ہے کہ کثرتِ تدلیس کی وجہ سے انہیں ضعیف قرار دیا گیا ہے، اور انہوں نے ابوداؤد کے ہاں صراحت سے حدیث سننے کا ذکر نہیں کیا۔ (۴) الاحکام الوسطیٰ ۲۷۴/۱۔ (۵) اسے ابن المنذر نے الاوسط ۱۳۶/۴ میں اس اضافے کے ساتھ روایت کیا ہے: "بغیر عذر کے"۔ (۶) اسے ابن حزم نے المحلی ۱۹۰/۴ میں قاسم بن اصبغ کے واسطے سے روایت کیا ہے، اور ابن ماجہ (۷۹۳) نے ہشیم کے واسطے سے شعبہ سے روایت کیا ہے۔ (۷) (د) میں: وہ اسے روایت کرتا ہے۔ (۸) دیکھئے بیان الوہم والایہام از ابن القطان ۲ / ۲۷۷ - ۲۷۹، اور ۳ / ۹۵ - ۹۶۔ (۹) مصنف اسے جلد ہی مکمل ذکر کریں گے۔ (۱۰) اسے مالک نے ۱ / ۱۳۰ میں سعید بن المسیب کی حدیث سے مرسلاً روایت کیا ہے۔ ابن عبدالبر نے التمہید ۱۱ / ۲۰ میں کہا: نہیں =

Ibn al-Mundhir said: We have narrated from more than one of the companions of the Prophet ﷺ that they said: “Whoever hears the call [to prayer] and does not respond without an excuse, there is no prayer for him.” Among them are Ibn Mas'ud and Abu Musa al-Ash'ari (2).

Abu Dawud (3) narrated from Abu Hurairah who said: The Messenger of Allah ﷺ said: “I was about to order my young men to gather bundles of firewood, then go to people who pray in their homes without any ailment (4), and burn them down upon them.”

This is what was used as evidence by those who made congregational prayer obligatory. It is apparent in indicating obligation, but the majority interpreted it as emphasizing the matter of attending congregational prayers, based on the hadith of Ibn Umar and Abu Hurairah. They interpreted the statement of the companions and what came in the hadith that “there is no prayer for him” as referring to perfection and merit. Similarly, the Prophet's ﷺ statement to Ibn Umm Maktum: “Then respond,” was interpreted as recommendation (mandub). And his ﷺ statement: “I was about to...” does not indicate a definitive obligation, because he intended but did not do it; rather, its context (5) is one of threat and warning to the hypocrites who used to stay away from the congregation and Friday prayer.

This meaning is clarified by what Muslim (6) narrated from Abdullah who said: “Whoever would be pleased to meet Allah tomorrow as a Muslim, let him observe these prayers where they are called for, for Allah has prescribed for your Prophet (7) ﷺ the paths of guidance, and they are among the paths of guidance. If you were to pray in your houses as this person who stays behind prays in his house, you would have abandoned the Sunnah of your Prophet ﷺ, and if you were to abandon the Sunnah of your Prophet ﷺ, you would go astray. And there is no...”

= There is disagreement regarding Malik's chain of narration (isnad) for this hadith and its irsal (interruption), and this exact wording is not preserved as a musnad hadith from the Prophet ﷺ, though its meaning is preserved through established paths. (1) In (M): And indeed. (2) Al-Awsat 4/136. His chain of narration to both of them was mentioned in the same place. (3) In his Sunan (549), and Al-Bukhari (644), Muslim (651), and it is in Al-Musnad (7328). (4) In (Z) and (M): “for them”, and in (Zha): “without ailment”, instead of: “there is no ailment in them”. The fixed text is from (D).

(5) In (D) and (Zha): “it comes out”. (6) Sahih Muslim (654): (57), and it is in Al-Musnad (3936). (7) In (Zha): regarding these… they are called for… for our Prophet.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 | पृष्ठ 33

इब्न अल-मुंदिर ने कहा: हमें पैगंबर ﷺ के एक से अधिक साथियों से वर्णन किया गया है कि उन्होंने कहा: "जिसने अज़ान सुनी और बिना किसी बहाने के उसका उत्तर नहीं दिया, उसकी कोई नमाज़ नहीं है।" उनमें इब्न मसूद और अबू मूसा अल-अशअरी (2) शामिल हैं।

अबू दाऊद (3) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "मेरा इरादा हुआ कि मैं अपने युवकों को लकड़ियों के गट्ठर इकट्ठा करने का आदेश दूँ, फिर उन लोगों के पास जाऊँ जो बिना किसी बीमारी (4) के अपने घरों में नमाज़ पढ़ते हैं, और उन्हें उनके घरों सहित जला दूँ।"

यह उन लोगों द्वारा प्रमाण के रूप में इस्तेमाल किया गया है जिन्होंने जमात के साथ नमाज़ को अनिवार्य (फर्ज़) माना है। यह अनिवार्यता को स्पष्ट रूप से दर्शाता है, लेकिन बहुमत ने इसे जमात में नमाज़ में शामिल होने के महत्व पर ज़ोर देने के रूप में लिया है, इब्न उमर और अबू हुरैरा की हदीस के प्रमाण के आधार पर। उन्होंने साथियों के कथन और हदीस में आए "उसकी कोई नमाज़ नहीं है" को पूर्णता और श्रेष्ठता के अर्थ में लिया है। इसी तरह, इब्न उम्म मक्तूम से पैगंबर ﷺ का कथन: "तो उत्तर दो," सिफारिश (मंदूब) के तौर पर लिया गया है। और उनका ﷺ यह कहना: "मेरा इरादा हुआ..." अनिवार्य कर्तव्य (फ़र्ज़) का संकेत नहीं देता है; क्योंकि उन्होंने इरादा किया लेकिन किया नहीं, बल्कि इसका संदर्भ (5) उन मुनाफ़िक़ों (पाखंडियों) के लिए धमकी और चेतावनी है जो जमात और जुमे की नमाज़ से पीछे रह जाते थे।

इस अर्थ को मुस्लिम (6) द्वारा अब्दुल्लाह से वर्णित रिवायत स्पष्ट करती है, जिन्होंने कहा: "जिसे यह पसंद हो कि वह कल अल्लाह से एक मुसलमान के रूप में मिले, तो उसे इन नमाज़ों की पाबंदी करनी चाहिए जहाँ उनके लिए पुकारा (अज़ान दी) जाता है, क्योंकि अल्लाह ने तुम्हारे पैगंबर (7) ﷺ के लिए हिदायत (मार्गदर्शन) के रास्ते तय किए हैं, और ये नमाज़ें हिदायत के रास्तों में से हैं। अगर तुम अपने घरों में नमाज़ पढ़ोगे जैसे यह पीछे रहने वाला अपने घर में नमाज़ पढ़ता है, तो तुम अपने पैगंबर ﷺ की सुन्नत को छोड़ दोगे, और अगर तुमने अपने पैगंबर ﷺ की सुन्नत को छोड़ दिया, तो तुम भटक जाओगे। और कोई ऐसा नहीं है..."

= इस हदीस की सनद और इसके इरसाल (क्रम टूटना) के बारे में मालिक से मतभेद है, और यह शब्द पैगंबर ﷺ से मुसनद (निरंतर सनद) के रूप में याद नहीं किए गए हैं, हालांकि इसका अर्थ प्रमाणित तरीकों से सुरक्षित है। (1) (M) में: और वास्तव में। (2) अल-औसत 4/136। उन दोनों तक

इसकी सनद का उल्लेख उसी स्थान पर किया गया है। (3) उनकी सुनन (549) में, और इसे बुखारी (644), मुस्लिम (651) ने भी निकाला है, और यह मुसनद (7328) में है। (4) (Z) और (M) में: "उनके लिए", और (Zha) में: "बिना बीमारी के", इसके बजाय: "उनमें कोई बीमारी नहीं है"। निश्चित पाठ (D) से है। (5) (D) और (Zha) में: "निकलता है"। (6) सहीह मुस्लिम (654): (57), और यह मुसनद (3936) में है। (7) (Zha) में: इन पर... उनके लिए पुकारा जाता है... हमारे पैगंबर के लिए।

سورة البقرہ: آیت 43 | صفحہ 33

ابن المنذر نے کہا: ہمیں نبی ﷺ کے متعدد صحابہ سے روایت پہنچی ہے کہ انہوں نے کہا: "جس نے اذان سنی اور بغیر کسی عذر کے جواب نہ دیا، اس کی کوئی نماز نہیں۔" ان میں ابن مسعود اور ابو موسیٰ الاشعری (2) شامل ہیں۔

ابو داؤد (3) نے ابوہریرہ سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "میرا ارادہ ہوا کہ میں اپنے نوجوانوں کو لکڑیوں کے گٹھے جمع کرنے کا حکم دوں، پھر ان لوگوں کے پاس جاؤں جو بغیر کسی بیماری (4) کے اپنے گھروں میں نماز پڑھتے ہیں، اور انہیں ان کے گھروں سمیت جلا دوں۔"

یہ ان لوگوں کی دلیل ہے جنہوں نے جماعت کے ساتھ نماز کو فرض قرار دیا ہے، اور یہ وجوب (فرضیت) پر صریح دلیل ہے۔ تاہم، جمہور نے اسے ابن عمر اور ابوہریرہ کی حدیث کی بنیاد پر جماعت میں نماز کی حاضری کی تاکید پر محمول کیا ہے۔ انہوں نے صحابہ کے قول اور حدیث میں آنے والے الفاظ "اس کی کوئی نماز نہیں" کو کمال اور فضیلت کی نفی پر محمول کیا ہے۔ اسی طرح ابن ام مکتوم سے آپ ﷺ کا فرمان: "پس جواب دو (حاضر ہو)" استحباب (نفل/سنت) پر محمول کیا گیا ہے۔ اور آپ ﷺ کا فرمان: "میرا ارادہ ہوا..." حتمی وجوب پر دلالت نہیں کرتا؛ کیونکہ آپ ﷺ نے ارادہ فرمایا لیکن عمل نہیں کیا، بلکہ اس کا سیاق و سباق (5) ان منافقین کے لیے تہدید اور وعید ہے جو جماعت اور جمعہ سے پیچھے رہ جاتے تھے۔

اس معنی کی وضاحت وہ روایت کرتی ہے جو مسلم (6) نے عبداللہ سے نقل کی ہے، انہوں نے کہا: "جسے یہ پسند ہو کہ کل اللہ سے مسلمان کی حیثیت سے ملے، تو وہ ان نمازوں کی حفاظت کرے جہاں ان کے لیے پکارا (اذان دی) جاتا ہے، کیونکہ اللہ نے تمہارے نبی (7) ﷺ کے لیے سننِ

ہدیٰ (ہدایت کے طریقے) مقرر کیے ہیں، اور یہ نمازیں سننِ ہدیٰ میں سے ہیں۔ اگر تم اپنے گھروں میں نماز پڑھو گے جیسے یہ پیچھے رہنے والا اپنے گھر میں نماز پڑھتا ہے، تو تم اپنے نبی ﷺ کی سنت کو چھوڑ دو گے، اور اگر تم نے اپنے نبی ﷺ کی سنت کو چھوڑ دیا تو تم گمراہ ہو جاؤ گے۔ اور کوئی ایسا شخص نہیں..."

= اس حدیث کی سند اور اس کے ارسال (سلسلہ ٹوٹنے) کے بارے میں امام مالک سے اختلاف مروی ہے، اور یہ الفاظ نبی ﷺ سے مسنداً (متصل سند کے ساتھ) محفوظ نہیں ہیں، البتہ اس کا معنی ثابت شدہ طریقوں سے محفوظ ہے۔ (1) (M) میں: ولقد (اور یقیناً)۔ (2) الاوسط 136/4۔ ان دونوں تک اس کی سند اسی جگہ مذکور ہے۔ (3) اپنی سنن (549) میں، اور اسے بخاری (644)، مسلم (651) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ المسند (7328) میں ہے۔ (4) (ز) اور (م) میں: "لهم"، اور (ظ) میں: "من غير علة" (بغیر بیماری کے)، بجائے: "ليست بهم علة" (انہیں کوئی بیماری نہیں)۔ متن (د) کے مطابق ہے۔ (5) (د) اور (ظ) میں: "يخرجه" (وہ اسے نکالتا ہے)۔ (6) صحیح مسلم (654): (57)، اور یہ المسند (3936) میں ہے۔ (7) (ظ) میں: على هذه ... ينادى لها ... لنبينا

Surah Al-Baqarah: Verse 43 34 ...a man purifies himself, performing his ablution well, then heads to one of these mosques, but Allah writes for him a good deed for every step he takes, raises him by one degree, and removes from him one sin. Indeed, I have seen us [at the time of the Prophet], and no one would stay away from it [the congregational prayer] except a well-known hypocrite. A man would even be brought supported between two other men until he was made to stand in the row. So he (may Allah be pleased with him) clarified in his narration that gathering for prayer is one of the paths of guidance (Sunan al-Huda), and abandoning it is misguidance. For this reason, Judge Abu al-Fadl 'Iyad(1) said: There is a difference of opinion regarding conspiring to abandon the manifest Sunnahs: should they be fought over it or(2) not? The correct view is that they should be fought, because conspiring against them leads to their death. I say: Based on this, if the Sunnah is established and manifest, then praying alone is permissible and valid. Muslim(3) narrated from Abu Huraira that he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "The prayer of a man in congregation is more than twenty degrees greater than his prayer in his house or in his marketplace. This is because if one of them performs ablution and performs it well, then comes to the mosque, and nothing urges him forth except the prayer, and he intends nothing but the prayer, then he does not take a step but that he is raised a degree by it and a sin is removed from him until he enters the mosque. When he enters the mosque, he is considered to be in prayer as long as the prayer is what detains him. The angels continue to pray for any of you as long as he remains in his place of prayer, saying: 'O Allah, have mercy on him; O Allah, forgive him; O Allah, accept his repentance,' as long as he does not cause harm therein or break his state of ritual purity (hadath)." It was asked of Abu Huraira: "What is hadath?" He said: "Passing wind, quietly or loudly." Thirteenth: The scholars differed regarding this added merit for the congregation: Is it solely for the congregation wherever it may be, or is this merit only for the congregation that is in the mosque, because of the associated actions specific to mosques, as mentioned in the hadith(4)? There are two views, and the first is more apparent because 'congregation' is the description upon which the ruling is contingent. And Allah knows best. (1) Ibn Musa al-Yahsubi al-Andalusi, then al-Sabti, the Maliki, the Hafiz, author of several works, died in the year (544 AH). Siyar 20/212. The mentioned statement is in his book Ikmal al-Mu'lim bi Fawa'id Muslim 2/622. (2) In (m): or. (3) No. (649): (272) [1/459]. It was also recorded by Al-Bukhari (477), and it is in Al-Musnad (7430). (4) Referring to the hadith of Abu Huraira mentioned earlier.

सूरह अल-बकराह: आयत 43 34 ...एक व्यक्ति जो पवित्रता प्राप्त करता है, अपना वुज़ू अच्छी तरह करता है, फिर इन मस्जिदों में से किसी एक मस्जिद की ओर जाता है, तो अल्लाह उसके हर कदम के लिए एक नेकी लिखता है, उसके माध्यम से उसे एक दर्जा ऊपर उठाता है, और उसके माध्यम से उसका एक गुनाह कम कर देता है। और वास्तव में मैंने हमें देखा है [पैगंबर के समय में] कि कोई भी इससे (सामूहिक प्रार्थना से) दूर नहीं रहता था सिवाय उस मुनाफ़िक़ (पाखंडी) के जिसका निफ़ाक़ (पाखंड) जगज़ाहिर हो। यहाँ तक कि एक आदमी को दो आदमियों के बीच सहारा देकर लाया जाता था ताकि वह कतार में खड़ा हो सके। तो उन्होंने (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) अपने प्रवचन में स्पष्ट किया कि [नमाज़ के लिए] एकत्रित होना हिदायत की सुन्नतों में से एक सुन्नत है, और इसे छोड़ना गुमराहियत (भटकाव) है। इसीलिए काज़ी अबू अल-फ़ज़ल इयाज़ (1) ने कहा: स्पष्ट सुन्नतों को छोड़ने के लिए आपसी सहमति (षड्यंत्र) के बारे में मतभेद है: क्या इसके लिए उनसे लड़ना चाहिए या (2) नहीं? सही विचार यह है कि उनसे लड़ना चाहिए; क्योंकि उन पर सहमति उन्हें मिटाने (खत्म करने) के समान है। मैं कहता हूँ: इसके आधार पर, यदि सुन्नत स्थापित हो जाए और स्पष्ट हो जाए, तो अकेले नमाज़ पढ़ना जायज़ और सही है। मुस्लिम (3) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "एक आदमी की जमात (समूह) में नमाज़ उसके घर या उसके बाज़ार की नमाज़ से बीस से अधिक गुना अधिक पुण्य रखती है। और ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि उनमें से कोई वुज़ू करता है और अच्छी तरह से वुज़ू करता है, फिर मस्जिद आता है, और नमाज़ के अलावा और कोई चीज़ उसे नहीं निकालती, वह नमाज़ के अलावा और कुछ नहीं चाहता, तो वह जो भी कदम उठाता है, उससे उसका एक दर्जा बढ़ जाता है और एक गुनाह मिटा दिया जाता है, यहाँ तक कि वह मस्जिद में प्रवेश कर जाता है। जब वह मस्जिद में प्रवेश करता है, तो वह नमाज़ की स्थिति में माना जाता है जब तक कि नमाज़ ही उसे वहाँ रोक कर रखती है। और फरिश्ते तुम में से किसी के लिए दुआ करते रहते हैं जब तक वह अपनी नमाज़ की जगह पर बैठा रहता है, वे कहते हैं: 'ऐ अल्लाह, उस पर रहम कर; ऐ अल्लाह, उसे माफ कर दे; ऐ अल्लाह, उसकी तौबा कुबूल कर,' जब तक कि वह वहाँ किसी को तकलीफ न दे और जब तक कि उसका वुज़ू न टूटे।" अबू हुरैरा से पूछा गया: "वुज़ू टूटना (हदस) क्या है?" उन्होंने कहा: "हवा खारिज होना, धीरे या ज़ोर से।" तेरहवीं बात: विद्वानों ने जमात को मिलने वाली इस अतिरिक्त फज़ीलत (पुण्य) के बारे में मतभेद किया है: क्या यह केवल जमात होने के कारण है चाहे वह कहीं भी हो, या यह फज़ीलत केवल उस जमात के लिए है जो मस्जिद में होती है, उन कार्यों के कारण जो मस्जिदों के साथ विशिष्ट हैं, जैसा कि हदीस (4) में आया है? इसके दो विचार हैं, और पहला अधिक स्पष्ट है; क्योंकि 'जमात'

वह गुण है जिस पर यह हुक्म (आदेश) टिका है। और अल्लाह बेहतर जानता है। (1) इब्न मूसा अल-यहसुबी अल-अंदलुसी, फिर अल-सब्ती, मालिकी, हाफिज़, कई किताबों के लेखक, उनकी मृत्यु वर्ष (544 हिजरी) में हुई। अल-सियार 20/212। और उल्लिखित बात उनकी पुस्तक इकमल अल-मुल्लिम बि फ़वाइद मुस्लिम 2/622 में है। (2) (म) में: या। (3) संख्या (649): (272) [1/459]। इसे बुखारी (477) ने भी रिवायत किया है, और यह अल-मुसनद (7430) में है। (4) यानी अबू हुरैरा की पहले बताई गई हदीस।

سورة البقرہ : آیت ٤٣ ٣٤ ...شخص وضو کرتا ہے، پس اچھی طرح وضو کرتا ہے، پھر ان مساجد میں سے کسی مسجد کا قصد کرتا ہے تو اللہ تعالیٰ اس کے ہر قدم کے بدلے ایک نیکی لکھ دیتا ہے، اس کے ذریعے اس کا ایک درجہ بلند کرتا ہے، اور اس کے ذریعے اس کا ایک گناہ مٹا دیتا ہے، اور یقیناً میں نے ہمیں دیکھا ہے [صحابہ کے دور میں] کہ اس (جماعت کی نماز) سے پیچھے نہیں رہتا تھا مگر وہی منافق جس کا نفاق معلوم ہوتا تھا، اور ایک آدمی کو لایا جاتا تھا جو دو آدمیوں کے سہارے ہوتا تھا یہاں تک کہ اسے صف میں کھڑا کر دیا جاتا تھا۔ پس انہوں نے (رضی اللہ عنہ) اپنی گفتگو میں واضح کیا کہ [نماز کے لیے] جمع ہونا ہدایت کی سنتوں میں سے ایک سنت ہے، اور اسے چھوڑنا گمراہی ہے۔ اسی لیے قاضی ابوالفضل عیاض (١) نے کہا: ظاہر سنتوں کو چھوڑنے پر اتفاق کر لینے (سازش کرنے) کے بارے میں اختلاف ہے: کیا اس پر ان سے قتال (جنگ) کیا جائے گا یا (٢) نہیں؟ اور صحیح قول ان سے قتال کا ہے؛ کیونکہ اس پر متفق ہونا ان کو مٹانے کے مترادف ہے۔ میں کہتا ہوں: پس اس بنیاد پر اگر سنت قائم ہو جائے اور ظاہر ہو جائے، تو اکیلے نماز پڑھنا جائز اور صحیح ہے۔ مسلم (٣) نے ابوہریرہ سے روایت کی کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "آدمی کی باجماعت نماز اس کے گھر اور بازار کی نماز سے بیس سے کچھ اوپر درجے زیادہ فضیلت رکھتی ہے، اور وہ اس لیے کہ когда کوئی شخص وضو کرتا ہے اور اچھی طرح وضو کرتا ہے، پھر مسجد آتا ہے، اسے نماز کے علاوہ کوئی چیز نہیں نکالتی، وہ نماز کے سوا کسی اور چیز کا ارادہ نہیں رکھتا، تو وہ جو بھی قدم اٹھاتا ہے اس کے بدلے اس کا ایک درجہ بلند کیا جاتا ہے اور ایک گناہ مٹا دیا جاتا ہے، یہاں تک کہ وہ مسجد میں داخل ہو جاتا ہے، اور جب وہ مسجد میں داخل ہوتا ہے تو جب تک وہ نماز کے انتظار میں رہتا ہے وہ نماز ہی کی حالت میں ہوتا ہے، اور فرشتے تم میں سے اس شخص کے لیے دعا کرتے

رہتے ہیں جب تک وہ اپنی جائے نماز پر بیٹھا رہتا ہے، وہ کہتے ہیں: اے اللہ اس پر رحم فرما، اے اللہ اسے بخش دے، اے اللہ اس کی توبہ قبول فرما، جب تک کہ وہ وہاں کسی کو تکلیف نہ دے اور جب تک کہ بے وضو نہ ہو۔" ابوہریرہ سے پوچھا گیا: بے وضو ہونا (حدث) کیا ہے؟ انہوں نے کہا: ہوا کا خارج ہونا، آہستہ یا آواز کے ساتھ تیرہویں بات: اور علماء نے جماعت کے لیے مضاف اس فضیلت کے بارے میں اختلاف کیا ہے: کیا یہ صرف جماعت کی وجہ سے ہے جہاں بھی ہو، یا یہ فضیلت صرف اس جماعت کے لیے ہے جو مسجد میں ہو، ان کاموں کی وجہ سے جو مساجد کے ساتھ خاص ہیں جیسا کہ حدیث (٤) میں آیا ہے؟ اس بارے میں دو اقوال ہیں، اور پہلا قول زیادہ واضح ہے؛ کیونکہ 'جماعت' وہ صفت ہے جس پر حکم کا مدار رکھا گیا ہے۔ واللہ اعلم۔ (١) ابن موسیٰ الیحصبی الاندلسی، پھر السبتی، مالکی، حافظ، صاحب تصانیف، وفات ٥٤٤ھ السیر ٢٠/ ٢١٢۔ اور مذکورہ کلام ان کی کتاب اکمال المعلم بفوائد مسلم ٢/ ٦٢٢ میں ہے۔ (٢) (م) میں ہے: یا۔ (٣) رقم (٦٤٩): (٢٧٢) [٤٥٩/١]۔ اور اسے بخاری (٤٧٧) نے بھی روایت کیا ہے۔ اور یہ مسند (٧٤٣٠) میں ہے۔ (٤) یعنی ابوہریرہ کی وہ حدیث جو ابھی اوپر ذکر ہوئی

35 Surah Al-Baqarah: Verse 43

And whatever pertains to increasing steps towards the mosques, intending to visit them, and staying within them—that constitutes an increase in reward beyond the merit of congregational prayer(1). And Allah knows best.

Fourteenth: They also differed: Does one congregation excel another based on its size and the virtue of the Imam? Malik said: No. Ibn Habib said: Yes(2); because the Prophet ﷺ said: "A man's prayer with another man is purer than his prayer alone, and his prayer with two men is purer than his prayer with one man, and what is more [in number] is more beloved to Allah." Narrated by Ubayy ibn Ka'b, and recorded by Abu Dawood(3), and in its chain of narration is weakness.

Fifteenth: They also differed regarding one who has prayed in congregation; should he repeat that prayer in another congregation? Malik, Abu Hanifa, Al-Shafi'i, and their companions said: Only the person who prayed alone in his house with his family, or elsewhere, repeats the prayer in congregation with the Imam. As for one who has already prayed in a congregation—even if small—he does not repeat it in a congregation, neither one larger nor one smaller than it.

Ahmad ibn Hanbal, Ishaq ibn Rahawayh, and Dawud ibn Ali said: It is permissible for someone who has prayed in congregation and finds another congregation for that same prayer to repeat it with them if he wishes; because it becomes a voluntary (nafila) and sunnah prayer. This has been narrated from Hudhayfah ibn al-Yaman, Abu Musa al-Ash'ari, Anas ibn Malik, Silah ibn Zufar(4), al-Sha'bi, and al-Nakha'i, and this was the view held by Hammad ibn Zayd(5) and Sulayman ibn Harb(6).

Malik argued using the saying of the Prophet ﷺ: "A prayer is not to be offered twice in one day," and some narrations state: "Do not pray [twice]." Narrated by Sulayman ibn Yasar from Ibn Umar(7). Ahmad and Ishaq agreed that the meaning...

(1) Al-Mufhim 2/275. (2) The previous source. (3) In his Sunan (554). It was also recorded by Al-Nasa'i in Al-Mujtaba 2/104, and in Al-Kubra (919), and it is in Al-Musnad (21266). Ibn Abd al-Barr said in Al-Tamhid 6/317: A hadith that is not strong, not to be used as evidence. (4) Al-Absi al-Kufi, a prominent Tabi'i, the congregation [of scholars] narrated from him, died in the year (70 AH). Al-Siyar 4/517. (5) Abu Ismail al-Azdi al-Hafiz, Ibn Hibban said: He was blind and memorized all his hadith, died in the year (179 AH). Al-Siyar 7/456. (6) Abu Ayyub al-Washahi al-Azdi al-Basri, judge of Mecca, died in the year (224 AH). Al-Siyar 10/330. This entire issue is discussed in Al-

Tamhid 4/243 - 246. (7) Recorded by Ahmad (4689), Abu Dawood (579), and Al-Nasa'i in Al-Mujtaba 2/114, and in Al-Kubra (935).

35 सूरह अल-बकराह: आयत 43

और जो कुछ मस्जिदों की ओर अधिक कदम बढ़ाने, वहां आने के इरादे और वहां रुकने के बारे में है, तो वह जमाअत की फजीलत के अतिरिक्त सवाब में वृद्धि है(1)। और अल्लाह बेहतर जानता है।

चौदहवीं (बात): उन्होंने इस बात में भी मतभेद किया: क्या एक जमाअत दूसरी जमाअत से संख्या की अधिकता और इमाम की फजीलत के कारण श्रेष्ठ होती है? मालिक ने कहा: नहीं। इब्न हबीब ने कहा: हाँ(2); क्योंकि नबी ﷺ ने फरमाया: "एक आदमी की दूसरे आदमी के साथ नमाज अकेले नमाज पढ़ने से अधिक पवित्र है, और दो आदमियों के साथ उसकी नमाज एक आदमी के साथ नमाज पढ़ने से अधिक पवित्र है, और जो संख्या में अधिक हो वह अल्लाह को अधिक प्रिय है।" इसे उबै बिन काब ने रिवायत किया है, और अबू दाऊद ने इसे निकाला है(3), और इसकी सनद में कमजोरी है।

पंद्रहवीं (बात): उन्होंने उस व्यक्ति के बारे में भी मतभेद किया जिसने जमाअत में नमाज पढ़ी; क्या वह उसी नमाज को दूसरी जमाअत में दोहराएगा? मालिक, अबू हनीफा, शाफई और उनके साथियों ने कहा: केवल वही व्यक्ति इमाम के साथ जमाअत में नमाज दोहराएगा जिसने अपने घर में अपने परिवार के साथ या कहीं और अकेले नमाज पढ़ी हो। जहाँ तक उस व्यक्ति का सवाल है जिसने पहले ही जमाअत में नमाज पढ़ी है - चाहे वह छोटी ही क्यों न हो - वह उसे किसी अन्य जमाअत में नहीं दोहराएगा, न बड़ी में और न छोटी में।

अहमद बिन हंबल, इसहाक बिन राहवेह और दाऊद बिन अली ने कहा: जिस किसी ने जमाअत में नमाज पढ़ी हो और उसी नमाज के लिए दूसरी जमाअत मिल जाए, तो उसके लिए जायज है कि वह चाहे तो उनके साथ नमाज दोहरा ले; क्योंकि यह नफिल और सुन्नत है। यह हुजैफा बिन अल-यमान, अबू मूसा अल-अशअरी, अनस बिन मलिक, सिलाह बिन जुफर(4), अल-शाबी और अल-नखई से रिवायत है, और हम्माद बिन ज़ैद(5) और सुलेमान बिन हर्ब(6) ने भी यही कहा है।

मालिक ने नबी ﷺ के इस कथन से तर्क दिया: "एक दिन में एक नमाज दो बार नहीं पढ़ी जाएगी", और कुछ रिवायतें कहती हैं: "नमाज मत पढ़ो [दोबारा]"। इसे सुलेमान बिन यसार ने इब्न उमर से रिवायत किया है(7)। अहमद और इसहाक इस बात पर सहमत हुए कि इसका अर्थ...

(1) अल-मुफहिम 2/275। (2) पूर्वोक्त स्रोत। (3) अपनी सुनन (554) में। इसे अल-नसाई ने अल-मुजतबा 2/104 में और अल-कुबरा (919) में भी दर्ज किया है, और यह अल-मुसनद (21266) में है। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तमहीद 6/317 में कहा: यह हदीस मजबूत नहीं है, इसके जैसे से दलील

नहीं दी जा सकती। (4) अल-अब्सी अल-कूफी, एक बड़े ताबेई, विद्वानों की जमाअत ने उनसे रिवायत की है, मृत्यु वर्ष (70 हिजरी)। अल-सियार 4/517। (5) अबू इस्माइल अल-अज़दी अल-हाफ़िज़, इब्न हिब्बान ने कहा: वे अंधे थे और अपनी पूरी हदीस याद रखते थे, मृत्यु वर्ष (179 हिजरी)। अल-सियार 7/456। (6) अबू अय्यूब अल-वाशही अल-अज़दी अल-बसरी, मक्का के काजी, मृत्यु वर्ष (224 हिजरी)। अल-सियार 10/330। यह पूरा मसला अल-तमहीद 4/243 - 246 में वर्णित है। (7) इसे अहमद (4689), अबू दाऊद (579) और अल-नसाई ने अल-मुजतबा 2/114 में और अल-कुबरा (935) में दर्ज किया है।

۳۵ سورہ البقرہ: آیت ۴۳

اور مساجد کی طرف کثرت سے قدم اٹھانے، وہاں جانے کا قصد کرنے اور وہاں ٹھہرنے کا جو عمل ہے، وہ جماعت کی فضیلت کے علاوہ اضافی ثواب ہے(۱)۔ واللہ اعلم۔

چودہویں بات: ان کے درمیان اس میں بھی اختلاف ہوا کہ کیا ایک جماعت دوسری جماعت سے کثرتِ تعداد اور امام کی فضیلت کی وجہ سے برتر ہوتی ہے؟ امام مالک نے کہا: نہیں۔ ابن حبیب نے کہا: ہاں(۲)؛ کیونکہ نبی ﷺ نے فرمایا: "آدمی کی دوسرے آدمی کے ساتھ نماز اکیلے نماز پڑھنے سے زیادہ پاکیزہ ہے، اور اس کی دو آدمیوں کے ساتھ نماز ایک آدمی کے ساتھ نماز پڑھنے سے زیادہ پاکیزہ ہے، اور جو تعداد میں زیادہ ہو وہ اللہ کو زیادہ محبوب ہے۔" اسے ابی بن کعب نے روایت کیا ہے، اور ابوداؤد نے اسے نقل کیا ہے(۳)، اور اس کی اسناد میں کمزوری ہے۔

پندرہویں بات: ان کے درمیان اس شخص کے بارے میں بھی اختلاف ہوا جس نے جماعت میں نماز پڑھی؛ کیا وہ اپنی وہی نماز دوسری جماعت میں لوٹائے گا؟ امام مالک، ابوحنیفہ، شافعی اور ان کے اصحاب نے کہا: امام کے ساتھ جماعت میں وہی شخص نماز لوٹائے گا جس نے اپنے گھر میں اپنے اہل و عیال کے ساتھ یا کہیں اور تنہا نماز پڑھی ہو۔ رہا وہ شخص جس نے پہلے ہی جماعت میں نماز پڑھی ہو - چاہے وہ چھوٹی ہی کیوں نہ ہو - تو وہ اسے کسی دوسری جماعت میں نہیں لوٹائے گا، نہ اس سے بڑی میں اور نہ ہی چھوٹی میں۔

احمد بن حنبل، اسحاق بن راہویہ، اور داؤد بن علی نے کہا: جس نے جماعت میں نماز پڑھی ہو اور اسے اسی نماز کے لیے دوسری جماعت مل جائے تو اس کے لیے جائز ہے کہ اگر چاہے تو ان کے ساتھ نماز دہرا لے؛ کیونکہ یہ نفل اور سنت ہے، اور یہ حضرت حذیفہ بن الیمان، ابوموسیٰ

الاشعری، انس بن مالک، صلہ بن زفر(٤)، شعبی اور نخعی سے مروی ہے، اور یہی بات حماد بن زید(٥) اور سلیمان بن حرب(٦) نے کہی ہے۔

امام مالک نے نبی ﷺ کے اس قول سے احتجاج کیا: "ایک دن میں ایک نماز دو بار نہ پڑھی جائے"، اور بعض روایات میں ہے: "تم [دوبارہ] نہ پڑھو"۔ اسے سلیمان بن یسار نے ابن عمر سے روایت کیا ہے(٧)۔ احمد اور اسحاق اس بات پر متفق ہوئے کہ معنی...

(١) المفہم ٢/ ٢٧٥۔ (٢) مصدرِ سابق۔ (٣) اپنی سنن (٥٥٤) میں۔ اور اسے نسائی نے بھی المجتبیٰ ٢/ ١٠٤ اور الکبریٰ (٩١٩) میں روایت کیا ہے، اور یہ المسند (٢١٢٦٦) میں ہے۔ ابن عبد البر نے التمہید ٦/ ٣١٧ میں کہا: یہ حدیث قوی نہیں ہے، اس جیسی سے احتجاج نہیں کیا جا سکتا۔ (٤) العبسی الکوفی، بڑے تابعی، ان سے محدثین کی جماعت نے روایت کی ہے، وفات سن (٧٠ھ)۔ السیر ٤/ ٥١٧۔ (٥) ابواسماعیل الازدی الحافظ، ابن حبان نے کہا: وہ نابینا تھے اور اپنی تمام احادیث یاد رکھتے تھے، وفات سن (١٧٩ھ)۔ السیر ٧/ ٤٥٦۔ (٦) ابوایوب الواشحی الازدی البصری، قاضی مکہ، وفات سن (٢٢٤ھ)۔ السیر ١٠/ ٣٣٠۔ اور یہ مسئلہ مکمل طور پر التمہید ٤/ ٢٤٣ - ٢٤٦ میں ہے۔ (٧) اسے احمد (٤٦٨٩)، ابوداؤد (٥٧٩) اور نسائی نے المجتبیٰ ٢/ ١١٤ اور الکبریٰ (٩٣٥) میں روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 [Page] 36

This Hadith mentions that a person performs the obligatory prayer, then stands up and performs it a second time intending for it to be the obligatory prayer again. However, if he prays it with the Imam as a Sunnah or voluntary (Nafila) prayer, it is not considered a repetition of the prayer. The Messenger of Allah (peace be upon him) said to those whom he commanded to repeat the prayer in congregation: "It is a voluntary prayer for you." From the Hadith of Abu Dharr and others(3).

Sixteenth: Muslim reported (4) from Abu Mas'ud that the Prophet (peace be upon him) said: "The one who is most well-versed in Allah's Book should lead the people in prayer. If they are equal in their recitation, then the one who is most knowledgeable of the Sunnah. If they are equal in their knowledge of the Sunnah, then the one who migrated (hijrah) first. If they are equal in migration, then the one who embraced Islam first. A man should not lead another in prayer in his own domain of authority, nor should he sit in his place of honor in his house without his permission." In another narration: "older in age" instead of "first in embracing Islam"(5).

Abu Dawud reported it and said: Shu'bah said: I said to Isma'il: What is his 'place of honor' (takrimatihi)? He said: His bed/couch (6).

At-Tirmidhi reported it (7) and said: The Hadith of Abu Mas'ud is a good and authentic (Hasan Sahih) Hadith, and the people of knowledge act upon it.

They said: The most deserving of the people to lead the prayer is the one most well-versed in the Book of Allah and the most knowledgeable of the Sunnah. And they said: The owner of the house is more deserving of leading the prayer.

Some of them said: If the owner of the house gives permission to another, there is no harm in him leading the prayer. But some of them disliked it and said: The Sunnah is for the owner of the house to lead the prayer.

---

(1) In [manuscript] (M): "or", and in Al-Tamhid 4/247: "Sunnah of voluntary prayer". (2) In the copies and (M): "the prayer", and what is established from Al-Tamhid 4/247 (and the text is from it). (3) The Hadith of Abu Dharr was reported by Ahmad (21324), and Muslim (648): (238). It was also reported by Ahmad (17474), Abu Dawud (575), At-Tirmidhi (219), and Al-Nasa'i in Al-Mujtaba 2/112-113, and in Al-Kubra (933) from the Hadith of Yazid bin Al-Aswad Al-Amiri. (4) Number (673): (290). (5) Sahih Muslim (673): (291), and in it: "the eldest of them in age". (6) Sunan Abu Dawud (582). The

mentioned Isma'il is Ibn Raja' al-Zubaidi, one of the narrators of the chain. (7) In his Sunan (235).

सूरह अल-बकरा: आयत 43 [पृष्ठ] 36

यह हदीस बताती है कि एक व्यक्ति अनिवार्य (फ़र्ज़) नमाज़ पढ़ता है, फिर खड़ा होता है और उसे दूसरी बार पढ़ता है, फिर से फ़र्ज़ की नीयत से। लेकिन, यदि वह इसे इमाम के साथ सुन्नत या स्वैच्छिक (नफ़िल) के रूप में पढ़ता है, तो इसे नमाज़ का दोहराव नहीं माना जाता है। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने उन लोगों से कहा जिन्हें उन्होंने जमात में नमाज़ दोहराने का आदेश दिया था: "यह तुम्हारे लिए नफ़िल (स्वैच्छिक) है।" अबू धर और अन्य की हदीस से (3)।

सोलहवीं: मुस्लिम ने अबू मसूद से रिवायत की है (4) कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "लोगों का इमाम वह बने जो अल्लाह की किताब को सबसे ज़्यादा जानने वाला (अकरऊहुम) हो। यदि वे क़िरअत (पाठ) में समान हों, तो वह जो सुन्नत का सबसे अधिक ज्ञाता हो। यदि वे सुन्नत में समान हों, तो वह जिसने पहले हिजरत की हो। यदि वे हिजरत में समान हों, तो वह जिसने पहले इस्लाम स्वीकार किया हो। कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के अधिकार क्षेत्र में इमामत न करे, और न ही उसके घर में उसकी अनुमति के बिना उसके सम्मान के स्थान (तक़रिमतीही) पर बैठे।" एक अन्य रिवायत में: "इस्लाम स्वीकार करने" के स्थान पर "उम्र में बड़ा" शब्द आया है (5)।

अबू दाऊद ने इसे रिवायत किया और कहा: शुबा ने कहा: मैंने इस्माइल से पूछा: उसकी 'तक़रिमह' क्या है? उन्होंने कहा: उसका बिस्तर/गद्दा (6)।

तिर्मिज़ी ने इसे रिवायत किया (7) और कहा: अबू मसूद की हदीस एक हसन सहीह हदीस है, और विद्वान इसी पर अमल करते हैं।

उन्होंने कहा: लोगों में इमामत का सबसे अधिक हक़दार वह है जो अल्लाह की किताब को सबसे ज़्यादा जानने वाला और सुन्नत का सबसे बड़ा ज्ञाता हो। और उन्होंने कहा: घर का मालिक इमामत का अधिक हक़दार है।

उनमें से कुछ ने कहा: यदि घर का मालिक किसी दूसरे को अनुमति दे देता है, तो उसके लिए नमाज़ पढ़ाने में कोई बुराई नहीं है। लेकिन उनमें से कुछ ने इसे नापसंद किया और कहा: सुन्नत यही है कि घर का मालिक ही नमाज़ पढ़ाए।

---

(1) (म) में: 'या', और अल-तमहीद 4/247 में: 'सुन्नत ततौव' (स्वैच्छिक सुन्नत)। (2) प्रतियों और (म) में: 'अस्-सलात', और अल-तमहीद 4/247 से जो प्रमाणित है (और शब्द वहीं से हैं)। (3) अबू धर की

हदीस अहमद (21324) और मुस्लिम (648): (238) द्वारा रिवायत की गई है। इसे अहमद (17474), अबू दाऊद (575), तिर्मिज़ी (219) और अल-नसाई ने अल-मुजतबा 2/112-113 में और अल-कुबरा (933) में यज़ीद बिन अल-असवद अल-आमरी की हदीस से भी रिवायत किया है। (4) संख्या (673): (290)। (5) सहीह मुस्लिम (673): (291), और इसमें है: 'उम्र में उनसे बड़े'। (6) सुनन अबू दाऊद (582)। उल्लिखित इस्माइल, इब्न रजा अल-जुबैदी हैं, जो इसनाद (रिवायत की श्रृंखला) के पुरुषों में से एक हैं। (7) उनके सुनन (235) में।

سورة البقرہ: آیت ۴۳ [صفحہ] ۳۶

یہ حدیث اس بارے میں ہے کہ انسان فرض نماز پڑھے، پھر کھڑا ہو اور دوبارہ نماز پڑھے اور اس سے دوبارہ فرض کی نیت کرے۔ لیکن اگر اس نے امام کے ساتھ اس نیت سے پڑھی کہ یہ سنت اور نفل ہے، تو یہ اعادہ نماز (نماز دہرانا) نہیں ہے۔ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے ان لوگوں سے فرمایا جنہیں آپ نے جماعت کے ساتھ نماز دہرانے کا حکم دیا تھا: "یہ تمہارے لیے نفل ہے۔" حضرت ابو ذر رضی اللہ عنہ اور دیگر کی حدیث سے (۳)۔

سولہویں بات: امام مسلم نے (۴) حضرت ابو مسعود رضی اللہ عنہ سے روایت کی کہ نبی اکرم صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "لوگوں کی امامت وہ کرے جو کتاب اللہ کا سب سے زیادہ قاری (جاننے والا) ہو۔ اگر وہ قرأت میں برابر ہوں تو وہ جو سنت کا سب سے زیادہ علم رکھنے والا ہو۔ اگر وہ سنت کے علم میں برابر ہوں تو وہ جس نے پہلے ہجرت کی ہو۔ اگر وہ ہجرت میں برابر ہوں تو وہ جو اسلام لانے میں مقدم ہو۔ کوئی شخص دوسرے شخص کے زیر اثر علاقے (سلطنت) میں اس کی امامت نہ کرے، اور نہ ہی اس کے گھر میں اس کی جگہِ عزت (تکرمہ) پر اس کی اجازت کے بغیر بیٹھے۔" ایک روایت میں "اسلام لانے" کی جگہ "عمر میں بڑا" کے الفاظ ہیں (۵)۔

امام ابو داؤد نے اسے روایت کیا اور کہا: شعبہ نے کہا: میں نے اسماعیل سے پوچھا: اس کی 'تکرمہ' (جگہِ عزت) کیا ہے؟ انہوں نے کہا: اس کا بستر (فرش) (۶)۔

امام ترمذی نے اسے روایت کیا (۷) اور کہا: ابو مسعود کی حدیث حسن صحیح ہے، اور اہل علم کا اسی پر عمل ہے۔

علماء نے کہا: امامت کے سب سے زیادہ حقدار وہ لوگ ہیں جو کتاب اللہ کے سب سے بڑے قاری اور سنت کے سب سے بڑے عالم ہوں۔ اور انہوں نے کہا: گھر کا مالک امامت کا زیادہ حقدار ہے۔

بعض نے کہا: اگر گھر کا مالک کسی دوسرے کو اجازت دے دے تو اس کے نماز پڑھانے میں کوئی حرج نہیں، لیکن بعض نے اسے ناپسند کیا اور کہا: سنت یہی ہے کہ گھر کا مالک ہی نماز پڑھائے۔

---

(۱) نسخہ (م) میں: 'یا'، اور تمہید ۴/۲۴۷ میں: 'سنت تطوع' (نفلی سنت)۔ (۲) نسخوں اور نسخہ (م) میں: 'الصلاۃ' ہے، اور تمہید ۴/۲۴۷ سے جو ثابت ہے (اور عبارت وہیں سے ہے)۔ (۳) حضرت ابو ذر کی حدیث امام احمد (۲۱۳۲۴) اور مسلم (۶۴۸): (۲۳۸) نے روایت کی۔ اسے احمد (۱۷۴۷۴)، ابو داؤد (۵۷۵)، ترمذی (۲۱۹) اور نسائی نے المجتبیٰ ۲/۱۱۲-۱۱۳ اور الکبریٰ (۹۳۳) میں یزید بن الاسود العامری کی حدیث سے بھی روایت کیا ہے۔ (۴) رقم (۶۷۳): (۲۹۰)۔ (۵) صحیح مسلم (۶۷۳): (۲۹۱)، اور اس میں ہے: 'ان میں عمر میں سب سے بڑے۔' (۶) سنن ابو داؤد (۵۸۲)۔ مذکورہ اسماعیل ابن رجاء الزبیدی ہیں، جو اسناد کے رجال میں سے ایک ہیں۔ (۷) اپنی سنن (۲۳۵) میں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 37 Ibn al-Mundhir (1) said: It was narrated to us from al-Ash'ath bin Qais that he put forward a young boy (to lead the prayer), and said: "I am only putting forward the Qur'an." Among those who said: "The one who leads the people should be the one who recites the Qur'an best" are: Ibn Sirin, al-Thawri, Ishaq, and the People of Opinion (As-hab al-Ra'y). Ibn al-Mundhir (2) said: This is what we say, because it is in accordance with the Sunnah. Malik said: The one who is most knowledgeable among the people should step forward if his condition is good, and indeed age (3) has its right. Al-Awza'i said: The most knowledgeable in jurisprudence (fiqh) among them should lead them. Shafi'i and Abu Thawr said the same if he can recite the Qur'an, because the Faqih (jurist) is more aware of what might happen during prayer (accidental occurrences). They interpreted the Hadith that the one who recited best among the Companions was the most knowledgeable in jurisprudence, because they used to gain understanding of jurisprudence through the Qur'an. It was their common practice to call the jurists "reciters" (4). They cited as evidence the Prophet ﷺ putting Abu Bakr forward during his final illness, due to his virtue and knowledge (5). Ishaq said: The Prophet ﷺ only put him forward to indicate that he would be the successor (Khalifah) (6) after him. This was mentioned by Abu 'Umar in "At-Tamheed" (7). Abu Bakr al-Bazzar narrated with a good chain of transmission from Abu Hurairah that he said: The Messenger of Allah ﷺ said: "When you travel, let the one among you who recites best lead you in prayer, even if he is the youngest of you. If he leads you, then he is your leader." He said: We do not know this narrated from the Prophet ﷺ except from the narration of Abu Hurairah with this chain (8). I say: Leading the prayer by a young person is permissible if he is a reciter. This is established in Sahih al-Bukhari (9) from...

(1) Al-Awsat 4/149 and 151. (2) Al-Awsat 4/150. Similarly. (3) In (Z): for the Sunnahs, and in (Zha'): for the elderly. (4) Al-Awsat 4/150, and Al-Mufhim 2/297. (5) Narrated by Ahmad (2406), Al-Bukhari (664), and Muslim (418): (90) from the Hadith of Aisha, may Allah be pleased with her. (6) In (M): his successor. (7) 22/124, and the discussion therein is attributed to Ahmad ibn Hanbal, not Ishaq. (8) Kashf al-Astar (466) and (1671). Al-Haythami graded its chain as good in Al-Majma' 2/64, but said in another place 5/255: "In it is someone I do not know." (9) No. (4302), and it is in Al-Musnad (20333).

सूरा अल-बकरा: आयत 43 37 इब्न अल-मुंदिर (1) ने कहा: हमें अल-अश'अथ बिन क़ैस से रिवायत मिली है कि उन्होंने एक युवा लड़के को (नमाज़ पढ़ाने के लिए) आगे किया और कहा: "मैं केवल कुरान को आगे कर रहा हूँ।" और उन लोगों में से जिन्होंने कहा: "लोगों की इमामत वह करे जो कुरान को सबसे बेहतर पढ़ने वाला हो": इब्न सिरिन, अल-थौरी, इसहाक और असहाब अल-रय (राय वाले लोग) हैं। इब्न अल-मुंदिर (2) ने कहा: हम यही कहते हैं, क्योंकि यह सुन्नत के अनुकूल है। मालिक ने कहा: लोगों में से जो सबसे अधिक जानकार हो, उसे आगे आना चाहिए यदि उसकी स्थिति अच्छी हो, और वास्तव में आयु (3) का भी अधिकार है। अल-औज़ाई ने कहा: उनमें से जो सबसे बड़ा फ़क़ीह (विधिवेत्ता) हो, उसे उनकी इमामत करनी चाहिए। शाफ़ी और अबू थौर ने भी यही कहा यदि वह कुरान पढ़ सकता हो, क्योंकि फ़क़ीह नमाज़ के दौरान होने वाली घटनाओं (आकस्मिकताओं) के बारे में अधिक जानता है। उन्होंने हदीस की व्याख्या इस प्रकार की कि सहाबा के बीच जो सबसे अच्छा पढ़ने वाला था, वह सबसे बड़ा फ़क़ीह भी था, क्योंकि वे कुरान के माध्यम से ही फ़िक़ह (न्यायशास्त्र) की समझ हासिल करते थे। फ़क़ीहों को "क़ुर्रा" (क़ारी) कहना उनका सामान्य चलन था (4)। उन्होंने अपनी दलील में नबी ﷺ द्वारा अपनी अंतिम बीमारी के दौरान अबू बक्र को उनके गुण और ज्ञान के कारण आगे करने का उल्लेख किया है (5)। इसहाक ने कहा: नबी ﷺ ने उन्हें केवल यह संकेत देने के लिए आगे किया था कि वे उनके बाद उनके उत्तराधिकारी (ख़लीफ़ा) (6) होंगे। अबू उमर ने "अल-तम्हीद" (7) में इसका उल्लेख किया है। अबू बक्र अल-बज्ज़ार ने अबू हुरैरा से एक अच्छी सनद के साथ रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "जब तुम यात्रा करो, तो तुममें से जो सबसे अच्छा क़ारी (पढ़ने वाला) हो, वह तुम्हारी इमामत करे, चाहे वह तुममें सबसे छोटा ही क्यों न हो। जब वह तुम्हारी इमामत करे, तो वह तुम्हारा अमीर (नेता) है।" उन्होंने कहा: हमें अबू हुरैरा की इस सनद (8) के अलावा नबी ﷺ से इसकी कोई और रिवायत नहीं पता। मैं कहता हूँ: एक छोटे बच्चे द्वारा इमामत करना जायज़ है यदि वह क़ारी हो। यह सहीह अल-बुखारी (9) में साबित है...

(1) अल-औसत 4/149 और 151। (2) अल-औसत 4/150। इसी तरह। (3) (ज़) में: सुन्नत के लिए, और (ज़ा) में: बुजुर्ग के लिए। (4) अल-औसत 4/150, और अल-मुफिम 2/297। (5) इसे अहमद (2406), अल-बुखारी (664) और मुस्लिम (418): (90) ने आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस से निकाला है। (6) (म) में: उनके उत्तराधिकारी। (7) 22/124, और इसमें चर्चा अहमद बिन हंबल के लिए है, इसहाक के लिए नहीं। (8) कश्फ अल-अस्तार (466) और (1671)। अल-हैथमी ने अल-

मजमा 2/64 में इसकी सनद को हसन कहा है, लेकिन दूसरी जगह 5/255 में कहा: "इसमें कोई ऐसा है जिसे मैं नहीं जानता।" (9) नंबर (4302), और यह अल-मुसनद (20333) में है।

سورة البقرہ: آیت 43 37 ابن المنذر (1) نے کہا: ہمیں اشعث بن قیس سے روایت پہنچی ہے کہ انہوں نے ایک نوجوان لڑکے کو (نماز کے لیے) آگے کیا، اور کہا: "میں صرف قرآن کو آگے کر رہا ہوں۔" اور ان لوگوں میں سے جنہوں نے کہا کہ: "قوم کی امامت وہ کرے جو ان میں سب سے زیادہ قرآن پڑھنے والا ہو": ابن سیرین، ثوری، اسحاق اور اصحاب الرائے ہیں۔ ابن المنذر (2) نے کہا: ہم یہی کہتے ہیں، کیونکہ یہ سنت کے موافق ہے۔ امام مالک نے کہا: لوگوں میں سے جو سب سے زیادہ عالم ہو وہ آگے بڑھے بشرطیکہ اس کی حالت اچھی ہو، اور بے شک عمر (3) کا بھی ایک حق ہے۔ امام اوزاعی نے کہا: ان میں سے جو سب سے بڑا فقیہ ہو وہ ان کی امامت کرے۔ امام شافعی اور ابو ثور نے بھی یہی کہا بشرطیکہ وہ قرآن پڑھتا ہو، کیونکہ فقیہ نماز میں پیش آنے والے حوادث سے زیادہ واقف ہوتا ہے۔ انہوں نے حدیث کی تاویل یہ کی کہ صحابہ میں جو سب سے بہتر قاری ہوتا تھا وہی سب سے بڑا فقیہ ہوتا تھا، کیونکہ وہ قرآن ہی سے تفقہ حاصل کرتے تھے، اور ان کے ہاں عام دستور یہی تھا کہ وہ فقہاء کو "قراء" (4) کہتے تھے۔ انہوں نے اس پر نبی ﷺ کے اپنی اس بیماری کے دوران جس میں آپ کی وفات ہوئی، ابوبکرؓ کو ان کی فضیلت اور علم کی وجہ سے آگے کرنے سے استدلال کیا ہے (5)۔ اسحاق نے کہا: نبی ﷺ نے انہیں صرف اس لیے آگے کیا تاکہ یہ بتایا جا سکے کہ وہ آپ کے بعد خلیفہ (6) ہوں گے۔ اسے ابو عمر نے "التمہید" (7) میں ذکر کیا ہے۔ ابو بکر البزار نے ایک اچھی سند کے ساتھ ابوہریرہؓ سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جب تم سفر کرو، تو تم میں سے وہ امامت کرے جو تم میں سب سے بہتر قاری ہو، اگرچہ وہ تم میں سب سے چھوٹا ہو؛ اور جب وہ تمہاری امامت کرے تو وہ تمہارا امیر ہے"۔ انہوں نے کہا: ہم اس حدیث کو نبی ﷺ سے سوائے ابوہریرہؓ کی اسی

سند (8) کے کسی اور روایت سے نہیں جانتے۔ میں کہتا ہوں: چھوٹے بچے کی امامت جائز ہے اگر وہ قاری ہو، یہ صحیح بخاری (9) میں ثابت ہے...

(1) الاوسط 149/4 اور 151۔ (2) الاوسط 150/4۔ اسی طرح۔ (3) (ز) میں: سنتوں کے لیے، اور (ظ) میں: عمر رسیدہ کے لیے۔ (4) الاوسط 150/4، اور المفہم 297/2۔ (5) اسے احمد (2406)، بخاری (664)، اور مسلم (418): (90) نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (6) (م) میں: ان کے خلیفہ۔ (7) 124/22، اور اس میں کلام احمد بن حنبل کے لیے ہے، اسحاق کے لیے نہیں۔ (8) کشف الاستار (466) اور (1671)۔ ہیثمی نے المجمع 64/2 میں اس کی سند کو حسن قرار دیا ہے، لیکن ایک اور مقام 255/5 پر کہا ہے: اس میں ایک ایسا راوی ہے جسے میں نہیں جانتا۔ (9) نمبر (4302)، اور یہ مسند (20333) میں ہے۔

Amr bin Salama said: We were at a place where people passed by, and riders would pass us, so we would ask them: What is the matter with the people? Who is this man? They would say: He claims that Allah has sent him, He revealed to him such and such! He revealed to him such and such! So I used to memorize those words, as if they were being fixed (1) in my chest. The Arabs used to hesitate (2) in embracing Islam, saying: Leave him and his people, for if he prevails over them, then he is a true prophet. When the event of the Conquest [of Mecca] took place, every tribe rushed to embrace Islam, and my father led my tribe in embracing Islam. When he returned, he said: I have come to you, by Allah, from the true Prophet of Allah. He said: “Perform such and such a prayer at such and such a time (3). When the time for prayer arrives, let one of you call the Adhan, and let the one who has the most knowledge of the Quran lead you in prayer.” So they looked, and no one had more knowledge of the Quran than I did, because of what I used to learn from the riders. So they put me in front of them while I was a boy of six or seven years. I was wearing a cloak, and when I prostrated, it would shrink away from me, so a woman from the tribe said: Will you not cover (4) for us the backside of your reciter! So they bought material and cut a shirt for me, and I was never as happy with anything as I was with that shirt.

Among those who permitted the Imamate of a prepubescent boy were Al-Hasan Al-Basri and Ishaq bin Rahawayh, and it was chosen by Ibn al-Mundhir (5) if he understands the prayer and performs it, because he is included in the general saying of the Prophet (PBUH): “The one who leads the people is the one who recites the most,” and he did not make an exception, and because of the hadith of Amr bin Salama.

Ash-Shafi'i said in one of his two opinions: He leads in all prayers, but not on Friday, although he previously said: Whoever's leadership is valid in the prescribed prayers, his leadership is valid in [Friday and] Eid prayers, except that I dislike in them (6) the leadership of other than the ruler.

Al-Awza'i said: A boy does not lead in the prescribed prayer until he reaches puberty, unless there is a group who has nothing of the Quran with them, in which case the adolescent boy leads them. Az-Zuhri said: Verily...

(1) In (Z) and (Dh): he reads. (2) i.e., waiting. Al-Nihaya (L-W-M). (3) In (Z) and (Dh): pray such and such a prayer and such and such a prayer at such and such a time. (4) In (M): Will you not cover. (5) Al-Awsat 152/4. (6) In (Z) and (Dh): in both of them.

अम्र बिन सलमा ने कहा: हम एक ऐसी जगह पर रहते थे जहाँ से लोग गुज़रते थे, और सवार हमारे पास से गुज़रते थे, तो हम उनसे पूछते: लोगों को क्या हुआ है? यह आदमी कौन है? वे कहते: वह दावा करता है कि अल्लाह ने उसे भेजा है, उसने उसे ऐसा-ऐसा वही (प्रकाशना) भेजी है! वह उसे ऐसा-ऐसा वही भेजी है! तो मैं उन शब्दों को याद कर लेता था, जैसे कि वे मेरे सीने में जड़ (1) दिए गए हों। अरब लोग इस्लाम स्वीकार करने में संकोच (2) कर रहे थे, वे कहते थे: उसे और उसकी कौम को छोड़ दो, क्योंकि अगर वह उन पर विजय प्राप्त कर लेता है, तो वह एक सच्चा नबी है। जब मक्का विजय की घटना हुई, तो हर कबीला इस्लाम अपनाने के लिए दौड़ा, और मेरे पिता ने मेरे कबीले के इस्लाम अपनाने में पहल की। जब वे लौटे, तो उन्होंने कहा: खुदा की कसम, मैं तुम्हारे पास अल्लाह के सच्चे नबी के पास से आया हूँ। उन्होंने कहा: "फलां नमाज़ फलां समय (3) पर पढ़ो। जब नमाज़ का वक्त आए, तो तुममें से एक अज़ान दे, और वह तुम्हारी इमामत (नेतृत्व) करे जिसे कुरआन का सबसे ज्यादा ज्ञान हो।" तो उन्होंने देखा, और मुझसे ज्यादा कुरआन जानने वाला कोई नहीं था, क्योंकि मैं सवारों से सीखा करता था। तो उन्होंने मुझे अपने आगे कर दिया जबकि मैं छह या सात साल का लड़का था। मैंने एक चादर ओढ़ रखी थी, और जब मैं सजदा करता था, तो वह मुझसे सिकुड़ जाती थी, तो कबीले की एक महिला ने कहा: क्या तुम हमसे अपने कारी (पाठक) के पिछले हिस्से को नहीं ढकोगे (4)! तो उन्होंने कपड़ा खरीदा और मेरे लिए एक कमीज़ सिली, और मैं किसी भी चीज़ से उतना खुश नहीं हुआ जितना उस कमीज़ से हुआ।

नाबालिग लड़के की इमामत को जायज़ मानने वालों में अल-हसन अल-बसरी और इशाक बिन राहवैया शामिल थे, और इसे इब्न अल-मुन्ज़िर (5) ने चुना था यदि वह नमाज़ को समझता हो और उसे अदा करता हो, क्योंकि वह पैगंबर (सल्ल.) के इस सामान्य कथन में शामिल है: "कौम की इमामत वह करे जिसे कुरआन का सबसे अधिक ज्ञान हो," और उन्होंने कोई अपवाद नहीं रखा, और अम्र बिन सलमा की हदीस के कारण भी।

इमाम शाफ़ई ने अपनी दो राय में से एक में कहा: वह बाकी सभी नमाज़ों में इमामत कर सकता है, लेकिन जुमे के दिन नहीं, जबकि उन्होंने पहले कहा था: जिसकी इमामत फ़र्ज़ नमाज़ों में मान्य है, उसकी इमामत [जुमे और] ईद की नमाज़ों में भी मान्य है, सिवाय इसके कि मैं उनमें (6) शासक के अलावा किसी और की इमामत को नापसंद करता हूँ।

अल-औज़ाई ने कहा: लड़का फ़र्ज़ नमाज़ में तब तक इमामत नहीं करेगा जब तक कि वह वयस्क न हो जाए, जब तक कि ऐसी कौम न हो जिनके पास कुरआन का कुछ भी ज्ञान न हो, ऐसी स्थिति में किशोर लड़का उनकी इमामत करेगा। अल-ज़ुहरी ने कहा: बेशक...

(1) (ज़) और (ज़): पढ़ता है। (2) यानी: इंतज़ार करना। अल-निहाया (लुम)। (3) (ज़) और (ज़) में: ऐसी नमाज़ और ऐसी नमाज़ ऐसे समय पर पढ़ो। (4) (म) में: क्या तुम नहीं ढकते। (5) अल-औसत 152/4। (6) (ज़) और (ज़) में: उन दोनों में।

عمرو بن سلمہ نے کہا: ہم گزر گاہ پر رہتے تھے جہاں سے لوگ گزرتے تھے، اور سوار ہمارے پاس سے گزرتے تھے، تو ہم ان سے پوچھتے: لوگوں کو کیا ہوا ہے؟ یہ شخص کون ہے؟ وہ کہتے: وہ دعویٰ کرتا ہے کہ اللہ نے اسے بھیجا ہے، اس پر ایسا ایسا وحی نازل ہوئی ہے! اس پر ایسا ایسا وحی نازل ہوئی ہے! تو میں ان الفاظ کو یاد کر لیتا تھا، گویا وہ میرے سینے میں پیوست (1) ہو گئے ہوں۔ عرب اسلام قبول کرنے میں توقف (2) کر رہے تھے، وہ کہتے تھے: اسے اور اس کی قوم کو چھوڑ دو، اگر وہ ان پر غالب آ گیا تو وہ سچا نبی ہے۔ چنانچہ جب فتح مکہ کا واقعہ پیش آیا تو ہر قوم اسلام کی طرف لپکی، اور میرے والد نے میری قوم کے اسلام لانے میں پہل کی۔ جب وہ واپس آئے تو انہوں نے کہا: اللہ کی قسم، میں تمہارے پاس اللہ کے سچے نبی کے پاس سے آیا ہوں۔ انہوں نے فرمایا: "فلاں نماز فلاں وقت (3) پر پڑھو۔ جب نماز کا وقت آئے تو تم میں سے ایک اذان دے، اور تمہاری امامت وہ کرے جسے تم میں سب سے زیادہ قرآن یاد ہو۔" تو انہوں نے دیکھا، اور مجھ سے زیادہ قرآن کا جاننے والا کوئی نہ تھا کیونکہ میں سواروں سے سن کر یاد کیا کرتا تھا۔ چنانچہ انہوں نے مجھے آگے کر دیا حالانکہ میں چھ یا سات سال کا بچہ تھا۔ میں ایک چادر اوڑھے ہوئے تھا، جب میں سجدہ کرتا تو وہ مجھ سے سکڑ جاتی، تو قبیلے کی ایک عورت نے کہا: کیا تم اپنے قاری کی پیٹھ ہم سے نہیں ڈھانپو گے (4)! تو انہوں نے کپڑا خریدا اور میرے لیے ایک قمیص بنائی، اور میں کسی چیز سے اتنا خوش نہیں ہوا جتنا اس قمیص سے ہوا۔

نابالغ بچے کی امامت کو جائز قرار دینے والوں میں حسن بصری اور اسحاق بن راہویہ شامل ہیں، اور اسے ابن المنذر (5) نے پسند کیا بشرطیکہ وہ نماز کو سمجھتا ہو اور اسے ادا کرتا ہو، کیونکہ وہ نبی کریم ﷺ کے اس عمومی ارشاد میں داخل ہے: "قوم کی امامت وہ کرے جسے ان میں سب

سے زیادہ قرآن یاد ہو"، اور انہوں نے کوئی استثنا نہیں کیا، اور عمرو بن سلمہ کی حدیث کی وجہ سے بھی۔

امام شافعی نے اپنے دو اقوال میں سے ایک میں فرمایا: وہ تمام نمازوں میں امامت کرے گا، لیکن جمعہ کے دن نہیں، حالانکہ وہ پہلے فرمایا کرتے تھے: جس کی امامت فرض نمازوں میں جائز ہے، اس کی امامت [جمعہ اور] عیدین میں بھی جائز ہے، سوائے اس کے کہ میں ان میں (6) حاکم وقت کے علاوہ کسی کی امامت کو ناپسند کرتا ہوں۔

امام اوزاعی نے کہا: لڑکا فرض نماز میں امامت نہیں کرے گا جب تک کہ وہ بالغ نہ ہو جائے، سوائے اس کے کہ ایسی قوم ہو جن کے پاس قرآن کا کچھ بھی علم نہ ہو، ایسی صورت میں وہ نو عمر لڑکا ان کی امامت کرے گا۔ زہری نے کہا: بے شک...

(1) (ز) اور (ظ) میں: وہ پڑھتا ہے۔ (2) یعنی: انتظار کرنا۔ النہایہ (لوم)۔ (3) (ز) اور (ظ) میں: فلاں نماز اور فلاں نماز فلاں وقت میں پڑھو۔ (4) (م) میں: کیا تم نہیں ڈھانپتے۔ (5) الاوسط 152/4۔ (6) (ز) اور (ظ) میں: ان دونوں میں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43, Page 39

...compelled toward it, their mother. Malik, Al-Thawri, and the companions of legal opinion (Ashab al-Ra'y) forbade this entirely (1).

Seventeenth: Following any adult, Muslim, free [or enslaved] (2) Imam who is upright is permissible without disagreement, provided he knows the limits of prayer and does not make grammatical errors in the Mother of the Quran (Al-Fatihah) that alter the meaning (3). For example, pronouncing the 'kaf' in ﴿إِيَّاكَ نَعْبُدُ﴾ with a 'kasra' (i-sound) or the 'ta' in ﴿أَنْعَمْتَ﴾ with a 'damma' (u-sound). Some scholars have considered the distinction between the 'Za' (4) and the 'Dad' to be necessary; if he does not distinguish between them, his imamate is invalid because their meanings differ (5). Others have allowed all of this if he is ignorant of correct recitation and leads someone like himself (6).

It is not permissible to follow a woman in prayer, nor a hermaphrodite of uncertain gender (Khuntha Mushkil), nor a disbeliever, nor a person with insanity, nor an illiterate person (Ummi). None of these may ever be an Imam under any circumstances according to most scholars—as will be mentioned—except an illiterate person leading someone like himself (7).

Our scholars said: The imamate of an illiterate person who cannot recite well is not valid in the presence of someone who can recite, neither for himself nor for others. Al-Shafi'i said the same. However, if he leads another illiterate person like himself, their prayer is valid according to us and according to Al-Shafi'i.

Abu Hanifa said: If an illiterate person leads a group who can recite and a group of illiterate people, the prayers of all of them are invalid. Abu Yusuf disagreed with him, saying: The prayer of the Imam and the one who cannot recite is complete. A group (8) said: The prayers of all of them are valid because everyone is fulfilling their obligation. This is like a person who has performed dry ablution (Tayammum) leading those who have performed ritual washing with water, or a person praying while sitting leading those who are standing; their prayer is sufficient (9) in the view of those who disagree with us, because each is performing his own individual obligation (10).

(1) Al-Awsat 4/151-152, and what is between brackets is from it. (2) What is between brackets is from Al-Kafi by Ibn Abd al-Barr 1/210. (3) In (D) and (M): "impairs the meaning," in (Z): "the meaning is impaired by it," and what is established is from

(Zah), which agrees with what is in Al-Kafi. (4) In (M): the 'Ta'. (5) In (D): "different." (6) In (Zah): "with his like." (7) In (Z), (Zah), and (M): "for his like" (with the letter lam), and what is established is from (D), which matches Al-Kafi 1/210. (8) In (Zah): "a sect/ group." (9) In (D): "a sufficient prayer," in (Z): "a valid sufficient prayer" (as such), and in (Zah): "it suffices him." (10) Al-Awsat 4/158-159.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43, पृष्ठ 39

...उनकी ओर मजबूर हुए। मालिक, अल-थौरी और राय के साथियों (अशाब अल-राय) ने इसे पूरी तरह से मना किया (1)।

सत्रहवाँ: किसी भी वयस्क, मुस्लिम, स्वतंत्र [या दास] (2) इमाम का अनुसरण करना जो सही रास्ते पर है, बिना किसी असहमति के जायज़ है, बशर्ते वह नमाज़ की सीमाओं को जानता हो और कुरान की माँ (अल-फातिहा) में ऐसा व्याकरणिक उच्चारण (लहन) न करता हो जिससे अर्थ बदल जाए (3)। उदाहरण के लिए, ﴿إِيَّاكَ نَعْبُدُ﴾ में 'काफ' के नीचे ज़ेर (कसरह) लगाना या ﴿أَنْعَمْتَ﴾ में 'ता' पर पेश (दम्मह) लगाना। उनमें से कुछ ने 'ज़ा' (4) और 'दाद' के बीच अंतर को ज़रूरी माना है; यदि वह उनके बीच अंतर नहीं करता है, तो उसका इमामत सही नहीं है क्योंकि उनके अर्थ अलग हैं (5)। उनमें से कुछ ने इस सब में छूट दी है यदि वह पढ़ने से अनभिज्ञ है और अपने जैसे व्यक्ति का इमाम बने (6)।

नमाज़ में किसी महिला, न ही किसी उभयलिंगी (खुनसा मुश्किल), न ही किसी काफ़िर, न ही किसी पागल, और न ही किसी अनपढ़ (उम्मी) का अनुसरण करना जायज़ नहीं है। अधिकांश विद्वानों के अनुसार - जैसा कि आगे उल्लेख किया जाएगा - इनमें से कोई भी किसी भी परिस्थिति में इमाम नहीं हो सकता, सिवाय एक अनपढ़ के जो अपने जैसे का इमाम बने (7)।

हमारे विद्वानों ने कहा: उस अनपढ़ (उम्मी) की इमामत जो सही से पढ़ना नहीं जानता, एक पढ़ने वाले की उपस्थिति में न तो खुद के लिए और न ही दूसरों के लिए सही है। अल-शाफ़ई ने भी यही कहा है। लेकिन अगर वह अपने जैसे ही एक अनपढ़ का इमाम बनता है, तो हमारे और अल-शाफ़ई के अनुसार उनकी नमाज़ सही है।

अबू हनीफा ने कहा: यदि एक अनपढ़ व्यक्ति उन लोगों की जमात का नेतृत्व करता है जो पढ़ सकते हैं और जो अनपढ़ हैं, तो उन सभी की नमाज़ बातिल (अमान्य) है। अबू यूसुफ़ ने उनसे असहमति जताई और कहा: इमाम और जो नहीं पढ़ता उसकी नमाज़ पूरी है। एक समूह (8) ने कहा: उन सभी की नमाज़ जायज़ है क्योंकि हर कोई अपना फ़र्ज़ अदा कर रहा है। यह वैसा ही है जैसे तयम्मुम करने वाला पानी से वुज़ू करने वालों को नमाज़ पढ़ाए, या बैठकर नमाज़ पढ़ने वाला खड़े होने वालों को नमाज़ पढ़ाए; उनकी नमाज़ पर्याप्त (9) है उन लोगों के कथन में जिन्होंने हमारा विरोध किया; क्योंकि प्रत्येक अपना स्वयं का फ़र्ज़ अदा करने वाला है (10)।

(1) अल-अवसत 4/151-152, और कोष्ठक के बीच का अंश इसी से है। (2) कोष्ठक के बीच का अंश इब्न अब्द अल-बर की अल-काफी 1/210 से है। (3) (द) और (म) में: "अर्थ में खलल डालता है," (ज़) में: "इससे अर्थ में खलल पड़ता है," और जो स्थापित है वह (ज़ह) से है, जो अल-काफी में दिए गए के अनुरूप है। (4) (म) में: 'ता'। (5) (द) में: "अलग"। (6) (ज़ह) में: "उसके जैसे के साथ"। (7) (ज़), (ज़ह) और (म) में: "उसके जैसे के लिए" (लाम के साथ), और जो स्थापित है वह (द) से है, जो अल-काफी 1/210 के अनुरूप है। (8) (ज़ह) में: "एक गुट"। (9) (द) में: "पर्याप्त नमाज़," (ज़) में: "सही पर्याप्त नमाज़" (ऐसे ही), और (ज़ह) में: "उसे पर्याप्त है"। (10) अल-अवसत 4/158-159।

سورہ البقرہ: آیت 43، صفحہ 39

...ان کی طرف مجبور ہوئے ان کی ماں۔ اور امام مالک، ثوری اور اصحاب الرائے نے اس سے مکمل طور پر منع کیا ہے (1)۔

سترہویں بات: ہر اس امام کی اقتدا کرنا جو بالغ، مسلمان، آزاد [یا غلام] (2) اور مستقیم الاحوال ہو، بلا اختلاف جائز ہے، بشرطیکہ وہ نماز کی حدود سے واقف ہو، اور ام القرآن (سورہ فاتحہ) میں ایسی غلطی (لحن) نہ کرے جس سے معنی بدل جائیں (3)۔ مثلاً ﴿إِيَّاكَ نَعْبُدُ﴾ میں کاف کے نیچے زیر (کسرہ) پڑھنا، یا ﴿أَنْعَمْتَ﴾ میں تاء پر پیش (ضمہ) پڑھنا۔ بعض علماء نے 'ظاء' (4) اور 'ضاد' کے درمیان فرق کو ضروری قرار دیا ہے، اگر وہ ان دونوں کے درمیان فرق نہ کرے تو اس کی امامت صحیح نہیں ہے؛ کیونکہ ان دونوں کے معنی الگ الگ ہیں (5)۔ اور بعض نے اس سب میں رخصت دی ہے اگر وہ قراءت سے جاہل ہو اور اپنے جیسے کی امامت کر رہا ہو (6)۔

عورت، خنثیٰ مشکل (جس کی جنس واضح نہ ہو)، کافر، مجنون، اور امی (ناخواندہ) کی اقتدا کرنا جائز نہیں ہے۔ اکثر علماء کے نزدیک ان میں سے کوئی بھی کسی حال میں امام نہیں بن سکتا - جیسا کہ آگے ذکر آئے گا - سوائے امی کے جو اپنے جیسے کی امامت کرے (7)۔

ہمارے علماء نے فرمایا: اس امی (ناخواندہ) کی امامت جو اچھی قراءت نہ کر سکتا ہو، قاری (پڑھنے والے) کی موجودگی میں نہ خود اس کے لیے صحیح ہے اور نہ کسی دوسرے کے لیے۔ امام شافعی نے بھی یہی کہا ہے۔ تاہم اگر وہ اپنے جیسے ہی کسی امی کی امامت کرے تو ہمارے نزدیک اور امام شافعی کے نزدیک ان کی نماز صحیح ہے۔

امام ابو حنیفہ نے فرمایا: اگر امی نے ایسے لوگوں کی امامت کی جو قراءت کر سکتے ہیں اور ایسے لوگوں کی جو امی ہیں، تو ان سب کی نماز فاسد ہے۔ امام ابو یوسف نے ان سے اختلاف کیا اور فرمایا: امام کی اور جو نہیں پڑھتا اس کی نماز مکمل ہے۔ ایک گروہ (8) نے کہا: ان سب کی نماز جائز ہے؛ کیونکہ ہر ایک اپنا فرض ادا کر رہا ہے۔ یہ ایسا ہی ہے جیسے تیمم کرنے والا پانی سے طہارت حاصل کرنے والوں کو نماز پڑھائے، اور بیٹھ کر نماز پڑھنے والا قیام کرنے والوں کو نماز پڑھائے، ان کی نماز کفایت کرنے والی (9) ہے ان لوگوں کے قول میں جنہوں نے ہمارا اختلاف کیا ہے؛ کیونکہ ہر ایک اپنا اپنا فرض ادا کرنے والا ہے (10)۔

(1) الاوسط 4/ 151-152، اور بریکٹ کے درمیان کی عبارت اسی سے ہے۔ (2) بریکٹ کے درمیان کی عبارت ابن عبد البر کی الکافی 1/ 210 سے ہے۔ (3) (د) اور (م) میں ہے: "معنی میں خلل ڈالتا ہے"، اور (ز) میں ہے: "اس سے معنی میں خلل پڑتا ہے"، اور جو متن میں ہے وہ (ظ) سے ہے اور یہی الکافی کے مطابق ہے۔ (4) (م) میں: الطاء ہے۔ (5) (د) میں: "مختلف" ہے۔ (6) (ظ) میں: "بمثلہ" (اپنے جیسے کے ساتھ) ہے۔ (7) (ز)، (ظ) اور (م) میں: "لمثلہ" (لام کے ساتھ) ہے، اور جو متن میں ہے وہ (د) سے ہے جو الکافی 1/ 210 کے مطابق ہے۔ (8) (ظ) میں: "طائفہ" (گروہ) ہے۔ (9) (د) میں: "صلاۃ مجزئۃ" (کافی نماز)، (ز) میں: "صلاۃ صح مجزئۃ" (اسی طرح)، اور (ظ) میں: "یجزئہ" (اسے کافی ہے)۔ (10) الاوسط 4/ 158-159۔

40

Surah Al-Baqarah: Verse 43

I said: This opinion may be argued for with the saying of the Prophet (peace be upon him): "Should the one who prays not look at how he prays?! Indeed, he only prays for himself." Narrated by Muslim (1). And that the prayer of the follower is not linked to the prayer of the Imam, and Allah knows best.

Ata' ibn Abi Rabah used to say: If his wife recites, he says 'Allahu Akbar' and she recites. When she finishes the recitation, he says 'Allahu Akbar' and bows and prostrates, and she is behind him praying [according to his prayer]. This meaning was narrated from Qatada (2).

Eighteenth: There is no harm in the leadership (imamate) of the blind, the lame, the paralyzed-handed, the amputee, the eunuch, and the slave, if each of them is knowledgeable about prayer (3).

Ibn Wahb said: I do not see that the amputee or the paralyzed-handed person should lead; because he is lacking in the degree of perfection, and I disliked his leadership due to the deficiency.

The majority of his companions disagreed with him, and this is correct; because it is a limb whose absence does not prevent a mandatory act of prayer, so regular leadership is permissible despite its loss, like the eye.

Anas narrated that the Prophet (peace be upon him) appointed Ibn Umm Maktum to lead the people while he was blind (4). Likewise, the lame, the amputee, the paralyzed-handed, and the eunuch, by analogy and reasoning, and Allah knows best.

It was narrated from Anas ibn Malik that he said regarding the blind: "What is their need for him(5)?!"

Ibn Abbas and Itban ibn Malik (6) used to lead, and both were blind (7), and this is the view of the generality of scholars.

---

(1) No. (423) from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, and it is in Al-Musnad (9796). (2) Al-Awsat 4/158, and what is between the brackets is from it. (3) Al-Kafi 1/211. (4) Narrated by Ahmad (13000) and Abu Dawood (595). (5) Narrated by Ibn Al-Mundhir in Al-Awsat 4/154, and he said: There is nothing in the saying of Anas ibn Malik that prohibits the leadership of the blind. (6) Al-Ansari Al-Khazraji Al-

Salmi, the Prophet (peace be upon him) made him the brother of Umar. He witnessed Badr and died during the caliphate of Muawiyah. Al-Isabah 5/375. (7) Al-Awsat by Ibn Al-Mundhir 4/153.

40

सूरह अल-बकराह: आयत 43

मैंने कहा: इस कथन के पक्ष में पैगंबर (उन पर शांति हो) के इस कथन से तर्क दिया जा सकता है: "क्या नमाज़ पढ़ने वाले को यह नहीं देखना चाहिए कि वह कैसे नमाज़ पढ़ता है?! वास्तव में, वह केवल अपने लिए नमाज़ पढ़ता है।" इसे मुस्लिम (1) ने रिपोर्ट किया है। और यह कि मुअतम (अनुयायी) की नमाज़ इमाम की नमाज़ से जुड़ी नहीं है, और अल्लाह बेहतर जानता है।

अता इब्न अबी रबाह कहा करते थे: यदि उसकी पत्नी पढ़ती है, तो वह 'अल्लाहू अकबर' कहे और वह पढ़े, फिर जब वह पढ़ने से फारिग हो जाए, तो वह 'अल्लाहू अकबर' कहे और रुकू और सजदा करे, और वह उसके पीछे नमाज़ पढ़ रही हो [उसकी नमाज़ के अनुसार]। यह अर्थ कतादा (2) से रिवायत किया गया है।

अठारहवाँ: अंधे, लंगड़े, पंगु हाथ वाले, कटे हुए अंग वाले, खोजा (नपुंसक) और गुलाम के इमाम होने में कोई हर्ज नहीं है, यदि उनमें से प्रत्येक नमाज़ (3) का जानकार हो।

इब्न वाहब ने कहा: मैं यह नहीं देखता कि कटे हुए अंग वाला या पंगु हाथ वाला इमामत करे; क्योंकि वह पूर्णता के दर्जे से कम है, और मैंने कमी के कारण उनकी इमामत को नापसंद किया।

उनके अधिकांश साथियों ने उनसे असहमति जताई, और यही सही है; क्योंकि यह एक ऐसा अंग है जिसकी कमी नमाज़ के किसी अनिवार्य कार्य को नहीं रोकती है, इसलिए इसकी कमी के बावजूद नियमित इमामत जायज़ है, जैसे कि आँख।

अनस ने रिवायत की है कि पैगंबर (उन पर शांति हो) ने इब्न उम्म मकतूम को अपना प्रतिनिधि बनाया, जो लोगों की इमामत करते थे जबकि वे अंधे (4) थे। इसी तरह लंगड़ा, कटा हुआ अंग वाला, पंगु हाथ वाला और खोजा, समानता और तर्क के आधार पर, और अल्लाह बेहतर जानता है।

अनस इब्न मलिक से रिवायत है कि उन्होंने अंधे के बारे में कहा: "उन्हें उसकी क्या ज़रूरत है(5)?!"

इब्न अब्बास और इत्बान इब्न मलिक (6) इमामत किया करते थे, और वे दोनों अंधे (7) थे, और यही अधिकांश विद्वानों का मत है।

(1) अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से संख्या (423), और यह अल-मुसनद (9796) में है। (2) अल-औसत 4/158, और कोष्ठक के बीच वाला हिस्सा उसी से है। (3) अल-काफी 211/1। (4) अहमद (13000) और अबू दाऊद (595) ने इसे रिपोर्ट किया है। (5) इब्न अल-मुन्ज़िर ने अल-औसत 4/154 में इसे रिपोर्ट किया है, और उन्होंने कहा: अनस इब्न मलिक के कथन में अंधे की इमामत का कोई निषेध नहीं है। (6) अल-अंसारी अल-खजरजी अल-सलमी, रसूलुल्लाह ﷺ ने उनके और उमर के बीच भाईचारा स्थापित किया था, वे बद्र में शामिल हुए थे, और मुआविया के खिलाफत के दौरान उनका निधन हुआ। अल-इसाबा 5/375। (7) इब्न अल-मुन्ज़िर द्वारा अल-औसत 4/153।

40

سورہ بقرہ: آیت 43

میں نے کہا: اس قول کی تائید میں نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم کے اس فرمان سے دلیل لی جا سکتی ہے: "کیا نماز پڑھنے والا یہ نہیں دیکھتا کہ وہ کیسے نماز پڑھتا ہے؟! بے شک وہ اپنے ہی لیے نماز پڑھتا ہے"۔ اسے مسلم (1) نے روایت کیا ہے۔ اور یہ کہ مقتدی کی نماز امام کی نماز سے وابستہ نہیں ہے، واللہ اعلم۔

عطا بن ابی رباح فرمایا کرتے تھے: اگر اس کی بیوی (قراءت) پڑھتی ہے تو وہ تکبیر کہے اور وہ پڑھے، پھر جب وہ قراءت سے فارغ ہو جائے تو وہ تکبیر کہے اور رکوع و سجدہ کرے، اور وہ اس کے پیچھے [اس کی نماز کے ساتھ] نماز پڑھ رہی ہو۔ یہ مفہوم قتادہ (2) سے مروی ہے۔

اٹھارہواں مسئلہ: اندھے، لنگڑے، شل ہاتھ والے، کٹے ہوئے ہاتھ پاؤں والے، خصی اور غلام کی امامت میں کوئی حرج نہیں ہے، بشرطیکہ ان میں سے ہر ایک نماز (3) کا علم رکھتا ہو۔

ابن وہب نے کہا: میں یہ نہیں دیکھتا کہ کٹے ہوئے ہاتھ والا اور شل ہاتھ والا امامت کرے، کیونکہ وہ کمال کے درجے سے کم ہے، اور میں نے نقص کی وجہ سے اس کی امامت کو ناپسند کیا۔

ان کے اکثر ساتھیوں نے ان سے اختلاف کیا ہے، اور یہی صحیح ہے؛ کیونکہ یہ ایسا عضو ہے جس کا نہ ہونا نماز کے فرائض میں سے کسی فرض کو نہیں روکتا، لہٰذا اس کے نہ ہونے کے باوجود امامتِ راتبہ جائز ہے، جیسے کہ آنکھ۔

حضرت انس رضی اللہ عنہ سے مروی ہے کہ نبی کریم ﷺ نے ابن ام مکتوم کو اپنا خلیفہ بنایا، وہ لوگوں کو نماز پڑھاتے تھے جبکہ وہ نابینا (4) تھے۔ اسی طرح لنگڑا، کٹے ہوئے عضو والا، شل ہاتھ والا اور خصی، قیاس اور عقلی دلیل کی بنا پر، واللہ اعلم۔

حضرت انس بن مالک رضی اللہ عنہ سے مروی ہے کہ انہوں نے نابینا کے بارے میں فرمایا:

"انہیں اس کی کیا ضرورت ہے(5)؟!"

حضرت ابن عباس اور عتبان بن مالک (6) امامت کرایا کرتے تھے اور وہ دونوں نابینا (7) تھے، اور اسی پر عام علماء کا عمل ہے۔

---

(1) حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے نمبر (423)، اور یہ مسند (9796) میں ہے۔ (2) الاوسط 4/ 158، اور قوسین کے درمیان والی عبارت اسی سے ہے۔ (3) الکافی 211/1۔ (4) احمد (13000) اور ابو داؤد (595) نے اسے روایت کیا ہے۔ (5) ابن المنذر نے الاوسط 4/ 154 میں اسے روایت کیا ہے، اور فرمایا: حضرت انس بن مالک کے قول میں نابینا کی امامت کی کوئی ممانعت نہیں ہے۔ (6) الانصاری الخزرجی السالمی، رسول اللہ ﷺ نے ان کے اور حضرت عمر کے درمیان بھائی چارہ قائم کیا تھا، وہ بدر میں شریک ہوئے، اور حضرت معاویہ کی خلافت میں وفات پائی۔ الاصابہ 5/ 375۔ (7) الاوسط لابن المنذر 4/ 153

41 Surah Al-Baqarah: Verse 43

Nineteenth issue: They disagreed regarding the leadership (Imamat) of a child born out of wedlock. Malik said: I dislike him being a regular (appointed) Imam. Umar ibn Abd al-Aziz also disliked it. Ata ibn Abi Rabah used to say: He may lead if he is pleasing (qualified), and this is the view of Al-Hasan al-Basri, Al-Zuhri, Al-Nakha'i, Sufyan al-Thawri, Al-Awza'i, Ahmad, and Ishaq. Prayer behind him is valid according to the Ashab al-Ra'y (1), but others are more beloved to them. Al-Shafi'i said: I dislike appointing one whose father is unknown as a regular Imam, but whoever prays behind him, it is sufficient. Isa ibn Dinar said: I do not follow Malik's view on the leadership of a child born out of wedlock, for he bears no sin of his parents. Ibn Abd al-Hakam said something similar if he himself is worthy of leadership. Ibn al-Mundhir said: He may lead because he is included in the general saying of the Messenger of Allah ﷺ: "The one who knows the Quran best should lead the people." (2). Abu Umar (3) said: There is nothing in the reports regarding the conditions for leadership that indicates consideration of lineage; rather, they indicate knowledge of jurisprudence, recitation, and righteousness in religion.

Twentieth issue: As for the slave, Al-Bukhari (4) narrated from Ibn Umar who said: When the first emigrants arrived at Al-Usbah (5), a place (6) in Quba, before the arrival of the Prophet ﷺ, Salim, the freed slave of Abu Hudhayfah, used to lead them in prayer, as he was the most knowledgeable of them in the Quran.

On his authority, he said (7): Salim, the freed slave of Abu Hudhayfah, used to lead the first emigrants and the companions of the Prophet ﷺ in the Quba mosque, among whom were Abu Bakr, Umar, Zaid, and Amir ibn Rabi'ah (8), and Aisha...

(1) Al-Awsat 4/160-161. (2) This statement of Ibn al-Mundhir is in Al-Awsat 4/152 regarding the leadership of a non-discerning person. As for his statement regarding the leadership of a child born out of wedlock, his wording there is 161/4: He leads if he is pleasing, and the sin of others does not harm him. (3) He is Ibn Abd al-Barr, and his words are in Al-Istidhkar 5/380. (4) In his Sahih (692). (5) Al-Bakri recorded it in Mu'jam ma Ista'jam 3/946 with a fatha on the 'ayn and a sukun on the sad, and it is 'Al-Mu'assab'. (6) In (M): place. (7) Sahih al-Bukhari (7175). (8) Abu Abdullah al-Anzi, one of the early predecessors, witnessed Badr, and died in the year (35 AH). Al-Siyar 2/333.

41 सूरह अल-बकरा: आयत 43

उन्नीसवाँ मुद्दा: वे नाजायज संतान के इमामत (प्रार्थना का नेतृत्व) के संबंध में असहमत थे। मलिक ने कहा: मुझे उनका नियमित इमाम होना पसंद नहीं है। उमर बिन अब्द अल-अजीज ने भी इसे नापसंद किया। अता बिन अबी रबाह कहते थे: यदि वह स्वीकार्य (योग्य) हो तो वह नेतृत्व कर सकता है, और यही अल-हसन अल-बसरी, अल-ज़ुहरी, अल-नखई, सुफ़ियान अल-थौरी, अल-अवज़ई, अहमद और इशाक का विचार है। असहाब अल-रय (1) के अनुसार उनके पीछे प्रार्थना मान्य है, लेकिन अन्य उन्हें अधिक प्रिय हैं। अल-शाफ़ई ने कहा: मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नियमित इमाम के रूप में नियुक्त करना नापसंद करता हूँ जिसके पिता अज्ञात हों, लेकिन जो कोई भी उनके पीछे प्रार्थना करता है, वह पर्याप्त है। ईसा बिन दीनार ने कहा: मैं नाजायज संतान की इमामत पर मलिक के विचार का पालन नहीं करता, क्योंकि उस पर अपने माता-पिता का कोई पाप नहीं है। इब्न अब्द अल-हकम ने भी कुछ ऐसा ही कहा यदि वह स्वयं इमामत के योग्य हो। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: वह नेतृत्व कर सकता है क्योंकि वह अल्लाह के रसूल ﷺ के सामान्य कथन में शामिल है: "वह जो कुरान को सबसे अच्छी तरह जानता है, उसे लोगों का नेतृत्व करना चाहिए।" (2)। अबू उमर (3) ने कहा: इमामत की शर्तों के संबंध में रिपोर्टों में ऐसा कुछ भी नहीं है जो वंश के विचार को इंगित करता हो; बल्कि, वे धर्म में न्यायशास्त्र, पाठ और धार्मिकता का संकेत देते हैं।

बीसवाँ मुद्दा: जहाँ तक दास का संबंध है, अल-बुखारी (4) ने इब्न उमर से रिवायत की है जिन्होंने कहा: जब पहले प्रवासी अल-असबा (5) पहुंचे, जो कुबा में एक स्थान (6) है, पैगंबर ﷺ के आगमन से पहले, अबू हुजैफा के स्वतंत्र दास सालिम उनका नेतृत्व करते थे, क्योंकि वे कुरान में उनमें सबसे अधिक ज्ञानी थे।

उनकी ओर से उन्होंने कहा (7): अबू हुजैफा के स्वतंत्र दास सालिम कुबा मस्जिद में पहले प्रवासियों और पैगंबर ﷺ के साथियों का नेतृत्व करते थे, जिनमें अबू बक्र, उमर, ज़ैद और आमिर बिन रबीअह (8) थे, और आयशा...

(1) अल-अवसत 4/160-161। (2) इब्न अल-मुन्ज़िर का यह कथन अल-अवसत 4/152 में एक गैर-समझदार व्यक्ति के नेतृत्व के संबंध में है। जहाँ तक नाजायज संतान के नेतृत्व के संबंध में उनके कथन का प्रश्न है, वहाँ उनके शब्द 161/4 हैं: वह नेतृत्व करता है यदि वह संतोषजनक हो, और दूसरों का पाप उसे नुकसान नहीं पहुँचाता। (3) वह इब्न अब्द अल-बर्र हैं, और उनके शब्द अल-

इस्तिधकर 5/380 में हैं। (4) उनके सहीह (692) में। (5) अल-बकरी ने इसे मुअज्जम मा इस्तआजम 3/946 में ऐन पर फतह और साद पर सुकून के साथ दर्ज किया है, और यह 'अल-मुअसब' है। (6) (एम) में: स्थान। (7) सहीह अल-बुखारी (7175)। (8) अबू अब्दुल्ला अल-अंज़ी, शुरुआती पूर्ववर्तियों में से एक, बद्र के गवाह थे, और वर्ष (35 हिजरी) में उनकी मृत्यु हो गई। अल-सियार 2/333।

41 سورہ البقرہ: آیت 43

انیسویں بات: ولد الزنا (ناجائز اولاد) کی امامت کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے۔ امام مالکؒ نے فرمایا: مجھے ناپسند ہے کہ وہ مستقل امام بنے۔ حضرت عمر بن عبدالعزیزؒ نے بھی اسے ناپسند کیا۔ عطا بن ابی رباحؒ فرماتے تھے: اگر وہ پسندیدہ (اہل) ہو تو امامت کر سکتا ہے، اور یہی حسن بصری، زہری، نخعی، سفیان ثوری، اوزاعی، احمد اور اسحاق کا قول ہے۔ اصحاب الرائے (1) کے نزدیک اس کے پیچھے نماز جائز ہے، لیکن ان کے نزدیک دوسرا شخص زیادہ بہتر ہے۔ امام شافعیؒ نے فرمایا: میں اسے ناپسند کرتا ہوں کہ جس کا باپ معلوم نہ ہو اسے مستقل امام مقرر کیا جائے، لیکن جس نے اس کے پیچھے نماز پڑھی اس کی نماز ہو گئی۔ عیسیٰ بن دینارؒ نے فرمایا: میں ولد الزنا کی امامت کے بارے میں امام مالک کے قول کا قائل نہیں ہوں، اس پر اس کے والدین کے گناہ کا کوئی بوجھ نہیں ہے۔ ابن عبدالحکم نے بھی اسی طرح کہا ہے اگر وہ بذاتِ خود امامت کا اہل ہو۔ ابن المنذر نے کہا: وہ امامت کر سکتا ہے کیونکہ وہ رسول اللہ ﷺ کے اس عام ارشاد میں داخل ہے: "قوم کی امامت وہ کرے جو ان میں سب سے زیادہ قرآن پڑھنے والا (جاننے والا) ہو" (2)۔ ابو عمر (3) نے کہا: امامت کی شرط کے بارے میں وارد ہونے والے آثار میں کوئی ایسی چیز نہیں ہے جو نسب کی رعایت پر دلالت کرتی ہو، بلکہ ان میں تفقہ، قرأت اور دین میں صلاح و تقویٰ پر دلالت پائی جاتی ہے۔

بیسویں بات: جہاں تک غلام کا تعلق ہے؛ تو بخاری (4) نے ابن عمر رضی اللہ عنہما سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: جب پہلے مہاجرین نبی ﷺ کی تشریف آوری سے پہلے قبا کے ایک مقام "عصبہ" (5) میں پہنچے تو سالم مولیٰ ابی حذیفہ ان کی امامت کراتے تھے، اور وہ ان میں سب سے زیادہ قرآن جاننے والے تھے۔

اور ان سے مروی ہے (7): سالم مولیٰ ابی حذیفہ مسجدِ قبا میں پہلے مہاجرین اور نبی ﷺ کے صحابہ کی امامت کراتے تھے، ان میں ابوبکر، عمر، زید اور عامر بن ربیعہ (8) بھی شامل تھے، اور حضرت عائشہ...

(1) الاوسط 160/4-161- (2) ابن المنذر کا یہ قول الاوسط 152/4 میں غیر مدرک کی امامت کے بارے میں ہے، جہاں تک ولد الزنا کی امامت کے بارے میں ان کے قول کا تعلق ہے تو اس کے الفاظ 161/4 میں یہ ہیں: وہ امامت کرے جب وہ پسندیدہ ہو، اور اسے دوسرے کی معصیت نقصان نہیں پہنچاتی۔ (3) یہ ابن عبدالبر ہیں، اور ان کا کلام الاستذکار 380/5 میں ہے۔ (4) اپنی صحیح (692) میں۔ (5) بکری نے اسے معجم ما استعجم 946/3 میں عین کے فتحہ اور صاد کے سکون کے ساتھ مقید کیا ہے، اور وہ المعصب ہے۔ (6) (م) میں: موضع۔ (7) صحیح بخاری (7175)۔ (8) ابو عبداللہ العزی، سابقین اولین میں سے ہیں، بدر میں شریک ہوئے، اور سن (35ھ) میں وفات پائی۔ السیر 333/2۔

42 Surah Al-Baqarah: Verse 43

Her slave Dhakwan led her in prayer from the Mushaf (copy of the Quran) (1). Ibn al-Mundhir (2) said: Abu Sa'id (3), the freed slave of Abu Usayd—and he was a slave—led a group of the companions of the Messenger of Allah ﷺ in prayer, among them Hudhayfah and Abu Mas'ud (4). Al-Nakha'i, al-Sha'bi, al-Hasan al-Basri, al-Hakam (5), al-Thawri, al-Shafi'i, Ahmad, Ishaq, and the people of opinion (Ashab al-Ra'y) permitted the leadership (Imamate) of a slave in prayer. Abu Mijlaz disliked it. Malik said: He should not lead them unless the slave is a reciter and the freemen with him are not reciters, except on Eid or Friday, for a slave does not lead them in those two (6). According to al-Awza'i, it is sufficient if they pray behind him. Ibn al-Mundhir said: The slave is included in the general statement of the Prophet ﷺ: "The people should be led in prayer by the one who has most knowledge of the Quran" (7). Twenty-first: As for a woman; Al-Bukhari (8) narrated from Abu Bakrah that he said: When it reached the Messenger of Allah ﷺ that the people of Persia had made the daughter of Khosrow their ruler, he said: "A people who entrust their affairs to a woman will never succeed." Abu Dawud mentioned from 'Abd al-Rahman bin Khallad from Umm Waraqah bint 'Abd Allah, who said: The Messenger of Allah ﷺ used to visit her in her house, and he appointed a muezzin for her to call the prayer for her, and he commanded her to lead the people of her household in prayer. 'Abd al-Rahman said: I saw her muezzin was an old man (9).

(1) Al-Bukhari mentioned it in Al-Adhan, chapter on the leadership of slaves and freedmen. Ibn Abi Shaybah connected it in 2/338, Ibn Abi Dawud in Al-Masahif p. 192, and Ibn al-Mundhir in Al-Awsat 4/156. Al-Hafiz said in Taghliq al-Ta'liq 2/291: It is an authentic chain. (2) Al-Awsat 4/155. (3) Ibn Hajar mentioned it in Al-Isabah 11/187 and said: Ibn Mandah mentioned him among the Sahabah, but did not mention what indicates his companionship, but it was proven what indicates that he met Abu Bakr (may Allah be pleased with him). (4) 'Uqbah bin 'Amr al-Ansari al-Khazraji witnessed all the battles with the Messenger of Allah ﷺ, settled in Kufa, was among the companions of Ali, and died after the year 40 AH. Al-Isabah 7/24. (5) Ibn 'Utaybah, Abu Muhammad al-Kindi their freed slave, a scholar of the people of Kufa, died in the year 115 AH. Al-Siyar 5/208. (6) In (m) and (d): in it. (7) The issue in full is in Al-Awsat 4/156-157. (8) Number (4425), and it is in Al-Musnad (20438). (9) Sunan Abi Dawud (592), and it is in Al-Musnad (27283). Al-Baji said in Al-Muntaqa 1/235: This Hadith is among those that should not be relied upon. See Al-Mughni by Ibn Qudamah 3/33.

42 सूरह अल-बकरा: आयत 43

उसके गुलाम ज़कवान ने उसे मुसहफ़ (कुरान की प्रति) से नमाज़ पढ़ाई (1)। इब्न अल-मुन्ज़िर (2) ने कहा: अबू सईद (3), अबू उसैद के आज़ाद किए गए गुलाम - और वे एक गुलाम थे - ने अल्लाह के रसूल ﷺ के साथियों के एक समूह की नमाज़ का नेतृत्व किया, जिनमें हुज़ैफ़ा और अबू मसूद (4) शामिल थे। नखई, शाबी, हसन अल-बसरी, हकम (5), थौरी, शाफ़ई, अहमद, इशाक और राय वालों (अस्हाब अल-राय) ने नमाज़ में गुलाम की इमामत की अनुमति दी। अबू मिजलज़ ने इसे नापसंद किया। मालिक ने कहा: वह उनकी इमामत तब तक न करे जब तक कि गुलाम कारी न हो और उसके साथ के स्वतंत्र लोग कारी न हों, सिवाय ईद या जुमे के क्योंकि गुलाम उन दोनों में उनकी इमामत नहीं करता (6)। अल-औज़ाई के अनुसार, यदि वे उसके पीछे नमाज़ पढ़ते हैं तो यह पर्याप्त है। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: गुलाम पैगंबर ﷺ के इस कथन के सामान्य अर्थ में शामिल है: "लोगों को उस व्यक्ति द्वारा नमाज़ पढ़ाई जानी चाहिए जिसे कुरान का सबसे अधिक ज्ञान हो" (7)। इक्कीसवां: जहाँ तक महिला की बात है; अल-बुखारी (8) ने अबू बकराह से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: जब अल्लाह के रसूल ﷺ तक यह खबर पहुंची कि फारस के लोगों ने खुसरो की बेटी को अपना शासक बना लिया है, तो उन्होंने कहा: "वह जाति कभी सफल नहीं होगी जिसने अपने मामलों की बागडोर किसी महिला को सौंप दी।" अबू दाऊद ने अब्दुर्रहमान बिन खल्लाद के हवाले से उम्मे वरका बिन्त अब्दुल्ला से उल्लेख किया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ उनके घर में उनसे मिलने जाते थे, और उन्होंने उनके लिए एक मुअज़िन नियुक्त किया जो उनके लिए अज़ान देता था, और उन्होंने उन्हें अपने घर के लोगों को नमाज़ पढ़ाने का आदेश दिया। अब्दुर्रहमान ने कहा: मैंने देखा कि उनका मुअज़िन एक बूढ़ा आदमी था (9)।

(1) अल-बुखारी ने इसे अल-अज़ान, गुलामों और आज़ाद किए गए लोगों की इमामत के अध्याय में उद्धृत किया है। इब्न अबी शैबा ने इसे 2/338 में, इब्न अबी दाऊद ने अल-मसाहिफ पृ. 192 में, और इब्न अल-मुन्ज़िर ने अल-औसत 4/156 में जोड़ा है। अल-हाफ़िज़ ने तग़लीक़ अल-तालीक़ 2/291 में कहा: यह एक प्रामाणिक श्रृंखला है। (2) अल-औसत 4/155। (3) इब्न हजर ने अल-इसाबा 11/187 में इसका उल्लेख किया है और कहा: इब्न मंदा ने उन्हें सहाबा में उल्लेख किया है, लेकिन उन्होंने ऐसा कुछ उल्लेख नहीं किया जो उनकी सोहबत को साबित करता हो, लेकिन यह साबित हो चुका है कि वे अबू बक्र (रज़ि.) के समय में मौजूद थे। (4) उक़बा बिन अम्र अल-अंसारी अल-खज़रजी अल्लाह के रसूल ﷺ के साथ सभी युद्धों में शामिल थे, कूफ़ा में बस गए, अली के साथियों में से थे, और वर्ष 40

हिजरी के बाद उनकी मृत्यु हुई। अल-इसाबा 7/24। (5) इब्न उतैबा, अबू मुहम्मद अल-किंदी उनके आज़ाद गुलाम, कूफ़ा के विद्वान, वर्ष 115 हिजरी में उनकी मृत्यु हुई। अल-सियर 5/208। (6) (म) और (द) में: इसमें। (7) पूरा मुद्दा अल-औसत 4/156-157 में है। (8) संख्या (4425), और यह अल-मुसनद (20438) में है। (9) सुनन अबू दाऊद (592), और यह अल-मुसनद (27283) में है। अल-बाजी ने अल-मुंतक़ा 1/235 में कहा: यह हदीस उन हदीसों में से है जिन पर भरोसा नहीं किया जाना चाहिए। इब्न कुदामा की अल-मुग़नी 3/33 देखें।

42 سورة البقرہ: آیت 43

ان کے غلام ذکوان نے انہیں مصحف (قرآن کے نسخے) سے نماز پڑھائی (1)۔ ابن المنذر (2) نے کہا: ابو سعید (3)، ابو اسید کے آزاد کردہ غلام - اور وہ ایک غلام تھے - نے رسول اللہ ﷺ کے صحابہ کی ایک جماعت کی امامت کی، جن میں حذیفہ اور ابو مسعود (4) شامل تھے۔ نخعی، شعبی، حسن بصری، حکم (5)، ثوری، شافعی، احمد، اسحاق اور اصحاب الرائے نے غلام کی امامت کی اجازت دی ہے۔ ابو مجلز نے اسے ناپسند کیا۔ مالک نے کہا: وہ ان کی امامت نہ کرے سوائے اس کے کہ غلام قاری ہو اور اس کے ساتھ والے آزاد لوگ قاری نہ ہوں، سوائے عید یا جمعہ کے، کیونکہ غلام ان دونوں میں ان کی امامت نہیں کرتا (6)۔ اوزاعی کے نزدیک، اگر وہ اس کے پیچھے نماز پڑھ لیں تو یہ کافی ہے۔ ابن المنذر نے کہا: غلام نبی ﷺ کے اس قول کے عموم میں داخل ہے: «لوگوں کی امامت وہ کرے جسے قرآن کا سب سے زیادہ علم ہو» (7)۔ اکیسویں بات: جہاں تک عورت کا تعلق ہے؛ تو بخاری (8) نے ابوبکرہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: جب رسول اللہ ﷺ تک یہ خبر پہنچی کہ اہل فارس نے کسریٰ کی بیٹی کو اپنا حکمران بنا لیا ہے، تو آپ ﷺ نے فرمایا: «وہ قوم کبھی کامیاب نہیں ہوگی جس نے اپنے معاملات کی باگ ڈور کسی عورت کے سپرد کر دی»۔ ابو داؤد نے عبدالرحمن بن خلاد کے واسطے سے ام ورقہ بنت عبداللہ سے ذکر کیا ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ ان کے گھر میں ان سے ملنے جایا کرتے تھے، اور آپ ﷺ نے ان کے لیے ایک مؤذن مقرر کیا جو ان کے لیے اذان دیتا تھا، اور آپ ﷺ نے انہیں حکم دیا کہ وہ اپنے گھر والوں کی امامت کریں۔ عبدالرحمن نے کہا: میں نے دیکھا کہ ان کا مؤذن ایک بوڑھا آدمی تھا (9)۔

(1) بخاری نے اسے کتاب الاذان، باب امامت العبد والموالی میں تعلیقاً ذکر کیا ہے۔ ابن ابی شیبہ نے 2/338، ابن ابی داؤد نے المصاحف ص 192، اور ابن المنذر نے الاوسط 4/156 میں اسے موصولاً بیان کیا ہے۔ حافظ نے تغلیق التعلیق 2/291 میں کہا ہے: یہ سند صحیح ہے۔ (2) الاوسط 4/155۔ (3) ابن حجر نے الاصابہ 11/187 میں اسے ذکر کیا اور کہا: ابن مندہ نے انہیں صحابہ میں ذکر کیا ہے، لیکن ایسی کوئی بات ذکر نہیں کی جو ان کی صحبت پر دلالت کرے، البتہ یہ ثابت ہے کہ انہوں نے ابوبکر رضی اللہ عنہ کا دور پایا تھا۔ (4) عقبہ بن عمرو الانصاری الخزرجی رسول اللہ ﷺ کے ساتھ تمام مشاہد (غزوات) میں شریک رہے، کوفہ میں قیام کیا، علی کے اصحاب میں سے تھے، اور سن 40 ہجری کے بعد وفات پائی۔ الاصابہ 7/24۔ (5) ابن عتیبہ، ابو محمد الکندی ان کے آزاد کردہ غلام، کوفہ کے عالم، سن 115 ہجری میں وفات پائی۔ السیر 5/208۔ (6) (م) اور (د) میں: فیہا (اس میں) ہے۔ (7) یہ مسئلہ مکمل طور پر الاوسط 4/156-157 میں ہے۔ (8) رقم (4425)، اور یہ المسند (20438) میں ہے۔ (9) سنن ابی داؤد (592)، اور یہ المسند (27283) میں ہے۔ باجی نے المنتقی 1/235 میں کہا: یہ حدیث ان میں سے ہے جس پر اعتماد نہیں کرنا چاہیے۔ اور دیکھیے المغنی لابن قدامہ 3/33۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 43

Ibn al-Mundhir said(1): Al-Shafi'i mandates repeating the prayer for any men who prayed behind a woman. Abu Thawr said: They do not have to repeat it. This is analogous to the view of al-Muzani. I say: Our scholars said: Her leading the prayer is not valid for men nor for women. Ibn Ayman narrated the permissibility of her leading women in prayer(2). As for the hermaphrodite (Khuntha mushkil), al-Shafi'i said: He should not lead men, but he can lead women. Malik said: He cannot be an imam under any circumstances, and this is the view of most jurists. Twenty-second: A non-believer who opposes the Sharia, such as a Jew or a Christian, leads Muslims in prayer while they are unaware of his disbelief. Al-Shafi'i and Ahmad said: It is not sufficient for them, and they must repeat it. Malik and his companions said the same, because he is not among those performing an act of worship. Al-Awza'i said: He is punished. Abu Thawr and al-Muzani said: There is no need for those who prayed behind him to repeat it, and he does not become a Muslim by his prayer according to al-Shafi'i and Abu Thawr. Ahmad said: He is compelled to accept Islam(3). Twenty-third: As for the people of innovation (Ahl al-Bid'ah) from the people of whims (Ahl al-Ahwa'), such as the Mu'tazilites, Jahmites, and others; Al-Bukhari mentioned from Al-Hasan: Pray [behind him], and his innovation is upon himself(4). Ahmad said: One should not pray behind anyone from the people of whims if he is calling towards his whims. Malik said: One prays behind tyrannical leaders, but one does not pray behind people of innovation from the Qadariyya and others. Ibn al-Mundhir said: For anyone whose innovation has led him to disbelief, prayer behind him is not valid. For those who are not like that, prayer behind them is permissible, but it is not allowed to put forward someone with such a description as a regular Imam. Twenty-fourth: As for the one who is sinful in his physical actions, like an adulterer, or a wine-drinker, and the like; the [Maliki] school differed regarding him. Ibn Habib said: Whoever prayed behind one who drank wine, he...

(1) Al-Awsat 4/162, or similar. (2) Al-Baji quoted it from him in Al-Muntaqa 1/235. Ibn Ayman is Abu Abd Allah Muhammad bin Abd al-Malik bin Ayman bin Faraj al-Qurtubi, the scholar of Andalusia and its authority in his time. He was insightful in jurisprudence, a Mufti, excellent, knowledgeable in Hadith and its paths, and a scholar of it. He authored a book on Sunan modeled after Sunan Abi Dawud. He died in the year 330 AH. As-Siyar 15/241. (3) Al-Awsat 4/162. (4) Al-Bukhari recorded it definitively in the Book of Adhan, Chapter: The Imamate of the one tested by trials

and the innovator (Fath al-Bari 2/188). Al-Hafiz [Ibn Hajar] connected its chain in Taghliq al-Ta'liq 2/292-293. (5) Al-Awsat 2/232.

सूरह अल-बकरा: आयत 43 43

इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा(1): अल-शाफिई उन पुरुषों के लिए नमाज़ दोहराना अनिवार्य मानते हैं जिन्होंने एक महिला के पीछे नमाज़ पढ़ी हो। अबू थौर ने कहा: उन्हें दोहराने की ज़रूरत नहीं है। यह अल-मुज़नी के मत के अनुरूप है। मैं कहता हूँ: हमारे विद्वानों ने कहा: पुरुषों या महिलाओं के लिए उसका इमामत (नमाज़ का नेतृत्व करना) मान्य नहीं है। इब्न ऐमान ने महिलाओं के लिए उसकी इमामत की अनुमति का वर्णन किया है(2)। जहाँ तक उभयलिंगी (खुनसा मुश्किल) का सवाल है; अल-शाफिई ने कहा: वह पुरुषों की इमामत नहीं करेगा, लेकिन महिलाओं की इमामत कर सकता है। मलिक ने कहा: वह किसी भी स्थिति में इमाम नहीं हो सकता, और यह अधिकांश न्यायविदों का मत है। बाईसवाँ: शरीयत का उल्लंघन करने वाला काफिर, जैसे यहूदी और ईसाई, मुसलमानों की इमामत करता है जबकि वे उसके कुफ्र (अविश्वास) से अनभिज्ञ हों। अल-शाफिई और अहमद कहते थे: यह उनके लिए पर्याप्त नहीं है और वे नमाज़ दोहराएँगे। मलिक और उनके साथियों ने भी यही कहा, क्योंकि वह इबादत (उपासना) के योग्य लोगों में से नहीं है। अल-औज़ाई ने कहा: उसे दंडित किया जाएगा। अबू थौर और अल-मुज़नी ने कहा: जिसने उसके पीछे नमाज़ पढ़ी, उसे दोहराने की ज़रूरत नहीं है, और अल-शाफिई और अबू थौर के अनुसार वह अपनी नमाज़ से मुसलमान नहीं हो जाता। अहमद ने कहा: उसे इस्लाम स्वीकार करने के लिए विवश किया जाएगा(3)। तेईसवाँ: जहाँ तक नवाचार करने वालों (अहल अल-बिदा) का संबंध है जो अपनी इच्छाओं (अहल अल-अहवा) के अनुयायी हैं, जैसे मुअतज़िला, जहमिया और अन्य; अल-बुखारी ने अल-हसन से उल्लेख किया है: नमाज़ पढ़ो, और उसका नवाचार उसी पर है(4)। अहमद ने कहा: यदि कोई अपनी इच्छाओं की ओर बुला रहा हो, तो ऐसे किसी व्यक्ति के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ी जानी चाहिए। मलिक ने कहा: अत्याचारी शासकों के पीछे नमाज़ पढ़ी जा सकती है, लेकिन कदरिया और अन्य नवाचारियों के पीछे नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: जिसका नवाचार उसे कुफ्र तक ले गया हो, उसके पीछे नमाज़ जायज़ नहीं है। और जो ऐसा नहीं है; उसके पीछे नमाज़ जायज़ है, लेकिन ऐसे गुण वाले व्यक्ति को आगे बढ़ाना (इमाम बनाना) जायज़ नहीं है(5)। चौबीसवाँ: जहाँ तक उस व्यक्ति का सवाल है जो अपने अंगों से पापी है, जैसे व्यभिचारी, शराब पीने वाला, और इसी तरह; इसके बारे में संप्रदाय (मज़हब) में मतभेद है। इब्न हबीब ने कहा: जिसने शराब पीने वाले के पीछे नमाज़ पढ़ी, तो वह...

(1) अल-औसत 4/162, इसी तरह। (2) अल-बाजी ने इसे अल-मुन्ताका 1/235 में उनसे उद्धृत किया। इब्न ऐमान, अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन अब्दुल मलिक बिन ऐमान बिन फराज अल-कुर्तुबी हैं,

जो अपने समय में अंडालूसिया के शेख और उसके अधिकारी थे। वह न्यायशास्त्र में पारंगत, मुफ्ती, कुशल, हदीस और उसके मार्गों के जानकार और उसके विद्वान थे। उन्होंने सुनन पर एक पुस्तक लिखी जिसे सुनन अबी दाऊद की तर्ज पर तैयार किया गया था। उनका निधन वर्ष 330 हिजरी में हुआ। अस-सियार 15/241। (3) अल-औसत 4/162। (4) अल-बुखारी ने इसे किताब अल-अज़ान, अध्याय: परीक्षण में पड़े और नवाचारी की इमामत (फतह अल-बारी 2/188) में दृढ़ता के साथ दर्ज किया है। अल-हाफ़िज़ ने इसे तग़लीक़ अल-ता'लीक़ 2/292-293 में जोड़ा है। (5) अल-औसत 2/232।

سورة البقرہ: آیت ٤٣ ٤٣

ابن المنذر نے کہا(١): شافعی ان مردوں پر اعادہ (نماز دہرانا) واجب قرار دیتے ہیں جنہوں نے عورت کے پیچھے نماز پڑھی ہو۔ اور ابو ثور نے کہا: ان پر اعادہ نہیں ہے۔ اور یہ المزنی کے قول کا قیاس ہے۔ میں کہتا ہوں: ہمارے علماء نے کہا: مردوں اور عورتوں کے لیے اس کی امامت صحیح نہیں ہے۔ اور ابن ایمن نے عورتوں کے لیے اس کی امامت کے جواز کی روایت کی ہے(٢)۔ رہا خنثیٰ مشکل؛ تو شافعی نے فرمایا: وہ مردوں کی امامت نہیں کرے گا، اور عورتوں کی امامت کرے گا۔ مالک نے فرمایا: وہ کسی حال میں امام نہیں ہو سکتا، اور یہی اکثر فقہاء کا قول ہے۔ بائیسویں بات: شریعت کا مخالف کافر، جیسے یہودی اور نصرانی، مسلمانوں کی امامت کرے جبکہ وہ اس کے کفر سے ناواقف ہوں۔ شافعی اور احمد فرماتے تھے: یہ ان کے لیے کافی نہیں ہے اور وہ اعادہ کریں گے۔ مالک اور ان کے اصحاب نے بھی یہی کہا، کیونکہ وہ اہل قربت (عبادت کے اہل) میں سے نہیں ہے۔ اوزاعی نے کہا: اسے سزا دی جائے گی۔ ابو ثور اور المزنی نے کہا: جس نے اس کے پیچھے نماز پڑھی اس پر اعادہ نہیں ہے، اور شافعی اور ابو ثور کے نزدیک وہ اپنی نماز سے مسلمان نہیں ہوتا۔ احمد نے کہا: اسے اسلام پر مجبور کیا جائے گا(٣)۔ تیئیسویں بات: رہی بات اہل بدعت کی جو خواہشات کے پیروکار (اہل اہواء) ہیں، جیسے معتزلہ، جہمیہ اور ان کے علاوہ؛ تو بخاری نے حسن سے ذکر کیا ہے: نماز پڑھو، اور اس کی بدعت اسی پر ہے(٤)۔ اور احمد نے کہا: خواہشات کے پیروکاروں میں سے کسی کے پیچھے نماز نہ پڑھی جائے اگر وہ اپنی خواہش کی طرف بلانے والا ہو۔ اور مالک نے کہا: ظالم ائمہ کے پیچھے نماز پڑھی جائے گی، اور قدریہ وغیرہ اہل بدعت کے پیچھے نماز نہیں پڑھی جائے گی۔ اور ابن المنذر نے کہا: ہر وہ شخص جس کی بدعت اسے کفر تک لے گئی اس کے پیچھے نماز جائز نہیں ہے، اور جو ایسا

نہیں ہے؛ تو اس کے پیچھے نماز جائز ہے، لیکن ایسے شخص کو (امام کے طور पर) آگے کرنا جائز نہیں ہے(٥)۔ چوبیسویں بات: رہا وہ شخص جو اپنے اعضاء سے فاسق ہے، جیسے زانی، شراب پینے والا اور اس طرح کے لوگ؛ تو اس میں مذہب (مالکی) کا اختلاف ہے، ابن حبیب نے کہا: جس نے شراب پینے والے کے پیچھے نماز پڑھی تو وہ...

(١) الاوسط ٤ / ١٦٢، اسی طرح۔ (٢) الباجی نے اسے المنتقی ١ / ٢٣٥ میں ان سے نقل کیا۔ اور ابن ایمن ابو عبد اللہ محمد بن عبد الملک بن ایمن بن فرج القرطبی ہیں جو اپنے زمانے میں اندلس کے شیخ اور اس کی سند تھے، وہ فقہ میں بصیرت رکھنے والے، مفتی، ماہر، حدیث اور اس کے طریقوں کے جاننے والے اور اس کے عالم تھے۔ انہوں نے سنن پر ایک کتاب تصنیف کی جو سنن ابی داؤد کی طرز پر تھی۔ ان کا انتقال ٣٣٠ ھ میں ہوا۔ السیر ١٥ / ٢٤١۔ (٣) الاوسط ٤ / ١٦٢۔ (٤) اسے بخاری نے کتاب الاذان، باب امامت المفتون والمبتدع، (فتح الباری ٢ / ١٨٨) میں صیغہ جزم کے ساتھ درج کیا ہے۔ اور الحافظ نے اسے تغلیق التعلیق ٢ / ٢٩٢-٢٩٣ میں متصل کیا ہے۔ (٥) الاوسط ٢ / ٢٣٢۔

44 Surah Al-Baqarah: Ayah 43

...ever repeat, unless it is the ruler to whom obedience is due; then there is no repetition for whoever prayed behind him, unless he was drunk at the time. This was said by those I met from the companions of Malik(1).

And it was narrated from the Hadith of Jabir bin Abdullah that the Messenger of Allah (peace be upon him) said on the pulpit: "A woman should not lead a man in prayer, nor should a desert Arab lead a Muhajir (emigrant), nor should a wicked person lead a righteous one, unless he possesses authority (sultan)"(2). Abu Muhammad Abd al-Haq(3) said: This is narrated by Ali bin Zaid bin Jud'an, on the authority of Sa'id bin al-Musayyib, [on the authority of Jabir], and most scholars consider Ali bin Zaid to be weak.

Al-Daraqutni(4) narrated on the authority of Abu Hurairah that he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "If it pleases you that your prayers be pure/accepted, then put forward the best of you." In its chain of narration is Abu al-Walid Khalid bin Ismail al-Makhzumi, and he is weak. This was said by Al-Daraqutni. Abu Ahmad bin Adi(5) said of him: He used to fabricate Hadith and attribute it to the trustworthy Muslims. This Hadith of his is narrated on the authority of Ibn Jurayj, on the authority of Ata, on the authority of Abu Hurairah.

Al-Daraqutni mentioned on the authority of Sallam bin Sulayman, on the authority of Umar, on the authority of Muhammad bin Wasi', on the authority of Sa'id bin Jubayr, on the authority of Ibn Umar who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Make your leaders the best among you; for they are your delegation(6) between you and Allah." Al-Daraqutni said: This Umar is, in my view, Umar bin Yazid, the judge of al-Mada'in, and Sallam bin Sulayman is also from Mada'in and is not strong. This was said by Abd al-Haq(7).

Twenty-fifth: The Imams narrated that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "The Imam is appointed only to be followed; so do not differ from him. When he says 'Allahu Akbar', then say 'Allahu Akbar'; when he bows, then bow; and when he says, 'Allah hears the one who..."

(1) Al-Muntaqa by Al-Baji 1/236. (2) Reported by Ibn Majah (1081), and Al-Bayhaqi in As-Sunan 3/171. It was declared weak due to Abdullah bin Muhammad Al-Adawi; Bukhari's saying about him was quoted: "His Hadith is rejected (munkar), he is not followed in his narration." (3) Al-Ahkam al-Wusta 1/329, and what is between brackets

is from it. (4) Sunan al-Daraqutni 1/346. (5) Al-Kamil 3/912, quoted by Abu Muhammad Abd al-Haq in Al-Ahkam al-Wusta 1/322. Ibn Adi is Abdullah bin Adi al-Jurjani, the critic Hafiz, died in the year (365 AH). As-Siyar 16/154. (6) In Sunan al-Daraqutni 2/87-88: Your delegation. (7) Al-Ahkam al-Wusta 1/322-323. The talk regarding Sallam bin Sulayman is from the words of Abd al-Haq. Furthermore, in the chain of the Hadith is Al-Husayn bin Nasr; Ibn al-Qattan said in Bayan al-Wahm wal-Iham 3/149: He is unknown.

44 सूरा अल-बक़रह: आयत 43

...उसे कभी दोहराना चाहिए, जब तक कि वह शासक न हो जिसकी आज्ञा का पालन करना अनिवार्य है; तो उसके पीछे प्रार्थना करने वाले के लिए कोई दोहराव नहीं है, जब तक कि वह उस समय नशे में न हो। यह बात मैंने मलिक के साथियों में से उन लोगों से सुनी जिनसे मैं मिला हूँ(1)।

और जाबिर बिन अब्दुल्ला की हदीस से वर्णित है कि अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) ने मिम्बर पर कहा: "कोई महिला किसी पुरुष का नेतृत्व न करे, न ही कोई देहाती अरब किसी मुहाजिर (प्रवासी) का नेतृत्व करे, और न ही कोई दुष्ट व्यक्ति किसी नेक व्यक्ति का नेतृत्व करे, जब तक कि उसके पास अधिकार (सुल्तान) न हो"(2)। अबू मुहम्मद अब्दुल हक(3) ने कहा: इसे अली बिन ज़ैद बिन जुदआन ने सईद बिन अल-मुसय्यब के अधिकार पर, [जाबिर के अधिकार पर] वर्णित किया है, और अधिकांश विद्वान अली बिन ज़ैद को कमज़ोर मानते हैं।

अल-दारकुतनी(4) ने अबू हुरैरा के अधिकार पर वर्णन किया कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) ने कहा: "यदि आपको यह प्रसन्न करता है कि आपकी प्रार्थनाएँ शुद्ध/स्वीकृत हों, तो आपमें से जो सबसे अच्छे हों उन्हें आगे बढ़ाएं।" इसके वर्णन की श्रृंखला में अबू अल-वलीद खालिद बिन इस्माइल अल-मखज़ूमी है, और वह कमज़ोर है। यह अल-दारकुतनी ने कहा था। अबू अहमद बिन अदी(5) ने उनके बारे में कहा: वह हदीस गढ़ता था और उसे विश्वसनीय मुसलमानों के नाम से जोड़ देता था। उनकी यह हदीस इब्न जुरैज के अधिकार पर, अता के अधिकार पर, अबू हुरैरा के अधिकार पर वर्णित है।

अल-दारकुतनी ने सलाम बिन सुलेमान के अधिकार पर, उमर के अधिकार पर, मुहम्मद बिन वासि के अधिकार पर, सईद बिन जुबैर के अधिकार पर, इब्न उमर के अधिकार पर उल्लेख किया है जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) ने कहा: "अपने इमामों को अपने में से सबसे अच्छा बनाओ; क्योंकि वे तुम्हारे और अल्लाह के बीच तुम्हारे प्रतिनिधि(6) हैं।" अल-दारकुतनी ने कहा: यह उमर मेरे विचार में मदाइन के न्यायाधीश उमर बिन यज़ीद हैं, और सलाम बिन सुलेमान भी मदाइन से हैं और वे मज़बूत नहीं हैं। यह अब्दुल हक(7) ने कहा था।

पच्चीसवाँ: इमामों ने वर्णन किया कि अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) ने कहा: "इमाम केवल इसलिए बनाया जाता है ताकि उसका अनुसरण किया जाए; इसलिए उसके विरुद्ध न जाओ। जब वह

'अल्लाहू अकबर' कहे, तो तुम भी 'अल्लाहू अकबर' कहो; जब वह झुके तो झुको; और जब वह कहे, 'अल्लाह ने उसकी सुन ली जिसने..."

(1) अल-मुंतका अल-बाजी 1/236। (2) इसे इब्न माजह (1081) और अल-बैहकी ने अस-सुनन 3/171 में दर्ज किया है। अब्दुल्ला बिन मुहम्मद अल-अदवी के कारण इसे कमजोर घोषित किया गया था; बुखारी का उनके बारे में यह कथन उद्धृत किया गया था: "उनकी हदीस अस्वीकार्य (मुनकर) है, उनके वर्णन का पालन नहीं किया जाता है।" (3) अल-अहकाम अल-वुस्ता 1/329, और कोष्ठक के बीच की सामग्री उसी से है। (4) सुनन अल-दारकुतनी 1/346। (5) अल-कामिल 3/912, अबू मुहम्मद अब्दुल हक द्वारा अल-अहकाम अल-वुस्ता 1/322 में उद्धृत। इब्न अदी अब्दुल्ला बिन अदी अल-जुरजानी हैं, जो आलोचक हाफिज थे, उनकी मृत्यु वर्ष (365 हिजरी) में हुई थी। अस-सियार 16/154। (6) सुनन अल-दारकुतनी 2/87-88 में: आपका प्रतिनिधि। (7) अल-अहकाम अल-वुस्ता 1/322-323। सलाम बिन सुलेमान के संबंध में बात अब्दुल हक के शब्दों से है। इसके अलावा, हदीस की श्रृंखला में अल-हुसैन बिन नस्र हैं; इब्न अल-कत्तान ने बयान अल-वहम वल-इहाम 3/149 में कहा: वह अज्ञात हैं।

44 سورة البقرہ: آیت 43

...کبھی اعادہ کرے، سوائے اس کے کہ وہ حاکم ہو جس کی اطاعت واجب ہے، تو اس کے پیچھے نماز پڑھنے والے پر کوئی اعادہ نہیں ہے، الا یہ کہ وہ اس وقت نشے میں ہو۔ یہ بات امام مالک کے ان اصحاب سے منسوب ہے جن سے میری ملاقات ہوئی(1)۔

اور جابر بن عبداللہ کی حدیث سے مروی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے منبر پر فرمایا: "کوئی عورت کسی مرد کی امامت نہ کرے، نہ ہی کوئی بدوی کسی مہاجر کی، اور نہ ہی کوئی بدکار کسی نیک شخص کی امامت کرے، الا یہ کہ وہ صاحبِ اقتدار (سلطان) ہو"(2)۔ ابو محمد عبد الحق(3) نے کہا: اسے علی بن زید بن جدعان، سعید بن المسیب سے، [جابر سے] روایت کرتے ہیں، اور اکثر علماء علی بن زید کو ضعیف قرار دیتے ہیں۔

اور دارقطنی(4) نے حضرت ابوہریرہ سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "اگر تمہیں یہ بات پسند ہے کہ تمہاری نمازیں پاکیزہ/قبول ہوں، تو اپنے میں سے بہتر لوگوں کو آگے کرو۔" اس کی سند میں ابوالولید خالد بن اسماعیل المخزومی ہے، جو ضعیف ہے۔ یہ دارقطنی نے کہا۔ اور ابو احمد بن عدی(5) نے ان کے بارے میں کہا: وہ ثقہ مسلمانوں کے نام سے حدیثیں وضع کیا کرتا تھا، اور اس کی یہ حدیث ابن جریج سے، عطاء سے، ابوہریرہ سے مروی ہے۔

اور دارقطنی نے سلام بن سلیمان سے، انہوں نے عمر سے، انہوں نے محمد بن واسع سے، انہوں نے سعید بن جبیر سے، انہوں نے ابن عمر سے ذکر کیا کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "اپنے اماموں کو اپنے میں سے بہتر لوگوں کو بناؤ؛ کیونکہ وہ تمہارے اور اللہ کے درمیان تمہارے

نمائندے(6) ہیں۔" دارقطنی نے کہا: یہ عمر میرے نزدیک عمر بن یزید قاضی المدائن ہیں، اور سلام بن سلیمان بھی مدائنی ہیں جو قوی نہیں ہیں۔ یہ عبدالحق(7) نے کہا۔

پچیسواں: ائمہ نے روایت کیا ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "امام اس لیے بنایا جاتا ہے کہ اس کی پیروی کی جائے؛ لہٰذا اس سے اختلاف نہ کرو! جب وہ تکبیر کہے تو تم بھی تکبیر کہو، جب وہ رکوع کرے تو تم بھی رکوع کرو، اور جب وہ کہے 'سمع اللہ لمن..."

(1) المنتقی للباجی 236/1۔ (2) اسے ابن ماجہ (1081) اور بیہقی نے السنن 171/3 میں روایت کیا ہے، اور عبداللہ بن محمد العدوی کی وجہ سے اسے معلول (ضعیف) قرار دیا، اور ان کے بارے میں بخاری کا قول نقل کیا: "وہ منکر الحدیث ہے، اس کی حدیث کی پیروی نہیں کی جاتی۔" (3) الاحکام الوسطی 329/1، اور جو کچھ قوسین میں ہے وہ اسی سے ہے۔ (4) سنن الدارقطنی 346/1۔ (5) الکامل 912/3، اور اسے ابو محمد عبدالحق نے الاحکام الوسطی 322/1 میں نقل کیا ہے۔ ابن عدی عبداللہ بن عدی الجرجانی ہیں، جو حافظ اور نقاد تھے، ان کی وفات سال (365ھ) میں ہوئی۔ السیر 154/16۔ (6) سنن الدارقطنی 87/2 - 88 میں: تمہارا وفد۔ (7) الاحکام الوسطی 322/1-323۔ سلام بن سلیمان کے بارے میں کلام عبدالحق کا ہے۔ مزید یہ کہ حدیث کی سند میں الحسین بن نصر ہے، ابن القطان نے بیان الوھم والایھام 149/3 میں کہا: وہ مجہول (نا معلوم) ہے۔

45

Surah Al-Baqarah: Verse 43

...His praise, so say: O Allah, our Lord, to You is praise. And when he prostrates, then prostrate. And if he prays sitting, then all of you pray sitting (1).

Scholars have differed concerning the one who raises (his head) or lowers (himself) before the Imam intentionally, into two opinions:

The first: That his prayer is invalid if he does that throughout all of it or in most of it, which is the view of the people of the Zahiri (Literalist) school, and it is narrated from Ibn Umar (3). Sunayd mentioned, saying: Ibn 'Ulayyah told us, from Ayyub, from Abu Qilabah, from Abu al-Ward al-Ansari, who said: I prayed beside Ibn Umar, and I began rising before the Imam and bowing before him. When the Imam finished with the Taslim, Ibn Umar took my hand, twisted me and pulled me. I said: What is the matter with you?! He said: Who are you? I said: So-and-so, son of so-and-so. He said: You are from a household of truth! So what prevents you from praying? I said: Did you not see me beside you?! He said: I saw you rising before the Imam and bowing before him, and indeed there is no prayer for the one who opposes the Imam (4).

Al-Hasan bin Hayy said regarding the one who bows or prostrates before the Imam, then rises from his bowing or prostration before the Imam bows or prostrates: That is not counted for him, and it does not suffice him.

Most jurists (Fuqaha) said: Whoever does that has acted wrongly, but his prayer is not invalidated. Because the basis of congregational prayer and following the Imams in it is a good Sunnah. So whoever opposes it after having performed the obligatory parts of his prayer with its purity, bowing, prostration, and its obligations, does not have to repeat it, even if he omitted some of its Sunnahs. Because if he had wished to pray alone, and had prayed that prayer before his Imam, it would have sufficed for him, and miserable is what he did in leaving the congregation.

They said: Whoever enters the Imam's prayer, and bows with his bowing, and prostrates with his prostration, and was not in one rak'ah while his Imam was in another, has followed [him], even if he was rising before him and lowering before him; because...

(1) In (D): "all of them", and it was narrated by Ahmad (8156), Al-Bukhari (722), and Muslim (414) from the hadith of Abu Hurairah. And on the same topic from Ibn Umar,

Anas, Jabir and Aisha, may Allah be pleased with them. (2) In (D), (Za) and (M): "bowed", and what is established is from (Z). (3) Al-Awsat by Ibn Al-Mundhir 4/191. (4) Ibn Abd al-Barr mentioned it in its entirety in Al-Istidhkar 4/306-307. And Ibn Al-Mundhir narrated it similarly in Al-Awsat 4/190-191 from the path of Wahb, from Ayyub, from Qais bin Abaya, from a man from the Ansar who said: I came to Medina... and mentioned the story.

45

सूरा अल-बकरा: आयत 43

...उसकी प्रशंसा, तो कहो: ऐ अल्लाह, हमारे रब, तेरे ही लिए प्रशंसा है। और जब वह सजदा करे, तो सजदा करो। और यदि वह बैठकर नमाज पढ़े, तो तुम सब बैठकर नमाज पढ़ो (1)।

विद्वानों ने जानबूझकर इमाम से पहले सिर उठाने या झुकने वाले के बारे में दो मतों में मतभेद किया है:

पहला: यह कि उसकी नमाज अमान्य है यदि वह पूरी नमाज में या उसके अधिकांश हिस्से में ऐसा करता है, और यह ज़ाहिरी पंथ के लोगों का विचार है, और यह इब्न उमर (3) से वर्णित है। सुनैद ने उल्लेख किया, कहा: इब्न उलैय्या ने हमें अय्यूब से, उन्होंने अबू किलाबा से, उन्होंने अबू अल-वर्द अल-अंसारी से बताया, जिन्होंने कहा: मैंने इब्न उमर के बगल में नमाज पढ़ी, और मैं इमाम से पहले उठने और उससे पहले झुकने लगा। जब इमाम ने सलाम फेरा, तो इब्न उमर ने मेरा हाथ पकड़ा, मुझे मरोड़ा और खींचा। मैंने कहा: आपको क्या हुआ?! उन्होंने कहा: तुम कौन हो? मैंने कहा: फलां का बेटा फलां। उन्होंने कहा: तुम एक सच्चे घराने से हो! फिर तुम्हें नमाज पढ़ने से क्या रोकता है? मैंने कहा: क्या आपने मुझे अपने बगल में नहीं देखा?! उन्होंने कहा: मैंने तुम्हें इमाम से पहले उठते और उससे पहले झुकते देखा है, और वास्तव में उस व्यक्ति की कोई नमाज नहीं है जो इमाम का विरोध करता है (4)।

अल-हसन बिन हई ने उस व्यक्ति के बारे में कहा जो इमाम से पहले रुकू या सजदा करता है, फिर इमाम के रुकू या सजदा करने से पहले अपने रुकू या सजदे से उठ जाता है: इसे गिना नहीं जाएगा, और यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है।

अधिकांश फकीहों ने कहा: जिसने ऐसा किया उसने बुरा किया, लेकिन उसकी नमाज अमान्य नहीं हुई; क्योंकि जमात की नमाज का मूल आधार और उसमें इमामों का अनुसरण करना एक अच्छी सुन्नत है। अतः जिसने अपनी नमाज के अनिवार्य हिस्सों को उसकी पवित्रता, रुकू सजदे और उसके फर्जों के साथ अदा करने के बाद इसका विरोध किया, उसे इसे दोहराना नहीं है, भले ही उसने इसकी कुछ सुन्नतों को छोड़ दिया हो; क्योंकि अगर वह अकेले नमाज पढ़ना चाहता, और अपने इमाम से पहले वह नमाज पढ़ लेता, तो वह उसकी ओर से पर्याप्त होती, और जमात छोड़ने में उसने जो किया वह बहुत बुरा था।

उन्होंने कहा: जो कोई इमाम की नमाज में शामिल हुआ, और उसके रुकू के साथ रुकू किया, और उसके सजदे के साथ सजदा किया, और वह किसी और रकात में नहीं था जबकि उसका इमाम दूसरी रकात में था, तो उसने [उसका] अनुसरण किया है, भले ही वह उससे पहले उठ रहा हो और उससे पहले झुक रहा हो; क्योंकि...

(1) (द) में: "अजमाईन", और इसे अहमद (8156), बुखारी (722), और मुस्लिम (414) ने अबू हुरैरा की हदीस से उद्धृत किया है। और इस विषय पर इब्न उमर, अनस, जाबिर और आयशा (रज़िअल्लाहु अन्हुम) से भी हदीसें हैं। (2) (द), (ज़) और (म) में: "रका" (रुकू किया), और जो स्थापित है वह (ज़) से है। (3) अल-अवसत इब्न अल-मुन्ज़िर 4/191। (4) इब्न अब्द अल-बर्र ने इसे अल-इस्तिज़कार 4/306-307 में पूरी तरह से उल्लेख किया है। और इब्न अल-मुन्ज़िर ने इसे अल-अवसत 4/190-191 में वहब के माध्यम से, अय्यूब से, कैस बिन अबाया से, अंसार के एक व्यक्ति से उद्धृत किया है जिसने कहा: मैं मदीना आया... और कहानी का उल्लेख किया।

45

سورة البقرة: آیت 43

...اس کی حمد، پس کہو: اے اللہ، ہمارے رب، تیرے ہی لیے حمد ہے۔ اور جب وہ سجدہ کرے تو سجدہ کرو، اور جب وہ بیٹھ کر نماز پڑھے تو تم سب بیٹھ کر نماز پڑھو (1)۔

علماء نے اس شخص کے بارے میں اختلاف کیا ہے جو جان بوجھ کر امام سے پہلے سر اٹھاتا ہے یا جھکتا ہے، اس میں دو اقوال ہیں:

پہلا قول: یہ کہ اس کی نماز فاسد ہے اگر وہ پوری نماز میں یا اس کے اکثر حصے میں ایسا کرے، اور یہ اہل ظاہر کا قول ہے، اور یہ ابن عمر (3) سے روایت کیا گیا ہے۔ سنید نے ذکر کیا، کہا: ہمیں ابن علیہ نے ایوب سے، انہوں نے ابو قلابہ سے، انہوں نے ابو الورد الانصاری سے بیان کیا، انہوں نے کہا: میں نے ابن عمر کے پہلو میں نماز پڑھی، تو میں امام سے پہلے سر اٹھانے لگا اور اس سے پہلے سر جھکانے لگا| جب امام نے سلام پھیرا تو ابن عمر نے میرا ہاتھ پکڑا، مجھے مروڑا اور کھینچا۔ میں نے کہا: آپ کو کیا ہوا؟! انہوں نے کہا: تم کون ہو؟ میں نے کہا: فلاں بن فلاں۔ انہوں نے کہا: تم تو ایک سچے گھرانے سے ہو! پھر تمہیں نماز پڑھنے سے کیا چیز روکتی ہے؟ میں نے کہا: کیا آپ نے مجھے اپنے پہلو میں نہیں دیکھا؟! انہوں نے کہا: میں نے تمہیں امام سے پہلے سر اٹھاتے اور اس سے پہلے جھکتے دیکھا ہے، اور بیشک اس شخص کی کوئی نماز نہیں جو امام کی مخالفت کرتا ہے (4)۔

اور حسن بن حی نے اس شخص کے بارے میں کہا جو امام سے پہلے رکوع یا سجدہ کرے، پھر امام کے رکوع یا سجدہ کرنے سے پہلے اپنے رکوع یا سجدے سے سر اٹھا لے: اس کا اعتبار نہیں کیا جائے گا، اور یہ اسے کافی نہیں ہوگا۔

اور اکثر فقہاء نے کہا: جس نے ایسا کیا اس نے برا کیا، لیکن اس کی نماز فاسد نہیں ہوئی؛ کیونکہ نماز باجماعت کی اصل اور اس میں ائمہ کی پیروی کرنا ایک سنت حسنہ ہے، پس جس نے اپنی نماز کے فرائض اس کی طہارت، رکوع، سجدہ اور اس کے فرائض کے ساتھ ادا کرنے کے بعد اس کی مخالفت کی، تو اس پر اسے دہرانا واجب نہیں، اگرچہ اس نے اس کی بعض سنتوں کو چھوڑ دیا ہو؛ کیونکہ اگر وہ تنہا نماز پڑھنا چاہتا اور اپنے امام سے پہلے وہ نماز پڑھ لیتا تو وہ اس کی طرف سے کافی ہو جاتی، اور جماعت چھوڑنے میں اس نے جو کیا وہ بہت برا تھا۔

انہوں نے کہا: اور جو شخص امام کی نماز میں داخل ہوا، اور اس کے رکوع کے ساتھ رکوع کیا، اور اس کے سجدے کے ساتھ سجدہ کیا، اور وہ کسی رکعت میں نہ ہو جبکہ اس کا امام دوسری رکعت میں ہو، تو اس نے [اس کی] اقتدا کی، اگرچہ وہ اس سے پہلے سر اٹھا رہا ہو اور اس سے پہلے جھک رہا ہو؛ کیونکہ...

(1) (د) میں ہے: "اجمعین"، اور اسے احمد (8156)، بخاری (722)، اور مسلم (414) نے ابوہریرہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور اس باب میں ابن عمر، انس، جابر اور عائشہ رضی اللہ عنہم سے مروی ہے۔ (2) (د)، (ظ) اور (م) میں: "رکع"، اور جو ثابت ہے وہ (ز) سے ہے۔ (3) الاوسط لابن المنذر 4/ 191۔ (4) اسے ابن عبد البر نے الاستذکار 4/ 306-307 میں مکمل ذکر کیا ہے۔ اور ابن المنذر نے اسے الاوسط 4/ 190-191 میں وہب کے واسطے سے ایوب سے، انہوں نے قیس بن عبایہ سے، انہوں نے انصار کے ایک شخص سے روایت کیا جس نے کہا: میں مدینہ آیا... اور قصہ ذکر کیا۔

٤٦ Surah Al-Baqarah: Verse 43

...with his bowing he bows, and with his prostration he prostrates, and [with his rising] he rises, and in that he is a follower of him, except that he is wrongdoer in that action of his; because of his violation of (1) the sunnah of the congregational follower (Ma'mum) agreed upon (2). I said: What Ibn Abd al-Barr (3) narrated from the majority is based (4) on the idea that the follower's prayer, according to them, is not linked to the Imam's prayer; because sensory and legal following is missing, and the matter is not like this according to most of them. The correct view in tradition and reasoning is the first saying, for the Imam was only appointed to be followed and to be emulated by his actions, and from this is the saying of the Almighty: {Indeed, I will make you a leader for the people} [Al-Baqarah: 124] meaning: they follow you, as will be explained (5). This is the reality of the Imam linguistically and legally, so whoever disagrees with his Imam has not followed him. Then the Prophet ﷺ explained and said: "When he says Allahu Akbar, you say Allahu Akbar" the Hadith (6). So he brought the letter 'fa' (in Arabic, indicating immediate succession) which necessitates subsequent action, and he is the one who clarifies for Allah His intent. Then he threatened those who rise or bow before [the Imam] with a severe threat, saying: "Does the one who raises his head before the Imam not fear that Allah will change his head into the head of a donkey - or his image into the image of a donkey?" narrated in 'Al-Muwatta', Al-Bukhari, Muslim, Abu Dawood, and others (7). Abu Hurairah said: Verily, his forelock is in the hand of a devil (8). And the Messenger of Allah ﷺ said: "Every action that is not according to our command is rejected" (9). Meaning: returned (10). So whoever intentionally goes against his Imam, knowing that he is commanded to follow him and forbidden from opposing him, has...

(1) In (D) and (Zha): by way of differing. (2) Al-Istidhkar 4/307, and what is between the brackets is from it. (3) The author here narrated his refutation of Ibn Abd al-Barr, and did not state his words before, and it is in Al-Istidhkar as in the previous comment. (4) In (Za): is built, and in (Meem) informs. (5) 2/367. (6) Previously 2/44. (7) We did not find it in Al-Muwatta, but it is in Al-Bukhari (691), Muslim (427), and Abu Dawood (623) from the hadith of Abu Hurairah. It is in Al-Musnad (9884). (8) Narrated by Malik 1/92. (9) Ibn Abd al-Barr mentioned it with this wording in Al-Istidhkar 4/306, and Al-Tamheed 2/82, and Al-Bukhari (2697) and Muslim (1718) narrated from Aisha (may Allah be pleased with her), as a Marfu' (elevated) narration: "Whoever innovates in this matter of ours what is not part of it, it is rejected," and in a version by Muslim:

"Whoever does an action that is not according to our command, it is rejected." (10) In (D) and (Za): rejected.

४६ सूरा अल-बक़रह : आयत ४३

...उनके झुकने के साथ वह झुकता है, और उनके सज्दे के साथ वह सज्दा करता है, और [उनके उठने] के साथ वह उठता है, और इसमें वह उनका अनुयायी है, सिवाय इसके कि वह अपने इस कृत्य में गलत करने वाला है; क्योंकि उसने नमाज़ में अनुयायी (मामूम) की सर्वसम्मत सुन्नत का उल्लंघन (१) किया है (२)। मैंने कहा: इब्न अब्द अल-बर्र (३) ने बहुमत से जो वर्णन किया है वह इस पर आधारित (४) है कि उनके अनुसार अनुयायी की नमाज़ इमाम की नमाज़ से जुड़ी नहीं है; क्योंकि इंद्रियगत और कानूनी पालन का अभाव है, और अधिकांश के अनुसार मामला ऐसा नहीं है। परंपरा और तर्क में सही विचार पहली बात है, क्योंकि इमाम को केवल इसलिए नियुक्त किया गया है ताकि उसका अनुसरण किया जाए और उसके कार्यों का अनुकरण किया जाए, और इसी से सर्वशक्तिमान का वचन है: {वास्तव में, मैं तुम्हें लोगों के लिए एक इमाम (नेता) बनाने वाला हूँ} [अल-बक़रह: १२४] अर्थात: वे आपका अनुसरण करेंगे, जैसा कि आगे बताया जाएगा (५)। यह भाषाई और कानूनी रूप से इमाम की वास्तविकता है, इसलिए जिसने भी अपने इमाम का विरोध किया, उसने उसका अनुसरण नहीं किया। फिर पैगंबर ﷺ ने स्पष्ट किया और कहा: "जब वह अल्लाहु अकबर कहे, तो तुम अल्लाहु अकबर कहो" हदीस (६)। तो वह 'फा' (अरबी में, तत्काल उत्तराधिकार का संकेत देने वाला) अक्षर लेकर आए जो बाद की कार्रवाई को आवश्यक बनाता है, और वह अल्लाह की ओर से उसके इरादे को स्पष्ट करने वाले हैं। फिर उन्होंने इमाम से पहले उठने या झुकने वालों को कड़ी चेतावनी दी, और कहा: "क्या इमाम से पहले अपना सिर उठाने वाला व्यक्ति इस बात से नहीं डरता कि अल्लाह उसके सिर को गधे के सिर में बदल देगा - या उसकी छवि को गधे की छवि में बदल देगा?" इसे 'अल-मुवत्ता', अल-बुखारी, मुस्लिम, अबू दाऊद और अन्य (७) ने उद्धृत किया है। अबू हुरैरा ने कहा: वास्तव में, उसकी लट शैतान के हाथ में है (८)। और अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "हर वह कार्य जो हमारे आदेश के अनुसार नहीं है, वह अस्वीकार्य (रद) है" (९)। यानी: लौटा दिया गया (१०)। तो जो कोई जानबूझकर अपने इमाम के खिलाफ जाता है, यह जानते हुए कि उसे उसका अनुसरण करने का आदेश दिया गया है और उसका विरोध करने से मना किया गया है, तो उसने...

(१) (द) और (ज़): विरोध में। (२) अल-इस्तिदकार ४/३०७, और कोष्ठक के बीच की सामग्री वहीं से है। (३) लेखक ने यहाँ इब्न अब्द अल-बर्र के प्रति अपना खंडन व्यक्त किया है, और इससे पहले उनके शब्दों को स्पष्ट नहीं किया था, और यह पिछले टिप्पणी के अनुसार अल-इस्तिदकार में है। (४) (ज़) में: निर्मित होता है, और (म) में सूचित करता है। (५) २/३६७। (६) पहले २/४४। (७) हमें यह 'अल-मुवत्ता'

में नहीं मिला, लेकिन यह अल-बुखारी (६९१), मुस्लिम (४२७), और अबू दाऊद (६२३) में अबू हुरैरा की हदीस से है। यह अल-मुसनद (९८८४) में है। (८) मलिक १/९२ द्वारा उद्धृत। (९) इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिदकार ४/३०६ और अल-तमहीद २/८२ में इन शब्दों के साथ इसका उल्लेख किया है, और अल-बुखारी (२६९७) और मुस्लिम (१७१८) ने आयशा (रज़ि.) से मरफू रिवायत के रूप में उद्धृत किया है: "जिसने हमारे इस मामले में कुछ नया निकाला जो इसका हिस्सा नहीं है, वह रद (अस्वीकार्य) है", और मुस्लिम के एक शब्द में: "जिसने कोई ऐसा कार्य किया जो हमारे आदेश के अनुसार नहीं है, वह रद है।" (१०) (द) और (ज़) में: रद (मरदूद)।

٤٦ سورة البقرہ : آیت ٤٣

...اس کے رکوع کے ساتھ وہ رکوع کرتا ہے، اور اس کے سجدے کے ساتھ وہ سجدہ کرتا ہے، اور [اس کے اٹھنے] کے ساتھ وہ اٹھتا ہے، اور اس میں وہ اس کا تابع ہے، سوائے اس کے کہ وہ اپنے اس فعل میں غلط کار ہے؛ کیونکہ اس نے مقتدی کی متفقہ سنت کی خلاف ورزی (١) کی ہے (٢)۔ میں نے کہا: ابن عبد البر (٣) نے جمہور سے جو نقل کیا ہے وہ اس پر مبنی (٤) ہے کہ ان کے نزدیک مقتدی کی نماز امام کی نماز سے وابستہ نہیں ہے؛ کیونکہ حسی اور شرعی اتباع مفقود ہے، اور اکثر کے نزدیک معاملہ ایسا نہیں ہے۔ اثر اور نظر میں صحیح قول پہلا ہی ہے، کیونکہ امام تو بنایا ہی اس لیے گیا ہے کہ اس کی اقتدا کی جائے اور اس کے افعال کی پیروی کی جائے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿میں تمہیں لوگوں کے لیے امام بنانے والا ہوں﴾ [البقرہ: ١٢٤] یعنی: وہ تمہاری اقتدا کریں گے، جیسا کہ اس کا بیان آئے گا (٥)۔ یہ لغوی اور شرعی طور پر امام کی حقیقت ہے، پس جس نے اپنے امام کی مخالفت کی اس نے اس کی پیروی نہیں کی۔ پھر نبی کریم ﷺ نے واضح کیا اور فرمایا: "جب وہ تکبیر کہے تو تم تکبیر کہو" الحدیث (٦)۔ تو آپ ﷺ 'فا' لے کر آئے جو تعقیب (فوراً بعد عمل) کو واجب کرتی ہے، اور آپ اللہ کی طرف سے اس کی مراد واضح کرنے والے ہیں۔ پھر آپ ﷺ نے امام سے پہلے سر اٹھانے یا رکوع کرنے والے کو سخت وعید سنائی اور فرمایا: "کیا امام سے پہلے اپنا سر اٹھانے والا اس بات سے نہیں ڈرتا کہ اللہ اس کے سر کو گدھے کے سر میں بدل دے - یا اس کی صورت گدھے کی صورت بنا دے؟" اسے 'موطا'، بخاری، مسلم، ابوداؤد اور دیگر (٧) نے روایت کیا ہے۔ ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے فرمایا: بے شک اس کی پیشانی کے بال شیطان کے ہاتھ میں ہیں (٨)۔ اور رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ہر وہ عمل جس پر ہمارا حکم نہیں ہے وہ مردود ہے" (٩)۔ یعنی رد کیا ہوا (١٠)۔ تو جس نے جان بوجھ کر

اپنے امام کی مخالفت کی یہ جانتے ہوئے کہ اسے اس کی پیروی کا حکم دیا گیا ہے اور اس کی مخالفت سے روکا گیا ہے، تو اس نے...

(١) (د) اور (ظ) میں: بخلاف۔ (٢) الاستذکار ٣٠٧/٤، اور قوسین کے درمیان کی عبارت اسی سے ہے۔ (٣) مصنف نے یہاں ابن عبد البر پر اپنے رد کو نقل کیا ہے، اور اس سے پہلے ان کی کلام کو واضح نہیں کیا تھا، اور یہ الاستذکار میں ہے جیسا کہ پچھلے تعلیق میں گزرا۔ (٤) (ز) میں: بنتا ہے، اور (م) میں خبر دیتا ہے۔ (٥) ٣٦٧/٢۔ (٦) سابقہ ٤٤/٢۔ (٧) ہمیں یہ موطا میں نہیں ملا، اور یہ بخاری (٦٩١)، مسلم (٤٢٧) اور ابوداؤد (٦٢٣) میں ابوہریرہ کی حدیث سے ہے۔ اور یہ مسند (٩٨٨٤) میں ہے۔ (٨) اسے مالک نے ٩٢/١ میں روایت کیا ہے۔ (٩) اسے ابن عبد البر نے اسی لفظ کے ساتھ الاستذکار ٣٠٦/٤ اور التمہید ٨٢/٢ میں ذکر کیا ہے، اور بخاری (٢٦٩٧) اور مسلم (١٧١٨) نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے مرفوعاً روایت کیا ہے: "جس نے ہمارے اس دین میں ایسی نئی بات نکالی جو اس میں سے نہیں ہے تو وہ مردود ہے"، اور مسلم کے ایک لفظ میں ہے: "جس نے ایسا عمل کیا جس پر ہمارا حکم نہیں ہے تو وہ مردود ہے"۔ (١٠) (د) اور (ز) میں: مردوداً۔

Page 47 Surah Al-Baqarah: Verse 43

...belittled his prayer and disobeyed what he was commanded to do, so it is mandatory that his prayer is not accepted from him(1), and Allah knows best.

Twenty-sixth: If he raises his head absent-mindedly before the Imam; Malik (may Allah have mercy on him) said: The Sunnah for one who forgets and does this in bowing or(2) prostration is to return to bowing or prostrating, and not to wait(3) for the Imam. Doing so is a mistake for whoever does it; because the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "The Imam was appointed only to be followed, so do not differ from him"(4).

Ibn Abd al-Barr said(5): The apparent meaning of Malik's statement is that it does not necessitate repeating the prayer for someone who does it intentionally, because he said: "and that is a mistake from whoever did it"; because the sin is removed from the forgetful person.

Twenty-seventh: This disagreement is only regarding matters other than the Takbirat al-Ihram (opening Takbir) and the Taslim (concluding Salam). As for the Taslim, the discussion regarding it has preceded(6). As for the Takbirat al-Ihram, the majority of scholars are of the opinion that the follower's Takbir should only be after the Imam's Takbir, except for what is narrated from Ash-Shafi'i in one of his two opinions: that if he says the Takbir before his Imam for the Takbirat al-Ihram, it is sufficient for him, based on the hadith of Abu Hurairah: that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) came to the prayer, and when he said the Takbir, he left and gestured to them, meaning: stay as you are, then he went out, then he came back with his head dripping water, so he led them in prayer, and when he finished he said: "I was in a state of major ritual impurity (janaba), and I forgot to perform ghusl (ritual bath)"(8). And from...

(1) Al-Istidhkar 4/306. (2) In (M): "or in prostration". (3) In (M): "and he waits". (4) Previously mentioned 2/44. (5) Al-Istidhkar 4/306. (6) 1/268. (7) In (D), (Za), and (M): "dripping", and what is established is from (Z). (8) Narrated by Ibn Majah (1220), and Al-Daraqutni 1/361, and the wording is his, and it is in Al-Musnad (9786). In it is Usama bin Zaid al-Laythi: truthful but has delusions, and his saying: "when he said the Takbir, he left" is one of his delusions, for Al-Bukhari (639) and Muslim (605): (157) narrated it, and in both of them it is stated that this happened before he said the Takbir. See Sharh Mushkil al-Athar 2/90.

पृष्ठ ४७ सूरह अल-बक़रह: आयत ४३

...अपनी नमाज़ को हल्का समझा, और उस चीज़ की खिलाफत की जिसका उसे हुक्म दिया गया था, इसलिए यह अनिवार्य है कि उसकी वह नमाज़ स्वीकार न की जाए(१), और अल्लाह बेहतर जानता है।

छब्बीसवाँ: यदि कोई भूलवश इमाम से पहले अपना सिर उठा ले; तो इमाम मालिक (रहमतुल्लाह अलैह) ने कहा: जो व्यक्ति भूल जाए और रुकू या(२) सजदे में ऐसा करे, उसके लिए सुन्नत यह है कि वह वापस रुकू या सजदे में चला जाए, और इमाम की प्रतीक्षा न करे(३), और जिसने ऐसा किया उसने गलती की; क्योंकि नबी ﷺ ने फरमाया: "इमाम केवल इसलिए बनाया गया है ताकि उसका अनुसरण किया जाए, अतः उसके विरुद्ध न करो"(४)।

इब्न अब्द अल-बर्र ने कहा(५): मलिक के इस कथन का प्रत्यक्ष अर्थ यह है कि जो व्यक्ति जानबूझकर ऐसा करता है, उसके लिए नमाज़ दोहराना अनिवार्य नहीं है, क्योंकि उन्होंने कहा: "और यह उस व्यक्ति की गलती है जिसने ऐसा किया"; क्योंकि भूलने वाले से पाप हटा दिया गया है।

सत्ताईसवाँ: और यह मतभेद तक्बीरे-तहरीमा (नमाज़ शुरू करने की तक्बीर) और सलाम के अलावा अन्य मामलों में है; जहाँ तक सलाम का सवाल है, तो इस पर चर्चा पहले हो चुकी है(६)। जहाँ तक तक्बीरे-तहरीमा की बात है, तो बहुसंख्यक विद्वानों का मत है कि मुक्तदी (इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ने वाला) की तक्बीर इमाम की तक्बीर के बाद ही होनी चाहिए, सिवाय उसके जो इमाम शाफ़ई से उनके दो कथनों में से एक में वर्णित है: कि यदि उसने अपने इमाम से पहले तक्बीरे-तहरीमा कह दी, तो यह उसके लिए पर्याप्त है, अबू हुरैरा की हदीस के कारण: कि अल्लाह के रसूल ﷺ नमाज़ के लिए आए, और जब आपने तक्बीर कही, तो आप चले गए और उनकी ओर इशारा किया, यानी: जैसे हो वैसे ही रहो, फिर आप बाहर निकले, फिर आए और आपके सिर से पानी टपक रहा था(७), फिर आपने उन्हें नमाज़ पढ़ाई, और जब आप फारिग हुए तो फरमाया: "मैं जनाबत की हालत में था, और मैं ग़ुस्ल करना भूल गया था"(८)। और...

(१) अल-इस्तिज़कार ४/३०६। (२) (म) में: "या सजदे में"। (३) (म) में: "और वह प्रतीक्षा करे"। (४) पूर्ववर्ती २/४४। (५) अल-इस्तिज़कार ४/३०६। (६) १/२६८। (७) (द), (ज़) और (म) में: "टपक रहा", और जो प्रमाणित है वह (ज़) से है। (८) इसे इब्न माजाह (१२२०) और अल-दाराकुतनी १/३६१ ने इसी तरह रिवायत किया है, और शब्द उन्हीं के हैं, और यह अल-मुसनद (९७८६) में है। इसमें ओसामा

बिन ज़ैद अल-लैथी हैं: वह सच्चे हैं लेकिन उन्हें कुछ वहम (भ्रम) हो जाते हैं, और उनका यह कहना: "जब आपने तक्बीर कही तो आप चले गए", उनके वहमों में से एक है, क्योंकि अल-बुखारी (६३९) और मुस्लिम (६०५): (१५७) ने इसे रिवायत किया है और उन दोनों में है कि यह तक्बीर कहने से पहले हुआ था। देखिए शरह मुश्किल अल-आसार २/९०।

صفحہ ۴۷ سورۃ البقرہ: آیت ۴۳

...اپنی نماز کو ہلکا سمجھا، اور اس کی مخالفت کی جس کا اسے حکم دیا گیا تھا، تو واجب ہے کہ اس کی وہ نماز قبول نہ کی جائے(۱)، اور اللہ بہتر جانتا ہے۔

چھبیسواں: اگر کسی نے بھول کر امام سے پہلے اپنا سر اٹھا لیا؛ تو امام مالک رحمہ اللہ نے فرمایا: جو شخص بھول جائے اور رکوع یا(۲) سجدے میں ایسا کرے تو سنت یہ ہے کہ وہ واپس رکوع یا سجدے میں چلا جائے، اور امام کا انتظار(۳) نہ کرے، اور جس نے ایسا کیا اس نے غلطی کی؛ کیونکہ نبی ﷺ نے فرمایا: «امام تو بنایا ہی اس لیے گیا ہے کہ اس کی پیروی کی جائے، پس اس کے خلاف نہ کرو»(۴)۔

ابن عبدالبر نے کہا(۵): مالک کے اس قول کا ظاہری مطلب یہ ہے کہ جو شخص جان بوجھ کر ایسا کرے اس پر نماز لوٹانا واجب نہیں، کیونکہ انہوں نے کہا: "اور یہ اس شخص کی غلطی ہے جس نے ایسا کیا"؛ کیونکہ بھولنے والے سے گناہ اٹھا لیا گیا ہے۔

ستائیسواں: اور یہ اختلاف تکبیرِ تحریمہ اور سلام کے علاوہ دیگر امور میں ہے؛ جہاں تک سلام کا تعلق ہے، تو اس پر بات پہلے ہو چکی ہے(۶)۔ جہاں تک تکبیرِ تحریمہ کی بات ہے، تو جمہور کا اس بات پر اتفاق ہے کہ مقتدی کی تکبیر امام کی تکبیر کے بعد ہی ہونی چاہیے، سوائے اس کے جو امام شافعی سے ان کے دو اقوال میں سے ایک میں مروی ہے: کہ اگر اس نے اپنے امام سے پہلے تکبیرِ تحریمہ کہ دی تو یہ اس کے لیے کافی ہے، حضرت ابوہریرہ کی حدیث کی وجہ سے: کہ رسول اللہ ﷺ نماز کے لیے تشریف لائے، جب آپ نے تکبیر کہی تو آپ واپس چلے گئے اور ان کی طرف اشارہ کیا، یعنی: اپنی جگہ پر رہو، پھر آپ باہر تشریف لے گئے، پھر واپس آئے اور آپ

کے سر مبارک سے پانی ٹپک رہا تھا(۷)، پھر آپ نے انہیں نماز پڑھائی، جب آپ فارغ ہوئے تو فرمایا: «میں جنابت کی حالت میں تھا، اور غسل کرنا بھول گیا تھا»(۸)۔ اور...

(۱) الاستذکار ۴/۳۰۶۔ (۲) (م) میں: "یا سجدے میں"۔ (۳) (م) میں: "اور وہ انتظار کرے"۔ (۴) سابقہ ۲/۴۴۔ (۵) الاستذکار ۴/۳۰۶۔ (۶) ۱/۲۶۸۔ (۷) (د)، (ظ) اور (م) میں: "ٹپک رہا"، اور جو ثابت ہے وہ (ز) سے ہے۔ (۸) اسے ابن ماجہ (۱۲۲۰) اور دارقطنی ۱/۳۶۱ نے اسی طرح روایت کیا ہے، اور الفاظ انھی کے ہیں، اور یہ المسند (۹۷۸۶) میں ہے۔ اس میں اسامہ بن زید اللیثی ہے: وہ سچے ہیں لیکن انہیں کچھ وہم ہو جاتے ہیں، اور ان کا یہ قول کہ "جب آپ نے تکبیر کہی تو آپ چلے گئے" ان کے وہموں میں سے ایک ہے، کیونکہ بخاری (۶۳۹) اور مسلم (۶۰۵): (۱۵۷) نے اسے روایت کیا ہے اور ان دونوں میں ہے کہ یہ تکبیر کہنے سے پہلے کا واقعہ ہے۔ دیکھیے شرح مشکل الآثار ۲/۹۰۔

48 Surah Al-Baqarah: Verse 43

The hadith of Anas: "He said Takbir, and we said Takbir with him." (1) This will be explained further in the commentary on Allah's saying: "nor when you are in a state of janaba (ceremonial impurity)" in Surah An-Nisa', if Allah wills.

Twenty-eighth: Muslim (2) narrated from Abu Mas'ud who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) used to touch our shoulders in prayer and say: "Stand straight, and do not differ, lest your hearts differ. Let those of you who are wise and mature stand closest to me (3), then those who follow them, then those who follow them." Abu (4) Mas'ud said: Today you are in greater disagreement. He added from the hadith of Abdullah: "And beware of the clamor of the markets." (5) His saying (6) "Stand straight" is a command to straighten the rows, especially the first row, which is the one directly behind the Imam, as will be explained in Surah Al-Hijr, if Allah wills (7). There, the discussion on the meaning of this hadith will take place by the power of Allah the Almighty.

Twenty-ninth: The scholars differed on how to sit in prayer due to the variation in narrations. Malik and his companions said: The person praying should place his buttock (8) on the ground, prop up his right foot, and fold his left foot, based on what he narrated in his Muwatta' (9) from Yahya bin Said: that Al-Qasim bin Muhammad showed them how to sit during Tashahhud; he propped up his right foot, folded his left foot, and sat on his left buttock, and did not sit on his foot. Then he said: Abdullah bin Umar showed me this, and told me that his father used to do that.

(1) Narrated by Al-Tahawi in Sharh Mushkil al-Athar (624), and Al-Bayhaqi 2/399 from the path of Ubaydullah bin Mu'adh, from his father, from Sa'id bin Abi Arubah, from Qatadah, from Anas (may Allah be pleased with him). Al-Bayhaqi said: Abdul Wahhab bin Ata disagreed with him, narrating it from Sa'id, from Qatadah, from Bakr bin Abdullah Al-Muzani, from the Prophet (peace be upon him), as a Mursal hadith. (2) No. (432): (122). It is in Al-Musnad (17102). (3) In (m): Liyalni. (4) In the copies: "ibn", which is an error, and what is established is from (m). (5) Sahih Muslim (432): (123). It is in Al-Musnad (4373). "Al-Hayshat", also said as "Al-Hawshat", plural of "Hawsha": which means trial, turmoil, and agitation. (6) In (m): And his saying. (7) At Allah's saying: {And indeed, We know those who go forward among you and We know those who lag behind}. (8) In (d) and (m): with his two buttocks, and what is established matches what is in Al-Istidhkar. (9) 1/90, and see Al-Istidhkar 4/263-264.

४८ सूरा अल-बक़रह: आयत ४३

अनस की हदीस: "उन्होंने तकबीर कही और हमने उनके साथ तकबीर कही।" (१) इसका विवरण अल्लाह के इस कथन पर आएगा: "और न अपवित्रता की स्थिति में" सूरा अन-निसा में, इंशाअल्लाह।

अठ्ठाइसवां: मुस्लिम (२) ने अबू मसूद से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) नमाज़ में हमारे कंधों को छुआ करते थे और कहते थे: "सीधे खड़े हो जाओ, और मतभेद न करो वरना तुम्हारे दिलों में मतभेद हो जाएगा। तुममें से वे जो समझदार और बुद्धिमान हैं, मेरे सबसे करीब खड़े हों (३), फिर वे जो उनके बाद हैं, फिर वे जो उनके बाद हैं।" अबू (४) मसूद ने कहा: आज तुम अधिक मतभेद में हो। उन्होंने अब्दुल्लाह की हदीस से जोड़ा: "और बाज़ारों के शोर-शराबे से बचो।" (५) उनका कहना (६) "सीधे खड़े हो जाओ" सफ़ों को बराबर करने का आदेश है, विशेष रूप से पहली सफ़, जो इमाम के ठीक पीछे होती है, जैसा कि सूरा अल-हिज्र में स्पष्ट किया जाएगा, इंशाअल्लाह (७)। वहाँ इस हदीस के अर्थ पर अल्लाह सर्वशक्तिमान की शक्ति से चर्चा की जाएगी।

उनतीसवां: नमाज़ में बैठने के तरीके के बारे में विद्वानों में मतभेद है क्योंकि इस बारे में रिवायतों में अंतर है। मालिक और उनके साथियों ने कहा: नमाज़ पढ़ने वाला अपने कूल्हे (८) को ज़मीन पर रखे, अपने दाएं पैर को खड़ा रखे और अपने बाएं पैर को मोड़ ले, जैसा कि उन्होंने अपनी मुवत्ता (९) में याह्या बिन सईद से रिवायत की है: कि अल-क़ासिम बिन मुहम्मद ने उन्हें तशहुद के दौरान बैठने का तरीका दिखाया; उन्होंने अपना दायां पैर खड़ा किया, अपना बायां पैर मोड़ा, और अपने बाएं कूल्हे पर बैठ गए, और अपने पैर पर नहीं बैठे। फिर उन्होंने कहा: अब्दुल्लाह बिन उमर ने मुझे यह दिखाया था, और मुझे बताया कि उनके पिता ऐसा ही किया करते थे।

(१) इसे अल-तहावी ने शरह मुश्किल अल-आसार (६२४) में, और अल-बैहकी ने २/३९९ में उबैदुल्लाह बिन मुअज़, उनके पिता, सईद बिन अबी अरुबा, क़तादा, अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) के माध्यम से उद्धृत किया है। अल-बैहकी ने कहा: अब्दुल वहाब बिन अता ने उनसे असहमति जताई, और इसे सईद, क़तादा, बक्र बिन अब्दुल्लाह अल-मुज़नी के माध्यम से नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से मुरसल हदीस के रूप में रिवायत किया। (२) संख्या (४३२): (१२२)। यह अल-मुसनद (१७१०२) में है। (३) (म) में: लायलनी। (४) प्रतियों में: "इब्न", जो एक त्रुटि है, और जो स्थापित है वह (म) से है। (५) सहीह मुस्लिम (४३२): (१२३)। यह अल-मुसनद (४३७३) में है। "अल-हैशात", जिसे

"अल-हौशात" भी कहा जाता है, हौशा का बहुवचन है: जिसका अर्थ है फ़ितना, हंगामा और अशांति। (६) (म) में: और उनका कहना। (७) अल्लाह के इस कथन पर: {और वास्तव में, हम जानते हैं कि तुममें से कौन आगे बढ़ने वाले हैं और हम जानते हैं कि कौन पीछे रहने वाले हैं}। (८) (द) और (म) में: अपने दोनों कूल्हों के साथ, और जो स्थापित है वह अल-इस्तिज़कार में जो है उससे मेल खाता है। (९) १/९०, और देखें अल-इस्तिज़कार ४/२६३-२६४।

٤٨ سورة البقرہ: آیت ٤٣

انس کی حدیث: "انہوں نے تکبیر کہی اور ہم نے ان کے ساتھ تکبیر کہی۔" (١) اس کا بیان اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس آئے گا: "اور نہ جنابت کی حالت میں" سورہ النساء میں، ان شاء اللہ تعالیٰ۔

اٹھائیسواں: مسلم (٢) نے ابو مسعود سے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نماز میں ہمارے کندھوں کو چھوتے تھے اور فرماتے تھے: "سیدھے ہو جاؤ، اور اختلاف نہ کرو ورنہ تمہارے دلوں میں اختلاف ہو جائے گا، اور تم میں سے وہ جو عقل مند اور سمجھدار ہیں میرے قریب رہیں (٣)، پھر وہ جو ان کے بعد ہیں، پھر وہ جو ان کے بعد ہیں۔" ابو (٤) مسعود نے کہا: تم آج زیادہ اختلاف میں ہو۔ انہوں نے عبداللہ کی حدیث سے اضافہ کیا: "اور بازاروں کے شور و غل سے بچو۔" (٥) ان کا قول (٦) "سیدھے ہو جاؤ": صفوں کو برابر کرنے کا حکم ہے، خاص طور پر پہلی صف، اور یہ وہ ہے جو امام کے پیچھے ہوتی ہے، جیسا کہ سورہ الحجر میں اس کا بیان آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (٧)۔ وہاں اللہ تعالیٰ کے فضل سے اس حدیث کے معنی پر گفتگو آئے گی۔

انتیسواں: نماز میں بیٹھنے کی کیفیت کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے کیونکہ اس بارے میں آثار مختلف ہیں، چنانچہ امام مالک اور ان کے اصحاب نے کہا: نمازی اپنی سرین (٨) زمین پر لگائے، اپنا دایاں پاؤں کھڑا کرے، اور اپنا بایاں پاؤں موڑ لے، اس بنا پر جو انہوں نے اپنی موطا (٩) میں یحییٰ بن سعید سے روایت کی ہے: کہ القاسم بن محمد نے انہیں تشہد میں بیٹھنا دکھایا، چنانچہ انہوں نے اپنا دایاں پاؤں کھڑا کیا، اپنا بایاں پاؤں موڑا، اور اپنی بائیں کولہے پر بیٹھے، اور اپنے پاؤں پر نہیں بیٹھے، پھر انہوں نے کہا: مجھے عبداللہ بن عمر نے یہ دکھایا تھا، اور مجھے بتایا کہ ان کے والد ایسا ہی کیا کرتے تھے۔

(١) اسے الطحاوی نے شرح مشکل الآثار (٦٢٤) میں، اور البیہقی نے ٣٩٩/٢ میں عبید اللہ بن معاذ کے طریق سے، ان کے والد سے، سعید بن ابی عروبہ سے، قتادہ سے، انس رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے۔ البیہقی نے کہا: عبد الوہاب بن عطاء نے ان کی مخالفت کی، چنانچہ انہوں نے اسے سعید سے، قتادہ سے، بکر بن عبد اللہ المزنی سے، نبی ﷺ سے مرسل روایت کیا۔ (٢) نمبر (٤٣٢): (١٢٢)۔ اور یہ المسند (١٧١٠٢) میں ہے۔ (٣) (م) میں: ليلني۔ (٤) نسخوں میں: ابن، اور یہ غلط ہے، اور (م) سے ثابت شدہ درست ہے۔ (٥) صحیح مسلم (٤٣٢): (١٢٣)۔ اور یہ المسند (٤٣٧٣) میں ہے۔ الہیشات، اور اسے الہوشات بھی کہا جاتا ہے، ہوشۃ کی جمع ہے: اور اس سے مراد فتنہ، جوش و خروش اور اضطراب ہے۔ (٦) (م) میں: وقوله۔ (٧) اللہ تعالیٰ کے قول کے پاس: ﴿وَلَقَدْ عَلِمْنَا الْمُسْتَقْدِمِينَ مِنكُمْ وَلَقَدْ عَلِمْنَا الْمُسْتَأْخِرِينَ ﴾۔ (٨) (د) اور (م) میں: بأليتيه، اور جو ثابت شدہ ہے وہ الاستذکار کے موافق ہے۔ (٩) ٩٠/١، اور دیکھیے الاستذکار ٤/ ٢٦٣-٢٦٤۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 49

I said: This meaning has come in Sahih Muslim (1) from Aisha, who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) used to start the prayer with the Takbir (Allahu Akbar), and the recitation with "Alhamdu lillahi Rabbil 'Alamin" (Praise be to Allah, Lord of the worlds). When he bowed (Ruku), he would neither hold his head up nor lower it, but kept it in between. When he raised his head from bowing, he would not prostrate until he stood upright. When he raised his head from prostration (Sajdah) (2), he would not prostrate again until he sat upright (3). He used to recite (4) the greeting (At-Tahiyyat) every two rak'ahs. He would lay his left foot flat and keep his right foot upright. He forbade the 'Satan's squat' (u'qbat al-shaytan), and he forbade a man from spreading his forearms like a wild beast (sabu'). He used to conclude the prayer with the Taslim.

I said: For this reason - and Allah knows best - Ibn Umar said: The Sunnah of the prayer is that you keep your right foot upright and fold your left foot (5). Ath-Thawri, Abu Hanifa and his companions, and Al-Hasan bin Salih bin Hayy said: He keeps the right foot upright and sits on the left (6), due to the hadith of Wa'il bin Hujr (7). Likewise, Al-Shafi'i, Ahmad, and Ishaq said regarding the middle sitting. They said regarding the final sitting of Zuhr, Asr, Maghrib, or Isha, same as Malik's view (8), due to the hadith of Abu Humayd Al-Sa'idi; recorded by Al-Bukhari (9) who said: I saw the Prophet (peace be upon him) when he said the Takbir, he placed his hands level with his shoulders. When he bowed, he placed his hands firmly on his knees, then arched his back. When he raised his head, he stood upright until every vertebra returned to its place. When he prostrated, he placed his hands without spreading them or clasping them together, and he faced with the tips of his toes...

(1) Preceded in 1/147, 269 and 2/26. (2) In (Z): prostration (al-sujud). (3) In (Z) and (Th): sitting (qa'idan). (4) In (M): says. (5) Narrated by Al-Bukhari (827). (6) Mukhtasar Ikhtilaf al-Ulama by Al-Jassas 1/212, and Al-Istidhkar 4/264. (7) Refers to what was narrated by Abu Dawood (726), At-Tirmidhi (292) - and the wording is his, and An-Nasa'i in Al-Mujtaba 2/236, and in Al-Kubra (750) from Wa'il bin Hujr who said: I came to Medina, I said: I will certainly look at the prayer of the Messenger of Allah (peace be upon him). When he sat - meaning - for the Tashahhud, he spread his left foot, and placed his left hand - meaning - on his left thigh, and kept his right foot upright. At-Tirmidhi said: This is a Hasan Sahih hadith. (8) Al-Awsat by Ibn al-Mundhir 3/203, and Al-Istidhkar 4/264. (9) In his Sahih (828), and the author mentioned a part of it in the seventh issue.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 49

मैंने कहा: और यह अर्थ सहीह मुस्लिम (1) में आयशा से आया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ नमाज़ की शुरुआत तकबीर (अल्लाहु अकबर) से करते थे, और क़िरात की शुरुआत "अल्हम्दु लिल्लाहि रब्बिल आलमीन" से करते थे। जब वह रुकूअ करते, तो अपने सिर को न तो बहुत ऊँचा रखते और न ही बहुत नीचे झुकाते, बल्कि इन दोनों के बीच रखते थे। जब वह रुकूअ से अपना सिर उठाते, तो जब तक सीधे खड़े न हो जाते, सज्दा नहीं करते थे। जब वह सज्दा (2) से अपना सिर उठाते, तो जब तक सीधे बैठ न जाते (3), दोबारा सज्दा नहीं करते थे। वह हर दो रकात में अत्तहिय्यात पढ़ते (4) थे। वह अपना बायाँ पैर बिछाते और दायाँ पैर खड़ा रखते थे। वह 'शैतान की बैठक' (उक़्बातुल शैतान) से मना करते थे, और आदमी को अपने हाथों को दरिंदे (सबा') की तरह बिछाने से मना करते थे। वह सलाम के साथ नमाज़ समाप्त करते थे।

मैंने कहा: और इसी हदीस के कारण - और अल्लाह बेहतर जानता है - इब्न उमर ने कहा: नमाज़ की सुन्नत यह है कि आप अपने दाएँ पैर को खड़ा रखें और बाएँ पैर को मोड़ें (5)। अल-थौरी, अबू हनीफ़ा और उनके साथियों, और अल-हसन बिन सालिह बिन हय्य ने कहा: वह दाएँ पैर को खड़ा रखते और बाएँ पर बैठते (6) थे, वाइल बिन हुज्र (7) की हदीस के कारण। इसी तरह, अल-शाफ़ई, अहमद और इसहाक़ ने बीच वाली बैठक के बारे में कहा। उन्होंने ज़ुहर, अस्र, मग़रिब, या ईशा की आखिरी बैठक के बारे में कहा, जैसा कि मालिक (8) का मत है, अबू हुमैद अल-सा'इदी की हदीस के कारण; जिसे अल-बुखारी (9) ने रिवायत किया है, जिन्होंने कहा: मैंने नबी ﷺ को देखा, जब उन्होंने तकबीर कही, तो अपने हाथों को अपने कंधों के बराबर रखा। जब उन्होंने रुकूअ किया, तो अपने हाथों को अपने घुटनों पर मजबूती से रखा, फिर अपनी पीठ को झुकाया। जब उन्होंने अपना सिर उठाया, तो वह सीधे खड़े हो गए यहाँ तक कि हर जोड़ अपनी जगह पर वापस आ गया। जब उन्होंने सज्दा किया, तो अपने हाथों को बिना फैलाए और बिना सिकोड़े रखा, और अपनी उंगलियों के सिरों को रुख किया...

(1) पहले 1/147, 269 और 2/26 में आ चुका है। (2) (ज़) में: अल-सुजूद (सज्दा करना)। (3) (ज़) और (थ) में: क़ा'इदन (बैठा हुआ)। (4) (म) में: कहते हैं। (5) इसे अल-बुखारी (827) ने निकाला है। (6) अल-जस्सास की मुख़्तसर इख़्तिलाफ़ अल-उलमा 1/212, और अल-इस्तिज़कार 4/264। (7) यह उस चीज़ की ओर इशारा करता है जिसे अबू दाऊद (726), अल-तिरमिज़ी (292) - और शब्द उनके हैं, और अन-नसाई ने अल-मुज्तबा 2/236 में, और अल-कुबरा (750) में वाइल बिन हुज्र से निकाला है, जिन्होंने कहा: मैं मदीना आया, मैंने कहा: मैं अल्लाह के रसूल ﷺ की नमाज़ को ज़रूर

देखूँगा। तो जब वह बैठे- यानी - तशह्हुद के लिए, उन्होंने अपना बायाँ पैर बिछाया, और अपना बायाँ हाथ - यानी - अपनी बाईं जांघ पर रखा, और अपना दायाँ पैर खड़ा रखा। अल-तिरमिज़ी ने कहा: यह हदीस हसन सहीह है। (8) इब्न अल-मुन्ज़िर की अल-औसत 3/203, और अल-इस्तिज़कार 4/264। (9) अपनी सहीह (828) में, और लेखक ने सातवें मुद्दे में इसका एक हिस्सा ज़िक्र किया है।

سورة البقرة: آیت 43 49

میں نے کہا: اور یہ معنی صحیح مسلم (1) میں حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے مروی ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نماز کی ابتدا تکبیر سے کرتے تھے، اور قرأت کی ابتدا "الحمد للہ رب العالمین" سے کرتے تھے۔ جب آپ رکوع کرتے تو اپنے سر کو نہ اونچا رکھتے اور نہ ہی اسے بہت جھکاتے، بلکہ ان کے درمیان رکھتے تھے۔ جب آپ رکوع سے اپنا سر اٹھاتے تو جب تک سیدھے کھڑے نہ ہو جاتے، سجدہ نہیں کرتے تھے۔ جب آپ سجدے (2) سے اپنا سر اٹھاتے تو جب تک سیدھے بیٹھ نہ جاتے (3)، دوبارہ سجدہ نہیں کرتے تھے۔ آپ ہر دو رکعت میں التحیات پڑھتے (4) تھے۔ آپ اپنا بایاں پاؤں بچھاتے اور اپنا دایاں پاؤں کھڑا رکھتے تھے۔ آپ 'عقبہ شیطان' (شیطان کی طرح بیٹھنے) سے منع فرماتے تھے، اور آدمی کو درندے کی طرح اپنے بازو بچھانے سے منع فرماتے تھے۔ آپ سلام کے ساتھ نماز ختم فرماتے تھے۔

میں نے کہا: اسی حدیث کی وجہ سے - اور اللہ بہتر جانتا ہے - ابن عمر رضی اللہ عنہ نے فرمایا: نماز کی سنت یہی ہے کہ آپ اپنا دایاں پاؤں کھڑا رکھیں اور بایاں پاؤں موڑیں (5)۔ الثوری، ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب، اور الحسن بن صالح بن حی نے کہا: دایاں پاؤں کھڑا رکھیں اور بائیں پر بیٹھیں (6)، وائل بن حجر کی حدیث (7) کی وجہ سے۔ اسی طرح الشافعی، احمد اور اسحاق نے درمیانی قعدہ کے بارے میں کہا۔ اور انہوں نے ظہر، عصر، مغرب یا عشاء کے آخری قعدہ میں وہی بات کہی جو مالک (8) کا قول ہے، ابو حمید الساعدی کی حدیث کی وجہ سے؛ جسے بخاری (9) نے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے نبی ﷺ کو دیکھا کہ جب آپ نے تکبیر کہی تو اپنے دونوں ہاتھ کندھوں کے برابر کیے، اور جب رکوع کیا تو اپنے ہاتھوں کو گھٹنوں پر مضبوطی سے رکھا، پھر اپنی کمر جھکائی، پھر جب سر اٹھایا تو سیدھے کھڑے ہو گئے یہاں تک کہ ہر مہرہ اپنی

جگہ لوٹ آیا، اور جب سجدہ کیا تو اپنے دونوں ہاتھ اس طرح رکھے کہ نہ پھیلے ہوئے ہوں اور نہ سمٹے ہوئے، اور اپنی انگلیوں کے پوروں کا رخ کیا...

(1) پہلے 1/147، 269 اور 2/26 میں گزر چکا ہے۔ (2) (ظ) میں: السجود۔ (3) (ز) اور (ظ) میں: قاعداً۔ (4) (م) میں: یقول۔ (5) اسے بخاری نے روایت کیا ہے (827)۔ (6) مختصر اختلاف العلماء للجصاص 1/ 212، والاستذکار 4/ 264۔ (7) یہ اس طرف اشارہ ہے جسے ابو داؤد (726)، اور ترمذی (292) - اور الفاظ اسی کے ہیں - اور نسائی نے المجتبیٰ 2/ 236 میں، اور الکبریٰ (750) میں وائل بن حجر سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں مدینہ آیا، میں نے کہا: میں ضرور رسول اللہ ﷺ کی نماز دیکھوں گا، تو جب آپ بیٹھے - یعنی تشہد کے لیے - تو اپنا بایاں پاؤں بچھایا، اور اپنا بایاں ہاتھ - یعنی اپنی بائیں ران پر - رکھا، اور اپنا دایاں پاؤں کھڑا رکھا۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ (8) الاوسط لابن المنذر 3/ 203، والاستذکار 4/ 264۔ (9) اپنی صحیح میں (828)، اور مصنف نے ساتویں مسئلہ میں اس کا ایک حصہ ذکر کیا ہے۔

Page 50 | Surah Al-Baqarah: Verse 43

...his feet towards the Qiblah. When he sits in the two-rak'ah prayer, he sits on his left foot(1) and props up the other. When he sits in the final rak'ah, he extends his left foot forward and props up the right one, sitting on his buttocks. Al-Tabari said(2): "If he does this, it is good, and if he does that, it is good(3). All of that has been established from the Prophet ﷺ."

The Thirtieth Point(4): Malik(5) narrated from Muslim ibn Abi Maryam, from Ali ibn Abd al-Rahman al-Mu'awi that he said: Abdullah ibn Umar saw me playing with pebbles during prayer. When he finished, he forbade me and said: "Do as the Messenger of Allah ﷺ used to do." I asked: "And how did the Messenger of Allah ﷺ use to do?" He said: "When he sat in prayer, he would place his right palm on his right thigh, clench all his fingers, and point with the finger next to the thumb. He would place his left palm on his left thigh and say: 'This is how he used to do.'"

Ibn Abd al-Barr said(6): "What Ibn Umar described regarding placing the right palm on the right thigh, clenching all fingers except the index finger - for he points with it - and placing the left palm on the left thigh with fingers spread open; all of this is a Sunnah in sitting during prayer that is agreed upon(7). I know of no disagreement among scholars regarding it, and this is sufficient for you. However, they differed on moving the index finger: some deemed it correct to move it, while others did not, and all of that is narrated in authentic, supported reports from the Prophet ﷺ, and all of it is permissible, praise be to Allah."

Sufyan ibn Uyaynah narrated this hadith from Muslim ibn Abi Maryam with the same meaning as Malik's narration, and added to it: Sufyan said: Yahya ibn Sa'id narrated it to us from Muslim, then I met him and heard it from him...

---

(1) In (Zha): "the right," which is an error. (2) Transmitted from him by Ibn Abd al-Barr in Al-Istidhkar 4/265. (3) The phrase was not repeated in (Meem); what is established is from (Zay) and (Dal), which matches Al-Istidhkar. It was repeated three times in (Zha). (4) In (Meem): "The Thirtieth." (5) Al-Muwatta 1/88-89. Through his chain, Muslim recorded it (580): (116). (6) Al-Istidhkar 4/261-262. (7) In (Dal): "agreed upon (masculine form)," in (Zay): "so it is gathered upon it," and in (Meem): "agreed upon (masculine form)." The version used here is from (Zha).

पृष्ठ ५० | सूरा अल-बक़रह: आयत ४३

...अपने पैरों को क़िबला की ओर रखते हुए। जब वह दो रकअत वाली नमाज़ में बैठते, तो अपने बाएं पैर पर बैठते(१) और दूसरे पैर को खड़ा रखते। और जब वह अंतिम रकअत में बैठते, तो अपने बाएं पैर को आगे बढ़ा देते और दाएं पैर को खड़ा रखते, और अपने कूल्हों पर बैठते। अल-तबरी ने कहा(२): "यदि वह ऐसा करे तो अच्छा है, और यदि वह वैसा करे तो अच्छा है(३)। यह सब नबी ﷺ से प्रमाणित है।"

तीसवीं बात(४): मालिक(५) ने मुस्लिम बिन अबी मरयम से, उन्होंने अली बिन अब्द अल-रहमान अल-मुआवी से रिवायत की कि उन्होंने कहा: अब्दुल्लाह बिन उमर ने मुझे नमाज़ के दौरान कंकड़ियों से खेलते हुए देखा। जब वह नमाज़ से फ़ारिग हुए, तो उन्होंने मुझे मना किया और कहा: "वैसा ही करो जैसा अल्लाह के रसूल ﷺ किया करते थे।" मैंने पूछा: "अल्लाह के रसूल ﷺ कैसे किया करते थे?" उन्होंने कहा: "जब वह नमाज़ में बैठते, तो अपनी दाईं हथेली अपनी दाईं जांघ पर रखते, अपनी सभी उंगलियों को बंद कर लेते और अंगूठे के पास वाली उंगली से इशारा करते। वह अपनी बाईं हथेली अपनी बाईं जांघ पर रखते और कहते: 'वह इसी तरह किया करते थे'।"

इब्न अब्द अल-बर्र ने कहा(६): "इब्न उमर ने दाईं हथेली को दाईं जांघ पर रखने, शहादत की उंगली के अलावा बाकी सभी उंगलियों को बंद करने - क्योंकि वह उससे इशारा करते थे - और बाईं हथेली को बाईं जांघ पर उंगलियां फैलाकर रखने के बारे में जो वर्णन किया है; यह सब नमाज़ में बैठने के संबंध में एक सुन्नत है जिस पर सर्वसम्मति (इज्मा) है(७)। विद्वानों के बीच इसके बारे में मुझे किसी मतभेद का पता नहीं है, और आपके लिए इतना ही पर्याप्त है। हालांकि, वे शहादत की उंगली को हिलाने के बारे में असहमत थे: उनमें से कुछ ने इसे हिलाना सही माना, जबकि अन्यों ने इसे नहीं माना, और यह सब नबी ﷺ से प्रमाणित सही और मुसनद रिवायतों में वर्णित है, और यह सब जायज़ है, अल्लाह का शुक्र है।"

सुफ़ियान बिन उययना ने इस हदीस को मुस्लिम बिन अबी मरयम से मालिक की रिवायत के समान अर्थ में रिवायत किया, और उसमें जोड़ा: सुफ़ियान ने कहा: याह्या बिन सईद ने हमें मुस्लिम से यह हदीस सुनाई थी, फिर मैं उनसे मिला और उनसे इसे सुना...

---

(१) (ظ) में: "दायां," जो कि एक त्रुटि है। (२) इब्न अब्द अल-बर्र द्वारा अल-इस्तिज़कार ४/२६५ में उनसे उद्धृत। (३) (م) में वाक्यांश दोहराया नहीं गया है; (ز) और (د) से जो प्रमाणित है, वह अल-

इस्तिज़कार के अनुरूप है, और (ظ) में इसे तीन बार दोहराया गया है। (४) (م) में: "तीसवां।" (५) अल-मुवत्ता १/८८-८९। उनके माध्यम से, मुस्लिम ने इसे दर्ज किया (५८०): (११६)। (६) अल-इस्तिज़कार ४/२६१-२६२। (७) (द) में: "मुज्तमा अलैहि (पुल्लिंग)," (ज़ेड) में: "फ़यज्तमिउ अलैहा," और (एम) में: "मुज्मअ अलैहि (पुल्लिंग)।" यहाँ इस्तेमाल किया गया संस्करण (ظ) से है।

...اپنے پاؤں قبلہ کی طرف۔ جب وہ دو رکعتوں میں بیٹھتے تو اپنے بائیں پاؤں پر بیٹھتے(۱) اور دوسرے کو کھڑا رکھتے، اور جب وہ آخری رکعت میں بیٹھتے تو اپنے بائیں پاؤں کو آگے کر دیتے اور دائیں کو کھڑا رکھتے، اور اپنی سرین پر بیٹھتے۔ طبری نے کہا(۲): "اگر اس نے ایسا کیا تو اچھا ہے، اور اگر ویسا کیا تو اچھا ہے(۳)، یہ سب کچھ نبی ﷺ سے ثابت ہے۔"

تیسویں بات(٤): مالک(٥) نے مسلم بن ابی مریم سے، انہوں نے علی بن عبد الرحمن المعاوی سے روایت کی کہ انہوں نے کہا: عبداللہ بن عمر نے مجھے دیکھا جبکہ میں نماز میں کنکریوں سے کھیل رہا تھا، جب وہ نماز سے فارغ ہوئے تو مجھے منع کیا اور فرمایا: "تم ویسا ہی کرو جیسا رسول اللہ ﷺ کیا کرتے تھے۔" میں نے پوچھا: "رسول اللہ ﷺ کیسے کیا کرتے تھے؟" انہوں نے کہا: "آپ ﷺ جب نماز میں بیٹھتے تو اپنی دائیں ہتھیلی اپنی دائیں ران پر رکھتے، اپنی تمام انگلیاں بند کر لیتے اور اس انگلی سے اشارہ فرماتے جو انگوٹھے کے ساتھ ہے، اور اپنی بائیں ہتھیلی اپنی بائیں ران پر رکھتے اور فرماتے: 'آپ ﷺ اسی طرح کیا کرتے تھے'۔"

ابن عبد البر نے کہا(٦): "ابن عمر نے دائیں ہتھیلی کو دائیں ران پر رکھنے، اس کی تمام انگلیاں سوائے کلمے کی انگلی کے بند کرنے - کیونکہ آپ اس سے اشارہ کرتے تھے - اور بائیں ہتھیلی کو بائیں ران پر انگلیاں پھیلا کر رکھنے کا جو وصف بیان کیا ہے؛ یہ سب نماز میں بیٹھنے کی وہ سنت ہے جس پر اجماع ہے(۷)، میرے علم میں علماء کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے، اور تمہارے لیے یہی کافی ہے۔ البتہ وہ کلمے کی انگلی کو حرکت دینے میں اختلاف کر گئے: پس ان میں سے بعض نے اسے حرکت دینے کی رائے دی، اور بعض نے اسے (حرکت دینا) نہیں

دیکھا، اور یہ سب کچھ نبی ﷺ سے منقول صحیح اور مستند آثار میں مروی ہے، اور یہ سب مباح ہے، والحمد للہ۔"

اور سفیان بن عیینہ نے یہ حدیث مسلم بن ابی مریم سے امام مالک کی روایت کے ہم معنی روایت کی، اور اس میں اضافہ کیا: سفیان نے کہا: یحییٰ بن سعید نے ہمیں یہ حدیث مسلم سے بیان کی تھی، پھر میں ان سے ملا اور خود ان سے اسے سنا...

---

(١) (ظ) میں: "دائیں" ہے جو کہ غلطی ہے۔ (٢) ابن عبد البر نے اسے الاستذکار ٤/ ٢٦٥ میں ان سے نقل کیا ہے۔ (٣) (م) میں یہ جملہ مکرر نہیں ہے، اور (ز) و (د) سے جو ثابت ہے وہی الاستذکار کے موافق ہے، اور (ظ) میں اسے تین بار دہرایا گیا ہے۔ (٤) (م) میں: "الثلاثین" (تیسواں) ہے۔ (٥) الموطأ ١/ ٨٨ - ٨٩۔ اور ان کے طریق سے امام مسلم نے اسے روایت کیا (٥٨٠) : (١١٦)۔ (٦) الاستذکار ٤/ ٢٦١ - ٢٦٢ ۔ (٧) (د) میں: "مجتمع علیه" (مذکر)، (ز) میں: "فیجتمع علیها"، اور (م) میں: "مجمع علیه" (مذکر) ہے، اور جو متن میں ہے وہ (ظ) سے ثابت ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 51 And he added to it, saying: "It is a deterrent for Satan; none of you will be distracted as long as he points with his finger and says thus"(1). I said: Abu Dawud narrated in the Hadith of Ibn al-Zubayr that he (peace be upon him) used to point with his finger when he supplicated and did not move it(2). Some Iraqis held this view and prohibited moving it, while some of our scholars saw that extending it is an indication of the permanence of Monotheism (Tawhid). Most scholars among the followers of Malik and others were of the opinion to move it, but they differed on continuous movement into two opinions. Those who supported continuous movement said: it reminds of continuous presence in prayer, and that it is a tool for suppressing and repelling Satan according to what Sufyan narrated. Those who did not support continuous movement saw moving it upon pronouncing the two testimonies of faith (Shahada), interpreting the movement as if it were an articulation of Monotheism by that limb. And Allah knows best(3). Thirty-first: They differed regarding the woman's sitting in prayer. Malik said: she is like a man and does not differ from him after the opening Takbir (Ihram) except in clothing and loudness. Al-Thawri said: a woman should fold both her legs(4) to one side, narrating it from Ibrahim al-Nakha'i. Abu Hanifa and his companions said: a woman sits in the easiest way for her. This is the opinion of al-Sha'bi: she sits however it is easy for her. Al-Shafi'i said: she sits in the most modest way possible for her(5). Thirty-second: Muslim(6) narrated from Tawus, who said: We said to Ibn Abbas regarding squatting (Iq'a) on the feet, and he said: "It is the Sunnah." We said to him: "We see it as harsh for a man." Ibn Abbas said: "[Rather] it is the Sunnah of your Prophet ﷺ."

(1) Narrated by Sufyan, and Muslim also recorded it after (580): (116) but without this addition. It was recorded with this addition by al-Humaydi (648), and Ibn Abd al-Barr in al-Tamhid 13/196. (2) Sunan Abi Dawud (989), also recorded by al-Nasa'i in al-Mujtaba 3/37, and in al-Kubra (1194). Muslim recorded it (579) but did not mention the statement: "and did not move it". It is in al-Musnad (16100) and also does not contain: "and did not move it". (3) Al-Mufhim 2/202, see al-Nawadir wal-Ziyadat 1/188-189, and Ikmal al-Mu'allim 2/530-531. (4) In (m): "her jilbab," which is an error. (5) Al-Istidhkar 4/266-267. (6) Number (536), and what is between the brackets is from him.

सूरा अल-बकरा: आयत 43 51 और उन्होंने इसमें जोड़ा, कहा: "यह शैतान को भगाने वाला है; जब तक तुम में से कोई अपनी उंगली से इशारा करता है और इस तरह कहता है, तब तक वह विचलित नहीं होगा"(1)। मैंने कहा: अबू दाऊद ने इब्न अल-जुबैर की हदीस में वर्णन किया है कि वह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) दुआ करते समय अपनी उंगली से इशारा करते थे और उसे हिलाते नहीं थे(2)। कुछ इराकियों ने यह विचार अपनाया और उसे हिलाने से मना किया, जबकि हमारे कुछ विद्वानों का मानना था कि उसे फैलाना एकेश्वरवाद (तौहीद) की निरंतरता का संकेत है। मलिक के अनुयायियों और अन्य लोगों में से अधिकांश विद्वान उसे हिलाने के पक्ष में थे, लेकिन वे लगातार हिलाने पर दो मतों में विभाजित थे। जिन्होंने निरंतरता का समर्थन किया, उन्होंने कहा: यह प्रार्थना में निरंतर उपस्थिति की याद दिलाता है, और यह कि सुफियान के वर्णन के अनुसार शैतान को दबाने और भगाने का एक साधन है। जिन्होंने निरंतरता का समर्थन नहीं किया, उन्होंने इसे शहादत के दो शब्दों के उच्चारण के समय हिलाना उचित समझा, इस आंदोलन की व्याख्या इस तरह की कि मानो वह अंग एकेश्वरवाद का उच्चारण कर रहा हो। और अल्लाह बेहतर जानता है(3)। इकतीसवां: नमाज में महिला के बैठने के संबंध में उनमें मतभेद था। मलिक ने कहा: वह पुरुष के समान है, और एहराम (प्रारंभिक तकबीर) के बाद केवल पहनावे और आवाज की तीव्रता में उससे भिन्न है। अल-थौरी ने कहा: एक महिला को अपने दोनों पैरों को(4) एक तरफ मोड़ लेना चाहिए, इब्राहिम अल-नखई से इसे वर्णित किया गया है। अबू हनीफा और उनके साथियों ने कहा: एक महिला अपने लिए सबसे आसान तरीके से बैठती है। अल-शाबी का यही विचार है: वह जैसे भी उसके लिए आसान हो बैठती है। अल-शाफई ने कहा: वह यथासंभव सबसे पर्दे वाले तरीके से बैठती है(5)। बत्तीसवां: मुस्लिम(6) ने ताऊस से वर्णन किया, जिन्होंने कहा: हमने इब्न अब्बास से पैरों पर बैठने (इक़आ) के बारे में कहा, तो उन्होंने कहा: "यह सुन्नत है।" हमने उनसे कहा: "हम इसे एक आदमी के लिए कठोर देखते हैं।" इब्न अब्बास ने कहा: "[बल्कि] यह तुम्हारे नबी ﷺ की सुन्नत है।"

(1) सुफियान का वर्णन, और मुस्लिम ने भी इसे (580): (116) के बाद निकाला है, लेकिन इसमें यह अतिरिक्त हिस्सा नहीं है। इसे अल-हुमैदी (648) ने इस अतिरिक्त के साथ निकाला है, और इब्न अब्द अल-बर ने अल-तमहीद 13/196 में। (2) सुनन अबू दाऊद (989), और इसे अल-नसाई ने अल-मुज्तबा 3/37 में और अल-कुबरा (1194) में भी निकाला है। मुस्लिम ने इसे निकाला (579) लेकिन इसमें "और उसे हिलाया नहीं" शब्द का उल्लेख नहीं किया। यह अल-मुसनद (16100) में है और इसमें भी "और उसे हिलाया नहीं" शामिल नहीं है। (3) अल-मुफ़हिम 2/202, और अल-नवादिर वल-

ज़ियादात 1/188-189, और इकमल अल-मुअल्लिम 2/530-531 देखें। (4) (म) में: "उसका जिलबाब," जो गलत है। (5) अल-इस्तिज़कार 4/266-267। (6) नंबर (536), और जो कोष्ठकों के बीच है वह उन्हीं से है।

سورہ البقرہ: آیت 43 51 اور انہوں نے اس میں اضافہ کیا، کہا: "یہ شیطان کو بھگانے والا ہے؛ تم میں سے کوئی اس وقت تک غافل نہیں ہوتا جب تک وہ اپنی انگلی سے اشارہ کرتا ہے اور اس طرح کہتا ہے"(1)۔ میں نے کہا: ابو داؤد نے ابن الزبیر کی حدیث میں روایت کیا ہے کہ آپ (صلی اللہ علیہ وسلم) جب دعا کرتے تو اپنی انگلی سے اشارہ کرتے تھے اور اسے حرکت نہیں دیتے تھے(2)۔ بعض عراقیوں کا یہی قول ہے، چنانچہ انہوں نے اسے حرکت دینے سے منع کیا، جبکہ ہمارے بعض علماء کی رائے تھی کہ اسے پھیلائے رکھنا توحید کے دوام کی طرف اشارہ ہے۔ اور مالک کے اصحاب اور دوسروں میں سے اکثر علماء اسے حرکت دینے کی طرف گئے ہیں، سوائے اس کے کہ وہ حرکت میں تسلسل پر دو اقوال میں اختلاف کر گئے۔ جس نے تسلسل کا قول کیا اس نے کہا: یہ نماز میں حاضری کے تسلسل کی یاد دہانی کراتا ہے، اور یہ کہ وہ شیطان کو دبانے اور بھگانے کا ذریعہ ہے جیسا کہ سفیان نے روایت کیا ہے۔ اور جس نے تسلسل نہیں رکھا؛ اس کی رائے تھی کہ شہادت کے کلمے ادا کرتے وقت اسے حرکت دی جائے، اور اس حرکت کی تاویل یہ کی گویا وہ عضو توحید کے کلمات بول رہا ہو۔ اور اللہ بہتر جانتا ہے(3)۔ اکتیسواں: اور انہوں نے نماز میں عورت کے بیٹھنے کے بارے میں اختلاف کیا۔ امام مالک نے فرمایا: وہ مرد کی طرح ہے، اور احرام (تکبیر تحریمہ) کے بعد لباس اور آواز بلند کرنے کے سوا اس کی مخالفت نہیں کرتی۔ سفیان ثوری نے کہا: عورت اپنے دونوں پاؤں(4) ایک طرف نکال کر بیٹھے، اور یہ ابراہیم نخعی سے مروی ہے۔ امام ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب نے کہا: عورت اس طرح بیٹھے جو اس کے لیے سب سے زیادہ آسان ہو۔ یہی شعبی کا قول ہے: وہ جس طرح میسر ہو بیٹھ جائے۔ امام شافعی نے فرمایا: وہ اس طرح بیٹھے جو اس کے لیے زیادہ پردہ پوش ہو(5)۔ بتیسواں: مسلم(6) نے طاؤس سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: ہم نے ابن عباس سے دونوں قدموں پر

بیٹھنے (اقعاء) کے بارے میں پوچھا، تو انہوں نے فرمایا: "یہ سنت ہے۔" ہم نے ان سے کہا: "ہم اسے مرد کے لیے ایک طرح کی سختی سمجھتے ہیں۔" تو ابن عباس نے فرمایا: "[بلکہ] یہ تمہارے نبی ﷺ کی سنت ہے۔"

(1) سفیان کی روایت کو مسلم نے بھی (580): (116) کے بعد نکالا ہے لیکن اس میں یہ زیادتی نہیں ہے، اور اسے اس زیادتی کے ذکر کے ساتھ حمیدی (648) نے، اور ابن عبد البر نے التمہید 13/196 میں نکالا ہے۔ (2) سنن ابی داؤد (989)، اور اسے نسائی نے المجتبیٰ 3/37 میں اور الکبریٰ (1194) میں بھی نکالا ہے۔ مسلم نے اسے نکالا ہے (579) مگر اس میں یہ قول ذکر نہیں کیا: "اور اسے حرکت نہیں دیتے تھے"۔ اور یہ المسند (16100) میں ہے اور اس میں بھی "اور اسے حرکت نہیں دیتے تھے" نہیں ہے۔ (3) المفہم 2/202، اور دیکھئے النوادر والزیادات 1/188-189، اور اکمال المعلم 2/530-531۔ (4) (م) میں: "اس کی چادر (جلباب)"، جو کہ غلطی ہے۔ (5) الاستذکار 4/266-267۔ (6) نمبر (536)، اور جو کچھ بریکٹ کے درمیان ہے وہ انہی کی طرف سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 | 52

Scholars have differed regarding the description of "Iq'a" (a sitting posture) and what it is. Abu 'Ubaydah (1) said: Iq'a is for a man to sit on his buttocks (2), raising his thighs, similar to the sitting of a dog or a predator. Ibn 'Abd al-Barr (3) said: This form of Iq'a is agreed upon; scholars do not differ about it. This is the interpretation of the linguists and a group of the people of Fiqh (jurisprudence). Abu 'Ubayd (4) said: As for the people of Hadith, they define Iq'a as placing the buttocks on the heels between the two prostrations. Al-Qadi 'Iyad (5) said: What seems most likely to me in interpreting the Iq'a that Ibn 'Abbas spoke of as being from the Sunnah, is what the jurists explained: placing the buttocks on the heels between the two prostrations. This interpretation is also narrated from Ibn 'Abbas: "It is from the Sunnah that your buttocks touch your heels." Narrated by Ibrahim bin Maysara from Tawus from him, mentioned by Abu 'Umar (6).

The Qadi (7) said: It has been narrated from a group of the Salaf (predecessors) and Companions that they used to do it, although the majority of the jurists of the major cities did not hold that view, and they called it "Iq'a". 'Abd al-Razzaq mentioned from Ma'mar, from Ibn Tawus, from his father, that he saw Ibn 'Umar, Ibn 'Abbas, and Ibn al-Zubayr practicing "Iq'a" between the two prostrations (8).

The Thirty-third [point]: Among those scholars who hold the obligation of the Taslim (salutation) and those who do not, there is no disagreement that the second Taslim is not obligatory, except for what was narrated from Al-Hasan bin Hayy, who made both Taslims obligatory together. Abu Ja'far al-Tahawi (9) said: We have not found anyone from among the people of knowledge who advocated for both Taslims that the second one is among its obligations, other than him.

(1) In (Z), (Zh), and (M): Abu 'Ubayd, and both are possible. What is established is from (D), as it was cited by Abu 'Ubayd al-Qasim bin Sallam in "Gharib al-Hadith" 1/210 and 2/108, and Al-Azhari in "Tahdhib al-Lugha" 3/31 from Abu 'Ubaydah Mu'ammar bin al-Muthanna. In the printed edition of "Al-Istidhkhar" 4/269 - and from it the author cited - it is: Abu 'Ubayd. (2) In (Z) and (Zh): his buttock. (3) Al-Istidhkhar 4/269-270. (4) Gharib al-Hadith 1/210 and 2/109, and Al-Istidhkhar 4/270. (5) Ikmal al-Mu'allim bi Fawa'id Muslim 2/459. (6) Al-Istidhkhar 4/271. (7) Ikmal al-Mu'allim 2/459, 460. (8) Musannaf Abd al-Razzaq (3029), and Al-Istidhkhar 4/271. (9) We have not found it, and it is in Al-Istidhkhar 4/298, and the author cited it from him.

सूरह अल-बक़रह: आयत 43 | 52

विद्वानों ने 'इक़आ' (बैठने की एक मुद्रा) के विवरण में मतभेद किया है कि वह क्या है। अबू उबैदा (1) ने कहा: इक़आ एक व्यक्ति का अपने नितंबों (2) पर बैठना और अपनी जांघों को सीधा खड़ा रखना है, जैसे कुत्ता या हिंसक जानवर बैठता है। इब्न अब्दुल बर्र (3) ने कहा: इस प्रकार के इक़आ पर सहमति है, विद्वान इसमें मतभेद नहीं करते। यह भाषाविदों और न्यायशास्त्रियों (फ़क़ीहों) के एक समूह की व्याख्या है। अबू उबैद (4) ने कहा: जहाँ तक हदीस के विद्वानों की बात है, वे इक़आ को दो सजदों के बीच अपने नितंबों को अपनी एड़ियों पर रखने को मानते हैं। अल-काजी अयाज़ (5) ने कहा: इक़आ की व्याख्या में जो मुझे सबसे अधिक संभावित लगता है, जिसके बारे में इब्न अब्बास ने कहा कि यह सुन्नत से है, वह वही है जिसकी व्याख्या न्यायशास्त्रियों ने की है: दो सजदों के बीच नितंबों को एड़ियों पर रखना। इसी तरह इब्न अब्बास से इसकी व्याख्या आई है: "सुन्नत से है कि आपके नितंब आपकी एड़ियों को छुएं।" इसे इब्राहीम बिन मयसारा ने ताऊस से और उन्होंने उनसे रिवायत किया है, और अबू उमर (6) ने इसका उल्लेख किया है।

काजी (7) ने कहा: पूर्वजों (सलफ़) और सहाबा के एक समूह से रिवायत है कि वे ऐसा करते थे, हालांकि शहरों के आम न्यायशास्त्रियों ने ऐसा नहीं कहा और उन्होंने इसे इक़आ कहा। अब्दुर रज्जाक ने मा'मर से, इब्न ताऊस से, उनके पिता के माध्यम से उल्लेख किया है कि उन्होंने इब्न उमर, इब्न अब्बास और इब्न अल-जुबैर को दो सजदों के बीच इक़आ करते हुए देखा (8)।

तैंतीसवां [बिंदु]: तस्लीम (सलाम फेरना) की अनिवार्यता या अनानिवार्यता को मानने वाले विद्वानों के बीच इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि दूसरी तस्लीम फ़र्ज़ नहीं है, सिवाय उसके जो अल-हसन बिन हयी से रिवायत है कि उन्होंने दोनों तस्लीमों को एक साथ अनिवार्य (वाजिब) ठहराया। अबू जाफर अल-तहावी (9) ने कहा: हमने ज्ञान के उन विद्वानों में से किसी को भी नहीं पाया जो दोनों तस्लीमों के समर्थक थे कि उनमें से किसी ने दूसरे को फ़र्ज़ माना हो, सिवाय उनके।

(1) (ज़), (ज़ाह) और (मीम) में: अबू उबैद, और दोनों संभव हैं। जो (दाल) से पुष्ट है, उसे अबू उबैद अल-कासिम बिन सल्लम ने "ग़रीब अल-हदीस" 1/210 और 2/108 में, और अल-अज़हरी ने "तहज़ीब अल-लुग़ा" 3/31 में अबू उबैदा मुअम्मर बिन अल-मुसन्ना से उद्धृत किया है। "अल-इस्तिज़कार" 4/269 के मुद्रित संस्करण में - जिससे लेखक ने उद्धृत किया है - यह अबू उबैद है। (2) (ज़) और (ज़ाह) में: उसका नितंब। (3) अल-इस्तिज़कार 4/269-270। (4) ग़रीब अल-हदीस

1/210 और 2/109, और अल-इस्तिज़कार 4/270। (5) इकमल अल-मुअल्लिम बि फवाइद मुस्लिम 2/459। (6) अल-इस्तिज़कार 4/271। (7) इकमल अल-मुअल्लिम 2/459, 460। (8) मुसन्फ़ अब्द अल-रज्जाक (3029), और अल-इस्तिज़कार 4/271। (9) हमें यह नहीं मिला, और यह अल-इस्तिज़कार 4/298 में है, और लेखक ने इसे उनसे उद्धृत किया है।

سورہ البقرہ: آیت 43 | 52

علماء کا اِقْعاء کی صفت میں اختلاف ہے کہ وہ کیا ہے، تو ابو عبیدہ (1) نے کہا: اِقْعاء آدمی کا اپنی دونوں سرینوں (2) پر بیٹھنا اور اپنی دونوں رانوں کو کتے اور درندے کے اِقْعاء کی طرح کھڑا رکھنا ہے۔ ابن عبد البر (3) نے کہا: یہ وہ اِقْعاء ہے جس پر اتفاق ہے، علماء اس میں اختلاف نہیں کرتے۔ یہ ماہرینِ لغت اور فقہاء کی ایک جماعت کی تفسیر ہے۔ اور ابو عبید (4) نے کہا: رہے اہلِ حدیث، تو وہ اِقْعاء اسے قرار دیتے ہیں کہ دو سجدوں کے درمیان اپنی سرینوں کو اپنی ایڑیوں پر رکھے۔ قاضی عیاض (5) نے کہا: میرے نزدیک اس اِقْعاء کی تاویل میں زیادہ مشابہ وہ ہے جس کے بارے میں ابن عباس نے کہا کہ یہ سنت میں سے ہے، جس کی فقہاء نے تفسیر کی ہے کہ دو سجدوں کے درمیان سرینوں کو ایڑیوں پر رکھنا، اور اسی طرح ابن عباس سے مفسر مروی ہے: "سنت میں سے یہ ہے کہ تمہاری سرین تمہاری ایڑی کو چھوئے۔" اسے ابراہیم بن میسرہ نے طاؤس سے اور انہوں نے ان سے روایت کیا، اسے ابو عمر (6) نے ذکر کیا ہے۔

قاضی (7) نے کہا: سلف اور صحابہ کی ایک جماعت سے مروی ہے کہ وہ ایسا کیا کرتے تھے، اور شہروں کے عام فقہاء نے یہ بات نہیں کہی، اور انہوں نے اسے اِقْعاء کا نام دیا۔ عبد الرزاق نے معمر سے، انہوں نے ابن طاؤس سے، انہوں نے اپنے والد سے ذکر کیا کہ انہوں نے ابن عمر، ابن عباس اور ابن زبیر کو دو سجدوں کے درمیان اِقْعاء کرتے ہوئے دیکھا (8)۔

تینتیسواں [نکتہ]: سلام (پھیرنے) کے وجوب اور عدمِ وجوب کے قائل علماء میں اس بات پر کوئی اختلاف نہیں ہے کہ دوسرا سلام فرض نہیں ہے، سوائے اس کے جو حسن بن حی سے مروی ہے کہ انہوں نے دونوں سلاموں کو ایک ساتھ واجب قرار دیا۔ ابو جعفر طحاوی (9) نے کہا: ہم نے

دونوں سلاموں کے قائل اہلِ علم میں سے کسی کو نہیں پایا کہ جس نے دوسرے سلام کو فرائض میں سے مانا ہو سوائے ان کے۔

(1) (ز) اور (ظ) اور (م) میں: ابو عبید، اور دونوں کا احتمال ہے، اور (د) سے ثابت ہے، اسے ابو عبید قاسم بن سلام نے "غریب الحدیث" 1/210 اور 2/108 میں نقل کیا ہے، اور ازہری نے "تہذیب اللغۃ" 3/31 میں ابو عبیدہ معمر بن مثنیٰ سے، اور الاستذکار کے مطبوعہ نسخے 4/269 میں - اور اسی سے مصنف نے نقل کیا ہے -: ابو عبید۔ (2) (ز) اور (ظ) میں: اس کی سرین۔ (3) الاستذکار 4/269-270۔ (4) غریب الحدیث 1/210 اور 2/109، اور الاستذکار 4/270۔ (5) اکمال المعلم بفوائد مسلم 2/459۔ (6) الاستذکار 4/271۔ (7) اکمال المعلم 2/459، 460۔ (8) مصنف عبد الرزاق (3029)، اور الاستذکار 4/271۔ (9) ہمیں اس پر اطلاع نہیں ہوئی، اور یہ الاستذکار 4/298 میں ہے، اور مصنف نے ان سے اسے نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 53

Ibn Abd al-Barr(1) said: Among the evidence of Al-Hasan ibn Salih—in his obligating both salams, and his saying that whoever experiences a ritual impurity after the first and before the second, his prayer is nullified—is the saying of the Prophet ﷺ: "Its dissolution (tahlil) is the salam"(2). Then he explained how the salam is performed, for he used to give salam to his right and to his left.

Among the evidence of those who obligated a single salam without the second is the saying of the Prophet ﷺ: "Its dissolution is the salam"; they said: A single salam is called 'salam'.

I say: This issue is based on taking the beginning(3) of the name or its end. Since entering the prayer is with a single Takbir by consensus, then likewise exiting it is with a single salam(4). However, established Sunnahs have concurred from the hadith of Ibn Mas'ud—which is the most widely narrated (mutawatir)—and from the hadith of Wa'il ibn Hujr al-Hadrami, the hadith of Ammar, the hadith of al-Bara' ibn 'Azib, the hadith of Ibn Umar, and the hadith of Sa'd ibn Abi Waqqas, that the Prophet ﷺ used to give two salams (5). Ibn Jurayj, Sulayman ibn Bilal, and Abd al-Aziz ibn Muhammad al-Darawardi narrated, all of them from Amr ibn Yahya al-Mazini, from Muhammad ibn Yahya ibn Habban, from his uncle Wasi' ibn Habban, who said: I said to Ibn Umar: Tell me about the prayer of the Messenger of Allah ﷺ, how was it? So he mentioned the Takbir every time he raised his head and every time he lowered it, and he mentioned: "As-salamu alaykum wa rahmatullah" to his right, and "As-salamu alaykum wa rahmatullah" [to his left].

(1) Al-Istidhkar 4/299. (2) Its documentation was previously mentioned in 1/268. (3) In (Z), (T), and (M): "with less". (4) In (Z) and (T): "with one takbir... with one salam". (5) The hadith of Ibn Mas'ud was recorded by Ahmad (3660), Abu Dawud (996), Al-Tirmidhi (295), Al-Nasa'i 3/62, Ibn Majah (914), and Ibn Abd al-Barr in Al-Istidhkar 4/300. The hadith of Wa'il ibn Hujr al-Hadrami was recorded by Ahmad (18853) and Abu Dawud (997). The hadith of Ammar was recorded by Ibn Abi Shaybah 1/299, Ibn Majah (916), Al-Tahawi in Sharh Ma'ani al-Athar 1/268, and Al-Daraqutni 1/356. The hadith of al-Bara' was recorded by Ibn Abi Shaybah 1/299, Al-Tahawi 1/269, and Al-Daraqutni 1/357. The hadith of Sa'd ibn Abi Waqqas was recorded by Ahmad (1484), Muslim (582), and Al-Nasa'i 3/61, and the author will mention the hadith of Ibn Umar.

सूरा अल-बक़रह: आयत 43 53

इब्न अब्द अल-बर्र(1) ने कहा: अल-हसन बिन सालेह के प्रमाणों में से—दोनों सलामों को अनिवार्य करने में, और उनका यह कहना कि जिसने पहले के बाद और दूसरे से पहले ह़दथ (अशुद्धि) किया, उसकी नमाज़ अमान्य हो गई—नबी ﷺ का यह कथन है: "उसका हलाल होना (नमाज़ से बाहर निकलना) सलाम है"(2)। फिर उन्होंने स्पष्ट किया कि सलाम कैसे है, क्योंकि वह अपने दाहिने और अपने बाएं सलाम फेरते थे।

और उन लोगों के प्रमाणों में से जिन्होंने दूसरे के बिना एक ही सलाम को अनिवार्य माना है, नबी ﷺ का यह कथन है: "उसका हलाल होना सलाम है"; उन्होंने कहा: एक ही सलाम पर 'सलाम' का नाम लागू होता है।

मैं कहता हूँ: यह मसला (मुद्दा) नाम की शुरुआत(3) या उसके अंत को लेने पर आधारित है। चूँकि नमाज़ में प्रवेश करना आम सहमति (इज्मा) से एक तकबीर के साथ है, उसी तरह उससे बाहर निकलना एक ही सलाम(4) के साथ है। हालाँकि, इब्न मसूद की हदीस से—जो सबसे अधिक मुतवातिर (निरंतर वर्णित) है—और वाएल बिन हुज्र अल-हदरमी की हदीस, अम्मार की हदीस, अल-बराह बिन आज़िब की हदीस, इब्न उमर की हदीस, और साद बिन अबी वक़्क़ास की हदीस से प्रमाणित सुन्नतें एक साथ आई हैं कि नबी ﷺ दो सलाम फेरते थे(5)। इब्न जुरैज, सुलेमान बिन बिलाल और अब्दुल अज़ीज़ बिन मुहम्मद अल-दरावर्दी ने रिवायत की है, उन सभी ने अम्र बिन याह्या अल-माज़िनी से, मुहम्मद बिन याह्या बिन हब्बान से, उनके चाचा वासेअ बिन हब्बान से, जिन्होंने कहा: मैंने इब्न उमर से कहा: मुझे अल्लाह के रसूल ﷺ की नमाज़ के बारे में बताएं कि वह कैसी थी? तो उन्होंने हर बार अपना सिर उठाने और हर बार उसे झुकाने पर तकबीर का ज़िक्र किया, और उन्होंने अपने दाहिने ओर "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह" और [अपने बाएं ओर] "अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह" का ज़िक्र किया।

(1) अल-इस्तिज़कार 4/299। (2) इसका स्रोत पहले 1/268 में दिया जा चुका है। (3) (ज़), (त) और (म) प्रतियों में: "अक़ल्ल" (न्यूनतम) के साथ। (4) (ज़) और (त) प्रतियों में: "एक तकबीर के साथ... एक सलाम के साथ"। (5) इब्न मसूद की हदीस को अहमद (3660), अबू दाऊद (996), तिरमिज़ी (295), नसाई 3/62, इब्न माजाह (914) और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिज़कार 4/300 में निकाला है। और वाएल बिन हुज्र अल-हदरमी की हदीस को अहमद (18853) और अबू दाऊद

(997) ने निकाला है। और अम्मार की हदीस को इब्न अबी शैबा 1/299, इब्न माजाह (916), अल-तहावी ने शरह मानी अल-आसार 1/268 में, और दाराक़ुतनी 1/356 ने निकाला है। और अल-बराह की हदीस को इब्न अबी शैबा 1/299, अल-तहावी 1/269, और दाराक़ुतनी 1/357 ने निकाला है। और साद बिन अबी वक़्क़ास की हदीस को अहमद (1484), मुस्लिम (582), और नसाई 3/61 ने निकाला है, और लेखक इब्न उमर की हदीस का ज़िक्र आगे करेंगे।

سورة البقرہ: آیت 43 53

ابن عبد البر(1) نے کہا: الحسن بن صالح کے دلائل میں سے—دونوں سلاموں کے وجوب پر، اور ان کا یہ قول کہ جس نے پہلے سلام کے بعد اور دوسرے سے پہلے حدث کیا اس کی نماز فاسد ہو گئی—نبی ﷺ کا یہ فرمان ہے: "اس کا حلال ہونا (نماز سے نکلنا) سلام ہے"(2)۔ پھر انہوں نے بیان کیا کہ سلام کیسے ہے، پس آپ ﷺ اپنے دائیں اور اپنے بائیں سلام پھیرتے تھے۔

اور ان لوگوں کے دلائل میں سے جنہوں نے دوسرے کے بغیر ایک ہی سلام کو واجب قرار دیا، نبی ﷺ کا یہ فرمان ہے: "اس کا حلال ہونا سلام ہے"؛ انہوں نے کہا: ایک سلام پر بھی 'سلام' کا نام صادق آتا ہے۔

میں کہتا ہوں: یہ مسئلہ نام کی ابتدا(3) یا اس کی انتہا کو لینے پر مبنی ہے۔ چونکہ نماز میں داخلہ بالاتفاق ایک ہی تکبیر کے ساتھ ہے، اسی طرح اس سے نکلنا بھی ایک ہی سلام(4) کے ساتھ ہے، سوائے اس کے کہ ابن مسعود کی حدیث سے—جو سب سے زیادہ متواتر ہے—اور وائل بن حجر الحضرمی کی حدیث، عمار کی حدیث، براء بن عازب کی حدیث، ابن عمر کی حدیث، اور سعد بن ابی وقاص کی حدیث سے ثابت سنتیں تواتر کے ساتھ مروی ہیں کہ نبی ﷺ دو سلام پھیرا کرتے تھے(5)۔ ابن جریج، سلیمان بن بلال، اور عبد العزیز بن محمد الدراوردی سب نے عمرو بن یحییٰ المازنی سے، انہوں نے محمد بن یحییٰ بن حبان سے، انہوں نے اپنے چچا واسع بن حبان سے روایت کی کہ انہوں نے کہا: میں نے ابن عمر سے کہا: مجھے رسول اللہ ﷺ کی نماز کے بارے میں بتائیں کہ وہ کیسی تھی؟ تو انہوں نے ہر بار سر اٹھاتے اور جھکاتے وقت تکبیر کا ذکر کیا، اور اپنے دائیں طرف "السلام علیکم ورحمة اللہ" اور [بائیں طرف بھی] "السلام علیکم ورحمة اللہ" کا ذکر کیا۔

(1) الاستذكار 4/299۔ (2) اس کی تخریج پہلے 1/268 میں گزر چکی ہے۔ (3) (ز)، (ط) اور (م) میں: 'بأقلّ' (کم سے کم پر) ہے۔ (4) (ز) اور (ط) میں: 'ایک تکبیر کے ساتھ... ایک سلام کے ساتھ' ہے۔ (5) ابن مسعود کی حدیث کو احمد (3660)، ابوداؤد (996)، ترمذی (295)، نسائی 3/62، ابن ماجہ (914)، اور ابن عبد البر نے الاستذکار 4/300 میں روایت کیا ہے۔ اور وائل بن حجر الحضرمی کی حدیث کو احمد (18853)، اور ابوداؤد (997) نے روایت کیا ہے۔ اور عمار کی حدیث کو ابن ابی شیبہ 1/299، ابن ماجہ (916)، طحاوی نے شرح معانی الآثار 1/268 میں، اور دارقطنی 1/356 نے روایت کیا ہے۔ اور براء کی حدیث کو ابن ابی شیبہ 1/299، طحاوی 1/269، اور دارقطنی 1/357 نے روایت کیا ہے۔ اور سعد بن ابی وقاص کی حدیث کو احمد (1484)، مسلم (582)، اور نسائی 3/61 نے روایت کیا ہے، اور مصنف عنقریب ابن عمر کی حدیث ذکر کریں گے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 / 54

...on his left (1). Ibn Abd al-Barr said (2): This is an authentic Medinan chain of narration (isnad), and the well-known practice in Medina is one taslim (salutation at the end of prayer). This is a practice inherited by the people of Medina from generation to generation. Such a practice is valid to be used as evidence in every land, for it is not hidden, as it occurs many times every day. Likewise, the practice in Kufa and elsewhere is widespread among them with two taslims, and it is also inherited among them. Everything that follows this course is a matter of permissible variation. Therefore (3), no scholar in Hijaz, Iraq, Syria, or Egypt is reported to have rejected the single taslim, nor have they rejected the two taslims; rather, both are known to them (4). The hadith of the single taslim was narrated by Sa'd bin Abi Waqqas, Aisha, and Anas, but it is defective (ma'lul) and not authenticated by the scholars of hadith (5). Thirty-fourth: Al-Daraqutni narrated from Ibn Mas'ud that he said: "It is from the Sunnah to conceal the Tashahhud" (6).

(1) Narrated by ash-Shafi'i in his Musnad 1/99 (arranged by as-Sindi), Ahmad (5402) and (6397), and an-Nasa'i in al-Mujtaba 3/62 and 63. (2) Al-Istidhkar 4/302. (3) In versions (z), (zha), and (m): "Likewise," and the one confirmed is from (d), which matches al-Istidhkar. (4) Al-Istidhkar 4/296-297. (5) At-Tahawi narrated the hadith of Sa'd bin Abi Waqqas in Sharh Ma'ani al-Athar 1/266. Ibn Abd al-Barr mentioned it in al-Istidhkar 4/291 and said: ad-Darawardi made a mistake in it, narrating it contrary to how other people narrated it: as one taslim, while others narrate two taslims in it. At-Tirmidhi (296), Ibn Majah (919), at-Tahawi in Sharh Ma'ani al-Athar 1/270, and Ibn Hibban (1995) narrated Aisha's hadith via Zuhayr bin Muhammad, from Hisham bin Urwah, from his father, from Aisha. At-Tirmidhi said: We do not know Aisha's hadith as marfu' (attributed to the Prophet) except through this chain. At-Tahawi said: This hadith's origin is mawquf (attributed to the Companion) on Aisha. Ibn Abd al-Barr mentioned it in al-Istidhkar 4/293 and said: No one raised it (to the Prophet) except Zuhayr bin Muhammad alone, and Zuhayr bin Muhammad is considered weak by everyone, makes many mistakes, and is not relied upon as evidence. Ibn Abi Shaybah 1/301, and al-Bazzar in his Musnad (566) (Zawa'id) narrated Anas's hadith via Ayyub as-Sikhtiyani, and al-Bayhaqi in as-Sunan al-Kubra 2/179 via Hamid, both from Anas. Ibn Abd al-Barr said in al-Istidhkar 4/296 after mentioning Ayyub's path: Ayyub did not hear from Anas. (6) We did not find it in ad-Daraqutni, neither in his Sunan nor in his 'Ilal. It was narrated by Abu Dawud (986), at-Tirmidhi (291), Ibn Khuzaymah (706), al-Hakim 1/230, al-Bayhaqi 2/146, and al-Baghawi in Sharh as-Sunnah (680). At-

Tirmidhi said: Ibn Mas'ud's hadith is a good-strange (hasan gharib) hadith, and it is acted upon by the people of knowledge.

सूरा अल-बकरा: आयत 43 / 54

...उसके बाईं ओर (1)। इब्न अब्द अल-बर्र ने कहा (2): "यह एक प्रामाणिक मदीनी इसनाद (कथन की श्रृंखला) है, और मदीना में प्रसिद्ध प्रथा एक तसलीम (नमाज़ के अंत में सलाम) की है। यह एक ऐसी प्रथा है जिसे मदीना के लोगों ने पीढ़ी दर पीढ़ी विरासत में पाया है। ऐसी प्रथा को हर देश में साक्ष्य के रूप में इस्तेमाल करना वैध है, क्योंकि यह छिपा नहीं है, क्योंकि यह हर दिन कई बार घटित होता है। इसी तरह, कूफ़ा और अन्य जगहों पर दो तसलीमों की प्रथा उनके बीच व्यापक है, और यह उनके बीच विरासत में भी मिली है। जो कुछ भी इस मार्ग का अनुसरण करता है, वह अनुमेय विविधता का मामला है। इसलिए (3), हिजाज़, इराक, सीरिया या मिस्र के किसी भी विद्वान द्वारा एक तसलीम को खारिज करने की रिपोर्ट नहीं है, और न ही उन्होंने दो तसलीमों को खारिज किया है; बल्कि, दोनों उनके लिए ज्ञात हैं (4)। एक तसलीम की हदीस साद बिन अबी वक्कास, आयशा और अनस द्वारा सुनाई गई थी, लेकिन यह त्रुटिपूर्ण (मालूल) है और हदीस के विद्वानों द्वारा प्रमाणित नहीं है (5)।" चौंतीसवां: अद-दाराकुतनी ने इब्न मसूद से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: "तशहुद को चुपचाप पढ़ना सुन्नत में से है" (6)।

(1) अज़-ज़हरी ने इसे अपनी मुसनद 1/99 (अस-सिंदी द्वारा व्यवस्थित), अहमद (5402) और (6397), और अन-नसाई ने अल-मुज्तबा 3/62 और 63 में निकाला है। (2) अल-इस्तिधकार 4/302. (3) (ज़), (ज़) और (म) संस्करणों में: "इसी तरह," और जो पुष्टि की गई है वह (द) से है, जो अल-इस्तिधकार से मेल खाती है। (4) अल-इस्तिधकार 4/296-297. (5) अत-तहावी ने शर्ह मा'आनी अल-आथार 1/266 में साद बिन अबी वक्कास की हदीस निकाली है। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिधकार 4/291 में इसका उल्लेख किया और कहा: अद-दरावर्दी ने इसमें गलती की, इसे लोगों द्वारा सुनाई गई बातों के विपरीत सुनाया: एक तसलीम के रूप में, जबकि अन्य इसमें दो तसलीम सुनाते हैं। अत-तिर्मिज़ी (296), इब्न माजाह (919), शर्ह मा'आनी अल-आथार 1/270 में अत-तहावी, और इब्न हिब्बान (1995) ने ज़ुहैर बिन मुहम्मद के माध्यम से, हिशाम बिन उरवाह से, अपने पिता से, आयशा से आयशा की हदीस को निकाला। अत-तिर्मिज़ी ने कहा: हम आयशा की हदीस को इस मार्ग के अलावा मरफ़ू (पैगंबर के लिए जिम्मेदार) के रूप में नहीं जानते हैं। अत-तहावी ने कहा: इस हदीस का मूल आयशा पर मौकूफ (साथी के लिए जिम्मेदार) है। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिधकार 4/293 में इसका उल्लेख किया और कहा: ज़ुहैर बिन मुहम्मद के अलावा किसी ने भी इसे मरफ़ू नहीं किया, और ज़ुहैर बिन मुहम्मद को सभी के द्वारा कमज़ोर माना जाता है, वह बहुत

गलतियाँ करता है, और उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं किया जाता है। इब्न अबी शयबा 1/301, और अल-बज़्ज़ार ने अपनी मुसनद (566) (ज़वाइद) में अय्यूब अस-सिख़्तियानी के माध्यम से, और अल-बैहकी ने अस-सुनन अल-कुबरा 2/179 में हमीद के माध्यम से, दोनों ने अनस से, अनस की हदीस निकाली। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिधकार 4/296 में अय्यूब के मार्ग का उल्लेख करने के बाद कहा: अय्यूब ने अनस से नहीं सुना। (6) हमने इसे अद-दाराकुतनी में नहीं पाया, न ही उनकी सुनन में और न ही उनकी इलाल में। इसे अबू दाऊद (986), अत-तिर्मिज़ी (291), इब्न खुज़ैमा (706), अल-हाकिम 1/230, अल-बैहकी 2/146, और अल-बग़वी ने शर्ह अस-सुन्ना (680) में निकाला। अत-तिर्मिज़ी ने कहा: इब्न मसूद की हदीस एक हसन ग़रीब हदीस है, और इल्म वालों द्वारा इस पर अमल किया जाता है।

سورہ البقرہ: آیت 43 / 54

... اس کے بائیں طرف (1)۔ ابن عبدالبر نے کہا (2): یہ ایک صحیح مدنی سند ہے، اور مدینہ میں مشہور عمل ایک تسلیم (سلام پھیرنا) ہے، اور یہ وہ عمل ہے جو اہل مدینہ نے نسل در نسل ورثے میں پایا ہے، اور اس جیسی مثال میں ہر شہر میں عمل سے استدلال کرنا صحیح ہے؛ کیونکہ یہ پوشیدہ نہیں ہے؛ اس کے روزانہ کئی بار واقع ہونے کی وجہ سے۔ اسی طرح کوفہ اور دیگر مقامات پر دو تسلیموں کے ساتھ عمل ان کے ہاں کثرت سے رائج ہے، اور ان کے ہاں بھی یہ ورثے میں ملا ہے۔ اور وہ تمام چیزیں جو اس طرح واقع ہوتی ہیں وہ جائز اختلاف کے زمرے میں آتی ہیں، اسی لئے (3) حجاز، عراق، شام یا مصر کے کسی عالم سے ایک تسلیم کا انکار مروی نہیں ہے، اور نہ ہی دو تسلیموں کا انکار؛ بلکہ ان کے ہاں یہ معروف ہے (4)۔ ایک تسلیم کی حدیث سعد بن ابی وقاص، عائشہ، اور انس رضی اللہ عنہم سے مروی ہے، سوائے اس کے کہ یہ معلول (ضعیف) ہے جسے اہل علم حدیث صحیح قرار نہیں دیتے (5)۔ چوتیسویں بات: دارقطنی نے ابن مسعود رضی اللہ عنہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: سنت یہ ہے کہ تشہد کو آہستہ پڑھا جائے (6)۔

(1) اسے شافعی نے اپنی مسند 99/1 (سندی کی ترتیب کے ساتھ)، اور احمد (5402) اور (6397)، اور نسائی نے المجتبیٰ 62/3 اور 63 میں روایت کیا ہے۔ (2) الاستذکار 302/4۔ (3) (ز) اور (ظ) اور (م) میں ہے: "اسی طرح"، اور جو ثابت ہے وہ (د) سے ہے، جو الاستذکار کے موافق ہے۔ (4) الاستذکار 296/4 - 297۔ (5) طحاوی نے 'شرح معانی الآثار' 266/1 میں سعد بن ابی وقاص کی حدیث روایت کی ہے، اور ابن عبدالبر نے اسے 'الاستذکار' 291/4 میں ذکر کیا اور کہا: دراوردی نے اس میں غلطی کی، پس انہوں نے اسے لوگوں کی روایت کے خلاف روایت

کیا: ایک تسلیم کے ساتھ، جبکہ دیگر اس میں دو تسلیمیں روایت کرتے ہیں۔ اور عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث ترمذی (296)، ابن ماجہ (919)، اور طحاوی نے 'شرح معانی الآثار' 270/1 میں، اور ابن حبان (1995) نے زہیر بن محمد کے واسطے سے، ہشام بن عروہ سے، انہوں نے اپنے والد سے، انہوں نے عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کی ہے۔ ترمذی نے کہا: ہم عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث کو صرف اسی سند سے مرفوع جانتے ہیں۔ اور طحاوی نے کہا: یہ وہ حدیث ہے جس کی اصل عائشہ رضی اللہ عنہا پر موقوف ہے، اور ابن عبدالبر نے اسے 'الاستذکار' 293/4 میں ذکر کیا اور کہا: زہیر بن محمد کے علاوہ کسی نے اسے مرفوع بیان نہیں کیا، اور زہیر بن محمد سب کے نزدیک ضعیف ہیں، بہت غلطیاں کرنے والے ہیں، ان سے احتجاج نہیں کیا جاتا۔ اور انس رضی اللہ عنہ کی حدیث ابن ابی شیبہ 301/1، اور بزار نے اپنی مسند (566) (زوائد) میں ایوب سختیانی کے واسطے سے، اور بیہقی نے 'السنن الکبریٰ' 179/2 میں حمید کے واسطے سے، دونوں نے انس رضی اللہ عنہ سے روایت کی ہے۔ ابن عبدالبر نے 'الاستذکار' 296/4 میں ایوب کی سند بیان کرنے کے بعد کہا: ایوب نے انس سے نہیں سنا۔ (6) ہمیں یہ دارقطنی کے ہاں نہ ان کی سنن میں ملی اور نہ ہی ان کی علل میں، اور اسے ابو داؤد (986)، ترمذی (291)، ابن خزیمہ (706)، حاکم 230/1، بیہقی 146/2، اور بغوی نے 'شرح السنہ' (680) میں روایت کیا ہے۔ ترمذی نے کہا: ابن مسعود کی حدیث حسن غریب ہے، اور اہل علم کے نزدیک اسی پر عمل ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 43 55

Malik (1) chose the Tashahhud of 'Umar ibn al-Khattab (may Allah be pleased with him), which is: "Greetings are for Allah, the pure things are for Allah, the good things and prayers are for Allah. Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. Peace be upon us and upon the righteous servants of Allah. I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger."

Ash-Shafi'i (2), his companions, and Al-Layth ibn Sa'd chose the Tashahhud of Ibn 'Abbas. He said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) used to teach us the Tashahhud as he used to teach us a Surah from the Qur'an. He would say: "The blessed greetings, prayers, and good things are for Allah. Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. Peace be upon us and upon the righteous servants of Allah. I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is the Messenger of Allah."

At-Thawri, the Kufans, and most of the people of Hadith chose the Tashahhud of Ibn Mas'ud, which Muslim (3) also narrated. He said: We used to say in prayer behind the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): "Peace be upon Allah, peace be upon so-and-so." Then the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said one day: "Indeed, Allah is As-Salam (the Source of Peace). When one of you sits in prayer, let him say: 'Greetings [are for Allah], and prayers and good things. Peace be upon you, O Prophet, and the mercy of Allah and His blessings. Peace be upon us and upon the righteous servants of Allah' - for if he says that, it will reach every righteous servant in the heavens and the earth - 'I bear witness that there is no god but Allah, and I bear witness that Muhammad is His servant and His Messenger.' Then let him choose whatever supplication he wishes." This was also the view of Ahmad, Ishaq, and Dawood. Ahmad ibn Khalid in Andalusia used to choose it and incline towards it (4).

It was narrated from Abu Musa Al-Ash'ari, both in a marfu' (attributed to the Prophet) and mawquf (attributed to the companion) form, similar to the Tashahhud of Ibn Mas'ud (5).

(1) Al-Muwatta 1/90, and Ibn 'Abd al-Barr mentioned it in Al-Istidhkar 4/274. (2) Musnad al-Shafi'i 1/97 (arranged by al-Sindi), Al-Risala (743), Ikhtilaf al-Hadith pp. 43-44, Al-Umm 1/101, and Ibn 'Abd al-Barr mentioned it in Al-Istidhkar 4/280. And narrated by Ahmad (2665), Muslim (403): (60), Abu Dawud (974), al-Tirmidhi (290), al-Nasa’i 2/242-243, and Ibn Majah (900). (3) Number (402): (55) and what is between the brackets is from it, and it is in Musnad Ahmad (4101). See Al-Istidhkar 4/279. (4) Al-Istidhkar 4/279, 280, and Ahmad ibn Khalid: he is Abu 'Umar al-Qurtubi, known as Ibn al-Jabbab after the selling of coats. He was one of the unique Imams, peerless, died in the year (322 AH). Al-Siyar 15/240. (5) Narrated in marfu' form by Ahmad (19665), Muslim (404), Abu Dawud (972), al-Nasa'i 2/241-242, and Ibn Majah (901). Al-Daraqutni mentioned in Al-'Ilal 7/254 those who halted it at the companion level.

सूरह अल-बकरा: आयत 43 55

मलिक (1) ने उमर बिन अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) के तशह्हुद को चुना, जो इस प्रकार है: "तमाम इबादतें अल्लाह के लिए हैं, तमाम पाकीज़ा चीज़ें अल्लाह के लिए हैं, तमाम नेक कलाम और नमाज़ें अल्लाह के लिए हैं। ऐ नबी! आप पर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों। हम पर और अल्लाह के नेक बंदों पर सलामती हो। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के बंदे और उसके रसूल हैं।"

शाफ़ई (2), उनके साथियों और लैथ बिन साद ने इब्न अब्बास के तशह्हुद को चुना। उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ हमें तशह्हुद उसी तरह सिखाते थे जैसे हमें कुरान की कोई सूरह सिखाते थे। वह कहते थे: "तमाम बरकत वाली इबादतें, नमाज़ें और नेक कलाम अल्लाह के लिए हैं। ऐ नबी! आप पर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों। हम पर और अल्लाह के नेक बंदों पर सलामती हो। मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।"

थौरी, कूफ़ियों और अधिकांश हदीस के विद्वानों ने इब्न मसूद के तशह्हुद को चुना, जिसे मुस्लिम (3) ने भी रिवायत किया है। उन्होंने कहा: हम अल्लाह के रसूल ﷺ के पीछे नमाज़ में कहा करते थे: "अल्लाह पर सलामती हो, फ़लाँ पर सलामती हो।" तो एक दिन अल्लाह के रसूल ﷺ ने फ़रमाया: "बेशक अल्लाह ही अस-सलाम (सलामती देने वाला) है। जब तुम में से कोई नमाज़ में बैठे, तो उसे कहना चाहिए: 'तमाम इबादतें [अल्लाह के लिए] हैं, और नमाज़ें और नेक कलाम। ऐ नबी! आप पर सलामती हो और अल्लाह की रहमत और उसकी बरकतें हों। हम पर और अल्लाह के नेक बंदों पर सलामती हो' - क्योंकि जब वह यह कहता है, तो यह आसमान और ज़मीन के हर नेक बंदे तक पहुँचता है - 'मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं, और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद उसके बंदे और उसके रसूल हैं।' फिर वह जो चाहे दुआ माँगे।" अहमद, इसहाक और दाऊद ने भी यही कहा। और अंडालूसिया के अहमद बिन खालिद इसे ही चुनते थे और इसी की ओर झुकाव रखते थे (4)।

अबू मूसा अल-अशअरी से भी मरफ़ूअ और मौक़ूफ़ तौर पर इब्न मसूद के तशह्हुद के समान रिवायत किया गया है (5)।

(1) अल-मुवत्ता 1/90, और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिदकार 4/274 में इसका उल्लेख किया है। (2) मुसनद अल-शाफ़ई 1/97 (सिंदी द्वारा व्यवस्थित), अल-रिसाला (743), इख्तिलाफ़ अल-हदीस पृष्ठ 43-44, अल-उम्म 1/101, और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिदकार 4/280 में इसका उल्लेख किया है। और इसे अहमद (2665), मुस्लिम (403): (60), अबू दाऊद (974), तिरमिज़ी (290), नसाई 2/242-243, और इब्न माजह (900) ने निकाला है। (3) संख्या (402): (55) और इसके बीच कोष्ठक वाला हिस्सा मुसनद अहमद (4101) में है। अल-इस्तिदकार 4/279 देखें। (4) अल-इस्तिदकार 4/279, 280, और अहमद बिन खालिद: वह अबू उमर अल-कुर्तुबी हैं, जिन्हें कोट बेचने के कारण इब्न अल-जब्बाब के नाम से जाना जाता है। वह अद्वितीय इमामों में से एक थे, बेमिसाल, उनकी मृत्यु वर्ष (322 हिजरी) में हुई। अल-सियार 15/240। (5) अहमद (19665), मुस्लिम (404), अबू दाऊद (972), नसाई 2/241-242, और इब्न माजह (901) द्वारा मरफ़ूअ तौर पर निकाला गया। अल-दारकुतनी ने अल-इलाल 7/254 में उन लोगों का उल्लेख किया है जिन्होंने इसे सहाबी पर रोक दिया।

سورہ البقرہ : آیت ٤٣ ٥٥

امام مالک(١) نے حضرت عمر بن خطاب رضی اللہ عنہ کا تشہد اختیار کیا ہے، وہ یہ ہے: "التحيات لله، الزاكيات لله، الطيبات الصلوات لله، السلام عليك أيها النبي ورحمة الله وبركاته، السلام علينا وعلى عباد الله الصالحين، أشهد أن لا إله إلا الله، وأشهد أن محمداً عبده ورسوله" (تمام زبانی عبادتیں اللہ کے لیے ہیں، تمام پاکیزہ عبادتیں اللہ کے لیے ہیں، تمام مالی اور بدنی عبادتیں اللہ کے لیے ہیں۔ اے نبی! آپ پر اللہ کی سلامتی، اس کی رحمت اور اس کی برکتیں ہوں۔ ہم پر اور اللہ کے نیک بندوں پر سلامتی ہو۔ میں گواہی دیتا ہوں کہ اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں، اور میں گواہی دیتا ہوں کہ محمد اللہ کے بندے اور اس کے رسول ہیں)۔

امام شافعی(٢)، ان کے اصحاب اور لیث بن سعد نے ابن عباس رضی اللہ عنہما کا تشہد پسند کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ ہمیں تشہد اسی طرح سکھاتے تھے جیسے ہمیں قرآن کی کوئی سورہ سکھاتے تھے۔ آپ ﷺ فرماتے تھے: "التحيات المباركاتُ الصلواتُ الطيباتُ لله، السلام عليك أيها النبي ورحمة الله وبركاته، السلام علينا وعلى عباد الله الصالحين، أشهد أن لا إله إلا الله، وأشهد أن محمداً رسولُ الله" (تمام برکتوں والی، بدنی اور پاکیزہ عبادتیں اللہ ہی کے لیے ہیں۔ اے نبی! آپ پر اللہ کی سلامتی، رحمت اور برکتیں ہوں۔ ہم پر اور اللہ کے نیک بندوں پر سلامتی ہو۔ میں گواہی دیتا ہوں کہ اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں، اور میں گواہی دیتا ہوں کہ محمد اللہ کے رسول ہیں)۔

امام ثوری، اہل کوفہ اور اکثر اہل حدیث نے ابن مسعود رضی اللہ عنہ کے تشہد کو اختیار کیا جسے مسلم(٣) نے بھی روایت کیا ہے۔ انہوں نے کہا: ہم رسول اللہ ﷺ کے پیچھے نماز میں کہتے تھے: "اللہ پر سلامتی ہو، فلاں پر سلامتی ہو"۔ تو رسول اللہ ﷺ نے ایک دن فرمایا: "بے شک اللہ ہی 'السلام' (سلامتی دینے والا) ہے، لہٰذا جب تم میں سے کوئی نماز میں بیٹھے تو کہے: 'التحيات

[لله]، والصلوات والطيبات، السلام عليك أيها النبيُّ ورحمة الله وبركاته، السلام علينا وعلى عباد الله الصالحين'۔ کیونکہ جب وہ یہ کہتا ہے تو یہ آسمان اور زمین کے ہر نیک بندے تک پہنچتی ہے۔ 'أشهد أن لا إله إلا الله، وأشهد أن محمداً عبده ورسوله'۔ پھر وہ جو چاہے دعا مانگے"۔ امام احمد، اسحاق اور داؤد بھی اسی کے قائل ہیں۔ اور اندلس کے احمد بن خالد اسے ہی اختیار کرتے اور اس کی طرف میلان رکھتے تھے(٤)۔

اور ابوموسیٰ اشعری رضی اللہ عنہ سے بھی مرفوعاً اور موقوفاً ابن مسعود کے تشہد جیسا ہی مروی ہے(٥)۔

(١) الموطأ ٩٠/١، اور ابن عبد البر نے اس کا ذکر الاستذکار ٢٧٤/٤ میں کیا ہے۔ (٢) مسند الشافعی ٩٧/١ (ترتیبِ سندی)، والرسالة (٧٤٣)، واختلاف الحدیث ص ٤٣-٤٤، والأم ١٠١/١، اور ابن عبد البر نے اس کا ذکر الاستذکار ٢٨٠/٤ میں کیا ہے۔ اور اس کی تخریج احمد (٢٦٦٥)، مسلم (٤٠٣): (٦٠)، ابوداؤد (٩٧٤)، ترمذی (٢٩٠)، نسائی ٢/ ٢٤٢-٢٤٣، اور ابن ماجہ (٩٠٠) نے کی ہے۔ (٣) نمبر (٤٠٢): (٥٥) اور کوشین کے درمیان والی زیادتی اسی سے ہے، اور یہ مسند احمد (٤١٠١) میں ہے۔ دیکھیے الاستذکار ٢٧٩/٤۔ (٤) الاستذکار ٢٧٩/٤، ٢٨٠، اور احمد بن خالد: یہ ابو عمر القرطبی ہیں، اور جبہ بیچنے کی نسبت سے ابن الجباب کے نام سے مشہور ہیں، وہ اپنے وقت کے مایہ ناز اماموں میں سے تھے، بے نظیر تھے، ان کی وفات سن (٣٢٢ ھ) میں ہوئی۔ السیر ٢٤٠/١٥۔ (٥) اسے مرفوعاً احمد (١٩٦٦٥)، مسلم (٤٠٤)، ابوداؤد (٩٧٢)، نسائی ٢٤١/٢-٢٤٢، اور ابن ماجہ (٩٠١) نے روایت کیا ہے۔ اور دارقطنی نے العلل ٢٥٤/٧ میں ان لوگوں کا ذکر کیا ہے جنہوں نے اسے موقوف قرار دیا ہے۔

56 Surah Al-Baqarah: Verse 44

All of this is a difference in what is permissible; none of it is obligatory, and praise be to Allah (1). This is a collection of rulings regarding the Imam and the follower, encompassed in the words of the Exalted: "And bow with those who bow" [Al-Baqarah: 43]. Discussion regarding standing in prayer will follow under the words of the Exalted: "And stand before Allah, devoutly obedient" [Al-Baqarah: 238]. Rulings regarding an ill Imam and other prayer regulations will be mentioned there. Rulings regarding an ill person who is not the Imam will follow in "Al-Imran" (2). Rulings for one performing an obligatory prayer behind someone performing a voluntary prayer during the fear prayer will follow in "An-Nisa" (3). Rulings for an Imam praying from a higher position than the follower will follow in Surah "Maryam" (4), along with other topics like prayer times, the call to prayer (Adhan), and mosques. All of this is an explanation of the words of the Exalted: "And establish prayer." A summary of its rulings was already mentioned at the beginning of the Surah (5), and praise be to Allah for that. The words of the Exalted: "Do you order righteousness of the people and forget yourselves while you recite the Scripture? Then will you not reason?" [Al-Baqarah: 44]. There are nine issues concerning this: First: The words of the Exalted: "Do you order righteousness of the people" - this is an interrogative meaning a reprimand. According to the people of interpretation, it refers to the Jewish scholars. Ibn Abbas said: A Jew in Medina would say to his son-in-law, his relatives, and those with whom he had a foster-relationship among the Muslims: "Stand firm in what you are on and what this man – meaning Muhammad ﷺ – orders you, for his matter is truth." So they would order people to do that but not do it themselves (6). And also from Ibn Abbas: The rabbis used to order their followers and adherents to follow the Torah, while they themselves violated it by denying the description of Muhammad ﷺ (7).

---

(1) In (m): And praise be to Allah alone. (2) In the commentary on the verse: "Those who remember Allah standing, sitting, and [lying] on their sides" Verse 191. (3) In the commentary on the verse: "And when you travel throughout the land, there is no blame upon you for shortening the prayer" Verse 101. (4) In the commentary on the verse: "So he came out to his people from the sanctuary and signaled to them to exalt [Allah] in the morning and evening." (5) In the commentary on the verse: "Who believe in the unseen, establish prayer, and spend out of what We have provided for them." (6) Narrated by Al-Wahidi in 'Asbab al-Nuzul' regarding the verse: "Do you order righteousness of the people..." (7) Tafsir al-Tha'alibi 1/57.

56 सूरह अल-बक़रह: आयत 44

यह सब कुछ जायज़ (मुबाह) बातों में मतभेद है, इसमें कुछ भी अनिवार्य (वाजिब) नहीं है, और अल्लाह का शुक्र है (1)। ये इमाम और मुकतदी (पीछे नमाज़ पढ़ने वाले) के कुछ नियमों का संग्रह है, जो सर्वशक्तिमान के इस कथन में शामिल हैं: "और रुकू करने वालों के साथ रुकू करो" [अल-बक़रह: 43]। नमाज़ में खड़े होने (क़ियाम) के बारे में चर्चा अल्लाह तआला के इस कथन पर आएगी: "और अल्लाह के सामने आज्ञाकारी बनकर खड़े हो" [अल-बक़रह: 238]। वहां बीमार इमाम और नमाज़ के अन्य नियमों का उल्लेख किया जाएगा। बीमार व्यक्ति (जो इमाम न हो) की नमाज़ का नियम 'आल-इमरान' (2) में आएगा। 'खौफ' की नमाज़ में नफ़िल पढ़ने वाले के पीछे फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ने का नियम 'अन-निसा' (3) में आएगा। सूरह 'मरयम' (4) में उस इमाम का नियम आएगा जो मुकतदी से ऊंचे स्थान पर नमाज़ पढ़ता है, इसके अलावा नमाज़ के समय, अज़ान और मस्जिदों से संबंधित अन्य नियम भी आएंगे। यह सब अल्लाह तआला के इस कथन की व्याख्या है: "और नमाज़ कायम करो"। इसके कुछ नियमों का उल्लेख सूरह की शुरुआत में किया जा चुका है (5), और इसके लिए अल्लाह का शुक्र है। अल्लाह तआला का कथन: "क्या तुम लोगों को भलाई का हुक्म देते हो और अपने आप को भूल जाते हो, जबकि तुम किताब पढ़ते हो? क्या तुम बुद्धि से काम नहीं लेते?" [अल-बक़रह: 44]। इसमें नौ विषय (मसले) हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: "क्या तुम लोगों को भलाई का हुक्म देते हो" - यह एक सवाल है जिसका अर्थ फटकार लगाना है। व्याख्याकारों (अहल-ए-तावील) के अनुसार इससे मुराद यहूदी विद्वान हैं। इब्न अब्बास ने कहा: मदीना का कोई यहूदी अपने दामाद, अपने रिश्तेदारों और उन मुसलमानों से, जिनके साथ उसका दूध का रिश्ता था, कहता था: "तुम जिस दीन पर हो उस पर डटे रहो और यह आदमी (यानी मुहम्मद ﷺ) जो तुम्हें हुक्म देता है उसे मानो, क्योंकि उनकी बात सच है।" वे लोगों को इसका हुक्म देते थे लेकिन खुद ऐसा नहीं करते थे (6)। इब्न अब्बास से यह भी वर्णित है: यहूदी उलेमा (अहबार) अपने अनुयायियों को तौरात का पालन करने का हुक्म देते थे, जबकि वे स्वयं मुहम्मद ﷺ के गुणों को झुठलाकर तौरात का उल्लंघन करते थे (7)।

---

(1) (म) में: और सारा शुक्र केवल अल्लाह के लिए है। (2) इस आयत की व्याख्या में: "जो खड़े, बैठे और अपनी करवटों पर लेटे हुए अल्लाह को याद करते हैं" आयत 191। (3) इस आयत की व्याख्या में: "और जब तुम ज़मीन में सफर करो, तो तुम पर कोई गुनाह नहीं कि तुम नमाज़ में कमी (क़सर) कर लो" आयत 101। (4) इस आयत की व्याख्या में: "तो वह इबादतगाह से निकलकर अपनी कौम

के पास आए और उन्हें इशारा किया कि सुबह और शाम अल्लाह की पाकी बयान करो।" (5) इस आयत की व्याख्या में: "जो ग़ैब पर ईमान लाते हैं, नमाज़ कायम करते हैं और जो कुछ हमने उन्हें दिया है उसमें से खर्च करते हैं।" (6) अल-वाहिदी ने 'अस्बाब अल-नुज़ूल' में आयत "क्या तुम लोगों को भलाई का हुक्म देते हो..." के तहत इसे उद्धृत किया है। (7) तफ़सीर अल-थालाबी 1/57.

٥٦ سورہ البقرہ : الآية ٤٤

اور یہ سب کچھ مباح میں اختلاف ہے، اس میں سے کچھ بھی واجب نہیں، اور اللہ کا شکر ہے(١)۔ یہ امام اور مقتدی کے احکام کا ایک مجموعہ ہے، جو اللہ تعالیٰ کے اس قول میں شامل ہیں: ﴿وَارْكَعُوا مَعَ الرَّاكِعِينَ﴾۔ اور نماز میں قیام کے بارے میں بات اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس آئے گی: ﴿وَقُومُوا لِلَّهِ قَانِتِينَ﴾ [البقرہ: ٢٣٨]۔ وہاں مریض امام اور نماز کے دیگر احکام کا تذکرہ ہوگا، اور «آل عمران»(٢) میں غیر امام مریض کی نماز کا حکم آئے گا، اور «النساء»(٣) میں نمازِ خوف میں نفل پڑھنے والے کے پیچھے فرض پڑھنے والے کا حکم آئے گا، اور سورہ «مریم»(٤) میں اس امام کا حکم آئے گا جو مقتدی سے اونچی جگہ پر نماز پڑھے، اس کے علاوہ اوقات، اذان اور مساجد کے احکام بھی آئیں گے۔ اور یہ سب اللہ تعالیٰ کے ارشاد: ﴿وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ﴾ کی وضاحت ہے، اور اس کے کچھ احکام سورہ کے شروع میں گزر چکے ہیں(٥)، اور اس پر اللہ کا شکر ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنسَوْنَ أَنْفُسَكُمْ وَأَنْتُمْ تَتْلُونَ الْكِتَابَ أَفَلَا تَعْقِلُونَ﴾۔ اس میں نو مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ﴾ یہ استفہام توبیخ کے معنی میں ہے، اور اہل تاویل کے قول میں اس سے مراد علمائے یہود ہیں۔ ابن عباس رضی اللہ عنہ نے فرمایا: مدینہ کا یہودی اپنے داماد، اپنے قریبی رشتہ دار، اور جن کے ساتھ اس کا دودھ کا رشتہ ہوتا ان مسلمانوں سے کہتا تھا: تم جس (دین) پر ہو اس پر قائم رہو اور یہ شخص (یعنی محمد ﷺ) تمہیں جس چیز کا حکم دیتا ہے وہ حق ہے، پس وہ لوگوں کو اس کا حکم دیتے تھے اور خود اس پر عمل نہیں کرتے تھے(٦)۔ اور ابن عباس ہی سے مروی ہے کہ: علمائے یہود اپنے مقلدین اور پیروکاروں کو تورات کی پیروی کا حکم دیتے تھے، اور خود محمد ﷺ کی صفات کے انکار کی صورت میں اس کی مخالفت کرتے تھے(٧)۔

(١) فى (م): والحمد لله وحده. (٢) عند تفسير قوله تعالى: ﴿الَّذِينَ يَذْكُرُونَ اللَّهَ قِيَامًا وَقُعُودًا وَعَلَى جُنُوبِهِمْ﴾ الآية ١٩١. (٣) عند تفسير قوله تعالى: ﴿وَإِذَا ضَرَبْتُمْ فِي الْأَرْضِ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ أَنْ تَقْصُرُوا مِنَ الصَّلَاةِ﴾ الآية ١٠١. (٤) عند تفسير قوله تعالى: ﴿فَخَرَجَ عَلَى قَوْمِهِ مِنَ الْمِحْرَابِ فَأَوْحَى إِلَيْهِمْ أَنْ سَبِّحُوا بُكْرَةً وَعَشِيًّا﴾. (٥) عند تفسير قوله تعالى: ﴿الَّذِينَ يُؤْمِنُونَ بِالْغَيْبِ وَيُقِيمُونَ الصَّلَاةَ وَمِمَّا رَزَقْنَاهُمْ يُنْفِقُونَ﴾. (٦) أخرجه الواحدي في أسباب النزول عند قوله تعالى: ﴿أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ﴾. (٧) تفسير الثعالبي ١/ ٥٧.

Page 57 Surah Al-Baqarah: Verse 44

Ibn Jurayj said: The rabbis used to encourage obedience to Allah, yet they themselves would fall into sin. Another group said: They used to encourage giving charity while they themselves were stingy (1). The meaning is similar. Some masters of spiritual insights (isharat) said: Does it mean: Do you demand people to uphold the deep realities of meanings while you contravene their outward forms (2)?!

Second: Regarding the severity of the punishment for those with this characteristic; Hammad ibn Salamah narrated from Ali ibn Zayd, from Anas, who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "On the night I was taken on the Night Journey (Isra), I passed by people whose lips were being cut with shears of fire. I said: 'O Gabriel, who are these?' He replied: 'These are the preachers from among your Ummah (3) who enjoin righteousness upon people and forget themselves, though they recite the Scripture. Will they not then understand?'" (4).

Abu Umama narrated that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Indeed, those who command people to do good and forget themselves will be dragged by their intestines in the fire of Hell. It will be said to them: 'Who are you?' They will say: 'We are those who used to enjoin good on people and forget ourselves.'"

I say: This hadith, although there is some weakness in it because its chain of narration includes Al-Khasib ibn Jahdar (5) - whom Imam Ahmad and also Ibn Ma'in considered weak - narrates it from Abu Ghalib, from Abu Umama Suday ibn 'Ajlan al-Bahili. Abu Ghalib - as related by Yahya ibn Ma'in - is Hazawwar al-Qurashi (6), the client (mawla) of Khalid ibn Abd Allah ibn Asid, and it was said: client of Bahila, and it was said: client of Abd al-Rahman al-Hadrami. He used to travel to Syria for his trade. Yahya ibn Ma'in said: He is reliable in hadith (salih al-hadith). Muslim (7) narrated it in his Sahih with the same meaning from Usama ibn Zayd, who said: I heard...

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/136-137. (2) In (Z): from their outward forms and symbols. (3) In (M): from the people of the world. (4) Narrated by Waki' in "Al-Zuhd" (297), Ibn Abi Shaybah in his "Musannaf" 14/308, and Ahmad in his "Musnad" (12211). (5) Al-Dhahabi said in "Mizan al-I'tidal" 1/653: Shu'bah, al-Qattan, and Ibn Ma'in called him a liar, and Ahmad said: His hadith is not to be written down. Al-Bukhari said: A liar, Shu'bah spoke against him. (6) Al-Dhahabi said in "Mizan al-I'tidal" 1/476: Al-Nasa'i considered him weak, and Ibn Hibban said: He is not to be used as a proof, though al-Tirmidhi authenticated him. (7) No. (2989), and what is between brackets is from him. It was also narrated by al-Bukhari (3267), and it is in Musnad Ahmad (21784).

पृष्ठ ५७ सूरा अल-बकरा: आयत ४४

इब्न जुरैज ने कहा: यहूदी विद्वान अल्लाह की आज्ञाकारिता के लिए प्रोत्साहित करते थे, फिर भी वे स्वयं पापों में लिप्त रहते थे। एक अन्य समूह ने कहा: वे दान देने के लिए प्रोत्साहित करते थे जबकि स्वयं कंजूसी करते थे (१)। अर्थ समान है। आध्यात्मिक संकेतों (इशारात) के कुछ जानकारों ने कहा: अर्थ यह है: क्या तुम लोगों से अर्थों की वास्तविकताओं की मांग करते हो जबकि तुम उनके बाहरी रूपों का उल्लंघन करते हो (२)?!

दूसरा: इस विशेषता वाले लोगों के लिए दंड की गंभीरता के बारे में; हम्माद बिन सलामा ने अली बिन ज़ैद से, उन्होंने अनस से रिवायत की, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिस रात मुझे मेराज पर ले जाया गया, मैं ऐसे लोगों के पास से गुज़रा जिनके होंठ आग की कैंचियों से काटे जा रहे थे। मैंने पूछा: 'ऐ जिब्रईल, ये कौन लोग हैं?' उन्होंने उत्तर दिया: 'ये आपकी उम्मत (३) के वे उपदेशक हैं जो लोगों को नेकी का आदेश देते हैं और स्वयं को भूल जाते हैं, हालाँकि वे किताब (क़ुरआन) पढ़ते हैं। क्या फिर वे नहीं समझते?'" (४)।

अबू उमामा ने रिवायत की कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "बेशक जो लोग लोगों को नेकी का हुक्म देते हैं और खुद को भूल जाते हैं, उन्हें जहन्नुम की आग में उनकी अंतड़ियों के बल घसीटा जाएगा। उनसे पूछा जाएगा: 'तुम कौन हो?' वे कहेंगे: 'हम वे हैं जो लोगों को भलाई का हुक्म देते थे और खुद को भूल जाते थे'।"

मैं कहता हूँ: यह हदीस, हालांकि इसमें कुछ कमज़ोरी है क्योंकि इसके वर्णन की श्रृंखला (सनद) में अल-ख़सीब बिन जहदर (५) शामिल है - जिसे इमाम अहमद और इब्न मुईन ने कमज़ोर माना है - वह इसे अबू ग़ालिब से, उन्होंने अबू उमामा सुदई बिन अजलान अल-बाहिली से रिवायत किया है। अबू ग़ालिब - जैसा कि यह्या बिन मुईन ने बताया है - हज़्वर अल-क़ुरैशी (६) है, जो खालिद बिन अब्दुल्लाह बिन असीद का आज़ाद किया हुआ गुलाम (मौला) था, और कहा गया: बाहिला का मौला, और कहा गया: अब्दुर्रहमान अल-हज़रमी का मौला। वह अपने व्यापार के लिए शाम (सीरिया) जाया करता था। यह्या बिन मुईन ने कहा: वह हदीस में भरोसेमंद (सालिह अल-हदीस) है। मुस्लिम (७) ने इसे अपनी सहीह में उसामा बिन ज़ैद से उसी अर्थ के साथ रिवायत किया है, जिन्होंने कहा: मैंने सुना...

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३६-१३७। (२) (ज़) में: उनके बाहरी स्वरूपों और प्रतीकों से। (३) (म) में: दुनिया के लोगों में से। (४) इसे वकी' ने 'अज़-जुहद' (२९७) में, इब्न अबी शयबा ने अपनी 'मुसन्नफ़' १४/३०८ में, और अहमद ने अपनी 'मुसनद' (१२२११) में निकाला है। (५) अज़-ज़हबी ने 'मीज़ान अल-इ'तिदाल' १/६५३ में कहा: शुअबा, अल-क़त्तान और इब्न मुईन ने उसे झूठा कहा, और अहमद ने कहा: उसकी हदीस नहीं लिखी जानी चाहिए। अल-बुखारी ने कहा: झूठा, शुअबा ने उसके खिलाफ आवाज़ उठाई। (६) अज़-ज़हबी ने 'मीज़ान अल-इ'तिदाल' १/४७६ में कहा: अन-नसाई ने उसे कमज़ोर माना, और इब्न हिब्बान ने कहा: उसे दलील के रूप में इस्तेमाल नहीं किया जा सकता, हालाँकि अत-तिर्मिज़ी ने उसे सही माना है। (७) संख्या (२९८९), और कोष्ठक के बीच जो कुछ है वह उनसे है। इसे अल-बुखारी (३२६७) ने भी निकाला है, और यह मुसनद अहमद (२१७८४) में है।

صفحہ ۵۷ سورۃ البقرۃ : الآیۃ ٤٤

ابن جریج نے کہا: علماء (یہود) اللہ کی اطاعت کی ترغیب دیتے تھے، اور خود گناہوں میں مبتلا تھے۔ ایک گروہ نے کہا: وہ صدقہ کی ترغیب دیتے تھے اور خود بخل کرتے تھے(۱)۔ اور معنی قریب قریب ہیں۔ بعض اہل اشارات نے کہا: معنی یہ ہے: کیا تم لوگوں سے حقیقت کے معانی کا مطالبہ کرتے ہو اور تم ان کے ظاہری رسوم کی خلاف ورزی کرتے ہو(۲)؟!

دوسرا: اس صفت والے شخص کے عذاب کی شدت کے بارے میں؛ حماد بن سلمہ نے علی بن زید سے، انہوں نے انس سے روایت کی، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «جس رات مجھے معراج کرائی گئی، میں ایسے لوگوں کے پاس سے گزرا جن کے ہونٹ آگ کی قینچیوں سے کاٹے جا رہے تھے، میں نے پوچھا: اے جبرئیل، یہ کون لوگ ہیں؟ انہوں نے کہا: یہ آپ کی امت(۳) کے وہ خطیب ہیں جو لوگوں کو نیکی کا حکم دیتے ہیں اور خود کو بھول جاتے ہیں حالانکہ وہ کتاب کی تلاوت کرتے ہیں، کیا وہ عقل نہیں رکھتے؟»(۴)۔

اور ابو امامہ نے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «بیشک وہ لوگ جو لوگوں کو نیکی کا حکم دیتے ہیں اور خود کو بھول جاتے ہیں، انہیں جہنم کی آگ میں ان کی آنتوں کے بل گھسیٹا جائے گا، تو ان سے پوچھا جائے گا: تم کون ہو؟ وہ کہیں گے: ہم وہ ہیں جو لوگوں کو بھلائی کا حکم دیتے تھے اور خود کو بھول جاتے تھے»۔

میں نے کہا: یہ حدیث اگرچہ اس میں کمزوری ہے؛ کیونکہ اس کی سند میں الخصیب بن جحدر ہے(۵)، امام احمد اسے ضعیف قرار دیتے تھے، اور اسی طرح ابن معین بھی، وہ اسے ابو غالب سے، وہ ابو امامہ صدی بن عجلان الباہلی سے روایت کرتے ہیں۔ اور ابو غالب - جیسا کہ یحییٰ بن معین نے بیان کیا - حزور القریشی ہے(۶) جو خالد بن عبد اللہ بن اسید کا مولیٰ ہے، اور کہا گیا:

باہلہ کا مولیٰ، اور کہا گیا: عبد الرحمن الحضرمی کا مولیٰ، وہ اپنی تجارت کے لیے شام جایا کرتا تھا؛ یحییٰ بن معین نے کہا: وہ صالح الحدیث ہے، چنانچہ اسے مسلم نے(۷) اپنی صحیح میں اسامہ بن زید سے اس کے ہم معنی روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے سنا...

(۱) المحرر الوجیز ۱/۱۳۶-۱۳۷۔ (۲) (ظ) میں: ان کے ظواہر اور ان کے رسوم سے۔ (۳) (م) میں: دنیا والوں میں سے۔ (۴) اسے وکیع نے «الزہد» (۲۹۷) میں، ابن ابی شیبہ نے اپنی مصنف ۱۴/۳۰۸ میں، اور احمد نے اپنی مسند (۱۲۲۱۱) میں روایت کیا ہے۔ (۵) ذہبی نے میزان الاعتدال ۱/۶۵۳ میں کہا: شعبہ، قطان اور ابن معین نے اسے جھٹلایا اور احمد نے کہا: اس کی حدیث نہ لکھی جائے، اور بخاری نے کہا: کذاب، شعبہ نے اس کے خلاف مدد چاہی۔ (۶) ذہبی نے میزان الاعتدال ۱/۴۷۶ میں کہا: نسائی نے اسے ضعیف قرار دیا، اور ابن حبان نے کہا: اس سے حجت نہیں پکڑی جائے گی، اور ترمذی نے اسے صحیح قرار دیا ہے۔ (۷) رقم (۲۹۸۹)، اور جو کچھ بریکٹ میں ہے وہ اس سے ہے، اور اسے بخاری (۳۲۶۷) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ مسند احمد (۲۱۷۸۴) میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 44 58 The Messenger of Allah ﷺ says: "A man will be brought on the Day of Resurrection and thrown into the Fire, and his intestines will spill out of his belly. He will then circle around them like a donkey circles around a millstone. The people of the Fire will gather around him and say: 'O so-and-so, what is the matter with you? Did you not used to command what is right and forbid what is wrong?!' He will say: 'Yes, I used to command what is right but not do it myself, and I used to forbid what is wrong and do it myself.'" *Al-Qutb*, with a *damma* on the *qaf*: the intestine, and its plural is *aqtab*. *Al-aqtab*: the intestines (1), its singular is *qitb*. The meaning of *fatandaliq*: it comes out (2) quickly. And it has been narrated as: *fatanfaliq* (it splits open). I say: The authentic Hadith, and the wording of the verse, indicate that the punishment for one who knows what is right and what is wrong, and knows the obligation of fulfilling the duty of each, is more severe than for one who does not know. This is because he is like one who treats the sanctities of Allah Almighty with indifference and belittles His rulings. He is among those who did (3) not benefit from their knowledge. The Messenger of Allah ﷺ said: "The most severely punished of people on the Day of Resurrection is a scholar whom Allah did not benefit with his knowledge." It was narrated by Ibn Majah in his "Sunan" (4). Thirdly: Know, may Allah Almighty grant you success, that the rebuke in the verse is due to abandoning the performance of righteousness, not due to commanding righteousness. For this reason, Allah Almighty blamed in His Book people who used to command acts of righteousness but did not act upon them, a blame and a rebuke (5) that is recited throughout time until the Day of Resurrection. He said: {Do you command people to righteousness...} the verse. (1) In (D): The intestine. (2) In (M): So it comes out. (3) In (M): Not. (4) We did not find it in Sunan Ibn Majah. It was narrated by Al-Tabarani in Al-Mu'jam al-Saghir (507), Ibn 'Adi in Al-Kamil 3/911 and 5/1807, Al-Quda'i in Musnad al-Shihab (1122), and Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (1778) through the path of 'Uthman bin Muqsim al-Barri, from Sa'id al-Maqburi, from Abu Hurairah. Al-Mundhiri mentioned it in At-Targhib wat-Tarhib (222) and attributed it to Al-Tabarani in Al-Saghir and Al-Bayhaqi. Al-Haythami mentioned it in Majma' al-Zawa'id 1/185 and said: In it is 'Uthman al-Barri; Al-Fallas said: He is truthful but makes many mistakes and is a person of innovation. Ahmad, An-Nasa'i, and Ad-Daraqutni weakened him. See Mizan al-I'tidal 3/58. (5) In (D), (Zah), and (M): with it, and the established version is from (Z), which matches what is in Jami' Bayan al-'Ilm by Ibn Abd al-Barr p. 235, and the author quoted from him.

सूरह अल-बक़रह: आयत 44 58 अल्लाह के रसूल ﷺ फरमाते हैं: "क़ियामत के दिन एक आदमी को लाया जाएगा और आग में डाल दिया जाएगा, और उसकी आंतें उसके पेट से बाहर निकल आएंगी। फिर वह उनके चारों ओर वैसे ही घूमेगा जैसे गधा चक्की के चारों ओर घूमता है। आग वाले उसके पास इकट्ठा होंगे और कहेंगे: 'ऐ फलां, तुम्हें क्या हुआ? क्या तुम नेक काम का हुक्म नहीं देते थे और बुराई से नहीं रोकते थे?!' वह कहेगा: 'हाँ, मैं नेक काम का हुक्म तो देता था लेकिन खुद उसे नहीं करता था, और बुराई से रोकता था लेकिन खुद उसे करता था'।" 'अल-क़ुब्ब', 'काफ़' पर 'पेश' के साथ: आंत, और इसकी जमा (बहुवचन) 'अक़्ताब' है। और 'अल-अक़्ताब': आंतें (1), इसका वाहिद (एकवचन) 'क़िल्ब' है। और 'फतन्दलिक़ु' का अर्थ है: वह तेज़ी से बाहर निकलती (2) है। और रिवायत है: 'फतन्फ़लिक़ु' (फट जाती है)। मैं कहता हूँ: इस सहीह हदीस और आयत के शब्दों से पता चलता है कि उस व्यक्ति की सज़ा जो भलाई और बुराई को जानता है और उन दोनों के कर्तव्य को निभाने की अनिवार्यता को भी जानता है, उस व्यक्ति से कहीं अधिक सख्त है जो नहीं जानता। ऐसा इसलिए है क्योंकि वह अल्लाह तआला की हुरमतों (पवित्र सीमाओं) को कमतर समझने वाले और उसके फैसलों को हलके में लेने वाले के समान है। वह उन लोगों में से है जिन्हें (3) उनके इल्म (ज्ञान) से कोई लाभ नहीं हुआ। अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "क़ियामत के दिन लोगों में सबसे अधिक सज़ा उस आलिम (विद्वान) को होगी जिसे अल्लाह ने उसके इल्म से लाभ नहीं पहुँचाया।" इसे इब्न माजाह ने अपनी "सुनन" (4) में दर्ज किया है। तीसरा: जान लें, अल्लाह तआला आपको सफलता दे, कि आयत में फटकार नेकी करने को छोड़ने के कारण है, न कि नेकी का हुक्म देने के कारण। इसीलिए अल्लाह तआला ने अपनी किताब में उन लोगों की निंदा की है जो नेकी के कामों का हुक्म तो देते थे लेकिन खुद उन पर अमल नहीं करते थे। यह ऐसी निंदा और फटकार (5) है जिसे क़ियामत तक के लिए समय-समय पर पढ़ा जाता रहेगा। अल्लाह ने फरमाया: {क्या तुम लोगों को नेकी का हुक्म देते हो...} आयत। (1) (द) में: आंत। (2) (म) में: तो वह निकलती है। (3) (म) में: नहीं। (4) हमें यह सुनन इब्न माजाह में नहीं मिली। इसे अल-तबरानी ने अल-मुअजम अल-सग़ीर (507) में, इब्न अदी ने अल-कामिल 3/911 और 5/1807 में, अल-क़ुदाई ने मुसनद अल-शिहाब (1122) में, और अल-बैहक़ी ने शुअब अल-ईमान (1778) में उस्मान बिन मुक़सिम अल-बर्री के माध्यम से, सईद अल-मक़बुरी से, और उन्होंने अबू हुरैरा से रिवायत किया है। अल-मुन्धिरी ने इसे अल-तरग़ीब वत-तरहीब (222) में ज़िक्र किया है और इसे अल-तबरानी (सग़ीर) और अल-बैहक़ी की ओर मंसूब किया है। अल-हैथमी ने इसे मजमा अज़-ज़वाइद 1/185 में ज़िक्र किया है और कहा है: इसमें उस्मान अल-बर्री है; अल-फल्लास ने कहा: वह सच्चा है लेकिन गलतियाँ बहुत करता है और बिदअती है। अहमद,

अन-नसाई और अद-दारक़ुत्नी ने उसे ज़ईफ़ (कमज़ोर) करार दिया है। देखें मीज़ान अल-इतिदाल 3/58। (5) (द), (ज़) और (म) में: 'उसके साथ', और जो साबित है वह (ज़) से है, और यह इब्न अब्दुल बर्र की किताब 'जामे़ बयान अल-इल्म' (पृ. 235) के अनुकूल है, और मुसन्निफ़ (लेखक) ने वहीं से नक़ल किया है।

سورة البقرہ : آیت ٤٤ ٥٨ رسول اللہ ﷺ فرماتے ہیں: «قیامت کے دن ایک آدمی کو لایا جائے گا اور آگ میں ڈال دیا جائے گا، پس اس کے پیٹ کی آنتیں باہر نکل آئیں گی، وہ ان کے گرد اس طرح چکر لگائے گا جیسے گدھا چکی کے گرد چکر لگاتا ہے۔ اہل دوزخ اس کے پاس جمع ہوں گے اور کہیں گے: اے فلاں، تجھے کیا ہوا؟ کیا تو نیکی کا حکم نہیں دیتا تھا اور برائی سے نہیں روکتا تھا؟! وہ کہے گا: کیوں نہیں، میں نیکی کا حکم تو دیتا تھا لیکن خود اسے نہیں کرتا تھا، اور برائی سے روکتا تھا لیکن خود اسے کرتا تھا»۔ ’القُتْبُ‘، قاف کے ضمہ (پیش) کے ساتھ: آنت، اور اس کی جمع ’أَقْتَابُ‘ ہے۔ اور ’الأَقْتَابُ‘: آنتیں (١)، اس کا واحد ’قِتْبٌ‘ ہے۔ اور ’فتَنْدلِقُ‘ کا مطلب ہے: وہ تیزی سے نکلتی (٢) ہے۔ اور روایت ہے: ’فتَنْفَلِقُ‘ (پھٹ جاتی ہے)۔ میں کہتا ہوں: پس اس صحیح حدیث اور آیت کے الفاظ سے ثابت ہوتا ہے کہ اس شخص کی سزا جو نیکی اور بدی کو جانتا ہے اور ان میں سے ہر ایک کی ذمہ داری ادا کرنے کے وجوب کو جانتا ہے، اس شخص سے کہیں زیادہ سخت ہے جو نہیں جانتا۔ ایسا اس لیے ہے کہ وہ اللہ تعالیٰ کی حرمتوں کو ہلکا جاننے والے اور اس کے احکام کی توہین کرنے والے کے مانند ہے۔ وہ ان لوگوں میں سے ہے جنہوں نے (٣) اپنے علم سے فائدہ نہیں اٹھایا۔ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «قیامت کے دن لوگوں میں سب سے سخت عذاب اس عالم کو ہو گا جسے اللہ نے اس کے علم سے فائدہ نہ پہنچایا ہو»۔ اسے ابن ماجہ نے اپنی ”سنن“ (٤) میں روایت کیا ہے۔ تیسری بات: جان لیں، اللہ تعالیٰ آپ کو توفیق دے، کہ آیت میں توبیخ (ڈانٹ ڈپٹ) نیکی کو چھوڑنے کی وجہ سے ہے، نہ کہ نیکی کا حکم دینے کی وجہ سے۔ اسی لیے اللہ تعالیٰ نے اپنی کتاب میں ان لوگوں کی مذمت کی ہے جو نیکی کے کاموں کا حکم تو دیتے تھے لیکن خود ان پر عمل نہیں کرتے تھے۔ یہ ایسی مذمت اور توبیخ (٥) ہے جو رہتی دنیا تک قیامت کے دن تک تلاوت کی جاتی رہے گی۔ اللہ نے فرمایا: ﴿أَتَأْمُرُونَ النَّاسَ بِالْبِرِّ﴾ (کیا تم لوگوں کو نیکی

کا حکم دیتے ہو...) آیت۔ (١) (د) میں: المعي (آنت)۔ (٢) (م) میں: فتخرج (پس وہ نکلتی ہے)۔ (٣) (م) میں: لا (نہیں۔ یعنی: جس نے فائدہ نہیں اٹھایا)۔ (٤) ہمیں یہ سنن ابن ماجہ میں نہیں ملی۔ اسے طبرانی نے 'المعجم الصغیر' (٥٠٧) میں، ابن عدی نے 'الکامل' ٩١١/٣ اور ١٨٠٧/٥ میں، قضاعی نے 'مسند الشهاب' (١١٢٢) میں، اور بیہقی نے 'شعب الایمان' (١٧٧٨) میں عثمان بن مقسم البرّی کے واسطے سے، سعید المقبری سے اور انہوں نے ابو ہریرہ سے روایت کیا ہے۔ منذری نے اسے 'الترغیب والترهیب' (٢٢٢) میں ذکر کیا ہے اور اس کی نسبت طبرانی (صغیر) اور بیہقی کی طرف کی ہے۔ ہیثمی نے اسے 'مجمع الزوائد' ١٨٥/١ میں ذکر کیا ہے اور کہا ہے: اس میں عثمان البرّی ہے؛ فلاس نے کہا: وہ سچا ہے لیکن غلطیاں بہت کرتا ہے اور بدعتی ہے، اسے احمد، نسائی اور دارقطنی نے ضعیف قرار دیا ہے۔ دیکھئے: 'میزان الاعتدال' ٥٨/٣۔ (٥) (د)، (ظ) اور (م) میں: 'به' (اس کے ساتھ)، اور جو متن میں ثابت ہے وہ (ز) سے ہے، اور یہ ابن عبد البر کی کتاب 'جامع بیان العلم' ص ٢٣٥ کے مطابق ہے، اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا ہے۔

59 Surah Al-Baqarah: Verse 44

Mansur al-Faqih (1) said, and he did well: Indeed, people who command us to do what they do not do, Are truly insane, even if they are not seen in epileptic fits.

Abu al-Atahiya (2) said: You described piety as if you are a person of piety, While the scent of sins emanates from your clothes. (3)

Abu al-Aswad al-Du'ali said: Do not forbid a behavior and then perform the like of it; A great shame is upon you if you do so. Start with yourself and forbid its misguidance; If it ceases, then you are indeed wise. Then, what you preach will be accepted, your words followed, And your teaching will be beneficial. (4)

Abu Amr ibn Matar (5) said: I attended the council of Abu Uthman al-Hiri al-Zahid (6), and he came out and sat in his usual place where he sat for remembrance. He remained silent for a long time until his silence became prolonged. A man known as Abu al-Abbas called out to him: "Do you see fit to say something in your silence?" So he began saying: A non-pious person who commands people to be pious Is like a doctor treating others while the doctor himself is sick.

He said: The voices rose with weeping and clamor (7).

Fourthly: Ibrahim al-Nakha'i said: I dislike storytelling for three verses, the words of Allah the Almighty:

(1) Ibn Ismail, Abu al-Hasan al-Tamimi al-Shafi'i, al-Darir, the poet, the jurist of Egypt, died in the year (336 AH). Al-Siyar 14/238. And the two verses are in Jami' Bayan al-Ilm p. 238. (2) Ismail ibn Qasim ibn Suwaid al-'Anzi, Abu Ishaq, the chief of poets, stayed in Baghdad, became ascetic at the end, and said about sermons and asceticism, so he excelled. Died in the year (213 AH). Al-Siyar 10/195. And the verse is in his Diwan p. 212, and Jami' Bayan al-Ilm p. 235. (3) In (d) and Jami' Bayan al-Ilm: your clothes (thunayaka). (4) These verses are attributed to al-Mutawakkil al-Kinani, al-Akhtal, Sabiq al-Barbari, and al-Tirimmāh, but the most famous is that they belong to Abu al-Aswad al-Du'ali. See Khizanat al-Adab 8/565-569, and Jami' Bayan al-Ilm pp. 237 and 238. (5) Muhammad ibn Ja'far ibn Muhammad ibn Matar, al-Naysaburi, the Hadith scholar, died in the year (360 AH). Al-Siyar 16/162. (6) He is Said ibn Ismail al-Naysaburi al-Hayiri, the ascetic preacher, died in the year (298 AH). Al-Siyar 14/62. (7) Narrated by al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (1928) and (7303).

पृष्ठ ५९ सूरा अल-बक़रह: आयत ४४

मंसूर अल-फ़कीह (१) ने कहा और बहुत अच्छा कहा: निश्चित रूप से वे लोग जो हमें वह करने का आदेश देते हैं जो वे स्वयं नहीं करते, वे वास्तव में पागल हैं, भले ही वे मिर्गी के दौरों में न गिरते हों।

अबू अल-अताहिया (२) ने कहा: तुमने धर्मपरायणता का वर्णन ऐसे किया जैसे कि तुम स्वयं धर्मपरायण हो, जबकि पापों की गंध तुम्हारे कपड़ों से आ रही है। (३)

अबू अल-असवद अल-दुआली ने कहा: किसी व्यवहार से मना मत करो और फिर स्वयं वैसा ही मत करो; यदि तुम ऐसा करते हो तो यह तुम्हारे लिए बड़े शर्म की बात है। अपने आप से शुरुआत करो और उसे उसकी गुमराहियों से रोको; यदि वह रुक जाए, तो तुम वास्तव में बुद्धिमान हो। तब तुम्हारा उपदेश स्वीकार किया जाएगा, तुम्हारी बातों का अनुसरण किया जाएगा, और तुम्हारी शिक्षा लाभकारी होगी। (४)

अबू अम्र इब्न मटर (५) ने कहा: मैं अबू उस्मान अल-हीरी अल-ज़ाहिद (६) की सभा में उपस्थित हुआ, वे बाहर आए और अपने उस स्थान पर बैठ गए जहाँ वे उपदेश के लिए बैठते थे। वे बहुत देर तक चुप रहे यहाँ तक कि उनकी चुप्पी लंबी हो गई। अबू अल-अब्बास के नाम से जाने जाने वाले एक व्यक्ति ने उन्हें पुकारा: "क्या आप अपनी चुप्पी में कुछ कहना उचित समझते हैं?" तो उन्होंने कहना शुरू किया: एक अधर्मी व्यक्ति जो लोगों को धर्मपरायणता का आदेश देता है वह उस डॉक्टर की तरह है जो दूसरों का इलाज कर रहा है जबकि डॉक्टर खुद बीमार है।

उन्होंने कहा: रोने और शोर (७) के साथ आवाजें बुलंद हुईं।

चौथा: इब्राहिम अल-नखई ने कहा: मुझे तीन आयतों के कारण उपदेश देना नापसंद है, अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन:

(१) इब्न इस्माइल, अबू अल-हसन अल-तमीमी अल-शाफ़ई, अल-दरीर, कवि, मिस्र के फकीह, मृत्यु वर्ष (३३६ हिजरी)। अल-सियार १४/२३८। और दो पंक्तियाँ जामी बयान अल-इल्म पृष्ठ २३८ में हैं। (२) इस्माइल इब्न कासिम इब्न सुवैद अल-अंज़ी, अबू इसहाक, कवियों के प्रमुख, बगदाद में रहे, अंत में तपस्वी बन गए, और उपदेशों और वैराग्य में कविताएँ कहीं, इसलिए वे उत्कृष्ट रहे। मृत्यु वर्ष (२१३ हिजरी)। अल-सियार १०/१९५। और पंक्ति उनके दीवान पृष्ठ २१२ और जामी बयान अल-इल्म पृष्ठ २३५ में है। (३) (द) और जामी बयान अल-इल्म में: 'थनायका' (ثنایاك)। (४) ये पंक्तियाँ अल-

मुतवक्किल अल-किनानी, अल-अख्तल, साबिक अल-बरबरी और अल-तिरम्माह की ओर भी संकेत की जाती हैं, लेकिन सबसे प्रसिद्ध यह है कि ये अबू अल-असवद अल-दुआली की हैं। देखें खिज़ानत अल-अदब ८/५६५-५६९, और जामी बयान अल-इल्म पृष्ठ २३७ और २३८। (५) मुहम्मद इब्न जाफर इब्न मुहम्मद इब्न मटर, अल-नैसापुरी, हदीस के विद्वान, मृत्यु वर्ष (३६० हिजरी)। अल-सियार १६/१६२। (६) वह सईद इब्न इस्माइल अल-नैसापुरी अल-हीरी हैं, तपस्वी उपदेशक, मृत्यु वर्ष (२९८ हिजरी)। अल-सियार १४/६२। (७) अल-बैहकी द्वारा शुअब अल-ईमान (१९२८) और (७३०३) में उद्धृत।

صفحہ ۵۹ سورۃ البقرہ: آیت ۴٤

منصور فقیہ (۱) نے کہا اور بہت اچھا کہا: بیشک وہ لوگ جو ہمیں اس بات کا حکم دیتے ہیں جو وہ خود نہیں کرتے، وہ پاگل ہیں اگرچہ انہیں مرگی کے دورے نہیں پڑتے۔

ابو العتاہیہ (۲) نے کہا: تم نے تقویٰ کا تذکرہ اس طرح کیا گویا تم خود متقی ہو، حالانکہ گناہوں کی بو تمہارے کپڑوں سے پھوٹ رہی ہے۔ (۳)

ابو الاسود الدؤلی نے کہا: کسی اخلاق سے منع نہ کرو اور خود ویسا ہی عمل کرو؛ اگر تم ایسا کرو گے تو یہ تمہارے لیے بڑی عار (شرم) کی بات ہے۔ اپنے نفس سے شروع کرو اور اسے اس کی گمراہی سے روکو؛ اگر وہ اس سے رک جائے تو تم حقیقت میں حکیم (عقلمند) ہو۔ تب تمہارا وعظ قبول کیا جائے گا اور تمہاری بات کی پیروی کی جائے گی، اور تمہاری تعلیم نفع بخش ہوگی۔ (۴)

ابو عمرو بن مطر (۵) کہتے ہیں: میں ابو عثمان الحیری الزاہد (۶) کی مجلس میں حاضر ہوا، وہ باہر نکلے اور اپنی اسی جگہ بیٹھے جہاں وہ وعظ کے لیے بیٹھا کرتے تھے۔ وہ خاموش رہے یہاں تک کہ ان کی خاموشی طویل ہو گئی۔ ابو العباس نامی ایک شخص نے انہیں پکارا: "کیا آپ اپنی خاموشی میں کچھ کہنا پسند فرمائیں گے؟" تو انہوں نے یہ شعر پڑھنا شروع کیا: غیر متقی شخص جو لوگوں کو تقویٰ کا حکم دے وہ اس طبیب کی طرح ہے جو دوسروں کا علاج کرے جبکہ طبیب خود بیمار ہو۔

راوی کہتا ہے: رونے اور چیخ و پکار (۷) کی آوازیں بلند ہوئیں۔

چوتھی بات: ابراہیم النخعی نے کہا: میں تین آیات کی وجہ سے وعظ و قصص کو ناپسند کرتا ہوں، اللہ تعالیٰ کا ارشاد:

(۱) ابن اسماعیل، ابو الحسن التمیمی الشافعی، الضریر، شاعر، فقیہِ مصر، وفات (۳۳۶ھ)۔ السیر ۱۴/۲۳۸۔ اور یہ دونوں اشعار جامع بیان العلم ص ۲۳۸ میں ہیں۔ (۲) اسماعیل بن قاسم بن سوید العنزی، ابو اسحاق، امیر الشعراء، بغداد کے رہائشی، آخر عمر میں زاہد ہو گئے تھے، اور مواعظ و زہد میں بہترین اشعار کہے۔ وفات (۲۱۳ھ)۔ السیر ۱۰/۱۹۵۔ اور یہ شعر ان کے دیوان ص ۲۱۲ اور جامع بیان العلم ص ۲۳۵ میں ہے۔ (۳) (د) اور جامع بیان العلم میں: ثناياك (تمہارے سامنے کے دانتوں یا لباس کی شکنوں)۔ (۴) یہ اشعار المتوکل الکنانی، الاخطل، سابق البربری، اور الطرماح کی طرف بھی منسوب ہیں، لیکن مشہور یہ ہے کہ یہ ابو الاسود الدؤلی کے ہیں۔ دیکھئے خزانہ الادب ۸/۵۶۵-۵۶۹، اور جامع بیان العلم ص ۲۳۷ و ۲۳۸۔ (۵) محمد بن جعفر بن محمد بن مطر، النیسابوری، المحدث، وفات (۳۶۰ھ)۔ السیر ۱۶/۱۶۲۔ (۶) وہ سعید بن اسماعیل النیسابوری الحیری، المحدث الواعظ ہیں، وفات (۲۹۸ھ)۔ السیر ۱۴/۶۲۔ (۷) اسے بیہقی نے شعب الایمان (۱۹۲۸) اور (۷۳۰۳) میں روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 44 60 "Do you order people to righteousness..." [2:44], and His saying: "Why do you say what you do not do?" [As-Saff: 2], and His saying: "And I do not intend to differ from you in that which I forbid you from." [Hud: 88].

Salm ibn 'Amr said (1): How ugly is the discouraging of a preacher who discourages people but does not refrain himself. If he were sincere in his discouraging, his house would have become the mosque day and night. If he rejected the world, why then does he seek gifts and support from people? Provision is distributed among those you see; sought by (2) the white and the black.

Al-Hasan said to Mutarrif ibn Abdullah: "Admonish your companions." He said: "I fear saying what I do not do." He said: "May Allah have mercy on you! Which of us does what he says?! Satan wishes he had triumphed with this, so that no one would enjoin good or forbid evil."

Malik reported from Rabi'ah ibn Abi Abd ar-Rahman: I heard Sa'id ibn Jubayr saying: "If a person did not enjoin good or forbid evil until he was free from everything (faults), no one would enjoin good or forbid evil." Malik said: "He spoke the truth, for who is there who has nothing (faults) in him (3) (4)??!"

Fifth: The Almighty's saying: {bil-birri} (with righteousness). Al-Birr here is obedience and good deeds. Al-Birr is also truthfulness. Al-Birr is the offspring of a fox. And al-Birr is the herding of sheep, from which comes their saying: "He does not know a 'hirr' from a 'birr'" (5) meaning: he does not know the call for sheep from their driving. So it is a homonym (shared term).

And the poet said:

(1) One of the poets of the Abbasid state, a narrator for Bashar ibn Burd and his student. He was devoted to the Barmakids and died before Ar-Rashid. Al-Aghani 19/261, and Siyar A'lam al-Nubala' 8/193. (2) In (m): "attains it", and the verses are in Al-Aghani 19/269, Jami' Bayan al-'Ilm p. 235, Mu'jam al-Udaba' 11/239, and Wafayat al-A'yan 2/352. (3) In (d) and (z): "upon him". (4) See Ihya' 'Ulum al-Din 2/312-313. (5) Mentioned by al-Askari in Jamharat al-Amthal 2/401, and he said: Al-Asma'i said: Its meaning is he does not know one thing from another. It is also said its meaning is: He does not know who treats him well from who dislikes him.

सूरा अल-बक़रह : आयत 44 60 "क्या तुम लोगों को भलाई का हुक्म देते हो..." [2:44], और उनका कहना: "तुम वह क्यों कहते हो जो तुम नहीं करते?" [अस-सफ़: 2], और उनका कहना: "और मेरा यह इरादा नहीं कि मैं तुम्हारे खिलाफ वह करूँ जिससे मैं तुम्हें रोकता हूँ।" [हूद: 88]।

सल्म बिन अम्र ने कहा (1): एक उपदेशक का विरक्ति कितना बुरा है, जो लोगों को विरक्त करता है लेकिन खुद विरक्त नहीं होता। यदि वह अपनी विरक्ति में सच्चा होता, तो उसका घर दिन-रात मस्जिद बन गया होता। यदि उसने दुनिया को त्याग दिया, तो उसे क्या हुआ कि वह लोगों से दान और समर्थन माँगता है? रिज़्क़ उन लोगों के बीच बंटा हुआ है जिन्हें तुम देखते हो; गोरे और काले सब इसके लिए कोशिश करते (2) हैं।

अल-हसन ने मुतारिफ़ बिन अब्दुल्ला से कहा: "अपने साथियों को नसीहत करो।" उन्होंने कहा: "मुझे डर है कि मैं वह कहूँ जो मैं नहीं करता।" उन्होंने कहा: "अल्लाह तुम पर रहम करे! हममें से कौन वह करता है जो वह कहता है?! शैतान चाहता है कि वह इसमें कामयाब हो जाए, ताकि कोई भी भलाई का हुक्म न दे और न ही बुराई से रोके।"

मालिक ने रबीअ बिन अबी अब्द अल-रहमान से रिवायत की है: मैंने सईद बिन जुबैर को कहते सुना: "अगर कोई व्यक्ति तब तक भलाई का हुक्म न दे और बुराई से न रोके जब तक कि उसमें कोई कमी न हो, तो कोई भी भलाई का हुक्म नहीं देगा और न ही बुराई से रोकेगा।" मालिक ने कहा: "उन्होंने सच कहा, क्योंकि ऐसा कौन है जिसमें कुछ (कमी) (3) न हो (4)??!"

पाँचवाँ: अल्लाह तआला का फ़रमान: {अल-बिर्र} (भलाई/नेकी)। यहाँ 'बिर्र' से मुराद आज्ञाकारिता और नेक काम है। बिर्र का अर्थ सच्चाई भी है। बिर्र लोमड़ी के बच्चे को भी कहते हैं। और बिर्र भेड़ों को हाँकने को भी कहते हैं, जिससे उनकी कहावत है: "वह 'हिर' और 'बिर' में फ़र्क नहीं जानता" (5) यानी: वह भेड़ों को बुलाने और उन्हें हाँकने के बीच फ़र्क नहीं जानता। तो यह एक अनेकार्थी शब्द है।

और कवि ने कहा:

(1) अब्बासी राज्य के कवियों में से एक, वह बशर बिन बुर्द के रावी और उनके शिष्य थे। वह बरमकिद के प्रति समर्पित थे, अर-रशीद से पहले उनकी मृत्यु हो गई। अल-अघानी 19/261, और सियार अलम अल-नुबला 8/193। (2) (म) में: "उसे प्राप्त करता है", और छंद अल-अघानी 19/269,

जामी बयान अल-इल्म पृष्ठ 235, मुअजम अल-उदबा 11/239, और वफ़यात अल-अयान 2/352 में हैं। (3) (द) और (ज़) में: "उस पर"। (4) देखें एहया उलूम अल-दीन 2/312-313। (5) अल-अस्करी ने जमहरत अल-अमथल 2/401 में इसका उल्लेख किया है, और उन्होंने कहा: अल-असमी ने कहा: इसका अर्थ है कि वह एक चीज़ को दूसरी चीज़ से नहीं पहचानता। और यह भी कहा गया है: इसका अर्थ है: वह उसे नहीं पहचानता जो उसके साथ अच्छा व्यवहार करता है और उसे जो उसे नापसंद करता है।

سورة البقرہ: آیت ۴۴ ۶۰ ﴿کیا تم لوگوں کو نیکی کا حکم دیتے ہو...﴾ آیت، اور اللہ کا قول: ﴿تم وہ کیوں کہتے ہو جو تم کرتے نہیں ہو﴾ [الصف: ۲]، اور اللہ کا قول: ﴿اور میں یہ نہیں چاہتا کہ جن کاموں سے تمہیں روکتا ہوں خود ان کے خلاف کرنے لگوں﴾ [ہود: ۸۸]۔

اور سلم بن عمرو نے کہا (۱): واعظ کی طرف سے دنیا سے بیزار کرنا کتنا برا ہے، جو لوگوں کو تو بیزار کرتا ہے لیکن خود بیزار نہیں ہوتا۔ اگر وہ اپنی بیزاری میں سچا ہوتا تو اس کا گھر صبح و شام مسجد بن چکا ہوتا۔ اگر اس نے دنیا کو چھوڑ دیا ہے، تو اسے کیا ہوا کہ وہ لوگوں سے عطیات اور مدد مانگتا پھرتا ہے؟ رزق تقسیم شدہ ہے ان لوگوں میں جنہیں تم دیکھتے ہو؛ اس کے لیے گورا اور کالا (سب) کوشش کرتے (۲) ہیں۔

اور حسن نے مطرف بن عبداللہ سے کہا: اپنے ساتھیوں کو نصیحت کرو، تو انہوں نے کہا: مجھے ڈر لگتا ہے کہ میں ایسی بات کہوں جو میں خود نہیں کرتا۔ حسن نے کہا: اللہ تم پر رحم کرے! ہم میں سے کون ہے جو وہ کرتا ہے جو وہ کہتا ہے؟! شیطان کی تو یہی خواہش ہے کہ وہ اس بات میں کامیاب ہو جائے، تاکہ پھر کوئی نیکی کا حکم دے اور نہ برائی سے روکے۔

اور مالک نے ربیعہ بن ابی عبدالرحمن سے روایت کی ہے کہ میں نے سعید بن جبیر کو کہتے سنا: اگر انسان اس وقت تک نیکی کا حکم نہ دے اور برائی سے نہ روکے جب تک کہ وہ خود ہر عیب سے پاک نہ ہو جائے، تو کوئی بھی نیکی کا حکم نہ دیتا اور نہ برائی سے روکتا۔ مالک نے کہا: انہوں نے سچ کہا، بھلا کون ایسا ہے جس میں کوئی (عیب) (۳) نہ ہو (۴)؟!

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿بالبر﴾ یہاں البر سے مراد فرمانبرداری اور نیک عمل ہے۔ اور البر کے معنی سچائی بھی ہے۔ اور البر لومڑی کے بچے کو بھی کہتے ہیں۔ اور البر بھیڑیں ہانکنے کو

بھی کہتے ہیں، اسی سے ان کا قول ہے: "وہ ہرّ کو برّ سے نہیں پہچانتا" (۵) یعنی: وہ بھیڑوں کو بلانے اور انہیں ہانکنے کی آواز میں فرق نہیں جانتا۔ پس یہ لفظِ مشترک ہے۔

اور شاعر نے کہا:

(۱) عباسی دور کے شعراء میں سے تھے، وہ بشار بن برد کے راوی اور ان کے شاگرد تھے، وہ برامکہ کے مقرب تھے، ان کا انتقال ہارون الرشید سے پہلے ہوا۔ الاغانی ۱۹/۲۶۱، اور سیر اعلام النبلاء ۸/۱۹۳۔ (۲) نسخہ (م) میں: "اسے پاتا ہے"، اور یہ اشعار الاغانی ۱۹/۲۶۹، جامع بیان العلم ص ۲۳۵، معجم الادباء ۱۱/۲۳۹، اور وفیات الاعیان ۲/۳۵۲ میں ہیں۔ (۳) نسخہ (د) اور (ظ) میں: "اس پر"۔ (۴) دیکھئے احیاء علوم الدین ۲/۳۱۲-۳۱۳۔ (۵) اسے العسکری نے جمہرۃ الامثال ۲/۴۰۱ میں نقل کیا ہے، اور کہا: اصمعی نے کہا: اس کا مطلب ہے کہ وہ ایک چیز کو دوسری سے نہیں پہچانتا، اور کہا گیا ہے کہ اس کا مطلب ہے: وہ اسے نہیں پہچانتا جو اس کے ساتھ بھلائی کرتا ہے اور اسے جو اس سے ناپسندیدگی کا اظہار کرتا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 44 61

No, by the Lord, indeed Bakr is before you ... the people treat you with kindness (yabarruka) while they act wickedly towards you. (2) He meant by his saying: "yabarruka al-nas," meaning: they obey you. And it is said: "al-barr" (with fat-ha on 'ba') means the heart (al-fu'ad) as in the saying: I would be in the place of the 'barr' from him and below it ... and I make what is mine below it and his orders. (3) And "al-burr," with damma on the 'ba': is well-known [wheat], and with fat-ha ('al-barr'): it means honor and glorification, and from it: a "barr" or "barr" child; meaning: he honors his parents and treats them with kindness.

Sixth: His Almighty's saying: {and you forget yourselves} meaning: you abandon. And forgetfulness (al-nisyan) — with a kasra on the 'nun' — can mean abandonment (al-tark), and that is what is intended here, and in His saying: {They forgot Allah, so He forgot them} [At-Tawbah: 67], and His saying: {So when they forgot that by which they had been reminded} [Al-An'am: 44], and His saying: {And do not forget graciousness between you} [Al-Baqarah: 237]. It can also be the opposite of remembrance and memorization, from which is the Hadith: "Adam forgot, so his progeny forgot" (4). And it will come later. It is said: a "nasyan" man, with fat-ha on the 'nun': one who forgets things a lot. And I forgot the thing "nisyanan," and do not say (5): "nasayanan" with movement (vocalization of the second letter); because "nasayanan" is the dual of "nasa" the nerve (6). And "anfus" (selves): is the plural of "nafs" (soul), a plural of paucity. And "al-nafas" (breath): is the spirit (al-ruh), it is said: his "nafas" (breath/life) came out.

Abu Khirash said: Salim escaped while his soul was in his jaw [at the brink of death] ... and nothing escaped but a sword's sheath and a waist-wrapper. (7)

(1) In the manuscripts: "bakaw", and the established version is from the sources. (2) The verse is in "Al-Nukat wal-'Uyun" 1/114 without attribution. (3) The verse is by Khidash bin Zuhair, and it is in his Diwan p. 49, and "Al-Takmila" by Al-Saghani: (brr) with the narration: "yakuunu makaana al-birri minni wa duunahu..." He said in "Al-Takmila": i.e., I make him in place of my heart and consult him in matters. It is in "Tahdhib al-Lugha" 15/188, and "Al-Mujmal" 1/112 by the author's narration. (4) Its graduation was mentioned earlier 1/293-294, and it will appear at His Almighty's saying: {And do not marry polytheistic women until they believe} Verse: 221, and His saying: {And if Satan causes you to forget, then do not sit after the reminder with the wrongdoing people} [Al-An'am: 68]. (5) In (D) and (Zha): "and it is not said," and in

(Zay): "we say," and the established version is from (Mim) and "Al-Sihah." (6) Al-Sihah: (nasy). (7) The verse is in "Sihah al-Jawhari": (nafs) by Abu Khirash al-Hudhali Khuwaylid bin Murra, and in the explanation of the Hudhali poets 2/558 by Hudhayfa bin Anas, and see "Al-Lisan" and "Taj al-Arus": (nafs).

सूरह अल-बकरा: आयत 44 61

नहीं, रब की कसम, वास्तव में बक्र तुम्हारे सामने है ... लोग तुम्हारे साथ दयालुता (यबर्रुक) का व्यवहार करते हैं जबकि वे तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह करते हैं। (2) उनके इस कथन से: "यबर्रुक अल-नास" का अर्थ था: यानी, वे तुम्हारी आज्ञा मानते हैं। और कहा जाता है: "अल-बर्र" (ब पर ज़बर के साथ) का अर्थ हृदय (अल-फ़ुआद) है जैसा कि इस उक्ति में है: मैं उसके'बर्र' (हृदय) के स्थान पर और उसके नीचे रहूँगा ... और जो मेरा है उसे उसके अधीन और उसके आदेशों के अधीन कर दूँगा। (3) और "अल-बुर्र," ब पर पेश के साथ: प्रसिद्ध है [गेहूँ], और ज़बर के साथ ('अल-बर्र'): इसका अर्थ सम्मान और महिमा है, और इसी से है: एक 'बर्र' या 'बार्र' संतान; यानी: वह जो अपने माता-पिता का सम्मान करता है और उनके साथ उदारता से पेश आता है।

छठा: अल्लाह तआला का कथन: {और तुम स्वयं को भूल जाते हो} अर्थात: तुम छोड़ देते हो। और विस्मृति (निस्यान) — 'नून' के नीचे ज़ेर के साथ — का अर्थ परित्याग (तर्क) हो सकता है, और यहाँ यही अभिप्रेत है, और उनके इस कथन में: {वे अल्लाह को भूल गए, तो उसने उन्हें भुला दिया} [अत-तौबा: 67], और उनका कथन: {फिर जब वे उसे भूल गए जिससे उन्हें याद दिलाया गया था} [अल-अनआम: 44], और उनका कथन: {और अपने बीच कृपा को मत भूलो} [अल-बकरा: 237]। यह याद रखने और कंठस्थ करने का विपरीत भी हो सकता है, जिससे हदीस है: "आदम भूल गए, तो उनकी संतान भी भूल गई" (4)। और यह आगे आएगा। कहा जाता है: एक "नस्यां" व्यक्ति ('नून' पर ज़बर के साथ): वह जो चीज़ों को बहुत भूल जाता है। और मैंने चीज़ को "निस्यानन" भुला दिया, और हरकत के साथ "नसयानन" न कहें (5); क्योंकि "नसयानन" केवल नस (नसा) का द्विवचन है (6)। और "अनफ़ुस" (स्वयं): "नफ़्स" (आत्मा) का बहुवचन है, न्यूनता का बहुवचन। और "अल-नफ़स" (साँस): आत्मा (रूह) है, कहा जाता है: उसकी साँस (जान) निकल गई।

अबू खिराश ने कहा: सालिम बच निकला जबकि उसकी जान उसके हलक में थी ... और तलवार की म्यान और तहबंद के अलावा कुछ नहीं बचा। (7)

(1) प्रतियों में: "बकौ", और स्रोतों से प्रमाणित यही है। (2) यह पद्य "अल-नुकत वल-उयून" 1/114 में बिना किसी श्रेय के है। (3) यह पद्य खिदाश बिन जुहैर का है, और यह उनके दीवान पृष्ठ 49 में है, और अल-सगानी की "अल-तकमिला" में: (बर्र) इस वर्णन के साथ: "यकुनु मकाना अल-बिर्र मिन्नी व दुनहु..." उन्होंने "अल-तकमिला" में कहा: अर्थात, मैं उसे अपने हृदय के स्थान पर रखता हूँ और

मामलों में उससे परामर्श करता हूँ। यह लेखक के वर्णन के अनुसार "तहज़ीब अल-लुग़ा" 15/188 और "अल-मुजमल" 1/112 में है। (4) इसका उल्लेख पहले 1/293-294 में हो चुका है, और यह अल्लाह तआला के इस कथन पर आएगा: {और मुशरिक स्त्रियों से विवाह न करो जब तक कि वे ईमान न ले आएँ} आयत: 221, और उनका कथन: {और यदि शैतान तुम्हें भुला दे, तो याद आने के बाद ज़ालिम लोगों के साथ न बैठो} [अल-अनआम: 68]। (5) (द) और (ज़) में: "और यह नहीं कहा जाता है," और (ज़) में: "हम कहते हैं," और प्रमाणित (म) और "अल-सिहह" से है। (6) अल-सिहह: (नसी)। (7) यह पद्य "सिहह अल-जौहरी" में है: अबू खिराश अल-हुज़ली खुवैलद बिन मुर्रा द्वारा (नफ़्स), और हुज़ैफ़ा बिन अनस द्वारा हुज़ैलियों के काव्य की व्याख्या 2/558 में, और देखें "अल-लिसान" और "ताज अल-अरूस": (नफ़्स)।

سورة البقرہ: آیت 44 61

لا هُمْ رَبٍّ إِنَّ بَكْراً(١) دُونَكا يَبَرُّك النَّاسُ وَيَفْجُرُونَكا(٢) ان کے قول "يَبَرُّكَ النَّاسُ" سے مراد ہے: یعنی وہ تمہاری اطاعت کرتے ہیں۔ اور کہا جاتا ہے: "البرّ" (باء کے فتحہ کے ساتھ) سے مراد دل (الفؤاد) ہے جیسا کہ اس قول میں ہے: أكُونُ مَكانَ البِرِّ منه ودونه وأجعلُ ما لي دونه وأوامرُه(٣) اور "البُرُّ"، باء کے ضمہ کے ساتھ: معروف ہے [گندم]، اور فتحہ کے ساتھ ("البَرُّ"): اس کا مطلب تعظیم و توقیر ہے، اور اسی سے ہے: نیک (برّ یا بارّ) بیٹا؛ یعنی: وہ اپنے والدین کی تعظیم کرتا ہے اور ان کے ساتھ حسنِ سلوک کرتا ہے۔

چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَتَنْسَوْنَ أَنْفُسَكُمْ﴾ یعنی: تم چھوڑ دیتے ہو۔ اور نسیان — نون کے کسرہ کے ساتھ — ترک کرنے کے معنی میں ہوتا ہے، اور یہاں یہی مراد ہے، اور اللہ تعالیٰ کے اس قول میں بھی: ﴿نَسُوا اللَّهَ فَنَسِيَهُمْ﴾ [التوبة : ٦٧]، اور اس قول میں: ﴿فَلَمَّا نَسُوا مَا ذُكِّرُوا بِهِ﴾ [الأنعام: ٤٤]، اور اس قول میں: ﴿وَلَا تَنْسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ﴾ [البقرة : ٢٣٧]۔ اور یہ یادداشت اور حفظ کی ضد بھی ہوتا ہے، اسی سے حدیث ہے: "آدم بھول گئے، تو ان کی اولاد بھی بھول گئی" (٤)۔ اور یہ آگے آئے گا۔ کہا جاتا ہے: "نَسْيان" شخص، نون کے فتحہ کے ساتھ: جو چیزوں کو بہت بھولنے والا ہو۔ اور میں نے چیز کو "نِسْياناً" بھلا دیا، اور تحریک (دوسرے حرف کی حرکت) کے ساتھ "نَسَياناً" نہ کہو (٥)؛ کیونکہ "نَسَيان" تو صرف عرق النسا (عصبی رگ) کی تثنیہ ہے (٦)۔ اور "أَنْفُس": "نَفْس" کی جمع ہے، جمعِ قلت۔ اور "النَّفَسُ": روح ہے، کہا جاتا ہے: اس کی جان (نفس) نکل گئی۔

ابو خراش نے کہا: نَجا سالِمٌ والنَّفْسُ منه بِشِدْقِهِ ولم يَنْجُ إِلَّا جَفْنُ سيفٍ ومِئْزَرَا(٧)

(١) نسخوں میں: "بکوا" ہے، اور ثابت شدہ وہی ہے جو مصادر سے ہے۔ (٢) یہ شعر "النکت والعیون" ١/ ١١٤ میں بغیر کسی نسبت کے ہے۔ (٣) یہ شعر خداش بن زہیر کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ٤٩ میں ہے، اور صغانی کی "التکملہ" میں: (برر) اس روایت کے ساتھ ہے: "یکون مکان البر منی و دونہ..." انہوں نے "التکملہ" میں کہا: یعنی میں اسے اپنے دل کی جگہ رکھتا ہوں اور معاملات میں اس سے مشورہ کرتا ہوں۔ یہ مؤلف کی روایت کے مطابق "تہذیب اللغہ" ١٥/ ١٨٨ اور "المجمل" ١/ ١١٢ میں ہے۔ (٤) اس کی تخریج پہلے ١/ ٢٩٣ - ٢٩٤ میں ہو چکی ہے، اور یہ اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس آئے گا: ﴿وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكِينَ حَتَّى يُؤْمِنُوا﴾ آیت: ٢٢١، اور اس کا قول: ﴿وَإِمَّا يُنْسِيَنَّكَ الشَّيْطَانُ فَلَا تَقْعُدْ بَعْدَ الذِّكْرَى مَعَ الْقَوْمِ الظَّالِمِينَ﴾ [الأنعام: ٦٨]۔ (٥) (د) اور (ظ) میں: "اور نہیں کہا جاتا"، اور (ز) میں: "ہم کہتے ہیں"، اور ثابت شدہ (م) اور "الصحاح" سے ہے۔ (٦) الصحاح: (نسی)۔ (٧) یہ شعر "صحاح الجوہری" میں ہے: (نفس) ابو خراش الہذلی خویلد بن مرہ کا، اور ہذلیوں کے اشعار کی شرح ٢/ ٥٥٨ میں حذیفہ بن انس کا، اور دیکھئے "اللسان" اور "تاج العروس": (نفس)۔

i.e., with a sword sheath and a dwelling. Among the evidence that the soul (nafs) is the spirit (ruh) is the saying of the Almighty: {Allah takes the souls at the time of their death} [Az-Zumar: 42]. He means the spirits, according to a group of people of interpretation (ta'wil) as follows. This is clear in the saying of Bilal to the Prophet (peace be upon him) in the hadith of Ibn Shihab: "What took your soul, O Messenger of Allah, took mine." And his saying (peace be upon him) in the hadith of Zaid bin Aslam: "Verily Allah seized our spirits, and if He willed, He would have returned them to us in a time other than this." Both were narrated by Malik (1), and it is the foremost of what is said about it. The word 'nafs' (soul) also means: blood. It is said: his 'nafs' flowed. A poet said (2): Our souls flow on the edges of swords ... and they do not flow on anything other than the blades (3). Ibrahim al-Nakha'i said: "Whatever does not have a flowing soul (blood), it does not defile water if it dies in it (4)." 'Nafs' also means: the body. A poet said (5): I was informed that the sons of Suhaym brought into ... their houses the 'tamur' of the soul (body) of Al-Mundhir. And 'at-tamur' also means: blood (6). The seventh (point): His saying, the Almighty: {while you recite the Scripture} is a great rebuke to those who understood. "Tatloona" (you recite) means: you read. The Scripture: is the Torah. Similarly, whoever does as they did is like them. The root of 'tilawah' (recitation) is 'at-tiba'' (following). That is why it is used for reading; because one follows some speech with another in its letters until it comes in its sequence. It is said: 'Talawtuhu' if I followed it ('tuluwwan'). I recited ('talawtu') the Quran ('tilawatan'). And 'talawtu al-rajula tuluwwan' if I deserted/betrayed him. 'At-taliyah' and 'at-tilawah' (with a damma on the ta') mean: the remainder. It is said: a 'tilawah' or 'taliyah' remained ('taliyat') (7) for me of my right.

(1) Al-Muwatta 1/13-14 and 14-15. Malik narrated the first of them from Ibn Shihab al-Zuhri, from Sa'id ibn al-Musayyib, as a mursal hadith, and Muslim connected it (680) from the hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). (2) He is Al-Samaw'al, and the verse is in his Diwan p. 91. (3) In (d) and (zha): edge of mists, and in (z): at-tabab, and the fixed version is from (m). (4) Narrated by Abu Ubaid bin Sallam in At-Tuhur (190) similarly, see At-Tamhid 1/338, and Al-Istidhkar 2/123. (5) He is Aws ibn Hajar, and the verse is in his Diwan p. 47. (6) From his saying: and the soul also means blood... up to here in Sahah al-Jawhari (nafs). (7) In the copies: remained (baqiyat), and the fixed version is from (m) and Sahah.

सूरह अल-बकरा: आयत 44 | 62

यानी, तलवार की म्यान और घर के साथ। इस बात का प्रमाण कि 'नफ़्स' (आत्मा) 'रूह' (प्राण) है, सर्वशक्तिमान का यह वचन है: {अल्लाह उनकी मृत्यु के समय आत्माओं को ले लेता है} [अज़-ज़ुमर: 42]। उनका अर्थ प्राणों से है, जैसा कि व्याख्याकारों (तफ़सीर करने वालों) के एक समूह ने आगे बताया है। यह बात इब्न शिहाब की हदीस में नबी ﷺ से बिलाल के कथन में स्पष्ट है: "हे अल्लाह के रसूल, जिस चीज़ ने आपके प्राण लिए उसने मेरे भी प्राण ले लिए।" और ज़ैद बिन असलम की हदीस में उनका (ﷺ) कथन है: "बेशक अल्लाह ने हमारी रूहें (प्राण) कब्ज़ कर लीं, और अगर वह चाहता तो उन्हें इस समय के अलावा किसी और समय में हमें वापस कर देता।" दोनों को मालिक (1) ने वर्णित किया है, और यह इसके बारे में कही गई सबसे प्रमुख बात है। 'नफ़्स' का अर्थ 'रक्त' (खून) भी है; कहा जाता है: उसका 'नफ़्स' बह गया। कवि (2) ने कहा: हमारी आत्माएं तलवारों की धारों पर बहती हैं ... और वे ब्लेड (3) के अलावा किसी और चीज़ पर नहीं बहतीं। इब्राहिम अल-नखई ने कहा: "जिसमें बहने वाला 'नफ़्स' (रक्त) न हो, वह पानी को अशुद्ध नहीं करता यदि वह उसमें मर जाए (4)।" 'नफ़्स' का अर्थ 'शरीर' भी है; कवि (5) ने कहा: मुझे बताया गया था कि सुहैम के बेटों ने ... अपने घरों में अल-मुंधिर के'नफ़्स' (शरीर) का 'तामूर' (रक्त) प्रवेश कराया। और 'अल-तामूर' का अर्थ रक्त भी है (6)। सातवीं (बिंदु): सर्वशक्तिमान का वचन: {जबकि तुम किताब पढ़ते हो} उन लोगों के लिए एक बड़ी झिड़की है जो समझ रखते थे। 'ततलूना' का अर्थ है: तुम पढ़ते हो। किताब: तौरात है। इसी तरह, जिसने भी वैसा ही किया जैसा उन्होंने किया, वह उन्हीं के समान है। 'तिलावत' (पाठ) का मूल 'इतिबा' (अनुसरण करना) है। इसीलिए इसे पढ़ने के लिए उपयोग किया जाता है; क्योंकि व्यक्ति अक्षरों में एक बात के पीछे दूसरी बात का अनुसरण करता है जब तक कि वह अपने क्रम में न आ जाए। कहा जाता है: 'तलव्तुहु' यदि मैंने उसका अनुसरण किया ('तुलुव्वन')। मैंने कुरान का पाठ किया ('तिलावतन्')। और 'तलव्तु अल-रजुला तुलुव्वन' यदि मैंने उसे छोड़ दिया (असहाय छोड़ दिया)। 'अल-तलियह' और 'अल-तिलावह' (त पर पेश के साथ) का अर्थ है: शेष (बचा हुआ हिस्सा)। कहा जाता है: मेरे अधिकार का एक 'तिलावत' या 'तलियह' मेरे लिए बच गया ('तलियत') (7)।

(1) अल-मुवत्ता 1/13-14 और 14-15, और मालिक ने उनमें से पहले को इब्न शिहाब अल-ज़ुहरी से, सईद इब्न अल-मुसय्यिब से, मुर्सल रूप में वर्णित किया है, और मुस्लिम (680) ने इसे अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से जोड़ा है। (2) वह अस-समवाल है, और पद्य उसके दीवान पृष्ठ 91 में है। (3) (द) और (ज़) में: कोहरे की धार, और (ज़): अत-तबाब, और स्थापित संस्करण (म) से है। (4)

इसे अबू उबैद बिन सल्लम ने 'अत-तुहूर' (190) में इसी तरह वर्णित किया है, देखें 'अत-तम्हीद' 1/338, और 'अल-इस्तिज़कार' 2/123। (5) वह औस बिन हजर है, और पद्य उसके दीवान पृष्ठ 47 में है। (6) उनके कथन से: और आत्मा का अर्थ रक्त भी है... यहाँ तक 'सहाह अल-जौहरी' (नफ़्स) में है। (7) प्रतियों में: 'बक़ियत' (बच गया), और स्थापित संस्करण (म) और 'सहाह' से है।

یعنی : تلوار کی میان اور ٹھکانے کے ساتھ۔ اور اس بات کی دلیل کہ 'نفس' روح ہے، اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {اللَّهُ يَتَوَفَّى الْأَنْفُسَ حِينَ مَوْتِهَا} [الزمر: ٤٢]، اس سے مراد ارواح ہیں، اہل تاویل کی ایک جماعت کے قول کے مطابق جیسا کہ آگے آئے گا۔ اور یہ ابن شہاب کی حدیث میں نبی ﷺ سے بلال کے قول میں واضح ہے: "اے اللہ کے رسول، جس نے آپ کی جان لی اس نے میری جان لے لی۔" اور زید بن اسلم کی حدیث میں آپ ﷺ کا ارشاد ہے: "بے شک اللہ نے ہماری روحیں قبض کر لیں، اور اگر وہ چاہتا تو انہیں اس وقت کے علاوہ کسی اور وقت میں ہمیں واپس کر دیتا۔" ان دونوں کو مالک (١) نے روایت کیا ہے، اور یہ اس بارے میں کہی جانے والی سب سے بہتر بات ہے۔ اور 'نفس' کا معنی خون بھی ہے؛ کہا جاتا ہے: اس کا 'نفس' بہہ گیا، شاعر (٢) نے کہا: ہماری جانیں تلواروں کی دھاروں پر بہتی ہیں ... اور وہ دھاروں (٣) کے سوا کسی اور چیز پر نہیں بہتیں۔ اور ابراہیم نخعی نے فرمایا: "جس کا بہنے والا خون نہ ہو، وہ پانی کو ناپاک نہیں کرتا جب وہ اس میں مر جائے (٤)۔" اور 'نفس' کا معنی 'جسم' بھی ہے؛ شاعر (٥) نے کہا: مجھے بتایا گیا کہ بنو سحیم لے آئے ... اپنے گھروں میں المنذر کے نفس (جسم) کا تامور (خون)۔ اور 'تامور' کا معنی بھی خون ہے (٦)۔ ساتویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَأَنْتُمْ تَتْلُونَ الْكِتَبَ} سمجھنے والوں کے لیے بڑی ڈانٹ ڈپٹ ہے۔ "تتلون" کا معنی ہے: تم پڑھتے ہو۔ کتاب: تورات ہے۔ اور اسی طرح جس نے ان جیسا کام کیا وہ انہی جیسا ہوا۔ اور تلاوت کی اصل 'اتباع' (پیروی کرنا) ہے، اسی لیے اسے پڑھنے کے لیے استعمال کیا جاتا ہے؛ کیونکہ وہ کلام کے کچھ حصے کو دوسرے حصے کے پیچھے اس کے حروف میں لاتا ہے یہاں تک کہ وہ اپنی ترتیب پر آ جائے، کہا جاتا ہے: 'تلوتہ' اگر میں نے اس کی پیروی کی ('تلوّا')، اور 'تلوت القرآن تلاوۃ' میں نے قرآن کی تلاوت کی۔ اور 'تلوت الرجل تلوّا'

جب میں نے اسے چھوڑ دیا (بے یار و مددگار چھوڑ دیا)۔ اور 'تلیہ' اور 'تلاوہ' (تاء کے پیش کے ساتھ) کا معنی ہے: بقیہ (بچا ہوا حصہ)، کہا جاتا ہے: میرے حق میں سے میرے لیے ایک تلاوت یا تلیہ بچ رہا (۷)۔

(۱) الموطأ ۱/ ۱۳ - ۱٤ اور ۱٤ - ۱۵، اور مالک نے ان میں سے پہلی کو ابن شہاب الزہری سے، سعید بن المسیب سے، مرسلاً روایت کیا ہے، اور مسلم (٦٨٠) نے اسے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے جوڑا ہے۔ (۲) وہ السموال ہے، اور شعر اس کے دیوان صفحہ ۹۱ میں ہے۔ (۳) (د) اور (ظ) میں: حد الضباب، اور (ز) میں: الطباب، اور ثابت شدہ (م) سے ہے۔ (٤) اسے ابو عبید بن سلام نے 'الظہور' (۱۹۰) میں اسی طرح روایت کیا ہے، دیکھئے 'التمہید' ۱/ ۳۳۸ ، اور 'الاستذکار' ۲/ ۱۲۳۔ (۵) وہ اوس بن حجر ہے، اور شعر اس کے دیوان صفحہ ٤۷ میں ہے۔ (٦) اس کے قول سے: اور نفس کا معنی بھی خون ہے... یہاں تک 'صحاح الجوہری' (نفس) میں ہے۔ (۷) نسخوں میں: 'بقیت'، اور ثابت شدہ (م) اور 'صحاح' سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 44 63 That is: I remained [1]. And "atlaytu" means: I left something remaining. And "tatallaytu haqqi": if you followed it up until you fulfilled it. Abu Zaid said: "talla al-rajul" (the man reached the end): when he was at his last breath [2]. Eighth: The Almighty's saying: {Will you not then understand?} That is: Will you not prevent yourselves from falling into this ruinous state for you? "Aql" (Intellect/Reason) means: prevention (hindrance). From it comes the "iqal" of the camel; because it prevents it [3] from movement [4]. From it also comes "al-Aql" for blood money (diya); because it prevents [5] the guardian of the murdered person from killing the perpetrator. From it comes the restriction of the belly (constipation) and the tongue. From it, a fortress is called "ma'qil". "Aql" is the opposite of "jahl" (ignorance). "Aql" is also a red cloth that Arab women used to cover camel litters (hawadij). 'Alqama [6] said: "A red cloth (aql) and embroidered fabric (raqm) that birds almost snatch away / As if it were smeared with blood from the insides." [7] "Al-madmum", with the letter 'dal': the red one, which is intended here. "Al-madmum" also means: full of fat, from a camel or other [8]. It is said: they are two types of garments (burud). Said Ibn Faris [9]: "Al-Aql" regarding garment markings [10]: refers to markings that are longitudinal, and if the markings are circular, then it is "Al-Raqm". And Al-Zajjaj said: The rational person is one who acts upon what God has made obligatory for him; so whoever does not act (upon them) is ignorant. Ninth: The people of truth (Ahl al-Haqq) have agreed that the intellect is an existing entity, not eternal (qadim) nor non-existent; for if it were non-existent, some beings would not be uniquely characterized by it over others. Since its existence is proven, the claim of its eternity is impossible, as the evidence has established that none is eternal except God Almighty, based on...

---

(1) In (d): "baqiya". (2) Al-Sihah (t-l-w). (3) In (m): "yamna'". (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/137. (5) In (m): "Because it prevents". (6) Ibn 'Abda al-Fahl, the verse is in his Diwan, p. 51. (7) In the Diwan: "Birds remain following it". See Al-Sihah ('a-q-l). (8) Al-Sihah (d-m-m). (9) Mujmal al-Lugha ('a-q-l) 3/618. (10) Plural of "shiyah", which is a mark, or black on white, or white on black, and its origin is from "al-washy" (embroidery). See Lisan al-Arab (w-sh-y).

सूरह अल-बकराह: आयत 44 63 यानी: मैं बच गया [1]। और "अतलैतु" (atlaytu) का अर्थ है: मैंने (कुछ) बचा लिया। और "ततल्लैतु हक्की" (tatallaytu haqqi): जब आपने अपना हक पाने तक उसका पीछा किया। अबू जैद ने कहा: "तल्ला अल-रजुलु": जब वह अपनी अंतिम सांसों पर था [2]। आठवां: सर्वशक्तिमान का कथन: {तो क्या तुम समझते नहीं?} यानी: क्या तुम अपने आप को इस विनाशकारी स्थिति में गिरने से नहीं रोकोगे जो तुम्हारे लिए है? "अक़्ल" (बुद्धि) का अर्थ है: रोक (मनाही)। इसी से ऊंट की "इक़ाल" (रस्सी) आती है; क्योंकि यह उसे [3] चलने-फिरने [4] से रोकती है। इसी से ख़ून की कीमत (दियत) के लिए "अल-अक़्ल" आता है; क्योंकि यह [5] मारे गए व्यक्ति के अभिभावक को अपराधी की हत्या करने से रोकता है। इसी से पेट (कब्ज) और जीभ का रुकना आता है। इसी से किले को "मअक़िल" कहा जाता है। "अक़्ल", "जह्ल" (अज्ञानता) का विलोम है। "अक़्ल" एक लाल कपड़ा भी है जिसे अरब महिलाएं ऊंट के बैठने की जगह (हवादिज) को ढंकने के लिए इस्तेमाल करती थीं। अलकामा [6] ने कहा: "एक लाल कपड़ा (अक़्ल) और कढ़ाई वाला कपड़ा (रक़्म) जिसे पक्षी लगभग छीन ही लेते हैं / मानो वह भीतरी अंगों के खून से सना हो।" [7] "अल-मदमूम", अक्षर 'दाल' के साथ: लाल वाला, जिसका यहाँ अर्थ है। "अल-मदमूम" का अर्थ यह भी है: ऊंट या अन्य [8] से वसा (चर्बी) से भरा हुआ। कहा जाता है: वे दो प्रकार के वस्त्र (बुरुद) हैं। इब्न फ़ारिस [9] ने कहा: कपड़ों के चिह्नों [10] के संबंध में "अल-अक़्ल": जो लंबाई में निशान हों, और यदि निशान गोलाकार हों, तो वह "अल-रक़्म" है। और अल-ज़ज्जाज ने कहा: बुद्धिमान वह है जिसने उस पर अमल किया जो ईश्वर ने उस पर अनिवार्य किया है; अतः जो अमल नहीं करता वह अज्ञानी है। नौवां: सत्य के मार्ग पर चलने वालों (अहल अल-हक़) ने सहमति व्यक्त की है कि बुद्धि एक विद्यमान सत्ता है, न तो अनादि (क़दीम) है और न ही अस्तित्वहीन; क्योंकि यदि यह अस्तित्वहीन होती, तो कुछ संस्थाएं दूसरों की तुलना में इसके द्वारा विशिष्ट नहीं होतीं। चूँकि इसका अस्तित्व सिद्ध हो चुका है, इसलिए इसकी अनंतता (अनादिता) का दावा करना असंभव है, क्योंकि प्रमाणों ने यह स्थापित किया है कि सर्वशक्तिमान ईश्वर के अतिरिक्त कोई भी अनादि नहीं है, इस आधार पर कि...

---

(१) (द) में: बक़िया। (२) अल-सिहाह (त-ल-व)। (३) (म) में: यमना। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३७। (५) (म) में: क्योंकि यह रोकता है। (६) इब्न अब्दा अल-फ़हल, और पद उनके दीवान के पृष्ठ ५१ में है। (७) दीवान में: पक्षी उसका पीछा करते रहते हैं। अल-सिहाह (अ-क़-ल) देखें। (८) अल-सिहाह (द-म-म)। (९) मुजमल अल-लुग़ा (अ-क़-ल) ३/६१८। (१०) "शियाह" का बहुवचन, जो एक

निशान है, या सफेद पर काला, या काले पर सफेद, और इसका मूल "अल-वशी" (कड़ाई) से है। लिसान अल-अरब (व-श-य) देखें।

سورة البقرہ: آیت 44 63 یعنی: میں باقی رہا [1]۔ اور "أَتَلَيْتُ" کا مطلب ہے: میں نے باقی رکھا۔ اور "تتَلَّيْتُ حَقِّي": جب تم نے اپنے حق کا تعاقب کیا یہاں تک کہ اسے پورا پا لیا۔ ابو زید نے کہا: "تلَّى الرجلُ": جب وہ اپنی آخری سانسوں پر تھا [2]۔ آٹھویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿أَفَلَا تَعْقِلُونَ﴾ یعنی: کیا تم اپنے آپ کو اس ہلاک کن حال میں پڑنے سے نہیں روکتے جو تمہارے لیے ہے۔ اور عقل کا مطلب ہے: روکنا، اسی سے اونٹ کا "عِقال" ہے؛ کیونکہ وہ اسے [3] حرکت [4] سے روکتا ہے۔ اور اسی سے دیت (خون بہا) کے لیے "العَقْل" ہے؛ کیونکہ وہ [5] مقتول کے وارث کو مجرم کے قتل سے روکتا ہے، اور اسی سے پیٹ اور زبان کا بند ہونا (اعتقال) ہے، اور اسی سے قلعے کو "مَعْقِل" کہا جاتا ہے۔ اور عقل، جہل کی ضد ہے۔ اور عقل ایک سرخ کپڑا ہے جسے عرب کی عورتیں ہودجوں کو ڈھانپنے کے لیے استعمال کرتی تھیں۔ علقمہ [6] نے کہا: "عقل (سرخ کپڑا) اور رقم (نقش و نگار والا کپڑا) جسے پرندے اچک لینے کے قریب ہوتے ہیں / گویا وہ اندرونی اعضاء کے خون سے رنگا ہوا ہو" [7] "المَدْمُوم"، دال کے ساتھ: سرخ، اور یہاں یہی مراد ہے۔ اور المدموم کا مطلب ہے: اونٹ وغیرہ کا چربی سے بھرا ہونا [8]۔ اور کہا جاتا ہے کہ یہ دونوں کپڑوں (بُرود) کی دو قسمیں ہیں۔ ابن فارس [9] نے کہا: کپڑوں کے نقش و نگار [10] میں سے "العَقْل" وہ ہے جس کا نقش لمبائی میں ہو، اور جس کا نقش گول ہو وہ "الرَّقْم" ہے۔ اور الزجاج نے کہا: عاقل وہ ہے جس نے اس پر عمل کیا جو اللہ نے اس پر فرض کیا، پس جو عمل نہ کرے وہ جاہل ہے۔

نویں بات: اہل حق کا اس پر اتفاق ہے کہ عقل ایک موجود ہستی ہے، نہ تو قدیم ہے اور نہ ہی معدوم؛ کیونکہ اگر وہ معدوم ہوتی تو بعض ذوات اس کے ساتھ متصف ہونے میں دوسروں سے ممتاز نہ ہوتیں، اور جب اس کا وجود ثابت ہو گیا تو اس کے قدیم ہونے کا قول محال ہے، کیونکہ دلیل قائم ہو چکی ہے کہ اللہ تعالیٰ کے سوا کوئی قدیم نہیں، اس بنیاد پر کہ...

(١) (د) میں ہے: بقیہ۔ (٢) الصحاح (تلو)۔ (٣) (م) میں ہے: یمنع۔ (٤) المحرر الوجیز ١٣٧/١۔ (٥) (م) میں ہے: کیونکہ وہ روکتا ہے۔ (٦) ابن عبدہ الفحل، اور شعر ان کے دیوان صفحہ ٥١ میں ہے۔ (٧) دیوان میں ہے: پرندے اس کے پیچھے لگے رہتے ہیں۔ دیکھئے الصحاح (عقل)۔ (٨) الصحاح (دمم)۔ (٩) مجمل اللغہ (عقل) ٦١٨/٣۔ (١٠) شِيَة کی جمع ہے، اور وہ علامت ہے، یا سفید میں سیاہی، یا سیاہ میں سفیدی، اور اس کی اصل "الوشی" (نقش و نگار) سے ہے۔ دیکھئے اللسان (وشی)۔

ٱلبِرَّ Surah Al-Baqarah: Verse 44

...what will be explained in this Surah and others, if Allah Almighty wills. Philosophers have held that the intellect is eternal. Some of them have held that it is a subtle substance in the body whose rays radiate (1) from it like a lamp in a house, by which the realities of information are distinguished. Among them are those who said: It is a simple substance, i.e., non-composite. Then they differed about its location; a group of them said: Its location is the brain, because the brain is the seat (2) of sensation. Another group said: Its location is the heart, because the heart is the source of life and the substance of the senses. This statement about the intellect being a substance is invalid, since substances are similar; if every substance were an intellect, then every substance would be an intellect. It has been said: The intellect is the perceiver of things as they truly are in their essential meanings. Although this statement is closer than the previous one, it is far from correct because perception is a quality of a living being, while the intellect is an accident ('arad), and that is impossible for it, just as it is impossible for it to be one that experiences pleasure or desire. Sheikh Abu al-Hasan al-Ash'ari, Master Abu Ishaq al-Isfara'ini, and other verifiers said: The intellect is knowledge, evidence being that one does not say: "I reasoned but did not know," or "I knew but did not reason." Judge Abu Bakr said: The intellect is necessary knowledge of the obligation of the obligatory, the permissibility of the permissible, and the impossibility of the impossible (3). This is the choice of Abu al-Ma'ali in "Al-Irshad" (4), and he chose in "Al-Burhan" (5) that it is a quality through which the attainment of knowledge is possible. He objected to the Judge's doctrine and provided evidence for its invalidity. In "Al-Burhan," he related from Al-Muhasibi (6) that he said: The intellect is an instinct.

---

(1) In the manuscripts: "remains", and what is established is from (m). (2) In the manuscripts: "his location", and what is established is from (m). (3) Al-Juwayni quoted him in Al-Burhan 1/95. (4) pp. 36-37. (5) 1/96. (6) He is Al-Harith bin Asad Al-Baghdadi, Abu Abdullah, the author of ascetic works. He delved slightly into scholastic theology (Kalam) and was criticized for it. He died in the year (243 AH). Al-Siyar 12/110.

٦٤ सूरह अल-बकराह: आयत 44

...जो इस सूरह और अन्य में स्पष्ट किया जाएगा, यदि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने चाहा। दार्शनिकों का मत रहा है कि बुद्धि (अक्ल) अनादि है। उनमें से कुछ का मत है कि यह शरीर में एक सूक्ष्म पदार्थ है जिसकी किरणें (1) उससे निकलती हैं जैसे घर में एक दीपक होता है, जिसके द्वारा सूचनाओं की वास्तविकताओं में अंतर किया जाता है। उनमें से कुछ ने कहा: यह एक सरल पदार्थ है, यानी गैर-मिश्रित। फिर वे इसके स्थान के बारे में असहमत हुए; उनमें से एक समूह ने कहा: इसका स्थान मस्तिष्क है, क्योंकि मस्तिष्क संवेदना का स्थान (2) है। एक अन्य समूह ने कहा: इसका स्थान हृदय है, क्योंकि हृदय जीवन का स्रोत और इंद्रियों का सार है। बुद्धि के एक पदार्थ होने के बारे में यह कथन अमान्य है, क्योंकि सभी पदार्थ समान होते हैं; यदि कोई पदार्थ बुद्धि होता, तो प्रत्येक पदार्थ बुद्धि होता। कहा गया है: बुद्धि वह है जो चीजों को उनके अर्थों की वास्तविकताओं के अनुसार वैसे ही देखती है जैसी वे हैं। हालाँकि यह कथन पिछले वाले की तुलना में अधिक निकट है, लेकिन यह सही होने से दूर है क्योंकि बोध (परसेप्शन) एक जीवित प्राणी का गुण है, जबकि बुद्धि एक 'आकस्मिक गुण' (अराद) है, और उसके लिए यह असंभव है, ठीक वैसे ही जैसे उसके लिए सुख या इच्छा का अनुभव करने वाला होना असंभव है। शेख अबू अल-हसन अल-अशअरी, उस्ताद अबू इशाक अल-इसफरायनी और अन्य शोधकर्ताओं ने कहा: बुद्धि ज्ञान है, इसका प्रमाण यह है कि कोई यह नहीं कहता: "मैंने बुद्धि का प्रयोग किया लेकिन मैं नहीं जानता था," या "मैं जानता था लेकिन मैंने बुद्धि का प्रयोग नहीं किया।" काजी अबू बक्र ने कहा: बुद्धि अनिवार्यताओं की अनिवार्यता, अनुमेयताओं की अनुमेयता और असंभवताओं की असंभवता (3) का आवश्यक ज्ञान है। "अल-इरशाद" (4) में अबू अल-माअली की यही पसंद है, और उन्होंने "अल-बुरहान" (5) में चुना कि यह एक ऐसा गुण है जिसके द्वारा ज्ञान की प्राप्ति संभव होती है। उन्होंने काजी के सिद्धांत पर आपत्ति जताई और इसकी अमान्यता के प्रमाण दिए। "अल-बुरहान" में उन्होंने अल-मुहासिबी (6) से उद्धृत किया कि उन्होंने कहा: बुद्धि एक स्वाभाविक प्रवृत्ति (ग़रीज़ा) है।

---

(1) पांडुलिपियों में: "स्थिर रहता है", और जो स्थापित है वह (m) से है। (2) पांडुलिपियों में: "उसका स्थान", और जो स्थापित है वह (m) से है। (3) अल-जुवैनी ने अल-बुरहान 1/95 में उन्हें उद्धृत किया है। (4) पृष्ठ 36-37। (5) 1/96। (6) वे अल-हारिस बिन असद अल-बगदादी, अबू अब्दुल्ला हैं, जो तपस्वी रचनाओं के लेखक हैं। उन्होंने इल्म अल-कलाम में थोड़ा प्रवेश किया और इसके लिए उनकी आलोचना की गई। उनकी मृत्यु वर्ष (243 हिजरी) में हुई। अल-सियार 12/110।

٦٤ سورة البقره: آيت ٤٤

ما يأتي بيانه في هذه السورة وغيرها، إن شاء الله تعالى. وقد صارتِ الفلاسفة إلى أنَّ العقل قديمٌ، ثمَّ منهم مَن صار إلى أنَّه جوهرٌ لطيفٌ في البدن ينبثُّ (١) شعاعه منه بمنزلة السِّراج في البيت، يُفصل به بين حقائق المعلومات. ومنهم مَن قال: إنَّه جوهرٌ بسيط، أي: غيرُ مركَّب. ثم اختلفوا في محلِّه، فقالت طائفة منهم : محلُّه الدماغ؛ لأنَّ الدماغ محلُّ (٢) الحِسّ. وقالت طائفة أخرى: محلُّه القلبُ؛ لأنَّ القلْبَ مَعدِنُ الحياةِ ومادَّةُ الحواس. وهذا القولُ في العقل بأنه جوهرٌ فاسدٌ، من حيث إنَّ الجواهر متماثلة، فلو كان جَوْهَرٌ عَقْلاً ، لكان كلُّ جوهرٍ عَقْلاً. وقيل : إنَّ العقل هو المُدركُ للأشياء على ما هي عليه من حقائق المعاني. وهذا القولُ وإن كان أقربَ ممَّا قبله ، فَيَبْعُدُ عن الصَّوابِ من جهة أنَّ الإدراك من صفات الحي، والعقلُ عَرَضٌ يستحيلُ ذلك منه ، كما يستحيلُ أن يكونَ مُلْتَذًّا ومشتهيًّاً. وقال الشَّيْخُ أبو الحسن الأشعري والأستاذ أبو إسحاق الإسفرايني وغيرهما من المحقِّقين : العقلُ هو العِلْمُ، بدليل أنَّه لا يُقال: عَقَلْتُ وما عَلِمْتُ ، أو عَلِمْتُ وما عَقَلْتُ. وقال القاضي أبو بكر : العقلُ علومٌ ضرورية بوجوب الواجبات وجواز الجائزات واستحالة المستحيلات(٣). وهو اختيارُ أبي المعالي في «الإرشاد»(٤)، واختار في «البرهان»(٥) أنَّه صفةٌ يتأتى بها دَرْكُ العلوم. واعترض على مذهبِ القاضي، واستدلَّ على فسادِ مذهبه. وحكى في «البرهان» عن المحاسبي (٦) أنَّه قال: العقل غريزة.

---

(١) في النسخ: يثبت، والمثبت من (م). (٢) في النسخ: محلَّه، والمثبت من (م). (٣) نقله عنه الجويني في البرهان ١ / ٩٥. (٤) ص ٣٦ - ٣٧. (٥) ٩٦/١. (٦) هو الحارث بن أسد البغدادي، أبو عبد الله، صاحب التصانيف الزهدية، وقد دخل في شيء يسير من الكلام فنُقم عليه، توفي سنة (٢٤٣هـ). السير ١١٠/١٢.

Page 65 Surah Al-Baqarah: Verse 45

Al-Ustadh Abu Bakr (1) related from Al-Shafi'i and Abu Abd Allah ibn Mujahid (2) that they said: "Intellect is the instrument of discernment." It was related from Abu al-Abbas al-Qalanisi (3) that he said: "Intellect is the power of discernment." And it was related from al-Muhasibi that he said: "Intellect is lights and insights." Then he arranged these sayings and interpreted them, saying: "It is better not to consider this transmission from Al-Shafi'i or from Ibn Mujahid as authentic, because 'instrument' (alah) is only used for a physical tool, and its use for accidents (non-physical attributes) is metaphorical. Likewise, the saying of those who said it is a 'power,' for nothing is understood from 'power' except ability. Al-Qalanisi used his expression loosely, as did al-Muhasibi. Intellect is neither a form nor a light, but rather lights and insights are gained through it. The explanation of its benefit will come in this Surah in the verse of monotheism (Tawhid), God willing."

His word (Most High): {And seek help through patience and prayer, and indeed, it is difficult except for the humbly submissive [to Allah]} (45) There are (4) eight matters concerning it: The First: His word (Most High): {And seek help through patience and prayer}. Patience (Sabr) linguistically means restraint/withholding. It is said, "So-and-so was killed 'sabra'," meaning he was held and detained until he was killed. "I patiented (sabartu) myself against something" means I restrained it. The "masburah" (animal) which was forbidden in the Hadith (5) is the one held for death, and it is the "mujaththemah" (6). Antara said (7): "So I restrained a noble soul, aware of that... remaining firm when the soul of the coward takes flight."

Footnotes: (1) Muhammad ibn al-Hasan ibn Furak al-Asbahani, a master of theologians, author of many books, died in the year 406 AH. Al-Siyar 17/214. (2) He is Muhammad ibn Ahmad ibn Muhammad ibn Ya'qub ibn Mujahid, Abu Abd Allah al-Ta'i al-Basri, the theologian and companion of Abu al-Hasan al-Ash'ari, and he has excellent books on principles. Tabyin Kadhib al-Muftari by Ibn Asakir, p. 177. (3) Ahmad ibn Abd al-Rahman ibn Khalid al-Qalanisi al-Razi, a contemporary of Abu al-Hasan al-Ash'ari, and he is among the great scholars. Tabyin Kadhib al-Muftari, p. 398. (4) In (D) and (Z): "In it" (feminine form). (5) Related by Imam Ahmad (14423) and Muslim (1959) on the authority of Jabir (may Allah be pleased with him) who said: "The Messenger of Allah (peace be upon him) forbade killing any animal 'sabra' (by holding it captive to be killed)." (6) Mujmal al-Lugha 2/549 (s-b-r), and 1/207 (j-th-m). (7) His Diwan, p. 49; see also Al-Sihah (s-b-r).

पृष्ठ ६५ सूरह अल-बक़रह: आयत ४५

उस्ताद अबू बक्र (१) ने अल-शाफ़ई और अबू अब्दुल्लाह बिन मुजाहिद (२) से रिवायत की है कि उन दोनों ने कहा: "अक्ल (बुद्धि) तमीज़ (विवेक) का साधन है।" अबू अल-अब्बास अल-क़लानसी (३) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "अक्ल तमीज़ की शक्ति है।" और अल-मुहासिबी से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "अक्ल नूर (प्रकाश) और बसीरत (अंतर्दृष्टि) है।" फिर उन्होंने इन कथनों को क्रमबद्ध किया और उनकी व्याख्या करते हुए कहा: "बेहतर यह है कि अल-शाफ़ई या इब्न मुजाहिद से इस रिवायत को सही न माना जाए, क्योंकि 'आला' (साधन/यंत्र) का प्रयोग केवल भौतिक साधनों के लिए होता है, और गुणों (अमूर्त चीज़ों) के लिए इसका प्रयोग लाक्षणिक (metaphorical) है। इसी तरह उनका कथन भी जो इसे 'शक्ति' कहते हैं, क्योंकि 'शक्ति' से केवल 'क्षमता' ही समझी जाती है। अल-क़लानसी ने अपनी बातों में विस्तार देने के लिए इसका स्वतंत्र रूप से उपयोग किया, और अल-मुहासिबी ने भी ऐसा ही किया। अक्ल न तो कोई रूप है और न ही नूर, बल्कि इसके माध्यम से नूर और बसीरत प्राप्त होती है। इस सूरह में तौहीद की आयत में इसके लाभ का वर्णन आएगा, इंशा अल्लाह।"

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और सब्र (धैर्य) और नमाज़ के ज़रिये मदद मांगो, और बेशक यह बहुत भारी है सिवाय उन लोगों के जो डरने वाले (विनम्र) हैं} (४५) इसमें (४) आठ मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और सब्र और नमाज़ के ज़रिये मदद मांगो}। शब्द 'सब्र' का भाषाई अर्थ 'रोकना/क़ैद करना' है। कहा जाता है, "फ़लाँ व्यक्ति को 'सब्र' (क़ैद) करके मार दिया गया," यानी उसे पकड़ कर तब तक क़ैद रखा गया जब तक कि उसे मार नहीं दिया गया। "मैंने अपने आप को किसी चीज़ पर सब्र कराया" का अर्थ है कि मैंने उसे रोक लिया। हदीस (५) में जिस 'मस्बूरा' (जानवर) से मना किया गया है, वह वह है जिसे मरने के लिए क़ैद कर लिया गया हो, और इसे 'मुजथ्थमा' (६) भी कहा जाता है। अंतरा ने कहा है (७): "तो मैंने एक समझदार और आज़ाद नफ़्स को उस पर रोक लिया... जो तब स्थिर रहता है जब डरपोक की जान निकलने लगती है।"

पाद-टिप्पणियाँ: (१) मुहम्मद बिन अल-हसन बिन फूरक अल-असबहानी, मुतक्कलिमों (धर्मशास्त्रियों) के उस्ताद, कई पुस्तकों के लेखक, ४०६ हिजरी में मृत्यु हुई। अल-सियार १७/२१४। (२) वह मुहम्मद बिन अहमद बिन मुहम्मद बिन यअक़ूब बिन मुजाहिद, अबू अब्दुल्लाह अल-ताई अल-बसरी हैं, मुतक्कलिम और अबू अल-हसन अल-अशअरी के साथी, और उनकी उसूल (सिद्धांतों) पर बेहतरीन किताबें हैं। इब्न असाकिर की 'तबीन कज़िब अल-मुफ़्तरी', पृ. १७७। (३) अहमद बिन अब्द अल-

रहमान बिन खालिद अल-क़लानसी अल-राज़ी, अबू अल-हसन अल-अशअरी के समकालीन, और वह बड़े विद्वानों में से हैं। 'तबीन कज़िब अल-मुफ़्तरी', पृ. ३९८। (४) (द) और (ज़) प्रतियों में: "फ़ीहा"। (५) इमाम अहमद (१४४२३) और मुस्लिम (१९५९) ने जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: "अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने किसी भी जानवर को 'सब्र' (क़ैद करके) मारने से मना किया है।" (६) मुजमल अल-लुग़ा २/५४९ (स-ब-र), और १/२०७ (ज-थ-म)। (७) उनका दीवान पृ. ४९, और देखें 'अल-सिहाह' (स-ब-र)।

صفحہ ۶۵ سورہ البقرہ: آیت ۴۵

استاد ابوبکر (۱) نے شافعی اور ابوعبداللہ بن مجاہد (۲) سے روایت کیا کہ ان دونوں نے کہا: "عقل تمیز (فرق کرنے) کا آلہ ہے۔" ابو العباس القلانسی (۳) سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: "عقل تمیز کی قوت ہے۔" اور محاسبی سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: "عقل انوار اور بصائر ہیں۔" پھر انہوں نے ان اقوال کو ترتیب دیا اور انہیں مختلف معانی پر محمول کرتے ہوئے کہا: "بہتر یہ ہے کہ شافعی یا ابن مجاہد سے اس نقل کو صحیح نہ مانا جائے، کیونکہ 'آلہ' کا استعمال صرف ظاہری آلات میں ہوتا ہے، اور اعراض (اوصاف) میں اس کا استعمال مجازی ہے۔ اسی طرح ان لوگوں کا قول بھی جنہوں نے اسے 'قوت' کہا، کیونکہ قوت سے صرف 'قدرت' ہی سمجھ میں آتی ہے۔ قلانسی نے وسعت کلام کے طور پر یہ تعبیر اختیار کی، اور محاسبی نے بھی ایسا ہی کیا۔ عقل نہ تو کوئی صورت ہے اور نہ نور، بلکہ اس کے ذریعے انوار اور بصائر حاصل ہوتے ہیں۔ اس سورہ میں آیتِ توحید میں اس کے فائدے کا بیان آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿ وَاسْتَعِينُوا بِالصَّبْرِ وَالصَّلَوٰةِ وَإِنَّهَا لَكَبِيرَةٌ إِلَّا عَلَى الْخَٰشِعِينَ (٤٥) ﴾ اس میں (۴) آٹھ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿ وَاسْتَعِينُوا بِالصَّبْرِ وَالصَّلَوٰةِ ﴾ صبر کا لغوی معنی 'روکنا/حبس کرنا' ہے۔ کہا جاتا ہے: "فلاں شخص کو 'صبراً' قتل کر دیا گیا،" یعنی اسے پکڑ کر روکا گیا یہاں تک کہ اسے ختم کر دیا گیا۔ "میں نے اپنے نفس کو کسی چیز پر صبر کرایا" یعنی اسے روک لیا۔ جس 'مصبورہ' (جانور) سے حدیث (۵) میں منع کیا گیا ہے وہ وہی ہے جسے مرنے کے لیے قید کر لیا گیا ہو، اور اسے 'مجثمہ' (۶) بھی کہتے ہیں۔ عنترہ نے کہا (۷): "تو میں نے اس (مصیبت) پر ایک سمجھدار اور آزاد نفس کو روک لیا... جو اس وقت ثابت قدم رہتا ہے جب بزدل کی جان نکلنے لگتی ہے۔"

حواشی: (۱) محمد بن الحسن بن فورک الاصبهانی، متکلمین کے شیخ، کثیر التصانیف، وفات ۴۰۶ھ السیر ۲۱۴/۱۷۔ (۲) وہ محمد بن احمد بن محمد بن یعقوب بن مجاہد، ابو عبد اللہ الطائی البصری ہیں، متکلم اور ابو الحسن الاشعری کے ساتھی، ان کی اصول پر بہترین کتابیں ہیں۔ تبیین کذب المفتری لابن عساکر ص۱۷۷۔ (۳) احمد بن عبد الرحمن بن خالد القلانسی الرازی، ابو الحسن الاشعری کے ہم عصر، اور وہ جید علماء میں سے ہیں۔ تبیین کذب المفتری ص۳۹۸۔ (۴) نسخہ (د) اور (ز) میں: "فیہا"۔ (۵) امام احمد (۱۴۴۲۳) اور مسلم (۱۹۵۹) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: "رسول اللہ ﷺ نے کسی بھی جانور کو صبراً (باندھ کر یا قید کر کے) مارنے سے منع فرمایا۔" (۶) مجمل اللغہ ۵۴۹/۲ (صبر)، اور ۱/ ۲۰۷ (جثم)۔ (۷) ان کا دیوان ص۴۹، اور دیکھئے الصحاح (صبر)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 45 - 66

Second: Allah Almighty commanded patience in obedience and avoidance of transgression in His Book, saying: {And be patient} [Al-Anfal: 46]. It is said: So-and-so is patient against sins, and if he is patient against sins, he has been patient in obedience; this is the most correct of what has been said. An-Nahhas (1) said: One who is patient in a calamity (2) is not called 'Sabir' (patient), rather it is said: 'Sabir' in such-and-such. If you say 'Sabir' absolutely, then it is as we mentioned. Allah Almighty said: {Indeed, the patient will be given their reward without account} [Az-Zumar: 10].

Third: His saying, Almighty: {and prayer} singled out prayer for mention among all other acts of worship to highlight its importance. Whenever a matter troubled him (the Prophet), peace be upon him, he would turn to prayer (3).

Among what is narrated is that Abdullah bin Abbas was informed of the death of his brother Qutham (4) - and it was said: a daughter of his - while he was on a journey. He recited the verse of return (Inna lillahi...) and said: "A private part that Allah has covered, a burden that Allah has sufficed, and a reward that Allah has driven." Then he stepped aside from the road and prayed, then returned to his mount while reciting: {And seek help through patience and prayer} (5). Prayer according to this interpretation is the Sharia-legislated prayer.

Some people said: It is 'dua' (supplication) according to its linguistic custom. Thus, the verse according to this interpretation would be similar to His saying, Almighty (6): {If you encounter a group, then stand firm and remember Allah} [Al-Anfal: 45]; because standing firm is patience, and remembering is supplication.

A third view, Mujahid (7) said: Patience in this verse is fasting; and from this Ramadan was called the month of patience. Thus, fasting and prayer in the verse according to this view are harmonious in that fasting prevents desires (8) and creates asceticism in the worldly life, and prayer forbids immorality and wrongdoing, and inspires humility.

(1) I'rab al-Qur'an 1/220. (2) In (d) and (z): disobedience. (3) Its documentation was mentioned previously 1/262. (4) He was a companion, resembled the Prophet ﷺ, campaigned in Khorasan, and Ali appointed him over Mecca. He was martyred in Samarkand during the days of Muawiya. Al-Siyar 3/440. (5) Reported by Saeed bin Mansur in his Sunan (231) (Tafsir), al-Tabari 1/620, and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman

(9682). (6) In (d): similar to the saying of Allah. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/137, and Tafsir al-Baghawi 1/68. (8) In (m): from desires.

सूरह अल-बकरा: आयत 45 - 66

दूसरा (बिंदु): अल्लाह ने अपनी किताब में आज्ञाकारिता पर धैर्य रखने और अवज्ञा से बचने का आदेश दिया है, और कहा: {और धैर्य रखो} [अल-अनफाल: 46]। कहा जाता है: फलां व्यक्ति गुनाहों से बचने में धैर्यवान है, और यदि वह गुनाहों से बचने में धैर्य रखता है, तो उसने आज्ञाकारिता में धैर्य रखा है; यह कही गई बातों में सबसे सही है। अन-नहहास (1) ने कहा: जो किसी मुसीबत (2) पर धैर्य रखे उसे 'साबिर' नहीं कहा जाता, बल्कि कहा जाता है: फलां चीज़ पर 'साबिर'। यदि आप बिना किसी शर्त के'साबिर' कहते हैं, तो यह वैसा ही है जैसा हमने उल्लेख किया है। अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {बेशक, धैर्य रखने वालों को उनका बदला बिना हिसाब के दिया जाएगा} [अज़-जुमर: 10]।

तीसरा (बिंदु): अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और नमाज़} ने अन्य सभी इबादतों में से नमाज़ का विशेष रूप से उल्लेख किया है ताकि इसके महत्व को दर्शाया जा सके। और जब भी कोई मामला उन्हें (नबी स.अ.व.) परेशान करता, तो वे नमाज़ की ओर मुड़ते (3)।

जो रिवायत किया गया है उनमें से एक यह है कि अब्दुल्ला इब्न अब्बास को उनके भाई कुथम (4) की मृत्यु की सूचना दी गई - और कहा गया: उनकी एक बेटी की - जब वे यात्रा पर थे। उन्होंने 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' पढ़ा और कहा: "एक पर्दा जिसे अल्लाह ने ढांक दिया, एक बोझ जिससे अल्लाह ने बचा लिया, और एक इनाम जिसे अल्लाह ने भेजा।" फिर वे रास्ते से एक तरफ हट गए और नमाज़ पढ़ी, फिर अपनी सवारी की ओर लौटे और यह आयत पढ़ रहे थे: {और धैर्य और नमाज़ के ज़रिए मदद मांगो} (5)। इस व्याख्या के अनुसार नमाज़ से मुराद शरीयत वाली नमाज़ है।

कुछ लोगों ने कहा: यह भाषाई अर्थ में 'दुआ' (प्रार्थना) है। इस व्याख्या के अनुसार यह आयत अल्लाह के इस कथन (6) के समान होगी: {जब तुम्हारा सामना किसी गिरोह से हो, तो डटे रहो और अल्लाह को याद करो} [अल-अनफाल: 45]; क्योंकि डटे रहना ही धैर्य है, और याद करना दुआ है।

तीसरा विचार, मुजाहिद (7) ने कहा: इस आयत में धैर्य से मुराद रोज़ा है; और इसी से रमज़ान को सब्र (धैर्य) का महीना कहा गया है। इस विचार के अनुसार आयत में रोज़ा और नमाज़ का उल्लेख सामंजस्यपूर्ण है क्योंकि रोज़ा इच्छाओं (8) को रोकता है और दुनिया से विरक्ति पैदा करता है, और नमाज़ अश्लीलता और बुराई से रोकती है, और विनम्रता पैदा करती है।

(1) इ'राब अल-क़ुरआन 1/220। (2) (द) और (ज़) में: अवज्ञा। (3) इसका प्रमाण पहले दिया जा चुका है 1/262। (4) वे एक सहाबी थे, नबी ﷺ के हमशक्ल थे, खुरासान के युद्ध में भाग लिया, और अली

ने उन्हें मक्का का गवर्नर नियुक्त किया। मुआविया के दिनों में समरकंद में शहीद हुए। अल-सियार 3/440। (5) सईद बिन मंसूर ने अपनी सुनन (231) (तफसीर) में, अल-तबरी 1/620 में, और अल-बैहकी ने शुअ़ब अल-ईमान (9682) में इसे उद्धृत किया है। (6) (द) में: अल्लाह के कथन के समान। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/137, और तफ़सीर अल-बग़वी 1/68। (8) (म) में: इच्छाओं से।

سورة البقرہ: آیت 45 - 66

دوسرا (نکتہ): اللہ تعالیٰ نے اپنی کتاب میں اطاعت پر صبر کرنے اور نافرمانی سے بچنے کا حکم دیا ہے، چنانچہ فرمایا: ﴿وَاصْبِرُواْ﴾ [الأنفال : 46]۔ کہا جاتا ہے: فلاں گناہوں سے صبر کرنے والا ہے، اور جب وہ گناہوں سے بچنے پر صبر کرتا ہے تو اس نے اطاعت پر صبر کیا ہے؛ یہ کہی گئی باتوں میں سب سے زیادہ صحیح ہے۔ النحاس (1) نے کہا: جو کسی مصیبت (2) پر صبر کرے اسے 'صابر' نہیں کہا جاتا، بلکہ کہا جاتا ہے: فلاں چیز پر 'صابر'۔ اگر آپ مطلقاً 'صابر' کہیں، تو اس کا وہی مطلب ہے جو ہم نے ذکر کیا۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿إِنَّمَا يُوَفَّى الصَّبِرُونَ أَجْرَهُم بِغَيْرِ حِسَابٍ﴾ [الزمر : 10]۔

تیسرا (نکتہ): اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَالصَّلَوٰةُ﴾ نے تمام عبادات میں سے خاص طور پر نماز کا ذکر کیا تاکہ اس کی اہمیت اجاگر ہو۔ اور آپ ﷺ کو جب بھی کوئی معاملہ درپیش ہوتا تو آپ نماز کی طرف لپکتے (3)۔

اور منقول روایات میں سے ایک یہ ہے کہ عبداللہ بن عباس کو ان کے بھائی قثم (4) کی وفات کی خبر دی گئی - اور کہا گیا: ان کی ایک بیٹی کی - جبکہ وہ سفر میں تھے۔ انہوں نے کلمہ استرجاع (إنا لله...) پڑھا اور کہا: "ایک پردہ جسے اللہ نے ڈھانپ دیا، ایک بوجھ جس سے اللہ نے کفایت کی، اور ایک اجر جسے اللہ نے آگے بھیجا۔" پھر وہ راستے سے ایک طرف ہٹ گئے اور نماز پڑھی، پھر اپنی سواری کی طرف لوٹے درآنحالیکہ وہ یہ پڑھ رہے تھے: ﴿وَاسْتَعِينُوا بِالصَّبرِ وَالصَّلَوٰةِ﴾ (5)۔ پس اس تاویل کے مطابق نماز سے مراد شرعی نماز ہے۔

ایک گروہ نے کہا: یہ لغوی عرف کے مطابق 'دعا' ہے۔ اس تاویل کے مطابق یہ آیت اللہ تعالیٰ کے اس قول (6) کے مشابہ ہوگی: ﴿إِذَا لَقِيتُمْ فِئَةً فَاثْبُتُوا وَاذْكُرُوا اللهَ﴾ [الأنفال : 45]؛ کیونکہ ثابت قدمی ہی صبر ہے، اور ذکر سے مراد دعا ہے۔

تیسرا قول، مجاہد (7) نے کہا: اس آیت میں صبر سے مراد روزہ ہے؛ اور اسی لیے رمضان کو صبر کا مہینہ کہا گیا ہے۔ اس قول کے مطابق آیت میں روزہ اور نماز کا آنا موزوں ہے کیونکہ روزہ شہوات (8) کو روکتا ہے اور دنیا سے بے رغبتی پیدا کرتا ہے، اور نماز بے حیائی اور برائی سے روکتی ہے، اور عاجزی و انکساری پیدا کرتی ہے۔

(1) إعراب القرآن 1 / 220۔ (2) (د) اور (ظ) میں: نافرمانی۔ (3) اس کی تخریج پہلے گزر چکی ہے 1 / 262۔ (4) وہ صحابی تھے، نبی ﷺ کے مشابہ تھے، خراسان میں جہاد کیا، اور علی نے انہیں مکہ کا گورنر مقرر کیا تھا۔ معاویہ کے دور میں سمرقند میں شہید ہوئے۔ السیر 3 / 440۔ (5) اسے سعید بن منصور نے اپنی سنن (231) (التفسیر)، طبری نے 1 / 620 اور بیہقی نے شعب الإیمان (9682) میں روایت کیا ہے۔ (6) (د) میں: اللہ کے قول کے مشابہ۔ (7) المحرر الوجیز 1 / 137، اور تفسیر البغوی 1 / 68۔ (8) (م) میں: شہوات سے۔

...and the Quran which mentions the Hereafter is read therein. And Allah knows best.

Fourth: Patience in the face of harm and in performing acts of obedience is a form of striving against the self (Jihad al-Nafs), suppressing its desires, and preventing its excesses. It is among the character traits of the Prophets and the righteous.

Yahya bin al-Yaman (1) said: Patience is to not wish for any state other than what Allah has provided for you, and to be pleased with what Allah has decreed for your worldly and otherworldly affairs.

Al-Sha'bi said: Ali (may Allah be pleased with him) said: "Patience in relation to faith is like the head's position in relation to the body" (2). Al-Tabari said: Ali (may Allah be pleased with him) spoke the truth, for faith is knowledge in the heart, affirmation with the tongue, and action with the limbs. Whoever does not have patience in performing actions with their limbs does not absolutely deserve the title of faith. Thus, patience in practicing the laws of religion is equivalent to the head of a human body, which is not complete without it.

Fifth: Allah the Almighty described the reward for deeds and set a limit and boundary for them. He said: "Whoever comes [on the Day of Judgement] with a good deed will have ten times the like thereof" [Al-An'am: 160]. He made the reward for charity in the cause of Allah more than this, saying: "The example of those who spend their wealth in the way of Allah is like a seed [of grain]..." [Al-Baqarah: 261] to the end of the verse. He made the reward for the patient ones without account, and praised its people, saying: "Indeed, the patient will be given their reward without account" [Az-Zumar: 10], and He said: "And whoever is patient and forgives - indeed, that is of the matters [requiring] determination" [Ash-Shura: 43]. It has been said that what is meant by "the patient" in His saying "Indeed, the patient will be given [their reward]" is the fasting people, because of what Allah the Almighty said in the Sahih Sunnah (4) on the authority of the Prophet ﷺ: "Fasting is for Me and I am the one who rewards for it" (5). So He did not mention a specific reward, just as He did not mention it for patience. And Allah knows best.

---

(1) Al-Hafiz, Abu Zakariya al-Ajli al-Kufi, from the men of Al-Tahdhib. Ibn al-Madini said: Truthful, then he became confused and his memory changed. He died in the year 189 AH. Tahdhib al-Kamal 32/55. (2) Narrated by Ibn Abi al-Dunya in 'Patience' (8) via Al-Sari bin Isma'il, from Al-Sha'bi, from Masruq who said: Ali said... Narrated also

by Waki' in 'Al-Zuhd' (199), Ibn Abi Shaybah 11/47, Abu Nu'aym in 'Al-Hilya' 1/75-76, and Al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' (40) through other routes from Ali (may Allah be pleased with him). (3) In (d): "Because". (4) In (z): "Sahih al-Bukhari". (5) A part of a hadith from Abu Hurairah narrated by Ahmad (10693), Al-Bukhari (1894), and Muslim (1151): (161).

सूरह अल-बकरा: आयत 45 | 67

...और इसमें वह कुरान पढ़ा जाता है जो आखिरत (परलोक) की याद दिलाता है। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

चौथी बात: कष्टों पर सब्र (धैर्य) करना और आज्ञाकारिता के कार्यों में धैर्य रखना 'जिहाद अल-नफ्स' (स्वयं के विरुद्ध संघर्ष) का एक हिस्सा है, अपनी इच्छाओं को दबाना और उसे अपनी सीमाओं को लांघने से रोकना है। यह नबियों और नेक लोगों के अखलाक (चरित्र) में से है।

यही बिन अल-यमन (1) ने कहा: सब्र यह है कि आप उस स्थिति के अलावा किसी और स्थिति की कामना न करें जो अल्लाह ने आपको दी है, और अल्लाह ने आपके दुनिया और आखिरत के मामलों के लिए जो फैसला किया है उस पर खुश रहें।

अल-शाबी ने कहा: अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "ईमान (विश्वास) में सब्र का वही स्थान है जो शरीर में सिर का है" (2)। अल-तबरी ने कहा: अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने सच कहा, क्योंकि ईमान दिल की मारिफ़त (ज्ञान), जुबान से इकरार (स्वीकृति) और अंगों के साथ अमल (कार्य) है। इसलिए जिस व्यक्ति के पास अपने अंगों के साथ अमल करने में सब्र नहीं है, वह पूर्ण रूप से ईमान का हकदार नहीं है। अत; शरीयत (धार्मिक कानूनों) के अमल पर सब्र करना मानव शरीर के सिर के समान है, जिसके बिना वह अधूरा है।

पाँचवीं बात: अल्लाह तआला ने कार्यों के प्रतिफल का वर्णन किया है और उनके लिए एक सीमा और हद निर्धारित की है। उसने कहा: "जो कोई एक नेकी लेकर आएगा उसे उसके जैसा दस गुना बदला मिलेगा" [अल-अनाम: 160]। उसने अल्लाह की राह में दान (सदका) का बदला इससे भी अधिक रखा है, फरमाया: "जो लोग अपना माल अल्लाह की राह में खर्च करते हैं, उनकी मिसाल उस दाने की सी है..." [अल-बकरा: 261] आयत के अंत तक। उसने सब्र करने वालों का अज्र (बदला) बिना किसी हिसाब के रखा है और उनके लोगों की प्रशंसा करते हुए फरमाया: "बेशक, सब्र करने वालों को उनका बदला बिना किसी हिसाब के भरपूर दिया जाएगा" [अज़-ज़ुमर: 10]। और फरमाया: "और जो कोई सब्र करे और माफ कर दे, तो बेशक यह हिम्मत के कामों में से है" [अश-शूरा: 43]। यह भी कहा गया है कि अल्लाह के इस कथन "बेशक सब्र करने वालों को भरपूर दिया जाएगा" में सब्र करने वालों से मुराद रोज़ा रखने वाले लोग हैं, क्योंकि अल्लाह तआला ने सहीह सुन्नत (4) में नबी ﷺ के हवाले से फरमाया है: "रोज़ा मेरे लिए है और मैं ही इसका बदला दूँगा" (5)। अतः उसने कोई

निर्धारित प्रतिफल नहीं बताया, जैसे कि उसने सब्र के लिए नहीं बताया। और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

---

(1) अल-हाफ़िज़, अबू ज़कारिया अल-इजली अल-कूफ़ी, तहज़ीब के लोगों में से। इब्न अल-मदीनी ने कहा: सच्चे थे, फिर वह विचलित हो गए और उनकी याददाश्त बदल गई, उनकी मृत्यु सन् 189 हिजरी में हुई। तहज़ीब अल-कमाल 32/55। (2) इब्न अबी अल-दुनिया ने 'अल-सब्र' (8) में अल-सरी बिन इस्माइल के माध्यम से अल-शाबी से, मसरुक से रिवायत की है, उन्होंने कहा: अली ने कहा... और इसे वकी ने 'अल-ज़ुहद' (199), इब्न अबी शैबा 11/47, अबू नुऐम ने 'अल-हिलिया' 1/75-76, और अल-बैहकी ने 'शुअब अल-ईमान' (40) में अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से अन्य माध्यमों से रिवायत किया है। (3) (द) प्रति में: "क्योंकि"। (4) (ज़) प्रति में: "सहीह अल-बुखारी"। (5) अबू हुरैरा की एक हदीस का हिस्सा जिसे अहमद (10693), बुखारी (1894), और मुस्लिम (1151): (161) ने रिवायत किया है।

سورہ البقرہ: آیت 45 | 67

اور اس میں وہ قرآن پڑھا جاتا ہے جو آخرت کی یاد دلاتا ہے۔ واللہ اعلم۔

چوتھی بات: اذیت پر صبر اور اطاعت کے کاموں میں استقامت جہادِ نفس کے باب سے ہے، اور نفس کو اس کی خواہشات سے روکنا اور اسے سرکشی سے باز رکھنا ہے، اور یہ انبیاء اور صالحین کے اخلاق میں سے ہے۔

یحییٰ بن الیمان(1) نے کہا: صبر یہ ہے کہ تم اللہ کی دی ہوئی حالت کے سوا کسی اور حالت کی تمنا نہ کرو، اور اللہ نے تمہاری دنیا و آخرت کے معاملے میں جو فیصلہ کر دیا ہے اس پر راضی رہو۔

اور شعبی نے کہا: علی رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "ایمان میں صبر کا وہی مقام ہے جو بدن میں سر کا ہے"(2)۔ طبری نے کہا: علی رضی اللہ عنہ نے سچ کہا، اور وہ اس لیے کہ(3) ایمان دل کی پہچان، زبان سے اقرار اور اعضاء سے عمل کا نام ہے، پس جس نے اپنے اعضاء سے عمل کرنے پر صبر نہ کیا وہ مطلق طور پر ایمان کا حقدار نہیں، پس شریعت کے احکام پر عمل کرنے میں صبر کرنا انسان کے بدن کے سر کے مانند ہے جس کے بغیر وہ مکمل نہیں ہوتا۔

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ نے اعمال کی جزا بیان فرمائی ہے اور اس کے لیے ایک انتہا اور حد مقرر کی ہے، پس فرمایا: ﴿جو کوئی ایک نیکی لائے گا تو اس کے لیے اس جیسی دس گنا جزا ہے﴾ [الأنعام: 160]، اور اللہ کی راہ میں صدقہ کرنے کی جزا اس سے بھی زیادہ رکھی، فرمایا: ﴿ان لوگوں کی مثال جو اللہ کی راہ میں اپنا مال خرچ کرتے ہیں اس دانے کی سی ہے...﴾ [البقرة: 261] آیت کے آخر تک، اور صبر کرنے والوں کا اجر بے حساب رکھا، اور ان کے لوگوں کی تعریف

کرتے ہوئے فرمایا: ﴿بے شک صبر کرنے والوں کو ان کا اجر بے حساب پورا دیا جائے گا﴾ [الزمر: 10]، اور فرمایا: ﴿اور یقیناً جس نے صبر کیا اور معاف کر دیا تو بے شک یہ ہمت کے کاموں میں سے ہے﴾ [الشوری: 43]، اور یہ بھی کہا گیا ہے: کہ اللہ کے اس قول "بے شک صبر کرنے والوں کو پورا دیا جائے گا" میں صبر کرنے والوں سے مراد روزہ دار ہیں، کیونکہ اللہ تعالیٰ نے صحیح سنت(4) میں نبی ﷺ سے نقل کیا ہے: «روزہ میرے لیے ہے اور میں ہی اس کی جزا دوں گا»(5) پس کوئی مقررہ ثواب ذکر نہیں فرمایا جیسا کہ صبر میں ذکر نہیں فرمایا۔ واللہ اعلم۔

---

(1) الحافظ، ابو زکریا العجلی الکوفی، تہذیب کے رجال میں سے، ابن المدینی نے کہا: سچے تھے، پھر وہ بدل گئے اور ان کا حافظہ متغیر ہو گیا، سن 189 ہجری میں وفات پائی۔ تہذیب الکمال 32/ 55- (2) اسے ابن ابی الدنیا نے 'الصبر' (8) میں سری بن اسماعیل کے واسطے سے شعبی سے، انہوں نے مسروق سے روایت کیا کہ علی رضی اللہ عنہ نے فرمایا... اور اسے وکیع نے 'الزہد' (199)، ابن ابی شیبہ 11/ 47، ابو نعیم نے 'الحلیہ' 1/ 75-76، اور بیہقی نے 'شعب الایمان' (40) میں علی رضی اللہ عنہ سے دیگر طرق سے روایت کیا ہے۔ (3) (د) میں ہے: "کیونکہ"۔ (4) (ظ) میں ہے: "صحیح البخاری"۔ (5) ابو ہریرہ کی ایک حدیث کا ٹکڑا جسے احمد (10693)، بخاری (1894)، اور مسلم (1151): (161) نے روایت کیا ہے۔

Page 68

Surah Al-Baqarah: Verse 45

Sixth: Among the virtues of patience is that Allah the Almighty has described Himself with it, as in the hadith of Abu Musa from the Prophet ﷺ who said: "None - or nothing - is more patient with harm he hears(1) than Allah the Almighty; they attribute a son to Him, and yet He grants them health and provides for them." Narrated by Bukhari(2). Our scholars said: Describing Allah the Almighty with patience is only in the sense of forbearance (Hilm), and the meaning of describing Him with forbearance is delaying the punishment from those who deserve it. Describing Him with patience did not occur in the Revelation (Quran), but rather occurred in the hadith of Abu Musa, and the people of the Sunnah interpreted it based on the interpretation of forbearance; this was said by Ibn Furak and others(3). And among His names is "Al-Sabur" (The Patient One) as an exaggeration of forbearance towards those who disobey Him.

Seventh: His saying: "And indeed, it is large (difficult)" [Quran 2:45]. Interpreters differed regarding the reference of the pronoun in His saying: "And indeed, it" (wa innaha). It was said(4): It refers to prayer specifically, because it is more difficult for the soul than fasting is. Patience here means fasting. Prayer is a prison for the souls(5), while fasting only involves restraining desires. One who is restrained from one or two desires(6) is not like one who is restrained from all desires. A fasting person is only restrained from the desire for women, food, and drink, then he indulges in other desires such as talking, walking, looking, and meeting people, so he finds comfort in those things for what he was denied. However, the person praying abstains from all of that(7); all his limbs are restricted by prayer from all desires. Therefore, prayer is harder on the soul and its struggle is more intense. That is why He said: "And indeed, it is large (difficult)".

And it was said: It refers to both of them (patience and prayer), but He alluded to the more predominant one, which is prayer; as in His saying: "And those who hoard gold and silver and spend it not in the way of Allah" [At-Tawbah: 34], and His saying: "And when they see some merchandise or some amusement they disperse headlong to it" [Al-Jumu'ah: 11]. So the pronoun returned to silver because it is more common and general, and to merchandise because it is better and more important.

(1) In (Z): "He hears it". (2) Sahih Bukhari (6099), and narrated by Ahmad (19527), and Muslim (2804). (3) Mushkil al-Hadith wa Bayanuhu, p. 485. (4) See opinions in Tafsir al-Tabari 1/621, al-Nukat wa al-Uyun 1/116, and al-Muharrar al-Wajiz 1/137. (5) In (D): "the soul". (6) In (Zah): "restraining a single desire, not one who is restrained from one or two desires". (7) In (D): "from all that with his limbs".

पृष्ठ ६८

सूरह अल-बकरा: आयत ४५

छठा: धैर्य के गुणों में से एक यह है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने स्वयं को इसके साथ वर्णित किया है, जैसा कि पैगंबर ﷺ से अबू मूसा की हदीस में है: "अल्लाह सर्वशक्तिमान से अधिक धैर्यवान उस हानि के प्रति कोई नहीं - या कोई चीज़ नहीं - जो वह सुनता है(१); वे उनके लिए संतान का दावा करते हैं, फिर भी वह उन्हें स्वास्थ्य देता है और उन्हें जीविका प्रदान करता है।" बुखारी(२) द्वारा वर्णित। हमारे विद्वानों ने कहा: अल्लाह सर्वशक्तिमान को धैर्य के साथ वर्णित करना केवल सहनशीलता (हिल्म) के अर्थ में है, और सहनशीलता के साथ उनके वर्णन का अर्थ उन लोगों से दंड को टालना है जो इसके पात्र हैं। धैर्य के साथ उनका वर्णन रहस्योद्घाटन (कुरान) में नहीं आया है, बल्कि अबू मूसा की हदीस में आया है, और सुन्नत के लोगों ने इसे सहनशीलता की व्याख्या के आधार पर व्याख्यायित किया है; यह इब्न फुरक और अन्य(३) द्वारा कहा गया था। और उनके नामों में "अस-सबूर" (अत्यधिक धैर्यवान) उनकी अवज्ञा करने वालों के प्रति सहनशीलता के अतिशयोक्ति के रूप में आया है।

सातवां: अल्लाह का कथन: "और वास्तव में, यह भारी है" [कुरान २:४५]। उनके कथन में सर्वनाम के संदर्भ के संबंध में व्याख्याकारों में मतभेद था: "और वास्तव में, यह" (व इन्नहा)। यह कहा गया था(४): यह विशेष रूप से नमाज (प्रार्थना) को संदर्भित करता है, क्योंकि यह आत्मा के लिए उपवास की तुलना में अधिक भारी है। यहाँ धैर्य का अर्थ उपवास है। नमाज आत्माओं के लिए एक जेल है(५), जबकि उपवास में केवल इच्छाओं को रोकना शामिल है। वह व्यक्ति जिसे एक या दो इच्छाओं(६) से रोका गया है, उस व्यक्ति की तरह नहीं है जिसे सभी इच्छाओं से रोका गया है। एक उपवास रखने वाला व्यक्ति केवल महिलाओं, भोजन और पेय की इच्छा से रोका जाता है, फिर वह बातचीत करने, चलने, देखने और लोगों से मिलने जैसी अन्य इच्छाओं में लिप्त हो जाता है, इसलिए वह उन चीजों में आराम पाता है जिनसे उसे वंचित किया गया था। हालाँकि, नमाज पढ़ने वाला व्यक्ति उस सब से बचता है(७); उसके सभी अंग नमाज द्वारा सभी इच्छाओं से प्रतिबंधित होते हैं। इसलिए, नमाज आत्मा पर अधिक कठिन है और उसका संघर्ष अधिक तीव्र है। इसीलिए अल्लाह ने कहा: "और वास्तव में, यह भारी है"।

और यह कहा गया था: यह उन दोनों (धैर्य और नमाज) को संदर्भित करता है, लेकिन उन्होंने अधिक प्रमुख एक की ओर इशारा किया, जो नमाज है; जैसा कि उनके कथन में है: "और जो लोग सोना और

चांदी जमा करते हैं और उसे अल्लाह के रास्ते में खर्च नहीं करते हैं" [अत-तौबा: ३४], और उनका कथन: "और जब वे कोई व्यापार या कोई मनोरंजन देखते हैं, तो वे उसकी ओर दौड़ पड़ते हैं" [अल-जुमुआ: ११]। अतः सर्वनाम चांदी की ओर लौट आया क्योंकि यह अधिक सामान्य और व्यापक है, और व्यापार की ओर क्योंकि यह बेहतर और अधिक महत्वपूर्ण है।

---

(१) (ज़) में: "वह उसे सुनता है"। (२) सहीह बुखारी (६०९९), और अहमद (१९५२७), और मुस्लिम (२८०४) द्वारा वर्णित। (३) मुश्किल अल-हदीथ व बयानहु, पृष्ठ ४८५। (४) तफ़सीर अल-तबरी १/६२१, अल-नुक़ात व अल-उयून १/११६, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३७ में राय देखें। (५) (द) में: "आत्मा"। (६) (ज़ाह) में: "एक ही इच्छा को रोकना, न कि वह जिसे एक या दो इच्छाओं से रोका गया है"। (७) (द) में: "अपने अंगों के साथ उस सब से"।

صفحہ 68

سورہ البقرہ: آیت 45

چھٹی بات: صبر کی فضیلت میں سے یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے اپنی ذات کو اس کے ساتھ موصوف کیا ہے، جیسا کہ ابوموسیٰ کی حدیث میں نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "اللہ تعالیٰ سے زیادہ کوئی شخص - یا کوئی چیز - اس اذیت پر جو وہ سنتا ہے(1) صبر کرنے والا نہیں ہے، وہ لوگ اس کے لیے اولاد کا دعویٰ کرتے ہیں اور وہ انہیں عافیت دیتا ہے اور انہیں رزق دیتا ہے۔" اسے بخاری نے روایت کیا ہے(2)۔ ہمارے علماء نے کہا: اللہ تعالیٰ کو صبر کے ساتھ موصوف کرنا محض حلم (بردباری) کے معنی میں ہے، اور اللہ تعالیٰ کے حلم کے ساتھ موصوف ہونے کا مطلب سزا کے مستحق لوگوں سے سزا میں تاخیر کرنا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا صبر کے ساتھ موصوف ہونا قرآن میں نہیں آیا بلکہ ابوموسیٰ کی حدیث میں آیا ہے، اور اہل سنت نے اس کی تاویل حلم کی تاویل پر کی ہے، یہ بات ابن فورک وغیرہ نے کہی ہے(3)۔ اور اللہ کے ناموں میں "الصبور" مبالغہ کے طور پر اس شخص کے لیے آیا ہے جو اس کی نافرمانی کرے۔

ساتویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِنَّهَا لَكَبِيرَةٌ﴾ (اور بے شک یہ بہت بھاری ہے)۔ اس میں ضمیر کے لوٹنے کے بارے میں مفسرین کا اختلاف ہوا ہے، چنانچہ کہا گیا(4): یہ خاص طور پر نماز کی طرف لوٹ رہی ہے، کیونکہ یہ نفس پر اتنی بھاری ہوتی ہے جتنا روزہ بھاری نہیں ہوتا، اور یہاں صبر سے مراد روزہ ہے۔ پس نماز نفسوں کا قید خانہ ہے(5)، جبکہ روزہ صرف خواہش کو روکنا ہے، اور جسے ایک یا دو خواہشات(6) سے روکا گیا ہو وہ اس کی طرح نہیں ہے جسے تمام خواہشات سے روک دیا گیا ہو، چنانچہ روزہ دار صرف عورتوں، کھانے اور پینے کی خواہش سے روکا جاتا ہے، پھر وہ بات چیت، چلنے پھرنے، دیکھنے اور لوگوں سے ملنے جلنے کی دیگر

خواہشات میں خوش رہتا ہے، اور ان چیزوں کے ذریعے ان چیزوں سے تسلی پاتا ہے جن سے اسے روکا گیا ہے۔ جبکہ نمازی ان تمام چیزوں سے رکا رہتا ہے(7)، پس اس کے تمام اعضاء نماز کی وجہ سے تمام خواہشات سے بندھے ہوتے ہیں۔ اور جب ایسا ہو تو نماز نفس پر زیادہ مشکل اور اس کی مشقت زیادہ سخت ہوتی ہے، اسی لیے فرمایا: ﴿وَإِنَّهَا لَكَبِيرَةٌ﴾۔

اور یہ بھی کہا گیا ہے: ضمیر ان دونوں (صبر اور نماز) کی طرف لوٹ رہی ہے، لیکن غالب چیز کے بارے میں کنایہ کیا گیا ہے اور وہ نماز ہے؛ جیسے اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَالَّذِينَ يَكْنِزُونَ الذَّهَبَ وَالْفِضَّةَ وَلَا يُنفِقُونَهَا فِي سَبِيلِ اللَّهِ﴾ [التوبہ: 34]، اور فرمان باری تعالیٰ: ﴿وَإِذَا رَأَوْا تِجَارَةً أَوْ لَهْوًا انفَضُّوا إِلَيْهَا﴾ [الجمعہ: 11]۔ چنانچہ کنایہ کو چاندی کی طرف پھیرا کیونکہ وہ زیادہ عام اور غالب ہے، اور تجارت کی طرف پھیرا کیونکہ وہ افضل اور زیادہ اہم ہے۔

---

(1) (ز) میں ہے: "یسمعہ" (وہ اسے سنتا ہے)۔ (2) صحیح بخاری (6099)، اور اسے احمد (19527) اور مسلم (2804) نے بھی روایت کیا ہے۔ (3) مشکل الحدیث وبیانہ ص 485۔ (4) دیکھیے طبری کی تفسیر 1/621، النکت والعیون 1/116، اور المحرر الوجیز 1/137 میں اقوال۔ (5) (د) میں ہے: "النفس" (نفس)۔ (6) (ظ) میں ہے: "ایک خواہش کو روکنا، پس وہ اس طرح نہیں ہے جس نے ایک یا دو خواہشات سے روکا ہو"۔ (7) (د) میں ہے: "اپنے اعضاء کے ساتھ ان تمام چیزوں سے"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 45 69

It was said: Since patience was included within prayer, the pronoun was returned to it (singular), as He said: "But Allah and His Messenger are more worthy for them to please" [At-Tawbah: 62]. He did not say: "please them both," because the Messenger's pleasure is included in the pleasure of Allah, the Majestic and Exalted. From this is the saying of the poet(1): Indeed, the prime of youth and the black hair, as long as they are not disobeyed, are madness. He did not say: "disobeyed (dual)," returning the pronoun to youth, because hair is included in it.

It was said: He returned the pronoun to each of them, but deleted it for brevity; Allah the Almighty said: "And We made the son of Mary and his mother a sign" [Al-Mu'minun: 50], and He did not say: "two signs." From this is the saying of the poet(2): So whoever's belongings happened to be in the city, indeed I and Qayyar(3) are strangers in it.

And another said: For every distress among distresses, there is relief, and the morning and evening, no success is with it(4). He meant: they are two strangers, no success with them both.

It was said: [Returning] to the act of worship which includes by meaning(5) the mention of patience and prayer. It was said: [Returning] to the verbal noun, which is seeking help (al-isti'anah) required by His saying: "And seek help." It was said: [Returning] to responding to Muhammad, peace be upon him; because patience and prayer were among what he was calling for. It was said: [Returning] to the Kaaba; because the command to pray is only towards it(6).

(1) He is Hassan ibn Thabit, and the verse is in his Diwan p. 473, and Amali Ibn al-Shajari 2/44. (2) He is Dabi' ibn al-Harith al-Burjumi, and the verse is from the testimonies of Al-Kitab 1/75, and it is in Al-Asma'iyyat p. 184, and Khizanat al-Adab 10/312. (3) It occurred in some sources: "wa Qayyaran," in the accusative case, as in Al-Kamil by Al-Mubarrad 1/416; he said: if it were nominative, it would be good. (4) The verse is by Al-Adhbat ibn Quray', as in Al-Bayan wa al-Tabyin 3/341, Al-Aghani 18/129, and Amali al-Qali 1/107, and the narration of the verse there is: "and the forgotten and the morning, no success with it." (5) In (D): its meaning included, and in (Z): includes them both. (6) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/116, Majma' al-Bayan 1/222, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/137, and Ibn Atiyyah rejected the last two sayings.

सूरह अल-बकराह: आयत 45 69

यह कहा गया है: चूंकि धैर्य नमाज़ (प्रार्थना) में शामिल था, इसलिए [सर्वनाम] उसी की ओर लौटाया गया (एकवचन), जैसा कि उन्होंने कहा: "और अल्लाह और उसका रसूल अधिक योग्य हैं कि वे उन्हें प्रसन्न करें" [अत-तौबा: 62]। उन्होंने यह नहीं कहा: "उन दोनों को प्रसन्न करें," क्योंकि रसूल की प्रसन्नता अल्लाह की प्रसन्नता में शामिल है, जो महान और प्रतापी है। इसी से कवि का कथन है(1): निश्चित रूप से, यौवन की शुरुआत और काले बाल, जब तक उनकी अवज्ञा नहीं की जाती, वे पागलपन हैं। उन्होंने "अवज्ञा (द्विवचन)" नहीं कहा, सर्वनाम को यौवन की ओर लौटाया, क्योंकि बाल उसी में शामिल हैं।

यह कहा गया है: उन्होंने सर्वनाम को उनमें से प्रत्येक की ओर लौटाया, लेकिन संक्षिप्तता के लिए हटा दिया; अल्लाह तआला ने कहा: "और हमने मरयम के बेटे और उसकी माँ को एक निशानी बनाया" [अल-मुमिनून: 50], और उन्होंने "दो निशानियाँ" नहीं कहा। इसी से कवि का कथन है(2): तो जिसके भी सामान शहर में रह गए, वास्तव में मैं और क़य्यार(3) उसमें अजनबी हैं।

एक अन्य ने कहा: दुखों में से प्रत्येक दुख के लिए राहत है, और सुबह और शाम, उनके साथ कोई सफलता नहीं है(4)। उनका अर्थ था: वे दो अजनबी हैं, उन दोनों के साथ कोई सफलता नहीं है।

यह कहा गया है: इबादत (उपासना) पर जो अर्थ में(5) धैर्य और नमाज़ के उल्लेख को शामिल करती है। यह कहा गया है: स्रोत (मस्दर) पर, जो कि "मदद मांगना" है जिसकी आवश्यकता उनके कथन "और मदद मांगो" से होती है। यह कहा गया है: मुहम्मद, उन पर शांति हो, को जवाब देने पर; क्योंकि धैर्य और नमाज़ उन चीज़ों में से थे जिनकी ओर वे बुला रहे थे। यह कहा गया है: काबा पर; क्योंकि नमाज़ का आदेश केवल उसी की ओर है(6)।

(1) वह हस्सान बिन साबित हैं, और पद उनके दीवान पृष्ठ 473, और अमाली इब्न अल-शजारी 2/44 में है। (2) वह दाबी बिन अल-हारिस अल-बुरजुमी हैं, और पद अल-किताब 1/75 के प्रमाणों में से है, और यह अल-असमाइयात पृष्ठ 184, और ख़िज़ानत अल-अदब 10/312 में है। (3) कुछ स्रोतों में "क़य्यारन" (कर्म कारक में) आया है, जैसा कि अल-मुबर्रद की अल-कामिल 1/416 में है; उन्होंने कहा: यदि यह कर्ता कारक होता तो अच्छा होता। (4) पद अल-अधबत बिन कुरैय का है, जैसा कि अल-बयान वा अल-तबयिन 3/341, अल-अघानी 18/129, और अमाली अल-क़ाली 1/107 में है, और वहाँ पद का पाठ है: "और विस्मृत और सुबह, उसके साथ कोई सफलता नहीं है।" (5) (डी) में:

इसके अर्थ में शामिल है, और (ज़ेड) में: उन दोनों को शामिल करता है। (6) अल-नुकात वा अल-उयून 1/116, मजमा अल-बयान 1/222, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/137, और इब्न अतिया ने अंतिम दो कथनों को खारिज कर दिया।

سورہ البقرہ: آیت 45 69

اور کہا گیا ہے: چونکہ صبر نماز میں داخل تھا، اس لیے [ضمیر] اسی کی طرف پھیری گئی (واحد)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "حالانکہ اللہ اور اس کا رسول زیادہ حق دار ہیں کہ وہ انہیں خوش کریں" [التوبہ: 62]۔ اور یہ نہیں فرمایا: "ان دونوں کو خوش کریں"، کیونکہ رسول کی رضا اللہ جل وعز کی رضا میں داخل ہے، اور اسی سے شاعر کا قول ہے(1): بے شک جوانی کا آغاز اور سیاہ بال، جب تک ان کی نافرمانی نہ کی جائے، دیوانگی ہے۔ اور اس نے "نافرمانی (تثنیہ)" نہیں کہا، ضمیر کو جوانی کی طرف پھیرا، کیونکہ بال اسی میں داخل ہیں۔

اور کہا گیا ہے: ضمیر کو ان میں سے ہر ایک کی طرف پھیرا، لیکن اختصار کے طور پر حذف کر دیا؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "اور ہم نے ابن مریم اور ان کی والدہ کو ایک نشانی بنایا" [المؤمنون: 50]، اور "دو نشانیاں" نہیں فرمایا۔ اور اسی سے شاعر کا قول ہے(2): پس جس کا سامان مدینہ میں ہو گیا ہو، پس میں اور قَیَّار(3) اس میں اجنبی ہیں۔

اور دوسرے نے کہا: ہر غم کے لیے غموں میں سے ایک وسعت ہے، اور صبح اور شام، اس کے ساتھ کوئی فلاح نہیں ہے(4)۔ اس کی مراد تھی: دو اجنبی، ان دونوں کے ساتھ کوئی فلاح نہیں۔

اور کہا گیا ہے: اس عبادت پر جو معنی کے اعتبار سے(5) صبر اور نماز کے ذکر کو شامل ہے۔ اور کہا گیا ہے: مصدر پر، اور وہ استعانت ہے جس کا تقاضا اس کا قول "واستعینوا" (اور مدد چاہو) کرتا ہے۔ اور کہا گیا ہے: محمد صلی اللہ علیہ وسلم کے جواب پر؛ کیونکہ صبر اور نماز ان چیزوں میں سے تھے جن کی وہ دعوت دیتے تھے۔ اور کہا گیا ہے: کعبہ پر؛ کیونکہ نماز کا حکم صرف اسی کی طرف ہے(6)۔

(1) وہ حسان بن ثابت ہیں، اور شعر ان کے دیوان ص 473، اور امالی ابن الشجری 2/44 میں ہے۔ (2) وہ ضابئ بن الحارث البرجمی ہیں، اور شعر کتاب (سیبویہ) کے شواہد 1/75 میں سے ہے، اور یہ الاصمعیات ص 184، اور خزانہ الادب 10/312 میں ہے۔ (3) بعض مآخذ میں "وقیاراً" (نصب کے ساتھ) واقع ہوا ہے، جیسا کہ الکامل للمبرد 1/416 میں ہے، اس نے کہا: اگر رفع کے ساتھ ہوتا تو اچھا ہوتا۔ (4) یہ شعر الاضبط بن قریع کا ہے، جیسا کہ البیان والتبیین 3/341، الاغانی 18/129، اور امالی القالی 1/107 میں ہے، اور وہاں شعر کی روایت ہے: "والمنسي والصبح لا فلاح معه"۔ (5) (د) میں: تضمنها المعنی، اور (ظ) میں: یتضمنهما۔ (6) النکت والعیون 1/116، مجمع البیان 1/222، اور المحرر الوجیز 1/137، اور ابن عطیہ نے آخری دو اقوال کو رد کر دیا ہے۔

Page 70 Surah Al-Baqarah: Verse 45

"And difficult" means: heavy, arduous, predicate of "inna". It is permissible in other than the Quran: "And it is a great thing (lakabeeratun)" (1). "Except for the humble" for it is light upon them. The masters of meanings said: except for those who were supported in pre-eternity with the characteristics of election (2) and guidance. Eighth: His Almighty saying: {Upon the humble (al-khashi'een)} Al-khashi'een is the plural of khashi', which is the humble. Humility (khushu'): is a state in the soul from which stillness and humility appear in the limbs (3). Qatada said: Humility is in the heart (4), and it is fear and lowering of the gaze in prayer. Al-Zajjaj said: The humble one is he upon whom the trace of submissiveness and humility is seen, like the humility of a house after being deserted. This is the origin. Al-Nabigha said: Ashes like eye-kohl, I can hardly discern them / and a trench like the base of a cistern, broken and humble (5). A humble place: one that cannot be navigated. And voices were hushed (khasha'at), meaning: became still. And the phlegm of his chest was subdued (khasha'at) (6): when he expelled thick saliva. And he lowered (khasha'a) his gaze: when he averted it. Al-khush'a (7): a piece of soft land. In the Hadith: "It was a piece of land (khush'a) on the water, then it was spread out after" (8). And a humble town: dusty with no house in it (9). Sufyan al-Thawri said: I asked al-A'mash about humility, and he said: O Thawri, you want to...

(1) I'rab al-Qur'an 1/220. (2) In (z): selection. (3) Al-Muharrar al-Wajeez 1/137. (4) Tafsir Abd al-Razzaq 3/43, and Tafsir al-Tabari 10/17. (5) His Diwan p. 79. (6) Thus in the manuscripts and (m), and in Mujmal al-Lugha 1/289 (and most of the speech in it): it is said: "his chest's phlegm was subdued (khasha'a)...", and thus it is in Jamharat al-Lugha 2/223, Al-Azhari said in Tahdhib al-Lugha 1/152: (meaning Ibn Durayd) made khasha'a transitive, and I have not heard it for anyone else. Al-Fayruzabadi said in Al-Qamus: So-and-so subdued (khasha'a) the phlegm of his chest, so it was cleared: if he expelled thick saliva. Its commentator said: intransitive and transitive. (7) In (z): and al-khashfa (with 'fa'). (8) We did not find it in the sources of Hadith, and it is in Al-Sihah (khash'a), and Jamharat al-Lugha 2/223, and Tahdhib al-Lugha 1/151, and Al-Nihaya (khash'a). (9) Mujmal al-Lugha 1/289.

पृष्ठ ७० सूरह अल-बकरा: आयत ४५

"और भारी" का अर्थ है: भारी, कठिन, "इन" का विधेय। कुरान के अलावा अन्य स्थानों पर यह अनुमत है: "और निश्चय ही वह एक बड़ी बात है (लकबीरतुन)" (१)। "विनम्र लोगों के अलावा" क्योंकि यह उन पर हल्का होता है। अर्थों के स्वामियों ने कहा: सिवाय उनके जिन्हें अनादि काल में चुनाव (२) और मार्गदर्शन की विशेषताओं के साथ सहायता दी गई थी। आठवाँ: अल्लाह का कहना है: {विनम्र लोगों पर (अल-ख़ाशिईन)} अल-ख़ाशिईन ख़ाशिअ का बहुवचन है, और वह विनम्र है। विनम्रता (खुशूअ): आत्मा में एक ऐसी स्थिति है जिससे अंगों में स्थिरता और विनम्रता प्रकट होती है (३)। क़तादा ने कहा: विनम्रता दिल में होती है (४), और वह प्रार्थना में डर और दृष्टि को नीचा करना है। अल-ज़ज्जाज ने कहा: विनम्र वह है जिस पर अधीनता और विनम्रता का प्रभाव देखा जाता है, जैसे कि वीरान होने के बाद घर की स्थिति। यही मूल है। अल-नाबिघा ने कहा: आंख के काजल जैसी राख जिसे मैं मुश्किल से पहचान पाता हूं / और एक हौज़ के आधार जैसी खाई, टूटी हुई और विनम्र (५)। एक विनम्र स्थान: जहां रास्ता न मिल सके। और आवाजें शांत हो गईं (ख़शात), यानी: स्थिर हो गईं। और उसके सीने का कफ शांत हो गया (६): जब उसने गाढ़ा थूक निकाला। और उसने अपनी दृष्टि नीची की (ख़शाअ): जब उसने इसे हटा लिया। अल-खुशअ (७): नरम भूमि का एक टुकड़ा। हदीस में: "यह पानी पर एक जमीन का टुकड़ा (खुशअ) था, फिर बाद में इसे फैलाया गया" (८)। और एक विनम्र शहर: धूल भरा जिसमें कोई घर न हो (९)। सुफ़ियान अल-थौरी ने कहा: मैंने अल-आमश से विनम्रता के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा: ऐ थौरी, तुम चाहते हो कि...

(१) इराब अल-कुरान १/२२०। (२) (ज़) में: चयन। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३७। (४) तफ़सीर अब्द अल-रज्ज़ाक ३/४३, और तफ़सीर अल-तबरी १०/१७। (५) उनका दीवान पृष्ठ ७९। (६) इसी तरह पांडुलिपियों और (एम) में, और मुजमल अल-लुगा १/२८९ में (और इसमें अधिकांश भाषण): कहा जाता है: "उसके सीने का कफ शांत हो गया (ख़शाअ)...", और इसी तरह यह जमहरत अल-लुगा २/२२३ में है, अल-अज़हरी ने तहज़ीब अल-लुगा १/१५२ में कहा: (अर्थात इब्न दुरैद) ने ख़शाअ को सकर्मक बनाया, और मैंने इसे किसी और के लिए नहीं सुना। अल-फ़ैरुज़ाबादी ने अल-क़ामूस में कहा: अमुक व्यक्ति ने अपने सीने के कफ को शांत किया, तो वह साफ हो गया: यदि उसने गाढ़ा थूक निकाला। इसके टीकाकार ने कहा: अकर्मक और सकर्मक। (७) (ज़) में: और अल-ख़शफ़ा (फा के साथ)। (८) हमें यह हदीस के स्रोतों में नहीं मिला, और यह अल-सिहाह (ख़शाअ), और जमहरत

अल-लुगा २/२२३, और तहज़ीब अल-लुगा १/१५१, और अल-निहाया (ख़शाअ) में है। (९) मुजमल अल-लुगा १/२८९।

صفحہ ۷۰ سورہ بقرہ: آیت ۴۵

«وكبيره» اس کا معنی ہے: بھاری، شاق، «إن» کی خبر۔ اور قرآن کے علاوہ میں جائز ہے: وإنه لكبيرة (۱)۔ «مگر عاجزی کرنے والوں پر» کیونکہ یہ ان پر ہلکی ہوتی ہے۔ اہلِ معانی نے کہا: مگر ان پر جنہیں ازل میں انتخاب (۲) اور ہدایت کی خصوصیات سے نوازا گیا۔ آٹھویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ عَلَى الْخَشِعِينَ ﴾ الخاشعون خاشع کی جمع ہے، اور وہ عاجزی کرنے والا ہے۔ اور خشوع: نفس میں ایک ایسی کیفیت ہے جس سے اعضاء میں سکون اور عاجزی ظاہر ہوتی ہے (۳)۔ قتادہ نے کہا: خشوع دل میں ہوتا ہے (۴)، اور وہ نماز میں خوف اور نظریں نیچی کرنا ہے۔ زجاج نے کہا: خاشع وہ ہے جس پر ذلت اور عاجزی کا اثر نظر آئے، جیسے ویران ہونے کے بعد گھر کا خشوع (خالی پن)۔ یہی اصل ہے۔ نابغہ نے کہا: آنکھ کے کاجل جیسی راکھ جسے میں بڑی مشکل سے پہچانتا ہوں / اور حوض کی بنیاد کی طرح ایک گڑھا، ٹوٹا ہوا اور خاشع (۵)۔ اور خاشع جگہ: جہاں راستہ نہ ملے۔ اور آوازیں پست ہو گئیں (خَشَعَت)، یعنی: تھم گئیں۔ اور اس کے سینے کا بلغم ساکن ہو گیا (۶): جب اس نے لیس دار تھوک پھینکا۔ اور اس نے اپنی نظر نیچی کی (خَشَعَ): جب اسے جھکا لیا۔ اور الخُشْعَة (۷): زمین کا ایک نرم ٹکڑا۔ حدیث میں ہے: "یہ پانی پر ایک خشک ٹکڑا (خُشْعَة) تھا، پھر اسے بعد میں پھیلایا گیا" (۸)۔ اور ایک خاشع بستی: غبار آلود جہاں کوئی گھر نہ ہو (۹)۔ سفیان ثوری نے کہا: میں نے اعمش سے خشوع کے بارے میں پوچھا، تو انہوں نے کہا: اے ثوری، تم چاہتے ہو کہ...

(۱) إعراب القرآن ۱/ ۲۲۰۔ (۲) (ز) میں: الاختيار (انتخاب)۔ (۳) المحرر الوجيز ۱/ ۱۳۷۔ (٤) تفسير عبد الرزاق ۳/ ٤۳ ، اور تفسير الطبري ۱۰/ ۱۷۔ (۵) ان کا دیوان ص ۷۹۔ (۶) مخطوطہ نسخوں اور (م) میں اسی طرح ہے، اور مجمل اللغہ ۱/ ۲۸۹ میں (اور اس میں غالب کلام): کہا

جاتا ہے: خَشَعَ خَراشيّ صدره ...، اور اسی طرح جمهرة اللغہ ۲/ ۲۲۳ میں ہے، ازہری نے تہذیب اللغہ ۱/ ۱۵۲ میں کہا: (یعنی ابن درید نے) خَشَعَ کو متعدی قرار دیا، اور میں نے کسی دوسرے سے یہ نہیں سنا۔ اور فیروز آبادی نے قاموس میں کہا: فلاں نے اپنے سینے کی خراش کو دور کیا (خَشَعَ)، تو وہ صاف ہو گئی: جب اس نے لیس دار تھوک پھینکا۔ اس کے شارح نے کہا: یہ لازم اور متعدی دونوں ہے۔ (۷) (ظ) میں: والخشفة (فا کے ساتھ)۔ (۸) ہمیں یہ حدیث کے ذرائع میں نہیں ملا، اور یہ الصحاح (خشع)، اور جمهرة اللغہ ۲/ ۲۲۳، اور تہذیب اللغہ ۱/ ۱۵۱، اور النہایہ (خشع) میں ہے۔ (۹) مجمل اللغہ ۱/ ۲۸۹۔

[You] want to be an Imam for people and you don't know [what] humility (khushu') is! I asked Ibrahim al-Nakha'i about humility, and he said: "O A'imash! You want to be an Imam for people, yet you don't know humility! Humility is not [merely] eating coarse food, wearing coarse clothes, or bowing the head! Rather, humility is seeing the noble and the lowly as equals in the truth, and being humble before Allah in every obligation He has prescribed for you."

Umar ibn al-Khattab looked at a young man who had bowed his head, and said: "O you! Raise your head, for humility does not exceed what is in the heart."

Ali ibn Abi Talib said: "Humility is in the heart, being gentle with your fellow Muslim, and not turning away during your prayer (1)." This meaning will be discussed in detail under Allah's saying: {Successful indeed are the believers, who are humble in their prayers} [Al-Mu'minun: 1-2].

So, whoever shows more humility to people than what is in his heart, he only displays hypocrisy upon hypocrisy. Sahl ibn Abdullah said: "One is not truly humble until every hair on his body becomes humble," because of the saying of Allah, Blessed and Exalted: {The skins of those who fear their Lord shiver therefrom} [Az-Zumar: 23].

I say: This is the praiseworthy humility; because when fear settles in the heart, it necessitates outward humility, and its possessor cannot help it, so you see him downcast, polite, and humble. The predecessors (Salaf) used to strive to hide what appeared of that. As for the blameworthy kind: it is affectation, forced weeping, and bowing the head, as the ignorant do, to be seen with an eye of righteousness and reverence. Those are deceptions from Satan and delusions from the human self. Al-Hasan narrated that a man sighed near Umar ibn al-Khattab as if he were grieving, so Umar poked him, or it was said: he punched him. Umar, may Allah be pleased with him, when he spoke, he was heard; when he walked, he was fast; and when he struck, he caused pain. He was a true ascetic and truly humble (2).

(1) Narrated by Ibn al-Mubarak in 'Al-Zuhd' (1148), Waki' in 'Al-Zuhd' (328), Abd al-Razzaq in his Tafsir (3/43), al-Tabari in his Tafsir (17/8), and al-Hakim in 'Al-Mustadrak' (2/393). In the versions of Ibn al-Mubarak, Waki', and al-Tabari: "soften your flank (kanafaka)", in Abd al-Razzaq's Tafsir: "your shoulders (katfayka)", and in al-Hakim: "your shoulder (katfaka)". (2) Narrated by Ibn Sa'd in 'Al-Tabaqat' (3/290) from Al-Shifa bint Abdullah, that she saw young men walking slowly and speaking quietly, so she

said: "What is this?" They said: "Ascetics." She said: "By Allah, Umar, when he spoke, he was heard..."

सूरह अल-बक़रह: आयत 45 | 71

[तुम] लोगों के लिए इमाम बनना चाहते हो और तुम्हें ख़ुशू (विनम्रता) का पता नहीं! मैंने इब्राहीम अल-नख़ई से ख़ुशू के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा: "ऐ ऐमश! तुम लोगों के लिए इमाम बनना चाहते हो, फिर भी तुम ख़ुशू नहीं जानते! ख़ुशू केवल मोटा खाना खाने, मोटे कपड़े पहनने या सिर झुकाने का नाम नहीं है! बल्कि, ख़ुशू यह है कि तुम हक़ (सत्य) के मामले में शरीफ़ और मामूली इंसान को बराबर देखो, और अल्लाह के हर उस फ़र्ज़ में उसके सामने झुक जाओ जो उसने तुम पर अनिवार्य किया है।"

उमर इब्न अल-खत्ताब ने एक युवक को देखा जिसने अपना सिर झुका रखा था, तो उन्होंने कहा: "ओ भाई! अपना सिर उठाओ, क्योंकि ख़ुशू दिल की चीज़ है, वह उससे ज़्यादा नहीं होती जो दिल में है।"

अली इब्न अबी तालिब ने कहा: "ख़ुशू दिल में है, और यह कि तुम एक मुस्लिम के लिए अपनी हथेलियाँ (स्वभाव) नरम रखो, और अपनी नमाज़ के दौरान इधर-उधर न देखो (1)।" यह अर्थ अल्लाह के इस कथन पर विस्तार से आएगा: {निश्चय ही वे मोमिन सफल हुए, जो अपनी नमाज़ों में ख़ुशू (विनम्रता) अपनाते हैं} [अल-मुमिनून: 1-2]।

अतः, जो व्यक्ति लोगों को अपने दिल की स्थिति से अधिक ख़ुशू दिखाता है, वह वास्तव में पाखंड पर पाखंड प्रदर्शित करता है। सहल इब्न अब्दुल्ला ने कहा: "कोई व्यक्ति तब तक सच्चा विनम्र नहीं होता जब तक कि उसके शरीर का हर बाल विनम्र न हो जाए," अल्लाह के इस कथन के कारण: {उन लोगों की खालें उससे कांप उठती हैं जो अपने रब से डरते हैं} [अज़-ज़ुमर: 23]।

मैं कहता हूँ: यही वह प्रशंसनीय ख़ुशू है; क्योंकि जब डर दिल में बस जाता है, तो वह बाहरी विनम्रता को अनिवार्य कर देता है, और उसका स्वामी उसे रोक नहीं पाता, इसलिए तुम उसे नीची नज़रों वाला, शिष्ट और विनम्र देखते हो। पूर्ववर्ती (सलफ़) इसे छिपाने की कोशिश करते थे जो प्रकट होता था। जहाँ तक निंदनीय प्रकार का प्रश्न है: तो वह बनावटीपन, ज़बरदस्ती रोना और सिर झुकाना है, जैसा कि अज्ञानी लोग करते हैं; ताकि उन्हें नेकी और श्रद्धा की दृष्टि से देखा जाए। वे शैतान के धोखे और मानवीय स्वयं (नफ़्स) के प्रलोभन हैं। अल-हसन ने रिवायत की है कि एक व्यक्ति ने उमर इब्न अल-खत्ताब के पास इस तरह आह भरी जैसे वह बहुत दुखी हो, तो उमर ने उसे कोहनी मारी, या कहा गया: उसे मुक्का मारा। उमर रज़ियल्लाहु अन्हु जब बोलते थे तो सुनाई देते थे, जब चलते थे तो तेज़ चलते थे, और जब प्रहार करते थे तो दर्द पहुँचाते थे। वह सच्चे उपासक और वास्तव में विनम्र थे (2)।

(1) इसे इब्न अल-मुबारक ने 'अज़-ज़ुहद' (1148), वकीअ ने 'अज़-ज़ुहद' (328), अब्दुल रज़्ज़ाक़ ने अपनी तफ़सीर (3/43), अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर (17/8) और अल-हाकिम ने 'अल-मुस्तदरक' (2/393) में उद्धृत किया है। इब्न अल-मुबारक, वकीअ और अल-तबरी के शब्दों में: "अपने पहलू (कनफ़का) को नरम करो", अब्दुल रज़्ज़ाक़ की तफ़सीर में: "अपने कंधों (कतफ़ैका) को", और अल-हाकिम में: "अपने कंधे (कतफ़का) को"। (2) इब्न साद ने 'अत-तबक़ात' (3/290) में अश्-शिफ़ा बिन्त अब्दुल्ला से उद्धृत किया है कि उन्होंने कुछ युवकों को देखा जो बहुत धीरे चल रहे थे और बहुत धीरे बोल रहे थे, तो उन्होंने पूछा: "यह क्या है?" उन्होंने कहा: "उपासक (नासिक)।" उन्होंने कहा: "अल्लाह की कसम, उमर जब बोलते थे, तो सुनाते थे..."

سورہ البقرہ: آیت 45 | 71

[تم] لوگوں کے امام بننا چاہتے ہو اور خشوع (عاجزی) کو نہیں جانتے! میں نے ابراہیم نخعی سے خشوع کے بارے میں پوچھا تو انہوں نے کہا: "اے اعمش! تم لوگوں کے امام بننا چاہتے ہو اور تمہیں خشوع کا پتہ نہیں! خشوع صرف کھردرا کھانا کھانے، کھردرا لباس پہننے اور سر جھکا لینے کا نام نہیں ہے! بلکہ خشوع یہ ہے کہ تم حق کے معاملے میں شریف اور معمولی آدمی کو برابر دیکھو، اور اللہ کے ہر اس فرض میں اس کے سامنے جھک جاؤ جو اس نے تم پر فرض کیا ہے۔"

عمر بن خطاب نے ایک نوجوان کو دیکھا جس نے اپنا سر جھکا رکھا تھا، تو آپ نے فرمایا: "اے شخص! اپنا سر اٹھاؤ، کیونکہ خشوع اس سے زیادہ نہیں ہوتا جو دل میں ہوتا ہے۔"

علی بن ابی طالب نے فرمایا: "خشوع دل میں ہے، اور یہ کہ تم مسلمان بھائی کے لیے اپنے آپ کو نرم رکھو، اور اپنی نماز میں ادھر ادھر مت دیکھو (1)۔" یہ مفہوم اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد پر تفصیل سے آئے گا: {یقیناً وہ مومن کامیاب ہو گئے، جو اپنی نمازوں میں خشوع (عاجزی) اختیار کرنے والے ہیں} [المؤمنون: 1-2]۔

پس جس نے لوگوں کو اپنے دل کی کیفیت سے زیادہ خشوع دکھایا، اس نے منافقت پر منافقت ظاہر کی۔ سہل بن عبداللہ نے کہا: "کوئی شخص اس وقت تک عاجزی والا نہیں ہوتا جب تک کہ اس کے بدن کا ہر بال عاجزی نہ اختیار کر لے،" اللہ تبارک و تعالیٰ کے اس قول کی وجہ سے: {ان لوگوں کی کھالیں اس سے کانپ اٹھتی ہیں جو اپنے رب سے ڈرتے ہیں} [الزمر: 23]۔

میں کہتا ہوں: یہی وہ پسندیدہ خشوع ہے؛ کیونکہ جب خوف دل میں گھر کر لیتا ہے، تو وہ ظاہری عاجزی کو لازم کر دیتا ہے، پھر اس کا مالک اسے روکنے کی قدرت نہیں رکھتا، چنانچہ تم اسے نظریں جھکائے ہوئے، باادب اور عاجزی والا دیکھتے ہو۔ اسلاف اس (کیفیت) کے اظہار کو چھپانے کی کوشش کرتے تھے۔ رہا وہ خشوع جو ناپسندیدہ ہے: تو وہ بناوٹ، زبردستی رونا اور سر جھکا لینا ہے، جیسا کہ جاہل لوگ کرتے ہیں؛ تاکہ انہیں نیکی اور بزرگی کی نظر سے دیکھا جائے، اور یہ شیطان کے دھوکے اور انسانی نفس کی فریب کاری ہے۔ حسن سے مروی ہے کہ ایک شخص نے عمر بن خطاب کے پاس اس طرح لمبی سانس لی جیسے وہ غمگین ہو، تو حضرت عمر نے اسے کچوکا لگایا، یا کہا گیا: اسے مکا مارا۔ حضرت عمر رضی اللہ عنہ جب بولتے تو سنائی دیتے (بلند آواز سے)، جب چلتے تو تیز چلتے، اور جب مارتے تو درد پہنچاتے تھے، اور وہ سچے عبادت گزار اور حقیقتاً خشوع والے تھے (2)۔

(1) اسے ابن المبارک نے 'الزہد' (1148)، وکیع نے 'الزہد' (328)، عبد الرزاق نے اپنی تفسیر (3/43)، طبری نے اپنی تفسیر (8/17) اور حاکم نے 'المستدرک' (2/393) میں روایت کیا ہے۔ ابن المبارک، وکیع اور طبری کی روایت میں: "اپنے پہلو (کنفک) کو نرم کرو"، عبد الرزاق کی تفسیر میں: "اپنے کندھوں (کتفیک) کو"، اور حاکم میں: "اپنے کندھے (کتفک) کو" کے الفاظ آئے ہیں۔ (2) ابن سعد نے 'الطبقات' (3/290) میں الشفاء بنت عبد اللہ سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کچھ نوجوانوں کو دیکھا جو بہت آہستگی سے چل رہے تھے اور دبی آواز میں بات کر رہے تھے، تو انہوں نے پوچھا: "یہ کیا ہے؟" لوگوں نے کہا: "یہ عبادت گزار ہیں۔" انہوں نے کہا: "اللہ کی قسم! حضرت عمر جب بولتے تھے تو سنائی دیتے تھے..."

Surah Al-Baqarah: Verse 46 72

Ibn Abi Najih narrated from Mujahid that he said: The humble ones (al-khashi'un) are the true believers (1). The Almighty's saying: {Who are certain that they will meet their Lord and that they will return to Him (46)} The Almighty's saying: {Who are certain} (Al-ladhina yazunnuna): "Al-ladhina" is in the genitive (khafḍ) case as an adjective for the humble ones, and it can be in the nominative (raf') case by way of disconnection (qat') (2). "Dhann" (here translated as certainty/assumption) here, according to the majority of scholars, means certainty (yaqin). From this is the Almighty's saying: {Indeed, I was certain that I would meet my account} [Al-Haqqah: 20], and His saying: {And the criminals will see the Fire and will be certain that they are to fall into it} [Al-Kahf: 53]. Duraid bin al-Simmah said (3): "I said to them: Assume [be certain of] two thousand well-armed men, whose leaders are in the Persian [armor] (4) of interlocking rings (5)." And Abu Du'ad said: "Many a worry I have relieved with a creditor, and hidden matters I have uncovered with certainties (6)." It has been said: It is correct for "dhann" in the verse to remain in its literal sense (assumption), and there is an implied meaning in the speech: "because of their sins," so it is as if they expect to meet Him as sinners, as mentioned by al-Mahdawi and al-Mawardi (7). Ibn Atiyyah said (8): This is forced (ta'assuf). Al-Farra' claimed that "dhann" can sometimes mean lying, but the Basrans do not recognize this.

(1) Reported by al-Tabari 1/622, and Ibn Abi Hatim (494). (2) It is also permissible for it to be in the accusative (nasb) case by way of disconnection; al-Ukbari said in al-Imla': It is permissible to be in the accusative case by implying: "I mean," and in the nominative case by implying: "they are," and Abu Hayyan said something similar in al-Bahr 1/185. (3) He was known by the kunya Abu Qurrah, from a branch of Jashm called Banu Ghaziyyah, and he was one of the famous brave men and men of opinion in the pre-Islamic era (Jahiliyyah). He was present at the Day of Hunayn with Hawazin as an old man and was killed among the polytheists. Al-Shi'r wa al-Shu'ara' 2/749. (4) In (d): "al-faris," and in (z) and (zha'): "al-farsy," and what is established is from (m), which is consistent with the sources. (5) The verse is in Tafsir al-Tabari 1/624, al-Addad p.14, al-Aghani 10/8, and Sharh Hamasa Abi Tammam by al-Marzuqi 2/812 with the author's narration, and in his Diwan p.48, and al-Asma'iyyat p.107, and it has: "publicly they thought." (6) Al-Addad by Ibn al-Anbari p.15, al-Nukat wa al-Uyun 1/116, and Tafsir al-Tabari 1/223, and the narration of Ibn al-Anbari and al-Tabarsi: "with determination" (bi-'azim). Ibn al-Anbari said: Its meaning is: I uncovered it with certainty, knowledge, and understanding. Abu Du'ad is Jariya bin al-Hajjaj al-Hudhaqi

al-Iyadi, and it was said: his name is Hanthalah bin al-Sharqi, and he is a pre-Islamic poet, and one of the proficient describers of horses. Al-Shi'r wa al-Shu'ara' 1/237-238. (7) Al-Nukat wa al-Uyun 1/116. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/138.

सूरा अल-बकरा: आयत 46 72

इब्न अबी नजीह ने मुजाहिद से रिवायत की कि उन्होंने कहा: विनयी (अल-खाशिअन) वे हैं जो सच्चे ईमान वाले हैं (1)। अल्लाह तआला का फरमान है: ﴿الَّذِينَ يَظُنُّونَ أَنَّهُم مُّلَاقُوا رَبِّهِمْ وَأَنَّهُمْ إِلَيْهِ﴾ (46) ﴿رَاجِعُونَ﴾ (जिन्हें पक्का विश्वास है कि वे अपने रब से मिलने वाले हैं और वे उसी की ओर पलटने वाले हैं)। अल्लाह तआला का फरमान: {जिन्हें पक्का विश्वास है} (अल-लजीना यज़ुन्नूना): "अल-लजीना" यहाँ विनयी (खाशिअन) के विशेषण (नअत) के रूप में जर्र (khafd) की स्थिति में है, और इसे कता (qat') के आधार पर रफ़अ (raf') की स्थिति में भी रखा जा सकता है (2)। अधिकांश विद्वानों के अनुसार यहाँ 'ज़न्न' (अनुमान/विश्वास) का अर्थ 'यकीन' (निश्चितता) है। इसी अर्थ में अल्लाह तआला का यह फरमान है: {मुझे विश्वास था कि मैं अपने हिसाब से रूबरू होने वाला हूँ} [अल-हाक्का: 20], और उसका फरमान: {और अपराधी आग को देखेंगे और उन्हें पक्का विश्वास हो जाएगा कि वे उसमें गिरने वाले हैं} [अल-कहफ़: 53]। दुरैद बिन अल-सिम्मा ने कहा (3): "तो मैंने उनसे कहा: दो हज़ार भारी हथियारों से लैस सैनिकों का यकीन करो, जिनके सरदार फारसी [कवच] (4) में सजे हुए हैं (5)।" और अबू दुआद ने कहा: "कितनी ही चिंताओं को मैंने एक कर्जदाता के ज़रिए दूर किया, और कितनी ही छिपी हुई बातों को मैंने यकीन (ज़न्न) से उजागर किया (6)।" यह भी कहा गया है: आयत में 'ज़न्न' अपने मूल अर्थ (अनुमान) पर हो सकता है, और बात में यह छिपा हुआ (इज़्मर) हो सकता है: "अपने पापों के कारण," तो मानो वे पापी होने के नाते उससे मिलने की उम्मीद करते हैं, जैसा कि अल-महदवी और अल-मावर्दी ने ज़िक्र किया है (7)। इब्न अतिय्या ने कहा (8): यह ज़बरदस्ती (तअस्सुफ़) है। अल-फ़र्रा ने दावा किया कि 'ज़न्न' कभी-कभी झूठ के अर्थ में भी आता है, लेकिन बसरा के विद्वान इसे नहीं मानते।

(1) इसे अल-तबरी 1/622 और इब्न अबी हातिम (494) ने निकाला है। (2) कता के आधार पर नसब (nasb) भी जायज़ है; अल-उकबरी ने अल-इमला में कहा: नसब की स्थिति में होना भी मुमकिन है, "अनी" (यानी) छुपाकर, और रफ़अ में, "हुम" (वे) छुपाकर, और इसी तरह अबू हय्यान ने अल-बहर 1/185 में कहा है। (3) उनकी कुनियत अबू कुर्रह थी, जश्म के एक कबीले से जिन्हें बनू ग़ज़िय्या कहा जाता है, और वह जाहिलिया के मशहूर बहादुरों और विचारकों में से एक थे। वह हवाज़िन के साथ हुनैन के दिन मौजूद थे जब वह एक बूढ़े व्यक्ति थे और उन मुशरिकों में मारे गए जो मारे गए थे। अश-शेर वश-शुअरा 2/749। (4) (द) में: 'अल-फारिस', और (ज़) और (ज़ॉ) में: 'अल-फारसी', और जो स्थापित है वह (म) से है, जो स्रोतों के अनुकूल है। (5) यह शेर तफसीर अल-तबरी 1/624, अल-

अददाद पृ.14, अल-अग़ानी 10/8, और अल-मरज़ुकी द्वारा अबू तमाम की हमासा की व्याख्या 2/812 में मुसन्निफ़ की रिवायत के साथ है, और उनके दीवान पृ.48 में, और अल-अस्मइय्यात पृ.107 में, और इसमें है: 'ظ علانيةनवा' (खुले तौर पर उन्होंने सोचा)। (6) इब्न अल-अंबारी द्वारा अल-अददाद पृ.15, अल-नुकत वल-उयून 1/116, और तफसीर अल-तबरी 1/223, और इब्न अल-अंबारी और अल-तबरसी की रिवायत: 'बी-अज़ीम' (दृढ़ संकल्प के साथ)। इब्न अल-अंबारी ने कहा: इसका अर्थ है: मैंने इसे यकीन, ज्ञान और समझ के साथ उजागर किया। और अबू दुआद, जारिया बिन अल-हज्जाज अल-हुज़ाकी अल-इयादी हैं, और कहा गया: उनका नाम हन्ज़ला बिन अल-शरकी है, और वह एक जाहिली शायर हैं, और घोड़ों के उत्कृष्ट वर्णनकर्ताओं में से एक हैं। अश-शेर वश-शुअरा 1/237-238। (7) अल-नुकत वल-उयून 1/116। (8) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/138।

سورة البقرہ: آیت 46 72

ابن ابی نجیح نے مجاہد سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: خاشعین (عاجزی کرنے والے) وہی ہیں جو حقیقت میں مومن ہیں (1)۔ ارشادِ باری تعالیٰ: ﴿الَّذِينَ يَظُنُّونَ أَنَّهُم مُّلَاقُوا رَبِّهِمْ وَأَنَّهُمْ إِلَيْهِ رَاجِعُونَ (46)﴾ (جو یقین رکھتے ہیں کہ وہ اپنے رب سے ملنے والے ہیں اور وہ اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں)۔ ارشادِ باری تعالیٰ: ﴿الَّذِينَ يَظُنُّونَ﴾ میں لفظ "الذین" خاشعین کی صفت (نعت) ہونے کی بنا پر حالتِ جر (خفض) میں ہے، اور اسے قطع (تقسیم) کی بنیاد پر حالتِ رفع میں پڑھنا بھی جائز ہے (2)۔ جمہور کے نزدیک یہاں "ظن" یقین کے معنی میں ہے۔ اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ قول ہے: ﴿إِنِّي ظَنَنتُ أَنِّي مُلَاقٍ حِسَابِيَهْ﴾ [الحاقہ: 20] (مجھے یقین تھا کہ میں اپنے حساب سے ملنے والا ہوں)، اور اللہ کا یہ قول: ﴿فَظَنُّوا أَنَّهُم مُّوَاقِعُوهَا﴾ [الکہف: 53] (انہیں یقین ہو گیا کہ وہ اس میں گرنے والے ہیں)۔ درید بن صمہ نے کہا (3): "تو میں نے ان سے کہا: دو ہزار بھاری ہتھیاروں سے لیس سپاہیوں کا یقین کرو، جن کے سردار فارسی [زِرہ] (4) کے بنے ہوئے حلقوں میں ہیں (5)۔" اور ابو دُؤاد نے کہا: "کتنی ہی پریشانیوں کو میں نے ایک قرض خواہ کے ذریعے دور کیا، اور پوشیدہ باتوں کو میں نے یقین (ظنون) سے بے نقاب کیا (6)۔" اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ: آیت میں "ظن" اپنے اصلی معنی (گمان) پر رہ سکتا ہے، اور کلام میں یہ پوشیدہ ہے: "اپنے گناہوں کی وجہ سے،" گویا وہ گناہگار ہونے کی حالت میں اس سے ملنے کی توقع رکھتے ہیں، اس کا ذکر مہدوی اور ماوردی نے کیا ہے (7)۔ ابن عطیہ نے کہا (8): یہ کھینچ تان (تعسُّف) ہے۔ اور فراء کا دعویٰ ہے کہ "ظن" کبھی جھوٹ کے معنی میں بھی آتا ہے، لیکن بصری اسے تسلیم نہیں کرتے۔

(1) اسے طبری 622/1 اور ابن ابی حاتم (494) نے روایت کیا ہے۔ (2) قطع کی بنا پر حالتِ نصب بھی جائز ہے؛ عکبری نے "الاملاء" میں کہا ہے: یہ بھی جائز ہے کہ یہ حالتِ نصب میں ہو،

"اعنی" (یعنی) کو مقدر مانتے ہوئے، اور حالتِ رفع میں "ہم" کو مقدر مانتے ہوئے؛ اسی طرح کی بات ابو حیان نے "البحر" 185/1 میں کہی ہے۔ (3) ان کی کنیت ابو قرہ تھی، جشم کے ایک قبیلے سے تعلق تھا جسے بنو غزیہ کہا جاتا ہے، وہ دورِ جاہلیت کے مشہور بہادروں اور صاحبِ رائے لوگوں میں سے تھے۔ وہ یومِ حنین میں ہوازن کے ساتھ شریک ہوئے حالانکہ وہ بوڑھے ہو چکے تھے اور وہ مشرکین کے ساتھ مارے گئے۔ الشعر والشعراء 749/2۔ (4) (د) میں: 'بالفارس' ہے، اور (ز) اور (ظ) میں: 'بالفارسی' ہے، اور جو یہاں ثابت ہے وہ (م) سے ہے، جو دیگر مآخذ کے مطابق ہے۔ (5) یہ شعر تفسیر طبری 624/1، الاضداد صفحہ 14، الاغانی 10/8 اور مرزوقی کی شرح حماسہ ابی تمام 812/2 میں مصنف کی روایت کے ساتھ موجود ہے، نیز ان کے دیوان صفحہ 48 اور اصمعیات صفحہ 107 میں بھی ہے، وہاں الفاظ ہیں: "علانیۃ ظنوا"۔ (6) الاضداد از ابن الانباری صفحہ 15، النکت والعیون 116/1، اور تفسیر طبری 223/1۔ ابن الانباری اور طبرسی کی روایت میں "بعزیم" کے الفاظ ہیں۔ ابن الانباری نے کہا: اس کا مطلب ہے: میں نے اسے یقین، علم اور معرفت کے ساتھ بے نقاب کیا۔ ابو دُؤاد دراصل جاریہ بن حجاج الحذاقی الایادی ہیں، اور کہا گیا کہ ان کا نام حنظلہ بن شرقی ہے، وہ ایک جاہلی شاعر ہیں اور گھوڑوں کی تعریف کرنے والے بہترین لوگوں میں شمار ہوتے ہیں۔ الشعر والشعراء 237/1 - 238۔ (7) النکت والعیون 116/1۔ (8) المحرر الوجیز 138/1۔

٧٣ Surah Al-Baqarah: Verse 47

The root and rule of "Dhann" (supposition/thought) is doubt with an inclination towards one of two beliefs. Sometimes it is used in the sense of certainty (Yaqeen)(1), as in this verse and others, but it is not used for something that has already become perceptible to the senses. The Arabs do not say about a visible, present man: "I think (adhunnu) this is a human." Rather, usage is found in what has not yet emerged into sensory perception, like this verse and poetry, and like the Almighty's saying: {and they were certain that they were to fall into it} [Al-Kahf: 53]. Certainty may also come in the sense of "Dhann" (supposition), and its explanation was previously given at the beginning of the Surah(2). You say: "Su'tu bihi dhannan" (I thought ill of him), and "Asa'tu bihi al-dhanna" (I made the thought bad). They include the 'alif' when they bring the Alif and Lam (3). And the meaning of {meeting their Lord} is: the reward of their Lord. It is said: It came on the form of "mufa'alah" (reciprocal action) though it is from one side, like: "Afahu Allah" (May Allah grant him health) (4). {And that they} with the fat-hah on the hamza: a conjunction with the first, and it is permissible to say "Wa innahum" with a kasra as a break (5). {To Him} meaning: to their Lord, and it is said: to His reward (6). {Returning} is an acknowledgement of the resurrection, the recompense, and the presentation before the Most High Sovereign. Almighty's saying: {O Children of Israel, remember My favor which I have bestowed upon you and that I preferred you over the worlds [47]} Almighty's saying: {O Children of Israel, remember My favor which I have bestowed upon you} was previously mentioned (7). {And that I preferred you over the worlds} means over the people of their time, and the people of every age are a "world". It is said: over all worlds, because of the Prophets He placed among them. And this is specific to them (8) and not for others (9).

---

(1) In (d): occurs. (2) 1/276. (3) Islah al-Mantiq p. 326, and Al-Sihah (su'a). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/138. (5) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/221. (6) Tafsir al-Fakhr al-Razi 3/50. (7) 2/6. (8) In (d): specific to them. (9) The commentators rejected this saying and mentioned that the nation of Muhammad ﷺ is the best of nations as evidenced by the Almighty's saying: {You are the best nation...}.

७३ सूरा अल-बकरा: आयत ४७

'ज़न्न' (धारणा/सोच) का मूल और नियम दो विश्वासों में से एक की ओर झुकाव के साथ संदेह है। कभी-कभी इसे निश्चितता (यक़ीन) के स्थान पर प्रयोग किया जाता है(१), जैसा कि इस आयत और अन्य में है, लेकिन इसका उपयोग उस चीज़ के लिए नहीं किया जाता है जो पहले से ही इंद्रियों के लिए प्रत्यक्ष हो चुकी है। अरब किसी दृश्यमान, उपस्थित व्यक्ति के बारे में यह नहीं कहते: "मुझे लगता है (अज़ुन्नु) कि यह एक इंसान है।" बल्कि, इसका उपयोग उन चीज़ों में पाया जाता है जो अभी तक इंद्रिय बोध में नहीं आई हैं, जैसे कि यह आयत और कविता, और जैसे सर्वशक्तिमान का कथन है: {और उन्होंने समझ लिया कि वे उसमें गिरने वाले हैं} [अल-कहफ़: ५३]। निश्चितता (यक़ीन) भी 'ज़न्न' के अर्थ में आ सकती है, और इसका स्पष्टीकरण सूरा की शुरुआत में पहले ही दिया जा चुका है(२)। और आप कहते हैं: "सूअतु बिही ज़न्नन" (मैंने उसके बारे में बुरा सोचा), और "असात बिही अल-ज़न्न" (मैंने सोच को बुरा बना दिया)। जब वे अलिफ़ और लाम लाते हैं तो वे अलिफ़ शामिल करते हैं(३)। और {अपने रब से मिलने वाले हैं} का अर्थ है: उनके रब का प्रतिफल। यह कहा गया है: यह "मुफ़ाअ़ला" (पारस्परिक क्रिया) के रूप में आया है जबकि यह एक तरफ से है, जैसे: "आफ़ाहु अल्लाह" (अल्लाह उसे स्वास्थ्य दे)(४)। {और वे} हमज़ा पर फतह के साथ: पहले के साथ एक संयोजन है, और इसे 'वा इन्नहुम' के रूप में कसरा के साथ विच्छेद के रूप में कहना जायज़ है(५)। {उसी की ओर} अर्थात: उनके रब की ओर, और कहा गया है: उसके प्रतिफल की ओर(६)। {लौटने वाले} पुनरुत्थान, प्रतिफल और सर्वोच्च सम्राट के सामने प्रस्तुति की स्वीकृति है। अल्लाह का कथन: {ऐ इस्राईल की संतान, मेरी उस नेमत को याद करो जो मैंने तुम पर की और यह कि मैंने तुम्हें संसार वालों पर श्रेष्ठता प्रदान की। ४७} अल्लाह का कथन: {ऐ इस्राईल की संतान, मेरी उस नेमत को याद करो जो मैंने तुम पर की} पहले उल्लेख किया जा चुका है(७)। {और यह कि मैंने तुम्हें संसार वालों पर श्रेष्ठता प्रदान की} इसका अर्थ उनके समय के लोगों पर है, और प्रत्येक युग के लोग एक "आलम" (संसार) होते हैं। और यह कहा गया: सभी संसारों पर, क्योंकि अल्लाह ने उनमें से पैगंबर बनाए। और यह उनके लिए विशेष है(८) और दूसरों के लिए नहीं(९)।

---

(१) (द) में: पड़ता है। (२) २७६/१। (३) इस्लाह अल-मन्तिक पृष्ठ ३२६, और अल-सिहाह (सुआ)। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १३८/१। (५) इ'राब अल-कुरान, अल-नहहास द्वारा २२१/१। (६) तफ़्सीर अल-फ़ख़्र अल-राज़ी ३/५०। (७) ६/२। (८) (द) में: उनके लिए विशेष। (९) टीकाकारों ने इस बात को

खारिज कर दिया और उल्लेख किया कि मुहम्मद ﷺ की उम्मत सबसे श्रेष्ठ उम्मत है, जिसका प्रमाण अल्लाह का यह कथन है: {तुम बेहतरीन उम्मत हो...}।

۷۳ سورہ البقرہ: آیت ۴۷

لفظ 'ظن' کی اصل اور قاعدہ دو باتوں میں سے ایک کی طرف رجحان کے ساتھ شک ہے، اور کبھی یہ یقین کے معنی میں بھی استعمال ہوتا ہے (۱)، جیسا کہ اس آیت اور دیگر مقامات پر ہے، لیکن اسے اس چیز کے بارے میں استعمال نہیں کیا جاتا جو حواس کے سامنے ظاہر ہو چکی ہو، عرب کسی سامنے موجود نظر آنے والے شخص کے بارے میں یہ نہیں کہتے: 'میرا گمان ہے کہ یہ انسان ہے'، بلکہ اس کا استعمال ان چیزوں میں ہوتا ہے جو ابھی حواس کے سامنے نہ آئی ہوں، جیسا کہ اس آیت اور اشعار میں ہے، اور جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿فَظَنُّوا أَنَّهُم مُّوَاقِعُوهَا﴾ [الکہف: ۵۳] (یعنی انہیں یقین ہو گیا کہ وہ اس میں گرنے والے ہیں)۔ اور کبھی 'یقین' بھی 'ظن' کے معنی میں آتا ہے، اور اس کا بیان سورہ کے شروع میں گزر چکا ہے(۲)۔ اور آپ کہتے ہیں: 'سُؤْتُ بِهِ ظَنّاً' (میں نے اس کے بارے میں برا گمان کیا)، اور 'أَسَأْتُ بِهِ الظَّنَّ' (میں نے گمان برا کیا)، جب وہ 'الف لام' لاتے ہیں تو اس میں 'الف' داخل کر دیتے ہیں(۳)۔ اور ﴿مُلَاقُوا رَبِّهِمْ﴾ کا معنی ہے: اپنے رب کی جزا (ثواب) پانے والے۔ اور کہا گیا: یہ 'مفاعلہ' کے وزن پر ہے جو ایک طرف سے ہوتا ہے، جیسے: 'عافاہ اللہ' (اللہ اسے عافیت دے)(۴)۔ ﴿وَأَنَّهُمْ﴾ (ہمزہ کے فتحہ کے ساتھ): پہلے پر عطف ہے، اور 'وإنهم' (ہمزہ کے کسرہ کے ساتھ) قطع کی بنا پر بھی جائز ہے(۵)۔ ﴿إِلَيْهِ﴾ یعنی: اپنے رب کی طرف، اور کہا گیا: اس کی جزا کی طرف(۶)۔ ﴿رَاجِعُونَ﴾ (لوٹنے والے ہیں) بعث، جزا اور بادشاہِ حقیقی (اللہ) کے سامنے پیش ہونے کا اقرار ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿يَبَنِي إِسْرَاوِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَنِّي فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعَالَمِينَ ٤٧﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿يَبَنِي إِسْرَاوِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ﴾ پہلے گزر چکا ہے(۷)۔ ﴿وَأَنِّي فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعَالَمِينَ﴾ اس سے مراد ان کے زمانے کے لوگ ہیں، اور ہر زمانے کے لوگ ایک 'عالم' ہیں۔ اور کہا گیا: تمام

جہان والوں پر، اس وجہ سے کہ اللہ نے ان میں انبیاء پیدا کیے۔ اور یہ فضیلت ان کے لیے خاص ہے(۸) دوسروں کے لیے نہیں(۹)۔

---

(۱) (د) میں ہے: یقع (واقع ہوتا ہے)۔ (۲) ۱/ ۲۷۶۔ (۳) إصلاح المنطق ص ۳۲۶، اور الصحاح (سوأ)۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۳۸۔ (۵) إعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۲۱۔ (۶) تفسیر الفخر الرازی ۳/ ۵۰۔ (۷) ۲/ ۶۔ (۸) (د) میں ہے: خاص بهم (ان کے ساتھ خاص ہے)۔ (۹) مفسرین نے اس قول کو رد کیا ہے، اور ذکر کیا ہے کہ امتِ محمدیہ ﷺ تمام امتوں سے افضل ہے، اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی دلیل سے: ﴿كُنتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ...﴾ (تم بہترین امت ہو)۔

74 Surah Al-Baqarah: Verse 48

Allah the Almighty said: {And fear a Day when no soul will suffice for another soul at all, nor will intercession be accepted from it, nor will compensation be taken from it, nor will they be aided [48].}

Allah the Almighty's saying: {And fear a Day when no soul will suffice for another soul at all} is a command carrying the meaning of a threat, and the discussion on piety (Taqwa) has already preceded (1).

"A Day" (Yawman) refers to: its punishment and its horror, and it is the Day of Resurrection. It is in the accusative case (mansub) as the object of "fear" (at-taqu). In non-Quranic Arabic, it would be permissible to say: "the day when it does not suffice" (yawma la tajzi), in the possessive construction (idhafa).

There is an omission (hadhf) in the phrasing about which grammarians differ. The Basrans said: the implied meaning is: "a day in which (fihi) no soul will suffice for another soul at all," then "in it" (fihi) was omitted (2), as in the saying: "And a day we witnessed Sulaym and 'Amir" (3) Meaning: we witnessed in it.

Al-Kisa'i said: This is an error; it is not permissible to omit "in it" (fihi), but the implication is: "fear a day that a soul suffices it (tajzihi)," then the pronoun "h" (it) was omitted. He only allows the omission of the pronoun "h" because, according to him, adverbs of time/place (zhuruf) cannot be omitted. He said: It is not permissible to say: "This is a man I intended," nor: "I saw a man I desire," while you mean: "intended him" or "desire in him." He said: If that were permissible, then "The one I spoke Zaid" would be permissible, meaning: "The one I spoke about (fihi) is Zaid" (4). Al-Farra' (5) said: It is permissible to omit both the pronoun "h" and "in it" (fihi).

= [You are the best nation] brought forth for mankind. Al-Hafiz Ibn Kathir mentioned this saying of Al-Qurtubi in his Tafsir (1/89) and followed it up by saying: "There is an observation regarding this, because 'the worlds' (al-'alamin) is general, including those before them and those after them from among the prophets. Ibrahim al-Khalil was before them and he is better than the rest of their prophets, and Muhammad was after them and he is the best of all creation, and the master of the sons of Adam in this world and the hereafter, peace and blessings of Allah be upon him."

(1) 1/248 - 251. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/221. (3) It is the opening of a verse by a man from the Banu 'Amir, and its second half is: "Little except the flowing spear-

thrusts are its gifts" It is in "Al-Kitab" 1/178, and "Amali ibn al-Shajari" 1/7, and according to them: "And a day... little," and in "Ma'ani al-Qur'an" by al-Zajjaj 1/128 with the same narration as the author. (4) In (m), (z), and (zh): meaning "spoke," and what is established is from (d). (5) Ma'ani al-Qur'an 1/31, and the author quoted it from him via al-Nahhas in "I'rab al-Qur'an" 1/221.

पृष्ठ 74 सूरह अल-बकरा: आयत 48

अल्लाह तआला का कथन है: {और उस दिन से डरो जिस दिन कोई किसी के कुछ काम न आएगा और न उसकी ओर से कोई सिफ़ारिश स्वीकार की जाएगी और न उसकी ओर से कोई अर्थदंड (फ़िद्या) लिया जाएगा और न ही उन्हें कोई सहायता मिल सकेगी [48]।}

अल्लाह तआला का कथन: {और उस दिन से डरो जिस दिन कोई किसी के कुछ काम न आएगा} एक आदेश है जिसका अर्थ चेतावनी (धमकी) है, और 'तक़वा' (धर्मपरायणता) पर चर्चा पहले ही हो चुकी है (1)।

"एक दिन" (यौमन) का अर्थ है: उसका दंड और उसका भय, और वह प्रलय का दिन (क़यामत) है। यह "डरो" (इत्तक़ू) क्रिया के कर्म (मफ़ऊल) के रूप में अक्यूज़ेटिव (मंसूब) है। क़ुरान के अतिरिक्त भाषा में 'यौम ला तजज़ी' (वह दिन जब काम न आए) संबंधवाचक (इज़ाफ़त) रूप में भी कहना संभव है।

वाक्य संरचना में एक शब्द का लोप (हज़्फ़) है जिस पर वैयाकरणों (नह्वियों) के बीच मतभेद है। बसरियों ने कहा: इसका अनुमानित अर्थ है: "एक दिन जिसमें (फ़िहि) कोई किसी के कुछ काम न आएगा," फिर "जिसमें" (फ़िहि) को हटा दिया गया (2), जैसा कि इस पद्य में है: "और एक दिन जब हमने सुलैम और आमिर का सामना किया" (3) अर्थात: हमने 'उसमें' सामना किया।

अल-किसई ने कहा: यह गलत है; "फ़िहि" (उसमें) को हटाना जायज़ नहीं है, बल्कि अनुमान यह है: "उस दिन से डरो जिसे कोई आत्मा पूरा करे (तजज़ीहु)," फिर सर्वनाम 'हु' को हटा दिया गया। वह केवल 'हु' को हटाने की अनुमति देते हैं क्योंकि उनके अनुसार क्रिया-विशेषण (ज़ुरूफ़) को हटाया नहीं जा सकता। उन्होंने कहा: यह कहना जायज़ नहीं है: "यह वह आदमी है जिसका मैंने इरादा किया," और न ही: "मैंने एक आदमी देखा जिसे मैं चाहता हूँ"; जबकि आपका अर्थ है: "उसका इरादा किया," और "उसमें रुचि रखता हूँ।" उन्होंने कहा: यदि वह जायज़ होता, तो यह भी जायज़ होता: "वह जिसके बारे में मैंने बात की ज़ैद है," जिसका अर्थ है: "वह जिसके बारे में (फ़िहि) मैंने बात की, वह ज़ैद है" (4)। अल-फ़र्रा (5) ने कहा: 'हु' और "फ़िहि" दोनों को हटाना जायज़ है।

= [तुम सबसे अच्छी उम्मत हो जो] लोगों के लिए निकाली गई। अल-हाफ़िज़ इब्न कसीर ने अपनी तफ़्सीर (1/89) में अल-कुर्तुबी के इस कथन का उल्लेख किया है और इसके बाद कहा है: "इसमें

विचार की आवश्यकता है, क्योंकि 'आलमीन' (संसार वाले) शब्द सामान्य है जिसमें उनसे पहले और उनके बाद के सभी नबी शामिल हैं। इब्राहिम खलील उनसे पहले थे और वह अन्य नबियों से श्रेष्ठ हैं, और मुहम्मद उनके बाद आए और वह समस्त सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ हैं, और दुनिया और आख़िरत में आदम की संतानों के सरदार हैं, उन पर अल्लाह की रहमत और सलामती हो।"

(1) 1/248 - 251। (2) नह्हास द्वारा इराब अल-क़ुरान 1/221। (3) यह बनू आमिर के एक व्यक्ति के पद्य का पूर्वार्द्ध है, और उसका उत्तरार्द्ध है: "बहाए जाने वाले नेज़ों के प्रहार के अलावा उसके उपहार कम ही हैं" यह "अल-किताब" 1/178 में है, और "अमाली इब्न अल-शजरी" 1/7 में, और उनके पास पाठ है: "और एक दिन... कम," और ज़ज्जाज की "मआनी अल-क़ुरान" 1/128 में भी लेखक के वर्णन के समान ही है। (4) (म), (ज़) और (ज़) प्रतियों में: 'तकलमतो' (मैंने बात की) के अर्थ में, और जो पाठ यहाँ स्थापित है वह (द) प्रति से है। (5) मआनी अल-क़ुरान 1/31, और लेखक ने इसे उनके माध्यम से अल-नह्हास की कृति "इराब अल-क़ुरान" 1/221 में उद्धृत किया है।

74 سورہ البقرہ : آیت 48

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿وَاتَّقُوا يَوْمًا لَّا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ وَلَا يُؤْخَذُ مِنْهَا عَدْلٌ وَلَا هُمْ يُنصَرُونَ ٤٨﴾۔ ترجمہ: {اور ڈرو اس دن سے جب کوئی جان کسی دوسری جان کے کچھ کام نہ آئے گی، اور نہ اس کی طرف سے کوئی سفارش قبول کی جائے گی، اور نہ اس سے کوئی بدلہ لیا جائے گا، اور نہ ہی ان کی مدد کی جائے گی۔ [48]}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَاتَّقُوا يَوْمًا لَّا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا﴾ ایک ایسا امر (حکم) ہے جس کا معنی وعید (دھمکی) ہے، اور تقویٰ پر گفتگو پہلے گزر چکی ہے (1)۔

"یوماً" (ایک دن) سے مراد اس کا عذاب اور اس کی ہولناکی ہے، اور وہ قیامت کا دن ہے، اور یہ "اتقوا" کا مفعول ہونے کی وجہ سے منصوب ہے۔ قرآن کے علاوہ (کلام عرب میں) "یومَ لا تجزی" اضافت کے ساتھ بھی (پڑھنا) جائز ہے۔

اور کلام میں ایک حذف ہے جس میں نحویوں کے درمیان اختلاف ہے؛ بصریوں نے کہا: تقدیر (اصل عبارت) یہ ہے: "یوماً لا تجزی فیہ نفس" (وہ دن جس میں کوئی جان کام نہ آئے گی)، پھر "فیہ" کو حذف کر دیا گیا (2)، جیسا کہ (شاعر نے) کہا: ویوماً شہدناہ سُلَیماً وعامراً (3) یعنی: شہدنا فیہ (ہم نے اس دن میں ان کا سامنا کیا)۔

اور کسائی نے کہا: یہ غلط ہے، "فیہ" کا حذف جائز نہیں، بلکہ تقدیر یہ ہے: "واتقوا یوماً لا تجزیہ نفس"، پھر "ہا" کو حذف کر دیا گیا۔ اور ان کے نزدیک "ہا" کا حذف اس لیے جائز ہے کیونکہ ظروف کا حذف جائز نہیں۔ انہوں نے کہا: یہ کہنا جائز نہیں: "ہذا رجلاً قصدتُ" (یہ وہ آدمی ہے جس کا میں نے قصد کیا)، اور نہ ہی: "رأیتُ رجلاً أرغبُ" (میں نے ایک آدمی دیکھا جس میں میں

رغبت رکھتا ہوں)؛ جبکہ آپ کی مراد ہو: "قصدتُ الیہ" یا "ارغبُ فیہ"۔ انہوں نے کہا: اگر یہ جائز ہوتا تو یہ کہنا بھی جائز ہوتا: "الذی تکلمتُ زیدٌ"، بمعنی: "الذی تکلمتُ فیہ زیدٌ" (جس کے بارے میں میں نے بات کی وہ زید ہے) (4)۔ اور فراء (5) نے کہا: "ہا" اور "فیہ" دونوں کا حذف جائز ہے۔

= [تم بہترین امت ہو جو] لوگوں کے لیے نکالی گئی۔ حافظ ابن کثیر نے اپنی تفسیر 1/89 میں قرطبی کا یہ قول ذکر کیا ہے، اور اس پر یہ تعاقب (تبصرہ) کیا ہے: "اس میں نظر (غور کی گنجائش) ہے، کیونکہ 'عالمین' کا لفظ عام ہے جو ان سے پہلے اور ان کے بعد کے تمام انبیاء کو شامل ہے، پس ابراہیم خلیل ان سے پہلے تھے اور وہ باقی انبیاء سے افضل ہیں، اور محمد ﷺ ان کے بعد تشریف لائے اور وہ تمام مخلوق سے افضل اور دنیا و آخرت میں اولادِ آدم کے سردار ہیں، صلوات اللہ و سلامہ علیہ۔"

(1) 1/248 - 251۔ (2) اعراب القرآن للنحاس 1/221۔ (3) یہ بنو عامر کے ایک شخص کے شعر کا پہلا مصرع ہے، اور اس کا دوسرا مصرع یہ ہے: قلیلاً سوی الطعن المنہال نوافلہ اور یہ "الکتاب" 1/178، اور "امالی ابن الشجری" 1/7 میں ہے، اور ان دونوں کے ہاں متن "ویوم... قلیل" ہے، اور زجاج کی "معانی القرآن" 1/128 میں مصنف کی روایت کے مطابق ہے۔ (4) نسخہ (م)، (ز) اور (ظ) میں: "بمعنی تکلمت" ہے، اور جو متن میں درج ہے وہ نسخہ (د) سے ہے۔ (5) معانی القرآن 1/31، اور مصنف نے اسے نحاس کے واسطے سے "اعراب القرآن" 1/221 میں نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 48 / 75

Al-Mahdawi narrated that both aspects are permissible according to Sibawayh (1), Al-Akhfash, and Al-Zajjaj (2).

The meaning of ﴿لَا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا﴾ (No soul shall avail another soul in anything) [Qur'an 2:48] is: No soul shall be taken (3) for the sin of another, nor shall it defend it in anything. You say: "This matter sufficed for me (jaza 'anni)" meaning it compensates, just as you say: "It settled for me (qada 'anni)". And "I made do with the thing (ijta'tu bihi)" when you are content with it. The poet said (4):

For treachery among people is a disgrace... and the free man makes do with the trotter (lower leg of a sheep).

Meaning: he is content with it.

In the hadith of Umar: "If you run water over water, it suffices for you" (5). He means: If you pour water over urine on the ground and it runs over it, the place is purified, and there is no need for you to wash that spot, or to dry (6) the water with a rag or something else, as many people do.

In the authentic hadith from Abu Burdah bin Niyar (7) regarding the sacrifice: "And it will not suffice for anyone after you" (8) meaning: it will not satisfy the requirement.

So the meaning of ﴿لَا تَجْزِي﴾ (shall not avail) is: it will not settle, nor satisfy, nor suffice, if there is nothing against it. If there is, then it avails, settles, and satisfies without its choice from its good deeds what is due of rights.

---

(1) Al-Kitab 1/386, and he mentioned omitting "fih" only. Ibn Al-Shajari narrated the permissibility of both matters from Sibawayh and Al-Akhfash, but Ibn Hisham followed it up in Al-Mughni p. 804, saying: "It is a strange transmission." Professor Al-Tanahi, may Allah have mercy on him, mentioned this in his commentary on Amali Ibn Al-Shajari 1/7. (2) Ma'ani al-Qur'an by Al-Akhfash 1/88-89, and Ma'ani al-Qur'an by Al-Zajjaj 1/129. (3) In (Zha): "not found", and in (Mim): "not taken into account", and what is confirmed is from (Dal) and (Zay). (4) He is Abu Hanbal Jariyah bin Murr al-Ta'i, and the verse is in Al-Muhabbar p. 353, and Al-Durrah al-Fakhirah fi al-Amthal al-Sa'irah 2/417, and Majma' al-Amthal 2/377. (5) We did not find it, and Ibn al-Athir mentioned it in Al-Nihayah (jaza). (6) In (Mim): drying. (7) His name is Hani, he witnessed Al-Aqaba, Badr, and the Prophetic scenes, and he was one of the described archers, he died in the year (42 AH). Al-Siyar 2/35. (8) Narrated by Ahmad (16485), and

also narrated by Al-Bukhari (955), and Muslim (1961) from the hadith of Al-Bara' bin Azib, may Allah be pleased with him, and in it that Abu Burdah bin Niyar - who is the maternal uncle of Al-Bara' - said: O Messenger of Allah, we have a young female goat (anaq) that is dearer to me than two sheep, will it suffice for me? He said: "Yes, and it will not suffice for anyone after you."

सूरा अल-बक़रा: आयत 48 / 75

अल-महदवी ने उल्लेख किया है कि सिबावेह (1), अल-अखफश और अल-ज़ज्जाज (2) के अनुसार दोनों पहलू जायज़ हैं।

और ﴿لَا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا﴾ (कोई आत्मा किसी दूसरी आत्मा के काम नहीं आएगी) [कुरान 2:48] का अर्थ है: किसी भी आत्मा को दूसरे के पाप के लिए नहीं पकड़ा जाएगा (3), और न ही वह उसके लिए कुछ बचाव कर पाएगी। आप कहते हैं: "इस मामले ने मेरे लिए काम कर दिया (जज़ा 'अन्नी)", जिसका अर्थ है वह पर्याप्त है, जैसे आप कहते हैं: "उसने मेरे लिए फैसला कर दिया (कदा 'अन्नी)"। और "मैंने चीज़ से काम चला लिया (इज्तात बिहि)" जब आप उससे संतुष्ट हों। कवि ने कहा (4):

क्योंकि लोगों के बीच विश्वासघात अपमान है... और स्वतंत्र व्यक्ति भेड़ के पैरों (खुर) से ही संतुष्ट हो जाता है।

अर्थात्: वह उसी से संतोष कर लेता है।

उमर की हदीस में है: "यदि आप पानी के ऊपर पानी बहाते हैं, तो वह आपके लिए पर्याप्त है" (5)। उनका अर्थ है: यदि आप जमीन पर मूत्र पर पानी डालते हैं और वह उसके ऊपर से बह जाता है, तो वह स्थान शुद्ध हो जाता है, और आपको उस स्थान को धोने या पानी को कपड़े या किसी अन्य चीज़ से सुखाने (6) की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि बहुत से लोग करते हैं।

कुर्बानी के संबंध में अबू बुरदा बिन नियार (7) से प्रामाणिक हदीस में है: "और यह आपके बाद किसी के लिए पर्याप्त नहीं होगा" (8) अर्थात: यह आवश्यकता पूरी नहीं करेगा।

अतः ﴿لَا تَجْزِي﴾ (काम नहीं आएगी) का अर्थ है: वह न तो चुकता करेगी, न संतुष्ट करेगी और न ही पर्याप्त होगी, यदि उसके विरुद्ध कुछ न हो। यदि हो, तो वह अपनी इच्छा के बिना अपने अच्छे कर्मों से उन अधिकारों को चुकता, पूरा और संतुष्ट करती है जो उस पर बकाया हैं।

---

(1) अल-किताब 1/386, और उन्होंने केवल "फ़िह" को हटाने का उल्लेख किया। इब्न अल-शजरी ने सिबावेह और अल-अखफश से दोनों बातों की अनुमति को उद्धृत किया, लेकिन इब्न हिशाम ने अल-मुगनी पृष्ठ 804 में इसका अनुसरण करते हुए कहा: "यह एक अजीब उल्लेख है।" प्रोफेसर अल-तनाही, अल्लाह उन पर दया करे, ने इब्न अल-शजरी की 'अमाली' 1/7 पर अपनी टिप्पणी में इसका

उल्लेख किया है। (2) अल-अखफश द्वारा मआनी अल-कुरान 1/88-89, और अल-ज़ज्जाज द्वारा मआनी अल-कुरान 1/129। (3) (ज़ा) में: "नहीं मिला", और (मीम) में: "पकड़ा नहीं जाएगा", और जो पुष्ट है वह (दाल) और (ज़ाय) से है। (4) वह अबू हंबल जारिया बिन मुर्र अल-ताई हैं, और छंद अल-मुहब्बर पृष्ठ 353, और अद-दुर्रह अल-फ़ाखिरा फ़ी अल-अमथाल अल-साइरा 2/417, और मजमा अल-अमथाल 2/377 में है। (5) हमें यह नहीं मिला, और इब्न अल-अथिर ने इसका उल्लेख अन-निहाया (जज़ा) में किया है। (6) (मीम) में: सुखाना। (7) उनका नाम हानी है, उन्होंने अल-अकाबा, बद्र और पैगंबर के दृश्यों को देखा, और वे वर्णित तीरंदाजों में से एक थे, उनका निधन वर्ष (42 हिजरी) में हुआ। अल-सियार 2/35। (8) अहमद (16485) द्वारा उद्धृत, और अल-बुखारी (955), और मुस्लिम (1961) द्वारा अल-बारा बिन अज़ीब (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से भी उद्धृत, और इसमें है कि अबू बुरदा बिन नियार - जो अल-बारा के मामा हैं - ने कहा: हे अल्लाह के रसूल, हमारे पास एक जवान बकरी (अनाक़) है जो मुझे दो भेड़ों से अधिक प्रिय है, क्या वह मेरे लिए पर्याप्त होगी? उन्होंने कहा: "हाँ, और यह आपके बाद किसी के लिए पर्याप्त नहीं होगी।"

سورہ البقرہ : آیت 48 / 75

المہدوی نے ذکر کیا کہ سیبویہ (1)، الاخفش اور الزجاج (2) کے نزدیک دونوں صورتیں جائز ہیں۔

اور ﴿لَا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا﴾ (کوئی جان کسی دوسری جان کے کچھ کام نہ آئے گی) [قرآن 2:48] کا مطلب یہ ہے کہ: کسی جان کو کسی دوسرے کے گناہ کے بدلے نہیں پکڑا جائے گا (3)، اور نہ ہی وہ اس سے کچھ دفاع کر سکے گی۔ آپ کہتے ہیں: "اس معاملے نے میری طرف سے کفایت کی (جزٰی عنی)"، یعنی اس نے بدلہ دے دیا، جیسے آپ کہتے ہیں: "اس نے میری طرف سے فیصلہ کر دیا (قضیٰ عنی)"۔ اور "میں نے اس چیز پر قناعت کی (اجتزأت بالشيء)" جب آپ اس پر کفایت کر لیں۔ شاعر نے کہا (4):

لوگوں میں غداری عار ہے... اور آزاد آدمی بکری کے پائے (کھر) پر ہی اکتفا کر لیتا ہے۔

یعنی: وہ اسی پر قناعت کر لیتا ہے۔

عمر کی حدیث میں ہے: "جب تم پانی پر پانی بہا دو تو وہ تمہارے لیے کافی ہے" (5)۔ ان کی مراد یہ ہے کہ: اگر تم زمین پر پیشاب پر پانی ڈال دو اور وہ اس کے اوپر سے بہہ جائے تو وہ جگہ پاک ہو جاتی ہے، اور تمہیں اس جگہ کو دھونے یا کپڑے وغیرہ سے پانی خشک کرنے (6) کی ضرورت نہیں ہے، جیسا کہ بہت سے لوگ کرتے ہیں۔

قربانی کے بارے میں ابو بردہ بن نیار (7) سے صحیح حدیث میں ہے: "اور تمہارے بعد کسی کے لیے کفایت نہیں کرے گا" (8) یعنی: کافی نہیں ہوگا۔

پس ﴿لَا تَجْزِي﴾ (کفایت نہیں کرے گا) کا مطلب ہے: وہ نہ تو ادا کرے گا، نہ کافی ہوگا اور نہ ہی پورا کرے گا، اگر اس پر کچھ واجب نہ ہو۔ اگر ہو، تو وہ اپنی مرضی کے بغیر اپنی نیکیوں سے ان حقوق کو ادا، پورا اور کافی کرتا ہے جو اس پر واجب ہیں۔

---

(1) الکتاب 1/386، اور انہوں نے صرف "فیہ" کے حذف کا ذکر کیا۔ ابن الشجری نے سیبویہ اور الاخفش سے دونوں باتوں کے جواز کو نقل کیا، لیکن ابن ہشام نے المغنی ص 804 میں اس کا تعاقب کرتے ہوئے کہا: "یہ ایک عجیب نقل ہے"۔ پروفیسر الطناحی رحمہ اللہ نے ابن الشجری کی 'امالی' 1/7 پر اپنے تبصرے میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (2) معانی القرآن للاخفش 1/88-89، اور معانی القرآن للزجاج 1/129۔ (3) (ظ) میں: "نہیں ملا"، اور (م) میں: "نہیں پکڑا جائے گا"، اور جو ثابت ہے وہ (د) اور (ز) سے ہے۔ (4) وہ ابو حنبل جاریہ بن مر الطائی ہیں، اور شعر المحبر ص 353، اور الدرۃ الفاخرۃ فی الامثال السائرۃ 2/417، اور مجمع الامثال 2/377 میں ہے۔ (5) ہمیں یہ نہیں ملا، اور ابن الاثیر نے اس کا ذکر النہایہ (جزٰی) میں کیا ہے۔ (6) (م) میں: خشک کرنا۔ (7) ان کا نام ہانی ہے، انہوں نے عقبہ، بدر اور نبوی مشاہد میں شرکت کی، اور وہ نامور تیر اندازوں میں سے تھے، ان کا انتقال سن (42 ہجری) میں ہوا۔ السیر 2/35۔ (8) اسے احمد (16485) نے روایت کیا، اور بخاری (955) اور مسلم (1961) نے بھی براء بن عازب رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا، اور اس میں ہے کہ ابو بردہ بن نیار - جو براء کے ماموں ہیں - نے کہا: اے اللہ کے رسول، ہمارے پاس بکری کا ایک بچہ (عناق) ہے جو مجھے دو بھیڑوں سے زیادہ پیارا ہے، کیا وہ میری طرف سے کافی ہوگا؟ آپ نے فرمایا: "ہاں، اور تمہارے بعد کسی کے لیے کافی نہیں ہوگا"۔

ירע (Page 76)

Surah Al-Baqarah: Verse 48

As mentioned in the hadith of Abu Hurairah that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Whoever has committed an injustice against his brother concerning his honor or anything else, let him seek his forgiveness today before there will be no Dinar nor Dirham; if he has good deeds, they will be taken from him in proportion to his injustice, and if he has no good deeds, some of the bad deeds of his companion will be taken and cast upon him." Narrated by Al-Bukhari (2). Similar to it is his other hadith about the bankrupt person, which we mentioned in "At-Tadhkirah" (3), narrated by Muslim (4).

And it was read as: "Tujza", with a damma on the 'ta' and a hamza (5), and it is said: "jaza" and "ajza'a" carry the same meaning. Some people differentiated between them, saying: "jaza" means settled and compensated, while "ajza'a" means sufficed and was enough. "Something sufficed me (ajza'ani)" means it was enough for me. The poet said: "And you sufficed the affairs of the worlds, and none could suffice but a perfect one and the son of a perfect one." (6)

Third (7): His saying, Exalted is He: {and no intercession shall be accepted from it} Intercession (Shafa'ah) is derived from "shaf'" (even), which are two (8). You say: it was odd (witr), then I made it even (shafa'tuhu) as a pair. Pre-emption (shuf'ah) comes from it; because you join the property of your partner to your property. The "Shafi'" is the owner of the right of pre-emption, and the owner of intercession. A "shafu'" she-camel is one followed by both a fetus and a calf. From it you say: the she-camel became "shafa'at". A "shafuh" she-camel is one that fills two milking vessels in one milking. And "I sought intercession (istashfa'tu) to so-and-so" means I asked him to intercede for me with him, and "I interceded (tashaffa'tu) to him for so-and-so and he accepted my intercession." (9)

So, intercession is then adding someone else to your status and means; it is truly: demonstrating the status of the intercessor with the one interceded with, and delivering a benefit (10) to the one interceded for.

---

(1) In (ظ): "fal-yastahillahu" (let him ask for his release). (2) Sahih al-Bukhari (2449). It is in al-Musnad (9615). His word: "mazlamah" with the three vowels on the 'lam'. See Fath al-Bari 5/101. (3) Page 267. (4) No. (2581), and it is in al-Musnad (8029). (5) It is the recitation of Abu al-Samal, as in the irregular recitations by Ibn Khalawayh p. 5,

and al-Muharrar al-Wajiz 1/139. (6) We did not find it; al-Samin al-Halabi cited it in ad-Durr al-Masun 1/337 without attribution. (7) Thus in the copies, it started with "the third" without mentioning the first and second. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/139, and after that it said: because the intercessor and the one interceded for are a pair (shaf'). (9) As-Sihah: (sh-f-'). (10) In (م): his benefit.

७६ (पृष्ठ ७६)

सूरह अल-बकराह: आयत ४८

जैसा कि अबू हुरैरा की हदीस में है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "जिस किसी ने अपने भाई के सम्मान या किसी अन्य चीज़ के बारे में कोई अन्याय किया हो, तो वह आज ही उससे क्षमा माँग ले, इससे पहले कि कोई दीनार या दिरहम न रहे; यदि उसके पास नेक काम होंगे, तो उसके अन्याय के अनुपात में उससे ले लिए जाएंगे, और यदि उसके पास नेक काम नहीं होंगे, तो उसके साथी के कुछ बुरे काम ले लिए जाएंगे और उस पर डाल दिए जाएंगे।" अल-बुखारी (२) ने इसे उद्धृत किया है। इसके समान दिवालिया व्यक्ति के बारे में उनकी दूसरी हदीस है, जिसका उल्लेख हमने "अत-तज़किराह" (३) में किया है, जिसे मुस्लिम (४) ने उद्धृत किया है।

और इसे पढ़ा गया है: "तुजज़ा" (tujza), 'ता' पर दम्मा और हम्ज़ा के साथ (५), और कहा जाता है: "जज़ा" (jaza) और "अजज़ा" (ajza'a) का एक ही अर्थ है। कुछ लोगों ने उनके बीच अंतर किया है, उन्होंने कहा: "जज़ा" का अर्थ है निपटान करना और बदला देना। और "अजज़ा" का अर्थ है: पर्याप्त होना और काफी होना। "चीज़ ने मुझे पर्याप्त किया" (ajza'ani al-shay') का अर्थ है: वह मेरे लिए काफी थी। कवि ने कहा: "और आपने दुनिया के मामलों को पर्याप्त किया, और केवल एक पूर्ण और पूर्ण का पुत्र ही पर्याप्त हो सकता था।" (६)

तीसरा (७): अल्लाह तआला का कथन: {और उससे कोई शफ़ाअत (सिफारिश) स्वीकार नहीं की जाएगी} 'शफ़ाअत' शब्द 'शफ़' (shaf') से निकला है, जिसका अर्थ है 'जोड़ा' या 'सम' (even), और वे दो (८) होते हैं। आप कहते हैं: वह अकेला (वित्र) था, फिर मैंने उसे जोड़कर सम (शफ़'तुहू) बना दिया। 'शुफ़आ' (shuf'ah - अग्रक्रयाधिकार) इसी से है; क्योंकि आप अपने साथी की संपत्ति को अपनी संपत्ति में मिला लेते हैं। 'शफ़ीअ' (shafi'): शुफ़आ का मालिक है, और शफ़ाअत (सिफारिश) करने वाला है। 'शफ़ूअ' ऊंटनी: वह है जिसके पीछे उसका गर्भ और बच्चा दोनों हों। आप उससे कहते हैं: ऊंटनी 'शफ़अत' (shafa'at) हो गई। 'शफ़ूह' ऊंटनी: वह है जो एक बार दुहने में दो बर्तनों को भर देती है। और "मैंने फलां से शफ़ाअत चाही" (istashfa'tu) का अर्थ है: मैंने उससे मेरे लिए सिफारिश करने को कहा, और "मैंने फलां के लिए उसके पास सिफारिश की (tashaffa'tu) और उसने मेरी सिफारिश मान ली।" (९)

अतः शफ़ाअत तब अपनी प्रतिष्ठा और साधन के साथ दूसरे को जोड़ना है; यह वास्तव में है: सिफारिश करने वाले के पद को उसके सामने प्रकट करना जिससे सिफारिश की जा रही है, और जिसके लिए सिफारिश की जा रही है उसे लाभ (१०) पहुँचाना।

---

(१) (ظ) में: "फलयस्तहिल्लहु" (falyastahillahu)। (२) सहीह अल-बुखारी (२४४९)। यह अल-मुसनद (९६१५) में है। उनका शब्द: "मज़लमह" 'लाम' पर तीन स्वरों के साथ, देखें फतह अल-बारी ५/१०१। (३) पृष्ठ २६७। (४) संख्या (२५८१), और यह अल-मुसनद (८०२९) में है। (५) यह अबू अल-समाल का पाठ है, जैसा कि इब्न खलवेह द्वारा अनियमित पाठों (p. 5) और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३९ में है। (६) हमें यह नहीं मिला; अल-समीन अल-हलबी ने इसे अद-दुर अल-मसून १/३३७ में बिना किसी संदर्भ के उद्धृत किया है। (७) प्रतियों में ऐसा ही है, पहली और दूसरी का उल्लेख किए बिना तीसरी से शुरू हुआ। (८) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१३९, और उसके बाद उनका यह कथन आया: क्योंकि सिफारिश करने वाला और जिसके लिए सिफारिश की गई है, वे एक जोड़ा (शफ़') हैं। (९) अल-सिहाह: (श-फ़-अ)। (१०) (م) में: उसका लाभ।

٧٦ (صفحہ ٧٦)

سورة البقرہ : آیت ٤٨

جیسا کہ ابو ہریرہ کی حدیث میں ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «جس کے پاس اپنے بھائی کے حوالے سے اس کی عزت یا کسی اور چیز کا کوئی حق (مظلمہ) ہو، تو وہ آج ہی اس سے معاف کروا لے، اس سے پہلے کہ نہ دینار ہو اور نہ درہم؛ اگر اس کے پاس کوئی نیک عمل ہوا تو اس کے ظلم کے بقدر اس سے لے لیا جائے گا، اور اگر اس کے پاس نیکیاں نہ ہوئیں تو اس کے ساتھی کے گناہ اس پر لاد دیے جائیں گے»۔ اسے بخاری (٢) نے روایت کیا ہے۔ اور اسی طرح مفلس کے بارے میں ان کی دوسری حدیث ہے، جسے ہم نے «التذکرہ» (٣) میں ذکر کیا ہے، اور اسے مسلم (۴) نے روایت کیا ہے۔

اور پڑھا گیا ہے: «تُجزی»، تاء پر پیش اور ہمزہ کے ساتھ (۵)، اور کہا جاتا ہے: «جَزَی» اور «أجزأ» ایک ہی معنی میں ہیں، اور ایک قوم نے ان کے درمیان فرق کیا ہے، انہوں نے کہا: «جَزَی» بدلہ دینے اور پورا کرنے کے معنی میں ہے۔ اور «أجزأ» کے معنی ہیں: کفایت کرنا اور کافی ہونا، «أجزأني الشيءُ» یعنی: اس نے مجھے کفایت کی، شاعر نے کہا: «اور تم نے جہانوں کے معاملات میں کفایت کی اور کوئی کفایت نہیں کر سکتا سوائے کامل اور کامل کے بیٹے کے» (۶)

تیسری بات (٧): اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَعَةٌ﴾ (اور نہ اس سے کوئی سفارش قبول کی جائے گی)۔ شفاعت «الشَّفْع» سے ماخوذ ہے، اور وہ دو (٨) (جوڑا) ہوتے ہیں، آپ کہتے ہیں: وہ طاق (وتر) تھا، پھر میں نے اسے جوڑا (شفع) بنا دیا، اور «الشُّفْعة» (حقِ شفعہ) اسی سے ہے؛ کیونکہ آپ اپنے شریک کی ملکیت کو اپنی ملکیت کے ساتھ ملا لیتے ہیں، اور «الشفیع»: حقِ شفعہ رکھنے والا، اور سفارش کرنے والا ہے، اور «ناقة شَفُوع»: وہ اونٹنی جس کے ساتھ اس کا حمل

اور بچہ دونوں جمع ہوں، آپ اس سے کہتے ہیں: «شَفَعتِ الناقةُ»، اور «ناقة شَفُوح»: وہ جو ایک ہی وقت دو برتنوں کو دودھ سے بھر دے، اور «استشفعتُ إلى فلان»: میں نے اس سے مطالبہ کیا کہ وہ میرے لیے سفارش کرے، اور «تشَفَّعتُ إليه في فلان»: میں نے اس کے پاس فلاں کے لیے سفارش کی تو اس نے میری سفارش قبول کر لی۔ (۹)

پس شفاعت درحقیقت دوسرے کو اپنی جاہ ومنزلت اور وسیلے کے ساتھ ملانا ہے، تو یہ حقیقی طور پر: جس کے پاس سفارش کی جا رہی ہے اس کے نزدیک سفارش کرنے والے کے مرتبے کا اظہار ہے، اور جس کے لیے سفارش کی جا رہی ہے اسے نفع (۱۰) پہنچانا ہے۔

---

(۱) (ظ) میں: فليستحلله۔ (۲) صحیح بخاری (۲۴۴۹)۔ یہ مسند (۹۶۱۵) میں ہے، ان کا قول: «مظلمة» لام کی تینوں حرکات کے ساتھ، دیکھئے فتح الباری ۱۰۱/۵۔ (۳) ص ۲٦۷۔ (۴) نمبر (۲۵۸۱)، اور یہ مسند (۸۰۲۹) میں ہے۔ (۵) یہ ابوالسمال کی قرات ہے، جیسا کہ ابن خالویہ کی شاذ قراتوں (ص ۵) اور المحرر الوجیز ۱۳۹/۱ میں ہے۔ (۶) ہمیں یہ نہیں ملا، اور السمین الحلبی نے اسے الدر المصون ۳۳۷/۱ میں بغیر کسی نسبت کے ذکر کیا ہے۔ (۷) نسخوں میں اسی طرح ہے، پہلی اور دوسری کا ذکر کیے بغیر تیسری سے شروع کیا۔ (۸) المحرر الوجیز ۱۳۹/۱، اور اس کے بعد ان کا یہ قول آیا: کیونکہ سفارش کرنے والا اور جس کے لیے سفارش کی گئی ہے وہ جوڑا (شفع) ہیں۔ (۹) الصحاح: (شفع)۔ (۱۰) (م) میں: اس کا نفع۔

Surah Al-Baqarah: Verse 48 77

Fourth: The doctrine of the People of Truth is that intercession (shafa'ah) is a reality. The Mu'tazilites denied it and claimed eternal punishment in Hell for the believers among the sinners who entered the Fire (1). However, reports are concordant that those among the monotheistic sinners from the nations of the prophets are the ones who will receive the intercession of the intercessors from among the angels, prophets, martyrs, and the righteous (2).

The Judge relied on two things in refuting them (3): First: The numerous reports that have been transmitted consecutively (mutawatir) in meaning. Second: The consensus (ijma') of the predecessors (Salaf) on receiving these reports with acceptance. No disapproval was shown by any of them in any era. The emergence of their narration, their unanimity on their authenticity, and their acceptance of them are definitive evidence of the correctness of the creed of the People of Truth and the corruption of the Mu'tazilite doctrine.

If they say: Texts from the Book have come that necessitate the rejection of these reports, such as His saying: {The wrongdoers will have no devoted friend and no intercessor [who is] obeyed} [Ghafir: 18]. They say: Committers of major sins are wrongdoers. And He said: {Whoever does an evil will be recompensed for it} [An-Nisa: 123], {nor will intercession be accepted from it}.

We say: These verses are not general for every wrongdoer, and generality has no specific form (4). Thus, these verses do not encompass everyone who does (5) evil and every soul. Rather, what is meant by them are the disbelievers and not the believers; based on the reports mentioned regarding that. Also, Allah Almighty has affirmed intercession (6).

---

(1) See on the issue of intercession Tafsir al-Fakhr al-Razi 3/55-66. (2) Hadith of Abu Sa'id al-Khudri on intercession in Ahmad (11898), Bukhari (7439), and Muslim (182). (3) In (d), (z), and (m): "against them in refutation," and what is established is from (zha). (4) Abu al-Muzaffar al-Sam'ani said in "Qawati' al-Adilla" p. 246: For generality, there is a form necessitating the inclusion of the entire genus linguistically and legally. This is the saying of the majority of jurists and many theologians. Abu al-Hasan al-Ash'ari and his followers said: Generality has no specific established form in the language. The words that appear in the chapter allow for both generality and

particularity. Therefore, when they occur, one must pause until evidence points to what was intended by them. (5) In (zha): "worked." (6) In (zha): "the intercession."

सूरा अल-बकरा: आयत 48 77

चौथा: सत्य के अनुयायियों (अहल अल-हक़) का मत है कि शफ़ाअत (सिफारिश) सत्य है, और मुताज़िला ने इसका खंडन किया है, और उन गुनहगार मोमिनों को नरक की आग में हमेशा के लिए रहने वाला बताया है जो इसमें प्रवेश कर गए (1)। और खबरें (हदीसें) इस बात पर एकमत हैं कि भविष्यद्वक्ताओं की उम्मतों के एकेश्वरवादी गुनहगारों में से जो लोग हैं, वे ही फ़रिश्तों, नबियों, शहीदों और नेक लोगों की शफ़ाअत प्राप्त करेंगे (2)।

काज़ी ने उनके खंडन में दो चीज़ों का सहारा लिया है (3): पहला: वे अनेक हदीसें जो अर्थ में मुतवातिर (लगातार और प्रामाणिक) रूप से आई हैं। दूसरा: इन हदीसों को स्वीकार करने पर पूर्वजों (सलफ़) की आम सहमति (इज्मा)। किसी भी युग में उनमें से किसी ने भी इस पर आपत्ति नहीं जताई। उनका वर्णन सामने आना, उनकी प्रामाणिकता पर उनका एकमत होना, और उन्हें स्वीकार करना, अहल अल-हक़ के अक़ीदे की सच्चाई और मुताज़िला के धर्म की खराबी का पुख्ता प्रमाण है।

अगर वे कहें: कुरान से ऐसे अंश आए हैं जो इन खबरों को रद्द करना आवश्यक बनाते हैं, जैसे कि अल्लाह का फरमान: {जालिमों का न कोई सच्चा मित्र होगा और न कोई ऐसा सिफ़ारिशी जिसकी बात मानी जाए} [गाफिर: 18]। वे कहते हैं: बड़े पाप (कबीरा गुनाह) करने वाले जालिम हैं। और अल्लाह ने फरमाया: {जो कोई बुरा काम करेगा उसे उसका बदला दिया जाएगा} [अन-निसा: 123], {और न ही उसकी ओर से कोई सिफारिश स्वीकार की जाएगी}।

हम कहते हैं: ये आयतें हर ज़ालिम के लिए सामान्य (आम) नहीं हैं, और सामान्यता (उमूम) का कोई विशिष्ट स्वरूप नहीं होता (4)। अतः ये आयतें हर बुराई करने वाले (5) और हर आत्मा को शामिल नहीं करती हैं। बल्कि इनसे तात्पर्य काफ़िर (अविश्वासी) हैं, मोमिन नहीं; इस बारे में आई हदीसों के प्रमाण के आधार पर। और साथ ही, अल्लाह तआला ने शफ़ाअत को साबित किया है (6)।

---

(1) शफ़ाअत के मसले पर देखें तफ़सीर अल-फख़्र अल-राज़ी 3/55-66। (2) शफ़ाअत के बारे में अबू सईद अल-खुद़री की हदीस अहमद (11898), बुखारी (7439) और मुस्लिम (182) में। (3) (द), (ज़) और (म) में: "ر" में उन पर, और जो प्रमाणित है वह (ज़्हा) से है। (4) अबू अल-मुज़फ़्फ़र अल-समअनी ने "क़वाति अल-अदिल्ला" पृष्ठ 246 में कहा है: सामान्यता (उमूम) के लिए एक ऐसा स्वरूप है जो भाषाई और शरीयत के रूप में पूरी नस्ल/प्रकार को शामिल करने की आवश्यकता रखता है। यह अधिकांश न्यायविदों और कई धर्मशास्त्रियों का मत है। अबू अल-हसन अल-अशअरी और उनके

अनुयायियों ने कहा: भाषा में सामान्यता के लिए कोई निर्धारित स्वरूप नहीं है। इस विषय में जो शब्द आते हैं उनमें सामान्यता और विशेषता दोनों की संभावना होती है। इसलिए, जब वे सामने आते हैं, तो तब तक रुकना अनिवार्य है जब तक कि कोई प्रमाण यह न बता दे कि उनसे क्या अभिप्राय है। (5) (ज़्हा) में: "कार्य किया"। (6) (ज़्हा) में: "शफ़ाअत (सिफारिश)"।

سورة البقرہ: آیت 48 77

چوتھی بات: اہل حق کا مذہب یہ ہے کہ شفاعت حق ہے، اور معتزلہ نے اس کا انکار کیا ہے، اور ان گناہگار مومنین کو جہنم میں ہمیشہ رہنے والا قرار دیا جو آگ میں داخل ہو گئے (1)۔ جبکہ اخبار (احادیث) متواتر ہیں کہ انبیاء کی امتوں کے گناہگار موحدین ہی وہ لوگ ہیں جنہیں فرشتوں، نبیوں، شہیدوں اور صالحین کی شفاعت حاصل ہو گی (2)۔

قاضی نے ان کے رد میں دو چیزوں کا سہارا لیا ہے (3): پہلا: وہ کثیر احادیث جو معنی کے اعتبار سے متواتر ہیں۔ دوسرا: ان احادیث کو قبول کرنے پر سلف کا اجماع۔ کسی بھی دور میں ان میں سے کسی سے بھی اس پر نکیر (اعتراض) ظاہر نہیں ہوا۔ ان روایات کا ظہور، ان کی صحت پر ان کا اتفاق، اور ان کا قبول کرنا، اہل حق کے عقیدے کی صحت اور معتزلہ کے مذہب کے فساد پر قطعی دلیل ہے۔

اگر وہ کہیں: کتاب اللہ سے ایسی نصوص وارد ہوئی ہیں جو ان اخبار کے رد کو واجب کرتی ہیں، جیسے اللہ کا قول: {ظالموں کے لیے نہ کوئی دلی دوست ہوگا اور نہ کوئی ایسا سفارشی جس کی بات مانی جائے} [غافر: 18]۔ وہ کہتے ہیں: کبیرہ گناہوں کے مرتکب ظالم ہیں، اور اللہ نے فرمایا: {جو کوئی برا کام کرے گا اسے اس کا بدلہ دیا جائے گا} [النساء: 123]، {اور نہ ہی اس سے کوئی شفاعت قبول کی جائے گی}۔

ہم کہتے ہیں: یہ آیات ہر ظالم کے لیے عام نہیں ہیں، اور عموم کا کوئی (مخصوص) صیغہ نہیں ہوتا (4)، لہذا یہ آیات ہر برائی کرنے والے (5) اور ہر نفس کو شامل نہیں ہیں۔ بلکہ ان سے مراد کافر ہیں نہ کہ مومن؛ اس بارے میں وارد شدہ اخبار کی دلیل کی بنیاد پر۔ نیز، اللہ تعالیٰ نے شفاعت کو ثابت فرمایا ہے (6)۔

(1) مسئلہ شفاعت کے لیے دیکھئے تفسیر الفخر الرازی 3 / 55-66۔ (2) شفاعت کے بارے میں ابو سعید خدری کی حدیث احمد (11898)، بخاری (7439)، اور مسلم (182) میں ہے۔ (3) (د) اور (ز) اور (م) میں: "علیہم فی الرد"، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے۔ (4) ابو المظفر السمعانی نے "قواطع الادلۃ" صفحہ 246 میں کہا ہے: عموم کے لیے ایسا صیغہ ہے جو لغت اور شرع کے اعتبار سے جنس کے استیعاب (پوری نوع کو شامل کرنے) کا تقاضا کرتا ہے، اور یہ جمہور فقہاء اور بہت سے متکلمین کا قول ہے۔ جبکہ ابو الحسن اشعری اور ان کے متبعین نے کہا: لغت میں عموم کے لیے کوئی موضوع (مقرر کردہ) صیغہ نہیں ہے، بلکہ اس باب میں جو الفاظ وارد ہوتے ہیں وہ عموم اور خصوص دونوں کا احتمال رکھتے ہیں، لہذا جب وہ وارد ہوں تو ان میں توقف واجب ہے جب تک کہ کوئی دلیل اس بات پر دلالت نہ کر دے کہ ان سے کیا مراد ہے۔ (5) (ظ) میں: "عمل"۔ (6) (ظ) میں: "الشفاعۃ"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 48 78 ...for some groups and denied it for others. He said regarding the state of the disbelievers: "So no intercession of intercessors will benefit them" [Al-Muddaththir: 48], and He said: "And they do not intercede except for him with whom He is pleased" [Al-Anbiya: 28]. And He said: "And intercession does not benefit with Him except for him to whom He permits" [Saba: 23]. So we know from these sentences that intercession only benefits the believers, not the disbelievers.

The commentators have unanimously agreed that what is meant by the Almighty's saying: "And fear a Day when no soul will suffice for another soul at all, nor will intercession be accepted from it": is the disbelieving soul, not every soul. Although we say that the punishment is general for every oppressive sinner, we do not say: they are eternally in it, because of the reports we have narrated, and because of His saying: "And He forgives what is less than that for whom He wills" [An-Nisa: 48], and His saying: "Indeed, no one despairs of relief from Allah except the disbelieving people" [Yusuf: 87].

If they say: the Almighty has said: "And they do not intercede except for him with whom He is pleased", and the transgressor is not pleasing (murtada)?

We say: He did not say: for those with whom He is not pleased, but rather He said: "for him with whom He is pleased", and those whom Allah has chosen for intercession are the monotheists, based on His saying: "They will not possess [the power of] intercession except him who has taken a covenant with the Most Merciful" [Maryam: 87]. And it was said to the Prophet ﷺ: "What is Allah's covenant with His creation?" He said: "That they believe and do not associate anything with Him"(1). The commentators said: except for those who say: "There is no god but Allah."

If they say: the "one with whom He is pleased" is the repentant person who has taken a covenant with Allah by turning back to Him, as evidenced by the fact that the angels sought forgiveness for them and said(2): "So forgive those who have repented and followed Your way" [Ghafir: 7]. Similarly, the intercession of the Prophets, peace be upon them, is only for the people of repentance, not for the people of major sins.

We say: In your view, it is obligatory for Allah Almighty to accept repentance. If Allah accepts the sinner's repentance, then they do not need intercession, nor seeking forgiveness. And the people of exegesis have unanimously agreed that what is meant by the saying:

(1) We did not find it with this wording, but Ahmad (21991), Al-Bukhari (7373) - and the wording is his - and Muslim (30) narrated from the hadith of Mu'adh bin Jabal, may Allah be pleased with him, who said: The Prophet ﷺ said: "O Mu'adh, do you know what Allah's right over the servants is?" He said: Allah and His Messenger know best. He said: "That they worship Him and do not associate anything with Him. Do you know what their right over Him is?" He said: Allah and His Messenger know best. He said: "That He does not punish them." (2) In (ظ) and (م): "And they said", and what is established is from (د) and (ز).

सूरा अल-बकराह: आयत 48 78 ...कुछ समूहों के लिए और दूसरों के लिए इसका खंडन किया। उसने काफ़िरों की स्थिति के बारे में कहा: "तो सिफारिश करने वालों की सिफारिश उन्हें कोई लाभ नहीं पहुँचाएगी" [अल-मुददस्सिर: 48], और उसने कहा: "और वे किसी की सिफारिश नहीं करते सिवाय उसके जिससे वह प्रसन्न हो" [अल-अंबिया: 28]। और उसने कहा: "और उसके पास सिफारिश कोई लाभ नहीं पहुँचाती सिवाय उसके लिए जिसे वह अनुमति दे" [सबा: 23]। तो हमने इन वाक्यों से जाना कि सिफारिश केवल ईमान वालों को लाभ पहुँचाती है, न कि काफ़िरों को।

और व्याख्याकारों ने इस बात पर सर्वसम्मति व्यक्त की है कि अल्लाह तआला के इस कथन का अर्थ है: "और उस दिन से डरो जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के काम न आएगा, और न ही उसकी ओर से कोई सिफारिश स्वीकार की जाएगी": वह काफ़िर व्यक्ति है, न कि हर व्यक्ति। यद्यपि हम हर ज़ालिम गुनहगार के लिए अज़ाब (दंड) की व्यापकता की बात करते हैं, फिर भी हम यह नहीं कहते कि वे उसमें हमेशा रहेंगे, उन खबरों के आधार पर जो हमने सुनाई हैं, और उसके इस कथन के आधार पर: "और वह इसके अलावा जिसे चाहे क्षमा कर देता है" [अन-निसा: 48], और उसका कथन: "वास्तव में अल्लाह की दया से वही लोग निराश होते हैं जो काफ़िर हैं" [यूसुफ़: 87]।

यदि वे कहें: अल्लाह तआला ने तो कहा है: "और वे किसी की सिफारिश नहीं करते सिवाय उसके जिससे वह प्रसन्न हो", और फासिक (अधर्मी) वह नहीं है जिससे प्रसन्न हुआ जाए (मुरतज़ा)?

हम कहते हैं: उसने यह नहीं कहा: उसके लिए जिससे वह प्रसन्न न हो, बल्कि उसने कहा: "उसके लिए जिससे वह प्रसन्न हो", और जिन्हें अल्लाह ने सिफारिश के लिए चुना है, वे एकेश्वरवादी (मुवह्हिदून) हैं, उसके इस कथन के प्रमाण के आधार पर: "वे सिफारिश का अधिकार नहीं रखेंगे सिवाय उसके जिसने रहमान (अत्यंत दयालु) के पास कोई वचन लिया हो" [मरयम: 87]। और नबी ﷺ से पूछा गया: अपनी रचना के साथ अल्लाह का क्या वचन है? आपने फरमाया: "कि वे ईमान लाएँ और उसके साथ किसी को शरीक (साझेदार) न करें"(1)। और व्याख्याकारों ने कहा: सिवाय उसके जिसने कहा: 'ला इलाहा इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं)।

यदि वे कहें: 'मुरतज़ा' (जिससे प्रसन्न हुआ जाए) वह तौबा करने वाला है जिसने अल्लाह के पास उसकी ओर मुड़कर वचन लिया है, जिसका प्रमाण यह है कि फरिश्तों ने उनके लिए क्षमा मांगी और कहा(2): "अतः उन लोगों को क्षमा कर दे जिन्होंने तौबा की और तेरे मार्ग का अनुसरण किया"

[ग़ाफ़िर: 7]। इसी प्रकार नबियों (अलैहिमुस्सलाम) की सिफारिश केवल तौबा करने वालों के लिए है, न कि बड़े पाप करने वालों के लिए।

हम कहते हैं: आपके अनुसार अल्लाह तआला पर तौबा स्वीकार करना अनिवार्य है, तो यदि अल्लाह ने पापी की तौबा स्वीकार कर ली, तो उसे न सिफारिश की आवश्यकता है और न ही क्षमा मांगने की। और व्याख्याकारों ने सर्वसम्मति से सहमति व्यक्त की है कि इस कथन का अर्थ है:

(1) हमें इस शब्द के साथ यह नहीं मिला, और अहमद (21991), बुखारी (7373) - और शब्द उन्हीं के हैं - और मुस्लिम (30) ने मुअज़ बिन जबल (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: नबी ﷺ ने फरमाया: "ऐ मुअज़, क्या तुम जानते हो कि बंदों पर अल्लाह का क्या हक है?" उन्होंने कहा: अल्लाह और उसका रसूल बेहतर जानते हैं। आपने फरमाया: "कि वे उसकी इबादत करें और उसके साथ किसी को शरीक न करें। क्या तुम जानते हो कि उनका उस पर क्या हक है?" उन्होंने कहा: अल्लाह और उसका रसूल बेहतर जानते हैं। आपने फरमाया: "कि वह उन्हें अज़ाब न दे।" (2) (ظ) और (م) में: "और उन्होंने कहा", और जो स्थापित है वह (د) और (ز) से है।

سورة البقرہ: آیت 48 78 ...کچھ لوگوں کے لئے ثابت کی اور کچھ لوگوں سے اس کی نفی کی، چنانچہ کافروں کی صفت میں فرمایا: ﴿فَمَا تَنفَعُهُمْ شَفَعَةُ الشَّفِعِينَ﴾ [المدثر: 48]، اور فرمایا: ﴿وَلَا يَشْفَعُونَ إِلَّا لِمَنِ ارْتَضَىٰ﴾ [الانبیاء: 28]۔ اور فرمایا: ﴿وَلَا تَنفَعُ الشَّفَعَةُ عِندَهُ إِلَّا لِمَنْ أَذِنَ لَهُ﴾ [سبأ: 23]، تو ہم نے ان جملوں سے یہ جانا کہ شفاعت صرف مومنوں کو نفع دیتی ہے نہ کہ کافروں کو۔

اور مفسرین کا اس بات پر اتفاق ہے کہ اللہ تعالیٰ کے اس قول سے مراد: ﴿وَاتَّقُوا يَوْمًا لَّا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَعَةٌ﴾: کافر نفس ہے، نہ کہ ہر نفس، اور اگرچہ ہم ہر ظالم گناہگار کے لئے عمومی عذاب کے قائل ہیں، لیکن ہم یہ نہیں کہتے کہ وہ اس میں ہمیشہ رہیں گے، ان خبروں کی دلیل سے جو ہم نے روایت کی ہیں، اور اللہ کے اس قول کی دلیل سے: ﴿وَيَغْفِرُ مَا دُونَ ذَٰلِكَ لِمَن يَشَاءُ﴾ [النساء: 48]، اور اس کے قول: ﴿إِنَّهُ لَا يَيْأَسُ مِن رَّوْحِ اللَّهِ إِلَّا الْقَوْمُ الْكَافِرُونَ﴾ [یوسف: 87]۔

پس اگر وہ کہیں: اللہ تعالیٰ نے تو فرمایا ہے: ﴿وَلَا يَشْفَعُونَ إِلَّا لِمَنِ ارْتَضَىٰ﴾، اور فاسق تو مرتضیٰ (جس سے اللہ راضی ہو) نہیں ہے؟

ہم نے کہا: اس نے یہ نہیں فرمایا: اس کے لئے جس سے وہ راضی نہ ہو، بلکہ فرمایا: ﴿لِمَنِ ارْتَضَىٰ﴾، اور جن سے اللہ شفاعت کے لئے راضی ہوا وہ موحدین ہیں، اللہ کے اس قول کی دلیل سے: ﴿لَّا يَمْلِكُونَ الشَّفَعَةَ إِلَّا مَنِ اتَّخَذَ عِندَ الرَّحْمَٰنِ عَهْدًا﴾ [مریم: 87]۔ اور نبی ﷺ سے پوچھا گیا: اپنی مخلوق کے ساتھ اللہ کا کیا عہد ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "یہ کہ وہ ایمان لائیں اور اس کے ساتھ کسی چیز کو شریک نہ ٹھہرائیں"(1)۔ مفسرین نے کہا: سوائے اس کے جس نے کہا: لا الہ الا اللہ۔

پس اگر وہ کہیں: مرتضیٰ وہ توبہ کرنے والا ہے جس نے اللہ کی طرف رجوع کر کے اس سے عہد لیا ہے، اس دلیل سے کہ فرشتوں نے ان کے لئے استغفار کیا اور کہا(2): ﴿فَاغْفِرْ لِلَّذِينَ تَابُوا

وَاتَّبَعُوا سَبِيلَكَ﴾ [غافر: 7]۔ اسی طرح انبیاء علیہم السلام کی شفاعت صرف اہل توبہ کے لئے ہے نہ کہ اہل کبائر کے لئے۔

ہم نے کہا: آپ کے نزدیک اللہ تعالیٰ پر توبہ قبول کرنا واجب ہے، تو جب اللہ نے گناہگار کی توبہ قبول کر لی تو وہ نہ شفاعت کا محتاج رہا اور نہ استغفار کا۔ اور اہل تفسیر کا اس پر اتفاق ہے کہ اس قول سے مراد ہے:

(1) ہمیں یہ ان الفاظ کے ساتھ نہیں ملا، اور احمد (21991)، بخاری (7373) - اور الفاظ انہی کے ہیں - اور مسلم (30) نے معاذ بن جبل رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: نبی ﷺ نے فرمایا: "اے معاذ! کیا تم جانتے ہو کہ بندوں پر اللہ کا کیا حق ہے؟" انہوں نے کہا: اللہ اور اس کا رسول بہتر جانتے ہیں، آپ ﷺ نے فرمایا: "یہ کہ وہ اس کی عبادت کریں اور اس کے ساتھ کسی چیز کو شریک نہ ٹھہرائیں۔ کیا تم جانتے ہو کہ ان کا اللہ پر کیا حق ہے؟" انہوں نے کہا: اللہ اور اس کا رسول بہتر جانتے ہیں۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "یہ کہ وہ انہیں عذاب نہ دے"۔ (2) (ظ) اور (م) میں ہے: "وقال"، اور جو متن میں ہے وہ (د) اور (ز) سے ہے۔

79 Surah Al-Baqarah: Verse 48

" {So forgive those who have repented} meaning: from polytheism {and follow Your path} meaning: the path of the believers. They asked Allah Almighty to forgive them for their sins other than polytheism, as He, the Almighty, said: {And He forgives what is less than that for whom He wills}."

If they say: The entire Ummah (nation) desires the intercession of the Prophet ﷺ, so if it were specifically for the people of major sins, their request would be void.

We say: Indeed, every Muslim seeks the intercession of the Messenger and desires from Allah that it reaches him, because of his belief that he is not free from sins, nor has he fulfilled for Allah, glory be to Him, all that He has made obligatory upon him. Rather, everyone is a self-confessed deficient; therefore, he fears punishment and hopes for salvation. And he ﷺ said: "No one will be saved except by the mercy of Allah Almighty." It was said: "Not even you, O Messenger of Allah?" He said (1): "Not even me, unless Allah encompasses me with His mercy" (2).

Fifth: His saying, the Almighty: {nor will there be accepted} Ibn Kathir and Abu Amr read it as "tuqbalu" with a "ta" (feminine form) because "shafa'ah" (intercession) is feminine. The rest read it with a "ya" (masculine form) (3), because it is in the sense of "shafi" (intercessor). Al-Akhfash said (4): The masculine form is good because you have made a separation [between the verb and its subject], as previously mentioned (5) in His saying: {Then Adam received words from his Lord} [Al-Baqarah: 37].

Sixth: His saying, the Almighty: {nor will compensation be taken from it} meaning: ransom. "Adl", with the opening of the 'ayn (fatha), means ransom. With its breaking (kasra), "idl", it means "equivalent". It is said: "Idl" and "adeel" for what equals you in weight and measure. And it is said: "Adl" of something is what equals it in value and amount, even if it is not of its kind. "Idl" with a kasra is what equals a thing from its own kind and bulk. Al-Tabari related (6) that some of the Arabs use the kasra of the 'ayn for the meaning of ransom, but as for the singular of "a'daal" (equally weighted loads), it is only with a kasra.

(1) In (m): so he said. (2) Narrated by Ahmad (10677), Al-Bukhari (6463), and Muslim (2816) from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him. (3) Al-Sab'ah fil-Qira'at, p. 154. Al-Taysir, p. 73. (4) Ma'ani al-Quran 1/261, and the author cited it from him via al-Nahhas in I'rab al-Quran 1/222. (5) 1/484 - 485. (6) Tafsir al-Tabari 1/639, and the author cited it from him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/139.

79 सूरह अल-बकराह: आयत 48

" {तो उन लोगों को क्षमा कर दे जिन्होंने तौबा की} अर्थात्: शिर्क से {और तेरे मार्ग पर चले} अर्थात्: मोमिनों के मार्ग पर। उन्होंने अल्लाह तआला से प्रार्थना की कि वह शिर्क के अलावा उनके अन्य पापों को क्षमा कर दे, जैसा कि उसने, जो कि आलीशान है, फरमाया: {और वह इसके अलावा जिसे चाहता है क्षमा कर देता है}।"

यदि वे कहें: पूरी उम्मत पैगंबर ﷺ की शफ़ाअत की इच्छा रखती है, तो अगर यह विशेष रूप से बड़े पाप करने वालों के लिए होती, तो उनका सवाल बेकार होता।

हम कहते हैं: वास्तव में हर मुसलमान रसूल की शफ़ाअत मांगता है, और अल्लाह से उम्मीद करता है कि वह उसे प्राप्त हो, क्योंकि उसका यह विश्वास है कि वह पापों से मुक्त नहीं है, और न ही उसने अल्लाह सुब्हानहू के प्रति उन सभी कर्तव्यों को पूरा किया है जो उस पर अनिवार्य थे। बल्कि हर कोई अपनी कमी को स्वीकार करता है, इसलिए वह दंड से डरता है और मोक्ष की आशा करता है। और उन्होंने ﷺ फरमाया: "कोई भी अल्लाह तआला की दया के बिना नहीं बचेगा।" पूछा गया: "क्या आप भी नहीं, ऐ अल्लाह के रसूल?" उन्होंने फरमाया(1): "मैं भी नहीं, जब तक कि अल्लाह मुझे अपनी दया में न ले ले"(2)।

पाँचवाँ: अल्लाह तआला का फरमान: {और न ही उससे कोई सिफारिश स्वीकार की जाएगी} इब्न कसीर और अबू अम्र ने इसे "तुक़्बलु" (त के साथ) पढ़ा है; क्योंकि "शफ़ाअत" स्त्रीलिंग है। बाकी लोगों ने पुल्लिंग के आधार पर "युक़्बलु" (य के साथ) पढ़ा है(3), क्योंकि इसका अर्थ "शफ़ीअ" (सिफारिश करने वाला) है। अल-अख़फ़श ने कहा(4): पुल्लिंग का प्रयोग अच्छा है क्योंकि आपने इसे अलग कर दिया है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है(5) अल्लाह के इस फरमान में: {फिर आदम ने अपने रब से कुछ शब्द सीख लिए} [अल-बकराह: 37]।

छठा: अल्लाह तआला का फरमान: {और न ही उससे कोई बदला लिया जाएगा} अर्थात्: फिदया (फिरौती)। "अदल", ऐन पर ज़बर (फ़त्हा) के साथ: फिदया है। और ज़ेर (कसरा) के साथ (इदल): बराबर या समान। कहा जाता है: "इदल" और "अदील" उस चीज़ के लिए जो वजन और माप में आपके बराबर हो। और कहा जाता है: किसी चीज़ का "अदल" वह है जो मूल्य और मात्रा में उसके बराबर हो, भले ही वह उसकी जाति से न हो। और "इदल" (कसरा के साथ) वह है जो किसी चीज़ के बराबर हो उसकी अपनी जाति और द्रव्यमान में। अल-तबरी ने उल्लेख किया है(6) कि कुछ अरब

फिदया के अर्थ में ऐन पर ज़ेर (कसरा) लगाते हैं, लेकिन जहाँ तक "अदाल" के एकवचन का प्रश्न है, वह केवल ज़ेर के साथ ही है।

(1) (म) में: तो कहा। (2) इसे अहमद (10677), बुखारी (6463) और मुस्लिम (2816) ने अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से उद्धृत किया है। (3) अस-सबा फिल-क़िरात, पृष्ठ 154। अत-तयसीर, पृष्ठ 73। (4) मानी अल-कुरान 1/261, और लेखक ने इसे अन-नहहास के माध्यम से एराब अल-कुरान 1/222 में उनसे उद्धृत किया है। (5) 1/484 - 485। (6) तफ़सीर अल-तबरी 1/639, और लेखक ने इसे इब्न अतिय्याह के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/139 में उनसे उद्धृत किया है।

79 سورہ البقرہ: آیت 48

" {پس ان لوگوں کو بخش دے جنہوں نے توبہ کی} یعنی: شرک سے، {اور تیرے راستے کی پیروی کی} یعنی: مومنوں کا راستہ۔ انہوں نے اللہ تعالیٰ سے سوال کیا کہ وہ شرک کے علاوہ ان کے گناہوں کو معاف کر دے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور وہ اس کے علاوہ جسے چاہے بخش دیتا ہے}۔"

اگر وہ کہیں: تمام امت نبی ﷺ کی شفاعت کی رغبت رکھتی ہے، تو اگر یہ خاص طور پر کبیرہ گناہوں والوں کے لیے ہوتی تو ان کا سوال باطل ہوتا۔

ہم کہتے ہیں: حقیقت میں ہر مسلمان رسول کی شفاعت طلب کرتا ہے، اور اللہ سے رغبت رکھتا ہے کہ وہ اسے حاصل ہو، کیونکہ اس کا یہ عقیدہ ہے کہ وہ گناہوں سے پاک نہیں ہے، اور نہ ہی وہ اللہ سبحانہ کے لیے ان تمام فرائض کو بجا لایا ہے جو اس پر فرض کیے گئے ہیں۔ بلکہ ہر ایک اپنی کمی کا اعتراف کرتا ہے، اس لیے وہ عذاب سے ڈرتا ہے اور نجات کی امید رکھتا ہے۔ اور آپ ﷺ نے فرمایا: "کوئی بھی اللہ تعالیٰ کی رحمت کے بغیر نجات نہیں پائے گا"۔ پوچھا گیا: "اور آپ بھی نہیں، اے اللہ کے رسول؟" آپ نے فرمایا(1): "اور میں بھی نہیں، سوائے اس کے کہ اللہ مجھے اپنی رحمت میں ڈھانپ لے"(2)۔

پانچویں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور نہ اس سے کوئی سفارش قبول کی جائے گی} ابن کثیر اور ابو عمرو نے اسے "تُقبل" (تا کے ساتھ) پڑھا ہے؛ کیونکہ "شفاعت" مؤنث ہے۔ باقیوں نے تذکیر کی بنیاد پر "یُقبل" (یا کے ساتھ) پڑھا ہے(3)، کیونکہ یہ "شفیع" کے معنی میں ہے۔ الاخفش نے کہا(4): تذکیر اچھی ہے کیونکہ آپ نے فاصلہ کر دیا ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے(5) اللہ کے اس قول میں: {پھر آدم نے اپنے رب سے چند کلمات سیکھ لیے} [البقرہ: 37]۔

چھٹی: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور نہ اس سے کوئی فدیہ لیا جائے گا} یعنی: فدیہ۔ اور "عدل"، عین کے زبر کے ساتھ: فدیہ ہے، اور زیر کے ساتھ: مثل (برابر)۔ کہا جاتا ہے: "عِدْل" اور "عدیل" اس کے لیے جو وزن اور مقدار میں آپ کے برابر ہو۔ اور کہا جاتا ہے: کسی چیز کا "عَدْل" وہ ہے جو قیمت اور مقدار میں اس کے برابر ہو، چاہے وہ اس کی جنس سے نہ ہو۔ اور "عِدْل" زیر کے ساتھ: وہ ہے جو کسی چیز کے برابر ہو اس کی اپنی جنس اور اس کے جرم (جسامت) میں۔ طبری نے حکایت کی ہے(6) کہ بعض عرب فدیہ کے معنی میں عین کو زیر دیتے ہیں، لیکن جہاں تک "اَعدال" کے واحد کا تعلق ہے تو وہ صرف زیر کے ساتھ ہی ہے۔

(1) (م) میں: پس کہا۔ (2) اسے احمد (10677)، بخاری (6463) اور مسلم (2816) نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (3) السبعہ فی القراءات، ص 154۔ والتیسیر ص 73۔ (4) معانی القرآن 261/1، اور مصنف نے اسے النحاس کے واسطے سے اعراب القرآن 222/1 میں ان سے نقل کیا ہے۔ (5) 484/1 - 485۔ (6) تفسیر طبری 639/1، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز 139/1 میں ان سے نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49

His (the Exalted) saying: {And they shall not be helped} [2:48] means: they will not be aided. Help (an-nasr) is assistance, and the helpers (al-ansar) are the assistants. From this is His saying: {Who are my helpers for [the cause of] Allah?} [Al-Imran: 52], meaning: who will join their help to mine? "Intasara al-rajul" means the man took revenge. "Al-nasr" can also mean coming or arriving; it is said: "I helped the land of so-and-so," meaning I came to it. The poet said(1):

When the sacred month enters, bid farewell to the lands of Tamim and "help" (come to) the land of 'Amir.

"Al-nasr" also means rain; it is said: "The land was helped," meaning it was rained upon.

"Al-nasr" also means giving or a gift; he said(2):

By me and by the lines that have been written line by line, I am saying, O Nasr, give a gift, a gift.

The reason for this verse - according to what was mentioned(3) - is that the Children of Israel said: "We are the children of Allah and His beloved ones, and the children of His prophets, and our forefathers will intercede(4) for us." So Allah the Exalted informed them about the Day of Resurrection, that no intercession will be accepted therein, nor will ransom be taken. Intercession, ransom, and help were specifically mentioned because these are the means humans are accustomed to in this world; for one who falls into hardship only escapes by having someone intercede for them, or by being helped(5), or by being ransomed.

His (the Exalted) saying: {And [recall] when We saved you from the people of Pharaoh, who afflicted you with the worst torment, slaughtering your sons and keeping your women alive. And in that was a great trial from your Lord.} [49]

There are thirteen issues concerning it:

First: His (the Exalted) saying: {And [recall] when We saved you from the people of Pharaoh}, "when" (idh) is in the position of accusative (nasb) by conjunction with {remember My favor} (6).

(1) He is Al-Ra'i al-Numayri, and the verse is in his Diwan p. 133, and Al-Mujmal 3/870 (Nasr). (2) He is Ru'bah bin Al-'Ajjaj, and the verse is in Al-Kitab by Sibawayh 2/185, Al-

Khasa'is 1/340, Khizanat al-Adab 2/219, and Al-Mujmal 3/870 (Nasr). (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/139. (4) In (Z): "and will seek intercession," and in (Zha): "and will intercede." (5) In (D): "is helped." (6) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/222.

सूरह अल-बक़रह: आयत 49

अल्लाह ताला का फरमान: {और न उनकी मदद की जाएगी} [2:48] यानी: उन्हें सहायता नहीं दी जाएगी। 'अल-नस्र' (मदद) का अर्थ है सहायता, और 'अल-अंसार' का अर्थ है सहायक। इसी से उसका यह कथन है: {अल्लाह के लिए मेरे मददगार कौन हैं?} [आल-इमरान: 52], यानी: अपनी मदद को मेरी मदद के साथ कौन मिलाएगा? 'इंतसरा अल-रजुल' का अर्थ है उस व्यक्ति ने बदला लिया। 'अल-नस्र' का अर्थ आना या पहुँचना भी है; कहा जाता है: "मैंने फुलां की ज़मीन की मदद की", यानी मैं वहाँ आया। कवि ने कहा(1):

जब पवित्र महीना शुरू हो जाए, तो तमीम की ज़मीनों को अलविदा कह दो और आमिर की ज़मीन की "मदद" करो (वहाँ जाओ)।

'अल-नस्र' का अर्थ बारिश भी है; कहा जाता है: "ज़मीन की मदद की गई", यानी बारिश हुई।

'अल-नस्र' का अर्थ दान या उपहार भी है, उसने कहा(2):

मैं और लिखी गई पंक्तियों की कसम, मैं कह रहा हूँ, ऐ नस्र, दान दो, दान दो।

इस आयत का कारण - जैसा कि उन्होंने उल्लेख किया है(3) - यह है कि इस्राइल की संतानों ने कहा: "हम अल्लाह की संतान और उसके प्रिय हैं, और उसके नबियों की संतान हैं, और हमारे पूर्वज हमारे लिए शफ़ाअत (सिफारिश)(4) करेंगे।" तो अल्लाह ताला ने उन्हें क़यामत के दिन के बारे में बताया कि उसमें कोई शफ़ाअत स्वीकार नहीं की जाएगी, और न ही कोई फिद्या (फिरौती) ली जाएगी। शफ़ाअत, फिद्या और मदद का विशेष रूप से उल्लेख इसलिए किया गया क्योंकि यही वे तरीके हैं जिनका मनुष्य दुनिया में आदी है; क्योंकि जो व्यक्ति विपत्ति में पड़ता है वह तभी बचता है जब उसके लिए शफ़ाअत की जाए, या उसकी मदद(5) की जाए, या उसे फिद्या देकर छुड़ाया जाए।

अल्लाह ताला का फरमान: {और जब हमने तुम्हें फिरौन के लोगों से बचाया जो तुम्हें बुरा दुख देते थे, तुम्हारे बेटों को मार डालते थे और तुम्हारी औरतों को जीवित छोड़ देते थे। और इसमें तुम्हारे रब की ओर से बड़ी परीक्षा थी।} [49]

इसमें तेरह विषय हैं:

पहला: अल्लाह ताला का फरमान: {और जब हमने तुम्हें फिरौन के लोगों से बचाया}, इसमें 'इज़' (जब) नसब (कर्म कारक) की स्थिति में है क्योंकि यह {मेरी नेमत याद करो}(6) पर आधारित है।

(1) वह अल-रा'ई अल-नुमैरी है, और कविता उसके दीवान के पृष्ठ 133, और अल-मुजमल 3/870 (नस्र) में है। (2) वह रुबा बिन अल-अज्जाज है, और कविता सिबावैह की अल-किताब 2/185, अल-खासिस 1/340, खिज़ानत अल-अदब 2/219, और अल-मुजमल 3/870 (नस्र) में है। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/139। (4) (ज़) में: "और शफ़ाअत मांगेंगे," और (ज़ा) में: "और शफ़ाअत करेंगे।" (5) (द) में: "मदद की जाती है।" (6) अल-नहहास द्वारा इराब अल-कुरान 1/222।

سورة البقرہ : آیت ٤٩

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَا هُمْ يُنصَرُونَ﴾ یعنی: انہیں مدد نہیں دی جائے گی، اور 'النصر' کا مطلب ہے مدد، اور 'الانصار' کے معنی ہیں مددگار۔ اسی سے اللہ کا قول ہے: ﴿مَنْ أَنصَارِي إِلَى اللَّهِ﴾ [آل عمران: ٥٢]، یعنی: کون اپنی مدد کو میری مدد کے ساتھ ملاتا ہے، اور 'انتصر الرجل' کا مطلب ہے کہ اس شخص نے بدلہ لیا۔ اور 'النصر' کا مطلب ہے آنا، کہا جاتا ہے: "نصرتُ أرضَ بني فلان" یعنی میں اس کی زمین پر آیا۔ شاعر نے کہا ہے(١):

إذا دخل الشهرُ الحرامُ فودِّعي بلادَ تميمٍ وانصُري أرضَ عامرِ

جب حرام مہینہ شروع ہو جائے تو بنو تمیم کے علاقوں کو الوداع کہو اور بنو عامر کے علاقے کی "مدد" کرو (وہاں پہنچو)۔

اور 'النصر' بارش کو بھی کہتے ہیں، کہا جاتا ہے: "نصرت الارض" یعنی زمین پر بارش ہوئی۔

اور 'النصر' کا مطلب عطا اور بخشش بھی ہے، شاعر نے کہا(٢):

إني وأسطارٍ سُطرن سطرا لقائل يا نصرُ نَصراً نَصرا

میں اور وہ سطریں جو لکھی گئی ہیں، یہ کہنے والا ہوں کہ اے نصر، عطا کر، عطا کر۔

اس آیت کا سبب - جیسا کہ ذکر کیا گیا ہے(٣) - یہ ہے کہ بنی اسرائیل نے کہا: ہم اللہ کے بیٹے اور اس کے محبوب ہیں، اور اس کے انبیاء کی اولاد ہیں، اور ہمارے آباؤ اجداد ہمارے لیے سفارش(٤) کریں گے۔ تو اللہ تعالیٰ نے انہیں قیامت کے دن کے بارے میں بتا دیا کہ اس دن نہ سفارش قبول کی جائے گی اور نہ ہی کوئی فدیہ لیا جائے گا۔ سفارش، فدیہ اور مدد کا خاص طور پر ذکر اس لیے کیا

گیا کیونکہ یہی وہ طریقے ہیں جن کے بنی آدم دنیا میں عادی ہیں؛ کیونکہ جو شخص مصیبت میں پڑ جائے وہ اسی صورت میں نجات پاتا ہے جب اس کے لیے سفارش کی جائے، یا اس کی مدد(٥) کی جائے، یا فدیہ دے کر اسے چھڑایا جائے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ نَجَّيْنَاكُمْ مِنْ ءَالِ فِرْعَوْنَ يَسُومُونَكُمْ سُوءَ الْعَذَابِ يُذَبِّحُونَ أَبْنَاءَكُمْ وَيَسْتَحْيُونَ نِسَاءَكُمْ وَفِي ذَٰلِكُمْ بَلَاءٌ مِنْ رَبِّكُمْ عَظِيمٌ﴾ [٤٩]

اس میں تیرہ مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ نَجَّيْنَاكُمْ مِنْ ءَالِ فِرْعَوْنَ﴾ میں لفظ «إذ» محلِ نصب میں ہے کیونکہ اس کا عطف ﴿اذْكُرُوا نِعْمَتِي﴾(٦) پر ہے۔

(١) یہ الراعی النمیری ہے، اور شعر اس کے دیوان ص١٣٣، اور المجمل ٣/ ٨٧٠ (نصر) میں ہے۔ (٢) یہ رؤبہ بن العجاج ہے، اور شعر سیبویہ کی 'الکتاب' ٢/ ١٨٥، الخصائص ١/ ٣٤٠، خزانہ الادب ٢/ ٢١٩، اور المجمل ٣/ ٨٧٠ (نصر) میں ہے۔ (٣) المحرر الوجیز ١/ ١٣٩۔ (٤) نسخہ (ز) میں: "اور وہ سفارش چاہیں گے"، اور (ظ) میں: "اور وہ سفارش کریں گے"۔ (٥) نسخہ (د) میں: "اس کی مدد کی جائے گی"۔ (٦) اعراب القرآن للنحاس ١/ ٢٢٢۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49 81

This and what follows is a reminder of some of the blessings He bestowed upon them, meaning: remember My blessing in saving you from your enemy, and placing prophets among you. The address is to those present(1), but the intention refers to the ancestors who passed away, just as He said: {Indeed, when the water overflowed, We carried you in the ship} [Al-Haqqah: 11], meaning: We carried your ancestors. It was also said: He only said "We saved you" because the salvation of the ancestors was(2) a reason for the survival of those present.

The meaning of {We saved you}: We placed you on a *najwah* (elevated part) of the land: which is what is raised of it(3). This is the origin, then every winner was called a survivor (*naji*), so the survivor is the one who goes out from narrowness to vastness. It was read(4): "And when I saved you" in the singular.

Second: His saying, the Exalted: {From the people of Pharaoh} The people (aal) of Pharaoh: his tribe, followers, and the people of his religion. Likewise, the people (aal) of the Messenger ﷺ: whoever is upon his religion and creed in his era and all other eras, whether they were related to him or not. Whoever is not upon his religion and creed is not from his family (*aal*) or his kin (*ahl*), even if they were his relatives, contrary to the Rafidites who said: the family of the Messenger of Allah ﷺ is only Fatima, Al-Hasan, and Al-Hussein.

Our evidence: His saying, the Exalted: {And We drowned the people of Pharaoh} [Al-Anfal: 54], {Admit the people of Pharaoh into the severest punishment} [Ghafir: 46], meaning: the people of his religion, since he had no son, daughter, father, uncle, brother, or paternal male relatives. And because there is no dispute that whoever is not a believer or a monotheist is not from the family of Muhammad, even if he were a relative of his. For this reason, it is said: Abu Lahab and Abu Jahl are not from his family nor from his kin; even if there was kinship between them and the Prophet ﷺ. For this reason, Allah the Exalted said concerning Noah's son: {Indeed, he is not of your family; indeed, he is [one whose] work was other than righteous} [Hud: 46].

In "Sahih" Muslim(5) on the authority of Amr ibn al-Aas, who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ openly...

(1) In (Z): for the monotheists! (2) In (M): was (feminine form). (3) In the manuscripts: from it (masculine), and what is established is from (M). (4) It is the recitation of Ibrahim al-Nakha'i, as in the irregular recitations of Ibn Khalawayh p. 5. (5) (215), and

what is between brackets is from it. Al-Bukhari also extracted it (5990), and it is in the Musnad (17804).

सूरह अल-बकराह: आयत 49 81

यह और इसके बाद जो कुछ है वह उन कुछ नेमतों (आशीर्वादों) की याद दिलाना है जो उन पर थीं, यानी: मेरी उस नेमत को याद करो जब मैंने तुम्हें तुम्हारे दुश्मन से बचाया और तुम्हारे बीच नबियों (पैगंबरों) को भेजा। यह संबोधन वर्तमान लोगों(1) के लिए है, लेकिन इरादा उन पूर्वजों से है जो बीत गए, जैसा कि अल्लाह ने कहा: {बेशक, जब पानी हद से बढ़ गया, तो हमने तुम्हें नौका में सवार कर लिया} [अल-हाक़्क़ा: 11] यानी: हमने तुम्हारे पूर्वजों को सवार किया। यह भी कहा गया है कि: उन्होंने "हमने तुम्हें बचाया" इसलिए कहा क्योंकि पूर्वजों का बचना(2) ही वर्तमान लोगों के अस्तित्व का कारण था।

{हमने तुम्हें बचाया} का अर्थ है: हमने तुम्हें ज़मीन के एक ऊंचे हिस्से (नज्वह) पर पहुँचा दिया: जो कि ज़मीन का उभरा हुआ हिस्सा होता है(3)। मूल अर्थ यही है, फिर हर सफल होने वाले को "नाजी" (बचने वाला) कहा जाने लगा, अतः "नाजी" वह है जो तंगी से निकलकर खुशहाली में आ जाए। एक अन्य पाठ(4) में है: "और जब मैंने तुम्हें बचाया" एकवचन के रूप में।

दूसरा: अल्लाह तआला का कथन: {फ़िरौन के लोगों से} फ़िरौन के लोग (आल): उसकी कौम, उसके अनुयायी और उसके धर्म के लोग। इसी प्रकार, अल्लाह के रसूल ﷺ के"आल": वह व्यक्ति जो उनके युग में और अन्य सभी युगों में उनके दीन और धर्म पर है, चाहे वह उनका रिश्तेदार हो या न हो। जो उनके दीन और धर्म पर नहीं है, वह न तो उनके"आल" में से है और न ही उनके परिवार (अहल) में से, चाहे वह उनका कितना ही करीबी रिश्तेदार क्यों न हो। यह राफिदियों (शियाओं) के खिलाफ है जो कहते हैं: अल्लाह के रसूल ﷺ के"आल" केवल फातिमा, अल-हसन और अल-हुसैन हैं।

हमारा प्रमाण: अल्लाह तआला का कथन: {और हमने फ़िरौन के लोगों को डुबो दिया} [अल-अनफाल: 54], {फ़िरौन के लोगों को सबसे कठोर अज़ाब (दंड) में दाखिल करो} [गाफिर: 46] यानी: उसके दीन के लोग, क्योंकि उसका कोई बेटा, बेटी, पिता, चाचा, भाई या अन्य कोई पुरुष रिश्तेदार नहीं था। और क्योंकि इसमें कोई मतभेद नहीं है कि जो मोमिन या एकेश्वरवादी नहीं है, वह मोहम्मद के"आल" में से नहीं है, भले ही वह उनका रिश्तेदार हो। इसी कारण कहा जाता है: अबू लहब और अबू जहल न तो उनके"आल" में से हैं और न ही उनके परिवार में से; भले ही उनके और नबी ﷺ के

बीच रिश्तेदारी थी। इसी कारण अल्लाह तआला ने नूह के बेटे के बारे में कहा: {बेशक, वह तुम्हारे परिवार में से नहीं है; बेशक उसके अमल (कार्य) नेक नहीं थे} [हूद: 46]।

और "सहीह" मुस्लिम(5) में अम्र इब्न अल-आस से रिवायत है, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को खुल्लम-खुल्ला कहते सुना...

(1) (ज़) में: एकेश्वरवादियों के लिए! (2) (म) में: थी। (3) पांडुलिपियों में: उससे (पुल्लिंग), और जो स्थापित है वह (म) से है। (4) यह इब्राहिम अल-नखई का पाठ है, जैसा कि इब्न खालुवैह के अनियमित पाठों (किराआत-ए-शाज़ा) में है, पृ. 5। (5) (215), और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उसी से है। अल-बुखारी ने भी इसे (5990) उद्धृत किया है, और यह मुस्नद (17804) में भी है।

سورة البقرہ: آیت 49 81

یہ اور اس کے بعد کا حصہ ان بعض نعمتوں کی یاددہانی ہے جو ان پر تھیں، یعنی: میری اس نعمت کو یاد کرو جب میں نے تمہیں تمہارے دشمن سے نجات دی اور تمہارے درمیان انبیاء بنائے۔ یہ خطاب موجودہ لوگوں(1) سے ہے، لیکن مراد وہ آباؤ اجداد ہیں جو گزر چکے، جیسا کہ اللہ نے فرمایا: {بے شک جب پانی طغیانی پر آیا تو ہم نے تمہیں کشتی میں سوار کر لیا} [الحاقہ: 11] یعنی: ہم نے تمہارے باپ دادا کو سوار کیا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ: "ہم نے تمہیں نجات دی" اس لیے فرمایا کیونکہ باپ دادا کی نجات(2) ہی موجودہ لوگوں کی نجات کا سبب بنی۔

{ہم نے تمہیں نجات دی} کا معنی ہے: ہم نے تمہیں زمین کے ایک بلند حصے (نجوہ) پر پہنچا دیا: اور وہ زمین کا ابھرا ہوا حصہ ہوتا ہے(3)۔ اصل یہی ہے، پھر ہر کامیاب ہونے والے کو "ناجی" (نجات پانے والا) کہا جانے لگا، پس "ناجی" وہ ہے جو تنگی سے نکل کر وسعت میں آ جائے۔ اور ایک قرأت(4) میں ہے: "اور جب میں نے تمہیں نجات دی" صیغہ واحد کے ساتھ۔

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {آلِ فرعون سے} آلِ فرعون سے مراد: اس کی قوم، اس کے پیروکار اور اس کے دین والے ہیں۔ اسی طرح رسول اللہ ﷺ کی "آل": وہ شخص ہے جو آپ کے دور میں اور باقی تمام ادوار میں آپ کے دین اور ملت پر ہے، خواہ وہ آپ کا رشتہ دار ہو یا نہ ہو۔ اور جو آپ کے دین اور ملت پر نہیں ہے وہ نہ تو آپ کی "آل" میں سے ہے اور نہ آپ کے "اہل" میں سے، اگرچہ وہ آپ کا قریبی رشتہ دار ہی کیوں نہ ہو۔ یہ رافضیوں کے خلاف ہے جنہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ کی آل صرف فاطمہ، حسن اور حسین ہیں۔

ہماری دلیل: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور ہم نے آلِ فرعون کو غرق کر دیا} [الأنفال: 54]، {آلِ فرعون کو سخت ترین عذاب میں داخل کرو} [غافر: 46] یعنی: اس کے دین والے، کیونکہ اس کا کوئی

بیٹا، بیٹی، باپ، چچا، بھائی یا کوئی عصبہ (قریبی مرد رشتہ دار) نہیں تھا۔ اور اس لیے کہ اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ جو مومن اور موحد نہیں ہے وہ آلِ محمد میں سے نہیں ہے، اگرچہ وہ آپ کا رشتہ دار ہی کیوں نہ ہو۔ اسی وجہ سے کہا جاتا ہے: ابولہب اور ابوجہل نہ تو آپ کی آل میں سے ہیں اور نہ آپ کے اہل میں سے؛ اگرچہ ان کے اور نبی ﷺ کے درمیان قرابت داری تھی۔ اسی لیے اللہ تعالیٰ نے نوح علیہ السلام کے بیٹے کے بارے میں فرمایا: {بے شک وہ تیرے گھر والوں میں سے نہیں ہے، بے شک اس کے عمل اچھے نہیں تھے} [ہود: 46]۔

اور "صحیح" مسلم(5) میں عمرو بن العاص سے روایت ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو علانیہ سنا...

(1) (ظ) میں: موحدین کے لیے! (2) (م) میں: تھی۔ (3) نسخوں میں: "منہ" (اس سے)، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے۔ (4) یہ ابراہیم نخعی کی قرأت ہے، جیسا کہ ابن خالویہ کی "القراءات الشاذہ" صفحہ 5 میں ہے۔ (5) (215)، اور بریکٹ کے درمیان والا حصہ اسی سے ہے۔ اسے بخاری نے بھی روایت کیا ہے (5990)، اور یہ مسند (17804) میں بھی ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49 82

...not in secret, saying: "[Behold] Indeed the family of my father – meaning so-and-so – are not my allies; rather my ally is Allah and the righteous of the believers." A group said: The "Aal" (family) of Muhammad refers specifically to his wives and progeny, due to the hadith of Abu Humayd al-Sa'idi that they said: "O Messenger of Allah, how should we send blessings upon you?" He said: "Say: O Allah, send blessings upon Muhammad and upon his wives and progeny, as You sent blessings upon the family of Abraham; and bless Muhammad and his wives and progeny, as You blessed the family of Abraham; indeed, You are Praiseworthy and Majestic." Narrated by Muslim (1). Another group of scholars said: "Ahl" is known (kin), and "Aal" means followers. And the first is more correct for what we mentioned, and due to the hadith of Abdullah ibn Abi Awfa that the Messenger of Allah (peace be upon him) whenever a people came to him with their charity, he would say: "O Allah, bless them." So my father came to him with his charity, and he said: "O Allah, bless the family of Abu Awfa" (2). Thirdly: Grammarians differed: Can "Aal" be attributed (3) to places or not? Al-Kisa'i said: It is only said "the family of so-and-so (male)" and "the family of so-and-so (female)", but it is not said about places: "he is from the family of Homs", nor "from the family of Medina." Al-Akhfash said: It is only used for a great leader, such as: the family of Muhammad (peace be upon him), and the family of Pharaoh; because he was their leader in misguidance. He said: We have heard it used for places; they said: "Ahl al-Madinah" (people of Medina) and "Aal al-Madinah" (family/people of Medina) (4). Fourthly: Grammarians also differed on whether "Aal" can be attached to a pronoun or not. An-Nahas, Az-Zubaydi, and Al-Kisa'i forbade that, so it is only said: "O Allah, bless Muhammad and the family of Muhammad," and it is not said: "and his family" (wa-aalihi), and the correct way is to say: "his kin" (ahlihi). Another group held that it can be said, including Ibn al-Sid (5), and that is correct; because authentic oral transmission supports it, for it appeared in the saying of Abd al-Muttalib:

---

(1) Sahih Muslim (407). It was also narrated by al-Bukhari (3369), and it is in Al-Musnad (23600). (2) Narrated by Ahmad (19111), al-Bukhari (1497), and Muslim (1078). (3) In (D) and (Z): "added/attributed". (4) I'rab al-Qur'an by an-Nahas 1/223. (5) He is Abdullah bin Muhammad bin al-Sid, the grammarian and linguist, Abu Muhammad al-Batalyawsi, author of works including: "Al-Iqtidab fi Sharh Adab al-Kuttab", died in the year (521 AH). Al-Siyar 19/532.

सूरह अल-बकरा: आयत 49 82

...गुप्त रूप से नहीं, वह कहते हैं: "[सुनो] वास्तव में मेरे पिता का 'आल' (परिवार) - यानी अमुक - मेरे वली (सहयोगी) नहीं हैं; बल्कि मेरा वली अल्लाह और नेक मोमिन हैं"। एक समूह ने कहा: मुहम्मद का 'आल' विशेष रूप से उनकी पत्नियाँ और उनकी संतान हैं, अबू हुमैद अल-साइदी की हदीस के कारण कि उन्होंने कहा: "हे अल्लाह के रसूल, हम आप पर दरूद (आशीर्वाद) कैसे भेजें?" उन्होंने कहा: "कहो: हे अल्लाह, मुहम्मद और उनकी पत्नियों और संतान पर आशीर्वाद भेज, जैसे तूने इब्राहीम के परिवार पर आशीर्वाद भेजा था; और मुहम्मद और उनकी पत्नियों और संतान को बरकत दे, जैसे तूने इब्राहीम के परिवार को बरकत दी थी; वास्तव में, तू प्रशंसनीय और महिमामय है।" इसे मुस्लिम ने वर्णित किया है (1)। विद्वानों के एक अन्य समूह ने कहा: "अहल" का अर्थ ज्ञात है (सगे-संबंधी), और "आल" का अर्थ अनुयायी है। और जो हमने उल्लेख किया है उसके आधार पर पहला अधिक सही है, और अब्दुल्ला बिन अबी औफा की हदीस के कारण कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) जब भी कोई लोग अपनी ज़कात लेकर उनके पास आते, तो वे कहते: "हे अल्लाह, उन पर आशीर्वाद भेज।" तो मेरे पिता अपनी ज़कात लेकर उनके पास आए, तो उन्होंने कहा: "हे अल्लाह, अबू औफा के'आल' पर आशीर्वाद भेज" (2)। तीसरा: वैयाकरणों (व्याकरण विद्वानों) के बीच मतभेद था: क्या "आल" को शहरों के साथ जोड़ा (3) जा सकता है या नहीं? अल-किसाई ने कहा: केवल यह कहा जाता है: "अमुक का आल" और "अमुक स्त्री का आल", और शहरों के बारे में यह नहीं कहा जाता है: "वह होम्स के आल से है", न ही "मदीना के आल से"। अल-अखफ़श ने कहा: यह केवल एक महान नेता के लिए कहा जाता है, जैसे: मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का आल, और फिरौन का आल; क्योंकि वह गुमराह करने में उनका नेता था। उन्होंने कहा: हमने इसे शहरों के लिए सुना है, उन्होंने कहा: "अहल अल-मदीना" और "आल अल-मदीना" (4)। चौथा: वैयाकरणों के बीच इस पर भी मतभेद था कि क्या "आल" को सर्वनाम के साथ जोड़ा जा सकता है या नहीं? अन-नहास, अल-ज़ुबैदी और अल-किसाई ने इसे मना किया, इसलिए केवल यह कहा जाता है: "हे अल्लाह, मुहम्मद और मुहम्मद के आल पर आशीर्वाद भेज," और यह नहीं कहा जाता: "और उसके आल" (आलिही), और सही बात यह है कि "उसका अहल" (अहलिही) कहा जाए। एक अन्य समूह का मानना था कि ऐसा कहा जा सकता है, जिनमें इब्न अल-सिद (5) भी शामिल हैं, और यही सही है; क्योंकि प्रमाणित श्रवण परंपरा इसका समर्थन करती है, क्योंकि यह अब्दुल मुत्तलिब के कथन में आया है:

(1) सहीह मुस्लिम (407)। अल-बुखारी ने भी इसे वर्णित किया है (3369), और यह अल-मुसनद (23600) में है। (2) अहमद (19111), अल-बुखारी (1497), और मुस्लिम (1078) द्वारा वर्णित। (3) (द) और (ज़) में: "जोड़ा जाना"। (4) इराब अल-कुरान, अन-नहास द्वारा 1/223। (5) वह अब्दुल्ला बिन मुहम्मद बिन अल-सिद हैं, जो वैयाकरण और भाषाविद् थे, अबू मुहम्मद अल-बतालयावसी, कई रचनाओं के लेखक, जिनमें से एक है: "अल-इक्तिदाब फ़ी शरह अदब अल-कुत्ताब", वर्ष (521 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 19/532।

سورہ البقرہ: آیت 49 82

...راز داری میں نہیں وہ کہتا ہے: "[دیکھو] بے شک میرے باپ کی آل - یعنی فلاں - میرے ولی (دوست) نہیں ہیں، میرا ولی تو اللہ اور نیک مومنین ہیں۔" اور ایک گروہ نے کہا: محمد ﷺ کی آل سے مراد خاص طور پر آپ کی بیویاں اور آپ کی اولاد ہے، ابو حمید الساعدی کی حدیث کی وجہ سے کہ صحابہ نے عرض کیا: یا رسول اللہ، ہم آپ پر درود کیسے بھیجیں؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "کہو: اے اللہ! درود بھیج محمد ﷺ پر اور ان کی بیویوں اور اولاد پر، جیسا کہ تو نے درود بھیجا آلِ ابراہیم پر، اور برکت نازل فرما محمد ﷺ پر اور ان کی بیویوں اور اولاد پر، جیسا کہ تو نے برکت نازل فرمائی آلِ ابراہیم پر، بے شک تو تعریف کے لائق اور بزرگی والا ہے۔" اسے مسلم نے روایت کیا ہے (1)۔ اور اہلِ علم کے ایک گروہ نے کہا: "اہل" تو معلوم (رشتہ دار) ہیں، اور "آل" سے مراد پیروکار ہیں۔ اور پہلی بات زیادہ صحیح ہے جیسا کہ ہم نے ذکر کیا، اور عبد اللہ بن ابی اوفیٰ کی حدیث کی وجہ سے کہ رسول اللہ ﷺ کے پاس جب کوئی قوم اپنا صدقہ لے کر آتی تو آپ ﷺ فرماتے: "اے اللہ ان پر اپنی رحمت نازل فرما۔" تو میرے والد اپنا صدقہ لے کر آئے تو آپ ﷺ نے فرمایا: "اے اللہ! آلِ ابی اوفیٰ پر اپنی رحمت نازل فرما" (2)۔ تیسرا: ماہرینِ نحو (گرامر) کے درمیان اختلاف ہے کہ کیا "آل" کی اضافت (3) شہروں کی طرف کی جا سکتی ہے یا نہیں؟ چنانچہ کسائی نے کہا: صرف یہ کہا جاتا ہے: "فلاں کی آل" اور "فلاں عورت کی آل"، اور شہروں کے بارے میں یہ نہیں کہا جاتا: "وہ آلِ حمص سے ہے" اور نہ ہی "آلِ مدینہ سے"۔ اخفش نے کہا: یہ صرف بڑے سربراہ کے لیے بولا جاتا ہے، جیسے: آلِ محمد ﷺ، اور آلِ فرعون؛ کیونکہ وہ گمراہی میں ان کا سربراہ تھا۔ اس نے کہا: ہم نے اسے شہروں کے بارے میں سنا ہے، انہوں نے کہا: "اہلِ مدینہ" اور "آلِ مدینہ" (4)۔ چوتھا: ماہرینِ نحو کے درمیان اس بات میں بھی اختلاف ہے کہ کیا

"آل" کی اضافت ضمیر کی طرف کی جا سکتی ہے یا نہیں؟ تو نحاس، زبیدی اور کسائی نے اس سے منع کیا ہے، چنانچہ صرف یہ کہا جائے گا: "اللهم صل على محمد وآل محمد" اور "وآله" نہیں کہا جائے گا، اور درست بات یہ ہے کہ "أهله" کہا جائے۔ اور ایک دوسرے گروہ کا موقف یہ ہے کہ ایسا کہا جا سکتا ہے، ان میں ابن السید (5) بھی شامل ہیں، اور یہی درست ہے؛ کیونکہ مستند سماع (روایت) اس کی تائید کرتی ہے، چنانچہ عبد المطلب کے قول میں آیا ہے:

---

(1) صحیح مسلم (407)۔ اور اسے بخاری نے بھی روایت کیا ہے (3369)، اور یہ مسند (23600) میں ہے۔ (2) اسے احمد (19111)، بخاری (1497) اور مسلم (1078) نے روایت کیا ہے۔ (3) (د) اور (ز) میں: "تضاف" (اضافت کی جائے) ہے۔ (4) اعراب القرآن للنحاس 1/ 223۔ (5) وہ عبد اللہ بن محمد بن السید النحوی اللغوی ہیں، ابو محمد البطلیوسی، تصانیف کے مالک ہیں جن میں سے ایک کتاب: "الاقتضاب فی شرح ادب الکتاب" ہے، ان کا انتقال (521ھ) میں ہوا۔ السیر 19/ 532 ۔

O Allah, indeed the servant protects his luggage, so protect Your glory. And help Your people today against the people of the cross and its worshippers. (1) And [Nudbah] said (2): I am the knight protecting the truth of my father and my kin, as You protect the truth of Your kin. (3) 'Al-Haqiqah' (The Truth), with two 'qafs': that which a person has a right to protect, meaning: its protection is mandatory upon him. Fifth: They also differed regarding the origin of 'Aal' (kin/family). Al-Nahhas (4) said: Its origin is 'Ahl', then the 'H' was replaced (5) by an 'Alif'. If you make it a diminutive, you return it to its origin and say: 'Uhayl'. Al-Mahdawi said: Its origin is 'Awal', and it was said: 'Ahl', where the 'H' was changed into a Hamza, then the Hamza was replaced by an Alif. Its plural is 'Alun', and its diminutive is 'Uwayl', as narrated by Al-Kisa'i. Others narrated: 'Uhayl', as we mentioned from Al-Nahhas. Abu Al-Hasan bin Kaysan said: If you pluralize 'Aal' (kin), you say: 'Alun', and if you pluralize 'Aal' meaning 'mirage', you say: 'Awal', like: 'Maal' (wealth) and 'Amwal' (plural of wealth). (6) Sixth: His saying, the Almighty: {Fir'awn} (Pharaoh). It is said: It is the name of that specific king himself. It is also said: It is the name of every king of the Amalekites, like Chosroes for the Persians, Caesar for the Romans, and Negus for the Abyssinians. The name of Moses' Pharaoh was Qabus, according to the People of the Book. And he said...

(1) Sirah Ibn Hisham 1/51, and Al-Hayawan by Al-Jahiz 7/198, 199. His saying: 'Halalaka', with a kasrah on the 'H': the people who reside adjacently, referring to the residents of the Sanctuary. Al-Nihayah (Halal). (2) Thus in the manuscripts, and perhaps he means Khafaf bin Nudbah. (3) Diwan Khafaf bin Nudbah p. 67, and its wording is: I am the knight protecting the truth, and he by whom the heroes have long reached their goals similarly. And it was mentioned in Al-Khizanah 5/440 with the wording: I am the knight protecting the truth of my father, by whom the debts of blood have long been attained similarly. And thus there is no evidence in it. Ibn Qayyim al-Jawziyya mentioned it in Jala' al-Afham p. 205, similar to what the author cited from Abu Abdullah bin Malik, and he did not mention the name of the poet. (4) I'rab al-Qur'an 1/223. (5) In (D) and (M): 'Abdal' (replaced - masculine), and it was omitted from (Z), and the confirmed version is from (Zha). (6) I'rab al-Qur'an 1/223.

ऐ अल्लाह! वास्तव में सेवक अपने सामान की रक्षा करता है, अतः तू अपनी महिमा की रक्षा कर। और आज सलीब (क्रॉस) वालों और उसके पुजारियों के विरुद्ध अपने लोगों (आल) की सहायता कर। (1) और नुदबाह (2) ने कहा: मैं अपने पिता और अपने परिवार की सच्चाई (हक़ीक़त) की रक्षा करने वाला घुड़सवार हूँ, जैसे तू अपने लोगों की सच्चाई की रक्षा करता है। (3) 'अल-हक़ीक़त', दो 'क़ाफ़' के साथ: वह चीज़ जिसकी रक्षा करना मनुष्य का अधिकार है, अर्थात: उसकी रक्षा करना उस पर अनिवार्य है। पाँचवाँ: उन्होंने 'आल' (परिवार/वंश) के मूल के बारे में भी मतभेद किया। अल-नहस (4) ने कहा: इसका मूल 'अहल' है, फिर 'हा' को 'अलिफ़' से बदल दिया गया (5)। यदि आप इसका लघु रूप (diminutive) बनाते हैं, तो आप इसे इसके मूल पर लौटा देते हैं, और कहते हैं: 'उहैल'। अल-महदवी ने कहा: इसका मूल 'अवल' है, और कहा गया: 'अहल', जहाँ 'हा' को हमज़ा में बदल दिया गया, फिर हमज़ा को अलिफ़ से बदल दिया गया। इसका बहुवचन 'अलून' है, और इसका लघु रूप 'उवैल' है, जैसा कि अल-किसाई ने बताया। अन्यों ने बताया: 'उहैल', जैसा कि हमने अल-नहस के हवाले से उल्लेख किया। अबू अल-हसन बिन कैसान ने कहा: यदि आप 'आल' (वंश) का बहुवचन बनाते हैं, तो 'अलून' कहते हैं। लेकिन यदि आप 'आल' का बहुवचन बनाते हैं जिसका अर्थ 'मृगतृष्णा' है, तो आप 'अवाल' कहते हैं, जैसे: 'माल' और 'अमवाल'। (6) छठा: अल्लाह तआला का कथन: {फिरऔन}। कहा गया है: यह उसी विशिष्ट राजा का नाम है। यह भी कहा गया है: यह अमालेकियों के प्रत्येक राजा का नाम (उपाधि) है, जैसे फारसियों के लिए खुसरो (किसरा), रोमियों के लिए सीज़र (कैसर), और इथियोपियाई लोगों के लिए नेगस (नजाशी)। मूसा के फिरऔन का नाम 'काबूस' था, अहल-ए-किताब (किताब वाले) के अनुसार। और कहा...

(1) सीरत इब्न हिशाम 1/51, और अल-हयवान अल-जाहिज़ 7/198, 199। उनका कथन: 'हलालका', 'हा' के नीचे कसरह के साथ: साथ रहने वाले लोग, इससे उनका तात्पर्य हरम के निवासियों से है। अल-निहाया (हलाल)। (2) पांडुलिपियों में ऐसा ही है, और संभवतः उनका तात्पर्य ख़फ़ाफ़ बिन नुदबाह से है। (3) दीवान ख़फ़ाफ़ बिन नुदबाह पृष्ठ 67, और इसके शब्द हैं: मैं सच्चाई की रक्षा करने वाला घुड़सवार हूँ, और वह जिसके द्वारा वीरों ने प्राचीन काल से इसी तरह लक्ष्य प्राप्त किए हैं। और अल-ख़िज़ाना 5/440 में इन शब्दों के साथ उल्लेख किया गया है: मैं अपने पिता की सच्चाई की रक्षा करने वाला घुड़सवार हूँ, जिसके द्वारा प्राचीन काल से इसी तरह प्रतिशोध लिया गया है। और इस प्रकार इसमें कोई प्रमाण नहीं है। इब्न क़य्यिम अल-जौज़िया ने इसे जला अल-अफ़हाम

पृष्ठ 205 में उल्लेख किया है, जैसा कि लेखक ने अबू अब्दुल्ला बिन मालिक के हवाले से उद्धृत किया है, और उन्होंने कवि के नाम का उल्लेख नहीं किया। (4) एराब अल-क़ुरआन 1/223। (5) (द) और (म) में: 'अब्दल' (बदल दिया), और (ज़) से छूट गया है, और (ज़ा) से पुष्ट है। (6) एराब अल-क़ुरआन 1/223।

اے اللہ! بے شک بندہ اپنے کجاوے کی حفاظت کرتا ہے، پس تو اپنی عظمت کی حفاظت فرما۔ اور صلیب والوں اور اس کے پجاریوں کے خلاف آج اپنی آل (لوگوں) کی مدد فرما۔ (1) اور نُدبہ (2) نے کہا: میں اپنے باپ اور اپنی آل کی حقیقت (حق) کی حفاظت کرنے والا شہسوار ہوں، جیسا کہ تو اپنی آل کی حقیقت کی حفاظت کرتا ہے۔ (3) 'الحقیقۃ'، دو 'قاف' کے ساتھ: وہ چیز جس کی حفاظت کرنا انسان پر حق ہے، یعنی: اس کی حفاظت اس پر واجب ہے۔ پانچویں بات: 'آل' کی اصل میں بھی اختلاف کیا گیا ہے۔ النحاس (4) نے کہا: اس کی اصل 'أهل' (اہل) ہے، پھر 'ہ' کو 'الف' سے بدل دیا گیا (5)، پس اگر تو اس کی تصغیر بنائے تو اسے اس کی اصل کی طرف لوٹا دے گا، اور کہے گا: 'أهيل' (اہیل)۔ المہدوی نے کہا: اس کی اصل 'أول' (اول) ہے، اور کہا گیا: 'أهل' (اہل)، 'ہ' کو ہمزہ سے بدلا گیا، پھر ہمزہ کو الف سے بدل دیا گیا۔ اس کی جمع 'ألون' ہے، اور اس کی تصغیر 'أويل' ہے، جیسا کہ الکسائی نے حکایت کیا۔ دوسروں نے حکایت کیا: 'أهيل'، اور ہم نے اسے النحاس سے ذکر کیا ہے۔ ابو الحسن بن کیسان نے کہا: جب تو 'آل' (بمعنی خاندان) کی جمع بنائے تو کہے گا: 'ألون'، اور اگر تو اس 'آل' کی جمع بنائے جو 'سراب' کے معنی میں ہے تو کہے گا: 'آوال'، جیسے: مال اور اموال۔ (6) چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فِرْعَوْنَ﴾۔ کہا گیا: یہ اسی بادشاہ کا مخصوص نام ہے۔ اور کہا گیا: یہ عمالقہ کے ہر بادشاہ کا نام (لقب) ہے، جیسے اہل فارس کے لیے کسریٰ، رومیوں کے لیے قیصر، اور اہل حبشہ کے لیے نجاشی۔ اور موسیٰ (علیہ السلام) کے فرعون کا نام 'قابوس' ہے، اہل کتاب کے قول کے مطابق۔ اور کہا...

(1) سیرت ابن ہشام 1/51، اور الحیوان للجاحظ 7/198، 199۔ ان کا قول: 'حلالک'، 'ح' کے نیچے زیر کے ساتھ: ساتھ رہنے والے لوگ، ان سے مراد حرم کے رہنے والے ہیں۔ النہایہ (حلل)۔

(2) نسخوں میں اسی طرح ہے، اور شاید ان کی مراد خفاف بن ندبہ ہے۔ (3) دیوان خفاف بن ندبہ ص 67، اور اس کے الفاظ یہ ہیں: میں حقیقت کی حفاظت کرنے والا شہسوار ہوں، اور وہ جس کے ذریعے بہادروں نے قدیم زمانے سے اسی طرح مقاصد پائے۔ اور الخزانہ 5/440 میں ان الفاظ کے ساتھ ذکر کیا گیا ہے: میں اپنے باپ کی حقیقت کی حفاظت کرنے والا شہسوار ہوں، جس کے ذریعے قدیم زمانے سے اسی طرح بدلے لیے گئے ہیں۔ اور تب اس میں کوئی دلیل نہیں ہے، اور ابن قیم الجوزیہ نے اسے جلاء الافہام ص 205 میں اسی طرح نقل کیا ہے جیسے مصنف نے ابو عبد اللہ بن مالک سے نقل کیا، اور انہوں نے شاعر کا نام ذکر نہیں کیا۔ (4) اعراب القرآن 1/223۔ (5) (د) اور (م) میں: 'أبدل'، اور (ز) سے ساقط ہے، اور ثابت شدہ (ظ) سے ہے۔ (6) اعراب القرآن 1/223۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49 84

Wahb said: His name was Al-Walid bin Mus'ab bin Al-Rayyan (1), and he was nicknamed Abu Murrah. He was from the descendants of 'Amliq bin Lawdh bin Iram bin Sam bin Noah, peace be upon him. Al-Suhayli said (2): Everyone who ruled the Copts and Egypt was called Pharaoh. He was a Persian from the people of Istakhr. Al-Mas'udi said: There is no known Arabic derivation for the word Pharaoh. Al-Jawhari said (3): Pharaoh was the title of Al-Walid bin Mus'ab, the King of Egypt, and every tyrant is a Pharaoh. The plural is Fara'inah. The verb 'tafar'ana' means to act like a Pharaoh, and someone who is 'dhu far'anah' possesses shrewdness and wickedness (4). In the Hadith, it is said: "We seized the Pharaoh of this nation" (5).

And "Pharaoh" is in the genitive case (khafd), except that it is indeclinable (diptote) due to its foreign origin.

Seventh: Regarding the word of Allah: {subjecting you} (yasumunakum): It is said to mean: making you taste it and imposing it upon you. Abu 'Ubaidah said (6): Making you undergo it. It is said: "He subjected him to a state of humiliation (khusf)" (7): when he made him undergo it. From this is the saying of 'Amr bin Kulthum (8):

If the king subjects the people to humiliation, We refuse to let humiliation be settled among us.

It was also said: They continuously tortured you. 'Al-Sawm' means continuity, and from it comes 'sa'imat al-ghanam' (pasturing sheep) because of their continuous grazing. Al-Akhfash said (9): It is in the nominative case (raf') as a subject (mubtada'), and if you wish, it can be in the accusative case (nasb) as a circumstantial adverb (hal), meaning: subjecting you.

Eighth: Regarding the word of Allah: {evil torment} (su'a al-'adhab): It is the second object of "yasumunakum," and it means: the most severe torment. It is also possible that it means: the subjection to torment. It could also be an adjective (na't) meaning: a subjection.

(1) Al-Nukat wal-'Uyun by Al-Mawardi 1/118, and Al-Tafsir Al-Kabir by Al-Fakhr Al-Razi 3/67. (2) Al-Ta'rif wal-I'lam p. 21. (3) Al-Sihah: (Far'an). (4) In (D) and (Z): cunning (makr), and in Al-Lisan: arrogance (takabbur). (5) Mentioned by Al-Jawhari in his Sihah, and cited by the author from him. (6) Majaz Al-Qur'an 1/40. (7) In (D): Hasaf, and in (Z): Hasab! (8) In his Mu'allaqah with the commentary of Ibn Kaysan p. 114, the commentary on the famous poems by Ibn al-Nahhas 2/124, and the commentary on

the ten poems by Al-Tibrizi p. 288. (9) Ma'ani Al-Qur'an 1/264, cited by the author from him via Al-Nahhas in I'rab Al-Qur'an 1/223.

सूरह अल-बकराह: आयत 49 84

वहब ने कहा: उसका नाम अल-वलीद बिन मुसाब बिन अल-रयान (1) था, और उसका उपनाम अबू मुर्रा था। वह नूह (अ.) के पुत्र साम के पुत्र इरम के पुत्र लावध के पुत्र अमलीक के वंशजों में से था। अल-सुहैली (2) ने कहा: जो कोई भी कॉप्ट्स और मिस्र पर शासन करता था उसे फिरौन कहा जाता था। वह इस्तख़्र के लोगों में से एक फारसी था। अल-मसूदी ने कहा: अरबी में फिरौन शब्द की कोई ज्ञात व्युत्पत्ति नहीं है। अल-जौहरी (3) ने कहा: फिरौन मिस्र के राजा अल-वलीद बिन मुसाब की उपाधि थी, और हर अत्याचारी फिरौन है। इसका बहुवचन फरैना है। 'तफ़रअना' क्रिया का अर्थ है फिरौन की तरह व्यवहार करना, और जो 'धु फ़रअनाह' है उसके पास चतुराई और दुष्टता (4) है। हदीस में कहा गया है: "हमने इस राष्ट्र के फिरौन को पकड़ लिया" (5)।

और "फिरौन" षष्ठी विभक्ति (ख़फ़्द) में है, सिवाय इसके कि यह अपने विदेशी मूल के कारण अपरिवर्तनीय (डिप्टोट) है।

सातवाँ: अल्लाह के कथन के संबंध में: {तुम्हें कष्ट देते थे} (यसुमुनाकुम): कहा जाता है कि इसका अर्थ है: तुम्हें इसका स्वाद चखाते थे और तुम पर थोपते थे। अबू उबैदा (6) ने कहा: तुम्हें इससे गुज़ारते थे। कहा जाता है: "उसने उसे अपमान (खुसफ़) की स्थिति में डाल दिया" (7): जब उसने उसे इससे गुज़ारा। इसी से अम्र बिन कुलथुम (8) का कथन है:

यदि राजा लोगों को अपमान के अधीन करता है, तो हम अपने बीच अपमान को स्वीकार करने से इनकार करते हैं।

यह भी कहा गया है: वे निरंतर तुम्हें प्रताड़ित करते रहे। 'अल-सौम' का अर्थ निरंतरता है, और इसी से 'साइमत अल-ग़नम' (चरने वाली भेड़ें) शब्द आया है क्योंकि वे निरंतर चरती हैं। अल-अख़फ़श (9) ने कहा: यह कर्ता (मुब्तदा) के रूप में प्रथमा विभक्ति (रफ़) में है, और यदि आप चाहें, तो यह परिस्थिति विशेषण (हाल) के रूप में द्वितीया विभक्ति (नस्ब) में हो सकता है, जिसका अर्थ है: तुम्हें कष्ट देते हुए।

आठवाँ: अल्लाह के कथन के संबंध में: {बुरा अज़ाब} (सुल-अज़ाब): यह "यसुमुनाकुम" का दूसरा कर्म (मफ़ऊल) है, और इसका अर्थ है: सबसे कठोर अज़ाब। यह भी संभव है कि इसका अर्थ हो: अज़ाब का थोपा जाना। यह एक विशेषण (नत) भी हो सकता है जिसका अर्थ है: एक थोपना।

(1) अल-नुकात वल-'उयुन अल-मावर्दी द्वारा 1/118, और अल-तफ़सीर अल-कबीर अल-फ़ख़्र अल-राज़ी द्वारा 3/67। (2) अल-तारीफ़ वल-इलम पृ. 21। (3) अल-सिहाह: (फ़रअन)। (4) (D) और (Z) में: चालाकी (मक्र), और अल-लिसान में: अहंकार (तकब्बुर)। (5) अल-जौहरी द्वारा उनके सिहाह में उल्लेख किया गया है, और लेखक द्वारा उनसे उद्धृत किया गया है। (6) मजाज़ अल-कुरान 1/40। (7) (D) में: हसफ़, और (Z) में: हसब! (8) इब्न कैसान के भाष्य के साथ उनकी मुअल्लाक़ा में पृ. 114, इब्न अल-नहस द्वारा प्रसिद्ध कविताओं पर भाष्य 2/124, और अल-तिबरीज़ी द्वारा दस कविताओं पर भाष्य पृ. 288। (9) मानी अल-कुरान 1/264, लेखक द्वारा इराब अल-कुरान 1/223 में अल-नहस के माध्यम से उनसे उद्धृत।

سورة البقرہ: آیت ٤٩ ٨٤

وہب: اس کا نام الولید بن مصعب بن الریان (١) ہے، اور اس کی کنیت ابو مرہ ہے، اور وہ نوح علیہ السلام کے بیٹے سام کے بیٹے ارم کے بیٹے لاوذ کے بیٹے عملیق کی اولاد میں سے ہے۔ السہیلی (٢) نے کہا: جو کوئی بھی قبطیوں اور مصر کا حاکم ہوا وہ فرعون کہلایا، اور وہ اہل اصطخر کا ایک فارسی تھا۔ المسعودی نے کہا: عربی میں فرعون کی کوئی تشریح معلوم نہیں ہے۔ الجوہری (٣) نے کہا: فرعون مصر کے بادشاہ الولید بن مصعب کا لقب ہے، اور ہر سرکش فرعون ہے۔ اور جمع الفراعنہ ہے۔ اور اس نے فرعونیت اختیار کی، اور وہ 'ذو فرعنہ' ہے، یعنی: چالاکی اور مکاری (٤)۔ حدیث میں ہے: "ہم نے اس امت کے فرعون کو پکڑ لیا" (٥)۔

اور لفظ "فرعون" حالتِ جر (خفض) میں ہے، مگر یہ اپنے عجمی (غیر عربی) ہونے کی وجہ سے غیر منصرف ہے۔

ساتواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿يَسُومُونَكُمْ﴾ کہا گیا: اس کا معنی ہے: وہ تمہیں چکھاتے ہیں، اور تمہیں اس کا پابند کرتے ہیں۔ ابو عبیدہ (٦) نے کہا: وہ تم پر مسلط کرتے ہیں، کہا جاتا ہے: "سامہ خطۃ خسف" (٧): جب اس نے اس پر اسے مسلط کر دیا۔ اور اسی سے عمرو بن کلثوم (٨) کا قول ہے:

جب بادشاہ لوگوں کو ذلت کے کام میں ڈال دیتا ہے، تو ہم اپنے درمیان ذلت کا اقرار کرنے سے انکار کر دیتے ہیں۔

اور کہا گیا: وہ تمہیں مسلسل عذاب دیتے ہیں۔ 'السوم' کا معنی دوام (مستقلی) ہے، اور اسی سے 'سائمہ الغنم' (چرنے والی بھیڑیں) ہے؛ کیونکہ وہ چرنے پر ہمیشگی کرتی ہیں۔ الاخفش (٩) نے

کہا: یہ ابتدا کی بنا پر محلِ رفع میں ہے، اور اگر تم چاہو تو یہ حال کی بنا پر محلِ نصب میں ہو سکتا ہے، یعنی: تم پر مسلط ہوتے ہوئے (عذاب دیتے ہوئے)۔

آٹھواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿سُوءَ الْعَذَابِ﴾ "یسومونکم" کا مفعولِ ثانی ہے، اور اس کا معنی ہے: سخت ترین عذاب۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ یہ 'سوم العذاب' کے معنی میں ہو۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ یہ صفت ہو، بمعنی: 'سوماً' (عذاب مسلط کرنا)۔

(١) النکت والعیون للماوردی ١١٨/١، والتفسیر الکبیر للفخر الرازی ٦٧/٣۔ (٢) التعریف والإعلام ص ٢١۔ (٣) الصحاح: (فرعن)۔ (٤) (د) اور (ظ) میں: مکر، اور اللسان میں: تکبر۔ (٥) الجوہری نے اپنی صحاح میں اسے ذکر کیا ہے، اور مصنف نے ان سے اسے نقل کیا ہے۔ (٦) مجاز القرآن ١/ ٤٠۔ (٧) (د) میں: حصف، اور (ظ) میں: حسب! (٨) ان کے معلقہ میں شرح ابن کیسان ص ١١٤، اور شرح القصائد المشہورات لابن النحاس ٢/ ١٢٤، اور شرح القصائد العشر للتبریزی ص ٢٨٨۔ (٩) معانی القرآن ١/ ٢٦٤، اور مصنف نے اسے النحاس کے واسطے سے إعراب القرآن ١/ ٢٢٣ میں ان سے نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49 85

...badly. It was narrated that Pharaoh made the Children of Israel servants and slaves, and categorized them in his works: one group for building, one group for plowing and planting, and one group for personal service—while his own people were kings and soldiers. Whoever among them was not in one of these tasks was burdened with the Jizya (tax). That was the "evil punishment" (1). Ninth: His saying, Exalted is He: {slaughtering your sons} "yudhabbihoona" without the "and" (waw): This is as a substitution (badal) for His saying: "afflicting you" (yasoomoonakum), just as it was said—quoted by Sibawayh (2): Whenever you come to us, stopping by us in our dwellings, you will find abundant wood and a blazing fire. Al-Farra' (3) and others said: "yudhabbihoona" without the "waw" is an explanation for His saying: "afflicting you with an evil punishment," just as you say: "The people came to me, Zayd and Amr," so you do not need the "and" for Zayd. An example of this is: {And whoever does that will meet a penalty. The punishment will be doubled for him} [Al-Furqan: 68-69]. In Surah Ibrahim: {and slaughtering} [Ibrahim: 6] with the "waw", because the meaning is: they punish you by slaughtering and by other means. So His saying: "and slaughtering your sons" is another type of punishment, not an explanation for what preceded it. And Allah knows best. I say: It is possible to say that the "waw" is extra (za'idah), based on the evidence of Surah Al-Baqarah. And the "waw" can be extra, as was said: When we crossed the center of the tribe's area and [he] departed (4) Meaning: he departed. And another said: To the noble King, the son of the ambitious leader, and the lion of the battalion in the crowd (5) He meant: To the noble King, son of the ambitious leader, the lion of the battalion. This is frequent.

---

(1) Reported by Ibn Jarir in at-Tafsir 1/645, and at-Tarikh 1/386, 387. (2) The speaker is Ubayd Allah bin al-Hurr, and the verse is in al-Kitab 3/86, Sharh al-Mufassal 7/53, and Khizanat al-Adab 9/90. (3) Ma'ani al-Qur'an 2/69. (4) The first half of a verse by Imru' al-Qais, in his Diwan p. 15, and its second half: With us in the belly of a sand-dune having piles of shifting sand. (5) The verse is in al-Insaf 2/469, Ma'ani al-Qur'an by al-Farra' 1/105, al-Kashshaf 1/133, and Khizanat al-Adab 1/451 without attribution. His word 'al-Qurm', with a fatha on the qaf, means: the master. 'Al-Humam': the king of great ambition. 'Al-Muzdaham': the place of crowding... he meant by it the battle. Said in al-Khizana.

सूरा अल-बक़रह: आयत 49 85

...बुरी तरह। यह रिवायत है कि फ़िरौन ने बनी इसराइल को नौकर और दास बना लिया था, और उन्हें अपने कामों के लिए विभिन्न श्रेणियों में बाँट दिया था: एक श्रेणी निर्माण के लिए, एक श्रेणी हल चलाने और खेती करने के लिए, और एक श्रेणी सेवा करने के लिए—जबकि उसकी अपनी क़ौम बादशाह और सिपाही थी। उनमें से जो कोई इन कामों में से किसी में नहीं होता था, उस पर जिज़्या (कर) लगा दिया जाता था। वही "बुरा अज़ाब" था (1)। नवाँ: अल्लाह तआला का फ़रमान: {वे तुम्हारे बेटों को ज़बह करते थे} (युज़ब्बेहूना) बिना 'वाव' (और) के यह उनके"वे तुम्हें पहुँचाते थे" (यसूमूनकुम) वाले कौल से 'बदल' (प्रतिस्थापन) के तौर पर है, जैसा कि कहा गया—सिबवैया (2) द्वारा उद्धृत: जब भी तुम हमारे पास आओगे, हमारे घरों में रुकोगे, तो तुम्हें प्रचुर लकड़ी और दहकती आग मिलेगी। अल-फर्रा' (3) और अन्यों ने कहा: बिना 'वाव' के"युज़ब्बेहूना" उनके इस कथन की व्याख्या (तफ़सीर) है: "वे तुम्हें बुरा अज़ाब देते थे", जैसे आप कहते हैं: "मेरे पास लोग आए, ज़ैद और अम्र," तो आपको ज़ैद के लिए 'और' की आवश्यकता नहीं होती। इसका एक उदाहरण है: {और जो कोई ऐसा करेगा वह सज़ा पाएगा। उसके लिए अज़ाब दोगुना कर दिया जाएगा} [अल-फ़ुरक़ान: 68-69]। सूरा इब्राहीम में: {और वे ज़बह करते थे} [इब्राहीम: 6] 'वाव' के साथ है, क्योंकि इसका अर्थ है: वे तुम्हें ज़बह करके और अन्य तरीकों से अज़ाब देते थे। अतः उसका यह कथन: "और तुम्हारे बेटों को ज़बह करना" अज़ाब की एक और श्रेणी है, पहले वाले की व्याख्या नहीं। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। मैं कहता हूँ: यह कहना मुमकिन है कि 'वाव' अतिरिक्त (ज़ायदाह) है, जैसा कि सूरा अल-बक़रह के प्रमाण से पता चलता है। और 'वाव' अतिरिक्त हो सकता है, जैसा कि कहा गया: जब हमने क़बीले के क्षेत्र को पार किया और [वह] चला गया (4) यानी: वह चला गया। और दूसरे ने कहा: कुलीन राजा की ओर, महत्त्वाकांक्षी नेता के बेटे की ओर, और भीड़ में बटालियन के शेर की ओर (5) उनका मतलब था: कुलीन राजा की ओर, महत्त्वाकांक्षी नेता के बेटे, बटालियन के शेर की ओर। यह अक्सर होता है।

---

(1) इब्न जरीर ने अत-तफ़सीर 1/645 और अत-तारीख 1/386, 387 में इसे उद्धृत किया है। (2) कहने वाले उबैदुल्लाह बिन अल-हुर हैं, और यह शेर अल-किताब 3/86, शरह अल-मुफस्सल 7/53, और ख़िज़ानत अल-अदब 9/90 में है। (3) मा'नी अल-क़ुरआन 2/69। (4) इमरुल क़ैस के एक शेर का पहला भाग, जो उनके दीवान के पृष्ठ 15 पर है, और इसका दूसरा भाग है: हमारे साथ रेत के टीले के बीच में, जिसमें रेत के ढेर लगे हैं। (5) यह शेर अल-इंसाफ़ 2/469, अल-फर्रा' की मा'नी अल-

क़ुरआन 1/105, अल-कशफ़ 1/133, और ख़िज़ानत अल-अदब 1/451 में बिना किसी श्रेय के है। उनके शब्द 'अल-क़ुर्म' का अर्थ है: सरदार। 'अल-हुमाम': महान महत्वाकांक्षा वाला राजा। 'अल-मुज़दहम': भीड़ वाली जगह... उनका मतलब इससे युद्ध का मैदान था। ख़िज़ानत में ऐसा कहा गया है।

سورة البقرہ: آیت 49 85

بری طرح۔ پس مروی ہے کہ فرعون نے بنی اسرائیل کو خادم اور غلام بنا لیا تھا، اور انہیں اپنے کاموں کے لیے مختلف گروہوں میں تقسیم کر دیا تھا: ایک گروہ تعمیرات کے لیے، ایک گروہ ہل چلانے اور کھیتی باڑی کے لیے، اور ایک گروہ خدمت گزاری کے لیے—جبکہ اس کی اپنی قوم بادشاہ اور سپاہی تھی—اور ان میں سے جو کوئی ان کاموں میں سے کسی میں نہیں ہوتا تھا، اس پر جزیہ (ٹیکس) لگا دیا جاتا تھا۔ پس وہی "برا عذاب" تھا (1)۔ نواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿يُذَبِّحُونَ أَبْنَاءَكُمْ﴾ «یذبحون» بغیر 'واؤ' (اور) کے: یہ ان کے قول «یسومونکم» سے 'بدل' کے طور پر ہے، جیسا کہ کہا گیا—جسے سیبویہ (2) نے نقل کیا ہے: مَتَى تَأْتِنَا تُلْمِمْ بِنَا فِي دِيَارِنَا تَجِدْ حَطَباً جَزْلاً وَنَاراً تَأَجَّجَا الفراء (3) اور دیگر نے کہا: بغیر 'واؤ' کے «یُذَبِّحون» ان کے اس قول کی تفسیر ہے: «یَسُومُونَکم سُوءَ العذاب»، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: «أتاني القومُ زیدٌ وعمرو»، تو آپ کو زید کے لیے 'اور' کی ضرورت نہیں پڑتی۔ اس کی ایک مثال ہے: ﴿وَمَن يَفْعَلْ ذَٰلِكَ يَلْقَ أَثَامًا ۝ يُضَاعَفْ لَهُ الْعَذَابُ﴾ [الفرقان: 68]۔ اور سورہ ابراہیم میں ہے: ﴿وَيُذَبِّحُونَ﴾ [ابراہیم: 6] 'واؤ' کے ساتھ، کیونکہ اس کا معنی ہے: وہ تمہیں ذبح کے ذریعے اور ذبح کے علاوہ دیگر طریقوں سے عذاب دیتے تھے۔ پس ان کا یہ قول: «وَيُذَبِّحون أبناءكم» عذاب کی ایک اور قسم ہے، پہلے کی تفسیر نہیں ہے۔ واللہ اعلم۔ میں کہتا ہوں: یہ احتمال ہو سکتا ہے کہ کہا جائے کہ 'واؤ' زائدہ ہے، جیسا کہ سورہ البقرہ کی دلیل سے ظاہر ہے۔ اور 'واؤ' زائد ہو سکتا ہے، جیسا کہ کہا گیا: فلمّا أَجَزْنَا ساحةَ الحيِّ وانتَحى (4) یعنی: قد انتحى (وہ چلا گیا)۔ اور دوسرے نے کہا: إلى المَلِكِ القَرْمِ وابنِ الهُمام ولَيْثِ الكتيبةِ في المُزْدَحَمْ (5) اس کا مطلب تھا: عالی نسب بادشاہ، بلند ہمت سردار کا بیٹا، لشکر کا شیر۔ اور یہ بکثرت پایا جاتا ہے۔

(1) اسے ابن جریر نے التفسیر 1/645، اور التاریخ 1/386، 387 میں روایت کیا ہے۔ (2) کہنے والے عبید اللہ بن الحر ہیں، اور یہ شعر الکتاب 3/86، شرح المفصل 7/53، اور خزانہ الادب 9/90 میں موجود ہے۔ (3) معانی القرآن 2/69۔ (4) امرؤالقیس کے ایک شعر کا پہلا مصرع ہے، جو ان کے دیوان کے صفحہ 15 پر ہے، اور اس کا دوسرا مصرع ہے: بنا بطنُ حِقْفٍ ذي رُكامٍ عَقَنْقَلِ (5) یہ شعر الانصاف 2/469، معانی القرآن للفراء 1/105، الکشاف 1/133، اور خزانہ الادب 1/451 میں بغیر کسی نسبت کے ہے۔ ان کا قول القَرْم (قاف پر زبر کے ساتھ) کے معنی ہیں: سردار۔ الہُمام: بلند ہمت بادشاہ۔ المزدحم: بھیڑ کی جگہ... اس سے ان کی مراد میدانِ جنگ تھی۔ خزانہ میں ایسا ہی کہا گیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 49

86

Tenth point: His Almighty saying: {They slaughter} (yudhabbiḥūna) is the reading of the majority with shadda (doubling the 'ba') indicating multiplicity. Ibn Muḥayṣin read it: "yadhbaḥūna" with a fatha on the 'ya'(1). 'Dhabḥ' means slitting. 'Al-Dhabḥ' also means the slaughtered one. 'Al-Dhubbāḥ' is cracking at the roots of the fingers. "Dhabaḥtu al-dann"(2): I tapped it, i.e., I uncovered it(3). "Sa'd al-Dhābiḥ" is one of the auspicious stars. 'Al-madhābiḥ' means prayer niches (miḥrābs). 'Al-madhābiḥ' is the plural of 'madbaḥ', which is when a flood comes and carves a ditch in the earth; what is about a span (shibr) or so is called a 'madbaḥ'(4). Thus, Pharaoh would slaughter the male children and spare the female children, and He referred to them with the name of women as a consequence. A group said: "He slaughters your sons" meaning the men, and they were called sons because they were such once. This proponent argued with his saying: "your women". The first is more correct because it is more apparent, and Allah knows best.

Eleventh point: Allah Almighty attributed the action to the people of Pharaoh, though they were doing it by his command and authority(5); because they undertook it themselves, and so that it may be known that the direct actor is held accountable for his deed. Al-Ṭabarī(6) said: This implies(7) that whoever a tyrant commands to kill someone, and the commanded person kills him, then he (the direct actor) is the one held accountable.

I say: Scholars have differed on this matter into three opinions: they are both killed, this one for his command and the commanded person(8) for his direct action. This was said by al-Nakha'ī(9), and ash-Shāfi'ī and Mālik said it in a detailed manner for both of them; ash-Shāfi'ī(10) said: If the ruler commands a man to kill(11) another man, and the commanded person knows that...

(1) In (M): the 'ba'. The reading is in I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/223, and al-Muhtasib 1/81, and attributed by Ibn Khalawayh in al-Qira'at al-Shadhdhah p. 5 to al-Zuhri and a group. (2) i.e., wine container. (3) As he said. In language dictionaries: bazala al-khamr: pierced its vessel. (4) Mujmal al-Lugha (dhabah) 1/364 without his saying: i.e., I uncovered it. (5) His saying: "and his authority" is not in (Zha). (6) In his Tafsir 1/645, and transmitted from him by the author via Ibn Atiyya in al-Muharrar al-Wajiz 1/140. (7) Not in (M). (8) In (Zha): And this. (9) Recorded by Abd al-Razzaq (17882) as in a copy mentioned by the editor of his Musannaf, and Ibn Abi Shayba

9/370, and cited by Ibn Abd al-Barr in al-Istidhkar 25/259, 260. (10) Al-Istidhkar 25/260. (11) In (Z): the ruler commanded him to kill.

सूरह अल-बकरा: आयत 49

86

दसवीं बात: अल्लाह तआला का कहना: {वे वध करते हैं} (yudhabbiḥūna) बहुलता दर्शाने के लिए तश्दीद (द्वित्व) के साथ बहुमत का पाठ है। इब्न मुहयसिन ने इसे पढ़ा: "yadhbaḥūna" (यज़बहून) या पर फ़तह के साथ(1)। 'ज़ब्ह' का अर्थ है चीरना। 'अज़-ज़ब्ह' का अर्थ वध किया हुआ भी है। 'अज़-ज़ुब्बाह' उंगलियों की जड़ों में दरारें पड़ना है। "ज़बह्तु अद-दन्न"(2): मैंने इसे खोल दिया, यानी इसका खुलासा किया(3)। "साद अल-ज़ाबिह" शुभ सितारों में से एक है। 'अल-मज़ाबिह' का अर्थ प्रार्थना के स्थान (मिहराब) है। 'अल-मज़ाबिह' 'मज़बह' का बहुवचन है, और यह तब होता है जब बाढ़ आती है और ज़मीन में नाली बना देती है; जो एक बालिश्त (शिब्र) या उसके आसपास हो उसे 'मज़बह' कहा जाता है(4)। इस प्रकार, फिरौन बच्चों का वध करता था और लड़कियों को जीवित छोड़ देता था, और उनके लिए 'स्त्रियों' शब्द का उपयोग भविष्य के संदर्भ में किया गया। एक समूह ने कहा: "वह तुम्हारे पुत्रों का वध करता है" का अर्थ है पुरुष, और उन्हें पुत्र कहा गया क्योंकि वे पहले वैसे थे। इस प्रस्तावक ने अपने कथन "तुम्हारी स्त्रियाँ" से तर्क दिया। पहला अधिक सही है क्योंकि वह अधिक स्पष्ट है, और अल्लाह बेहतर जानता है।

ग्यारहवीं बात: अल्लाह तआला ने इस कार्य का श्रेय फिरौन के लोगों को दिया, हालाँकि वे उसके आदेश और अधिकार से ऐसा कर रहे थे(5); क्योंकि उन्होंने इसे स्वयं किया था, और ताकि यह पता चले कि प्रत्यक्ष कर्ता को उसके कार्य के लिए जवाबदेह ठहराया जाता है। अल-तबारी(6) ने कहा: इसका अर्थ यह है(7) कि यदि कोई अत्याचारी किसी को मारने का आदेश देता है, और आदेशित व्यक्ति उसे मार देता है, तो वह (प्रत्यक्ष कर्ता) ही इसके लिए उत्तरदायी है।

मैंने कहा: विद्वानों ने इस मामले में तीन मतों पर मतभेद किया है: दोनों को मार दिया जाता है, इसे आदेश के लिए और आदेशित व्यक्ति(8) को उसके प्रत्यक्ष कार्य के लिए। अन-नखई(9) ने ऐसा ही कहा, और अल-शाफी और मलिक ने उनके लिए विस्तार से ऐसा ही कहा; अल-शाफी(10) ने कहा: यदि सुल्तान किसी व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति की हत्या(11) का आदेश देता है, और आदेशित व्यक्ति जानता है कि...

(1) (म) में: 'बा'। यह पाठ अल-नहहास की एराब अल-कुरान 1/223, और अल-मुहतासिब 1/81 में है, और इब्न खालवैय ने अल-किरात अल-शद्दाह पृ. 5 में इसे अल-जुहरी और एक समूह को जिम्मेदार

ठहराया है। (2) अर्थात: शराब का पात्र। (3) जैसा उन्होंने कहा। भाषा शब्दकोशों में: बजल अल-खम्र: उसके पात्र में छेद करना। (4) मुजमल अल-लुगा (ज़बह) 1/364 उनके बिना: यानी मैंने उसे उजागर किया। (5) उनका कहना: "और उनका अधिकार" (ज़ा) में नहीं है। (6) अपनी तफ़सीर 1/645 में, और लेखक द्वारा इब्न अतिया के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/140 में उनसे उद्धृत। (7) (म) में नहीं। (8) (ज़ा) में: और यह। (9) अब्दुल रज्ज़ाक (17882) द्वारा दर्ज किया गया जैसा कि उनके मुसन्नाफ के संपादक द्वारा उल्लेखित प्रति में है, और इब्न अबी शैबा 9/370, और इब्न अब्द अल-बर्र द्वारा अल-इस्तिधकार 25/259, 260 में उद्धृत किया गया। (10) अल-इस्तिधकार 25/260। (11) (ज़ेड) में: सुल्तान ने उसे मारने का आदेश दिया।

سورہ البقرہ: آیت 49

86

دسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {يُذَبِّحُونَ} (وہ ذبح کرتے ہیں) کثرت پر دلالت کے لیے تشدید کے ساتھ جمہور کی قرات ہے۔ ابن محیصن نے اسے یائے کے فتحہ کے ساتھ «يَذْبَحون» پڑھا ہے(1)۔ ذبح کا معنی چیرنا ہے۔ 'الذَّبْح' کا معنی ذبوحہ بھی ہے۔ 'الذُّبَّاح' انگلیوں کی جڑوں میں پڑنے والی دراڑیں ہیں۔ "ذَبحتُ الدَّنَّ"(2) : میں نے اسے کھول دیا یعنی اسے منکشف کیا(3)۔ "سعدُ الذَّابحُ" : ایک مبارک ستارہ ہے۔ 'المذابح' سے مراد محرابیں ہیں۔ 'المذابح' 'مَذْبَح' کی جمع ہے، اور یہ وہ راستہ ہے جو سیلاب زمین میں بناتا ہے، چنانچہ جو بالشت بھر یا اس کے قریب ہو اسے 'مَذْبَح' کہا جاتا ہے(4)۔ فرعون بچوں کو ذبح کرتا اور لڑکیوں کو زندہ چھوڑ دیتا تھا، اور ان کے لیے 'نساء' (عورتوں) کا لفظ مال (انجام) کے اعتبار سے استعمال کیا۔ ایک گروہ نے کہا: "تمہارے بیٹوں کو ذبح کرتے ہیں" سے مراد مرد ہیں، اور انہیں بیٹے اس لیے کہا گیا کہ وہ پہلے ایسے تھے۔ اس قول کے قائل نے اپنے قول "تمہاری عورتیں" سے استدلال کیا۔ پہلا قول زیادہ صحیح ہے کیونکہ وہی زیادہ واضح ہے، اور اللہ بہتر جانتا ہے۔

گیارہویں بات: اللہ تعالیٰ نے فعل کی نسبت آلِ فرعون کی طرف کی، حالانکہ وہ اس کے حکم اور غلبے سے ایسا کرتے تھے(5)؛ تاکہ وہ خود اسے سرانجام دیں اور تاکہ یہ معلوم ہو جائے کہ عمل کرنے والا اپنے فعل کا ذمہ دار ہوتا ہے۔ طبری(6) نے کہا: اس کا تقاضا یہ ہے(7) کہ جو کسی ظالم کے حکم پر کسی کو قتل کرے اور اسے حکم دیا گیا ہو، تو وہ قتل کا ذمہ دار ہوگا۔

میں نے کہا: علماء نے اس مسئلہ میں تین اقوال پر اختلاف کیا ہے: دونوں کو قتل کیا جائے گا، اسے حکم دینے کی وجہ سے اور حکم پانے والے(8) کو خود عمل کرنے کی وجہ سے۔ اسی طرح

نخعی(9) نے کہا، اور شافعی اور مالک نے ان دونوں کے بارے میں تفصیل سے یہی کہا ہے؛ شافعی(10) نے کہا: اگر بادشاہ کسی شخص کو قتل(11) کا حکم دے اور حکم پانے والا جانتا ہو کہ...

(1) (م) میں: باء۔ یہ قرات نحاس کی اعراب القرآن 1/223، اور المحتسب 1/81 میں ہے، اور ابن خالویہ نے القراءات الشاذہ ص 5 میں اسے زہری اور ایک گروہ کی طرف منسوب کیا ہے۔ (2) یعنی: شراب کا برتن۔ (3) جیسا کہ انہوں نے کہا۔ لغت کی کتابوں میں ہے: بزل الخمر: اس کا برتن چھیدنا۔ (4) مجمل اللغہ (ذبح) 1/364، ان کے اس قول کے بغیر: یعنی اسے منکشف کیا۔ (5) ان کا قول: "وسلطانہ" (ظ) میں نہیں ہے۔ (6) اپنی تفسیر 1/645 میں اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز 1/140 میں نقل کیا ہے۔ (7) (م) میں نہیں ہے۔ (8) (ظ) میں: اور یہ۔ (9) اسے عبد الرزاق (17882) نے روایت کیا جیسا کہ ان کے مصنف کے محقق کے نسخے میں ہے، اور ابن ابی شیبہ 9/370، اور اسے ابن عبد البر نے الاستذکار 25/259، 260 میں ذکر کیا ہے۔ (10) الاستذکار 25/260۔ (11) (ز) میں: بادشاہ نے اسے قتل کا حکم دیا۔

87 Surah Al-Baqarah: Verse 49

[He] ordered his killing unjustly, the retribution (Qawad) is upon both him and the Imam, like two killers together. If the Imam coerced him into it, and he knew that he was killing him unjustly, then the retribution is upon the Imam, and regarding the commanded person, there are two opinions: One of them: that the retribution is upon him as well. The other: there is no retribution upon him, but he owes half of the blood money (Diyah), as narrated by Ibn al-Mundhir. Our scholars said: The commanded person is either one who is bound to obey the commander and fears his harm, such as a ruler or a master to his slave—in which case retribution is mandatory for both of them—or he is someone who is not bound by that, so the direct perpetrator alone is killed without the commander. This is like a father ordering his son, or a teacher ordering some of his pupils, or a craftsman ordering some of his apprentices if they have reached puberty. If the child is not an adult, then the killing is attributed to the commander, and half of the blood money is due from the child's paternal relatives (Aaqilah). Ibn Nafi' said: A master is not killed if he orders his slave —even if he is a non-Arab/foreigner—to kill a person. Ibn Habib said: And I follow the saying of Ibn al-Qasim: retribution is upon both of them. As for the command of someone whose disobedience poses no fear for the commanded, it does not fall under coercion; rather, the commanded person alone is killed without the commander, and the commander is lashed and imprisoned. Ahmad said regarding a master who orders his slave to kill a man: The master is killed. This opinion was narrated from Ali ibn Abi Talib and Abu Hurairah (may Allah be pleased with them). Ali said: The slave is put in prison. Ahmad said: The slave is imprisoned, lashed, and disciplined. Al-Thawri said: The master is given a discretionary punishment (Ta'zir). Al-Hakam and Hammad (3) said: The slave is killed. Qatadah said: Both are killed together. Al-Shafi'i said: If the slave is articulate and intelligent, the slave is killed and the master is punished; if the slave is a non-Arab/ignorant, then retribution is upon the master (4).

Footnotes: (1) His saying: "that he be," is not in (Zha). (2) In (Za): or it is what is required of him. (3) He is Ibn Abi Sulayman, Abu Isma'il ibn Muslim al-Kufi, a client of the Ash'aris, the jurist of Iraq, the teacher of Abu Hanifa, and a student of Ibrahim al-Nakha'i, died in the year 120 AH. As-Siyar 5/231. (4) Al-Istidhkar 25/259. The narration from Ali and Abu Hurairah was recorded by Ibn Abi Shaybah 9/371.

८७ सूरह अल-बकरा: आयत ४९

[उसने] उसे अन्यायपूर्ण तरीके से मारने का आदेश दिया, तो उस पर और इमाम पर प्रतिशोध (क़वाद) होगा, जैसे कि दो हत्यारे एक साथ हों। यदि इमाम ने उसे इसके लिए मजबूर किया, और वह जानता था कि वह उसे अन्यायपूर्ण तरीके से मार रहा है, तो प्रतिशोध इमाम पर होगा, और जिसे आदेश दिया गया था उसके संबंध में दो राय हैं: पहली: यह कि प्रतिशोध उस पर भी है। दूसरी: उस पर कोई प्रतिशोध नहीं है, और उसे आधा रक्त-मूल्य (दिया) देना होगा, जैसा कि इब्न अल-मुन्ज़िर ने उल्लेख किया है। हमारे विद्वानों ने कहा: आदेशित व्यक्ति या तो ऐसा होता है जिस पर आदेश देने वाले की आज्ञा मानना अनिवार्य है और वह उसके नुकसान से डरता है, जैसे सुल्तान, या अपने गुलाम के लिए मालिक - ऐसी स्थिति में प्रतिशोध उन दोनों के लिए अनिवार्य है - या वह उन लोगों में से है जिस पर यह अनिवार्य नहीं है, तो केवल वास्तविक हत्या करने वाले को मार दिया जाता है, आदेश देने वाले को नहीं। यह वैसा ही है जैसे एक पिता अपने बेटे को आदेश देता है, या एक शिक्षक अपने कुछ शिष्यों को, या एक कारीगर अपने कुछ प्रशिक्षुओं को यदि वे बालिग हों। यदि वे बालिग नहीं हैं, तो हत्या का दोष आदेश देने वाले पर होगा, और बच्चे के परिवार (आक़िला) पर आधा रक्त-मूल्य होगा। इब्न नाफे ने कहा: एक मालिक को नहीं मारा जाता यदि वह अपने गुलाम को - चाहे वह गैर-अरबी हो - किसी व्यक्ति की हत्या करने का आदेश देता है। इब्न हबीब ने कहा: और मैं इब्न अल-कासिम की बात कहता हूँ: हत्या (का प्रतिशोध) उन दोनों पर है। जहाँ तक उस व्यक्ति के आदेश की बात है जिसकी अवज्ञा करने पर आदेशित व्यक्ति को कोई डर न हो, तो वह जबरदस्ती के दायरे में नहीं आता, बल्कि आदेशित व्यक्ति को ही मारा जाएगा, आदेश देने वाले को नहीं, और आदेश देने वाले को कोड़े मारे जाएंगे और जेल में डाल दिया जाएगा। अहमद ने उस मालिक के बारे में कहा जो अपने गुलाम को एक आदमी को मारने का आदेश देता है: मालिक को मारा जाएगा। यह राय अली बिन अबी तालिब और अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत की गई है। अली ने कहा: गुलाम को जेल में रखा जाएगा। अहमद ने कहा: गुलाम को जेल में रखा जाएगा, कोड़े मारे जाएंगे और अनुशासित किया जाएगा। अल-थौरी ने कहा: मालिक को ताज़ीर (विवेकाधीन सजा) दी जाएगी। अल-हकम और हम्माद (३) ने कहा: गुलाम को मारा जाएगा। क़तादा ने कहा: दोनों को एक साथ मारा जाएगा। अल-शाफई ने कहा: यदि गुलाम समझदार और बुद्धिमान है, तो गुलाम को मारा जाएगा और मालिक को सजा दी जाएगी; और यदि गुलाम नासमझ है, तो मालिक पर प्रतिशोध होगा (४)।

पाद-टिप्पणियाँ: (१) उनका कहना: "कि वह हो," (ज़ो) में नहीं है। (२) (ज़े) में: या जो उस पर अनिवार्य है। (३) वह इब्न अबी सुलेमान हैं, अबू इस्माइल बिन मुस्लिम अल-कूफी, अश्अरी के आज़ाद किए हुए गुलाम, इराक के फकीह, अबू हनीफा के शिक्षक, और इब्राहिम अल-नखई के छात्र, १२० हिजरी में मृत्यु हुई। अल-सियार ५/२३१। (४) अल-इस्तिज़कार २५/२५९। अली और अबू हुरैरा का कथन इब्न अबी शैबा ९/३७१ द्वारा उद्धृत किया गया है।

ناحق قتل کا حکم دیا، تو اس پر اور امام پر قصاص (قود) ہوگا، جیسے کہ دو قاتل ایک ساتھ ہوں۔ اگر امام نے اسے اس پر مجبور کیا، اور وہ جانتا تھا کہ وہ اسے ناحق قتل کر رہا ہے، تو قصاص امام پر ہوگا، اور جس کو حکم دیا گیا اس کے بارے میں دو قول ہیں: ایک یہ کہ: اس پر بھی قصاص ہے۔ دوسرا یہ کہ: اس پر قصاص نہیں ہے، اور اس پر آدھی دیت ہے، جیسا کہ ابن المنذر نے روایت کیا ہے۔ ہمارے علماء نے کہا: جس کو حکم دیا گیا ہے اس کی دو حالتیں ہیں: یا تو وہ ان لوگوں میں سے ہو جن پر حکم دینے والے کی اطاعت لازم ہو اور وہ اس کے شر سے ڈرتا ہو، جیسے سلطان، یا آقا اپنے غلام کے لیے - تو اس صورت میں قصاص دونوں پر لازم ہے - یا وہ ان میں سے ہو جن پر یہ لازم نہیں ہے، تو صرف براہِ راست قتل کرنے والے کو قتل کیا جائے گا، حکم دینے والے کو نہیں، جیسے کوئی باپ اپنے بیٹے کو حکم دے، یا استاد اپنے کسی شاگرد کو، یا کاریگر اپنے کسی زیرِ تربیت شاگرد کو اگر وہ بالغ ہو۔ اگر وہ نابالغ ہو تو قتل کا ذمہ دار حکم دینے والا ہوگا، اور بچے کے عاقلہ پر آدھی دیت ہوگی۔ ابن نافع نے کہا: آقا کو قتل نہیں کیا جائے گا اگر وہ اپنے غلام کو - چاہے وہ عجمی ہی کیوں نہ ہو - کسی انسان کو قتل کرنے کا حکم دے۔ ابن حبیب نے کہا: اور میں ابن القاسم کے قول کا قائل ہوں کہ: قتل (کا قصاص) دونوں پر ہے۔ رہا اس شخص کا حکم جس کی مخالفت کرنے میں مأمور (جسے حکم دیا گیا) کو کوئی خوف نہ ہو، تو یہ اکراہ (زبردستی) میں شامل نہیں ہوگا، بلکہ حکم بجا لانے والے کو قتل کیا جائے گا نہ کہ حکم دینے والے کو، اور حکم دینے والے کو کوڑے مارے جائیں گے اور قید کیا جائے گا۔ احمد نے اس آقا کے بارے میں جو اپنے غلام کو کسی آدمی کو قتل کرنے کا حکم دے، کہا: آقا کو قتل کیا جائے گا۔ اور یہ قول علی بن ابی طالب اور ابوہریرہ رضی اللہ عنہما سے مروی ہے۔ علی نے کہا: غلام

کو قید میں رکھا جائے گا۔ احمد نے کہا: غلام کو قید کیا جائے گا، کوڑے مارے جائیں گے اور تادیب کی جائے گی۔ ثوری نے کہا: آقا کو تعزیر دی جائے گی۔ حکم اور حماد (۳) نے کہا: غلام کو قتل کیا جائے گا۔ قتادہ نے کہا: دونوں کو ایک ساتھ قتل کیا جائے گا۔ شافعی نے کہا: اگر غلام فصیح و عاقل ہے، تو غلام قتل کیا جائے گا اور آقا کو سزا دی جائے گی؛ اور اگر غلام عجمی (ناسمجھ) ہے تو آقا پر قصاص ہوگا (۴)۔

حواشی: (۱) ان کا قول: "أن یکون"، (ظ) میں نہیں ہے۔ (۲) (ز) میں ہے: "أو یکون ما یلزمه"۔ (۳) یہ ابن ابی سلیمان ہیں، ابو اسماعیل بن مسلم الکوفی، اشعریوں کے مولیٰ، عراق کے فقیہ، ابو حنیفہ کے شیخ، اور ابراہیم النخعی کے شاگرد، سن ۱۲۰ھ میں وفات پائی۔ السیر ۲۳۱/۵۔ (۴) الاستذکار ۲۵۹/۲۵۔ اور علی و ابوہریرہ کا قول ابن ابی شیبہ نے ۳۷۱/۹ میں روایت کیا ہے۔

Page 88 Surah Al-Baqarah: Verse 49

Sulayman bin Musa (1) said: The one who gives the order is not killed, but he pays the blood money (2), then he is punished and imprisoned – and this is the second opinion – and the one who is ordered is killed for the direct execution. Likewise, Ata', Al-Hakam, Hammad, Al-Shafi'i, Ahmad, and Ishaq said regarding a man who orders another man to kill someone (3); mentioned by Ibn al-Mundhir.

Zufar (4) said: Neither of them is killed – and this is the third opinion – narrated by Abu al-Ma'ali in Al-Burhan (5). He believed that the one who orders and the one who executes are not each independent in retribution (Qisas), therefore, in his view, neither of them is killed. And Allah knows best.

Twelfth: The majority recited: "yudhabbihoon" (they slaughter many), with emphasis (tashdid) to indicate intensification. Ibn Muhaysin recited "yadhbahoon" (they slaughter) without emphasis (6). The first is more likely as the slaughtering was repetitive. Pharaoh – according to what was narrated – had seen a dream of a fire coming out of Jerusalem, which burned the houses of Egypt. His dream was interpreted as: a newborn from the children of Israel will grow up, and the destruction of his kingdom (7) will be at his hands (8). Other things were said, but the meanings are similar.

Thirteenth: His Almighty's saying: {And in that} is an indication to the whole matter, as it is a report, so it is like a present singular (9), meaning: and in their (10) doing that to you was a "balaa'" (trial), meaning: a test and examination. And "balaa'" can mean a blessing (11), and from it is His Almighty's saying: {and that He might test the believers with a good trial from Himself} [Al-Anfal: 17]. Abu...

---

(1) Al-Dimashqi Al-Ashdaq, mawla of the family of Mu'awiyah bin Abi Sufyan, mufti of Damascus, died in (115 AH), and it was said: (119 AH). As-Siyar 5/433. (2) From: wada al-qateel, yadeehi: when he gives his blood money. It occurred in (M): his hands are cut off! which is a gross error. (3) Al-Istidhkar 25/259-260. (4) Ibn al-Hudhayl al-Anbari, Abu al-Hudhayl, the diligent jurist, the greatest student of Abu Hanifa, died in (158 AH). As-Siyar 8/38. (5) 2/796, in it is Zufar's saying that retribution is on the coerced, not the coercer. (6) The author mentioned that in the tenth issue. (7) In (D) and (Z): your kingdom. (8) Tafsir al-Tabari 1/648, al-Muharrar al-Wajiz 1/140, and Tafsir al-Baghawi 1/170. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/141. (10) In (D): and their doing. (11) Ibn

Jarir 1/653 and Ibn Abi Hatim 1/151 narrated this interpretation from Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both.

पृष्ठ ८८ सूरह अल-बकरा: आयत ४९

सुलेमान बिन मूसा (१) ने कहा: आदेश देने वाले को नहीं मारा जाता है, लेकिन वह रक्त धन (दीया) देता है (२), फिर उसे दंडित किया जाता है और कैद किया जाता है - और यह दूसरा मत है - और जिसे आदेश दिया जाता है उसे प्रत्यक्ष निष्पादन के लिए मारा जाता है। इसी तरह अता, अल-हकम, हम्माद, अल-शाफी, अहमद और इसहाक ने उस व्यक्ति के बारे में कहा जो दूसरे व्यक्ति को किसी की हत्या करने का आदेश देता है (३); इसका उल्लेख इब्न अल-मुन्जिर ने किया है।

जुफर (४) ने कहा: उनमें से किसी को भी नहीं मारा जाता है - और यह तीसरा मत है - अबू अल-मअली ने अल-बुरहान (५) में इसका उल्लेख किया है। उनकी राय थी कि आदेश देने वाला और उसे करने वाला, प्रतिशोध (किसास) में प्रत्येक स्वतंत्र नहीं हैं, इसलिए उनके अनुसार उनमें से किसी को भी नहीं मारा जाता है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

बारहवीं: बहुसंख्यक (जम्हूर) ने पढ़ा: "युधब्बिहून" (वे बहुत कत्ल करते हैं), तीव्रता दिखाने के लिए तशदीद के साथ। इब्न मुहैसिन ने तखफीफ (बिना तशदीद) के साथ "यधबहून" पढ़ा (६)। पहला अधिक प्रशंसनीय है क्योंकि कत्ल दोहराया गया था। फिरौन ने - जैसा कि वर्णित है - अपने सपने में बैतुल मुक़द्दस से निकलती हुई एक आग देखी थी, जिसने मिस्र के घरों को जला दिया था। उसके सपने की व्याख्या की गई: बनी इस्राइल का एक बच्चा बड़ा होगा, जिसके हाथों (८) उसके राज्य (७) का विनाश होगा। इसके अलावा भी कुछ कहा गया है, लेकिन अर्थ करीब हैं।

तेरहवीं: अल्लाह तआला का कथन: {और इसमें} पूरे मामले की ओर संकेत है, क्योंकि यह एक खबर है, तो यह उपस्थित एकवचन के समान है (९), अर्थात्: और उनके(१०) तुम्हारे साथ ऐसा करने में एक "बला" (परीक्षा) थी, अर्थात्: एक इम्तिहान और आज़माइश। और "बला" का अर्थ नेमत भी हो सकता है (११), और इसी से अल्लाह तआला का कथन है: {और ताकि वह ईमान वालों को अपनी ओर से एक अच्छी आज़माइश के साथ आज़माए} [अल-अनफाल: १७]। अबू...

---

(१) अद-दिमश्की अल-अशदक, मुआ़विया बिन अबी सुफियान के परिवार के सेवक, दमिश्क के मुफ्ती, मृत्यु वर्ष (११५ हिजरी), और कहा गया: (११९ हिजरी)। अस-सियार ५/४३३। (२) "वदा अल-क़तील, यदीही" से: जब वह उसका खून-बहा (दीया) देता है। और (म) में आया है: "उसके हाथ काट दिए जाते हैं!" जो एक भारी गलती है। (३) अल-इस्तिधकार २५/२५९-२६०। (४) इब्न अल-हुदैल अल-अंबारी, अबू अल-हुदैल, मुजतहिद फकीह, अबू हनीफा के सबसे बड़े शिष्य, मृत्यु वर्ष (१५८ हिजरी)।

अस-सियार ८/३८। (५) २/७९६, और इसमें ज़ुफर का कथन है कि किसास मजबूर करने वाले पर है न कि मजबूर होने वाले पर। (६) लेखक ने दसवीं समस्या में इसका उल्लेख किया है। (७) (द) और (ज़) में: "तुम्हारा राज्य"। (८) तफसीर अल-तबरी १/६४८, अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४०, और तफसीर अल-बग़वी १/१७०। (९) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४१। (१०) (द) में: "और उनका करना"। (११) इब्न जरीर १/६५३ और इब्न अबी हातिम १/१५१ ने इब्न अब्बास (रज़ि.) से यह व्याख्या उद्धृत की है।

صفحہ ۸۸ سورہ البقرہ: آیت ۴۹

اور سلیمان بن موسیٰ (۱) نے کہا: حکم دینے والے کو قتل نہیں کیا جائے گا، بلکہ وہ دیت ادا کرے گا (۲)، پھر اسے سزا دی جائے گی اور قید کیا جائے گا - اور یہ دوسرا قول ہے - اور حکم پانے والے کو براہ راست عمل کرنے کی بنا پر قتل کیا جائے گا۔ عطاء، الحکم، حماد، شافعی، احمد اور اسحاق نے بھی اس شخص کے بارے میں یہی کہا جو دوسرے کو کسی کے قتل کا حکم دے (۳)؛ اسے ابن المنذر نے ذکر کیا ہے۔

اور زفر (۴) نے کہا: ان میں سے کسی کو بھی قتل نہیں کیا جائے گا - اور یہ تیسرا قول ہے - اسے ابو المعالی نے البرہان (۵) میں نقل کیا ہے، ان کی رائے یہ تھی کہ آمر (حکم دینے والا) اور مباشر (عمل کرنے والا) میں سے ہر ایک قصاص میں مستقل نہیں ہے، اس لیے ان کے نزدیک ان میں سے کسی کو قتل نہیں کیا جائے گا۔ واللہ اعلم۔

بارہویں بات: جمہور نے اسے «يُذَبِّحون» پڑھا ہے، مبالغے کے لیے تشدید کے ساتھ۔ اور ابن محیصن نے تخفیف (بغیر تشدید) کے ساتھ «يَذْبَحون» پڑھا ہے (۶)۔ پہلا قول زیادہ راجح ہے کیونکہ ذبح کا عمل بار بار ہوتا تھا۔ اور فرعون نے - جیسا کہ روایت کیا گیا ہے - اپنے خواب میں بیت المقدس سے ایک آگ نکلتی ہوئی دیکھی تھی جس نے مصر کے گھروں کو جلا دیا تھا، تو اس کے خواب کی تعبیر یہ بتائی گئی: بنی اسرائیل میں ایک بچہ پیدا ہوگا اور پروان چڑھے گا، جس کے ہاتھوں (۸) اس کی سلطنت (۷) تباہ ہو جائے گی۔ اس کے علاوہ بھی کچھ کہا گیا ہے، اور معنی قریب قریب ہیں۔

تیرہویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَفِي ذَٰلِكُم﴾ اس پورے معاملے کی طرف اشارہ ہے، کیونکہ یہ خبر ہے، تو یہ حاضر مفرد کی طرح ہے (۹)، یعنی: اور ان کے (۱۰) اس فعل میں تمہارے لیے بلاء (آزمائش) تھی، یعنی: امتحان اور آزمائش۔ اور «بَلَاءٌ» کا مطلب نعمت بھی ہوتا ہے (۱۱)، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان ہے: ﴿وَلِيُبْلِيَ الْمُؤْمِنِينَ مِنْهُ بَلَاءً حَسَنًا﴾ [الأنفال: ۱۷]۔ ابو...

---

(۱) الدمشقی الاشدق، آلِ معاویہ بن ابی سفیان کے آزاد کردہ غلام، دمشق کے مفتی، وفات (۱۱۵ھ) میں ہوئی، اور کہا گیا: (۱۱۹ھ)۔ السیر ۵/۴۳۳۔ (۲) "وَدی القتیلَ، یَدِیهِ" سے ہے: جب وہ اس کی دیت دے دے۔ اور (م) کے نسخے میں "تقطع یدیہ!" (اس کے ہاتھ کاٹ دیے جائیں) واقع ہوا ہے، جو کہ ایک فاش غلطی ہے۔ (۳) الاستذکار ۲۵/ ۲۵۹-۲۶۰۔ (۴) ابن الہذیل العنبری، ابو الہذیل، فقیہ مجتہد، امام ابو حنیفہ کے سب سے بڑے شاگرد، وفات (۱۵۸ھ) میں ہوئی۔ السیر ۸/۳۸۔ (۵) ۷۹۶/۲، اس میں زفر کا قول ہے کہ قصاص اس پر ہے جس نے مجبور کیا، نہ کہ اس پر جو مجبور ہوا۔ (۶) مصنف نے دسویں مسئلے میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۷) (د) اور (ظ) میں: "تیری سلطنت"۔ (۸) تفسیر طبری ۱/۶۴۸، المحرر الوجیز ۱/۱۴۰، اور تفسیر بغوی ۱/۱۷۰۔ (۹) المحرر الوجیز ۱/۱۴۱۔ (۱۰) (د) میں: "اور ان کا فعل"۔ (۱۱) اس تفسیر کو ابن جریر ۱/۶۵۳ اور ابن ابی حاتم ۱/۱۵۱ نے ابن عباس رضی اللہ عنہما سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 50 89 Al-Haytham (1): "Balaa'" (trial/test) can be good, and it can be bad. Its root is "mihnah" (hardship). Allah, the Almighty and Majestic, tests (2) His servant with beautiful handiwork to test his gratitude, and He tests him with afflictions he dislikes to test his patience. Thus, it is said for the good: "balaa'", and for the bad: "balaa'". This was narrated by Al-Harawi (3).

A group [of scholars] said: The reference in "dhaalikum" (that) is to the rescue. In this case, "balaa'" would be in the sense of good, meaning: your rescue is a blessing from Allah upon you.

The majority [of scholars] said: The reference is to the slaughtering and the like, and "balaa'" here is in the sense of evil. The meaning is: in the slaughtering there is something disliked and a trial (4).

Ibn Kaysan said: Regarding good, it is said: "ablaahu Allah wa balaahu" (Allah tested him). He recited: "May Allah reward with goodness what they both did for you, and may He grant them (5) the best trial that tests (6)." So he combined the two linguistic forms. The more common usage for good is "ablaytuhu", for evil it is "balawtuhu", and for testing in general it is "ibtallaytuhu" and "balawtuhu", as stated by Al-Nahhas.

His (Exalted) saying: {And [recall] when We parted the sea for you and saved you and drowned the people of Pharaoh while you were looking on}.

His (Exalted) saying: {And [recall] when We parted the sea for you and saved you}. "Idh" (when) is in the position of the accusative case. And "faraqna" (We parted) means "falaqna" (We split), as in {And each part was like a towering mountain} [Ash-Shu'ara: 63], i.e., the great mountain. The root of "farq" is "fasl" (separation/ distinction). From it comes "farq ash-sha'r" (the parting of the hair), and from it comes "Al-Furqan" (the Criterion) because it distinguishes between truth and falsehood, i.e., separates them. Also from it: {And those who distinguish [between truth and falsehood] with a distinction} [Al-Mursalat: 4], meaning the angels who descend with the distinction between truth and falsehood. And from it: {the Day of the Criterion} [Al-Anfal: 41], meaning the Day of Badr, for on that day there was a distinction made between truth and falsehood. And from it: {And [it is] a Quran which We have divided} [Al-Isra: 106], meaning We have explained it in detail and perfected it.

(1) Perhaps he is Abu al-Haytham al-Razi, known by his kunya. He was an imam of grammar, author of "Ash-Shamil fil-Lughah", "Al-Fakhir fil-Lughah", and "Ziyadat

Ma'ani al-Quran" by Al-Farra. He died in the year (276 AH). Inbah al-Ruwat 4/182, Bughyat al-Wu'at 2/329. (2) In (d): "yubli". (3) In the book "Al-Gharibayn: Gharibay al-Quran wa al-Hadith", pp. 209-210. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/141. (5) In (m): "wa ablaahuma". (6) The verse is by Zuhayr bin Abi Sulma, found in his Diwan p. 109, and it has "ra'a" instead of "jazaa", which is Al-Asma'i's narration as mentioned by its editor.

सूरा अल-बकरा: आयत ५० ८९ अल-हैथम (१): 'बला' (परीक्षा/आज़माइश) अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी, और इसका मूल अर्थ 'मिहना' (कठिनाई) है। अल्लाह सर्वशक्तिमान और प्रतापी अपने बंदे को अच्छे व्यवहार से आज़माता (२) है ताकि उसके शुक्र (कृतज्ञता) की परीक्षा ले सके और उसे उन आपदाओं से आज़माता है जिन्हें वह नापसंद करता है ताकि उसके सब्र (धैर्य) की परीक्षा ले सके। इसलिए अच्छी चीज़ के लिए भी 'बला' कहा गया और बुरी चीज़ के लिए भी 'बला'। इसे अल-हरवी (३) ने उद्धृत किया है।

एक समूह ने कहा: 'ज़ालिकुम' (वह) का संकेत बचाव की ओर है, इस प्रकार 'बला' यहाँ अच्छाई के संदर्भ में होगा, यानी: तुम्हारा बचाव अल्लाह की ओर से तुम पर एक नेमत (वरदान) है।

बहुमत [विद्वानों] ने कहा: संकेत ज़बह (कत्लेआम) और उसके जैसी चीजों की ओर है, और यहाँ 'बला' बुराई के संदर्भ में है। इसका अर्थ है: ज़बह में नापसंदगी और परीक्षा (४) है।

इब्न कैसान ने कहा: अच्छाई के लिए कहा जाता है: 'अब्लाहुल्लाहु व बलाहु' (अल्लाह ने उसे आज़माया)। उन्होंने यह शेर पढ़ा: "अल्लाह ने तुम्हारे साथ जो किया उसके बदले में उन्हें भलाई अता करे, और उन्हें (५) वह बेहतरीन परीक्षा दे जो आज़माती है (६)।" इस प्रकार उन्होंने दोनों भाषाई रूपों को मिला दिया। अच्छाई के लिए 'अबलय्तुहू' का प्रयोग अधिक होता है, और बुराई के लिए 'बलव्तुहू', और सामान्य परीक्षण के लिए 'इब्तलैतुहू' और 'बलव्तुहू' कहा जाता है, जैसा कि अल-नहहास ने कहा है।

अल्लाह का फरमान: {और याद करो जब हमने तुम्हारे लिए समुद्र को फाड़ दिया और तुम्हें बचा लिया और फिरौन के लोगों को डुबो दिया, जबकि तुम देख रहे थे}।

अल्लाह का फरमान: {और याद करो जब हमने तुम्हारे लिए समुद्र को फाड़ दिया और तुम्हें बचा लिया}। यहाँ 'इज़' (जब) नसब (कर्मकारक) की स्थिति में है। और 'फरकना' (हमने फाड़ा) का अर्थ 'फलकना' (हमने अलग किया) है, जैसा कि आयत में है: {तो हर भाग एक ऊँचे पहाड़ की तरह हो गया} [अश-शुआरा: ६३], यानी विशाल पर्वत। 'फ़र्क का मूल अर्थ 'फस्ल' (अलग करना/भेद करना) है। इसी से बालों की 'माँग' (फ़र्क अश-शआर) शब्द निकला है, और इसी से 'अल-फुरकान' (सत्य और असत्य में भेद करने वाली कसौटी) बना है; क्योंकि यह सत्य और असत्य के बीच फर्क करता है, यानी उन्हें अलग करता है। इसी से: {और वे जो सत्य और असत्य के बीच स्पष्ट भेद करने वाले हैं} [अल-मुरसलात: ४], अर्थात वे फरिश्ते जो सत्य और असत्य के बीच भेद के साथ उतरते हैं। और इसी

से: {यौम अल-फ़ुरकान} (निर्णय का दिन) [अल-अनफाल: ४१], यानी बदर का दिन, क्योंकि उस दिन सत्य और असत्य के बीच भेद किया गया था। और इसी से: {और यह एक कुरान है जिसे हमने अलग-अलग भागों में उतारा है} [अल-इसरा: १०६], यानी हमने इसे सविस्तार समझाया और सुदृढ़ किया।

(१) संभवतः वे अबू अल-हैथम अल-राज़ी हैं, जो अपनी कुनियत से प्रसिद्ध थे। वे व्याकरण के इमाम थे, उनकी कृतियों में 'अश-शामिल फ़िल-लुगा', 'अल-फाखिर फ़िल-लुगा', और अल-फर्रा की 'मानी अल-कुरान' का परिवर्धन शामिल है। उनकी मृत्यु सन् (२७६ हिजरी) में हुई। इन्बाह अल-रुवात ४/१८२, बुग़यत अल-वुआत २/३२९। (२) (द) में: 'युब्ली'। (३) 'अल-गरीबैन: ग़रीबय अल-कुरान व अल-हदीस' पुस्तक में, पृष्ठ २०९-२१०। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४१। (५) (म) में: 'व अबलाहुमा'। (६) यह शेर ज़ुहैर बिन अबी सुल्मा का है, जो उनके दीवान के पृष्ठ १०९ पर है। इसमें 'जज़ा' के बदले 'रआ' है, जैसा कि अल-असमाई ने उल्लेख किया है।

سورہ البقرہ : آیت ۵۰ ۸۹ ہیثم (۱) : بلاء اچھی بھی ہوتی ہے اور بری بھی، اس کی اصل 'محنت' (آزمائش) ہے، اور اللہ عزوجل اپنے بندے کو اچھے احسان کے ساتھ آزماتا (۲) ہے تاکہ اس کے شکر کا امتحان لے، اور اسے ان تکالیف کے ذریعے آزماتا ہے جنہیں وہ ناپسند کرتا ہے تاکہ اس کے صبر کا امتحان لے، چنانچہ اچھائی کے لیے بھی 'بلاء' کہا گیا اور برائی کے لیے بھی 'بلاء'، اسے ہروی (۳) نے روایت کیا ہے۔

ایک جماعت نے کہا: 'ذلکم' (وہ) سے اشارہ نجات کی طرف ہے، اس صورت میں بلاء یہاں خیر کے معنی میں ہوگی، یعنی: تمہارا نجات پانا اللہ کی طرف سے تم پر ایک نعمت ہے۔

جمہور [علماء] نے کہا: اشارہ ذبح (قتل عام) اور اس جیسی چیزوں کی طرف ہے، اور بلاء یہاں شر کے معنی میں ہے، اور مطلب یہ ہے کہ: ذبح میں ناگواری اور آزمائش (۴) ہے۔

ابن کیسان نے کہا: خیر کے بارے میں کہا جاتا ہے: 'ابلاہ اللہ و بلاہ' (اللہ نے اسے آزمایا)۔ انہوں نے یہ شعر پڑھا: "اللہ نے تمہارے ساتھ جو بھلائی کی اس کی جزا دے، اور ان دونوں کو (۵) وہ بہترین آزمائش عطا کرے جو آزماتی ہے (۶)۔" چنانچہ انہوں نے دونوں لغوی صورتوں کو جمع کر دیا۔ خیر کے لیے زیادہ تر 'ابلیتہ' استعمال ہوتا ہے، اور شر کے لیے 'بلوتہ'، اور امتحان کے معنی میں 'ابتلیتہ' اور 'بلوتہ' کہا جاتا ہے، یہ نحاس کا قول ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَإِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ فَأَنجَيْنَكُمْ وَأَغْرَقْنَا ءَالَ فِرْعَوْنَ وَأَنتُمْ تَنظُرُونَ ﴾۔

ارشاد باری تعالیٰ: ﴿وَإِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ فَأَنجَيْنَكُمْ ﴾ یہاں 'إذ' (جب) محل نصب میں ہے۔ اور 'فَرَقْنَا' کا مطلب ہے 'فَلَقْنَا' (ہم نے پھاڑ دیا/جدا کر دیا) ﴿فَكَانَ كُلُّ فِرْقٍ كَالطَّوْدِ الْعَظِيمِ﴾ [الشعراء : ۶۳] یعنی: بڑے پہاڑ کی طرح۔ 'فرق' کی اصل 'فصل' (جدا کرنا/تمیز کرنا) ہے۔ اسی سے بالوں کی 'مانگ'

(فرق الشعر) نکلا ہے، اور اسی سے 'الفرقان' ہے؛ کیونکہ یہ حق اور باطل کے درمیان فرق کرتا ہے، یعنی انہیں الگ کرتا ہے۔ اور اسی سے: ﴿فَالْفَرِقَاتِ فَرْقًا﴾ [المرسلات : ۴] یعنی: وہ فرشتے جو حق اور باطل کے درمیان فرق لے کر اترتے ہیں۔ اور اسی سے: ﴿يَوْمَ الْفُرْقَانِ﴾ [الأنفال : ۴۱] یعنی: بدر کا دن، اس دن حق اور باطل کے درمیان فرق کیا گیا تھا۔ اور اسی سے: ﴿وَقُرْءَانًا فَرَقْنَهُ﴾ [الإسراء : ۱۰۶] یعنی: ہم نے اسے تفصیل سے بیان کیا اور مستحکم کیا۔

(۱) غالباً یہ ابوالہیثم الرازی ہیں، اپنی کنیت سے مشہور ہوئے، وہ امام نحو تھے، ان کی تصانیف میں الشامل فی اللغہ، الفاخر فی اللغہ، اور فراء کی معانی القرآن کے اضافے شامل ہیں۔ ان کی وفات (۲۷۶ ھ) میں ہوئی۔ انباہ الرواۃ ۴/ ۱۸۲، بغیۃ الوعاۃ ۲/ ۳۲۹۔ (۲) (د) میں ہے: 'یبلی'۔ (۳) کتاب 'الغریبین: غریبی القرآن والحدیث' ص ۲۰۹ - ۲۱۰ میں۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۱۔ (۵) (م) میں ہے: 'وأبلاهما'۔ (۶) یہ شعر زہیر بن ابی سلمیٰ کا ہے، جو ان کے دیوان کے ص ۱۰۹ پر ہے، اس میں 'جزی' کے بدلے 'رأی' ہے، اور یہ اصمعی کی روایت ہے جیسا کہ اس کے محقق نے ذکر کیا ہے۔

90 Surah Al-Baqarah: Verse 50

Al-Zuhri read: "farraqna" (we parted) with a shadda on the letter ra (1), meaning: we made it into parts. And the meaning of "bikum" (with you) means: for you, so the 'ba' carries the meaning of 'lam'. It was also said: the 'ba' remains in its place, meaning: we parted the sea by your entering into it, i.e., they became between the two waters, so the parting happened through them (2). This is more appropriate (3), as shown by the word: "fanfalaqa" (so it split).

His saying, the Almighty: {the sea} The sea is well-known, named so because of its vastness. It is said: a sea-like horse if it has a wide stride, meaning: many. From that is the saying of the Messenger of Allah (peace be upon him) regarding Mandub, Abu Talha's horse: "Indeed, we found it to be a sea" (4).

And the sea (5): salty water. It is said: 'abhara al-ma'u' (the water became sea-like), meaning it became salty. Nusayb (6) said: The waters of the earth have turned into a sea, adding to my illness that the sweet drinking source has become salty.

And Al-Bahrah (7): the town. It is said: this is our bahrah, meaning: our town. This was stated by Al-Amawi (8). And Al-Bahar: a type of tuberculosis (9) that afflicts humans. They say: I met him 'sakhrah bahrah' (10), meaning: prominent and exposed (11).

In the report from Ka'b al-Ahbar, he said: "Allah has an angel called Sandafayeel; all the seas are in the hollow of his thumb." Mentioned by Abu Nu'aym (12) from Thawr bin Yazid, from Khalid bin Ma'dan, from Ka'b.

---

(1) Al-Qira'at al-Shadhdhah by Ibn Khalawayh, p. 5, and Al-Muhtasib, 1/82. (2) In (d): "bihi", and in (z): "minhum". (3) His saying: "and this is more appropriate" is not in (z). (4) A part of the hadith narrated by Anas (may Allah be pleased with him), recorded by Ahmad (12744), Al-Bukhari (2627), and Muslim (2307). (5) In (z): "And the salty sea". (6) Ibn Rabah, he was a manumitted slave, praised Abdul Aziz bin Marwan, who then favored him and bought his loyalty. Ash-Shi'r wa ash-Shu'ara', 1/410, and the verse is in his Diwan, p. 66. (7) In the manuscripts: "the sea", and what is established is from Mujmal al-Lughah, 1/117 (b-h-r) and the text is from it. (8) Abdullah bin Saeed bin Aban, Abu Muhammad, was a memorizer of poetry, historical accounts, and the 'Days of the Arabs'. Mentioned by Al-Zubaidi in the third class of Kufic linguists, Tabaqat al-Nahwiyyin wa al-Lughawiyyin, p. 193. (9) It is a disease that affects the lungs, emaciating its owner, exhausting them, and killing them. Al-Mu'jam al-Wasit. (10) In (d) and (z): "dahwah". (11) Mujmal al-Lughah, 1/117 (b-h-r) without the word:

"exposed". (12) In Al-Hilyah, 6/8, and in it: "Sandaya'eel". Recorded by Abu al-Sheikh in Al-Azamah (332) - and through him Abu Nu'aym in Al-Hilyah, 6/61 - similarly from the saying of Shahr bin Hawshab, and the report is from the Isra'iliyyat.

९० सूरह अल-बकरा: आयत ५०

अल-ज़ुहरी ने पढ़ा: "फ़र्रकना" (हमने अलग किया) रा (१) अक्षर पर शद्दा के साथ, जिसका अर्थ है: हमने इसे टुकड़ों में बना दिया। और "बिकुम" (तुम्हारे साथ) का अर्थ है: तुम्हारे लिए, इसलिए 'बा' यहाँ 'लाम' का अर्थ देता है। और कहा गया है: 'बा' अपने मूल स्थान पर है, यानी: हमने तुम्हारे उसमें प्रवेश करने से समुद्र को अलग कर दिया, यानी: वे दो जलों के बीच में हो गए, तो अलगाव उनके माध्यम से हुआ (२)। यह अधिक उपयुक्त है (३), जैसा कि शब्द से स्पष्ट होता है: "फ़नफ़लक़ा" (तो वह फट गया)।

अल्लाह तआला का कथन: {समुद्र} समुद्र प्रसिद्ध है, इसकी विशालता के कारण इसे यह नाम दिया गया है। कहा जाता है: एक समुद्र जैसा घोड़ा यदि उसकी चाल लंबी हो, अर्थात: बहुत। उसी से अल्लाह के रसूल ﷺ का अबू तलहा के घोड़े मंदूब के बारे में कथन है: "वास्तव में, हमने उसे एक समुद्र पाया" (४)।

और अल-बहर (५): खारा पानी। कहा जाता है: 'अबहरल माऊ' (पानी समुद्र जैसा हो गया), यानी वह खारा हो गया। नुसायब (६) ने कहा: धरती का पानी समुद्र में बदल गया है, मेरी बीमारी को और बढ़ा दिया कि मीठा पीने का स्रोत खारा हो गया है।

और अल-बहरह (७): शहर या बस्ती। कहा जाता है: यह हमारी बहरह है, यानी: हमारा शहर। यह अल-अमवी (८) ने कहा है। और अल-बहर: एक प्रकार का तपेदिक (९) जो मनुष्यों को होता है। वे कहते हैं: मैं उससे 'सखरह बहरह' (१०) मिला, यानी: प्रत्यक्ष और स्पष्ट (११)।

काब अल-अहबार की एक रिपोर्ट में, उन्होंने कहा: "अल्लाह का एक फरिश्ता है जिसे संदाफ़ाईल कहा जाता है; सभी समुद्र उसके अंगूठे के गड्ढे में हैं।" अबू नुअयम (१२) ने इसे थौर बिन यज़ीद से, खालिद बिन मदान से, काब से उद्धृत किया है।

---

(१) इब्न खालवेह द्वारा अल-किराआत अल-शज्ज़ाह, पृष्ठ ५, और अल-मुहतासिब, १/८२। (२) (द) में: "बिही", और (ज़) में: "मिन्हुम"। (३) उसका कथन: "और यह अधिक उपयुक्त है", (ज़) में नहीं है। (४) अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) द्वारा वर्णित हदीस का एक हिस्सा, अहमद (१२७४४), अल-बुखारी (२६२७), और मुस्लिम (२३०७) द्वारा संकलित। (५) (ज़) में: "और खारा समुद्र"। (६) इब्न रबाह, वह एक दास था जिसे मुक्त कर दिया गया था, उसने अब्दुल अज़ीज़ बिन मरवान की प्रशंसा की, जिसने उसे उपहार

दिया और उसकी वफादारी खरीदी। अश्-शिअर व अश्-शुआरा', १/४१०, और पद उनके दीवान, पृष्ठ ६६ में है। (७) पांडुलिपियों में: "समुद्र", और जो स्थापित है वह मुजमल अल-लुघाह, १/११७ (ब-ह-र) से है और पाठ उसी से है। (८) अब्दुल्ला बिन सईद बिन अबान, अबू मुहम्मद, कविता, वृत्तांतों और 'अरबों के दिनों' के ज्ञाता थे। कुफिक भाषाविदों के तीसरे वर्ग में अल-ज़ुबैदी द्वारा उल्लेख किया गया, तबात अल-नह्विय्यीन वा अल-लुघ्विय्यीन, पृष्ठ १९३। (९) यह एक ऐसी बीमारी है जो फेफड़ों को प्रभावित करती है, इसके स्वामी को दुबला कर देती है, उन्हें थका देती है और उन्हें मार देती है। अल-मुअजम अल-वसीत। (१०) (द) और (ज़) में: "दहवाह"। (११) मुजमल अल-लुघाह, १/११७ (ब-ह-र) शब्द के बिना: "खुला/स्पष्ट"। (१२) अल-हिल्या, ६/८ में, और उसमें: "संदायाईल"। अबू अल-शेख द्वारा अल-अज़मा (३३२) में संकलित - और उनके माध्यम से अल-हिल्या, ६/६१ में अबू नुअयम - शहर बिन हवशब के कथन के समान, और रिपोर्ट इस्राइलीयात से है।

۹۰ سورة البقرہ: آیت ۵۰

اور زہری نے پڑھا: «فَرَّقْنَا» را (۱) کی تشدید کے ساتھ، یعنی: ہم نے اسے ٹکڑے ٹکڑے کر دیا۔ اور «بکم» کے معنی ہیں: تمہارے لیے، پس 'باء' 'لام' کے معنی میں ہے۔ اور کہا گیا: 'باء' اپنی جگہ پر ہے، یعنی: ہم نے تمہارے اس میں داخل ہونے سے سمندر کو پھاڑ دیا، یعنی: وہ دو پانیوں کے درمیان ہو گئے، تو ان کے ذریعے فرق واقع ہوا (۲)، اور یہ زیادہ بہتر ہے (۳)، اس کی وضاحت لفظ: «فَانفَلَقَ» (پس وہ پھٹ گیا) سے ہوتی ہے۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿ الْبَحْرَ ﴾ بحر (سمندر) معروف ہے، اسے اس کی وسعت کی وجہ سے یہ نام دیا گیا۔ اور کہا جاتا ہے: «فَرَسٌ بَحْرٌ» (سمندر جیسا گھوڑا) جب اس کی رفتار وسیع ہو، یعنی: بہت زیادہ۔ اسی سے رسول اللہ ﷺ کا قول ابو طلحہ کے گھوڑے 'مندوب' کے بارے میں ہے: «وإن وجدناه لبحراً» (اور بے شک ہم نے اسے ایک سمندر پایا) (۴)۔

اور البحر (۵): نمکین پانی، اور کہا جاتا ہے: «أَبْحَرَ الماءُ» یعنی پانی نمکین ہو گیا، نصیب (۶) نے کہا: زمین کا پانی سمندر کی طرح (نمکین) ہو گیا ہے، پس میری بیماری میں اس بات نے اضافہ کر دیا کہ میٹھا پینے کا پانی بھی نمکین ہو گیا ہے۔

اور البَحْرَة (۷): شہر، کہا جاتا ہے: «هذه بَحْرَتُنَا»، یعنی: یہ ہمارا شہر ہے۔ یہ اموی (۸) نے کہا ہے۔ اور البَحَر: تپِ دق (۹) کی ایک قسم جو انسان کو لاحق ہوتی ہے۔ اور وہ کہتے ہیں: «لقيته صَخْرَةً (۱۰) بَحَرَةً»، یعنی: ظاہر اور عیاں طور پر (۱۱)۔

اور کعب الاحبار سے مروی ہے، انہوں نے کہا: "بے شک اللہ کا ایک فرشتہ ہے جسے 'صندفائیل' کہا جاتا ہے، تمام سمندر اس کے انگوٹھے کے گڑھے میں ہیں۔" اسے ابو نعیم (۱۲) نے ثور بن یزید سے، انہوں نے خالد بن معدان سے، انہوں نے کعب سے ذکر کیا ہے۔

---

(۱) القراءات الشاذة لابن خالویہ ص ۵، اور المحتسب ۱/۸۲۔ (۲) (د) میں: «بہ»، اور (ظ) میں: «منهم»۔ (۳) اس کا قول: «وهذا أولى»، (ظ) میں نہیں ہے۔ (۴) حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث کا ایک ٹکڑا، اسے احمد (۱۲۷۴۴)، بخاری (۲۶۲۷)، اور مسلم (۲۳۰۷) نے روایت کیا ہے۔ (۵) (ظ) میں: «والبحر المالح»۔ (۶) ابن رباح، وہ ایک غلام تھے جنہیں آزاد کیا گیا تھا، انہوں نے عبدالعزیز بن مروان کی مدح کی، تو انہوں نے ان کو نوازا اور ان کی ولاء (وفاداری) خرید لی، الشعر والشعراء ۱/۴۱۰، اور یہ شعر ان کے دیوان ص ۶۶ میں ہے۔ (۷) نسخوں میں: «البحر»، اور جو درست کیا گیا ہے وہ مجمل اللغہ ۱/۱۱۷ (بحر) سے ہے اور کلام اسی سے ہے۔ (۸) عبداللہ بن سعید بن ابان، ابو محمد، وہ شاعری، اخبار اور عربوں کی جنگوں کے حافظ تھے، زبیدی نے انہیں کوفی لغویوں کے تیسرے طبقے میں ذکر کیا ہے، طبقات النحویین واللغویین ص ۱۹۳۔ (۹) یہ پھیپھڑوں کی ایک بیماری ہے جو صاحبِ مرض کو دبلا کر دیتی ہے، اسے تھکا دیتی ہے اور مار دیتی ہے۔ المعجم الوسیط (۱۰) (د) اور (ظ) میں: «ضحوة»۔ (۱۱) مجمل اللغہ ۱/۱۱۷ (بحر) بغیر اس قول کے: «مكشوفاً»۔ (۱۲) الحلیہ ۸/۶ میں، اور اس میں ہے: "صند يائيل"۔ اور اسے ابو الشیخ نے العظمہ (۳۳۲) میں روایت کیا ہے - اور ان کے واسطے سے ابو نعیم نے الحلیہ ۶/۶۱ میں - اسی طرح شہر بن حوشب کے قول سے، اور یہ خبر اسرائیلیات میں سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 50 91

Allah the Almighty says: {So We saved you} meaning: We took you out of it. It is said: I escaped (najawt) from such-and-such as 'najaa' (prolonged) and 'najaah' (shortened). And 'truth is salvation' (as-sidqu manjah). I saved someone else (anjaytu or najjaytu), and both recitations are used: {And when We delivered you} and {So We saved you} (1).

Allah the Almighty says: {and We drowned Pharaoh's people}. It is said: He drowned in the water, a drowning (gharaqa), so he is drowned (ghariq) and also drowning (ghariq). From it is the saying of Abu al-Najm: Among those killed and the floating drowned (2)

And someone else drowned him (aghraqahu or gharraqahu), so he is 'mughraq' (drowned) and 'gharriq' (deeply immersed). A 'mugharraq' bridle with silver means: adorned.

And 'taghreeq' means: killing. Al-A'sha said: Oh, would that Qais had been drowned by the midwives (3)

This was because the midwife would drown the newborn in the amniotic fluid (al-sala)(4) in years of famine, whether male or female, until it died. Then every killing was called 'taghreeq'. From this is the saying of Dhu al-Rumma: When its ropes drown the second offspring of a young she-camel in a vast desert, the bereaved mother does not become affectionate (5)

'Al-Arbadh' means ropes. 'Al-Bakra' is a young she-camel. Her 'thinyuha' is her second pregnancy. She did not show affection to her offspring because of the exhaustion she suffered(6) WWW.NAFSEISLAM.COM

---

(1) Al-Sihah: (naja). It mentions: {So this day We shall deliver you} instead of {And when We delivered you} and {So We saved you}. The author mentioned examples in two places. (2) His Diwan p. 144, and Al-Sihah: (gharaqa), its first half is: So they became in water and trenches (3) His Diwan p. 136, its first half is: In two phases in a year of raid and journey (4) Al-Sala: A thin membrane surrounding the fetus, which comes out of the mother's belly with it. Al-Mu'jam al-Wasit. (5) The verse was not found in the manuscripts and is verified from sources. The verse is in his Diwan 2/701 with Al-Asma'i's commentary. His saying: 'Tyahā': meaning a wide land with no mountains or landmarks. 'Ra'ūm' means affectionate. 'Salūb' means her offspring

died or she cast it prematurely. This is mentioned in Mu'jam Matn al-Lugha. Al-Asma'i said in explaining the verse: The meaning is when the cinch-rope (al-haqab) is tightened, this drowns in her belly in the amniotic fluid until it dies... meaning this she-camel whose child was taken away does not yearn for her child. (6) The preceding speech from his saying: 'gharaqa fi al-ma' gharaqan' is in Al-Sihah (gharaqa).

सूरह अल-बकराह: आयत 50 91

अल्लाह तआला का फरमान है: {फ़अंजैनाकुन} यानी: हमने तुम्हें उससे निकाल लिया। कहा जाता है: 'नजौतु मिन कज़ा' (मैं अमुक चीज़ से बच निकला), जो 'नजा' (दीर्घ) और 'नजात' (ह्रस्व) दोनों तरह बोला जाता है। और 'सत्य मुक्ति है' (अस-सिद्कु मनजाह)। मैंने किसी और को बचाया (अंजैतु या नज्जैतु), और दोनों ही पाठ मिलते हैं: {और जब हमने तुम्हें निजात दी} और {तो हमने तुम्हें बचा लिया}(1)।

अल्लाह तआला का फरमान है: {और हमने फिरौन के लोगों को डुबो दिया}। कहा जाता है: वह पानी में डूब गया (ग़रकन), तो वह डूबा हुआ (ग़ारिक) और डूबने वाला (ग़ारिक) है। इसी में से अबू अन-नज्म का कथन है: मारे गए लोगों और तैरते हुए डूबने वालों के बीच (2)

और किसी अन्य ने उसे डुबोया (अग़रक़हु या ग़र्रक़हु), तो वह 'मुग़रक' (डुबोया हुआ) और 'ग़र्रीक़' (गहरा डूबा हुआ) है। और 'मुग़र्रक बिल-फ़िद्दाह' लगाम का अर्थ है: चांदी से सुसज्जित।

और 'तग़रीक़' का अर्थ है: हत्या करना। अल-अशा ने कहा है: ओह, काश क़ैस को दाइयों ने डुबो दिया होता (3)

यह इसलिए था क्योंकि दाई अकाल के वर्षों में नवजात को भ्रूण की झिल्ली के पानी (अस-सला)(4) में डुबो देती थी, चाहे वह नर हो या मादा, जब तक कि वह मर न जाए। फिर हर हत्या को 'तग़रीक़' कहा जाने लगा। इसी में से ज़ु अल-रुम्मा का कथन है: जब उसकी रस्सियाँ एक जवान ऊँटनी के दूसरे बच्चे को एक विशाल रेगिस्तान में डुबो देती हैं, तो वह शोक संतप्त माँ स्नेही नहीं रहती (5)

'अरबाज़' का अर्थ है: रस्सियाँ। 'बकरा' का अर्थ है: जवान ऊँटनी। और उसका 'थिन्युहा' उसका दूसरा गर्भ है। उसने अपने बच्चे के प्रति स्नेह नहीं दिखाया क्योंकि वह बहुत थक गई थी(6)
WWW.NAFSEISLAM.COM

---

(1) अस-सिहाह: (नजा)। इसमें 'आज हम तुझे बचा लेंगे' है, न कि 'जब हमने तुम्हें निजात दी' या 'तो हमने तुम्हें बचा लिया'। लेखक ने दो स्थानों पर उदाहरण दिए हैं। (2) उनका दीवान पृ. 144, और अस-सिहाह: (ग़रक), इसका शुरुआती हिस्सा है: तो वे पानी और खाइयों में हो गए। (3) उनका दीवान पृ. 136, इसका शुरुआती हिस्सा है: एक साल में हमले और यात्रा के दो चरणों में। (4) अस-सला: एक पतली झिल्ली जो भ्रूण को घेरे रहती है और माँ के पेट से उसके साथ बाहर आती है। अल-

मुजम अल-वसीत। (5) यह छंद पांडुलिपियों में नहीं मिला और स्रोतों से पुष्ट किया गया है। यह छंद अल-अस्मई की व्याख्या के साथ उनके दीवान 2/701 में है। उनका कथन: 'तयाह': यानी एक विस्तृत भूमि, जिसमें कोई पहाड़ या निशान न हो। 'रऊम' का अर्थ है स्नेही। 'सलूब' का अर्थ है जिसका बच्चा मर गया हो या जिसने समय से पहले उसे जन्म दिया हो। ऐसा मुजम मतन अल-लुग़ा में है। अल-अस्मई ने छंद की व्याख्या में कहा: अर्थ यह है कि जब पेटी (हक़ब) को कस दिया जाता है, तो यह उसके पेट में पानी में डूब जाता है और मर जाता है... यानी यह ऊँटनी जिसका बच्चा छीन लिया गया है, वह अपने बच्चे को प्यार नहीं करती। (6) पिछला भाषण 'ग़रक़ फ़िल मा-इ ग़रक़न' से लेकर 'अस-सिहाह' (ग़रक) में है।

سورة البقرہ: آیت 50 91

اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {فَأَنجَيْنَاكُمْ} یعنی: ہم نے تمہیں اس سے نکال لیا، کہا جاتا ہے: 'نجوتُ من كذا نَجاءً' (میں فلاں چیز سے بچ نکلا)، مد کے ساتھ، اور 'نجاةً' مقصور۔ اور سچائی نجات ہے۔ اور میں نے کسی دوسرے کو نجات دی (اَنجَيْتُ اور نَجَّيْتُ)، اور یہ دونوں طرح پڑھا گیا ہے: {وَإِذْ نَجَّيْنَاكُمْ} اور {فَأَنجَيْنَاكُمْ}(1)۔

اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {وَأَغْرَقْنَا آلَ فِرْعَوْنَ} کہا جاتا ہے: وہ پانی میں غرق ہو گیا (غرقاً)، پس وہ 'غرقٌ' اور 'غارقٌ' بھی ہے۔ اور اسی میں سے ابونجم کا قول ہے: مقتولوں اور تیرتے ہوئے غرق ہونے والوں کے درمیان (2)

اور اسے کسی دوسرے نے غرق کیا (اَغرقَه اور غرَّقَه)، پس وہ 'مُغرَق' اور 'غرِّيق' ہے۔ اور چاندی سے مزین لگام کو 'لجامٌ مُغرَّقٌ بالفضة' کہتے ہیں۔

اور 'تغريق' کے معنی ہیں: قتل کرنا۔ الاعشی نے کہا: اے کاش! قیس کو دائیوں نے غرق کر دیا ہوتا (3)

اور یہ اس لیے کہ قحط کے سال میں دائی نومولود کو، چاہے وہ لڑکا ہو یا لڑکی، 'سلٰی' (بچے کی جھلی)(4) کے پانی میں غرق کر دیتی تھی یہاں تک کہ وہ مر جاتا، پھر ہر قتل کو 'تغريق' کہا جانے لگا۔ ذوالرمہ کا قول ہے: جب اس کی رسیوں نے ایک جوان اونٹنی کے دوسرے بچے کو ایک بیابان میں غرق کر دیا تو وہ غمزدہ ماں مامتا والی نہ رہی (5)

'ارباض' کے معنی ہیں: رسیاں۔ 'بکرہ': جوان اونٹنی۔ اور اس کا 'ثنیہا': اس کا دوسرا حمل۔ اور وہ اپنے بچے پر اس لیے مہربان نہیں ہوئی کیونکہ اسے بہت تھکن لاحق تھی(6)

WWW.NAFSEISLAM.COM

---

(1) الصحاح: (نجا) ، اور اس میں: (فاليوم نُنجيك) ہے بجائے: (وإذ نجيناكم)، (فأنجيناكم) کے۔ پس مصنف نے دو جگہوں پر مثال ذکر کی ہے۔ (2) ان کا دیوان ص 144 ، اور الصحاح: (غرق) ، اور اس کا مصرع اول ہے: پس وہ پانی اور خندقوں میں ہو گئے (3) ان کا دیوان ص 136 ، اور اس کا مصرع اول ہے: ایک سال میں غزوے اور سفر کے دو مرحلے (4) السَّلَی: ایک باریک جھلی جو جنین کو گھیرے ہوتی ہے، اور ماں کے پیٹ سے اس کے ساتھ نکلتی ہے۔ المعجم الوسیط (5) یہ شعر خطی نسخوں میں نہیں ملا اور اسے مصادر سے ثابت کیا گیا ہے، اور یہ شعر ان کے دیوان 2/701 میں اصمعی की شرح کے ساتھ موجود ہے۔ ان کا قول: 'تیہآء': یعنی وسیع زمین، جس میں نہ پہاڑ ہوں اور نہ کوئی نشان۔ 'رؤوم' یعنی مہربان۔ 'سلوب' یعنی جس کا بچہ مر گیا ہو، یا اسے ادھورا گرا دیا ہو، اسی طرح 'معجم متن اللغہ' میں ہے۔ اصمعی نے شعر کی شرح میں کہا: مطلب یہ ہے کہ جب تنگ (رسی) کس دی جائے، تو یہ اس کے پیٹ میں پانی میں غرق ہو جائے یہاں تک کہ مر جائے... یعنی یہ اونٹنی جس کا بچہ چھن گیا ہے وہ اپنے بچے کو پیار نہیں کرتی۔ (6) گزشتہ کلام ان کے قول: "غرق في الماء غرقاً" سے الصحاح (غرق) میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 50 (Page 92)

The saying regarding the difference of opinion among scholars on how the Children of Israel were saved

Al-Tabari (1) mentioned that it was revealed to Moses (peace be upon him) to travel by night with the Children of Israel from Egypt. So Moses commanded them to borrow jewelry and belongings from the Copts, and Allah made that lawful for the Children of Israel. Moses traveled with them from the beginning of the night. Pharaoh was informed, so he said: "Let no one follow them until the roosters crow." But no rooster crowed in Egypt that night. And Allah caused many of the sons of the Copts to die that night, so they were busy with burial. They went out in pursuit at sunrise, as Allah Almighty said: {So they pursued them at sunrise} [Ash-Shu'ara: 60]. Moses went towards the sea until he reached it. The number of the Children of Israel was more than six hundred thousand, and Pharaoh's army numbered one million two hundred thousand.

It was said: Pharaoh followed him with a million stallions, besides the females (3).

It was said: Israel - who is Jacob (peace be upon him) - entered Egypt with seventy-six souls of his children and grandchildren. Then Allah increased their numbers and blessed his progeny, until they went out to the sea on the day of Pharaoh, and they were six hundred thousand fighters, besides the elderly, children, and women (4).

And Abu Bakr Abdullah bin Muhammad bin Abi Shaybah (5) mentioned, saying: Shababa bin Sawwar told us, from Yunus bin Abi Ishaq, from Abu Ishaq, from Amr bin Maymun, from Abdullah bin Masoud that when Moses (peace be upon him) traveled by night with the Children of Israel, news reached Pharaoh. He ordered a sheep to be slaughtered, then said: "No, by Allah, its skin will not be finished peeling until six hundred thousand of the Copts have gathered for me." He said: Moses set off until he reached the sea and said to it: "Part!" The sea said to him: "You have asked for much (6) O Moses! Have I ever parted for any of the children of Adam that I should part for you?!" He said: And with Moses...

(1) Tafsir al-Tabari 1/657-658, 660-661, 670-671, and the author quoted it from him through al-Muharrir al-Wajiz 1/141. (2) In (D): in that. (3) Narrated by al-Tabari 1/658-659, from the saying of Ibn Abbas. (4) Narrated similarly by al-Tabari in his Tafsir 14/362-363 from the saying of Ibn Masoud and Abdullah bin Shaddad (may Allah be pleased with them), and al-Tirmidhi mentioned it in Nawadir al-Usul p. 100,

and from him the author quoted. (5) Al-Musannaf 11/528-529. (6) In (D), (Zah), and (M): "you have become arrogant", and what is confirmed is from (Zay), which is consistent with what is in Musannaf Ibn Abi Shaybah.

सूरह अल-बक़रह: आयत 50 (पृष्ठ 92)

बनी इज़राइल के बचाए जाने के तरीके पर विद्वानों के मतभेदों के बारे में कथन

अल-तबरी (1) ने उल्लेख किया है कि मूसा (उन पर शांति हो) को यह वह्य (प्रकाशना) हुई थी कि वे बनी इज़राइल के साथ रात में मिस्र से निकल जाएँ। मूसा ने उन्हें किब्तियों (मिस्र के मूल निवासियों) से गहने और सामान उधार लेने का आदेश दिया, और अल्लाह ने बनी इज़राइल के लिए इसे हलाल (वैध) कर दिया। मूसा उन्हें रात के शुरुआती हिस्से में ले गए। फिरौन को इसकी सूचना मिली, तो उसने कहा: "जब तक मुर्गे न बोलें, कोई उनका पीछा न करे।" लेकिन उस रात मिस्र में कोई मुर्गा नहीं बोला। और अल्लाह ने उस रात (2) किब्तियों के कई बेटों को मार दिया, इसलिए वे दफनाने में व्यस्त हो गए। वे सूर्योदय के समय उनके पीछे निकले, जैसा कि अल्लाह तआला ने कहा: {तो उन्होंने सूर्योदय के समय उनका पीछा किया} [अश-शुआरा: 60]। मूसा समुद्र की ओर गए यहाँ तक कि वह वहाँ पहुँच गए। बनी इज़राइल की संख्या छह लाख से अधिक थी, और फिरौन की सेना की संख्या बारह लाख थी।

यह भी कहा गया है: फिरौन ने दस लाख घोड़ों (नर) के साथ उनका पीछा किया, मादाओं के अलावा (3)।

यह भी कहा गया है: इज़राइल - जो याकूब (उन पर शांति हो) हैं - अपने बच्चों और पोते-पोतियों की छिहत्तर (76) आत्माओं के साथ मिस्र में दाखिल हुए थे। फिर अल्लाह ने उनकी संख्या बढ़ाई और उनकी संतानों में बरकत दी, यहाँ तक कि वे फिरौन के दिन समुद्र की ओर निकले, और वे लड़ने वालों में छह लाख थे, बुज़ुर्गों, बच्चों और महिलाओं के अलावा (4)।

और अबू बक्र अब्दुल्ला बिन मुहम्मद बिन अबी शैबा (5) ने उल्लेख किया, कहा: हमें शबाबा बिन सव्वार ने बताया, यूनुस बिन अबी इसहाक से, उन्होंने अबू इसहाक से, उन्होंने अम्र बिन मैमुन से, उन्होंने अब्दुल्ला बिन मसूद से कि जब मूसा (उन पर शांति हो) बनी इज़राइल के साथ रात में निकले, तो फिरौन को खबर मिली। उसने एक भेड़ को ज़बह करने का आदेश दिया, फिर कहा: "नहीं, अल्लाह की कसम, इसकी खाल उतारने का काम तब तक पूरा नहीं होगा जब तक कि मेरे पास छह लाख किब्ती जमा न हो जाएँ।" उन्होंने कहा: मूसा चल पड़े यहाँ तक कि वे समुद्र के किनारे पहुँच गए और उससे कहा: "फट जा (रास्ता दे)!" समुद्र ने उनसे कहा: "ऐ मूसा, तुमने बहुत बड़ी बात कह दी

(6)! क्या मैं आदम की किसी संतान के लिए कभी फटा हूँ कि तुम्हारे लिए फट जाऊँ!" उन्होंने कहा: और मूसा के साथ...

(1) तफ़्सीर अल-तबरी 1/657-658, 660-661, 670-671, और लेखक ने अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/141 के माध्यम से उनसे इसे उद्धृत किया है। (2) (द) में: उस में। (3) इसे अल-तबरी 1/658-659 में इब्न अब्बास के कथन से उद्धृत किया गया है। (4) इसे इसी तरह अल-तबरी ने अपनी तफ़्सीर 14/362-363 में इब्न मसूद और अब्दुल्ला बिन शद्दाद (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) के कथन से उद्धृत किया है, और अल-तिरमिज़ी ने इसे नवादिरा अल-उसूल पृ. 100 में उल्लेख किया है, और लेखक ने उनसे इसे उद्धृत किया है। (5) अल-मुसन्नफ़ 11/528-529। (6) (द), (ज़) और (म) में: "तुम अहंकारी हो गए", और (ज़ै) से पुष्ट किया गया है, जो मुसन्नफ़ इब्न अबी शैबा में मौजूद विवरण के अनुरूप है।

سورة البقرہ: آیت ۵۰ (صفحہ ۹۲)

بنی اسرائیل کے نجات پانے کی کیفیت کے بارے میں علماء کے اختلاف کا قول

طبری (۱) نے ذکر کیا ہے کہ موسیٰ علیہ السلام کی طرف وحی کی گئی کہ وہ بنی اسرائیل کو لے کر رات کے وقت مصر سے نکل جائیں، تو موسیٰ نے انہیں حکم دیا کہ وہ قبطیوں سے زیورات اور سامان مانگ لیں۔ اللہ نے بنی اسرائیل کے لیے اسے حلال کر دیا، چنانچہ موسیٰ انہیں رات کے شروع میں لے کر چلے۔ فرعون کو خبر ہوئی تو اس نے کہا: "جب تک مرغ اذان نہ دیں کوئی ان کا پیچھا نہ کرے۔" لیکن اس رات مصر میں کسی مرغ نے اذان نہ دی۔ اور اللہ نے اس (۲) رات قبطیوں کے بہت سے بیٹوں کو مار دیا، جس کی وجہ سے وہ تدفین میں مصروف ہو گئے۔ وہ سورج نکلتے وقت ان کے پیچھے نکلے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿پس انہوں نے سورج نکلتے وقت ان کا پیچھا کیا﴾ [الشعراء: ٦٠]۔ موسیٰ سمندر کی طرف گئے یہاں تک کہ وہاں پہنچ گئے۔ بنی اسرائیل کی تعداد چھ لاکھ سے کچھ زیادہ تھی، اور فرعون کے لشکر کی تعداد بارہ لاکھ تھی۔

اور کہا گیا ہے کہ: فرعون نے دس لاکھ گھوڑوں (نر) کے ساتھ ان کا پیچھا کیا سوائے مادیوں کے (۳)۔

اور کہا گیا ہے کہ: اسرائیل - جو یعقوب علیہ السلام ہیں - اپنے بیٹوں اور پوتوں سمیت چھہتر (٧٦) نفوس کے ساتھ مصر میں داخل ہوئے تھے۔ پھر اللہ نے ان کی تعداد بڑھائی اور ان کی اولاد میں برکت دی، یہاں تک کہ وہ فرعون کے دن سمندر کی طرف نکلے، اور وہ لڑنے والوں میں چھ لاکھ تھے، بوڑھوں، بچوں اور عورتوں کے علاوہ (٤)۔

اور ابوبکر عبداللہ بن محمد بن ابی شیبہ (۵) نے ذکر کیا، کہا: ہمیں شبابہ بن سوار نے یونس بن ابی اسحاق سے، انہوں نے ابواسحاق سے، انہوں نے عمرو بن میمون سے، انہوں نے عبداللہ بن مسعود سے روایت کی کہ جب موسیٰ علیہ السلام بنی اسرائیل کو لے کر رات کو نکلے، تو فرعون کو خبر پہنچی۔ اس نے ایک بکری ذبح کرنے کا حکم دیا، پھر کہا: "نہیں، اللہ کی قسم، اس کی کھال اتارنے کا کام مکمل نہیں ہوگا یہاں تک کہ میرے پاس چھ لاکھ قبطی جمع ہو جائیں۔" انہوں نے کہا: موسیٰ چل پڑے یہاں تک کہ سمندر پر پہنچے اور اس سے کہا: "پھٹ جا!" سمندر نے ان سے کہا: "اے موسیٰ! تم نے بہت بڑی بات کہہ دی (٦) ، کیا میں اولادِ آدم میں سے کسی کے لیے کبھی پھٹا ہوں کہ تمہارے لیے پھٹ جاؤں؟!" انہوں نے کہا: اور موسیٰ کے ساتھ...

(۱) تفسیر طبری ۱/ ٦٥٧-٦٥٨، ٦٦٠-٦٦١، ٦٧٠-٦٧١، اور مصنف نے اسے المحرر الوجیز ۱/ ۱٤۱ کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔ (۲) (د) میں: اس میں۔ (۳) اسے طبری نے ۱/ ٦٥٨-٦٥٩ میں ابن عباس کے قول سے روایت کیا ہے۔ (٤) اسے اسی طرح طبری نے اپنی تفسیر ١٤ / ٣٦٢-٣٦٣ میں ابن مسعود اور عبداللہ بن شداد رضی اللہ عنہما کے قول سے روایت کیا ہے، اور ترمذی نے اسے نوادر الاصول ص ۱۰۰ میں بیان کیا ہے، اور ان سے مصنف نے نقل کیا ہے۔ (۵) المصنف ۱۱ / ۵۲۸ - ۵۲۹۔ (٦) (د)، (ظ) اور (م) میں: "تم نے تکبر کیا"، اور (ز) سے جو ثابت ہے وہ مصنف ابن ابی شیبہ میں موجود روایت کے مطابق ہے۔

93 Surah Al-Baqarah: Verse 50

A man on his horse said to him: That man said: "Where were you commanded, O Prophet of Allah?" He said: "I was not commanded except (to go) in this direction." He said: Then he spurred his horse, and it swam with him, and he emerged, and said: "Where were you commanded, O Prophet of Allah?" He said: "I was not commanded except in this direction." He said: "By Allah, you did not lie, nor were you lied to." Then he charged a second time, and it swam with him, then (1) he emerged, and said: "Where were you commanded, O Prophet of Allah?" He said: "I was not commanded except in this direction." He said: "By Allah, you did not lie, nor were you lied to." He said: Then Allah revealed to him: {Strike the sea with your staff}. So Moses struck it with his staff, {and it parted, and each separate part became like a huge mountain} [Ash-Shu'ara: 63]. There were twelve paths (2) for the twelve tribes, each tribe having a path where they could see each other. This is because the walls of water had openings and windows through which they could see one another (3). When the companions of Moses emerged and the companions of Pharaoh entered (4), the sea met (5) upon them and drowned them. It is mentioned that the sea is the Sea of Qulzum (6), and that the man who was with Moses on the horse was his young companion, Joshua bin Nun, and that Allah Almighty revealed to the sea to part for Moses when he strikes you. So the sea remained agitated that night, and in the morning Moses struck the sea, and he (the sea) was nicknamed Abu Khalid. Ibn Abi Shaybah also mentioned it (7). Commentators have extensively discussed stories with this meaning, and what we have mentioned is sufficient. More explanation will follow in Surah Yunus and Ash-Shu'ara (8), if Allah Almighty wills. WWW.NAFSEISLAM.COM Chapter Allah Almighty mentioned the rescue and the drowning, but did not mention the day on which it occurred.

---

(1) In (m): until. (2) In Al-Musannaf: a path. (3) His saying: "And that the walls of water had...": this is not in the narration of Musannaf Ibn Abi Shaybah. (4) In (d): "wa aqama", and in Musannaf Ibn Abi Shaybah, "tatamma", which is more likely. In the narration of At-Tabari 1/658: "until when they were all inside it, Allah closed it upon them." (5) The wording of the word varied in the manuscripts; in (d) it occurred as "intazama", in (z) as "iltazza", in (th) as "ash-shatt iktatta" (so it was written), and in (m) as "iltatama". What is established is from Musannaf Ibn Abi Shaybah, and the report is from it. (6) Meaning: The Red Sea. (7) Al-Musannaf 11/527. (8) At the word of Allah Almighty: {And We took the Children of Israel across...} [Yunus: 90], and His saying: {And We inspired Moses...} [Ash-Shu'ara: 52] and what follows it.

९३ सूरह अल-बकराह: आयत ५०

एक व्यक्ति अपने घोड़े पर था, उसने उससे (मूसा) कहा: उस व्यक्ति ने कहा: "हे अल्लाह के नबी, आपको कहाँ का आदेश दिया गया है?" उन्होंने कहा: "मुझे इस दिशा के अलावा कोई और आदेश नहीं दिया गया है।" उसने कहा: तो उसने अपने घोड़े को उसमें उतार दिया, और वह उसके साथ तैरा, फिर वह बाहर निकला और कहा: "हे अल्लाह के नबी, आपको कहाँ का आदेश दिया गया है?" उन्होंने कहा: "मुझे इस दिशा के अलावा कोई और आदेश नहीं दिया गया है।" उसने कहा: "अल्लाह की कसम, न आपने झूठ बोला और न आपसे झूठ बोला गया।" फिर वह दूसरी बार उसमें कूदा, और वह उसके साथ तैरा, फिर (१) वह बाहर निकला और कहा: "हे अल्लाह के नबी, आपको कहाँ का आदेश दिया गया है?" उन्होंने कहा: "मुझे इस दिशा के अलावा कोई और आदेश नहीं दिया गया है।" उसने कहा: "अल्लाह की कसम, न आपने झूठ बोला और न आपसे झूठ बोला गया।" उसने कहा: फिर अल्लाह ने उनकी ओर वह्य (प्रकाशना) भेजी: {अपनी लाठी से समुद्र पर वार करो}। तो मूसा ने अपनी लाठी से उस पर वार किया, {और वह फट गया, और प्रत्येक भाग एक विशाल पर्वत की तरह हो गया} [अश-शुअरा: ६३]। उसमें बारह भाग (२) बारह कबीलों के लिए थे, प्रत्येक कबीले का अपना रास्ता था जहाँ से वे एक-दूसरे को देख सकते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि पानी की दीवारों में छेद और खिड़कियाँ बन गई थीं जिससे वे एक-दूसरे को देख सकते थे (३)। जब मूसा के साथी बाहर निकल गए और फिरौन के साथी उसमें आ गए (४), तो समुद्र उन पर मिल (५) गया और उन्हें डुबो दिया। यह उल्लेख किया गया है कि समुद्र 'बहरे कुलज़ुम' (६) है, और जो व्यक्ति घोड़े पर मूसा के साथ था, वह उनका साथी यूशा बिन नून था। अल्लाह तआला ने समुद्र की ओर वह्य भेजी कि जब मूसा तुझ पर वार करे तो तू उसके लिए फट जाना। तो समुद्र उस रात बेचैन रहा, और जब सुबह हुई तो मूसा ने समुद्र पर वार किया, और उसे 'अबू खालिद' उपनाम दिया गया। इब्न अबी शयबा ने भी इसका उल्लेख किया है (७)। मुफ़स्सिरों (व्याख्याकारों) ने इस अर्थ की कहानियों में बहुत विस्तार किया है, और जो हमने उल्लेख किया है वह पर्याप्त है। इंशाअल्लाह, सूरह यूनुस और अश-शुअरा (८) में और अधिक स्पष्टीकरण आएगा। WWW.NAFSEISLAM.COM अध्याय अल्लाह तआला ने बचाव और डूबने का उल्लेख किया है, लेकिन उस दिन का उल्लेख नहीं किया जिस दिन यह हुआ था।

---

(१) (म) में: 'हत्ता' (यहाँ तक कि)। (२) 'अल-मुसन्निफ़' में: 'तरीक़न' (एक रास्ता)। (३) उनका कथन: "और यह कि पानी की दीवारों में..." इब्न अबी शयबा की मुसन्निफ़ के वर्णन में नहीं है। (४) (द) में: 'व

अक़ामा', और इब्न अबी शयबा की मुसन्निफ़ में: 'तताम्मा', और यही अधिक उचित लगता है। तबरी के वर्णन १/६५८ में है: "यहाँ तक कि जब वे सब उसमें पूरे हो गए, तो अल्लाह ने उसे उन पर बंद कर दिया।" (५) प्रतियों में शब्द के उच्चारण में भिन्नता है; (द) में 'इन्ताज़मा', (ज़) में 'इल्तज़्ज़ा', (ज़) में 'अश-शत्त इकतात्ता' (ऐसा ही), और (म) में 'इल्ततामा' आया है। जो स्थापित है वह इब्न अबी शयबा की मुसन्निफ़ से है, और विवरण भी उसी से है। (६) यानी: लाल सागर। (७) अल-मुसन्निफ़ ११/५२७। (८) अल्लाह तआला के इस कथन पर: {और हमने बनी इसराईल को पार कराया...} [यूनुस: ९०], और उनका कथन: {और हमने मूसा की ओर वह्य भेजी...} [अश-शुअरा: ५२] और उसके बाद।

۹۳ سورة البقرہ: آیت ۵۰

ایک شخص اپنے گھوڑے پر تھا، اس نے اس سے کہا: اس شخص نے کہا: "اے اللہ کے نبی، آپ کو کہاں کا حکم دیا گیا ہے؟" انہوں نے فرمایا: "مجھے اس سمت کے سوا کوئی حکم نہیں دیا گیا۔" اس نے کہا: تو اس نے اپنا گھوڑا اس میں ڈال دیا، اور وہ اسے لے کر تیرا، پھر وہ باہر نکلا اور کہا: "اے اللہ کے نبی، آپ کو کہاں کا حکم دیا گیا ہے؟" انہوں نے فرمایا: "مجھے اس سمت کے سوا کوئی حکم نہیں دیا گیا۔" اس نے کہا: "اللہ کی قسم، نہ آپ نے جھوٹ بولا اور نہ آپ سے جھوٹ بولا گیا۔" پھر وہ دوسری بار اس میں کودا، اور وہ اسے لے کر تیرا، پھر (۱) وہ باہر نکلا اور کہا: "اے اللہ کے نبی، آپ کو کہاں کا حکم دیا گیا ہے؟" انہوں نے فرمایا: "مجھے اس سمت کے سوا کوئی حکم نہیں دیا گیا۔" اس نے کہا: "اللہ کی قسم، نہ آپ نے جھوٹ بولا اور نہ آپ سے جھوٹ بولا گیا۔" اس (راوی) نے کہا: پھر اللہ نے ان کی طرف وحی بھیجی: {اپنی لاٹھی سے سمندر پر مارو}۔ چنانچہ موسیٰ نے اپنی لاٹھی سے اس پر مارا، تو {وہ پھٹ گیا، اور ہر حصہ ایک عظیم پہاڑ کی مانند ہو گیا} [الشعراء: ۶۳]۔ اس میں بارہ حصے (۲) بارہ قبیلوں کے لیے تھے، ہر قبیلے کے لیے ایک راستہ تھا جہاں سے وہ ایک دوسرے کو دیکھ سکتے تھے۔ یہ اس لیے تھا کہ پانی کی دیواروں میں روشندان اور کھڑکیاں بن گئی تھیں جن سے وہ ایک دوسرے کو دیکھ سکتے تھے (۳)۔ جب موسیٰ کے ساتھی نکل گئے اور فرعون کے ساتھی پہنچے (۴)، تو سمندر ان پر مل (۵) گیا اور انہیں غرق کر دیا۔ ذکر کیا جاتا ہے کہ سمندر 'بحر قلزم' (۶) ہے، اور وہ شخص جو گھوڑے پر موسیٰ کے ساتھ تھا وہ ان کا نوجوان ساتھی یوشع بن نون تھا، اور اللہ تعالیٰ نے سمندر کی طرف وحی کی کہ جب موسیٰ تجھ پر مارے تو اس کے لیے پھٹ جانا۔ تو سمندر اس رات مضطرب رہا، اور جب صبح ہوئی تو موسیٰ نے سمندر پر مارا، اور اس کی کنیت 'ابو خالد' رکھی

گئی۔ ابن ابی شیبہ نے بھی اس کا ذکر کیا ہے (۷)۔ مفسرین نے اس مفہوم کے قصوں میں بہت وسعت دی ہے، اور جو کچھ ہم نے ذکر کیا ہے وہ کافی ہے، اور ان شاء اللہ تعالیٰ سورہ یونس اور الشعراء (۸) میں مزید وضاحت آئے گی۔ WWW.NAFSEISLAM.COM فصل اللہ تعالیٰ نے نجات اور غرق کا ذکر کیا ہے، لیکن اس دن کا ذکر نہیں کیا جس میں یہ ہوا تھا۔

---

(۱) (م) میں: حتیٰ۔ (۲) المصنف میں: طریقاً (ایک راستہ)۔ (۳) ان کا قول: "اور یہ کہ پانی کی دیواروں میں بن گئے..." مصنف ابن ابی شیبہ کی روایت میں نہیں ہے۔ (۴) (د) میں: 'واقام'، اور مصنف ابن ابی شیبہ میں: 'تتام'، اور یہی زیادہ مشابہ ہے، چنانچہ طبری کی روایت ۱/۶۵۸ میں ہے: "یہاں تک کہ جب وہ اس میں پورے ہو گئے تو اللہ نے اسے ان پر بند کر دیا۔" (۵) نسخوں میں لفظ کا تلفظ مختلف ہے؛ (د) میں 'انتظم'، (ز) میں 'التظ'، (ظ) میں 'الشط اکتط' (ایسا ہی)، اور (م) میں 'التطم' واقع ہوا ہے۔ جو ثابت ہے وہ مصنف ابن ابی شیبہ سے ہے، اور خبر اسی سے ہے۔ (۶) یعنی: بحر احمر (بحیرہ احمر)۔ (۷) المصنف ۱۱/۵۲۷۔ (۸) اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس: {اور ہم نے بنی اسرائیل کو پار کرایا...} [یونس: ۹۰]، اور ان کا قول: {اور ہم نے موسیٰ کی طرف وحی بھیجی...} [الشعراء: ۵۲] اور اس کے بعد۔

94 Surah Al-Baqarah: Verse 50

Muslim (1) narrated from Ibn Abbas that the Messenger of Allah (peace be upon him) came to Medina and found the Jews fasting on the day of Ashura. The Messenger of Allah (peace be upon him) asked them: "What is this day that you are fasting?" They said: "This is a great day, on which Allah saved Moses and his people, and drowned Pharaoh and his people. So Moses fasted it out of gratitude, and we fast it." The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "We have more right and are closer to Moses than you." So the Messenger of Allah (peace be upon him) fasted it and ordered its fasting.

Al-Bukhari (2) also narrated it from Ibn Abbas, and that the Prophet (peace be upon him) said to his companions: "You have more right to Moses than them, so fast it (3)."

Issue: The apparent meaning of these Hadiths indicates that the Prophet (peace be upon him) only fasted Ashura and ordered its fasting following Moses (peace be upon him) based on what the Jews told him. However, it is not so, according to what Aisha (may Allah be pleased with her) narrated. She said: "The Day of Ashura was fasted by the Quraysh in the pre-Islamic period (Jahiliyyah), and the Messenger of Allah (peace be upon him) used to fast it in Jahiliyyah. When he came to Medina, he fasted it and ordered its fasting. When Ramadan was made obligatory, he left the fasting of Ashura; so whoever wished fasted it and whoever wished left it (4)." Narrated by Al-Bukhari and Muslim (5).

If it is said: It is possible that the Quraysh fasted it based on the Jews' information to them; because they used to hear from them, as they were people of knowledge to them. So the Prophet (peace be upon him) fasted it likewise in Jahiliyyah, i.e., in Mecca. When he came to Medina and found the Jews fasting it, he said: "We have more right and are closer to Moses than you." So he fasted it in following Moses, and ordered its fasting, i.e., made it obligatory and emphasized its command, until they used to make the children fast it.

(1) Sahih Muslim (1130): (127), and it is in Al-Musnad (2644). (2) Sahih Al-Bukhari (4680). (3) In (D) and (M): "So fast" [plural form]. (4) In (Z): "He broke his fast." (5) Sahih Al-Bukhari (2002), and Sahih Muslim (1125), and it is in Al-Musnad (24011). See Al-Mufhim 191/3 - 192.

94 सूरह अल-बक़रह: आयत 50

मुस्लिम (1) ने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मदीना आए, तो उन्होंने यहूदियों को आशूरा के दिन रोज़ा रखते हुए पाया। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उनसे पूछा: "यह कौन सा दिन है जिसका तुम रोज़ा रखते हो?" उन्होंने कहा: "यह एक महान दिन है, जिसमें अल्लाह ने मूसा और उनकी कौम को निजात दी, और फिरौन और उसकी कौम को डुबो दिया, तो मूसा ने शुक्रगुज़ारी में इसका रोज़ा रखा, इसलिए हम भी इसका रोज़ा रखते हैं।" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "हम तुम्हारे मुकाबले में मूसा के ज़्यादा हकदार और उनके ज़्यादा करीब हैं।" चुनाँचे अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसका रोज़ा रखा और इसके रोज़े का हुक्म दिया।

इसे बुखारी (2) ने भी इब्न अब्बास से रिवायत किया है, और यह कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने अपने सहाबा से फ़रमाया: "तुम उनके मुकाबले में मूसा के ज़्यादा हकदार हो, लिहाज़ा इसका रोज़ा रखो (3)।"

मसला: इन हदीसों का ज़ाहिरी मतलब यह बताता है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने आशूरा का रोज़ा सिर्फ इसलिए रखा और इसका हुक्म दिया ताकि मूसा (अलैहिस्सलाम) की पैरवी की जा सके जैसा कि यहूदियों ने उन्हें बताया था। लेकिन ऐसा नहीं है, क्योंकि आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने रिवायत किया है, उन्होंने फ़रमाया: "जाहिलियत के दौर में कुरैश आशूरा के दिन का रोज़ा रखते थे, और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) भी जाहिलियत में इसका रोज़ा रखते थे। जब आप मदीना आए तो आपने इसका रोज़ा रखा और इसके रोज़े का हुक्म दिया। फिर जब रमज़ान (के रोज़े) फ़र्ज़ हो गए, तो आपने आशूरा का रोज़ा छोड़ दिया; अब जो चाहे इसका रोज़ा रखे और जो चाहे इसे छोड़ दे (4)।" इसे बुखारी और मुस्लिम ने रिवायत किया है (5)।

अगर यह कहा जाए: यह मुमकिन है कि कुरैश ने यहूदियों के बताने पर इसका रोज़ा रखा हो; क्योंकि वे उनसे सुनते रहते थे; क्योंकि वे उनके नज़दीक अहले-इल्म थे। लिहाज़ा नबी (अलैहिस्सलाम) ने भी जाहिलियत में यानी मक्का में इसी तरह रोज़ा रखा। जब आप मदीना आए और यहूदियों को इसका रोज़ा रखते हुए पाया, तो फ़रमाया: "हम तुम्हारे मुकाबले में मूसा के ज़्यादा हकदार और उनके ज़्यादा करीब हैं।" तो आपने मूसा की पैरवी में रोज़ा रखा, और इसके रोज़े का हुक्म दिया, यानी इसे वाजिब किया और इसके हुक्म पर ज़ोर दिया, यहाँ तक कि वे बच्चों को भी रोज़ा रखवाया करते थे।

(1) सहीह मुस्लिम (1130): (127), और यह अल-मुसनद (2644) में है। (2) सहीह बुखारी (4680)। (3) (द) और (म) में है: "फसोमू" (तुम सब रोज़ा रखो)। (4) (ज़) में है: "अफतरहु" (उसने रोज़ा इफ़्तार किया)। (5) सहीह बुखारी (2002), और सहीह मुस्लिम (1125), और यह अल-मुसनद (24011) में है। देखिए अल-मुफ्हिम 191/3 - 192।

94 سورة البقرہ: آیت 50

مسلم (1) نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ مدینہ تشریف لائے، تو یہودیوں کو عاشورہ کے دن روزہ رکھتے ہوئے پایا۔ رسول اللہ ﷺ نے ان سے دریافت فرمایا: "یہ کیسا دن ہے جس کا تم روزہ رکھتے ہو؟" انہوں نے کہا: "یہ ایک عظیم دن ہے، جس میں اللہ نے موسیٰ اور ان کی قوم کو نجات دی، اور فرعون اور اس کی قوم کو غرق کر دیا، تو موسیٰ نے شکر کے طور پر اس کا روزہ رکھا، چنانچہ ہم بھی اس کا روزہ رکھتے ہیں۔" رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ہم تمہاری نسبت موسیٰ کے زیادہ حقدار اور ان کے زیادہ قریب ہیں۔" چنانچہ رسول اللہ ﷺ نے اس کا روزہ رکھا اور اس کے روزے کا حکم دیا۔

اور اسے بخاری (2) نے بھی ابن عباس سے روایت کیا ہے، اور یہ کہ نبی ﷺ نے اپنے صحابہ سے فرمایا: "تم ان کے مقابلے میں موسیٰ کے زیادہ حقدار ہو، لہذا اس کا روزہ رکھو (3)۔"

مسئلہ: ان احادیث کا ظاہری مفہوم یہ بتاتا ہے کہ نبی ﷺ نے عاشورہ کا روزہ صرف اس لیے رکھا اور اس کا حکم دیا تاکہ موسیٰ علیہ السلام کی پیروی کی جائے جیسا کہ یہودیوں نے آپ کو بتایا تھا۔ لیکن ایسا نہیں ہے، کیونکہ عائشہ رضی اللہ عنہا سے مروی ہے، انہوں نے فرمایا: "جاہلیت کے دور میں قریش عاشورہ کا روزہ رکھتے تھے، اور رسول اللہ ﷺ بھی جاہلیت میں اس کا روزہ رکھتے تھے۔ پھر جب آپ مدینہ تشریف لائے تو اس کا روزہ رکھا اور اس کے روزے کا حکم دیا، پھر جب رمضان (کے روزے) فرض ہو گئے، تو آپ نے عاشورہ کا روزہ چھوڑ دیا؛ اب جو چاہے اس کا روزہ رکھے اور جو چاہے چھوڑ دے (4)۔" اسے بخاری اور مسلم نے روایت کیا ہے (5)۔

اگر یہ کہا جائے: یہ احتمال ہے کہ قریش نے یہودیوں کے بتانے پر اس کا روزہ رکھا ہو؛ کیونکہ وہ ان سے سنا کرتے تھے؛ کیونکہ وہ ان کے نزدیک صاحب علم تھے، لہذا نبی علیہ السلام نے بھی جاہلیت میں یعنی مکہ میں اسی طرح روزہ رکھا۔ پھر جب آپ مدینہ آئے اور یہودیوں کو اس کا روزہ رکھتے ہوئے پایا، تو فرمایا: "ہم تمہاری نسبت موسیٰ کے زیادہ حقدار اور ان کے زیادہ قریب ہیں۔" تو آپ نے موسیٰ کی پیروی میں روزہ رکھا، اور اس کے روزے کا حکم دیا، یعنی اسے واجب قرار دیا اور اس کے حکم کی تاکید فرمائی، یہاں تک کہ وہ بچوں کو بھی روزہ رکھوایا کرتے تھے۔

(1) صحیح مسلم (1130): (127)، اور یہ المسند (2644) میں ہے۔ (2) صحیح بخاری (4680)۔ (3) (د) اور (م) میں ہے: "فصوموا" (پس تم سب روزہ رکھو)۔ (4) (ظ) میں ہے: "افطرہ" (اس نے روزہ افطار کیا)۔ (5) صحیح بخاری (2002)، اور صحیح مسلم (1125)، اور یہ المسند (24011) میں ہے۔ دیکھئے المفہم 191/3 - 192۔

95 Surah Al-Baqarah: Ayah 50

We say: This is a doubt raised by those who say: Perhaps the Prophet ﷺ worshipped according to the law of Moses, but it is not so, as will be explained later in Surah "Al-An'am", regarding Allah's saying: {So follow their guidance} [Ayah: 90].

Issue: There was a difference of opinion regarding the day of Ashura: Is it the ninth of Muharram or the tenth? Ash-Shafi'i held that it is the ninth, based on the Hadith of Al-Hakam bin Al-A'raj (1) who said: I went to Ibn Abbas, may Allah be pleased with them, while he was reclining on his cloak in Zamzam, and I said to him: "Tell me about the fast of Ashura." He said: "When you see the crescent of Muharram, count and fast on the morning of the ninth." I asked: "Is this how Muhammad ﷺ used to fast it?" He said: "Yes." Narrated by Muslim (2).

Said ibn al-Musayyib, Al-Hasan Al-Basri, Malik, and a group of the predecessors (Salaf) held that it is the tenth (3).

At-Tirmidhi (4) mentioned Al-Hakam's Hadith but did not describe it as authentic (Sahih) or good (Hasan). Then he followed it with: Qutaybah narrated to us, Abdul-Warith narrated to us, from Yunus, from Al-Hasan, from Ibn Abbas who said: "The Messenger of Allah ﷺ commanded fasting on the day of Ashura, the tenth day." Abu Isa said: The Hadith of Ibn Abbas is a good authentic Hadith. At-Tirmidhi said: It was narrated from Ibn Abbas that he said: "Fast the ninth and the tenth, and differ from the Jews" (6). According to this Hadith, Ash-Shafi'i, Ahmad, and Ishaq spoke.

Others said: Ibn Abbas's statement to the questioner: "So count and start fasting on the ninth," does not contain evidence for leaving the fast of the tenth. Rather, he promised to fast the ninth in addition to the tenth. They said: Fasting both days is a reconciliation between the Hadiths.

And Ibn Abbas's statement to Al-Hakam when he said to him: "Is this how Muhammad ﷺ used to fast it?" He said: "Yes."

(1) Ibn Abdullah bin Ishaq, Al-Basri, authenticated by Imam Ahmad, Tahdhib al-Kamal 7/103. (2) Sahih Muslim (1133), and it is in Al-Musnad (2135). (3) Al-Mufhim 3/190, 191, and Ikmal al-Mu'lim 4/85. (4) Sunan At-Tirmidhi (754) and (755). (5) In (M): "He informed us" (in both places). (6) Narrated by Al-Bayhaqi in As-Sunan al-Kubra 4/287, in Shu'ab al-Iman 3/364, and Ibn Hazm in Al-Muhalla 7/18.

95 सूरा अल-बकरा: आयत 50

हम कहते हैं: यह उन लोगों का संदेह है जो कहते हैं: शायद नबी ﷺ मूसा की शरीयत के अनुसार इबादत करते थे, जबकि ऐसा नहीं है, जैसा कि सूरा "अल-अनाम" में अल्लाह के इस कथन की व्याख्या में बताया जाएगा: {तो उनके मार्गदर्शन का अनुसरण करो} [आयत: 90]।

मसला (विषय): आशूरा के दिन के बारे में मतभेद हुआ है: क्या यह मुहर्रम की नवीं तारीख है या दसवीं? इमाम शाफई का मत है कि यह नवीं तारीख है, हकम बिन अल-आरज (1) की हदीस के कारण, उन्होंने कहा: मैं इब्न अब्बास (रजि.) के पास पहुँचा जब वे ज़मज़म में अपनी चादर पर टेक लगाए हुए थे, तो मैंने उनसे कहा: मुझे आशूरा के रोज़े के बारे में बताइए। उन्होंने कहा: जब तुम मुहर्रम का चाँद देखो, तो गिनती करो और नवीं तारीख की सुबह रोज़ा रखो। मैंने पूछा: क्या मुहम्मद ﷺ इसी तरह रोज़ा रखते थे? उन्होंने कहा: हाँ। इसे मुस्लिम ने वर्णित किया है (2)।

सईद बिन अल-मुसय्यब, हसन बसरी, इमाम मालिक और पूर्वजों (सलफ) के एक समूह का मत है कि यह दसवीं तारीख है (3)।

तिरमिज़ी (4) ने हकम की हदीस का उल्लेख किया है, लेकिन उसे सही या हसन के रूप में वर्णित नहीं किया। फिर इसके बाद उन्होंने उल्लेख किया: हमें कुतैबा ने बताया, हमें अब्दुल वारिस ने यूनुस से, उन्होंने हसन से, उन्होंने इब्न अब्बास से रिवायत की, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने आशूरा के दिन दसवीं तारीख को रोज़ा रखने का आदेश दिया। अबू ईसा ने कहा: इब्न अब्बास की हदीस हसन सही है। तिरमिज़ी ने कहा: इब्न अब्बास से रिवायत है कि उन्होंने कहा: नवीं और दसवीं का रोज़ा रखो, और यहूदियों का विरोध करो (6)। और इसी हदीस के आधार पर शाफई, अहमद और इसहाक कहते हैं।

दूसरों ने कहा: इब्न अब्बास का पूछने वाले से यह कहना: "तो गिनती करो और नवीं तारीख की सुबह रोज़ा रखो", इसमें दसवीं का रोज़ा छोड़ने का कोई प्रमाण नहीं है, बल्कि उन्होंने दसवीं के साथ नवीं का रोज़ा रखने का वादा किया था। उन्होंने कहा: दोनों दिनों का रोज़ा रखना हदीसों के बीच तालमेल बिठाना है।

और इब्न अब्बास का हकम से यह कहना जब उन्होंने उनसे पूछा: क्या मुहम्मद ﷺ इसी तरह रोज़ा रखते थे? उन्होंने कहा: हाँ।

(1) इब्न अब्दुल्ला बिन इसहाक, अल-बसरी, इमाम अहमद द्वारा प्रमाणित, तहजीब अल-कमाल 7/103। (2) सहीह मुस्लिम (1133), और यह अल-मुसनद (2135) में है। (3) अल-मुफ्हिम 3/190, 191, और इकमल अल-मुअल्लिम 4/85। (4) सुनन अत-तिरमिज़ी (754) और (755)। (5) (M) में: "अंबाना" (दोनों स्थानों पर)। (6) इसे अल-बैहकी ने अस-सुनन अल-कुबरा 4/287 में, और शुअब अल-ईमान 3/364 में, और इब्न हज़्म ने अल-मुहल्ला 7/18 में वर्णित किया है।

95 سورة البقرہ: آیت 50

ہم کہتے ہیں: یہ ان لوگوں کا شبہ ہے جو کہتے ہیں: شاید نبی ﷺ حضرت موسیٰ کی شریعت کے مطابق عبادت کرتے تھے، حالانکہ ایسا نہیں ہے، جیسا کہ سورۃ "الانعام" میں اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفصیل بیان کی جائے گی: {پس ان کی ہدایت کی پیروی کر} [آیت: 90]۔

مسئلہ: یومِ عاشورہ کے بارے میں اختلاف ہوا ہے: کیا یہ محرم کی نویں تاریخ ہے یا دسویں؟ امام شافعی کا موقف یہ ہے کہ یہ نویں تاریخ ہے، حکم بن الاعرج (1) کی حدیث کی وجہ سے، انہوں نے کہا: میں ابن عباس رضی اللہ عنہما کے پاس پہنچا جبکہ وہ زمزم میں اپنی چادر پر ٹیک لگائے ہوئے تھے، تو میں نے ان سے کہا: مجھے عاشورہ کے روزے کے بارے میں بتائیے۔ انہوں نے کہا: جب تم محرم کا چاند دیکھو تو شمار کرو اور نویں تاریخ کی صبح روزہ رکھو۔ میں نے پوچھا: کیا محمد ﷺ اسی طرح روزہ رکھتے تھے؟ انہوں نے کہا: ہاں۔ اسے مسلم نے روایت کیا ہے (2)۔

سعید بن المسیب، حسن بصری، امام مالک اور سلف کی ایک جماعت کا موقف یہ ہے کہ یہ دسویں تاریخ ہے (3)۔

اور ترمذی (4) نے حکم کی حدیث ذکر کی لیکن اسے صحیح یا حسن قرار نہیں دیا۔ پھر اس کے بعد لائے: ہمیں قتیبہ نے حدیث بیان کی، ہمیں عبد الوارث نے یونس سے، انہوں نے حسن سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے یوم عاشورہ دسویں تاریخ کو روزہ رکھنے کا حکم دیا۔ ابوعیسیٰ نے کہا: ابن عباس کی حدیث حسن صحیح ہے۔ ترمذی نے کہا: ابن عباس سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: نویں اور دسویں کا روزہ رکھو اور یہودیوں کی مخالفت کرو (6)۔ اور اسی حدیث کے مطابق شافعی، احمد اور اسحاق کا قول ہے۔

دوسروں نے کہا: ابن عباس کا سائل سے یہ کہنا کہ: "تو شمار کرو اور نویں تاریخ کی صبح روزہ رکھو"، اس میں دسویں کا روزہ چھوڑنے کی کوئی دلیل نہیں ہے، بلکہ انہوں نے دسویں کے ساتھ نویں کا روزہ رکھنے کا ارادہ کیا تھا، انہوں نے کہا: دونوں دنوں کا روزہ رکھنا احادیث کے درمیان تطبیق (جمع کرنا) ہے۔

اور ابن عباس کا حکم سے یہ کہنا جب انہوں نے ان سے پوچھا: کیا محمد ﷺ اسی طرح روزہ رکھتے تھے؟ انہوں نے کہا: ہاں۔

(1) ابن عبداللہ بن اسحاق، البصری، امام احمد نے انہیں ثقہ قرار دیا، تہذیب الکمال 103/7۔ (2) صحیح مسلم (1133)، اور یہ المسند (2135) میں ہے۔ (3) المفہم 190/3، 191، اور اکمال المعلم 85/4۔ (4) سنن الترمذی (754) اور (755)۔ (5) (م) میں: "أنبأنا" (دونوں جگہوں پر)۔ (6) اسے بیہقی نے السنن الکبریٰ 287/4، اور شعب الایمان 364/3 میں، اور ابن حزم نے المحلی 18/7 میں روایت کیا ہے۔

96 Surah Al-Baqarah: Verse 50

Its meaning: If he had lived, otherwise, the Prophet ﷺ had never fasted on the ninth. This is explained by what was recorded by Ibn Majah in his "Sunan" and Muslim in his "Sahih"(1) on the authority of Ibn Abbas, who said: The Messenger of Allah ﷺ said: "If I live until next year, I will surely fast on the ninth day."

Excellence: Abu Qatada narrated that the Prophet ﷺ said: "Fasting on the day of Ashura; I hope from Allah that it will expiate for the year that preceded it." Recorded by Muslim and at-Tirmidhi(2), and he said: We do not know in any of the narrations that he said regarding the fasting(3) of the day of Ashura: an expiation for a year, except in the hadith of Abu Qatada.

The word of Allah Almighty: {While you were looking on} is a phrase in the position of a state (hal), and its meaning is: with your eyes. It is said: Pharaoh's people floated on the water, so they watched them drowning, and saw themselves being saved. In this is the greatest favor.

It has been said: They were brought out for them so that they could see them, so this is a favor after a favor. And it was said: The meaning {while you were looking on} means: with your insight for reflection; because they were too busy to stand and look with their eyes. And it was said: The meaning: you were in a state of someone who would look if they looked, just as you say: "This matter is within your sight and hearing," meaning: in a state where you see it and hear it if you wish(4). This saying and the first one are more similar(5) to the circumstances of the Children of Israel; due to the continuous lack of reflection in what came from the Children of Israel after their exit from the sea. That is because when Allah Almighty saved them and drowned their enemy, they said: O Moses, our hearts are not at peace that Pharaoh has drowned, until الله commanded the sea, and it cast him out, and they looked at him(6).

(1) Sahih Muslim (1134): (134), and Sunan Ibn Majah (1736), and it is in Al-Musnad (1971). Abu al-Abbas al-Qurtubi said in al-Mufhim 3/194: Apparently, he intended to fast on the ninth instead of the tenth, and this is what Ibn Abbas understood, until he said to the one who asked him about the day of Ashura: "When you see the crescent of Muharram, count and wake up fasting on the ninth day," and those who view it as the ninth adhere to this. (2) Sahih Muslim (1162): (196), and Sunan at-Tirmidhi (752), and it is in Al-Musnad (22517). (3) In (M): He said: fasting. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (5) In (Z): And this saying is more similar. (6) Nawadir al-Usul p. 101.

९६ सूरह अल-बक़रह: आयत ५०

इसका अर्थ है: कि यदि वह जीवित रहते, अन्यथा, पैगंबर ﷺ ने कभी नौवीं तारीख को उपवास नहीं किया था। इसे इब्न माजह ने अपनी "सुनन" में और मुस्लिम ने अपनी "सहीह"(१) में इब्न अब्बास के अधिकार पर बताया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "यदि मैं अगले वर्ष तक जीवित रहा, तो मैं निश्चित रूप से नौवें दिन उपवास रखूँगा।"

श्रेष्ठता: अबू कतादा ने रिवायत की है कि पैगंबर ﷺ ने कहा: "आशूरा के दिन का उपवास; मैं अल्लाह से आशा करता हूँ कि यह उससे पहले के वर्ष के पापों का प्रायश्चित होगा।" इसे मुस्लिम और तिर्मिज़ी(२) ने दर्ज किया है, और उन्होंने कहा: हम किसी भी रिवायत में नहीं जानते कि उन्होंने आशूरा के दिन के उपवास(३) के संबंध में कहा हो: एक वर्ष का प्रायश्चित, सिवाय अबू कतादा की हदीस के।

अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {जब तुम देख रहे थे} हाल (स्थिति) के स्थान पर एक वाक्यांश है, और इसका अर्थ है: अपनी आँखों से। कहा जाता है: फिरौन के लोग पानी पर तैरने लगे, तो उन्होंने उन्हें डूबते हुए देखा, और स्वयं को बचते हुए देखा। इसमें सबसे बड़ी कृपा है।

कहा गया है: उन्हें उनके लिए बाहर निकाला गया ताकि वे उन्हें देख सकें, तो यह एक कृपा के बाद दूसरी कृपा है। और यह भी कहा गया: अर्थ {जब तुम देख रहे थे} का अर्थ है: अपनी अंतर्दृष्टि से विचार करने के लिए; क्योंकि वे खड़े होकर अपनी आँखों से देखने के लिए बहुत व्यस्त थे। और यह भी कहा गया: अर्थ: आप उस व्यक्ति की स्थिति में थे जो देखेगा यदि वह देखे, जैसे आप कहते हैं: "यह मामला आपकी दृष्टि और श्रवण के भीतर है," अर्थात: ऐसी स्थिति में कि यदि आप चाहें तो आप इसे देखें और सुनें(४)। यह कथन और पहला वाला बनी इसराइल की परिस्थितियों के अधिक समान(५) हैं; समुद्र से निकलने के बाद बनी इसराइल से जो कुछ हुआ उसमें चिंतन की निरंतर कमी के कारण। ऐसा इसलिए है क्योंकि जब अल्लाह सर्वशक्तिमान ने उन्हें बचाया और उनके दुश्मन को डुबो दिया, तो उन्होंने कहा: हे मूसा, हमारे दिल इस बात से शांत नहीं हैं कि फिरौन डूब गया है, जब तक कि अल्लाह ने समुद्र को आदेश नहीं दिया, और उसने उसे बाहर फेंक दिया, और उन्होंने उसे देखा(६)।

(१) सहीह मुस्लिम (११३४): (१३४), और सुनन इब्न माजह (१७३६), और यह अल-मुसनद (१९७१) में है। अबू अल-अब्बास अल-कुर्तुबी ने अल-मुफिम ३/१९४ में कहा: प्रत्यक्ष रूप से, उनका इरादा दसवें

के बजाय नौवें को उपवास करने का था, और यही इब्न अब्बास ने समझा था, यहाँ तक कि उन्होंने उस व्यक्ति से कहा जिसने उनसे आशूरा के दिन के बारे में पूछा था: "जब तुम मुहर्रम का चाँद देखो, तो गिनती करो और नौवें दिन उपवास की अवस्था में सुबह करो," और जो लोग इसे नौवां मानते हैं वे इसी पर टिके हुए हैं। (२) सहीह मुस्लिम (११६२): (१९६), और सुनन अल-तिर्मिज़ी (७५२), और यह अल-मुसनद (२२५१७) में है। (३) (म) में: उन्होंने कहा: उपवास। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४२। (५) (ज़) में: और यह कथन अधिक समान है। (६) नवादिर अल-उसूल पृ. १०१।

۹۶ سورة البقرہ: آیت ۵۰

اس کا معنی یہ ہے کہ: اگر وہ زندہ رہتے، ورنہ، نبی ﷺ نے کبھی نویں تاریخ کا روزہ نہیں رکھا تھا۔ اس کی وضاحت ابن ماجہ نے اپنی "سنن" میں اور مسلم نے اپنی "صحیح"(۱) میں ابن عباس سے نقل کی ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "اگر میں اگلے سال تک زندہ رہا تو میں ضرور نویں دن کا روزہ رکھوں گا۔"

فضیلت: ابو قتادہ سے روایت ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "عاشورا کے دن کا روزہ؛ میں اللہ سے امید رکھتا ہوں کہ وہ اس سے پچھلے ایک سال کے گناہوں کا کفارہ بن جائے گا۔" اسے مسلم اور ترمذی(۲) نے روایت کیا ہے، اور انہوں نے کہا: ہمیں کسی بھی روایت میں یہ معلوم نہیں کہ انہوں نے یوم عاشور کے روزے(۳) کے بارے میں کہا ہو: ایک سال کا کفارہ، سوائے ابو قتادہ کی حدیث کے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {تم دیکھ رہے تھے} حال کے مقام پر ایک جملہ ہے، اور اس کا مطلب ہے: اپنی آنکھوں سے۔ کہا جاتا ہے: فرعون کے لوگ پانی پر تیرنے لگے، تو انہوں نے انہیں ڈوبتے ہوئے دیکھا، اور اپنی جانوں کو بچتے ہوئے دیکھا، تو اس میں سب سے بڑا احسان ہے۔

اور کہا گیا ہے: انہیں ان کے لیے نکالا گیا تاکہ وہ انہیں دیکھ سکیں، تو یہ ایک احسان کے بعد دوسرا احسان ہے۔ اور کہا گیا: مطلب {تم دیکھ رہے تھے} یعنی: بصیرت سے عبرت حاصل کرنے کے لیے؛ کیونکہ وہ اپنی آنکھوں سے کھڑے ہو کر دیکھنے سے مصروف تھے۔ اور کہا گیا: مطلب: تم اس شخص کی حالت میں تھے جو دیکھتا اگر وہ دیکھتا، جیسا کہ تم کہتے ہو: "یہ معاملہ تمہاری نظر اور سماعت میں ہے،" یعنی: اس حالت میں کہ تم اسے دیکھو اور سنو اگر چاہو(۴)۔ یہ قول اور پہلا قول بنی اسرائیل کے حالات کے زیادہ مشابہ(۵) ہیں؛ سمندر سے نکلنے کے بعد بنی

اسرائیل سے جو کچھ صادر ہوا اس میں مسلسل عبرت کی کمی کی وجہ سے۔ اور وہ اس لیے کہ جب اللہ تعالیٰ نے انہیں نجات دی اور ان کے دشمن کو غرق کر دیا، تو انہوں نے کہا: اے موسیٰ، ہمارے دل اس بات پر مطمئن نہیں ہیں کہ فرعون غرق ہو گیا ہے، یہاں تک کہ اللہ نے سمندر کو حکم دیا، تو اس نے اسے باہر پھینک دیا، اور انہوں نے اسے دیکھا(۶)۔

(۱) صحیح مسلم (۱۱۳۴) : (۱۳۴)، اور سنن ابن ماجہ (۱۷۳۶)، اور یہ المسند (۱۹۷۱) میں ہے۔ ابو العباس القرطبی نے المفہم ۳/ ۱۹۴ میں کہا: بظاہر یہ ہے کہ آپ نے دسویں کے بجائے نویں تاریخ کو روزہ رکھنے کا ارادہ کیا تھا، اور یہی بات ابن عباس نے سمجھی تھی، یہاں تک کہ انہوں نے اس شخص سے کہا جس نے ان سے عاشورا کے دن کے بارے میں پوچھا تھا: "جب تم محرم کا چاند دیکھو تو گنتی کرو اور نویں تاریخ کو روزے کی حالت میں صبح کرو،" اور اسی بات کو انہوں نے پکڑا جنہوں نے اسے نواں دیکھا۔ (۲) صحیح مسلم (۱۱۶۲) : (۱۹۶)، اور سنن ترمذی (۷۵۲)، اور یہ المسند (۲۲۵۱۷) میں ہے۔ (۳) (م) میں: انہوں نے کہا: روزہ۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۲۔ (۵) (ظ) میں: اور یہ قول زیادہ مشابہ ہے۔ (۶) نوادر الاصول ص ۱۰۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 50

Page 97

Abu Bakr bin Abi Shaybah (1) mentioned from Qays bin Abbad that the Children of Israel said: "Pharaoh did not die, and he would never die!" He said: When (2) Allah heard their denial of His prophet, peace be upon him, He cast him onto the seashore like a red ox seen by the Children of Israel. When they were reassured and were sent from the land route to Pharaoh's cities until they moved his treasures and were immersed in bliss, they saw a people devoted to idols of theirs. They said, "O Moses, make for us a god just as they have gods." [Al-A'raf: 138] until Moses rebuked them and said, "Is it other than Allah I should desire for you as a god while He has preferred you over the worlds?" [Al-A'raf: 140] meaning: the people of their time (3). Then he commanded them to travel to the Holy Land, which was the dwellings of their ancestors, and to purify themselves from Pharaoh's land. The Holy Land was in the hands of the tyrants who had overpowered them, so they needed to repel them through fighting. They said, "Do you want to make us meat for the tyrants?! If only you had left us in Pharaoh's hand, it would have been better for us." He said, "O my people, enter the Holy Land which Allah has assigned to you..." to His saying: "...so sit." [Al-Ma'idah: 21] until he prayed against them and called them defiantly disobedient. So they remained in the wilderness for forty years as a punishment. Then He had mercy on them and bestowed upon them quail and clouds, as will be explained (4). Then Moses traveled to Mount Sinai to bring them the Torah, so they took the calf (for worship), as will be explained (5). Then it was said to them: "You have arrived at the Holy House (Jerusalem), so enter the gate prostrating and say: 'Repentance'," as will come (6).

And Moses, peace be upon him, was very modest and covered. They said: "He has a scrotal hernia." When he bathed, he put his garment on a stone, and the stone ran away with his garment to the gatherings of the Children of Israel. Moses followed it naked, saying, "O stone, my garment!" That is the saying of Allah the Almighty: "O you who have believed, be not like those who abused Moses; then Allah cleared him of what they said." [Al-Ahzab: 69] as will be explained later (7).

(1) Al-Musannaf 11/527-528, and the speech from him until his saying: "seen by the Children of Israel", and its completion from Nawadir al-Usul p. 101. (2) In (Z) and (Zha): "It was not long until." (3) In (Z), (Zha), and (M): "his time", and the fixed one is from (D), which is consistent with Nawadir al-Usul. (4) 2/117-118. (5) In the following

verse. (6) 2/124. (7) In the interpretation of the mentioned verse, and the hadith was narrated by Ahmad (8173), Al-Bukhari (278), and Muslim (339) from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him.

सूरह अल-बकरा: आयत 50

पृष्ठ 97

अबू बक्र बिन अबी शैबा (1) ने क़ैस बिन अब्बाद से उल्लेख किया कि बनी इस्राइल ने कहा: "फ़िरौन नहीं मरा है, और वह कभी नहीं मर सकता!" उन्होंने कहा: जब (2) अल्लाह ने उनके द्वारा अपने नबी (अलैहिस्सलाम) को झुठलाने की बात सुनी, तो उसने उन्हें समुद्र के किनारे एक लाल बैल की तरह फेंक दिया जिसे बनी इस्राइल ने देखा। जब वे आश्वस्त हो गए और उन्हें ज़मीनी रास्ते से फ़िरौन के शहरों की ओर भेजा गया यहाँ तक कि उन्होंने उसके खज़ाने हटा लिए और वे सुख-सुविधाओं में डूब गए, तो उन्होंने एक ऐसे लोगों को देखा जो अपनी मूर्तियों की पूजा में लगे हुए थे। उन्होंने कहा, "हे मूसा, हमारे लिए भी वैसा ही एक देवता बना दें जैसा उनके पास देवता है।" [अल-आराफ: 138] जब तक कि मूसा ने उन्हें फटकारा और कहा, "क्या मैं अल्लाह के अलावा तुम्हारे लिए किसी और देवता की तलाश करूँ जबकि उसने तुम्हें दुनिया वालों पर श्रेष्ठता दी है?" [अल-आराफ: 140] अर्थात: उनके समय के लोग (3)। फिर उसने उन्हें पवित्र भूमि की ओर जाने का आदेश दिया जो उनके पूर्वजों का निवास स्थान था, और फ़िरौन की भूमि से खुद को पवित्र करने के लिए। पवित्र भूमि उन अत्याचारियों के हाथों में थी जिन्होंने उन पर विजय प्राप्त कर ली थी, इसलिए उन्हें युद्ध के माध्यम से उन्हें वहां से खदेड़ने की आवश्यकता थी। उन्होंने कहा, "क्या तुम हमें अत्याचारियों का निवाला बनाना चाहते हो?! यदि तुमने हमें फ़िरौन के हाथ में ही छोड़ दिया होता, तो यह हमारे लिए बेहतर होता।" उन्होंने कहा, "हे मेरी जाति के लोगो, उस पवित्र भूमि में प्रवेश करो जो अल्लाह ने तुम्हारे लिए निर्धारित की है..." उसके कहने तक: "...तो बैठो।" [अल-माएदा: 21] यहाँ तक कि उन्होंने उनके विरुद्ध प्रार्थना की और उन्हें अवज्ञाकारी कहा। तो वे सजा के तौर पर चालीस साल तक रेगिस्तान में भटकते रहे। फिर उसने उन पर दया की और उन पर 'सलवा' और बादलों की कृपा की, जैसा कि आगे बताया जाएगा (4)। फिर मूसा तूर-ए-सीना (सीना पर्वत) की ओर गए ताकि उनके लिए तौरात ला सकें, तो उन्होंने बछड़े को (पूजा के लिए) बना लिया, जैसा कि आगे बताया जाएगा (5)। फिर उनसे कहा गया: "तुम बैत अल-मक़दिस (यरूशलेम) पहुँच गए हो, तो द्वार में सजदा करते हुए प्रवेश करो और कहो: 'हित्ता' (क्षमा)," जैसा कि आगे आएगा (6)।

और मूसा (अलैहिस्सलाम) बहुत ही लज्जाशील और पर्दे वाले थे, तो उन्होंने कहा: "उन्हें अंडकोष की वृद्धि (हार्निया) है।" जब उन्होंने स्नान किया, तो अपने कपड़े एक पत्थर पर रख दिए, तो पत्थर उनके कपड़े लेकर बनी इस्राइल की सभाओं की ओर भाग गया। मूसा उनके पीछे नग्न अवस्था में यह कहते

हुए भागे: "हे पत्थर, मेरा कपड़ा!" वही अल्लाह तआला का कथन है: "हे ईमान वालो, उन लोगों की तरह न बनो जिन्होंने मूसा को कष्ट दिया; फिर अल्लाह ने उन्हें उस बात से मुक्त कर दिया जो उन्होंने कही थी।" [अल-अहज़ाब: 69] जैसा कि आगे स्पष्ट किया जाएगा (7)।

(1) अल-मुसन्नफ़ 11/527-528, और उनके शब्द यहाँ तक कि उनके कहने तक: "बनी इस्राइल ने देखा", और इसका शेष भाग नवादिद अल-उसूल पृ. 101 से। (2) (ज़) और (ज़ा) में: "जल्द ही।" (3) (ज़), (ज़ा), और (म) में: "उनका समय", और जो निश्चित है वह (द) से है, जो नवादिद अल-उसूल के अनुरूप है। (4) 2/117-118. (5) अगली आयत में। (6) 2/124. (7) उल्लिखित आयत की व्याख्या में, और हदीस को अहमद (8173), बुखारी (278), और मुस्लिम (339) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है।

سورۃ البقرہ: آیت 50

صفحہ 97

ابو بکر بن ابی شیبہ (1) نے قیس بن عباد سے روایت کیا کہ بنی اسرائیل نے کہا: "فرعون نہیں مرا، اور وہ کبھی نہیں مرے گا!" انہوں نے کہا: جب (2) اللہ نے اپنے نبی علیہ السلام کی ان کی طرف سے تکذیب سنی، تو اسے سمندر کے کنارے ایک سرخ بیل کی طرح پھینک دیا جسے بنی اسرائیل نے دیکھا۔ جب وہ مطمئن ہو گئے اور انہیں خشکی کے راستے سے فرعون کے شہروں کی طرف بھیجا گیا یہاں تک کہ انہوں نے اس کے خزانے منتقل کر لیے اور وہ نعمتوں میں غرق ہو گئے، تو انہوں نے ایک ایسی قوم دیکھی جو اپنے بتوں کی پوجا میں مصروف تھی۔ انہوں نے کہا، "اے موسیٰ، ہمارے لیے بھی ویسا ہی ایک معبود بنا دیں جیسا ان کے پاس معبود ہیں۔" [الاعراف: 138] یہاں تک کہ موسیٰ نے انہیں ڈانٹا اور فرمایا، "کیا میں اللہ کے سوا تمہارے لیے کوئی اور معبود تلاش کروں حالانکہ اس نے تمہیں تمام جہانوں پر فضیلت دی ہے؟" [الاعراف: 140] یعنی: ان کے زمانے کے لوگ (3)۔ پھر انہیں حکم دیا کہ وہ ارضِ مقدسہ (پاک سرزمین) کی طرف کوچ کریں جو ان کے آباؤ اجداد کے مسکن تھے، اور فرعون کی زمین سے پاک ہو جائیں| ارضِ مقدسہ ان جابروں کے ہاتھ میں تھی جنہوں نے ان پر غلبہ پا لیا تھا، اس لیے انہیں قتال کے ذریعے ان سے دفاع کرنے کی ضرورت تھی۔ انہوں نے کہا، "کیا تم ہمیں جابروں کا لقمہ بنانا چاہتے ہو؟! اگر تم نے ہمیں فرعون کے ہاتھ میں چھوڑ دیا ہوتا تو یہ ہمارے لیے بہتر ہوتا۔" آپ نے فرمایا، "اے میری قوم، اس مقدس زمین میں داخل ہو جاؤ جو اللہ نے تمہارے لیے لکھ دی ہے..." اس کے قول تک: "...پس بیٹھنے والے ہیں۔" [المائدہ: 21] یہاں تک کہ آپ نے ان کے خلاف دعا کی اور انہیں فاسق قرار دیا۔ پس وہ سزا کے طور پر چالیس سال تک تیہ (صحرا) میں

رہے۔ پھر اللہ نے ان پر رحم کیا اور ان پر سلویٰ اور بادلوں کا احسان کیا جیسا کہ آگے بیان آئے گا (4)۔ پھر موسیٰ علیہ السلام طور سینا کی طرف روانہ ہوئے تاکہ ان کے لیے تورات لائیں، تو انہوں نے بچھڑے کو (معبود) بنا لیا، جیسا کہ آگے بیان آئے گا (5)۔ پھر ان سے کہا گیا: "تم بیت المقدس پہنچ چکے ہو، پس دروازے میں سجدہ کرتے ہوئے داخل ہو جاؤ اور کہو: 'حطۃ' (بخشش)،" جیسا کہ آگے آئے گا (6)۔

اور موسیٰ علیہ السلام بہت زیادہ شرمیلے اور پردہ پوش تھے، تو انہوں نے (بنی اسرائیل نے) کہا: "انہیں ہرنیا (آدر) ہے"۔ جب انہوں نے غسل کیا تو اپنا کپڑا ایک پتھر پر رکھا، تو پتھر ان کا کپڑا لے کر بنی اسرائیل کی مجلسوں کی طرف بھاگا! موسیٰ علیہ السلام برہنہ حالت میں اس کے پیچھے دوڑے اور کہہ رہے تھے: "اے پتھر، میرا کپڑا!" یہی اللہ تعالیٰ کا قول ہے: "اے ایمان والو، ان لوگوں کی طرح نہ بنو جنہوں نے موسیٰ کو تکلیف دی؛ پھر اللہ نے انہیں اس بات سے بری کر دیا جو انہوں نے کہی تھی۔" [الاحزاب: 69] جیسا کہ آگے اس کا بیان آئے گا (7)۔

(1) المصنف 11/ 527-528، اور کلام وہاں سے لے کر ان کے قول تک: "بنی اسرائیل اسے دیکھ رہے تھے"، اور اس کا بقیہ حصہ نوادر الاصول ص 101 سے ہے۔ (2) (ز) اور (ظ) میں: "پس دیر نہ گزری کہ"۔ (3) (ز)، (ظ) اور (م) میں: "اس کا زمانہ"، اور جو ثابت ہے وہ (د) سے ہے، جو نوادر الاصول کے موافق ہے۔ (4) 2/ 117-118۔ (5) اگلی آیت میں۔ (6) 2/ 124۔ (7) مذکورہ آیت کی تفسیر میں، اور حدیث کو احمد (8173)، بخاری (278)، اور مسلم (339) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 51 / 98

Then, when Aaron died, they said to him: "You killed Aaron and envied him," until the angels descended with his bier and Aaron was dead upon it. This will be discussed further in [Surah] Al-Ma'idah(1).

Then they asked him to show them a sign regarding the acceptance of their offerings. So, a fire used to come down from the sky and consume their offering. Then they asked him to clarify the expiations for their sins in this world. Whoever committed a sin would wake up to find written on (2) his door: "You did such and such, and its expiation is to cut off a part of your body," naming it for him. And if urine touched anyone, he would not be pure until he scraped it off and removed that part of skin from his body. Then they changed the Torah, fabricated against God, wrote with their own hands, and sold it for a worldly gain. Then their situation reached the point where they killed their prophets and messengers. This was their conduct with their Lord, their way in their religion, and their bad character (3). A full explanation of each of these sections will come in its proper place, God willing.

Al-Tabari said (4): In the Quran's reporting, through Muhammad (peace be upon him), of these unseen matters which were not known to (5) the Arabs, and only occurred regarding (6) the Children of Israel, there is clear evidence for the Children of Israel of the prophethood of Muhammad (peace be upon him).

God the Almighty's saying: {And [remember] when We appointed for Moses forty nights, then you took the calf [for worship] after him, while you were wrongdoers 51}

There are six matters regarding this [verse]:

First: God the Almighty's saying: {And [remember] when We appointed for Moses forty nights.} Abu 'Amr read it as "wa'adna" without the Alif (7). Abu 'Ubaid chose and preferred this, while rejecting "wa'adna" (8); he said: because the mutual appointment [al-muwa'adah] is only...

---

(1) In the interpretation of His saying: {He said, "Then indeed, it is forbidden to them..."} [Verse: 26]. (2) In Nawadir al-Usul p. 102: "And upon". (3) Nawadir al-Usul pp. 101-102. (4) In his Tafsir 2/243, and the author quoted it from him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (5) In manuscript (Zha): habit. (6) In al-Muharrar al-Wajiz: "hidden knowledge" instead of "right/truth". (7) Al-Sab'ah by Ibn Mujahid p. 154, and al-Taysir p. 73. (8) Abu Hayyan said in al-Bahr 1/199: "There is no reason to prefer one

of the two readings over the other; because both are mutawatir [widely transmitted], so they are equal in authenticity."

सूरह अल-बक़रह: आयत 51 / 98

फिर जब हारून की मृत्यु हुई, तो उन्होंने उससे कहा: "तुमने हारून को मार डाला और उससे ईर्ष्या की," यहाँ तक कि फरिश्ते उनके जनाजे के साथ उतरे और हारून उस पर मृत थे। इसका उल्लेख सूरह अल-माएदा (1) में आगे आएगा।

फिर उन्होंने उनसे अपनी भेंटों की स्वीकृति के संबंध में एक संकेत दिखाने के लिए कहा। तो, आकाश से आग आती थी और उनकी भेंट को स्वीकार कर लेती थी। फिर उन्होंने उनसे दुनिया में अपने पापों के प्रायश्चित को स्पष्ट करने के लिए कहा। जो कोई भी पाप करता था, वह अपने (2) दरवाजे पर लिखा हुआ पाता था: "तुमने ऐसा और ऐसा किया है, और इसका प्रायश्चित तुम्हारे शरीर के एक अंग को काटना है," उनके लिए उसका नाम बताते हुए। और यदि किसी को पेशाब लग जाता, तो वह तब तक पवित्र नहीं होता जब तक वह उसे खुरच कर अपने शरीर से उस खाल को हटा न देता। फिर उन्होंने तौरात को बदल दिया, अल्लाह पर झूठे आरोप लगाए, अपने हाथों से लिखा, और इसे सांसारिक लाभ के लिए बेच दिया। फिर उनकी स्थिति यहाँ तक पहुँच गई कि उन्होंने अपने नबियों और रसूलों को मार डाला। यह उनके रब के साथ उनका व्यवहार था, उनके धर्म में उनका आचरण था, और उनका बुरा चरित्र था (3)। इनमें से प्रत्येक खंड का पूर्ण विवरण यथास्थान आएगा, यदि अल्लाह ने चाहा।

अल-तबरी ने कहा (4): मोहम्मद (उन पर शांति हो) की जुबान से इन अनदेखी बातों के बारे में कुरान की खबर देना, जो अरबों के ज्ञान (5) में नहीं थीं, और केवल बनी इस्राइल के संबंध (6) में हुई थीं, बनी इस्राइल के लिए मोहम्मद (उन पर शांति हो) की नबूवत का एक स्पष्ट प्रमाण है।

अल्लाह तआला का फरमान: {और [याद करो] जब हमने मूसा से चालीस रातों का वादा किया, फिर तुमने उसके बाद बछड़े को [पूजा के लिए] अपना लिया, जबकि तुम ज़ालिम थे 51}

इसमें छह मसले हैं:

पहला: अल्लाह तआला का फरमान: {और [याद करो] जब हमने मूसा से चालीस रातों का वादा किया।} अबू अम्र ने इसे बिना अलिफ़ के"वअदना" पढ़ा है (7)। अबू उबैद ने इसे चुना और तरजीह दी, और "वाअदना" (8) को अस्वीकार कर दिया; उन्होंने कहा: क्योंकि वादा तो केवल...

(1) अल्लाह के इस फरमान की व्याख्या में: {उसने कहा, "तो वास्तव में, यह उन पर वर्जित है..."} [आयत: 26] (2) नवादिर अल-उसूल पृ. 102 में: "और पर"। (3) नवादिर अल-उसूल पृ. 101-102। (4) उनकी तफ़सीर 2/243 में, और लेखक ने इसे इब्न अतिय्या के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/142 में उद्धृत किया है। (5) पांडुलिपि (ज़) में: आदत। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ में: "हक़" के स्थान पर "छिपा हुआ ज्ञान"। (7) इब्न मुजाहिद द्वारा अल-सबआ पृ. 154, और अल-तयसीर पृ. 73। (8) अबू हय्यान ने अल-बहर 1/199 में कहा: "दोनों किरातों में से एक को दूसरे पर तरजीह देने का कोई कारण नहीं है; क्योंकि दोनों मुतवातिर हैं, इसलिए वे प्रमाणिकता में बराबर हैं।"

سورہ البقرہ: آیت 51 / 98

پھر جب ہارون علیہ السلام فوت ہوئے تو انہوں نے (موسیٰ علیہ السلام سے) کہا: "تم نے ہارون کو قتل کر دیا اور تم نے ان سے حسد کیا،" یہاں تک کہ فرشتے ان کا جنازہ لے کر اترے اور ہارون اس پر مردہ حالت میں تھے، اور اس کا ذکر (سورہ) مائدہ (1) میں آئے گا۔

پھر انہوں نے آپ سے مطالبہ کیا کہ وہ ان کی قربانیوں کی قبولیت کی کوئی نشانی بتائیں، تو آسمان سے آگ آتی اور ان کی قربانی کو قبول کر لیتی (کھا جاتی)۔ پھر انہوں نے آپ سے پوچھا کہ دنیا میں ہمارے گناہوں کا کفارہ کیا ہے؟ تو جو کوئی گناہ کرتا، اس کے (2) دروازے پر لکھا ہوا ملتا کہ: "تم نے فلاں کام کیا ہے اور اس کا کفارہ تمہارے اعضاء میں سے فلاں عضو کا کاٹنا ہے،" اس کا نام لے دیا جاتا۔ اور جسے پیشاب لگ جاتا وہ اس وقت تک پاک نہ ہوتا جب تک اسے کھرچ نہ دیتا اور اپنے جسم سے اس کی کھال الگ نہ کر دیتا۔ پھر انہوں نے تورات کو بدل دیا، اللہ پر بہتان باندھا، اپنے ہاتھوں سے (کتاب) لکھی اور اسے معمولی قیمت پر بیچ دیا، پھر ان کا معاملہ یہاں تک پہنچ گیا کہ انہوں نے اپنے انبیاء اور رسولوں کو قتل کر دیا۔ پس یہ ان کا اپنے رب کے ساتھ معاملہ، ان کے دین میں ان کی روش اور ان کا برا اخلاق تھا (3)۔ اور ان تمام ابواب کی تفصیل اپنے مقام پر آئے گی، ان شاء اللہ تعالیٰ۔

طبری (4) نے کہا: قرآن کا محمد ﷺ کی زبان پر ان غیب کی باتوں کی خبر دینا جو عربوں کے علم (5) میں نہ تھیں اور نہ ہی وہ بنی اسرائیل کے حق (6) کے سوا کہیں واقع ہوئی تھیں، بنی اسرائیل کے نزدیک محمد ﷺ کی نبوت پر ایک واضح دلیل ہے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {اور (یاد کرو) جب ہم نے موسیٰ سے چالیس راتوں کا وعدہ کیا، پھر تم نے ان کے بعد بچھڑے کو (معبود) بنا لیا اور تم ظلم کرنے والے تھے 51}

اس میں چھ مسائل ہیں:

پہلا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا قول: {اور جب ہم نے موسیٰ سے چالیس راتوں کا وعدہ کیا}۔ ابوعمرو نے اسے الف کے بغیر 'وَعَدْنَا' پڑھا ہے (7)۔ اور اسے ابوعبید نے اختیار کیا اور اسے ترجیح دی ہے، اور انہوں نے 'وٰعَدْنَا' (8) کا انکار کیا ہے؛ انہوں نے کہا: کیونکہ مواعدہ تو محض...

---

(1) اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفسیر میں: {فرمایا کہ وہ (زمین) ان پر حرام کر دی گئی ہے} [آیت: 26]۔ (2) نوادر الاصول ص 102 میں: 'وعلی' (اور اس پر)۔ (3) نوادر الاصول ص 101 - 102۔ (4) ان کی تفسیر 243/2 میں، اور مصنف نے اسے ان سے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز 142/1 میں نقل کیا ہے۔ (5) (ظ) کے نسخہ میں: 'عادت'۔ (6) المحرر الوجیز میں: 'حق' کی جگہ 'خفی علم' ہے۔ (7) السبعہ لابن مجاہد ص 154، اور التیسیر ص 73۔ (8) ابو حیان نے البحر 199/1 میں کہا: ایک قراءت کو دوسری پر ترجیح دینے کی کوئی وجہ نہیں ہے؛ کیونکہ ان میں سے ہر ایک متواتر ہے، پس وہ صحت میں برابر کے درجے پر ہیں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 51 Page 99

...arise from humans. As for Allah, Exalted and Majestic, He is the sole One to give promises and threats. This is how we found the Quran, as in His words: "Allah promised you the promise of truth" [Ibrahim: 22], and: "Allah has promised those who have believed among you and done righteous deeds" [An-Nur: 55], and: "And [remember] when Allah promised you one of the two groups - that it would be yours" [Al-Anfal: 7] (1).

Makki said (2): Also, the apparent wording indicates a promise from Allah the Almighty to Moses, and there is no promise from Moses in it. Therefore, it must be attributed to a single party according to the apparent text (3), because (4) the action is attributed to Allah the Almighty alone. This is the recitation of Al-Hasan, Abu Raja, Abu Ja'far (5), Shaybah (6), and 'Isa ibn 'Umar (7), and it was recited by Qatadah and Ibn Abi Ishaq. Abu Hatim said: The general recitation for us is "wa'adna" (We promised) without an 'alif', because mutual promising is mostly between creatures and equals, where each one promises the other.

Al-Jawhari said: 'Al-Mi'ad' means mutual promising, time, and place.

Makki said (8): Mutual promising (al-mu'awadah) is originally from two parties, but the 'mufa'alah' form (indicating reciprocity) can come from one party in Arabic speech. They say: "I layered the sandal" (taraqtu an-na'l), "I treated the sick" (dawaytu al-'alil), and "I punished the thief" (aqabtu al-liss), yet the action is from one person. Thus, the term 'mutual promising' from Allah specifically to Moses would be like the meaning of "wa'adna" (We promised), so both recitations have the same meaning. The preferred choice is "wa'adna" with an 'alif', because it carries the meaning of "wa'adna" in one of its senses, and because Moses must have a promise or an acceptance that stands in place of a promise, thus validating the 'mufa'alah' form.

An-Nahas said (9): The recitation "wa'adna" with an 'alif' is better and more beautiful, and it is the recitation of Mujahid.

(1) I'rab al-Quran by An-Nahas 1/ 223 - 224. (2) Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at 1/ 239. (3) In (z): attributing it to the apparent text. (4) In the manuscript copies and (m): 'that', and what is established is from Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at. (5) Yazid ibn al-Qa'qa' al-Madani, one of the ten readers. (6) Ibn Nasah ibn Sarjis, the reciter of Medina along with Abu Ja'far and its judge, a client of Umm Salama. He was the first to write on pauses, and his book is famous. He died in 130 AH. Tabaqat al-Qurra 1/ 329 - 330. (7)

Al-Hamdani, the Kufan reciter, was the reciter for the people of Kufa after Hamza. Ath-Thawri said: I reached Kufa when there was no one more knowledgeable in recitation than 'Isa al-Hamdani. He died in 156 AH. Ma'rifat al-Qurra al-Kibar 1/ 270. (8) Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at 1/ 240. (9) I'rab al-Quran 1/ 224.

सूरह अल-बकरा: आयत 51 पृष्ठ संख्या: 99

...मनुष्यों से उत्पन्न होते हैं। जहाँ तक अल्लाह का सवाल है, वह वादे और धमकी (सज़ा) देने में अकेला है। हमने कुरान में यही पाया है, जैसा कि उसके शब्दों में है: "अल्लाह ने तुमसे सच्चाई का वादा किया था" [इब्राहिम: 22], और: "अल्लाह ने तुममें से उन लोगों से वादा किया है जो ईमान लाए और नेक काम किए" [अन-नूर: 55], और: "और [याद करो] जब अल्लाह ने तुमसे दो गिरोहों में से एक का वादा किया था कि वह तुम्हारा होगा" [अल-अनफाल: 7] (1)।

मक्की ने कहा (2): इसके अलावा, स्पष्ट शब्दों में अल्लाह तआला की ओर से मूसा के लिए एक वादा है, और इसमें मूसा की ओर से कोई वादा नहीं है। इसलिए, स्पष्ट पाठ (3) के अनुसार इसे एक पक्ष के लिए ही माना जाना चाहिए, क्योंकि (4) कार्य केवल अल्लाह तआला के लिए ही कहा गया है। यह अल-हसन, अबू रजा, अबू जाफर (5), शैबा (6) और ईसा बिन उमर (7) का पाठ है, और कतादा और इब्न अबी इशाक ने भी इसे पढ़ा है। अबू हातिम ने कहा: हमारे पास सामान्य पाठ "वअदना" (हमने वादा किया) बिना 'अलिफ़' के है; क्योंकि आपसी वादा अक्सर प्राणियों और समानों के बीच होता है, जहाँ प्रत्येक दूसरे से वादा करता है।

अल-जौहरी ने कहा: 'अल-मीआद' का अर्थ है आपसी वादा, समय और स्थान।

मक्की ने कहा (8): 'मुआदा' (आपसी वादा) मूल रूप से दो लोगों के बीच होता है, लेकिन अरबी भाषा में 'मुफ़ाअला' (पारस्परिकता दर्शाने वाला रूप) एक पक्ष से भी आ सकता है। वे कहते हैं: "मैंने चप्पल की तह बनाई" (तारक्तु अन-नल), "मैंने बीमार का इलाज किया" (दावैतु अल-अलील), और "मैंने चोर को सजा दी" (आक़ब्तु अल-लिस्स), फिर भी क्रिया एक ही व्यक्ति की ओर से है। इस प्रकार, अल्लाह की ओर से विशेष रूप से मूसा के लिए 'मुआदा' का शब्द "वअदना" के अर्थ में होगा, इसलिए दोनों पाठों का अर्थ एक ही है। 'अलिफ़' के साथ "वाअदना" को प्राथमिकता दी जाती है, क्योंकि यह अपने एक अर्थ में "वअदना" का अर्थ रखता है, और क्योंकि मूसा के लिए एक वादा या स्वीकृति होना आवश्यक है जो वादे के स्थान पर खड़ी हो, इस प्रकार 'मुफ़ाअला' रूप सही बैठता है।

अन-नहास ने कहा (9): 'अलिफ़' के साथ "वाअदना" का पाठ अधिक बेहतर और सुंदर है, और यह मुजाहिद का पाठ है।

(1) इ'राब अल-कुरान, अन-नहास 1/ 223 - 224। (2) अल-कशफ अन वुजुह अल-क़िरात 1/ 239। (3) (ज़) में: इसे स्पष्ट पाठ पर आधारित करना। (4) पांडुलिपियों और (म) में: 'कि', और जो स्थापित है

वह अल-कशफ अन वुजुह अल-क़िरात से है। (5) यज़ीद बिन अल-क़ाक़ा अल-मदनी, दस पाठकों में से एक। (6) इब्न नसाह बिन सरजिस, अबू जाफ़र के साथ मदीना के क़ारी और उसके न्यायाधीश, उम्म सलमा के सेवक। वह वक़्फ़ (विराम) पर लिखने वाले पहले व्यक्ति थे, और उनकी पुस्तक प्रसिद्ध है। उनकी मृत्यु 130 हिजरी में हुई। तबक़ात अल-क़ुर्रा 1/ 329 - 330। (7) अल-हमदानी, कूफ़ी क़ारी, हमजा के बाद कूफ़ा के लोगों के क़ारी थे। अत-थौरी ने कहा: मैं कूफ़ा पहुँचा जब वहाँ ईसा अल-हमदानी से बेहतर कोई क़ारी नहीं था। उनकी मृत्यु 156 हिजरी में हुई। मारिफ़त अल-क़ुर्रा अल-किबार 1/ 270। (8) अल-कशफ अन वुजुह अल-क़िरात 1/ 240। (9) इ'राब अल-कुरान 1/ 224।

سورة البقرہ: آیت 51 صفحہ نمبر: 99

...بشر سے ہوتے ہیں، جہاں تک اللہ عزوجل کا تعلق ہے، تو وہی وعدہ اور وعید (دھمکی) دینے میں منفرد ہے، ہم نے قرآن کو اسی طرح پایا ہے، جیسا کہ اللہ عزوجل کا فرمان ہے: ﴿ وَعَدَكُمُ وَعْدَ الْحَقِّ ﴾ [ابراہیم: 22]، اور فرمایا: ﴿ وَعَدَ اللَّهُ الَّذِينَ ءَامَنُوا مِنكُمْ وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ ﴾ [النور: 55]، اور فرمایا: ﴿ وَإِذْ يَعِدُكُمُ اللَّهُ إِحْدَى الطَّائِفَتَيْنِ أَنَّهَا لَكُمْ ﴾ [الأنفال: 7] (1)۔

مکی نے کہا (2): اور یہ بھی کہ لفظ کا ظاہر اس میں اللہ تعالیٰ کی طرف سے موسیٰ علیہ السلام کے لیے وعدہ ہے، اور اس میں موسیٰ کی طرف سے کوئی وعدہ نہیں ہے، اس لیے ظاہرِ نص (3) کی بنا پر اسے ایک ہی ذات پر محمول کرنا واجب ہوا، کیونکہ (4) فعل صرف اللہ تعالیٰ کی طرف منسوب ہے، اور یہ حسن، ابورجاء، ابوجعفر (5)، شیبہ (6) اور عیسیٰ بن عمر (7) کی قرات ہے، اور اسی کے ساتھ قتادہ اور ابن ابی اسحاق نے پڑھا ہے۔ ابوحاتم نے کہا: ہمارے نزدیک عام لوگوں کی قرات "وَعَدْنَا" (بغیر الف کے) ہے؛ کیونکہ باہمی وعدہ (مواعدہ) اکثر مخلوقات اور ہمسروں کے درمیان ہوتا ہے، جہاں ہر ایک دوسرے سے وعدہ کرتا ہے۔

جوہری نے کہا: 'المیعاد' سے مراد باہمی وعدہ، وقت اور جگہ ہے۔

مکی نے کہا (8): 'المواعدہ' کی اصل دو افراد سے ہے، اور عربوں کے کلام میں 'مفاعلہ' کا وزن ایک کی طرف سے بھی آ سکتا ہے، وہ کہتے ہیں: "طارقت النعل" (میں نے جوتے پر جوتا لگایا)، "داویت العلیل" (میں نے بیمار کا علاج کیا)، اور "عاقبت اللص" (میں نے چور کو سزا دی)، حالانکہ فعل ایک ہی شخص کی طرف سے ہے۔ پس اللہ کی طرف سے خاص طور پر موسیٰ کے لیے 'مواعدہ' کا لفظ "وعدنا" کے معنی میں ہوگا، اس طرح دونوں قراتیں ایک ہی معنی میں ہوں گی۔ اور "واعدنا" (الف کے ساتھ) بہتر انتخاب ہے، کیونکہ یہ اپنے ایک معنی میں "وعدنا" کے ہم

معنی ہے، اور اس لیے کہ موسیٰ کی طرف سے بھی کسی وعدے یا قبولیت کا ہونا ضروری ہے جو وعدہ کے قائم مقام ہو، اس طرح 'مفاعلہ' درست ہو جاتا ہے۔

نحاس نے کہا (9): الف کے ساتھ "واعدنا" کی قرات زیادہ عمدہ اور بہتر ہے، اور یہ مجاہد کی قرات ہے۔

(1) إعراب القرآن للنحاس 1/ 223 - 224. (2) الكشف عن وجوه القراءات 1/ 239. (3) (ز) میں: اسے ظاہر نص پر محمول کرنا۔ (4) خطی نسخوں اور (م) میں: 'أن'، اور جو ثابت ہے وہ 'الكشف عن وجوه القراءات' سے ہے۔ (5) یزید بن القعقاع المدنی، اور وہ دس قرائے کرام میں سے ہیں۔ (6) ابن نصاح بن سرجس، ابوجعفر کے ساتھ مدینہ کے قاری اور وہاں کے قاضی، ام سلمہ رضی اللہ عنہا کے آزاد کردہ غلام۔ وہ پہلے شخص ہیں جنہوں نے 'الوقوف' پر تصنیف کی، ان کی کتاب مشہور ہے، وفات 130ھ میں ہوئی۔ طبقات القراء 1/ 329 - 330۔ (7) الہمدانی، کوفی قاری، حمزہ کے بعد اہل کوفہ کے قاری تھے۔ ثوری نے کہا: میں نے کوفہ کو پایا کہ وہاں عیسیٰ الہمدانی سے بڑھ کر کوئی قاری نہ تھا۔ وفات 156ھ میں ہوئی۔ معرفة القراء الكبار 1/ 270۔ (8) الكشف عن وجوه القراءات 1/ 240. (9) إعراب القرآن 1/ 224.

Surah Al-Baqarah: Verse 51 100

Al-A'raj, Ibn Kathir, Nafi', Al-A'mash, Hamzah, and Al-Kisa'i (1). And the saying of Allah Almighty: {Allah has promised those who believe among you and do righteous deeds} is not related to this in any way, because {And We appointed for Moses a time} belongs to the category of meeting (muwafa), and this is not part of promise and threat in any way. Rather, it is like your saying: your appointment is Friday, and your appointment is such a place. The eloquent way in this is to say: "I made an appointment with him (wa'adtuhu)."

Abu Ishaq al-Zajjaj (2) said: "Wa'adna" here with the Alif is good, because obedience in acceptance is equivalent to a mutual appointment; from Allah, Exalted and Majestic, is a promise, and from Moses is acceptance and following, which proceeds like a mutual appointment.

Ibn Atiyyah (3) said: Abu Ubaid (4) preferred "Wa'adna" [without Alif], but it is not correct, because Moses' acceptance of Allah's promise, his commitment to it, and his awaiting it resemble a mutual appointment.

The second [point]: His Almighty's saying: {Moses}. "Musa" is a foreign (non-Arabic) name, it is indeclinable (diptote), due to its foreign origin and being a proper noun. The Copts — according to what is narrated — call water: 'Mu', and trees: 'Sa' (5). So when Moses was found in the basket near water and trees, he was named: Moses (6).

Al-Suddi said: When his mother feared for him, she put him in the basket and cast him into the river as Allah inspired her. She cast him into the river among trees near Pharaoh's house. The handmaidens of Asiya, Pharaoh's wife, came out to bathe and found him, so he was named after the name of the place (7). Al-Naqqash and others mentioned that the name of the one who picked him up (8) was Sabuth (9).

---

(1) Ibn Kathir, Nafi', Hamzah, and Al-Kisa'i: from the seven readers, and those who agreed with them on the reading "Wa'adna" from the seven also include: Ibn 'Amir and 'Asim. See Al-Sab'ah p. 154, and Al-Taysir p. 73. (2) Ma'ani al-Qur'an 1/133. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (4) In (m): Abu Ubaydah, which is an error. (5) In (z) and (m): 'Sha', with the pointed letter, and in Al-Qamus: 'Sa', with the unpointed letter. Al-Zabidi said in Taj al-Arus: it is thus in all other copies (meaning with the unpointed letter in copies of Al-Qamus). Ibn al-Jawaliqi said: it is with the pointed letter 'Shin'. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. Ibn Manzur said in Lisan al-Arab (Musa): It was said: it is in Hebrew 'Musa', and its meaning is drawing out, because he was drawn out from

the water. (7) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/120; and in it: he cast him among trees, instead of: she cast him into the river among trees. (8) In (d), (z), and (m): 'Iltaqatat-hu' [she picked him up], and what is established is from (zh). (9) In (zh): Tahamut.

सूरह अल-बकराह: आयत 51 100

अल-आरज, इब्न कसीर, नफी, अल-आमश, हमजा और अल-किसाई (1)। और अल्लाह सर्वशक्तिमान का यह कहना: {अल्लाह ने तुम में से उन लोगों से वादा किया है जो ईमान लाए और नेक अमल किए} इससे किसी भी तरह संबंधित नहीं है, क्योंकि {और हमने मूसा के लिए एक समय नियत किया} भेंट/नियुक्ति (मुवाफ़ात) की श्रेणी से है, और यह वादा और धमकी की श्रेणी में नहीं आता। बल्कि, यह आपके इस कहने की तरह है: तुम्हारी नियुक्ति शुक्रवार को है, और तुम्हारी नियुक्ति अमुक स्थान पर है। इसमें अधिक स्पष्ट (फ़सीह) तरीका यह कहना है: "मैंने उसके साथ नियत समय तय किया (वाअद-तुहु)"।

अबू इशाक अल-ज़ज्जाज (2) ने कहा: यहाँ अलिफ़ के साथ "वाअदना" अच्छा है, क्योंकि स्वीकृति में आज्ञाकारिता एक आपसी नियुक्ति के समान है; अल्लाह की ओर से एक वादा है, और मूसा की ओर से स्वीकृति और पालन है, जो आपसी नियुक्ति की तरह चलता है।

इब्न अतिय्याह (3) ने कहा: अबू उबैद (4) ने "वअदना" [बिना अलिफ़ के] को प्राथमिकता दी, लेकिन यह सही नहीं है, क्योंकि अल्लाह के वादे को मूसा की स्वीकृति, उसकी प्रतिबद्धता और उसकी प्रतीक्षा, एक आपसी नियुक्ति के समान है।

दूसरा बिंदु: अल्लाह का कहना: {मूसा}। "मूसा" एक गैर-अरबी (विदेशी) नाम है, यह इसके विदेशी मूल और संज्ञा होने के कारण अपरिवर्तनीय है। कॉप्टिक लोग - जैसा कि वर्णित है - पानी को: 'मू' कहते हैं, और पेड़ों को: 'सा' (5)। इसलिए जब मूसा को पानी और पेड़ों के पास टोकरी में पाया गया, तो उनका नाम: मूसा (6) रखा गया।

अल-सुद्दी ने कहा: जब उसकी माँ को उसके लिए डर हुआ, तो उसने उसे टोकरी में रखा और नदी में डाल दिया जैसा कि अल्लाह ने उसे प्रेरित किया था। उसने उसे फिरौन के घर के पास पेड़ों के बीच नदी में डाल दिया। फिरौन की पत्नी आसिया की दासियाँ नहाने के लिए बाहर आईं और उन्हें वह मिला, इसलिए उसका नाम उस स्थान के नाम पर रखा गया (7)। अल-नक्कास और अन्यों ने उल्लेख किया कि उसे उठाने वाले का नाम (8) साबूथ (9) था।

---

(1) इब्न कसीर, नफी, हमजा और अल-किसाई: सात पाठकों में से हैं, और सात पाठकों में से उनके साथ "वाअदना" पढ़ने पर सहमत होने वाले इब्न आमिर और आसिम भी हैं। देखें अल-सबआ पृष्ठ

154, और अल-तयसीर पृष्ठ 73। (2) मानी अल-कुरान 1/133। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/142। (4) (म) में: अबू उबैदाह, जो एक गलती है। (5) (ज़) और (म) में: 'शा', नुक्ते वाले अक्षर के साथ, और अल-कामूस में: 'सा', बिना नुक्ते वाले अक्षर के साथ। अल-ज़बीदी ने ताज अल-अरुस में कहा: अल-कामूस की अन्य सभी प्रतियों में इसी तरह है। इब्न अल-जवालिक़ी ने कहा: यह नुक्ते वाले अक्षर 'शीन' के साथ है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/142। इब्न मंज़ूर ने लिसान अल-अरब (मूसा) में कहा: कहा गया है: यह हिब्रू में 'मूसा' है, जिसका अर्थ है खींचना, क्योंकि उन्हें पानी से निकाला गया था। (7) अल-नुकत वल-उयून 1/120। (8) (द), (ज़) और (म) में: 'इल्तक़तत-हु' (उसने उसे उठाया), और जो तय है वह (ज़) से है। (9) (ज़) में: तहामुत।

سورہ البقرہ: آیت ۵۱ ۱۰۰

الاعرج، ابن کثیر، نافع، الاعمش، حمزہ اور الکسائی (۱)۔ اور اللہ عزوجل کا یہ فرمان: {اللہ نے تم میں سے ان لوگوں سے وعدہ فرمایا ہے جو ایمان لائے اور نیک اعمال کیے} اس کا اس سے کوئی تعلق نہیں ہے، کیونکہ {اور ہم نے موسیٰ سے وقت مقرر کیا} موافاۃ (ملاقات/مقرر وقت) کے باب سے ہے، اور یہ کسی بھی طرح وعدہ اور وعید کے باب سے نہیں ہے، بلکہ یہ آپ کے اس قول کی طرح ہے: تمہارا وعدہ (مقررہ وقت) جمعہ کا دن ہے، اور تمہارا وعدہ فلاں جگہ ہے۔ اور اس میں فصیح یہ ہے کہ کہا جائے: میں نے اس سے وقت مقرر کیا (واعدتُہ)۔

ابو اسحاق الزجاج (۲) نے کہا: یہاں الف کے ساتھ «واعدنا» بہتر ہے، کیونکہ قبولیت میں اطاعت باہمی وعدہ (مواعدہ) کے درجے میں ہے؛ اللہ جل وعز کی طرف سے وعدہ ہے، اور موسیٰ کی طرف سے قبولیت اور پیروی ہے جو باہمی وعدے کے طور پر جاری ہوتی ہے۔

ابن عطیہ (۳) نے کہا: ابو عبید (۴) نے «وَعَدْنَا» [بغیر الف] کو ترجیح دی، لیکن یہ درست نہیں ہے، کیونکہ اللہ کے وعدے کو موسیٰ کا قبول کرنا، اس کی پابندی کرنا اور اس کا انتظار کرنا، باہمی وعدے کے مشابہ ہے۔

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {موسیٰ}۔ «موسیٰ» ایک عجمی نام ہے، جو عجمہ اور معرفہ ہونے کی وجہ سے غیر منصرف ہے۔ قبطی لوگ - جیسا کہ روایت کیا گیا ہے - پانی کو: مو، اور درخت کو: سا (۵) کہتے ہیں، چنانچہ جب موسیٰ کو پانی اور درختوں کے پاس صندوق میں پایا گیا تو ان کا نام: موسیٰ (۶) رکھا گیا۔

السدی نے کہا: جب ان کی ماں کو ان کے بارے میں ڈر ہوا تو انہوں نے انہیں صندوق میں رکھا اور دریا میں ڈال دیا جیسا کہ اللہ نے انہیں وحی کی تھی، چنانچہ انہوں نے انہیں فرعون کے گھر کے پاس درختوں کے درمیان دریا میں ڈال دیا۔ فرعون کی بیوی آسیہ کی لونڈیاں نہانے کے لیے نکلیں تو انہوں نے انہیں پایا، چنانچہ ان کا نام اس جگہ کے نام پر رکھ دیا گیا (۷)۔ النقاش اور دوسروں نے ذکر کیا ہے کہ جس نے انہیں اٹھایا (۸) اس کا نام صابوث (۹) تھا۔

---

(۱) ابن کثیر، نافع، حمزہ اور الکسائی: سات قراء میں سے ہیں، اور سات میں سے ان کے ساتھ «واعدنا» کی قرات پر اتفاق کرنے والے ابن عامر اور عاصم بھی ہیں۔ دیکھئے السبعہ ص ۱۵۴، اور التیسیر ص ۷۳۔ (۲) معانی القرآن ۱/۱۳۳۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/۱۴۲۔ (۴) (م) میں: ابو عبیدہ، اور یہ غلط ہے۔ (۵) (ز) اور (م) میں: شا، شین معجمہ کے ساتھ، اور القاموس میں: سا، سین مہملہ کے ساتھ زبیدی نے تاج العروس میں کہا: قاموس کے دیگر تمام نسخوں میں اسی طرح ہے، اور ابن الجوالیقی نے کہا: یہ شین معجمہ کے ساتھ ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/۱۴۲۔ اور ابن منظور نے لسان العرب (موسیٰ) میں کہا: کہا گیا ہے: یہ عبرانی میں موسیٰ ہے، اور اس کا معنی کھینچنا ہے، کیونکہ انہیں پانی سے کھینچا گیا تھا۔ (۷) النکت والعیون ۱/۱۲۰۔ (۸) (د)، (ز) اور (م) میں: التقطتہ، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے۔ (۹) (ظ) میں: تھاموت۔

Surah Al-Baqarah: Verse 51 101

Ibn Ishaq said: Moses is Moses, the son of Imran, the son of Yishar (Izhar), the son of Kohath, the son of Levi, the son of Jacob, the Israel of God, the son of Isaac, the son of Abraham, peace be upon them (1) (2).

Third: His saying, the Most High: {forty nights}. "Forty" is in the accusative case as the second object, and there is an omission in the speech. Al-Akhfash said (3): The estimation is: "And when We appointed for Moses the completion of forty nights," as He said: {And ask the village} [Yusuf: 82]. And the forty are all included in the appointment.

And the forty, according to most commentators, are: Dhul-Qi'dah and ten (4) days of Dhul-Hijjah (5). This was after he had crossed the sea, and his people asked him to bring them a book from God. So he went out to Mount Tur with seventy of the best of the Children of Israel, and they ascended the mountain. He promised them to return at the end of forty nights. However, according to what the commentators mentioned, they counted twenty days and twenty nights and said, "He has broken his appointment with us." So they took the calf [as a god]. Samiri said to them, "This is your god and the god of Moses." They were satisfied with his word. Aaron forbade them and said: {O my people, you are only being tried by it, and indeed, your Lord is the Most Merciful, so follow me and obey my order. They said, 'We will never cease to be devoted to it until Moses returns to us'} [Taha: 90 - 91]. None followed Aaron or obeyed him in abandoning the worship of the calf except twelve thousand, according to what was narrated. The rest of them rushed into its worship, and they were more than two million. When Moses returned and found them in that (6) state, he threw down the tablets, and six parts of them were taken up, and only one part remained, which contained the lawful, the prohibited, and what they needed. He burnt the calf and scattered it in the sea. They drank from its water out of love for the calf, so yellowness appeared on their lips and their bellies swelled. They repented, but their repentance was not accepted unless they killed themselves. That is His saying, the Most High: {So repent to your Creator and kill yourselves} [Al-Baqarah: 54]. So they rose against each other with daggers and swords, from sunrise until mid-morning. They killed each other; a father would not ask about his son, nor a son about his father, nor a brother...

---

(1) In (M): upon him. (2) Tafsir al-Tabari 1/666, Al-Nukat wa'l-'Uyun 1/120, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (3) Ma'ani al-Qur'an 1/264, and the author quoted him via

I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/224. (4) In (M): and ten (feminine form). (5) Al-Nukat wa'l-'Uyun 1/120, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (6) In (M): that (feminine demonstrative).

सूरा अल-बक़राह: आयत 51 101

इब्न इसहाक ने कहा: मूसा, इमरान के पुत्र हैं, जो यशहर के पुत्र थे, जो क़ाहत के पुत्र थे, जो लावी के पुत्र थे, जो अल्लाह के इसराइल याकूब के पुत्र थे, जो इसहाक के पुत्र थे, जो इब्राहीम के पुत्र थे, उन सब पर शांति हो (1) (2)।

तीसरी बात: अल्लाह का कहना: {चालीस रातें}। "चालीस" (अरबी में 'अरबईना') यहाँ दूसरे कर्म (object) के रूप में नसब (accusative case) में है, और यहाँ कुछ शब्द लुप्त हैं। अल-अख़फ़श ने कहा (3): इसका अर्थ यह है: "और जब हमने मूसा से चालीस रातें पूरी करने का वादा किया," जैसा कि अल्लाह ने कहा है: {और बस्ती से पूछो} [यूसुफ: 82]। और ये चालीस रातें पूरी तरह से निर्धारित समय में शामिल हैं।

अधिकांश टीकाकारों (मुफ़स्सिरीन) के अनुसार ये चालीस दिन ज़ुल-क़ादा के महीने और ज़ुल-हिज्जा के दस दिन (4) (5) थे। यह तब हुआ जब उन्होंने समुद्र पार कर लिया था, और उनकी कौम ने उनसे अल्लाह की ओर से एक किताब लाने को कहा। तो वे बनी इसराइल के सत्तर चुनिंदा लोगों के साथ तूर पहाड़ की ओर निकले, और वे पहाड़ पर चढ़ गए। उन्होंने उनसे चालीस रातें पूरी होने पर लौटने का वादा किया था। टीकाकारों के अनुसार, लोगों ने बीस दिन और बीस रातें गिनीं और कहा, "उसने अपना वादा तोड़ दिया है।" फिर उन्होंने बछड़े को पूजना शुरू कर दिया। सामरी ने उनसे कहा, "यह तुम्हारा और मूसा का ईश्वर है।" वे उसकी बात मान गए। हारून ने उन्हें मना किया और कहा: {हे मेरी कौम! तुम्हारी इसके द्वारा केवल परीक्षा ली गई है, और तुम्हारा रब तो अत्यंत दयावान है, अतः मेरा अनुसरण करो और मेरी आज्ञा मानो। उन्होंने कहा, 'हम इसके आगे झुके रहेंगे जब तक कि मूसा हमारे पास लौट न आए'} [ता-हा: 90 - 91]। रिवायतों के अनुसार हारून का अनुसरण करने और बछड़े की पूजा छोड़ने वालों की संख्या केवल बारह हज़ार थी। बाकी सब उसकी पूजा में लग गए, जिनकी संख्या बीस लाख से अधिक थी। जब मूसा लौटे और उन्हें उस (6) हाल में पाया, तो उन्होंने तख्तियाँ (अलवाह) फेंक दीं, जिनमें से छह हिस्से उठा लिए गए और केवल एक हिस्सा बचा, जिसमें हलाल, हराम और उनकी ज़रूरत की चीज़ें थीं। उन्होंने बछड़े को जला दिया और उसे समुद्र में बिखेर दिया। बछड़े के प्रति प्रेम के कारण उन्होंने उसका पानी पिया, जिससे उनके होठों पर पीलापन आ गया और उनके पेट फूल गए। उन्होंने तौबा की, लेकिन उनकी तौबा तब तक स्वीकार नहीं की गई जब तक कि उन्होंने एक-दूसरे को न मारा। यही अल्लाह का कहना है: {अतः अपने पैदा करने वाले की ओर तौबा करो और अपने लोगों (पापियों) को मार डालो} [अल-बक़राह: 54]। फिर वे

खंजर और तलवारें लेकर एक-दूसरे के खिलाफ खड़े हो गए, सूर्योदय से लेकर दोपहर से पहले तक। वे एक-दूसरे को मारते रहे; पिता ने अपने पुत्र की परवाह नहीं की, न पुत्र ने पिता की, और न भाई ने...

---

(1) (M) में: उन पर। (2) तफ़सीर अल-तबरी 1/666, अल-नुकत वल-उयून 1/120, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/142। (3) मा'नी अल-क़ुरआन 1/264, और लेखक ने नह़हास की ए'राब अल-क़ुरआन 1/224 के माध्यम से उद्धृत किया। (4) (M) में: और दस (स्त्रीलिंग रूप)। (5) अल-नुकत वल-उयून 1/120, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/142। (6) (M) में: वह (स्त्रीलिंग शब्द)।

سورہ البقرہ: آیت 51 101

ابن اسحاق نے کہا: موسیٰ، عمران بن یصھر بن قاہث بن لاوی بن یعقوب (اسرائیل اللہ) بن اسحاق بن ابراہیم کے بیٹے ہیں، ان سب پر سلام ہو (1) (2)۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اربعین لیلۃ} (چالیس راتیں)۔ "اربعین" مفعول ثانی ہونے کی بنا پر حالتِ نصب میں ہے، اور کلام میں کچھ حذف ہے (یعنی کچھ الفاظ چھپے ہوئے ہیں)۔ اخفش (3) نے کہا: تقدیر (پوشیدہ عبارت) یوں ہے: "اور جب ہم نے موسیٰ سے چالیس راتوں کی تکمیل کا وعدہ کیا،" جیسا کہ اللہ نے فرمایا: {واسئل القریۃ} [یوسف: 82] (اور بستی سے پوچھو، یعنی بستی والوں سے)۔ اور وہ چالیس کی چالیس راتیں میعاد میں شامل ہیں۔

اکثر مفسرین کے قول کے مطابق چالیس دن ذوالقعدہ کا پورا مہینہ اور ذوالحجہ کے دس دن (4) (5) ہیں۔ یہ واقعہ تب پیش آیا جب وہ سمندر پار کر چکے تھے، اور ان کی قوم نے ان سے اللہ کی طرف سے کتاب لانے کا مطالبہ کیا۔ چنانچہ وہ بنی اسرائیل کے ستر چنیدہ افراد کے ساتھ طور کی طرف نکلے اور پہاڑ پر چڑھے۔ موسیٰ علیہ السلام نے ان سے چالیس راتیں مکمل ہونے پر واپسی کا وعدہ کیا تھا۔ مفسرین کے بیان کے مطابق، لوگوں نے بیس دن اور بیس راتیں شمار کیں اور کہا کہ انہوں نے وعدہ خلافی کی ہے۔ پھر انہوں نے بچھڑے کو معبود بنا لیا۔ سامری نے ان سے کہا: "یہ تمہارا اور موسیٰ کا خدا ہے۔" وہ اس کی بات پر مطمئن ہو گئے۔ ہارون علیہ السلام نے انہیں منع کیا اور کہا: {اے میری قوم! اس کے ذریعے صرف تمہاری آزمائش کی گئی ہے، اور تمہارا رب تو نہایت مہربان ہے، پس میری پیروی کرو اور میرا حکم مانو۔ انہوں نے کہا، 'ہم تو اسی (بچھڑے) کی عبادت پر جمے رہیں گے جب تک کہ موسیٰ ہمارے پاس واپس نہ آ جائیں'} [طہٰ: 90 - 91]۔ روایت کے مطابق صرف بارہ ہزار افراد نے ہارون علیہ السلام کی پیروی کی اور

بچھڑے کی عبادت چھوڑی۔ باقی تمام لوگ اس کی عبادت میں منہمک ہو گئے اور ان کی تعداد بیس لاکھ سے زیادہ تھی۔ جب موسیٰ واپس آئے اور انہیں اس (6) حالت میں پایا، تو انہوں نے تختیاں (الواح) پھینک دیں، جن میں سے چھ حصے اٹھا لیے گئے اور صرف ایک حصہ باقی رہا، جس میں حلال، حرام اور ان کی ضرورت کی چیزیں تھیں۔ انہوں نے بچھڑے کو جلا کر سمندر میں بہا دیا۔ بچھڑے کی محبت کی وجہ سے لوگوں نے وہ پانی پی لیا، جس سے ان کے ہونٹوں پر زردی چھا گئی اور ان کے پیٹ پھول گئے۔ انہوں نے توبہ کی، لیکن ان کی توبہ اس وقت تک قبول نہیں کی گئی جب تک کہ وہ ایک دوسرے کو قتل نہ کریں۔ یہی اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: {پس تم اپنے پیدا کرنے والے کی طرف توبہ کرو، پھر تم اپنے آپ کو (یعنی گنہگاروں کو) قتل کرو} [البقرہ: 54]۔ چنانچہ وہ خنجروں اور تلواروں کے ساتھ ایک دوسرے کے خلاف کھڑے ہو گئے، طلوع آفتاب سے لے کر چاشت کے وقت تک۔ وہ ایک دوسرے کو قتل کرتے رہے؛ نہ باپ نے بیٹے کی پرواہ کی، نہ بیٹے نے باپ کی، اور نہ بھائی نے...

---

(1) (م) میں: علیہ (ان پر)۔ (2) تفسیر الطبری 1/666، النکت والعیون 1/120، اور المحرر الوجیز 1/142۔ (3) معانی القرآن 1/264، اور مصنف نے اسے نحاس کی اعراب القرآن 1/224 کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (4) (م) میں: وعشرة۔ (5) النکت والعیون 1/120، اور المحرر الوجیز 1/142۔ (6) (م) میں: تلك۔

Surah Al-Baqarah: Verse 51 102

...from his brother, and no one from another; everyone who encountered another struck him with a sword, and the other struck him back in kind, until Moses cried out to Allah, screaming: "O my Lord, the Children of Israel are perished!" So Allah had mercy on them and bestowed His grace upon them, accepting the repentance of those who remained and making those who were killed among the martyrs (2), as will follow (3).

Fourthly: If it is asked: Why were nights specifically mentioned instead of days? It is said to him: Because the night precedes the day; it comes before it in rank, and for that reason history was dated by it. Thus, nights are the beginning of months, and days follow them (4).

Fifthly: Al-Naqqash said: In this verse there is an indication of the continuity of fasting; because if Allah had mentioned days, it could have been thought that he was breaking his fast at night. But since He explicitly mentioned the nights, the strength of the expression implies that he, peace be upon him, fasted for forty consecutive days and nights (5).

Ibn Atiyyah (6) said: I heard my father (7) saying: I heard the ascetic Sheikh, the Imam, the Preacher, Abu al-Fadl al-Jawhari (8), may Allah have mercy on him, exhorting the people about solitude with Allah and drawing near to Him in prayer and such like, and that this preoccupies one from all food and drink. He would say: Where is the state of Moses in proximity to Allah, and his connecting (9) eighty [times/periods] of time [without food/drink], compared to his saying to his servant during part of a day when he traveled to Al-Khidr: {and [bring us] our morning meal} [Al-Kahf: 62].

Footnotes: (1) In (D): "I have perished" [referring to the Children of Israel]. (2) Nawadir al-Usul p. 101. (3) 2/110. (4) Al-Nukat wa al-Uyun 1/120, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (5) In Al-Muharrar al-Wajiz 1/142: forty nights with their days. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/142. (7) He is Abu Bakr Ghalib bin Abd al-Rahman, Ibn Atiyyah al-Andalusi, al-Gharnati, al-Maliki. He was a memorizer of Hadith, its paths and its flaws, knowledgeable of narrators, mindful of their texts and meanings, a man of letters, a poet; many narrated from him. He died in the year (518 AH). Al-Siyar 19/ 586 - 587. (8) He is Abdullah bin al-Hussein al-Masri, the preacher of the era. His father was among the practicing scholars. He died in the year (480 AH). Al-Siyar 18/ 495. (9) In (M): "and connection".

सूरा अल-बकरा: आयत 51 102

...अपने भाई से, और न कोई किसी दूसरे से; जो कोई भी दूसरे के सामने आया उसने उसे तलवार से मारा, और दूसरे ने उसे उसी तरह वापस मारा, यहाँ तक कि मूसा (अलैहिस्सलाम) चिल्लाकर अल्लाह के पास गए: "ऐ मेरे रब, बनी इसराइल नष्ट हो गए(1)!" तो अल्लाह ने उन पर दया की और अपनी कृपा बरसाई, और जो बच गए उनकी तौबा कबूल कर ली, और जो मारे गए उन्हें शहीदों (2) में शामिल कर दिया, जैसा कि आगे आएगा (3)।

चौथा बिंदु: यदि यह पूछा जाए कि: दिनों के बजाय विशेष रूप से रातों का उल्लेख क्यों किया गया? तो उससे कहा जाएगा: क्योंकि रात दिन से पहले आती है; यह पद में उससे पहले है, और इसी कारण से इसके द्वारा इतिहास की गणना की गई। अतः रातें महीनों की शुरुआत होती हैं, और दिन उनके पीछे आते हैं (4)।

पाँचवाँ बिंदु: अन-नक़्क़ाश ने कहा: इस आयत में रोज़े की निरंतरता का संकेत है; क्योंकि यदि अल्लाह ने दिनों का उल्लेख किया होता, तो यह माना जा सकता था कि वे (मूसा अलैहिस्सलाम) रात में रोज़ा खोलते थे। लेकिन जब उन्होंने स्पष्ट रूप से रातों का उल्लेख किया, तो अभिव्यक्ति की शक्ति का अर्थ यह हुआ कि उन्होंने, उन पर शांति हो, चालीस दिन और रात निरंतर रोज़ा रखा (5)।

इब्न अतिय्याह (6) ने कहा: मैंने अपने पिता (7) को यह कहते सुना: मैंने ज़ाहिद शेख, इमाम, उपदेशक अबू अल-फज़ल अल-जौहरी (8) (रहमतुल्लाह अलैहि) को लोगों को अल्लाह के साथ एकांत और प्रार्थना आदि में उसके करीब आने के बारे में उपदेश देते सुना, और यह कि यह सब खाने-पीने से बेखबर कर देता है। वे कहते थे: अल्लाह की निकटता में मूसा की अवस्था कहाँ, और उनका अस्सी [समय/अवधि] का निरंतर (9) [बिना खाने-पीने के] जुड़ाव, और कहाँ उनका अपने सेवक से कहना जब वे अल-खिज़्र के पास जाने के लिए एक दिन के कुछ हिस्से में चले थे: {और [ले आओ] हमारा सुबह का भोजन} [अल-कहफ़: 62]।

पाद टिप्पणियाँ: (1) (D) में: "नष्ट कर दिया गया" [बनी इसराइल के संदर्भ में]। (2) नवादिरे अल-उसूल पृ. 101। (3) 2/110। (4) अन-नुकातु वल-उयून 1/120, और अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/142। (5) अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/142 में: चालीस रातें अपने दिनों के साथ। (6) अल-मुहर्रिर अल-वजीज़ 1/142। (7) वह अबू बक्र ग़ालिब बिन अब्दुल रहमान, इब्न अतिय्याह अल-अंदलुसी, अल-ग़रनाती, अल-मालिकी हैं। वे हदीस, उसके मार्गों और उसकी कमियों के हाफिज़ थे, हदीस के

बयान करने वालों के जानकार, उनके ग्रंथों और अर्थों के ज्ञाता, एक साहित्यकार, कवि थे; बहुत से लोगों ने उनसे रिवायत की। उनकी मृत्यु वर्ष (518 हिजरी) में हुई। अल-सियर 19/ 586 - 587। (8) वह अब्दुल्ला बिन अल-हुसैन अल-मिस्री हैं, जो उस युग के उपदेशक थे। उनके पिता कार्यरत विद्वानों में से थे। उनकी मृत्यु वर्ष (480 हिजरी) में हुई। अल-सियर 18/ 495। (9) (M) में: "और वसाल" (निरंतरता)।

سورہ البقرہ: آیت 51 102

...اپنے بھائی سے، اور نہ کوئی کسی سے؛ جو بھی کسی کے سامنے آتا وہ اسے تلوار سے مارتا، اور دوسرا اسے اسی طرح جواب دیتا، یہاں تک کہ موسیٰ (علیہ السلام) اللہ کے حضور گڑگڑا اٹھے: "اے میرے رب، بنی اسرائیل ہلاک ہو گئے (1)!" تو اللہ نے ان پر رحم کیا اور اپنا فضل فرمایا، چنانچہ جو باقی رہ گئے ان کی توبہ قبول کر لی، اور جو قتل ہوئے انہیں شہداء (2) میں شامل کر دیا، جیسا کہ آگے آئے گا (3)۔

چوتھی بات: اگر یہ پوچھا جائے کہ: دنوں کے بجائے راتوں کا ذکر کیوں کیا گیا؟ تو اس سے کہا جائے گا: کیونکہ رات دن سے پہلے آتی ہے؛ یہ مرتبے میں اس سے پہلے ہے، اور اسی وجہ سے اس سے تاریخ کا حساب رکھا گیا، چنانچہ راتیں مہینوں کا آغاز ہوتی ہیں، اور دن ان کے تابع ہوتے ہیں (4)۔

پانچویں بات: النقاش نے کہا: اس آیت میں روزے کے تسلسل کا اشارہ ہے؛ کیونکہ اگر اللہ تعالیٰ دنوں کا ذکر فرماتا تو یہ گمان ہو سکتا تھا کہ وہ (موسیٰ علیہ السلام) رات میں روزہ افطار کرتے تھے، لیکن جب صراحت کے ساتھ راتوں کا ذکر فرمایا تو عبارت کے زور سے یہ مطلب نکلا کہ آپ علیہ السلام نے چالیس دن رات مسلسل روزے رکھے (5)۔

ابن عطیہ (6) نے کہا: میں نے اپنے والد (7) کو یہ کہتے سنا: میں نے زاہد شیخ، امام، واعظ ابوالفضل الجوہری (8) (رحمہ اللہ) کو سنا کہ وہ لوگوں کو اللہ کے ساتھ خلوت نشینی اور نماز وغیرہ میں اس سے قربت کے بارے میں نصیحت کر رہے تھے، اور یہ کہ یہ چیز انسان کو ہر کھانے پینے سے بے خبر کر دیتی ہے۔ وہ کہتے تھے: اللہ کے قرب میں موسیٰ علیہ السلام کا وہ حال کہاں، اور زمانے کے اسی (80) [اوقات/مدتوں] تک ان کا مسلسل (9) [بغیر کھائے پیئے]

رہنا، اور کہاں ان کا اپنے خادم سے یہ کہنا جب وہ ال-خضر کی طرف روانہ ہوئے تو دن کے کچھ حصے میں کہا: {اور [لے آؤ] ہمارا صبح کا کھانا} [الکھف: 62]۔

حواشی: (1) (د) میں ہے: "میں نے ہلاک کر دیا" [بنی اسرائیل کے حوالے سے]۔ (2) نوادر الاصول ص 101۔ (3) 2/110۔ (4) النکت والعیون 1/120، اور المحرر الوجیز 1/142۔ (5) المحرر الوجیز 1/142 میں ہے: چالیس راتیں اپنے دنوں کے ساتھ (6) المحرر الوجیز 1/142۔ (7) وہ ابوبکر غالب بن عبدالرحمن، ابن عطیہ الاندلسی، الغرناطی، المالکی ہیں، وہ حدیث، اس کے طرق اور علل کے حافظ تھے، راویوں کے جاننے والے، ان کے متون اور معانی کے یاد رکھنے والے، ادیب، شاعر تھے؛ بہت سے لوگوں نے ان سے روایت کی۔ ان کی وفات سنہ (518ھ) میں ہوئی۔ السیر 19/ 586 - 587۔ (8) وہ عبداللہ بن الحسین المصری ہیں، جو اپنے دور کے واعظ تھے، ان کے والد باعمل علماء میں سے تھے، ان کی وفات سنہ (480ھ) میں ہوئی۔ السیر 18/ 495۔ (9) (م) میں ہے: "اور وصال"۔

Page 103 Surah Al-Baqarah: Verse 51

I said: Based on this, Sufi scholars inferred the practice of 'Wisal' (continuous fasting), and that its best duration is forty days (1). Discussion on Wisal will come in the verses regarding fasting in this Surah, if Allah wills. Additional rulings for this verse will appear in Al-A'raf regarding the Almighty's word: "And We appointed for Moses thirty nights" [143]. Clarification on the story of the calf, its making, and its lowing will also be provided there and in Surah Ta-Ha, if Allah wills (2).

Sixth: The Almighty's saying: "Then you took the calf after him," meaning: you took it as a god after Moses [departed].

The root of 'ittakhadhtum' (you took) is 'i'takhadhtum', from 'al-akhdh' (taking), and its weight is 'ifta'altum'. The second hamza was eased because two hamzas cannot follow each other, resulting in 'iitakhadhtum'. Then the 'ya' became unstable in conjugation: it became an 'alif' in 'yattakhidhu' and a 'waw' in 'muttakhidh'. Thus, it was replaced with a firm consonant of the same type as the one following it, which is the letter 'ta', and then assimilated (idgham). Then, the connecting alif (alif al-wasl) was introduced for pronunciation. It may be dispensed with if the meaning of the speech is interrogative/confirmatory, as in the Almighty's saying: "Say, 'Have you taken a covenant with Allah?'" [Al-Baqarah: 80], where the connecting alif was replaced by the interrogative alif. The poet said (3): "Did the riders bring news of their followers, or has a longing returned to the heart from its joys?" And similar examples in the Qur'an: "Has he looked into the unseen?" [Maryam: 78], "Has He chosen daughters?" [As-Saffat: 153], "Were you arrogant or were you [one] of the high?" [Saad: 75].

The view of Abu Ali al-Farisi is that 'ittakhadhtum' comes from 'takhidha', not from 'akhadha' (4). "And you were wrongdoers" is a sentence in the position of a 'hal' (circumstantial clause). The meaning of 'dhulm' (wrongdoing/injustice) has already been mentioned (5), and praise be to Allah.

Footnotes: (1) There is no ijtihad (legal reasoning) in the presence of a text; the prohibition of Wisal (continuous fasting) in fasting has been established. The author will detail the discussion on it (as mentioned in the verses of fasting when interpreting the Almighty's saying: "Then complete the fast until the night" [Al-Baqarah: 187]). (2) In the interpretation of the Almighty's saying: "Then he brought out for them a calf, a statue..." [Verse: 88]. (3) He is Dhu al-Rumma, and the verse is in his Diwan 1/13. (4) Al-Hujjah 2/72, and see Al-Muharrar al-Wajiz 1/143. (5) In the

interpretation of the Almighty's saying: "...and so you become of the wrongdoers" 1/460.

पृष्ठ १०३ सूरा अल-बकरा: आयत ५१

मैंने कहा: इसके आधार पर सूफी विद्वानों ने 'विसाल' (बिना इफ्तार के निरंतर उपवास) का प्रमाण दिया है, और यह कि इसकी सबसे अच्छी अवधि चालीस दिन है (१)। इस सूरा में उपवास के आयतों में विसाल पर चर्चा आएगी, इंशाअल्लाह। इस आयत के लिए अतिरिक्त नियम 'अल-अराफ' में आएंगे, जहाँ अल्लाह का कथन है: "और हमने मूसा के लिए तीस रातों का समय तय किया" [१४३]। बछड़े की कहानी, उसके बनने और उसकी आवाज का स्पष्टीकरण वहाँ और 'ता-हा' में आएगा, इंशाअल्लाह (२)।

छठा: अल्लाह का कथन: "फिर तुमने उसके बाद बछड़े को ले लिया," अर्थात्: मूसा के जाने के बाद तुमने उसे खुदा बना लिया। 'इत्तखदतुम' (तुमने लिया) का मूल 'इतखदतुम' है, 'अल-अख्ज़' (लेना) से, और इसका वजन 'इफ्ताअल्तुम' है। दूसरी हम्ज़ा को आसान बना दिया गया क्योंकि दो हम्ज़ा एक साथ नहीं आ सकते, जिससे 'इइतखदतुम' बना। फिर रूपात्मक परिवर्तनों में 'या' अस्थिर हो गया: 'यत्तखिज़ु' में 'अलिफ' और 'मुत्तखिज़' में 'वाव' बन गया। इसलिए, इसे उसके बाद वाले अक्षर के समान एक दृढ़ व्यंजन से बदल दिया गया, जो 'ता' है, और फिर उसे संधि (इदगाम) कर दिया गया। फिर, उच्चारण के लिए जोड़ने वाला अलिफ (अलिफ अल-वस्ल) लाया गया। यदि भाषण का अर्थ प्रश्नवाचक/पुष्टि करने वाला हो तो इसे छोड़ा जा सकता है, जैसे कि अल्लाह का कथन है: "कहो, क्या तुमने अल्लाह के साथ कोई वादा किया है?" [अल-बकरा: ८०], जहाँ जोड़ने वाले अलिफ के स्थान पर प्रश्नवाचक अलिफ का उपयोग किया गया। कवि ने कहा है (३): "क्या सवारों ने अपने अनुयायियों के बारे में समाचार दिया, या हृदय में अपनी खुशियों से फिर से उमंग लौट आई?" और कुरान में इसके समान उदाहरण: "क्या उसने परोक्ष को देख लिया है?" [मरियम: ७८], "क्या उसने बेटियों को चुना है?" [अस-सफ्फात: १५३], "क्या तुमने अहंकार किया या तुम ऊंचे लोगों में से थे?" [साद: ७५]। अबू अली अल-फारसी का विचार है कि 'इत्तखदतुम', 'तखिज़ा' से है, 'अखज़ा' से नहीं (४)। "और तुम अत्याचारी थे" यह वाक्य 'हाल' (स्थिति) की स्थिति में है। 'ज़ुल्म' (अत्याचार/अन्याय) का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (५), और अल्लाह का शुक्र है।

पाद-टिप्पणियाँ: (१) पाठ (कुरान/हदीस) की उपस्थिति में इज्तिहाद (तर्क) नहीं होता; उपवास में विसाल का निषेध प्रमाणित है। लेखक इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे (जैसा कि उपवास की आयतों में अल्लाह के कथन की व्याख्या करते हुए उल्लेख किया गया है: "फिर रात तक रोज़ा पूरा करो" [अल-बकरा: १८७])। (२) अल्लाह के कथन की व्याख्या में: "फिर उसने उनके लिए एक बछड़ा निकाला,

एक शरीर..." [आयत: ८८]। (३) वह ज़ू अल-रुम्मा हैं, और यह शेर उनके दीवान १/१३ में है। (४) अल-हुज्जा २/७२, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४३ देखें। (५) अल्लाह के कथन की व्याख्या में: "...और तुम अत्याचारियों में से हो जाओगे" १/४६०।

صفحہ ۱۰۳ سورۃ البقرہ: آیت ۵۱

میں نے کہا: اسی سے صوفی علماء نے وصال (مسلسل روزہ رکھنے) پر استدلال کیا ہے، اور یہ کہ اس کا بہترین عرصہ چالیس دن ہے (۱)۔ اس سورت میں روزے کی آیات میں وصال کے بارے میں کلام آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ اور «الاعراف» میں اس آیت کے بارے میں مزید احکام آئیں گے جہاں اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿وَوَاعَدْنَا مُوسَى ثَلَاثِينَ لَيْلَةً﴾ [۱۴۳]، اور بچھڑے کے قصے کی کیفیت اور اس کی آواز کا بیان وہاں اور «طہٰ» میں آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (۲)۔

چھٹا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْ بَعْدِهِ﴾ یعنی: تم نے موسیٰ (علیہ السلام) کے جانے کے بعد بچھڑے کو معبود بنا لیا۔ اور «اتَّخَذْتُم» کی اصل «ائْتَخَذْتُم» ہے، «الأَخْذ» سے، اور اس کا وزن «افتعلتُم» ہے، دوسری ہمزہ کو سہل کر دیا گیا کیونکہ دو ہمزہ کا اکٹھا ہونا ممنوع ہے، تو یہ «اِيْتَخَذْتُم» ہو گیا، پھر صرفی تبدیلیوں میں «یاء» مضطرب ہو گئی: «یاتَّخِذُ» میں الف بن گئی، اور «مُوتَّخِذ» میں واؤ، تو اسے اس کے بعد والے حرف کی جنس کے ایک مضبوط حرف سے بدل دیا گیا جو کہ «تا» ہے، اور اسے مدغم کر دیا گیا، پھر تلفظ کے لیے الفِ وصل لائی گئی، اور کبھی اس سے استغناء (چھوڑ دیا جانا) ممکن ہے اگر کلام کا معنی اقرار/استفہام ہو، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿قُلْ أَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللَّهِ عَهْدًا﴾ [البقرہ: ۸۰]، تو الفِ وصل کی جگہ الفِ استفہام سے کام لیا گیا۔ شاعر نے کہا (۳): "کیا سواروں نے اپنے متبعین کی کوئی نئی خبر دی، یا دل کی تڑپ نے اسے دوبارہ بے قرار کر دیا" اور قرآن میں اس کی مثالیں: ﴿أَطَّلَعَ الْغَيْبَ﴾ [مریم: ۷۸]، ﴿أَصْطَفَى الْبَنَاتِ﴾ [الصافات: ۱۵۳]، ﴿أَسْتَكْبَرْتَ أَمْ كُنْتَ﴾ [ص: ۷۵]۔ اور ابو علی الفارسی کا مذہب یہ ہے کہ «اتخذتم»، «تَخِذَ» سے ہے، «أَخَذَ» سے نہیں (٤)۔ ﴿وَأَنْتُمْ ظَالِمُونَ﴾ یہ جملہ حال کے مقام پر ہے۔ اور ظلم کا معنی پہلے گزر چکا ہے (۵)، والحمد للہ۔

حواشی: (۱) نص کے ہوتے ہوئے اجتہاد نہیں، روزے میں وصال سے ممانعت صحیح ثابت ہے، اور مصنف عنقریب اس پر مفصل کلام کریں گے (جیسا کہ روزے کی آیات میں اللہ تعالیٰ کے قول ﴿ثُمَّ أَتِمُّوا الصِّيَامَ إِلَى الَّيْلِ﴾ [البقرہ: ۱۸۷] کی تفسیر میں ذکر کیا گیا)۔ (۲) اللہ تعالیٰ کے قول ﴿فَأَخْرَجَ لَهُمْ عِجْلًا جَسَدًا﴾ [آیت: ۸۸] کی تفسیر میں۔ (۳) وہ ذو الرمہ ہیں، اور شعر ان کے دیوان ۱۳/۱ میں ہے۔ (٤) الحجة ۷۲/۲، اور دیکھئے المحرر الوجیز ۱٤۳/۱۔ (٥) اللہ تعالیٰ کے قول ﴿فَتَكُونَا مِنَ الظَّالِمِينَ﴾ ٤٦٠/۱ کی تفسیر میں۔

Page 104 Surah Al-Baqarah: Verse 52

Allah's saying: {Then We forgave you after that so that you might be grateful. (52)}

It contains four issues: First: Allah's saying: {Then We forgave you} - Al-'Afwu: It is Allah's forgiveness, Glory and Might be to Him, for His creation. It can be after punishment or before it, unlike 'Al-Ghufran' (pardon/forgiveness), which is never accompanied by punishment at all. Anyone who deserved punishment but it was waived for them has been forgiven. Thus, 'Al-'Afw' is the erasing of sin, meaning: We erased your sins and overlooked them. It is derived from the saying: "The wind erased (afat) the trace," meaning: it removed it (1). And "Afa" something means: it increased. So it is among the 'Adad' (words with opposite meanings) (2), and from it is Allah's saying: {until they multiplied (afaw)} [Al-A'raf: 95].

Second: Allah's saying: {after that} meaning: after your worship of the calf. The calf ('Ijl) was named so because of their haste ('isti'jal) in worshipping it (3), and Allah knows best. 'Al-'Ijl' is the offspring of a cow, and 'al-ajoul' is the same, the plural is 'al-ajajeel', and the female is 'ijlatan'. On the authority of Abu al-Jarrah (4).

Third: Allah's saying: {so that you might be grateful}: so that you thank Allah for His forgiveness of you. The meaning of "la'alla" (perhaps/so that) has already been mentioned (5). As for gratitude (Al-Shukr), linguistically it means: manifestation/ appearance, from the saying: a "shakoor" animal; when fatness appears on it beyond the amount of fodder it is given (6). Its reality is: praising a person for a favor they bestowed upon you, as mentioned previously in Al-Fatiha (7). Al-Jawhari said: Al-Shukr: praising...

(1) See: Derivation of Allah's Names, p. 134. (2) Thaalab's Assemblies p. 490, and Al-Adad by Al-Anbari p. 86. (3) Narrated by Al-Tabari 1/674 from Abu Al-Aliyah who said: It was only named the calf because they hurried, so they took it before Moses came to them; Ibn Atiyyah rejected this in Al-Muharrar 1/145 and said: This statement is of no value. Ibn Adil Al-Hanbali said in Al-Lubab 2/71: The calf existed before the Children of Israel took the calf. (4) Al-Sihah: (Ijl), and Abu Al-Jarrah is Al-Uqayli, mentioned by Al-Qifti in Inbah Al-Ruwat 4/114 among the Bedouins who entered the urban areas. (5) At the interpretation of Allah's word: {so that you may be righteous}, 1/341 - 342. (6) In language books: 'Al-Shakoor' among animals is that which is satisfied with little fodder, and the wording cited by the author is in Al-Risala Al-Qushayriyya 3/66. (7) 1/205-207.

पृष्ठ 104 सूरह अल-बकरा: आयत 52

अल्लाह तआला का फ़रमान है: {फिर हमने उसके बाद तुम्हें क्षमा कर दिया ताकि तुम कृतज्ञ बनो। (52)}

इसमें चार मुद्दे हैं: पहला: अल्लाह का फ़रमान: {फिर हमने तुम्हें क्षमा कर दिया} - अल-अफ़्वु: अल्लाह, महिमामय और पराक्रमी, का अपनी रचना के लिए क्षमा करना है। यह सजा के बाद और उससे पहले भी हो सकता है, 'अल-गुफ़रान' (माफी) के विपरीत, क्योंकि इसके साथ सजा बिल्कुल नहीं होती। जो कोई सजा का हकदार था और उसे छोड़ दिया गया, उसे क्षमा कर दिया गया। अतः 'अल-अफ़्व' पाप को मिटाना है, अर्थात: हमने तुम्हारे पापों को मिटा दिया और तुम्हें अनदेखा कर दिया। यह इस कहावत से लिया गया है: "हवा ने निशान मिटा (अफ़त) दिए", यानी उसे हटा दिया (1)। और किसी चीज़ का "अफ़ा" होना: बढ़ जाना भी है। यह विपरीतार्थक शब्दों (अद्दाद) में से है (2), और इसी से अल्लाह का फ़रमान है: {यहाँ तक कि वे फलने-फूलने लगे (अफ़व)} [अल-आराफ: 95]।

दूसरा: अल्लाह का फ़रमान: {उसके बाद} अर्थात: बछड़े की पूजा करने के बाद। बछड़े (इज्ल) का नाम इसलिए पड़ा क्योंकि उन्होंने उसकी पूजा करने में जल्दी (इस्तिजाल) की थी (3), और अल्लाह बेहतर जानता है। 'इज्ल' गाय का बच्चा है, और 'अजूल' भी वैसा ही है, बहुवचन 'अजाजील' है, और मादा 'इज्लह' है। अबू अल-जर्राह से वर्णित है (4)।

तीसरा: अल्लाह का फ़रमान: {ताकि तुम कृतज्ञ बनो}: ताकि तुम अपने प्रति अल्लाह की क्षमा के लिए उसका आभार व्यक्त करो। "ल'अल्ला" (ताकि/शायद) का अर्थ पहले बताया जा चुका है (5)। जहाँ तक शुक्र (कृतज्ञता) का सवाल है; भाषाई रूप से इसका अर्थ है: प्रकट होना/दिखना, इस कहावत से: "शकूर" जानवर; जब उस पर दिए गए चारे से अधिक मोटापा दिखाई देने लगे (6)। इसकी वास्तविकता है: किसी व्यक्ति द्वारा किए गए उपकार के लिए उसकी प्रशंसा करना, जैसा कि पहले अल-फ़ातिहा में उल्लेख किया गया है (7)। अल-जौहरी ने कहा: शुक्र: प्रशंसा करना...

(1) देखें: 'अल्लाह के नामों की व्युत्पत्ति', पृष्ठ 134। (2) मजालिस सालब पृष्ठ 490, और अल-अद्दाद अनबारी पृष्ठ 86। (3) अल-तबरी 1/674 ने अबू अल-आलिया से उल्लेख किया है कि: इसे बछड़ा इसलिए कहा गया क्योंकि उन्होंने जल्दबाजी की, इसलिए उन्होंने मूसा के आने से पहले ही इसे अपना लिया; इब्न अतियाह ने 'अल-मुहर्रर' 1/145 में इसे खारिज कर दिया और कहा: यह बात कुछ

भी नहीं है। इब्न आदिल अल-हनबली ने 'अल-लुबाब' 2/71 में कहा: बछड़ा बनी इसराइल द्वारा अपनाने से पहले से मौजूद था। (4) अल-सिहा: (इज्ल), और अबू अल-जर्राह अल-उकैली हैं जिनका उल्लेख अल-किफ्ती ने 'इन्बा अल-रुवात' 4/114 में उन बद्दुओं में किया है जो शहरों में आए थे। (5) अल्लाह के कथन: {ताकि तुम धर्मपरायण बनो} की व्याख्या में, 1/341 - 342। (6) भाषाई पुस्तकों में: जानवरों में 'अल-शकूर' वह है जिसके लिए थोड़ा चारा पर्याप्त होता है, और लेखक द्वारा दी गई शब्दावली 'अल-रिसाला अल-कुशायरिया' 3/66 में है। (7) 1/205-207।

صفحہ ۱۰۴ سورۃ البقرہ: آیت ۵۲

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {پھر ہم نے اس کے بعد تمہیں معاف کر دیا تاکہ تم شکر گزار بنو۔ (۵۲)}

اس میں چار مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {پھر ہم نے تمہیں معاف کر دیا} - العفو: اللہ جل وعز کا اپنی مخلوق کو معاف کرنا ہے۔ یہ سزا کے بعد بھی ہو سکتا ہے اور اس سے پہلے بھی، 'الغفران' (بخشش) کے برعکس، کیونکہ اس کے ساتھ سزا بالکل نہیں ہوتی۔ ہر وہ شخص جو سزا کا مستحق تھا اور اسے معاف کر دیا گیا، تو وہ معافی یافتہ ہے۔ پس العفو گناہ کا مٹانا ہے، یعنی: ہم نے تمہارے گناہوں کو مٹا دیا اور تم سے درگزر کیا۔ یہ تمہارے اس قول سے ماخوذ ہے: "ہوا نے نشان مٹا (عفت) دیا"، یعنی اسے ختم کر دیا (۱)۔ اور کسی چیز کا "عفا" ہونا: بڑھ جانا بھی ہے۔ یہ متضاد الفاظ (اضداد) میں سے ہے (۲)، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {حتیٰ کہ وہ بڑھ گئے (عفوا)} [الاعراف: ۹۵]۔

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اس کے بعد} یعنی: تمہارے بچھڑے کی عبادت کرنے کے بعد۔ بچھڑے (عجل) کا نام اس کی عبادت میں جلدی (استعجال) کی وجہ سے رکھا گیا (۳)، واللہ اعلم۔ 'العجل' گائے کا بچہ ہے، اور 'العجول' بھی اسی طرح ہے، جمع 'العجاجیل' ہے، اور مادہ 'عجلۃ' ہے۔ ابو الجراح سے روایت ہے (۴)۔

تیسرا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {تاکہ تم شکر گزار بنو}: تاکہ تم اللہ کی طرف سے اپنی معافی پر اس کا شکر ادا کرو۔ "لعل" (تاکہ/شاید) کے معنی پہلے بیان ہو چکے ہیں (۵)۔ جہاں تک شکر کا تعلق ہے؛ لغت میں اس کا معنی ہے: ظاہر ہونا، اس قول سے: "دابۃ شکور"؛ جب جانور پر اسے دیے گئے چارے سے زیادہ موٹاپا ظاہر ہونے لگے (۶)۔ اس کی حقیقت ہے: کسی انسان پر اس کے

احسان کی وجہ سے اس کی تعریف کرنا، جیسا کہ سورہ فاتحہ میں گزر چکا ہے (۷)۔ جوہری نے کہا: الشکر: ...پر ثناء کرنا۔

(۱) ملاحظہ کریں: اشتقاق اسماء اللہ ص ۱۳۴۔ (۲) مجالس ثعلب ص ۴۹۰، اور الاضداد للانباری ص ۸۶۔ (۳) اسے طبری ۱/۶۷۴ نے ابو العالیہ سے روایت کیا ہے کہ: اسے عجل (بچھڑا) اس لیے کہا گیا کیونکہ انہوں نے جلدی کی، چنانچہ انہوں نے موسیٰ کے آنے سے پہلے ہی اسے بنا لیا؛ ابن عطیہ نے 'المحرر' ۱/۱۴۵ میں اسے رد کیا اور کہا: یہ بات کچھ بھی نہیں ہے۔ ابن عادل الحنبلی نے 'اللباب' ۲/۷۱ میں کہا: بچھڑا بنی اسرائیل کے اسے اختیار کرنے سے پہلے ہی موجود تھا۔ (۴) الصحاح: (عجل)، اور ابو الجراح عقیلی ہیں جن کا ذکر القفطی نے 'انباہ الرواۃ' ۴/۱۱۴ میں ان بدوؤں میں کیا ہے جو شہروں میں داخل ہوئے تھے۔ (۵) اللہ تعالیٰ کے قول: {تاکہ تم متقی بنو} کی تفسیر میں، ۱/۳۴۱ - ۳۴۲۔ (۶) لغت کی کتابوں میں: جانوروں میں 'الشکور' وہ ہے جسے تھوڑا چارہ کافی ہو، اور مصنف نے جو الفاظ نقل کیے ہیں وہ 'الرسالۃ القشیریہ' ۳/۶۶ میں ہیں۔ (۷) ۱/۲۰۵-۲۰۷۔

Page 105 Surah Al-Baqarah: Ayah 52

...the benefactor for the favor he has bestowed upon you. It is said: "Shakartuhu" (I thanked him) and "Shakartu lahu" (I gave thanks to him), and with the "lam" (lahu) is more eloquent. And "Shukran" (gratitude) is the opposite of "Kufran" (ingratitude). And "Tashakkartu lahu" is like "Shakartu lahu" (1). At-Tirmidhi and Abu Dawud (2) narrated from Abu Hurairah that the Prophet ﷺ said: "He who does not thank people does not thank Allah." Al-Khattabi (3) said: This speech is interpreted in two ways: One of them: That whoever's nature is to be ungrateful for the favors of people and to abandon gratitude for their kindness, it would be his habit to be ungrateful for the favors of Allah, Mighty and Majestic, and to abandon gratitude to Him. The other perspective: That Allah, glorified be He, does not accept the servant's gratitude for His kindness to him if the servant does not thank people for their kindness to him, and denies their benevolence, due to the connection of one of the two matters with the other. Fourthly; regarding the scholars' statements on the meaning of gratitude; Sahl bin Abdullah said: Gratitude is striving in exerting obedience while avoiding disobedience in secret and in public. Another group said: Gratitude is the admission of falling short in gratitude to the Benefactor. For this reason, Allah Almighty said: {Work, O family of David, in gratitude} [Saba: 13]; then David said: How can I thank You, O Lord, when gratitude itself is a blessing from You?! He said: Now you have known Me and thanked Me; since you have known that gratitude from Me is a blessing (4). He said: O Lord, show me the most hidden of Your blessings upon me. He said: O David, breathe. So David breathed. Then Allah Almighty said: Who can count this blessing night and day (5). And Moses, peace be upon him, said: My God (6), how can I thank You when the smallest blessing You have placed in my hand from Your blessings cannot be repaid by all my deeds! Then Allah revealed to him: O Moses, now you have thanked Me (7).

Footnotes: (1) Al-Sihah (Sh-K-R). (2) Sunan al-Tirmidhi (1954), and Sunan Abi Dawud (4811), and it is in Musnad Ahmad (7504). (3) Ma'alim al-Sunan 4/113. (4) Narrated similarly by al-Bayhaqi in al-Shu'ab (4413) from the words of al-Mughirah bin 'Uqbah, and (4414) from the words of Abu al-Jald al-Jawni Jaylan bin Farwah (or Ibn Abi Farwah). Abu Hatim said of him, as in al-Jarh wa al-Ta'dil 2/547: Author of the books of the Torah and its like, and he reported his reliability from Imam Ahmad bin Hanbal. (5) Narrated similarly by al-Bayhaqi in al-Shu'ab (4623) from the words of Abu Ayyub al-Qurashi, the freed slave of Banu Hashim. (6) His saying: "My God," is not in (M). (7) Narrated by al-Bayhaqi in al-Shu'ab (4415) from the words of Abu al-Jald.

पृष्ठ १०५ सूरह अल-बक़रह: आयत ५२

...उपकारी को उस एहसान के लिए जो उसने तुम पर किया है। कहा जाता है: "शकरतुहू" (मैंने उसका शुक्रिया अदा किया) और "शकरतु लहू" (मैंने उसके लिए शुक्रिया अदा किया), और "लाम" (लहू) के साथ बोलना अधिक वाक्पटु (eloquent) है। और "शुक्रान" (कृतज्ञता), "कुफ़रान" (कृतघ्नता) का विलोम है। और "तशक्कर्तु लहू", "शकरतु लहू" की तरह है (१)। तिर्मिज़ी और अबू दाऊद (२) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है कि नबी ﷺ ने फरमाया: "जो लोगों का शुक्रिया अदा नहीं करता, वह अल्लाह का शुक्रिया अदा नहीं करता।" अल-खत्ताबी (३) ने कहा: इस बात के दो अर्थ निकाले जा सकते हैं: पहला: कि जिसकी प्रकृति लोगों की नेमतों की नाशुक्रगुज़ारी करना और उनके एहसान के लिए शुक्र अदा न करना है, उसकी यह आदत बन जाती है कि वह अल्लाह अज़ व जल की नेमतों की नाशुक्रगुज़ारी करे और उसका शुक्र अदा करना छोड़ दे। दूसरा पहलू: कि अल्लाह सुब्हानहु अपने बंदे का उसके प्रति किए गए एहसान पर शुक्र स्वीकार नहीं करता है, यदि बंदा लोगों के एहसान के लिए उनका शुक्र अदा नहीं करता है, और उनके भले काम को झुठलाता है, क्योंकि ये दोनों बातें एक-दूसरे से जुड़ी हुई हैं। चौथा; शुक्र के अर्थ के बारे में विद्वानों के कथनों के विषय में; सहल बिन अब्दुल्ला ने कहा: शुक्र का अर्थ है गुप्त और प्रकट रूप से अवज्ञा (गुनाह) से बचते हुए आज्ञाकारिता में प्रयास करना। एक अन्य समूह ने कहा: शुक्र का अर्थ है उपकारी (अल्लाह) के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने में अपनी कमी को स्वीकार करना। इसी कारण अल्लाह तआला ने फरमाया: {ऐ दाऊद के खानदान वालो, शुक्र के तौर पर नेक अमल करो} [सबा: १३]; तो दाऊद (अलैहिस्सलाम) ने कहा: ऐ रब, मैं तेरा शुक्र कैसे अदा करूँजबकि शुक्र अदा करना खुद तेरी तरफ से एक नेमत है?! उसने कहा: अब तूने मुझे पहचान लिया और मेरा शुक्र अदा कर दिया; क्योंकि तूने जान लिया कि मेरी ओर से शुक्र एक नेमत है (४)। उन्होंने कहा: ऐ रब, मुझ पर अपनी सबसे छिपी हुई नेमत दिखा। उसने कहा: ऐ दाऊद, सांस लो। तो दाऊद ने सांस ली। तब अल्लाह तआला ने फरमाया: रात और दिन इस नेमत को कौन गिन सकता है (५)। और मूसा अलैहिस्सलाम ने कहा: मेरे इलाह (६), मैं तेरा शुक्र कैसे अदा करूँ जबकि तेरी नेमतों में से सबसे छोटी नेमत जो तूने मेरे हाथ में रखी है, उसका बदला मेरे सारे अमल नहीं दे सकते! तब अल्लाह ने उनकी ओर वह्य (प्रकाशना) भेजी: ऐ मूसा, अब तूने मेरा शुक्र अदा कर दिया (७)।

पादलेख: (१) अल-सिहाह (श-क-र)। (२) सुनन अल-तिर्मिज़ी (१९५४), और सुनन अबू दाऊद (४८११), और यह मुसनद अहमद (७५०४) में भी है। (३) मआलिम अल-सुनन ११३/४। (४) अल-बैहकी ने अल-

शुआब (४४१३) में मुगीरा बिन उकबा के शब्दों से और (४४१४) में अबू अल-जल्द अल-जौनी जैलान बिन फरवा (या इब्न अबी फरवा) के शब्दों से इसी तरह की रिवायत की है। अबू हातिम ने उनके बारे में कहा, जैसा कि अल-जर्ह व अल-तादील ५४७/२ में है: तौरात और उसके जैसी किताबों के ज्ञाता, और इमाम अहमद बिन हनबल से उनकी विश्वसनीयता की पुष्टि की गई है। (५) अल-बैहकी ने अल-शुआब (४६२३) में बनू हाशिम के आज़ाद किए हुए गुलाम अबू अय्यूब अल-कुरैशी के शब्दों से इसी तरह की रिवायत की है। (६) उनका कहना: "ऐ मेरे इलाह," (म) प्रति में नहीं है। (७) अल-बैहकी ने अल-शुआब (४४१५) में अबू अल-जल्द के शब्दों से इसे उद्धृत किया है।

صفحہ ۱۰۵ سورۃ البقرہ : آیت ۵۲

...محسن اس نیکی پر جو اس نے تمہارے ساتھ کی۔ کہا جاتا ہے: "شکرتہ" (میں نے اس کا شکریہ ادا کیا) اور "شکرت لہ" (میں نے اس کا شکر بجا لایا)، اور "لام" (لہ) کے ساتھ کہنا زیادہ فصیح ہے۔ اور "شکران" (شکرگزاری)، "کفران" (ناشکری) کی ضد ہے۔ اور "تشکرت لہ"، "شکرت لہ" کی طرح ہے (۱)۔ ترمذی اور ابو داؤد (۲) نے ابو ہریرہ سے روایت کی ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "جو لوگوں کا شکریہ ادا نہیں کرتا وہ اللہ کا شکر ادا نہیں کرتا۔" الخطابی (۳) نے کہا: اس کلام کی تاویل دو معنوں میں کی جاتی ہے: ایک یہ کہ: جس کی فطرت میں لوگوں کی نعمتوں کی ناشکری کرنا اور ان کے احسان پر شکر نہ کرنا ہو، اس کی یہ عادت بن جاتی ہے کہ وہ اللہ عزوجل کی نعمتوں کی ناشکری کرے اور اس کا شکر بجا لانا چھوڑ دے۔ دوسرا پہلو یہ ہے کہ: اللہ سبحانہ بندے کا اپنے اوپر احسان پر شکر قبول نہیں فرماتا اگر بندہ لوگوں کے احسان پر ان کا شکریہ ادا نہیں کرتا اور ان کی نیکی کا انکار کرتا ہے، کیونکہ ان دونوں باتوں کا آپس میں گہرا تعلق ہے۔ چوتھی بات؛ شکر کے معنی میں علماء کے اقوال کے بارے میں؛ سہل بن عبد اللہ نے فرمایا: شکر کا مطلب ہے خلوت اور جلوت میں معصیت (گناہ) سے بچتے ہوئے اطاعت گزاری میں کوشش کرنا۔ ایک اور گروہ نے کہا: شکر کا مطلب ہے منعم (نعمت دینے والے) کے حقِ شکر کی ادائیگی میں اپنی کوتاہی کا اعتراف کرنا۔ اسی لیے اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿اے داؤد کے گھر والو! شکر گزاری کے طور پر عمل کرو﴾ [سبأ: ۱۳]؛ تو داؤد (علیہ السلام) نے عرض کیا: اے رب! میں تیرا شکر کیسے ادا کروں جبکہ شکر خود تیری طرف سے ایک نعمت ہے؟! اللہ نے فرمایا: اب تم نے مجھے پہچان لیا اور میرا شکر ادا کر دیا؛ جب تم نے یہ جان لیا کہ میری طرف سے شکر ایک نعمت ہے (۴)۔ انہوں نے عرض کیا: اے رب! مجھے اپنی سب سے پوشیدہ نعمت دکھا جو مجھ پر

ہے۔ فرمایا: اے داؤد! سانس لو۔ تو داؤد نے سانس لیا۔ تب اللہ تعالیٰ نے فرمایا: رات اور دن اس نعمت کا شمار کون کر سکتا ہے (۵)۔ اور موسیٰ علیہ السلام نے عرض کیا: الٰہی (۶) میں تیرا شکر کیسے ادا کروں جبکہ تیری نعمتوں میں سے سب سے چھوٹی نعمت جو تو نے میرے ہاتھ میں رکھی ہے، اس کا بدلہ میرے تمام اعمال نہیں دے سکتے! تو اللہ نے ان کی طرف وحی فرمائی: اے موسیٰ! اب تم نے میرا شکر ادا کر دیا (۷)۔

حواشی: (۱) الصحاح (شکر)۔ (۲) سنن ترمذی (۱۹۵۴)، اور سنن ابو داؤد (۴۸۱۱)، اور یہ مسند احمد (۷۵۰۴) میں ہے۔ (۳) معالم السنن ۱۱۳/۴۔ (۴) اسے بیہقی نے الشعب (۴۴۱۳) میں مغیرہ بن عقبہ کے کلام سے، اور (۴۴۱۴) میں ابو الجلد الجونی جیلان بن فروہ (یا ابن ابی فروہ) کے کلام سے اسی طرح روایت کیا ہے۔ ابو حاتم نے ان کے بارے میں الجرح والتعدیل ۵۴۷/۲ میں کہا ہے: تورات اور اس جیسی کتابوں کے عالم، اور امام احمد بن حنبل سے ان کی توثیق نقل کی گئی ہے۔ (۵) اسے بیہقی نے الشعب (۴۴۲۳) میں بنو ہاشم کے آزاد کردہ غلام ابو ایوب القرشی کے کلام سے اسی طرح روایت کیا ہے۔ (۶) ان کا قول: "الٰہی"، (م) نسخے میں نہیں ہے۔ (۷) اسے بیہقی نے الشعب (۴۴۱۵) میں ابو الجلد کے کلام سے روایت کیا ہے۔

106 Surah Al-Baqarah: Verse 53

Al-Junayd said: "The reality of gratitude is the inability to give thanks." (1) And from him, he said (2): "I was before Al-Sari Al-Saqati (3) playing when I was seven years old, and before him was a group of people talking about gratitude. He said to me: 'O boy, what is gratitude?' I said: 'That Allah is not disobeyed with His blessings.' He said to me: 'I fear that your portion from Allah is only your tongue.' Al-Junayd said: 'I have not stopped crying over this word that Al-Sari said to me.'" Al-Shibli (4) said: "Gratitude is humility, preservation of good deeds, opposing desires, offering acts of obedience, and mindfulness of the Compeller of the earth and heavens." Dhul-Nun al-Misri, Abu al-Fayz (5) said: "Gratitude to those above you is through obedience, to your peers through reciprocation, and to those below you through kindness and benevolence." The words of the Almighty: {And [recall] when We gave Moses the Scripture and the criterion that perhaps you would be guided (53)} "Idh" (when) is a noun for past time, and "Idha" is a noun for future time (6), and "Atayna" means: We gave. All of this has been mentioned before (7). "The Scripture" refers to the Torah by the consensus of the interpreters (8). There is a difference of opinion regarding "the criterion" (Al-Furqan). Al-Farra' and Qutrub (9) said: "The meaning is: We gave Moses the Torah, and Muhammad (peace be upon him) the Criterion." He said...

(1) Mentioned by Al-Baghawi in his Tafsir 1/61 without attributing it. (2) Reported by Al-Khatib in 'Tarikh Baghdad' 7/244-245. (3) He is Al-Sari bin Al-Mughallis, Abu Al-Hasan Al-Baghdadi, he accompanied Ma'ruf Al-Karkhi, and was the most distinguished of his companions. He died in the year (253 AH), though other dates have been mentioned. Al-Siyar 12/185. (4) Abu Bakr Al-Baghdadi, it was said his name was Dulaf bin Jahdar, or Ja'far bin Yunus, or Ja'far bin Dulaf. He was a chamberlain for Al-Muwaffaq, then repented, then accompanied Al-Junayd and others. He was a jurist and scholar of the Maliki school. He died in the year (334 AH). Al-Siyar 15/367. (5) Thawban bin Ibrahim, it was said Fayz bin Ahmad, Al-Nubi Al-Akhmimi, the ascetic. He died in the year (245 AH). Al-Siyar 11/532. (6) Al-Nukat wa Al-Uyun 1/121. (7) Regarding the verse: {And [mention] when your Lord said to the angels...} 1/391. (8) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/144. (9) Ma'ani Al-Qur'an by Al-Farra' 1/37, Al-Zajjaj 1/134, I'rab Al-Qur'an by Al-Nahhas 1/225, and Al-Muharrar Al-Wajiz 1/144.

पृष्ठ १०६ सूरह अल-बकराह: आयत ५३

अल-जुनैद ने कहा: "कृतज्ञता की वास्तविकता कृतज्ञता व्यक्त करने में असमर्थता है।" (१) और उनसे रिवायत है कि उन्होंने कहा (२): "मैं सात साल की उम्र में अल-सरी अल-सकती (३) के सामने खेल रहा था, और उनके सामने लोगों का एक समूह कृतज्ञता (शुक्र) के बारे में बात कर रहा था। उन्होंने मुझसे कहा: 'ऐ लड़के, शुक्र क्या है?' मैंने कहा: 'यह कि अल्लाह की दी हुई नियामतों से उसकी नाफरमानी न की जाए।' उन्होंने मुझसे कहा: 'मुझे डर है कि अल्लाह की ओर से तुम्हारा हिस्सा केवल तुम्हारी ज़बान ही न हो।' अल-जुनैद ने कहा: 'मैं अल-सरी की कही हुई इस बात पर आज तक रोता हूँ।'" अल-शिबली (४) ने कहा: "कृतज्ञता (शुक्र) विनम्रता है, नेक कार्यों की रक्षा करना है, इच्छाओं का विरोध करना है, आज्ञाकारिता के कार्य करना है, और पृथ्वी और आकाश के सर्वशक्तिमान (जब्बार) की निगरानी का ध्यान रखना है।" ज़ुल-नुन अल-मिसरी, अबू अल-फ़ैज़ (५) ने कहा: "अपने से बड़ों के लिए शुक्र आज्ञाकारिता के माध्यम से है, अपने बराबर वालों के लिए बदले (इनाम) के माध्यम से है, और अपने से छोटों के लिए दया और उपकार के माध्यम से है।" अल्लाह तआला का फरमान है: {और (याद करो) जब हमने मूसा को किताब और हक व बातिल के बीच फर्क करने वाली चीज़ (फुरकान) दी ताकि तुम हिदायत पाओ (५३)} "इज़" बीते हुए समय के लिए एक संज्ञा है, और "इज़ा" आने वाले समय के लिए एक संज्ञा है (६), और "आतैना" का अर्थ है: हमने दिया। यह सब पहले बताया जा चुका है (७)। किताब से मुराद तौरात है, इस पर सभी व्याख्याकारों (मुताअव्विलीन) की सहमति है (८)। "फुरकान" के बारे में मतभेद है, अल-फर्रा और कुतरुब (९) ने कहा: "इसका अर्थ है: हमने मूसा को तौरात दी, और मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को फुरकान दिया।" उन्होंने कहा...

(१) अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर १/६१ में इसका उल्लेख किया है, लेकिन इसे किसी के नाम नहीं किया। (२) अल-खातिब ने 'तारीख बगदाद' ७/२४४-२४५ में इसे उद्धृत किया है। (३) वह अल-सरी बिन अल-मुग़लिस, अबू अल-हसन अल-बगदादी हैं, उन्होंने मारूफ़ अल-करखी का साथ दिया, और उनके साथियों में सबसे प्रमुख थे। उनकी मृत्यु साल (२५३ हिजरी) में हुई, हालांकि अन्य वर्ष भी बताए गए हैं। अस-सियार १२/१८५। (४) अबू बक्र अल-बगदादी, कहा गया कि उनका नाम दुलफ बिन जहदर था, या जाफर बिन यूनुस, या जाफर बिन दुलफ। वह अल-मुवफ्फ़क के दरबान थे, फिर उन्होंने तौबा की, फिर अल-जुनैद और अन्य लोगों की सोहबत में रहे। वह एक फकीह और मलिकी मज़हब के जानकार थे। उनकी मृत्यु साल (३३४ हिजरी) में हुई। अस-सियार १५/३६७। (५) थौबान

बिन इब्राहिम, कहा गया फैज़ बिन अहमद, अल-नुबी अल-अख्मीमी, जाहिद। उनकी मृत्यु साल (२४५ हिजरी) में हुई। अस-सियार ११/५३२। (६) अन-नुकात व अल-उयून १/१२१। (७) इस आयत के पास: {और जब आपके रब ने फरिश्तों से कहा...} १/३९१। (८) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४४। (९) अल-फर्रा की मआनी अल-कुरान १/३७, अल-ज़ज्जाज १/१३४, अन-नहहास की इराब अल-कुरान १/२२५, और अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४४।

صفحہ ۱۰۶ سورہ البقرہ: آیت ۵۳

حضرت جنید بغدادی رحمہ اللہ نے فرمایا: "شکر کی حقیقت شکر سے عاجزی ہے" (۱)۔ ان سے مروی ہے کہ انہوں نے فرمایا (۲): "میں سات برس کا تھا کہ حضرت سری سقطی رحمہ اللہ (۳) کے سامنے کھیل رہا تھا، اور ان کے پاس ایک جماعت شکر کے بارے میں گفتگو کر رہی تھی۔ انہوں نے مجھ سے پوچھا: اے لڑکے! شکر کیا ہے؟ میں نے عرض کیا: اللہ کی نعمتوں کے ذریعے اس کی نافرمانی نہ کرنا۔ انہوں نے مجھ سے فرمایا: مجھے اندیشہ ہے کہ اللہ کی جانب سے تمہارا حصہ صرف تمہاری زبان ہی ہو۔ جنید کہتے ہیں: میں سری سقطی کی اس بات پر ہمیشہ روتا رہتا ہوں۔" اور شبلی رحمہ اللہ (۴) نے فرمایا: "شکر عاجزی، نیکیوں کی حفاظت، خواہشات کی مخالفت، اطاعتوں کی بجا آوری، اور زمین و آسمان کے جبار کی نگرانی کا نام ہے۔" اور ذوالنون مصری ابوالفیض رحمہ اللہ (۵) نے فرمایا: "اپنے سے بڑوں کا شکر اطاعت سے، ہمسروں کا شکر بدلے سے، اور اپنے سے چھوٹوں کا شکر احسان و عطا سے ہے۔" اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ وَإِذْ آتَيْنَا مُوسَى الْكِتَابَ وَالْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُونَ ٥٣ ﴾ "إذ" زمانہ ماضی کے لیے ہے، اور "إذا" زمانہ مستقبل کے لیے (٦)، اور "آتينا" کا معنی ہے: ہم نے عطا کیا۔ یہ سب پہلے گزر چکا ہے (۷)۔ اور "الکتاب" سے مراد مفسرین کے اجماع کے مطابق تورات ہے (۸)۔ اور "الفرقان" کے بارے میں اختلاف ہے، چنانچہ فراء اور قطرب (۹) نے کہا: "معنی یہ ہے کہ: ہم نے موسیٰ کو تورات دی، اور محمد (صلی اللہ علیہ وسلم) کو فرقان عطا کیا۔" انہوں نے کہا...

(۱) اسے بغوی نے تفسیر (۱/٦۱) میں بغیر کسی نسبت کے ذکر کیا ہے۔ (۲) اسے خطیب نے تاریخ بغداد (۷/۲۴۴-۲۴۵) میں روایت کیا ہے۔ (۳) وہ السری بن المغلس، ابوالحسن البغدادی ہیں، معروف کرخی کے ساتھی تھے اور ان کے ممتاز ترین اصحاب میں سے تھے۔ (۲۵۳ھ) میں وفات

پائی، بعض نے کچھ اور کہا ہے۔ السیر (۱۲/۱۸۵)۔ (۴) ابوبکر البغدادی، کہا گیا کہ ان کا نام دلف بن جحدر تھا، اور کہا گیا کہ جعفر بن یونس، اور کہا گیا کہ جعفر بن دلف۔ وہ الموفق کے حاجب (دربان) تھے، پھر توبہ کی، پھر جنید بغدادی اور دیگر کی صحبت اختیار کی۔ وہ فقیہ اور مذہبِ مالک کے عالم تھے۔ (۳۳۴ھ) میں وفات پائی۔ السیر (۱۵/۳٦۷)۔ (۵) ثوبان بن ابراہیم، کہا گیا فیض بن احمد، النوبی الاخمیمی، زاہد۔ (۲۴۵ھ) میں وفات پائی۔ السیر (۱۱/۵۳۲)۔ (٦) النکت والعیون (۱/۱۲۱)۔ (۷) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس: ﴿ وَإِذْ قَالَ رَبُّكَ لِلْمَلَائِكَةِ ﴾ (۱/۳۹۱)۔ (۸) المحرر الوجیز (۱/۱۴۴)۔ (۹) معانی القرآن للفراء (۱/۳۷)، وللزجاج (۱/۱۳۴)، وإعراب القرآن للنحاس (۱/۲۲۵)، والمحرر الوجیز (۱/۱۴۴)۔

Al-Nahas (1): This is an error in grammar and meaning. As for grammar: the conjoined element (ma'tuf) is similar to what it is conjoined to (ma'tuf 'alayh), but according to this opinion, the conjoined element would be its opposite. As for the meaning, Allah the Almighty said: {And We had given Moses and Aaron the Criterion (Al-Furqan)} [Al-Anbiya: 48]. Abu Ishaq Al-Zajjaj (2) said: The Criterion is the Book itself; it was mentioned again by two names for emphasis. It was also reported from Al-Farra' (3), and from it is the saying of the poet: She offered the skin for his two radial veins, and found her words to be a lie and a falsehood (4). And another said (5): Oh, how beloved is Hind and the land where Hind is, but Hind has been separated from me by distance (na'y) and remoteness (bu'd). He conjoined "remoteness" (al-bu'd) to "distance" (al-na'y), and "falsehood" (al-mayn) to "lie" (al-kadhib), despite the difference in wording, for emphasis. And from it is the saying of 'Antarah (6): Greetings to the ruins whose era has grown old, which became desolate and empty after Umm al-Haytham. Al-Nahas (7) said: This only occurs in poetry. The best that has been said regarding this is the opinion of Mujahid (8): A distinction between truth and falsehood, i.e., what He taught him. Ibn Zayd said: Al-Furqan: the parting of the sea for him until it became divided paths, so they crossed (9). And it was said: Al-Furqan: relief from distress; because they were enslaved with the Copts, and from it is His saying, the Almighty: {If you fear Allah, He will grant you a criterion (furqan)} [Al-Anfal: 29] i.e., relief and a way out.

---

(1) I'rab al-Qur'an 1/225. (2) Ma'ani al-Qur'an by him 1/134. (3) Ma'ani al-Qur'an by him 1/37. (4) The verse is by 'Adi bin Zayd, and it is in his Diwan p. 183. Al-rahashan: two veins on the inner side of the forearms. Al-Jawhari said: (rahash). (5) He is Al-Hutay'ah, and the verse is in his Diwan p. 39. (6) In his Diwan p. 143. (7) I'rab al-Qur'an 1/225. (8) Reported by Al-Tabari 1/677. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/144.

सूरा अल-बकरा: आयत 53 | 107

अल-नहास (1): यह व्याकरण और अर्थ में एक त्रुटि है। व्याकरण के लिए: जो शब्द (ma'tuf) किसी अन्य शब्द (ma'tuf 'alayh) के साथ जोड़ा जाता है वह उसी के समान होता है, लेकिन इस राय के अनुसार, जोड़ा गया शब्द उसका विपरीत होगा। जहाँ तक अर्थ की बात है, अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा है: {और हमने मूसा और हारून को कसौटी (अल-फ़ुरक़ान) प्रदान की थी} [अल-अंबिया: 48]। अबू इसहाक अल-ज़ज्जाज (2) ने कहा: फ़ुरक़ान ही वह पुस्तक है; ज़ोर देने के लिए इसे दो नामों से दोबारा उल्लेख किया गया है। यह अल-फ़र्रा (3) से भी वर्णित है, और इसी में से कवि का कथन है: उसने अपनी कलाई की नसों के लिए चमड़ा पेश किया, और उसके शब्दों को झूठ और असत्य पाया (4)। और दूसरे ने कहा (5): ओह, हिंद और वह भूमि जहाँ हिंद है, कितनी प्रिय है, लेकिन हिंद मुझसे दूरी (नय) और वियोग (बुद) के कारण अलग हो गई है। उसने ज़ोर देने के लिए शब्दों के अंतर के बावजूद "वियोग" (अल-बुद) को "दूरी" (अल-नय) के साथ जोड़ा, और "असत्य" (अल-मैन) को "झूठ" (अल-कदिब) के साथ। और इसी में से अंतरा (6) का कथन है: उन खंडहरों को सलाम जिनका युग पुराना हो गया है, जो उम्म अल-हैथम के बाद उजाड़ और खाली हो गए। अल-नहास (7) ने कहा: यह केवल कविता में होता है। इस बारे में जो सबसे अच्छी बात कही गई है वह मुजाहिद (8) का कथन है: सत्य और असत्य के बीच भेद, यानी: वह जो उसने उसे सिखाया। इब्न ज़ैद ने कहा: अल-फ़ुरक़ान: उसके लिए समुद्र का फटना यहाँ तक कि वह अलग रास्ते बन गए और वे पार कर गए (9)। और कहा गया: अल-फ़ुरक़ान: संकट से मुक्ति; क्योंकि वे क़िब्तियों के साथ गुलाम थे, और इसी से सर्वशक्तिमान का कथन है: {यदि तुम अल्लाह से डरोगे, तो वह तुम्हें एक कसौटी (फ़ुरक़ान) प्रदान करेगा} [अल-अंफ़ाल: 29] अर्थात: राहत और बाहर निकलने का रास्ता।

---

(1) इ'राब अल-क़ुरआन 1/225. (2) मानी अल-क़ुरआन उनके द्वारा 1/134. (3) मानी अल-क़ुरआन उनके द्वारा 1/37. (4) यह शेर अदी बिन ज़ैद का है, और यह उनके दीवान पृष्ठ 183 में है। अल-राहशान: अग्रबाहुओं के भीतरी भाग की दो नसें। अल-जौहरी ने कहा: (रहश)। (5) वह अल-हुतैय्या हैं, और शेर उनके दीवान पृष्ठ 39 में है। (6) उनके दीवान पृष्ठ 143 में। (7) इ'राब अल-क़ुरआन 1/225. (8) अल-तबरी द्वारा निकाला गया 1/677. (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/144।

النحاس (1): یہ اعراب اور معنی میں ایک غلطی ہے۔ جہاں تک اعراب کا تعلق ہے: تو معطوف علیہ کے بعد معطوف اسی کی طرح ہوتا ہے، اور اس قول کے مطابق معطوف اس کے خلاف ہوگا۔ اور جہاں تک معنی کا تعلق ہے تو اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور بیشک ہم نے موسیٰ اور ہارون کو فرقان عطا فرمائی} [الانبیاء: 48]۔ ابو اسحاق الزجاج (2) نے کہا: فرقان ہی وہ کتاب ہے؛ تاکید کے لیے اسے دو ناموں کے ساتھ دوبارہ ذکر کیا گیا ہے۔ اور یہی الفراء (3) سے بھی منقول ہے، اور اسی میں سے شاعر کا قول ہے: اور اس نے اپنی کلائی کی رگوں کے لیے چمڑا پیش کیا، اور اس کی بات کو جھوٹ اور مَین (جھوٹ) پایا (4)۔ اور دوسرے نے کہا (5): آہ، ہند اور وہ زمین جہاں ہند ہے کتنی پیاری ہے، لیکن ہند اور میرے درمیان دوری اور بُعد حائل ہو گیا ہے۔ پس اس نے تاکید کے لیے لفظوں کے اختلاف کی وجہ سے "بُعد" کا "نأی" پر، اور "مَین" کا "کذب" پر عطف کیا۔ اور اسی میں سے عنترہ (6) کا قول ہے: سلام ہو ان کھنڈرات پر جن کا عہد پرانا ہو گیا، جو ام ہیثم کے بعد اجاڑ اور ویران ہو گئے۔ النحاس (7) نے کہا: اور یہ صرف شاعری میں ہوتا ہے۔ اور اس بارے میں جو سب سے بہتر کہا گیا ہے وہ مجاہد (8) کا قول ہے: حق اور باطل کے درمیان فرق، یعنی: وہ جو اسے سکھایا۔ اور ابن زید نے کہا: الفرقان: ان کے لیے سمندر کا پھٹ جانا یہاں تک کہ وہ راستے بن گئے تو وہ پار کر گئے (9)۔ اور کہا گیا: الفرقان: تکلیف سے چھٹکارا؛ کیونکہ وہ قبطیوں کے ساتھ غلام بنائے گئے تھے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {اگر تم اللہ سے ڈرو گے تو وہ تمہارے لیے فرقان بنا دے گا} [الانفال: 29] یعنی: کشادگی اور نکلنے کا راستہ۔

(1) اعراب القرآن 1/225۔ (2) معانی القرآن ان کی 1/134۔ (3) معانی القرآن ان کی 1/37۔ (4) یہ شعر عدی بن زید کا ہے، اور یہ ان کے دیوان صفحہ 183 میں ہے۔ راہشان: کلائی کے اندرونی حصے کی دو رگیں۔ الجوہری نے کہا: (رہش)۔ (5) وہ الحطیئہ ہے، اور شعر اس کے دیوان صفحہ 39 میں ہے۔ (6) اس کے دیوان صفحہ 143 میں۔ (7) اعراب القرآن 1/225۔ (8) اسے طبری نے 1/677 میں نکالا ہے۔ (9) المحرر الوجیز 1/144۔

Surah Al-Baqarah: Verse 54 108

It was said: It is proof and clarification. Said by Ibn Bahr (1). It was said: The "waw" (and) is a conjunction for emphasis, and the meaning is: We gave Moses the Book, the Criterion (2). The "waw" can sometimes be added in descriptions, like saying: "So-and-so is handsome and tall." And a poem was recited: "To the king, the chief, son of the noble, and the lion of the battalion in the crowd" (3). He meant: To the king, the chief, son of the noble, the lion of the battalion. Evidence for this interpretation is the Almighty's saying: {Then We gave Moses the Scripture, completing [Our favor] upon him who did good and as a detailed explanation of all things} [Al-An'am: 154]. Meaning: He clarified the forbidden and the allowed, disbelief and faith, the promise and the threat, and other things. It was said: Al-Furqan (The Criterion) is the distinction between them and Pharaoh's people; He saved these and drowned those. Its similar is: {the Day of Criterion}. It was said: it means the Day of Badr, in which God gave victory to Muhammad (PBUH) and his companions, and destroyed Abu Jahl and his companions (4). {so that perhaps you may be guided}: so that you may be guided from misguidance. This was mentioned previously (5). His Almighty's saying: {And [recall] when Moses said to his people, "O my people, indeed you have wronged yourselves by your taking of the calf [for worship]. So repent to your Creator and kill yourselves. That is best for you [in the sight] of your Creator." Then He accepted your repentance; indeed, He is the Accepting of Repentance, the Merciful.} (54) His Almighty's saying (6): {And [recall] when Moses said to his people...} Al-Qawm (The people): is a group (7) of men, excluding women.

---

(1) Ali bin Ibrahim bin Salamah bin Bahr, Abu Al-Hasan Al-Qattan, a scholar from Qazvin, who compiled, authored, and mastered various sciences, died in (345 AH). As-Siyar 15/463. (2) Mentioned by Al-Baghawi in his Tafsir 1/61 and attributed it to Al-Kisa'i. Ibn Kathir found it strange in 1/124, and Abu Hayyan weakened it in Al-Bahr Al-Muhit 1/202. (3) Al-Khizanah 1/451, Al-Insaf 2/469, and Al-Kashaf 1/133. Preceded on p. 85. (4) Narrated by Al-Tabari 1/677 from the words of Ibn Zaid. (5) 1/246-248. (6) In (d): There are seven issues in it, the first being His Almighty's saying... (7) In (m): The group.

सूरह अल-बकरा: आयत 54 108

कहा गया: यह प्रमाण और स्पष्टीकरण है। इब्न बह्र ने यह कहा (1)। कहा गया: 'वाव' (और) जोड़ने वाला है, और अर्थ है: हमने मूसा को किताब, कसौटी (अल-फुरकान) दी (2)। वर्णनों में कभी-कभी 'वाव' अतिरिक्त रूप से आ सकता है, जैसे कि वे कहते हैं: "अमुक व्यक्ति सुंदर और लंबा है"। और एक कविता सुनाई गई: "उस राजा की ओर, जो सरदार है, कुलीन का पुत्र है, और भीड़ में सैन्य दल का शेर है" (3)। उनका अर्थ था: सरदार राजा की ओर, कुलीन के पुत्र की ओर, जो सैन्य दल का शेर है। इस व्याख्या का प्रमाण सर्वशक्तिमान का यह कहना है: {फिर हमने मूसा को किताब दी, उस व्यक्ति पर (अपनी कृपा) पूर्ण करने के लिए जिसने भलाई की, और हर चीज़ के विस्तारपूर्वक वर्णन के रूप में} [अल-अनअम: 154]। अर्थात: उसने हराम (वर्जित) और हलाल (अनुमत), कुफ्र (अविश्वास) और ईमान (विश्वास), वादे और चेतावनी, और अन्य चीज़ों को स्पष्ट कर दिया। कहा गया: अल-फुरकान (कसौटी) उनके और फिरौन के लोगों के बीच का अंतर है; उसने इन्हें बचाया और उन्हें डुबो दिया। इसका उदाहरण है: {निर्णय का दिन}। कहा गया: इससे तात्पर्य बद्र का दिन है, जिसमें अल्लाह ने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और उनके साथियों को जीत दिलाई, और अबू जहल और उसके साथियों को नष्ट कर दिया (4)। {ताकि तुम मार्गदर्शन पाओ}: ताकि तुम पथभ्रष्टता से मार्ग पा सको। इसका उल्लेख पहले हो चुका है (5)। अल्लाह का कथन: {और (याद करो) जब मूसा ने अपनी कौम से कहा, "हे मेरी कौम! निःसंदेह तुमने बछड़े को (पूज्य) बनाकर अपने आप पर ज़ुल्म किया है, अतः अपने पैदा करने वाले की ओर तौबा करो और अपने आप को मार डालो। यह तुम्हारे पैदा करने वाले के पास तुम्हारे लिए बेहतर है।" फिर उसने तुम्हारी तौबा स्वीकार कर ली; निःसंदेह वह तौबा स्वीकार करने वाला, अत्यंत दयावान है।} (54) अल्लाह का कथन (6): {और (याद करो) जब मूसा ने अपनी कौम से कहा...} कौम: पुरुषों का समूह (7) है, महिलाओं के बिना।

---

(1) अली बिन इब्राहिम बिन सलमा बिन बह्र, अबू अल-हसन अल-क़त्तान, क़ज़विन के विद्वान, जिन्होंने विज्ञानों में संकलन, रचना और महारत हासिल की, वर्ष (345 हिजरी) में मृत्यु हुई। अस-सियार 15/463। (2) अल-बगवी ने अपनी तफ़सीर 1/61 में इसका उल्लेख किया है और इसे अल-किसाई से जोड़ा है। इब्न कसीर ने इसे 1/124 में अजीब माना, और अबू हयान ने अल-बह्र अल-मुहीत 1/202 में इसे कमज़ोर बताया। (3) अल-खिज़ाना 1/451, अल-इंसाफ 2/469, और अल-कशफ 1/133। पृष्ठ 85 पर पहले आ चुका है। (4) इब्न ज़ैद के शब्दों से अल-तबरी 1/677 द्वारा

उद्धृत। (5) 1/246-248। (6) (द) में: इसमें सात मुद्दे हैं, पहला अल्लाह का कथन है... (7) (म) में: समूह।

سورة البقرہ: آیت 54 108

اور کہا گیا: یہ حجت اور بیان ہے۔ ابن بحر نے یہ کہا (1)۔ اور کہا گیا: 'واؤ' صلہ (اضافی) ہے، اور معنی یہ ہے: ہم نے موسیٰ کو کتاب دی جو حق و باطل میں فرق کرنے والی ہے (2)، اور 'واؤ' کبھی کبھی صفات میں زیادہ کر دیا جاتا ہے، جیسے ان کا قول ہے: "فلاں شخص حسین اور طویل ہے"۔ اور یہ شعر پڑھا گیا: "سردار بادشاہ اور عالی ہمت کے بیٹے کی طرف، اور ہجوم میں لشکر کے شیر کی طرف" (3)۔ اس کا ارادہ تھا: سردار بادشاہ، عالی ہمت کے بیٹے، لشکر کے شیر کی طرف۔ اس تاویل کی دلیل اللہ عزوجل کا یہ قول ہے: {پھر ہم نے موسیٰ کو کتاب دی اس شخص پر (اپنی نعمت) مکمل کرنے کے لیے جس نے نیکی کی اور ہر چیز کی تفصیل کے طور پر} [الأنعام: 154]۔ یعنی: حرام و حلال، کفر و ایمان، وعدہ و وعید وغیرہ کو واضح کر دیا۔ اور کہا گیا: الفرقان سے مراد ان کے اور قومِ فرعون کے درمیان فرق کرنا ہے کہ ان کو نجات دی اور ان کو غرق کر دیا۔ اس کی نظیر "يَوْمَ الْفُرْقَانِ" (فیصلے کا دن) ہے۔ پس کہا گیا: اس سے مراد یومِ بدر ہے، جس میں اللہ نے محمد ﷺ اور آپ کے صحابہ کی مدد کی اور ابو جہل اور اس کے ساتھیوں کو ہلاک کر دیا (4)۔ {تاکہ تم ہدایت پاؤ}: تاکہ تم گمراہی سے ہدایت پا سکو۔ یہ پہلے گزر چکا ہے (5)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب موسیٰ نے اپنی قوم سے کہا: اے میری قوم! تم نے بچھڑے کو معبود بنا کر اپنی جانوں پر ظلم کیا ہے، پس اپنے پیدا کرنے والے کی طرف توبہ کرو اور اپنے آپ کو قتل کرو۔ یہ تمہارے پیدا کرنے والے کے نزدیک تمہارے لیے بہتر ہے۔ پھر اللہ نے تمہاری توبہ قبول کر لی، بے شک وہی توبہ قبول کرنے والا، نہایت رحم کرنے والا ہے} (54)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد (6): {اور جب موسیٰ نے اپنی قوم سے کہا...} القوم: مردوں کی جماعت (7) ہے عورتوں کے بغیر۔

(1) علی بن ابراہیم بن سلمہ بن بحر، ابو الحسن القطان، عالمِ قزوین، جنہوں نے علوم میں جمع و تصنیف کی اور مہارت حاصل کی، سن (345ھ) میں وفات پائی۔ السیر 15/463۔ (2) اسے بغوی نے اپنی تفسیر 1/61 میں ذکر کیا اور اسے کسائی کی طرف منسوب کیا۔ ابن کثیر نے اسے 1/124 میں عجیب قرار دیا، اور ابو حیان نے البحر المحیط 1/202 میں اسے ضعیف قرار دیا۔ (3) الخزانہ 1/451، الانصاف 2/469، اور الکشاف 1/133۔ صفحہ 85 پر پہلے گزر چکا ہے۔ (4) اسے طبری نے 1/677 میں ابن زید کے کلام سے روایت کیا۔ (5) 1/246-248۔ (6) نسخہ (د) میں: اس میں سات مسائل ہیں، پہلا اللہ تعالیٰ کا قول ہے... (7) نسخہ (م) میں: جماعت۔

Surah Al-Baqarah: Verse 54 109

Allah Almighty said: {Let not a people scoff at another people}, then He said: {nor let women scoff at other women}(1). And Zuhair(2) said: "I do not know, and I think I will soon know... are the family of Hisn men or women?" And He (Almighty) said: {And Lot, when he said to his people}, meaning the men and not the women. Sometimes the word 'people' (qawm) refers to both men and women, as Allah Almighty said: {Indeed, We sent Noah to his people}, and likewise every prophet is sent to both women and men. His (Almighty) words: {O my people} (Ya Qawmi): 'Qawm' is a vocative in a genitive construction (mudaf). The 'ya' was omitted in 'Ya Qawmi' because it is a place for omission, and the kasra indicates it. It is like nunation (tanween), so it was omitted(3) just as tanween is omitted from a singular noun. Outside the Quran, it is permissible to keep it silent (with sukun), so you say: 'Ya Qawmi', because it is a noun in a genitive state. If you wish, you can vocalize it with fatha, or if you wish, you can attach an 'h' to it, saying: 'Ya Qawmiyah'. If you wish, you can replace it with an 'alif' because it is lighter, saying: 'Ya Qawma'. If you wish, you can say: 'Ya Qawmu', meaning 'O people'. If you treat them as an indefinite noun, you put it in the accusative case and use nunation(4). The singular of 'qawm' is 'imru' (man), which is from a different root. You say: 'qawm' (people), 'aqwam' (peoples), and 'aqawim' is the plural of a plural(5). What is meant here by 'people' are the calf-worshippers, and his (peace be upon him) addressing them was by the command of Allah Almighty. His (Almighty) words: {Indeed, you have wronged yourselves}: He used the minor plural (anfusikum) instead of the major plural (nufus), and the major is 'nufus'(6). Sometimes the major plural is used in place of the minor plural, and the minor in place of the major. Allah Almighty said: {three menstrual periods (quru')} [Al-Baqarah: 228]. And He said: {And therein is whatever the souls (al-anfus) desire} [Az-Zukhruf: 71]. It is said to anyone whose actions result in harm to themselves: "You have only harmed yourself."

(1) As-Sahhah (qawm), and Al-Mujmal 2/738. (2) His Diwan p. 136. (3) In (D) and (Z): omitted it. (4) I'rab al-Quran by an-Nahhas 1/226. (5) Al-Mujmal 2/738. (6) I'rab al-Quran by an-Nahhas 1/226.

सूरह अल-बकरा: आयत ५४ १०९

अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {कोई क़ौम दूसरी क़ौम का मज़ाक़ न उड़ाए}, फिर फ़रमाया: {और न औरतें औरतों का}(१)। ज़ुहैर(२) ने कहा: "मुझे नहीं पता, और मुझे लगता है कि मैं जल्द ही जान जाऊँगा... क्या हिस्न का परिवार पुरुष हैं या स्त्रियाँ?" और उसने (तआला ने) फ़रमाया: {और लूत, जब उसने अपनी क़ौम से कहा}, यहाँ 'क़ौम' से मुराद केवल पुरुष हैं न कि स्त्रियाँ। कभी-कभी 'क़ौम' शब्द पुरुषों और स्त्रियों दोनों के लिए आता है, जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {हमने नूह को उसकी क़ौम की ओर भेजा}, और इसी तरह हर नबी स्त्रियों और पुरुषों दोनों की ओर भेजा जाता है। उसका (तआला का) कथन: {ऐ मेरी क़ौम} (या क़ौमी): यहाँ 'क़ौम' मुदाफ़ (genitive construction) मुनादा है। 'या क़ौमी' में 'या' को हटा दिया गया है क्योंकि यह हटने का स्थान है, और कसरा इसकी ओर संकेत करता है। यह तनवीन की तरह है, इसलिए इसे हटा दिया गया(३) जैसे मुफ़रद (singular) से तनवीन हटा दी जाती है। क़ुरान के अलावा इसे सुकून के साथ रखना जायज़ है, तो आप कहेंगे: 'या क़ौमी', क्योंकि यह एक संज्ञा है और जर्र (genitive) की स्थिति में है। यदि आप चाहें तो इसे ज़बर (फ़तह) के साथ पढ़ सकते हैं, और यदि आप चाहें तो इसके साथ 'हा' जोड़ सकते हैं, और कह सकते हैं: 'या क़ौमिया'। यदि आप चाहें तो इसके बदले अलिफ़ लगा सकते हैं क्योंकि यह हल्का है, तो कहेंगे: 'या क़ौमा'। और यदि आप चाहें तो कह सकते हैं: 'या क़ौमु', जिसका अर्थ है 'ऐ क़ौम'। यदि आप उन्हें नकरा (indefinite) मानेंगे तो नसब (accusative) देंगे और तनवीन लगाएँगे(४)। 'क़ौम' का एकवचन 'इमरु' (आदमी) है जो शब्द के धातु से अलग है। और आप कह सकते हैं: 'क़ौम', 'अक़वाम', और 'अक़ाविम' जो जमा का जमा (plural of plural) है(५)। यहाँ 'क़ौम' से मुराद बछड़े की पूजा करने वाले हैं, और उन पर (सलाम हो) उन्हें संबोधित करना अल्लाह तआला के आदेश से था। उसका (तआला का) कथन: {बेशक तुमने अपनी जानों (अनफ़ुसकुम) पर ज़ुल्म किया}: यहाँ जमा-ए-क़िल्लत (minor plural) को जमा-ए-कसरत (major plural) के बदले इस्तेमाल किया गया है, और जमा-ए-कसरत 'नुफ़ूस' है(६)। कभी-कभी जमा-ए-कसरत को जमा-ए-क़िल्लत के स्थान पर रखा जाता है, और क़िल्लत को कसरत के स्थान पर। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {तीन माहवारी (क़ुरु')} [अल-बक़रा: २२८]। और फ़रमाया: {और उसमें वह सब है जो आत्माएँ(अल-अनफ़ुस) चाहती हैं} [अज़-ज़ुख़रुफ़: ७१]। हर उस व्यक्ति के लिए कहा जाता है जिसके कर्म का नुक़सान उसी पर पड़ता है: "तुमने केवल अपने आप को नुक़सान पहुँचाया है।"

(१) अस-सिह़ाह़ (क़ौम), और अल-मुजमल २/७३८। (२) उनका दीवान पृ. १३६। (३) (द) और (ज़) में: उसे हटा दिया। (४) इराबुल क़ुरान अन-नह़्ह़ास १/२२६। (५) अल-मुजमल २/७३८। (६) इराबुल क़ुरान अन-नह़्ह़ास १/२२६।

سورة البقرہ: آیت ۵۴ ۱۰۹

اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿لا يَسْخَرْ قَوْمٌ مِّن قَوْمٍ﴾ (کوئی قوم دوسری قوم کا مذاق نہ اڑائے)، پھر فرمایا: ﴿وَلَا نِسَاءٌ مِّن نِّسَاءٍ﴾ (اور نہ عورتیں عورتوں کا) (۱)۔ اور زہیر (۲) نے کہا: "مجھے نہیں معلوم، اور میرا خیال ہے کہ جلد ہی مجھے معلوم ہو جائے گا... کیا حصن کی آل مرد ہیں یا عورتیں؟" اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَلُوطًا إِذْ قَالَ لِقَوْمِهِ﴾ (اور لوط، جب انہوں نے اپنی قوم سے کہا) یہاں قوم سے مراد مرد ہیں نہ کہ عورتیں۔ اور بسا اوقات 'قوم' کا لفظ مردوں اور عورتوں دونوں پر صادق آتا ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿إِنَّا أَرْسَلْنَا نُوحًا إِلَى قَوْمِهِ﴾ (بیشک ہم نے نوح کو ان کی قوم کی طرف بھیجا)، اور اسی طرح ہر نبی تمام عورتوں اور مردوں کی طرف مبعوث کیا جاتا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿يَقَوْمِ﴾ (اے میری قوم) منادیٰ مضاف ہے۔ 'یا قومی' میں 'یا' کو حذف کر دیا گیا ہے کیونکہ یہ حذف کا مقام ہے، اور کسرہ اس پر دلالت کرتا ہے، یہ تنوین کے درجے میں ہے اس لیے اسے حذف کر دیا گیا (۳) جس طرح مفرد سے تنوین کو حذف کیا جاتا ہے۔ قرآن کے علاوہ اسے ساکن برقرار رکھنا جائز ہے، چنانچہ آپ کہیں گے: 'یا قومی'، کیونکہ یہ ایک اسم ہے اور حالتِ جر میں ہے۔ اگر آپ چاہیں تو اسے زبر (فتحہ) کے ساتھ پڑھیں، اور اگر چاہیں تو اس کے ساتھ 'ہاء' کا لاحقہ لگائیں اور کہیں: 'یا قومیَہ'۔ اور اگر چاہیں تو اس (یا) کو الف سے بدل دیں کیونکہ یہ زیادہ ہلکا ہے، تو کہیں گے: 'یا قوما'۔ اور اگر چاہیں تو کہیں: 'یا قومُ'، بمعنی اے لوگو۔ اور اگر آپ انہیں نکرہ قرار دیں تو اسے منسوب اور منون (۴) کریں گے۔ اور قوم کا واحد 'امرؤ' (آدمی) ہے جو لفظی مشتق نہیں ہے۔ اور آپ کہتے ہیں: 'قوم' اور 'اقوام'، اور 'اقاوم' جمع الجمع (۵) ہے۔ اور یہاں قوم سے مراد بچھڑے کی عبادت کرنے والے ہیں، اور حضرت موسیٰ علیہ السلام کا ان سے خطاب اللہ تعالیٰ کے حکم سے تھا۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ أَنفُسَكُمْ﴾ (بیشک تم نے اپنی جانوں

پر ظلم کیا) یہاں جمعِ قلت کو جمعِ کثرت سے بے نیاز کر کے استعمال کیا گیا ہے، اور کثرت 'نفوس' ہے (۶)۔ اور کبھی جمعِ کثرت کو جمعِ قلت کے مقام پر رکھا جاتا ہے، اور قلت کو کثرت کے مقام پر۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿ثَلَاثَةَ قُرُوءٍ﴾ [البقرہ: ۲۲۸]۔ اور فرمایا: ﴿وَفِيهَا مَا تَشْتَهِيهِ الْأَنفُسُ﴾ [الزخرف: ۷۱]۔ اور ہر اس شخص کے لیے کہا جاتا ہے جس کے کسی فعل کا نقصان اسی کی طرف لوٹے: "تم نے صرف اپنی ہی ذات کو نقصان پہنچایا"۔

(۱) الصحاح (قوم)، اور المجمل ۷۳۸/۲۔ (۲) ان کا دیوان صفحہ ۱۳۶۔ (۳) (د) اور (ظ) میں: "فحذفها" (اسے حذف کر دیا)۔ (۴) اعراب القرآن للنحاس ۲۲۶/۱۔ (۵) المجمل ۷۳۸/۲۔ (۶) اعراب القرآن للنحاس ۲۲۶/۱۔

110 Surah Al-Baqarah: Verse 54

The root meaning of injustice (dhulm) is putting a thing in other than its proper place. Then the Almighty says: {by your taking the calf}. Some masters of meanings said: The "calf" of every person is their own soul; so whoever brings it down and opposes its desires has cleared himself of its injustice. The correct view is that here it is a real calf that they worshipped, as stated in the revelation. And praise be to Allah. His saying, the Almighty: {So turn in repentance to your Creator}. When it was said to them: "So turn in repentance to your Creator," they said: "How?" He said: {so kill yourselves}(1). The masters of inner thoughts said: Subdue them (your souls) with acts of obedience and restrain them from desires. The correct view is that it was an actual killing here. Killing is the putting to death of movement. And "I killed the wine" means: I broke its strength with water. Sufyan ibn 'Uyaynah said: Repentance is a blessing from Allah, which Allah bestowed upon this nation above all other nations. The repentance of the Children of Israel was killing. And they agreed that not every single one of the calf-worshippers was commanded to kill himself with his own hand(2). Al-Zuhri said: When it was said to them: {So turn in repentance to your Creator and kill yourselves}, they stood in two rows and killed each other, until it was said to them: "Desist." Thus it was martyrdom for the slain and repentance for the living, based on what preceded(3). Some commentators said: Allah sent darkness upon them and they did that. It was said: Those who worshipped the calf stood in a row, and those who did not worship it entered upon them with weapons and killed them(4). It was said: The seventy who were with Moses stood up and killed—since they had not worshipped the calf—those who had worshipped the calf(5). It is narrated that Joshua ibn Nun came out to them while they were sitting with their legs drawn up (muhtabin), and said: "Cursed is he who unties his leg-wrap, or extends his gaze to his killer, or protects himself with a hand or foot." None of them untied his leg-wrap until he was killed—meaning whoever was killed—and a man would proceed to kill the one next to him. This was mentioned by Al-Nahhas and others.

---

(1) Tafsir Abi Al-Layth 1/119, and Majma' al-Bayan 1/251. (2) Tafsir al-Razi 3/81. (3) Narrated by al-Tabari 1/682-683 from al-Zuhri and Qatadah. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/144. (5) Majma' al-Bayan 1/251, and Tafsir al-Razi 3/82, and al-Tabari narrated it 1/680 from the words of Ibn Abbas.

११० सूरा अल-बकरा: आयत ५४

अन्याय (ज़ुल्म) का मूल अर्थ है किसी चीज़ को उसके सही स्थान के अलावा कहीं और रखना। फिर सर्वशक्तिमान ने कहा: {बछड़े को पकड़ने के कारण}। अर्थ के कुछ आचार्यों ने कहा: प्रत्येक मनुष्य का "बछड़ा" उसका अपना स्वयं (नफ़्स) है; इसलिए जिसने उसे गिरा दिया और उसकी इच्छाओं का विरोध किया, वह उसके अन्याय से मुक्त हो गया। सही विचार यह है कि यहाँ यह वास्तव में एक बछड़ा है जिसकी उन्होंने पूजा की थी, जैसा कि अवतरण (कुरान) में बताया गया है। और अल्लाह का शुक्र है। परमेश्वर का कथन: {तो अपने पैदा करने वाले की ओर तौबा (पश्चात्ताप) करो}। जब उनसे कहा गया: "अपने पैदा करने वाले की ओर तौबा करो," तो उन्होंने कहा: "कैसे?" उसने कहा: {तो अपनी जान ले लो}(१)। अंतर्मन के आचार्यों ने कहा: उन्हें (अपनी आत्माओं को) आज्ञाकारिता के कार्यों से वश में करो और उन्हें वासनाओं से रोको। सही विचार यह है कि यहाँ वास्तव में हत्या हुई थी। हत्या का अर्थ है गति को समाप्त करना। और "मैंने शराब को मार डाला" का अर्थ है: मैंने पानी से उसकी तीव्रता को कम कर दिया। सूफ़ियान बिन उययना ने कहा: तौबा अल्लाह की एक नेमत (वरदान) है, जिसे अल्लाह ने अन्य सभी उम्मतों (समुदायों) के बजाय इस उम्मत पर प्रदान किया है। बनी इसराइल की तौबा कत्ल (हत्या) थी। और वे इस बात पर सहमत हुए कि बछड़े की पूजा करने वाले हर व्यक्ति को अपने हाथ से खुद को मारने का आदेश नहीं दिया गया था(२)। अल-ज़ुहरी ने कहा: जब उनसे कहा गया: {तो अपने पैदा करने वाले की ओर तौबा करो और अपनी जान ले लो}, तो वे दो कतारों में खड़े हो गए और एक-दूसरे को मारने लगे, यहाँ तक कि उनसे कहा गया: "रुक जाओ।" इस प्रकार यह मारे गए व्यक्ति के लिए शहादत और जीवित व्यक्ति के लिए तौबा थी, जैसा कि पहले बताया जा चुका है(३)। कुछ टीकाकारों ने कहा: अल्लाह ने उन पर अंधकार भेज दिया और उन्होंने ऐसा किया। कहा गया: बछड़े की पूजा करने वाले एक कतार में खड़े हो गए, और जिन्होंने उसकी पूजा नहीं की थी वे हथियारों के साथ उन पर टूट पड़े और उन्हें मार डाला(४)। कहा गया: मूसा के साथ रहने वाले सत्तर लोग खड़े हुए और उन्होंने उन्हें मार डाला - क्योंकि उन्होंने बछड़े की पूजा नहीं की थी - जिन्होंने बछड़े की पूजा की थी(५)। यह उल्लेख किया गया है कि यूशा बिन नून उनके पास आए जब वे अपनी टांगें सिकोड़कर बैठे (मुहताबिन) थे, और कहा: "अभिशप्त है वह जो अपने पैर की पट्टी खोल दे, या अपने कातिल की ओर देखे, या हाथ या पैर से अपना बचाव करे।" उनमें से किसी ने भी अपनी पट्टी नहीं खोली जब तक कि वह मारा नहीं गया - यानी जिसे मारा जाना

था - और एक आदमी अपने पास वाले को मारने के लिए आगे बढ़ता। इसका उल्लेख अल-नहस और अन्य ने किया है।

---

(१) तफ़्सीर अबी अल-लैथ १/११९, और मजमा अल-बयान १/२५१। (२) तफ़्सीर अल-राज़ी ३/८१। (३) अल-तबरी १/६८२-६८३ द्वारा अल-ज़ुहरी और क़तादा से वर्णित। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४४। (५) मजमा अल-बयान १/२५१, और तफ़्सीर अल-राज़ी ३/८२, और अल-तबरी ने इसे १/६८० में इब्न अब्बास के शब्दों से वर्णित किया है।

۱۱۰ سورة البقرہ: آیت ۵۴

ظلم کی اصل چیز کو اس کے غیر مقام پر رکھنا ہے۔ پھر اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ﴾ (تمہارے بچھڑے کو معبود بنانے کے سبب)۔ بعض اہل معانی نے کہا: ہر انسان کا بچھڑا اس کا نفس ہے، چنانچہ جس نے اسے گرا دیا اور اس کی مراد کی مخالفت کی، وہ اس کے ظلم سے بری ہو گیا۔ اور صحیح بات یہ ہے کہ یہاں حقیقت میں ایک بچھڑا مراد ہے جس کی انہوں نے عبادت کی تھی جیسا کہ قرآن میں بیان ہوا ہے۔ والحمد للہ۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَتُوبُوا إِلَىٰ بَارِئِكُمْ﴾ (پس اپنے پیدا کرنے والے کی طرف توبہ کرو)۔ جب ان سے کہا گیا: اپنے پیدا کرنے والے کی طرف توبہ کرو، تو انہوں نے کہا: کیسے؟ فرمایا: ﴿فَاقْتُلُوا أَنْفُسَكُمْ﴾ (پس تم اپنی جانوں کو قتل کرو)(۱)۔ اہل خواطر نے کہا: انہیں (اپنے نفسوں کو) اطاعت کے ذریعے ذلیل کرو اور انہیں شہوات سے روکو۔ اور صحیح بات یہ ہے کہ یہاں حقیقت میں قتل مراد ہے۔ اور قتل سے مراد حرکت کو ختم کرنا ہے۔ اور "میں نے شراب کو قتل کیا" کا مطلب ہے: میں نے پانی کے ذریعے اس کی تیزی کو توڑ دیا۔ سفیان بن عیینہ نے کہا: توبہ اللہ کی ایک نعمت ہے، جس سے اللہ نے دوسری امتوں کے بجائے اس امت کو نوازا ہے، جبکہ بنی اسرائیل کی توبہ قتل تھی۔ اور سب کا اس پر اتفاق ہے کہ بچھڑے کی عبادت کرنے والے ہر شخص کو یہ حکم نہیں دیا گیا تھا کہ وہ اپنے ہاتھ سے خود کو قتل کرے(۲)۔ زہری نے کہا: جب ان سے کہا گیا: ﴿فَتُوبُوا إِلَىٰ بَارِئِكُمْ فَاقْتُلُوا أَنْفُسَكُمْ﴾ (پس اپنے پیدا کرنے والے کی طرف توبہ کرو اور اپنی جانوں کو قتل کرو)، تو وہ دو صفوں میں کھڑے ہو گئے اور ایک دوسرے کو قتل کرنے لگے، یہاں تک کہ ان سے کہا گیا: "رک جاؤ"۔ تو یہ مقتول کے لیے شہادت اور زندہ رہنے والے کے لیے توبہ بن گئی، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے(۳)۔ بعض مفسرین نے کہا: اللہ نے ان پر اندھیرا بھیج دیا تو انہوں نے ایسا کیا۔ اور کہا گیا: جنہوں نے بچھڑے کی عبادت کی

تھی وہ ایک صف میں کھڑے ہو گئے، اور جنہوں نے عبادت نہیں کی تھی وہ ہتھیار لے کر ان پر پل پڑے اور انہیں قتل کر دیا(۴)۔ اور کہا گیا: وہ ستر افراد جو موسیٰ علیہ السلام کے ساتھ تھے کھڑے ہوئے اور انہوں نے قتل کیا - چونکہ انہوں نے بچھڑے کی عبادت نہیں کی تھی - ان لوگوں کو جنہوں نے بچھڑے کی عبادت کی تھی(۵)۔ مروی ہے کہ یوشع بن نون ان کے پاس نکلے جبکہ وہ گھٹنوں کے گرد ہاتھ لپیٹ کر بیٹھے (محتَبُون) تھے، تو انہوں نے کہا: ملعون ہے وہ شخص جو اپنی چادر کی گرہ کھولے، یا اپنے قاتل کی طرف نظر اٹھائے، یا ہاتھ یا پاؤں سے بچاؤ کرے۔ تو ان میں سے کسی نے اپنی چادر کی گرہ نہیں کھولی یہاں تک کہ ان میں سے قتل کر دیے گئے - یعنی جو قتل ہوئے - اور آدمی اپنے قریب والے کو قتل کرنے لگتا۔ اسے نحاس وغیرہ نے ذکر کیا ہے۔

---

(۱) تفسیر ابی اللیث ۱/۱۱۹، اور مجمع البیان ۱/۲۵۱۔ (۲) تفسیر رازی ۳/۸۱۔ (۳) اسے طبری ۱/۶۸۲-۶۸۳ میں زہری اور قتادہ سے روایت کیا گیا ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۱۴۴۔ (۵) مجمع البیان ۱/۲۵۱، اور تفسیر رازی ۳/۸۲، اور طبری نے اسے ۱/۶۸۰ میں ابن عباس کے کلام سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 54 111

Those who did not worship the calf were punished by killing themselves - according to the first opinion - because they did not change the evil when it was worshipped (1), but rather they withdrew, whereas it was obligatory for them to fight those who worshipped it (2). And this is the way of Allah with His servants: if evil becomes widespread and is not changed, everyone is punished. Jarir narrated that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "There is no people among whom sins are committed, and they are stronger and more powerful than them [the sinners] but do not change them, except that Allah will encompass them all with a punishment." Narrated by Ibn Majah in his Sunan (3). Discussion on this meaning will follow (4), God willing. When the killing became intense among them, reaching seventy thousand, Allah forgave them. This was said by Ibn Abbas and Ali (may Allah be pleased with them) (5). Allah only lifted the killing from them because they exerted their utmost effort in killing themselves. No blessing has Allah bestowed upon this nation after Islam that is better than repentance. Qatadah read: "Seek dismissal (fa-aqeelu) for yourselves" - from 'iqalah' (annulment/dismissal) (6) - meaning: ask for dismissal from the stumble through killing (7). His words, the Almighty: ﴿بَارِئِكُمْ﴾ (your Creator): Al-Bari is the Creator, and there is a difference between them. That is because Al-Bari is the innovator and originator. And Al-Khaliq is the measurer who moves from one state to another. And 'Al-Bariyyah' is the creation, and it is on the pattern of 'fa'ilah' with the meaning of 'maf'ulah', except that it is not hamzated (pronounced with a glottal stop) (8). Abu Amr read: "Bari'kum" (9) - with a sukun on the hamza - and "yush'irkum", "yansurkum", and "ya'murkum".

Footnotes: (1) In (m): they worshipped him. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/144. (3) Number (4009), and it is with Ahmad (19192). (4) In the interpretation of the Almighty's words: "O you who believe! Take care of your own selves" [Al-Ma'idah: 105]. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/144, and narrated by Al-Tabari 1/680, 683 from the words of Ibn Abbas, and narrated by Ibn Abi Hatim 536 from the words of Ali (may Allah be pleased with him). (6) Al-Qira'at al-Shadhah by Ibn Khalawayh, p. 6. Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/146 narrated from Qatadah that he read: "faqtalu", and said: it is from 'istiqalah'. He narrated from Ibn Jinni his saying: morphology makes it unlikely to be from 'istiqalah', but Qatadah (may Allah have mercy on him) should be thought well of, in that he only reported that with proof. See Al-Muhtasib 83/1. (7) In (m): "istaqbiluha" (with a ba), which is an error. (8) Majma' al-Bayan 1/249-250. (9) Al-Sab'ah fi al-Qira'at by Ibn Mujahid p. 154, Al-Hujjah for Al-Farisi 2/76,

and Al-Taysir for Al-Dani p. 73. However, they narrated from Sibawayh his saying: Abu Amr used to shorten the vowel in "Bari'ikum", "ya'murkum", and similar words where vowels follow one another, so the listener might think he made it silent (sukun), but he did not make it silent. Abu Amr read from the narration of Al-Duri in both ways, and from the narration of Al-Susi with sukun only. The reason for the sukun of the hamza in "Bari'kum" and the ra in =

सूरह अल-बकरा: आयत 54 111

जिन्होंने बछड़े की पूजा नहीं की थी, उन्हें खुद को मारकर दंडित किया गया था - पहली राय के अनुसार - क्योंकि उन्होंने बुराई को तब नहीं बदला जब इसकी पूजा की गई थी (1), बल्कि वे अलग हो गए थे, जबकि उनके लिए उन लोगों से लड़ना अनिवार्य था जिन्होंने इसकी पूजा की थी (2)। और अपने बंदों के साथ अल्लाह की यही सुन्नत (नियम) है: यदि बुराई फैल जाती है और उसे बदला नहीं जाता है, तो सभी को दंडित किया जाता है। जरीर ने रिवायत किया कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "कोई भी ऐसी कौम नहीं है जिसके बीच गुनाह किए जाते हों और वे उनसे [गुनाहगारों से] अधिक शक्तिशाली और प्रभावशाली हों, फिर भी वे उन्हें नहीं बदलते, सिवाय इसके कि अल्लाह उन सभी को अपने अज़ाब (दंड) में घेर लेगा।" इसे इब्न माजह ने अपनी सुनन (3) में संकलित किया है। इस अर्थ पर चर्चा (4) आगे आएगी, इंशा अल्लाह। जब उनमें कत्लेआम तेज हो गया और सत्तर हजार तक पहुँच गया, तो अल्लाह ने उन्हें क्षमा कर दिया। यह इब्न अब्बास और अली (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) ने कहा है (5)। अल्लाह ने उनसे कत्ल की सजा केवल इसलिए हटा दी क्योंकि उन्होंने खुद को मारने में अपनी पूरी कोशिश की थी। इस्लाम के बाद अल्लाह ने इस उम्मत पर तौबा (प्रायश्चित) से बेहतर कोई नेमत (आशीर्वाद) नहीं दी है। क़तादाह ने पढ़ा: "अपने आप को माफ़ करवाओ (फा-अक़ीलू)" - 'इक़ाला' (रद्द करना/माफ़ी) (6) से - यानी: कत्ल के ज़रिए खुद को ठोकर से माफ़ करवा लो (7)। अल्लाह तआला का फरमान: بَارِئِكُمْ (तुम्हारे पैदा करने वाले): 'अल-बारी' का अर्थ निर्माता (पैदा करने वाला) है, और दोनों (बारी और खालिक) के बीच अंतर है। वह यह है कि 'अल-बारी' आविष्कारक और नया रचने वाला है। और 'अल-खालिक' अनुमान लगाने वाला और एक स्थिति से दूसरी स्थिति में ले जाने वाला है। और 'अल-बरिय्याह' का अर्थ सृष्टि है, और यह 'मफ़ऊला' के अर्थ में 'फ़ईला' के वजन पर है, सिवाय इसके कि इसमें हमज़ा नहीं लगाया जाता (8)। अबू अम्र ने पढ़ा: "बारिकुम" (9) - हमज़ा पर सुकून के साथ - और इसी तरह "युशइरुकुम", "यनसुरुकुम" और "यअमुरुकुम"।

पायदान: (1) (म) में: उन्होंने उसकी इबादत की। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/144। (3) नंबर (4009), और यह अहमद (19192) के पास भी है। (4) अल्लाह के इस फरमान की व्याख्या में: "ऐ ईमान वालो! तुम अपनी फ़िक्र करो" [अल-माइदाह: 105]। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/144, और इसे तबरी ने 1/680, 683 में इब्न अब्बास के शब्दों से रिवायत किया है, और इब्न अबी हातिम ने 536 में अली (रज़िअल्लाहु अन्हु) के शब्दों से रिवायत किया है। (6) इब्न खालवैह द्वारा अल-किरात अल-

शाज़ाह पृष्ठ 6। इब्न अतियाह ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/146 में क़तादाह से उद्धृत किया है कि उन्होंने पढ़ा: "फ़क़्तालू", और कहा: यह 'इस्तिकाला' से है। इब्न जिन्नी का कथन उद्धृत किया गया है कि: सर्फ़(रूपात्मक विश्लेषण) इसे 'इस्तिकाला' से होने के लिए कमज़ोर बनाता है, लेकिन क़तादाह (रहमतुल्लाह अलैह) के बारे में अच्छा विचार रखना चाहिए कि उन्होंने इसे केवल प्रमाण के साथ ही उद्धृत किया होगा। देखिए अल-मुहतसिब 83/1। (7) (म) में: "इस्तकबिलूहा" (बा के साथ), जो कि एक त्रुटि है। (8) मजमअ अल-बयान 1/249-250। (9) इब्न मुजाहिद की अल-सबअ फ़ी अल-किरात पृष्ठ 154, अल-फ़ारिसी की अल-हुज्जाह 2/76, और अल-तयसीर के लिए अल-दानी पृष्ठ 73। हालाँकि, उन्होंने सीबावैह से उनका यह कथन उद्धृत किया है कि: अबू अम्र "बारिइकुम", "यअमुरकुम" और इसी तरह के शब्दों में जहाँ स्वर एक के बाद एक आते हैं, स्वर को छोटा कर देते थे, जिससे सुनने वाले को लगता था कि उन्होंने इसे साकिन (मूक) कर दिया है, जबकि वे साकिन नहीं करते थे। अंत। और अबू अम्र ने दुर्री की रिवायत से दोनों तरह से पढ़ा है, और सूसी की रिवायत से केवल सुकून के साथ। "बारिकुम" में हमज़ा के सुकून और रा में =

سورہ البقرہ : آیت ۵۴ ۱۱۱

جن لوگوں نے بچھڑے کی عبادت نہیں کی تھی انہیں اپنے آپ کو قتل کرنے کی سزا دی گئی - پہلے قول کے مطابق - کیونکہ انہوں نے برائی کو نہیں بدلا جب اس کی عبادت کی گئی (۱)، بلکہ وہ الگ ہو گئے، حالانکہ ان پر واجب تھا کہ وہ اس کی عبادت کرنے والوں سے لڑتے (۲)۔ اور یہ اپنے بندوں میں اللہ کی سنت ہے: جب برائی عام ہو جائے اور اسے بدلا نہ جائے تو سب کو سزا دی جاتی ہے؛ جریر نے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جس قوم میں گناہ کیے جائیں اور وہ ان (گناہ گاروں) سے زیادہ طاقتور اور بااثر ہوں اور وہ اسے نہ بدلیں تو اللہ ان سب کو اپنے عذاب کی لپیٹ میں لے لے گا۔" اسے ابن ماجہ نے اپنی سنن (۳) میں روایت کیا ہے۔ اور اس معنی میں کلام (۴) آگے آئے گا، ان شاء اللہ تعالی۔ जब ان میں قتل کی شدت بڑھ گئی اور وہ ستر ہزار تک پہنچ گئے تو اللہ نے انہیں معاف کر دیا۔ یہ ابن عباس اور علی رضی اللہ عنہما نے کہا ہے (۵)۔ اللہ نے ان سے قتل کی سزا صرف اس لیے اٹھا لی کیونکہ انہوں نے اپنے آپ کو قتل کرنے میں اپنی پوری کوشش صرف کر دی تھی۔ اسلام کے بعد اللہ نے اس امت پر توبہ سے بہتر کوئی نعمت نہیں فرمائی۔ اور قتادہ نے پڑھا: "فأقيلوا أنفسكم" (اپنے آپ کو معاف کرواؤ) - اقالہ سے (۶) - یعنی: قتل کے ذریعے لغزش سے معافی طلب کرو (۷)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿بَارِئِكُمْ﴾ (تمہارے پیدا کرنے والے): الباری کے معنی خالق کے ہیں، اور ان دونوں کے درمیان فرق ہے، وہ یہ کہ باری وہ ہے جو عدم سے ایجاد کرنے والا اور نیا پیدا کرنے والا ہو۔ اور خالق وہ ہے جو اندازہ کرنے والا اور ایک حال سے دوسرے حال کی طرف منتقل کرنے والا ہو۔ اور "البریۃ" کا مطلب مخلوق ہے، اور یہ فعیلہ کے وزن پر مفعولہ کے معنی میں ہے، سوائے اس کے کہ اس میں ہمزہ

نہیں پڑھا جاتا (۸)۔ اور ابو عمرو نے پڑھا: "بارئکم" (۹) - ہمزہ کے سکون کے ساتھ - اور یشعرکم، ینصرکم اور یأمرکم۔

حواشی: (۱) (م) میں: عبدوہ۔ (۲) المحرر الوجیز ۱ / ۱۴۴۔ (۳) نمبر (۴۰۰۹)، اور یہ احمد کے ہاں بھی ہے (۱۹۱۹۲)۔ (۴) اللہ تعالیٰ کے ارشاد: ﴿يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا عَلَيْكُمْ أَنفُسَكُمْ﴾ [المائدہ: ۱۰۵] کی تفسیر کے وقت۔ (۵) المحرر الوجیز ۱ / ۱۴۴، اور اسے طبری نے ۱ / ۶۸۰، ۶۸۳ میں ابن عباس کے قول سے روایت کیا ہے، اور اسے ابن ابی حاتم نے ۵۳۶ میں علی رضی اللہ عنہ کے قول سے روایت کیا ہے۔ (۶) القراءات الشاذة لابن خالویہ ص ۶۔ اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱ / ۱۴۶ میں قتادہ سے نقل کیا ہے کہ انہوں نے پڑھا: فاقتالوا، اور کہا: یہ استقالہ سے ہے، اور ابن جنی سے ان کا یہ قول نقل کیا ہے کہ: صرف (صرفی تجزیہ) اس کے استقالہ سے ہونے کو ضعیف قرار دیتا ہے، لیکن قتادہ رحمہ اللہ کے بارے میں نیک گمان رکھنا چاہیے کہ انہوں نے یہ بات کسی دلیل کے بغیر نہیں کہی۔ دیکھیے المحتسب ۸۳/۱۔ (۷) (م) میں: استقبلوہا (باء کے ساتھ)، جو کہ غلط ہے۔ (۸) مجمع البیان ۱ / ۲۴۹ - ۲۵۰۔ (۹) السبعة في القراءات لابن مجاهد ص ۱۵۴، اور الحجة للفارسی ۲ / ۷۶، اور التیسیر للدانی ص ۷۳، لیکن انہوں نے سیبویہ سے ان کا یہ قول نقل کیا ہے کہ: ابو عمرو "بارئکم"، "یأمرکم" اور اس جیسی دیگر جگہوں پر جہاں حرکات لگاتار آتی ہیں، حرکت کو ہلکا کر دیتے تھے، تو سننے والا یہ سمجھتا کہ انہوں نے اسے ساکن کر دیا ہے، حالانکہ وہ ساکن نہیں کرتے تھے۔ انتہی۔ اور ابو عمرو نے دوری کی روایت سے دونوں طرح پڑھا ہے، اور سوسی کی روایت سے صرف اسکان (سکون) کے ساتھ، اور "بارئکم" میں ہمزہ کے سکون کی وجہ، اور راء میں =

Page 112 Surah Al-Baqarah: Verse 54

Grammarians differed on this matter; some of them make the damma and kasra quiescent (sukun) during connection (wasl), and that occurs in poetry. Abu al-Abbas al-Mubarrid said: "It is not permissible to use quiescence (taskīn) with successive vowels on the letter of inflection (i'rāb) in speech or poetry. The recitation of Abu Amr is a grammatical error (laḥn)(1)." Al-Nahhas(2) and others said: "The ancient grammarians and imams permitted that, and they recited: 'If they deviate, I say, my companion, stand firm... in the desert like floating ships(3).' Imru' al-Qays said: 'Today, drink not as one carrying... sin from God nor as an intruder(4).' Another said: 'Sulaimi said: Buy us some parched grain(5).'

= "Yush'irukum" and "ya'murukum" are well-known and established from Abu Amr. Ibn al-Jazari in 'al-Nashr' (2/213) rejected this statement of Sibawayh [note: likely refers to Al-Mubarrid or a specific view], and said: "Its linguistic basis in Arabic is clear and not objectionable; it is for lightening (takhfīf), and treating the separated (elements) of two words as the connected (elements) of one word, such as: ibil, 'adud, and 'unuq." (1) Quoted by the author from Al-Mubarrid via Ibn 'Atiyya in 'al-Muharrar al-Wajiz' (1/145), and rejected by Ibn Jinni in 'al-Muhtasab' (1/110) and in 'al-Khasa'is' (1/75). Abu Hayyan also rejected this statement of Al-Mubarrid in 'al-Bahr' (1/207) and said: "What he proposed is of no value; because Abu Amr did not recite except based on a narration from the Messenger of Allah (PBUH), and the language of the Arabs agrees with him on that. Thus, Al-Mubarrid's denial of it is itself objectionable." (2) I'rab al-Qur'an 1/226. (3) Attributed by Abu Muhammad al-Sairafi in 'Sharh Abyat Sibawayh' (2/398) and Al-Astarabadi in 'Sharh al-Shafiya' (4/225) to Abu Nukhaila, and in 'al-Lisan' (entry: 'awm) to al-'Ujjaj. It is in 'al-Kitab' (4/203), 'al-Hujja' by al-Farisi (2/80), 'al-Khasa'is' by Ibn Jinni (1/75 and 2/317), 'I'rab al-Qur'an' by al-Nahhas (1/226), 'Ma'ani al-Qur'an' by al-Akhfash (1/267), and 'al-Muharrar al-Wajiz' (1/145). Al-Sairafi said: "The evidence is in dropping the kasra from 'sahibi'; he meant 'ya sahibi' (O my companion), and he dropped the 'ya' and sufficed with the kasra, which is good, then he was forced [by meter] and dropped the kasra entirely." Al-Daww means the vast desert, and Al-'Uwwam is the plural of 'a'ima (floating), which refers to a ship that cuts through water and enters it. (4) It is in 'al-Kitab' (4/204), 'Ma'ani al-Qur'an' by al-Akhfash (1/267), 'al-Hujja' by al-Farisi (2/80), 'al-Khasa'is' by Ibn Jinni (1/74 and 2/317), 'al-Muharrar al-Wajiz' (1/145), and in 'Khizanat al-Adab' (4/484). In Al-Asma'i's version of the Diwan (p. 122): "Today I am given to drink", and in Al-Tusi's version (p. 258): "So today, drink". His saying "ghayr mustahqib ithman" means: without earning it or

carrying its burden. (5) 'Al-Muharrar al-Wajiz' (1/145), 'al-Hujja' (1/67 and 2/79), attributed by Abu Zayd in 'al-Nawadir' (p. 306), and Al-Baghdadi.

पृष्ठ 112 सूरह अल-बक़रह: आयत 54

व्याकरणविदों ने इस विषय में मतभेद किया है; उनमें से कुछ लोग जोड़ने (वस्ल) के दौरान दम्मा और कसरा को शांत (सुकून) कर देते हैं, और यह कविता में होता है। अबू अल-अब्बास अल-मुबर्रिद ने कहा: "भाषण या कविता में विभक्ति (एराब) के अक्षर पर लगातार स्वरों के साथ सुकून (तस्कीन) का उपयोग करना अनुमत नहीं है। और अबू अम्र का पाठ एक व्याकरणिक त्रुटि (लहन) है (1)।" अल-नह़्हास (2) और अन्यों ने कहा: "प्राचीन व्याकरणविदों और इमामों ने इसकी अनुमति दी है, और उन्होंने ये पंक्तियाँ सुनाईं: 'अगर वे भटक जाएं तो मैं कहूंगा, मेरे साथी, खड़े हो जाओ... रेगिस्तान में तैरते हुए जहाजों की तरह (3)।' इमरू अल-क़ैस ने कहा: 'आज, पियो बिना किसी बोझ के.. ईश्वर की ओर से पाप, और न ही घुसपैठिए के रूप में (4)।' एक अन्य ने कहा: 'सुलेमी ने कहा: हमारे लिए कुछ सत्तू खरीद लाओ (5)।'"

= «युशइरुकुम» और «यामुरुकुम» अबू अम्र से प्रसिद्ध और स्थापित हैं। इब्न अल-जज़री ने 'अन-नश्र' (2/213) में सिबवैह के इस कथन को खारिज कर दिया और कहा: "अरबी में इसका आधार स्पष्ट है और अस्वीकार्य नहीं है, यह हल्का करने (तख़फ़ीफ़) के लिए है, और दो अलग शब्दों के पृथक अवयवों को एक जुड़े हुए शब्द के अवयवों की तरह मानना है, जैसे: इबिल, अद्वुद, और उनुक।" (1) इसे लेखक ने इब्न अतिया के माध्यम से 'अल-मुह़र्रर अल-वजीज़' (1/145) में अल-मुबर्रिद से उद्धृत किया है, और इब्न जिन्नी ने 'अल-मुह़तसब' (1/110) और 'अल-ख़साइस' (1/75) में इसे खारिज किया है। अबू ह़य्यान ने भी 'अल-बह़र' (1/207) में मुबर्रिद के इस कथन को खारिज किया और कहा: "उन्होंने जो प्रस्ताव दिया है वह कुछ भी नहीं है; क्योंकि अबू अम्र ने रसूल अल्लाह (स.) से प्राप्त रिवायत के बिना पाठ नहीं किया, और अरबों की भाषा इस पर उनके साथ सहमत है। इसलिए मुबर्रिद का इसका खंडन करना स्वयं अनुचित है।" (2) इराब अल-क़ुरआन 1/226. (3) इसे अबू मुहम्मद अल-सैराफ़ी ने 'शरह़ अब्यात सिबवैह' (2/398) में और अल-अस्तराबादी ने 'शरह़ अल-शाफ़िया' (4/225) में अबू नुखैला की ओर, और 'अल-लिसान' (लेख: 'अौम) में अल-अज्जाज की ओर श्रेय दिया है। यह 'अल-किताब' (4/203), फ़ारसी की 'अल-हुज्जा' (2/80), इब्न जिन्नी की 'अल-ख़साइस' (1/75 और 2/317), अल-नह़्हास की 'इराब अल-क़ुरआन' (1/226), अल-अख़फ़श की 'मआनी अल-क़ुरआन' (1/267), और 'अल-मुह़र्रर अल-वजीज़' (1/145) में है। सैराफ़ी ने कहा: "सबूत 'साह़िबि' से कसरा को हटाने में है; उनका अर्थ था: 'या साह़िबी' (हे मेरे साथी), उन्होंने 'या' को हटा दिया और कसरा से संतोष किया, जो अच्छा है, फिर छंद की आवश्यकतावश उन्होंने कसरा को

भी हटा दिया।" अल-दौ का अर्थ है विशाल मरुस्थल, और अल-उव्वम 'आइमा' (तैरते हुए) का बहुवचन है, जो उस जहाज को संदर्भित करता है जो पानी को काटता हुआ चलता है। (4) यह 'अल-किताब' (4/204), अल-अख़फ़श की 'मआनी अल-क़ुरआन' (1/267), फ़ारसी की 'अल-हुज्जा' (2/80), इब्न जिन्नी की 'अल-ख़साइस' (1/74 और 2/317), 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' (1/145) और 'ख़िज़ानत अल-अदब' (4/484) में है। असमाई के दीवान (पृष्ठ 122) के संस्करण में: "आज मुझे पिलाया गया", और तूसी के संस्करण (पृष्ठ 258) में: "तो आज पियो"। उनके कथन "ग़ैर मुस्तहक़िब इथ़मन" का अर्थ है: बिना इसे कमाए या इसका बोझ उठाए। (5) 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' (1/145), 'अल-हुज्जा' (1/67 और 2/79), अबू ज़ैद द्वारा 'अल-नवादिर' (पृष्ठ 306) में श्रेय दिया गया, और अल-बग़दादी।

صفحہ 112 سورہ البقرہ: آیت 54

اس بارے میں نحویوں کا اختلاف ہے؛ چنانچہ ان میں سے بعض وصل کی حالت میں ضمہ اور کسرہ کو ساکن کر دیتے ہیں، اور یہ شاعری میں ہوتا ہے۔ ابو العباس المبرد نے کہا: "کلام یا شاعری میں حرفِ اعراب پر حرکات کے تسلسل کے ساتھ تسکین (ساکن کرنا) جائز نہیں ہے۔ اور ابوعمرو کی قراءت ایک نحوی غلطی (لحن) ہے (1)۔" النحاس (2) اور دیگر نے کہا: "قدیم نحویوں اور ائمہ نے اسے جائز قرار دیا ہے، اور انہوں نے یہ اشعار پڑھے: 'جب وہ (سواری کی اونٹنیاں) ٹیڑھی ہو جائیں تو میں نے کہا اے میرے ساتھی ٹھہر جاؤ... لق و دق صحرا میں تیرنے والی کشتیوں کی طرح (3)۔' امرؤ القیس نے کہا: 'پس آج میں پئیوں گا، بغیر گناہ کا بوجھ اٹھائے... اللہ کی طرف سے گناہ ہے اور نہ ہی بن بلائے مہمان کی طرح (4)۔' ایک اور نے کہا: 'سلیمی نے کہا: ہمارے لیے ستو خرید لاؤ (5)۔'"

= «یشعرکم» اور «یأمرکم» ابوعمرو سے ثابت اور مشہور ہے، اور ابن الجزری نے النشر (2/213) میں سیبویہ کے اس قول کو رد کیا ہے اور کہا: "عربی میں اس کی توجیہ ظاہر ہے اور ناپسندیدہ نہیں ہے، اور وہ تخفیف ہے، اور دو الگ کلمات کے منفصل (حصوں) کو ایک کلمے کے متصل (حصوں) کے حکم میں لانا ہے، جیسے: ابل، عضد، اور عنق۔" (1) مصنف نے اسے المبرد سے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز (1/145) میں نقل کیا ہے، اور ابن جنی نے اسے المحتسب (1/110) اور الخصائص (1/75) میں رد کیا ہے۔ ابو حیان نے البحر (1/207) میں مبرد کے اس قول کو رد کیا اور کہا: "جو بات انہوں نے کہی وہ کچھ بھی نہیں ہے؛ کیونکہ ابوعمرو نے صرف رسول اللہ ﷺ کے اثر کی بنیاد پر قراءت کی ہے، اور اہل عرب کی لغت اس پر ان کے موافق ہے۔ لہٰذا مبرد کا اس سے انکار کرنا خود ایک منکر بات ہے۔" (2) إعراب القرآن

1/226۔ (3) ابو محمد سیرافی نے اسے شرح ابیات سیبویہ (2/398) میں اور استراباذی نے شرح الشافیة (4/225) میں ابونخیلہ کی طرف منسوب کیا ہے، اور اللسان (مادہ: عوم) میں اسے عجاج کی طرف منسوب کیا ہے، اور یہ الکتاب (4/203)، الحجة للفارسی (2/80)، الخصائص لابن جنی (1/75 اور 2/317)، اعراب القرآن للنحاس (1/226)، معانی القرآن للاخفش (1/267)، اور المحرر الوجیز (1/145) میں موجود ہے۔ سیرافی نے کہا: "شاہد 'صاحبِ' سے کسرہ کے حذف پر ہے، ان کی مراد تھی: 'یا صاحبی'، انہوں نے 'یا' کو حذف کر کے کسرہ پر اکتفا کیا، جو کہ اچھا ہے، پھر ضرورتِ شعری کی وجہ سے کسرہ کو بھی ساکن کر دیا۔" الدو سے مراد وسیع میدان (صحرا) ہے، اور العوم 'عائمہ' کی جمع ہے، اور وہ کشتی ہے جو پانی کو چیرتی ہوئی اس میں داخل ہوتی ہے۔ (4) یہ الکتاب (4/204)، معانی القرآن للاخفش (1/267)، الحجة للفارسی (2/80)، الخصائص لابن جنی (1/74 اور 2/317)، المحرر الوجیز (1/145) اور خزانة الادب (4/484) میں ہے۔ اصمعی کی روایت (دیوان صفحہ 122) میں ہے: "فالیوم أسقی" (آج مجھے پلایا گیا)، اور طوسی کی روایت (صفحہ 258) میں ہے: "فالیوم فاشرب"۔ ان کا قول "غیر مستحقب إثماً" یعنی: نہ اسے کمانے والا اور نہ اس کا بوجھ اٹھانے والا۔ (5) المحرر الوجیز (1/145)، اور الحجة (1/67 اور 2/79)، اور ابو زید نے اسے النوادر (صفحہ 306) میں منسوب کیا ہے، اور البغدادی۔

Another [poet] said: You went, and in your legs is what is in them, while your private parts appeared from the waist-wrapper. (1)

He who denies the sukun (vowellessness) in the inflectional letter, his argument is that it is not permissible because it serves as a sign for inflection. Abu Ali said (2): As for the vowel of construction (mabni), grammarians did not differ on the permissibility of its sukun with consecutive vowels. The origin of 'bara’a' (to create/heal) is from: something cleared itself of something else, which is its separation from it. Thus, creation was separated from non-existence into existence (3). From it comes 'I recovered (bara'tu) from the illness bar'an,' with fatha. This is how the people of Hijaz say it. Others say: 'I recovered (bari'tu) from the illness bur'an,' with damma, and 'I am cleared (bari'tu) of you and of debts (4) and flaws bara'atan,' and from it comes 'mubara'ah' for a woman. And he settled accounts (bara'a) with his partner and his wife (5). His saying (the Exalted): {Then He turned to you in forgiveness} [Surah Al-Baqarah: 54] – there is an omission in the speech, estimated as: 'so you did [what was commanded], and He turned to you in forgiveness,' meaning He pardoned you, i.e., those remaining among you. {Indeed, He is the Accepting of Repentance, the Merciful}. Its meaning has been mentioned before (6), and praise be to Allah. His saying (the Exalted): {And [recall] when you said, "O Moses, we will never believe you until we see Allah plainly"; so the thunderbolt struck you while you were looking on. (55) Then We revived you after your death that you might be grateful. (56)} In it (7) are five issues:

= In Sharh Shawahid al-Shafiya 2/225 to al-Azafir al-Kindi. (1) The verse is in Al-Kitab 4/203, Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 1/266, al-Muharrar al-Wajiz 1/145, Sharh al-Mufassal 1/48, al-Khasa'is 1/74 and 2/317, al-Hujjah 2/80, and al-Khizanah 4/484. In it, al-Baghdadi attributed it to al-Uqayshir al-Asadi, and Ibn al-Shajari in al-Amali 2/235 attributed it to al-Farazdaq. Al-Baghdadi said: The former is correct. (2) Al-Hujjah 2/79. The author quoted him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/146. (3) Majma' al-Bayan 1/250. (4) In (Zh): sins. (5) Al-Sihah: (bara'a). (6) 1/483. (7) In (D): "fiha" (feminine form).

११३ सूरत अल-बकराह: आयत ५५ और ५६

एक अन्य [कवि] ने कहा: तुम चली गईं, और तुम्हारे पैरों में वह है जो उनमें है, जबकि तुम्हारा गुप्त अंग तहबंद से दिखाई देने लगा। (१)

जो कोई इराब (विभक्ति) अक्षर में सुकून (स्वरहीनता) का खंडन करता है, उसका तर्क यह है कि यह स्वीकार्य नहीं है क्योंकि यह इराब के लिए एक संकेत के रूप में कार्य करता है। अबू अली ने कहा (२): जहाँ तक निर्माण (मबनी) के स्वर का सवाल है, व्याकरणविदों ने लगातार स्वरों के साथ इसके सुकून की अनुमति के बारे में मतभेद नहीं किया है। 'बारा'आ' (बनाना/ठीक होना) की उत्पत्ति यहाँ से है: किसी चीज़ ने खुद को दूसरी चीज़ से अलग कर लिया, जो कि उससे उसका अलगाव है। इस प्रकार, सृष्टि को गैर-अस्तित्व से अस्तित्व में अलग किया गया था (३)। इसी से आता है 'मैं बीमारी से ठीक हो गया (बारा'तु) बर्रअन,' फतह के साथ। हिजाज़ के लोग ऐसा कहते हैं। दूसरे कहते हैं: 'मैं बीमारी से ठीक हो गया (बरि'तु) बुर्रअन,' दम्मा के साथ, और 'मैं तुमसे और ऋणों (४) और दोषों से मुक्त हो गया (बरि'तु) बारा'अतन,' और इसी से महिला के लिए 'मुबारा'आ' आता है। और उसने अपने साथी और अपनी पत्नी के साथ हिसाब चुकता कर लिया (बारा'आ) (५)। उनका कथन (अल्लाह का): {तो उसने तुम्हारी तौबा स्वीकार की} [सूरत अल-बकराह: ५४] - भाषण में एक विलोप है, जिसका अनुमान है: 'तो तुमने [आदेशानुसार] किया, और उसने तुम्हारी तौबा स्वीकार की,' यानी उसने तुम्हें क्षमा कर दिया, यानी तुममें से शेष बचे लोगों को। {बेशक, वह तौबा स्वीकार करने वाला, अत्यंत दयावान है}। इसका अर्थ पहले बताया जा चुका है (६), और अल्लाह की प्रशंसा हो। उनका कथन (अल्लाह का): {और [याद करो] जब तुमने कहा था, "ऐ मूसा, हम तुम्हारा विश्वास कभी नहीं करेंगे जब तक कि हम अल्लाह को स्पष्ट रूप से न देख लें"; तो बिजली की कड़क ने तुम्हें पकड़ लिया जबकि तुम देख रहे थे। (५५) फिर हमने तुम्हारी मृत्यु के पश्चात तुम्हें जीवित किया ताकि तुम कृतज्ञ बनो। (५६)} इसमें (७) पाँच मुद्दे हैं:

= शरिह शवाहिद अल-शाफिया २/२२५ में अल-अज़ाफिर अल-किंदी को। (१) यह श्लोक अल-किताब ४/२०३, मानी अल-कुरान अल-अखफश द्वारा १/२६६, अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४५, शर्ह अल-मुफस्सल १/४८, अल-खसाइस १/७४ और २/३१७, अल-हुज्जाह २/८०, और अल-खिजाना ४/४८४ में है। इसमें अल-बगदादी ने इसे अल-उकैशिर अल-असदी को समर्पित किया, और इब्न अल-शजरी ने अल-अमाली २/२३५ में इसे अल-फरज़दक को समर्पित किया। अल-बगदादी ने कहा:

पहला सही है। (२) अल-हुज्जाह २/७९। लेखक ने अल-मुहर्रर अल-वजीज १/१४६ में इब्न अतिया के माध्यम से उनसे उद्धृत किया। (३) मजमा अल-बयान १/२५०। (४) (ज़) में: पाप। (५) अल-सिहाह: (बारा'आ)। (६) १/४८३। (७) (द) में: "फीहा" (स्त्रीलिंग रूप)।

۱۱۳ سورة البقرہ: آیت ۵۵ اور ۵۶

کسی دوسرے [شاعر] نے کہا: تم چل دیں، اور تمہارے پیروں میں وہ ہے جو ان میں ہے، جبکہ تمہارا ستر تہبند سے ظاہر ہو گیا۔ (۱)

پس جس نے حرفِ اعراب میں تسکین (سکون) کا انکار کیا، تو اس کی حجت یہ ہے کہ یہ جائز نہیں ہے کیونکہ یہ اعراب کے لیے ایک علامت کے طور پر ہوتا ہے۔ ابو علی نے کہا (۲): جہاں تک حرکتِ بناء کا تعلق ہے، تو نحویوں نے پے در پے حرکات کے ساتھ اس کی تسکین کے جواز میں اختلاف نہیں کیا ہے۔ "برأ" (پیدا کرنا/شفا پانا) کی اصل یہ ہے: کسی چیز کا دوسری چیز سے بری ہونا، اور وہ اس سے الگ ہونا ہے۔ چنانچہ مخلوق عدم سے وجود کی طرف جدا کی گئی ہے (۳)۔ اور اسی سے ہے "میں بیماری سے شفایاب ہوا (برأتُ) بَرْءاً"، فتح کے ساتھ۔ اہل حجاز اسی طرح کہتے ہیں۔ دوسرے کہتے ہیں: "میں بیماری سے شفایاب ہوا (برِئتُ) بُرْءاً"، ضم کے ساتھ، اور "میں تم سے اور قرضوں (۴) اور عیبوں سے بری ہوا (برِئتُ) براءةً"، اور اسی سے عورت کے لیے "مباراة" ہے۔ اور اس نے اپنے شریک اور اپنی بیوی سے معاملہ صاف کر لیا (بارأ) (۵)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَتَابَ عَلَيْكُمْ﴾ [سورة البقرہ: ۵۴] کلام میں حذف ہے، جس کی تقدیر یہ ہے: "پس تم نے [حکم کے مطابق] کیا، تو اس نے تمہاری توبہ قبول فرمائی"، یعنی تمہیں معاف کر دیا، یعنی تم میں سے باقی بچ جانے والوں کو۔ ﴿إِنَّهُ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ﴾ اس کا معنی پہلے گزر چکا ہے (۶)، اور تمام تعریفیں اللہ ہی کے لیے ہیں۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَإِذْ قُلْتُمْ يَمُوسَى لَن نُّؤْمِنَ لَكَ حَتَّى نَرَى اللَّهَ جَهْرَةً فَأَخَذَتْكُمُ الصَّعِقَةُ وَأَنتُمْ تَنظُرُونَ (٥٥) ثُمَّ بَعَثْنَاكُم مِّن بَعْدِ مَوْتِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُونَ (٥٦)﴾ اس میں (۷) پانچ مسائل ہیں:

= شرح شواهد الشافية ۲/ ۲۲۵ میں العذافر الکندی کی طرف منسوب۔ (۱) یہ شعر الکتاب ۴/ ۲۰۳، معانی القرآن للاخفش ۱/ ۲۶۶، المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۵، شرح المفصل ۱/ ۴۸، الخصائص ۱/ ۷۴ اور ۲/ ۳۱۷، الحجة ۲/ ۸۰، اور الخزانة ۴/ ۴۸۴ میں ہے۔ بغدادی نے اس میں اسے الاقیشر الاسدی کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن الشجری نے الامالی ۲/ ۲۳۵ میں اسے فرزدق کی طرف منسوب کیا ہے۔ بغدادی نے کہا: پہلا قول ہی درست ہے۔ (۲) الحجة ۲/ ۷۹، مصنف نے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۶ میں ان سے نقل کیا ہے۔ (۳) مجمع البیان ۱/ ۲۵۰۔ (۴) (ظ) میں: گناہ۔ (۵) الصحاح: (برأ)۔ (۶) ۱/ ۴۸۳۔ (۷) (د) میں: فیہا۔

First: Regarding the words of the Almighty: {And [recall] when you said} is conjunctive. {O Moses} is a singular vocative. {We will never believe you} meaning: we will not believe you. {until we see Allah plainly} It is said: they were the seventy whom Moses chose, and that is because (1) when he made them hear the words of Allah Almighty, they said to him after that: {We will never believe you}. And belief in prophets is mandatory after the appearance of their miracle (2). So Allah sent down fire upon them from the sky and it burned them (3), then Moses supplicated to his Lord and He brought them back to life, as the Almighty said: {Then We revived you after your death}. And the story of the seventy will come in Al-A'raf (4), God willing. Ibn Furak said: It is possible that their punishment was for their deviant request to see Allah by saying to Moses: {Show us Allah plainly}, and that was not within the power of Moses, peace be upon him (5).

There has been disagreement regarding the possibility of seeing Allah Almighty; most innovators deny it in this world and the hereafter.

But the people of the Sunnah and the predecessors (Salaf) hold that it is possible in both, and that it will occur in the hereafter. Based on this, they did not ask for an impossible sight, and Moses, peace be upon him, had asked for it. Discussion regarding the vision will come in "Al-An'am" and "Al-A'raf" (6), God willing.

Second: Regarding the words of the Almighty: {plainly (jahratan)} is a verbal noun (masdar) in the position of a state (hal), and its meaning is: openly. And it is said: with one's own eyes ('iyanan), said by Ibn Abbas (7). The root of "al-jahr" is manifestation/ appearance, and from it comes reciting aloud: it is merely making it manifest. And being open with sins (al-mujaharah) means displaying them. And I saw the prince "jiharan" and "jahratan," meaning: not hidden by anything (8).

---

(1) In (D) and (Zh): that he. (2) In (M): their miracles. (3) In (D): so He burned them, and the report is in "Al-Waseet" by Al-Wahidi 1/141. (4) In the commentary of the Almighty's words: {And Moses chose from his people seventy men for Our appointment}. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/147. (6) In the commentary of His words: {Vision perceives Him not, but He perceives [all] vision}, and His words: {He said, "My Lord, show [Yourself] to me that I may look at You"}. (7) Al-Mawardi mentioned in "An-Nukat wal-Uyun" 1/123, and Al-Wahidi in "Al-Waseet" 1/40 that "openly" is the saying of Ibn Abbas, while "with one's own eyes" is the saying of Qatadah, and At-Tabari

recorded both of them 1/688. (8) An-Nukat wal-Uyun 1/123, and I'rab al-Qur'an by An-Nahhas 1/227.

सूरह अल-बकराह: आयत 55 और 56 | 114

पहला: अल्लाह तआला का फरमान: {और जब तुमने कहा} पूर्व से जुड़ा हुआ है। {ऐ मूसा} एकवचन संबोधन है। {हम तुम पर कभी विश्वास नहीं करेंगे} यानी: हम तुम्हारी बात नहीं मानेंगे। {जब तक कि हम अल्लाह को स्पष्ट रूप से न देख लें} कहा जाता है: ये वे सत्तर लोग थे जिन्हें मूसा ने चुना था, और वह इसलिए क्योंकि (1) जब उन्होंने उन्हें अल्लाह तआला का कलाम (वाणी) सुनाया, तो उन्होंने उसके बाद उनसे कहा: {हम तुम पर कभी विश्वास नहीं करेंगे}। और नबियों के चमत्कार (मोजिज़ा) प्रकट होने के बाद उन पर ईमान लाना अनिवार्य है (2)। फिर अल्लाह ने उन पर आसमान से आग भेजी जिसने उन्हें जला दिया (3), फिर मूसा ने अपने रब से दुआ की और उसने उन्हें जीवित कर दिया, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {फिर तुम्हारी मौत के बाद हमने तुम्हें दोबारा जीवित किया}। और सत्तर लोगों की कहानी अल-अ'राफ (4) में आएगी, इंशाअल्लाह। इब्न फूरक ने कहा: यह संभव है कि उनकी सजा इसलिए थी क्योंकि उन्होंने गलत तरीके से मूसा से यह कहकर दर्शन की मांग की थी: {हमें अल्लाह को प्रत्यक्ष रूप से दिखाओ}, और यह मूसा अलैहिस्सलाम के बस की बात नहीं थी (5)।

अल्लाह तआला को देखने की संभावना के बारे में मतभेद रहा है; अधिकांश नवाचारियों (मुब्तदिएन) ने दुनिया और आख़िरत (परलोक) में इसके होने से इनकार किया है।

जबकि सुन्नत और पूर्वजों (सलफ़) के मानने वाले दोनों ही दुनिया और आख़िरत में इसकी संभावना और आख़िरत में इसके होने के पक्षधर हैं। इस आधार पर, उन्होंने किसी असंभव चीज़ की मांग नहीं की थी, और मूसा अलैहिस्सलाम ने भी इसकी प्रार्थना की थी। दृष्टि (दर्शन) के बारे में चर्चा "अल-अनआम" और "अल-अ'राफ" (6) में आएगी, इंशाअल्लाह।

दूसरा: अल्लाह तआला का फरमान: {स्पष्ट रूप से (जहरतन)} हाल (स्थिति) के स्थान पर एक क्रियावाचक संज्ञा (मस्दर) है, और इसका अर्थ है: सार्वजनिक रूप से। और कहा गया है: अपनी आँखों से (अयानन), यह इब्न अब्बास ने कहा है (7)। "अल-जह्र" का मूल अर्थ प्रकट होना है, और इसी से ज़ोर से पढ़ना (किरात) आता है: जो केवल इसे प्रकट करना है। और पापों को खुल्लम-खुल्ला करना (अल-मुजाहरा) उन्हें प्रदर्शित करना है। और मैंने राजकुमार को "जिहारन" और "जहरतन" देखा, यानी: किसी भी चीज़ से छिपा हुआ नहीं (8)।

(1) (द) और (ज़) में: कि वह। (2) (म) में: उनके चमत्कार। (3) (द) में: तो उन्हें जला दिया, और यह विवरण अल-वाहिदी की "अल-वसीत" 1/141 में है। (4) अल्लाह तआला के इस कथन की व्याख्या में: {और मूसा ने अपनी जाति में से सत्तर पुरुषों को हमारे निर्धारित समय के लिए चुना}। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/147। (6) उनके इस कथन की व्याख्या में: {निगाहें उसे नहीं पा सकतीं, जबकि वह निगाहों को पा लेता है}, और उनका कथन: {उसने कहा, "ऐ मेरे रब, मुझे (अपना दीदार) दिखा कि मैं तुझे देख सकूँ}। (7) अल-मावर्दी ने "अन-नुकात वल-उयून" 1/123 में उल्लेख किया है, और अल-वाहिदी ने "अल-वसीत" 1/40 में कि "खुल्लम-खुल्ला" इब्न अब्बास का कथन है, जबकि "अपनी आँखों से" क़तादा का कथन है, और अत-तबरी ने उन दोनों को उद्धृत किया है 1/688। (8) अन-नुकात वल-उयून 1/123, और अन-नहहास द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/227।

سورہ البقرہ: آیت ۵۵ اور ۵٦ | ۱۱٤

پہلی: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذْ قُلْتُمْ﴾ معطوف ہے۔ ﴿يَمُوسَى﴾ منادیٰ مفرد ہے۔ ﴿لَن نُّؤْمِنَ لَكَ﴾ یعنی: ہم تمہاری تصدیق نہیں کریں گے۔ ﴿حَتَّى نَرَى اللَّهَ جَهْرَةً﴾ کہا گیا ہے: یہ وہی ستر لوگ تھے جنہیں موسیٰ نے منتخب کیا تھا، اور وہ اس لیے کہ (۱) جب انہوں نے انہیں اللہ تعالیٰ کا کلام سنایا تو اس کے بعد انہوں نے ان سے کہا: ﴿لَن نُّؤْمِنَ لَكَ﴾۔ اور انبیاء پر ایمان لانا ان کے معجزے کے ظاہر ہونے کے بعد واجب ہے (۲)۔ چنانچہ اللہ نے ان پر آسمان سے آگ بھیجی جس نے انہیں جلا ڈالا (۳)، پھر موسیٰ نے اپنے رب سے دعا کی تو اللہ نے انہیں زندہ کر دیا، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿ثُمَّ بَعَثْنَاكُم مِّنْ بَعْدِ مَوْتِكُمْ﴾۔ اور ستر آدمیوں کا قصہ ان شاء اللہ تعالیٰ سورہ اعراف (٤) میں آئے گا۔ ابن فورک نے کہا: ممکن ہے کہ ان کی سزا اس لیے ہو کہ انہوں نے موسیٰ سے یہ کہہ کر رویت (دیدار) کا غلط طریقہ اختیار کیا تھا: ﴿أَرِنَا اللَّهَ جَهْرَةً﴾ حالانکہ یہ موسیٰ علیہ السلام کے بس میں نہ تھا (٥)۔

اور اللہ تعالیٰ کی رویت (دیدار) کے جواز میں اختلاف پایا جاتا ہے؛ چنانچہ اکثر اہل بدعت دنیا اور آخرت میں اس کے منکر ہیں۔

جبکہ اہل سنت اور سلف ان دونوں میں اس کے جواز اور آخرت میں اس کے وقوع کے قائل ہیں، اس بنا پر انہوں نے رویتِ محال کا مطالبہ نہیں کیا تھا، اور موسیٰ علیہ السلام نے بھی اس کا سوال کیا تھا۔ رویت کے بارے میں بحث ان شاء اللہ تعالیٰ "الانعام" اور "الاعراف" (٦) میں آئے گی۔

دوسری: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿جَهْرَةً﴾ حال کے مقام پر مصدر ہے، اور اس کے معنی ہیں: علانیہ۔ اور کہا گیا ہے: عیاناً (آنکھوں سے دیکھنا)، یہ ابن عباس (۷) کا قول ہے۔ جہر کی اصل ظہور (نمایاں ہونا) ہے، اور اسی سے جہر بالقرأت (بلند آواز سے تلاوت) ہے: جو صرف اسے ظاہر

کرنا ہے۔ اور گناہوں کی مجاہرت: ان کا اظہار ہے۔ اور میں نے امیر کو "جہاراً" اور "جہرةً" دیکھا، یعنی: کسی چیز سے چھپا ہوا نہیں (٨)۔

---

(١) (د) اور (ظ) میں: أنه۔ (٢) (م) میں: ان کے معجزات۔ (٣) (د) میں: پس انہیں جلا دیا، اور یہ روایت الواحدی کی "الوسیط" ١/١٤١ میں ہے۔ (٤) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی تفسیر میں: ﴿وَاخْتَارَ مُوسَى قَوْمَهُ سَبْعِينَ رَجُلًا لِّمِيقَاتِنَا﴾۔ (٥) المحرر الوجیز ١/١٤٧۔ (٦) اس قول کی تفسیر میں: ﴿لَّا تُدْرِكُهُ الْأَبْصَارُ وَهُوَ يُدْرِكُ الْأَبْصَارَ﴾، اور ان کے قول: ﴿قَالَ رَبِّ أَرِنِي أَنظُرْ إِلَيْكَ﴾ کی تفسیر میں۔ (٧) الماوردی نے "النکت والعیون" ١/١٢٣ میں اور الواحدی نے "الوسیط" ١/٤٠ میں ذکر کیا ہے کہ "علانیہ" ابن عباس کا قول ہے، جبکہ "عیاناً" قتادہ کا قول ہے، اور طبری نے ان دونوں کو روایت کیا ہے ١/٦٨٨۔ (٨) النکت والعیون ١/١٢٣، اور النحاس کی اعراب القرآن ١/٢٢٧۔

115

Surah Al-Baqarah: Verses 55 and 56

Ibn Abbas read "jaharah" (جَهَرَة) with a fat-ha on the 'ha', and they are two dialects, like 'zahra' (زَهْرة) and 'zahara' (زَهَرة) (1).

There are two aspects regarding "al-jahr" (the publicity/plainness): One is that it's an adjective for their address to Moses, meaning they said it publicly and openly. Thus, there is a transposition (taqdim wa ta'khir) in the speech, and the intended meaning is: "And when you said publicly: O Moses."

Second: It's an adjective for what they asked of seeing Allah Almighty, to see Him clearly and with their own eyes. So the speech follows its sequence without transposition (2). It was emphasized by "jahrah" to differentiate between seeing with one's eyes and seeing in a dream.

Third: His Almighty's saying: {So the thunderbolt took you} (فَأَخَذَتْكُمُ الصَّعِقَةُ). The meaning of "al-sa'iqa" (the thunderbolt) was mentioned at the beginning of the Surah (3). Umar, Uthman, and Ali read: "al-sa'qa" (الصَّعْقة) (4), and it is the reading of Ibn Muhaysin throughout the Quran (5).

{while you were looking on} (وَأَنتُمْ تَنظُرُونَ) is a phrase in the position of a 'hal' (circumstantial state). It is asked: How can they die while they are looking?! The answer is that the Arabs say: "The houses of the family of so-and-so are visible (tara'a)," meaning they face each other. And it was said: the meaning is: while you know. And it was said (6): {you look on} means at your condition and what befell you of death and the traces of the thunderbolt.

Fourth: His Almighty's saying: {Then We raised you up after your death} (ثُمَّ بَعَثْنَكُم مِّن بَعْدِ مَوْتِكُمْ), meaning: We brought you back to life. Qatadah said: They died and their souls left, then they were returned to complete their appointed terms (7). Al-Nahhas said: This is an argument...

(1) Similarly attributed by Abu Hayyan in Al-Bahr al-Muhit 1/211 to Ibn Abbas, by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 5, by Ibn Jinni in Al-Muhtasib 1/84 to Sahl bin Shu'ayb, and by Ibn Atiyyah 1/147 to Sahl bin Shu'ayb and Hamid bin Qays. (2) Majma' al-Bayan 1/255. (3) 1/330 - 331. (4) Mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 5, attributed to Ali, and by Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/147, attributed to Umar and Ali. (5) Ithaf Fudala' al-Bashar p. 179. Its author mentioned

that there was disagreement about it in Surah Adh-Dhariyat, in His saying: {So the thunderbolt took them} (Verse: 44). Al-Kisa'i - who is one of the seven - agreed with Ibn Muhaysin in his reading: "al-sa'qa", in this verse of Adh-Dhariyat. See Al-Sab'ah p. 609, and Al-Taysir p. 203. (6) The saying: "and you know and it was said", is not in (M). (7) Al-Nukat wal-Uyun 1/123, and narrated by Abd al-Razzaq in Al-Tafsir 1/46, and Al-Tabari 1/696-697, similarly.

पृष्ठ 115

सूरह अल-बकरा: आयत 55 और 56

इब्न अब्बास ने 'हा' पर फतह के साथ 'जहरा' (جَهَرَة) पढ़ा, और ये दो बोलियाँ हैं, जैसे: 'ज़हरा' (زَهْرة) और 'ज़हरा' (زَهَرة) (1)।

'जहर' (प्रकटीकरण) के संबंध में दो पहलू हैं: पहला यह कि यह मूसा को उनके संबोधन का विशेषण है कि उन्होंने इसे खुलेआम और सार्वजनिक रूप से कहा था, इसलिए भाषण में शब्दों का आगे-पीछे होना (तक़दीम व ताख़ीर) है, और अनुमान यह है: "और जब आपने खुलेआम कहा: हे मूसा।"

दूसरा: यह उस चीज़ का विशेषण है जो उन्होंने अल्लाह सर्वशक्तिमान को देखने के बारे में माँगी थी, कि वे उन्हें स्पष्ट रूप से और अपनी आँखों से देखें। इसलिए भाषण बिना किसी उलटफेर के अपने क्रम में है (2)। "जहरा" शब्द से इस बात पर जोर दिया गया कि आँखों से देखने और सपने में देखने के बीच अंतर किया जा सके।

तीसरा: अल्लाह तआला का फरमान: {तो तुम्हें बिजली (कड़क) ने पकड़ लिया} (فَأَخَذَتْكُمُ الصَّعِقَةُ)। 'साइक़ा' का अर्थ सूरह की शुरुआत में बताया जा चुका है (3)। उमर, उस्मान और अली ने 'अस-सअ़क़ा' (الصَّعْقة) पढ़ा है (4), और यह पूरे कुरान में इब्न मुहयसिन का पाठ (क़िरात) है (5)।

{और तुम देख रहे थे} (وَأَنتُمْ تَنظُرُونَ) एक वाक्य है जो 'हाल' (स्थिति) की स्थिति में है। पूछा जाता है: वे देखते हुए कैसे मर सकते हैं?! इसका उत्तर यह है कि अरब कहते हैं: "फलां के खानदान के घर एक-दूसरे के सामने हैं (तराआ),," यानी वे एक-दूसरे के आमने-सामने हैं। और कहा गया: इसका अर्थ है: और तुम जानते हो। और कहा गया (6): {तुम देख रहे थे} यानी अपनी स्थिति को और जो तुम पर मौत और बिजली के असर के रूप में नाजिल हुआ उसे।

चौथा: अल्लाह तआला का फरमान: {फिर हमने तुम्हें तुम्हारी मौत के बाद दोबारा जीवित किया} (ثُمَّ بَعَثْنَاكُم مِّن بَعْدِ مَوْتِكُمْ), यानी: हमने तुम्हें जीवन दिया। क़तादा ने कहा: वे मर गए और उनकी रूहें निकल गईं, फिर उन्हें उनकी नियत अवधि पूरी करने के लिए वापस लाया गया (7)। अल-नहस ने कहा: और यह एक दलील है...

(1) इसी तरह अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत 1/211 में इब्न अब्बास को, इब्न खालवेह ने अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह पृ. 5 में, इब्न जिन्नी ने अल-मुहतासिब 1/84 में सहल बिन शुऐब को, और इब्न

अतिया ने 1/147 में सहल बिन शुऐब और हमीद बिन क़ैस को इसका श्रेय दिया है। (2) मजमा अल-बयान 1/255। (3) 1/330 - 331। (4) इब्न खालवेह ने अल-क़िरात अल-शाज़्ह पृ. 5 में इसका उल्लेख किया है, और इसे अली के नाम से बताया है, और इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/147 में इसे उमर और अली के नाम से बताया है। (5) इतहाफ फुदला अल-बशर पृ. 179। इसके लेखक ने उल्लेख किया है कि सूरह अज़्-ज़ारियात में इस पर मतभेद था, अल्लाह के इस फरमान में: {तो उन्हें बिजली ने पकड़ लिया} (आयत: 44)। अल-किसाई - जो सात में से एक हैं - अज़्-ज़ारियात की इस आयत में इब्न मुहयसिन के पाठ: 'अस-सअ़क़ा' से सहमत थे। देखें अल-सबा पृ. 609, और अल-तयसीर पृ. 203। (6) कहना: "और तुम जानते हो और कहा गया", (M) में नहीं है। (7) अल-नुक़त वल-उयून 1/123, और इसे अब्द अल-रज्जाक ने अल-तफसीर 1/46 में, और अल-तबरी ने 1/696-697 में इसी तरह उद्धृत किया है।

صفحہ ۱۱۵

سورۃ البقرہ: آیت ۵۵ و ۵۶

ابن عباس رضی اللہ عنہما نے «جَهَرَة» ہاء کے فتحہ (زبر) کے ساتھ پڑھا، اور یہ دو زبانیں (لغات) ہیں، جیسے: زَهْرة اور زَهَرة (۱)۔

اور "الجہَر" (برسرعام/کھلے عام) میں دو پہلو ہیں: پہلا یہ کہ یہ ان کے موسیٰ علیہ السلام سے خطاب کی صفت ہے کہ انہوں نے اسے بلند آواز اور اعلانیہ طور پر کہا، تو کلام میں تقدیم و تاخیر ہوگی، اور تقدیر (مفہوم) یہ ہے: "اور جب تم نے اعلانیہ کہا: اے موسیٰ۔"

دوسرا: یہ اس چیز کی صفت ہے جو انہوں نے اللہ تعالیٰ کو دیکھنے کے بارے میں مانگی تھی، کہ وہ اسے اعلانیہ اور آنکھوں سے دیکھیں۔ تو کلام اپنی ترتیب پر ہے اس میں کوئی تقدیم و تاخیر نہیں ہے (۲)۔ اور "جہرہ" کے ساتھ اس کی تاکید کی گئی، تاکہ آنکھوں سے دیکھنے اور خواب میں دیکھنے کے درمیان فرق کیا جا سکے۔

تیسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَأَخَذَتْكُمُ الصَّعِقَةُ﴾ (پس تمہیں کڑک نے پکڑ لیا)۔ سورہ کے آغاز میں "صاعقہ" کا معنی گزر چکا ہے (۳)۔ اور عمر، عثمان اور علی رضی اللہ عنہم نے «الصَّعْقة» پڑھا ہے (٤)، اور یہ تمام قرآن میں ابن محیصن کی قرات ہے (٥)۔

﴿وَأَنتُمْ تَنظُرُونَ﴾ (اور تم دیکھ رہے تھے) یہ جملہ حال کے مقام پر ہے۔ اور کہا جاتا ہے: وہ کیسے مر رہے تھے جبکہ وہ دیکھ رہے تھے؟! تو جواب یہ ہے کہ عرب کہتے ہیں: "فلاں کے گھر نظر آتے ہیں (تراءی)"، یعنی وہ ایک دوسرے کے آمنے سامنے ہیں۔ اور کہا گیا: اس کا مطلب ہے: اور

تم جانتے ہو، اور کہا گیا (٦): ﴿تَنظُرُونَ﴾ یعنی تم اپنی حالت اور اس موت اور کڑک کے اثرات کو دیکھ رہے تھے جو تم پر نازل ہوئے۔

چوتھا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ثُمَّ بَعَثْنَٰكُم مِّن بَعْدِ مَوْتِكُمْ﴾ یعنی: ہم نے تمہیں زندہ کر دیا۔ قتادہ نے کہا: وہ مر گئے اور ان کی روحیں چلی گئیں، پھر انہیں ان کی مدتِ حیات پوری کرنے کے لیے واپس لایا گیا (٧)۔ نحاس نے کہا: اور یہ ایک احتجاج ہے...

(١) اسی طرح ابو حیان نے البحر المحیط ٢١١/١ میں ابن عباس کی طرف، اور ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ٥ میں، اور ابن جنی نے المحتسب ٨٤/١ میں سہل بن شعیب کی طرف، اور ابن عطیہ نے ١٤٧/١ میں سہل بن شعیب اور حمید بن قیس کی طرف اسے منسوب کیا ہے۔ (٢) مجمع البیان ٢٥٥/١۔ (٣) ٣٣٠/١ - ٣٣١۔ (٤) ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ٥ میں اسے ذکر کیا ہے اور اسے علی کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ١٤٧/١ میں اسے عمر اور علی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (٥) إتحاف فضلاء البشر ص ١٧٩۔ اور اس کے مصنف نے ذکر کیا ہے کہ سورة الذاریات میں ان کے بارے میں اختلاف ہوا، اللہ تعالیٰ کے اس فرمان میں: ﴿فَأَخَذَتْهُمُ الصَّٰعِقَةُ﴾ (آیت: ٤٤)۔ اور کسائی - جو سات قرآء میں سے ایک ہیں - نے سورة الذاریات کی اس آیت میں ابن محیصن کی قرات «الصعقة» کی موافقت کی ہے۔ دیکھیے السبعة ص ٦٠٩، اور التیسیر ص ٢٠٣۔ (٦) قول: "اور تم جانتے ہو اور کہا گیا"، (م) میں نہیں ہے۔ (٧) النکت والعیون ١٢٣/١، اور اسے عبد الرزاق نے التفسیر ٤٦/١ میں، اور طبری نے ٦٩٦/١-٦٩٧ میں، اسی طرح نقل کیا ہے۔

Page 116 Surah Al-Baqarah: Verse 55 and 56

...against those of the Quraysh who did not believe in the resurrection, and an argument against the People of the Book since they were informed of this. The meaning of "so that you may be grateful" is for what was done to you by way of resurrection after death. It was also said: they died a death of stillness for others to take heed, then they were sent [back]. The origin of 'ba'th' (resurrection/sending) is 'sending'. And it was said: rather its origin is to stir something from its place (1). It is said: 'I sent (ba'athtu) the she-camel': I stirred it, i.e., moved it. Imru' al-Qais said: "And many truthful youths I have stirred at dawn, so they all rose between one reaching for something and one groggy." (2) And 'Antarah said: "And companions with high noses (proud) I stirred them at night, while sleep had tilted their necks." (3) Some said: "We raised you up after your death" means: We taught you after your ignorance. I say: The first [view] is more correct, because the primary meaning is the literal one, and it was a death of punishment. Among its examples is the word of Allah: "Have you not considered those who left their homes in many thousands, fearing death? Allah said to them, 'Die'; then He restored them to life" [Al-Baqarah: 243], as will come. Fifth: Al-Mawardi (4) said: There is a difference of opinion regarding the continuation of the obligation (taklif) for those who were brought back after death and after witnessing matters that compel knowledge. There are two views: First: Their obligation remains so that no sane person is without worship. Second: Their obligation drops so that their obligation (5) is based on reasoning rather than compulsion. I say: The first is more correct, for the Children of Israel saw the mountain suspended in the air over them and fire surrounding them, which was something that compelled them to believe, yet the continuation of obligation remained firm upon them. Similar to them are the people of Jonah. It is impossible for them not to be obligated. And Allah knows best.

(1) Al-Nukat wal-'Uyun 1/123. (2) His Diwan p. 91. Its commentator said: 'al-'athi' is one who takes something, and 'al-sukhrah' is the very early dawn, the beginning of dawns. He meant: when he stirred them from their sleep, this one reached for his garment, or handed it to another, being like one intoxicated from drowsiness. (3) His Diwan p. 75. His saying 'al-kara' means drowsiness, and 'al-tula' means necks. (4) We did not find it, and Abu Hayyan also quoted it from him in Al-Bahr al-Muhit 1/213. (5) His saying: "so that their obligation", is not in (M).

पृष्ठ 116 सूरह अल-बक़रह: आयत 55 और 56

...कुरैश के उन लोगों के विरुद्ध जो पुनरुत्थान में विश्वास नहीं करते थे, और अहल-ए-किताब (किताब वाले) के खिलाफ एक दलील क्योंकि उन्हें इसकी सूचना दी गई थी। और "ताकि तुम शुक्रगुज़ार बनो" का अर्थ है कि मृत्यु के बाद तुम्हारे पुनरुत्थान के साथ जो कुछ किया गया उसके लिए। यह भी कहा गया है: वे निस्तब्धता की मृत्यु मरे ताकि दूसरे उससे सबक लें, फिर उन्हें वापस भेज दिया गया। 'बअ्स' (पुनरुत्थान/भेजना) का मूल अर्थ 'भेजना' है। और यह भी कहा गया है: बल्कि इसका मूल किसी चीज़ को उसके स्थान से हिलाना या उत्तेजित करना है (1)। कहा जाता है: 'मैंने ऊँटनी को बअ्स किया (भेजा/उठाया)': यानी मैंने उसे हिलाया या गति दी। इमरुल क़ैस ने कहा है: "और कई सच्चे युवकों को मैंने सुबह तड़के जगाया, तो वे सब उठ खड़े हुए, कोई कुछ पकड़ रहा था तो कोई उनींदा था।" (2) और अंतरा ने कहा है: "और ऊँची नाक वाले (अभिमानी) साथियों को मैंने रात में जगाया, जबकि नींद ने उनकी गर्दनों को झुका दिया था।" (3) कुछ ने कहा: "हमने तुम्हें तुम्हारी मृत्यु के बाद जिला उठाया" का अर्थ है: हमने तुम्हें तुम्हारी अज्ञानता के बाद सिखाया। मैंने कहा: पहली बात अधिक सही है, क्योंकि मूल अर्थ वास्तविक (शाब्दिक) है, और वह दंड स्वरूप मृत्यु थी। इसका उदाहरण अल्लाह का यह कथन है: "क्या तुमने उन लोगों को नहीं देखा जो मौत के डर से अपने घरों से हज़ारों की संख्या में निकल भागे थे? अल्लाह ने उनसे कहा, 'मर जाओ'; फिर उसने उन्हें जीवित कर दिया" [अल-बक़रह: 243], जैसा कि आगे आएगा। पाँचवाँ: अल-मावर्दी (4) ने कहा: मृत्यु के बाद और उन स्थितियों को देखने के बाद जो ज्ञान के लिए मजबूर करती हैं, पुनर्जीवित किए गए लोगों के धार्मिक दायित्व (तक्लीफ) के बने रहने के बारे में मतभेद है। इसके दो विचार हैं: पहला: उनका दायित्व बना रहता है ताकि कोई भी समझदार व्यक्ति इबादत (उपासना) से रहित न रहे। दूसरा: उनका दायित्व समाप्त हो जाता है ताकि उनका दायित्व (5) मजबूरी के बजाय तर्क और दलील पर आधारित हो। मैंने कहा: पहला विचार अधिक सही है, क्योंकि बनी इस्राइल ने पहाड़ को अपने ऊपर हवा में लटकते और आग को अपने चारों ओर घेरे हुए देखा था, यह ऐसी चीज़ थी जिसने उन्हें विश्वास करने पर मजबूर कर दिया था, फिर भी उन पर दायित्व बना रहा। उनके समान ही यूनुस की कौम (लोग) हैं। यह असंभव है कि वे उत्तरदायी न हों। और अल्लाह बेहतर जानता है।

(1) अन-नुक़त वल-उयून 1/123। (2) उनका दीवान पृ. 91। इसके टीकाकार ने कहा: 'अल-आसी' वह है जो किसी चीज़ को पकड़ता है, और 'अस-सुख़रह' तड़के सुबह है, भोर की शुरुआत। उनका मतलब था: जब उन्होंने उन्हें नींद से जगाया, तो कोई अपने कपड़े पकड़ रहा था, या दूसरे को दे रहा

था, जैसे नींद के कारण नशे में हो। (3) उनका दीवान पृ. 75। उनके शब्द 'अल-करा' का अर्थ है उनींदापन, और 'अत-तुला' का अर्थ है गर्दनें। (4) हमें यह नहीं मिला, और अबू हयान ने भी अल-बहर अल-मुहीत 1/213 में उनसे इसे उद्धृत किया है। (5) उनका कहना: "ताकि उनका दायित्व", (म) में नहीं है।

صفحہ 116 سورۃ البقرہ: آیت 55 اور 56

قریش کے ان لوگوں کے خلاف جو بعث (دوبارہ زندہ کیے جانے) پر یقین نہیں رکھتے تھے، اور اہل کتاب کے خلاف ایک دلیل ہے کیونکہ انہیں اس کی خبر دی گئی تھی۔ اور "تاکہ تم شکر گزار بنو" کا معنی یہ ہے کہ موت کے بعد تمہیں دوبارہ زندہ کر کے تمہارے ساتھ جو سلوک کیا گیا اس پر (شکر ادا کرو)۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: وہ ایک ایسی موت مرے جس میں سکون و جمود تھا تاکہ دوسرے عبرت حاصل کریں، پھر انہیں دوبارہ بھیجا گیا۔ بعث کا اصل معنی 'بھیجنا' ہے۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: بلکہ اس کی اصل کسی چیز کو اس کے مقام سے ابھارنا اور حرکت دینا ہے (1)۔ کہا جاتا ہے: 'میں نے اونٹنی کو بعث کیا (اٹھایا)': یعنی اسے ابھارا یا حرکت دی؛ امرؤ القیس نے کہا ہے: "اور کتنے ہی سچے نوجوانوں کو میں نے صبح صادق کے وقت بیدار کیا، پس وہ سب اٹھ کھڑے ہوئے، کوئی چیز پکڑ رہا تھا اور کوئی اونگھ رہا تھا۔" (2) اور عنترہ نے کہا: "اور بلند ناک والے (غیرت مند) ساتھیوں کو میں نے رات میں بیدار کیا، حالانکہ نیند نے ان کی گردنوں کو جھکا دیا تھا۔" (3) بعض نے کہا: "ہم نے تمہیں تمہاری موت کے بعد زندہ کیا" کا مطلب ہے: ہم نے تمہیں تمہاری جہالت کے بعد علم سکھایا۔ میں کہتا ہوں: پہلا قول زیادہ صحیح ہے، کیونکہ اصل حقیقت (لغوی معنی) ہے، اور وہ سزا کی موت تھی۔ اسی میں سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: "کیا تم نے ان لوگوں کو نہیں دیکھا جو موت کے ڈر سے اپنے گھروں سے نکل کھڑے ہوئے تھے حالانکہ وہ ہزاروں کی تعداد میں تھے، پھر اللہ نے ان سے فرمایا 'مر جاؤ'، پھر انہیں زندہ کر دیا" [البقرہ: 243]، جیسا کہ آگے آئے گا۔ پانچویں بات: الماوردی (4) نے کہا: موت کے بعد دوبارہ زندہ کیے جانے والوں اور ان حالات کا مشاہدہ کرنے والوں پر جن میں علم کے سوا چارہ نہ ہو، تکلیف (شرعی ذمہ داری) کے باقی رہنے کے بارے میں دو اقوال پر اختلاف ہوا ہے: پہلا: ان کی

تکلیف کا باقی رہنا تاکہ کوئی عاقل عبادت سے خالی نہ رہے۔ دوسرا: ان کی تکلیف کا ساقط ہو جانا تاکہ ان کی تکلیف (5) اضطرار (مجبوری) کے بجائے استدلال (دلیل) پر مبنی ہو۔ میں کہتا ہوں: پہلا قول زیادہ صحیح ہے، کیونکہ بنی اسرائیل نے پہاڑ کو ہوا میں اپنے اوپر لٹکا ہوا دیکھا اور آگ انہیں گھیرے ہوئے تھی، اور یہ ایسی چیز تھی جس نے انہیں ایمان لانے پر مجبور کر دیا تھا، اس کے باوجود ان پر تکلیف (ذمہ داری) برقرار رہیا ان کی مثال قومِ یونس کی ہے۔ یہ ناممکن ہے کہ وہ مکلف (ذمہ دار) نہ ہوں۔ واللہ اعلم۔

(1) النکت والعیون 1/123۔ (2) ان کا دیوان ص 91۔ اس کے شارح نے کہا: 'العاثي' کسی چیز کو پکڑنے والا، اور 'السُّخرة' صبح کا ابتدائی وقت، سحر کا آغاز۔ ان کی مراد یہ تھی کہ جب انہوں نے انہیں نیند سے بیدار کیا تو کوئی اپنا کپڑا پکڑ رہا تھا یا کسی دوسرے کو دے رہا تھا، اور وہ نیند کی وجہ سے مدہوش شخص کی طرح تھا۔ (3) ان کا دیوان ص 75، ان کا قول: 'الکری' یعنی اونگھ، اور 'الطُّلی' یعنی گردنیں۔ (4) ہمیں یہ نہیں ملا، اور ابو حیان نے بھی البحر المحیط 1/213 میں اسے ان سے نقل کیا ہے۔ (5) ان کا قول: "تاکہ ان کی تکلیف"، نسخہ (م) میں نہیں ہے۔

Page 117

Surah Al-Baqarah: Verse 57

His Saying (the Almighty): "And We shaded you with clouds and sent down to you manna and quails, [saying], 'Eat from the good things with which We have provided you.' And they wronged Us not - but they were [only] wronging themselves." (57)

In this are eight (1) issues:

The first: His saying: "And We shaded you with the clouds" means: We made them over you like a canopy. "Ghamām" (clouds) is the plural of "ghamāmah," like "sahābah" and "sahāb" (cloud). This was said by Sa'īd al-Akhfash. Al-Farrā' said: "Ghamā'im" (2) is also permissible, and they are clouds because they "taghummu" (cover) the sky, meaning they veil it. Everything that is covered is "maghmūm," and from this comes the expression for someone whose mind is clouded. "Ghumma al-hilāl" means the crescent moon was hidden by clouds. "Al-Ghayn" is like clouds, and from this is his saying (peace be upon him): "Indeed, my heart is clouded" (3). The author of "Al-Ayn" said: "Ghīna 'alayhi" means it was covered. "Al-Ghayn" also means dense, tangled trees. Al-Suddī said: "Al-ghamām" is white clouds (4).

And He did this for them to protect them from the heat of the sun during the day, and it would clear away at the end of the day so they could have light from the moon at night. Commentators mentioned that this happened during the Wandering (Al-Tīh) between Egypt and the Levant when they refused to enter the city of the giants and fight them, saying to Moses: "So go, you and your Lord, and fight" [Al-Ma'idah: 24]. So they were punished in that wilderness for forty years, wandering in five or six leagues. It is narrated that they would walk all day and settle for the night, and in the morning, they would find themselves where they were the previous morning. While they were all in the Wandering, they said to Moses: "Who will provide food for us?" So Allah sent down manna and quails to them. They said: "Who will protect us from the heat of the sun?" So He shaded them with clouds. They said: "What will provide us light?" (5) So He struck for them a pillar of light in the middle of their camp. Makkī mentioned: a pillar of fire. They said: "Who will provide water for us?" So Moses was commanded to strike the rock. They said: "Who will provide clothing for us?" So they were given that their clothes would not wear out, become old, or get dirty, and that the clothes of the small children would grow as the children grew (6). And Allah knows best.

(1) In (D): There are seven issues. (2) Ma'ānī al-Qur'ān by Al-Akhfash 1/268, and I'rāb al-Qur'ān by Al-Nahhās 1/227. (3) Recorded by Ahmad (17848) and Muslim (2702) from the hadith of Al-Agharr al-Muzanī (may Allah be pleased with him). (4) Mentioned by Al-Tabarī 1/699 without attribution, and Ibn Atiyyah 1/148. (5) In (D): "Mimmā," in (M): "Fabim," and what is established is from (Z) and (Th). (6) Al-Muharrar al-Wajīz 1/148, see Tafsīr al-Tabarī 1/707-710.

पृष्ठ 117

सूरह अल-बकरा: आयत 57

अल्लाह तआला का कथन: "और हमने तुम पर बादलों की छाया की और तुम पर मन्न और सलवा उतारे, (और कहा कि) उन पवित्र चीज़ों को खाओ जो हमने तुम्हें प्रदान की हैं। और उन्होंने हम पर कोई ज़ुल्म नहीं किया, बल्कि वे स्वयं अपने आप पर ज़ुल्म करते थे।" (57)

इसमें आठ (1) विषय हैं:

पहला: अल्लाह का कथन: "और हमने तुम पर बादलों की छाया की" यानी: हमने उसे तुम्हारे ऊपर एक छतरी की तरह बना दिया। 'ग़मामा' (बादल) 'ग़मामा' का बहुवचन है, जैसे 'सहाबा' और 'सहाब' (बादल)। यह बात सईद अल-अखफ़श ने कही है। अल-फ़र्रा ने कहा: 'ग़माइम' (2) भी जायज़ है, और ये बादल हैं; क्योंकि वे आसमान को 'तगुम्मु' (ढक लेते) हैं, यानी उसे छुपा देते हैं, और हर ढकी हुई चीज़ 'मग़्मूम' होती है, और इसी से वह व्यक्ति है जिसकी बुद्धि पर पर्दा पड़ा हो। 'ग़ुम्मा अल-हिलाल' का अर्थ है: जब बादलों ने चाँद को छुपा दिया हो। 'अल-ग़ैन' बादलों की तरह है, और इसी से उनका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) यह कथन है: "बेशक मेरे दिल पर पर्दा छा जाता है" (3)। 'अल-ऐन' के लेखक ने कहा: 'ग़ीना अलैहि' का अर्थ है: वह ढक दिया गया। 'अल-ग़ैन' का अर्थ घने उलझे हुए पेड़ भी है। अल-सुद्दी ने कहा: 'ग़मामा' सफेद बादल हैं (4)।

और उन्होंने उनके साथ ऐसा इसलिए किया ताकि वे दिन में सूरज की गर्मी से बच सकें और दिन के अंत में यह हट जाता था ताकि वे रात में चाँद की रोशनी का लाभ उठा सकें। व्याख्याकारों ने उल्लेख किया है कि यह मिस्र और शाम के बीच 'तीह' (भटकाव) के दौरान हुआ था जब उन्होंने अत्याचारियों के शहर में प्रवेश करने और उनसे लड़ने से इनकार कर दिया था, और मूसा से कहा था: "सो तू और तेरा रब जाओ और लड़ो" [अल-माइदा: 24]। तो उन्हें उस मैदान में चालीस साल की सज़ा दी गई, वे पाँच या छह फ़रसख़ में भटकते रहे। वर्णित है कि वे पूरा दिन चलते थे और रात बिताने के लिए उतरते थे, तो सुबह वहीं पाते थे जहाँ पिछली सुबह थे। जब वे सब भटकाव (तीह) में थे, तो उन्होंने मूसा से कहा: "हमारे खाने का इंतज़ाम कौन करेगा?" तो अल्लाह ने उन पर मन्न और सलवा उतारा। उन्होंने कहा: "सूरज की तपिश से हमें कौन बचाएगा?" तो उन पर बादलों की छाया कर दी गई। उन्होंने कहा: "हम रोशनी कैसे करेंगे?" (5) तो उनके पड़ाव के बीच में उनके लिए रोशनी का एक स्तंभ खड़ा कर दिया गया। मक्की ने उल्लेख किया है: आग का स्तंभ। उन्होंने कहा: "हमें पानी कौन

देगा?" तो मूसा को पत्थर पर प्रहार करने का आदेश दिया गया। उन्होंने कहा: "हमारे कपड़ों का क्या होगा?" तो उन्हें यह दिया गया कि उनके कपड़े पुराने नहीं होंगे, फटेंगे नहीं और गंदे नहीं होंगे, और बच्चों के कपड़े बच्चों के विकास के अनुसार बढ़ेंगे (6)। और अल्लाह बेहतर जानता है।

---

(1) (D) में: इसमें सात हैं। (2) मआनी अल-कुरान अल-अखफ़श 1/268, और एराब अल-कुरान लिन-नह़ास 1/227। (3) इसे अहमद (17848) और मुस्लिम (2702) ने अल-अग़र अल-मुज़नी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। (4) इसका उल्लेख तबरी 1/699 में बिना किसी संदर्भ के और इब्न अतिया 1/148 में किया गया है। (5) (D) में: "मिम्मा", और (M) में: "फ़बिम", और जो स्थापित है वह (Z) और (Th) से है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/148, और देखें तफ़सीर अल-तबरी 1/707-710।

صفحہ ۱۱۷

سورۃ البقرہ: آیت ۵۷

ارشادِ باری تعالیٰ ہے: ﴿اور ہم نے تم پر بادل کا سایہ کیا اور تم پر من اور سلویٰ اتارا، (اور کہا کہ) وہ پاکیزہ چیزیں کھاؤ جو ہم نے تمہیں عطا کی ہیں۔ اور انہوں نے ہمارا کچھ نہیں بگاڑا، بلکہ وہ خود اپنی جانوں پر ظلم کرتے تھے ۵۷﴾

اس میں آٹھ (۱) مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَظَلَّلْنَا عَلَيْكُمُ الْغَمَامَ﴾ یعنی: ہم نے اسے تمہارے اوپر سائبان کی طرح بنا دیا۔ اور 'غمام' غمامہ کی جمع ہے، جیسے 'سحابہ' اور 'سحاب'۔ یہ سعید الاخفش کا قول ہے۔ الفراء نے کہا: 'غمائم' (۲) بھی جائز ہے، اور یہ بادل ہیں؛ کیونکہ وہ آسمان کو ڈھانپ لیتے ہیں، یعنی اسے چھپا دیتے ہیں، اور ہر ڈھکی ہوئی چیز 'مغموم' ہوتی ہے، اور اسی سے وہ شخص ہے جس کی عقل پر پردہ پڑا ہو۔ 'غُمَّ الهلال' کا مطلب ہے: جب بادلوں نے چاند کو چھپا دیا ہو۔ اور 'الغين' بادل کی طرح ہے، اور اسی سے آپ (صلی اللہ علیہ وسلم) کا یہ قول ہے: "بے شک میرے دل پر پردہ آ جاتا ہے" (۳)۔ صاحبِ 'العين' نے کہا: 'غِيْنَ عليه' کا مطلب ہے: اسے ڈھانپ لیا گیا۔ اور 'الغين' کے معنی گھنے لپٹے ہوئے درخت کے بھی ہیں۔ اور السُّدی نے کہا: 'غمام' سفید بادل ہیں (۴)۔

اور ان کے ساتھ ایسا اس لیے کیا گیا تاکہ وہ دن میں سورج کی گرمی سے محفوظ رہیں، اور دن کے آخر میں یہ چھٹ جاتا تھا تاکہ وہ رات کو چاند کی روشنی سے فائدہ اٹھا سکیں۔ مفسرین نے ذکر کیا ہے کہ یہ واقعہ مصر اور شام کے درمیان 'تیہ' (وادیِ سینا) میں پیش آیا جب انہوں نے

جبارین کے شہر میں داخل ہونے اور ان سے لڑنے سے انکار کر دیا تھا، اور موسیٰ (علیہ السلام) سے کہا تھا: ﴿سو تم اور تمہارا رب جاؤ اور لڑو﴾ [المائدہ: ۲۴]۔ پس انہیں اس صحرا میں چالیس سال کی سزا دی گئی، وہ پانچ یا چھ فرسخ میں بھٹکتے رہے۔ مروی ہے کہ وہ سارا دن چلتے تھے اور قیام کے لیے رکتے، تو صبح وہیں ہوتے جہاں گزشتہ صبح تھے۔ جب وہ سب اس وادی میں تھے تو انہوں نے موسیٰ سے کہا: ہمارے کھانے کا کیا انتظام ہوگا؟ تو اللہ نے ان پر من اور سلویٰ اتارا۔ انہوں نے کہا: ہمیں سورج کی گرمی سے کون بچائے گا؟ تو ان پر بادل کا سایہ کر دیا گیا۔ انہوں نے کہا: ہم روشنی کس چیز سے حاصل کریں گے؟ (۵) تو ان کی بستی کے بیچ میں ان کے لیے نور کا ایک ستون کھڑا کر دیا گیا۔ مکی نے ذکر کیا ہے کہ وہ آگ کا ستون تھا۔ انہوں نے کہا: ہمیں پانی کون دے گا؟ تو موسیٰ کو پتھر پر ضرب لگانے کا حکم دیا گیا۔ انہوں نے کہا: ہمارے لباس کا کیا ہوگا؟ تو انہیں یہ رعایت دی گئی کہ ان کا کوئی کپڑا پرانا نہیں ہوگا، نہ پھٹے گا اور نہ ہی میلا ہوگا، اور بچوں کے کپڑے ان کی نشوونما کے ساتھ ساتھ بڑھیں گے (۶)۔ واللہ اعلم۔

---

(۱) نسخہ (د) میں ہے: اس میں سات ہیں۔ (۲) معانی القرآن لِلاخفش ۱/۲۶۸، اور اعراب القرآن لِلنحاس ۱/۲۲۷۔ (۳) اسے احمد (۱۷۸۴۸) اور مسلم (۲۷۰۲) نے حضرت الاغر المزنی (رضی اللہ عنہ) کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۴) اسے طبری ۱/۶۹۹ میں بلا حوالہ اور ابن عطیہ نے ۱/۱۴۸ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) نسخہ (د) میں: 'مما' ہے، اور (م) میں 'فبم' ہے، اور جو متن میں ہے وہ (ز) اور (ظ) سے ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/۱۴۸، اور دیکھئے تفسیر الطبری ۱/۷۰۷-۷۱۰۔

118 Surah Al-Baqarah: Verse 57

Second: His (the Almighty) saying: {And We sent down to you Manna and quails}. There is disagreement about what "Manna" is? Its identification follows several opinions. It was said: At-Taranjubin - with a shadda on the 'Ra' and a sukun on the 'Noon', mentioned by Al-Nahhas, and it is also called: At-Taranjubin (1) with the letter 'Ta' - and most commentators follow this. It was said: a sweet gum, it was said: honey, it was said: a sweet drink, and it was said: thin bread (ruqaq), on the authority of Wahb ibn Munabbih. It was said: "Manna" is a gerund (masdar) that encompasses everything that Allah has bestowed upon His servants without fatigue or planting (2). From this is the saying of the Messenger of Allah ﷺ in the hadith of Sa'id ibn Zayd ibn 'Amr ibn Nufayl: "Truffles are a type of Manna which Allah sent down to the Children of Israel, and their water is a cure for the eyes" (3). In one narration: "from the Manna that Allah sent down to Moses." Narrated by Muslim (4).

Our scholars said (5): This hadith indicates that truffles are among what Allah sent down to the Children of Israel, meaning: among what Allah created for them in the wilderness (al-Tih). Abu 'Ubayd said (6): He only likened them to Manna because there is no burden of sowing, watering, or tending to them, so they are part of it. That is: of the same kind of Manna given to the Children of Israel in that it was without exertion. It was narrated that it used to descend upon them from dawn until sunrise, like snow, so a man would take what was sufficient for his day. If he stored any of it, it would spoil, except on Friday, for they used to store for Saturday, and it would not spoil for them, because Saturday was a day of worship, and nothing would descend upon them on Saturday (7).

Third: Since the Prophet (peace be upon him) stated that truffle water is a cure for the eyes, some people of medical knowledge said: it is either to cool (8) the eye from some of the heat that may be in it, so it is used...

(1) In (D) and (Z): Al-Taranjin. (2) Tafsir al-Tabari 1/700-703, al-Muharrar al-Wajiz 1/148, al-Nukat wa al-'Uyun 1/124, Stories of the Prophets by al-Tha'labi pp. 246-248, and Ma'ani al-Qur'an by al-Zajjaj 1/138. (3) Reported by Ahmad (1625), al-Bukhari (4478), and Muslim (2049): (159). (4) Number (2049): (160). (5) Al-Mufhim 5/324. (6) Gharib al-Hadith 2/173. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/148-149, and Ibn Abi Hatim (560) reported the last report from Qatadah. (8) In (D): To heal.

118 सूरह अल-बक़रह: आयत 57

दूसरा: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और हमने तुम पर 'मन्न' और 'सलवा' उतारा}। 'मन्न' क्या है, इस बारे में मतभेद है? इसकी पहचान कई मतों पर आधारित है, कहा गया: अत-तरंजुबीन - 'रा' पर शद्दा और 'नून' पर सुकून के साथ, अल-नहहास ने इसका ज़िक्र किया है, और इसे 'ता' के साथ अत-तरंजुबीन (1) भी कहा जाता है - और अधिकतर मुफ़स्सिर इसी पर हैं। कहा गया: एक मीठी गोंद, कहा गया: शहद, कहा गया: एक मीठा पेय, और कहा गया: पतली रोटी (रुकाक़), वहब बिन मुनब्बिह के हवाले से। कहा गया: "मन्न" एक स्रोत (मस्दर) है जो उन सभी चीज़ों को शामिल करता है जो अल्लाह ने अपने बंदों पर बिना किसी थकान या खेती (2) के प्रदान की हैं। इसी से रसूलुल्लाह ﷺ का सईद बिन ज़ैद बिन अम्र बिन नुफ़ैल की हदीस में फ़रमान है: "कमी (ट्रफ़ल्स) उस मन्न में से है जिसे अल्लाह ने बनी इसराईल पर उतारा था, और उसका पानी आँखों के लिए शिफ़ा है" (3)। एक रिवायत में है: "उस मन्न में से जिसे अल्लाह ने मूसा पर उतारा था।" इसे मुस्लिम ने रिवायत किया है (4)।

हमारे उलेमा ने कहा (5): यह हदीस इस बात पर दलालत करती है कि कमी (ट्रफ़ल्स) उन चीज़ों में से है जो अल्लाह ने बनी इसराईल पर उतारी थीं, यानी: उन चीज़ों में से जो अल्लाह ने उनके लिए जंगल (मैदान-ए-तीह) में पैदा की थीं। अबू उबैद ने कहा (6): उन्होंने इसकी तुलना मन्न से इसलिए की क्योंकि इसमें बीज बोने, पानी देने या देखभाल करने का कोई बोझ नहीं है, इसलिए यह उसी में से है। यानी: बनी इसराईल के मन्न की तरह ही इसमें कोई मेहनत नहीं थी। रिवायत है कि यह उन पर फज्र की सफ़ेदी से सूरज निकलने तक बर्फ़ की तरह उतरता था, तो आदमी अपनी ज़रूरत भर ले लेता था, और अगर वह उसमें से कुछ बचा कर रखता तो वह ख़राब हो जाता, सिवाय जुमे के दिन के, क्योंकि वे हफ़्ते (सब्त) के दिन के लिए बचा कर रखते थे, तो वह उनके लिए ख़राब नहीं होता था, क्योंकि हफ़्ते का दिन इबादत का दिन था, और हफ़्ते के दिन उन पर कुछ नहीं उतरता था (7)।

तीसरा: जब आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने स्पष्ट कर दिया कि कमी (ट्रफ़ल्स) का पानी आँखों के लिए शिफ़ा है, तो चिकित्सा के कुछ जानकारों ने कहा: या तो आँख को उसमें होने वाली कुछ गर्मी से ठंडा (8) करने के लिए, इसलिए इसका उपयोग किया जाता है...

(1) (द) और (ज़) में: अतरंजीन। (2) तफ़्सीर अल-तबरी 1/700-703, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/148, अल-नुकत वल-उयून 1/124, क़िससुल अंबिया लि-सआलबी पृ. 246-248, और मआनी

अल-कुरआन लि-ज़ज्जाज 1/138। (3) इसे अहमद (1625), बुखारी (4478), और मुस्लिम (2049): (159) ने पेश किया है। (4) नंबर (2049): (160)। (5) अल-मुफ़हिम 5/324। (6) ग़रीब अल-हदीस 2/173। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/148-149, और इब्न अबी हातिम (560) ने क़तादह से आख़िरी रिवायत पेश की। (8) (द) में: ठीक करने (लिब्रअह) के लिए।

١١٨ سورة البقرہ: آیت ٥٧

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور ہم نے تم پر مَنّ اور سلویٰ اتارا} مَنّ کیا ہے، اس میں اختلاف ہے؟ اس کی تعیین مختلف اقوال پر ہے، کہا گیا: التَّرَنْجبین - 'را' کی تشدید اور 'نون' کے سکون کے ساتھ، اسے نحاس نے ذکر کیا ہے، اور اسے 'طا' کے ساتھ الطَّرَنْجبین (١) بھی کہا جاتا ہے - اور اکثر مفسرین اسی پر ہیں۔ کہا گیا: ایک میٹھا گوند، کہا گیا: شہد، کہا گیا: میٹھا شربت، اور کہا گیا: پتلی روٹی (رقاق)، وہب بن منبہ سے مروی ہے، اور کہا گیا: «المنُّ» مصدر ہے جو ان تمام نعمتوں کو شامل ہے جو اللہ نے اپنے بندوں پر بغیر تھکاوٹ اور زراعت (٢) کے احسان کے طور پر کی ہیں، اور اسی سے رسول اللہ ﷺ کا قول سعید بن زید بن عمرو بن نفیل کی حدیث میں ہے: «کمی (ٹرفلز) اس منّ میں سے ہے جو اللہ نے بنی اسرائیل پر نازل کیا تھا، اور اس کا پانی آنکھ کے لیے شفا ہے» (٣)۔ ایک روایت میں ہے: «اس منّ میں سے جو اللہ نے موسیٰ پر نازل کیا تھا»۔ اسے مسلم نے روایت کیا ہے (٤)۔

ہمارے علماء نے کہا (٥): یہ حدیث اس بات پر دلالت کرتی ہے کہ کمی ان چیزوں میں سے ہے جو اللہ نے بنی اسرائیل پر نازل کیں، یعنی: ان چیزوں میں سے جو اللہ نے ان کے لیے میدانِ تیہ میں پیدا کیں۔ ابوعبید نے کہا (٦): آپ نے اسے منّ سے تشبیہ اس لیے دی کہ اس میں بیج ڈالنے، پانی دینے اور علاج کرنے کی کوئی مشقت نہیں ہے، پس یہ اسی میں سے ہے۔ یعنی: بنی اسرائیل کے منّ کی جنس سے ہے کہ وہ بغیر کسی تکلف کے تھا۔ روایت ہے کہ وہ ان پر طلوع فجر سے طلوع آفتاب تک برف کی طرح نازل ہوتا تھا، تو آدمی اپنے دن بھر کی ضرورت کے مطابق لے لیتا تھا، پس اگر وہ اس میں سے کچھ بچا کر رکھتا تو وہ خراب ہو جاتا، سوائے جمعہ کے دن کے, کیونکہ

وہ ہفتہ کے دن کے لیے ذخیرہ کر لیتے تھے، تو وہ ان کے لیے خراب نہیں ہوتا تھا، اس لیے کہ ہفتہ کا دن عبادت کا دن تھا، اور ہفتہ کے دن ان پر کچھ نازل نہیں ہوتا تھا (۷)۔

تیسری بات: جب آپ (صلی اللہ علیہ وسلم) نے صراحت فرمائی کہ کمی کا پانی آنکھ کے لیے شفا ہے، تو علم طب کے بعض ماہرین نے کہا: یا تو آنکھ میں موجود بعض حرارت کو ٹھنڈا (۸) کرنے کے لیے، چنانچہ اسے استعمال کیا جاتا ہے...

(۱) (د) اور (ظ) میں: الطرنجين۔ (۲) تفسير الطبرى ۱/۷۰۰-۷۰۳، والمحرر الوجيز ۱/۱٤۸، والنكت والعيون ۱/۱۲٤، وقصص الانبياء للثعلبى ص ۲٤٦ - ۲٤۸، ومعانى القرآن للزجاج ۱/۱۳۸۔ (۳) اسے احمد (۱٦۲۵)، بخاری (٤٤۷۸)، اور مسلم (۲۰٤۹): (۱۵۹) نے روایت کیا ہے۔ (٤) نمبر (۲۰٤۹): (۱٦۰)۔ (۵) المفهم ۵/۳۲٤۔ (٦) غريب الحديث ۲/۱۷۳۔ (۷) المحرر الوجيز ۱/۱٤۸ - ۱٤۹، اور آخری خبر ابن ابی حاتم (۵٦۰) نے قتادہ سے روایت کی ہے۔ (۸) (د) میں: لتبرئة (تندرستی کے لیے)۔

119 Surah Al-Baqarah: Verse 57

...on its own individually, or for other reasons it is combined with others (1). Abu Huraira (may Allah be pleased with him) held the view of using it purely for all eye diseases (2). This is similar to how Abu Wajzah used honey for all diseases, even as kohl, as will be explained in Surah An-Nahl, God willing (3). Linguists said: "Kam'" is singular, "kam'an" is dual, and "akmu'" is three. If they increase, they say "kam'ah" with the letter 'ta', contrary to "shajarah" (tree) and "shajar" (trees). "Al-Mann" is a collective noun that has no singular from its own word, like "good" and "evil," said Al-Akhfash (4). Fourth: The Almighty's saying: {and the Salwa}. There was a difference of opinion regarding "Al-Salwa." It was said: It is specifically the quail (summani), according to Al-Dahhak (5). Ibn Atiyyah (6) said: "Al-Salwa" is a bird by the consensus of the commentators. Al-Hudhali (7) erred when he said: "And he swore to her by Allah a mighty oath, 'You are sweeter than Salwa when we gather it.'" (9) He thought Salwa was honey. I say: His claim of consensus is not correct; Al-Mu'arrij (10), one of the linguists, said...

Footnotes: (1) Al-Mufhim 5/324. (2) Al-Tirmidhi (2069) narrated from Abu Huraira who said: I took three truffles, or five, or seven, squeezed them, and put their water in a flask, then used it as kohl for a girl of mine, and she was cured. Ibn al-Arabi said in Aridat al-Ahwadhi 8/226: Abu Huraira's school of thought is that it is used as kohl in its pure form, as Al-Tirmidhi reported from him. (3) At the verse: {in which there is healing for mankind}. (4) Ma'ani al-Quran 1/268, and the author quoted it from him via I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/227. (5) Tafsir al-Tabari 1/706. His saying: "al-Summani," with a lightened 'meem,' is a bird. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149. (7) He is Khalid bin Zuhair, the son of Abu Dhu'ayb's sister. (8) In the manuscripts: "wa-qasamahuma bi-Llah jahdan la-antuma" (he swore to the two of them...), and what is established is from (M) and sources. (9) The verse is in Diwan al-Hudhaliyyin Part 1 p. 158. His saying: "nashuruha," meaning: we gather it. (10) Ibn Amr, Abu Faid al-Sadusi, who was counted alongside Sibawayh and al-Nadr bin Shumayl, and he was one of the companions of al-Khalil, died in the year 195 AH. Al-Siyar 9/309. Al-Tha'labi mentioned his words in Qisas al-Anbiya p. 247, and al-Baghawi in Al-Tafsir 1/75.

119 सूरह अल-बकरा: आयत 57

...स्वयं में अकेले, या किसी और कारण से अन्य के साथ मिश्रित (1)। अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने आंखों के सभी रोगों में इसके शुद्ध उपयोग का मत व्यक्त किया (2)। यह वैसा ही है जैसे अबू वज्ज़ह ने शहद का उपयोग सभी रोगों के लिए किया, यहाँ तक कि कोहल (सुरमा) के रूप में भी, जैसा कि सूरह अन-नह्ल में विस्तार से आएगा, इंशाअल्लाह (3)। भाषाविदों ने कहा: "कमअ" (Kam’) एकवचन है, "कमआन" (kam’an) द्विवचन है, और "अकमअु" (akmu’) तीन के लिए है। यदि संख्या बढ़ती है, तो वे "कमअत" (kam'ah) कहते हैं, 'ता' के साथ, "शजरह" (पेड़) और "शजर" (पेड़ - बहुवचन) के विपरीत। "अल-मन्न" एक जातिवाचक संज्ञा है जिसका अपने मूल शब्द से कोई एकवचन नहीं है, जैसे "अच्छाई" और "बुराई," अल-अख़फ़श ने कहा (4)। चौथा: अल्लाह तआला का कथन: {और सलवा}। सलवा के विषय में मतभेद है। कहा गया है: यह विशेष रूप से बटेर (सुम्मीनी) है, अद-दह्हाक ने कहा (5)। इब्न अतिया (6) ने कहा: मुफस्सिरों (व्याख्याकारों) की आम सहमति के अनुसार सलवा एक पक्षी है। अल-हुज़ली (7) ने गलती की जब उन्होंने कहा: "और उसने अल्लाह की कसम खाकर पूरी कोशिश की कि तुम सलवा से भी मीठे हो जब हम उसे इकट्ठा करते हैं।" (9) उन्होंने समझा कि सलवा शहद है। मैंने कहा: आम सहमति का उनका दावा सही नहीं है; और भाषाविदों में से एक अल-मुआरिज (10) ने कहा है...

फुटनोट्स: (1) अल-मुफ़हिम 5/324। (2) तिरमिज़ी (2069) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है, उन्होंने कहा: मैंने तीन, या पाँच, या सात कुम्भियां (truffles) लीं, उन्हें निचोड़ा, और उनके पानी को एक शीशी में रखा, फिर अपनी एक लौंडी की आँखों में उसे सुरमे की तरह लगाया, तो वह ठीक हो गई। इब्न अल-अरबी ने आरिज़त अल-अहवज़ी 8/226 में कहा: अबू हुरैरा का मत है कि इसे इसके मूल रूप में सुरमे की तरह इस्तेमाल किया जाता है, जैसा कि तिरमिज़ी ने उनके हवाले से कहा है। (3) अल्लाह तआला के इस कथन पर: {जिसमें लोगों के लिए शिफ़ा है}। (4) मा'नी अल-कुरान 1/268, और लेखक ने इसे नह्हास के एराब अल-कुरान 1/227 के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (5) तफ़सीर अल-तबरी 1/706। उनका कथन: "सुम्मीनी," मीम के हल्के उच्चारण के साथ: एक पक्षी है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/149। (7) वह खालिद बिन जुहैर हैं, अबू ज़ुहैब की बहन के बेटे। (8) पांडुलिपियों में: "वक़ासमहुमा बिल्लाहि जहदन ल-अंतुमा" है, और जो प्रमाणित है वह (म) और स्रोतों से है। (9) शेर दीवान अल-हुजलियीन भाग 1 पृ. 158 में है। उनका कथन: "नशुरुहा," अर्थात्: हम उसे चुनते हैं। (10) इब्न अम्र, अबू फ़ैद अल-सदूसी, जिन्हें सिबावैह और अल-नज़र बिन शुमैल के

साथ गिना जाता था, और वह अल-ख़लील के साथियों में से थे, 195 हिजरी में उनकी मृत्यु हुई। अल-सियार 9/309। अल-सा'लबी ने उनके शब्दों को क़िसस अल-अंबिया पृ. 247 में और अल-बग़वी ने अल-तफ़सीर 1/75 में उद्धृत किया है।

۱۱۹ سورہ البقرہ: آیت ۵۷

...خود تنہا، اور یا کسی اور وجہ سے دوسروں کے ساتھ مل کر (۱)۔ اور حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ تمام امراضِ چشم میں اس کے خالص استعمال کے قائل تھے (۲)۔ اور یہ ویسا ہی ہے جیسا کہ ابو وجزہ نے تمام امراض میں شہد کا استعمال کیا حتیٰ کہ سرمہ کے طور پر بھی، جیسا کہ ان شاء اللہ سورہ النحل میں اس کا بیان آئے گا (۳)۔ اور اہلِ لغت نے کہا: "گَمْء" ایک، "گَمْآن" دو، اور "أَكْمُؤٌ" تین کو کہتے ہیں۔ جب تعداد زیادہ ہو جائے تو وہ 'تا' کے ساتھ "گَمْأَة" کہتے ہیں، جو "شجرہ" اور "شجر" کے برعکس ہے، اور "المنُّ" اسمِ جنس ہے جس کا اپنے لفظ سے کوئی واحد نہیں، جیسے "خیر" اور "شر"، یہ اخفش نے کہا (۴)۔ چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَالسَّلْوَىٰ﴾، "سلویٰ" کے بارے میں اختلاف کیا گیا ہے، تو کہا گیا: اس سے مراد بعینہ بٹیر (سمانی) ہے، یہ ضحاک نے کہا (۵)۔ ابن عطیہ (۶) نے کہا: مفسرین کے اجماع کے مطابق سلویٰ ایک پرندہ ہے، اور ہذلی (۷) نے غلطی کی جب اس نے کہا: "اور اس نے اللہ کی قسم کھا کر پوری کوشش کی کہ تم سلویٰ سے بھی زیادہ میٹھے ہو جب ہم اسے چنتے ہیں۔" (۹) اس نے سمجھا کہ سلویٰ شہد ہے۔ میں کہتا ہوں: اجماع کا اس کا دعویٰ درست نہیں ہے؛ اور ماہرینِ لغت میں سے ایک المؤرج (۱۰) نے کہا ہے کہ...

حواشی: (۱) المفہم ۵/ ۳۲۴۔ (۲) ترمذی (۲۰۶۹) نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے تین، یا پانچ، یا سات کھمبیاں لیں، انہیں نچوڑا، اور ان کا پانی ایک شیشی میں ڈال دیا، پھر اسے اپنی ایک لونڈی کی آنکھوں میں سرمہ کے طور پر ڈالا، تو وہ تندرست ہو گئی۔ ابن العربی نے عارضۃ الاحوذی ۸/ ۲۲۶ میں کہا ہے: ابوہریرہ کا مسلک یہ ہے کہ اسے اس کی اصل صفت میں سرمہ کے طور پر استعمال করা جاتا ہے، جیسا کہ ترمذی نے ان کے حوالے

سے کہا ہے۔ (۳) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد پر: ﴿فِيهِ شِفَاءٌ لِلنَّاسِ﴾۔ (۴) معانی القرآن ۱/ ۲۶۸، اور مصنف نے اسے نحاس کی اعراب القرآن ۱/ ۲۲۷ کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔ (۵) تفسیر الطبری ۱/ ۷۰۶۔ ان کا قول: "السمانی"، میم کی تخفیف کے ساتھ: ایک پرندہ ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۹۔ (۷) وہ خالد بن زہیر ہے، ابو ذویب کا بھانجا۔ (۸) نسخوں میں ہے: "وقاسمهما بالله جهداً لأنتما"، اور جو ثابت ہے وہ (م) اور مصادر سے ہے۔ (۹) یہ شعر دیوان الہذلیین، حصہ اول ص ۱۵۸ میں ہے۔ ان کا قول "نشورها" یعنی: ہم اسے چنتے ہیں۔ (۱۰) ابن عمرو، ابو فید السدوسی، ان کا شمار سیبویہ اور نضر بن شمیل کے ساتھ ہوتا تھا، اور وہ خلیل کے شاگردوں میں سے تھے، ۱۹۵ھ میں وفات پائی۔ السیر ۹/ ۳۰۹۔ ثعلبی نے ان کا قول قصص الانبیاء ص ۲۴۷ میں اور بغوی نے التفسیر ۱/ ۷۵ میں نقل کیا ہے۔

120 Surah Al-Baqarah: Verse 57 And the interpretation: It is honey. This is supported by the verse of Al-Hudhali, who mentioned that it is also called so in the dialect of Kinana, named as such because it provides solace (yusla bihi). From it comes: 'Ain al-Silwan (Spring of Solace)(1); and he recited(2): If I were to drink the solace, I would not be consoled I am not without need for you, even if I were wealthy. Al-Jawhari(3) said: "Al-Salwa is honey," and mentioned the verse of Al-Hudhali: Sweeter than honey (Al-Salwa) when we gather it And he did not mention any error. And al-silwanah, with a damma (on the 's'), is a bead; they used to say: If rainwater is poured over it and the lover drinks it, he will find solace. He said: I drank rainwater from a silwanah By the newness of life, O Mayy, I have not found solace(4) The name of that water is al-silwan. Some said: Al-silwan is a medicine given to the sorrowful so they find solace, and doctors call it "the cheerer." It is said: 'Salaytu' and 'Salawtu', two linguistic variants. And he is in a state of 'salwah' (comfort) in life, meaning: in prosperity, on the authority of Abu Zaid(5). Fifth: There was disagreement regarding "Al-Salwa": is it plural or singular? Al-Akhfash(6) said: It has no singular(7) from its own root, like 'al-khayr' (good) and 'al-sharr' (evil). It is likely that its singular is 'salwa', just like its plural, as they said: 'dafla' for both singular and plural, and 'sumana' and 'shuka'a' for both singular and plural(8). Al-Khalil(9) said: Its singular is 'salwah', and he recited:

(1) In Mu'jam al-Buldan 4/178: Silwan is a neighborhood in the outskirts of Jerusalem. Below it is a sweet spring that waters great gardens. Uthman bin Affan (may Allah be pleased with him) endowed it to the weak people of the city. Yaqut quoted Ubaidullah al-Faqir saying: "Nothing of this description exists today... perhaps this was in the past." (2) It is Ru'ba bin al-Ajaj, and the verse is in his Diwan, p. 25. (3) Al-Sihah: (S-L-A). (4) Amali Ibn al-Shajari 1/209, and Al-Sihah: (S-L-A). (5) Al-Sihah: (S-L-A). (6) Ma'ani al-Qur'an 1/268, and I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/227-228. (7) In (M): A plural with no singular. (8) In Al-Sihah: Ad-dafla: a bitter plant, and ash-shuka'a: a plant used for medicine. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149.

120 सूरह अल-बक़रह: आयत 57 और व्याख्या: यह शहद है। इसका प्रमाण अल-हुधली के काव्य से दिया गया है, जिन्होंने उल्लेख किया है कि किनाना की बोली में भी इसे यही कहा जाता है। इसका नाम इसलिए रखा गया क्योंकि इससे सांत्वना (सुलुवान) मिलती है। इसी से बना है: ऐन अल-सिलवान (सांत्वना का झरना)(1); और उन्होंने काव्य पाठ किया(2): यदि मैं सांत्वना (का जल) पी लूँ, तो भी मुझे चैन न आए मुझे तुम्हारी ज़रूरत है, चाहे मैं कितना ही समृद्ध क्यों न होऊँ। अल-जौहरी(3) ने कहा: "अल-सलवा शहद है," और अल-हुधली के शेर का उल्लेख किया: उस शहद (अल-सलवा) से भी मीठा जब हम उसे इकट्ठा करते हैं और उन्होंने इसमें कोई गलती नहीं बताई। और 'सिलवाना' (स पर पेश के साथ) एक मनका है; लोग कहते थे: यदि उस पर बारिश का पानी डाला जाए और प्रेमी उसे पी ले, तो उसे चैन (सलवा) मिल जाता है। उन्होंने कहा: मैंने एक सिलवाना पर बरसाती पानी पिया जीवन की नवीनता की कसम, ओ मय, मुझे चैन नहीं मिला(4) उस पानी का नाम 'अल-सिलवान' है। कुछ ने कहा: अल-सिलवान एक दवा है जो दुखी व्यक्ति को दी जाती है ताकि उसे चैन मिले, और डॉक्टर इसे "प्रसन्न करने वाला" (अल-मुफ़र्रह) कहते हैं। कहा जाता है: 'सलैतु' और 'सलौतु', दो भाषाई रूप हैं। और वह जीवन की 'सलवा' में है, यानी: समृद्धि में, अबू ज़ैद के अधिकार पर(5)। पांचवां: "अल-सलवा" के बारे में मतभेद था: क्या यह बहुवचन है या एकवचन? अल-अखफश(6) ने कहा: इसके मूल शब्द से इसका कोई एकवचन(7) नहीं है, जैसे 'अल-खैर' (भलाई) और 'अल-शर' (बुराई)। इसकी संभावना है कि इसका एकवचन भी 'सलवा' ही हो, जैसे इसका बहुवचन, जैसा कि उन्होंने कहा है: 'दफ़्ला' एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए, और 'सुमाना' और 'शुकआ' एकवचन और बहुवचन दोनों के लिए(8)। अल-खलील(9) ने कहा: इसका एकवचन 'सलवाह' है, और उन्होंने पढ़ा:

(1) मुअजम अल-बुल्दान 4/178 में: सिलवान यरूशलेम के उपनगरों में एक इलाका है। इसके नीचे एक मीठा झरना है जो बड़े बागों को सींचता है। उस्मान बिन अफ़ान (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने इसे शहर के कमज़ोर लोगों के लिए वक़्फ़ कर दिया था। याकूत ने उबैदुल्लाह अल-फ़क़ीर के हवाले से कहा: "आज इस विवरण का कुछ भी अस्तित्व में नहीं है... शायद यह प्राचीन समय में था।" (2) वह रुअबा बिन अल-अज्जाज हैं, और यह शेर उनके दीवान के पृष्ठ 25 पर है। (3) अल-सिहाह: (स-ल-अ)। (4) अमाली इब्न अल-शजरी 1/209, और अल-सिहाह: (स-ल-अ)। (5) अल-सिहाह: (स-ल-अ)। (6) मआनी अल-कुरान 1/268, और इराब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/227-228। (7) (म) में:

बहुवचन जिसका कोई एकवचन नहीं। (8) अल-सिहाह में: अद-दफ़्ला: एक कड़वा पौधा, और अश-शुकआ: एक औषधीय पौधा। (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/149।

۱۲۰ سورۃ البقرہ: آیت ۵۷ اور تفسیر: یہ شہد ہے، اور اس پر ہذلی کے شعر سے استدلال کیا گیا ہے، اور ذکر کیا کہ قبیلہ کنانہ کی لغت میں بھی ایسا ہی ہے، اس کا یہ نام اس لیے رکھا گیا کیونکہ اس سے تسلی (سلوان) حاصل ہوتی ہے، اور اسی سے ہے: عین السلوان(۱)؛ اور اس نے پڑھا(۲): اگر میں سلوان (کا پانی) پی لوں تو بھی مجھے چین نہ آئے مجھے تیری ضرورت ہے اگرچہ میں غنی (بے نیاز) ہو جاؤں اور جوہری(۳) نے کہا: اور سلویٰ شہد ہے، اور اس نے ہذلی کا شعر ذکر کیا: اس شہد (سلویٰ) سے زیادہ لذیذ جب ہم اسے اکٹھا کریں اور اس نے کسی غلطی کا ذکر نہیں کیا۔ اور السلوانہ (سین پر پیش کے ساتھ) ایک منکا ہے، لوگ کہتے تھے: جب اس پر بارش کا پانی ڈالا جائے، اور عاشق اسے پی لے تو اسے سکون مل جائے، شاعر نے کہا: میں نے سلوانہ پر بادل کا پانی پیا اے می! زندگی کی تازگی کی قسم، مجھے قرار نہیں آیا(۴) اور اس پانی کا نام السلوان ہے۔ اور بعض نے کہا: السلوان وہ دوا ہے جو غمگین کو پلائی جاتی ہے تو اسے سکون مل جاتا ہے، اور اطباء اسے "مفرح" کہتے ہیں۔ کہا جاتا ہے: 'سلیثُ' اور 'سلوثُ'، دو لغتیں ہیں۔ اور وہ زندگی کی 'سلوہ' میں ہے، یعنی: خوشحالی میں، ابو زید سے مروی ہے(۵)۔ پانچویں بات: سلویٰ کے بارے میں اختلاف ہے کہ آیا یہ جمع ہے یا مفرد؟ تو اخفش(۶) نے کہا: اس کے اپنے لفظ سے اس کا کوئی واحد(۷) نہیں ہے، جیسے خیر اور شر، اور یہ اس بات کے مشابہ ہے کہ اس کا واحد 'سلویٰ' ہو، اپنی جمع کی طرح، جیسا کہ انہوں نے 'دفلیٰ' واحد اور جمع دونوں کے لیے کہا ہے، اور 'سمانیٰ' اور 'شکاعیٰ' واحد اور جمع دونوں کے لیے(۸)۔ اور خلیل(۹) نے کہا: اس کا واحد 'سلواۃ' ہے، اور اس نے پڑھا:

(۱) معجم البلدان ۴/ ۱۷۸ میں ہے: سلوان بیت المقدس کے نواح میں ایک بستی ہے جس کے نیچے ایک میٹھا چشمہ ہے جو بڑے باغات کو سیراب کرتا ہے، عثمان بن عفان رضی اللہ عنہ نے اسے

شہر کے کمزوروں پر وقف کر دیا تھا، اور یاقوت نے عبید اللہ الفقیر کا یہ قول نقل کیا ہے: "آج اس صفت کی کوئی چیز نہیں ہے... شاید یہ قدیم زمانے میں تھا۔" (۲) یہ رؤبہ بن العجاج ہے، اور شعر اس کے دیوان ص ۲۵ پر ہے۔ (۳) الصحاح: (سلا)۔ (۴) امالی ابن الشجری ۱/ ۲۰۹، اور الصحاح: (سلا)۔ (۵) الصحاح: (سلا)۔ (۶) معانی القرآن ۱/ ۲۶۸، اور اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۲۷ - ۲۲۸۔ (۷) نسخہ (م) میں ہے: جمع جس کا کوئی واحد نہیں۔ (۸) الصحاح میں ہے: الدفلیٰ: کڑوا پودا، اور الشکاعیٰ: وہ پودا جس سے دوا کی جاتی ہے۔ (۹) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۹۔

Surah Al-Baqarah: Verse 58 | Page 121

"And I am seized with a tremor at your remembrance(1)(2) as the quail shakes off the wetness of the rain(3)" And Al-Kisa'i said: *As-Salwa* is singular, and its plural is *Salawa*(4). Sixth: "As-Salwa" is conjoined to "Al-Mann," and the declension (i'rab) does not appear on it because it is *maqsur* (ending in a restricted 'alif'), and this is necessary for all *maqsur* words because they are never without an 'alif' at the end. Al-Khalil said: The 'alif' is an airy letter with no fixed position, so it resembles a vowel movement, and its movement became impossible. Al-Farra' said: If the 'alif' were to be moved, it would become a hamza(5). Seventh: The Almighty's saying: {Eat from the good things we have provided for you} "Eat" contains an omission (hadhf), its estimation is: and We said: eat; it was omitted for brevity because the obvious context indicates it. "Good things" (at-tayyibat) here combines both the permissible (halal) and the delicious(6). Eighth: The Almighty's saying: {And they did not wrong Us} is preceded by an estimated phrase: they disobeyed and did not meet the blessings with gratitude(6). {But they used to wrong themselves} for meeting blessings with acts of disobedience. The Almighty's saying: {And [recall] when We said, "Enter this city and eat from it wherever you will in [ease and] abundance, and enter the gate prostrating and say, 'Relieve us of our burdens.' We will [then] forgive your sins for you, and We will increase the doers of good [in reward and status]." (58)} In it(7) are nine issues: First: The Almighty's saying: {And when We said, "Enter this city"} the alif was omitted from "qulna" (we said) [in pronunciation due to elision].

---

(1) In (Z) and (M) "li-dhikrika" (at your mention), and what is established is from (D) and (Zha) which conforms to the sources. (2) In the copies "Salwa," and what is established is from (M). (3) The verse is by Abd Allah bin Salam al-Sahmi al-Hudhali Abu Sakhr, from the poets of the Umayyad state, and it is in Al-Khizana 3/254, and Sharh al-Mufassal 2/67, and Al-Insaf 1/253, and according to them: "the bird" instead of "the quail." And according to some of them: "a shaking" (nafda) instead of "a tremor" (hazza). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149. (5) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/227. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149. (7) In (M): "In him/it (masculine)".

सूरह अल-बकराह: आयत 58 | पृष्ठ 121

"और मुझे तुम्हारी याद में वैसी ही सिहरन होती है(1)(2) जैसे बटेर बारिश की नमी को झाड़ देता है(3)" अल-किसाई ने कहा: 'अल-सलवा' एकवचन है, और इसका बहुवचन 'सलावी' है(4)। छठा: "अल-सलवा" का संबंध "अल-मन्न" से है, और इसमें व्याकरणिक चिह्न (इराब) प्रकट नहीं होता क्योंकि यह 'मक़्सूर' (अंतिम अलिफ़ वाला) है, और सभी मक़्सूर शब्दों में ऐसा होना आवश्यक है, क्योंकि उनके अंत में अलिफ़ होता ही है। अल-खलील ने कहा: अलिफ़ एक वायु स्वर है जिसका कोई स्थिर स्थान नहीं है, इसलिए यह एक हरकत (स्वर) के समान है, और इसकी हरकत असंभव हो गई। अल-फर्रा ने कहा: यदि अलिफ़ को हरकत दी जाती, तो वह हमज़ा बन जाता(5)। सातवां: अल्लाह तआला का कथन: {उन पाक चीज़ों में से खाओ जो हमने तुम्हें दी हैं} "खाओ" में कुछ शब्दों का विलोप (हज़फ़) है, जिसका अनुमान है: और हमने कहा: खाओ; स्पष्ट संदर्भ के कारण इसे संक्षेप में हटा दिया गया है। "पाक चीज़ें" (तय्यिबात) यहाँ हलाल (वैध) और स्वादिष्ट दोनों को जोड़ती हैं(6)। आठवां: अल्लाह तआला का कथन: {और उन्होंने हमारा कुछ नहीं बिगाड़ा} इससे पहले एक अनुमानित वाक्यांश है: उन्होंने अवज्ञा की और नेमतों का शुक्र के साथ स्वागत नहीं किया(6)। {बल्कि वे अपने आप पर ही ज़ुल्म करते थे} नेमतों के बदले गुनाह करने के कारण। अल्लाह तआला का कथन: {और (याद करो) जब हमने कहा, "इस बस्ती में दाखिल हो जाओ और इसमें से जहाँ चाहो भरपूर खाओ, और दरवाज़े में सजदा करते हुए दाखिल हो जाओ और कहो: 'हित्ता' (क्षमा कर दे), हम तुम्हारे गुनाह माफ कर देंगे, और हम नेकी करने वालों को और ज़्यादा देंगे।" (58)} इसमें(7) नौ मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: {और जब हमने कहा, "इस बस्ती में दाखिल हो जाओ"} "कुलना" (हमने कहा) में से अलिफ़ हटा दिया गया है [उच्चारण में सन्धि के कारण]।

---

(1) (ज़) और (म) में "लि-ज़िक्रिका" है, और जो स्थापित है वह (द) और (ज़ौ) से है जो स्रोतों के अनुरूप है। (2) प्रतियों में "सलवा" है, और जो स्थापित है वह (म) से है। (3) यह शेर अब्दुल्लाह बिन सलम अल-सहमी अल-हुधली अबू सख़्र का है, जो उमय्यद काल के कवियों में से थे। यह अल-खिजाना 3/254, शरह अल-मुफस्सल 2/67, और अल-इंसाफ 1/253 में है। उनके अनुसार "चिड़िया" शब्द 'सलवा' की जगह है। और कुछ के अनुसार "नफ्ज़ा" शब्द 'हज्ज़ा' की जगह है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/149। (5) इराब अल-कुरान, अल-नहस 1/227। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/149। (7) (म) में: "फीही" (पुल्लिंग के लिए)।

"اور مجھے تمہاری یاد پر ایسی ہی کپکپی طاری ہوتی ہے(۱)(۲) جیسے بٹیر بارش کے پانی سے اپنے پروں کو جھٹکتا ہے(۳)" اور الکسائی نے کہا: 'السَّلوی' واحد ہے، اور اس کی جمع 'سَلاوی' ہے(۴)۔ چھٹی بات: «السَّلواۃُ» کا عطف «المَنَّ» پر ہے، اور اس پر اعراب ظاہر نہیں ہوتا کیونکہ یہ مقصور ہے، اور تمام مقصور الفاظ میں یہ ضروری ہے کیونکہ اس کے آخر میں الف کا ہونا لازمی ہے۔ خلیل نے کہا: الف ایک ہوائی حرف ہے جس کا کوئی مستقل مقام نہیں، اس لیے یہ حرکت کے مشابہ ہو گیا، پس اس کی حرکت محال ہو گئی۔ اور الفراء نے کہا: اگر الف کو متحرک کیا جاتا تو وہ ہمزہ بن جاتا(۵)۔ ساتویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿كُلُوا مِن طَيِّبَاتِ مَا رَزَقْنَاكُمْ﴾ "کھاؤ" میں حذف ہے، جس کی تقدیر یہ ہے: اور ہم نے کہا: کھاؤ؛ پس ظاہر کے دلالت کرنے کی وجہ سے اسے اختصاراً حذف کر دیا گیا۔ اور "طیبات" نے یہاں حلال اور لذیذ دونوں کو جمع کر دیا ہے(۶)۔ آٹھویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَمَا ظَلَمُونَا﴾ اس سے پہلے مقدر مانا جائے گا: پس انہوں نے نافرمانی کی اور نعمتوں کا شکر سے جواب نہیں دیا(۶)۔ ﴿وَلَكِن كَانُوا أَنفُسَهُمْ يَظْلِمُونَ﴾ نعمتوں کے مقابلے میں گناہوں کے ارتکاب کی وجہ سے۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذْ قُلْنَا ادْخُلُوا هَذِهِ الْقَرْيَةَ فَكُلُوا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا وَادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا وَقُولُوا حِطَّةٌ نَّغْفِرْ لَكُمْ خَطَايَاكُمْ وَسَنَزِيدُ الْمُحْسِنِينَ ۵۸﴾ اس میں(۷) نو مسائل ہیں: پہلا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذْ قُلْنَا ادْخُلُوا هَذِهِ الْقَرْيَةَ﴾ «قلنا» سے الف حذف کر دیا گیا ہے [تلفظ میں ادغام کی وجہ سے]۔

---

(۱) (ز) اور (م) میں «لذكرك» ہے، اور جو متن میں ہے وہ (د) اور (ظ) سے ہے جو کہ ماخذ کے مطابق ہے۔ (۲) نسخوں میں «سلوة» ہے، اور متن والا (م) سے ہے۔ (۳) یہ شعر عبداللہ بن سلم السہمی الہذلی ابو صخر کا ہے، جو بنو امیہ کے شعراء میں سے تھے، اور یہ الخزانہ ۳/ ۲۵۴،

شرح المفصل ۲/ ۶۷، اور الانصاف ۱/ ۲۵۳ میں موجود ہے، ان کے ہاں: 'العصفور' (چڑیا) 'السلواۃ' کی جگہ ہے، اور بعض کے ہاں: 'نفضة' 'هزة' کی جگہ ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۹۔ (۵) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۲۷۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/ ۱۴۹۔ (۷) (م) میں: «فیه» ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 58 122

...due to its stillness and the stillness of the 'dal' after it, and the 'alif' which is started with before the 'dal' is a linking alif (alif al-wasl); because it is from "yadkhulu" (he enters) (1).

Second: The Almighty's saying: {this village/town} i.e., the city. It was so named because it "taqarrat", i.e., gathered together. From this is: "qaraytu al-ma'a fil-hawd", i.e., I gathered it (2). The name of that water is "qiran", with a kasra on the qaf, shortened. Similarly is what the guest is "quriya" (provided) with, as Al-Jawhari said (3). "Al-miqrah" is for the basin (4). "Al-qariyyu" is for the water stream. "Al-qara" is for the back, and from it is his saying: [A horse] whose belly joins a fat back (5)

"Al-maqari" are large bowls; he said: [They are] of great bowls, their guest is not startled (6)

And the singular of "maqari" is "miqrah", and all carry the meaning of gathering, without a hamza. And "al-qiryah" - with a kasra on the qaf - is the language of Yemen.

There was disagreement in specifying it. The majority said: It is Bayt al-Maqdis (Jerusalem). It was also said: Jericho, part of Bayt al-Maqdis.

Umar ibn Shabba said: It was a capital and a dwelling for kings (7). Ibn Kaysan: Sham (Levant). Al-Dahhak (8): Ramla, Jordan, Palestine, and Tadmur (Palmyra) (9). This is another blessing, which is that He permitted them to enter the town and removed the wandering from them.

(1) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/228. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149. (3) Al-Sihah: (qra). (4) In (Zha): The basin. (5) The rajaz is by Humayd al-Arqat, preceded by: "Neither loose in returning nor...", and it is in Al-Kitab 1/197, Al-Muqtadab 4/159, Sharh al-Mufassal 6/85, and Al-Lisan (rzn). Ibn Ya'ish said: "al-lahiq" is lean, its reality is that its belly meets its back from leanness, then he denied that its leanness was from weakness, so he said: with a fat back. (6) We did not find its author; Al-Tabarsi cited it in Majma' al-Bayan 1/261, and according to him: "their neighbor" instead of "their guest". (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149, see also Tafsir al-Tabari 1/712-713. (8) In (Zay) and (Zha): Ibn Kaysan said... Al-Dahhak said. (9) Qisas al-Anbiya by al-Tha'labi p. 238, and Tafsir al-Baghawi 1/76.

सूरा अल-बक़रह: आयत ५८ १२२

...इसकी सुकुन (स्थिरता) और इसके बाद आने वाले 'दाल' की सुकुन के कारण, और 'दाल' से पहले शुरू होने वाला 'अलिफ', वस्ल का अलिफ है; क्योंकि यह "यदखुलु" (वह प्रवेश करता है) से है (१)।

दूसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {यह बस्ती/नगर} यानी शहर। इसका नाम इसलिए रखा गया क्योंकि यह "तकर्रत" (इकट्ठा होना) हुआ। इसी से है: "क़रैतु अल-मा'अ फ़िल-हौज़", यानी मैंने उसे इकट्ठा किया (२)। उस पानी का नाम "क़िरन" है, 'क़ाफ़' पर कसरा के साथ। इसी प्रकार वह भी है जिससे मेहमान की "क़ुरिया" (मेहमानी) की जाती है, अल-जौहरी ने कहा (३)। "अल-मिक़राह" हौज़ के लिए है (४)। "अल-क़रिय्यु" पानी की धारा के लिए है। "अल-क़रा" पीठ के लिए है, और इसी से उसका यह कथन है: [एक घोड़ा] जिसका पेट एक मोटी पीठ से मिला हुआ है (५)

"अल-मकारी": बड़े बर्तन, उसने कहा: [वे] बड़े बर्तनों वाले हैं, उनका मेहमान घबराता नहीं है (६)

और "मकारी" का एकवचन "मिक़राह" है, और सभी का अर्थ 'इकट्ठा करना' है, बिना हमज़ा के। और "अल-क़िरयाह" - 'क़ाफ़' पर कसरा के साथ - यमन की भाषा है।

इसकी पहचान के बारे में मतभेद था। बहुमत ने कहा: यह बैत अल-मक़दिस (यरूशलेम) है। यह भी कहा गया: यरीहो, जो बैत अल-मक़दिस का हिस्सा है।

उमर इब्न शब्बा ने कहा: यह राजाओं की राजधानी और निवास स्थान था (७)। इब्न कैसान: शाम (लेवेंट)। अल-दह्हाक (८): रामला, जॉर्डन, फिलिस्तीन और तदमुर (पल्मीरा) (९)। यह एक और कृपा है, कि उन्होंने उन्हें नगर में प्रवेश करने की अनुमति दी और उनसे भटकाव को दूर कर दिया।

(१) इराब अल-क़ुरान अन-नहहास द्वारा १/२२८। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४९। (३) अस-सिहह: (क़रा)। (४) (ज़) में: हौज़। (५) यह रजज़ हुमैद अल-अरक़त का है, इससे पहले है: "न तो लौटने में ढीला और न ही...", और यह अल-किताब १/१९७, अल-मुक़्तदब ४/१५९, शर्ह अल-मुफ़स्सल ६/८५ और अल-लिसान (रज़्न) में है। इब्न या'ईश ने कहा: "अल-लाहिक़" दुबला है, इसकी वास्तविकता यह है कि दुबलेपन के कारण उसका पेट उसकी पीठ से मिल जाता है, फिर उसने मना किया कि उसका दुबलापन कमज़ोरी से है, इसलिए उसने कहा: एक मोटी पीठ के साथ। (६) हमें इसके लेखक का पता नहीं चला; अल-तबरसी ने इसे मज्म' अल-बयान १/२६१ में उद्धृत किया है, और उनके अनुसार: "उनका मेहमान" के बजाय "उनका पड़ोसी"। (७) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४९, और देखें तफ़सीर

अल-तबरी १/७१२-७१३। (८) (ज़ै) और (ज़) में: इब्न कैसान ने कहा... अल-दह्हाक ने कहा। (९) क़िसस अल-अंबिया अल-त'लाबी द्वारा पृष्ठ २३८, और तफ़सीर अल-बग़वी १/७६।

سورہ البقرہ: آیت ۵۸ ۱۲۲

...اس کے سکون اور اس کے بعد آنے والی 'دال' کے سکون کی وجہ سے، اور وہ الف جس سے 'دال' سے پہلے ابتدا کی جاتی ہے، الفِ وصل ہے؛ کیونکہ یہ "یدخل" (وہ داخل ہوتا ہے) سے ہے (۱)۔

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {یہ بستی} یعنی شہر۔ اس کا نام اس لیے رکھا گیا کیونکہ یہ "تَقَرَّتْ" (جمع ہونا) ہوئی، یعنی اکٹھی ہوئی۔ اسی سے ہے: "قَرَيْتُ الماء في الحوض"، یعنی میں نے اسے جمع کیا (۲)۔ اس پانی کا نام "قِرًى" ہے، قاف کے کسرہ (زیر) کے ساتھ، مقصور۔ اسی طرح وہ ضیافت بھی ہے جو مہمان کو "قُرِيَ" (پیش) کی جاتی ہے، جوہری نے کہا (۳)۔ "المِقراۃ" حوض کے لیے ہے (۴)۔ "القَرِيُّ" پانی کی نالی (ندی) کے لیے ہے۔ "القَرَا" پیٹھ کے لیے ہے، اور اسی سے اس کا یہ قول ہے: [ایسا گھوڑا] جس کا پیٹ موٹی پیٹھ سے ملا ہوا ہو (۵)

اور "المَقَارِي": بڑے پیالے (لگن)، اس نے کہا: [وہ] بڑے پیالوں والے ہیں، ان کا مہمان ڈرایا نہیں جاتا (۶)

اور "مَقَارِي" کا واحد "مِقْرَاۃ" ہے، اور یہ سب جمع کرنے کے معنی میں ہے، بغیر ہمزہ کے۔ اور "القِرية" - قاف کے زیر کے ساتھ - اہل یمن کی لغت ہے۔

اس کے تعین میں اختلاف کیا گیا، چنانچہ جمہور نے کہا: وہ بیت المقدس ہے۔ اور کہا گیا: اریحاء، جو بیت المقدس کا حصہ ہے۔

عمر بن شبہ نے کہا: یہ بادشاہوں کا دارالخلافہ اور مسکن تھا (۷)۔ ابن کیسان: شام۔ ضحاک (۸): رملہ، اردن، فلسطین اور تدمر (۹)۔ یہ ایک اور نعمت ہے، وہ یہ کہ اللہ نے ان کے لیے شہر میں داخلہ مباح کر دیا اور ان سے تیہ (بھٹکنا) دور کر دیا۔

(۱) إعراب القرآن للنحاس ۲۲۸/۱۔ (۲) المحرر الوجيز ۱۴۹/۱۔ (۳) الصحاح: (قرا)۔ (۴) (ظ) میں: الحوض۔ (۵) یہ رجز حمید الأرقط کا ہے، اور اس سے پہلے ہے: "لا خَطِلُ الرَّجْعِ ولا قَرُونِ"، اور یہ الكتاب ۱۹۷/۱، المقتضب ۱۵۹/۴، شرح المفصل ۸۵/۶، اور اللسان (رزن) میں ہے۔ ابن یعیش نے کہا: "اللاحق" دبلا پتلا ہے، اس کی حقیقت یہ ہے کہ دبلے پن کی وجہ سے اس کا پیٹ اس کی پیٹھ سے جا ملے، پھر اس نے اس بات کی نفی کی کہ اس کا دبلا پن کمزوری کی وجہ سے ہے، چنانچہ کہا: "بقرًا سمين" (موٹی پیٹھ والا)۔ (۶) ہمیں اس کے کہنے والے کا پتہ نہیں چلا، اور اسے طبرسی نے مجمع البيان ۲۶۱/۱ میں نقل کیا ہے، اور ان کے نزدیک: "ضيفهم" (ان کا مہمان) کے بجائے "جارهم" (ان کا پڑوسی) ہے۔ (۷) المحرر الوجيز ۱۴۹/۱، اور دیکھیے تفسير الطبري ۷۱۳-۷۱۲/۱۔ (۸) (ز) اور (ظ) میں ہے: ابن کیسان نے کہا... ضحاک نے کہا۔ (۹) قصص الأنبياء للثعلبي ص ۲۳۸، اور تفسير البغوي ۷۶/۱۔

Page 123 Surah Al-Baqarah: Verse 58

Third: The Almighty's saying: {Eat} is an allowance. And {abundance (raghadan)} means much and vast, and it is an attribute of an omitted infinitive (masdar), i.e., "eating abundantly." It is also permissible for it to be in the place of a circumstantial phrase (hal), based on what preceded(1). It was a blessed land with great yield, so He said: "abundance"(2).

Fourth: The Almighty's saying: {And enter the gate prostrating} 'Al-Bab' (the gate) is pluralized as 'abwab', and they have said: 'abuba' for the sake of parallelism (izdiwaj). The poet said: Congratulations to those in tents entering gates, mixing earnestness with piety and gentleness(3). Had he used the singular form, it would not have been permissible. Similar to this is the saying of the Prophet (peace be upon him): "Welcome to the people — or the delegation — neither disgraced nor regretful"(4). And 'Tabawwaytu bawwaban': I took him as a gatekeeper. And 'abwab'(5) (gates) are 'mubawwaba' (categorized), just as they say: 'asnaf musannafa' (classified sorts). And "this is something from your gate," meaning: it is suitable for you(6).

The meaning of prostration has preceded(7), so there is no meaning in repeating it, and praise be to Allah.

And the gate they were commanded to enter is a gate in Jerusalem, known today as the "Gate of Hitta," as reported from Mujahid and others. And it was said: the gate of the Dome(8) towards which Moses and the Children of Israel used to pray.

---

(1) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/228, and it preceded 1/461. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149. (3) In (m): mixing with piety from him earnestness and gentleness. There is disagreement about its speaker; it was said: Ibn Muqbil, as in al-Sihah: (bawb), and it was said: it is al-Qulakh bin Hubab, one of the sons of Hazn bin Minqar, as in al-Iqtishab p. 472, and it is in the appendix of the Diwan of Ibn Muqbil p. 406. He said in al-Lisan (bawb): He only said: 'abuba', for the sake of parallelism, because of 'akhibiya'. End. And parallelism of speech: some parts resembling others in rhyme or meter. Al-Mu'jam al-Wasit (zawj). (4) Narrated by Ahmad (2020), Al-Bukhari (53), (87), (4368), and Muslim (24) from the hadith of Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). His saying: "nor regretful (nadama)"; Al-Hafiz Ibn Hajar quoted in Al-Fath 1/131 from Al-Khattabi who said: its origin was "nadimeen" plural of "nadim" because "nadama" is only the plural of "nadman"; meaning: the companion in amusement, but here it came for the sake of following/alliteration (ittiba'). (5) In the copies: and

gates (abwaban), and what is fixed is from (m). (6) Al-Sihah: (bawb). (7) 2/26. (8) In (d): The Qibla.

पृष्ठ १२३ सूरह अल-बकरा: आयत ५८

तीसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {खाओ} एक अनुमति है। और {बहुतायत (रगदन)} का अर्थ है बहुत और विशाल, और यह एक लुप्त क्रियावाचक संज्ञा (मस्दर) का विशेषण है, अर्थात: "बहुतायत से खाना।" जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, इसके लिए हाल (स्थिति) के स्थान पर होना भी अनुमत है(१)। वह बड़ी उपज वाली एक धन्य भूमि थी, इसलिए उन्होंने कहा: "बहुतायत"(२)।

चौथा: सर्वशक्तिमान का कथन: {और सजदा करते हुए द्वार में प्रवेश करो} 'अल-बाब' (द्वार) का बहुवचन 'अवाब' है, और उन्होंने कहा है: सामंजस्य (इज्दिवाज़) के लिए 'अबूबा'। कवि ने कहा: तंबू में रहने वालों को बधाई जो द्वारों में प्रवेश करते हैं, गंभीरता के साथ धर्मनिष्ठा और कोमलता को मिलाते हैं(३)। यदि उसने एकवचन रूप का प्रयोग किया होता, तो वह अनुमत नहीं होता। इसी के समान नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कथन है: "लोगों का — या प्रतिनिधिमंडल का — स्वागत है, न अपमानित और न पछताने वाले"(४)। और 'तबव्वैतु बव्वाबन': मैंने उसे द्वारपाल के रूप में लिया। और 'अवाब'(५) (द्वार) 'मुबव्वबा' (वर्गीकृत) हैं, जैसे वे कहते हैं: 'अस्नाफ़ मुसन्निफ़ा' (वर्गीकृत प्रकार)। और "यह तुम्हारे द्वार की कोई चीज़ है," अर्थात: यह तुम्हारे लिए उपयुक्त है(६)।

सजदे का अर्थ पहले आ चुका है(७), इसलिए इसे दोहराने का कोई अर्थ नहीं है, और अल्लाह की प्रशंसा हो।

और जिस द्वार में उन्हें प्रवेश करने का आदेश दिया गया था, वह यरूशलेम (बैतुल मुक़द्दस) का एक द्वार है, जिसे आज "बाब-ए-हित्ता" के नाम से जाना जाता है, जैसा कि मुजाहिद और अन्य से वर्णित है। और यह कहा गया था: गुंबद(८) का द्वार जिसकी ओर मूसा और बनी इसराइल प्रार्थना (नमाज़) करते थे।

---

(१) इराब अल-कुरान अल-नहस १/२२८, और यह १/४६१ में पहले आ चुका है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१४९। (३) (म) में: गंभीरता और कोमलता के साथ धर्मनिष्ठा को मिलाना। इसके वक्ता के बारे में मतभेद है; कहा गया: इब्न मुकबिल, जैसा कि अल-सिहः (बौब) में है, और कहा गया: यह अल-कुलाख बिन हुबाब है, जो हज़्न बिन मिन्कार के बेटों में से एक है, जैसा कि अल-इक्तिशाब पृष्ठ ४७२ में है, और यह इब्न मुकबिल के दीवान के परिशिष्ट पृष्ठ ४०६ में है। उन्होंने अल-लिसान (बौब) में कहा: उन्होंने केवल 'अबूबा' कहा, सामंजस्य के लिए, 'अखिबिया' के कारण। अंत। और भाषण का सामंजस्य: तुकबंदी या लय में कुछ भागों का दूसरों के समान होना। अल-मुजम अल-वसीत (ज़ौज)।

(४) अहमद (२०२०), अल-बुखारी (५३), (८७), (४३६८), और मुस्लिम (२४) द्वारा इब्न अब्बास (रज़िअल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से उद्धृत। उनका कहना: "न पछताने वाले (नदामा)"; अल-हाफिज़ इब्न हजर ने अल-फतह १/१३१ में अल-खत्ताबी से उद्धृत किया जिन्होंने कहा: इसका मूल "नादमीन" था जो "नादिम" का बहुवचन है क्योंकि "नदामा" केवल "नदमान" का बहुवचन है; अर्थात: मनोरंजन में साथी, लेकिन यहाँ यह अनुकरण/अनुप्रास (इत्तिबा) के लिए आया है। (५) प्रतियों में: और द्वार (अब्वावन), और जो निश्चित है वह (म) से है। (६) अल-सिहः (बौब)। (७) २/२६। (८) (द) में: किबला।

صفحہ ۱۲۳ سورۃ البقرہ: آیت ۵۸

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَكُلُوا﴾ (پس کھاؤ) اباحت (اجازت) ہے۔ اور ﴿رَغَدًا﴾ (فراخی سے) بہت زیادہ اور وسیع، اور یہ ایک محذوف مصدر کی صفت ہے، یعنی: "کھانا فراخی کے ساتھ" اور یہ بھی جائز ہے کہ یہ حال کے مقام پر ہو، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے(۱)۔ اور وہ ایک مبارک زمین تھی جس کی پیداوار بہت زیادہ تھی، اسی لیے فرمایا: "رغداً" (فراخی سے)(۲)۔

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَادْخُلُوا الْبَابَ سُجَّدًا﴾ (اور دروازے میں سجدہ کرتے ہوئے داخل ہو) 'الباب' کی جمع 'ابواب' آتی ہے، اور انہوں نے ازدواج (ہم آہنگی) کے لیے 'ابوبة' کہا ہے، شاعر نے کہا: مبارک ہوں وہ خیمے جن کے دروازوں میں داخل ہونے والا، سنجیدگی کے ساتھ نیکی اور نرمی کو ملاتا ہے(۳)۔ اور اگر وہ اسے واحد لاتا تو یہ جائز نہ ہوتا۔ اور اسی طرح آپ صلی اللہ علیہ وسلم کا قول ہے: "خوش آمدید اس قوم کو — یا وفد کو — جو نہ رسوا ہوئے اور نہ نادم (شرمندہ) ہوئے"(۴)۔ اور 'تبوَّيتُ بوَّاباً': میں نے اسے دربان بنایا۔ اور 'ابواب'(۵) (دروازے) 'مبوَّبة' (درجہ بندی شدہ) ہیں، جیسا کہ وہ کہتے ہیں: 'اصناف مصنفة' (درجہ بندی شدہ اقسام)۔ اور "یہ تمہارے باب (فن) کی چیز ہے،" یعنی: یہ تمہارے لیے مناسب ہے(۶)۔

اور سجدہ کے معنی پہلے گزر چکے ہیں(۷)، لہٰذا اس کے اعادہ (دہرانے) کا کوئی فائدہ نہیں، اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں۔

اور وہ دروازہ جس میں داخل ہونے کا انہیں حکم دیا گیا تھا وہ بیت المقدس کا ایک دروازہ ہے، جسے آج "باب حطہ" کے نام سے جانا جاتا ہے، یہ مجاہد اور دیگر سے مروی ہے۔ اور کہا گیا: یہ اس قبہ (گنبد)(۸) کا دروازہ تھا جس کی طرف موسیٰ علیہ السلام اور بنی اسرائیل نماز پڑھا کرتے تھے۔

(١) إعراب القرآن للنحاس ٢٢٨/١، اور یہ ٤٦١/١ میں گزر چکا ہے۔ (٢) المحرر الوجیز ١٤٩/١۔ (٣) (م) میں ہے: نیکی کے ساتھ سنجیدگی اور نرمی کو ملانا۔ اور اس کے کہنے والے کے بارے میں اختلاف ہے، پس کہا گیا: ابن مقبل، جیسا کہ الصحاح (بوب) میں ہے، اور کہا گیا: وہ القلاخ بن حباب ہے جو بنی حزن بن منقر میں سے ایک ہے، جیسا کہ الاقتضاب صفحہ ٤٧٢ میں ہے، اور یہ ابن مقبل کے دیوان کے ذیل میں صفحہ ٤٠٦ پر ہے۔ لسان العرب (بوب) میں کہا: اس نے صرف 'ابوبة' کہا، ازدواج کی وجہ سے، 'أخبية' کی جگہ پر۔ اھ اور کلام کا ازدواج: سجع یا وزن میں بعض حصوں کا بعض سے مشابہ ہونا۔ المعجم الوسیط (زوج)۔ (٤) اسے احمد (٢٠٢٠)، بخاری (٥٣)، (٨٧)، (٤٣٦٨)، اور مسلم (٢٤) نے ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ آپ کا قول: 'ولا ندامی'؛ حافظ ابن حجر نے الفتح ١/١٣١ میں خطابی سے نقل کیا جنہوں نے کہا: اس کی اصل 'نادمین' تھی جو 'نادم' کی جمع ہے کیونکہ 'ندامی' تو 'ندمان' کی جمع ہے؛ یعنی: لہو و لعب میں ساتھی، لیکن یہاں یہ اتباع (ہم آہنگی) کے طور پر آیا ہے۔ (٥) نسخوں میں: اور ابواباً (دروازے)، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (٦) الصحاح: (بوب)۔ (٧) ٢/٢٦۔ (٨) (د) میں: القبلہ|

Surah Al-Baqarah: Verse 58 | 124

And "prostrating" (sujjadan): Ibn Abbas said: bowing down in Ruku'. It is also said: humble in submission, not in a specific physical form (1).

Fifth: Allah's saying: "And say": conjoined to: "enter". And "Hittatun" (forgiveness/ repentance) with the nominative case (dhamma) is the reading of the majority, based on a hidden subject, i.e.: our request is forgiveness, or it is a direct quote. Al-Akhfash said: it was read as "Hittatan" with the accusative case (fatha), meaning: remove our sins from us as a removal (2). Al-Nahhas said (3): The narration from Ibn Abbas says that they were told: say "There is no god but Allah" (4). In another narration from him, it is said they were told: say "forgiveness" (5), which is an explanation for the accusative case, i.e.: say something that removes your sins, just as it is said: "speak good". The leading reciters follow the nominative case, which is linguistically more appropriate; because of what is narrated from the Arabs regarding the meaning of "baddala" (to change/alter). Ahmad ibn Yahya said (6): It is said: "baddaltuhu", meaning: I altered it but did not remove its essence. And "abdaltuhu": I removed its essence and person, as he said (7):

"The dismissal of a prince for the exchanged (mubdal) prince"

And Allah Almighty said: "Those who do not expect the meeting with Us say, 'Bring us a Quran other than this or change it'" [Yunus: 15]. And the narration (8) of Ibn Mas'ud that they said: "hintatun" (wheat) (9) is an explanation for the nominative case. All of this is the saying of Al-Nahhas.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/149-150, and the opinions of Mujahid and Ibn Abbas were reported by al-Tabari 1/714. (2) Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 1/269, and the mentioned reading is by Ibn Abi Ablah, mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 5. (3) I'rab al-Quran 1/228. (4) Reported by al-Tabari in his Tafsir 1/717, via Hafs bin Umar al-Adani, from al-Hakam bin Aban, from Ikrimah. It was also reported by al-Bayhaqi in al-Asma' wa al-Sifat 1/271 from the mentioned route, except he said: from Ikrimah from Ibn Abbas. Hafs bin Umar al-Adani is weak, and al-Hakam bin Aban is truthful but has some illusions. (5) Reported by al-Tabari 1/717-718, and al-Hakim 2/262, who authenticated it. (6) He is Tha'lab, and the text is from I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/228. (7) He is Abu al-Najm al-Ujali, and the rajaz is in his Diwan p. 204, and in Ma'ani al-Quran by al-Farra' 2/259. (8) In the manuscripts: "And for the narration", and the established text is from I'rab al-Quran by al-Nahhas. (9) In (D) and (M): "hittah", and the established text is from (Z), which is correct. The

report of Ibn Mas'ud was reported by al-Tabari 1/725, and al-Tabarani in al-Kabir (9027), and its wording is: "red wheat with some barley in it."

सूरह अल-बकरा: आयत 58 | 124

और "सजदा करते हुए" (सुज्जदन): इब्न अब्बास ने कहा: रुकू की मुद्रा में झुकते हुए। यह भी कहा गया है: अधीनता में विनम्र होकर, किसी विशेष शारीरिक मुद्रा में नहीं (1)।

पाँचवाँ: अल्लाह का कथन: "और कहो": यह "प्रवेश करो" के साथ जुड़ा है। और अधिकांश विद्वानों की क़िरात (पाठ) के अनुसार "हित्ततुन" (Hittatun) रफ़ा (पेश) के साथ है, यह मानकर कि कर्ता छिपा हुआ है, अर्थात: हमारी प्रार्थना क्षमा है, या यह एक उद्धरण है। अल-अख़फ़श ने कहा: इसे "हित्ततन" (Hittatan) नसब (ज़बर) के साथ भी पढ़ा गया है, जिसका अर्थ है: हमारे पापों को हमसे दूर कर दें (2)। अन-नह़्हास ने कहा (3): इब्न अब्बास से हदीस है कि उनसे कहा गया था: कहो: "अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है" (4)। उनकी एक अन्य हदीस में है कि उनसे कहा गया: कहो: "क्षमा" (5), जो नसब की व्याख्या है, अर्थात: कुछ ऐसा कहो जो तुम्हारे पापों को मिटा दे, जैसे कहा जाता है: "भला कहो"। प्रमुख क़ारी रफ़ा (पेश) को प्राथमिकता देते हैं, जो भाषाई रूप से अधिक उपयुक्त है; क्योंकि अरबों से "बद्दला" (बदलना) के अर्थ में जो वर्णित है उसके कारण। अहमद बिन यह्या ने कहा (6): कहा जाता है "बदल्तुहू", अर्थात: मैंने इसे बदल दिया लेकिन इसके मूल अस्तित्व को नहीं हटाया। और "अब्दल्तुहू": मैंने उसके मूल अस्तित्व और व्यक्ति को हटा दिया, जैसा कि उन्होंने कहा (7):

"एक अमीर की बर्खास्तगी बदले हुए (मुबदल) अमीर के लिए"

और अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: "वे जिन्हें हमसे मिलने की आशा नहीं है, कहते हैं, 'इसके अलावा कोई और क़ुरान लाओ या इसे बदल दो'" [यूनुस: 15]। और इब्न मसूद की हदीस (8) कि उन्होंने कहा: "हिन्ता" (गेहूँ) (9) रफ़ा पर एक व्याख्या है। यह सब अन-नह़्हास का कथन है।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/149-150, और मुजाहिद और इब्न अब्बास के विचार अल-तब़री 1/714 द्वारा उद्धृत किए गए हैं। (2) अल-अख़फ़श द्वारा मआनी अल-क़ुरान 1/269, और उल्लिखित पाठ इब्न अबी अबला का है, जिसे इब्न खालवैह ने अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह पृ. 5 में उद्धृत किया है। (3) एराब अल-क़ुरान 1/228। (4) अल-तब़री ने अपनी तफ़सीर 1/717 में, हफ़्स बिन उमर अल-अदनी के माध्यम से, अल-हकम बिन अबान से, इकरीमा से उद्धृत किया है। अल-बैहक़ी ने अल-असमा व अल-सिफ़ात 1/271 में भी इसी मार्ग से उद्धृत किया है, सिवाय इसके कि उन्होंने कहा: इकरीमा से इब्न अब्बास से। हफ़्स बिन उमर अल-अदनी कमज़ोर है, और अल-हकम

बिन अबान सच्चे हैं लेकिन उन्हें कुछ भ्रम हैं। (5) अल-तबरी 1/717-718 द्वारा उद्धृत, और अल-हाकिम 2/262 द्वारा, जिन्होंने इसे प्रमाणित किया। (6) वह थलब हैं, और पाठ अन-नहहास की एराब अल-क़ुरान 1/228 से है। (7) वह अबू अल-नज्म अल-उजली हैं, और रजज़ उनके दीवान पृ. 204 में है, और अल-फ़र्रा की मआनी अल-क़ुरान 2/259 में है। (8) पांडुलिपियों में: "और हदीस के लिए", और स्थापित पाठ अन-नहहास की एराब अल-क़ुरान से है। (9) (D) और (M) में: "हित्तह", और स्थापित पाठ (Z) से है, जो सही है। इब्न मसूद की रिपोर्ट अल-तबरी 1/725 द्वारा और अल-तबरानी द्वारा अल-कबीर (9027) में उद्धृत की गई थी, और इसके शब्द हैं: "लाल गेहूँ जिसमें जौ है।"

اور "سُجَّدًا" (سجدہ کرتے ہوئے): ابن عباس نے فرمایا: رکوع کی حالت میں جھکے ہوئے۔ اور کہا گیا: عاجزی اور انکساری کے ساتھ، کسی خاص ہیئت کے بغیر (۱)۔

پانچواں نکتہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان: "وَقُولُوا" (اور کہو): اس کا عطف "ادخلوا" (داخل ہو جاؤ) پر ہے۔ اور "حِطَّةٌ" رفع (پیش) کے ساتھ جمہور کی قراءت ہے، ایک پوشیدہ مبتدا کی بنیاد پر، یعنی: ہمارا سوال معافی ہے، یا یہ ایک حکایت ہے۔ الاخفش نے کہا: اسے "حِطَّةً" نصب (زبر) کے ساتھ بھی پڑھا گیا ہے، اس معنی میں کہ: ہمارے گناہوں کو ہم سے گرا دے (معاف کر دے) (۲)۔ النحاس نے کہا (۳): ابن عباس سے مروی ہے کہ ان سے کہا گیا: کہو: "لا الہ الا اللہ" (۴)۔ ان سے ایک اور روایت میں ہے کہ ان سے کہا گیا: کہو "مغفرت" (۵)، یہ نصب کی تفسیر ہے، یعنی: ایسی بات کہو جو تمہارے گناہوں کو گرا دے، جیسا کہ کہا جاتا ہے: "اچھی بات کہو"۔ اور قراء کے ائمہ رفع (پیش) پر متفق ہیں، اور یہ لغت کے اعتبار سے زیادہ بہتر ہے؛ اس وجہ سے جو عربوں سے لفظ "بدل" کے معنی میں نقل کیا گیا ہے۔ احمد بن یحییٰ نے کہا (۶): کہا جاتا ہے "بدّلتہ"، یعنی: میں نے اسے بدل دیا لیکن اس کی ذات کو ختم نہیں کیا۔ اور "ابدلتہ": میں نے اس کی ذات اور شخصیت کو ختم کر دیا، جیسا کہ کہا گیا (۷):

"امیر کی معزولی بدلے ہوئے (مبدل) امیر کے لیے"

اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "وہ لوگ جو ہم سے ملنے کی امید نہیں رکھتے کہتے ہیں، 'اس کے علاوہ کوئی اور قرآن لے آؤ یا اسے بدل دو'" [یونس: ۱۵]۔ اور ابن مسعود کی حدیث (۸) کہ انہوں نے کہا: "حِنطۃ" (گندم) (۹) یہ رفع پر تفسیر ہے۔ یہ سب النحاس کا قول ہے۔

(١) المحرر الوجيز ١/ ١٤٩ - ١٥٠، اور مجاہد اور ابن عباس کے اقوال طبری نے ٧١٤/١ میں نکالے ہیں۔ (٢) معانی القرآن لالاخفش ٢٦٩/١، اور مذکورہ قراءت ابن ابی عبلہ کی ہے، جسے ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ٥ میں ذکر کیا ہے۔ (٣) إعراب القرآن ٢٢٨/١۔ (٤) اسے طبری نے اپنی تفسیر ٧١٧/١ میں حفص بن عمر العدنی کے واسطے سے، الحکم بن ابان سے، عکرمہ سے نکالا ہے، اور بیہقی نے بھی الاسماء والصفات ٢٧١/١ میں اسی سند سے نکالا ہے سوائے اس کے کہ انہوں نے کہا: عکرمہ سے، ابن عباس سے۔ حفص بن عمر العدنی ضعیف ہے، اور الحکم بن ابان صدوق ہے مگر اسے اوہام ہیں۔ (٥) اسے طبری نے ٧١٧/١ - ٧١٨ میں اور حاکم نے ٢٦٢/٢ میں نکالا اور اس کی تصحیح کی۔ (٦) وہ ثعلب ہیں، اور یہ کلام النحاس کی إعراب القرآن ٢٢٨/١ سے ہے۔ (٧) وہ ابو النجم العجلی ہیں، اور یہ رجز ان کے دیوان ص ٢٠٤ میں اور فراء کی معانی القرآن ٢٥٩/٢ میں ہے۔ (٨) قلمی نسخوں میں: "ولحديث" ہے، اور متن النحاس کی إعراب القرآن سے ثابت ہے۔ (٩) (د) اور (م) میں: "حطة" ہے، اور (ز) سے ثابت شدہ لفظ صحیح ہے، اور ابن مسعود کی خبر طبری نے ٧٢٥/١ میں اور طبرانی نے الکبیر (٩٠٢٧) میں نکالی ہے، اور اس کے الفاظ ہیں: "سرخ گندم جس میں جو ہے"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 58 [Page] 125

Al-Hasan and Ikrimah said: "Hitta" means: forgive our sins. They were commanded to say: "There is no god but Allah," so that their sins might be forgiven through it (1).

Ibn Jubair said: It means seeking forgiveness (2). Aban ibn Taghlib (3) said: It means repentance. A poet said: He succeeded with the *Hitta* through which Allah made the servant's sin forgiven (4).

Ibn Faris said in "Al-Mujmal" (5): "Hitta" is a word the Children of Israel were commanded to say; if they had said it, their burdens (sins) would have been lifted. Al-Jawhari also said this in "Al-Sihah" (6).

I say: It is possible that they were commanded to worship using this exact word, which is apparent from the Hadith. Muslim (7) narrated from Abu Hurairah that he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "It was said to the Children of Israel: 'Enter the gate prostrating and say, "Hitta" (Repentance), and We will forgive your sins.' [But they changed it] and entered the gate crawling on their buttocks, saying: 'A grain in a hair.'" Bukhari (8) also recorded it and said: "They changed it and said: 'Hitta is a grain in a hair.'" In other than the two "Sahihs" (Bukhari and Muslim), it says: "Wheat in hair" (9). It is also said they said: "Hitta Sumhatha," which is a Hebrew word meaning: red wheat, as related by Ibn Qutaybah (10), and Al-Harawi narrated it from Al-Suddi and Mujahid. Thus, their intention was contrary to what Allah commanded them, so they disobeyed and rebelled.

(1) Tafsir Abd al-Razzaq 1/47, and Tafsir al-Tabari 1/717. (2) Al-Tabari (1/716) narrated through Sa'id ibn Jubayr from Ibn Abbas: "And say 'Hitta'," he said: they were commanded to seek forgiveness. (3) Abu Sa'd, also said Abu Umayyah, al-Raba'i, al-Kufi, al-Shi'i, the reciter, his innovation was minor; the group (of Hadith scholars) narrated from him except Bukhari. Died in the year (141 AH). Al-Siyar 6/308. (4) We did not find its author; Abu Hayyan mentioned it in Al-Bahr 1/217. (5) 1/214. (6) Entry (H-T-T). (7) No. (3015), the part in brackets is from it; it is also in Bukhari (3403), (4641), and Ahmad (8230). (8) No. (4479). (9) Recorded by Ahmad (8110), and according to him: hair; and al-Tabari 1/724, and according to him: barley. (10) In Tafsir Gharib al-Quran p. 50, recorded by al-Tabari 1/725 and Ibn Abi Hatim (593) from Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him) as a Mawquf narration. (11) In (m): And was.

सूरह अल-बक़रह : आयत ५८ [पृष्ठ] १२५

अल-हसन और इक्रमा ने कहा: "हित्ता" का अर्थ है: हमारे पापों को क्षमा करें। उन्हें "ला इलाहा इल्लल्लाह" (अल्लाह के अलावा कोई पूज्य नहीं) कहने का आदेश दिया गया था; ताकि इसके माध्यम से उनके पापों को कम (क्षमा) किया जा सके(१)।

इब्न जुबैर ने कहा: इसका अर्थ है क्षमा माँगना (इस्तिग़फ़ार) (२)। अबान इब्न तग़लिब (३) ने कहा: तौबा (पश्चाताप), एक कवि ने कहा: वह उस 'हित्ता' के साथ सफल हुआ जिसके द्वारा अल्लाह ने अपने सेवक के पाप को क्षमा कर दिया (४)।

इब्न फारिस ने "अल-मुजमल" (५) में कहा: "हित्ता" एक ऐसा शब्द है जिसका आदेश बनी इस्राइल को दिया गया था, अगर वे इसे कहते तो उनके पापों का बोझ कम हो जाता। अल-जौहरी ने भी "अल-सिहाह" (६) में यही कहा है।

मैंने कहा: यह संभव है कि उन्हें इसी शब्द के साथ इबादत करने का आदेश दिया गया हो, जो हदीस से स्पष्ट है; मुस्लिम (७) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "बनी इस्राइल से कहा गया: 'दरवाजे में सजदा करते हुए दाखिल हो और कहो, "हित्ता" (क्षमा), तो हम तुम्हारे पाप क्षमा कर देंगे।' [लेकिन उन्होंने इसे बदल दिया] और अपने कूल्हों के बल रेंगते हुए दाखिल हुए और कहा: 'बाल में दाना'।" बुखारी (८) ने भी इसे रिवायत किया और कहा: "उन्होंने इसे बदल दिया और कहा: 'हित्ता बाल में दाना है'।" 'सहीहैन' के अलावा अन्य में है: "बाल में गेहूं" (९)। और कहा गया है कि उन्होंने कहा: "हित्ता सुमहाथा", जो एक हिब्रू शब्द है, जिसका अर्थ है: लाल गेहूं, इब्न कुतैबा (१०) ने इसे बताया है, और अल-हरवी ने इसे सुद्दी और मुजाहिद से रिवायत किया है। अतः उनका उद्देश्य अल्लाह के आदेश के विपरीत था, इसलिए उन्होंने अवज्ञा और विद्रोह किया।

(१) तफसीर अब्द अल-रज्जाक १/४७, और तफसीर अल-तबरी १/७१७। (२) तबरी (१/७१६) ने सईद इब्न जुबैर के माध्यम से इब्न अब्बास से रिवायत की: "और कहो हित्ता", उन्होंने कहा: उन्हें क्षमा मांगने का आदेश दिया गया था। (३) अबू साद, और कहा गया: अबू उमय्याह, अल-रबई, अल-कुफी, अल-शियी, अल-मुकरी, और उनका नवाचार हल्का था, जमात (हदीस विद्वानों) ने बुखारी को छोड़कर उनसे रिवायत की। वर्ष (१४१ हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार ६/३०८। (४) हमें इसके लेखक का पता नहीं चला, और अबू हय्यान ने इसे अल-बहर १/२१७ में उद्धृत किया है। (५) १/२१४। (६) सामग्री

(ह-त-त)। (७) संख्या (३०१५) और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उससे है, और यह बुखारी (३४०३), (४६४१) और अहमद (८२३०) में है। (८) संख्या (४४७९)। (९) अहमद (८११०) ने इसे रिवायत किया और उनके अनुसार: बाल; और तबरी १/७२४, और उनके अनुसार: जौ। (१०) तफसीर गरीब अल-कुरान पृष्ठ ५० में, अल-तबरी १/७२५ और इब्न अबी हातिम (५९३) द्वारा इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) से मौक़ूफ़ रिवायत के रूप में उद्धृत। (११) (म) में: और था।

سورہ البقرہ : آیت ۵۸ [صفحہ] ۱۲۵

اور حسن اور عکرمہ نے کہا: "حطّہ" کے معنی ہیں: ہمارے گناہ جھاڑ دے (معاف کر دے)، انہیں حکم دیا گیا تھا کہ وہ کہیں: "لا الہ الا اللہ"؛ تاکہ اس کے ذریعے ان کے گناہ جھاڑ دیے جائیں (۱)۔

ابن جبیر نے کہا: اس کا مطلب استغفار (بخشش مانگنا) ہے (۲)۔ ابان بن تغلب (۳) نے کہا: توبہ، شاعر نے کہا: وہ اس 'حطّہ' کے ساتھ کامیاب ہوا جس کے ذریعے اللہ نے اپنے بندے کے گناہ کو بخش دیا (۴)۔

ابن فارس نے "المجمل" (۵) میں کہا: "حطّہ" ایک کلمہ ہے جس کا بنی اسرائیل کو حکم دیا گیا تھا، اگر وہ اسے کہتے تو ان کے گناہ جھڑ جاتے۔ جوہری نے بھی "الصحاح" (۶) میں یہی کہا ہے۔

میں نے کہا: یہ ممکن ہے کہ انہیں اسی لفظ کے ساتھ عبادت کرنے کا پابند کیا گیا ہو، اور حدیث سے یہی ظاہر ہوتا ہے؛ مسلم (۷) نے ابوہریرہ سے روایت کی، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "بنی اسرائیل سے کہا گیا: 'دروازے میں سجدہ کرتے ہوئے داخل ہو اور کہو، "حطّہ" (بخشش)، ہم تمہارے گناہ معاف کر دیں گے'۔ [پس انہوں نے اسے بدل دیا] اور وہ اپنی سرینوں کے بل رینگتے ہوئے داخل ہوئے اور کہا: 'بال میں ایک دانہ'۔" بخاری (۸) نے اسے روایت کیا اور کہا: "پس انہوں نے اسے بدل دیا اور کہا: 'حطّہ بال میں ایک دانہ ہے'۔" 'صحیحین' کے علاوہ میں ہے: "بال میں گندم" (۹)۔ اور کہا گیا ہے کہ انہوں نے کہا: "ہطّا سمہاثا"، جو کہ ایک عبرانی لفظ ہے، جس کی تفسیر ہے: سرخ گندم، اسے ابن قتیبہ (۱۰) نے بیان کیا ہے، اور ہروی نے اسے سدی اور مجاہد سے روایت کیا ہے۔ تو ان کا ارادہ اللہ کے حکم کے خلاف تھا، پس انہوں نے نافرمانی اور سرکشی کی۔

(۱) تفسیر عبد الرزاق ۱/۴۷، اور تفسیر طبری ۱/۷۱۷۔ (۲) طبری (۱/۷۱۶) نے سعید بن جبیر کے واسطے سے ابن عباس سے روایت کیا: "اور کہو حطّہ"، انہوں نے کہا: انہیں حکم دیا گیا تھا کہ وہ استغفار کریں۔ (۳) ابو سعد، اور کہا گیا: ابو امیہ، ربعی، کوفی، شیعی، قاری، اور ان کی بدعت ہلکی تھی، جماعت (محدثین) نے سوائے بخاری کے ان سے روایت کیا۔ وفات سال (۱۴۱ھ)۔ السیر ۶/۳۰۸۔ (۴) ہم اس کے کہنے والے سے واقف نہیں ہو سکے، اور ابو حیان نے اسے البحر ۱/۲۱۷ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) ۱/۲۱۴۔ (۶) مادہ (ح ط ط)۔ (۷) نمبر (۳۰۱۵) اور جو کچھ قوسین میں ہے وہ اسی سے ہے، اور یہ بخاری (۳۴۰۳)، (۴۶۴۱) اور احمد (۸۲۳۰) کے پاس ہے۔ (۸) نمبر (۴۴۷۹)۔ (۹) اسے احمد (۸۱۱۰) نے روایت کیا اور ان کے نزدیک: بال؛ اور طبری ۱/۷۲۴، اور ان کے نزدیک: جو۔ (۱۰) تفسیر غریب القرآن ص ۵۰ میں، اور اسے طبری ۱/۷۲۵ اور ابن ابی حاتم (۵۹۳) نے ابن مسعود رضی اللہ عنہ سے موقوفاً روایت کیا ہے۔ (۱۱) (م) میں: وکان (اور تھا)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 58 126

And they mocked, so Allah punished them with the "rujz", which is the punishment. Ibn Zayd said: It was a plague that destroyed seventy thousand of them (1). And it was narrated that the door was made low so they would enter bowing, but they entered dragging themselves on their buttocks (2) (3). And Allah knows best. Sixth: Some scholars inferred from this verse that changing the prescribed words in the Sharia either involves worship with its wording or with its meaning. If worship occurs with its wording, it is not permissible to change it, due to Allah Almighty's condemnation of those who changed what He commanded with their words. If it occurs with its meaning, it is permissible to change it to what conveys that meaning, and it is not permissible to change it to what deviates from it (4). The scholars have differed on this point. It was narrated from Malik, Ash-Shafi'i, Abu Hanifa, and their companions that it is permissible for a scholar who is knowledgeable about the context of speech and insightful about its individual words to narrate a Hadith by its meaning, but on the condition of complete conformity to the meaning, and this is the view of the majority (5). A large group of scholars prohibited that (6), including Ibn Sirin, Al-Qasim ibn Muhammad, and Raja ibn Haywah (7). Mujahid said: Subtract from the Hadith if you wish, but do not add to it. Malik ibn Anas used to be strict regarding the Hadith of the Messenger of Allah (peace be upon him) concerning the "ta" and "ya" and the like (8). Based on this, a group of the Imams of Hadith do not see it fit to substitute the wording or change it, to the point that they hear it with grammatical errors and know that, yet they do not change it.

(1) Cited by Ibn Atiyyah in "Al-Muharrar Al-Wajiz" 1/151, and Al-Baghawi in his "Tafsir" 1/76 without attributing it. (2) In (M): "So they entered it". (3) Narrated by Al-Tabari 1/724, and Al-Hakim 2/262, on the authority of Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) as a "mawquf" report. He said: Sahih according to the criteria of Muslim. (4) "Ahkam al-Quran" by Ibn al-Arabi 1/21. (5) See "Ikmal al-Mu'allim" 1/94, and "Al-Kifayah fi 'Ilm al-Riwayah" by Al-Khatib Al-Baghdadi p. 300. (6) In (Zah): "And he prohibited that". (7) Abu Nasr al-Kindi, the jurist, the just minister, from the elite of the Tabi'un, died in the year (112 AH). "Al-Siyar" 4/557. (8) See the opinions in "Al-Muhaddith Al-Fasil" (691) (692) (693) (714) (715), and "Al-Kifayah fi 'Ilm Al-Riwayah" pp. 275, 284, 289, and 311, and "Al-Ilma'" p. 179, and "Jami' Bayan al-'Ilm" pp. 104-105.

सूरह अल-बकरा: आयत 58 126

और उन्होंने उपहास किया, इसलिए अल्लाह ने उन्हें "रुज़" के साथ दंडित किया, और वह अज़ाब है। इब्न ज़ैद ने कहा: यह एक प्लेग था जिसने उनमें से सत्तर हज़ार को नष्ट कर दिया (1)। और यह रिवायत है कि दरवाज़ा नीचा बनाया गया था ताकि वे झुककर प्रवेश करें, लेकिन वे अपने कूल्हों के बल घिसटते हुए प्रवेश कर गए (2) (3)। और अल्लाह बेहतर जानता है। छठी: कुछ विद्वानों ने इस आयत से यह अनुमान लगाया है कि शरीयत में निर्धारित शब्दों को बदलना या तो उसके शब्दों के साथ इबादत में शामिल है या उसके अर्थ के साथ। यदि इबादत उसके शब्दों के साथ हुई है, तो उसे बदलना जायज़ नहीं है, क्योंकि अल्लाह तआला ने उन लोगों की निंदा की है जिन्होंने उनके कहे अनुसार उसे बदल दिया। और यदि यह उसके अर्थ के साथ हुआ है, तो उसे उस चीज़ में बदलना जायज़ है जो उस अर्थ को व्यक्त करती है, और उसे उस चीज़ में बदलना जायज़ नहीं है जो उससे बाहर निकलती है (4)। विद्वानों ने इस अर्थ में मतभेद किया है। मलिक, अल-शाफई, अबू हनीफा और उनके साथियों से यह रिवायत है कि उस विद्वान के लिए जायज़ है जो संबोधन के स्थानों से परिचित हो और उसके व्यक्तिगत शब्दों के बारे में जानकारी रखता हो कि वह अर्थ के आधार पर हदीस को बयान करे, लेकिन अर्थ के पूर्ण अनुरूप होने की शर्त पर, और यह बहुमत (जम्हूर) की राय है (5)। और विद्वानों के एक बड़े समूह ने इसे प्रतिबंधित किया (6), जिनमें इब्न सिरीन, अल-कासिम बिन मुहम्मद और रजा बिन हयवाह (7) शामिल थे। मुजाहिद ने कहा: यदि आप चाहें तो हदीस से घटाएं, लेकिन इसमें जोड़ें नहीं। मलिक बिन अनस अल्लाह के रसूल ﷺ की हदीस में 'ता' और 'या' और इसी तरह की चीज़ों के बारे में बहुत सख्त थे (8)। इसके आधार पर, हदीस के इमामों के एक समूह का मानना है कि शब्द को बदलना या उसे बदलना सही नहीं है, यहाँ तक कि वे व्याकरणिक त्रुटियों के साथ सुनते हैं और उसे जानते हैं, फिर भी वे उसे नहीं बदलते हैं।

(1) इब्न अतिय्या ने "अल-मुहर्रर अल-वजीज" 1/151 में और अल-बगवी ने "तफसीर" 1/76 में इसे उद्धृत किया है और इसका श्रेय नहीं दिया है। (2) (म) में: "तो वे उसमें प्रवेश कर गए"। (3) अल-तबरी 1/724 और अल-हाकिम 2/262 ने इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है। उन्होंने कहा: मुस्लिम की शर्त पर सही है। (4) इब्न अल-अरबी की "अहकाम अल-कुरान" 1/21। (5) "इकमाल अल-मुअल्लिम" 1/94 और अल-खतीब अल-बगदादी की "अल-किफाया फी इल्म अल-रिवाया" पृ. 300 देखें। (6) (ज़ह) में: "और इससे मना किया"। (7) अबू नस्र अल-किंदी, फकीह, न्यायप्रिय मंत्री, प्रमुख ताबिईन में से, वर्ष (112 हिजरी) में मृत्यु हुई। "अल-सियर" 4/557। (8) "अल-

मुहद्दिस अल-फासिल" (691) (692) (693) (714) (715), और "अल-किफाया फी इल्म अल-रिवाया" पृष्ठ 275, 284, 289 और 311, और "अल-इल्मा" पृष्ठ 179, और "जामि बयान अल-इल्म" पृष्ठ 104-105 में राय देखें।

سورہ البقرہ: آیت 58 126

اور انہوں نے مذاق اڑایا، چنانچہ اللہ نے انہیں "رجز" کے ذریعے سزا دی، اور وہ عذاب ہے۔ ابن زید نے کہا: وہ طاعون تھا جس نے ان میں سے ستر ہزار کو ہلاک کر دیا (1)۔ اور روایت ہے کہ دروازہ چھوٹا بنایا گیا تھا تاکہ وہ رکوع کی حالت میں داخل ہوں، لیکن وہ اپنی پشتوں کے بل گھسٹتے ہوئے داخل ہوئے (2) (3)۔ اور اللہ بہتر جانتا ہے۔ چھٹی بات: بعض علماء نے اس آیت سے یہ استدلال کیا ہے کہ شریعت میں منصوص اقوال کی تبدیلی اس بات سے خالی نہیں کہ عبادت ان کے الفاظ کے ساتھ ہو یا ان کے معنی کے ساتھ۔ پس اگر عبادت ان کے الفاظ کے ساتھ ہوئی ہو، تو انہیں بدلنا جائز نہیں ہے، کیونکہ اللہ تعالیٰ نے اس شخص کی مذمت کی ہے جس نے اس کے حکم کو اپنے قول سے بدل دیا۔ اور اگر عبادت اس کے معنی کے ساتھ ہوئی ہو، تو اسے ایسی بات سے بدلنا جائز ہے جو اس معنی کو ادا کرے، اور اسے ایسی بات سے بدلنا جائز نہیں جو اس سے خارج ہو جائے (4)۔ اور علماء نے اس معنی میں اختلاف کیا ہے، پس مالک، شافعی، ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب سے مروی ہے کہ خطاب کے مقامات سے باخبر اور اس کے انفرادی کلمات پر بصیرت رکھنے والے عالم کے لیے جائز ہے کہ وہ حدیث کو معنی کے ساتھ نقل کرے، لیکن معنی کی مکمل مطابقت کی شرط پر، اور یہی جمہور کا قول ہے (5)۔ اور علماء کی ایک بڑی جماعت نے اس سے منع کیا ہے (6)، جن میں ابن سیرین، قاسم بن محمد اور رجاء بن حیوہ (7) شامل ہیں۔ مجاہد نے کہا: اگر تم چاہو تو حدیث میں سے کم کر دو لیکن اس میں اضافہ نہ کرو۔ اور مالک بن انس رسول اللہ ﷺ کی حدیث میں "تاء" اور "یاء" اور اس طرح کی چیزوں میں بڑی سختی کرتے تھے (8)۔ اور اسی پر ائمہ حدیث کی ایک جماعت ہے جو لفظ کی تبدیلی یا اس کی تغیر کو جائز

نہیں سمجھتے یہاں تک کہ وہ اسے غلط اعراب کے ساتھ سنتے ہیں اور اسے جانتے بھی ہیں مگر اسے تبدیل نہیں کرتے۔

(1) ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 151/1 میں اور بغوی نے التفسیر 76/1 میں اسے ذکر کیا ہے اور اسے منسوب نہیں کیا۔ (2) (م) میں ہے: "فدخلوه" (تو وہ اس میں داخل ہوئے)۔ (3) اسے طبری 724/1 اور حاکم 262/2 نے ابن عباس رضی اللہ عنہما سے موقوفاً روایت کیا ہے۔ اور کہا: مسلم کی شرط پر صحیح ہے۔ (4) احکام القرآن لابن العربی 21/1۔ (5) دیکھئے اکمال المعلم 94/1، اور الکفایۃ فی علم الروایۃ للخطیب البغدادی ص 300۔ (6) (ظ) میں ہے: "ومنع من ذلك" (اور اس سے منع کیا)۔ (7) ابو نصر الکندی، فقیہ، عادل وزیر، کبار تابعین میں سے، وفات سن 112ھ السیر 557/4۔ (8) المحدث الفاصل (691) (692) (693) (714) (715) میں اقوال دیکھئے، اور الکفایۃ فی علم الروایۃ ص 275، 284، 289 اور 311، اور الالماع ص 179، اور جامع بیان العلم ص 104-105۔

Surah Al-Baqarah: Verse 58

127

Ibn Abi Mijlaz (1) narrated from Qays ibn Abbad, who said: Umar ibn al-Khattab said: "Whoever hears a hadith and narrates it exactly as he heard it, he is safe." Similar reports were narrated from Abdullah ibn Amr and Zayd ibn Arqam.

Likewise is the disagreement regarding presenting or delaying words, and additions or subtractions. Some of them consider the meaning alone and do not adhere strictly to the wording, while others are strict about it and do not depart from the wording (2). That is more cautious for religion, more pious, and better, but most scholars hold the opposite view.

The opinion of permissibility [of narrating by meaning] is the correct one, God willing. This is because what is known from the lives of the Companions, may God be pleased with them, is that they used to narrate the same incidents with different wordings. This was only because they focused their attention on the meanings and did not commit themselves to repeating the hadiths exactly or writing them down.

It was narrated from Wathila ibn al-Asqa' (3) that he said: "Not everything that the Messenger of God ﷺ told us did we convey to you; the meaning is sufficient for you." Qatada narrated from Zurara ibn Awfa (4): "I met a number of the Prophet's ﷺ companions, and they differed in wording but agreed in meaning." Al-Nakha'i, al-Hasan, and al-Sha'bi, may God have mercy on them, used to convey the hadith according to the meaning. Al-Hasan said: "If you get the meaning right, it suffices you" (5). Sufyan al-Thawri, may God have mercy on him, said: "I narrate to you exactly as I heard, so do not believe me, for it is only the meaning" (6). Waki', may God have mercy on him, said: "If the meaning were not broad, people would have perished" (7).

(1) His name is Al-Rudaini. In the copies, it appeared as: "Abu Mijlaz narrated," which is an error; Abu Mijlaz's name is Lahiq ibn Humayd. The report was recorded by al-Ramahurmuzi in 'Al-Muhaddith al-Fasil' (701), and al-Khatib al-Baghdadi narrated it through his path in 'Al-Kifaya' p. 267, but the name Qays ibn Abbad was omitted from his printed edition. (2) 'Al-Muhaddith al-Fasil' (680). (3) One of the people of al-Suffa, he embraced Islam in the year 9 and witnessed the Battle of Tabuk. He was the last of the Companions to die in Damascus in the year 83 AH. 'Al-Siyar' 3/383. (4) Al-Amiri, his kunya is Abu Hajib, the judge of Basra. He died while in morning prayer in the year 93 AH, and he was reciting: {And when the trumpet is blown}. 'Al-Siyar' 4/515. (5)

In version (ظ): "If the meaning is hit upon, it suffices him." (6) Al-Ramahurmuzi recorded the previous statements (or some of them) in 'Al-Muhaddith al-Fasil' (685, 686, 689, 691, 692, 694, 698), and al-Khatib al-Baghdadi in 'Al-Kifaya' pp. 284, 308, 311, and 312, and Ibn Abd al-Barr in 'Jami' Bayan al-Ilm' pp. 102 and 104. See also 'Tadrib al-Rawi' 2/99-100. (7) Al-Suyuti mentioned it in 'Tadrib al-Rawi' 2/101, and attributed it to al-Bayhaqi in 'Al-Madkhal'.

सूरह अल-बकरा: आयत 58

127

इब्न अबी मिजलाज़ (1) ने कैस इब्न अब्बाद से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: उमर इब्न अल-खत्ताब ने कहा: "जिसने कोई हदीस सुनी और उसे वैसा ही बयान कर दिया जैसा उसने सुना था, तो वह सुरक्षित रहा।" इसी तरह की बात अब्दुल्लाह इब्न अम्र और ज़ैद इब्न अरकम से भी रिवायत की गई है।

इसी तरह शब्दों को आगे-पीछे करने, बढ़ाने या घटाने के मामले में भी मतभेद है। उनमें से कुछ अर्थ का महत्त्व देते हैं और शब्दों की परवाह नहीं करते, जबकि कुछ इस मामले में सख्त हैं और शब्दों से अलग नहीं होते (2)। धर्म के मामले में यही अधिक सावधानी वाला, अधिक परहेज़गारी वाला और बेहतर तरीका है, लेकिन अधिकांश विद्वान इसके विपरीत मत रखते हैं।

[अर्थ के आधार पर वर्णन करने की] अनुमति का मत ही सही है, इंशाअल्लाह। इसका कारण यह है कि सहाबा (रज़िअल्लाहु अन्हुम) के जीवन से यह ज्ञात है कि वे एक ही घटना को अलग-अलग शब्दों में बयान करते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि उनका ध्यान अर्थों पर रहता था और वे हदीसों को शब्दशः दोहराने या उन्हें लिखने के लिए प्रतिबद्ध नहीं थे।

वाथिला इब्न अल-असका (3) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "अल्लाह के रसूल ﷺ ने हमें जो कुछ भी बताया, वह सब हमने आप तक नहीं पहुँचाया; आपके लिए अर्थ ही पर्याप्त है।" कतादा ने ज़ुरारा इब्न औफ़ा (4) के हवाले से कहा: "मैं नबी ﷺ के कई साथियों से मिला, और उन्होंने शब्दों में तो मतभेद किया लेकिन अर्थ में वे एकमत थे।" अल-नखई, अल-हसन और अल-शाबी (रहमतुल्लाह अलैहिम) हदीसों को उनके अर्थों के अनुसार बयान करते थे। अल-हसन ने कहा: "यदि आपने अर्थ सही पा लिया, तो यह आपके लिए पर्याप्त है" (5)। सुफ़यान अल-थौरी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने कहा: "मैं आपको वैसा ही बताता हूँ जैसा मैंने सुना, इसलिए मुझ पर विश्वास न करें, क्योंकि यह केवल अर्थ है" (6)। वकी (रहमतुल्लाह अलैहि) ने कहा: "यदि अर्थ में व्यापकता न होती, तो लोग नष्ट हो जाते" (7)।

(1) उनका नाम अल-रुदैनी है। प्रतियों में 'अबू मिजलाज़ ने रिवायत की' छपा है, जो गलत है; अबू मिजलाज़ का नाम लाहिक इब्न हुमैद है। इस रिवायत को अल-रामहुर्मुज़ी ने 'अल-मुहद्दिस अल-फ़ासिल' (701) में दर्ज किया है, और अल-ख़तीब अल-बग़दादी ने 'अल-किफ़ाया' पृष्ठ 267 में उनके माध्यम से इसे उद्धृत किया है, लेकिन उनके मुद्रित संस्करण से कैस इब्न अब्बाद का नाम छूट गया

है। (2) अल-मुहद्दिस अल-फ़ासिल (680)। (3) असहाब-ए-सुफ़्फ़ा में से एक, सन 9 हिजरी में इस्लाम स्वीकार किया और तबुक के युद्ध में भाग लिया। वे सन 83 हिजरी में दमिश्क में मरने वाले अंतिम सहाबी थे। अस-सियार 3/383। (4) अल-आमरी, उनकी कुनियत अबू हाजिब है, बसरा के काजी थे। सन 93 हिजरी में सुबह की नमाज़ के दौरान उनका इंतकाल हुआ, और वे पढ़ रहे थे: {फिर जब सूर फूँका जाएगा}। अस-सियार 4/515। (5) (ظ) प्रति में: "यदि अर्थ मिल जाए, तो उसे पर्याप्त है।" (6) अल-रामहुर्मुज़ी ने 'अल-मुहद्दिस अल-फ़ासिल' (685, 686, 689, 691, 692, 694, 698) में पिछले कथनों (या उनमें से कुछ) को दर्ज किया है, और अल-ख़तीब अल-बग़दादी ने 'अल-किफ़ाया' पृष्ठ 284, 308, 311 और 312 में, और इब्न अब्द अल-बर्र ने 'जामी बयान अल-इल्म' पृष्ठ 102 और 104 में। देखिए 'तदरीब अर-रावी' 2/99-100। (7) अल-सुयुती ने इसे 'तदरीब अर-रावी' 2/101 में उल्लेख किया है, और इसे अल-बैहकी की 'अल-मदखल' से संबंधित बताया है।

سورة البقرہ: آیت 58

127

ابن ابی مِجلز (1) نے قیس بن عباد سے روایت کیا، انہوں نے کہا: عمر بن الخطاب نے فرمایا: "جس نے کوئی حدیث سنی اور اسے ویسے ہی بیان کر دیا جیسے اس نے سنا تھا، تو وہ سلامت رہا۔" اسی طرح کی روایت عبداللہ بن عمرو اور زید بن ارقم سے بھی منقول ہے۔

اسی طرح الفاظ کی تقدیم و تاخیر، اور زیادتی و نقصان میں بھی اختلاف ہے۔ ان میں سے کچھ معنی کا اعتبار کرتے ہیں اور الفاظ کی پرواہ نہیں کرتے، جبکہ کچھ اس میں سختی برتتے ہیں اور الفاظ سے الگ نہیں ہوتے (2)۔ دین کے معاملے میں یہی زیادہ احتیاط والا، زیادہ تقویٰ والا اور بہتر طریقہ ہے، لیکن اکثر علماء کی رائے اس کے برعکس ہے۔

[معنی کے مطابق روایت کرنے کے] جواز کا قول ہی صحیح ہے، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ اس کی وجہ یہ ہے کہ صحابہ کرام رضی اللہ عنہم کی سیرت سے یہ معلوم ہے کہ وہ ایک ہی واقعے کو مختلف الفاظ میں بیان کرتے تھے۔ یہ اس لیے تھا کیونکہ ان کی توجہ معانی پر ہوتی تھی اور وہ حدیثوں کو لفظ بہ لفظ دہرانے یا انہیں لکھنے کے پابند نہیں تھے۔

واثلہ بن الاسقع (3) سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: "رسول اللہ ﷺ نے ہمیں جو کچھ بھی بتایا، وہ سب ہم نے آپ تک نہیں پہنچایا؛ آپ کے لیے معنی ہی کافی ہے۔" قتادہ نے زرارہ بن اوفی (4) کے حوالے سے کہا: "میں نبی ﷺ کے کئی صحابہ سے ملا، انہوں نے الفاظ میں تو اختلاف کیا لیکن معنی پر وہ متفق تھے۔" نخعی، حسن اور شعبی (رحمہم اللہ) حدیثوں کو ان کے معانی کے مطابق بیان کرتے تھے۔ حسن نے کہا: "اگر تم نے معنی درست پا لیا، تو یہ تمہارے لیے کافی ہے" (5)۔

سفیان ثوری (رحمہ اللہ) نے کہا: "میں تمہیں ویسے ہی بتاتا ہوں جیسے میں نے سنا، اس لیے میری تصدیق نہ کرو، کیونکہ یہ صرف معنی ہے" (6)۔ وکیع (رحمہ اللہ) نے کہا: "اگر معنی میں وسعت نہ ہوتی، تو لوگ ہلاک ہو جاتے" (7)۔

(1) ان کا نام الردینی ہے، اور نسخوں میں 'ابو مجلز نے روایت کیا' چھپا ہے، جو غلط ہے؛ ابو مجلز کا نام لاحق بن حمید ہے۔ اس روایت کو رامہرمزی نے 'المحدث الفاصل' (701) میں درج کیا ہے، اور خطیب بغدادی نے 'الکفایہ' ص 267 میں ان کے واسطے سے اسے نقل کیا ہے، لیکن ان کے مطبوعہ نسخے سے قیس بن عباد کا نام گر گیا ہے۔ (2) المحدث الفاصل (680)۔ (3) اصحابِ صفہ میں سے ہیں، سن 9 ہجری میں اسلام قبول کیا اور غزوہ تبوک میں شریک ہوئے۔ وہ سن 83 ہجری میں دمشق میں وفات پانے والے آخری صحابی تھے۔ السیر 3/383۔ (4) العامری، ان کی کنیت ابو حاجب ہے، بصرہ کے قاضی تھے، سن 93 ہجری میں صبح کی نماز کے دوران ان کا انتقال ہوا، اور وہ پڑھ رہے تھے: {پھر جب صور پھونکا جائے گا}۔ السیر 4/515۔ (5) نسخہ (ظ) میں ہے: "اگر معنی مل جائے، تو اسے کافی ہے۔" (6) رامہرمزی نے 'المحدث الفاصل' (685، 686، 689، 691، 692، 694، 698) میں گزشتہ اقوال (یا ان میں سے بعض) کو نقل کیا ہے، اور خطیب بغدادی نے 'الکفایہ' ص 284، 308، 311 اور 312 میں، اور ابن عبد البر نے 'جامع بیان العلم' ص 102 اور 104 میں۔ دیکھیے 'تدریب الراوی' 2/99-100۔ (7) سیوطی نے اسے 'تدریب الراوی' 2/101 میں ذکر کیا ہے، اور اسے بیہقی کی 'المدخل' کی طرف منسوب کیا ہے۔

128 Surah Al-Baqarah: Verse 58

Scholars have agreed on the permissibility of conveying the Sharia to non-Arabs in their own tongues and translating it for them, which is reporting by meaning. Allah has done this in His Book regarding the accounts of what has passed; He narrated stories, mentioning some of them in various places with different wordings but the same meaning, and translating them from their original languages into the Arabic tongue. This involves differences in word order, omissions, cancellations, additions, and subtractions. If it is permissible to substitute Arabic with a foreign language, then doing so within Arabic itself is more worthy of permissibility. Al-Hasan and Ash-Shafi'i (1) argued with this meaning, and it is the correct view on this matter.

If it is said: The Prophet ﷺ said: “May Allah brighten the face of a person who hears my words and conveys them exactly as he heard them.” and he mentioned the Hadith (2). And it is established from him ﷺ that he commanded a man to say at his bedside in a supplication he taught him: “I believe in Your Book which You revealed, and Your Prophet whom You sent.” The man said: “and Your Messenger whom You sent,” so the Prophet ﷺ said: “And Your Prophet (3) whom You sent” (4). They argued: “Do you not see that he did not allow the one he taught the supplication to deviate from the wording, and he said: ‘Convey it as heard’?”

It is said to them: As for his saying: “Convey it as heard,” the intended meaning is its ruling, not its literal wording, because the wording itself is not the primary consideration (5). What indicates to you that the intent of the address is its ruling is his saying: “Many a carrier of Fiqh (understanding) is not himself a Faqih (jurist), and many a carrier of Fiqh conveys it to one who is more knowledgeable than him.”

Furthermore, this very Hadith has been narrated with different wordings while the meaning remains one. While it is possible that all these wordings were spoken by the Prophet ﷺ at different times, it is most likely that it is a single Hadith narrated with different wordings, and this is the strongest evidence for permissibility.

(1) Al-Muhaddith al-Fasil (681). (2) Narrated by Ahmad (4157), and al-Tirmidhi (2657) and (2658) from the hadith of Ibn Mas'ud, may Allah be pleased with him. Al-Tirmidhi said: This is a Hasan Sahih hadith. And narrated by Ahmad (21590), Abu Dawood (3660), and al-Tirmidhi (2656) and graded as Hasan, from the hadith of Zaid bin Thabit, may Allah be pleased with him. And narrated by Ahmad (13350) and Ibn Majah (236) from the hadith of Anas, may Allah be pleased with him. And narrated by Ahmad (16738), from the hadith of Jubair bin Mut'im, may Allah be pleased with him.

(3) In (d), (z), and (m): “and Your Messenger whom You sent… and Your Prophet whom You sent,” and what is established is from (z), which matches Al-Muhaddith al-Fasil p. 531, from which it was copied. (4) Narrated by Ahmad (18588), al-Bukhari (247), and Muslim (2710) from the hadith of al-Bara' bin 'Azib, may Allah be pleased with him. (5) In (m): considered/taken into account.

128 सूरा अल-बकराह: आयत 58

विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि गैर-अरबों को उनकी अपनी भाषा में शरीयत पहुँचाना और उनके लिए उसका अनुवाद करना जायज़ है, जिसे 'अर्थ के आधार पर संचार' (नक़ल बिल-माना) कहा जाता है। अल्लाह ने अपनी किताब में पिछली खबरों के बारे में ऐसा ही किया है; उसने कहानियाँ सुनाईं, उनमें से कुछ का अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग शब्दों में उल्लेख किया, जबकि अर्थ एक ही था, और उन्हें उनकी मूल भाषाओं से अरबी भाषा में अनुवादित किया। इसमें शब्दों के क्रम में बदलाव, विलोपन, रद्दीकरण, वृद्धि और कमी शामिल है। यदि अरबी को विदेशी भाषा से बदलना जायज़ है, तो अरबी के भीतर ही ऐसा करना और भी अधिक जायज़ है। अल-हसन और अल-शफीई (1) ने इसी तर्क का उपयोग किया, और इस विषय में यही सही दृष्टिकोण है।

यदि यह कहा जाए: पैगंबर ﷺ ने कहा: "अल्लाह उस व्यक्ति के चेहरे को रोशन करे जिसने मेरी बात सुनी और उसे वैसे ही पहुँचाया जैसे उसने सुना था।" और हदीस (2) का उल्लेख किया। और यह उनसे ﷺ साबित है कि उन्होंने एक व्यक्ति को अपनी शय्या पर एक दुआ में कहने का आदेश दिया जो उन्होंने उसे सिखाई थी: "मैं आपकी किताब पर ईमान लाया जिसे आपने उतारा, और आपके नबी पर जिन्हें आपने भेजा।" उस व्यक्ति ने कहा: "और आपके रसूल पर जिन्हें आपने भेजा," तो पैगंबर ﷺ ने कहा: "और आपके नबी (3) पर जिन्हें आपने भेजा" (4)। उन्होंने तर्क दिया: "क्या आप नहीं देखते कि उन्होंने उसे जिसे दुआ सिखाई थी, शब्दों में बदलाव की अनुमति नहीं दी, और कहा: 'इसे वैसा ही पहुँचाओ जैसा सुना'?"

उनसे कहा गया: जहाँ तक उनके इस कथन का सवाल है: "इसे वैसा ही पहुँचाओ जैसा सुना," तो इसका अर्थ इसका हुक्म (आदेश) है, न कि इसके शब्द, क्योंकि शब्द स्वयं में प्राथमिक विचारणीय (5) नहीं हैं। आपको जो बात यह संकेत देती है कि संबोधन का उद्देश्य उसका हुक्म है, वह उनका यह कथन है: "बहुत से फ़िक़्ह (समझ) के वाहक स्वयं फ़क़ीह (विद्वान) नहीं होते, और बहुत से फ़िक़्ह के वाहक इसे उस व्यक्ति तक पहुँचाते हैं जो उनसे अधिक जानकार होता है।"

इसके अलावा, यह हदीस स्वयं अलग-अलग शब्दों के साथ वर्णित की गई है जबकि अर्थ एक ही है। हालाँकि यह संभव है कि ये सभी शब्द पैगंबर ﷺ द्वारा अलग-अलग समय पर बोले गए हों, लेकिन सबसे अधिक संभावना यही है कि यह एक ही हदीस है जिसे अलग-अलग शब्दों के साथ वर्णित किया गया है, और यह अनुमति का सबसे बड़ा प्रमाण है।

(1) अल-मुहद्दिस अल-फासिल (681)। (2) इसे अहमद (4157), और अल-तिर्मिज़ी (2657) और (2658) ने इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। अल-तिर्मिज़ी ने कहा: यह हदीस हसन सहीह है। और इसे अहमद (21590), अबू दाऊद (3660), और अल-तिर्मिज़ी (2656) ने उद्धृत किया और इसे हसन कहा, ज़ैद बिन साबित (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से। और इसे अहमद (13350) और इब्न माजाह (236) ने अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया। और इसे अहमद (16738) ने जुबैर बिन मुतइम (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया। (3) (द), (ज़), और (म) में: "और आपके रसूल जिन्हें आपने भेजा... और आपके नबी जिन्हें आपने भेजा," और जो स्थापित है वह (ज़) से है, जो अल-मुहद्दिस अल-फासिल पृष्ठ 531 के अनुरूप है, जहाँ से इसे लिया गया है। (4) इसे अहमद (18588), अल-बुखारी (247), और मुस्लिम (2710) ने अल-बरा बिन आज़िब (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। (5) (म) में: मान्य/मानक।

128 سورة البقرہ: آیت 58

علماء کا اس بات پر اتفاق ہے کہ غیر عربوں (عجم) کے لیے ان کی اپنی زبان میں شریعت کی منتقلی اور ان کے لیے اس کا ترجمہ کرنا جائز ہے، اور یہی "نقل بالمعنی" (مفہوم کے ساتھ بیان کرنا) ہے۔ اللہ تعالیٰ نے اپنی کتاب میں گزشتہ اقوام کی خبروں کے بارے میں یہی کیا ہے؛ اس نے قصے بیان کیے، ان میں سے بعض کا ذکر مختلف مقامات پر مختلف الفاظ میں کیا لیکن معنی ایک ہی تھا، اور انہیں ان کی اپنی زبانوں سے عربی زبان میں منتقل کیا، جو کہ تقدیم و تاخیر، حذف و منسوخی، اور کمی و بیشی میں ان سے مختلف ہے۔ جب عربی کو عجمی زبان سے بدلنا جائز ہے، تو عربی زبان کے اندر (ایک لفظ کو دوسرے سے بدلنا) تو بدرجہ اولیٰ جائز ہے۔ حسن بصری اور امام شافعی (1) نے اسی مفہوم سے استدلال کیا ہے، اور اس باب میں یہی صحیح قول ہے۔

اگر یہ کہا جائے: نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "اللہ اس شخص کو تروتازہ رکھے جس نے میری بات سنی اور اسے ویسے ہی پہنچا دیا جیسے سنا تھا۔" اور حدیث (2) ذکر کی۔ اور یہ بھی آپ ﷺ سے ثابت ہے کہ آپ نے ایک شخص کو سوتے وقت پڑھی جانے والی دعا سکھاتے ہوئے حکم دیا کہ وہ کہے: "میں آپ کی اس کتاب پر ایمان لایا جو آپ نے نازل کی، اور آپ کے اس نبی پر جسے آپ نے بھیجا" تو اس شخص نے کہا: "اور آپ کے اس رسول پر جسے آپ نے بھیجا"، تو نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "اور آپ کے اس نبی (3) پر جسے آپ نے بھیجا" (4)۔ انہوں نے (معترضین نے) کہا: کیا آپ نہیں دیکھتے کہ آپ ﷺ نے جس شخص کو دعا سکھائی اسے لفظ کی مخالفت کی اجازت نہیں دی، اور فرمایا: "اسے ویسے ہی ادا کیا جیسے سنا تھا"؟

انہیں جواب دیا گیا: جہاں تک آپ ﷺ کے اس قول "اسے ویسے ہی ادا کیا جیسے سنا تھا" کا تعلق ہے، تو اس سے مراد اس کا حکم ہے نہ کہ اس کے الفاظ، کیونکہ الفاظ خود مقصود (5) نہیں ہیں۔

اس بات کی دلیل کہ خطاب سے مراد اس کا حکم ہے، آپ ﷺ کا یہ فرمان ہے: "کئی فقہ (علم) کے حامل خود فقیہ نہیں ہوتے، اور کئی فقہ کے حامل اسے اس تک پہنچاتے ہیں جو ان سے زیادہ سمجھ رکھنے والا ہوتا ہے۔"

مزید یہ کہ یہ حدیث بذاتِ خود مختلف الفاظ کے ساتھ نقل ہوئی ہے جبکہ معنی ایک ہی ہے، اگرچہ یہ ممکن ہے کہ یہ تمام الفاظ مختلف اوقات میں نبی کریم ﷺ کے ارشادات ہوں، لیکن غالب گمان یہی ہے کہ یہ ایک ہی حدیث ہے جسے مختلف الفاظ میں نقل کیا گیا ہے، اور یہی جواز کی سب سے بڑی دلیل ہے۔

(1) المحدث الفاصل (681)۔ (2) اسے احمد (4157)، ترمذی (2657) اور (2658) نے حضرت ابن مسعود رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ اور اسے احمد (21590)، ابوداؤد (3660)، اور ترمذی (2656) نے روایت کیا اور اسے حسن قرار دیا، حضرت زید بن ثابت رضی اللہ عنہ کی حدیث سے۔ اور اسے احمد (13350) اور ابن ماجہ (236) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا۔ اور اسے احمد (16738) نے حضرت جبیر بن مطعم رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا۔ (3) (د)، (ظ) اور (م) میں ہے: "اور آپ کے رسول جسے آپ نے بھیجا... اور آپ کے نبی جسے آپ نے بھیجا"، اور جو (متن میں) ثابت ہے وہ (ز) سے ہے، جو المحدث الفاصل ص 531 کے مطابق ہے، اور وہیں سے یہ نقل کیا گیا ہے۔ (4) اسے احمد (18588)، بخاری (247)، اور مسلم (2710) نے حضرت براء بن عازب رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (5) (م) میں ہے: معتد (معتبر)۔

Page 129 Surah Al-Baqarah, Ayah 58

As for the Prophet (peace be upon him) correcting the man's statement from "and by Your Messenger" to "and Your Prophet"(1), it is because "Prophet"(2) is more laudatory, and each of these two descriptions has its place. Do you not see that the title "Messenger" (Rasul) applies to everyone, while the title "Prophet" (Nabi) is only deserved by the Prophets (peace be upon them)? Indeed, the Messengers among the Prophets were favored because they combined both Prophethood and Message. So when he said "and Your Prophet," he brought the more laudatory description, then qualified it with the message by saying "whom You have sent."

Also, his move from "and Your Messenger" to "and Your Prophet" was to combine Prophethood and Message. It is considered linguistically unrefined to say: "This is so-and-so's messenger whom he sent," or "This is Zaid's victim whom he killed," because it's sufficient to say "so-and-so's messenger" or "Zaid's victim" without repeating the sender or the killer, since you're only repeating the original meaning. It is only appropriate to say: "This is Abdullah's messenger whom he sent to Amr," or "This is Zaid's victim whom he killed yesterday," or "at such-and-such an occurrence." And Allah is the Giver of success(3).

If it is said: If it was permissible for the first narrator to change the words of the Messenger (peace be upon him), then it would be permissible for the second to change the words of the first, and this would lead to the total obliteration of the Hadith due to the precision and subtle nature of the differences.

It is replied: Permission is conditional on correspondence and equality as we mentioned; if they are absent, it is not permissible.

Ibn al-Arabi said: Disagreement on this issue can only be imagined by looking at the era of the Companions and the Followers (Tabi'un) because of their equal mastery of the natural, intuitive language. As for those after them, we have no doubt(4) that it is not permissible, as dispositions have changed, understandings have diverged, and customs have differed. And this is the truth(5). And Allah knows best.

Some of our scholars said: Ibn al-Arabi (may Allah have mercy on him) was overly cautious, for if permissibility exists when...

---

(1) In (D), (Zah), and (M): "and Your Messenger" to "and Your Prophet"; what is established is from (Z), which matches "Al-Muhaddith al-Fasil." (2) In (Z): "for the word

Prophet"; in (M): "because the word Prophet"; what is established is from (D) and (Zah), which matches "Al-Muhaddith al-Fasil." In (Zah), (M), and the margin of (Z), there is the addition of the ﷺ symbol, which is unnecessary. (3) Al-Muhaddith al-Fasil, pp. 531-532. (4) In (D) and (Z): "there is no doubt"; in (Zah): "doubt"; what is established is from (M). (5) See Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi, 1/22.

पृष्ठ 129 सूरह अल-बकराह, आयत 58

जहाँ तक पैगंबर (उन पर शांति हो) द्वारा उस व्यक्ति के कथन को "और आपके रसूल (संदेशवाहक)" से बदलकर "और आपके नबी (पैगंबर)"(1) करने की बात है, तो इसलिए कि "नबी"(2) शब्द अधिक प्रशंसात्मक है, और इन दोनों विशेषणों में से प्रत्येक का अपना स्थान है। क्या आप नहीं देखते कि "रसूल" (संदेशवाहक) शब्द सभी पर लागू होता है, जबकि "नबी" (पैगंबर) का खिताब केवल पैगंबरों (उन पर शांति हो) का ही अधिकार है? वास्तव में, पैगंबरों के बीच रसूलों को इसलिए वरीयता दी गई क्योंकि उन्होंने पैगंबरत्व (नबुव्वत) और संदेशवाहक (रिसालत) दोनों को संयोजित किया। इसलिए जब उन्होंने कहा: "और आपके नबी", तो उन्होंने अधिक प्रशंसात्मक विशेषण का प्रयोग किया, फिर उसे संदेशवाहक के साथ यह कहकर सीमित किया: "जिसे आपने भेजा है"।

इसके अलावा, "और आपके रसूल" से "और आपके नबी" की ओर बदलाव नबुव्वत और रिसालत को एक साथ लाने के लिए था। भाषण में यह अनुचित माना जाता है कि आप कहें: "यह अमुक का रसूल है जिसे उसने भेजा है", या "यह ज़ैद का वध किया हुआ है जिसे उसने मारा है"; क्योंकि "अमुक का रसूल" या "ज़ैद का वध किया हुआ" कहना ही काफी है, भेजने वाले या मारने वाले को दोबारा दोहराने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि इससे कोई नया अर्थ नहीं निकलता। यह कहना केवल तभी उचित है: "यह अब्दुल्ला का रसूल है जिसे उसने अम्र के पास भेजा था", या "यह ज़ैद का वध किया हुआ है जिसे उसने कल मारा था", या "अमुक घटना में"। और अल्लाह ही सफलता देने वाला है(3)।

यदि यह कहा जाए: यदि पहले वर्णनकर्ता के लिए रसूल (उन पर शांति हो) के शब्दों को बदलना जायज़ (वैध) था, तो दूसरे के लिए पहले वाले के शब्दों को बदलना जायज़ होगा, और इससे सूक्ष्म अंतरों के मिट जाने के कारण हदीस पूरी तरह से विलुप्त हो सकती है।

उन्हें उत्तर दिया गया: यह वैधता केवल अनुरूपता और समानता की शर्त पर है जैसा कि हमने उल्लेख किया है, यदि वे अनुपस्थित हैं तो यह जायज़ नहीं है।

इब्न अल-अरबी ने कहा: इस मुद्दे पर असहमति केवल सहाबा (साथियों) और ताबेईन के युग को ध्यान में रखकर ही सोची जा सकती है क्योंकि उनकी प्राकृतिक, भाषाई समझ समान थी। जहाँ तक उनके बाद वालों की बात है, तो हमें इसमें कोई संदेह नहीं(4) कि यह जायज़ नहीं है, क्योंकि स्वभाव बदल गए हैं, समझ में भिन्नता आ गई है, और रीति-रिवाज बदल गए हैं, और यही सत्य है(5)। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

हमारे कुछ विद्वानों ने कहा: इब्न अल-अरबी (अल्लाह उन पर दया करे) ने अधिक सावधानी बरती है, क्योंकि यदि वैधता तब है जब...

---

(1) (द), (ज़ह) और (म) में: "और आपके रसूल" से "और आपके नबी" तक; (ज़) में जो स्थापित है वही "अल-मुहद्दिस अल-फासिल" के अनुरूप है। (2) (ज़) में: "क्योकि शब्द नबी", (म) में "क्योकि शब्द नबी"; (द) और (ज़ह) में जो स्थापित है वही "अल-मुहद्दिस अल-फासिल" के अनुरूप है। (ज़ह), (म) और (ज़) के हाशिये में ﷺ का प्रतीक जोड़ा गया है, जिसकी आवश्यकता नहीं है। (3) अल-मुहद्दिस अल-फासिल, पृष्ठ 531-532। (4) (द) और (ज़) में: "कोई संदेह नहीं", (ज़ह) में: "संदेह"; (म) से स्थापित है। (5) इब्न अल-अरबी द्वारा अहकाम अल-कुरान देखें, 1/22।

صفحہ ۱۲۹ سورۃ البقرہ، آیت ۵۸

اور جہاں تک آپ (صلی اللہ علیہ وسلم) کا اس شخص کے قول کو "اور آپ کے رسول کے ذریعے" سے "اور آپ کے نبی کے ذریعے"(1) کی طرف بدلنا ہے، تو بے شک لفظ "نبی"(2) زیادہ تعریف والا ہے، اور ان دونوں صفتوں میں سے ہر ایک کا اپنا مقام ہے۔ کیا آپ نہیں دیکھتے کہ رسول کا نام سب پر صادق آتا ہے، جبکہ نبی کے نام کے مستحق صرف انبیاء (علیہم السلام) ہی ہیں؟ اور انبیاء میں سے رسولوں کو اس لیے فضیلت دی گئی کہ انہوں نے نبوت اور رسالت دونوں کو جمع کیا۔ چنانچہ جب آپ نے فرمایا: "اور آپ کے نبی"، تو آپ زیادہ تعریف والی صفت لائے، پھر اسے اپنے اس قول کے ساتھ رسالت سے مقید کیا: "جسے آپ نے بھیجا"۔

نیز؛ ان کا اپنے قول "اور آپ کے رسول" سے "اور آپ کے نبی" کی طرف منتقل ہونا نبوت اور رسالت کو جمع کرنے کے لیے تھا۔ اور کلام میں یہ ناپسندیدہ ہے کہ آپ کہیں: "یہ فلاں کا رسول ہے جسے اس نے بھیجا"، اور "یہ زید کا مقتول ہے جسے اس نے قتل کیا"؛ کیونکہ آپ کا یہ کہنا کافی ہے: "فلاں کا رسول" اور "فلاں کا مقتول"، بھیجنے والے اور قاتل کے تکرار کی ضرورت نہیں؛ کیونکہ آپ اس سے سوائے پہلے معنی کے کچھ فائدہ حاصل نہیں کرتے۔ یہ کہنا تبھی بہتر ہے: "یہ عبداللہ کا رسول ہے جسے اس نے عمرو کی طرف بھیجا"، اور "یہ زید کا مقتول ہے جسے اس نے کل قتل کیا"، یا "فلاں واقعے میں"۔ اور اللہ ہی توفیق دینے والا ہے(3)۔

اگر کہا جائے: اگر پہلے راوی کے لیے رسول اللہ (صلی اللہ علیہ وسلم) کے الفاظ بدلنا جائز ہے، تو دوسرے کے لیے پہلے کے الفاظ بدلنا جائز ہوگا، اور یہ دقیق فرقوں کے مٹ جانے کی وجہ سے حدیث کو مکمل طور پر ختم کرنے کا باعث بنے گا۔

اس سے کہا گیا: جواز مطابقت اور مساوات کی شرط کے ساتھ مشروط ہے جیسا کہ ہم نے ذکر کیا، اگر وہ مفقود ہوں تو جائز نہیں۔

ابن العربی نے کہا: اس مسئلے میں اختلاف کا تصور صحابہ اور تابعین کے دور کو مدنظر رکھتے ہوئے ہی کیا جا سکتا ہے کیونکہ ان کی فطری لسانی معرفت برابر تھی، رہا ان کے بعد والوں کا معاملہ، تو ہمیں اس میں شک نہیں(4) کہ یہ جائز نہیں ہے، کیونکہ طبیعتیں بدل گئی ہیں، فہم و ادراک میں تفاوت آ گیا ہے، اور عادات مختلف ہو گئی ہیں، اور یہی حق ہے(5)۔ واللہ اعلم۔

ہمارے بعض علماء نے کہا: ابن العربی (رحمہ اللہ) نے بہت احتیاط سے کام لیا ہے، کیونکہ جواز اگر...

---

(1) (د) اور (ظ) اور (م) میں: "اور آپ کے رسول" سے "اور آپ کے نبی" تک؛ اور (ز) سے ثابت شدہ وہی ہے جو "المحدث الفاصل" کے موافق ہے۔ (2) (ز) میں: "پس لفظ نبی"، اور (م) میں "کیونکہ لفظ نبی"؛ اور (د) اور (ظ) سے ثابت شدہ وہی ہے جو "المحدث الفاصل" کے موافق ہے۔ اور (ظ) اور (م) اور (ز) کے حاشیہ میں ﷺ کا اضافہ ہوا ہے، جس کی ضرورت نہیں۔ (3) المحدث الفاصل ص ٥٣١ - ٥٣٢ ۔ (4) (د) اور (ز) میں: "پس شک نہیں کرتا"، اور (ظ) میں: "شک"؛ اور (م) سے ثابت شدہ ہے۔ (5) دیکھئے احکام القرآن ابن العربی ٢٢/١ ۔

130 Surah Al-Baqarah: Verse 58

...conditioned on conformity, so there is no difference between the time of the Companions and the Successors and the time of others; for this reason, none of the scholars of principles (Usuliyyun) or the people of Hadith preferred this detail. Yes, if he had said: conformity in his time is further, it would have been closer [to the truth], and Allah knows best.

The Seventh: The words of the Almighty: "your sins will be forgiven you" [tughfar lakum khatiatukum] – Nafi' read it with a 'ya' [yughfar] and a damma [on it]. Ibn 'Amir (1) read it with a 'ta' [tughfar] and a damma [on it], which is also the reading of Mujahid. The rest read it with a 'nun' [naghfir] and with accusative case [on 'khatayakum'] (2), and this is the clearest of them; because what precedes it is: "And [recall] when We said, 'Enter...'"; so "naghfir" follows as a report from Allah Almighty, and the implied meaning is: And We said: enter the gate prostrating, We will forgive. And because what follows it is: "And We will increase" [wa-sanazidu] with a 'nun'. And "khatayakum" follows the script (sawad), and it follows its norm (3).

The reasoning for those who read with 'ta' is that it is feminine because the word "khataya" is feminine; as it is (4) a broken plural of "khati'ah" (sin). The reasoning for the reading with 'ya' is that it is masculine because of the separation between the feminine [subject] and its verb, as mentioned previously in His saying: "Then Adam received words from his Lord" (5). Using 'ya' or 'ta' is appropriate even if what preceded it was a report from Allah Almighty in His saying: "And [recall] when We said"; because it is known that only Allah Almighty forgives the sins of the wrongdoers, so the 'nun' was dispensed with, and the verb was referred back to the forgiven sins (6).

The Eighth: There was a difference of opinion regarding the origin of "khataya", which is the plural of "khati'ah", with a hamza (7). Al-Khalil (8) said: The origin of "khataya" should have been "khatayi'", then it was transposed and became "khata'i", with a hamza followed by a 'ya'. Then the 'ya' was replaced by an obligatory 'alif', so you say "khata'a". When two 'alifs' met with a hamza between them—and the hamza is of the same genus as 'alif'—it was as if you had combined three 'alifs', so the hamza was replaced.

(1) In (z): The reading of Nafi' and those who followed him from the people of Madinah... and Ibn 'Amir and those who followed him from the people of Sham. (2) As-Sab'ah fi al-Qira'at p. 156, and At-Taysir for Ad-Dani p. 73, and the reading of

Mujahid is mentioned by An-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/230. (3) I'rab al-Qur'an for An-Nahhas 1/230. (4) In (z) and (zha): because it (masculine). (5) 1/484 - 485. (6) Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at 1/243. (7) In (m): with a hamza. (8) Al-'Ayn 4/292, and quoted through An-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/229.

130 सूरा अल-बक़रह: आयत 58

...अनुरूपता पर शर्तबद्ध है, इसलिए सहाबा और ताबिईन के समय और दूसरों के समय के बीच कोई अंतर नहीं है; इस कारण से, उसूलियों या हदीस के विद्वानों में से किसी ने भी इस विस्तार को प्राथमिकता नहीं दी है। हाँ, अगर उन्होंने कहा होता: उनके समय में अनुरूपता और अधिक दूर है, तो यह सत्य के अधिक निकट होता, और अल्लाह बेहतर जानता है।

सातवाँ: सर्वशक्तिमान का कथन: "तुम्हारे पाप क्षमा कर दिए जाएंगे" [तुग़फ़र लकुम ख़तीअतुकुम] - नाफ़े ने इसे 'या' के साथ और दम्मा के साथ [युग़फ़र] पढ़ा है। इब्न आमिर (1) ने इसे 'ता' के साथ और दम्मा के साथ [तुग़फ़र] पढ़ा है, जो मुजाहिद का भी पाठ है। बाकी लोगों ने इसे 'नून' के साथ और 'ख़तायाकुम' को नसब (accusative case) के साथ [नग़फ़िर] पढ़ा है (2), और यह उनमें से सबसे स्पष्ट है; क्योंकि इससे पहले है: "और जब हमने कहा, 'प्रवेश करो...'", इसलिए "नग़फ़िर" अल्लाह सर्वशक्तिमान की ओर से एक समाचार के रूप में आता है, और इसका भाव है: और हमने कहा: द्वार में सजदा करते हुए प्रवेश करो, हम क्षमा करेंगे। और इसलिए कि इसके बाद "वा-सनज़ीदु" (और हम बढ़ाएंगे) 'नून' के साथ है। और "ख़तायाकुम" लेखन (सवाद) का अनुसरण करता है, और यह अपने नियम पर है (3)।

जिसने 'ता' के साथ पढ़ा उसका तर्क यह है कि इसे स्त्रीलिंग माना गया क्योंकि "ख़ताया" शब्द स्त्रीलिंग है; क्योंकि यह (4) "ख़तीअह" (पाप) का बहुवचन है। 'या' के साथ पढ़ने का तर्क यह है कि इसे पुल्लिंग माना गया क्योंकि स्त्रीलिंग [विषय] और उसकी क्रिया के बीच व्यवधान आ गया है, जैसा कि उनके इस कथन में पहले उल्लेख किया गया है: "फिर आदम ने अपने रब से कुछ शब्द प्राप्त किए" (5)। 'या' या 'ता' का प्रयोग उचित है भले ही उससे पहले अल्लाह सर्वशक्तिमान की ओर से उनके इस कथन में समाचार दिया गया हो: "और जब हमने कहा"; क्योंकि यह ज्ञात है कि केवल अल्लाह सर्वशक्तिमान ही पापियों के पापों को क्षमा करता है, इसलिए 'नून' की आवश्यकता नहीं रही, और क्रिया को क्षमा किए गए पापों की ओर वापस संदर्भित कर दिया गया (6)।

आठवां: "ख़ताया" के मूल के बारे में मतभेद था, जो हमज़ा के साथ "ख़तीअह" का बहुवचन है (7)। अल-ख़लील (8) ने कहा: "ख़ताया" का मूल "ख़तायिइ" होना चाहिए था, फिर इसे उलट दिया गया और "ख़ताइ" कहा गया, जिसमें हमज़ा के बाद 'या' है। फिर 'या' को अनिवार्य रूप से 'अलिफ़' में बदल दिया गया, तो आप कहते हैं: "ख़ताआ"। जब दो 'अलिफ़' मिले और उनके बीच एक हमज़ा था

- और हमज़ा 'अलिफ़' की ही जाति का है - तो ऐसा लगा जैसे आपने तीन 'अलिफ़' मिला दिए हों, इसलिए हमज़ा को बदल दिया गया।

(1) (ज़) में: नाफ़े और मदीना के लोगों में से उनके अनुयायियों का पाठ... और इब्न आमिर और शाम के लोगों में से उनके अनुयायियों का पाठ। (2) अस-सब'आ फ़िल-क़िराआत पृ. 156, और अत-तयसीर लि-दानी पृ. 73, और मुजाहिद के पाठ का उल्लेख अल-नहहास ने इराब अल-कुरान 1/230 में किया है। (3) इराब अल-कुरान लि-नहहास 1/230। (4) (ज़) और (ज़ा) में: क्योंकि वह (पुल्लिंग)। (5) 1/484 - 485। (6) अल-कश्फ़ 'अन वुजूह अल-क़िराआत 1/243। (7) (म) में: हमज़ा के साथ। (8) अल-ऐन 4/292, और अल-नहहास के माध्यम से इराब अल-कुरान 1/229 में उद्धृत।

۱۳۰ سورة البقرہ : آیت ۵۸

...مطابقت کے ساتھ مشروط ہے، اس لیے صحابہ اور تابعین کے زمانے اور دوسروں کے زمانے میں کوئی فرق نہیں؛ اسی وجہ سے اصولیوں اور اہل حدیث میں سے کسی نے اس تفصیل کو ترجیح نہیں دی۔ ہاں، اگر وہ کہتا: اس کے زمانے میں مطابقت زیادہ بعید ہے، تو یہ زیادہ قریب (درست) ہوتا، اور اللہ بہتر جانتا ہے۔

ساتویں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿تُغْفَرْ لَكُمْ خَطِيئَتُكُمْ﴾ نافع کی قرأت 'یاء' اور 'ضمہ' کے ساتھ [یُغفر] ہے۔ اور ابن عامر (۱) کی 'تاء' اور 'ضمہ' کے ساتھ [تُغفر]، اور یہی مجاہد کی قرأت ہے۔ اور باقیوں نے اسے 'نون' اور 'نصب' کے ساتھ پڑھا ہے (۲)، اور یہ سب سے زیادہ واضح ہے؛ کیونکہ اس سے پہلے ہے: ﴿وَإِذْ قُلْنَا ادْخُلُوا﴾ تو «نغفر» اللہ تعالیٰ کی طرف سے خبر دینے کے طور پر جاری ہوا، اور تقدیر (مراد) یہ ہے کہ: اور ہم نے کہا: سجدہ کرتے ہوئے دروازے میں داخل ہو جاؤ، ہم معاف کر دیں گے۔ اور اس لیے کہ اس کے بعد «وسَنَزِيدُ» نون کے ساتھ ہے۔ اور «خطایاکم» رسم الخط (سواد) کی پیروی میں ہے، اور یہ اپنے قاعدے پر ہے (۳)۔

اور جس نے 'تاء' کے ساتھ پڑھا اس کی وجہ یہ ہے کہ اس نے اسے مؤنث قرار دیا کیونکہ لفظ "خطایا" مؤنث ہے؛ اس لیے کہ وہ (۴) "خطيئة" کی جمع تکسیر ہے۔ اور 'یاء' کے ساتھ قرأت کی وجہ یہ ہے کہ اسے مذکر لایا گیا کیونکہ مؤنث اور اس کے فعل کے درمیان فاصلہ آ گیا ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد میں پہلے گزرا ہے: ﴿فَتَلَقَّىٰ آدَمُ مِن رَّبِّهِ كَلِمَاتٍ﴾ (۵)۔ اور 'یاء' اور 'تاء' لانا بہتر ہے اگرچہ اس سے پہلے اللہ تعالیٰ کی طرف سے خبر دی گئی تھی اس قول میں: ﴿وَإِذْ قُلْنَا﴾؛ کیونکہ یہ معلوم ہے کہ گناہ گاروں کے گناہ اللہ تعالیٰ کے سوا کوئی معاف نہیں کرتا، اس لیے 'نون' سے بے نیازی برتی گئی، اور فعل کو بخشے گئے گناہوں (خطایا) کی طرف لوٹا دیا گیا (۶)۔

آٹھویں: "خطايا" کی اصل کے بارے میں اختلاف ہے جو کہ "خطيئة" کی جمع ہے، ہمزہ کے ساتھ (۷)۔ خلیل (۸) نے کہا: «خطايا» کی اصل یہ تھی کہ «خَطايئ» کہا جاتا، پھر اسے الٹ دیا گیا، تو «خطائي» کہا گیا، ہمزہ کے بعد یاء کے ساتھ، پھر یاء کو الف سے بدل دیا گیا جو کہ بدلہ لازم ہے، تو تم کہو گے: «خطاءا»، پھر جب دو الف جمع ہوئے جن کے درمیان ہمزہ تھا - اور ہمزہ الف کی جنس سے ہے - تو تم ایسے ہو گئے جیسے تم نے تین الف جمع کر دیے ہوں، تو ہمزہ کو بدل دیا گیا۔

(۱) (ز) میں: نافع اور اہل مدینہ میں سے ان کی اتباع کرنے والوں کی قرأت... اور ابن عامر اور اہل شام میں سے ان کی اتباع کرنے والوں کی۔ (۲) السبعہ فی القراءات ص ۱۵۶، اور التیسیر للدانی ص ۷۳، اور مجاہد کی قرأت کو نحاس نے اعراب القرآن ۱/ ۲۳۰ میں ذکر کیا ہے۔ (۳) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۳۰۔ (۴) (ز) اور (ظ) میں: کیونکہ وہ (مذکر)۔ (۵) ۱/ ۴۸۴ - ۴۸۵۔ (۶) الکشف عن وجوہ القراءات ۱/۲۴۳۔ (۷) (م) میں: ہمزہ کے ساتھ۔ (۸) العین ۴/ ۲۹۲، اور اسے نحاس کے واسطے سے اعراب القرآن ۱/۲۲۹ میں نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 59 131

... with a 'ya', so I said: 'khataya' (sins). As for Sibawayh (1): his view is that the origin is like the first: 'khatayi'', then it became mandatory because of this to replace the 'ya' with a 'hamza' as you did in 'mada'in', so you say: 'khata'i'', but two 'hamzas' do not meet in one word, so you replaced the second with a 'ya', and said: 'khata'i', then you treated it as you treated the first. Al-Farra' said: 'khataya' is the plural of 'khatiyyah', without a hamza, as you say: 'hadiyyah' (gift) and 'hadaya' (gifts). Al-Farra' said: If you were to pluralize 'khati'ah' (sin) with a hamza, you would say: 'khata'a'. Al-Kisa'i said: If you pluralized it with a hamza, you would merge one hamza into the other, as you say: 'dawabb' (animals) (2). The ninth point: His saying, the Almighty: {And We will increase the reward of the doers of good} meaning: in the excellence of those who did not worship the calf. It is said: He forgives the sins of those who did not store manna and quails for the morrow, and We will increase in reward the excellence of those who did not store for the morrow. It is also said: He forgives the sins of the sinner, and He will increase the excellence of the one who is a doer of good (3), meaning: We will grant them more excellence upon the previous excellence they had. And it is an active participle from 'ahsana' (to do good). The 'Muhsin' (doer of good) is one who has corrected the covenant of his monotheism, managed himself well, turned towards performing his obligatory duties, and spared the Muslims (4) from his harm. In the hadith of Gabriel, peace be upon him: What is excellence (Ihsan)? He said: 'To worship Allah as if you see Him, for if you do not see Him, He surely sees you.' He said: 'You have spoken the truth.' And he mentioned the hadith. Narrated by Muslim (5).

The Almighty's saying: {But those who wronged changed [those words] to a statement other than that which had been said to them, so We sent down upon those who wronged a punishment from the sky because they used to defiantly disobey. (59)}

In it are four (6) issues: The first: His saying, the Almighty: {But those who wronged changed [those words] to a statement}. 'Alladhina' (those who) is in the position of the nominative, meaning: the wrongdoers among them substituted a saying other than what was said to them. That is because it was said to them: say 'hittah' (forgiveness), but they said:

---

(1) Al-Kitab 3/553, also cited by Al-Nahhas 1/229. (2) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/229-230. (3) Tafsir Abi al-Layth 1/122. (4) In (Zh): performing the obligation of Allah

Almighty and sparing the people. (5) Number (8) from the hadith of Umar, may Allah be pleased with him, and it is in Ahmad (184). (6) In (Z): five, and in (Zh): three.

सूरह अल-बकरा: आयत 59 131

... 'या' के साथ, तो मैंने कहा: 'ख़ताया' (गलतियाँ)। जहाँ तक सिबवैह (1) का सवाल है: उनका मत है कि मूल रूप पहले की तरह ही है: 'ख़तायिइ', फिर इसके कारण यह आवश्यक हो गया कि 'या' को हमज़ा में बदल दिया जाए जैसा कि आपने 'मदाइन' में किया, तो आप कहते हैं: 'ख़ताइइ', लेकिन एक शब्द में दो हमज़ा एक साथ नहीं आते, इसलिए दूसरी को 'या' से बदल दिया गया, और कहा गया: 'ख़ताइ', फिर आपने वही किया जो पहले मामले में किया था। अल-फ़र्रा ने कहा: 'ख़ताया', 'ख़तिय्याह' का बहुवचन है, बिना हमज़ा के, जैसे आप 'हदिया' (उपहार) और 'हदाया' (उपहार) कहते हैं। अल-फ़र्रा ने कहा: यदि आप 'ख़तिआह' (पाप) का बहुवचन हमज़ा के साथ बनाते, तो आप 'ख़ताआ' कहते। अल-किसाई ने कहा: यदि आप इसे हमज़ा के साथ बहुवचन बनाते, तो आप एक हमज़ा को दूसरे में मिला देते, जैसे आप 'दवाब' (जानवर) कहते हैं (2)। नौवीं बात: अल्लाह तआला का कथन: {और हम नेकी करने वालों को और अधिक देंगे} यानी: उन लोगों की नेकी में जिन्होंने बछड़े की पूजा नहीं की थी। कहा जाता है: वह उन लोगों के पाप क्षमा करता है जिन्होंने कल के लिए मन्ना और सलवा जमा नहीं किया था, और हम उन लोगों की नेकी में वृद्धि करेंगे जिन्होंने कल के लिए जमा नहीं किया था। यह भी कहा जाता है: वह अपराधी के पापों को क्षमा करता है, और वह नेकी करने वाले की नेकी में वृद्धि करेगा (3), अर्थात: हम उन्हें उनकी पिछली नेकी पर और अधिक इनाम देंगे। और यह 'अहसना' (नेकी करना) से निकला हुआ कर्ता कारक है। 'मुहसिन' (नेकी करने वाला) वह है जिसने अपने तौहीद (एकेश्वरवाद) के अनुबंध को सही किया, अपने आप को अच्छी तरह नियंत्रित किया, अपने अनिवार्य कर्तव्यों (फ़राएज़) को पूरा करने के लिए आगे आया, और मुसलमानों को (4) अपनी बुराई से बचाए रखा। जिब्रईल अलैहिस्सलाम की हदीस में है: एहसान (उत्कृष्टता) क्या है? उन्होंने कहा: 'अल्लाह की इबादत इस तरह करो कि मानो तुम उसे देख रहे हो, और यदि तुम उसे नहीं देख रहे हो, तो वह तुम्हें देख रहा है।' उन्होंने कहा: 'आपने सच कहा।' और हदीस का उल्लेख किया। इसे मुस्लिम ने उद्धृत किया है (5)।

अल्लाह तआला का कथन: {फिर उन लोगों ने जिन्होंने ज़ुल्म किया था, उस बात को बदल दिया जो उनसे कही गई थी, तो हमने उन पर जिन्होंने ज़ुल्म किया था, आसमान से अज़ाब उतारा, इस कारण कि वे नाफरमानी किया करते थे। (59)}

इसमें चार (6) मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: {तो उन लोगों ने जिन्होंने ज़ुल्म किया, बात को बदल दिया}। 'अल्लज़ीना' रफ़अ (कर्ता) की स्थिति में है, यानी: उनमें से ज़ालिमों ने उस बात को

बदल दिया जो उनसे कही गई थी। वह इसलिए कि उनसे कहा गया था: 'हित्ततुन' (माफी) कहो, लेकिन उन्होंने कहा:

---

(1) अल-किताब 3/553, और इसे अल-नहहास के माध्यम से भी उद्धृत किया गया है 1/229। (2) इ'राब अल-कुरान, अल-नहहास द्वारा 1/229-230। (3) तफ़सीर अबी अल-लैथ 1/122। (4) (ज़) में: अल्लाह तआला के फ़र्ज़ को अदा करना और लोगों को सुरक्षित रखना। (5) हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से नंबर (8), और यह अहमद (184) में है। (6) (ज़) में: पाँच, और (ज़) में: तीन।

سورہ البقرہ: آیت 59 131

... ’یاء‘ کے ساتھ، تو میں نے کہا: ’خطایا‘۔ جہاں تک سیبویہ (1) کا تعلق ہے: ان کا مذہب یہ ہے کہ اصل پہلے کی طرح ہے: ’خطایئ‘، پھر اس وجہ سے یہ واجب ہو گیا کہ ’یاء‘ کو ہمزہ میں بدل دیا جائے جیسا کہ آپ نے ’مدائن‘ میں کیا، تو آپ کہتے ہیں: ’خطائئ‘، اور ایک کلمہ میں دو ہمزہ جمع نہیں ہوتے، چنانچہ دوسرے ہمزہ کو ’یاء‘ سے بدل دیا گیا، تو میں نے کہا: ’خطائی‘، پھر اس پر ویسا ہی عمل کیا گیا جیسا پہلے پر کیا گیا تھا۔ فراء نے کہا: ’خطایا‘، ’خطیہ‘ کی جمع ہے، بغیر ہمزہ کے جیسے آپ کہتے ہیں: ’ہدیہ‘ اور ’ہدایا‘۔ فراء نے کہا: اگر آپ ’خطیئہ‘ کو ہمزہ کے ساتھ جمع بناتے تو آپ ’خطاءا‘ کہتے۔ کسائی نے کہا: اگر آپ اسے ہمزہ کے ساتھ جمع بناتے تو ایک ہمزہ کو دوسرے میں مدغم کر دیتے، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: ’دواب‘ (2)۔ نویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَسَنَزِيدُ الْمُحْسِنِينَ} (اور ہم نیکی کرنے والوں کو مزید دیں گے) یعنی: ان لوگوں کے احسان (نیکی) میں جنہوں نے بچھڑے کی پوجا نہیں کی تھی۔ کہا جاتا ہے: وہ ان لوگوں کے گناہ معاف فرماتا ہے جنہوں نے کل کے لیے مَن و سلویٰ اٹھا کر نہیں رکھا تھا، اور ہم ان لوگوں کے احسان میں اضافہ کریں گے جنہوں نے کل کے لیے ذخیرہ نہیں کیا تھا۔ یہ بھی کہا جاتا ہے: وہ گنہگار کے گناہ معاف کرتا ہے، اور وہ نیکی کرنے والے کے احسان میں اضافہ کرے گا (3)، یعنی: ہم انہیں ان کے سابقہ احسان پر مزید اجر دیں گے۔ اور یہ ’احسن‘ سے اسم فاعل ہے، اور ’محسن‘ وہ ہے جس نے اپنے عقیدہ توحید کو درست کیا، اپنے نفس کی بہترین سیاست کی، اپنے فرائض کی ادائیگی کی طرف متوجہ ہوا اور مسلمانوں کو (4) اپنے شر سے محفوظ رکھا۔ حدیث جبریل علیہ السلام میں ہے: احسان کیا ہے؟ فرمایا: ’اللہ کی عبادت ایسے کرو گویا تم اسے دیکھ

رہے ہو، اور اگر تم اسے نہیں دیکھ رہے تو بے شک وہ تمہیں دیکھ رہا ہے‘۔ انہوں نے کہا: ’آپ نے سچ کہا‘۔ اور حدیث ذکر کی۔ اسے مسلم نے روایت کیا ہے (5)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {فَبَدَّلَ الَّذِينَ ظَلَمُوا قَوْلًا غَيْرَ الَّذِي قِيلَ لَهُمْ فَأَنزَلْنَا عَلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا رِجْزًا مِّنَ السَّمَاءِ بِمَا كَانُوا يَفْسُقُونَ ٥٩} (پھر ان ظالموں نے اس بات کو بدل دیا جو ان سے کہی گئی تھی، تو ہم نے ان ظالموں پر ان کی نافرمانی کی وجہ سے آسمان سے عذاب نازل کیا)۔

اس میں چار (6) مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {فَبَدَّلَ الَّذِينَ ظَلَمُوا قَوْلًا}۔ ’الذین‘ محلِ رفع میں ہے، یعنی: ان میں سے ظالموں نے اس قول کو بدل دیا جو ان سے کہا گیا تھا۔ وہ یہ کہ ان سے کہا گیا تھا: ’حطہ‘ کہو، تو انہوں نے کہا:

---

(1) الکتاب 3/553، اور اسے النحاس نے بھی 1/229 میں نقل کیا ہے۔ (2) اعراب القرآن للنحاس 1/229-230۔ (3) تفسیر ابی اللیث 1/122۔ (4) نسخہ (ظ) میں: اللہ تعالیٰ کا فرض ادا کرنا اور لوگوں کو (اپنے شر سے) بچانا۔ (5) حضرت عمر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے نمبر (8)، اور یہ احمد (184) میں ہے۔ (6) نسخہ (ز) میں: پانچ، اور نسخہ (ظ) میں: تین۔

Surah Al-Baqarah: Verse 59 132 wheat - as previously mentioned - so they added a letter to the speech, and they faced the affliction they faced, as a notification (1) that adding to the religion and innovating in the Sharia is of great danger and severe harm. This is regarding the change of a word that expresses repentance, which necessitated (2) all that torment. So what do you think of changing what is among the attributes of the Worshipped One?! This, while saying is less than acting, so what about replacing and changing in action?! Second: His saying, the Almighty: {So they changed}. The meanings of 'baddala' (to change/replace) and 'abdala' (to substitute) have been mentioned previously (3), and {perhaps our Lord will substitute for us} [Al-Qalam: 32] was recited in both ways (4). Al-Jawhari (5) said: I substituted (abdaltu) the thing with another. And God changed (baddalahu) his fear into security. Changing (tabdil) a thing is also altering it, even if a substitute does not come. He 'astabdala' (substituted) the thing with another, and 'tabaddalahu bihi' (replaced it with it): when he took it in its place. 'Al-Mubadalah' is exchange. 'Al-Abdal' (The Substitutes) are a group of righteous people whom the world is never without; if one of them dies, God replaces him with another (6). Ibn Durayd (7) said: the singular is 'badil', and 'al-badil' is 'al-badal' (the substitute). And the 'badal' of a thing is its other; it is said: 'badal' and 'bidl', two dialects, like: 'shabah' and 'shibuh' (likeness), 'mathal' and 'mithl' (example), and 'nakal' and 'nikl' (shackle/deterrent). Said Abu Ubayd (8): No others have been heard in the forms 'fa'ala' and 'yaf'alu' except these four words. And 'al-badal' is a pain that occurs in the hands and feet. One says 'badila', with a kasra, 'yabdalu badalan'. Third: His saying, the Almighty: {So We sent down upon those who did wrong}. He repeated the word: "those who did wrong" and did not use a pronoun, to emphasize the gravity of the matter. Repetition occurs in two ways:
[WWW.NAFSE.COM] (1) In (z): "So there was in this a notification". (2) In (z): "Repentance and forgiveness, as previously mentioned, necessitated...". (3) In the previous verse. (4) Nafi', Abu Amr, and Abu Ja'far read it with a fatha on the 'ba' and a shadda on the 'dal', while the rest read it with a sukun on the 'ba' and a light 'dal'. Al-Sab'a p. 397, Al-Taysir p. 145, and Al-Nashr 2/314. (5) Al-Sihah (badl), and the discussion from it continues until the end of the second issue. (6) After it in (z) an addition: "And the discussion about them will come in this Surah, if God Almighty wills. End." The author (citing Al-Jawhari) refers to some reports narrated about the 'Abdal', as in Musnad Ahmad (896) and (22751). Sheikh Shu'ayb Al-Arna'ut said in his commentary on the first of them: "The hadiths of the 'Abdal' narrated from more than one of the Companions, all their chains of narration are weak." (7) Jamharat al-Lugha 1/247. Ibn Durayd: He is Muhammad ibn al-Hasan, Abu Bakr al-Azdi, al-Basri,

the Sheikh of literature. He died in the year (321 AH). Al-Siyar 15/96. (8) In the manuscripts: Abu Ubaydah, and the discussion is in Gharib al-Hadith 3/44 by Abu Ubayd al-Qasim ibn Sallam.

सूरा अल-बकरा: आयत ५९ १३२ गेहूं - जैसा कि पहले बताया गया है - तो उन्होंने बातचीत में एक अक्षर बढ़ा दिया, और उन्हें उस विपत्ति का सामना करना पड़ा जिसका उन्होंने सामना किया, यह एक जानकारी (१) के रूप में है कि धर्म में वृद्धि करना और शरीयत में नवाचार करना बहुत खतरनाक और गंभीर रूप से हानिकारक है। यह उस शब्द को बदलने के बारे में है जो पश्चाताप का व्यक्त करता है, जिसने उस सारे कष्ट (२) को अनिवार्य कर दिया। तो पूज्य के गुणों में से किसी चीज़ को बदलने के बारे में आपका क्या विचार है?! यह तब है जब कहना कर्म से कम है, तो क्रिया में प्रतिस्थापन और परिवर्तन के बारे में क्या?! दूसरा: अल्लाह तआला का कथन: {तो उन्होंने बदल दिया}। 'बदला' और 'अबदला' (३) का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है, और {शायद हमारा रब हमें इसके बदले में दे} [अल-कलम: ३२] को दोनों तरह से पढ़ा गया है (४)। अल-जौहरी (५) ने कहा: मैंने चीज़ को दूसरी चीज़ से बदल दिया (अबदल्तु)। और अल्लाह ने उसके डर को सुरक्षा में बदल दिया (बदल्लहु)। किसी चीज़ को बदलना (तब्दील) उसे परिवर्तित करना भी है, भले ही कोई विकल्प न आए। उसने चीज़ को दूसरी चीज़ से बदल लिया (अस्तबदला), और उसे उसके साथ बदल लिया (तबदल्लहु बिही): जब उसने उसे उसकी जगह ले लिया। 'अल-मुबादला' का अर्थ विनिमय है। 'अल-अब्दाल' (प्रतिस्थापन) धर्मी लोगों का एक समूह है जिनसे दुनिया कभी खाली नहीं होती है; यदि उनमें से एक मर जाता है, तो अल्लाह उसकी जगह दूसरे को नियुक्त कर देता है (६)। इब्न दुरैद (७) ने कहा: एकवचन 'बदील' है, और 'अल-बदील' ही 'अल-बदल' है। और किसी चीज़ का 'बदल' उसका दूसरा है; कहा जाता है: 'बदल' और 'बिदल', दो बोलियाँ, जैसे: 'शबाह' और 'शिबूह' (समानता), 'मथल' और 'मिथल' (उदाहरण), और 'नकल' और 'निकल' (बेड़ी)। अबू उबैद (८) ने कहा: 'फ़अला' और 'यफ़अलु' रूपों में इन चार शब्दों के अलावा और कोई नहीं सुना गया। और 'अल-बदल' हाथों और पैरों में होने वाला एक दर्द है। कहा जाता है 'बदिला', कसरा के साथ, 'यबदलू बदलन'। तीसरा: अल्लाह तआला का कथन: {तो हमने उन लोगों पर उतार दिया जिन्होंने ज़ुल्म किया}। उन्होंने "जिन्होंने ज़ुल्म किया" शब्द को दोहराया और सर्वनाम का प्रयोग नहीं किया, ताकि मामले की गंभीरता पर ज़ोर दिया जा सके। दोहराव दो प्रकार का होता है: [WWW.NAFSE.COM] (१) (ज़) में: "तो इसमें यह एक जानकारी थी।" (२) (ज़) में: "पश्चाताप और क्षमा, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अनिवार्य कर दिया..."। (३) पिछली आयत में। (४) नाफी', अबू अम्र और अबू जाफ़र ने इसे 'बा' पर फतह और 'दाल' पर शद्दा के साथ पढ़ा, जबकि बाकी लोगों ने 'बा' पर सुकून और हल्के 'दाल' के साथ पढ़ा। अल-सबा पृष्ठ ३९७, अल-तयसीर पृष्ठ १४५, और अल-नश्र २/३१४। (५) अल-सिहाह (बदल), और यहाँ से चर्चा दूसरे मुद्दे के अंत तक जारी है। (६) (ज़) में इसके बाद वृद्धि: "और

इंशाअल्लाह इस सूरा में उनके बारे में चर्चा आएगी। समाप्त।" लेखक (अल-जौहरी का हवाला देते हुए) 'अब्दाल' के बारे में वर्णित कुछ रिपोर्टों का उल्लेख करता है, जैसा कि मुसनद अहमद (८९६) और (२२७५१) में है। शेख शुऐब अल-अर्नौत ने उनमें से पहले पर अपनी टिप्पणी में कहा: "एक से अधिक सहाबियों से वर्णित 'अब्दाल' की हदीसें, उन सभी की रिवायतें कमज़ोर हैं।" (७) जम्हरत अल-लुगा १/२४७। इब्न दुरैद: वह मुहम्मद बिन अल-हसन, अबू बक्र अल-अज़दी, अल-बसरी, साहित्य के शेख हैं। उनकी मृत्यु वर्ष (३२१ हिजरी) में हुई थी। अल-सियार १५/९६। (८) पांडुलिपियों में: अबू उबैदा, और चर्चा अबू उबैद अल-क़ासिम बिन सल्लम द्वारा ग़रीब अल-हदीस ३/४४ में है।

سورہ البقرہ : آیت ۵۹ ۱۳۲ حنطہ (گندم) - جیسا کہ پہلے گزرا - تو انہوں نے کلام میں ایک حرف کا اضافہ کر دیا، پس انہیں وہ بلا (مصیبت) پہنچی جو پہنچی، اس بات کی پہچان (۱) کے طور پر کہ دین میں اضافہ اور شریعت میں بدعت عظیم خطرہ اور شدید نقصان کا باعث ہے۔ اور یہ ایک ایسے کلمہ کی تبدیلی کے بارے میں ہے جو توبہ کا اظہار ہے جس نے (۲) اس تمام عذاب کو واجب کر دیا، تو تمہارا اس چیز کی تبدیلی کے بارے میں کیا خیال ہے جو معبود کی صفات میں سے ہے؟! یہ اس صورت میں ہے جب کہنا عمل سے کم تر ہے، تو فعل میں تبدیلی اور تغیر کا کیا حال ہوگا؟! دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَبَدَّلَ﴾۔ 'بَدَّلَ' اور 'أَبْدَلَ' (۳) کا معنی پہلے گزر چکا ہے، اور ﴿عَسَى رَبُّنَا أَن يُبْدِلَنَا﴾ [القلم: ۳۲] کو دونوں طریقوں سے پڑھا گیا ہے (۴)۔ جوہری (۵) نے کہا: 'أَبْدَلْتُ الشيءَ بغيره' (میں نے ایک چیز کو دوسری سے بدلا)۔ اور اللہ نے اس کے خوف کو امن سے بدل دیا۔ کسی چیز کی تبدیلی (تبدیل) اسے بدلنا بھی ہے، اگرچہ اس کا کوئی بدل نہ آئے۔ اور 'استبدل الشيء بغيره' اور 'تبدَّله به': جب اس نے اسے اس کی جگہ لے لیا۔ اور 'المبادلة': تبادلہ ہے۔ اور 'الأبْدالُ': صالحین کی ایک جماعت ہے جن سے دنیا کبھی خالی نہیں ہوتی، جب ان میں سے کوئی ایک فوت ہو جاتا ہے تو اللہ اس کی جگہ دوسرے کو بدل دیتا ہے (۶)۔ ابن درید (۷) نے کہا: واحد 'بديل' ہے، اور 'البديل' ہی 'البدل' (بدل) ہے۔ اور کسی چیز کا 'بدل' اس کا غیر ہے؛ کہا جاتا ہے: 'بَدَل' اور 'بِدْل'، دو لغتیں (بولیاں) ہیں، جیسے: 'شَبَه' اور 'شِبْه' (مشابہت)، 'مَثَل' اور 'مِثْل' (مثال)، اور 'نَكَل' اور 'نِكْل' (بیڑی/روک)۔ ابو عبید (۸) نے کہا: 'فَعَلَ' اور 'يَفْعَلُ' کے اوزان میں ان چار حروف کے علاوہ نہیں سنا گیا۔ اور 'البَدَل': وہ درد ہے جو ہاتھوں اور پاؤں میں ہوتا ہے۔ اور کہا جاتا ہے 'بَدِلَ'، کسرہ کے ساتھ، 'يَبْدَلُ بَدَلاً'۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَأَنزَلْنَا عَلَى الَّذِينَ ظَلَمُوا﴾۔ اللہ نے لفظ «ظلموا» (جنہوں نے ظلم کیا) کو دہرایا اور ضمیر استعمال نہیں کی تاکہ معاملے کی سنگینی کو واضح کیا جا سکے۔ اور تکرار دو طرح پر ہوتی ہے:

[WWW.NAFSE.COM] (۱) (ز) میں ہے: "پس اس میں یہ پہچان تھی"۔ (۲) (ز) میں ہے: "توبہ اور مغفرت، جیسا کہ پہلے گزرا، واجب کر دیا..."۔ (۳) پچھلی آیت میں۔ (۴) نافع، ابو عمرو، اور ابو جعفر نے اسے 'با' کے فتحہ اور 'دال' کی تشدید کے ساتھ پڑھا، اور باقی قراء نے 'با' کے سکون اور 'دال' کی تخفیف کے ساتھ پڑھا۔ السبعة ص ۳۹۷، التیسیر ص ۱۴۵، اور النشر ۲ / ۳۱۴۔ (۵) الصحاح (بدل)، اور اس کی گفتگو دوسری بحث کے آخر تک ہے۔ (۶) اس کے بعد (ز) میں اضافہ ہے: "اور عنقریب اس سورت میں ان کا ذکر آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ انتہیٰ"۔ اور مصنف (جوہری کے حوالے سے) ابدال کے بارے میں مروی بعض آثار کی طرف اشارہ کرتے ہیں، جیسا کہ مسند احمد (۸۹۶) اور (۲۲۷۵۱) میں ہے۔ شیخ شعیب الارنؤوط نے ان میں سے پہلی حدیث پر اپنے حاشیہ میں کہا: "ابدال کی وہ احادیث جو متعدد صحابہ سے مروی ہیں، ان کی تمام اسانید ضعیف ہیں"۔ (۷) جمهرة اللغة ۱/ ۲۴۷۔ اور ابن درید: وہ محمد بن الحسن، ابو بکر الازدی، البصری، شیخ الادب ہیں۔ ان کی وفات سال (۳۲۱ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۵/ ۹۶۔ (۸) خطی نسخوں میں: ابو عبیدہ، اور یہ کلام ابو عبید القاسم بن سلام کی 'غریب الحدیث' ۳/ ۴۴ میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 59 133 One of them: its use after the completion of the sentence, as in this verse and His saying: "So woe to those who write the Scripture with their own hands," then He said after: "then woe to them for what their hands have written" [Al-Baqarah: 79]. He did not say: "from what they wrote." And He repeated "woe" to emphasize the severity of their action. Among this is the saying of Al-Khansa: Time has stripped me by gnawing(1) and cutting ... and Time has pained me by striking and pressing(2). She meant that Time pained her with its great calamities and its small ones. The second type: the occurrence of repeating the explicit noun in place of a pronoun before the speech is complete, like His saying: "The Reality (1) What is the Reality? (2)" and "The Striking Calamity (1) What is the Striking Calamity? (2)". The norm, if it weren't for what was intended of glorification and exaltation, would be: "The Reality, what is it?" and "The Striking Calamity, what is it?". Similarly: "Then the companions of the right - what are the companions of the right? (8) And the companions of the left - what are the companions of the left? (9)" [Al-Waqi'ah: 8-9]. He repeated "companions of the right" to exalt the great reward they receive; and He repeated the term "companions of the left" for the painful punishment they receive. Of this type is the poet's saying: Would that the crow, on the morning it croaks continuously ... had been the crow with its jugular veins severed(3). Adi bin Zaid(4) combined the two meanings, saying: I do not see anything preceding death(5), Death has embittered the rich and the poor(5). So he repeated the word "death" thrice, and it is of the first type(6).

---

(1) In the copies: "Nahshan" (with a different letter), and what is established is from (M) and sources. (2) Diwan Al-Khansa p. 81. Her saying: "Time has stripped me"; Ibn al-Shajari said in his Amali 1/368: It is said: I stripped the bone: if you take what is on it of meat... and Nahs: seizing the meat with the teeth and jerking it, and Hazz: a non-penetrating cut. (3) The verse is by Jarir, in his Diwan p. 73, Tafsir al-Tabari 303, and Amali Ibn al-Shajari 1/370. In the Diwan: "bi-al-nawa" (with distance), and in Al-Tabari: "da'iman" (always), instead of: "da'iban" (persistently). (4) Al-Ibadi al-Tamimi, Christian, from the pre-Islamic era, among the great poets. Al-Dhahabi said in Siyar 5/111: I think he died in the interval between prophets. (5) Amali Ibn al-Shajari 1/370. Sibawayh attributed it in Al-Kitab 1/62 to his son Sawad bin Adi, and Al-A'lam attributed it in Tahsil Ayn al-Dhahab p. 86 to Suwadah bin Adi. He said: It was attributed to Umayyah bin Abi al-Salt. (6) From Amali Ibn al-Shajari 1/370-371.

सूरा अल-बकरा: आयत ५९ १३३ पहला: वाक्य पूर्ण होने के बाद इसका प्रयोग, जैसा कि इस आयत में है और अल्लाह का कथन है: "तो उन लोगों के लिए तबाही है जो अपने हाथों से किताब लिखते हैं," फिर उसके बाद कहा: "तो उनके लिए तबाही है उससे जो उनके हाथों ने लिखा" [अल-बकरा: ७९]। और यह नहीं कहा: "उससे जो उन्होंने लिखा।" और उनके कार्य की गंभीरता बताने के लिए "तबाही" (वैल) शब्द को दोहराया गया, और इसी में अल-खंसा का कथन है: समय ने मुझे कुतर-कुतर कर(१) और काट-काट कर छील दिया... और समय ने मुझे चोट और दबाव से पीड़ा पहुँचाई(२)। उनका आशय यह था कि समय ने उन्हें अपनी बड़ी और छोटी विपत्तियों से पीड़ा पहुँचाई। दूसरी प्रकार: कथन पूर्ण होने से पहले सर्वनाम के स्थान पर प्रकट संज्ञा को दोहराना, जैसे अल्लाह का कथन: "अल-हाक़्क़ा (१) मा अल-हाक़्क़ा (२)" और "अल-क़ारिया (१) मा अल-क़ारिया (२)"। यदि महिमा और भव्यता का उद्देश्य न होता, तो नियम यह था: "अल-हाक़्क़ा मा हिया" (सच्ची घटना, वह क्या है?) और "अल-क़ारिया मा हिया" (खड़खड़ाने वाली आपदा, वह क्या है?)। और इसी तरह: "तो दाहिने हाथ वाले, क्या ही (नसीब वाले) हैं दाहिने हाथ वाले (८) और बाएं हाथ वाले, क्या ही (बदनसीब) हैं बाएं हाथ वाले (९)" [अल-वाक़िया: ८ - ९]। "दाहिने हाथ वाले" वाक्यांश को उनके महान प्रतिफल की भव्यता के लिए दोहराया गया; और "बाएं हाथ वाले" वाक्यांश को उनके दर्दनाक दंड के कारण दोहराया गया। और इसी प्रकार में कवि का कथन है: काश वह कौआ जिस सुबह लगातार कांव-कांव कर रहा था... वही कौआ कटी हुई गर्दन की नसों वाला होता(३)। अदी बिन ज़ैद(४) ने दोनों अर्थों को जोड़ दिया, और कहा: मैं मौत को किसी चीज़ से पीछे रहते नहीं देखता(५), मौत ने अमीर और गरीब दोनों के जीवन को कड़वा कर दिया है(५)। तो उन्होंने "मौत" शब्द को तीन बार दोहराया, और यह पहले प्रकार में से है(६)।

---

(१) प्रतियों में: "नहशन" (नुक्ते वाली श के साथ), और जो पुष्ट है वह (म) और स्रोतों से है। (२) दीवान अल-खंसा पृष्ठ ८१। उनका कथन: "तअर्रक़ानी अद-दह्र"; इब्न अल-शजरी ने अपनी अमाली १/३६८ में कहा: कहा जाता है: "तअर्रक़्तुल अज़्म" जब आप हड्डी से मांस उतार लें... और "नहस" दांतों से मांस पकड़कर खींचना है, और "हज़" ऐसा कट है जो आर-पार न हो। (३) यह छंद जहीर का है, और यह उनके दीवान पृष्ठ ७३, तफ़्सीर अल-तबरी ३०३, और अमाली इब्न अल-शजरी १/ ३७० में है। दीवान में: "बिल-नवा" है, और तबरी के पास: "दाइमन" है, "दाइवन" के बजाय। (४) अल-इबादी अल-तमीमी, ईसाई, पूर्व-इस्लामी काल के महान कवियों में से एक। अल-धहाबी ने सियार ५/ १११ में कहा: मुझे लगता है कि उनकी मृत्यु अंतराल काल में हुई थी। (५) अमाली इब्न अल-शजरी १/ ३७०। सिबवैह ने

अल-किताब १/ ६२ में इसे उनके बेटे सवाद बिन अदी को समर्पित किया है, और अल-आलम ने तहसील ऐन अल-धहाब पृष्ठ ८६ में इसे सुवादा बिन अदी को समर्पित किया है। कहा: यह उमय्या बिन अबी अल-साल्ट का भी बताया गया है। (६) अमाली इब्न अल-शजरी १/ ३७० - ३७१ से।

سورہ البقرہ: آیت ۵۹ ۱۳۳ پہلا: کلام مکمل ہونے کے بعد اس کا استعمال، جیسا کہ اس آیت میں ہے اور اللہ کا فرمان ہے: ﴿پس ہلاکت ہے ان لوگوں کے لیے جو اپنے ہاتھوں سے کتاب لکھتے ہیں﴾، پھر اس کے بعد فرمایا: ﴿پس ہلاکت ہے ان کے لیے اس سے جو ان کے ہاتھوں نے لکھا﴾ [البقرۃ: 79]۔ اور یہ نہیں فرمایا: "اس سے جو انہوں نے لکھا"۔ اور "ہلاکت" (ویل) کا لفظ ان کے فعل کی سنگینی کے لیے دہرایا گیا، اور اسی میں سے الخنساء کا قول ہے: زمانے نے مجھے نوچ کر(۱) اور کاٹ کر ہڈیوں تک ننگا کر دیا... اور زمانے نے مجھے مار مار کر اور دبا کر تکلیف پہنچائی(۲)۔ اس کی مراد یہ تھی کہ زمانے نے اسے اپنی بڑی اور چھوٹی مصیبتوں سے دکھ پہنچایا۔ دوسری قسم: کلام مکمل ہونے سے پہلے ضمیر کی جگہ ظاہر نام کو دہرانا، جیسے اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿الحاقة (۱) ما الحاقة (۲)﴾ اور ﴿القارعة (۱) ما القارعة (۲)﴾۔ اگر عظمت و اہمیت بیان کرنا مقصود نہ ہوتا تو قیاس یہ تھا کہ کہا جاتا: الحاقة ما هي (حق ہونے والی، وہ کیا ہے)، اور القارعة ما هي (کھڑکھڑانے والی، وہ کیا ہے)۔ اور اسی طرح: ﴿پس دائیں ہاتھ والے، کیا ہی (نصیب والے) ہیں دائیں ہاتھ والے (۸) اور بائیں ہاتھ والے، کیا ہی (بدبخت) ہیں بائیں ہاتھ والے (۹)﴾ [الواقعة: ۸ - ۹]۔ "دائیں ہاتھ والے" کے الفاظ کو ان کے عظیم ثواب کی اہمیت بیان کرنے کے لیے دہرایا گیا؛ اور "بائیں ہاتھ والے" کے الفاظ کو ان کے دردناک عذاب کی وجہ سے دہرایا گیا۔ اور اسی قسم میں سے شاعر کا قول ہے: کاش کہ کوا جس صبح مسلسل کائیں کائیں کر رہا تھا... وہی کوا کٹی ہوئی شہ رگوں والا ہوتا(۳)۔ اور عدی بن زید(۴) نے دونوں معانی کو جمع کر دیا، پس کہا: میں موت کو کسی چیز سے پیچھے رہتے نہیں دیکھتا(۵)، موت نے غنی اور فقیر دونوں کی زندگی تلخ کر دی(۵)۔ پس لفظ "موت" کو تین بار دہرایا، اور یہ پہلی قسم میں سے ہے(۶)۔

(١) نسخوں میں: "نہشاً" (نقطے والی شین کے ساتھ) ہے، اور جو متن میں ہے وہ (م) اور دیگر مصادر سے ثابت ہے۔ (٢) دیوان الخنساء ص ٨١۔ اس کا قول: "تعرقني الدهر"؛ ابن الشجری نے اپنی امالی ٣٦٨/١ میں کہا: کہا جاتا ہے: "تعرقتُ العظم" جب تم اس پر موجود گوشت اتار لو... اور "النہس" دانتوں سے گوشت پکڑ کر کھینچنا ہے، اور "الحز" ایسا کٹاؤ ہے جو پار نہ ہو۔ (٣) یہ شعر جریر کا ہے، اور یہ اس کے دیوان ص ٧٣، تفسیر طبری ٣٠٣، اور امالی ابن الشجری ١/ ٣٧٠ میں ہے۔ دیوان میں: "بالنوی" ہے، اور طبری کے ہاں: "دائماً" ہے، بجائے: "دائباً" کے۔ (٤) العبادی التمیمی، عیسائی، دورِ جاہلیت کے بڑے شعراء میں سے۔ ذہبی نے السیر ٥/ ١١١ میں کہا: میرا خیال ہے وہ فترت (دو نبیوں کے درمیانی وقفے) میں فوت ہوئے۔ (٥) امالی ابن الشجری ١/ ٣٧٠۔ سیبویہ نے الکتاب ١/ ٦٢ میں اسے ان کے بیٹے سواد بن عدی کی طرف منسوب کیا ہے، اور الاعلم نے تحصیل عین الذہب ص ٨٦ میں اسے سوادہ بن عدی کی طرف منسوب کیا ہے۔ کہا: یہ بھی کہا گیا کہ یہ امیہ بن ابی الصلت کا ہے۔ (٦) امالی ابن الشجری ١/ ٣٧٠ - ٣٧١ سے۔

134 Surah Al-Baqarah: Verse 59

And from it is the saying of the other (1): "O how beloved is Hind and the land where Hind is, and Hind, from whom distance and separation have come." So he repeated the mention of his beloved three times, out of glorification for her. Fourth: The Almighty's saying: {a punishment (rijzan)}: The reading of the group is "rijzan" with a kasra (short 'i' sound) under the 'R', and Ibn Muhaysin (2) with a damma (short 'u' sound) on the 'R' (3). "Rijz" with the letter 'Zay' means: punishment; it was said: it was darkness and plague that destroyed seventy thousand of them in a single hour. This was stated by Abu Rawq (4). And it was said: punishment from heaven, which is sudden death. And it was said: a fire descended upon them and they burned. And it is said: a fight broke out between them, and they killed each other. And "rijs" (5) with the letter 'Seen' means: stench and filth, including the Almighty's saying: {it only adds filth to their filth} [At-Tawbah: 125] meaning: stench to their stench. This was stated by Al-Kisa'i. Al-Farra' said: "rijz" is "rijs". Abu 'Ubayd said: Just as it is said 'sudgh' and 'zudgh' (temple), similarly 'rijs' and 'rijz' have the same meaning. Al-Farra' said: Some mentioned that "rujz" - with a damma - is the name of an idol they used to worship, and it was read as such in the Almighty's saying: {and avoid idols (rujz)} (6) [Al-Muddaththir: 5]. And "rajaz" - with a fatha (short 'a' sound) on the 'R' and 'Jeem' - is a type of poetry, and Al-Khalil denied that it is poetry (7), and it is derived from "rajaz", which is a disease that affects camels in their hindquarters, and when they rise, their thighs tremble (8).

---

(1) He is Al-Hutay'ah, and the verse was previously mentioned in 2/107. (2) In (Zh): Ibn Muhaysin read. (3) The non-canonical readings (Al-Qira'at al-Shadhdhah) by Ibn Khaluwayh, p. 5. (4) It was distorted in (Z) (and the speech from it) to: "Abu Rizq", and Abu Rawq, with a fatha on the 'R' and sukun on the 'Waw', is Atiyyah bin Al-Harith Al-Hamadani, and his mention preceded in 1/248. (5) From his saying: and Al-Rijz with the 'Zay'... to this place from (Z), and it is not in the rest of the copies. It is similarly in the Tafsir of Abu Al-Layth 1/122. (6) Abu Ja'far, Ya'qub, and Hafs read with a damma on the 'R', and the rest read with a kasra. Al-Sab'ah p. 659, Al-Taysir p. 216, and Al-Nashr 2/393. (7) Al-'Ayn 6/64. (8) Mujmal Al-Lughah 1/421, and Al-Sihah: (rajaz).

पृष्ठ १३४ सूरा अल-बकरा: आयत ५९

और इसी में से दूसरे का कथन है (१): "अरे! कितना प्यारा है हिंद और वह धरती जहाँ हिंद है, और हिंद, जिससे दूरी और वियोग आ गया है।" तो उसने अपनी प्रियतमा का ज़िक्र तीन बार दोहराया, उसके सम्मान के लिए। चौथा: सर्वशक्तिमान का कथन: {एक अज़ाब (रिज्ज़न)}: समूह का पाठ 'र' के नीचे कसरा के साथ "रिज्ज़न" है, और इब्न मुहैसिन (२) ने 'र' पर दम्मा के साथ पढ़ा (३)। 'ज़य' के साथ "रिज्ज़" का अर्थ है: अज़ाब (दंड); कहा गया: यह अंधकार और प्लेग था, जिसने एक ही घंटे में उनमें से सत्तर हज़ार को नष्ट कर दिया। यह अबू रवक़ (४) ने कहा था। और कहा गया: स्वर्ग से अज़ाब, जो कि अचानक मृत्यु है। और कहा गया: उन पर आग उतरी और वे जल गए। और कहा जाता है: उनके बीच लड़ाई छिड़ गई, और उन्होंने एक-दूसरे को मार डाला। और 'सीन' के साथ "रिज्स" (५) का अर्थ है: दुर्गंध और गंदगी, जिसमें सर्वशक्तिमान का कथन शामिल है: {तो उसने उनकी गंदगी में और गंदगी बढ़ा दी} [अत-तौबाह: १२५] यानी: उनकी दुर्गंध में और दुर्गंध। यह अल-किसाई ने कहा। और अल-फर्रा ने कहा: "रिज्ज़" ही "रिज्स" है। अबू उबैद ने कहा: जैसे 'सुद्द' और 'ज़ुद्द' (कनपटी) कहा जाता है, वैसे ही 'रिज्स' और 'रिज्ज़' एक ही अर्थ में हैं। अल-फर्रा ने कहा: कुछ ने ज़िक्र किया कि "रुज्ज़" - दम्मा के साथ - एक मूर्ति का नाम है जिसकी वे पूजा करते थे, और इसे सर्वशक्तिमान के कथन में इस तरह पढ़ा गया है: {और मूर्तियों (रुज्ज़) से दूर रहो} (६) [अल-मुद्दस्सिर: ५]। और "रजज़" - 'र' और 'जीम' पर फतह के साथ - एक प्रकार की कविता है, और अल-खलील ने इसके कविता होने से इनकार किया (७), और यह "रजज़" से बना है, जो ऊंटों के पिछले हिस्से में होने वाली एक बीमारी है, और जब वे उठते हैं, तो उनकी जांघें कांपती हैं (८)।

---

(१) वह अल-हुतैअह है और यह शेर पहले २/१०७ में आ चुका है। (२) (ज़): में इब्न मुहैसिन ने पढ़ा। (३) इब्न खालुवैह द्वारा अल-क़िरात अल-शाद्दा, पृष्ठ ५। (४) (ज़ैड) में (और उससे बातचीत) "अबू रिज़क़" में बदल गई थी, और अबू रवक़, 'र' पर फतह और 'वाव' पर सुकून के साथ, अतिय्या बिन अल-हारिस अल-हमदानी है, और उसका ज़िक्र १/२४८ में आ चुका है। (५) उनके कथन से: और 'ज़य' के साथ अल-रिज्ज़... (ज़ैड) के इस स्थान तक, और बाकी प्रतियों में नहीं है। यह अबू अल-लैथ १/१२२ की तफ़सीर में इसी तरह है। (६) अबू जाफ़र, याकूब और हफ्स ने 'र' पर दम्मा के साथ पढ़ा, और बाकी ने कसरा के साथ पढ़ा। अस-सबअह पृष्ठ ६५९, और अत-तयसीर पृष्ठ २१६, और अन-नश्र २/३९३। (७) अल-ऐन ६/६४। (८) मुजमल अल-लुग़ा १/४२१, और अस-सिहह: (रजज़)।

صفحہ ۱۳۴ سورۃ البقرہ: آیت ۵۹

اور اسی میں سے دوسرے کا قول ہے (۱): "ہائے! کتنا پیارا ہے ہند اور وہ زمین جہاں ہند ہے، اور ہند، جس سے دوری اور جدائی آ گئی ہے۔" تو اس نے اپنی محبوبہ کا ذکر تین بار دہرایا، اس کی تعظیم کے لیے۔ چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {رِجْزاً} (عذاب): جماعت کی قرأت 'ر' کے نیچے کسرہ کے ساتھ "رِجْزاً" ہے، اور ابن محیصن (۲) نے 'ر' پر ضمہ کے ساتھ پڑھا (۳)۔ اور 'زای' کے ساتھ "الرِّجْز" کا مطلب ہے: عذاب؛ کہا گیا: یہ تاریکی اور طاعون تھا، جس نے ان میں سے ایک گھنٹے میں ستر ہزار کو ہلاک کر دیا۔ یہ ابو روق (۴) نے کہا ہے۔ اور کہا گیا: آسمان سے عذاب، جو کہ اچانک موت ہے۔ اور کہا گیا: ان پر آگ اتری اور وہ جل گئے۔ اور کہا جاتا ہے: ان کے درمیان لڑائی ہوئی، تو انہوں نے ایک دوسرے کو قتل کر دیا۔ اور 'سین' کے ساتھ "الرِّجْس" (۵) کا مطلب ہے: بدبو اور گندگی، جس میں اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان شامل ہے: {تو اس نے ان کی گندگی میں مزید گندگی کا اضافہ کر دیا} [التوبہ: ۱۲۵] یعنی: ان کی بدبو میں مزید بدبو۔ یہ الکسائی نے کہا۔ اور الفراء نے کہا: "الرِّجْز" ہی "الرِّجْس" ہے۔ ابو عبید نے کہا: جیسا کہ 'السُّدْغ' اور 'الزُّدْغ' (کنپٹی) کہا جاتا ہے، اسی طرح 'رِجْس' اور 'رِجْز' ایک ہی معنی میں ہیں۔ الفراء نے کہا: بعض نے ذکر کیا کہ "الرُّجْز" - ضمہ کے ساتھ - ایک بت کا نام ہے جس کی وہ عبادت کرتے تھے، اور اللہ تعالیٰ کے اس فرمان میں اسی طرح پڑھا گیا ہے: {اور بتوں (رُجز) سے دور رہو} (۶) [المدثر: ۵]۔ اور "الرَّجَز" - 'ر' اور 'جیم' کے فتحہ کے साथ - شاعری کی ایک قسم ہے، اور الخلیل نے اس کے شاعری ہونے سے انکار کیا (۷)، اور یہ "الرَّجَز" سے مشتق ہے، جو اونٹوں کے پچھلے حصے میں ہونے والی ایک بیماری ہے، جب وہ اٹھتے ہیں تو ان کی رانیں کانپتی ہیں (۸)۔

(١) وہ الحطیئہ ہے اور یہ شعر پہلے ٢/١٠٧ میں گزر چکا ہے۔ (٢) (ظ) میں ہے: اور ابن محیصن نے پڑھا۔ (٣) القراءات الشاذہ لابن خالویہ ص ٥۔ (٤) (ز) میں (اور کلام اس میں سے) "ابو رزق" میں تحریف ہو گئی تھی، اور ابو روق، 'ر' کے فتحہ اور 'واؤ' کے سکون کے ساتھ، عطیہ بن الحارث الہمدانی ہے، اور اس کا ذکر ١/٢٤٨ میں گزر چکا ہے۔ (٥) ان کے قول سے: اور الرجز زای کے ساتھ... (ز) کے اس مقام تک، اور باقی نسخوں میں نہیں ہے۔ اور یہ اسی طرح ابواللیث کی تفسیر ١/١٢٢ میں ہے۔ (٦) ابو جعفر، یعقوب اور حفص نے 'ر' کے ضمہ کے ساتھ پڑھا، اور باقیوں نے کسرہ کے ساتھ پڑھا۔ السبعہ ص ٦٥٩، والتیسیر ص ٢١٦، والنشر ٢/٣٩٣۔ (٧) العین ٦/٦٤۔ (٨) مجمل اللغہ ١/٤٢١، والصحاح: (رجز)۔

135 Surah Al-Baqarah: Verse 60

"because they used to act rebelliously" (1) i.e., due to their disobedience. 'Fisq' means 'to go out' (of obedience), and it has been discussed previously (2). Ibn Wathab and Al-Nakha'i (3) read it as 'yafsiqūn' with a kasrah on the letter 'seen'.

Allah Almighty's saying: "And [recall] when Moses prayed for water for his people, so We said, 'Strike with your staff the stone.' And there gushed forth from it twelve springs, and every people knew its watering place. 'Eat and drink from the provision of Allah, and do not commit abuse on the earth, spreading corruption.'"

In this there are eight issues (4):

First: His Almighty's saying: "And [recall] when Moses prayed for water for his people." This refers back to the story of Moses when they were in the wilderness (Tih) and were struck by thirst. They sought help from Moses, so Moses called upon his Lord. Then He revealed to him to strike the stone with your staff, as will follow (5). The 'dhal' in 'idh' was given a kasrah due to the meeting of two silent letters (sukun).

The 'seen' is for seeking/requesting, like 'ista'lama' (sought knowledge), 'istakhbara' (sought news), 'istansara' (sought help), and so on. Meaning: he requested and asked for water (suqya) for his people. The Arabs say: 'saqaytuhu' and 'asqaytuhu', two ways of saying the same thing. It was said (6):

"He watered my people Bani Majd and gave water... to Numayr and the tribes of Hilal."

And it was said: 'saqaytuhu' is drinking from the lip, while 'asqaytuhu' is showing someone where the water is (7).

Second: Praying for rain (istisqa) only occurs when there is no water and rain is withheld. When this is the case, the rule then is to demonstrate servitude, poverty, humbleness, and lowliness, along with sincere repentance.

---

(1) In (Z): The fifth: "because they used to act rebelliously". (2) 1/368. (3) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 5, and al-Muharrar al-Wajiz 1/151. (4) In (Z): In it are ten issues. (5) From his saying: "This refers back to the story of Moses..." up to this point is from (Z), and is not in other copies; it is in the Tafsir of Abu al-Layth 1/122. (6) He is Labid ibn Rabi'ah, and the verse is in his Diwan p. 110, and al-Sihah (saqa). (7) Al-Nukat wa'l-'Uyun 1/127.

135 सूरह अल-बक़रह: आयत 60

"क्योंकि वे विद्रोह करते थे" (1) यानी, उनकी अवज्ञा के कारण। 'फ़िस्क़' का अर्थ है (आज्ञाकारिता से) बाहर निकलना, और इसकी चर्चा पहले हो चुकी है (2)। इब्न वथ़ाब और अल-नख़ई (3) ने इसे सीन पर कसरा के साथ 'यफ़सिक़ून' पढ़ा है।

अल्लाह तआला का कथन: "और (याद करो) जब मूसा ने अपनी कौम के लिए पानी माँगा, तो हमने कहा, 'अपनी लाठी पत्थर पर मारो।' तो उससे बारह सोते फूट निकले, और हर कबीले ने अपना घाट जान लिया। 'अल्लाह के दिए हुए रिज़्क में से खाओ और पीओ, और धरती में बिगाड़ पैदा करते हुए दंगा न मचाओ।'"

इसमें आठ मसले हैं (4):

पहला: अल्लाह तआला का कथन: "और जब मूसा ने अपनी कौम के लिए पानी माँगा।" यह मूसा की कहानी की ओर लौटता है जब वे जंगल (तीह) में थे, और उन्हें प्यास लगी। उन्होंने मूसा से मदद माँगी, तो मूसा ने अपने रब को पुकारा। फिर उसने उन पर वह्य (प्रकाशना) भेजी कि पत्थर पर अपनी लाठी मारो, जैसा कि आगे आएगा (5)। 'इज़' (إِذ) के'ज़ाल' (ذ) को दो सुकूँ(शांत अक्षरों) के मिलने के कारण कसरा दिया गया।

यहाँ 'सीन' माँगने के लिए है, जैसे: 'इस्तअलमा' (ज्ञान माँगना), 'इस्तख़बरा' (ख़बर माँगना), 'इस्तंसरा' (मदद माँगना), और इसी तरह। यानी: उसने अपनी कौम के लिए पानी (सुक़्या) माँगा और तलब किया। अरब कहते हैं: 'सक़ैतुहू' और 'असक़ैतुहू', दोनों एक ही अर्थ वाली भाषाएँ हैं। कहा गया (6):

"उसने मेरी कौम बनी मज्द को पानी पिलाया और पानी दिया... नुमैर और हिलाल के कबीलों को।"

और यह भी कहा गया है: 'सक़ैतुहू' होंठों से पिलाना है, और 'असक़ैतुहू' का अर्थ है किसी को पानी का रास्ता बताना (7)।

दूसरा: इस्तइस्का (बारिश की दुआ) केवल तभी की जाती है जब पानी न हो और बारिश रुकी हो। जब ऐसा हो, तो उस समय का नियम यह है कि सच्ची तौबा (पछतावे) के साथ अपनी दासता, दरिद्रता, लाचारी और विनम्रता को व्यक्त किया जाए।

(1) (ज़) में: पाँचवीं: "क्योंकि वे विद्रोह करते थे"। (2) 1/368. (3) अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह पृ. 5, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/151. (4) (ज़) में: इसमें दस मसले हैं। (5) उनके कथन से: "यह मूसा की कहानी की ओर लौटता है..." इस स्थान तक (ज़) से है, और अन्य प्रतियों में नहीं है; यह अबू अल-लैथ की तफ़सीर 1/122 में है। (6) वह लबीद बिन रबीआ है, और शेर उनके दीवान पृ. 110 और अल-सिहाह (सक़ा) में है। (7) अल-नुकत वल-'उयून 1/127।

135 سورہ البقرہ: آیت 60

﴿بِمَا كَانُوا يَفْسُقُونَ﴾(۱) یعنی: اپنی نافرمانی کی وجہ سے۔ 'فسق' کے معنی (اطاعت سے) نکلنے کے ہیں، اور یہ پہلے بیان ہو چکا ہے(۲)۔ ابن وثاب اور النخعی(۳) نے اسے سین کے کسرہ (زیر) کے ساتھ «يَفْسِقُونَ» پڑھا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿اور جب موسیٰ نے اپنی قوم کے لیے پانی مانگا، تو ہم نے کہا: اپنی لاٹھی پتھر پر مارو، پس اس سے بارہ چشمے پھوٹ نکلے، ہر گروہ نے اپنا گھاٹ پہچان لیا، (ہم نے کہا:) اللہ کے دیے ہوئے رزق میں سے کھاؤ اور پیو اور زمین میں فساد پھیلاتے ہوئے دنگا نہ مچاؤ﴾

اس میں آٹھ مسائل ہیں(۴):

پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَإِذِ اسْتَسْقَى مُوسَى لِقَوْمِهِ﴾ یہ حضرت موسیٰ کے اس قصے کی طرف اشارہ ہے جب وہ وادیِ تیہ میں تھے اور انہیں پیاس لگی، تو انہوں نے موسیٰ علیہ السلام سے فریاد کی، تو موسیٰ نے اپنے رب سے دعا مانگی، تو آپ پر وحی فرمائی گئی کہ پتھر پر اپنی لاٹھی ماریں، جیسا کہ آگے آئے گا(۵)۔ اور «إذ» کی 'ذال' کو دو ساکنوں کے ملاپ کی وجہ سے کسرہ دیا گیا ہے۔

اور (استسقیٰ میں) 'سین' طلب کے لیے ہے، جیسے: استعلم (علم چاہنا)، استخبر (خبر چاہنا)، استنصر (مدد چاہنا) وغیرہ۔ یعنی: اپنی قوم کے لیے پانی (سقیا) طلب کیا اور مانگا۔ اور عرب کہتے ہیں: سَقَيْتُه اور أسقَيْتُه، یہ دو لغات ہیں ایک ہی معنی میں۔ شاعر نے کہا(۶):

سقى قومي بني مجد وأسقى ... نميراً والقبائل من هلال (اس نے میری قوم بنی مجد کو سیراب کیا اور ہلال کے قبیلوں اور نمیر کو پانی دیا)

اور کہا گیا: 'سقیتہ' ہونٹوں سے پلانا ہے، اور 'اسقیتہ' کے معنی ہیں کسی کو پانی کا پتہ بتانا(۷)۔

دوسرا: استسقاء (پانی مانگنا) صرف اس وقت ہوتا ہے جب پانی نہ ہو اور بارش رکی ہو، اور جب ایسا ہو تو اس وقت کا حکم سچی توبہ کے ساتھ اپنی بندگی، محتاجی، مسکینی اور عاجزی کا اظہار کرنا ہے۔

---

(۱) (ز) میں ہے: پانچویں: ﴿بِمَا كَانُوا يَفْسُقُونَ﴾۔ (۲) ۱/۳۶۸۔ (۳) القراءات الشاذة ص ۵، اور المحرر الوجيز ۱/۱۵۱۔ (۴) (ز) میں ہے: اس میں دس مسائل ہیں۔ (۵) ان کے قول: "یہ حضرت موسیٰ کے قصے کی طرف رجوع ہے..." سے لے کر اس جگہ تک (ز) سے ماخوذ ہے، اور باقی نسخوں میں نہیں ہے، اور یہ ابواللیث کی تفسیر ۱/۱۲۲ میں ہے۔ (۶) وہ لبید بن ربیعہ ہیں، اور یہ شعر ان کے دیوان ص ۱لو اور الصحاح (سقی) میں ہے۔ (۷) النکت والعیون ۱/۱۲۷۔

136 Surah Al-Baqarah: Verse 60

Our Prophet Muhammad (peace be upon him) prayed for rain (Istisqa). He went out to the prayer place (musalla) humbly, submissively, reverently, pleadingly(1), and beseechingly(2). And suffice it for him! So what about us, when we have no repentance except stubbornness and opposition to the Lord of servants? How then can we be given water! But he (peace be upon him) said in the hadith of Ibn Umar: "They did not withhold the zakat of their wealth except that they were denied rain from the sky, and were it not for the livestock, they would not be given rain." The hadith. Recorded by Ibn Majah in his Sunan, and Abu Bakr al-Bazzar in his book. We mentioned it in full in our book Al-Tadhkira from the narration of Malik as well, and praise be to Allah(3).

Third: The Sunnah of Istisqa is to go out to the prayer place — in the manner we mentioned — and the sermon, and the prayer. This was said by the majority of scholars. Abu Hanifa went to the view that its Sunnah does not include prayer or going out, but it is only supplication and nothing else. He argued with the authentic hadith of Anas, recorded by al-Bukhari and Muslim, that he (peace and blessings be upon him) supplicated on the pulpit on Friday, and they were given rain(4).

There is no argument for him in it, because that was a supplication whose response was hastened, so it was sufficient instead of anything else, and he did not intend by that to clarify its Sunnah(5). When he intended the clarification, he clarified it with his action(6), according to what was narrated by Abdullah bin Zaid Al-Mazini(7), who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) went out to the prayer place, prayed for rain, turned his cloak inside out, then...

(1) In (z) and (m): leisurely. (2) The author refers to the hadith of Ibn Abbas regarding the prayer for rain, narrated by Abd al-Razzaq (4893), Ahmad (3331), Abu Dawood (1165), Ibn Majah (1266), Al-Tirmidhi (558), and Al-Nasa'i 3/156-157. (3) His words: The hadith was narrated by Ibn Majah in his Sunan... to the end of the speech, from (z). In the copies it appeared instead: The hadith will follow in its entirety, God willing. The hadith is in Ibn Majah (4019), and Al-Bazzar (1676) (Kashf al-Astar). It was also narrated by Al-Tabarani in Al-Kabir (13619), Al-Hakim 4/540, Abu Nu'aym in Al-Hilya 3/320 and 8/334, Abu Amr Al-Dani in Al-Fitan (327), and Al-Bayhaqi in Al-Shu'ab (3314). Al-Hakim said: Its chain of transmission is authentic, but they did not include it. The author will mention it when interpreting the Almighty’s saying: {Those who, when they take a measure from people, take in full} [Al-Mutaffifin: 2] from the hadith

of Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both), and it is in Al-Muwatta (26). (4) His words: And that he (peace and blessings be upon him) supplicated on the pulpit on Friday, and they were given rain, from (z). The hadith is in Sahih al-Bukhari (932) and Sahih Muslim (897), and it is in Musnad Ahmad (13566). (5) In (m): sunnah, and in (zha): his sunnah. (6) See Aridat al-Ahwadhi 3/32-33. (7) From the virtuous companions, owner of the hadith of wudu. He killed Musaylimah with a sword along with Wahshi's spear throw. It was said: He was killed on the day of Al-Harrah in the year (63 AH). Al-Siyar 2/377.

१३६ सूरा अल-बकरा: आयत ६०

हमारे नबी मुहम्मद ﷺ ने बारिश के लिए दुआ की (इस्तिस्का), तो आप ﷺ ईदगाह (मुसल्ला) की ओर विनम्रता, दीनता, शुष्क भाव, विनती(१) और गिड़गिड़ाने(२) के साथ निकले, और आपके लिए यही पर्याप्त है! तो हमारा क्या हाल होगा जबकि हमारे पास सिवाय हठधर्मिता और बंदों के पालनहार के विरोध के कोई तौबा नहीं, तो हमें कैसे पानी दिया जाएगा! लेकिन आप ﷺ ने इब्न उमर की हदीस में फरमाया: "और उन्होंने अपने माल की ज़कात नहीं रोकी मगर यह कि उनसे आसमान से बारिश रोक ली गई, और अगर जानवर न होते तो उन पर बारिश न बरसाई जाती" हदीस। इसे इब्न माजाह ने अपनी सुनन में और अबू बक्र अल-बज्जार ने अपनी किताब में निकाला है, और हमने इसे अपनी किताब 'अल-तज़किरा' में इमाम मालिक की रिवायत से पूरी तरह ज़िक्र किया है, और तमाम प्रशंसा अल्लाह के लिए है(३)।

तीसरा: इस्तिस्का (बारिश की दुआ) की सुन्नत ईदगाह की ओर निकलना है - उस रूप में जिसका हमने उल्लेख किया - और खुतबा और नमाज़, और यही बहुमत विद्वानों का कथन है। और अबू हनीफा इस ओर गए हैं कि इसकी सुन्नत में न नमाज़ है और न ही निकलना, बल्कि यह केवल दुआ है और कुछ नहीं। और उन्होंने अनस की सही हदीस से दलील दी है जिसे बुखारी और मुस्लिम ने निकाला है, कि आप ﷺ ने जुमे के दिन मिंबर पर दुआ की, तो उन पर बारिश बरसाई गई(४)।

और उनके लिए इसमें कोई दलील नहीं है, क्योंकि वह एक ऐसी दुआ थी जिसकी क़बूलियत में जल्दबाज़ी की गई थी, तो वह उसके अलावा हर चीज़ के लिए काफी हो गई, और आप ﷺ का इससे इसकी सुन्नत बयान करना उद्देश्य नहीं था(५), और जब आप ﷺ का उद्देश्य बयान करना होता तो आप अपने कर्म से बयान करते(६), जैसा कि अब्दुल्ला बिन ज़ैद अल-माज़िनी(७) ने रिवायत किया है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ईदगाह की ओर निकले, तो बारिश की दुआ की, और अपनी चादर बदली, फिर...

(१) (ज़) और (म) में: "मुरतसलन" (धीमी और रुक-रुक कर)। (२) लेखक इस्तिस्का के बारे में इब्न अब्बास की हदीस की ओर इशारा कर रहे हैं, जिसे अब्द अल-रज्जाक (४८९३), अहमद (३३३१), अबू दाऊद (११६५), इब्न माजाह (१२६६), तिरमिज़ी (५५८) और नसाई ३/१५६-१५७ ने निकाला है। (३) उनका कथन: "अल-हदीस खर्रजहु इब्न माजाह फी सुननिह..." बातचीत के अंत तक, (ज़) से है, और प्रतियों में इसके स्थान पर यह है: "अल-हदीस व सयअती बिकमालिह इन शा अल्लाह"। यह हदीस

इब्न माजाह (४०१९) और बज्जार (१६७६) (कश्फ अल-अस्तार) के पास है, और इसे तबरानी ने अल-कबीर (१३६१९), हाकिम ४/५४०, अबू नुऐम ने अल-हिलिया ३/३२० और ८/३३४, अबू अम्र अल-दानी ने अल-फितन (३२७) और बैहकी ने अल-शुआब (३३१४) में रिवायत किया है। हाकिम ने कहा: इसकी सनद सही है लेकिन उन्होंने इसे नहीं निकाला। और लेखक इसे अल्लाह तआला के इस कथन की व्याख्या में ज़िक्र करेंगे: {वे लोग जो जब लोगों से माप लेते हैं तो पूरा लेते हैं} [अल-मुतफ्फिफीन: २] इब्न अब्बास की हदीस से, और यह मुवत्ता (२६) में है। (४) उनका कथन: "और यह कि आप ﷺ ने जुमे के दिन मिंबर पर दुआ की, तो उन पर बारिश बरसाई गई", (ज़) से है। और यह हदीस सहीह बुखारी (९३२) और सहीह मुस्लिम (८९७) में है, और मसनद अहमद (१३५६६) में भी है। (५) (म) में: "सुन्नत", और (ज़ह) में: "सुन्नतहु"। (६) देखिए आरिज़त अल-अहवज़ी ३/३२ - ३३। (७) प्रतिष्ठित सहाबा में से हैं, वज़ू की हदीस के स्वामी, उन्होंने वहशी के भाला मारने के साथ-साथ तलवार से मुसैलमा को मार डाला था, कहा जाता है: वे यौम अल-हर्रा सन (६३ हिजरी) में शहीद हुए। अल-सियर २/३७७।

١٣٦ سورة البقرہ: آیت ٦٠

ہمارے نبی محمد ﷺ نے بارش کی دعا کی، پس آپ ﷺ عاجزی، انکساری، خشوع، تضرع(١) اور گریہ و زاری(٢) کے ساتھ عیدگاہ کی طرف نکلے، اور آپ ﷺ کے لیے یہی کافی ہے! تو ہمارا کیا حال ہو گا جبکہ ہمارے پاس سوائے سرکشی اور بندوں کے رب کی مخالفت کے کوئی توبہ نہیں، تو ہمیں کیسے سیراب کیا جائے گا! لیکن آپ ﷺ نے ابن عمر کی حدیث میں فرمایا: "اور انہوں نے اپنے مالوں کی زکوٰۃ نہیں روکی مگر یہ کہ ان سے آسمان سے بارش روک لی گئی، اور اگر چوپائے نہ ہوتے تو ان پر بارش نہ برسائی جاتی" حدیث۔ اسے ابن ماجہ نے اپنی سنن میں اور ابوبکر البزار نے اپنی کتاب میں روایت کیا ہے، اور ہم نے اسے اپنی کتاب 'التذکرہ' میں امام مالک کی روایت سے مکمل ذکر کیا ہے، اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں(٣)۔

تیسری بات: استسقاء (بارش کی دعا) کی سنت عیدگاہ کی طرف نکلنا ہے - اس صفت پر جو ہم نے ذکر کی - اور خطبہ اور نماز، اور یہی جمہور علماء کا قول ہے۔ اور امام ابوحنیفہ اس طرف گئے ہیں کہ اس کی سنت میں نہ نماز ہے اور نہ ہی نکلنا، بلکہ یہ صرف دعا ہے اور کچھ نہیں۔ اور انہوں نے حضرت انس کی صحیح حدیث سے استدلال کیا ہے جسے بخاری اور مسلم نے روایت کیا ہے، کہ آپ ﷺ نے جمعہ کے دن منبر پر دعا کی، پس ان پر بارش برسائی گئی(٤)۔

اور ان کے لیے اس میں کوئی دلیل نہیں، کیونکہ وہ ایک ایسی دعا تھی جس کی قبولیت میں جلدی کی گئی تھی، چنانچہ وہ اس کے علاوہ ہر چیز سے کفایت کر گئی، اور آپ ﷺ کا اس سے اس کی سنت بیان کرنا مقصود نہ تھا(٥)، اور جب آپ ﷺ کا ارادہ بیان کرنا ہوتا تو آپ اپنے فعل سے بیان فرماتے(٦)، جیسا کہ عبداللہ بن زید المازنی(٧) نے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ عیدگاہ کی طرف نکلے، پس بارش کی دعا کی، اور اپنی چادر پلٹی، پھر...

(١) (ز) اور (م) میں: "مترسلاً" (آہستہ اور ٹھہر ٹھہر کر)۔ (٢) مصنف استسقاء کے بارے میں ابن عباس کی حدیث کی طرف اشارہ کر رہے ہیں، جسے عبدالرزاق (٤٨٩٣)، احمد (٣٣٣١)، ابوداؤد (١١٦٥)، ابن ماجہ (١٢٦٦)، ترمذی (٥٥٨) اور نسائی ٣/١٥٦-١٥٧ نے روایت کیا ہے۔ (٣) ان کا قول: "الحديث خرَّجه ابن ماجه في سننه..." کلام کے آخر تک، نسخہ (ز) سے ہے، اور دوسرے نسخوں میں اس کی جگہ یہ ہے: "الحديث وسيأتي بكماله إن شاء الله"۔ یہ حدیث ابن ماجہ (٤٠١٩) اور بزار (١٦٧٦) (کشف الاستار) کے ہاں ہے، اور اسے طبرانی نے الکبیر (١٣٦١٩)، حاکم ٤/٥٤٠، ابونعیم نے الحلیہ ٣/٣٢٠ اور ٨/٣٣٤، ابوعمرو الدانی نے الفتن (٣٢٧) اور بیہقی نے الشعب (٣٣١٤) میں روایت کیا ہے۔ حاکم نے کہا: اس کی سند صحیح ہے لیکن شیخین نے اسے روایت نہیں کیا۔ اور مصنف اسے اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفسیر میں ذکر کریں گے: ﴿الَّذِينَ إِذَا اكْتَالُوا عَلَى النَّاسِ يَسْتَوْفُونَ﴾ [المطففين: ٢] ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے، اور یہ مؤطا (٢٦) میں ہے۔ (٤) ان کا قول: "اور یہ کہ آپ ﷺ نے جمعہ کے دن منبر پر دعا کی، پس ان پر بارش برسائی گئی"، نسخہ (ز) سے ہے۔ اور یہ حدیث صحیح بخاری (٩٣٢) اور صحیح مسلم (٨٩٧) میں ہے، اور مسند احمد (١٣٥٦٦) میں بھی ہے۔ (٥) (م) میں: "سنة" اور (ظ) میں: "سنته"۔ (٦) دیکھیے عارضۃ الاحوذی ٣/٣٢ - ٣٣۔ (٧) جلیل القدر صحابہ میں سے ہیں، وضو کی حدیث کے راوی، انہوں نے وحشی کے نیزہ مارنے کے ساتھ ساتھ تلوار سے مسیلمہ کو قتل کیا تھا، کہا جاتا ہے: وہ یوم الحرہ سن (٦٣ھ) میں شہید ہوئے۔ السیر ٢/٣٧٧۔

Page 137, Surat Al-Baqarah: Verse 60

...prayed two Rak'ahs. Reported by Muslim (1). More rulings on asking for rain (Istisqa') will follow in Surah Hud and Nuh (2), God willing.

Fourthly: His Almighty's words: {So We said, "Strike the stone with your staff."} [Al-Baqarah: 60]. The staff (Al-Asa): is well-known; it is a shortened feminine noun, and its 'alif' is derived from a 'waw'. It was said:

"Upon its two sticks is a thin, torn garment." (3)

The plural forms are 'Usiyy' and 'Isiyy', following the pattern 'fu'ul'. The 'ayn' was only given a kasra due to the following kasra. 'Agsin' is also a plural form, similar to 'zaman' and 'azmun'.

In the proverb: "The big staff is from the little staff" (4), meaning: one part of a matter arises from another.

And their saying: "He threw down his staff," meaning: he settled and ceased traveling; this is a proverb. It was said:

"So she threw down her staff and settled there, just as a traveler is delighted by his return." (5)

And in the Revelation: {And what is that in your right hand, O Moses? * He said, "It is my staff; I lean upon it..."} [Taha: 17 - 18]. There, the discussion on its benefits will come, God willing.

Al-Farra' said: "The first grammatical error heard in Iraq was: 'Hadihi asati' (this is my staff - using a wrong feminine suffix)."

The 'staff' can also be used to express unity and division. From this, it is said of the Kharijites: "They have split the staff of the Muslims," i.e., their unity and harmony (6). And "The staff was split," meaning: disagreement occurred.

Footnotes: (1) Number (894), and it is also found in Al-Bukhari (1012), and Ahmad (16436). (2) His words: "and Nuh," from (Z), and the author did not mention the rulings of asking for rain in Surah Hud; rather, he mentioned them in Surah Nuh at His words: {And I said, 'Ask forgiveness of your Lord. Indeed, He is ever a Perpetual Forgiver. * He will send [rain from] the sky upon you in abundance...'} [Verse: 10]. (3) The second half of a verse by Dhu al-Rumma, the first half being: "It came with a spider's web as if..." and it is in his Diwan 1/496. His words: "it came," meaning the

well, and its "two sticks" refer to its cross-timbers, which are two pieces of wood for the well. "Sabiri": a type of thin garment, and "mushabraq": torn and cut up. (4) Jamharat al-Amthal 2/40, Majma' al-Amthal 1/15, and Al-Lisan (asa). (5) There is disagreement regarding its speaker: Al-Maydani in Majma' al-Amthal 1/364 attributed it to Mu'aqqir al-Bariqi, while Al-Jahiz in Al-Bayan wa al-Tabyin 3/40 attributed it to Midras al-Asadi. Ibn Barri said in Al-Lisan (asa): This verse is by Abd Rabbih al-Sulami, and it is also attributed to Sulaym bin Thumamah al-Hanafi. It is in Al-Mujmal 3/671, Al-Sihah: (asa), and Khizanat al-Adab 6/413 without attribution. (6) In some copies: "and their separation!"

पृष्ठ १३७, सूरा अल-बकरा: आयत ६०

...दो रकात नमाज़ पढ़ी। इसे मुस्लिम (१) ने रिवायत किया है। इंशा अल्लाह, इस्तिका (बारिश माँगने) के और भी नियम सूरा हूद और नूह (२) में आएंगे।

चौथा: अल्लाह का कहना: {तो हमने कहा: अपनी लाठी से पत्थर पर मारो}। 'अल-असा' (लाठी): प्रसिद्ध है, यह एक स्त्रीलिंग मक़सूर संज्ञा है, और इसका 'अलिफ़' 'वाव' से बदला गया है। कहा गया है:

"उसकी दो लकड़ियों पर एक पतला, फटा हुआ कपड़ा है।" (३)

बहुवचन 'उसीय्य' और 'इसीय्य' है, जो 'फुउल' के पैटर्न पर है। 'ऐन' को केवल उसके बाद आने वाले 'कसरा' के कारण 'कसरा' दिया गया है। 'अगसिन' भी इसी तरह है, जैसे 'ज़मान' और 'अज़मुन'।

कहावत में है: "बड़ी लाठी छोटी लाठी से है" (४), यानी: किसी मामले का एक हिस्सा दूसरे से पैदा होता है।

और उनका कहना: "उसने अपनी लाठी फेंक दी," यानी: वह बस गया और यात्रा छोड़ दी; यह एक कहावत है। कहा गया है:

"तो उसने अपनी लाठी फेंक दी और वहीं बस गई, जैसे कोई यात्री अपनी वापसी पर खुश होता है।" (५)

और कुरान में: {और तुम्हारे दाहिने हाथ में वह क्या है, हे मूसा? * उसने कहा, 'यह मेरी लाठी है; मैं इस पर सहारा लेता हूँ...'} [ताहा: १७-१८]। और वहाँ इसके लाभों पर चर्चा होगी, इंशा अल्लाह।

अल-फर्रा ने कहा: "इराक में सुनी गई पहली व्याकरण संबंधी गलती थी: 'हाज़िही असाती' (मेरी लाठी के लिए गलत स्त्रीलिंग प्रत्यय का उपयोग करना)।"

'लाठी' शब्द का प्रयोग एकता और अलगाव को व्यक्त करने के लिए भी किया जा सकता है। इसलिए खारिजी लोगों के बारे में कहा जाता है: "उन्होंने मुसलमानों की लाठी तोड़ दी," यानी उनकी एकता और तालमेल (६)। और "लाठी फट गई," यानी मतभेद पैदा हो गया।

पादलेख (Footnotes): (१) संख्या (८९४), और यह बुखारी (१०१२) और अहमद (१६४३६) में भी है। (२) उनका कहना: "और नूह," (ज़) से, और लेखक ने सूरा हूद में इस्तिका के नियमों का उल्लेख नहीं

किया, बल्कि सूरा नूह में उनका उल्लेख किया है जब अल्लाह कहता है: {और मैंने कहा, 'अपने पालनहार से क्षमा माँगो। वास्तव में, वह बहुत क्षमा करने वाला है। * वह तुम पर आकाश से भरपूर [वर्षा] भेजेगा...'} [आयत: १०]। (३) ज़ुल-रुम्मा की एक कविता का दूसरा हिस्सा, पहला हिस्सा है: "यह मकड़ी के जाले की तरह आया जैसे..." और यह उनके दीवान १/४९६ में है। उनका कहना: "यह आया," यानी कुआँ, और इसकी "दो लकड़ियाँ" कुएँ की दो लकड़ियाँ हैं। "साबिरी": पतले कपड़े, और "मुशब्रक": कटा-फटा। (४) जमहरतुल अमसाल २/४०, मजम'उल अमसाल १/१५, और लिसानुल अरब (असा)। (५) इसके वक्ता के बारे में मतभेद है; मजम'उल अमसाल १/३६४ में अल-मैदानी ने इसे मुअक्किर अल-बारिक़ी को जिम्मेदार ठहराया, और अल-जाहिज़ ने अल-बयान वत-तबीन ३/४० में इसे मिदरस अल-असदी को जिम्मेदार ठहराया। इब्न बर्री ने अल-लिसान में कहा: (असा): यह कविता अब्द रब्बिह अल-सुलमी के लिए है, और यह सुलैयम बिन सुमामा अल-हनफी के लिए कही गई है। यह अल-मुजमल ३/१७१, अल-सिहह: (असा), और ख़ज़ानतुल अदब ६/४१३ में बिना किसी श्रेय के है। (६) प्रतियों में: "और उनका अलगाव!"

صفحہ ۱۳۷، سورۃ البقرہ: آیت ۶۰

...دو رکعتیں پڑھیں۔ اسے مسلم (۱) نے روایت کیا ہے۔ ان شاء اللہ، استسقاء (بارش طلب کرنے) کے مزید احکام سورہ ہود اور نوح (۲) میں آئیں گے۔

چوتھا: اللہ کا فرمان: ﴿فَقُلْنَا اضْرِب بِّعَصَاكَ الْحَجَرَ﴾ (تو ہم نے کہا: اپنی لاٹھی سے پتھر پر مارو)۔ العصا (لاٹھی): معروف ہے، یہ ایک اسم مقصور مؤنث ہے، اور اس کا 'الف' 'واؤ' سے بدلا ہوا ہے، شاعر نے کہا:

على عَصَوَيْها سابِرِيٌّ مُشَبْرَقُ (۳) (اس کی دو لکڑیوں پر ایک باریک، پھٹا ہوا کپڑا ہے)۔

اور اس کی جمع 'عُصِیّ' اور 'عِصِیّ' ہے، جو 'فُعول' کے وزن پر ہے۔ 'عین' کو صرف اس کے بعد آنے والے کسرہ کی وجہ سے کسرہ دیا گیا ہے، اور 'اغصٍ' بھی اسی کی طرح ہے، جیسے 'زَمَن' اور 'أزْمُن'۔

اور ضرب المثل میں ہے: "العصا من العُصَيّة" (۴) (لاٹھی چھوٹی لاٹھی سے ہے)، یعنی: معاملے کا ایک حصہ دوسرے سے نکلتا ہے۔

اور ان کا قول: "ألقى عصاه" (اس نے اپنی لاٹھی ڈال دی)، یعنی: وہ مقیم ہو گیا اور سفر چھوڑ دیا، اور یہ ایک مثال (محاورہ) ہے۔ شاعر نے کہا:

فألقت عصاها واستقرَّ بها النَّوَى كما قَرَّ عَيْناً بالإياب المسافر (۵) (تو اس نے اپنی لاٹھی ڈال دی اور وہیں ٹھہر گئی، جیسے مسافر اپنی واپسی پر خوش ہوتا ہے)۔

اور قرآن میں ہے: ﴿وَمَا تِلْكَ بِيَمِينِكَ يَمُوسَىٰ (۱۷) قَالَ هِيَ عَصَايَ أَتَوَكَّؤُا عَلَيْهَا﴾ [طہٰ: ۱۷ - ۱۸]۔ اور وہاں اس کے فوائد کے بارے میں بات آئے گی، ان شاء اللہ تعالیٰ۔

فراء نے کہا: "عراق میں سنی جانے والی پہلی لغوی غلطی (لحن) یہ تھی: 'هذه عصاتی' (میری لاٹھی کے لیے 'عصای' کی جگہ غلط مؤنث لفظ استعمال کرنا)۔"

اور 'لاٹھی' سے اجتماع اور افتراق (اتحاد اور علیحدگی) کی تعبیر بھی کی جاتی ہے، اسی سے خارجیوں کے بارے میں کہا جاتا ہے: "انہوں نے مسلمانوں کی لاٹھی توڑ دی،" یعنی ان کا اجتماع اور اتحاد (۶)۔ اور "لاٹھی ٹوٹ گئی،" یعنی اختلاف واقع ہو گیا۔

حواشی: (۱) نمبر (۸۹۴)، اور یہ بخاری (۱۰۱۲) اور احمد (۱۶۴۳۶) کے ہاں بھی ہے۔ (۲) ان کا قول: "اور نوح،" (ز) سے، اور مصنف نے سورہ ہود میں استسقاء کے احکام ذکر نہیں کیے، بلکہ انہیں سورہ نوح میں ذکر کیا ہے جہاں اللہ کا فرمان ہے: ﴿ فَقُلْتُ اسْتَغْفِرُوا رَبَّكُمْ إِنَّهُ كَانَ غَفَّارًا (۱۰) يُرْسِلِ السَّمَاءَ عَلَيْكُمْ مِدْرَارًا (۱۱)﴾ [آیت: ۱۰]۔ (۳) ذو الرمہ کے ایک شعر کا دوسرا مصرع، اور پہلا مصرع ہے: "فجاءت بنسج العنكبوت كأنه"، اور یہ ان کے دیوان ۱/۴۹۶ میں ہے۔ ان کا قول: "فجاءت"، یعنی کنواں، اور "عَصَوَيْها"، یعنی اس کی دو لکڑیاں، اور "سابری": باریک کپڑا، اور "مشبرق": کٹا پھٹا۔ (۴) جمهرة الأمثال ۲/۴۰، ومجمع الأمثال ۱/۱۵، واللسان (عصا)۔ (۵) اس کے کہنے والے میں اختلاف ہے؛ میدانی نے مجمع الامثال ۱/۳۶۴ میں اسے معقر البارقی کی طرف منسوب کیا، اور جاحظ نے البیان والتبیین ۳/۴۰ میں اسے مضرس الاسدی کی طرف منسوب کیا، اور ابن بری نے اللسان میں کہا: (عصا): یہ شعر عبد ربہ السلمی کا ہے، اور سلیم بن ثمامہ الحنفی کے لیے بھی کہا جاتا ہے، اور یہ المجمل ۳/۶۷۱، الصحاح: (عصا)، اور خزانة الادب ۶/۴۱۳ میں بغیر نسبت کے ہے۔ (۶) نسخوں میں: "اور ان کا افتراق (علیحدگی)!"

138

Surah Al-Baqarah: Verse 60

The poet said: When the war breaks out and the staff is split, then a polished Indian sword is sufficient for you and Al-Dahhak.(1) Meaning: It is enough for you and for Al-Dahhak. And their saying: "Do not lift your staff from your family," means discipline.(2) And Allah knows best. And "Al-hajar" (the stone)(3): is well-known. The linguistic rule for its plural for a small number is "ahjar", and for a large number: "hijar" and "hijarah". "Al-hijarah" is rare. It is like saying: "jamal" (camel) and "jimalah", "dhakar" (male) and "dhikarah". This was stated by Ibn Faris and Al-Jawhari.(4) I say: In the Quran: {so it is like stones} [Al-Baqarah: 74], {Say: Be you stones} [Al-Isra: 50], {striking them with stones} [Al-Fil: 4], {And We rained down stones upon them} [Al-Hijr: 74]. So how can it be rare?! Unless they mean(5) it is rare according to linguistic analogy but frequent in usage, then it is correct (or eloquent).(6) And Allah knows best. His(7) Almighty's saying: {Then it gushed forth}: In the speech there is an omission estimated as: "So he struck, then it gushed forth." Almighty Allah was capable of making water gush out and splitting the stone without striking, but He wanted to link effects to causes; out of His wisdom for people in reaching their goal, and to base their reward and punishment in the Hereafter upon that. And "in-fijar" (gushing/explosion) means splitting; from it comes the break (splitting) of dawn. And the water gushed forth (in-fajara) gushingly: it opened up. "Al-mafjarah" is the place where water opens up.(8) And in Surah Al-A'raf: {Then it gushed out (fan-bajasat)}.(9) "Al-inbijas" (gushing out) is narrower than "al-infijar" (gushing forth/explosion); because it starts as a trickle (inbijas) then becomes an explosion (infijar). It is also said: in-bajasa, ta-bajjasa, ta-fajjara, and ta-fattaqa all have the same meaning; as narrated by Al-Harawi and others.

(1) Sharh al-Mufassal 2/48, and al-Sihah: (asa), and attributed in Dhayl al-Amali p. 140 to Jarir, but it is not in his Diwan. (2) al-Sihah: (asa), and the speech is from him starting from his saying: and the plural is isiy. (3) Added in (z): its proof is his saying following it: al-hafahum. Fifth: His Almighty's saying: {al-hajar} The stone is well-known. (4) al-Mujmal 1/264, and al-Sihah (hajar). (5) In (d) yurad (it is intended), and in (z) and (zha): yuridu (he intends), and what is established is from (m). (6) In (d), (z), and (m): fasih (eloquent). (7) In (z): the sixth his saying. (8) In (m): tafajur (gushing). (9) His saying: And in Al-A'raf "fan-bajasat", from (z).

138

सूरह अल-बकरा: आयत 60

कवि ने कहा है: जब युद्ध छिड़ जाए और लाठी बंट जाए, तो तुम्हारे और अल-दहाक के लिए एक पॉलिश की हुई भारतीय तलवार काफी है।(1) मतलब: यह आपके लिए और अल-दहाक के लिए पर्याप्त है। और उनका कहना है: "अपने परिवार से अपनी लाठी न उठाएं" इसका अर्थ अनुशासन है।(2) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। और "अल-हजर" (पत्थर)(3): प्रसिद्ध है। कम संख्या के लिए इसके बहुवचन का भाषाई नियम "अहजर" है, और बड़ी संख्या के लिए: "हिजार" और "हिजारा"। "अल-हिजारा" दुर्लभ है। यह वैसा ही है जैसे कहना: "जमल" (ऊंट) और "जिमाला", "धकर" (पुरुष) और "धिखारा"। यह इब्न फारिस और अल-जौहरी द्वारा कहा गया था।(4) मैंने कहा: और कुरान में: {तो वह पत्थरों की तरह है} [अल-बकरा: 74], {कहें: तुम पत्थर बन जाओ} [अल-इसरा: 50], {उन पर पत्थर फेंकते हुए} [अल-फील: 4], {और हमने उन पर पत्थरों की बारिश की} [अल-हिज्र: 74]। तो यह दुर्लभ कैसे हो सकता है?! जब तक कि उनका मतलब(5) यह न हो कि यह भाषाई सादृश्य के अनुसार दुर्लभ है लेकिन उपयोग में बहुत है, तो यह सही है।(6) और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। अल्लाह ताला का कथन: {तो वह फूट पड़ा}: इस वाक्य में कुछ लुप्त है जिसका अनुमान है: "तो उसने मारा, फिर वह फूट पड़ा।" अल्लाह ताला बिना मारे भी पानी निकालने और पत्थर को चीरने में सक्षम था, लेकिन वह प्रभावों को कारणों से जोड़ना चाहता था; लोगों के अपने लक्ष्य तक पहुँचने में अपनी बुद्धिमत्ता के कारण, और उस पर परलोक में उनके इनाम और सजा को आधार बनाने के लिए। और "इन-फ़िजार" (फूट पड़ना/विस्फोट) का अर्थ है फटना; इसी से भोर का फटना (उदय होना) आता है। और पानी फूट पड़ा (इन-फ़जरा): वह खुल गया। "अल-मफजरा" वह स्थान है जहाँ से पानी खुलता है।(8) और सूरह अल-अराफ़ में है: {तो वह फूट निकला (फ़न-बजसत)}।(9) "अल-इनबिजास" (फूट निकलना) "अल-इनफ़िजार" (फूट पड़ना) से अधिक संकुचित है; क्योंकि यह पहले रिसना (इनबिजास) शुरू होता है और फिर विस्फोट (इनफ़िजार) बन जाता है। यह भी कहा जाता है: इन-बजसा, त-बज्जसा, त-फ़ज्जरा, और त-फ़त्तका, सबका एक ही अर्थ है; जैसा कि अल-हरवी और अन्य लोगों द्वारा वर्णित है।

(1) शर्ह अल-मुफस्सल 2/48, और अल-सिहाह: (असा), और ज़ैल अल-अमाली पृष्ठ 140 में इसे जरीर की ओर जिम्मेदार ठहराया गया है, लेकिन यह उनके दीवान में नहीं है। (2) अल-सिहाह: (असा), और कथन उनके इस वचन से है: और बहुवचन इसिय है। (3) (ज़) में जोड़ा गया: इसका

प्रमाण इसके बाद उनका कथन है: अल-हफहुम। पांचवां: सर्वशक्तिमान का कथन: {अल-हजर} पत्थर प्रसिद्ध है। (4) अल-मुजमल 1/264, और अल-सिहाह (हजर)। (5) (द) में 'युराद' (इरादा किया गया), और (ज़) और (ज़) में 'यूरीदु' (वह इरादा करता है), और जो स्थापित है वह (म) से है। (6) (द), (ज़) और (म) में: 'फसीह' (सुवक्ता)। (7) (ज़) में: छठी उनका कथन। (8) (म) में: तफ़जुर (फूट पड़ना)। (9) उनका कथन: और अल-अराफ़ में 'फ़न-बजसत', (ज़) से है।

۱۳۸

سورة البقرہ: آیت ۶۰

شاعر نے کہا: جب جنگ چھڑ جائے اور لاٹھی ٹوٹ جائے (اتحاد ختم ہو جائے)، تو تیرے اور الضحاک کے لیے ایک صیقل شدہ ہندوستانی تلوار کافی ہے۔(۱) یعنی: یہ تیرے لیے اور الضحاک کے لیے کافی ہے۔ اور ان کا قول: "اپنے گھر والوں سے اپنی لاٹھی نہ اٹھاؤ،" اس سے مراد ادب (تربیت/تادیب) ہے۔(۲) اور اللہ بہتر جانتا ہے۔ اور "الحجر" (پتھر)(۳): مشہور ہے، اور کم تعداد (جمع قلت) کے لیے اس کی جمع کا قاعدہ "أحجار" ہے، اور کثرت کے لیے: "حجار" اور "حجارة"۔ "الحجارة" (قاعدے کے لحاظ سے) شاذ (نادر) ہے۔ یہ ہمارے اس قول کی طرح ہے: "جَمَل" اور "جمالة"، "ذَكَر" اور "ذكارة"۔ اسی طرح ابن فارس اور الجوہری نے کہا ہے۔(۴) میں نے کہا: اور قرآن میں ہے: {تو وہ پتھروں کی طرح ہے} [البقرة: ۷۴]۔ {کہہ دو: تم پتھر ہو جاؤ} [الإسراء: ۵۰]۔ {ان پر پتھر پھینکتے تھے} [الفيل: ۴]۔ {اور ہم نے ان پر پتھر برسائے} [الحجر: ۷۴]۔ تو یہ نادر کیسے ہوا؟! مگر یہ کہ ان کی مراد(۵) یہ ہو کہ یہ قیاس (قاعدے) میں نادر ہے لیکن استعمال میں کثیر ہے، تو پھر یہ صحیح (یا فصیح) ہے۔(۶) اور اللہ بہتر جانتا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {تو وہ پھوٹ پڑا}: کلام میں ایک حذف ہے جس کی تقدیر (پوشیدہ عبارت) یہ ہے: "تو اس نے مارا، پس وہ پھوٹ پڑا"۔ اللہ تعالیٰ بغیر مارے بھی پانی جاری کرنے اور پتھر پھاڑنے پر قادر تھا، لیکن اس نے مسببات (نتائج) کو اسباب سے جوڑنا چاہا؛ یہ بندوں کے لیے ان کے مقصد تک پہنچنے میں اس کی حکمت ہے، اور تاکہ آخرت میں ان کے ثواب اور عذاب کو اس پر مرتب کرے۔ اور "انفجار" کا مطلب ہے پھٹنا، اسی سے ہے: "انشق الفجر" (پوپھٹنا)۔ اور پانی پھوٹ پڑا (انفجر الماء انفجاراً): وہ کھل گیا۔ "المفجرة" وہ جگہ ہے جہاں پانی کھلتا (پھوٹتا) ہے۔(۸) اور سورہ

اعراف میں ہے: {تو وہ پھوٹ نکلا (فَانْبَجَسَتْ)}۔(۹) اور "انبجاس" (پھوٹ نکلا) "انفجار" (پھوٹ پڑا) سے زیادہ تنگ (کم) ہے؛ کیونکہ پہلے "انبجاس" (ہلکا سا نکلنا) ہوتا ہے پھر وہ "انفجار" (تیزی سے پھوٹنا) بن جاتا ہے۔ اور کہا گیا ہے: "انبجس"، "تبجس"، "تفجر" اور "تفتق" سب ایک ہی معنی میں ہیں، اسے الہروی اور دوسروں نے نقل کیا ہے۔

(۱) شرح المفصل ۲/۴۸، اور الصحاح: (عصا)، اور ذیل الأمالی ص ۱۴۰ میں اسے جریر کی طرف منسوب کیا گیا ہے لیکن یہ ان کے دیوان میں نہیں ہے۔ (۲) الصحاح: (عصا)، اور یہ کلام ان کے اس قول سے ہے: اور جمع عصي ہے۔ (۳) نسخہ (ز) میں اضافہ ہے: اس کی دلیل اس کے بعد ان کا قول ہے: ألحفهم۔ پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {الْحَجَرَ} پتھر معروف ہے۔ (۴) المجمل ۱/۲۶۴، اور الصحاح (حجر)۔ (۵) نسخہ (د) میں "يراد" ہے، اور (ز) و (ظ) میں "يريد" ہے، اور متن میں ثابت شدہ نسخہ (م) سے ہے۔ (۶) نسخہ (د)، (ز) اور (م) میں: "فصيح" (فصیح) ہے۔ (۷) نسخہ (ز) میں ہے: چھٹی بات ان کا قول۔ (۸) نسخہ (م) میں ہے: "تفجر"۔ (۹) ان کا قول: "اور اعراف میں فانبجست ہے"، نسخہ (ز) سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 60 139

Fifth (point)(1): The Almighty's saying: ﴿اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا﴾ (Twelve springs). "Athnatā" is in the nominative case (raf') as the subject of "infajarat" (gushed forth), and its sign of nominative is the 'alif'. It is declined unlike its counterparts (other dual numbers combined with ten) because the dual is always declinable due to the soundness of its meaning. "'Aynan" (spring) is in the accusative case (naṣb) as an explanation (bayān). Mujāhid, Talḥah(2), and ʻĪsā recited it as: "'ashira" with a kasra on the letter 'shin'(3). This is the dialect of Banu Tamīm, and it is rare in their dialect because their tendency is towards lightening (takhfīf). The dialect of the people of Hijaz is "'ashara" (with fatḥa) and their tendency is towards strengthening (tathqīl). All of this was stated by Al-Naḥḥās(4).

The word "'Ayn" (eye/spring) is among the homonyms (polysemous words). It is said: "'ayn al-mā'" (the eye of water/spring), "'ayn al-insān" (the eye of man), "'ayn al-rukbah" (the eye of the knee - knee cap/pit)(5), and "'ayn al-shams" (the eye of the sun). "Al-'Ayn" is also a cloud that approaches from the direction of the Qibla. "Al-'Ayn" is rain that lasts for five or six days without stopping(6). A land with "qalīl al-'ayn" means it has few people. And "mā bihā 'ayin", with a vocalized 'yā'. "Al-'Ayn" is the hole in a water skin. The water spring ("'ayn al-mā'") is likened to the animal's eye because water comes out of it like tears come out of an animal's eye. It is said: since the animal's eye is the most noble part of it, the water spring was likened to it because it is the most noble thing on earth.

Sixth (point)(7): When Moses, peace be upon him, prayed for water for his people, he was commanded when praying for water to strike a stone with his staff. It was said: a square stone from Mount Sinai (Ṭūrī) - the size of a sheep's head(8), which would be placed in the corner of a large sack (juwāliq)(9) and carried with them. When they encamped, it was placed in the center of their encampment. It was mentioned that they were not...

(1) In (z): The seventh. (2) He is Talḥah ibn Muṣarrif, Abū Muḥammad al-Yāmī, al-Kūfī, the reciter (muqri'). He recited to Yaḥyā ibn Waththāb and others. He died in the year 112 AH. Al-Siyar 5/191. (3) Ibn Khālawayh attributed it in the anomalous recitations p. 5 to Al-A'mash; Al-Rāzī attributed it in his Tafsīr 3/94 to Abū Ja'far; and Ibn 'Aṭiyyah attributed it in Al-Muḥarrar al-Wajīz 1/152 to Ibn Waththāb and Ibn Abī Laylā. (4) I'rāb al-Qur'ān 1/230. (5) In (z): Al-Rukyah, which is an error. Ibn al-Shajarī said in his Amālī 1/423: "'Ayn al-rukbah" is the pit in it. (6) In (z): Does not cease. (7) In (z): The eighth.

(8) After it in (z): And it was said: like a human head. (9) In (z): A "juwāliq" bag. End of quote. His saying: "al-kasr" is the side of anything. "Al-juwāliq" is a container made of wool, hair, or other materials. Among the common people, it is "shuwāl", an Arabized word. Likewise in Al-Mu‘jam al-Wasīṭ.

सूरह अल-बक़राह: आयत ६० १३९

पाँचवाँ(१): अल्लाह का कथन: ﴿اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا﴾ (बारह चश्मे)। "इथनाता" (athnatā) 'इनफजरत' (फूट निकले) के कर्ता होने के कारण रफ़ा (nominative) की स्थिति में है और इसमें रफ़ा का चिह्न 'अलिफ़' है। यह अपने समकक्षों (दहाई के साथ अन्य द्विवचन) के विपरीत विकारी (declinable) है; क्योंकि द्विवचन हमेशा विकारी होता है क्योंकि उसका अर्थ स्पष्ट होता है। "ऐनन" (عينًا - चश्मा) स्पष्टीकरण (बयान) के रूप में नसब (accusative) की स्थिति में है। मुजाहिद, तलहा(२) और ईसा ने इसे 'शिन' पर कसरा के साथ "अशिरा" (عَشِرة) पढ़ा है(३), जो बनू तमीम की भाषा है। उनकी भाषा में यह दुर्लभ है क्योंकि उनकी प्रवृत्ति सरलीकरण (तख़फ़ीफ़) की ओर होती है। हिजाज़ के लोगों की भाषा "अशरा" (عَشَرَة) (फ़तह के साथ) है और उनकी प्रवृत्ति भारीपन (तथक़ील) की ओर है। यह सब अन-नह़्हास(४) ने कहा है।

'ऐन' (عَيْن - आँख/चश्मा) उन शब्दों में से है जिनके कई अर्थ होते हैं (अनेकार्थी)। कहा जाता है: 'ऐन अल-मा' (पानी का चश्मा), 'ऐन अल-इंसान' (मनुष्य की आँख), 'ऐन अर-रुकबह'(५) (घुटने की कटोरी/गड्ढा), और 'ऐन अश-शम्स' (सूर्य की आँख)। 'अल-ऐन' का अर्थ किबला की ओर से आने वाले बादल भी हैं। 'अल-ऐन' वह वर्षा है जो पाँच या छह दिनों तक बिना रुके जारी रहती है(६)। 'क़लील अल-ऐन' वाला स्थान वह है जहाँ लोग कम हों। और 'मा बिहा अयिन' (ي) पर हरकत के साथ। 'अल-ऐन' मशक (पानी की थैली) के छेद को भी कहते हैं। पानी के चश्मे ('ऐन अल-मा') की उपमा पशु की आँख से दी गई है; क्योंकि उससे पानी उसी तरह निकलता है जैसे पशु की आँख से आँसू निकलते हैं। कहा गया है: चूँकि पशु की आँख उसका सबसे श्रेष्ठ अंग है, इसलिए पानी के चश्मे की तुलना उससे की गई है क्योंकि वह पृथ्वी पर सबसे श्रेष्ठ चीज़ है।

छठा(७): जब मूसा (उन पर शांति हो) ने अपनी जाति के लिए पानी माँगा, तो उन्हें पानी माँगते समय अपनी लाठी से एक पत्थर पर मारने का आदेश दिया गया। कहा गया है: वह तूर पर्वत का एक चौकोर पत्थर था - भेड़ के सिर के बराबर(८) जिसे एक बड़े थैले (जवालिक़)(९) के कोने में रखा जाता था और उसे अपने साथ ले जाया जाता था। जब वे पड़ाव डालते, तो उसे उनकी बस्ती के बीच में रखा जाता था। उल्लेख है कि वे नहीं थे...

(१) (ज़) में: सातवाँ। (२) वे तलहा इब्न मुसर्रिफ, अबू मुहम्मद अल-यामी, अल-कूफी, मुकरी (क़ारी) हैं। उन्होंने यहया इब्न वथ्थाब और अन्य से शिक्षा ली। हिजरी वर्ष ११२ में उनका निधन हुआ। अस-सियर

५/१९१। (३) इब्न खालवैय ने इसे 'शाज़' (दुर्लभ) किराअतों (पृष्ठ ५) में अल-अमाश से जोड़ा है; अर-राज़ी ने अपनी तफ़सीर (३/९४) में इसे अबू जाफ़र से जोड़ा है; और इब्न अतिया ने 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' (१/१५२) में इसे इब्न वथ्थाब और इब्न अबी लैला से जोड़ा है। (४) एराब अल-कुरान १/२३०। (५) (ज़) में: अर-रुकिया, जो एक त्रुटि है। इब्न अल-शजरी ने अपनी 'अमाली' (१/४२३) में कहा है: 'ऐन अर-रुकबह' वह गड्ढा है जो उसमें होता है। (६) (ज़) में: रुकता नहीं है। (७) (ज़) में: आठवाँ। (८) (ज़) में इसके बाद है: और कहा गया: मनुष्य के सिर जैसा। (९) (ज़) में: जवालिक़ का थैला। समाप्त। उनका कथन: 'अल-क़स्र' किसी भी चीज़ का कोना/किनारा है। 'जवालिक़' ऊन, बाल या अन्य सामग्री से बना एक पात्र है। आम लोगों के बीच इसे 'शवाल' कहा जाता है, जो एक अरबीकृत शब्द है। अल-मुजम अल-वसीत में ऐसा ही है।

سورہ البقرہ: آیت ۶۰ ۱۳۹

پانچویں (بات)(۱): اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا﴾ (بارہ چشمے)۔ "اثنتا" (athnatā) 'انفجرت' (پھوٹ نکلے) کا فاعل ہونے کی بنا پر حالتِ رفع میں ہے اور اس میں رفع کی علامت 'الف' ہے۔ یہ اپنے ہم پلہ الفاظ (دس کے ساتھ دیگر تثنیہ) کے برعکس معرب ہے؛ کیونکہ تثنیہ ہمیشہ معرب ہوتا ہے کیونکہ اس کے معنی درست ہوتے ہیں۔ "عَيْنًا" (چشمہ) تمیز (بیان) ہونے کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے۔ مجاہد، طلحہ(۲) اور عیسیٰ نے 'شین' کے کسرہ (زیر) کے ساتھ "عَشِرة" پڑھا ہے(۳)، جو بنو تمیم کی لغت ہے، اور ان کی لغت میں یہ نایاب ہے کیونکہ ان کا طریقہ تخفیف (ہلکا پن) ہے۔ اہل حجاز کی لغت "عَشَرَة" (زبر کے ساتھ) ہے اور ان کا طریقہ تثقیل (بھاری پن) ہے۔ یہ سب النحاس(۴) نے کہا ہے۔

لفظ 'عین' (آنکھ/چشمہ) مشترک اسماء (کثیر المعانی الفاظ) میں سے ہے، کہا جاتا ہے: 'عین الماء' (पानी का चश्मा), 'عین الانسان' (انسان کی آنکھ), 'عین الرکبة'(۵) (گھٹنے کی ہڈی کا گڑھا), اور 'عین الشمس' (سورج کی آنکھ)۔ 'العین' وہ بادل بھی ہے جو قبلہ کی جانب سے آئے۔ 'العین' وہ بارش ہے جو پانچ یا چھ دن تک نہ رکے(۶)۔ 'قلیل العین' بستی وہ ہے جس کے لوگ کم ہوں۔ 'ما بہا عَین' (یاء کی حرکت کے ساتھ)۔ 'العین' مشکیزے کے سوراخ کو بھی کہتے ہیں۔ پانی کے چشمے کو حیوان کی آنکھ سے تشبیہ دی گئی ہے کیونکہ اس سے پانی اس طرح نکلتا ہے جیسے حیوان کی آنکھ سے آنسو نکلتے ہیں۔ کہا گیا ہے: چونکہ حیوان کی آنکھ اس کا اشرف ترین عضو ہے، اس لیے پانی کے چشمے کو اس سے تشبیہ دی گئی کیونکہ وہ زمین کی اشرف ترین چیز ہے۔

چھٹی (بات)(۷): جب موسیٰ علیہ السلام نے اپنی قوم کے لیے پانی طلب کیا تو انہیں حکم دیا گیا کہ وہ پانی طلب کرتے وقت اپنے عصا سے پتھر پر ماریں۔ کہا گیا: وہ کوہِ طور کا ایک چوکور پتھر

تھا - ایک بکری کے سر کے برابر(۸) جسے ایک بڑے تھیلے (جوالق)(۹) کے کونے میں رکھا جاتا اور اسے لے کر کوچ کیا جاتا تھا۔ جب وہ پڑاؤ ڈالتے تو اسے ان کی بستی کے وسط میں رکھ دیا جاتا۔ ذکر کیا گیا ہے کہ وہ نہیں تھے...

(۱) (ز) میں: ساتویں۔ (۲) وہ طلحہ بن مصرف، ابو محمد الیامی، الکوفی، المقرئ ہیں، انہوں نے یحییٰ بن وثاب وغیرہ سے قرات سیکھی۔ سن ۱۱۲ھ میں وفات پائی۔ السیر ۵/۱۹۱۔ (۳) ابن خالویہ نے اسے شاذ قراتوں (ص ۵) میں الاعمش سے منسوب کیا ہے؛ رازی نے اپنی تفسیر (۳/۹۴) میں اسے ابو جعفر سے، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز (۱/۱۵۲) میں اسے ابن وثاب اور ابن ابی لیلیٰ سے منسوب کیا ہے۔ (۴) اعراب القرآن ۱/۲۳۰۔ (۵) (ز) میں: الرکیہ، جو کہ غلطی ہے۔ ابن الشجری نے اپنی امالی (۱/۴۲۳) میں کہا ہے: 'عین الرکبة' وہ گڑھا ہے جو اس میں ہوتا ہے۔ (۶) (ز) میں: منقطع نہیں ہوتی۔ (۷) (ز) میں: آٹھویں۔ (۸) (ز) میں اس کے بعد ہے: اور کہا گیا: انسان کے سر کی طرح۔ (۹) (ز) میں: جوالق کا تھیلا۔ اھ اس کا قول: 'الکسر' ہر چیز کا کنارہ ہے۔ 'الجوالق' اون، بال یا کسی اور چیز کا برتن (تھیلا) ہے، اور عوام میں یہ 'شوال' کہلاتا ہے، جو کہ معرب ہے۔ المعجم الوسیط میں اسی طرح ہے۔

140 Surah Al-Baqarah: Verse 60

...they carried the stone, but they would find it at every stage in its position of the first stage, and this is greater in sign and miracle (1). And it was said: the name "the stone" was given to it so that Moses could strike any stone he wished, and this is more profound in miracle. And it was said: Allah Almighty commanded him to strike a specific stone, which He pointed out to Moses, peace be upon him, and that is why it was mentioned with the definite article. Said ibn Jubayr said: It is the stone on which Moses placed his clothes when he bathed, and it ran away with his clothes until Allah cleared him of what his people accused him of (2). And it is said: It was a stone from the stones of the earth. And it is said: Moses picked it up from the bottom of the sea where he passed [through it with his people]. And Allah knows best (3). Ibn Atiyyah said (4): There is no disagreement that it was a separate, square stone, from each side of which three springs would gush when Moses struck it, and when they had no more need for water and moved on, the springs would dry up. I said: Abu al-Layth al-Samarqandi (5) mentioned a disagreement regarding this, saying: It is said: One spring would come out, then split into twelve branches, becoming twelve rivers. Some said: The stone had twelve holes, from which twelve springs emerged, each one not mixing with the others (6). I say: What our Prophet Muhammad (peace and blessings of Allah be upon him) was given of the gushing of water and its eruption from his hand between his fingers is greater as a miracle, for we witness water gushing from stones day and night, but the miracle of our Prophet (peace be upon him) was not given to any prophet before our Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), water coming out from between flesh and blood! Reported...

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/152. (2) Qisas al-Anbiya by al-Tha'labi p. 248, and Tafsir al-Baghawi 1/77. (3) His saying: It is said: It was a stone from the stones of the earth... up to this point, is from (Z), and it is not in the rest of the manuscripts, and it is in Tafsir Abi al-Layth al-Samarqandi 1/123, and what is between the brackets is from him. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/152. (5) In his Tafsir 1/123. (6) From his saying: I said: Abu al-Layth mentioned... up to this point, from (Z).

140 सूरह अल-बकराह: आयत 60

...वे पत्थर को ले जाते थे, लेकिन वे उसे हर पड़ाव पर पहले पड़ाव की अपनी स्थिति में पाते थे, और यह निशानी और चमत्कार में अधिक महान है (1)। और यह कहा गया: इसे 'पत्थर' नाम इसलिए दिया गया ताकि मूसा जिस भी पत्थर को चाहें उस पर प्रहार कर सकें, और यह चमत्कार में अधिक प्रभावशाली है। और यह कहा गया: अल्लाह तआला ने उन्हें एक विशेष पत्थर पर प्रहार करने का आदेश दिया था, जिसे उसने मूसा (उन पर शांति हो) को स्पष्ट कर दिया था, और इसीलिए इसे निश्चित संज्ञा (the stone) के साथ उल्लेख किया गया है। सईद बिन जुबैर ने कहा: यह वही पत्थर है जिस पर मूसा ने स्नान करते समय अपने कपड़े रखे थे, और वह उनके कपड़े लेकर भाग गया था यहाँ तक कि अल्लाह ने उन्हें उस दोष से मुक्त कर दिया जो उनके लोगों ने उन पर लगाया था (2)। और कहा जाता है: यह पृथ्वी के पत्थरों में से एक पत्थर था। और कहा जाता है: मूसा ने इसे समुद्र के तल से उठाया था जहाँ से वह [अपने लोगों के साथ] गुजरे थे। और अल्लाह बेहतर जानता है (3)। इब्न अतिय्या ने कहा (4): इसमें कोई मतभेद नहीं है कि यह एक अलग, चौकोर पत्थर था, जिसके हर तरफ से तीन झरने फूटते थे जब मूसा उस पर प्रहार करते थे, और जब उन्हें पानी की आवश्यकता नहीं रहती थी और वे कूच करते थे, तो झरने सूख जाते थे। मैंने कहा: अबू अल-लैथ अल-समरकंदी (5) ने इसमें मतभेद का उल्लेख किया है, और कहा है: यह कहा जाता है: एक ही चश्मा निकलता था, फिर वह बारह शाखाओं में विभाजित हो जाता था, और बारह नदियाँ बन जाती थीं। कुछ ने कहा: पत्थर में बारह छेद थे, जिनसे बारह चश्मे निकलते थे, जो एक-दूसरे में नहीं मिलते थे (6)। मैंने कहा: हमारे नबी मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को उनकी उंगलियों के बीच से पानी निकलने और फूटने का जो चमत्कार दिया गया, वह चमत्कार में अधिक महान है, क्योंकि हम रात-दिन पत्थरों से पानी फूटते देखते हैं, लेकिन हमारे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का चमत्कार हमारे नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से पहले किसी नबी को नहीं दिया गया था, कि मांस और खून के बीच से पानी निकले! रिवायत है...

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/152। (2) अल-थलाबी द्वारा क़िसास अल-अंबिया पृ. 248, और तफ़सीर अल-बग़वी 1/77। (3) उनका कहना: और कहा जाता है: वह पृथ्वी के पत्थरों में से एक पत्थर था... यहाँ तक, (ज़) से है, और बाकी प्रतियों में नहीं है, और यह अबू अल-लैथ अल-समरकंदी की तफ़सीर 1/123 में है, और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उन्हीं का है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़

1/152। (5) उनकी तफ़सीर में 1/123। (6) उनके इस कथन से: मैंने कहा: अबू अल-लैथ ने उल्लेख किया है... इस स्थान तक, (ज़) से है।

۱۴۰ سورہ البقرہ: آیت ۶۰

...وہ پتھر اٹھاتے تھے، لیکن وہ اسے ہر منزل پر پہلی منزل والی اس کی جگہ پر پاتے تھے، اور یہ نشانی اور معجزے میں زیادہ بڑی بات ہے (۱)۔ اور کہا گیا: اسے پتھر کا نام اس لیے دیا گیا تاکہ موسیٰ جس پتھر پر چاہیں ضرب لگائیں، اور یہ معجزے میں زیادہ بلیغ ہے۔ اور کہا گیا: اللہ تعالیٰ نے انہیں ایک خاص پتھر پر ضرب لگانے کا حکم دیا، جسے اس نے موسیٰ علیہ السلام کے لیے واضح کر دیا تھا، اور اسی لیے اسے معرفہ کے لفظ کے ساتھ ذکر کیا گیا۔ سعید بن جبیر نے کہا: یہ وہی پتھر ہے جس پر موسیٰ نے غسل کرتے وقت اپنے کپڑے رکھے تھے، اور وہ ان کے کپڑے لے کر بھاگا یہاں تک کہ اللہ نے انہیں اس بات سے بری کر دیا جس کا ان کی قوم نے ان پر الزام لگایا تھا (۲)۔ اور کہا جاتا ہے: یہ زمین کے پتھروں میں سے ایک پتھر تھا۔ اور کہا جاتا ہے: موسیٰ نے اسے سمندر کی تہہ سے اٹھایا تھا جہاں سے وہ [اپنی قوم کے ساتھ] گزرے تھے۔ واللہ اعلم (۳)۔ ابن عطیہ نے کہا (۴): اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ وہ ایک الگ چوکور پتھر تھا، جس کی ہر جہت سے تین چشمے جاری ہوتے تھے جب موسیٰ اسے ضرب لگاتے تھے، اور جب وہ پانی سے بے نیاز ہو جاتے اور کوچ کرتے تو چشمے خشک ہو جاتے۔ میں نے کہا: ابو اللیث السمرقندی (۵) نے اس میں اختلاف ذکر کیا ہے، چنانچہ کہا: کہا جاتا ہے: ایک ہی چشمہ نکلتا تھا، پھر وہ بارہ حصوں میں تقسیم ہو جاتا تھا، اور بارہ نہریں بن جاتی تھیں۔ اور بعض نے کہا: پتھر میں بارہ سوراخ تھے، جن سے بارہ چشمے نکلتے تھے، جو ایک دوسرے کے ساتھ نہیں ملتے تھے (۶)۔ میں نے کہا: ہمارے نبی محمد ﷺ کو جو پانی کا چشمہ بن کر نکلنا اور آپ کی انگلیوں کے درمیان سے پھوٹنا عطا ہوا وہ معجزے میں زیادہ عظیم ہے، کیونکہ ہم رات دن پتھروں سے

پانی پھوٹتا ہوا دیکھتے ہیں، جبکہ ہمارے نبی ﷺ کا معجزہ ہمارے نبی ﷺ سے پہلے کسی نبی کے لیے نہیں تھا، کہ گوشت اور خون کے درمیان سے پانی نکلے! مروی ہے...

(۱) المحرر الوجيز ۱۵۲/۱۔ (۲) قصص الأنبياء للثعلبي ص ۲٤۸، وتفسير البغوي ۷۷/۱۔ (۳) ان کا قول: اور کہا جاتا ہے کہ وہ زمین کے پتھروں میں سے ایک پتھر تھا... یہاں تک، (ز) سے ہے، اور باقی نسخوں میں نہیں ہے، اور یہ تفسیر أبي الليث السمرقندی ۱۲۳/۱ میں ہے، اور جو کچھ بریکٹ میں ہے وہ ان کی طرف سے ہے۔ (۴) المحرر الوجيز ۱۵۲/۱۔ (۵) اپنی تفسیر میں ۱۲۳/۱۔ (۶) ان کے اس قول سے: میں نے کہا: ابو اللیث نے ذکر کیا ہے... یہاں تک، (ز) سے ہے۔

141

Surah Al-Baqarah: Verse 60

The trustworthy Imams and established jurists narrated from Abdullah, who said: "We were with the Prophet ﷺ, and we could not find water. So a bowl (tawr)[1] was brought, and he put his hand into it. I certainly saw the water gushing from between his fingers, while he was saying: 'Come to the purification!'" Al-A'mash said: "Salim ibn Abi al-Ja'd narrated to me, saying: 'I said to Jabir: How many were you that day?' He replied: 'Fifteen hundred.'" This is the wording of an-Nasa'i[2].

The Seventh point[3]: His word, Exalted is He: {Every tribe knew its drinking place} [Quran 2:60], meaning: each tribe among them had a spring they recognized, and they would not drink from any other. The wisdom in this was that there was tribalism and boasting among the tribes; no tribe would marry into another, and every tribe wanted to increase its own numbers. Thus, He made a separate river for each tribe from which they and their livestock could drink, so that no dispute or argument would arise among them[4].

Al-Mashrab: The place of drinking, and it was said: the drink itself. The tribes (al-asbat) among the Children of Israel are like the clans among the Arabs, and they are the descendants of the twelve sons of Jacob, peace be upon him. Each tribe had a spring among those springs that it did not exceed[5].

Ata said: "The stone had four faces, and three springs emerged from each face, one for each tribe, which no one else shared with them. And it reached us that in every tribe there were fifty thousand fighters, besides[6] their horses and livestock."

Ata also said: "At every spot struck by Moses, something like a woman's breast would appear on the stone; it would sweat first, and then the water would flow[7]."

(1) It is a vessel from which one drinks. Al-Qamus (Tawr). (2) Al-Mujtaba 1/60, and it is in Ahmad (3807) with the wording: "Come to the ablution!", and similarly in Al-Bukhari (3579). It was also narrated by Ahmad (12348), Al-Bukhari (169), and Muslim (2279) from the hadith of Anas, may Allah be pleased with him; and by Ahmad (14522) and Al-Bukhari (3576) from the hadith of Jabir, may Allah be pleased with him. (3) In (Z): The Ninth. (4) From his words: "The wisdom in this..." to this point is from (Z), and it is in Tafsir al-Samarqandi 1/123. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/152. (6) In some copies: "from other than", and what is established is from (M). (7) Tafsir al-Baghawi 1/77.

141

सूरह अल-बकरा: आयत 60

भरोसेमंद इमामों और स्थापित न्यायविदों ने अब्दुल्ला से वर्णन किया है, जिन्होंने कहा: "हम नबी ﷺ के साथ थे, और हमें पानी नहीं मिला। तब एक बर्तन (तौर)[1] लाया गया, और उन्होंने उसमें अपना हाथ डाला। मैंने निश्चित रूप से उनकी उंगलियों के बीच से पानी फूटते देखा, जबकि वह कह रहे थे: 'पवित्रता की ओर आओ!'" अल-अमश ने कहा: "सलीम इब्न अबी अल-जाद ने मुझसे कहा: 'मैंने जाबिर से पूछा: उस दिन आप कितने लोग थे?' उन्होंने उत्तर दिया: 'पंद्रह सौ।'" यह अन-नसाई के शब्द हैं[2]।

सातवीं बात[3]: अल्लाह का कथन: {हर कबीले ने अपना पीने का स्थान जान लिया} [कुरान 2:60], अर्थात: उनमें से प्रत्येक कबीले का अपना एक झरना था जिसे वे पहचानते थे, और वे किसी दूसरे झरने से नहीं पीते थे। इसमें बुद्धिमत्ता यह थी कि कबीलों के बीच आपसी कट्टरता और गर्व की भावना थी; कोई कबीला दूसरे कबीले में विवाह नहीं करता था, और प्रत्येक कबीला अपनी संख्या बढ़ाना चाहता था। इसलिए, उसने प्रत्येक कबीले के लिए एक अलग नदी बनाई जिससे वे और उनके पशु पी सकें, ताकि उनके बीच कोई विवाद या बहस न हो[4]।

अल-मशरब: पीने का स्थान, और कहा गया है: स्वयं पेय। बनी इसराइल में कबीले (अल-अस्बात) वैसे ही हैं जैसे अरबों में गोत्र होते हैं, और वे याकूब अलैहिस्सलाम के बारह बेटों की संतान हैं। उन झरनों में से प्रत्येक कबीले के लिए एक झरना था जिसे वह पार नहीं करता था[5]।

अता ने कहा: "पत्थर के चार चेहरे थे, और प्रत्येक चेहरे से तीन झरने निकलते थे, प्रत्येक कबीले के लिए एक, जिसमें कोई और उनके साथ शामिल नहीं होता था। और हमें यह ज्ञात हुआ कि प्रत्येक कबीले में पचास हजार योद्धा थे, उनके घोड़ों और पशुओं के अलावा[6]।"

अता ने यह भी कहा: "मूसा द्वारा मारे गए प्रत्येक स्थान पर, पत्थर पर स्त्री के स्तन जैसा कुछ उभर आता था; पहले वह पसीजता था, और फिर पानी बहने लगता था[7]।"

(1) यह एक पात्र है जिससे पानी पिया जाता है। अल-कामूस (तौर)। (2) अल-मुजतबा 1/60, और यह अहमद (3807) में इन शब्दों के साथ है: "वज़ू के लिए आओ!", और इसी तरह बुखारी (3579) में भी। इसे अहमद (12348), बुखारी (169), और मुस्लिम (2279) ने अनस (रज़ि.) की हदीस से; और

अहमद (14522) और बुखारी (3576) ने जाबिर (रज़ि.) की हदीस से भी वर्णित किया है। (3) (ज़) में: नौवीं। (4) उनके शब्दों से: "इसमें बुद्धिमत्ता यह है कि..." इस स्थान तक, (ज़) से है, और यह तफ़सीर अल-समरकंदी 1/123 में है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/152. (6) कुछ प्रतियों में: "के सिवा", और जो स्थापित है वह (म) से है। (7) तफ़सीर अल-बग़वी 1/77.

١٤١

سورہ البقرہ : الآیۃ ٦٠

ثقہ ائمہ اور معتبر فقہاء نے عبداللہ بن مسعود رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: "ہم نبی ﷺ کے ساتھ تھے، تو ہمیں پانی نہیں ملا۔ پھر ایک برتن (تور)(١) لایا گیا، آپ ﷺ نے اس میں اپنا ہاتھ ڈالا، تو میں نے دیکھا کہ آپ ﷺ کی انگلیوں کے درمیان سے پانی پھوٹ رہا تھا اور آپ ﷺ فرما رہے تھے: 'پاکی (وضو) کی طرف آؤ'۔" اعمش نے کہا: "سالم بن ابی الجعد نے مجھے بتایا، انہوں نے کہا: 'میں نے جابر رضی اللہ عنہ سے پوچھا: آپ اس دن کتنے لوگ تھے؟' انہوں نے کہا: 'پندرہ سو'۔" یہ نسائی کے الفاظ ہیں(٢)۔

ساتویں بات(٣): اللہ تعالیٰ کا قول: {قَدْ عَلِمَ كُلُّ أُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ} (بے شک ہر گروہ نے اپنے پینے کی جگہ پہچان لی)، یعنی: ان میں سے ہر قبیلے کے لیے ایک چشمہ تھا جسے وہ پہچانتے تھے، وہ کسی دوسرے کے چشمے سے نہیں پیتے تھے۔ اس میں حکمت یہ تھی کہ قبیلوں کے درمیان عصبیت اور فخر و مباہات پایا جاتا تھا، اور ان میں کوئی قبیلہ دوسرے قبیلے میں شادی نہیں کرتا تھا، اور ہر قبیلہ اپنی تعداد بڑھانا چاہتا تھا۔ چنانچہ ہر قبیلے کے لیے ایک علیحدہ نہر بنا دی تاکہ وہ خود بھی پئیں اور اپنے جانوروں کو بھی پلائیں، تاکہ ان کے درمیان کوئی جھگڑا یا بحث و تکرار پیدا نہ ہو(٤)۔

اور 'المَشْرَب' پینے کی جگہ کو کہتے ہیں، اور کہا گیا ہے کہ پینے کی چیز (مشروب) کو۔ بنی اسرائیل میں 'اسباط' ایسے ہی ہیں جیسے عربوں میں قبیلے، اور یہ یعقوب علیہ السلام کے بارہ

بیٹوں کی اولاد ہیں۔ ان چشموں میں سے ہر قبیلے کے لیے ایک مخصوص چشمہ تھا جس سے وہ تجاوز نہیں کرتے تھے(٥)۔

عطاء نے کہا: "پتھر کے چار رخ تھے، ہر رخ سے تین چشمے نکلتے تھے، ہر قبیلے کے لیے ایک چشمہ جس میں کوئی دوسرا شریک نہ تھا۔ اور ہمیں یہ بات پہنچی ہے کہ ہر قبیلے میں پچاس ہزار لڑنے والے جوان تھے، ان کے گھوڑوں اور جانوروں کے علاوہ(٦)۔"

عطاء نے یہ بھی کہا: "موسیٰ علیہ السلام کی ضرب کی ہر جگہ پر پتھر پر عورت کے پستان کی طرح ابھار ظاہر ہوتا تھا، پہلے وہاں سے پسینہ نکلتا، پھر پانی بہنے لگتا(٧)۔"

(١) وہ برتن جس میں پانی پیا جائے۔ القاموس (تور)۔ (٢) المجتبى ١/٦٠، اور یہ احمد (٣٨٠٧) کے ہاں ہے، اور اس میں ہے: "حی علی الوضوء"، اور اسی طرح بخاری (٣٥٧٩) کے ہاں بھی ہے۔ اسے احمد (١٢٣٤٨)، بخاری (١٦٩) اور مسلم (٢٢٧٩) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور احمد (١٤٥٢٢) اور بخاری (٣٥٧٦) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے بھی روایت کیا ہے۔ (٣) (ز) میں ہے: نویں۔ (٤) ان کے قول "والحكمة في ذلك..." سے یہاں تک (ز) سے ہے، اور یہ تفسیر السمرقندی ١/١٢٣ میں ہے۔ (٥) المحرر الوجيز ١/١٥٢۔ (٦) بعض نسخوں میں ہے: "من سوى"، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے۔ (٧) تفسير البغوى ١/٧٧۔

142 Surah Al-Baqarah: Verse 61

Eighth(1): His Almighty saying: {Eat and drink} in the speech there is an omission whose estimation is: And We said to them: Eat of the Manna and Salwa, and drink of the water gushing from the detached stone.

{And do not act wickedly} meaning: do not spread corruption. And 'Al-Ayth' is extreme corruption, He forbade them from that, i.e.: do not act in the earth with sins(2). It is said: 'athiya ya'tha 'athyiyan, and 'atha ya'thu 'athwan, and 'atha ya'ithu 'aythan, 'uyuthan, and ma'athan(3), and the first is the language of the Quran. It is said: 'ath-tha ya'uth-thu, in the doubled form: corrupted, and from it is 'Al-Uththah': which is the moth that licks(4) the wool.

{as corrupters} a circumstantial expression (hal), and the meaning is repeated for emphasis due to the difference in wording. In these words is the permission of blessings and their enumeration, and the advancement in sins and the prohibition against them(5).

His Almighty saying: {And [recall] when you said, "O Moses, we can never endure one [kind of] food. So call upon your Lord to bring forth for us from that which the earth grows - of its herbs and its cucumbers and its garlic and its lentils and its onions." [Moses] said, "Would you exchange what is better for what is less? Go into [any] settlement and indeed, you will have what you have asked." And they were struck with humiliation and poverty and returned with anger from Allah. That was because they [repeatedly] disbelieved in the signs of Allah and killed the prophets without right. That was because they disobeyed and were [habitually] transgressing. 61}

His Almighty saying(6): {And [recall] when you said, "O Moses, we can never endure one [kind of] food."} this statement from them was in the wilderness (al-Tih) when they grew weary of Manna and Salwa, and remembered their first life in Egypt(7). Al-Hasan said: they were foul-smelling(8) people of leeks, onions, and lentils, so they yearned for their base roots(9), roots of evil.

(1) In (Z): The tenth. (2) His saying: meaning do not act in the earth with sins, from (Z), and it is in Tafsir al-Samarqandi 1/123. (3) In dictionaries: 'aythanan instead of: ma'athan. (4) In (Zha): licks (tahlaqu). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/152. (6) In (Z) there are seventeen issues in it. The first is His Almighty saying... (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/153. (8) Plural of natin, and what is in the dictionaries is that the plural is: natna, like sukra. (9) i.e.: origin and habit. Al-Mu'jam al-Wasit.

१४२ सूरह अल-बकरा: आयत ६१

आठवीं बात(१): अल्लाह का कथन: {खाओ और पियो} इस कथन में कुछ शब्द लुप्त हैं जिनका अर्थ है: और हमने उनसे कहा: मन्ना और सलवा खाओ, और उस पत्थर से निकलने वाला पानी पियो जो अलग है।

{और बुराई मत फैलाओ} यानी: भ्रष्टाचार मत करो। और 'अल-अयथ' का अर्थ है भ्रष्टाचार की अधिकता, उन्हें इससे मना किया गया, यानी: पृथ्वी पर पाप के साथ काम न करें(२)। कहा जाता है: 'अथिया यथ'आ 'अथिय्यन, और 'अथा यथु 'अथ्वन, और 'आथा यईथु 'अयथन, 'उयुथन, और म'आथन(३), और पहला कुरान की भाषा है। कहा जाता है: 'अथ-था य'उथ-थु, द्विगुणित रूप में: भ्रष्ट किया, और इसी से 'अल-उथथाह' बना है: और यह वह कीड़ा (मोथ) है जो ऊन को चाटता(४) है।

{भ्रष्ट करने वालों के रूप में} यह एक अवस्था (हाल) है, और अलग-अलग शब्दों के कारण जोर देने के लिए अर्थ दोहराया गया है। इन शब्दों में नियामतों की अनुमति और उनका उल्लेख है, और पापों में आगे बढ़ने और उनसे मना करने का वर्णन है(५)।

अल्लाह का कथन: {और (याद करो) जब तुमने कहा था, "ऐ मूसा! हम एक ही तरह के खाने पर कभी सब्र नहीं करेंगे, सो अपने रब से हमारे लिए दुआ कर कि वह हमारे लिए ज़मीन की पैदावार में से साग-भाजी, ककड़ी, लहसुन, मसूर और प्याज़ निकाले।" (मूसा ने) कहा, "क्या तुम उस चीज़ के बदले जो बेहतर है, वह चीज़ लेना चाहते हो जो घटिया है? किसी शहर में जा उतरो, वहाँ तुम्हें वह सब मिल जाएगा जो तुमने माँगा है।" और उन पर जिल्लत और मोहताजी थोप दी गई और वे अल्लाह के ग़ज़ब के पात्र हुए। यह इसलिए हुआ कि वे अल्लाह की आयतों का इनकार करते थे और नबियों को नाहक (अकारण) कत्ल करते थे। यह इसलिए हुआ कि उन्होंने नाफरमानी की और वे हद से गुज़र जाने वाले थे। ६१}

अल्लाह का कथन(६): {और (याद करो) जब तुमने कहा था, "ऐ मूसा! हम एक ही तरह के खाने पर कभी सब्र नहीं करेंगे।"} उनका यह कहना टीह (जंगल में भटकने) के दौरान था जब वे मन्ना और सलवा से ऊब गए थे, और उन्हें मिस्र में अपनी पहली ज़िंदगी याद आई थी(७)। अल-हसन ने कहा: वे बदबूदार(८) लोग थे जो गन्दना (leeks), प्याज़ और मसूर खाने वाले थे, इसलिए वे अपने बुरे मूल(९) (बुरी आदतों) की ओर आकर्षित हुए।

(१) (Z) में: दसवीं। (२) उनका कथन: यानी पृथ्वी पर पाप न करें, (Z) से, और यह तफ़सीर अल-समरकंदी १/१२३ में है। (३) शब्दकोशों में: 'अयथान' के स्थान पर 'म'आथन'। (४) (Zha) में: चाटना (तहलक़ु। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५२। (६) (Z) में इसमें सत्रह विषय हैं। पहला अल्लाह का कथन है... (७) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५३। (८) नतिन (natin) का बहुवचन, और शब्दकोशों में बहुवचन है: नतना, जैसे सुकरा। (९) यानी: मूल और आदत। अल-मुजम अल-वसीत।

١٤٢ سورہ البقرہ : آیت ٦١

آٹھویں بات(١) : اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿كُلُواْ وَٱشْرَبُواْ﴾ کلام میں حذف ہے جس کی تقدیر یہ ہے: اور ہم نے ان سے کہا: من اور سلویٰ کھاؤ، اور علیحدہ پتھر سے پھوٹنے والے پانی سے پیو۔

﴿وَلَا تَعْثَوْا﴾ یعنی: فساد نہ پھیلاؤ۔ اور 'العیث' فساد کی شدت کو کہتے ہیں، انہیں اس سے منع کیا، یعنی: زمین میں گناہوں کے ساتھ عمل نہ کرو(٢)۔ کہا جاتا ہے: 'عثِيَ يَعْثَى عثِيّاً'، اور 'عثا يعثُو عثْواً'، اور 'عاث يَعيث عيثاً وعُيُوثاً ومعاثاً'(٣)، اور پہلا لفظ قرآن کی زبان ہے۔ اور کہا جاتا ہے: 'عَثَّ يَعُثُّ'، مضعف میں: بگاڑنا، اور اسی سے 'العُثَّة' ہے: اور وہ کپڑے کا کیڑا (moth) ہے جو اون چاٹ جاتا(٤) ہے۔

﴿مُفْسِدِينَ﴾ حال ہے، اور لفظ کے اختلاف کی وجہ سے تاکید کے طور پر معنی کی تکرار کی گئی ہے۔ ان کلمات میں نعمتوں کی اباحت (اجازت) اور ان کی گنتی، اور گناہوں میں آگے بڑھنے اور ان سے روکنے کا ذکر ہے(٥)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذْ قُلْتُمْ يَٰمُوسَىٰ لَن نَّصْبِرَ عَلَىٰ طَعَامٍ وَٰحِدٍ فَٱدْعُ لَنَا رَبَّكَ يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنۢبِتُ ٱلْأَرْضُ مِنۢ بَقْلِهَا وَقِثَّآئِهَا وَفُومِهَا وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا ۖ قَالَ أَتَسْتَبْدِلُونَ ٱلَّذِى هُوَ أَدْنَىٰ بِٱلَّذِى هُوَ خَيْرٌ ۚ ٱهْبِطُواْ مِصْرًا فَإِنَّ لَكُم مَّا سَأَلْتُمْ ۗ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ ٱلذِّلَّةُ وَٱلْمَسْكَنَةُ وَبَآءُو بِغَضَبٍ مِّنَ ٱللَّهِ ۗ ذَٰلِكَ بِأَنَّهُمْ كَانُواْ يَكْفُرُونَ بِـَٔايَٰتِ ٱللَّهِ وَيَقْتُلُونَ ٱلنَّبِيِّـۧنَ بِغَيْرِ ٱلْحَقِّ ۗ ذَٰلِكَ بِمَا عَصَواْ وَّكَانُواْ يَعْتَدُونَ ٦١﴾

اللہ تعالیٰ کا فرمان(٦) : ﴿وَإِذْ قُلْتُمْ يَٰمُوسَىٰ لَن نَّصْبِرَ عَلَىٰ طَعَامٍ وَٰحِدٍ﴾ ان کا یہ قول تیہ (صحرا نوردی) کے زمانے میں تھا جب وہ من اور سلویٰ سے اکتا گئے تھے، اور انہیں مصر کی اپنی پہلی زندگی

یاد آئی تھی(۷)۔ حسن بصری رحمہ اللہ نے کہا: وہ گندنا، پیاز اور مسور کھانے والے بدبودار(۸) لوگ تھے، چنانچہ وہ اپنی بد خصلتوں(۹) کی طرف مائل ہوئے،

(۱) (ز) میں: دسویں مسئلہ۔ (۲) ان کا قول: یعنی زمین میں گناہوں کے ساتھ عمل نہ کرو، (ز) سے ہے، اور یہ تفسیر السمرقندی ۱۲۳/۱ میں ہے۔ (۳) لغات میں: 'معاثاً' کے بجائے 'عیثاناً' ہے۔ (٤) (ظ) میں: 'تَلْحَق' (ملتی ہے)۔ (٥) المحرر الوجیز ۱۵۲/۱۔ (٦) (ز) میں اس میں سترہ مسائل ہیں۔ پہلا اللہ کا فرمان ہے... (۷) المحرر الوجیز ۱۵۳/۱۔ (۸) نَتِن کی جمع، اور لغت میں جمع 'نَتْنَی' ہے، جیسے 'سکری'۔ (۹) یعنی: اصل اور عادت۔ المعجم الوسیط۔

Their natures longed for what they were accustomed to, so they said: {We will never endure one food} (1). They referred to Manna and Salwa as "one food", although they are two; because they used to eat one with the other, so they said: "one food". It was also said: because of their repetition every day as a meal (2), just as you say to someone who persists in fasting, prayer, and recitation: "He is on one matter", due to his persistence in it. It was also said: The meaning is: we will not endure wealth such that we are all rich, so none of us can seek help from another; because each of us is self-sufficient (3). And so they were; they were the first to take slaves and servants. His saying, Exalted is He: {upon food} "Food" (at-ta'am) is applied to what is eaten and drunk. Allah the Almighty said: {And whoever does not taste it is indeed of me} [Al-Baqarah: 249], and He said: {There is no blame upon those who believe and do righteous deeds for what they have tasted} [Al-Ma'idah: 93] meaning: what they drank of wine, according to what will be explained. Even if Al-Salwa is honey - as related by Al-Mu'arrij (4) - then it is also a drink. Sometimes "food" is specifically applied to wheat and dates, as in the hadith of Abu Sa'id al-Khudri who said: "We used to give Zakat al-Fitr during the time of the Messenger of Allah (peace be upon him) as a sa' of food, or a sa' of barley." The hadith (5). Custom dictates that when someone says: "I went to the food market", it is only understood as the place where it is sold, excluding other things that are eaten or drunk. At-Ta'm (with fatha on the 'ta'): It is what the sense of taste yields; it is said: its taste (ta'muhu) is bitter. At-Ta'm also means what is desired from it; it is said: "It has no taste." And "So-and-so is not a person of taste (ta'm)" if he is heavy/unpleasant. At-Tu'm (with damma on the 'ta'): means food. Abu Khirash said: I repel the hunger of the belly, if you only knew, and I prefer others of your family with food (at-tu'm).

---

(1) Narrated similarly by Ibn Abi Hatim (620). (2) In (m) it is "ghidha'" (sustenance). (3) Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 1/276, Tafsir al-Baghawi 1/78, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/153. (4) Mentioned previously 2/119. (5) Narrated by Ahmad (11932), Al-Bukhari (1506), and Muslim (985).

उनके स्वभाव में उस चीज़ की लालसा जागी जिसके वे आदी थे, इसलिए उन्होंने कहा: {हम कभी भी एक ही प्रकार के भोजन पर धैर्य नहीं रखेंगे} (1)। उन्होंने 'मन्न' और 'सलवा' को "एक भोजन" कहा, जबकि वे दो थे; क्योंकि वे एक को दूसरे के साथ खाते थे, इसलिए उन्होंने कहा: "एक भोजन"। यह भी कहा गया: हर दिन भोजन (2) के रूप में उनकी पुनरावृत्ति के कारण, जैसा कि आप उस व्यक्ति से कहते हैं जो उपवास, प्रार्थना और पाठ जारी रखता है: "वह एक ही काम पर है"; उसमें निरंतरता के कारण। यह भी कहा गया: इसका अर्थ है: हम धनवान होने पर धैर्य नहीं रखेंगे कि हम सब अमीर हो जाएँ फिर हममें से कोई भी दूसरे से सहायता माँगने में सक्षम न हो; क्योंकि हममें से प्रत्येक आत्मनिर्भर होगा (3)। और वे ऐसे ही थे, वे पहले लोग थे जिन्होंने दास और सेवक रखे। अल्लाह तआला का कथन: {एक भोजन पर} 'भोजन' (अल-तआम) उस चीज़ पर बोला जाता है जिसे खाया और पिया जाता है। अल्लाह तआला ने फरमाया: {और जो उसे नहीं चखेगा वह वास्तव में मुझसे है} [अल-बकरा: 249], और उसने फरमाया: {जो लोग ईमान लाए और जिन्होंने नेक काम किए उन पर उस चीज़ के लिए कोई गुनाह नहीं है जो उन्होंने चखी} [अल-माइदा: 93] यानी: उन्होंने जो शराब पी थी, जैसा कि स्पष्ट किया जाएगा। भले ही 'सलवा' शहद हो - जैसा कि अल-मुआरिज (4) ने वर्णन किया है - तो वह भी एक पेय है। कभी-कभी 'भोजन' विशेष रूप से गेहूं और खजूर के लिए उपयोग किया जाता है, जैसा कि अबू सईद अल-खुदरी की हदीस में है, उन्होंने कहा: "हम अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के समय में ज़कात अल-फ़ित्र एक सा' भोजन या एक सा' जौ के रूप में निकालते थे।" हदीस (5)। रिवाज यह है कि जब कोई कहता है: "मैं भोजन बाज़ार गया", तो इससे केवल वही जगह समझी जाती है जहाँ वह बेचा जाता है, न कि अन्य खाने-पीने की चीज़ें। अल-तअम ('ता' पर फतह के साथ): वह स्वाद है जो जीभ अनुभव करती है; कहा जाता है: इसका स्वाद (तअमुहू) कड़वा है। अल-तअम का अर्थ वह भी है जिसकी इच्छा की जाती है; कहा जाता है: "इसका कोई स्वाद नहीं है।" और "फलां व्यक्ति स्वाद (तअम) वाला नहीं है" यदि वह भारी/अप्रिय हो। अल-तुअम ('ता' पर दम्मा के साथ): इसका अर्थ भोजन है। अबू खिराश ने कहा: मैं पेट की भूख को रोकता हूँ, काश तुम जानतीं, और मैं तुम्हारे परिवार के दूसरों को भोजन (अल-तुअम) के साथ तरजीह देता हूँ।

---

(1) इब्न अबी हातिम (620) द्वारा इसी तरह वर्णित। (2) (m) में "गिज़ा" (आहार) है। (3) मजमा अल-बयान अल-तबरसी 1/276, तफसीर अल-बगवी 1/78, और अल-मुहर्रिर अल-वजीज 1/153। (4)

पहले उल्लेख किया गया है 2/119। (5) अहमद (11932), अल-बुखारी (1506), और मुस्लिम (985) द्वारा वर्णित।

ان کی طبیعتیں اس چیز کی مشتاق ہوئیں جس کی وہ عادی تھیں، چنانچہ انہوں نے کہا: ﴿ہم ہرگز ایک ہی کھانے پر صبر نہیں کریں گے﴾ (1)۔ انہوں نے 'من' اور 'سلویٰ' کو ایک ہی کھانے سے تعبیر کیا، حالانکہ وہ دو تھے؛ کیونکہ وہ ایک کو دوسرے کے ساتھ کھاتے تھے، اسی لیے انہوں نے کہا: "ایک کھانا"۔ یہ بھی کہا گیا: ہر روز کھانے (2) میں ان کی تکرار کی وجہ سے، جیسا کہ آپ اس شخص سے کہتے ہیں جو روزے، نماز اور تلاوت پر مداومت کرتا ہے: "وہ ایک ہی امر پر ہے"؛ اس پر ہمیشگی کی وجہ سے۔ یہ بھی کہا گیا: اس کا مطلب ہے: ہم غنا (مالداری) پر صبر نہیں کریں گے کہ ہم سب غنی ہو جائیں، پھر ہم میں سے کوئی دوسرے سے مدد لینے پر قادر نہ ہو؛ کیونکہ ہر ایک اپنی ذات میں بے نیاز ہو جائے گا (3)۔ اور وہ ایسے ہی تھے، پس وہ پہلے لوگ تھے جنہوں نے غلام اور خادم رکھے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿ایک کھانے پر﴾ 'طعام' (کھانا) اس پر بولا جاتا ہے جو کھایا اور پیا جاتا ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿اور جس نے اسے نہ چکھا وہ مجھ سے ہے﴾ [البقرہ: 249]، اور فرمایا: ﴿ان لوگوں پر جو ایمان لائے اور نیک اعمال کیے کوئی گناہ نہیں ہے اس میں جو انہوں نے چکھا﴾ [المائدہ: 93] یعنی: جو انہوں نے شراب پی تھی، جیسا کہ اس کا بیان آئے گا۔ اگرچہ 'سلویٰ' شہد ہو - جیسا کہ المؤرج (4) نے حکایت کیا ہے - تو وہ بھی مشروب ہی ہے۔ اور بسا اوقات 'طعام' گندم اور کھجور کے لیے خاص ہوتا ہے، جیسا کہ ابوسعید خدری رضی اللہ عنہ کی حدیث میں ہے، انہوں نے کہا: "ہم رسول اللہ ﷺ کے زمانے میں صدقہ فطر ایک صاع طعام یا ایک صاع جو نکالا کرتے تھے۔" حدیث (5)۔ اور عرف (رواج) یہ ہے کہ کہنے والا کہے: "میں طعام کی مارکیٹ گیا"، تو اس سے اس کے بیچنے کی جگہ کے علاوہ کچھ نہیں سمجھا جاتا، دوسری کھانے پینے کی اشیاء کے مقابلے میں۔ اور 'الطَّعْم' (ط پر فتحہ کے

ساتھ): وہ ہے جو ذائقہ ادا کرتا ہے، کہا جاتا ہے: اس کا طعم (ذائقہ) کڑوا ہے۔ اور 'الطعم' اس کو بھی کہتے ہیں جس کی رغبت کی جائے، کہا جاتا ہے: "اس کا کوئی طعم نہیں ہے۔" اور "فلاں شخص طعم والا نہیں ہے" جب وہ ناگوار (بھاری) ہو۔ اور 'الطُّعْم' (ط پر ضمہ کے ساتھ): کھانا ہے، ابو خراش نے کہا: میں پیٹ کی بھوک کو لوٹا دیتا ہوں کاش کہ تم جانتی، اور میں تمہارے عیال میں سے دوسروں کو کھانے (طعم) میں ترجیح دیتا ہوں۔

---

(1) اسے اسی طرح ابن ابی حاتم نے نکالا ہے (620)۔ (2) (م) میں 'غذاء' ہے۔ (3) مجمع البیان للطبرسی 1/276، تفسیر البغوی 1/78، اور المحرر الوجیز 1/153۔ (4) پہلے گزر چکا ہے 2/119۔ (5) اسے احمد (11932)، بخاری (1506) اور مسلم (985) نے نکالا ہے۔

144 Surah Al-Baqarah: Verse 61

I drink pure water in the evening and then cease, when the provisions for the weak become tasteful. (1) He meant by the first 'food', and by the second, what is desired from it. The verb is 'ta'ima yata'mu' (to taste/eat), and he is 'ta'im': when he eats and tastes. From it is the Almighty's saying: {And whoever does not taste it is indeed of me} [Al-Baqarah: 249], meaning: whoever does not taste it. And He said: {Then when you have eaten, disperse} [Al-Ahzab: 53], meaning: you have eaten. And the Messenger of Allah ﷺ said regarding Zamzam: "Indeed, it is a nourishing food and a healing for sickness." (2) "So-and-so asked me for speech (istat'amani al-hadith)": when he wants you to speak to him (3). And in the hadith: "If the Imam asks you for food (istat'amakum), then feed him." Narrated by Al-Daraqutni (4). He says: If he seeks an opening [in recitation], then open it for him (5). And so-and-so does not taste sleep except while standing. The poet said: Ostriches in Wajra with yellow cheeks, they do not taste sleep except while staying still (6). The Almighty's saying: {So pray for us to your Lord to bring forth for us some of what the earth grows}. In the dialect of Bani Amir: "Fad'i", with a kasra on the 'ayn due to the meeting of two non-voweled consonants (7); they treat the weak letter as a sound letter, and they do not observe...

(1) Diwan al-Hudhaliyin 2/127-128, and al-Sihah (Ta'm). His saying: "shuja' al-batn" (hunger snake), Ibn Manzur said in al-Lisan (Sh-j-'): The Arabs claim that if a man's hunger lasts long, a snake appears in his stomach which they call Al-Shuja'. It was reported from Al-Asma'i that "shuja' al-batn" means extreme hunger. And his saying: "Al-muzallaj," the commentator of the Diwan said: that which is not firm, a light matter that is not dense; similarly, it refers to a man who is not perfect, and a "muzallaj" life is one with some deficiency. (2) Narrated by Al-Tayalisi (457), Al-Fakihi in Akhbar Makkah (1080), Al-Bazzar in his Musnad (3929), Al-Tabarani in Al-Saghir (295), Ibn Adi in Al-Kamil 6/2301, and Al-Bayhaqi in Al-Sunan 5/147, from the hadith of Abu Dharr, may Allah be pleased with him. Al-Mundhiri authenticated Al-Bazzar's chain in Al-Targhib 2/166. It also appeared in Sahih Muslim (2473) from the hadith of Abu Dharr as well (in the story of his conversion to Islam): "Indeed, it is blessed, it is a nourishing food." (3) In [manuscripts] (D) and (Zha): "yuhaddithahu", and in (Z): "nuhaddithuhu", and what is established is from (M). (4) His saying: "narrated by Al-Daraqutni" is from (Z), and the hadith is in Sunan Al-Daraqutni 1/400 from Ali, may Allah be pleased with him, as a mawquf narration. (5) Al-Sihah: (Ta'm). (6) The verse is by Bishr bin Abi Khazim lampooning Bani Amir, and Wajra: a place between Makkah

and Basra. It was mentioned by Al-Bakri in Mu'jam Ma Ista'jam 2/504, and Al-Tabrizi as in the commentaries of Saqt al-Zand 4/1472, and their narration of it is: "Ostriches with bridles, twisted cheeks, they do not taste water except while standing still." (7) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/231.

144 सूरह अल-बक़रह: आयत 61

मैं शाम को शुद्ध जल पीता हूँ और फिर रुक जाता हूँ, जब कमज़ोर के लिए भोजन स्वादिष्ट हो जाता है। (1) पहले शब्द से उनका तात्पर्य 'भोजन' था, और दूसरे से वह जो उससे चाहा जाता है। क्रिया है 'तइमा यतअमु' (चखना/खाना), और वह 'ताइम' है: जब वह खाता है और चखता है। इसी से सर्वशक्तिमान का वचन है: {और जिसने इसे नहीं चखा, वह वास्तव में मेरा है} [अल-बक़रह: 249], जिसका अर्थ है: जिसने इसे नहीं चखा। और उसने कहा: {फिर जब तुम खा चुके हो, तो बिखर जाओ} [अल-अहज़ाब: 53], अर्थात: तुम खा चुके हो। और अल्लाह के रसूल ﷺ ने ज़मज़म के बारे में कहा: "वास्तव में, यह पौष्टिक भोजन है और बीमारी के लिए उपचार है।" (2) "फलां ने मुझसे बातचीत मांगी (इस्ततमनी अल-हदीस)": जब वह चाहता है कि आप उससे बात करें (3)। और हदीस में है: "यदि इमाम तुमसे भोजन मांगे (इस्ततमकुम), तो उसे खिलाओ।" अल-दाराकुतनी द्वारा वर्णित (4)। वह कहते हैं: यदि वह [पाठ में] शुरुआत चाहता है, तो उसके लिए इसे खोलें (5)। और फलां खड़े होने के अलावा नींद नहीं चखता। कवि ने कहा: वजरा के शुतुरमुर्ग पीले गालों वाले, वे स्थिर रहने के अलावा नींद नहीं चखते (6)। सर्वशक्तिमान का वचन: {तो हमारे लिए अपने रब से दुआ करें कि वह हमारे लिए ज़मीन से उगने वाली चीज़ों में से कुछ निकाले}। बनी आमिर की बोली में: "फद-ई", 'ऐन' पर कसरा के साथ दो साकिन अक्षरों के मिलन के कारण (7); वे कमज़ोर अक्षर को सही अक्षर की तरह मानते हैं, और वे ध्यान नहीं देते...

(1) दीवान अल-हुदालियिन 2/127-128, और अल-सिहाह (त'अम)। उनका कहना है: "शुजा अल-बत्न" (पेट का सांप), इब्न मंज़ूर ने अल-लिसान (श-ज-') में कहा: अरबों का दावा है कि यदि किसी व्यक्ति की भूख लंबे समय तक बनी रहती है, तो उसके पेट में एक सांप दिखाई देता है जिसे वे अल-शुजा कहते हैं। अल-असमी से उद्धृत किया गया था कि "शुजा अल-बत्न" का अर्थ है अत्यधिक भूख। और उनका कहना: "अल-मुज़ल्लज," दीवान के टीकाकार ने कहा: वह जो दृढ़ नहीं है, एक हल्का मामला जो घना नहीं है; इसी तरह, यह उस व्यक्ति को संदर्भित करता है जो पूर्ण नहीं है, और "मुज़ल्लज" जीवन वह है जिसमें कुछ कमी हो। (2) अल-तयालिसी (457), अल-फ़ाकीही ने अख़बार मक्का (1080), अल-बज़ार ने अपनी मुसनद (3929), अल-तबरानी ने अल-सगीर (295), इब्न अदी ने अल-कामिल 6/2301, और अल-बयहाक़ी ने अल-सुनन 5/147 में अबू ज़र (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से वर्णित किया है। अल-मुन्दिरी ने अल-तरगीब 2/166 में अल-बज़ार की शृंखला को प्रमाणित किया। यह सहीह मुस्लिम (2473) में अबू ज़र की हदीस से भी आया है (उनके इस्लाम

अपनाने की कहानी में): "वास्तव में, यह धन्य है, यह एक पौष्टिक भोजन है।" (3) [पांडुलिपियों] (D) और (Zha) में: "युहद्दीथहु", और (Z) में: "नुहद्दीथुहु", और जो स्थापित है वह (M) से है। (4) उनका कहना: "अल-दाराकुतनी द्वारा वर्णित" (Z) से है, और हदीस सुनन अल-दाराकुतनी 1/400 में अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से एक मौकूफ़ वर्णन के रूप में है। (5) अल-सिहाह: (त'अम)। (6) यह पद बिश्र बिन अबी खाज़िम द्वारा बनी आमिर की निंदा में है, और वजरा: मक्का और बसरा के बीच एक स्थान है। इसका उल्लेख अल-बकरी ने मुअजम मा इस्तअजम 2/504 में किया है, और अल-तबरेज़ी ने सक्त अल-ज़ंद 4/1472 की टिप्पणियों में किया है, और उनका विवरण है: "लगाम वाले शुतुरमुर्ग, मुड़े हुए गाल, वे स्थिर रहने के अलावा पानी नहीं चखते।" (7) इराब अल-कुरान, अल-नहहास द्वारा 1/231।

144 سورة البقرہ: آیت 61

اور میں شام کے وقت خالص پانی پی کر رک جاتا ہوں، جب کمزور کے لیے توشہ (کھانا) ذائقے والا ہو جاتا ہے۔ (1) پہلے سے مراد کھانا ہے، اور دوسرے سے مراد وہ چیز ہے جس کی خواہش کی جاتی ہے۔ فعل 'طعم یطعم' (چکھنا/کھانا) ہے، اور وہ 'طاعم' ہے: جب اس نے کھایا اور چکھا، اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿اور جس نے اسے نہیں چکھا وہ مجھ سے ہے﴾ [البقرۃ: 249] یعنی: جس نے اسے نہیں چکھا۔ اور فرمایا: ﴿پھر جب تم کھانا کھا چکوں تو منتشر ہو جاؤ﴾ [الاحزاب: 53] یعنی: تم نے کھا لیا۔ اور رسول اللہ ﷺ نے زمزم کے بارے میں فرمایا: "بے شک یہ پیٹ بھرنے والا کھانا اور بیماری سے شفا ہے۔" (2) "فلاں نے مجھ سے بات کرنے کی خواہش کی (استطعمنی الحدیث)": جب وہ چاہے کہ آپ اس سے بات کریں (3)۔ اور حدیث میں ہے: "جب امام تم سے کھانا (لقمہ) طلب کرے تو اسے کھلا دو۔" اسے دارقطنی نے روایت کیا ہے (4)۔ وہ کہتے ہیں: جب وہ لقمہ چاہے (قرأت بھول جائے) تو اسے بتا دو (5)۔ اور فلاں کھڑے ہونے کے سوا نیند نہیں چکھتا۔ اور شاعر نے کہا: مقام وجرہ کے شتر مرغ جن کے رخسار زرد ہیں، وہ ساکن رہنے کے سوا نیند نہیں چکھتے (6)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿پس اپنے رب سے دعا کیجیے کہ وہ ہمارے لیے زمین کی اگائی ہوئی چیزوں میں سے نکالے﴾۔ بنی عامر کی لغت میں: "فادعِ" (عین کے نیچے زیر کے ساتھ) دو ساکنوں کے ملنے کی وجہ سے (7)، وہ حرفِ علت کو صحیح حرف کی طرح جاری کرتے ہیں، اور وہ رعایت نہیں کرتے...

(1) دیوان الہذلیین 2/127-128، اور الصحاح (طعم)۔ ان کا قول: 'شجاع البطن'، ابن منظور نے اللسان (شجع) میں کہا: عربوں کا خیال ہے کہ جب آدمی کی بھوک طویل ہو جاتی ہے تو اس کے پیٹ میں ایک سانپ آ جاتا ہے جسے وہ 'الشجاع' کہتے ہیں۔ اصمعی سے منقول ہے: 'شجاع البطن'

سے مراد شدید بھوک ہے۔ اور ان کا قول: 'المزلج'، دیوان کے شارح نے کہا: وہ جو مضبوط نہ ہو، اور وہ ہلکی چیز جو گہری نہ ہو، اور اسی طرح وہ مرد بھی جو کامل نہ ہو، اور 'عیش مزلج' وہ زندگی ہے جس میں کچھ کمی ہو۔ (2) اسے الطیالسی (457)، الفاکہی نے اخبار مکہ (1080)، البزار نے اپنی مسند (3929)، الطبرانی نے الصغیر (295)، ابن عدی نے الکامل 6/2301 اور البیہقی نے السنن 5/147 میں ابو ذر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور المنذری نے الترغیب 2/166 میں البزار کی اسناد کو صحیح قرار دیا ہے۔ اور صحیح مسلم (2473) میں بھی ابو ذر کی حدیث سے آیا ہے (ان کے اسلام لانے کے قصے میں): "بے شک یہ بابرکت ہے، یہ پیٹ بھرنے والا کھانا ہے۔" (3) نسخہ (د) اور (ظ) میں: 'یحدثہ'، اور (ز) میں: 'نحدثہ'، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (4) ان کا قول: 'خرجہ الدارقطنی'، نسخہ (ز) سے ہے، اور حدیث سنن الدارقطنی 1/400 میں علی رضی اللہ عنہ سے موقوفاً مروی ہے۔ (5) الصحاح: (طعم)۔ (6) یہ شعر بشر بن ابی خازم کا ہے جس میں اس نے بنی عامر کی ہجو کی ہے، اور 'وجرہ': مکہ اور بصرہ کے درمیان ایک جگہ کا نام ہے۔ اسے البکری نے معجم ما استعجم 2/504 میں اور التبریزی نے شروح سقط الزند 4/1472 میں ذکر کیا ہے، اور ان دونوں کے پاس اس کی روایت یہ ہے: "خطمہ کے شتر مرغ جن کے رخسار مڑے ہوئے ہیں، وہ ساکن رہنے کے سوا پانی نہیں چکھتے۔" (7) اعراب القرآن للنحاس 231/1۔

Page 145

Surah Al-Baqarah: Verse 61

...the elided. And "yukhrij" (bring forth) is jussive (majzum) meaning: ask him and say to him: bring forth, [and he] shall bring forth. It was said: it is in the sense of a supplication, assuming the elision of the [prefix] "lam", but Al-Zajjaj weakened this view(1). The word "min" in His saying "mimma" (from what) is extra in the view of Al-Akhfash(2), and not extra in the view of Sibawayh, because the speech is affirmative(3). Al-Nahhas said(4): Al-Akhfash was only led to this because he did not find an object for "yukhrij", so he wanted to make "ma" the object. But it is better that the object is elided, indicated by the rest of the speech; the estimation being: "He brings forth for us from what the earth grows [something] edible." Thus "min": the first one, according to this, is for partitive sense (tab'id), and the second for specification (takhsis). And "min baqliha" (from its herbs) is a substitute (badal) for "ma" by repeating the preposition. And "wa qiththa'iha" (and its cucumbers) is conjoined to it, and so on for what follows it, so know it.

Herbs (al-baql) are well-known; they are every plant that has no stem. Trees: that which has a stem. Cucumbers (al-qiththa') are also well-known. The [letter] 'qaf' may be vocalized with 'damma' [quththa'], which is the reading of Yahya ibn Waththab and Talhah ibn Musarrif(5); they are two dialects, though the 'kasra' qiththa' is more common. It was said regarding the plural of 'qiththa'': 'qatha'i', like 'ilba' and 'alabi', except that 'qiththa'' is from those with a 'waw' root. You say: "aqtha'tu al-qawm"(8), meaning: I fed them that.

And "fatha'tu al-qidr": I calmed its boiling with water. Al-Ja'di said:

"Their pot boils over us, so we keep it going, and we calm it away from us when its heat boils high."(9)

And "fatha'tu al-rajul": if you broke his resolve from you with words or otherwise, and calmed his anger. And he ran until...

---

(1) Ma'ani al-Quran by al-Zajjaj 1/142. (2) Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 1/272. (3) Al-Kitab 1/38. (4) I'rab al-Quran 1/231. (5) Al-Muhtasib 1/87, Al-Qira'at al-Shadhah p. 6, I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/231, Al-Muharrar al-Wajiz 1/153. (6) In (d) and (z): "And with kasra". (7) Thus he said. It is a slip of the pen by him, may Allah have mercy on him, as he intended to say: from those with a 'hamza', as it is in I'rab al-Quran by al-

Nahhas 1/231, who quoted the speech from him. Furthermore, the examples the author provided later are evidence that the word "qiththa'" for him is from those with a 'hamza', not 'waw'. Thus, there is no need to overemphasize the author's error, as Al-Samin al-Halabi did in al-Durr al-Masun 1/393. (8) In (z): "the horses". (9) The verse was not well-composed in the copies; it is in his Diwan p. 118, al-Mujmal 3/712, and al-Sihah: (fatha'). (10) In (z): "if you pushed him away from you and broke him".

पृष्ठ 145

सूरह अल-बकरा: आयत 61

...हटाया गया (मज़ूफ़)। "युख़्रिज" (वह निकाले) 'मज़ूम' (शर्तिया रूप) में है जिसका अर्थ है: "उससे माँगो और उससे कहो: निकालो, तो वह निकालेगा।" यह भी कहा गया है कि यह 'लाम' के विलोप को मानते हुए दुआ (प्रार्थना) के अर्थ में है, लेकिन अल-ज़ज्जाज (1) ने इसे कमज़ोर माना है। "मिम्मा" (उसमें से जो) में "मिन" अल-अख़फ़श (2) के अनुसार अतिरिक्त (ज़ायद) है, जबकि सीबावैह के अनुसार यह अतिरिक्त नहीं है, क्योंकि वाक्य सकारात्मक (मौजद) है (3)। अल-नहहास (4) ने कहा: अल-अख़फ़श ने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि उसे "युख़्रिज" के लिए कोई कर्म (मफ़ऊल) नहीं मिला, इसलिए उसने "मा" को कर्म बनाना चाहा। लेकिन बेहतर यह है कि कर्म को विलोपित (मज़ूफ़) माना जाए, जिसका संकेत बाकी के वाक्य से मिलता है; इसका अनुमानित अर्थ है: "वह हमारे लिए उस चीज़ में से खाने योग्य निकाले जो ज़मीन उगाती है।" इस आधार पर, पहला "मिन" विभाजक (तब्ईद) के लिए है, और दूसरा विशिष्टता (तख़सीस) के लिए। और "मिन बक़्लीहा" (उसकी जड़ी-बूटियों में से) "मा" का बदल (प्रतिस्थापन) है, जिसमें अव्यय (हर्फ़) को दोहराया गया है। और "व-क़िथ्था-इहा" (और उसकी ककड़ी) का इस पर संयोजन (अत्फ़) है, और इसके बाद आने वाले शब्दों का भी यही हाल है, इसे जान लें।

"बक़्ल" (जड़ी-बूटियाँ) प्रसिद्ध हैं, और यह हर वह पौधा है जिसका तना नहीं होता। "शजर": जिसका तना होता है। "क़िथ्था" (ककड़ी) भी प्रसिद्ध है, और इसके'क़ाफ़' पर 'दम्मा' भी लगाया जा सकता है [क़ुथ्था], जो याह्या बिन वत्थाब और तलहा बिन मुसर्रिफ (5) की क़िरात (पठन) है; ये दो बोलियाँ हैं, हालांकि 'कसरा' [क़िथ्था] (6) अधिक प्रचलित है। 'क़िथ्था' के बहुवचन के बारे में कहा गया है: 'क़थाई', जैसे 'इल्बा' और 'अलाबी', सिवाय इसके कि 'क़िथ्था' वाव-युक्त (7) जड़ों में से है। आप कहते हैं: "अक़थअ्तु अल-क़ौम" (8), जिसका अर्थ है: "मैंने उन्हें वह खिलाया।"

और "फ़थअ्तु अल-क़िद्र": मैंने पानी के माध्यम से इसकी उबाल को शांत किया। अल-जदी ने कहा है:

"उनका बर्तन हम पर उबलता है, तो हम उसे जारी रखते हैं, और हम इसे खुद से दूर शांत करते हैं जब इसकी गर्मी तेज़ उबलती है।" (9)

और "फ़थअ्तु अल-रजुल": जब आप किसी व्यक्ति के[इरादे] को (10) अपनी बातों या किसी और चीज़ से तोड़ देते हैं और उसके गुस्से को शांत कर देते हैं। और वह दौड़ा यहाँ तक कि...

---

(1) मआनी अल-कुरान, अल-ज़ज्जाज 1/142। (2) मआनी अल-कुरान, अल-अख़फ़श 1/272। (3) अल-किताब 1/38। (4) इराब अल-कुरान 1/231। (5) अल-मुहतासिब 1/87, अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह पृ. 6, इराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/231, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/153। (6) (द) और (ज़) में: "और कसरा के साथ।" (7) ऐसा उन्होंने कहा। यह उनके कलम की फिसलन है, अल्लाह उन पर रहम करे, क्योंकि उनका इरादा 'हमज़ा-युक्त' कहने का था, जैसा कि अल-नहहास की इराब अल-कुरान 1/231 में है, जिन्होंने उनसे यह बात उद्धृत की है। इसके अलावा, लेखक ने बाद में जो उदाहरण दिए हैं, वे इस बात का प्रमाण हैं कि उनके अनुसार "क़िथ्था" शब्द हमज़ा-युक्त है, न कि वाव-युक्त। ऐसे में लेखक की त्रुटि को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि अल-समीन अल-हलबी ने अल-दुर्र अल-मस्ून 1/393 में किया है। (8) (ज़) में: "घोड़े"। (9) प्रतियों में शेर ठीक से नहीं लिखा गया है, यह उनके दीवान पृ. 118, अल-मुजमल 3/712 और अल-सिहाह (फ़-थ-अ) में है। (10) (ज़) में: "यदि आपने उसे खुद से दूर धकेल दिया और उसे तोड़ दिया"।

صفحہ 145

سورہ البقرہ: آیت 61

...محذوف۔ اور «يُخرِج» (وہ نکالے) مجزوم ہے اس معنی پر: "اس سے مانگو اور اس سے کہو: نکال، تو وہ نکالے گا۔" اور کہا گیا ہے کہ یہ دعا کے معنی میں ہے، لام کے حذف کو فرض کرتے ہوئے، اور الزجاج (1) نے اسے ضعیف قرار دیا ہے۔ اور «مِن» ان کے قول «مما» (اس میں سے جو) میں الاخفش (2) کے نزدیک زائد ہے، اور سیبویہ کے نزدیک زائد نہیں ہے، کیونکہ کلام مثبت (موجب) ہے (3)۔ النحاس (4) نے کہا: الاخفش کو اس پر اس لیے ابھارا گیا کیونکہ اسے «يُخرج» کا کوئی مفعول نہیں ملا، چنانچہ اس نے «ما» کو مفعول بنانا چاہا۔ لیکن بہتر یہ ہے کہ مفعول کو محذوف مانا جائے، جس پر بقیہ کلام دلالت کرتا ہے؛ اس کی تقدیر (اصل عبارت) یہ ہے: "وہ ہمارے لیے اس میں سے جو زمین اگاتی ہے، کھانے کے قابل (مأكولاً) نکالے۔" اس بنیاد پر پہلی «مِن» تبعیض (کچھ حصہ) کے لیے ہے، اور دوسری تخصیص کے لیے۔ اور «مِن بَقْلِها» (اس کی سبزیوں میں سے) «ما» کا بدل ہے حرف (پریپوزیشن) کے اعادہ کے ساتھ اور «وقثَّائِهَا» (اور اس کی ککڑیوں) کا اس پر عطف ہے، اور اسی طرح اس کے بعد والے الفاظ کا بھی، پس اسے جان لو۔

اور "بقل" (سبزیاں) معروف ہیں، اور یہ وہ ہر پودا ہے جس کا تنا نہ ہو۔ اور شجر: جس کا تنا ہو۔ اور "قثاء" (ککڑی) بھی معروف ہے، اور اس کے 'قاف' پر ضمہ [قثاء] بھی پڑھا جا سکتا ہے، جو یحییٰ بن وثاب اور طلحہ بن مصرف (5) کی قرأت ہے؛ یہ دو لغتیں ہیں، اگرچہ کسرہ [قثاء] (6) زیادہ عام ہے۔ اور قثاء کی جمع کے بارے میں کہا گیا ہے: "قثائی"، جیسے علباء اور علابی،

سوائے اس کے کہ قثاء واوی (7) مادے سے ہے۔ آپ کہتے ہیں: «أقثأتُ القوم» (8)، یعنی: "میں نے انہیں وہ کھلایا۔"

اور «فثأتُ القِدْرَ»: میں نے پانی کے ذریعے اس کے ابال کو ٹھنڈا کیا۔ الجعدی نے کہا:

"ان کی ہانڈی ہم پر ابلتی ہے، تو ہم اسے جاری رکھتے ہیں، اور جب اس کی تپش زور سے ابلتی ہے تو ہم اسے اپنے سے ٹھنڈا کر دیتے ہیں۔" (9)

اور «فثأتُ الرجل»: جب تم نے اس کے [ارادے] کو (10) اپنی بات یا کسی اور چیز سے توڑ دیا اور اس کے غصے کو ٹھنڈا کر دیا۔ اور وہ دوڑا یہاں تک کہ...

---

(1) معانی القرآن للزجاج 142/1۔ (2) معانی القرآن للاخفش 272/1۔ (3) الکتاب 38/1۔ (4) اعراب القرآن 231/1۔ (5) المحتسب 87/1، والقراءات الشاذة ص 6، واعراب القرآن للنحاس 231/1، والمحرر الوجیز 153/1۔ (6) (د) اور (ظ) میں: "اور کسرہ کے ساتھ"۔ (7) انہوں نے ایسا ہی کہا۔ اور یہ ان کے قلم کی لغزش ہے، اللہ ان پر رحم کرے، کیونکہ وہ یہ کہنا چاہتے تھے کہ یہ 'ہمزہ' والے الفاظ میں سے ہے، جیسا کہ النحاس کی اعراب القرآن 231/1 میں ہے، جنہوں نے ان سے یہ قول نقل کیا ہے۔ مزید یہ کہ مصنف نے اس کے بعد جو مثالیں پیش کی ہیں، وہ اس بات کی دلیل ہیں کہ ان کے نزدیک لفظ "قثاء" ہمزہ والا ہے، نہ کہ واوی۔ چنانچہ مصنف کی لغزش کو بڑھا چڑھا کر بیان کرنے کی ضرورت نہیں ہے، جیسا کہ السمین الحلبی نے الدر المصون 393/1 میں کیا ہے۔ (8) (ظ) میں: "گھوڑے"۔ (9) نسخوں میں یہ شعر درست طریقے سے نہیں لکھا گیا ہے، یہ ان کے دیوان ص 118، المجمل 712/3 اور الصحاح (فثأ) میں ہے۔ (10) (ز) میں: "جب تم نے اسے اپنے سے دور کر دیا اور اسے توڑ دیا"۔

146 Surah Al-Baqarah: Verse 61

'Aftha'a' means he became tired and breathless. 'Aftha'a al-harr' means the heat calmed down and subsided. Among their proverbs regarding a small act of kindness is their saying: "Verily, the rathi'ah (mixture of fresh and sour milk) calms anger." (1) Its origin is that a man was angry with a people, and along with his anger, he was hungry. So they gave him rathi'ah to drink, his anger subsided, and he desisted from them. (2) Al-rathi'ah is fresh milk milked onto sour milk so that it thickens. 'Ratha'tu al-laban rath'an' means when you milk it onto sour milk and it thickens, and the noun is al-rathi'ah. 'Irthadda al-laban' means it thickened. (3)

Ibn Majah narrated (4): Muhammad ibn Abdullah ibn Numayr narrated to us, Yunus ibn Bukayr narrated to us, Hisham ibn Urwah narrated to us, from his father, from Aisha who said: "My mother used to treat me for thinness, wanting to introduce me to the Messenger of Allah (peace be upon him). That did not work for her until I ate cucumbers with fresh dates, then I gained weight in the best way." This is a sound chain of narration.

The Almighty's saying: {and its 'fum'}: There was disagreement regarding 'al-fum'. It was said: it is garlic (al-thum); because it is similar to onions. Juwaybir narrated it (5) from al-Dahhak (6). The 'tha' (ث) is substituted for 'fa' (ف), as they said: 'maghafir' and 'maghayir', 'jadath' and 'jadaf' for a grave. Ibn Mas'ud recited: {thumiha} with the triple-dotted 'tha', and that was narrated from Ibn Abbas (7).

Umayyah ibn Abi al-Salt said: Their dwellings were prominent at that time, containing paradises (orchards), 'fuman', and onions. (8) 'Al-faradis': its singular is 'firdis' (9). And 'karm mufardas' means a trellised vineyard.

(1) In (M): regarding anger. (2) Al-Sihah (f-th-a). (3) Al-Sihah: (r-th-a). The author digressed in the entry (f-th-a) after citing the witness, then brought the entry (r-th-a) due to their connection in wording and meaning. (4) In his Sunan (3324). (5) In (D) and (Z): Jubayr. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/153. (7) Al-Qira'at al-Shadhah by Ibn Khalawayh p. 6, and al-Muhtasab 1/88. (8) His Diwan p. 98. Ibn Manzur said in Lisan al-Arab (f-w-m): It is narrated: "al-fararis", which is onions, and "fuman" is the plural of "fum". (9) Thus in the manuscripts; what is in the linguistic dictionaries is that the singular of "faradis" is "firdaws".

146 सूरह अल-बकरा: आयत 61

'अफ्था' (Aftha'a) का अर्थ है थक जाना और हांफना। 'अफ्था अल-हर्र' का अर्थ है गर्मी का शांत होना और कम होना। दया के छोटे कार्य के बारे में उनकी कहावतों में एक यह है: "निश्चित रूप से, रथीआ (ताजे और खट्टे दूध का मिश्रण) गुस्से को शांत करता है।" (1) इसका मूल यह है कि एक व्यक्ति किसी समुदाय से नाराज था, और अपने गुस्से के साथ-साथ वह भूखा भी था। इसलिए उन्होंने उसे रथीआ पिलाया, जिससे उसका गुस्सा शांत हो गया और उसने उनसे हाथ रोक लिया। (2) रथीआ वह ताजा दूध है जिसे खट्टे दूध में निकाला जाता है ताकि वह गाढ़ा हो जाए। 'रथाअतु अल-लबन रथान' का अर्थ है जब आप इसे खट्टे दूध में निकालते हैं और वह गाढ़ा हो जाता है, और संज्ञा 'अल-रथीआ' है। 'इरथद्दा अल-लबन' का अर्थ है कि वह गाढ़ा हो गया। (3)

इब्न माजह ने रिवायत की (4): हमसे मुहम्मद बिन अब्दुल्ला बिन नुमैर ने बयान किया, हमसे यूनुस बिन बुक़ैर ने बयान किया, हमसे हिशाम बिन उरवाह ने अपने पिता के हवाले से, आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से बयान किया कि उन्होंने कहा: "मेरी माँ मेरा मोटापे के लिए इलाज करती थीं, वह चाहती थीं कि मैं अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास जाऊँ। उनके लिए यह तब तक सफल नहीं हुआ जब तक मैंने ताजे खजूरों के साथ ककड़ी नहीं खाई, फिर मैं बेहतरीन तरीके से मोटी हो गई।" और यह सनद सही है।

अल्लाह तआला का फरमान: {व फ़ूमिहा} : 'अल-फ़ूम' के बारे में मतभेद है। कहा गया है: यह लहसुन (अल-थूम) है; क्योंकि यह प्याज के समान है। इसे जुवैबिर (5) ने अद-दहहाक (6) से रिवायत किया है। 'था' (ث) को 'फा' (ف) से बदल दिया जाता है, जैसे उन्होंने कहा: 'मगाफीर' और 'मगायीर', 'जदथ' और 'जदफ़' कब्र के लिए। इब्न मसूद ने इसे तीन बिंदुओं वाले 'था' के साथ 'थूमिहा' पढ़ा, और यह इब्न अब्बास (7) से भी रिवायत किया गया है।

उमय्या बिन अबी अल-सल्त ने कहा: उस समय उनके घर प्रमुख थे, जिनमें बगीचे, 'फ़ूमान' और प्याज थे। (8) 'अल-फरादीस': इसका एकवचन 'फिरदीस' (9) है। और 'कर्म मुफ़रदस' का अर्थ है छप्पर पर चढ़ी अंगूर की बेल।

(1) (M) में: गुस्से में। (2) अल-सिहाह (f-th-a)। (3) अल-सिहाह: (r-th-a), और लेखक ने प्रमाण देने के बाद (f-th-a) विषय में विस्तार किया, फिर शब्द और अर्थ में उनके संबंध के कारण (r-th-a) विषय को लाया। (4) उनकी सुनन (3324) में। (5) (D) और (Z) में: जुबैर। (6) अल-मुहर्रर अल-

वजीज 1/153। (7) इब्न खालवैह द्वारा 'अल-क़िराआत अल-शादह' पृष्ठ 6, और अल-मुहतसब 1/88। (8) उनका दीवान पृष्ठ 98। इब्न मंजूर ने 'लिसान अल-अरब' (f-w-m) में कहा है: यह रिवायत है: 'अल-फरारिस', जो प्याज है, और 'फ़ूमान', 'फ़ूम' का बहुवचन है। (9) पांडुलिपियों में ऐसा ही है; भाषाई शब्दकोशों में जो है वह यह है कि 'फरादीस' का एकवचन 'फिरदौस' है।

١٤٦ سورة البقرة : الآية ٦١

أفثأ، يعنى: تهک گيا اور سانس پهول گئى۔ وأفثأ الحرُّ، يعنى: گرمى سكون پا گئى اور كم ہو گئى۔ اور نيكى كے معمولى كام كے بارے ميں ان كى مثالوں ميں سے يہ ہے: "بے شک رثيئہ (تازہ اور كھٹے دودھ كا آميزہ) غصے كو ٹھنڈا كرتا ہے (١)۔ اس كى اصل يہ ہے كہ ايک آدمى كسى قوم پر غصے ميں تھا، اور اپنے غصے كے ساتھ ساتھ وہ بھوكا بھى تھا، تو انہوں نے اسے رثيئہ پلايا، اس كا غصہ ٹھنڈا ہو گيا، اور اس نے ان سے ہاتھ روک ليا (٢)۔ رثيئہ: وہ تازہ دودھ ہے جو كھٹے دودھ پر نكالا جائے تاكہ وہ گاڑھا ہو جائے۔ رثأتُ اللبن رثأً: يعنى جب آپ اسے كھٹے دودھ پر نكاليں اور وہ گاڑھا ہو جائے، اور اسم 'رثيئہ' ہے۔ وارثأّ اللبن: وہ گاڑھا ہو گيا (٣)۔

اور ابن ماجہ نے روايت كيا (٤): ہميں محمد بن عبد الله بن نمير نے بيان كيا، ہميں يونس بن بكير نے بيان كيا، ہميں ہشام بن عروہ نے اپنے والد سے، انہوں نے عائشہ (رضى الله عنہا) سے روايت كيا، انہوں نے كہا: ميرى ماں ميرا موٹاپے كے ليے علاج كرتى تھيں، وہ چاہتى تھيں كہ مجھے رسول الله ﷺ كى خدمت ميں پيش كريں، تو ان كا يہ مقصد اس وقت تک پورا نہيں ہوا جب تک ميں نے تازہ كھجوروں كے ساتھ ككڑى نہيں كھائى، پھر ميں بہترين طريقے سے موٹى ہو گئى۔ اور يہ اسناد صحيح ہے۔

الله تعالىٰ كا ارشاد: ﴿وَفُومِهَا﴾: 'الفوم' كے بارے ميں اختلاف ہوا ہے، پس كہا گيا: يہ 'لہسن' ہے؛ كيونكہ يہ پياز كے مشابہ ہے۔ اسے جويبر (٥) نے ضحاک (٦) سے روايت كيا ہے۔ اور 'ث' كو 'ف' سے بدل ديا جاتا ہے، جيسا كہ انہوں نے 'مغافير' اور 'مغائير' كہا، اور قبر كے ليے 'جدث' اور 'جدف'۔ اور ابن مسعود نے اسے تين نقطوں والى 'ث' كے ساتھ «ثومها» پڑھا، اور يہ ابن عباس سے بھى مروى ہے (٧)۔

اور امیہ بن ابی الصلت نے کہا: ان کے گھر اس وقت نمایاں تھے، جن میں باغات، 'فومان' اور پیاز تھے (٨) الفراديس: اس کا واحد 'فرديس' ہے (٩)۔ اور 'كرم مفردس' یعنی چھپر پر چڑھی ہوئی انگور کی بیل۔

(١) (م) میں: غصے کے بارے میں۔ (٢) الصحاح (فثأ)۔ (٣) الصحاح: (رثأ)، اور مصنف نے مادہ 'فثأ' میں شاہد لانے کے بعد تفصیل سے بات کی، پھر لفظ اور معنی میں تعلق کی وجہ سے مادہ 'رثأ' ذکر کیا۔ (٤) اپنی سنن (٣٣٢٤) میں۔ (٥) (د) اور (ظ) میں: جبیر۔ (٦) المحرر الوجیز ١٥٣/١۔ (٧) ابن خالویہ کی القراءات الشاذة ص ٦، اور المحتسب ٨٨/١۔ (٨) ان کا دیوان ص ٩٨۔ ابن منظور نے 'لسان العرب' (فوم) میں کہا ہے: اور مروی ہے: 'الفراریس'، جو پیاز ہے، اور 'فومان' فوم کی جمع ہے۔ (٩) نسخوں میں اسی طرح ہے، اور لغت کی لغتوں میں جو ہے وہ یہ ہے کہ 'فرادیس' کا واحد 'فردوس' ہے۔

Page 147 Surah Al-Baqarah: Verse 61

Hassan said: "And you are people of mean origins; your food is garlic and wild leek(1)." Meaning: garlic and onions, which is the saying of al-Kisa'i(2) and al-Nadr bin Shumayl. It was also said: Al-Fum (الفوم) means wheat. This is also narrated from Ibn Abbas and most of the commentators(3), and it was chosen by al-Nahhas; he said: "And it is more appropriate, and those who held this view are of higher standing, and their chains of narration are authentic, and Juwaybir is not equal to his narration, even though al-Kisa'i and al-Farra' chose the first saying; because the Arabs substitute 'fa' for 'tha'(4). Substitution is not a rule to be measured against, and it is not frequent in the speech of the Arabs." Ibn Abbas recited for those who asked him about al-Fum, stating that it means wheat, the words of Uhayhah bin al-Julah(5): "I used to be the most independent person as an individual(6), arriving in Medina after farming wheat(7)." Abu Ishaq al-Zajjaj said(8): "How can people ask for food that has no wheat in it, when wheat is the staple of nutrition?" Al-Jawhari Abu Nasr said(9): "Al-Fum is wheat." And al-Akhfash recited: "I used to think of myself as the most independent person(10), residing in Medina after farming wheat(11)."

Footnotes: (1) We have not come across it; it was cited by Ibn Adil al-Hanbali in 'Al-Lubab' 2/117. (2) 'Al-Nukat wa al-'Uyun' by al-Mawardi 1/129, and 'Al-Tafsir al-Kabir' by Fakhr al-Razi 3/100. (3) 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/153, and the saying of Ibn Abbas was recorded by al-Tabari in 'Al-Tafsir' 2/17. (4) 'Ma'ani al-Qur'an' by al-Farra' 1/41. (5) His kunya is Abu Amr, he was the chief of al-Aws in pre-Islamic times, and Salma bint Amr, the mother of Abd al-Muttalib, was under him, then Hashim married her. He was wealthy and stingy, selling usury in Medina. 'Al-Khizana' 3/357. (6) In (M): 'one', which is a distortion. (7) Recorded by al-Tabari 2/18, via Nafi' bin Abi Nu'aim from Ibn Abbas, but Nafi' did not meet Ibn Abbas. Ibn Atiyyah cited it in 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/153. (8) 'Ma'ani al-Qur'an' 1/143. (9) 'Al-Sihah': (Fum). (10) In (M) and (Z): 'found', which is a distortion. (11) Another narration recorded by al-Tabarani in 'Al-Kabir' (10597) at length, via Juwaybir from al-Dahhak from Ibn Abbas, and the verse was attributed therein to Abu Dhu'ayb al-Hudhali with the wording: "You used to think of me as the richest newcomer..." It was attributed in 'Al-Aghani' 2/19 and 'Al-Lisan' (Fum) to Abu Mahjan. It is in 'Al-Sihah' (Fum) and 'Al-Muhtasib' 1/88 without attribution.

पृष्ठ १४७ सूरा अल-बकरा: आयत ६१

हसन ने कहा: "और तुम नीच मूल के लोग हो; तुम्हारा भोजन लहसुन और जंगली प्याज़ है(१)।" इसका अर्थ है: लहसुन और प्याज़, और यह अल-किसाई(२) और अन-नद्र बिन शुमैल का कथन है। यह भी कहा गया है कि: 'अल-फूम' का अर्थ गेहूँ है। यह इब्न अब्बास और अधिकांश मुफ़स्सिरों (टीकाकारों) से भी वर्णित है(३), और इसे अन-नह्हास ने चुना है; उन्होंने कहा: "और यह अधिक उचित है, और जो लोग इसके पक्ष में हैं वे उच्च स्तर के हैं, और उनकी रिवायतों की श्रृंखलाएँ प्रामाणिक हैं, और जुवैबिर उनकी रिवायत के बराबर नहीं है, भले ही अल-किसाई और अल-फर्रा ने पहले कथन को चुना हो; क्योंकि अरब 'था' (ث) के स्थान पर 'फ़ा' (ف) का प्रयोग करते हैं(४)। यह प्रतिस्थापन (इबदाल) कोई ऐसा नियम नहीं है जिस पर अन्य शब्दों को तौला जाए, और अरबों की वाणी में यह अधिक प्रचलित नहीं है।" इब्न अब्बास ने उन लोगों के लिए अुहय्याह बिन अल-जुलाह(५) का यह काव्य पाठ किया जिन्होंने उनसे 'फूम' के बारे में पूछा था कि यह गेहूँ है: "मैं एक व्यक्ति के रूप में सबसे अधिक आत्मनिर्भर था(६), गेहूँ की खेती के बाद मदीना पहुँचा(७)।" अबू इशाक़ अल-ज़ज्जाज ने कहा(८): "लोग ऐसा भोजन कैसे माँग सकते हैं जिसमें गेहूँ न हो, जबकि गेहूँ पोषण का मूल है!" अल-जौहरी अबू नसर ने कहा(९): "फूम गेहूँ है।" और अल-अखफश ने पढ़ा: "मैं खुद को सबसे आत्मनिर्भर व्यक्ति समझता था(१०), जो गेहूँ की खेती के बाद मदीना में बस गया(११)।"

फुटनोट्स (पाद-टिप्पणियाँ): (१) हमें यह नहीं मिला; इब्न आदिल अल-हनबली ने 'अल-लुबाब' ११७/२ में इसका उल्लेख किया है। (२) अल-मावर्दी की 'अल-नुकात वल-उयून' १२९/१, और फ़ख्र अल-राज़ी की 'अल-तफ़सीर अल-कबीर' १००/३। (३) 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' १५३/१, और इब्न अब्बास का कथन अल-तबरी ने 'अल-तफ़सीर' १७/२ में उद्धृत किया है। (४) अल-फर्रा की 'मा'नी अल-कुरान' ४१/१। (५) उनका उपनाम (कुनियत) अबू अम्र है, वे जाहिलियत (इस्लाम पूर्व काल) में औस कबीले के सरदार थे, और अब्दुल मुत्तलिब की माँ सलमा बिंत अम्र उनके विवाह में थीं, फिर हाशम ने उनसे शादी की। वे बहुत धनी और कंजूस थे, मदीना में सूद (ब्याज) का व्यापार करते थे। 'अल-खिजाना' ३५७/३। (६) (म) में: 'एक', जो एक विरूपण है। (७) अल-तबरी २/१८ द्वारा उद्धृत, नाफ़े बिन अबी नुअैम के माध्यम से इब्न अब्बास से, और नाफ़े ने इब्न अब्बास को नहीं पाया (अर्थात उनसे सीधे नहीं सुना)। इब्न अतिय्याह ने इसे 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' १५३/१ में उल्लेख किया है। (८) 'मा'नी अल-कुरान' १४३/१। (९) 'अल-सिह़ाह': (फूम)। (१०) (म) और (ज़) में: 'पाया', जो एक विरूपण है। (११) अल-तबरानी द्वारा 'अल-कबीर' (१०५९७) में एक लंबी रिवायत उद्धृत की गई है, जुवैबिर के माध्यम

से अल-दह़्ह़ाक से इब्न अब्बास से, और इसमें यह शेर अबू ज़ुऐब अल-हुज़ली की ओर इन शब्दों के साथ श्रेय दिया गया है: "तुम मुझे सबसे धनी आगंतुक समझते थे..." 'अल-अ़गानी' २/१९ और 'अल-लिसान' (फूम) में इसे अबू महजन की ओर श्रेय दिया गया है। यह 'अल-सिह़ाह' (फूम) और 'अल-मुह्तसिब' १/८८ में बिना किसी श्रेय के है।

صفحہ ۱۴۷ سورۃ البقرہ: آیت ۶۱

حسان نے کہا: "اور تم کمین اصل کے لوگ ہو؛ تمہارا کھانا لہسن اور جنگلی پیاز ہے(۱)۔" یعنی: لہسن اور پیاز، اور یہ کسائی(۲) اور نضر بن شمیل کا قول ہے۔ اور کہا گیا ہے کہ: فوم: گندم ہے، یہ ابن عباس رضی اللہ عنہ سے بھی مروی ہے اور اکثر مفسرین(۳) کا یہی قول ہے، اور اسے نحاس نے اختیار کیا ہے؛ انہوں نے کہا: "اور یہ زیادہ موزوں ہے، اور جس نے یہ قول اختیار کیا وہ اعلیٰ مقام پر ہے، اور اس کی اسانید صحیح ہیں، اور جویبر اپنی روایت کے لحاظ سے ان کے ہم پلہ نہیں ہے، اگرچہ کسائی اور فراء نے پہلے قول کو اختیار کیا ہے؛ کیونکہ عرب 'ث' کو 'ف' سے بدل دیتے ہیں(۴)۔ اور اس ابدال (تبدیلی) پر قیاس نہیں کیا جا سکتا، اور عرب کے کلام میں یہ بہت زیادہ نہیں ہے۔" ابن عباس رضی اللہ عنہ نے ان لوگوں کے سامنے جنہوں نے ان سے فوم کے بارے میں پوچھا کہ وہ گندم ہے، احیحہ بن الجلاح(۵) کا یہ قول پڑھا: "میں تنہا شخص کے طور پر سب سے زیادہ غنی تھا(۶)، جب گندم کی کاشت کے سلسلے میں مدینہ پہنچا(۷)۔" ابو اسحاق زجاج نے کہا(۸): "لوگ ایسی خوراک کیسے طلب کر سکتے ہیں جس میں گندم نہ ہو، جبکہ گندم غذا کی اصل ہے!" اور جوہری ابو نصر نے کہا(۹): "فوم گندم ہے۔" اور اخفش نے پڑھا: "میں اپنے آپ کو سب سے غنی شخص گمان کرتا تھا(۱۰) جو گندم کی کاشت کے سلسلے میں مدینہ میں اترا(۱۱)۔"

حواشی: (۱) ہمیں یہ دستیاب نہیں ہوسکا، اور ابن عادل الحنبلی نے اسے 'اللباب' ۱۱۷/۲ میں نقل کیا ہے۔ (۲) ماوردی کی 'النکت والعیون' ۱۲۹/۱، اور فخر رازی کی 'التفسیر الکبیر' ۱۰۰/۳۔ (۳) 'المحرر الوجیز' ۱۵۳/۱، اور طبرانی نے تفسیر ۱۷/۲ میں ابن عباس کا قول نقل کیا ہے۔ (۴) فراء کی 'معانی القرآن' ۴۱/۱۔ (۵) ان کی کنیت ابو عمرو ہے، وہ زمانہ جاہلیت میں قبیلہ اوس کے

سردار تھے، اور عبد المطلب کی والدہ سلمی بنت عمرو ان کے نکاح میں تھیں، پھر ہاشم نے ان سے نکاح کیا۔ وہ بہت مالدار اور بخیل تھے، مدینہ میں سود کا کاروبار کرتے تھے۔ 'الخزانہ' ۳۵۷/۳۔ (۶) (م) میں: 'واحد'، جو تحریف (غلطی) ہے۔ (۷) اسے طبری نے ۱۸/۲ میں نافع بن ابی نعیم کے واسطے سے ابن عباس سے روایت کیا ہے، حالانکہ نافع نے ابن عباس کا زمانہ نہیں پایا، اور اسے ابن عطیہ نے 'المحرر الوجیز' ۱۵۳/۱ میں نقل کیا ہے۔ (۸) 'معانی القرآن' ۱۴۳/۱۔ (۹) 'الصحاح': (فوم)۔ (۱۰) (م) اور (ظ) میں: 'واجد'، جو تحریف ہے۔ (۱۱) ایک اور روایت طبرانی نے 'الکبیر' (۱۰۵۹۷) میں تفصیل کے ساتھ جویبر کے واسطے سے ضحاک سے ابن عباس سے نقل کی ہے، اور اس میں یہ شعر ابو ذویب الہذلی کی طرف منسوب ہے ان الفاظ کے ساتھ: "تم مجھے سب سے زیادہ غنی آنے والا گمان کرتے تھے..." اور 'الاغانی' ۲/۱۹ اور 'اللسان' (فوم) میں یہ شعر ابو محجن کی طرف منسوب ہے۔ اور یہ 'الصحاح' (فوم) اور 'المحتسب' ۱/۸۸ میں بغیر کسی نسبت کے موجود ہے۔

١٤٨ Surah Al-Baqarah: Verse 61

Ibn Duraid said: 'Al-Fumah' is the ear of grain (stalk), and he recited: Their scout said when he came to us, holding in his hand one or two ears of grain (1). And the 'h' in 'kaffihi' (his hand) is not elongated (vocalized with a short vowel) (2). Some said: 'Al-Fum' is chickpeas, a Levantine dialect. Its seller is called 'fami', changed from 'fumi'; because they might change things in attribution (nisbah), as they said: 'suhli' and 'duhri' (3). It is said: 'fa'umu lana', meaning: bake bread for us. Al-Farra' (4) said: It is an ancient language. 'Ata' and Qatadah said: 'Al-Fum' is every grain that is baked (5). Issue: Scholars differed regarding eating onions, garlic, and other legumes that have an offensive odor: The majority of scholars held the view that it is permissible, based on the established hadiths regarding that. A group from the Zahiri school - those who say that praying in congregation is an obligation - held the view of prohibition. They said: everything that prevents one from performing an obligatory duty and fulfilling it, doing it or being preoccupied with it is forbidden. They argued that the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) called them 'foul' (6), and Allah, Mighty and Majestic, described His Prophet (peace be upon him) as forbidding foul things. Among the arguments for the majority is what is confirmed from Jabir that a pot containing green vegetables of legumes was brought to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and he found an odor in it. He asked about the legumes it contained, then said: 'Bring it near' to some of his companions who were (7) with him. When he saw that he (the Prophet) disliked eating it, he said: 'Eat, for I converse with one whom you do not converse with.' Narrated by Muslim and Abu Dawud (8). This clearly shows that it was specific to him and permissible for others.

(1) Jamharat al-Lughah 3/160, and al-Sihah (Fum). Al-Rabiah: the scout who watches the enemy from a high place so they don't surprise his people. Al-Mu'jam al-Wasit. (2) Meaning: the vowel movement is not elongated. Ibn Duraid said in Jamharat al-Lughah: he lightened the 'h' without elongation. This is his dialect. (3) Attributed to 'al-sahl' (the plain) and 'al-dahr' (time). Mukhtar al-Sihah (Dahr). (4) Ma'ani al-Qur'an 1/41, and the author quoted him through al-Jawhari in al-Sihah (Fum). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/153, and narrated by al-Tabari 16/2. (6) As in al-Musnad (11084) and Sahih Muslim (565), from the hadith of Abu Sa'id al-Khudri (may Allah be pleased with him) in a marfu' form: 'Whoever eats anything from this foul tree, let him not come near us in the mosque.' The author will mention a part of it soon. (7) In (Z): from those who were with him, and in (Th): the companions were with him. (8) Sahih Muslim (564), and Sunan Abi Dawud (3822). It is also in al-Bukhari (855). In Abu Dawud and in a

narration of al-Bukhari (7359), it says: 'bi-badr' (with a plate/tray) instead of 'bi-qidr' (with a pot). Al-Nawawi said in the commentary of Sahih Muslim 5/50: It is the correct version, and 'badr' is explained as a plate because of its roundness like the full moon (badr).

148 सूरह अल-बकराह: आयत 61

इब्न दुरैद ने कहा: 'अल-फूमा' अनाज की बाली है, और उन्होंने पढ़ा: उनके जासूस ने कहा जब वह हमारे पास आया, अपने हाथ में एक या दो बालियां लिए हुए (1)। और 'कफ़िही' (उसके हाथ) में 'ह' को खींचकर (दीर्घ स्वर के साथ) नहीं पढ़ा जाता (2)। कुछ ने कहा: 'अल-फूम' चने हैं, जो एक शामी (लेवेंटाइन) बोली है। इसके बेचने वाले को 'फामी' कहा जाता है, जो 'फूमी' से बदला हुआ है; क्योंकि वे कभी-कभी संबंधवाचक शब्दों (निस्बत) में बदलाव करते हैं, जैसे उन्होंने 'सुहली' और 'दुहरी' कहा (3)। और कहा जाता है: 'फाउमू लना', अर्थात: हमारे लिए रोटी बनाओ। अल-फ़र्रा (4) ने कहा: यह एक प्राचीन भाषा है। अता और क़तादह ने कहा: 'अल-फूम' वह हर अनाज है जिसकी रोटी बनाई जाती है (5)। मसला (मुद्दा): विद्वानों के बीच प्याज, लहसुन और अन्य दुर्गंध वाली सब्जियों को खाने के बारे में मतभेद है: बहुसंख्यक विद्वानों (जुमहूर) का मत है कि यह जायज़ है, क्योंकि इस बारे में हदीसें प्रमाणित हैं। ज़ाहिरी संप्रदाय के एक समूह - जो जमात के साथ नमाज़ पढ़ने को अनिवार्य (फ़र्ज़) मानते हैं - ने निषेध (मनाही) का रुख अपनाया। उन्होंने कहा: हर वह चीज़ जो अनिवार्य कर्तव्य (फ़र्ज़) को निभाने और उसे पूरा करने से रोकती है, उसे करना या उसमें व्यस्त होना हराम (वर्जित) है। उन्होंने दलील दी कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने उन्हें 'खबीसा' (गंदी/अशुद्ध) कहा है (6), और अल्लाह अज़्ज़ा व जल्ल ने अपने नबी (उन पर शांति हो) का वर्णन किया है कि वह अशुद्ध चीज़ों को हराम ठहराते हैं। बहुसंख्यक विद्वानों के लिए दलीलों में से एक वह है जो जाबिर से प्रमाणित है कि नबी ﷺ के पास एक बर्तन लाया गया जिसमें कुछ हरी सब्जियाँ थीं, तो उन्होंने उसमें एक गंध महसूस की। उन्होंने उनमें मौजूद सब्जियों के बारे में पूछा, फिर कहा: 'इसे करीब लाओ'; अपने कुछ साथियों की ओर जो उनके साथ थे (7)। जब उन्होंने देखा कि उन्होंने (नबी ने) इसे खाना नापसंद किया, तो उन्होंने कहा: 'खाओ, क्योंकि मैं उससे बात करता हूँ जिससे तुम बात नहीं करते।' इसे मुस्लिम और अबू दाऊद ने उद्धृत किया है (8)। तो यह उनके लिए विशेषता और दूसरों के लिए अनुमति को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।

(1) जमहरत अल-लुग़ह 3/160, और अस-सिहह (फूम)। रबीआ: वह जासूस जो किसी ऊंचे स्थान से दुश्मन पर नज़र रखता है ताकि वह उसकी कौम पर अचानक हमला न कर दे। अल-मुअजम अल-वसीत। (2) अर्थात: हरकत (स्वर) को खींचकर नहीं पढ़ा गया। इब्न दुरैद ने जमहरत अल-लुग़ह में कहा: उन्होंने 'ह' को बिना खींचे हल्का किया। यही उनकी भाषा है। (3) 'सहल' (मैदान) और 'दहर' (समय) के संबंध में। मुख्तार अस-सिहह (दहर)। (4) मानी अल-कुरआन 1/41, और लेखक ने इसे

जौहरी के माध्यम से अस-सिहह (फूम) में उनसे उद्धृत किया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/153, और इसे अल-तबरी ने 16/2 में उद्धृत किया है। (6) जैसा कि अल-मुसनद (11084) और सहीह मुस्लिम (565) में अबू सईद अल-खुदरी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की मरफू हदीस में है: 'जिसने इस गंदे पेड़ में से कुछ भी खाया, वह मस्जिद में हमारे करीब न आए।' लेखक जल्द ही इसका एक हिस्सा ज़िक्र करेंगे। (7) (ज़) में: जो उनके साथ थे उनमें से, और (ज़) में: सहाबा उनके साथ थे। (8) सहीह मुस्लिम (564), और सुनन अबी दाऊद (3822)। यह बुखारी (855) में भी है। अबू दाऊद और बुखारी (7359) के एक वर्णन में 'बिक़द्र' (बर्तन के साथ) के बजाय 'बिबद्र' (थाल के साथ) आया है। नववी ने सहीह मुस्लिम की व्याख्या 5/50 में कहा: यही सही है, और 'बद्र' की व्याख्या थाल के रूप में की गई है क्योंकि यह पूर्णिमा के चंद्रमा (बद्र) की तरह गोल होता है।

١٤٨ سورة البقرہ: آیت ٦١

ابن درید نے کہا: 'الفومہ' خوشہ (اناج کی بالی) ہے، اور انہوں نے یہ شعر پڑھا: ان کے جاسوس نے کہا جب وہ ہمارے پاس آیا، اپنے ہاتھ میں ایک یا دو بالیاں لیے ہوئے (١)۔ اور 'کفہ' میں 'ہ' کی حرکت کو کھینچا نہیں گیا (٢)۔ بعض نے کہا: 'الفوم' چنے ہیں، جو ایک شامی زبان ہے۔ اس کے بیچنے والے کو 'فامی' کہا جاتا ہے، جو 'فومی' سے بدلا ہوا ہے؛ کیونکہ وہ کبھی کبھی نسبت میں تبدیلی کر دیتے ہیں، جیسے انہوں نے 'سہلی' اور 'دہری' کہا (٣)۔ اور کہا جاتا ہے: 'فؤموا لنا'، یعنی: ہمارے لیے روٹی پکاؤ۔ الفراء (٤) نے کہا: یہ ایک قدیم زبان ہے۔ عطا اور قتادہ نے کہا: 'الفوم' ہر وہ اناج ہے جس کی روٹی بنائی جاتی ہے (٥)۔ مسئلہ: علماء کا پیاز، لہسن اور دیگر ایسی سبزیوں کو کھانے کے بارے میں اختلاف ہے جن میں ناگوار بو ہوتی ہے: جمہور علماء اس کے مباح (جائز) ہونے کی طرف گئے ہیں، ان احادیث کی بنا پر جو اس بارے میں ثابت ہیں۔ اہل ظاہر کی ایک جماعت نے - جو جماعت کے ساتھ نماز پڑھنے کو فرض قرار دیتے ہیں - ممانعت کا قول اختیار کیا ہے، اور انہوں نے کہا: ہر وہ چیز جو فرض کی ادائیگی اور اس پر قائم رہنے سے روکتی ہو، اس کا کرنا اور اس میں مشغول ہونا حرام ہے۔ انہوں نے اس بات سے استدلال کیا کہ رسول اللہ ﷺ نے انہیں 'خبیثہ' (ناپاک/گندی) نام دیا ہے (٦)، اور اللہ عزوجل نے اپنے نبی ﷺ کے بارے میں بیان فرمایا ہے کہ وہ خبیث چیزوں کو حرام قرار دیتے ہیں۔ جمہور کی دلیلوں میں سے ایک وہ ہے جو جابر سے ثابت ہے کہ نبی ﷺ کے پاس ایک برتن لایا گیا جس میں کچھ سبزیاں تھیں، تو آپ ﷺ نے اس میں ایک بو محسوس کی۔ آپ ﷺ نے ان سبزیوں کے بارے میں پوچھا جو اس میں تھیں، پھر فرمایا: 'اسے قریب لاؤ'؛ اپنے بعض صحابہ کی طرف جو آپ ﷺ کے ساتھ تھے (٧)۔ جب انہوں نے دیکھا کہ آپ ﷺ نے اسے کھانا ناپسند کیا، تو آپ ﷺ نے فرمایا: 'تم کھاؤ، کیونکہ

میں اس سے سرگوشی کرتا ہوں جس سے تم سرگوشی نہیں کرتے'۔ اسے مسلم اور ابو داؤد نے روایت کیا ہے (٨)۔ تو یہ آپ ﷺ کے لیے خاص ہونے اور دوسروں کے لیے مباح ہونے میں واضح ہے۔

(١) جمہرۃ اللغۃ ٣/ ١٦٠، اور الصحاح (فوم)۔ الربیئہ: وہ جاسوس جو کسی اونچی جگہ سے دشمن کی نگرانی کرتا ہے تاکہ وہ اس کی قوم پر اچانک حملہ نہ کر دے۔ المعجم الوسیط (٢) یعنی: حرکت کو کھینچ کر نہیں پڑھا گیا۔ ابن درید نے جمہرۃ اللغۃ میں کہا: 'ہ' کو بغیر کھینچے ہلکا پڑھا گیا ہے۔ ان کی زبان یہی ہے۔ (٣) سہل (میدان) اور دھر (زمانہ) کی طرف نسبت ہے۔ مختار الصحاح (دھر)۔ (٤) معانی القرآن ١/ ٤١، اور مصنف نے اسے جوہری کے واسطے سے الصحاح (فوم) میں ان سے نقل کیا ہے۔ (٥) المحرر الوجیز ١/ ١٥٣، اور اسے طبری نے ١٦/٢ میں روایت کیا ہے۔ (٦) جیسا کہ مسند (١١٠٨٤) اور صحیح مسلم (٥٦٥) میں ابو سعید خدری رضی اللہ عنہ کی مرفوع حدیث میں ہے: 'جس نے اس خبیث درخت میں سے کچھ کھایا، وہ مسجد میں ہمارے قریب نہ آئے'۔ مصنف عنقریب اس کا ایک حصہ ذکر کریں گے۔ (٧) (ز) میں: ان میں سے جو آپ کے ساتھ تھے، اور (ظ) میں: صحابہ آپ کے ساتھ تھے۔ (٨) صحیح مسلم (٥٦٤)، اور سنن ابی داؤد (٣٨٢٢)۔ یہ بخاری (٨٥٥) میں بھی ہے۔ ابو داؤد اور بخاری (٧٣٥٩) کی ایک روایت میں 'بقدر' (برتن کے ساتھ) کے بجائے 'ببدر' (تھال کے ساتھ) آیا ہے۔ نووی نے شرح صحیح مسلم ٥/ ٥٠ میں کہا: یہی درست ہے، اور 'بدر' کی تشریح تھال سے کی گئی ہے کیونکہ وہ چودھویں کے چاند (بدر) کی طرح گول ہوتا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 61 / 149

And in Sahih Muslim (1) also, from Abu Ayyub, that the Prophet ﷺ stayed with Abu Ayyub, so he prepared food for the Prophet ﷺ which contained garlic. When it was returned to him, he asked (2) about the placement of the Prophet's ﷺ fingers, and it was said to him: He did not eat. He was alarmed and went up to him and said: Is it haram (forbidden)? The Prophet ﷺ said: "No, but I dislike it." He said: "Then I dislike what you dislike - or what you disliked." He said: And the Prophet ﷺ used to be visited, meaning: revelation used to come to him. This is a text indicating its non-prohibition. Similarly, what was narrated by Abu Sa'id al-Khudri from the Prophet ﷺ when they ate garlic during the time of Khaybar and its conquest: "O people, it is not for me to forbid what Allah has made lawful, but it is a plant whose smell I dislike" (3). These hadiths suggest that the ruling is specific to him, as he is the one distinguished by private conversation with the Angel. However, we have learned (4) this ruling in the hadith of Jabir which implies equality between him and others in this ruling, where he said: "Whoever eats from this vegetable—garlic—and once said: whoever eats onions, garlic, and leeks—let him not approach our mosque, for the angels are offended by what the children of Adam are offended by" (5). And Umar ibn al-Khattab (may Allah be pleased with him) said in a lengthy hadith: "O people, you eat from two plants which I find to be nothing but foul: these onions and garlic. I saw the Messenger of Allah ﷺ when he found their smell on a man in the mosque, he ordered him to be taken out to Al-Baqi', so whoever eats them, let him kill [the smell] by cooking." Narrated by Muslim (6). His Almighty's saying: {And its lentils and its onions} Lentils are well-known. And "al-adasah" is a pustule that appears on a person (7), and it may be fatal. And "Adas" is a command used to urge mules. He said: Adas! Abbad has no authority over you. You are saved, and he whom you carry is free (8).

---

(1) (2053), and it is with Ahmad (23517). (2) In (D): they asked him, and in (Zh): he asked him. (3) Sahih Muslim (565). (4) In (Z): causes (ilal), and in (Zh): we learned the causes. (5) Reported by Ahmad (15159), and Muslim (564). (6) No. (567), and it is with Ahmad (89), and the complete discussion is in At-Tamheed 6/412 - 420. (7) In the manuscripts: "bi-l-asnan" (teeth), and the confirmed text is from (M). (8) The verse is by Yazid ibn Mufarrigh al-Himyari, and it is in his Diwan p. 115, and Al-Khazanah 4/333, 6/41, 42, 48, 388, and in some of its narrations: "Amant" (I am safe) instead of "Najawt" (you are saved). And Abbad mentioned in the verse is the son of Ziyad ibn Abi Sufyan.

सूरा अल-बक़रा: आयत 61 / 149

और सहीह मुस्लिम (1) में भी अबू अय्यूब से रिवायत है कि पैगंबर ﷺ अबू अय्यूब के यहाँ ठहरे, तो उन्होंने पैगंबर ﷺ के लिए खाना बनाया जिसमें लहसुन था। जब खाना उन्हें वापस लौटाया गया, तो उन्होंने पैगंबर ﷺ की उंगलियों के निशान के बारे में पूछा (2), और उनसे कहा गया: उन्होंने नहीं खाया। वह घबरा गए और उनके पास ऊपर गए और कहा: क्या यह हराम है? पैगंबर ﷺ ने कहा: "नहीं, लेकिन मुझे यह नापसंद है।" उन्होंने कहा: "तो जो आपको नापसंद है - या जो आपने नापसंद किया - मुझे भी वही नापसंद है।" उन्होंने कहा: और पैगंबर ﷺ के पास आया जाया जाता था, यानी: उनके पास वही (प्रकाशना) आती थी। यह निषेध न होने का प्रमाण है। इसी तरह, अबू सईद अल-खुदरी ने पैगंबर ﷺ से रिवायत की है जब उन्होंने खैबर और उसकी विजय के समय लहसुन खाया था: "ऐ लोगों, मेरे लिए वह हराम करना जायज़ नहीं है जिसे अल्लाह ने हलाल किया है, लेकिन यह एक ऐसा पौधा है जिसकी गंध मुझे नापसंद है" (3)। ये हदीसें संकेत देती हैं कि यह हुक्म (नियम) उनके लिए विशिष्ट है, क्योंकि वे फरिश्ते के साथ गुप्त बातचीत के लिए विशिष्ट हैं। लेकिन हमने (4) जाबिर की हदीस में इस हुक्म के बारे में जाना है जो इस हुक्म में उनके और दूसरों के बीच समानता का संकेत देता है, जहाँ उन्होंने कहा: "जो कोई भी इस सब्जी - लहसुन - को खाए - और एक बार कहा: जो कोई प्याज, लहसुन और लीक खाए - वह हमारी मस्जिद के करीब न आए, क्योंकि फरिश्ते उन चीजों से परेशान होते हैं जिनसे आदम की संतान परेशान होती है" (5)। और उमर इब्न अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने एक लंबी हदीस में कहा: "ऐ लोगों, तुम दो ऐसे पौधों को खाते हो जिन्हें मैं केवल गंदा पाता हूँ: ये प्याज और लहसुन। मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को देखा है कि जब उन्होंने मस्जिद में किसी आदमी से उनकी गंध पाई, तो उन्होंने उसे निकालने का आदेश दिया, और उसे अल-बक़ी की ओर निकाल दिया गया। इसलिए जो कोई उन्हें खाए, उसे पकाकर [उनकी गंध को] खत्म कर देना चाहिए।" इसे मुस्लिम ने रिवायत किया है (6)। अल्लाह तआला का कथन: {और उसकी दाल और उसका प्याज} मसूर (दाल) प्रसिद्ध है। और "अल-अदसा" एक फुंसी है जो इंसान पर निकलती है (7), और यह घातक हो सकती है। और "अदस" खच्चरों को हांकने के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक शब्द है। उन्होंने कहा: अदस! अब्बाद का तुझ पर कोई अधिकार नहीं है। तू बच गई, और जिसे तू ले जा रही है वह आज़ाद है (8)।

---

(1) (2053), और यह अहमद के यहाँ (23517) है। (2) (द) में: उन्होंने उनसे पूछा, और (ज़) में: उन्होंने उससे पूछा। (3) सहीह मुस्लिम (565)। (4) (ज़) में: कारण (इल्लत), और (ज़) में: हमने

कारणों को जाना। (5) अहमद (15159) और मुस्लिम (564) द्वारा रिपोर्ट किया गया। (6) संख्या (567), और यह अहमद के यहाँ (89) है, और पूरी चर्चा अत-तम्हीद 6/412 - 420 में है। (7) प्रतियों में: "दांतों से", और (म) से पुष्ट पाठ है। (8) यह शेर यज़ीद इब्न मुफ़रिग अल-हिमयारी का है, और यह उनके दीवान पृष्ठ 115, और अल-खज़ाना 4/333, और 6/41, 42, 48, 388 में है, और इसके कुछ विवरणों में: "अमंत" (मैं सुरक्षित हूँ), "नजौत" (तू बच गई) के बजाय। और शेर में उल्लिखित अब्बाद: वह ज़ियाद इब्न अबी सुफियान का बेटा है।

سورہ البقرہ: آیت 61 / 149

اور صحیح مسلم (1) میں بھی ابو ایوب سے مروی ہے کہ نبی ﷺ ابو ایوب کے ہاں ٹھہرے، تو انہوں نے نبی ﷺ کے لیے کھانا تیار کیا جس میں لہسن تھا۔ جب کھانا انہیں واپس کیا گیا تو انہوں نے نبی ﷺ کی انگلیوں کے نشانات کے بارے میں پوچھا (2)، تو ان سے کہا گیا: آپ نے نہیں کھایا۔ وہ گھبرا گئے اور آپ کے پاس اوپر گئے اور عرض کیا: کیا یہ حرام ہے؟ نبی ﷺ نے فرمایا: ”نہیں، لیکن میں اسے ناپسند کرتا ہوں“۔ انہوں نے کہا: ”تو جو آپ کو ناپسند ہے - یا جو آپ نے ناپسند کیا - مجھے بھی وہی ناپسند ہے“۔ انہوں نے کہا: اور نبی ﷺ کے پاس آیا جاتا تھا، یعنی: آپ کے پاس وحی آتی تھی۔ یہ تحریم (حرام ہونے) کے نہ ہونے پر نص ہے۔ اسی طرح وہ روایت ہے جو ابو سعید الخدری نے نبی ﷺ سے روایت کی جب انہوں نے خیبر اور اس کی فتح کے وقت لہسن کھایا تھا: ”اے لوگو، میرے لیے یہ جائز نہیں کہ میں اس چیز کو حرام کروں جسے اللہ نے حلال کیا ہے، لیکن یہ ایک ایسا پودا ہے جس کی بو مجھے ناپسند ہے“ (3)۔ یہ احادیث اس بات کا احساس دلاتی ہیں کہ یہ حکم آپ ﷺ کے ساتھ خاص ہے، کیونکہ آپ فرشتے سے سرگوشی (مناجات) کے لیے مخصوص ہیں۔ لیکن ہم نے (4) جابر کی حدیث میں اس حکم کے بارے میں جان لیا ہے جو اس حکم میں آپ کے اور دوسروں کے درمیان برابری کا تقاضا کرتا ہے، جہاں آپ نے فرمایا: ”جس نے یہ سبزی - لہسن - کھائی - اور ایک بار فرمایا: جس نے پیاز، لہسن اور گندنا (کراث) کھایا - تو وہ ہرگز ہماری مسجد کے قریب نہ آئے، کیونکہ فرشتوں کو ان چیزوں سے تکلیف ہوتی ہے جن سے بنی آدم کو تکلیف ہوتی ہے“ (5)۔ اور عمر بن الخطاب رضی اللہ عنہ نے ایک طویل حدیث میں فرمایا: ”اے لوگو، تم دو ایسے پودے کھاتے ہو جنہیں میں صرف ناپاک (خبیث) پاتا ہوں: یہ پیاز اور لہسن۔ میں نے رسول اللہ ﷺ کو دیکھا کہ جب آپ مسجد میں کسی آدمی

سے ان کی بو پاتے تو آپ حکم دیتے کہ اسے نکال دیا جائے، چنانچہ اسے بقیع کی طرف نکال دیا جاتا۔ پس جو کوئی انہیں کھائے تو اسے چاہیے کہ انہیں پکا کر [ان کی بو] ختم کر دے"۔ اسے مسلم نے روایت کیا ہے (6)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا﴾ عدس (مسور کی دال) معروف ہے۔ اور "العَدَسَة" ایک پھنسی ہے جو انسان کے بدن پر نکلتی ہے (7) اور بسا اوقات جان لیوا ثابت ہوتی ہے۔ اور "عَدَس" خچروں کو ہانکنے کے لیے ایک لفظ ہے۔ شاعر نے کہا ہے:

عدس! عباد کا تجھ پر کوئی اختیار نہیں۔ تو بچ گئی اور جسے تو اٹھائے ہوئے ہے وہ آزاد ہے (8)۔

---

(1) (2053)، اور یہ احمد کے ہاں (23517) ہے۔ (2) (د) میں ہے: انہوں نے ان سے پوچھا، اور (ظ) میں ہے: اس نے اس سے پوچھا۔ (3) صحیح مسلم (565)۔ (4) (ز) میں ہے: علل (وجوہات)، اور (ظ) میں ہے: ہم نے علل (وجوہات) جان لیں۔ (5) اسے احمد (15159) اور مسلم (564) نے روایت کیا ہے۔ (6) نمبر (567)، اور یہ احمد کے ہاں (89) ہے، اور مکمل بحث التمہید 6/ 412 - 420 میں ہے۔ (7) نسخوں میں ہے: "بالأسنان" (دانتوں سے)، اور درست شدہ متن (م) سے ہے۔ (8) یہ شعر یزید بن مفرغ الحمیمی کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص 115، اور الخزانہ 4/ 333، اور 6/ 41، 42، 48، 388 میں ہے، اور اس کی بعض روایات میں "نَجَوْتِ" کی جگہ "أمنت" (میں محفوظ ہو گیا) ہے۔ اور شعر میں مذکور عباد: وہ زیاد بن ابی سفیان کا بیٹا ہے۔

150 Surah Al-Baqarah: Verse 61

And 'Al-Adas' (lentils): [means] heavy treading, and also toiling; it is said: he 'adasahu' (trampled it). And 'adasa' in the land: he went through it. And 'adasat' (death approached) towards him, meaning: it traveled. Al-Kumayt said: I burden her with the terror of darkness, while I remain ... a brother of the night, being trodden towards and treading.(1) Meaning: it is traveled to me by night. And 'Adas' is a dialectal variation of 'Hadas', as stated by Al-Jawhari(2). And it is related from the Prophet (PBUH) from the hadith of Ali that he said: "Upon you is lentils, for it is blessed and holy, and it softens(3) the heart, and increases tears, for seventy prophets have blessed it, the last of whom was Jesus son of Mary," mentioned by Al-Tha'labi and others(4). And Umar bin Abdul Aziz used to eat bread with oil one day, meat another(5), and lentils another. Al-Halimi said(6): "Lentils and oil are the food of the righteous, and if it had no virtue other than being the hospitality of Ibrahim (peace be upon him) in his city, which is never without it, that would have been sufficient. And it is among the things that lighten the body so it becomes light for worship, and desires do not flare up from it as they do from meat." And wheat is among the grains, and it is 'al-fum' according to the correct view, and barley is close to it, and it was the food of the people of Medina, just as lentils(7) were the food of the village of Ibrahim (peace be upon him). Thus, each of the two grains gained a virtue through one of the two prophets (peace be upon them). And it has been narrated that the Prophet (PBUH) and his family never ate their fill of wheat bread for three consecutive days from the time he arrived in Medina until Allah the Almighty took him(8).

---

(1) His Diwan p. 246, and I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/243. (2) Al-Sihah: (adas). (3) In (m): yuriqqu. (4) Narrated by Ibn al-Jawzi in 'Al-Mawdu'at' 2/197, then he narrated from Ibn al-Mubarak that he rejected it, and this hadith has been narrated from other routes that are not reliable. See Shu'ab al-Iman 5/102, Tanzih al-Shari'ah 2/244, and Al-Manar al-Munif 1/52. (5) In (d): with salt. (6) Al-Hussein bin al-Hassan al-Bukhari al-Shafi'i, Abu Abdullah al-Qadi, the chief of the narrators and speakers in Transoxiana; he has precious works and died in (403 AH). Al-Siyar 17/231. And his words are in Al-Minhaj in Shu'ab al-Iman 3/59. (7) In (m): just as lentils were. (8) Narrated by Ahmad (24151), al-Bukhari (5416) (6454), and Muslim (2970) from the hadith of Aisha (may Allah be pleased with her).

150 सूरह अल-बकरा: आयत 61

और 'अल-अदस' (मसूर): इसका अर्थ भारी चलना है, और कड़ी मेहनत भी; कहा जाता है: उसने उसे 'अदसा' (कुचला)। और जमीन में 'अदसा': वह उसमें चला गया। और 'अदसत' (मृत्यु आई) उसकी ओर, यानी: वह चली। अल-कुमैत ने कहा: मैं उसे अंधेरे के आतंक से बोझिल करता हूँ, जबकि मैं रहता हूँ ... रात का भाई, जिसकी ओर चला गया और जो चला।(1) अर्थात्: रात में मेरी ओर यात्रा की गई। और 'अदस', 'हदस' की एक बोली है, जैसा कि अल-जौहरी ने कहा है(2)। और पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से अली की हदीस से वर्णित है कि उन्होंने कहा: "तुम मसूर खाओ, क्योंकि यह धन्य और पवित्र है, और यह दिल को नरम करता है(3), और आँसू बढ़ाता है, क्योंकि सत्तर पैगंबरों ने इसे आशीर्वाद दिया है, जिनमें से अंतिम मरियम के पुत्र ईसा थे," अल-था'लाबी और अन्य लोगों द्वारा उल्लेख किया गया है(4)। और उमर बिन अब्दुल अजीज एक दिन तेल के साथ रोटी, दूसरे दिन मांस के साथ(5), और एक दिन मसूर के साथ खाते थे। अल-हलिमी ने कहा(6): "मसूर और तेल नेक लोगों का भोजन है, और यदि इसका कोई और गुण न होता सिवाय इसके कि यह उनके शहर में इब्राहिम (अलैहिस्सलाम) का आतिथ्य था, जो कभी इसके बिना नहीं होता, तो वही पर्याप्त होता। और यह उन चीजों में से है जो शरीर को हल्का करती हैं जिससे वह इबादत के लिए हल्का हो जाता है, और इससे इच्छाएं उस तरह नहीं भड़कतीं जैसे मांस से भड़कती हैं।" और गेहूं अनाज में से है, और सही विचार के अनुसार यह 'अल-फूम' है, और जौ इसके करीब है, और यह मदीना के लोगों का भोजन था, जैसे मसूर(7) इब्राहिम (अलैहिस्सलाम) के गांव का भोजन था। इस प्रकार, दो पैगंबरों (उन पर शांति हो) के माध्यम से दोनों अनाजों में से प्रत्येक को एक गुण प्राप्त हुआ। और यह वर्णित है कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) और उनके परिवार ने मदीना आने के समय से लेकर अल्लाह के पास जाने तक लगातार तीन दिनों तक गेहूं की रोटी जी भरकर नहीं खाई(8)।

---

(1) उनका दीवान पृ. 246, और नहहास द्वारा इराब अल-कुरान 1/243। (2) अल-सिहाह: (अदस)। (3) (म) में: युरिक्कु। (4) इसे इब्न अल-जौज़ी ने 'अल-मौदूअत' 2/197 में उद्धृत किया है, फिर उन्होंने इब्न अल-मुबारक से वर्णन किया कि उन्होंने इसे अस्वीकार कर दिया, और यह हदीस अन्य तरीकों से वर्णित है जो विश्वसनीय नहीं हैं। देखें शुअब अल-ईमान 5/102, तंजीह अल-शरिया 2/244, और अल-मनार अल-मुनीफ 1/52। (5) (द) में: नमक के साथ। (6) अल-हुसैन बिन अल-हसन अल-बुखारी अल-शाफई, अबू अब्दुल्ला अल-कादी, मावरा-अन-नहर में वक्ताओं और

मुतकल्लिमीन के प्रमुख; उनकी बहुमूल्य रचनाएँ हैं, मृत्यु (403 हिजरी) में हुई। अल-सियार 17/231। और उनकी बात अल-मिन्हाज फि शुअब अल-ईमान 3/59 में है। (7) (म) में: जैसा कि मसूर था। (8) इसे अहमद (24151), अल-बुखारी (5416) (6454), और मुस्लिम (2970) ने आयशा (रज़िअल्लाहु अन्हा) की हदीस से उद्धृत किया है।

١٥٠ سورة البقرہ: آیت ٦١

اور 'العدس' (مسور): سخت پامالی، اور محنت بھی؛ کہا جاتا ہے: اس نے اسے 'عدسہ' (کچلا)۔ اور زمین میں 'عدسہ': وہ اس میں چلا گیا۔ اور اس کی طرف موت 'عدست' (آئی)، یعنی: چلی۔ الکمیت نے کہا: میں اسے اندھیرے کی ہولناکی سے بوجھل کرتا ہوں جبکہ میں رہتا ہوں ... رات کا بھائی، جس کی طرف سفر کیا گیا اور جس نے سفر کیا۔(١) یعنی: رات کے وقت میری طرف سفر کیا گیا۔ اور 'عدس'، 'حدس' کی ایک لغت ہے، جیسا کہ جوہری نے کہا ہے(٢)۔ اور نبی کریم ﷺ سے حضرت علی کی حدیث سے منقول ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "تم پر مسور لازم ہے، کیونکہ یہ مبارک اور مقدس ہے، اور یہ دل کو نرم کرتی ہے(٣)، اور آنسوؤں کو بڑھاتی ہے، کیونکہ ستر انبیاء نے اس میں برکت دی ہے جن میں آخری عیسیٰ بن مریم علیہ السلام تھے،" اسے ثعلبی اور دیگر نے ذکر کیا ہے(٤)۔ اور عمر بن عبدالعزیز ایک دن زیتون کے تیل کے ساتھ روٹی کھاتے تھے، ایک دن گوشت کے ساتھ(٥)، اور ایک دن مسور کے ساتھ۔ حلیمی نے کہا(٦): "مسور اور زیتون کا تیل صالحین کی غذا ہے، اور اگر اس کی کوئی فضیلت نہ ہوتی سوائے اس کے کہ یہ ان کے شہر میں ابراہیم علیہ السلام کی ضیافت تھی جو کبھی اس سے خالی نہیں ہوتا، تو یہی کافی ہوتا۔ اور یہ ان چیزوں میں سے ہے جو جسم کو ہلکا کرتی ہے جس سے وہ عبادت کے لیے ہلکا ہو جاتا ہے، اور اس سے خواہشات اس طرح نہیں ابھرتیں جیسے گوشت سے ابھرتی ہیں۔" اور گندم غلے میں شامل ہے، اور صحیح قول کے مطابق یہی 'الفوم' ہے، اور جو اس کے قریب ہے، اور یہ اہل مدینہ کی غذا تھی، جیسا کہ مسور(٧) ابراہیم علیہ السلام کی بستی کی غذا تھی۔ چنانچہ ان دونوں غلوں میں سے ہر ایک کو دونوں انبیاء علیہم السلام میں سے ایک کے ذریعے فضیلت

حاصل ہوئی۔ اور روایت ہے کہ نبی کریم ﷺ اور ان کے گھر والوں نے مدینہ آنے کے وقت سے لے کر وفات تک کبھی مسلسل تین دن گندم کی روٹی پیٹ بھر کر نہیں کھائی(۸)۔

---

(۱) ان کا دیوان ص ۲٤٦، اور اعراب القرآن للنحاس ۱/۲٤۳۔ (۲) الصحاح: (عدس)۔ (۳) (م) میں: يُرِقُّ۔ (٤) اسے ابن الجوزی نے الموضوعات ۲/۱۹۷ میں نکالا ہے، پھر ابن المبارک سے روایت کیا کہ انہوں نے اس کا انکار کیا، اور یہ حدیث دیگر طریقوں سے بھی مروی ہے جن کا اعتبار نہیں کیا جاتا۔ دیکھئے شعب الایمان ۵/۱۰۲ اور تنزیہ الشریعہ ۲/۲٤٤، اور المنار المنیف ۱/۵۲۔ (۵) (د) میں: نمک کے ساتھ (٦) الحسین بن الحسن البخاری الشافعی، ابو عبد اللہ القاضی، ماوراء النہر کے محدثین اور متکلمین کے رئیس؛ ان کی قیمتی تصانیف ہیں، وفات سن (٤۰۳ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۷/۲۳۱۔ اور ان کی بات ان کی کتاب المنہاج فی شعب الایمان ۳/۵۹ میں ہے۔ (۷) (م) میں: جیسا کہ مسور تھا۔ (۸) اسے احمد (۲٤۱۵۱)، بخاری (۵٤۱٦) (٦٤۵٤)، اور مسلم (۲۹۷۰) نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 61

151

The Almighty says: "He said, 'Would you exchange what is better for what is less?'" [2:61]. 'Istibdal' (exchange) means putting one thing in place of another, and from it comes 'badal' (substitute), and it has been discussed before (1). And "adna" (less/lower) is taken - according to Al-Zajjaj (2) - from "dunuww" (nearness), meaning: closeness in value, as in their saying: a "muqarib" garment, meaning: low-priced. Ali bin Sulayman (3) said: it is hamzated, from "al-dani'" (vile/base) of evident baseness, meaning the meanest, except that its hamza was lightened. And it was said: it is taken from "al-dun" (inferior), meaning: the lowest, so its origin is: 'adwan', on the pattern of 'af'al', it was inverted and became: 'afla'', and the 'waw' was changed into an 'alif' because it was at the end. It was read in the anomalous recitations as "adna'" (4). This was part of Musa's (peace be upon him) address to them. That is because when they said: "Pray to your Lord for us" [2:61], he became angry with them and said: Do you exchange inferior food for that which is better? meaning: the noble and superior, and the meaning is one (5). The meaning of the verse is: Do you exchange herbs, cucumbers, garlic, lentils, and onions, which are inferior, for Manna and Quails, which are better? Opinions differed regarding the aspects that necessitate the preference of Manna and Quails over the things they requested, and they are five: First: Since herbs were of no significant value compared to Manna and Quails, the latter two were better. This was said by Al-Zajjaj. Second: Since Manna and Quails were food that Allah had bestowed upon them and commanded them to eat, and in sustaining Allah's command and thanking for His blessing there is reward and treasure in the Hereafter, whereas what they requested is devoid of these characteristics (6), it was "adna" (inferior) in this regard. Third: Since what Allah had bestowed upon them was tastier and more delicious than what they asked for, what they asked for...

---

(1) 2/132. (2) Ma'ani al-Qur'an for him 1/143 - 144. (3) He is Abu al-Hasan al-Akhfash al-Asghar. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/153 (the wording is from it). Ibn Khalawayh attributed the reading in 'al-Qira'at al-Shadhah' p. 6, and Ibn Jinni in 'al-Muhtasib' 1/88 to Zuhayr al-Furqubi. (5) From his words: "This is from Musa's saying..." to this point, from (Z), and it is in Tafsir al-Samarqandi 1/123. (6) In (M): Al-Khasa'il (characteristics).

सूरह अल-बक़रह: आयत 61

151

अल्लाह तआला का फरमान है: "उसने (मूसा ने) कहा, 'क्या तुम उसे लेना चाहते हो जो कमतर है उसके बदले में जो बेहतर है?'" [2:61]; 'इस्तिब्दाल' (विनिमय) का अर्थ है एक चीज़ को दूसरी के स्थान पर रखना, और इसी से 'बदल' (विकल्प) निकला है, और इसका उल्लेख पहले हो चुका है (1)। और "अदना" (कमतर/निकृष्ट) शब्द - अल-ज़ज्जाज (2) के अनुसार - "दुनुव्व" (निकटता) से लिया गया है, जिसका अर्थ है: मूल्य में निकटता, जैसा कि उनके मुहावरे में है: एक "मुक़ारिब" वस्त्र, यानी: कम कीमत वाला। अली बिन सुलेमान (3) ने कहा: यह हमज़ायुक्त है, "अद-दनी" (नीच/घटिया) से जो स्पष्ट नीचता को दर्शाता है, जिसका अर्थ है सबसे घटिया, सिवाय इसके कि इसका हमज़ा हल्का कर दिया गया। और यह भी कहा गया है: यह "अद-दून" (हीन) से लिया गया है, यानी: सबसे नीचा, इसलिए इसका मूल है: 'अदवान', 'अफ़अल' के वज़न पर, यह उलट गया और बन गया: 'अफ़ला', और 'वाव' को अंत में होने के कारण 'अलिफ़' में बदल दिया गया। इसे असामान्य पाठों (किराआत) में "अदना"' (4) पढ़ा गया है। यह मूसा (अलैहिस्सलाम) द्वारा उनसे कही गई बात का हिस्सा है। ऐसा तब हुआ जब उन्होंने कहा: "अपने रब से हमारे लिए प्रार्थना करो" [2:61], तो वह उन पर क्रोधित हो गए और कहा: क्या तुम बेहतर चीज़ के बदले घटिया भोजन लेना चाहते हो? यानी: शरीफ़ (उच्च) और आला (श्रेष्ठ) के बदले, और अर्थ एक ही है (5)। आयत का अर्थ है: क्या तुम साग-सब्ज़ी, ककड़ी, लहसुन, मसूर और प्याज़, जो कि कमतर हैं, उनके बदले मन्न और सलवा (बटेर) चाहते हो जो बेहतर हैं? मन्न और सलवा को उनकी मांगी हुई चीज़ों पर वरीयता देने के कारणों पर मतभेद है, और वे पाँच हैं: पहला: चूंकि मन्न और सलवा की तुलना में साग-सब्ज़ियों का कोई विशेष महत्व नहीं था, इसलिए वे दोनों बेहतर थे। यह अल-ज़ज्जाज ने कहा है। दूसरा: चूंकि मन्न और सलवा वह भोजन था जो अल्लाह ने उन पर उपकार के रूप में दिया था और उन्हें खाने का आदेश दिया था, और अल्लाह के आदेश का पालन करने और उसकी नेमत का शुक्र अदा करने में परलोक में पुण्य और खजाना है, जबकि उन्होंने जो माँगा वह इन विशेषताओं (6) से रहित है, इसलिए वह इस दृष्टि से "अदना" (कमतर) था। तीसरा: चूंकि अल्लाह ने उन पर जो उपकार किया था वह उनके द्वारा माँगी गई चीज़ों से अधिक स्वादिष्ट और लजीज़ था, इसलिए जो उन्होंने माँगा था...

(1) 2/132. (2) उनके लिए मा'आनी अल-कुरान 1/143 - 144. (3) वह अबू अल-हसन अल-अख़्फ़श अल-असग़र हैं। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/153 (शब्द वहीं से हैं)। इब्न खालवैय्या ने 'अल-क़िराआत अल-शाज़्ज़ह' पृष्ठ 6 में इस पाठ का श्रेय दिया, और इब्न जिन्नी ने 'अल-मुहतासिब' 1/88 में ज़ुहैर अल-फ़ुर्कुबी को। (5) उनके शब्दों से: "यह मूसा के कथन से है..." यहाँ तक, (ज़ेड) से, और यह तफ़सीर अल-समरकंदी 1/123 में है। (6) (एम) में: अल-ख़सा'इल (विशेषताएं)।

سورة البقرہ: آیت 61

151

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: "کہا (موسیٰ نے)، 'کیا تم بدلے میں وہ چیز لینا چاہتے ہو جو ادنیٰ ہے اس کے مقابلے میں جو بہتر ہے؟'" [2:61]؛ 'استبدال' (تبادلہ) کا مطلب ہے ایک چیز کو دوسری کی جگہ رکھنا، اور اسی سے 'بدل' نکلا ہے، اور یہ پہلے بیان ہو چکا ہے (1)۔ اور "ادنیٰ" - زجاج (2) کے نزدیک - "دُنُوّ" (قربت) سے ماخوذ ہے، یعنی: قدر و قیمت میں قربت، جیسا کہ اہل عرب کہتے ہیں: "ثوب مقارِب"، یعنی: کم قیمت لباس۔ علی بن سلیمان (3) نے کہا: یہ ہمزہ والا لفظ ہے، "الدنی" (گھٹیا/ذلیل) سے جو واضح کمینگی کے معنی میں ہے، یعنی سب سے گھٹیا، سوائے اس کے کہ اس کے ہمزہ میں تخفیف کر دی گئی۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: یہ "الدون" (پست) سے ماخوذ ہے، یعنی: سب سے نیچا، پس اس کی اصل 'اَدون' ہے، 'افعل' کے وزن پر، یہ الٹ گیا تو 'افلع' ہو گیا، اور 'واؤ' کو آخر میں ہونے کی وجہ سے 'الف' سے بدل دیا گیا۔ شاذ قراتوں میں اسے "أدنأ" (4) بھی پڑھا گیا ہے۔ یہ حضرت موسیٰ علیہ السلام کا ان سے خطاب ہے۔ یہ اس وقت ہوا جب انہوں نے کہا: "اپنے رب سے ہمارے لیے دعا کیجیے" [آیت 61]، تو آپ ان پر ناراض ہوئے اور فرمایا: کیا تم بہتر کھانے کے بدلے گھٹیا کھانا لینا چاہتے ہو؟ یعنی: شریف اور اعلیٰ کے مقابلے میں، اور معنی ایک ہی ہے (5)۔ آیت کا مطلب یہ ہے: کیا تم ساگ، ککڑی، لہسن، مسور اور پیاز، جو کہ ادنیٰ ہیں، ان کے بدلے مَن و سلویٰ لینا چاہتے ہو جو بہتر ہے؟ ان وجوہات میں اختلاف پایا جاتا ہے جو مَن و سلویٰ کو ان کی طلب کردہ چیزوں پر فضیلت دینے کا تقاضا کرتی ہیں، اور وہ پانچ ہیں: پہلی: چونکہ مَن و سلویٰ کے مقابلے میں ساگ پات کی کوئی اہمیت نہ تھی، اس لیے وہ دونوں (من و سلوی) افضل تھے۔ یہ زجاج نے کہا ہے۔ دوسری: چونکہ مَن و سلویٰ وہ کھانا تھا جو

اللہ نے ان پر احسان کے طور پر نازل کیا تھا اور انہیں کھانے کا حکم دیا تھا، اور اللہ کے حکم پر جمے رہنے اور اس کی نعمت کا شکر ادا کرنے میں آخرت کا اجر اور ذخیرہ ہے، جبکہ ان کی طلب کردہ چیزیں ان اوصاف (6) سے خالی ہیں، اس لیے وہ اس لحاظ سے "ادنیٰ" (کمتر) تھیں۔

تیسری: چونکہ اللہ نے ان پر جو احسان فرمایا تھا وہ ان کی مانگی ہوئی چیزوں سے زیادہ لذیذ اور مزیدار تھا، اس لیے جو انہوں نے مانگا وہ...

---

(1) 132/2۔ (2) ان کی کتاب معانی القرآن 1/143 - 144۔ (3) وہ ابوالحسن الاخفش الاصغر ہیں۔ (4) المحرر الوجیز 1/153 (عبارت وہیں سے ہے)۔ ابن خالویہ نے 'القراءات الشاذة' ص 6 میں اس قرات کی نسبت دی ہے، اور ابن جنی نے 'المحتسب' 1/88 میں زہیر الفرقبی کی طرف۔ (5) ان کے قول: "یہ موسیٰ علیہ السلام کے قول سے ہے..." سے لے کر یہاں تک، (ز) سے ماخوذ ہے، اور یہ تفسیر سمرقندی 1/123 میں ہے۔ (6) (م) میں ہے: الخصائل (خصلتیں/اوصاف)۔

lower than this aspect, inevitably. Fourth: Since what they were given involved no effort or fatigue, while what they requested only comes through plowing, farming, and fatigue, it was lower. Fifth: Since what descended upon them had no doubt regarding its lawfulness and purity, because it descended from Allah, whereas grains and the earth are permeated by sales and usurpations and are subject to doubts, it was lower in this regard (1). Issue: This verse contains evidence for the permissibility of eating good things and delicious foods (2). The Prophet ﷺ used to love sweets and honey (3), and drink cold, sweet water (4). This meaning will be fully discussed in "Al-Ma'idah" and "Al-Nahl", God willing (5). The Almighty's saying: {Go down into a city [misran]} - the meaning of descending [hubut] was mentioned previously (6). This is a command whose meaning is to render incapable (ta'jiz), like the Almighty's saying: {Say, "Be you stones or iron"} [Al-Isra: 50]; because they were in the wilderness (al-tih), and this was a punishment for them. And it was said: They were given what they asked for (7).

Footnotes: (1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/153 - 154. (2) In (Z): Delicious things if they were from a lawful source. (3) Narrated by Ahmad (24316), Al-Bukhari (5431), and Muslim (1474), from the hadith of Aisha, may Allah be pleased with her. (4) Narrated by Ahmad (12438), Al-Bukhari (1461), and Muslim (998) (42), from Anas ibn Malik, may Allah be pleased with him, that the Messenger of Allah ﷺ used to enter Bayruha - which was a garden for Abu Talhah - and drink from its pleasant water. Ahmad (24693), Abu Dawud (3735), and Al-Hakim (4/138) narrated it and authenticated it: from Aisha, may Allah be pleased with her, that the Messenger of Allah ﷺ used to have sweet water brought to him from the houses of Al-Suqya. Al-Hafiz Ibn Hajar praised its chain of transmission in Fath al-Bari (10/74). Ahmad (24100), Al-Tirmidhi (2895), and Al-Hakim (4/137) narrated through Al-Zuhri, from Urwah, from Aisha: The most beloved drink to the Messenger of Allah ﷺ was sweet and cold. Al-Hakim authenticated it, and Al-Tirmidhi (1896) narrated it, and Abd al-Razzaq in his Musannaf (19583) from Al-Zuhri from the Prophet ﷺ in a mursal form. Al-Tirmidhi said: And this is more correct. Al-Daraqutni said in Al-Ilal (vol. 5, folio 28): The mursal is closer to being correct. (5) In the commentary of the Almighty's saying: {And eat of what Allah has provided for you [which is] lawful and good} [Al-Ma'idah: 88], and the Almighty's saying: {in which there is healing for people} [Al-Nahl: 69]. (6) At the Almighty's saying: {And We said, "Go down"} [Verse: 36] 1/474. (7) Tafsir al-Tabari 2/21.

१५२ सूरह अल-बक़रह: आयत ६१

निश्चित रूप से इस पहलू से निम्नतर। चौथा: चूँकि उन्हें जो दिया गया था उसमें कोई कष्ट या थकान नहीं थी, जबकि उन्होंने जो माँगा वह बिना हल चलाने, खेती करने और थकान के प्राप्त नहीं होता, इसलिए वह निम्नतर था। पाँचवाँ: चूँकि उन पर जो उतरता था उसकी हलाल होने और शुद्धता में कोई संदेह नहीं था; क्योंकि वह अल्लाह की ओर से उतरता था, जबकि अनाज और ज़मीन में खरीद-बिक्री और ज़बरदस्ती कब्ज़े की गुंजाइश होती है और उनमें संदेह पैदा हो सकते हैं, इसलिए यह इस पहलू से निम्नतर था (1)। मसाला: इस आयत में अच्छी चीज़ें और स्वादिष्ट भोजन खाने की अनुमति का प्रमाण है (2)। नबी ﷺ हलवा और शहद पसंद करते थे (3), और ठंडा मीठा पानी पीते थे (4)। यह अर्थ इंशाअल्लाह "अल-मइदाह" और "अन-नहल" में विस्तार से आएगा (5)। अल्लाह का फरमान: {मिस्र (किसी शहर) में उतरो} - उतरने (हुबूत) का अर्थ पहले बताया जा चुका है (6), और यह एक आदेश है जिसका अर्थ असमर्थ बनाना (ता'जीज़) है, जैसे अल्लाह का फरमान: {कह दो, "तुम पत्थर बन जाओ या लोहा"} [अल-इसरा: 50]; क्योंकि वे भटक रहे थे (तीह में), और यह उनके लिए एक सज़ा थी। और कहा गया है: उन्हें वह दिया गया जो उन्होंने माँगा था (7)।

फुटनोट्स: (1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/153 - 154। (2) (ज़) में: स्वादिष्ट चीज़ें यदि वे हलाल तरीके से हों। (3) इसे अहमद (24316), बुखारी (5431), और मुस्लिम (1474) ने आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस से निकाला है। (4) इसे अहमद (12438), बुखारी (1461), और मुस्लिम (998) (42) ने अनस बिन मालिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से निकाला है कि रसूलुल्लाह ﷺ बेरुहा - जो अबू तलहा का एक बगीचा था - में दाखिल होते थे और वहाँ के अच्छे पानी में से पीते थे। अहमद (24693), अबू दाऊद (3735), और हाकिम (4/138) ने इसे निकाला और इसे सही बताया: आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से कि रसूलुल्लाह ﷺ के लिए सुक्या के घरों से मीठा पानी मँगवाया जाता था। हाफिज़ इब्न हजर ने 'फतह अल-बारी' (10/74) में इसकी इसनाद की प्रशंसा की है। अहमद (24100), तिर्मिज़ी (2895), और हाकिम (137/4) ने ज़ुहरी के माध्यम से, उरवा से, आयशा से निकाला है: रसूलुल्लाह ﷺ को पेय पदार्थों में सबसे अधिक मीठा और ठंडा पसंद था। हाकिम ने इसे सही बताया, और तिर्मिज़ी (1896) ने इसे निकाला, और अब्द अल-रज़्ज़ाक ने अपने 'मुसन्नफ़' (19583) में ज़ुहरी से नबी ﷺ से मुर्सल तौर पर निकाला है। तिर्मिज़ी ने कहा: और यह अधिक सही है। दारकुतनी ने 'अल-इलाल' (खंड 5, पत्र 28) में कहा: मुर्सल सही होने के अधिक निकट है। (5) अल्लाह के इस फरमान की व्याख्या के समय: {और अल्लाह ने जो तुम्हें रिज़्क़ दिया है उसमें से

हलाल और पाक चीज़ें खाओ} [अल-मइदाह: 88], और अल्लाह का फरमान: {उसमें लोगों के लिए शिफा है} [अन-नहल: 69]। (6) अल्लाह के इस फरमान के पास: {और हमने कहा, "उतर जाओ"} [आयत: 36] 1/474। (7) तफ़सीर अल-तबरी 2/21।

۱۵۲ سورہ البقرہ: آیت ۶۱

اس پہلو سے کم تر، لامحالہ۔ چوتھا: چونکہ جو انہیں دیا گیا تھا اس میں کوئی مشقت اور تھکن نہیں تھی، اور جو انہوں نے طلب کیا وہ بغیر ہل چلانے، کھیتی باڑی اور تھکن کے حاصل نہیں ہوتا، اس لیے وہ کم تر تھا۔ پانچواں: چونکہ جو ان پر نازل ہوتا تھا اس کے حلال اور خالص ہونے میں کوئی شک نہیں تھا؛ کیونکہ وہ اللہ کی طرف سے نازل ہوتا تھا، جبکہ اناج اور زمین میں خرید و فروخت اور غصب (ناجائز قبضے) شامل ہو جاتے ہیں اور ان میں شبہات داخل ہو جاتے ہیں، اس لیے وہ اس پہلو سے کم تر تھا (۱)۔ مسئلہ: اس آیت میں پاکیزہ چیزیں اور لذیذ کھانے پینے کی اجازت پر دلیل ہے (۲)، اور نبی ﷺ حلوہ اور شہد پسند فرماتے تھے (۳)، اور ٹھنڈا میٹھا پانی پیتے تھے (۴)، اور یہ مفہوم انشاء اللہ "المائدہ" اور "النحل" میں مکمل تفصیل سے آئے گا (۵)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کسی شہر میں اتر جاؤ} - ہبوط (اترنے) کے معنی پہلے گزر چکے ہیں (۶)، اور یہ ایک ایسا حکم ہے جس کا مقصد عاجز کرنا (تعجیز) ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {کہہ دیجیے کہ تم پتھر بن جاؤ یا لوہا} [الاسراء: ۵۰]؛ اس لیے کہ وہ میدان تیہ میں تھے، اور یہ ان کے لیے سزا تھی۔ اور کہا گیا ہے: انہیں وہ دیا گیا جو انہوں نے مانگا تھا (۷)۔

حواشی: (۱) المحرر الوجیز ۱۵۳/۱ - ۱۵۴۔ (۲) (ز) میں ہے: لذیذ چیزیں اگر حلال طریقے سے ہوں۔ (۳) اسے احمد (۲۴۳۱۶)، بخاری (۵۴۳۱) اور مسلم (۱۴۷۴) نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۴) اسے احمد (۱۲۴۳۸)، بخاری (۱۴۶۱) اور مسلم (۹۹۸) (۴۲) نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے کہ رسول اللہ ﷺ بیرحاء میں داخل ہوتے تھے - جو حضرت ابو طلحہ کا باغ تھا - اور وہاں کے خوشگوار پانی میں سے پیتے تھے۔ اور احمد (۲۴۶۹۳)، ابوداؤد (۳۷۳۵) اور حاکم ۱۳۸/۴ نے روایت کیا اور اسے صحیح قرار

دیا: حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے کہ رسول اللہ ﷺ کے لیے بیوت السقیا سے میٹھا پانی منگوایا جاتا تھا۔ حافظ ابن حجر نے فتح الباری ۷۴/۱۰ میں اس کی سند کو عمدہ قرار دیا ہے۔ اور احمد (۲۴۱۰۰)، ترمذی (۲۸۹۵) اور حاکم ۱۳۷/۴ نے زہری کے واسطے سے، عروہ سے، حضرت عائشہ سے روایت کیا ہے: رسول اللہ ﷺ کو مشروبات میں سب سے زیادہ میٹھا اور ٹھنڈا پسند تھا۔ حاکم نے اسے صحیح کہا ہے، اور ترمذی (۱۸۹۶) نے اسے روایت کیا ہے، اور عبد الرزاق نے اپنی مصنف (۱۹۵۸۳) میں زہری سے، نبی ﷺ سے مرسلاً روایت کیا ہے، ترمذی نے کہا: اور یہ زیادہ صحیح ہے، اور دارقطنی نے العلل (جلد ۵، ورق ۲۸) میں کہا: مرسل صواب کے زیادہ قریب ہے۔ (۵) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی تفسیر کے موقع پر: {اور اللہ نے جو رزق تمہیں دیا ہے اس میں سے حلال و طیب کھاؤ} [المائدہ: ۸۸]، اور اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اس میں لوگوں کے لیے شفا ہے} [النحل: ۶۹]۔ (۶) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس: {اور ہم نے کہا، "اتر جاؤ"} [آیت: ۳۶] ۴۷۴/۱۔ (۷) تفسیر الطبری ۲۱/۲۔

153 Surah Al-Baqarah: Verse 61

And "misran" (a city) with nunation (tanween) as an indefinite noun is the reading of the majority, and it is the script of the Mushaf (1). Mujahid and others who inflected it (treated it as fully declinable) said: He meant any city among the cities, not a specific one (3). Ikrimah narrated from Ibn Abbas regarding His saying: "Go down to a city": He said: A city among these cities (4). A group of those who inflected it also said: He meant the Egypt of Pharaoh specifically (5).

The former group argued based on what is implied by the apparent meaning of the Qur'an regarding their command to enter the village, and by the consensus of reports that they inhabited Sham (the Levant) after the wandering (at-Tih). The latter group argued based on what is in the Qur'an that God made the Children of Israel inherit the dwellings of Pharaoh's people and their remains, and they allowed its inflection. Al-Akhfash and Al-Kisa'i said: Because of its lightness and its resemblance to "Hind" and "Da'd" (6), and Sibawayh recited (7): Da'd did not wrap herself in the excess of her waist-wrap, Nor was Da'd given milk to drink in wooden vessels (8). So he combined the two linguistic forms, but Sibawayh, Al-Khalil, and Al-Farra' do not permit this (9); because if you named a woman "Zaid", it would not be inflected. Someone other than Al-Akhfash said: He meant the place, so he inflected it. Al-Hasan, Aban bin Taghlib, and Talhah read: "Misra" without inflection (diptote) (10). It is also thus in the Mushaf of Ubayy bin Ka'b and the reading of Ibn Mas'ud (11). They said: It is Pharaoh's Egypt. Ashhab said...

(1) Tafsir al-Tabari 2/25, and al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (2) In (d) and (m): "faman" (then who). (3) Narrated by al-Tabari 2/22, and it is in al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (4) Narrated by Ibn Abi Hatim in his Tafsir (622). (5) Tafsir al-Tabari 2/23, and al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (6) Ma'ani al-Qur'an by Al-Akhfash 1/273, and Al-Kisa'i's saying was mentioned by Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/232, and Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (7) His saying: Sibawayh is from (z), and it is in Al-Kitab 3/247. (8) The verse is by Jarir, and it is in his Diwan 2/1021, and in both of them: "taghudhdhu" instead of "tusqa". Al-'ulbah: plural is 'ulab, which is like a bowl made of leather. See Matn al-Lughah (al-b). (9) Al-Kitab 3/242, Al-Ayn by Al-Khalil 7/123, and Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/42. (10) In (z): Al-Hasan, Aban bin Taghlib, and Talhah bin Musarrif read without inflection, and Ibn Khalawayh mentioned this reading in "Al-Qira'at al-Shadhdhah" p. 6 and attributed it to Al-A'mash, and Ibn Atiyyah included it in al-Muharrar al-Wajiz 1/154 from Al-Hasan and Aban bin Taghlib. (11) Tafsir al-Tabari 2/25, and al-Muharrar al-Wajiz 1/154, and Tafsir al-Razi 1/100.

१५३ सूरह अल-बक़रह: आयत ६१

और "मिस्रन" (एक शहर) तनवीन (नुनन) के साथ एक अनिश्चित संज्ञा के रूप में बहुमत का पाठ है, और यह मुसहफ़ की लिखावट है (१)। मुजाहिद और अन्य जिन्होंने इसे मूनसरिफ (विभक्ति योग्य) माना है, उन्होंने कहा: उनका अर्थ शहरों में से कोई भी शहर था, कोई विशिष्ट नहीं (३)। इकरीमा ने इब्न अब्बास से उनके इस कथन के बारे में उल्लेख किया है: "एक शहर में उतर जाओ": उन्होंने कहा: इन शहरों में से एक शहर (४)। उन लोगों के एक समूह ने भी जिन्होंने इसे मूनसरिफ माना है, कहा: उनका अर्थ विशेष रूप से फिरौन का मिस्र था (५)।

पहले समूह ने कुरान के स्पष्ट अर्थ से जो निहित है, उसके आधार पर तर्क दिया कि उन्हें गाँव में प्रवेश करने का आदेश दिया गया था, और उन वृत्तांतों की बहुलता के आधार पर कि वे भटकने (अत-तीह) के बाद शाम (लेवेंट) में बस गए थे। दूसरे समूह ने कुरान में जो है उसके आधार पर तर्क दिया कि ईश्वर ने इस्राएल की संतान को फिरौन के लोगों के घरों और उनके अवशेषों का उत्तराधिकारी बनाया, और उन्होंने इसके विभक्ति (सरफ) की अनुमति दी। अल-अख़्फ़श और अल-किसाई ने कहा: इसके हल्केपन और "हिंद" और "दअद" के साथ इसकी समानता के कारण (६), और सिबावैह ने सुनाया (७): दअद ने अपनी कमर के कपड़े के अतिरिक्त हिस्से में खुद को नहीं लपेटा, और न ही दअद को लकड़ी के बर्तनों में दूध पिलाया गया (८)। तो उसने दो भाषाई रूपों को मिला दिया, और सिबावैह, अल-खलील और अल-फर्रा इसकी अनुमति नहीं देते हैं (९); क्योंकि यदि आप किसी महिला का नाम "जैद" रखते हैं, तो उसका सरफ (विभक्ति) नहीं होगा। अल-अख़्फ़श के अलावा किसी और ने कहा: उसका अर्थ स्थान था, इसलिए उसने इसका सरफ किया। अल-हसन, अबान बिन तग़लिब और तलहा ने पढ़ा: "मिस्र" बिना सरफ (गैर-मूनसरिफ) के(१०)। उबैय बिन काब के मुसहफ़ और इब्न मसूद के पाठ में भी ऐसा ही है (११)। उन्होंने कहा: यह फिरौन का मिस्र है। अशहब ने कहा...

(१) तफ़सीर अल-तबरी २/२५, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४। (२) (द) और (म) में: "फमन" (फिर कौन)। (३) अल-तबरी २/२२ द्वारा उद्धृत, और यह अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४ में है। (४) इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर (६२२) में उद्धृत किया है। (५) तफ़सीर अल-तबरी २/२३, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४। (६) अल-अख़्फ़श द्वारा मआनी अल-कुरान १/२७३, और अल-किसाई की बात अल-नहहास ने इराब अल-कुरान १/२३२ में और इब्न अतिय्याह ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४ में उल्लेख की है। (७) उनका कथन: सिबावैह (ज़) से है, और यह अल-किताब ३/२४७ में है। (८) यह शेर जरीर का है, और यह उनके दीवान २/१०२१ में है, और उनमें से दोनों में: "तगुद्द"

के बजाय "तुसका" है। अल-उल्बाह: बहुवचन उलब है, जो चमड़े से बने कटोरे की तरह होता है। देखें मतन अल-लुग़ह (अल-ब)। (९) अल-किताब ३/२४२, अल-खलील द्वारा अल-ऐन ७/१२३, और अल-फर्रा द्वारा मआनी अल-कुरान १/४२। (१०) (ज़) में: अल-हसन, अबान बिन तग़लिब और तलहा बिन मुसर्रिफ ने बिना सरफ के पढ़ा, और इब्न खालवैह ने इस पाठ का उल्लेख "अल-क़िरात अल-शाज़ह" पृष्ठ ६ में किया है और इसे अल-अमश को जिम्मेदार ठहराया है, और इब्न अतिय्याह ने इसे अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४ में अल-हसन और अबान बिन तग़लिब से शामिल किया है। (११) तफ़सीर अल-तबरी २/२५, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४, और तफ़सीर अल-राज़ी १/१००।

۱۵۳ سورہ البقرہ: آیت ۶۱

اور "مِصْراً" تنوین کے ساتھ نکرہ کے طور پر جمہور کی قرأت ہے، اور یہی مصحف کا خط ہے(۱)۔ مجاہد اور دیگر جنہوں نے اسے منصرف پڑھا ہے، انہوں نے کہا: اس سے مراد شہروں میں سے کوئی غیر متعین شہر ہے(۳)۔ عکرمہ نے ابن عباس سے اللہ کے اس قول کے بارے میں روایت کیا: "کسی شہر میں اتر جاؤ": انہوں نے کہا: ان شہروں میں سے ایک شہر(۴)۔ ان لوگوں کی ایک جماعت نے جنہوں نے اسے منصرف پڑھا ہے، یہ بھی کہا کہ: اس سے مراد بعینہ فرعون کا مصر ہے(۵)۔

پہلے گروہ نے اس سے استدلال کیا جو قرآن کے ظاہر سے مقتضی ہے کہ انہیں بستی میں داخل ہونے کا حکم دیا گیا تھا، اور ان روایات کی کثرت سے کہ وہ تیہ (بھٹکنے) کے بعد شام میں آباد ہوئے تھے۔ دوسرے گروہ نے قرآن کی اس بات سے استدلال کیا کہ اللہ نے بنی اسرائیل کو آل فرعون کے گھروں اور ان کے آثار کا وارث بنایا، اور انہوں نے اس کے منصرف ہونے کو جائز قرار دیا۔ اخفش اور کسائی نے کہا: اس کے ہلکے پن اور "ہند" اور "دعد" کے ساتھ مشابہت کی وجہ سے(۶)، اور سیبویہ نے یہ شعر پڑھا(۷): دعد نے اپنی تہبند کے زائد حصے کو اپنے اوپر نہیں لپیٹا، اور نہ ہی دعد کو چمڑے کے برتنوں میں پلایا گیا(۸)۔ پس اس نے دو لغوی زبانوں کو جمع کیا، لیکن سیبویہ، خلیل اور فراء اسے جائز نہیں سمجھتے(۹)؛ کیونکہ اگر آپ کسی عورت کا نام "زید" رکھیں تو وہ منصرف نہیں ہوگا۔ اخفش کے علاوہ کسی اور نے کہا: اس سے مراد جگہ تھی، اس لیے اسے منصرف پڑھا۔ حسن، ابان بن تغلب اور طلحہ نے اسے بغیر تنوین کے "مصر" پڑھا ہے(۱۰)۔ اسی طرح ابی بن کعب کے مصحف اور ابن مسعود کی قرأت میں بھی ہے(۱۱)۔ انہوں نے کہا: یہ فرعون کا مصر ہے۔ اشہب نے کہا...

(١) تفسير الطبرى ٢/٢٥، اور المحرر الوجيز ١/١٥٤۔ (٢) (د) اور (م) میں: "فمن"۔ (٣) اسے طبری نے ٢/٢٢ میں روایت کیا ہے، اور یہ المحرر الوجیز ١/١٥٤ میں ہے۔ (٤) اسے ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر (٦٢٢) میں روایت کیا ہے۔ (٥) تفسير الطبرى ٢/٢٣، اور المحرر الوجيز ١/١٥٤۔ (٦) معانی القرآن للاحفش ١/٢٧٣، اور کسائی کا قول نحاس نے اعراب القرآن ١/٢٣٢ میں اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ١/١٥٤ میں ذکر کیا ہے۔ (٧) اس کا قول: سیبویہ (ز) سے ہے، اور یہ الکتاب ٣/٢٤٧ میں ہے۔ (٨) یہ شعر جریر کا ہے، اور یہ اس کے دیوان ٢/١٠٢١ میں ہے، اور ان دونوں میں: "تُسق" کے بجائے "تَغُذُّ" ہے۔ العلبہ: اس کی جمع علب ہے، اور یہ چمڑے کے پیالے کی طرح ہوتی ہے۔ دیکھئے متن اللغہ (علب)۔ (٩) الكتاب ٣/٢٤٢، العين للخليل ٧/١٢٣، اور معانی القرآن للفراء ١/٤٢۔ (١٠) (ز) میں: حسن، ابان بن تغلب اور طلحہ بن مصرف نے اسے غیر منصرف پڑھا، اور ابن خالویہ نے اس قرأت کا ذکر القراءات الشاذہ ص ٦ میں کیا ہے اور اسے اعمش کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے اسے المحرر الوجیز ١/١٥٤ میں حسن اور ابان بن تغلب سے نقل کیا ہے۔ (١١) تفسير الطبرى ٢/٢٥، والمحرر الوجيز ١/١٥٤، وتفسير الرازى ١/١٠٠۔

١٥٤ Surah Al-Baqarah: Verse 61

To me, Malik: It means to me 'Misr' (Egypt/settlement) is your village, the dwelling place of Pharaoh; mentioned by Ibn Atiyyah(1). And 'Al-Misr' in its linguistic origin means: the boundary, and 'Misr al-Dar' means: its boundaries. Ibn Faris(2) said: It is said that the people of Hajar write in their contracts: So-and-so bought the house with its 'musoor', meaning: its boundaries; 'Adi(3) said: And the Maker of the sun as a boundary with no hiddenness ... between the day and between the night He has separated.

His (the Almighty's) saying: ﴿فَإِنَّ لَكُمْ مَا سَأَلْتُمْ﴾ (Indeed, for you is what you have asked). 'Ma' (what) is in the accusative case due to 'inna'. Ibn Wathab and Al-Nakha'i recited it as: 'Si'altum' with a kasrah on the letter Seen; it is said: 'Sa'alta' and 'Silta', without a hamza. It is of the root with a Waw, evidenced by their saying: 'yatasaawalaan'(4). And the meaning of ﴿وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ﴾ (and humiliation and misery were struck upon them) means: they were made bound to them, and decreed for them; taken from the striking of domes (tents)(5). Al-Farazdaq said concerning Jarir: The spider struck its web upon you ... and the revealed Book decreed it upon you(6) And the judge's striking on the hand means: imposed and obligated.

And 'Al-Dhillah' (humiliation): is abasement and smallness. And 'Al-Maskanah' (misery/poverty): is poverty, for no Jew is found, even if he were wealthy, free from the guise of poverty, its submissiveness, and its humiliation(7). And it was said: 'Al-Dhillah' is the imposition of the jizya (tribute), as narrated by Al-Hasan and Qatadah(8). And 'Al-Maskanah' is submissiveness, and it is derived from 'Al-Sukoon' (stillness), meaning: poverty reduced his movement, said by Al-Zajjaj(9). Abu Ubayda said: 'Al-Dhillah' is smallness, and 'Al-Maskanah' is the verbal noun of 'Al-Miskeen' (the poor person)(10).

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (2) Mujmal al-Lughah 3/833. (3) In his Diwan p. 159, and Al-Sihah: (Misr), and Al-Mujmal 3/833. (4) Mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhah p. 7. Ibn Jinni said in Al-Muhtasib 1/89: There is scrutiny in it... their recitation (Si'altum) with a kasrah and hamza is strange. The linguistic construction for that is: there are two dialects in 'sa'ala': 'silta tasal' like 'khafta takhaf', and 'sa'alta tas'al' like 'sabbahta tusabbih'. So when you attribute the verb to yourself, you say in the Waw dialect: 'siltu', like 'khiftu', and it is from the Waw root. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/154, and Majma' al-Bayan 1/272. (6) His Diwan p. 715, and mentioned by Al-

Tabarsi in Majma' al-Bayan 1/272. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (8) Narrated by Abd al-Razzaq 1/47, and Al-Tabari 2/26, and cited by Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/155. (9) Ma'ani al-Qur'an 1/144. (10) Majaz al-Qur'an 1/42.

१५४ सूरह अल-बक़रह: आयत ६१

ली मलिक: यह मेरे पास मिस्र है, तुम्हारा गाँव फिरौन का निवास स्थान है; इब्न अतिय्या (१) ने इसका उल्लेख किया है। और 'मिस्र' का भाषाई मूल है: सीमा, और घर का 'मिस्र': उसकी सीमाएं। इब्न फ़ारिस (२) ने कहा: यह कहा जाता है कि हजर के लोग अपनी शर्तों में लिखते हैं: फलां ने घर को उसके'मुसूर' (सीमाओं) के साथ खरीदा, यानी: उसकी सीमाओं के साथ; अदी (३) ने कहा: और सूरज का बनाने वाला एक ऐसी सीमा है जिसमें कोई रहस्य नहीं... दिन और रात के बीच उसने अलग कर दिया है।

अल्लाह का कथन: ﴿فَإِنَّ لَكُمْ مَا سَأَلْتُمْ﴾ (बेशक तुम्हारे लिए वह है जो तुमने माँगा)। 'मा' (जो) 'इन्ना' के कारण कर्मकारक (नस्ब) में है। इब्न वथाब और अल-नखई ने इसे 'सिअल्तुम' (सीन के नीचे जेर के साथ) पढ़ा है; कहा जाता है: 'सअल्त' और 'सिल्त', बिना हमज़ा के। यह 'वाव' वाली धातु से है, जिसका प्रमाण उनका कथन है: 'यतसावलान' (४)। और ﴿وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ﴾ (और उन पर अपमान और दरिद्रता थोप दी गई) का अर्थ है: उन्हें उनके साथ जोड़ दिया गया, और उनके लिए निर्धारित कर दिया गया; यह गुंबद लगाने (तंबू गाड़ने) की क्रिया से लिया गया है (५)। अल-फ़रज़दक़ ने जरीर के बारे में कहा: मकड़ी ने अपना जाला तुम पर थोप दिया... और अवतरित पुस्तक ने इसे तुम्हारे लिए निर्धारित कर दिया (६) और न्यायाधीश का हाथ पर प्रहार करना, यानी: थोपना और अनिवार्य करना।

और 'अद-दिल्लह' (अपमान): नीचता और छोटापन है। और 'अल-मसकना' (दरिद्रता): गरीबी है, इसलिए कोई भी यहूदी नहीं पाया जाता, भले ही वह अमीर हो, जो गरीबी के वेश, उसकी अधीनता और उसके अपमान से मुक्त हो (७)। और यह कहा गया है: 'अद-दिल्लह' जज़िया (कर) लगाना है, जैसा कि अल-हसन और कतादह (८) से वर्णित है। और 'अल-मसकना' अधीनता है, और यह 'अल-सुकून' (ठहराव) से लिया गया है, यानी: गरीबी ने उसकी गति को कम कर दिया, अल-ज़ज्जाज (९) ने यह कहा। अबू उबैदा ने कहा: 'अद-दिल्लह' छोटापन है, और 'अल-मसकना' 'अल-मिस्कीन' (गरीब व्यक्ति) का भाववाचक संज्ञा है (१०)।

---

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४। (२) मुजमल अल-लुग़ह ३/८३३। (३) उनके दीवान पृ. १५९ में, और अल-सिहाह: (मिस्र), और अल-मुजमल ३/८३३। (४) इब्न खालवाय ने अल-क़िराआत अल-शादह पृ. ७ में इसका उल्लेख किया है। इब्न जिन्नी ने अल-मुहतासिब १/८९ में कहा: इसमें विचार की

आवश्यकता है... उनकी किरात (सिअल्तुम) जेर और हमज़ा के साथ है, जो विचित्र है। इसके लिए भाषाई नियम यह है कि 'सअला' में दो बोलियाँ हैं: 'सिल्त तसाल' जैसे 'ख़फ़्त तखाफ़', और 'सअल्त तसअल' जैसे 'सब्बहत तुसब्बिह'। तो जब आप क्रिया को अपनी ओर जोड़ते हैं, तो आप 'वाव' वाली बोली में कहेंगे: 'सिल्तु', जैसे 'ख़फ़्तु', और यह 'वाव' मूल से है। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४, और मजम' अल-बयान १/२७२। (६) उनका दीवान पृ. ७१५, और अल-तबरसी ने मजम' अल-बयान १/२७२ में इसका उल्लेख किया है। (७) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५४। (८) अब्द अल-रज्जाक १/४७, और अल-तबरी २/२६ द्वारा संकलित, और इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५५ में इसे उद्धृत किया। (९) मआनी अल-कुरान १/१४४। (१०) मजाज़ अल-कुरान १/४२।

١٥٤ سورة البقرہ: آیت ٦١

لی مالک: یعنی میرے نزدیک مصر تمہاری بستی فرعون کا مسکن ہے؛ اسے ابن عطیہ(١) نے ذکر کیا ہے۔ اور لغت میں 'المصر' کی اصل ہے: حد، اور گھر کا 'مصر': اس کی حدود۔ ابن فارس(٢) نے کہا: کہا جاتا ہے کہ ہجر کے لوگ اپنی شرائط میں لکھتے ہیں: فلاں نے گھر کو اس کے 'مصور' (حدود) کے ساتھ خریدا، یعنی: اس کی حدود؛ عدی(٣) نے کہا: اور سورج کو بنانے والا ایک ایسی حد ہے جس میں کوئی پوشیدگی نہیں... دن اور رات کے درمیان اس نے جدائی کر دی ہے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَإِنَّ لَكُمْ مَا سَأَلْتُمْ﴾ (بیشک تمہارے لیے وہ ہے جو تم نے مانگا)۔ 'ما' (جو) حرف 'إنَّ' کی وجہ سے حالت نصب میں ہے۔ ابن وثاب اور النخعی نے اسے 'سِألتم' (سین کے نیچے زیر کے ساتھ) پڑھا ہے؛ کہا جاتا ہے: 'سألتَ' اور 'سِلتَ'، بغیر ہمزہ کے۔ یہ 'واؤ' والے حروف سے ہے، جس کی دلیل ان کا قول ہے: 'یتساولان'(٤)۔ اور ﴿وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ﴾ (اور ان پر ذلت اور مسکینی مار دی گئی) کا مطلب ہے: ان پر لازم کر دی گئی، اور ان کے لیے فیصلہ کر دیا گیا؛ یہ خیمے گاڑنے (ضرب القباب) سے ماخوذ ہے(٥)۔ فرزدق نے جریر کے بارے میں کہا: مکڑی نے اپنا جالا تم پر مار دیا... اور نازل شدہ کتاب نے تم پر اس کا فیصلہ کر دیا(٦) اور حاکم کا ہاتھ پر ضرب لگانا، یعنی: لادنا اور لازم کرنا۔

اور 'الذلة' (ذلت): رسوائی اور چھوٹا پن ہے۔ اور 'المسكنة' (مسکینی): فقر ہے، چنانچہ کوئی یہودی ایسا نہیں پایا جاتا خواہ وہ امیر ہی کیوں نہ ہو جو فقر کے حلیے، اس کے عجز اور اس کی اہانت سے خالی ہو(٧)۔ اور کہا گیا: 'الذلة' جزیہ کا فرض کرنا ہے، جیسا کہ حسن اور قتادہ(٨) سے منقول ہے۔ اور 'المسكنة' عاجزی ہے، اور یہ 'سکون' سے ماخوذ ہے، یعنی: فقر نے اس کی حرکت

کم کر دی، یہ زجاج(۹) نے کہا۔ ابو عبیدہ نے کہا: 'الذلة' چھوٹا پن ہے، اور 'المسكنة' مسکین کا مصدر ہے(۱۰)۔

---

(۱) المحرر الوجیز ۱/ ۱۵۴۔ (۲) مجمل اللغة ۳/ ۸۳۳۔ (۳) ان کے دیوان ص ۱۵۹ میں، اور الصحاح: (مصر)، اور المجمل ۳/ ۸۳۳۔ (۴) اسے ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۷ میں ذکر کیا ہے۔ ابن جنی نے المحتسب ۱/ ۸۹ میں کہا: اس میں غور کی حاجت ہے، .. ان دونوں کی قرات (سِألتم) زیر اور ہمزہ کے ساتھ ہے، جو غریب (عجیب) ہے۔ اس میں لغوی قاعدہ یہ ہے کہ 'سأل' میں دو زبانیں (لہجے) ہیں: 'سِلتَ تَسال' جیسے 'خفتَ تخاف'، اور 'سألتَ تسأل' جیسے 'سبحتَ تسبح'۔ چنانچہ جب آپ فعل کی نسبت اپنی طرف کریں گے تو واؤ والی زبان کے مطابق کہیں گے: 'سِلتُ'، جیسے 'خفتُ'، اور یہ واؤ سے ہے۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۱۵۴، اور مجمع البیان ۱/ ۲۷۲۔ (۶) ان کا دیوان ص ۷۱۵، اور اسے طبرسی نے مجمع البیان ۱/ ۲۷۲ میں ذکر کیا ہے۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/ ۱۵۴۔ (۸) اسے عبدالرزاق ۱/ ۴۷، اور طبری ۲/ ۲۶ نے روایت کیا، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/ ۱۵۵ میں اسے نقل کیا۔ (۹) معانی القرآن ۱/ ۱۴۴۔ (۱۰) مجاز القرآن ۱/ ۴۲۔

Surah Al-Baqarah: Verse 61 / 155

Ad-Dahhak ibn Muzahim narrated from Ibn Abbas: "And humiliation and misery were struck upon them" (Quran 2:61). He said: They are the people of the land tax (al-qabalat)(1).

Regarding Allah's words: {And they returned (ba'u)} meaning: they turned back and returned, i.e., that was imposed upon them. From this is the saying of the Prophet (peace be upon him) in his supplication and intimate discourse: "I acknowledge (abu'u) Your favor upon me"(2), meaning: I admit it and bind myself to it. Its linguistic origin is return; it is said: "ba'a bi-kadha" (he returned with such), meaning: he came back with it. And "ba'a ila al-maba'ah" — which is the dwelling — means: he returned. "Al-buwa'" means returning with retaliation (al-qawad)(3). They are in this matter "buwa'", meaning: equal, returning(4) to one meaning in it. The poet said: "Will not kings desist from us and fear our sanctities? Blood is not returned (yabu'u)(5) for blood (6)." Meaning: Blood is not returned for blood in retaliation. And he said: "They returned (abu) with spoils and captives, and we returned (ubna) with kings in fetters (7)." Meaning: they returned and we returned. The meaning of 'wrath' was mentioned previously in Al-Fatihah(8).

Allah's words {That} is a justification {because they used to disbelieve} meaning: they used to deny {in the signs of Allah} meaning: in His book and the miracles of His prophets, like Jesus, John, Zechariah, and Muhammad, peace be upon them.

(1) Reported by Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/195, and he said after it: meaning the people of al-qabalat are the people of jizya (tribute). (2) Part of a Hadith from Shaddad ibn Aws, may Allah be pleased with him, reported by Ahmad (17111) and Al-Bukhari (6306). (3) In (z) and (za): with 'al-'awd' (repetition). (4) In the manuscripts: they do not return. (5) In (m): 'la yuyu'u', and the word was not good in (d) and (z). What is established is from (za), which is consistent with the sources. (6) Attributed by Sibawayh in 'Al-Kitab' 3/95 and Al-Akhfash Al-Asghar in 'Al-Ikhtiyarayn' p. 333 to Jabir ibn Hunayy Al-Taghlibi. Al-Shantamari named him in 'Tahsil 'Ayn al-Dhahab' p. 421 as Jabir ibn Jubayr. It appeared in 'Tahdhib al-Lugha' 15/598 and 'Lisan al-Arab' (b-w-'): 'la yuba'u'. The editor of the book mentioned a narration: 'la yabu'u', without elision. The editor of 'Al-Kamil' 2/776 mentioned that one of its manuscripts has 'la yabu'u', with a mark of correctness. (7) The verse is by Amr ibn Kulthum, in his Mu'allaqa with the commentary of Ibn Kaysan p. 100, and the commentary of the 'Seven Long Ones' p. 412. Al-Samin al-Halabi mentioned in 'Al-Durr al-Masun' 1/397 that citing this verse is

an error. He said: Because this verse is from the root a-w-b (to return), its root is hamza, waw, and ba', whereas 'ba'a' is from b-w-' (ba', waw, hamza). Claiming metathesis (qalb) in it is far-fetched, because the preceding of the 'ayn and lam together before the fa' in a metathesized word is unknown, and this is of that kind. (8) 1/230-231.

सूरह अल-बक़रह: आयत 61 / 155

अद-दहाक इब्न मुज़ाहिम ने इब्न अब्बास से रिवायत की: "और उन पर जिल्लत (अपमान) और मिस्किनी (लाचारी) थोप दी गई" (कुरान 2:61)। उन्होंने कहा: वे अल-कबालात (ठेके/ज़मीन कर देने वाले) लोग हैं (1)।

अल्लाह का फरमान: {व बाऊ} यानी: वे पलट आए और लौट आए, अर्थात: यह उन पर लाज़िम कर दिया गया। इसी से पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की अपनी दुआ और प्रार्थना में यह कथन है: "मैं आप पर अपनी नेमत का इकरार करता हूँ (अबू'ऊ)" (2) यानी: मैं इसे स्वीकार करता हूँ और अपने ऊपर लाज़िम करता हूँ। अरबी भाषा में इसका मूल अर्थ 'लौटना' है; कहा जाता है: "बा-अ बि-कज़ा", यानी: वह उसके साथ लौटा। और "बा-अ इला अल-मबा'अह" — जो कि निवास स्थान है — का अर्थ है: वह लौटा। 'अल-बुवा' का अर्थ बदले (किसास/कवद) के साथ लौटना है (3), और वे इस मामले में 'बुवा' हैं, यानी: बराबर हैं, जो इसमें एक ही अर्थ की ओर लौटते हैं (4)। कवि ने कहा: "क्या राजा हमसे बाज़ नहीं आएंगे और हमारी पवित्रताओं का सम्मान नहीं करेंगे? खून के बदले (यबू'ऊ) (5) खून नहीं लौटाया जाता (6)।" यानी: बदले (किसास) में खून के बदले खून नहीं लौटाया जाता। और उसने कहा: "वे लूट के माल और बंदियों के साथ लौटे (आबू), और हम राजाओं को बेड़ियों में जकड़कर लौटे (उब्रा) (7)।" यानी: वे लौटे और हम लौटे। 'क्रोध' (ग़ज़ब) का अर्थ पहले अल-फ़ातिहा (8) में वर्णित किया जा चुका है।

अल्लाह का फरमान {ज़ालिका} "वह" कारण बताने के लिए है {बि अन्नहुम कानू यक्फुरुन} यानी: क्योंकि वे झुठलाते थे {बि आयातिल्लाह} यानी: अल्लाह की किताब और उसके नबियों के मोजिजों (चमत्कारों) को, जैसे ईसा, याह्या, ज़कारिया और मुहम्मद, उन पर शांति हो।

(1) इसे इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/195 में उद्धृत किया है, और इसके बाद कहा: यानी अल-कबालात वाले लोग जज़िया देने वाले लोग हैं। (2) शद्दाद इब्न औस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस का एक हिस्सा, जिसे अहमद (17111) और बुखारी (6306) ने उद्धृत किया है। (3) (ज़) और (ज़ा) में: 'अल-औद' (दोहराने) के साथ। (4) पांडुलिपियों में: वे नहीं लौटते। (5) (म) में: 'ला ययु'ऊ', और (द) और (ज़) में शब्द सही नहीं था। जो स्थापित है वह (ज़ा) से है, जो स्रोतों के अनुरूप है। (6) सिबवैह ने 'अल-किताब' 3/95 में और अल-अख्फश अल-असगर ने 'अल-इख्तियारैन' पृष्ठ 333 में इसे जाबिर इब्न हुनय अल-तग़लिबी से जोड़ा है। अल-शंतमरी ने 'तहसील ऐन अल-ज़हाब' पृष्ठ 421 में

उसका नाम जाबिर इब्न जुबैर बताया है। यह 'तहरीर अल-लुग़ा' 15/598 और 'लिसान अल-अरब' (ब-व-') में आया है: 'ला युबा'ऊ'। पुस्तक के संपादक ने एक रिवायत का उल्लेख किया: 'ला यबू'ऊ', बिना इलाल (स्वर परिवर्तन) के। 'अल-कामिल' 2/776 के संपादक ने उल्लेख किया कि इसकी एक पांडुलिपि में 'ला यबू'ऊ' है, जिस पर शुद्धता का चिन्ह है। (7) यह छंद अम्र इब्न कुलसूम का है, और यह इब्न कैसान की व्याख्या (पृष्ठ 100) और 'सब'अतुल तुवल' की व्याख्या (पृष्ठ 412) के साथ उनकी मुअल्लाका में है। अल-समीन अल-हलबी ने 'अल-दुर्र अल-मसून' 1/397 में उल्लेख किया है कि इस छंद को उद्धृत करना एक भ्रम है। उन्होंने कहा: क्योंकि यह छंद 'आ-व-ब' (लौटना) धातु से है, इसका मूल हमजा, वाव और बा है, जबकि 'बा'अ' 'ब-व-अ' (बा, वाव, हमजा) से है। इसमें कलब (वर्ण विपर्यय) का दावा करना दूर की बात है; क्योंकि किसी विपर्यय शब्द में फा' से पहले ऐन और लाम का एक साथ आना नहीं देखा गया है, और यह भी वैसा ही है। (8) 1/230-231।

سورة البقرہ: آیت 61 / 155

ضحاک بن مزاحم نے ابن عباس سے روایت کیا: "اور ان پر ذلت اور مسکینی ماری گئی" (قرآن 2:61)۔ انہوں نے کہا: وہ القبالات (ٹھیکے/زمین کا ٹیکس دینے والے) والے لوگ ہیں (1)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَبَاءُو} یعنی: وہ پلٹ آئے اور لوٹ آئے، یعنی: یہ ان پر لازم ہو گیا۔ اسی سے نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم کا اپنی دعا اور مناجات میں یہ قول ہے: "میں آپ کی نعمت کا آپ کے حضور اقرار کرتا ہوں (أبوء)" (2) یعنی: میں اس کا اعتراف کرتا ہوں اور اسے اپنے نفس پر لازم کرتا ہوں۔ لغت میں اس کی اصل لوٹنا ہے؛ کہا جاتا ہے: "باء بكذا"، یعنی: وہ اس کے ساتھ لوٹا۔ اور "باء إلى المَباءة" — جو کہ ٹھکانہ ہے — کا مطلب ہے: وہ لوٹ آیا۔ "البواء" کا مطلب بدلے (قصاص/قود) کے ساتھ لوٹنا ہے (3)، اور وہ اس معاملے میں 'بواء' ہیں، یعنی: برابر ہیں، اس میں ایک ہی معنی کی طرف لوٹتے ہیں (4)۔ شاعر نے کہا: "کیا بادشاہ ہم سے باز نہیں آئیں گے اور ہماری حرمتوں سے نہیں ڈریں گے؟ خون کے بدلے (بيؤ)(5) خون نہیں لوٹایا جاتا (6)۔" یعنی: قصاص میں خون کے بدلے خون نہیں لوٹایا جاتا۔ اور اس نے کہا: "وہ لوٹ کے مال اور قیدیوں کے ساتھ لوٹے (آبوا)، اور ہم بادشاہوں کو بیڑیوں میں جکڑ کر لوٹے (أبنا) (7)۔" یعنی: وہ لوٹے اور ہم لوٹے۔ 'غصہ' کا معنی پہلے سورۃ الفاتحہ (8) میں گزر چکا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان {ذَلِكَ} "ذلک" علت بیان کرنے کے لیے ہے {بِأَنَّهُمْ كَانُوا يَكْفُرُونَ} یعنی: کیونکہ وہ جھٹلاتے تھے {بِآيَاتِ اللَّهِ} یعنی: اس کی کتاب اور اس کے انبیاء کے معجزات کو، جیسے عیسیٰ، یحییٰ، زکریا اور محمد علیہم السلام۔

(1) اسے ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/195 میں نکالا ہے، اور اس کے بعد کہا: یعنی القبالات والے لوگ جزیہ دینے والے لوگ ہیں۔ (2) شداد بن اوس رضی اللہ عنہ کی حدیث کا ایک ٹکڑا،

جسے احمد (17111) اور بخاری (6306) نے روایت کیا ہے۔ (3) (ز) اور (ظ) میں: 'بالعود' (لوٹنے کے ساتھ)۔ (4) نسخوں میں ہے: وہ نہیں لوٹتے۔ (5) (م) میں: 'لا ییوؤ' ہے، اور (د) اور (ز) میں لفظ درست نہیں تھا۔ جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے، جو کہ مآخذ کے موافق ہے۔ (6) سیبویہ نے اسے 'الکتاب' 3/95 میں اور اخفش اصغر نے 'الاختیارین' صفحہ 333 میں جابر بن حنی تغلبی سے منسوب کیا ہے۔ اور شنتمری نے 'تحصیل عین الذہب' صفحہ 421 میں اسے جابر بن جبیر کا نام دیا ہے۔ یہ 'تہذیب اللغۃ' 15/598 اور 'لسان العرب' (بوا) میں آیا ہے: 'لا یُباءُ'۔ کتاب کے محقق نے ایک روایت ذکر کی: 'لا یَبوُ'، بغیر اعلال کے۔ اور 'الکامل' کے محقق نے 2/776 میں ذکر کیا کہ اس کے ایک نسخے میں 'لا یَبؤُ' ہے، اور اس پر درستی کی علامت ہے۔ (7) یہ شعر عمرو بن کلثوم کا ہے، اور یہ ان کے معلقہ میں ابن کیسان کی شرح (ص 100) اور 'السبع الطول' کی شرح (ص 412) کے ساتھ ہے۔ سمین حلبی نے 'الدر المصون' 1/397 میں ذکر کیا ہے کہ اس شعر کو پیش کرنا ایک وہم ہے، انہوں نے کہا: کیونکہ یہ شعر مادہ 'آب یؤوب' (ا و ب) سے ہے، اس کا مادہ ہمزہ، واؤ اور باء ہے، جبکہ 'باء' کا مادہ (ب و ء) باء، واؤ اور ہمزہ ہے۔ اس میں قلب (حروف کی ترتیب بدلنا) کا دعویٰ دور کی بات ہے؛ کیونکہ کسی مقلوب لفظ میں 'فا' سے پہلے 'عین' اور 'لام' کا ایک ساتھ آنا نہیں دیکھا گیا ہے، اور یہ بھی اسی طرح ہے۔ (8) 1/ 230 - 231۔

156

Surah Al-Baqarah: Verse 61

﴿وَيَقْتُلُونَ النَّبِيِّينَ﴾ (And they kill the Prophets) is conjoined to "they disbelieve." It was narrated from Al-Hasan: "yuqattalūn" (1), and also from him like the majority. Nafi' read "an-nabīʾīn" with a hamza wherever it occurred in the Quran, except in two places in Surah Al-Ahzab: ﴿إِن وَهَبَتْ نَفْسَهَا لِلنَّبِيِّ إِنْ أَرَادَ﴾ [Verse: 50] and ﴿لَا تَدْخُلُوا بُيُوتَ النَّبِيِّ إِلَّا﴾ [Verse: 53], for he read it without elongation (madd) or hamza. He only omitted the hamza in these two instances due to the meeting of two hamzas with kasra. The rest omitted the hamza in all of that (2). As for the one who used the hamza, it is, in his view, from "anba'a": when he informed, and its active participle is "munbi'" (3). The plural of "nabī'" is "anbi'ā'".

It has appeared in the plural of "nabī'": "nubā'". Al-Abbas bin Mirdas Al-Sulami said, praising the Prophet ﷺ: O Seal of the Prophets (Nubā'), indeed you are sent with truth; all guidance of the path is your guidance (4).

This is the meaning of the reading with hamza.

Those who said to omit the hamza differed: some derived it the same way as those who used the hamza, then eased (facilitated) the hamza. Others said: it is derived from "nabā yanbū": when it appeared. So the Prophet (nabī) is from "nabwa," which is elevation, for the Prophet's status is high. "An-Nabī" without the hamza also means: the path, so the Messenger was called "nabī" because creation is guided by him, like a path (5). The poet said (6): "To become worn out, fine pebbles, in place of the path (al-nabī) from the sandhill" (7).

(1) Thus it occurred in the manuscripts, and the scribe of (z) marked it with damma on the ya and kasra on the ta before the lam, and this contradicts what Ibn Atiyya stated in al-Muharrar al-Wajiz 1/155, and Abu Hayyan in al-Bahr 1/236 that it is with the ta referring back to their address. As for the reading: "yuqattalūn," with tashdid, it is the reading of Ali, as in al-Qira'at al-Shadhah p. 6, al-Kashshaf 1/285, and al-Bahr 1/236. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/155. What the author reported from Nafi' in the two mentioned places in Al-Ahzab is from the narration of Qalun from him in the state of connection (wasl). As for the state of stopping (waqf), he remains on his original rule of hamza. As for Warsh's narration from Nafi', it is with hamza, following the original. See al-Sab'ah p. 157, and al-Taysir p. 73. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/155. (4) Ma'ani al-Qur'an by al-Akhfash 1/276, al-Sihah (n-b-'), Tafsir al-Tabari 2/31, Sirat Ibn Hisham

2/461, al-Hujjah by al-Farisi 2/90, and al-Muharrar al-Wajiz 1/155. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/155, and al-Sihah (n-b-'). (6) He is Aws ibn Hajar, and the verse is in his Diwan p. 11, and al-Sihah (n-b-'). (7) In the copies: "al-katib," and what is established is from (m), which is consistent with the sources.

१५६

सूरह अल-बक़रह: आयत ६१

﴿وَيَقْتُلُونَ النَّبِيِّينَ﴾ (और वे नबियों को मार डालते हैं) यह "वे कुफ़्र करते हैं" से जुड़ा है। अल-हसन से रिवायत है: "युक़त्तलून" (१), और उनसे भी बहुसंख्यक (जमाअत) की तरह। नाफ़ेअ ने पूरे क़ुरान में जहाँ भी "अल्-नबीईन" आया है उसे हमज़ा के साथ पढ़ा है, सिवाय सूरह अल-अहज़ाब की दो जगहों के ﴿وَهَبَتْ إِن أَرَادَ﴾ [आयत: ५०] और ﴿لَا تَدْخُلُوا بُيُوتَ النَّبِيِّ إِلَّا﴾ [आयत: ५३], क्योंकि उन्होंने इसे बिना मद (खिंचाव) या हमज़ा के पढ़ा। उन्होंने इन दो जगहों पर हमज़ा को केवल इसलिए छोड़ दिया क्योंकि दो ज़ेर (कसरह) वाले हमज़ा एक साथ आ रहे थे। बाक़ी सभी ने इन सभी जगहों पर हमज़ा को छोड़ दिया है (२)। जहाँ तक हमज़ा के साथ पढ़ने वालों का सवाल है, उनके अनुसार यह "अनबा'अ" से है: जब उसने ख़बर दी, और इसका कर्ता (इसम फ़ाएल) "मुन्बी" है (३)। और नबी की जमा (बहुवचन) "अन्बेआ" है।

नबी की जमा "नुबा" भी आई है। अब्बास बिन मिरदास अल-सुलमी ने नबी ﷺ की प्रशंसा करते हुए कहा है: हे नबियों की मुहर (अन्तिम नबी), निःसंदेह आप सत्य के साथ भेजे गए हैं; मार्ग का हर मार्गदर्शन आपका ही मार्गदर्शन है (४)।

हमज़ा वाली क़िरात (पढ़ने के तरीक़े) का यही अर्थ है।

हमज़ा न पढ़ने वालों में मतभेद है: उनमें से कुछ ने उसी तरह व्युत्पत्ति की जैसे हमज़ा पढ़ने वालों ने की, फिर हमज़ा को आसान (सहज) कर दिया। दूसरों ने कहा: यह "नबा यन्बू" से बना है: जब कोई चीज़ प्रकट हुई। तो नबी "नबवह" से है, जिसका अर्थ है ऊँचाई, क्योंकि नबी का पद ऊँचा होता है। और बिना हमज़ा के"अल्-नबी" का अर्थ "रास्ता" भी है, इसलिए रसूल को "नबी" कहा गया क्योंकि सृष्टि उनके द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करती है, जैसे कि एक रास्ता (५)। कवि ने कहा है (६): "कंकड़ घिसकर महीन हो गए हैं, टीले के उस रास्ते (नबी) के स्थान पर" (७)।

(१) पांडुलिपियों में ऐसा ही हुआ है, और प्रतिलेखक (ज़) ने इसे या पर पेश (दम्मा) और लाम से पहले ता पर ज़ेर (कसरह) के साथ लिखा है, और यह इब्न अत्तिया द्वारा 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' १/१५५ और अबू हय्यान द्वारा 'अल-बहर' १/२३६ में दिए गए विवरण के विपरीत है कि यह ता के साथ उनके संबोधन की ओर लौटने पर है। जहाँ तक 'युक़त्तलून' (तशदीद के साथ) पढ़ने की बात है, तो वह अली की क़िरात है, जैसा कि 'अल-क़िरात अल-शाज़ाह' पृष्ठ ६, 'अल-कश्शाफ़' १/२८५ और 'अल-बहर'

१/२३६ में है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५५। लेखक ने अल-अहज़ाब के उल्लेखित दो स्थानों में नाफ़ेअ से जो उद्धृत किया है, वह उनसे 'क़ालून' की रिवायत है जब वे मिलाकर (वस्ल) पढ़ते हैं। जहाँ रुकने (वक़्फ़) की स्थिति है, तो वे अपने मूल यानी हमज़ा पर रहते हैं। जहाँ तक नाफ़ेअ से 'वर्श' की रिवायत है, तो वह मूल के अनुसार हमज़ा के साथ है। देखिए अल-सबअह पृष्ठ १५७, और अल-तयसीर पृष्ठ ७३। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५५। (४) माआनी अल-क़ुरान अल-अख़फ़श १/२७६, अल-सिहह (न-ब-अ), तफ़्सीर अल-तबरी २/३१, सीरत इब्न हिशाम २/४६१, अल-हुज्जह अल-फ़ारसी २/९०, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५५। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५५, और अल-सिहह (न-ब-अ)। (६) वह औस बिन हजर हैं और शेर उनके दीवान पृष्ठ ११ में है, और अल-सिहह (न-ब-अ)। (७) प्रतियों में: 'अल-कातिब' है, और जो सही है वह (म) से है, जो अन्य स्रोतों के अनुरूप है।

156

سورة البقرہ: آیت 61

﴿وَيَقْتُلُونَ النَّبِيِّينَ﴾ کا عطف «یکفرون» پر ہے۔ اور حسن سے مروی ہے: «يُقَتَّلُون»(1)، اور ان سے بھی جمہور کی طرح مروی ہے۔ اور نافع نے تمام قرآن میں جہاں بھی «النبیئین» آیا ہے اسے ہمزہ کے ساتھ پڑھا ہے، سوائے سورہ احزاب کے دو مقامات کے: ﴿إِن وَهَبَتْ نَفْسَهَا لِلنَّبِيِّ إِنْ أَرَادَ﴾ [آیت: 50] اور ﴿لَا تَدْخُلُوا بُيُوتَ النَّبِيِّ إِلَّا﴾ [آیت: 53]، پس انہوں نے اسے بغیر مد اور بغیر ہمزہ کے پڑھا ہے، اور انہوں نے ان دو جگہوں پر ہمزہ کو صرف دو مکسور (زیر والے) ہمزوں کے اجتماع کی وجہ سے چھوڑا ہے، اور باقی تمام قراء نے ان تمام جگہوں پر ہمزہ کو چھوڑ دیا ہے(2)۔ پس جس نے ہمزہ پڑھا، وہ اس کے نزدیک «أنبأ» سے ہے: جب اس نے خبر دی، اور اس کا اسم فاعل «مُنبیء» ہے(3)۔ اور نبیء کی جمع «أنبئاء» آتی ہے۔

اور نبیء کی جمع میں «نُبَآء» بھی آیا ہے، عباس بن مرداس السلمی نے نبی ﷺ کی مدح میں کہا ہے: اے نبیوں کے خاتم (آخری نبی)، بے شک آپ حق کے ساتھ بھیجے گئے ہیں؛ راستے کی ہر ہدایت آپ کی ہی ہدایت ہے(4)۔

یہ ہمزہ والی قرات کا معنی ہے۔

اور ہمزہ ترک کرنے والوں کے درمیان اختلاف ہوا ہے: پس ان میں سے بعض نے اسی طرح اشتقاق کیا جس طرح ہمزہ پڑھنے والوں نے کیا، پھر ہمزہ کو سہل (آسان) کر دیا۔ اور ان میں سے بعض نے کہا: یہ «نبا ینبو» سے مشتق ہے: جب کوئی چیز ظاہر ہوئی۔ پس نبی «نبوۃ» سے ہے، اور وہ بلندی ہے، کیونکہ نبی کا مرتبہ بلند ہوتا ہے۔ اور ہمزہ کے بغیر «النبی» کے معنی راستہ

بھی ہیں، پس رسول کو «نبی» اس لیے کہا گیا کہ مخلوق اس کے ذریعے ہدایت پاتی ہے، جیسے راستہ(5)، شاعر نے کہا ہے(6): تاکہ وہ باریک کنکریاں رگڑ کر ہموار ہو جائیں، ٹیلے کے اس راستے (نبی) کی جگہ پر(7)۔

(1) قلمی نسخوں میں اسی طرح واقع ہوا ہے، اور ناسخ (ز) نے اسے یا پر پیش اور لام سے پہلے تا پر زیر کے ساتھ ضبط کیا ہے، اور یہ اس کے خلاف ہے جس کی ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 155/1 میں صراحت کی ہے، اور ابو حیان نے البحر 236/1 میں کہ یہ تا کے ساتھ ان کے خطاب کی طرف رجوع پر مبنی ہے۔ رہی قرات: «يُقَتَّلون»، تشدید کے ساتھ، تو وہ حضرت علی کی قرات ہے، جیسا کہ القراءات الشاذة ص 6، الکشاف 285/1، اور البحر 236/1 میں ہے۔ (2) المحرر الوجیز 155/1۔ مصنف نے نافع سے احزاب کے مذکورہ دو مقامات میں جو نقل کیا ہے، وہ ان سے قالون کی روایت ہے وصل کی حالت میں، جہاں تک وقف کی حالت کا تعلق ہے تو وہ اپنی اصل یعنی ہمزہ پر رہتے ہیں۔ رہی نافع سے ورش کی روایت، تو وہ اصل کے مطابق ہمزہ کے ساتھ ہے۔ دیکھیے السبعۃ ص 157، اور التیسیر ص 73۔ (3) المحرر الوجیز 155/1۔ (4) معانی القرآن للاخفش 276/1، والصحاح (نبأ)، وتفسیر الطبری 31/2، وسیرۃ ابن ہشام 461/2، والحجۃ للفارسی 90/2، والمحرر الوجیز 155/1۔ (5) المحرر الوجیز 155/1، والصحاح (نبأ)۔ (6) وہ اوس بن حجر ہیں اور یہ شعر ان کے دیوان ص 11 اور الصحاح (نبأ) میں ہے۔ (7) نسخوں میں: «الكاتب» ہے، اور جو درست ہے وہ (م) سے ہے، اور یہی دیگر مصادر کے موافق ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 61 157

"Ratmtu al-shay'" means: I broke it. It is said: "ratama an fahu" (he broke his nose) and "rathama", with both 'ta' and 'tha'. "Al-ratm" also means: "al-martoom", i.e., broken. "Al-Katib" is the name of a mountain (1). So, the prophets for us are like paths on the earth. It is narrated that a man said to the Prophet ﷺ: "Peace be upon you, O Nabee' Allah" (O Prophet of God) - pronouncing the hamza - so the Prophet ﷺ said: "I am not 'Nabee' Allah' - pronouncing the hamza - but I am 'Nabiyu Allah'" - without pronouncing the hamza (2). Abu Ali (3) said: The chain of narration for this hadith is weakened. What strengthens the proof of its weakness is that a praiser recited to him: "O Seal of the Nab'aa," and no objection was reported in that regard. His Almighty's saying: ﴿without right (bi-ghayri al-haqq)﴾ is to magnify the heinousness and the sin they committed. If it is asked: Is this evidence that it might be valid to kill them with right, while it is known that prophets are infallible from doing anything for which they should be killed? It was said to him: It is not so. Rather, this was mentioned as a description of their killing, that it was an injustice and not with right. This was to magnify the heinousness against them. It is known that no prophet is killed with right, but they are killed for the sake of the truth (the Haqq). Thus, His saying: ﴿without right﴾ declared the heinousness and clarity of the sin, and no prophet ever brought anything that would necessitate his killing. If it is asked: How was it permissible for the disbelievers to be left to kill the prophets? It was said: That is an honor for them and an increase in their status, like those among the believers who are killed in the way of Allah. This is not a forsaking of them. Ibn Abbas and Al-Hassan said: No prophet from among the prophets was ever killed except those who were not commanded to fight. Everyone who was commanded to fight was granted victory (4). His Almighty's saying: ﴿That was because they disobeyed and were wont to transgress﴾ "That" refers back to the first and is for emphasis.

---

(1) Al-Sihah: (ratm) and (naba). (2) Narrated by Al-Uqayli in Al-Du'afa 3/81, from the hadith of Ibn Abbas (may Allah be pleased with them), and its chain includes Abdul Rahim bin Hammad Al-Thaqafi. Al-Dhahabi said in Mizan al-I'tidal 2/604: A weak shaykh. Al-Hakim narrated it 2/231 through Hamran bin A'yan, from Abu Al-Aswad Al-Dili, from Abu Dharr (may Allah be pleased with him). He said: This is a Sahih hadith according to the conditions of the two Sheikhs (Bukhari and Muslim) but they did not include it. It has a witness with an explanation in a chain that is not according to the conditions of this book. Al-Dhahabi followed it up by saying: Rather, it is rejected and not authentic. Al-Nasa'i said: Hamran is not trustworthy. Abu Dawood said: A Rafidi

who narrated from Musa bin Ubaida, and he is weak. (3) Al-Hujjah 2/92, and the author quoted him via Ibn Atiyya in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/155. (4) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/156, and Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 1/277-278.

सूरह अल-बकराह: आयत 61 157

"रतमतु अल-शय'" का अर्थ है: मैंने उसे तोड़ दिया। कहा जाता है: "रतम अन फहु" (उसने उसकी नाक तोड़ दी) और "रथम", 'ता' और 'था' दोनों के साथ। "अल-रतम" का अर्थ "अल-मरतूम" भी है, यानी टूटा हुआ। "अल-कातिब" एक पहाड़ का नाम है (1)। तो, नबी हमारे लिए ज़मीन पर रास्तों की तरह हैं। यह रिवायत है कि एक आदमी ने नबी ﷺ से कहा: "अस्सलाम अलैका या नबीअल्लाह" (आप पर शांति हो, ऐ अल्लाह के नबी) - 'हम्ज़ा' के साथ उच्चारण करते हुए - तो नबी ﷺ ने कहा: "मैं 'नबीअल्लाह' नहीं हूँ - 'हम्ज़ा' के साथ - बल्कि मैं 'नबियुल्लाह' हूँ" - 'हम्ज़ा' के बिना उच्चारण के(2)। अबू अली (3) ने कहा: इस हदीस की सनद कमज़ोर है। इसकी कमज़ोरी को पुख्ता करने वाली बात यह है कि एक प्रशंसा करने वाले ने उनके सामने पढ़ा: "या खातम अल-नब्बा", और इस संबंध में कोई आपत्ति दर्ज नहीं की गई। अल्लाह तआला का फ़रमान: ﴿बि-ग़ैरि अल-हक़्क़ि (बिना किसी हक़ के)﴾ उनके द्वारा किए गए गुनाह की घिनौनी और संगीनता को बढ़ाने के लिए है। अगर यह पूछा जाए: क्या यह इस बात का सबूत है कि उन्हें हक़ के साथ मारना सही हो सकता है, जबकि यह ज्ञात है कि नबी मासूम (पापरहित) होते हैं और वे ऐसा कुछ नहीं करते जिसके कारण उन्हें मारा जाए? उनसे कहा गया: ऐसा नहीं है। बल्कि, यह उनके कत्ल के वर्णन के रूप में आया है कि यह जुल्म था और हक़ के साथ नहीं था। यह उनके खिलाफ घिनौनेपन को बड़ा दिखाने के लिए था। यह ज्ञात है कि किसी भी नबी को हक़ के साथ नहीं मारा जाता, बल्कि उन्हें हक़ (सच्चाई) के लिए मारा जाता है। अतः, उनका कहना: ﴿बि-ग़ैरि अल-हक़्क़ि﴾ गुनाह की घिनौनी और स्पष्टता को साफ़ करता है, और किसी भी नबी ने कभी भी ऐसा कुछ नहीं किया जिससे उनका कत्ल वाजिब हो जाए। अगर यह पूछा जाए: काफिरों को नबियों को कत्ल करने के लिए क्यों छोड़ दिया गया? कहा गया: यह उनके लिए सम्मान की बात है और उनके पद में वृद्धि है, जैसे उन मोमिनों के साथ होता है जो अल्लाह की राह में शहीद होते हैं। यह उन्हें असहाय छोड़ना नहीं है। इब्न अब्बास और अल-हसन ने कहा: नबियों में से कोई भी नबी कभी कत्ल नहीं किया गया सिवाय उनके जिन्हें लड़ने का हुक्म नहीं दिया गया था। जिसे भी लड़ने का हुक्म दिया गया, उसे जीत मिली (4)। अल्लाह तआला का फ़रमान: ﴿यह इसलिए क्योंकि उन्होंने नाफ़रमानी की और वे हद से गुज़र जाते थे﴾ "यह" (ज़ालिका) पहली बात की तरफ इशारा है और ताकीद (ज़ोर देने) के लिए है।

---

(1) अल-सिहाह: (रतम) और (नबा)। (2) इसे अल-उकैली ने 'अल-दुआफा' 3/81 में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से निकाला है और इसकी सनद में अब्दुल रहीम बिन हम्माद अल-

सकाफी है। अल-ज़हाबी ने 'मीज़ान अल-इतेदाल' 2/604 में कहा है: एक कमज़ोर शैख। और इसे अल-हाकिम ने 2/231 में हमरान बिन अयान के रास्ते से, अबू अल-असवद अल-दीली से, अबू ज़र (रज़ियल्लाहु अन्हु) से निकाला है। उन्होंने कहा: यह हदीस शैखैन (बुखारी और मुस्लिम) की शर्तों पर सही है लेकिन उन्होंने इसे शामिल नहीं किया। इसकी एक गवाह सनद भी है जो इस किताब की शर्तों के अनुसार नहीं है। अल-ज़हाबी ने इसके बाद कहा: बल्कि यह मुनकर (अस्वीकार्य) है और सही नहीं है। अल-नसाई ने कहा: हमरान भरोसेमंद नहीं है। अबू दाऊद ने कहा: एक राफ़िज़ी जिसने मूसा बिन उबैदा से रिवायत की, और वह कमज़ोर है। (3) अल-हुज्जाह 2/92, और लेखक ने इसे इब्न अतिया के माध्यम से 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/155 में उद्धृत किया है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/156, और मजमा अल-बयान अल-तबरसी 1/277 - 278।

سورہ البقرہ : آیت ۶۱ ۱۵۷

"رتمت الشیء" کا مطلب ہے: میں نے اسے توڑ دیا۔ کہا جاتا ہے: "رتم انفه" (اس نے اس کی ناک توڑ دی) اور "رثمہ" 'ت' اور 'ث' دونوں کے ساتھ۔ "الرتم" کا مطلب "المرتوم" بھی ہے، یعنی ٹوٹا ہوا۔ "الکاتب" ایک پہاڑ کا نام ہے (۱)۔ پس انبیاء ہمارے لیے زمین میں راستوں کی طرح ہیں۔ مروی ہے کہ ایک شخص نے نبی ﷺ سے کہا: "السلام علیک یا نبیء الله" (اے اللہ کے نبی، آپ پر سلام ہو) - ہمزہ کے ساتھ - تو نبی ﷺ نے فرمایا: "میں 'نبیء الله' نہیں ہوں - ہمزہ کے ساتھ - بلکہ میں 'نبی الله' ہوں" - ہمزہ کے بغیر (۲)۔ ابو علی (۳) نے کہا: اس حدیث کی سند کمزور ہے۔ اس کی کمزوری کی ایک دلیل یہ ہے کہ ایک مدح کرنے والے نے آپ کے سامنے پڑھا: "یا خاتم النباء"، اور اس بارے میں کسی اعتراض کا ذکر نہیں ملتا۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿بغیر الحق﴾ اس جرم کی شناعت (برائی) اور گناہ کی سنگینی کو واضح کرنے کے لیے ہے جو انہوں نے کیا۔ اگر یہ کہا جائے: کیا یہ اس بات کی دلیل ہے کہ انہیں حق کے ساتھ قتل کرنا صحیح ہو سکتا ہے، حالانکہ یہ معلوم ہے کہ انبیاء معصوم ہوتے ہیں اور ان سے ایسی کوئی بات سرزد نہیں ہو سکتی جس کی وجہ سے انہیں قتل کیا جائے؟ اس سے کہا گیا: ایسا نہیں ہے، بلکہ یہ ان کے قتل کے ایک وصف کے طور پر آیا ہے کہ وہ سراسر ظلم تھا اور حق کے ساتھ نہیں تھا۔ یہ ان پر ہونے والے ظلم کی شناعت کو بڑھانے کے لیے تھا۔ یہ معلوم ہے کہ کوئی بھی نبی حق के साथ قتل نہیں کیا جاتا، بلکہ انہیں حق (سچائی) کی خاطر قتل کیا جاتا ہے۔ چنانچہ آپ کے قول: ﴿بغیر الحق﴾ نے گناہ کی شناعت اور اس کی وضاحت کر دی، اور کسی نبی نے کبھی ایسا کچھ نہیں کیا جو ان کے قتل کو واجب کر دے۔ اگر یہ پوچھا جائے: کافروں کو انبیاء کے قتل کے لیے کیوں چھوڑ دیا گیا؟ کہا گیا: یہ ان کے لیے ایک اعزاز اور ان کے درجات کی بلندی ہے، بالکل اسی طرح جیسے ایمان والوں میں سے اللہ

کی راہ میں قتل ہونے والوں کے ساتھ ہوتا ہے۔ یہ انہیں بے یار و مددگار چھوڑنا نہیں ہے۔ ابن عباس اور الحسن نے فرمایا: انبیاء میں سے کبھی کوئی نبی قتل نہیں کیا گیا سوائے ان کے جنہیں قتال (جنگ) کا حکم نہیں دیا گیا تھا، اور جس کسی کو بھی قتال کا حکم دیا گیا اسے فتح و نصرت عطا کی گئی (٤)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿ذلك بما عصوا وكانوا يعتدون﴾ "ذلك" (یہ) پہلے جملے کی طرف لوٹتا ہے اور تاکید کے لیے ہے۔

---

(١) الصحاح: (رتم) اور (نبا)۔ (٢) اسے العقیلی نے 'الضعفاء' ٨١/٣ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے اور اس کی سند میں عبد الرحیم بن حماد الثقفی ہے۔ الذہبی نے 'میزان الاعتدال' ٦٠٤/٢ میں کہا: وہ ایک کمزور شیخ ہے۔ اور الحاکم نے اسے ٢٣١/٢ میں حمران بن اعین کے واسطے سے ابو الاسود الدیلی سے، انہوں نے ابو ذر رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے۔ انہوں نے کہا: یہ حدیث شیخین (بخاری و مسلم) کی شرائط پر صحیح ہے لیکن انہوں نے اسے نقل نہیں کیا۔ اس کی ایک شاہد سند بھی ہے جو اس کتاب کی شرائط پر نہیں ہے۔ الذہبی نے اس پر تعاقب کرتے ہوئے کہا: بلکہ یہ منکر ہے اور صحیح نہیں ہے۔ النسائی نے کہا: حمران ثقہ نہیں ہے۔ ابو داؤد نے کہا: وہ رافضی ہے جس نے موسیٰ بن عبیدہ سے روایت کی ہے، اور وہ ضعیف ہے۔ (٣) الحجہ ٩٢/٢، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے 'المحرر الوجیز' ١٥٥/١ میں نقل کیا ہے۔ (٤) المحرر الوجیز ١٥٦/١، اور مجمع البیان للطبرسی ٢٧٧/١ - ٢٧٨۔

158 Surah Al-Baqarah: Verse 62

...to refer to it. The "ba" in "bima" is the "ba" of causation (1). Al-Akhfash said: i.e., because of their disobedience (2). Disobedience (isyan) is the opposite of obedience. And 'atasat al-nawah' means when the date-stone hardens (3). Transgression (i'tida') is exceeding the limit in everything, and it is known in the context of injustice and sins (4). The words of Allah the Almighty: {Indeed, those who believed and those who were Jews or Christians or Sabeans [before Prophet Muhammad] - those [among them] who believed in Allah and the Last Day and did righteousness - will have their reward with their Lord, and no fear will there be concerning them, nor will they grieve.} [62]

There are eight issues in it: First: The Almighty's words {Indeed, those who believed} mean: those who believed in Muhammad ﷺ. Sufyan said: It refers to the hypocrites, as if He said: those who believed outwardly, which is why He grouped them with the Jews, Christians, and Sabeans, then clarified the ruling for whoever truly believes in Allah and the Last Day from among all of them (5). Second: The Almighty's words {and those who were Jews} means they became Jews, attributed to Judah, who was the eldest son of Jacob, peace be upon him. The Arabs changed the 'dhal' to a 'dal' because foreign names, when Arabicized, are altered from their original pronunciation (6). It was also said: they were named so because of their repentance from (7) worshipping the calf. 'Hada' means repented, and 'al-ha'id' is the repenter. The poet said: "I am a man who repented because of his love" (8) Meaning: a repenter. In the Revelation: {Indeed, we have turned to You} [Al-A'raf: 156] i.e., we have repented. And 'hada al-qawm' means the people repented (9). Ibn Arafa said: "{hudna ilayka}" means we settled with...

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/156. (2) Ma'ani al-Quran 1/276. (3) Al-Sihah: (Asa). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/156. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/156, and Al-Wajiz by Al-Wahidi 1/149. (6) His saying: Names, from (z). (7) In (m): about. (8) We did not find its author, and it is in Al-Sihah: (Hud), and in Al-Muharrar al-Wajiz 1/157, and in it: my praise, instead of: his love. (9) Al-Nukat wa al-Uyun by Al-Mawardi 1/131-132, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/157, and we did not find the source: Hiyadah.

१५८ सूरह अल-बकरा: आयत ६२

...उसे इंगित करने के लिए। "बिम" में "बा" कारण बताने वाला "बा" है (१)। अल-अखफश ने कहा: यानी, उनकी नाफरमानी के कारण (२)। नाफरमानी (इस्यान): आज्ञाकारिता के विपरीत है। और 'अतसत अन-नवाह' का अर्थ है: जब खजूर की गुठली सख्त हो जाती है (३)। उल्लंघन (ऐतिदा): हर चीज़ में सीमा पार करना है, और यह अन्याय और पापों के लिए जाना जाता है (४)। अल्लाह तआला का फरमान: {निस्संदेह वे जो ईमान लाए, और जो यहूदी हुए और ईसाई और साबी, जो कोई भी अल्लाह और अंतिम दिन पर ईमान लाया और नेक काम किए, तो उनके लिए उनका बदला उनके रब के पास है, और न उन्हें कोई डर होगा और न वे दुखी होंगे।} [६२]

इसमें आठ मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का फरमान {निस्संदेह वे जो ईमान लाए} यानी: जिन्होंने मुहम्मद ﷺ पर विश्वास किया। सुफयान ने कहा: मुराद मुनाफिक (पाखंडी) हैं, जैसे कि उसने कहा हो: जो ज़ाहिरी तौर पर ईमान लाए, इसीलिए उसने उन्हें यहूदियों, ईसाइयों और साबी के साथ जोड़ा, फिर उन सभी में से उन लोगों का हुक्म स्पष्ट किया जो अल्लाह और अंतिम दिन पर ईमान लाए (५)। दूसरा: अल्लाह तआला का फरमान {और जो यहूदी हुए} इसका अर्थ है कि वे यहूदी बन गए, यहूदा की ओर निस्बत की गई, जो याकूब अलैहिस्सलाम के सबसे बड़े बेटे थे। अरबों ने 'धाल' (ذ) को 'दाल' (د) में बदल दिया क्योंकि विदेशी नाम जब अरबी किए जाते हैं, तो उनके उच्चारण में बदलाव आ जाता है (६)। और यह भी कहा गया है: उनका यह नाम बछड़े की पूजा से उनकी तौबा (७) के कारण पड़ा। 'हादा' का अर्थ है: तौबा की, और 'अल-हाइद' का अर्थ है: तौबा करने वाला। कवि ने कहा: "मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जो अपनी मोहब्बत की वजह से तौबा करने वाला है" (८) यानी: तौबा करने वाला। और वह्य में है: {बेशक हमने तेरी तरफ रुजू किया (हुदना इलयका)} [अल-अराफ़: १५६] यानी: हमने तौबा की। और 'हादा अल-क़ौम' का अर्थ है: जब कौम ने तौबा की (९)। इब्न अराफ़ा ने कहा: "{हुदना इलयका}" का अर्थ है: हम सुकून पा गए...

---

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५६। (२) मानी अल-कुरान १/२७६। (३) अल-सिहाह: (असा)। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५६। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५६, और अल-वजीदी द्वारा अल-वजीज़ १/१४९। (६) उनका कहना: नाम, (ज़) से। (७) (म) में: के बारे में। (८) हमें इसके लेखक का पता नहीं चला, और यह अल-सिहाह: (हुद) में है, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५७ में है, और

उसमें: मेरी प्रशंसा, इसके स्थान पर: उसका प्यार। (९) अल-मावर्दी द्वारा अल-नुक़त व अल-उयून १/१३१-१३२, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५७, और हमें स्रोत नहीं मिला: हियादह।

۱۵۸ سورہ البقرہ: آیت ۶۲

...اس کی طرف اشارہ کرنے کے لیے۔ اور "بما" میں "باء" سبب کے لیے ہے (۱)۔ الاخفش نے کہا: یعنی: ان کی نافرمانی کی وجہ سے (۲)۔ اور نافرمانی: فرمانبرداری کی ضد ہے۔ اور 'اعتصت النواۃ' کا مطلب ہے: جب گٹھلی سخت ہو جائے (۳)۔ اور اعتداء: ہر چیز میں حد سے تجاوز کرنا ہے، اور یہ ظلم اور گناہوں کے معاملے میں معروف ہے (۴)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {بیشک جو لوگ ایمان لائے، اور جو یہودی ہوئے اور نصاریٰ اور صابئین، ان میں سے جو بھی اللہ اور یومِ آخرت پر ایمان لایا اور نیک عمل کیے، ان کا اجر ان کے رب کے پاس ہے، اور نہ ان پر کوئی خوف ہوگا اور نہ وہ غمگین ہوں گے۔} [۶۲]

اس میں آٹھ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد {بیشک جو لوگ ایمان لائے} یعنی: جنہوں نے محمد ﷺ کی تصدیق کی۔ سفیان نے کہا: اس سے مراد منافقین ہیں، گویا اس نے کہا: وہ لوگ جو ظاہر میں ایمان لائے، اسی لیے اس نے انہیں یہودیوں، عیسائیوں اور صابئین کے ساتھ جوڑا، پھر ان سب میں سے ان لوگوں کا حکم بیان کیا جو اللہ اور یومِ آخرت پر ایمان لائے (۵)۔ دوسرا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد {اور جو یہودی ہوئے} اس کا مطلب ہے کہ وہ یہودی بن گئے، ان کی نسبت یہوداہ کی طرف ہے، جو حضرت یعقوب علیہ السلام کے سب سے بڑے بیٹے تھے، تو عربوں نے 'ذال' کو 'دال' سے بدل دیا کیونکہ عجمی نام جب عربی کیے جاتے ہیں تو ان کے لفظ میں تبدیلی کر دی جاتی ہے (۶)۔ اور کہا گیا ہے: ان کا یہ نام بچھڑے کی عبادت سے توبہ (۷) کرنے کی وجہ سے رکھا گیا۔ 'ہاد' کا مطلب ہے: توبہ کی، اور 'ہائد' توبہ کرنے والا ہے، شاعر نے کہا: "میں وہ شخص ہوں جو اپنی محبت کی وجہ سے توبہ کرنے والا ہے" (۸) یعنی: توبہ کرنے والا۔ اور وحی میں ہے: {بیشک ہم نے تیری طرف رجوع کیا (ھدنا الیک)} [الاعراف: ۱۵۶] یعنی: ہم نے توبہ کی۔ اور 'ہاد

القوم' کا مطلب ہے: جب قوم نے توبہ کی (۹)۔ ابنِ عرفہ نے کہا: "{هدنا اليک}" یعنی: ہم سکون پا گئے...

---

(۱) المحرر الوجيز ۱/۱۵۶۔ (۲) معانی القرآن ۱/۲۷۶۔ (۳) الصحاح: (عصا)۔ (۴) المحرر الوجيز ۱/۱۵۶۔ (۵) المحرر الوجيز ۱/۱۵۶، اور الوسيط للواحدی ۱/۱۴۹۔ (۶) قولہ: الأسماء، من (ز)۔ (۷) فی (م): عن۔ (۸) لم نقف علیٰ قائلہ، وهو فی الصحاح: (ہود)، وفی المحرر الوجيز ۱/۱۵۷، وفيه: مدحتي، بدل: حبہ۔ (۹) النكت والعيون للماوردی ۱/۱۳۱-۱۳۲، والمحرر الوجيز ۱/۱۵۷، ولم نقف علیٰ المصدر: ہیادۃ۔

your affair. And 'Al-Hawadah' means: tranquility and reconciliation. He said: From it is the Almighty's saying: {Indeed, those who believed and those who were Jews}. And Abu Al-Sammal read: «Hadowa» with a fatha on the dal(1). Third: The Almighty's saying: {And the Christians} is a plural; its singular is 'Nasrani'. And it was said: 'Nasran', by dropping the 'ya', and this is the opinion of Sibawayh(2). And the female is 'Nasranah'(3), like 'Nadman' and 'Nadmanah'. It is an indefinite noun made definite by 'alif' and 'lam'. The poet said: She turned away as the cupbearer of fasting Christians turned away from what is not permissible for him just before dawn (4) (5). So he described it as indefinite. Al-Khalil said: The singular of 'Nasara' is 'Nasri'; like 'Mahri' and 'Mahara'(6). And Sibawayh recited as evidence for his opinion: You see him when the night falls turning towards the faith, and in the forenoon, he is like a sun-worshipping Christian(7) And he recited(8): Both of them fell down and prostrated their heads, as a Christian woman prostrated who has not turned towards the true faith (9).

(1) The Irregular Readings p. 6, and Al-Muhtasib 1/91. (2) Al-Kitab 3/255. (3) In (D) and (Z): Nasraniyyah, and it is a mistake. (4) In the copies: the morning, and the established one is from the sources. (5) The verse is by Al-Nimr bin Tawlab, and it is in his Diwan p. 144, and in Al-Kitab 3/255. Al-Shantamari said in Tahsil 'Ayn al-Dhahab p. 465: The evidence in it is the usage of 'suwwam' (fasting ones) as an adjective for 'Nasara' (Christians); because it is indefinite like it. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/157. (7) It is not in 'Al-Kitab', and it is in 'Tafsir al-Tabari' 2/142, 'Al-Adhdad' by Ibn al-Anbari p. 181, 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/157, and 'Majma' al-Bayan' 1/280, and they have: 'al-Ashiyyi muhanifan' instead of 'al-'asha mutahanifan'. Professor Mahmoud Shaker, may God have mercy on him, mentioned in his commentary on the Tafsir of al-Tabari that al-Qurtubi made a mistake in his saying: Sibawayh recited it, for he did not recite it. And he said in his commentary: The verse is in description of the chameleon, and 'mutahanifan' means: he turned towards the true faith, or became Hanifi, meaning he faces the Qiblah, and 'shamis': means facing the sun before the east, he says: he faces the sun as if he were a Christian. (8) Meaning Sibawayh in 'Al-Kitab' 3/256 and 411, and he attributed it to Abu al-Akhzar al-Himmani, and it is in 'Tafsir al-Tabari' 2/144 (Shaker), and 'Ma'ani al-Qur'an' by al-Zajjaj 1/147, and 'al-Sihah' (nasar) without attributing it. (9) In (M): Asjadat.

सूरह अल-बकरा: आयत 62 159

आपका मामला। और 'अल-हवादा' का अर्थ है: शांति और मेल-मिलाप। उन्होंने कहा: इसी से सर्वशक्तिमान का यह कथन है: {बेशक, वे जो विश्वास लाए और जो यहूदी हुए}। और अबू अल-सम्मल ने 'दाल' पर फतहा के साथ «हादुवा» पढ़ा (1)। तीसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {और ईसाई} एक बहुवचन है; इसका एकवचन 'नसरानी' है। और यह भी कहा गया: 'नसरान', 'या' को हटाकर, और यह सिबावेह की राय है (2)। और स्त्रीलिंग 'नसरानह' है (3), जैसे 'नदमान' और 'नदमानह'। यह एक अनिश्चित संज्ञा है जिसे 'अलिफ' और 'लाम' द्वारा निश्चित बनाया गया है। कवि ने कहा: वह वैसे ही मुड़ गई जैसे ईसाइयों का उपवास रखने वाला साकी भोर से ठीक पहले उस चीज़ से मुड़ गया जो उसके लिए जायज़ नहीं है (4) (5)। इसलिए उन्होंने इसे अनिश्चित के रूप में वर्णित किया। अल-खलील ने कहा: 'नसा़रा' का एकवचन 'नसरी' है; जैसे 'महरी' और 'महारह' (6)। और सिबावेह ने अपनी राय के प्रमाण के रूप में सुनाया: जब रात होती है तो तुम उसे दीन की ओर मुड़ते हुए देखते हो, और दोपहर के समय वह सूरज की पूजा करने वाले ईसाई की तरह होता है (7) और उन्होंने सुनाया (8): वे दोनों गिर पड़े और अपना सिर झुकाया, जैसे एक ईसाई महिला ने सजदा किया जो सच्चे धर्म की ओर नहीं मुड़ी (9)।

(1) अल-क़िरात अल-शाज़ा पृ. 6, और अल-मुहतासिब 1/91। (2) अल-किताब 3/255। (3) (द) और (ज़) में: नसरानियाह, और यह एक गलती है। (4) प्रतियों में: सुबह, और स्थापित स्रोतों से है। (5) यह आयत अल-निम्र बिन तौलब की है, और यह उनके दीवान पृ. 144 में, और अल-किताब 3/255 में है। अल-शंतमरी ने तहसील 'ऐन अल-ज़हब पृ. 465 में कहा: इसमें प्रमाण 'नसा़रा' के विशेषण के रूप में 'सुव्वम' (उपवास करने वाले) का उपयोग है; क्योंकि यह उसी की तरह अनिश्चित है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/157। (7) यह 'अल-किताब' में नहीं है, और यह 'तफ़सीर अल-तबरी' 2/142, इब्न अल-अंबारी द्वारा 'अल-अज़दाद' पृ. 181, 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/157, और 'मजमा' अल-बयान' 1/280 में है, और उनके पास है: 'अल-'अशिय्य मुहानिफ़न', 'अल-'अशा मुतहानिफ़न' के बजाय। प्रोफेसर महमूद शाकिर, उन पर ईश्वर की कृपा हो, ने अल-तबरी की तफ़सीर पर अपनी टिप्पणी में उल्लेख किया कि अल-कुर्तुबी ने यह कहने में गलती की कि सिबावेह ने इसे सुनाया, क्योंकि उन्होंने इसे नहीं सुनाया था। और उन्होंने अपनी व्याख्या में कहा: यह आयत गिरगिट के वर्णन में है, और 'मुतहानिफ़न' का अर्थ है: वह सच्चे धर्म की ओर मुड़ गया, या हनीफ़ी बन गया, जिसका अर्थ है कि वह किबला की ओर मुंह करता है, और 'शामिस': का अर्थ है पूर्व से पहले सूरज की ओर

मुंह करना, वे कहते हैं: वह सूरज की ओर मुंह करता है जैसे कि वह एक ईसाई हो। (8) इसका अर्थ सिबावेह 'अल-किताब' 3/256 और 411 में है, और उन्होंने इसे अबू अल-अख़ज़र अल-हिम्मानी को जिम्मेदार ठहराया, और यह 'तफ़सीर अल-तबरी' 2/144 (शाकिर) में, और अल-ज़ज्जाज द्वारा 'मआनी अल-कुरान' 1/147 में, और 'अल-सिहाह' (नसर) में बिना जिम्मेदार ठहराए है। (9) (म) में: असजदत।

سورہ البقرہ: آیت 62 159

آپ کا معاملہ۔ اور 'الہوادہ' کے معنی: سکون اور صلح کے ہیں۔ انہوں نے کہا: اسی سے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {بے شک وہ لوگ جو ایمان لائے اور وہ جو یہودی ہوئے}۔ اور ابوالسمال نے 'دال' پر فتحہ کے ساتھ «ہادَوا» پڑھا (1)۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {والنصاریٰ} جمع ہے، اس کا واحد 'نصرانی' ہے۔ اور کہا گیا ہے: 'نصران'، 'یا' کو گرانے کے ساتھ، اور یہ سیبویہ کا قول ہے (2)۔ اور اس کی مؤنث 'نصرانہ' ہے (3)، جیسے 'ندمان' اور 'ندمانہ'۔ یہ نکرہ ہے جسے الف لام کے ذریعے معرفہ بنایا جاتا ہے، شاعر نے کہا: وہ اس طرح پھر گئی جس طرح روزے دار عیسائیوں کا ساقی سپیدہ سحر سے ذرا پہلے (4) ان چیزوں سے پھر جاتا ہے جو اس کے لیے حلال نہیں ہیں (5)۔ تو اس نے اسے نکرہ کے طور پر بیان کیا۔ اور الخلیل نے کہا: نصاریٰ کا واحد 'نصری' ہے؛ جیسے 'مہری' اور 'مہاری' (6)۔ اور سیبویہ نے اپنے قول کی دلیل کے طور پر یہ شعر پڑھا: جب شام ڈھلتی ہے تو تم اسے حق کی طرف مائل دیکھتے ہو، اور چاشت کے وقت وہ سورج کی پرستش کرنے والے نصرانی کی طرح ہوتا ہے (7) اور انہوں نے پڑھا (8): پس وہ دونوں گر پڑے اور ان کے سروں نے سجدہ کیا، جیسا کہ اس نصرانی عورت نے سجدہ کیا جو حق کی طرف مائل نہیں ہوئی تھی (9)۔

(1) القراءات الشاذہ ص 6، اور المحتسب 1/91۔ (2) الکتاب 3/255۔ (3) (د) اور (ز) میں: نصرانیہ، اور یہ غلط ہے۔ (4) نسخوں میں: الصبح (صبح)، اور مستند ذرائع سے یہی ثابت ہے۔ (5) یہ شعر النمر بن تولب کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص 144، اور الکتاب 3/255 میں ہے۔ الشنتمری نے تحصیل عین الذہب ص 465 میں کہا: اس میں شاہد 'نصاریٰ' کی صفت کے طور پر 'صوّام' (روزے دار) کا استعمال ہے؛ کیونکہ یہ اسی کی طرح نکرہ ہے۔ (6) المحرر الوجیز

1/157۔ (7) یہ 'الکتاب' میں نہیں ہے، بلکہ تفسیر طبری 2/142، ابن الانباری کی 'الاضداد' ص 181، المحرر الوجیز 1/157، اور مجمع البیان 1/280 میں ہے، اور ان کے ہاں: 'العشیّ مُحَنِّفاً' ہے، 'العشا متحنفاً' کی جگہ۔ پروفیسر محمود شاکر رحمہ اللہ نے تفسیر طبری پر اپنے تعلیق میں ذکر کیا ہے کہ قرطبی نے اپنے اس قول میں غلطی کی کہ اسے سیبویہ نے پڑھا، کیونکہ انہوں نے اسے نہیں پڑھا تھا۔ اور انہوں نے اپنی شرح میں کہا: یہ شعر گرگٹ کی صفت میں ہے، اور 'متحنفاً' کے معنی ہیں: وہ حق کی طرف مائل ہوا، یا حنیفی بن گیا، یعنی وہ قبلہ رو ہوتا ہے، اور 'شامس' کے معنی ہیں: مشرق سے پہلے سورج کا استقبال کرنے والا، وہ کہتا ہے: وہ سورج کا استقبال اس طرح کرتا ہے جیسے وہ نصرانی ہو۔ (8) یعنی سیبویہ الکتاب 3/256 اور 411 میں، اور انہوں نے اسے ابو الاخزر الحمانی کی طرف منسوب کیا، اور یہ تفسیر طبری 2/144 (شاکر) میں ہے، اور زجاج کی معانی القرآن 1/147، اور الصحاح (نصر) میں بغیر نسبت کے ہے۔ (9) (م) میں: أسجدت۔

Surah Al-Baqarah: Verse 62 160

It is said: "Asjada" when he leaned. However, "Nasran" and "Nasranah" are only used with the 'ya' of attribution (ya al-nasab); for they said: a Christian man (Nasrani), and a Christian woman (Nasraniyyah). And "Nassarah": he made him a Christian. In the Hadith: "His parents make him a Jew or make him a Christian" (2), and he (peace be upon him) said: "By Him in Whose hand is my soul (3), no one from this Ummah, Jew or Christian, hears of me and then does not believe in what I was sent with, but he will be among the companions of the Fire" (4).

And plurals have come unlike the way their singulars are used, and the rule would be "Al-Nasraniyun". Then it was said: They were named so after a village called "Nasirah" (Nazareth), where Jesus (peace be upon him) used to stay, so he was attributed to it, and it was said: Jesus the Nazarene (5). When his companions were attributed to him, it was said: "Al-Nasara" (the Christians), as stated by Ibn Abbas and Qatadah (6). Al-Jawhari said: Nasran is a village in ash-Sham (the Levant), to which the Christians are attributed, and it is also called Nasirah (7). And it was said: They were named so for their support (nusrah) of one another (8), the poet said: When I saw Nabataeans as supporters (ansara), I tucked up my garment above my knees I was a neighbor to them from among the Christians (Nasara) (9) And it was said: They were named so because of His saying (10): {“Who are my supporters for Allah?” The disciples said, “We are the supporters of Allah.”} [As-Saff: 14] (11).

Footnotes: (1) In (m): with two ya's. (2) Narrated by Ahmad (7181), Al-Bukhari (1358), and Muslim (2658) from the hadith of Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him). Following it in (z) is the text: i.e., they make him (thus) a Jew or a Christian. (3) His saying: "By Him in Whose hand is my soul", from (z). (4) Narrated by Ahmad (8203) and Muslim (153) from the hadith of Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him). (5) In the copies: "Al-Nasir", and what is confirmed is from (m) and sources. (6) Tafsir al-Tabari 2/34, and Al-Nukat wal-'Uyun 1/132. (7) As-Sahhah: (Nasr). (8) Al-Nukat wal-'Uyun 1/132. (9) Tafsir al-Tabari 2/33, Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/44, Amali Ibn al-Shajari 1/118 and 2/145, and Al-Nukat wal-'Uyun 1/132; we did not find its author. (10) In (z): For the saying of Jesus (peace be upon him), and in (zha): For the saying of the Almighty. (11) Al-Nukat wal-'Uyun 1/132.

सूरह अल-बकरा: आयत 62 160

कहा जाता है: 'असजदा' जब वह झुक गया। लेकिन 'नसरान' और 'नसरानह' का प्रयोग केवल संबंधबोधक 'या' (या अल-नसब) के साथ किया जाता है; क्योंकि वे कहते थे: एक ईसाई पुरुष (नसरानी), और एक ईसाई महिला (नसरानिया)। और 'नस्साराह': उसने उसे ईसाई बना दिया। हदीस में है: "उसके माता-पिता उसे यहूदी बनाते हैं या उसे ईसाई बनाते हैं" (2), और उन्होंने (शांति उन पर हो) कहा: "उसकी कसम जिसके हाथ में मेरी जान है (3), इस उम्मत का कोई भी व्यक्ति, चाहे वह यहूदी हो या ईसाई, मेरे बारे में सुने और फिर उस पर विश्वास न करे जिसके साथ मुझे भेजा गया है, तो वह आग के साथियों (नरकवासियों) में से होगा" (4)।

और बहुवचन उनके एकवचन के प्रयोग के विपरीत आए हैं, और इसका नियम "अल-नसरानियुन" होगा। फिर कहा गया: उनका नाम 'नासिराह' (नाज़रेत) नामक एक गाँव के नाम पर रखा गया था, जहाँ ईसा (उन पर शांति हो) रहा करते थे, इसलिए उन्हें उससे संबंधित किया गया, और कहा गया: ईसा अल-नासिरी (5)। जब उनके साथी उनसे संबंधित हुए, तो उन्हें "अल-नसारा" (ईसाई) कहा गया, जैसा कि इब्न अब्बास और कतादाह ने कहा है (6)। अल-जौहरी ने कहा: नसरान शाम (लेवेंट) का एक गाँव है, जिससे ईसाइयों का संबंध है, और इसे नासिराह भी कहा जाता है (7)। और यह भी कहा गया: उनका नाम एक-दूसरे की मदद (नुसरत) करने के कारण रखा गया था (8), कवि ने कहा: जब मैंने नबातियाओं को सहायकों (अंसार) के रूप में देखा, तो मैंने अपने घुटनों के ऊपर अपना कपड़ा समेट लिया मैं ईसाइयों (नसारा) के बीच उनका पड़ोसी था (9) और कहा गया: उनका नाम इस आयत के कारण रखा गया (10): {"अल्लाह के मार्ग में कौन मेरे सहायक (अंसार) हैं?" शिष्यों (हवारियून) ने कहा, "हम अल्लाह के सहायक हैं।"} [अस-सफ़: 14] (11)।

पाद-टिप्पणियाँ: (1) (m) में: दो 'या' के साथ। (2) इसे अहमद (7181), बुखारी (1358) और मुस्लिम (2658) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। इसके बाद (z) में यह पाठ आया है: अर्थात वे उसे (इस तरह) यहूदी या ईसाई बनाते हैं। (3) उनका कहना: "उसकी कसम जिसके हाथ में मेरी जान है", (z) से। (4) इसे अहमद (8203) और मुस्लिम (153) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। (5) प्रतियों में: "अल-नासिर", और जो पुष्ट है वह (m) और स्रोतों से है। (6) तफ़्सीर अल-तबरी 2/34, और अल-नुक़त वल-उयून 1/132। (7) अल-सिहाह: (नसर)। (8) अल-नुक़त वल-उयून 1/132। (9) तफ़्सीर अल-तबरी 2/33, मआनी अल-कुरान अल-फ़रा 1/44, अमाली इब्न अल-शजरी 1/118 और 2/145, और अल-नुक़त वल-उयून 1/132;

हमें इसके लेखक का पता नहीं चला। (10) (z) में: ईसा (उन पर शांति हो) के कथन के लिए, और (zha) में: अल्लाह तआला के कथन के लिए। (11) अल-नुक़त वल-उयून 1/132।

سورہ البقرہ : آیت ٦٢ ١٦٠

کہا جاتا ہے: 'اَسْجَدَ' جب وہ مائل ہوا۔ لیکن 'نَصْرانُ' اور 'نَصْرانةٌ' کا استعمال صرف یاءِ نسبت کے ساتھ ہوتا ہے؛ کیونکہ وہ کہتے ہیں: عیسائی مرد (نصرانی)، اور عیسائی عورت (نصرانية)۔ اور 'نَصَّرَہ': اسے نصرانی (عیسائی) بنا دیا۔ اور حدیث میں ہے: «پس اس کے ماں باپ اسے یہودی بناتے ہیں یا اسے نصرانی بناتے ہیں» (٢)، اور آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: «قسم ہے اس ذات کی جس کے ہاتھ میں میری جان ہے (٣) اس امت کا کوئی بھی شخص، یہودی ہو یا نصرانی، میرے بارے میں سنے پھر اس پر ایمان نہ لائے جس کے ساتھ میں بھیجا گیا ہوں، تو وہ اہل نار (جہنمیوں) میں سے ہوگا» (٤)۔

اور بعض جمع ایسے آئے ہیں جن کا واحد استعمال میں نہیں ہے، اور اس کا قاعدہ 'النصرانیون' ہے۔ پھر کہا گیا: ان کا یہ نام 'ناصرہ' نامی ایک گاؤں کی نسبت سے پڑا جہاں عیسیٰ علیہ السلام قیام فرمایا کرتے تھے، چنانچہ آپ کی نسبت اس گاؤں کی طرف کی گئی اور کہا گیا: عیسیٰ ناصری (٥)، پھر جب آپ کے ساتھیوں کی نسبت آپ کی طرف کی گئی تو انہیں 'نصاریٰ' کہا گیا، یہ قول ابن عباس اور قتادہ کا ہے (٦)۔ اور جوہری نے کہا: نصران شام کا ایک گاؤں ہے جس کی طرف نصاریٰ منسوب ہیں، اور اسے ناصرہ بھی کہا جاتا ہے (٧)۔ اور ایک قول یہ ہے کہ ان کا یہ نام ایک دوسرے کی مدد (نصرت) کرنے کی وجہ سے پڑا (٨)، شاعر نے کہا: جب میں نے نبطیوں کو مددگار (انصار) پایا، تو میں نے اپنے تہبند کو گھٹنوں تک سمیٹ لیا میں ان کے لیے نصاریٰ میں سے ایک پڑوسی تھا (٩) اور کہا گیا: ان کا یہ نام اس فرمان کی وجہ سے پڑا (١٠): ﴿کون ہیں اللہ کی راہ میں میرے مددگار؟ حواریوں نے کہا: ہم اللہ کے مددگار ہیں﴾ [الصف : ١٤] (١١)۔

حواشی: (١) (م) میں: دو یاء کے ساتھ (٢) اسے احمد (٧١٨١)، بخاری (١٣٥٨) اور مسلم (٢٦٥٨) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور (ز) میں اس کے بعد یہ عبارت ہے: یعنی اسے (اسی طرح) یہودی یا نصرانی بنا دیتے ہیں۔ (٣) آپ کا قول: "والذی نفسی بیدہ"، (ز) سے ماخوذ ہے۔ (٤) اسے احمد (٨٢٠٣) اور مسلم (١٥٣) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٥) نسخوں میں 'الناصر' ہے، اور (م) اور مصادر سے جو ثابت ہے وہ درج کیا گیا ہے۔ (٦) تفسیر طبری ٢/ ٣٤، اور النکت والعیون ١/ ١٣٢۔ (٧) الصحاح: (نصر)۔ (٨) النکت والعیون ١/ ١٣٢۔ (٩) تفسیر طبری ٢/ ٣٣، معانی القرآن للفراء ١/ ٤٤، امالی ابن الشجری ١/ ١١٨ اور ٢/ ١٤٥، اور النکت والعیون ١/ ١٣٢، اور ہمیں اس کے قائل کا علم نہیں ہو سکا۔ (١٠) (ز) میں: عیسیٰ علیہ السلام کے قول کی وجہ سے، اور (ظ) میں: اللہ تعالیٰ کے قول کی وجہ سے۔ (١١) النکت والعیون ١/ ١٣٢۔

Page: 161

Surah Al-Baqarah: Verse 62

Fourth point: The Almighty's saying: {and the Sabians} is the plural of Sabian (Sābiʾ), and it was said: Sāb, and for that reason they differed in its glottalization (Hamza). The majority glottalized it except for Nafi' (1). Whoever glottalized it made it from "Saba'at al-Nujum" (the stars appeared): when they rose, and "Saba'at thaniyyat al-ghulam" (the boy's incisor appeared): when it came out. Whoever did not glottalize it made it from "Saba yasbu": when he inclined. So a Sabian linguistically is: one who departs and inclines from one religion to another. For this reason, the Arabs used to say to one who accepted Islam: "He has departed (Sabā)." Thus, the Sabians have departed from the religion of the People of the Book (2).

Fifth point: There is no dispute that the Jews and Christians are the People of the Book, and because of their Book, marrying their women and eating their food was permitted, as will be explained in Al-Ma'idah (3), and imposing the Jizya (tribute) on them, as will come in Surah Bara'ah (4), if God wills.

Opinions differed regarding the Sabians. Al-Suddi said: They are a group from the People of the Book, and Ishaq ibn Rahawayh said the same. Ibn al-Mundhir said: Ishaq said: There is no harm in the slaughtered meat of the Sabians, because they are a group from the People of the Book. Abu Hanifa said: There is no harm in their slaughtered meat and marrying their women. Al-Khalil said: They are a people whose religion resembles the religion of the Christians, except that their Qibla (direction of prayer) is towards the southern wind; they claim to be on the religion of Noah, peace be upon him. Mujahid, Al-Hasan, and Ibn Abi Najih (5) said: They are a people whose religion is a mixture of Judaism and Zoroastrianism (6); their slaughtered meat is not to be eaten. Ibn Abbas: And their women are not to be married. Al-Hasan and Qatada also said: They are a people who worship angels, pray towards the Qibla, read the Psalms (Zabur), and pray the five prayers. Ziyad ibn Abi Sufyan (7) saw them and wanted to waive the Jizya for them until (8) he learned that they worship angels (9).

Footnotes: (1) Kitab al-Sab'a p. 157, Al-Hujjah by al-Farisi 2/94, and Al-Taysir by al-Dani p. 75. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/157. (3) Regarding the interpretation of the Almighty's saying: {The food of those who were given the Scripture is lawful for you} [Verse: 5]. (4) Regarding the saying of the Almighty: {until they pay the jizya} [Verse: 29]. (5) Abu Yasar al-Thaqafi al-Makki, the commentator, was one of the people closest to Mujahid, died in (131 AH). As-Siyar 6/125. (6) In some copies: "Al-Majus"

(Magians), and what is confirmed is from (M) and other sources. (7) Abu al-Mughira, who is Ziyad ibn Ubayd al-Thaqafi, Muawiya claimed him as his brother. He is the brother of Abu Bakra al-Thaqafi, the companion, from his mother's side. Born in the year of Hijra, converted to Islam during the time of al-Siddiq, and died in (53 AH). As-Siyar 3/494. (8) In (M): "Heen" (when), which is an error. (9) Tafsir al-Tabari 2/35-37, Al-Nukat wa al-'Uyun 1/133, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/157.

पृष्ठ: 161

सूरह अल-बकरा: आयत 62

चौथा बिंदु: सर्वशक्तिमान का कथन: {और साबिईन} 'साबि' का बहुवचन है, और कहा गया है: 'साब', और इसी कारण इसके हमज़ा (hamza) के उच्चारण में मतभेद है। जुम्हुर (बहुसंख्यक) ने इसका हमज़ा पढ़ा है, सिवाय नाफी के(1)। जिसने इसे हमज़ा के साथ पढ़ा, उसने इसे "सबा-अत अल-नुजूम" (तारों का निकलना) से लिया: जब वे उदय होते हैं, और "सबा-अत थनिय्यत अल-गुलाम" (लड़के के दांत का निकलना): जब वह निकलता है। और जिसने हमज़ा नहीं पढ़ा, उसने इसे "सबा यसबू" से लिया: जब वह झुक गया। तो भाषाई रूप से साबि वह है: जो एक धर्म को छोड़ कर दूसरे की ओर झुक जाए। इसी कारण अरब लोग इस्लाम स्वीकार करने वाले से कहते थे: "वह सबा (फिर गया) है।" अतः साबि लोग किताब वालों (अहले किताब) के धर्म से बाहर निकल गए थे (2)।

पांचवां बिंदु: इस बारे में कोई विवाद नहीं है कि यहूदी और ईसाई किताब वाले (अहले किताब) हैं और उनकी किताब के कारण उनकी महिलाओं से विवाह करना और उनका भोजन खाना जायज़ है, जैसा कि अल-मायदा (3) में स्पष्ट किया जाएगा, और उन पर जिज़्या लगाना, जैसा कि सूरह बरात (4) में आएगा, इंशा अल्लाह।

साबिईन के बारे में मतभेद है। अल-सुद्दी ने कहा: वे किताब वालों का एक समूह हैं, और इशाक बिन राहवेह ने भी यही कहा। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: इशाक ने कहा: साबिईन के ज़िब्ह किए हुए (मांस) में कोई हर्ज नहीं है, क्योंकि वे किताब वालों का एक संप्रदाय हैं। अबू हनीफा ने कहा: उनके ज़िब्ह किए हुए और उनकी महिलाओं से निकाह में कोई हर्ज नहीं है। अल-खलील ने कहा: वे ऐसे लोग हैं जिनका धर्म ईसाइयों के धर्म जैसा है, सिवाय इसके कि उनका क़िबला दक्षिणी हवा के रुख की ओर है; वे दावा करते हैं कि वे नूह (अलैहिस्सलाम) के धर्म पर हैं। मुजाहिद, अल-हसन और इब्न अबी नजीह (5) ने कहा: वे ऐसे लोग हैं जिनका धर्म यहूदी धर्म और मजूसी (पारसी) धर्म का मिश्रण है (6); उनका ज़िब्ह किया हुआ नहीं खाया जाएगा। इब्न अब्बास: और उनकी महिलाओं से निकाह नहीं किया जाएगा। अल-हसन और क़तादा ने भी कहा: वे ऐसे लोग हैं जो फरिश्तों की पूजा करते हैं, क़िबला की ओर प्रार्थना करते हैं, ज़बूर पढ़ते हैं, और पाँचों नमाज़ें पढ़ते हैं। ज़ियाद बिन अबी सुफ़यान (7) ने उन्हें देखा और उनसे जिज़्या हटाना चाहा जब तक (8) कि उन्हें पता चला कि वे फरिश्तों की पूजा करते हैं (9)।

पाद-टिप्पणियाँ: (1) किताब अल-सब'अ पृ. 157, अल-हुज्जह अल-फ़ारसी 2/94, और अल-तयसीर अल-दानी पृ. 75। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/157। (3) सर्वशक्तिमान के कथन की व्याख्या में: {और उनका भोजन जिन्हें किताब दी गई है, तुम्हारे लिए हलाल है} [आयत: 5]। (4) सर्वशक्तिमान के कथन के पास: {जब तक कि वे जिज़्या न दें} [आयत: 29]। (5) अबू यसार अल-थक़फ़ी अल-मक्की मुफस्सिर, मुजाहिद के सबसे करीबी लोगों में से थे, मृत्यु (131 हिजरी) में हुई। अस-सियार 6/125। (6) प्रतियों में: "अल-मजूसी", और (म) और अन्य स्रोतों से प्रमाणित यही है। (7) अबू अल-मुगीरा, जो ज़ियाद बिन उबैद अल-थक़फ़ी हैं, मुआविया ने उन्हें अपना भाई घोषित किया था। वे अपनी माँ की ओर से सहाबी अबू बकरा अल-थक़फ़ी के भाई हैं। हिजरत के वर्ष पैदा हुए, सिद्दीक के समय में इस्लाम स्वीकार किया, और (53 हिजरी) में मृत्यु हुई। अस-सियार 3/494। (8) (म) में: "हीन" (जब), जो एक त्रुटि है। (9) तफ़्सीर अल-तबरी 2/35-37, अल-नुकात वल-'उयून 1/133, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/157।

صفحہ: ١٦١

سورة البقرہ: آیت ٦٢

چوتھا نکتہ: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَالصَّابِئِينَ﴾ صابئ کی جمع ہے، اور کہا گیا ہے: صاب، اسی وجہ سے اس کے ہمزہ کے بارے میں اختلاف کیا گیا ہے۔ جمہور نے اسے ہمزہ کے ساتھ پڑھا ہے سوائے نافع کے(١)۔ جس نے اسے ہمزہ کے ساتھ پڑھا اس نے اسے "صَبَأَتِ النُّجوم" سے لیا ہے: جب وہ طلوع ہوں، اور "صَبَأَتْ ثَنِيَّةُ الغُلام": جب لڑکے کا دانت نکل آئے۔ اور جس نے اسے بغیر ہمزہ کے پڑھا اس نے اسے "صَبَا يَصبو" سے لیا ہے: جب وہ مائل ہوا۔ پس لغوی اعتبار سے صابئ وہ ہے: جو ایک دین سے نکل کر دوسرے دین کی طرف مائل ہو جائے۔ اسی لیے اہل عرب اسلام قبول کرنے والے کے بارے میں کہتے تھے: وہ صبی (پھر گیا) ہے۔ پس صابئین اہل کتاب کے دین سے نکل چکے تھے(٢)۔

پانچواں نکتہ: اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ یہودی اور نصرانی اہل کتاب ہیں اور ان کی کتاب کی وجہ سے ان کی عورتوں سے نکاح اور ان کا کھانا کھانا جائز ہے، جیسا کہ سورۃ المائدہ (٣) میں اس کا بیان آئے گا، اور ان پر جزیہ لگانا، جیسا کہ سورۃ براۃ (٤) میں آئے گا، ان شاء اللہ۔

صابئین کے بارے میں اختلاف پایا جاتا ہے، پس السدی نے کہا: وہ اہل کتاب کا ایک گروہ ہیں، اور یہی بات اسحاق بن راہویہ نے کہی۔ ابن المنذر نے کہا: اسحاق نے کہا: صابئین کے ذبیحہ میں کوئی حرج نہیں کیونکہ وہ اہل کتاب کا ایک فرقہ ہیں۔ امام ابو حنیفہ نے فرمایا: ان کے ذبیحوں اور ان کی عورتوں سے نکاح میں کوئی حرج نہیں۔ الخلیل نے کہا: وہ ایک ایسی قوم ہے جس کا دین نصاریٰ کے دین سے مشابہ ہے، سوائے اس کے کہ ان کا قبلہ جنوبی ہوا کے رخ کی طرف ہے، وہ دعویٰ کرتے ہیں کہ وہ نوح علیہ السلام کے دین پر ہیں۔ مجاہد، حسن اور ابن ابی نجیح (٥) نے کہا: وہ

ایسی قوم ہیں جن کا دین یہودیت اور مجوسیت (پارسیوں) کے درمیان مرکب ہے (٦)، ان کا ذبیحہ نہیں کھایا جائے گا۔ ابن عباس: اور نہ ہی ان کی عورتوں سے نکاح کیا جائے گا۔ حسن اور قتادہ نے یہ بھی کہا ہے: وہ ایسی قوم ہیں جو فرشتوں کی عبادت کرتے ہیں، قبلہ کی طرف رخ کر کے نماز پڑھتے ہیں، زبور پڑھتے ہیں اور پانچوں نمازیں ادا کرتے ہیں۔ انہیں زیاد بن ابی سفیان (٧) نے دیکھا تو ان سے جزیہ ہٹانا چاہا یہاں تک کہ (٨) اسے معلوم ہوا کہ وہ فرشتوں کی پوجا کرتے ہیں(٩)۔

حواشی: (١) کتاب السبعۃ ص ١٥٧، والحجۃ للفارسی ٩٤/٢، والتیسیر للدانی ص ٧٥۔ (٢) المحرر الوجیز ١٥٧/١۔ (٣) اللہ تعالیٰ کے قول ﴿وَطَعَامُ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ حِلٌّ لَّكُمْ﴾ کی تفسیر کے پاس [آیت: ٥]۔ (٤) اللہ تعالیٰ کے قول ﴿حَتَّى يُعْطُوا الْجِزْيَةَ﴾ کے پاس [آیت: ٢٩]۔ (٥) ابو یسار الثقفی المکی مفسر، مجاہد کے خاص ترین شاگردوں میں سے تھے، سنہ (١٣١ھ) میں وفات پائی۔ السیر ١٢٥/٦۔ (٦) نسخوں میں ہے: "والمجوس"، اور جو ثابت ہے وہ (م) اور مصادر سے ہے۔ (٧) ابو المغیرہ، جو زیاد بن عبید الثقفی ہیں، معاویہ نے انہیں اپنا بھائی قرار دے کر ساتھ ملایا تھا۔ وہ صحابی ابو بکرہ الثقفی کے مادری بھائی ہیں۔ ہجرت کے سال پیدا ہوئے، زمانہ صدیقی میں اسلام لائے، اور سنہ (١٣١ھ) میں وفات پائی۔ السیر ٤٩٤/٣۔ (٨) (م) میں ہے: "حین"، جو کہ غلط ہے۔ (٩) تفسیر الطبری ٢/ ٣٥-٣٧، والنکت والعیون ١٣٣/١، والمحرر الوجیز ١٥٧/١۔

Page 162 Surah Al-Baqarah: Verse 62

What has been gathered from their doctrine - as mentioned by some of our scholars - is that they are monotheists, yet believe in the influence of stars and that they are active agents. For this reason, Abu Sa'id al-Istakhri (1) issued a fatwa to al-Qadir bi-Allah (2) declaring them disbelievers when he was asked about them.

Sixth: His Almighty's saying {whoever believes} means: those who believed. "Man" (whoever) in His saying: "whoever believes" is in the accusative position as a substitute for "those who." The "fa" in His saying: "fa-lahum" (then for them) is included because of the ambiguity in "man". And "la-hum ajruhum" (for them is their reward) is a subject (3) and predicate in the position of the predicate of "Inna". It is also valid for "man" to be in the nominative position as a subject, carrying the meaning of a condition. "Amana" (believes) is in the jussive position of the condition, and "fa" is the result. "La-hum ajruhum" is the predicate of "man," and the entire sentence is the predicate of "Inna," while the referent to "those who" is omitted, estimated as: whoever among them believes in Allah. Faith in Allah and the Last Day includes faith in the messengers, the books, and the resurrection (4).

Seventh: If someone asks: Why was the plural pronoun used in His saying: "for them is their reward," while "amana" (believed) is a singular form and not plural? It would have been consistent if He said: "for him is his reward." The answer is that "man" can refer to singular, dual, and plural. Therefore, it is permissible for the pronoun to return as singular, dual, or plural. Allah the Almighty said: {And among them are those who listen to you} [Yunus: 42] according to the meaning. And He said: {And among them are those who listen to you} [Al-An'am: 25] according to the literal word. The poet said: Stop by Salma for me, if you two happen to pass by, And tell her: Turn back to those who stayed behind (5)

Footnotes: (1) Al-Hasan bin Ahmad bin Yazid al-Shafi'i, a jurist of Iraq and companion of Ibn Surayj. He has useful works, including the book "Adab al-Qada" (Etiquette of Judges). He died in the year (328 AH). Al-Siyar 15/250. (2) He is the Caliph Abu al-Abbas Ahmad bin Ishaq al-Abbasi. He was religious, knowledgeable, and dignified, one of the prominent Caliphs. He died in the year (422 AH). Al-Siyar 15/127. (3) In (d) and (z): "mubtada'" (subject). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158. (5) The verse is by Imru' al-Qays, found in his Diwan p. 324, and Tafsir al-Tabari 2/149. Professor Mahmoud Shakir, may Allah have mercy on him, said: His saying: "for me" (about you two), is extra in the speech. Arabs say: "go from you" and "pass from you," meaning: proceed

and cross, "from you" has no independent meaning... and his saying: "happened to pass by," from their saying: a man "arada" (happened to pass) when he comes to al-Arud, which is Mecca and Medina and their surroundings.

पृष्ठ १६२ सूरा अल-बकरा: आयत ६२

उनके सिद्धांत से जो प्राप्त हुआ है - जैसा कि हमारे कुछ विद्वानों द्वारा उल्लेख किया गया है - वह यह है कि वे एकेश्वरवादी हैं, फिर भी सितारों के प्रभाव और उनके सक्रिय होने में विश्वास करते हैं। इसी कारण से, अबू सईद अल-इस्तखरी (१) ने अल-कादिर बिल-अल्लाह (२) को उनके बारे में पूछे जाने पर उन्हें काफ़िर (अविश्वासी) घोषित करने का फतवा दिया था।

छठी: अल्लाह तआला का कथन {जिसने ईमान लाया} यानी: जिसने विश्वास किया। और "मन" (जिसने) उनके कथन में: "जिसने ईमान लाया" उन लोगों (अल-ज़ीन) के बदले (बदल) के रूप में कर्म कारक (नसब) की स्थिति में है। और "फ़-लहुम" (तो उनके लिए) में "फ़ा" "मन" में मौजूद अस्पष्टता के कारण आया है। और "लहुम अज्रहुम" (उनके लिए उनका प्रतिफल है) एक कर्ता (मुब्तदा) (३) और विधेय (ख़बर) है जो "इन्ना" के विधेय के स्थान पर है। और यह भी उचित है कि "मन" कर्ता के रूप में प्रथमा विभक्ति (रफ़ा) की स्थिति में हो, और इसका अर्थ शर्त (Condition) हो। "आमन" (ईमान लाया) शर्त की स्थिति में है, और "फ़ा" उत्तर (जवाब) है। "लहुम अज्रहुम" "मन" का विधेय है, और पूरा वाक्य "इन्ना" का विधेय है, जबकि "अल-ज़ीन" का संदर्भ लुप्त है, जिसका अनुमान है: उनमें से जो अल्लाह पर ईमान लाए। अल्लाह और परलोक के दिन पर ईमान लाने में रसूलों, किताबों और पुनरुत्थान पर ईमान लाना शामिल है (४)।

सातवीं: यदि कोई कहे: अल्लाह तआला के कथन "उनके लिए उनका प्रतिफल है" में बहुवचन सर्वनाम का उपयोग क्यों किया गया, जबकि "आमन" (ईमान लाया) एकवचन शब्द है न कि बहुवचन? यह तब सही होता जब वह कहते: "उसके लिए उसका प्रतिफल है"? तो उत्तर यह है कि "मन" एकवचन, द्विवचन और बहुवचन तीनों के लिए प्रयुक्त होता है, इसलिए सर्वनाम का एकवचन, द्विवचन या बहुवचन के रूप में वापस आना जायज़ है। अल्लाह तआला ने कहा: {और उनमें से कुछ ऐसे हैं जो आपकी ओर कान लगाते हैं} [यूनुस: ४२] अर्थ के आधार पर। और कहा: {और उनमें से कुछ ऐसे हैं जो आपकी ओर कान लगाता है} [अल-अनआम: २५] शब्द के आधार पर। और कवि ने कहा: तुम दोनों मेरी ओर से सलमा के पास रुकना, यदि तुम दोनों वहां से गुजरो, और उससे कहना: पीछे रह जाने वालों की ओर मुड़ो (५)

पाद-टिप्पणियाँ: (१) अल-हसन बिन अहमद बिन यज़ीद अल-शाफ़ई, इराक के न्यायविद और इब्न सुरैज के साथी। उनकी उपयोगी रचनाएं हैं, जिनमें "अदब अल-क़ज़ा" (न्यायाधीशों के शिष्टाचार)

पुस्तक शामिल है। उनकी मृत्यु (३२८ हिजरी) में हुई। अल-सियार १५/२५०। (२) वह खलीफा अबू अल-अब्बास अहमद बिन इसहाक अल-अब्बासी हैं। वह धार्मिक, विद्वान और गरिमापूर्ण थे, प्रमुख खलीफाओं में से एक थे। उनकी मृत्यु (४२२ हिजरी) में हुई। अल-सियार १५/१२७। (३) (द) और (ज़) में: कर्ता (मूबतदा)। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५८। (५) यह शेर इम्रउल क़ैस का है, जो उनके दीवान पृ. ३२४ और तफ़सीर अल-तबरी २/१४९ में है। प्रोफेसर महमूद शाकिर (रह.) ने कहा: उनका कहना: "अंकुमा" (तुम दोनों से), बातचीत में अतिरिक्त है, और अरब कहते हैं: "सिर अन्का" और "इन्फुज़ अन्का", यानी: आगे बढ़ो और पार करो, "अन्का" का कोई विशेष अर्थ नहीं है... और उनका कहना: "अरज़तुमा", उनके इस कथन से है: जब कोई व्यक्ति "अरज़" करता है यानी अल-अरूज़ में आता है, जो मक्का और मदीना और उनके आसपास का क्षेत्र है।

صفحہ ۱۶۲ سورۃ البقرہ: آیت ۶۲

ان کے مذہب سے جو کچھ حاصل ہوا ہے - جیسا کہ ہمارے بعض علماء نے ذکر کیا ہے - یہ ہے کہ وہ موحد (اللہ کو ایک ماننے والے) ہیں، لیکن ستاروں کے اثر کے قائل ہیں اور یہ کہ وہ (ستارے) اثر انداز ہوتے ہیں۔ اسی لیے ابو سعید الاصطخری (۱) نے القادر باللہ (۲) کو ان کے کفر کا فتویٰ دیا تھا جب اس نے ان کے بارے میں دریافت کیا تھا۔

چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا قول ﴿مَنْ آمَنَ﴾ یعنی: جس نے تصدیق کی۔ اور قول "مَن آمَنَ" میں "مَنْ" ان لوگوں (الذین) کے بدل کے طور پر محلِ نصب میں ہے۔ اور قول "فلهم" میں "فاء" اس ابہام کی وجہ سے داخل ہوئی ہے جو لفظ "مَنْ" میں پایا جاتا ہے۔ اور "لَهُمْ أَجْرُهُمْ" مبتدا (۳) اور خبر ہے جو "اِنَّ" کی خبر کے محل میں ہے۔ اور یہ بھی بہتر ہے کہ "مَنْ" کو مبتدا ہونے کی وجہ سے محلِ رفع میں مانا جائے، اور اس کے معنی شرط کے ہوں۔ اور "آمن" شرط کے مقام پر جزم میں ہے، اور "فاء" جواب ہے۔ اور "لهم أجرهم" لفظ "مَنْ" کی خبر ہے، اور یہ پورا جملہ "اِنَّ" کی خبر ہے، جبکہ "الذین" کی طرف لوٹنے والا ضمیر محذوف ہے، جس کی تقدیر یہ ہے: ان میں سے جو اللہ پر ایمان لائے۔ اللہ اور یومِ آخرت پر ایمان لانے میں رسولوں، کتابوں اور مرنے کے بعد دوبارہ جی اٹھنے پر ایمان لانا بھی شامل ہے (۴)۔

ساتویں بات: اگر کوئی کہنے والا کہے کہ اللہ تعالیٰ کے قول "لَهُمْ أَجْرُهُمْ" (ان کے لیے ان کا اجر ہے) میں ضمیر جمع کیوں لائی گئی ہے، جبکہ لفظ "آمن" مفرد ہے جمع نہیں ہے، حالانکہ بات اس وقت درست ہوتی جب یوں کہا جاتا: "له أجره" (اس کے لیے اس کا اجر ہے)؟ تو جواب یہ ہے کہ لفظ "مَنْ" واحد، تثنیہ اور جمع سب پر بولا جاتا ہے، اس لیے ضمیر کا واحد، تثنیہ یا جمع کی صورت میں اس کی طرف لوٹنا جائز ہے۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَمِنْهُم مَّن يَسْتَمِعُونَ إِلَيْكَ﴾ [یونس:

۴۲] یہاں معنی کا لحاظ کرتے ہوئے جمع لایا گیا۔ اور فرمایا: ﴿وَمِنْهُم مَّن يَسْتَمِعُ إِلَيْكَ﴾ [الانعام: ۲۵] یہاں لفظ کا لحاظ کرتے ہوئے واحد لایا گیا۔ اور شاعر نے کہا: تم دونوں میری طرف سے سلمیٰ کے پاس ٹھہرنا اگر تم دونوں کا وہاں سے گزر ہو، اور اس سے کہنا کہ پیچھے رہ جانے والوں کی طرف مڑ کر دیکھو (۵)۔

حواشی: (۱) الحسن بن احمد بن یزید الشافعی، عراق کے فقیہ اور ابن سریج کے ساتھی، ان کی مفید تصانیف ہیں، جن میں کتاب "ادب القضاء" بھی شامل ہے، وفات ۳۲۸ھ السیر ۱۵/۲۵۰۔ (۲) یہ خلیفہ ابو العباس احمد بن اسحاق العباسی ہیں، دیندار، صاحبِ علم اور باوقار تھے، بلند مرتبہ خلفاء میں سے تھے، وفات ۴۲۲ھ السیر ۱۵/۱۲۷۔ (۳) نسخہ (د) اور (ظ) میں: مبتدأ ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۱۵۸۔ (۵) یہ شعر امرؤ القیس کا ہے، جو ان کے دیوان ص ۳۲۴ اور تفسیر طبری ۲/۱۴۹ میں موجود ہے۔ پروفیسر محمود شاکر رحمہ اللہ نے فرمایا: ان کا قول: "عنکما"، کلام میں زائد ہے، اور اہل عرب کہتے ہیں: "سر عنك" اور "انفذ عنك"، یعنی: آگے بڑھو اور گزر جاؤ، یہاں "عنك" کے کوئی معنی نہیں... اور ان کا قول: "عرضتما"، ان کے اس قول سے ماخوذ ہے: جب کوئی شخص "عروض" یعنی مکہ اور مدینہ اور ان کے گرد و نواح میں آئے۔

And Al-Farazdaq said: Come, if you make a covenant with me not to betray me ... let us be like those two, O wolf, who accompany each other. (1)

It followed the meaning (concordatio ad sensum). If it had followed the literal wording (grammatical form), he would have said: 'yas-tahib' (singular), and it would be left behind. And Allah Almighty said: "And whoever obeys Allah and His Messenger, He will admit him to gardens" [An-Nisa: 13]. Here it followed the literal wording. Then He said: "abiding [plural] therein," following the meaning. If he had observed (2) the literal wording, He would have said: "abiding [singular] therein." If what follows "man" (whoever) follows the literal wording, it is permissible to differ afterwards according to the meaning, as in this verse. However, if what follows it follows the meaning, it is not permissible to differ afterwards according to the literal wording, because ambiguity would enter the speech (3). This discussion has already passed regarding Allah's saying: "no fear shall be upon them, nor shall they grieve" [Al-Baqarah: 38] (4). Praise be to Allah.

Eighth: It was narrated from Ibn Abbas that His saying: "Indeed, those who believed and those who were Jews..." the verse, is abrogated by His saying: "And whoever desires other than Islam as religion - never will it be accepted from him" [Al-Imran: 85] the verse (5). Others said: It is not abrogated. It refers to those among them who remained steadfast in their faith from those who believed in the Prophet, peace be upon him (6).

Allah's saying: {And [recall] when We took your covenant and raised over you the mount, [saying], "Take what We have given you with determination and remember what is in it that you may become righteous." * Then you turned away after that. Had it not been for the favor of Allah upon you and His mercy, you would have been among the losers.}

Allah's saying (7): {And [recall] when We took your covenant and raised over you the mount,} this verse explains the meaning of...

---

(1) Diwan 2/329, and Al-Kitab 2/416. Al-Mubarrad mentioned it in Al-Muqtadab 2/295, and Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/158 with the narration: 'ta'ish' (thrive) instead of 'ta'al' (come). (2) In manuscript (ظ): "If it had followed the wording." (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158. (4) 1/488 - 489. (5) Narrated by Al-Tabari in Al-Tafsir 2/4645. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/156. Makki ibn Abi Talib said in Al-Idah li-Nasikh al-Quran

wa-Mansukhih p. 123: Most scholars hold that it is firm (not abrogated), and it was revealed regarding those of them who lived before the mission of the Prophet (7) ﷺ.
In manuscript (ز): In it are five issues: The first: Allah's saying.

और अल-फ़राज़दक़ ने कहा: आओ, यदि तुम मुझसे वादा करो कि तुम मुझे धोखा नहीं दोगे... तो हम उन दो लोगों की तरह हो जाएँ हे भेड़िये, जो एक-दूसरे का साथ देते हैं। (1)

यहाँ अर्थ (भाव) का पालन किया गया है। यदि शब्द का अक्षरश: पालन किया जाता, तो वे कहते: 'यस-तहिब' (एकवचन), और बात अधूरी रह जाती। और अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {और जो कोई अल्लाह और उसके रसूल की आज्ञा का पालन करेगा, वह उसे ऐसे बाग़ों में प्रवेश कराएगा} [अन-निसा: 13]। यहाँ शब्द का अक्षरश: पालन किया गया है। फिर उन्होंने कहा: "हमेशा रहने वाले [बहुवचन] उनमें", तो यहाँ अर्थ का पालन किया गया। यदि उन्होंने शब्द (2) का अक्षरश: पालन किया होता, तो वे कहते: "हमेशा रहने वाला [एकवचन] उनमें"। यदि "मन्" (जो कोई) के बाद आने वाला शब्द अक्षरश: रूप का पालन करता है, तो बाद में अर्थ के अनुसार परिवर्तन करना जायज़ है जैसा कि इस आयत में है। लेकिन यदि इसके बाद आने वाला शब्द अर्थ का पालन करता है, तो बाद में अक्षरश: रूप के अनुसार परिवर्तन करना जायज़ नहीं है, क्योंकि इससे वाणी में अस्पष्टता आ जाएगी (3)। अल्लाह के इस कथन के संबंध में चर्चा पहले हो चुकी है: {न उन पर कोई डर होगा और न वे दुखी होंगे} [अल-बक़रह: 38] (4)। और अल्लाह की प्रशंसा हो।

आठवाँ: इब्न अब्बास से रिवायत है कि उनका यह कहना: {निश्चित रूप से जो लोग ईमान लाए और जो यहूदी हुए...} आयत, अल्लाह के इस कथन द्वारा मंसूख़ (निरस्त) है: {और जो कोई इस्लाम के अलावा किसी अन्य धर्म को चाहेगा, तो वह उससे कभी स्वीकार नहीं किया जाएगा} [आल-इमरान: 85] आयत (5)। दूसरों ने कहा: यह मंसूख़ नहीं है। यह उन लोगों के बारे में है जो पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर ईमान लाने वालों में से अपने ईमान पर अडिग रहे (6)।

अल्लाह का कथन: {और जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम्हारे ऊपर तूर (पहाड़) को ऊँचा किया, (और कहा): 'जो हमने तुम्हें दिया है उसे मज़बूती से पकड़ो और जो कुछ उसमें है उसे याद रखो, ताकि तुम डरने वाले (परहेज़गार) बन जाओ।' * फिर तुम इसके बाद फिर गए। तो यदि तुम पर अल्लाह का अनुग्रह और उसकी दया न होती, तो तुम अवश्य ही घाटा उठाने वालों में से होते।}

अल्लाह का कथन (7): {और जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम्हारे ऊपर तूर को ऊँचा किया,} यह आयत इसके अर्थ की व्याख्या करती है...

(1) दीवान 2/329, और अल-किताब 2/416। अल-मुबर्रद ने अल-मुक़्तदब 2/295 में इसका उल्लेख किया है, और इब्न अतिय्याह ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/158 में इस पाठ के साथ: 'त'ईश' (जियो), के स्थान पर: 'त'आल' (आओ)। (2) (ظ) में: यदि शब्द का अक्षरश: पालन किया गया होता। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/158। (4) 1/488 - 489। (5) अल-तबरी ने तफ़सीर 2/4645 में उद्धृत किया है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/156। मक्की बिन अबी तालिब ने 'अल-ईदाह ली-नासिख़ अल-क़ुरआन व-मंसूख़िह' पृ. 123 में कहा: अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि यह 'मुहकम' (सुदृढ़/अपरिवर्तित) है, और यह उन लोगों के बारे में उतरी जो नबी ﷺ के भेजे जाने से पहले उनमें से थे। (7) (ز) में: इसमें पाँच विषय हैं: पहला: अल्लाह का कथन।

سورة البقرہ: آیت 63 اور 64 | 163

اور فرزدق نے کہا: آؤ، اگر تم مجھ سے عہد کرو کہ تم مجھ سے خیانت نہیں کرو گے ... تو ہم ان دو کی طرح ہو جائیں اے بھیڑیے جو ایک دوسرے کا ساتھ دیتے ہیں۔ (1)

پس اس کا حمل معنی پر کیا گیا، اور اگر لفظ پر حمل کیا جاتا تو وہ کہتا: 'یصطحب' (واحد)، اور وہ پیچھے رہ جاتا۔ اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَمَن يُطِعِ اللَّهَ وَرَسُولَهُ يُدْخِلْهُ جَنَّاتٍ﴾ [النساء: 13] تو یہاں لفظ پر حمل کیا گیا۔ پھر فرمایا: «خالدین» (جمع) تو معنی پر حمل کیا گیا، اور اگر لفظ کی رعایت (2) کی جاتی تو وہ کہتا: «خالداً فیها» (واحد)۔ اور جب «مَنْ» (جو کوئی) کے بعد لفظ کے مطابق ہو تو جائز ہے کہ بعد میں معنی کے مطابق اس کی مخالفت کی جائے جیسا کہ اس آیت میں ہے۔ اور جب اس کے بعد معنی کے مطابق ہو تو بعد میں لفظ کے مطابق اس کی مخالفت کرنا جائز نہیں، کیونکہ کلام میں التباس (ابہام) پیدا ہو جاتا ہے (3)۔ اور اللہ تعالیٰ کے اس قول کے بارے میں کلام گزر چکا ہے: ﴿فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ﴾ [البقرة: 38] (4)۔ اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں۔

آٹھویں بات: ابن عباس رضی اللہ عنہ سے روایت ہے کہ اللہ کا یہ قول: ﴿إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَادُوا﴾ الخ آیت، اللہ تعالیٰ کے اس قول سے منسوخ ہے: ﴿وَمَن يَبْتَغِ غَيْرَ الْإِسْلَامِ دِينًا فَلَن يُقْبَلَ مِنْهُ﴾ [آل عمران: 85] آیت (5)۔ اور دوسروں نے کہا: یہ منسوخ نہیں ہے۔ بلکہ یہ ان لوگوں کے بارے میں ہے جو نبی کریم ﷺ پر ایمان لانے والے مومنوں میں سے اپنے ایمان پر ثابت قدم رہے (6)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا آتَيْنَاكُم بِقُوَّةٍ وَاذْكُرُوا مَا فِيهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ * ثُمَّ تَوَلَّيْتُم مِّن بَعْدِ ذَٰلِكَ فَلَوْلَا فَضْلُ اللَّهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهُ لَكُنتُم مِّنَ الْخَاسِرِينَ}۔

اللہ تعالیٰ کا قول (7): {وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ} یہ آیت اس کے معنی کی تفسیر کرتی ہے...

---

(1) دیوان 2/329، اور الکتاب 2/416، اور مبرد نے اسے المقتضب 2/295 میں ذکر کیا ہے، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 1/158 میں اس روایت کے ساتھ: 'تعش' (تم زندہ رہو گے)، بجائے: 'تعال' (آؤ)۔ (2) نسخہ (ظ) میں: "اگر لفظ پر حمل کیا گیا ہوتا"۔ (3) المحرر الوجیز 1/158۔ (4) 1/488 - 489۔ (5) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/4645 میں نکالا ہے۔ (6) المحرر الوجیز 1/156۔ اور مکی بن ابی طالب نے 'الایضاح لناسخ القرآن ومنسوخہ' ص 123 میں کہا: اکثر علماء اس پر ہیں کہ یہ آیت محکم ہے، اور یہ ان لوگوں کے بارے میں نازل ہوئی جو نبی ﷺ کی بعثت سے پہلے ان میں سے تھے۔ (7) نسخہ (ز) میں: اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول۔

١٦٤

Surah Al-Baqarah: Verses 63 and 64

His saying, Exalted is He: {And [mention] when We raised the mountain over them as if it were a canopy} [Al-A'raf: 171]. Abu Ubaida said: The meaning: We shook it and extracted it from its place (1). He said: Everything that you uprooted and then threw away, you have "nataqtahu" (plucked/thrown it). And it was said: "nataqnahu": We raised it (2). Ibn al-Arabi said: "Al-Natiq" is the raiser, the spreader, and the one who stretches out. And "a woman natiq and mintaq": one who has many children (3). Al-Qutaybi said: This is taken from the "natq" of the waterskin, which is its shaking until the butter is extracted from it (4). He said: And His saying: {And [mention] when We raised the mountain over them as if it were a canopy} he said: uprooted from its base (5).

There was a difference of opinion regarding "Al-Tur" (the mountain). It was said: Al-Tur is the name of the mountain upon which Allah spoke to Moses, peace be upon him, and on which the Torah was revealed to him, specifically and no other; this was narrated by Ibn Jurayj from Ibn Abbas. Al-Dahhak narrated from him that Al-Tur refers specifically to mountains that produce vegetation, excluding those that do not. Mujahid and Qatadah said: It refers to any mountain, except that Mujahid said: It is a name for every mountain in Syriac, and Abu al-Aliyah also stated this (6).

The discussion on whether non-Arabic individual words occurred in the Quran from other than the speech of the Arabs was previously mentioned in the introduction of the book (7). And praise be to Allah. Al-Bakri claimed that it was named after Tur bin Isma'il, peace be upon him (8). And Allah Almighty knows best.

Statement on the Reason for Raising the Mountain

This is because when Moses, peace be upon him, brought the Tablets containing the Torah from Allah to the Children of Israel, he said to them: Take them and commit to them. They replied: No, unless Allah speaks to us with them just as He spoke to you.

(1) Narrated by al-Tabari in his Tafsir 10/546 and he did not attribute it. (2) Majaz al-Quran by Abu Ubaida 1/232. (3) Ibn Manzur narrated it from him in al-Lisan (ntq). (4) Tafsir Gharib al-Quran by Ibn Qutayba p. 174. (5) Extracted by al-Tabari in the Tafsir 10/544 from Qatadah. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158, and Tafsir al-Tabari 2/48-50. (7) 1/110. (8) Mu'jam ma Ista'jam 3/897, and its author Al-Bakri is: Abdullah bin Abdul Aziz bin Muhammad, Abu Ubaid, a resident of Cordoba, he was a leader in language

and history; among his books are also: Ishtiqaq al-Asma', and Kitab al-Nabat, died in the year (487 AH) Al-Siyar 19/35.

164

सूरह अल-बकरा: आयत 63 और 64

अल्लाह तआला का कथन: {और [याद करो] जब हमने पहाड़ को उनके ऊपर इस तरह उठा लिया जैसे वह सायबान हो} [अल-आराफ: 171]। अबू उबैदा ने कहा: इसका अर्थ है: हमने इसे हिलाया और उसके स्थान से निकाला (1)। उन्होंने कहा: हर वह चीज़ जिसे आपने उखाड़ा और फिर फेंक दिया, तो आपने उसे 'नतक़्तहु' (نَتَقْتَهُ) कर दिया। और यह भी कहा गया: 'नतक़नाहु' (نَتَقْنَاهُ): हमने इसे ऊपर उठाया (2)। इब्न अल-अरबी ने कहा: 'अल-नातिक़' (النَّاتِقُ) उठाने वाला, फैलाने वाला और बिस्तर बिछाने वाला है। और 'एक महिला नातिक़ और मिन्ताक़' (امرأة ناتق ومنتاق): जिसके बहुत सारे बच्चे हों (3)। अल-क़ुतायबी ने कहा: यह मशक (चमड़े का थैला) को हिलाने से लिया गया है, जो कि उसकी वह गति है जब तक कि उससे मक्खन अलग न हो जाए (4)। उन्होंने कहा: और अल्लाह का यह कहना: {और जब हमने पहाड़ को उनके ऊपर इस तरह उठा लिया जैसे वह सायबान हो} उन्होंने कहा: इसे इसकी जड़ से उखाड़ दिया गया (5)।

और 'अल-तूर' के विषय में मतभेद था। कहा गया: 'तूर' उस पहाड़ का नाम है जिस पर अल्लाह ने मूसा (उन पर शांति हो) से बात की थी, और जिस पर तौरात उनके पास नाजिल हुई थी, किसी अन्य पहाड़ के बिना; इसे इब्न जुरैज ने इब्न अब्बास से रिवायत किया है। अल-दहाक ने उनसे रिवायत की कि अल-तूर पहाड़ों में से विशेष रूप से वह है जो उगता है, बिना उसके जो नहीं उगता। मुजाहिद और कतादा ने कहा: वह कोई भी पहाड़ हो सकता है, सिवाय इसके कि मुजाहिद ने कहा: यह सीरियाई भाषा में हर पहाड़ का नाम है, और अबू अल-आलिया ने भी यही कहा (6)।

यह चर्चा कि क्या कुरान में गैर-अरब शब्दों का प्रयोग हुआ है, जो अरबों की भाषा से नहीं हैं, पुस्तक की प्रस्तावना में पहले आ चुकी है (7)। और अल्लाह का शुक्र है। अल-बकरी ने दावा किया कि इसका नाम तूर बिन इस्माइल (उन पर शांति हो) के नाम पर रखा गया था (8)। और अल्लाह सर्वज्ञ है।

पहाड़ (तूर) को उठाने के कारण के बारे में कथन

और वह इसलिए है क्योंकि जब मूसा (उन पर शांति हो) अल्लाह की ओर से तौरात वाली तख्तियों के साथ बनी इसराइल के पास आए, तो उन्होंने उनसे कहा: इन्हें लो और इनका पालन करो। उन्होंने कहा: नहीं, जब तक कि अल्लाह हमसे वैसे ही बात न करे जैसे उसने तुमसे बात की थी।

(1) इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 10/546 में उद्धृत किया है और इसका श्रेय किसी को नहीं दिया। (2) अबू उबैदा द्वारा मजाज़ अल-कुरान 1/232। (3) इब्न मंजूर ने इसे अल-लिसान (ntq) में उनसे उद्धृत किया है। (4) इब्न क़ुतायबा द्वारा तफ़सीर ग़रीब अल-कुरान पृष्ठ 174। (5) इसे अल-तबरी ने तफ़सीर 10/544 में कतादा से निकाला है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/158, और तफ़सीर अल-तबरी 2/48-50। (7) 1/110। (8) मुअजम मा इस्तजाम 3/897, और इसके लेखक अल-बकरी हैं: अब्दुल्ला बिन अब्दुल अजीज बिन मोहम्मद, अबू उबैद, जो कोर्डोबा के निवासी थे, वे भाषा और इतिहास के विशेषज्ञ थे; उनकी अन्य पुस्तकों में शामिल हैं: इश्तिकाक अल-अस्मा और किताब अल-नबात, उनकी मृत्यु वर्ष (487 हिजरी) अल-सियार 19/35 में हुई थी।

١٦٤

سورہ البقرہ: آیات 63 اور 64

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿اور جب ہم نے پہاڑ کو ان کے اوپر اس طرح اٹھایا گویا وہ ایک سائبان ہو﴾ [الاعراف: 171]۔ ابو عبیدہ نے کہا: معنی یہ ہے: ہم نے اسے ہلا کر اس کی جگہ سے نکال دیا (1)۔ انہوں نے کہا: ہر وہ چیز جسے تم نے اکھاڑ کر پھینک دیا، تو تم نے اسے 'نَتَقْتَهُ' (اکھاڑ پھینکا)۔ اور کہا گیا: 'نَتَقْنَاهُ': ہم نے اسے بلند کیا (2)۔ ابن العربی نے کہا: 'الناتق' بلند کرنے والا، پھیلانے والا اور بچھانے والا ہے۔ اور 'امرأة ناتق ومنتاق': كثير الاولاد عورت (3)۔ القتیبی نے کہا: یہ مشکیزہ کو ہلانے سے ماخوذ ہے، جو اس کی وہ حرکت ہے یہاں تک کہ اس سے مکھن الگ ہو جائے (4)۔ انہوں نے کہا: اور اس کا فرمان: ﴿اور جب ہم نے پہاڑ کو ان کے اوپر اس طرح اٹھایا گویا وہ ایک سائبان ہو﴾ انہوں نے کہا: اس کی جڑ سے اکھاڑا ہوا (5)۔

اور 'طور' کے بارے میں اختلاف ہوا؛ کہا گیا: طور اس پہاڑ کا نام ہے جس پر اللہ نے موسیٰ علیہ السلام سے کلام کیا، اور جس پر ان پر تورات نازل ہوئی، کسی اور پہاڑ کے علاوہ؛ اسے ابن جریج نے ابن عباس سے روایت کیا ہے۔ الضحاک نے ان سے روایت کی کہ طور پہاڑوں میں سے وہ ہے جو اگتا ہے، اس کے علاوہ جو نہیں اگتا۔ مجاہد اور قتادہ نے کہا: کوئی بھی پہاڑ تھا، سوائے اس کے کہ مجاہد نے کہا: یہ سریانی زبان میں ہر پہاڑ کا نام ہے، اور ابو العالیہ نے اسے کہا (6)۔

یہ بحث گزر چکی ہے کہ: کیا قرآن میں غیر عربی مفرد الفاظ آئے ہیں جو کلامِ عرب سے نہیں ہیں، کتاب کے مقدمے میں (7)۔ اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں۔ البکری نے دعویٰ کیا کہ اس کا نام طور بن اسماعیل علیہ السلام کے نام پر رکھا گیا (8)۔ اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

القول في سبب رفع الطور (طور کو بلند کرنے کے سبب کے بارے میں قول)

اور وہ اس لیے کہ جب موسیٰ علیہ السلام بنی اسرائیل کے پاس اللہ کی طرف سے وہ تختیاں لے کر آئے جن میں تورات تھی، تو انہوں نے ان سے کہا: انہیں لے لو اور ان کی پابندی کرو۔ انہوں نے کہا: نہیں، جب تک کہ اللہ ہم سے ویسے ہی کلام نہ کرے جیسے اس نے تم سے کلام کیا۔

(1) اسے طبری نے اپنی تفسیر 10/546 میں نقل کیا ہے اور اسے منسوب نہیں کیا۔ (2) ابو عبیدہ کی مجاز القرآن 1/232۔ (3) اسے ان سے ابن منظور نے اللسان (نتق) میں نقل کیا ہے۔ (4) ابن قتیبہ کی تفسیر غریب القرآن ص 174۔ (5) اسے طبری نے تفسیر 10/544 میں قتادہ سے روایت کیا ہے۔ (6) المحرر الوجیز 1/158، اور تفسیر الطبری 2/48-50۔ (7) 1/110۔ (8) معجم ما استعجم 3/897، اور اس کے مصنف البکری ہیں: عبد اللہ بن عبد العزیز بن محمد، ابو عبید، جو قرطبہ کے رہنے والے تھے، وہ زبان اور تاریخ کے امام تھے، ان کی کتابوں میں سے یہ بھی ہیں: اشتقاق الاسماء، اور کتاب النبات، ان کی وفات سن (487 ھ) میں ہوئی، السیر 19/35۔

Page 165 Surah Al-Baqarah: Verses 63 and 64

So they were struck unconscious and then brought back to life. He said to them: "Take it." They said: "No." So Allah commanded the angels, and they uprooted a mountain from the mountains of Palestine, its length being a farsakh by a farsakh, and so was their camp. It was made over them like a canopy (shading cloud). They were surrounded by a sea from behind them and fire from in front of them. It was said to them: "Take it, and you are bound by a covenant not to neglect it, otherwise the mountain will fall upon you." So they prostrated in repentance to Allah and took the Torah with the covenant.

Al-Tabari (1) narrated from some scholars: Had they taken it the first time, there would have been no covenant upon them. Their prostration was on one side because they were watching the mountain out of fear. When Allah had mercy on them, they said: "No prostration is better than a prostration accepted by Allah, through which He had mercy on His servants." So they were ordered to prostrate on one side. Ibn Atiyyah (2) said: What is correct and nothing else is that Allah created faith [in their hearts] at the time of their prostration; it wasn't that they believed (3) unwillingly while their hearts were not at peace with it.

The Almighty's saying: {Take} means: We said: Take, so it (the word "We said") was omitted. {What We have given you}: We bestowed upon you. {With strength} means: with seriousness and effort, as said by Ibn Abbas, Qatadah, and al-Suddi. It is also said: with intention and sincerity. Mujahid said: Strength is acting according to what is in it (4). It is also said: {With strength} means with much study. {And remember what is in it} means: reflect upon it and preserve its commands and warnings, and do not forget it or neglect it (5).

I say: This is the purpose of the books: acting in accordance with them, not just reciting them with the tongue and chanting them (6), for that is a rejection of them, as said by al-Sha'bi and Ibn Uyaynah (7); and their saying will follow under the Almighty's saying: {A party of those who were given the Scripture threw [it away]} [Al-Baqarah: 101].

---

(1) His Tafsir 2/47, and the author quoted it from him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/158. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158, and the speech before it and what is between brackets are from him. (3) In (D): because they. (4) Tafsir Mujahid 1/78, Tafsir Abd al-Razzaq 1/47, Tafsir al-Tabari 2/52, al-Nukat wa al-Uyun 1/134, and al-Muharrar

al-Wajiz 1/159. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/159. (6) In (Z): and beautifying it with voices. (7) Narrated by al-Tabari 6/299, and al-Khatib in Tarikh Baghdad 13/268, and mentioned by al-Marwazi in Ta'zim Qadr al-Salah 2/581.

पृष्ठ १६५ सूरह अल-बक़रह: आयत ६३ और ६४

फिर वे बेहोश हो गए और फिर उन्हें जीवित कर दिया गया। उसने उनसे कहा: "इसे ले लो।" उन्होंने कहा: "नहीं।" तो अल्लाह ने फरिश्तों को आदेश दिया, और उन्होंने फ़िलिस्तीन के पहाड़ों में से एक पहाड़ को जड़ से उखाड़ दिया, जिसकी लंबाई एक फरसाख गुणा एक फरसाख थी, और उनका शिविर भी वैसा ही था। इसे उनके ऊपर एक छतरी (साया करने वाले बादल) की तरह बना दिया गया। उनके पीछे से एक समुद्र और उनके सामने से आग आ गई। उनसे कहा गया: "इसे ले लो, और तुम पर एक वचन है कि तुम इसे उपेक्षित नहीं करोगे, अन्यथा पहाड़ तुम पर गिर जाएगा।" तो उन्होंने अल्लाह के सामने तौबा (पश्चाताप) में सजदा किया और वचन के साथ तौरात को स्वीकार किया।

अल-तबारी (१) ने कुछ विद्वानों से वर्णन किया है: यदि उन्होंने पहली बार इसे ले लिया होता, तो उन पर कोई वचन (अहद) नहीं होता। और उनका सजदा एक तरफ (कनपटी) पर था; क्योंकि वे डर के मारे पहाड़ को देख रहे थे। जब अल्लाह ने उन पर दया की, तो उन्होंने कहा: "कोई भी सजदा उस सजदे से बेहतर नहीं है जिसे अल्लाह स्वीकार कर ले और जिसके माध्यम से उसने अपने बंदों पर दया की हो।" इसलिए उन्हें एक तरफ सजदा करने का आदेश दिया गया। इब्न अतिय्याह (२) ने कहा: जो सही है और उसके अलावा कुछ नहीं है, वह यह है कि अल्लाह ने उनके सजदे के समय [उनके दिलों में] ईमान पैदा किया; ऐसा नहीं था कि उन्होंने मजबूरी में (३) ईमान लाया जबकि उनके दिल इससे संतुष्ट नहीं थे।

अल्लाह तआला का कथन: {पकड़ो / लो} अर्थात: हमने कहा: पकड़ो, तो (शब्द 'हमने कहा') हटा दिया गया। {जो हमने तुम्हें दिया है}: हमने तुम्हें प्रदान किया। {मजबूती के साथ} अर्थात: गंभीरता और प्रयास के साथ, जैसा कि इब्न अब्बास, क़तादाह और अल-सुद्दी ने कहा है। यह भी कहा गया है: नियत (इरादे) और ईमानदारी के साथ। मुजाहिद ने कहा: शक्ति का अर्थ है जो कुछ उसमें है उसके अनुसार कार्य करना (४)। यह भी कहा गया है: मजबूती के साथ: बहुत अधिक अध्ययन के साथ। {और याद रखो जो कुछ उसमें है} अर्थात: उस पर विचार करो और उसके आदेशों और चेतावनियों को याद रखो, और इसे भूलो मत और न ही इसे बर्बाद होने दो (५)।

मैंने कहा: किताबों का यही उद्देश्य है: उनके अनुसार कार्य करना, न कि केवल उन्हें जुबान से पढ़ना और उनका पाठ करना (६), क्योंकि वह उन्हें त्यागना है, जैसा कि अल-शाबी और इब्न उययना (७) ने

कहा है; और उनकी बात अल्लाह तआला के इस कथन के तहत आएगी: {उनमें से एक समूह जिन्हें किताब दी गई थी, उन्होंने [उसे] फेंक दिया} [अल-बक़रह: १०१]।

---

(१) उनकी तफ़्सीर २/४७, और लेखक ने इब्न अतिय्याह के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५८ में उनसे उद्धृत किया है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५८, और उससे पहले की बात और कोष्ठक के बीच की बात उन्हीं की है। (३) (द) में: क्योंकि वे। (४) तफ़्सीर मुजाहिद १/७८, तफ़्सीर अब्द अल-रज्ज़ाक १/४७, तफ़्सीर अल-तबारी २/५२, अल-नुकत वल-उयून १/१३४, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५९। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५९। (६) (ज़ेड) में: और आवाज़ों से सजाना। (७) अल-तबारी ६/२९९ द्वारा वर्णित, और तारीख बगदाद १३/२६८ में अल-खतीब द्वारा, और ताज़ीम क़द्र अल-सलाह २/५८१ में अल-मरवाज़ी द्वारा उल्लेखित।

صفحہ ۱۶۵ سورۃ البقرہ: آیات ۶۳ اور ۶۴

پھر وہ بے ہوش ہو گئے اور پھر انہیں زندہ کر دیا گیا۔ اس نے ان سے کہا: "اسے لو۔" انہوں نے کہا: "نہیں۔" تو اللہ نے فرشتوں کو حکم دیا، اور انہوں نے فلسطین کے پہاڑوں میں سے ایک پہاڑ کو جڑ سے اکھاڑ دیا، جس کی لمبائی ایک فرسخ ضرب ایک فرسخ تھی، اور ایسا ہی ان کا لشکر گاہ تھا۔ اسے ان پر سائبان (بادل) کی طرح بنا دیا گیا۔ ان کے پیچھے سے ایک سمندر اور ان کے سامنے سے آگ لائی گئی۔ ان سے کہا گیا: "اسے لو، اور تم پر عہد ہے کہ تم اسے ضائع نہیں کرو گے، ورنہ پہاڑ تم پر گر جائے گا۔" تو انہوں نے اللہ کے حضور توبہ کرتے ہوئے سجدہ کیا اور عہد کے ساتھ تورات کو لے لیا۔

طبری (۱) نے بعض علماء سے نقل کیا ہے: اگر وہ اسے پہلی بار ہی لے لیتے تو ان پر کوئی عہد نہ ہوتا۔ اور ان کا سجدہ ایک کروٹ پر تھا؛ کیونکہ وہ خوف کے مارے پہاڑ کو دیکھ رہے تھے۔ جب اللہ نے ان پر رحم کیا تو انہوں نے کہا: "کوئی سجدہ اس سجدے سے بہتر نہیں جسے اللہ قبول کرے اور جس کے ذریعے اس نے اپنے بندوں پر رحم کیا۔" چنانچہ انہیں ایک ہی کروٹ پر سجدہ کرنے کا حکم دیا گیا۔ ابن عطیہ (۲) نے کہا: اور جو بات اس کے علاوہ صحیح نہیں ہو سکتی وہ یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے ان کے سجدے کے وقت [ان کے دلوں میں] ایمان پیدا کر دیا تھا؛ ایسا نہیں تھا کہ وہ (۳) ناگواری سے ایمان لائے جبکہ ان کے دل اس پر مطمئن نہ تھے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {خذوا} یعنی: ہم نے کہا: پکڑو، تو (لفظ 'ہم نے کہا') حذف کر دیا گیا۔ {ما آتیناکم}: ہم نے تمہیں عطا کیا۔ {بقوۃ} یعنی: سنجیدگی اور محنت کے ساتھ، یہ قول ابن عباس، قتادہ اور سدی کا ہے۔ اور یہ بھی کہا گیا: نیت اور اخلاص کے ساتھ۔ مجاہد: قوت سے مراد: جو کچھ اس میں ہے اس پر عمل کرنا (۴)۔ اور کہا گیا: بقوۃ: کثرتِ درس کے ساتھ۔ {واذکروا ما فیہ} یعنی: اس

میں غور و فکر کرو اور اس کے احکامات اور وعیدوں کو یاد رکھو، اور اسے بھولو نہیں اور نہ ہی اسے ضائع کرو (۵)۔

میں کہتا ہوں: کتابوں کا یہی اصل مقصد ہے: ان کے تقاضوں کے مطابق عمل کرنا، نہ کہ صرف زبان سے ان کی تلاوت کرنا اور خوش الحانی سے پڑھنا (۶)، کیونکہ یہ ان کو پسِ پشت ڈالنا ہے، جیسا کہ شعبی اور ابن عیینہ (۷) نے کہا ہے؛ اور ان دونوں کا قول اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس آئے گا: {نَبَذَ فَرِيقٌ مِنَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ} [البقرہ: ۱۰۱]۔

---

(۱) ان کی تفسیر ۴۷/۲، اور مصنف نے اسے ان سے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱۵۸/۱ میں نقل کیا ہے۔ (۲) المحرر الوجیز ۱۵۸/۱، اور اس سے پہلے کی گفتگو اور جو بریکٹ میں ہے وہ انہی کی طرف سے ہے۔ (۳) (د) میں: کیونکہ وہ۔ (۴) تفسیر مجاہد ۷۸/۱، تفسیر عبد الرزاق ۴۷/۱، تفسیر طبری ۵۲/۲، النکت والعیون ۱۳۴/۱، اور المحرر الوجیز ۱۵۹/۱۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۵۹/۱۔ (۶) (ز) میں: اور آوازوں سے اسے آراستہ کرنا۔ (۷) اسے طبری نے ۲۹۹/۶ میں، اور خطیب نے تاریخ بغداد میں ۲۶۸/۱۳، اور مروزی نے تعظیم قدر الصلاۃ ۵۸۱/۲ میں ذکر کیا ہے۔

166 Surah Al-Baqarah: Verses 63 and 64

Al-Nasa'i (1) reported from Abu Sa'id al-Khudri that the Messenger of Allah ﷺ said: "Among the worst of people is a wicked man who recites the Quran but does not heed anything in it." Thus, he ﷺ clarified that the intended purpose is action, as we have explained.

Malik said: The Quran may be recited by one in whom there is no good (2). So, what was binding upon those before us and what was taken from them is binding upon us and obligatory for us. Allah Almighty said: {And follow the best of what was revealed to you from your Lord} [Az-Zumar: 55]. He commanded us to follow His Book and act according to its requirements, but we have abandoned that as the Jews and Christians abandoned it. The physical copies of the books and Qurans remain, benefiting nothing, due to the prevalence of ignorance, the pursuit of leadership, and the following of desires.

At-Tirmidhi (3) narrated from Jubayr ibn Nufayr from Abu al-Darda who said: We were with the Prophet ﷺ, and he raised his gaze to the sky and then said: "This is the time when knowledge will be snatched away from the people until they will not be able to acquire anything of it." Ziyad ibn Labid al-Ansari (4) said: How can it be snatched from us when we have recited the Quran! By Allah, we shall surely recite it and let our women and children recite it. He said: "May your mother be bereaved of you, O Ziyad! I used to count you among the jurists of Medina. Here are the Torah and the Gospel with the Jews and Christians, so what benefit do they derive from them?" And he mentioned the hadith, which will follow.

Al-Nasa'i (5) also related it from the hadith of Jubayr ibn Nufayr - also - from 'Awf ibn Malik al-Ashja'i through a sound chain, and that the Prophet ﷺ said to Ziyad: "May your mother be bereaved of you, O Ziyad! These are the Torah and the Gospel with the Jews and Christians."

And in Al-Muwatta (6) from Abdullah ibn Mas'ud, who said to a person: You are in a time when its jurists are many,

(1) In Al-Mujtaba 6/11-12, and it is in Ahmad (13319). (2) In (Z): One who has no [good] may recite the Quran, meaning: one in whom there is no good, which is consistent with what is in Al-Mudawwanah 1/85, see Al-Tamhid 22/124. In the margin of (Z) it says: What happened to Malik is that he was asked: Should the best reciter lead the people? He said: One might recite, meaning one whose state is not pleasing,

because he said: there is no good in him. Ibn al-Qasim interpreted it. (3) In his Sunan (2653) and he said: This is a Hasan Gharib hadith, and Al-Hakim also narrated it in 1/99 and authenticated it. (4) Abu Abdullah, he went out to the Messenger of Allah ﷺ and stayed with him in Mecca until he migrated. He witnessed al-Aqabah, Uhud, and all the battles. The Messenger of Allah ﷺ appointed him over Hadramout. He died at the beginning of Mu'awiyah's caliphate. Al-Isti'ab (4/37). (5) In Al-Kubra (5878), and it is in Al-Musnad (23990). (6) 1/173, and what is between the brackets is from it.

पृष्ठ 166 सूरह अल-बकरा: आयत 63 और 64

अल-नसाई (1) ने अबू सईद अल-खुदरी से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "लोगों में सबसे बुरा वह दुष्ट आदमी है जो कुरान पढ़ता है लेकिन उसकी किसी भी बात पर ध्यान नहीं देता।" तो उन्होंने ﷺ ने स्पष्ट किया कि उद्देश्य अमल (कार्य) है जैसा कि हमने स्पष्ट किया है।

मालिक ने कहा: कुरान वह भी पढ़ सकता है जिसमें कोई भलाई न हो (2)। तो जो हमसे पहले वालों पर अनिवार्य था और उनसे लिया गया था, वह हम पर भी अनिवार्य है और हमारे लिए भी आवश्यक है। अल्लाह तआला ने फरमाया: {और जो तुम्हारे रब की ओर से तुम्हारी ओर उतारा गया है, उसमें से सबसे अच्छी बात का अनुसरण करो} [अज़-ज़ुमर: 55]। उसने हमें अपनी किताब का पालन करने और उसकी आवश्यकताओं के अनुसार कार्य करने का आदेश दिया, लेकिन हमने उसे वैसे ही छोड़ दिया जैसे यहूदियों और ईसाइयों ने छोड़ दिया था। किताबों और कुरान के भौतिक स्वरूप शेष रह गए हैं जो किसी काम के नहीं हैं, अज्ञानता की प्रबलता, नेतृत्व की चाह और इच्छाओं के अनुसरण के कारण।

तिरमिज़ी (3) ने जुबैर बिन नुफैर से, उन्होंने अबू दरदा से रिवायत की, उन्होंने कहा: हम नबी ﷺ के साथ थे, उन्होंने अपनी निगाहें आसमान की ओर उठाईं, फिर फरमाया: "यह वह समय है जब लोगों से ज्ञान छीन लिया जाएगा यहाँ तक कि वे उसमें से कुछ भी हासिल नहीं कर सकेंगे।" ज़ियाद बिन लबीद अल-अंसारी (4) ने कहा: यह हमसे कैसे छीना जा सकता है जबकि हमने कुरान पढ़ा है! अल्लाह की कसम, हम इसे ज़रूर पढ़ेंगे और अपनी औरतों और बच्चों को भी पढ़ाएंगे। उन्होंने फरमाया: "तेरी माँ तुझे खो दे ऐ ज़ियाद! मैं तुझे मदीना के फकीहों में गिनता था। ये तौरात और इंजील यहूदियों और ईसाइयों के पास हैं, तो वे उनसे क्या फायदा उठाते हैं?" और हदीस का उल्लेख किया, जो आगे आएगी।

और इसे अल-नसाई (5) ने जुबैर बिन नुफैर की हदीस से भी निकाला है - औफ बिन मालिक अल-अशजई से एक सही रास्ते के माध्यम से, और यह कि नबी ﷺ ने ज़ियाद से कहा: "तेरी माँ तुझे खो दे ऐ ज़ियाद, ये तौरात और इंजील यहूदियों और ईसाइयों के पास हैं।"

और अल-मुवत्ता (6) में अब्दुल्लाह बिन मसूद से रिवायत है कि उन्होंने एक व्यक्ति से कहा: तुम ऐसे समय में हो जिसके फकीह (विद्वान) बहुत हैं,

(1) अल-मुज्तबा 6/11 - 12 में, और यह अहमद (13319) के पास है। (2) (ज़) में: कुरान वह पढ़ सकता है जिसके पास नहीं है, यानी: जिसमें कोई भलाई नहीं है, और यह अल-मुदव्वना 1/85 में जो है उसके अनुरूप है, और अल-तमहीद 22/124 देखें। (ज़) के हाशिये में आया है: जो मालिक के साथ हुआ वह यह था कि उनसे पूछा गया: क्या लोगों का इमाम वह होना चाहिए जो सबसे अच्छा कुरान पढ़ता हो? उन्होंने कहा: वह पढ़ सकता है, उनका मतलब उस व्यक्ति से है जिसकी स्थिति संतोषजनक नहीं है, क्योंकि उन्होंने कहा: उसमें कोई भलाई नहीं है। इब्न अल-कासिम ने इसकी व्याख्या की। (3) उनकी सुनन (2653) में और उन्होंने कहा: यह हदीस हसन गरीब है, और इसे अल-हाकिल 1/99 ने भी निकाला है और इसे सही बताया है। (4) अबू अब्दुल्लाह, वे अल्लाह के रसूल ﷺ के पास गए और हिजरत करने तक उनके साथ मक्का में रहे। उन्होंने अकाबा, उहुद और सभी युद्धों में भाग लिया। अल्लाह के रसूल ﷺ ने उन्हें हज़रमौत का गवर्नर नियुक्त किया। मुआविया के खिलाफत के शुरू में उनकी मृत्यु हुई। अल-इस्तिआब (4/37)। (5) अल-कुबरा (5878) में, और यह अल-मुसनद (23990) में है। (6) 1/173, और इसके ब्रैकेट के बीच का हिस्सा।

صفحہ 166 سورۃ البقرہ: آیات 63 اور 64

اور نسائی (1) نے ابو سعید خدری سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "لوگوں میں بدترین شخص وہ فاسق آدمی ہے جو قرآن پڑھتا ہے لیکن اس کی کسی بات پر عمل نہیں کرتا۔" تو آپ ﷺ نے واضح کر دیا کہ مقصد عمل ہے جیسا کہ ہم نے واضح کیا۔

اور مالک نے کہا: قرآن وہ بھی پڑھ سکتا ہے جس میں کوئی خیر نہ ہو (2)۔ تو جو کچھ ہم سے پہلے والوں پر لازم تھا اور ان سے عہد لیا گیا تھا وہ ہم پر بھی لازم اور واجب ہے۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {وَاتَّبِعُوا أَحْسَنَ مَا أُنزِلَ إِلَيْكُم مِّن رَّبِّكُم} [الزمر: 55] (اور تم اپنے رب کی طرف سے اپنی طرف نازل کی گئی بہترین چیز کی پیروی کرو)۔ پس اس نے ہمیں اپنی کتاب کی پیروی اور اس کے تقاضوں کے مطابق عمل کرنے کا حکم دیا، لیکن ہم نے اسے ویسے ہی چھوڑ دیا جیسے یہودیوں اور عیسائیوں نے چھوڑ دیا، اور کتابوں اور مصاحف کے ڈھانچے باقی رہ گئے جو جہالت کے غلبے، ریاست کی طلب اور خواہشات کی پیروی کی وجہ سے کوئی فائدہ نہیں دیتے۔

ترمذی (3) نے جبیر بن نفیر سے، انہوں نے ابو الدرداء سے روایت کی، انہوں نے کہا: ہم نبی ﷺ کے ساتھ تھے، آپ ﷺ نے اپنی نظر آسمان کی طرف اٹھائی، پھر فرمایا: "یہ وہ وقت ہے جب لوگوں سے علم چھین لیا جائے گا یہاں تک کہ وہ اس میں سے کسی چیز پر قادر نہ ہوں گے۔" تو زیاد بن لبید انصاری (4) نے کہا: یہ ہم سے کیسے چھین لیا جائے گا جبکہ ہم نے قرآن پڑھ لیا ہے! اللہ کی قسم ہم اسے ضرور پڑھیں گے اور اپنی عورتوں اور بچوں کو بھی پڑھائیں گے۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "زیاد! تیری ماں تجھے کھو دے، میں تجھے مدینہ کے فقہاء میں شمار کرتا تھا، یہ تورات اور انجیل یہودیوں اور عیسائیوں کے پاس ہیں، تو یہ ان کے کس کام آتی ہیں؟" اور حدیث ذکر کی، جو آگے آئے گی۔

اور اسے نسائی (5) نے جبیر بن نفیر کی حدیث سے ہی روایت کیا ہے - نیز - عوف بن مالک اشجعی سے صحیح سند کے ساتھ، اور یہ کہ نبی ﷺ نے زیاد سے فرمایا: "زیاد! تیری ماں تجھے کھو دے، یہ تورات اور انجیل یہودیوں اور عیسائیوں کے پاس ہیں۔"

اور مؤطا (6) میں عبداللہ بن مسعود سے مروی ہے کہ انہوں نے ایک انسان سے کہا: تم ایسے زمانے میں ہو جس کے فقہاء کثیر ہیں،

(1) المجتبیٰ 6/11 - 12 میں، اور یہ احمد (13319) کے پاس ہے۔ (2) (ز) میں ہے: قرآن وہ پڑھ سکتا ہے جس کے پاس نہیں، یعنی: جس میں کوئی خیر نہ ہو، اور یہ المدونہ 1/85 میں جو ہے اس کے موافق ہے، اور التمہید 22/124 دیکھیں۔ اور (ز) کے حاشیے میں آیا ہے: مالک کے ساتھ جو ہوا وہ یہ تھا کہ ان سے کہا گیا: کیا لوگوں کی امامت وہ کرے جو ان میں سب سے زیادہ قرآن پڑھنے والا ہو؟ انہوں نے کہا: وہ پڑھ سکتا ہے، ان کی مراد وہ شخص ہے جس کا حال پسندیدہ نہ ہو، کیونکہ انہوں نے کہا: اس میں کوئی خیر نہیں۔ ابن القاسم نے اس کی تشریح کی۔ (3) اپنی سنن (2653) میں اور کہا: یہ حدیث حسن غریب ہے، اور اسے حاکم 1/99 نے بھی روایت کیا اور اسے صحیح قرار دیا۔ (4) ابو عبداللہ، رسول اللہ ﷺ کی طرف نکلے اور ہجرت کرنے تک آپ کے ساتھ مکہ میں مقیم رہے، عقبہ، احد اور تمام مشاہد میں حاضر رہے، اور رسول اللہ ﷺ نے انہیں حضرموت پر مقرر فرمایا۔ معاویہ کی خلافت کے شروع میں فوت ہوئے۔ الاستیعاب (4/37)۔ (5) الکبریٰ (5878) میں، اور یہ المسند (23990) میں ہے۔ (6) 1/173، اور اس میں جو بریکٹ کے درمیان ہے۔

Page 167 Surah Al-Baqarah: Verses 63 and 64

[A time where] its reciters are few, the boundaries of the Quran are preserved in it, and its letters are lost. Few are those who ask, many are those who give. They lengthen the prayer [therein] and shorten the sermon, beginning their deeds before their desires. And a time will come upon people when its jurists are few and its reciters are many; the letters of the Quran are preserved in it, and its boundaries are lost. Many are those who ask, few are those who give. They lengthen the sermon and shorten the prayer, beginning (1) their desires before their deeds. These texts indicate what we have mentioned. Yahya said: I asked Ibn Nafi' about the saying: "They begin their desires before their deeds"? He said: "It means they follow their desires and leave the work that has been enjoined upon them." The discussion on the meaning of His saying: {so that you may become righteous} (2) has already been presented, so there is no point in repeating it. And His saying: {Then you turned away}. "Tawalla" is on the pattern of "Tafa'ala", and its origin is: turning away and turning one's back on something physically, then it was used figuratively and broadly for turning away from commands (3), religions, and beliefs. And His saying: {after that}, meaning: after the proof, which is the taking of the covenant and the raising of the mountain. And His saying: {Had it not been for the grace of Allah upon you}. "Fadl" (grace) is nominative as a subject according to Sibawayh, and the predicate is omitted and cannot be shown; because the Arabs dispensed with showing it, except when they wanted to show it, they brought "an", and if they brought it, they did not omit the predicate. The estimation is: "Had it not been for the grace of Allah reaching you". {And His mercy} is a conjunction to "Fadl", meaning: His kindness and His giving of respite. {You would have been} is the response to "Lawla" (had it not been). {Among the losers} is the predicate of "Kuntum" (you were), and loss is: deficiency (4); and it has already been mentioned (5). And it was said: His grace is: the acceptance of repentance, and His mercy is: forgiveness. Grace (al-fadl) is: addition to what is obligatory.

---

(1) In Al-Muwatta: "Yubaddun" (in both places). Al-Baji said in Al-Muntaqa 1/309 in explaining the first word: "If a righteous deed and a desire were presented to them, they would begin with the righteous deed and prioritize it over what they desired." (2) 1/342 - 343. (3) In (z) and (zha): matters. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/159. (5) 1/372.

पृष्ठ १६७ सूरह अल-बकराह: आयतें ६३ और ६४

[एक समय जहाँ] इसके पढ़ने वाले कम होंगे, कुरान की सीमाओं को इसमें सुरक्षित रखा जाएगा, और इसके अक्षरों को खो दिया जाएगा। पूछने वाले कम होंगे, देने वाले बहुत होंगे। वे [उसमें] नमाज़ लंबी करेंगे और खुतबा (प्रवचन) छोटा करेंगे, अपनी इच्छाओं से पहले अपने कर्म शुरू करेंगे। और लोगों पर एक ऐसा समय आएगा जब इसके फकीह (विद्वान) कम होंगे और इसके पढ़ने वाले बहुत होंगे; कुरान के अक्षरों को इसमें सुरक्षित रखा जाएगा, और इसकी सीमाओं को खो दिया जाएगा। पूछने वाले बहुत होंगे, देने वाले कम होंगे। वे खुतबा लंबा करेंगे और नमाज़ छोटी करेंगे, अपने कर्मों से पहले अपनी इच्छाओं को शुरू (१) करेंगे। ये ग्रंथ वही दर्शाते हैं जिसका हमने उल्लेख किया है। याह्या ने कहा: मैंने इब्न नाफ़े से इस कथन के बारे में पूछा: "वे अपने कर्मों से पहले अपनी इच्छाओं को शुरू करते हैं"? उन्होंने कहा: "इसका अर्थ है कि वे अपनी इच्छाओं का पालन करते हैं और उन कार्यों को छोड़ देते हैं जो उन पर अनिवार्य किए गए हैं।" उनके इस कथन के अर्थ पर चर्चा: {ताकि तुम परहेज़गार बन जाओ} (२) पहले ही प्रस्तुत की जा चुकी है, इसलिए इसे दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। और अल्लाह का कथन: {फिर तुम फिर गए}। "तवल्ला" (Tawalla) "तफ़ा-अला" (Tafa'ala) के स्वरूप पर है, और इसका मूल अर्थ है: शारीरिक रूप से किसी चीज़ से विमुख होना और पीठ फेर लेना, फिर इसका उपयोग रूपक और व्यापक रूप से आदेशों (३), धर्मों और विश्वासों से विमुख होने के लिए किया गया। और उनका कथन: {उसके बाद}, अर्थात: प्रमाण के बाद, जो कि वाचा (प्रतिज्ञा) लेना और पहाड़ को उठाना है। और उनका कथन: {यदि तुम पर अल्लाह की कृपा न होती}। सिबावेह के अनुसार "फ़ज़्ल" (कृपा) कर्ता के रूप में प्रथमा विभक्ति (nominative) में है, और विधेय (predicate) को हटा दिया गया है और उसे दर्शाया नहीं जा सकता; क्योंकि अरबों ने इसे दर्शाने की आवश्यकता नहीं समझी, सिवाय इसके कि जब वे इसे दर्शाना चाहते थे, तो वे "अन" (an) लाते थे, और यदि वे इसे लाए, तो उन्होंने विधेय को नहीं हटाया। अनुमान है: "यदि अल्लाह की कृपा तुम तक न पहुँचती"। {और उसकी दया} "फ़ज़्ल" के साथ एक संयोजन (conjunction) है, जिसका अर्थ है: उसकी दयालुता और उसकी मोहलत। {तो तुम हो जाते} "लौला" (यदि न होता) का उत्तर है। {घाटा उठाने वालों में से} "कुंतुम" (तुम थे) का विधेय है, और घाटा है: कमी (४); और इसका उल्लेख पहले (५) किया जा चुका है। और यह कहा गया: उनकी कृपा है: तौबा (पश्चात्ताप) की स्वीकार्यता, और उनकी दया है: क्षमा। फ़ज़्ल (कृपा) है: जो अनिवार्य है उससे अधिक वृद्धि।

(१) अल-मुवत्ता में: "युबद्दून" (दोनों स्थानों पर)। अल-बाजी ने अल-मुंतका १/३०९ में उनमें से पहले शब्द की व्याख्या करते हुए कहा: "यदि उनके सामने कोई नेक काम और कोई इच्छा आती, तो वे नेक काम से शुरू करते और उसे अपनी इच्छा पर प्राथमिकता देते।" (२) १/३४२ - ३४३। (३) (ज़) और (ज़ा) में: मामले (अमूर)। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५९। (५) १/३७२।

صفحہ ١٦٧ سورۃ البقرہ: آیات ٦٣ اور ٦٤

[ایک زمانہ جس میں] اس کے قاری کم ہوں گے، اس میں قرآن کی حدود کی حفاظت کی جائے گی اور اس کے حروف ضائع کر دیے جائیں گے۔ مانگنے والے کم ہوں گے، دینے والے بہت ہوں گے، وہ [اس میں] نماز لمبی کریں گے اور خطبہ مختصر کریں گے، اپنے کام اپنی خواہشات سے پہلے شروع کریں گے۔ اور لوگوں پر ایسا زمانہ آئے گا کہ اس کے فقہا کم ہوں گے، اس کے قاری بہت ہوں گے، اس میں قرآن کے حروف تو محفوظ رہیں گے مگر اس کی حدود ضائع کر دی جائیں گی۔ مانگنے والے بہت ہوں گے، دینے والے کم ہوں گے، وہ خطبہ لمبا کریں گے اور نماز مختصر کریں گے، اپنے کاموں سے پہلے (١) اپنی خواہشات شروع کریں گے۔ اور یہ نصوص اس بات پر دلالت کرتی ہیں جو ہم نے ذکر کی۔ یحییٰ کہتے ہیں: میں نے ابن نافع سے ان کے اس قول کے بارے میں پوچھا: "وہ اپنے کاموں سے پہلے اپنی خواہشات شروع کرتے ہیں"؟ انہوں نے کہا: وہ اپنی خواہشات کی پیروی کرتے ہیں اور ان کاموں کو چھوڑ دیتے ہیں جو ان پر فرض کیے گئے ہیں۔ اور اللہ تعالیٰ کے قول {تاکہ تم پرہیزگار بن جاؤ} (٢) کے معنی کے بارے میں بات پہلے گزر چکی ہے، لہذا اسے دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔ اور اللہ تعالیٰ کا قول: {پھر تم پھر گئے}۔ "تولّٰی" کا وزن "تَفَعَّلَ" ہے، اور اس کی اصل: کسی چیز سے جسمانی طور پر اعراض کرنا اور پیٹھ پھیرنا ہے، پھر اسے مجازاً اور وسعت کے طور پر احکامات (٣)، ادیان اور عقائد سے اعراض کے لیے استعمال کیا جانے لگا۔ اور اللہ کا قول: {اس کے بعد} یعنی: برہان کے بعد، اور وہ ہے میثاق لینا اور پہاڑ اٹھایا جانا۔ اور اللہ کا قول: {پس اگر تم پر اللہ کا فضل نہ ہوتا}۔ سیبویہ کے نزدیک "فضل" مبتدا ہونے کی وجہ سے مرفوع ہے، اور خبر محذوف ہے جس کا اظہار جائز نہیں؛ کیونکہ عربوں نے اس کے اظہار سے بے نیازی برتی ہے، الا یہ کہ جب وہ اسے ظاہر کرنا چاہیں تو "بأن" لاتے

ہیں، اور جب وہ اسے لائیں تو خبر کو حذف نہیں کرتے۔ تقدیر (اصل عبارت) یہ ہے: "اگر اللہ کا فضل تمہیں نہ پا لیتا"۔ {اور اس کی رحمت} کا عطف "فضل" پر ہے، یعنی: اس کا لطف اور مہلت دینا۔ {تو تم ہو جاتے} "لولا" کا جواب ہے۔ {نقصان اٹھانے والوں میں سے} "کنتم" کی خبر ہے اور خسران: نقصان (٤) ہے؛ اور یہ پہلے گزر چکا ہے (٥)۔ اور کہا گیا: اللہ کا فضل: توبہ کی قبولیت ہے، اور اس کی رحمت: عفو (معافی) ہے۔ اور فضل: واجب سے زیادہ (زیادتی) ہے۔

---

(١) الموطأ میں ہے: "يُبَدُّون" (دونوں جگہوں پر)۔ الباجی نے المنتقیٰ ٣٠٩/١ میں ان میں سے پہلے لفظ کی شرح میں کہا: جب ان کے سامنے کوئی نیکی کا کام اور خواہش آتی تو وہ نیکی کے کام سے شروع کرتے اور اسے اپنی خواہش پر مقدم رکھتے۔ (٢) ٣٤٢/١ - ٣٤٣۔ (٣) (ز) اور (ظ) میں: "الأمور" (معاملات) ہے۔ (٤) المحرر الوجیز ١٥٩/١۔ (٥) ٣٧٢/١۔

168 Surah Al-Baqarah: Verse 65

And "Al-Ifdal" (bestowing favor): doing what is not obligatory. Ibn Faris said in 'Al-Mujmal' (1): "Al-Fadl" is increase and goodness, and "Al-Ifdal" is benevolence (ihsan).

His Almighty's saying: {And indeed you knew those among you who transgressed in the matter of the Sabbath, so We said to them, "Be apes, despised." 65}

It contains seven issues: First: His Almighty's saying: {And indeed you knew those among you who transgressed in the matter of the Sabbath}: "Alimtum" (you knew) means: you recognized their identities; and it was said: you knew their rulings. The difference between them is that recognition (ma'rifah) is directed towards the essence of the named, while knowledge ('ilm) is directed towards the states of the named. So if you say: "I recognized Zaid," the meaning is his person. And if you say: "I knew Zaid," what is meant by it is the knowledge of his states, of merit or deficiency (2). Accordingly, on the first, the verb is transitive to one object, which is the view of Sibawayh (3): "alimtum" in the sense of "araftum" (you recognized). And on the second, it is transitive to two objects. Al-Akhfash (4) narrated: "And indeed I knew Zaid and I did not know him." And in the Revelation: {You do not know them; Allah knows them} [Al-Anfal: 60]. All this is in the sense of recognition (ma'rifah), so know.

"Transgressed (5) among you in the Sabbath" is the relative clause of "those who". Transgression (i'tida') is exceeding limits (6), and it has been mentioned before (7).

Second: Al-Nasa'i (8) narrated from Safwan bin 'Assal, he said: A Jew said to his companion: Let us go to this Prophet. His companion said to him: Do not say 'Prophet'; if he heard you, it would be to him (9)...

---

(1) 3/722 (Fadl). (2) Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 1/287. (3) Al-Kitab 1/40. (4) Ma'ani al-Qur'an 1/102. (5) In (D), (Z), and (M): "those who transgressed," and the confirmed text is from (Zah). (6) In (Zah): exceeding the limit. (7) 2/158. (8) Al-Mujtaba 7/111, and Al-Sunan Al-Kubra (3527), and it is in Al-Musnad (18092). (9) In the copies: "fa-in," which is a mistake, and the confirmed is from Sunan Al-Nasa'i and Sunan Al-Tirmidhi. In Musnad Ahmad: "it became." Al-Sindi said in its explanation (as per the margins of Al-Musnad 15/30): Meaning a metaphor for the increase of joy and excessive happiness, for joy causes strength in the limbs, and the doubling of powers resembles the doubling of limbs for the one carrying them, i.e., he rejoices exceedingly at the Jews' belief in him as a prophet.

168 सूरह अल-बकरा: आयत 65

और "अल-इफदाल": वह कार्य करना जो अनिवार्य नहीं है। इब्न फारिस ने 'अल-मुजमल' (1) में कहा: "अल-फदल" का अर्थ है वृद्धि और अच्छाई, और "अल-इफदाल" का अर्थ है परोपकार (एहसान)।

अल्लाह का फरमान: {और तुम उन लोगों को अच्छी तरह जानते हो, जिन्होंने तुम में से सब्त के मामले में मर्यादा का उल्लंघन किया था, तो हमने उनसे कहा था, "अपमानित बंदर हो जाओ।" 65}

इसमें सात मसले (मुद्दे) हैं: पहला: अल्लाह का फरमान: {और तुम उन लोगों को अच्छी तरह जानते हो जिन्होंने तुम में से सब्त के मामले में मर्यादा का उल्लंघन किया था}: "अलीमतुम" (तुम जानते हो) का अर्थ है: तुमने उन्हें व्यक्तिगत रूप से पहचान लिया; और यह भी कहा गया है: तुम उनके नियमों को जानते थे। उनके बीच अंतर यह है कि "मारिफ़ा" (पहचान) नाम के सार की ओर निर्देशित होती है, जबकि "इल्म" (ज्ञान) नाम की स्थितियों की ओर निर्देशित होता है। इसलिए यदि आप कहें: "मैंने जैद को पहचाना," तो तात्पर्य उसके व्यक्ति से है। और यदि आप कहें: "मैं जैद को जानता हूँ," तो इससे तात्पर्य उसकी स्थितियों के ज्ञान से है, जैसे कि श्रेष्ठता या कमी (2)। तदनुसार, पहले मत के अनुसार, क्रिया एक कर्म (object) तक सीमित है, जो सिबवैह (3) का विचार है: "अलीमतुम" का अर्थ "अरफ्तुम" (तुमने पहचाना) है। और दूसरे मत के अनुसार, दो कर्मों तक। अल-अख़फ़श (4) ने वर्णन किया है: "और मैं जैद को जानता था जबकि मैं उसे नहीं जानता था।" और कुरान में है: {तुम उन्हें नहीं जानते; अल्लाह उन्हें जानता है} [अल-अनफाल: 60]। यह सब "मारिफ़ा" (पहचान) के अर्थ में है, सो जान लो।

"तुम में से सब्त में मर्यादा का उल्लंघन किया (5)" यह "अल्लज़ीना" (वे जो) का सापेक्ष उपवाक्य है। "एतिदा" का अर्थ है सीमा का उल्लंघन करना (6), और यह पहले (7) आ चुका है।

दूसरा: अल-नसाई (8) ने सफवान बिन अस्साल से रिवायत की है, उन्होंने कहा: एक यहूदी ने अपने साथी से कहा: चलो इस नबी के पास चलें। उसके साथी ने उससे कहा: 'नबी' मत कहो; अगर उसने तुम्हें सुन लिया, तो उसके लिए होगा (9)...

---

(1) 3/722 (फदल)। (2) तबर्सी द्वारा मजमा अल-बयान 1/287। (3) अल-किताब 1/40। (4) मानी अल-कुरान 1/102। (5) (द), (ज़) और (म) में: "वे जिन्होंने उल्लंघन किया," और पुष्ट पाठ (ज़ाह) से है। (6) (ज़ाह) में: हद से आगे बढ़ जाना। (7) 2/158। (8) अल-मुज्तबा 7/111, और अल-सुनन अल-

कुबरा (3527), और यह अल-मुसनद (18092) में है। (9) प्रतियों में: "फा-इन," जो एक गलती है, और पुष्ट पाठ सुनन अल-नसाई और सुनन अल-तिर्मिज़ी से है। मुसनद अहमद में: "हो गया।" अल-सिंदी ने इसकी व्याख्या में कहा (मुसनद 15/30 के हाशिये के अनुसार): यानी खुशी की वृद्धि और अत्यधिक प्रसन्नता के लिए एक रूपक है, क्योंकि खुशी अंगों में ताकत पैदा करती है, और शक्तियों का दोगुना होना अंगों के दोगुना होने के समान है, यानी, वह यहूदियों द्वारा उन्हें नबी मानने पर बहुत अधिक प्रसन्न होते हैं।

١٦٨ سورہ البقرہ: آیت ٦٥

اور "الإفضال": وہ کام کرنا جو واجب نہ ہو۔ ابن فارس نے "المُجْمَل" (١) میں کہا: "الفضل": زیادتی اور خیر ہے، اور "الإفضال": احسان کرنا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ الَّذِينَ اعْتَدَوْا مِنكُمْ فِي السَّبْتِ فَقُلْنَا لَهُمْ كُونُوا قِرَدَةً خَسِئِينَ ٦٥﴾

اس میں سات مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ الَّذِينَ اعْتَدَوْا مِنكُمْ فِي السَّبْتِ﴾: «علمتم» کا معنی ہے: تم نے ان کے اشخاص کو پہچان لیا؛ اور کہا گیا: تم نے ان کے احکام جان لیے۔ ان دونوں کے درمیان فرق یہ ہے کہ معرفت مسمّٰی کی ذات کی طرف متوجہ ہوتی ہے، اور علم مسمّٰی کے احوال کی طرف متوجہ ہوتا ہے، پس جب تم کہو: میں نے زید کو پہچانا، تو مراد اس کی ذات ہے، اور جب تم کہو: میں نے زید کو جانا، تو اس سے مراد اس کے فضل و نقص کے احوال کا علم ہے (٢)۔ پس پہلے (معنی) پر فعل ایک مفعول کی طرف متعدی ہوتا ہے، اور یہ سیبویہ (٣) کا قول ہے: «علمتم» بمعنی "عرفتم" (تم نے پہچان لیا) ہے، اور دوسرے (معنی) پر دو مفعولوں کی طرف۔ الاخفش (٤) نے حکایت کی: "ولقد علمتُ زيداً ولم أكن أعلمه" (میں نے زید کو جانا اور میں اسے نہیں جانتا تھا)۔ اور قرآن میں ہے: ﴿لَا تَعْلَمُونَهُمُ اللَّهُ يَعْلَمُهُمْ﴾ [الانفال: ٦٠]۔ یہ سب معرفت کے معنی میں ہے، پس جان لو۔

«اعتدوا (٥) منكم فی السبت» "الذين" کا صلہ ہے۔ اور "الاعتداء": تجاوز (٦) کرنا ہے، اور یہ پہلے (٧) گزر چکا ہے۔

دوسرا: امام نسائی (۸) نے صفوان بن عسال سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: ایک یہودی نے اپنے ساتھی سے کہا: ہمیں اس نبی کے پاس لے چلو، تو اس کے ساتھی نے اس سے کہا: 'نبی' نہ کہو، اگر اس نے تمہیں سن لیا، تو اس کے لیے (۹) ہوگا...

---

(۱) ۳/۷۲۲ (فضل)۔ (۲) مجمع البيان للطبرسي ۱/۲۸۷۔ (۳) الكتاب ۱/٤۰۔ (٤) معاني القرآن ۱/۱۰۲۔ (٥) (د)، (ز) اور (م) میں: "الذين اعتدوا"، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے۔ (٦) (ظ) میں: حد سے تجاوز کرنا۔ (۷) ۲/۱٥۸۔ (۸) المجتبیٰ ۷/۱۱۱، اور السنن الكبرى (۳٥۲۷)، اور یہ المسند (۱۸۰۹۲) میں ہے۔ (۹) نسخوں میں: "فإن"، جو کہ غلطی ہے، اور جو ثابت ہے وہ سنن نسائی اور سنن ترمذی سے ہے۔ اور مسند احمد میں: "صارت" ہے۔ سندی نے اس کی شرح میں کہا (جیسا کہ حواشی المسند ۱٥/۳۰ میں ہے): یعنی خوشی کی زیادتی اور حد سے بڑھے ہوئے سرور کے لیے کنایہ ہے، کیونکہ خوشی اعضاء کی قوت کا باعث ہوتی ہے، اور قوتوں کا دوگنا ہونا اٹھانے والے کے لیے اعضاء کے دوگنا ہونے کے مشابہ ہے، یعنی: وہ یہودیوں کے انہیں نبی ماننے پر انتہائی خوش ہوتے ہیں۔

169 Surah Al-Baqarah: Verse 65

...four eyes. So they came to the Messenger of Allah (peace be upon him) and asked him about nine clear signs (1). He said to them: "Do not associate anything with Allah, do not steal, do not commit adultery, do not kill the soul which Allah has forbidden except by right, do not take an innocent person to a ruler [to be killed], do not practice magic, do not consume usury, do not slander chaste women, and do not turn back on the day of battle, and specifically for you - O Jews - do not transgress on the Sabbath." They kissed his hands and feet and said: "We bear witness that you are a prophet." He said: "Then what prevents you from following me?!" They said: "David prayed that there would always be a prophet among his descendants, and we fear that if we follow you, the Jews will kill us." Al-Tirmidhi (2) recorded it and said: This is a good and authentic hadith. Its wording will appear in Surah Subhan [Al-Isra] (3), if Allah Almighty wills. The Third point: "Regarding the Sabbath" means: on the day of the Sabbath; and it is possible that it means: in the ruling of the Sabbath (4). The first is the view of Al-Hasan, that they took fish on that day by way of considering it permissible (5). Ashhab narrated from Malik that he said: Ibn Ruman (6) claimed that a man among them would take a thread, put a loop (7) in it, and cast it around the tail of a fish, and at the other end of the thread was a peg. He left it (8) like that until Sunday, then people followed suit when (9) they saw that whoever did it was not afflicted [with punishment], until the catching of fish increased, and it was carried in the markets, and the wicked openly declared its hunting. So a group arose, forbade it, declared the prohibition openly, and separated themselves.

(1) The hadith is from the narration of Abdullah bin Salama, from Safwan bin Assal. Ibn Kathir mentioned this hadith in the commentary on the Almighty's saying: {And We had certainly given Moses nine clear signs...} [Al-Isra: 101] and said: It is a problematic hadith, and there is something in Abdullah bin Salama's memory, and they have spoken about him. Perhaps he confused the nine signs with the Ten Commandments, for they are commandments in the Torah, having no connection to establishing proof against Pharaoh, and Allah knows best. (2) Sunan al-Tirmidhi (2733). (3) At the commentary on verse (101). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158. (5) Al-Nukat wal-Uyun 1/135, and Majma' al-Bayan 1/288. (6) He is Yazid bin Ruman, Abu Ruh al-Asadi, al-Madani, a client of the family of al-Zubayr. He recited the Quran to Abdullah bin Ayyash bin Abi Rabi'ah, and he is trustworthy and established. He died in the year (130 AH). Others say otherwise. Ma'rifat al-Qurra al-Kibar 1/178. (7) In Al-

Qamus: Al-Wahaq, with a vowel on the 'ha' and sometimes without: the rope thrown in a loop to catch an animal. (8) In (z): "and he leaves it". (9) In (d) and (z): "until".

१६९ सूरा अल-बकराह: आयत ६५

...चार आँखें। फिर वे अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास आए और उनसे नौ स्पष्ट संकेतों (१) के बारे में पूछा। उन्होंने उनसे कहा: "अल्लाह के साथ किसी को शरीक न करो, चोरी न करो, व्यभिचार न करो, उस जान को न मारो जिसे अल्लाह ने हराम किया है सिवाय हक के, किसी निर्दोष को सुल्तान (शासक) के पास न ले जाओ [उसे मरवाने के लिए], जादू न करो, सूद (ब्याज) न खाओ, पाक-दामन महिलाओं पर आरोप न लगाओ, और युद्ध के दिन पीठ न फेरो, और विशेष रूप से तुम्हारे लिए - ऐ यहूदियों - सब्त (शनिवार) के दिन सीमा पार न करो।" उन्होंने उनके हाथ और पैर चूमे और कहा: "हम गवाही देते हैं कि आप नबी हैं।" उन्होंने कहा: "फिर तुम्हें मेरा अनुसरण करने से क्या रोकता है?!" उन्होंने कहा: "दाऊद (अ) ने दुआ की थी कि उनकी संतानों में हमेशा एक नबी रहे, और हमें डर है कि अगर हम आपका अनुसरण करेंगे, तो यहूदी हमें मार डालेंगे।" इसे तिर्मिज़ी (२) ने रिवायत किया है और कहा: यह एक हदीस हसन सहीह है। और इसके शब्द सूरा सुभान [अल-इसरा] (३) में आएंगे, इंशा अल्लाह ताला। तीसरी बात: "सब्त के बारे में" का अर्थ है: सब्त (शनिवार) के दिन; और संभावना है कि इसका अर्थ है: सब्त के हुक्म (नियम) के बारे में (४)। पहला अल-हसन का कहना है, कि उन्होंने उस दिन मछलियों को हलाल समझकर पकड़ा था (५)। अशहब ने मालिक से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: इब्न रूमान (६) का दावा है कि उनमें से एक आदमी एक धागा लेता था, उसमें एक फंदा (७) लगाता था, और उसे मछली की पूंछ में डाल देता था, और धागे के दूसरे सिरे पर एक खूंटी होती थी। वह उसे (८) रविवार तक उसी तरह छोड़ देता था, फिर लोगों ने भी ऐसा करना शुरू कर दिया जब (९) उन्होंने देखा कि जिसने ऐसा किया उसे कोई सजा नहीं मिली, यहाँ तक कि मछली पकड़ना बढ़ गया, और उसे बाज़ारों में ले जाया गया, और फसाकियों (दुराचारियों) ने खुलेआम इसके शिकार की घोषणा कर दी। फिर एक समूह खड़ा हुआ, उसने रोका, खुलेआम मना किया और अलग हो गया।

(१) हदीस अब्दुल्लाह बिन सलमा की रिवायत से है, सफवान बिन अस्साल से। इब्न कसीर ने इस हदीस को अल्लाह ताला के इस कथन की व्याख्या में उल्लेख किया है: {और हमने मूसा को नौ स्पष्ट संकेत दिए थे...} [अल-इसरा: १०१] और कहा: यह एक पेचीदा हदीस है, और अब्दुल्लाह बिन सलमा की याददाश्त में कुछ कमी है, और उनके बारे में बात की गई है। शायद उन्हें नौ संकेतों और दस आज्ञाओं (Ten Commandments) के बीच भ्रम हो गया, क्योंकि वे तौरात की वसीयतें हैं, जिनका फिरौन पर हुज्जत कायम करने से कोई संबंध नहीं है, और अल्लाह बेहतर जानता है। (२) सुनन अल-

तिर्मिज़ी (२७३३)। (३) आयत (१०१) की व्याख्या के पास। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५८। (५) अल-नुकत वल-उयून १/१३५, और मजमा अल-बयान १/२८८। (६) वह यज़ीद बिन रूमान, अबू रूह अल-असदी, अल-मदनी है, जो अल-जुबैर के परिवार के आजाद किए गए गुलाम थे। उन्होंने अब्दुल्लाह बिन अय्याश बिन अबी रबीअह से कुरान पढ़ा, और वह विश्वसनीय और पुख्ता हैं। उनकी मृत्यु वर्ष (१३० हिजरी) में हुई थी। इसके अलावा भी कहा गया है। मारिफत अल-कुर्रा अल-किबार १/१७८। (७) अल-कामूस में: अल-वहक, 'हा' पर हरकत के साथ और सुकून के साथ: वह रस्सी जिसे फंदे में फेंका जाता है, ताकि जानवर को पकड़ा जा सके। (८) (ज़) में: "और वह उसे छोड़ देता है"। (९) (द) और (ज़) में: "यहाँ तक कि"।

۱۶۹ سورة البقرہ: آیت ۶۵

... چار آنکھیں۔ پھر وہ رسول اللہ ﷺ کے پاس آئے، اور آپ ﷺ سے نو واضح نشانیوں (۱) کے بارے میں پوچھا۔ تو آپ ﷺ نے ان سے فرمایا: "اللہ کے ساتھ کسی کو شریک نہ کرو، چوری نہ کرو، زنا نہ کرو، اس جان کو قتل نہ کرو جسے اللہ نے حرام کیا ہے مگر حق کے ساتھ، کسی بے گناہ کو حکمران کے پاس نہ لے جاؤ (کہ وہ اسے قتل کر دے)، جادو نہ کرو، سود نہ کھاؤ، پاک دامن عورتوں پر تہمت نہ لگاؤ، اور جنگ کے دن پیٹھ نہ پھیرو، اور خاص طور پر تم پر - اے یہودیو - کہ تم ہفتے کے دن حد سے نہ بڑھو"۔ پس انہوں نے آپ ﷺ کے ہاتھوں اور پیروں کو چوما اور کہا: ہم گواہی دیتے ہیں کہ آپ نبی ہیں۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "پھر تمہیں میری اتباع سے کیا چیز روکتی ہے؟!" انہوں نے کہا: حضرت داؤد (علیہ السلام) نے دعا کی تھی کہ ان کی اولاد میں ہمیشہ ایک نبی رہے، اور ہمیں ڈر ہے کہ اگر ہم نے آپ کی اتباع کی تو یہودی ہمیں قتل کر دیں گے۔ اسے ترمذی (۲) نے روایت کیا ہے، اور کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ اور اس کے الفاظ سورہ سبحان [الاسراء] (۳) میں آئیں گے، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ تیسری بات: "ہفتے کے بارے میں" کا مطلب ہے: ہفتے کے دن میں؛ اور یہ بھی ممکن ہے کہ مراد ہو: ہفتے کے حکم کے بارے میں (۴)۔ پہلا قول حسن کا ہے کہ انہوں نے اس دن مچھلیاں پکڑنے کو حلال سمجھ لیا تھا (۵)۔ اور اشہب نے مالک سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: ابن رومان (۶) کا دعویٰ ہے کہ ان میں سے کوئی آدمی ایک دھاگا لیتا، اس میں پھندا (۷) ڈالتا، اور اسے مچھلی کی دم میں ڈال دیتا، اور دھاگے کے دوسرے سرے پر ایک میخ (کھونٹا) ہوتا، اور اسے (۸) اسی طرح اتوار تک چھوڑ دیتا، پھر لوگوں نے بھی ویسا ہی کرنا شروع کیا جب (۹) انہوں نے دیکھا کہ جو ایسا کرتا ہے اسے کوئی سزا نہیں ملتی، یہاں تک کہ مچھلی کا شکار بڑھ گیا، اور اسے بازاروں میں لایا جانے لگا، اور فاسقوں نے

اعلانیہ اس کے شکار کا اظہار کیا۔ تو ایک گروہ کھڑا ہوا، جس نے روکا، اور علانیہ منع کیا، اور الگ تھلگ ہو گیا۔

(۱) حدیث عبداللہ بن سلمہ کی روایت سے ہے، صفوان بن عسال سے۔ اور ابن کثیر نے اس حدیث کو اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفسیر میں ذکر کیا ہے: {اور ہم نے موسیٰ کو نو واضح نشانیاں عطا کیں...} [الاسراء: ۱۰۱] اور کہا: یہ ایک مشکل (پیچیدہ) حدیث ہے، اور عبداللہ بن سلمہ کے حافظے میں کچھ (خامی) ہے، اور ان کے بارے میں کلام کیا گیا ہے، شاید ان پر نو نشانیوں اور دس کلمات (حکموں) میں اشتباہ ہو گیا، کیونکہ وہ تورات میں وصیتیں ہیں، جن کا فرعون پر حجت قائم کرنے سے کوئی تعلق نہیں ہے، واللہ اعلم۔ (۲) سنن ترمذی (۲۷۳۳)۔ (۳) آیت (۱۰۱) کی تفسیر کے پاس۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۱۵۸۔ (۵) النکت والعیون ۱/۱۳۵، اور مجمع البیان ۱/۲۸۸۔ (۶) وہ یزید بن رومان، ابو روح الاسدی، المدنی ہیں، جو آل زبیر کے آزاد کردہ غلام تھے۔ انہوں نے عبداللہ بن عیاش بن ابی ربیعہ سے قرآن پڑھا، اور وہ ثقہ اور ثبت ہیں۔ ان کی وفات سال (۱۳۰ھ) میں ہوئی۔ اس کے علاوہ بھی کہا گیا ہے۔ معرفۃ القراء الکبار ۱/۱۷۸۔ (۷) القاموس میں ہے: الوَہَق، 'ہ' کی حرکت اور سکون کے ساتھ: وہ رسی جو پھندے میں پھینکی جاتی ہے، تاکہ اس سے جانور پکڑا جا سکے۔ (۸) (ز) میں: "اور وہ اسے چھوڑ دیتا ہے"۔ (۹) (د) اور (ز) میں: "یہاں تک کہ"۔

١٧· Surah Al-Baqarah: Verse 65

It is said: Those who forbade said: We will not live with you, so they divided the village with a wall. One day, those who forbade were in their gatherings and none of the transgressors came out. They said: Something must have happened to the people. So they climbed the wall, looked, and behold, they were monkeys. They opened the door and entered upon them. The monkeys recognized (1) their relatives among humans, but humans did not recognize their relatives among monkeys. The monkeys would go to their human relatives, smell their clothes and weep, and the human would say: Did we not forbid you! And it (the monkey) would nod its head yes (2). Qatadah said: The young men became monkeys, and the elders became pigs. Only those who forbade survived, and the rest perished (3). In "Al-A'raf" (4), the opinion of those who said they were three groups will come, which is more correct than the opinion of those who said they were divided into only two groups. And Allah knows best.

Sabbath is derived from *as-sabt*, which is cutting off. It was said: Things *sabatat* (ceased) in it, and their creation was completed. It was also said: It is derived from *subut*, which is rest and tranquility (5).

Scholars differed regarding whether the metamorphosed (mamsukh) reproduce. There are two opinions: Az-Zajjaj (6) said: Some people said it is possible these monkeys are from them. Judge Abu Bakr ibn al-Arabi (7) chose this.

The majority said: The metamorphosed do not reproduce, and that monkeys, pigs, and others existed before that. Those whom Allah transformed perished and left no progeny; because wrath and torment had afflicted them, so they had no stay in this world after three days.

(1) In (D): she recognized. (2) Narrated by al-Tabari 10/515-516, similarly, and also narrated by Abd al-Razzaq in his Tafsir 2/240, and Abu Nu'aym in al-Hilya 3/330, and al-Hakim 2/322, and al-Bayhaqi 10/92 from a long hadith of Ibn Abbas. (3) Al-Tabari 10/529 narrated from Qatadah that he said: They became monkeys with tails that howl, after they were men and women. Ibn Abi Hatim narrated in his Tafsir 1/210, and al-Tabari 10/529 from Ibn Abbas that he said: Allah made from them monkeys and pigs, claiming that the youth of the people became monkeys, and the elders became pigs. It was mentioned with the author's wording by Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/95. (4) At the commentary of verse (162) of it. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/158. (6) Ma'ani al-Qur'an 2/387. (7) Ahkam al-Qur'an 2/788.

१७० सूरा अल-बकरा: आयत ६५

कहा जाता है: मना करने वालों ने कहा: हम तुम्हारे साथ नहीं रहेंगे, इसलिए उन्होंने गाँव को एक दीवार से विभाजित कर दिया। एक दिन, मना करने वाले अपनी सभाओं में थे और उल्लंघन करने वालों में से कोई भी बाहर नहीं निकला। उन्होंने कहा: लोगों के साथ कुछ हुआ है। वे दीवार पर चढ़ गए, देखा, तो क्या देखते हैं कि वे बंदर थे। उन्होंने दरवाजा खोला और उनके पास गए। बंदरों ने (१) मनुष्यों में अपने रिश्तेदारों को पहचान लिया, लेकिन मनुष्यों ने बंदरों में अपने रिश्तेदारों को नहीं पहचाना। बंदर अपने मानव रिश्तेदारों के पास जाते, उनके कपड़े सूँघते और रोते, और मनुष्य कहता: क्या हमने तुम्हें मना नहीं किया था! और वह (बंदर) अपना सिर हिलाकर हाँ कहता (२)। कतादा ने कहा: युवा बंदर बन गए, और बुजुर्ग सुअर बन गए। केवल वही बचे जिन्होंने मना किया था, और बाकी सब नष्ट हो गए (३)। "अल-अराफ" (४) में उन लोगों की राय आएगी जिन्होंने कहा कि वे तीन समूह थे, जो उन लोगों की राय से अधिक सही है जिन्होंने कहा कि वे केवल दो समूहों में विभाजित थे। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

'सब्त' (शनिवार) 'अस-सब्त' से लिया गया है, जिसका अर्थ है काटना। कहा गया: इसमें चीजें रुक गईं (सबतत) और उनका सृजन पूरा हो गया। यह भी कहा गया: यह 'सुबूत' से लिया गया है जिसका अर्थ है आराम और शांति (५)।

विद्वानों के बीच इस बात पर मतभेद है कि क्या कायापलट (ममसूख) जीव प्रजनन करते हैं। दो राय हैं: अज़-ज़ज्जाज (६) ने कहा: कुछ लोगों ने कहा कि यह संभव है कि ये बंदर उन्हीं में से हों। न्यायाधीश अबू बक्र इब्न अल-अरबी (७) ने इसे चुना।

बहुमत ने कहा: कायापलट जीव प्रजनन नहीं करते हैं, और बंदर, सुअर और अन्य जीव उससे पहले भी मौजूद थे। जिन्हें अल्लाह ने परिवर्तित किया वे नष्ट हो गए और उनकी कोई संतान नहीं बची; क्योंकि उन पर क्रोध और पीड़ा आई थी, इसलिए तीन दिनों के बाद दुनिया में उनका कोई ठिकाना नहीं रहा।

(१) (द) में: उसने पहचाना। (२) इसे अल-तबरी १०/५१५-५१६ ने इसी तरह उद्धृत किया है, और अब्द अल-रज्जाक ने अपनी तफ़सीर २/२४० में, अबू नुऐम ने अल-हिल्या ३/३३० में, अल-हाकिम ने २/३२२ में, और अल-बैहकी ने १०/९२ में इब्न अब्बास की एक लंबी हदीस से उद्धृत किया है। (३) अल-तबरी १०/५२९ ने कतादा से उद्धृत किया है कि उन्होंने कहा: वे पूंछ वाले बंदर बन गए जो

चिल्लाते थे, इसके बाद कि वे पुरुष और महिलाएं थे। इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर १/२१० में और अल-तबरी १०/५२९ ने इब्न अब्बास से उद्धृत किया है कि उन्होंने कहा: अल्लाह ने उनमें से बंदर और सुअर बना दिए, यह दावा करते हुए कि लोगों के युवा बंदर बन गए और बुजुर्ग सुअर बन गए। इसे लेखक के शब्दों के साथ इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर १/९५ में उल्लेख किया है। (४) इसकी आयत (१६२) की व्याख्या के समय। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१५८। (६) मानी अल-कुरान २/३८७। (७) अहकाम अल-कुरान २/७८८।

۱۷۰ سورہ البقرہ: آیت ۶۵

کہا جاتا ہے کہ منع کرنے والوں نے کہا: ہم تمہارے ساتھ نہیں رہیں گے، چنانچہ انہوں نے بستی کو دیوار سے تقسیم کر دیا۔ ایک دن منع کرنے والے اپنی مجلسوں میں تھے اور حد سے تجاوز کرنے والوں میں سے کوئی بھی باہر نہیں نکلا، تو انہوں نے کہا: لوگوں کا کوئی معاملہ ضرور ہوا ہے۔ وہ دیوار پر چڑھے اور دیکھا تو وہ بندر بن چکے تھے۔ انہوں نے دروازہ کھولا اور ان کے پاس داخل ہوئے، تو بندروں نے (۱) انسانوں میں سے اپنے رشتہ داروں کو پہچان لیا، لیکن انسانوں نے بندروں میں سے اپنے رشتہ داروں کو نہیں پہچانا۔ بندر اپنے انسانی رشتہ دار کے پاس آتا، اس کے کپڑے سونگھتا اور روتا، تو انسان کہتا: کیا ہم نے تمہیں منع نہیں کیا تھا! تو وہ (بندر) اپنے سر سے اشارہ کرتا کہ ہاں (۲)۔ قتادہ نے کہا: نوجوان بندر بن گئے اور بوڑھے سور، تو صرف وہی بچے جنہوں نے منع کیا تھا اور باقی سب ہلاک ہو گئے (۳)۔ "الاعراف" (۴) میں ان لوگوں کا قول آئے گا جنہوں نے کہا کہ وہ تین گروہ تھے، اور یہ اس قول سے زیادہ صحیح ہے جس میں کہا گیا کہ وہ صرف دو گروہوں میں بٹے تھے۔ واللہ اعلم۔

سبت 'السبت' سے ماخوذ ہے، اور وہ کاٹنا ہے، تو کہا گیا: اس میں چیزیں رک گئیں (سبتت) اور ان کی تخلیق مکمل ہوگئی، اور کہا گیا: یہ 'سبوت' سے ماخوذ ہے جس کا مطلب راحت اور سکون ہے (۵)۔

علماء کا اس بارے میں اختلاف ہے کہ کیا مسخ شدہ (ممسوخ) کی نسل چلتی ہے؟ اس میں دو قول ہیں: زجاج (۶) نے کہا: ایک گروہ کا کہنا ہے کہ جائز ہے کہ یہ بندر انہی میں سے ہوں۔ اور قاضی ابو بکر بن العربی (۷) نے اسی کو اختیار کیا ہے۔

اور جمہور نے کہا: مسخ شدہ کی نسل نہیں چلتی، اور یہ کہ بندر، سور اور دیگر جانور اس سے پہلے بھی موجود تھے، اور جنہیں اللہ نے مسخ کیا وہ ہلاک ہو گئے اور ان کی کوئی نسل باقی نہیں رہی؛ کیونکہ ان پر اللہ کا غضب اور عذاب نازل ہوا تھا، چنانچہ تین دن کے بعد دنیا میں ان کے لیے کوئی ٹھکانہ نہیں رہا۔

(۱) (د) میں ہے: پس اس نے پہچان لیا۔ (۲) اسے طبری نے ۵۱۵/۱۰ - ۵۱۶ میں اسی طرح روایت کیا ہے، اور عبد الرزاق نے اپنی تفسیر ۲۴۰/۲ میں، ابو نعیم نے الحلیہ ۳۳۰/۳ میں، حاکم نے ۳۲۲/۲ میں، اور بیہقی نے ۹۲/۱۰ میں ابن عباس کی طویل حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۳) طبری نے ۵۲۹/۱۰ میں قتادہ سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: وہ دموں والے بندر بن گئے جو چیختے تھے، اس کے بعد کہ وہ مرد اور عورتیں تھے۔ ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر ۲۱۰/۱ میں اور طبری نے ۵۲۹/۱۰ میں ابن عباس سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: اللہ نے ان میں سے بندر اور سور بنا دیے، ان کا دعویٰ ہے کہ قوم کے نوجوان بندر بن گئے اور بوڑھے سور بن گئے۔ اسے مصنف کے الفاظ میں ابن الجوزی نے زاد المسیر ۹۵/۱ میں نقل کیا ہے۔ (۴) اسی سورت کی آیت (۱۶۲) کی تفسیر کے وقت۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۵۸/۱۔ (۶) معانی القرآن ۳۸۷/۲۔ (۷) احکام القرآن ۷۸۸/۲۔

Ibn Abbas said: "A transformed creature (maskh) never lived for more than three days, nor did it eat, drink, or reproduce."(1) Ibn Atiyyah said(2): "It was narrated from the Prophet ﷺ, and confirmed, that the transformed do not reproduce, eat, drink, or live for more than three days."(3) I say: This is the correct of the two opinions. As for what Ibn al-Arabi and others used to argue for the validity of the first opinion, based on his ﷺ saying: "A nation from the Children of Israel went missing and it is not known what they did, and I do not see them except as rats. Do you not see that if camel's milk is placed for them, they do not drink it(4), but if sheep's milk(5) is placed for them, they drink it?" Narrated by Abu Hurairah, recorded by Muslim(6). And by the hadith of the lizard (dabb), also narrated by Muslim from Abu Sa'id and Jabir(7). Jabir said: "A lizard was brought to the Prophet ﷺ, and he refused to eat from it, saying: 'I do not know, perhaps it is from the generations that were transformed.'" This is interpreted as follows. Ibn al-Arabi said: "In Al-Bukhari(8) from Amr ibn Maymun(9) that he said: 'I saw in the pre-Islamic period (Jahiliyyah) a female monkey who had committed adultery, so they stoned her, and I stoned her with them.' It was confirmed in some copies of Al-Bukhari and omitted in others, and in some(10) versions of the hadith: 'she had committed adultery' is confirmed, while this wording was omitted by others." Ibn al-Arabi said: "If it is said: It is as if animals retained some knowledge(11) of the laws until..."

(1) Recorded by al-Tabari 2/59-61. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/160. (3) The author will mention it on the next page. (4) In (Zha): do not drink it (feminine plural form). (5) In (Zha): sheep's milk. (6) No. (2997), and it is in Al-Bukhari (3305) and Ahmad (7197). (7) Hadith of Jabir no. (1949), and it is in Al-Musnad (14460), and hadith of Abu Sa'id no. (1951) similarly, and it is in Al-Musnad (11013). (8) (3849). (9) He is Abu Abdullah al-Awdi, al-Madhhiji al-Kufi. He lived through the Jahiliyyah, accepted Islam during the Prophetic era, went to Sham with Mu'adh, then lived in Kufa, and died around the year (75 AH). Siyar 4/158. (10) In (D), (Zha), and (M): text, and what is confirmed is from (Z), which matches what is in Ahkam al-Qur'an 2/788. (11) In the copies: acquaintance/custom (ta'aruf), and what is confirmed is from (M), which matches what is in Ahkam al-Qur'an.

पृष्ठ 171 | सूरा अल-बक़रह: आयत 65

इब्न अब्बास ने कहा: "रूपांतरित प्राणी (मस्ख़) कभी भी तीन दिनों से अधिक जीवित नहीं रहा, न ही उसने खाया, न पिया, और न ही वंश बढ़ाया।" (1) इब्न अतिय्याह ने कहा (2): "नबी ﷺ से रिवायत है और यह साबित है कि रूपांतरित जीव न तो प्रजनन करते हैं, न खाते हैं, न पीते हैं और न ही तीन दिनों से अधिक जीवित रहते हैं।" (3) मैं कहता हूँ: दो कथनों में से यही सही है। जहाँ तक इब्न अल-अरबी और अन्य लोगों ने पहले कथन की वैधता के लिए उनके ﷺ के इस कथन से तर्क दिया है: "बनी इस्राइल का एक समुदाय खो गया था और पता नहीं उनका क्या हुआ, और मुझे लगता है कि वे चूहे ही हैं। क्या तुम नहीं देखते कि जब उनके लिए ऊंटनी का दूध रखा जाता है तो वे उसे नहीं पीते (4), लेकिन जब उनके लिए बकरी का दूध (5) रखा जाता है तो वे उसे पी लेते हैं?" इसे अबू हुरैरा ने रिवायत किया है और मुस्लिम ने संकलित किया है (6)। और गोह (छिपकली जैसा जीव) की हदीस, जिसे मुस्लिम ने अबू सईद और जाबिर से भी रिवायत किया है (7)। जाबिर ने कहा: "नबी ﷺ के पास एक गोह लाई गई, तो उन्होंने इसे खाने से इनकार कर दिया और कहा: 'मुझे नहीं पता, शायद यह उन पीढ़ियों में से हो जिन्हें रूपांतरित कर दिया गया था'।" तो इसकी व्याख्या आगे आने वाले तरीके से की जाएगी। इब्न अल-अरबी ने कहा: "अल-बुखारी (8) में अम्र इब्न मैमुन (9) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: 'मैंने जाहिलियत के दौर में एक मादा बंदरिया को देखा जिसने व्यभिचार किया था, तो उन्होंने उसे संगसार किया (पत्थरों से मार डाला), और मैंने भी उनके साथ उसे संगसार किया।' यह बुखारी की कुछ प्रतियों में मौजूद है और कुछ में नहीं, और कुछ (10) हदीसों में यह शब्द 'व्यभिचार किया था' साबित है, जबकि कुछ ने इस शब्द को हटा दिया है।" इब्न अल-अरबी ने कहा: "यदि यह कहा जाए: तो ऐसा लगता है जैसे जानवरों में शरीयत की कुछ समझ (11) बाकी रह गई थी यहाँ तक कि..."

(1) अल-तबरी 2/59-61 द्वारा संकलित। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/160। (3) लेखक अगले पृष्ठ पर इसका उल्लेख करेंगे। (4) (ज़) में: 'ला तशरबहा' (स्त्रीलिंग बहुवचन)। (5) (ज़) में: भेड़ का दूध। (6) संख्या (2997), और यह अल-बुखारी (3305) और अहमद (7197) में है। (7) जाबिर की हदीस संख्या (1949), और यह अल-मुसनद (14460) में है, और अबू सईद की हदीस संख्या (1951) भी इसी तरह की है, जो अल-मुसनद (11013) में है। (8) (3849)। (9) वे अबू अब्दुल्ला अल-औदी, अल-मज़हिजी अल-कुफ़ी हैं। उन्होंने जाहिलियत का दौर देखा, नबूवत के दिनों में इस्लाम स्वीकार किया, मुआज के साथ शाम आए, फिर कूफ़ा में बस गए, और वर्ष (75 हिजरी) के आसपास उनकी

मृत्यु हो गई। अल-सियार 4/158। (10) (द), (ज़) और (म) में: मूल पाठ, और जो पुष्ट है वह (ज़) से है जो अहकाम अल-कुरान 2/788 के अनुरूप है। (11) प्रतियों में: 'तआरुफ़' (परिचय), और जो पुष्ट है वह (म) से है, जो अहकाम अल-कुरान के अनुरूप है।

ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: ”مسخ شدہ (صورت بدلا ہوا) جاندار کبھی تین دن سے زیادہ زندہ نہیں رہا، اور نہ اس نے کھایا، نہ پیا، اور نہ ہی اس کی نسل چلی۔“(۱) ابن عطیہ (۲) نے کہا: ”نبی ﷺ سے مروی ہے، اور یہ ثابت ہے کہ مسخ شدہ جاندار نہ نسل چلاتا ہے، نہ کھاتا ہے، نہ پیتا ہے اور نہ تین دن سے زیادہ زندہ رہتا ہے۔“(۳) میں کہتا ہوں: دونوں اقوال میں سے یہی صحیح ہے، رہی وہ بات جس سے ابن العربی اور دیگر حضرات نے پہلے قول کی صحت پر استدلال کیا ہے، یعنی آپ ﷺ کا یہ فرمان: ”بنی اسرائیل کی ایک امت لاپتہ ہوگئی اور معلوم نہیں کہ ان کے ساتھ کیا ہوا، اور میں انہیں صرف چوہے ہی سمجھتا ہوں، کیا تم نہیں دیکھتے کہ جب ان کے لیے اونٹنی کا دودھ رکھا جاتا ہے تو وہ اسے نہیں پیتے (۴)، اور جب ان کے لیے بکریوں کا دودھ (۵) رکھا جاتا ہے تو وہ اسے پی لیتے ہیں۔“ اسے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے روایت کیا ہے، امام مسلم نے اسے نکالا ہے (۶)۔ نیز گوہ (ضب) کی حدیث جسے مسلم نے ابوسعید اور جابر رضی اللہ عنہم سے بھی روایت کیا ہے (۷)۔ جابر رضی اللہ عنہ نے کہا: ”نبی ﷺ کے پاس گوہ لائی گئی تو آپ ﷺ نے اسے کھانے سے انکار کر دیا اور فرمایا: ’مجھے نہیں معلوم، شاید یہ ان نسلوں میں سے ہو جنہیں مسخ کر دیا گیا تھا‘۔“ تو اس کی تاویل اس طرح ہوگی جو آگے آرہی ہے۔ ابن العربی نے کہا: ”بخاری (۸) میں عمرو بن میمون (۹) سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: ’میں نے زمانہ جاہلیت میں ایک بندریا کو دیکھا جس نے زنا کیا تھا، تو انہوں نے اسے سنگسار کیا، اور میں نے بھی ان کے ساتھ اسے سنگسار کیا‘۔ یہ بخاری کے بعض نسخوں میں ثابت ہے اور بعض سے ساقط ہے، اور بعض (۱۰) حدیثوں میں یہ لفظ ’قد زنت‘ (اس نے زنا کیا) ثابت ہے، جبکہ بعض کے ہاں یہ لفظ

ساقط ہے۔" ابن العربی نے کہا: "پس اگر یہ کہا جائے: کہ گویا جانوروں میں شریعت کی کچھ پہچان (١١) باقی رہ گئی تھی یہاں تک کہ..."

(١) اسے طبری نے ٦١-٥٩/٢ میں نکالا ہے۔ (٢) المحرر الوجیز ١٦٠/١۔ (٣) مصنف اگلے صفحے پر اس کا ذکر کریں گے۔ (٤) (ظ) میں ہے: "لا تشربہا"۔ (٥) (ظ) میں ہے: "لبن الشاۃ" (بکری کا دودھ)۔ (٦) نمبر (٢٩٩٧)، اور یہ بخاری (٣٣٠٥) اور احمد (٧١٩٧) کے ہاں بھی ہے۔ (٧) جابر کی حدیث نمبر (١٩٤٩) ہے، اور یہ مسند (١٤٤٦٠) میں ہے، اور ابوسعید کی حدیث نمبر (١٩٥١) اسی کی مانند ہے، جو مسند (١١٠١٣) میں ہے۔ (٨) (٣٨٤٩)۔ (٩) وہ ابو عبد اللہ الاودی، المذحجی الکوفی ہیں، انہوں نے جاہلیت کا زمانہ پایا، عہد نبوی میں اسلام لائے، معاذ رضی اللہ عنہ کے ساتھ شام آئے، پھر کوفہ میں سکونت اختیار کی، ان کی وفات سن (٧٥ھ) کے قریب ہوئی۔ السیر ١٥٨/٤۔ (١٠) (د)، (ظ) اور (م) میں ہے: "نص"، اور جو ثابت ہے وہ (ز) سے ہے اور یہی احکام القرآن ٧٨٨/٢ کے مطابق ہے۔ (١١) نسخوں میں ہے: "تعارف"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے جو احکام القرآن کے مطابق ہے۔

172 Surah Al-Baqarah: Verse 65

They inherited it [the law] successor from predecessor until the time of 'Amr. We said: Yes, it was so, because the Jews changed the punishment of stoning. So Allah wanted to establish it through their transformed ones [apes/pigs] (1) so that it would be a more profound proof against what they denied and changed, until their books, their rabbis, and their transformed ones testify against them, so they know that Allah knows what they conceal and what they reveal, and He counts what they alter and change, and He establishes proof against them from where they do not perceive, and He supports His Prophet, peace be upon him, while they are not supported. I say: This is his statement regarding rulings, and there is no proof in any of it. As for what he mentioned regarding the story of 'Amr, Al-Humaydi (2) mentioned in "Jam' al-Sahihayn": Abu Mas'ud al-Dimashqi (3) related that there is a story in the Sahihayn for 'Amr ibn Maymun al-Awdi from the narration of Husayn from him, who said: "I saw in the pre-Islamic period of ignorance (Jahiliyyah) a female ape, around which other apes gathered and stoned her, so I stoned her with them." This is how Abu Mas'ud related it, but it was not mentioned in which place Bukhari included it in his book. We searched for that and found it in some copies, but not in all of them. It was mentioned in the book "Days of Jahiliyyah," but in the narration of al-Nu'aymi (4) from al-Farabri (5), there is nothing at all of this report regarding the apes. Perhaps it is one of the interpolations in the book of Bukhari (6). What Bukhari said in "Al-Tarikh al-Kabir" (7): Nu'aym ibn Hammad told me, Hushaym informed us, from Abu Balj and Husayn (8), from 'Amr ibn Maymun, who said: "I saw in the Jahiliyyah apes gathered..."

(1) In (ظ): his transformed. (2) He is Muhammad ibn Abi Nasr Futuh, Abu Abd Allah al-Azdi, al-Andalusi, the Zahiri jurist, companion of Ibn Hazm and his student. He authored "Al-Jam' bayna al-Sahihayn" and "History of Andalusia." He died in (488 AH). Al-Siyar 19/120. (3) He is Ibrahim ibn Muhammad ibn 'Ubayd, the Hafiz. He authored the book "Atraf al-Sahihayn." He died in (401 AH). Al-Siyar 17/227. (4) He is Ahmad ibn Abd Allah, Abu Hamid al-Sarkhasi, a resident of Herat, narrator of the Sahih from al-Farabri. He died in (386 AH). Al-Siyar 16/448. (5) He is Muhammad ibn Yusuf Abu Abd Allah, narrator of the Sahih from Bukhari. He died in the year (320 AH). Al-Siyar 15/10. (6) Al-Hafiz Ibn Hajar in "Fath al-Bari" 7/160 refuted this statement of Al-Humaydi and said: The Hadith is mentioned in most of the original manuscripts we have examined. He said: It is sufficient proof that Abu Dharr al-Hafiz related it from his three leading masters from Al-Farabri. Likewise, the inclusion by al-Isma'ili and Abu Nu'aym in their

"Mustakhrajs" and by Abu Mas'ud in his "Atraf" is a proof. (7) 6/367. (8) Hushaym: He is Ibn Bashir. Abu Balj: He is Yahya ibn Sulaym, or Ibn Abi Sulaym. Husayn: He is Ibn Abd al-Rahman.

१७२ सूरह अल-बकराह: आयत ६५

उन्होंने इसे [कानून को] पूर्ववर्ती से उत्तराधिकारी तक 'अम्र' के समय तक विरासत में पाया। हमने कहा: हाँ, ऐसा ही था, क्योंकि यहूदियों ने पथराव (रज्म) की सजा को बदल दिया था। इसलिए अल्लाह ने इसे उनके परिवर्तित स्वरूपों [बंदरों/सुअरों] (१) के माध्यम से स्थापित करना चाहा ताकि यह उनके द्वारा नकारे गए और बदले गए तथ्यों के विरुद्ध एक गहरा प्रमाण बन जाए, जब तक कि उनकी पुस्तकें, उनके रब्बी और उनके परिवर्तित स्वरूप उनके विरुद्ध गवाही न दें, ताकि वे जान लें कि अल्लाह वह सब जानता है जो वे छिपाते हैं और जो वे प्रकट करते हैं, और वह उनके द्वारा किए गए परिवर्तनों और बदलावों को गिनता है, और वह उनके विरुद्ध वहां से प्रमाण स्थापित करता है जहां से उन्हें पता भी नहीं चलता, और वह अपने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सहायता करता है, जबकि उनकी सहायता नहीं की जाती। मैंने कहा: यह नियमों के संबंध में उनका कथन है, और इसमें से किसी में भी कोई दलील नहीं है। जहाँ तक उन्होंने 'अम्र' की कहानी का उल्लेख किया है, अल-हुमैदी (२) ने 'जम अल-सहीहैन' में उल्लेख किया है: अबू मसूद अल-दमिश्की (३) ने वर्णन किया है कि 'अम्र इब्न मैमुन अल-अवदी के लिए सहीहैन में हुसैन के वर्णन से एक कहानी है, जिन्होंने कहा: "मैंने अज्ञानता के काल (जाहिलियत) में एक मादा बंदर को देखा, जिसके चारों ओर अन्य बंदर इकट्ठे हुए और उसे पत्थर मारे, तो मैंने भी उनके साथ उसे पत्थर मारे।" अबू मसूद ने इसी तरह वर्णन किया है, लेकिन यह उल्लेख नहीं किया गया कि बुखारी ने इसे अपनी पुस्तक में किस स्थान पर शामिल किया है। हमने उसकी खोज की और उसे कुछ प्रतियों में पाया, लेकिन सभी में नहीं। इसका उल्लेख 'जाहिलियत के दिन' पुस्तक में किया गया था, लेकिन अल-फराबी (५) से अल-नुएमी (४) के वर्णन में बंदरों के बारे में इस रिपोर्ट का कुछ भी अंश नहीं है। शायद यह बुखारी (६) की पुस्तक में बाद में मिलाई गई बातों में से एक है। बुखारी ने 'अल-तारीख अल-कबीर' (७) में जो कहा: नुऐम इब्न हम्माद ने मुझसे कहा, हुशैम ने हमें अबू बल्ज और हुसैन (८) से बताया, 'अम्र इब्न मैमुन से, जिन्होंने कहा: "मैंने जाहिलियत में बंदरों को इकट्ठा देखा..."

(१) (ظ) में: उसका रूपांतरित। (२) वह मुहम्मद बिन अबी नस्र फुतुह, अबू अब्दुल्लाह अल-अज़दी, अल-अंदलुसी, ज़ाहिरी फ़क़ीह, इब्न हज़्म के साथी और उनके छात्र हैं। उन्होंने 'अल-जम' बैना अल-सहीहैन' और 'अंदलूसिया का इतिहास' लिखा। उनका निधन (४८८ हिजरी) में हुआ। अस-सियार १९/१२०। (३) वह इब्राहिम बिन मुहम्मद बिन उबैद, हाफिज़ हैं। उन्होंने पुस्तक 'अतराफ अल-सहीहैन' लिखी। उनका निधन (४०१ हिजरी) में हुआ। अस-सियार १७/२२७। (४) वह अहमद बिन

अब्दुल्लाह, अबू हामिद अस-सरखसी हैं, हेरात के निवासी, अल-फराबी से सहीह के वर्णनकर्ता। निधन (३८६ हिजरी)। अस-सियार १६/४४८। (५) वह मुहम्मद बिन यूसुफ अबू अब्दुल्लाह हैं, बुखारी से सहीह के वर्णनकर्ता। उनका निधन वर्ष (३२० हिजरी) में हुआ। अस-सियार १५/१०। (६) हाफिज़ इब्न हजर ने 'फतह अल-बारी' ७/१६० में अल-हुमैदी के इस कथन का खंडन किया और कहा: हदीस उन अधिकांश मूल पांडुलिपियों में उल्लिखित है जिनकी हमने जांच की है। उन्होंने कहा: अबू धर अल-हाफिज़ द्वारा अल-फराबी से अपने तीन अग्रणी उस्तादों के माध्यम से इसे वर्णित करना ही पर्याप्त प्रमाण है। इसी तरह, अल-इस्माइली और अबू नुऐम द्वारा उनके'मुस्तखराज' में और अबू मसूद द्वारा उनके'अतराफ' में इसे शामिल करना एक प्रमाण है। (७) ६/३६७। (८) हुशैम: वह इब्न बशीर हैं। अबू बल्ज: वह यहया इब्न सुलैम, या इब्न अबी सुलैम हैं। हुसैन: वह इब्न अब्द अल-रहमान हैं।

۱۷۲ سورة البقرہ: آیت ۶۵

انہوں نے اسے [قانون کو] ایک دوسرے سے وراثت میں پایا یہاں تک کہ عمرو کا زمانہ آگیا۔ ہم نے کہا: ہاں، ایسا ہی تھا، کیونکہ یہودیوں نے سنگساری کی سزا کو بدل دیا تھا۔ چنانچہ اللہ نے چاہا کہ اسے ان کے مسخ شدہ افراد [بندروں/خنزیروں] (۱) کے ذریعے قائم کرے تاکہ یہ ان چیزوں پر زیادہ بلیغ حجت ہو جائے جن کا انہوں نے انکار کیا اور جنہیں بدلا، یہاں تک کہ ان کی کتابیں، ان کے علماء اور ان کے مسخ شدہ افراد ان کے خلاف گواہی دیں، تاکہ وہ جان لیں کہ اللہ وہ سب جانتا ہے جو وہ چھپاتے ہیں اور جو وہ ظاہر کرتے ہیں، اور وہ جو کچھ بدلتے اور تبدیل کرتے ہیں اسے شمار کرتا ہے، اور ان پر وہاں سے حجت قائم کرتا ہے جہاں سے انہیں شعور بھی نہیں ہوتا، اور وہ اپنے نبی علیہ السلام کی مدد فرماتا ہے، جبکہ ان کی مدد نہیں کی جاتی۔ میں نے کہا: یہ احکام کے بارے में ان کا کلام ہے، اور اس میں سے کسی چیز میں کوئی حجت نہیں ہے۔ رہی وہ بات جو انہوں نے عمرو کے قصے کے بارے میں ذکر کی، تو الحمیدی (۲) نے 'جمع الصحیحین' میں ذکر کیا ہے: ابو مسعود الدمشقی (۳) نے حکایت بیان کی ہے کہ عمرو بن میمون الاودی کے لیے صحیحین میں حسین کی روایت سے ایک حکایت ہے، انہوں نے کہا: "میں نے زمانہ جاہلیت میں ایک بندریا دیکھی، جس پر بہت سے بندر جمع ہوئے، پس انہوں نے اسے سنگسار کیا، تو میں نے भी ان کے ساتھ اسے سنگسار کیا۔" ابو مسعود نے اسی طرح حکایت بیان کی ہے، لیکن یہ ذکر نہیں کیا گیا کہ بخاری نے اسے اپنی کتاب میں کس جگہ درج کیا ہے، تو ہم نے اس کی تلاش کی، پس ہم نے اسے کچھ نسخوں میں پایا، سب میں نہیں۔ چنانچہ اسے 'ایام جاہلیت' کی کتاب میں ذکر کیا گیا ہے، اور الفربري (۵) سے النعیمی (۴) کی روایت میں بندروں کے بارے میں اس خبر کا سرے سے کوئی ذکر نہیں ہے۔ شاید یہ بخاری (۶) کی کتاب میں الحاقی (بعد में शामिल की गई)

باتوں میں سے ہے۔ اور بخاری نے جو 'التاریخ الکبیر' (۷) میں کہا ہے: مجھ سے نعیم بن حماد نے کہا، ہمیں ہشیم نے خبر دی، ابو بلج اور حصین (۸) سے، انہوں نے عمرو بن میمون سے، انہوں نے کہا: "میں نے جاہلیت میں بندروں کو جمع دیکھا..."

(۱) (ظ) میں: ممسوخہ۔ (۲) وہ محمد بن ابی نصر فتوح، ابو عبد اللہ الازدی، الاندلسی، فقیہ ظاہری، ابن حزم کے ساتھی اور ان کے شاگرد ہیں۔ انہوں نے 'الجمع بین الصحیحین' اور 'تاریخ اندلس' تصنیف کی۔ ان کی وفات (۴۸۸ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۹/۱۲۰۔ (۳) وہ ابراہیم بن محمد بن عبید، الحافظ ہیں۔ انہوں نے کتاب 'اطراف الصحیحین' تصنیف کی۔ ان کی وفات (۴۰۱ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۷/۲۲۷۔ (۴) وہ احمد بن عبد اللہ، ابو حامد السرخسی ہیں، ہرات کے رہنے والے، الفربري سے صحیح کے راوی۔ وفات (۳۸۶ھ)۔ السیر ۱۶/۴۴۸۔ (۵) وہ محمد بن یوسف ابو عبد اللہ ہیں، بخاری سے صحیح کے راوی| ان کی وفات سال (۳۲۰ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۵/۱۰۔ (۶) حافظ ابن حجر نے 'فتح الباری' ۷/۱۶۰ میں الحمیدی کے اس قول کی تردید کی ہے اور کہا: یہ حدیث ان اکثر اصول (نسخوں) میں مذکور ہے جن پر ہم مطلع ہوئے۔ انہوں نے کہا: ابو ذر الحافظ کا اسے اپنے تین ثقہ ائمہ شیوخ کے واسطے سے الفربري سے نقل کرنا ہی بطور حجت کافی ہے، اور اسی طرح اسماعیلی اور ابو نعیم کا اپنی مستخرجات میں اور ابو مسعود کا اپنی اطراف میں اسے لانا بھی حجت ہے۔ (۷) ۶/۳۶۷۔ (۸) ہشیم: وہ ابن بشیر ہیں۔ ابو بلج: وہ یحییٰ بن سلیم ہیں، یا ابن ابی سلیم۔ حصین: وہ ابن عبد الرحمن ہیں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 65 173

...upon it monkeys, so they stoned her, and I stoned her with them." It does not contain: "she had committed adultery." If this narration is authentic, Al-Bukhari only included it to indicate that Amr bin Maymun had lived through the pre-Islamic period (Jahiliyyah), and he did not pay heed to the assumption he made during Jahiliyyah.

Abu Umar mentioned in Al-Isti'ab (1) Amr bin Maymun, and that his kunya (nickname) was Abu Abdullah, counted among the senior Tabi'un from Kufa. He is the one who saw stoning among monkeys during Jahiliyyah, if that is authentic, because its narrators are unknown. Al-Bukhari mentioned him from Nu'aym, from Hushaym, from Husayn, from Amr bin Maymun al-Awdi, in a summarized form, saying: "I saw during Jahiliyyah a female monkey who had committed adultery, so they stoned her - meaning the monkeys - and I stoned her with them."

Abbad bin al-Awam narrated it from Husayn as Hushaym narrated it, in a summarized form.

As for the full story (2), it revolves around Abd al-Malik bin Muslim, from Isa bin Hattan, and neither of them are among those whose reports are used as evidence. According to a group (3) of scholars, attributing adultery to non-accountable beings and performing legal punishments (hudud) on animals is rejected (munkar). If it were true, they would have been from the Jinn, because religious obligations are for humans and Jinn and no others (4).

As for the saying of the Prophet (Peace be upon him) in the hadith of Abu Hurairah: "And I do not see it as anything but the mouse," and regarding the lizard (dabb): "I do not know, perhaps it is from the generations that were transformed," and what was like them, it was only a conjecture and a fear that the lizard, the mouse, and others might be among those transformed. This was an intuition from him (PBUH) before it was revealed to him that Allah did not grant offspring to a transformed being (5). So, when it was revealed to him, that fear left him, and he knew that the lizard and the mouse were not from those transformed. At that point, he informed us by saying (PBUH) to the one who asked him about monkeys...

(1) 9/14 in the margin of Al-Isabah. (2) Al-Mizzi cited it in Tahdhib al-Kamal 22/265-266, Al-Dhahabi in Al-Siyar 4/159, and Ibn Hajar in Lisan al-Mizan 4/394, and attributed it to Al-Isma'ili in his Mustakhraj. (3) In (d): "the majority (jamahir)." (4) Al-Hafiz Ibn Hajar responded to this statement of Ibn Abd al-Barr in Lisan al-Mizan

4/393-394, saying: its narrators are famous, and he quoted the verification of Abd al-Malik bin Muslim from Ibn Ma'in and others, and said: Isa bin Hattan was mentioned by Ibn Hibban in Al-Thiqat, and he is counted among the people of Basra. (5) In (m): "for the transformation."

सूरा अल-बकरा: आयत 65 173

...उस पर बंदर थे, तो उन्होंने उसे पथराव किया, और मैंने भी उनके साथ उसे पथराव किया।" इसमें यह नहीं है: "उसने व्यभिचार किया था।" यदि यह वर्णन प्रामाणिक है, तो अल-बुखारी ने इसे केवल यह संकेत देने के लिए शामिल किया कि अम्र बिन मैमुन ने अज्ञानता के काल (जाहिलिया) को देखा था, और उन्होंने जाहिलिया के दौरान किए गए अपने अनुमान पर ध्यान नहीं दिया।

अबू उमर ने अल-इस्तियाब (1) में अम्र बिन मैमुन का उल्लेख किया है, और यह कि उनकी कुनियत अबू अब्दुल्लाह थी, जिन्हें कूफा के वरिष्ठ ताबिईन में गिना जाता है। यही वह व्यक्ति हैं जिन्होंने जाहिलिया में बंदरों के बीच पथराव (रज़्म) देखा था, यदि यह प्रामाणिक है, क्योंकि इसके वर्णनकर्ता अज्ञात हैं। अल-बुखारी ने नुअैम, हुशैंम, हुसैन, अम्र बिन मैमुन अल-अवदी के माध्यम से संक्षिप्त रूप में उनका उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: "मैंने जाहिलिया में एक बंदरिया को देखा जिसने व्यभिचार किया था, तो उन्होंने उसे पथराव किया - यानी बंदरों ने - और मैंने भी उनके साथ उसे पथराव किया।"

अब्बाद बिन अल-अव्वम ने इसे हुसैन से वैसे ही वर्णित किया जैसे हुशैंम ने, संक्षिप्त रूप में।

जहाँ तक पूरी कहानी (2) का प्रश्न है, यह अब्दुल मलिक बिन मुस्लिम, ईसा बिन हत्तान के इर्द-गिर्द घूमती है, और दोनों ही ऐसे नहीं हैं जिनकी बातों को प्रमाण के रूप में लिया जाए। विद्वानों के एक समूह (3) के अनुसार, गैर-जिम्मेदार प्राणियों (जानवरों) पर व्यभिचार का आरोप लगाना और जानवरों पर कानूनी सजा (हुद्दूद) लागू करना अस्वीकार्य (मुनकर) है। यदि यह सच होता, तो वे जिन्न होते, क्योंकि धार्मिक दायित्व मनुष्यों और जिन्नों के लिए हैं, दूसरों के लिए नहीं (4)।

जहाँ तक अबू हुरैरा की हदीस में पैगंबर (उन पर शांति हो) के कथन का सवाल है: "और मैं इसे चूहे के अलावा कुछ नहीं देखता," और छिपकली (दब्ब) के बारे में: "मुझे नहीं पता, शायद यह उन पीढ़ियों में से है जो रूपांतरित हो गई थीं," और उनके जैसी अन्य चीजों के बारे में, यह केवल एक अनुमान और भय था कि कहीं छिपकली, चूहा और अन्य रूपांतरित किए गए जीवों में से न हों। यह उनकी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ओर से एक अंतर्ज्ञान था इससे पहले कि उन पर यह प्रकट किया जाता कि अल्लाह ने किसी रूपांतरित जीव (5) को संतान नहीं दी। अत; जब उन पर यह प्रकट किया गया, तो वह भय दूर हो गया, और उन्हें ज्ञात हुआ कि छिपकली और चूहा रूपांतरित

जीवों में से नहीं हैं। उस समय, उन्होंने (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) बंदरों के बारे में पूछने वाले को अपने इस कथन से सूचित किया...

(1) अल-इसाबा के हाशिये में 14/9। (2) अल-मिज्जी ने इसे तहजीब अल-कमाल 22/265-266 में, अल-धहाबी ने अल-सियर 4/159 में, और इब्न हजर ने लिसान अल-मीजान 4/394 में उद्धृत किया है, और इसे अल-इस्माइली के मुस्तखराज से जोड़ा है। (3) (द) में: "बहुमत (जमाहिर)"। (4) अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने लिसान अल-मीजान 4/393-394 में इब्न अब्द अल-बर्र के इस बयान का जवाब दिया, और कहा: इसके वर्णनकर्ता प्रसिद्ध हैं, और उन्होंने इब्न माइन और अन्य से अब्दुल मलिक बिन मुस्लिम की पुष्टि को उद्धृत किया, और कहा: ईसा बिन हत्तान का उल्लेख इब्न हिब्बान ने अल-थिकात में किया है, और उन्हें बसरा के लोगों में गिना जाता है। (5) (म) में: "रूपांतरण के लिए"।

سورة البقرہ: آیت ۶۵ ۱۷۳

...ان پر بندر تھے، چنانچہ انہوں نے اسے سنگسار کیا، تو میں نے بھی ان کے ساتھ اسے سنگسار کیا۔" اس میں یہ نہیں ہے: "اس نے زنا کیا تھا۔" اگر یہ روایت صحیح ہے تو بخاری نے اسے صرف اس بات پر دلالت کے لیے نکالا ہے کہ عمرو بن میمون نے جاہلیت کا زمانہ پایا تھا، اور انہوں نے اپنے اس گمان کی پروا نہیں کی جو انہوں نے جاہلیت میں کیا تھا۔

اور ابو عمر نے الاستیعاب (۱) میں عمرو بن میمون کا ذکر کیا ہے، اور یہ کہ ان کی کنیت ابو عبداللہ تھی، ان کا شمار کوفیوں کے کبار تابعین میں ہوتا ہے، اور یہ وہی ہیں جنہوں نے جاہلیت میں بندروں میں رجم (سنگساری) دیکھا تھا، اگر یہ صحیح ہے، کیونکہ اس کے راوی مجہول ہیں۔ اور بخاری نے نعیم، ہشیم، حصین کے واسطے سے عمرو بن میمون الاودی سے مختصراً ذکر کیا ہے، انہوں نے کہا: "میں نے جاہلیت میں ایک بندریہ دیکھی جس نے زنا کیا تھا، تو انہوں نے اسے سنگسار کیا - یعنی بندروں نے - تو میں نے بھی ان کے ساتھ اسے سنگسار کیا۔"

اور اسے عباد بن العوام نے حصین سے روایت کیا ہے جیسا کہ ہشیم نے روایت کیا، مختصراً۔

رہی بات طویل قصے کی (۲)، تو وہ عبدالملک بن مسلم، عیسیٰ بن حطان پر گھومتا ہے، اور یہ دونوں ایسے نہیں جن سے احتجاج کیا جائے۔ اور یہ اہل علم کی ایک جماعت (۳) کے نزدیک منکر ہے کہ زنا کی نسبت غیر مکلف کی طرف کی جائے، اور چوپایوں میں حدود قائم کی جائیں| اور اگر یہ صحیح ہوتا تو وہ جنات میں سے ہوتے، کیونکہ عبادات انسانوں اور جنوں میں ہیں دوسروں میں نہیں (۴)۔

اور رہا آپ علیہ السلام کا قول ابو ہریرہ کی حدیث میں: "اور میں اسے چوہا ہی سمجھتا ہوں"، اور گوہ (ضب) کے بارے میں: "میں نہیں جانتا شاید یہ ان نسلوں میں سے ہو جو مسخ ہو گئی تھیں"، اور جو اس کی مانند ہیں، تو یہ صرف ایک گمان اور خوف تھا کہ کہیں گوہ اور چوہا وغیرہ ان میں سے نہ ہوں جو مسخ ہوئے، تو یہ آپ ﷺ کی طرف سے ایک حدس (اندازہ) تھا اس سے پہلے کہ آپ کی طرف وحی کی جاتی کہ اللہ نے کسی مسخ شدہ (۵) کے لیے نسل نہیں بنائی، چنانچہ جب آپ کی طرف اس کی وحی کر دی گئی تو وہ خوف زائل ہو گیا، اور آپ نے جان لیا کہ گوہ اور چوہا ان میں سے نہیں جو مسخ ہوئے، اور اس وقت آپ ﷺ نے بندروں کے بارے میں سوال کرنے والے کو اپنے اس قول سے خبر دی...

(۱) ۱۴/۹ الاصابہ کے حاشیہ میں۔ (۲) اسے المزی نے تہذیب الکمال ۲۲/ ۲۶۵ - ۲۶۶ میں، الذہبی نے السیر ۴/ ۱۵۹ میں، اور ابن حجر نے لسان المیزان ۴/ ۳۹۴ میں ذکر کیا ہے، اور اسے اسماعیلی کی مستخرج کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۳) (د) میں ہے: جماہیر۔ (۴) حافظ ابن حجر نے لسان المیزان ۴/ ۳۹۳ - ۳۹۴ میں ابن عبدالبر کی اس بات کا رد کیا ہے، اور کہا: اس کے راوی مشہور ہیں، اور عبدالملک بن مسلم کی توثیق ابن معین وغیرہ سے نقل کی ہے، اور کہا: عیسیٰ بن حطان کا ذکر ابن حبان نے الثقات میں کیا ہے، اور ان کا شمار اہل بصرہ میں ہوتا ہے۔ (۵) (م) میں ہے: للمسخ۔

١٧٤ Surah Al-Baqarah: Verse ٦٦

...and pigs: are they from among those who were transformed? He said: "Indeed, Allah did not destroy a people - or punish a people - and then grant them offspring. Monkeys and pigs existed before that." This is a clear and authentic text narrated by Abdullah bin Mas'ud, recorded by Muslim in the Book of Destiny (1). It is established in texts that the lizard (dabb) was eaten in his presence and at his table, and he did not object (2), which points to the validity of what we mentioned, and by Allah is our success.

It was narrated from Mujahid regarding the interpretation of this verse that only their hearts were transformed, and their understandings were made like the understandings of monkeys (3). No other commentator said this as far as I know. And Allah knows best.

The Almighty's saying: {So We said to them, "Be monkeys} "Monkeys" is the predicate of 'kana'. {despised} is an adjective, and if you wish, you can make it a second predicate for 'kana', or a circumstantial adverb for the pronoun in "be" (4). Its meaning is "driven away". It is said: "I drove him away and he was driven away," meaning: I made him distant and he became distant. And the Almighty's saying: {the sight will return to you humbled} [Al-Mulk: 4] means: driven away. And His saying: {Be driven away therein} [Al-Mu'minun: 108] means: distance yourselves with the distancing of wrath (5). Al-Kisa'i said: "The man was driven away (khusa'an)," and "I drove him away (khusa'atuhu)" (6). "Khasa'i" can also mean small and vile. It is said: "The man became small (qamu'a)": he became vile, meaning small and humiliated. And "I made him small (aqma'tuhu)": I belittled and humiliated him, so he is "qami'" (vile), on the pattern of 'fa'eel' (7).

The Almighty's saying: {And We made it a deterrent for those in its time and those who came after it and a lesson for the righteous}

The Almighty's saying: {And We made it a deterrent} deterrent (8): It is in the accusative case as the second object. Regarding what was made a deterrent, there are several opinions; it was said: the transformation (9), it was said: the punishment, and it was said: the village, since the meaning...

(1) No. (2663), and it is in Musnad Ahmad (3700). (2) Recorded by Ahmad (16812), Al-Bukhari (5391), and Muslim (1946) from the hadith of Khalid, may Allah be pleased with him, and also recorded by Ahmad (2684) and Muslim (1948) from the hadith of

Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both. (3) Recorded by Al-Tabari 2/65, and he said: This opinion contradicts what is apparent in the Book of Allah. (4) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/234. (5) In (d): wrath. (6) Al-Waseet by Al-Wahidi 1/152. (7) Al-Sihah (q-m-'). (8) The word: 'nakalan', is not in (m). (9) The words: 'It was said: the transformation', from (z) and was distorted in it to: the ordeal (al-mihna).

१७४ सूरह अल-बकरा : आयत ६६

...और सूअर: क्या वे उनमें से हैं जिनका कायापलट (मस्ख़) किया गया था? तो उन्होंने कहा: "निस्संदेह, अल्लाह ने किसी कौम को नष्ट नहीं किया - या किसी कौम को दंडित नहीं किया - और फिर उन्हें संतान दी। बंदर और सूअर उससे पहले भी मौजूद थे।" यह एक स्पष्ट और प्रामाणिक पाठ है जिसे अब्दुल्ला बिन मसूद ने रिवायत किया है, और मुस्लिम ने इसे 'किताब अल-क़दर' (१) में उद्धृत किया है। हदीसों से यह सिद्ध है कि उनकी उपस्थिति में और उनके दस्तरख्वान पर गोह (संडा) खाया गया था, और उन्होंने इस पर कोई आपत्ति नहीं की (२), जो हमारे द्वारा कही गई बात की सत्यता को सिद्ध करता है। सफलता अल्लाह की ओर से है।

मुजाहिद से इस आयत की व्याख्या में वर्णित है कि केवल उनके हृदय बदल दिए गए थे, और उनकी समझ बंदरों की समझ जैसी हो गई थी (३)। जहाँ तक मुझे पता है, किसी अन्य मुफस्सिर (टीकाकार) ने ऐसा नहीं कहा है। और अल्लाह बेहतर जानता है।

अल्लाह तआला का कथन: {तो हमने उनसे कहा, "बंदर बन जाओ"} "बंदर" (क़िरदतन) 'काना' की खबर (predicate) है। {अपमानित} (ख़ासिईन) विशेषण है, और यदि आप चाहें, तो इसे 'काना' की दूसरी खबर बना सकते हैं, या "बनो" (कुनू) में सर्वनाम की 'हाल' (circumstantial adverb) बना सकते हैं (४)। इसका अर्थ है "दूर किया गया"। कहा जाता है: "मैंने उसे दूर कर दिया और वह दूर हो गया," अर्थात्: मैंने उसे दूर किया और वह दूर हो गया। और अल्लाह तआला का कथन: {निगाह तुम्हारी तरफ अपमानित होकर वापस लौट आएगी} [अल-मुल्क: ४] का अर्थ है: दूर किया हुआ। और उनका कथन: {उसी में अपमानित होकर पड़े रहो} [अल-मुमिनून: १०८] का अर्थ है: क्रोध के कारण दूर रहो (५)। अल-किसानी ने कहा: "वह आदमी अपमानित होकर दूर हुआ" और "मैंने उसे अपमानित करके दूर किया" (६)। 'ख़ासी' का अर्थ तुच्छ और नीच भी होता है। कहा जाता है: "आदमी तुच्छ हो गया": वह नीच बन गया, यानी छोटा और अपमानित। और "मैंने उसे तुच्छ बना दिया": मैंने उसे छोटा और अपमानित किया, तो वह 'क़मी' (नीच) है, 'फईल' के वज़न पर (७)।

अल्लाह तआला का कथन: {तो हमने उसे उस समय के लोगों और उनके बाद आने वालों के लिए एक चेतावनी और डरने वालों के लिए एक नसीहत बना दिया}

अल्लाह तआला का कथन: {तो हमने उसे एक चेतावनी बना दिया} चेतावनी (नकाल) (८): यह दूसरे मफऊल (object) के रूप में नसब (accusative) में है। जिसे 'नकाल' बनाया गया, उसके बारे में कई मत हैं; कहा गया: कायापलट (९), कहा गया: दंड, और कहा गया: बस्ती, क्योंकि अर्थ है...

(१) संख्या (२६६३), और यह मुसनद अहमद (३७००) में है। (२) इसे अहमद (१६८१२), बुखारी (५३९१), और मुस्लिम (१९४६) ने खालिद (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है, और इसे अहमद (२६८४) और मुस्लिम (१९४८) ने इब्न अब्बास (रज़ि.) की हदीस से भी उद्धृत किया है। (३) इसे अल-तबरी २/६५ ने उद्धृत किया है और कहा है: यह राय अल्लाह की किताब के प्रत्यक्ष प्रमाण के विरुद्ध है। (४) इराब अल-कुरान, अल-नहहास १/२३४। (५) (द) में: क्रोध। (६) अल-वसीत, अल-वाहिदी १/१५२। (७) अल-सिहाह (क़-म-अ)। (८) शब्द: 'नकालन', (म) में नहीं है। (९) शब्द: 'कहा गया: कायापलट', (ज़) से है और उसमें इसे बदलकर 'मिहना' (परीक्षा) कर दिया गया था।

۱۷٤ سورہ البقرہ : آیت ٦٦

...اور خنازیر (سور) کیا یہ ان میں سے ہیں جن کا حلیہ مسخ کیا گیا؟ تو آپؐ نے فرمایا: "اللہ تعالیٰ نے کسی ایسی قوم کو ہلاک نہیں کیا - یا کسی قوم کو عذاب نہیں دیا - جس کی نسل آگے چلی ہو۔ بندر اور خنازیر اس سے پہلے بھی موجود تھے۔" یہ ایک صریح اور صحیح نص ہے جسے عبداللہ بن مسعودؓ نے روایت کیا ہے، امام مسلم نے اسے 'کتاب القدر' میں نکالا ہے (۱)۔ اور نصوص سے یہ ثابت ہے کہ آپؐ کی موجودگی میں اور آپؐ کے دسترخوان پر 'ضب' (گوہ) کھایا گیا اور آپؐ نے اس پر اعتراض نہیں فرمایا (۲) ، جو ہماری ذکر کردہ بات کی صحت پر دلالت کرتا ہے۔ اللہ ہی کی طرف سے توفیق ہے۔

اور مجاہد سے اس آیت کی تفسیر میں مروی ہے کہ صرف ان کے دل مسخ ہوئے تھے، اور ان کی سمجھ بوجھ بندروں کی سمجھ بوجھ کی طرح کر دی گئی تھی (۳)۔ میرے علم کے مطابق کسی اور مفسر نے یہ بات نہیں کہی۔ واللہ اعلم۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ فَقُلْنَا لَهُمْ كُونُوا قِرَدَةً ﴾ "قردة" (بندر) 'کان' کی خبر ہے۔ ﴿ خَسِيئِينَ ﴾ صفت ہے، اور اگر آپ چاہیں تو اسے 'کان' کی دوسری خبر بنا لیں، یا "کونوا" میں موجود ضمیر سے 'حال' بنا لیں (٤)۔ اس کا معنی ہے دھتکارے ہوئے (دور کیے ہوئے)۔ کہا جاتا ہے: "خسأتہ فخسأ" ، یعنی میں نے اسے دور کیا تو وہ دور ہو گیا۔ اور اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ يَنقَلِبْ إِلَيْكَ الْبَصَرُ خَاسِئًا ﴾ [الملک : ٤] یعنی: دھتکارا ہوا۔ اور اس کا فرمان: ﴿ اخْسَئُوا فِيهَا ﴾ [المؤمنون : ۱۰۸] یعنی: غضب کی وجہ سے دور ہو جاؤ (٥)۔ کسائی نے کہا: "خسأ الرجل خسوعاً" اور "خسأتہ خسأ" (٦)۔ اور 'خاسی' کا معنی ذلیل و خوار بھی ہوتا ہے۔ کہا جاتا ہے: "قمؤ الرجل قماءً و قماءةً" یعنی وہ حقیر و

ذلیل ہو گیا۔ اور "اقمأتہ" یعنی میں نے اسے حقیر و ذلیل کیا، پس وہ 'قمیء' ہے، 'فعیل' کے وزن پر (۷)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ فَجَعَلْنَاهَا نَكَالا لِمَا بَيْنَ يَدَيْهَا وَمَا خَلْفَهَا وَمَوْعِظَةً لِلْمُتَّقِينَ ﴾

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ فَجَعَلْنَاهَا نَكَالا ﴾ نکالاً (۸): یہ مفعول ثانی ہونے کی وجہ سے منصوب ہے۔ جسے عبرت (نکال) بنایا گیا اس کے بارے میں مختلف اقوال ہیں؛ کہا گیا: مسخ ہونا (۹) ، کہا گیا: سزا، اور کہا گیا: بستی، کیونکہ معنی...

(۱) نمبر (۲٦٦۳)، اور یہ مسند احمد (۳۷۰۰) میں ہے۔ (۲) اسے احمد (۱٦۸۱۲)، بخاری (۵۳۹۱)، اور مسلم (۱۹٤٦) نے خالد بن ولیدؓ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اسے احمد (۲٦۸٤) اور مسلم (۱۹٤۸) نے ابن عباسؓ کی حدیث سے بھی نکالا ہے۔ (۳) طبری نے اسے ۲/٦۵ پر روایت کیا ہے اور کہا: یہ قول اللہ کی کتاب کے ظاہر کے خلاف ہے۔ (٤) اعراب القرآن، نحاس ۱/۲۳٤۔ (۵) نسخہ (د) میں: سخطۃ۔ (٦) الوسیط، واحدی ۱/۱۵۲۔ (۷) الصحاح (قمأ)۔ (۸) قول: 'نکالاً'، نسخہ (م) میں نہیں ہے۔ (۹) قول: 'قیل المسخۃ'، نسخہ (ز) سے ہے اور اس میں یہ لفظ 'المحنۃ' سے بدل گیا تھا۔

Page 175 Surah Al-Baqarah: Verse 66

... the context necessitates it. It is said: the nation that was transformed. And it is said: the fish, but this is far-fetched. Al-Nakal means deterrence and punishment. Al-Nakl and al-Ankal refer to shackles (1). Shackles are called ankal because they are used to restrain (yankalu), i.e., prevent. A heavy bridle is called nikl or nakil (2) because the beast is restrained by it. Nakala from an affair means he desisted. Al-Tankil means afflicting enemies with a punishment that deters those behind them, i.e., makes them avoid it. Al-Azhari said: Al-Nakal is punishment (3). Ibn Durayd (4) said: Al-Mankal is that with which a person is restrained; he said: "Gripping their necks with a mankal" (5)

His saying: {For what was before it} (Lima bayna yadayha): Ibn Abbas and al-Suddi said: for the sins of the people that preceded the transformation. {And what was behind it} (Wa ma khalfaha): for those who commit similar sins after it (6). Al-Farra' (7) said: the transformation was made a deterrent for past sins, and for what is done after so they fear being transformed for their sins.

Ibn Atiyyah (8) said: This is a good opinion, and both pronouns refer to the punishment. Al-Hakam narrated from Mujahid from Ibn Abbas: For those who were present with them and for those who come after them (9). Al-Nahhas chose this, saying: It is most similar in meaning, and Allah knows best.

From Ibn Abbas also: {For what was before it and what was behind it} refers to the towns (10). Qatadah said: For what was before it of their sins, and what was behind it of catching the fish (11).

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/161. (2) Thus in (Za), and it is not clear in (Zay), and there is an omission in (Dal); what is in language dictionaries is nikl, with a kasra only. (3) We did not find it; Al-Samin al-Halabi cited it in Umdat al-Huffaz 4/2698 from al-Azhari: Al-Nakal is torment. (4) Jamharat al-Lughah 3/170. (5) Its poet is Riyah al-Hudhali, and after it: "With a rock or the width of a huge army." It is in Jamharat al-Lughah 3/170, Mujmal al-Lughah 3/883, and al-Sihah and al-Lisan under (n-k-l). (6) Narrated similarly from them by al-Tabari 2/70-71. (7) Ma'ani al-Quran 1/43. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/161. (9) Narrated by al-Tabari 2/70 via al-Dahhak from Ibn Abbas similarly. (10) Narrated by al-Tabari 2/70. (11) Narrated by Abd al-Razzaq in al-Tafsir 1/48, and al-Tabari 2/70-71.

पृष्ठ १७५ सूरह अल-बकरा: आयत ६६

... शब्द इसकी मांग करते हैं। कहा गया है: वह उम्मत (समुदाय) जिसका कायापलट (मस्ख़) किया गया। और कहा गया है: मछलियाँ, लेकिन यह बात दूर की लगती है। 'नकाल' का अर्थ है डराना-धमकाना और सज़ा। 'नक्ल' और 'अन्काल' बेड़ियाँ हैं (१)। बेड़ियों को 'अन्काल' इसलिए कहा जाता है क्योंकि उनसे रोका (नकल) जाता है, यानी पाबंद किया जाता है। भारी लगाम को 'निकल' या 'नकिल' (२) कहा जाता है क्योंकि इससे जानवर को नियंत्रित किया जाता है। किसी काम से 'नकल' होने का अर्थ है उससे रुक जाना। 'तन्कील' का अर्थ है दुश्मनों को ऐसी सज़ा देना जो उनके पीछे आने वालों के लिए इबरत (चेतावनी) बन जाए, यानी वे उससे बचें। अल-अज़हरी ने कहा: 'नकाल' सज़ा है (३)। इब्न दुरैद (४) ने कहा: 'मन्कल' वह चीज़ है जिससे इंसान को रोका जाए, उन्होंने कहा: "उनकी गर्दन के पीछे 'मन्कल' से जकड़ने वाला" (५)

अल्लाह का कथन: {जो उसके सामने था} (लिमा बैना यदैहा): इब्न अब्बास और सुद्दी ने कहा: मस्ख़ (कायापलट) होने से पहले के लोगों के गुनाहों के लिए। {और जो उसके पीछे था} (व मा ख़ल्फ़हा): उन लोगों के लिए जो बाद में वैसे ही गुनाह करें (६)। अल-फ़र्रा (७) ने कहा: मस्ख़ को पिछले गुनाहों के लिए सज़ा और बाद में किए जाने वाले कार्यों के लिए इबरत बनाया गया ताकि वे अपने गुनाहों के कारण मस्ख़ होने से डरें।

इब्न अतिय्या (८) ने कहा: यह एक अच्छी राय है, और दोनों सर्वनाम (प्रोनाउन) सज़ा की ओर संकेत करते हैं। हकम ने मुजाहिद से और उन्होंने इब्न अब्बास से रिवायत की: उनके लिए जो उनके साथ मौजूद थे और उनके लिए जो उनके बाद आएँगे (९)। अल-नहहास ने इसे चुना और कहा: यह अर्थ के अधिक निकट है, और अल्लाह बेहतर जानता है।

इब्न अब्बास से यह भी रिवायत है: {जो उसके सामने था और जो उसके पीछे था} से मुराद बस्तियाँ (गाँव) हैं (१०)। क़तादा ने कहा: {जो उसके सामने था} उनके गुनाहों के लिए, और {जो उसके पीछे था} मछली पकड़ने के बारे में है (११)।

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६१। (२) (ज़ॉ) में ऐसा ही है, (ज़े) में स्पष्ट नहीं है, और (दाल) में कुछ छूट गया है; शब्दकोशों में सिर्फ 'निकल' (ज़ेर के साथ) है। (३) हमें यह नहीं मिला; अमीन अल-हलबी ने 'उम्दतुल हुफ़्फ़ाज़' ४/२६९८ में अल-अज़हरी के हवाले से लिखा है: नकाल अज़ाब है। (४) जमहरतुल लुग़ह ३/१७०। (५) इसके कवि रियाह अल-हुज़ली हैं, और इसके बाद है: "एक चट्टान या

एक विशाल सेना की चौड़ाई के साथ"। यह जमहरतुल लुग़ह ३/१७०, मुजमलुल लुग़ह ३/८८३, और अस-सिहाह वल-लिसान (न-क-ल) में है। (६) इब्न जरीर अत-तबरी ने २/७०-७१ में इसी तरह की रिवायत पेश की है। (७) मआनी अल-क़ुरआन १/४३। (८) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६१। (९) तबरी ने २/७० में ज़ह्हाक के माध्यम से इब्न अब्बास से इसी तरह रिवायत की है। (१०) तबरी २/७० में रिवायत है। (११) अब्द अल-रज़्ज़ाक ने तफ़सीर १/४८ में और तबरी ने २/७०-७१ में रिवायत की है।

صفحہ ۱۷۵ سورۃ البقرہ: آیت ۶۶

... کلام اس کا مقتضی ہے، اور کہا گیا: وہ امت جو مسخ ہوئی، اور کہا گیا: مچھلیاں، اور اس میں بعید بات ہے۔ اور 'نکال' ڈانٹ ڈپٹ اور سزا ہے۔ اور 'نکل' اور 'انکا ل' بیڑیاں ہیں(۱)۔ اور بیڑیوں کا نام 'انکا ل' اس لیے رکھا گیا کہ ان کے ذریعے 'نکل' کیا جاتا ہے یعنی روکا جاتا ہے۔ اور بھاری لگام کو 'نِکْل' اور 'نَکِل'(۲) کہا جاتا ہے کیونکہ اس کے ذریعے جانور کو روکا جاتا ہے۔ اور 'نکل عن الامر' کا مطلب ہے جب وہ رک گیا۔ اور 'تنکیل' کا مطلب ہے دشمنوں کو ایسی سزا دینا جو ان کے پیچھے آنے والوں کے لیے عبرت بن جائے یعنی وہ اس سے بچیں۔ اور ازہری نے کہا: 'نکال' سزا ہے(۳)۔ ابن درید(۴) نے کہا: 'منکل' وہ چیز ہے جس سے انسان کو روکا جائے، انہوں نے کہا: "ان کی گردنوں پر 'منکل' سے جکڑنے والا"(۵)

اللہ کا قول: ﴿لِمَا بَيْنَ يَدَيْهَا﴾ (جو اس کے سامنے تھا): ابن عباس اور سدی نے کہا: مسخ ہونے سے پہلے ان لوگوں کے جو گناہ تھے ان کے لیے۔ ﴿وَمَا خَلْفَهَا﴾ (اور جو اس کے پیچھے تھا): ان لوگوں کے لیے جو اس کے بعد ان جیسے گناہ کریں(۶)۔ فراء(۷) نے کہا: مسخ کو پچھلے گناہوں کے لیے سزا اور بعد میں کیے جانے والے اعمال کے لیے عبرت بنایا گیا تاکہ وہ اپنے گناہوں کی وجہ سے مسخ ہونے سے ڈریں۔

ابن عطیہ(۸) نے کہا: یہ قول عمدہ ہے، اور دونوں ضمیریں سزا کے لیے ہیں، اور حکم نے مجاہد سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی: ان کے لیے جو ان کے ساتھ موجود تھے اور ان کے لیے جو ان کے بعد آئیں گے(۹)۔ اور اسے نحاس نے اختیار کیا، انہوں نے کہا: یہ معنی کے زیادہ مشابہ ہے، واللہ اعلم۔

اور ابن عباس سے یہ بھی مروی ہے: ﴿لِمَا بَيْنَ يَدَيْهَا وَمَا خَلْفَهَا﴾ سے مراد بستیاں ہیں(۱۰)۔ اور قتادہ نے کہا: ﴿لِمَا بَيْنَ يَدَيْهَا﴾ ان کے گناہوں کے لیے، اور ﴿وَمَا خَلْفَهَا﴾ مچھلیوں کے شکار کے بارے میں ہے(۱۱)۔

حواشی: (۱) المحرر الوجیز ۱۶۱/۱۔ (۲) اسی طرح (ظ) میں ہے، اور یہ (ز) میں واضح نہیں ہے، اور (د) میں کچھ چھوٹ گیا ہے، اور لغت کی کتابوں میں صرف 'نِکْل' (کاف کے نیچے زیر کے ساتھ) ہے۔ (۳) ہمیں یہ نہیں ملا، اور سمین حلبی نے عمدة الحفاظ ۴/ ۲۶۹۸ میں ازہری سے نقل کیا ہے: نکال: عذاب۔ (۴) جمهرة اللغة ۱۷۰/۳۔ (۵) اس کا شاعر ریاح ہذلی ہے، اور اس کے بعد ہے: "ایک چٹان یا ایک عظیم لشکر کی وسعت کے ساتھ"۔ یہ جمہرة اللغہ ۳/۱۷۰، مجمل اللغہ ۳/۸۸۳، اور الصحاح و اللسان (نکل) میں ہے۔ (۶) طبری نے ۲ /۷۰ - ۷۱ میں ان دونوں سے اسی طرح روایت کی ہے۔ (۷) معانی القرآن ۴۳/۱۔ (۸) المحرر الوجیز ۱۶۱/۱۔ (۹) طبری نے ۲/ ۷۰ میں ضحاک کے واسطے سے ابن عباس سے اسی طرح روایت کی ہے۔ (۱۰) طبری ۲/ ۷۰ میں روایت کیا ہے۔ (۱۱) عبد الرزاق نے تفسیر ۴۸/۱ میں اور طبری نے ۲/ ۷۰ - ۷۱ میں روایت کیا ہے۔

176 Surah Al-Baqarah: Verse 67

The Almighty's saying: "And an admonition for those who fear Allah" is conjured with "exemplary punishment", and its weight is: "maf'ilah" (مَفْعِلَة) from "itti'aaz" (taking heed) and "inzijar" (deterrence). Admonition is scaring, and "al-'idhah" is the noun. Al-Khalil (1) said: Admonition is reminding of good things to which the heart softens (2). Al-Mawardi (3) said: He specified the righteous—even though it was a lesson for all the worlds—because of their uniqueness compared to the stubborn disbelievers. Ibn Atiyyah (4) said: The wording includes every righteous person from every nation. Al-Zajjaj said: "And an admonition for those who fear Allah" is for the nation of Muhammad (PBUH), so that they do not violate what Allah Almighty has forbidden them, lest they be afflicted with what afflicted the People of the Sabbath when they violated Allah's prohibitions on their Sabbath.

The Almighty's saying: "And [recall] when Moses said to his people, 'Indeed, Allah commands you to slaughter a cow.' They said, 'Do you take us in ridicule?' He said, 'I seek refuge in Allah from being among the ignorant.' (67)"

The Almighty's saying: "And [recall] when Moses said to his people, 'Indeed, Allah commands you to slaughter a cow.'" It contains four issues:

First: The Almighty's saying: "Indeed, Allah commands you." It is reported from Abu Amr that he read "yamurukum" with sukun (stopping), omitting the dammah on the 'ra' due to its heaviness. Abu Al-Abbas Al-Mubarrad said: This is not permissible; because the 'ra' is the letter of declension (parsing), and what is correct from Abu Amr is that he used to shorten the vowel (ikhtilas) (5).

"That you slaughter" is in the accusative position by "commands you," meaning: that you should slaughter. "A cow" is in the accusative by "slaughter" (6). The meaning of slaughter has already been mentioned (7). There is no point in repeating it.

Second: The Almighty's saying: "Indeed, Allah commands you to slaughter a cow." It is preceding in recitation, and His saying: "And when you killed a soul" is preceding in meaning over all that began with the matter of the cow. It is possible that His saying: "you killed" was preceding in revelation, and the command to slaughter was later. It is also possible that the order of its revelation was according to its recitation, so it is as if Allah commanded them to slaughter the cow until they slaughtered it, then what happened occurred.

(1) Al-Ayn 2/228 (wa'adh). (2) In (m): the heart. (3) We did not find it in the printed edition of his Tafsir. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/161. (5) It was mentioned previously on p. 111 of this part that the famous version from Abu Amr has two aspects in the narration of Al-Duri, and the sukun (quiescence) in the narration of Al-Susi. We cited on p. 112 Abu Hayyan's rejection of Abu Al-Abbas Al-Mubarrad's aforementioned statement. (6) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/234. (7) 2/86.

176 सूरा अल-बकराह: आयत 67

अल्लाह तआला का फरमान: ﴿وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِينَ﴾ (और डरने वालों के लिए नसीहत है) यह "नकाल" (सज़ा) पर आधारित है, और इसका वज़न है: 'मफ़इला' (مَفْعِلَة) जो 'इत्तेआज़' (सीख लेना) और 'इंजिज़ार' (रुक जाना) से है। 'वा'अज़' (नसीहत) डराना है, और 'इज़ह' संज्ञा है। अल-खलील(1) ने कहा: वा'अज़ भलाई की याद दिलाना है जिससे दिल नरम हो जाए(2)। अल-मावर्दी(3) ने कहा: अल्लाह ने मुत्तक़ीन (परहेज़गारों) को ख़ास किया - हालाँकि यह तमाम आलमों के लिए नसीहत थी - ताकि उन्हें हठधर्मी काफ़िरों से अलग किया जा सके। इब्न अत्तिया(4) ने कहा: यह शब्द हर उम्मत के हर मुत्तक़ी को शामिल करता है। अल-ज़ज्जाज ने कहा: "और मुत्तक़ीन के लिए नसीहत" मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की उम्मत के लिए है, ताकि वे अल्लाह अज़्ज़ वजल की उन चीज़ों की अवमानना न करें जिनसे उसने मना किया है, वरना उन्हें भी वही भुगतना पड़ेगा जो सब्त (शनिवार) वालों को भुगतना पड़ा जब उन्होंने अपने सब्त में अल्लाह की पाबंदियों को तोड़ा था।

अल्लाह तआला का फरमान: ﴿وَإِذْ قَالَ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً ۖ قَالُوا أَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ۖ قَالَ أَعُوذُ بِاللَّهِ أَنْ أَكُونَ مِنَ الْجَاهِلِينَ﴾ (और जब मूसा ने अपनी क़ौम से कहा, "बेशक अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि तुम एक गाय ज़िब्ह करो।" उन्होंने कहा, "क्या आप हमसे मज़ाक करते हैं?" उन्होंने कहा, "मैं अल्लाह की पनाह माँगता हूँ कि मैं जाहिलों में से हो जाऊँ।" 67)

अल्लाह तआला का फरमान: ﴿وَإِذْ قَالَ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً﴾ इसमें चार मसले हैं:

पहला: अल्लाह तआला का फरमान: ﴿इन्न ल्लाहा याअमुरुकुम﴾ अबू अम्र से रिवायत है कि उन्होंने "याअमुरुकुम" को सुकून (र पर जज्म) के साथ पढ़ा, और 'र' पर पेश (ज़म्मा) को उसके भारीपन के कारण हटा दिया। अबू अल-अब्बास अल-मुबर्रद ने कहा: यह जायज़ नहीं है; क्योंकि 'र' इ'राब (व्याकरण) का अक्षर है, और अबू अम्र से जो सही बात है वह यह है कि वह हरकत को हल्का (इख़्तिलास) पढ़ते थे(5)।

﴿أَن تَذْبَحُوا﴾ "याअमुरुकुम" के कारण नसब (अक्यूज़ेटिव) की स्थिति में है, यानी: कि तुम ज़िब्ह करो। ﴿بَقَرَةً﴾ "तज़्बहू" के कारण नसब में है(6)। ज़िब्ह का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है(7)। इसलिए इसे दोहराने का कोई मतलब नहीं है।

दूसरा: अल्लाह तआला का फरमान: ﴿इन्न ल्लाहा याअमुरुकुम अन तज़्बहू बक़रतन﴾ तिलावत (पढ़ने) में पहले है, और उनका फरमान: ﴿فَقَتَلْتُمْ نَفْسًا﴾ (और जब तुमने एक जान ले ली) अर्थ में उन सभी बातों से पहले है जो गाय के मामले से शुरू हुई थीं। यह भी मुमकिन है कि "क़तल्तुम" (तुमने क़त्ल किया) नाज़िल होने में पहले हो, और ज़िब्ह का हुक्म बाद में आया हो। और यह भी मुमकिन है कि उनके नाज़िल होने की तरतीब उनकी तिलावत के अनुसार हो, जैसे अल्लाह ने उन्हें गाय ज़िब्ह करने का हुक्म दिया यहाँ तक कि उन्होंने उसे ज़िब्ह कर दिया, फिर वह वाक़या पेश आया जो...

---

(1) अल-ऐन 2/228 (वा'अज़)। (2) (म) में: अल-क़ल्ब (दिल)। (3) हमें उनकी तफ़्सीर के छपे हुए संस्करण में यह नहीं मिला। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/161. (5) इस हिस्से के पेज 111 पर पहले ही ज़िक्र किया जा चुका है कि अबू अम्र से मशहूर बात अल-दूरी की रिवायत में दो पहलू हैं, और अल-सूसी की रिवायत में इसकान (सुकून) है। और हमने पेज 112 पर अबू हय्यान द्वारा अबू अल-अब्बास अल-मुबर्रद की उपरोक्त बात का खंडन उद्धृत किया है। (6) इ'राब अल-क़ुरआन - अल-नहस 1/234. (7) 2/86।

١٧٦ سورة البقرة : الآية ٦٧

الله تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِينَ﴾ یہ "نکال" پر عطف ہے، اور اس کا وزن "مَفْعِلَة" ہے جو "اتعاظ" (نصیحت پکڑنے) اور "انزجار" (رک جانے) سے نکلا ہے۔ "وعظ" ڈرانا ہے، اور "عظہ" اسم ہے۔ خلیل (1) نے کہا: وعظ بھلائی کی یاد دہانی کرانا ہے جس سے دل نرم ہو جائے (2)۔ ماوردی (3) نے کہا: اللہ نے متقین کو خاص کیا - اگرچہ یہ تمام جہان والوں کے لیے نصیحت تھی - تاکہ انہیں ہٹ دھرم کافروں سے الگ کیا जा سکے۔ ابن عطیہ (4) نے کہا: یہ لفظ ہر امت کے ہر پرہیزگار کو شامل ہے۔ اور زجاج نے کہا: "اور متقین کے لیے نصیحت" محمد ﷺ کی امت کے لیے ہے، کہ وہ اللہ عزوجل کی ان حرمتوں کی خلاف ورزی نہ کریں جن سے اس نے منع کیا ہے، ورنہ انہیں وہی کچھ پہنچے گا جو ہفتہ (سبت) والوں کو پہنچا جب انہوں نے اپنے سبت میں اللہ کی حرمتوں کو پامال کیا تھا۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ قَالَ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً ۖ قَالُوا أَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ۖ قَالَ أَعُوذُ بِاللَّهِ أَنْ أَكُونَ مِنَ الْجَاهِلِينَ ٦٧﴾ (اور جب موسیٰ نے اپنی قوم سے کہا، "بے شک اللہ تمہیں حکم دیتا ہے کہ تم ایک گائے ذبح کرو۔" انہوں نے کہا، "کیا آپ ہمارا مذاق اڑاتے ہیں؟" انہوں نے کہا، "میں اللہ کی پناہ مانگتا ہوں کہ میں جاہلوں میں سے ہو جاؤں۔" 67)

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ قَالَ مُوسَىٰ لِقَوْمِهِ إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً﴾ اس میں چار مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ﴾ ابو عمرو سے روایت ہے کہ انہوں نے "یأمرکم" کو سکون کے ساتھ پڑھا، اور 'را' پر پیش کو اس کے بھاری پن کی وجہ سے گرا دیا۔ ابو العباس المبرد نے کہا: یہ جائز نہیں ہے؛ کیونکہ 'را' اعراب کا حرف ہے، اور ابو عمرو سے جو صحیح روایت ہے وہ یہ ہے کہ وہ حرکت کو ہلکا (اختلاس) پڑھتے تھے (5)۔

﴿أَن تَذْبَحُوا﴾ "یامرکم" کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے، یعنی: کہ تم ذبح کرو۔ ﴿بَقَرَةً﴾ "تذبحوا" کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے (6)۔ اور ذبح کا معنی پہلے گزر چکا ہے (7)۔ لہذا اسے دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿إِنَّ اللَّهَ يَأْمُرُكُمْ أَن تَذْبَحُوا بَقَرَةً﴾ تلاوت میں پہلے ہے، اور اللہ کا ارشاد: ﴿فَقَتَلْتُمْ نَفْسًا﴾ (جب تم نے ایک جان کو قتل کیا) معنی کے اعتبار سے ان تمام باتوں پر مقدم ہے جن سے گائے کے معاملے کی ابتدا ہوئی تھی۔ اور یہ بھی ممکن ہے کہ "قتلتم" نزول میں پہلے ہو اور ذبح کا حکم بعد میں، اور یہ بھی ممکن ہے کہ ان کے نزول کی ترتیب ان کی تلاوت کے مطابق ہو، گویا اللہ نے انہیں گائے ذبح کرنے کا حکم دیا یہاں تک کہ انہوں نے اسے ذبح کر دیا، پھر وہ واقعہ پیش آیا جو...

---

(١) العین ٢/٢٢٨ (وعظ)۔ (٢) (م) میں: القلب (دل)۔ (٣) ہمیں ان کی تفسیر کے مطبوعہ نسخے میں یہ نہیں ملا۔ (٤) المحرر الوجیز ١/١٦١۔ (٥) اس پارے کے ص ١١١ پر پہلے بات گزر چکی ہے کہ ابو عمرو سے مشہور روایت میں دوری کی روایت میں دو پہلو ہیں، اور سوسی کی روایت میں اسکان (جزم) ہے۔ اور ہم نے ص ١١٢ پر ابو حیان کا ابو العباس المبرد کے مذکورہ بالا قول پر رد نقل کیا ہے۔ (٦) إعراب القرآن للنحاس ١/٢٣٤۔ (٧) ٢/٨٦۔

Surah Al-Baqarah: Verse 67 [Page] 177

The murder occurred (1), so they were commanded to strike him with a piece of it. Thus, "And when you killed" would be conceptually prior according to the first opinion, as we mentioned, because the conjunction "wa" (and) does not necessitate order.

Its parallel in the Revelation is in the story of Noah, after the mention of the Deluge and its ending, in His saying: "Until, when Our command came and the oven overflowed, We said, 'Load into it of every kind two...' up to His saying '...but a few.'" So He mentioned the destruction of those who perished among them, then followed it with His saying: "And [Noah] said, 'Embark therein; in the name of Allah is its course and its anchorage.'" [Hud: 40-41]. Thus, he mentioned embarking later in the discourse, while it is known that their embarking was before the destruction.

Similarly, His saying, Most High: "Praise be to Allah, who has sent down upon His Servant the Book and has not made therein any deviance. [He has made it] straight..." [Al-Kahf: 1-2]. Its intended meaning is: "He sent down upon His servant the Book straight, and did not make for it any deviance." There are many such examples in the Quran.

Thirdly: There is no disagreement among scholars that slaughtering (dhabh) is better for sheep, and stabbing (nahr) is better for camels, while there is a choice (2) for cattle. It was said: slaughtering is better; because it is what Allah mentioned, and because the place of nahr is close to the place of dhabh. Ibn al-Mundhir said: I do not know of anyone who forbade eating what was stabbed of those things that are usually slaughtered, or slaughtered of those things that are usually stabbed. Malik disliked that (3). A person may dislike something without forbidding it.

The rulings on slaughtering, the slaughterer, and their conditions will come in Surah Al-Ma'idah, fully detailed, God willing, at His saying, Most High: "except what you slaughter [properly]" [Verse: 30] (referring to verse 3).

Al-Mawardi (4) said: They were commanded - and Allah knows best - to slaughter a cow specifically because it is of the same genus as the calf they worshipped, to devalue in their eyes the veneration they used to have for it, and so that through their obedience, what was in their souls of its worship might be known.

This meaning is the reason for slaughtering the cow, and not a reason for answering the questioner. Rather, the meaning is that the dead person is brought to life by the

killing of a living being, thus making His power more apparent in creating things from their opposites.

(1) In 'Ahkam al-Quran' by al-Kiya al-Harrasi 1/10 (and the text is from him): the slain. (2) In (m): and choosing. (3) Al-Mudawwanah 2/65, Sharh Manh al-Jalil 1/580-581, and 'Aqd al-Jawahir al-Thaminah 1/588-589. (4) Al-Nukat wal-'Uyun 1/137.

सूरा अल-बक़रह: आयत 67 [पृष्ठ] 177

हत्या का मामला हुआ (1), इसलिए उन्हें उसके एक हिस्से से उसे मारने का आदेश दिया गया। इस प्रकार, "और जब तुमने हत्या की" पहली राय के अनुसार अर्थ में पहले होगा, जैसा कि हमने उल्लेख किया है, क्योंकि संयोजन "वा" (और) क्रम की आवश्यकता नहीं करता है।

रहस्योद्घाटन में इसका उदाहरण नूह की कहानी में है, जलप्रलय के उल्लेख और उसके अंत के बाद, उनके इस कथन में: "यहाँ तक कि जब हमारा आदेश आ गया और ओवन (तन्नूर) उबल पड़ा, हमने कहा, 'उसमें हर जोड़े में से दो को लाद लो...' उनके इस कथन तक '...मगर कुछ ही'।" तो उन्होंने उनमें से नष्ट होने वालों के विनाश का उल्लेख किया, फिर उनके इस कथन के साथ इसका पालन किया: "और [नूह ने] कहा, 'इसमें सवार हो जाओ; अल्लाह के नाम से ही इसका चलना और इसका रुकना है।'" [हूद: 40-41]। इस प्रकार, उन्होंने भाषण में बाद में सवार होने का उल्लेख किया, जबकि यह ज्ञात है कि उनका सवार होना विनाश से पहले था।

इसी प्रकार, अल्लाह का कथन है: "तमाम प्रशंसा अल्लाह के लिए है, जिसने अपने बंदे पर किताब उतारी और उसमें कोई टेढ़ापन नहीं रखा। [उसे बनाया है] सीधा..." [अल-कहफ़: 1-2]। इसका तात्पर्य यह है: "उसने अपने बंदे पर किताब सीधी उतारी, और उसके लिए कोई टेढ़ापन नहीं बनाया।" कुरान में ऐसे कई उदाहरण हैं।

तीसरा: विद्वानों के बीच कोई मतभेद नहीं है कि भेड़ों के लिए ज़बह (गला काटना) बेहतर है, और ऊंटों के लिए नह्र (सीना में भोंकना) बेहतर है, जबकि मवेशियों के लिए विकल्प (2) है। कहा गया: ज़बह बेहतर है; क्योंकि यह वही है जिसका अल्लाह ने उल्लेख किया है, और क्योंकि नह्र का स्थान ज़बह के स्थान के करीब है। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: मैं किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानता जिसने उन चीज़ों को खाने से मना किया हो जिन्हें आमतौर पर ज़बह किया जाता है और उन्हें नह्र कर दिया गया हो, या जिन्हें आमतौर पर नह्र किया जाता है और उन्हें ज़बह कर दिया गया हो। मलिक ने इसे नापसंद किया (3)। एक व्यक्ति किसी चीज़ को नापसंद कर सकता है बिना उसे हराम किए।

ज़बह, ज़बह करने वाले और उनकी शर्तों के नियम सूरा अल-मायदा में आएंगे, यदि अल्लाह ने चाहा, तो उनके इस कथन पर पूरी तरह से विस्तृत होंगे: "सिवाय उसके जिसे तुमने [ठीक से] ज़बह किया हो" [आयत: 30]।

अल-मावर्दी (4) ने कहा: उन्हें आदेश दिया गया था - और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है - विशेष रूप से एक गाय को ज़बह करने के लिए क्योंकि वह उसी जाति की है जिस बछड़े की वे पूजा करते थे, ताकि उनकी नज़रों में उस सम्मान को कम किया जा सके जो वे इसके लिए रखते थे, और ताकि उनकी आज्ञाकारिता के माध्यम से, जो उनकी आत्माओं में इसकी पूजा थी, उसे जाना जा सके।

यह अर्थ गाय को ज़बह करने का कारण है, न कि प्रश्नकर्ता को उत्तर देने का कारण। बल्कि, इसका अर्थ यह है कि मृत व्यक्ति को जीवित प्राणी की हत्या के माध्यम से जीवित किया जाता है, इस प्रकार चीजों को उनके विपरीत से बनाने में उनकी शक्ति अधिक स्पष्ट हो जाती है।

(1) अल-किया अल-हर्रासी द्वारा 'अहकाम अल-कुरान' 1/10 में (और पाठ उन्हीं का है): 'मारे गए व्यक्ति'। (2) (m) में: 'और चुनना'। (3) अल-मुदव्वना 2/65, शर्ह मन्ह अल-जलील 1/580-581, और 'अक्द अल-जवाहर अल-थमीना 1/588-589। (4) अल-नुकत वल-'उयुन 1/137।

سورة البقرہ: آیت ۶۷ ۱۷۷

قتل کا واقعہ پیش آیا (۱)، تو انہیں حکم دیا گیا کہ اسے اس کے ایک حصے سے ماریں، اور "جب تم نے قتل کیا" پہلے قول کے مطابق معنی میں مقدم ہوگا، جیسا کہ ہم نے ذکر کیا، کیونکہ "واؤ" ترتیب کا تقاضا نہیں کرتی۔

نزول میں اس کی مثال نوح علیہ السلام کے قصے میں طوفان کے ذکر اور اس کے ختم ہونے کے بعد اللہ کے اس فرمان میں ہے: "یہاں تک کہ جب ہمارا حکم آگیا اور تنور ابل پڑا، ہم نے کہا، 'اس میں ہر قسم کے دو جوڑے لاد لو...' اس کے فرمان تک '...مگر تھوڑے ہی'۔" تو انہوں نے ان میں سے ہلاک ہونے والوں کی ہلاکت کا ذکر کیا، پھر اس پر اپنے اس قول کا عطف کیا: "اور [نوح نے] کہا، 'اس میں سوار ہو جاؤ؛ اللہ ہی کے نام سے اس کا چلنا اور اس کا لنگر انداز ہونا ہے'۔" [ہود: ۴۰-۴۱]۔ پس انہوں نے خطاب میں سوار ہونے کا ذکر بعد میں کیا، حالانکہ معلوم ہے کہ ان کا سوار ہونا ہلاکت سے پہلے تھا۔

اسی طرح اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: "تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں جس نے اپنے بندے پر کتاب نازل کی اور اس میں کوئی کجی نہیں رکھی۔ [اسے بنایا ہے] سیدھا..." [الکہف: ۱-۲]۔ اور اس کی تقدیر (مراد) یہ ہے: "اپنے بندے پر کتاب سیدھی نازل کی، اور اس کے لیے کوئی کجی نہیں بنائی"۔ قرآن میں اس جیسی مثالیں کثرت سے ہیں۔

تیسری بات: علماء کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ بکریوں میں ذبح (گردن کاٹنا) افضل ہے، اور اونٹوں میں نحر (سینہ میں نیزہ مارنا) افضل ہے، اور گائے میں اختیار (۲) ہے۔ اور کہا گیا: ذبح افضل ہے؛ کیونکہ یہی وہ ہے جس کا ذکر اللہ نے کیا ہے، اور اس لیے کہ نحر کی جگہ ذبح کی جگہ کے قریب ہے۔ ابن المنذر نے کہا: میں کسی ایسے شخص کو نہیں جانتا جس نے ان

چیزوں کے کھانے کو حرام قرار دیا ہو جنہیں نحر کیا گیا ہو حالانکہ انہیں ذبح کیا جاتا ہے، یا جنہیں ذبح کیا گیا ہو حالانکہ انہیں نحر کیا جاتا ہے۔ مالک نے اسے ناپسند کیا (۳)۔ اور کبھی انسان کسی چیز کو ناپسند کرتا ہے لیکن اسے حرام نہیں کرتا۔

ذبح اور ذبح کرنے والے کے احکام اور ان کی شرائط سورۃ المائدہ میں اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس آئیں گی: "سوائے اس کے جسے تم [صحیح طور پر] ذبح کرلو" [آیت: ۳۰] ان شاء اللہ تعالیٰ تفصیل سے۔

الماوردی (۴) نے کہا: انہیں حکم دیا گیا - اور اللہ ہی بہتر جانتا ہے - خاص طور پر گائے ذبح کرنے کا؛ کیونکہ یہ اسی صنف سے ہے جس بچھڑے کی وہ عبادت کرتے تھے، تاکہ ان کے نزدیک وہ تعظیم ہلکی ہو جائے جو وہ اس کی کرتے تھے، اور تاکہ ان کی فرماں برداری سے یہ معلوم ہو جائے کہ ان کے نفوس میں اس کی عبادت کا کیا حال تھا۔

اور یہ معنی گائے کو ذبح کرنے کی وجہ ہے، سائل کو جواب دینے کی وجہ نہیں، بلکہ اس میں معنی یہ ہے کہ مقتول کو ایک زندہ کے قتل سے زندہ کیا جائے، تاکہ چیزوں کو ان کی ضد سے پیدا کرنے میں اس کی قدرت زیادہ ظاہر ہو۔

(۱) الکیا الھراسی کی 'احکام القرآن' ۱۰/۱ میں (اور کلام انہی کا ہے): المقتول۔ (۲) (م) میں ہے: والتخیر۔ (۳) المدونۃ ۲/ ۶۵، اور شرح منح الجلیل ۱/ ۵۸۰ - ۵۸۱، اور عقد الجواھر الثمینہ ۱/ ۵۸۸ - ۵۸۹۔ (۴) النکت والعیون ۱۳۷/۱۔

178 Surah Al-Baqarah: Verse 67

Fourth: His Almighty's saying: ﴿بَقَرَةً﴾ [a cow]. Al-Baqarah is a name for the female, and Al-Thawr (the bull) is a name for the male, similar to she-camel (naqah) and camel (jamal), and woman and man. It is also said: baqarah is the singular of cattle (baqar), with both female and male being the same. Its origin comes from the phrase: "baqara batnahu," meaning he split open his belly. Thus, a cow splits the earth through plowing and stirs it up (1). From this comes the name "Al-Baqir" for Abu Ja'far Muhammad bin Ali Zayn al-Abidin, because he split open knowledge (baqara al-'ilm) and knew its origin, meaning he delved deep into it. And Al-Baqirah: A garment that is slit, which a woman puts around her neck without sleeves. In the hadith of Ibn Abbas concerning the Hoopoe: "So it slit (baqara) the earth" (2). Shamir said: baqara [means] it looked for the location of water and saw the water under the earth (3). Al-Azhari said (4): Al-Baqar is a generic noun, and its collective is baqir. Ibn Arafa said: It is said: baqir, baaqir, and yayqur (5). Ikrima and Ibn Ya'mar read (6): "Indeed, the cattle (al-baaqira)." And Al-Thawr: The singular of bulls (thiraan). Al-Thawr: The master among men. Al-Thawr: A piece of dried curd (aqit). Al-Thawr: Algae. Thawr: A mountain. Thawr: An Arab tribe. In the hadith: "And the time of Maghrib (7) is as long as the bull (thawr) of dusk has not disappeared," meaning its spreading. It is said: "thaara, yathuuru, thawran, and thawaranan" when it spreads across the horizon. In the hadith: "Whoever wants knowledge, let him stir up (yuthawwir) the Quran" (8). Shamir said: "tathwir" [splitting open/delving into].

Footnotes: (1) Tafsir Al-Mawardi 1/137. (2) Mentioned by Al-Azhari in Tahdhib al-Lugha: (baqar), and narrated at length by Ibn Abi Shaybah 11/536, Al-Tabari 18/30, Al-Hakim 2/405, Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (249), and Al-Diya' in Al-Mukhtarah 10/383. In Ibn Abi Shaybah, Al-Tabari, and Al-Diya', it appears as "naqara" (pecked), and in Al-Hakim and Al-Bayhaqi as "yanquru." (3) Tahdhib al-Lugha: (baqar). (4) We did not find it in Tahdhib al-Lugha; see Al-Sihah (baqar). (5) It appeared in (D) as: baqir, baaqir, and tabaqqara tabaqquran; in (Z) as: baqir, baaqir, bayqur, and baaqir; in (Zha) as: baqir, baaqir, and bayqur. What is confirmed is from (M). Al-Tabaqqur means expansion. "Baaqir" was not found in linguistic lexicons, but rather "baaqur." (6) I'rab al-Quran by Al-Nahhas 1/236, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/163. (7) In the manuscripts: Isha, which is a mistake. It is a portion of a hadith from Abdullah bin Amr (may Allah be pleased with them both), narrated by Ahmad in Al-Musnad (7077) and Muslim (162): (173). (8) Narrated by Ahmad in Al-Zuhd p. 196, Al-Tabarani in Al-Kabir (8666), Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (1960), and Ibn Hazm in Al-Ihkam 8/488 from Abdullah

bin Mas'ud as a mawquf narration. Its wording in Ibn Hazm is: "falyathurhu." Narrated by Abu Ubayd in Fada'il al-Quran pp. 41, 42, and Ibn Al-Mubarak in Al-Zuhd (814) with the wording: "If you want knowledge, then stir up (athiru) the Quran."

१७८ सूरह अल-बकराह : आयत ६७

चौथा [बिंदु]: सर्वशक्तिमान का कथन: ﴿بَقَرَةً﴾ [बकराह]। 'बकराह' मादा का नाम है, और 'थौर' नर का नाम है, जैसे 'नाका' (ऊंटनी) और 'जमल' (ऊंट), और महिला और पुरुष। यह भी कहा जाता है: 'बकराह' 'बकर' (मवेशी) का एकवचन है, मादा और नर दोनों के लिए समान है। इसका मूल आपके इस कथन से है: 'बकरा बतनहु', यानी: उसने उसका पेट फाड़ दिया। तो 'बकराह' हल चलाकर ज़मीन को फाड़ देती है और उसे उकसाती है (१)। इसी से अबू जाफ़र मुहम्मद बिन अली ज़ैन अल-आबिदीन का नाम 'अल-बाक़िर' पड़ा, क्योंकि उन्होंने ज्ञान को 'बकरा' (विभाजित/गहराई से अध्ययन) किया और उसके मूल को जाना, यानी उसे खोल दिया। और 'बक़ीराह': एक ऐसा कपड़ा है जिसे फाड़ दिया जाता है, जिसे एक महिला बिना आस्तीन के अपनी गर्दन पर डाल लेती है। इब्न अब्बास की हुदहुद के संबंध में हदीस में: "उसने ज़मीन को फाड़ दिया (बकरा)" (२)। शमीर ने कहा: 'बकरा' का अर्थ है: उसने पानी के स्थान को देखा, और ज़मीन के नीचे पानी देखा (३)। अल-अज़हरी ने कहा (४): 'अल-बकर' जातिवाचक संज्ञा है और इसका बहुवचन 'बाक़िर' है। इब्न अरफ़ा ने कहा: 'बक़ीर', 'बाक़िर' और 'यैक़ूर' कहा जाता है (५)। इकरीमा और इब्न यामुर ने पढ़ा (६): "निश्चित रूप से मवेशी (अल-बाक़िरा)"। और 'थौर': सांडों का एकवचन है। 'थौर': पुरुषों में सरदार। 'थौर': सूखे दही (अक़ीत) का एक टुकड़ा। 'थौर': काई। 'थौर': एक पहाड़। 'थौर': अरब का एक कबीला। हदीस में है: "मग़ारिब का समय (७) तब तक है जब तक कि सांझ का 'थौर' गायब न हो जाए", जिसका अर्थ है उसका फैलना। कहा जाता है: 'थारा, यथूरु, थौरन, थौरानन' जब वह क्षितिज पर फैल जाए। हदीस में है: "जो ज्ञान चाहता है, वह कुरान को 'थव्विर' (मंथन/गहराई से अध्ययन) करे" (८)। शमीर ने कहा: 'थव्वीर'...

पाद टिप्पणियाँ: (१) तफ़सीर अल-मावर्दी १/१३७। (२) अल-अज़हरी द्वारा तहज़ीब अल-लुग़ा में उल्लेखित: (बकर), और इब्न अबी शयबा ११/५३६, अल-तबरी १८/३०, अल-हाकिम २/४०५, अल-बयहाकी द्वारा शुअब अल-ईमान (२४९) में, और अल-ज़िया द्वारा अल-मुख्तारा १०/३८३ में विस्तार से वर्णित है। इब्न अबी शयबा, अल-तबरी और अल-ज़िया में यह "नक़रा" (चोंच मारना) के रूप में आता है, और अल-हाकिम और अल-बयहाकी में "यनक़ुरु" के रूप में। (३) तहज़ीब अल-लुग़ा: (बकर)। (४) हमें यह तहज़ीब अल-लुग़ा में नहीं मिला; अल-सिहह (बकर) देखें। (५) यह (द) में: बक़ीर, बाक़िर और तबक़्क़रा तबक़्क़ुरन के रूप में आया; (ज़) में: बक़ीर, बाक़िर, यैक़ूर और बाक़िर के रूप में; (ज़) में: बक़ीर, बाक़िर और यैक़ूर के रूप में। (म) से जो पुष्ट है वह दिया गया है। अल-तबक़्क़ुर का अर्थ है

विस्तार। भाषाई शब्दकोशों में "बाक़िर" नहीं मिला, बल्कि "बाकूर" मिला है। (६) अल-नहहास द्वारा एराब अल-कुरान १/२३६, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६३। (७) पांडुलिपियों में: इशा, जो एक गलती है। यह अब्दुल्ला बिन अम्र (दोनों से अल्लाह प्रसन्न हो) की एक हदीस का हिस्सा है, जिसे अहमद ने अल-मुसनद (७०७७) में और मुस्लिम (१६२): (१७३) में वर्णित किया है। (८) अहमद द्वारा अल-ज़ुहद पृष्ठ १९६, अल-तबरानी द्वारा अल-कबीर (८६६६), अल-बयहाकी द्वारा शुअब अल-ईमान (१९६०), और इब्न हज़म द्वारा अल-अहकाम ८/४८८ में अब्दुल्ला बिन मसऊद से एक मौक़ूफ़ वर्णन के रूप में वर्णित। इब्न हज़म में इसके शब्द हैं: "फ़लयथुरहु"। अबू उबैद द्वारा फ़ज़ाइल अल-कुरान पृष्ठ ४१, ४२, और इब्न अल-मुबारक द्वारा अल-ज़ुहद (८१४) में इन शब्दों के साथ वर्णित: "यदि आप ज्ञान चाहते हैं, तो कुरान का मंथन करें (अथिरू)।"

۱۷۸ سورة البقره : آیت ۶۷

چوتھا (نکتہ): اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿بَقَرَةً﴾۔ 'بقرہ' مادہ کا نام ہے، اور 'ثور' نر کا نام ہے، جیسے 'ناقہ' (اونٹنی) اور 'جمل' (اونٹ)، اور عورت اور مرد۔ یہ بھی کہا گیا ہے: 'بقرہ' 'بقر' (مویشی) کا واحد ہے، مادہ اور نر دونوں کے لیے برابر ہے، اور اس کی اصل آپ کے اس قول سے ہے: 'بَقَرَ بطنہ' یعنی اس نے اس کا پیٹ چاک کیا، پس گائے ہل چلا کر زمین کو پھاڑتی ہے اور اسے ابھارتی ہے (۱)۔ اسی سے ابو جعفر محمد بن علی زین العابدین کا لقب 'باقر' ہے، کیونکہ انہوں نے علم کو 'بقر' (شگافتہ/گہرا مطالعہ) کیا اور اس کی اصل کو پہچانا، یعنی اسے کھول دیا۔ اور 'بَقیرہ': وہ کپڑا ہے جو چاک کیا جائے، جسے عورت بغیر آستینوں کے اپنی گردن میں ڈال لیتی ہے۔ ابن عباس کی ہدہد کے بارے میں حدیث میں ہے: "اس نے زمین کو پھاڑا (بقر)" (۲)۔ شمر نے کہا: 'بقر' یعنی اس نے پانی کی جگہ کو دیکھا، اور زمین کے نیچے پانی دیکھا (۳)۔ ازہری نے کہا (۴): 'البقر' اسم جنس ہے اور اس کی جمع 'باقر' ہے۔ ابن عرفہ نے کہا: 'بقیر'، 'باقر' اور 'یَبقور' کہا جاتا ہے (۵)۔ عکرمہ اور ابن یعمر نے پڑھا (۶): "ان الباقر"۔ اور 'ثور': بیلوں کا واحد ہے۔ 'ثور': مردوں میں سردار۔ 'ثور': خشک دہی (اقط) کا ٹکڑا۔ 'ثور': کائی۔ 'ثور': ایک پہاڑ۔ 'ثور': عرب کا ایک قبیلہ۔ حدیث میں ہے: "مغرب کا وقت (۷) جب تک کہ شفق کا 'ثور' غائب نہ ہو جائے"، یعنی اس کا پھیلنا؛ کہا جاتا ہے: 'ثارَ یَثُورُ ثَوْراً وثَوراناً' جب وہ افق پر پھیل جائے۔ حدیث میں ہے: "جو علم کا ارادہ کرے، وہ قرآن کو 'ثور' کرے (کھرچ ڈالے/گہرائی سے مطالعہ کرے)" (۸)۔ شمر نے کہا: تثویر...

حواشی: (۱) تفسیر الماوردی ۱/۱۳۷۔ (۲) ازہری نے تہذیب اللغہ میں اس کا ذکر کیا: (بقر)، اور ابن ابی شیبہ ۱۱/۵۳۶، الطبری ۱۸/۳۰، الحاکم ۲/۴۰۵، البیہقی نے شعب الایمان (۲۴۹) میں، اور

الضیاء نے المختارہ ۱۰/۳۸۳ میں اسے تفصیل سے نقل کیا ہے۔ ابن ابی شیبہ، الطبری اور الضیاء کے ہاں یہ لفظ "نقر" (ٹھونگ مارنا) کے طور پر آیا ہے، اور الحاکم اور البیہقی کے ہاں "ینقر" کے طور پر۔ (۳) تہذیب اللغہ: (بقر)۔ (۴) ہمیں یہ تہذیب اللغہ میں نہیں ملا؛ الصِحاح (بقر) دیکھیں۔ (۵) یہ (د) میں: بقیر، باقر اور تبقر تبقراً کے طور پر آیا؛ (ز) میں: بقیر، باقر، بیقور اور باقر کے طور پر؛ (ظ) میں: بقیر، باقر اور بیقور کے طور پر۔ (م) سے جو ثابت ہے وہ درج کیا گیا ہے۔ التبقر کے معنی وسعت کے ہیں۔ لسانی لغات میں "باقر" نہیں ملا بلکہ "باقور" ملا ہے۔ (۶) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۳۶، اور المحرر الوجیز ۱/۱۶۳۔ (۷) قلمی نسخوں میں: عشاء، جو کہ ایک غلطی ہے۔ یہ عبداللہ بن عمرو (رضی اللہ عنہما) کی ایک حدیث کا حصہ ہے، جسے احمد نے المسند (۷۰۷۷) میں اور مسلم (۱۶۲): (۱۷۳) میں نقل کیا ہے۔ (۸) احمد نے الزہد ص ۱۹۶، الطبرانی نے الکبیر (۸۶۶۶)، البیہقی نے شعب الایمان (۱۹۶۰)، اور ابن حزم نے الاحکام ۸/۴۸۸ میں عبداللہ بن مسعود سے موقوف روایت کے طور پر نقل کیا۔ ابن حزم کے ہاں اس کے الفاظ ہیں: "فلیثرہ"۔ اسے ابو عبید نے فضائل القرآن ص ۴۱، ۴۲، اور ابن المبارک نے الزہد (۸۱۴) میں ان الفاظ کے ساتھ نقل کیا: "اگر تم علم چاہتے ہو تو قرآن کو ابھارو (اثیرو)"۔

179 Surah Al-Baqarah: Verse 67 The Qur’an: its recitation and its investigation (1) by the scholars. The Almighty's saying: {They said, "Do you take us in ridicule?"}: This is their response to Moses, peace be upon him, when he said to them: {Indeed, Allah commands you to slaughter a cow}. This happened because they found a slain man among them - it is said his name was 'Amil (2) - and the identity of his killer was unclear to them. Dispute arose among them, and they said: "Should we kill each other while the Messenger of Allah is among us?" So they came to him and asked him for clarification - this was before the revelation of 'Al-Qasama' (the collective oath in cases of unsolved murder) in the Torah. They asked Moses to pray to Allah. Moses asked his Lord, and He commanded them to slaughter a cow. When they heard this from Moses, and it did not appear to be a direct answer to what they had asked him about and sought judgment on from him, they said: "Do you take us in ridicule?!" - Ridicule (huz'an) is play and mockery, as mentioned previously (3). Al-Jahdari (4) recited it as "ayattakhidhuna" with a 'ya', meaning some of them said it to others. So Moses, peace be upon him, answered them by saying: {I seek refuge in Allah from being among the ignorant}; because deviating from an answer to a person seeking guidance towards ridicule is ignorance, so he (peace be upon him) sought refuge from it, because it is a quality that prophets are free from (5). Ignorance is the opposite of knowledge. He sought refuge from ignorance, just as they were ignorant in their saying: "Do you take us in ridicule?", to one who is informing them from Allah Almighty. The literal meaning of this statement indicates the corruption of the belief of those who said it. The faith of someone who says to a prophet whose miracle has appeared - and who says: "Indeed, Allah commands you to do such and such" - "Do you take us in ridicule?" is not valid. If someone said that today about some of the Prophet's ﷺ sayings, it would be obligatory to declare them a disbeliever (takfir). A group went to the view that this [statement] from them was due to coarseness of nature, harshness, and disobedience, similar to what the speaker said to the Prophet ﷺ regarding the distribution of the spoils of Hunayn: "This is a distribution by which the face of Allah was not intended" (6).

---

(1) In (D) and (Z): "muqayasa" (comparison), and in (ZH): "mu'ayasha" (living with), and what is established is from (M), which agrees with what is in Tahdhib al-Lugha 15/110. (2) 'Ara'is al-Majalis p. 233. (3) 1/314. (4) Al-Qira'at al-Shadhah by Ibn Khalawayh p. 6. (5) Al-Nukat wal-'Uyun 1/137; see also Tafsir Abd al-Razzaq 1/48, Tafsir al-Tabari 2/75, and al-Muharrar al-Wajiz 1/161. (6) Narrated by Ahmad (3608), al-Bukhari (3405), and

Muslim (1062) from the hadith of Abdullah ibn Mas'ud, may Allah be pleased with him.

पृष्ठ १७९ सूरह अल-बक़रह: आयत ६७ क़ुरान: उसका पाठ और विद्वानों द्वारा इसकी जांच-पड़ताल (१)। अल्लाह का कहना है: {वे कहने लगे, "क्या तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो?"}: यह उनकी तरफ से मूसा (अलैहिस्सलाम) को जवाब था जब उन्होंने उनसे कहा था: {बेशक अल्लाह तुम्हें एक गाय ज़बह करने का हुक्म देता है}। इसका कारण यह था कि उन्हें अपने बीच एक मक़्तूल (मारा गया व्यक्ति) मिला था - कहा जाता है कि उसका नाम आमिल था (२) - और उसके कातिल का मामला उन पर संदिग्ध था। उनके बीच विवाद पैदा हो गया, तो उन्होंने कहा: "क्या हम आपस में लड़ें जबकि अल्लाह का रसूल हमारे बीच मौजूद है!" चुनाँचे वे उनके पास आए और उनसे स्पष्टीकरण माँगा - और यह तौरात में 'क़सामा' (सामूहिक शपथ) के हुक्म के नाज़िल होने से पहले की बात है। उन्होंने मूसा से दुआ करने की दरख्वास्त की। मूसा ने अपने रब से दुआ की तो अल्लाह ने उन्हें एक गाय ज़बह करने का हुक्म दिया। जब उन्होंने मूसा से यह बात सुनी, और ज़ाहिरी तौर पर यह उनके सवाल का जवाब नहीं लग रहा था, जिसके बारे में उन्होंने उनसे फैसला माँगा था, तो वे कहने लगे: "क्या तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो?!" - 'हुज़ु' का अर्थ है खेल और मखौल, जैसा कि पहले बताया जा चुका है (३)। अल-जहदूरी (४) ने इसे 'अयत्ताखिधुना' (य के साथ) पढ़ा है, जिसका अर्थ है कि उनमें से कुछ ने दूसरों से ऐसा कहा। तो मूसा (अलैहिस्सलाम) ने उन्हें यह कहकर उत्तर दिया: {मैं अल्लाह की पनाह मांगता हूँ कि मैं जाहिलों (अज्ञानियों) में से हो जाऊँ}; क्योंकि किसी मार्गदर्शक से सवाल करने वाले को जवाब देने के बजाय उसका मज़ाक उड़ाना अज्ञानता है, इसलिए उन्होंने (अलैहिस्सलाम) इससे पनाह माँगी, क्योंकि यह एक ऐसा गुण है जो नबियों में नहीं पाया जाता (५)। अज्ञानता ज्ञान का विलोम है। उन्होंने अज्ञानता से पनाह माँगी, ठीक वैसे ही जैसे वे अपनी इस बात में अज्ञानी थे: "क्या तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो?", उस व्यक्ति से जो उन्हें अल्लाह तआला की ओर से खबर दे रहा था। इस कथन का बाहरी रूप कहने वाले के अक़ीदे (विश्वास) की खराबी को दर्शाता है। उस व्यक्ति का ईमान सही नहीं हो सकता जो किसी ऐसे नबी से - जिसका चमत्कार ज़ाहिर हो चुका हो और जो कह रहा हो कि अल्लाह तुम्हें ऐसा करने का हुक्म देता है - यह कहे: "क्या तुम हमारा मज़ाक उड़ाते हो?" अगर आज कोई नबी ﷺ के किसी कौल (बात) के बारे में ऐसा कहे, तो उसे काफिर करार देना वाजिब होगा। एक समूह का मानना है कि उनकी यह बात उनके स्वभाव की कठोरता, रूखेपन और अवज्ञा के कारण थी, जैसे कि उस व्यक्ति ने हूनैन के युद्ध की गनीमतों के वितरण के समय नबी ﷺ से कहा था: "यह ऐसा वितरण है जिसमें अल्लाह की रज़ा (खुशी) का इरादा नहीं किया गया" (६)।

पाद-टिप्पणियाँ: (१) (द) और (ज़) में: "मुकायसा" (तुलना), और (ज़) में: "मुआयशा", और जो स्थापित है वह (म) से है, जो तहज़ीब अल-लुग़ा १५/११० में मौजूद बात के अनुकूल है। (२) अराइस अल-मजालिस पृ. २३३। (३) १/३१४। (४) अल-किरात अल-शाज़ह इब्न खालवेह द्वारा पृ. ६। (५) अल-नुकात वल-उयून १/१३७; देखें तफ़सीर अब्द अल-रज्ज़ाक १/४८, तफ़सीर अल-तबरी २/७५, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६१। (६) इसे अहमद (३६०८), बुखारी (३४०५), और मुस्लिम (१०६२) ने अब्दुल्ला इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से रिवायत किया है।

صفحہ ۱۷۹ سورۃ البقرہ: آیت ۶۷ القرآن: اس کی تلاوت اور علماء کی طرف سے اس کی تحقیق (۱)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ قَالُوا أَتَتَّخِذُنَا هُزُواً ﴾ : یہ ان کی طرف سے موسیٰ علیہ السلام کو جواب تھا جب آپ نے ان سے فرمایا: ﴿ إِنَّ اللهَ يَأْمُرُكُمْ أَنْ تَذْبَحُوا بَقَرَةً ﴾ ، اور وہ اس لیے کہ انہیں اپنے درمیان ایک مقتول ملا تھا - کہا جاتا ہے کہ اس کا نام عامیل تھا (۲) - اور اس کے قاتل کا معاملہ ان پر مشتبہ ہو گیا تھا۔ ان کے درمیان اختلاف ہوا تو انہوں نے کہا: "کیا ہم ایک دوسرے کو قتل کریں گے جبکہ اللہ کا رسول ہمارے درمیان موجود ہے!" چنانچہ وہ آپ کے پاس آئے اور وضاحت طلب کی - اور یہ تورات میں 'قسامہ' (مشتبہ قتل کے مقدمے میں اجتماعی حلف) کے نازل ہونے سے پہلے کی بات ہے - انہوں نے موسیٰ علیہ السلام سے اللہ سے دعا کرنے کی درخواست کی۔ موسیٰ علیہ السلام نے اپنے رب سے عرض کی تو اللہ نے انہیں ایک گائے ذبح کرنے کا حکم دیا۔ جب انہوں نے موسیٰ علیہ السلام سے یہ سنا، اور بظاہر یہ اس بات کا جواب نہیں تھا جو انہوں نے پوچھا تھا اور جس کے فیصلے کے لیے وہ آپ کے پاس آئے تھے، تو انہوں نے کہا: "کیا آپ ہمارا مذاق اڑاتے ہیں؟!" - 'ہزؤ' کا مطلب کھیل اور تمسخر ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے (۳)۔ الجحدری (۴) نے اسے 'ایَتَّخِذُنَا' (ی کے ساتھ) پڑھا ہے، یعنی ان میں سے بعض نے بعض سے یہ بات کہی۔ تو موسیٰ علیہ السلام نے انہیں یہ کہہ کر جواب دیا: ﴿ أَعُوذُ بِاللَّهِ أَنْ أَكُونَ مِنَ الْجَهِلِينَ ﴾ ؛ کیونکہ ہدایت چاہنے والے سائل کے جواب کے بجائے اس کا مذاق اڑانا جہالت ہے، اس لیے آپ علیہ السلام نے اس سے پناہ مانگی، کیونکہ یہ ایک ایسی صفت ہے جو انبیاء کی شان کے خلاف ہے (۵)۔ جہالت علم کی ضد ہے۔ انہوں نے جہالت سے پناہ مانگی، جیسے وہ اپنی اس بات میں جاہل تھے: "کیا آپ ہمارا مذاق اڑاتے ہیں؟"، اس شخص کے بارے میں جو انہیں اللہ تعالیٰ کی طرف سے خبر دے رہا تھا۔ اس قول کا ظاہر اس کے کہنے والے کے عقیدے

کے فساد پر دلالت کرتا ہے۔ اس شخص کا ایمان صحیح نہیں ہو سکتا جو کسی ایسے نبی سے - جس کا معجزہ ظاہر ہو چکا ہو اور وہ کہے کہ اللہ تمہیں ایسا کرنے کا حکم دیتا ہے - یہ کہے: "کیا آپ ہمارا مذاق اڑاتے ہیں؟" اگر آج کوئی نبی ﷺ کے کسی قول کے بارے میں ایسی بات کہے تو اسے کافر قرار دینا واجب ہو جائے گا۔ ایک جماعت کا خیال ہے کہ ان کا یہ رویہ ان کی طبیعت کی سختی، درشتی اور نافرمانی کی وجہ سے تھا، جیسا کہ غزوہ حنین کی غنیمتوں کی تقسیم کے وقت اس شخص نے نبی ﷺ سے کہا تھا: "یہ ایسی تقسیم ہے جس سے اللہ کی رضا مقصود نہیں" (۶)۔

حواشی: (۱) (د) اور (ز) میں: "مقایسہ" (موازنہ)، اور (ظ) میں: "معایشہ"، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے لیا گیا ہے، جو تہذیب اللغۃ ۱۱۰/۱۵ کے مطابق ہے۔ (۲) عرائس المجالس ص ۲۳۳۔ (۳) ۳۱۴/۱۔ (۴) القراءات الشاذة لابن خالویہ ص ۶۔ (۵) النکت والعیون ۱۳۷/۱، اور دیکھیں تفسیر عبد الرزاق ۴۸/۱، تفسیر طبری ۷۵/۲، اور المحرر الوجیز ۱۶۱/۱۔ (۶) اسے احمد (۳۶۰۸)، بخاری (۳۴۰۵) اور مسلم (۱۰۶۲) نے عبداللہ بن مسعود رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 67

Page 180

And as another said to him: "Be just, O Muhammad"(1). In all of this is the clearest evidence of the ugliness of ignorance and that it corrupts the religion.

The Almighty's saying: ﴿هُزُوًا﴾ (huzuwan)(2) is a second object (maf'ul thānin). It is permissible to lighten the hamza, placing it(3) between the wāw and the hamza(4). Hafs rendered it as a wāw with a fatha, because it is a hamza with a fatha preceded by a damma, so it follows substitution, like His saying: ﴿السُّفَهَاءُ أَلَا﴾ (as-sufahā'u 'alā)(5) [Al-Baqarah: 13]. It is permissible to drop the damma from the zāy just as you drop it from 'adud (arm), so you say: huzwan, as the people of Kufa read it(6). Similarly: ﴿ولم يكن له كفُوًا أحد﴾ (walam yakun lahu kufuwan 'ahad)(7) [Al-Ikhlas: 4]. Al-Akhfash(8) narrated from 'Isa ibn 'Umar that every noun consisting of three letters starting with a damma has two linguistic forms: the lightened (takhfīf) and the heavy (tathqīl), such as: al-'usr and al-'usr (difficulty), al-yusr and al-yusr (ease), and al-huzu'. Similar are the plurals on the pattern of fu'ul, like kutub and kutb, rusul and rusl, and 'uwn and 'uwn.

As for the Almighty's saying: ﴿وَجَعَلُوا لَهُ مِنْ عِبَادِهِ جُزْءًا﴾ (wa-ja'alū lahu min 'ibādihi juz'an) [Az-Zukhruf: 15], it is not like huzu' or kufu', because it is originally on the pattern of fa'l. This will be discussed in its proper place(9), God Almighty willing.

Issue: The verse contains evidence for the prohibition of mocking the religion of God and the Muslims(10) and those who must be revered, and that this is ignorance, and its perpetrator deserves the threat of punishment.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/162, and the report was narrated by Ahmad (14820), Al-Bukhari (3138), and Muslim (1063) from the hadith of Jabir, may God be pleased with him. (2) Meaning with the damma of the zāy and the hamza, which is the recitation of the seven except for Hafs and Hamza, as will follow. (3) In (D) and (Z): "by placing it". (4) Ibn al-Jazari weakened this view in al-Nashr 1/483. (5) It occurred in (M): "the fools but", which is an error, and it is not manifest in (Z), and not refined in (D), and it occurred in (Z): "the fools and not", which is the wording of the recitation of Nafi', Ibn Kathir, and Abu 'Amr al-Basri of the seven, in the state of connection. See at-Taysir pp. 33-34. (6) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/234. And the one who read it from the people of Kufa was Hamza from the seven, and Khalaf al-Aashir. See al-Sab'ah p. 157, and at-Taysir p. 74, and al-Nashr 2/215-216. (7) Meaning with the sukun of the fā' and the

hamza, which is the recitation of Hamza from the seven in connection, and Khalaf and Ya’qub from the ten. Hafs read it with the damma of the fā’ and replacing the hamza with a wāw, while the rest read it with the damma of the zāy and the hamza. Al-Nashr 2/215-216. (8) Ma’ani al-Quran 1/278, and the author quoted him via Al-Kashf ‘an Wujuh al-Qira’at by Makki 1/248. (9) In the commentary on verse (4) of Surah Al-Ikhlas. (10) In (M): "and the religion of the Muslims".

सूरह अल-बक़रह: आयत 67

पृष्ठ 180

जैसा कि दूसरे ने उनसे कहा: "हे मुहम्मद, न्याय करें"(1)। इस सब में अज्ञानता की कुरूपता का स्पष्ट प्रमाण है, और यह कि वह धर्म को बिगाड़ने वाला है।

अल्लाह तआला का कथन: ﴿हुज़ुवन﴾(2) दूसरा कर्म (मफूल सानी) है। हमज़ा को हल्का करना जायज़ है, इसे(3) वाव और हमज़ा के बीच रखते हुए(4)। हफ़्स ने इसे वाव मफ़्तूहा (ज़बर वाली वाव) बना दिया, क्योंकि यह एक हमज़ा मफ़्तूहा है जिससे पहले ज़म्मा (पेश) है, इसलिए यह बदल (प्रतिस्थापन) के नियम पर चलता है, जैसे उनका कथन है: ﴿अस-सुफ़हा-उ अला﴾(5) [अल-बक़रह: 13]। ज़ाय से ज़म्मा हटाना भी जायज़ है जैसे कि 'अदद' (हाथ) से हटाया जाता है, तो आप कहेंगे: हुज़्वन, जैसा कि कूफ़ा वालों ने पढ़ा(6)। इसी तरह: ﴿व-लम यकुन लहू कुफुवन अहद﴾(7) [अल-इख़लास: 4]। अल-अख़फ़श(8) ने ईसा बिन उमर से उल्लेख किया है कि प्रत्येक तीन-अक्षरीय संज्ञा जिसका पहला अक्षर ज़म्मा वाला हो, उसमें दो भाषाई रूप होते हैं: हल्कापन (तख़फ़ीफ़) और भारीपन (तस्क़ील), जैसे: अल-उस्र और अल-उस्र (कठिनाई), अल-युस्र और अल-युस्र (आसानी), और अल-हुज़ु। इसी प्रकार जो 'फ़ु-उल' के वजन पर बहुवचन हैं, जैसे कुतुब और कुत्ब, रुसुल और रुस्ल, और ऊन और ऊन।

जहाँ तक अल्लाह तआला के कथन: ﴿व-जअलू लहू मिन इबादिही जुज़-अन﴾ [अज़-ज़ुख़रुफ़: 15] का संबंध है, तो यह हुज़ुअ और कुफ़ुअ जैसा नहीं है, क्योंकि यह मूल रूप से 'फ़अल' के वजन पर है। जैसा कि इंशा अल्लाह अपने स्थान पर आएगा(9)।

विषय: आयत में अल्लाह के धर्म, मुसलमानों(10) और जिनका सम्मान करना अनिवार्य है, उनका मज़ाक उड़ाने की मनाही का प्रमाण है, और यह कि यह अज्ञानता है, और ऐसा करने वाला सज़ा की धमकी का पात्र है।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/162, और इसे अहमद (14820), अल-बुखारी (3138), और मुस्लिम (1063) ने जाबिर (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है। (2) यानी ज़ाय और हमज़ा के ज़म्मा के साथ, जो हफ़्स और हमज़ा को छोड़कर सात सात अन्य कारी की क़िरात है। (3) (द) और (ज़) में: "बजालिहा" (उसे रखने के द्वारा)। (4) इब्न अल-जज़री ने अल-नश्र 1/483 में इस मत को कमज़ोर बताया है। (5) (म) में आया है: "मूर्ख लेकिन", जो गलत है। अ-तयसीर पृ. 33-34 देखें। (6) अल-

नहहास द्वारा इराब अल-क़ुरान 1/234। कूफ़ा वालों में से जिसने इसे पढ़ा वह हमज़ा थे। (7) यानी फा और हमज़ा के सुकून के साथ, जो मिलाते समय हमज़ा की क़िरात है। (8) मआनी अल-क़ुरान 1/278। (9) सूरह अल-इख़लास की आयत (4) की व्याख्या के समय। (10) (म) में: "और मुसलमानों का धर्म"।

سورہ البقرہ: آیت 67

صفحہ 180

اور جیسا کہ دوسرے نے اسے کہا: "اے محمد، عدل کرو"(1)۔ اور اس سب میں جہالت کی برائی کا سب سے بڑا ثبوت ہے، اور یہ کہ وہ دین کو بگاڑنے والی ہے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿هُزُوًا﴾(2) مفعول ثانی ہے، اور ہمزہ کی تخفیف جائز ہے، اسے(3) واؤ اور ہمزہ کے درمیان کر دیا جائے(4)۔ حفص نے اسے واؤ مفتوحہ بنا دیا، کیونکہ وہ ہمزہ مفتوحہ ہے جس سے پہلے ضمہ ہے، پس یہ بدل پر جاری ہوتی ہے، جیسے کہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿السُّفَهَاءُ أَلَا﴾ (5) [البقرة: 13]۔ اور زاء سے ضمہ کو حذف کرنا جائز ہے جیسا کہ اسے 'عضد' سے حذف کرتے ہیں، تو آپ کہیں گے: 'هُزْواً'، جیسا کہ اہل کوفہ نے پڑھا(6)۔ اور اسی طرح: ﴿ولم يكن له كفُوًا أحد﴾(7) [الإخلاص: 4]۔ اور الاخفش(8) نے عیسیٰ بن عمر سے نقل کیا کہ ہر وہ اسم جو تین حرفی ہو جس کا پہلا حرف مضموم ہو، تو اس میں دو لغتیں ہیں: تخفیف اور تثقیل، جیسے: العُسْر، واليُسْر، اور الهُزُء۔ اور اسی طرح وہ جمع جو 'فُعُل' کے وزن پر ہو، جیسے كُتُب اور كُتْب، رُسُل اور رُسْل، اور عُون اور عُوْن۔

جہاں تک اللہ تعالیٰ کے قول ﴿وَجَعَلُوا لَهُ مِنْ عِبَادِهِ جُزْءًا﴾ [الزخرف: 15] کا تعلق ہے، تو یہ 'ہُزُء' اور 'كُفُء' کی طرح نہیں ہے، کیونکہ یہ اصل میں 'فَعْل' کے وزن پر ہے۔ جیسا کہ انشاء اللہ اپنے مقام پر آئے گا(9)۔

مسئلہ: آیت میں اللہ کے دین، مسلمانوں(10) اور ان لوگوں کا مذاق اڑانے کی ممانعت کی دلیل ہے جن کی تعظیم واجب ہے، اور یہ کہ یہ جہالت ہے، اور اس کا کرنے والا وعید کا مستحق ہے۔

(1) المحرر الوجيز 1/ 162، اور یہ روایت احمد (14820)، بخاری (3138) اور مسلم (1063) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ سے نقل کی ہے۔ (2) یعنی زاء اور ہمزہ کے ضمہ کے ساتھ، اور یہ حفص اور حمزہ کے علاوہ سات قرآء کی قراءت ہے۔ (3) نسخہ (د) اور (ظ) میں: "بجعلها" (اس کے کرنے کے ساتھ)۔ (4) ابن الجزری نے النشر 1/ 483 میں اس قول کو ضعیف قرار دیا ہے۔ (5) نسخہ (م) میں "السفهاء ولكن" واقع ہوا ہے جو کہ غلط ہے۔ دیکھیے التیسیر ص 33-34۔ (6) اعراب القرآن للنحاس 1/ 234۔ اہل کوفہ میں سے جنہوں نے اسے پڑھا وہ حمزہ اور خلف العاشر ہیں۔ (7) یعنی فاء اور ہمزہ کے سکون کے ساتھ، جو کہ وصلاً حمزہ کی قراءت ہے۔ (8) معانی القرآن 1/ 278۔ (9) سورہ الاخلاص کی چوتھی آیت کی تفسیر کے وقت۔ (10) نسخہ (م) میں: "اور مسلمانوں کے دین"۔

181 Surah Al-Baqarah: Verse 68

Joking is not synonymous with mockery. Do you not see that the Prophet (PBUH) used to joke, as did the leaders after him? Ibn Khuwayz Mandad said: It has reached us that a man approached Ubayd Allah bin al-Hasan, while he was the judge of Kufa, and Ubayd Allah joked with him, saying: "Is this cloak of yours made from the wool of a ewe or the wool of a ram?" The man said to him: "Do not be ignorant, O Judge!" Ubayd Allah replied: "And where did you find that joking is ignorance?!" Then he recited this verse to him, and Ubayd Allah turned away from him because he saw him as ignorant, not knowing the difference between joking and mockery, and one is not the same as the other.

The Almighty's saying: {They said, "Call upon your Lord for us to make clear to us what it is." He said, "[Allah] says, 'It is a cow which is neither old nor virgin, but median between that,' so do what you are commanded." (68)}

The Almighty's saying {They said, "Call upon your Lord for us"} - this was stubbornness on their part and a lack of compliance. Had they obeyed the command and slaughtered any cow, the objective would have been achieved. However, they were difficult upon themselves, so Allah made it difficult for them. This was said by Ibn Abbas, Abu al-Aliyah, and others (3). Similar was narrated by al-Hasan al-Basri from the Prophet (PBUH) (4). The dialect of Bani Amir is "id'u" (5), as previously mentioned (6). And {yubayyin} (to make clear) is in the jussive mood as a response to the command. {ma hiya} (what it is) is a subject and predicate. The quiddity (mahiyah) of a thing is its reality and essence upon which it exists.

The Almighty's saying: {He said, "[Allah] says, 'It is a cow which is neither old nor virgin, but median between that'"} - in this is evidence for the permissibility of abrogation (naskh) before the time of action. Because when a cow was commanded, it implied any cow. When the description was added, it abrogated the first ruling with another. Just as if it were said: "In thirty camels, a bint makhad (one-year-old female camel)," then he abrogated it with a bint labun (two-year-old female camel) or a hiqqah (three-year-old female camel). Likewise, here, when the description was specified, it became an abrogation of the previous ruling. "Al-farid" means the old one. It is said faradat tafardu furudan, meaning she became old. And an old thing is called "farid". A rajaz poet said:

(1) In (m): or wool. (2) In (d), (z), and (m): the jest (al-mazh), and the established is from (zh). (3) Al-Tabari 2/98 and Ibn Abi Hatim 1/215 recorded the saying of Ibn Abbas, and Ibn Kathir authenticated its chain of narration in his Tafsir at verse 71. Al-Tabari also recorded the saying of Abu al-Aliyah in 2/99. (4) Al-Nukat wa al-Uyun 1/138. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/162. (6) 2/144.

१८१ सूरा अल-बकरा: आयत ६८

मजाक करना उपहास के समान नहीं है। क्या आप नहीं देखते कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) मजाक किया करते थे, और उनके बाद के इमाम भी? इब्न खुवैज़ मन्दाद ने कहा: हम तक यह बात पहुंची है कि एक व्यक्ति उबैद अल्लाह बिन अल-हसन के पास आया, जबकि वह कूफ़ा के न्यायाधीश (क़ाज़ी) थे, और उबैद अल्लाह ने उसके साथ मज़ाक किया, कहा: "आपका यह लबादा भेड़ की ऊन से बना है या मेढ़े की ऊन से?" उसने उनसे कहा: "हे न्यायाधीश, अज्ञानी मत बनो!" उबैद अल्लाह ने उससे कहा: "और तुमने कहाँ पाया कि मज़ाक करना अज्ञानता है?!" फिर उन्होंने उसके सामने यह आयत पढ़ी, और उबैद अल्लाह ने उससे मुँह मोड़ लिया, क्योंकि उन्होंने उसे अज्ञानी पाया, जो मज़ाक और उपहास के बीच के अंतर को नहीं जानता था, और एक दूसरे के समान नहीं है।

अल्लाह का फरमान: {उन्होंने कहा, "हमारे लिए अपने रब से प्रार्थना करें कि वह हमारे लिए स्पष्ट कर दे कि वह क्या है।" उसने कहा, "[अल्लाह] कहता है, 'वह एक ऐसी गाय है जो न बूढ़ी है और न ही कुंवारी, बल्कि उनके बीच की मध्यम है,' इसलिए वह करो जो तुम्हें आज्ञा दी गई है।" (६८)}

अल्लाह का फरमान {उन्होंने कहा, "हमारे लिए अपने रब से प्रार्थना करें"} - यह उनकी ओर से हठ और आज्ञाकारिता की कमी थी। यदि वे आज्ञा का पालन करते और किसी भी गाय को ज़ब्ह कर देते, तो उद्देश्य प्राप्त हो जाता। लेकिन उन्होंने अपने ऊपर सख्ती की, तो अल्लाह ने उन पर सख्ती की। यह बात इब्न अब्बास, अबू अल-आलिया और अन्य लोगों ने कही है (३)। इसी तरह की बात हसन अल-बसरी ने पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से रिवायत की है (४)। बनी आमिर की भाषा में "इदउ" है (५), जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (६)। और {युबैयिन} (स्पष्ट कर दे) आज्ञा के उत्तर के रूप में ज़ज़म की स्थिति में है। {मा हिया} (वह क्या है) मुब्तदा (विषय) और ख़बर (विधेय) है। किसी चीज़ की माहियत (प्रकृति) उसकी वास्तविकता और सार है जिस पर वह स्थित है।

अल्लाह का फरमान: {उसने कहा, "[अल्लाह] कहता है, 'वह एक ऐसी गाय है जो न बूढ़ी है और न ही कुंवारी, बल्कि उनके बीच की मध्यम है'"} - इसमें क्रिया के समय से पहले निरसन (नसख़) की अनुमति का प्रमाण है। क्योंकि जब एक गाय का आदेश दिया गया था, तो उसका अर्थ कोई भी गाय था। जब विवरण जोड़ा गया, तो उसने पहले के आदेश को दूसरे से निरस्त कर दिया। जैसे कि अगर यह कहा जाता: "तीस ऊंटों में एक बिन्त मख़ाद (एक साल की ऊंटनी)", फिर उसे बिन्त लबून (दो

साल की ऊंटनी) या हिक्क़ा (तीन साल की ऊंटनी) से निरस्त कर दिया। उसी तरह यहाँ, जब विशेषता निर्दिष्ट की गई, तो वह पिछले आदेश का निरसन बन गया। "अल-फ़ारिज़" का अर्थ है बूढ़ी। कहा जाता है 'फ़रदत तफ़रिदु फ़ुरुदन', यानी वह बूढ़ी हो गई। और पुरानी चीज़ को "फ़ारिज़" कहा जाता है। एक रजज़ कवि ने कहा:

---

(१) (म) में: या ऊन। (२) (द), (ज़) और (म) में: अल-मज़ह (मज़ाक), और स्थापित (ज़) से है। (३) अल-तबरी २/९८ और इब्न अबी हातिम १/२१५ ने इब्न अब्बास के कथन को उद्धृत किया और इब्न कसीर ने आयत ७१ की अपनी तफ़सीर में इसकी सनद को सही ठहराया। अल-तबरी ने २/९९ में अबू अल-आलिया का कथन भी उद्धृत किया है। (४) अल-नुक़त वल-उयून १/१३८। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६२। (६) २/१४४।

۱۸۱ سورة البقرہ: آیت ۶۸

مذاق اڑانا استہزاء نہیں ہے۔ کیا آپ نہیں دیکھتے کہ نبی ﷺ مذاق فرمایا کرتے تھے، اور آپ کے بعد ائمہ بھی۔ ابن خویز منداد کہتے ہیں: ہمیں یہ خبر پہنچی ہے کہ ایک شخص عبید اللہ بن الحسن کے پاس آیا، جبکہ وہ کوفہ کے قاضی تھے، تو عبید اللہ نے اس سے مذاق کیا اور پوچھا: "تمہارا یہ جبہ بھیڑ کی اون کا ہے یا مینڈھے کی اون کا؟" اس شخص نے کہا: "اے قاضی صاحب، جہالت کی باتیں نہ کریں!" عبید اللہ نے اس سے کہا: "تمہیں کہاں سے معلوم ہوا کہ مذاق جہالت ہے؟!" پھر انہوں نے اس پر یہ آیت تلاوت کی، اور عبید اللہ نے اس سے اعراض کیا کیونکہ انہوں نے اسے جاہل پایا جو مذاق اور استہزاء میں فرق نہیں جانتا تھا، حالانکہ ان دونوں میں کوئی تعلق نہیں۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {انہوں نے کہا، "ہمارے لیے اپنے رب سے دعا کریں کہ وہ ہمارے لیے واضح کر دے کہ وہ کیا ہے"۔ اس نے کہا، "[اللہ] فرماتا ہے، 'وہ ایک ایسی گائے ہے جو نہ بوڑھی ہے اور نہ بچی، بلکہ ان دونوں کے درمیان کی ہے'، پس وہی کرو جس کا تمہیں حکم دیا گیا ہے"۔ {(۶۸)}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد {انہوں نے کہا، "ہمارے لیے اپنے رب سے دعا کریں"} - یہ ان کی طرف سے ہٹ دھرمی اور اطاعت کی کمی تھی۔ اگر وہ حکم کی تعمیل کرتے اور کسی بھی گائے کو ذبح کر دیتے تو مقصد حاصل ہو جاتا۔ لیکن انہوں نے خود پر سختی کی، تو اللہ نے ان پر سختی کر دی۔ یہ بات ابن عباس، ابو العالیہ اور دیگر نے کہی ہے (۳)۔ اسی طرح حسن بصری نے نبی ﷺ سے روایت کی ہے (۴)۔ بنی عامر کی لغت میں "ادْعُ" ہے (۵)، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے (۶)۔ اور {يُبَيِّن} حکم کے جواب میں مجزوم ہے۔ {مَا هِيَ} مبتدا اور خبر ہے۔ کسی چیز کی ماہیت سے مراد اس کی وہ حقیقت اور ذات ہے جس پر وہ مبنی ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اس نے کہا، "[اللہ] فرماتا ہے، 'وہ ایک ایسی گائے ہے جو نہ بوڑھی ہے اور نہ بچی، بلکہ ان دونوں کے درمیان کی ہے'"} - اس میں عمل کے وقت سے پہلے نسخ کے جواز کی دلیل ہے۔ کیونکہ جب گائے کا حکم دیا گیا تو اس سے مراد کوئی بھی گائے تھی۔ پھر جب اس کی صفت میں اضافہ کیا گیا، تو اس نے پہلے حکم کو دوسرے سے منسوخ کر دیا، جیسے اگر کہا جائے: "تیس اونٹوں میں ایک سال کی اونٹنی (بنت مخاض)"، پھر اسے دو سالہ (بنت لبون) یا تین سالہ (حقہ) سے منسوخ کر دیا جائے۔ اسی طرح یہاں بھی جب صفت متعین کی گئی تو یہ سابقہ حکم کا نسخ ہو گیا۔ "الفارض" سے مراد بوڑھی ہے۔ کہا جاتا ہے 'فرضت تفرض فروضاً'، یعنی وہ بوڑھی ہو گئی۔ اور پرانی چیز کو بھی "فارض" کہا جاتا ہے۔ راجز (شاعر) نے کہا:

---

(١) (م) میں: یا اون۔ (٢) (د)، (ز) اور (م) میں: المزح، اور ثابت شدہ (ظ) سے ہے۔ (٣) طبری ٢/٩٨ اور ابن ابی حاتم ١/٢١٥ نے ابن عباس کا قول نقل کیا اور ابن کثیر نے آیت ٧١ کی تفسیر میں اس کی سند کو صحیح قرار دیا۔ طبری نے ابو العالیہ کا قول ٢/٩٩ پر بھی نقل کیا ہے۔ (٤) النکت والعیون ١/١٣٨۔ (٥) المحرر الوجیز ١/١٦٢۔ (٦) ٢/١٤٤۔

182 Surah Al-Baqarah: Verse 68

"My temples have turned gray, so my head is white, [like] litters in which there are old men (furuḍ)." (1) Meaning: decrepit.

Another said: "By your life, you have given your neighbor an old one (fāriḍ), driven to him, which cannot stand on its leg." (2) Meaning: old.

Another said: "O Lord, [many] a person with a grudge against me, an old one (fāriḍ), who has cycles like the cycles of a menstruating woman." (3) Meaning: old.

And "Lā fāriḍ" (not old) is in the nominative case as an attribute to the cow. "Wa lā bikr" (nor young) is a conjunction. It was said: "Lā fāriḍ" is the predicate of an omitted subject, i.e., "She is not old", and similarly "Lā dhalūl" (not broken), and likewise "Lā tasqī al-ḥarth" (does not water the tillage), and likewise "Musallamah" (perfect), so know it.

It was said: "Al-fāriḍ" is the one that has given birth many times, so its belly expands because of that; because the meaning...

(1) This rajaz meter is without attribution in Al-Sahah (f-r-d), and Al-Nukat wa al-'Uyun 1/138, and attributed in Al-Lisan (f-r-d) to a man from Fuqaym, who said: "qawm furuḍ" means large people, or it was said: old people, and Al-Saghani attributed it in Al-'Ubab (f-r-d) to Dabb al-Adawi. (2) The verse is in Al-Adhdad p. 376, and Majma' al-Bayan 1/293 without attribution, and Al-Zamakhshari attributed it in Al-Kashshaf 1/287, and Abu Hayyan in Al-Bahr al-Muhit 1/248 to Khafaf bin Nadbah, and Ibn Manzur attributed it in Al-Lisan (f-r-d) to 'Alqamah bin 'Awf, and they have: "your guest" instead of: "your neighbor". And for some: "Al-'Amri" instead of: "By your life". (3) It is in Tafsir al-Tabari 2/83, Al-Nukat wa al-'Uyun 1/139, Al-Muharrar al-Wajiz 1/162, Majma' al-Bayan 1/293, and Tahdhib al-Lughah (f-r-d) without attribution, and Al-Lisan (f-r-d) attributed it to Al-'Ajjaj. And it appeared in Majalis Tha'lab 1/301 with the wording: O Lord, a hating and loathing master, against me, one with grudge and an old (fāriḍ) malice. He has cycles like the cycles of a menstruating woman. In Gharib al-Qur'an by Ibn Qutaybah p. 53 with the wording: O Lord, one with grudge and an old (fāriḍ) malice... In Al-Adhdad p. 28 with the wording: And a hater who bears a grudge... In Al-Hayawan 6/66 with the wording: O Lord, an envious and loathing master, against me, one with grudge and an old (fāriḍ) malice. He has cycles like the cycles of a menstruating woman.

182 सूरह अल-बकरा: आयत 68

"मेरी कनपटियां सफेद हो गई हैं, इसलिए मेरा सिर सफेद है, [जैसे] पालकी जिसमें बूढ़े आदमी (फ़ुरुद) होते हैं।" (1) अर्थ: बहुत बूढ़ा।

एक अन्य ने कहा: "तेरी उम्र की कसम, तूने अपने पड़ोसी को एक बूढ़ा (फ़ारिद) पशु दिया है, जो उसके पास लाया गया है और वह अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो सकता।" (2) अर्थ: पुराना।

और दूसरे ने कहा: "हे मेरे रब, कई मुझसे द्वेष रखने वाले, पुराने (फ़ारिद), जिनके चक्र वैसे ही हैं जैसे मासिक धर्म वाली स्त्री के चक्र होते हैं।" (3) अर्थ: पुराना।

और "ला फ़ारिद" (न बूढ़ी) गाय के विशेषण के तौर पर रफ़'अ (पेश) की हालत में है। "वा ला बिक्र" (न जवान) उसका जोड़ है। कहा गया कि "ला फ़ारिद" एक छिपे हुए मुब्तदा की ख़बर है, यानी "वह बूढ़ी नहीं है", और इसी तरह "ला ज़लूल" (न दबी हुई), और इसी तरह "ला तस्क़िल हर्स" (न खेती को सींचने वाली), और इसी तरह "मुसल्लमह" (सही सलामत), तो इसे जान लो।

कहा गया: "फ़ारिद" वह है जो कई बार गर्भ धारण कर चुकी हो, जिससे उसका पेट बड़ा हो जाता है; क्योंकि इसका अर्थ है...

(1) यह रज़ज सिहाह (फ़-र-द) में बिना किसी नाम के है, और अल-नुक़त वल उयून 1/138 में है, और अल-लिसान (फ़-र-द) में इसे फ़ुक़ैम कबीले के एक आदमी की ओर मंसूब किया गया है, और उसने कहा: 'फ़ुरुद' लोग यानी बड़े डील-डौल वाले, या कहा गया कि बूढ़े, और अल-सग़ानी ने अल-उबाब (फ़-र-द) में इसे द़ब्ब अल-अदवी की ओर मंसूब किया है। (2) यह शेर अल-अज़दाद पृ. 376 में है, और मजमा-उल-बयान 1/293 में बिना किसी नाम के है, और अल-ज़मख़्शारी ने अल-कश्शाफ़ 1/287 में और अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत 1/248 में इसे ख़फ़ाफ़ बिन नदबा की तरफ मंसूब किया है, और इब्न मंज़ूर ने अल-लिसान (फ़-र-द) में इसे अलक़मा बिन औफ़ की तरफ मंसूब किया है, और उनके यहाँ "तेरा पड़ोसी" की जगह "तेरा मेहमान" है। और कुछ के पास "तेरी उम्र की कसम" की जगह "अल-अमरी" है। (3) यह तफ़्सीर अल-तबरी 2/83, अल-नुक़त वल उयून 1/139, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/162, मजमा-उल-बयान 1/293 और तहज़ीब-उल-लुग़ा (फ़-र-द) में बिना किसी नाम के है, और अल-लिसान (फ़-र-द) में इसे अल-अज्जाज की ओर मंसूब किया गया है। और मजालिस सालब 1/301 में इन शब्दों के साथ आया है: ऐ मेरे रब, एक नफरत करने वाला और दुश्मनी रखने वाला मालिक, मुझ पर द्वेष और पुरानी (फ़ारिद) दुश्मनी वाला। उसके चक्र वैसे ही हैं

जैसे मासिक धर्म वाली औरत के चक्र होते हैं। और इब्न क़ुतैबा की ग़रीब अल-क़ुरआन पृ. 53 में इन लफ्ज़ों के साथ: ऐ मेरे रब, द्वेष और पुरानी (फ़ारिद) दुश्मनी वाला... और अल-अज़दाद पृ. 28 में इन लफ्ज़ों के साथ: और एक बगल का द्वेषी साथी... और अल-हयवान 6/66 में इन लफ्ज़ों के साथ: ऐ मेरे रब, एक हसद (जलन) करने वाला और दुश्मनी रखने वाला मालिक, मुझ पर द्वेष और पुरानी (फ़ारिद) दुश्मनी वाला। उसके चक्र वैसे ही हैं जैसे मासिक धर्म वाली औरत के चक्र होते हैं।

۱۸۲ سورة البقره : آیت ۶۸

شَيَّبَ أصداغي فرأسي أبيضُ مَحامِلٌ فيها رجالٌ فُرُضُ (۱) یعنی: بہت بوڑھے۔

ایک اور نے کہا: لعَمْرُكَ قَد أعطيتَ جارَكَ فارِضاً تُساقُ إليه ما تقومُ على رِجْلِ (۲) یعنی: قدیم۔

اور ایک اور نے کہا: يارَبِّ ذِي ضِغْنٍ عليَّ فارِضٍ له قُروءٌ كقُروءِ الحائضِ (۳) یعنی: پرانا۔

اور «لا فارِضٌ» گائے کی صفت ہونے کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے۔ «ولا بِكْرٌ» عطف ہے۔ اور کہا گیا ہے کہ «لا فارضٌ» مبتدائے محذوف کی خبر ہے، یعنی: «لا هي فارضٌ» (وہ بوڑھی نہیں ہے)، اور اسی طرح «لا ذَلُولٌ»، اور اسی طرح «لا تَسْقِي الحَرْثَ»، اور اسی طرح «مُسَلَّمَةٌ» پس اسے جان لو۔

اور کہا گیا: الفارض وہ گائے ہے جو کئی بچے جن چکی ہو، جس کی وجہ سے اس کا پیٹ پھیل جاتا ہے؛ کیونکہ معنی...

(۱) یہ رجز الصحاح (فرض) میں بغیر کسی نسبت کے ہے، اور النکت والعیون ۱۳۸/۱ میں، اور اللسان (فرض) میں اسے فقیم کے ایک شخص کی طرف منسوب کیا گیا ہے، اور اس نے کہا: قوم فُرُض: بڑے ڈیل ڈول والے، اور کہا گیا: بوڑھے، اور الصغانی نے العباب (فرض) میں اسے ضب العدوی کی طرف منسوب کیا۔ (۲) یہ شعر الأضداد ص ۳۷۶ میں ہے، اور مجمع البیان ۲۹۳/۱ میں بغیر کسی نسبت کے، اور الزمخشری نے الکشاف ۲۸۷/۱ میں، اور ابو حیان نے البحر المحیط ۲۴۸/۱ میں اسے خفاف بن ندبہ کی طرف منسوب کیا، اور ابن منظور نے اللسان (فرض) میں اسے علقمہ بن عوف کی طرف منسوب کیا، اور ان کے ہاں: «جارک» کی جگہ «ضيفك» ہے۔ اور ان میں سے بعض کے ہاں: «لعمرك» کی جگہ «العمري» ہے۔ (۳) یہ تفسیر الطبری ۸۳/۲، اور

النکت والعیون ۱۳۹/۱، اور المحرر الوجیز ۱۶۲/۱، اور مجمع البیان ۲۹۳/۱، اور تہذیب اللغۃ (فرض) میں بغیر نسبت کے ہے، اور اللسان (فرض) میں اسے العجاج کی طرف منسوب کیا گیا ہے۔ اور مجالس ثعلب ۳۰۱/۱ میں ان الفاظ کے ساتھ آیا ہے: یارَبِّ مولی شانئ مباغض عليَّ ذي ضغن وضبّ فارض له قروء کقروء الحائض اور ابن قتیبہ کی تفسیر غریب القرآن ص ۵۳ میں ان الفاظ کے ساتھ: یارَبِّ ذي ضغن وضبّ فارض... اور الأضداد ص ۲۸ میں ان الفاظ کے ساتھ: وصاحب مکاشح مباغض... اور الحیوان ۶۶/۶ میں ان الفاظ کے ساتھ: یارَبِّ مولی حاسدٍ مباغض عليَّ ذي ضغن وضبّ فارض له قروء کقروء الحائض

Al-Farid in the language: The spacious. This was said by some later scholars. And Al-Bikr: The young one that has not conceived (1). Al-Qutabi related that it is the one that has given birth (2). And Al-Bikr: The first (3) of children, he said: O firstborn of two firstborns, and O membrane of the liver (dearest one) - You have become to me like the forearm to the upper arm (4). Al-Bikr also in female animals and humans: That which the male has not yet approached; it is with a kasra on the 'ba'. With a fatha (Al-Bakr): The young of camels. And Al-Awan: The middle-aged that has given birth to one or two offspring, and it is the strongest and finest state of cattle (5), unlike horses. A poet said, describing a horse: A horse of solid bay color, neither old nor middle-aged with a mottled color (6). An 'akhsaf' horse: When the piebald (7) color rises from its belly to its side. Mujahid said: Al-Awan among cattle is the one that has given birth time after time, as related by linguists (8). It is said that Al-Awan is the tall palm tree, and they claim it is a Yemeni dialect. And 'Harb Awan' (a second/middle war): When it was preceded by 'Harb Bikr' (a first war). Zuhayr said: When a destructive middle war breaks out, a biting one whose crooked tusks make people shudder (9). Meaning: It is neither young nor old; meaning it is 'Awan', and its plural is 'Un' with a damma on the 'ayn'.

(1) Al-Nukat wal-'Uyun 1/139. (2) Tafsir Gharib al-Qur'an, p. 53. (3) In (Z) and (Zha): The first belly. (4) The verse is by Al-Kumayt, in his Diwan 1/166. His saying: 'Al-Khulb', meaning: the diaphragm between the heart and the black of the belly. It is said of a man whom women love: he is a 'khulb' of women. Al-Jawhari said it in Al-Sihah. (5) Al-Nukat wal-'Uyun 1/139. (6) The verse is by Umayya ibn Abi al-Salt, in his Diwan p. 132, and the wording of its end there is: 'nor with a mottled [khasif] one of marked color'. (7) Meaning: Black and white. Al-Sihah (Balaq). (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/162, and Al-Tabari related Mujahid's saying 2/89. (9) Diwan p. 306, with Al-Shantamari's commentary. He said in the explanation: 'War has conceived', meaning: it has intensified and become strong. Al-Awan: War that is not the first, fought time after time. 'Tuhirru al-nas': meaning it makes them loathe it. 'Al-Udl': the grim and crooked, used as a metaphor for the strength and age of war because a camel's tusk only becomes crooked when it is old.

सूरह अल-बकरा: आयत 68 | पृष्ठ 183

भाषा में 'अल-फ़ारिज़': विशाल। यह कुछ बाद के विद्वानों ने कहा है। और 'अल-बिक्र': वह छोटी जो गर्भवती न हुई हो (1)। अल-कुताबी ने बताया कि यह वह है जिसने जन्म दिया हो (2)। और 'अल-बिक्र': बच्चों में से पहला (3), उसने कहा: हे दो पहलौठियों के पहलौठे, और हे जिगर की झिल्ली (अत्यंत प्रिय) - तुम मेरे लिए ऐसे हो गए जैसे हाथ से बाजू (4)। 'अल-बिक्र' मादा पशुओं और मनुष्यों में भी: जिसके पास अभी नर न गया हो; यह 'बा' अक्षर पर कसरा के साथ है। और फथा के साथ (अल-बक्र): ऊंटों का जवान बच्चा। और 'अल-अवान': मध्यम आयु की वह जो एक या दो बार जन्म दे चुकी हो, और यह मवेशियों की सबसे मजबूत और बेहतरीन स्थिति होती है (5), घोड़ों के विपरीत। एक कवि ने घोड़े का वर्णन करते हुए कहा: एक ठोस गहरे भूरे रंग का घोड़ा, जो न बूढ़ा है और न ही मध्यम आयु का जिसका रंग चितकबरा हो (6)। 'अख्सफ़' घोड़ा: जब चितकबरा (7) रंग उसके पेट से उसकी बगल तक बढ़ जाए। मुजाहिद ने कहा: गायों में 'अवान' वह है जिसने बार-बार जन्म दिया हो, और भाषाविदों ने इसे उद्धृत किया है (8)। कहा जाता है कि 'अवान' लंबा खजूर का पेड़ है, और उनका दावा है कि यह यमनी भाषा का शब्द है। और 'हर्ब अवान' (दूसरी/मध्य युद्ध): जब उससे पहले 'हर्ब बिक्र' (पहला युद्ध) हो चुका हो। जुहैर ने कहा: जब एक विनाशकारी मध्य युद्ध छिड़ जाए, एक काटने वाला जिसकी टेढ़ी दाढ़ें लोगों को भयभीत कर दें (9)। अर्थात: न वह छोटी है और न ही बूढ़ी; अर्थात वह 'अवान' है, और इसका बहुवचन 'ऊन' है 'ऐन' पर दम्मा के साथ।

(1) अल-नुक़्त वल-'उयून 1/139। (2) तफ़सीर ग़रीब अल-क़ुरआन, पृ. 53। (3) (ज़) और (ज़ा) में: पहला पेट। (4) यह शेर अल-कुमैत का है, उनके दीवान 1/166 में। उनका कहना: 'अल-ख़ुल्ब', अर्थात: हृदय और पेट के बीच का पर्दा। उस व्यक्ति के लिए कहा जाता है जिसे स्त्रियाँ प्रेम करती हैं: वह स्त्रियों का 'ख़ुल्ब' है। अल-जौहरी ने अल-सिहाह में यह कहा है। (5) अल-नुक़्त वल-'उयून 1/139। (6) यह शेर उमय्या इब्न अबी अल-सल्त का है, उनके दीवान पृ. 132 में। (7) अर्थात: काला और सफेद। अल-सिहाह (बलक़)। (8) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/162, और अल-तबरी ने मुजाहिद का कथन 2/89 उद्धृत किया है। (9) दीवान पृ. 306, अल-शंतमरी की व्याख्या के साथ। उन्होंने शेर की व्याख्या में कहा: 'युद्ध गर्भवती हुआ', अर्थात: वह तीव्र और शक्तिशाली हो गया। अल-अवान: वह युद्ध जो पहला न हो, बार-बार लड़ा गया हो। 'तुहिर्रुल नास': अर्थात वह उन्हें घृणा कराता है। 'अल-उदल': विकृत और टेढ़ा, युद्ध की शक्ति और पुरानेपन के उदाहरण के रूप में प्रयोग किया गया है क्योंकि ऊंट की दाढ़ पुरानी होने पर ही टेढ़ी होती है।

سورہ البقرہ: آیت 68 | صفحہ 183

لغت میں 'الفارض' کا مطلب ہے: کشادہ۔ یہ بعض متاخرین نے کہا ہے۔ اور 'البکر': وہ چھوٹی ہے جو حاملہ نہ ہوئی ہو (1)۔ اور القتبی نے ذکر کیا ہے کہ یہ وہ ہے جس نے جنم دیا ہو (2)۔ اور 'البکر': اولاد میں سے پہلا (3)، شاعر نے کہا: اے دو پہلوٹیوں کے پہلوٹے، اور اے جگر کے پردے (عزیز از جان) - تم میرے لیے ایسے ہو گئے جیسے بازو سے ہاتھ (4)۔ اور 'البکر' جانوروں کی مادہ اور انسانوں میں بھی اس کے لیے بولا جاتا ہے جس کے پاس ابھی نر نہ گیا ہو، یہ باء کے زیر کے ساتھ ہے۔ اور باء کے زبر کے ساتھ (البکر): اونٹوں کا جوان بچہ۔ اور 'العوان': درمیانی عمر کی وہ گائے ہے جو ایک یا دو بار جنم دے چکی ہو، اور یہ گائے کی بہترین اور طاقتور ترین حالت ہوتی ہے (5)، گھوڑوں کے برعکس۔ شاعر نے ایک گھوڑے کی صفت بیان کرتے ہوئے کہا: وہ گہرے بھورے رنگ کا ہے، نہ بوڑھا ہے اور نہ درمیانی عمر کا جس کا رنگ بدلا ہوا ہو (6)۔ 'فرس أخصف': جب اس کا چتکبرا (7) رنگ پیٹ سے پہلو تک پہنچ جائے۔ مجاہد نے کہا: گائے میں 'عوان' وہ ہے جو بار بار جنم دے چکی ہو، اور اسے اہل لغت نے بھی نقل کیا ہے (8)۔ اور کہا جاتا ہے کہ 'العوان' لمبا کھجور کا درخت ہے، اور ان کے گمان کے مطابق یہ یمنی زبان کا لفظ ہے۔ اور 'حرب عوان' (درمیانی جنگ): جب اس سے پہلے پہلی جنگ (حرب بکر) ہو چکی ہو۔ زہیر نے کہا: جب ایک سخت درمیانی جنگ چھڑ جائے، جو لوگوں کو کچل دینے والی ہو اور اس کے ٹیڑھے دانت ظاہر ہو جائیں (9)۔ یعنی: نہ وہ چھوٹی ہے اور نہ بوڑھی، یعنی وہ 'عوان' ہے، اور اس کی جمع 'عُون' ہے عین کے پیش کے ساتھ۔

(1) النکت والعیون 1/139۔ (2) تفسیر غریب القرآن، ص 53۔ (3) نسخہ (ز) اور (ظ) میں: پہلا پیٹ۔ (4) یہ شعر کمیت کا ہے، ان کے دیوان 1/166 میں۔ ان کا قول: 'الخلب'، یعنی: وہ پردہ جو

دل اور پیٹ کی سیاہی کے درمیان ہوتا ہے۔ اس شخص کو کہا جاتا ہے جسے عورتیں پسند کرتی ہیں: وہ عورتوں کا خلب ہے۔ جوہری نے اسے 'الصحاح' میں کہا ہے۔ (5) النکت والعیون 1/139۔ (6) یہ شعر امیہ بن ابی الصلت کا ہے، ان کے دیوان ص 132 میں۔ (7) یعنی: سیاہی اور سفیدی۔ الصحاح (بلق)۔ (8) المحرر الوجیز 1/162، اور طبری نے مجاہد کا قول 2/89 نقل کیا ہے۔ (9) دیوان ص 306، شنت مری کی شرح کے ساتھ انہوں نے شعر کی شرح میں کہا: 'لقحت حرب'، یعنی جنگ چھڑ گئی اور شدید ہو گئی۔ 'العوان': وہ جنگ جو پہلی نہ ہو، بلکہ بار بار لڑی گئی ہو۔ 'تہر الناس': یعنی انہیں بیزار کرتی ہے۔ 'العضل': ٹیڑھے اور بدشکل، اسے جنگ کی شدت اور پرانے پن کی مثال کے طور پر پیش کیا گیا کیونکہ اونٹ کی داڑھ بوڑھا ہونے پر ہی ٹیڑھی ہوتی ہے۔

١٨٤ Surah Al-Baqarah: Verse 69

...and with a sukun on the waw. It was heard as " 'uun" with a damma on the waw, like "rusul" and "rusul" (1). And it has preceded (2). Al-Farra' (3) reported from 'awan: 'awwanat ta'winan (it became middle-aged).

The Almighty's saying: {So do what you are commanded}: A renewal of the command, an emphasis, and a warning against being obstinate, so they should not abandon it (4).

This indicates that the implication of the command is obligation, as the jurists say, and it is the correct view as mentioned in the principles of jurisprudence (Usul al-Fiqh). It also indicates that the command is immediate, which is the opinion of most jurists as well. Evidence for the correctness of this is that the Almighty rebuked them when they did not hasten to do what they were commanded, saying: {So they slaughtered her, though they were near to not doing it}.

It was said: No, rather it is for delay (tarākhi), because He did not reprimand them for the delay and repeated questioning in the discourse. This was said by Ibn Khuwayz Mindad.

The Almighty's saying: {They said, "Call upon your Lord for us to make plain to us what is her color." He said, "He says, 'It is a yellow cow, bright in color - pleasing to the observers.'"}.

The Almighty's saying: {They said, "Call upon your Lord for us to make plain to us what is her color."} "Mā" is an interrogative particle acting as the subject (mubtada'), and "lawnuhā" (her color) is the predicate (khabar). It is permissible for "lawnuhā" to be in the accusative case (nasb) by "yubayyin", in which case "mā" is redundant (5). Color is the singular of colors, and it is a form such as blackness, whiteness, and redness. Color (lawn) also means type/sort. So-and-so is "mutalawwin" (changeable) if he does not remain firm on one character and one state. He said (6):

Every day you change (7), other than this is more beautiful for you.

"Lawn al-busr talwinan": when signs of ripening begin to appear in them. "Al-Lawn": "Ad-Daqal", which is a type of [date palm]...

---

(1) His saying: "and rusul" is not in (m). (2) 180/2. (3) Ma'ani al-Qur'an 1/45. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/163. (5) I'rab al-Qur'an 1/235. (6) We did not find its speaker; Ibn

Qudamah mentioned it in Al-Tawwabin p. 254, and Al-Samin in Al-Durr al-Masun 1/424. (7) In the margin of (z): every time you change. (Manuscript version).

पृष्ठ 184 सूरा अल-बकरा: आयत 69

...और 'वाव' पर सुकून के साथ। इसे 'वाव' पर दम्मा के साथ "ऊन" सुना गया है, जैसे "रूसुल" और "रूसुल" (1)। और यह पहले आ चुका है (2)। अल-फर्रा (3) ने 'अवान' (मध्यम आयु की) से उद्धृत किया है: 'अव्वनत तअवीनन'।

अल्लाह तआला का कथन: {तो वह करो जिसका तुम्हें आदेश दिया गया है}: यह आदेश का नवीकरण है, और ज़ोर देना और हठधर्मिता छोड़ने की चेतावनी है, तो उन्होंने इसे नहीं छोड़ा (4)।

यह इस बात का संकेत है कि आदेश का अर्थ अनिवार्यता (वजुब) है, जैसा कि फकीह (धर्मशास्त्री) कहते हैं, और यही सही दृष्टिकोण है जैसा कि उसूल अल-फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र के सिद्धांत) में उल्लेखित है। यह इस बात का भी संकेत है कि आदेश का पालन तुरंत होना चाहिए, जो कि अधिकांश फकीहों का मत भी है। इसकी सत्यता का प्रमाण यह है कि अल्लाह तआला ने उन्हें तब कमतर आंका (डांटा) जब उन्होंने आदेश का पालन करने में जल्दबाजी नहीं की, तो कहा: {तो उन्होंने उसे ज़बह कर दिया, जबकि वे ऐसा करने के करीब नहीं थे (अर्थात हिचकिचा रहे थे)}।

कहा गया है: नहीं, बल्कि यह विलंब (तराखी) के लिए है, क्योंकि उन्होंने चर्चा में देरी और बार-बार सवाल करने पर उन्हें नहीं झिड़का। यह इब्न खुवैज़ मिंदाद ने कहा है।

अल्लाह तआला का कथन: {उन्होंने कहा, "अपने रब से हमारे लिए प्रार्थना करें कि वह हमें स्पष्ट कर दे कि उसका रंग क्या है।" उसने कहा, "वह कहता है, 'वह एक पीली गाय है, जिसका रंग गहरा है - देखने वालों को प्रसन्न करने वाली है।'" }।

अल्लाह तआला का कथन: {उन्होंने कहा, "अपने रब से हमारे लिए प्रार्थना करें कि वह हमें स्पष्ट कर दे कि उसका रंग क्या है"} यहाँ "मा" प्रश्नवाचक संज्ञा (मुब्तदा) है, और "लौनुहा" (उसका रंग) समाचार (खबर) है। "लौनुहा" को "युबय्यिन" द्वारा नसब (कर्म कारक) में रखना भी जायज़ है, उस स्थिति में "मा" अतिरिक्त (ज़ायदा) होगा (5)। 'लौन' (रंग) रंगों का एकवचन है, और यह कालापन, सफेदी और लालिमा जैसी एक स्थिति है। 'लौन' का अर्थ 'प्रकार' भी है। फलां व्यक्ति 'मुतलव्विन' (बदलने वाला) है: यदि वह एक ही स्वभाव और एक ही स्थिति पर कायम नहीं रहता है। उसने कहा (6):

हर दिन तुम बदलते हो (7), इसके अलावा कुछ और तुम्हारे लिए अधिक सुंदर है।

"लौन अल-बुस्र तलवीनन": जब अधपके खजूरों में पकने के संकेत दिखाई देने लगें। और 'लौन': 'दकल' है, जो एक प्रकार का [खजूर का पेड़] है...

---

(1) उसका कहना: "और रसेल", (एम) में नहीं है। (2) 180/2. (3) मा'नी अल-कुरान 1/45. (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/163. (5) इ'राब अल-कुरान 1/235. (6) हमें इसके कहने वाले का पता नहीं चला; इब्न कुदामा ने इसे अल-तव्वाबीन पृष्ठ 254 में और अल-समीन ने अल-दुर्र अल-मसून 1/424 में उद्धृत किया है। (7) (ज़ेड) के हाशिये में: हर समय तुम बदलते हो। (पांडुलिपि)।

١٨٤ سورہ البقرہ: آیت 69

...اور واؤ کے سکون کے ساتھ اور "عُون" واؤ کے ضمہ کے ساتھ بھی سنا گیا ہے، جیسے "رُسُل" اور "رُسُل"(1)۔ اور یہ پہلے گزر چکا ہے(2)۔ الفراء (3) نے 'العوان' سے نقل کیا ہے: 'عَوَّنَتْ تَعْوِيناً' (ادھیڑ عمر ہو گئی)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {پس وہ کرو جس کا تمہیں حکم دیا گیا ہے}: یہ حکم کی تجدید ہے، اور تاکید ہے اور ہٹ دھرمی چھوڑنے پر تنبیہ ہے، پس انہوں نے اسے نہ چھوڑا (4)۔

یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ امر کا تقاضا وجوب ہے جیسا کہ فقہاء کہتے ہیں، اور اصولِ فقہ میں جو ذکر کیا گیا ہے اس کے مطابق یہی صحیح ہے، اور اس بات پر بھی کہ امر فوریت (فوری تعمیل) کے لیے ہے، اور یہی اکثر فقہاء کا مذہب بھی ہے۔ اس کی صحت پر یہ بات دلالت کرتی ہے کہ اللہ تعالیٰ نے انہیں اس وقت قصور وار ٹھہرایا جب انہوں نے حکم کی تعمیل میں جلدی نہیں کی، چنانچہ فرمایا: {پس انہوں نے اسے ذبح کر دیا جبکہ وہ کرتے معلوم نہ ہوتے تھے}۔

اور کہا گیا ہے: نہیں، بلکہ یہ تاخیر (تراخی) کے لیے ہے، کیونکہ اللہ نے ان پر تاخیر اور بار بار سوال کرنے پر ملامت نہیں کی۔ یہ ابن خُوَیز مَنداد نے کہا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وہ کہنے لگے اپنے رب سے ہمارے لیے دعا کیجیے کہ وہ ہمیں واضح طور پر بتا دے کہ اس کا رنگ کیسا ہو، اس نے کہا وہ فرماتا ہے کہ وہ ایسی زرد گائے ہو جس کا رنگ خوب گہرا ہو، دیکھنے والوں کو بھلی لگتی ہو}۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وہ کہنے لگے اپنے رب سے ہمارے لیے دعا کیجیے کہ وہ ہمیں واضح طور پر بتا دے کہ اس کا رنگ کیسا ہو} "ما" استفہامیہ مبتدا ہے، اور "لونها" اس کی خبر ہے۔ اور

"يُبَيِّن" کے ذریعے "لونها" کو نصب دینا بھی جائز ہے، اور اس صورت میں "ما" زائدہ ہو گا (5)۔ "اللون" رنگوں کا واحد ہے، اور یہ ایک کیفیت ہے جیسے سیاہی، سفیدی اور سرخی| اور اللون کا معنی 'نوع' (قسم) بھی ہے۔ فلاں "متلون" ہے: جب وہ ایک ہی اخلاق اور ایک ہی حالت پر ثابت قدم نہ رہے۔ اس نے کہا (6):

ہر روز تم اپنا رنگ بدلتے ہو (7)، اس کے سوا کچھ اور تمہارے لیے زیادہ خوبصورت ہوتا۔

"ولون البسر تلويناً": جب کچی کھجوروں میں پکنے کے آثار ظاہر ہونے لگیں۔ اور اللون: "الدقل" ہے، جو کہ ایک قسم کی [کھجور] ہے...

---

(1) اس کا قول: "اور رسل"، (م) میں نہیں ہے۔ (2) 180/2۔ (3) معانی القرآن 45/1۔ (4) المحرر الوجیز 163/1۔ (5) إعراب القرآن 235/1۔ (6) ہمیں اس کے کہنے والے کا علم نہیں ہو سکا؛ ابن قدامہ نے اسے 'التوابین' صفحہ 254 میں اور السمین نے 'الدر المصون' 424/1 میں نقل کیا ہے۔ (7) (ز) کے حاشیے میں ہے: ہر وقت تم بدلتے ہو۔ (نسخہ)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 69 185

[Relating to] the palm trees. Al-Akhfash said(1): It is a collective noun, its singular being: "Linah". Regarding His saying: {yellow (safraa')}: The majority of commentators hold that it is yellow in color, of the well-known yellowness. Makki reported from some of them: even the horns and hooves. Al-Hasan and Ibn Jubayr said: its horns and hooves only were yellow(2). It is also narrated from Al-Hasan: "safraa'" means black(3), a poet said(4): "Those are my horses from him, and those are my mounts, they are yellow (black) whose offspring are like raisins." I say: The first [view] is more correct, because it is the apparent [meaning], and this [latter] is rare and used metaphorically only for camels(5). Allah Almighty said: {as if they were yellow camels (jimālatun ṣufrun)} [Al-Mursalat: 33], and that is because the black ones among camels have a yellow-ish blackness. If He had intended blackness, He would not have emphasized it with "faqqu' " (bright/intense), for that is an adjective specific to yellowness; blackness is not described as such. The Arabs say: "pitch black" (aswad halik, halakook, hulkanook)(7), "dark black" (dujuji), "intense black" (ghirbeeb). And "deep red" (ahmar qani'), "pure white" (abyad nasi', lahaq, lahaaq, yaqaq)(8), "lush green" (akhdar nadir), and "bright yellow" (asfar faqi'). This is what the transmitters of the language have stipulated from the Arabs. Al-Kisa'i said: It is said: its color "faqa'a yafqa'u" and "yafuqu'u"(9) "fuqu'an": when its yellowness is pure. "Al-Ifqa'" means bad state. "Fawaqi' ad-dahr" are its calamities. And he "faqa'a" with his fingers: if they made a sound(10), and from this is the hadith of Ibn Abbas: he forbade cracking knuckles in prayer(11), which is "al-farqa'ah," pressing the fingers until they snap. The word "safraa'" did not decline in...

(1) Ma'ani al-Qur'an 2/706, and the author quoted him through al-Jawhari in al-Sihah (article: l-w-n). (2) Reported by al-Tabari in his Tafsir 2/93-94, and Ibn Abi Hatim 1/220. (3) Reported by Sa'id in his Sunan (Tafsir) (192), al-Tabari 2/93, and Ibn Abi Hatim 1/220. (4) He is al-A'sha, and the verse is in his Diwan p. 385. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/163. (6) Thus it appeared in the manuscript copies, and it is the reading of Ibn Kathir, al-Basri, al-Shami, and Shu'bah. See al-Sab'ah p. 666, and al-Taysir p. 218. (7) In al-Qamus (h-l-k): halkuk, like 'usfur and qurbus. (8) In al-Qamus (l-h-q) and (y-q-q): "abyad lahaq", like jabal, katif, sahab, kitab; and "abyad yaqaq", with harakat and like katif: intensely white. (9) In (z): "tafaqqa'a", not in (m), and what is established is from (d) and (z). (10) Al-Sihah (f-q-'), and Mujmal al-Lughah 3/704. (11) Sahnun narrated in al-Mudawwanah 1/108 from Shu'bah, the freedman of Ibn Abbas, who said: I prayed

beside Ibn Abbas, and I cracked my knuckles. He said: when he finished praying, he said: May you have no mother! You crack your knuckles while you are in prayer?!

सूरा अल-बक़रह: आयत 69 185

खजूर के पेड़। अल-अख़फ़श ने कहा(1): यह एक सामूहिक संज्ञा है, इसका एकवचन "लीना" है। उसका कथन: {पीली (सफ़रा')}: अधिकांश टीकाकारों का मानना है कि यह पीले रंग की है, जो प्रसिद्ध पीलापन है। मक्की ने उनमें से कुछ से उद्धृत किया: सींग और खुर तक। अल-हसन और इब्न जुबैर ने कहा: केवल उसके सींग और खुर पीले थे(2)। अल-हसन से यह भी वर्णित है: "सफ़रा'" का अर्थ काला है(3), कवि ने कहा(4): "वे उससे मेरे घोड़े हैं, और वे मेरी सवारियां हैं, वे पीली (काली) हैं जिनकी संतान किशमिश की तरह हैं।" मैं कहता हूँ: पहला [विचार] अधिक सही है, क्योंकि यह स्पष्ट [अर्थ] है, और यह [बाद वाला] दुर्लभ है और केवल ऊंटों के लिए लाक्षणिक रूप से उपयोग किया जाता है(5)। अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {जैसे कि वे पीले ऊंट हों (जिमालतुन सुफ़्रुन)} [अल-मुर्सलात: 33], और ऐसा इसलिए है क्योंकि ऊंटों में काले वालों में पीलापन लिए हुए कालापन होता है। यदि उसका इरादा कालेपन से होता, तो वह इसे "फ़क़ू " (चमकदार/तीव्र) के साथ जोर नहीं देता, क्योंकि वह पीलेपन के लिए विशिष्ट एक विशेषण है; कालेपन का वर्णन इस तरह नहीं किया जाता है। अरब कहते हैं: "कोयले जैसा काला" (असवद हालिक, हलकूक, हुलकूक)(7), "गहरा काला" (दुजूजी), "अत्यधिक काला" (ग़िरबीब)। और "गहरा लाल" (अह़मर क़ानी'), "शुद्ध सफेद" (अब्यद़ नासि', लहक़, लहाक़, यक़क़)(8), "लहराता हरा" (अख़द़र नाद़िर), और "चमकीला पीला" (असफ़र फ़ाक़ि')। भाषा के संकलकों ने अरबों से यही निर्धारित किया है। अल-किसाई ने कहा: कहा जाता है: इसका रंग "फ़क़आ' यफ़क़आ'" और "यफ़कुउ"(9) "फ़ुकूअन": जब इसका पीलापन शुद्ध हो। "अल-इफ़क़ा'" का अर्थ है बुरी स्थिति। "फ़वाक़ि' अद-दह्र" उसके संकट हैं। और उसने अपनी उंगलियों से "फ़क़आ' " किया: यदि उन्होंने आवाज़ की(10), और इसी से इब्न अब्बास की हदीस है: उन्होंने नमाज़ में उंगलियां चटकाने से मना किया(11), जो कि "अल-फ़रक़आ'" है, उंगलियों को दबाना जब तक कि वे चटक न जाएं। शब्द "सफ़रा'" ... में अपरिवर्तनीय है।

(1) मआनी अल-कुरान 2/706, और लेखक ने अल-जौहरी के माध्यम से अल-सिहाह (लेख: ल-व-न) में इसे उद्धृत किया। (2) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/93-94 में, और इब्न अबी हातिम ने 1/220 में इसे उद्धृत किया। (3) सईद ने अपनी सुनन (तफ़सीर) (192), अल-तबरी 2/93 और इब्न अबी हातिम 1/220 में इसे उद्धृत किया। (4) वह अल-अशा है, और पद उसके दीवान पृष्ठ 385 में है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/163. (6) हस्तलिखित प्रतियों में ऐसा ही आया है, और यह इब्न कसीर, अल-बसरी, अल-शामी और शुबा का पाठ है। देखें अल-सबह पृष्ठ 666, और अल-तयसीर पृष्ठ 218.

(7) अल-कामूस (ह-ल-क) में: हलकूक, उस्फूर और क़ुरबूस की तरह। (8) अल-कामूस (ल-ह-क) और (य-क़-क़) में: "अब्यद़ लहक़", जबल, कतिफ़, सहाब, किताब की तरह; और "अब्यद़ यक़क़", हरकात के साथ और कतिफ़ की तरह: अत्यधिक सफेद। (9) (ज़) में: "तफ़क़आ'", (म) में नहीं, और जो स्थापित है वह (द) और (ज़) से है। (10) अल-सिहाह (फ़-क़-'), और मुजमल अल-लुग़ा 3/704. (11) सहनून ने अल-मुदव्वना 1/108 में इब्न अब्बास के आज़ाद किए हुए गुलाम शुबा से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: मैंने इब्न अब्बास के पास नमाज़ पढ़ी और अपनी उंगलियां चटकाईं। उन्होंने कहा: जब उन्होंने नमाज़ पूरी की तो कहा: तुम्हारी माँ न रहे! तुम नमाज़ में उंगलियां चटकाते हो?!

سورہ البقرہ: آیت 69 185

کھجور کے درخت۔ الاخفش نے کہا(1): یہ ایک اسم جمع ہے، اس کا واحد "لینہ" ہے۔ ارشادِ باری تعالیٰ ہے: {زرد (صفراء)}: مفسرین کی اکثریت کا خیال ہے کہ اس کا رنگ زرد ہے، جو کہ معروف زردی ہے۔ مکی نے بعض سے نقل کیا: یہاں تک کہ سینگ اور کھر بھی۔ حسن اور ابن جبیر نے کہا: صرف اس کے سینگ اور کھر زرد تھے(2)۔ حسن سے یہ بھی مروی ہے: "صفراء" کے معنی سیاہ ہیں(3)، شاعر نے کہا(4): "وہ اس کی طرف سے میرے گھوڑے ہیں، اور وہ میری سواریاں ہیں، وہ زرد (سیاہ) ہیں جن کے بچے کشمش کی طرح ہیں۔" میں کہتا ہوں: پہلی بات زیادہ صحیح ہے، کیونکہ یہی ظاہر [معنی] ہے، اور یہ [دوسری بات] شاذ ہے اور اونٹوں کے لیے صرف مجازاً استعمال ہوتی ہے(5)۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {گویا وہ زرد اونٹ ہوں (جمالت صُفر)} [المرسلات: 33]، اور اس کی وجہ یہ ہے کہ اونٹوں میں سے سیاہ اونٹوں کی سیاہی میں زردی ہوتی ہے۔ اگر سیاہی مراد ہوتی تو اللہ تعالیٰ "فقوع" (شدید/چمکیلا) کے ساتھ اس کی تاکید نہ فرماتا، کیونکہ یہ صفت زردی کے لیے خاص ہے؛ سیاہی کو اس طرح بیان نہیں کیا جاتا۔ عرب کہتے ہیں: "انتہائی سیاہ" (اسود حالک، حلکوک، حلکوک)(7)، "گہرا سیاہ" (دجوجی)، "بہت سیاہ" (غربیب)۔ اور "گہرا سرخ" (احمر قانئ)، "نہایت سفید" (ابیض ناصع، لہق، لھاق، یقق)(8)، "تر و تازہ سبز" (اخضر ناضر)، اور "چمکیلا زرد" (اصفر فاقع)۔ لغت کے ماہرین نے عربوں سے اسی طرح نقل کیا ہے۔ کسائی نے کہا: کہا جاتا ہے: اس کا رنگ "فقع یفقع" اور "یفقع"(9) "ففوعاً": جب اس کی زردی خالص ہو۔ اور "الافقاع": بری حالت۔ اور "فواقع الدہر": اس کی مصیبتیں۔ اور اس نے اپنی انگلیوں سے "فقع" کیا: یعنی آواز نکالی(10)، اور اسی سے ابن عباس کی حدیث ہے:

انہوں نے نماز میں انگلیاں چٹخانے سے منع فرمایا(11)، جو کہ "الفرقعۃ" ہے، یعنی انگلیوں کو دبانا یہاں تک کہ وہ آواز نکالیں۔ لفظ "صفراء" غیر منصرف ہے...

(1) معانی القرآن 2/706، اور مصنف نے اسے الجوہری کے واسطے سے الصحاح (مادہ: ل-و-ن) میں نقل کیا ہے۔ (2) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/93-94، اور ابن ابی حاتم نے 1/220 میں روایت کیا ہے۔ (3) اسے سعید نے اپنی سنن (التفسیر) (192)، طبری 2/93 اور ابن ابی حاتم 1/220 میں روایت کیا ہے۔ (4) وہ الاعشی ہے، اور یہ شعر اس کے دیوان ص 385 میں ہے۔ (5) المحرر الوجیز 1/163. (6) قلمی نسخوں میں اسی طرح ہے، اور یہ ابن کثیر، بصری، شامی اور شعبہ کی قراءت ہے۔ دیکھئے السبعۃ ص 666، اور التیسیر ص 218. (7) القاموس (ح-ل-ک) میں ہے: حلکوک، عصفور اور قربوس کے وزن پر۔ (8) القاموس (ل-ہ-ق) اور (ی-ق-ق) میں ہے: "ابیض لہق "، جبل، کتیف، سحاب اور کتاب کے وزن پر؛ اور "ابیض یقق"، متحرک اور کتیف کی طرح: نہایت سفید۔ (9) (ظ) میں: "تفقَّع"، (م) میں نہیں ہے، اور (د) اور (ز) سے ثابت ہے۔ (10) الصحاح (ف-ق-ع)، اور مجمل اللغۃ 3/704. (11) سحنون نے المدونۃ 1/108 میں ابن عباس کے غلام شعبہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: میں نے ابن عباس کے پہلو میں نماز پڑھی، پس میں نے اپنی انگلیاں چٹخائیں، تو انہوں نے نماز کے بعد کہا: تیری ماں نہ رہے! تو نماز میں انگلیاں چٹخاتا ہے؟!

186 Surah Al-Baqarah: Verse 70

...[neither] definite nor indefinite, because it contains the 'alif' of feminization, and it is inseparable, thus differing from the 'ha', because what contains the 'ha' is declinable when indefinite (1), such as Fatima and Aisha. His (The Almighty's) saying: {brightly colored}: He means its color is pure, with no color in it other than the color of its skin. {pleasing to those who see it} Wahb said: As if the rays of the sun come out from its skin (2), and for this reason, Ibn Abbas said: Yellowness pleases the soul, and he encouraged wearing yellow sandals (3), as reported from him by An-Naqqash. Ali bin Abi Talib (may Allah be pleased with him) said: Whoever wears sandals made of yellow leather, his worries will decrease, because Allah Almighty says: {a yellow cow, bright in its color, pleasing to those who see it}, as reported from him by Al-Thalabi (4). Ibn Al-Zubayr and Muhammad bin Abi Kathir forbade wearing black sandals, because they cause worry. The meaning of "pleasing" is "admired". Abu Al-Aliyah said: It means in its characteristic and appearance, so it has two descriptions (5), and Allah knows best. His (The Almighty's) saying: {They said, "Call upon your Lord for us to make plain to us what it is. Indeed, cows are all alike to us; and indeed, we, if Allah wills, will be guided." (70)} His (The Almighty's) saying: {Indeed, cows are all alike to us} They asked a fourth question, and did not comply with the command after the clarification. He used the masculine form for 'Al-Baqar' (cows) because it carries the meaning of a plural (collective noun), and that is why He said: "Indeed, the cows have become alike to us" using the masculine form.

Footnotes: = And Ibn Majah (965) and Al-Bazzar (854) narrated from Ali in a marfu' (attributed to the Prophet) form: Do not crack your fingers while you are in prayer. Al-Munawi in Fayd al-Qadir 6/414 quoted Al-Iraqi and Maghlatai as weakening its chain of transmission. And Ahmad (15621), Al-Tabarani (420), Al-Bayhaqi 2/289, and Ibn Al-Jawzi in Al-Tahqiq (207) narrated from Mu'adh bin Anas in a marfu' form: Indeed, the one who laughs in prayer, the one who looks around, and the one who cracks his fingers are in the same position. According to Al-Bayhaqi and Ibn Al-Jawzi: "and the one who snaps". Al-Haythami said in Majma' al-Zawa'id 2/79: It contains Ibn Lahi'ah, and there is well-known talk about him, from Ziyad bin Fa'id who is weak. (1) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/235. (2) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/96, and Ibn Abi Hatim 1/222. (3) Narrated by Al-Uqayli in Al-Du'afa' 1/235, Al-Tabarani (10602), Al-Khatib in Tarikh Baghdad 5/25, and Al-Jami' li-Akhlaq al-Rawi (922). Abu Hatim said as in Al-Ilal 2/319: This is a fabricated and lie-filled hadith. (4) 'Ara'is al-Majalis p. 235, and

the weakness in it is apparent. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/163, and in it: Yahya bin Abi Kathir instead of Muhammad.

१८६ सूरह अल-बकरा: आयत ७०

...[यह न तो] निश्चित है और न ही अनिश्चित, क्योंकि इसमें स्त्रीलिंग का 'अलिफ' है, और यह अविभाज्य है, इस प्रकार 'हा' से भिन्न है, क्योंकि जिसमें 'हा' होता है वह अनिश्चित होने पर विकारी होता है (१), जैसे फातिमा और आयशा। अल्लाह तआला का कथन: {उसका रंग गहरा है}: इसका अर्थ है कि उसका रंग शुद्ध है, उसकी त्वचा के रंग के अलावा उसमें कोई और रंग नहीं है। {देखने वालों को प्रसन्न करने वाली} वहाब ने कहा: मानो उसकी त्वचा से सूरज की किरणें निकलती हों (२), और इसी कारण इब्न अब्बास ने कहा: पीलापन आत्मा को प्रसन्न करता है, और उन्होंने पीले सैंडल पहनने के लिए प्रोत्साहित किया (३), जैसा कि अन-नक्कास ने उनके बारे में बताया है। अली बिन अबी तालिब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने कहा: जो कोई पीले चमड़े के सैंडल पहनता है, उसकी चिंताएँ कम हो जाती हैं, क्योंकि अल्लाह तआला कहता है: {एक पीली गाय, जिसका रंग गहरा है, देखने वालों को प्रसन्न करने वाली}, जैसा कि अल-थालाबी ने उनके बारे में बताया है (४)। इब्न अल-जुबैर और मुहम्मद बिन अबी कसीर ने काले सैंडल पहनने से मना किया, क्योंकि वे चिंता का कारण बनते हैं। "प्रसन्न करने" का अर्थ "प्रशंसनीय" है। अबू अल-अलियाह ने कहा: इसका अर्थ इसकी विशेषता और रूप में है, इसलिए इसके दो वर्णन हैं (५), और अल्लाह बेहतर जानता है। अल्लाह तआला का कथन: {उन्होंने कहा, "हमारे लिए अपने रब से दुआ कीजिए कि वह हमारे लिए स्पष्ट कर दे कि वह कैसी है। निस्संदेह, गायें हमारे लिए एक जैसी हो गई हैं; और निस्संदेह, यदि अल्लाह ने चाहा, तो हम मार्गदर्शन पाने वाले होंगे।" (७०)} अल्लाह तआला का कथन: {निस्संदेह, गायें हमारे लिए एक जैसी हो गई हैं} उन्होंने चौथा प्रश्न पूछा, और स्पष्टीकरण के बाद भी आदेश का पालन नहीं किया। उन्होंने 'अल-बकर' (गायों) के लिए पुल्लिंग रूप का प्रयोग किया क्योंकि यह बहुवचन (समूहवाचक संज्ञा) का अर्थ रखता है, और इसीलिए उन्होंने कहा: "निस्संदेह, गायें हमारे लिए एक जैसी हो गई हैं" पुल्लिंग रूप का उपयोग करते हुए।

पादलेख: = और इब्न माजाह (९६५) और अल-बज़ार (८५४) ने अली से मरफू रूप में रिवायत की है: नमाज़ के दौरान अपनी उंगलियां न चटकाएं। मुनावी ने फैज़ अल-कादिर ६/४१४ में इराकी और मघलाताई के हवाले से इसकी सनद को कमज़ोर बताया है। और अहमद (१५६२१), अल-तबरानी (४२०), अल-बैहकी २/२८९, और इब्न अल-जौज़ी ने अल-तहरीक (२०७) में मुआज़ बिन अनस से मरफू रूप में रिवायत की है: निस्संदेह, नमाज़ में हंसने वाला, इधर-उधर देखने वाला और अपनी उंगलियां चटकाने वाला एक ही स्थिति में हैं। अल-बैहकी और इब्न अल-जौज़ी के पास: "और जो

कड़कड़ाता है"। अल-हेशमी ने मजमा अल-ज़वाइद २/७९ में कहा: इसमें इब्न लहिया है, और उसके बारे में प्रसिद्ध बातें हैं, ज़ियाद बिन फ़ैद से जो कमज़ोर है। (१) इराब अल-कुरान, अल-नहास १/२३५। (२) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर २/९६ में और इब्न अबी हातिम १/२२२ में इसे निकाला है। (३) अल-उकैली ने अल-दुआफा १/२३५ में, अल-तबरानी (१०६०२), अल-खतीब ने तारीख बगदाद ५/२५ में, और अल-जामी ली-अखलाक अल-रावी (९२२) में इसे निकाला है। अबू हातिम ने अल-इलाल २/३१९ में कहा: यह एक गढ़ी हुई और झूठी हदीस है। (४) अरैयस अल-मजालिस पृ. २३५, और इसमें कमजोरी स्पष्ट है। (५) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१६३, और इसमें: मुहम्मद के बजाय याह्या बिन अबी कसीर।

١٨٦ سورہ البقرہ: آیت ٧٠

...معرفہ ہے اور نہ نکرہ، اس لیے کہ اس میں الفِ تانیث ہے، اور وہ لازم ہے، تو اس نے 'ہا' کی مخالفت کی، کیونکہ جس میں 'ہا' ہو وہ نکرہ میں منصرف ہوتا ہے (١)، جیسے فاطمہ اور عائشہ۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَاقِعٌ لَّوْنُهَا﴾ : اس کا رنگ خالص ہو، اس کی جلد کے رنگ کے سوا اس میں کوئی اور رنگ نہ ہو۔ ﴿تَسُرُّ النَّاظِرِينَ﴾ وہب نے کہا: گویا سورج کی شعاعیں اس کی جلد سے نکلتی ہیں (٢)، اور اسی وجہ سے ابن عباس نے کہا: زردی نفس کو خوش کرتی ہے، اور انہوں نے زرد جوتے پہننے کی ترغیب دی (٣)، اسے ان سے نقاش نے نقل کیا ہے۔ اور علی بن ابی طالب رضی اللہ عنہ نے فرمایا: جس نے زرد چمڑے کے جوتے پہنے، اس کا غم کم ہو گیا، کیونکہ اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: ﴿صَفْرَاءُ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النَّاظِرِينَ﴾، اسے ان سے ثعلبی نے نقل کیا ہے (٤)۔ اور ابن الزبیر اور محمد بن ابی کثیر نے کالے جوتے پہننے سے منع فرمایا، کیونکہ وہ غمگین کرتے ہیں۔ اور "تَسُرُّ" کے معنی ہیں: "پسند آنا"۔ ابو العالیہ نے کہا: اس کے معنی اس کی ہیت اور منظر میں ہیں، پس وہ دو اوصاف والی ہے (٥)، واللہ اعلم۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّن لَّنَا مَا هِيَ إِنَّ الْبَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا وَإِنَّا إِن شَاءَ اللَّهُ لَمُهْتَدُونَ (٧٠)﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿إِنَّ الْبَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا﴾ انہوں نے چوتھا سوال کیا، اور وضاحت کے بعد بھی حکم کی تعمیل نہیں کی۔ اور لفظ 'البقر' کو مذکر لائے، کیونکہ یہ جمع کے معنی میں ہے، اور اسی لیے فرمایا: "إِنَّ البَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا" تو اسے مذکر لائے۔

حواشی: = اور ابن ماجہ (٩٦٥) اور بزار (٨٥٤) نے علی سے مرفوعاً روایت کی: جب تم نماز میں ہو تو اپنی انگلیاں نہ چٹخاؤ۔ مناوی نے فیض القدیر ٦/٤١٤ میں عراقی اور مغلطائی سے اس کی سند کے ضعیف ہونے کو نقل کیا ہے۔ اور احمد (١٥٦٢١)، طبرانی (٤٢٠)، بیہقی ٢/٢٨٩، اور

ابن الجوزی نے التحقیق (۲۰۷) میں معاذ بن انس سے مرفوعاً روایت کی: نماز میں ہنسنے والا، ادھر ادھر دیکھنے والا اور انگلیاں چٹخانے والا ایک ہی درجے میں ہیں۔ بیہقی اور ابن الجوزی کے ہاں: "اور انگلیاں توڑنے والا"۔ ہیثمی نے مجمع الزوائد ۲/۷۹ میں کہا: اس میں ابن لہیعہ ہے، اور اس کے بارے میں کلام معروف ہے، زیاد بن فائد سے جو کہ ضعیف ہے۔ (۱) إعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۳۵۔ (۲) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۲/ ۹٦ اور ابن ابی حاتم نے ۱/ ۲۲۲ میں روایت کیا ہے۔ (۳) اسے عقیلی نے الضعفاء ۱/ ۲۳۵، طبرانی (۱۰٦۰۲)، خطیب نے تاریخ بغداد ٥/ ۲٥، اور الجامع لاخلاق الراوی (۹۲۲) میں روایت کیا ہے۔ ابو حاتم نے العلل ۲/ ۳۱۹ میں کہا: یہ حدیث جھوٹی موضوع ہے۔ (٤) عرائس المجالس ص ۲۳٥، اور اس میں ضعف ظاہر ہے۔ (٥) المحرر الوجیز ۱/ ۱٦۳، اور اس میں: محمد کے بجائے یحییٰ بن ابی کثیر ہے۔

...for the masculine gender of the word 'al-baqar' (cows). Qutrub said: The plural of 'al-baqarah' is 'baqir', 'bakur', and 'baqar' (1). Al-Asma'i said: 'Al-Baqir' is the plural of 'baqara'. He said: 'Baqar' is pluralized as 'baqura', as related by Al-Nahhas (2). Al-Zajjaj said: The meaning is: "Indeed, the genus of cows" (3).

Al-Hasan, as mentioned by Al-Nahhas (4), and Al-A'raj, as mentioned by Al-Tha'labi, read: "Inna al-baqara tashshabahu" (5) with 'ta' and doubling (shaddah) of the 'shin', treating it as a future (imperfect) verb and making it feminine. The original form was (6): 'tatashabahu', then the 'ta' was assimilated into the 'shin' (7). Mujahid read 'tashabbaha' similar to their reading, except without the 'alif' (8). In the Mushaf of Ubay: "tashshabahat" with the doubling of 'shin'. Abu Hatim said: This is a mistake, because the 'ta' in this pattern is not assimilated except in the imperfect tense (9). Yahya bin Ya'mur read: "Inna al-baqira yashshabahu" (10), treating it as a future verb, mentioning 'baqar' (11) and using assimilation. It is also permissible: "Inna al-baqara tashabahu" with a lightened 'shin' and a damma on the 'ha', which Al-Tha'labi reported from Al-Hasan (12). Al-Nahhas (13) stated: "yashabahu" is not permissible with a lightened 'shin' and 'ya', but it was permissible with 'ta' because the origin is 'tatashabahu', so one 'ta' was omitted due to the meeting of two 'ta's.

---

(1) In (Th): and 'baqir'. (2) I'rab al-Qur'an 1/235. (3) Ma'ani al-Qur'an 1/155. (4) I'rab al-Qur'an 1/236, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/154. (5) Ibn Khalawayh attributed it in 'Al-Qira'at al-Shadhah' p. 7 to Ibn Mas'ud, and Abu Hayyan attributed it to Al-A'raj in 'Al-Bahr' 1/254, and Al-Akhfash mentioned it without attribution in 'Ma'ani al-Qur'an' 1/280, and Al-Zajjaj in 'Ma'ani al-Qur'an' 1/154. (6) In (D) and (Th): and its origin. (7) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/236. (8) Ibn Khalawayh mentioned it in 'Al-Qira'at al-Shadhah' p. 7, and Abu Hayyan noted it in 'Al-Bahr' on the pattern: tafa'ala. (9) Abu Hayyan mentioned in 'Al-Bahr al-Muhit' 1/254 the reading 'tashabahat' from Ubay without doubling the 'shin', and from Ibn Abi Ishaq with doubling. He found the transmission from Ibn Abi Ishaq, a leader in grammar, unlikely, and said: This reading could be justified as originally being: 'ishshabahat', with the 'ta' being the 'ta' of 'baqara', meaning: 'Inna al-baqara ishshabahat 'alayna'. This is strengthened by the attachment of the feminine suffix 'ta' at the end of the verb... so the listener thought the 'ta' of 'baqara' was part of the verb, as the pronunciation is identical, and thus imagined he read: 'tashshabahat'. (10) Ibn Khalawayh attributed it in 'Al-Qira'at al-Shadhah' p. 7 to Muhammad Dhu al-Shamah, and in a copy of it: 'tashshabaha'. End.

And it was added in (D): with 'ta' and doubling of 'shin', and similarly mentioned by Ibn 'Atiyyah in 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/163. (11) In 'I'rab al-Qur'an' by Al-Nahhas 1/236: 'Al-Baqir'. (12) Al-Qira'at al-Shadhah p. 7. (13) I'rab al-Qur'an 1/236.

सूरह अल-बकरा: आयत 70 | 187

...गायों के पुलिंग शब्द के लिए। क़ुतरुब ने कहा: 'बकरा' (गाय) का बहुवचन 'बाक़िर', 'बाकूर' और 'बक़र' (1) है। अल-अस्माई ने कहा: 'अल-बाक़िर' 'बाक़रा' का बहुवचन है। उन्होंने कहा: 'बक़र' का बहुवचन 'बाक़ूरा' होता है, जैसा कि अल-नहहास (2) ने वर्णित किया है। अल-ज़ज्जाज ने कहा: अर्थ है: "निश्चित रूप से, गायों की नस्ल" (3)।

अल-हसन ने, जैसा कि अल-नहहास (4) ने उल्लेख किया है, और अल-आरज ने, जैसा कि अल-था'लाबी ने उल्लेख किया है, पढ़ा: "इन्ना अल-बक़रा तशशाबहु" (5) 'ता' और 'शीन' पर तशदीद (द्वित्व) के साथ। उन्होंने इसे भविष्य (अपूर्ण) काल की क्रिया माना और इसे स्त्रीलिंग बनाया। मूल शब्द (6) 'ततशाबहु' था, फिर 'ता' को 'शीन' में आत्मसात (idgham) कर दिया गया (7)। मुजाहिद ने उनकी तरह ही 'तशब्बहा' पढ़ा, सिवाय 'अलिफ़' के बिना (8)। उबै के मुसहफ़ (पांडुलिपि) में: 'तशशाबहत' 'शीन' पर तशदीद के साथ है। अबू हातिम ने कहा: यह एक गलती है, क्योंकि इस पैटर्न में 'ता' केवल अपूर्ण काल (mudari') में ही आत्मसात होती है (9)। यहया बिन या'मुर ने पढ़ा: "इन्ना अल-बाक़िरा यशशाबहु" (10), इसे भविष्य काल की क्रिया मानते हुए, 'बक़र' (11) का उल्लेख किया और आत्मसात किया। यह भी जायज़ है: "इन्ना अल-बक़रा तशाबहु" 'शीन' को हल्का करके और 'हा' पर धम्मा के साथ, जिसे अल-था'लाबी ने अल-हसन (12) से वर्णित किया है। अल-नहहास (13) ने कहा: 'यशबहु' हल्की 'शीन' और 'या' के साथ जायज़ नहीं है, लेकिन 'ता' के साथ जायज़ था क्योंकि मूल 'ततशाबहु' है, इसलिए दो 'ता' के मिलने के कारण एक 'ता' को हटा दिया गया।

---

(1) (Th) में: और 'बक़ीर' है। (2) एराब अल-क़ुरान 1/235। (3) मानी अल-क़ुरान 1/155। (4) एराब अल-क़ुरान 1/236, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/154। (5) इब्न खालवाय ने 'अल-क़िरा'त अल-शद्दा' पृष्ठ 7 में इसे इब्न मसूद से जोड़ा, और अबू हय्यान ने 'अल-बहर' 1/254 में इसे अल-आरज से जोड़ा, और अल-अखफश ने इसे 'मानी अल-क़ुरान' 1/280 में बिना किसी संदर्भ के उल्लेख किया, और अल-ज़ज्जाज ने 'मानी अल-क़ुरान' 1/154 में। (6) (D) और (Th) में: और इसका मूल। (7) अल-नहहास द्वारा एराब अल-क़ुरान 1/236। (8) इब्न खालवाय ने 'अल-क़िरा'त अल-शद्दा' पृष्ठ 7 में इसका उल्लेख किया, और अबू हय्यान ने 'अल-बहर' में इसे 'तफ़'अला' के वजन (पैटर्न) पर बताया। (9) अबू हय्यान ने 'अल-बहर अल-मुहीत' 1/254 में उबै से 'शीन' पर तशदीद के बिना 'तशशाबहत' पढ़ने का उल्लेख किया, और इब्न अबी इसहाक से तशदीद के साथ। उन्होंने व्याकरण के विशेषज्ञ इब्न अबी

इसहाक से इसके हस्तांतरण को असंभव माना और कहा: इस पाठ को इस प्रकार समझा जा सकता है कि इसका मूल 'इशशाबहत' था, और 'ता' 'बकरा' की 'ता' थी, और मूल था: 'इन्ना अल-बक़रा इशशाबहत अलैना'। क्रिया के अंत में स्त्रीलिंग 'ता' का जुड़ना इसे और पुख्ता करता है... इसलिए सुनने वाले को लगा कि 'बकरा' की 'ता' क्रिया का हिस्सा है, क्योंकि उच्चारण समान है, और इस प्रकार उसे भ्रम हुआ कि उन्होंने 'तशशाबहत' पढ़ा। (10) इब्न खालवाय ने 'अल-क़िरा'त अल-शद्दा' पृष्ठ 7 में इसे मुहम्मद ज़ू अल-शामा से जोड़ा और इसकी एक प्रति में: 'तशशाबहा' है। और (D) में जोड़ा गया: 'ता' और 'शीन' की तशदीद के साथ, और इसी तरह इब्न अतिय्या ने 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/163 में इसका उल्लेख किया है। (11) अल-नहहास द्वारा एराब अल-क़ुरान 1/236 में: 'अल-बाक़िर'। (12) अल-क़िरा'त अल-शद्दा पृष्ठ 7। (13) एराब अल-क़ुरान 1/236।

لفظ بقر (گائے) کی تذکیر کے لیے۔ قطرب نے کہا: بقرہ کی جمع باقر، باکور اور بقر (۱) ہے۔ اور اصمعی نے کہا: الباقر، باقرہ کی جمع ہے، انہوں نے کہا: بقر کی جمع باقورہ آتی ہے، اسے نحاس نے حکایت کیا ہے (۲)۔ زجاج نے کہا: معنی یہ ہے: "بے شک گائے کی جنس" (۳)۔

حسن نے، جیسا کہ نحاس نے ذکر کیا ہے (٤)، اور اعرج نے، جیسا کہ ثعلبی نے ذکر کیا ہے، پڑھا: «إِنَّ البقر تشابه» (٥) تاء کے ساتھ اور شین کی تشدید کے ساتھ، اسے فعل مستقبل (مضارع) قرار دیا اور اسے مونث لایا۔ اصل (٦) میں «تَتَشابَه» تھا، پھر تاء کو شین میں مدغم کر دیا گیا (۷)۔ مجاہد نے ان دونوں کی قرات کی طرح «تَشَبَّهَ» پڑھا، سوائے اس کے کہ یہ بغیر الف کے ہے (۸)۔ اور ابی کے مصحف میں «تَشابهت» شین کی تشدید کے ساتھ ہے۔ ابو حاتم نے کہا: یہ غلطی ہے، کیونکہ اس باب میں تاء کا ادغام صرف مضارع میں ہوتا ہے (۹)۔ یحییٰ بن یعمر نے پڑھا: «إِنَّ الباقِرَ يَشَّابَهُ» (۱۰)، اسے فعل مستقبل قرار دیا، بقر کا ذکر کیا (۱۱) اور ادغام کیا۔ اور یہ بھی جائز ہے: «إِنَّ البقر تَشَابَهُ» شین کی تخفیف اور ہاء کے ضمہ کے ساتھ، ثعلبی نے اسے حسن سے حکایت کیا ہے (۱۲)۔ نحاس نے کہا (۱۳): «يَشَابَهُ» شین کی تخفیف اور یاء کے ساتھ جائز نہیں ہے، بلکہ تاء میں جائز تھا کیونکہ اصل «تتشابه» ہے، چنانچہ دو تاء کے جمع ہونے کی وجہ سے ایک کو حذف کر دیا گیا۔

---

(۱) نسخہ (ظ) میں: اور بقیر۔ (۲) إعراب القرآن ۱ / ۲۳۵۔ (۳) معاني القرآن ۱ / ۱۵۵۔ (٤) إعراب القرآن ۱ / ۲۳٦، اور المحرر الوجيز ۱ / ۱٥٤۔ (٥) ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۷ میں اسے ابن مسعود کی طرف منسوب کیا، اور ابو حیان نے البحر ۱ / ۲٥٤ میں اعرج کی طرف، اور اخفش نے معانی القرآن ۱ / ۲۸۰ میں بغیر نسبت کے ذکر کیا، اور زجاج نے معانی القرآن ۱ / ۱٥٤ میں۔

(٦) نسخہ (د) اور (ظ) میں: اور اس کی اصل۔ (٧) إعراب القرآن للنحاس ١ / ٢٣٦۔ (٨) ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ٧ میں اس کا ذکر کیا، اور ابو حیان نے البحر میں اسے «تَفَعَّلَ» کے وزن پر مقید کیا۔ (٩) ابو حیان نے البحر المحیط ١ / ٢٥٤ میں ابی سے شین کی تشدید کے بغیر «تشابہت» کی قرات ذکر کی، اور ابن ابی اسحاق سے تشدید کے ساتھ اور انہوں نے ابن ابی اسحاق سے، جو علمِ نحو کے امام ہیں، اس کے نقل کو بعید قرار دیا، اور کہا: ممکن ہے کہ اس قرات کی توجیہ یوں ہو کہ اس کی اصل «اشَّابہت» تھی، اور تاء بقرہ کی تاء ہے، اور اصل یہ تھی: «إن البقرة اشَّابهت علينا»، اور فعل کے آخر میں تاء تانیث کا لاحق ہونا اس کی تائید کرتا ہے... تو سننے والے نے یہ سمجھا کہ بقرہ کی تاء فعل کی تاء ہے، کیونکہ تلفظ ایک ہی ہے، چنانچہ اسے وہم ہوا کہ انہوں نے «تشَّابہت» پڑھا ہے۔ (١٠) ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ٧ میں اسے محمد ذو الشامہ کی طرف منسوب کیا اور اس کے ایک نسخے میں: «تشَّابہ» ہے۔ اھ اور نسخہ (د) میں اضافہ کیا گیا: تاء اور شین کی تشدید کے ساتھ، اور اسی طرح ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ١ / ١٦٣ میں ذکر کیا ہے۔ (١١) إعراب القرآن للنحاس ١ / ٢٣٦ میں: الباقر۔ (١٢) القراءات الشاذة ص ٧۔ (١٣) إعراب القرآن ١ / ٢٣٦۔

188 Surah Al-Baqarah: Verse 71

'Al-baqar', 'al-baaqir', 'al-baiqur', and 'al-baqeer' are linguistic variants with the same meaning. The Arabs use both masculine and feminine forms for it. To this return the meanings of the various recitations of 'tashaabaha' (became similar). It was said: They only said "Indeed, the cows have become similar to us" because the faces of cows resemble each other. Among this is the hadith of Hudhayfah ibn al-Yaman from the Prophet ﷺ that he mentioned: "Trials like portions of the night will come, resembling the faces of cows."(1). He means that they resemble one another. And the faces of cows look alike, and for that reason(2) the Children of Israel said: "Indeed, the cows have become similar to us."

Allah's saying: {And indeed we, if Allah wills, will be guided} is an exception from them. In their making an exception in this final question, there is turning back and submission, and evidence of regret(3) for not complying with the command(4). It is narrated from the Prophet ﷺ that he said: "If they had not(5) made an exception, they would never have been guided to it."(6). The implied structure of the speech is: "And we will be guided, if Allah wills." He prioritized the mention of guidance out of concern for it. "Shaa'a" (willed) is in the position of jism (apocopate) due to the condition, and its response according to Sibawayh is the sentence starting with "Inna" and what it acts upon. According to Abu al-Abbas al-Mubarrad, it is omitted(7).

Allah's saying: {He said, "He says, 'It is a cow neither trained to plow the earth nor to irrigate the field, sound, having no blemish in it.'" They said, "Now you have come with the truth." So they slaughtered it, though they were near to not doing it. (71)}

Allah's saying: {He says, 'It is a cow neither trained'} The majority read: "laa dhaloolun" with 'raf'' (nominative case) as an adjective for the cow. Al-Akhfash said: "laa dhalool" is its description, and its 'nasb' (accusative case) is not permissible. Abu Abd al-Rahman al-Sulami read: "laa dhaloola"(8) with 'nasb' for negation, and the predicate is implied. It is also permissible to be: "It is not trained..."

(1) Reported by Ahmad (23328), and its wording is: "Trials like portions of the dark night, following one another, coming to you confusingly like the faces of cows." (2) In (d): And for that reason. (3) In (d) and (z): reflection. (4) Al-Muharrar al-Wajeez 1/163. (5) In (d): If not for. (6) Reported by Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/223 similarly from the hadith of Abu Hurairah. Ibn Kathir said in his commentary on this verse: This is a strange (gharib) hadith, and at best, it is the words of Abu Hurairah. At-Tabari reported it in 2/99 and 100 from Ibn Jurayj and Qatadah in a mursal form. Sa'id ibn

Mansur reported it in his Sunan (193) (Tafsir) from Ikrimah in a mursal form. At-Tabari reported it in 2/98 and 99 from Ikrimah and Abu al-Aliyah as their saying. (7) I'rab al-Quran by an-Nahhas 1/236. (8) I'rab al-Quran 1/236, Ash-Shawaadh p. 7, Al-Kashshaf 1/288, and Al-Muharrar al-Wajeez 1/163.

188 सूरा अल-बकरा: आयत 71

'अल-बक़र', 'अल-बक़िर', 'अल-बैक़ूर' और 'अल-बक़ीर' भाषाई रूप से समान अर्थ वाले शब्द हैं। अरब इसे पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों रूपों में उपयोग करते हैं। इसी से 'तशाबहा' (समान होना) के विभिन्न पाठों के अर्थ संबंधित हैं। यह कहा गया: उन्होंने केवल इसलिए कहा: "बेशक, गायें हम पर संदिग्ध हो गई हैं" क्योंकि गायों के चेहरे एक-दूसरे के समान होते हैं। हुज़ैफा इब्न अल-यमान की हदीस में नबी ﷺ से उल्लेख है कि उन्होंने कहा: "अंधेरी रात के टुकड़ों की तरह फितने (परीक्षण) आएंगे, जो गायों के चेहरों के समान संदिग्ध होंगे।"(1)। उनका तात्पर्य है कि वे एक-दूसरे के समान होंगे। और गायों के चेहरे समान होते हैं, और इसी कारण(2) बनी इस्राइल ने कहा: "बेशक, गायें हम पर संदिग्ध हो गई हैं।"

अल्लाह का कथन: {और बेशक हम, यदि अल्लाह ने चाहा, तो अवश्य मार्ग पाने वाले होंगे} उनकी ओर से एक अपवाद (इस्तिसना) है। इस अंतिम प्रश्न में उनके अपवाद करने में आज्ञाकारिता और समर्पण है, और आदेश(4) का पालन न करने पर पछतावे(3) का प्रमाण है। नबी ﷺ से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "यदि वे(5) अपवाद (इंशाह अल्लाह) न करते, तो वे कभी भी इसकी ओर मार्गदर्शन न पाते।"(6)। वाक्य का अनुमानित अर्थ है: "और हम अवश्य मार्ग पाने वाले होंगे यदि अल्लाह ने चाहा।" उन्होंने मार्गदर्शन के उल्लेख को इसके महत्व के कारण पहले रखा। "शाअ" (चाहा) शर्त के कारण 'जज़्म' की स्थिति में है, और सिबवैय के अनुसार इसका जवाब "इन्ना" वाला वाक्य और जो उसने कार्य किया वह है। अबू अल-अब्बास अल-मुबर्रद के अनुसार यह लुप्त(7) है।

अल्लाह का कथन: {उसने कहा, "वह कहता है, 'वह एक ऐसी गाय है जो न तो ज़मीन जोतने के लिए सधाई हुई है और न ही खेतों को सींचती है, वह स्वस्थ है, उसमें कोई दाग नहीं है'।" उन्होंने कहा, "अब तुम हक़ (सत्य) लेकर आए हो।" तो उन्होंने उसे ज़िबह किया, जबकि वे ऐसा करते प्रतीत नहीं होते थे। (71)}

अल्लाह का कथन: {वह कहता है, 'वह एक ऐसी गाय है जो सधाई हुई नहीं है'} बहुसंख्यक पाठकों ने "ला ज़लूलुन" पढ़ा है, जिसमें 'रफ' (प्रथमा विभक्ति) है जो गाय के लिए विशेषण है। अल-अख्फश ने कहा: "ला ज़लूल" उसका गुण है, और इसका 'नस्ब' (द्वितीया विभक्ति) जायज़ नहीं है। अबू अब्द अल-रहमान अल-सुलमी ने "ला ज़लूला"(8) पढ़ा है, निषेध के लिए 'नस्ब' के साथ, और खबर (विधेय) छिपी हुई है। यह भी जायज़ है: "वह सधाई हुई नहीं है..."

(1) अहमद (23328) द्वारा निकाला गया, और इसके शब्द हैं: "अंधेरी रात के टुकड़ों की तरह फितने, जो एक के बाद एक आएंगे, तुम्हारे पास गायों के चेहरों की तरह संदिग्ध होकर आएंगे।" (2) (द) में: और इसी कारण। (3) (द) और (ज़) में: चिंतन। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/163. (5) (द) में: यदि नहीं। (6) इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/223 में अबू हुरैरा की हदीस से इसी तरह निकाला है। इब्न कसीर ने इस आयत की व्याख्या में कहा: यह एक अजीब (ग़रीब) हदीस है, और इसकी सबसे अच्छी स्थिति यह है कि यह अबू हुरैरा के शब्द हों। अल-तबरी ने इसे 2/99 और 100 में इब्न जुरैज और क़तादा से मुरसल रूप में निकाला है। सईद इब्न मंसूर ने अपनी सुनन (193) (तफ़सीर) में इकरिमा से मुरसल रूप में निकाला है। अल-तबरी ने 2/98 और 99 में इकरिमा और अबू अल-आलिया से उनके कथनों के रूप में निकाला है। (7) एराब अल-कुरान, अल-नहस 1/236. (8) एराब अल-कुरान 1/236, अल-क़िरात अल-शाज़ा पृष्ठ 7, अल-कश्शाफ 1/288, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/163.

١٨٨ سورة البقره : الآية ٧١

والبقر والباقر والبيقر والبقير لغات بمعنى، والعرب تذكره وتؤنثه، وإلى ذلك ترجع معانى القراءات فى «تشابه». وقيل: إنما قالوا: {إِنَّ الْبَقَرَ تَشَابَهَ عَلَيْنَا} لأنّ وجوه البقر تتشابه، ومنه حديث حذيفة بن اليمان عن النبى ﷺ أنه ذكر: «فتناً كقطع الليل تأتى كوجوه البقر»(١). يريد أنها يشبه بعضها بعضاً. ووجوه البقر تتشابه، ولذلك(٢) قالت بنو إسرائيل: إنّ البقر تشابه علينا. قوله تعالى: {وَإِنَّا إِن شَاءَ اللَّهُ لَمُهْتَدُونَ} استثناء منهم، وفى استثنائهم فى هذا السؤال الأخير إنابة وانقياد، ودليل ندم(٣) على عدم موافقة الأمر(٤). وروي عن النبى ﷺ أنه قال: «لو ما(٥) استثنوا ما اهتدوا إليها أبداً»(٦). وتقدير الكلام: وإنا لمهتدون إن شاء الله. فقدم على ذكر الاهتداء اهتماماً به. و«شاء» فى موضع جزم بالشرط، وجوابه عند سيبويه الجملة «إنّ» وما عملت فيه. وعند أبى العباس المبرد محذوف(٧). قوله تعالى: {قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُولٌ تُثِيرُ الْأَرْضَ وَلَا تَسْقِى الْحَرْثَ مُسَلَّمَةٌ لَا شِيَةَ فِيهَا قَالُوا الْآنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ فَذَبَحُوهَا وَمَا كَادُوا يَفْعَلُونَ (٧١)} قوله تعالى: {قَالَ إِنَّهُ يَقُولُ إِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُولٌ} قرأ الجمهور: «لا ذلولٌ» بالرفع على الصفة لبقرة. قال الأخفش: «لا ذلول» نعته، ولا يجوز نصبه. وقرأ أبو عبد الرحمن السُّلَمِىُّ: «لا ذلولَ»(٨) بالنصب على النفى، والخبر مضمر، ويجوز: لا هى ذلول، (١) أخرجه أحمد (٢٣٣٢٨)، ولفظه: «فتن كقطع الليل المظلم، يتبع بعضها بعضاً، تأتيكم مشتبهة كوجوه البقر». (٢) فى (د): ولأجل ذلك. (٣) فى (د) و(ظ): تدبر. (٤) المحرر الوجيز ١٦٣/١. (٥) فى (د): لولا. (٦) أخرجه ابن أبى حاتم فى تفسيره ٢٢٣/١ بنحوه من حديث أبى هريرة. وقال ابن كثير عند تفسيره لهذه الآية: هذا حديث غريب، وأحسن أحواله أن يكون من كلام أبى هريرة. وأخرجه الطبرى ٩٩/٢ و ١٠٠ عن ابن جريج وقتادة مرسلاً. وأخرجه سعيد بن منصور فى سننه (١٩٣) (التفسير) عن عكرمة مرسلاً. وأخرجه

الطبرى ٢/٩٨ و ٩٩ عن عكرمة وأبى العالية قولهما. (٧) إعراب القرآن للنحاس ١/٢٣٦. (٨) إعراب القرآن ١/٢٣٦، والقراءات الشاذة ص ٧، والكشاف ١/٢٨٨، والمحرر الوجيز ١/١٦٣.

189 Surah Al-Baqarah: Verse 71

"Nor does it water the field, it is sound," and the meaning of "not broken in" (la dhalul) is that work has not humbled it. It is said: a cow that is 'mudhallalah' (tame) shows 'dhill' (submissiveness), with a kasra on the dhaāl, and a man who is 'dhalīl' (lowly) shows 'dhull' (lowliness), with a damma on the dhaāl(1). That is: it is a difficult cow, not trained, and not broken by work.

The word of the Almighty: {plowing the soil}: "tuthīru" (plowing/stirring up) is in the nominative position as an adjective for the cow, meaning: it is a cow that is not broken in, but is stirring up the earth. Al-Hasan said: that cow was wild(3), and for this reason, God Almighty described it as not plowing the soil and not watering the crop, meaning: it is not used to draw water to irrigate the crops, nor is water poured over it, and stopping here is good(4) according to this interpretation(5). Some said: "tuthīru" is an initial verb, and the meaning is the affirmation of plowing for it, and that it used to plow but not water(6). The stop according to this interpretation is at "not broken in".

The first opinion is more correct for two reasons: First: What Al-Nahhas mentioned from Ali bin Sulayman that he said: It is not permissible for "tuthīru" to be initial; because after it is: "and nor does it water the field," so if it were initial, he would not have combined the 'waw' (and) and 'la' (nor)(7). Second: That if it were plowing the earth, the plowing would have humbled it, and God Almighty had negated humility/ subservience from it by saying: "not broken in" (8).

I say: It is possible that "plowing the earth" was not for work but out of joy and activity, as Imru' al-Qays said:

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/163. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/163-164. (3) Narrated by Al-Tabari 2/93, 107, 213, and it contains Juwaybir bin Sa'id, about whom Al-Hafiz Ibn Hajar said in Taqrib al-Tahdhib: very weak. (4) Meaning stopping at the word: {plowing the soil} as in 'Idah al-Waqf wal-Ibtida' by Ibn al-Anbari 1/520. As for stopping at the word: {nor does it water the field}, it is a sufficient stop (waqf kafi), as in 'Al-Muktafa' by Abu Amr al-Dani 166. (5) His saying: according to this interpretation, from (z). (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/164. (7) I'rab al-Qur'an 1/236. (8) See 'Idah al-Waqf wal-Ibtida' 1/520-521.

१८९ सूरह अल-बकरा: आयत ७१

"और न वह खेत को पानी देती है, वह स्वस्थ है," और "ला ज़लूल" (सीधी नहीं) का अर्थ है कि काम ने उसे विनम्र नहीं किया है। कहा जाता है: 'मुज़ल्ल्ल्हा' गाय 'ज़िल्ल' (अधीनता) दिखाती है, 'ज़ाल' पर कसरा के साथ, और एक व्यक्ति जो 'ज़लील' (नीच) है, 'ज़ुल्ल' (नीचता) दिखाता है, 'ज़ाल' पर धम्मा के साथ (१)। यानी: यह एक कठिन, बिना सधी हुई गाय है, जिसे काम से नहीं साधा गया है।

सर्वशक्तिमान का वचन: {मिट्टी जोतना}: "तुथीरु" (जोतना/हिलाना) गाय के लिए विशेषण के रूप में नामांकित स्थिति में है, जिसका अर्थ है: यह एक ऐसी गाय है जो सधी हुई नहीं है, फिर भी जोतने वाली है(२)। अल-हसन ने कहा: वह गाय जंगली थी(३), और इसी कारण से, ईश्वर सर्वशक्तिमान ने इसे मिट्टी न जोतने वाली और फसल को पानी न देने वाली के रूप में वर्णित किया है, अर्थात: इसका उपयोग फसल सिंचाई के लिए पानी खींचने के लिए नहीं किया जाता है, और न ही इस पर पानी डाला जाता है, और इस व्याख्या(५) के अनुसार यहाँ रुकना अच्छा है(४)। कुछ ने कहा: "तुथीरु" एक आरंभिक क्रिया है, और अर्थ इसके लिए जोतने की पुष्टि है, और यह कि वह जोतती थी लेकिन पानी नहीं देती थी(६)। इस व्याख्या के अनुसार विराम "ला ज़लूल" (सीधी नहीं) पर है।

पहली राय दो कारणों से अधिक सही है: पहला: जो अल-नहस ने अली बिन सुलेमान के हवाले से उल्लेख किया है कि उन्होंने कहा: "तुथीरु" का आरंभिक होना जायज़ नहीं है; क्योंकि इसके बाद है: "और न वह खेत को पानी देती है," इसलिए यदि यह आरंभिक होता, तो वह 'वाव' (और) और 'ला' (नहीं) को एक साथ नहीं जोड़ता (७)। दूसरा: कि अगर वह ज़मीन जोत रही होती, तो जोतने ने उसे विनम्र बना दिया होता, और अल्लाह तआला ने "ला ज़लूल" (८) कहकर उससे विनम्रता/अधीनता को नकार दिया है।

मैं कहता हूँ: यह संभव है कि "मिट्टी जोतना" काम के लिए नहीं बल्कि उत्साह और सक्रियता से था, जैसा कि इमरुल क़ैस ने कहा:

---

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६३। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६३-१६४। (३) अल-तबरी २/९३, १०७, २१३ द्वारा वर्णित, और इसमें जुवैबिर बिन सईद है, जिसके बारे में अल-हाफ़िज़ इब्न हज़र ने तक़रीब अल-तहज़ीब में कहा: बहुत कमज़ोर। (४) यानी इब्न अल-अनबारी १/५२० द्वारा 'ईदह अल-वक़्फ़ वल-इब्तिदा' में दिए गए कथन: {मिट्टी जोतना} पर रुकना। जहाँ तक कथन: {और न वह खेत को पानी देती है} पर रुकने की बात है, तो यह एक पर्याप्त विराम (वक़्फ़ काफ़ी) है, जैसा कि अबू

अम्र अल-दानी १६६ द्वारा 'अल-मुक्ताफ़ा' में दिया गया है। (५) उसका कहना: इस व्याख्या के अनुसार, (ज़) से। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६४। (७) इराब अल-कुरान १/२३६। (८) देखें 'ईदह अल-वक़्फ़ व ل-इब्तिदा' १/५२०-५२१।

۱۸۹ سورة البقرہ: آیت ۷۱

"اور نہ وہ کھیتی کو پانی دیتی ہے، وہ تندرست ہے،" اور "لا ذلول" کا معنی ہے کہ کام نے اسے مسخر (ذلیل) نہیں کیا، کہا جاتا ہے: گائے "مذلله" ہے "ذل" کے ساتھ، ذال کے کسرہ کے ساتھ، اور آدمی "ذلیل" ہے "ذل" کے ساتھ ذال کے ضمہ کے ساتھ (۱)۔ یعنی: وہ ایک سرکش گائے ہے جو سدھائی ہوئی نہیں ہے، اسے کام کے ذریعے مسخر نہیں کیا گیا۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿تُثِيرُ الْأَرْضَ﴾: "تُثِيرُ" گائے کی صفت ہونے کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے، یعنی: وہ ایسی گائے ہے جو سدھائی ہوئی نہیں لیکن زمین الٹ پلٹ کرنے والی ہے (۲)۔ حسن بصری نے کہا: وہ گائے وحشی تھی (۳)، اسی لیے اللہ تعالیٰ نے اسے اس صفت سے نوازا کہ وہ نہ زمین جوتتی ہے اور نہ کھیتی کو پانی دیتی ہے یعنی: اس سے کھیتی کی سیرابی کے لیے پانی نہیں نکالا جاتا، اور نہ ہی اس پر پانی چھڑکا جاتا ہے، اور اس تاویل (۵) پر یہاں وقف کرنا بہتر ہے (۴)۔ ایک گروہ نے کہا: "تُثِيرُ" فعلِ مستأنف (نیا جملہ) ہے، اور معنی اس کے لیے ہل چلانے کا اثبات ہے، اور یہ کہ وہ ہل چلاتی تھی لیکن پانی نہیں پلاتی تھی (۶)۔ اور اس تاویل پر وقف "لا ذلول" پر ہے۔

پہلا قول دو وجوہات کی بنا پر زیادہ درست ہے: پہلی وجہ: جو النحاس نے علی بن سلیمان سے نقل کیا کہ انہوں نے کہا: "تُثِيرُ" کا مستأنف ہونا جائز نہیں ہے؛ کیونکہ اس کے بعد ہے: "ولا تسقي الحرث"، پس اگر وہ مستأنف ہوتا تو واؤ اور "لا" کو جمع نہ کیا جاتا (۷)۔ دوسری وجہ: یہ کہ اگر وہ زمین جوتتی ہوتی تو زمین الٹ پلٹ کرنا اسے مسخر (ذلیل) کر دیتا، حالانکہ اللہ تعالیٰ نے اپنے قول "لا ذلول" (۸) کے ذریعے اس سے ذلت کی نفی کر دی ہے۔

میں کہتا ہوں: یہ بھی ممکن ہے کہ "تُثِيرُ الْأَرْضَ" کام کے لیے نہ ہو بلکہ خوشی اور چستی کی وجہ سے ہو، جیسا کہ امراء القیس نے کہا:

---

(۱) المحرر الوجیز ۱/۱۶۳۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۱۶۳-۱۶۴۔ (۳) اسے طبری نے ۲/۹۳ اور ۱۰۷، ۲۱۳ میں روایت کیا ہے، اور اس میں جویبر بن سعید ہے، جس کے بارے میں حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں کہا ہے: بہت ضعیف۔ (۴) یعنی ابن الانباری کی "ایضاح الوقف والابتداء" ۱/۵۲۰ کے مطابق اللہ کے قول: ﴿تُثِيرُ الْأَرْضَ﴾ پر وقف کرنا۔ رہا اللہ کے قول: ﴿وَلَا تَسْقِي الْحَرْثَ﴾ پر وقف، تو وہ وقفِ کافی ہے، جیسا کہ ابو عمرو الدانی کی "المکتفی" ۱۶۶ میں ہے۔ (۵) اس کا قول: اس تاویل پر، (ز) سے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/۱۶۴۔ (۷) إعراب القرآن ۱/۲۳۶۔ (۸) دیکھئے ایضاح الوقف والابتداء ۱/۵۲۰-۵۲۱۔

Page 190 Surah Al-Baqarah: Verse 71

"He pours and scatters its dust and stirs it up, like the stirring of a digger in the midday heat who is watering his camels on the fifth day."(1) Based on this, "stirs up" (tuthiru) would be a new sentence, and "nor waters" is conjoined to it; so reflect upon it. Stirring up the earth means moving it and searching through it. From this is the hadith: "Stir up the Quran, for in it is the knowledge of the first and the last ones."(2) In another narration: "Whoever wants knowledge, let him stir up the Quran." This has been mentioned previously.(3) In the Revelation: {And they stirred up the earth} [Ar-Rum: 9]. That is, they turned it over for farming. Tillage (al-harth) is what is tilled and planted. It will be discussed later.(4)

Issue (5): This verse is the strongest evidence for defining an animal by its characteristics. If it is defined and restricted by description, Salam (forward contract) is permissible for it. This was the view of Malik and his companions, Al-Awza'i, Al-Layth, and Ash-Shafi'i. Likewise, everything that can be defined by description is included, because Allah Almighty described the cow in His book with a description that takes the place of identification. The Messenger of Allah (PBUH) said: "A woman should not describe another woman to her husband as if he is looking at her," recorded by Muslim.(6) Thus, he (PBUH) made the description take the place of seeing. He also made the blood money for accidental killing a debt upon the one responsible for a certain term, and not due immediately. This refutes the view of the Kufans (Abu Hanifa and his companions, Ath-Thawri, and Al-Hasan bin Salih) who said: Salam is not permissible for animals. It was narrated from Ibn Mas'ud, Hudhayfah, and Abdur-Rahman bin Samurah (7) because an animal's true nature in terms of gait and movement cannot be fully known, and all of that increases its price and raises its...(8)

---

(1) His Diwan p. 102, Jamharat al-Lugha 2/42. The commentator of the Diwan said: "Nabath al-Hawajir" means a man for whom the midday heat has become intense, so he starts digging the soil, i.e., stirring it and bringing it out to reach the cool earth to touch it, thereby warding off the severity of heat and thirst. "Al-Mukhmis" is one whose camels are watered on the fifth day. He likened the bull to this "Mukhmis" man in his action. (2) In (D): "In it". (3) 2/178. (4) During the commentary of verse (205) of this Surah. (5) In (Z): "I said" instead of "Issue". (6) We did not find it in Muslim. It was recorded by Ahmad (3609) and Al-Bukhari (5240) from the hadith of Abdullah bin Mas'ud (RA), and its wording is: "A woman should not touch a woman so

as to describe her to her husband as if he is looking at her." (7) Al-Qurashi al-Abshami, embraced Islam on the day of the Conquest, settled in Basra, and invaded Sijistan as an army commander, died in year (50 AH). As-Siyar 2/571. (8) In the manuscripts: "and raises its value", and what is established is from (M), which corresponds to what is in Al-Tamhid 4/62-63.

पृष्ठ १९० सूरा अल-बकरा: आयत ७१

"वह इसकी धूल को डालता और बिखेरता है और उसे उसी तरह कुरेदता है जैसे दोपहर की कड़ी धूप में पाँचवें दिन ऊँटों को पानी पिलाने वाला खुदाई करने वाला व्यक्ति।"(1) इस आधार पर 'तुलन' (मृदा खोदना) एक नया वाक्य होगा, और 'न ही सींचती है' उस पर आधारित है; अतः इस पर विचार करें। धरती को कुरेदने का अर्थ है उसे हिलाना और उसकी खोज करना। इसी से हदीस है: "कुरान को कुरेदो (मंथन करो), क्योंकि इसमें पहले और बाद के लोगों का ज्ञान है।"(2) एक अन्य वर्णन में है: "जो ज्ञान चाहता है, वह कुरान का मंथन करे।" यह पहले बताया जा चुका है।(3) वहि (प्रकाशना) में है: {और उन्होंने धरती को जोता} [अर-रूम: 9]। यानी उन्होंने इसे खेती के लिए पलट दिया। 'हर्ष' (जुताई) वह है जो जोता और बोया गया हो। यह आगे आएगा।(4)

मसाला (5): यह आयत पशुओं को उनके गुणों द्वारा परिभाषित करने का सबसे बड़ा प्रमाण है। जब इसे गुणों द्वारा नियंत्रित और सीमित किया जाता है, तो इसमें 'सलम' (अग्रिम भुगतान) अनुबंध वैध होता है। इमाम मलिक और उनके साथियों, अल-औज़ाई, अल-लैथ और इमाम शाफी ने यही कहा है। इसी तरह हर वह चीज़ जिसे गुणों द्वारा परिभाषित किया जा सकता है, क्योंकि अल्लाह तआला ने अपनी किताब में गाय का ऐसा वर्णन किया है जो उसकी पहचान का स्थान लेता है। अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "कोई महिला अपने पति के सामने दूसरी महिला का इस तरह वर्णन न करे जैसे कि वह उसे देख रहा हो," इसे मुस्लिम ने उद्धृत किया है।(6) इस प्रकार उन्होंने ﷺ वर्णन को देखने के स्थान पर रखा। उन्होंने गलती से की गई हत्या के लिए 'दियत' (रक्त धन) को एक निश्चित अवधि के लिए ऋण बनाया, न कि उसे तुरंत देय बनाया। यह कुफ़ा के लोगों (अबू हनीफ़ा और उनके साथियों, अत-तौरी और अल-हसन बिन सालेह) की बात का खंडन करता है जिन्होंने कहा: पशुओं में 'सलम' की अनुमति नहीं है। यह इब्न मसूद, हुदैफा और अब्दुर रहमान बिन समुरा से वर्णित है (7) क्योंकि किसी जानवर की चाल और गति के वास्तविक स्वरूप को पूरी तरह से नहीं जाना जा सकता है, और यह सब उसकी कीमत बढ़ाता है और उसके..(8)

---

(1) उनका दीवान पृष्ठ 102, जमहरत अल-लुगा 2/42। दीवान के टीकाकार ने कहा: "नबाथ अल-हवाज़िर" का अर्थ है एक आदमी जिसके लिए दोपहर की गर्मी तीव्र हो गई है, इसलिए वह मिट्टी खोदना शुरू कर देता है, यानी उसे कुरेदना और बाहर निकालना ताकि वह स्पर्श करने के लिए ठंडी धरती तक पहुँच सके जिससे गर्मी और प्यास की तीव्रता को दूर किया जा सके। "अल-मुख्मिस" वह

है जिसके ऊंटों को पांचवें दिन पानी पिलाया जाता है। उन्होंने बैल की तुलना इस "मुख्मिस" आदमी से उसके कार्य में की। (2) (D) में: "इसमें"। (3) 2/178। (4) इस सूरा की आयत (205) की व्याख्या के दौरान। (5) (Z) में: "मसला" के बजाय "मैंने कहा"। (6) हमने इसे मुस्लिम में नहीं पाया। इसे अहमद (3609) और अल-बुखारी (5240) ने अब्दुल्ला इब्न मसूद (रजि.) की हदीस से उद्धृत किया है, और इसके शब्द हैं: "एक महिला को दूसरी महिला को नहीं छूना चाहिए ताकि वह अपने पति को उसका वर्णन इस तरह कर सके जैसे कि वह उसे देख रहा हो।" (7) अल-कुरशी अल-अब्शामी, विजय के दिन इस्लाम स्वीकार किया, बसरा में बस गए, और सेना कमांडर के रूप में सिजिस्तान पर आक्रमण किया, वर्ष (50 हिजरी) में मृत्यु हुई। अस-सियार 2/571। (8) प्रतियों में: "और उसके मूल्य को बढ़ाता है", और जो स्थापित है वह (M) से है, जो अल-तम्हीद 4/62-63 में है।

صفحہ ۱۹۰ سورۃ البقرہ: آیت ۷۱

"وہ اس کی مٹی ڈالتا اور بکھیرتا ہے اور اسے اس طرح کریدتا ہے جیسے دوپہر کی سخت گرمی میں پانچویں دن اونٹوں کو پانی پلانے والا کھودنے والا شخص۔"(۱) اس بنا پر 'تثیر' (زمین ہلانا) استیناف ہوگا، اور 'ولا تسقی' اس پر عطف ہے؛ پس اس میں غور کرو۔ زمین کو کریدنے سے مراد اسے ہلانا اور اس کی تلاش کرنا ہے، اسی سے حدیث ہے: "قرآن کو کریدو (اس میں غوطہ لگاؤ)، کیونکہ اس میں اگلوں اور پچھلوں کا علم ہے"(۲)۔ ایک دوسری روایت میں ہے: "جو علم چاہتا ہے وہ قرآن کو کریدے"۔ یہ پہلے گزر چکا ہے(۳)۔ اور وحی میں ہے: {وَأَثَارُوا الْأَرْضَ} [الروم: ۹]، یعنی اسے زراعت کے لیے الٹ پلٹ کیا۔ اور 'حرث' وہ ہے جو جوتا اور بویا جائے۔ یہ آگے آئے گا(۴)۔

مسئلہ(۵): اس آیت میں جانور کو اس کی صفات کے ذریعے محدود کرنے کی سب سے بڑی دلیل ہے، اور جب اسے صفت کے ذریعے منضبط اور محدود کر دیا جائے تو اس میں 'بیع سلم' جائز ہے۔ امام مالک اور ان کے اصحاب، اوزاعی، لیث اور شافعی کا یہی قول ہے۔ اسی طرح ہر وہ چیز جو صفت کے ذریعے منضبط ہو سکے؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ نے اپنی کتاب میں گائے کا ایسا وصف بیان کیا ہے جو اس کی پہچان کے قائم مقام ہے، اور رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "کوئی عورت اپنے شوہر کے سامنے دوسری عورت کا وصف اس طرح بیان نہ کرے گویا کہ وہ اسے دیکھ رہا ہو" اسے مسلم نے نکالا ہے(۶)۔ پس آپ ﷺ نے صفت کو دیکھنے کے قائم مقام رکھا، اور آپ ﷺ نے دیتِ خطا کو اس شخص کے ذمے ایک مدت تک کے لیے قرض قرار دیا جس پر وہ واجب ہے، اور اسے نقد نہیں رکھا، اور یہ کوفیوں (امام ابوحنیفہ، ان کے اصحاب، ثوری اور حسن بن صالح) کے قول کا رد ہے جنہوں نے کہا: جانوروں میں 'سلم' جائز نہیں ہے، اور یہ ابن مسعود، حذیفہ اور

عبدالرحمن بن سمرہ سے مروی ہے(۷)؛ کیونکہ جانور کی چال اور حرکت کی حقیقی صفت پر واقفیت نہیں ہو سکتی، اور یہ سب اس کی قیمت میں اضافہ کرتے ہیں اور اسے...(۸)

---

(۱) ان کا دیوان ص ۱۰۲، جمهرة اللغة ۲ / ۴۲، دیوان کے شارح نے کہا: نباث الهواجر، یعنی وہ آدمی جس پر دوپہر کی تپش سخت ہو گئی، تو وہ مٹی کھودنے لگا، یعنی اسے کریدنے اور نکالنے لگا تاکہ وہ زمین کی ٹھنڈک تک پہنچ کر اسے چھو سکے، جس سے وہ گرمی اور پیاس کی شدت کو دور کر سکے، اور 'المخمس' وہ ہے جس کے اونٹ پانچویں دن پانی پیتے ہیں، تو بیل کو اس کے کام میں اس مخمس آدمی سے تشبیہ دی۔ (۲) نسخہ (د) میں: "ففیہ" (پس اس میں)۔ (۳) ۱۷۸/۲۔ (۴) اس سورہ کی آیت (۲۰۵) کی تفسیر کے وقت۔ (۵) نسخہ (ظ) میں: "مسئلہ" کی جگہ "قلت" (میں نے کہا) ہے۔ (۶) ہمیں یہ مسلم کے ہاں نہیں ملی، اور اسے احمد (۳۶۰۹) اور بخاری (۵۲۴۰) نے حضرت عبداللہ بن مسعود رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اس کے الفاظ یہ ہیں: "کوئی عورت کسی عورت سے اس طرح نہ ملے کہ وہ اپنے شوہر کے سامنے اس کا وصف بیان کرے گویا وہ اسے دیکھ رہا ہو"۔ (۷) القرشی العبشمی، فتح مکہ کے دن اسلام لائے، بصرہ میں سکونت اختیار کی، اور سجستان پر لشکر کے امیر کی حیثیت سے حملہ کیا، ۵۰ ہجری میں وفات پائی۔ السیر ۵۷۱/۲۔ (۸) نسخوں میں ہے: "ویرفع فی قیمتہ" (اور اس کی قیمت بڑھاتا ہے)، اور جو متن میں ہے وہ نسخہ (م) سے ہے جو کہ 'التمہید' ۴ / ۶۲-۶۳ کے موافق ہے۔

its value. The ruling on Salam (forward sale) and its conditions will come at the end of the Surah in the verse regarding debt, if Allah Almighty wills. His words, the Almighty: "Musallamah" (sound/unblemished), meaning: she is sound. It is permissible to be an adjective, meaning: she is a cow sound from lameness and all other defects, as said by Qatadah and Abu al-Aliyah(1). It is not said: "sound from work" because Allah denied work for it. Al-Hasan said: it means sound of limbs, with no mark of work on them(2). His words, the Almighty: "la shiyata fiha" (no mark on her), meaning: there is no color in her that differs from most of her color; she is entirely yellow, with no white, red, or black in her, as He said: "fāqi'un lawnuhā" (of a bright color). The origin of "shiyah" is "wishyah"(3); the waw was deleted as it was deleted from "yashi", and the origin is "yawshi". Its parallels are "zinah" (weight), "idah" (promise), and "silah" (connection). "Shiyah" is taken from "washy" of a garment: when it is woven in two different colors. A "muwashsha" bull: has blackness on its face and legs. Ibn Arafa said: "ash-shiyah" is color. A slanderer is not called "washin" until he changes the speech and colors it, making it into varieties and decorating what he wishes from it. "Al-washy" is abundance; the tribe of so-and-so "washsha" means they increased. It is said: a piebald horse, a black and white ram, a speckled goat, a mottled crow, and a "shiyah" bull. All of that means "al-bulqah" (particolored/spotted); thus stated the people of the language(4). And these descriptions in the cow were caused by their strictness, so Allah made it strict for them. Allah's religion is easy, and diving deep into questioning prophets and other scholars is blameworthy; we ask Allah for wellbeing(5). In the stories of this cow, reports are narrated, the summary of which is: a man from the Children of Israel had a son born to him, and he had a young heifer. He sent it into a thicket and said: "O Allah, I entrust to You(6) this heifer for this boy." The man died. When the boy grew up, his mother, to whom he was dutiful, said to him: "Your father..."

---

(1) Reported by al-Tabari 2/108, and mentioned by Ibn Atiyah 1/164. (2) Al-Wasit by al-Wahidi 1/156, and al-Muharrar al-Wajiz 1/164. (3) In (M): "washi". (4) Al-Sihah: (w-sh-y), Al-Mujmal 4/926, Tafsir Gharib al-Qur'an by Ibn Qutaybah p.54, Tahdhib al-Lughah 11/444, and al-Muharrar al-Wajiz 1/164. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/164. (6) In (Z) and (T): "I have entrusted you".

सूरा अल-बक़रह: आयत 71 191

उसका मूल्य। सलाम (अग्रिम बिक्री) का नियम और उसकी शर्तें सूरा के अंत में ऋण के बारे में आयत में आएंगी, यदि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने चाहा। अल्लाह का कथन: "मुसल्लमतुन" (दोषमुक्त), यानी: वह दोषमुक्त है। यह विशेषण होना अनुमेय है, जिसका अर्थ है: वह लंगड़ेपन और अन्य सभी दोषों से मुक्त गाय है, जैसा कि क़तादा और अबू अल-आलिया (1) ने कहा है। यह नहीं कहा जाता है: "काम से मुक्त" क्योंकि अल्लाह ने उसके लिए काम करने से इनकार किया है। अल-हसन ने कहा: इसका अर्थ है अंगों का स्वस्थ होना, उन पर काम का कोई निशान न होना (2)। अल्लाह का कथन: "ला शियता फ़ीहा" (उसमें कोई दाग नहीं), अर्थात: उसमें ऐसा कोई रंग नहीं है जो उसके अधिकांश रंग से भिन्न हो; वह पूरी पीली है, उसमें कोई सफेदी, लाली या कालापन नहीं है, जैसा कि उन्होंने कहा: "फ़ाक़िउन लौनुहा" (चमकीले रंग की)। "शियह" का मूल "विशयह" (3) है; 'वाव' को हटा दिया गया था जैसा कि इसे "यशी" से हटा दिया गया था, और मूल "यौशी" है। इसके समानांतर "ज़िनाह" (वजन), "इदाह" (वादा), और "सिलाह" (संबंध) हैं। "शियह" कपड़े की "वशी" (कढ़ाई/रंगाई) से लिया गया है: जब इसे दो अलग-अलग रंगों में बुना जाता है। "मुवाश्शा" बैल: जिसके चेहरे और पैरों पर कालापन हो। इब्न अरफ़ा ने कहा: "अश-शियह" रंग है। किसी चुगलखोर को तब तक "वाशिन" नहीं कहा जाता जब तक कि वह बात को बदल न दे और उसे रंग न दे, उसे विभिन्न प्रकार का बना दे और उसमें जो चाहे सजा दे। "अल-वशी" प्रचुरता है; फ़लां के वंशज "वश्शा" हुए यानी वे बढ़ गए। कहा जाता है: चितकबरा घोड़ा, चितकबरा मेढ़ा, चितकबरा बकरा, चितकबरा कौआ और "शियह" बैल। इन सबका अर्थ "अल-बुलक़ह" (चितकबरापन) है; भाषा के जानकारों ने ऐसा ही कहा है (4)। और गाय के ये गुण इस कारण थे कि उन्होंने सख्ती की थी, इसलिए अल्लाह ने उन पर सख्ती की। अल्लाह का दीन (धर्म) आसान है, और पैगंबरों और अन्य विद्वानों से गहराई से सवाल करना निंदनीय है, हम अल्लाह से सलामती माँगते हैं (5)। इस गाय की कहानियों में कुछ रिवायतें (वृत्तांत) वर्णित हैं जिनका सारांश यह है: बनी इस्राइल के एक व्यक्ति के यहाँ एक पुत्र का जन्म हुआ, और उसके पास एक बछिया थी। उसने उसे एक झाड़ी में छोड़ दिया और कहा: "हे अल्लाह, मैं इस बछिया को इस लड़के के लिए तेरी अमानत में देता हूँ (6)।" वह व्यक्ति मर गया। जब लड़का बड़ा हुआ, तो उसकी माँ ने, जिसके प्रति वह बहुत आज्ञाकारी था, उससे कहा: "तुम्हारे पिता..."

(1) इसे अल-तबरी 2/108 द्वारा निकाला गया है, और इब्न अतिया 1/164 द्वारा उद्धृत किया गया है। (2) अल-वाहिदी द्वारा अल-वसीत 1/156, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/164। (3) (एम) में: "वशी"। (4) अल-सिहाह: (व-श-य), अल-मुजमल 4/926, इब्न कुतैबा द्वारा तफ़सीर ग़रीब अल-कुरान पृष्ठ 54, तहजीब अल-लुग़ा 11/444, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/164। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/164। (6) (जेड) और (टी) में: "मैंने तुम्हें सौंपा है"।

سورہ البقرہ: آیت 71 191

اس کی قیمت۔ اور سلم (پیشگی فروخت) کا حکم اور اس کی شرائط سورہ کے آخر میں قرض سے متعلق آیت میں آئیں گی، ان شاء اللہ تعالیٰ۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿مُسَلَّمَةٌ﴾ یعنی: وہ تندرست اور بے عیب ہے۔ یہ صفت ہونا بھی جائز ہے، یعنی: وہ لنگڑے پن اور تمام دیگر عیوب سے پاک گائے ہے، یہ بات قتادہ اور ابو العالیہ (1) نے کہی ہے۔ یہ نہیں کہا جاتا: "کام سے بری" کیونکہ اللہ نے اس سے کام کی نفی کر دی ہے۔ حسن بصری نے کہا: اس کا مطلب ہے اعضاء کا سلامت ہونا، ان پر کام کا کوئی اثر نہ ہونا (2)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿لَا شِيَةَ فِيهَا﴾ یعنی: اس میں ایسا کوئی رنگ نہیں ہے جو اس کے غالب رنگ کے خلاف ہو، وہ پوری کی پوری زرد ہے، اس میں نہ سفیدی ہے، نہ سرخی اور نہ سیاہی، جیسا کہ اللہ نے فرمایا: ﴿فَاقِعٌ لَوْنُهَا﴾ (گہرے چمکدار رنگ کی)۔ لفظ "شية" کی اصل "وِشية" (3) ہے؛ 'واؤ' کو حذف کر دیا گیا جیسے "يَشي" میں حذف کیا گیا، اور اس کی اصل "يَوْشي" ہے۔ اس کی مثالیں "زِنة"، "عِدَة" اور "صِلَة" ہیں۔ "شية" کپڑے کی "وشی" (نقش و نگار) سے ماخوذ ہے: جب اسے دو مختلف رنگوں پر بنا جائے۔ "ثَوْرٌ مُوَشًّى": وہ بیل جس کے چہرے اور پاؤں پر سیاہی ہو۔ ابن عرفہ نے کہا: "الشية" رنگ کو کہتے ہیں۔ اور چغل خور کو "واشٍ" اس وقت تک نہیں کہا جاتا جب تک وہ بات کو بدل نہ دے اور اسے رنگین نہ کر دے، اسے مختلف صورتیں دے اور اس میں جو چاہے سجاوٹ کر دے۔ "الوشي" کے معنی کثرت کے بھی ہیں، اور کہا جاتا ہے کہ فلاں کے بیٹے "وشَّى" ہوئے یعنی وہ بہت ہو گئے۔ کہا جاتا ہے: چتکبرا گھوڑا، چتکبرا مینڈھا، چتکبرا بکرا، چتکبرا کوا، اور "شِيَہ" بیل۔ یہ سب "البُلْقة" (چتکبرا پن) کے معنی میں ہیں؛ ماہرین لغت نے اسی طرح صراحت کی ہے (4)۔ اور گائے میں یہ اوصاف اس وجہ سے تھے کہ انہوں نے سختی کی تو اللہ نے ان پر سختی کر دی، اور اللہ کا دین آسان ہے، اور انبیاء اور

دیگر علماء سے سوالات میں گہرائی میں جانا مذموم ہے، ہم اللہ سے عافیت مانگتے ہیں (5)۔ اور اس گائے کے قصوں میں ایسی روایات مروی ہیں جن کا خلاصہ یہ ہے: بنی اسرائیل کے ایک شخص کے ہاں بیٹا پیدا ہوا، اور اس کے پاس ایک بچھیا تھی، اس نے اسے ایک جھاڑی میں چھوڑ دیا اور کہا: "اے اللہ، میں اس بچھیا کو اس لڑکے کے لیے تیرے سپرد (6) کرتا ہوں۔" وہ شخص مر گیا۔ جب لڑکا بڑا ہوا تو اس کی ماں نے اس سے کہا، اور وہ اپنی ماں کا بہت فرمانبردار تھا: "تمہارے والد..."

---

(1) اسے طبری نے 2/108 میں نکالا ہے، اور ابن عطیہ نے 1/164 میں ذکر کیا ہے۔ (2) واحدی کی الوسیط 1/156، اور المحرر الوجیز 1/164۔ (3) (م) میں: "وشي" ہے۔ (4) الصحاح: (وشي)، اور المجمل 4/926، اور ابن قتیبہ کی تفسیر غریب القرآن ص 54، اور تہذیب اللغہ 11/444، اور المحرر الوجیز 1/164۔ (5) المحرر الوجیز 1/164۔ (6) (ز) اور (ط) میں: "استودعتك" (میں نے تجھے سپرد کیا) ہے۔

192 Surah Al-Baqarah: Verse 71

... entrusted to God a heifer for you, so go and take it. He went, and when the cow saw him, it came to him until he took hold of its horns. It was wild, so he began leading it toward his mother. The Children of Israel met him and found his cow (1) matched the description they were commanded with. They bargained with him, but he was excessive in price with them. Its value—according to what is narrated from Ikrimah—was three dinars. They went with him to Moses, peace be upon him, and said: "This man is being excessive with us." He said to them: "Satisfy him in his ownership." So they bought it from him for its weight once, as stated by 'Ubaydah. Al-Suddi said: for ten times its weight (2). And it was said: for its skin filled with dinars. Makki mentioned that this cow descended from heaven and was not of the cows of the earth (3). And Allah knows best.

His saying, Exalted is He: {Now you have come with the truth} means: you have clarified the truth, stated by Qatadah (4). Al-Akhfash (5) related: "They said 'al-aan'" (they said now) by cutting the alif of connection, just as it is said: "Ya Allah" (6). Another version was related: "Qaaloo laan" by retaining the waw. Its equivalent is the reading of the people of Medina and Abu Amr: {Adan al-oola} (7) [An-Najm: 50]. The Kufans read: "Qaaloo al-aan" with the hamza. The reading of the people of Medina is: "Qaaloo laan" by softening the hamza and omitting the waw due to the meeting of two sakin consonants (8). Al-Zajjaj (9) said: "'Al-aan' is built on the fatha because it differs from everything else that has 'alif and lam'; because the alif and lam entered not for reference [to something previously mentioned]. You say: 'You are here until now', so the meaning is 'until this time', so it was built like 'hadha' (this) was built. The noon was given a fatha due to the meeting of two sakin consonants, and it is an expression for what is between the past and the future."

His saying, Exalted is He: {And they almost did not do it} Sibawayh permitted: "Kaada an yaf'ala" (he almost did), in resemblance to "'asa" (perhaps) (10).

(1) In (Th) and (M): "a cow". (2) In (Th): "times". (3) Al-Muharrar al-Wajeez 1/164. Al-Tabari related the mentioned sayings in 2/115-116. (4) Related by Al-Tabari 2/111. (5) Ma'ani al-Qur'an 1/282, and the author quoted it from him via al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/237. (6) Al-Zajjaj in Ma'ani al-Qur'an 1/152 rejected this report and said: "It has no basis in analogy, nor is it permissible in my view." (7) Al-Sab'ah p. 615, and Al-Taysir p. 204. (8) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/236-237. The mentioned reading is from the narration of Warsh from Nafi' of the Seven, and the narration of Ibn Wardan

from Abu Ja'far of the Ten. See Al-Sab'ah p. 615, Al-Taysir p. 35, and Al-Nashr 1/414. (9) Ma'ani al-Qur'an 1/153, and the author quoted it from him via al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/237. (10) Al-Kitab 3/160, and the author quoted it from him via al-Nahhas 1/237.

192 सूरा अल-बकरा: आयत 71

...तुम्हारे लिए एक बछिया अल्लाह के सुपुर्द की, तो जाओ और उसे ले लो। वह गया, और जब गाय ने उसे देखा, तो वह उसके पास आ गई यहाँ तक कि उसने उसके सींग पकड़ लिए। वह जंगली थी, तो वह उसे अपनी माँ की ओर ले जाने लगा। बनी इसराइल उससे मिले और उसकी गाय (1) को उसी विवरण पर पाया जिसका उन्हें आदेश दिया गया था। उन्होंने उससे सौदेबाज़ी की, तो उसने उन पर बहुत ज़्यादा कीमत लगाई। उसकी कीमत - जैसा कि इकरामाह से वर्णित है - तीन दीनार थी। वे उसे मूसा अलैहिस्सलाम के पास ले गए और कहा: "इसने हम पर बहुत ज़्यादा ज़्यादती की है।" उन्होंने उनसे कहा: "उसे उसके मालिकाना हक में संतुष्ट करो।" तो उन्होंने उसे उसके वजन के बराबर कीमत पर एक बार खरीदा, यह उबैदह ने कहा है। सुद्दी ने कहा: उसके वजन के दस गुना पर (2), और कहा गया: दीनारों से भरी उसकी खाल के बदले। मक्की ने उल्लेख किया कि यह गाय स्वर्ग से उतरी थी और पृथ्वी की गायों में से नहीं थी (3)। और अल्लाह बेहतर जानता है।

उनका यह कहना, वह महान है: {अब तुम सच्चाई लेकर आए हो} यानी: तुमने सच्चाई स्पष्ट कर दी है, यह क़तादह (4) ने कहा है। अल-अख़्फ़श (5) ने बताया: "क़ालू अल-आन" वस्ल के अलिफ़ को काटकर, जैसा कि कहा जाता है: "या अल्लाह" (6)। और उन्होंने एक दूसरा तरीका भी बताया: "क़ालू लान" वाव को बरकरार रखते हुए। इसके समान मदीना वालों और अबू अम्र की किराअत है: {आदन अल-ऊला} (7) [अन-नज्म: 50]। कूफियों ने पढ़ा: "क़ालू अल-आन" हमज़ा के साथ। और मदीना वालों की किराअत है: "क़ालू लान" हमज़ा को हल्का करके और दो साकिनों के मिलने के कारण वाव को हटाकर (8)। अज़्-ज़ज्जाज (9) ने कहा: "'अल-आन' फत्ह पर आधारित है क्योंकि यह अलिफ़ और लाम वाले अन्य शब्दों से अलग है; क्योंकि अलिफ़ और लाम बिना किसी पूर्व संदर्भ के आए हैं, आप कहते हैं: 'तुम अब तक यहाँ हो', तो अर्थ है 'इस समय तक', इसलिए यह वैसे ही बनाया गया जैसे 'हाज़ा' (यह) बनाया गया है। और नून को दो साकिनों के मिलने के कारण फत्ह दिया गया है, और यह अतीत और भविष्य के बीच के समय का एक भाव है।"

उनका यह कहना, वह महान है: {और वे इसे करने के करीब नहीं थे} सिबवैह ने अनुमति दी है: "कादा अन यफ़अला" (वह करने ही वाला था), 'असा' (शायद) के सादृश्य पर (10)।

(1) (ज़) और (म) में: "एक गाय"। (2) (ज़) में: "बार"। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/164। अल-तबरी ने उल्लिखित कथनों को 2/115-116 में निकाला है। (4) इसे अल-तबरी 2/111 ने निकाला है। (5)

मानी अल-कुरान 1/282, और लेखक ने इसे उनके माध्यम से अल-नहस से इराब अल-कुरान 1/237 में उद्धृत किया है। (6) अज़्-ज़ज्जाज ने मानी अल-कुरान 1/152 में इस रिवायत को खारिज कर दिया और कहा: "कयास में इसका कोई आधार नहीं है, और न ही यह मेरे विचार में जायज़ है।" (7) अस-सबा पृ. 615, और अत-तयसीर पृ. 204। (8) अल-नहस द्वारा इराब अल-कुरान 1/236-237। उल्लिखित किराअत सात प्रसिद्ध किराअतों में से नफी' से वर्श की रिवायत है, और दस किराअतों में से अबू जाफर से इब्न वरदान की रिवायत है। देखिए अस-सबा पृ. 615, अत-तयसीर पृ. 35, और अन-नश्र 1/414। (9) मानी अल-कुरान 1/153, और लेखक ने इसे उनके माध्यम से अल-नहस से इराब अल-कुरान 1/237 में उद्धृत किया है। (10) अल-किताब 3/160, और लेखक ने इसे उनके माध्यम से अल-नहस 1/237 से उद्धृत किया है।

١٩٢ سورة البقره: آيت ٧١

استودع الله عجلة لك، فاذهب فخذها، فذهب، فلما رأته البقرة جاءت إليه حتى أخذ بقرنيها، وكانت مستوحشة، فجعل يقودها نحو أمه، فلقيه بنو إسرائيل، ووجدوا بقرته (١) على الصفة التي أمروا بها؛ فساموه، فاشتط عليهم، وكان قيمتها - على ما روي عن عكرمة - ثلاثة دنانير، فأتوا به موسى عليه السلام، وقالوا: إن هذا اشتط علينا، فقال لهم : أرضوه في ملكه، فاشتروها منه بوزنها مرة، قاله عبيدة. السدي: بوزنها عشر مرات (٢)، وقيل: بملء مسكها دنانير. وذكر مكي أن هذه البقرة نزلت من السماء ولم تكن من بقر الأرض (٣). فالله أعلم. قوله تعالى: ﴿قَالُوا الْآنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ﴾ أي: بيّنت الحق، قاله قتادة (٤). وحكى الأخفش (٥): «قالوا الآن» قطع ألف الوصل، كما يقال: يا الله (٦). وحكى وجهاً آخر: «قالوا لآن» بإثبات الواو. نظيره قراءة أهل المدينة وأبي عمرو: ﴿عاداً لولى﴾ (٧) [النجم : ٥٠]. وقرأ الكوفيون: «قالوا الآن» بالهمز. وقراءة أهل المدينة: «قالوا لآن» بتخفيف الهمز مع حذف الواو لالتقاء الساكنين (٨). قال الزجاج (٩): «الآن» مبني على الفتح لمخالفته سائر ما فيه الألف واللام؛ لأن الألف واللام دخلتا لغير عهد، تقول: أنت إلى الآن هنا، فالمعنى إلى هذا الوقت، فبنيت كما بني «هذا»، وفتحت النون لالتقاء الساكنين، وهو عبارة عما بين الماضي والمستقبل. قوله تعالى: ﴿وَمَا كَادُوا يَفْعَلُونَ﴾ أجاز سيبويه : كاد أن يفعل، تشبيهاً بعسى (١٠).

(١) في (ظ) و (م) : بقرة. (٢) في (ظ): مرار . (٣) المحرر الوجيز ١٦٤/١ . وأخرج الطبري الأقوال المذكورة ١١٥/٢-١١٦ . (٤) أخرجه الطبري ١١١/٢ . (٥) معاني القرآن ٢٨٢/١ ، ونقله المصنف عنه بواسطة النحاس في إعراب القرآن ٢٣٧/١. (٦) رد الزجاج في معاني القرآن ١٥٢/١ هذه الرواية وقال : ليس له وجه في القياس، ولا هي عندي جائز. (٧) السبعة ص ٦١٥ ، والتيسير ص ٢٠٤. (٨) إعراب القرآن للنحاس ٢٣٦/١ - ٢٣٧. والقراءة المذكورة من رواية ورش عن نافع من السبعة، ورواية

ابن وردان عن أبي جعفر من العشرة . انظر السبعة ص ٦١٥ ، والتيسير ص ٣٥، والنشر ٤١٤/١. (٩) معاني القرآن ١٥٣/١ ، ونقله المصنف عنه بواسطة النحاس في إعراب القرآن ٢٣٧/١. (١٠) الكتاب ١٦٠/٣ ، ونقله المصنف عنه بواسطة النحاس ٢٣٧/١ .

193 Surah Al-Baqarah: Verse 72

It was mentioned at the beginning of the Surah (1). This is an account of their hesitation (2) in slaughtering it and their lack of initiative towards God's command. Al-Qurazi, Muhammad bin Ka'b, said: because of its high price. It was also said: for fear of scandal upon themselves regarding the identification of the killer among them, as stated by Wahb bin Munabbih (3).

The Almighty says: {And [recall] when you slew a man and disputed over it, but Allah was to bring out that which you were concealing (72)}

His saying: {And [recall] when you slew a man and disputed over it} – this speech precedes the beginning of the story. The interpretation is: And when you killed a soul and disputed over it, Moses said: Verily, Allah commands you such and such. This is like His saying: {Praise be to Allah, who has sent down upon His servant the Book and has not made therein any deviance (1) [He has made it] straight} [Al-Kahf: 1]. Meaning: He sent down upon His servant the Book straight, and did not make any deviance in it. There are many similar examples, and we explained it at the beginning of the story (4).

There are two opinions regarding the reason for his murder: One of them: He had a beautiful daughter whom his cousin wanted to marry, but his uncle prevented him, so he killed him and carried him from his village (5) to another village and threw him there. It was also said: he threw him between two villages. The second: He killed him seeking his inheritance, as he was poor, and he accused some of the tribes of killing him (6).

Ikrimah said: The Children of Israel had a mosque with twelve doors, a group of people entering through each door. They found a slain man in one of the tribes, so these accused those, and those (7) accused these. Then they came to Moses disputing among themselves, and he said: {Verily, Allah commands you that you should sacrifice a cow} the verse (8).

(1) 1/334. (2) In (Z) and (M): their slowing down. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/165, and the saying of Muhammad bin Ka'b al-Qurazi was narrated by al-Tabari 2/113 and Ibn Abi Hatim (946), and the saying of Wahb was narrated by al-Tabari 2/117. (4) 2/176-177. (5) In (D) and (Z): village. (6) Tafsir al-Mawardi 1/142. (7) In (M): and these accused. (8) Narrated by Ibn Abd al-Barr in al-Istidhkar 25/204-205.

१९३ सूरह अल-बक़रह: आयत ७२

यह सूरह की शुरुआत में बताया गया था (१)। यह उसे ज़िबह करने में उनकी झिझक (२) और अल्लाह के आदेश के प्रति उनकी पहल की कमी के बारे में एक विवरण है। अल-कुराज़ी, मुहम्मद बिन काब ने कहा: इसकी उच्च कीमत के कारण। और कहा गया: उनमें से कातिल की पहचान के संबंध में अपने ऊपर बदनामी के डर से, जैसा कि वहब बिन मुनब्बिह (३) ने कहा है।

अल्लाह का फरमान है: {और (याद करो) जब तुमने एक व्यक्ति की हत्या कर दी और उसके बारे में झगड़ने लगे, और अल्लाह उसे प्रकट करने वाला था जिसे तुम छिपा रहे थे (७२)}

उसका कहना: {और (याद करो) जब तुमने एक व्यक्ति की हत्या कर दी और उसके बारे में झगड़ने लगे} - यह बात कहानी की शुरुआत से पहले आती है। अनुमान यह है: और जब तुमने एक जान को मार दिया और उसके बारे में विवाद किया, तो मूसा ने कहा: निश्चित रूप से, अल्लाह तुम्हें ऐसा और ऐसा करने का आदेश देता है। यह उसके कथन की तरह है: {सब प्रशंसा अल्लाह के लिए है जिसने अपने बंदे पर किताब उतारी और उसमें कोई टेढ़ापन नहीं रखा (१) [उसे बनाया] सीधा} [अल-कहफ़: १]। अर्थ: उसने अपने बंदे पर किताब सीधी उतारी, और उसमें कोई टेढ़ापन नहीं रखा। इसके समान कई उदाहरण हैं, और हमने कहानी की शुरुआत में इसकी व्याख्या की है (४)।

उसकी हत्या के कारण के बारे में दो मत हैं: पहला: उसकी एक सुंदर बेटी थी, जिससे उसका चचेरा भाई शादी करना चाहता था, लेकिन उसके चाचा ने उसे रोक दिया, तो उसने उसकी हत्या कर दी और उसे उसके गाँव (५) से दूसरे गाँव ले गया और वहाँ फेंक दिया। और कहा गया: उसने उसे दो गाँवों के बीच फेंक दिया। दूसरा: उसने विरासत पाने के लिए उसकी हत्या कर दी, क्योंकि वह गरीब था, और उसने कुछ कबीलों पर उसकी हत्या का आरोप लगाया (६)।

इक्रमाह ने कहा: बनी इसराइल की एक मस्जिद थी जिसके बारह दरवाजे थे, हर दरवाजे से एक कबीला प्रवेश करता था। उन्हें एक कबीले में एक मृत व्यक्ति मिला, तो इन लोगों ने उन पर आरोप लगाया, और उन (७) लोगों ने इन पर। फिर वे विवाद करते हुए मूसा के पास आए, तो उन्होंने कहा: {बेशक, अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि तुम एक गाय ज़िबह करो} आयत (८)।

(१) १/३३४। (२) (ज़) और (म) में: उनकी सुस्ती। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६५, और मुहम्मद बिन काब अल-कुराज़ी का कथन अल-तबरी २/११३ और इब्न अबी हातिम (९४६) द्वारा वर्णित है, और वहब का कथन अल-तबरी २/११७ द्वारा वर्णित है। (४) २/१७६-१७७। (५) (द) और (ज़) में: गाँव। (६)

तफ़सीर अल-मावर्दी १/१४२। (७) (म) में: और इन लोगों ने दावा किया। (८) इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिधकार २५/२०४-२०५ में इसका उल्लेख किया है।

۱۹۳ سورة البقرہ: آیت ۷۲

یہ سورت کے آغاز میں گزر چکا ہے (۱)۔ اور یہ اسے ذبح کرنے میں ان کی ہچکچاہٹ (۲) اور اللہ کے حکم کی طرف ان کی کم پیش قدمی کی خبر ہے۔ القُرظی محمد بن کعب نے کہا: اس کی قیمت کی گرانی کی وجہ سے، اور کہا گیا: اپنے درمیان قاتل کی معرفت پر رسوائی کے خوف سے، یہ وہب بن منبہ (۳) نے کہا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿اور جب تم نے ایک شخص کو قتل کر دیا، پھر اس کے بارے میں ایک دوسرے پر ڈالنے لگے، اور اللہ ظاہر کرنے والا تھا جو کچھ تم چھپا رہے تھے (۷۲)﴾

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿اور جب تم نے ایک شخص کو قتل کیا پھر اس میں ایک دوسرے پر ڈالنے لگے﴾ یہ کلام قصے کے آغاز پر مقدم ہے۔ تقدیر یہ ہے: اور جب تم نے ایک جان کو قتل کیا اور اس میں جھگڑنے لگے، تو موسیٰ نے کہا: بے شک اللہ تمہیں اس بات کا حکم دیتا ہے۔ اور یہ اس کے ارشاد کی طرح ہے: ﴿تمام تعریفیں اللہ ہی کے لیے ہیں جس نے اپنے بندے پر کتاب نازل کی اور اس میں کوئی کجی نہ رکھی (۱) ٹھیک تلی ہوئی﴾ [الکہف: ۱] یعنی: اپنے بندے پر کتاب درست نازل کی، اور اس میں کوئی کجی نہیں رکھی، اور اس جیسی بہت سی مثالیں ہیں، اور ہم قصے کے آغاز میں اسے بیان کر چکے ہیں (۴)۔

اور اس کے قتل کے سبب میں دو قول ہیں: پہلا: اس کی ایک خوبصورت بیٹی تھی، اس کے چچا زاد نے اس سے نکاح کرنا چاہا، تو اس کے چچا نے اسے روک دیا، چنانچہ اس نے اسے قتل کر دیا اور اسے اپنی بستی (۵) سے دوسری بستی میں لے گیا اور وہاں پھینک دیا، اور کہا گیا: اسے دو بستیوں کے درمیان پھینک دیا۔ دوسرا: اسے وراثت کی طلب میں قتل کیا، کیونکہ وہ فقیر تھا، اور اس کے قتل کا دعویٰ بعض اسباط (۶) پر کر دیا۔

عکرمہ نے کہا: بنی اسرائیل کی ایک مسجد تھی جس کے بارہ دروازے تھے، ہر دروازے سے ایک قوم داخل ہوتی تھی، تو انہوں نے اسباط میں سے ایک سبط میں ایک مقتول پایا، چنانچہ ان لوگوں نے ان پر دعویٰ کیا اور ان (۷) لوگوں نے ان پر، پھر وہ موسیٰ علیہ السلام کے پاس جھگڑتے ہوئے آئے، تو انہوں نے فرمایا: ﴿بے شک اللہ تمہیں حکم دیتا ہے کہ تم ایک گائے ذبح کرو﴾ الآیہ (۸)۔

(۱) ۳۳۴/۱۔ (۲) (ز) اور (م) میں: تبیطہم۔ (۳) المحرر الوجیز ۱۶۵/۱، اور محمد بن کعب القرظی کا قول طبری ۱۱۳/۲ اور ابن ابی حاتم (۹۴۶) نے روایت کیا ہے، اور وہب کا قول طبری ۱۱۷/۲ نے روایت کیا ہے۔ (۴) ۱۷۶/۲ - ۱۷۷۔ (۵) (د) اور (ز) میں: بستی۔ (۶) تفسیر الماوردی ۱۴۲/۱۔ (۷) (م) میں: اور ان لوگوں نے دعویٰ کیا۔ (۸) ابن عبد البر نے الاستذکار ۲۵/ ۲۰۴-۲۰۵ میں اسے ذکر کیا ہے۔

194 Surah Al-Baqarah: Verse 72

The meaning of "id-dāra'tum": you disagreed and contended, as stated by Mujahid(1). Its origin is "tadāra'tum", then the 'ta' was merged into the 'dal', and starting with a merged letter is not permissible because it is quiescent (sākin), so the 'hamzat al-wasl' (joining hamza) was added.

"And Allah was to bring forth" is a subject and predicate. "What you were" - "ma"(2): is in the position of the accusative (nasb) by "mukhrij" (bring forth); and it is permissible to omit the nunation (tanwin) for genitive construction (idafa)(3). "Concealing" is a sentence in the position of the predicate of "kana" (were), and the pronoun referring back is omitted, the estimation being: you were concealing it.

Based on the statement that he killed him seeking his inheritance, an intentional killer does not inherit(4) from that time on; this was said by 'Abidah al-Salmani(5).

Ibn Abbas said: This man killed his uncle to inherit from him(6). Ibn Atiyah said: And our Sharia came with the likes of it. Malik, may Allah have mercy on him, narrated in his "Muwatta" that the story of Uhayhah ibn al-Julah regarding his uncle was the reason why a killer does not inherit, then Islam confirmed that, just as it confirmed many occurrences of the pre-Islamic era (Jahiliyyah)(7).

There is no dispute among scholars that an intentional killer does not inherit from the blood money (diyah) nor from the property, except for a group that deviated from the majority, all of whom are people of innovation. An accidental killer inherits from the property, but does not inherit from the blood money according to the opinion of Malik, al-Awza'i, Abu Thawr, and al-Shafi'i, because he is not suspected of killing him to inherit and take his money.

Sufyan al-Thawri, Abu Hanifah and his companions, and al-Shafi'i in another opinion of his, said: The killer, whether intentional or accidental, inherits nothing from the property or the blood money. This is the opinion of Shurayh, Tawus, al-Sha'bi, and al-Nakha'i. Al-Sha'bi narrated it from 'Umar, 'Ali, and Zaid; they said: The killer inherits nothing, whether intentional or accidental. Both opinions were narrated from Mujahid. A group from Basra said: An accidental killer inherits.

---

(1) Reported by al-Tabari 2/120, and Ibn Abi Hatim (751). (2) The word "ma" is from (d) and (z). (3) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/238. (4) In (z): a killer intentionally. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/166, reported by al-Tabari 2/76-77, Ibn Abi Hatim (695), and al-

Bayhaqi 6/220-221. (6) Reported by al-Tabari at length 2/121-122. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/166, and Malik's statement in al-Muwatta 2/868.

194 सूरा अल-बक़रह: आयत 72

"इद्दाराअतुम" का अर्थ है: तुम असहमत हुए और लड़े, जैसा कि मुजाहिद(1) ने कहा है। इसका मूल "तदाराअतुम" है, फिर 'ता' को 'दाल' में मिला दिया गया, और मिलाए हुए अक्षर से शुरू करना जायज़ नहीं है क्योंकि वह साकिन (मूक) है, इसलिए 'हमज़त अल-वस्ल' (जोड़ने वाला हमज़ा) जोड़ा गया।

"और अल्लाह निकालने वाला था" मुब्तदा (विषय) और ख़बर (विधेय) है। "जो तुम थे" - "मा"(2): "मुख़्रिज" (निकालने वाला) के कारण नसब (कर्मकारक) की स्थिति में है; और इज़ाफ़त के लिए तनवीन को हटाना जायज़ है(3)। "छिपाते थे" एक वाक्य है जो "काना" (थे) की ख़बर के स्थान पर है, और वापस संदर्भित सर्वनाम हटा दिया गया है, अनुमान यह है: तुम उसे छिपाते थे।

इस कथन के आधार पर कि उसने अपनी विरासत पाने के लिए उसकी हत्या की, एक जानबूझकर हत्या करने वाला उस समय से विरासत नहीं पाता है(4); यह आबिदा अल-सलमानी(5) द्वारा कहा गया था।

इब्न अब्बास ने कहा: इस आदमी ने अपने चाचा की हत्या कर दी ताकि वह उनका वारिस बन सके(6)। इब्न अतिया ने कहा: और हमारी शरीयत भी इसी तरह की चीज़ों के साथ आई है। मालिक (अल्लाह उन पर रहम करे) ने अपनी "मुवत्ता" में उल्लेख किया है कि अपने चाचा के संबंध में उहैहा इब्न अल-जुलाह की कहानी ही वह कारण थी कि हत्यारा विरासत नहीं पाता, फिर इस्लाम ने इसकी पुष्टि की, जैसे कि उसने जाहिलियत की कई घटनाओं की पुष्टि की थी(7)।

विद्वानों के बीच इस बात पर कोई विवाद नहीं है कि जानबूझकर हत्या करने वाला न तो दियत (रक्त धन) से और न ही संपत्ति से विरासत पाता है, सिवाय एक समूह के जो बहुमत से अलग हो गया, वे सभी बिदअती (नवाचारी) हैं। आकस्मिक हत्यारा संपत्ति से विरासत पाता है, लेकिन मालिक, अल-औज़ाई, अबू थौर और अल-शाफ़ई के विचार के अनुसार वह दियत से विरासत नहीं पाता है, क्योंकि उस पर विरासत पाने और उसका पैसा लेने के लिए उसे मारने का संदेह नहीं है।

सुफ़ियान अल-थौरी, अबू हनीफ़ा और उनके साथियों, और अल-शाफ़ई ने अपने एक अन्य विचार में कहा: हत्यारा, चाहे जानबूझकर हो या आकस्मिक, संपत्ति या दियत से कुछ भी विरासत में नहीं पाता है। यह शुरैह, तावुस, अल-शा'बी और अल-नख़ई का विचार है। अल-शा'बी ने इसे उमर, अली और ज़ैद से वर्णित किया है; उन्होंने कहा: हत्यारा कुछ भी विरासत में नहीं पाता, चाहे वह जानबूझकर हो

या आकस्मिक। मुजाहिद से दोनों विचार वर्णित हैं। बसरा के एक समूह ने कहा: आकस्मिक हत्यारा विरासत पाता है।

---

(1) अल-तबरी 2/120, और इब्न अबी हातिम (751) द्वारा वर्णित। (2) शब्द "मा" (द) और (ज़) से है। (3) अल-नहहास द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/238। (4) (ज़) में: एक हत्यारा जानबूझकर। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166, अल-तबरी 2/76-77, इब्न अबी हातिम (695), और अल-बैहक़ी 6/220-221 द्वारा वर्णित। (6) अल-तबरी द्वारा विस्तार से 2/121-122 वर्णित। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166, और मुवत्ता 2/868 में मालिक का कथन।

۱۹۴ سورہ البقرہ: آیت ۷۲

اور "ادَّارَأْتُمْ" کے معنی ہیں: تم نے اختلاف کیا اور نزاع کیا، یہ مجاہد(۱) نے کہا ہے۔ اس کی اصل "تدارأتم" ہے، پھر 'تا' کو 'دال' میں مدغم کر دیا گیا، اور مدغم حرف سے ابتدا جائز نہیں ہے کیونکہ وہ ساکن ہے، اس لیے الفِ وصل زیادہ کیا گیا۔

"وَاللَّهُ مُخْرِجٌ" مبتدا اور خبر ہے۔ "مَا كُنْتُمْ" میں "ما"(۲): "مُخْرِج" کی وجہ سے محلِ نصب میں ہے؛ اور اضافت کی وجہ سے تنوین کا حذف کرنا جائز ہے(۳)۔ "تَكْتُمُونَ" جملہ "كان" کی خبر کے محل میں ہے، اور ضمیرِ عائد محذوف ہے، تقدیر یہ ہے: تم اسے چھپاتے تھے۔

اس قول کی بنا پر کہ اس نے وراثت کے لالچ میں اسے قتل کیا، تو اس وقت سے عمداً (جان بوجھ کر) قتل کرنے والا وارث نہیں ہوتا(۴)؛ یہ عبیدہ السلمانی(۵) نے کہا ہے۔

ابن عباس نے کہا: اس شخص نے اپنے چچا کو قتل کیا تاکہ ان کا وارث بنے(۶)۔ ابن عطیہ نے کہا: اور ہماری شریعت میں بھی اسی طرح کا حکم آیا ہے۔ مالک رحمہ اللہ نے اپنی "موطا" میں ذکر کیا ہے کہ اپنے چچا کے بارے میں احیحہ بن الجلاح کا قصہ ہی اس بات کا سبب تھا کہ قاتل وارث نہ بنے، پھر اسلام نے اس کی توثیق کی، جیسا کہ اس نے زمانہ جاہلیت کے بہت سے واقعات کی توثیق کی تھی(۷)۔

علماء کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے کہ عمداً قتل کرنے والا نہ دیت میں سے وارث ہوتا ہے اور نہ مال میں سے، سوائے ایک گروہ کے جو جمہور سے الگ ہوا، وہ سب اہل بدعت ہیں۔ اور خطأً (غلطی سے) قتل کرنے والا مال میں سے وارث ہوتا ہے، لیکن دیت میں سے وارث

نہیں ہوتا، یہ امام مالک، اوزاعی، ابو ثور اور شافعی کا قول ہے، کیونکہ اس پر یہ تہمت نہیں لگائی جا سکتی کہ اس نے وراثت پانے اور مال لینے کے لیے قتل کیا ہے۔

سفیان ثوری، ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب، اور شافعی نے اپنے ایک دوسرے قول میں کہا: قاتل، خواہ عمداً ہو یا خطأً، مال اور دیت میں سے کچھ بھی وراثت نہیں پاتا۔ یہ شریح، طاؤس، شعبی اور نخعی کا قول ہے۔ شعبی نے اسے عمر، علی اور زید سے روایت کیا ہے؛ انہوں نے کہا: قاتل وارث نہیں ہوتا، نہ عمداً اور نہ خطأً۔ مجاہد سے دونوں قول مروی ہیں۔ بصریوں کی ایک جماعت نے کہا: خطأً قتل کرنے والا وارث ہوتا ہے۔

---

(۱) اسے طبری ۱۲۰/۲ اور ابن ابی حاتم (۷۵۱) نے روایت کیا ہے۔ (۲) لفظ "ما" نسخہ (د) اور (ظ) سے ہے۔ (۳) اعراب القرآن للنحاس ۲۳۸/۱۔ (۴) نسخہ (ظ) میں ہے: قاتلٌ عمداً۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۶۶/۱، اسے طبری ۷۶/۲-۷۷، ابن ابی حاتم (۶۹۵)، اور بیہقی ۲۲۰/۶-۲۲۱ نے روایت کیا ہے۔ (۶) اسے طبری نے تفصیل سے ۱۲۱/۲-۱۲۲ روایت کیا ہے۔ (۷) المحرر الوجیز ۱۶۶/۱، اور امام مالک کا قول الموطا ۸۶۸/۲ میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 73 195

...from the blood money and from the wealth entirely, as related by Abu Umar(1). And Malik's opinion is more correct, as will be explained in the verse of inheritance(2), God willing.

Allah Almighty says: {So We said, "Strike him with part of it." Thus does Allah bring the dead to life, and He shows you His signs that you may reason.} [Al-Baqarah: 73]

Allah Almighty says: {Strike him with part of it}: It was said: with the tongue, because it is the instrument of speech. And it was said: with the tailbone (coccyx), for in it the creation of man is assembled(3). And it was said: with the thigh. And it was said: with one of its bones, and the certain thing is that it was one of its parts. When he was struck with it, he came back to life, informed about his killer, then returned to being dead as he was.

Issue: Malik, may Allah have mercy on him, in the narration of Ibn Wahb and Ibn Al-Qasim, used the words of the murdered person: "My blood is with so-and-so" or "So-and-so killed me" as evidence for the validity of the ruling by Qasama (oath). Al-Shafi'i and the majority of scholars forbade this; they said: and this is correct; because the words of the murdered person: "My blood is with so-and-so" or "So-and-so killed me" is news that could be true or false. There is no dispute that the blood of the accused is inviolable, its shedding is prohibited except with certainty, and there is no certainty with possibility, so the consideration of the murdered person's statement: "My blood is with so-and-so" is void. As for the one killed from the Children of Israel, it was a miracle, and Allah Almighty informed that He would bring him back to life, and that includes informing about his killer as certain news that does not admit possibility, so they are different.

Ibn al-Arabi said: The miracle was in bringing him back to life, so when he became alive, his speech was like the speech of all other people in acceptance and rejection. This is a subtle art of knowledge that only Malik noticed, and it is not in the Qur’an that if he spoke, his truthfulness was mandatory, so perhaps he ordered them to take the oath (Qasama) with him. Al-Bukhari, Al-Shafi'i, and a group of scholars deemed that far-fetched and said: How can his word be accepted regarding blood when his word is not accepted regarding a dirham(4)?

---

(1) Al-Istidhkar 25/205-209. (2) In the commentary on the verse: {Allah instructs you concerning your children} [An-Nisa: 11]. (3) In (D) and (Z): is assembled. (4) Ahkam al-

Qur'an 1/24-25. This statement is clarified by Ibn Abd al-Barr in al-Istidhkar 25/326: The scholars have reached a consensus that the statement of the murdered person at his death: "My blood is with so-and-so"; if he said at that time: "I have a claim on him for this, or on someone else, for a dirham or more," his statement regarding the dirham would not be accepted.

सूरा अल-बकरा: आयत 73 195

...दीयत (खून का पैसा) से और पूरे धन से, जैसा कि अबू उमर (1) ने वर्णन किया है। और मलिक का कथन अधिक सही है, जैसा कि विरासत की आयत (2) में अल्लाह ने चाहा तो स्पष्ट किया जाएगा।

अल्लाह तआला का फरमान है: {तो हमने कहा, "उस (गाय) के एक टुकड़े से उसे मारो।" इसी प्रकार अल्लाह मुर्दों को जीवित करता है और तुम्हें अपनी निशानियाँ दिखाता है ताकि तुम समझ सको।} [अल-बकरा: 73]

अल्लाह तआला का फरमान: {उसे उसके एक हिस्से से मारो}: कहा गया: ज़बान से; क्योंकि वह बोलने का यंत्र है। और कहा गया: पूंछ की हड्डी (कोक्सीक्स) से; क्योंकि इसी में मनुष्य की रचना संयोजित (3) होती है। और कहा गया: जांघ से। और कहा गया: उसकी हड्डियों में से एक हड्डी से, और निश्चित बात यह है कि वह उसके अंगों में से एक अंग था। जब उसे उससे मारा गया, तो वह जीवित हो गया, और उसने अपने कातिल के बारे में बताया, फिर वह फिर से मृत हो गया जैसा कि वह पहले था।

मसला (मुद्दा): इब्न वहब और इब्न अल-कासिम की रिवायत में मलिक (रह.) ने कसम (कसामा) के आधार पर फैसले की वैधता के लिए मारे गए व्यक्ति के शब्दों: "मेरा खून फलां के पास है," या "फलां ने मुझे मार डाला" से दलील दी है। और अल-शाफ़ई और विद्वानों के बहुमत ने इसे मना किया है; उन्होंने कहा: और यही सही है; क्योंकि मारे गए व्यक्ति का यह कहना: "मेरा खून फलां के पास है," या "फलां ने मुझे मार डाला," एक ऐसी खबर है जिसमें सच्चाई और झूठ दोनों की संभावना है। और इसमें कोई विवाद नहीं है कि जिस पर आरोप लगाया गया है उसका खून पवित्र (रक्षित) है, निश्चितता के बिना उसे बहाना मना है, और संभावना के साथ निश्चितता नहीं होती, इसलिए मारे गए व्यक्ति के इस कथन का विचार: "मेरा खून फलां के पास है" व्यर्थ हो गया। जहाँ तक बनी इसराइल के मारे गए व्यक्ति का सवाल है, तो वह एक चमत्कार था, और अल्लाह तआला ने सूचित किया कि वह उसे जीवित करेगा, और उसमें उसके कातिल के बारे में निश्चित जानकारी देना शामिल है जिसमें कोई संभावना नहीं है, इसलिए दोनों मामले अलग हैं।

इब्न अल-अरबी ने कहा: चमत्कार उसे जीवित करने में था, फिर जब वह जीवित हो गया, तो उसकी बातचीत स्वीकार करने और अस्वीकार करने में अन्य सभी लोगों की बातचीत की तरह थी। यह ज्ञान की एक सूक्ष्म कला है जिसे केवल मलिक ने ही पहचाना, और कुरान में यह नहीं है कि यदि उसने

बताया तो उसकी सच्चाई अनिवार्य थी, तो शायद उन्होंने उसके साथ कसम (कसामा) का आदेश दिया हो। अल-बुखारी, अल-शाफ़ई और विद्वानों के एक समूह ने इसे दूर की बात माना और कहा: खून के मामले में उसकी बात कैसे स्वीकार की जा सकती है जबकि एक दिरहम (4) के मामले में उसकी बात स्वीकार नहीं की जाती?

---

(1) अल-इस्तिज़कार 25/205-209। (2) अल्लाह तआला के इस कथन की व्याख्या में: {अल्लाह तुम्हें तुम्हारी संतानों के बारे में वसीयत (निर्देश) करता है} [अन-निसा: 11]। (3) (द) और (ज़) में: संयोजित किया जाता है। (4) अहकाम अल-कुरान 1/24-25। और इस बात को इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिज़कार 25/326 में स्पष्ट किया है: विद्वानों का इस पर आम सहमति (इज्मा) है कि मारे गए व्यक्ति का अपनी मृत्यु के समय यह कहना: "मेरा खून फलां के पास है"; यदि उसने उस समय कहा होता: "इसके साथ ही मेरा उस पर, या किसी और पर, एक दिरहम या उससे अधिक का दावा है," तो दिरहम के बारे में उसकी बात स्वीकार नहीं की जाती।

سورة البقرہ: آیت 73 195

...دیت سے اور پورے مال سے، جیسا کہ اسے ابو عمر (1) نے بیان کیا ہے۔ اور مالک کا قول زیادہ صحیح ہے، جیسا کہ ان شاء اللہ وراثت کی آیت (2) میں اس کی وضاحت آئے گی۔

ارشاد باری تعالیٰ ہے: ﴿فَقُلْنَا اضْرِبُوهُ بِبَعْضِهَا كَذَٰلِكَ يُحْيِي اللَّهُ الْمَوْتَى وَيُرِيكُمْ آيَاتِهِ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُونَ﴾ [البقرہ: 73]

قول باری تعالیٰ: ﴿اضْرِبُوهُ بِبَعْضِهَا﴾ (اسے اس کے ایک حصے سے مارو): کہا گیا: زبان سے؛ کیونکہ وہ کلام کا آلہ ہے۔ اور کہا گیا: عجب الذنب (ریڑھ کی ہڈی کا نچلا حصہ) سے؛ کیونکہ اسی میں انسان کی تخلیق کی ترکیب (3) رکھی گئی ہے۔ اور کہا گیا: ران سے، اور کہا گیا: اس کی ہڈیوں میں سے کسی ہڈی سے، اور یقینی بات یہ ہے کہ وہ اس کے اعضاء میں سے کوئی عضو تھا۔ جب اسے اس سے مارا گیا تو وہ زندہ ہو گیا، اور اس نے اپنے قاتل کے بارے میں بتایا، پھر وہ دوبارہ مردہ ہو گیا جیسا کہ پہلے تھا۔

مسئلہ: امام مالک رحمہ اللہ نے ابن وہب اور ابن القاسم کی روایت میں قسامہ (قسم) کی صحت پر مقتول کے اس قول سے استدلال کیا ہے: "میرا خون فلاں کے پاس ہے" یا "فلاں نے مجھے قتل کیا"۔ جبکہ امام شافعی اور جمہور علماء نے اس سے منع کیا ہے؛ انہوں نے کہا: اور یہی صحیح ہے؛ کیونکہ مقتول کا یہ کہنا کہ "میرا خون فلاں کے پاس ہے" یا "فلاں نے مجھے مارا"، ایسی خبر ہے جس میں سچ اور جھوٹ دونوں کا احتمال ہے۔ اور اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ جس پر دعویٰ کیا گیا اس کا خون معصوم (محفوظ) ہے، یقین کے بغیر اس کی اباحت ممنوع ہے، اور احتمال کے ساتھ یقین نہیں ہوتا، لہٰذا مقتول کے قول کا اعتبار باطل ہو گیا کہ "میرا خون فلاں کے پاس ہے"۔ رہی بات بنی اسرائیل کے مقتول کی، تو وہ ایک معجزہ تھا، اور اللہ تعالیٰ نے خبر دی کہ

وہ اسے زندہ کرے گا، اور اس میں اس کے قاتل کی ایسی یقینی خبر دینا شامل ہے جس میں کوئی احتمال نہیں، لہٰذا دونوں صورتیں الگ الگ ہیں۔

ابن العربی نے کہا: معجزہ اسے زندہ کرنے میں تھا، پھر جب وہ زندہ ہو گیا تو اس کا کلام قبول کرنے اور رد کرنے میں دوسرے تمام لوگوں کے کلام کی طرح تھا۔ یہ علم کا ایک باریک فن ہے جس کا ادراک صرف امام مالک ہی کر سکے، اور قرآن میں یہ نہیں ہے کہ جب اس نے خبر دی تو اس کی تصدیق واجب تھی، تو شاید انہوں نے اس کے ساتھ قسامہ کا حکم دیا ہو۔ امام بخاری، امام شافعی اور علماء کی ایک جماعت نے اسے بعید قرار دیا اور کہا: خون کے معاملے میں اس کا قول کیسے قبول کیا جا سکتا ہے جبکہ ایک درہم (4) کے معاملے میں اس کا قول قبول نہیں کیا جاتا۔

---

(1) الاستذکار 25/ 205-209۔ (2) اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفسیر میں: ﴿يُوصِيكُمُ اللَّهُ فِي أَوْلادِكُمْ﴾ [النساء: 11]۔ (3) (د) اور (ظ) میں: 'ترکب' (ترکیب پاتی ہے)۔ (4) احکام القرآن 1/24-25۔ اور اس بات کی وضاحت ابن عبد البر نے الاستذکار 326/25 میں کی ہے: علماء کا اس پر اجماع ہے کہ مقتول کا اپنی موت کے وقت یہ کہنا کہ "میرا خون فلاں کے پاس ہے"؛ اگر وہ اس وقت یہ کہتا کہ "میرا اس پر یا کسی اور پر اس کے ساتھ ساتھ ایک درہم یا اس سے زیادہ کا دعویٰ ہے"، تو درہم کے بارے میں اس کا قول قبول نہ کیا جاتا۔

Page 196 Surat al-Baqarah: Verse 73

Issue: The scholars differed regarding the ruling on al-Qasama (compulsory oath in cases of unsolved murder). It was reported from Salim (1), Abu Qilaba, Umar ibn Abd al-Aziz, and al-Hakam ibn Utaybah (2) that they refrained from ruling based on it. Al-Bukhari inclined towards this view (3); because he presented the hadith of al-Qasama in a context other than its appropriate place (4).

The majority said: Ruling by al-Qasama is established from the Prophet ﷺ, then they differed on the manner of ruling by it. A group said: The claimants start with the oaths; if they swear, they are entitled [to blood-money or retribution], and if they refrain, the defendants swear fifty oaths and are cleared. This is the view of the people of Medina, al-Layth, al-Shafi'i, Ahmad, and Abu Thawr. It is the implication of the hadith of Huwaysah and Muhayyisah (5), which was compiled by the Imams: Malik and others (6).

Another group went to the view that the oaths start with the defendants, so they swear and are cleared; this was reported from Umar ibn al-Khattab, al-Sha'bi, and al-Nakha'i, and it was the view of al-Thawri and the Kufans. They argued with the hadith of Sa'id (7) ibn Ubayd, from Bashir ibn Yasar, in which it says: "He started with the oaths (8) of the defendants, and they were the Jews" (9). And from what Abu Dawud (10) narrated from al-Zuhri, from Abu Salama ibn Abd al-Rahman...

Footnotes: (1) He is the son of Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them), the Mufti of Medina, Abu Umar, died in the year 106 AH. Al-Siyar 4/457. (2) In the copies: "Uyaynah," which is an error. (3) Ikmal al-Mu'lim 5/448. (4) Al-Bukhari cited the hadith of al-Qasama under Jizya, Manners (Adab), and Rulings (Ahkam), under numbers: (3173), (6143), and (7192), in which the claimants start the oath of Qasama. He also cited narration (6898) in the chapter of Qasama from the narration of Sa'id ibn Ubayd (which the author will mention) from Bashir ibn Yasar, whereby al-Bukhari points to favoring the narration of Sa'id ibn Ubayd in this chapter. (5) Huwaysah ibn Mas'ud ibn Ka'b ibn 'Amir al-Ansari, witnessed Uhud, al-Khandaq, and all other battles. His brother Muhayyisah was younger than him and embraced Islam before him. Al-Isabah 2/303 and 9/142. (6) Narrated by Malik 2/877-878, Ahmad (16091), al-Bukhari in the previously mentioned places, and Muslim (1669):(2). (7) In (M): "Shu'bah," which is an error. (8) In (D): "with oaths." (9) His saying: "He started with the oaths of the defendants," is not the exact wording of Sa'id ibn Ubayd's narration, as implied by the context of the author's words, but rather its meaning. Al-Bukhari

recorded Sa'id's narration (6898), and Muslim also recorded it (1669):(5), but he did not mention its wording. This is among the criticisms against Muslim as mentioned by Qadi 'Iyad in Ikmal al-Mu'lim 5/46, where he said: Muslim did not point out the disagreement - meaning Sa'id's - in starting with the defendants. (10) In his Sunan (4526). Also narrated by Ibn Abd al-Barr in al-Istidhkar 25/306, and al-Tamhid 23/207.

पृष्ठ १९६ सूरह अल-बक़रह: आयत ७३

मसला: कसामा (संदिग्ध हत्या के मामले में शपथ) के आधार पर फैसला करने के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। सालिम (१), अबू क़िलाबा, उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ और अल-हकम बिन उताइबा (२) से यह रिवायत है कि उन्होंने इसके आधार पर फैसला करने से परहेज किया। अल-बुखारी का झुकाव भी इसी ओर था (३); क्योंकि उन्होंने कसामा की हदीस को उसके उचित स्थान के अलावा अन्य स्थान पर प्रस्तुत किया है (४)।

बहुसंख्यक (जम्हुर) ने कहा: कसामा द्वारा फैसला करना नबी ﷺ से प्रमाणित है, फिर उन्होंने इसके तरीके में मतभेद किया। एक समूह ने कहा: इसमें वादी (दावा करने वाले) शपथ के साथ शुरुआत करते हैं, यदि वे शपथ लेते हैं तो वे हकदार हो जाते हैं, और यदि वे पीछे हट जाते हैं, तो प्रतिवादी पचास शपथ लेते हैं और बरी हो जाते हैं। यह मदीना के लोगों, अल-लैथ, अल-शाफ़ई, अहमद और अबू थौर का मत है। यह हुवैसा और मुहय्यिसा की हदीस (५) का तकाजा है, जिसे इमामों: मालिक और अन्य ने संकलित किया है (६)।

एक अन्य समूह का मत है कि शपथ की शुरुआत प्रतिवादियों से होती है, वे शपथ लेते हैं और बरी हो जाते हैं; यह उमर बिन अल-खत्ताब, अल-शाबी और अल-नखई से रिवायत है, और यही अल-थौरी और कूफ़ा वालों का भी मत है। उन्होंने सईद (७) बिन उबैद की हदीस से दलील दी है, जो बशीर बिन यसार से है, जिसमें कहा गया है: "उन्होंने प्रतिवादियों की शपथ (८) से शुरुआत की, और वे यहूदी थे" (९)। और जैसा कि अबू दाऊद (१०) ने अल-जुहरी से, उन्होंने अबू सलमा बिन अब्दुर्रहमान से रिवायत किया है...

पादलेख (Footnotes): (१) वह अब्दुल्ला बिन उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के पुत्र हैं, मदीना के मुफ्ती, अबू उमर, जिनका निधन १०६ हिजरी में हुआ। अल-सियर ४/४५७। (२) प्रतियों में: "उयैना", जो एक गलती है। (३) इकमल अल-मुल्लिम ५/४४८। (४) अल-बुखारी ने कसामा की हदीस जिज़्या, अदब और अहकाम के तहत संख्या: (३१७३), (६१४३) और (७१९२) में उद्धृत की है, जिसमें वादी कसामा की शपथ शुरू करते हैं। उन्होंने कसामा के अध्याय में सईद बिन उबैद की रिवायत (६८९८) भी दी है (जिसका उल्लेख लेखक करेंगे) बशीर बिन यसार से, इसके द्वारा बुखारी इस अध्याय में सईद बिन उबैद की रिवायत को प्राथमिकता देने की ओर इशारा करते हैं। (५) हुवैसा बिन मसूद बिन काब बिन आमिर अल-अंसारी, उन्होंने उहुद, खंदक और अन्य सभी युद्धों में भाग लिया। उनका भाई

मुहय्यिसा उनसे छोटा था और उसने उनसे पहले इस्लाम स्वीकार किया था। अल-इसाबा २/३०३ और ९/१४२। (६) इसे मालिक ८७७/२-८७८, अहमद (१६०९१), अल-बुखारी ने पहले बताए गए स्थानों पर और मुस्लिम (१६६९): (२) ने निकाला है। (७) (म) में: "शुबा", जो एक गलती है। (८) (द) में: "शपथों के साथ"। (९) उनका कहना: "उन्होंने प्रतिवादियों की शपथ से शुरुआत की," सईद बिन उबैद की रिवायत के वास्तविक शब्द नहीं हैं, जैसा कि लेखक की बात के संदर्भ से पता चलता है, बल्कि यह इसका अर्थ है। अल-बुखारी ने सईद की रिवायत (६८९८) निकाली है, और मुस्लिम ने भी इसे निकाला है (१६६९): (५), लेकिन उन्होंने इसके शब्दों का उल्लेख नहीं किया। यह उन चीजों में से है जिनकी मुस्लिम पर आलोचना की गई है जैसा कि काजी अयाद ने इकमल अल-मुल्लिम ५/४६ में उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: मुस्लिम ने प्रतिवादियों से शुरुआत करने में सईद की असहमति पर ध्यान नहीं दिलाया। (१०) अपनी सुनन (४५२६) में। इसे इब्न अब्दुल बर्र ने अल-इस्तिधकार २५/३०६ और अल-तमहीद २३/२०७ में भी निकाला है।

صفحہ 196 سورۃ البقرہ: آیت 73

مسئلہ: قسامہ (مشتبہ قتل میں حلف) کے ذریعے حکم کرنے کے بارے میں علماء کا اختلاف ہے۔ سالم(1)، ابو قلابہ، عمر بن عبدالعزیز، اور الحکم بن عتیبہ(2) سے مروی ہے کہ انہوں نے اس کے ذریعے حکم کرنے سے توقف (گریز) کیا۔ بخاری(3) کا میلان بھی اسی طرف تھا؛ کیونکہ وہ قسامہ کی حدیث کو اس کے اصل مقام کے علاوہ لائے ہیں(4)۔

جمہور نے کہا: قسامہ کے ذریعے حکم کرنا نبی ﷺ سے ثابت ہے، پھر انہوں نے اس کی کیفیت میں اختلاف کیا۔ ایک گروہ نے کہا: اس میں مدعی (دعویٰ کرنے والے) قسموں سے آغاز کریں گے، اگر انہوں نے قسم کھا لی تو وہ حقدار ہو جائیں گے، اور اگر وہ پیچھے ہٹ گئے تو مدعیٰ علیہم (جن پر دعویٰ کیا گیا ہے) پچاس قسمیں کھائیں گے اور بری ہو جائیں گے۔ یہ اہل مدینہ، لیث، شافعی، احمد، اور ابو ثور کا قول ہے۔ اور یہی حویصہ اور محیصہ(5) کی حدیث کا تقاضا ہے، جسے ائمہ: مالک اور دیگر نے روایت کیا ہے(6)۔

ایک اور گروہ اس طرف گیا ہے کہ قسموں کا آغاز مدعیٰ علیہم سے ہو گا، پس وہ قسم کھائیں گے اور بری ہو جائیں گے؛ یہ عمر بن الخطاب، شعبی، اور نخعی سے مروی ہے، اور اسی کے ثوری اور اہل کوفہ قائل ہیں۔ انہوں نے سعید(7) بن عبید کی حدیث سے استدلال کیا، جو بشیر بن یسار سے ہے، جس میں ہے: "پس انہوں نے مدعیٰ علیہم کی قسموں(8) سے آغاز کیا، اور وہ یہودی تھے"(9)۔ اور اس روایت سے جسے ابوداؤد(10) نے زہری سے، انہوں نے ابوسلمہ بن عبدالرحمن سے روایت کیا...

حواشی: (1) وہ عبداللہ بن عمر رضی اللہ عنہما کے بیٹے ہیں، مدینہ کے مفتی، ابو عمر، وفات سن 106 ہجری۔ السیر 457/4۔ (2) نسخوں میں "عیینہ" ہے، جو کہ غلطی ہے۔ (3) اکمال المعلم

448/5۔ (4) بخاری نے قسامہ کی حدیث جزیہ، ادب اور احکام میں ان نمبروں کے ساتھ روایت کی ہے: (3173)، (6143) اور (7192)، جن میں ہے کہ مدعی قسامہ کی قسموں کا آغاز کرتے ہیں۔ اور انہوں نے روایت (6898) بھی قسامہ کے باب میں سعید بن عبید کی روایت سے (جسے مصنف ذکر کریں گے) بشیر بن یسار سے نقل کی ہے، جس سے بخاری اس باب میں سعید بن عبید کی روایت کی ترجیح کی طرف اشارہ کرتے ہیں۔ (5) حویصہ بن مسعود بن کعب بن عامر الانصاری، احد، خندق اور تمام غزوات میں شریک ہوئے۔ ان کے بھائی محیصہ ان سے چھوٹے تھے اور ان سے پہلے اسلام لائے۔ الاصابہ 303/2 اور 142/9۔ (6) اسے مالک 877/2-878، احمد (16091)، بخاری نے مذکورہ مقامات پر اور مسلم (1669): (2) نے روایت کیا ہے۔ (7) (م) میں "شعبہ" ہے، جو کہ غلطی ہے۔ (8) (د) میں "بایمان" (قسموں کے ساتھ) ہے۔ (9) ان کا قول: "پس مدعیٰ علیہم کی قسموں سے آغاز کیا"، سعید بن عبید کی روایت کے الفاظ نہیں ہیں، جیسا کہ مصنف کی کلام کے سیاق سے معلوم ہوتا ہے، بلکہ یہ اس کا مفہوم ہے۔ بخاری نے سعید کی روایت (6898) نقل کی ہے، اور اسے مسلم (1669): (5) نے بھی نقل کیا ہے، لیکن اس کے الفاظ نہیں لائے۔ یہ ان چیزوں میں سے ہے جن پر مسلم پر نقد کیا گیا ہے جیسا کہ قاضی عیاض نے اکمال المعلم 46/5 میں ذکر کیا ہے، انہوں نے کہا: مسلم نے مدعیٰ علیہم سے آغاز کرنے میں سعید کی مخالفت پر آگاہ نہیں کیا۔ (10) اپنی سنن (4526) میں۔ اور اسے ابن عبدالبر نے الاستذکار 306/25 اور التمہید 207/23 میں بھی روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 73 197

From men among the Ansar, that the Prophet ﷺ said to the Jews, starting with them: "Will fifty men of you take an oath?" They refused. So he said to the Ansar: "You establish your right."(1) They said: "O Messenger of Allah, shall we swear an oath regarding the unseen?!" So the Messenger of Allah ﷺ made the blood money (diyah) a liability upon the Jews because he was found in their midst. And by his saying, peace be upon him: "But the oath is upon the one being claimed against," they were designated.(2)

They said: This is the definitive principle in lawsuits, to whose wisdom the Sharia has drawn attention by his saying, peace be upon him: "If people were given according to their claims, men would claim the blood and wealth of others, but the oath(3) is upon the one being claimed against."(4)

Those of the first opinion responded to them, saying: The Hadith of Sa'id ibn 'Ubayd regarding starting with the Jews is a mistake (wahm) according to the people of Hadith,(5) and Al-Nasa'i narrated it and said: "As far as I know, Sa'id was not followed in this narration."(6) Bashir's Hadith from Sahl has been attributed by a chain to the effect that the Prophet ﷺ started with the claimants: Yahya ibn Sa'id, Ibn 'Uyaynah, Hammad ibn Zayd, Abd al-Wahhab al-Thaqafi, Isa ibn Hammad, and Bishr ibn al-Mufaddal; these are seven.(7) Even if Malik reported it as mursal (broken chain), a group connected it.

(1) In (D): "Will you swear?", which is the narration of al-Istidhkar 25/306. (2) His saying: "they were designated," is not in (Z). (3) In (D): "But the evidence is upon the claimant, and the oath..." etc. (4) Reported by Ahmad (3188), Al-Bukhari (2514), and Muslim (1711) from the hadith of Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both. Al-Bayhaqi also reported it in Sunan al-Kubra 10/252, and it contains: "But the evidence is upon the claimant, and the oath is upon the one who denies." Ibn al-Salah and al-Nawawi graded al-Bayhaqi's narration as good (hasan), as cited by Ibn Rajab in Jami' al-Ulum wal-Hikam 2/226. He also cited al-Isma'ili's narration in his Sahih - narrated by al-Bayhaqi through his path - and its wording is: "But the evidence is upon the seeker, and the oath is upon the one sought from." (5) See Ikmal al-Mu'lim 5/449. (6) Al-Mujtaba 8/12, and al-Kubra (6895). The author, may Allah have mercy on him, did not mention the full text, as Al-Nasa'i said after that: "Sa'id ibn 'Ubayd is trustworthy, and his hadith is more likely correct according to us, and Allah knows best." (7) Thus in the manuscripts, but there is some scrutiny in this

statement. His saying: "The Hadith of Bushir has been attributed by a chain... Yahya ibn Sa'id and Ibn 'Uyaynah" is an error. The hadith is from the narration of Yahya ibn Sa'id - who is al-Ansari - from Bushir ibn Yasar, from Sahl. Those who narrated it from Yahya ibn Sa'id al-Ansari include Sufyan ibn 'Uyaynah, Hammad ibn Zayd, and Abd al-Wahhab al-Thaqafi, from those mentioned by the author. It was also narrated from him by Hushaym, al-Layth, and Sulayman ibn Bilal, as in Sahih Muslim and others. The correct wording should be: "The Hadith of Bushir from Sahl was attributed by a chain, that the Prophet ﷺ started with the claimants, from Yahya ibn Sa'id: Ibn 'Uyaynah... etc."

सूरा अल-बक़रह: आयत 73 197

अंसार के कुछ पुरुषों से रिवायत है कि नबी ﷺ ने यहूदियों से कहा, और उन्हीं से शुरुआत की: "क्या तुममें से पचास आदमी क़सम खाएंगे?" उन्होंने मना कर दिया। फिर आपने अंसार से कहा: "तुम अपना हक़ साबित करो।"(1) उन्होंने कहा: "ऐ अल्लाह के रसूल, क्या हम अनदेखी चीज़ पर क़सम खाएं?!" तो अल्लाह के रसूल ﷺ ने दियत (ख़ून का मुआवज़ा) यहूदियों पर लाज़िम कर दी; क्योंकि वह (मक़्तूल) उनके बीच पाया गया था। और आप (स.अ.व.) के इस क़ौल की वजह से: "लेकिन क़सम उस पर है जिसके ख़िलाफ़ दावा किया गया हो," उन्हें मुक़र्रर किया गया।(2)

उन्होंने कहा: मुक़दमों में यही एक पक्का नियम है, जिसकी हिकमत की ओर शरीयत ने आप (स.अ.व.) के इस क़ौल से इशारा किया है: "अगर लोगों को उनके दावों के अनुसार दे दिया जाए, तो लोग दूसरों के ख़ून और माल का दावा करने लगेंगे, लेकिन क़सम(3) उस पर है जिसके ख़िलाफ़ दावा किया गया हो।" (4)

पहले विचार वालों ने उन्हें जवाब दिया और कहा: यहूदियों से शुरू करने के बारे में सईद बिन उबैद की हदीस, हदीस के जानकारों के नज़दीक एक भ्रम (वहम) है, (5) और इसे अल-नसाई ने रिवायत किया है और कहा है: "जहाँ तक मुझे पता है, इस रिवायत में सईद का किसी ने अनुसरण नहीं किया है।" (6) और बशीर की हदीस सहल से सनद के साथ रिवायत की गई है कि नबी ﷺ ने दावेदारों से शुरुआत की: याह्या बिन सईद, इब्न उयैना, हम्माद बिन ज़ैद, अब्द अल-वहाब अल-थकफी, ईसा बिन हम्माद और बिश्र बिन अल-मुफ़द्दल; ये सात लोग हैं। (7) भले ही मालिक ने इसे मुर्सल (टूटी हुई सनद) के रूप में भेजा हो, लेकिन एक जमात ने इसे मुत्तसिल (जुड़ी हुई सनद) के रूप में रिवायत किया है।

---

(1) (द) में है: "क्या तुम क़सम खाओगे?", और यह 'अल-इस्तिज़कार' 25/306 की रिवायत है। (2) उनका यह कहना: "उन्हें मुक़र्रर किया गया," (ज़) में नहीं है। (3) (द) में है: "लेकिन सबूत दावेदार पर है, और क़सम..." इत्यादि। (4) इसे अहमद (3188), बुखारी (2514) और मुस्लिम (1711) ने इब्न अब्बास (रज़ि.) की हदीस से रिवायत किया है। अल-बैहक़ी ने भी इसे सुनन अल-कुबरा 10/252 में रिवायत किया है, और इसमें है: "लेकिन सबूत दावेदार पर है, और क़सम उस पर है जो इनकार करे।" इब्न अल-सलाह और अल-नववी ने अल-बैहक़ी की रिवायत को हसन (अच्छी) माना है, जैसा कि इब्न रजब ने 'जामि अल-उलूम वल-हिकम' 2/226 में उनसे नक़ल किया है। उन्होंने सहीह में

इस्माइली की रिवायत को भी नक़ल किया है - जिसे अल-बैहक़ी ने उनके रास्ते से रिवायत किया है - और उसके शब्द हैं: "लेकिन सबूत माँगने वाले पर है, और क़सम उस पर है जिससे माँगा गया है।" (5) देखें 'इकमाल अल-मुल्लिम' 5/449। (6) अल-मुज्तबा 8/12, और अल-कुबरा (6895), और लेखक (रह.) ने पूरी बात का ज़िक्र नहीं किया, क्योंकि अल-नसाई ने उसके बाद कहा: "और सईद बिन उबैद भरोसेमंद हैं, और उनकी हदीस हमारे नज़दीक ज़्यादा सही है, और अल्लाह बेहतर जानता है।" (7) नुस्ख़ों में इसी तरह है, और इस बात में ग़ौर करने की ज़रूरत है, उनका यह कहना: "बशीर की हदीस सनद के साथ रिवायत की गई है... याह्या बिन सईद और इब्न उयैना" एक ग़लती है। हदीस याह्या बिन सईद - जो अल-अंसारी हैं - की रिवायत से है, बशीर बिन यसार से, सहल से। और याह्या बिन सईद अल-अंसारी से रिवायत करने वालों में सुफ़ियान बिन उयैना, हम्माद बिन ज़ैद और अब्द अल-वहाब अल-थकफी शामिल हैं, जिनका ज़िक्र लेखक ने किया है। इसे उनसे हुशैम, अल-लैथ और सुलेमान बिन बिलाल ने भी रिवायत किया है, जैसा कि सहीह मुस्लिम और अन्य में है। सही इबारत यह होनी चाहिए: "बशीर की हदीस सहल से सनद के साथ रिवायत है कि नबी ﷺ ने दावेदारों से शुरुआत की, याह्या बिन सईद से: इब्न उयैना... इत्यादि।"

سورة البقرہ: آیت ۷۳ ۱۹۷

انصار کے کچھ مردوں سے روایت ہے کہ نبی ﷺ نے یہودیوں سے فرمایا، اور ان سے آغاز کیا: "کیا تم میں سے پچاس آدمی قسم کھائیں گے؟" انہوں نے انکار کر دیا۔ پھر آپ ﷺ نے انصار سے فرمایا: "تم اپنا حق ثابت کرو۔"(۱) انہوں نے کہا: اے اللہ کے رسول، کیا ہم غیب پر قسم کھائیں؟! تو اللہ کے رسول ﷺ نے دیت (خون بہا) یہودیوں پر لازم کر دی؛ کیونکہ وہ (مقتول) ان کے درمیان پایا گیا تھا۔ اور آپ ﷺ کے اس قول کی وجہ سے: "لیکن قسم مدعیٰ علیہ (جس پر دعویٰ کیا گیا ہو) پر ہے،" انہیں متعین کیا گیا۔(۲)

انہوں نے کہا: دعووں میں یہی وہ قطعی اصل (قاعدہ) ہے، جس کی حکمت کی طرف شریعت نے آپ ﷺ کے اس قول سے توجہ دلائی ہے: "اگر لوگوں کو ان کے دعووں کے مطابق دے دیا جائے، تو لوگ دوسروں کے خون اور مال کا دعویٰ کرنے لگیں، لیکن قسم(۳) مدعیٰ علیہ پر ہے۔"(۴)

پہلے قول والوں نے انہیں جواب دیا اور کہا: یہودیوں سے آغاز کے بارے میں سعید بن عبید کی حدیث، اہل حدیث کے نزدیک وہم (غلطی) ہے،(۵) اور اسے نسائی نے روایت کیا ہے اور کہا ہے: "جہاں تک میں جانتا ہوں، اس روایت میں سعید کی کسی نے پیروی نہیں کی۔"(۶) اور بشیر کی حدیث سہل سے سند کے ساتھ روایت کی گئی ہے کہ نبی ﷺ نے مدعیوں سے آغاز کیا: یحییٰ بن سعید، ابن عیینہ، حماد بن زید، عبد الوہاب الثقفی، عیسیٰ بن حماد اور بشر بن المفضل؛ یہ سات لوگ ہیں۔(۷) اگرچہ مالک نے اسے مرسل (منقطع سند) کے طور پر بھیجا ہے، لیکن ایک جماعت نے اسے متصل روایت کیا ہے۔

(۱) (د) میں ہے: "کیا تم قسم کھاؤ گے؟"، اور یہ 'الاستذکار' ۲۵/۳۰۶ کی روایت ہے۔ (۲) ان کا قول: "انہیں متعین کیا گیا،" (ظ) میں نہیں ہے۔ (۳) (د) میں ہے: "لیکن ثبوت مدعی پر ہے، اور قسم..." وغیرہ۔ (۴) اسے احمد (۳۱۸۸)، بخاری (۲۵۱۴) اور مسلم (۱۷۱۱) نے ابن عباس (رضی اللہ عنہما) کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ بیہقی نے بھی اسے سنن الکبریٰ ۱۰/۲۵۲ میں روایت کیا ہے، اور اس میں ہے: "لیکن ثبوت مدعی پر ہے، اور قسم اس پر ہے جو انکار کرے۔" ابن الصلاح اور نووی نے بیہقی کی روایت کو حسن قرار دیا ہے، جیسا کہ ابن رجب نے 'جامع العلوم والحکم' ۲/۲۲۶ میں ان سے نقل کیا ہے۔ انہوں نے صحیح میں اسماعیلی کی روایت کو بھی نقل کیا ہے - جسے بیہقی نے ان کے واسطے سے روایت کیا ہے - اور اس کے الفاظ ہیں: "لیکن ثبوت طالب پر ہے، اور قسم اس پر ہے جس سے مطالبہ کیا گیا ہو۔" (۵) دیکھئے 'اکمال المعلم' ۵/۴۴۹۔ (۶) المجتبیٰ ۸/۱۲، اور الکبریٰ (۶۸۹۵)۔ مصنف (رحمہ اللہ) نے پوری بات ذکر نہیں کی، کیونکہ نسائی نے اس کے بعد کہا: "اور سعید بن عبید ثقہ ہیں، اور ان کی حدیث ہمارے نزدیک زیادہ درست ہے، واللہ اعلم۔" (۷) نسخوں میں اسی طرح ہے، اور اس کلام میں غور کی ضرورت ہے، ان کا قول: "بشیر کی حدیث سند کے ساتھ روایت کی گئی ہے... یحییٰ بن سعید اور ابن عیینہ" ایک غلطی ہے۔ حدیث یحییٰ بن سعید - جو الانصاری ہیں - کی روایت سے ہے، بشیر بن یسار سے، سہل سے۔ اور یحییٰ بن سعید الانصاری سے اسے سفیان بن عیینہ، حماد بن زید اور عبد الوہاب الثقفی نے روایت کیا ہے، جن کا ذکر مصنف نے کیا ہے۔ اسے ان سے ہشیم، لیث اور سلیمان بن بلال نے بھی روایت کیا ہے، جیسا کہ صحیح مسلم اور دیگر میں ہے۔ صحیح عبارت یہ ہونی چاہیے: "بشیر کی حدیث سہل سے سند کے ساتھ روایت ہے کہ نبی ﷺ نے مدعیوں سے آغاز کیا، یحییٰ بن سعید سے: ابن عیینہ... وغیرہ۔"

198 Surah Al-Baqarah: Verse 73

... the preservers (1), and it is more authentic than the hadith of Sa'id ibn 'Ubayd. Abu Muhammad al-Asili (2) said: It is not permissible for a single report to challenge a report of a group (3), especially since Sa'id ibn 'Ubayd said in his hadith: So the Messenger of Allah ﷺ paid his blood money from a hundred charity camels, and charity is not given for blood money, nor is it used for reconciliation on behalf of someone other than its recipients. The hadith of Abu Dawud is mursal (interrupted chain) (4), so the authentic, connected hadiths cannot be opposed by it. They responded to the adherence to the origin (5) by saying that this ruling is an origin in itself due to the sanctity of blood (6).

Ibn al-Mundhir said: It is established that the Messenger of Allah ﷺ placed the burden of proof on the claimant and the oath on the defendant. Judging by its outward meaning is obligatory unless Allah specifies in His Book, or through the tongue of His Prophet ﷺ, a ruling regarding something, in which case it is exempted from the general scope of this report. Among what the Book indicates is the obligation of the slanderer's punishment if he does not have four witnesses to testify to the truth of his accusation. And He exempted the one who accuses his wife by waiving the punishment if he testifies four times. Among what the Sunnah specified is the Prophet's ﷺ ruling on Al-Qasama (collective oath). Ibn Jurayj narrated from Ata, from Abu Hurairah, that the Prophet ﷺ said: "The proof is upon the claimant, and the oath is upon the denier except..."

(1) In (d): Huffadh (preservers). Imam Malik narrated it in Al-Muwatta 2/878 from Yahya ibn Sa'id al-Ansari, from Bashir ibn Yasar, that Abdullah ibn Sahl and Muhayyisah ibn Mas'ud went out to Khaybar... as a mursal report; he did not mention Sahl ibn Abi Hathmah. It was connected from Yahya ibn Sa'id by Ibn 'Uyaynah and others, as previously mentioned. (2) Abdullah ibn Ibrahim, a scholar of Andalusia, a master of the Maliki school. He has the book 'Al-Dala'il' on the differences between Malik, Abu Hanifa, and Al-Shafi'i. He died in the year 392 AH. Al-Siyar 16/560. (3) Narrated with a similar version to Yahya ibn Sa'id's narration: "that the Messenger of Allah ﷺ started with the claimants": Muhammad ibn Ishaq, from al-Zuhri and Bashir ibn Yasar, as in Al-Tamhid 23/202, and Al-Istidhkar 25/303-304. And Abu Layla ibn Abdullah ibn Abd al-Rahman ibn Sahl, from Sahl, as in Al-Muwatta 2/877, and Sahih al-Bukhari (7192), and others. (4) Sunan Abi Dawud (4526), narrated from men of the Ansar that the Prophet ﷺ said to the Jews... and its mention has preceded recently. Abu Dawud did not include it in his 'Marasil'. Al-Mundhiri quoted in 'Mukhtasar Sunan

Abi Dawud' 6/324 from Al-Shafi'i his saying about it: Mursal. Ibn al-Qayyim said in 'Tahdhib al-Sunan' 6/323: His saying "mursal" is subject to review, and the men of the Ansar are not prevented from being Sahaba (Companions). (5) Meaning the hadith: "If people were given according to their claims..." which preceded before. (6) Ibn Abd al-Barr said in Al-Istidhkar 25/307: I do not know of any of the rulings narrated from the Prophet ﷺ that has as much confusion and contradiction as there is in this story, for the reports in it are contradictory and conflicting, yet it is a single story.

198 सूरह अल-बकराह: आयत 73

... संरक्षक (1), और यह सईद बिन उबैद की हदीस से अधिक प्रामाणिक है। अबू मुहम्मद अल-असीली (2) ने कहा: एक अकेली रिपोर्ट के लिए एक समूह की रिपोर्ट (3) का विरोध करना जायज़ नहीं है, जबकि सईद बिन उबैद ने अपनी हदीस में कहा है: तो अल्लाह के रसूल ﷺ ने सौ सदक़े के ऊंटों से उसका दिया (रक्त-धन) अदा किया, और सदक़ा दियतों में नहीं दिया जाता है, और न ही इसके प्राप्तकर्ताओं के अलावा किसी अन्य की ओर से सुलह के लिए इसका उपयोग किया जाता है। अबू दाऊद की हदीस मुर्सल (कटी हुई श्रृंखला) (4) है, इसलिए प्रामाणिक, जुड़ी हुई हदीसों का इससे विरोध नहीं किया जा सकता है। उन्होंने मूल (अस्ल) (5) पर टिके रहने का उत्तर यह दिया कि यह निर्णय अपने आप में रक्त की पवित्रता (6) के कारण एक मूल है।

इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: यह साबित हो चुका है कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने सबूत का भार वादी (दावा करने वाले) पर और शपथ प्रतिवादी पर रखी थी। इसका ज़ाहिरी अर्थ मानकर न्याय करना अनिवार्य है, जब तक कि अल्लाह अपनी किताब में, या अपने नबी ﷺ की ज़ुबान से, किसी चीज़ के बारे में कोई विशेष हुक्म न दे, जिस स्थिति में इसे इस रिपोर्ट के सामान्य दायरे से छूट दी जाएगी। किताब जिस बात का संकेत देती है, उनमें से एक यह है कि यदि उसके पास अपनी बात की सत्यता की गवाही देने के लिए चार गवाह न हों, तो तोहमत लगाने वाले (क़ाज़िफ़) को सजा दी जाए। और उसने उस व्यक्ति को छूट दी जो अपनी पत्नी पर आरोप लगाता है, सजा को हटाकर यदि वह चार बार गवाही देता है। और सुन्नत ने जिसे विशेष किया है, उनमें से पैगंबर ﷺ का 'क़सामा' (सामूहिक शपथ) पर फैसला है। इब्न जुरैज ने अता से, अबू हुरैरा से रिवायत की है कि पैगंबर ﷺ ने फरमाया: "सबूत वादी पर है, और शपथ इनकार करने वाले पर है, सिवाय..."

(1) (द) में: हुफ़ाज़ (संरक्षक)। इमाम मालिक ने इसे अल-मुवत्ता 2/878 में याह्या बिन सईद अल-अंसारी से, बशीर बिन यसार से रिवायत किया है, कि अब्दुल्ला बिन सहल और मुहय्यिसाह बिन मसूद खैबर के लिए निकले... एक मुर्सल रिपोर्ट के रूप में; उन्होंने सहल बिन अबी हश्मा का उल्लेख नहीं किया। इसे याह्या बिन सईद से इब्न उययनाह और अन्य लोगों द्वारा जोड़ा गया था, जैसा कि पहले बताया गया है। (2) अब्दुल्ला बिन इब्राहिम, अंडालूसिया के एक विद्वान, मलिकी संप्रदाय के एक गुरु। उनके पास मालिक, अबू हनीफा और अल-शफी के बीच के मतभेदों पर 'अल-दलाईल' किताब है। उनकी मृत्यु वर्ष 392 हिजरी में हुई। अल-सियार 16/560। (3) याह्या बिन सईद के वर्णन के समान संस्करण के साथ वर्णित: "कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने वादियों से शुरुआत की": मुहम्मद बिन

इशाक, अल-जुहरी और बशीर बिन यसार से, जैसा कि अल-तम्हीद 23/202, और अल-इस्तिदकार 25/303-304 में है। और अबू लैला बिन अब्दुल्ला बिन अब्द अल-रहमान बिन सहल, सहल से, जैसा कि अल-मुवत्ता 2/877 में है, और सहीह अल-बुखारी (7192), और अन्य। (4) सुनन अबी दाऊद (4526), अंसार के पुरुषों से रिवायत है कि पैगंबर ﷺ ने यहूदियों से कहा... और इसका ज़िक्र हाल ही में हो चुका है। अबू दाऊद ने इसे अपने 'मरासिल' में शामिल नहीं किया। अल-मुन्दिरी ने 'मुख़्तसर सुनन अबी दाऊद' 6/324 में अल-शफी से उनके इसके बारे में यह कथन उद्धृत किया: मुर्सल। इब्न अल-क़य्यिम ने 'तहदीब अल-सुनन' 6/323 में कहा: उनका कहना "मुर्सल" समीक्षा के अधीन है, और अंसार के पुरुषों को सहाबा (साथी) होने से नहीं रोका गया है। (5) यानी हदीस: "अगर लोगों को उनके दावों के अनुसार दिया जाता..." जो पहले बीत चुका है। (6) इब्न अब्द अल-बर ने अल-इस्तिदकार 25/307 में कहा: मुझे पैगंबर ﷺ से रिवायत किए गए किसी भी नियम के बारे में नहीं पता है जिसमें इतनी उलझन और विरोधाभास हो जितना इस कहानी में है, क्योंकि इसमें रिवायतें विरोधाभासी और परस्पर विरोधी हैं, फिर भी यह एक ही कहानी है।

۱۹۸ سورہ البقرہ : آیت ۷۳

... حفاظ (۱)، اور یہ سعید بن عبید کی حدیث سے زیادہ صحیح ہے۔ ابو محمد الاصلی (۲) نے کہا: ایک اکیلی خبر کے ذریعے جماعت کی خبر (۳) پر اعتراض کرنا جائز نہیں ہے، اس کے ساتھ کہ سعید بن عبید نے اپنی حدیث میں کہا ہے: تو رسول اللہ ﷺ نے سو صدقے کے اونٹوں سے اس کی دیت ادا کی، اور صدقہ دیتوں میں نہیں دیا جاتا، اور نہ ہی اس کے حقداروں کے علاوہ کسی اور کی طرف سے صلح کے لیے استعمال کیا جاتا ہے۔ ابو داؤد کی حدیث مرسل (۴) ہے، اس لیے صحیح متصل احادیث کا اس سے مقابلہ نہیں کیا جا سکتا۔ انہوں نے اصل (۵) پر قائم رہنے کا جواب یہ دیا کہ یہ حکم خون کی حرمت (۶) کی وجہ سے بذات خود ایک اصل ہے۔

ابن المنذر نے کہا: یہ ثابت ہو چکا ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے ثبوت کا بوجھ مدعی پر اور قسم مدعیٰ علیہ پر رکھی ہے، اور اس کے ظاہری مفہوم کے مطابق فیصلہ کرنا واجب ہے، سوائے اس کے کہ اللہ اپنی کتاب میں، یا اپنے نبی ﷺ کی زبان سے کسی چیز کے بارے میں کوئی خاص حکم دے، تو اسے اس خبر کے عمومی حکم سے مستثنیٰ قرار دیا جائے گا۔ کتاب جس چیز پر دلالت کرتی ہے اس میں قاذف (تہمت لگانے والے) پر حد لازم کرنا ہے اگر اس کے ساتھ چار گواہ نہ ہوں جو اس کی بات کی سچائی پر گواہی دیں، اور اس شخص کو مستثنیٰ کیا جس نے اپنی بیوی پر تہمت لگائی، اس طرح کہ اگر وہ چار گواہیاں دے تو اس سے حد ساقط کر دی۔ اور سنت نے جس چیز کو خاص کیا ہے اس میں نبی ﷺ کا قسامہ کا فیصلہ ہے۔ ابن جریج نے عطا سے، انہوں نے ابوہریرہ سے روایت کی ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "ثبوت اس پر ہے جس نے دعویٰ کیا، اور قسم اس پر ہے جس نے انکار کیا، سوائے..."

(١) (د) میں: حفاظ اسے امام مالک نے الموطا ٢/٨٧٨ میں یحییٰ بن سعید الانصاری سے، انہوں نے بشیر بن یسار سے روایت کیا ہے کہ عبداللہ بن سہل اور محیصہ بن مسعود خیبر کی طرف نکلے... مرسلاً؛ انہوں نے سہل بن ابی حثمہ کا ذکر نہیں کیا۔ اسے یحییٰ بن سعید سے ابن عیینہ اور دیگر نے موصول بیان کیا، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے۔ (٢) عبداللہ بن ابراہیم، اندلس کے عالم، مالکیوں کے شیخ، ان کی کتاب 'الدلائل' مالک، ابو حنیفہ اور شافعی کے اختلاف پر ہے۔ ان کا انتقال ٣٩٢ھ میں ہوا۔ السیر ١٦/٥٦٠۔ (٣) اسے یحییٰ بن سعید کی روایت کی طرح روایت کیا ہے کہ "رسول اللہ ﷺ نے مدعیوں سے آغاز کیا": محمد بن اسحاق نے زہری اور بشیر بن یسار سے، جیسا کہ التمہید ٢٣/٢٠٢، اور الاستذکار ٢٥/ ٣٠٣-٣٠٤ میں ہے۔ اور ابو لیلیٰ بن عبداللہ بن عبدالرحمن بن سہل نے سہل سے، جیسا کہ الموطا ٢/٨٧٧، اور صحیح بخاری (٧١٩٢) وغیرہ میں ہے۔ (٤) سنن ابی داؤد (٤٥٢٦)، یہ انصار کے مردوں سے مروی ہے کہ نبی ﷺ نے یہودیوں سے فرمایا... اور اس کا ذکر ابھی حال ہی میں گزرا ہے۔ ابو داؤد نے اسے اپنے مراسیل میں ذکر نہیں کیا۔ المنذری نے مختصر سنن ابی داؤد ٦/٣٢٤ میں شافعی سے اس کے بارے میں ان کا قول نقل کیا ہے: مرسل۔ ابن القیم نے تہذیب السنن ٦/٣٢٣ میں کہا: ان کا قول "مرسل" محل نظر ہے، اور انصار کے مردوں کا صحابی ہونا ناممکن نہیں۔ (٥) یعنی حدیث: «لو یعطی الناس بدعواهم...» جو پہلے گزر چکی ہے۔ (٦) ابن عبدالبر نے الاستذکار ٢٥/٣٠٧ میں کہا: میں نبی ﷺ سے مروی احادیث میں کسی حکم کے بارے میں اس قدر اضطراب اور تضاد نہیں جانتا جتنا اس قصے میں ہے، کیونکہ اس میں مروی آثار متضاد اور ایک دوسرے کو رد کرنے والے ہیں، حالانکہ یہ ایک ہی قصہ ہے۔

in the Qasama (collective oath)." Narrated by Al-Daraqutni (1). Malik argued for this issue in his Muwatta (2) with sufficient evidence, so consider it there. Issue: They also differed regarding the necessity of Qawad (retaliation) by Qasama. A group mandated Qawad by it, which is the view of Malik, Al-Layth, Ahmad, and Abu Thawr; due to the saying of the Prophet (Peace Be Upon Him) to Huwaysa, Muhayyisa, and Abdul Rahman: "Will you swear and be entitled to the blood of your companion?" (3). Abu Dawood narrated from 'Amr ibn Shu'ayb, from his father, from his grandfather (4) that the Prophet (Peace Be Upon Him) executed a man by Qasama from Banu Nasr bin Malik. Al-Daraqutni said: The version of 'Amr ibn Shu'ayb from his father from his grandfather is authentic (5); likewise, Abu 'Umar bin Abdul-Barr authenticates the hadith of 'Amr ibn Shu'ayb and uses it as evidence (6). Al-Bukhari said: I saw Ali ibn al-Madini (7), Ahmad ibn Hanbal, Al-Humaydi, and Ishaq ibn Rahwayh using it as evidence. Al-Daraqutni mentioned this in "Al-Sunan" (8). A group said: There is no Qawad by Qasama; it only necessitates Diyah (blood money). This was narrated from Umar.

(1) In his Sunan 3/110, and his statement from it: "Evidence is for the claimant, and the oath is for the denier" is good (Hasan) or authentic (Sahih), as previously mentioned. As for the addition: "Except in Qasama," it is weak (Da'if), being from the narration of Muslim bin Khalid al-Zanji, from Ibn Jurayj, with the chain mentioned above. This Muslim is truthful but prone to many illusions - as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Taqrib al-Tahdhib - and he wavered in it, narrating it also from Ibn Jurayj, from 'Amr ibn Shu'ayb, from his father, from his grandfather Abdullah bin 'Amr, may Allah be pleased with them both. Al-Daraqutni said 3/110: Abd al-Razzaq and Hajjaj disagreed with him, narrating it from Ibn Jurayj, from 'Amr, in a disconnected (Mursal) form. See Al-Kamil by Ibn 'Adi 6/2312. (2) 2/877 - 881. (3) Narrated by Ahmad (16097), Al-Bukhari (3173), and Muslim (1669). (4) His statement: From his father, from his grandfather: is an error, for the hadith in Sunan Abi Dawood (4522) is from the narration of 'Amr ibn Shu'ayb from the Prophet (Peace Be Upon Him), which is problematic (Mu'dal), and Abu Dawood also included it in his Marasil (270). The author, may Allah have mercy on him, followed Ibn al-Arabi in this in Ahkam al-Qur'an 1/25. Ibn Abd al-Barr also narrated it with this error in Al-Tamhid 23/217, and the reason for it - and Allah knows best - is that the narration of 'Amr ibn Shu'ayb from his father from his grandfather is a famous manuscript among the people of Hadith, so he thought this hadith was from it. This error is called among Hadith

scholars: "The error of following the well-trodden path (Suluk al-Jadda)." (5) Cited by the author via Ibn al-Arabi in Ahkam al-Qur'an 1/25. (6) Al-Istidhkar 20/127 - 134. (7) He is Ali bin Abdullah, Abu al-Hasan al-Sa'di their freed slave, Al-Basri, the Commander of the Faithful in Hadith, died in the year (234 AH). Al-Siyar 11/41. (8) 3/51.

सूरह अल-बकराह: आयत 73 199

कसामा (सामूहिक शपथ) में।" इसे अल-दारकुतनी (1) ने उद्धृत किया है। मलिक ने इस मसले के लिए अपनी मुवत्ता (2) में पर्याप्त प्रमाण के साथ तर्क दिया है, इसलिए वहां इस पर विचार करें। मसला: उन्होंने कसामा द्वारा कवाद (प्रतिशोध) की अनिवार्यता के संबंध में भी मतभेद किया है। एक समूह ने इसके द्वारा कवाद को अनिवार्य कर दिया, और यही मलिक, अल-लैथ, अहमद और अबू थौर का मत है; क्योंकि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने हुवैसा, मुहैयिसा और अब्दुल रहमान से कहा था: "क्या तुम शपथ लोगे और अपने साथी के रक्त के हकदार बनोगे?" (3)। अबू दाऊद ने अम्र इब्न शुएब से, उनके पिता से, उनके दादा (4) से रिवायत की है कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने बनू नस्र बिन मालिक के एक व्यक्ति को कसामा द्वारा मार डाला। अल-दारकुतनी ने कहा: अम्र इब्न शुएब का अपने पिता और दादा से रिवायत का संस्करण सही (प्रामाणिक) है (5); इसी तरह, अबू उमर बिन अब्दुल-बर अम्र इब्न शुएब की हदीस को सही मानते हैं और इसे प्रमाण के रूप में पेश करते हैं (6)। अल-बुखारी ने कहा: मैंने अली इब्न अल-मदीनी (7), अहमद इब्न हंबल, अल-हुमैदी और इशाक इब्न रहवैया को इसे प्रमाण के रूप में इस्तेमाल करते हुए देखा है। अल-दारकुतनी ने इसे "अल-सुनन" (8) में कहा है। एक अन्य समूह ने कहा: कसामा द्वारा कोई कवाद नहीं है, बल्कि यह केवल दियाह (खून का मुआवज़ा) अनिवार्य करता है। यह उमर से वर्णित है...

(1) उनकी सनन 3/110 में, और उनका कथन: "प्रमाण दावा करने वाले पर है, और शपथ इनकार करने वाले पर है" अच्छा (हसन) या सही है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। रही बात इस वृद्धि की: "कसामा को छोड़कर," तो वह कमजोर (दईफ) है, जो मुस्लिम बिन खालिद अल-जंजी की रिवायत से है, इब्न जुरायज से, ऊपर बताए गए इसनाद के साथ। यह मुस्लिम सच्चा है लेकिन बहुत भ्रमित होने वाला है - जैसा कि अल-हाफिज़ इब्न हजर ने तक़रीब अल-तहरीब में उल्लेख किया है - और वह इसमें अस्थिर रहा, उसने इसे इब्न जुरायज से, अम्र इब्न शुएब से, उनके पिता से, उनके दादा अब्दुल्ला बिन अम्र (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से भी रिवायत किया। अल-दारकुतनी ने 3/110 में कहा: अब्द अल-रज्जाक और हज्जाज ने उनका विरोध किया, उन्होंने इसे इब्न जुरायज से, अम्र से, मुरसल (टूटी हुई कड़ी) के रूप में रिवायत किया। इब्न अदी की अल-कामिल 6/2312 देखें। (2) 2/877 - 881। (3) इसे अहमद (16097), अल-बुखारी (3173) और मुस्लिम (1669) ने निकाला है। (4) उनका कथन: उनके पिता से, उनके दादा से: एक त्रुटि है, क्योंकि सुनन अबी दाऊद (4522) में हदीस अम्र इब्न शुएब की रिवायत से है नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से, जो मुदल (पेचीदा) है,

और अबू दाऊद ने इसे अपने मरासील (270) में भी शामिल किया है। लेखक (रहिमहमुल्लाह) ने इसमें अहकाम अल-कुरआन 1/25 में इब्न अल-अरबी का अनुसरण किया है। इब्न अब्द अल-बर ने भी अल-तमहीद 23/217 में इसी भ्रम के साथ इसे रिवायत किया है, और इसका कारण - और अल्लाह बेहतर जानता है - यह है कि अम्र इब्न शुएब की अपने पिता से और उनके दादा से रिवायत हदीस वालों के पास एक प्रसिद्ध संस्करण है, इसलिए उन्होंने सोचा कि यह हदीस भी उसी से है। हदीस के जानकारों के पास इस भ्रम को कहा जाता है: "प्रचलित मार्ग पर चलने का भ्रम (सुलुक अल-जद्दा)।" (5) लेखक द्वारा इब्न अल-अरबी के माध्यम से अहकाम अल-कुरआन 1/25 में उद्धृत। (6) अल-इस्तिदकार 20/127 - 134। (7) वह अली बिन अब्दुल्ला, अबू अल-हसन अल-सादी उनके मौला, अल-बसरी हैं, जो हदीस में अमीरुल मोमिनीन हैं, उनकी मृत्यु वर्ष (234 हिजरी) में हुई। अल-सियार 11/41। (8) 3/51।

سورہ البقرہ: آیت 73 199

قسامہ میں۔" اسے دارقطنی نے روایت کیا ہے(1)۔ اور مالک نے اس مسئلہ کے لیے اپنی موطا(2) میں کافی دلیل پیش کی ہے، پس وہاں اس کا مطالعہ کریں۔ مسئلہ: اور انہوں نے قسامہ کے ذریعے قود (قصاص) کے واجب ہونے میں بھی اختلاف کیا ہے۔ ایک گروہ نے اس کے ذریعے قود کو واجب قرار دیا ہے، اور یہی مالک، لیث، احمد اور ابو ثور کا قول ہے؛ اس وجہ سے کہ آپ ﷺ نے حویصہ، محیصہ اور عبد الرحمن سے فرمایا: "کیا تم قسم کھاؤ گے اور اپنے ساتھی کے خون کے حقدار بنو گے؟"(3)۔ اور ابو داؤد نے عمرو بن شعیب سے، ان کے والد سے، ان کے دادا(4) سے روایت کیا ہے کہ نبی ﷺ نے بنو نصر بن مالک کے ایک شخص کو قسامہ کے ذریعے قتل کیا۔ دارقطنی نے کہا: عمرو بن شعیب کی اپنے والد اور دادا سے روایت کا نسخہ صحیح ہے(5)؛ اسی طرح ابو عمر بن عبد البر، عمرو بن شعیب کی حدیث کو صحیح قرار دیتے ہیں اور اس سے استدلال کرتے ہیں(6)۔ اور بخاری نے کہا: میں نے علی بن المدینی(7)، احمد بن حنبل، حمیدی اور اسحاق بن راہویہ کو اس سے استدلال کرتے دیکھا ہے۔ یہ بات دارقطنی نے "السنن"(8) میں کہی ہے۔ اور ایک گروہ نے کہا: قسامہ میں قود نہیں ہے، بلکہ یہ صرف دیت کو واجب کرتا ہے۔ یہ حضرت عمر سے مروی ہے...

(1) اپنی سنن 3/ 110 میں، اور ان کا قول: "گواہی مدعی پر ہے، اور قسم اس پر ہے جو انکار کرے" حسن یا صحیح ہے، جیسا کہ پہلے ذکر گزرا۔ رہا یہ اضافہ: "سوائے قسامہ کے" تو وہ ضعیف ہے، اور وہ مسلم بن خالد الزنجی کی روایت سے ہے، ابن جریج سے، اوپر مذکورہ سند کے ساتھ اور یہ مسلم سچا ہے لیکن بہت وہم کرنے والا ہے - جیسا کہ حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں ذکر کیا ہے - اور اس میں اضطراب رہا، چنانچہ اس نے اسے ابن جریج سے، عمرو

بن شعیب سے، ان کے والد سے، ان کے دادا عبد اللہ بن عمرو (رضی اللہ عنہما) سے بھی روایت کیا۔ دارقطنی نے 3/ 110 میں کہا: عبد الرزاق اور حجاج نے اس کی مخالفت کی، ان دونوں نے اسے ابن جریج سے، عمرو سے، مرسل روایت کیا ہے۔ اور ابن عدی کی الکامل 6/ 2312 دیکھیں۔ (2) 2/ 877 - 881۔ (3) اسے احمد (16097)، بخاری (3173) اور مسلم (1669) نے روایت کیا ہے۔ (4) ان کا قول: اپنے والد سے، اپنے دادا سے: غلط ہے، کیونکہ سنن ابی داؤد (4522) میں حدیث عمرو بن شعیب کی نبی ﷺ سے روایت سے ہے، جو معضل ہے، اور ابو داؤد نے اسے اپنے مراسیل (270) میں بھی ذکر کیا ہے۔ اور مصنف (رحمہ اللہ) نے اس میں احکام القرآن 1/ 25 میں ابن العربی کی پیروی کی ہے۔ اور ابن عبد البر نے بھی التمہید 23/ 217 میں اسی وہم پر اسے روایت کیا ہے، اور اس کی وجہ - اللہ بہتر جانتا ہے - یہ ہے کہ عمرو بن شعیب کی اپنے والد اور دادا سے روایت اہل حدیث کے ہاں ایک مشہور نسخہ ہے، تو انہوں نے گمان کیا کہ یہ حدیث بھی اسی میں سے ہے۔ اور اہل حدیث کے ہاں اس وہم کو "شاہراہ پر چلنے کا وہم (وہم بسلوک الجادۃ)" کہا جاتا ہے۔ (5) اسے مصنف نے ابن العربی کے واسطے سے احکام القرآن 1/ 25 میں نقل کیا ہے۔ (6) الاستذکار 20/ 127 - 134۔ (7) وہ علی بن عبد اللہ، ابو الحسن السعدی ان کے مولیٰ، بصری ہیں، جو حدیث میں امیر المؤمنین ہیں، ان کی وفات سال (234ھ) میں ہوئی۔ السیر 11/ 41۔ (8) 3/ 51۔

Page 200 Surah Al-Baqarah: Verse 73

...and Ibn Abbas, which is the opinion of al-Nakha'i and al-Hasan, and it is the view followed by al-Thawri, the Kufans, al-Shafi'i, and Ishaq. They argued with what Malik narrated (1) on the authority of Abu Layla (2) ibn Abd Allah, from Sahl ibn Abi Hathmah, from the Prophet (peace be upon him) saying to the Ansar: "Either they pay blood money (diya) for your companion, or they give notice of war." They said: This indicates blood money, not retaliation (qawad). They said: And the meaning of his saying (peace be upon him): "and you are entitled to the blood of your companion" means: the blood money for the blood of your slain one; because the Jews were not companions to them, and whoever is entitled to the blood money of his companion is entitled to his blood; because blood money may be taken for intentional killing, so that would be an entitlement to the blood.

Issue: The requirement for qasama (collective oath) is lawth (circumstantial evidence), and it is indispensable. Lawth is an indication that leads to the preponderance of belief in the truthfulness of the claimant of murder, such as the testimony of one upright witness to seeing the murder, or the slain person is seen floundering (3) in his blood while the accused is near him - or close to him - with signs of murder on him (4).

Opinions differed regarding lawth and the verdict based on it. Malik said: It is the statement of the victim: "My blood is with so-and-so," and one upright witness is lawth. This is as narrated by Ibn al-Qasim from him (5).

Ashhab narrated from Malik that he (the claimant) swears with a non-upright witness and with a woman. Ibn Wahb narrated that the testimony of women is lawth. Muhammad (6) mentioned from Ibn al-Qasim that the testimony of two women is lawth, but not the testimony of one woman.

Judge Abu Bakr ibn al-Arabi said: There is much disagreement regarding lawth; the well-known position of the school (of Malik) is that it is one upright witness. Muhammad said: It is more beloved to me; he said: And Ibn al-Qasim and Ibn Abd al-Hakam (7) followed it. It was narrated from Abd al-Malik ibn Marwan: that if a wounded or beaten person says: "My blood is with so-and-so," and dies, qasama applies. This was also said by Malik and al-Layth ibn Sa'd.

Footnotes: (1) Al-Muwatta 2/877. (2) In (m): Ibn Abu Layla, which is a mistake, and the name was not correctly rendered in the manuscripts. (3) In (d) and (z): thrashing

about. (4) Compare the speech with 'Aqd al-Jawahir al-Thamina 3/283. (5) Al-Mudawwana al-Kubra 6/424. (6) He is Ibn al-Mawwaz, Muhammad ibn Ibrahim, the Maliki jurist. (7) 'Aqd al-Jawahir al-Thamina 3/284, and see al-Nawadir wal-Ziyadat 14/138.

पृष्ठ २०० सूरह अल-बक़रह: आयत ७३

...और इब्न अब्बास, और यही अल-नखई और अल-हसन का कहना है, और अल-थौरी, कूफ़ी लोग, अल-शफी और इसहाक इसी राय पर गए हैं। उन्होंने उस चीज़ से दलील दी जो मलिक (१) ने अबू लैला (२) बिन अब्दुल्लाह के हवाले से, सहल बिन अबी हश्मा से, नबी ﷺ के अंसार से कहे गए इस कथन से रिवायत की: "या तो वे तुम्हारे साथी का खून-बहा (दिया) दें, या युद्ध की सूचना दें।" उन्होंने कहा: यह खून-बहे (दिये) की ओर संकेत करता है, न कि प्रतिशोध (क़वाद) की ओर। उन्होंने कहा: और आप ﷺ के इस कथन का अर्थ: "और तुम अपने साथी के खून के हक़दार हो" का अर्थ है: तुम्हारे मारे गए व्यक्ति के खून का खून-बहा; क्योंकि यहूदी उनके साथी नहीं थे, और जो अपने साथी के खून-बहे का हक़दार है, वह उसके खून का हक़दार है; क्योंकि जानबूझकर की गई हत्या में भी खून-बहा लिया जा सकता है, तो वह खून का हक़दार होना होगा।

मसला: क़सामा (सामूहिक शपथ) के लिए 'लौथ' (परिस्थितिजन्य साक्ष्य) आवश्यक है, और यह अपरिहार्य है। लौथ एक ऐसा संकेत है जो हत्या के दावेदार की सच्चाई के बारे में प्रबल धारणा पैदा करता है, जैसे हत्या देखने पर एक न्यायप्रिय गवाह की गवाही, या मारे गए व्यक्ति को अपने खून में लथपथ (३) देखा जाए और आरोपी उसके पास हो - या उसके करीब हो - और उस पर हत्या के निशान हों (४)।

लौथ और इसके आधार पर दिए जाने वाले निर्णय में मतभेद रहा है। मलिक ने कहा: यह मारे गए व्यक्ति का यह कहना है कि: "मेरा खून फलां व्यक्ति के पास है," और एक न्यायप्रिय गवाह का होना लौथ है। इब्न अल-क़ासिम द्वारा उनसे की गई रिवायत में ऐसा ही है (५)।

अशहब ने मलिक से रिवायत की कि वह गैर-न्यायप्रिय गवाह और महिला के साथ भी शपथ दिलाते हैं। इब्न वहब ने रिवायत की कि महिलाओं की गवाही लौथ है। मुहम्मद (६) ने इब्न अल-क़ासिम के हवाले से उल्लेख किया कि दो महिलाओं की गवाही लौथ है, न कि एक महिला की गवाही।

काजी अबू बक्र इब्न अल-अरबी ने कहा: लौथ के बारे में बहुत मतभेद है; मज़हब का प्रसिद्ध मत यह है कि यह एक न्यायप्रिय गवाह है। मुहम्मद ने कहा: यह मुझे अधिक प्रिय है; उन्होंने कहा: और इब्न अल-क़ासिम और इब्न अब्द अल-हकम (७) ने इसे अपनाया है। और अब्द अल-मलिक इब्न मरवान से रिवायत है: कि यदि घायल या पीटा गया व्यक्ति कहता है: "मेरा खून फलां के पास है," और वह मर जाता है, तो क़सामा लागू होगा। मलिक और अल-लैथ बिन साद ने भी यही कहा है।

फुटनोट: (१) अल-मुवत्ता २/ ८७७। (२) (म) में: इब्न अबी लैला, जो कि गलत है, और पांडुलिपियों में नाम को सही नहीं किया गया था। (३) (द) और (ज़) में: छटपटाना। (४) इस कथन की तुलना 'अक्द अल-जवाहिर अल-थमीना' ३/ २८३ से करें। (५) अल-मुदव्वना अल-कुबरा ६/ ४२४। (६) वह इब्न अल-मव्वाज़, मुहम्मद बिन इब्राहिम, मलिकी फकीह (न्यायविद) हैं। (७) अक्द अल-जवाहिर अल-थमीना ३/ २८४, और अल-नवादिर वल-ज़ियादात १४/ १३८ देखें।

صفحہ ۲۰۰ سورہ البقرہ: آیت ۷۳

...اور ابن عباس، اور یہی قول نخعی اور حسن کا ہے، اور اسی طرف ثوری، کوفیوں، شافعی اور اسحاق کا رجحان ہے۔ انہوں نے اس سے استدلال کیا جسے مالک (۱) نے ابولیلی (۲) بن عبداللہ کے واسطے سے، سہل بن ابی حثمہ سے، نبی ﷺ کے انصار سے اس قول سے روایت کیا ہے: "یا تو وہ تمہارے ساتھی کی دیت دیں، یا جنگ کی اطلاع دیں۔" انہوں نے کہا: یہ دیت پر دلالت کرتا ہے، قصاص (قود) پر نہیں۔ انہوں نے کہا: اور آپ ﷺ کے اس قول کا مطلب "اور تم اپنے ساتھی کے خون کے مستحق ہو" یہ ہے کہ: اپنے مقتول کے خون کی دیت کے؛ کیونکہ یہودی ان کے ساتھی نہیں تھے، اور جو اپنے ساتھی کی دیت کا مستحق ہوا وہ اس کے خون کا مستحق ہوا؛ کیونکہ دیت عمد (جان بوجھ کر قتل) میں بھی لی جا سکتی ہے، تو یہ خون کا استحقاق ہوگا۔

مسئلہ: قسامہ (اجتماعی حلف) کے واجب ہونے کے لیے 'لوث' (قرائن و شواہد) ضروری ہے، اور اس کے بغیر چارہ نہیں۔ لوث وہ علامت ہے جس سے قتل کے مدعی کی سچائی کا گمان غالب ہو جاتا ہے، جیسے قتل دیکھنے پر ایک عادل گواہ کی گواہی، یا مقتول کو اپنے خون میں تڑپتے (۳) ہوئے دیکھا جائے اور ملزم اس کے پاس ہو - یا اس کے قریب ہو - اور اس پر قتل کے آثار ہوں (۴)۔

لوث اور اس کے مطابق فیصلے کے بارے میں اختلاف پایا جاتا ہے۔ مالک نے فرمایا: یہ مقتول کا یہ کہنا ہے کہ "میرا خون فلاں کے پاس ہے"، اور ایک عادل گواہ ہونا لوث ہے۔ ابن القاسم کی ان سے روایت میں اسی طرح ہے (۵)۔

اشہب نے مالک سے روایت کی ہے کہ وہ غیر عادل گواہ اور عورت کے ساتھ بھی قسم دلاتے ہیں۔ ابن وہب نے روایت کی کہ عورتوں کی گواہی لوث ہے۔ محمد (۶) نے ابن القاسم سے نقل کیا کہ دو عورتوں کی گواہی لوث ہے، نہ کہ ایک عورت کی گواہی۔

قاضی ابوبکر بن العربی نے کہا: لوث کے بارے میں بہت زیادہ اختلاف ہے؛ مذہب کا مشہور قول یہ ہے کہ وہ ایک عادل گواہ ہے۔ محمد نے کہا: یہ مجھے زیادہ پسند ہے؛ انہوں نے کہا: اور اسی کو ابن القاسم اور ابن عبدالحکم (۷) نے اختیار کیا۔ اور عبدالملک بن مروان سے مروی ہے کہ: اگر کوئی زخمی یا پٹا ہوا شخص کہے کہ "میرا خون فلاں کے پاس ہے" اور وہ مر جائے، تو قسامہ ہوگا۔ امام مالک اور لیث بن سعد کا بھی یہی قول ہے۔

حواشی: (۱) الموطأ ۲/ ۸۷۷۔ (۲) (م) میں: ابن ابی لیلی، جو کہ غلط ہے، اور قلمی نسخوں میں نام کی تصحیح نہیں کی گئی۔ (۳) (د) اور (ظ) میں: تڑپنا۔ (۴) اس کلام کا تقابل 'عقد الجواهر الثمينة' ۳/ ۲۸۳ سے کریں۔ (۵) المدونة الكبرى ٦/ ٤٢٤۔ (۶) وہ ابن المواز محمد بن ابراہیم ہیں، جو مالکی فقیہ ہیں۔ (۷) عقد الجواهر الثمينة ۳/ ۲۸۴، اور دیکھئے النوادر والزیادات ۱۴/ ۱۳۸۔

Surah Al-Baqarah: Verse 73 201 Malik argued based on the slain person of the Children of Israel that he said: "So-and-so killed me." (1) Al-Shafi'i said: "Al-Lawth" (circumstantial evidence) is a just witness, or evidence (2) is provided even if they are not considered just witnesses. (3) Al-Thawri and the Kufans mandated "Qasama" (oathtaking) based solely on the presence of the slain body, bypassing the need for the victim's statement or a witness. They said: If a slain person is found in a community's area, with marks of injury, the inhabitants of that place must swear they did not kill him, and they are liable for the blood money (Diyya). If there are no marks of injury, the clan (Aaqilah) is not liable for anything, unless evidence is brought against a specific individual. Sufyan said: This is among the things they have agreed upon (4) according to us; however, it is a weak opinion in which they have opposed the people of knowledge, and they have no precedence for it. It contradicts the Quran and Sunnah, as it imposes a financial penalty on the clan without established evidence or their confession. Malik and Al-Shafi'i held that if a slain person is found in a community's area, his blood is considered wasted ("hadr"), and the nearest neighbors are not held responsible. This is because a person might be killed elsewhere and then dumped at someone's door to frame them. Thus, one is not held accountable by such circumstances until the specific conditions they stipulated for the necessity of Qasama are met. Umar ibn Abd al-Aziz said: This is something in which judgment is delayed (5) until God decides on the Day of Resurrection. Issue: Al-Qasim ibn Mas'adah (6) said: I said to Al-Nasa'i: Malik does not rule with Qasama except with "Lawth," so why did he cite the hadith of Qasama when there is no "Lawth" in it? Al-Nasa'i replied: Malik treated the enmity that existed between them and the Jews as being equivalent to "Lawth," and he treated "Lawth," or the statement of the deceased, as being equivalent to enmity. (7)

---

(1) Al-Mufhim 7/5, as mentioned by Ibn Abi Zayd in Al-Nawadir wa Al-Ziyadat 4/136, and Ibn al-Arabi in Ahkam al-Quran 1/24. Ibn Abd al-Barr refuted this in Al-Istidhkar 25/326, saying: This is a grave oversight or trickery, for the one for whom the cow was slaughtered had a miracle associated with him that is not possible today; it is only valid for a prophet or in the presence of a prophet... (2) In (M): "bibi'ah" (with context). (3) The wording of Al-Shafi'i in Al-Umm 6/79: Or a slain person is found, and various pieces of evidence come from Muslims from different areas who have not met, each testifying individually against a man that he killed him, and their testimonies coincide, though none of them heard the testimony of the others, even if they are not among those whose testimony is usually accepted, or one just witness

testifies against a man that he killed him. (4) In (Za): gathered. (5) In (Da): with it. (6) We do not know him. (7) Ikmal al-Mu'lim 5/452.

सूरह अल-बक़रह: आयत 73 201 मालिक ने बनी इसराइल के उस मारे गए व्यक्ति का हवाला देते हुए तर्क दिया कि उसने कहा था: "अमुक व्यक्ति ने मुझे मार डाला।" (1) अल-शाफ़ई ने कहा: "अल-लौथ" (परिस्थितिजन्य साक्ष्य) एक न्यायप्रिय गवाह है, या साक्ष्य (2) प्रदान किया जाता है भले ही वे न्यायप्रिय गवाह न माने जाते हों। (3) अल-थौरी और कूफ़ा के विद्वानों ने केवल मारे गए व्यक्ति के शरीर की उपस्थिति के आधार पर "क़सामा" (शपथ लेना) को अनिवार्य माना, और मृतक के कथन या गवाह की आवश्यकता को दरकिनार कर दिया। उन्होंने कहा: यदि किसी समुदाय के क्षेत्र में कोई मारा गया व्यक्ति पाया जाता है, और उस पर चोट के निशान हैं, तो उस स्थान के निवासियों को शपथ लेनी चाहिए कि उन्होंने उसे नहीं मारा, और रक्त-धन (दियत) उन पर देय होगा; और यदि चोट के कोई निशान नहीं हैं, तो कबीले (अक़ीला) पर कुछ भी देय नहीं होगा, जब तक कि किसी व्यक्ति विशेष के विरुद्ध साक्ष्य न मिल जाए। सुफ़ियान ने कहा: यह उन चीज़ों में से है जिन पर वे हमारे अनुसार सहमत (4) हुए हैं; लेकिन यह एक कमज़ोर मत है जिसमें उन्होंने ज्ञान के लोगों (विद्वानों) का विरोध किया है, और उनके पास इसका कोई पूर्व उदाहरण नहीं है। यह कुरान और सुन्नत के विरुद्ध है, क्योंकि यह बिना किसी स्थापित साक्ष्य या उनके स्वीकारोक्ति के कबीले पर आर्थिक दंड थोपता है। मालिक और अल-शाफ़ई का मानना था कि यदि कोई मारा गया व्यक्ति किसी समुदाय के क्षेत्र में पाया जाता है, तो उसकी मृत्यु को बेकार ("हदर") माना जाता है, और निकटतम पड़ोसियों को ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जाता है। इसका कारण यह है कि किसी व्यक्ति की हत्या कहीं और की जा सकती है और फिर उन्हें फंसाने के लिए किसी के दरवाजे पर फेंक दिया जा सकता है। इसलिए, ऐसी परिस्थितियों के आधार पर तब तक किसी को उत्तरदायी नहीं ठहराया जाता जब तक कि वे विशेष शर्तें पूरी न हों जो उन्होंने क़सामा की अनिवार्यता के लिए निर्धारित की हैं। उमर बिन अब्दुल अज़ीज़ ने कहा: यह उन चीज़ों में से है जिसमें न्याय को टाल दिया (5) जाता है जब तक कि अल्लाह कयामत के दिन इसके बारे में फैसला न कर दे। मसला: अल-कासिम बिन मसादह (6) ने कहा: मैंने अल-नसाई से कहा: मालिक "लौथ" के बिना क़सामा का आदेश नहीं देते, तो उन्होंने क़सामा की हदीस को क्यों उद्धृत किया जबकि उसमें कोई "लौथ" नहीं है? अल-नसाई ने उत्तर दिया: मालिक ने उनके और यहूदियों के बीच मौजूद शत्रुता को "लौथ" के समान माना, और "लौथ" या मृतक के कथन को शत्रुता के समान माना। (7)

---

(1) अल-मुफ़हिम 7/5, जैसा कि इब्न अबी ज़ैद ने अल-नवादिर व अल-ज़ियादात 136/4 में और इब्न अल-अरबी ने अहकाम अल-कुरान 24/1 में उल्लेख किया है। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिधकार

326/25 में इसका खंडन करते हुए कहा: यह एक गंभीर चूक या छलावा है, क्योंकि जिसके लिए गाय ज़बह की गई थी, उसके साथ एक चमत्कार जुड़ा था जो आज संभव नहीं है; यह केवल एक नबी के लिए या नबी की उपस्थिति में ही मान्य है... (2) (म) में: "बिबीअह" (वातावरण/संदर्भ के साथ)। (3) अल-उम्म 79/6 में अल-शाफ़ई के शब्द: या एक मारा गया व्यक्ति पाया जाता है, और मुसलमानों के विभिन्न क्षेत्रों से अलग-अलग साक्ष्य आते हैं जो मिले नहीं हैं, उनमें से प्रत्येक स्वतंत्र रूप से एक व्यक्ति के विरुद्ध गवाही देता है कि उसने उसे मार डाला, और उनकी गवाही मेल खाती है, हालांकि उनमें से किसी ने दूसरे की गवाही नहीं सुनी, भले ही वे उनमें से न हों जिनकी गवाही आमतौर पर स्वीकार की जाती है, या एक न्यायप्रिय गवाह किसी व्यक्ति के विरुद्ध गवाही देता है कि उसने उसे मार डाला। (4) (ज़) में: एकत्रित। (5) (द) में: उसके साथ। (6) हम उसे नहीं जानते। (7) इकमल अल-मुल्लिम 452/5.

سورہ البقرہ: آیت 73 201 امام مالک نے بنی اسرائیل کے اس مقتول سے استدلال کیا کہ اس نے کہا: "فلاں شخص نے مجھے قتل کیا ہے۔" (1) امام شافعی نے فرمایا: "اللوث" (قرینہ/شہادتِ ناقصہ) ایک عادل گواہ ہے، یا ایسی شہادت (2) آ جائے خواہ وہ عادل نہ ہوں۔ (3) سفیان ثوری اور اہل کوفہ نے صرف مقتول کے پائے جانے پر ہی "قسامہ" (قسمیں کھانا) کو واجب قرار دیا ہے، اور انہوں نے مقتول کے قول اور گواہ کی رعایت سے بے نیازی برتی ہے۔ انہوں نے کہا: جب کسی قوم کے محلے میں مقتول پایا جائے اور اس پر زخم کا نشان ہو، تو اس جگہ والے حلف اٹھائیں گے کہ انہوں نے اسے قتل نہیں کیا، اور اس کی دیت (خون بہا) ان پر ہوگی؛ اور اگر اس پر کوئی نشان نہ ہو تو عاقلہ (قبیلے) پر کچھ نہیں ہوگا، الّا یہ کہ کسی ایک شخص کے خلاف گواہی قائم ہو جائے۔ سفیان نے کہا: یہ ہمارے نزدیک ان باتوں میں سے ہے جس پر وہ متفق (4) ہو گئے ہیں؛ حالانکہ یہ ایک کمزور قول ہے جس میں انہوں نے اہل علم کی مخالفت کی ہے، اور ان کے پاس اس کے لیے کوئی سلف (مثال) نہیں ہے، اور یہ قرآن و سنت کے بھی خلاف ہے، کیونکہ اس میں عاقلہ پر مال (دیت) لازم کرنا ہے بغیر کسی ایسی بینہ (دلیل) کے جو ان پر ثابت ہوئی ہو اور نہ ہی ان کے اقرار کے۔ امام مالک اور امام شافعی اس طرف گئے ہیں کہ اگر مقتول کسی قوم کے محلے میں پایا جائے تو اس کا خون رائیگاں ("ہدر") ہے، اس پر قریب ترین گھر والوں کا مؤاخذہ نہیں کیا جائے گا؛ کیونکہ ممکن ہے کہ مقتول کہیں اور قتل کیا گیا ہو اور پھر کسی قوم کے دروازے پر پھینک دیا گیا ہو تاکہ وہ اس میں ملوث ہو جائیں، لہٰذا اس جیسی چیز کی وجہ سے مؤاخذہ نہیں ہوگا یہاں تک کہ وہ اسباب پائے جائیں جو انہوں نے وجوبِ قسامہ کے لیے شرط قرار دیے ہیں۔ اور عمر بن عبد العزیز نے فرمایا: یہ ان چیزوں میں سے ہے جس میں فیصلہ مؤخر کر دیا جاتا (5) ہے یہاں تک کہ اللہ تعالیٰ قیامت کے دن اس کا فیصلہ فرمائے۔ مسئلہ: قاسم بن مسعدہ

(6) نے کہا: میں نے امام نسائی سے کہا: امام مالک "لوِث" کے بغیر قسامہ کے قائل نہیں ہیں، تو پھر انہوں نے قسامہ کی حدیث کیوں ذکر کی حالانکہ اس میں کوئی "لوث" نہیں ہے؟ امام نسائی نے کہا: امام مالک نے اس دشمنی کو جو ان کے اور یہودیوں کے درمیان تھی، "لوث" کے درجے میں رکھا، اور "لوث" یا مقتول کے قول کو دشمنی کے درجے میں رکھا۔ (7)

---

(1) المفہم 7/5، اور اسی طرح ابن ابی زید نے النوادر والزیادات 136/4 میں، اور ابن العربی نے احکام القرآن 24/1 میں ذکر کیا ہے۔ اور ابن عبد البر نے الاستذکار 326/25 میں اس کا رد کیا اور کہا: یہ شدید غفلت یا شعبدہ بازی ہے، کیونکہ جس کے لیے گائے ذبح کی گئی تھی اس میں ایک نشانی (معجزہ) تھی جس کا آج کوئی راستہ نہیں، پس یہ صرف نبی کے لیے یا نبی کے حضور ہی درست ہو سکتا ہے... (2) (م) میں: "ببیئہ"۔ (3) الام 79/6 میں شافعی کے الفاظ یہ ہیں: یا مقتول پایا جائے، تو مسلمانوں کے مختلف حصوں سے الگ الگ گواہی آئے جو آپس میں ملے نہ ہوں، پس ان میں سے ہر ایک انفرادی طور پر کسی شخص پر گواہی دے کہ اس نے اسے قتل کیا ہے، تو ان کی شہادتیں ایک دوسرے کے مطابق ہو جائیں، حالانکہ کسی نے دوسرے کی شہادت نہ سنی ہو، اگرچہ وہ ان لوگوں میں سے نہ ہوں جن کی شہادت معتبر مانی جاتی ہے، یا ایک عادل گواہ کسی شخص کے خلاف شہادت دے کہ اس نے اسے قتل کیا ہے۔ (4) (ظ) میں: "اجتمع" (جمع ہونا)۔ (5) (د) میں: "بہ" (اس کے ساتھ)۔ (6) ہم انہیں نہیں جانتے۔ (7) اکمال المعلم 452/5.

Surah Al-Baqarah: Verse 73 202 Ibn Abi Zayd (1) said: The origin of this is in the story of the Children of Israel when God brought back to life the one who was struck with part of the cow, and he said: "So-and-so killed me," and that enmity is a circumstantial evidence (Lawth) (2). Al-Shafi'i said: We do not consider the statement of the victim as circumstantial evidence (Lawth), as mentioned previously. Al-Shafi'i said: If there is clear enmity between two groups, like the enmity that was between the Ansar and the Jews, and a dead person is found among one of the two groups (3), and no others mix with them, then Al-Qasama (collective oath) becomes mandatory regarding it (4). Issue: They differed regarding a victim found in a neighborhood rented out by its owners. The companions of opinion (Ashab al-Ra'y) said: It is the responsibility of the people of the district, and the tenants have no liability. If they sold their houses and then a victim was found, the blood money (Diyyah) is upon the buyer, and the tenants have no liability. If the homeowners were absent and had rented out their houses, then the Al-Qasama and Diyyah are upon the absent homeowners, and the tenants among whom the victim was found have no liability. Then Ya'qub among them recanted from this view and said: The Al-Qasama and Diyyah are upon the tenants in the houses. He narrated this view from Ibn Abi Layla, arguing that the people of Khaybar were working tenants, and the victim was found among them. Al-Thawri said: And we say: It is upon the original owners, meaning the homeowners. Ahmad said: The correct view is that of Ibn Abi Layla regarding Al-Qasama, but not regarding Diyyah. Al-Shafi'i said: All of that is the same; there is no blood money (Aql) nor retaliation (Qawad) except by established evidence, or what necessitates Al-Qasama, so the heirs take the oath. Ibn al-Mundhir said: This is more correct. Issue: In Al-Qasama, no fewer than fifty oaths are taken, based on the Prophet's peace be upon him saying in the Hadith of Huwayisah and Muhayyisah: "Fifty (5) of you shall swear an oath against a man among them" (6). If the rightful claimants are fifty, each of them takes one oath; if they are fewer than that, or...

---

(1) He is Abdullah bin Abi Zayd, Abu Muhammad, Al-Qayrawani Al-Maliki, a scholar of the people of the Maghreb. He authored the book "Al-Nawadir wa al-Ziyadat" and summarized "Al-Mudawwana." These two books are the main references for fatwas in the Maghreb. He died in 386 AH. Al-Siyar 10/17. (2) See Al-Nawadir wa al-Ziyadat 14/136-137. (3) In (Z): "the two paths." (4) Similar text is in Al-Umm 6/78-79. (5) In (Z) and (M): "fifty," which is an error. (6) In (D) and (Z): "one man among them." The Hadith was mentioned previously 2/197.

सूरह अल-बक़रह: आयत 73 202 इब्न अबी ज़ैद (1) ने कहा: इसका आधार बनी इसराइल की कहानी में है जब अल्लाह ने उस व्यक्ति को जीवित किया जिसे गाय के एक हिस्से से मारा गया था, तो उसने कहा: "फलां ने मुझे मार डाला," और यह कि शत्रुता एक परिस्थितिगत साक्ष्य (लौथ) (2) है। अल-शाफ़ई ने कहा: हम मृतक के बयान को परिस्थितिगत साक्ष्य (लौथ) नहीं मानते, जैसा कि पहले बताया गया है। अल-शाफ़ई ने कहा: यदि दो समूहों के बीच स्पष्ट शत्रुता हो, जैसे अंसार और यहूदियों के बीच शत्रुता थी, और उन दो समूहों (3) में से एक में कोई मृतक पाया जाता है, और उनके साथ कोई अन्य नहीं मिलता, तो उसमें अल-क़सामा (सामूहिक शपथ) अनिवार्य हो जाती है (4)। मसला: वे उस मृतक के बारे में असहमत थे जो उस मुहल्ले में पाया गया जिसे उसके मालिकों ने किराए पर दिया था। असहाब अल-राए ने कहा: यह जिला (ख़ित्तह) के लोगों की ज़िम्मेदारी है, और निवासियों पर कुछ भी नहीं है। यदि उन्होंने अपने घर बेच दिए और फिर कोई मृतक पाया गया, तो ख़ून की क़ीमत (दियत) खरीदार पर है, और निवासियों पर कुछ भी नहीं है। यदि घर के मालिक अनुपस्थित थे और उन्होंने अपने घर किराए पर दिए थे, तो अल-क़सामा और दियत अनुपस्थित मकान मालिकों पर है, और उन निवासियों पर कुछ भी नहीं है जिनके बीच मृतक पाया गया था। फिर उनमें से याक़ूब ने इस विचार को वापस ले लिया और कहा: अल-क़सामा और दियत घरों के निवासियों पर है। उन्होंने इब्न अबी लैला से यह विचार व्यक्त किया और तर्क दिया कि खैबर के लोग काम करने वाले निवासी थे और मृतक उनके बीच पाया गया था। अल-थौरी ने कहा: और हम कहते हैं: यह मूल स्वामियों पर है, यानी मकान मालिकों पर। अहमद ने कहा: अल-क़सामा के बारे में इब्न अबी लैला का विचार सही है, लेकिन दियत के बारे में नहीं। अल-शाफ़ई ने कहा: वह सब समान है; न तो ख़ून की क़ीमत (अक़्ल) है और न ही प्रतिशोध (क़वाद), सिवाय इसके कि साक्ष्य पेश किया जाए, या जो अल-क़सामा को अनिवार्य करता है, तो वारिस शपथ लेते हैं। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: यह अधिक सही है। मसला: अल-क़सामा में पचास से कम शपथ नहीं ली जाती है, क्योंकि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने हुवैसा और मुहय्यिह की हदीस में कहा है: "तुममें से पचास (5) लोग उनमें से एक व्यक्ति के खिलाफ शपथ लेंगे" (6)। यदि हक़दार पचास हैं, तो उनमें से प्रत्येक एक शपथ लेगा; यदि वे उससे कम हैं, या...

---

(1) वह अब्दुल्ला बिन अबी ज़ैद, अबू मुहम्मद, अल-क़ैरवानी अल-मालकी हैं, जो मग़रेब के लोगों के विद्वान हैं। उन्होंने "अल-नवाद़िर व अल-ज़ियादात" पुस्तक लिखी और "अल-मुदव्वना" का संक्षिप्त विवरण तैयार किया। मग़रेब में फ़तवे के लिए इन दोनों पुस्तकों पर भरोसा किया जाता है। उनकी

मृत्यु 386 हिजरी में हुई। अल-सियार 10/17। (2) देखिए अल-नवाद़िर व अल-ज़ियादात 14/136-137। (3) (ज़) में: "दो रास्ते"। (4) इसी तरह की बात अल-उम्म 6/78-79 में है। (5) (ज़) और (म) में: "पचास", जो कि एक गलती है। (6) (द) और (ज़) में: "उनमें से एक व्यक्ति"। हदीस पहले 2/197 में गुज़र चुकी है।

سورۃ البقرہ: آیت 73 202 ابن ابی زید (1) نے کہا: اس کی اصل بنی اسرائیل کے قصے میں ہے جب اللہ تعالیٰ نے اس شخص کو زندہ کیا جسے گائے کے ایک حصے سے مارا گیا تھا، تو اس نے کہا: "فلاں نے مجھے قتل کیا،" اور یہ کہ دشمنی ایک قرینہ (لوث) (2) ہے۔ امام شافعی نے کہا: ہم مقتول کے قول کو لوث (قرینہ) نہیں مانتے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے۔ امام شافعی نے کہا: جب دو گروہوں کے درمیان کھلی دشمنی ہو، جیسے انصار اور یہودیوں کے درمیان دشمنی تھی، اور ان دو فریقوں (3) میں سے کسی ایک میں مقتول پایا جائے، اور ان کے ساتھ کوئی دوسرا نہ ملتا ہو، تو اس میں قسامہ (اجتماعی قسم) واجب ہو جاتی ہے (4)۔ مسئلہ: ان لوگوں نے اس مقتول کے بارے में اختلاف کیا جو اس محلے میں پایا جائے جسے اس کے مالکان نے کرائے پر دیا ہو۔ اصحاب الرائے نے کہا: یہ اہل خطہ (علاقے کے لوگوں) پر ہے، اور کرایہ داروں پر کچھ نہیں۔ اگر انہوں نے اپنے گھر بیچ دیے، پھر کوئی مقتول پایا گیا، تو دیت خریدار पर ہے، اور کرایہ داروں پر کچھ نہیں۔ اگر گھروں کے مالکان غائب تھے اور انہوں نے اپنے گھر کرائے پر دیے تھے، تو قسامہ اور دیت غائب مالکان پر ہے، اور ان کرایہ داروں پر کچھ نہیں جن کے درمیان مقتول پایا گیا۔ پھر ان میں سے یعقوب نے اس قول سے رجوع کر لیا اور کہا: قسامہ اور دیت گھروں میں رہنے والے کرایہ داروں پر ہے۔ انہوں نے یہ قول ابن ابی لیلیٰ سے نقل کیا اور دلیل دی کہ اہل خیبر کام کرنے والے کرایہ دار تھے اور مقتول ان کے درمیان پایا گیا تھا۔ ثوری نے کہا: اور ہم کہتے ہیں: یہ اصل مالکان یعنی گھر والوں پر ہے۔ احمد نے کہا: قسامہ میں قول ابن ابی لیلیٰ کا ہے، دیت میں نہیں۔ شافعی نے کہا: وہ سب برابر ہے، نہ عقل (دیت) ہے اور نہ قود (قصاص) مگر یہ کہ بینہ (گواہی) قائم ہو جائے، یا وہ چیز جو قسامہ کو واجب کرے تو اولیاء قسم کھائیں گے۔ ابن المنذر نے کہا: اور یہی زیادہ صحیح ہے۔ مسئلہ: قسامہ میں پچاس سے کم قسمیں نہیں لی جاتیں،

کیونکہ آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے حویصہ اور محیصہ کی حدیث میں فرمایا: "تم میں سے پچاس (5) آدمی ان میں سے ایک شخص پر قسم کھائیں" (6)۔ پس اگر حقدار پچاس ہوں تو ان میں سے ہر ایک ایک قسم کھائے گا، اگر وہ اس سے کم ہوں، یا...

---

(1) وہ عبد اللہ بن ابی زید، ابو محمد، القیروانی المالکی ہیں، جو اہل مغرب کے عالم ہیں۔ انہوں نے کتاب "النوادر والزیادات" لکھی اور "المدونة" کا خلاصہ کیا۔ مغرب میں فتویٰ کے لیے ان دو کتابوں پر اعتماد کیا جاتا ہے۔ ان کی وفات 386ھ میں ہوئی۔ السیر 10/17۔ (2) دیکھیے النوادر والزیادات 14/136-137۔ (3) (ظ) میں: "الطریقین" (دونوں راستے)۔ (4) اسی طرح کی گفتگو الام 6/78-79 میں ہے۔ (5) (ظ) اور (م) میں: "خمسین" (پچاس)، جو کہ غلط ہے۔ (6) (د) اور (ظ) میں: "ان میں سے ایک آدمی"۔ حدیث 197/2 میں پہلے گزر چکی ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 73 | 203

If any of them refuse to take the oath [whose pardon is not permissible], the oaths are returned to them according to their number. In intentional killing, fewer than two men do not swear; a single man does not swear (1), nor do women. The guardians and those agnatic relatives ('asaba) they call upon for assistance swear fifty oaths. This is the school of Malik, Al-Layth, Ath-Thawri, Al-Awza'i, Ahmad, and Dawud (2).

Mutarrif (3) narrated from Malik that no one swears along with the defendant; they themselves swear, whether they are one or more (4), fifty oaths by which they clear themselves; this is the view of Ash-Shafi'i.

Ash-Shafi'i said: No one takes the oath except an heir, whether the killing was intentional or accidental. No one swears concerning property and becomes entitled to it unless he has ownership for himself, or is one for whom Allah has ordained ownership from the heirs; and the heirs take oaths in proportion to their inheritance shares. This was said by Abu Thawr and chosen by Ibn Al-Mundhir (5), and it is the correct view; because one against whom no claim is made has no reason for an oath (7) to be directed at him (6). Furthermore, the purpose of these oaths is exoneration from the claim, and whoever is not claimed against is already innocent.

Malik said regarding accidental killing: In it, a single man or woman swears. Whenever fifty (8) oaths are completed by one or more, the swearer is entitled to his inheritance, and whoever refuses [to swear] is entitled to nothing. If someone who was absent arrives, he swears the number of oaths that would have been required of him had he been present, according to his inheritance. This is the famous view from Malik; and it has been narrated from him that he does not see Qasama in accidental killing (9).

The completion of the issues of Qasama, its branches, and its rulings are mentioned in the books of Fiqh and comparative law (Khilaf), and what we have mentioned is sufficient, and Allah is the Granter of success.

(1) In (Za): And a single man among men does not swear in it. (2) Al-Mufhim 11/5. (3) He is Mutarrif bin Abdullah bin Mutarrif bin Yasar Abu Mus'ab, the client of Maymunah, Mother of the Believers, a companion of Malik and his nephew, and he studied under him. Al-Bukhari narrated from him in his Sahih, and they used to prefer him over the companions of Malik. He died in the year (220 AH) in Medina. Tartib Al-Madarik 359/1. (4) In (Dal) and (Meem): Just as if they were one or more, and

the established text is from (Za), which corresponds to what is in Al-Mufhim 14/5. (5) Similarly in Al-Mufhim 12/5. (6) In (Za) and (Meem): In it, and the established text is from (Dal), which corresponds to what is in Al-Mufhim 14/5. (7) His saying: "and it is the correct view; because one against whom no claim is made..." follows his saying: "and Mutarrif narrated from Malik that no one swears along with the defendant..." as it is in Al-Mufhim 14/5. (8) In (Za) and (Meem): fifty [khamsin], and the established text is from (Dal), which corresponds to what is in Al-Mufhim 12/5. (9) Al-Mufhim 12/5.

सूरा अल-बकरा: आयत 73 | 203

उनमें से जो शपथ लेने से मना कर दे [जिसकी माफ़ी जायज़ नहीं है], शपथ उनकी संख्या के अनुसार उन पर लौटा दी जाती है। जानबूझकर की गई हत्या (अमद) में दो से कम पुरुष शपथ नहीं लेते; उसमें एक अकेला पुरुष शपथ नहीं लेता (1) और न ही महिलाएँ। संरक्षक और उनके वे संबंधी ('असबह) जिनकी वे सहायता लेते हैं, पचास शपथ लेते हैं। यह मालिक, अल-लैथ, अल-थौरी, अल-औज़ाई, अहमद और दाऊद (2) का मत है।

मुतर्रिफ़ (3) ने मालिक से रिवायत की है कि प्रतिवादी के साथ कोई और शपथ नहीं लेता; वे स्वयं शपथ लेते हैं, चाहे वे एक हों या अधिक (4), पचास शपथ जिनके द्वारा वे स्वयं को निर्दोष सिद्ध करते हैं; और यही अल-शाफ़ई का कथन है।

अल-शाफ़ई ने कहा: केवल उत्तराधिकारी ही शपथ लेता है, चाहे हत्या जानबूझकर की गई हो या अनजाने में। संपत्ति पर कोई शपथ नहीं लेता और उसका हकदार नहीं होता जब तक कि वह स्वयं स्वामी न हो, या जिसे अल्लाह ने उत्तराधिकारियों में से स्वामी बनाया हो; और उत्तराधिकारी अपने विरासत के हिस्सों के अनुसार शपथ लेते हैं। यह अबू थौर ने कहा और इब्न अल-मुन्ज़िर (5) ने इसे चुना, और यही सही है; क्योंकि जिसके विरुद्ध कोई दावा नहीं किया गया, उसके प्रति शपथ (7) निर्देशित करने का कोई कारण (6) नहीं होता। इसके अलावा, इन शपथों का उद्देश्य दावे से बरी होना है, और जिसके विरुद्ध कोई दावा नहीं है, वह पहले से ही निर्दोष है।

मालिक ने अनजाने में हुई हत्या (ख़ता) के बारे में कहा: इसमें एक पुरुष और महिला शपथ लेते हैं, तो जब एक या अधिक व्यक्तियों द्वारा पचास (8) शपथ पूरी हो जाती हैं, तो शपथ लेने वाला अपनी विरासत का हकदार हो जाता है, और जो मना कर देता है वह कुछ भी पाने का हकदार नहीं होता; यदि कोई अनुपस्थित व्यक्ति आ जाए, तो वह उतनी शपथ लेगा जितनी उस पर उपस्थित होने पर अनिवार्य होती, उसकी विरासत के अनुसार। यह मालिक का प्रसिद्ध कथन है; और उनसे यह भी रिवायत है कि वे अनजाने में हुई हत्या में क़सामा नहीं देखते (9)।

क़सामा के मसलों, इसकी शाखाओं और इसके नियमों का विवरण फ़िक़्ह और ख़िलाफ़ (मतभेद) की पुस्तकों में वर्णित है, और हमने जो उल्लेख किया है वह पर्याप्त है, और अल्लाह ही सफलता देने वाला है।

(1) (ज़) में: और पुरुषों में एक अकेला पुरुष इसमें शपथ नहीं लेता। (2) अल-मुफ़हिम 11/5। (3) वह मुतर्रिफ़ बिन अब्दुल्लाह बिन मुतर्रिफ़ बिन यसार अबू मुसाब हैं, मोमिनों की माँ मैमूना के स्वतंत्र किए हुए दास, मालिक के साथी और उनके भानजे, और उनसे ही ज्ञान प्राप्त किया, बुखारी ने अपनी सहीह में उनसे रिवायत की है, और वे उन्हें मालिक के साथियों पर प्राथमिकता देते थे। उनकी मृत्यु वर्ष (220 हिजरी) में मदीना में हुई। तरतीब अल-मदारिक 359/1। (4) (द) और (म) में: जैसे कि वे एक या अधिक हों, और स्थापित पाठ (ज़) से है, जो अल-मुफ़हिम 14/5 के अनुरूप है। (5) इसी तरह अल-मुफ़हिम 12/5 में। (6) (ज़) और (म) में: "उसमें", और स्थापित पाठ (द) से है, जो अल-मुफ़हिम 14/5 के अनुरूप है। (7) उनका कथन: "और यही सही है; क्योंकि जिसके विरुद्ध कोई दावा नहीं किया गया..." उनके इस कथन का अनुगामी है: "और मुतर्रिफ़ ने मालिक से रिवायत की कि प्रतिवादी के साथ कोई शपथ नहीं लेता..." जैसा कि अल-मुफ़हिम 14/5 में है। (8) (ज़) और (म) में: पचास [ख़मसीन], और स्थापित पाठ (द) से है, जो अल-मुफ़हिम 12/5 के अनुरूप है। (9) अल-मुफ़हिम 12/5।

ان میں سے جس نے قسم کھانے سے انکار کیا [جس کی معافی جائز نہیں]، قسمیں ان کی تعداد کے مطابق ان پر لوٹا دی جاتی ہیں۔ جان بوجھ کر قتل (عمد) میں دو مردوں سے کم قسم نہیں کھاتے؛ اس میں ایک اکیلا مرد قسم نہیں کھاتا (1) اور نہ ہی عورتیں، اولیاء اور وہ عصبہ جن سے اولیاء مدد طلب کرتے ہیں پچاس قسمیں کھاتے ہیں۔ یہ مالک، لیث، ثوری، اوزاعی، احمد اور داؤد (2) کا مذہب ہے۔

مطرف (3) نے مالک سے روایت کی ہے کہ مدعی علیہ (جس پر دعویٰ کیا گیا ہو) کے ساتھ کوئی قسم نہیں کھاتا؛ وہ خود ہی قسم کھاتے ہیں خواہ وہ ایک ہوں یا زیادہ (4)، پچاس قسمیں جن کے ذریعے وہ خود کو بری کرتے ہیں؛ اور یہی شافعی کا قول ہے۔

شافعی نے کہا: صرف وارث ہی قسم کھاتا ہے، خواہ قتل عمد ہو یا خطا۔ مال پر کوئی قسم نہیں کھاتا اور اس کا مستحق نہیں ہوتا سوائے اس کے جو خود اس کا مالک ہو، یا جسے اللہ نے وارثوں میں سے مالک بنایا ہو؛ اور وارث اپنی وراثت کے حصوں کے مطابق قسمیں کھاتے ہیں۔ یہی بات ابو ثور نے کہی اور اسے ابن المنذر (5) نے اختیار کیا، اور یہی صحیح ہے؛ کیونکہ جس کے خلاف کوئی دعویٰ نہ کیا گیا ہو، اس کی طرف قسم (7) متوجہ ہونے کی کوئی وجہ (6) نہیں ہوتی۔ مزید یہ کہ ان قسموں کا مقصد دعوے سے براءت ہے، اور جس پر دعویٰ نہ ہو وہ بری ہے۔

مالک نے خطا (غلطی سے قتل) کے بارے میں کہا: اس میں ایک مرد اور عورت قسم کھاتے ہیں، پس جب ایک یا زیادہ سے پچاس (8) قسمیں مکمل ہو جائیں تو قسم کھانے والا اپنی وراثت کا مستحق ہو جاتا ہے، اور جس نے انکار کیا وہ کسی چیز کا مستحق نہیں؛ اگر کوئی غائب شخص آ

جائے تو وہ اتنی قسمیں کھائے گا جو اس پر حاضر ہونے کی صورت میں لازم ہوتیں، اس کی وراثت کے مطابق۔ یہ مالک کا مشہور قول ہے؛ اور ان سے یہ بھی روایت ہے کہ وہ خطا میں قسامہ نہیں دیکھتے (9)۔

قسامہ کے مسائل، اس کی فروع اور احکام کا تذکرہ فقہ اور اختلاف کی کتابوں میں موجود ہے، اور جو کچھ ہم نے ذکر کیا وہ کافی ہے، اور اللہ ہی توفیق دینے والا ہے۔

(1) (ظ) میں: اور اس میں مردوں میں سے ایک اکیلا قسم نہیں کھاتا۔ (2) المفہم 11/5۔ (3) وہ مطرف بن عبد اللہ بن مطرف بن یسار ابو مصعب ہیں، ام المؤمنین میمونہ کے آزاد کردہ غلام، مالک کے ساتھی اور ان کے بھانجے، اور ان سے ہی فقہ حاصل کی، بخاری نے اپنی صحیح میں ان سے روایت کی ہے، اور وہ انہیں اصحابِ مالک پر مقدم رکھتے تھے۔ ان کی وفات سال (220ھ) میں مدینہ میں ہوئی۔ ترتیب المدارک 359/1۔ (4) (د) اور (م) میں: جیسے کہ وہ ایک یا زیادہ ہوں، اور ثابت شدہ متن (ظ) سے ہے، جو المفہم 14/5 کے موافق ہے۔ (5) اسی طرح المفہم 12/5 میں۔ (6) (ظ) اور (م) میں: "فیہ" (اس میں)، اور ثابت شدہ متن (د) سے ہے، جو المفہم 14/5 کے موافق ہے۔ (7) ان کا قول: "اور یہی صحیح ہے؛ کیونکہ جس کے خلاف کوئی دعویٰ نہ ہو..." ان کے اس قول کے تابع ہے: "اور مطرف نے مالک سے روایت کی کہ مدعی علیہ کے ساتھ کوئی قسم نہیں کھاتا..." جیسا کہ المفہم 14/5 میں ہے۔ (8) (ظ) اور (م) میں: خمسین (پچاس)، اور ثابت شدہ متن (د) سے ہے، جو المفہم 12/5 کے موافق ہے۔ (9) المفہم 12/5۔

Surah Al-Baqarah: Verse 74 - 204

Issue: This story of the cow is evidence that the law of those before us is a law for us. This was stated by groups of theologians and a group of jurists. It was chosen by Al-Karkhi (1) and specified by Ibn Bukayr Al-Qadi (2) from among our scholars. Al-Qadi Abu Muhammad Abd al-Wahhab said: This is what is required by Malik's principles and his arguments in his books, and Al-Shafi'i (3) leaned towards it. Allah has said: "So follow their guidance" [Al-An'am: 90], as will be discussed later, if Allah wills.

The Almighty's saying: "Thus Allah gives life to the dead" means: just as He brought this one back to life after his death, so Allah brings back to life everyone who has died. The 'kaf' (in 'kadhalika') is in the accusative position because it is an adjective for an omitted infinitive (4). "And shows you His signs" means: His signs and His power. "That you may understand": so that you may reason. It has been mentioned before (5). It means: you refrain from disobeying Him. I restrained ('aqaltu') myself from such-and-such, meaning: I prevented it from doing so. 'Al-Ma'aqil' means fortresses.

The Almighty's saying: "Then your hearts became hardened after that, being like stones or even harder. For indeed, there are stones from which rivers burst forth, and there are some of them that split open and water comes out from them, and there are some of them that fall down for fear of Allah. And Allah is not unaware of what you do." (74)

The Almighty's saying: "Then your hearts became hardened after that." Hardness (6): solidity, severity, and dryness. It is an expression of their being devoid of repentance and submission to the verses of Allah Almighty (7). Abu al-Aliyah, Qatadah, and others said: The meaning is the hearts of all the Children of Israel (8). Ibn Abbas said: The meaning is the hearts of the heirs...

(1) Ubaydullah bin Al-Husayn bin Dallal, Abu Al-Hasan, Al-Baghdadi, Mufti of Iraq, Sheikh of the Hanafis, to whom the leadership of the school ended, and he was a leader in Mu'tazilism, died in the year (340 AH). Al-Siyar 15/426. (2) Muhammad bin Ahmed bin Abdullah bin Bukayr, Abu Bakr Al-Tamimi Al-Baghdadi the jurist, died in the year (305 AH). Shajarat al-Nur al-Zakiya p. 78. (3) Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi 1/23. (4) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/238. (5) 1/341 - 342. (6) In (D): Al-Qasawah. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/166. (8) Mentioned by Al-Mawardi in Al-Nukat wal-'Uyun 1/144, and Ibn Al-Jawzi in Zad Al-Masir 1/102, and they did not attribute it. Ibn Abi Hatim (760) narrated it from Abu Al-Aliyah.

सूरा अल-बकरा: आयत 74 - 204

मसला: गाय की यह कहानी इस बात का प्रमाण है कि हमसे पहले के लोगों की शरीयत हमारे लिए शरीयत है। यह बात मुतकल्लिमीन (धर्मशास्त्रियों) के समूहों और फुकहा (कानूनविदों) के एक समूह ने कही है। इसे अल-करखी (1) ने चुना और हमारे विद्वानों में से इब्न बुकैर अल-कादी (2) ने इसे स्पष्ट किया। अल-कादी अबू मुहम्मद अब्दुल वहाब ने कहा: मलिक के सिद्धांतों और उनकी किताबों में उनके तर्कों से यही आवश्यक है, और अल-शाफई (3) का झुकाव भी इसी ओर था। अल्लाह ने कहा है: "तो उनके मार्गदर्शन का अनुसरण करो" [अल-अनाम: 90], जैसा कि अल्लाह ने चाहा तो आगे आएगा।

अल्लाह का कथन: "इसी प्रकार अल्लाह मृतकों को जीवित करता है" का अर्थ है: जैसे उसने इसे मरने के बाद जीवित किया; वैसे ही अल्लाह हर उस व्यक्ति को जीवित करता है जो मर गया। यहाँ 'काफ़' नसब (accusative) की स्थिति में है, क्योंकि यह एक लुप्त मस्तर (infinitive) का विशेषण है (4)। "और तुम्हें अपनी आयतें दिखाता है" अर्थात: उसके संकेत और उसकी शक्ति। "ताकि तुम समझो": ताकि तुम बुद्धि से काम लो। यह पहले आ चुका है (5)। यानी: तुम उसकी अवज्ञा करने से बचो। मैंने अपने आप को फलां काम से रोक लिया ('अकलतु'), यानी: मैंने उसे उससे मना कर दिया। 'अल-माकिल' का अर्थ है: किले।

अल्लाह का कथन: "फिर उसके बाद तुम्हारे दिल सख्त हो गए, वे पत्थरों के समान हो गए या उससे भी अधिक सख्त। और वास्तव में पत्थरों में से कुछ ऐसे हैं जिनसे नदियां फूट निकलती हैं, और उनमें से कुछ ऐसे हैं जो फट जाते हैं और उनमें से पानी निकलता है, और उनमें से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह के डर से गिर पड़ते हैं। और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो तुम करते हो।" (74)

अल्लाह का कथन: "फिर उसके बाद तुम्हारे दिल सख्त हो गए।" सख्ती (6): कठोरता, तीव्रता और शुष्कता। यह अल्लाह तआला की आयतों के प्रति पश्चाताप और अधीनता से रहित होने की अभिव्यक्ति है (7)। अबू अल-अलियाह, कतादा और अन्य ने कहा: इसका अर्थ बनी इसराइल के सभी लोगों के दिल हैं (8)। इब्न अब्बास ने कहा: इसका अर्थ वारिसों के दिल हैं...

(1) उबैदुल्लाह बिन अल-हुसैन बिन दलाल, अबू अल-हसन, अल-बगदादी, इराक के मुफ्ती, हनफियों के शेख, जिनके पास संप्रदाय का नेतृत्व समाप्त हुआ, और वे मुअतज़िलावाद में प्रमुख थे, वर्ष (340 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 15/426। (2) मुहम्मद बिन अहमद बिन अब्दुल्ला बिन बुकैर, अबू

बक्र अल-तमीमी अल-बगदादी फकीह, वर्ष (305 हिजरी) में मृत्यु हुई। शजरत अल-नूर अल-ज़किया पृष्ठ 78। (3) अहकाम अल-कुरान, इब्न अल-अरबी 1/23। (4) इराब अल-कुरान, अल-नहस 1/238। (5) 1/341 - 342। (6) (डी) में: अल-कसावा। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166। (8) अल-मावर्दी ने अल-नुकात वल-उयून 1/144 में और इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर 1/102 में इसका उल्लेख किया है, और उन्होंने इसे किसी को श्रेय नहीं दिया। इब्न अबी हातिम (760) ने इसे अबू अल-अलियाह से उद्धृत किया है।

سورہ البقرہ : آیت 74 - ٢٠٤

مسئلہ : گائے کے اس قصے میں اس بات کی دلیل ہے کہ ہم سے پہلے والوں کی شریعت ہمارے لیے بھی شریعت ہے، اور یہ بات متکلمین کے گروہوں اور فقہاء کی ایک جماعت نے کہی ہے، اور اسے الکرخی(1) نے اختیار کیا ہے، اور ہمارے علماء میں سے ابن بکیر القاضی(2) نے اس پر نص فرمائی ہے۔ قاضی ابو محمد عبدالوہاب نے کہا: امام مالک کے اصول اور ان کی کتابوں میں ان کے استدلال اسی کا تقاضا کرتے ہیں، اور امام شافعی(3) کا میلان بھی اسی طرف تھا، اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا ہے: ﴿فَبِهُدَاهُمُ اقْتَدِهْ﴾ [الأنعام: ٩٠] (پس ان کی ہدایت کی پیروی کرو) جیسا کہ ان شاء اللہ تعالیٰ آگے آئے گا۔

اللہ تعالیٰ کا قول : ﴿كَذَٰلِكَ يُحْيِي اللَّهُ الْمَوْتَىٰ﴾ (اسی طرح اللہ مردوں کو زندہ کرتا ہے) یعنی: جس طرح اسے اس کی موت کے بعد زندہ کیا؛ اسی طرح اللہ ہر اس شخص کو زندہ کرے گا جو مر گیا۔ پس 'کاف' محلِ نصب میں ہے، کیونکہ یہ ایک محذوف مصدر کی صفت ہے(4)۔ ﴿وَيُرِيكُمْ آيَاتِهِ﴾ یعنی: اپنی نشانیاں اور اپنی قدرت۔ ﴿لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُونَ﴾ : تاکہ تم سمجھو۔ اور یہ پہلے گزر چکا ہے(5)۔ یعنی: تم اس کی نافرمانی سے باز رہو۔ میں نے اپنے نفس کو فلاں چیز سے عقل (روک) لیا، یعنی: اسے اس سے منع کر دیا۔ اور 'المعاقل' کے معنی قلعے ہیں۔

اللہ تعالیٰ کا قول : ﴿ثُمَّ قَسَتْ قُلُوبُكُم مِّن بَعْدِ ذَٰلِكَ فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ أَوْ أَشَدُّ قَسْوَةً وَإِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْأَنْهَارُ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَاءُ وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللَّهِ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ (74)﴾

اللہ تعالیٰ کا قول : ﴿ثُمَّ قَسَتْ قُلُوبُكُم مِّن بَعْدِ ذَٰلِكَ﴾ قسوت(6) : سختی، شدت اور خشکی۔ اور یہ اللہ تعالیٰ کی آیات کے سامنے رجوع اور سرِ تسلیم خم کرنے سے دلوں کے خالی ہونے کی تعبیر ہے(7)۔ ابو العالیہ، قتادہ اور دیگر نے کہا: اس سے مراد تمام بنی اسرائیل کے دل ہیں(8)۔ ابن عباس نے کہا: اس سے مراد وارثوں کے دل ہیں...

(١) عبید اللہ بن الحسین بن دلال، ابو الحسن، البغدادی، مفتیِ عراق، شیخ الحنفیہ، جن پر اس مسلک کی ریاست ختم ہوئی، اور وہ اعتزال میں ایک سربراہ تھے، ٣٤٠ھ میں وفات پائی۔ السیر ٤٢٦/١٥۔ (٢) محمد بن احمد بن عبد اللہ بن بکیر، ابو بکر التمیمی البغدادی الفقیہ، ٣٠٥ھ میں وفات پائی۔ شجرة النور الزکیہ ص ٧٨۔ (٣) احکام القرآن لابن العربی ٢٣/١۔ (٤) اعراب القرآن للنحاس ٢٣٨/١۔ (٥) ٣٤١/١ - ٣٤٢۔ (٦) (د) میں ہے: القساوة۔ (٧) المحرر الوجیز ١٦٦/١۔ (٨) اسے الماوردی نے النکت والعیون ١٤٤/١ میں ذکر کیا ہے، اور ابن الجوزی نے زاد المسیر ١٠٢/١ میں، اور انہوں نے اسے کسی کی طرف منسوب نہیں کیا۔ اور اسے ابن ابی حاتم (٧٦٠) نے ابو العالیہ سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 74 205

...the slain person; for when he came back to life and informed [them] of his killer (1) and then returned to death, they denied his killing and said: "He lied," after they had seen this great sign. Thus, they were never more blind of heart, nor more intense in their denial of their prophet than at that moment. However, Allah's decree regarding his killing was executed (2).

At-Tirmidhi narrated from Abdullah bin Umar who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Do not speak much without the remembrance of Allah, for excessive speech without the remembrance of Allah hardens the heart, and the furthest people from Allah are those with hardened hearts" (3).

In Musnad Al-Bazzar, from Anas who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Four things are from misery: dryness of the eye [inability to cry from fear of Allah], hardness of the heart, long hopes, and greed for the worldly life" (4).

His saying, the Most High: {Then your hearts became hardened after that, being like stones or even harder} "Or" here is said to be in the meaning of "and", as in his saying: {a sinner or an ungrateful one} [Al-Insan: 24]. {as an excuse or a warning} [Al-Mursalat: 6]. And the poet said: He attained the caliphate or it was destined for him (5) Meaning: and it was.

And it is said: it is in the meaning of "nay" (bal); like His saying, the Most High: {And We sent him to a hundred thousand or more} [As-Saffat: 147], the meaning is: nay, they increased (6). And the poet said: She appeared like the horn of the sun in the brightness of the forenoon, and her image, or you, are more beautiful in the eye (7) Meaning: nay, you are.

---

(1) In (Th): and they informed of his killer. (2) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/166, and in it: "their killing", instead of: "his killing". Al-Tabari recorded something similar 2/129. (3) Sunan At-Tirmidhi (2411), and he said: This is a Hasan Gharib Hadith. (4) Kashf Al-Astar (3230) through Hani bin Al-Mutawakkil, from Abdullah bin Sulaiman, from Aban, from Anas. Al-Bazzar said: Abdullah bin Sulaiman narrated hadiths that were not corroborated. Al-Dhahabi mentioned it in Mizan al-I'tidal 4/291 and said: This is a rejected (munkar) hadith. (5) It is the first half of a verse by Jarir, and its second half is: "As Moses came to his Lord by destiny." Previously mentioned in 1/325. (6) Tafsir Al-Tabari 2/132, Al-Nukat wal-'Uyun 1/145-146, and Al-Muharrar Al-Wajiz 1/166. (7) Ibn Jinni attributed it in Al-Muhtasib 1/99 and Al-Khasais 2/458 to Dhu al-Rumma, and it is

in the supplements of his Diwan 3/1857. Al-Farra' mentioned it in Ma'ani al-Quran 1/72 and did not attribute it.

सूरा अल-बकरा: आयत 74 205

...मारे गए व्यक्ति; क्योंकि जब वह जीवित हुआ और अपने कातिल के बारे में सूचित किया (1) और फिर अपनी मृत्यु की ओर लौट गया, तो उन्होंने उसकी हत्या से इनकार कर दिया और कहा: "उसने झूठ बोला," इस महान संकेत को देखने के बाद। इस प्रकार, वे कभी भी अपने नबी को झुठलाने में इतने कठोर नहीं थे जितने कि उस समय थे, लेकिन उसकी हत्या के संबंध में अल्लाह का आदेश लागू हो गया (2)।

तिर्मिज़ी ने अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "अल्लाह के ज़िक्र के बिना बहुत अधिक बातें न करो, क्योंकि अल्लाह के ज़िक्र के बिना अधिक बातें करना दिल को कठोर बना देता है, और अल्लाह से सबसे दूर वे लोग हैं जिनका दिल कठोर है" (3)।

मुसनद अल-बज़्ज़ार में अनस से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "चार चीजें बदकिस्मती की निशानी हैं: आँखों का खुश्क होना (अल्लाह के खौफ से न रोना), दिल की कठोरता, लंबी उम्मीदें और दुनिया का लालच" (4)।

अल्लाह तआला का फरमान: {फिर उसके बाद तुम्हारे दिल कठोर हो गए, तो वे पत्थरों के समान हो गए या उससे भी अधिक कठोर} यहाँ "या" (अौ) के बारे में कहा गया है कि यह "और" (वाव) के अर्थ में है, जैसा कि उसके कथन में है: {किसी पापी या कृतघ्न का} [अल-इंसान: 24]। {माफी या चेतावनी के रूप में} [अल-मुरसलात: 6]। और कवि ने कहा: उसने खिलाफत प्राप्त की या (और) वह उसके भाग्य में थी (5) यानी: और थी।

और यह भी कहा गया है: यह "बल्कि" (बल) के अर्थ में है; जैसा कि अल्लाह तआला का फरमान है: {और हमने उसे एक लाख या उससे अधिक की ओर भेजा} [अस-साफ़्फ़ात: 147], इसका अर्थ है: बल्कि वे बढ़ गए (6)। और कवि ने कहा: वह दोपहर की चमक में सूरज के सींग की तरह दिखाई दी, और उसकी छवि, या (बल्कि) तुम, आँखों में अधिक सुंदर हो (7) यानी: बल्कि तुम।

---

(1) (ज़) में: और उन्होंने अपने कातिल के बारे में सूचित किया। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 166/1, और इसमें: 'उनकी हत्या', इसके बजाय: 'उसकी हत्या'। अल-तबरी ने इसी तरह 129/2 में उल्लेख किया है। (3) सुनन अत-तिर्मिज़ी (2411), और उन्होंने कहा: यह हदीस हसन गरीब है। (4) कश्फ अल-अस्तार (3230) जो हानी बिन अल-मुतवक्किल के माध्यम से है, अब्दुल्लाह बिन सुलेमान से,

अबान से, अनस से। अल-बज़्ज़ार ने कहा: अब्दुल्लाह बिन सुलेमान ने ऐसी हदीसें सुनाईं जिनका समर्थन नहीं किया गया। अल-ज़हबी ने इसे मीज़ान अल-एतिदाल 291/4 में उद्धृत किया और कहा: यह एक मुनकर (अस्वीकृत) हदीस है। (5) यह जरीर के एक शेर का पहला हिस्सा है, और इसका दूसरा हिस्सा है: 'जैसा कि मूसा अपने रब के पास तकदीर से आए।' पहले 325/1 में गुजर चुका है। (6) तफ़्सीर अल-तबरी 132/2, अल-नुकात वल-उयून 145/1 - 146, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 166/1। (7) इब्न जिन्नी ने इसे अल-मुहतासिब 99/1 और अल-खसाइस 458/2 में ज़ू अल-रुम्मा की ओर मन्सूब किया है, और यह उनके दीवान के परिशिष्ट 1857/3 में है, और अल-फर्रा ने इसे मआनी अल-कुरान 72/1 में उल्लेख किया है और इसे मन्सूब नहीं किया है।

سوره البقره: آيت ٧٤ ٢٠٥

القتيل؛ لأنهم حين حَيِيَ وأخبر بقاتله (١) وعاد إلى موته، أنكروا قتله، وقالوا: كذب، بعد ما رأوا هذه الآية العظمى، فلم يكونوا قط أعمى قلوباً، ولا أشد تكذيباً لنبيهم منهم عند ذلك، لكن نَفَذَ حُكْمُ الله بقتله (٢).

روى الترمذي عن عبد الله بن عمر قال: قال رسول الله ﷺ: «لا تكثروا الكلام بغير ذكر الله، فإن كثرة الكلام بغير ذكر الله قسوة للقلب، وإن أبعد الناس من الله القلب القاسي» (٣).

وفي مسند البزار عن أنس قال: قال رسول الله ﷺ: «أربعة من الشقاء: جمود العين، وقساء القلب، وطول الأمل، والحرص على الدنيا» (٤).

قوله تعالى: ﴿فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ أَوْ أَشَدُّ قَسْوَةً﴾ «أو» قيل: هي بمعنى الواو، كما قال: ﴿إِثْمًا أَوْ كَفُورًا﴾ [الإنسان: ٢٤]. ﴿عُذْرًا أَوْ نُذْرًا﴾ [المرسلات: ٦] وقال الشاعر: نال الخلافة أو كانت له قَدَراً (٥) أي: وكانت.

وقيل: هي بمعنى «بل»؛ كقوله تعالى: ﴿وَأَرْسَلْنَاهُ إِلَى مِائَةِ أَلْفٍ أَوْ يَزِيدُونَ﴾ [الصافات: ١٤٧]، المعنى: بل يزيدون (٦)، وقال الشاعر: بَدَتْ مِثْلَ قَرْنِ الشمسِ في رَوْنَقِ الضُّحَى وصورتها أو أنتِ في العينِ أَمْلَحُ (٧) أي: بل أنتِ.

---

(١) في (ظ): وأخبروا بقاتله. (٢) المحرر الوجيز ١٦٦/١، وفيه: بقتلهم، بدل: بقتله. وأخرجه بنحوه الطبري ١٢٩/٢. (٣) سنن الترمذي (٢٤١١)، وقال: هذا حديث حسن غريب. (٤) كشف الأستار (٣٢٣٠) وهو من طريق هانئ بن المتوكل، عن عبد الله بن سليمان، عن أبان، عن أنس، به. قال البزار: عبد الله بن سليمان حدّث بأحاديث لم يُتابع عليها. وأورده الذهبي في ميزان الاعتدال ٢٩١/٤، وقال: هذا حديث منكر. (٥) هو صدر بيت لجرير، وعجزه: كما أتى ربّه موسى على قَدَر. وسلف ٣٢٥/١. (٦)

تفسير الطبري ١٣٢/٢، والنكت والعيون ١٤٥/١ - ١٤٦، والمحرر الوجيز ١٦٦/١. (٧) نسبه ابن جني في المحتسب ٩٩/١، والخصائص ٤٥٨/٢، إلى ذي الرمة، وهو في ملحقات ديوانه ١٨٥٧/٣، وأورده الفراء في معاني القرآن ٧٢/١ ولم ينسبه.

Surah Al-Baqarah: Verse 74

Page 206

It was said: Its meaning is ambiguity for the addressee. From this is the saying of Abu Al-Aswad Al-Du'ali: "I love Muhammad with a strong love, and Abbas, and Hamzah, or Ali." "If their love be right guidance, I have attained it (1), and I am not wrong if it be error (2)."

Abu Al-Aswad did not doubt that their love is manifest guidance; he only intended ambiguity. It was said to Abu Al-Aswad when he said that: "Did you doubt?!" He said: "No," then he cited the Almighty's saying: {And indeed, we or you are upon guidance or in clear error} [Saba: 24] and said: "Was he who reported this one who doubted (3) (4)?!"

It was said: Its meaning is choice (takhyir), i.e., liken them to stones and you will be correct, or to something harder than stones and you will be correct. This is like the saying of someone: "Sit with Al-Hasan, or Ibn Sirin," and "Learn jurisprudence, or Hadith, or grammar."

It was said: Rather, it is used in its original sense of doubt, meaning in your view, O addressees, (5) if you were to witness their hardness, you would doubt: Is it like stones, or harder than stones?

This meaning was also suggested for the Almighty's saying: {to a hundred thousand or more} [As-Saffat: 147].

Another group said: Allah only meant that among them are those whose hearts are like stone, and among them are those whose hearts are harder than stone. So the meaning is: they are (6) two groups (7).

His saying, the Almighty: {Or harder} (aw ashaddu). "Ashaddu" is in the nominative case due to conjunction with the position of the "kaaf" in His saying:

---

(1) In (Za): "asabtu" (I attained). (2) Al-Nukat wal-'Uyun 1/145, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/166. In his Diwan pp. 119-120 and Tabari's Tafsir 2/131: "and the executor" (wal-wasiyya) instead of "or Ali". (3) In (Dal) and (Za): "shakka" (doubted). (4) Tafsir al-Tabari 2/131, Al-Nukat wal-'Uyun 1/145, Al-Muharrar al-Wajiz 1/166. Ibn Atiyyah said: This verse—which Abu Al-Aswad used as evidence—is different from Abu Al-Aswad's verse, and the meaning is only complete with "or". (5) In (Za): "that you" (annakum). (6) In (Dal) and (Za): "it is" (hiya). (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/166.

सूरह अल-बक़रह: आयत 74

पृष्ठ 206

कहा गया: इसका अर्थ संबोधित व्यक्ति के लिए अस्पष्टता (इबहाम) है। इसी से अबू अल-असवद अल-दुआली का यह कहना है: "मैं मुहम्मद से बहुत प्यार करता हूँ, और अब्बास से, और हमज़ा से, या अली से।" "यदि उनका प्यार सही मार्गदर्शन है, तो मैंने उसे पा लिया (1), और यदि वह गुमराही है, तो मैं गलत नहीं हूँ (2)।"

अबू अल-असवद को इस बात में कोई संदेह नहीं था कि उनका प्यार स्पष्ट मार्गदर्शन है; उन्होंने केवल अस्पष्टता का इरादा किया था। जब अबू अल-असवद ने यह कहा, तो उनसे पूछा गया: "क्या आपको संदेह हुआ?!" उन्होंने कहा: "बिल्कुल नहीं," फिर उन्होंने अल्लाह के इस कथन को प्रमाण के रूप में प्रस्तुत किया: {और वास्तव में, हम या तुम मार्गदर्शन पर हैं या स्पष्ट पथभ्रष्टता में} [सबा: 24] और कहा: "क्या यह बताने वाला संदिग्ध (3) (4) था?!"

कहा गया: इसका अर्थ विकल्प (तख़यीर) है, यानी: उन्हें पत्थरों के समान समझो तो भी तुम सही होगे, या पत्थरों से भी कठोर समझो तो भी सही होगे। यह किसी कहने वाले के इस कथन की तरह है: "अल-हसन के पास बैठो, या इब्न सिरीन के," और "फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) सीखो, या हदीस, या व्याकरण।"

कहा गया: बल्कि, यह संदेह के अपने मूल अर्थ में है, और इसका अर्थ तुम्हारे लिए है ऐ संबोधित करने वालों, (5) कि यदि तुम उनकी कठोरता को देखते, तो तुम्हें संदेह होता: क्या वह पत्थरों की तरह है, या पत्थरों से भी कठोर?

यह अर्थ अल्लाह के इस कथन में भी कहा गया है: {...एक लाख या उससे अधिक तक} [अस-साफ़्फ़ात: 147]।

एक समूह ने कहा: अल्लाह का इरादा केवल यह था कि उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके दिल पत्थर की तरह हैं, और उनमें से कुछ ऐसे हैं जिनके दिल पत्थर से भी कठोर हैं। तो अर्थ यह है: वे (6) दो समूह हैं (7)।

अल्लाह का कथन: {या अधिक कठोर} (अउ अशद्दु)। "अशद्दु" मरफ़ू (नामात्मक) है क्योंकि यह अल्लाह के कथन में "काफ़" के स्थान पर अत्फ़ (संयोजन) है:

(1) (ज़) में: "असब्तु" (मैंने पा लिया)। (2) अल-नुकत वल-'उयून 1/145, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166। उनके दीवान पृ. 119-120 और तबरी की तफ़सीर 2/131 में: "और वसीय" (अल-वसीय्या), "या अली" के बजाय। (3) (द) और (ज़) में: "शक्का" (संदेह किया)। (4) तफ़सीर अल-तबरी 2/131, अल-नुकत वल-'उयून 1/145, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166। इब्न अतिया ने कहा: यह आयत - जिसका अबू अल-असवद ने प्रमाण दिया - अबू अल-असवद के शेर से अलग है, और अर्थ केवल "या" (अउ) के साथ पूरा होता है। (5) (ज़) में: "कि तुम" (अन्नाकुम)। (6) (द) और (ज़) में: "वह है" (हिया)। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/166।

سورہ البقرہ: آیت 74

صفحہ 206

کہا گیا: اس کا معنی مخاطب پر ابہام پیدا کرنا ہے، اور اسی سے ابو الاسود الدؤلی کا یہ قول ہے: "میں محمد سے بہت زیادہ محبت کرتا ہوں، اور عباس سے، اور حمزہ سے، یا علی سے۔" "پس اگر ان کی محبت ہدایت ہے تو میں نے اسے پا لیا (1)، اور اگر وہ گمراہی ہے تو میں غلطی پر نہیں ہوں (2)۔"

اور ابو الاسود کو اس میں کوئی شک نہیں تھا کہ ان کی محبت واضح ہدایت ہے، انہوں نے صرف ابہام کا ارادہ کیا تھا۔ اور جب انہوں نے یہ کہا تو ابو الاسود سے کہا گیا: کیا آپ کو شک ہوا؟! انہوں نے کہا: ہرگز نہیں، پھر انہوں نے اللہ تعالیٰ کے اس قول سے استدلال کیا: {اور بے شک ہم یا تم ہدایت پر ہیں یا کھلی گمراہی میں} [سبأ: 24] اور کہا: کیا اس بات کی خبر دینے والا شک کرنے والا (3) (4) تھا؟!

کہا گیا: اس کا معنی تخییر (اختیار دینا) ہے، یعنی: انہیں پتھروں سے تشبیہ دو تو تم درست ہو، یا پتھروں سے بھی زیادہ سخت چیز سے تو بھی درست ہو۔ اور یہ کسی کہنے والے کے اس قول کی طرح ہے: "الحسن کے پاس بیٹھو، یا ابن سیرین کے،" اور "فقہ سیکھو، یا حدیث، یا نحو۔"

کہا گیا: بلکہ یہ شک کے اپنے اصل معنی پر ہے، اور اے مخاطبین تمہارے نزدیک اس کا معنی یہ ہے کہ (5) اگر تم ان کی سختی کا مشاہدہ کرتے تو تمہیں شک ہوتا: کیا وہ پتھر کی طرح ہے، یا پتھر سے بھی زیادہ سخت؟

اور یہی معنی اللہ تعالیٰ کے اس قول میں بھی کہا گیا ہے: {ایک لاکھ تک یا اس سے زیادہ} [الصافات: 147]۔

اور ایک گروہ نے کہا: اللہ تعالیٰ نے صرف یہ مراد لیا ہے کہ ان میں کچھ وہ ہیں جن کا دل پتھر کی طرح ہے، اور ان میں وہ ہیں جن کا دل پتھر سے بھی زیادہ سخت ہے۔ تو معنی یہ ہے: وہ (6) دو گروہ ہیں (7)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {یا زیادہ سخت} (أو أشد)۔ "أشد" مرفوع ہے اس کا عطف اللہ کے قول میں "کاف" کے محل پر ہونے کی وجہ سے ہے:

---

(1) (ظ) میں: "أصبت" (میں نے پا لیا)۔ (2) النکت والعیون 1/145، اور المحرر الوجیز 1/166۔ اور ان کے دیوان ص 119-120 اور تفسیر طبری 2/131 میں ہے: "والوصیا"، بجائے: "أو علیا" کے۔ (3) (د) اور (ظ) میں: "شکا" (شک کیا)۔ (4) تفسیر طبری 2/131، النکت والعیون 1/145، اور المحرر الوجیز 1/166۔ ابن عطیہ نے کہا: یہ آیت - جس سے ابو الاسود نے استدلال کیا - ابو الاسود کے شعر سے مختلف ہے، اور معنی "أو" (یا) کے بغیر مکمل نہیں ہوتا۔ (5) (ظ) میں: "أنکم" (کہ تم)۔ (6) (د) اور (ظ) میں: "هي" (وہ ہے)۔ (7) المحرر الوجیز 1/166۔

Page 207, Surah Al-Baqarah: Verse 74

"Like stones"; because the meaning is: they are like stones or harder. It is also permissible to say "aw ashadda" with a fatha (short 'a' sound) as a conjunction to "stones"(1). And "qaswatan" (hardness) is in the accusative case as a specification (tamyiz). Abu Haywah recited it as "qasawatan," and the meaning is the same(2).

The Almighty's saying: {And indeed, there are some stones from which rivers gush forth, and indeed, there are some of them that split asunder and water comes out of them}. The meaning of "infijar" (gushing/bursting) has been previously discussed(3). "Yashshaqqaq" (splits asunder); its origin is "yatashaqqaq," the 'ta' was assimilated into the 'shin.' This refers to springs that haven't grown large enough to become rivers, or to stones that split even if wide-flowing water does not run from them(4).

Ibn Musarrif recited: "yanshaqiq" with the letter 'nun'(5). He also recited "lammā yatafajjar" and "lammā yashshaqqaq" with a shadda (doubling) on "lammā" in both places, which is an unconventional reading(6). Malik ibn Dinar recited(7): "yanfajiru" with 'nun' and a kasra on 'jim'(8).

Qatadah said: "The stones are excused, but the wretched of the children of Adam are not excused"(9)!

(1) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/238. Ibn Khalawayh, in "Al-Qira'at al-Shadhdhah" p.7, attributed the reading "aw ashadda" to Abu Haywah, and Al-Zamakhshari in "Al-Kashshaf" 1/290 attributed it to Al-A'mash. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. Al-Zamakhshari also mentioned the reading "qasawatan" 1/290. (3) 2/138. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167, and in it: "munsafih" (flowing out). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. Abu Hayyan said in "Al-Bahr al-Muhit" 1/265: "What the Arabic language requires is for it to be with a single stressed 'qaf', and un-doubling (fakk) might occur in poetry. If the present tense verb is in the jussive state, un-doubling is permissible and eloquent. Here it is in the indicative (marfu'), so un-doubling is not permissible unless it is an anomalous (shadhdhah) reading, in which case it might be allowed." (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. Ibn Khalawayh mentioned the reading "lammā yatafajjar" in "Al-Qira'at al-Shadhdhah" p.7 and attributed it to Malik ibn Dinar and Al-A'mash. Abu Hayyan said in "Al-Bahr al-Muhit" 1/264: "What Ibn Atiyyah said about it being an unconventional reading only holds if it's reported from him—meaning Ibn Musarrif—that he recites 'wa inna' with a shadda. In that case, justifying this reading would be difficult. However, if he recited it with a light 'in' (without shadda), which is more likely, then its justification becomes somewhat clear, as 'in' would be a negative

particle and 'lammā' would be in the sense of 'illa' (except), as in His saying: {There is no soul but that it has over it a protector}..." (7) Among the trustworthy of the Successors (Tabi'in) and notable scribes of the Mushafs. He was born during the days of Ibn Abbas and heard from Anas ibn Malik. He died in the year 127 AH, though other dates are mentioned. Al-Siyar 5/362. (8) Al-Kashshaf 1/290, Al-Muharrar al-Wajiz 1/167, and Tafsir al-Razi 1/130. (9) Tafsir al-Tabari 2/136, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/167.

पृष्ठ २०७, सूरह अल-बक़रह: आयत ७४

"पत्थरों की तरह"; क्योंकि इसका अर्थ है: वे पत्थरों की तरह हैं या उनसे भी कठोर। "औ अशद्द" (ज़बर के साथ) भी कहना जायज़ है, जो "पत्थरों" के साथ जुड़ा हुआ है(१)। और "क़सवतन्" (कठोरता) को विशिष्टता (तम्यीज़) के रूप में नसब (ज़बर) की स्थिति में रखा गया है। अबू हय्याह ने इसे "क़सावतन्" पढ़ा है, और अर्थ एक ही है(२)।

अल्लाह तआला का कथन: {और वास्तव में कुछ पत्थर ऐसे हैं जिनसे नदियाँ फूट निकलती हैं, और वास्तव में उनमें से कुछ ऐसे हैं जो फट जाते हैं और उनसे पानी निकलता है}। फटने (इन्फिजार) का अर्थ पहले बताया जा चुका है(३)। "यश-शक़्क़ु"; इसका मूल "यतशक़्क़ु" है, 'ता' को 'शीन' में मिला दिया गया है। यह उन झरनों के बारे में है जो इतने बड़े नहीं हुए कि नदियाँ बन सकें या उन पत्थरों के बारे में है जो फट जाते हैं भले ही उनसे बहता हुआ पानी न निकले(४)।

इब्न मुसर्रिफ ने पढ़ा: "यनशक़्क़ु" 'नून' के साथ(५), और "लम्मा यतफज्जर", "लम्मा यश-शक़्क़ु" पढ़ा: दोनों स्थानों पर "लम्मा" पर तशदीद के साथ। यह एक असामान्य क़िरात (पठन शैली) है(६)। मालिक बिन दीनार ने पढ़ा(७): "यनफजिरु" 'नून' के साथ और 'जीम' के नीचे ज़ेर के साथ(८)।

क़तादा ने कहा: "पत्थरों के लिए बहाना है, लेकिन आदम की औलाद के बदनसीबों के लिए कोई बहाना नहीं है"(९)!

(१) इराब अल-कुरान लिन-नहहास १/२३८, और इब्न खालवैह ने "अल-क़िरात अल-शाज़ह" पृ. ७ में "औ अशद्द" के पठन को अबू हय्याह से जोड़ा है, और ज़मखशरी ने "अल-कश्शाफ़" १/२९० में इसे अल-अमाश से जोड़ा है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७। ज़मखशरी १/२९० ने भी "क़सावतन" पठन का ज़िक्र किया है। (३) २/१३८। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७, और इसमें: मुन्सफिह (बहने वाला)। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७, अबू हयान ने "अल-बहर अल-मुहीत" १/२६५ में कहा: "अरबी भाषा की आवश्यकता यह है कि यह एक तशदीद वाले 'क़ाफ़' के साथ हो, और कविता में अक्षरों को अलग करना (फ़क्क) आ सकता है। यदि क्रिया मज्ज़ूम (जज़्म वाली) स्थिति में हो, तो फ़क्क जायज़ और प्रभावी है। यहाँ यह मरफ़ू (पेश वाली) है, इसलिए फ़क्क जायज़ नहीं है, सिवाय इसके कि यह एक शाज़ (असामान्य) क़िरात हो, जिसमें यह अनुमत हो सकता है।" (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७। इब्न खालवैह ने "अल-क़िरात अल-शाज़ह" पृ. ७ में "लम्मा यतफज्जर" पठन का ज़िक्र किया और इसे मालिक बिन दीनार और अल-अमाश से जोड़ा। अबू हयान ने "अल-बहर अल-

मुहीत" १/२६४ में कहा: "इब्न अतिय्या ने जो कहा कि यह एक अनुचित क़िरात है, वह केवल तभी सही बैठता है जब उनसे—यानी इब्न मुसर्रिफ से—यह रिपोर्ट किया जाए कि वे 'व इन्ना' को तशदीद के साथ पढ़ते हैं। उस स्थिति में इस क़िरात को सही ठहराना कठिन होगा। लेकिन अगर उन्होंने इसे बिना तशदीद के'इन्' पढ़ा है, जिसकी अधिक संभावना है, तो इसका औचित्य कुछ हद तक स्पष्ट हो जाता है; क्योंकि 'इन्' नकारात्मक होगा और 'लम्मा', 'इल्ला' (सिवाय) के अर्थ में होगा, जैसा कि अल्लाह का कथन है: {कोई भी जीव ऐसा नहीं है जिसके ऊपर कोई संरक्षक न हो}..." (७) ताबेईन के विश्वसनीय लोगों में से, और मुसहफ़ के प्रमुख लेखकों में से एक। वे इब्न अब्बास के समय में पैदा हुए थे और अनस बिन मालिक से सुना था। उनकी मृत्यु वर्ष १२७ हिजरी में हुई थी, और अन्य तिथियां भी बताई गई हैं। अल-सियर ५/३६२। (८) अल-कश्शाफ़ १/२९०, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७, और तफ़सीर अल-राज़ी १/१३०। (९) तफ़सीर अल-तबरी २/१३६, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६७।

صفحہ ۲۰۷، سورہ البقرہ: آیت ۷۴

«كالحجارة»؛ کیونکہ معنی یہ ہے: پس وہ پتھروں کی طرح ہیں یا اس سے بھی سخت۔ اور «أو أشدَّ» (زبر کے ساتھ) پڑھنا بھی جائز ہے جو "حجارہ" پر عطف ہے(۱)۔ اور «قسوةً» تمیز ہونے کی بنا پر حالتِ نصب میں ہے۔ اور ابو حیوہ نے «قساوةً» پڑھا ہے، اور معنی ایک ہی ہے(۲)۔

فرمانِ باری تعالی: {اور بے شک کچھ پتھر ایسے بھی ہیں جن سے نہریں پھوٹ نکلتی ہیں اور بے شک ان میں سے کچھ ایسے بھی ہیں جو پھٹ جاتے ہیں تو ان سے پانی نکلتا ہے}۔ انفجار کے معنی پہلے گزر چکے ہیں(۳)۔ «يَشَّقَّقُ»؛ اس کی اصل «يَتَشَقَّقُ» ہے، 'تا' کو 'شین' میں مدغم کر دیا گیا۔ اور یہ ان چشموں کی تعبیر ہے جو اتنے بڑے نہیں ہوئے کہ نہریں بن سکیں، یا ان پتھروں کی تعبیر ہے جو پھٹ جاتے ہیں اگرچہ ان سے کشادہ پانی نہ بہے(۴)۔

ابن مصرف نے «يَنْشَقِقُ» 'نون' کے ساتھ پڑھا ہے(۵)، اور «لَمَا يَتَفَجَّر»، «لَمَا يَشَّقَّق» پڑھا: دونوں جگہوں پر «لمّا» کی تشدید کے ساتھ۔ اور یہ غیر معروف (شاذ) قرات ہے(۶)۔ اور مالک بن دینار نے پڑھا(۷): «يَنْفَجِرُ» 'نون' کے ساتھ اور 'جیم' کے زیر کے ساتھ(۸)۔

قتادہ نے کہا: "پتھروں کا عذر قبول کر لیا گیا لیکن بنی آدم کے بدبختوں کا عذر قبول نہیں کیا گیا"(۹)!

(۱) إعراب القرآن للنحاس ۲۳۸/۱، اور ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۷ میں «أو أشدَّ» کی قرات کو ابو حیوہ کی طرف منسوب کیا ہے، اور زمخشری نے الکشاف ۲۹۰/۱ میں اسے اعمش کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۲) المحرر الوجیز ۱۶۷/۱۔ اور زمخشری ۲۹۰/۱ نے بھی «قساوة» کی قرات کا ذکر کیا ہے۔ (۳) ۱۳۸/۲۔ (۴) المحرر الوجیز ۱۶۷/۱، اور اس میں ہے: منسفح (بہنے

والا)۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۶۷/۱، ابو حیان نے البحر المحیط ۲۶۵/۱ میں کہا: "عربی زبان کا تقاضا یہ ہے کہ یہ ایک مشدد 'قاف' کے ساتھ ہو، اور کلامِ عرب (شعر) میں حروف کو الگ کرنا (فک) آ سکتا ہے۔ اگر فعل مضارع مجزوم ہو تو فک کرنا فصیح اور جائز ہے۔ یہاں یہ مرفوع ہے، لہذا فک جائز نہیں سوائے اس کے کہ یہ قراتِ شاذہ ہو، تو اس میں یہ جائز ہو سکتا ہے۔" (۶) المحرر الوجیز ۱۶۷/۱۔ ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۷ میں «لمّا یتفجر» کی قرات کا ذکر کیا اور اسے مالک بن دینار اور اعمش کی طرف منسوب کیا۔ ابو حیان نے البحر المحیط ۲۶۴/۱ میں کہا: "ابن عطیہ نے جو یہ کہا کہ یہ غیر متوجہ (غیر معروف) قرات ہے، یہ اسی وقت درست ہوگا جب ان سے (یعنی ابن مصرف سے) یہ منقول ہو کہ وہ «وإنَّ» تشدید کے ساتھ پڑھتے ہیں، تب اس قرات کی توجیہ مشکل ہوگی۔ لیکن اگر انہوں نے «إن» کی تخفیف کے ساتھ پڑھا ہے اور یہی ان سے گمان ہے، تو اس کی توجیہ ظاہر ہو جاتی ہے؛ کیونکہ «إن» نافیہ ہوگی اور «لمّا»، «إلّا» کے معنی میں ہوگی، جیسا کہ اللہ تعالی کا ارشاد ہے: {کوئی جان ایسی نہیں جس پر کوئی نگہبان نہ ہو}..." (۷) ثقہ تابعین میں سے ہیں، اور مصاحف کے جید کاتبوں میں سے ہیں۔ ابن عباس کے دور میں پیدا ہوئے اور انس بن مالک سے سماع کیا۔ ۱۲۷ھ میں وفات پائی، اور اس کے علاوہ بھی منقول ہے۔ السیر ۳۶۲/۵۔ (۸) الکشاف ۲۹۰/۱، المحرر الوجیز ۱۶۷/۱، اور تفسیر الرازی ۱۳۰/۱۔ (۹) تفسیر الطبری ۱۳۶/۲، اور المحرر الوجیز ۱۶۷/۱۔

Abu Hatim said: It is permissible to say: 'lammā tatafajjaru' with the letter 'ta', but it is not permissible to say: 'lammā tashaqaqu' (1) with 'ta'; because if one says 'tatafajjaru', they are making it feminine by association with 'al-anhār' (rivers), and this does not occur in 'tashaqaqu' (2). Al-Nahhas said (3): What he rejected is permissible based on the meaning; because the meaning is: 'And indeed, among them are stones that split open' (4). As for 'yashaqqaqu' [with the letter 'ya'], it follows the wording of 'mā'.

And 'ash-shaqq' (split) is the singular of 'ash-shuqūq'. It is originally an infinitive (masdar). You say: 'In so-and-so's hand and foot (5) are cracks (shuqūq)', and do not say: 'shuqāq'. Rather, 'ash-shuqāq' is a disease that affects animals; it is a cracking that occurs in their pasterns (arsāgh), and sometimes it extends up to their shank (wazīf), according to Yaqub. And 'ash-shaqq' [also means]: the morning (6).

The word 'mā' in His saying: 'lamā yatafajjaru' is in the accusative case (mansūb), because it is the noun of 'inna', and the 'lam' is for emphasis. 'Minhu' follows the wording of 'mā', and 'minhā' is permissible based on the meaning (7). Likewise: 'And indeed, among them are those which split open so that water comes out from them.' Qatadah read: 'wa in' in both places, as the lightened form of the heavy 'inna' (8).

His saying, the Almighty: {And indeed, among them are those which fall down for fear of Allah.} He says: Indeed, some stones are more beneficial than your hearts; because of the water coming out of them and their falling down. Mujahid said: No stone falls from the top of a mountain, no river gushes forth from a stone, and no water comes out of it except out of fear of Allah. The Noble Quran was revealed with that. The same was reported from Ibn Jurayj (9).

---

(1) In (Z): 'yatashaqqaqu', which is an error. In (D) and (M): 'tatashaqqaqu'. What is established is from (Z), which agrees with Al-Nahhas's I'rāb al-Qur'ān 1/238. (2) In (D): 'tatashaqqaqu'. (3) I'rāb al-Qur'ān 1/238. What is between brackets is from him. (4) In (D), (Z), and (M): 'tatashaqqaqu'. What is established is from (Z). (5) In (M): 'and his feet'. (6) As-Sihah: (Shaqqa). His saying: 'wazīfuha' is the slender part of the forearm and leg of horses, camels, and the like. As-Sihah (Wazafa). (7) Al-Farra' mentioned in Ma'āni al-Qur'ān 1/49, and Al-Nahhas in I'rāb al-Qur'ān 1/238 that the reading of Ubayy was: 'And indeed, among the stones are those from which rivers gush forth.'

(8) Al-Qira'āt al-Shadh-dhah by Ibn Khalawayh p. 7, and Al-Muhtasib 1/91. (9) Al-Muharrar al-Wajīz 1/167, and Al-Tabari recorded it 2/137.

सूरह अल-बकराह: आयत 74 | 208

अबू हातिम ने कहा: 'लम्मा ततफज्जरा' (ततफज्जरा) 'ता' के साथ कहना जायज़ है, लेकिन 'लम्मा तशक़्क़ु' (1) 'ता' के साथ कहना जायज़ नहीं है; क्योंकि जब वह कहता है: 'ततफज्जरा', तो वह इसे 'अल-अन्हार' (नदियों) के स्त्रीलिंग होने के कारण स्त्रीलिंग बनाता है, और यह 'तशक़्क़ु' (2) में नहीं होता है। अल-नहस ने कहा (3): जिसे उन्होंने नकारा है वह अर्थ के आधार पर जायज़ है; क्योंकि अर्थ है: 'और वास्तव में, उनमें से कुछ पत्थर फट जाते हैं' (4)। जहाँ तक 'यशक़्क़ु' [या के साथ] का सवाल है, तो यह 'मा' शब्द के अनुसार है।

और 'अश-शक़' (दरार) 'अश-शुक़ूक़' का एकवचन है। यह मूल रूप से एक संज्ञा (मस्दर) है। आप कहते हैं: 'फलां के हाथ और पैर (5) में दरारें (शुक़ूक़) हैं', और 'शुक़ाक़' न कहें। बल्कि, 'अश-शुक़ाक़' एक बीमारी है जो जानवरों में होती है; यह एक दरार है जो उनके टखनों (अरसाग़) में होती है, और कभी-कभी यह उनके पैर के निचले हिस्से (वज़ीफ़) तक बढ़ जाती है, याकूब के अनुसार। और 'अश-शक़' का अर्थ सवेरा (6) भी है।

उनके कथन 'लमा यतफज्जरु' में 'मा' शब्द कर्म कारक (मंसूब) में है, क्योंकि यह 'इन्ना' की संज्ञा है, और 'लाम' ज़ोर देने के लिए है। 'मिन्हु' शब्द 'मा' शब्द के अनुसार है, और अर्थ के आधार पर 'मिन्हा' जायज़ है (7)। इसी प्रकार: 'और वास्तव में, उनमें से कुछ ऐसे हैं जो फट जाते हैं और उनमें से पानी निकलता है।' क़तादा ने दोनों स्थानों पर 'इन्' पढ़ा, जो भारी 'इन्ना' का हल्का रूप है (8)।

अल्लाह तआला का कथन: {और वास्तव में, उनमें से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह के डर से गिर जाते हैं।} वह कहता है: वास्तव में, कुछ पत्थर तुम्हारे दिलों से अधिक लाभदायक हैं; क्योंकि उनमें से पानी निकलता है और वे गिरते हैं। मुजाहिद ने कहा: कोई भी पत्थर पहाड़ की चोटी से नहीं गिरता, न ही किसी पत्थर से नदी फूटती है, और न ही उसमें से पानी निकलता है, सिवाय अल्लाह के डर के। पवित्र कुरान इसी के साथ अवतरित हुआ। इब्न जुरैज से भी ऐसा ही वर्णित है (9)।

---

(1) (ज़) में: 'यतशक़्क़ु', जो एक गलती है। (द) और (म) में: 'ततशक़्क़ु'। जो स्थापित है वह (ज़) से है, जो अल-नहस की इ'राब अल-क़ुरआन 1/238 के अनुरूप है। (2) (द) में: 'ततशक़्क़ु'। (3) इ'राब अल-क़ुरआन 1/238। कोष्ठक के बीच का हिस्सा उन्हीं का है। (4) (द), (ज़) और (म) में: 'ततशक़्क़ु'। जो स्थापित है वह (ज़) से है। (5) (म) में: 'और उसके पैरों में'। (6) अस-सिहाह: (शक़्)। उनका कथन: 'वज़ीफ़ुहा' घोड़ों, ऊंटों आदि के अग्रभुजा और पैर का पतला हिस्सा है। अस-सिहाह

(वज़फ़ा)। (7) अल-फ़र्रा ने मआनी अल-कुरआन 1/49 में उल्लेख किया है, और अल-नहस ने इ'राब अल-कुरआन 1/238 में कि उबय की क़िरात थी: 'और वास्तव में, पत्थरों में से वे हैं जिनसे नदियाँ फूटती हैं।' (8) इब्न खालवैह द्वारा अल-क़िरात अल-शाज़ह पृष्ठ 7, और अल-मुहतसिब 1/91। (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/167, और अल-तबरी ने इसे 2/137 पर उद्धृत किया है।

ابو حاتم نے کہا: جائز ہے: 'لَمَّا تَتَفَجَّرُ' 'تا' کے ساتھ، اور جائز نہیں ہے: 'لَمَّا تَشَقَّقُ' (1) 'تا' کے ساتھ؛ کیونکہ جب وہ کہتا ہے: 'تتفجر'، تو وہ اسے نہروں کی تانیث کی وجہ سے مونث بناتا ہے، اور یہ 'تَشَقَّقُ' (2) میں نہیں ہوتا۔ النحاس نے کہا (3): جس کا انہوں نے انکار کیا ہے وہ معنی کے اعتبار سے جائز ہے؛ کیونکہ معنی یہ ہے: 'اور بے شک ان میں سے کچھ پتھر ایسے ہیں جو پھٹ جاتے ہیں' (4)۔ جہاں تک 'یَشَقَّقُ' ['یا' کے ساتھ] کا تعلق ہے، تو یہ 'ما' کے لفظ پر محمول ہے۔

اور 'الشَّقُّ' 'الشُّقُوق' کا واحد ہے، پس یہ اصل میں مصدر ہے، آپ کہتے ہیں: 'فلاں کے ہاتھ اور اس کے پاؤں (5) میں دراڑیں (شقوق) ہیں'، اور 'شُقَاق' نہ کہیں۔ بلکہ 'الشُّقَاق' ایک بیماری ہے جو چوپایوں میں ہوتی ہے، اور وہ ایک پھٹن ہے جو ان کے ٹخنوں (ارساغ) میں ہوتی ہے، اور بسا اوقات وہ ان کی پنڈلی (وظیف) تک چڑھ جاتی ہے، یعقوب سے مروی ہے۔ اور 'الشَّقُّ': صبح ہے (6)۔

ان کے اس قول میں 'ما': 'لَمَا یَتَفَجَّرُ' نصب کی جگہ میں ہے، کیونکہ یہ 'اِنَّ' کا اسم ہے اور 'لام' تاکید کے لیے ہے۔ 'منہ' لفظ 'ما' کے مطابق ہے، اور معنی کے اعتبار سے 'منہا' جائز ہے (7)، اور اسی طرح 'وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَاءُ'۔ اور قتادہ نے دونوں جگہوں پر 'إِنْ' پڑھا، جو 'اِنَّ' ثقیلہ سے مخفف ہے (8)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللَّهِ} فرماتے ہیں: بے شک پتھروں میں سے وہ بھی ہیں جو تمہارے دلوں سے زیادہ نفع بخش ہیں؛ ان سے پانی نکلنے اور ان کے گرنے کی وجہ سے۔ مجاہد نے کہا: کوئی پتھر پہاڑ کی چوٹی سے نہیں گرتا، اور نہ ہی کسی پتھر سے نہر پھوٹتی ہے،

اور نہ ہی اس سے پانی نکلتا ہے مگر اللہ کے خوف سے، اسی کے ساتھ قرآن کریم نازل ہوا۔ اور اسی کی مثل ابن جریج سے مروی ہے (9)۔

---

(1) (ز) میں: یتشقق، اور یہ غلط ہے، اور (د) اور (م) میں: تتشقق، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے اور وہ النحاس کی اعراب القرآن 238/1 کے مطابق ہے۔ (2) (د) میں: تتشقق۔ (3) اعراب القرآن 238/1۔ اور بریکٹ کے درمیان والا حصہ ان کا ہے۔ (4) (د) اور (ز) اور (م) میں: تتشقق، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے۔ (5) (م) میں: 'اور اس کے دونوں پاؤں'۔ (6) الصحاح: (شقق)۔ ان کا قول: 'وظیفہا': وہ گھوڑوں اور اونٹوں وغیرہ کے بازو اور ٹانگ کا باریک حصہ ہے۔ الصحاح (وظف)۔ (7) الفراء نے معانی القرآن 49/1 میں ذکر کیا، اور النحاس نے اعراب القرآن 238/1 میں کہ ابی کی قرأت ہے: 'وان من الحجارة لما یتفجر منها الأنهار'۔ (8) ابن خالویہ کی القراءات الشاذة ص 7، اور المحتسب 91/1۔ (9) المحرر الوجیز 167/1، اور اسے طبری نے 137/2 پر روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 74 209

Some theologians said regarding His saying: "And indeed, there are some of them that fall down for fear of Allah": [It refers to] hail falling from the clouds (1).

It was also said: The word "falling" (hubut) is metaphorical. This is because since hearts take heed from the creation of stones and are humbled by looking at them, the humility of the observer is attributed to them, just as the Arabs say: "A trading she-camel," meaning: it prompts whoever sees it to buy it (2).

Al-Tabari (3) narrated from a group that "fear" for stones (4) is metaphorical, just as "will" was used metaphorically for a wall in His saying: "wanting to collapse" [Al-Kahf: 77], and as Zaid Al-Khail said: [With a multitude in whose quarters the piebald horses go astray, you see the hills therein prostrating to the hooves] (5)

And as Jarir said (6): When the news of Al-Zubayr came, the walls of the city and the humbled mountains bowed down.

Ibn Bahr mentioned that the pronoun in the words of the Almighty: "And indeed, there are some of them" refers back to hearts, not to stones, meaning: from hearts, there are those that submit out of fear of Allah (7).

I say: Everything that has been said is possible from the wording, and the first is correct, for it is not impossible that some inanimate objects are given knowledge (8) so they may reason, like what was narrated about the palm trunk upon which the Messenger of Allah ﷺ used to lean when he gave sermons, and when he moved away from it, it moaned (9).

---

(1) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/146. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. (3) Tafsir al-Tabari 2/137, and the author quoted it from him via Ibn 'Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/167, and what is between brackets is from it. (4) His saying: "for the stones," is not in (D) and (Z). (5) His Diwan p. 66, with the narration: "minhu" (from it) instead of "fihi" (therein), and it was previously mentioned on 1/434. (6) His Diwan 2/913, and it is in Al-Kitab 1/52. (7) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/146. (8) In (D): Al-ma'rufah. (9) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/147, and the report of the trunk was narrated by Ahmad (14206) and Al-Bukhari (3584) from the hadith of Jabir. It was also narrated by Ahmad (5886) and Al-Bukhari (3583) from the hadith of Ibn Umar. It was also narrated by Ahmad from the hadith of Ibn Abbas (2236), from the hadith of Anas (2237), and from the hadith of Ubayy bin Ka'b (21248), may Allah be pleased with them all.

सूरह अल-बकराह: आयत 74 209

कुछ विद्वानों ने अल्लाह के इस कथन के बारे में कहा: "और वास्तव में उनमें से कुछ ऐसे भी हैं जो अल्लाह के डर से गिर जाते हैं": [यह] बादलों से गिरने वाले ओलों के बारे में है (1)।

और कहा गया है: "गिरना" (हुबूत) शब्द लाक्षणिक है। ऐसा इसलिए है क्योंकि चूंकि दिल पत्थरों की रचना से सबक लेते हैं और उन्हें देखकर विनम्र हो जाते हैं, इसलिए देखने वाले की विनम्रता को पत्थरों से जोड़ दिया गया, जैसा कि अरब कहते हैं: "एक व्यापारिक ऊंटनी", जिसका अर्थ है: जो कोई उसे देखता है उसे खरीदने के लिए प्रेरित करती है (2)।

अल-तबरी (3) ने एक समूह से वर्णन किया है कि पत्थरों के लिए "डर" (4) लाक्षणिक है, जैसे "इच्छा" शब्द का प्रयोग अल्लाह के इस कथन में दीवार के लिए लाक्षणिक रूप से किया गया है: "वह गिरना चाहती थी" [अल-कह्फ़: 77], और जैसा कि ज़ैद अल-खैल ने कहा: [एक ऐसी भीड़ के साथ जिसके इलाकों में चितकबरे घोड़े भटक जाते हैं, आप देखते हैं कि वहाँ की पहाड़ियाँ खुरों के सामने सजदा कर रही हैं] (5)

और जैसा कि जरीर ने कहा (6): जब अल-ज़ुबैर की खबर आई, तो शहर की दीवारें और विनम्र पर्वत झुक गए।

इब्न बहर ने उल्लेख किया कि अल्लाह के शब्दों में सर्वनाम: "और वास्तव में उनमें से" दिलों की ओर इशारा करता है, न कि पत्थरों की ओर, यानी: दिलों में से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह के डर से झुक जाते हैं (7)।

मैंने कहा: जो कुछ भी कहा गया है, शब्दों से उसकी संभावना है, और पहला सही है, क्योंकि यह असंभव नहीं है कि कुछ निर्जीव वस्तुओं को ज्ञान (8) दिया जाए ताकि वे समझ सकें, जैसे कि उस खजूर के तने के बारे में वर्णित है जिस पर अल्लाह के रसूल ﷺ उपदेश देते समय सहारा लिया करते थे, और जब वह उससे हट गए, तो वह रोने लगा (9)।

---

(1) अल-नुकात वल-उयून 1/146। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/167। (3) तफ़सीर अल-तबरी 2/137, और लेखक ने इसे इब्न अतिय्या के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/167 में उनसे उद्धृत किया है, और जो कोष्ठक के बीच है वह उसी से है। (4) उसका कहना: "पत्थरों के लिए", (द) और (ज़) में नहीं है। (5) उनका दीवान पृष्ठ 66, वर्णन के साथ: "मिन्हु" (उससे) के बदले "फ़ीही"

(उसमें), और पहले 1/434 पर उल्लेख किया गया है। (6) उनका दीवान 2/913, और यह अल-किताब 1/52 में है। (7) अल-नुकात वल-उयून 1/146। (8) (द) में: अल-मआरूफ़ा। (9) अल-नुकात वल-उयून 1/147, और तने की खबर अहमद (14206) और अल-बुखारी (3584) ने जाबिर की हदीस से उद्धृत की है। और अहमद (5886) और अल-बुखारी (3583) ने इब्न उमर की हदीस से उद्धृत किया है। अहमद ने इब्न अब्बास की हदीस (2236), अनस की हदीस (2237) और उबै बिन काब की हदीस (21248) से भी उद्धृत किया है, अल्लाह उन सभी से प्रसन्न हो।

سورہ البقرہ: آیت 74 209

بعض متکلمین نے اللہ تعالیٰ کے اس قول کے بارے میں کہا: ﴿وَإِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللَّهِ﴾ (اور بے شک ان میں سے بعض وہ ہیں جو اللہ کے خوف سے گر پڑتے ہیں): اس سے مراد بادلوں سے گرنے والے اولے ہیں (1)۔

اور کہا گیا ہے کہ: لفظ 'ہبوط' (گرنا) مجاز ہے، وہ اس لیے کہ چونکہ دل پتھروں کی تخلیق سے عبرت حاصل کرتے ہیں اور انہیں دیکھ کر عاجزی اختیار کرتے ہیں، اس لیے دیکھنے والے کی عاجزی کی نسبت ان کی طرف کر دی گئی، جیسا کہ عرب کہتے ہیں: 'ناقة تاجرة' (تجارت والی اونٹنی)، یعنی وہ اپنے دیکھنے والے کو اسے خریدنے پر ابھارتی ہے (2)۔

اور طبری (3) نے ایک گروہ سے حکایت کی ہے کہ: پتھروں کے لیے 'خشیہ' (خوف) (4) مستعار (استعارہ) ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کے قول میں دیوار کے لیے 'ارادہ' کا استعارہ لیا گیا ہے: ﴿يُرِيدُ أَن يَنقَضَّ﴾ (وہ گرنا چاہتی تھی) [الکہف: 77]، اور جیسا کہ زید الخیل نے کہا: [ایسے لشکر کے ساتھ جس کے گوشوں میں چتکبرے گھوڑے بھٹک جائیں، تم اس میں ٹیلوں کو کھروں کے سامنے سجدہ ریز دیکھو گے] (5)

اور جیسا کہ جریر (6) نے کہا: جب زبیر کی خبر آئی تو شہر کی دیواریں اور عاجز پہاڑ جھک گئے۔

اور ابن بحر نے ذکر کیا کہ اللہ تعالیٰ کے قول "وإن منها" میں ضمیر دلوں کی طرف لوٹتی ہے، پتھروں کی طرف نہیں، یعنی: دلوں میں سے وہ ہیں جو اللہ کے خوف سے جھک جاتے ہیں (7)۔

میں کہتا ہوں: جو کچھ بھی کہا گیا ہے، الفاظ میں اس کا احتمال موجود ہے، اور پہلا قول درست ہے، کیونکہ یہ بعید نہیں کہ بعض جمادات (بے جان چیزوں) کو معرفت (8) عطا کر دی جائے اور وہ سمجھ بوجھ رکھنے لگیں، جیسا کہ اس کھجور کے تنے کے بارے میں روایت کیا گیا ہے جس سے رسول اللہ ﷺ خطبہ دیتے وقت ٹیک لگایا کرتے تھے، پھر جب آپ ﷺ اس سے ہٹے تو وہ رونے لگا (9)۔

---

(1) النکت والعیون 1/146۔ (2) المحرر الوجیز 1/167۔ (3) تفسیر الطبري 2/137، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز 1/167 میں ان سے نقل کیا ہے، اور جو کچھ قوسین (بریکٹ) کے درمیان ہے وہ اسی سے ہے۔ (4) اس کا قول: 'للحجارة' (پتھروں کے لیے)، نسخہ (د) اور (ظ) میں نہیں ہے۔ (5) ان کا دیوان ص 66، اس روایت کے ساتھ کہ اس میں 'فیہ' کی جگہ 'منہ' ہے، اور یہ پہلے 1/434 پر گزر چکا ہے۔ (6) ان کا دیوان 2/913، اور یہ 'الکتاب' 1/52 میں ہے۔ (7) النکت والعیون 1/146۔ (8) نسخہ (د) میں: 'المعروفة' ہے۔ (9) النکت والعیون 1/147، اور ستون (تنے) کی خبر کو احمد (14206) اور بخاری (3584) نے حضرت جابر کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور احمد (5886) اور بخاری (3583) نے حضرت ابن عمر کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اسے احمد نے حضرت ابن عباس کی حدیث (2236)، حضرت انس کی حدیث (2237) اور حضرت ابی بن کعب کی حدیث (21248) سے بھی روایت کیا ہے، اللہ ان سب سے راضی ہو۔

210 Surah Al-Baqarah: Verse 75

And it was established from him that he said: "Verily, there was a stone that used to greet me in the pre-Islamic period (Jahiliyyah); I know it now."(1) And as it was narrated that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "Thabir (a mountain) said to me: Descend, for I fear that they will kill you on my back, then Allah will punish me. So Hira' called out to him: 'To me, O Messenger of Allah'."(2) And in the Revelation: {Indeed, We offered the Trust to the heavens and the earth and the mountains} [Al-Ahzab: 72] - the verse. And He said: {Had We sent down this Quran upon a mountain, you would have seen it humbled and coming apart from fear of Allah} [Al-Hashr: 21], meaning in abasement(3) and submissiveness. Further explanation of this will come in "Subhan" (Surah Al-Isra)(4), if Allah Almighty wills. His Almighty's saying: {And Allah is not unaware of what you do} "bi-ghafilin" is in the position of accusative (nasb) according to the dialect of the people of Hijaz, and in the position of nominative (raf') according to the dialect of Tamim, and the letter "ba" is for emphasis. {of what you do} i.e., regarding your deeds, so that He does not leave out a small or large deed except that He accounts for it(5) against you {So whoever does an atom's weight of good will see it, And whoever does an atom's weight of evil will see it} [Az-Zalzalah: 7-8]. And "ma" (what) does not need a returning pronoun unless it is made to mean "alladhi" (that which), in which case the returning pronoun is omitted because of the length of the noun, i.e., "of that which you do"(6). And Ibn Kathir read: "ya'maluna" (they do) with the letter "ya", and on this basis, the address is to Muhammad, peace be upon him(7). His Almighty's saying: {Do you covet [O believers] that they would believe for you while a party of them used to hear the words of Allah and then distort it after they had understood it while they were knowing?} [75]. In it are four matters: The first: His Almighty's saying: {Do you covet that they would believe for you}: This is an interrogative with the meaning of denial/rebuke.

---

(1) Narrated by Ahmad (20828), and Muslim (2277) from the hadith of Jabir, may Allah be pleased with him. (2) Cited by Al-Baghawi in his Tafsir 1/86, and Al-Qadi 'Iyad in Ash-Shifa 1/308. Saying: Thabir: a mountain in Mecca. (3) In (z): "tadhleelan" (humbling/subduing). (4) In (m): Surah Subhan (Al-Isra), and the discussion will come in verse (44) thereof. (5) In (z): "ahsabaha" (He counted it), which is the wording of the verse. (6) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas 1/239. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. See also As-Sab'ah p. 160, and At-Taysir p. 74.

210 सूरा अल-बकरा: आयत 75

और उनसे यह साबित है कि उन्होंने कहा: "निश्चित रूप से, एक पत्थर था जो जाहिलियत (अज्ञानता के काल) में मुझे सलाम करता था, और मैं उसे अब भी जानता हूँ" (1)। और जैसा कि रिवायत है कि पैगंबर ﷺ ने कहा: "थबीर (पहाड़) ने मुझसे कहा: उतर जाओ, क्योंकि मुझे डर है कि वे तुम्हें मेरी पीठ पर मार डालेंगे, फिर अल्लाह मुझे सज़ा देगा। तब हिरा (पहाड़) ने पुकारा: 'मेरे पास आएं, ऐ अल्लाह के रसूल'" (2)। और वही (वही) में है: {निस्संदेह, हमने आकाशों, पृथ्वी और पर्वतों के सामने अमानत पेश की} [अल-अहज़ाब: 72] - आयत। और उन्होंने कहा: {यदि हम इस कुरआन को किसी पहाड़ पर उतारते, तो तुम उसे अल्लाह के डर से झुका हुआ और फटा हुआ देखते} [अल-हश्र: 21], यानी अधीनता (3) और विनम्रता में। अल्लाह ने चाहा तो इस बारे में और विवरण "सुभान" (सूरा अल-इसरा) (4) में आएगा। अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो तुम करते हो} "ब-गाफिलिन" हिजाज़ के लोगों की बोली के अनुसार 'नस्ब' (accusative) की स्थिति में है, और तमीम की बोली के अनुसार 'रफ़' (nominative) की स्थिति में है, और अक्षर 'बा' (ba) ज़ोर देने के लिए है। {उससे जो तुम करते हो} यानी: तुम्हारे कर्मों के बारे में, ताकि वह किसी छोटे या बड़े कर्म को छोड़े बिना उसका हिसाब (5) न रखे {तो जो कोई अणु भर भी भलाई करेगा, वह उसे देख लेगा, और जो कोई अणु भर भी बुराई करेगा, वह उसे देख लेगा} [अज़-ज़लज़ला: 7-8]। और "मा" (जो) को लौटने वाले सर्वनाम (عائد) की आवश्यकता नहीं होती, जब तक कि इसे "अल्लज़ी" (जो कि) के अर्थ में न लिया जाए, जिस स्थिति में संज्ञा की लंबाई के कारण लौटने वाला सर्वनाम हटा दिया जाता है, यानी: "उस चीज़ से जो तुम करते हो" (6)। और इब्न कसीर ने पढ़ा: "यअमलून" (वे करते हैं) 'या' के साथ, और इस आधार पर संबोधन मुहम्मद ﷺ के लिए है (7)। अल्लाह का कथन: {क्या तुम (ईमान वालों) यह लालसा रखते हो कि वे तुम्हारे लिए ईमान ले आएंगे, जबकि उनमें से एक गिरोह अल्लाह के कलाम (वाणी) को सुनता था और फिर उसे समझ लेने के बाद जान-बूझकर बदल देता था?} [75]। इसमें चार मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह का कथन: {क्या तुम लालसा रखते हो कि वे तुम्हारे लिए ईमान ले आएंगे}: यह एक प्रश्नवाचक है जिसमें इनकार/फटकार का अर्थ है।

---

(1) इसे अहमद (20828) और मुस्लिम (2277) ने जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से वर्णित किया है। (2) अल-बगवी ने अपनी तफसीर 1/86 में और अल-काजी अयाज़ ने अल-शिफ़ा 1/308 में इसका उल्लेख किया है। थबीर: मक्का में एक पहाड़ का नाम है। (3) (z) प्रति में: "तज़लीलन"। (4) (m) प्रति में: सूरा सुभान (अल-इसरा), और चर्चा इसकी आयत (44) में आएगी। (5) (z) प्रति में:

"अहसाहा", जो आयत के शब्द हैं। (6) इ'राब अल-कुरान, अन-नहहास 1/239। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/167। अस-सबअह पृष्ठ 160 और अत-तयसीर पृष्ठ 74 भी देखें।

۲۱۰ سورة البقرہ: آیت ۷۵

اور ان سے ثابت ہے کہ انہوں نے فرمایا: "بیشک ایک پتھر ایسا تھا جو جاہلیت کے دور میں مجھے سلام کیا کرتا تھا، میں اسے اب بھی پہچانتا ہوں" (۱)۔ اور جیسا کہ روایت ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "مجھ سے ثبیر (پہاڑ) نے کہا: نیچے اتر جائیے، کیونکہ مجھے ڈر ہے کہ وہ آپ کو میری پیٹھ پر قتل کر دیں گے، پھر اللہ مجھے عذاب دے گا، تب حراء (پہاڑ) نے پکارا: 'میری طرف آؤ اے اللہ کے رسول'" (۲)۔ اور قرآن مجید میں ہے: {ہم نے امانت کو آسمانوں، زمین اور پہاڑوں پر پیش کیا} [الاحزاب: ۷۲] - آیت کے آخر تک۔ اور فرمایا: {اگر ہم اس قرآن کو کسی پہاڑ پر نازل کرتے تو تم اسے دیکھتے کہ وہ اللہ کے خوف سے جھک جاتا اور پاش پاش ہو جاتا} [الحشر: ۲۱] یعنی تذلل (۳) اور عاجزی کی وجہ سے۔ انشاء اللہ اس کی مزید وضاحت "سبحان" (سورہ بنی اسرائیل) (۴) میں آئے گی۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {اور اللہ اس سے بے خبر نہیں جو تم کرتے ہو} "بِغافل" اہل حجاز کی لغت کے مطابق محلِ نصب میں ہے، اور بنو تمیم کی لغت میں محلِ رفع میں ہے، اور 'با' تاکید کے لیے ہے۔ {اس سے جو تم کرتے ہو} یعنی: تمہارے اعمال کے بارے میں، یہاں تک کہ وہ کسی چھوٹے یا بڑے عمل کو شمار (۵) کیے بغیر نہیں چھوڑے گا {پس جس نے ذرہ برابر نیکی کی ہوگی وہ اسے دیکھ لے گا، اور جس نے ذرہ برابر برائی کی ہوگی وہ اسے دیکھ لے گا} [الزلزلة: ۷-۸]۔ اور "ما" کو صلہ (عائد) کی ضرورت نہیں ہوتی سوائے اس کے کہ اسے "الذی" کے معنی میں لیا جائے، تب طوالتِ اسم کی وجہ سے عائد کو حذف کر دیا جاتا ہے، یعنی: "اس چیز سے جو تم کرتے ہو" (۶)۔ اور ابن کثیر نے "یعملون" (یا کے ساتھ) پڑھا ہے، اس صورت میں تخاطب محمد ﷺ سے ہے (۷)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {کیا تم (اہلِ ایمان) یہ توقع رکھتے ہو کہ وہ تمہاری خاطر ایمان لے آئیں گے جبکہ ان میں سے ایک فریق اللہ کا کلام سنتا تھا،

پھر اسے سمجھ لینے کے بعد جان بوجھ کر بدل ڈالتا تھا؟} [۷۵]۔ اس میں چار مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا تم توقع رکھتے ہو کہ وہ تمہاری خاطر ایمان لے آئیں گے}: یہ استفہام ہے جس میں انکار کا معنی پایا جاتا ہے۔

---

(۱) اسے احمد (۲۰۸۲۸) اور مسلم (۲۲۷۷) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۲) اسے بغوی نے تفسیر ۱/۸۶ میں اور قاضی عیاض نے الشفاء ۱/۳۰۸ میں ذکر کیا ہے۔ قول: ثبیر: مکہ میں ایک پہاڑ کا نام ہے۔ (۳) نسخہ (ز) میں ہے: تذلیلاً۔ (۴) نسخہ (م) میں ہے: سورہ سبحان، اور اس کا تذکرہ اس کی آیت (۴۴) میں آئے گا۔ (۵) نسخہ (ز) میں ہے: "أحصاها"، جو کہ آیت کے الفاظ ہیں۔ (۶) إعراب القرآن للنحاس ۱/۲۳۹۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۱۶۷۔ نیز دیکھئے السبعة ص ۱۶۰، اور التیسیر ص ۷۴۔

It is as if He made them despair of the faith of this group of Jews, meaning: if they disbelieve, they have a precedent in that.

The address is to the companions of the Prophet ﷺ; this is because the Ansar were eager for the Jews to embrace Islam due to the alliance and neighborliness that existed between them (1).

It was said: The address is specifically for the Prophet ﷺ. On the authority of Ibn Abbas (2), meaning: do not grieve over their denial of you, and He informed him that they are among the wicked people who have passed. And "an" (that) is in the position of accusative (nasb), meaning: in that. "Yu'minu" (they believe): is accusative due to "an", and therefore the "nun" was omitted from it (3).

It is said: "Tama'a fihi tam'an wa tama'iyatan" (he desired it) - lightened - so he is "tami'", on the weight of "fa'il". And someone else made him desire it. It is said in wonderment: "Tamu'a al-rajulu", with a damma on the "mim", meaning: he became very greedy. And "al-tama'": the sustenance of the soldiers; it is said: "The leader ordered for them their 'atman'", meaning: their sustenance. And a woman is "mitma'": she makes one desire her but does not allow (4).

Second: His saying, Exalted is He: {AND A PARTY OF THEM USED TO...}: "Al-fariq" (the party) is a collective noun, it has no singular of its own word, and its plural for a small number is "afriqah", and for a large number "afriqa'".

{...HEAR}: is in the position of accusative as the predicate (khabar) of "kana". It is permissible for the predicate to be "minhum" (of them), and "yasma'un" (they hear) would be an adjective for "fariq" (5), but this is remote.

{THE WORD OF ALLAH}: the reading of the group. Al-A'mash read it as: "kalima Allah" as the plural of "kalimah" (word) (6). Sibawayh said: Know that some people from Rabi'ah say: "minhum", with a kasra on the "ha", following the kasra of the "mim", and the sukun was not a strong barrier for them (7). "Kalam Allah" (the word of Allah) is the object (maf'ul) of "yasma'un".

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/167. (2) Tafsir Abi al-Layth 1/131, Zad al-Masir 1/103, and Tafsir al-Razi 3/133. (3) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/239. (4) As-Sahah: (tama'). (5) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/239. (6) Al-Qira'at al-Shadhah p. 7, al-Muhtasib 1/93, and al-Muharrar al-Wajiz 1/198. (7) Al-Kitab 4/196.

ऐसा लगता है कि उन्होंने उन्हें यहूदियों के इस समूह के ईमान से निराश कर दिया, यानी: यदि वे कुफ़्र करते हैं, तो उनके पास इसके लिए एक मिसाल है।

यह संबोधन पैगंबर ﷺ के साथियों के लिए है; ऐसा इसलिए है क्योंकि अंसार उनके बीच मौजूद गठबंधन और पड़ोस के कारण यहूदियों के इस्लाम स्वीकार करने के लिए उत्सुक थे (1)।

कहा गया: संबोधन विशेष रूप से पैगंबर ﷺ के लिए है। इब्न अब्बास (2) के अधिकार पर, जिसका अर्थ है: उनके द्वारा आपको झुठलाने पर दुखी न हों, और उन्होंने उन्हें सूचित किया कि वे उन दुष्ट लोगों में से हैं जो बीत चुके हैं। और "अन" (कि) 'नस्ब' (accusative) की स्थिति में है, यानी: इसमें। "यु'मिनू" (वे ईमान लाते हैं): "अन" के कारण 'नस्ब' में है, और इसलिए इससे 'नुन' हटा दिया गया था (3)।

कहा जाता है: "तमअ फ़ीहि तमअन व तमाइयतन" (उसने इसकी लालसा की) - हल्का किया हुआ - तो वह "तमि'" है, "फइल" के वजन पर। और किसी और ने उसे इसकी लालसा दिलाई। आश्चर्य में कहा जाता है: "तमुअ अल-राजुलु", 'मीम' पर दम्मा के साथ, यानी: वह बहुत लालची हो गया। और "अल-तमअ": सैनिकों का राशन; कहा जाता है: "अमीर ने उनके लिए उनके'अतमा' का आदेश दिया", यानी: उनके राशन का। और एक महिला "मितमा" है: जो लालसा पैदा करती है लेकिन अनुमति नहीं देती (4)।

दूसरा: अल्लाह तआला का कहना है: {और उनमें से एक समूह था जो...}: "अल-फ़रीक़" (समूह) एक सामूहिक संज्ञा है, इसका अपना कोई एकवचन शब्द नहीं है, और कम संख्या के लिए इसका बहुवचन "अफ़रीक़ह" है, और अधिक के लिए "अफ़रीक़ा"।

{...सुनते थे}: "काना" की खबर (predicate) के रूप में 'नस्ब' की स्थिति में है। यह संभव है कि खबर "मिन्हुम" (उनमें से) हो, और "यस्मऊन" (वे सुनते थे) "फ़रीक़" (5) के लिए एक विशेषण हो, लेकिन यह दूर की बात है।

{अल्लाह की वाणी}: जमात (समूह) का पाठ। अल-आमश ने इसे पढ़ा: "कलिम अल्लाह", "कलिमह" (शब्द) के बहुवचन के रूप में (6)। सिबवैह ने कहा: जान लें कि रबीआ के कुछ लोग कहते हैं:

"मिन्हुम", 'हा' पर कसरा के साथ, 'मीम' के कसरा के अनुसरण में, और सुकुन उनके लिए एक मजबूत बाधा नहीं था (7)। "कलाम अल्लाह" (अल्लाह का कलाम) "यस्मऊन" का कर्म (maf'ul) है।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/167। (2) तफ़सीर अबी अल-लैथ 1/131, ज़ाद अल-मसीर 1/103, और तफ़सीर अल-राज़ी 3/133। (3) इ'राब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/239। (4) अस-साह: (तमअ)। (5) इ'राब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/239। (6) अल-किराअत अल-शाद्दा पृ. 7, अल-मुहतासिब 1/93, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/198। (7) अल-किताब 4/196।

گویا اس نے انہیں یہودیوں کے اس گروہ کے ایمان لانے سے مایوس کر دیا، یعنی: اگر وہ کفر کریں تو ان کے پاس اس کی پہلے سے مثال موجود ہے۔

اور خطاب نبی ﷺ کے صحابہ سے ہے، اور وہ اس لیے کہ انصار کو یہودیوں کے اسلام لانے کی بہت حرص تھی، اس حلف اور پڑوس کی وجہ سے جو ان کے درمیان تھا (1)۔

اور کہا گیا: خطاب خاص طور پر نبی ﷺ کے لیے ہے۔ ابن عباس (2) سے مروی ہے، یعنی: ان کے آپ کو جھٹلانے پر غمزدہ نہ ہوں، اور انہیں خبر دی کہ وہ ان برے لوگوں میں سے ہیں جو گزر چکے ہیں۔ اور "اَن" (کہ) محلِ نصب میں ہے، یعنی: اس میں۔ "یؤمنوا": "اَن" کی وجہ سے منسوب ہے، اور اسی لیے اس سے 'نون' حذف کر دیا گیا ہے (3)۔

کہا جاتا ہے: "طمع فیه طمعاً وطَماعِيَةً" - مخفف - پس وہ "طمع" ہے، "فعل" کے وزن پر۔ اور کسی دوسرے نے اسے اس کی لالچ دلائی۔ اور تعجب کے طور پر کہا جاتا ہے: "طَمُعَ الرجلُ"، میم کے ضمہ کے ساتھ، یعنی: وہ بہت زیادہ لالچی ہو گیا۔ اور "الطمع": لشکر کا راشن؛ کہا جاتا ہے: "امیر نے ان کے لیے ان کے 'اطماع' کا حکم دیا"، یعنی: ان کے راشن کا۔ اور عورت "مطماع" ہے: جو لالچ دلائے لیکن قابو نہ دے (4)۔

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَقَدْ كَانَ فَرِيقٌ مِنْهُمْ﴾: "فریق" اسمِ جمع ہے، اس کے اپنے لفظ سے اس کا کوئی واحد نہیں ہے، اور تھوڑی تعداد کے لیے اس کی جمع "افریقہ" آتی ہے، اور زیادہ کے لیے "افرقاء"۔

﴿يَسْمَعُونَ﴾ "کان" کی خبر ہونے کی بنا پر محلِ نصب میں ہے۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ "منہم" خبر ہو اور "یسمعون" "فریق" کے لیے صفت ہو (5)، لیکن اس میں بعد (دوری) ہے۔

﴿كَلَمَ اللَّهِ﴾ یہ جماعت (جمہور) کی قراءت ہے۔ اور اعمش نے "كَلِمَ الله" پڑھا ہے، "کلمہ" کی جمع کے طور پر (6)۔ سیبویہ نے کہا: اور جان لو کہ ربیعہ کے کچھ لوگ "مِنْهِم" (ہاء کے کسرہ کے ساتھ) کہتے ہیں، میم کے کسرہ کی اتباع میں، اور ان کے نزدیک ساکن حرف کوئی مضبوط رکاوٹ نہیں تھا (7)۔ "کلام الله" "یسمعون" کا مفعول ہے۔

(1) المحرر الوجيز 167/1- (2) تفسير أبي الليث 131/1، وزاد المسير 103/1، وتفسير الرازي 133/3- (3) إعراب القرآن للنحاس 239/1- (4) الصحاح: (طمع). (5) إعراب القرآن للنحاس 239/1- (6) القراءات الشاذة ص 7، والمحتسب 93/1، والمحرر الوجيز 198/1- (7) الكتاب 196/4-

212 Surah Al-Baqarah: Verse 75

And what is meant is the seventy whom Moses, peace be upon him, chose, and they heard the words of Allah, but they did not obey His command, and they altered the speech when informing their people. This is the opinion of Al-Rabi' and Ibn Ishaq (1). And in this opinion there is weakness, and whoever says: Indeed, the seventy heard what Moses heard has erred, and has removed the virtue of Moses and his distinction of being spoken to directly (2). Al-Suddi and others said: They could not bear to hear it, and their minds became confused, and they desired that Moses should hear (3) and repeat it to them. So when they finished and went out, a group of them altered what they had heard of Allah's words from the tongue of their Prophet Moses, peace be upon him, as Allah Almighty said: {And if any one of the polytheists seeks your protection, then grant him protection so that he may hear the words of Allah} [At-Tawbah: 6]. If it is said: Al-Kalbi narrated from Abi Salih from Ibn Abbas that the people of Moses asked Moses to ask his Lord to let them hear His words, so they heard a sound like the sound of a horn (Shabbur) (4): "Indeed, I am Allah, there is no deity except Me, the Ever-Living, the Sustainer. I brought you out of Egypt with an uplifted hand and a strong arm" (5). We said (6): This is a false and invalid Hadith, narrated by Ibn Marwan (7) from Al-Kalbi, and both of them are weak and cannot be used as proof. Rather, speaking directly was something unique to Moses among all the children of Adam. If He had spoken to his people as well until they heard His words, then what would be Moses' preference over them (8), when He said, and His word is the Truth: {I have chosen you over the people with My messages and My speaking [to you]} [Al-A'raf: 144]? And this is clear.

(1) Al-Nukat wa Al-Uyun 1/147. It was narrated similarly by Al-Tabari 2/141-142, and Ibn Abi Hatim 1/235 from Abu Al-Aliyah and Al-Rabi', and Al-Baghawi in his Tafsir 1/87 from Ibn Abbas, and Ibn Al-Jawzi in Zad Al-Masir 1/103 from Muqatil, and Al-Tabarsi in Majma' Al-Bayan 1/317 from Ibn Abbas and Al-Rabi'. (2) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/168. (3) In (Zha): heard it. (4) Al-Shabbur - weight of Al-Tannur -: the horn (trumpet), it is said: it is an arabized word. Al-Sihah (Shabar). (5) Cited by Al-Hakim Al-Tirmidhi in Nawadir Al-Usul p. 64, and he rejected it. (6) In (Meem): I said. (7) He is Muhammad ibn Marwan Al-Suddi Al-Saghir, accused of fabricating. Mizan Al-I'tidal 4/32. (8) Nawadir Al-Usul p. 64.

२१२ सूरा अल-बक़रह: आयत ७५

और इससे तात्पर्य उन सत्तर लोगों से है जिन्हें मूसा (अलैहिस्सलाम) ने चुना था, तो उन्होंने अल्लाह की वाणी सुनी, लेकिन उन्होंने उसके आदेश का पालन नहीं किया, और अपनी कौम को बताते समय बात बदल दी। यह रबीअ और इब्न इसहाक़ का कथन है (१)। और इस कथन में कमजोरी है, और जिसने कहा कि उन सत्तर लोगों ने वही सुना जो मूसा ने सुना था, उसने गलती की है, और उसने मूसा की उस विशेषता और श्रेष्ठता को समाप्त कर दिया जो उनसे सीधे बात करने की थी (२)। और सुद्दी और अन्य लोगों ने कहा है: वे उसे सुनने की शक्ति नहीं रखते थे, और उनके मस्तिष्क भ्रमित हो गए, और उन्होंने चाहा कि मूसा सुनें (३) और उनके लिए उसे दोहराएँ। फिर जब वे फारिग हुए और बाहर निकले, तो उनमें से एक समूह ने अल्लाह की जो वाणी अपने नबी मूसा (अलैहिस्सलाम) की जुबान से सुनी थी, उसे बदल दिया, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {और यदि मुशरिकों में से कोई आपसे शरण माँगे, तो उसे शरण दें यहाँ तक कि वह अल्लाह की वाणी सुन ले} [अत-तौबाह: ६]। यदि कहा जाए: अल-कल्बी ने अबू सालेह से, उन्होंने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि मूसा की कौम ने मूसा से कहा कि वे अपने रब से दरख्वास्त करें कि वह उन्हें अपनी वाणी सुनाए, तो उन्होंने शब्बूर (तुरही) (४) जैसी आवाज सुनी: "बेशक मैं ही अल्लाह हूँ, मेरे अलावा कोई पूज्य नहीं, जो जीवंत और शाश्वत है, मैंने तुम्हें मिस्र से ऊंचे हाथ और मजबूत बाजू के साथ निकाला" (५)। हमने कहा (६): यह एक बातिल (झूठी) हदीस है जो सही नहीं है, इसे इब्न मरवान (७) ने अल-कल्बी से रिवायत किया है, और ये दोनों कमजोर हैं जिनसे दलील नहीं ली जा सकती। बल्कि बात करना एक ऐसी चीज है जिसके साथ आदम की पूरी औलाद में से केवल मूसा को खास किया गया था। अगर अल्लाह उनकी कौम से भी बात करता यहाँ तक कि वे उसकी वाणी सुन लेते, तो फिर मूसा की उन पर क्या फजीलत (श्रेष्ठता) रह जाती (८), जबकि अल्लाह ने फरमाया और उसका कथन सत्य है: {मैंने तुम्हें अपने संदेशों और अपनी बातचीत के द्वारा लोगों पर चुन लिया है} [अल-अअराफ़: १४४]? और यह पूरी तरह स्पष्ट है।

(१) अन-नुकत वल-उयून १/१४७। और इसे इसी तरह अल-तबरी २/१४१-१४२, और इब्न अबी हातिम १/२३५ ने अबुल आ लियाह और अल-रबीअ से निकाला है, और अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर १/८७ में इब्न अब्बास से, और इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर १/१०३ में मुक़ातिल से, और अल-तबरसी ने मज्मअ अल-बयान १/३१७ में इब्न अब्बास और अल-रबीअ से रिवायत किया है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६८। (३) (ज़ो) में: उसने सुना। (४) अल-शब्बूर - तनूर के वज़न पर -: तुरही (बिगुल), कहा

जाता है: यह अरबीकृत शब्द है। अल-सिहाह (शबर)। (५) इसे अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी ने नवादिर अल-उसूल पृष्ठ ६४ में उद्धृत किया है, और इसे खारिज किया है। (६) (मीम) में: मैंने कहा। (७) वह मुहम्मद बिन मरवान अल-सुद्दी अल-सगीर हैं, जिन पर हदीस गढ़ने का आरोप है। मीज़ान अल-इअतिदाल ४/३२। (८) नवादिर अल-उसूल पृष्ठ ६४।

۲۱۲ سورة البقرہ: آیت ۷۵

اور مراد وہ ستر لوگ ہیں جنہیں موسیٰ علیہ السلام نے چنا تھا، پس انہوں نے اللہ کا کلام سنا، لیکن اس کے حکم کی تعمیل نہیں کی، اور اپنی قوم کو بتاتے وقت بات کو بدل دیا۔ یہ ربیع اور ابن اسحاق کا قول ہے (۱)۔ اور اس قول میں کمزوری ہے، اور جس نے کہا کہ ان ستر لوگوں نے وہی سنا جو موسیٰ نے سنا تھا، اس نے غلطی کی، اور موسیٰ کی فضیلت اور کلام الہی کے ساتھ ان کی خصوصیت کو ختم کر دیا (۲)۔ اور سدی وغیرہ نے کہا ہے: وہ اسے سننے کی طاقت نہیں رکھتے تھے، اور ان کے ذہن خلط ملط ہو گئے، اور انہوں نے چاہا کہ موسیٰ سنیں (۳) اور ان کے لیے اسے دہرائیں۔ پھر جب وہ فارغ ہوئے اور باہر نکلے، تو ان میں سے ایک گروہ نے اللہ کا جو کلام اپنے نبی موسیٰ علیہ السلام کی زبان سے سنا تھا، اسے بدل دیا، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور اگر مشرکین میں سے کوئی آپ سے پناہ مانگے تو اسے پناہ دے دیں یہاں تک کہ وہ اللہ کا کلام سن لے} [التوبہ: ۶]۔ اگر کہا جائے: الکلبی نے ابو صالح سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ موسیٰ کی قوم نے موسیٰ سے سوال کیا کہ وہ اپنے رب سے کہیں کہ وہ انہیں اپنا کلام سنائے، تو انہوں نے شبور (نرسنگھے/ترہی) (۴) جیسی آواز سنی: "بیشک میں ہی اللہ ہوں، میرے سوا کوئی معبود نہیں، جو زندہ اور قائم رکھنے والا ہے، میں نے تمہیں مصر سے بلند ہاتھ اور مضبوط بازو کے ساتھ نکالا" (۵)۔ ہم نے کہا (۶): یہ ایک باطل حدیث ہے جو صحیح نہیں ہے، اسے ابن مروان (۷) نے الکلبی سے روایت کیا ہے، اور یہ دونوں ضعیف ہیں جن سے حجت نہیں پکڑی جا سکتی۔ بلکہ کلام کرنا ایک ایسی چیز ہے جس کے ساتھ اولادِ آدم میں سے صرف موسیٰ کو خاص کیا گیا تھا۔ اگر اللہ ان کی قوم سے ﷺ کلام کرتا یہاں تک کہ وہ اس کا کلام سن لیتے، تو پھر موسیٰ کی ان پر کیا فضیلت رہ جاتی (۸)، حالانکہ اللہ نے فرمایا اور اس کا قول حق ہے: {بیشک میں نے

تمہیں اپنی رسالتوں اور اپنے کلام کے ذریعے لوگوں پر منتخب کر لیا ہے} [الاعراف: ۱۴۴]؟ اور یہ بالکل واضح ہے۔

(۱) النکت والعیون ۱/۱۴۷۔ اور اسے اسی طرح الطبری ۲/۱۴۱-۱۴۲، اور ابن ابی حاتم ۱/۲۳۵ نے ابو العالیہ اور الربیع سے، اور البغوی نے اپنی تفسیر ۷۷/۱ میں ابن عباس سے، اور ابن الجوزی نے زاد المسیر ۱/۱۰۳ میں مقاتل سے، اور الطبرسی نے مجمع البیان ۱/۳۱۷ میں ابن عباس اور الربیع سے روایت کیا ہے۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۱۶۸۔ (۳) (ظ) میں: اس نے سنا۔ (۴) الشَّبُّور - تنور کے وزن پر -: بوق (نرسنگھا/ترہی)، کہا جاتا ہے: یہ معرب ہے۔ الصحاح (شبر)۔ (۵) اسے الحکیم الترمذی نے نوادر الاصول ص ۶۴ میں ذکر کیا ہے، اور اسے رد کیا ہے۔ (۶) (م) میں: میں نے کہا۔ (۷) وہ محمد بن مروان السدی الصغیر ہیں، جن پر حدیث گھڑنے کا الزام ہے۔ میزان الاعتدال ۴/۳۲۔ (۸) نوادر الاصول ص | ۶۴

Surah Al-Baqarah: Verse 75 / 213

Third: People differed as to how Moses recognized the speech of Allah, as he had not heard His speech before. Some said: He heard speech that was without letters or sounds (1), and in which there was no break or breath. At that point, he knew that it was not the speech of humans, but rather it was the speech of the Lord of the worlds. Others said: When he heard speech not from any specific direction—whereas human speech is heard from one of the six directions—he knew it was not from human speech. It was also said: His entire body became hearing organs until he heard that speech with it all, so he knew it was the speech of Allah. And it was said about it: The miracle indicated that what he heard was the speech of Allah. That is because it was said to him: "Throw down your staff," so he threw it, and it became a serpent. That was a sign for him of the truth of the situation, and that the one saying to him: "Indeed, I am your Lord" [Taha: 12] is Allah, the Exalted and Majestic. And it was said: He had concealed something in his mind that only the Knower of the Unseen could know, so Allah Almighty informed him of that secret in His address. Thus, he knew that the one addressing him was Allah, the Exalted and Majestic. A clarification of the meaning of the Almighty's saying: "He was called" (2) will come in Surah Al-Qasas, if Allah Almighty wills. Fourth: The Almighty's saying: "then they distort it." Mujahid and Al-Suddi said: They are the Jewish scholars who distort the Torah, making the forbidden permissible and the permissible forbidden, following their desires (3). "after they had understood it," meaning: they recognized it and knew it. This is a rebuke, meaning: these Jews, their ancestors had committed acts of evil and defiance, and these people follow that same path, so how can you hope for their belief?! This speech also indicates that the one who knows the truth yet is stubborn in opposing it is far from guidance; because he knew the promise and the warning, yet that did not deter him from his stubbornness (4).

---

(1) In (m): not with letters and sounds. (2) Completing it: "from the bank of the right valley, in the blessed spot" [Verse: 30]. (3) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/147. Al-Tabari 2/141 recorded Mujahid's saying, and Ibn Abi Hatim 1/336 recorded Al-Suddi's saying. (4) Similarly in the Tafsir of Al-Razi 3/136.

सूरह अल-बक़रह: आयत 75 / 213

तीसरा: लोगों में इस बात को लेकर मतभेद था कि मूसा ने अल्लाह के कलाम (वाणी) को कैसे पहचाना, जबकि उन्होंने इससे पहले उनका संबोधन नहीं सुना था। उनमें से कुछ ने कहा: उन्होंने ऐसा कलाम सुना जो अक्षरों या ध्वनियों वाला नहीं था (1), और न ही उसमें कोई रुकावट या सांस थी। तब उन्हें पता चला कि यह मनुष्यों का कलाम नहीं है, बल्कि यह तो सारे संसार के रब का कलाम है। दूसरों ने कहा: जब उन्होंने किसी भी दिशा से न आने वाला कलाम सुना - जबकि मानव कलाम छह दिशाओं में से किसी एक दिशा से सुना जाता है - तो उन्हें पता चला कि यह मानव कलाम नहीं है। यह भी कहा गया है: उनका पूरा शरीर सुनने वाला अंग बन गया यहाँ तक कि उन्होंने उस पूरे शरीर से उस कलाम को सुना, तो उन्हें पता चला कि यह अल्लाह का कलाम है। और इसके बारे में यह भी कहा गया: चमत्कार ने संकेत दिया कि उन्होंने जो सुना वह अल्लाह का कलाम था। वह इस प्रकार कि उनसे कहा गया: "अपनी लाठी डाल दो," तो उन्होंने उसे डाल दिया, और वह एक साँप बन गई। यह उनके लिए स्थिति की सच्चाई का एक संकेत था, और यह कि जो उनसे कह रहा था: "बेशक, मैं तुम्हारा रब हूँ" [ता-हा: 12] वह अल्लाह ही है, जो अत्यंत महिमावान और प्रतापी है। और यह भी कहा गया: उन्होंने अपने मन में कुछ ऐसी बात छुपाई थी जिसे अदृश्य का ज्ञाता (अल्लाह) ही जान सकता था, तो अल्लाह तआला ने अपने संबोधन में उन्हें उस रहस्य की सूचना दी। तब उन्हें पता चला कि जो उन्हें संबोधित कर रहा है वह अल्लाह ही है, जो अत्यंत महिमावान और प्रतापी है। अल्लाह तआला के कथन "उन्हें पुकारा गया" (2) के अर्थ का विवरण सूरह अल-क़सस में आएगा, यदि अल्लाह तआला ने चाहा। चौथा: अल्लाह तआला का कथन: "फिर वे उसे बदल देते हैं।" मुजाहिद और सुद्दी ने कहा: वे यहूदी विद्वान हैं जो तौरात को बदल देते हैं, अपनी इच्छाओं के अनुसरण में हराम को हलाल और हलाल को हराम बना देते हैं (3)। "इसके बाद कि वे उसे समझ चुके थे," अर्थात: उन्होंने उसे पहचान लिया था और जान लिया था। यह एक फटकार है, जिसका अर्थ है: ये यहूदी, इनके पूर्वजों ने बुराई और हठधर्मिता के कार्य किए थे, और ये लोग उन्हीं के नक्शेकदम पर हैं, तो आप उनके ईमान लाने की उम्मीद कैसे कर सकते हैं?! यह बात यह भी दर्शाती है कि जो सत्य को जानते हुए भी उसमें हठधर्मी है, वह सही मार्ग से बहुत दूर है; क्योंकि उसे वादे और चेतावनी का ज्ञान था, फिर भी उसने उसे अपनी हठधर्मिता से नहीं रोका (4)।

---

(1) (m) में: अक्षरों और ध्वनियों के बिना। (2) पूर्ण आयत: "दाहिनी घाटी के किनारे से, बरकत वाली जगह में" [आयत: 30]। (3) अल-नुकत वल-'उयून 1/147। और अल-तबरी 2/141 ने मुजाहिद का

कथन उद्धृत किया है, और इब्न अबी हातिम 1/336 ने सुद्दी का कथन उद्धृत किया है। (4) इसी प्रकार अल-राज़ी की तफ़सीर 3/136 में है।

سورہ بقرہ: آیت 75 / 213

تیسرا: لوگوں میں اس بارے میں اختلاف ہوا کہ موسیٰ علیہ السلام نے اللہ کے کلام کو کس طرح پہچانا، جبکہ انہوں نے اس سے پہلے اس کا خطاب نہیں سنا تھا۔ ان میں سے بعض نے کہا: انہوں نے ایسا کلام سنا جو حروف اور آوازوں پر مشتمل نہ تھا (1)، اور نہ ہی اس میں کوئی وقفہ یا سانس تھا۔ تب انہیں معلوم ہوا کہ یہ انسانوں کا کلام نہیں ہے، بلکہ یہ تو رب العالمین کا کلام ہے۔ دوسروں نے کہا: جب انہوں نے ایسا کلام سنا جو کسی سمت سے نہیں آ رہا تھا - جبکہ انسانی کلام چھ سمتوں میں سے کسی ایک سمت سے سنا جاتا ہے - تو انہیں معلوم ہوا کہ یہ انسانی کلام نہیں ہے۔ یہ بھی کہا گیا ہے: ان کا پورا جسم سننے والا بن گیا یہاں تک کہ انہوں نے اسی سے وہ کلام سنا، تو انہیں معلوم ہوا کہ یہ اللہ کا کلام ہے۔ اور اس بارے میں یہ بھی کہا گیا: معجزے نے اس بات پر دلالت کی کہ جو کچھ انہوں نے سنا وہ اللہ کا کلام ہے۔ وہ اس طرح کہ ان سے کہا گیا: "اپنی لاٹھی ڈال دو،" تو انہوں نے اسے ڈال دیا، اور وہ ایک اژدہا بن گئی۔ یہ ان کے لیے صورتحال کی سچائی کی علامت تھی، اور یہ کہ جو ان سے کہہ رہا تھا: "بے شک، میں تیرا رب ہوں" [طہٰ: 12] وہ اللہ جل وعز ہی ہے۔ اور یہ بھی کہا گیا: انہوں نے اپنے دل میں کوئی ایسی بات چھپائی تھی جس سے سوائے علام الغیوب کے کوئی واقف نہ تھا، تو اللہ تعالیٰ نے اپنے خطاب میں انہیں اس بات کی خبر دے دی۔ تب انہیں معلوم ہوا کہ جو ان سے مخاطب ہے وہ اللہ جل وعز ہی ہے۔ اللہ تعالیٰ کے ارشاد: "انہیں پکارا گیا" (2) کے معنی کی وضاحت انشاء اللہ سورہ قصص میں آئے گی۔ چوتھا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: "پھر وہ اسے بدل ڈالتے ہیں۔" مجاہد اور سدی نے کہا: یہ وہ یہودی علماء ہیں جو تورات میں تحریف کرتے ہیں، اپنی خواہشات کی پیروی میں حرام کو حلال اور حلال کو حرام بنا دیتے ہیں (3)۔ "اس کے بعد کہ وہ اسے سمجھ چکے تھے،" یعنی: انہوں نے اسے

پہچان لیا تھا اور جان لیا تھا۔ یہ ایک توبیخ (ڈانٹ) ہے، یعنی: یہ یہودی، ان کے آباؤ اجداد نے برے افعال اور ہٹ دھرمی کی تھی، اور یہ لوگ اسی روش پر ہیں، تو تم ان کے ایمان لانے کی کیسی امید رکھتے ہو؟! اس کلام نے یہ بھی ثابت کیا کہ حق کو جاننے والا ہٹ دھرم انسان ہدایت سے دور ہے؛ کیونکہ اسے وعدے اور وعید (انتباہ) کا علم تھا، مگر اس نے اسے اس کی ہٹ دھرمی سے نہیں روکا (4)۔

---

(1) (م) میں: حروف اور آوازوں کے بغیر۔ (2) اس کی تکمیل: "وادی کے داہنے کنارے سے، مبارک خطے میں" [آیت: 30]۔ (3) النکت والعیون 147/1۔ اور طبری نے 141/2 میں مجاہد کا قول نقل کیا، اور ابن ابی حاتم نے 336/1 میں سدی کا قول نقل کیا۔ (4) اسی طرح تفسیر رازی 136/3 میں ہے۔

214 Surah Al-Baqarah: Verses 76, 77

The Almighty's saying: {And when they meet those who believe, they say, "We believe"; but when they are alone with one another, they say, "Do you tell them what Allah has revealed to you so that they might argue with you about it before your Lord? Will you not then understand?" * Do they not know that Allah knows what they conceal and what they declare?}

The Almighty's saying: {And when they meet those who believe, they say, "We believe"} This is regarding the hypocrites. The origin of "laqu" (met) is "laqiyu", as previously mentioned (1).

{but when they are alone with one another} This verse is regarding the Jews. Some of them had embraced Islam and then became hypocrites. They used to tell the Arab believers about what their ancestors were punished with. So the Jews said to them: {Do you tell them what Allah has revealed to you} meaning: what Allah has decreed upon you of punishment, so they would say: We are more honored by Allah than you. Narrated from Ibn Abbas and al-Suddi (2).

It was also said: When Ali besieged Qurayzah on the day of Khaybar, he heard insults against the Messenger of Allah ﷺ. He went to him and said: "O Messenger of Allah, do not go near them," and he hinted at it. He ﷺ said: "I think you heard them insulting me. If they saw me, they would have stopped that." He went to them, and when they saw him, they stopped. He said to them: "You have broken (3) the covenant, O brothers of apes and pigs! May Allah disgrace you and send down His vengeance upon you." They said: "You were not ignorant, O Muhammad, so do not be ignorant towards us. Who told you this?! This news only came from us!" This meaning is narrated from Mujahid (4).

The Almighty's saying: {And when they are alone} The origin of "khala" (became alone) is "khalawa"; the 'waw' was changed to an 'alif' because it is voweled and the letter before it has a fatha (5). The meaning of "khalaw ila" (6) was previously mentioned at the beginning of the Surah. The meaning of "fataha" (opened/revealed) is: decreed. "Al-fath" among the Arabs means judgment and decree, and from it is the Almighty's saying:

Footnotes: (1) 1/312. (2) Al-Nukat wa al-Uyun 1/148-149. Al-Tabari 2/148 and Ibn Abi Hatim 1/239 recorded the saying of al-Suddi, but we did not find the saying of Ibn Abbas. (3) In (m): You have violated. (4) Recorded by al-Tabari 2/148 and Ibn Abi

Hatim 1/238. (5) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/239. (6) The word was not precisely transcribed in the copies; it appeared as "khala wa ila", and in (m) it appeared as "khala", and the discussion of it preceded in 1/313.

214 सूरह अल-बकराह: आयतें 76, 77

अल्लाह का फरमान: {और जब वे उन लोगों से मिलते हैं जो ईमान लाए हैं, तो कहते हैं, "हम ईमान लाए हैं"; परन्तु जब वे एक-दूसरे के साथ अकेले होते हैं, तो कहते हैं, "क्या तुम उन्हें वह बताते हो जो अल्लाह ने तुम पर खोला है ताकि वे इसके बारे में तुम्हारे रब के सामने तुमसे बहस करें? क्या फिर तुम नहीं समझते?" * क्या वे नहीं जानते कि अल्लाह वह सब जानता है जो वे छुपाते हैं और जो वे प्रकट करते हैं?}

अल्लाह का फरमान: {और जब वे उन लोगों से मिलते हैं जो ईमान लाए हैं, तो कहते हैं, "हम ईमान लाए हैं"} यह मुनाफ़िक़ों (पाखंडियों) के बारे में है। "लक़ू (मिले) का मूल "लक़ियू" है, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है (1)।

{परन्तु जब वे एक-दूसरे के साथ अकेले होते हैं} यह आयत यहूदियों के बारे में है। उनमें से कुछ लोग इस्लाम लाए थे और फिर मुनाफ़िक़ बन गए। वे अरब ईमान वालों को उन चीज़ों के बारे में बताते थे जिनसे उनके पूर्वजों को दंडित किया गया था। तो यहूदियों ने उनसे कहा: {क्या तुम उन्हें वह बताते हो जो अल्लाह ने तुम पर खोला है} यानी: अल्लाह ने तुम पर जो अज़ाब (सज़ा) मुक़र्रर की है, ताकि वे कहें: हम अल्लाह के नज़दीक तुमसे ज़्यादा इज़्ज़त वाले हैं। इब्न अब्बास और अल-सुद्दी से रिवायत है (2)।

यह भी कहा गया है: जब अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने खैबर के दिन कुरैज़ा का घेराव किया, तो उन्होंने अल्लाह के रसूल ﷺ को दी जाने वाली गालियां सुनीं। वह उनके पास गए और कहा: "ऐ अल्लाह के रसूल, उनके पास न जाएं" और उन्होंने संकेत दिया। आप ﷺ ने फरमाया: "मुझे लगता है कि तुमने उन्हें मुझे गाली देते हुए सुना है। अगर वे मुझे देखते, तो वे ऐसा करने से रुक जाते।" वह उनकी ओर बढ़े, और जब उन्होंने आपको देखा, तो वे रुक गए। आपने उनसे कहा: "ऐ बंदरों और सूअरों के भाइयों, तुमने वादा तोड़ा (3) है! अल्लाह तुम्हें अपमानित करे और तुम पर अपना अज़ाब नाज़िल करे।" उन्होंने कहा: "ऐ मुहम्मद, आप अज्ञानी नहीं थे, तो हमारे प्रति अज्ञानता न दिखाएं। आपको यह किसने बताया?! यह खबर हमारे पास से ही निकली है!" यह अर्थ मुजाहिद से रिवायत है (4)।

अल्लाह का फरमान: {और जब वे अकेले होते हैं} "खला" (अकेले होना) का मूल "खलवा" है; 'वाव' को 'अलिफ' में बदल दिया गया क्योंकि यह सस्वर (voweled) है और उससे पहले वाले अक्षर पर ज़बर (fatha) है (5)। "खलौ इला" (6) का अर्थ सूरह के शुरू में पहले ही बताया जा चुका है।

"फतहा" का अर्थ है: फैसला किया। अरबों के यहाँ "अल-फतह" का अर्थ फैसला और हुक्म है, और इसी से अल्लाह का यह फरमान है:

पाद टिप्पणियाँ: (1) 1/312. (2) अल-नुकत वल-उयून 1/148-149. अल-तबरी 2/148 और इब्न अबी हातिम 1/239 ने अल-सुद्दी का कथन उद्धृत किया है, और हमें इब्न अब्बास का कथन नहीं मिला। (3) (म) में: तुमने उल्लंघन किया। (4) अल-तबरी 2/148 और इब्न अबी हातिम 1/238 द्वारा उद्धृत। (5) एराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/239। (6) प्रतियों में शब्द को सही तरह से नहीं लिखा गया है, वहां यह "खला व इला" के रूप में आया है, और (म) में यह "खला" के रूप में आया है, और इसकी चर्चा 1/313 में पहले हो चुकी है।

214 سورة البقرہ: آیات ۷۶ ، ۷۷

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَإِذَا لَقُوا الَّذِينَ ءامَنُوا قَالُوا ءامَنَّا وَإِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ إِلَى بَعْضٍ قَالُوا أَتُحَدِّثُونَهُم بِمَا فَتَحَ اللَّهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَاجُّوكُم بِهِ عِندَ رَبِّكُمْ أَفَلَا تَعْقِلُونَ * أَوَلَا يَعْلَمُونَ أَنَّ اللَّهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّونَ وَمَا يُعْلِنُونَ﴾۔ (ترجمہ: اور جب وہ ایمان والوں سے ملتے ہیں تو کہتے ہیں، "ہم ایمان لائے"؛ اور جب وہ آپس میں اکیلے ہوتے ہیں تو کہتے ہیں، "کیا تم انہیں وہ بتاتے ہو جو اللہ نے تم پر کھولا ہے تاکہ وہ تمہارے رب کے سامنے اس کے ذریعے تم سے جھگڑا کریں؟ کیا پھر تم نہیں سمجھتے؟" * کیا وہ نہیں جانتے کہ اللہ وہ سب جانتا ہے جو وہ چھپاتے ہیں اور جو وہ ظاہر کرتے ہیں؟)

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذَا لَقُوا الَّذِينَ ءامَنُوا قَالُوا ءامَنَّا﴾ یہ منافقین کے بارے میں ہے۔ "لَقُوا" کی اصل "لَقِيُوا" ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۱)۔

﴿وَإِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ إِلَى بَعْضٍ﴾ یہ آیت یہودیوں کے بارے میں ہے، اور وہ اس طرح کہ ان میں سے کچھ لوگ اسلام لائے پھر منافق بن گئے، تو وہ عرب مومنوں کو وہ باتیں بتاتے تھے جن کے ذریعے ان کے آباؤ اجداد کو عذاب دیا گیا تھا۔ تو یہودیوں نے ان سے کہا: ﴿أَتُحَدِّثُونَهُم بِمَا فَتَحَ اللَّهُ عَلَيْكُمْ﴾ یعنی: اللہ نے تم پر جو عذاب کا فیصلہ کیا ہے، تاکہ وہ کہیں: ہم اللہ کے نزدیک تم سے زیادہ معزز ہیں۔ یہ ابن عباس اور سدی سے مروی ہے (۲)۔

اور کہا گیا ہے کہ: جب علی رضی اللہ عنہ نے خیبر کے دن (بنو) قریظہ کا محاصرہ کیا تو رسول اللہ ﷺ کی شان میں گستاخی سنی، تو وہ آپ ﷺ کی طرف لوٹے اور کہا: اے اللہ کے رسول، ان کے پاس نہ جائیں، اور اس بات کا اشارہ کیا۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "میرا خیال ہے کہ تم نے انہیں مجھے گالیاں دیتے ہوئے سنا ہے، اگر وہ مجھے دیکھ لیتے تو اس سے رک جاتے۔" پھر آپ ﷺ ان کی طرف اٹھے، جب انہوں نے آپ کو دیکھا تو رک گئے۔ آپ ﷺ نے ان سے فرمایا: "اے بندروں اور

خنزیروں کے بھائیو، تم نے عہد توڑ دیا (۳)، اللہ تمہیں رسوا کرے اور تم پر اپنا عذاب نازل کرے۔" انہوں نے کہا: اے محمد، آپ نادان نہیں تھے، لہذا ہم پر نادانی نہ کریں، آپ کو یہ کس نے بتایا؟! یہ خبر تو صرف ہماری طرف سے نکلی ہے! یہ معنی مجاہد سے مروی ہے (۴)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذَا خَلَا﴾ "خلا" کی اصل "خَلَوَ" ہے؛ 'واؤ' کو 'الف' سے بدل دیا گیا کیونکہ وہ متحرک ہے اور اس سے پہلے والے حرف پر فتحہ (زبر) ہے (۵)۔ اور "خَلَوا إلى" کا معنی (۶) سورت کے شروع میں گزر چکا ہے۔ اور "فَتَحَ" کا معنی ہے: فیصلہ کیا۔ اور عربوں کے ہاں "الفَتْحُ" کا مطلب فیصلہ اور حکم ہے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے:

حواشی: (۱) ۳۱۲/۱۔ (۲) النکت والعیون ۱۴۸/۱-۱۴۹۔ اور طبری نے ۱۴۸/۲، اور ابن ابی حاتم نے ۲۳۹/۱ میں سدی کا قول نکالا ہے، اور ہمیں ابن عباس کا قول نہیں ملا۔ (۳) (م) میں ہے: تم نے خلاف ورزی کی۔ (۴) اسے طبری نے ۱۴۸/۲، اور ابن ابی حاتم نے ۲۳۸/۱ میں نکالا ہے۔ (۵) إعراب القرآن للنحاس ۲۳۹/۱۔ (۶) نسخوں میں یہ لفظ درست نہیں لکھا گیا، اس میں یہ "خلا وإلى" واقع ہوا ہے، اور (م) میں "خلا" واقع ہوا ہے، اور اس کا کلام ۳۱۳/۱ میں گزر چکا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verses 76, 77 215

“Our Lord, judge between us and our people in truth, and You are the best of judges.” (1) [Al-A'raf: 89] That is: the arbiters. And "Al-Fattah" is the judge in the language of Yemen; it is said: "Between me and you is the Fattah (judge)." It was said so because he aids the oppressed against the oppressor. And "Al-Fath" means victory, and from it is the Almighty's saying: “...seeking victory against those who disbelieve” [Al-Baqarah: 89], and His saying: “If you seek victory, then victory has come to you” [Al-Anfal: 19], and it can also mean the distinction between two things (2).

The Almighty's saying: “that they may argue with you” is in the accusative case due to the "lam" of "ki" (purpose), or if you wish, by an implied "an", and the sign of the accusative is the omission of the "nun". Yunus said: and people from among the Arabs pronounce the "lam" of "ki" with a fatha. Al-Akhfash said: because fatha is the original form. Khalaf Al-Ahmar (3) said: it is the dialect of Bani Al-Anbar (4).

The meaning of “that they may argue with you” is: that they may reproach you and say: We are more honored by Allah than you. It is also said: the meaning is that they may argue against you using your own words, saying: you disbelieved in him after you had established his truthfulness. It is also said that a man from among the Jews used to meet his friend from among the Muslims and say to him: Hold fast to the religion of Muhammad, for he is truly a prophet.

“Before your Lord” It is said: in the Hereafter, as He said: “Then indeed, on the Day of Resurrection, before your Lord you will dispute” [Az-Zumar: 31]. And it is said: at the mention of your Lord. And it is said: “before” (inda) means “concerning” (fi), meaning: that they may argue with you concerning your Lord, so they would be more deserving of Him than you, due to the clarity of the evidence against you. It was narrated from Al-Hasan (5).

And “Al-Hujjah” (evidence/argument) is straight speech in absolute terms, and from that is “mahajjat al-tariq” (the main path). I argued with someone and “hajjajtuhu” means I overcame him with evidence. From this is the hadith: “So Adam overcame Moses in argument” (6).

(1) In the manuscripts: "Then He judges between us with truth and He is the best of judges," and what is fixed is from (M). (2) See Tafsir al-Tabari 2/150, Al-Nukat wa al-'Uyun 1/149, and Tahdhib al-Lugha 4/445 and 448. (3) Ibn Hayyan, Abu Muhriz, client of Abu Burdah bin Abi Musa al-Ash'ari, was a scholar of rare words, grammar,

lineage, and reports, a poet, prolific in poetry, of good quality, composed the book "Mountains of the Arabs" and what was said about them in poetry. He became devout towards the end of his life, and died around the year (180 AH). Al-Shi'r wa al-Shu'ara' 2/789, and Inbah al-Ruwat 1/348. (4) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/239-240. (5) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/149, and Tafsir al-Razi 3/137. (6) A portion of a hadith from Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, recorded by Ahmad (7856), Al-Bukhari (4737), and Muslim (2652).

सूरह अल-बक़रह: आयत 76, 77 215

“ऐ हमारे रब! हमारे और हमारी कौम के बीच हक के साथ फैसला कर दे और तू सबसे अच्छा फैसला करने वाला है।” (1) [अल-अराफ: 89] यानी: फैसला करने वाले। और "अल-फत्ताह" यमन की भाषा में काजी (न्यायाधीश) को कहते हैं; कहा जाता है: "मेरे और तुम्हारे बीच फत्ताह (न्यायाधीश) है।" ऐसा इसलिए कहा गया क्योंकि वह ज़ालिम के ख़िलाफ़ मज़लूम की मदद करता है। और "अल-फतह" का अर्थ है जीत, और इसी से अल्लाह तआला का यह फरमान है: “...उन लोगों के खिलाफ जीत मांगते थे जिन्होंने कुफ्र किया” [अल-बक़रह: 89], और उसका फरमान: “अगर तुम जीत चाहते हो तो तुम्हारे पास जीत आ चुकी है” [अल-अनफाल: 19], और इसका अर्थ दो चीजों के बीच अंतर करना भी हो सकता है (2)।

अल्लाह तआला का फरमान: “ताकि वे तुमसे बहस करें”: यह "कि" के लाम की वजह से नसब (एक व्याकरणिक अवस्था) में है, और यदि आप चाहें, तो एक छिपे हुए "अन" के द्वारा, और नसब की निशानी "नून" का हटना है। यूनुस ने कहा: अरब के कुछ लोग "कि" के लाम को फतह (ज़बर) के साथ पढ़ते हैं। अल-अख्फश ने कहा: क्योंकि फतह ही मूल है। खलफ़ अल-अहमर (3) ने कहा: यह बनी अल-अंबर की भाषा (बोली) है (4)।

“ताकि वे तुमसे बहस करें” का अर्थ है: ताकि वे तुम्हें शर्मिंदा करें और कहें: हम अल्लाह की नज़रों में तुमसे ज़्यादा सम्मानित हैं। और यह भी कहा गया है: इसका अर्थ है: ताकि वे तुम्हारी ही बात से तुम्हारे ख़िलाफ़ दलील दें, वे कहते हैं: तुम उनकी सच्चाई को जान लेने के बाद भी उन पर अविश्वास किया। और यह भी कहा गया है कि यहूदियों में से एक व्यक्ति अपने मुसलमान दोस्त से मिलता था और उससे कहता था: मुहम्मद के धर्म पर डटे रहो, क्योंकि वे वास्तव में एक पैगंबर हैं।

“तुम्हारे रब के पास” कहा गया है: आखिरत में, जैसा कि उसने फरमाया: “फिर बेशक तुम कयामत के दिन अपने रब के पास झगड़ोगे” [अज़-ज़ुमर: 31]। और कहा गया है: तुम्हारे रब के ज़िक्र के वक़्त। और कहा गया है: "पास" (इंदा) का अर्थ "बारे में" (फी) है, यानी: ताकि वे तुम्हारे रब के बारे में तुमसे बहस करें, तो वे दलील के ज़ाहिर होने के कारण तुमसे ज़्यादा उसके हकदार होंगे। हसन से रिवायत है (5)।

और “अल-हुज्जह” (दलील/तर्क): आमतौर पर सही और सीधी बात को कहते हैं, और उसी से “महज्जतुल तरीक” (रास्ते का बीच/मुख्य भाग) बना है। मैंने फलां से बहस की तो मैंने उसे दलील से हरा दिया, और उसी से हदीस है: “तो आदम ने मूसा को दलील में हरा दिया” (6)।

(1) हस्तलिखित प्रतियों में: "फिर हमारे बीच हक के साथ फैसला करता है और वह सबसे अच्छा फैसला करने वाला है," और जो स्थापित है वह (एम) से है। (2) देखें तफ़सीर अल-तबरी 2/150, अन-नुकात वल-'उयून 1/149, और तहज़ीब अल-लुग़ाह 4/445 और 448। (3) इब्न हय्यान, अबू मुहरिज़, अबू बुरदा बिन अबी मूसा अल-अशअरी के गुलाम, वे दुर्लभ शब्दों, व्याकरण, वंश और समाचारों के विद्वान थे, एक कवि थे, बहुत सारी कविताएं लिखीं, जो अच्छी गुणवत्ता की थीं, उन्होंने "अरबों के पहाड़" किताब लिखी और उनमें कही गई कविताएं। अपने जीवन के अंत में इबादत में लग गए, उनकी मृत्यु सन् (180 हिजरी) के आसपास हुई। अश्-शेर वश-शुअरा 2/789, और इनबाह अल-रुवात 1/348। (4) अल-नह्हास द्वारा एराब अल-कुरान 1/239 - 240। (5) अन-नुकात वल-'उयून 1/149, और तफ़सीर अल-राज़ी 3/137। (6) अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस का एक हिस्सा जिसे अहमद (7856), बुखारी (4737) और मुस्लिम (2652) ने संकलित किया है।

سورہ البقرہ: آیات ۷۶ ، ۷۷ ۲۱۵

"اے ہمارے رب! ہمارے اور ہماری قوم کے درمیان حق کے ساتھ فیصلہ فرما دے اور تو بہترین فیصلہ کرنے والا ہے۔" (۱) [الاعراف: ۸۹] یعنی: فیصلہ کرنے والے۔ اور "الفتاح": یمن کی لغت میں قاضی (جج) کو کہتے ہیں؛ کہا جاتا ہے: "میرے اور تیرے درمیان فتاح (جج) ہے۔" یہ اس لیے کہا گیا کیونکہ وہ ظالم کے خلاف مظلوم کی مدد کرتا ہے۔ اور "الفتح" کے معنی نصرت (کامیابی) کے ہیں، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: "...ان لوگوں کے خلاف فتح طلب کرتے تھے جنہوں نے کفر کیا" [البقرہ: ۸۹]، اور اس کا ارشاد: "اگر تم فتح چاہتے ہو تو تمہارے پاس فتح آ چکی ہے" [الانفال: ۱۹]، اور اس کے معنی دو چیزوں کے درمیان فرق کرنے کے بھی ہو سکتے ہیں (۲)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: "تاکہ وہ تم سے بحث کریں": یہ لام "کی" (تعلیل) کی وجہ سے نصب میں ہے، اور اگر آپ چاہیں تو "ان" مقدر (پوشیدہ) کے ذریعے، اور نصب کی علامت "نون" کا حذف ہونا ہے۔ یونس نے کہا: عرب کے کچھ لوگ لام "کی" پر فتحہ (زبر) پڑھتے ہیں۔ الاخفش نے کہا: اس لیے کہ فتحہ ہی اصل ہے۔ خلف الاحمر (۳) نے کہا: یہ بنو العنبر کی زبان ہے (۴)۔

اور "تاکہ وہ تم سے بحث کریں" کا مطلب ہے: تاکہ وہ تمہیں عار دلائیں اور کہیں: ہم اللہ کے نزدیک تم سے زیادہ معزز ہیں۔ اور کہا گیا: مطلب یہ ہے کہ وہ تمہاری اپنی بات سے تمہارے خلاف دلیل پیش کریں، وہ کہتے ہیں: تم نے ان کی سچائی پر آگاہ ہونے کے بعد ان کے ساتھ کفر کیا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ یہودیوں میں سے ایک شخص اپنے مسلمان دوست سے ملتا تھا تو اس سے کہتا تھا: محمد کے دین پر قائم رہو، کیونکہ وہ واقعی سچے نبی ہیں۔

"تمہارے رب کے پاس": کہا گیا: آخرت میں، جیسا کہ اس نے فرمایا: "پھر تم قیامت کے دن اپنے رب کے پاس جھگڑو گے" [الزمر: ۳۱]۔ اور کہا گیا: تمہارے رب کے ذکر کے وقت۔ اور کہا گیا: "عند" (پاس/قریب) "فی" (میں/بارے میں) کے معنی میں ہے، یعنی: تاکہ وہ تمہارے رب کے بارے میں تم سے بحث کریں، تو وہ دلیل کے ظاہر ہونے کی وجہ سے تم سے زیادہ اس کے حقدار ہوں گے۔ یہ حسن (۵) سے مروی ہے۔

اور "الحجۃ": مطلق طور پر سیدھی اور درست کلام کو کہتے ہیں، اور اسی سے "محجۃ الطریق" (راستے کا درمیانی حصہ) نکلا ہے۔ اور میں نے فلاں سے بحث کی تو میں اس پر دلیل سے غالب آگیا، اور اسی سے حدیث ہے: "پس آدمؑ موسیٰؑ پر (دلیل میں) غالب آگئے" (۶)۔

(۱) خطی نسخوں میں ہے: "پھر وہ ہمارے درمیان حق کے ساتھ فیصلہ کرتا ہے اور وہ بہترین فیصلہ کرنے والا ہے"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (۲) دیکھیے تفسیر الطبری ۲/ ۱۵۰ ، اور النکت والعیون ۱ / ۱۴۹ ، اور تہذیب اللغۃ ۴/ ۴۴۵ اور ۴۴۸۔ (۳) ابن حیان، ابو محرز، ابوبردہ بن ابی موسیٰ الاشعری کے غلام، وہ غریب الفاظ، نحو، نسب اور خبروں کے عالم تھے، شاعر تھے، کثیر الشعر تھے، اچھے اشعار کہتے تھے، انہوں نے جبال العرب (عرب کے پہاڑ) کے نام سے کتاب تصنیف کی اور ان میں کہے گئے اشعار۔ اپنی زندگی کے آخری حصے میں عبادت گزاری اختیار کر لی، ان کی وفات سنہ (۱۸۰ھ) کے لگ بھگ ہوئی۔ الشعر والشعراء ۲/ ۷۸۹ ، اور انباہ الرواۃ ۱ / ۳۴۸۔ (۴) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۳۹ - ۲۴۰۔ (۵) النکت والعیون ۱/ ۱۴۹ ، اور تفسیر الرازی ۳/ ۱۳۷۔ (۶) ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث کا ایک ٹکڑا ہے جسے احمد (۷۸۵۶)، بخاری (۴۷۳۷) اور مسلم (۲۶۵۲) نے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 78 216 "Do you not then understand?" (Afala Ta'qilun) It was said: This is from the speech of the rabbis to the followers. It was also said: It is an address from Allah Almighty to the believers, meaning: Do you not understand that the Children of Israel will not believe while they are in these states? (1). Then He rebuked them with a recitation that is recited, saying: "Do they not know" (Awa-la Ya'lamun) - the verse. It is an interrogative meaning rebuke and scolding. The majority read it as "ya'lamun" (they know) with a 'ya', while Ibn Muhaysin read it with a 'ta' (ta'lamun - you know), as an address to the believers. What they concealed was their disbelief, and what they declared was the denial of it (2). Allah Almighty's saying: "And among them are illiterates who do not know the Scripture except through hearsay, and they do nothing but guess." [78] In it are four issues: First: His saying, "And among them", meaning: from the Jews (3). And it was said: from the Jews and the hypocrites. "Illiterates" (Ummiyyun): meaning: those who neither write nor read. The singular is 'Ummi', attributed to the illiterate nation which is in its original state of birth from its mothers (4), having not learned writing or reading. From this is his saying (peace be upon him): "We are an illiterate nation; we neither write nor count" (5). - the Hadith. It was also said to them: "illiterates" (6) because they did not believe in the "Umm al-Kitab" (Mother of the Book), on the authority of Ibn Abbas (7). Abu Ubaydah said: They were called illiterates because the Book was revealed to them, as if they were attributed to the Mother of the Book (8). It is as if he said: And among them are the People of the Book who do not know the Book.

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/169. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/169, and Ibn Khalawayh added the attribution of the reading "ta'lamun" in the anomalous readings, p. 7, to Qatadah. (3) This is the saying of Abu al-Aliyah, as extracted from him by al-Tabari 2/153, and Ibn Abi Hatim 1/240. (4) In (Kh) and (M): birth. (5) Narrated by Ahmad (5117), al-Bukhari (1913), and Muslim (1080) from the Hadith of Ibn Umar (may Allah be pleased with them both). (6) In (Kh) and (M): they are illiterates. (7) Narrated by al-Tabari in his Tafsir 2/153-154 in a similar vein. (8) Thus the author (may Allah have mercy on him) quoted from Abu Ubaydah, and as quoted from him by al-Samin al-Halabi in ad-Durr al-Masun 2/445, and Ibn Adil al-Hanbali in al-Lubab 2/303. What is in Majaz al-Qur'an by Abu Ubaydah 1/90 is that the illiterates are those to whom prophets did not come with books.

सूरा अल-बकरा: आयत 78 216 "क्या तुम फिर समझते नहीं?" (अफ़ला ताक़िलून) यह कहा गया है कि: यह रब्बियों का अपने अनुयायियों से कहना है। और यह भी कहा गया है कि: यह अल्लाह तआला का मोमिनों (ईमान वालों) के लिए संबोधन है, यानी: क्या तुम नहीं समझते कि बनी इसराइल ईमान नहीं लाएंगे जबकि वे इन हालातों में हैं? (1)। फिर उसने उन्हें एक पाठ के साथ झिड़का जिसे पढ़ा जाता है, तो कहा: "क्या वे नहीं जानते" (अवला यलमून) - आयत। यह एक प्रश्नवाचक है जिसका अर्थ डाँटना और फटकारना है। बहुमत ने इसे 'या' के साथ "यलमून" (वे जानते हैं) पढ़ा है, जबकि इब्न मुहयसिन ने 'ता' के साथ "तलमून" (तुम जानते हो) पढ़ा है, मोमिनों के लिए संबोधन के रूप में। जो उन्होंने छुपाया वह उनका कुफ्र (अविश्वास) था, और जो उन्होंने घोषित किया वह उसका खंडन था (2)। अल्लाह तआला का कहना है: "और उनमें से कुछ अनपढ़ हैं जो किताब (शास्त्र) का ज्ञान नहीं रखते, सिवाय सुनी-सुनाई बातों के, और वे केवल अनुमान लगाते हैं।" [78] इसमें चार मुद्दे हैं: पहला: उसका कहना, "और उनमें से", यानी: यहूदियों में से (3)। और यह भी कहा गया: यहूदियों और मुनाफिकों (पाखंडियों) में से। "अनपढ़" (उम्मीयून): अर्थात: वे जो न तो लिखना जानते हैं और न ही पढ़ना। इसका एकवचन 'उम्मी' है, जो उस अनपढ़ राष्ट्र की ओर संकेत करता है जो अपनी माताओं के जन्म की मूल स्थिति (4) में है, जिसने न तो लिखना सीखा और न ही पढ़ना। इसी से उनका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कहना है: "हम एक अनपढ़ उम्मत हैं; हम न तो लिखते हैं और न ही गिनती करते हैं" (5)। - हदीस। यह भी कहा गया है कि उन्हें "उम्मी" (6) कहा गया क्योंकि उन्होंने "उम्म अल-किताब" (किताब की माँ) पर विश्वास नहीं किया, इब्न अब्बास के हवाले से (7)। अबू उबैदा ने कहा: उन्हें अनपढ़ इसलिए कहा गया क्योंकि उन पर किताब उतारी गई थी, मानो वे 'उम्म अल-किताब' से संबंधित हों (8)। यह ऐसा है जैसे उन्होंने कहा: और उनमें से अहल-ए-किताब (किताब वाले) हैं जो किताब को नहीं जानते।

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/169। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/169, और इब्न खलवैह ने विसंगत पाठों (पृष्ठ 7) में "तलमून" के पाठ का श्रेय कतादा को दिया। (3) यह अबू अल-आलिया का कथन है, जैसा कि अल-तबरी 2/153 और इब्न अबी हातिम 1/240 द्वारा उनसे उद्धृत किया गया है। (4) (ख) और (म) में: जन्म। (5) अहमद (5117), बुखारी (1913), और मुस्लिम (1080) ने इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से इसे उद्धृत किया है। (6) (ख) और (म) में: वे अनपढ़ हैं। (7) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/153-154 में इसी तरह उद्धृत किया है। (8) इसी प्रकार मुसन्निफ (रहमतुल्लाह अलैह) ने अबू उबैदा से उद्धृत किया है, और जैसा कि उनसे अस्मिन अल-हलबी ने

अल-दुर्र अल-मसून 2/445 में और इब्न आदिल अल-हनबली ने अल-लुबाब 2/303 में उद्धृत किया है। अबू उबैदा की मजाज़ अल-कुरान 1/90 में जो है वह यह है कि अनपढ़ वे हैं जिनके पास नबी किताबें लेकर नहीं आए।

سورة البقرہ: آیت 78 216 ﴿أَفَلَا تَعْقِلُونَ﴾ (کیا تم پھر عقل نہیں رکھتے؟) کہا گیا ہے: یہ علماء (احبار) کا پیروکاروں سے قول ہے، اور یہ بھی کہا گیا ہے: یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے مومنوں کے لیے خطاب ہے، یعنی: کیا تم نہیں سمجھتے کہ بنی اسرائیل ایمان نہیں لائیں گے جبکہ وہ ان حالات میں ہیں؟ (1)۔ پھر انہیں ایسی ملامت کے ساتھ جھڑکا جو تلاوت کی جاتی ہے، تو فرمایا: ﴿أَوَلَا يَعْلَمُونَ﴾ (کیا وہ نہیں جانتے) - آیت۔ یہ استفہام ہے جس کا معنی ملامت اور ڈانٹ ڈپٹ ہے۔ جمہور نے اسے 'یا' کے ساتھ "یعلمون" (وہ جانتے ہیں) پڑھا ہے، جبکہ ابن محیصن نے 'تا' کے ساتھ (تعلمون - تم جانتے ہو) پڑھا ہے، مومنوں سے خطاب کے طور پر۔ اور جو کچھ انہوں نے چھپایا وہ ان کا کفر تھا، اور جو انہوں نے ظاہر کیا وہ اس کا انکار تھا (2)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَمِنْهُمْ أُمِّيُّونَ لَا يَعْلَمُونَ الْكِتَابَ إِلَّا أَمَانِيَّ وَإِنْ هُمْ إِلَّا يَظُنُّونَ ٧٨﴾ (اور ان میں سے کچھ ان پڑھ ہیں جو کتاب کا علم نہیں رکھتے سوائے آرزوؤں کے اور وہ محض گمان کرتے ہیں)۔ اس میں چار مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَمِنْهُمْ﴾ یعنی: یہودیوں میں سے (3)۔ اور کہا گیا: یہودیوں اور منافقوں میں سے۔ "امیون" (ان پڑھ): یعنی: وہ جو نہ لکھتے ہیں اور نہ پڑھتے ہیں، ان کا واحد 'امی' ہے، جو اس امتِ امیہ کی طرف منسوب ہے جو اپنی ماؤں کی پیدائش کی اصل حالت (4) پر ہے کہ اس نے نہ لکھنا سیکھا اور نہ پڑھنا، اسی سے آپ علیہ السلام کا قول ہے: "ہم ایک ان پڑھ امت ہیں؛ ہم نہ لکھتے ہیں اور نہ حساب کرتے ہیں" (5)۔ - الحدیث۔ اور انہیں 'امیون' (6) کہا گیا ہے کیونکہ انہوں نے 'ام الکتاب' (اصل کتاب) کی تصدیق نہیں کی، یہ ابن عباس سے مروی ہے (7)۔ اور ابو عبیدہ نے کہا: انہیں امیون اس لیے کہا گیا کیونکہ ان پر کتاب اتاری گئی تھی، گویا وہ 'ام الکتاب' کی طرف منسوب کیے گئے (8)، تو گویا اللہ نے فرمایا: اور ان میں سے اہل کتاب وہ ہیں جو کتاب کو نہیں جانتے۔

(1) المحرر الوجيز 1/ 169۔ (2) المحرر الوجيز 1/ 169، اور ابن خالویہ نے شاذ قراتوں ص 7 میں "تعلمون" کی قرات کی نسبت قتادہ کی طرف زیادہ کی ہے۔ (3) یہ ابو العالیہ کا قول ہے، جیسا کہ طبری 2/ 153 اور ابن ابی حاتم 1/ 240 نے ان سے روایت کیا ہے۔ (4) (خ) اور (م) میں: ولادت (پیدائش)۔ (5) اسے احمد (5117)، بخاری (1913)، اور مسلم (1080) نے حضرت ابن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (6) (خ) اور (م) میں: وہ ان پڑھ (امیون) ہیں۔ (7) طبری نے اپنی تفسیر 2/ 153-154 میں اسی طرح روایت کیا ہے۔ (8) اسی طرح مصنف رحمہ اللہ نے ابو عبیدہ سے نقل کیا ہے، اور اسی طرح ان سے السمین الحلبی نے الدر المصون 2/ 445 میں، اور ابن عادل الحنبلی نے اللباب 2/ 303 میں نقل کیا ہے، اور ابو عبیدہ کی مجاز القرآن 1/ 90 میں جو ہے وہ یہ ہے کہ امیون وہ لوگ ہیں جن کے پاس انبیاء کتابیں لے کر نہیں آئے۔

217 Surah Al-Baqarah: Verse 78

Ikrimah and al-Dahhak said: They are the Christians of the Arabs. It is also said: They are a people from the People of the Book; their book was taken away due to sins they committed, so they became illiterate (Ummiyyun). Ali (may Allah be pleased with him) said: They are the Magians (1). I say: The first opinion is more apparent, and Allah knows best. Second: His saying, Exalted is He: {They know not the Book, but only desires (amaniyya)} - "illa" (but/except) here (2) means "lakin" (but), so it is a discontinuous exception (istithna' munqati'), like His saying, Exalted is He: {They have no knowledge thereof but the following of conjecture} [An-Nisa: 157]. Al-Nabigha said (3): I swore an oath without any duplicity ... and there is no knowledge but a good opinion of a companion. Abu Ja'far, Shaybah, and al-A'raj read: "illa amani" with a light "ya" (4); they omitted one of the two "ya"s for ease of pronunciation. Abu Hatim said: Everything of this type whose singular is doubled (shadda), you have the choice of doubling or lightening, like: athafi, aghani, amani, and the like. Al-Akhfash said (5): This is as said in the plural of miftaah (key): mafatih and mafatih, and it is the "ya" of the plural. Al-Nahhas said: Omission in weak verbs is more frequent, as the poet said: Does greetings bring back or uncover blindness... the three hearthstones and the desolate ruins (6). And "amani" is the plural of "umniyyah," which means recitation, and its origin is "umnuwiyyah," on the weight of "uf'ulah."

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/169. (2) In (Kh) and (M): "ha-huna" (here). (3) His Diwan p. 110, and it is in Al-Kitab 2/322. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/169, and in place of "al-A'raj" it says: "Nafi' in some of what was narrated from him." Ibn Jinni in al-Muhtasib 1/94 added its attribution to al-Hasan, and Ibn Khalawayh mentioned it in al-Qira'at al-Shadhdhah p. 7, and al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/240. Abu Ja'far—who is Yazid ibn al-Qa'qa'—is from the ten. Ibn al-Jazari mentioned his reading in al-Nashr 2/217. (5) Ma'ani al-Qur'an for him 1/297 similarly, and the author quoted it from him via al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/240. (6) I'rab al-Qur'an 1/240, and the verse is by Dhu al-Rummah, it is in his Diwan 2/1274 his saying: "Thalath al-Athafi": they are the stones on which the cooking pot is placed, its singular is "uthfiyyah." Al-Aghani 18/50. Abu Nasr al-Bahili, commentator on Dhu al-Rummah's Diwan, said: "al-ama" (blindness) here means ignorance. He means: do the three hearthstones return greetings or uncover ignorance?! And "balaqi'": nothing in them.

२१७ सूरा अल-बक़रह: आयत ७८

इक्रिमा और अल-दहाक ने कहा: वे अरबों के ईसाई हैं। यह भी कहा गया है: वे किताब वालों में से एक समूह हैं; उनके द्वारा किए गए पापों के कारण उनकी किताब उनसे छीन ली गई थी, इसलिए वे अनपढ़ (उम्मियून) हो गए। अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने कहा: वे मजूसी (पारसी) हैं (१)। मैं कहता हूँ: पहला मत अधिक स्पष्ट है, और अल्लाह बेहतर जानता है। दूसरा: अल्लाह तआला का कथन: {वे किताब नहीं जानते सिवाय आरज़ूओं (अमानिया) के} - यहाँ "इल्ला" (२) का अर्थ "लेकिन" है, इसलिए यह एक विच्छिन्न अपवाद (इस्तिथना मुंकति) है, जैसे अल्लाह तआला का कथन है: {उन्हें इसके बारे में कोई ज्ञान नहीं है सिवाय गुमान (कल्पना) के पीछे चलने के} [अन-निसा: १५७]। और अल-नाबिगा ने कहा (३): मैंने बिना किसी दोहरेपन के शपथ ली... और एक साथी के अच्छे विचार के अलावा कोई ज्ञान नहीं है। अबू जाफ़र, शयबा और अल-अराज ने "इल्ला अमानि" (या पर बिना तशदीद के) पढ़ा (४); उन्होंने उच्चारण की सुगमता के लिए दो "या" में से एक को हटा दिया। अबू हातिम ने कहा: इस प्रकार की हर चीज़ जिसका एकवचन तशदीद (शद्दा) वाला हो, उसमें आपको तशदीद या हल्का करने का विकल्प है, जैसे: अथाफ़ी, अग़ानी, अमानि और इसी तरह। अल-अख्फ़श ने कहा (५): यह वैसा ही है जैसे "मिफ़्ताह" (चाबी) के बहुवचन में कहा जाता है: मफ़ातीह और मफ़ातिह, और यह बहुवचन का "या" है। अल-नहस ने कहा: कमज़ोर अक्षरों में विलोपन अधिक होता है, जैसा कि कवि ने कहा है: क्या सलाम करना लौटाता है या अंधेपन को दूर करता है... तीन चूल्हे के पत्थर और वीरान खंडहर (६)। और "अमानि": "उम्निया" का बहुवचन है, जिसका अर्थ है पाठ (तिलावत), और इसका मूल "उम्नुविय्याह" है, "उफ़ऊलाह" के वजन पर।

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६९। (२) (ख) और (म) में: यहाँ (हा-हुना)। (३) उनका दीवान पृष्ठ ११०, और यह अल-किताब २/३२२ में है। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६९, और "अल-अराज" के स्थान पर लिखा है: "नाफ़ि उनसे जो कुछ रिवायत किया गया है उसमें"। इब्न जिन्नी ने अल-मुहतासिब १/९४ में इसके हसन की ओर श्रेय देने को जोड़ा है, और इब्न खालवाय ने अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ाह पृष्ठ ७ में इसका उल्लेख किया है, और अल-नहस ने एराब अल-क़ुरान १/२४० में। अबू जाफ़र - जो यज़ीद इब्न अल-क़ाक़ा हैं - दस (प्रसिद्ध पाठकों) में से हैं। इब्न अल-जज़री ने अल-नश्र २/२१७ में उनके पाठ का उल्लेख किया है। (५) उनके लिए मानी अल-क़ुरान १/२९७ इसी प्रकार, और लेखक ने इसे एराब अल-क़ुरान १/२४० में अल-नहस के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (६) एराब अल-क़ुरान १/२४०, और शेर ज़ु अल-रुम्मा का है, यह उनके दीवान २/१२७४ में है, उनका कथन: "थलाथ अल-अथाफ़ी":

वे पत्थर हैं जिन पर हंडिया रखी जाती है, इसका एकवचन "उथफ़िया" है। अल-अग़ानी १८/५०। ज़ु अल-रुम्मा के दीवान के व्याख्याकार अबू नस्र अल-बाहिली ने कहा: यहाँ "अल-अमा" (अंधापन) का अर्थ अज्ञानता है। वह कहना चाहता है: क्या तीन चूल्हे के पत्थर सलाम का जवाब देते हैं या अज्ञानता को दूर करते हैं?! और "बलाक़ी": जिनमें कुछ भी न हो।

۲۱۷ سورة البقرة : آیت ۷۸

عکرمہ اور ضحاک کہتے ہیں: وہ عرب کے نصاریٰ ہیں، اور کہا گیا ہے: وہ اہل کتاب کی ایک قوم ہے جن کی کتاب ان کے گناہوں کی وجہ سے اٹھا لی گئی تھی، تو وہ امی (ان پڑھ) ہو گئے۔ حضرت علی رضی اللہ عنہ نے فرمایا: وہ مجوسی ہیں(۱)۔ میں کہتا ہوں: پہلا قول زیادہ ظاہر (واضح) ہے، واللہ اعلم۔ دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿لَا يَعْلَمُونَ الْكِتَابَ إِلَّا أَمَانِيَّ﴾ یہاں «إلا» (۲) «لکن» کے معنی میں ہے، چنانچہ یہ استثناء منقطع ہے، جیسے اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿مَا لَهُم بِهِ مِنْ عِلْمٍ إِلَّا اتِّبَاعَ الظَّنِّ﴾ [النساء: ۱۵۷]۔ اور نابغہ نے کہا ہے(۳): میں نے پختہ قسم کھائی ہے... اور کوئی علم نہیں سوائے اپنے ساتھی کے بارے میں حسنِ ظن کے۔ ابو جعفر، شیبہ اور اعرج نے «إِلَّا أمانيَّ» یاء کی تخفیف کے ساتھ پڑھا ہے(۴)، انہوں نے سہولت کے لیے دو یاؤں میں سے ایک کو حذف کر دیا۔ ابو حاتم کہتے ہیں: اس نوع کی ہر وہ چیز جس کا واحد مشدد ہو، تو آپ کو اس میں تشدید اور تخفیف دونوں کا اختیار ہے، جیسے: اثافی، اغانی، امانی، وغیرہ۔ اخفش کہتے ہیں(۵): یہ ویسا ہی ہے جیسا کہ مفتاح کی جمع میں کہا جاتا ہے: مفاتیح اور مفاتح، اور یہ جمع کی یاء ہے۔ نحاس کہتے ہیں: حروفِ علت میں حذف کا ہونا کثرت سے ہے، جیسا کہ شاعر نے کہا ہے: کیا سلام لوٹاتا ہے یا جہالت (اندھے پن) کو دور کرتا ہے... تین چولہے کے پتھر اور ویران نشانات (۶)۔ اور «الامانی»: «أُمنیۃ» کی جمع ہے، جس کے معنی تلاوت کے ہیں، اور اس کی اصل «أُمنُویۃ» ہے، «أُفعولۃ» کے وزن پر۔

(۱) المحرر الوجیز ۱۶۹/۱۔ (۲) نسخہ (خ) اور (م) میں ہے: ہاہنا (یہاں)۔ (۳) ان کا دیوان ص ۱۱۰، اور یہ الکتاب ۳۲۲/۲ میں ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱۶۹/۱، اس میں «الأعرج» کے بجائے ہے: «نافع ان سے مروی بعض روایات میں»۔ ابن جنی نے المحتسب ۹۴/۱ میں اس کی نسبت حسن

(بصری) کی طرف بڑھائی ہے، اور ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۷ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور نحاس نے اعراب القرآن ۲۴۰/۱ میں۔ ابو جعفر ۔ جو کہ یزید بن قعقاع ہیں ۔ قراء عشرہ میں سے ہیں۔ ابن جزری نے النشر ۲۱۷/۲ میں ان کی قرات کا ذکر کیا ہے۔ (۵) معانی القرآن ان کے لیے ۲۹۷/۱ اسی طرح، اور مصنف نے اسے نحاس کے واسطے سے اعراب القرآن ۲۴۰/۱ میں ان سے نقل کیا ہے۔ (۶) اعراب القرآن ۲۴۰/۱، اور یہ شعر ذوالرمہ کا ہے، ان کے دیوان ۱۲۷۴/۲ میں ہے، ان کا قول: «ثلاث الأثافي»: یہ وہ پتھر ہیں جن پر ہنڈیا رکھی جاتی ہے، اس کی واحد «أثفية» ہے۔ الاغانی ۱۸ / ۵۰۔ ذوالرمہ کے دیوان کے شارح ابو نصر الباہلی کہتے ہیں: «العمی» یہاں جہالت کے معنی میں ہے۔ وہ چاہتا ہے کہ کیا تین چولہے کے پتھر سلام کا جواب دیتے ہیں یا جہالت کو دور کرتے ہیں؟! اور «بلاقع»: جن میں کچھ بھی نہ ہو۔

Page 218 Surah Al-Baqarah: Verse 78

The 'waw' was assimilated into the 'ya', so the 'nun' took a kasra because of the 'ya', and it became: 'umni-yah' (aspiration/recitation). From this is the saying of the Almighty: {except when he recites (taman-na), Satan throws something into his recitation (umni-yatihi)} [Al-Hajj: 52], meaning: when he recited, Satan threw something into his recitation.

Ka'b ibn Malik said: He recited the Book of Allah at the beginning of his night, and at its end, he met the pigeons of destiny (death). (1)

And another said: He recited the Book of Allah at the end of his night, the recitation of David of the Psalms in a slow, measured way. (2)

And 'amani' also means: lies. From this is the saying of Uthman, may Allah be pleased with him: "I have not wished (lied) since I became Muslim," (3) meaning: I have not lied. And the saying of some Arabs to Ibn Da'b (4) while he was speaking: "Is this something you saw, or something you 'taman-naita' (wished/fabricated)?" meaning: you fabricated it. With this meaning, Ibn Abbas and Mujahid interpreted "amani" in the verse (5).

And 'amani' also means: what a person wishes for and desires; Qatada said: "{except amani}" means that they wish from Allah for what is not theirs (6).

Footnotes: (1) The verse is in Al-Nukat wa'l-Uyun 1/150, Majma' al-Bayan 1/322, al-Muharrar al-Wajiz 1/169, and al-Fa'iq 3/392. (2) Sirat Ibn Hisham 1/538, Majma' al-Bayan 1/322; its beginning in both is: "He recited the Book of Allah by night while alone." It is with the author's wording in al-Durr al-Masun 1/447, al-Lubab 2/204, al-Lisan (m-n-y), and the verse is from a lament for Uthman, may Allah be pleased with him. (3) Narrated by Ibn Majah (311), and al-Tabarani (124) with a similar but longer version. Ibn Qutayba mentioned it in Tafsir Gharib al-Qur'an p. 55, al-Tabari in his Tafsir 2/158, Ibn Abd al-Barr in al-Tamhid 12/243, al-Zamakhshari in al-Fa'iq 1/351, Ibn Atiyya in al-Muharrar al-Wajiz 1/169, and Ibn al-Athir in al-Nihayah (m-n-y). (4) He is Isa ibn Yazid ibn Bakr al-Laythi al-Madani. Khalaf al-Ahmar said: He used to fabricate hadith. Al-Bukhari and others said: munkar al-hadith (rejected narrator). Lisan al-Mizan 4/408. The story was mentioned by al-Farra in Ma'ani al-Qur'an 1/50, and al-Zamakhshari in al-Kashshaf 1/292. Ibn al-Athir in al-Nihayah: (m-n-y). (5) Tafsir al-Tabari 2/156, and Ibn Abi Hatim 1/242. (6) Narrated by Abd al-Razzaq in al-Tafsir 1/50,

and al-Tabari 2/156-157. It was also narrated by al-Tabari and Ibn Abi Hatim 1/241 as a saying of Abu al-Aliyah.

पृष्ठ २१८ सूरा अल-बकराह: आयत ७८

'वाव' का 'या' में विलीनीकरण हो गया, इसलिए 'या' के कारण 'नून' पर कसरा आ गया, और यह बन गया: 'उमनियाह' (आकांक्षा/पाठ)। इसी से सर्वशक्तिमान का कथन है: {सिवाय इसके कि जब उसने पाठ किया (तमन्ना), शैतान ने उसके पाठ (उमनियातिही) में कुछ डाल दिया} [अल-हज्ज: ५२], अर्थात: जब उसने पाठ किया, तो शैतान ने उसके पाठ में कुछ डाल दिया।

काब इब्न मलिक ने कहा: उसने रात की शुरुआत में अल्लाह की किताब का पाठ किया, और उसके अंत में, उसे नियति के कबूतरों (मृत्यु) का सामना करना पड़ा। (१)

और एक अन्य ने कहा: उसने रात के अंत में अल्लाह की किताब का पाठ किया, दाऊद के ज़बूर के पाठ की तरह धीमी, नपी-तुली लय में। (२)

और 'अमानी' का अर्थ झूठ भी है। इसी से उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कथन है: "जब से मैंने इस्लाम स्वीकार किया है, मैंने कोई 'तमन्ना' (झूठ) नहीं की है," (३) अर्थात: मैंने झूठ नहीं बोला है। और इब्न दाब (४) से कुछ अरबों का कथन जब वे बात कर रहे थे: "क्या यह कुछ ऐसा है जिसे आपने देखा है, या कुछ ऐसा है जिसे आपने 'तमन्नैता' (तमन्ना/गढ़ा) किया है?" अर्थात: आपने इसे गढ़ा है। इसी अर्थ के साथ, इब्न अब्बास और मुजाहिद ने आयत में "अमानी" की व्याख्या की है (५)।

और 'अमानी' का अर्थ यह भी है: वह जो मनुष्य चाहता है और जिसकी इच्छा करता है; कतादा ने कहा: "{अमानी के सिवा}" का अर्थ है कि वे अल्लाह से वह चाहते हैं जो उनका नहीं है (६)।

पाद-टिप्पणियाँ: (१) यह छंद अल-नुकात वल-उयून १/१५०, मजमा अल-बयान १/३२२, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६९ और अल-फ़ाएक ३/३९२ में है। (२) सीरत इब्न हिशाम १/५३८, मजमा अल-बयान १/३२२; दोनों में इसकी शुरुआत है: "उसने रात में अकेले अल्लाह की किताब का पाठ किया।" यह अल-दुर्र अल-मसून १/४४७, अल-लुबाब २/२०४, अल-लिसान (म-न-य) में लेखक के शब्दों के साथ है, और यह छंद उस्मान (रज़ियल्लाहु अन्हु) के एक शोकगीत से है। (३) इसे इब्न माजाह (३११) और अल-तबरानी (१२४) ने इसी तरह के लेकिन लंबे संस्करण के साथ उद्धृत किया है। इब्न कुतैबा ने इसे तफ़सीर गरीब अल-कुरान पृष्ठ ५५ में, अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर २/१५८ में, इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तमहीद १२/२४३ में, अल-ज़मखशरी ने अल-फ़ाएक १/३५१ में, इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१६९ में और इब्न अल-असीर ने अल-निहाया (म-न-य) में उल्लेख किया है। (४) वह ईसा इब्न यजीद इब्न बक्र अल-लैथी अल-मदनी है। खलफ अल-अहमार ने कहा: वह हदीस गढ़ा करता था।

अल-बुखारी और अन्य ने कहा: मुनकर अल-हदीस (अस्वीकृत कथावाचक)। लिसान अल-मीजान ४/४०८। कहानी का उल्लेख अल-फ़र्रा ने मानी अल-कुरान १/५० में और अल-ज़मखशरी ने अल-कश्शाफ १/२९२ में किया है। इब्न अल-असीर ने अल-निहाया: (म-न-य) में। (५) तफ़सीर अल-तबरी २/१५६, और इब्न अबी हातिम १/२४२। (६) इसे अब्द अल-रज्जाक ने अल-तफ़सीर १/५० में और अल-तबरी २/१५६-१५७ में उद्धृत किया है। इसे अल-तबरी और इब्न अबी हातिम १/२४१ ने अबू अल-आलिया के कथन के रूप में भी उद्धृत किया है।

صفحہ ۲۱۸ سورۃ البقرہ: آیت ۷۸

'واو' کا 'یاء' میں ادغام ہو گیا، تو 'یاء' کی وجہ سے 'نون' مکسور (زیر والا) ہو گیا، پس یہ 'اُمْنِيَّةً' (آرزو/تلاوت) بن گیا۔ اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {مگر یہ کہ جب اس نے تلاوت کی (تَمَنَّى) تو شیطان نے اس کی تلاوت (أُمْنِيَّتِهِ) میں (کچھ) ڈال دیا} [الحج: ۵۲]، یعنی: جب اس نے تلاوت کی، تو شیطان نے اس کی تلاوت میں (کچھ) ڈال دیا۔

اور کعب بن مالک نے کہا: اس نے اپنی رات کے آغاز میں اللہ کی کتاب کی تلاوت کی، اور اس کے آخر میں موت کے فرشتوں (قضا و قدر) سے جا ملا۔ (۱)

اور دوسرے نے کہا: اس نے رات کے آخر میں اللہ کی کتاب کی تلاوت کی، ایسی تلاوت جیسے داؤد علیہ السلام زبور کی ٹھہر ٹھہر کر تلاوت کرتے تھے۔ (۲)

اور 'أماني' کے معنی 'جھوٹ' بھی ہیں۔ اسی سے حضرت عثمان رضی اللہ عنہ کا قول ہے: "جب سے میں مسلمان ہوا ہوں، میں نے کوئی 'تمنا' (جھوٹ) نہیں کی،" (۳) یعنی: میں نے کبھی جھوٹ نہیں بولا ہے۔ اور بعض عربوں کا ابن دأب (۴) سے قول جب وہ باتیں کر رہے تھے: "کیا یہ کوئی ایسی چیز ہے جو دیکھی گئی ہے، یا ایسی چیز ہے جسے تم نے 'تمنا' (گھڑ لیا) کیا ہے؟" یعنی: تم نے اسے خود سے گھڑ لیا ہے۔ اسی معنی کے ساتھ ابن عباس اور مجاہد نے آیت میں "أماني" کی تفسیر کی ہے (۵)۔

اور 'أماني' کے معنی یہ بھی ہیں: وہ چیز جس کی انسان تمنا اور خواہش کرے۔ قتادہ نے کہا: "{سوائے تمناؤں کے}" کا مطلب یہ ہے کہ وہ اللہ سے ان چیزوں کی تمنا کرتے ہیں جو ان کے لیے نہیں ہیں (۶)۔

حواشی: (۱) یہ شعر النکت والعیون ۱/۱۵۰، مجمع البیان ۱/۳۲۲، المحرر الوجیز ۱/۱۶۹، اور الفائق ۳/۳۹۲ میں ہے۔ (۲) سیرت ابن ہشام ۱/۵۳۸، مجمع البیان ۱/۳۲۲؛ ان دونوں میں اس کا آغاز یوں ہے: "اس نے رات کی تنہائی میں اللہ کی کتاب کی تلاوت کی۔" یہ الدر المصون ۱/۴۴۷، اللباب ۲/۲۰۴، اللسان (منی) میں مصنف کے الفاظ کے ساتھ ہے، اور یہ شعر حضرت عثمان رضی اللہ عنہ کے مرثیے میں سے ہے۔ (۳) اسے ابن ماجہ (۳۱۱) اور طبرانی (۱۲۴) نے اس سے ملتی جلتی طویل روایت کے साथ نقل کیا ہے۔ ابن قتیبہ نے تفسیر غریب القرآن ص ۵۵ میں، طبری نے اپنی تفسیر ۲/۱۵۸ میں، ابن عبد البر نے التمہید ۱۲/۲۴۳ میں، زمخشری نے الفائق ۱/۳۵۱ میں، ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/۱۶۹ میں، اور ابن الاثیر نے النہایہ (منی) میں اسے بیان کیا ہے۔ (۴) یہ عیسیٰ بن یزید بن بکر اللیثی المدنی ہیں، خلف الاحمر نے کہا: وہ حدیثیں گھڑا کرتے تھے، اور بخاری وغیرہ نے انہیں منکر الحدیث کہا ہے۔ لسان المیزان ۴/۴۰۸۔ یہ قصہ الفراء نے معانی القرآن ۱/۵۵ میں اور زمخشری نے الکشاف ۱/۲۹۲ में ذکر کیا ہے۔ اور ابن الاثیر نے النہایہ (منی) میں۔ (۵) تفسیر طبری ۲/۱۵۶، اور ابن ابی حاتم ۱/۲۴۲۔ (۶) اسے عبد الرزاق نے التفسیر ۱/۵۰ میں، اور طبری نے ۲/۱۵۶-۱۵۷ میں روایت کیا ہے۔ نیز اسے طبری اور ابن ابی حاتم نے ۱/۲۴۱ میں ابوالعالیہ کے قول کے طور پر نقل کیا ہے۔

219 Surah Al-Baqarah: Verse 78

It is said: "Al-Amani" means estimation; it is said: "muniya lahu," meaning "it was ordained for him," as stated by Al-Jawhari(1), and narrated by Ibn Bahr, who cited the poet's saying: "Do not feel secure, even if you spend the evening in a sanctuary, until you meet what the Ordainer ordains for you."(2) Meaning: what the Ordainer ordains for you. Thirdly: The Almighty's saying: {and they follow nothing but conjecture}. "In" (إِنْ) here is in the sense of the negative "Ma" (ما), as the Almighty said: {The disbelievers are in nothing but delusion} [Al-Mulk: 20]. And "they conjecture" (yadhunnoon): they lie and guess(3); because(4) they have no knowledge of the correctness of what they recite, but they are merely imitators of their news in what they read. Abu Bakr Al-Anbari said: Ahmed bin Yahya Al-Nahwi narrated to us that the Arabs use "dhann" (conjecture/thought) for knowledge, doubt, and lies. He said: If the proofs of knowledge are established and are more than the proofs of doubt, then "dhann" is certainty (yaqin). If the proofs of certainty and doubt are equal, then "dhann" is doubt. If the proofs of doubt outweigh the proofs of certainty, then "dhann" is a lie. Allah, the Mighty and Sublime, said: {and they follow nothing but conjecture}, meaning: nothing but lies. Fourthly: Our scholars, may Allah have mercy on them, said: Allah Almighty described their rabbis as changing and altering [the scriptures], for He said, and His word is the Truth: {So woe to those who write the Scripture with their own hands...} [the verse]. That was because when the matter became archaic among them, and the conduct of their scholars worsened, and they turned to the world with greed and covetousness,

(1) As-Sihah (M-N-Y). (2) This verse appeared within several verses by Suwayd bin 'Amir in a Hadith reported by Al-Dawlabi in 'Al-Kuna wal-Asma' 1/89, and Al-Tabarani in 'Al-Kabir' 19/1049 from the Hadith of Abu Muslim (or Muslim) Al-Khuza'i that he was with the Messenger of Allah ﷺ and a reciter recited to him the words of Suwayd bin 'Amir Al-Mustalaqi... and its chain of narration is weak. Ibn Manzur cited the verse in 'Al-Lisan', and Al-Jawhari cited its second half in 'As-Sihah' (M-N-Y). It appeared in 'Tahdhib al-Lugha' 15/530, and 'Al-Nukat wal-'Uyun' 1/150 with the wording: And do not say of anything, 'I will do it,' until you meet what the Ordainer ordains for you. In 'Al-Nukat wal-'Uyun': "tabayyana" (it becomes clear) instead of "talaqi" (you meet). Ibn Manzur attributed it in 'Al-Lisan' to Abu Qilaba Al-Hudhali. See 'Al-Fa'iq' 3/390. (3) In (Za): and they envy, and in (Meem): and they speak. (4) In (Zai) and (Meem): because they.

२१९ सूरह अल-बक़रह: आयत ७८

और कहा गया: "अल-अमानी" का अर्थ है अनुमान; कहा जाता है: "मुनिया लहू", अर्थात: "उसके लिए निर्धारित किया गया," जैसा कि अल-जौहरी(१) ने कहा है, और इब्न बहर द्वारा वर्णित है, जिन्होंने कवि के कथन को उद्धृत किया: "सुरक्षित महसूस न करें, भले ही आप शाम किसी पवित्र स्थान में बिताएं, जब तक कि आप उससे न मिलें जो विधाता ने आपके लिए निर्धारित किया है।"(२) अर्थात: विधाता आपके लिए जो निर्धारित करता है। तीसरी बात: सर्वशक्तिमान का कथन: {और वे केवल अनुमान ही लगाते हैं}। यहाँ "इन" (إِنْ) नकारात्मक "मा" (ما) के अर्थ में है, जैसा कि सर्वशक्तिमान ने कहा है: {अविश्वासी केवल धोखे में हैं} [अल-मुल्क: २०]। और "यजुन्नून" (वे अनुमान लगाते हैं): वे झूठ बोलते हैं और अटकलें लगाते हैं(३); क्योंकि(४) उन्हें उनके द्वारा पढ़े जाने वाले की सत्यता का कोई ज्ञान नहीं है, बल्कि वे जो कुछ भी पढ़ते हैं उसमें अपनी खबरों के केवल अनुकरणकर्ता हैं। अबू बक्र अल-अंसारी ने कहा: अहमद बिन याह्या अल-नहवी ने हमें बताया कि अरब "ज़न्न" (अनुमान/सोच) का उपयोग ज्ञान, संदेह और झूठ के लिए करते हैं। उन्होंने कहा: यदि ज्ञान के प्रमाण स्थापित हों और संदेह के प्रमाणों से अधिक हों, तो "ज़न्न" निश्चितता (यक़ीन) है। यदि निश्चितता और संदेह के प्रमाण बराबर हों, तो "ज़न्न" संदेह है। यदि संदेह के प्रमाण निश्चितता के प्रमाणों से अधिक हों, तो "ज़न्न" झूठ है। अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {और वे केवल अनुमान ही लगाते हैं}, अर्थात: केवल झूठ ही बोलते हैं। चौथी बात: हमारे विद्वानों ने, अल्लाह उन पर दया करे, कहा: अल्लाह सर्वशक्तिमान ने उनके धर्मगुरुओं का वर्णन किया है कि वे बदलाव और परिवर्तन करते हैं, क्योंकि उन्होंने कहा, और उनका वचन सत्य है: {तो तबाही है उन लोगों के लिए जो अपने हाथों से किताब लिखते हैं...} [आयत]। ऐसा इसलिए था क्योंकि जब उनके बीच मामला पुराना हो गया, और उनके विद्वानों का आचरण खराब हो गया, और वे लालच और लोभ के साथ दुनिया की ओर मुड़ गए,

(१) अस-सिहाह (म-न-य)। (२) यह शेर सुवैद बिन आमिर के कई शेरों में से एक है, जिसे अल-दौलाबी ने 'अल-कुना वल-अस्मा' १/८९ में और अल-तबरानी ने 'अल-कबीर' १९/१०४९ में अबू मुस्लिम (या मुस्लिम) अल-खुज़ाई की हदीस से वर्णित किया है कि वह अल्लाह के रसूल ﷺ के साथ थे और एक सुनाने वाले ने उन्हें सुवैद बिन आमिर अल-मुस्तलक़ी के शब्द सुनाए... और इसकी रिवायत की चेन कमज़ोर है। इब्न मंज़ूर ने 'अल-लिसान' में इस शेर का उल्लेख किया है, और अल-जौहरी ने 'अस-सिहाह' (म-न-य) में इसके दूसरे हिस्से का उल्लेख किया है। यह 'तहज़ीब अल-लुग़ा' १५/५३० और 'अल-नुकत वल-उयून' १/१५० में इन शब्दों के साथ आया है: और किसी भी चीज़ के बारे में यह न

कहो कि 'मैं इसे करूँगा,' जब तक कि तुम उससे न मिलो जो विधाता ने तुम्हारे लिए निर्धारित किया है। 'अल-नुकत वल-उयून' में: "तलाक़ी" के बजाय "तबैयना" (स्पष्ट होना)। इब्न मंज़ूर ने 'अल-लिसान' में इसे अबू क़िलाबा अल-हुज़ली से जोड़ा है। देखें 'अल-फ़ाएक' ३/३९०। (३) (ज़) में: वे ईर्ष्या करते हैं, और (म) में: वे बात करते हैं। (४) (ज़ै) और (म) में: क्योंकि वे।

۲۱۹ سورہ البقرہ: آیت ۷۸

اور کہا گیا: "الامانی" کا مطلب ہے تقدیر (اندازہ)؛ کہا جاتا ہے: "مُنِيَ له"، یعنی: "اس کے لیے مقدر کیا گیا"، یہ جوہری(۱) نے کہا ہے، اور ابن بحر نے اسے نقل کیا ہے، اور شاعر کا یہ قول پڑھا ہے: "تم ہرگز بے خوف نہ ہونا اگرچہ تم نے حرم میں شام کی ہو، یہاں تک کہ تمہاری ملاقات اس سے ہو جائے جو مقدر کرنے والے نے تمہارے لیے مقدر کیا ہے۔"(۲) یعنی: مقدر کرنے والا تمہارے لیے مقدر کرتا ہے۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِنْ هُمْ إِلَّا يَظُنُّونَ﴾ یہاں "اِنْ" نفی کے معنی میں "ما" ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿إِنِ الْكَافِرُونَ إِلَّا فِي غُرُورٍ﴾ [الملک : ۲۰]۔ اور "يَظُنُّونَ" کا مطلب ہے: وہ جھوٹ بولتے ہیں اور اٹکل پچو باتیں کرتے ہیں(۳)؛ اس لیے کہ(۴) انہیں اس چیز کی صحت کا کوئی علم نہیں جو وہ پڑھتے ہیں، بلکہ وہ اپنی خبروں میں صرف مقلد ہیں جو وہ پڑھتے ہیں۔ ابو بکر الانباری نے کہا: ہمیں احمد بن یحییٰ النحوی نے بتایا کہ عرب "ظن" کو علم، شک اور جھوٹ کے لیے استعمال کرتے ہیں۔ انہوں نے کہا: جب علم کے دلائل قائم ہو جائیں اور وہ شک کے دلائل سے زیادہ ہوں تو "ظن" یقین ہے۔ جب یقین کے دلائل اور شک کے دلائل برابر ہو جائیں تو "ظن" شک ہے۔ اور جب شک کے دلائل یقین کے دلائل پر غالب آ جائیں تو "ظن" جھوٹ ہے۔ اللہ عزوجل نے فرمایا: ﴿وَإِنْ هُمْ إِلَّا يَظُنُّونَ﴾ یعنی: وہ صرف جھوٹ بولتے ہیں۔ چوتھی بات: ہمارے علماء رحمہم اللہ نے کہا: اللہ تعالیٰ نے ان کے علماء (احبار) کی صفت بیان کی کہ وہ تبدیلی اور تحریف کرتے ہیں، پس اس نے فرمایا اور اس کا قول حق ہے: ﴿فَوَيْلٌ لِلَّذِينَ يَكْتُبُونَ الْكِتَابَ بِأَيْدِيهِمْ﴾ آیت۔ اور یہ اس لیے تھا کہ جب ان میں (دین کا) معاملہ پرانا ہو گیا، اور ان کے علماء کی حالت بگڑ گئی، اور وہ حرص و طمع کے ساتھ دنیا کی طرف مائل ہو گئے،

(١) الصحاح (منى)۔ (٢) یہ بیت سوید بن عامر کے کئی اشعار کے ضمن میں اس حدیث میں آیا ہے جسے الدولابی نے 'الکنی والاسماء' ٨٩/١ میں اور الطبرانی نے 'الکبیر' ١٠٤٩/١٩ میں ابو مسلم (یا مسلم) الخزاعی کی حدیث سے روایت کیا ہے کہ وہ رسول اللہ ﷺ کے ساتھ تھے اور ایک منشد انہیں سوید بن عامر المصطلقی کا قول سنا رہا تھا... اور اس کی سند ضعیف ہے۔ ابن منظور نے 'اللسان' میں اس بیت کا ذکر کیا ہے، اور جوہری نے 'الصحاح' (منی) میں اس کا عجز (دوسرا مصرعہ) نقل کیا ہے۔ اور 'تہذیب اللغۃ' ٥٣٠/١٥ اور 'النکت والعیون' ١٥٠/١ میں ان الفاظ کے ساتھ آیا ہے: ولا تقولنَّ لشيء سوف أفعله حتى تلاقي ما يَمْنِي لك الماني (اور کسی چیز کے بارے میں یہ نہ کہو کہ میں اسے عنقریب کروں گا، یہاں تک کہ تمہارا سامنا اس سے ہو جائے جو مقدر کرنے والے نے تمہارے لیے مقدر کیا ہے)۔ اور 'النکت والعیون' میں 'تلاقی' کی جگہ 'تَبَيَّنَ' (واضح ہو جائے) ہے۔ ابن منظور نے 'اللسان' میں اسے ابو قلابہ الہذلی کی طرف منسوب کیا ہے۔ دیکھیے 'الفائق' ٣٩٠/٣۔ (٣) (ظ) میں ہے: 'ویحسدون' (وہ حسد کرتے ہیں)، اور (م) میں ہے: 'ویحدثون' (وہ بات کرتے ہیں)۔ (٤) (ز) اور (م) میں ہے: 'لانہم' (اس لیے کہ وہ)۔

220 Surah Al-Baqarah: Verse 79

They sought things to turn people's faces towards them, so they invented things in their law and altered it, and they attributed that to the Torah. They said to their foolish ones: "This is from God," so that they would accept it from them, thereby solidifying their leadership and attaining the transient debris and filth of this world. Among what they invented was their saying: "There is no blame upon us concerning the unlearned" [Al-Imran: 75], and they are the Arabs; meaning: whatever we take of their wealth is lawful for us. Another thing they invented was saying: "No sin will harm us, for we are His beloved ones and His children," Exalted is God above that! In the Torah, it was: "O my rabbis, and O children of my messengers," but they changed it and wrote: "O my beloved ones, and O my children." So God revealed their denial: "And the Jews and the Christians say, 'We are the children of Allah and His beloved.' Say, 'Then why does He punish you for your sins?'" [Al-Ma'idah: 18]. They then said: "God will not punish us, and if He does, it will only be for forty days, the duration of the days of the calf." So God Almighty revealed: "And they say, 'Never will the Fire touch us, except for a few numbered days.' Say, 'Have you taken a covenant with Allah?'" Ibn Miqsam (1) said: meaning monotheism (Tawhid); as evidenced by the Almighty's saying: "except for those who have taken a covenant with the Most Merciful" [Maryam: 87] meaning "There is no god but Allah" "so Allah will never break His covenant. Or do you say about Allah that which you do not know?" Then He belied them, saying: "Yes, whoever earns evil and his sin has encompassed him - those are the companions of the Fire; they will abide therein eternally. And those who believe and do righteous deeds - those are the companions of Paradise; they will abide therein eternally." [Al-Baqarah: 80, 81]. Thus, the Almighty clarified that eternity in Hellfire or Paradise is according to disbelief and faith, not according to what they said.

His saying, the Almighty: "So woe to those who write the 'scripture' with their own hands, then say, 'This is from Allah,' in order to exchange it for a small price. Woe to them for what their hands have written and woe to them for what they earn." [Al-Baqarah: 79]

In it are five issues: The first: His saying, the Almighty: "So woe" - there is a difference of opinion about what "Al-Wayl" (woe) is. Uthman bin Affan narrated from the Prophet ﷺ that it is a mountain of fire (2), and Abu Sa'id al-Khudri narrated that Al-Wayl is a valley in Hell between...

(1) Al-Mughira bin Miqsam al-Dabbi, their freedman, from Kufa, the blind jurist, Abu Hisham, died in the year (133 AH), and other things were said. The authors of the Six Books narrated from him. Siyar A'lam al-Nubala 6/10. (2) Narrated by al-Tabari 2/164 and 167 and mentioned by Ibn Kathir in the interpretation of verse 79, and he said: Very strange. Ibn Rajab said in 'Al-Takhwif min al-Nar' p. 82: There is doubt in its chain of narration.

220 सूरा अल-बक़रह: आयत 79

उन्होंने ऐसी चीज़ों की तलाश की जो लोगों का ध्यान उनकी ओर मोड़ दें, इसलिए उन्होंने अपनी शरीयत (क़ानून) में नई चीज़ें ईजाद कीं और उसे बदल दिया, और इसे तौरात से जोड़ दिया। उन्होंने अपने नासमझ लोगों से कहा: "यह अल्लाह की ओर से है," ताकि वे इसे उनसे स्वीकार कर लें, जिससे उनका नेतृत्व मज़बूत हो और वे इस दुनिया की फानी चीज़ें और गंदगी हासिल कर सकें। उन्होंने जो नई चीज़ें ईजाद की थीं उनमें से एक उनका यह कहना था: "अनपढ़ों के मामले में हम पर कोई दोष नहीं है" [आल-इमरान: 75], और वे अरब थे, जिसका अर्थ है: हम उनके धन में से जो कुछ भी लेते हैं वह हमारे लिए जायज़ है। उनकी ईजाद की हुई चीज़ों में से एक यह भी कहना था: "कोई पाप हमें नुकसान नहीं पहुँचाएगा, क्योंकि हम उसके प्रिय और उसकी संतान हैं," अल्लाह इससे बहुत ऊपर है! तौरात में यह था: "हे मेरे रब्बियों, और हे मेरे रसूलों की संतान," लेकिन उन्होंने इसे बदल दिया और लिखा: "हे मेरे प्रियों, और हे मेरी संतान।" तब अल्लाह ने उनके झूठ को झुठलाते हुए नाज़िल किया: "और यहूदी और ईसाई कहते हैं, 'हम अल्लाह के बेटे और उसके प्रिय हैं।' कहो, 'फिर वह तुम्हें तुम्हारे पापों के लिए दंड क्यों देता है?'" [अल-माइदह: 18]। फिर उन्होंने कहा: "अल्लाह हमें दंड नहीं देगा, और यदि वह देता भी है, तो केवल चालीस दिनों के लिए, जो बछड़े के दिनों की अवधि है।" तो अल्लाह तआला ने नाज़िल किया: "और वे कहते हैं, 'आग हमें कभी नहीं छुएगी, सिवाय कुछ गिने-चुने दिनों के।' कहो, 'क्या तुमने अल्लाह से कोई वादा लिया है?'" इब्न मिक़्सम (1) ने कहा: यानी तौहीद (एकेश्वरवाद); जैसा कि अल्लाह तआला के इस कथन से प्रमाणित है: "सिवाय उसके जिसने रहमान (अत्यंत दयावान) से कोई वादा लिया हो" [मरयम: 87] यानी "अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं" "अल्लाह अपने वादे के ख़िलाफ़ कभी नहीं करेगा। या तुम अल्लाह के बारे में वह कहते हो जो तुम नहीं जानते?" फिर उसने उन्हें झुठलाते हुए कहा: "हाँ, जिसने बुराई कमाई और उसके पाप ने उसे घेर लिया - वही आग वाले (जहन्नमी) हैं; वे उसमें सदैव रहेंगे। और जो लोग ईमान लाए और उन्होंने नेक काम किए - वही जन्नत वाले हैं; वे उसमें सदैव रहेंगे।" [अल-बक़रह: 80, 81]। अतः अल्लाह तआला ने स्पष्ट कर दिया कि जहन्नम या जन्नत में हमेशा रहना कुफ़्र और ईमान के अनुसार है, न कि उनके कहने के अनुसार।

अल्लाह तआला का कथन: "तो तबाही है उन लोगों के लिए जो अपने हाथों से किताब लिखते हैं, फिर कहते हैं, 'यह अल्लाह की ओर से है,' ताकि उसके बदले थोड़ा मूल्य प्राप्त कर सकें। तो उनके लिए

तबाही है उस चीज़ के कारण जो उनके हाथों ने लिखी और उनके लिए तबाही है उस कमाई के कारण जो वे करते हैं।" [अल-बक़रह: 79]

इसमें पाँच मसले (मुद्दे) हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: "तो तबाही (वैल)" - इसमें मतभेद है कि 'वैल' क्या है। उस्मान बिन अफ़्फ़ान ने नबी ﷺ से रिवायत की है कि यह आग का एक पहाड़ है (2), और अबू सईद अल-ख़ुदरी ने रिवायत की है कि 'वैल' जहन्नम में एक घाटी है...

(1) अल-मुग़ीरा बिन मिक़्सम अद-दब्बी, कूफ़ा के अंधे फ़क़ीह, अबू हिशाम, मृत्यु वर्ष (133 हिजरी), और कुछ अन्य भी कहा गया है। 'सिहाह सित्ता' (छह किताबों) के लेखकों ने उनसे रिवायत की है। सियार आलम अन-नुबला 6/10। (2) इसे अत-तबरी ने 2/164 और 167 में उद्धृत किया है और इब्न कसीर ने आयत 79 की व्याख्या में इसका उल्लेख किया है, और कहा: यह बहुत ही अजीब है। इब्न रजब ने 'अत-तख़वीफ़ मिन अन-नार' पृ. 82 में कहा: इसके इसनाद (रिवायत की श्रृंखला) में गुंजाइश है।

220 سورہ البقرہ : آیت ۷۹

انہوں نے ایسی چیزیں طلب کیں جو لوگوں کی توجہ ان کی طرف پھیر دیں، پس انہوں نے اپنی شریعت میں نئی باتیں نکالیں اور اسے بدل دیا، اور اسے تورات کے ساتھ لاحق کر دیا، اور اپنے بیوقوفوں سے کہا: یہ اللہ کی طرف سے ہے، تاکہ وہ اسے ان سے قبول کر لیں، پس ان کی ریاست پختہ ہو جائے، اور وہ اس کے ذریعے دنیا کا کوڑا کرکٹ اور اس کی گندگی حاصل کر لیں۔ ان کی نئی باتوں میں سے ایک یہ کہنا تھا: ﴿لَيْسَ عَلَيْنَا فِي الْأُمِّيِّينَ سَبِيلٌ﴾ [آل عمران : ۷۵]، اور وہ عرب ہیں، یعنی: جو کچھ ہم ان کے مالوں میں سے لیں وہ ہمارے لیے حلال ہے، اور ان کی نئی باتوں میں سے ایک یہ کہنا تھا: ہمیں کوئی گناہ نقصان نہیں پہنچائے گا، کیونکہ ہم اس کے پیارے اور اس کے بیٹے ہیں، اللہ اس سے بہت بلند ہے! حالانکہ تورات میں تھا: "اے میرے احبار (علماء)، اور اے میرے رسولوں کے بیٹو"، تو انہوں نے اسے بدل دیا اور لکھا: "اے میرے پیارو، اور اے میرے بیٹو"، تو اللہ نے ان کی تکذیب نازل فرمائی: ﴿وَقَالَتِ الْيَهُودُ وَالنَّصَارَى نَحْنُ أَبْنَاءُ اللَّهِ وَأَحِبَّاؤُهُ قُلْ فَلِمَ يُعَذِّبُكُم بِذُنُوبِكُمْ﴾ [المائدہ: ۱۸]۔ تو انہوں نے کہا: اللہ ہمیں ہرگز عذاب نہیں دے گا، اور اگر عذاب دیا بھی تو چالیس دن، بچھڑے کی عبادت کے دنوں کی مقدار کے برابر، تو اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: ﴿وَقَالُوا لَن تَمَسَّنَا النَّارُ إِلَّا أَيَّامًا مَّعْدُودَةً قُلْ أَتَّخَذْتُمْ عِندَ اللَّهِ عَهْدًا﴾۔ ابن مقسم(۱) نے کہا: یعنی توحید؛ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی دلیل سے: ﴿إِلَّا مَنِ اتَّخَذَ عِندَ الرَّحْمَنِ عَهْدًا﴾ [مریم : ۸۷] یعنی "لا الہ الا اللہ" ﴿فَلَن يُخْلِفَ اللَّهُ عَهْدَهُ أَمْ تَقُولُونَ عَلَى اللَّهِ مَا لَا تَعْلَمُونَ﴾۔ پھر ان کی تکذیب کی اور فرمایا: ﴿بَلَى مَن كَسَبَ سَيِّئَةً وَأَحَطَتْ بِهِ خَطِيئَتُهُ فَأُولَئِكَ أَصْحَابُ النَّارِ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿۸۱﴾ وَالَّذِينَ ءَامَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ أُولَئِكَ أَصْحَابُ الْجَنَّةِ هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ﴾ [البقرۃ : ۸۰ ، ۸۱]۔ پس اللہ تعالیٰ نے

واضح فرما دیا کہ آگ اور جنت میں ہمیشگی کفر اور ایمان کے مطابق ہے، نہ کہ اس کے مطابق جو انہوں نے کہا۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَوَيْلٌ لِّلَّذِينَ يَكْتُبُونَ الْكِتَابَ بِأَيْدِيهِمْ ثُمَّ يَقُولُونَ هَذَا مِنْ عِندِ اللَّهِ لِيَشْتَرُوا بِهِ ثَمَنًا قَلِيلًا فَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا كَتَبَتْ أَيْدِيهِمْ وَوَيْلٌ لَّهُم مِّمَّا يَكْسِبُونَ ﴿٧٩﴾﴾

اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَوَيْلٌ﴾ ویل کے بارے میں اختلاف ہے کہ وہ کیا ہے، پس حضرت عثمان بن عفان رضی اللہ عنہ نے نبی کریم ﷺ سے روایت کیا کہ وہ آگ کا ایک پہاڑ ہے (۲)، اور ابو سعید خدری رضی اللہ عنہ نے روایت کیا کہ ویل جہنم میں ایک وادی ہے جو...

(۱) المغیرہ بن مقسم الضبی، ان کے آزاد کردہ غلام، کوفی، نابینا فقیہ، ابو ہشام، وفات (۱۳۳ھ)، اور اس کے علاوہ بھی کہا گیا ہے، ان سے کتب ستہ والوں نے روایت کی ہے۔ سیر اعلام النبلاء ۶/۱۰۔ (۲) اسے طبری نے ۲/ ۱۶۴ اور ۱۶۷ میں روایت کیا اور ابن کثیر نے آیت ۷۹ کی تفسیر میں اس کا ذکر کیا اور کہا: بہت غریب ہے، اور ابن رجب نے التخویف من النار ص ۸۲ میں کہا: اس کی اسناد میں کلام ہے۔

221 Surah Al-Baqarah: Verse 79

...two mountains into which the fallen drops for forty autumns (1). Sufyan and Ata bin Yasar narrated: "Al-Wayl" in this verse is a valley flowing in the courtyard of Hell from the pus of the people of the Fire (2). It was said: A cistern in Hell (3). Al-Zahrawi narrated from others: It is one of the gates of Hell. On the authority of Ibn Abbas (4): "Al-Wayl" is the hardship of punishment. Al-Khalil said: "Al-Wayl" is the intensity of evil. Al-Asma'i said: "Al-Wayl" is grieving, and "Al-Wayh" (5) is mercy. Sibawayh (6) said: "Wayl" is for one who has fallen into destruction, and "Wayh" is a rebuke for one who is on the verge of destruction. Ibn Arafa said: "Al-Wayl" is sadness; it is said: "The man lamented (Tawayyala)" if he called for "Wayl", and this is only said during sadness and dislike. From this is His saying: {So woe to those who write the Scripture with their own hands}. It was said: Its origin is destruction, and everyone who falls into destruction calls for woe, from this is the Almighty's saying: {Woe to us! What is this book...} [Al-Kahf: 49]. It is "Al-Wayl" and "Al-Waylah", both meaning destruction, and the plural is "Al-Waylat". He said:

Woe to him if he spends the evening without Umm Hashim (7)

And he also said:

She said to you: 'Woe to you, for you are making me walk' (8)

(1) Reported by Ahmad (11712), At-Tirmidhi (2576), Abu Ya'la (1383), At-Tabari in his Tafsir 2/164, Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/243, Ibn Hibban (7467), Al-Hakim 2/507, Al-Bayhaqi in "Al-Ba'th wa an-Nushur" (512), and Al-Baghawi in "Sharh al-Sunnah" (4409) and in "Al-Tafsir" 1/89 through Darraj from Abu Al-Haytham from him in a marfu' form. Its chain of narration is weak due to the weakness of Darraj. At-Tirmidhi said: A "gharib" hadith. (2) Sufyan's statement was cited by Ibn Atiyyah in "Al-Muharrar al-Wajiz" 1/170, and Ar-Razi in his Tafsir 1/140. Ata's statement was reported by Ibn Al-Mubarak in "Al-Zuhd" (332), At-Tabari in his Tafsir 2/168, Ibn Abi Hatim 1/244, and Al-Bayhaqi in "Al-Ba'th wa an-Nushur" (516) with the wording: "Al-Wayl is a valley in Hell; if mountains were moved through it, they would melt from its heat." (3) Reported by At-Tabari in his Tafsir 2/164 from the words of Abu Ayyad. "As-Sahrij" (cistern) is singular for "saharij", which are like basins where water collects. Lisan al-Arab (s-h-r-j). (4) Reported by At-Tabari in his Tafsir 2/163, and mentioned by Ibn Atiyyah 1/170. (5) In the copies: "and al-wayl", and what is confirmed is from (m), which is consistent with what is in "Al-Sihah" and "Mujmal al-Lugha" p. 912. (6) Al-Kitab 1/331, and mentioned by Ibn Manzur in Lisan al-Arab (wayh) (wayl). (7) Its speaker is Imru' al-

Qays, and it is in his Diwan p. 68, and its second half is: "near, and not the Basbasah daughter of Yashkur". (8) His Diwan p. 11, and its first half is: "And the day I entered the litter, the litter of 'Unayzah".

221 सूरह अल-बकराह: आयत 79

...दो पहाड़ जिनमें गिरने वाला चालीस पतझड़ तक गिरता रहता है (1)। सुफियान और अता बिन यसार ने वर्णन किया है: इस आयत में "अल-वैल" जहन्नम के आंगन में आग के लोगों के पीप से बहने वाली एक घाटी है (2)। कहा गया है: जहन्नम में एक हौज (3)। अल-ज़हरावी ने दूसरों से वर्णन किया है: यह जहन्नम के द्वारों में से एक द्वार है। इब्न अब्बास (4) से रिवायत है: "अल-वैल" अज़ाब की कठिनाई है। अल-खलील ने कहा: "अल-वैल" बुराई की तीव्रता है। अल-असमई ने कहा: "अल-वैल" शोक जताना है, और "अल-वैह" (5) दया है। सिबावेह (6) ने कहा: "वैल" उसके लिए है जो विनाश में गिर गया हो, और "वैह" उसे झिड़कना है जो विनाश के कगार पर हो। इब्न अराफा ने कहा: "अल-वैल" दुख है; कहा जाता है: "आदमी ने विलाप किया (तवय्यला)" यदि उसने "वैल" के लिए पुकारा, और यह केवल दुख और नापसंदगी के समय कहा जाता है। इसी से उनका कथन है: {तो उन लोगों के लिए तबाही (वैल) है जो अपने हाथों से किताब लिखते हैं}। कहा गया है: इसका मूल विनाश (हलाकत) है, और जो कोई विनाश में गिरता है वह वैल के लिए पुकारता है, इसी से सर्वशक्तिमान का कथन है: {हाय हमारी तबाही (वैल)! यह कैसी किताब है...} [अल-कहफ़: 49], और यह "अल-वैल" और "अल-वैलह" है, और ये दोनों विनाश हैं, और इसका बहुवचन "अल-वैलात" है। उन्होंने कहा:

उसके लिए वैल (विनाश) हो यदि शाम हो जाए और उम्म हाशिम न हो (7)

और उन्होंने यह भी कहा:

तो उसने तुझसे कहा: 'तेरे लिए वैल (विनाश) हो, तू मुझे पैदल चला रहा है' (8)

(1) इसे अहमद (11712), तिर्मिज़ी (2576), अबू याला (1383), तबरी ने अपनी तफसीर 2/164 में, इब्न अबी हातिम ने अपनी तफसीर 1/243 में, इब्न हिब्बान (7467), हाकिम 507/2, बैहक़ी ने 'अल-बास व अन-नुशूर' (512) में, और बग़वी ने 'शरह अल-सुन्नाह' (4409) और 'अल-तफसीर' 1/89 में दर्राज के माध्यम से अबू अल-हैथम से मरफू रूप में उद्धृत किया है। इसकी इसनाद (शृंखला) दर्राज की कमजोरी के कारण कमजोर है। तिर्मिज़ी ने कहा: यह हदीस गरीब है। (2) सुफियान के कथन को इब्न अतिया ने 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/170 में और राज़ी ने अपनी तफसीर 1/140 में उद्धृत किया है। अता के कथन को इब्न अल-मुबारक ने 'अज-जुहद' (332) में, तबरी ने अपनी तफसीर 2/168 में, इब्न अबी हातिम 1/244 में, और बैहक़ी ने 'अल-बास व अन-नुशूर' (516) में इन शब्दों के साथ उद्धृत किया है: "वैल जहन्नम में एक घाटी है, यदि उसमें पहाड़ चलाए जाएं तो वे उसकी गर्मी

से पिघल जाएंगे।" (3) इसे तबरी ने अपनी तफसीर 2/164 में अबू अयाज़ के कथन से उद्धृत किया है। 'अस-साहरीज' (हौज) 'सहारीज' का एकवचन है: जो तालाबों की तरह होते हैं जिनमें पानी जमा होता है। लिसान (स-ह-र-ज)। (4) इसे तबरी ने अपनी तफसीर 2/163 में उद्धृत किया है, और इब्न अतिया ने 1/170 में इसका उल्लेख किया है। (5) प्रतियों में "और अल-वैल" है, और जो पुष्ट है वह (म) से है, जो 'अल-सिहाह' और 'मुजमल अल-लुग़ा' पृष्ठ 912 के अनुकूल है। (6) अल-किताब 1/331, और इब्न मंजूर ने लिसान (वैह) (वैल) में इसका उल्लेख किया है। (7) इसके कहने वाले इमरु अल-क़ैस हैं, और यह उनके दीवान पृष्ठ 68 में है, और इसका दूसरा भाग है: "करीब है और बस्बासा यशकुर की बेटी नहीं है"। (8) उनका दीवान पृष्ठ 11, और इसका पहला भाग है: "और जिस दिन मैं ऊंट की पालकी में दाखिल हुआ, उनैज़ा की पालकी"।

٢٢١ سورة البقرة: آیت ٧٩

...دو پہاڑ جن کے درمیان گرنے والا چالیس خزاں تک گرتا رہتا ہے (١)۔ اور سفیان اور عطا بن یسار نے روایت کیا ہے: اس آیت میں "الویل" جہنم کے صحن میں اہل نار کی پیپ سے بہنے والی ایک وادی ہے (٢)۔ اور کہا گیا: جہنم میں ایک حوض ہے (٣)۔ اور الزہراوی نے دوسروں سے نقل کیا ہے: کہ یہ جہنم کے دروازوں میں سے ایک دروازہ ہے۔ اور ابن عباس (۴) سے روایت ہے: "الویل" عذاب کی مشقت ہے۔ اور الخلیل نے کہا: "الویل" شر کی شدت ہے۔ الاصمعی نے کہا: "الویل" غم و الم ہے، اور "الویح" (۵) رحم و شفقت ہے۔ سیبویہ (۶) نے کہا: "وائل" اس کے لیے ہے جو ہلاکت میں گر گیا، اور "ویح" اسے ڈانٹنا ہے جو ہلاکت کے دہانے پر ہو۔ ابن عرفہ نے کہا: "الویل" غم ہے، کہا جاتا ہے: "تویل الرجل" جب آدمی ہلاکت کی دہائی دے، اور یہ صرف غم اور ناپسندیدہ موقع پر کہا جاتا ہے، اسی سے اللہ کا فرمان ہے: {پس ہلاکت (ویل) ہے ان لوگوں کے لیے جو اپنے ہاتھوں سے کتاب لکھتے ہیں}۔ اور کہا گیا: اس کی اصل ہلاکت ہے، اور جو بھی ہلاکت میں گرتا ہے وہ ویل کی دہائی دیتا ہے، اسی سے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {ہائے ہماری ہلاکت (ویل)! یہ کیسی کتاب ہے...} [الکہف: ۴۹]، اور یہ "الویل" اور "الویلة" ہے، یہ دونوں ہلاکت ہیں، اور اس کی جمع "الویلات" ہے، اس نے کہا:

اس کے لیے ہلاکت (ویل) ہو اگر وہ شام کرے اور ام ہاشم نہ ہو (٧)

اور اس نے یہ بھی کہا:

تو اس نے تجھ سے کہا: 'تیرے لیے ہلاکتیں (ویلات) ہوں، تو مجھے پیدل چلا رہا ہے' (٨)

(۱) اسے احمد (۱۱۷۱۲)، ترمذی (۲۵۷۶)، ابو یعلی (۱۳۸۳)، طبری نے اپنی تفسیر ۱۶۴/۲ میں، ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر ۲۴۳/۱ میں، ابن حبان (۷۴۶۷)، حاکم ۵۰۷/۲، بیہقی نے 'البعث والنشور' (۵۱۲) میں، اور بغوی نے 'شرح السنۃ' (۴۴۰۹) اور 'التفسیر' ۸۹/۱ میں دراج کے واسطے سے ابو الہیثم سے مرفوعاً نقل کیا ہے۔ اور اس کی سند دراج کی کمزوری کی وجہ سے ضعیف ہے۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث غریب ہے۔ (۲) سفیان کا قول ابن عطیہ نے 'المحرر الوجیز' ۱۷۰/۱ میں اور رازی نے اپنی تفسیر ۱۴۰/۱ میں نقل کیا ہے۔ عطا کا قول ابن المبارک نے 'الزہد' (۳۳۲) میں، طبری نے اپنی تفسیر ۱۶۸/۲ میں، ابن ابی حاتم ۲۴۴/۱ میں، اور بیہقی نے 'البعث والنشور' (۵۱۶) میں ان الفاظ کے ساتھ نقل کیا ہے: "ویل جہنم میں ایک وادی ہے اگر اس میں پہاڑ چلائے جائیں تو وہ اس کی گرمی سے پگھل جائیں"۔ (۳) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۱۶۴/۲ میں ابو عیاض کے قول سے نقل کیا ہے۔ اور "الصہریج": "صہاریج" کا واحد ہے: جو تالابوں کی طرح ہوتے ہیں جن میں پانی جمع ہوتا ہے۔ اللسان (صہرج)۔ (۴) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۱۶۳/۲ میں نقل کیا ہے، اور ابن عطیہ نے اسے ۱۷۰/۱ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) نسخوں میں "والویل" ہے، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے، جو 'الصحاح' اور 'مجمل اللغۃ' ص ۹۱۲ کے موافق ہے۔ (۶) الکتاب ۳۳۱/۱، اور ابن منظور نے لسان (ویح) (ویل) میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۷) اس کے کہنے والے امرؤ القیس ہیں، اور یہ ان کے دیوان ص ۶۸ پر ہے، اور اس کا دوسرا مصرع ہے: "قریب ولا البسباسۃ ابنۃ یشکرا"۔ (۸) ان کا دیوان ص ۱۱، اور اس کا پہلا مصرع ہے: "ویوم دخلت الخدر خدر عنیزۃ"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 79

Page 222

The word "Waylun" (Woe) is in the nominative case (marfu') as a subject (mubtada). It is permissible for it to be a subject even though it is an indefinite noun because it carries the meaning of a supplication (dua). Al-Akhfash said (1): It is permissible for it to be in the accusative case (mansub) based on an implied verb, meaning: May Allah afflict them with woe. Al-Farra' said: The root of "Al-Wayl" is "Way", meaning: sadness, as you say: "Way" to so-and-so, meaning: sadness for him. The Arabs then joined it with the letter "Lam" and regarded it as part of the word (2), and declined it. The best form when it is separated from a genitive construction (idafa) is the nominative case because it implies the actual occurrence [of the woe]. The accusative case is also correct based on the meaning of supplication, as mentioned. Al-Khalil said: Only "Wayh", "Ways", "Wayh", "Wayk", "Wayl", and "Wayb" are heard on this structure, and they are all close in meaning (3). Some people have distinguished between them, and they are infinitives (masdar) from which the Arabs did not derive any verbs. Al-Jarmi said: Among the words that are in the accusative case like infinitives are: "Waylahu", "Awlahu", "Wayhahu", and "Waysahu". When you introduce the letter "Lam", you use the nominative case, so you say: "Waylun lahu" (Woe to him) and "Wayhun lahu". Second: His Almighty's saying: {to those who write} Writing is well-known. The first to write with a pen and script with it was Idris, peace be upon him. This was mentioned in a hadith of Abu Dharr, narrated by Al-Ajurri and others (4). It has also been said that Adam, peace be upon him, was given the art of writing, and it became an inheritance for his children. Third: His Almighty's saying: {with their hands} is for emphasis, as it is known that writing is only done with the hand. This is like His saying: {nor a bird that flies with its two wings} [Al-An'am: 38], and His saying: {they say with their mouths} [Al Imran: 167]. It was also said: The benefit of "with their hands" is to highlight their crime and prove their overtness, for he who carries out an act directly is more severe than one who does not, even if it was his idea. Ibn al-Sarraj said: "with their hands" is a metaphor for it (5) being from themselves without it being sent down to them, even if it was not literally written by their hands (6).

(1) Ma'ani al-Qur'an, 1/298. Quoted from him by the author via I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas, 1/240. (2) In (D) and (Z): "and they estimated it was from him"; in (Zha): "and they estimated it was from her"; in (M): "and they estimated it from him". What is established is from (Kh). (3) Mu'jam Maqayis al-Lugha, 1/77, and Mujmal al-Lugha, p. 912. (4) It is part of a long hadith narrated by Ibn Hibban in "Al-Ihsan" (361), and Abu

Nu'aym in Hilyat al-Awliya', 1/166-168. In its chain of narration is Ibrahim ibn Hisham ibn Yahya al-Ghassani, whom Abu Hatim and Abu Zur'ah accused of lying, as in Mizan al-I'tidal, 1/72-73. (5) In (M): "that they". (6) Al-Muharrar al-Wajiz, 1/170.

सूरह अल-बक़रह: आयत 79

पृष्ठ 222

"वैलुन" (तबाही/अफ़सोस) शब्द प्रथमा विभक्ति (रफ़अ) में है क्योंकि यह कर्ता (मुब्तदा) है। अनिश्चित संज्ञा होने के बावजूद इसका कर्ता होना जायज़ है, क्योंकि इसमें दुआ (प्रार्थना) का अर्थ है। अल-अखफ़श ने कहा (1): एक छिपी हुई क्रिया के आधार पर इसे द्वितीया विभक्ति (नसब) में रखना जायज़ है, जिसका अर्थ है: अल्लाह उन पर तबाही डाले। अल-फ़र्रा ने कहा: "वैल" का मूल "वै" है, जिसका अर्थ है: दुःख, जैसे आप कहते हैं: फलां के लिए "वै", यानी उसके लिए दुःख। फिर अरबों ने इसे "लाम" अक्षर से जोड़ दिया और इसे शब्द का हिस्सा मान लिया (2), और इसका व्याकरणिक रूप बदला। जब इसे संबंधवाचक संरचना (इज़ाफ़त) से अलग किया जाता है, तो प्रथमा विभक्ति (रफ़अ) सबसे बेहतर है, क्योंकि यह इसके घटित होने का संकेत देती है। जैसा कि हमने उल्लेख किया है, दुआ के अर्थ के आधार पर द्वितीया विभक्ति (नसब) भी सही है। अल-खलील ने कहा: इस संरचना पर केवल वैह, वैस, वैह, वैक, वैल और वैब शब्द ही सुने गए हैं, और इन सभी का अर्थ लगभग एक जैसा है (3)। कुछ लोगों ने उनके बीच अंतर किया है, और ये वे संज्ञाएँ(मस्दर) हैं जिनसे अरबों ने कोई क्रिया नहीं बनाई। अल-जर्मी ने कहा: जो शब्द संज्ञाओं की तरह द्वितीया विभक्ति में आते हैं उनमें शामिल हैं: वैलहू, औलहू, वैहहू और वैसहू। जब आप इसमें "लाम" जोड़ते हैं, तो आप प्रथमा विभक्ति का उपयोग करते हैं, और कहते हैं: वैलुन लहू और वैहुन लहू। दूसरा: अल्लाह तआला का कथन: {उन लोगों के लिए जो लिखते हैं} लिखना सुप्रसिद्ध है। कलम से लिखने और लिपिबद्ध करने वाले पहले व्यक्ति इदरीस अलैहिस्सलाम थे। यह अबू ज़र की एक हदीस में आया है, जिसे अल-आजुर्री और अन्यों ने उद्धृत किया है (4)। यह भी कहा गया है कि आदम अलैहिस्सलाम को लेखन कला दी गई थी, जो उनके बच्चों में विरासत बन गई। तीसरा: अल्लाह तआला का कथन: {अपने हाथों से} ज़ोर देने के लिए है, क्योंकि यह ज्ञात है कि लिखना केवल हाथों से ही होता है। यह उसके कथन जैसा है: {और न ही कोई पक्षी जो अपने दो पंखों से उड़ता है} [अन-अनाम: 38], और उसका कथन: {वे अपने मुँह से कहते हैं} [आल इमरान: 167]। यह भी कहा गया है: "अपने हाथों से" का लाभ उनके अपराध को स्पष्ट करना और उनके खुलेपन को साबित करना है, क्योंकि जो स्वयं कार्य करता है उसका प्रभाव उस व्यक्ति से अधिक होता है जिसने कार्य नहीं किया, भले ही वह उसका विचार ही क्यों न हो। इब्न अल-सर्राज ने कहा: "अपने हाथों से" इस बात का रूपक है कि यह

(5) उनके अपनी ओर से है बिना इसके कि उन पर उतारा गया हो, भले ही वह वास्तव में उनके हाथों से न लिखा गया हो (6)।

(1) मआनी अल-क़ुरआन, 1/298। लेखक ने अन-नहहास की एराब अल-क़ुरआन, 1/240 के माध्यम से उनसे इसे उद्धृत किया है। (2) (द) और (ज़) में: "और उन्होंने अनुमान लगाया कि यह उससे है"; (ज़ा) में: "और उन्होंने अनुमान लगाया कि यह उससे है (स्त्रीलिंग)"; (म) में: "और उन्होंने उससे अनुमान लगाया"। (ख) से जो स्थापित है। (3) मुअजम मक़ायिस अल-लुग़ा, 1/77, और मुजमल अल-लुग़ा, पृ. 912। (4) यह इब्न हिब्बान द्वारा "अल-इहसान" (361) में उद्धृत एक लंबी हदीस का हिस्सा है, और अबू नुएम द्वारा हिल्यत अल-औलिया, 1/166-168 में। इसकी वर्णन श्रृंखला में इब्राहिम इब्न हिशाम इब्न यहया अल-ग़स्सानी है, जिसे अबू हातिम और अबू ज़रआ ने झूठा कहा है, जैसा कि मीज़ान अल-एतिदाल, 1/72-73 में है। (5) (म) में: "कि वे"। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़, 1/170।

سورة البقرہ: آیت ۷۹

صفحہ ۲۲۲

لفظ "وَيْلٌ" (تباہی) ابتداء کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے، اور اس سے ابتدا کرنا جائز ہے اگرچہ یہ نکرہ ہے؛ کیونکہ اس میں دعا (بددعا) کا معنی پایا جاتا ہے۔ اخفش نے کہا (۱): فعل مقدر مان کر اسے حالتِ نصب میں پڑھنا بھی جائز ہے، یعنی: اللہ ان پر ہلاکت لازم کر دے۔ فراء نے کہا: ویل کی اصل "وَيٌ" ہے، یعنی غم، جیسا کہ تم کہتے ہو: فلاں کے لیے ہائے (افسوس)، یعنی اس کے لیے غم ہے۔ پھر عربوں نے اسے لام کے ساتھ ملا دیا اور اسے اسی لفظ کا حصہ سمجھا (۲)، اور اس پر اعراب جاری کیے۔ اور جب اسے اضافت سے جدا کیا جائے تو حالتِ رفع بہتر ہے؛ کیونکہ یہ وقوع کا تقاضا کرتا ہے۔ اور دعا کے معنی پر حالتِ نصب بھی صحیح ہے، جیسا کہ ہم نے ذکر کیا۔ خلیل نے کہا: اس وزن پر صرف وَيْح، وَيْس، وَيْه، وَيْك، وَيْل، اور وَيْب ہی سنے گئے ہیں، اور ان سب کے معنی ایک دوسرے کے قریب ہیں (۳)۔ ایک جماعت نے ان کے درمیان فرق کیا ہے، اور یہ ایسے مصادر ہیں جن سے عربوں نے کوئی فعل استعمال نہیں کیا۔ جرمی نے کہا: جو الفاظ مصادر کی طرح منسوب ہوتے ہیں ان میں یہ شامل ہیں: وَيْلَه، عَوْلَه، وَيْحَه، اور وَيْسَه۔ جب تم ان پر لام داخل کرو گے تو رفع دو گے، چنانچہ تم کہو گے: وَيْلٌ لَه (اس کے لیے تباہی ہو) اور وَيْحٌ لَه۔ دوسرا نکتہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {لِلَّذِينَ يَكْتُبُونَ} (ان لوگوں کے لیے جو لکھتے ہیں) لکھنا معروف ہے۔ اور قلم سے سب سے پہلے جس نے لکھا اور خطاطی کی وہ ادریس علیہ السلام تھے، اور یہ ابو ذر رضی اللہ عنہ کی حدیث میں آیا ہے جسے آجری وغیرہ نے روایت کیا ہے (۴)۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ آدم علیہ السلام کو لکھنا سکھایا گیا تھا، پھر وہ ان کی اولاد میں وراثت بن گیا۔ تیسرا نکتہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {بِأَيْدِيهِمْ} (اپنے ہاتھوں سے) تاکید کے لیے ہے، کیونکہ یہ معلوم

ہے کہ لکھنا ہاتھ ہی سے ہوتا ہے، تو یہ اس فرمان کی طرح ہے: {وَلَا طَيْرٍ يَطِيرُ بِجَنَاحَيْهِ} [الأنعام: ٣٨] (اور نہ کوئی پرندہ جو اپنے پروں سے اڑتا ہے) اور اللہ کا فرمان: {يَقُولُونَ بِأَفْوَاهِهِم} [آل عمران: ١٦٧] (وہ اپنی زبانوں سے کہتے ہیں)۔ اور کہا گیا ہے: "بأيديهم" کا فائدہ ان کے جرم کو بیان کرنا اور ان کے برملا اظہار کو ثابت کرنا ہے، کیونکہ جو خود فعل انجام دیتا ہے اس کا اثر اس سے زیادہ سخت ہوتا ہے جس نے خود انجام نہ دیا ہو اگرچہ وہ اس کی رائے ہی کیوں نہ ہو۔ ابن سراج نے کہا: "بأيديهم" اس بات سے کنایہ ہے کہ یہ (٥) ان کی اپنی طرف سے ہے بغیر اس کے کہ ان پر نازل ہوا ہو، اگرچہ حقیقت میں ان کے ہاتھوں سے لکھنا نہ بھی ہو (٦)۔

(١) معانی القرآن ١/ ٢٩٨، اور مصنف نے اسے نحاس کی اعراب القرآن ١/ ٢٤٠ کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (٢) (د) اور (ز) میں: "اور انہوں نے اندازہ کیا کہ یہ اس سے ہے"؛ اور (ظ) میں: "اور انہوں نے اندازہ کیا کہ یہ اس (مونث) سے ہے"؛ اور (م) میں: "اور انہوں نے اس سے اندازہ کیا"۔ اور (خ) سے جو ثابت ہے۔ (٣) معجم مقاییس اللغہ ١/ ٧٧، اور مجمل اللغہ ص ٩١٢۔ (٤) یہ ایک طویل حدیث کا حصہ ہے جسے ابن حبان نے "الاحسان" (٣٦١) میں اور ابو نعیم نے حلیۃ الاولیاء ١/ ١٦٦-١٦٨ میں روایت کیا ہے۔ اس کی سند میں ابراہیم بن ہشام بن یحییٰ الغسانی ہے جسے ابو حاتم اور ابو زرعہ نے جھٹلایا ہے جیسا کہ میزان الاعتدال ١/ ٧٢-٧٣ میں ہے۔ (٥) (م) میں: "کہ وہ"۔ (٦) المحرر الوجیز ١/ ١٧٠۔

Page 223 Surah Al-Baqarah: Verse 79

Fourth: In this verse and the one before it, there is a warning against substitution, alteration, and addition to the Sharia (law). Anyone who substitutes, alters, or innovates in God's religion that which is not part of it and is not permissible, falls under this severe threat and painful punishment. The Messenger of Allah (peace be upon him) warned his Ummah about what he knew would happen at the end of time, saying: "Beware! Verily, those before you of the People of the Book split into seventy-two sects, and this Ummah will split into seventy-three sects (1), all of them in the Fire except one (2)." The hadith will follow (3). He warned them against introducing from themselves things into religion contrary to the Book of Allah, His Sunnah, or the Sunnah of his companions, thereby misleading people. What he warned of has occurred, spread, multiplied, and became public. To Allah we belong and to Him we shall return.

Fifth: His Almighty's saying: {To purchase a small price with it} Allah Almighty described what they take as "small," either because of its transience and lack of reward (4), or because it is haram (unlawful); for there is no blessing in the haram, and it does not grow with Allah. Ibn Ishaq and Al-Kalbi said: The description of the Messenger of Allah (peace be upon him) in their book was of medium height and brown-skinned. But they changed it to say he was dark-skinned, with straight hair and tall. They told their companions and followers: "Look at the description of the Prophet who will be sent at the end of time; this description does not match him." The rabbis and scholars had leadership and earnings, so they feared that if they made it clear, their sustenance and leadership would disappear. That is why they changed it (5).

Then He Almighty said: {Woe to them for what their hands have written, and woe to them for what they earn}. It is said: From the earnings. And it is said: From the sins. "Woe" was repeated to emphasize the gravity of their act.

Footnotes: (1) In (m): Seventy-three sects. (2) Narrated in long and short forms by Ahmad (16937), Abu Dawood (4597), Al-Darimi 2/241, Ibn Abi Asim in 'As-Sunnah' (1), Al-Marwazi in 'As-Sunnah' pp. 14-15, Al-Tabarani in 'Al-Kabir' (19/884), Al-Ajurri in 'Ash-Shari'ah' p. 18, Al-Hakim 1/128, Al-Lalika'i in 'Usul al-I'tiqad' (150), and Al-Bayhaqi in 'Ad-Dala'il' 6/541, 542 from the hadith of Mu'awiyah (may Allah be pleased with him). And in this chapter from Abu Hurairah, narrated by Ahmad (8396). (3) In the commentary of Allah Almighty's saying: {And hold fast to the rope of Allah together

and do not be divided} [Al-Imran: 103]. (4) In (m): its stability. (5) Ibn Ishaq's saying was mentioned by Ibn Atiyah in 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/170. It was narrated similarly by Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/245, 246, and Al-Wahidi in 'Al-Wasit' 1/165, 166 from Ibn Abbas. It was narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/167, and Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/247 similarly from Abu al-Aliyah.

पृष्ठ २२३ सूरह अल-बकराह: आयत ७९

चौथा: इस आयत और इससे पहले वाली आयत में शरीयत में अदल-बदल, परिवर्तन और वृद्धि के विरुद्ध चेतावनी दी गई है। जो कोई भी अल्लाह के धर्म में वह चीज़ बदलता है, परिवर्तित करता है, या नया आविष्कार (बिदअत) करता है जो उसमें से नहीं है और न ही जायज़ है, वह इस कठोर चेतावनी और दर्दनाक अज़ाब के दायरे में आता है। अल्लाह के रसूल ﷺ ने अपनी उम्मत को उस चीज़ के बारे में आगाह किया था जो उन्होंने अंत समय में होने के बारे में जानी थी। उन्होंने कहा: "सावधान! तुम से पहले के किताब वालों (यहूदी-ईसाई) में बहत्तर फिरके हो गए थे, और यह उम्मत तिहत्तर फिरकों (१) में बंट जाएगी, एक को छोड़कर बाकी सब नरक में होंगे (२)।" यह हदीस आगे आएगी (३)। उन्होंने उन्हें चेतावनी दी कि वे अपनी ओर से धर्म में अल्लाह की किताब, उसकी सुन्नत, या उसके साथियों की सुन्नत के खिलाफ कुछ न लाएँ जिससे वे लोगों को गुमराह करें। उन्होंने जिस चीज़ की चेतावनी दी थी, वह घटित हो गई, फैल गई और बहुत आम हो गई। हम अल्लाह के हैं और उसी की ओर लौटकर जाने वाले हैं।

पांचवां: अल्लाह तआला का कथन: {ताकि वे इसके बदले में मामूली कीमत खरीदें} अल्लाह तआला ने जो कुछ वे लेते हैं उसे 'मामूली' बताया है, या तो इसके खत्म होने और इसके प्रतिफल (सवाब) की कमी के कारण (४), या फिर इसके हराम होने के कारण; क्योंकि हराम में कोई बरकत नहीं होती, और अल्लाह के पास इसमें कोई वृद्धि नहीं होती। इब्न इशाक और अल-कलबी ने कहा: उनकी किताब में रसूल अल्लाह ﷺ का विवरण मध्यम कद और सांवले रंग का था। लेकिन उन्होंने इसे बदलकर उन्हें गहरा सांवला, सीधे बालों वाला और लंबा बना दिया। उन्होंने अपने साथियों और अनुयायियों से कहा: "उस नबी का विवरण देखो जिसे अंत समय में भेजा जाएगा; यह विवरण उससे मेल नहीं खाता।" यहूदी धर्मगुरुओं और विद्वानों के पास नेतृत्व और आय थी, इसलिए उन्हें डर था कि अगर उन्होंने इसे स्पष्ट कर दिया, तो उनकी आजीविका और नेतृत्व चला जाएगा। इसी कारण उन्होंने इसमें बदलाव कर दिया (५)।

फिर अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {तो उनके लिए विनाश है उस चीज़ के कारण जो उनके हाथों ने लिखा, और उनके लिए विनाश है उस चीज़ के कारण जो वे कमाते हैं} कहा गया है: कमाई से। और कहा गया है: पापों से। और उनके कृत्य की गंभीरता पर ज़ोर देने के लिए 'तबाही' (वैल) शब्द को दोहराया गया।

पाद-टिप्पणियाँ: (१) (म) में: तिहत्तर फिरके। (२) इसे अहमद (१६९३७), अबू दाऊद (४५९७), अल-दारिमी २/२४१, अस-सुन्ना में इब्न अबी आसिम (१), अस-सुन्ना में अल-मरवाज़ी पृ. १४-१५, अल-कबीर में अल-तबरानी (१९/८८४), अल-शरीअह में अल-आजुरी पृ. १८, अल-हाकिल १/१२८, उसूल अल-इतिकाद में अल-लालिकाई (१५०), और अद-दलाल में अल-बैहाकी ६/५४१, ५४२ ने मुआविया (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से विस्तृत और संक्षिप्त रूप में उद्धृत किया है। और इसी अध्याय में अबू हुरैरा से, जिसे अहमद (८३९६) ने उद्धृत किया है। (३) अल्लाह तआला के इस कथन की व्याख्या में: {और अल्लाह की रस्सी को सब मिलकर मज़बूती से थामे रहो और अलग न हो} [आल इमरान: १०३]। (४) (म) में: इसकी स्थिरता। (५) इब्न इशाक का कथन इब्न अतिया द्वारा 'अल-मुहर्रर अल-वजीज' १/१७० में उद्धृत किया गया है। इसे इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर १/२४५, २४६ में, और अल-वाहिदी ने 'अल-वसीत' १/१६५, १६६ में इब्न अब्बास से इसी तरह उद्धृत किया है। अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर २/१६७ में, और इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर १/२४७ में अबू अल-आलिया से इसी तरह उद्धृत किया है।

صفحہ ۲۲۳ سورہ البقرہ: آیت ۷۹

چوتھی بات: اس آیت اور اس سے پہلی آیت میں شریعت میں تبدیلی، تحریف اور اضافے کے خلاف تنبیہ کی گئی ہے؛ پس جس کسی نے اللہ کے دین میں وہ چیز بدلی، تبدیل کی یا ایجاد کی جو اس میں سے نہیں ہے اور نہ ہی اس میں جائز ہے، تو وہ اس سخت وعید اور دردناک عذاب کے دائرے میں آتا ہے۔ رسول اللہ ﷺ نے اپنی امت کو اس بات سے پہلے ہی خبردار کر دیا تھا جو وہ جانتے تھے کہ آخری زمانے میں ہوگی، چنانچہ آپ ﷺ نے فرمایا: "آگاہ رہو! تم سے پہلے اہل کتاب بہتر (72) فرقوں میں بٹ گئے تھے، اور یہ امت تہتر (73) فرقوں (1) میں بٹ جائے گی، سوائے ایک کے باقی سب جہنم میں ہوں گے (2)۔" یہ حدیث آگے آئے گی (3)۔ آپ ﷺ نے انہیں متنبہ کیا کہ وہ اپنی طرف سے دین میں کتاب اللہ، اس کی سنت یا آپ کے صحابہ کی سنت کے خلاف کوئی نئی چیز پیدا نہ کریں جس سے وہ لوگوں کو گمراہ کر دیں، اور جو کچھ آپ ﷺ نے تنبیہ فرمائی تھی وہ واقع ہو گیا، پھیل گیا اور بہت زیادہ عام ہو گیا، پس ہم اللہ ہی کے ہیں اور اسی کی طرف لوٹ کر جانے والے ہیں۔

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ لِيَشْتَرُوا بِهِ ثَمَنًا قَلِيلًا ﴾ (تاکہ وہ اس کے بدلے میں تھوڑی سی قیمت خرید لیں) اللہ تعالیٰ نے ان کے لینے کی چیز کو 'قلیل' (تھوڑی) قرار دیا ہے، یا تو اس کے فنا ہونے اور اس کے ثواب کی عدم موجودگی کی وجہ سے (4)، یا اس کے حرام ہونے کی وجہ سے؛ کیونکہ حرام میں کوئی برکت نہیں ہوتی، اور نہ ہی وہ اللہ کے ہاں بڑھتی ہے۔ ابن اسحاق اور الکلبی نے کہا: ان کی کتاب میں رسول اللہ ﷺ کی صفت درمیانہ قد اور گندمی رنگ کی تھی، لیکن انہوں نے اسے بدل کر آپ ﷺ کو سانولے رنگ والا، سیدھے بالوں والا اور طویل قد والا بنا دیا، اور اپنے ساتھیوں اور پیروکاروں سے کہا: "اس نبی کی صفت دیکھو جو آخری زمانے میں مبعوث

ہوگا، اس کا حلیہ اس سے نہیں ملتا۔" اور علماء و احبار کو قیادت اور آمدنی حاصل تھی، پس انہیں ڈر لگا کہ اگر انہوں نے حقیقت بیان کر دی تو ان کی روزی اور سرداری ختم ہو جائے گی، اسی وجہ سے انہوں نے تبدیلی کر دی (5)۔

پھر اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿ فَوَيْلٌ لَهُمْ مِمَّا كَتَبَتْ أَيْدِيهِمْ وَوَيْلٌ لَهُمْ مِمَّا يَكْسِبُونَ ﴾ (پس ان کے لیے ہلاکت ہے اس پر جو ان کے ہاتھوں نے لکھا اور ان کے لیے ہلاکت ہے اس پر جو وہ کماتے ہیں) کہا گیا ہے: روزی سے۔ اور کہا گیا ہے: گناہوں سے۔ اور "ویل" (ہلاکت) کا لفظ ان کے فعل کی سنگینی کے اظہار کے لیے دہرایا گیا ہے۔

حواشی: (1) (م) میں ہے: تہتر فرقے۔ (2) اسے احمد (16937)، ابوداؤد (4597)، الدارمی 2/241، ابن ابی عاصم نے 'السنہ' (1) میں، المروزی نے 'السنہ' ص 14-15 میں، الطبرانی نے 'الکبیر' (19/884) میں، الآجری نے 'الشریعہ' ص 18 میں، الحاکم 1/128، اللالکائی نے 'اصول الاعتقاد' (150) میں، اور البیہقی نے 'الدلائل' 6/541، 542 میں حضرت معاویہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے مفصل اور مختصراً روایت کیا ہے۔ اور اسی باب میں حضرت ابوہریرہ سے بھی روایت ہے جسے احمد (8396) نے نکالا ہے۔ (3) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی تفسیر میں: ﴿ وَاعْتَصِمُوا بِحَبْلِ اللَّهِ جَمِيعًا وَلَا تَفَرَّقُوا ﴾ [آل عمران: 103]۔ (4) (م) میں ہے: اس کے ثبات۔ (5) ابن اسحاق کا قول ابن عطیہ نے 'المحرر الوجیز' 1/170 میں ذکر کیا ہے۔ اور اسے اسی طرح ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/245، 246 میں، اور الواحدی نے 'الوسیط' 1/165، 166 میں ابن عباس سے نکالا ہے۔ اور طبری نے اپنی تفسیر 2/167 میں، اور ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/247 میں ابوالعالیہ سے اسی طرح نکالا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 80 224

Allah the Almighty says: {And they say: "The Fire shall never touch us except for a few numbered days." Say: "Have you taken a covenant from Allah, so that Allah will never break His covenant? Or do you say about Allah that which you know not?" 80}

It contains three matters:

The first: His saying, the Almighty: {And they say} meaning the Jews. {The Fire shall never touch us except for a few numbered days}. There was a difference of opinion regarding the reason for its revelation. It was said: The Prophet (peace and blessings be upon him) said to the Jews: "Who are the inhabitants of the Fire?" They said: "We are, then you will succeed us in it." He said: "You have lied; you surely know that we will not succeed you in it." Then this verse was revealed; this was stated by Ibn Zayd (1).

And Ikrimah narrated from Ibn Abbas: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) came to Madinah while the Jews were saying: "Indeed, this world is only seven thousand years (2), and people are only punished in the Fire for one day from the days of the Hereafter for every thousand years of the days of this world, so it is only seven days." So Allah revealed the verse (3), and this is the opinion of Mujahid (4).

A group said: The Jews said: "Indeed, it is in the Torah that Hell is a journey of forty years, and that they traverse a year every day until they complete it and Hell departs." This was narrated by Al-Dahhak from Ibn Abbas (5).

And from Ibn Abbas: The Jews claimed that they found written in the Torah that the distance between the two ends of Hell is a journey of forty years until they reach the Tree of Zaqqum. They said: "We are only punished until we reach the Tree of Zaqqum, then Hell goes away and perishes" (6).

And from Ibn Abbas also and Qatadah: That the temptation of the Jews led them to say: "Allah swore to enter them (7) into the Fire for forty days, the number of [days of] their worship of the calf." So Allah declared them liars (8), as previously mentioned.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/170-171, and recorded by al-Tabari 1/174. Al-Bukhari (3169) recorded something similar within a story from a hadith of Abu Hurairah, but it does not contain the reason for the verse's revelation. (2) The word: "year", from (D) and (Z). (3) Recorded by al-Tabari in his Tafsir 2/175, and Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/247,

248. (4) Recorded by al-Tabari in his Tafsir 2/175. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/171. (6) Recorded by al-Tabari in his Tafsir 2/172, and Ibn Abi Hatim 1/248. (7) In (D): "He swore that He would surely enter them". (8) The statement of Ibn Abbas was recorded by al-Tabari in his Tafsir 1/171 similarly, and the statement of Qatadah was recorded by Abd al-Razzaq in his Tafsir...

सूरह अल-बक़रह: आयत 80 224

अल्लाह तआला का फ़रमान है: {और उन्होंने कहा: हमें आग हरगिज़ न छुएगी सिवाय गिने-चुने दिनों के। कह दीजिए: क्या तुमने अल्लाह से कोई वादा लिया है, तो अल्लाह अपने वादे के खिलाफ नहीं करेगा? या तुम अल्लाह पर वह बातें कहते हो जो तुम नहीं जानते? 80}

इसमें तीन मसले हैं:

पहला: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और उन्होंने कहा} यानी यहूदियों ने। {हमें आग हरगिज़ न छुएगी सिवाय गिने-चुने दिनों के} इसके अवतरण (नुज़ूल) के कारण में मतभेद है। कहा गया है: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने यहूदियों से पूछा: "दोज़ख वाले कौन हैं?" उन्होंने कहा: "हम हैं, फिर हमारे बाद तुम होगे।" आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुमने झूठ बोला, तुम जानते हो कि हम तुम्हारे बाद नहीं आएंगे (यानी दोज़ख में तुम्हारी जगह नहीं लेंगे)।" फिर यह आयत उतरी, यह इब्न ज़ैद (1) का कहना है।

इक्रमा ने इब्न अब्बास से रिवायत किया है: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मदीना आए और यहूदी कह रहे थे: "यह दुनिया केवल सात हज़ार साल (2) की है, और लोगों को आग में सज़ा दी जाएगी, दुनिया के हर हज़ार साल के बदले आख़िरत के दिनों में से एक दिन आग में होगा, और वह केवल सात दिन हैं।" तो अल्लाह ने यह आयत उतारी (3), और यही मुजाहिद (4) का भी कहना है।

एक गिरोह ने कहा: यहूदियों ने कहा: "तौरात में है कि जहन्नम चालीस साल का रास्ता है, और वे हर दिन एक साल का रास्ता पार करेंगे यहाँ तक कि उसे पूरा कर लेंगे और जहन्नम खत्म हो जाएगी।" इसे ज़ह्हाक ने इब्न अब्बास (5) से रिवायत किया है।

इब्न अब्बास से रिवायत है: यहूदियों ने दावा किया कि उन्होंने तौरात में लिखा पाया कि जहन्नम के दो किनारों के बीच की दूरी चालीस साल का रास्ता है जब तक कि वे ज़क़्क़ूम के पेड़ तक न पहुँच जाएँ। उन्होंने कहा: "हमें केवल तब तक सज़ा दी जाएगी जब तक हम ज़क़्क़ूम के पेड़ तक न पहुँच जाएँ, फिर जहन्नम चली जाएगी और खत्म हो जाएगी" (6)।

इब्न अब्बास और क़तादा से भी रिवायत है: यहूदियों ने कहा: "अल्लाह ने कसम खाई है कि उन्हें (7) बछड़े की पूजा करने के दिनों की संख्या के बराबर चालीस दिनों के लिए आग में डालेगा।" तो अल्लाह ने उन्हें झुठला दिया (8), जैसा कि पहले बताया गया है।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/170-171, और अल-तबरी 1/174 द्वारा उद्धृत। अल-बुखारी (3169) ने अबू हुरैरा की एक हदीस की कहानी के भीतर इसी तरह की बात दर्ज की है, लेकिन इसमें आयत के उतरने का कारण नहीं है। (2) शब्द: 'साल', (D) और (Z) से। (3) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/175 में और इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/247, 248 में इसे दर्ज किया है। (4) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/175 में इसे दर्ज किया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/171। (6) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/172 में और इब्न अबी हातिम ने 1/248 में इसे दर्ज किया है। (7) (D) में: 'कसम खाई कि वह उन्हें ज़रूर दाखिल करेगा'। (8) इब्न अब्बास का बयान अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 1/171 में इसी तरह दर्ज किया है, और क़तादा का बयान अब्द अल-रज्जाक ने अपनी तफ़सीर में दर्ज किया है...

سورة البقرہ: آیت 80 224

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: {اور انہوں نے کہا کہ ہمیں آگ ہرگز نہیں چھوئے گی سوائے چند گنتی کے دنوں کے۔ کہیے: کیا تم نے اللہ سے کوئی عہد لے رکھا ہے، تو اللہ اپنے عہد کی ہرگز خلاف ورزی نہیں کرے گا؟ یا تم اللہ پر وہ باتیں کہتے ہو جو تم نہیں جانتے؟ 80}

اس میں تین مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: {اور انہوں نے کہا} یعنی یہودی۔ {ہمیں آگ ہرگز نہیں چھوئے گی سوائے چند گنتی کے دنوں کے} اس کے نزول کے سبب میں اختلاف ہے، تو کہا گیا: نبی کریم ﷺ نے یہودیوں سے فرمایا: "اہلِ نار کون ہیں؟" انہوں نے کہا: "ہم، پھر ہمارے بعد تم ہو گے۔" آپ ﷺ نے فرمایا: "تم نے جھوٹ بولا، تم بخوبی جانتے ہو کہ ہم تمہارے جانشین نہیں ہوں گے۔" تو یہ آیت نازل ہوئی، یہ ابن زید (1) کا قول ہے۔

عکرمہ نے ابن عباس سے روایت کیا: رسول اللہ ﷺ مدینہ تشریف لائے اور یہودی کہتے تھے: "یہ دنیا صرف سات ہزار سال (2) کی ہے، اور لوگوں کو آگ میں عذاب دیا جائے گا، دنیا کے ہر ہزار سال کے بدلے میں آخرت کے دنوں میں سے ایک دن آگ میں ہوگا، اور وہ صرف سات دن ہیں۔" تو اللہ نے یہ آیت نازل فرمائی (3)، اور یہی مجاہد (4) کا قول ہے۔

ایک جماعت نے کہا: یہودیوں نے کہا: "توراۃ میں ہے کہ جہنم چالیس سال کا راستہ ہے، اور وہ ہر دن ایک سال کی مسافت طے کریں گے یہاں تک کہ اسے مکمل کر لیں گے اور جہنم ختم ہو جائے گی۔" اسے ضحاک نے ابن عباس (5) سے روایت کیا ہے۔

ابن عباس سے روایت ہے: یہودیوں نے دعویٰ کیا کہ انہوں نے توراۃ میں لکھا ہوا پایا کہ جہنم کے دونوں کناروں کے درمیان کی مسافت چالیس سال کی ہے یہاں تک کہ وہ شجرِ زقوم تک پہنچ جائیں۔ انہوں نے کہا: "ہمیں صرف اس وقت تک عذاب دیا جائے گا جب تک ہم شجرِ زقوم تک نہ پہنچ جائیں، پھر جہنم چلی جائے گی اور فنا ہو جائے گی" (6)۔

ابن عباس اور قتادہ سے بھی مروی ہے: یہودیوں نے کہا: "اللہ نے قسم کھائی ہے کہ وہ انہیں (7) آگ میں داخل کرے گا ان کے بچھڑے کی عبادت کے دنوں کی تعداد کے برابر چالیس دن۔" تو اللہ نے انہیں جھٹلا دیا (8)، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے۔

(1) المحرر الوجیز 1/170-171، اور اسے طبری نے 1/174 میں نکالا ہے۔ بخاری (3169) نے ابوہریرہ کی حدیث کے قصے میں اس طرح کا ذکر کیا ہے، مگر اس میں آیت کے سببِ نزول کا ذکر نہیں ہے۔ (2) لفظ: 'سال'، (د) اور (ز) سے۔ (3) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/175 میں اور ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/247، 248 میں نکالا ہے۔ (4) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/175 میں نکالا ہے۔ (5) المحرر الوجیز 1/171۔ (6) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/172 میں اور ابن ابی حاتم نے 1/248 میں نکالا ہے۔ (7) (د) میں: 'قسم کھائی کہ وہ انہیں ضرور داخل کرے گا'۔ (8) ابن عباس کا قول طبری نے اپنی تفسیر 1/171 میں اسی طرح نکالا ہے، اور قتادہ کا قول عبد الرزاق نے اپنی تفسیر میں...

225 Surah Al-Baqarah: Verse 80

Second: In this verse, there is a rebuttal to Abu Hanifa and his companions, who argued based on the Prophet's (peace be upon him) saying: "Leave prayer during the days of your menses" (1), that the duration of menstruation is what is called "days of menstruation", the minimum of which is three and the maximum is ten. They said: because less than three is called a day or two, and more than ten is called eleven days, and "days" (plural) is not used for them. "Days" is only used for numbers from three to ten. Allah Almighty said: {fasting for three days during Hajj} [Al-Baqarah: 196], {Enjoy yourselves in your homes for three days} [Hud: 65], {He subjected it to them for seven nights and eight days in succession} [Al-Haqqah: 7].

It is said to them: Allah Almighty said regarding fasting: {for a fixed number of days} [Al-Baqarah: 184], meaning the whole month. And He said: {And they say: 'The Fire shall not touch us but for a few days'} (2), meaning forty days. Also, when "days" is attributed to an occurrence, it is not intended to limit the number; rather, one says: "the days of your walking, your travel, and your residence," even if it were thirty, twenty, or whatever number you wish. Perhaps he intended what was customary for her, and the custom is six or seven (3), so the speech was based on that. Allah knows best.

Third: His saying: {Say, "Have you taken...} discussion on "taken" (4) has already preceded, so there is no point in repeating it.

{...a covenant from Allah} meaning: have you previously done a righteous deed, such that you believed and obeyed, and thus you deserve to come out of the fire?! Or: did you know that through His revelation which He covenanted to you?

{Allah will never break His covenant. Or do you say about Allah that which you do not know?} This is a rebuke and a reprimand.

= 1/51, and Al-Tabari in his Tafsir 2/171, and Ibn Abi Hatim 1/249 similarly. (1) Al-Tahawi cited it with this wording in Sharh Ma'ani al-Athar 3/59, Ibn al-Jawzi in al-Tahqiq fi Ahadith al-Khilaf 1/260, and Ibn al-Mulaqqin in Khulasat al-Badr al-Munir 1/82. Imam Ahmad (24145) narrated it with the wording: "Leave prayer during the days of your menstruation" from the hadith of Aisha (may Allah be pleased with her). Al-Bukhari (306), Muslim (333), and others narrated it from Aisha with the wording: "When the menstruation comes, leave prayer." (2) In (kh), (t), and (m): "numbered

days", meaning verse (24) of Al Imran. (3) Ahkam al-Qur'an by al-Kiya al-Tabari 1/11-12, and his saying: "perhaps he intended", meaning the Prophet 2/103 (4) .ﷺ.

२२५ सूरा अल-बकरा: आयत ८०

दूसरा: इस आयत में अबू हनीफा और उनके साथियों का खंडन है, जिन्होंने पैगंबर (उन पर शांति हो) के इस कथन से दलील दी है: "अपने मासिक धर्म के दिनों में नमाज़ छोड़ दो" (१) कि मासिक धर्म की अवधि वह है जिसे "मासिक धर्म के दिन" कहा जाता है, जिनमें से न्यूनतम तीन हैं और अधिकतम दस। उन्होंने कहा: क्योंकि तीन से कम को एक या दो दिन कहा जाता है, और दस से अधिक को ग्यारह दिन कहा जाता है, और उनके लिए "दिनों" (बहुवचन) का उपयोग नहीं किया जाता है। "दिन" केवल तीन से दस तक की संख्याओं के लिए उपयोग किया जाता है। अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {हज के दौरान तीन दिनों का उपवास} [अल-बकरा: १९६], {अपने घरों में तीन दिनों तक आनंद लें} [हूद: ६५], {उसने उन पर सात रातें और आठ दिन लगातार उसे थोप दिया} [अल-हाक़्क़ा: ७]।

उनसे कहा जाता है: अल्लाह सर्वशक्तिमान ने उपवास के बारे में कहा: {निश्चित दिनों के लिए} [अल-बकरा: १८४], जिसका अर्थ पूरा महीना है। और उसने कहा: {और उन्होंने कहा, 'आग हमें कुछ ही दिनों के अलावा नहीं छुएगी'} (२), जिसका अर्थ चालीस दिन है। साथ ही, जब "दिनों" को किसी घटना से जोड़ा जाता है, तो उसका उद्देश्य संख्या को सीमित करना नहीं होता है; बल्कि, कोई कहता है: "आपके चलने, आपकी यात्रा और आपके निवास के दिन," भले ही वह तीस, बीस, या जो भी संख्या आप चाहें। शायद उनका इरादा उस समय से था जो उसके लिए सामान्य था, और आदत छह या सात है (३), इसलिए बात उसी पर आधारित थी। अल्लाह ही बेहतर जानता है।

तीसरा: उनका कहना है: {कहो, "क्या तुमने ले लिया है...} "ले लिया" (४) पर चर्चा पहले हो चुकी है, इसलिए इसे दोहराने का कोई मतलब नहीं है।

{...अल्लाह से कोई वचन} अर्थात: क्या आपने पहले कोई नेक काम किया है, जिससे आप ईमान लाए और आज्ञाकारी हुए, और इस प्रकार आप आग से निकलने के पात्र बन गए?! या: क्या आपने उसे उसके रहस्योद्घाटन के माध्यम से जाना जो उसने आपसे वादा किया था?

{अल्लाह कभी अपना वादा नहीं तोड़ेगा। या क्या तुम अल्लाह के बारे में वह कहते हो जो तुम नहीं जानते?} यह फटकार और निंदा है।

= १/५१, और अल-तबरी अपनी तफ़सीर २/१७१ में, और इब्न अबी हातिम १/२४९ में इसी तरह। (१) अल-तहावी ने इसे इन शब्दों के साथ शरह मा'नी अल-अथर ३/५९ में उद्धृत किया है, इब्न अल-जौज़ी ने अल-तहरीक फ़ी अहादीथ अल-खिलाफ १/२६० में, और इब्न अल-मुलाक़िन ने ख़ुलासत

अल-बद्र अल-मुनीर १/८२ में। इमाम अहमद (२४१४५) ने इसे आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से इन शब्दों के साथ वर्णित किया है: "अपने मासिक धर्म के दिनों में नमाज़ छोड़ दो।" अल-बुखारी (३०६), मुस्लिम (३३३) और अन्य ने आयशा से इन शब्दों के साथ वर्णन किया: "जब मासिक धर्म आए, तो नमाज़ छोड़ दो।" (२) (ख़), (त), और (म) में: "गिने हुए दिन", जिसका अर्थ आल इमरान की आयत (२४) है। (३) अहकाम अल-कुरान अल-किया अल-तब़री १/११-१२ द्वारा, और उनका कहना: "शायद उनका इरादा", यानी पैगंबर ﷺ। (४) २/१०३।

۲۲۵ سورة البقرہ: آیت ۸۰

دوسرا: اس آیت میں امام ابو حنیفہ اور ان کے اصحاب کا رد ہے، جنہوں نے نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم کے اس فرمان سے استدلال کیا: "اپنے حیض کے دنوں میں نماز چھوڑ دو" (۱) کہ حیض کی مدت وہ ہے جسے "حیض کے ایام" کہا جاتا ہے، جس کی کم از کم مدت تین اور زیادہ سے زیادہ دس دن ہے۔ انہوں نے کہا: کیونکہ تین سے کم کو ایک دن یا دو دن کہا جاتا ہے، اور دس سے زیادہ کو گیارہ دن کہا جاتا ہے، اور ان کے لیے "ایام" (جمع) کا لفظ استعمال نہیں ہوتا۔ "ایام" کا لفظ صرف تین سے دس تک کے اعداد کے لیے استعمال ہوتا ہے۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {حج کے دوران تین دن کے روزے} [البقرہ: ۱۹۶]، {تم اپنے گھروں میں تین دن تک فائدہ اٹھاؤ} [ہود: ۶۵]، {اس نے ان پر سات راتیں اور آٹھ دن لگاتار مسلط کر دیں} [الحاقہ: ۷]۔

تو ان سے کہا جائے گا: اللہ تعالیٰ نے روزے کے بارے میں فرمایا: {گنے چنے چند دن} [البقرہ: ۱۸۴] یعنی پورا مہینہ۔ اور فرمایا: {اور انہوں نے کہا: آگ ہمیں نہیں چھوئے گی مگر گنتی کے چند دن} (۲) یعنی چالیس دن۔ نیز، جب "ایام" کی نسبت کسی عارض کی طرف کی جائے تو اس سے عدد کی تحدید مراد نہیں ہوتی، بلکہ کہا جاتا ہے: "تمہارے چلنے کے، تمہارے سفر کے اور تمہارے قیام کے ایام،" چاہے وہ تیس ہوں، بیس ہوں یا جتنے بھی تم چاہو۔ اور شاید آپ (صلی اللہ علیہ وسلم) کی مراد وہ ایام تھے جو اس عورت کی عادت کے مطابق تھے، اور عادت چھ یا سات دن (۳) ہے، تو کلام اسی پر مبنی تھا۔ اللہ بہتر جانتا ہے۔

تیسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {قل أتخذتم} "اتخذ" (۴) کے بارے میں گفتگو پہلے گزر چکی ہے، اس لیے اسے دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔

{عند الله عهدا} یعنی: کیا تم نے پہلے کوئی نیک عمل کیا ہے، جس کی بنا پر تم ایمان لائے اور تم نے اطاعت کی، تو کیا تم اس کے ذریعے آگ سے نکلنے کے مستحق بن گئے؟! یا: کیا تم نے یہ بات اللہ کی وحی کے ذریعے جانی ہے جو اس نے تم سے عہد کیا؟

{فلن يخلف الله عهده أم تقولون على الله ما لا تعلمون} یہ ڈانٹ ڈپٹ اور ملامت ہے۔

= ۱/۵۱، اور الطبری اپنی تفسیر ۲/۱۷۱ میں، اور ابن ابی حاتم ۱/۲۴۹ میں اسی طرح۔ (۱) الطحاوی نے ان الفاظ کے ساتھ شرح معانی الآثار ۳/۵۹ میں، ابن الجوزی نے التحقیق فی احادیث الخلاف ۱/۲۶۰ میں، اور ابن الملقن نے خلاصۃ البدر المنیر ۱/۸۲ میں اسے ذکر کیا ہے۔ اور امام احمد (۲۴۱۴۵) نے اسے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے ان الفاظ کے ساتھ روایت کیا: "اپنے حیض کے دنوں میں نماز چھوڑ دو"۔ بخاری (۳۰۶)، مسلم (۳۳۳) اور دیگر نے حضرت عائشہ سے ان الفاظ کے ساتھ روایت کیا: "پس جب حیض آئے تو نماز چھوڑ دو"۔ (۲) (خ)، (ط) اور (م) میں: "معدودات" ہے، یعنی آل عمران کی آیت (۲۴)۔ (۳) احکام القرآن للکیا الطبری ۱/۱۱-۱۲، اور ان کا قول: "اور شاید ان کی مراد"، یعنی نبی ﷺ۔ (۴) ۲/۱۰۳۔

226 Surah Al-Baqarah: Verses 81, 82

Allah Almighty says: {Yes, whoever earns evil and his sin has encompassed him - those are the companions of the Fire; they will abide therein eternally. (81) And those who have believed and done righteous deeds - those are the companions of Paradise; they will abide therein eternally. (82)}

In it are three issues:

First: Allah Almighty says: {Yes} meaning: The matter is not as you mentioned. Sibawayh said(1): "Bala" (Yes) and "Na'am" (Yes) are not nouns. Rather, they are two particles like "bal" (but/rather) and others, and it is a rebuttal of their saying: {The Fire will never touch us}. The Kufans said: Its origin is "bal" which is for digressing from the first part, the 'ya' was added to it to make stopping on it good, and the 'ya' was given the meaning of affirmation and favor(2). So "Bala" indicates the rejection of denial, and the 'ya' indicates the affirmation of what follows. They said: If someone said: Did you not take a dinar? And you said: Yes (Na'am), the meaning would be: No, I did not take it, because you confirmed the negation and what follows it. But if you said: Yes (Bala), the meaning becomes: I have taken it(3). Al-Farra' said(4): If a man says to his companion: You have nothing over me, and the other says: Yes (Na'am), that was an affirmation that there is nothing against him, and if he said: Yes (Bala), it was a rejection of his statement, and its estimation is: Yes, I have something against you. And in the Revelation: {Am I not your Lord? They said: "Yes" (Bala)} [Al-A'raf: 172] If they had said: "Yes" (Na'am), they would have disbelieved.

Second: Allah Almighty says: {evil} The evil is Shirk (polytheism). Ibn Jurayj said: I said to 'Ata': {Whoever earns evil}? He said: Shirk(5) and recited: {And whoever comes with an evil deed - their faces will be cast into the Fire} [Al-Naml: 90] And so said Al-Hasan and Qatadah, they said: and the sin is the major one (Al-Kabeerah)(6).

---

(1) Al-Kitab 4 / 234. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1 / 171. (3) I'rab al-Qur'an for Al-Nahhas 1 / 241. (4) Ma'ani al-Qur'an 1 / 52, and it was quoted from him by the author through Al-Mawardi in An-Nukat wal-'Uyun 1 / 153. (5) Narrated by At-Tabari 2 / 180. (6) At-Tabari narrated the saying of Qatadah 2 / 179 and 183, as for the saying of Al-Hasan, Ibn Abi Hatim mentioned it in his Tafsir 1 / 251 and 253. And At-Tabari 2 / 184 narrated from the report of Sallam bin Miskin who said: A man asked Al-Hasan about his saying: "and his sin has encompassed him" and he said: We do not know what the

sin is, my son, recite the Quran, for every verse for which Allah has promised the Fire, that is the sin.

226 सूरह अल-बक़रा: आयतें 81, 82

अल्लाह तआला का फ़रमान है: {हाँ, जिसने बुराई कमाई और उसकी खता ने उसे घेर लिया, तो वही आग (नरक) वाले हैं, वे उसमें हमेशा रहेंगे। (81) और जो लोग ईमान लाए और नेक अमल किए, वही जन्नत वाले हैं, वे उसमें हमेशा रहेंगे। (82)}

इसमें तीन मसले (मुद्दे) हैं:

पहला: अल्लाह तआला का फ़रमान: {हाँ} यानी: मामला वैसा नहीं है जैसा तुमने ज़िक्र किया। सिबवैह ने कहा(1): "बला" (हाँ) और "नाम" (हाँ) दो इस्म (संज्ञा) नहीं हैं। बल्कि ये दो हर्फ़(अव्यय) हैं जैसे "बल" और दूसरे, और यह उनके इस कथन का खंडन है: {हमें आग कभी नहीं छुएगी}। कूफ़ियों ने कहा: इसका मूल "बल" है जो पहले हिस्से से हटने के लिए है, इसमें 'या' जोड़ा गया ताकि इस पर रुकना बेहतर हो, और 'या' में पुष्टि और अनुग्रह का अर्थ शामिल किया गया(2)। तो "बला" इनकार के खंडन को दर्शाता है, और 'या' बाद वाली चीज़ की पुष्टि को दर्शाता है। उन्होंने कहा: अगर कोई कहे: क्या तुमने दीनार नहीं लिया? और तुम कहो: हाँ (नाम), तो इसका अर्थ होगा: नहीं, मैंने नहीं लिया, क्योंकि तुमने निषेध और उसके बाद की बात की पुष्टि की। लेकिन अगर तुम कहो: हाँ (बला), तो अर्थ हो जाएगा: मैंने लिया है(3)। अल-फ़र्रा ने कहा(4): अगर कोई आदमी अपने साथी से कहे: मुझ पर तुम्हारा कुछ नहीं है, और दूसरा कहे: हाँ (नाम), तो यह इस बात की तस्दीक (पुष्टि) होगी कि उस पर उसका कुछ नहीं है, और अगर वह कहे: हाँ (बला), तो यह उसकी बात का खंडन होगा, और इसका मतलब होगा: हाँ, मुझ पर तुम्हारा हक है। और क़ुरआन में है: {क्या मैं तुम्हारा रब नहीं हूँ? उन्होंने कहा: "हाँ" (बला)} [अल-अराफ़: 172] अगर वे "नाम" (हाँ) कहते, तो वे काफ़िर हो जाते।

दूसरा: अल्लाह तआला का फ़रमान: {बुराई} बुराई से मुराद शिर्क है। इब्न जुरैज ने कहा: मैंने अता से पूछा: {जिसने बुराई कमाई}? उन्होंने कहा: शिर्क(5) और तिलावत की: {और जो बुराई लेकर आएगा, तो उनके चेहरे आग में औंधे गिरा दिए जाएँगे} [अन-नमल: 90] और इसी तरह हसन और क़तादा ने कहा, उन दोनों ने कहा: और खता (पाप) से मुराद कबीरा (बड़ा) गुनाह है(6)।

---

(1) अल-किताब 4 / 234। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1 / 171। (3) इराब अल-कुरान लिन-नहस 1 / 241। (4) मानी अल-कुरान 1 / 52, और लेखक ने इसे अल-मावर्दी के माध्यम से अन-नुकात वल-उयून 1 / 153 में उनसे उद्धृत किया है। (5) इसे अत-तबरी ने 2 / 180 में निकाला है। (6) अत-तबरी ने क़तादा का कथन 2 / 179 और 183 में निकाला है, जहाँ तक हसन के कथन का सवाल है,

इब्न अबी हातिम ने इसे अपनी तफ़सीर 1 / 251 और 253 में ज़िक्र किया है। और अत-तबरी 2 / 184 में सलाम बिन मिस्कीन की रिवायत से है कि उन्होंने कहा: एक आदमी ने हसन से उनके इस कथन के बारे में पूछा: "और उसकी खता ने उसे घेर लिया" तो उन्होंने कहा: हमें नहीं पता कि खता क्या है, मेरे बेटे क़ुरआन पढ़ो, हर वह आयत जिस पर अल्लाह ने आग का वादा किया है, वही खता है।

226 سورہ البقرہ: آیات 81، 82

ارشاد باری تعالیٰ ہے: {ہاں، جس نے برائی کمائی اور اس کی خطا نے اسے گھیر لیا، تو وہی آگ (جہنم) والے ہیں، وہ اس میں ہمیشہ رہیں گے۔ (81) اور جو لوگ ایمان لائے اور نیک اعمال کیے، وہی جنت والے ہیں، وہ اس میں ہمیشہ رہیں گے۔ (82)}

اس میں تین مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {بَلٰی} (ہاں) یعنی: معاملہ ایسا نہیں ہے جیسا تم نے ذکر کیا۔ سیبویہ نے کہا(1): "بلی" اور "نعم" دو اسم نہیں ہیں۔ بلکہ یہ دو حرف ہیں جیسے "بل" وغیرہ، اور یہ ان کے اس قول کی تردید ہے: {ہمیں آگ ہرگز نہیں چھوئے گی}۔ کوفیوں نے کہا: اس کی اصل "بل" ہے جو پہلے سے اعراض کے لیے ہے، اس میں 'یا' کا اضافہ کیا گیا تاکہ اس پر وقف کرنا اچھا لگے، اور 'یا' میں ایجاب (اثبات) اور انعام کا معنی شامل کر دیا گیا(2)۔ پس "بلی" انکار کی تردید پر دلالت کرتا ہے، اور 'یا' بعد والی چیز کے ایجاب پر دلالت کرتی ہے۔ انہوں نے کہا: اگر کوئی کہنے والا کہے: کیا تم نے دینار نہیں لیا؟ اور تم کہو: نعم (ہاں)، تو اس کا معنی ہوگا: نہیں، میں نے نہیں لیا، کیونکہ تم نے نفی اور اس کے بعد والی بات کی تصدیق کی۔ لیکن اگر تم کہو: بلی (ہاں)، تو معنی ہو جائے گا: میں نے لیا ہے(3)۔ الفراء نے کہا(4): جب ایک آدمی اپنے ساتھی سے کہے: مجھ پر تمہارا کچھ نہیں ہے، اور دوسرا کہے: نعم (ہاں)، تو یہ اس بات کی تصدیق ہوگی کہ اس پر اس کا کچھ نہیں ہے، اور اگر وہ کہے: بلی (ہاں)، تو یہ اس کے قول کی تردید ہوگی، اور اس کی تقدیر ہوگی: ہاں، میرا تم پر حق ہے۔ اور قرآن میں ہے: {کیا میں تمہارا رب نہیں ہوں؟ انہوں نے کہا: "بلی" (ہاں)} [الاعراف: 172] اگر وہ "نعم" کہتے تو کافر ہو جاتے۔

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {سَيِّئَةً} برائی: اس سے مراد شرک ہے۔ ابن جریج نے کہا: میں نے عطا سے پوچھا: {جس نے برائی کمائی}؟ انہوں نے کہا: شرک(5) اور تلاوت کی: {اور جو برائی لے کر آئے گا، تو ان کے چہرے آگ میں اوندھے گرا دیے جائیں گے} [النمل: 90] اور اسی طرح حسن اور قتادہ نے کہا، ان دونوں نے کہا: اور خطا سے مراد کبیرہ گناہ ہے(6)۔

---

(1) الکتاب 4 / 234۔ (2) المحرر الوجیز 1 / 171۔ (3) اعراب القرآن للنحاس 1 / 241۔ (4) معانی القرآن 1 / 52، اور اسے مصنف نے ماوردی کے واسطے سے النکت والعیون 1 / 153 میں ان سے نقل کیا ہے۔ (5) اسے طبری نے 2 / 180 میں روایت کیا ہے۔ (6) طبری نے قتادہ کا قول 2 / 179 اور 183 میں روایت کیا ہے، رہا حسن کا قول تو اسے ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1 / 251 اور 253 میں ذکر کیا ہے۔ اور طبری نے 2 / 184 میں سلام بن مسکین کی روایت سے نقل کیا کہ انہوں نے کہا: ایک آدمی نے حسن سے اللہ کے اس قول کے بارے میں پوچھا: "اور اس کی خطا نے اسے گھیر لیا" تو انہوں نے کہا: ہمیں نہیں معلوم خطا کیا ہے، اے بیٹے قرآن پڑھو، پس ہر وہ آیت جس پر اللہ نے آگ کی وعید سنائی ہے وہی خطا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 83 227

Third point: When the Almighty said: {Nay, but whosoever has done evil and his sin has surrounded him}, it indicates that something contingent on two conditions is not fulfilled (1) by the lesser of them. Similar to this is His saying, the Almighty: {Verily, those who say: 'Our Lord is Allah,' and then remain steadfast} [Fussilat: 30] (2), and the saying of peace be upon him to Sufyan bin Abdullah al-Thaqafi (3), when he said to him: 'O Messenger of Allah, tell me something about Islam which I will not ask anyone after you.' He said: "Say: 'I believe in Allah,' then remain steadfast." Narrated by Muslim (4). Discussion on this meaning and scholars' views on it has preceded under His saying, the Almighty, to Adam and Eve: {And approach not this tree, lest you be among the wrongdoers} [Al-Baqarah: 35].

Nafi' read: "khati'atuhu" in plural, while others read in singular (5), and the meaning implies abundance, like His saying, the Almighty: {And if you count the blessings of Allah, you will never be able to number them} [Ibrahim: 14].

His saying, the Almighty: {And (remember) when We took a covenant from the Children of Israel, (saying): 'Worship none but Allah (Alone) and be dutiful and good to parents, and to kindred, and to orphans and Al-Masakin (the poor), and speak good to people and perform As-Salat (Iqamat-as-Salat) and give Zakat.' Then you fell back, except a few of you, while you are backsliders.} [83]

It contains ten issues: First: His saying, the Almighty: {And (remember) when We took a covenant from the Children of Israel} - the discussion on the explanation of these terms has preceded (6).

There is a difference of opinion regarding the covenant here. Makki said: It is the covenant taken from them when they were brought out from the loins of Adam like atoms. It was also said: It is a covenant taken from them while they were sane during their lives through the tongues of their prophets, which is His saying: {Worship none but Allah} (7).

And worshiping Allah is affirming His Oneness, believing in His messengers, and acting according to what He revealed in His books.

---

(1) In (z): is divided, and in (m): is completed. (2) See Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Harrasi 1/12. (3) Al-Ta'ifi, accepted Islam with the delegation, and Umar appointed him over the charities of Ta'if, al-Isabah 4/208. (4) No. (38), and it is with Ahmad

(15416). (5) Al-Sab'ah fi al-Qira'at p. 162, and al-Taysir p. 74. (6) 1/370-371 and 2/6-7. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/172, Ibn Atiyyah weakened Makki's opinion and said: It is rather a covenant taken from them while they were sane.

सूरह अल-बक़रह: आयत 83 227

तीसरी बात: जब अल्लाह तआला ने कहा: {हाँ, जिसने बुराई कमाई और उसके पाप ने उसे घेर लिया}, तो यह इस बात का संकेत है कि जो चीज़ दो शर्तों पर टिकी हो, वह उनमें से केवल एक के पूरा होने से सिद्ध नहीं होती (1)। इसी प्रकार अल्लाह तआला का यह कथन है: {बेशक जिन लोगों ने कहा कि हमारा रब अल्लाह है, फिर वे (उस पर) डटे रहे} [फुस्सिलत: 30] (2), और सूफियान बिन अब्दुल्ला अल-सकाफी (3) के लिए नबी (स.अ.व.) का कथन है, जब उन्होंने उनसे कहा था: 'हे अल्लाह के रसूल, मुझे इस्लाम के बारे में ऐसी बात बताएं कि आपके बाद मुझे किसी से पूछने की ज़रूरत न रहे।' आपने फरमाया: "कहो: मैं अल्लाह पर ईमान लाया, फिर उस पर डटे रहो।" इसे मुस्लिम (4) ने रिवायत किया है। इस अर्थ पर और इसमें विद्वानों की क्या राय है, इस पर चर्चा पहले ही आदम और हव्वा के लिए अल्लाह तआला के इस कथन के तहत हो चुकी है: {और तुम दोनों इस वृक्ष के पास न जाना, अन्यथा तुम अत्याचारियों में से हो जाओगे} [अल-बक़रह: 35]।

नफी ने 'खतीअतिहि' को बहुवचन में पढ़ा है, जबकि अन्य ने एकवचन में (5)। इसका अर्थ अधिकता है, जैसे अल्लाह तआला का कथन है: {और यदि तुम अल्लाह की नेमतों को गिनना चाहो, तो उन्हें गिन नहीं सकोगे} [इब्राहिम: 14]।

अल्लाह तआला का कथन: {और (याद करो) जब हमने बनी इसराईल से पक्का वादा लिया (कि) अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना और माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करना और रिश्तेदारों और अनाथों और मिस्कीनों (गरीबों) के साथ भी, और लोगों से भली बात कहना और नमाज़ क़ायम करना और ज़कात देना। फिर तुम में से थोड़े लोगों के सिवा सब (वादे से) फिर गए और तुम हो ही मुँह मोड़ने वाले।} [83]

इसमें दस मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: {और जब हमने बनी इसराईल से पक्का वादा लिया} - इन शब्दों की व्याख्या पहले गुज़र चुकी है (6)।

यहाँ वादे (मीसाक) के बारे में मतभेद है। मक्की ने कहा: यह वह वादा है जो उनसे तब लिया गया था जब उन्हें आदम की पीठ से कणों के रूप में निकाला गया था। और यह भी कहा गया है: यह वह वादा है जो उनसे उनके जीवन में तब लिया गया था जब वे बुद्धिमान थे, उनके नबियों की ज़बान से, और वह अल्लाह का यह कथन है: {अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करना} (7)।

और अल्लाह की इबादत करना उसके एक होने की पुष्टि करना, उसके रसूलों को सच मानना और उसकी किताबों में जो उतारा गया है उस पर अमल करना है।

---

(1) (ज़) में: विभाजित है, और (म) में: पूर्ण है। (2) अल-किया अल-हर्रासी द्वारा 'अहकाम अल-कुरान' देखें, 1/12। (3) अल-ताइफी, प्रतिनिधिमंडल के साथ इस्लाम स्वीकार किया, और उमर ने उन्हें ताइफ के दान कार्यों पर नियुक्त किया, अल-इसाबा 4/208। (4) नंबर (38), और यह अहमद (15416) के पास है। (5) 'अस-सबआ फिल-क़िरात' पृष्ठ 162, और 'अत-तयसीर' पृष्ठ 74। (6) 1/370-371 और 2/6-7। (7) 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/172, इब्न अतिय्या ने मक्की के कथन को कमज़ोर बताया और कहा: यह वास्तव में एक ऐसा वादा है जो उनसे तब लिया गया था जब वे बुद्धिमान थे।

سورہ البقرہ: آیت 83 227

تیسری بات: جب اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {کیوں نہیں جس نے برائی کمائی اور اس کے گناہ نے اسے گھیر لیا}، تو یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ جو چیز دو شرطوں پر معلق ہو وہ ان میں سے کم از کم ایک کے پورا ہونے سے نافذ نہیں ہوتی (1)۔ اسی کی مثال اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان ہے: {بے شک وہ لوگ جنہوں نے کہا کہ ہمارا رب اللہ ہے پھر وہ (اس پر) ثابت قدم رہے} [فصلت: 30] (2)، اور حضرت سفیان بن عبداللہ الثقفی (3) کے لیے نبی اکرم ﷺ کا ارشاد ہے، جب انہوں نے آپ ﷺ سے کہا تھا: 'اے اللہ کے رسول، مجھے اسلام کے بارے میں ایسی بات بتائیں کہ آپ کے بعد مجھے کسی سے پوچھنے کی ضرورت نہ رہے۔' آپ ﷺ نے فرمایا: "کہو: میں اللہ پر ایمان لایا، پھر اس پر ثابت قدم رہو۔" اسے مسلم (4) نے روایت کیا ہے۔ اس معنی پر اور اس میں علماء کی کیا رائے ہے، اس پر گفتگو پہلے ہی آدم اور حوا کے لیے اللہ تعالیٰ کے اس فرمان کے تحت گزر چکی ہے: {اور اس درخت کے قریب نہ جانا ورنہ تم ظالموں میں سے ہو جاؤ گے} [البقرہ: 35]۔

نافع نے 'خطیئاتہ' جمع کے ساتھ پڑھا ہے، باقیوں نے واحد کے ساتھ (5)۔ اور اس کا معنی کثرت ہے، جیسے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور اگر تم اللہ کی نعمتوں کو گننا چاہو تو تم انہیں شمار نہ کر سکو گے} [ابراہیم: 14]۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور (یاد کرو) جب ہم نے بنی اسرائیل سے پختہ عہد لیا (کہ) اللہ کے سوا کسی کی عبادت نہ کرنا اور والدین کے ساتھ اچھا سلوک کرنا اور رشتہ داروں اور یتیموں اور مسکینوں کے ساتھ بھی، اور لوگوں سے اچھی بات کہنا اور نماز قائم کرنا اور زکوٰۃ دینا، پھر تم میں سے تھوڑے سے لوگوں کے سوا (سب اپنے وعدے سے) پھر گئے اور تم ہو ہی اعراض کرنے والے۔} [83]

اس میں دس مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ہم نے بنی اسرائیل سے پختہ عہد لیا} - ان الفاظ کی وضاحت پہلے گزر چکی ہے (6)۔

یہاں میثاق کے بارے میں اختلاف ہے، چنانچہ مکی نے کہا: یہ وہ میثاق ہے جو ان سے اس وقت لیا گیا تھا جب انہیں آدم کی پشت سے ذرات کی صورت میں نکالا گیا تھا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: یہ وہ میثاق ہے جو ان سے ان کی زندگی میں اس وقت لیا گیا جب وہ صاحبِ عقل تھے، ان کے انبیاء کی زبانوں سے، اور وہ اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {اللہ کے سوا کسی کی عبادت نہ کرنا} (7)۔

اور اللہ کی عبادت اس کی توحید کا اقرار کرنا، اس کے رسولوں کی تصدیق کرنا اور اس کی کتابوں میں نازل کردہ احکامات پر عمل کرنا ہے۔

---

(1) (ز) میں: 'یتجزأ' ہے، اور (م) میں: 'یتم' ہے۔ (2) دیکھیے 'احکام القرآن' للکیا الہراسی 12/1۔ (3) الطائفی، وفد کے ساتھ اسلام لائے، اور حضرت عمر نے انہیں طائف کے صدقات پر عامل مقرر کیا، الاصابہ 208/4۔ (4) نمبر (38)، اور یہ احمد (15416) کے پاس ہے۔ (5) 'السبعہ فی القراءات' صفحہ 162، اور 'التیسیر' صفحہ 74۔ (6) 370/1 - 371 اور 2/6-7۔ (7) 'المحرر الوجیز' 172/1، اور ابن عطیہ نے مکی کے قول کو ضعیف قرار دیا اور کہا: یہ تو وہ عہد ہے جو ان سے اس وقت لیا گیا جب وہ صاحبِ عقل تھے۔

Surah Al-Baqarah: Ayah 83 228

Second: The words of Allah the Almighty: {You shall not worship}. Sibawayh said(1): "{You shall not worship}" is related to an oath(2), meaning: And when we took their oath: By Allah, you shall not worship... This was also permitted by Al-Mubarrid, Al-Kisa'i, and Al-Farra'(4). Ubayy and Ibn Mas'ud read it as: "Do not worship" as a prohibition(5), and for this reason, the speech was connected to commands, as He said: "And stand", "And speak", "And establish", and "And give". It was also said: It is in the state of 'hal' (circumstantial clause), meaning: We took their covenant as monotheists, or: non-obstinate. This was also stated by Qutrub and Al-Mubarrid. This interpretation applies specifically to the reading of Ibn Kathir, Hamzah, and Al-Kisa'i: "they worship" with a 'ya' from below(6). Al-Farra', Al-Zajjaj, and a group said(7): The meaning is: We took their covenant that they should not worship except Allah, and that they should be good to parents, and that they should not shed blood. Then "an" (that) and the "ba" (preposition) were omitted, so the verb became nominative (marfu') due to their removal(8), as in His saying: {Is it other than Allah that you order me...} [Az-Zumar: 64]. Al-Mubarrid said: This is an error, because everything that is hidden in Arabic functions the same as when it is manifest. You say: "wa baladin qata'tu" (and a land I crossed), meaning: "wa rubba baladin" (and many a land). I say: It is not an error(9), but rather they are two correct aspects. Sibawayh cited regarding them(10): "O you who scold me for entering the green depths of war, and for witnessing pleasures, are you going to make me immortal?" With both accusative and nominative cases; the accusative is by implying "an", and the nominative is by omitting it. Third: The words of Allah the Almighty: {and to parents, excellence}, meaning: We commanded them to be excellent to parents. And He joined...

(1) Al-Kitab 3/106, and the author quoted it via Ibn Atiyya in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/172. (2) In (M): with an oath. (3) In (M): "istakhalafnahum" (we made them successors), with a 'kha', which is an error. (4) Ma'ani al-Quran for him 1/54. (5) Ma'ani al-Quran by Al-Farra' 1/53, and Ma'ani al-Quran by Al-Zajjaj 1/162, and Al-Qira'at Al-Shadhdhah by Ibn Khalawayh p. 7, and Al-Kashshaf 1/293, and Al-Muharrar Al-Wajiz 1/172. (6) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/172, and see Al-Sab'ah by Ibn Mujahid p. 162, and Al-Taysir by Al-Dani p. 74. (7) Ma'ani al-Quran by Al-Farra' 1/53, and Ma'ani al-Quran by Al-Zajjaj 1/162, and Al-Muharrar Al-Wajiz 1/172. (8) In (M): for their removal. (9) In (M): This is not an error. (10) Al-Kitab 3/99, and the verse is by Tarafa bin Al-Abd, found in his Diwan p. 32.

सूरह अल-बकरा: आयत 83 228

दूसरा: अल्लाह तआला का फ़रमान: ﴿ला ता'बुदून (तुम इबादत नहीं करोगे)﴾। सिबवैया ने कहा(1): "ला ता'बुदून" एक शपथ (कसम) से संबंधित है(2), और इसका अर्थ है: और जब हमने उनसे कसम ली: अल्लाह की कसम, तुम इबादत नहीं करोगे... और इसे अल-मुबर्रिद, अल-किसाई और अल-फर्रा ने भी जायज़ माना है(4)। उबई और इब्न मसूद ने इसे "ला ता'बुदू(इबादत मत करो)" निषेध (नही) के रूप में पढ़ा है(5), और इसी कारण से बात को आदेश के साथ जोड़ा गया है, जैसे उन्होंने कहा: "और खड़े हो", "और कहो", "और स्थापित करो", और "और दो"। कहा गया है: यह हाल (परिस्थिति) के स्थान पर है, यानी: हमने उनका अनुबंध एकेश्वरवादियों के रूप में लिया, या: बिना हठधर्मिता के। यह कुतरुब और अल-मुबर्रिद ने भी कहा है, और यह विशेष रूप से इब्न कसीर, हमज़ा और अल-किसाई के पाठ (क़िरात) पर आधारित है: "या'बुदून" नीचे 'या' के साथ(6)। अल-फर्रा, अल-ज़ज्जाज और एक समूह ने कहा(7): इसका अर्थ है: हमने उनसे अनुबंध लिया कि वे अल्लाह के सिवा किसी की इबादत न करें, और माता-पिता के साथ अच्छा व्यवहार करें, और रक्तपात न करें। फिर "अन" और 'बा' को हटा दिया गया, इसलिए उनके हटने के कारण क्रिया मरफू(nominative) हो गई(8), जैसे अल्लाह का फ़रमान है: ﴿क्या तुम मुझे अल्लाह के सिवा किसी और का हुक्म देते हो...﴾ [अज़-ज़ुमर: 64]। अल-मुबर्रिद ने कहा: यह गलत है; क्योंकि अरबी में जो कुछ भी छिपा (इज़मार) होता है, वह प्रकट होने की तरह ही कार्य करता है। आप कहते हैं: "व बलदिन क़तअतु", यानी: "व रब्बा बलदिन"। मैंने कहा: यह गलत नहीं है(9), बल्कि ये दो सही पहलू हैं, और उन पर सिबवैया ने यह शेर पढ़ा है(10): "ऐ मुझे युद्ध की गहराई में उतरने और सुखों का गवाह बनने के लिए डांटने वाले, क्या तू मुझे अमर कर देगा?" नसब (accusative) और रफ़अ (nominative) दोनों के साथ; नसब "अन" के अंतर्निहित होने पर है, और रफ़अ इसे हटाने पर है। तीसरा: अल्लाह तआला का फ़रमान: ﴿और माता-पिता के साथ एहसान (भलाई)﴾ यानी: और हमने उन्हें माता-पिता के साथ भलाई करने का आदेश दिया। और जोड़ा...

(1) अल-किताब 3/106, और लेखक ने इसे इब्न अतिया के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/172 में उद्धृत किया है। (2) (म) में: शपथ के साथ। (3) (म) में: "इस्तखलफ़नाहुम", 'खा' के साथ, जो कि गलत है। (4) उनके लिए मआनी अल-कुरान 1/54। (5) अल-फर्रा की मआनी अल-कुरान 1/53, और अल-ज़ज्जाज की मआनी अल-कुरान 1/162, और इब्न खलवैह की अल-किरात अल-शाज्जाह पृ. 7, और अल-कश्शाफ 1/293, और अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/172। (6) अल-मुहर्रर

अल-वजीज 1/172, और देखें इब्न मुजाहिद की अल-सबअ पृ. 162, और अल-दानी की अल-तयसीर पृ. 74। (7) अल-फर्रा की मआनी अल-कुरान 1/53, और अल-ज़ज्जाज की मआनी अल-कुरान 1/162, और अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/172। (8) (म) में: उनके हटने के कारण। (9) (म) में: यह गलत नहीं है। (10) अल-किताब 3/99, और शेर तरफा बिन अल-अब्द का है, जो उनके दीवान पृ. 32 में है।

سورة البقرہ: آیت ۸۳ ۲۲۸

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿لَا تَعْبُدُونَ﴾ سیبویہ نے کہا(۱): « لا تعبدون» قسم کے ساتھ متعلق ہے(۲)، اور معنی یہ ہے: اور جب ہم نے ان سے حلف لیا: اللہ کی قسم، تم عبادت نہیں کرو گے... اور مبرد، کسائی اور فراء نے بھی اسے جائز قرار دیا ہے(٤)۔ ابی اور ابن مسعود نے اسے «لا تعبدوا» (تم عبادت نہ کرو) بطورِ نہی (ممانعت) پڑھا ہے(٥) ، اسی لیے کلام کو امر (حکم) کے ساتھ جوڑا، پس فرمایا: «وقوموا» (اور کھڑے ہو)، اور «قولوا» (اور کہو)، اور «أقیموا» (اور قائم کرو)، اور «آتوا» (اور دو)۔ اور کہا گیا ہے: یہ حال کے مقام پر ہے، یعنی: ہم نے ان کا میثاق (عہد) اس حال میں لیا کہ وہ توحید پرست ہوں، یا: ہٹ دھرمی نہ کرنے والے ہوں، یہ قطرب اور مبرد نے بھی کہا ہے، اور یہ صرف ابن کثیر، حمزہ اور کسائی کی قرات پر صحیح بیٹھتا ہے: «یعبدون» نیچے والی 'یا' کے ساتھ(٦)۔ اور فراء، زجاج اور ایک جماعت نے کہا(۷): معنی یہ ہے: ہم نے ان سے یہ عہد لیا کہ وہ اللہ کے سوا کسی کی عبادت نہ کریں، اور والدین کے ساتھ حسنِ سلوک کریں، اور خون نہ بہائیں، پھر «أنْ» اور 'با' کو حذف کر دیا گیا، پس ان کے ہٹ جانے کی وجہ سے فعل مرفوع ہو گیا(۸)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿أَفَغَيْرَ اللَّهِ تَأْمُرُونِي﴾ [الزمر: ٦٤]۔ مبرد نے کہا: یہ غلط ہے؛ کیونکہ عربی میں جو کچھ بھی پوشیدہ (اضمار) ہوتا ہے وہ ظاہر ہونے کی طرح ہی عمل کرتا ہے۔ تم کہتے ہو: "وبلدٍ قطعتُ"، یعنی: "ورُبَّ بلدٍ"۔ میں نے کہا: یہ غلط نہیں ہے(۹)، بلکہ یہ دو درست پہلو ہیں، اور ان پر سیبویہ نے یہ شعر پڑھا ہے(۱۰): "اے مجھے میدانِ جنگ میں اترنے اور لذتوں کے مشاہدے پر ڈانٹنے والے، کیا تو مجھے ہمیشہ زندہ رکھنے والا ہے؟" نصب اور رفع کے ساتھ؛ پس نصب «أنْ» کے مضمر (پوشیدہ) ہونے پر ہے،

اور رفع اسے حذف کرنے پر ہے۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَبِالْوَالِدَيْنِ إِحْسَانًا﴾ یعنی: اور ہم نے انہیں والدین کے ساتھ حسنِ سلوک کا حکم دیا۔ اور جوڑا...

(١) الکتاب ١٠٦/٣، اور اسے مصنف نے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ١٧٢/١ میں نقل کیا ہے۔ (٢) (م) میں: قسم کے ساتھ (٣) (م) میں: "استخلفناهم"، 'خا' کے ساتھ، جو کہ غلط ہے۔ (٤) معانی القرآن ان کے نزدیک ٥٤/١۔ (٥) معانی القرآن للفراء ٥٣/١، اور معانی القرآن للزجاج ١٦٢/١، اور القراءات الشاذة لابن خالویہ ص ٧، والکشاف ٢٩٣/١، والمحرر الوجیز ١٧٢/١۔ (٦) المحرر الوجیز ١٧٢/١، اور دیکھئے السبعة لابن مجاہد ص ١٦٢، والتیسیر للدانی ص ٧٤۔ (٧) معانی القرآن للفراء ٥٣/١، اور معانی القرآن للزجاج ١٦٢/١، والمحرر الوجیز ١٧٢/١۔ (٨) (م) میں: ان کے ہٹ جانے پر۔ (٩) (م) میں: یہ غلط نہیں ہے۔ (١٠) الکتاب ٩٩/٣، اور یہ شعر طرفہ بن العبد کا ہے، جو کہ ان کے دیوان ص ٣٢ میں ہے۔

Page 229 Surah Al-Baqarah: Verse 83

Allah Almighty linked the right of parents with monotheism (Tawhid) in this verse; because the first creation is from Allah, and the second creation - which is upbringing - is from the parents. This is why the Almighty coupled gratitude to them with gratitude to Him, saying: {Be grateful to Me and to your parents} [Luqman: 14].

Benevolence (Ihsan) to parents means: treating them with kindness, being humble towards them, obeying their commands, praying for forgiveness for them after their death, and maintaining ties with those they loved, as will be explained in detail in "Al-Isra" (1), God willing.

Fourth: His words: {and kindred} - "dhi al-qurba" is coordinated with parents. "Al-qurba" means kinship, and it is a verbal noun like "al-ruj'a" (return) and "al-'uqba" (consequence) (2), meaning: We commanded them to show kindness to relatives by maintaining ties of kinship. This will be explained in Surah Al-Qital (Surah Muhammad), God willing (3).

Fifth: His words: {and orphans} - "Al-yatama" is also coordinated, and it is the plural of "yatim" (orphan), like "nadama" is the plural of "nadim" (companion). Orphanhood among humans is by the loss of the father, and among animals by the loss of the mother (4). Al-Mawardi narrated that a human is called an orphan upon the loss of the mother (5). But the first definition is what is well-known.

Its root meaning is "singularity" or "loneliness." It is said: a "yatim" boy, meaning: separated from his father. A "bayt yatim" (orphan house) in poetry is one that has nothing before or after it. A "durrah yatimah" (orphan pearl) is one that has no equal. It is also said: its root is "slowness," and the orphan is so called because kindness (birr) is slow to reach him. It is said in various verb forms (yatum, yatim) as mentioned by Al-Farra'. And "Allah made him an orphan" (6).

This indicates compassion for the orphan and encouragement to sponsor them and protect their wealth, as will be explained in "An-Nisa" (7).

---

(1) At the commentary of verses (23) and (24) of it. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/172. (3) At the commentary of his words: {Would you then, if you were given authority, spread corruption in the land and sever your ties of kinship?} [Verse: 22]. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/172. (5) The author quoted Al-Mawardi through Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/172, while in An-Nukat wal-Uyun 2/321 it says that human

orphanhood is through the death of fathers, not mothers, and animal orphanhood is through the death of mothers, not fathers. (6) See Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/141, and Tahdhib al-Lughah 14/339-340. (7) At the commentary of his words: {And give the orphans their properties and do not substitute the defective for the good} [Verse: 2].

पृष्ठ २२९ सूरा अल-बकराह: आयत ८३

अल्लाह सर्वशक्तिमान ने इस आयत में माता-पिता के अधिकार को एकेश्वरवाद (तौहीद) के साथ जोड़ा है; क्योंकि पहली रचना अल्लाह की ओर से है, और दूसरी रचना - जो पालन-पोषण है - माता-पिता की ओर से है। इसीलिए अल्लाह ने उनके प्रति कृतज्ञता को अपनी कृतज्ञता के साथ जोड़ा है, और फरमाया: {मेरा और अपने माता-पिता का आभार मान} [लुकमान: १४]।

माता-पिता के साथ भलाई (इहसान) का अर्थ है: उनके साथ अच्छा व्यवहार करना, उनके सामने विनम्र रहना, उनकी आज्ञा मानना, उनकी मृत्यु के बाद उनके लिए क्षमा की प्रार्थना करना और उनके प्रियजनों से संबंध बनाए रखना, जैसा कि इंशाअल्लाह "अल-इसरा" (१) में विस्तार से बताया जाएगा।

चौथा: अल्लाह का फरमान: {और रिश्तेदारों के साथ} - "दी अल-कुर्बा" का संबंध माता-पिता से है। "कुर्बा" का अर्थ है रिश्तेदारी, और यह एक भाववाचक संज्ञा है जैसे "रुजआ" और "उकबा" (२), अर्थात: हमने उन्हें रिश्तेदारों के साथ अच्छा व्यवहार करने और उनके साथ संबंध बनाए रखने का आदेश दिया। इंशाअल्लाह इसका वर्णन सूरा अल-क़िताल में आएगा (३)।

पांचवां: अल्लाह का फरमान: {और अनाथों (यतीमों) के साथ} - "अल-यतामा" भी संबद्ध है, और यह "यतीम" का बहुवचन है, जैसे "नदीम" का बहुवचन "नदामा" है। मनुष्यों में अनाथ होना पिता के खोने से होता है, और जानवरों में माँ के खोने से (४)। अल-मावर्दी ने उल्लेख किया है कि माँ के खोने पर भी मनुष्य को यतीम कहा जाता है (५)। लेकिन पहला अर्थ ही प्रसिद्ध है।

इसका मूल अर्थ है "अकेलापन" या "एकल"। कहा जाता है: "यतीम" लड़का, अर्थात: अपने पिता से अलग। कविता में "बेत यतीम" वह है जिसके पहले या बाद में कुछ न हो। "दुर्रह यतीमा" (यतीम मोती) वह है जिसका कोई सानी न हो। यह भी कहा गया है: इसका मूल "धीमापन" है, और यतीम को इसलिए यह नाम दिया गया क्योंकि भलाई (बिर्र) उस तक पहुँचने में धीमी होती है। अल-फर्रा ने इसके विभिन्न रूपों का उल्लेख किया है। "अल्लाह ने उसे यतीम कर दिया" (६)।

यह अनाथों के प्रति दया और उनके पालन-पोषण और उनके धन की रक्षा के लिए प्रोत्साहन को दर्शाता है, जैसा कि "अन-निसा" (७) में बताया जाएगा।

---

(१) इसकी आयत (२३) और (२४) की व्याख्या में। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७२। (३) अल्लाह के इस कथन की व्याख्या में: {क्या तुम से यह भी अपेक्षित है कि यदि तुम्हें अधिकार मिल जाए तो तुम

धरती में बिगाड़ पैदा करो और अपने नातों-रिश्तों को काट डालो?} [आयत: २२]। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७२। (५) लेखक ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७२ में इब्न अतिया के माध्यम से अल-मावर्दी का हवाला दिया है, जबकि अन-नुकत वल-उयून २/३२१ में यह है कि मनुष्यों का यतीम होना पिता की मृत्यु से है न कि माताओं की, और जानवरों का यतीम होना माताओं की मृत्यु से है न कि पिताओं की। (६) देखें अल-फर्रा की मानी अल-कुरान १/१४१, और तहजीब अल-लुगह १४/३३९-३४०। (७) अल्लाह के इस कथन की व्याख्या में: {और अनाथों को उनके माल दे दो और अच्छी चीज़ के बदले बुरी चीज़ न लो} [आयत: २]।

صفحہ ۲۲۹ سورہ البقرہ: آیت ۸۳

اللہ عزوجل نے اس آیت میں والدین کے حق کو توحید کے ساتھ جوڑا ہے؛ کیونکہ پہلی نشوونما (پیدائش) اللہ کی طرف سے ہے، اور دوسری نشوونما - جو کہ تربیت ہے - والدین کی طرف سے ہے۔ اسی لیے اللہ تعالیٰ نے ان کا شکر اپنے شکر کے ساتھ ملایا اور فرمایا: ﴿أَنِ اشْكُرْ لِي وَلِوَالِدَيْكَ﴾ [لقمان: ۱۴] (کہ میرا اور اپنے ماں باپ کا شکر ادا کر)۔

اور والدین کے ساتھ احسان سے مراد ہے: ان کے ساتھ اچھے طریقے سے رہنا، ان کے سامنے عاجزی کرنا، ان کے حکم کی تعمیل کرنا، ان کی وفات کے بعد ان کے لیے مغفرت کی دعا کرنا، اور ان کے دوستوں اور پیاروں سے تعلق قائم رکھنا، جیسا کہ ان شاء اللہ "الاسراء" (۱) میں اس کی تفصیل آئے گی۔

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَذِي الْقُرْبَى﴾ یہاں 'ذی القربی' کا عطف والدین پر ہے۔ 'القربی' کے معنی قرابت (رشتہ داری) کے ہیں، اور یہ مصدر ہے جیسے 'الرجعی' اور 'العقبی' (۲)، یعنی: ہم نے انہیں حکم دیا کہ وہ اپنے رشتہ داروں کے ساتھ صلہ رحمی کر کے ان کے ساتھ احسان کریں۔ ان شاء اللہ سورہ قتال میں اس کا بیان آئے گا (۳)۔

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَالْيَتَمَى﴾ الیتامیٰ کا بھی عطف ہے، اور یہ یتیم کی جمع ہے، جیسے ندیم کی جمع ندامیٰ ہے۔ انسانوں میں یتیم ہونا باپ کے مرنے سے ہوتا ہے، اور چوپایوں میں ماں کے مرنے سے (۴)۔ ماوردی نے نقل کیا ہے کہ انسانوں میں ماں کے مرنے پر بھی یتیم کہا جاتا ہے (۵)۔ لیکن پہلی بات ہی مشہور و معروف ہے۔

اس کا اصل معنی 'تنہائی' یا 'اکیلے پن' کے ہیں۔ کہا جاتا ہے: یتیم لڑکا، یعنی جو اپنے باپ سے جدا ہو گیا ہو۔ اور 'بیت یتیم' (شعر کا یتیم بیت) وہ ہے جس سے پہلے یا بعد میں کوئی شعر نہ ہو۔ 'درہ یتیمہ' وہ موتی جس کی کوئی مثال نہ ہو۔ ایک قول یہ ہے کہ اس کی اصل 'سستی' ہے، اور یتیم کا نام اس لیے رکھا گیا کیونکہ نیکی اور بھلائی اس تک پہنچنے میں سستی (تاخیر) کرتی ہے۔ فراء نے اس کے دو صیغے (يَتُمَ، يَتِمَ) ذکر کیے ہیں۔ اور اللہ نے اسے یتیم کر دیا (۶)۔

یہ یتیم پر شفقت کرنے، اس کی کفالت کرنے اور اس کے مال کی حفاظت کرنے کی ترغیب دیتا ہے، جیسا کہ "النساء" (۷) میں اس کا بیان آئے گا۔

---

(۱) اس کی آیات (۲۳) اور (۲۴) کی تفسیر میں۔ (۲) المحرر الوجیز ۱۷۲/۱۔ (۳) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی تفسیر میں: ﴿فَهَلْ عَسَيْتُمْ إِن تَوَلَّيْتُمْ أَن تُفْسِدُوا فِي الْأَرْضِ وَتُقَطِّعُوا أَرْحَامَكُمْ﴾ [آیت: ۲۲]۔ (۴) المحرر الوجیز ۱۷۲/۱۔ (۵) مصنف نے ماوردی کا قول ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/۱۷۲ میں نقل کیا ہے، جبکہ النکت والعیون ۲/۳۲۱ میں ہے کہ انسانوں کا یتیم ہونا ماؤں کے بجائے باپوں کی موت سے ہے، اور چوپایوں کا یتیم ہونا باپوں کے بجائے ماؤں کی موت سے ہے۔ (۶) دیکھیے معانی القرآن للفراء ۱۴۱/۱، اور تہذیب اللغۃ ۱۴/۳۳۹-۳۴۰۔ (۷) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی تفسیر میں: ﴿وَءَاتُوا الْيَتَمَى أَمْوَالَهُمْ وَلَا تَتَبَدَّلُوا الْخَبِيثَ بِالطَّيِّبِ﴾ [آیت: ۲]۔

230 Surah Al-Baqarah: Ayah 83

And the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "The one who takes care of an orphan, whether he is related to him or not, I and he will be like these two in Paradise." Malik pointed with his index and middle fingers. Narrated by Abu Hurairah, and recorded by Muslim (1).

Imam Al-Hafiz Abu Muhammad Abd al-Ghani bin Saeed recorded from the Hadith of Al-Hasan bin Dinar Abu Saeed Al-Basri - who is Al-Hasan bin Wasil - who said: Al-Aswad bin Abd al-Rahman narrated to us, from Hiddan, from Abu Musa Al-Ash'ari, from the Prophet (peace and blessings be upon him), who said: "No orphan sits with a group of people at their food bowl such that Satan would come near their bowl" (2).

He also recorded from the Hadith of Husain bin Qais - who is Abu Ali al-Rahabi - from Ikrima, from Ibn Abbas, who said: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "Whoever takes an orphan from among two Muslims into his food and drink until Allah, the Almighty, makes him independent, his sins are definitely forgiven, unless he commits a sin that is not forgiven. And whoever Allah takes away his two noble things [eyes], and he remains patient and seeks reward, his sins are forgiven." They asked: "What are his two noble things?" He said: "His two eyes. And whoever has three daughters or three sisters, and spends on them and treats them well until they marry or die, his sins are definitely forgiven, unless he commits a sin that is not forgiven." A man from the Bedouins among those who migrated called out and said: "O Messenger of Allah, or even two?" The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "Or even two." When Ibn Abbas narrated this Hadith, he would say: "By Allah, this is among the choicest (3) and most radiant (4) of Hadiths."

---

(1) Number (2983), and it is in Ahmad (8881) with the addition: "if he fears Allah." His saying: Malik: he is Ibn Anas the Imam, and they both recorded it through his chain. (2) Recorded by Al-Tabarani in Al-Awsat (7161), Ibn Adi in Al-Kamil (2/714), and Al-Khatib Al-Baghdadi in 'Mawdi' Awham al-Jam' wa al-Tafriq' (1/549). Its narrator Al-Hasan bin Dinar is spoken about; Ibn Adi said: The consensus of those who spoke about the narrators is on his weakness, though I have not seen a Hadith of his that exceeds the limit of rejection, and he is closer to weakness than to truth. End. Al-Mundhiri graded the Hadith as good (Hasan) in 'Al-Targhib wa al-Tarhib' (3/32), and Al-Haythami in 'Majma' al-Zawa'id' (8/60). (3) In the manuscripts and (M): "Ghara'ib" (strange), and what is established is from the sources of Hadith. (4) Husain bin Qais - who is Abu Ali al-Rahabi, and his nickname is Hanash, the narrator of the Hadith - is

abandoned (Matruk), as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in 'Taqrib al-Tahdhib'. However, the Hadith has a sound origin. Al-Harith recorded it in full in 'Zawa'id' (903), Abu Ya'la (2457), and Al-Tabarani in Al-Kabir (11542). Al-Tirmidhi recorded the first part of it (1917) and said: Husain bin Qais is weak according to the people of Hadith. And his saying: "Whoever takes an orphan from among two Muslims..." has a sound origin in Muslim from the Hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him), and the author mentioned it recently. On this topic, there are narrations from Malik bin Al-Harith and Malik bin Amr in Ahmad (19025) and (19030).

२३० सूरह अल-बकरा: आयत ८३

और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "यतीम (अनाथ) की कफ़ालत (देखभाल) करने वाला, चाहे वह उसका अपना (रिश्तेदार) हो या कोई और, मैं और वह जन्नत में इन दो (उँगलियों) की तरह होंगे।" मालिक ने तर्जनी और मध्यमा उँगली से इशारा किया। इसे अबू हुरैरा ने रिवायत किया है, और मुस्लिम (१) ने इसे संकलित किया है।

इमाम अल-हाफ़िज़ अबू मुहम्मद अब्द अल-गनी बिन सईद ने अल-हसन बिन दीनार अबू सईद अल-बसरी - जो अल-हसन बिन वासिल हैं - की हदीस से रिवायत किया है कि: हमें अल-अस्वद बिन अब्द अल-रहमान ने बताया, हिद्दान से, उन्होंने अबू मूसा अल-अशअरी से, उन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से, कि आपने फ़रमाया: "कोई यतीम किसी कौम के साथ उनके खाने के बर्तन पर नहीं बैठता कि शैतान उनके बर्तन के करीब आए" (२)।

उन्होंने हुसैन बिन क़ैस - जो अबू अली अल-रहबी हैं - की हदीस से इकरामा के माध्यम से इब्न अब्बास से भी रिवायत किया है कि: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "जिसने दो मुसलमानों के बीच से एक यतीम को अपने खाने और पीने में शामिल किया यहाँ तक कि अल्लाह उसे आत्मनिर्भर बना दे, तो उसके गुनाह निश्चित रूप से माफ कर दिए जाते हैं, बशर्ते कि वह ऐसा कोई काम न करे जो माफ न किया जा सके। और जिसे अल्लाह ने उसकी दो कीमती चीज़ों [आँखों] से महरूम कर दिया, और उसने सब्र किया और सवाब की उम्मीद रखी, तो उसके गुनाह माफ कर दिए जाते हैं।" लोगों ने पूछा: "उसकी दो कीमती चीज़ें क्या हैं?" आपने फ़रमाया: "उसकी दोनों आँखें। और जिसकी तीन बेटियाँ या तीन बहनें हों, और वह उन पर खर्च करे और उनके साथ अच्छा व्यवहार करे यहाँ तक कि वे शादी कर लें या मर जाएँ तो उसके गुनाह निश्चित रूप से माफ कर दिए जाते हैं, बशर्ते कि वह ऐसा कोई काम न करे जो माफ न किया जा सके।" हिजरत करने वाले बद्दूओं में से एक आदमी ने पुकार कर कहा: "ऐ अल्लाह के रसूल, या दो हों?" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "या दो हों।" इब्न अब्बास जब भी यह हदीस बयान करते, तो कहते: "अल्लाह की कसम, यह बेहतरीन (३) और चमकदार (४) हदीसों में से है।"

---

(१) नंबर (२९८३), और यह अहमद (८८८१) में इस वृद्धि के साथ है: "यदि वह अल्लाह से डरे।" उनका कहना: 'मालिक': वे इमाम इब्न अनस हैं, और उन दोनों ने इसे उनके माध्यम से संकलित किया है। (२) इसे अल-तबरानी ने 'अल-औसत' (७१६१) में, इब्न अदी ने 'अल-कामिल' (२/७१४) में,

और अल-खतीब अल-बगदादी ने रिवायत किया है। इसके रावी अल-हसन बिन दीनार के बारे में चर्चा है; इब्न अदी ने कहा: रावी विज्ञान के जानकारों का उनकी कमजोरी पर आम सहमति है, हालांकि मैंने उनकी ऐसी कोई हदीस नहीं देखी जो अस्वीकार्यता की सीमा पार कर गई हो, और वे सच्चाई की तुलना में कमजोरी के अधिक करीब हैं। मुन्धिरी ने 'अल-तर्गीब वल-तर्हीब' (३/३२) में और हैथमी ने 'मजमा अल-ज़वाइद' (८/६०) में इस हदीस को 'हसन' (अच्छा) माना है। (३) पांडुलिपियों और (एम) में: "ग़राब" (अजीब), और जो प्रमाणित है वह हदीस के स्रोतों से है। (४) हुसैन बिन क़ैस - जो अबू अली अल-रहबी हैं, और उनका उपनाम हनश है, हदीस के रावी - 'मतरूक' (परित्यक्त) हैं, जैसा कि अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने 'तक़रीब अल-तहज़ीब' में उल्लेख किया है। हालाँकि, हदीस का मूल सही है। इसे अल-हारिस (९०३), अबू याला (२४५७), और अल-तबरानी (११५४२) ने पूर्ण रूप से उद्धृत किया है। तिरमिज़ी ने इसका पहला भाग (१९१७) उद्धृत किया और कहा: हुसैन बिन क़ैस हदीस वालों के यहाँ कमजोर हैं। और उनका यह कहना: "जिसने दो मुसलमानों के बीच से एक यतीम को..." इसका सही मूल मुस्लिम में अबू हुरैरा की हदीस से मिलता है। इस विषय में मालिक बिन अल-हारिस और मालिक बिन अम्र से अहमद (१९०२५) और (१९०३०) में भी रिवायतें हैं।

۲۳۰ سورہ البقرہ: آیت ۸۳

اور رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "یتیم کی کفالت کرنے والا، خواہ وہ اس کا اپنا (رشتہ دار) ہو یا کوئی اور، میں اور وہ جنت میں ان دو (انگلیوں) کی طرح ہوں گے۔" مالک نے شہادت کی اور درمیان والی انگلی سے اشارہ کیا۔ اسے ابوہریرہ نے روایت کیا، اور مسلم (۱) نے اسے نکالا ہے۔

امام الحافظ ابو محمد عبد الغنی بن سعید نے الحسن بن دینار ابو سعید البصری - جو الحسن بن واصل ہیں - کی حدیث سے روایت کیا ہے کہ: ہمیں الاسود بن عبد الرحمن نے بتایا، انہوں نے ہضان سے، انہوں نے ابو موسیٰ الاشعری سے، انہوں نے نبی صلی اللہ علیہ وسلم سے، کہ آپ نے فرمایا: "کوئی یتیم کسی قوم کے ساتھ ان کے کھانے کے برتن پر نہیں بیٹھتا کہ شیطان ان کے برتن کے قریب آ سکے" (۲)۔

انہوں نے حسین بن قیس - جو ابو علی الرحبی ہیں - کی حدیث سے عکرمہ کے واسطے سے ابن عباس سے بھی روایت کیا ہے کہ: رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "جس نے دو مسلمانوں کے درمیان سے ایک یتیم کو اپنے کھانے اور پینے میں شامل کیا یہاں تک کہ اللہ اسے غنی (خود کفیل) کر دے، تو اس کے گناہ یقینی طور پر معاف کر دیے جاتے ہیں، سوائے اس کے کہ وہ ایسا کوئی عمل کرے جو معاف نہ کیا جا سکے۔ اور جس کی اللہ نے دو پیاری چیزیں [آنکھیں] لے لیں، اور اس نے صبر کیا اور ثواب کی امید رکھی، تو اس کے گناہ معاف کر دیے جاتے ہیں۔" لوگوں نے پوچھا: "اس کی دو پیاری چیزیں کیا ہیں؟" آپ نے فرمایا: "اس کی دونوں آنکھیں۔ اور جس کی تین بیٹیاں یا تین بہنیں ہوں، اور وہ ان پر خرچ کرے اور ان کے ساتھ حسن سلوک کرے یہاں تک کہ وہ جدا ہو جائیں (شادی کر لیں) یا مر جائیں، تو اس کے گناہ یقینی طور پر معاف کر دیے جاتے

ہیں، سوائے اس کے کہ وہ ایسا کوئی عمل کرے جو معاف نہ کیا جا سکے۔" ہجرت کرنے والے اعرابیوں (دیہاتیوں) میں سے ایک شخص نے پکار کر کہا: "اے اللہ کے رسول، یا دو ہوں؟" رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "یا دو ہوں۔" ابن عباس جب بھی یہ حدیث بیان کرتے تو کہتے: "اللہ کی قسم، یہ بہترین (۳) اور روشن (۴) احادیث میں سے ہے۔"

---

(۱) نمبر (۲۹۸۳)، اور یہ احمد (۸۸۸۱) میں اس اضافے کے ساتھ ہے: "جب وہ اللہ سے ڈرے۔" ان کا قول 'مالک': وہ امام ابن انس ہیں، اور ان دونوں نے اسے ان کے واسطے سے نکالا ہے۔ (۲) اسے طبرانی نے 'الاوسط' (۷۱۶۱) میں، ابن عدی نے 'الکامل' (۲/۷۱۴) میں، اور خطیب بغدادی نے روایت کیا ہے۔ اس کے راوی الحسن بن دینار کے بارے میں کلام ہے؛ ابن عدی نے کہا: راویوں پر کلام کرنے والوں کا ان کے ضعف پر اتفاق ہے، اگرچہ میں نے ان کی ایسی کوئی حدیث نہیں دیکھی جو حد سے زیادہ منکر ہو، اور وہ سچائی کی نسبت ضعف کے زیادہ قریب ہیں۔ منذری نے 'الترغیب والترہیب' (۳/۳۲) میں اور ہیثمی نے 'مجمع الزوائد' (۸/۶۰) میں اسے حسن قرار دیا ہے۔ (۳) قلمی نسخوں اور (م) میں: "غرائب" ہے، اور جو ثابت ہے وہ حدیث کے مصادر سے ہے۔ (۴) حسین بن قیس - جو ابو علی الرحبی ہیں، اور ان کا لقب حنش ہے، حدیث کے راوی - متروک ہیں، جیسا کہ حافظ ابن حجر نے 'تقریب التہذیب' میں ذکر کیا ہے۔ لیکن حدیث کی اصل صحیح ہے۔ اسے الحارث (۹۰۳)، ابو یعلی (۲۴۵۷)، اور طبرانی (۱۱۵۴۲) نے مکمل روایت کیا ہے۔ ترمذی نے اس کا پہلا حصہ (۱۹۱۷) روایت کیا اور کہا: حسین بن قیس محدثین کے نزدیک ضعیف ہیں۔ اور ان کا قول: "جس نے دو مسلمانوں کے درمیان سے ایک یتیم کو..." اس کی اصل صحیح مسلم میں ابوہریرہ کی حدیث سے موجود ہے۔ اس باب میں مالک بن الحارث اور مالک بن عمرو سے احمد (۱۹۰۲۵) اور (۱۹۰۳۰) میں بھی روایات ہیں۔

231 Surah Al-Baqarah: Verse 83

Sixth: The 'Sabbabah' among the fingers: It is the one following the thumb. In the pre-Islamic period (Jahiliyyah), it was called 'As-Sabbabah' (the slanderer/insulter) because they used it to insult. When Allah brought Islam, they disliked this name and called it 'Al-Mushirah' (the pointer) because they used it to point to Allah in monotheism (1). It is also called 'As-Sabbahah' (the glorifier), a naming found in the Hadith of Wa'il ibn Hujr and others (2), but the language continued with what it knew in Jahiliyyah, and that prevailed.

It was narrated concerning the fingers of the Messenger of Allah ﷺ that the pointing finger (Al-Mushirah) among them was longer than the middle finger, then the middle finger was shorter than it, then the ring finger (Al-Binsir) was shorter than the middle finger. Yazid ibn Harun narrated: Abdullah ibn Miqsam At-Ta'ifi told us, saying: My paternal aunt Sarah bint Miqsam told me that she heard Maymunah bint Kardam saying: I went out on a Hajj that the Messenger of Allah ﷺ performed, and I saw the Messenger of Allah ﷺ on his mount (3). My father asked him about things, and I remember myself as a young girl marveling at the length of his finger next to the thumb over his other fingers (4). His ﷺ saying (5): "He and I are like these two in..."

= And his saying: "Whoever Allah takes away his two precious ones..." Narrated similarly by Ibn Hibban (2920) with the wording: "Allah Blessed and Exalted says: 'If I take the two precious things of My servant and he is patient and seeks reward, I am not satisfied with any reward for him less than Paradise.'" Also narrated from Anas (may Allah be pleased with him) by Ahmad (14021) and Al-Bukhari (5653).

And his saying: "Whoever has three daughters..." It has an authentic basis in the Hadith of Anas in Ahmad (12498) and Muslim (2631), and Uqbah ibn Amir in Ahmad (17403), and Ibn Majah (3669). The wording of Muslim's Hadith is: "Whoever supports two girls until they reach maturity, he and I will come on the Day of Resurrection..." and he joined his fingers.

(1) In (Kh), (Z), and (Zha): "bit-Tawhid" (with monotheism). (2) Narrated by Ibn Khuzaymah in his Sahih (713), containing: "He began pointing with the 'Sabbahah' supplicating." Narrated by Ahmad in Al-Musnad (586) from the Hadith of Ali (may Allah be pleased with him) from the Prophet ﷺ that he said: "The Messenger of Allah ﷺ forbade me from putting my ring on this 'Sabbahah'." (3) In (Zha): "Rahilah" (mount). (4) May Allah forgive the author for including this report without verification; he took it from Al-Hakim At-Tirmidhi in Nawadir Al-Usul 1/38-39 among what he

quoted regarding this sixth issue. This Hadith - despite its weakness due to the anonymity of Sarah bint Miqsam - explicitly states that this was in his noble foot ﷺ. For the wording in Ahmad (27064) is: "I did not forget, among what I forgot, the length of his second toe (Sabbabah) over his other toes." Its wording in At-Tabarani's 'Al-Kabir' 25/(75) is: "The finger following the thumb had an excess in length over the thumb." At-Tabarani said after it: "Meaning in the foot." Al-Haythami mentioned it in Al-Majma' 8/280 and said: "It contains people I do not know." (5) In (D) and (Z): "bi qawlihi" (by his saying), which is an error.

231 सूरह अल-बक़रह: आयत 83

छठा: उंगलियों में 'सब्बाबाह' (तर्जनी): यह वह उंगली है जो अंगूठे के बगल में होती है। जाहिलियत (इस्लाम पूर्व काल) में इसे 'सब्बाबाह' (गाली देने वाली) कहा जाता था; क्योंकि वे इसका उपयोग अपशब्द कहने के लिए करते थे। जब अल्लाह ने इस्लाम को भेजा, तो उन्होंने इस नाम को नापसंद किया और इसका नाम 'अल-मुशीराह' (संकेत करने वाली) रखा; क्योंकि वे तौहीद (एकेश्वरवाद) में अल्लाह की ओर इशारा करने के लिए इसका उपयोग करते थे (1)। इसे 'अस-सब्बाहा' (महिमा गान करने वाली) भी कहा जाता है, वैल बिन हुज्र और अन्य की हदीस (2) में यह नाम आया है, लेकिन भाषा उसी के साथ आगे बढ़ी जिसे वह जाहिलियत में जानती थी, इसलिए वही नाम प्रचलित रहा।

और अल्लाह के रसूल ﷺ की उंगलियों के बारे में वर्णित है कि उनमें से मुशीराह (तर्जनी) बीच वाली उंगली से लंबी थी, फिर बीच वाली उंगली उससे छोटी थी, फिर बिनसिर (अनामिका) बीच वाली उंगली से छोटी थी। यज़ीद बिन हारून ने रिवायत किया कि अब्दुल्लाह बिन मिक़्सम अल-ताइफ़ी ने हमें बताया: मेरी चाची सारा बिन्त मिक़्सम ने मुझे बताया कि उन्होंने मैमूना बिन्त करदम को यह कहते सुना: मैं एक हज में निकली जिसमें अल्लाह के रसूल ﷺ ने हज किया था, और मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को उनकी सवारी पर देखा (3)। मेरे पिता ने उनसे कुछ चीजों के बारे में पूछा, और मुझे याद है कि मैं एक बच्ची के रूप में अंगूठे के बगल वाली उंगली की लंबाई को उनकी अन्य उंगलियों पर देखकर आश्चर्यचकित थी (4)। उनका ﷺ कहना (5): "मैं और वह इन दो की तरह हैं..."

= और उनका कहना: "जिसकी दो कीमती चीज़ें अल्लाह ने ले लीं..." इब्न हिब्बान (2920) ने इसी तरह रिवायत किया और उसके शब्द हैं: "अल्लाह बरकत वाला और बुलंद फरमाता है: जब मैं अपने बंदे की दो कीमती चीजें ले लेता हूँ, और वह धैर्य रखता है और पुण्य की आशा करता है, तो मैं उसके लिए जन्नत से कम किसी इनाम से संतुष्ट नहीं होता।" और अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से अहमद (14021) और बुखारी (5653) के पास इस विषय में हदीस है।

और उनका कहना: "जिसकी तीन बेटियां हों..." इसका अहमद (12498) में अनस की हदीस और मुस्लिम (2631) से एक सही आधार है, और अहमद (17403) में उकबा बिन आमिर से, और इब्न माजह (3669) से। मुस्लिम की हदीस के शब्द हैं: "जिसने दो लड़कियों का पालन-पोषण किया जब तक कि वे बड़ी न हो जाएं कयामत के दिन मैं और वह आएंगे" और उन्होंने अपनी उंगलियों को मिला लिया।

(1) (ख), (ज़) और (ज़ा) में: "तौहीद के साथ"। (2) इब्न खुज़ैमा ने अपनी सहीह (713) में इसे उद्धृत किया है, और इसमें है: "और उन्होंने सब्बाहा के साथ इशारा करना शुरू किया, दुआ मांगते हुए।" और अहमद ने अल-मुसनद (586) में अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से नबी ﷺ से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने मुझे इस सब्बाहा में अपनी अंगूठी पहनने से मना किया। (3) (ज़ा) में: "राहीला" (सवारी)। (4) अल्लाह लेखक को बिना पुष्टि के इस रिपोर्ट को शामिल करने के लिए क्षमा करें, क्योंकि उन्होंने इसे अल-हाकिल अत-तिरमिज़ी से नवादिर अल-उसूल 1/38-39 में उद्धृत किया है। यह हदीस - सारा बिन्त मिक़्सम की गुमनामी के कारण अपनी कमज़ोरी के बावजूद - स्पष्ट रूप से बताती है कि यह उनके मुकद्दस पैरों ﷺ में था। क्योंकि अहमद (27064) में इसके शब्द हैं: "मैं नहीं भूली, जो कुछ मैं भूली, उनके पैरों की दूसरी उंगली (सब्बाबाह) की लंबाई उनकी अन्य उंगलियों पर।" और 'अल-कबीर' 25/(75) में तब्रानी के शब्द हैं: "अंगूठे के बाद वाली उंगली की लंबाई अंगूठे से अधिक थी।" तब्रानी ने इसके बाद कहा: "यानी पैर में।" और अल-हैथमी ने अल-मजमा 8/280 में इसे शामिल किया और कहा: "इसमें ऐसे लोग हैं जिन्हें मैं नहीं जानता।" (5) (द) और (ज़) में: "बि क़ौलिहि" (उनके कहने से), जो कि एक गलती है।

۲۳۱ سورہ البقرہ : آیت ۸۳

چھٹی بات: انگلیوں میں سے 'سبَّابہ' (شہادت کی انگلی): یہ وہ انگلی ہے جو انگوٹھے کے ساتھ ہوتی ہے۔ زمانہ جاہلیت میں اسے 'سبَّابہ' (گالی دینے والی) کہا جاتا تھا؛ کیونکہ وہ اس کے ذریعے گالیاں دیتے تھے۔ پھر جب اللہ نے اسلام بھیجا تو انہوں نے اس نام کو ناپسند کیا اور اس کا نام 'المشیرہ' (اشارہ کرنے والی) رکھا؛ کیونکہ وہ اس کے ذریعے توحید میں اللہ کی طرف اشارہ کرتے تھے(۱)۔ اسے 'السبَّاحہ' (تسبیح کرنے والی) بھی کہا جاتا ہے، وائل بن حجر وغیرہ کی حدیث(۲) میں اس نام کا تذکرہ آیا ہے، لیکن زبان اسی پر چلی جو جاہلیت میں جانی جاتی تھی، چنانچہ وہی نام غالب آگیا۔

اور رسول اللہ ﷺ کی انگلیوں کے بارے میں روایت کیا گیا ہے کہ ان میں سے 'مشیرہ' (شہادت کی انگلی) درمیانی انگلی سے لمبی تھی، پھر درمیانی انگلی اس سے چھوٹی تھی، پھر 'بِنصر' (انگوٹھے سے چوتھی انگلی) درمیانی انگلی سے چھوٹی تھی؛ یزید بن ہارون نے روایت کیا، انہوں نے کہا: ہمیں عبداللہ بن مِقسم الطائفی نے بتایا، انہوں نے کہا: مجھے میری پھوپھی سارہ بنتِ مِقسم نے بتایا کہ انہوں نے میمونہ بنت کَرْدَم سے سنا، وہ کہتی تھیں: میں ایک ایسے حج میں نکلی جس میں رسول اللہ ﷺ نے حج کیا تھا، تو میں نے رسول اللہ ﷺ کو اپنی سواری پر دیکھا(۳)، اور میرے والد نے آپ ﷺ سے کچھ چیزوں کے بارے میں پوچھا، تو میں نے اپنے آپ کو دیکھا کہ میں ایک بچی ہونے کی حالت میں آپ ﷺ کی اس انگلی کی لمبائی پر تعجب کر رہی تھی جو انگوٹھے کے ساتھ والی ہے، کہ وہ باقی انگلیوں سے لمبی تھی(٤)۔ چنانچہ آپ ﷺ کا قول (٥): "میں اور وہ ان دو کی طرح ہیں..."

= اور ان کا یہ قول: "جس سے اللہ نے اس کی دو محبوب چیزیں (آنکھیں) لے لیں..." ابن حبان (٢٩٢٠) نے اسی طرح کی روایت کی ہے اور اس کے الفاظ یہ ہیں: "اللہ تبارک و تعالیٰ فرماتا ہے: جب میں اپنے بندے کی دو محبوب چیزیں لے لیتا ہوں، اور وہ صبر و احتساب سے کام لیتا ہے، تو میں اس کے لیے جنت سے کم کسی ثواب پر راضی نہیں ہوتا۔" اور اس باب میں حضرت انس رضی اللہ عنہ سے احمد (١٤٠٢١) اور بخاری (٥٦٥٣) کے ہاں روایت موجود ہے۔

اور ان کا یہ قول: "جس کی تین بیٹیاں ہوں..." اس کی صحیح اصل احمد (١٢٤٩٨) میں حضرت انس کی حدیث سے ہے، اور مسلم (٢٦٣١) میں، اور احمد (١٧٤٠٣) میں عقبہ بن عامر سے، اور ابن ماجہ (٣٦٦٩) میں، اور مسلم کی حدیث کے الفاظ ہیں: "جس نے دو بچیوں کی پرورش کی یہاں تک کہ وہ بلوغت کو پہنچ جائیں، وہ اور میں قیامت کے دن اس طرح آئیں گے" اور آپ ﷺ نے اپنی انگلیوں کو ملا لیا۔

(١) (خ)، (ز) اور (ظ) میں: "بالتوحيد" (توحید کے ساتھ) ہے۔ (٢) ابن خزیمہ نے اپنی صحیح (٧١٣) میں اس کی تخریج کی ہے، اور اس میں ہے: "اور آپ ﷺ سبَّاحہ (شہادت کی انگلی) سے اشارہ کرنے لگے دعا مانگتے ہوئے۔" اور احمد نے مسند (٥٨٦) میں حضرت علی رضی اللہ عنہ کی حدیث سے نبی ﷺ سے روایت کیا ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "رسول اللہ ﷺ نے مجھے اس سبَّاحہ (شہادت کی انگلی) میں انگوٹھی پہننے سے منع فرمایا۔" (٣) (ظ) میں: "راحلة" ہے۔ (٤) اللہ مصنف کو معاف کرے کہ انہوں نے اس روایت کو بغیر تحقیق کے ذکر کر دیا، انہوں نے اسے الحکیم الترمذی سے 'نوادر الاصول' ١/ ٣٨-٣٩ میں ان باتوں کے ذیل میں نقل کیا ہے جو انہوں نے اس چھٹے مسئلے میں ان سے نقل کی ہیں۔ اور یہ حدیث - سارہ بنت مقسم کی جہالت (نا معلوم ہونے) کی وجہ سے اپنی کمزوری کے باوجود - اس میں صراحت ہے کہ یہ آپ ﷺ کے مبارک قدم میں تھا، چنانچہ احمد (٢٧٠٦٤) کے ہاں اس کے الفاظ یہ ہیں: "میں نہیں بھولی ان چیزوں میں جو

میں بھول گئی ہوں، آپ ﷺ کے پاؤں کی شہادت والی انگلی کی لمبائی باقی انگلیوں پر۔" اور طبرانی کے ہاں 'الکبیر' ۲۵/ (۷۵) میں اس کے الفاظ ہیں: "اور آپ ﷺ کی وہ انگلی جو انگوٹھے کے ساتھ والی ہے، اسے لمبائی میں انگوٹھے پر فضیلت حاصل تھی۔" طبرانی نے اس کے بعد کہا: "یعنی پاؤں میں۔" اور ہیثمی نے اسے 'المجمع' ۸/ ۲۸۰ میں ذکر کیا اور کہا: "اس میں ایسے لوگ ہیں جنہیں میں نہیں جانتا۔" (۵) (د) اور (ز) میں: "بقوله" ہے، جو کہ غلط ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 83 232

...Paradise"(1), and his saying in another hadith: "I, Abu Bakr, and Umar will be gathered on the Day of Resurrection like this," and he gestured with his three fingers. He only meant to mention the high positions and overseeing of creation, so he said: "We will be gathered like this and we will be overlookers"(2). Similarly, the one who sponsors an orphan will have a high status. So, whoever does not know the nature of the fingers of the Messenger of Allah ﷺ would interpret the hadith as joining and approaching each other in the place of closeness. This is a far-fetched meaning; because the statuses of the Messengers, Prophets, Truthful ones, Martyrs, and Righteous ones are distinct ranks and different stations(3). Seventh: The Almighty's saying: {and the needy}: "The needy" (al-masakin) is also a conjunction, meaning: and We commanded them to show kindness to the needy, who are those whom need has settled and humiliated(4). This includes encouraging charity, consolation, and checking on the conditions of the needy and the weak(5). Muslim narrated from Abu Hurairah, from the Prophet ﷺ who said: "One who strives on behalf of the widow and the poor is like those who strive in the way of Allah" and I think he said: "and like the one who stands in prayer without tiring, and the one who fasts without breaking it"(6). Ibn al-Mundhir said: Tawus used to see striving for one's sisters as better than Jihad in the way of Allah. Eighth: The Almighty's saying: {and speak to people good words}: "Husnan" (goodness) is in the accusative case as a verbal noun (masdar) based on the meaning; because the meaning is: let your speech be good. It was said: the estimation is: and say to people a word possessing goodness; so it is a verbal noun not based on the [direct] meaning(7). Hamza and al-Kisa'i recited it as "hasanan," with a fatha on the letter 'ha'.

Footnotes: (1) Mentioned previously soon. (2) Mentioned by the author of al-Kanz (32697) and attributed to al-Hakim al-Tirmidhi from Ibn Umar. The author cited the hadith from al-Hakim al-Tirmidhi among what he cited in the sixth issue. Adh-Dhahabi mentioned something similar in Mizan al-I'tidal 2/388-389, and its wording is: "I will be gathered on the Day of Resurrection between Abu Bakr and Umar until I stand between the two Harams, then the people of Makkah and Madinah will come to me." Its narrator is Abdullah bin Ibrahim al-Ghaffari. Adh-Dhahabi said: Ibn Hibban attributed to him that he fabricates hadiths. Ibn Adi said: Most of what he narrates is not followed, and al-Daraqutni said: His hadith is munkar (rejected). (3) Nawadir al-Usul 1/38-39. (4) In (m): humbled them. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/172. (6) Sahih Muslim (2982), and also narrated by Ahmad (8732) and al-Bukhari (6007). It appeared

in (kh), (d), and (zha): "one does not tire from prayer one does not break fast," and in (m): "one does not tire and like the one who fasts and does not break it." This is the wording of Muslim. The confirmed text is from (z). (7) Ma'ani al-Qur'an by al-Zajjaj 1/164, and Mushkil I'rab al-Qur'an by Makki 1/102.

सूरह अल-बकरा: आयत 83 232

...जन्नत"(1), और दूसरी हदीस में उनका कथन है: "मैं, अबू बक्र और उमर कयामत के दिन इस तरह इकट्ठा किए जाएंगे," और उन्होंने अपनी तीन उंगलियों से इशारा किया। उनका इरादा केवल ऊंचे पदों और सृष्टि की देखरेख का उल्लेख करना था, इसलिए उन्होंने कहा: "हम इस तरह इकट्ठा किए जाएंगे और हम उच्च स्थानों पर होंगे"(2)। इसी तरह, अनाथ की देखभाल करने वाले का दर्जा भी ऊंचा होगा। तो, जो कोई अल्लाह के रसूल ﷺ की उंगलियों की स्थिति को नहीं जानता, वह हदीस की व्याख्या निकटता के स्थान पर एक-दूसरे के करीब आने के रूप में करेगा। यह एक दूर का अर्थ है; क्योंकि रसूलो, नबियों, सिद्दीकीनों, शहीदों और नेक लोगों के मकाम अलग-अलग दर्जे और विभिन्न स्थान हैं(3)। सातवीं बात: अल्लाह तआला का फरमान: {और मिसकीनों के साथ}: "मिसकीन" भी एक संयोजन (conjunction) है, जिसका अर्थ है: और हमने उन्हें मिसकीनों के साथ उपकार करने का आदेश दिया, ये वे लोग हैं जिन्हें ज़रूरत ने बेबस और अपमानित कर दिया है(4)। इसमें दान, सांत्वना और मिसकीनों और कमज़ोरों की स्थिति जानने का प्रोत्साहन शामिल है(5); मुस्लिम ने अबू हुरैरा से रिवायत किया है कि पैगंबर ﷺ ने कहा: "विधवा और गरीब की मदद के लिए दौड़-धूप करने वाला अल्लाह की राह में जिहाद करने वाले के समान है" और मेरा ख्याल है कि उन्होंने यह भी कहा: "और उस व्यक्ति के समान जो बिना थके नमाज़ पढ़ता है, और उस रोज़ेदार के समान जो रोज़ा नहीं तोड़ता"(6)। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: ताऊस अपनी बहनों के लिए दौड़-धूप करने को अल्लाह की राह में जिहाद से बेहतर समझते थे। आठवीं बात: अल्लाह तआला का फरमान: {और लोगों से अच्छी बात कहो}: "हुस्नन्" (अच्छाई) अर्थ के आधार पर मस्तर (verbal noun) के रूप में नसब (accusative) में है; क्योंकि अर्थ है: तुम्हारी बात अच्छी होनी चाहिए। और कहा गया है: अनुमान यह है: और लोगों से अच्छाई वाली बात कहो; तो यह अर्थ के आधार पर मस्तर नहीं है(7)। हमज़ा और अल-किसाई ने इसे "हसनन्" पढ़ा है, 'हा' पर फत्हा के साथ।

पाद टिप्पणियाँ: (1) इसका उल्लेख पहले आ चुका है। (2) इसे अल-कंज के लेखक (32697) ने उद्धृत किया है और इब्न उमर से अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी की ओर जिम्मेदार ठहराया है। लेखक ने अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी से हदीस को उन बातों में उद्धृत किया है जो उन्होंने छठे मुद्दे में उद्धृत की थीं। अज़-ज़हबी ने मिज़ान अल-इतिदाल 2/388-389 में इसी तरह का उल्लेख किया है और इसके शब्द हैं: "मैं कयामत के दिन अबू बक्र और उमर के बीच इकट्ठा किया जाऊंगा यहाँ तक कि मैं दो हरमों के बीच खड़ा हो जाऊँगा, फिर मक्का और मदीना के लोग मेरे पास आएंगे।" इसके

वर्णनकर्ता अब्दुल्ला बिन इब्राहिम अल-ग़फ़्फ़ारी हैं। अज़-ज़हबी ने कहा: इब्न हिब्बान ने उनके बारे में कहा कि वह हदीस गढ़ते हैं। इब्न अदी ने कहा: वह जो कुछ भी वर्णन करते हैं उसका पालन नहीं किया जाता है, और अल-दाराकुतनी ने कहा: उनकी हदीस मुनकर (अस्वीकार्य) है। (3) नवादिर अल-उसूल 1/38-39। (4) (म) में: उन्हें ज़लील कर दिया। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/172। (6) सहीह मुस्लिम (2982), और इसे अहमद (8732) और बुखारी (6007) ने भी निकाला है। (ख), (द) और (ज़) में आया है: "नमाज़ से थकता नहीं रोज़ा नहीं तोड़ता," और (म) में: "थकता नहीं और उस रोज़ेदार की तरह जो रोज़ा नहीं तोड़ता।" यह मुस्लिम के शब्द हैं। (ज़) से पुष्ट किया गया। (7) मआनी अल-कुरान अज़-ज़ज्जाज 1/164, और मुश्किल इराब अल-कुरान अज़-मक्की 1/102।

سورہ البقرہ : آیت ۸۳ ۲۳۲

...جنت"(۱)، اور آپ کا دوسری حدیث میں قول ہے: "میں، ابوبکر اور عمر قیامت کے دن اس طرح اٹھائے جائیں گے" اور آپ نے اپنی تین انگلیوں سے اشارہ فرمایا۔ آپ کا مقصد صرف منازل اور مخلوق پر شرف کا ذکر کرنا تھا، چنانچہ فرمایا: "ہم اس طرح اٹھائے جائیں گے کہ ہم بلند مرتبے والے ہوں گے"(۲)، اور اسی طرح یتیم کی کفالت کرنے والے کا مقام بلند ہوگا۔ پس جس نے رسول اللہ ﷺ کی انگلیوں کی شان کو نہ سمجھا اس نے حدیث کی تاویل قربت کی جگہ میں ایک دوسرے کے ساتھ ملنے اور قریب ہونے پر محمول کی۔ اور یہ ایک بعید معنی ہے؛ کیونکہ رسولوں، نبیوں، صدیقین، شہداء اور صالحین کے منازل الگ الگ مراتب اور مختلف مقامات ہیں(۳)۔ ساتویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: {والمساکین}: "المساکین" کا عطف بھی ہے، یعنی: اور ہم نے انہیں مسکینوں کے ساتھ احسان کرنے کا حکم دیا، اور یہ وہ لوگ ہیں جنہیں ضرورت نے بے بس اور ذلیل کر دیا ہے (۴)۔ اور یہ صدقہ، غم خواری اور مسکینوں اور کمزوروں کے حالات کی خبر گیری پر ابھارنے کو شامل ہے(۵)؛ مسلم نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا، انہوں نے نبی کریم ﷺ سے، آپ نے فرمایا: "بیوہ اور مسکین کی خاطر تگ و دو کرنے والا اللہ کی راہ میں جہاد کرنے والے کی طرح ہے" اور میرا خیال ہے کہ آپ نے یہ بھی فرمایا: "اور اس قیام کرنے والے کی طرح جو تھکتا نہیں، اور اس روزہ دار کی طرح جو افطار نہیں کرتا (یعنی مسلسل روزے رکھتا ہے)"(۶)۔ ابن المنذر نے کہا: طاؤس بہنوں کی خاطر تگ و دو کرنے کو اللہ کی راہ میں جہاد سے افضل سمجھتے تھے۔ آٹھویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: {وقولوا للناس حسناً} "حُسناً" معنی کے اعتبار سے مصدر ہونے کی بنا پر منصوب ہے؛ کیونکہ معنی یہ ہے: تمہاری بات اچھی ہونی چاہیے۔ اور کہا گیا ہے: تقدیر (پوشیدہ عبارت) یہ ہے: اور لوگوں سے اچھی بات کہو؛ پس یہ

معنی کے اعتبار سے مصدر نہیں ہے(۷)۔ حمزہ اور کسائی نے اسے "حَسناً" پڑھا ہے، حاء کے فتحہ (زبر) کے ساتھ۔

حواشی: (۱) اس کا ذکر قریب ہی گزر چکا ہے۔ (۲) اسے صاحب کنز (۳۲۶۹۷) نے روایت کیا اور اسے ابن عمر سے حکیم ترمذی کی طرف منسوب کیا، اور مصنف نے حکیم ترمذی سے یہ حدیث ان چیزوں کے ضمن میں نقل کی ہے جو انہوں نے چھٹے مسئلے میں نقل کی ہیں، اور ذہبی نے میزان الاعتدال ۳۸۸/۲-۳۸۹ میں اس کی مثل ذکر کیا ہے اور اس کے الفاظ یہ ہیں: "میں قیامت کے دن ابوبکر اور عمر کے درمیان اٹھایا جاؤں گا یہاں تک کہ میں دونوں حرموں کے درمیان کھڑا ہوں گا، پھر اہل مکہ اور اہل مدینہ میرے پاس آئیں گے" اور اس کے راوی عبداللہ بن ابراہیم الغفاری ہیں۔ ذہبی نے کہا: ابن حبان نے ان کی طرف منسوب کیا کہ وہ حدیثیں گھڑتے ہیں، اور ابن عدی نے کہا: وہ جو کچھ روایت کرتے ہیں اس کی متابعت نہیں کی جاتی، اور دارقطنی نے کہا: ان کی حدیث منکر ہے۔ (۳) نوادر الاصول ۳۸/۱-۳۹۔ (۴) (م) میں: انہیں ذلیل کر دیا۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۷۲/۱۔ (۶) صحیح مسلم (۲۹۸۲)، اور اسے احمد (۸۷۳۲) اور بخاری (۶۰۰۷) نے بھی نکالا ہے۔ اور (خ)، (د) اور (ظ) میں واقع ہوا: "نماز سے تھکتا نہیں، روزہ نہیں توڑتا"، اور (م) میں: "تھکتا نہیں اور اس روزہ دار کی طرح جو افطار نہیں کرتا"۔ اور یہی مسلم کے الفاظ ہیں۔ اور (ز) سے ثابت ہے۔ (۷) معانی القرآن للزجاج ۱۶۴/۱، اور مشکل اعراب القرآن لمکی ۱۰۲/۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 83 233

and the Seen(1). Al-Akhfash said: They are with the same meaning; like al-bukhl and al-bakhal (stinginess), and al-rushd and al-rashad (guidance)(2). Al-Akhfash narrated: "Husna" without tanween on the form of Fu'la(3). Al-Nahhas said: This is not permissible in Arabic; nothing is said in this form except with the definite article (Al-), like al-fudla, al-kubra, and al-husna; this is the opinion of Sibawayh. Isa bin Umar read it as: "husunan" with two dammas; like al-hulum(4). Ibn Abbas said: The meaning is: say to them: There is no god but Allah, and command them with it. Ibn Jurayj said: Speak the truth to people regarding the matter of Muhammad ﷺ and do not change his description. Sufyan al-Thawri: Command them to do good and forbid them from evil. Abu al-'Aliyah: Say to them what is good of speech, and converse with them in the best manner you would like to be conversed with(5). All of this is an encouragement to noble character(6). It is necessary for a person that their speech to people be gentle and their face cheerful and open with both the righteous and the wicked, the follower of the Sunnah and the innovator, without compromise (in faith), and without speaking to them in a way that suggests agreement with their doctrine; because Allah Almighty said to Moses and Aaron: {And speak to him with gentle speech} [Taha: 44]. The speaker is not better than Moses and Aaron; and the wicked is not more evil than Pharaoh, and yet Allah Almighty commanded them to be gentle with him. Talhah bin Umar said(7): I said to Ata: You are a man around whom people of various inclinations gather, and I am a man in whom there is harshness, so I say some harsh words to them; he said: Do not do that, Allah Almighty says: {And speak to people good words}. Jews and Christians were included in this verse, so what about the Hanifi (Muslim)?!

(1) Al-Sab'ah fi al-Qira'at by Ibn Mujahid p. 162, and al-Taysir by al-Dani p. 74. (2) Ma'ani al-Qur'an by al-Akhfash 1/308-309. (3) Abu Hayyan attributed it in al-Bahr 1/285 to Abi and Talhah bin Musarrif, and it is an irregular (shadhdhah) reading. (4) I'rab al-Qur'an 1/241, and it is also an irregular reading. (5) In (d) and (m): and reward them with the best you would like to be rewarded with, and what is established is from (z) which corresponds to what is in al-Muharrar al-Wajiz. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173, and al-Tabari included the previous statements in his Tafsir 2/197, and Ibn Khalawayh mentioned the reading of husunan (with two dammas) in al-Qira'at al-Shadhdhah p. 7. (7) Thus in the copies and (m), and we do not know him, perhaps he is Talhah bin Amr al-Hadrami, for he narrates from Ata. See Tahdhib al-Tahdhib 2/242.

सूरह अल-बकराह: आयत 83 233

और सीन(1)। अल-अखफश ने कहा: वे एक ही अर्थ के साथ हैं; जैसे 'अल-बुख्ल' और 'अल-बखल' (कंजूसी), और 'अल-रुश्द' और 'अल-रशद' (सही रास्ता)(2)। अल-अखफश ने वर्णन किया: बिना तनवीन के"हुस्ना" 'फुअला' के रूप पर(3)। अल-नहस ने कहा: अरबी में यह जायज़ नहीं है; इस रूप में कुछ भी नहीं कहा जाता है सिवाय 'अल-' (निश्चित लेख) के साथ, जैसे 'अल-फुदला', 'अल-कुबरा', और 'अल-हुस्ना'; यह सिबवैह का मत है। ईसा बिन उमर ने इसे पढ़ा: "हुसुनन" दो दम्मा के साथ; जैसे 'अल-हुलुम'(4)। इब्न अब्बास ने कहा: इसका अर्थ है: उनसे कहो: अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है, और उन्हें इसका आदेश दो। इब्न जुरैज ने कहा: लोगों से मुहम्मद ﷺ के मामले में सच कहो और उनके गुण को मत बदलो। सुफ़यान अल-थौरी: उन्हें भलाई का आदेश दो और बुराई से रोको। अबू अल-आलिया: उनसे अच्छी बात कहो, और उनसे उस बेहतरीन तरीके से बातचीत करो जिससे तुम चाहते हो कि तुमसे बातचीत की जाए(5)। यह सब महान चरित्र के प्रति प्रोत्साहन है(6)। एक व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि लोगों के साथ उसकी बातचीत कोमल हो और उसका चेहरा नेक और पापी, सुन्नत के अनुयायी और नवाचारी दोनों के साथ प्रसन्न और खुला हो, बिना किसी समझौते (ईमान में) के, और उनसे इस तरह से बात किए बिना जिससे उनके सिद्धांत के साथ सहमति का संकेत मिले; क्योंकि अल्लाह तआला ने मूसा और हारून से कहा: {और उससे कोमल वाणी में बात करना} [ताहा: 44]। बोलने वाला मूसा और हारून से बेहतर नहीं है; और दुष्ट फ़िरऔन से अधिक बुरा नहीं है, और फिर भी अल्लाह तआला ने उन्हें उसके साथ कोमल होने का आदेश दिया। तलहा बिन उमर ने कहा(7): मैंने अता से कहा: आप एक ऐसे व्यक्ति हैं जिनके पास विभिन्न झुकाव वाले लोग इकट्ठा होते हैं, और मैं एक ऐसा व्यक्ति हूँ जिसमें कठोरता है, इसलिए मैं उनसे कुछ कठोर शब्द कहता हूँ; उन्होंने कहा: ऐसा मत करो, अल्लाह तआला कहता है: {और लोगों से अच्छी बात कहो}। इस आयत में यहूदी और ईसाई शामिल थे, तो हनीफ़ी (मुस्लिम) के बारे में क्या?!

(1) इब्न मुजाहिद द्वारा 'अस-सबअह फ़ि अल-क़िरात' पृ. 162, और अल-दानी द्वारा 'अत-तयसीर' पृ. 74। (2) अल-अखफश द्वारा 'मआनी अल-कुरान' 1/308-309। (3) अबू हयान ने 'अल-बहर' 1/285 में इसे अबी और तलहा बिन मुसर्रिफ को जिम्मेदार ठहराया, और यह एक अनियमित (शाद) पाठ है। (4) 'इराब अल-कुरान' 1/241, और यह भी एक अनियमित पाठ है। (5) (द) और (म) में: और उन्हें सबसे अच्छे के साथ पुरस्कृत करें जिसके साथ आप पुरस्कृत होना चाहते हैं, और जो स्थापित है वह (ज़) से है जो 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' में है उसके अनुरूप है। (6) 'अल-मुहर्रर अल-

वजीज़' 1/173, और अल-तबरी ने अपने तफ़सीर 2/197 में पिछले बयानों को शामिल किया, और इब्न खलवैह ने 'अल-किरात अल-शाद' पृ. 7 में 'हुसुनन' (दो दम्मा के साथ) के पाठ का उल्लेख किया। (7) प्रतियों और (म) में इस प्रकार, और हम उसे नहीं जानते, शायद वह तलहा बिन अम्र अल-हदरमी है, क्योंकि वह अता से वर्णन करता है। देखिए 'तहज़ीब अत-तहज़ीब' 2/242।

سورہ البقرہ : آیت ۸۳ ۲۳۳

اور سین(۱)۔ الاخفش نے کہا: یہ دونوں ایک ہی معنی میں ہیں؛ جیسے 'البُخْل' اور 'البَخَل' (کنجوسی)، اور 'الرُّشْد' اور 'الرَّشَد' (ہدایت/سمجھ)(۲)۔ اور الاخفش نے یہ بھی نقل کیا: "حُسْنَی" بغیر تنوین کے 'فُعْلَی' کے وزن پر(۳)۔ النحاس نے کہا: یہ عربی میں جائز نہیں ہے؛ اس وزن پر کوئی لفظ نہیں بولا جاتا سوائے اس کے کہ اس پر 'الف لام' (معرفہ) داخل ہو، جیسے 'الفُضْلَی'، 'الکُبْرَی' اور 'الحُسْنَی'؛ یہ سیبویہ کا قول ہے۔ عیسیٰ بن عمر نے اسے "حُسُنًا" (دو پیشوں کے ساتھ) پڑھا؛ جیسے 'الحُلُم'(۴)۔ ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: معنی یہ ہے کہ ان سے کہو: اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں، اور انہیں اس کا حکم دو۔ ابن جُرَیج: لوگوں سے محمد ﷺ کے معاملے میں سچ کہو اور ان کی صفت کو نہ بدلو۔ سفیان ثوری: انہیں نیکی کا حکم دو اور برائی سے روکو۔ ابو العالیہ: ان سے اچھی بات کہو، اور ان سے اس بہترین طریقے سے گفتگو کرو جس سے تم چاہتے ہو کہ تم سے گفتگو کی جائے(۵)۔ یہ سب مکارم اخلاق پر ترغیب ہے(۶)۔ چنانچہ انسان کے لیے ضروری ہے کہ لوگوں کے ساتھ اس کی گفتگو نرم ہو اور اس کا چہرہ نیک و بد، سنی اور بدعتی سب کے ساتھ کشادہ اور ہنس مکھ ہو، بغیر کسی مداہنت (دینی سمجھوتے) کے، اور بغیر اس کے کہ ان سے ایسی گفتگو کرے جس سے وہ سمجھیں کہ وہ ان کے مذہب سے راضی ہے؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ نے موسیٰ اور ہارون علیہما السلام سے فرمایا: {پس تم دونوں اس سے نرم بات کہنا} [طہٰ: ۴۴]۔ پس بات کرنے والا موسیٰ اور ہارون سے بہتر نہیں ہے اور گناہ گار فرعون سے زیادہ خبیث نہیں ہے، پھر بھی اللہ تعالیٰ نے ان دونوں کو اس کے ساتھ نرمی کا حکم دیا۔ اور طلحہ بن عمر(۷) نے کہا: میں نے عطا سے کہا: آپ ایک ایسے شخص ہیں جن کے پاس مختلف خواہشات اور نظریات رکھنے والے لوگ جمع ہوتے ہیں، اور میں ایک ایسا شخص ہوں جس میں کچھ سختی ہے،

تو میں ان سے کچھ سخت کلامی کر دیتا ہوں؛ تو انہوں نے کہا: ایسا نہ کرو، اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: {اور لوگوں سے اچھی بات کہو}۔ پس اس آیت میں یہودی اور نصرانی (عیسائی) بھی داخل ہیں، تو ایک موحد (حنیفی) کے بارے میں کیا خیال ہے؟!

(۱) السبعۃ فی القراءات لابن مجاہد ص ۱۶۲، اور التیسیر للدانی ص ۷۴۔ (۲) معانی القرآن للاخفش ۱/ ۳۰۹-۳۰۸۔ (۳) ابو حیان نے البحر ۱/ ۲۸۵ میں اسے ابی اور طلحہ بن مصرف کی طرف منسوب کیا ہے، اور یہ شاذ قرات ہے۔ (۴) اعراب القرآن ۱/ ۲۴۱، اور یہ بھی ایک شاذ قرات ہے۔ (۵) (د) اور (م) میں ہے: "اور انہیں اس کا بہترین بدلہ دو جس سے تم چاہتے ہو کہ تمہیں بدلہ دیا جائے"، اور جو متن میں ثابت ہے وہ (ز) سے ہے، جو 'المحرر الوجیز' کے مطابق ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/ ۱۷۳، اور طبری نے اپنی تفسیر ۲/ ۱۹۷ میں سابقہ اقوال کی تخریج کی ہے، اور ابن خالویہ نے 'القراءات الشاذہ' ص ۷ میں 'حُسُنًا' (دو پیشوں کے ساتھ) کی قرات کا بھی ذکر کیا ہے۔ (۷) نسخوں اور (م) میں اسی طرح ہے، اور ہم انہیں نہیں جانتے؛ شاید یہ طلحہ بن عمرو الحضرمی ہوں، کیونکہ وہ عطا سے روایت کرتے ہیں۔ دیکھیے تہذیب التہذیب ۲/ ۲۴۲۔

234 Surah Al-Baqarah: Verse 83

It was narrated from the Prophet ﷺ that he said to Aisha: "Do not be foul-mouthed, for if obscenity were a man, he would be an evil man"(1). And it was said: By "people" he meant Muhammad ﷺ; as in His saying: "Or do they envy people for what Allah has given them of His bounty?" [An-Nisa: 54], so it is as if he said: Say good things to the Prophet (2) ﷺ. Al-Mahdawi narrated from Qatadah that His saying: "And speak to people good words" is abrogated by the Verse of the Sword (3). Abu Nasr Abd al-Rahim narrated it from Ibn Abbas; Ibn Abbas said: This verse was revealed in the beginning, then the Verse of the Sword abrogated it (4). Ibn Atiyyah (5) said: This indicates that this nation was addressed with such wording at the beginning of Islam, but as for the news about the Children of Israel and what they were commanded, there is no abrogation in it, and Allah knows best. Ninth: His saying: "And establish prayer and give zakah," previous discussion on it was mentioned (6). And the address is to the Children of Israel. Ibn Atiyyah (7) said: Their zakah was what they used to put down, and fire would descend upon what was accepted (8), and it would not descend upon what was not accepted, and it was not like the zakah of the nation of Muhammad ﷺ. I say: This needs a transmission, as was established regarding the spoils of war.

---

(1) His quote: "Do not be foul-mouthed" was similarly recorded by Ahmad in Al-Musnad (25924), and Muslim (2165): (11), and its wording is: "Do not be obscene," and that was because when the Jews said to the Messenger of Allah ﷺ: "As-Sam 'alaykum" (Death be upon you), Aisha said to them: "Rather, death and blame be upon you." And his quote: "For indeed obscenity..." was recorded by Al-Tabarani in Al-Awsat (333), and in Al-Saghir (674). In the chain of Al-Awsat: Muhammad ibn Rushdayn, Ahmad ibn Salih called him a liar in what Ibn Adi narrated from him in Al-Kamil 1/201, then Ibn Adi said about him: I rejected things from what he narrated, and he is among those whose hadith is written despite his weakness. In the chain of Al-Saghir: Ibn Lahi'ah, and he is soft, as Al-Haythami mentioned in Al-Majma' 8/27. Perhaps the hadith becomes good (hasan) with these two narrations. It has a third path with Al-Tayalisi (1495) which is not encouraging, as its chain includes Talhah ibn Amr ibn Uthman, and he is abandoned (matruk) as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Taqrib al-Tahdhib. (2) Mentioned by Al-Wahidi in Al-Wasit 1/167 from Ibn Abbas. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (4) See Majma' al-Bayan 1/336. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (6) 1/253, 2/22 onwards. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (8) In (m): accepted.

२३४ सूरह अल-बकराह: आयत ८३

पैगंबर ﷺ से रिवायत है कि उन्होंने आयशा से कहा: "अश्लील मत बनो, क्योंकि अगर अश्लीलता एक आदमी होती, तो वह एक बुरा आदमी होता"(१)। और कहा गया है: 'लोग' से उनका मतलब मुहम्मद ﷺ था; जैसा कि उनके इस कथन में है: "या वे लोगों से उस पर ईर्ष्या करते हैं जो अल्लाह ने उन्हें अपने अनुग्रह से दिया है?" [अन-निसा: ५४], तो ऐसा है जैसे उन्होंने कहा: पैगंबर ﷺ से अच्छी बातें कहो (२)। अल-महदवी ने कतादाह से रिवायत की है कि उनका कथन: "और लोगों से अच्छी बात कहो" तलवार की आयत (आयत-उस-सैफ) द्वारा निरस्त (मन्सूख) है (३)। अबू नस्र अब्द अल-रहीम ने इसे इब्न अब्बास से रिवायत किया है; इब्न अब्बास ने कहा: यह आयत शुरुआत में उतरी थी, फिर तलवार की आयत ने इसे निरस्त कर दिया (४)। इब्न अतिय्या (५) ने कहा: यह इस बात का संकेत है कि इस उम्मत को इस्लाम की शुरुआत में इस तरह के शब्दों के साथ संबोधित किया गया था, लेकिन जहां तक बनी इसराइल के बारे में खबर और उन्हें जो आदेश दिया गया था, उसमें कोई निरसन नहीं है, और अल्लाह बेहतर जानता है। नौवां: उनका कहना: "और नमाज़ कायम करो और ज़कात दो," इस पर पिछली चर्चा का उल्लेख किया गया है (६)। और संबोधन बनी इसराइल के लिए है। इब्न अतिय्या (७) ने कहा: उनकी ज़कात वह थी जिसे वे नीचे रख देते थे, और जो स्वीकार कर ली जाती थी उस पर आग उतरती थी (८), और जो स्वीकार नहीं की जाती थी उस पर नहीं उतरती थी, और यह मुहम्मद ﷺ की उम्मत की ज़कात की तरह नहीं थी। मैं कहता हूँ: इसके लिए एक प्रमाण की आवश्यकता है, जैसा कि युद्ध के माल (ग़नीमत) के संबंध में सिद्ध हुआ था।

---

(१) उनका उद्धरण: "अश्लील मत बनो" अहमद ने अल-मुसनद (२५९२४) में और मुस्लिम (२१६५): (११) में इसी तरह दर्ज किया है, और इसके शब्द हैं: "अश्लील मत बनो," और वह इसलिए था क्योंकि जब यहूदियों ने अल्लाह के रसूल ﷺ से कहा: "अस-साम अलैकुम" (तुम्हें मौत आए), तो आयशा ने उनसे कहा: "बल्कि, तुम्हें मौत और धिक्कार आए।" और उनका उद्धरण: "क्योंकि वास्तव में अश्लीलता..." अल-तबरानी ने अल-अवसत (३३३) और अल-सगीर (६७४) में दर्ज किया है। अल-अवसत की श्रृंखला में: मुहम्मद बिन रुश्दैन, अहमद बिन सालेह ने उन्हें झूठा कहा है जैसा कि इब्न अदी ने अल-कामिल १/२०१ में उनसे रिवायत किया है, फिर इब्न अदी ने उनके बारे में कहा: मैंने उनके द्वारा रिवायत की गई कुछ चीज़ों को खारिज कर दिया, और वह उन लोगों में से हैं जिनकी हदीस उनकी कमजोरी के बावजूद लिखी जाती है। अल-सगीर की श्रृंखला में: इब्न लहियाह, और वह कमजोर हैं, जैसा कि अल-हैथमी ने अल-मजमा ८/२७ में उल्लेख किया है। शायद इन दो रिवायतों के

साथ हदीस अच्छी (हसन) हो जाती है। अल-तयालिसी (१४९५) के पास इसका तीसरा रास्ता है जो उत्साहजनक नहीं है, क्योंकि इसकी श्रृंखला में तल्हा बिन अम्र बिन उस्मान शामिल है, और वह परित्यक्त (मतरूक) है जैसा कि अल-हाफिज इब्न हजर ने तकरीब अल-तहजीब में उल्लेख किया है। (२) अल-वाहिदी ने इब्न अब्बास से अल-वासीत १/१६७ में इसका उल्लेख किया है। (३) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१७३। (४) मजमा अल-बयान १/३३६ देखें। (५) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१७३। (६) १/२५३, २/२२ और आगे। (७) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१७३। (८) (म) में: स्वीकार किया गया।

۲۳۴ سورة البقره : آیت ۸۳

نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ ﷺ نے عائشہؓ سے فرمایا: «بد زبان نہ بنو، کیونکہ اگر بدزبانی کوئی مرد ہوتا تو وہ ایک برا آدمی ہوتا»(۱)۔ اور کہا گیا: لوگوں سے مراد محمد ﷺ ہیں؛ جیسے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿ أَمْ يَحْسُدُونَ النَّاسَ عَلَىٰ مَا آتَاهُمُ اللَّهُ مِن فَضْلِهِ﴾ [النساء: ۵۴] (یا کیا وہ لوگوں سے اس پر حسد کرتے ہیں جو اللہ نے انہیں اپنے فضل سے دیا ہے؟)، تو گویا آپ نے فرمایا: نبی ﷺ سے بھلی بات کہو(۲)۔ اور مہدوی نے قتادہ سے نقل کیا ہے کہ اللہ کا قول: ﴿ وَقُولُوا لِلنَّاسِ حُسْناً﴾ (اور لوگوں سے بھلی بات کہو) تلوار والی آیت سے منسوخ ہے(۳)۔ اور اسے ابو نصر عبد الرحیم نے ابن عباس سے نقل کیا ہے؛ ابن عباس نے کہا: یہ آیت شروع میں نازل ہوئی تھی، پھر اسے تلوار والی آیت نے منسوخ کر دیا(۴)۔ ابن عطیہ(۵) نے کہا: اور یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ اس امت کو اسلام کے شروع میں اس طرح کے لفظ سے مخاطب کیا گیا تھا، رہا بنی اسرائیل کے بارے میں خبر اور جس کا انہیں حکم دیا گیا تھا، تو اس میں کوئی نسخ نہیں ہے، واللہ اعلم۔ نویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَآتُوا الزَّكَاةَ ﴾ (اور نماز قائم کرو اور زکوٰۃ دو) اس کے بارے میں گفتگو پہلے گزر چکی ہے(۶)۔ اور خطاب بنی اسرائیل سے ہے۔ ابن عطیہ(۷) نے کہا: اور ان کی زکوٰۃ وہ تھی جسے وہ رکھ دیتے تھے، پھر جو قبول کر لی جاتی اس پر آگ نازل ہوتی تھی(۸)، اور جو قبول نہ کی جاتی اس پر نازل نہیں ہوتی تھی، اور وہ امت محمد ﷺ کی زکوٰۃ کی طرح نہیں تھی۔ میں کہتا ہوں: اور اس کے لیے نقل کی ضرورت ہے، جیسا کہ غنیمتوں میں یہ ثابت ہے۔

---

(۱) ان کا قول: «لا تكوني فحّاشة» (بد زبان نہ بنو) اسے احمد نے مسند (۲۵۹۲۴) میں اور مسلم (۲۱۶۵) : (۱۱) میں اسی طرح روایت کیا ہے، اور اس کے الفاظ ہیں: «لا تكوني فاحشة»، اور وہ اس لیے کہ جب یہودیوں نے رسول اللہ ﷺ سے کہا: السام علیک (تم پر موت ہو)، تو عائشہؓ نے ان

سے کہا: بلکہ تم پر موت اور ملامت ہو۔ اور ان کا قول: «فإن الفحش...» (کیونکہ بد زبانی...) اسے طبرانی نے «الاوسط» (۳۳۳) میں اور صغیر (۶۷۴) میں روایت کیا ہے۔ اور اوسط کی سند میں: محمد بن رشدین ہے، اسے احمد بن صالح نے جھوٹا کہا ہے جیسا کہ ابن عدی نے الکامل ۱/۲۰۱ میں اس سے نقل کیا ہے، پھر ابن عدی نے اس کے بارے میں کہا: میں نے اس کی مرویات میں سے کچھ چیزوں کا انکار کیا ہے، اور وہ ان لوگوں میں سے ہے جن کی حدیث لکھی جاتی ہے باوجود اس کے کہ وہ ضعیف ہے۔ اور صغیر کی سند میں: ابن لہیعہ ہے، اور وہ نرم (ضعیف) ہے، جیسا کہ ہیثمی نے مجمع ۲۷/۸ میں ذکر کیا ہے۔ اور شاید یہ حدیث ان دو روایتوں کے ساتھ حسن ہو جاتی ہو۔ اور اس کا تیسرا راستہ طیالسی (۱۴۹۵) کے ہاں ہے جس سے خوش نہیں ہوا جا سکتا، کیونکہ اس کی سند میں طلحہ بن عمرو بن عثمان ہے، اور وہ متروک ہے جیسا کہ حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں ذکر کیا ہے۔ (۲) اسے واحدی نے الوسیط ۱/۱۶۷ میں ابن عباس سے ذکر کیا ہے۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/۱۷۳۔ (۴) دیکھیے مجمع البیان ۱/۳۳۶۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/۱۷۳۔ (۶) ۱/۲۵۳، ۲/۲۲ اور اس کے بعد۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۱۷۳۔ (۸) (م) میں: قبول کیا گیا۔

Page 235 Surah Al-Baqarah: Verse 84

And it was narrated from Ibn Abbas that he said: The Zakat that they were commanded with is obedience to Allah and sincerity (1).

Tenth: The words of Allah, the Most High: {Then you turned away}: The address is to the contemporaries of Muhammad ﷺ; and the turning away of their ancestors was attributed to them, because they are all on that same path in their aversion to the truth like them (2), as the saying goes: "A trait I recognize from Akhzam" (3).

{Except for a few} such as Abdullah bin Salam and his companions. "Qalilan" (a few) is in the accusative case due to exception. According to Sibawayh, the excepted noun is accusative because it resembles the object. Muhammad bin Yazid said (4): It is actually an object, meaning: I excepted a few.

{While you were averse} is a subject and a predicate. Aversion and turning away carry the same meaning, though they differ in wording. It was said: turning away is physical, while aversion is in the heart. Al-Mahdawi said: "{While you were averse}" is a circumstantial clause (hal); because turning away implies aversion.

The words of Allah, the Most High: {And [recall] when We took your covenant, [saying], 'Do not shed each other's blood or evict one another from your homes.' Then you acknowledged it while you were witnessing.} There are two points regarding this:

First: The words of Allah, the Most High: {And [recall] when We took your covenant}, the discussion about this has already been mentioned (5). {Do not shed each other's blood} refers to the Children of Israel, and those who came after them are included in the meaning. "{Do not shed}" follows the same grammatical rule as "{Do not worship}" (6). Talha bin Musarrif and Shu'ayb bin Abi Hamza recited it (7) with a damma...

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173, and recorded by al-Tabari 2/199. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (3) It is from the Rajaz meter, preceded by: "Indeed, my sons stained me with blood." It was cited by al-Jahiz in al-Bayan wa al-Tabyin 1/331, and al-Maydani in Majma' al-Amthal 1/361, attributing it to Abu Akhzam al-Ta'i, who is the grandfather of Abu Hatim al-Ta'i or his great-grandfather. Some attributed it to Aqil bin Ulfah, as in al-Iqd al-Farid 2/192, and al-Mustaqsa fi Amthal al-Arab 1/134. His saying: "Shinshinah": meaning: nature and disposition, as in al-Bayan wa al-Tabyin. (4) He is

al-Mubarrid, and the author cited his words and the words of Sibawayh through Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (5) 2/163. (6) In verse (83). (7) Abu Bishr al-Umawi, their client, from Homs, the writer, died in the year (162 AH). Al-Siyar 7/187.

पृष्ठ 235 सूरा अल-बकरा: आयत 84

इब्न अब्बास से रिवायत है कि उन्होंने कहा: जिस जकात का उन्हें हुक्म दिया गया था, वह अल्लाह की आज्ञाकारिता और इखलास (ईमानदारी) है (1)।

दसवीं बात: अल्लाह तआला का इरशाद: {फिर तुम फिर गए}: यह संबोधन मुहम्मद ﷺ के समकालीनों से है; और उनके पूर्वजों के फिर जाने को उनकी तरफ़ मंसूब किया गया है, क्योंकि वे सब हक़ से मुँह मोड़ने में उन्हीं के रास्ते पर हैं (2), जैसा कि कहावत है: 'एक खसलत जिसे मैं अखज़म से पहचानता हूँ' (3)।

{सिवाय थोड़े लोगों के} जैसे अब्दुल्ला बिन सलाम और उनके साथी। 'कलील' (थोड़े) शब्द यहाँ इस्तस्ना (अपवाद) के कारण नसब (accusative) की स्थिति में है। सिबवैय के अनुसार, मुस्तस्ना (अपवादित) नसब में होता है क्योंकि यह मफ़ऊल (कर्म) के समान होता है। मुहम्मद बिन यजीद ने कहा (4): यह हकीकत में मफ़ऊल है, जिसका अर्थ है: मैंने थोड़े लोगों को छोड़ दिया।

{जबकि तुम मुँह मोड़ने वाले थे} यह मुब्तदा (कर्ता) और खबर (विधेय) है। मुँह मोड़ना और फिर जाना एक ही अर्थ रखते हैं, हालाँकि इनके शब्दों में अंतर है। कहा गया है कि फिर जाना शरीर से होता है और मुँह मोड़ना दिल से। महदवी ने कहा: '{जबकि तुम मुँह मोड़ने वाले थे}' यहाँ हाल (परिस्थिति) है; क्योंकि फिर जाने का अर्थ ही मुँह मोड़ना होता है।

अल्लाह तआला का इरशाद: {और जब हमने तुम्हारा अहद (वचन) लिया कि तुम अपनों का खून न बहाना और अपनों को उनके घरों से न निकालना, फिर तुमने इकरार किया और तुम खुद गवाह हो}। इसमें दो मसले हैं:

पहला मसला: अल्लाह तआला का इरशाद: {और जब हमने तुम्हारा अहद लिया}, इस बारे में पहले चर्चा हो चुकी है (5)। {तुम अपनों का खून न बहाना} इससे मुराद बनी इसराइल हैं, और उनके बाद वाले भी इस अर्थ में शामिल हैं। '{न बहाना}' व्याकरण (एराब) में '{न इबादत करना}' की तरह है (6)। तल्हा बिन मुसर्रिफ और शुऐब बिन अबी हमजा (7) ने इसे 'दम्मा' (पेश) के साथ पढ़ा है...

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/173, और अल-तब़री ने इसे उद्धृत किया है 2/199। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/173। (3) यह 'रजज़' बहर से है, और इससे पहले है: "बेशक मेरे बेटों ने मुझे खून से रंग दिया।" अल-जाहिज़ ने इसे 'अल-बयान व अल-तबीन' 1/331 में, और अल-मैदानी ने 'मजमा

अल-अमशाल' 1/361 में उद्धृत किया है और इसे अबू अखज़म अल-ताई से मंसूब किया है, जो अबू हातिम अल-ताई के दादा या परदादा हैं। कुछ ने इसे अकील बिन उल्फ़ा से मंसूब किया है, जैसा कि 'अल-इक्द अल-फ़रीद' 2/192 और 'अल-मुस्तक्सा फ़ी अमशाल अल-अरब' 1/134 में है। उनका कहना: "शिनशिना": यानी: स्वभाव और आदत, जैसा कि 'अल-बयान व अल-तबीन' में है। (4) वह अल-मुबर्रिद हैं, और लेखक ने उनके और सिबवैय के शब्दों को 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/173 के माध्यम से उद्धृत किया है। (5) 2/163। (6) आयत (83) में। (7) अबू बिश्र अल-उमवी, उनके आज़ाद किए हुए गुलाम, हम्स से, लेखक, जिनकी मृत्यु वर्ष (162 हिजरी) में हुई। अल-सियार 7/187।

صفحہ 235 سورہ البقرہ: آیت 84

ابن عباس رضی اللہ عنہما سے مروی ہے کہ انہوں نے فرمایا: جس زکوۃ کا انہیں حکم دیا گیا تھا وہ اللہ کی اطاعت اور اخلاص ہے (1)۔

دسویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ﴾ (پھر تم پھر گئے): یہ خطاب محمد ﷺ کے ہم عصروں سے ہے؛ اور ان کے اسلاف کے پھر جانے کو ان کی طرف منسوب کیا گیا ہے، کیونکہ وہ سب حق سے اعراض میں اپنے اسلاف ہی کی راہ پر ہیں (2)، جیسا کہ کہاوت ہے: 'ایک خصلت جسے میں اخزم سے پہچانتا ہوں' (3)۔

﴿إِلَّا قَلِيلًا﴾ (مگر تم میں سے تھوڑے)، جیسے عبد اللہ بن سلام اور ان کے ساتھی۔ اور 'قلیلاً' استثنا کی بنا پر منصوب ہے، اور سیبویہ کے نزدیک مستثنیٰ منصوب ہوتا ہے کیونکہ وہ مفعول کے مشابہ ہوتا ہے۔ محمد بن یزید نے کہا (4): یہ حقیقت میں مفعول ہے، معنی یہ ہے: میں نے تھوڑے لوگوں کو مستثنیٰ کیا۔

﴿وَأَنتُم مُّعْرِضُونَ﴾ (اور تم اعراض کرنے والے تھے)، یہ مبتدا اور خبر ہے، اور اعراض اور تولّی ایک ہی معنی میں ہیں، ان کے درمیان صرف لفظ کا فرق ہے۔ کہا گیا ہے کہ تولّی جسم کے ساتھ ہوتا ہے اور اعراض دل کے ساتھ۔ مہدوی نے کہا: 'وانتم معرضون' حال ہے؛ کیونکہ تولّی اعراض پر دلالت کرتا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ لَا تَسْفِكُونَ دِمَاءَكُمْ وَلَا تُخْرِجُونَ أَنفُسَكُم مِّن دِيَارِكُمْ ثُمَّ أَقْرَرْتُمْ وَأَنتُمْ تَشْهَدُونَ﴾ (اور جب ہم نے تم سے عہد لیا کہ تم اپنوں کا خون نہ بہاؤ گے اور نہ ہی ایک

دوسرے کو ان کے گھروں سے نکالو گے، پھر تم نے اس کا اقرار کیا اور تم خود گواہ ہو)۔ اس میں دو مسائل ہیں:

پہلا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ﴾، اس کے بارے میں کلام گزر چکا ہے (5)۔ ﴿لَا تَسْفِكُونَ دِمَاءَكُمْ﴾ سے مراد بنی اسرائیل ہیں، اور معنی کے اعتبار سے ان کے بعد والے بھی اس میں داخل ہیں۔ 'لا تسفکون' اعراب میں 'لا تعبدون' کی طرح ہے (6)۔ طلحہ بن مصرف اور شعیب بن ابی حمزہ (7) نے اسے ضمہ (پیش) کے ساتھ پڑھا ہے...

---

(1) المحرر الوجیز 1/173، اور اسے طبری نے 2/199 میں نقل کیا ہے۔ (2) المحرر الوجیز 1/173۔ (3) یہ بحرِ رجز سے ہے، اور اس سے پہلے ہے: "بے شک میرے بیٹوں نے مجھے خون سے رنگ دیا۔" اسے جاحظ نے 'البیان والتبیین' 1/331 میں، اور میدانی نے 'مجمع الأمثال' 1/361 میں نقل کیا ہے اور اسے ابو اخزم الطائی سے منسوب کیا ہے، جو ابو حاتم الطائی کے دادا یا پردادا ہیں۔ بعض نے اسے عقیل بن علفہ سے منسوب کیا ہے، جیسا کہ 'العقد الفرید' 2/192 اور 'المستقصی في أمثال العرب' 1/134 میں ہے۔ ان کا قول: "شنشنہ": یعنی: طبیعت اور خصلت، جیسا کہ 'البیان والتبیین' میں ہے۔ (4) وہ مبرد ہیں، اور مصنف نے ان کا اور سیبویہ کا کلام 'المحرر الوجیز' 1/173 کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (5) 2/163۔ (6) آیت (83) میں۔ (7) ابو بشر الاموی ان کے آزاد کردہ غلام، حمصی، کاتب، وفات سال (162ھ)۔ السیر 7/187۔

Surah Al-Baqarah: Verse 84 | 236

The letter 'Fa', according to one linguistic view, and Abu Nahik (1) read it as: "Tusaffikun" with a damma on the 'Ta', a shadda on the 'Fa', and a fatha on the 'Sin' (2). 'As-Safk' means pouring, and it has been discussed before (3). ﴿And you shall not expel﴾ is a conjunctive clause. ﴿yourselves﴾: The word 'Nafs' (soul/self) is derived from 'nafasah' (preciousness), for a human's soul is the most noble part of him. 'Ad-Dar' (house/home) is the place of residence where there are buildings, unlike a place of transit. Al-Khalil said: Every place inhabited by a people is a 'Dar' for them, even if it does not have buildings (4). It was also said: It is called 'Dar' because it circles (dawra) around its inhabitants, just as a 'ha'it' (wall) is called so because it surrounds (ihata) what it contains (5). And ﴿you ratified (it)﴾: from 'iqrar' (confessing/acknowledging), meaning: to this covenant which was taken upon you and your ancestors (6). And ﴿while you were witnessing﴾: from 'shahadah' (testimony), meaning: witnesses with your hearts to this. It is also said: 'Shahadah' means being present; meaning: you witness the shedding of your blood and the expulsion of yourselves from your homes. Second: If it is asked: does anyone shed his own blood or expel himself from his home? It is said to him: Since their religion was one and their affair was one, and they were like a single person among the nations, the killing of one another was considered (7) as killing themselves, and the expulsion of one another as banishing themselves. It was also said: What is meant is 'qisas' (retaliation); meaning: let no one kill another, lest he be killed in retaliation, for it is as if he shed his own blood. Similarly, let him not commit adultery or apostatize, for that makes his blood permissible. And let him not cause corruption, lest he be banished, for he would have expelled himself from his home. This is a distant interpretation, although correct in meaning. Rather, the matter was that Allah the Almighty had taken a covenant from the Children of Israel in the Torah that they should not kill one another, nor banish each other, nor enslave one another, nor allow one another to be enslaved (8), along with other acts of obedience (9). I say: All of this is forbidden to us, yet it has all occurred among us through trials (fitan), so to Allah we belong and to Him we shall return.

---

(1) Al-Azdi, Al-Farahidi, Al-Basri, and his name is Uthman bin Nahik. Tahdhib al-Tahdhib 4/599. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173. (3) 1/411. (4) Al-Nukat wa al-Uyun 1/154. (5) In (Kh), (Z), and (Zha): it is named. (6) In (M): your predecessors. (7) In (D) and (M): some [others]. (8) In (D) and (M): is stolen. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/173.

सूरह अल-बक़रह: आयत 84 | 236

'फ़ा' अक्षर, एक भाषाई दृष्टिकोण के अनुसार, और अबू नाहिक (1) ने इसे इस प्रकार पढ़ा: "तुसफ़्फ़िकून" (Tusaffikun), 'ता' पर दम्मा, 'फ़ा' पर शद्दा और 'सीन' पर फ़तह के साथ (2)। 'अस-सफ़्क' का अर्थ है बहाना, और इस पर पहले चर्चा की जा चुकी है (3)। ﴾और तुम नहीं निकालोगे﴿ एक संयोजी वाक्यांश है। ﴾अपने आप को﴿: 'नफ़्स' (आत्मा/स्वयं) शब्द 'नफ़ासा' (बहुमूल्यता) से लिया गया है, क्योंकि मनुष्य की आत्मा उसका सबसे महान हिस्सा है। 'अद-दार' (घर/निवास) वह स्थान है जहाँ स्थायी इमारतें हों, यात्रा के पड़ाव के विपरीत। अल-खलील ने कहा: लोगों द्वारा बसाया गया हर स्थान उनके लिए 'दार' है, भले ही उसमें इमारतें न हों (4)। यह भी कहा गया है: इसे 'दार' इसलिए कहा जाता है क्योंकि यह अपने निवासियों के चारों ओर घूमता (दौरा) है; जैसे 'हाइत' (दीवार) को इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह अपने भीतर की चीज़ों को घेरे (इहाता) रहती है (5)। और ﴾तुमने स्वीकार किया﴿: इक़रार से, अर्थात्: इस संधि को जो तुमसे और तुम्हारे पूर्वजों से ली गई थी (6)। और ﴾जबकि तुम गवाह थे﴿: शहादत (गवाही) से, अर्थात्: अपने दिलों से इस पर गवाह हो। यह भी कहा गया है: शहादत का अर्थ उपस्थिति है; अर्थात्: तुम अपना रक्त बहते और स्वयं को अपने घरों से निकाले जाते हुए देखते हो। दूसरा: यदि यह पूछा जाए: क्या कोई अपना खून बहाता है और खुद को अपने घर से निकालता है? उससे कहा गया: चूंकि उनका धर्म एक था और उनका मामला एक था, और वे राष्ट्रों के बीच एक व्यक्ति की तरह थे, इसलिए एक-दूसरे की हत्या को स्वयं की हत्या माना गया (7), और एक-दूसरे को निकालना स्वयं को निर्वासित करना माना गया। यह भी कहा गया: इसका अर्थ 'क़िसास' (प्रतिशोध) है; अर्थात्: कोई किसी की हत्या न करे, अन्यथा उसे बदले में मार दिया जाएगा, तो मानो उसने अपना ही खून बहाया हो। इसी तरह, वह व्यभिचार न करे और न ही धर्मत्याग करे, क्योंकि इससे उसका खून जायज़ हो जाता है। और वह भ्रष्टाचार न करे, अन्यथा उसे निर्वासित कर दिया जाएगा, जिससे उसने स्वयं को अपने घर से निकाल दिया होगा। यह एक दूर की व्याख्या है, हालांकि अर्थ में सही है। बल्कि बात यह थी कि अल्लाह तआला ने तौरात में बनी इसराईल से यह वचन लिया था कि वे एक-दूसरे की हत्या नहीं करेंगे, न ही एक-दूसरे को निर्वासित करेंगे, न ही एक-दूसरे को दास बनाएंगे, और न ही एक-दूसरे को दास बनने देंगे (8), और अन्य आज्ञाकारिता के कार्यों के साथ (9)। मैंने कहा: यह सब हमारे लिए हराम (वर्जित) है, फिर भी फितनों (परीक्षणों/कलह) के कारण यह सब हमारे बीच हुआ है, हम अल्लाह ही के हैं और उसी की ओर लौटने वाले हैं।

(1) अल-अज़दी, अल-फ़राहीदी, अल-बसरी, और उनका नाम उस्मान बिन नाहिक है। तहज़ीब अत-तहज़ीब 4/599। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/173। (3) 1/411। (4) अन-नुकत वल-उयून 1/154। (5) (ख़), (ज़), और (ज़ा) में: इसे नाम दिया गया है। (6) (म) में: तुम्हारे पूर्वज। (7) (द) और (म) में: कुछ [दूसरों को]। (8) (द) और (म) में: चोरी हो जाता है। (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/173।

الفاء، یہ ایک لغوی بحث ہے، اور ابو نہیک(۱) نے اسے «تُسَفِّکون» پڑھا ہے، 'تاء' پر ضمہ، 'فاء' پر تشدید اور 'سین' پر فتحہ کے ساتھ(۲)۔ اور 'السفک' کا معنی بہانا ہے، اور اس کا ذکر پہلے آ چکا ہے(۳)۔ ﴿اور تم نہیں نکالو گے﴾ یہ عطف ہے۔ ﴿اپنے آپ کو﴾: لفظ 'نفس' نفاست سے ماخوذ ہے، کیونکہ انسان کا نفس اس کا سب سے اشرف حصہ ہے۔ اور 'الدار' وہ ٹھکانہ ہے جہاں قیام کی عمارتیں ہوں، سفر کے ٹھکانے کے برعکس۔ الخلیل نے کہا: جس جگہ بھی کوئی قوم قیام پذیر ہو وہ ان کے لیے 'دار' ہے، چاہے وہاں عمارتیں نہ بھی ہوں(۴)۔ اور کہا گیا: اسے 'دار' اس لیے کہا جاتا ہے کیونکہ یہ اپنے مکینوں کے گرد گھومتا (دوران) ہے؛ جیسے 'حائط' (دیوار) کو اس لیے حائط کہا جاتا ہے کیونکہ وہ اپنے اندر کی چیز کا احاطہ کیے ہوتی ہے(۵)۔ اور ﴿تم نے اقرار کیا﴾: اقرار سے، یعنی: اس عہد کا جو تم سے اور تمہارے اگلوں سے لیا گیا(۶)۔ اور ﴿درآں حالیکہ تم گواہی دیتے ہو﴾: شہادت سے، یعنی: تم اپنے دلوں سے اس پر گواہ ہو۔ اور کہا گیا: شہادت کا معنی حاضر ہونا ہے؛ یعنی: تم اپنے خون بہائے جانے اور اپنے آپ کو اپنے گھروں سے نکالے جانے کے وقت حاضر ہوتے ہو۔ دوسری بات: اگر یہ کہا جائے: کیا کوئی اپنا خون بہاتا ہے اور خود کو اپنے گھر سے نکالتا ہے؟ تو اس سے کہا گیا: چونکہ ان کی ملت ایک تھی، اور ان کا معاملہ ایک تھا، اور وہ تمام امتوں میں ایک شخص کی طرح تھے، اس لیے ان کا ایک دوسرے کو قتل کرنا(۷) خود کو قتل کرنے کے برابر، اور ایک دوسرے کو نکالنا خود کو جلاوطن کرنے کے برابر قرار دیا گیا۔ اور کہا گیا: اس سے مراد قصاص ہے؛ یعنی: کوئی کسی کو قتل نہ کرے کہ اسے قصاص میں قتل کر دیا جائے، تو گویا اس نے اپنا ہی خون بہایا۔ اسی طرح نہ وہ زنا کرے اور نہ ہی مرتد ہو، کیونکہ یہ خون کو مباح کر دیتا ہے۔ اور نہ ہی فساد کرے کہ اسے جلاوطن کر دیا جائے، پس

گویا اس نے خود کو اپنے گھر سے نکال دیا۔ یہ ایسی تاویل ہے جس میں بعد (دوری) ہے اگرچہ معنی درست ہے۔ اصل بات یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے تورات میں بنی اسرائیل سے یہ عہد لیا تھا کہ وہ ایک دوسرے کو قتل نہیں کریں گے، نہ جلاوطن کریں گے، نہ اسے غلام بنائیں گے اور نہ اسے غلام بننے کے لیے چھوڑ دیں گے(۸)، اس کے علاوہ دیگر اطاعت کے کاموں میں بھی(۹)۔ میں کہتا ہوں: یہ سب کچھ ہم پر حرام ہے، لیکن فتنوں کی وجہ سے یہ سب کچھ ہمارے درمیان واقع ہو چکا ہے، پس ہم اللہ ہی کے لیے ہیں اور اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں۔

---

(۱) الازدی، الفراہیدی، البصری، ان کا نام عثمان بن نہیک ہے۔ تہذیب التہذیب ۵۹۹/۴۔ (۲) المحرر الوجیز ۱۷۳/۱۔ (۳) ۴۱۱/۱۔ (۴) النکت والعیون ۱۵۴/۱۔ (۵) (خ)، (ز) اور (ظ) میں: 'یسمی' (نام دیا جاتا ہے)۔ (۶) (م) میں: تمہارے اگلوں۔ (۷) (د) اور (م) میں: بعض (ایک دوسرے کو)۔ (۸) (د) اور (م) میں: چوری کیا جاتا ہے۔ (۹) المحرر الوجیز ۱۷۳/۱۔

237 Surah Al-Baqarah: Verses 85, 86 ...returning! And in the revelation: {Or to confuse you into sects and make you taste the violence of one another} [Al-An'am: 65] and it will follow. Ibn Khuwayz Mindad (1) said: It is possible that the literal meaning is intended: a person should not kill himself, nor should he leave his house out of foolishness; as the people of India kill themselves, or a person kills himself due to hardship and affliction that befalls him, or wanders in the desert and does not take shelter in houses out of ignorance in his religion and foolishness in his wisdom; so it is general in all of that. It has been narrated that Uthman bin Maz'un gave allegiance along with ten of the companions of the Messenger of Allah (peace be upon him), and they resolved to wear haircloth, wander in the desert, not seek shelter in houses, not eat meat, and not approach women. This reached the Prophet (peace be upon him), so he came to the house of Uthman bin Maz'un but did not find him. He said to his wife: "What is this report that has reached me about Uthman?" She disliked revealing her husband's secret or lying to the Messenger of Allah (peace be upon him), so she said: "O Messenger of Allah, if something has reached you, then it is as it reached you." He said: "Say to Uthman: Is it in opposition to my Sunnah, or is it on a path other than my religion? Indeed, I pray and I sleep, I fast and I break my fast, I approach women, I take shelter in houses, and I eat meat. So whoever turns away from my Sunnah is not of me." So Uthman and his companions turned back from what they were intent on (2). Allah Almighty says: {Then, you are those [same ones who are] killing one another and evicting a party of your people from their homes, cooperating against them in sin and aggression. And if they come to you as captives, you ransom them, although their eviction was forbidden to you. So do you believe in part of the Scripture and disbelieve in part? Then what is the recompense for those who do that among you except disgrace in worldly life; and on the Day of Resurrection they will be sent back to the severest of punishment. And Allah is not unaware of what you do. (85) Those are the ones who have bought the life of this world [in exchange] for the Hereafter, so the punishment will not be lightened for them, nor will they be aided. (86)} Allah Almighty's saying: {Then you are those}: "Antum" (you) is in the position of Raf' (nominative case) as a subject, and it is not declined because it is a pronoun. The "ta" in "antum" is given a Dammah (the 'u' sound) because it was Fathah (the 'a' sound) when addressing a single male.

---

(1) In (m): Khuwayz Mindad, and see 1/180. (2) In (z): from what they had resolved upon. We did not find the hadith with this exact wording, but Imam Ahmad (26308) narrated something similar from the hadith of Aisha. In the same chapter from Anas

(may Allah be pleased with him) regarding the three individuals who asked about the worship of the Prophet (peace be upon him)... narrated by Al-Bukhari (5063).

237 सूरा अल-बकरा: आयतें 85, 86 ...लौटने वाले! और वह्य (प्रकाशना) में है: {या तुम्हें गिरोहों में बाँटकर एक-दूसरे की लड़ाई का मज़ा चखाए} [अल-अनआम: 65] और यह आगे आएगा। इब्न खुवैज़ मिंदाद (1) ने कहा: यह संभव है कि इससे प्रत्यक्ष अर्थ मुराद हो: कि कोई व्यक्ति अपनी जान न ले, और न ही मूर्खता में अपना घर छोड़े; जैसा कि भारत के लोग अपनी जान ले लेते हैं, या कोई व्यक्ति अपने ऊपर आने वाली कठिनाई और विपत्ति के कारण अपनी जान ले लेता है, या रेगिस्तान में भटकता है, और अपने धर्म में अज्ञानता और अपनी बुद्धि में मूर्खता के कारण घरों में शरण नहीं लेता है; अतः यह उन सभी बातों में सामान्य है। यह वर्णित है कि उस्मान बिन मज़ऊन ने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के दस साथियों के साथ बैअत (शपथ) की, और उन्होंने टाट (मोटे कपड़े) पहनने, रेगिस्तान में भटकने, घरों में शरण न लेने, मांस न खाने और महिलाओं के पास न जाने का संकल्प लिया। यह बात नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) तक पहुँची, तो आप उस्मान बिन मज़ऊन के घर आए लेकिन उन्हें नहीं पाया। आपने उनकी पत्नी से पूछा: "उस्मान के बारे में मुझे क्या खबर मिली है?" उन्हें अपने पति का रहस्य उजागर करना या अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से झूठ बोलना बुरा लगा, तो उन्होंने कहा: "हे अल्लाह के रसूल, यदि आप तक कोई बात पहुँची है, तो वह वैसी ही है जैसा आप तक पहुँची।" आपने फरमाया: "उस्मान से कहो: क्या मेरी सुन्नत के विपरीत है, या मेरे दीन (धर्म) के अलावा किसी और रास्ते पर है? मैं नमाज़ भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ, रोज़ा भी रखता हूँ और इफ्तार भी करता हूँ, महिलाओं के पास भी जाता हूँ, घरों में शरण भी लेता हूँ और मांस भी खाता हूँ। अतः जो मेरी सुन्नत से मुँह मोड़ेगा वह मुझमें से नहीं है।" तो उस्मान और उनके साथी उस बात से पीछे हट गए जिस पर वे थे (2)। अल्लाह तआला का फरमान है: {फिर तुम वही हो जो अपनों की हत्या करते हो और अपने में से एक गिरोह को उनके घरों से निकाल बाहर करते हो, उनके विरुद्ध पाप और ज़्यादती के साथ एक-दूसरे की सहायता करते हो, और यदि वे कैदी होकर तुम्हारे पास आते हैं तो तुम उनका फ़िद्या (मुक्ति-धन) देकर उन्हें छुड़ा लेते हो, जबकि उन्हें निकालना ही तुम पर हराम था। तो क्या तुम किताब (ईश्वरीय ग्रंथ) के कुछ हिस्से पर ईमान लाते हो और कुछ हिस्से का इनकार करते हो? तो तुममें से जो ऐसा करे उसका बदला इसके सिवा क्या है कि दुनिया के जीवन में अपमान हो, और कयामत (प्रलय) के दिन वे कठोरतम यातना की ओर लौटाए जाएँगे। और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो तुम करते हो। (85) ये वही लोग हैं जिन्होंने आखिरत (परलोक) के बदले दुनिया के जीवन को खरीद लिया, अतः न उनसे यातना हल्की की जाएगी और न उन्हें कोई सहायता मिलेगी। (86)} अल्लाह तआला का कथन: {फिर तुम वही हो}: "अंतुम" (तुम) मुब्तदा (कर्ता) होने के कारण रफ़अ (प्रथमा विभक्ति) के स्थान पर है, और यह

विपरिणत नहीं होता क्योंकि यह ज़मीर (सर्वनाम) है। "अंतुम" की 'ता' पर ज़म्मा (उ की मात्रा) इसलिए दी गई है क्योंकि एक पुरुष को संबोधित करते समय यह फ़तहा (अ की मात्रा) होती थी।

---

(1) (म) में: खुवैज़ मिंदाद, और देखें 1/180। (2) (ज़) में: जिससे उन्होंने संकल्प लिया था। हमें इस शब्दावली के साथ हदीस नहीं मिली, और इमाम अहमद (26308) ने आयशा की हदीस से इसी तरह का वर्णन किया है। इस विषय में अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) से उन तीन व्यक्तियों के बारे में भी है जिन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की इबादत के बारे में पूछा था... इसे बुखारी (5063) ने निकाला है।

237 سورہ البقرہ: آیات 85، 86 لوٹنے والے! اور وحی میں ہے: {یا تمہیں گروہوں میں بانٹ دے اور تمہیں ایک دوسرے کی لڑائی کا مزہ چکھائے} [الأنعام: 65] اور یہ آگے آئے گا۔ ابن خویزمنداد (1) نے کہا: یہ بھی ممکن ہے کہ اس سے ظاہری معنی مراد ہو: کہ انسان خود کو قتل نہ کرے، اور نہ ہی بیوقوفی میں اپنے گھر سے نکلے؛ جیسا کہ ہندوستان کے لوگ خود کو قتل کر لیتے ہیں، یا انسان اپنے اوپر آنے والی سختی اور مصیبت کی وجہ سے خود کو قتل کر لے، یا صحرا میں بھٹکتا پھرے، اور اپنے دین میں جہالت اور اپنی عقل میں بیوقوفی کی وجہ سے گھروں میں پناہ نہ لے؛ پس یہ ان تمام باتوں میں عام ہے۔ اور یہ روایت کی گئی ہے کہ عثمان بن مظعون نے رسول اللہ ﷺ کے دس صحابہ کے ساتھ بیعت کی، تو انہوں نے ٹاٹ پہننے، صحراؤں میں بھٹکنے، گھروں میں پناہ نہ لینے، گوشت نہ کھانے اور عورتوں کے پاس نہ جانے کا عزم کیا۔ یہ بات نبی ﷺ تک پہنچی، تو آپ عثمان بن مظعون کے گھر آئے لیکن انہیں نہ پایا۔ آپ نے ان کی بیوی سے پوچھا: "عثمان کے بارے میں مجھے کیا خبر ملی ہے؟" انہیں اپنے شوہر کا راز فاش کرنا یا رسول اللہ ﷺ سے جھوٹ بولنا برا لگا، تو انہوں نے کہا: "اے اللہ کے رسول، اگر آپ تک کوئی بات پہنچی ہے، تو وہ ویسی ہی ہے جیسے آپ تک پہنچی۔" آپ نے فرمایا: "عثمان سے کہو: کیا میری سنت کے خلاف ہے، یا میرے دین کے علاوہ کسی اور طریقے پر ہے؟ میں نماز بھی پڑھتا ہوں اور سوتا بھی ہوں، روزہ بھی رکھتا ہوں اور افطار بھی کرتا ہوں، عورتوں کے پاس بھی جاتا ہوں، گھروں میں پناہ بھی لیتا ہوں اور گوشت بھی کھاتا ہوں، پس جو میری سنت سے اعراض کرے گا وہ مجھ سے نہیں ہے۔" چنانچہ عثمان اور ان کے ساتھی اس ارادے سے باز آگئے جس پر وہ تھے (2)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {پھر تم وہی ہو جو اپنوں کو قتل کرتے ہو اور اپنے میں سے ایک گروہ کو ان کے گھروں سے نکال باہر کرتے ہو، ان کے خلاف گناہ اور زیادتی کے ساتھ ایک

دوسرے کی مدد کرتے ہو، اور اگر وہ قیدی ہو کر تمہارے پاس آئیں تو تم فدیہ دے کر انہیں چھڑا لیتے ہو حالانکہ ان کا نکالنا ہی تم پر حرام تھا۔ تو کیا تم کتاب کے کچھ حصے پر ایمان لاتے ہو اور کچھ حصے کا انکار کرتے ہو؟ تو تم میں سے جو ایسا کرے اس کا بدلہ اس کے سوا کیا ہے کہ دنیا کی زندگی میں رسوائی ہو، اور قیامت کے دن وہ سخت ترین عذاب کی طرف لوٹائے جائیں گے۔ اور اللہ اس سے بے خبر نہیں ہے جو تم کرتے ہو۔ (85) یہی وہ لوگ ہیں جنہوں نے آخرت کے بدلے دنیا کی زندگی خرید لی، پس نہ ان سے عذاب ہلکا کیا جائے گا اور نہ ان کی مدد کی جائے گی۔ (86)} اللہ تعالیٰ کا قول: {پھر تم وہی ہو}: "انتم" (تم) مبتدا ہونے کی وجہ سے محلِ رفع میں ہے، اور اس کا اعراب نہیں بدلتا کیونکہ یہ ضمیر ہے۔ اور "انتم" کی 'تا' پر ضمہ اس لیے دیا گیا ہے کیونکہ ایک مذکر سے خطاب کرتے وقت یہ مفتوح (زبر والی) ہوتی تھی۔

---

(1) (م) میں: خویزمنداد، اور دیکھئے 1/ 180۔ (2) (ز) میں: جس کا انہوں نے عزم کیا تھا۔ ہمیں اس لفظ کے ساتھ حدیث نہیں ملی، اور امام احمد (26308) نے حضرت عائشہ کی حدیث سے اسی طرح کی روایت کی ہے۔ اس باب میں حضرت انس رضی اللہ عنہ سے ان تین افراد کے بارے میں بھی ہے جنہوں نے نبی ﷺ کی عبادت کے بارے میں پوچھا تھا... اسے بخاری (5063) نے روایت کیا ہے۔

238 Surat Al-Baqarah: Verses 85, 86

...and it is with a kasrah (i-sound) when addressing a single female. When it is dualized or pluralized, nothing remains except the dammah (u-sound). Regarding "Ha'ula'i" (These), Al-Qutaybi said: The estimation is "Ya ha'ula'i" (O these). Al-Nahhas said (1): This is a mistake according to the view of Sibawayh (2), and it is not permissible to say "Hadha aqbil" (This [one], come forward). Al-Zajjaj said (3): "Ha'ula'i" means "those who". And "taqtulun" (you kill) is part of the relative clause, meaning: "Then you are those who kill." It was said: "Ha'ula'i" is in the nominative case (raf') as a subject (mubtada'), "antum" (you) is a preceding predicate (khabar muqaddam), and "taqtulun" is a circumstantial clause (hal) from "ula'i". It was also said: "Ha'ula'i" is in the accusative case (nasb) by implication of "I mean" (4). Al-Zuhri read it as "tuqattilun", with a dammah on the 'ta' and a shaddah (5), and similarly: {Why then did you kill the prophets of Allah?} [Al-Baqarah: 91]. This verse is an address to those present and its reference cannot be directed to the ancestors. It was revealed concerning the Banu Qaynuqa', Qurayzah, and al-Nadir from the Jews. Banu Qaynuqa' were enemies of Qurayzah. The Aws were allies of Banu Qaynuqa', and the Khazraj were allies of Banu Qurayzah and al-Nadir (6). The Aws and Khazraj are brothers, and Qurayzah and al-Nadir are also brothers. Then they split and used to kill each other, then the war would cease (7), and they would ransom their captives. So Allah rebuked them for that, saying: {And if they come to you as captives, you ransom them} (8). His words, the Exalted: "tazaharuun" (you support each other), the meaning of "tazaharun" is: you cooperate, derived from "al-zahr" (the back); because some of them strengthen others, thus becoming like a back to them. From this is the poet's saying: You supported each other like the backs of a house that gathered against one; may you never cease being one peer (9).

(1) In I'rab al-Qur'an 1/242-243, and the preceding words are from it. (2) See Al-Kitab 2/230. (3) In Ma'ani al-Qur'an wa I'rabuhu 1/167, and the author quoted him through Al-Nahhas. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/174. (5) Ibn 'Atiyyah attributed it in Al-Muharrar al-Wajiz to Al-Hasan, and Abu Hayyan mentioned it in Al-Bahr al-Muhit 1/291, and attributed it to the Tafsir of Al-Mahdawi. (6) What is in Sirat Ibn Hisham 1/540 and Al-Muharrar al-Wajiz 1/174 is that Al-Nadir and Qurayzah were allies of the Aws, and Banu Qaynuqa' were allies of the Khazraj. (7) In (d), (z), and (m): rises. (8) See Al-Wasit by Al-Wahidi 1/168, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/174. (9) We did not come across it, and Al-Samin al-Halabi mentioned it in Al-Durr al-Masun 1/479, and Ibn 'Adil al-

Hanbali in Al-Lubab 2/249. And his saying: "astah" is the plural of "ist", which is the rump. Al-Sihah (sth).

२३८ सूरा अल-बक़रह: आयत ८५, ८६

...और यह कसरा (i-ध्वनि) के साथ होता है जब एक स्त्री को संबोधित किया जाता है। जब इसे द्विवचन या बहुवचन बनाया जाता है, तो दम्मा (u-ध्वनि) के अलावा कुछ नहीं बचता। "हउलाई" (ये) के संबंध में, अल-क़ुतैबी ने कहा: इसका अर्थ "या हउलाई" (ओ ये) है। अल-नहस ने कहा (१): सिबवैह (२) के विचार के अनुसार यह एक गलती है, और "हाज़ा अक़बिल" (यह [एक], आगे आओ) कहना जायज़ नहीं है। अल-ज़ज्जाज ने कहा (३): "हउलाई" का अर्थ "वे लोग जो" है। और "तक़तुलून" (तुम मारते हो) सिला (संबंधवाचक उपवाक्य) का हिस्सा है, यानी: फिर तुम वे हो जो मारते हो। यह कहा गया है: "हउलाई" रफ़अ (कर्ता कारक) में मुब्तदा (विषय) के रूप में है, "अंतुम" (तुम) मुक़द्दम ख़बर (पूर्ववर्ती विधेय) है, और "तक़तुलून" "उलाई" से हाल (परिस्थिति) है। यह भी कहा गया है: "हउलाई" नसब (कर्म कारक) में है "अअनी" (मेरा मतलब है) (४) के अनुमान से। अल-जुहरी ने इसे "तुक़त्तिलून" पढ़ा, 'ता' पर दम्मा और शद्दा के साथ (५), और इसी तरह: {तो तुम अल्लाह के नबियों को क्यों मारते थे?} [अल-बक़रह: ९१]। यह आयत उन लोगों के लिए संबोधन है जो सामने हैं और इसे पूर्वजों की ओर मोड़ना संभव नहीं है। यह यहूदियों के बनू क़ैनुक़ाअ, क़ुरैज़ा और नज़ीर के बारे में उतरी थी। बनू क़ैनुक़ाअ, क़ुरैज़ा के दुश्मन थे। औस, बनू क़ैनुक़ाअ के सहयोगी थे, और खज़रज, बनू क़ुरैज़ा और नज़ीर के सहयोगी थे (६)। औस और खज़रज भाई हैं, और क़ुरैज़ा और नज़ीर भी भाई हैं। फिर वे अलग हो गए और एक-दूसरे को मारने लगे, फिर जब युद्ध रुक जाता (७), तो वे अपने कैदियों को फिरौती देकर छुड़ा लेते थे। तो अल्लाह ने उन्हें इसके लिए फटकार लगाई, और कहा: {और यदि वे तुम्हारे पास कैदी होकर आएं तो तुम उन्हें फिरौती देकर छुड़ाते हो} (८)। अल्लाह का कथन: "तज़ाहरून" (तुम एक-दूसरे का समर्थन करते हो), "तज़ाहरून" का अर्थ है: तुम सहयोग करते हो, जो "ज़हर" (पीठ) से निकला है; क्योंकि उनमें से कुछ दूसरों को मज़बूत करते हैं, इस प्रकार उनके लिए एक पीठ की तरह बन जाते हैं। इसी से कवि का कथन है: तुमने एक घर की पीठों की तरह एक-दूसरे का समर्थन किया जो एक के खिलाफ इकट्ठे हुए; ईश्वर करे कि तुम हमेशा एक ही जोड़ बने रहो (९)।

(१) इराबुल क़ुरआन १/२४२-२४३ में, और इससे पहले के शब्द उसी से हैं। (२) देखें अल-किताब २/२३०। (३) मानी अल-क़ुरआन व इराबुहू १/१६७ में, और लेखक ने इसे अल-नहस के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७४। (५) इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ में इसे अल-हसन की ओर जिम्मेदार ठहराया, और अबू हयान ने अल-बह्र अल-मुहीत १/२९१

में इसका उल्लेख किया, और इसे अल-महदवी की तफ़सीर की ओर मन्सूब किया। (६) सीरत इब्न हिशाम १/५४० और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७४ में जो है वह यह है कि नज़ीर और क़ुरैज़ा औस के सहयोगी थे, और बनू क़ैनुक़ाअ खज़रज के सहयोगी थे। (७) (द), (ज़) और (म) में: उठता है। (८) देखें अल-वसीत लिल-वाहिदी १/१६८, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१७४। (९) हमें यह नहीं मिला, और अल-समीन अल-हलबी ने इसे अद-दुर अल-मसनून १/४७९ में उद्धृत किया, और इब्न आदिल अल-हंबली ने अल-लुबाब २/२४९ में। और उनका कहना: "अस्ताह", "इस्त" का बहुवचन है, जिसका अर्थ है पुट्ठा। अल-सिहह (सह)।

۲۳۸ سورة البقرہ: آیات ۸۵، ۸۶

...اور مکسور (زیر کے ساتھ) ہے جب ایک مؤنث کو مخاطب کیا جائے۔ جب اسے تثنیہ یا جمع بنایا گیا تو سوائے ضمہ (پیش) کے کچھ باقی نہ رہا۔ اور ﴿هَؤُلَاءِ﴾ کے بارے میں القتیبی نے کہا: تقدیر (پوشیدہ عبارت) ہے: یا ہؤلاء۔ النحاس نے کہا (۱): سیبویہ (۲) کے قول کے مطابق یہ غلط ہے، اور یہ جائز نہیں: ہذا أقبل (یہ [شخص]، ادھر آؤ)۔ اور الزجاج نے کہا (۳): «ہؤلاء» بمعنی الذین (وہ جو) ہے۔ اور ﴿تَقْتُلُونَ﴾ صلہ میں داخل ہے، یعنی: پھر تم وہ ہو جو قتل کرتے ہو۔ اور کہا گیا: «ہؤلاء» مبتدا ہونے کی وجہ سے مرفوع ہے، اور «أنتم» خبرِ مقدم ہے، اور «تقتلون» «أولاء» سے حال ہے۔ اور کہا گیا: «ہؤلاء» اضمار (پوشیدہ فعل) «أعني» (میری مراد ہے) (۴) کی وجہ سے منسوب ہے۔ اور الزہری نے اسے تاء کے ضمہ اور تشدید کے ساتھ «تُقَتِّلُون» پڑھا ہے (۵)، اور اسی طرح: ﴿فَلِمَ تَقْتُلُونَ أَنْبِيَاءَ اللَّهِ﴾ [البقرة: ۹۱]۔ اور یہ آیت ان لوگوں کے لیے خطاب ہے جو سامنے ہیں، اس کا رخ اسلاف کی طرف موڑنا ممکن نہیں، یہ یہودیوں کے بنو قینقاع، قریظہ اور نضیر کے بارے میں نازل ہوئی، اور بنو قینقاع قریظہ کے دشمن تھے، اور اوس بنو قینقاع کے حلیف تھے، اور خزرج بنو قریظہ اور نضیر کے حلیف تھے (۶)، اور اوس و خزرج بھائی ہیں، اور قریظہ و نضیر بھی بھائی ہیں، پھر وہ الگ ہو گئے اور ایک دوسرے کو قتل کرنے لگے، پھر جب جنگ ختم ہوتی (۷)، تو وہ اپنے قیدیوں کا فدیہ دے کر چھڑاتے۔ اللہ نے انہیں اس پر ملامت کی اور فرمایا: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أُسَرَى تُفَدُوهُمْ﴾ (۸)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿تَظَٰهَرُونَ﴾، «تظاھرون» کے معنی ہیں: تم ایک دوسرے کے ساتھ تعاون کرتے ہو، یہ الظہر (پیٹھ) سے مشتق ہے؛ اس لیے کہ ان میں سے بعض دوسروں کو قوت دیتے ہیں، تو وہ ان کے لیے پیٹھ کی مانند ہو جاتے ہیں، اور اسی سے

شاعر کا قول ہے: تم نے ایک گھر کے پچھواڑوں کی طرح ایک دوسرے کا ساتھ دیا جو ایک کے خلاف جمع ہو گئے؛ تم ہمیشہ ایک ہی جوڑ (مقابل) بنے رہو (۹)۔

(۱) إعراب القرآن ۱/ ۲۴۲-۲۴۳ میں، اور اس سے پہلے کی گفتگو اسی سے ہے۔ (۲) دیکھیے الکتاب ۲/ ۲۳۰۔ (۳) معانی القرآن وإعرابہ ۱/ ۱۶۷ میں، اور مصنف نے اسے النحاس کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۷۴۔ (۵) ابن عطیہ نے المحرر الوجیز میں اسے حسن کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابو حیان نے البحر المحیط ۱/ ۲۹۱ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور اسے تفسیر المہدوی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۶) سیرت ابن ہشام ۱/ ۵۴۰ اور المحرر الوجیز ۱/ ۱۷۴ میں جو ہے وہ یہ ہے کہ نضیر اور قریظہ اوس کے حلیف تھے، اور بنو قینقاع خزرج کے حلیف تھے۔ (۷) (د) اور (ظ) اور (م) میں: یرتفع (اٹھتی ہے)۔ (۸) دیکھیے الوسیط للواحدی ۱/ ۱۶۸، اور المحرر الوجیز ۱/ ۱۷۴۔ (۹) ہمیں یہ نہیں ملا، اور السمین الحلبی نے اسے الدر المصون ۱/ ۴۷۹ میں ذکر کیا ہے، اور ابن عادل الحنبلی نے اللباب ۲/ ۲۴۹ میں۔ اور ان کا قول: «أستاہ» «است» کی جمع ہے، جس کے معنی سرین (چوتڑ) کے ہیں۔ الصحاح (ستہ)۔

Surah Al-Baqarah: Verses 85, 86 239

Sin (Al-Ithm): The action for which its perpetrator deserves blame. Aggression (Al-'Udwan): Excess in injustice and transgression (1).

The people of Medina and Mecca read: "tazzaharuun" with shadda (doubling), merging the 'ta' into the 'za' due to their proximity. The original is "tatazaharuun". The Kufans read: "tazaharuun" lightly, omitting the second 'ta' because the first indicates it; similarly, ﴿وَإِن تَظَٰهَرَا عَلَيْهِ﴾ [At-Tahrim: 4]. Qatadah read: "tazharuun 'alayhim" (2). All of it refers to the meaning of cooperation, from which is: ﴿وَكَانَ الْكَافِرُ عَلَى رَبِّهِ ظَهِيراً﴾ [Al-Furqan: 55], and His saying: ﴿وَالْمَلَٰئِكَةُ بَعْدَ ذَٰلِكَ ظَهِيرٌ﴾ [At-Tahrim: 4], so know it.

Allah Almighty's saying: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أُسَرَى تُفَدُوهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ﴾.

There are six issues in it: First: Allah Almighty's saying: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أُسَرَى﴾ is a condition, and its response is "tu faduuhum". "Asara" (captives) is accusative as an adverbial phrase of state (hal) (3). Abu Ubaid (4) said: Abu Amr used to say: whatever fell into their hands are 'Asara' (captives), and those who came surrendering (5) are 'Asra' (6). Linguists do not recognize...

= Ibn Qutaybah mentioned in Poetry and Poets 2/618, and Al-Mubarrad in Al-Kamil / 343 similarly for the daughter of Ibn al-Riqa', and its wording: You gathered from every direction and town Against one, may you always remain a single horn. And in that case, there is no evidence in it. (1) See Al-Nukat wa al-'Uyun 1/155. (2) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/243-244, and Abu Amr al-Basri and Ibn 'Amir al-Shami read it with shadda. See Al-Sab'ah p. 163, and Al-Taysir p. 74. Ibn Khalawayh mentioned Qatadah's reading in 'The Anomalous Readings' p. 7, and Al-Nahhas followed it by saying: This is far-fetched, and it is not like his saying "yuzzahiruun minkum min nisa'ihim" because the meaning of this is for him to say to her: You are to me like my mother's back, so the action in this is from one, and his saying: 'tazzaharuun'; the action in it is only from two or more. (3) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/244. (4) In Al-Durr al-Masun 1/481, and Al-Lubab 2/251: Abu Ubaydah. We did not find his saying in Majaz al-Qur'an for him. (5) In (Z): seeking safety. (6) Abu Amr's saying (who is Ibn al-'Ala' al-Mawardi) was mentioned in Al-Nukat wa al-'Uyun 1/155, Al-Razi in his Tafsir 3/172, Abu Hayyan in Al-Bahr al-Muhit 1/281, and Al-Samin in Al-Durr al-Masun 1/481, and Ibn Adel quoted it from him in Al-Lubab 2/251. The wording according to them: What was in bonds are the 'Asara', and what was in hand are the 'Asra'. The author

will mention it in the commentary of verse 67 of Surah Al-Anfal. Al-Samin al-Halabi mentioned this speech, then said: Al-Naqqash related from Tha'lab that when he heard this distinction he said: This is the talk of madmen, which is a boldness from him against Abu Amr.

सूरह अल-बक़रह : आयतें 85, 86 239

पाप (Al-Ithm): वह कार्य जिसके लिए उसका कर्ता निंदा का पात्र है। और शत्रुता (Al-'Udwan): अन्याय में ज़्यादती और सीमा पार करना (1)।

मदीना और मक्का के निवासियों ने 'तज़ाहरून' को तशदीद (शद्दा) के साथ पढ़ा, वे 'ता' को 'ज़ा' में मिला देते हैं क्योंकि वे करीब हैं, और मूल है: 'ततज़ाहरून'। कूफ़ा के निवासियों ने 'तज़ाहरून' हल्का पढ़ा, उन्होंने दूसरी 'ता' को हटा दिया क्योंकि पहली उस पर संकेत करती है; जैसे ﴿وَإِن تَظَٰهَرَا عَلَيْهِ﴾ [अत-तहरीम: 4]। क़तादाह ने पढ़ा: 'तज़हरून अलैहिम' (2)। यह सब सहयोग के अर्थ में आता है, जैसे: ﴿وَكَانَ ٱلْكَافِرُ عَلَىٰ رَبِّهِۦ ظَهِيرًا﴾ [अल-फुरक़ान: 55], और उनका कथन: ﴿وَٱلْمَلَٰٓئِكَةُ بَعْدَ ذَٰلِكَ ظَهِيرٌ﴾ [अत-तहरीम: 4], तो इसे जान लें।

अल्लाह का कथन: ﴿تَرَىٰ ثُفَدُوهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ وَإِن يَأْتُوكُمْ أَسَٰرَىٰ﴾।

इसमें छह मुद्दे हैं: पहला: अल्लाह का कथन: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أَسَٰرَىٰ﴾ एक शर्त है, और उसका जवाब है "तुफ़दूहुम"। और 'असारा' हाल (स्थिति) के आधार पर नसब में है (3)। अबू उबैद (4) ने कहा: और अबू अम्र कहते थे: जो उनके हाथों में आ गए वे 'असारा' हैं, और जो आत्मसमर्पण (5) करते हुए आए वे 'अस्रा' (6) हैं। और भाषाविद नहीं जानते...

= इब्न कुतैबा ने 'काव्य और कवि' 2/618 में, और अल-मुबर्रद ने 'अल-कामिल' / 343 में इब्न अल-रिका की बेटी के बारे में इसी तरह उल्लेख किया है, और इसके शब्द हैं: तुम हर दिशा और शहर से एक के खिलाफ इकट्ठे हुए तुम हमेशा एक सींग (शक्ति) बने रहो। और उस समय; इसमें कोई साक्ष्य नहीं है। (1) देखें 'अल-नुकात वल-उयून' 1/155। (2) नहस द्वारा 'इ'राब अल-कुरान' 1/243-244, और अबू अम्र अल-बसरी और इब्न आमिर अल-शामी ने तशदीद के साथ पढ़ा। देखें 'अल-सब'आ' पृ. 163, और 'अत-तयसीर' पृ. 74, और इब्न खालवायह ने शज़ (असामान्य) क़िरात में क़तादाह के पढ़ने का उल्लेख किया पृ. 7, और नहस ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा: यह दूर की बात है, और यह उसके कथन जैसा नहीं है "यज़ाहरून मिनकुम मिन निसा'इहिम" क्योंकि इसका अर्थ यह है कि वह उससे कहे: तुम मेरे लिए मेरी माँ की पीठ की तरह हो, तो इसमें क्रिया एक से है, और उसका कथन: 'तज़ाहरून'; इसमें क्रिया केवल दो या दो से अधिक से हो सकती है। (3) नहस द्वारा 'इ'राब अल-कुरान' 1/244। (4) 'अद-दुर्र अल-मसून' 1/481 में, और 'अल-लुबाब' 2/251 में: अबू उबैदाह। और हमें उनके लिए 'मजाज़ अल-कुरान' में उनका कथन नहीं मिला। (5) (ज़) में: सुरक्षा मांगते हुए। (6)

अबू अम्र (जो इब्न अल-अला अल-मावर्दी हैं) के कथन का उल्लेख 'अल-नुकात वल-उयून' 1/155 में, अल-राज़ी ने अपनी तफ़सीर 3/172 में, अबू हय्यान ने 'अल-बह्र अल-मुहीत' 1/281 में, और अल-समीन ने 'अद-दुर्र अल-मसून' 1/481 में किया है, और इब्न आदिल ने उनसे 'अल-लुबाब' 2/251 में इसे उद्धृत किया है, और उनके यहाँ शब्द हैं: जो बेड़ियों में थे, वे 'असारा' हैं, और जो हाथ में थे वे 'अस्रा' हैं। लेखक सूरह अल-अनफाल की आयत 67 की व्याख्या में इसका उल्लेख करेंगे। अल-समीन अल-हलबी ने यह बात पेश की, फिर कहा: अन-नक़्क़ाश ने सालब से वर्णन किया कि जब उन्होंने यह अंतर सुना तो कहा: यह पागलों की बातें हैं, जो अबू अम्र के खिलाफ उनकी एक ढिठाई है।

سورہ البقرہ: آیات 85 ، 86 239

اور گناہ (الاثم): وہ فعل ہے جس کا مرتکب مذمت کا مستحق ہو۔ اور زیادتی (العدوان): ظلم میں مبالغہ اور حد سے تجاوز کرنا ہے (1)۔

اہل مدینہ اور اہل مکہ نے 'تظاھرون' تشدید کے ساتھ پڑھا، وہ 'تا' کو 'ظا' میں ادغام کرتے ہیں اس کے قرب کی وجہ سے، اور اصل 'تتظاھرون' ہے۔ کوفیوں نے 'تظاھرون' تخفیف کے ساتھ پڑھا، انہوں نے دوسری 'تا' کو حذف کر دیا کیونکہ پہلی اس پر دلالت کرتی ہے؛ اور اسی طرح ﴿وَإِن تَظَٰهَرَا عَلَيْهِ﴾ [التحریم: 4] ہے۔ قتادہ نے پڑھا: 'تظھَرون علیھم' (2)۔ اور یہ سب تعاون کے معنی کی طرف لوٹتا ہے، اور اسی سے ہے: ﴿وَكَانَ الْكَافِرُ عَلَى رَبِّهِ ظَهِيراً﴾ [الفرقان: 55]، اور ان کا قول: ﴿وَالْمَلَٰٓئِكَةُ بَعْدَ ذَٰلِكَ ظَهِيرٌ﴾ [التحریم: 4]، پس اسے جان لیں۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أُسَرَىٰ تُفَٰدُوهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ﴾۔

اس میں چھ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِن يَأْتُوكُمْ أُسَرَىٰ﴾ شرط ہے، اور اس کا جواب "تُفَدُوھُم" ہے۔ اور 'اساری' حال کی بنا پر نصب میں ہے (3)۔ ابو عبید (4) نے کہا: اور ابو عمرو کہا کرتے تھے: جو ان کے ہاتھوں میں آ گئے وہ 'اساری' ہیں، اور جو ہتھیار ڈال کر آئے (5) وہ 'اسرٰی' (6) ہیں۔ اور اہل لغت نہیں جانتے...

= اور ابن قتیبہ نے 'الشعر والشعراء' 2/618 میں، اور المبرد نے 'الکامل' / 343 میں ابن الرقاع کی بیٹی کے حوالے سے اسی طرح ذکر کیا ہے، اور اس کے الفاظ ہیں: تم ہر طرف اور ہر شہر سے ایک کے خلاف جمع ہو گئے تم ہمیشہ ایک سینگ (قوت) بنے رہو۔ اور اس وقت؛ اس میں کوئی دلیل نہیں ہے۔ (1) دیکھئے 'النکت والعیون' 1/155۔ (2) نحاس کی 'اعراب القرآن'

1/243-244، اور ابو عمرو البصری اور ابن عامر الشامی نے تشدید کے ساتھ پڑھا ہے۔ دیکھئے 'السبعہ' ص 163، اور 'التیسیر' ص 74، اور ابن خالویہ نے شاذ قراتوں میں قتادہ کی قرات کا ذکر کیا ص 7، اور نحاس نے ان کا پیچھا کرتے ہوئے کہا: یہ بعید ہے، اور یہ ان کے قول "یُظْھرون منکم من نسائھم" کی طرح نہیں ہے کیونکہ اس کا مطلب یہ ہے کہ وہ اس سے کہے: تم مجھ پر میری ماں کی پشت کی طرح ہو، پس اس میں فعل ایک سے صادر ہوتا ہے، اور ان کا قول: 'تظاھرون'؛ اس میں فعل دو یا دو سے زیادہ کے بغیر نہیں ہوتا۔ (3) نحاس کی 'اعراب القرآن' 244/1۔ (4) 'الدر المصون' 1/481 میں، اور 'اللباب' 2/251 میں: ابو عبیدہ۔ اور ہمیں ان کے لیے 'مجاز القرآن' میں ان کا قول نہیں ملا۔ (5) (ز) میں: امان طلب کرتے ہوئے۔ (6) ابو عمرو (جو ابن العلاء الماوردی ہیں) کے قول کا ذکر 'النکت والعیون' 1/155 میں ہے، اور الرازی نے اپنی تفسیر 3/172 میں، اور ابو حیان نے 'البحر المحیط' 1/281 میں، اور السمین نے 'الدر المصون' 1/481 میں کیا ہے، اور ابن عادل نے اسے ان سے 'اللباب' 2/251 میں نقل کیا ہے، اور ان کے ہاں الفاظ ہیں: جو بیڑیوں میں تھے وہ 'اساری' ہیں، اور جو قبضے میں تھے وہ 'اسری' ہیں۔ مصنف سورہ الانفال کی آیت 67 کی تفسیر میں اس کا ذکر کریں گے۔ السمین الحلبی نے یہ کلام نقل کیا، پھر کہا: النقاش نے ثعلب سے روایت کی کہ جب انہوں نے یہ فرق سنا تو کہا: یہ پاگلوں کی باتیں ہیں، جو ابو عمرو پر ان کی جرات ہے۔

Page 240

Surah Al-Baqarah: Verses 85, 86

Abu Amr said: It is just as you say: 'sukara' (drunkards) and 'sakra'.

The reading of the congregation (majority) is 'usara' except for Hamzah, who read it as 'asra' (1) on the pattern of 'fa'la', a plural of 'asir' (prisoner), meaning one who is captured. The rule for its broken plural, when it is so, is 'fa'la', as you say: 'qatil' (slain) and 'qatla', and 'jarih' (wounded) and 'jarha'. Abu Hatim said: 'usara' is not permissible. Az-Zajjaj (2) said: It is said: 'usara', as it is said: 'sukara', and 'fa'ala' is the original, while 'fu'ala' is an intrusion upon it. It is reported from Muhammad ibn Yazid that he said: 'asir' and 'usara', like 'zarif' and 'zurafa'. Ibn Faris (3) said: It is said in the plural of 'asir': 'asra' and 'usara', and both have been read, and it was said: 'asara' - with a fatha on the hamza - but it is not of high level (eloquence).

Second: 'Asir' (prisoner) is derived from 'isar', which is the leather strap with which the camel-saddle is tied. He was called 'asir' because his bonds are tied. The Arabs say: 'He tied (asara) his saddle', meaning he tightened it. Then every captive was called 'asir' even if he was not literally tied. Al-A'sha (4) said:

'And poetry bound me in its house ... just as the binding straps bind the donkey.' Meaning: I am in its house; he means by that reaching the ultimate end in it.

As for 'asr' in the words of the Almighty: {And We strengthened their forms (asrahum)} [Al-Insan: 28], it refers to the creation (physical frame). And a man's 'usrah' is his kin, because he is strengthened by them (5).

Third: His words, the Almighty: {you ransom them (tufaduhum)}. This is how Nafi', Asim (6), and Al-Kisa'i read it. The rest read: 'tafduhum' from 'fida' (ransom). And 'al-fida' is seeking the ransom for the prisoner who is in their hands. Al-Jawhari (7) said: 'al-fida', if its first letter is with a kasra, it can be elongated (madd) or shortened (qasr), and if it is with a fatha, it is shortened; it is said: 'qum'

---

(1) As-Sab'ah fi al-Qira'at, p. 163, and At-Taysir, p. 74. (2) Ma'ani al-Quran 1/166, and the author quoted it from him via An-Nahhas in I'rab al-Quran 1/244, and the preceding words are from it. (3) Mujmal al-Lughah 1/97. (4) Diwanuhu, p. 103. (5) This point is in Mu'jam Maqayis al-Lughah 1/107 similarly. (6) In the manuscripts and (M): 'Hamzah' instead of 'Asim', which is a mistake. See As-Sab'ah, p. 163, and At-Taysir, p. 74. (7) As-Sihah (Fada).

पृष्ठ 240

सूरा अल-बकरा: आयतें 85, 86

अबू अम्र ने कहा: यह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं: 'सुकारा' (नशे में धुत्त) और 'सकरा'।

जमाअत (बहुमत) का पाठ 'उसारा' है, सिवाय हमज़ा के, जिन्होंने इसे 'असरा' (1) पढ़ा है, जो 'फा'ला' के वज़न पर है, 'असीर' (कैदी) का बहुवचन है, जिसका अर्थ है बंदी। इस तरह के टूटे हुए बहुवचन का नियम 'फा'ला' है, जैसे आप कहते हैं: 'क़तील' (मारा गया) और 'क़तला', और 'जरीह' (घायल) और 'जरहा'। अबू हातिम ने कहा: 'उसारा' की अनुमति नहीं है। अज़-ज़ज्जाज (2) ने कहा: 'उसारा' कहा जाता है, जैसे 'सुकारा' कहा जाता है, और 'फ़आला' मूल है, जबकि 'फ़ुआला' उस पर थोपा गया है। मुहम्मद बिन यज़ीद से रिवायत है कि उन्होंने कहा: 'असीर' और 'उसरा', जैसे 'ज़रीफ़' और 'ज़ुरफ़ा'। इब्न फारिस (3) ने कहा: 'असीर' के बहुवचन में कहा जाता है: 'असरा' और 'उसारा', और दोनों को पढ़ा गया है, और यह भी कहा गया: 'असारा' - हमज़ा पर फत्हा के साथ - लेकिन यह उच्च स्तर (साहित्यिक) नहीं है।

दूसरा: 'असीर' (कैदी) 'इसार' से निकला है, जो चमड़े का पट्टा है जिससे ऊंट की गद्दी बांधी जाती है। उसे 'असीर' कहा गया क्योंकि उसके बंधन बांध दिए जाते हैं। अरब कहते हैं: 'उसने अपनी गद्दी बांधी (असरा)', यानी उसे कस दिया। फिर हर पकड़े गए व्यक्ति को 'असीर' कहा जाने लगा, भले ही उसे न बांधा गया हो। अल-आशा (4) ने कहा:

'और कविता ने मुझे अपने घर में बांध दिया ... जैसे बांधने वाले पट्टों ने गधे को बांध दिया।' अर्थात्: मैं इसके घर में हूँ; उनका इससे अर्थ इसमें चरम तक पहुँचना है।

जहाँ तक अल्लाह सर्वशक्तिमान के शब्दों में 'असर' का सवाल है: {और हमने उनके जोड़ (असरहुम) मज़बूत किए} [अल-इंसान: 28], तो वह निर्माण (शारीरिक बनावट) है। और एक व्यक्ति का 'उसराह' उसके परिजन हैं; क्योंकि वह उनसे मज़बूत होता है (5)।

तीसरा: अल्लाह तआला का कथन: {तुम उनका फ़िदया देते हो (तुफ़ादूहुम)}। नाफ़े आसिम (6) और अल-किसाई ने इसे इसी तरह पढ़ा है। बाकी लोगों ने: 'तफदूहूम' पढ़ा है, 'फ़िदा' से। और 'अल-फ़िदा' उन कैदियों के लिए फ़िदया माँगना है जो उनके हाथों में हों। अल-जौहरी (7) ने कहा: 'अल-

फ़िदा', अगर इसके पहले अक्षर पर कसरा हो, तो इसे लंबा (मद्द) या छोटा (क़स्र) किया जा सकता है, और अगर इस पर फत्हा हो, तो यह छोटा होता है; कहा जाता है: 'कुम'

---

(1) अस्-सबअह फ़ि अल-क़िरात, पृष्ठ 163, और अत-तयसीर, पृष्ठ 74। (2) मआनी अल-क़ुरआन 1/166, और लेखक ने नह़ास के माध्यम से 'इअ़राब अल-क़ुरआन' 1/244 में इसे उद्धृत किया है, और इससे पहले की बात भी वहीं से है। (3) मुजमल अल-लुग़ह 1/97। (4) दीवानुहू, पृष्ठ 103। (5) यह विषय 'मकायीस अल-लुग़ह' 1/107 में इसी तरह है। (6) हस्तलिखित प्रतियों और (M) में: 'आसिम' के बजाय 'हमज़ा' है, जो एक गलती है। देखें अस्-सबअह, पृष्ठ 163, और अत-तयसीर, पृष्ठ 74। (7) अस्-सिह़ाह़ (फ़दा)।

صفحہ 240

سورة البقرة : آیات 85 ، 86

ابو عمرو نے کہا، اور یہ ایسا ہی ہے جیسے تم کہتے ہو: 'سُکاری' اور 'سَکری'۔

اور جماعت کی قرأت 'أُساری' ہے سوائے حمزہ کے، کیونکہ انہوں نے 'أَسْری' (1) پڑھا 'فَعْلی' کے وزن پر، جو 'اسیر' کی جمع ہے بمعنی قید کیا گیا، اور اس طرح کے ٹوٹے ہوئے جمع کا قاعدہ 'فَعْلی' ہے، جیسے تم کہتے ہو: 'قتیل' اور 'قتلی'، اور 'جریح' اور 'جرحی'۔ ابو حاتم نے کہا: 'أُساری' جائز نہیں ہے۔ اور الزجاج (2) نے کہا: کہا جاتا ہے: 'أُساری'، جیسا کہ کہا جاتا ہے: 'سُکاری'۔ اور 'فَعالی' اصل ہے، اور 'فُعالی' اس پر داخل ہونے والی (صورت) ہے۔ اور محمد بن یزید سے حکایت کی گئی ہے کہ انہوں نے کہا: 'اسیر' اور 'أُسراء' کہا جاتا ہے، جیسے 'ظریف' اور 'ظرفاء'۔ ابن فارس (3) نے کہا: 'اسیر' کی جمع میں 'أَسْری' اور 'أُساری' کہا جاتا ہے، اور دونوں پڑھی گئی ہیں، اور کہا گیا: 'أَساری' - ہمزہ پر فتحہ کے ساتھ - لیکن یہ فصیح (اعلی درجے کی) نہیں ہے۔

دوسری بات: 'اسیر' 'اسار' سے مشتق ہے، اور یہ وہ چمڑے کا تسمہ ہے جس سے پالان کسا جاتا ہے، تو اسے 'اسیر' کہا گیا کیونکہ اس کی بندش مضبوط کی جاتی ہے، اور عرب کہتے ہیں: اس نے اپنا پالان کسا (أَسَرَ)، یعنی اسے مضبوطی سے باندھا، پھر ہر پکڑے جانے والے کو 'اسیر' کہا جانے لگا خواہ اسے نہ باندھا گیا ہو، اور اعشی (4) نے کہا:

وقَيَّدَني الشِّعْرُ في بَيْتِهِ ... كما قَيَّدَ الآسِراتُ الحمارا یعنی: میں اس کے گھر میں ہوں؛ اس سے اس کی مراد اس کی انتہا تک پہنچنا ہے۔

رہا اللہ عزوجل کے قول میں 'الأَسْر': ﴿وَشَدَدْنَا أَسْرَهُمْ﴾ [الانسان: 28] تو وہ تخلیق (جسمانی ساخت) ہے۔ اور آدمی کا 'أُسْرَة' اس کا قبیلہ یا خاندان ہے؛ کیونکہ وہ ان کے ذریعے طاقتور ہوتا ہے (5)۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿تُفَادُوهُمْ﴾ اسی طرح نافع، عاصم (6) اور کسائی نے پڑھا ہے۔ اور باقی قراء نے: 'تَفْدُوهم' پڑھا ہے 'فداء' سے، اور 'فداء' ان کے ہاتھوں میں موجود قیدی کے لیے فدیہ مانگنا ہے۔ جوہری (7) نے کہا: 'الفداء' کے شروع میں اگر زیر (کسرہ) ہو تو اسے کھینچ کر (ممدود) اور مختصر (مقصور) دونوں طرح پڑھا جاتا ہے، اور اگر زبر (فتحہ) ہو تو یہ مقصور ہوتا ہے، کہا جاتا ہے: 'قُم'

---

(1) السبعۃ فی القراءات ص 163، اور التیسیر ص 74۔ (2) معانی القرآن 1/166، اور مصنف نے اسے نحاس کے واسطے سے اعراب القرآن 1/244 میں نقل کیا ہے، اور اس سے پہلے کی کلام اسی سے ہے۔ (3) مجمل اللغۃ 1/97۔ (4) ان کا دیوان ص 103۔ (5) یہ مسئلہ معجم مقاییس اللغۃ 1/107 میں اسی طرح ہے۔ (6) خطی نسخوں اور (م) میں: عاصم کی جگہ 'حمزہ' ہے، جو کہ غلطی ہے، دیکھئے السبعۃ ص 163، اور التیسیر ص 74۔ (7) الصحاح (فدی)۔

241 Surah Al-Baqarah: Verses 85, 86

"Fada laka abi" (May my father be your ransom). Among the Arabs, some pronounce "fida'un" with a kasra on the first letter and nunation (tanwin) specifically when it is adjacent to the preposition 'lam'; so they say: "fida'in laka"; because it is an indefinite noun intended to carry the meaning of supplication. Al-Asma'i recited for Al-Nabigha (1): Wait, may all the people be your ransom, and what I have accumulated of wealth and children. It is said: "fadahu" and "fadahu", when he provides his ransom and rescues him. And "fadahu" with his own self, and "faddahu tafdiyatan" (2) when he says: "May I be made your ransom." And "tafadaw", meaning: some of them ransomed others, and "al-fidyah", "al-fida", and "al-fida'" all carry the same meaning. And "fadaytu nafsi": when I freed it after paying something, in the sense of ransoming myself, and from this is the saying of Al-Abbas to the Prophet ﷺ: "I ransomed myself, and I ransomed Aqeel" (4). These are two verbs that take two objects, the second of which follows a preposition. You say: "I ransomed my soul with my wealth," and "I ransomed him with my wealth" (5). The poet said (6): Wait, ransom your captive, for indeed my people and your people, I do not see a union for them. Fourth: The Almighty's saying: {And it is forbidden for you their eviction}: "Huwa" (It/He) is a subject (mubtada), and it is an allusion to the act of eviction, and "muharramun" (forbidden) is its predicate (khabar), and "ikhrajuhum" (their eviction) is a substitute (badal) for "huwa". If you wish, it can be an allusion to the narrative or story, and the sentence after it is its predicate (7), meaning: the matter is that their eviction is forbidden for you. Thus, "ikhrajuhum" is a second subject, and "muharramun" is its predicate, and the whole sentence is the predicate for "huwa". Within "muharramun" is a passive pronoun referring back to the eviction. It is also permissible for "muharramun" to be the subject, and "ikhrajuhum" to be the passive subject (na'ib fa'il) that replaces the predicate of "muharramun", and the entire sentence then becomes the predicate for "huwa" (8). Al-Farra' claimed (9) that "huwa" is a pillar (imad), but according to the Basran grammarians, this is an error and meaningless, because a 'pillar' cannot appear at the beginning of a sentence.

(1) His Diwan p. 36, and the author and the text following it were quoted from Al-Sihah. (2) As in (kh) and (z), which matches what is in Al-Sihah, and it appeared in (d), (z), and (m) as: "yufdihi". (3) In the manuscripts: "afda", and what is established is from Al-Sihah. (4) A part of a long hadith narrated by Al-Bukhari (421) from the hadith of Anas bin Malik (may Allah be pleased with him). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/175. (6) He is Al-Qutami, and the verse is in his Diwan p. 31. (7) I'rab al-Quran by Al-Nahhas

1/245. (8) Mushkil I'rab al-Quran 1/103. (9) In Ma'ani al-Quran 1/51. The author quoted him via Al-Nahhas in I'rab al-Quran 1/245.

241 सूरह अल-बकरा: आयतें 85, 86

"फ़दा लका अबी" (मेरे पिता आप पर न्योछावर हों)। अरबों में से कुछ लोग "फ़िदा" शब्द को विशेष रूप से 'लाम' उपसर्ग के बगल में होने पर 'तनवीन' के साथ 'कसरह' (इ की मात्रा) देते हैं; तो वे कहते हैं: "फ़िदा-इन लका"; क्योंकि यह एक अनिश्चित संज्ञा है जिससे उनका अर्थ 'दुआ' (प्रार्थना) होता है। असमाई ने अल-नाबिगा का एक शेर सुनाया है (1): ठहरो, सारे लोग तुम पर फ़िदा हों, और जो कुछ मैं धन और संतान के रूप में पैदा करता हूँ। और कहा जाता है: "फ़दाहु" और "फ़ादाहु", जब उसने उसका फ़िदा (फिरौती) दिया और उसे बचा लिया। और उसने अपनी जान के बदले उसका फ़िदा दिया, और "फ़द्दाहु तफ़्दियतन्" (2) जब उसने कहा: "मैं आप पर कुर्बान होऊं।" और "तफ़ादौ", यानी: उनमें से कुछ ने दूसरों का फ़िदा दिया, और "फ़िदिया", "फ़ुदा" और "फ़िदा" सबका अर्थ एक ही है। और "फ़ादैतु नफ़्सी": जब मैंने कुछ देकर उसे आज़ाद कराया, यानी अपनी जान का फ़िदा दिया, और इसी से पैगंबर ﷺ से अल-अब्बास का कथन है: "मैंने अपनी जान का फ़िदा दिया, और अक़ील का फ़िदा दिया" (4)। वे दो ऐसी क्रियाएं हैं जो दो कर्म लेती हैं, जिनमें से दूसरा कर्म उपसर्ग (हर्फ़ए-जर) के साथ आता है, आप कहते हैं: "मैंने अपने धन से अपनी जान का फ़िदा दिया," और "मैंने अपने धन से उसका फ़िदा दिया" (5), कवि ने कहा है (6): रुको, अपने कैदी का फ़िदा दो, क्योंकि मैं अपने लोगों और तुम्हारे लोगों के बीच कोई मिलन नहीं देख रहा हूँ। चौथा: अल्लाह का कहना: {और उनका निकाला जाना तुम पर हराम है}: यहाँ "हुवा" (वह) मुब्तदा (विषय) है, और यह 'निकालने' के लिए संकेत है, और "मुहर्रम" (वर्जित/हराम) उसकी खबर (विधेय) है, और "इखराजुहुम" (उनका निकाला जाना) "हुवा" का बदल है। और यदि आप चाहें तो यह बातचीत और कहानी के लिए संकेत हो सकता है, और उसके बाद वाला वाक्य उसकी खबर है (7), यानी: और बात यह है कि उनका निकाला जाना तुम पर हराम है; तो "इखराजुहुम" दूसरा मुब्तदा है, और "मुहर्रम" उसकी खबर है, और पूरा वाक्य "हुवा" की खबर है। "मुहर्रम" में एक ऐसा सर्वनाम है जो 'निकालने' की ओर इशारा करता है। यह भी संभव है कि "मुहर्रम" मुब्तदा हो, और "इखराजुहुम" नाईब फ़ाइल (Passive Subject) हो जो "मुहर्रम" की खबर की जगह ले ले, और पूरा वाक्य "हुवा" की खबर हो (8)। अल-फ़र्रा ने दावा किया (9) कि "हुवा" यहाँ 'एमाद' (स्तंभ) है, लेकिन बसरा के विद्वानों के अनुसार यह गलत है और इसका कोई अर्थ नहीं है; क्योंकि 'एमाद' वाक्य के शुरू में नहीं आता है।

(1) उनका दीवान पृ. 36, और लेखक ने इसे और इसके बाद की बात को अल-सहाह से उद्धृत किया है। (2) जैसा कि (ख) और (ज़) में है जो अल-सहाह के अनुकूल है, और (द), (ज़) और (म) में आया है: 'युफ़दीही'। (3) हस्तलिपियों में: 'अफ़दा', और जो स्थापित है वह अल-सहाह से है। (4) एक लंबी हदीस का हिस्सा जिसे बुखारी (421) ने अनस बिन मलिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/175। (6) वह अल-क़ुतामी है, और यह शेर उसके दीवान के पृ. 31 पर है। (7) एराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/245। (8) मुशकिल एराब अल-कुरान 1/103। (9) मानी अल-कुरान 1/51 में। और लेखक ने इसे अल-नहहास के माध्यम से एराब अल-कुरान 1/245 में उद्धृत किया है।

۲٤۱ سورہ بقرہ : آیات ۸۵ ، ۸٦

"فَدَى لك أبي" (میرے باپ آپ پر قربان ہوں)۔ عربوں میں سے بعض "فداء" کو تنوین کے ساتھ کسرہ دیتے ہیں جب وہ خاص طور پر 'لام' حرف جر کے پڑوس میں ہو؛ چنانچہ وہ کہتے ہیں: "فداءِ لک"؛ کیونکہ یہ نکرہ ہے جس سے ان کی مراد دعا کے معنی ہیں۔ اصمعی نے نابغہ کا شعر سنایا (۱): رک جاؤ، تمام لوگ تم پر قربان ہوں، اور جو کچھ میں مال اور اولاد میں سے پیدا کرتا ہوں۔ اور کہا جاتا ہے: "فداہ" اور "فاداہ"، جب اس نے اس کا فدیہ دیا اور اسے چھڑا لیا۔ اور اس نے اپنی جان سے اس کا فدیہ دیا، اور "فدّاہ تفديةً" (۲) جب اس نے کہا: "میں آپ پر قربان کیا جاؤں۔" اور "تفادَوْا"، یعنی: ان میں سے ایک نے دوسرے کا فدیہ دیا، اور "الفدية"، "الفدى" اور "الفداء" سب ایک ہی معنی میں ہیں۔ اور "فاديت نفسي": جب میں نے کچھ دے کر اسے آزاد کرایا، یعنی اپنی جان کا فدیہ دیا، اور اسی سے حضرت عباس کا نبی ﷺ سے قول ہے: "میں نے اپنی جان کا فدیہ دیا، اور عقیل کا فدیہ دیا" (٤)۔ یہ دو ایسے فعل ہیں جو دو مفعولوں کی طرف متعدی ہوتے ہیں، ان میں سے دوسرا حرف جر کے ساتھ ہوتا ہے، آپ کہتے ہیں: "میں نے اپنے مال سے اپنی جان کا فدیہ دیا،" اور "میں نے اپنے مال سے اس کا فدیہ دیا" (٥)، شاعر نے کہا (٦): ٹھہرو، اپنے قیدی کا فدیہ دو، بے شک میں اپنی قوم اور تمہاری قوم کا اجتماع نہیں دیکھ رہا۔ چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ إِخْرَاجُهُمْ} (اور حالانکہ ان کا نکالنا تم پر حرام ہے): "هو" مبتدا ہے، اور یہ نکالنے کی طرف کنایہ ہے، اور "محرّم" اس کی خبر ہے، اور "إخراجهم" "هو" سے بدل ہے، اور اگر آپ چاہیں تو یہ بات اور قصے سے کنایہ ہو سکتا ہے، اور اس کے بعد والا جملہ اس کی خبر ہے (۷)، یعنی: اور معاملہ یہ ہے کہ ان کا نکالنا تم پر حرام ہے؛ تو "إخراجهم" مبتدا ثانی ہے، اور "محرّم" اس کی خبر ہے، اور جملہ "هو" کی خبر ہے، اور "محرّم" میں ایک

ایسا ضمیر ہے جو 'نکالنے' کی طرف لوٹتا ہے۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ "محرّم" مبتدا ہو، اور "إخراجهم" نائب فاعل ہو جو "محرّم" کی خبر کے قائم مقام ہو جائے، اور پورا جملہ "ھو" کی خبر ہو (٨)۔ اور فراء کا دعویٰ ہے (٩) کہ "ھو" عماد ہے، اور بصریوں کے نزدیک یہ غلط ہے جس کا کوئی معنی نہیں؛ کیونکہ عماد کلام کے شروع میں نہیں ہوتا۔

(١) ان کا دیوان ص ٣٦، اور اسے مصنف نے اور اس کے بعد کی بات کو الصحاح سے نقل کیا ہے۔ (٢) (خ) اور (ز) میں اسی طرح ہے جو الصحاح کے موافق ہے، اور (د)، (ظ) اور (م) میں 'يُفديه' واقع ہوا ہے۔ (٣) قلمی نسخوں میں: 'أفدى' ہے، اور جو ثابت شدہ ہے وہ الصحاح سے ہے۔ (٤) ایک طویل حدیث کا ٹکڑا جسے بخاری (٤٢١) نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٥) المحرر الوجيز ١ / ١٧٥ ۔ (٦) وہ القطامی ہے، اور یہ شعر ان کے دیوان ص ٣١ میں ہے۔ (٧) إعراب القرآن للنحاس ١ / ٢٤٥۔ (٨) مشكل إعراب القرآن ١ / ١٠٣۔ (٩) معانی القرآن ٥١/١ میں۔ اور اسے مصنف نے النحاس کے واسطے سے إعراب القرآن ١/ ٢٤٥ میں نقل کیا ہے۔

And it is read as 'wa-huw' (وَهَوْ) by silencing the 'ha' due to the heaviness of the damma (1); as the poet said: 'So his prey does not escape (tanmi)... he has no wealth, and he is not counted among his kin' (2). And the same applies if you use the 'lam' or 'thumma', and this has been mentioned previously (3). Our scholars said: Allah Almighty had taken four covenants from them: to refrain from killing, to refrain from expulsion, to refrain from assisting against one another, and to ransom their captives; but they turned away from everything they were commanded except for the ransoming. So Allah rebuked them for that with a rebuke that is recited, saying: {Do you believe in part of the Scripture} (4) – which is the Torah – {and disbelieve in part}?! (5) I say: By the life of Allah, we have turned away from all of them through trials (fitan), so some of us assisted others against our own! Would that it were only against Muslims, but rather against the disbelievers! Until we left our brothers humiliated and belittled, with the laws of the polytheists being applied to them; there is no power nor strength except with Allah, the Most High, the Great. Our scholars said: Ransoming captives is obligatory even if not a single dirham remains (6). Ibn Khuwayz Mindad said (7): This verse implies the obligation of freeing captives, and traditions have been reported from the Prophet ﷺ that he freed captives and ordered their release (8), and the practice of the Muslims proceeded accordingly, and consensus was reached upon it. It is obligatory to free captives from the public treasury (Bayt al-Mal), and if it is not available, then it is an obligation upon all Muslims, and whoever among them undertakes it fulfills the obligation for the rest. This will be discussed further (9).

---

(1) This is the reading of Nafi' through the narration of Qalun, Abu 'Amr, and Al-Kisa'i. Al-Sab'a p. 150, and Al-Taysir p. 72. (2) He is Imru' al-Qais, and the verse is in his Diwan p. 125. Its commentator said: His saying: 'So his prey does not escape (tanmi)', meaning: it does not rise with the arrow and disappear from him, but rather falls in its place because it was hit in a vital spot. (3) 1/390, and the matter has been detailed there. (4) In (M): and he (wa-huwa). (5) Mentioned by Al-Wahidi in Al-Wasit 1/168, and attributed to Al-Suddi. (6) Al-Nawadir wa Al-Ziyadat 3/301, and Al-Bayan wa Al-Tahsil 3/80. (7) In (M): Khuwayz Mandad, see 1/180. (8) Among these hadiths is what was narrated by Al-Bukhari (3046) from the hadith of Abu Musa al-Ash'ari, may Allah be pleased with him, from the Prophet ﷺ who said: 'Free the captive – meaning the prisoner – feed the hungry, and visit the sick.' (9) In the commentary of verse (70) of Surah Al-Anfal.

और इसे 'हा' को साकिन (व-हौ) पढ़ा जाता है क्योंकि दम्मा भारी होता है (1); जैसा कि कवि ने कहा: 'उसका शिकार भागता (तन्मी) नहीं है... न उसका कोई धन है और न वह अपने कबीले में गिना जाता है' (2)। और इसी तरह यदि आप 'लाम' या 'थुम्मा' के साथ आते हैं, और यह पहले बताया जा चुका है (3)। हमारे विद्वानों ने कहा: अल्लाह तआला ने उनसे चार वादे लिए थे: हत्या न करना, निष्कासन न करना, एक-दूसरे के विरुद्ध सहायता न करना, और अपने कैदियों को छुड़ाना; लेकिन उन्होंने फिरौती के अलावा बाकी हर चीज़ से मुँह मोड़ लिया जिसके लिए उन्हें आदेश दिया गया था। तो अल्लाह ने उन्हें इसके लिए फटकार लगाई जो पढ़ी जाती है, कहा: {क्या तुम किताब के कुछ हिस्से पर विश्वास करते हो} (4) – जो कि तौरात है – {और कुछ हिस्से का इनकार करते हो}?! (5) मैं कहता हूँ: अल्लाह की कसम, हमने फितनों के कारण इन सभी से मुँह मोड़ लिया है, इसलिए हममें से कुछ ने अपनों के ही खिलाफ दूसरों की मदद की! काश यह केवल मुसलमानों के विरुद्ध होता, बल्कि काफिरों के विरुद्ध भी! यहाँ तक कि हमने अपने भाइयों को अपमानित और लाचार छोड़ दिया, उन पर मुशरिकों के कानून लागू हो रहे हैं; अल्लाह के सिवा कोई शक्ति और सामर्थ्य नहीं है, जो सबसे ऊँचा और महान है। हमारे विद्वानों ने कहा: कैदियों को छुड़ाना अनिवार्य है, भले ही एक दिरहम भी बाकी न बचे (6)। इब्न खुवैज़ मिंदाद ने कहा (7): इस आयत में कैदियों को छुड़ाने की अनिवार्यता शामिल है, और पैगंबर ﷺ से ऐसी हदीसें आई हैं कि उन्होंने कैदियों को मुक्त किया और उन्हें मुक्त करने का आदेश दिया (8), और मुसलमानों का अमल इसी पर रहा है और इस पर आम सहमति (इज्मा) हो चुकी है। कैदियों को बैतुल-माल (सरकारी खजाना) से छुड़ाना अनिवार्य है, और यदि वह न हो, तो यह सभी मुसलमानों पर फर्ज है, और उनमें से जो भी इसे करता है, वह बाकियों की ओर से इस फर्ज को पूरा कर देता है। यह आगे आएगा (9)।

---

(1) यह नाफे की किरात है कालून, अबू अम्र और अल-किसाई की रिवायत से। अस-सबअ पृ. 150, और अत-तयसीर पृ. 72। (2) वह इमरुल क़ैस है, और यह शेर उसके दीवान पृ. 125 में है। इसके व्याख्याकार ने कहा: उसके शब्द: 'तन्मी रमिइयतुहु', यानी: वह तीर लेकर भागता नहीं है और उससे गायब नहीं होता, बल्कि अपने प्राणघातक चोट के कारण उसी स्थान पर गिर जाता है। (3) 1/390, और वहाँ इस मसले पर विस्तार से बात की गई है। (4) (म) में: 'वह' (वा-हुवा)। (5) अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/168 में इसका उल्लेख किया है, और इसे अस-सुद्दी से जोड़ा है। (6) अन-नवादिर वल-ज़ियादात 3/301, और अल-बयान वत-तहसील 3/80। (7) (म) में: खुवैज़ मंदाद, देखें 1/180। (8)

इन हदीसों में से वह है जिसे बुखारी (3046) ने अबू मूसा अल-अशअरी (रज़ि.) की हदीस से पैगंबर ﷺ से रिवायत किया है कि आपने फरमाया: 'कैदी को आज़ाद करो - यानी युद्धबंदी को - भूखे को खाना खिलाओ और बीमार की इयादत करो।' (9) सूरा अल-अनफाल की आयत (70) की व्याख्या में।

۲۴۲ / سورة البقرہ : آیات ۸۵ ، ۸۶

اور اسے «وَهَوْ» (ہاء کے سکون کے ساتھ) پڑھا جاتا ہے کیونکہ ضمہ ثقیل ہے (۱)؛ جیسا کہ شاعر نے کہا: فَهو لا تَنْمِي رَمِيَّتُهُ مَالَهُ لا عُدَّ من نَفَرِهْ (۲) اور اسی طرح اگر آپ لام اور 'ثم' کے ساتھ آئیں، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۳)۔ ہمارے علماء نے کہا: اللہ تعالیٰ نے ان سے چار عہد لیے تھے: قتل نہ کرنا، نکالنا نہ، ایک دوسرے کے خلاف مدد نہ کرنا، اور اپنے قیدیوں کا فدیہ دینا؛ لیکن انہوں نے فدیہ کے علاوہ ہر اس چیز سے اعراض کیا جس کا انہیں حکم دیا گیا تھا۔ چنانچہ اللہ نے انہیں ایسی ڈانٹ پلائی جو تلاوت کی جاتی ہے، فرمایا: {أَفَتُؤْمِنُونَ بِبَعْضِ الْكِتَابِ} (۴) یعنی تورات {وَتَكْفُرُونَ بِبَعْضٍ}؟! (۵) میں کہتا ہوں: بخدا، ہم نے فتنوں کے باعث ان سب سے اعراض کر لیا ہے، چنانچہ ہم میں سے بعض نے بعض کے خلاف دوسروں کی مدد کی! کاش یہ صرف مسلمانوں کے خلاف ہوتا، بلکہ کافروں کے ساتھ مل کر! یہاں تک کہ ہم نے اپنے بھائیوں کو ذلیل و خوار چھوڑ دیا، ان پر مشرکوں کے احکامات چل رہے ہیں؛ نیکی کی طاقت اور گناہ سے بچنے کی ہمت نہیں مگر اللہ کی مدد سے جو بلند و عظمت والا ہے۔ ہمارے علماء نے کہا: قیدیوں کا فدیہ دینا واجب ہے چاہے ایک درہم بھی باقی نہ رہے (۶)۔ ابن خویز منداد نے کہا (۷): یہ آیت قیدیوں کی رہائی کے وجوب پر مشتمل ہے، اور اسی طرح نبی کریم ﷺ سے آثار وارد ہوئے ہیں کہ آپ نے قیدیوں کو چھڑایا اور انہیں چھڑانے کا حکم دیا (۸)، اور اسی پر مسلمانوں کا عمل جاری رہا اور اس پر اجماع منعقد ہوا۔ اور بیت المال سے قیدیوں کو چھڑانا واجب ہے، اگر بیت المال میں گنجائش نہ ہو تو یہ تمام مسلمانوں پر فرض ہے، اور ان میں سے جو بھی یہ کام کر دے گا، باقیوں سے یہ فرض ساقط ہو جائے گا۔ اور یہ آگے آئے گا (۹)۔

(۱) یہ نافع کی قرأت ہے قالون، ابو عمرو اور کسائی کی روایت سے۔ السبعہ ص ۱۵۰، اور التیسیر ص ۷۲۔ (۲) یہ امرؤ القیس ہے، اور شعر اس کے دیوان ص ۱۲۵ میں ہے۔ اس کے شارح نے کہا: اس کا قول: 'فہو لا تنمی رمیّتہ'، یعنی: وہ تیر لے کر بھاگتا نہیں اور غائب نہیں ہوتا، بلکہ مہلک چوٹ لگنے کی وجہ سے اپنی جگہ گر جاتا ہے۔ (۳) ۳۹۰/۱، اور اس مسئلہ میں وہاں تفصیل بیان کی گئی ہے۔ (۴) (م) میں: 'وھو'۔ (۵) اسے واحدی نے الوسیط ۱۶۸/۱ میں ذکر کیا ہے، اور اسے سدی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۶) النوادر والزیادات ۳۰۱/۳، اور البیان والتحصیل ۳/ ۸۰۔ (۷) (م) میں: خویز منداد، دیکھئے ۱۸۰/۱۔ (۸) ان احادیث میں سے وہ ہے جسے بخاری (۳۰۴۶) نے حضرت ابو موسیٰ اشعری رضی اللہ عنہ کی حدیث سے نبی کریم ﷺ سے روایت کیا ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: «قیدی کو آزاد کرو - یعنی جنگی قیدی کو - اور بھوکے کو کھانا کھلاؤ، اور بیمار کی عیادت کرو»۔ (۹) سورۃ الانفال کی آیت (۷۰) کی تفسیر میں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 87

Page 243

Fifth: His words, the Almighty: {So what is the recompense for those who do that among you except disgrace in worldly life} [Al-Baqarah: 85] is a subject and predicate. Disgrace (Al-Khizyu) is humiliation. Al-Jawhari said (1): "Khaziya - with a kasra (under the letter) - yakhza - khizyan": if he is humiliated and debased. Ibn al-Sikkit said (2): "He fell into a calamity." And "May Allah disgrace him" (akhzah Allah). And "Khaziya" also "yakhza - khizayatan": if he is ashamed, so he is "Khazyan". And a group are "Khazaya", and a woman is "Khazya".

Sixth: His words, the Almighty: {And on the Day of Resurrection they will be sent back} "Yuradduna" with a 'Ya' is the common recitation, and Al-Hasan recited it as "Turadduna" with a 'Ta' in the second person (3).

{To the severest punishment, and Allah is not unaware of what you do} Discussion on this has preceded (4), and likewise: {Those are the ones who have purchased...} the verse (5), so there is no meaning in repeating it. And "Yawm" (Day) is in the accusative case (mansub) because of "Yuradduna".

His words, the Almighty: {And We certainly gave Moses the Scripture and followed up after him with messengers. And We gave Jesus, the son of Mary, clear proofs and supported him with the Pure Spirit. Is it not so that whenever there came to you a messenger with what your souls did not desire, you were arrogant? So a party you denied and another party you killed} [Al-Baqarah: 87]

His words, the Almighty: {And We certainly gave Moses the Scripture} meaning the Torah. {And We followed up} (Qaffayna) means: We made to follow. "At-Tafqiyah" is following and succeeding; it is derived from following the "Qafa" (back of the neck), which is the back of the neck. You say: "I followed his Qafa" (Istaqfaytuhu) if you came from behind him. From it, the "Qafiyah" (rhyme) of poetry is named because it follows the rest of the speech. And "Al-Qafiyah" is the "Qafa" (back of the neck), and from it is the Hadith: "Satan ties three knots at the back of the head (qafiya) of any one of you" (6).

And "Al-Qafiy" and "Al-Qafawah" is what is set aside from milk and other things for someone you wish to honor. "And I followed the man" (Qafawtu al-rajul): I accused him of immorality. And "so-and-so is my Qafwah" meaning my accusation, and "my

Qafwah" meaning my choice. Ibn Duraid said (7): It is as if it is from the contraries (words with opposite meanings).

---

(1) As-Sihah (Khaza). (2) Tahdhib al-Alfadh 2/577, and the author quoted it from him via Al-Jawhari. (3) I'rab al-Quran by An-Nahhas 1/245, and Ibn Khalawayh attributed it to Al-Sulami on page 8. (4) In the interpretation of verse (74) of this Surah. (5) See 1/318. (6) Narrated by Ahmad (7308), Al-Bukhari (1142), and Muslim (776) from the Hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him. (7) Jamharat al-Lugha 3/156, and the author quoted it from him via Ibn Faris in Mujmal al-Lugha 3/762.

सूरा अल-बक़रह: आयत 87

पृष्ठ 243

पाँचवाँ: अल्लाह तआला का फ़रमान: {फिर तुम में से जो ऐसा करे उसका बदला दुनिया की ज़िंदगी में रुसवाई के सिवा क्या है} [अल-बक़रह: 85] यह मुक्तदा और ख़बर है। और "खिज़ी" (Al-Khizyu) का अर्थ है ज़िल्लत। अल-जौहरी ने कहा (1): "खज़िया - कसरा के साथ - यखज़ा - खिज़ियान": जब वह ज़लील और ख़्वार हो जाए। इब्न अल-सिक्किट ने कहा (2): "वह किसी मुसीबत में फँस गया।" और "अल्लाह उसे रुसवा करे" (अखज़ाहू अल्लाह)। और "खज़िया" का अर्थ "यखज़ा - खिज़ायातन" भी होता है: जब उसे शर्म आए, तो वह "खज़ियान" है। और लोगों के समूह को "खज़ाया" और महिला को "खज़्या" कहा जाता है।

छठा: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और क़ियामत के दिन वे लौटाए जाएँगे} "युरद्दूना" 'या' के साथ आम क़िरात है, और हसन ने इसे 'ता' के साथ "तुरद्दूना" (मुखातिब के तौर पर) पढ़ा है (3)।

{सबसे कड़े अज़ाब की तरफ़, और अल्लाह उससे ग़ाफ़िल नहीं है जो तुम करते हो} इस पर चर्चा पहले हो चुकी है (4), और उसी तरह: {वही लोग हैं जिन्होंने ख़रीदा...} आयत (5), तो इसे दोहराने का कोई मतलब नहीं है। और "यौम" (दिन) "युरद्दूना" की वजह से नसब की स्थिति (mansub) में है।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और हमने मूसा को किताब दी और उनके बाद एक के बाद एक रसूल भेजे। और हमने मरयम के बेटे ईसा को खुली निशानियाँ दीं और रूहुल-क़ुदुस (जिब्राईल) से उनकी मदद की। क्या फिर ऐसा न हुआ कि जब भी कोई रसूल तुम्हारे पास वह लेकर आया जिसे तुम्हारा नफ़्स नहीं चाहता था, तो तुम अकड़ गए? फिर तुमने एक गिरोह को झुठलाया और एक गिरोह को क़त्ल करते हो} [अल-बक़रह: 87]

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और हमने मूसा को किताब दी} यानी तौरात। {वक़फ़्फ़ैना} यानी: हमने पीछे लगाया (पैदरपै भेजा)। "अत-तफ़्फ़िया" का अर्थ है पीछे लगाना और एक के बाद दूसरा लाना; यह "अल-क़फ़ा" (गर्दन के पीछे का हिस्सा) के पीछे चलने से लिया गया है। आप कहते हैं: "इस्तक़फ़ैतुहू": जब आप उसके पीछे से आएँ। इसी से कविता की "क़ाफ़िया" का नाम पड़ा है, क्योंकि यह बाक़ी कलाम के पीछे आता है। और "अल-क़ाफ़िया" का अर्थ गर्दन का पिछला हिस्सा है,

और इसी से हदीस है: "शैतान तुममें से किसी की गर्दन के पिछले हिस्से (क़ाफ़िया) पर तीन गिरहें लगाता है" (6)।

और "अल-क़फ़ी" और "अल-क़फ़ावह" वह दूध या अन्य चीज़ें हैं जिन्हें आप किसी ऐसे व्यक्ति के लिए बचाकर रखते हैं जिसका आप सम्मान करना चाहते हैं। "वक़फ़ौतुल-रजुल": मैंने उस पर बदचलन होने का आरोप लगाया। "फ़ुलां मेरी क़फ़्वा" यानी मेरा आरोप, और "मेरी क़फ़्वा" यानी मेरी पसंद। इब्न दुरैद ने कहा (7): यह ऐसा है जैसे यह 'अज़दाद' (विपरीत अर्थ वाले शब्द) में से है।

---

(1) अस-सिहाह (खज़ा)। (2) तहज़ीब अल-अल्फ़ाज़ 2/577, और लेखक ने इसे अल-जौहरी के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (3) इ'राबुल-क़ुरआन - नह़ास 1/245, और इब्न खालवैह ने इसे पृष्ठ 8 पर अल-सुल्मी की ओर मंसूब किया है। (4) इस सूरा की आयत (74) की तफ़्सीर में। (5) देखिए 1/318। (6) इसे अहमद (7308), बुख़ारी (1142) और मुस्लिम (776) ने अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से निकाला है। (7) जम्हरतुल-लुग़ा 3/156, और लेखक ने इसे इब्न फ़ारिस के माध्यम से 'मुजमल अल-लुग़ा' 3/762 में उनसे उद्धृत किया है।

سورہ البقرہ: آیت ۸۷

صفحہ ۲۴۳

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: { فَمَا جَزَاءُ مَن يَفْعَلُ ذَٰلِكَ مِنكُمْ إِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيَوةِ الدُّنْيَا } [البقرة: 85] "پس تم میں سے جو ایسا کرے اس کا بدلہ دنیا کی زندگی میں رسوائی کے سوا کیا ہے" یہ مبتدا اور خبر ہے۔ اور "الخزی" کے معنی ذلت اور رسوائی کے ہیں۔ جوہری نے کہا (۱): "خزی - بکسر - یخی - خزیاً": یعنی جب وہ ذلیل و خوار ہو جائے۔ ابن السکیت نے کہا (۲): "وہ مصیبت میں پڑ گیا۔" اور "أخزاه الله" اللہ اسے رسوا کرے۔ اور "خزي" کا معنی "یخزی خزایة" بھی ہوتا ہے: جب وہ شرمندہ ہو، تو وہ "خزیان" (شرمندہ) ہے۔ اور لوگوں کی جماعت "خزایا" اور عورت "خزیا" ہے۔

چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: { وَيَوْمَ الْقِيَمَةِ يُرَدُّونَ } "اور قیامت کے دن وہ لوٹائے جائیں گے۔" "يُرَدُّونَ" یاء کے ساتھ عام قراءت ہے، اور حسن نے اسے تاء کے ساتھ "تُرَدُّونَ" خطاب کے طور پر پڑھا ہے (۳)۔

{ إِلَى أَشَدِّ الْعَذَابِ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ } "سخت ترین عذاب کی طرف، اور اللہ اس سے غافل نہیں جو تم کرتے ہو" اس پر کلام پہلے گزر چکا ہے (۴)، اور اسی طرح: { أُولَٰئِكَ الَّذِينَ اشْتَرَوُا } آیت (۵)، لہٰذا دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔ اور "یوم" لفظ "يُرَدُّونَ" کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے۔

ارشادِ باری تعالیٰ: { وَلَقَدْ ءَاتَيْنَا مُوسَى الْكِتَبَ وَقَفَّيْنَا مِنْ بَعْدِهِ بِالرُّسُلِ وَءَاتَيْنَا عِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنَاتِ وَأَيَّدْنَهُ بِرُوحِ الْقُدُسِ أَفَكُلَّمَا جَاءَكُمْ رَسُولُ بِمَا لَا تَهْوَى أَنفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ فَفَرِيقًا كَذَّبْتُمْ وَفَرِيقًا تَقْتُلُونَ } [البقرة: 87]

ارشادِ باری تعالیٰ: { وَلَقَدْ ءَاتَيْنَا مُوسَى الْكِتَبَ } یعنی تورات۔ { وَقَفَّيْنَا } یعنی: ہم نے پیچھے لگایا (پے در پے بھیجا)۔ "التفیہ": پیچھے لگانا اور پے در پے لانا؛ یہ "القفا" (گردن کی پشت) کے پیچھے چلنے سے ماخوذ ہے۔ آپ کہتے ہیں: "استقفیتہ": جب آپ اس کے پیچھے سے آئیں۔ اسی سے شعر کا "قافیہ" نام رکھا گیا ہے؛ کیونکہ وہ باقی کلام کے پیچھے آتا ہے۔ اور "القافیہ": گدی (گردن کا پچھلا حصہ)، اور اسی سے حدیث ہے: "شیطان تم میں سے کسی کی گدی (قافیہ) پر تین گرہیں لگا دیتا ہے" (۶)۔

اور "القفی" اور "القفاوۃ": وہ دودھ وغیرہ جو آپ اس شخص کے لیے بچا کر رکھیں جس کا آپ اکرام کرنا چاہتے ہیں۔ "وقفوت الرجل": میں نے اس پر بدکاری کی تہمت لگائی۔ "فلاں میری قفوہ" یعنی میری تہمت، اور "میری قفوہ" یعنی میری پسندیدہ چیز۔ ابن درید نے کہا (۷): گویا یہ اضداد (الٹ معنی والے الفاظ) میں سے ہے۔

---

(۱) الصحاح (خزا)۔ (۲) تہذیب الالفاظ ۲/ ۵۷۷، اور مصنف نے اسے جوہری کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔ (۳) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۴۵، اور ابن خالویہ نے ص ۸ پر اسے سلمی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۴) اسی سورہ کی آیت (۷۴) کی تفسیر میں۔ (۵) دیکھئے ۱/ ۳۱۸۔ (۶) اسے احمد (۷۳۰۸)، بخاری (۱۱۴۲) اور مسلم (۷۷۶) نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۷) جمہرۃ اللغہ ۳/ ۱۵۶، اور مصنف نے اسے ابن فارس کے واسطے سے 'مجمل اللغہ' ۳/ ۷۶۲ میں ان سے نقل کیا ہے۔

244 Surah Al-Baqarah: Verse 87 The scholars said: This verse is like His Almighty’s saying: {Then We sent Our messengers in succession} [Al-Mu'minun: 44]. Every messenger who came after Moses came to affirm the Torah and the command to adhere to it until Jesus, peace be upon him (1). It is said: "Rusul" and "Rusul" [with different vocalizations] are two dialects; the first is the dialect of Al-Hijaz, and the second is the dialect of Tamim; whether it is possessive (idafa) or not. Abu Amr used to lighten [the vocalization] when adding to two letters, and making it heavy when adding to one letter (2). His Almighty's saying: {And We gave Jesus the son of Mary clear proofs}, meaning: arguments and evidences, and they are what Allah mentioned in "Al-Imran" and "Al-Ma'idah" (3); Ibn Abbas said so (4). {And We supported him}, meaning: We strengthened him. Mujahid and Ibn Muhaysin read: "Aayidnahu" with elongation (5), and they are two dialects. {With the Holy Spirit (Ruh al-Qudus)}. Abu Malik and Abu Salih narrated from Ibn Abbas, and Ma'mar from Qatadah said: Gabriel, peace be upon him (6). Hassan said: And Gabriel is the Messenger of Allah among us, and the Holy Spirit is not hidden (7) An-Nahhas said: Gabriel was called "Spirit" (Ruh) and was attributed to "Holiness" (Al-Qudus); because he was created by the formation of Allah Almighty as a spirit without the birth of a father who sired him; and likewise Jesus was called "Spirit" for this reason (8). Ghalib bin Abdullah narrated from Mujahid who said: Al-Qudus is Allah Almighty (9). Likewise, Al-Hasan said: Al-Qudus is Allah, and His spirit is Gabriel (10). Abu Rawq narrated from Al-Dahhak from Ibn...

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/176. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/245. See Al-Sab'ah p. 196, and Al-Taysir p. 85. (3) Al-Imran (49), and Al-Ma'idah (110). (4) Narrated by al-Tabari in his Tafsir 2/220, and mentioned by al-Mawardi in Al-Nukat wal-Uyun 1/156. (5) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 8, and Ibn Jinni attributed it in Al-Muhtasib 1/95 to Mujahid from Abu Amr, and Ibn Atiyyah attributed it in Al-Muharrar al-Wajiz 1/176 to Ibn Muhaysin, al-A'raj, and Humayd. (6) Abd al-Razzaq narrated the saying of Qatadah in his Tafsir 1/51, and through him al-Tabari 2/222, and mentioned by al-Mawardi 1/156, and al-Wahidi in Al-Wasit 1/171, and Ibn Atiyyah 1/176. As for the saying of Ibn Abbas, al-Wahidi mentioned it 1/171. (7) Diwan Hassan p. 7, and in it: "Amin" instead of "Rasul" and "Lahu kifa'" instead of "bihi khafa'". (8) See Al-Nukat wal-Uyun 1/156. (9) Al-Suyuti attributed it in Al-Durr al-Manthur 1/86 to Ibn Abi Hatim. (10) Al-Mawardi cited it in Al-Nukat wal-Uyun 1/156.

244 सूरह अल-बक़रह: आयत 87 विद्वानों ने कहा: यह आयत सर्वशक्तिमान के इस कथन की तरह है: {फिर हमने अपने रसूलों को एक के बाद एक भेजा} [अल-मुअमिनून: 44]। मूसा के बाद आने वाला हर रसूल तौरात की पुष्टि करने और ईसा अलैहिस्सलाम तक उसका पालन करने के आदेश के साथ आया (1)। यह कहा जाता है: "रुसुल" और "रुसुल" [अलग-अलग उच्चारण के साथ] दो बोलियाँ हैं; पहली हिजाज़ की बोली है, और दूसरी तमीम की बोली है; चाहे वह संबंधकारक (इज़ाफ़ा) हो या न हो। अबू अम्र जब दो अक्षरों से जुड़ते थे तो हल्का (उच्चारण) करते थे, और एक अक्षर से जुड़ने पर भारी (2)। सर्वशक्तिमान का कथन: {और हमने मरियम के बेटे ईसा को स्पष्ट प्रमाण दिए}, अर्थात: तर्क और प्रमाण, और ये वही हैं जिनका अल्लाह ने "आल-इमरान" और "अल-माएदा" में उल्लेख किया है (3); इब्न अब्बास ने ऐसा कहा है (4)। {और हमने उसे समर्थन दिया}, अर्थात: हमने उसे मजबूत किया। मुजाहिद और इब्न मुहयसिन ने इसे "आयदनाहु" (मद के साथ) पढ़ा (5), और वे दो बोलियाँ हैं। {पवित्र आत्मा (रूह अल-कुदुस) के साथ}। अबू मलिक और अबू सालेह ने इब्न अब्बास से रिवायत की, और मामर ने कतादा से कहा: जिब्रईल अलैहिस्सलाम (6)। हस्सान ने कहा: और जिब्रईल हमारे बीच अल्लाह के रसूल हैं, और पवित्र आत्मा छिपी नहीं है (7) अन-नहस ने कहा: जिब्रईल को "रूह" कहा गया और उन्हें "कुदुस" (पवित्रता) से जोड़ा गया; क्योंकि वह अल्लाह सर्वशक्तिमान की रचना द्वारा बिना किसी पिता के जन्म के एक रूह के रूप में बने थे; और इसी तरह ईसा को भी इसी कारण से "रूह" कहा गया (8)। गालिब बिन अब्दुल्ला ने मुजाहिद से रिवायत की कि उन्होंने कहा: अल-कुदुस अल्लाह सर्वशक्तिमान है (9)। इसी तरह अल-हसन ने कहा: अल-कुदुस अल्लाह है, और उसकी रूह जिब्रईल है (10)। अबू रौक ने अद-दह्हाक से, इब्न... से रिवायत की।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/176. (2) अन-नहस द्वारा ए'राब अल-कुरान 1/245। अल-सबह पृष्ठ 196 और अल-तयसीर पृष्ठ 85 देखें। (3) आल-इमरान (49), और अल-माएदा (110)। (4) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/220 में इसे निकाला है, और अल-मावर्दी ने अल-नुकात वल-उयून 1/156 में इसका उल्लेख किया है। (5) अल-किरात अल-शाधाह पृष्ठ 8, और इब्न जिन्नी ने अल-मुहतसिब 1/95 में इसे अबू अम्र से मुजाहिद के लिए जिम्मेदार ठहराया, और इब्न अतियाह ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/176 में इसे इब्न मुहयसिन, अल-आरज और हुमैद के लिए जिम्मेदार ठहराया। (6) कतादा के कथन को अब्द अल-रज्जाक ने अपनी तफ़सीर 1/51 में निकाला, और उनके माध्यम से अल-तबरी 2/222 में, और अल-मावर्दी ने 1/156 में, और अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/171 में, और इब्न

अतियाह ने 1/176 में इसका उल्लेख किया। जहाँ तक इब्न अब्बास के कथन का सवाल है, अल-वाहिदी ने इसका उल्लेख 1/171 में किया है। (7) दीवान हस्सान पृष्ठ 7, और इसमें: "रसूल" के बजाय "अमीन" और "बिही खफ़ा" के बजाय "लहु किफ़ा"। (8) अल-नुकात वल-उयून 1/156 देखें। (9) अल-सुयुति ने अल-दुर्र अल-मंथर 1/86 में इसे इब्न अबी हातिम के लिए जिम्मेदार ठहराया। (10) अल-मावर्दी ने अल-नुकात वल-उयून 1/156 में इसका उल्लेख किया है।

244 سورة البقرہ: آیت 87 علماء نے کہا: اور یہ آیت اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی طرح ہے: ﴿ثُمَّ أَرْسَلْنَا رُسُلَنَا تَتْرَا﴾ [المؤمنون: 44]۔ اور ہر رسول جو موسیٰ کے بعد آیا، وہ تورات کی تصدیق اور عیسیٰ علیہ السلام تک اس پر عمل کرنے کے حکم کے ساتھ آیا (1)۔ اور کہا جاتا ہے: "رُسُل" اور "رُسُل" [مختلف اعراب کے ساتھ] دو زبانیں (بولیاں) ہیں، پہلی حجاز کی زبان ہے، اور دوسری تمیم کی زبان ہے؛ چاہے وہ مضاف ہو یا غیر مضاف۔ اور ابو عمرو جب دو حرفوں کی طرف اضافت کرتے تو تخفیف کرتے، اور جب ایک حرف کی طرف اضافت کرتے تو ثقیل (بھاری) پڑھتے (2)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَءَاتَيْنَا عِيسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنَتِ﴾، یعنی: دلائل اور نشانیاں، اور یہ وہی ہیں جن کا ذکر اللہ نے "آل عمران" اور "المائدہ" میں کیا ہے (3)؛ یہ ابن عباس کا قول ہے (4)۔ ﴿وَأَيَّدْنَهُ﴾ یعنی: ہم نے اسے قوت بخشی۔ اور مجاہد اور ابن محیصن نے مد کے ساتھ «آیدناہ» پڑھا ہے (5)، اور یہ دونوں لغات ہیں۔ ﴿بِرُوحِ الْقُدُسِ﴾ ابو مالک اور ابو صالح نے ابن عباس سے، اور معمر نے قتادہ سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: یہ جبرائیل علیہ السلام ہیں (6)۔ اور حسان نے کہا: اور جبرائیل ہم میں اللہ کے رسول ہیں، اور روح القدس (کی پہچان) میں کوئی پوشیدگی نہیں ہے (7) النحاس نے کہا: جبرائیل کا نام "روح" رکھا گیا اور انہیں "القدس" (پاکیزگی) کی طرف منسوب کیا گیا؛ اس لیے کہ وہ اللہ عزوجل کی تخلیق سے بغیر کسی والد کی ولادت کے ایک روح بنے؛ اور اسی وجہ سے عیسیٰ علیہ السلام کا نام بھی "روح" رکھا گیا (8)۔ غالب بن عبداللہ نے مجاہد سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: القدس سے مراد اللہ عزوجل ہے (9)۔ اسی طرح حسن نے کہا: القدس اللہ ہے، اور اس کی روح جبرائیل ہیں (10)۔ اور ابو روق نے ضحاک سے، انہوں نے ابن... سے روایت کیا۔

(1) المحرر الوجيز 1/176۔ (2) اعراب القرآن للنحاس 1/245۔ اور دیکھئے السبعہ ص 196، اور التیسیر ص 85۔ (3) آل عمران (49)، اور المائدہ (110)۔ (4) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/220 میں نقل کیا ہے، اور ماوردی نے النکت والعیون 1/156 میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (5) القراءات الشاذہ ص 8، اور ابن جنی نے المحتسب 1/95 میں اسے ابو عمرو سے مجاہد کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 1/176 میں اسے ابن محیصن، الاعرج اور حمید کی طرف منسوب کیا ہے۔ (6) قتادہ کا قول عبد الرزاق نے اپنی تفسیر 1/51 میں نقل کیا ہے، اور ان کے واسطے سے طبری نے 2/222 میں، اور ماوردی نے 1/156 میں اس کا ذکر کیا ہے، اور واحدی نے الوسیط 1/171 میں، اور ابن عطیہ نے 1/176 میں۔ جہاں تک ابن عباس کے قول کا تعلق ہے، تو اسے واحدی نے 1/171 میں ذکر کیا ہے۔ (7) دیوان حسان ص 7، اور اس میں: "رسول" کی جگہ "امین" اور "بہ خفاء" کی جگہ "لہ کفاء" ہے۔ (8) دیکھئے النکت والعیون 1/156۔ (9) سیوطی نے الدر المنثور 1/86 میں اسے ابن ابی حاتم کی طرف منسوب کیا ہے۔ (10) ماوردی نے اسے النکت والعیون 1/156 میں نقل کیا ہے۔

Page 245 Surah Al-Baqarah: Verse 87

[Ibn] Abbas said regarding "by the Holy Spirit": It is the name by which Jesus used to revive the dead (1); this was also said by Sa'id bin Jubayr (2) and Ubayd bin Umayr (3), and it is the Greatest Name of Allah. It is also said: It means the Gospel; He called it 'spirit' just as Allah called the Quran 'spirit' in His saying: "And thus We have revealed to you an inspiration [spirit] of Our command" [Ash-Shura: 52] (4). The first [opinion] is more apparent, and Allah knows best. And 'Al-Quds' (the Holy) means purity. This has been mentioned before (5).

The saying of the Almighty: "Is it that whenever there came to you a messenger with what your souls did not desire" i.e., what does not agree with them or suit them; the 'h' (in 'tahwa') was omitted due to the length of the noun, meaning: with what your souls do not desire [tahwahu] (6). "you grew arrogant" against answering him out of contempt for the messengers and considering the message far-fetched. The root of 'al-hawa' (desire) is inclination towards something, and its plural is 'ahwa', as it appeared in the Revelation (7). It is not pluralized as 'ahwiyah', though they [the Arabs] have said 'andiyah' for 'nada' (dew/gathering place). A poet said: "On a night in [the month of] Jumada, full of gatherings... the dog cannot see the tent-rope in its darkness" (8).

Al-Jawhari said (9): It is anomalous. Desire is called 'hawa' because it makes its possessor fall (yahwi) into the Fire; therefore, it is mostly used only for what is not right and for what has no good in it, and this verse is part of that. It might [sometimes] be used for the truth, and from that is the saying of Umar, may Allah be pleased with him, regarding the prisoners of Badr: "The Messenger of Allah ﷺ favored what Abu Bakr said and did not favor what I said" (10). And Aisha said to the Prophet ﷺ in the Sahih...

(1) Reported by al-Tabari 2/223, Ibn Abi Hatim 1/269, and mentioned by al-Mawardi 1/156. (2) Reported by Sa'id bin Mansur in his Sunan (200), and cited by Ibn Abi Hatim 1/270. (3) Al-Laythi, al-Junda'i, al-Makki, the preacher, the commentator, born during the life of the Messenger of Allah ﷺ, he was among the trustworthy Successors and their imams in Mecca, died in the year (74 AH). Al-Siyar 4/156. (4) Al-Nukat wal-'Uyun 1/156. (5) 1/414. (6) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/245. (7) As in His saying: "and do not follow the inclinations of a people who had gone astray before" [Al-Ma'idah: 77]. (8) The verse is by Murrah bin Mahkan, it is in Al-Muqtadab 3/81, Al-Khasa'is 3/52, and Sharh al-Hamasa by al-Marzuqi 4/1563. His saying 'al-tunuba' means the house's

rope, as in Sharh al-Hamasa. (9) Al-Sahah (Nady). (10) Al-Muharrar al-Wajiz 1/177, and the speech before it is from it.

पृष्ठ 245 सूरा अल-बकरा: आयत 87

[इब्न] अब्बास ने "पवित्र आत्मा (रूह अल-कुदुस) के द्वारा" के संबंध में कहा: यह वह नाम है जिसके द्वारा ईसा मृतकों को जीवित करते थे (1); यही बात सईद बिन जुबैर (2) और उबैद बिन उमैर (3) ने भी कही है, और यह अल्लाह का सबसे महान नाम है। यह भी कहा गया है: इसका अर्थ इंजील (बाइबल का सुसमाचार) है; उन्होंने इसे 'रूह' (आत्मा) कहा है जैसे अल्लाह ने कुरान को अपने इस कथन में 'रूह' कहा है: "और इसी तरह हमने आपकी ओर अपने आदेश से एक रूह (प्रेरणा) वह्य की है" [अश-शूरा: 52] (4)। पहला [विचार] अधिक स्पष्ट है, और अल्लाह बेहतर जानता है। और 'कुदुस' का अर्थ है पवित्रता। यह पहले भी आ चुका है (5)।

अल्लाह तआला का कथन: "क्या जब कभी तुम्हारे पास कोई रसूल वह लेकर आया जिसे तुम्हारा जी नहीं चाहता था" अर्थात: जो उनके अनुकूल या उपयुक्त नहीं था; संज्ञा की लंबाई के कारण 'ह' (तह्वा में) हटा दिया गया था, यानी: जिसे तुम्हारा जी नहीं चाहता था (तह्वाहु) (6)। "तो तुमने घमंड किया" रसूलों के प्रति अवमानना और संदेश को दूर की बात समझने के कारण उनके उत्तर देने से। 'हवा' (इच्छा) का मूल किसी चीज़ की ओर झुकाव है, और इसका बहुवचन 'अहवा' है, जैसा कि वह्य में आया है (7)। इसका बहुवचन 'अहविया' नहीं बनाया जाता, हालाँकि उन्होंने 'नदा' (ओस/सभा स्थल) के लिए 'अंदिया' कहा है। एक कवि ने कहा: "जुमादा [महीने] की एक रात में, सभाओं से भरी... कुत्ता उसके अंधेरे में तंबू की रस्सी नहीं देख सकता" (8)।

अल-जौहरी ने कहा (9): यह असामान्य है। इच्छा को 'हवा' कहा जाता है क्योंकि यह अपने स्वामी को आग (नर्क) में गिरा देती है (यह्वी); इसलिए, इसका उपयोग अधिकतर केवल उसी के लिए किया जाता है जो सही नहीं है और जिसमें कोई भलाई नहीं है, और यह आयत उसी में से है। कभी-कभी इसका उपयोग सत्य के लिए भी किया जा सकता है, और उसी में से उमर रज़ियल्लाहु अन्हु का बद्र के कैदियों के बारे में कथन है: "अल्लाह के रसूल ﷺ ने अबू बक्र की बात को पसंद किया और मेरी बात को पसंद नहीं किया" (10)। और आयशा ने नबी ﷺ से सहीह में कहा...

(1) इसे अल-तब़री 2/223, इब्न अबी हातिम 1/269 ने निकाला है, और अल-मावर्दी 1/156 ने इसका उल्लेख किया है। (2) इसे सईद बिन मंसूर ने अपनी सुनन (200) में निकाला है, और इब्न अबी हातिम 1/270 ने इसे उद्धृत किया है। (3) अल-लैथी, अल-जुंदई, अल-मक्की, उपदेशक, टिप्पणीकार, अल्लाह के रसूल ﷺ के जीवन काल में पैदा हुए, वे मक्का में विश्वसनीय ताबईन और

उनके इमामों में से थे, वर्ष (74 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 4/156। (4) अल-नुक़त वल-'उयून 1/156। (5) 1/414. (6) अल-नह़्हास द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/245। (7) जैसा कि उनके कथन में है: "और उन लोगों की इच्छाओं का पालन न करो जो पहले भटक चुके थे" [अल-माइदा: 77]। (8) यह पद मुर्रा बिन महकान का है, यह अल-मुक़्तदब 3/81, अल-खसाइस 3/52, और अल-मरज़ूकी द्वारा शर्ह अल-हमासा 4/1563 में है। उनका कहना 'अत-तुनुबा' घर की रस्सी है, जैसा कि शर्ह अल-हमासा में है। (9) अल-सह़ाह़ (नदी)। (10) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/177, और उससे पहले की बात उसी से है।

صفحہ ٢٤٥ سورۃ البقرہ: آیت ٨٧

ابن عباس نے "روح القدس کے ذریعے" کے متعلق کہا: یہ وہ نام ہے جس کے ذریعے حضرت عیسیٰ علیہ السلام مردوں کو زندہ کیا کرتے تھے (١)؛ یہی بات سعید بن جبیر (٢) اور عبید بن عمیر (٣) نے بھی کہی ہے، اور یہ اللہ کا اسم اعظم ہے۔ اور یہ بھی کہا گیا: اس سے مراد انجیل ہے؛ اللہ نے اسے روح کا نام دیا جیسے اللہ نے قرآن کو اپنی اس بات میں روح کا نام دیا: "اور اسی طرح ہم نے آپ کی طرف اپنے حکم سے ایک روح (وحی) بھیجی ہے" [الشوریٰ: ٥٢] (٤)۔ اور پہلا قول زیادہ واضح ہے، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ اور القدس کا مطلب ہے پاکیزگی۔ یہ پہلے گزر چکا ہے (٥)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: "بھلا جب کبھی تمہارے پاس کوئی رسول وہ چیز لے کر آیا جسے تمہارے دل نہیں چاہتے تھے" یعنی: جو ان کے موافق اور ان کے لیے مناسب نہیں تھی؛ اسم کی طوالت کی وجہ سے 'ہ' (تہویٰ میں) حذف کر دیا گیا، یعنی: جسے وہ نہیں چاہتے تھے (تہواہ) (٦)۔ "تو تم نے تکبر کیا" رسولوں کی تحقیر کی وجہ سے اور پیغام کو بعید از قیاس سمجھ کر ان کی دعوت قبول کرنے سے جی چرایا۔ 'ہویٰ' (خواہش) کی اصل کسی چیز کی طرف میلان ہے، اور اس کی جمع 'اہواء' آتی ہے، جیسا کہ تنزیل (وحی) میں آیا ہے (٧)۔ اس کی جمع 'اہویہ' نہیں آتی، اگرچہ انہوں نے 'ندی' کی جمع 'اندیہ' کہی ہے۔ شاعر کہتا ہے: "جمادی [کے مہینے] کی ایک رات میں جو مجلسوں والی تھی... کتا اس کی تاریکی میں خیمے کی رسی تک نہیں دیکھ پاتا" (٨)۔

جوہری (٩) کہتے ہیں: یہ شاذ (غیر معمولی) ہے۔ خواہش کو 'ہویٰ' اس لیے کہا گیا کیونکہ یہ اپنے صاحب کو آگ (جہنم) میں گرا دیتی ہے (یہوی)؛ اسی لیے غالباً اس کا استعمال صرف ایسی چیز میں ہوتا ہے جو حق نہ ہو اور جس میں کوئی خیر نہ ہو، اور یہ آیت اسی قبیل سے ہے۔ اور بسا

اوقات یہ حق کے لیے ہی استعمال ہوتا ہے، اور اسی میں سے حضرت عمر رضی اللہ عنہ کا غزوہ بدر کے قیدیوں کے بارے میں قول ہے: "رسول اللہ ﷺ نے اس بات کو پسند کیا جو ابوبکر نے کہی تھی اور میری بات کو پسند نہیں کیا" (۱۰)۔ اور عائشہ رضی اللہ عنہا نے نبی ﷺ سے صحیح [بخاری/مسلم] میں کہا...

(۱) اسے طبری نے ۲۲۳/۲، ابن ابی حاتم نے ۲٦۹/۱ میں روایت کیا اور ماوردی نے ۱٥٦/۱ میں ذکر کیا۔ (۲) اسے سعید بن منصور نے اپنی سنن (۲۰۰) میں روایت کیا اور ابن ابی حاتم نے ۲۷۰/۱ میں درج کیا۔ (۳) اللیثی، الجندعی، المکی، واعظ، مفسر، رسول اللہ ﷺ کی زندگی میں پیدا ہوئے، مکہ میں ثقہ تابعین اور ان کے ائمہ میں سے تھے، سن ۷٤ ہجری میں وفات پائی۔ السیر ۱٥٦/٤۔ (٤) النکت والعیون ۱٥٦/۱۔ (٥) ٤۱٤/۱۔ (٦) اعراب القرآن للنحاس ۲٤٥/۱۔ (۷) جیسا کہ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد میں ہے: "اور ان لوگوں کی خواہشات کی پیروی نہ کرو جو پہلے سے گمراہ ہو چکے تھے" [المائدہ: ۷۷]۔ (۸) یہ شعر مرہ بن محکان کا ہے، اور یہ المقتضب ۸۱/۳، الخصائص ٥۲/۳ اور شرح الحماسہ للمرزوقی ۱٥٦۳/٤ میں ہے۔ الطنبا کا مطلب گھر (خیمے) کی رسی ہے، جیسا کہ شرح الحماسہ میں ہے۔ (۹) الصحاح (ندی)۔ (۱۰) المحرر الوجیز ۱۷۷/۱، اور اس سے پہلے کی گفتگو بھی اسی سے ہے۔

246 Surah Al-Baqarah: Verse 88

The Hadith: "By Allah, I see that your Lord hastens to fulfill your desires." Narrated by Muslim (1).

His saying, the Almighty: {Some you denied} "Some" (fariqan) is in the accusative case (Mansub) by "you denied" (kadhdhabtum), and likewise {and some you killed}. Among those they denied were Jesus and Muhammad, peace be upon them, and among those they killed were John and Zechariah, peace be upon them, as will be explained in [Surah] 'Subhan' (Al-Isra), God willing (2).

His saying, the Almighty: {And they said, "Our hearts are wrapped." But, [in fact], Allah has cursed them for their disbelief, so little is it that they believe. 88}

His saying, the Almighty: {And they said} meaning the Jews {Our hearts are wrapped (Ghulf)} with a sukun on the lam, plural of 'aghlaf'; meaning: they have covers (3). It is like His saying: {Our hearts are within coverings (akinnah) from that to which you invite us} [Fussilat: 5], i.e., in containers. Mujahid said: "Ghulf": there is a veil over them (4). Ikrimah said: there is a seal on them (5). Linguists said: "I wrapped (ghallaftu) the sword": I made a scabbard (ghilaf) for it. So a heart is 'aghlaf', i.e., covered from understanding and discernment.

Ibn Abbas, Al-A'raj, and Ibn Muhaysin read: "Ghulu-fun" with a damma on the lam (6). Ibn Abbas said: i.e., our hearts are full of knowledge and do not need the knowledge of Muhammad ﷺ or anyone else (7).

And it was said: It is the plural of 'ghilaf' (cover/container); like 'khimar' (veil) and 'khumur' (veils); meaning: our hearts are vessels for knowledge, so why do they not understand from you when we have already contained much knowledge!

And it was said: The meaning is: how can the knowledge of Muhammad ﷺ be hidden from them? So Allah the Almighty refuted them by saying: {But Allah has cursed them}.

(1) The first is a part of a Hadith from Umar, may Allah be pleased with him, about the Battle of Badr, No. (1763), and it is with Ahmad (208). The second is a part of a Hadith from Aisha, may Allah be pleased with her, No. (1464), and it is with Ahmad (25026) and Al-Bukhari (4788). (2) At His saying, the Almighty: {If you do good, you do good for yourselves}... [Verse: 7]. (3) In (Kh), (Z), and (T): covers from what you invite us to. (4) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/228. (5) Narrated by Ibn Abi Hatim in his Tafsir

1/274. (6) Mentioned by Ibn Khalawayh in 'Al-Qira'at al-Shadhdhah' p. 8, and Abu Ali al-Farsi in 'Al-Hujjah lil-Qurra' al-Sab'ah' 2/153, and they attributed it to Al-Lu'lu'i from Abu Amr. Abu Ali said: What is known from him is the lightened form (takhfif). Al-Baghawi attributed it in his Tafsir 1/93 to Ibn Abbas and Al-A'raj, and Ibn Atiyyah added its attribution in 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/177 to Al-A'mash. (7) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/231.

२४६ सूरह अल-बकरा: आयत ८८

हदीस: "अल्लाह की कसम, मैं देखता हूँ कि आपका रब आपकी इच्छाओं को पूरा करने में जल्दी करता है।" इसे मुस्लिम ने उद्धृत किया है (१)।

अल्लाह तआला का कथन: {एक गिरोह को तुमने झुठलाया} 'एक गिरोह' (फ़रीक़न) 'तुमने झुठलाया' (कज्जब्तुम) द्वारा मंसूब है, और इसी तरह {और एक गिरोह को तुम कत्ल करते हो}। जिन्हें उन्होंने झुठलाया उनमें ईसा और मुहम्मद (उन पर शांति हो) थे, और जिन्हें उन्होंने कत्ल किया उनमें यहया और जकरिया (उन पर शांति हो) थे, जैसा कि इंशाअल्लाह 'सुब्हान' (सूरह अल-इसरा) में स्पष्ट किया जाएगा (२)।

अल्लाह तआला का कथन: {और उन्होंने कहा, "हमारे दिल ढके हुए (ग़ुल्फ़) हैं।" बल्कि, अल्लाह ने उनके कुफ्र (अविश्वास) के कारण उन पर लानत की है, इसलिए वे बहुत कम ईमान लाते हैं। ८८}

अल्लाह तआला का कथन: {और उन्होंने कहा} यानी यहूदियों ने {हमारे दिल ढके हुए हैं} लाम पर सुकून के साथ, 'अग़लफ़' का बहुवचन; अर्थात: उन पर पर्दे हैं (३)। यह उसके कथन के समान है: {हमारे दिल उन चीज़ों के पर्दों (अकिन्नाह) में हैं जिनकी ओर तुम हमें बुलाते हो} [फ़ुस्सिलत: ५], यानी पात्रों में। मुजाहिद ने कहा: "ग़ुल्फ़": उन पर पर्दा है (४)। इकरीमा ने कहा: उन पर मुहर है (५)। भाषाविदों ने कहा: "मैंने तलवार को म्यान में डाला (ग़ल्लफ़्तु)": मैंने उसके लिए एक गिलाफ (म्यान) बनाया। तो दिल 'अग़लफ़' है, यानी समझ और विवेक से ढका हुआ।

इब्न अब्बास, अल-आरज और इब्न मुहयसिन ने इसे लाम पर दम्मा के साथ "ग़ुलु-फ़ुन" पढ़ा है (६)। इब्न अब्बास ने कहा: यानी हमारे दिल ज्ञान से भरे हुए हैं, उन्हें मुहम्मद ﷺ या किसी और के ज्ञान की आवश्यकता नहीं है (७)।

और कहा गया है: यह 'गिलाफ़' (आवरण/पात्र) का बहुवचन है; जैसे 'खिमार' (दुपट्टा) और 'खूमुर' (दुपट्टे); अर्थात: हमारे दिल ज्ञान के पात्र हैं, तो वे आपकी बात क्यों नहीं समझते जबकि हमने बहुत सारा ज्ञान संजो रखा है!

और कहा गया है: इसका अर्थ है: मुहम्मद ﷺ का ज्ञान उनसे कैसे ओझल रह सकता है? तो अल्लाह तआला ने उनके इस दावे का खंडन करते हुए कहा: {बल्कि अल्लाह ने उन पर लानत की है}।

(१) पहला बद्र की लड़ाई के बारे में उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस का एक हिस्सा है, नंबर (१७६३), और यह अहमद (२०८) के पास है। दूसरा आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस का एक हिस्सा है, नंबर (१४६४), और यह अहमद (२५०२६) और बुखारी (४७८८) के पास है। (२) अल्लाह तआला के इस कथन पर: {यदि तुम भलाई करोगे, तो अपने लिए ही करोगे}... [आयत: ७]। (३) (ख), (ज) और (त) प्रतियों में: उन चीज़ों से पर्दे जिनकी ओर तुम हमें बुलाते हो। (४) इसे तबरी ने अपनी तफसीर २/२२८ में उद्धृत किया है। (५) इसे इब्न अबी हातिम ने अपनी तफसीर १/२७४ में उद्धृत किया है। (६) इसका उल्लेख इब्न खलवैह ने 'अल-किरात अल-शाज्जाह' पृष्ठ ८ में, और अबू अली अल-फारसी ने 'अल-हुज्जाह लिल-कुर्रा अल-सबअ' २/१५३ में किया है, और उन्होंने इसे अबू अम्र के हवाले से अल-लुलुई से जोड़ा है। अबू अली ने कहा: उनके बारे में जो प्रसिद्ध है वह हल्का रूप (तखफीफ) है। बग़वी ने अपनी तफसीर १/९३ में इसे इब्न अब्बास और अल-आरज से जोड़ा है, और इब्न अतिय्या ने 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' १/१७७ में इसे अल-अमाश से भी जोड़ा है। (७) इसे तबरी ने अपनी तफसीर २/२३१ में उद्धृत किया है।

٢٤٦ سورة البقرہ: آیت ٨٨

حدیث: "اللہ کی قسم، میں دیکھ رہا ہوں کہ آپ کا رب آپ کی خواہش پوری کرنے میں جلدی کرتا ہے۔" اسے مسلم نے روایت کیا ہے (١)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَفَرِيقاً كَذَّبْتُمْ﴾ "فريقاً" منصوب ہے "كذَّبتم" کے ذریعے، اور اسی طرح ﴿وَفَرِيقاً تَقْتُلُونَ﴾۔ چنانچہ جن کو انہوں نے جھٹلایا ان میں عیسیٰ اور محمد علیہما السلام تھے، اور جن کو انہوں نے قتل کیا ان میں یحییٰ اور زکریا علیہما السلام تھے، جیسا کہ انشاء اللہ تعالیٰ "سبحان" (سورہ بنی اسرائیل) میں اس کی وضاحت آئے گی (٢)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَقَالُوا قُلُوبُنَا غُلْفٌ بَل لَّعَنَهُمُ اللَّهُ بِكُفْرِهِمْ فَقَلِيلاً مَّا يُؤْمِنُونَ ٨٨﴾

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَقَالُوا﴾ یعنی یہودیوں نے کہا ﴿قُلُوبُنَا غُلْفٌ﴾ لام کے سکون کے ساتھ، 'اغلف' کی جمع؛ یعنی: ان پر غلاف (پردے) ہیں (٣)۔ یہ اللہ کے اس قول کی طرح ہے: ﴿قُلُوبُنَا فِي أَكِنَّةٍ مِمَّا تَدْعُونَا إِلَيْهِ﴾ [فصلت: ٥] یعنی: برتنوں (ڈھانپنے والی چیزوں) میں۔ مجاہد نے کہا: "غُلْفٌ": ان پر پردہ ہے (٤)۔ عکرمہ نے کہا: ان پر مہر ہے (٥)۔ اہل لغت نے کہا ہے: "غَلَّفْتُ السيف": میں نے تلوار کا غلاف بنایا۔ چنانچہ 'قلب اغلف' وہ دل ہے جو فہم اور تمیز سے ڈھکا ہوا ہو۔

ابن عباس، الاعرج اور ابن محیصن نے لام کے ضمہ کے ساتھ "غُلُفٌ" پڑھا ہے (٦)۔ ابن عباس نے کہا: یعنی ہمارے دل علم سے بھرے ہوئے ہیں، ہمیں محمد ﷺ یا کسی اور کے علم کی ضرورت نہیں ہے (٧)۔

اور کہا گیا: یہ 'غلاف' کی جمع ہے؛ جیسے 'خمار' کی جمع 'خمر'؛ یعنی: ہمارے دل علم کے برتن ہیں، تو کیا ہوا کہ وہ آپ کی بات نہیں سمجھتے حالانکہ ہم نے بہت سا علم جمع کر رکھا ہے!

اور کہا گیا: معنی یہ ہے: پھر محمد ﷺ کا علم ان سے کیسے مخفی رہ سکتا ہے۔ تو اللہ تعالیٰ نے ان کا رد فرماتے ہوئے کہا: ﴿بَل لَّعَنَهُمُ اللَّهُ﴾۔

(١) پہلی حدیث حضرت عمر رضی اللہ عنہ سے غزوہ بدر کے بارے میں حدیث کا ٹکڑا ہے جس کا نمبر (١٧٦٣) ہے، اور یہ احمد (٢٠٨) کے ہاں ہے۔ دوسری حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث کا ٹکڑا ہے جس کا نمبر (١٤٦٤) ہے، اور یہ احمد (٢٥٠٢٦) اور بخاری (٤٧٨٨) کے ہاں ہے۔ (٢) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس: ﴿إِنْ أَحْسَنْتُمْ أَحْسَنْتُمْ لِأَنْفُسِكُمْ﴾... [الآية: ٧]۔ (٣) (خ)، (ز) اور (ط) میں ہے: ان چیزوں سے پردے جن کی طرف تم ہمیں بلاتے ہو۔ (٤) اسے طبری نے اپنی تفسیر ٢/٢٢٨ میں روایت کیا ہے۔ (٥) اسے ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر ١/٢٧٤ میں روایت کیا ہے۔ (٦) اسے ابن خالویہ نے 'القراءات الشاذة' ص ٨ میں، اور ابو علی الفارسی نے 'الحجة للقراء السبعة' ٢/١٥٣ میں ذکر کیا ہے، اور انہوں نے اسے ابو عمرو سے لؤلؤی کے واسطے سے منسوب کیا ہے۔ ابو علی نے کہا: ان سے تخفیف ہی مشہور ہے۔ بغوی نے اسے اپنی تفسیر ١/٩٣ میں ابن عباس اور الاعرج کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے 'المحرر الوجيز' ١/١٧٧ میں اس کی نسبت اعمش کی طرف بھی کی ہے۔ (٧) اسے طبری نے اپنی تفسیر ٢/٢٣١ میں روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 88 247 Then he explained that the reason for their aversion to faith is simply that they were cursed because of their preceding disbelief and audacity (1); and this is the punishment for a sin with a sin greater (2) than it. The root of 'curse' (la'n) in the speech of the Arabs is expulsion and distancing. A wolf is called 'la'een' (cursed/expelled), and an expelled man is called 'la'een' (3), and Al-Shammakh (4) said: I startled (5) the sandgrouse with it and banished from it the place of the wolf, like the cursed man. The point of the speech is: the place of the cursed wolf is like the man. So the meaning is: Allah distanced them from His mercy. And it was said: from His guidance and success. And it was said: from all good; and this is general. And 'qaleelan' (a little) is an adjective for an omitted infinitive, its estimation is: they believe only a little faith (6). Ma'mar said: The meaning is: they do not believe except in a little of what is in their hands, and they disbelieve in most of it (7), and 'qaleelan' is accusative by removing the preposition (8). And 'ma' is a connecting particle, i.e., they believe a little. Al-Waqidi said: Its meaning is they believe neither a little nor a lot, just as you say: how little he does such-and-such, meaning: he doesn't do it at all (9). Al-Kisa'i said: The Arabs say: We passed by a land that grows little leeks and onions; meaning: it grows nothing at all (10).

---

(1) In (D), (Z), and (M): and their audacity. (2) In (M): the punishment for the sin with something greater than it. (3) Mujmal al-Lugha by al-Farisi: (la'n). (4) He is the son of Dirar bin Sinan al-Dhubyani, he lived through the Jahiliyya and Islam. Al-Shammakh is his title and his name is Ma'qil according to the correct view. He used to lampoon his tribe and his guest, and he was strong in poetic form and the most eloquent in impromptu verse. Al-Aghani 9/160, and the verse is in his Diwan p. 321. (5) In (Kh), (D), and (Z): I called, and what is confirmed is from (Z) and (M), which corresponds to his Diwan. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/177. (7) Al-Tabari related in his Tafsir 2/232 from Qatadah {so little is that which they believe} he said: only a few of them believe. Ma'mar said: and others said: they do not believe except in a little of what is in their hands. (8) Meaning the preposition, i.e., it is accusative by removing the preposition, and Ibn Ya'ish mentioned in Sharh al-Mufassal 8/7 that the Kufans might call prepositions 'haruf al-sifat' (qualitative letters). (9) Cited by al-Baghawi in his Tafsir 1/93, and al-Waqidi: He is Muhammad bin Umar al-Aslami, their mawla, author of many books and histories, one of the vessels of knowledge despite his agreed-upon weakness, died in year (207 AH). Al-Siyar 9/454. (10) Ma'ani al-Qur'an by al-Farra 1/59-60.

सूरा अल-बकरा: आयत 88 247 फिर उन्होंने स्पष्ट किया कि उनके ईमान से विमुख होने का कारण केवल यह है कि उनके पिछले कुफ़्र (अविश्वास) और उनकी धृष्टता (1) के कारण उन पर लानत (धिक्कार) भेजी गई; और यह एक पाप का दंड उससे भी बड़े (2) पाप के रूप में है। अरबों की भाषा में 'लानत' (अभिशाप) का मूल अर्थ निष्कासन और दूरी है। भेड़िये को 'लईन' (अभिशप्त/निष्कासित) कहा जाता है, और निकाले गए व्यक्ति को भी 'लईन' (3) कहा जाता है, और अल-शम्माख (4) ने कहा: मैंने इससे सैंडग्राउज़ पक्षियों को डरा दिया और उससे दूर कर दिया भेड़िये का स्थान, उस अभिशप्त व्यक्ति की तरह। भाषण का उद्देश्य है: अभिशप्त भेड़िये का स्थान उस व्यक्ति की तरह है। अतः अर्थ यह है: अल्लाह ने उन्हें अपनी दया से दूर कर दिया। और कहा गया: अपनी सफलता और मार्गदर्शन से। और यह भी कहा गया: हर भलाई से; और यह सामान्य है। और 'कलीलन' (थोड़ा) एक लुप्त क्रिया विशेषण का विशेषण है, इसका अनुमान है: वे बहुत कम ईमान लाते हैं (6)। मा'मार ने कहा: अर्थ यह है: वे केवल उस थोड़े से पर विश्वास करते हैं जो उनके पास है, और इसके अधिकांश भाग का खंडन करते हैं (7), और 'कलीलन' पूर्वसर्ग (preposition) को हटाने के कारण कर्म कारक (accusative) में है (8)। और 'मा' एक जोड़ने वाला शब्द है, यानी, वे थोड़ा ईमान लाते हैं। अल-वाकिदी ने कहा: इसका अर्थ है कि वे न तो थोड़ा विश्वास करते हैं और न ही बहुत, जैसा कि आप कहते हैं: वह कितना कम ऐसा करता है, जिसका अर्थ है: वह इसे बिल्कुल नहीं करता (9)। अल-किसाई ने कहा: अरब कहते हैं: हम एक ऐसी भूमि से गुज़रे जहाँ लहसुन और प्याज बहुत कम उगते हैं; यानी: वहां कुछ भी नहीं उगता (10)।

---

(1) (द), (ज़) और (म) में: और उनकी धृष्टता। (2) (म) में: पाप का दंड उससे बड़े पाप के साथ। (3) मुजमल अल-लुगा अल-फारसी: (लान)। (4) वह दिरार बिन सिनान अल-धुब्यानी का पुत्र है, उसने जाहिलिया और इस्लाम दोनों समय देखे। अल-शम्माख उसका शीर्षक है और सही राय के अनुसार उसका नाम माकिल है। वह अपने कबीले और अपने मेहमान की निंदा करता था, और वह काव्य रूप में मजबूत और तात्कालिक छंदों में सबसे वाचाल था। अल-अघानी 9/160, और छंद उसके दीवान पृष्ठ 321 में है। (5) (ख़), (द) और (ज़) में: मैंने पुकारा, और (ज़) और (म) से जो पुष्ट है, वह उसके दीवान के अनुरूप है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/177। (7) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/232 में कतादाह से उद्धृत किया {बहुत कम है जो वे विश्वास करते हैं} उन्होंने कहा: उनमें से केवल कुछ ही विश्वास करते हैं। मा'मार ने कहा: और अन्य लोगों ने कहा: वे केवल उस थोड़े से पर विश्वास करते हैं जो उनके पास है। (8) यानी पूर्वसर्ग, अर्थात्, यह पूर्वसर्ग को हटाने से कर्म कारक में

है, और इब्न या'इश ने शरह अल-मुफस्सल 8/7 में उल्लेख किया है कि कूफी विद्वान पूर्वसर्गों को 'हुरूफ़ अल-सिफ़त' (गुणात्मक अक्षर) कह सकते हैं। (9) अल-बगवी ने अपनी तफ़सीर 1/93 में इसका उल्लेख किया है, और अल-वाकिदी: वह मुहम्मद बिन उमर अल-असल्मी है, उनके मौला, कई पुस्तकों और इतिहासों के लेखक, ज्ञान के पात्रों में से एक अपनी सहमत कमजोरी के बावजूद, वर्ष (207 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 9/454। (10) मा'नी अल-कुरान अल-फर्रा 1/59-60 द्वारा।

سورۃ البقرہ: آیت ۸۸ ۲۴۷ پھر انہوں نے وضاحت کی کہ ان کی ایمان سے دوری کی وجہ صرف یہ ہے کہ ان پر ان کے گزشتہ کفر اور سرکشی (۱) کی وجہ سے لعنت کی گئی؛ اور یہ ایک گناہ کی سزا اس سے بھی بڑے (۲) گناہ کی صورت میں ہے۔ عربوں کے کلام میں 'لعنت' کی اصل جڑ دھتکارنا اور دور کرنا ہے۔ بھیڑیے کو 'لعین' (ملعون/دھتکارا ہوا) کہا جاتا ہے، اور نکالے گئے شخص کو بھی 'لعین' (۳) کہا جاتا ہے، اور الشماخ (۴) نے کہا: میں نے اس سے قطا (پرندے) کو ڈرا دیا اور اس سے دور کر دیا بھیڑیے کا ٹھکانہ، اس لعین شخص کی طرح۔ کلام کا رخ یہ ہے: لعین بھیڑیے کا ٹھکانہ اس شخص کی طرح ہے۔ پس معنی یہ ہے: اللہ نے انہیں اپنی رحمت سے دور کر دیا۔ اور کہا گیا: اپنی توفیق اور ہدایت سے۔ اور کہا گیا: ہر بھلائی سے؛ اور یہ عام ہے۔ اور 'قلیلاً' ایک محذوف مصدر کی صفت ہے، اس کی تقدیر ہے: پس وہ تھوڑا ہی ایمان لاتے ہیں (۶)۔ معمر نے کہا: معنی یہ ہے: وہ صرف اس تھوڑے پر ایمان لاتے ہیں جو ان کے پاس ہے، اور اس کے اکثر حصے کا انکار کرتے ہیں (۷)، اور 'قلیلاً' حرفِ صفت (حرفِ جار) کے حذف ہونے کی وجہ سے منصوب ہے (۸)۔ اور 'ما' صلہ ہے، یعنی: پس وہ تھوڑا ایمان لاتے ہیں۔ الواقدی نے کہا: اس کا مطلب ہے کہ وہ نہ تھوڑا ایمان لاتے ہیں اور نہ زیادہ، جیسا کہ تم کہتے ہو: وہ کتنا کم ایسا کرتا ہے، یعنی: وہ اسے بالکل نہیں کرتا (۹)۔ الکسائی نے کہا: عرب کہتے ہیں: ہم ایک ایسی زمین سے گزرے جہاں لہسن اور پیاز بہت کم اگتے ہیں؛ یعنی: وہاں کچھ بھی نہیں اگتا (۱۰)۔

---

(۱) (د)، (ز) اور (م) میں: واجترائهم (اور ان کی جسارت)۔ (۲) (م) میں: گناہ کی سزا اس سے بڑے گناہ کے ساتھ۔ (۳) مجمل اللغہ للفارسی: (لعن)۔ (۴) وہ ابن ضرار بن سنان الذبیانی ہیں، انہوں نے جاہلیت اور اسلام دونوں کا زمانہ پایا، اور الشماخ ان کا لقب ہے اور صحیح قول کے مطابق ان کا نام معقل ہے، وہ اپنے قبیلے اور اپنے مہمان کی ہجو کرتے تھے، اور وہ شاعری کے اوزان میں

بہت پختہ اور فی البدیہہ اشعار کہنے میں لوگوں میں سب سے زیادہ تیز تھے۔ الاغانی ۹ / ۱۶۰، اور یہ شعر ان کے دیوان ص ۳۲۱ میں ہے۔ (۵) (خ)، (د) اور (ز) میں: دعوت (میں نے پکارا)، اور (ز) اور (م) سے جو ثابت ہے وہ درست ہے، جو ان کے دیوان کے موافق ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱ / ۱۷۷۔ (۷) طبری نے اپنی تفسیر ۲ / ۲۳۲ میں قتادہ سے روایت کیا ﴿فَقَلِيلًا مَّا يُؤْمِنُونَ﴾ انہوں نے کہا: ان میں سے تھوڑے ہی ایمان لاتے ہیں۔ معمر نے کہا: اور دوسروں نے کہا: وہ صرف اس تھوڑے پر ایمان لاتے ہیں جو ان کے پاس ہے۔ (۸) یعنی حرفِ جار، یعنی: وہ حذفِ خافض کی وجہ سے منصوب ہے، اور ابن یعیش نے شرح المفصل ۸ / ۷ میں ذکر کیا ہے کہ کوفیوں نے حروفِ جار کو حروفِ صفات کا نام دیا ہے۔ (۹) البغوی نے اپنی تفسیر ۱ / ۹۳ میں اسے ذکر کیا ہے، اور الواقدی: وہ محمد بن عمر الاسلمی ہیں، ان کے مولیٰ، کتبِ مغازی اور دیگر تصانیف کے مالک، اپنی متفقہ کمزوری کے باوجود علم کے برتنوں میں سے ایک، سن (۲۰۷ ہجری) میں وفات پائی۔ السیر ۹ / ۴۵۴۔ (۱۰) معانی القرآن للفراء ۱ / ۵۹-۶۰۔

248 Surah al-Baqarah: Verse 89

His saying (the Exalted): "And when there came to them a Book from Allah confirming that which was with them - although before they used to pray for victory against those who disbelieved - but [then] when there came to them that which they recognized, they disbelieved in it; so the curse of Allah will be upon the disbelievers (89)"

His saying (the Exalted): {And when there came to them} meaning the Jews. {A Book} meaning the Quran. {From Allah confirming} is an adjective for the 'Book', and in non-Quranic speech, it is permissible for it to be in the accusative case as a circumstantial state (1), and it was reported similarly in the Mushaf (codex) of Ubayy (2). {That which was with them} meaning the Torah and the Gospel, it informs them of what is in them. {And they used to pray for victory before} meaning: they used to seek help. 'Al-Istiftah' is 'Al-Istinsar' (seeking victory/help). I 'staf-tah-tu': I sought victory. And in the Hadith: The Prophet (PBUH) used to seek victory through the poor among the Emigrants (Muhajirin), meaning: seeking help through their prayers and their supplications (3). From it is: {Perhaps Allah will bring about conquest or a matter from Him} [Al-Ma'idah: 52]. And victory (Al-Nasr) is: opening something that was closed, so it refers back to their saying: 'I opened the door'.

An-Nasa'i narrated from Abu Sa'id al-Khudri that the Prophet (PBUH) said: «Allah only granted victory to this nation through its weak ones (4), through their supplication, their prayer, and their sincerity» (5).

An-Nasa'i also narrated from Abu Darda who said: I heard the Messenger of Allah (PBUH) say: «Seek for me the weak ones, for you are only given victory and sustenance through your weak ones» (6).

Ibn Abbas said: The Jews of Khaybar were fighting Ghatafan, and every time (7) they met, the Jews were defeated,

(1) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/246. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/177, and Ibn Khalawayh attributed it in 'The Rare Readings' p. 8 to Ibn Mas'ud. (3) Related by Al-Tabarani in 'Al-Kabir' (857), and Al-Diya in 'Al-Mukhtarah' (1507) from the Hadith of Umayyah ibn Abdullah ibn Khalid. Al-Hafiz mentioned it in 'Al-Isabah' 1/208, and said:

This Umayyah has no companionship nor vision (of the Prophet). Al-Haythami said in 'Majma' al-Zawa'id' 10/262: Narrated by Al-Tabarani and its narrators are the narrators of the Sahih. (4) In (D): "bi-du'fiha" (through its weakness), and in (M): "bi-du'afa'iha" (through its weak ones). (5) We did not find it in An-Nasa'i from the Hadith of Abu Sa'id, but it is with him in 'Al-Mujtaba' 6/45, and 'Al-Kubra' (4372) from the Hadith of Sa'd ibn Abi Waqqas (may Allah be pleased with him), and in it: "Indeed, Allah grants victory...". Al-Bukhari related it (2896) with the wording: «Are you given victory and sustenance except through your weak ones?». (6) Al-Mujtaba 6/46, and Al-Kubra (4373), and Abu Dawud also related it (2594), and At-Tirmidhi (1702), and it is in 'Al-Musnad' (21731). (7) In the copies and (M): "falamma" (then when), and what is established is from the sources.

248 सूरा अल-बकरा: आयत 89

अल्लाह तआला का कथन है: "और जब उनके पास अल्लाह की ओर से एक किताब आई, जो उसकी पुष्टि करती है जो उनके पास है - हालाँकि इससे पहले वे उन लोगों के विरुद्ध जीत की प्रार्थना किया करते थे जिन्होंने कुफ़्र किया - लेकिन जब उनके पास वह आ गया जिसे उन्होंने पहचान लिया, तो उन्होंने उसका इनकार कर दिया; अतः काफ़िरों पर अल्लाह की लानत है (89)"

अल्लाह का कथन: {और जब उनके पास आई} यानी यहूदियों के पास। {किताब} यानी क़ुरआन। {अल्लाह की ओर से पुष्टि करती हुई} 'किताब' के लिए एक विशेषण है, और कुरान के अलावा अन्य अरबी व्याकरण में इसे 'हाल' (स्थिति) के रूप में भी लिया जा सकता है (1), और इसी तरह उबैय की मुसहफ़ (प्रति) में रिपोर्ट किया गया है (2)। {जो उनके पास था} यानी तौरात और इंजील, वह उन्हें उसके बारे में सूचित करता है जो उनमें है। {और वे पहले जीत की प्रार्थना किया करते थे} यानी: वे मदद माँगा करते थे। 'अल-इस्तिफ़ताह' का अर्थ 'अल-इस्तिनसार' (मदद या जीत माँगना) है। मैंने 'इस्तफ़तह्तु' किया: यानी मैंने मदद माँगी। और हदीस में है: नबी (सल्ल.) मुहाजिरीन के कमज़ोर लोगों के माध्यम से जीत माँगते थे, यानी: उनकी दुआओं और उनकी नमाज़ों के माध्यम से मदद माँगते थे (3)। उसी से है: {शायद अल्लाह जीत या अपनी ओर से कोई मामला ले आए} [अल-मइदाह: 52]। और 'नसर' (जीत) है: किसी बंद चीज़ को खोलना, तो यह उनके इस कथन की ओर लौटता है: 'मैंने दरवाज़ा खोला'।

अन-नसाई ने अबू सईद अल-खुदरी से रिवायत किया है कि नबी (सल्ल.) ने फरमाया: «अल्लाह ने इस उम्मत को केवल उसके कमज़ोर लोगों (4) की वजह से, उनकी दुआ, उनकी नमाज़ और उनके इख्लास (निष्ठा) के कारण जीत दी है» (5)।

अन-नसाई ने अबू दरदा से भी रिवायत किया है, जिन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल.) को यह कहते सुना: «मेरे लिए कमज़ोरों को तलाश करो, क्योंकि तुम्हें केवल तुम्हारे कमज़ोरों के कारण ही जीत और रिज़्क़ (रोज़ी) दी जाती है» (6)।

इब्न अब्बास ने कहा: खैबर के यहूदी ग़तफ़ान से लड़ रहे थे, और जब भी (7) वे मिलते, यहूदी हार जाते थे,

(1) इ'राब अल-कुरान, अन-नहहास 1/246। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/177, और इब्न खलवैह ने इसे 'अश-शवाज़' (दुर्लभ पाठ) में पृ. 8 पर इब्न मसूद से जोड़ा है। (3) इसे अल-तबरानी ने 'अल-कबीर' (857) में और अल-ज़िया ने 'अल-मुख्ताराह' (1507) में उमय्या इब्न अब्दुल्ला इब्न खालिद की हदीस से निकाला है। अल-हाफ़िज़ ने इसे 'अल-इसाबा' 1/208 में उल्लेख किया और कहा: इस उमय्या को नबी का साथ या दीदार प्राप्त नहीं है। अल-हैथमी ने 'मजमा अल-ज़वाइद' 10/262 में कहा: इसे अल-तबरानी ने रिवायत किया और इसके रावी सहीह (बुखारी-मुस्लिम) के रावी हैं। (4) संस्करण (D) में: "बि-दुअफ़िहा" (उसकी कमज़ोरी से), और (M) में: "बि-दुअफ़ा-इहा" (उसके कमज़ोर लोगों से)। (5) हमें यह अबू सईद की हदीस से अन-नसाई के यहाँ नहीं मिला, लेकिन यह उनके पास 'अल-मुजतबा' 6/45 और 'अल-कुबरा' (4372) में साद इब्न अबी वक़्क़ास (रज़ि.) की हदीस में है, और इसमें है: "बेशक अल्लाह जीत देता है..."। और बुखारी ने इसे (2896) इन शब्दों के साथ निकाला है: «क्या तुम्हें केवल तुम्हारे कमज़ोरों के कारण जीत और रिज़्क़ नहीं दिया जाता?»। (6) अल-मुजतबा 6/46, और अल-कुबरा (4373), और इसे अबू दाऊद (2594) और तिर्मिज़ी (1702) ने भी निकाला है, और यह 'अल-मुसनद' (21731) में है। (7) प्रतियों और (M) में: "फ़लम्मा" (फिर जब), और जो स्थापित है वह स्रोतों से है।

248 سورہ البقرہ: آیت 89

اللہ تعالیٰ کا قول: {وَلَمَّا جَاءَهُمْ كِتَابٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ وَكَانُوا مِن قَبْلُ يَسْتَفْتِحُونَ عَلَى الَّذِينَ كَفَرُوا فَلَمَّا جَاءَهُم مَّا عَرَفُوا كَفَرُوا بِهِ ۚ فَلَعْنَةُ اللَّهِ عَلَى الْكَافِرِينَ (89)}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلَمَّا جَاءَهُمْ} یعنی یہود۔ {كِتَابٌ} یعنی قرآن۔ {مِّنْ عِندِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ} لفظ 'کتاب' کی صفت ہے، اور قرآن کے علاوہ (عربی کلام میں) اسے حال کی بنا پر منسوب پڑھنا بھی جائز ہے (1)، اور اسی طرح ابی بن کعب کے مصحف میں منسوب منقول ہے (2)۔ {لِّمَا مَعَهُمْ} یعنی تورات اور انجیل، یہ کتاب انہیں ان چیزوں کی خبر دیتی ہے جو ان کے پاس (کتابوں میں) موجود ہیں۔ {وَكَانُوا مِن قَبْلُ يَسْتَفْتِحُونَ} یعنی: وہ نصرت (مدد) طلب کیا کرتے تھے۔ 'استفتاح' کے معنی نصرت طلب کرنا ہے۔ 'استفتحتُ' یعنی میں نے مدد مانگی۔ اور حدیث میں ہے کہ: نبی کریم ﷺ مہاجرین کے فقراء کے ذریعے فتح و نصرت طلب کیا کرتے تھے، یعنی: ان کی دعا اور ان کی نمازوں کے وسیلے سے مدد طلب کرتے تھے (3)۔ اسی سے ہے: {فَعَسَى اللَّهُ أَن يَأْتِيَ بِالْفَتْحِ أَوْ أَمْرٍ مِّنْ عِندِهِ} [المائدہ: 52]۔ اور نصر (فتح) کسی بند چیز کو کھولنے کو کہتے ہیں، پس یہ ان کے اس قول کی طرف لوٹتا ہے کہ: 'فتحتُ الباب' (میں نے دروازہ کھولا)۔

امام نسائی نے حضرت ابو سعید خدری سے روایت کیا ہے کہ نبی کریم ﷺ نے فرمایا: «اللہ تعالیٰ نے اس امت کی مدد اس کے کمزوروں (4) کی وجہ سے، ان کی دعا، ان کی نماز اور ان کے اخلاص کے باعث فرمائی ہے» (5)۔

امام نسائی نے حضرت ابو الدرداء سے بھی روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے سنا: «میرے لیے کمزوروں کو تلاش کرو، کیونکہ تمہیں تمہارے کمزوروں کی وجہ سے ہی نصرت اور رزق دیا جاتا ہے» (6)۔

ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: خیبر کے یہودی غطفان سے لڑا کرتے تھے، پس جب بھی (7) ان کا آمنا سامنا ہوتا، یہودی شکست کھا جاتے،

(1) اعراب القرآن للنحاس 246/1۔ (2) المحرر الوجیز 177/1، اور ابن خالویہ نے اسے 'القراءات الشاذہ' ص 8 میں ابن مسعود کی طرف منسوب کیا ہے۔ (3) اسے طبرانی نے 'الکبیر' (857) میں اور ضیاء مقدسی نے 'المختارہ' (1507) میں امیہ بن عبد اللہ بن خالد کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ حافظ ابن حجر نے 'الاصابہ' 208/1 میں اسے ذکر کیا اور کہا: ان امیہ کو صحبت یا رویت حاصل نہیں۔ ہیثمی نے 'مجمع الزوائد' 262/10 میں کہا: اسے طبرانی نے روایت کیا اور اس کے رجال صحیح کے رجال ہیں۔ (4) نسخہ (د) میں 'بضعفہا' (اس کی کمزوری سے) اور نسخہ (م) میں 'بضعفائہا' (اس کے کمزوروں سے) ہے۔ (5) ہمیں یہ حدیث نسائی میں ابو سعید کی روایت سے نہیں ملی، بلکہ ان کے ہاں 'المجتبی' 45/6 اور 'الکبری' (4372) میں حضرت سعد بن ابی وقاص رضی اللہ عنہ کی حدیث سے ہے، اور اس میں الفاظ ہیں: 'انما ینصر اللہ...' اور امام بخاری نے اسے (2896) ان الفاظ کے ساتھ روایت کیا ہے: «کیا تمہیں تمہارے کمزوروں کے سوا کسی اور کی وجہ سے نصرت اور رزق دیا جاتا ہے؟»۔ (6) المجتبی 46/6، الکبری (4373)۔ اسے ابو داؤد (2594) اور ترمذی (1702) نے بھی روایت کیا ہے، اور یہ مسند احمد (21731) میں موجود ہے۔ (7) نسخوں اور (م) میں 'فلما' ہے، جبکہ مصادر میں 'فکلما' ثابت ہے۔

249 Surah Al-Baqarah: Verse 90

The Jews returned to this supplication and said: "We ask You by the right of the Unlettered Prophet whom You promised us to bring forth in the end of times, that You grant us victory (1) over them." He said: Whenever they met [enemies], they would pray with this supplication and defeat [the tribe of] Ghatafan. But when the Prophet ﷺ was sent, they disbelieved. So Allah Almighty revealed: {And they were before seeking victory over those who disbelieved}—meaning: by you, O Muhammad—until His saying: {so the curse of Allah be upon the disbelievers} (2).

His saying Almighty: {And when there came to them}—the answer to "lamma" (when) is the "fa" and what follows it in His saying: {so when there came to them that which they recognized} according to the saying of Al-Farra' (3), and the answer to the second "lamma" is: {they disbelieved}. Al-Akhfash Sa'id (4) said: The answer to "lamma" is omitted for the listener's knowledge; and Al-Zajjaj (5) said it too. Al-Mubarrad said: The answer to "lamma" and "lamma" in His saying is: "they disbelieved," and the second "lamma" was repeated due to the length of the speech. This serves as a declaration of the sin (6) and an emphasis of it (7).

His saying Almighty: {Evil is that for which they have sold themselves—that they should disbelieve in what Allah has revealed, out of envy that Allah should send down of His grace upon whom He wills of His servants. So they have brought on themselves wrath upon wrath. And for the disbelievers is a humiliating punishment. (90)}

His saying Almighty: {Evil is that for which they have sold themselves}—"bi'sa" in Arabic speech is used for blame, just as "ni'ma" is used for praise. In each of them, there are four linguistic variations: bi'sa, ba'sa, baysa, bi'isa; and ni'ma, na'ma, nayma, ni'ima. The school of Sibawayh (8) is that "ma" is the subject (fa'il) of "bi'sa," and it only enters upon general nouns and indefinite nouns. Likewise with "ni'ma," so you say: "Excellent is the man Zaid," and "Evil is a man Zaid." So if it was...

(1) In (D) and (M): "You grant us victory." (2) Narrated by Al-Hakim 2/263, and mentioned by Al-Wahidi in Asbab al-Nuzul pp. 25-26, and in Al-Waseet 1/173. In its chain is Abd al-Malik ibn Harun; Al-Dhahabi said of him in the summary of Al-Mustadrak: "Abandoned, ruined." (3) Ma'ani al-Quran 1/59, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, and from it the author cited. (4) Ma'ani al-Quran 1/319, and I'rab al-Quran by Al-Nahas 1/246, and from it the author cited. (5) Ma'ani al-Quran 1/171, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178. (6) In (M): "Declaration of the sin." (7) Al-Muharrar al-Wajiz

1/178. (8) See Al-Kitab 2/176, I'rab al-Quran by Al-Nahas 1/247, Ma'ani al-Quran by Al-Zajjaj 1/172, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, and from it the author cited.

पृष्ठ 249 सूरह अल-बकरा: आयत 90

यहूदियों ने फिर से इस दुआ का सहारा लिया और कहा: "हम आपसे उस अनपढ़ (उम्मी) नबी के वास्ते मांगते हैं जिसका आपने हमसे वादा किया था कि आप उन्हें आखिरी समय में हमारे लिए भेजेंगे, कि आप हमें उनके खिलाफ जीत (1) दिलाएं।" उन्होंने कहा: जब भी वे [दुश्मनों] से मिलते, वे इसी दुआ के साथ प्रार्थना करते और गताफान कबीले को हरा देते। लेकिन जब नबी ﷺ भेजे गए, तो उन्होंने इनकार कर दिया। तब अल्लाह ताला ने आयत उतारी: {और वे इससे पहले उन लोगों पर जीत की दुआ मांगते थे जिन्होंने इनकार किया था}—अर्थात: आपके माध्यम से, ऐ मुहम्मद—उसके इस कथन तक: {तो अल्लाह की लानत (धिक्कार) हो इनकार करने वालों पर} (2)।

अल्लाह ताला का कथन: {और जब उनके पास आया}—"लम्मा" (जब) का उत्तर "फ़ा" और उसके बाद वाला हिस्सा है जो उसके इस कथन में है: {तो जब उनके पास वह आ गया जिसे उन्होंने पहचान लिया} अल-फर्रा (3) के कथन के अनुसार, और दूसरे "लम्मा" का उत्तर है: "उन्होंने इनकार कर दिया"। अल-अख्फश सईद (4) ने कहा: "लम्मा" का उत्तर सुनने वाले के ज्ञान के कारण हटा दिया गया है; और अल-ज़ज्जाज (5) ने भी यही कहा। अल-मुबर्रद ने कहा: "लम्मा" और "लम्मा" का उत्तर उसके इस कथन में है: "उन्होंने इनकार कर दिया", और बात लंबी होने के कारण दूसरा "लम्मा" दोहराया गया। यह पाप की स्वीकृति (6) और उसकी पुष्टि (7) के लिए है।

अल्लाह ताला का कथन: {बुरा है वह जिसके बदले उन्होंने अपनी जानों को बेच दिया—कि वे अल्लाह की उतारी हुई चीज़ का इनकार करें, इस जलन में कि अल्लाह अपने दासों में से जिस पर चाहे अपना अनुग्रह (फ़ज़्ल) उतारे। तो उन्होंने क्रोध पर क्रोध अर्जित किया। और इनकार करने वालों के लिए अपमानजनक दंड है। (90)}

अल्लाह ताला का कथन: {बुरा है वह जिसके बदले उन्होंने बेच दिया}—अरबी भाषा में "बिअसा" (बुरा है) निंदा के लिए उपयोग किया जाता है; जैसे "ने'मा" (अच्छा है) प्रशंसा के लिए उपयोग किया जाता है। इनमें से प्रत्येक के चार भाषाई रूप हैं: बिअसा, बअसा, बैसा, बिइसा; और ने'मा, नअमा, नैमा, निइमा। सिबावैह (8) का मत है कि "मा" "बिअसा" का कर्ता (फ़ाएल) है, और यह केवल जातिवाचक संज्ञाओं और अनिश्चित संज्ञाओं पर ही आता है। इसी तरह "ने'मा" भी, तो आप कहते हैं: "ने'मर-रजुलु ज़ैद" (ज़ैद क्या ही अच्छा आदमी है), और "बिअसा रज्जुलन ज़ैद" (ज़ैद क्या ही बुरा आदमी है)। तो यदि...

(1) (द) और (म) में: "हमारी मदद करें (नसरत दें)"। (2) इसे अल-हाकिल 2/263 ने निकाला है, और अल-वाहिदी ने असबाब अल-नुज़ूल पृ. 25-26 में, और अल-वसीत 1/173 में इसका उल्लेख किया है। इसकी श्रृंखला में अब्दुल मलिक बिन हारून है; अल-धहाबी ने मुस्तदरक के सारांश में उसके बारे में कहा: "छोड़ दिया गया, बर्बाद"। (3) मआनी अल-कुरान 1/59, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178, और इसी से लेखक ने उद्धृत किया है। (4) मआनी अल-कुरान 1/319, और इराब अल-कुरान लिन-नहास 1/246, और इसी से लेखक ने उद्धृत किया है। (5) मआनी अल-कुरान 1/171, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178। (6) (म) में: "पाप की स्वीकृति"। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178। (8) देखें अल-किताब 2/176, इराब अल-कुरान लिन-नहास 1/247, मआनी अल-कुरान लिज़-ज़ज्जाज 1/172, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178, और इसी से लेखक ने उद्धृत किया है।

صفحہ 249 سورہ البقرہ: آیت 90

چنانچہ یہودیوں نے پھر سے اس دعا کا سہارا لیا اور کہا: "بے شک ہم آپ سے اس نبیِ امی کے واسطے مانگتے ہیں جس کا آپ نے ہم سے وعدہ فرمایا تھا کہ آپ انہیں آخری زمانے میں ہمارے لیے مبعوث کریں گے، کہ آپ ہمیں ان کے خلاف فتح (1) عطا فرمائیں۔" اس نے کہا: چنانچہ وہ جب بھی [دشمنوں] سے ملتے تو اسی دعا کے ذریعے مانگتے اور قبیلہ غطفان کو شکست دیتے۔ لیکن جب نبی ﷺ مبعوث ہوئے تو انہوں نے کفر کیا۔ چنانچہ اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: {اور وہ اس سے پہلے ان لوگوں پر فتح کی دعا مانگتے تھے جنہوں نے کفر کیا} یعنی: اے محمد، آپ کے ذریعے—ان کے اس قول تک: {چنانچہ اللہ کی لعنت ہو کافروں پر} (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ان کے پاس آیا}—"لمّا" (جب) کا جواب "فاء" اور اس کے بعد والا حصہ ہے جو اس کے قول میں ہے: {چنانچہ جب ان کے پاس وہ آ گیا جسے انہوں نے پہچان لیا} الفراء (3) کے قول کے مطابق، اور دوسرے "لمّا" کا جواب ہے: "انہوں نے کفر کیا"۔ الاخفش سعید (4) نے کہا: "لمّا" کا جواب سننے والے کے علم کی وجہ سے حذف کر دیا گیا ہے؛ اور یہی بات الزجاج (5) نے کہی۔ المبرد نے کہا: "لمّا" اور "لمّا" کا جواب اس کے قول میں ہے: "انہوں نے کفر کیا"، اور بات لمبی ہونے کی وجہ سے دوسرے "لمّا" کا اعادہ کیا گیا۔ اور یہ گناہ کے اقرار (6) اور اس کی تاکید (7) کے لیے ہے ۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {برا ہے وہ جس کے بدلے انہوں نے اپنی جانوں کا سودا کیا—کہ وہ اللہ کے نازل کردہ کلام کا انکار کریں، محض اس ضد میں کہ اللہ اپنے فضل سے اپنے بندوں میں سے جس پر چاہے (وحی) نازل کرے۔ پس وہ غضب پر غضب کے مستحق ہوئے۔ اور کافروں کے لیے ذلیل کرنے والا عذاب ہے۔ (90)}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {برا ہے وہ جس کے بدلے انہوں نے سودا کیا}—عربی کلام میں "بئس" (برا ہے) مذمت کے لیے استعمال ہوتا ہے؛ جیسے کہ "نعم" (بہت اچھا ہے) تعریف کے لیے استعمال ہوتا ہے۔ ان دونوں میں سے ہر ایک کی چار لغتیں (تلفظ) ہیں: بِئْسَ، بَئْسَ، بَيْسَ، بِئِسَ اور نِعْمَ، نَعْمَ، نَيْمَ، نِعِمَ۔ سیبویہ (8) کا مذہب یہ ہے کہ "ما" "بئس" کا فاعل ہے، اور یہ صرف اسمائے اجناس اور نکرہ پر ہی داخل ہوتا ہے۔ اسی طرح "نعم" بھی، چنانچہ آپ کہتے ہیں: "نعم الرجل زيد" (زید کیا ہی اچھا آدمی ہے)، اور "بئس رجلاً زيد" (زید کتنا برا آدمی ہے)۔ چنانچہ جب...

(1) (د) اور (م) میں ہے: "تنصرنا" (ہماری مدد فرما)۔ (2) اسے الحاکم 2/263 نے روایت کیا ہے، اور الواحدی نے اسباب النزول ص 25-26 میں، اور الوسیط 1/173 میں ذکر کیا ہے۔ اس کی سند میں عبد الملک بن ہارون ہے؛ الذہبی نے اس کے بارے میں تلخیص المستدرک میں کہا: "متروک، ہلاک شدہ"۔ (3) معانی القرآن 1/59، اور المحرر الوجیز 1/178، اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا ہے۔ (4) معانی القرآن 1/319، اور اعراب القرآن للنحاس 1/246، اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا ہے۔ (5) معانی القرآن 1/171، اور المحرر الوجیز 1/178۔ (6) (م) میں ہے: گناہ کا اقرار۔ (7) المحرر الوجیز 1/178۔ (8) دیکھئے الکتاب 2/176، اعراب القرآن للنحاس 1/247، معانی القرآن للزجاج 1/172، اور المحرر الوجیز 1/178، اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 90 250 ...with it a noun without alif and lam (the definite article); it is always in the accusative case (nasb). If it has alif and lam, it is always in the nominative case (raf'). "Rajulan" (a man) is in the accusative case as a specification (tamyiz). In "Ni'ma," there is a hidden pronoun subject to interpretation (1). "Zayd" is in the nominative case in two ways: as the predicate of a deleted subject (mubtada'), as if it were said: "Who is the praised one?" I say: "He is Zayd." The other way is as the subject (mubtada'), and what precedes it is its predicate. Abu Ali permitted "ma" to follow it, whether as a relative pronoun or otherwise, since it is ambiguous and can refer to many, not specifying one in particular. According to Sibawayh (2), the underlying structure is: "Wretched is the thing for which they sold their souls—that they should disbelieve." Thus, "an yakfuru" (that they should disbelieve) is in the nominative case as the subject, and its predicate is what precedes it, like saying: "A wretched man is Zayd." According to this view, "ma" is a relative pronoun. Al-Akhfash (3) said: "ma" is in the accusative case as a specification (tamyiz), like saying: "A wretched man is Zayd." The underlying structure is: "A wretched thing is that they should disbelieve." According to this view, "ishtaru bihi anfusahum" (they sold their souls for it) is an adjective for "ma." Al-Farra' (4) said: "bi'sama" as a whole is one thing, composed like "habbadha." There is an objection to this view because it leaves a verb without a subject. Al-Kisa'i (5) said: "ma" and "ishtaru" are like a single self-standing noun. The underlying meaning is: "Wretched is their selling themselves to disbelieve." This is rejected because "ni'ma" and "bi'sa" do not precede a specific definite noun, and "selling" (al-shira') has become definite by being annexed to a pronoun. Al-Nahhas (6) said: The clearest of these views are those of Al-Akhfash and Sibawayh. Al-Farra' and Al-Kisa'i said: Regarding "an yakfuru," if you wish, "an" could be in the genitive case (khafd) in apposition to the "ha" (it) in "bihi." Al-Farra' said: Meaning, they sold their souls by disbelieving in what Allah revealed (7). "Ishtara" can mean "to sell" or "to buy." The meaning is: Wretched is the thing they chose for themselves.

---

(1) Ma'ani al-Qur'an by Al-Zajjaj 1/172. (2) Al-Kitab 3/155, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, from which the author quoted. (3) Ma'ani al-Qur'an by him 1/322, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, from which the author quoted. (4) Ma'ani al-Qur'an by him 1/57, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, from which the author quoted. (5) Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/56-57, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/178, from which the author quoted. (6) I'rab al-Qur'an 1/247. (7) Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/56, and I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/247, from which the author quoted.

सूरह अल-बकराह: आयत 90 250 ...इसके साथ बिना 'अलिफ़ और लाम' (निश्चित उपपद) के एक संज्ञा आती है; इसलिए यह हमेशा कर्म कारक (नसब) में होती है। यदि इसमें 'अलिफ़ और लाम' हो, तो यह हमेशा कर्ता कारक (रफ़अ) में होती है। "रजुलन" (एक आदमी) को विशिष्टता (तमीज़) के रूप में कर्म कारक में रखा गया है। "निअमा" में, व्याख्या की शर्त पर एक छिपा हुआ सर्वनाम है (1)। "ज़ैद" दो तरह से कर्ता कारक में है: एक हटाए गए उद्देश्य (मुब्तदा) के विधेय (ख़बर) के रूप में; जैसे कि कहा गया हो: "प्रशंसित कौन है?" मैंने कहा: "वह ज़ैद है।" दूसरा तरीका उद्देश्य के रूप में है, और जो उससे पहले है वह उसका विधेय है। अबू अली ने इसके बाद "मा" के आने की अनुमति दी है, चाहे वह संबंधवाचक सर्वनाम के रूप में हो या अन्यथा, क्योंकि यह अस्पष्ट है और बहुतों पर लागू हो सकता है, किसी एक को निर्दिष्ट नहीं करता। सिबवैय (2) के अनुसार, इसका अर्थ है: "बुरी है वह चीज़ जिसके बदले उन्होंने अपनी आत्माओं को बेच दिया—कि वे कुफ़्र करें।" इस प्रकार, "अन यकफ़ुरू" (कि वे कुफ़्र करें) उद्देश्य के रूप में कर्ता कारक में है और उसका विधेय वह है जो उससे पहले है, जैसे कि आपका कहना: "बुरा आदमी ज़ैद है।" इस विचार के अनुसार "मा" एक संबंधवाचक सर्वनाम है। अल-अख़फ़श (3) ने कहा: "मा" विशिष्टता (तमीज़) के रूप में कर्म कारक के स्थान पर है, जैसे कि आपका कहना: "बुरा आदमी ज़ैद है।" तो अर्थ होगा: "बुरी चीज़ है कि वे कुफ़्र करें।" इस विचार के अनुसार "इश्तरौ बिही अनफ़ुसहुम" (उन्होंने इसके बदले अपनी आत्माओं को बेच दिया) "मा" का विशेषण है। अल-फ़र्रा (4) ने कहा: "बिअसमा" अपने आप में एक चीज़ है, जिसे "हब्बज़ा" की तरह बनाया गया है। इस विचार पर आपत्ति है; क्योंकि इसमें क्रिया बिना कर्ता के रह जाती है। अल-किसाई (5) ने कहा: "मा" और "इश्तरौ" एक ही स्वतंत्र संज्ञा के समान हैं। अर्थ यह है: "बुरा है उनका खुद को कुफ़्र के लिए बेचना।" यह खारिज कर दिया गया है, क्योंकि "निअमा" और "बिअसा" किसी विशिष्ट निश्चित संज्ञा से पहले नहीं आते हैं, और "बेचना" (अश-शिरा) सर्वनाम के साथ जुड़कर निश्चित हो गया है। अल-नह़्हास (6) ने कहा: इन विचारों में सबसे स्पष्ट अल-अख़फ़श और सिबवैय के विचार हैं। अल-फ़र्रा और अल-किसाई ने कहा: "अन यकफ़ुरू" के बारे में, यदि आप चाहें तो "अन" "बिही" में "हा" के बदले संबंध में षष्ठी विभक्ति (ख़फ़्द) के स्थान पर हो सकता है। अल-फ़र्रा ने कहा: अर्थात, उन्होंने अल्लाह द्वारा उतारे गए पर कुफ़्र करके अपनी आत्माओं को बेच दिया (7)। "इश्तरा" का अर्थ "बेचना" भी है और "खरीदना" भी; और अर्थ है: बुरी है वह चीज़ जिसे उन्होंने अपने लिए चुना।

(1) अल-ज़ज्जाज द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/172। (2) अल-किताब 3/155, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178 और लेखक ने वहीं से उद्धृत किया है। (3) उनके द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/322, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178 और लेखक ने वहीं से उद्धृत किया है। (4) उनके द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/57, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178 और लेखक ने वहीं से उद्धृत किया है। (5) अल-फ़र्रा द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/56-57, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/178 और लेखक ने वहीं से उद्धृत किया है। (6) इ'राब अल-क़ुरआन 1/247। (7) अल-फ़र्रा द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/56, और अल-नह़्हास द्वारा इ'राब अल-क़ुरआन 1/247 और लेखक ने वहीं से उद्धृत किया है।

سورہ البقرہ : آیت ۹۰ ۲۵۰ ...اس کے ساتھ 'الف اور لام' (حرفِ تعریف) کے بغیر اسم آتا ہے؛ تو وہ ہمیشہ حالتِ نصب میں ہوتا ہے، اور اگر اس میں 'الف اور لام' ہو تو وہ ہمیشہ حالتِ رفع میں ہوتا ہے۔ "رجلاً" (ایک آدمی) کو تمیز کی بنیاد پر نصب دیا گیا ہے۔ "نِعْمَ" میں ایک ضمیر پوشیدہ ہے جو تفسیر کی شرط پر مبنی ہے (۱)۔ اور "زیدٌ" دو طرح سے مرفوع ہے: ایک محذوف مبتدا کی خبر کے طور پر؛ گویا کہا گیا: "ممدوح (جس کی تعریف کی گئی) کون ہے؟" میں نے کہا: "وہ زید ہے۔" دوسرا طریقہ یہ ہے کہ وہ مبتدا ہے اور اس سے پہلے جو ہے وہ اس کی خبر ہے۔ ابو علی نے جائز قرار دیا کہ "ما" اس کے بعد آئے، چاہے وہ موصولہ ہو یا غیر موصولہ، اس حیثیت سے کہ وہ مبہم ہے اور کثرت پر صادق آتی ہے، اور کسی ایک کو خاص نہیں کرتی۔ سیبویہ (۲) کے نزدیک تقدیر (پوشیدہ عبارت) یہ ہے: "کتنی بری چیز ہے وہ جس کے بدلے انہوں نے اپنی جانوں کو بیچ دیا کہ وہ کفر کریں۔" پس "أن یکفروا" (کہ وہ کفر کریں) مبتدا ہونے کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے اور اس کی خبر وہ ہے جو اس سے پہلے ہے، جیسے آپ کا کہنا ہے: "برا آدمی زید ہے،" اور اس قول کے مطابق "ما" موصولہ ہے۔ اور الاخفش (۳) نے کہا: "ما" تمیز کی جگہ ہونے کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے، جیسے آپ کا کہنا ہے: "برا آدمی زید ہے،" تو تقدیر ہوگی: "بری چیز ہے کہ وہ کفر کریں۔" اس قول کے مطابق "اشتروا به أنفسهم" (انہوں نے اس کے بدلے اپنی جانوں کو بیچ دیا) "ما" کی صفت ہے۔ اور الفراء (۴) نے کہا: "بئسما" اپنی جملہ صورت کے ساتھ ایک چیز ہے، جو "حبذا" کی طرح مرکب ہے۔ اس قول پر اعتراض ہے؛ کیونکہ فعل بغیر فاعل کے رہ جاتا ہے۔ اور الکسائی (۵) نے کہا: "ما" اور "اشتروا" ایک ہی قائم بالذات اسم کے درجے میں ہیں، اور تقدیر یہ ہے: "برا ہے ان کا خود کو کفر کے لیے بیچنا۔" یہ بات مردود ہے، کیونکہ "نعم" اور "بئس" کسی معین معرفہ اسم پر داخل نہیں ہوتے، اور "خرید و فروخت" (الشراء) ضمیر کی طرف مضاف ہونے کی وجہ سے معرفہ ہو چکا ہے۔ النحاس (۶) نے کہا: ان

اقوال میں سب سے واضح قول الاخفش اور سیبویہ کا ہے۔ الفراء اور الکسائی نے کہا: "أن یکفروا" کے بارے میں، اگر آپ چاہیں تو "أن" حالتِ جر (خفض) میں "به" کی "ہا" سے بدل ہو سکتا ہے۔ الفراء نے کہا: یعنی، انہوں نے اپنی جانوں کو اس بات کے بدلے بیچ دیا کہ وہ اس پر کفر کریں جو اللہ نے نازل کیا (۷)۔ پس "اشتری" 'بیچنے' کے معنی میں بھی ہے اور 'خریدنے' کے معنی میں بھی؛ اور مطلب یہ ہے: کتنی بری چیز ہے وہ جسے انہوں نے اپنے لیے منتخب کیا۔

---

(۱) معانی القرآن للزجاج ۱۷۲/۱۔ (۲) الکتاب ۱۵۵/۳، والمحرر الوجیز ۱۷۸/۱ اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا۔ (۳) معانی القرآن ان کی ۱/۳۲۲، والمحرر الوجیز ۱۷۸/۱ اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا۔ (۴) معانی القرآن ان کی ۵۷/۱، والمحرر الوجیز ۱۷۸/۱ اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا۔ (۵) معانی القرآن للفراء ۵۶/۱ - ۵۷، والمحرر الوجیز ۱۷۸/۱ اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا۔ (۶) إعراب القرآن ۲۴۷/۱۔ (۷) معانی القرآن للفراء ۵۶/۱، اور إعراب القرآن للنحاس ۲۴۷/۱ اور مصنف نے وہیں سے نقل کیا۔

٢٥١ Surah Al-Baqarah: Verse 90

...until (1) they exchanged falsehood for truth, and disbelief for faith. The words of the Almighty: {بَغْيًا - baghyan (out of envy)} means: out of envy; this was said by Qatada and Al-Suddi (2). It is an object of purpose (maf'ul min ajlih), and it is essentially a verbal noun (masdar) (3). Al-Asma'i said: It is derived from their saying: "The wound has bagha" when it becomes festered/corrupted. And it was said: Its origin is "seeking" (at-talab), and that is why a prostitute is called "baghiyy" (one who seeks/transgresses). {أَن يُنَزِّلَ اللَّهُ - That Allah should send down} is in the accusative case (nasb); meaning: "because He sends down," i.e., for the purpose of Allah sending down grace upon His Prophet ﷺ. Ibn Kathir, Abu Amr, Ya'qub, and Ibn Muhaysin read it as: "an yun-zil" with a lightened pronunciation (without shadda on the za), and similarly for the rest of its occurrences in the Quran, except for {وَمَا نُنَزِّلُهُ - and We do not send it down} [Verse: 26] in Surah Al-Hijr, and in Surah Al-An'am {عَلَى أَن يُنَزِّلَ آيَةً - that He should send down a sign} (4) [Verse: 37]. The words of the Almighty: {فَبَاءُوا - fa-ba'u (so they returned)} meaning: they returned, and it is mostly said regarding evil, as previously mentioned (5). {بِغَضَبٍ عَلَى غَضَبٍ - with wrath upon wrath} The meaning of Allah's wrath upon them has been previously mentioned (6), which is His punishment. It was said: The first wrath was for their worship of the calf, and the second for their disbelief in Muhammad ﷺ; this was said by Ibn Abbas (7). Ikrimah said: Because they disbelieved in Jesus, then they disbelieved in Muhammad, meaning the Jews. Sa'id narrated from Qatada: The first for their disbelief in the Gospel (Injil), and the second for their disbelief in the Quran (8). A group said: The meaning is...

---

(1) In (M): since. (2) Reported by Al-Tabari in his Tafsir 2/248. (3) I'rab al-Quran by Al-Nahhas 1/247-248. (4) Al-Sab'a fi al-Qira'at p. 164, 165; Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at al-Sab' 1/253; Al-Taysir p. 75; Al-Nashr fi al-Qira'at al-'Ashr 2/218; and Ithaf Fudala' al-Bashar p. 187. Ibn Kathir and Ibn Muhaysin read the passage in Al-An'am with the lightened pronunciation. (5) 2/155. (6) 1/230-231. (7) Reported by Al-Tabari in his Tafsir 2/251, it contains: that the first wrath was His wrath upon them for what they had neglected of the Torah while it was with them. (8) Tafsir Al-Tabari 2/252.

٢٥١ सूरह अल-बकरा: आयत 90

...ताकि (1) वे सत्य के बदले असत्य और विश्वास (ईमान) के बदले अविश्वास (कुफ़्र) को अपना लें। अल्लाह तआला का कथन: {बग़यन (ईर्ष्यावश)} का अर्थ है: ईर्ष्या; यह कतादा और अल-सुद्दी ने कहा है (2), और यह 'मफ़ऊल मिन अजलिह' (उद्देश्य सूचक कर्म) है, और वास्तव में यह एक स्रोत (मस्दर) है (3)। अल-असमी ने कहा: यह उनके इस कथन से लिया गया है: "घाव बग़ा हो गया" जब वह खराब हो जाता है। और यह भी कहा गया है: इसका मूल 'खोज' (तलब) है, और इसीलिए व्यभिचारिणी को 'बग़िय्या' कहा जाता है। {कि अल्लाह उतारता है} 'नस्ब' की स्थिति में है; यानी: "ताकि वह उतारे," अर्थात्: अल्लाह द्वारा अपने नबी ﷺ पर अनुग्रह उतारने के उद्देश्य से। इब्न कसीर, अबू अम्र, याकूब और इब्न मुहयसिन ने इसे "अन युन-ज़िल" (बिना शद्दा के) पढ़ा है, और इसी तरह कुरान के शेष स्थानों पर भी, सिवाय {और हम इसे नहीं उतारते} [आयत: 26] सूरह अल-हिज्र में, और सूरह अल-अनआम में {कि वह एक निशानी उतारे} (4) [आयत: 37]। अल्लाह तआला का कथन: {फ़-बाऊ (तो वे लौटे)} यानी: वे वापस आए, और यह अधिकतर बुराई के संदर्भ में कहा जाता है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है (5)। {क्रोध पर क्रोध के साथ} उन पर अल्लाह के क्रोध का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है (6), जो कि उसका दंड है। यह कहा गया: पहला क्रोध बछड़े की पूजा के लिए था, और दूसरा मुहम्मद ﷺ में उनके अविश्वास के लिए था; यह इब्न अब्बास ने कहा है (7)। इक़रिमा ने कहा: क्योंकि उन्होंने ईसा में अविश्वास किया, फिर मुहम्मद में अविश्वास किया, यानी यहूदी। सईद ने कतादा से रिवायत की: पहला इंजील में उनके अविश्वास के लिए, और दूसरा कुरान में उनके अविश्वास के लिए (8)। एक समूह ने कहा: इसका उद्देश्य...

---

(1) (म) में: जहाँ। (2) इसे अल-तब़री ने अपनी तफ़सीर 2/248 में उद्धृत किया है। (3) अल-नहहास द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/247-248। (4) अल-सबा फ़ी अल-किरात पृ. 164, 165; अल-कश्फ़ 'अन वुजूह अल-किरात अल-सबा 1/253; अल-तयसीर पृ. 75; अल-नश्र फ़ी अल-किरात अल-अश्र 2/218; और इत्हाफ़ फ़ुदला अल-बशर पृ. 187। इब्न कसीर और इब्न मुहयसिन ने अल-अनआम वाले स्थान को हल्के उच्चारण (तखफ़ीफ़) के साथ पढ़ा है। (5) 2/155। (6) 1/230-231। (7) इसे अल-तब़री ने अपनी तफ़सीर 2/251 में उद्धृत किया है, इसमें है: कि पहला क्रोध उन पर उनके द्वारा तौरात के उन हिस्सों की उपेक्षा के कारण था जो उनके पास थे। (8) तफ़सीर अल-तब़री 2/252।

٢٥١ سورة البقرہ: آیت 90

حتیٰ (1) کہ انہوں نے باطل کو حق سے، اور کفر کو ایمان سے بدل لیا۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿بَغْيًا﴾ اس کا معنی ہے: حسد؛ یہ قتادہ اور سدی نے کہا ہے (2)، اور یہ مفعول لہ ہے، اور حقیقت میں یہ مصدر ہے (3)۔ اصمعی: یہ ان کے قول سے لیا گیا ہے: "زخم بغا ہو گیا" جب وہ خراب ہو جائے۔ اور کہا گیا ہے: اس کی اصل "طلب" ہے، اسی لیے زانیہ کو "بغی" کہا جاتا ہے۔ ﴿أَن يُنَزِّلَ اللَّهُ﴾ محل نصب میں ہے؛ یعنی: تاکہ وہ نازل کرے، یعنی: اللہ کے اپنے نبی ﷺ پر فضل نازل کرنے کی خاطر۔ ابن کثیر، ابو عمرو، یعقوب اور ابن محیصن نے "أن يُنْزِل" تخفیف کے ساتھ پڑھا ہے، اور اسی طرح قرآن کے باقی مقامات پر بھی، سوائے ﴿وَمَا نُنَزِّلُهُ﴾ [آیت: 26] کے جو سورہ "حجر" میں ہے، اور سورہ "انعام" میں ﴿عَلَى أَن يُنَزِّلَ آيَةً﴾ (4) [آیت: 37]۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَبَاءُوا﴾ یعنی: وہ لوٹے، اور یہ زیادہ تر برائی کے موقع پر بولا جاتا ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (5)۔ ﴿بِغَضَبٍ عَلَى غَضَبٍ﴾ اللہ کے ان پر غصے کا معنی پہلے گزر چکا ہے (6)، اور وہ اس کا عذاب ہے؛ پس کہا گیا: پہلا غضب بچھڑے کی عبادت پر تھا، اور دوسرا محمد ﷺ کے ساتھ کفر کرنے پر؛ یہ ابن عباس نے کہا ہے (7)۔ عکرمہ نے کہا: اس لیے کہ انہوں نے عیسیٰ کا انکار کیا، پھر محمد کا انکار کیا، یعنی یہودی۔ سعید نے قتادہ سے روایت کی: پہلا انجیل کے انکار پر، اور دوسرا قرآن کے انکار پر (8)۔ ایک گروہ نے کہا: مراد ہے...

---

(1) (م) میں: جہاں۔ (2) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/248 میں بیان کیا ہے۔ (3) نحاس کی اعراب القرآن 1/247-248۔ (4) السبعہ فی القراءات ص 164، 165؛ الکشف عن وجوہ القراءات السبع 1/253؛ التیسیر ص 75؛ النشر فی القراءات العشر 2/218؛ اور اتحاف فضلاء البشر ص 187۔ ابن کثیر اور ابن محیصن نے سورہ انعام والے مقام کو تخفیف کے ساتھ پڑھا ہے۔ (5)

2/155- (6) 1/230-231- (7) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/251 میں بیان کیا ہے، اس میں ہے: کہ پہلا غضب ان پر اس وجہ سے تھا جو انہوں نے تورات کے بارے میں کوتاہی کی حالانکہ وہ ان کے پاس تھی۔ (8) تفسیر طبری 2/252-

Surah Al-Baqarah: Verse 91 252

...perpetuity(1) and the severity of their state, not that he intended two angers justified by two stories(2). And ﴿مُهِينٌ﴾ (humiliating) is derived from "hawan" (disgrace/insignificance), and it is what necessitates eternal dwelling in Hellfire forever, unlike the dwelling of sinning Muslims, for that is a purification and cleansing for them, like the stoning of the adulterer and the cutting of the thief's hand, as will be explained in Surah An-Nisa from the hadith of Abu Sa'id al-Khudri, God willing. His (Exalted is He) saying: {And when it is said to them, "Believe in what Allah has sent down," they say, "We believe in what was sent down to us." And they disbelieve in what came after it, while it is the truth confirming that which is with them. Say, "Then why did you kill the prophets of Allah before, if you were believers?"} His (Exalted is He) saying: {And when it is said to them, "Believe"} i.e., accept as true {in what Allah has sent down} meaning the Quran {they say, "We believe"} i.e., we accept as true {in what was sent down to us} meaning the Torah. {And they disbelieve in what is beyond it/after it} i.e., in what is other than it, according to Al-Farra(4). And Qatadah(5): in what is after it; and this is the view of Abu Ubaidah(6), and the meaning is the same. Al-Jawhari said: "Wara'" means behind, and it can also mean in front. It is among the 'addad' (words with opposite meanings); Allah the Exalted said: {And there was after them/before them a king} [Al-Kahf: 79] meaning: in front of them; and its diminutive form is 'wuray'ah' - with the letter 'ha' - which is irregular. And "wara'ahu" is in the accusative case (mansub) as an adverb of place (zarf). Al-Akhfash said: It is said, "I met him from behind," so you put it in the nominative case (marfu') for purpose if it is not in a genitive construction (idafa); you make it a noun, and it is indeclinable (ghayr mutamakin); like your saying "from before" and "from after", and he recited: If I did not feel safe from you and our meeting was only from far, far behind(7).

---

(1) In (D) and (M): perpetuity, and in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/179 (and the speech from it): emphasis. (2) In (Zha): with two angers, and in (D), (Zay), and (M): with two sins, and the confirmed one is from (Kha), which is consistent with what is in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/179. (3) In (M): and cutting the hand of the thief. (4) Ma'ani Al-Quran 1/60. (5) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 1/255. (6) Majaz Al-Quran 1/47. (7) The verse is by 'Utay bin Malik al-'Uqayli, and it is in Ma'ani Al-Quran by Al-Farra 2/320, Al-Kamil 1/85, Sharh al-Mufassal by Ibn Ya'ish 4/87, Khizanat al-Adab 6/504, and Al-Lisan (Wara).

सूरह अल-बकराह: आयत 91 252

...स्थायित्व (1) और उनकी स्थिति की गंभीरता, यह नहीं कि उनका इरादा दो कहानियों द्वारा उचित ठहराए गए दो क्रोधों से था (2)। और ﴿مُهِينٌ﴾ (अपमानजनक) 'हवान' (अपमान) से लिया गया है, और यह वह है जो नरक की आग में हमेशा के लिए रहने की आवश्यकता पैदा करता है, मुसलमानों में से पापियों के रहने के विपरीत, क्योंकि उनके लिए यह शोधन और शुद्धिकरण है, जैसे कि व्यभिचारी का पत्थर मारना और चोर के[हाथ] काटना (3), जैसा कि अल्लाह ने चाहा तो सूरह अन-निसा में अबू सईद अल-खुदरी की हदीस से स्पष्ट किया जाएगा। अल्लाह का कथन: {और जब उनसे कहा जाता है, "उस पर ईमान लाओ जो अल्लाह ने उतारा है," तो वे कहते हैं, "हम उस पर ईमान लाते हैं जो हम पर उतारा गया है।" और वे उसके बाद आने वाली चीज़ का इनकार करते हैं, जबकि वह सत्य है और जो उनके पास है उसकी पुष्टि करने वाला है। कहो, "फिर तुमने पहले अल्लाह के नबियों की हत्या क्यों की, यदि तुम मोमिन थे?"} अल्लाह का कथन: {और जब उनसे कहा जाता है, "ईमान लाओ"} यानी: सच मानो {उस पर जो अल्लाह ने उतारा है} यानी कुरान {वे कहते हैं, "हम ईमान लाते हैं"} यानी सच मानते हैं {उस पर जो हम पर उतारा गया है} यानी तौरात। {और वे उसके बाद वाली चीज़ का इनकार करते हैं} यानी: उसके अलावा अन्य चीज़ का, अल-फर्रा (4) के अनुसार। और कतादह (5) के अनुसार: उसके बाद वाली चीज़ का; और यही अबू उबैदह (6) का मत है, और अर्थ एक ही है। अल-जौहरी ने कहा: 'वरा' का अर्थ पीछे है, और इसका अर्थ सामने भी हो सकता है। यह 'अददाद' (विपरीत अर्थ वाले शब्द) में से है; अल्लाह तआला ने कहा: {और उनके पीछे/सामने एक राजा था} [अल-कहफ: 79] यानी: उनके सामने; और इसका अल्पार्थक रूप 'वुरैया' है - 'हा' अक्षर के साथ - जो अनियमित है। और 'वराअहु' को क्रिया विशेषण (ज़र्फ़) के रूप में कर्म कारक (मन्सूब) में रखा गया है। अल-अखफश ने कहा: कहा जाता है, "मैं उससे पीछे से मिला," इसलिए यदि वह संबंध कारक (इज़ाफ़ा) में नहीं है, तो आप इसे उद्देश्य के लिए कर्ता कारक (मर्फ़ू) में रखते हैं; आप इसे एक संज्ञा बनाते हैं, और यह अविकारी (गैर मुतमकिन) है; जैसे आपका कहना "पहले से" और "बाद से", और उन्होंने पढ़ा: यदि मैं तुम से सुरक्षित महसूस न करता और हमारी मुलाकात केवल दूर, बहुत पीछे से होती (7)।

---

(1) (द) और (म) में: स्थायित्व, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/179 में (और उसी का कथन है): ज़ोर (ताकीद)। (2) (ज़ा) में: दो क्रोधों के साथ, और (द), (ज़ाय), और (म) में: दो पापों के साथ, और जो पुष्ट है वह (खा) से है, जो अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/179 में है उसके अनुरूप है। (3) (म) में: और चोर

का हाथ काटना। (4) मानी अल-कुरान 1/60। (5) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 1/255 में उद्धृत किया है। (6) मजाज़ अल-कुरान 1/47। (7) यह पद्य उती बिन मलिक अल-उकैली का है, और यह अल-फर्रा की मानी अल-कुरान 2/320, अल-कामिल 1/85, इब्न याईश की शर्ह अल-मुफस्सल 4/87, ख़िज़ानात अल-अदब 6/504 और अल-लिसान (वरा) में है।

سورة البقرہ: آیت 91 252

...ہمیشہ رہنا (1) اور ان کی حالت کی شدت، یہ نہیں کہ اس نے دو قصوں سے معلل دو غضبوں کا ارادہ کیا۔ اور ﴿مُهِينٌ﴾ 'ہوان' (ذلت) سے لیا گیا ہے، اور یہ وہ ہے جو جہنم کی آگ میں ہمیشہ کے لیے رہنے کا تقاضا کرتا ہے، برخلاف گناہگار مسلمانوں کے ہمیشہ رہنے کے، کیونکہ وہ ان کے لیے پاکیزگی اور تطہیر ہے، جیسے زانی کو رجم کرنا اور چور کا [ہاتھ] کاٹنا (3)، جیسا کہ ان شاء اللہ تعالیٰ سورہ نساء میں ابو سعید خدری کی حدیث سے اس کا بیان آئے گا۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ عَامِنُوا بِمَا أَنزَلَ اللهُ قَالُوا نُؤْمِنُ بِمَا أُنزِلَ عَلَيْنَا وَيَكْفُرُونَ بِمَا وَرَاءَهُ وَهُوَ الْحَقُّ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَهُمْ قُلْ فَلِمَ تَقْتُلُونَ أَنْبِيَاءَ اللهِ مِن قَبْلُ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ ۝﴾ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَإِذَا قِيلَ لَهُمْ عَامِنُوا﴾ یعنی: تصدیق کرو ﴿بِمَا أَنزَلَ اللَّهُ﴾ یعنی قرآن ﴿قَالُوا نُؤْمِنُ﴾ یعنی: ہم تصدیق کرتے ہیں ﴿بِمَا أُنزِلَ عَلَيْنَا﴾ یعنی تورات۔ ﴿وَيَكْفُرُونَ بِمَا وَرَاءَهُ﴾ یعنی: اس کے سوا کا، فراء (4) سے مروی ہے۔ اور قتادہ (5) کے نزدیک: اس کے بعد کا؛ اور یہی ابو عبیدہ (6) کا قول ہے، اور معنی ایک ہی ہے۔ جوہری نے کہا: 'وراء' پیچھے کے معنی میں ہے، اور کبھی یہ سامنے کے معنی میں بھی ہوتا ہے۔ یہ 'اضداد' (الٹ معنی والے الفاظ) میں سے ہے؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَكَانَ وَرَاءَهُم مَّلِكٌ﴾ [الکہف: 79] یعنی: ان کے سامنے؛ اور اس کی تصغیر 'ورئیہ' ہے - 'ہ' کے ساتھ - جو کہ شاذ ہے۔ اور "وراءہ" ظرف ہونے کی بنا پر منصوب ہے۔ اخفش نے کہا: کہا جاتا ہے: "لقيته من وراء" (میں اس سے پیچھے سے ملا)، تو آپ اسے غایت پر مرفوع پڑھیں گے جب وہ مضاف نہ ہو؛ آپ اسے اسم بنا دیں گے، اور وہ غیر متمکن ہوتا ہے؛ جیسے آپ کا کہنا: "من قبل" اور "من بعد"، اور انہوں نے یہ شعر پڑھا: اگر میں تم سے بے خوف نہ ہوتا اور تمہاری ملاقات صرف دور پیچھے ہی سے نہ ہوتی (7)۔

(1) (د) اور (م) میں: التأبید اور المحرر الوجیز 1/179 میں (اور کلام اسی سے ہے): التأکید (تاکید)۔ (2) (ظ) میں: بغضبین اور (د)، (ز) اور (م) میں: بمعصیتین اور جو ثابت ہے وہ (خ) سے ہے، اور یہی المحرر الوجیز 1/179 کے موافق ہے۔ (3) (م) میں: اور چور کا ہاتھ کاٹنا۔ (4) معانی القرآن 1/60. (5) طبری نے اسے اپنی تفسیر 1/255 میں روایت کیا ہے۔ (6) مجاز القرآن 1/47. (7) یہ شعر عتی بن مالک عقیلی کا ہے، اور یہ فراء کی معانی القرآن 2/320، الکامل 1/85، ابن یعیش کی شرح المفصل 4/87، خزانہ الادب 6/504 اور اللسان (وری) میں موجود ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 91 [Page] 253

I said: From it is the saying of Ibrahim (peace be upon him) in the Hadith of Intercession: "I was only a close friend from behind [a barrier] (wara'a wara'a)" (1). And 'wara'a' also means the child of a child (grandchild) (2).

The Almighty's saying: {And it is the truth} [is] a subject and a predicate. {Confirming} [is] a corroborating circumstantial adverb (hal) according to Sibawayh (3). {what is with them}: "ma" is in the genitive case due to the preposition "lam", and "ma'ahum" is its relative clause. And "ma'ahum" is in the accusative case (nasb) due to stability, and whoever makes it sukun treats it as a particle (harf) (4).

The Almighty's saying: {Say, "Then why did you kill the prophets of Allah before"} [is] a refutation from Allah Almighty against their claim that they believed in what was revealed to them, a denial of them, and a reprimand. The meaning is: How did you kill them while you were forbidden from doing so! The address is to those who were present with Muhammad (peace be upon him), but the intended meaning is their ancestors. The address was directed to their descendants because they were loyal to those who were killed, as He said: {And if they had believed in Allah and the Prophet and what was revealed to him, they would not have taken them as allies} [Al-Ma'idah: 81]. So if they were loyal to them, they are in their position.

It was also said: Because they were pleased with their actions, so it was attributed to them.

"Taqtuluna" (you kill) came in the present/future tense, and it means the past because the ambiguity was removed by His saying: "before". When there is no ambiguity, it is permissible for the past tense to mean the future, and the future tense to mean the past. Al-Hutay'ah said (5):

Al-Hutay'ah testified on the day he meets his Lord that Al-Walid is most deserving of excuse.

"Shahida" (testified - past tense) means "yashhadu" (testifies - present/future).

{If you are believers} i.e.: if you truly believe, then why were you pleased with the killing of the prophets?! And it was said: "In" means "Ma" (negation), and the origin of "lam" is "lima"; the alif was deleted to differentiate between...

(1) Narrated by Muslim (195). The saying "wara'a wara'a"; Ibn al-Athir said in al-Nihayah: It is narrated like this, built on fatha, meaning: from behind a veil. (2) As-

Sihah: (w-r-y). (3) Al-Kitab 2/87. (4) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas 1/248. (5) His Diwan p. 233, and the speech is from al-Muharrar al-Wajiz 1/179.

सूरा अल-बक़रा: आयत 91 [पृष्ठ] 253

मैंने कहा: इसी में से शफ़ाअत (सिफ़ारिश) की हदीस में इब्राहिम (उन पर शांति हो) का कहना है: "मैं केवल एक पर्दे के पीछे से (वराअ वराअ) एक घनिष्ठ मित्र था" (1)। और 'वराअ' का अर्थ पोता या नाती भी है (2)।

अल्लाह तआला का कथन: {और वह सत्य है} [यह] एक उद्देश्य (मुब्तदा) और एक विधेय (ख़बर) है। {पुष्टि करने वाला} सिबवैह के अनुसार एक पुष्टिकारक हाल (अवस्थावाचक क्रियाविशेषण) है (3)। {जो उनके पास है}: "मा" लाम (प्रसर्ग) के कारण जर्र (षष्ठी) की स्थिति में है, और "मा-अहुम" उसका सिला (सापेक्ष उपवाक्य) है। "मा-अहुम" को इस्तिक्रार के आधार पर नसब (द्वितीया) दिया गया है, और जिसने इसे साकिन (बिना स्वर के) किया है, उसने इसे हर्फ़ (अव्यय) माना है (4)।

अल्लाह तआला का कथन: {कहो, 'फिर तुमने अल्लाह के नबियों को पहले क्यों मारा'} [यह] अल्लाह तआला की ओर से उनके इस दावे का खंडन है कि वे उस पर विश्वास करते थे जो उन पर उतारा गया था, और उनकी ओर से यह झूठ और फटकार है। इसका अर्थ है: तो तुमने उन्हें क्यों मारा जबकि तुम्हें ऐसा करने से मना किया गया था! संबोधन उन लोगों के लिए है जो मुहम्मद (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) के समय उपस्थित थे, लेकिन अभिप्राय उनके पूर्वजों से है। संबोधन उनके वंशजों को इसलिए दिया गया क्योंकि वे उन लोगों के अनुयायी थे जिन्हें मारा गया था, जैसा कि उसने कहा: {और यदि वे अल्लाह और नबी और जो उन पर उतारा गया, उस पर विश्वास करते, तो वे उन्हें अपना मित्र न बनाते} [अल-माइदा: 81]। तो यदि वे उनके अनुयायी थे, तो वे उनके समान ही हैं।

और यह भी कहा गया है: क्योंकि वे उनके कार्यों से प्रसन्न थे, इसलिए इसे उनके साथ जोड़ दिया गया।

"तक्तुलूना" (तुम मारते हो) भविष्य/वर्तमान काल में आया है, और इसका अर्थ भूतकाल है क्योंकि "मिं कबलु" (पहले) कहने से भ्रम दूर हो गया। जब कोई भ्रम न हो, तो भूतकाल का उपयोग भविष्य के अर्थ में और भविष्य काल का उपयोग भूतकाल के अर्थ में करना जायज़ है। अल-हुतैय्या ने कहा (5):

अल-हुतैय्या ने उस दिन गवाही दी जब वह अपने रब से मिला कि अल-वलीद माफ़ी का सबसे अधिक पात्र है।

"शहिदा" (गवाही दी - भूतकाल) का अर्थ "यशहदु" (गवाही देता है - वर्तमान) है।

{यदि तुम मोमिन (ईमान वाले) हो} अर्थात्: यदि तुम वास्तव में ईमान रखते हो, तो तुम नबियों की हत्या से क्यों प्रसन्न थे?! और यह भी कहा गया है: "इन" का अर्थ "मा" (नकारात्मक) है, और "लिम" का मूल "लिमा" है; अलिफ़ को... के बीच अंतर करने के लिए हटा दिया गया।

(1) इसे मुस्लिम (195) ने संकलित किया है। "वराअ वराअ" शब्द के बारे में इब्न अल-असीर ने 'अल-निहाया' में कहा है: इसे इसी तरह फ़त्हा पर आधारित वर्णित किया गया है, यानी: एक पर्दे के पीछे से। (2) अस-सिहाह: (व-र-य)। (3) अल-किताब 2/87। (4) अन-नह़्ह़ास द्वारा इ'राब अल-क़ुरआन 1/248। (5) उनका दीवान पृष्ठ 233, और यह बात अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/179 से ली गई है।

سورة البقرہ: آیت 91 [صفحہ] 253

میں نے کہا: اسی میں سے شفاعت کی حدیث میں ابراہیم علیہ السلام کا قول ہے: "میں تو پسِ پردہ (وراء وراء) ہی ایک خلیل (دوست) تھا" (1)۔ اور 'وراء' کا معنی پوتا یا نواسا بھی ہے (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَهُوَ الْحَقُّ﴾ (اور وہ حق ہے) مبتدا اور خبر ہے۔ ﴿مُصَدِّقًا﴾ (تصدیق کرنے والا) سیبویہ کے نزدیک حالِ مؤکدہ ہے (3)۔ ﴿لِمَا مَعَهُمْ﴾ میں "ما" لام کی وجہ سے جر (خفض) کی جگہ پر ہے، اور "معهم" اس کا صلہ ہے، اور "معهم" استقرار کی بنا پر منصوب ہے، اور جس نے اسے ساکن پڑھا اس نے اسے حرف قرار دیا (4)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿قُلْ فَلِمَ تَقْتُلُونَ أَنْبِيَاءَ اللَّهِ مِنْ قَبْلُ﴾ (کہہ دو کہ پھر تم اس سے پہلے اللہ کے نبیوں کو کیوں قتل کرتے رہے) اللہ تعالیٰ کی طرف سے ان کے اس قول کی تردید ہے کہ وہ اس چیز پر ایمان لائے جو ان پر نازل کی گئی، اور یہ ان کی تکذیب اور ان پر ملامت ہے۔ مطلب یہ ہے کہ: تو تم نے انہیں کیوں قتل کیا جبکہ تمہیں اس سے منع کیا گیا تھا! خطاب ان لوگوں سے ہے جو محمد ﷺ کے پاس موجود تھے، اور مراد ان کے اسلاف (آباؤ اجداد) ہیں۔ خطاب ان کے بیٹوں (اولادوں) کی طرف اس لیے متوجہ ہوا کیونکہ وہ ان قتل کرنے والوں کے پیروکار (دوست) تھے، جیسا کہ اللہ نے فرمایا: ﴿وَلَوْ كَانُوا يُؤْمِنُونَ بِاللَّهِ وَالنَّبِيِّ وَمَا أُنْزِلَ إِلَيْهِ مَا اتَّخَذُوهُمْ أَوْلِيَاءَ﴾ [المائدہ: 81] (اور اگر وہ اللہ اور نبی اور جو ان پر نازل کیا گیا اس پر ایمان لاتے تو انہیں دوست نہ بناتے)۔ پس جب وہ ان کے دوست بنے تو وہ انہی کے مقام پر ہیں۔

اور یہ بھی کہا گیا: اس لیے کہ وہ ان کے فعل پر راضی تھے، پس اس (قتل) کی نسبت ان کی طرف کر دی گئی۔

اور "تقتلون" مضارع (حال/مستقبل) کے لفظ کے ساتھ آیا ہے، اور یہ ماضی کے معنی میں ہے کیونکہ "من قبل" کے کہنے سے اشکال دور ہو گیا۔ اور جب اشکال نہ رہے تو جائز ہے کہ ماضی مستقبل کے معنی میں آئے اور مستقبل ماضی کے معنی میں۔ الحطیئہ نے کہا (5):

الحطیئہ نے اس دن گواہی دی جب وہ اپنے رب سے ملے گا کہ ولید معذرت کا زیادہ حقدار ہے۔

یہاں "شھد" (ماضی) "یشھد" (حال/مستقبل) کے معنی میں ہے۔

﴿إِنْ كُنْتُمْ مُؤْمِنِينَ﴾ یعنی: اگر تم ایمان کے معتقد ہو، تو پھر تم انبیاء کے قتل پر کیوں راضی ہوئے؟! اور کہا گیا: "إن" نفی کے معنی میں ہے، اور "لِمَ" کی اصل "لِما" ہے، الف کو حذف کر دیا گیا تاکہ فرق کیا جا سکے...

(1) اسے مسلم (195) نے روایت کیا ہے۔ "وراء وراء" کے قول کے بارے میں ابن الاثیر نے 'النہایہ' میں کہا: یہ اسی طرح فتحہ پر مبنی مروی ہے، یعنی: حجاب کے پیچھے سے۔ (2) الصحاح: (وری)۔ (3) الکتاب 2/ 87۔ (4) اعراب القرآن للنحاس 1/ 248۔ (5) ان کا دیوان ص 233، اور یہ کلام 'المحرر الوجیز' 1/ 179 سے ہے۔

254 Surah Al-Baqarah: Verses 92, 93

...interrogation and news; and it should not be stopped upon; because if it is stopped upon without 'ha' (هـ), it would be a linguistic error (lahn), and if it is stopped upon with 'ha', it would be an addition to the script (sawad) (1).

The Almighty's saying: {And Moses had certainly come to you with clear proofs. Then you took the calf [for worship] after him, while you were wrongdoers.} [Al-Baqarah: 92]

The Almighty's saying: {And Moses had certainly come to you with clear proofs} The 'Lam' is the 'Lam of oath', and 'clear proofs' refers to: the Almighty's saying: {And We had certainly given Moses nine clear signs} [Al-Isra: 101], which are: the staff, the years (famine), the hand, the blood, the flood, the locusts, the lice, the frogs, and the parting of the sea. It was also said: the clear proofs are the Torah and the indications it contains.

The Almighty's saying: {Then you took the calf} is a rebuke, and 'thumma' (then) is more eloquent than 'waw' (and) in reprimand, meaning: after looking into the signs and bringing them, you took [the calf]. This indicates that they only did that after a period of looking into the signs; and that makes their crime greater (2).

The Almighty's saying: {And [recall] when We took your covenant and raised over you the mount, [saying], "Take what We have given you with determination and listen." They said [instead], "We hear and disobey." And their hearts were made to drink [the love of] the calf because of their disbelief. Say, "How wretched is that which your faith enjoins upon you, if you should be believers."} [Al-Baqarah: 93]

The Almighty's saying: {And [recall] when We took your covenant and raised over you the mount, [saying], "Take what We have given you with determination and listen."} Discussion on this has preceded (3).

And the meaning of "listen" is "obey", and it does not mean just the command to perceive the speech, rather what is intended is:

(1) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/248, and in it and in (Za): al-Shawadh (anomalies), instead of: al-Sawad (the script), and the intended is: the script of the Mushaf. Al-Samin al-Halabi followed up on this statement in Al-Durr al-Masun 1/517, saying: But al-Bazzi stopped with the 'ha', and such is not considered a violation of the script. Do you not see their affirmation of some additional 'ya's? Abu Hayyan said in al-Bahr

1/307: Al-Bazzi stops with 'ha', saying: "Falimah" (So why?), while others stop: "Falim", without 'ha', and this stopping is only permissible for testing or due to shortness of breath. We say: Al-Bazzi is Ahmad bin Muhammad Abu al-Hasan al-Mu'adhdhin al-Makki, the narrator of Ibn Kathir from the seven. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/180. (3) 2/163.

254 सूरा अल-बकरा: आयत 92, 93

...प्रश्न और समाचार; और इस पर रुकना नहीं चाहिए; क्योंकि यदि इस पर 'हा' (ه) के बिना रुका जाए, तो यह भाषाई त्रुटि होगी, और यदि 'हा' के साथ रुका जाए, तो यह लिपि (सवाद) में वृद्धि होगी (1)।

अल्लाह का कथन: {और मूसा तुम्हारे पास स्पष्ट प्रमाण लेकर आए थे। फिर तुमने उसके बाद बछड़े को (पूजा के लिए) अपना लिया, जबकि तुम अत्याचारी थे।} [अल-बकरा: 92]

अल्लाह का कथन: {और मूसा तुम्हारे पास स्पष्ट प्रमाण लेकर आए थे} यहाँ 'लाम' शपथ का 'लाम' है। स्पष्ट प्रमाण वे हैं जिनके बारे में अल्लाह ने कहा: {और हमने मूसा को नौ स्पष्ट निशानियाँ दी थीं} [अल-इसरा: 101], जो ये हैं: लाठी, अकाल के वर्ष, हाथ, खून, बाढ़, टिड्डियाँ, जुएं मेंढक और समुद्र का फटना। यह भी कहा गया है कि स्पष्ट प्रमाणों से तात्पर्य तौरात और उसमें मौजूद संकेत हैं।

अल्लाह का कथन: {फिर तुमने बछड़े को अपना लिया} एक फटकार है, और 'थुम्मा' (फिर) फटकार में 'वाव' (और) से अधिक प्रभावशाली है, अर्थात: संकेतों को देखने और उनके आने के बाद तुमने उसे अपना लिया। यह दर्शाता है कि उन्होंने ऐसा संकेतों पर विचार करने की मोहलत के बाद ही किया; और यह उनके अपराध को और बड़ा बना देता है (2)।

अल्लाह का कथन: {और (याद करो) जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम्हारे ऊपर तूर पहाड़ को उठाया (और कहा), "जो कुछ हमने तुम्हें दिया है उसे मजबूती से पकड़ो और सुनो।" उन्होंने कहा, "हमने सुना और अवज्ञा की।" और उनके कुफ्र के कारण उनके दिलों में बछड़े (का प्रेम) पिला दिया गया। कहो, "बुरा है वह जिसका तुम्हारा ईमान तुम्हें आदेश देता है, यदि तुम मोमिन हो।" } [अल-बकरा: 93]

अल्लाह का कथन: {और (याद करो) जब हमने तुमसे वचन लिया और तुम्हारे ऊपर तूर पहाड़ को उठाया (और कहा), "जो कुछ हमने तुम्हें दिया है उसे मजबूती से पकड़ो और सुनो।" } इस पर चर्चा पहले हो चुकी है (3)।

और "सुनो" का अर्थ है "आज्ञा पालन करो", और इसका अर्थ केवल वाणी को ग्रहण करने का आदेश नहीं है, बल्कि उद्देश्य यह है:

(1) इ'राब अल-कुरान, अल-नहहास 1/248, और इसमें और (ज़) में: अल-शवाज़ (असंगतियाँ), इसके स्थान पर: अल-सवाद (लिपि), और उद्देश्य है: मुसहफ की लिपि। अल-समीन अल-हलबी ने अल-दुर्र अल-मसून 1/517 में इस कथन पर टिप्पणी की और कहा: लेकिन अल-बज्जी 'हा' के साथ रुकते थे, और इसे लिपि का उल्लंघन नहीं माना जाता है। क्या आप उनके द्वारा कुछ अतिरिक्त 'या' की पुष्टि को नहीं देखते? अबू हय्यान ने अल-बहर 1/307 में कहा: अल-बज्जी 'हा' के साथ रुकते हैं, और कहते हैं: "फलिमह" (तो क्यों?), जबकि अन्य रुकते हैं: "फलिम", 'हा' के बिना, और इस तरह रुकना केवल परीक्षण के लिए या सांस टूटने के कारण ही जायज है। हम कहते हैं: अल-बज्जी अहमद बिन मुहम्मद अबू अल-हसन अल-मुअज्जिन अल-मक्की हैं, जो सात में से इब्न कसीर के रावी (वर्णनकर्ता) हैं। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/180। (3) 2/163।

254 سورة البقرہ: آیات 92، 93

...استفہام (سوال) اور خبر؛ اور اس پر وقف نہیں کرنا چاہیے؛ کیونکہ اگر اس پر بغیر 'ہا' (ھـ) کے وقف کیا جائے تو یہ غلطی (لحن) ہوگی، اور اگر 'ہا' کے ساتھ وقف کیا جائے تو یہ کتابت (سواد) میں زیادتی ہوگی (1)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلَقَدْ جَاءَكُم مُّوسَى بِالْبَيِّنَتِ ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْ بَعْدِهِ وَأَنتُمْ ظَٰلِمُونَ } (اور یقیناً تمہارے پاس موسیٰ واضح دلیلیں لے کر آئے، پھر تم نے ان کے بعد بچھڑے کو معبود بنا لیا اور تم ظلم کرنے والے تھے)۔ [البقرہ: 92]

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلَقَدْ جَاءَكُم مُّوسَى بِالْبَيِّنَتِ} 'لام' قسم کا ہے، اور 'بینات' (واضح دلائل) سے مراد ہے جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {وَلَقَدْ ءَاتَيْنَا مُوسَى تِسْعَ ءَايَتٍ بَيِّنَتٍ} [الاسراء: 101] اور وہ ہیں: عصا، قحط کے سال، ہاتھ، خون، طوفان، ٹڈیاں، جوئیں، مینڈک اور سمندر کا پھٹنا۔ اور کہا گیا ہے کہ بینات سے مراد تورات اور اس میں موجود دلائل ہیں۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ} یہ توبیخ (ڈانٹ) ہے، اور سرزنش میں 'ثم' (پھر) 'واؤ' (اور) سے زیادہ بلیغ ہے، یعنی: آیات میں غور و فکر اور ان کے آنے کے بعد تم نے (بچھڑے کو) معبود بنایا۔ یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ انہوں نے یہ کام آیات پر غور کرنے کی مہلت کے بعد کیا؛ اور یہ ان کے جرم کو زیادہ بڑا بنا دیتا ہے (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَٰقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا ءَاتَيْنَٰكُم بِقُوَّةٍ وَاسْمَعُوا قَالُوا سَمِعْنَا وَعَصَيْنَا وَأُشْرِبُوا فِي قُلُوبِهِمُ الْعِجْلَ بِكُفْرِهِمْ قُلْ بِئْسَمَا يَأْمُرُكُمْ بِهِ إِيمَٰنُكُمْ إِن كُنتُم مُّؤْمِنِينَ } (اور جب ہم نے تم سے عہد لیا اور تمہارے اوپر طور پہاڑ کو اٹھایا کہ جو کچھ ہم نے تمہیں دیا ہے اسے

مضبوطی سے پکڑو اور سنو، انہوں نے کہا: ہم نے سنا اور نافرمانی کی، اور ان کے کفر کی وجہ سے ان کے دلوں میں بچھڑے کی محبت رچا دی گئی، کہہ دیجیے: تمہارا ایمان تمہیں کیسا برا حکم دیتا ہے اگر تم مومن ہو)۔ [البقرہ: 93]

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَٰقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا ءَاتَيْنَٰكُمْ بِقُوَّةٍ وَاسْمَعُوا} اس پر کلام پہلے گزر چکا ہے (3)۔

اور "اسمعوا" (سنو) کا معنی "اطاعت کرو" ہے، اور اس کا معنی صرف بات کو کانوں سے سن لینے کا حکم نہیں ہے، بلکہ مراد یہ ہے کہ:

(1) اعراب القرآن للنحاس 248/1، اور اس میں اور (ظ) میں 'السواد' کی جگہ 'الشواذ' ہے، اور مراد مصحف کی تحریر (سواد) ہے۔ سمین حلبی نے 'الدر المصون' 517/1 میں اس بات کا تعاقب کیا ہے اور کہا: لیکن البزی نے 'ہا' کے ساتھ وقف کیا ہے، اور اس جیسی چیز کو تحریر کی مخالفت شمار نہیں کیا جاتا، کیا آپ ان کا بعض یائے زائدہ کو ثابت کرنا نہیں دیکھتے؟ اور ابو حیان نے 'البحر' 307/1 میں کہا: البزی 'ہا' کے ساتھ وقف کرتے ہوئے کہتے ہیں: "فلمہ"، جبکہ دوسرے "فلم" بغیر 'ہا' کے وقف کرتے ہیں، اور یہ وقف صرف امتحان یا سانس ٹوٹنے کی صورت میں جائز ہے۔ ہم کہتے ہیں: البزی، احمد بن محمد ابو الحسن الموذن المکی ہیں، جو سات قرآء میں سے ابن کثیر کے راوی ہیں۔ (2) المحرر الوجیز 180/1۔ (3) 163/2۔

٢٥٥ Surah Al-Baqarah: Verse 93

Act upon what you have heard and adhere to it. From this is their saying: 'Allah hears him who praises Him,' meaning: He accepted and responded. He said[1]: 'I called upon Allah until I feared that Allah would not hear what I say' meaning: accept. And the poet said[2]: 'Hearing, obedience, and submission are better and more protective for the tribe of Tamim.' ﴿They said: We heard and we disobeyed﴾ There is disagreement whether this phrase was actually uttered by them with their tongues, or if they did an action that took the place of speech, making it metaphorical, as it is said: 'The basin filled up and said: Enough for me! Slowly, gently, you have filled my belly.'[3] This is an argument against them regarding their statement: ﴿We believe in what was revealed to us﴾. His Almighty's saying: ﴿And they were made to drink the [love of the] calf into their hearts﴾ meaning: the love of the calf. The meaning is: their hearts were made to drink it; this is a simile and metaphor expressing the deep establishment of the matter of the calf in their hearts[4]. In the Hadith: 'Trials will be presented to the hearts as a reed mat [is woven] stick by stick, and whichever heart is made to drink them, a black spot will be marked upon it...' the hadith, narrated by Muslim(٦). It is said: His heart was made to drink the love of such-and-such. Zuhayr said: 'So I recovered from it after an internal love, and love, if your heart is made to drink it, is a disease.'(٧)

(1) He is Shumayr ibn al-Harith al-Dhabbi. The verse is in Nawadir Abi Zaid p. 124, Tafsir al-Tabari 5/516, al-Zahir by al-Anbari 1/60, al-Faiq 2/197, al-Lisan: (S-M-A), al-Lubab 2/191, and Khizanat al-Adab 5/180. (2) He is Jubayr ibn al-Dahhak. The poetry (Rajaz) is in Tafsir al-Tabari 2/263, its history 5/299, al-Nukat wa al-Uyun 1/160, and al-Lubab 1/291. (3) The verse is in al-Sahhah (Q-T-T), Tahdhib al-Lughah 8/264, al-Nukat wa al-Uyun 1/160, al-Muharrar al-Wajiz 1/180, and al-Lisan: (Q-T-T); its wording in Tahdhib al-Lughah is: 'Mala'an ruwaydan', and in al-Lisan: 'Sala ruwaydan'. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/180. (5) In (M): 'fa-ay'. (6) Number (144) from the hadith of Hudhayfah (may Allah be pleased with him), and it is in al-Musnad number (23280). (7) His Diwan p. 339. In it: 'Tushrabahu fu'adaka', meaning: you make your heart drink it, i.e., enter it and bind it, as reported by Tha'lab in his commentary from Abu Amr and Abu Nasr. See also Tafsir al-Tabari 2/265, and al-Nukat wa al-Uyun 1/160.

२५५ सूरह अल-बकरा: आयत ९३

जो कुछ आपने सुना है उस पर अमल करें और उस पर अडिग रहें। इसी से उनका यह कहना है: 'अल्लाह ने उसे सुना जिसने उसकी प्रशंसा की', अर्थात: उसने स्वीकार किया और उत्तर दिया। उन्होंने कहा[1]: 'मैंने अल्लाह को तब तक पुकारा जब तक मुझे डर नहीं लगा कि अल्लाह वह नहीं सुनेगा जो मैं कहता हूँ' अर्थात: स्वीकार करना। और राजिज़ ने कहा[2]: 'सुनना, आज्ञाकारिता और समर्पण बनी तमीम के लिए बेहतर और अधिक सुरक्षात्मक हैं।' ﴿उन्होंने कहा: हमने सुना और हमने अवज्ञा की﴾ इस बात पर असहमति है कि क्या यह शब्द वास्तव में उनकी जुबान से निकले थे, या उन्होंने ऐसा कोई कार्य किया जो कहने के स्थान पर था, जिससे यह रूपक बन गया, जैसा कि कहा गया है: 'हौज़ भर गया और कहा: मेरे लिए काफी है! धीरे, धीरे, तुमने मेरा पेट भर दिया है।'[3] और यह उनके इस कथन के खिलाफ एक तर्क है: ﴿हम उस पर विश्वास करते हैं जो हमारे पास उतारा गया है﴾। अल्लाह तआला का कथन: ﴿और उनके दिलों में बछड़े [का प्यार] पिला दिया गया था﴾ अर्थात: बछड़े का प्यार। इसका अर्थ है: उनके दिलों को इसे पीने वाला बना दिया गया था, और यह एक उपमा और रूपक है जो उनके दिलों में बछड़े के मामले की गहरी पैठ को व्यक्त करता है[4]। हदीस में है: 'फितने (आज़माइशें) दिलों पर चटाई की तरह एक-एक करके पेश किए जाएंगे, तो जिस दिल में उन्हें पिला दिया जाएगा, उसमें एक काला धब्बा लगा दिया जाएगा...' हदीस, जिसे मुस्लिम ने निकाला है[6]। कहा जाता है: उसके दिल को फलां की मोहब्बत पिला दी गई। जुहैर ने कहा: 'तो मैं उससे एक आंतरिक प्रेम के बाद उबर गया, और प्रेम, यदि आपका दिल इसे पी लेता है, तो यह एक बीमारी है।'[7]

(1) वह शुमैर इब्न अल-हारिस अल-धब्बी हैं। शेर नवादिर अबी ज़ैद पृ. 124, तफ़सीर अल-तबरी 5/516, अल-ज़ाहिर अल-अंबारी 1/60, अल-फ़ाइक 2/197, अल-लिसान: (समअ), अल-लुबाब 2/191, और ख़ज़ानत अल-अदब 5/180 में है। (2) वह जुबैर इब्न अल-दह्हाक हैं। यह रज़ज़ तफ़सीर अल-तबरी 2/263, इतिहास 5/299, अल-नुकत वल-उयून 1/160, और अल-लुबाब 1/291 में है। (3) यह शेर अल-सिहह (कत्त), तहज़ीब अल-लुग़ह 8/264, अल-नुकत वल-उयून 1/160, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/180 और अल-लिसान (कत्त) में है; तहज़ीब अल-लुग़ह में इसके शब्द हैं: 'मलअन रुवैदन', और लिसान में: 'सला रुवैदन'। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/180. (5) (एम) में: 'फ़ा-अई'। (6) संख्या (144) हुज़ैफ़ा रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से, और यह मुस्नद में संख्या (23280) पर है। (7) उनका दीवान पृ. 339। इसमें है: 'तुशरबहु फ़ुआदका', अर्थात: आप इसे अपने

दिल को पिलाते हैं, यानी इसे प्रवेश कराते हैं और बाध्य करते हैं, जैसा कि सालब ने अबू अम्र और अबू नस्र से अपनी व्याख्या में उद्धृत किया है। देखें तफ़सीर अल-तबरी 2/265, और अल-नुकत वल-उयून 1/160।

۲۵۵ سورة البقرہ: آیت ۹۳

تم نے جو کچھ سنا اس پر عمل کرو اور اسے لازم پکڑو، اور اسی سے ان کا قول ہے: 'سمع الله لمن حمده' (اللہ نے اس کی سن لی جس نے اس کی تعریف کی)، یعنی: قبول کیا اور جواب دیا۔ اس نے کہا[1]: 'میں نے اللہ کو پکارا یہاں تک کہ مجھے ڈر ہوا کہ اللہ وہ نہیں سنے گا جو میں کہتا ہوں' یعنی: قبول کرنا۔ اور راجز نے کہا[2]: 'سننا، اطاعت اور تسلیم بنی تمیم کے لیے بہتر اور زیادہ باعثِ عافیت ہیں۔' ﴿انہوں نے کہا: ہم نے سنا اور ہم نے نافرمانی کی﴾ اس میں اختلاف ہے کہ آیا یہ لفظ حقیقت میں ان کی زبان سے صادر ہوا تھا، یا انہوں نے ایسا عمل کیا جو قول کے قائم مقام تھا، تو یہ مجازی ہوگا، جیسا کہ کہا گیا ہے: 'حوض بھر گیا اور اس نے کہا: بس میرے لیے کافی ہے! آہستہ، ذرا ٹھہرو، تم نے میرا پیٹ بھر دیا ہے۔'[3] اور یہ ان کے اس قول پر حجت ہے: ﴿ہم اس پر ایمان لائے جو ہم پر اتارا گیا ہے﴾۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿اور ان کے دلوں میں بچھڑے [کی محبت] پلا دی گئی﴾ یعنی: بچھڑے کی محبت۔ اور معنی یہ ہے کہ ان کے دلوں کو اسے پینے والا بنا دیا گیا، اور یہ ایک تشبیہ اور مجاز ہے جو ان کے دلوں میں بچھڑے کے معاملے کے پختہ ہونے کی تعبیر ہے[4]۔ حدیث میں ہے: 'فتنے دلوں پر چٹائی کے تنکوں کی طرح ایک ایک کر کے پیش کیے جائیں گے، تو جس دل میں وہ پلا دیے جائیں گے اس میں ایک سیاہ نکتہ لگا دیا جائے گا...' حدیث، اسے مسلم نے روایت کیا ہے[٦]۔ کہا جاتا ہے: اس کے دل میں فلاں کی محبت پلا دی گئی۔ زہیر نے کہا: 'تو میں ایک اندرونی محبت کے بعد اس سے سنبھل گیا، اور محبت، اگر تمہارے دل کو پلا دی جائے تو ایک بیماری ہے۔'[7]

(۱) وہ شُمیر بن الحارث الضبي ہیں، اور یہ شعر نوادر ابی زید ص ۱۲۴، تفسیر طبری ۵۱۶/۵، الزاہر للانباری ۶۰/۱، الفائق ۱۹۷/۲، اللسان: (سمع)، اللباب ۱۹۱/۲، اور خزانہ الادب ۱۸۰/۵ میں

ہے۔ (۲) وہ جبیر بن الضحاک ہیں، اور یہ رجز تفسیر طبری ۲۶۳/۲، تاریخ طبری ۲۹۹/۵، النکت والعیون ۱۶۰/۱، اور اللباب ۲۹۱/۱ میں ہے۔ (۳) یہ بیت الصحاح (قطط)، تہذیب اللغہ ۲۶۴/۸، النکت والعیون ۱۶۰/۱، المحرر الوجیز ۱۸۰/۱، اور اللسان: (قطط) میں ہے؛ اور اس کے الفاظ تہذیب اللغہ میں: 'مَلاً رُویداً' ہیں، اور اللسان میں: 'سلا رویداً'۔ (۴) المحرر الوجیز ۱۸۰/۱۔ (۵) (م) میں: 'فأی'۔ (۶) نمبر (۱۴۴) حضرت حذیفہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے، اور یہ مسند میں نمبر (۲۳۲۸۰) پر ہے۔ (۷) ان کا دیوان ص ۳۳۹۔ اس میں ہے: 'تُشربہ فؤادک'، یعنی: تم اسے اپنے دل کو پلاتے ہو، یعنی اسے داخل کرتے اور لازم کرتے ہو، جیسا کہ ثعلب نے اپنی شرح میں ابو عمرو اور ابو نصر سے نقل کیا ہے۔ نیز دیکھیے تفسیر طبری ۲/ ۲۶۵، اور النکت والعیون ۱/ ۱۶۰۔

Page 256 Surah Al-Baqarah: Verse 93

The expression "love for the calf" was described as "drinking" rather than "eating" because drinking water permeates the organs until it reaches their innermost parts, while food stays adjacent to them without permeating them.

One of the Tabi'un (successors) added to this meaning, speaking of his wife 'Athma, whom he had reprimanded for something and divorced, while still loving her (1):

The love of 'Athma has permeated my heart, so its visible part along with the hidden is manageable. It has permeated where no drink has reached, nor has grief, nor has joy reached. When I remember my covenant with her, I almost fly—if only a human could fly.

As-Suddi and Ibn Jurayj said: Moses (peace be upon him) filed down the calf and scattered it in the water, saying to the Children of Israel: "Drink from that water." They all drank, and whoever loved the calf, gold filings appeared on their lips (2). It was also narrated that no one drank it without becoming a coward (3), as related by Al-Qushayri.

I say: As for its scattering in the sea, it is indicated by His Almighty's saying: "...then we will surely scatter it in the sea with a thorough scattering" [Taha: 97]. As for the drinking of the water and the appearance of filings on the lips, it is refuted by His Almighty's saying: "And they were made to drink [the love of] the calf into their hearts." And Allah Almighty knows best.

His Almighty's saying: "Say, 'Evil is that which your faith enjoins upon you'" means: your faith which you claimed in your saying: "We believe in what was revealed to us." It was said: this speech is an address to the Prophet ﷺ, commanding him to rebuke them, i.e., Say to them, O Muhammad: Evil are these things you have done and which your faith commanded you to do (5). The discussion on "bi'sama" (6) has already passed, and praise be to Allah alone.

---

(1) The speaker of these verses is Ubaydullah bin Abdullah bin Utbah, and they are in Al-Aghani 151/9, Majalis Tha'lab 236/1, Al-Muhtasib 144/2, and Sharh Diwan al-Hamasa by al-Marzuqi 1354/3. (2) Mentioned by Al-Mawardi in Al-Nukat wa al-Uyun 160/1 and narrated by Al-Tabari 264/2 from the saying of As-Suddi. (3) In (Kh), (Z), and (M): "Jun" (became insane), and in (D): "Jadaba" (suffered drought), and the established text is from (Zha). Al-Tabari narrated a similar report in his Tafsir

264/2-265 from the saying of Ibn Jurayj; see Al-Muharrar al-Wajiz 180/1. (4) In (D), (Z), and (Zha): "Al-ladhina" (those who). (5) Al-Muharrar al-Wajiz 180/1. (6) 249/2.

पृष्ठ २५६ सूरह अल-बकरा: आयत ९३

बछड़े के प्रति प्रेम को "खाने" के बजाय "पीने" के रूप में व्यक्त किया गया है; क्योंकि पानी पीना अंगों में इस तरह समा जाता है कि उनके अंतर्भाग तक पहुँच जाता है, जबकि भोजन उनके निकट रहता है और उनमें पूरी तरह समाहित नहीं होता।

अनुयायियों (ताबिईन) में से एक ने इस अर्थ को और विस्तार दिया, जब उन्होंने अपनी पत्नी 'अथ्मा' के बारे में कहा, जिसे उन्होंने किसी बात पर फटकारा था और तलाक दे दिया था, जबकि वे उससे प्रेम करते थे (१):

'अथ्मा' का प्रेम मेरे हृदय में समा गया है, सो इसका बाहरी रूप छिपे हुए प्रेम के साथ सहनीय है। यह वहां तक समा गया है जहां न कोई पेय पहुंचा है, न कोई दुख और न ही कोई सुख पहुंच पाया है। जब मैं उसके साथ अपने वादे को याद करता हूँ, तो मैं लगभग उड़ने लगता हूँ—काश कोई इंसान उड़ सकता।

अस-सुद्दी और इब्न जुरायज ने कहा: मूसा (उन पर शांति हो) ने बछड़े को रेता और उसे पानी में बिखेर दिया, और बनी इस्राइल से कहा: "उस पानी को पीओ।" उन सभी ने पिया, और जो कोई बछड़े से प्रेम करता था, उसके होठों पर सोने का बुरादा निकल आया (२)। यह भी वर्णित है कि जिसने भी इसे पिया वह कायर हो गया (३), जैसा कि अल-कुशैरी ने उल्लेख किया है।

मैंने कहा: जहाँ तक इसे समुद्र में बिखेरने की बात है, तो यह अल्लाह के इस कथन से प्रमाणित है: "...फिर हम इसे समुद्र में पूरी तरह बिखेर देंगे" [ता-हा: ९७]। और जहाँ तक पानी पीने और होठों पर बुरादे के दिखने की बात है, तो अल्लाह का यह कथन इसे खारिज करता है: "और उनके दिलों में बछड़े (के प्रेम) को पिला दिया गया।" और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

अल्लाह का कथन: "कह दो, 'बुरा है वह जिसका तुम्हारा ईमान तुम्हें आदेश देता है'" का अर्थ है: तुम्हारा वह ईमान जिसका तुमने अपने इस कथन में दावा किया था: "हम उस पर विश्वास करते हैं जो हम पर उतारा गया है।" यह भी कहा गया है: यह संबोधन पैगंबर ﷺ के लिए है, उन्हें उन्हें फटकारने का आदेश दिया गया है, अर्थात: हे मुहम्मद, उनसे कह दो: बुरी हैं वे चीजें जो तुमने कीं और तुम्हारे ईमान ने तुम्हें उनका आदेश दिया (५)। "बिसमा" (६) पर चर्चा पहले ही हो चुकी है, और सारी प्रशंसा अकेले अल्लाह के लिए है।

(१) इन पंक्तियों के वक्ता उबैदुल्लाह बिन अब्दुल्लाह बिन उत्बा हैं, और ये अल-अघानी १५१/९, मजालिस थलब २३६/१, अल-मुहतासिब १४४/२, और अल-मरज़ूकी द्वारा शराह दीवान अल-हमासा १३५४/३ में हैं। (२) अल-मावर्दी ने अल-नुकत व अल-उयून १६०/१ में इनका उल्लेख किया है और अल-तबारी ने २६४/२ में अस-सुद्दी के कथन से इसे उद्धृत किया है। (३) (ख), (ज़), और (म) में: "जुन" (पागल हो गया), और (द) में: "जदबा" (अकाल), और स्थापित पाठ (ज़) से है। अल-तबारी ने अपनी तफ़सीर २६४/२-२६५ में इब्न जुरायज के कथन से इसी तरह की रिपोर्ट दी है; अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १८०/१ देखें। (४) (द), (ज़), और (ज़) में: "अल-लज़ीना" (जो लोग)। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १८०/१। (६) २/२४९।

صفحہ ۲۵٦ سورۃ البقرہ: آیت ۹۳

بچھڑے کی محبت کو "کھانے" کے بجائے "پینے" سے تعبیر کیا گیا ہے؛ کیونکہ پانی پینا اعضاء میں اس طرح سرایت کر جاتا ہے کہ ان کے باطن تک پہنچ جاتا ہے، جبکہ کھانا ان کے قریب ہوتا ہے لیکن ان میں سرایت نہیں کرتا۔

تابعین میں سے ایک نے اس معنی میں اضافہ کیا، چنانچہ اس نے اپنی بیوی عثمہ کے بارے میں کہا جسے اس نے کسی بات پر ناراض ہو کر طلاق دے دی تھی، حالانکہ وہ اس سے محبت کرتا تھا(۱):

عثمہ کی محبت میرے دل میں سرایت کر گئی ہے، پس اس کا ظاہر اس کے پوشیدہ کے ساتھ آسان ہے۔ یہ وہاں سرایت کر گئی ہے جہاں نہ کوئی مشروب پہنچا، نہ غم اور نہ ہی خوشی پہنچی۔ جب میں اس سے اپنے عہد کو یاد کرتا ہوں تو قریب ہے کہ اڑ جاؤں، کاش انسان اڑ سکتا۔

سدی اور ابن جریج نے کہا: موسیٰ علیہ السلام نے بچھڑے کو ریتا اور اسے پانی میں بکھیر دیا، اور بنی اسرائیل سے کہا: "اس پانی میں سے پیو"؛ پس ان سب نے پیا، چنانچہ جو کوئی بچھڑے سے محبت کرتا تھا، اس کے ہونٹوں پر سونے کا برادہ نکل آیا(۲)۔ اور روایت ہے کہ جس نے بھی اسے پیا وہ بزدل ہو گیا(۳)، اسے قشیری نے بیان کیا ہے۔

میں کہتا ہوں: جہاں تک اسے سمندر میں بکھیرنے کا تعلق ہے، تو اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد اس پر دلالت کرتا ہے: (ثُمَّ لَنَنْسِفَنَّهُ فِي الْيَمِّ نَسْفاً) [طہ: ۹۷]، اور رہا پانی کا پینا اور ہونٹوں پر برادے کا ظاہر ہونا، تو اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد اسے رد کرتا ہے: (وَأُشْرِبُوا فِي قُلُوبِهِمُ الْعِجْلَ)۔ اور اللہ تعالیٰ ہی بہتر جانتا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: (قُلْ بِئْسَمَا يَأْمُرُكُمْ بِهِ إِيمَانُكُمْ) یعنی: تمہارا وہ ایمان جس کا تم نے اپنے اس قول میں دعویٰ کیا تھا: (نُؤْمِنُ بِمَا أُنْزِلَ عَلَيْنَا) اور کہا گیا ہے کہ: یہ کلام نبی ﷺ سے خطاب ہے، انہیں حکم دیا گیا کہ انہیں ملامت کریں، یعنی: اے محمد! ان سے کہہ دو: بہت بری ہیں وہ چیزیں جو تم نے کیں اور تمہارے ایمان نے تمہیں ان کا حکم دیا(٥)۔ اور "بئسما" (٦) کے بارے میں کلام پہلے گزر چکا ہے، اور تمام تعریفیں اکیلے اللہ ہی کے لیے ہیں۔

---

(١) ان اشعار کے قائل عبید اللہ بن عبد اللہ بن عتبہ ہیں، اور یہ الاغانی ١٥١/٩، مجالس ثعلب ٢٣٦/١، المحتسب ١٤٤/٢، اور شرح دیوان الحماسة للمرزوقي ١٣٥٤/٣ میں ہیں۔ (٢) اسے ان سے ماوردی نے النکت والعیون ١٦٠/١ میں ذکر کیا ہے اور طبری نے ٢٦٤/٢ میں سدی کے قول سے نقل کیا ہے۔ (٣) (خ)، (ز) اور (م) میں: "جُن" (دیوانہ ہو گیا)، اور (د) میں: "جدب" (قحط)، اور ثابت شدہ متن (ظ) سے ہے۔ طبری نے اپنی تفسیر ٢٦٤/٢-٢٦٥ میں ابن جریج کے قول سے اسی طرح کی روایت بیان کی ہے؛ دیکھیے المحرر الوجیز ١٨٠/١۔ (٤) (د)، (ز) اور (ظ) میں: "الذین"۔ (٥) المحرر الوجیز ١٨٠/١۔ (٦) ٢٤٩/٢۔

Surah Al-Baqarah: Verses 94, 95 257

Allah Almighty says: {Say, "If the home of the Hereafter with Allah is for you alone, to the exclusion of other people, then wish for death, if you should be truthful." (94) But never will they wish for it, ever, because of what their hands have put forth. And Allah is Knowing of the wrongdoers. (95)}

When the Jews made false claims that Allah Almighty related about them in His Book; such as His saying: {The Fire will never touch us, except for a few numbered days} [Al-Baqarah: 80], and His saying: {And they say, "None will enter Paradise except one who is a Jew or a Christian"} [Al-Baqarah: 111], and they said: {We are the children of Allah and His beloved} [Al-Ma'idah: 18], Allah Almighty belied them and established the proof against them, saying: Say, O Muhammad(1): {If the home of the Hereafter} meaning Paradise {is for you... then wish for death, if you should be truthful} in your sayings; because whoever believes that he is from the people of Paradise, death would be more beloved to him than life in this world, because of the bliss of Paradise he would reach, and the harm of the world that would be removed from him(2). But they refrained from wishing for that out of fear of Allah because of the ugliness of their deeds, and their knowledge of their disbelief in their saying: {We are the children of Allah and His beloved} and their greed for this world(3). That is why Allah Almighty said, informing about them with His truthful word: {But never will they wish for it, ever, because of what their hands have put forth} as a confirmation of their lies. Also; if they had wished for death, they would have died, as it was narrated from the Prophet ﷺ that he said: "If the Jews had wished for death, they would have died and would have seen their seats(4) in the Fire"(5).

It was also said: Allah turned them away from showing the wish and restricted them to refraining; to make that a sign for His Prophet (6) ﷺ.

So these are three aspects regarding their abandonment of wishing. And Ikrimah narrated from Ibn Abbas regarding His saying: {then wish for death} that the meaning is: pray for death upon the more lying of the two parties, us or you (7); but they did not pray because of their knowledge of their own lying.

---

(1) In (M): Say to them, O Muhammad. (2) Al-Nukat wal-Uyun 1/161. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/181. (4) In (D) and (M): their place. (5) It is part of a hadith from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) narrated by Ahmad (2225). (6) Al-Nukat wal-Uyun 1/161-162. (7) Narrated by Al-Tabari 2/269.

सूरा अल-बकरा: आयत 94, 95 257

अल्लाह तआला का फ़रमान है: {कह दीजिए, "यदि अल्लाह के पास आख़िरत का घर केवल तुम्हारे ही लिए है, अन्य लोगों को छोड़कर, तो फिर मौत की कामना करो, यदि तुम सच्चे हो।" (94) लेकिन वे अपने हाथों द्वारा किए गए कर्मों के कारण कभी भी इसकी कामना नहीं करेंगे। और अल्लाह ज़ालिमों को भली-भांति जानता है। (95)}

जब यहूदियों ने झूठे दावे किए जिन्हें अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने अपनी किताब में उनकी ओर से वर्णित किया है; जैसे कि उसका कहना: {हमें आग कभी नहीं छुएगी, सिवाय गिनती के कुछ दिनों के} [अल-बकरा: 80], और उसका कहना: {और उन्होंने कहा, "जन्नत में केवल वही प्रवेश करेगा जो यहूदी या ईसाई होगा"} [अल-बकरा: 111], और उन्होंने कहा: {हम अल्लाह के बेटे और उसके प्रिय हैं} [अल-माइदा: 18], तो अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने उन्हें झुठलाया और उन पर हुज्जत (प्रमाण) क़ायम की, और कहा: कह दीजिए ऐ मुहम्मद(1): {यदि आख़िरत का घर} यानी जन्नत {तुम्हारे लिए है... तो फिर मौत की कामना करो, यदि तुम अपने दावों में सच्चे हो}; क्योंकि जो व्यक्ति यह विश्वास रखता है कि वह जन्नत वालों में से है, उसके लिए मौत दुनिया की ज़िंदगी से ज़्यादा प्यारी होगी, उस जन्नत की नेमतों के कारण जो उसे प्राप्त होंगी, और दुनिया की तकलीफ़ों के दूर होने के कारण(2)। लेकिन वे अपने बुरे कार्यों, और अपने इस कथन {हम अल्लाह के बेटे और उसके प्रिय हैं} में अपने कुफ़्र (अविश्वास) के ज्ञान और दुनिया के लालच के कारण अल्लाह के डर से मौत की कामना करने से पीछे हट गए(3)। इसीलिए अल्लाह तआला ने अपने सच्चे शब्द से उनके बारे में सूचित करते हुए कहा: {लेकिन वे अपने हाथों द्वारा किए गए कर्मों के कारण कभी भी इसकी कामना नहीं करेंगे} उनके झूठ की पुष्टि के रूप में। और यह भी कि; यदि वे मौत की कामना करते, तो वे मर जाते, जैसा कि नबी ﷺ से वर्णित है कि उन्होंने फ़रमाया: "यदि यहूदी मौत की कामना करते, तो वे मर जाते और आग में अपने ठिकाने(4) देख लेते"(5)।

और कहा गया है: अल्लाह ने उन्हें कामना प्रकट करने से फेर दिया और उन्हें रुकने पर मजबूर कर दिया; ताकि इसे अपने नबी ﷺ के लिए एक निशानी बना दे(6)।

तो ये कामना छोड़ने के तीन पहलू हैं। और इकरीमा ने इब्न अब्बास से अल्लाह के इस कथन {तो मौत की कामना करो} के बारे में उल्लेख किया है कि इसका अर्थ है: हम में से और तुम में से जो पक्ष

अधिक झूठा है, उसके लिए मौत की दुआ करो(7); लेकिन उन्होंने अपने झूठ के ज्ञान के कारण दुआ नहीं की।

---

(1) (म) में: उनसे कहिए ऐ मुहम्मद। (2) अन-नुकत वल-उयून 1/161। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/181। (4) (द) और (म) में: उनका मक़ाम (स्थान)। (5) यह इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा की एक हदीस का हिस्सा है जिसे अहमद ने रिवायत किया है (2225)। (6) अन-नुकत वल-उयून 1/161-162। (7) इसे अल-तबरी ने रिवायत किया है 2/269।

سورة البقرہ: آیات 94، 95 257

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: {کہہ دیجیے، "اگر اللہ کے نزدیک آخرت کا گھر دوسرے لوگوں کے بجائے صرف تمہارے ہی لیے ہے، تو پھر موت کی تمنا کرو، اگر تم سچے ہو۔" (94) اور وہ کبھی بھی اس کی تمنا نہیں کریں گے ان کاموں کی وجہ سے جو ان کے ہاتھوں نے آگے بھیجے ہیں۔ اور اللہ ظالموں کو خوب جاننے والا ہے۔ (95)}

جب یہودیوں نے باطل دعوے کیے جنہیں اللہ عزوجل نے اپنی کتاب میں ان کی طرف سے نقل کیا ہے؛ جیسے اللہ کا یہ قول: {ہمیں آگ ہرگز نہیں چھوئے گی سوائے چند گنتی کے دنوں کے} [البقرہ: 80]، اور اس کا قول: {اور انہوں نے کہا کہ جنت میں صرف وہی داخل ہوگا جو یہودی یا نصرانی ہو} [البقرہ: 111]، اور انہوں نے کہا: {ہم اللہ کے بیٹے اور اس کے پیارے ہیں} [المائدہ: 18]، تو اللہ عزوجل نے انہیں جھٹلایا اور ان پر حجت قائم کی، اور فرمایا: اے محمد(1) کہہ دیجیے: {اگر آخرت کا گھر} یعنی جنت {تمہارے لیے ہے... تو پھر موت کی تمنا کرو، اگر تم اپنے اقوال میں سچے ہو}؛ کیونکہ جو شخص یہ عقیدہ رکھتا ہے کہ وہ اہل جنت میں سے ہے، اس کے لیے موت دنیا کی زندگی سے زیادہ محبوب ہوگی، ان جنت کی نعمتوں کی وجہ سے جو اسے ملیں گی، اور دنیا کی تکلیفوں کے دور ہو جانے کی وجہ سے(2)۔ لیکن وہ اپنے برے اعمال کی وجہ سے اللہ کے خوف سے، اور اپنے اس قول {ہم اللہ کے بیٹے اور اس کے پیارے ہیں} میں اپنے کفر کے علم اور دنیا کے لالچ کی وجہ سے موت کی تمنا کرنے سے باز رہے(3)۔ اسی لیے اللہ تعالیٰ نے اپنے سچے قول کے ساتھ ان کے بارے میں بتاتے ہوئے فرمایا: {اور وہ کبھی بھی اس کی تمنا نہیں کریں گے ان کاموں کی وجہ سے جو ان کے ہاتھوں نے آگے بھیجے ہیں} یہ ان کے جھوٹ کی تصدیق کے طور پر ہے۔ اور یہ بھی کہ؛ اگر وہ موت کی تمنا کرتے تو مر جاتے، جیسا کہ نبی

ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے فرمایا: "اگر یہودی موت کی تمنا کرتے تو مر جاتے اور آگ میں اپنے ٹھکانے(4) دیکھ لیتے"(5)۔

اور کہا گیا ہے کہ: اللہ نے انہیں تمنا کے اظہار سے پھیر دیا اور انہیں خاموش رہنے پر مجبور کر دیا؛ تاکہ اسے اپنے نبی ﷺ کے لیے ایک نشانی بنا دے(6)۔

تو یہ تمنا چھوڑنے کی تین وجوہات ہیں۔ اور عکرمہ نے ابن عباس سے اللہ کے اس قول {تو موت کی تمنا کرو} کے بارے میں نقل کیا ہے کہ اس سے مراد یہ ہے کہ: ہم میں سے اور تم میں سے جو فریق زیادہ جھوٹا ہے اس کے لیے موت کی دعا کرو(7)؛ لیکن انہوں نے اپنے جھوٹ کے علم کی وجہ سے دعا نہیں کی۔

---

(1) (م) میں: ان سے کہیے اے محمد۔ (2) النکت والعیون 161/1۔ (3) المحرر الوجیز 181/1۔ (4) (د) اور (م) میں: ان کا مقام۔ (5) یہ ابن عباس رضی اللہ عنہما کی ایک حدیث کا حصہ ہے جسے احمد نے روایت کیا ہے (2225)۔ (6) النکت والعیون 161/1-162۔ (7) اسے الطبری نے روایت کیا ہے 269/2।

Surah Al-Baqarah: Verse 96 258

If it is said: Wishing is sometimes with the tongue and other times with the heart; so how is it known that they did not wish for it in their hearts? It is said to him: The Quran spoke of that in His saying (1): "But they will never wish for it", and if they had wished for it in their hearts, they would have expressed it with their tongues in rebuttal to the Prophet ﷺ, and to invalidate his argument, and this is clear. His saying (the Exalted): "purely" is in the accusative case (nasb) as the predicate of "kana", or if you wish it can be a circumstantial adverb (hal), and "with Allah" would be in the position of the predicate. "Forever" is an adverb of time that applies to both little and much; like 'moment' and 'time', and here it is from the beginning of life until death. And "ma" in His saying "bima" (with what) means 'that which', and the referent is omitted; the estimation is: 'what they have sent forth', and it could be a gerundive "ma" (masdariyah), which does not need a referent. And "their hands" is in the position of nominative (raf'), the damma was omitted from the 'ya' because of its heaviness with the kasra; if it were in the position of accusative (nasb), it would have been vocalized because the accusative is light, and it is permissible to make it silent (sukun) in poetry. "And Allah is Knowing of the wrongdoers" is a subject and predicate (2). His saying (the Exalted): "And you will surely find them the most greedy of people for life - and [even more greedy] than those who associate others with Allah. One of them wishes that he could be granted life a thousand years, but it would not keep him away from the punishment [even] if he should be granted such life. And Allah is Seeing of what they do (96)". His saying (the Exalted): "And you will surely find them the most greedy of people for life" refers to the Jews. "And than those who associate others with Allah": it was said: the meaning is: and greedier - so it was omitted - than those who associate others with Allah; because of their knowledge of their sins, and that there is no good for them with Allah, while the polytheists of the Arabs do not know except this life, and have no knowledge of the Hereafter; do you not see the saying of their poet (3): Enjoy the world, for you are mortal / From intoxicants and beautiful women. The pronoun in "one of them" refers in this saying to the Jews. And it was said: that the speech ended at "life" then the report about a group of polytheists was resumed; it was said: they are the Magians (4); and that is clear in their prayers for the one who sneezes in their languages, what (5) means: "live a thousand years".

(1) In (d) and (m): with His saying. (2) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/249. (3) He is Imru' al-Qais, and the verse is in his Diwan p. 87. (4) Reported by al-Tabari in his Tafsir 2/277 from the saying of Abu al-Aliyah and al-Rabi'. (5) In (m): with what.

सूरह अल-बकरा: आयत 96 258

यदि यह कहा जाए कि: कामना कभी ज़बान से होती है और कभी दिल से; तो यह कैसे पता चला कि उन्होंने अपने दिलों में इसकी कामना नहीं की? उसे कहा गया: कुरान ने अपने इस कथन (1) में इसे व्यक्त किया है: "और वे कभी इसकी कामना नहीं करेंगे", और यदि उन्होंने अपने दिलों में इसकी कामना की होती, तो वे पैगंबर ﷺ का खंडन करने और उनके तर्क को अमान्य करने के लिए अपनी ज़बानों से इसे प्रकट करते, और यह स्पष्ट है। अल्लाह का कथन: "विशुद्ध रूप से" (खालिसतन) 'काना' की खबर के रूप में नसब (कर्म कारक) में है, और यदि आप चाहें तो यह 'हाल' (अवस्था) हो सकता है, और "अल्लाह के पास" खबर के स्थान पर होगा। "हमेशा" (अबदन) समय का एक क्रिया विशेषण है जो थोड़े और बहुत दोनों के लिए उपयोग होता है; जैसे 'क्षण' और 'समय', और यहाँ यह जीवन की शुरुआत से मृत्यु तक है। और उनके कथन "बिमा" (जिसके साथ) में "मा" का अर्थ 'वह जो' है, और संदर्भ लोप है; अनुमान है: 'जो उन्होंने आगे भेजा है', और यह 'मस्दरिया' भी हो सकता है, जिसे संदर्भ की आवश्यकता नहीं होती। और "उनके हाथ" रफा (कर्ता कारक) के स्थान पर है, कसरा के साथ भारीपन के कारण 'या' से दम्मा हटा दिया गया था; यदि यह नसब के स्थान पर होता, तो इसे स्वर दिया जाता क्योंकि नसब हल्का होता है, और कविता में इसे सुकूँ देना जायज़ है। "और अल्लाह ज़ालिमों को अच्छी तरह जानने वाला है" मुब्तदा (उद्देश्य) और खबर (विधेय) है (2)। अल्लाह का कथन: "और तुम उन्हें जीवन के प्रति लोगों में सबसे अधिक लोभी पाओगे - और उन लोगों से भी अधिक जिन्होंने अल्लाह के साथ शरीक ठहराया है। उनमें से प्रत्येक चाहता है कि उसे एक हज़ार वर्ष की आयु दी जाए, लेकिन वह आयु उसे अज़ाब (दंड) से दूर नहीं रख पाएगी यदि उसे इतनी आयु दी भी जाए। और जो कुछ वे करते हैं अल्लाह उसे देख रहा है (96)।" अल्लाह का कथन: "और तुम उन्हें जीवन के प्रति लोगों में सबसे अधिक लोभी पाओगे" से तात्पर्य यहूदियों से है। "और उन लोगों से भी अधिक जिन्होंने शरीक ठहराया": कहा गया है: अर्थ है: और अधिक लोभी - तो इसे हटा दिया गया - उन लोगों से जिन्होंने शरीक ठहराया; उनके अपने पापों के ज्ञान के कारण, और यह कि अल्लाह के पास उनके लिए कोई भलाई नहीं है, जबकि अरब के मुशरिक केवल इसी जीवन को जानते हैं, और उन्हें आख़िरत (परलोक) का कोई ज्ञान नहीं है; क्या आप उनके कवि (3) का कथन नहीं देखते: दुनिया का आनंद लो, क्योंकि तुम नश्वर हो / नशों और सुंदर स्त्रियों से। "उनमें से एक" में सर्वनाम इस कथन में यहूदियों की ओर जाता है। और यह कहा गया: कि बात "जीवन" (हयात) पर समाप्त हो गई, फिर मुशरिकों के एक समूह के बारे में जानकारी फिर से शुरू की गई; कहा गया: वे मजूसी

(पारसी) हैं (4); और यह उनकी अपनी भाषाओं में छींकने वाले के लिए उनकी दुआओं में स्पष्ट है, जिसका अर्थ (5) है: "एक हज़ार साल जियो"।

---

(1) (द) और (म) में: उनके कथन के साथ। (2) नह़स द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/249। (3) वह इमरुल क़ैस है, और पद उसके दीवान पृ. 87 में है। (4) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/277 में अबू अल-आलिया और अल-रबी के कथन से उद्धृत किया है। (5) (म) में: इसके साथ कि।

سورة البقرہ: آیت 96 258

پس اگر کہا جائے کہ: تمنا کبھی زبان سے ہوتی ہے اور کبھی دل سے؛ تو یہ کہاں سے معلوم ہوا کہ انہوں نے اپنے دلوں سے اس کی تمنا نہیں کی؟ اس سے کہا گیا: قرآن نے اپنے اس قول (1) میں اس کی صراحت کی ہے: ﴿وَلَن يَتَمَنَّوْهُ﴾ "اور وہ کبھی اس کی تمنا نہیں کریں گے"، اور اگر وہ اپنے دلوں سے اس کی تمنا کرتے تو نبی ﷺ کی تردید اور آپ کی حجت کو باطل کرنے کے لیے اپنی زبانوں سے اس کا اظہار کرتے، اور یہ بات واضح ہے۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿خَالِصَةً﴾ 'کان' کی خبر ہونے کی وجہ سے منصوب ہے، اور اگر آپ چاہیں تو یہ 'حال' ہو سکتا ہے، اور "عند اللہ" خبر کے مقام پر ہوگا۔ ﴿أَبَدًا﴾ ظرف زمان ہے جو تھوڑے اور زیادہ دونوں پر صادق آتا ہے؛ جیسے 'حین' اور 'وقت' کے الفاظ، اور یہاں اس سے مراد زندگی کے آغاز سے موت تک کا وقت ہے۔ اور اللہ کے قول "بما" میں "ما" بمعنی 'الذی' (جو کہ) ہے، اور اس کا عائد محذوف ہے؛ تقدیر عبارت ہے: 'جو انہوں نے آگے بھیجا'، اور یہ 'ما مصدریہ' بھی ہو سکتا ہے جسے عائد کی ضرورت نہیں ہوتی۔ اور "أیدیھم" حالت رفع میں ہے، کسرہ کی وجہ سے ثقالت کے پیش نظر 'یا' سے ضمہ حذف کر دیا گیا ہے؛ اگر یہ حالت نصب میں ہوتا تو اسے حرکت دی جاتی کیونکہ نصب ہلکا ہوتا ہے، اور شعر میں اسے ساکن کرنا جائز ہے۔ ﴿وَاللَّهُ عَلِيمٌ بِالظَّالِمِينَ﴾ مبتدا اور خبر ہے (2)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَتَجِدَنَّهُمْ أَحْرَصَ النَّاسِ عَلَى حَيَاةٍ وَمِنَ الَّذِينَ أَشْرَكُوا يَوَدُّ أَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ أَلْفَ سَنَةٍ وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهِ مِنَ الْعَذَابِ أَن يُعَمَّرَ وَاللَّهُ بَصِيرٌ بِمَا يَعْمَلُونَ (٩٦)﴾۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَتَجِدَنَّهُمْ أَحْرَصَ النَّاسِ عَلَى حَيَاةٍ﴾ یعنی یہودی۔ ﴿وَمِنَ الَّذِينَ أَشْرَكُوا﴾ کہا گیا: معنی یہ ہے: اور زیادہ حریص - یہاں اسے حذف کر دیا گیا - ان لوگوں سے جنہوں نے شرک کیا؛ اس لیے کہ وہ اپنے گناہوں سے واقف ہیں، اور یہ کہ اللہ کے ہاں ان کے لیے کوئی بھلائی نہیں ہے، جبکہ مشرکین عرب اس دنیاوی

زندگی کے علاوہ کسی چیز کو نہیں جانتے، اور انہیں آخرت کا کوئی علم نہیں؛ کیا آپ ان کے شاعر (3) کا قول نہیں دیکھتے: دنیا سے فائدہ اٹھاؤ کیونکہ تم فانی ہو / نشوں اور حسین عورتوں سے۔ اور "أَحَدُهُمْ" میں ضمیر اس قول کے مطابق یہودیوں کی طرف لوٹتی ہے۔ اور کہا گیا: کلام "حیاۃ" پر مکمل ہو گیا پھر مشرکین کے ایک گروہ کے بارے میں خبر دوبارہ شروع ہوئی؛ کہا گیا: وہ مجوسی ہیں (4)؛ اور یہ بات ان کی اپنی زبانوں میں چھینکنے والے کے لیے ان کی دعاؤں میں واضح ہے، جس کا مفہوم (5) یہ ہے: "ہزار سال جیو"۔

---

(1) (د) اور (م) میں: بقولہ۔ (2) اعراب القرآن للنحاس 1/ 249۔ (3) وہ امرؤ القیس ہے، اور شعر اس کے دیوان صفحہ 87 میں ہے۔ (4) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/ 277 میں ابو العالیہ اور ربیع کے قول سے نقل کیا ہے۔ (5) (م) میں: بما۔

Surat Al-Baqarah: Verse 96 259

The number "thousand" (al-alf) was specifically mentioned because it is the end of the numerical cycle in counting(1). Al-Hasan went to the opinion that "those who associated others with Allah" refers to the pagans of the Arabs, who were specifically mentioned because they do not believe in the Resurrection; so they wish for long life(2).

The origin of "sanah" (year) is "sanahah," and it is also said: "sanwah"(3).

It is also said: there is a transposition (taqdim and ta'khir) in the speech, and the meaning is: "And you will find them, and a group of those who associated others with Allah, to be the most greedy of people for life."

His saying (Exalted be He): {each of them wishes that he might be given a life of a thousand years} [Quran 2:96]. The origin of "yawaddu" is "yawdadu," which was merged (idgham) so as not to bring together two moving letters of the same type; and the vowel of the "dal" was moved to the "waw" to indicate that it is on the scale of "yaf'alu." Al-Kisa'i related: "wadadta"(4); thus it is permissible according to this to say "yawaddu" with a kasra on the waw. And the meaning of "yawaddu" is: he wishes(5).

His saying (Exalted be He): {and it will not remove him from the punishment that he should be given life} [Quran 2:96]. Grammarians differed regarding "huwa" (it/he). It was said: "huwa" is a pronoun referring back to the "one" (ahad) mentioned previously, the estimation being: none of them will be removed by it, and the predicate of the subject is in the prepositional phrase. "{that he should be given life}" is the subject (fa'il) of "muzahzihihi" (removing him). Another group said: "huwa" is a pronoun for "at-ta'meer" (being given long life), the estimation being: and the being given long life will not remove him, and the predicate is in the prepositional phrase, "{that he should be given life}" is a substitute (badal) for "ta'meer" according to this view. Al-Tabari related from a group that they said: "huwa" is a pillar (imad/damir fasl) (6).

I say: this is far-fetched, for the right of the "imad" is to be between two inseparable things, like His saying: {Surely [the...

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/182. (2) Narrated by al-Tabari in his Tafsir 2/277 similarly from the words of Ibn Abbas. (3) Al-Jawhari said in al-Sihah: There are two opinions regarding its deficiency: one is that it's the 'waw', and its origin is 'sanwah', and the

other is the 'ha', and its origin is 'sanahah', like: 'jabahah'. (4) With a fatha on the dal, as in I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/250, and the speech is from it. (5) Ibn Manzur narrated in al-Lisan (w-d-d) from al-Farra his saying: I choose for myself in the meaning of wishing: 'wadidtu'. He said: and I heard 'wadadtu', with a fatha, and it is rare, he said: whether you say 'wadidtu' or 'wadadtu', the future of both of them is: 'awaddu', 'yawaddu', 'tawaddu', and nothing else. (6) Tafsir al-Tabari 2/279-280, and the author quoted it from him via al-Muharrar al-Wajiz 1/182, and the meaning of 'imad' is a separating pronoun (damir fasl).

सूरह अल-बकरा: आयत 96 259

"हज़ार" (अल-अल्फ़) का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है क्योंकि यह गणना में संख्यात्मक चक्र का अंत है(1)। अल-हसन का मत है कि "जिन्होंने शिर्क किया" से तात्पर्य अरब के मुशरिकों से है, जिनका विशेष रूप से उल्लेख इसलिए किया गया क्योंकि वे पुनरुत्थान (क़यामत) में विश्वास नहीं करते; इसलिए वे लंबी उम्र की कामना करते हैं(2)।

"सनह" (वर्ष) का मूल "सनहह" है, और यह भी कहा गया है: "सनवह"(3)।

यह भी कहा गया है: वाणी में शब्दों का क्रम आगे-पीछे (तक़दीम और ताख़ीर) है, और अर्थ यह है: "और आप निश्चित रूप से उन्हें और शिर्क करने वालों के एक समूह को जीवन के लिए लोगों में सबसे अधिक लालची पाएंगे।"

अल्लाह का कथन: {उनमें से प्रत्येक चाहता है कि काश उसे एक हजार वर्ष की आयु दी जाए} [क़ुरआन 2:96]। "यवद्दु" का मूल "यवददु" है, जिसे आपस में मिला दिया गया (इदग़ाम) ताकि एक ही प्रकार के दो गतिशील अक्षरों को एक साथ न लाया जाए; और "दाल" की मात्रा को "वाव" पर स्थानांतरित कर दिया गया ताकि यह संकेत मिल सके कि यह "यफ़अलु" के पैमाने पर है। अल-किसाई ने "वददता"(4) का उल्लेख किया है; अतः इसके अनुसार वाव पर कसरा के साथ "यवद्दु" कहना जायज़ है। और "यवद्दु" का अर्थ है: वह कामना करता है(5)।

अल्लाह का कथन: {और यह उसे दंड से दूर करने वाला नहीं है कि उसे आयु दी जाए} [क़ुरआन 2:96]। "हुवा" (वह/यह) के संबंध में व्याकरणविदों में मतभेद है। यह कहा गया: "हुवा" पहले उल्लेखित "अहद" (एक) की ओर संकेत करने वाला सर्वनाम है, अनुमान यह है: उनमें से कोई भी इसे हटाने वाला नहीं है, और विषय का विधेय पूर्वसर्ग वाक्यांश में है। "{कि उसे आयु दी जाए}" "मुज़हज़िहि" (उसे हटाने वाला) का कर्ता (फ़ाएल) है। एक अन्य समूह ने कहा: "हुवा" "अत-तामीर" (लंबी आयु दिया जाना) के लिए एक सर्वनाम है, अनुमान यह है: और लंबी आयु दिया जाना उसे नहीं हटाएगा, और विधेय पूर्वसर्ग वाक्यांश में है, इस दृष्टिकोण के अनुसार "{कि उसे आयु दी जाए}" "तामीर" का विकल्प (बदल) है। अल-तबरी ने एक समूह से उल्लेख किया कि उन्होंने कहा: "हुवा" एक 'इमाद' (दमीर फ़स्ल/विभाजक सर्वनाम) है(6)।

मैं कहता हूँ: यह बात दूर की लगती है, क्योंकि 'इमाद' का अधिकार दो अविभाज्य चीजों के बीच होना है, जैसे अल्लाह का कहना है: {बेशक [वह...

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/182। (2) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/277 में इसी तरह इब्न अब्बास के शब्दों से उद्धृत किया है। (3) अल-जौहरी ने अल-सिहह में कहा: इसकी कमी के संबंध में दो मत हैं: एक 'वाव' है, और इसका मूल 'सनवह' है, और दूसरा 'हा' है, और इसका मूल 'सनहह' है, जैसे: 'जबहह'। (4) दाल पर फ़तहा के साथ, जैसा कि अल-नहस द्वारा इअराब अल-क़ुरआन 1/250 में है, और बात वहीं से है। (5) इब्न मंज़ूर ने अल-लिसान (व-द-द) में अल-फ़र्रा से उनके इस कथन को उद्धृत किया: मैं कामना के अर्थ में अपने लिए 'वदिदतु' चुनता हूँ। उन्होंने कहा: और मैंने 'वददतु' सुना है, फ़तहा के साथ, और यह कम है, उन्होंने कहा: चाहे आप 'वदिदतु' कहें या 'वददतु', दोनों का भविष्य (मुस्तक़बिल) है: 'अवद्दु', 'यवद्दु', 'तवद्दु', और कुछ नहीं। (6) तफ़सीर अल-तबरी 2/279-280, और लेखक ने इसे अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/182 के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है, और 'इमाद' का अर्थ है: दमीर फ़स्ल (विभाजक सर्वनाम)।

سورہ البقرہ: آیت 96 259

"الف" (ہزار) کا ذکر خاص طور پر کیا گیا کیونکہ یہ گنتی میں عدد کے دور کا اختتام ہے(1)۔ الحسن اس طرف گئے ہیں کہ "جنہوں نے شرک کیا" سے مراد مشرکین عرب ہیں، ان کا ذکر خاص طور پر اس لیے کیا گیا کیونکہ وہ دوبارہ جی اٹھنے (بعث) پر ایمان نہیں رکھتے؛ اس لیے وہ لمبی عمر کی تمنا کرتے ہیں(2)۔

"سنہ" (سال) کی اصل "سنہہ" ہے، اور کہا گیا: "سنوہ"(3)۔

اور کہا گیا: کلام میں تقدیم و تاخیر ہے، اور معنی یہ ہے: "اور آپ ضرور انہیں اور مشرکین کے ایک گروہ کو زندگی کا سب سے زیادہ حریص پائیں گے۔"

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿يَوَدُّ أَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ أَلْفَ سَنَةٍ﴾ {ان میں سے ہر ایک چاہتا ہے کہ کاش اسے ہزار سال کی عمر دی جائے} [قرآن 2:96]۔ "يَوَدُّ" کی اصل "يَوْدَدُ" ہے، جس کا ادغام کر دیا گیا تاکہ ایک ہی جنس کے دو متحرک حروف جمع نہ ہوں؛ اور دال کی حرکت کو واؤ پر منتقل کر دیا گیا تاکہ یہ دلالت کرے کہ یہ "يَفْعَلُ" کے وزن پر ہے۔ الکسائی نے روایت کی ہے: "وَدَدْتَ"(4)؛ چنانچہ اس کے مطابق واؤ کے کسرہ کے ساتھ "يَوَدُّ" جائز ہے۔ اور "يَوَدُّ" کا معنی ہے: وہ تمنا کرتا ہے(5)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهِ مِنَ الْعَذَابِ أَن يُعَمَّرَ﴾ {اور وہ اسے عذاب سے دور کرنے والا نہیں ہے کہ اسے عمر دی جائے} [قرآن 2:96]۔ نحویوں نے "ھو" کے بارے میں اختلاف کیا ہے، پس کہا گیا: "ھو" پہلے گزرے ہوئے لفظ "احد" کی ضمیر ہے، تقدیر یہ ہے: ان میں سے کوئی بھی اسے دور کرنے والا نہیں، اور ابتدا کی خبر مجرور میں ہے۔ "أن يعمر" "مزحزح" کا فاعل

ہے۔ اور ایک گروہ نے کہا: "ھو" "تعمیر" (عمر دیا جانا) کی ضمیر ہے، تقدیر یہ ہے: اور عمر دیا جانا اسے دور کرنے والا نہیں ہے، اور خبر مجرور میں ہے، اس قول کے مطابق "أن یعمر" "تعمیر" سے بدل ہے۔ اور الطبری نے ایک گروہ سے نقل کیا کہ انہوں نے کہا: "ھو" عماد (ضمیر فصل) ہے(6)۔

میں کہتا ہوں: اس میں دوری ہے، کیونکہ عماد کا حق یہ ہے کہ وہ دو لازم چیزوں کے درمیان ہو، جیسے اللہ کا فرمان: ﴿ان

(1) المحرر الوجیز 182/1۔ (2) اسے الطبری نے اپنی تفسیر 277/2 میں ابن عباس کے قول سے اسی طرح کی عبارت کے ساتھ روایت کیا ہے۔ (3) الجوہری نے الصحاح میں کہا: اس کے ناقص ہونے میں دو قول ہیں: ایک واؤ، اور اس کی اصل: سَنْوَة ہے، اور دوسرا ھاء، اور اس کی اصل: سَنَهَة ہے، جیسے: جَبَهَة۔ (4) دال کے فتحہ کے ساتھ، جیسا کہ النحاس کی اعراب القرآن 1/ 250 میں ہے، اور کلام وہیں سے ہے۔ (5) ابن منظور نے اللسان (ودد) میں الفراء سے ان کا قول نقل کیا: میں تمنا کے معنی میں اپنے لیے 'وَدِدْتُ' کو پسند کرتا ہوں۔ انہوں نے کہا: اور میں نے 'وَدَدْتُ' بھی سنا ہے، فتحہ کے ساتھ، اور یہ کم ہے، انہوں نے کہا: چاہے آپ 'وَدِدْتُ' کہیں یا 'وَدَدْتُ'، ان دونوں کا مستقبل ہے: أودُّ، ویودُّ، وتودُّ، اس کے علاوہ کچھ نہیں۔ (6) تفسیر الطبری 2/ 279-280، اور اسے مصنف نے المحرر الوجیز 1/ 182 کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے، اور 'عماد' کا مطلب ہے: ضمیر فصل۔

260 Surah Al-Baqarah: Verse 96

...[If this is the truth] (Al-Anfal: 32), and His saying: {But they were the wrongdoers} (Az-Zukhruf: 76), and suchlike.

It was said: 'Ma' (ما) is a Hijazi operator, 'Huwa' (هو) is its subject, and the predicate is 'bi-muzahzihihi' (بِمُزَحْزِحِهِ). A group said: 'Huwa' is the pronoun of the matter and state (dhamir al-amr wa al-sha'n). Ibn Atiyyah(1) said: There is distance in this [view], for it is preserved from the grammarians that it should be explained by a sentence free from a preposition.

And His saying: {bi-muzahzihihi} (from removing him): Az-zahzaha means distancing and removal; it is said: I zahzahtuhu (زحزحتُه), i.e., I distanced him, and so he tazahzaha (فتزحزح), i.e., he moved away and distanced himself. It can be intransitive or transitive. A poet said regarding the transitive:

'O seizer of the soul from a self when it is attended [by death], and Forgiver of sins, remove me from the Fire.'(2)

And Dhu ar-Rumma recited it:

'O seizer of the soul from a body that was disobedient for a time, and Forgiver of sins, remove me from the Fire.'(3)

Another said regarding the intransitive:

'O my two friends, what is with the darkness that it does not move away, and what is with the morning light that it does not become clear.'(4)(5)

And Al-Nasa’i narrated from Abu Huraira (may Allah be pleased with him), from the Prophet (peace and blessings be upon him), that he said: 'Whoever fasts a day in the way of Allah, Allah will move his face away from the Fire seventy autumns [years].'(6)

And His saying(7): {And Allah is Seeing of what they do}, meaning: of what those who each wish to live a thousand years do.

Footnotes: (1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/182. (2) The verse is by Dhu ar-Rumma, as in ash-Shi'r wa ash-Shu'ara' 1/525, and in it: 'O seizer of the soul from my self...'. Al-Asfahani cited it in al-Aghani 18/46 with the wording: 'O extractor of the soul from my body when I am attended [by death], and Reliever of distress, remove me from the Fire.' See the supplement to his Diwan 3/1875. (3) Al-Sihah (z-h-h), see the comment before it. (4) In the copies: 'yitazahzahu', and the correction is from the sources. (5)

The verse is by Bashshar bin Burd, and it is in his Diwan 1/462. It appears in al-Amali 1/99: 'And what is with the pillar of morning'. (6) Al-Mujtaba 4/172. It is in al-Musnad (7990). (7) In (m): The saying of Allah Almighty.

260 सूरा अल-बकरा: आयत 96

...[यह सच है] (अल-अनफाल: 32), और उसका कहना: {लेकिन वे ही ज़ालिम थे} (अज़-ज़ुख़रुफ़: 76), और इसी तरह के अन्य उदाहरण।

कहा गया है: 'मा' (ما) हिजाज़ी कारक है, 'हुवा' (هو) इसका संज्ञा (इस्मु) है, और 'बि-मुज़हज़िहि' (بِمُزَحْزِحِهِ) इसकी खबर है। एक समूह ने कहा: 'हुवा' मामले और स्थिति का सर्वनाम (ज़मीर अल-अम्र व अल-शान) है। इब्न अतिय्या(1) ने कहा: इसमें दूरी (कठिनाई) है, क्योंकि व्याकरणविदों से यह सुरक्षित है कि इसकी व्याख्या बिना पूर्वसर्ग वाले वाक्य द्वारा की जानी चाहिए।

और उसका कहना: {बि-मुज़हज़िहि} (उसे दूर करने वाला): अज़-ज़हज़हा का अर्थ है दूर करना और हटाना; कहा जाता है: ज़हज़हतुहु (زحزحتُه) यानी: मैंने उसे दूर कर दिया, तो वह तज़हज़हा (زحفتز) हो गया, यानी: वह हट गया और दूर हो गया; यह सकर्मक और अकर्मक दोनों हो सकता है, कवि ने सकर्मक के बारे में कहा है:

'ऐ आत्मा को खींचने वाले जब मौत सामने हो, और गुनाहों को बख्शने वाले, मुझे आग से दूर कर दे।'(2)

और इसे ज़ु अर-रुम्मा ने पढ़ा:

'ऐ उस शरीर से आत्मा खींचने वाले जिसने ज़माने तक नाफरमानी की, और गुनाहों को बख्शने वाले, मुझे आग से दूर कर दे।'(3)

दूसरे ने अकर्मक के बारे में कहा:

'ऐ मेरे दो दोस्तों, अंधेरे को क्या हुआ कि वह हटता नहीं, और सुबह की रोशनी को क्या हुआ कि वह स्पष्ट नहीं होती।'(4)(5)

और अन-नसाई ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है, नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से, कि उन्होंने कहा: "जिसने अल्लाह की राह में एक दिन रोज़ा रखा, अल्लाह उसके चेहरे को आग से सत्तर साल (खलीफ) दूर कर देगा।" (6)

और उसका कहना(7): {और जो कुछ वे करते हैं अल्लाह उसे देख रहा है} यानी: वे जो कुछ करते हैं, वे लोग जिनमें से हर कोई चाहता है कि उसे एक हज़ार साल की उम्र मिले।

फुटनोट: (1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/182। (2) यह शेर ज़ु अर-रुम्मा का है, जैसा कि अश-शि'र व अश-शुआरा 1/525 में है, और उसमें है: 'ऐ मेरी जान से रूह खींचने वाले...'। अल-असफ़हानी ने अल-अग़ानी 18/46 में इस शब्द के साथ उल्लेख किया है: 'ऐ मेरे जिस्म से रूह निकालने वाले जब मौत का वक्त हो, और दुख दूर करने वाले, मुझे आग से दूर कर दे।' उसके दीवान का परिशिष्ट 3/1875 देखें। (3) अल-सिहाह (ज़-ह-ह), इसके पहले की टिप्पणी देखें। (4) प्रतियों में: 'यतज़हज़हू' है, और सुधार स्रोतों से है। (5) यह शेर बशार बिन बुर्द का है, और यह उनके दीवान 1/462 में है। अल-अमाली 1/99 में आया है: 'और सुबह के खंभे को क्या हुआ।' (6) अल-मुज्तबा 4/172। यह अल-मुसनद (7990) में है। (7) (म) में: अल्लाह तआला का कहना।

٢٦٠ سورة البقرہ: آیت ٩٦

...[یہ سچ ہے] (الأنفال : ٣٢)، اور اس کا قول: {لیکن وہ خود ہی ظالم تھے} (الزخرف : ٧٦) اور اسی طرح کے دیگر۔

کہا گیا ہے: «ما» حجازی عاملہ ہے، اور «هو» اس کا اسم ہے، اور خبر «بِمُزَحْزِحِهِ» میں ہے۔ اور ایک گروہ نے کہا: «هو» ضمیر امر و شان ہے۔ ابن عطیہ(١) نے کہا: اس میں دوری (بعید ہونا) ہے، کیونکہ نحویوں سے یہ محفوظ ہے کہ اس کی تفسیر حرف جر سے خالی جملے سے کی جائے۔

اور اس کا قول: ﴿بِمُزَحْزِحِهِ﴾ زحزحہ کا مطلب ہے دور کرنا اور ہٹانا؛ کہا جاتا ہے: زحزحتُہ یعنی: میں نے اسے دور کر دیا پس وہ تزحزح (ہٹ گیا) یعنی: وہ ہٹ گیا اور دور ہو گیا؛ یہ لازم اور متعدی دونوں ہوتا ہے، شاعر نے متعدی کے بارے میں کہا:

’اے موت کے وقت جان قبض کرنے والے اور گناہ بخشنے والے، مجھے آگ سے دور کر دے۔‘ (٢)

اور اسے ذو الرمہ نے یوں پڑھا:

’اے اس جسم سے جان نکالنے والے جس نے زمانے بھر نافرمانی کی، اور گناہ بخشنے والے، مجھے آگ سے دور کر دے۔‘ (٣)

اور دوسرے نے لازم کے بارے میں کہا:

’اے میرے دو دوستو، تاریکی کو کیا ہوا کہ وہ ہٹتی نہیں، اور صبح کی روشنی کو کیا ہوا کہ وہ واضح نہیں ہوتی۔‘ (٤)(٥)

اور نسائی نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کی، انہوں نے نبی کریم ﷺ سے، کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "جس نے اللہ کی راہ میں ایک دن روزہ رکھا، اللہ اس کے چہرے کو جہنم کی آگ سے ستر سال (خریف) دور کر دے گا۔" (٦)

اور اس کا قول(٧): ﴿وَاللَّهُ بَصِيرٌ بِمَا يَعْمَلُونَ﴾ یعنی: ان کے اعمال کو اللہ دیکھ رہا ہے جو یہ لوگ کرتے ہیں جن میں سے ہر ایک یہ چاہتا ہے کہ اسے ایک ہزار سال کی عمر دی جائے۔

حواشی: (١) المحرر الوجیز ١٨٢/١۔ (٢) یہ شعر ذو الرمہ کا ہے، جیسا کہ الشعر والشعراء ٥٢٥/١ میں ہے، اور اس میں ہے: 'اے میری جان سے روح قبض کرنے والے...'۔ الاصفہانی نے الاغانی ٤٦/١٨ میں ان الفاظ کے ساتھ نقل کیا ہے: 'اے میرے جسم سے روح نکالنے والے جب موت حاضر ہو، اور کرب دور کرنے والے، مجھے آگ سے دور کر دے۔' اس کے دیوان کا ملحق ٣/١٨٧٥ دیکھیں۔ (٣) الصحاح (زحح)، اس سے پہلے کا تبصرہ دیکھیں۔ (٤) نسخوں میں: «یتزحزح» ہے، اور تصحیح مآخذ سے ہے۔ (٥) یہ شعر بشار بن برد کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ٤٦٢/١ میں ہے۔ الامالی ٩٩/١ میں آیا ہے: 'اور صبح کے ستون کو کیا ہوا'۔ (٦) المجتبیٰ ١٧٢/٤۔ اور یہ المسند (٧٩٩٠) میں ہے۔ (٧) (م) میں: اللہ تعالیٰ کا قول|

Surah Al-Baqarah: Verse 97 261

And whoever recited with the 'taa' (1), the estimation according to him is: Say to them, O Muhammad: Allah is seeing of what you do. The scholars said: Allah, the Mighty and Majestic, described Himself as 'Baseer' (All-Seeing), meaning He is knowledgeable of the hidden matters. In the Arabic language, 'Al-Baseer' is the one who is knowledgeable and expert in something; hence their saying: "So-and-so is 'baseer' (expert) in medicine, 'baseer' in jurisprudence, and 'baseer' in dealing with men." He (the poet) said (2): "If you ask me about women, I am expert in women's ailments, a physician." Al-Khattabi said: Al-Baseer means the Knower, and Al-Baseer means the one who Sees. It was also said: Allah described Himself as 'Baseer' meaning: He who makes visible things possess vision, i.e., capable of perceiving visible objects through the organs and power He created for them. So, Allah is 'Baseer' of His servants, meaning: He makes His servants capable of seeing (3).

Allah's saying: {Say, "Whoever is an enemy to Gabriel - it is [none but] he who has brought it [the Qur'an] down upon your heart, [O Muhammad], by permission of Allah , confirming that which was before it and as guidance and good tidings for the believers."} The reason for its revelation is that the Jews said to the Prophet ﷺ: "There is no prophet among the prophets except that an angel from his Lord comes to him with the message and revelation. So who is your companion so that we may follow you?" He said: "Gabriel." They said: "That is the one who descends with war and fighting; that is our enemy! If you had said Mikhail, who descends with rain and mercy, we would have followed you." Then Allah revealed the verse up to: "for the disbelievers." Recorded by At-Tirmidhi (4). And His saying: {for he has brought it down upon your heart}, the pronoun in "he" carries two possible meanings:

---

(1) It is the recitation of Ya'qub from the ten, as in An-Nashr 2/219, and Ibn 'Atiyyah also attributed it in Al-Muharrar al-Wajiz 1/182 to Qatadah and Al-A'raj. (2) He is Alqamah bin Abada At-Tamimi, and the verse is in his Diwan, p. 35. (3) Ishtiqaq Asma' Allah al-Husna, pp. 65 and 67. (4) We did not find it in At-Tirmidhi in this form; it is part of a long hadith from Ibn Abbas recorded in full by Ahmad (2483) and An-Nasa'i in Al-Kubra (9024). At-Tirmidhi recorded part of it (3117). Al-Bukhari recorded it (4480) from the hadith of Anas regarding the conversion of Abdullah bin Salam, when he said to the Prophet ﷺ: "I am going to ask you about three things that no one knows except a prophet..." The Messenger of Allah ﷺ said: "Gabriel informed me of them just now." He said: "Gabriel?" He said: "Yes." He said: "That is the enemy of the Jews

among the angels." Then he recited this verse: {Whoever is an enemy to Gabriel - it is he who has brought it down upon your heart by permission of Allah}.

सूरा अल-बक़रह: आयत 97 261

और जिसने इसे 'ता' (1) के साथ पढ़ा, उसके अनुसार अर्थ यह है: ऐ मुहम्मद, उनसे कहो: अल्लाह उसे देख रहा है जो तुम करते हो। विद्वानों ने कहा है: अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने स्वयं को 'बसीर' (सब कुछ देखने वाला) बताया है, इस अर्थ में कि वह गुप्त मामलों का ज्ञाता है। अरबी भाषा में 'अल-बसीर' का अर्थ है किसी चीज़ का जानकार और विशेषज्ञ; इसीलिए उनका कहना है: "अमुक व्यक्ति चिकित्सा में 'बसीर' (विशेषज्ञ) है, न्यायशास्त्र में 'बसीर' है, और पुरुषों के साथ व्यवहार करने में 'बसीर' है।" (कवि ने) कहा (2): "यदि आप मुझसे महिलाओं के बारे में पूछें, तो मैं महिलाओं की बीमारियों का 'बसीर' (विशेषज्ञ) और एक चिकित्सक हूँ।" अल-ख़त्ताबी ने कहा: 'बसीर' का अर्थ है 'जानने वाला', और 'बसीर' का अर्थ है 'देखने वाला'। और यह भी कहा गया है: अल्लाह तआला ने स्वयं को 'बसीर' बताया है, इस अर्थ में कि: वह देखने वाली चीज़ों को दृष्टि प्रदान करने वाला है, यानी: अंगों और शक्ति के माध्यम से दिखने वाली वस्तुओं को समझने में सक्षम बनाना, जो उसने उनके लिए बनाई हैं। अतः अल्लाह अपने बंदों का 'बसीर' है, अर्थात्: वह अपने बंदों को देखने वाला बनाता है (3)।

अल्लाह का फरमान: {कह दो, "जो कोई जिब्रील का शत्रु हो - तो निश्चय ही उसने उसे (क़ुरआन को) तुम्हारे हृदय पर अल्लाह की अनुमति से उतारा है, जो अपने से पहले वाली चीज़ों की पुष्टि करता है और ईमान वालों के लिए मार्गदर्शन और शुभ समाचार है।"} इसके अवतरण का कारण यह है कि यहूदियों ने नबी ﷺ से कहा: "नबियों में से कोई ऐसा नबी नहीं है जिसके पास उसके रब की ओर से कोई फ़रिश्ता संदेश और वह्य लेकर न आता हो। तो आपका साथी कौन है ताकि हम आपका अनुसरण कर सकें?" आपने कहा: "जिब्रील।" उन्होंने कहा: "वह तो युद्ध और लड़ाई के साथ उतरता है, वह हमारा शत्रु है! यदि आपने मीकाईल कहा होता, जो वर्षा और दया के साथ उतरता है, तो हम आपका अनुसरण करते।" तब अल्लाह ने आयत यहाँ तक उतारी: "काफ़िरों के लिए।" इसे तिर्मिज़ी ने उद्धृत किया है (4)। और उसका कथन: {तो निश्चय ही उसने उसे तुम्हारे हृदय पर उतारा है}, "उसने" में सर्वनाम के दो अर्थ हो सकते हैं:

---

(1) यह दस पाठों में से याकूब का पाठ है जैसा कि 'अन-नश्र' 2/219 में है, और इब्न अत्तिया ने भी 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/182 में इसे क़तादह और अल-अराज को संदर्भित किया है। (2) वह अल्कामा बिन अब्दह अत-तमीमी हैं, और शेर उनके दीवान के पृष्ठ 35 पर है। (3) इश्तिक़ाक़ अस्मा

अल्लाह अल-हुस्ना पृष्ठ 65 और 67। (4) हमें यह इस रूप में तिर्मिज़ी के पास नहीं मिला; यह इब्न अब्बास की एक लंबी हदीस का हिस्सा है जिसे अहमद (2483) और अन-नसाई ने 'अल-कुबरा' (9024) में पूर्ण रूप से उद्धृत किया है। तिर्मिज़ी ने इसका कुछ भाग (3117) उद्धृत किया है। अल-बुखारी ने इसे अब्दुल्ला बिन सलाम के इस्लाम स्वीकार करने के समाचार में अनस की हदीस से उद्धृत किया है (4480), जब उन्होंने नबी ﷺ से कहा: "मैं आपसे तीन चीज़ों के बारे में पूछने वाला हूँ जिन्हें एक नबी के अलावा कोई नहीं जानता..." तो अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "अभी-अभी जिब्रील ने मुझे उनके बारे में बताया है।" उन्होंने कहा: "जिब्रील?" आपने कहा: "हाँ।" उन्होंने कहा: "वह फरिश्तों में यहूदियों का दुश्मन है।" फिर उन्होंने यह आयत पढ़ी: {जो कोई जिब्रील का शत्रु हो - तो निश्चय ही उसने उसे तुम्हारे हृदय पर अल्लाह की अनुमति से उतारा है}।

سورة البقرہ: آیت 97 261

اور جس نے 'تاء' (1) کے ساتھ پڑھا، اس کے نزدیک اس کی تقدیر یہ ہے: اے محمد ان سے کہو: اللہ اس سے باخبر ہے جو تم کرتے ہو۔ علماء نے کہا ہے: اللہ عزوجل نے خود کو 'بصیر' (دیکھنے والا) قرار دیا ہے، اس معنی میں کہ وہ چھپی ہوئی باتوں کا علم رکھنے والا ہے۔ عربی کلام میں 'البصیر' کا مطلب ہے کسی چیز کا جاننے والا اور اس کا ماہر؛ اسی سے ان کا قول ہے: "فلاں شخص طب میں بصیر ہے، فقہ میں بصیر ہے، اور لوگوں سے میل ملاپ میں بصیر ہے؛" (شاعر نے) کہا (2): "اگر تم مجھ سے عورتوں کے بارے میں پوچھو گے تو میں عورتوں کی بیماریوں کا بصیر (ماہر) اور معالج ہوں۔" الخطابی نے کہا: البصیر کا مطلب ہے جاننے والا، اور البصیر کا مطلب ہے دیکھنے والا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ: اللہ تعالیٰ نے اپنے آپ کو بصیر کہا ہے، اس معنی میں کہ: دیکھنے والی چیزوں کو بصارت والا بنانے والا، یعنی: ان اعضاء اور قوت کے ذریعے جو اس نے ان کے لیے پیدا کیے ہیں، دیکھی جانے والی چیزوں کا ادراک کرنے والا۔ پس اللہ اپنے بندوں کا بصیر ہے، یعنی: اپنے بندوں کو دیکھنے والا بنانے والا (3)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿قُلْ مَن كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيلَ فَإِنَّهُ نَزَّلَهُ عَلَىٰ قَلْبِكَ بِإِذْنِ اللَّهِ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَهُدًى وَبُشْرَىٰ لِلْمُؤْمِنِينَ ۝﴾ اس کے نزول کا سبب یہ ہے کہ یہودیوں نے نبی کریم ﷺ سے کہا: "انبیاء میں سے کوئی ایسا نبی نہیں ہے جس کے پاس اس کے رب کی طرف سے کوئی فرشتہ رسالت اور وحی لے کر نہ آتا ہو۔ تو آپ کا ساتھی کون ہے تاکہ ہم آپ کی پیروی کریں؟" آپ ﷺ نے فرمایا: "جبریل۔" انہوں نے کہا: "وہ تو جنگ اور لڑائی کے ساتھ اترتا ہے، وہ ہمارا دشمن ہے! اگر آپ میکائیل کا نام لیتے، جو بارش اور رحمت کے ساتھ اترتا ہے، تو ہم آپ کی پیروی کرتے۔" تب اللہ تعالیٰ نے یہ آیت "کافروں کے لیے" تک نازل فرمائی۔ اسے ترمذی نے روایت کیا ہے (4)۔ اور اللہ

تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَإِنَّهُ نَزَّلَهُ عَلَىٰ قَلْبِكَ﴾ (پس بے شک اس نے اسے تمہارے دل پر اتارا ہے) میں "انہ" کی ضمیر کے دو معنی ہو سکتے ہیں:

---

(1) یہ دس قراءتوں میں سے یعقوب کی قراءت ہے جیسا کہ 'النشر' 2/219 میں ہے، اور ابن عطیہ نے بھی اسے 'المحرر الوجیز' 1/182 میں قتادہ اور اعرج کی طرف منسوب کیا ہے۔ (2) وہ علقمہ بن عبدہ التمیمی ہیں، اور یہ شعر ان کے دیوان کے صفحہ 35 پر ہے۔ (3) اشتقاق اسماء اللہ الحسنی صفحہ 65 اور 67۔ (4) ہمیں یہ ترمذی کے ہاں اس شکل میں نہیں ملی؛ یہ ابن عباس رضی اللہ عنہما کی ایک لمبی حدیث کا حصہ ہے جسے امام احمد (2483) اور نسائی نے 'الکبریٰ' (9024) میں مکمل طور پر روایت کیا ہے۔ ترمذی نے اس کا کچھ حصہ (3117) روایت کیا ہے۔ بخاری نے (4480) حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے عبداللہ بن سلام رضی اللہ عنہ کے اسلام لانے کے قصے میں روایت کیا ہے، جب انہوں نے نبی کریم ﷺ سے کہا: "میں آپ سے تین ایسی چیزوں کے بارے میں پوچھنے والا ہوں جنہیں نبی کے سوا کوئی نہیں جانتا..." تو رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ابھی ابھی جبریل نے مجھے ان کی خبر دی ہے۔" انہوں نے کہا: "جبریل؟" آپ ﷺ نے فرمایا: "ہاں۔" انہوں نے کہا: "وہ فرشتوں میں یہودیوں کا دشمن ہے۔" پھر آپ ﷺ نے یہ آیت تلاوت فرمائی: ﴿مَن كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيلَ فَإِنَّهُ نَزَّلَهُ عَلَىٰ قَلْبِكَ بِإِذْنِ اللَّهِ﴾۔

٢٦٢ Surah Al-Baqarah: Verse 98

The first: Allah sent Gabriel down upon your heart. The second: Gabriel descended with the Quran upon your heart. The heart was specifically mentioned because it is the seat of reason, knowledge, and the reception of insights. The verse indicates the honor of Gabriel (peace be upon him) and the condemnation of those who are hostile to him (1). Allah’s saying: {By Allah's permission} means: by His will and knowledge. {Confirming what was before it} means the Torah. {And a guidance and good tidings for the believers} its meaning has been mentioned previously (2), and praise be to Allah. Allah’s saying: {Whoever is an enemy to Allah, His angels, His messengers, Gabriel, and Michael—then Allah is an enemy to the disbelievers (98)} Allah’s saying: {Whoever is an enemy to Allah} is a condition, and its response is {then Allah is an enemy to the disbelievers}. This is a threat and condemnation for those who are hostile to Gabriel (peace be upon him), and a declaration that hostility towards some necessitates Allah’s hostility towards them. A servant's enmity towards Allah is his disobedience to Him and avoidance of His obedience, and hostility towards His allies. Allah’s enmity towards a servant is His punishing him and showing the effect of enmity upon him (3). If it is asked: Why did Allah specifically mention Gabriel and Michael when the mention of the angels already included them? It is said to him: He specifically mentioned them to honor them; as He said: {In both of them are fruit, palm trees and pomegranates} [Ar-Rahman: 68]. And it is said: they were specifically mentioned because the Jews mentioned them, and the verse was revealed because of them. Thus, mentioning them was necessary so that the Jews would not say: "We did not show enmity towards Allah and all His angels" (3); so Allah explicitly mentioned them to invalidate their biased interpretation. Linguists have several pronunciations for "Jibril" (Gabriel) and "Mikail" (Michael), peace be upon them. As for those for "Jibril," there are ten: The first: "Jibril," which is the dialect of the people of Al-Hijaz; Hassan ibn Thabit said (4): And Jibril is the messenger of Allah among us.

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. (2) 1/247. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/184. (4) In his Diwan p. 62. And previously mentioned in 2/244.

२६२ सूरह अल-बकरा: आयत ९८

पहला: अल्लाह ने जिब्रईल को आपके दिल पर उतारा। दूसरा: जिब्रईल कुरान लेकर आपके दिल पर उतरे। दिल का विशेष उल्लेख इसलिए किया गया है क्योंकि यह बुद्धि, ज्ञान और जानकारियों को ग्रहण करने का स्थान है। यह आयत जिब्रईल (उन पर शांति हो) के सम्मान और उनके शत्रुओं की निंदा को दर्शाती है (१)। अल्लाह का कथन: {अल्लाह की अनुमति से} यानी: उसकी इच्छा और ज्ञान से। {जो उससे पहले था उसकी पुष्टि करने वाला} यानी तौरात। {और विश्वासियों के लिए मार्गदर्शन और शुभ समाचार} इसका अर्थ पहले बताया जा चुका है (२), और अल्लाह की प्रशंसा है। अल्लाह का कथन: {जो कोई अल्लाह, उसके फ़रिश्तों, उसके रसूलों, जिब्रईल और मीकाईल का शत्रु हो, तो अल्लाह (ऐसे) काफिरों का शत्रु है। (९८)} अल्लाह का कथन: {जो कोई अल्लाह का शत्रु हो} यह एक शर्त है, और उसका उत्तर {तो अल्लाह काफिरों का शत्रु है} है। यह जिब्रईल (उन पर शांति हो) के शत्रुओं के लिए एक चेतावनी और निंदा है, और यह घोषणा है कि कुछ के प्रति शत्रुता अल्लाह की उनके प्रति शत्रुता का कारण बनती है। अल्लाह के प्रति बंदे की शत्रुता उसकी अवज्ञा और उसकी आज्ञाकारिता से बचना है, और उसके प्रियजनों से शत्रुता करना है। बंदे के प्रति अल्लाह की शत्रुता उसे दंड देना और उस पर शत्रुता का प्रभाव दिखाना है (३)। यदि पूछा जाए: अल्लाह ने जिब्रईल और मीकाईल का विशेष रूप से उल्लेख क्यों किया, जबकि फ़रिश्तों के उल्लेख में वे भी शामिल थे? उसे उत्तर दिया गया: उनके सम्मान के लिए उनका विशेष उल्लेख किया गया; जैसा कि उसने कहा: {उन दोनों में फल, खजूर और अनार हैं} [अर-रहमान: ६८]। और कहा गया है: उन्हें विशेष रूप से इसलिए चुना गया क्योंकि यहूदियों ने उनका उल्लेख किया था, और यह आयत उन्हीं के कारण उतरी थी। इसलिए, उनका उल्लेख करना आवश्यक था ताकि यहूदी यह न कहें: "हमने अल्लाह और उसके सभी फ़रिश्तों से शत्रुता नहीं की" (३); इसलिए अल्लाह ने उनके विशेष दावों को अमान्य करने के लिए स्पष्ट रूप से दोनों का उल्लेख किया। भाषाविदों के पास जिब्रईल और मीकाईल (उन पर शांति हो) के लिए कई उच्चारण हैं। जहाँ तक "जिब्रईल" का संबंध है, इसके दस रूप हैं: पहला: "जिब्रईल," जो हिजाज़ के लोगों की भाषा है; हस्सान बिन साबित ने कहा (४): और जिब्रईल हमारे बीच अल्लाह के रसूल हैं

---

(१) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१८३। (२) १/२४७। (३) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/१८४। (४) उनके दीवान पृ. ६२ में। और पहले पृ. २/२४४ पर।

٢٦٢ سورة البقرہ: آیت ٩٨

اول: اللہ تعالیٰ نے جبریل کو آپ کے دل پر نازل کیا۔ دوم: پس جبریل قرآن لے کر آپ کے دل پر اترے۔ اور دل کو ذکر کے ساتھ خاص کیا گیا؛ اس لیے کہ یہ عقل، علم اور معارف کے حصول کی جگہ ہے۔ اور آیت جبریل علیہ السلام کی بزرگی اور ان سے دشمنی رکھنے والوں کی مذمت پر دلالت کرتی ہے (١)۔ اور اللہ تعالیٰ کا فرمان: {بِإِذْنِ اللهِ} یعنی: اس کے ارادے اور علم سے۔ {مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ} یعنی تورات۔ {وَهُدًى وَبُشْرَى لِلْمُؤْمِنِينَ} اس کا معنی پہلے گزر چکا ہے (٢)، والحمد للہ۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: {مَن كَانَ عَدُوًّا لِّلَّهِ وَمَلَائِكَتِهِ وَرُسُلِهِ وَجِبْرِيلَ وَمِيكَالَ فَإِنَّ اللهَ عَدُوٌّ لِّلْكَفِرِينَ ٩٨} اللہ تعالیٰ کا قول: {مَن كَانَ عَدُوًّا لِّلَّهِ} شرط ہے، اور اس کی جزا {فَإِنَّ اللهَ عَدُوٌّ لِّلْكَفِرِينَ} ہے۔ اور یہ جبریل علیہ السلام کے دشمنوں کے لیے دھمکی اور مذمت ہے، اور اس بات کا اعلان ہے کہ بعض سے دشمنی اللہ تعالیٰ کی ان سے دشمنی کو واجب کرتی ہے۔ اور بندے کی اللہ سے دشمنی اس کی نافرمانی، اس کی اطاعت سے پرہیز اور اس کے اولیاء سے دشمنی ہے۔ اور اللہ کی بندے سے دشمنی اسے عذاب دینا اور اس پر دشمنی کے اثر کا اظہار کرنا ہے (٣)۔ اگر یہ سوال کیا جائے کہ: اللہ نے جبریل اور میکائیل کو خاص طور پر کیوں ذکر کیا جبکہ فرشتوں کے ذکر میں وہ دونوں شامل تھے؟ تو اسے جواب دیا جائے گا: ان دونوں کی تشریف و تکریم کے لیے انہیں خاص طور پر ذکر کیا گیا؛ جیسا کہ اللہ نے فرمایا: {فِيهِمَا فَكِهَةٌ وَنَخْلٌ وَرُمَّانٌ} [الرحمن: ٦٨]، اور کہا گیا ہے: انہیں اس لیے خاص کیا گیا کہ یہودیوں نے ان کا تذکرہ کیا تھا، اور یہ آیت ان ہی کی وجہ سے نازل ہوئی، لہٰذا ان کا تذکرہ واجب تھا تاکہ یہودی یہ نہ کہہ سکیں کہ: "ہم اللہ اور اس کے تمام فرشتوں سے دشمنی نہیں رکھتے" (٣)؛ چنانچہ اللہ تعالیٰ نے ان دونوں کی صراحت فرمائی تاکہ ان کی تاویل کردہ تخصیص کو باطل کر دیا جائے۔ اور اہل لغت کے نزدیک جبریل اور میکائیل

علیہما السلام کے ناموں میں کئی لغات (تلفظ) ہیں، جہاں تک "جبریل" کا تعلق ہے تو اس میں دس لغات ہیں: پہلی: "جبریل"، اور یہ اہل حجاز کی لغت ہے؛ حسان بن ثابت نے کہا (٤): وجبریل رسول الله فینا

---

(١) المحرر الوجیز ١/ ١٨٣۔ (٢) ١/٢٤٧۔ (٣) المحرر الوجیز ١/ ١٨٤۔ (٤) ان کے دیوان ص٦٢ میں۔ اور ص ٢/ ٢٤٤ پر گزر چکا ہے۔

263 Surah Al-Baqarah: Verse 98

The second: Jabrayal (جَبْرَيَل), with a fatha on the Jeem, which is the recitation of al-Hasan and Ibn Kathir. It was narrated from Ibn Kathir that he said: "I saw the Prophet ﷺ in a dream while he was reciting: Jabrayal and Mikaal (1), so I will never cease reciting them as such."

The third: Jabra'eel (جَبْرَئِيل), with a 'ya' after the hamza, like 'Jabra'eel', as the people of Kufa recited (2). They chanted: We witnessed that no battalion meets us throughout time except that Jabra'eel is ahead of it (3). This is the dialect of Tamim and Qays.

The fourth: Jabra'il (جَبْرَئِل) - on the scale of Jabra'il - shortened, and it is the recitation of Abu Bakr from Asim (4).

The fifth: Like it, and it is the recitation of Yahya bin Ya'mar, except that he doubled the 'lam' (5).

The sixth: Jabra'eel (جَبْرَائيل), with an 'alif' after the 'ra' then a hamza; and Ikrimah recited with it (6).

The seventh: Like it, except that after the hamza there is a 'ya' (7).

The eighth: Jabrayeel (جَبْرَاييل), with two 'ya's without a hamza (8), and Al-A'mash and Yahya bin Ya'mar also recited with it (9).

---

(1) In (Z) and (Zha): Makabeel, in (M): Mika'eel, and what is confirmed in (D) and (Kh), which matches Al-Muharrar al-Wajiz 1/183, and Al-Hujjah for Al-Farisi 2/163. Ibn Mujahid mentioned the report in Al-Sab'ah p. 166, which says: Mika'eel. See Al-Taysir p. 75. WWW.NAFSEISLAM.COM (2) This is the recitation of Hamzah and Al-Kisa'i from the people of Kufa. See Al-Sab'ah p. 167, and Al-Taysir p. 75. And Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. (3) The verse is in Ma'ani al-Qur'an by Al-Zajjaj 1/180, and in Hujjat al-Qira'at by Ibn Zanjalah p. 107 without attribution. Ibn Hisham attributed it in the commentary on 'Banat Su'ad' p. 55, Al-Samin in Al-Durr al-Masun 2/19, and Ibn Adil in Al-Lubab 2/311 to Hassan bin Thabit. Al-Baghdadi mentioned in Khizanat al-Adab 1/416 that Al-Saghani attributed it to Ka'b bin Malik, and corrected those who attributed it to Hassan bin Thabit. (4) Al-Sab'ah p. 166, and Al-Taysir p. 75, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. (5) Al-Muhtasib 1/97, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. Ibn Atiyyah said: 'Jabral' is a dialect of it, meaning with a doubled 'lam', as mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 8 and attributed it to Yahya bin Ya'mar. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/183, and Ibn Khalawayh attributed it in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 8 to Fayyad

and Al-Hasan. (7) Al-Muhtasib 1/97, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. (8) With an 'alif' after the 'ra', as restricted by Ibn Jinni in Al-Muhtasib 1/97, and Abu Hayyan in Al-Bahr 1/318. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. Ibn Jinni attributed it in Al-Muhtasib 1/97 to Al-A'mash. He said in 1/98: It is strengthened in my soul that it is a lightened hamza and it is broken, so it was hidden and approached the 'ya', so the reciters expressed it with 'ya'.

२६३ सूरह अल-बकरा: आयत ९८

दूसरा: जप्रयल (جَبْرَيَل), 'जीम' पर फ़तह के साथ, जो अल-हसन और इब्न कसीर का पाठ है। इब्न कसीर से यह रिवायत है कि उन्होंने कहा: "मैंने पैगंबर ﷺ को सपने में देखा जब वे पढ़ रहे थे: जप्रयल और मिकाल (१), इसलिए मैं उन्हें हमेशा इसी तरह पढ़ता रहूँगा।"

तीसरा: जप्रैल (جَبْرَئِيل), हमजा के बाद 'या' के साथ, 'جبرعيل' (जप्रअील) के उदाहरण की तरह, जैसा कि कूफ़ा के लोगों ने पढ़ा (२)। उन्होंने गाया: हमने गवाही दी कि समय के दौरान कोई भी बटालियन हमसे नहीं मिलती है सिवाय इसके कि जप्रैल उसके आगे होता है (३)। यह तमीम और कैस की बोली है।

चौथा: जप्रैल (جَبْرَئِل) - 'جَبْرَعِل' के वज़न पर - संक्षिप्त, और यह आसिम से अबू बक्र का पाठ है (४)।

पांचवां: इसी के समान, और यह यह्या बिन यमर का पाठ है, सिवाय इसके कि उन्होंने 'लाम' पर तशदीद दी है (५)।

छठा: जप्रैल (جَبْرَائيل), 'रा' के बाद 'अलिफ' फिर हमजा के साथ; और इकरामा ने इसके साथ पाठ किया (६)।

सातवां: इसी के समान, सिवाय इसके कि हमजा के बाद एक 'या' है (७)।

आठवां: जप्रायल (جَبْرَاييل), बिना हमजा के दो 'या' के साथ (८), और अल-अमश और यह्या बिन यमर ने भी इसके साथ पाठ किया (९)।

---

(१) (ज़) और (ज़ॉ) में: मकाबिल, (म) में: मिकाईल, और (द) और (ख) में जो पुष्टि की गई है, वह अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३ और अल-फ़ारसी के लिए अल-हुज्जाह २/१६३ के साथ मेल खाता है। इब्न मुजाहिद ने अल-सब'आ पृष्ठ १६६ में रिपोर्ट का उल्लेख किया है, जिसमें कहा गया है: मिकाईल। अल-तयसीर पृष्ठ ७५ देखें। WWW.NAFSEISLAM.COM (२) यह कूफ़ा के लोगों से हमज़ा और अल-किसा'ई का पाठ है। अल-सब'आ पृष्ठ १६७ और अल-तयसीर पृष्ठ ७५ देखें। और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३। (३) यह पद्य अल-ज़ज्जाज १/१८० द्वारा 'मा'नी अल-कुरान' में है, और इब्न जंजला पृष्ठ १०७ द्वारा 'हुज्जत अल-क़िरात' में बिना श्रेय के है। इब्न हिशम ने 'बनत सुअद' पृष्ठ ५५ की व्याख्या में, अल-समिन ने 'अल-दुर अल-मसून' २/१९ में, और इब्न आदिल ने 'अल-लुबाब' २/३११ में इसे हसान

बिन साबित को श्रेय दिया है। अल-बगदादी ने 'खिजानत अल-अदब' १/४१६ में उल्लेख किया कि अल-सघानी ने इसे काब बिन मलिक को श्रेय दिया, और उन लोगों को सुधारा जिन्होंने इसे हसान बिन साबित को श्रेय दिया। (४) अल-सब'आ पृष्ठ १६६, अल-तयसीर पृष्ठ ७५, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३। (५) अल-मुहतासिब १/९७, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३। इब्न अतिया ने कहा: 'जप्रल' इसकी एक बोली है, जिसका अर्थ है दोहरी 'लाम' के साथ, जैसा कि इब्न खालवेह ने 'अल-किरात अल-शाज्जाह' पृष्ठ ८ में उल्लेख किया है और इसे यह्या बिन यमर को श्रेय दिया है। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३, और इब्न खालवेह ने 'अल-किरात अल-शाज्जाह' पृष्ठ ८ में इसे फैयाद और अल-हसन को श्रेय दिया। (७) अल-मुहतासिब १/९७, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३। (८) 'रा' के बाद एक 'अलिफ' के साथ, जैसा कि इब्न जिन्नी ने अल-मुहतासिब १/९७ में और अबू हयान ने 'अल-बह्र' १/३१८ में प्रतिबंधित किया है। (९) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८३। इब्न जिन्नी ने अल-मुहतासिब १/९७ में इसे अल-अमश को श्रेय दिया। उन्होंने १/९८ में कहा: मेरी आत्मा में यह प्रबल है कि यह एक हल्की हमजा है और यह टूटी हुई है, इसलिए यह छिप गई और 'या' के करीब आ गई, इसलिए पाठकों ने इसे 'या' के साथ व्यक्त किया।

٢٦٣ سورہ البقرہ: آیت ٩٨

دوسری (صورت): جَبْرَيَل، جیم کے فتحہ کے ساتھ، یہ حسن اور ابن کثیر کی قرآت ہے، اور ابن کثیر سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: "میں نے نبی ﷺ کو خواب میں دیکھا کہ وہ جَبْرَيَل اور میکال پڑھ رہے تھے (١)، چنانچہ میں ہمیشہ ان دونوں کو اسی طرح پڑھتا رہوں گا۔"

تیسری: جَبْرَئِيل، ہمزہ کے بعد یاء کے ساتھ، جیسے 'جبرعیل'، جیسا کہ اہل کوفہ نے پڑھا ہے (٢)، اور انہوں نے یہ شعر پڑھا ہے: ہم نے گواہی دی کہ زمانے بھر میں کوئی لشکر ہم سے نہیں ٹکرایا مگر یہ کہ جبرئیل اس کے آگے تھا (٣)۔ اور یہ تمیم اور قیس کی لغت ہے۔

چوتھی: جَبْرَئِل - 'جَبْرَعِل' کے وزن پر - مقصور، اور یہ عاصم سے ابو بکر کی قرآت ہے (٤)۔

پانچویں: اسی طرح، اور یہ یحییٰ بن یعمر کی قرآت ہے، سوائے اس کے کہ انہوں نے لام کو مشدد پڑھا ہے (٥)۔

چھٹی: جَبْرَائيل، راء کے بعد الف پھر ہمزہ کے ساتھ؛ اور عکرمہ نے اسی طرح پڑھا ہے (٦)۔

ساتویں: اسی طرح، سوائے اس کے کہ ہمزہ کے بعد یاء ہے (٧)۔

آٹھویں: جَبْرَاييل، بغیر ہمزہ کے دو یاء کے ساتھ (٨)، اور اعمش اور یحییٰ بن یعمر نے بھی اسی طرح پڑھا ہے (٩)۔

---

(١) (ز) اور (ظ) میں: مکابیل، (م) میں: میکائیل، اور (د) اور (خ) میں جو ثابت ہے، وہ 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١ اور الفارسی کی 'الحجة' ١٦٣/٢ کے موافق ہے۔ ابن مجاهد نے 'السبعة' ص١٦٦ میں اس خبر کا ذکر کیا ہے، جس میں آیا ہے: میکائیل۔ دیکھئے 'التیسیر' ص٧٥۔

WWW.NAFSEISLAM.COM (٢) یہ اہل کوفہ میں سے حمزہ اور الکسائی کی قرآت ہے۔ دیکھئے 'السبعة' ص١٦٧، اور 'التیسیر' ص٧٥۔ اور 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١۔ (٣) یہ شعر الزجاج کی 'معاني القرآن' ١٨٠/١ میں ہے، اور ابن زنجلہ کی 'حجة القراءات' ص١٠٧ میں بغیر نسبت کے ہے، ابن ہشام نے اسے 'بانت سعاد' کی شرح ص٥٥ میں، السمین نے 'الدر المصون' ١٩/٢ میں، اور ابن عادل نے 'اللباب' ٣١١/٢ میں حسان بن ثابت کی طرف منسوب کیا ہے۔ البغدادی نے 'خزانة الأدب' ٤١٦/١ میں ذکر کیا کہ الصاغانی نے اسے کعب بن مالک کی طرف منسوب کیا، اور حسان بن ثابت کی طرف منسوب کرنے والے کو غلط قرار دیا۔ (٤) 'السبعة' ص١٦٦، اور 'التیسیر' ص٧٥، اور 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١۔ (٥) 'المحتسب' ٩٧/١، اور 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١۔ ابن عطیہ نے کہا: 'جبرال' بھی اس کی ایک لغت ہے، یعنی لام کی تشدید کے ساتھ، جیسا کہ ابن خالویہ نے 'القراءات الشاذة' ص٨ میں ذکر کیا اور اسے یحییٰ بن یعمر کی طرف منسوب کیا۔ (٦) 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١، اور ابن خالویہ نے اسے 'القراءات الشاذة' ص٨ میں فیاض اور الحسن کی طرف منسوب کیا۔ (٧) 'المحتسب' ٩٧/١، اور 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١۔ (٨) راء کے بعد الف کے ساتھ، جیسا کہ ابن جنی نے 'المحتسب' ٩٧/١ میں اور ابو حیان نے 'البحر' ٣١٨/١ میں اسے مقید کیا ہے۔ (٩) 'المحرر الوجیز' ١٨٣/١۔ ابن جنی نے 'المحتسب' ٩٧/١ میں اسے اعمش کی طرف منسوب کیا۔ اور ٩٨/١ میں کہا: میرے نزدیک یہ قوی ہے کہ یہ ہمزہ مخففہ ہے اور وہ مکسور ہے، پس وہ پوشیدہ ہو کر یاء کے قریب ہو گئی، چنانچہ قراء نے اسے یاء سے تعبیر کیا۔

264 Surah Al-Baqarah: Verse 98

Ninth: Jibra'in (جَبْرَئِين), with a 'fatha' on the 'Jeem' and a 'hamza' with 'kasra', followed by 'Ya' and 'Noon'(1). Tenth: Jibreen (جِبْرِين), with a 'kasra' on the 'Jeem' and a 'sukun' on the 'Ya' with 'Noon', without a 'hamza'; it is the dialect of Bani Asad(2). Al-Tabari said: It was not recited with it(3). Al-Nahhas said - mentioning the recitation of Ibn Kathir -: The form 'fa'leel' (فَعْلِيل) is not known in the speech of the Arabs, but 'fi'leel' (فِعْلِيل) is, such as 'dihleez', 'qitmeer', and 'birteel'. It is not denied that in the speech of foreigners there is what has no parallel in the speech of the Arabs, nor(4) is it denied that its changes are many, as they said: Ibrahim, Ibraham, Ibrahum(5), and Ibrahaam(6). Others said: Jibril is a non-Arab name that the Arabs Arabized, so it has these variations, and for that reason, it is indeclinable (diptote)(7). I say: It has already been mentioned at the beginning of the book(8) that the correct view is that these words are Arabic, brought down by Jibril in a clear Arabic tongue. Al-Nahhas(9) said: The plural of Jibril in broken form is Jabareel. As for the variations in 'Mika'il', they are six: First: Mika'al(10): the recitation of Nafi'. And 'Mika'il', with a 'Ya' after the 'hamza': the recitation of Hamzah(11).

(1) We did not find it. (2) Tafsir al-Tabari 2/295, and I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/250. Ibn Khalawayh attributed it in 'Al-Qira'at al-Shadhah' (The Anomalous Recitations), p. 8, to some Arabs. (3) The author quoted al-Tabari's statement via Ibn Atiyyah in 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/183. We did not find al-Tabari's words in his Tafsir on this recitation; he spoke on the recitation of Ibn Kathir. (4) In (m): "and not". (5) With the three vowels on the 'Ha', as in 'Al-Qamus'. (6) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/250, and also see the words of Abu Hayyan in 'Al-Bahr' 1/318 in response to those who criticized this recitation of Ibn Kathir. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/183. (8) 1/110. (9) I'rab al-Qur'an 1/251. (10) In the manuscripts: 'Mika'il', and in (m): 'Mikabil'. What is established is correct, as in 'Al-Sab'ah' p. 166, 'Al-Taysir' p. 75, 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/184, and others. It is also the recitation of Abu Ja'far from the Ten. See 'Al-Nashr' 2/219. (11) 'Al-Sab'ah' p. 167, and 'Al-Muharrar al-Wajiz' 1/184. Ibn Kathir, Ibn 'Amir, Shu'bah from 'Asim, and al-Kisa'i from the Seven, and Khalaf from the Ten also recited it. See 'Al-Taysir' p. 75, and 'Al-Nashr' 2/219.

पृष्ठ 264 सूरह अल-बकरा: आयत 98

नौवीं: जबरईन (جَبْرَئِين), 'जीम' पर 'फ़त्हा' के साथ और 'हमज़ा' पर 'कसरह' के साथ, उसके बाद 'या' और 'नून' है(1)। दसवीं: जिब्रीन (جِبْرِين), 'जीम' पर 'कसरह' के साथ और 'या' को साकिन रखते हुए 'नून' के साथ, बिना 'हमज़ा' के; यह बनी असद की भाषा है(2)। अल-तबरी ने कहा: इसे इस तरह नहीं पढ़ा गया है(3)। अल-नह़ास ने इब्न कसीर के पढ़ने का ज़िक्र करते हुए कहा: अरबों की भाषा में 'फ'लील' (فَعْلِيل) ज्ञात नहीं है, जबकि 'फ़ि'लील' (فِعْلِيل) है, जैसे 'दिहलीज़', 'क़ि़तमीर' और 'बिरत़ील'। यह नकारा नहीं जा सकता कि अजनबियों (ग़ैर-अरबों) की भाषा में वह सब हो सकता है जिसका अरबों की भाषा में कोई समांतर नहीं है, और न ही(4) यह नकारा जा सकता है कि इसमें कई बदलाव होते हैं, जैसा कि उन्होंने कहा: इब्राहिम, इबराह़म, इबराहुम(5), और इब्राह़ाम(6)। दूसरों ने कहा: जिब्रील एक विदेशी नाम है जिसे अरबों ने अरबी बना लिया, इसलिए इसमें ये बोलियाँ हैं, और इसी कारण यह 'ममनू'अ़ मिनस़ स़र्फ़ (अपरिवर्तनीय) है(7)। मैं कहता हूँ: पुस्तक के प्रारंभ में यह बात पहले ही बताई जा चुकी है(8) कि सही बात यह है कि ये शब्द अरबी हैं, जिन्हें जिब्रील एक स्पष्ट अरबी भाषा में लेकर उतरे। अल-नह़ास(9) ने कहा: जिब्रील का बहुवचन 'जराबिल' आता है। जहाँ तक मीकाईल में प्रचलित बोलियों का सवाल है, वे छह हैं: पहली: मीकाअल(10): नाफ़े की किराअत। और मीकाईल, हमज़ा के बाद 'या' के साथ: ह़मज़ह की किराअत(11)।

(1) हमें इसकी जानकारी नहीं मिली। (2) तफ़सीर अल-तबरी 2/295, और इ'राब अल-कुरान अल-नह़ास 1/250। इब्न खालवैह ने इसे 'अल-किराअत अल-शाज़ह' (असाधारण पाठ), पृ. 8 में कुछ अरबों की ओर समर्पित किया है। (3) लेखक ने अल-तबरी के कथन को इब्न अतिय्या के माध्यम से 'अल-मुह़र्रर अल-वजीज़' 1/183 में उद्धृत किया है। हमें अपनी तफ़सीर में इस पाठ पर अल-तबरी के शब्द नहीं मिले; उन्होंने इब्न कसीर के पाठ पर बात की है। (4) (म) में: "और नहीं"। (5) 'ह़ा' पर तीन हरकात के साथ, जैसा कि 'अल-क़ामूस' में है। (6) इ'राब अल-कुरान अल-नह़ास 1/250, और इब्न कसीर के इस पाठ की आलोचना करने वालों के जवाब में 'अल-बह़र' 1/318 में अबू ह़य्यान के शब्दों को भी देखें। (7) अल-मुह़र्रर अल-वजीज़ 1/183। (8) 1/110। (9) इ'राब अल-कुरान 1/251। (10) पांडुलिपियों में: 'मीकाईल', और (म) में: 'मीकाबिल'। जो स्थापित है वह सही है, जैसा कि 'अल-सब'आ' पृ. 166, 'अल-तयसीर' पृ. 75, 'अल-मुह़र्रर अल-वजीज़' 1/184, और अन्य में है। यह दस में से अबू जाफर का पाठ भी है। देखें 'अल-नश्र' 2/219। (11) 'अल-सब'आ' पृ. 167, और 'अल-मुह़र्रर

अल-वजीज़' 1/184। इब्न कसीर, इब्न आमिर, आसिम से शुबाह, और सात में से अल-किसाई ने भी इसे पढ़ा है, और दस में से खलफ ने भी। देखें 'अल-तयसीर' पृ. 75, और 'अल-नश्र' 2/219।

صفحہ ٢٦٤ سورة البقرہ: آیت ٩٨

نویں: جَبْرَئِین، 'جیم' کے فتحہ (زبر) اور 'ہمزہ' کے کسرہ (زیر) کے ساتھ، اس کے بعد 'یاء' اور 'نون' ہے(١)۔ دسویں: جِبْرِین، 'جیم' کے کسرہ اور 'یاء' کے سکون کے ساتھ بغیر ہمزہ کے؛ یہ بنی اسد کی لغت ہے(٢)۔ طبری نے کہا: اس کے ساتھ نہیں پڑھا گیا(٣)۔ النحاس نے - ابن کثیر کی قرات کا ذکر کرتے ہوئے - کہا: عربوں کے کلام میں 'فَعْلِیل' کا وزن نہیں جانا جاتا، جبکہ 'فِعْلِیل' موجود ہے، جیسے دہلیز، قطمیر اور برطیل۔ یہ بات بعید نہیں کہ غیر عرب کلام میں ایسی چیزیں ہوں جن کی عربوں کے کلام میں کوئی نظیر نہ ہو، اور نہ ہی(٤) اس بات کا انکار کیا جا سکتا ہے کہ اس میں بہت زیادہ تبدیلیاں ہوتی ہیں، جیسا کہ انہوں نے کہا: ابراھیم، ابراھَم، ابراھُم(٥) اور ابراھام(٦)۔ دوسروں نے کہا: جبریل ایک عجمی (غیر عربی) نام ہے جسے عربوں نے معرب کر لیا (عربی رنگ میں ڈھال لیا)، اس لیے اس میں یہ لغات پائی جاتی ہیں، اور اسی وجہ سے یہ غیر منصرف ہے(٧)۔ میں کہتا ہوں: کتاب کے شروع میں(٨) یہ بات گزر چکی ہے کہ صحیح یہ ہے کہ یہ الفاظ عربی ہیں، جبریل انہیں واضح عربی زبان میں لے کر اترے۔ النحاس(٩) نے کہا: جبریل کی جمع مکسر 'جباریل' آتی ہے۔ جہاں تک میکائیل کی لغات کا تعلق ہے، وہ چھ ہیں: پہلی: میکائل(١٠): نافع کی قرات۔ اور میکائیل، ہمزہ کے بعد 'یاء' کے ساتھ: حمزہ کی قرات(١١)۔

(١) ہمیں اس کی اطلاع نہیں ملی۔ (٢) تفسیر طبری ٢ / ٢٩٥، اور اعراب القرآن للنحاس ١ / ٢٥٠، اور ابن خالویہ نے اسے 'القراءات الشاذة' ص ٨ میں بعض عربوں کی طرف منسوب کیا ہے۔ (٣) مصنف نے طبری کا قول ابن عطیہ کے واسطے سے 'المحرر الوجیز' ١ / ١٨٣ میں نقل کیا ہے، ہمیں طبری کی اپنی تفسیر میں اس قرات پر ان کا کلام نہیں ملا، البتہ انہوں نے ابن کثیر کی قرات پر گفتگو کی ہے۔ (٤) (م) میں: "ولیس" (اور نہیں)۔ (٥) 'ھ' کی تینوں حرکات کے ساتھ، جیسا کہ

القاموس میں ہے۔ (٦) اعراب القرآن للنحاس ١ / ٢٥٠، نیز ابو حیان کا کلام 'البحر' ١ / ٣١٨ میں دیکھیں جنہوں نے ابن کثیر کی اس قرات پر اعتراض کرنے والوں کو جواب دیا ہے۔ (٧) المحرر الوجیز ١ / ١٨٣۔ (٨) ١ / ١١٠۔ (٩) اعراب القرآن ١ / ٢٥١۔ (١٠) قلمی نسخوں میں: 'میکائیل'، اور (م) میں: 'میکابیل'۔ جو ثابت ہے وہی درست ہے، جیسا کہ 'السبعة' ص ١٦٦، 'التیسیر' ص ٧٥، 'المحرر الوجیز' ١ / ١٨٤ اور دیگر میں ہے۔ یہ دس میں سے ابو جعفر کی بھی قرات ہے۔ دیکھیے 'النشر' ٢ / ٢١٩۔ (١١) 'السبعة' ص ١٦٧، اور 'المحرر الوجیز' ١ / ١٨٤۔ ابن کثیر، ابن عامر، عاصم سے شعبہ، اور سات میں سے الکسائی نے بھی اسے پڑھا ہے، اور دس میں سے خلف نے بھی۔ دیکھیے 'التیسیر' ص ٧٥، اور 'النشر' ٢ / ٢١٩۔

Surah Al-Baqarah: Verse 98 265

Mikal: The dialect of the people of Hejaz, and it is the recitation of Abu Amr, and Hafs from Asim (1). And it is narrated from Ibn Kathir in three ways (2). Ka'b ibn Malik said (3): And on the day of Badr, we met you, we had support, in it, along with victory, were Mikal and Jibril. And another said (4): They worshipped the cross and belied Muhammad, and Jibril, and they belied Mikala. The fourth dialect: Mik'il, like: Mik'al, and it is the recitation of Ibn Muhaysin (5). The fifth: Mikayil, with two 'Ya's, and it is the recitation of Al-A'mash with variation from him (6). The sixth: Mika'al; as it is said: Isra'al with a fatha on the hamza, and it is a non-Arabic name, therefore it is indeclinable (7). Ibn Abbas mentioned that "Jabr," "Mika," and "Israf" are all in non-Arabic meaning 'slave' and 'servant.' And "Il": is the name of Allah Almighty (8); from it is the saying of Abu Bakr Al-Siddiq, may Allah be pleased with him, when he heard the rhymed prose of Musaylima: "This is speech that did not come from an Il (9);" and in the revelation: {They do not observe toward a believer any kinship (ill) or treaty} [At-Tawbah: 10], in one of the two interpretations, and it will come. Al-Mawardi said (10): Indeed...

(1) Al-Sab'ah p. 166, Al-Taysir p. 75, I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/251, and Al-Muharrar 1/184, and it is also the recitation of Ya'qub from the ten, as in Al-Nashr 2/219. (2) But what is famous from him is: Mika'il, as previously mentioned, and it is what Ibn Mujahid mentioned in Al-Sab'ah p. 166, and Ibn Atiyyah mentioned for him 1/183, and Abu Ali al-Farisi in Al-Hujjah 2/163 as a narration: and Mikal, in the context of a report mentioned by the author shortly, and Ibn Mujahid and Abu Ali also mentioned for him a narration: Mik'al, like the recitation of Nafi'. (3) The verse is in Al-Sirah by Ibn Hisham 3/147 within a poem, and Al-Hujjah for Al-Farisi 2/168, and it is in Hujjat al-Qira'at by Ibn Zanjalah p. 108 without attribution, and it occurred in Hassan's Diwan p. 204 separately. (4) The speaker is Jarir, and the verse is in his Diwan p. 361, and Al-Tabari cited it 2/295, and Abu Ali in Al-Hujjah 2/167. (5) Meaning with a hamza without an alif, as restricted by Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/184, and Ibn Khalawayh mentioned it in Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 8, and Ibn Jinni added its attribution in Al-Muhtasib 1/97 to Al-A'raj. (6) Al-Muhtasib 1/97, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/184. (7) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/251. (8) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/296. (9) Cited by Al-Tabari in his Tafsir 2/298. (10) Al-Nukat wa al-Uyun 1/163.

सूरह अल-बक़रह: आयत 98 265

मीकाल: हिजाज़ के लोगों की भाषा, और यह अबू अम्र और आसिम से हफ़्स की क़िरात (पठन) है (1)। और इब्न कसीर से इसके तीन रूप वर्णित हैं (2)। काब बिन मालिक ने कहा (3): और बद्र के दिन हम तुमसे मिले, हमारे पास सहायता थी, उसमें जीत के साथ मीकाल और जिब्रील थे। और एक अन्य ने कहा (4): उन्होंने सलीब की पूजा की और मुहम्मद को झुठलाया, और जिब्रील को, और उन्होंने मीकाल को झुठलाया। चौथी भाषा: मीकइल, जैसे: मीकअल, और यह इब्न मुहैसिन की क़िरात है (5)। पांचवीं: मीकायिल, दो 'या' के साथ, और यह अल-आमश की क़िरात है जिसमें उनसे मतभेद है (6)। छठी: मीकाअल; जैसे कहा जाता है: इसराअल हमज़ा पर फ़तहा के साथ, और यह एक गैर-अरबी नाम है, इसलिए यह अव्यय (गैर-तसर्रुफ़) है (7)। इब्न अब्बास ने उल्लेख किया कि "जब्र", "मीका" और "इसराफ़" सभी गैर-अरबी भाषा में 'दास' और 'सेवक' के अर्थ में हैं। और "ईल": अल्लाह तआला का नाम है (8); इसी से अबू बक्र सिद्दीक़ रज़ियल्लाहु अन्हु का कथन है जब उन्होंने मुसैलमा की तुकबंदी सुनी: "यह वह बात है जो किसी 'इल्ल' (रब) से नहीं निकली (9)"; और ईश्वरीय वाणी में: {वे किसी मोमिन के बारे में न तो नातेदारी (इल्ल) का लिहाज़ करते हैं और न ही किसी संधि का} [अत-तौबा: 10], दो व्याख्याओं में से एक में, और यह आगे आएगा। अल-मावरदी ने कहा (10): बेशक...

(1) अल-सबआ पृष्ठ 166, अल-तयसीर पृष्ठ 75, नहहास द्वारा एराब अल-क़ुरआन 1/251, और अल-मुहर्रर 1/184, और यह दस में से याकूब की क़िरात भी है। जैसा कि अल-नश्र 2/219 में है। (2) लेकिन उनके बारे में जो प्रसिद्ध है वह है: मीकाईल, जैसा कि पहले बताया गया है, और यही इब्न मुजाहिद ने अल-सबआ पृष्ठ 166 में उल्लेख किया है, और इब्न अतिय्या ने उनके लिए 1/183 में उल्लेख किया है, और अबू अली अल-फ़ारसी ने अल-हुज्जाह 2/163 में एक रिवायत के रूप में: और मीकाल, लेखक द्वारा जल्द ही उल्लेखित एक रिपोर्ट के संदर्भ में, और इब्न मुजाहिद और अबू अली ने उनके लिए एक रिवायत का भी उल्लेख किया है: मीकअल, नाफ़े की क़िरात की तरह। (3) यह शेर इब्न हिशाम की अल-सीराह 3/147 में एक कविता के भीतर है, और अल-फ़ारसी के लिए अल-हुज्जाह 2/168 में, और यह इब्न ज़ंजला द्वारा हुज्जत अल-क़िरात पृष्ठ 108 में बिना किसी संबंध के है, और हसन के दीवान पृष्ठ 204 में अलग से आया है। (4) कहने वाले जरीर हैं, और शेर उनके दीवान पृष्ठ 361 में है, और अल-तबरी ने इसे 2/295 में उद्धृत किया है, और अबू अली ने अल-हुज्जाह 2/167 में। (5) यानी अलिफ़ के बिना हमज़ा के साथ, जैसा कि इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-

वजीज़ 1/184 में सीमित किया है, और इब्न खलवैय ने अल-क़िरात अल-शाज़्ह पृष्ठ 8 में इसका उल्लेख किया है, और इब्न जिन्नी ने अल-मुहतसिब 1/97 में अल-आरज की ओर इसके जुड़ाव को जोड़ा। (6) अल-मुहतसिब 1/97, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/184। (7) नहहास द्वारा एराब अल-क़ुरआन 1/251। (8) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/296 में निकाला है। (9) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/298 में उद्धृत किया है। (10) अल-नुक़त वल-उयून 1/163।

سورہ البقرہ: آیت 98 265

میکال: اہل حجاز کی لغت، اور یہ ابوعمرو اور عاصم سے حفص کی قرات ہے (1)۔ اور ابن کثیر سے تین پہلو مروی ہیں (2)۔ کعب بن مالک نے کہا (3): اور بدر کے دن ہم تم سے ملے، ہمارے پاس مدد تھی، اس میں فتح کے ساتھ میکال اور جبریل تھے۔ اور دوسرے نے کہا (4): انہوں نے صلیب کی عبادت کی اور محمد کو جھٹلایا، اور جبرئیل کو، اور انہوں نے میکال کو جھٹلایا۔ چوتھی لغت: میکئل، جیسے: میکعل، اور یہ ابن محیصن کی قرات ہے (5)۔ پانچویں: میکاییل، دو 'یا' کے ساتھ، اور یہ اعمش کی قرات ہے جس میں ان سے اختلاف ہے (6)۔ چھٹی: میکاعل؛ جیسا کہ کہا جاتا ہے: اسراعل ہمزہ مفتوحہ کے ساتھ، اور یہ ایک عجمی نام ہے، اس لیے یہ غیر منصرف ہے (7)۔ ابن عباس نے ذکر کیا کہ "جبر" اور "میکا" اور "اسراف" یہ سب عجمی میں بندہ اور غلام کے معنی میں ہیں۔ اور "ایل": اللہ تعالیٰ کا نام ہے (8)؛ اسی سے ابوبکر صدیق رضی اللہ عنہ کا قول ہے جب انہوں نے مسیلمہ کا سجع سنا: "یہ ایسی کلام ہے جو کسی الّ (رب) سے نہیں نکلی (9)"؛ اور تنزیل میں ہے: ﴿ وہ کسی مومن کے بارے میں نہ تو قرابت (الّ) کا لحاظ کرتے ہیں اور نہ ہی عہد کا ﴾ [التوبہ: 10]، دو تاویلوں میں سے ایک میں، اور یہ آگے آئے گا۔ الماوردی نے کہا (10): بے شک...

(1) السبعة ص 166، والتيسير ص 75، وإعراب القرآن للنحاس 251/1، والمحرر 184/1، اور یہ دس میں سے یعقوب کی بھی قرات ہے۔ جیسا کہ النشر 219/2 میں ہے۔ (2) لیکن ان سے جو مشہور ہے وہ ہے: میکائیل، جیسا کہ پہلے گزرا، اور یہی ابن مجاہد نے السبعة ص 166 میں ذکر کیا ہے، اور ابن عطیہ نے ان کے لیے 183/1 میں ذکر کیا ہے، اور ابوعلی الفارسی نے الحجة 163/2 میں ایک روایت کے طور پر: اور میکال، ایک ایسی رپورٹ کے سیاق میں جس کا ذکر

مصنف عنقریب کریں گے، اور ابن مجاہد اور ابوعلی نے ان کے لیے ایک روایت یہ بھی ذکر کی ہے: میکائل، جیسے نافع کی قرات ہے۔ (3) یہ شعر السیرة لابن هشام 147/3 میں ایک قصیدے کے ضمن میں ہے، اور الحجة للفارسي 168/2 میں ہے، اور یہ حجة القراءات لابن زنجلة ص 108 میں بغیر کسی نسبت کے ہے، اور دیوان حسان ص 204 میں مفرد طور پر واقع ہوا ہے۔ (4) کہنے والے جریر ہیں، اور شعر ان کے دیوان ص 361 میں ہے، اور طبری نے اسے 295/2 میں نقل کیا ہے، اور ابوعلی نے الحجة 167/2 میں۔ (5) یعنی الف کے بغیر ہمزہ کے ساتھ، جیسا کہ ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 184/1 میں مقید کیا ہے، اور ابن خالویہ نے اسے القراءات الشاذة ص 8 میں ذکر کیا ہے، اور ابن جنی نے المحتسب 97/1 میں اس کی نسبت الاعرج کی طرف زیادہ کی ہے۔ (6) المحتسب 97/1، والمحرر الوجیز 184/1۔ (7) إعراب القرآن للنحاس 251/1۔ (8) طبری نے اسے اپنی تفسیر 296/2 میں نقل کیا ہے۔ (9) طبری نے اسے اپنی تفسیر 298/2 میں نقل کیا ہے۔ (10) النکت والعیون 163/1۔

Page 266 Surah Al-Baqarah: Verses 99, 100

Gabriel and Michael are two names; one of them is "Abdullah" (servant of Allah), and the other is "Ubaydullah" (little servant of Allah); because "Il" is Allah Almighty, and "Jabr" is servant, and "Mika" is little servant; so Gabriel was: Servant of Allah, and Michael was: Little servant of Allah. This is the saying of Ibn Abbas, and there is no disagreement among the commentators. I said: Some commentators added: and Israfil is "Abd al-Rahman" (servant of the Most Merciful) (1). Al-Nahhas said (2): And whoever interpreted the hadith that "Jabr" is servant and "Il" is Allah, he must say: This is Jabru-Il, and I saw Jabra-Il, and I passed by Jabri-Il [inflecting the name like a possessive construction], and this is not said, so it is necessary that the meaning of the hadith is that he is named this. Others said: If it were as they said, it would be declinable (munsarif), so leaving out the declension (tark al-sarf) indicates that it is a single, non-compound name. Abd al-Ghani Al-Hafiz narrated from the hadith of Aflat ibn Khalifa – who is Fulayt al-Amiri, and he is Abu Hassan – from Jasra bint Dajaja from Aisha, may Allah be pleased with her, who said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) said: "O Allah, Lord of Gabriel, Michael, and Israfil, I seek refuge in You from the heat of the fire and the punishment of the grave" (3). The Almighty's saying: {And We have certainly sent down to you verses [which are] clear signs, and no one would deny them except the defiantly disobedient. (99)} Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both, said: This is a response to Ibn Souriya when he said to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him): O Muhammad, you have not brought us anything we know, and no clear sign has been sent down to you so that we may follow you. So Allah sent down this verse, as mentioned by Al-Tabari (4). The Almighty's saying: {Is it not [true] that every time they took a covenant, a party of them threw it away? But most of them do not believe. (100)} The Almighty's saying: {Is it not [true] that every time they took a covenant} The "waw" is the conjunction waw, and the "alif" [of interrogation] entered upon it.

Footnotes: (1) Narrated by Al-Tabari 2/297 from the saying of Ali ibn al-Husayn, may Allah be pleased with him. (2) I'rab al-Qur'an 1/250, 252. (3) Narrated by Ahmad (24324), Al-Nasa'i in Al-Mujtaba 3/72, and in Al-Kubra (1269), Al-Bayhaqi in Ithbat 'Adhab al-Qabr (181), and in Ad-Da'awat al-Kabir (109), and Al-Khatib in Mawdih Awham al-Jam' wa al-Tafriq 1/486. Jasra, the narrator of the hadith from Aisha, Bukhari said about her in Al-Tarikh al-Kabir 2/67: "She has wonders." (4) In his Tafsir 2/305, and it was also mentioned by Ibn Hisham in the Sirah 1/548 and Al-Wahidi in

Al-Wasit 1/180, and Asbab al-Nuzul p. 21, and what is mentioned by Ibn Hisham is that the speaker was Abu Saluba al-Fatyuni.

पृष्ठ २६६ सूरा अल-बकरा: आयतें ९९, १००

जिब्रईल और मीकाईल दो नाम हैं; उनमें से एक 'अब्दुल्लाह' (अल्लाह का बंदा) है, और दूसरा 'उबैदुल्लाह' (अल्लाह का छोटा बंदा) है; क्योंकि "इल" का अर्थ अल्लाह तआला है, और "जब्र" का अर्थ बंदा है, और "मीका" का अर्थ छोटा बंदा है; तो जिब्रईल हुए: अल्लाह के बंदे, और मीकाईल हुए: अल्लाह के छोटे बंदे। यह इब्न अब्बास का कथन है, और मुफस्सिरीन (टीकाकारों) के बीच इसमें कोई मतभेद नहीं है। मैंने कहा: कुछ टीकाकारों ने इसमें यह भी जोड़ा है कि इसराफ़ील 'अब्दुर्रहमान' (रहमान का बंदा) हैं (१)। अल-नह़्ह़ास ने कहा (२): और जिस किसी ने हदीस की इस तरह व्याख्या की कि "जब्र" बंदा है और "इल" अल्लाह, तो उसे कहना चाहिए था: यह 'जब्रू-इल' है, और मैंने 'जब्रा-इल' देखा, और मैं 'जब्री-इल' के पास से गुजरा [नाम को विभक्तियों के साथ जोड़ना], जबकि ऐसा नहीं कहा जाता, इसलिए यह अनिवार्य है कि हदीस का अर्थ यह हो कि उनका यह नाम रखा गया है। अन्यों ने कहा: यदि यह वैसा ही होता जैसा उन्होंने कहा, तो यह 'मुनसरिफ़' (विभक्ति ग्रहण करने वाला) होता, अतः इसका 'ग़ैर-मुनसरिफ़' होना इस बात का प्रमाण है कि यह एक एकल, गैर-मिश्रित नाम है। अब्दुल ग़नी अल-हाफिज़ ने अफ्लत बिन खलीफा की हदीस से रिवायत की - और वे फ़ुलैत अल-आमरी हैं, और वे अबू हसन हैं - उन्होंने जसरा बिंत दजाजा से, उन्होंने आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने दुआ की: "ऐ अल्लाह, जिब्रईल, मीकाईल और इसराफ़ील के रब, मैं आग की गर्मी और कब्र के अज़ाब से तेरी पनाह माँगता हूँ" (३)। अल्लाह तआला का फरमान है: {और हमने यकीनन तुम्हारी तरफ स्पष्ट आयतें (निशानियाँ) उतारी हैं, और उनका इनकार केवल वही करते हैं जो अवज्ञाकारी हैं (९९)}। इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने कहा: यह इब्न सौरिया को दिया गया उत्तर है जब उसने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कहा था: ऐ मुहम्मद, आप हमारे पास ऐसी कोई चीज़ लेकर नहीं आए जिसे हम पहचान सकें और आप पर कोई स्पष्ट आयत नहीं उतारी गई ताकि हम आपका अनुसरण करें। तब अल्लाह ने यह आयत उतारी, जैसा कि तबरी ने उल्लेख किया है (४)। अल्लाह तआला का फरमान है: {क्या ऐसा नहीं है कि जब भी उन्होंने कोई वादा किया, तो उनके एक समूह ने उसे तोड़ दिया? बल्कि उनमें से अधिकांश ईमान नहीं रखते (१००)}। अल्लाह तआला का फरमान: {क्या ऐसा नहीं है कि जब भी उन्होंने कोई वादा किया} इसमें "वाव" अत्फ़ (संयोजक) का है, जिस पर प्रश्नवाचक "अलिफ़" प्रविष्ट हुआ है।

पाद टिप्पणियाँ: (१) इसे तबरी २/२९७ ने अली बिन अल-हुसैन (रज़ियल्लाहु अन्हु) के कथन से उद्धृत किया है। (२) इराब अल-कुरान १/२५०, २५२। (३) इसे अहमद (२४३२४), अल-मुजतबा में नसाई ३/७२, और अल-कुबरा (१२६९) में, अल-बैहकी ने इस्बात अज़ाब अल-कब्र (१८१) में, और अद-दावात अल-कबीर (१०९) में, और खतीब ने मवदिह अवहाम अल-जम' व अल-तफ़रीक १/४८६ में उद्धृत किया है। जसरा, आयशा से हदीस की रावी हैं, बुखारी ने अल-तारीख अल-कबीर २/६७ में उनके बारे में कहा है: "उनके पास अजूबे हैं।" (४) उनकी तफ़सीर २/३०५ में, और इब्न हिशाम ने सीरत १/५४८ में और अल-वाहिदी ने अल-वसीत १/१८० में और अस्बाब अल-नुज़ूल पृ. २१ में भी इसका उल्लेख किया है, और इब्न हिशाम के अनुसार यह कहने वाला अबू सलुबा अल-फत्यूनी था।

صفحہ ۲۶۶ سورۃ البقرہ: آیات ۹۹، ۱۰۰

جبرئیل اور میکائیل دو نام ہیں؛ ان میں سے ایک عبد اللہ ہے، اور دوسرا عُبید اللہ؛ اس لیے کہ «ایل» اللہ تعالیٰ ہے، اور «جبر» عبد ہے، اور میکا عُبید ہے؛ پس جبرئیل: عبد اللہ، اور میکائیل: عُبید اللہ ہوئے۔ یہ ابن عباس کا قول ہے، اور مفسرین میں ان کا کوئی مخالف نہیں ہے۔ میں نے کہا: اور بعض مفسرین نے اضافہ کیا ہے: اور اسرافیل عبد الرحمن ہیں (۱)۔ النحاس نے کہا (۲): اور جس نے حدیث کی یہ تاویل کی کہ «جبر» عبد ہے اور «ایل» اللہ، تو اس پر لازم ہے کہ وہ کہے: یہ جبرُ ایل ہے، اور میں نے جبرَ ایل کو دیکھا اور میں جبرِ ایل کے پاس سے گزرا [نام کو مضاف مضاف الیہ کے طور پر استعمال کرنا]، اور یہ نہیں کہا جاتا، پس واجب ہے کہ حدیث کا معنی یہ ہو کہ وہ اس نام سے موسوم ہیں۔ دوسروں نے کہا: اگر یہ ویسا ہی ہوتا جیسا انہوں نے کہا، تو یہ منصرف ہوتا، پس ترکِ صرف اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ یہ ایک ہی مفرد نام ہے، مضاف نہیں ہے۔ اور عبد الغنی الحافظ نے افلت بن خلیفہ کی حدیث سے روایت کی - اور وہ فلیت العامری ہیں، اور وہ ابو حسان ہیں - انہوں نے جسرہ بنت دجاجہ سے، انہوں نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: «اے اللہ، جبرئیل، میکائیل اور اسرافیل کے رب، میں آگ کی تپش اور قبر کے عذاب سے تیری پناہ مانگتا ہوں» (۳)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿اور ہم نے یقیناً تمہاری طرف واضح نشانیاں نازل کیں اور ان کا انکار وہی لوگ کرتے ہیں جو نافرمان ہیں ۹۹﴾ ابن عباس رضی اللہ عنہما نے کہا: یہ ابن صوریا کا جواب ہے جب اس نے رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم سے کہا: اے محمد، آپ ہمارے پاس کوئی ایسی چیز نہیں لائے جسے ہم جانتے ہوں، اور آپ پر کوئی واضح نشانی نازل نہیں ہوئی کہ ہم اس کی اتباع کریں۔ تو اللہ نے یہ آیت نازل فرمائی، اسے طبری نے ذکر کیا ہے (۴)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿کیا ایسا

نہیں ہے کہ ষখনই انہوں نے کوئی عہد کیا تو ان میں سے ایک فریق نے اسے پھینک دیا؟ بلکہ ان میں سے اکثر ایمان نہیں لاتے ۱۰۰﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿کیا ایسا نہیں ہے کہ جب بھی انہوں نے کوئی عہد کیا﴾ واؤ عطف کا واؤ ہے، جس پر الف (استفہام) داخل ہوا ہے۔

حواشی: (۱) اسے طبری نے ۲/ ۲۹۷ پر علی بن الحسین رضی اللہ عنہ کے قول سے روایت کیا ہے۔ (۲) اعراب القرآن ۱/ ۲۵۰، ۲۵۲۔ (۳) اسے احمد (۲۴۳۲۴)، اور نسائی نے المجتبیٰ ۳/ ۷۲ میں، اور الکبریٰ (۱۲۶۹) میں، اور بیہقی نے اثبات عذاب القبر (۱۸۱) میں، اور الدعوات الکبیر (۱۰۹) میں، اور خطیب نے موضح اوہام الجمع والتفریق ۱/ ۴۸۶ میں روایت کیا ہے۔ اور جسرہ حضرت عائشہ سے حدیث کی راویہ ہیں، بخاری نے التاریخ الکبیر ۲/ ۶۷ میں ان کے بارے میں کہا: "ان کے پاس عجائبات ہیں۔" (۴) اپنی تفسیر ۲/ ۳۰۵ میں، اور اسے ابن ہشام نے سیرت ۱/ ۵۴۸ اور واحدی نے الوسیط ۱/ ۱۸۰ میں، اور اسباب النزول ص ۲۱ میں بھی ذکر کیا ہے، اور ابن ہشام کے ہاں یہ قول کہنے والا ابو صلوبا الفطیونی ہے۔

267 Surat Al-Baqarah: Verse 100

The interrogative [hamza] enters upon the [conjunction] 'fa' as in His saying: "Then is it the judgment of ignorance...?" [Al-Ma'idah: 50], "Is it then you who will make the deaf hear...?" [Yunus: 42], "Will you then take him and his progeny...?" [Al-Kahf: 50]. And upon 'thumma' (then) as in His saying: "Is it then that when it has happened...?" [Yunus: 51]. This is the opinion of Sibawayh. Al-Akhfash said: The 'waw' is redundant. The school of Al-Kisa'i is that it is 'aw' (or), and the 'waw' was vocalized for ease of pronunciation. A group of people recited it as 'aw', with a silent 'waw' (1), so it carries the meaning of 'bal' (rather), as a speaker might say: 'I will surely strike you,' and the respondent says: 'Or may God suffice.' Ibn Atiyyah said (2): All of this is forced (3), and the correct view is the saying of Sibawayh.

'Kullama' (whenever) is in the accusative case as an adverb of time. The person meant in the verse is Malik bin al-Sayf - also called Ibn al-Dayf - who had said: By Allah, no covenant was taken from us in our book to believe in Muhammad, nor a charter, so the verse was revealed (4).

It is said: The Jews made a covenant that if Muhammad emerged, they would believe in him and be with him against the polytheists of the Arabs; but when he was sent, they disbelieved in him (5).

Ata said (6): These are the covenants that were between the Prophet ﷺ and the Jews, which they broke, like the actions of Banu Qurayza and Banu Nadir. The evidence for this is the saying of the Almighty: "Those with whom you made a treaty, then they break their treaty every time, and they do not fear Allah." [Al-Anfal: 56].

His saying: "...a party of them threw it away" [Al-Baqarah: 100]. Al-nabdh (throwing away): to discard and cast away, from which comes 'nabidh' (date wine) and 'manbudh' (outcast). Abu al-Aswad said (7):

"And he whom I had sent informed me that indeed You took my letter, turning away with your left hand. You looked at its title and then threw it away As you would throw away a worn-out sandal from your sandals."

(1) Attributed by Ibn Khalawayh in 'The Deviant Recitations' p. 8, and by Ibn Jinni in 'Al-Muhtasib' 1/99 to Abu al-Sammal. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/185, and the author cited through him the words of Sibawayh and Al-Akhfash. See 'Al-Kitab' 3/188-189, 'Ma'ani al-Qur'an' by Al-Akhfash 1/326, and 'I'rab al-Qur'an' by Al-Nahhas 1/252. (3) In (M): 'mutakallaf'. (4) Reported by Al-Tabari 2/400, and Ibn Abi Hatim 1/295, and

mentioned by Ibn Hisham in 'Al-Sirah' 1/514. (5) Cited by Al-Baghawi in his 'Tafsir' 1/97, and Al-Wahidi in 'Al-Wasit' 1/181. (6) Al-Wasit 1/181, and 'Zad al-Masir' 1/120. (7) In his Diwan pp. 106, 258, and 445.

२६७ सूरह अल-बकराह: आयत १००

प्रश्नवाचक [हमज़ा] का उपयोग वैसे ही किया जाता है जैसे कि 'फ़ा' पर उनके कथन में होता है: "क्या फिर जाहिलियत का फैसला...?" [अल-मईदा: ५०], "क्या फिर तुम बहरों को सुनाओगे...?" [यूनुस: ४२], "क्या फिर तुम उसे और उसकी संतान को...?" [अल-कहफ़: ५०]। और 'सुम्मा' (फिर) पर जैसा कि उनके कथन में है: "क्या फिर जब वह घटित हो जाए...?" [यूनुस: ५१]। यह सिबावेह का मत है। अल-अख़्फ़श ने कहा: 'वाव' अतिरिक्त है। अल-किसाई का मत है कि यह 'अव' (या) है, जिसका 'वाव' उच्चारण की आसानी के लिए चलायमान कर दिया गया। लोगों के एक समूह ने इसे 'वाव' के सुकूँ(शांति) के साथ 'अव' पढ़ा (१), तो यह 'बल' (बल्कि) के अर्थ में आता है, जैसे कोई कहने वाला कहता है: 'मैं तुम्हें ज़रूर मारूँगा,' और जवाब देने वाला कहता है: 'या अल्लाह काफी हो।' इब्न अतिय्याह ने कहा (२): यह सब बनावटीपन (३) है, और सही विचार सिबावेह का कथन है।

'कुल्लमा' (जब भी) कालवाचक क्रियाविशेषण के रूप में नसब (कर्म कारक) में है। आयत में जिसका उल्लेख है वह मलिक बिन अल-सैफ है - जिसे इब्न अल-दैफ भी कहा जाता है - जिसने कहा था: खुदा की कसम, हमारी किताब में हमसे कोई ऐसा अहद नहीं लिया गया कि हम मुहम्मद पर ईमान लाएं और न ही कोई वादा लिया गया, तो यह आयत नाज़िल हुई (४)।

कहा गया है: यहूदियों ने अहद किया था कि अगर मुहम्मद सामने आए, तो वे उन पर ईमान लाएंगे और अरब के मुशरिकों के खिलाफ उनके साथ होंगे; लेकिन जब उन्हें भेजा गया, तो उन्होंने उनका इनकार कर दिया (५)।

अता ने कहा (६): ये वे अहद हैं जो नबी ﷺ और यहूदियों के बीच थे, जिन्हें उन्होंने तोड़ दिया, जैसे कुरैज़ा और नज़ीर के कबीलों ने किया। इसका प्रमाण सर्वशक्तिमान का यह कथन है: "वे जिनसे आपने संधि की थी, फिर वे हर बार अपनी संधि को तोड़ देते हैं, और वे अल्लाह से नहीं डरते।" [अल-अनफ़ाल: ५६]।

उनका कथन: "...उनमें से एक गिरोह ने उसे फेंक दिया" [अल-बकराह: १००]। 'अल-नब्ज़' (फेंकना): त्यागना और फेंक देना, जिससे 'नबीज़' (खजूर की शराब) और 'मन्बूज़' (त्यागा हुआ) आता है। अबू अल-असवद ने कहा (७):

"और जिसे मैंने भेजा था उसने मुझे खबर दी कि वास्तव में तुमने मेरा पत्र लिया, अपने बाएं हाथ से मुँह मोड़ते हुए। तुमने उसके शीर्षक को देखा और फिर उसे फेंक दिया जैसे तुम अपनी चप्पलों में से एक घिसी हुई चप्पल फेंक देते हो।"

(१) इब्न खलवेह द्वारा 'अश-शवाज़' पृ. ८ में, और इब्न जिन्नी द्वारा 'अल-मुहतसिब' १/९९ में अबू अल-सम्माल के हवाले से। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८५, और लेखक ने सिबावेह और अल-अख़्फ़श की बातों को उनके माध्यम से उद्धृत किया। देखें 'अल-किताब' ३/१८८-१८९, अल-अख़्फ़श की 'मआनी अल-कुरान' १/३२६, और अल-नहस की 'इराब अल-कुरान' १/२५२। (३) (म) में: 'मुतकल्लफ़'। (४) अल-तबरी २/४००, और इब्न अबी हातिम १/२९५ द्वारा रिपोर्ट किया गया, और इब्न हिशाम द्वारा 'अल-सीरा' १/५१४ में उल्लेखित। (५) अल-बग़वी ने अपनी 'तफसीर' १/९७ में और अल-वाहिदी ने 'अल-वसीत' १/१८१ में उद्धृत किया। (६) 'अल-वसीत' १/१८१, और 'ज़ाद अल-मसीर' १/१२०। (७) उनके दीवान पृ. १०६, २५८ और ४४५ में।

٢٦٧ سورة البقرہ: آیت ١٠٠

حرفِ استفہام (ہمزہ) اسی طرح 'فا' پر داخل ہوتا ہے جیسے اللہ تعالیٰ کے ارشادات: ﴿أَفَحُكْمَ الْجَهِلِيَّةِ﴾ [المائدہ: ٥٠]، ﴿أَفَأَنْتَ تَسْمَعُ الصُّمَّ﴾ [یونس: ٤٢]، ﴿أَفَتَتَّخِذُونَهُ وَذُرِّيَّتَهُ﴾ [الکہف: ٥٠] میں ہے۔ اور 'ثم' پر جیسے فرمایا: ﴿أَثُمَّ إِذَا مَا وَقَعَ﴾ [یونس: ٥١]۔ یہ سیبویہ کا قول ہے۔ اخفش نے کہا: 'واؤ' زائد ہے۔ کسائی کا مذہب یہ ہے کہ یہ 'اَو' (یا) ہے، جس کے واؤ کو سہولت کے لیے متحرک کر دیا گیا ہے۔ ایک جماعت نے اسے واؤ کے سکون کے ساتھ 'اَوْ' پڑھا (١)، تو یہ 'بل' (بلکہ) کے معنی میں آتا ہے، جیسے کہنے والا کہے: 'میں تجھے ضرور ماروں گا'، تو جواب دینے والا کہے: 'یا اللہ کافی ہو'۔ ابن عطیہ نے کہا (٢): یہ سب تکلف (٣) ہے، اور صحیح بات سیبویہ کا قول ہے۔

لفظ 'کلما' ظرفیت کی بنا پر منصوب ہے۔ آیت میں مراد مالک بن صیف ہے - جسے ابن ضیف بھی کہا جاتا ہے - اس نے کہا تھا: اللہ کی قسم، ہماری کتاب میں ہم سے کوئی ایسا عہد نہیں لیا گیا کہ ہم محمد پر ایمان لائیں، اور نہ ہی کوئی میثاق لیا گیا، تو یہ آیت نازل ہوئی (٤)۔

کہا گیا ہے کہ: یہودیوں نے عہد کیا تھا کہ اگر محمد سامنے آئے تو وہ ان پر ایمان لائیں گے اور عرب کے مشرکین کے خلاف ان کا ساتھ دیں گے، لیکن جب وہ مبعوث ہوئے تو انہوں نے ان کا انکار کر دیا (٥)۔

عطا نے کہا (٦): یہ وہ عہد تھے جو نبی ﷺ اور یہودیوں کے درمیان تھے، جنہیں انہوں نے توڑ دیا، جیسے قریظہ اور نضیر نے کیا۔ اس کی دلیل اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: ﴿الَّذِينَ عَهَدتَّ مِنْهُمْ ثُمَّ يَنقُضُونَ عَهْدَهُمْ فِي كُلِّ مَرَّةٍ وَهُمْ لَا يَتَّقُونَ﴾ [الأنفال: ٥٦]۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿نَبَذَهُ فَرِيقٌ مِّنْهُمْ﴾۔ 'النبذ' کا معنی ہے: پھینکنا اور ڈال دینا، اسی سے 'نبیذ' (کھجور کا شربت) اور 'منبوذ' (پھینکا ہوا) ہے۔ ابو الاسود نے کہا (۷):

"اور مجھے اس شخص نے خبر دی جسے میں نے بھیجا تھا کہ یقیناً تونے میرا خط لیا، اپنے بائیں ہاتھ سے اعراض کرتے ہوئے تونے اس کے عنوان کو دیکھا اور پھر اسے پھینک دیا جیسے تو اپنی جوتیوں میں سے کسی پرانی اور پھٹی ہوئی جوتی کو پھینک دیتا ہے"

(۱) ابن خالویہ نے اسے شاذ قراتوں میں ص ۸ پر نقل کیا ہے، اور ابن جنی نے 'المحتسب' ۱/۹۹ میں ابو السمال کے حوالے سے۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۱۸۵، اور مصنف نے ان کے واسطے سے سیبویہ اور اخفش کا کلام نقل کیا۔ اور دیکھئے 'الکتاب' ۳/۱۸۸-۱۸۹، اور اخفش کی 'معانی القرآن' ۱/۳۲۶، اور نحاس کی 'اعراب القرآن' ۱/۲۵۲۔ (۳) (م) میں: 'متکلف' ہے۔ (۴) اسے طبری نے ۲/۴۰۰ میں نکالا ہے، اور ابن ابی حاتم نے ۱/۲۹۵ میں، اور ابن ہشام نے اسے 'السیرۃ' ۱/۵۱۴ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) اسے بغوی نے اپنی تفسیر ۱/۹۷ میں اور واحدی نے 'الوسیط' ۱/۱۸۱ میں ذکر کیا ہے۔ (۶) 'الوسیط' ۱/۱۸۱، اور 'زاد المسیر' ۱/۱۲۰۔ (۷) ان کے دیوان ص ۱۰۶ اور ۲۵۸ اور ۴۴۵ میں۔

268 Surah Al-Baqarah: Verse 101

Another [example]: Those whom you ordered to be just, cast away your book and made the forbidden permissible (1). This is a proverb used for someone who disregards something and does not act upon it. The Arabs say: "Put this behind your back," "behind you," or "under your feet," meaning leave it and turn away from it. Allah Almighty said: {And you have taken Him as something cast behind your backs} [Hud: 92]. Al-Farra' recited: O Tamim bin Zaid, do not let my need be behind [your] back, so its answer does not fail me (2). {Nay, most of them} is the subject (mubtada'). {do not believe} is a future verb in the position of the predicate (khabar).

Allah Almighty's saying: {And when there came to them a Messenger from Allah confirming what was with them, a party of those who were given the Scripture threw the Scripture of Allah behind their backs as if they did not know. 101} Allah Almighty's saying: {And when there came to them a Messenger from Allah confirming what was with them} is an attribute (na't) for the Messenger, and it is permissible for it to be in the accusative case (mansub) as a state (hal). {a party threw} is the answer to "When" (lammā). {from those who were given the Scripture, the Scripture of Allah} - "the Scripture of Allah" is in the accusative because of the verb "threw" (nabadha), and it refers to the Torah; because their disbelief in the Prophet (peace be upon him) and their denial of him is a casting away of it. Al-Suddi said: They cast away the Torah and took up the book of Asif, and the magic of Harut and Marut (3). It was said: It could mean the Quran. Al-Sha'bi said: It is before them, they read it, but they cast away acting upon it. Sufyan bin 'Uyaynah said: They wrapped it in silk and brocade, and adorned it with gold and silver,

(1) It is in Al-Kamil 2/837, Al-Zahir 1/183, Al-Durr Al-Masun 2/27, and Al-Lubab 2/321. The narration in Al-Kamil and Al-Zahir is: "... and made the forbidden permissible." (2) The verse is by Al-Farazdaq, in his Diwan p. 86, and in Al-Adhdad p. 256. Its wording in the Diwan is: "... do not let my need be trivial to you nor..." and in Al-Adhdad: "hidden" instead of "fail". (3) Tafsir al-Tabari 1/312, and Tafsir Ibn Abi Hatim 1/296.

२६८ सूरा अल-बकरा: आयत १०१

एक अन्य [उदाहरण]: वे जिन्हें आपने न्याय करने का आदेश दिया था, उन्होंने आपकी पुस्तक को त्याग दिया और निषिद्ध को वैध बना दिया (१)। यह एक मुहावरा है जो उस व्यक्ति के लिए उपयोग किया जाता है जो किसी चीज़ को तुच्छ समझता है और उस पर अमल नहीं करता। अरब कहते हैं: "इसे अपनी पीठ के पीछे रख दो," "अपने पीछे," या "अपने पैरों के नीचे," जिसका अर्थ है उसे छोड़ देना और उससे मुँह मोड़ लेना। अल्लाह तआला ने फरमाया: {और तुमने उसे अपनी पीठ के पीछे डाल दिया है} [हूद: ९२]। अल-फर्रा ने पढ़ा: ऐ तमीम बिन ज़ैद, मेरी ज़रूरत को अपनी पीठ के पीछे न डालना, ताकि उसका उत्तर मुझे विफल न करे (२)। {बल्कि उनमें से अधिकांश} - आदि पद (मुब्तदा) है। {ईमान नहीं लाते} - भविष्य काल की क्रिया है जो समाचार (ख़बर) के स्थान पर है।

अल्लाह तआला का कथन: {और जब उनके पास अल्लाह की ओर से एक रसूल आया, जो उस चीज़ की पुष्टि करने वाला था जो उनके पास थी, तो उन लोगों में से एक समूह ने जिन्हें किताब दी गई थी, अल्लाह की किताब को अपनी पीठ के पीछे फेंक दिया, मानो वे जानते ही न हों। १०१} अल्लाह तआला का कथन: {और जब उनके पास अल्लाह की ओर से एक रसूल आया, जो उस चीज़ की पुष्टि करने वाला था जो उनके पास थी} - रसूल के लिए एक विशेषण (नत) है, और इसे 'हाल' (स्थिति) के रूप में भी लिया जा सकता है। {एक समूह ने फेंक दिया} - "जब" (लम्मा) का उत्तर है। {उन लोगों में से जिन्हें किताब दी गई थी, अल्लाह की किताब को} - "अल्लाह की किताब" शब्द क्रिया "फेंक दिया" (नबज़) की वजह से मफ़ऊल होने के कारण नसब (accusative) में है, और यहाँ मुराद तौरात है; क्योंकि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के प्रति उनका अविश्वास और उनका इनकार उसे फेंक देने के समान है। अल-सुद्दी ने कहा: उन्होंने तौरात को त्याग दिया, और आसिफ की किताब, और हारुत और मारुत के जादू को अपना लिया (३)। और कहा गया है: इसका अर्थ कुरान भी हो सकता है। अल-शाबी ने कहा: वह उनके सामने है, वे उसे पढ़ते हैं, लेकिन उन्होंने उस पर अमल करना छोड़ दिया है। सुफियान बिन उयैना ने कहा: उन्होंने इसे रेशम और ब्रोकेड में लपेटा, और इसे सोने और चांदी से सजाया,

(१) यह अल-कामिल २/८३७, अल-ज़ाहिर १/१८३, अल-दुर्र अल-मसून २/२७, और अल-लुबाब २/३२१ में है। अल-कामिल और अल-ज़ाहिर की रिवायत है: "... और निषिद्ध को वैध बना दिया।" (२) यह शेर अल-फरज़दक का है, उनके दीवान पृष्ठ ८६ में है, और अल-अज़ाद पृष्ठ २५६ में है। दीवान में इसके शब्द हैं: "... मेरी ज़रूरत को अपने पास हल्का न समझना और न ही..." और अल-अज़ाद में: "छिपा

हुआ" शब्द "विफल" के बदले है। (३) तफसीर अल-तबरी १/३१२, और तफसीर इब्न अबी हातिम १/२९६।

۲۶۸ سورة البقرہ: آیت ۱۰۱

ایک اور مثال: بے شک وہ لوگ جنہیں آپ نے عدل کا حکم دیا، انہوں نے آپ کی کتاب کو پسِ پشت ڈال دیا اور حرام کو حلال کر لیا (۱)۔ یہ ایک مثال ہے جو اس شخص کے لیے دی جاتی ہے جو کسی چیز کو ہلکا سمجھے اور اس پر عمل نہ کرے۔ عرب کہتے ہیں: "اسے اپنی پیٹھ پیچھے رکھ دو،" "اپنے پیچھے،" یا "اپنے قدموں تلے،" یعنی اسے چھوڑ دو اور اس سے اعراض کرو۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور تم نے اسے پسِ پشت ڈال دیا} [ہود: ۹۲]۔ الفراء نے پڑھا: اے تمیم بن زید، میری حاجت پسِ پشت نہ ڈال دینا کہ اس کا جواب مجھ پر دشوار نہ ہو (۲)۔ ﴿بَلْ أَكْثَرُهُمْ﴾ مبتدا ہے۔ ﴿لَا يُؤْمِنُونَ﴾ فعل مستقبل ہے جو خبر کے مقام پر ہے۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَلَمَّا جَاءَهُمْ رَسُولٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ نَبَذَ فَرِيقٌ مِّنَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ كِتَابَ اللَّهِ وَرَاءَ ظُهُورِهِمْ كَأَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ ۱۰۱﴾ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَلَمَّا جَاءَهُمْ رَسُولٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ﴾ رسول کی صفت (نعت) ہے، اور اسے حال کی بنا پر منسوب پڑھنا بھی جائز ہے۔ ﴿نَبَذَ فَرِيقٌ﴾ لفظ "لمّا" کا جواب ہے۔ ﴿مِنَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ كِتَابَ اللَّهِ﴾ لفظ "کتاب اللہ" فعل "نبذ" کی وجہ سے مفعول ہونے کی بنا پر منصوب ہے، اور اس سے مراد تورات ہے؛ کیونکہ نبی علیہ السلام کے ساتھ ان کا کفر اور ان کی تکذیب ہی اسے پسِ پشت ڈالنا ہے۔ سدی نے کہا: انہوں نے تورات کو پسِ پشت ڈال دیا، اور آصف کی کتاب، اور ہاروت و ماروت کے جادو کو اختیار کر لیا (۳)۔ اور کہا گیا: جائز ہے کہ اس سے مراد قرآن ہو۔ شعبی نے کہا: وہ ان کے سامنے ہے، وہ اسے پڑھتے ہیں، لیکن انہوں نے اس پر عمل کرنا چھوڑ دیا ہے۔ سفیان بن عیینہ نے کہا: انہوں نے اسے ریشم اور دیباج میں لپیٹ دیا، اور اسے سونے اور چاندی سے سجا دیا،

(۱) یہ الکامل ۸۳۷/۲، الزاھر ۱۸۳/۱، الدر المصون ۲۷/۲، اور اللباب ۳۲۱/۲ میں ہے۔ الکامل اور الزاھر کی روایت میں "... واستحل المحرم" (اور حرام کو حلال کیا) ہے۔ (۲) یہ شعر فرزدق کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ۸۶، اور الازداد ص ۲۵۶ میں ہے۔ دیوان میں اس کے الفاظ ہیں: "... میری حاجت کو اپنے پاس ہلکا نہ سمجھنا اور نہ..." اور الازداد میں "یعیا" کے بجائے "یخفی" کا لفظ ہے۔ (۳) تفسیر طبری ۳۱۲/۱، اور تفسیر ابن ابی حاتم ۲۹۶/۱۔

...and they did not allow its lawful nor forbid its unlawful; so that is the 'casting away' (1). Its explanation has already been fully presented (2).

{As if they knew not} is a comparison to those who do not know, as they acted like the ignorant. So, it follows from the wording that they disbelieved despite having knowledge (3).

His Almighty's saying: {And they followed what the devils recited during the reign of Solomon. It was not Solomon who disbelieved, but the devils disbelieved, teaching people magic and that which was revealed to the two angels at Babylon, Harut and Marut. But they [the two angels] do not teach anyone unless they say, "We are only a trial, so do not disbelieve [by practicing magic]." And [yet] they learn from them that by which they cause separation between a man and his wife. But they do not harm anyone through it except by permission of Allah. And the people learn what harms them and does not benefit them. But the Children of Israel certainly knew that whoever purchased the magic would not have in the Hereafter any share. And wretched is that for which they sold themselves, if they only knew.}

There are twenty-four issues in it:

First: His Almighty's saying: {And they followed what the devils recited during the reign of Solomon}. This is news from Allah Almighty about the group that cast away the Scripture, that they also followed magic, and they are the Jews.

Al-Suddi said: The Jews opposed Muhammad (peace and blessings be upon him) with the Torah, and the Torah and the Quran agreed. So they cast away the Torah and took the book of Asaf and the magic of Harut and Marut (4).

Muhammad ibn Ishaq said: When the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) mentioned Solomon among the messengers, some of their rabbis said: "Muhammad claims that the son of David was a prophet! By Allah, he was nothing but a sorcerer." So Allah, the Mighty and Sublime, revealed: {It was not Solomon who disbelieved, but the devils disbelieved} (5). That is: they suggested to the Children of Adam that what Solomon did of sailing the sea (6) and subjugating birds and devils was magic.

(1) Al-Zamakhshari mentioned the two opinions in Al-Kashshaf 1/300, Al-Wahidi in Al-Wasit 1/181-182, and Al-Tabarsi in Majma' al-Bayan 1/382, saying: This is if the Book is

taken to mean the Torah. (2) In the commentary of the preceding verse. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/185. (4) Mentioned previously. (5) Tafsir al-Tabari 2/328. (6) In (Z): The wind.

सूरह अल-बकरा: आयत 102 | 269

...और उन्होंने न उसके हलाल (वैध) को हलाल माना और न उसके हराम (अवैध) को हराम; तो यही 'फेंक देना' है (1)। इसका स्पष्टीकरण पहले विस्तार से दिया जा चुका है (2)।

{जैसे कि वे जानते न हों} उन लोगों से तुलना है जो नहीं जानते, क्योंकि उन्होंने अज्ञानियों जैसा व्यवहार किया। अतः शब्दों से यह निकलता है कि उन्होंने ज्ञान होने के बावजूद कुफ़्र (अविश्वास) किया (3)।

परमेश्वर का कथन: {और वे उस (जादू) के पीछे हो लिए जिसे सुलेमान के राज्य में शैतान पढ़ा करते थे। सुलेमान ने कुफ़्र नहीं किया था, बल्कि शैतानों ने ही कुफ़्र किया था; वे लोगों को जादू सिखाते थे और वह कुछ जो बाबुल (बेबीलोन) में हारूत और मारूत नामक दो फ़रिश्तों पर उतारा गया था। और वे (फ़रिश्ते) किसी को भी उस समय तक नहीं सिखाते थे जब तक कि यह न कह देते कि "हम तो केवल एक परीक्षा हैं, अतः तुम कुफ़्र में न पड़ो।" फिर वे उनसे वह कुछ सीखते जिससे पति और पत्नी के बीच जुदाई डाल दें। और वे अल्लाह की अनुमति के बिना उससे किसी को कोई हानि नहीं पहुँचा सकते थे। और वे वह कुछ सीखते थे जो उन्हें हानि पहुँचाए और उन्हें कोई लाभ न दे। और उन्हें भली-भांति ज्ञात था कि जिसने इसे खरीदा, उसका परलोक में कोई हिस्सा नहीं। और कितनी बुरी है वह चीज़ जिसके बदले उन्होंने अपनी जानों को बेच डाला, यदि वे जानते!}

इसमें चौबीस मसले (विषय) हैं:

पहला: परमेश्वर का कथन: {और वे उस (जादू) के पीछे हो लिए जिसे सुलेमान के राज्य में शैतान पढ़ा करते थे}। यह अल्लाह तआला की ओर से उस गिरोह के बारे में सूचना है जिन्होंने किताब को पीठ पीछे फेंक दिया था कि उन्होंने जादू का भी अनुसरण किया, और वे यहूदी हैं।

अस-सुद्दी ने कहा: यहूदियों ने तौरात के ज़रिये मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का विरोध किया, तो तौरात और क़ुरान एक समान निकले। अतः उन्होंने तौरात को त्याग दिया और आसिफ की किताब और हारूत व मारूत के जादू को अपना लिया (4)।

मुहम्मद बिन इसहाक ने कहा: जब अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने रसूलों के उल्लेख में सुलेमान का ज़िक्र किया, तो उनके कुछ विद्वानों ने कहा: "मुहम्मद का दावा है कि दाऊद का बेटा नबी था! अल्लाह की कसम, वह तो केवल एक जादूगर था।" तब अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने

यह आयत उतारी: {सुलेमान ने कुफ्र नहीं किया था, बल्कि शैतानों ने ही कुफ्र किया था} (5)। अर्थात: उन्होंने आदम की संतान के मन में यह बात डाली कि सुलेमान ने समुद्र की सवारी (6) और पक्षियों एवं शैतानों को वश में करने के जो कार्य किए थे, वे जादू थे।

(1) अज़-ज़मखशरी ने अल-कश्शाफ़ 1/300 में, अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/181-182 में और अत-तबरसी ने मजमा' अल-बयान 1/382 में दोनों मतों का उल्लेख किया है, और कहा: यह तब है जब किताब से मुराद तौरात ली जाए। (2) इससे पिछली आयत की व्याख्या में। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/185। (4) पीछे बीत चुका है। (5) तफ़सीर अत-तबरी 2/328। (6) (ज़) में: हवा।

...اور انہوں نے نہ اس کے حلال کو حلال مانا اور نہ اس کے حرام کو حرام؛ تو یہی 'پھینک دینا' ہے(۱)۔ اور اس کی وضاحت پہلے تفصیل سے گزر چکی ہے(۲)۔

﴿ كَأَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُونَ ﴾ (گویا وہ نہیں جانتے) ان لوگوں سے تشبیہ ہے جو نہیں جانتے، کیونکہ انہوں نے جاہلوں والا عمل کیا، پس الفاظ سے یہ نکلتا ہے کہ انہوں نے علم ہونے کے باوجود کفر کیا(۳)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ وَاتَّبَعُوا مَا تَتْلُوا الشَّيَاطِينُ عَلَى مُلْكِ سُلَيْمَانَ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمَانُ وَلَكِنَّ الشَّيَاطِينَ كَفَرُوا يُعَلِّمُونَ النَّاسَ السِّحْرَ وَمَا أُنْزِلَ عَلَى الْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ هَارُوتَ وَمَا رُوتَ وَمَا يُعَلِّمَانِ مِنْ أَحَدٍ حَتَّى يَقُولَا إِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ فَلَا تَكْفُرْ فَيَتَعَلَّمُونَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُونَ بِهِ بَيْنَ الْمَرْءِ وَزَوْجِهِ وَمَا هُمْ بِضَارِّينَ بِهِ مِنْ أَحَدٍ إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ وَيَتَعَلَّمُونَ مَا يَضُرُّهُمْ وَلَا يَنْفَعُهُمْ وَلَقَدْ عَلِمُوا لَمَنِ اشْتَرَاهُ مَا لَهُ فِي الْآخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهِ أَنْفُسَهُمْ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ ﴾

اس میں چوبیس مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ وَاتَّبَعُوا مَا تَتْلُوا الشَّيَاطِينُ عَلَى مُلْكِ سُلَيْمَانَ ﴾۔ یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے اس گروہ کے بارے میں خبر ہے جنہوں نے کتاب کو پس پشت ڈال دیا کہ انہوں نے جادو کی بھی پیروی کی، اور وہ یہودی ہیں۔

سدی نے کہا: یہودیوں نے تورات کے ذریعے محمد ﷺ کا مقابلہ کیا، تو تورات اور قرآن متفق پائے گئے، چنانچہ انہوں نے تورات کو چھوڑ دیا، اور آصف کی کتاب اور ہاروت و ماروت کے جادو کو اختیار کر لیا(۴)۔

محمد بن اسحاق نے کہا: جب رسول اللہ ﷺ نے رسولوں کے تذکرے میں سلیمان علیہ السلام کا ذکر کیا، تو ان کے بعض علماء نے کہا: محمد کا گمان ہے کہ داؤد کا بیٹا نبی تھا! اللہ کی قسم، وہ تو محض ایک جادوگر تھا، اس پر اللہ عزوجل نے یہ آیت نازل فرمائی: ﴿ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمَانُ وَلَكِنَّ الشَّيَاطِينَ كَفَرُوا ﴾(۵)۔ یعنی: انہوں نے بنی آدم کے دلوں میں یہ بات ڈالی کہ سلیمان نے سمندر کے سفر(۶) اور پرندوں و شیاطین کو مسخر کرنے کے جو کام کیے تھے وہ جادو تھا۔

(۱) زمخشری نے الکشاف ۱/ ۳۰۰ میں، واحدی نے الوسیط ۱/ ۱۸۱-۱۸۲ میں، اور طبرسی نے مجمع البیان ۱/ ۳۸۲ میں دونوں قول ذکر کیے ہیں، اور کہا: یہ اس صورت میں ہے جب کتاب سے مراد تورات لی جائے۔ (۲) اس سے پہلی آیت کی تفسیر میں۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/ ۱۸۵۔ (۴) پہلے گزر چکا ہے۔ (۵) تفسیر طبری ۲/ ۳۲۸۔ (۶) (ز) میں ہے: ہوا (الریح)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 | 270

Al-Kalbi said: The devils wrote magic and enchantments (1) in the tongue of Asaph, the scribe of Solomon, and buried them under his prayer place when God took away his kingdom. Solomon was not aware of this. When Solomon died, they dug it up and said to the people: "Solomon only ruled you by this, so learn it." As for the scholars of the Children of Israel, they said: "God forbid that this should be the knowledge of Solomon!" But the low-life commoners said: "This is Solomon's knowledge," and they applied themselves to teaching it and rejected the books of their prophets, until God sent Muhammad (peace be upon him). Then God, the Mighty and Sublime, revealed to His Prophet the exoneration of Solomon and showed his innocence of what he was accused of, saying: {And they followed what the devils recited} (2).

Ata' said: "Recited" (tatlu) means to read, from recitation.

Ibn Abbas said: "Recited" means followed, as you would say: "The people came following one another" (3).

Al-Tabari said: "They followed" means they preferred (4).

I say: Because everyone who follows something and puts it before him has preferred it over others. The meaning of "recited" here is in the past tense, as in "it followed." The poet said (5):

And when you pass by his grave, sacrifice for him ... the fat camels and every swift-running noble steed (6)

And sprinkle the sides of his grave with their blood ... for he used to be a man of blood and sacrifices.

Meaning: he was.

The "ma" (what) is the object of "followed"; that is, they followed what the devils forged against Solomon and recited.

---

(1) In (D): Al-Turunjiyyat, in (Z): Al-Narjiyyat, in (Th): Al-Turunjiyyat. What is established is from (M). The commentator on Al-Qamus (Narj) said: and from Al-Layth: An-Nairanj with a kasra, as it is in other copies. What is quoted from Al-Layth's text: Al-Nairaj, omitting the second noon: it is something like magic but is not, it's just a similarity, and they are Al-Nairanjiyyat. See Tahdhib al-Lugha 11/38, and Al-Takmilla by Al-Saghani 1/499. (2) Tafsir al-Baghawi 1/98, Asbab al-Nuzul by al-Wahidi p. 29, and see

Al-Ujab fi Asbab al-Nuzul by Ibn Hajar 1/305-306. (3) Tafsir al-Tabari 1/320, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/185. (4) Tafsir al-Tabari 1/320, quoted from him by the author via Ibn Atiyya in Al-Muharrar al-Wajiz 1/185. (5) He is Ziyad al-A'jam, and the two verses are in his Diwan p. 87, and Khizanat al-Adab 4/10. (6) In the copies: Sabih, and what is established is from (M) and the sources. Al-Kawm: the fat she-camel. Al-Tarf: the noble horse. Al-Sabih with a 'ba', from the swimming (galloping) of a horse: when it runs strongly. "Al-Khizana" 6/10-7.

सूरह अल-बक़रा: आयत 102 | 270

अल-कल्बी ने कहा: शैतानों ने सुलैमान के सचिव आसफ की भाषा में जादू और टोना (1) लिखा, और इसे उनके प्रार्थना स्थल के नीचे दफना दिया जब ईश्वर ने उनका राज्य छीन लिया था। सुलैमान को इसका पता नहीं चला। जब सुलैमान की मृत्यु हुई, तो उन्होंने उसे निकाला और लोगों से कहा: "सुलैमान ने केवल इसी के माध्यम से तुम पर शासन किया, इसलिए इसे सीखो।" जहाँ तक इस्राइल के विद्वानों की बात थी, उन्होंने कहा: "ईश्वर न करे कि यह सुलैमान का ज्ञान हो!" लेकिन नीच लोगों ने कहा: "यह सुलैमान का ज्ञान है," और वे इसे सिखाने में लग गए और अपने नबियों की किताबों को त्याग दिया, यहाँ तक कि ईश्वर ने मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को भेजा। तब अल्लाह ने अपने नबी पर सुलैमान की बेगुनाही नाज़िल की और उन पर लगाए गए आरोपों से उनकी मासूमियत ज़ाहिर की, और कहा: {और उन्होंने उस चीज़ का अनुसरण किया जो शैतान पढ़ते थे} (2)।

अता ने कहा: "पढ़ते थे" का अर्थ है 'तिलावत करना'।

इब्न अब्बास ने कहा: "पढ़ते थे" का अर्थ है 'अनुसरण करना', जैसे आप कहते हैं: "लोग एक दूसरे के पीछे आए" (3)।

अल-तबरी ने कहा: "अनुसरण किया" का अर्थ है 'वरीयता देना' (4)।

मैं कहता हूँ: क्योंकि जो कोई भी किसी चीज़ का अनुसरण करता है और उसे अपने सामने रखता है, उसने उसे दूसरों पर वरीयता दी है। यहाँ "पढ़ते थे" का अर्थ अतीत काल में है, यानी "अनुसरण किया"। कवि ने कहा है (5):

और जब तुम उसकी कब्र के पास से गुज़रो, तो उसके लिए ... मोटे ऊँट और हर तेज़ दौड़ने वाले शानदार घोड़े की बलि दो (6)

और उसकी कब्र के किनारों को उनके खून से सींच दो ... क्योंकि वह रक्त और बलिदान का व्यक्ति था।

अर्थात्: वह था।

और "मा" (जो) "अनुसरण किया" का कर्म (object) है; यानी, उन्होंने उसका अनुसरण किया जो शैतानों ने सुलैमान के खिलाफ गढ़ा और पढ़ा था।

(1) (द) में 'अल-तुरुंजियत', (ज़) में 'अल-नरजियत', (ज़) में 'अल-तुरुंजियत' है। (म) से जो स्थापित है वही सही है। अल-क़ामूस के टीकाकार (नर्ज) ने कहा: और अल-लैथ से: 'अल-नयरंज' कसरा के साथ, अन्य प्रतियों में ऐसा ही है। अल-लैथ के पाठ से जो उद्धृत है: 'अल-नयरज', दूसरे नून को हटाकर: यह जादू जैसी कोई चीज़ है लेकिन है नहीं, यह केवल एक समानता है और वे 'अल-नयरंजियत' हैं। देखिए तहज़ीब अल-लुग़ा 11/38, और अल-सघानी द्वारा अल-तक्मिला 1/499। (2) तफ़सीर अल-बग़वी 1/98, अल-वाहिदी द्वारा अस्बाब अल-नुज़ूल पृ. 29, और इब्न हज़र द्वारा अल-उजाब फ़ी अस्बाब अल-नुज़ूल 1/305-306 देखें। (3) तफ़सीर अल-तबरी 1/320, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/185। (4) तफ़सीर अल-तबरी 1/320, लेखक द्वारा अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/185 में इब्न अतिया के माध्यम से उद्धृत। (5) वह ज़ियाद अल-अजाम है, और दोनों छंद उनके दीवान पृ. 87 और ख़ज़ानत अल-अदब 4/10 में हैं। (6) प्रतियों में: 'साबिह' है, और जो स्थापित है वह (म) और स्रोतों से है। अल-कौम: मोटी ऊँटनी। अल-तर्फ़ कुलीन घोड़ा। 'बा' के साथ अल-साबिह, घोड़े के तैरने (सरपट दौड़ने) से: जब वह ज़ोर से दौड़ता है। "अल-ख़ज़ाना" 6/10-7।

اور کلبی نے کہا: شیطانوں نے سلیمان علیہ السلام کے کاتب آصف کی زبان پر جادو اور نیرنجیات (۱) لکھی، اور انہیں ان کے مصلے کے نیچے دفن کر دیا جب اللہ نے ان کی بادشاہت چھین لی تھی، اور سلیمان کو اس کا علم نہ ہوا۔ پس جب سلیمان فوت ہو گئے تو انہوں نے اسے نکالا اور لوگوں سے کہا: تمہارے بادشاہ نے اسی کے ذریعے تم پر حکومت کی، پس اسے سیکھو۔ بنی اسرائیل کے علماء نے تو کہا: معاذ اللہ کہ یہ سلیمان کا علم ہو! لیکن کمینے لوگوں نے کہا: یہ سلیمان کا علم ہے، اور وہ اسے سیکھنے پر تل گئے اور اپنے انبیاء کی کتابوں کو ترک کر دیا، یہاں تک کہ اللہ نے محمد ﷺ کو مبعوث فرمایا۔ پس اللہ عزوجل نے اپنے نبی پر سلیمان کا عذر نازل فرمایا اور جس چیز کا ان پر الزام لگایا گیا تھا اس سے ان کی براءت ظاہر فرمائی، پس فرمایا: ﴿وَاتَّبَعُوا مَا تَتْلُوا الشَّيَاطِينُ﴾ (۲)۔

عطاء نے کہا: "تتلو" یعنی پڑھتی تھیں، تلاوت سے۔

اور ابن عباس نے کہا: "تتلو" یعنی پیروی کرتی تھیں، جیسا کہ تم کہتے ہو: لوگ ایک دوسرے کے پیچھے آئے (۳)۔

اور طبری نے کہا: "اتبعوا" کے معنی 'ترجیح دی' کے ہیں (۴)۔

میں کہتا ہوں: اس لیے کہ جو بھی کسی چیز کی پیروی کرتا ہے اور اسے اپنے سامنے رکھتا ہے، اس نے اسے دوسروں پر ترجیح دی ہے۔ اور "تتلو" کے معنی ہیں کہ اس نے پیروی کی، پس یہ ماضی کے معنی میں ہے؛ شاعر نے کہا (۵):

اور جب تم اس کی قبر کے پاس سے گزرو تو اس کے لیے ... موٹی اونٹنیاں اور ہر تیز رفتار اصیل گھوڑا ذبح کرو (۶)

اور اس کی قبر کے اطراف کو ان کے خون سے سیراب کرو ... کیونکہ وہ خون اور قربانیوں والا آدمی تھا۔

یعنی: وہ تھا۔

اور "ما" 'اتبعوا' کا مفعول ہے؛ یعنی: انہوں نے اس کی پیروی کی جو شیطانوں نے سلیمان کے خلاف گھڑا اور پڑھا۔

---

(۱) (د) میں الترنجیات، (ز) میں النرجیات، اور (ظ) میں الترنجیات ہے۔ اور (م) سے جو ثابت ہے وہ درست ہے، شارح قاموس (نرج) نے کہا: اور لیث سے منقول ہے: النیرنج نون کے نیچے زیر کے ساتھ، تمام نسخوں میں اسی طرح ہے، اور لیث کے کلام سے جو منقول ہے وہ ہے: النیرج، دوسرے نون کے بغیر: جادو جیسی ایک چیز لیکن جادو نہیں، یہ صرف ایک مشابہت ہے اور یہ النیرنجیات ہیں۔ دیکھیے تہذیب اللغۃ ۱۱/۳۸، اور التکملہ للصغانی ۱/۴۹۹۔ (۲) تفسیر البغوی ۱/۹۸، واسباب النزول للواحدی ص ۲۹، اور دیکھیے العجاب فی اسباب النزول لابن حجر ۱/۳۰۵-۳۰۶۔ (۳) تفسیر الطبری ۱/۳۲۰، اور المحرر الوجیز ۱/۱۸۵۔ (۴) تفسیر الطبری ۱/۳۲۰، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/۱۸۵ میں نقل کیا ہے۔ (۵) وہ زیاد الاعجم ہے، اور یہ دو اشعار اس کے دیوان ص ۸۷ اور خزانہ الادب ۴/۱۰ میں ہیں۔ (۶) نسخوں میں: سابح ہے، اور جو (م) اور مصادر سے ثابت ہے وہ درست ہے۔ الکوم: موٹی اونٹنی۔ الطرف: اصیل گھوڑا۔ اور السابح 'با' کے ساتھ، گھوڑے کے تیرنے (دوڑنے) سے ہے: جب وہ پوری قوت سے دوڑے۔ "الخزانہ" ۱۰/۶-۷۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 271

It is said: "Ma" is for negation, and it is nothing, neither in the structure of the speech nor in its correctness; this was said by Ibn al-Arabi (1). {Over the kingdom of Solomon} i.e., over his law and prophethood (2); Al-Zajjaj said (3): The meaning is during the reign of Solomon's kingdom. It is said: The meaning is in Solomon's kingdom; meaning in his stories, attributes, and news (4). Al-Farra' said (5): "Ala" (over/upon) and "Fi" (in) are suitable in such a context. He said "Ala" (over) and did not say: "Ba'da" (after); as in His (6) the Almighty's saying: {And We sent not before you any messenger or prophet except that when he spoke [or recited], Satan threw into it [some misunderstanding]} [Al-Hajj: 52], meaning in his recitation. The meaning of Satan and its derivation has already been mentioned (7), so there is no point in repeating it. And the Satans here; it is said: they are the satans of the Jinn, which is the understanding of this name. It is also said: what is meant are the satans among humans who are rebellious in misguidance (8), as Jarir said: Days when they would call me Satan for my flirtatiousness, and they would love me when I was a Satan (9). Second: His the Almighty's saying: {And Solomon did not disbelieve} is an exoneration from Allah the Almighty for Solomon. It was not mentioned previously in the verse that anyone attributed disbelief to him, but the Jews attributed magic to him. However, since magic is disbelief, he became (10) as one who attributed disbelief to him (11). Then He said: {But the satans disbelieved}, thus establishing their disbelief by teaching magic.

(1) Ahkam al-Qur'an 1/28. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/185. (3) Ma'ani al-Qur'an by him 1/183. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/185. (5) Ma'ani al-Qur'an by him 1/63. (6) In the copies: for his saying, and the correct version is what we have established, see: Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi 1/28. (7) 1/140. (8) Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 1/391-392. (9) Its extraction was mentioned previously 1/140. (10) In (d) and (z): they became. (11) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186.

सूरह अल-बकरा: आयत 102 271

कहा गया है: "मा" निषेध (negation) के लिए है, और यह कुछ भी नहीं है, न तो भाषण की संरचना में और न ही इसकी शुद्धता में; यह इब्न अल-अरबी (1) द्वारा कहा गया था। {सुलेमान के साम्राज्य पर} यानी उनके कानून और नुबूवत (पैग़म्बरी) पर (2); अल-ज़ज्जाज ने कहा (3): इसका अर्थ सुलेमान के राज्य के शासनकाल के दौरान है। कहा गया है: इसका अर्थ सुलेमान के राज्य में है; यानी उनकी कहानियों, गुणों और समाचारों में (4)। अल-फर्रा ने कहा (5): इस तरह के संदर्भ में "अला" (पर) और "फी" (में) उपयुक्त हैं। उन्होंने "अला" कहा और यह नहीं कहा: "बअदा" (बाद); जैसा कि सर्वशक्तिमान (6) के कथन में है: {और हमने आपसे पहले कोई रसूल या नबी नहीं भेजा मगर यह कि जब वह पढ़ता (तिलावत करता), तो शैतान उसके पढ़ने में कुछ डाल देता} [अल-हज्ज: 52], यानी उसकी तिलावत में। शैतान का अर्थ और उसकी उत्पत्ति का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है (7), इसलिए इसे दोहराने का कोई मतलब नहीं है। और यहाँ शैतान; कहा गया है: वे जिन्न शैतान हैं, जो इस नाम की समझ है। यह भी कहा गया है: इसका अर्थ इंसानी शैतान हैं जो गुमराह करने में विद्रोही हैं (8), जैसा कि जरीर ने कहा: वे दिन जब वे मेरी चंचलता के लिए मुझे शैतान कहते थे, और वे मुझे तब प्यार करते थे जब मैं एक शैतान था (9)। दूसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {और सुलेमान ने कुफ़्र नहीं किया} अल्लाह तआला की ओर से सुलेमान के लिए एक दोषमुक्ति है। आयत में पहले यह उल्लेख नहीं किया गया था कि किसी ने उन पर कुफ़्र का आरोप लगाया था, लेकिन यहूदियों ने उन पर जादू का आरोप लगाया था। लेकिन चूँकि जादू कुफ़्र है, इसलिए वह (10) उस व्यक्ति के समान हो गया जिसने उन पर कुफ़्र का आरोप लगाया था (11)। फिर उसने कहा: {लेकिन शैतानों ने कुफ़्र किया}, इस प्रकार जादू सिखाकर उनके कुफ़्र को स्थापित किया।

(1) अहकाम अल-क़ुरान 1/28. (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/185. (3) मा'आनी अल-क़ुरान उनके द्वारा 1/183. (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/185. (5) मा'आनी अल-क़ुरान उनके द्वारा 1/63. (6) प्रतियों में: उनके कहने के लिए, और सही संस्करण वह है जो हमने स्थापित किया है, देखें: इब्न अल-अरबी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/28. (7) 1/140. (8) अल-तबरसी द्वारा मजमा अल-बयान 1/391-392. (9) इसका संदर्भ पहले दिया जा चुका है 1/140. (10) (द) और (ज़) में: वे बन गए। (11) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/186।

سورة البقرہ: آیت 102 271

اور کہا گیا: "ما" نفی ہے، اور یہ کلام کے نظام میں اور نہ ہی اس کی صحت میں کوئی چیز نہیں ہے۔ یہ ابن العربی (1) نے کہا ہے۔ {سلیمان کی بادشاہت پر} یعنی ان کی شریعت اور نبوت پر (2)؛ الزجاج نے کہا (3): معنی سلیمان کی بادشاہت کے عہد میں ہے۔ اور کہا گیا: معنی سلیمان کی بادشاہت میں ہے؛ یعنی ان کے قصوں، صفات اور خبروں میں (4)۔ الفراء نے کہا (5): اس طرح کے مقام پر "علی" اور "فی" دونوں درست ہیں۔ اور "علی" کہا اور "بعد" نہیں کہا؛ جیسا کہ اللہ تعالیٰ کے ارشاد (6) میں ہے: {اور ہم نے آپ سے پہلے کوئی رسول یا نبی نہیں بھیجا مگر یہ کہ جب اس نے تلاوت کی تو شیطان نے اس کی تلاوت میں کچھ (وہم) ڈال دیا} [الحج: 52] یعنی اس کی تلاوت میں۔ اور شیطان کے معنی اور اس کا مادہ پہلے ذکر ہو چکا ہے (7)، لہذا اس کے اعادے کا کوئی فائدہ نہیں۔ اور یہاں شیاطین؛ کہا گیا: وہ جنوں کے شیاطین ہیں، اور اس نام سے یہی سمجھا جاتا ہے۔ اور کہا گیا: مراد انسانوں کے شیاطین ہیں جو گمراہی میں سرکش ہیں (8)، جیسا کہ جریر کا قول ہے: وہ دن جب وہ میری غزل گوئی کی وجہ سے مجھے شیطان پکارتے تھے، اور وہ مجھ سے محبت کرتی تھیں جب میں ایک شیطان تھا (9)۔ دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور سلیمان نے کفر نہیں کیا} اللہ تعالیٰ کی طرف سے سلیمان کی بریت ہے، اور آیت میں پہلے یہ نہیں گزرا کہ کسی نے ان کی طرف کفر کی نسبت کی ہو، لیکن یہودیوں نے ان کی طرف جادو کی نسبت کی تھی۔ لیکن جب جادو کفر ٹھہرا، تو یہ (10) اس شخص کے درجے میں ہو گیا جس نے ان کی طرف کفر کی نسبت کی (11)، پھر فرمایا: {لیکن شیاطین نے کفر کیا} پس جادو کی تعلیم کے ذریعے ان کے کفر کو ثابت کیا۔

(1) احکام القرآن 28/1. (2) المحرر الوجیز 185/1. (3) معانی القرآن ان کی تصنیف 183/1. (4) المحرر الوجیز 185/1. (5) معانی القرآن ان کی تصنیف 63/1. (6) نسخوں میں: "لقوله" ہے، اور صحیح وہ ہے جو ہم نے ثابت کیا، اور دیکھیے: احکام القرآن لابن العربی 28/1. (7) 140/1. (8) مجمع البیان للطبرسی 391/1-392. (9) اس کی تخریج پہلے گزر چکی ہے 140/1. (10) (د) اور (ظ) میں: "صاروا" (وہ ہو گئے) ہے۔ (11) المحرر الوجیز 186/1.

272 Surah Al-Baqarah: Verse 102

And "yu'allimūna" (they teach) is in the position of accusative (nasb) as a circumstantial phrase (hāl), and it is permissible for it to be in the position of nominative (raf') as a second predicate (khabar thān)(1). The Kufans, except for ʻĀsim, read: "wa lākin-i ash-shayātīnu" (but the devils) by lightening the word "lākin", and putting the letter nūn in "ash-shayātīnu" in the nominative case. Similarly, in Surah Al-Anfāl, "wa lākin-i Allāhu ramā" [17], and Ibn ʻĀmir agreed with them. The rest read it with shadda (doubling) and in the accusative case(2). And "lākin" is a word with two meanings: negation of past information, and affirmation of future information. It is composed of three words: "lā", "ka", and "inna". "Lā" is for negation, "ka" is for address (khitāb), and "inna" is for affirmation and verification. The hamza was removed because it was considered heavy. It can be heavy or lightened; when heavy, it governs the accusative like the heavy "inna", and when lightened, it governs the nominative just as the lightened "in" does(3). Third: Magic (as-siḥr). It is said: its origin(4) is camouflage through tricks and illusions. It is when a magician performs actions and meanings, so it appears to the enchanted person that they are contrary to what they really are, like one who sees a mirage from afar and imagines it to be water, or like a passenger on a fast-moving ship who imagines that the trees and mountains he sees are moving with him(5). It is also said: It is derived from: "saḥartu al-sabiyya" (I enchanted/deluded the boy) when I deceived him, or similarly when I occupied or distracted him. "At-tashīr" is similar to it. Labīd said(6): If you ask us what we are, then we are sparrows from this enchanted humankind. Another poem: We see ourselves hurrying towards an unseen matter, and we are enchanted/nourished by food and drink.

(1) I'rāb al-Qur'ān by an-Naḥḥās 1/252. (2) As-Sabʻah by Ibn Mujāhid pp. 167-168, and At-Taysīr p. 75. (3) Abū Hayyān quoted these words of the author in Al-Baḥr al-Muḥīṭ 1/327, then followed them by saying: "This is a corrupt saying, and the correct view is that it is a simple (non-composite) word." (4) In (M): It was said the origin of magic. (5) An-Nukat wa al-ʻUyūn 1/166. (6) His Dīwān p. 56.

२७२ सूरह अल-बकरा: आयत १०२

और "युअल्लिमुन" (वे सिखाते हैं) हाल (परिस्थिति) के रूप में नसब (कर्मकारक) की स्थिति में है, और यह रफ़ा (कर्ताकारक) की स्थिति में भी हो सकता है क्योंकि यह दूसरा ख़बर (विधेय) है(१)। असीम को छोड़कर कूफ़ियों ने पढ़ा है: "वलाकिन-इ अश्-शयातीन" (लेकिन शैतान) "लाकिन" को हल्का करके और "अश्-शयातीन" के'नू'न' को रफ़ा (पेश) के साथ। इसी प्रकार अल-अनफाल में "वलाकिन-इ अल्लाहु रमा" [१७] और इब्न आमिर उनके साथ सहमत थे। शेष इसे शद्दा और नसब के साथ पढ़ते हैं(२)। "लाकिन" (लेकिन) दो अर्थों वाला शब्द है: पिछले समाचार का निषेध और भविष्य के समाचार की पुष्टि। यह तीन शब्दों से बना है: "ला", "का", और "इन्ना"। "ला": निषेध, "का": संबोधन, और "इन्ना": पुष्टि और सत्यापन। भारीपन के कारण हमज़ा को हटा दिया गया। यह भारी (मुशद्दद) और हल्का (मुखफ़्फ़फ़) दोनों होता है; यदि यह भारी हो, तो भारी "इन्ना" की तरह नसब देता है, और यदि हल्का हो, तो हल्के"इन" की तरह रफ़ा देता है(३)। तीसरा: जादू(सिह्र)। कहा जाता है कि इसका मूल(४) चालों और कल्पनाओं के माध्यम से भ्रम पैदा करना है। यह तब होता है जब जादूगर कुछ कार्य और अर्थ करता है जिससे जादू किए गए व्यक्ति को वह वास्तविकता से अलग दिखाई देता है, जैसे कोई दूर से मृगतृष्णा देखता है और कल्पना करता है कि वह पानी है, या जैसे तेज चलने वाले जहाज पर सवार यात्री को लगता है कि वह जिन पेड़ों और पहाड़ों को देखता है वे उसके साथ चल रहे हैं(५)। यह भी कहा जाता है: यह "सहर्तु अस्-सबिय्या" (मैंने लड़के को मोहित किया) से लिया गया है: जब उसे धोखा दिया गया हो, या जब उसे बहलाया गया हो। "अत-तस्हीर" भी इसी के समान है। लबीद ने कहा(६): यदि तुम हमसे पूछो कि हम क्या हैं, तो हम इस जादू किए हुए/खिलाए हुए मानव जाति की चिड़ियाँ हैं। एक अन्य काव्य: हम स्वयं को एक अदृश्य मामले की ओर जल्दी करते हुए देखते हैं, और हमें भोजन और पेय से मोहित/पालित किया जाता है।

(१) इराब अल-कुरआन, अन-नहहास १/२५२। (२) अस-सबा, इब्न मुजाहिद पृ. १६७-१६८ और अत-तयसीर पृ. ७५। (३) अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत १/३२७ में लेखक के इन शब्दों को उद्धृत किया, फिर यह कहकर उनका खंडन किया: "यह एक गलत बात है, और सही यह है कि यह एक सरल (असंयुक्त) शब्द है।" (४) (M) में: कहा गया कि जादू का मूल। (५) अन-नुकत वल-उयून १/१६६। (६) उनका दीवान पृ. ५६।

272 سورہ البقرہ: آیت 102

اور "يُعلِّمُونَ" حالتِ نصب میں 'حال' کے طور پر ہے، اور یہ حالتِ رفع میں بھی ہو سکتا ہے اس بنیاد پر کہ یہ 'خبرِ ثانی' ہے(1)۔ عاصم کے علاوہ کوفیوں نے اسے "ولكنِ الشَّياطينُ" (لیکن شیطان) پڑھا ہے، 'لکن' کی تخفیف کے ساتھ اور 'الشیاطین' کے 'نون' کے رفع (پیش) کے ساتھ۔ اسی طرح سورہ الانفال میں "ولكنِ اللهُ رَمَى" [17] اور ابن عامر نے ان سے اتفاق کیا۔ باقی قراء اسے تشدید اور نصب کے ساتھ پڑھتے ہیں(2)۔ "لکن" ایک ایسا لفظ ہے جس کے دو معنی ہیں: ماضی کی خبر کی نفی، اور مستقبل کی خبر کا اثبات۔ یہ تین کلمات سے بنا ہے: "لا"، "ك"، اور "إنَّ"۔ "لا" نفی کے لیے، "ك" خطاب کے لیے، اور "إنَّ" اثبات و تحقیق کے لیے؛ ثقالت کی وجہ سے ہمزہ گر گیا۔ یہ لفظ ثقیل (مشدّد) بھی ہوتا ہے اور مخفف بھی؛ جب یہ ثقیل ہو تو "إنَّ" ثقیلہ کی طرح نصب دیتا ہے، اور جب مخفف ہو تو "إنْ" مخففہ کی طرح رفع دیتا ہے(3)۔ تیسرا: جادو (سحر)۔ کہا گیا ہے کہ اس کی اصل(4) چالوں اور تخیل کے ذریعے دھوکہ دہی ہے۔ وہ یہ کہ جادوگر کچھ کام اور معانی پیدا کرتا ہے، تو مسحور (جس پر جادو کیا گیا ہو) کو وہ چیزیں اصل کے برعکس نظر آتی ہیں، جیسے وہ شخص جو دور سے سراب دیکھتا ہے اور اسے پانی گمان کرتا ہے، یا جیسے تیز رفتار جہاز کا مسافر جسے یہ گمان ہوتا ہے کہ وہ جن درختوں اور پہاڑوں کو دیکھ رہا ہے وہ اس کے ساتھ چل رہے ہیں(5)۔ اور کہا گیا ہے: یہ "سَحرتُ الصبيَّ" سے مشتق ہے: یعنی جب میں نے اسے دھوکہ دیا، اور اسی طرح جب میں نے اسے کسی چیز میں مشغول کر دیا/بہلا دیا۔ "التسحير" بھی اسی طرح ہے۔ لبید نے کہا(6): اگر تم ہم سے پوچھو کہ ہم کیا ہیں تو ہم اس سحر زدہ/کھلائے پلائے گئے انسانوں کی چڑیاں ہیں۔ ایک اور شعر: ہم خود کو ایک غیبی

معاملے کی طرف دوڑتے ہوئے پاتے ہیں، اور ہمیں کھانے اور پینے کے ذریعے سحر زدہ/پالا جاتا ہے۔

(1) إعراب القرآن للنحاس 252/1۔ (2) السبعة لابن مجاهد ص 167-168۔ والتيسير ص 75۔ (3) ابو حیان نے البحر المحیط 327/1 میں مصنف کے اس کلام کو نقل کیا، پھر اس کا تعاقب کرتے ہوئے کہا: "یہ قول فاسد ہے، اور صحیح یہ ہے کہ یہ ایک بسیط (غیر مرکب) کلمہ ہے۔" (4) نسخہ (م) میں: کہا گیا سحر کی اصل۔ (5) النكت والعيون 166/1۔ (6) ان کا دیوان ص 56۔

...sparrows, flies, and worms, and bolder than a grimacing wolf.(1) And the words of the Almighty: "You are only one of those bewitched (al-musahharin)" [Ash-Shu'ara: 153]; it is said: "al-musahhar" is one created with lungs (sahr), and it is said: from those who are nurtured(2); meaning: from those who eat food and drink. It is also said: Its origin is concealment, for the sorcerer performs it in secrecy. It is also said: Its origin is turning away (as-sarf); it is said: "What bewitched (saharak) you from such and such?" meaning: "What turned you away from it?" So magic is turned away from its proper course. It is also said: Its origin is inclination (al-istimalah), and whoever inclines you towards himself has bewitched you. And it was said regarding the words of the Almighty: "Nay, we are a people bewitched (mashurun)" [Al-Hijr: 15], meaning: we were bewitched, so we were removed by imagination from our knowledge.(3) Al-Jawhari said(4): Magic is enchantment; and everything whose source is subtle and fine is magic; and he bewitched him (saharah-u), and the magician (as-sahir) is the knowledgeable one, and he also bewitched him in the sense of deceived him. We have mentioned this. Ibn Mas'ud said: We used to call magic "al-'idah" in the pre-Islamic period of ignorance (Jahiliyyah).(5) And "al-'idah" among the Arabs is extreme bewilderment and the camouflaging of lies; the poet said: "I seek refuge in my Lord from the spitters, in the 'idah of the angry slanderer."(6)

(1) The two verses are by Imru' al-Qays, and they are in his Diwan p. 97. His commentator said: His words: "sparrows and flies," meaning: we are as weak as these weak creatures, and in committing sins we are bolder than the wolves determined on a thing, who do not turn back from what they want. (2) As-Sihah (S-H-R). (3) See Tahdhib al-Lughah 4/290-292. (4) As-Sihah (S-H-R). (5) Narrated by Al-Tahawi in Sharh Mushkil al-Athar (2392), and Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (11104), and its completion: "And indeed 'al-'idah' among you today is malicious gossip (al-qalah)." And Muslim (2606) narrated from Ibn Mas'ud that the Prophet (peace be upon him) said: "Shall I not inform you what 'al-'idah' is? It is tale-bearing (namimah), the malicious gossip between people." (6) The verse was not well-transcribed in manuscripts (D), (Z), and (Zha), and the fixed one is from (Kh) and (M), and it is in Sharh Mushkil al-Athar 171/6, Gharib al-Hadith by Abu Ubayd 3/181, Tahdhib al-Lughah by Al-Azhari 1/130, and As-Sihah ('A-D-H) without attribution, and its narration: "in knots" (fi 'uqad). It is in Al-Lisan ('A-D-H) like the author's narration.

सूरह अल-बकरा: आयत १०२ | २७३

...चिड़ियाँ, मक्खियाँ और कीड़े, और गुर्राते हुए भेड़ियों से भी अधिक साहसी।(1) और अल्लाह तआला का कथन: "तुम तो केवल उन लोगों में से हो जिन पर जादू किया गया (अल-मुसहर्रीन)" [अश-शुअरा: 153]; कहा गया है: 'मुसहर' वह है जिसे फेफड़ों (सहर) के साथ बनाया गया हो, और कहा गया है: उन लोगों में से जिनका पालन-पोषण किया गया(2); अर्थात: उनमें से जो भोजन खाते और पेय पीते हैं। और कहा गया: इसका मूल छिपाव है, क्योंकि जादूगर इसे गुप्त रूप से करता है। और कहा गया: इसका मूल मोड़ना (सिर्फ़) है; कहा जाता है: "तुम्हें अमुक चीज़ से किसने जादू (सहरक) कर दिया?" अर्थात: "तुम्हें उससे किसने मोड़ दिया?" तो जादू अपने वास्तविक मार्ग से मुड़ा हुआ होता है। और कहा गया: इसका मूल आकर्षित करना है, और जो भी तुम्हें अपनी ओर आकर्षित कर ले, उसने तुम पर जादू कर दिया। और अल्लाह तआला के इस कथन के बारे में कहा गया: "बल्कि हम तो ऐसे लोग हैं जिन पर जादू कर दिया गया है" [अल-हिज्र: 15] अर्थात: हम पर जादू किया गया, इसलिए हमें कल्पनाओं के माध्यम से हमारे ज्ञान से हटा दिया गया।(3) अल-जौहरी ने कहा(4): जादू सम्मोहन (अख्ज़ह) है; और हर वह चीज़ जिसका स्रोत सूक्ष्म और बारीक हो, वह जादू है; और उसने उस पर जादू किया, और जादूगर (साहिर): विद्वान है, और 'उसने उसे जादू किया' का अर्थ उसे धोखा देना भी है। हमने इसका उल्लेख किया है। इब्न मसूद ने कहा: हम अज्ञानता के काल (जाहिलियत) में जादू को 'अल-इदाह' कहते थे(5)। और अरबों के बीच 'अल-इदाह' का अर्थ है अत्यधिक विस्मय और झूठ का दिखावा; कवि ने कहा: "मैं अपने रब की शरण मांगता हूँ फूँकने वालियों से, क्रोधित निंदक के जादू(इदाह) में।" (6)

(1) ये दो शेर इमरु अल-क़ैस के हैं, और वे उनके दीवान पृष्ठ 97 में हैं। उनके व्याख्याकार ने कहा: उनकी बात: "चिड़ियाँ और मक्खियाँ," अर्थात: हम कमजोरी में इन कमजोर प्राणियों की तरह हैं, और पाप करने में हम उन दृढ़ भेड़ियों से अधिक साहसी हैं जो अपनी इच्छित वस्तु से पीछे नहीं हटते। (2) अस-सिहह (स-ह-र)। (3) देखें तहज़ीब अल-लुग़ह 4/290-292। (4) अस-सिहह (स-ह-र)। (5) इसे अल-तहावी ने शरह मुश्किल अल-आसार (2392) में, और अल-बयहाक़ी ने शुअ़ब अल-ईमान (11104) में उद्धृत किया है और इसका शेष भाग है: "और आज तुम्हारे बीच 'अल-इदाह' चुगली (अल-क़ाला) है।" और मुस्लिम (2606) ने इब्न मसूद से रिवायत की है कि नबी ﷺ ने फरमाया: "क्या मैं तुम्हें न बताऊँ कि 'अल-इदाह' क्या है? वह चुगली (नमीमा) है, लोगों के बीच की दुर्भावनापूर्ण बातें।" (6) यह शेर पाण्डुलिपियों (द), (ज़) और (ज़ा) में सही नहीं था, और (ख़) और (म) से इसे ठीक

किया गया है, और यह शरह मुश्किल अल-आसार 171/6, अबू उबैद की ग़रीब अल-हदीस 3/181, अल-अज़हरी की तहज़ीब अल-लुग़ह 1/130 और अस-सिहह (अ़-द-ह) में बिना किसी संदर्भ के है, और इसका पाठ: "गाँठों में" (फ़ी उक़द) के रूप में है। और यह लिसान अल-अरब (अ़-द-ह) में लेखक के पाठ के समान है।

...چڑیاں، مکھیاں اور کیڑے، اور دانت نکالے ہوئے بھیڑیوں سے زیادہ نڈر۔ (۱) اور اللہ تعالیٰ کا فرمان: "تم تو محض ان میں سے ہو جن پر جادو کیا گیا (المسحرین)" [الشعراء: ۱۵۳]؛ کہا گیا ہے: المسحر وہ ہے جو پھیپھڑوں (سحر) کے ساتھ پیدا کیا گیا ہو، اور کہا گیا ہے: ان میں سے جن کی پرورش کی گئی(۲)؛ یعنی: ان میں سے جو کھانا کھاتے اور پینا پیتے ہیں۔ اور کہا گیا: اس کی اصل پوشیدگی ہے، کیونکہ جادوگر اسے خفیہ طریقے سے کرتا ہے۔ اور کہا گیا: اس کی اصل پھیرنا (صرف) ہے؛ کہا جاتا ہے: تمہیں فلاں چیز سے کس چیز نے جادو کر دیا (سحرک)؟ یعنی: تمہیں اس سے کس چیز نے پھیر دیا؟ پس جادو اپنے رخ سے پھرا ہوا ہوتا ہے۔ اور کہا گیا: اس کی اصل مائل کرنا ہے، اور جو بھی تمہیں اپنی طرف مائل کر لے، اس نے تم پر جادو کر دیا۔ اور اللہ تعالیٰ کے اس قول کے بارے میں کہا گیا: "بلکہ ہم تو وہ لوگ ہیں جن پر جادو کر دیا گیا ہے" [الحجر: ۱۵] یعنی: ہم پر جادو کیا گیا، پس ہمیں خیالات کے ذریعے ہماری معرفت سے ہٹا دیا گیا۔ (۳) الجوہری نے کہا (۴): سحر (جادو) گرفت (اخذہ) ہے؛ اور ہر وہ چیز جس کا ماخذ لطیف اور باریک ہو وہ سحر ہے؛ اور اس نے اس پر جادو کیا، اور سحر کرنے والا (ساحر): عالم ہے، اور اس پر جادو کیا کے معنی اسے دھوکہ دیا بھی ہیں۔ ہم نے اس کا ذکر کیا ہے۔ ابن مسعود نے کہا: ہم جاہلیت میں سحر کو 'العضہ' کہتے تھے (۵)۔ اور عربوں کے نزدیک 'العضہ' کا مطلب ہے سخت بہتان اور جھوٹ کی ملمع سازی؛ شاعر نے کہا: میں اپنے رب کی پناہ مانگتا ہوں پھونکیں مارنے والیوں سے، غضبناک طعنہ زن کے جادو (عضہ) میں۔ (۶)

(۱) یہ دو اشعار امرؤ القیس کے ہیں، اور یہ ان کے دیوان ص ۹۷ میں ہیں۔ اس کے شارح نے کہا: اس کا قول: چڑیاں اور مکھیاں، یعنی: ہم کمزوری میں ان کمزور مخلوقات کی طرح ہیں، اور

گناہوں کے ارتکاب میں ان پختہ ارادہ رکھنے والے بھیڑیوں سے زیادہ نڈر ہیں جو اپنے ارادے سے پیچھے نہیں ہٹتے۔ (۲) الصحاح (سحر)۔ (۳) دیکھیے تہذیب اللغہ ۴ / ۲۹۰-۲۹۲۔ (۴) الصحاح (سحر)۔ (۵) اسے الطحاوی نے شرح مشکل الآثار (۲۳۹۲) میں، اور البیہقی نے شعب الایمان (۱۱۱۰۴) میں روایت کیا ہے اور اس کا تتمہ یہ ہے: "اور آج تمہارے درمیان 'العضہ' بہتان تراشی (القالة) ہے۔" اور مسلم (۲۶۰۶) نے ابن مسعود سے روایت کیا کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "کیا میں تمہیں نہ بتاؤں کہ 'العضہ' کیا ہے؟ وہ چغل خوری (النمیمہ) ہے، لوگوں کے درمیان بہتان تراشی۔" (۶) یہ شعر نسخوں (د)، (ز) اور (ظ) میں درست نہیں ہے، اور (خ) اور (م) سے ثابت شدہ ہے، اور یہ شرح مشکل الآثار ۱۷۱/۶، ابو عبید کی غریب الحدیث ۳/ ۱۸۱، الازہری کی تہذیب اللغہ ۱/ ۱۳۰ اور الصحاح (عضہ) میں بغیر نسبت کے موجود ہے، اور اس کی روایت: "گرہوں میں" (فی عقد) کے الفاظ کے ساتھ ہے۔ اور یہ لسان العرب (عضہ) میں مصنف کی روایت کی طرح ہے۔

274 Surah Al-Baqarah: Verse 102

Fourthly: It was disagreed upon; does it [magic] have a reality or not? Al-Ghaznawi al-Hanafi mentioned in his "Uyun al-Ma'ani"(1) that according to the Mu'tazilites, magic is a deception with no basis, and according to Al-Shafi'i, it is whisperings and illnesses(2). He said: According to us, its origin is a talisman built upon the influence of the characteristics of the planets, like the effect of the sun on the mercury in Pharaoh's magicians' staffs, or the veneration of devils so they may facilitate what is difficult for him. I say: According to us, it is true, and it has a reality at which God creates whatever He wills, as will follow. Then, of magic, there is what occurs by sleight of hand, like prestidigitation (sha'wadha). The "sha'wadhi" is a courier because of the swiftness of his travel. Ibn Faris said in "al-Mujmal"(3): "Sha'wadha" is not from the speech of the desert people; it is a lightness in the hands and a captivation like magic. And from it is what consists of memorized words, incantations using the names of God Almighty, and it might be from covenants with devils, and it could be medicines, fumigations, and other things.

Fifthly: The Messenger of Allah ﷺ called eloquence in speech and fluency in it "magic", saying: "Verily, some eloquence is magic"(4), narrated by Malik and others(5). This is because it involves making falsehood appear correct until the listener imagines it is truth. Based on this, his ﷺ saying, "Verily, some eloquence is magic"(6), came out as a condemnation of rhetoric and eloquence, since he likened it to magic. It was also said: It came out as praise for rhetoric and preference for eloquence, as said by a group of scholars. The first view is more correct, and the proof for it is his ﷺ saying: "Perhaps some of you are more persuasive in presenting their argument than others"(7), and his saying: "Verily...

---

(1) Perhaps it is Muhammad ibn Yazid ibn Tayfur, the commentator, Rukn al-Din al-Sajawandi al-Bustami, mentioned by al-Dawudi in "Tabaqat al-Mufassirin" 2/271. He attributed this book to him, and Hajji Khalifa named it in "Kashf al-Zunun" 2/1182: "'Ayn al-Ma'ani fi Tafsir al-Sab' al-Mathani". There is another Ghaznawi: Ghali ibn Ibrahim, Abu 'Ali, who has a commentary on the Quran and was a master of many arts, died in the year (582 AH), mentioned by Ibn Qutlubugha in "Taj al-Tarajim" p. 173. (2) Al-Nukat wal-'Uyun 1/167. (3) 2/505. (4) In (Kh) and (D): "magic" (with tanwin). (5) Al-Muwatta 2/986 from the hadith of Abdullah ibn Umar (may Allah be pleased with them both), and also narrated by Ahmad (4651) and Bukhari (5146). (6) In (Kh),

(D), and (Z): "magic" (with tanwin). (7) Narrated by Ahmad (25670), Bukhari (2680), and Muslim (1713) from the hadith of Umm Salama (may Allah be pleased with her).

274 सूरह अल-बकरा : आयत 102

चौथा: इसमें मतभेद है; क्या इसकी कोई वास्तविकता है या नहीं? तो ग़ज़नवी हनफ़ी ने अपनी "उयून अल-मआनी"(1) में उल्लेख किया है कि: मुअतज़िला के अनुसार जादू एक धोखा है जिसका कोई आधार नहीं है, और शाफ़ई के अनुसार: यह वसवसा (भ्रम) और बीमारियाँ हैं(2)। उन्होंने कहा: और हमारे अनुसार इसका आधार एक तिलिस्म है जो सितारों की विशेषताओं के प्रभाव पर आधारित है, जैसे फ़िरऔन के जादूगरों की लाठियों के पारे पर सूर्य का प्रभाव, या शैतानों का सम्मान ताकि वे उसके लिए कठिन कार्यों को आसान बना दें। मैं कहता हूँ: हमारे अनुसार यह सच है, और इसकी एक वास्तविकता है, अल्लाह इसके साथ जो चाहता है पैदा करता है, जैसा कि आगे आएगा। फिर जादू में वह भी शामिल है जो हाथ की सफ़ाई से होता है, जैसे हाथ की सफ़ाई (शौबदा बाज़ी)। और "शौबदी" का अर्थ संदेशवाहक है क्योंकि वह तेज़ी से चलता है। इब्न फ़ारिस ने "अल-मुजमल"(3) में कहा: "शौबदा" रेगिस्तानी लोगों की बोली से नहीं है, और यह हाथों की तेज़ी और जादू की तरह की एक पकड़ है। और इसमें से कुछ वह है जो याद किए जाने वाले शब्द होते हैं, और अल्लाह तआला के नामों से किए जाने वाले झाड़-फूँक, और कभी यह शैतानों के साथ किए गए समझौतों से होता है, और कभी यह दवाओं, धुएँ और ऐसी ही अन्य चीजों से होता है।

पाँचवाँ: अल्लाह के रसूल ﷺ ने बातचीत में वाकपटुता (फ़साहत) और बोलने की कला को जादू कहा है, तो आपने फ़रमाया: "बेशक कुछ बयान जादू होते हैं"(4), इसे मालिक और अन्य ने उल्लेख किया है(5)। ऐसा इसलिए है क्योंकि इसमें झूठ को इस तरह सही करके पेश किया जाता है कि सुनने वाला उसे सच समझने लगता है, इसलिए इस आधार पर आप ﷺ का कथन: "बेशक कुछ बयान जादू होते हैं"(6) वाकपटुता और अलंकार की निंदा के रूप में आया है, क्योंकि आपने इसकी तुलना जादू से की है। और यह भी कहा गया है: यह वाकपटुता की प्रशंसा और बयान की श्रेष्ठता के रूप में आया है, यह विद्वानों के एक समूह का कहना है। पहला विचार अधिक सही है, और इसका प्रमाण आप ﷺ का यह कथन है: "शायद तुम में से कोई अपनी दलील पेश करने में दूसरे से अधिक चतुर हो"(7), और आपका कथन: "बेशक...

पाद टिप्पणियाँ (Footnotes): (1) शायद यह मुहम्मद बिन यज़ीद बिन तैफ़ूर, मुफ़स्सिर, रुकनुद्दीन अल-सजावंदी, अल-बिस्तामी हैं, जिनका उल्लेख अल-दाऊदी ने 'तबाक़ात अल-मुफ़स्सरीन' 2/271 में किया है। और उनके लिए इस पुस्तक का उल्लेख किया, और हाजी खलीफ़ा ने 'कश्फ़ अल-ज़ुनून'

2/1182 में इसका नाम 'ऐन अल-मआनी फ़ी तफ़सीर अल-सब अल-मथानी' रखा है। और एक अन्य ग़ज़नवी हैं: ग़ाली बिन इब्राहिम, अबू अली, जिनकी क़ुरआन की तफ़सीर है, और वे कई कलाओं के ज्ञाता थे, उनकी मृत्यु वर्ष (582 हिजरी) में हुई, इब्न क़ुतलू बुग़ा ने 'ताज अल-तराजिम' पृष्ठ 173 में उनका उल्लेख किया है। (2) अल-नुकत वल-'उयून 1/167। (3) 2/505। (4) (ख) और (द) में: 'सहरन' (जादू)। (5) अल-मुवत्ता 2/986, अब्दुल्ला बिन उमर रज़ियल्लाहु अन्हुमा की हदीस से, और इसे अहमद (4651) और बुखारी (5146) ने भी उद्धृत किया है। (6) (ख), (द) और (ज़) में: 'सहरन' (जादू)। (7) इसे अहमद (25670), बुखारी (2680) और मुस्लिम (1713) ने उम्मे सलमा रज़ियल्लाहु अन्हा की हदीस से उद्धृत किया है।

274 سورة البقرہ : آیت ۱۰۲

چوتھی بات: اس میں اختلاف ہے کہ کیا اس کی کوئی حقیقت ہے یا نہیں؟ چنانچہ غزنوی حنفی نے اپنی کتاب "عیون المعانی"(۱) میں ذکر کیا ہے کہ معتزلہ کے نزدیک جادو محض ایک دھوکہ ہے جس کی کوئی اصل نہیں، اور امام شافعیؒ کے نزدیک یہ وسوسہ اور بیماریاں ہیں(۲)۔ انہوں نے کہا: اور ہمارے نزدیک اس کی اصل ایک طلسم ہے جو ستاروں کی خصوصیات کے اثرات پر مبنی ہوتا ہے، جیسے فرعون کے جادوگروں کی لاٹھیوں کے پارے پر سورج کا اثر، یا شیطانوں کی تعظیم تاکہ وہ اس کے لیے مشکل کام آسان کر دیں۔ میں کہتا ہوں: ہمارے نزدیک یہ حق ہے اور اس کی ایک حقیقت ہے، اللہ تعالیٰ اس کے وقت جو چاہے پیدا فرما دیتا ہے، جیسا کہ آگے آئے گا۔ ثم جادو میں سے کچھ وہ ہے جو ہاتھ کی صفائی سے ہوتا ہے، جیسے شعبدہ بازی۔ اور "شعبوذی" پیغام رساں کو کہتے ہیں کیونکہ وہ تیزی سے چلتا ہے۔ ابن فارس نے "المجمل"(۳) میں کہا: "شعبذہ" اہل بدوی کی کلام میں سے نہیں ہے، اور یہ ہاتھوں کی چستی اور جادو جیسی ایک کیفیت ہے۔ اور اس میں سے کچھ وہ کلمات ہیں جو یاد کیے جاتے ہیں، اور اللہ تعالیٰ کے ناموں سے دم کرنا، اور کبھی یہ شیطانوں کے عہد و پیمان سے ہوتا ہے، اور کبھی یہ ادویات، دھونیوں اور اس طرح کی دیگر چیزوں سے ہوتا ہے۔

پانچویں بات: رسول اللہ ﷺ نے کلام میں فصاحت اور بلاغت کو جادو قرار دیا، چنانچہ آپ ﷺ نے فرمایا: "بیشک کچھ بیان (تقریر) جادو ہوتا ہے"(۴)، اسے امام مالک اور دوسروں نے روایت کیا ہے(۵)۔ یہ اس لیے کہ اس میں باطل کو اس طرح درست کر کے پیش کیا جاتا ہے کہ سننے والا اسے حق سمجھنے لگتا ہے، لہٰذا اس بنیاد پر آپ ﷺ کا قول "بیشک کچھ بیان جادو ہوتا ہے"(۶) بلاغت اور فصاحت کی مذمت کے طور پر نکلا، کیونکہ آپ ﷺ نے اسے جادو سے تشبیہ دی۔ اور

یہ بھی کہا گیا ہے: یہ بلاغت کی تعریف اور بیان کی فضیلت کے طور پر نکلا ہے، یہ اہل علم کی ایک جماعت کا قول ہے۔ پہلا قول زیادہ صحیح ہے، اور اس کی دلیل آپ ﷺ کا یہ ارشاد ہے: "شاید تم میں سے کوئی اپنی دلیل پیش کرنے میں دوسرے سے زیادہ فصیح ہو"(۷)، اور آپ کا قول: "بیشک...

حواشی: (۱) شاید یہ محمد بن یزید بن طیفور، مفسر، رکن الدین السجاوندی، البسطامی ہیں، جن کا تذکرہ الداودی نے طبقات المفسرین ۲۷۱/۲ میں کیا ہے۔ اور ان کے لیے یہ کتاب ذکر کی، اور حاجی خلیفہ نے اسے کشف الظنون ۱۱۸۲/۲ میں "عین المعانی فی تفسیر السبع المثانی" کے نام سے موسوم کیا۔ اور ایک دوسرے غزنوی بھی ہیں: غالی بن ابراہیم، ابو علی، جن کی تفسیر قرآن ہے، اور وہ فنون کے ماہر تھے، ان کی وفات (۵۸۲ھ) میں ہوئی، ابن قطلوبغا نے تاج التراجم ص ۱۷۳ میں ان کا ذکر کیا ہے۔ (۲) النکت والعیون ۱۶۷/۱۔ (۳) ۵۰۵/۲۔ (۴) نسخہ (خ) اور (د) میں: "سحراً" ہے۔ (۵) الموطا ۹۸۶/۲، عبداللہ بن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے، اور اسے احمد (۴۶۵۱) اور بخاری (۵۱۴۶) نے بھی روایت کیا ہے۔ (۶) نسخہ (خ)، (د) اور (ز) میں: "سحراً" ہے۔ (۷) اسے احمد (۲۵۶۷۰)، بخاری (۲۶۸۰) اور مسلم (۱۷۱۳) نے ام سلمہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 275

"...those of you most hateful to me are the 'Thartharun' (babblers) and 'Mutafaihiqun' (the loquacious/arrogant in speech)" (1). 'Thartharah' means excessive talking and repeating it; it is said: "The man babbled (tharthara), so he is a 'tharthar' (babbler) and 'mihdhar' (a continuous chatterer)" (2). 'Mutafaihiq' is similar to it. Ibn Duraid said: "So-and-so is being 'mutafaihiq' (3) in his speech: when he expands it and is excessively eloquent; he said: and its origin is 'al-fahaq', which is fullness; as if he filled his mouth with it" (4).

I say: And in this sense that we mentioned, it was explained by Aamir al-Sha'bi, the narrator of the hadith, and Sa'sa'a bin Sawhan, for they said (5): As for his saying ﷺ: "Indeed, from eloquence there is magic," it refers to a man who has an obligation upon him, yet he is more eloquent in presenting arguments than the rightful claimant, so he charms the people with his eloquence, and takes away the right though it is against him (6).

Scholars only praise eloquence and fluency as long as it does not go to the limit of verbosity and prolixity, and portraying falsehood in the form of truth (7). And this is clear, and praise be to Allah.

Sixth: Among magic is that which constitutes disbelief (kufr) on the part of its practitioner, such as what they claim of changing people's forms, and turning them into the form of a beast, and covering a month's distance in a night, and flying in the air; so everyone who does this to make people think he is in the right, then that is disbelief from him, as said by Abu Nasr Abd al-Rahim al-Qushayri.

Abu Umar (8) said: Whoever claims that a magician can turn an animal from one form to another, making a human a donkey or something similar, and is able to transfer bodies (9), destroy them, and change them, then he sees the execution of the magician; because he is a disbeliever in the prophets, claiming [to perform] signs and miracles like theirs, and with this, the knowledge of the truth of prophethood cannot be established, as something like it can be achieved through trickery. As for those who claim that magic is [merely] tricks...

(1) Narrated by Ahmad (17732) from the hadith of Abu Tha'labah al-Khushani, may Allah be pleased with him. (2) Al-Sihah (th-r-r). (3) In (Kh) and (Z): 'yatafahaq'. (4) Al-Sihah (f-h-q) and attributed it to Al-Farra', see Jamharat al-Lughah 3/157. (5) In the manuscripts: 'fa-qal', and what is established is from (M). (6) Abu Dawud cited the

words of Sa'sa'a after the hadith (5012), and it was cited through him by Al-Razi Al-Jassas in 'Ahkam al-Qur'an' 1/42, and Ibn Abd al-Barr in 'Al-Tamheed' 5/181. Sa'sa'a bin Sawhan: he is Abu Talhah, one of the orators of the Arabs, he was among the senior companions of Ali, may Allah be pleased with him, and he died during the caliphate of Mu'awiyah. Siyar A'lam al-Nubala' 3/528. We have not found Al-Sha'bi's narration of the hadith. (7) See Al-Tamheed 5/176, and Fath al-Bari 10/237-238. (8) In (D), (Z), and (M): 'Abu Amr', which is a mistake, and he is Ibn Abd al-Barr, and his words are in 'Al-Istidhkar' 25/243-244. (9) In (M): 'bodies' (ajsad).

सूरह अल-बकराह: आयत १०२ २७५

"...तुममें से जो मुझे सबसे अधिक नापसंद हैं, वे हैं 'थरथारून' (बकबक करने वाले) और 'मुतफैहिकून' (शब्दों का आडंबर करने वाले/अहंकारी)" (१)। 'थरथराह' का अर्थ है बहुत अधिक बोलना और उसे दोहराना; कहा जाता है: "आदमी बड़बड़ाया (थरथरा), इसलिए वह 'थरथार' (बकबक करने वाला) और 'मिहज़ार' (लगातार बोलने वाला) है" (२)। 'मुतफैहिक' भी इसके समान ही है। इब्न दुरैद ने कहा: "अमुक व्यक्ति अपनी बात में 'मुतफैहिक' (३) हो रहा है: जब वह उसे विस्तार देता है और अत्यधिक वाक्पटु होता है; उन्होंने कहा: और इसका मूल 'अल-फहक़' है, जिसका अर्थ है पूर्णता; जैसे कि उसने उससे अपना मुँह भर लिया हो" (४)।

मैं कहता हूँ: और इसी अर्थ में जिसे हमने उल्लेख किया है, इसकी व्याख्या हदीस के वर्णनकर्ता आमिर अल-शाबी और सासा बिन सौहान ने की थी, क्योंकि उन्होंने कहा (५): जहाँ तक उनके ﷺ के कथन "निश्चय ही वाक्पटुता में जादू है" का संबंध है, तो इसका अर्थ उस व्यक्ति से है जिस पर कोई दायित्व है, फिर भी वह सही दावेदार की तुलना में तर्क प्रस्तुत करने में अधिक वाक्पटु है, इसलिए वह अपनी वाक्पटुता से लोगों को मंत्रमुग्ध कर देता है, और सत्य को छीन लेता है जबकि वह उसके विरुद्ध है (६)।

विद्वान वाक्पटुता और प्रवाह की प्रशंसा केवल तब तक करते हैं जब तक कि वह शब्द-बाहुल्य और विस्तार की सीमा तक न पहुँच जाए, और झूठ को सत्य के रूप में चित्रित न किया जाए (७)। और यह स्पष्ट है, और अल्लाह की स्तुति हो।

छठा: जादू में वह भी है जो उसके करने वाले की ओर से कुफ्र (अविश्वास) है, जैसे कि वे लोगों के रूपों को बदलने, उन्हें पशु के रूप में बाहर निकालने, एक महीने की दूरी एक रात में तय करने और हवा में उड़ने का दावा करते हैं; अतः जो कोई भी लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए ऐसा करता है कि वह सही है, तो वह उसकी ओर से कुफ्र है, यह अबू नस्र अब्द अल-रहीम अल-कुशैरी ने कहा है।

अबू उमर (८) ने कहा: जो कोई यह दावा करता है कि जादूगर जानवर को एक रूप से दूसरे रूप में बदल देता है, जिससे मनुष्य गधा या ऐसा ही कुछ बन जाता है, और वह शरीरों (९) को स्थानांतरित करने, उन्हें नष्ट करने और बदलने में सक्षम है, तो वह जादूगर को मार डालने का पक्षधर है; क्योंकि वह नबियों का अविश्वासी है, उनके जैसे संकेतों और चमत्कारों का दावा करता है, और इसके साथ नबुवत (पैगंबरी) की सत्यता का ज्ञान स्थापित नहीं किया जा सकता, क्योंकि इसके जैसा कुछ

चालाकी से प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ तक उन लोगों का प्रश्न है जो यह दावा करते हैं कि जादू धोखा है...

(१) अहमद (१७७३२) द्वारा अबू थलाबा अल-खुशानी (रजि.) की हदीस से उद्धृत। (२) अस-सिहाह (थ-र-र)। (३) (ख) और (ज़) में: 'यतफ़हक़'। (४) अस-सिहाह (फ-ह-क़) और इसे अल-फर्रा के नाम दिया, देखें जमहरत अल-लुगाह ३/१५७। (५) पांडुलिपियों में: 'फ़-क़ाल', और (म) से जो स्थापित है वह 'फ़-क़ाला' है। (६) अबू दाऊद ने हदीस (५०१२) के बाद सासा के शब्द उद्धृत किए हैं, और इसे उनके माध्यम से अल-राज़ी अल-जस्साज़ ने 'अहकाम अल-कुरान' १/४२ में, और इब्न अब्द अल-बर्र ने 'अल-तमहीद' ५/१८१ में उद्धृत किया है। सासा बिन सौहान: वह अबू तल्हा है, जो अरब के वक्ताओं में से एक थे, वह अली (रजि.) के वरिष्ठ साथियों में से थे, और मुआविया के खिलाफत के दौरान उनकी मृत्यु हुई। सियर आलाम अल-नुबला ३/५२८। हमें हदीस का अल-शाबी का वर्णन नहीं मिला। (७) देखें अल-तमहीद ५/१७६, और फतह अल-बारी १०/२३७-२३८। (८) (द), (ज़) और (म) में: 'अबू अम्र', जो एक गलती है, और वह इब्न अब्द अल-बर्र हैं, और उनके शब्द 'अल-इस्तिज़कार' २५/२४३-२४४ में हैं। (९) (म) में: 'अजसाद' (शरीर)।

سورہ البقرہ : آیت ۱۰۲ ۲۷۵

"...تم میں سے مجھے سب سے زیادہ ناپسندیدہ وہ لوگ ہیں جو 'ثرثارون' (فضول گو) اور 'متفیہقون' (گفتگو میں حد سے بڑھنے والے/متکبر) ہیں" (۱)۔ ثرثرہ: بہت زیادہ باتیں کرنا اور انہیں دہرانا؛ کہا جاتا ہے: "آدمی نے فضول باتیں کیں (ثرثر)، تو وہ 'ثرثار' (بکواس کرنے والا) اور 'مھذار' (بکواسی) ہے" (۲)۔ 'متفیہق' بھی اسی کے قریب ہے۔ ابن درید نے کہا: "فلاں شخص اپنی گفتگو میں 'متفیہق' (۳) ہو رہا ہے: جب وہ اس میں وسعت پیدا کرے اور تکلف سے کام لے؛ انہوں نے کہا: اور اس کی اصل 'الفھق' ہے، جس کے معنی بھر جانے کے ہیں؛ گویا اس نے اس سے اپنا منہ بھر لیا ہو" (٤)۔

میں کہتا ہوں: اور اس معنی میں جس کا ہم نے ذکر کیا، اس کی تشریح حدیث کے راوی عامر الشعبي اور صعصعہ بن صوحان نے کی، چنانچہ ان دونوں نے کہا (٥): جہاں تک آپ ﷺ کے اس قول کا تعلق ہے کہ "بے شک بعض بیان جادو ہوتے ہیں"، تو اس سے مراد وہ آدمی ہے جس پر کوئی حق واجب ہو، اور وہ حق والے کے مقابلے میں دلائل پیش کرنے میں زیادہ ماہر (لسانیت والا) ہو، پس وہ اپنے بیان سے لوگوں پر جادو کر دیتا ہے، اور حق لے اڑتا ہے حالانکہ حق اس کے خلاف ہوتا ہے (٦)۔

علماء بلاغت اور فصاحت کی تعریف صرف اسی وقت کرتے ہیں جب تک کہ وہ حد سے زیادہ طوالت اور مبالغہ آرائی تک نہ پہنچ جائے، اور باطل کو حق کی صورت میں پیش نہ کیا جائے (۷)۔ اور یہ واضح ہے، اور اللہ کا شکر ہے۔

چھٹا مسئلہ: جادو میں سے کچھ ایسا ہے جو اس کے کرنے والے کی طرف سے کفر ہے، جیسے وہ لوگوں کی صورتیں بدلنے، انہیں چوپایوں کی شکل میں نکالنے، ایک مہینے کی مسافت ایک

رات میں طے کرنے اور ہوا میں اڑنے کے دعوے کرتے ہیں؛ پس جس نے بھی یہ کام اس لیے کیا کہ لوگوں کو وہم میں ڈالے کہ وہ حق پر ہے، تو یہ اس کی طرف سے کفر ہے، یہ بات ابو نصر عبد الرحیم القشیری نے کہی ہے۔

ابو عمر (٨) نے کہا: جس نے یہ گمان کیا کہ جادوگر جانور کو ایک صورت سے دوسری صورت میں بدل دیتا ہے، چنانچہ وہ انسان کو گدھا یا اس جیسا کچھ بنا دیتا ہے، اور وہ اجسام (٩) کو منتقل کرنے، انہیں ہلاک کرنے اور بدلنے پر قدرت رکھتا ہے، تو وہ جادوگر کو قتل کرنے کا قائل ہے؛ کیونکہ وہ انبیاء کا منکر ہے، ان کی آیات اور معجزات جیسا دعویٰ کرتا ہے، اور اس کے ساتھ ثبوتِ نبوت کا علم حاصل نہیں ہو سکتا، کیونکہ اس جیسا کام حیلے سے حاصل ہو سکتا ہے۔ رہا وہ شخص جس کا گمان ہے کہ جادو محض دھوکہ ہے...

(١) اسے احمد (١٧٧٣٢) نے ابو ثعلبہ الخشنی رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٢) الصحاح (ثرر)۔ (٣) (خ) اور (ظ) میں: یتفیہق۔ (٤) الصحاح (فھق) اور اسے الفراء کی طرف منسوب کیا، دیکھئے جمہرۃ اللغہ ٣/ ١٥٧۔ (٥) قلمی نسخوں میں: فقال، اور (م) سے ثابت شدہ لفظ 'فقالا' ہے۔ (٦) ابو داؤد نے حدیث (٥٠١٢) کے بعد صعصعہ کا کلام ذکر کیا ہے، اور اسے ان کے واسطے سے الرازی الجصاص نے احکام القرآن ١/ ٤٢ میں، اور ابن عبد البر نے التمہید ٥/ ١٨١ میں نقل کیا ہے۔ صعصعہ بن صوحان: یہ ابو طلحہ ہیں، جو عرب کے خطیبوں میں سے ایک تھے، وہ حضرت علی رضی اللہ عنہ کے بڑے ساتھیوں میں سے تھے، اور ان کی وفات معاویہ کے عہد خلافت میں ہوئی۔ سیر اعلام النبلاء ٣/ ٥٢٨۔ ہمیں حدیث کی الشعبي کی روایت نہیں ملی۔ (٧) دیکھئے التمہید ٥/ ١٧٦، اور فتح الباری ١٠/ ٢٣٧-٢٣٨۔ (٨) (د) اور (ظ) اور (م) میں: ابو عمرو، جو کہ غلطی ہے، اور وہ ابن عبد البر ہیں، اور ان کا کلام الاستذکار ٢٥/ ٢٤٣-٢٤٤ میں ہے۔ (٩) (م) میں: الأجساد۔

276 Surah Al-Baqarah: Verse 102

...and tricks, deceptions, and imaginings. Therefore, according to his principle, it is not mandatory to kill a magician, unless he kills someone with his action, in which case he is killed for it.

Seventhly: The People of Sunnah held the view that magic is established and has a reality. Most of the Mu'tazilah and Abu Ishaq al-Isfarayini from the Shafi'i followers held the view that magic has no reality; rather, it is just deception, imagination, and creating an illusion of something being different from what it really is, and that it is a type of sleight of hand and sorcery. As God Almighty said: "it seemed to him, by their magic, that they were running" [Taha: 66], He did not say they were running in reality, but said: "it seemed to him". He also said: "they bewitched the eyes of the people" [Al-A'raf: 116].

This is not an argument, because we do not deny that imagination and other things are part of magic, but beyond that, things have been established that reason permits and tradition has reported. Among these is what came in this verse about mentioning magic and teaching it. If it had no reality, it could not be taught, and God Almighty would not have informed that they were teaching it to people. This indicates that it has a reality. Also, the words of the Almighty in the story of Pharaoh's magicians: "and they produced a great magic" [Al-A'raf: 116], and Surah Al-Falaq, with the agreement of the commentators that the reason for its revelation was the magic of Labid ibn al-A'sam. This is among what Bukhari, Muslim, and others(2) narrated from Aisha (may God be pleased with her), who said: "The Messenger of God (PBUH) was bewitched by a Jew from the Jews of Bani Zurayq called Labid ibn al-A'sam..." the hadith. In it, the Prophet (PBUH) said when the magic was undone: "Verily, Allah has healed me." Healing only occurs by removing the ailment and the disappearance of the disease, which indicates that it is true and real. Its existence and occurrence are certain based on the reports of God Almighty and His Messenger. Upon this are the people of authority (Ahl al-Hall wal-'Aqd) who form the consensus, and no weight is given, despite their agreement, to the dregs of the Mu'tazilah and their opposition to the people of truth.

Magic was widespread and well-known in previous times, and people talked about it, and no denial of its basis appeared from the Sahaba or the Tabi'un. Sufyan narrated from Abu al-A'war(3), from 'Ikrimah, from Ibn Abbas who said: Magic was taught in a village among the villages of Egypt called Al-Farama(4). Thus, whoever...

(1) In (D) and (M): so did not. (2) Sahih Bukhari (3268) and (5763), Sahih Muslim (2189), and narrated by Ahmad (24300). (3) We do not know him, and it appeared in Al-Istidhkar 25/240 from Abu Sa'id al-A'war. (4) With vowelization and shortening (of the vowel), and it may be lengthened; it is a city on the coast in the direction of Egypt between Al-Arish and Al-Fustat. Mu'jam al-Buldan 4/255.

२७६ सूरह अल-बक़रह: आयत १०२

...और चालबाज़ियां, धोखे और कल्पनाएँ हैं। इसलिए, उनके सिद्धांत के अनुसार, जादूगर की हत्या अनिवार्य नहीं है, जब तक कि वह अपने कार्य से किसी की हत्या न कर दे, ऐसी स्थिति में उसे उसके बदले में मार दिया जाएगा।

सातवीं बात: अहले सुन्नत का मत है कि जादू स्थापित है और इसकी वास्तविकता है। मुतज़िला के अधिकांश विद्वानों और शाफ़ई अनुयायियों में से अबू इसहाक़ अल-इस्फ़रायिनी का मत था कि जादू की कोई वास्तविकता नहीं है; बल्कि यह केवल धोखा, कल्पना और किसी चीज़ के वास्तविकता से अलग होने का भ्रम पैदा करना है, और यह हाथ की सफ़ाई और जादूगरी का एक प्रकार है। जैसा कि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: "उनके जादू से उसे ऐसा लगा कि वे दौड़ रहे हैं" [ता-हा: ६६], उन्होंने यह नहीं कहा कि वे वास्तव में दौड़ रहे थे, बल्कि कहा: "उसे ऐसा लगा"। उन्होंने यह भी कहा: "उन्होंने लोगों की आँखों पर जादू कर दिया" [अल-अ'राफ़: ११६]।

यह कोई तर्क नहीं है, क्योंकि हम इस बात से इनकार नहीं करते कि कल्पना और अन्य चीज़ें जादू का हिस्सा हैं, लेकिन इसके अलावा, ऐसी चीज़ें स्थापित हो चुकी हैं जिन्हें तर्क अनुमति देता है और हदीसों में बताया गया है। इनमें से वह है जो इस आयत में जादू के उल्लेख और उसकी शिक्षा के बारे में आया है। यदि इसकी कोई वास्तविकता न होती, तो इसे सिखाया नहीं जा सकता था, और अल्लाह सर्वशक्तिमान यह सूचित नहीं करते कि वे इसे लोगों को सिखा रहे थे। यह इंगित करता है कि इसकी वास्तविकता है। और फिरौन के जादूगरों की कहानी में सर्वशक्तिमान का कथन: "और वे एक महान जादू लेकर आए" [अल-अ'राफ़: ११६], और सूरह अल-फ़लक़, टीकाकारों की इस सहमति के साथ कि इसके उतरने का कारण लबीद बिन अल-आसम का जादू था। यह उन बातों में से है जिसे बुखारी, मुस्लिम और अन्य(२) ने आयशा (रज़िअल्लाहु अन्हा) से वर्णित किया है, जिन्होंने कहा: "अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर बनी ज़ुरैक के यहूदियों में से लबीद बिन अल-आसम नामक एक यहूदी ने जादू कर दिया था..." पूरी हदीस। इसमें है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जादू हटने पर कहा: "बेशक, अल्लाह ने मुझे शिफ़ा दी है।" शिफ़ा केवल बीमारी को दूर करने और रोग के समाप्त होने से होती है, जो दर्शाता है कि यह सत्य और वास्तविक है। अल्लाह सर्वशक्तिमान और उनके रसूल की सूचनाओं के आधार पर इसके अस्तित्व और घटित होने का निश्चय है। इसी पर विद्वान और इज्मा' करने वाले लोग (अहल अल-हल्ल वल-अक़्द) सहमत हैं, और उनकी सहमति के होते हुए मुतज़िला के तुच्छ लोगों और सत्य के लोगों के विरोध का कोई महत्व नहीं है।

प्राचीन काल में जादू बहुत प्रचलित और प्रसिद्ध था, और लोग इसके बारे में बात करते थे, और न तो सहाबा और न ही ताबेईन की ओर से इसके मूल का कोई खंडन सामने आया। सुफ़यान ने अबू अल-अ'वर(३) से, उन्होंने इक्रिमा से और उन्होंने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: मिस्र के गाँवों में से अल-फ़रमा(४) नामक एक गाँव में जादू सिखाया जाता था। तो, जो कोई...

---

(१) (द) और (म) प्रतियों में: "तो नहीं"। (२) सहीह बुखारी (३२६८) और (५७६३), सहीह मुस्लिम (२१८९), और इसे अहमद (२४३००) ने भी निकाला है। (३) हम उन्हें नहीं जानते, और अल-इस्तिधकार २५/२४० में अबू सईद अल-अ'वर से आया है। (४) ज़बर और छोटे स्वर के साथ, और इसे खींचा भी जा सकता है, यह मिस्र की ओर अल-अरीश और अल-फ़ुस्tat के बीच तट पर स्थित एक शहर है। मु'जम अल-बुल्दान ४/२५५।

۲۷۶ سورة البقرہ: آیت ۱۰۲

...اور شعبدہ بازیاں، دھوکے اور خیالات ہیں۔ پس ان (معتزلہ) کے نزدیک ساحر کا قتل واجب نہیں ہے، الّا یہ کہ وہ اپنے عمل سے کسی کو قتل کر دے، تو اسے بدلے میں قتل کیا جائے گا۔

ساتویں بات: اہل سنت اس طرف گئے ہیں کہ سحر ثابت ہے اور اس کی حقیقت ہے۔ جبکہ عام معتزلہ اور شافعیہ میں سے ابو اسحاق استراباذی کا موقف یہ ہے کہ سحر کی کوئی حقیقت نہیں ہے، بلکہ یہ صرف دھوکہ، تخیل اور کسی چیز کو اس کی اصل حالت کے خلاف دکھانا ہے، اور یہ ہاتھ کی صفائی اور جادوگری کی ایک قسم ہے۔ جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "ان کے جادو کی وجہ سے اسے ایسا محسوس ہوا کہ وہ دوڑ رہے ہیں" [طہٰ: ۶۶]، اللہ نے یہ نہیں فرمایا کہ وہ حقیقت میں دوڑ رہے تھے، بلکہ فرمایا: "اسے ایسا محسوس ہوا"۔ اور اللہ نے یہ بھی فرمایا: "انہوں نے لوگوں کی آنکھوں پر جادو کر دیا" [الاعراف: ۱۱۶]۔

اور اس میں کوئی دلیل نہیں ہے، کیونکہ ہم اس بات کا انکار نہیں کرتے کہ تخیل اور دیگر چیزیں سحر کا حصہ ہیں، لیکن اس کے علاوہ بھی ایسے امور ثابت ہیں جنہیں عقل جائز قرار دیتی ہے اور شریعت نے انہیں بیان کیا ہے۔ ان میں سے وہ بات ہے جو اس آیت میں سحر کے ذکر اور اس کی تعلیم کے بارے میں آئی ہے، اگر اس کی کوئی حقیقت نہ ہوتی تو اسے سکھانا ممکن نہ ہوتا، اور نہ ہی اللہ تعالیٰ یہ خبر دیتا کہ وہ لوگوں کو اسے سکھاتے ہیں، پس یہ اس بات کی دلیل ہے کہ اس کی حقیقت ہے۔ اور فرعون کے جادوگروں کے قصے میں اللہ تعالیٰ کا قول: "اور وہ ایک بڑا جادو لے کر آئے" [الاعراف: ۱۱۶]، اور سورہ فلق، اس پر مفسرین کے اتفاق کے ساتھ کہ اس کے نزول کا سبب لبید بن اعصم کا سحر تھا، اور یہ ان روایات میں سے ہے جسے بخاری، مسلم اور دیگر(۲) نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: "رسول اللہ ﷺ پر

بنی زریق کے یہودیوں میں سے ایک یہودی نے سحر کیا جسے لبید بن اعصم کہا جاتا تھا..." پوری حدیث۔ اور اس میں ہے کہ نبی ﷺ نے سحر کے کھلنے پر فرمایا: "بے شک اللہ نے مجھے شفا دے دی ہے"۔ اور شفا صرف بیماری کے رفع ہونے اور مرض کے زوال سے ہوتی ہے، پس یہ اس بات کی دلیل ہے کہ اس کا حق اور حقیقت ہے، چنانچہ اللہ تعالیٰ اور اس کے رسول کی دی ہوئی خبر کے مطابق اس کے وجود اور واقع ہونے کا قطعی علم ہے۔ اسی پر وہ اہل حل و عقد ہیں جن سے اجماع منعقد ہوتا ہے، اور ان کے اتفاق کے ہوتے ہوئے معتزلہ کے پسماندہ لوگوں اور ان کی اہل حق کے ساتھ مخالفت کی کوئی حیثیت نہیں ہے۔

سابقہ زمانے میں سحر بہت پھیلا ہوا اور عام تھا، اور لوگ اس کے بارے میں گفتگو کرتے تھے، اور نہ صحابہ اور نہ ہی تابعین میں سے کسی نے اس کی اصل کا انکار کیا۔ سفیان نے ابو الاعور(۳) سے، انہوں نے عکرمہ سے اور انہوں نے ابن عباس سے روایت کیا کہ انہوں نے فرمایا: مصر کے دیہاتوں میں سے ایک گاؤں میں سحر سکھایا جاتا تھا جسے الفَرَمَا(۴) کہا جاتا ہے۔ پس جو...

---

(۱) نسخہ (د) اور (م) میں ہے: "فلم"۔ (۲) صحیح بخاری (۳۲۶۸) اور (۵۷۶۳)، صحیح مسلم (۲۱۸۹)، اور اسے احمد (۲۴۳۰۰) نے بھی روایت کیا ہے۔ (۳) ہم انہیں نہیں جانتے، اور الاستذکار ۲۵/۲۴۰ میں ابو سعید الاعور سے مروی ہے۔ (۴) زبر اور قصر کے ساتھ، اور اسے کھینچا بھی جا سکتا ہے، یہ مصر کی جانب العریش اور الفسطاط کے درمیان ساحل پر ایک شہر ہے۔ معجم البلدان ۴/۲۵۵۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 277 Whoever denies it is a disbeliever, denying Allah and His Messenger, rejecting what is known through observation and direct witnessing. Eighth: Our scholars said: It is not denied that extraordinary feats (violating natural laws) may occur at the hands of a magician, which are beyond human power; such as causing illness, separation, loss of sanity, twisting a limb, and other things for which evidence established the impossibility of being within the capacity of servants. They said: It is not far-fetched in magic for the magician's body to become thin enough to enter through small holes and narrow openings, standing on the tip of a reed, running on a thin thread, flying in the air, walking on water, riding a dog, and so on. Despite this, magic is not the cause of these occurrences, nor is it their reason, nor a generating cause, and the magician is not independent in doing them. Rather, Allah Almighty creates these things and brings them about upon the performance of magic; just as He creates satiety upon eating, and quenching thirst upon drinking water. Sufyan narrated from Ammar al-Duhni (1) that a magician was with Al-Walid bin Utbah, walking on a rope, entering the donkey's anus and exiting from its mouth. So, Jundub wrapped himself in his sword and killed him (2). This Jundub is: Jundub bin Ka'b al-Azdi, and it is said: al-Bajali (3), and he is the one about whom the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "There will be in my Ummah a man called Jundub, who will strike a blow with the sword that separates truth from falsehood (4)." They believed him to be this Jundub, the killer of the magician. Ali bin al-Madini said: (1) In (Th) and (M): Al-Dhahabi, which is an error. He is the son of Mu'awiyah Al-Bajali, Al-Kufi, narrated by Muslim and the authors of the Sunan, "Tahdhib al-Tahdhib". (2) Al-Istidhkar 25/240, and mentioned other routes for it in Al-Isti'ab 2/180 (on the margin of Al-Isaba). (3) Ibn Abd al-Barr mentioned in Al-Isti'ab 2/180 Jundub bin Ka'b al-Azdi, saying: According to most of them, he is the killer of the magician before Al-Walid bin Utbah. Then he related from Ali bin al-Madini his saying about him: He has companionship (Sahaba). As for Al-Bajali: He is Jundub bin Abdullah, mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Al-Isaba 1/104, and Al-Bayhaqi related in Al-Sunan 8/136 a report that he killed the magician before Al-Walid bin Utbah, and Allah knows best. (4) Part of a report related by Abd al-Razzaq in Al-Musannaf (18748) from Ibn Jurayj from Amr bin Dinar, from Bajalah as a mursal report. Moreover, Ibn Jurayj is a mudallis, and used 'an' (indirect narration). Ibn al-Sakan narrated it—as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Al-Isaba 2/107—from the path of Yahya bin Kathir, the companion of Al-Basri, from his father, from Al-Jurayri, from Abdullah bin Buraydah, from his father. This Yahya bin Kathir was weakened by Abu Hatim, who said: His Hadith is very weak; Al-Daraqutni said: abandoned (matruk); and Al-Nasa'i

said: He is not trustworthy, Mizan al-I'tidal 4/403. As for his father, Kathir bin Yahya, Al-Dhahabi said about him in Al-Mizan 3/410: Abbas Al-Anbari forbade people from taking from him, and Al-Azdi said: He has rejected narrations (manakir).

सूरह अल-बकरा: आयत 102 277 जो कोई इसे झुठलाता है वह काफिर है, अल्लाह और उसके रसूल को झुठलाने वाला है, और जो कुछ प्रत्यक्ष अनुभव और अवलोकन से ज्ञात है उसे अस्वीकार करने वाला है। आठवीं बात: हमारे विद्वानों ने कहा: यह नकारा नहीं जा सकता कि जादूगर के हाथों ऐसी असाधारण घटनाएँ(चमत्कार) प्रकट हो सकती हैं जो मानवीय क्षमता से बाहर हैं; जैसे कि बीमारी, अलगाव, मानसिक संतुलन खोना, किसी अंग का मुड़ना, और अन्य ऐसी बातें जिनके बारे में यह सिद्ध हो चुका है कि वे बंदों की क्षमता में होना असंभव है। उन्होंने कहा: जादू में यह भी संभव है कि जादूगर का शरीर इतना सूक्ष्म हो जाए कि वह झरोखों और छोटे छेदों में प्रवेश कर सके, एक सरकंडे की नोक पर खड़ा हो सके, एक बारीक धागे पर दौड़ सके, हवा में उड़ सके, पानी पर चल सके, कुत्ते पर सवारी कर सके, आदि। इसके बावजूद, जादू इन घटनाओं का अनिवार्य कारण नहीं है, न ही उनके होने की वजह, और न ही कोई उत्प्रेरक कारण है, और जादूगर इन्हें करने में स्वतंत्र नहीं है। बल्कि, अल्लाह तआला इन चीजों को पैदा करता है और जादू के समय इन्हें वजूद में लाता है; जैसे वह खाने पर पेट भरने और पानी पीने पर प्यास बुझाने की भावना पैदा करता है। सुफ़यान ने अम्मार अल-दुहनी (1) से रिवायत की है कि अल-वलीद बिन उत्बा के पास एक जादूगर था जो रस्सी पर चलता था, और गधे के पीछे से प्रवेश करता था और उसके मुँह से निकलता था। तो जुंदुब ने अपनी तलवार को ढँक कर उस पर हमला किया और उसे मार डाला (2)। यह जुंदुब है: जुंदुब बिन काब अल-अज़दी, और कहा जाता है: अल-बजली (3), और यही वह व्यक्ति है जिसके बारे में नबी ﷺ ने फरमाया था: "मेरी उम्मत में एक व्यक्ति होगा जिसे जुंदुब कहा जाएगा, जो तलवार से एक ऐसा प्रहार करेगा जो हक (सत्य) और बातिल (असत्य) के बीच अंतर कर देगा (4)।" लोग उसे वही जुंदुब समझते थे जिसने जादूगर को मारा था। अली बिन अल-मदीनी ने कहा: (1) (ज़) और (म) में: अल-धहाबी, जो एक त्रुटि है। वह इब्न मुआविया अल-बजली, अल-कूफी है, मुस्लिम और सुनन के लेखकों ने उनसे रिवायत की है, "तहदीब अल-तहदीब"। (2) अल-इस्तिदकार 25/240, और अल-इस्तीआब 2/180 (अल-इसाबा के हाशिये पर) में इसके अन्य मार्ग बताए गए हैं। (3) इब्न अब्द अल-बर ने अल-इस्तीआब 2/180 में जुंदुब बिन काब अल-अज़दी का उल्लेख किया और कहा: अधिकांश के अनुसार, वही अल-वलीद बिन उत्बा के सामने जादूगर को मारने वाला है। फिर उन्होंने अली बिन अल-मदीनी से उसके बारे में यह कथन उद्धृत किया: उसे साहचर्य (सहाबा) प्राप्त है। जहाँ तक अल-बजली का सवाल है: वह जुंदुब बिन अब्दुल्ला है, हाफिज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा 1/104 में उनका उल्लेख किया है, और अल-बैहकी ने अल-सुनन 8/136 में एक रिपोर्ट दी है कि उसने अल-वलीद बिन उत्बा के सामने जादूगर को मारा था, और अल्लाह बेहतर जानता है। (4) अब्द अल-रज्जाक द्वारा

अल-मुसन्नफ़ (18748) में इब्न जुरैज से, अम्र बिन दीनार से, बजालाह से एक मुर्सल रिपोर्ट के रूप में उद्धृत एक रिपोर्ट का हिस्सा। इसके अलावा, इब्न जुरैज एक मुदल्लिस है। इब्न अल-सकन ने इसे रिवायत किया - जैसा कि हाफिज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा 2/107 में उल्लेख किया है - याह्या बिन कसीर, अल-बसरी के साथी के मार्ग से, अपने पिता से, अल-जुरैरी से, अब्दुल्ला बिन बुरैदा से, अपने पिता से। इस याह्या बिन कसीर को अबू हातिम ने कमजोर बताया और कहा: उसकी हदीस बहुत कमजोर है; अल-दाराकुतनी ने कहा: परित्यक्त (मतुरूक); और अल-नसाई ने कहा: वह भरोसेमंद नहीं है, मीज़ान अल-इतिदाल 4/403। जहाँ तक उसके पिता कसीर बिन याह्या का सवाल है, अल-धहाबी ने अल-मीज़ान 3/410 में उनके बारे में कहा: अब्बास अल-अनबारी ने लोगों को उनसे रिवायत लेने से मना किया था, और अल-अज़दी ने कहा: उनके पास अस्वीकार्य (मुनाकीर) रिवायतें हैं।

سورہ البقرہ: آیت ۱۰۲ ۲۷۷ جس نے اسے جھٹلایا وہ کافر ہے، اللہ اور اس کے رسول کا جھٹلانے والا، اور اس چیز کا منکر ہے جو مشاہدے اور عیانی طور پر معلوم ہے۔ آٹھویں بات: ہمارے علماء نے فرمایا: اس بات کا انکار نہیں کیا جا سکتا کہ جادوگر کے ہاتھ پر ایسی مافوق الفطرت چیزیں (خرقِ عادات) ظاہر ہوں جو انسانی بس میں نہیں ہیں؛ جیسے بیماری، تفرقہ، عقل کا زوال، کسی عضو کا ٹیڑھا ہونا، اور اس کے علاوہ وہ چیزیں جن کے بندوں کی قدرت سے باہر ہونے پر دلیل قائم ہو چکی ہے۔ انہوں نے کہا: جادو میں یہ بعید نہیں کہ جادوگر کا جسم اتنا باریک ہو جائے کہ وہ سوراخوں اور کھڑکیوں میں داخل ہو جائے، کسی سرکنڈے کی نوک پر کھڑا ہو جائے، باریک دھاگے پر دوڑنے لگے، ہوا میں اڑے، پانی پر چلے، کتے پر سوار ہو جائے، وغیرہ۔ اس کے باوجود جادو ان امور کا واجب کرنے والا نہیں ہے، نہ ان کے وقوع کی علت ہے، نہ پیدا کرنے والا سبب، اور نہ ہی جادوگر ان میں خود مختار ہوتا ہے، بلکہ اللہ تعالیٰ ان چیزوں کو پیدا کرتا ہے اور جادو کے وقت ان کو وجود بخشتا ہے؛ جیسے وہ کھانے پر پیٹ بھرنے اور پانی پینے پر پیاس بجھنے کی کیفیت پیدا کرتا ہے۔ سفیان نے عمار دہنی (۱) سے روایت کی کہ ولید بن عقبہ کے پاس ایک جادوگر تھا جو رسی پر چلتا تھا، اور گدھے کی پیٹھ سے داخل ہو کر اس کے منہ سے نکلتا تھا۔ تو جندب نے تلوار سنبھالی اور اسے قتل کر دیا (۲)۔ یہ جندب: جندب بن کعب ازدی ہے، اور کہا جاتا ہے: البجلی (۳)، اور یہ وہی ہے جس کے حق میں نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "میری امت میں ایک ایسا شخص ہو گا جسے جندب کہا جائے گا، وہ تلوار کی ایسی ضرب لگائے گا جو حق اور باطل کے درمیان فرق کر دے گی (٤)۔" تو لوگ اسے یہی جندب سمجھتے تھے جو جادوگر کا قاتل تھا۔ علی بن مدینی نے کہا: (۱) (ظ) اور (م) میں: الذہبی، اور وہ غلطی ہے۔ وہ ابن معاویہ البجلی، الکوفی ہے، مسلم اور اصحاب سنن نے اس سے روایت کی ہے، "تہذیب التہذیب"۔ (۲)

الاستذکار ۲۵/ ۲٤۰، اور الاستیعاب ۲/ ۱۸۰ (الاصابہ کے حاشیہ پر) میں اس کے دیگر طرق کا ذکر کیا ہے۔ (۳) ابن عبد البر نے الاستیعاب ۲/ ۱۸۰ میں جندب بن کعب ازدی کا ذکر کیا اور کہا: اکثر کے نزدیک ولید بن عقبہ کے سامنے جادوگر کا قاتل یہی ہے۔ پھر علی بن مدینی سے ان کا یہ قول نقل کیا: اس کو صحابیت حاصل ہے۔ رہا البجلی: تو وہ جندب بن عبد اللہ ہے، حافظ ابن حجر نے الاصابہ ۱۰٤/۱ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور بیہقی نے السنن ۱۳٦/۸ میں ایک خبر نقل کی ہے کہ اس نے ولید بن عقبہ کے سامنے جادوگر کو قتل کیا تھا، واللہ اعلم۔ (٤) ایک خبر کا ٹکڑا جسے عبد الرزاق نے المصنف (۱۸۷٤۸) میں ابن جریج سے، عمرو بن دینار سے، بجالہ سے مرسل روایت کیا ہے۔ پھر یہ کہ ابن جریج مدلس ہے اور اس نے 'عن' سے روایت کی ہے۔ اور اسے ابن السکن نے روایت کیا - جیسا کہ حافظ ابن حجر نے الاصابہ ۱۰۷/۲ میں ذکر کیا ہے - یحییٰ بن کثیر صاحب بصری کے طریق سے، اپنے والد سے، جریری سے، عبد اللہ بن بریدہ سے، اپنے والد سے۔ اس یحییٰ بن کثیر کی ابو حاتم نے تضعیف کی ہے اور کہا: اس کی حدیث بالکل گئی گزری ہے؛ دارقطنی نے کہا: متروک ہے؛ اور نسائی نے کہا: ثقہ نہیں ہے، میزان الاعتدال ٤/ ٤۰۳۔ رہا اس کا والد کثیر بن یحییٰ، تو ذہبی نے میزان ۳/ ٤۱۰ میں اس کے بارے میں کہا: عباس عنبری نے لوگوں کو اس سے اخذ کرنے سے منع کیا تھا، اور ازدی نے کہا: اس کے پاس منکر روایات ہیں۔

Narrated from him by Harithah ibn Mudarrib (1).

Ninth: The Muslims are in consensus that magic does not include what Allah performs like sending down locusts, lice, frogs, splitting the sea, turning the staff into a snake, bringing the dead back to life, making animals speak, and similar great miracles of the Messengers, peace be upon them. These and similar things are matters about which one must be certain that they do not occur and that Allah does not perform them at the will of a magician. Al-Qadi Abu Bakr ibn al-Tayyib said: "We have only prohibited that by consensus; were it not for it, we would have allowed it."

Tenth: Regarding the difference between magic and miracles; our scholars said: Magic can be found from a magician and others, and there may be a group who know it and can perform it at the same time. As for a miracle, Allah does not enable anyone to produce its like or challenge it (2). Furthermore, the magician does not claim prophethood, so what proceeds from him is distinct from a miracle; for the condition of a miracle is its association with a claim of prophethood and a challenge by it, as previously mentioned in the introduction of the book (3).

Eleventh: Jurists differed regarding the ruling on a Muslim magician and a Dhimmi (protected non-Muslim). Malik held that if a Muslim performs magic himself with words that constitute disbelief, he is killed, is not asked to repent, and his repentance is not accepted; because it is a matter he keeps secret, like a heretic and an adulterer, and because Allah Almighty called magic disbelief in His saying: {And they [the two angels] did not teach anyone until they had said, 'We are only a trial, so do not disbelieve.'}, and this is the opinion of Ahmad ibn Hanbal, Abu Thawr, Ishaq, Al-Shafi'i, and Abu Hanifah.

The killing of the magician was narrated from Umar, Uthman, Ibn Umar, Hafsah, Abu Musa, and Qays ibn Sa'd, and from seven of the Tabi'un (Successors) (4).

And it was narrated from the Prophet ﷺ: "The punishment for a magician is a blow with the sword," recorded by Al-Tirmidhi (5). It is not...

---

(1) Al-Isti'ab 2/180 (on the margin of Al-Isabah). (2) In the manuscripts: "to produce its like and its challenge," and what is established is from (M). (3) 1/113-115 onwards. See this issue in the book Kitab al-Nubuwwat by Ibn Taymiyyah, pp. 47-49. (4) Musannaf Abd al-Razzaq 10/179-184, Ibn Abi Shaybah 10/135-137, Sunan Ibn Mansur

(2181-2182), Al-Muhalla by Ibn Hazm 11/395, Al-Sunan al-Kubra by al-Bayhaqi 8/135-136, Al-Istidhkar 25/237 & 240, and Al-Mughni by Ibn Qudamah 12/302. (5) In his Sunan (1460) via Ismail ibn Muslim, from Al-Hasan, from Jundab, with it, and he said: This is a hadith =

सूरह अल-बकराह : आयत १०२ | २७८

उनसे हारिथाह इब्न मुदर्रिब ने रिवायत की है (१)।

नौवां: मुसलमानों का इस बात पर आम सहमति (इज्मा) है कि जादू में वे चीज़ें शामिल नहीं हैं जो अल्लाह करता है जैसे टिड्डियों, जुओं और मेंढकों को भेजना, समुद्र को चीरना, लाठी को सांप में बदलना, मृतकों को जीवित करना, जानवरों से बुलवाना और पैगम्बरों (अलैहिस्सलाम) के इसी तरह के महान चमत्कार। ये और इसी तरह की चीजें ऐसी हैं जिनके बारे में निश्चित होना चाहिए कि ये नहीं होती हैं और अल्लाह जादूगर की इच्छा पर उन्हें नहीं करता है। अल-क़ादी अबू बक्र इब्न अल-तैयब ने कहा: "हमने इसे केवल आम सहमति के कारण मना किया है; यदि यह न होती, तो हम इसकी अनुमति दे देते।"

दसवां: जादू और मोजिज़े (चमत्कार) के बीच अंतर के बारे में; हमारे विद्वानों ने कहा: जादू जादूगर और अन्य लोगों से पाया जा सकता है, और ऐसा हो सकता है कि एक समूह इसे जानता हो और एक ही समय में इसे करने में सक्षम हो। जबकि मोजिज़े के लिए अल्लाह किसी को भी उसके जैसा लाने या उसका मुकाबला करने में सक्षम नहीं बनाता है (२)। इसके अलावा, जादूगर नबूवत (पैगंबरी) का दावा नहीं करता है, इसलिए जो उससे प्रकट होता है वह मोजिज़े से अलग है; क्योंकि मोजिज़े की शर्त नबूवत के दावे और उसके साथ चुनौती का जुड़ा होना है, जैसा कि पुस्तक की प्रस्तावना (३) में पहले बताया जा चुका है।

ग्यारहवां: मुस्लिम और ज़म्मी (संरक्षित गैर-मुस्लिम) जादूगर के हुक्म के बारे में फ़ुक़हा (कानूनविदों) में मतभेद है; इमाम मालिक की राय है कि यदि कोई मुसलमान स्वयं ऐसे शब्दों के साथ जादू करता है जो कुफ्र (अविश्वास) हैं, तो उसे मार दिया जाएगा, उससे तौबा करने को नहीं कहा जाएगा, और उसकी तौबा स्वीकार नहीं की जाएगी; क्योंकि यह एक ऐसा मामला है जिसे वह गुप्त रखता है, जैसे कि ज़िनदीक़ (नास्तिक) और व्यभिचारी, और क्योंकि अल्लाह तआला ने जादू को अपने इस कथन में कुफ्र कहा है: {और वे [दो फरिश्ते] किसी को तब तक नहीं सिखाते थे जब तक वे यह न कह देते, 'हम तो केवल एक परीक्षा हैं, अतः कुफ्र न करो'}, और यही अहमद इब्न हंबल, अबू थौर, इशाक, अल-शाफी और अबू हनीफा का भी कथन है।

जादूगर की हत्या उमर, उस्मान, इब्न उमर, हफ्सा, अबू मूसा और क़ैस इब्न साद से, और सात ताबिईन (४) से रिवायत की गई है।

और नबी ﷺ से रिवायत है: "जादूगर की सजा तलवार से एक वार है," इसे तिरमिज़ी (५) ने निकाला है। और नहीं...

---

(१) अल-इस्तिआब २/१८० (अल-इसाबा के हाशिये पर)। (२) प्रतियों में: "उसके जैसा और उसका मुकाबला लाना," और जो स्थापित है वह (म) से है। (३) १/११३-११५ और उसके बाद। इस मामले को इब्न तैमिय्याह की पुस्तक 'किताब अल-नुबुव्वत' पृष्ठ ४७-४९ में देखें। (४) मुसन्नफ़ अब्द अल-रज्जाक १०/१७९-१८४, इब्न अबी शैबा १०/१३५-१३७, सुनन इब्न मंसूर (२१८१-२१८२), अल-मुहल्ला इब्न हज़म द्वारा ११/३९५, अल-सुनन अल-कुबरा अल-बैहक़ी द्वारा ८/१३५-१३६, अल-इस्तिधकार २५/२३७ और २४०, और अल-मुघनी इब्न कुदामा द्वारा १२/३०२। (५) अपनी सुनन (१४६०) में इस्माइल इब्न मुस्लिम के माध्यम से, अल-हसन से, जुंदब से, इसके साथ, और उन्होंने कहा: यह हदीस =

ان سے حارثہ بن مضرب نے روایت کی ہے (۱)۔

نویں بات: مسلمانوں کا اس پر اجماع ہے کہ جادو میں وہ چیزیں نہیں ہیں جو اللہ تعالیٰ (بطور معجزہ) کرتا ہے جیسے ٹڈیوں، جوؤں، مینڈکوں کا بھیجنا، سمندر کا پھاڑنا، لاٹھی کا سانپ بننا، مردوں کو زندہ کرنا، جانوروں کا بولنا، اور رسولوں (علیہم السلام) کے اسی طرح کے عظیم معجزات۔ یہ اور اس جیسی چیزیں ایسی ہیں جن کے بارے میں قطعی یقین ہونا چاہیے کہ یہ واقع نہیں ہوتیں اور نہ ہی اللہ تعالیٰ جادوگر کے ارادے پر انہیں کرتا ہے۔ قاضی ابوبکر بن الطیب نے کہا: "ہم نے صرف اجماع کی بنا پر اس سے منع کیا ہے، اگر اجماع نہ ہوتا تو ہم اسے جائز قرار دیتے"۔

دسویں بات: جادو اور معجزہ کے درمیان فرق کے بارے میں؛ ہمارے علماء نے فرمایا: جادو، جادوگر اور غیر جادوگر دونوں سے صادر ہو سکتا ہے، اور ممکن ہے کہ ایک جماعت اسے جانتی ہو اور ایک ہی وقت میں اسے کرنے کی قدرت رکھتی ہو۔ جب کہ معجزہ ایسی چیز ہے کہ اللہ تعالیٰ کسی کو اس کی مثل لانے یا اس کا مقابلہ کرنے کی قدرت نہیں دیتا (۲)۔ پھر جادوگر نبوت کا دعویٰ نہیں کرتا، چنانچہ جو کچھ اس سے صادر ہوتا ہے وہ معجزہ سے ممتاز ہوتا ہے؛ کیونکہ معجزہ کی شرط یہ ہے کہ وہ دعویٰ نبوت اور اس کے ساتھ چیلنج کے ساتھ ہو، جیسا کہ کتاب کے مقدمہ (۳) میں گزر چکا ہے۔

گیارہویں بات: مسلم اور ذمی جادوگر کے حکم میں فقہاء کا اختلاف ہے؛ چنانچہ امام مالک کا مذہب یہ ہے کہ اگر مسلمان خود ایسے کلام کے ساتھ جادو کرے جو کفر ہو، تو اسے قتل کیا جائے گا،

اس سے توبہ نہیں کرائی جائے گی، اور نہ ہی اس کی توبہ قبول کی جائے گی؛ کیونکہ یہ ایسا معاملہ ہے جسے وہ چھپاتا ہے جیسے زندیق اور زانی، اور اس لیے کہ اللہ تعالیٰ نے جادو کو کفر نام دیا ہے اپنے اس ارشاد میں: {اور وہ [دونوں فرشتے] کسی کو نہیں سکھاتے تھے جب تک یہ نہ کہہ دیتے کہ ہم تو صرف ایک آزمائش ہیں، پس تم کفر نہ کرو}، اور یہی امام احمد بن حنبل، ابوثور، اسحاق، شافعی اور ابوحنیفہ کا قول ہے۔

اور جادوگر کے قتل کی روایت حضرت عمر، عثمان، ابن عمر، حفصہ، ابوموسیٰ، اور قیس بن سعد سے مروی ہے، اور سات تابعین (۴) سے بھی مروی ہے۔

اور نبی کریم ﷺ سے مروی ہے: "جادوگر کی حد تلوار کی ایک ضرب ہے" اسے ترمذی (۵) نے روایت کیا ہے۔ اور نہیں...

---

(۱) الاستیعاب ۱۸۰/۲ (الاصابہ کے حاشیہ پر)۔ (۲) نسخوں میں ہے: "اس کی مثل اور اس کا مقابلہ لائے"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (۳) ۱۱۳/۱-۱۱۵ اور اس کے بعد۔ اس مسئلہ میں ابن تیمیہ کی کتاب 'النبوات' ص ۴۷-۴۹ ملاحظہ کریں۔ (۴) مصنف عبدالرزاق ۱۷۹/۱۰-۱۸۴، ابن ابی شیبہ ۱۳۵/۱۰-۱۳۷، سنن ابن منصور (۲۱۸۱-۲۱۸۲)، المحلی لابن حزم ۳۹۵/۱۱، السنن الکبریٰ للبیہقی ۱۳۵/۸-۱۳۶، الاستذکار ۲۳۷/۲۵ و ۲۴۰، اور المغنی لابن قدامہ ۳۰۲/۱۲۔ (۵) اپنی سنن (۱۴۶۰) میں اسماعیل بن مسلم کے واسطے سے، حسن بصری سے، انہوں نے جندب سے روایت کیا ہے، اور کہا: یہ حدیث =

279 Surah Al-Baqarah: Verse 102

...strong. It was exclusively narrated by Ismail bin Muslim, and he is considered weak among them. Ibn Uyaynah narrated it from Ismail bin Muslim, from Al-Hasan as a Mursal [missing a narrator in the chain] hadith(1); others traced it from Al-Hasan from Jundub(2). Ibn al-Mundhir said: We have narrated from Aisha that she sold a sorceress who had bewitched her, and she spent the proceeds on [freeing] slaves (al-riqab)(3). Ibn al-Mundhir said: If a man confesses that he performed magic with words that constitute disbelief (kufr), it is mandatory to kill him if he does not repent. Likewise, if clear evidence is established against him(4)(5), and the evidence describes words that constitute disbelief. If the words he mentioned performing magic with are not disbelief, it is not permissible to kill him. However, if he caused an injury to the bewitched person that warrants retribution (Qisas), then retribution shall be taken from him if it was intentional. If it is something for which there is no retribution, then blood money (diyah) is required for it. Ibn al-Mundhir said: If the companions of the Messenger of Allah (peace be upon him) differed on an issue, it is mandatory to follow those among them who are closest to the Book and the Sunnah. It may be that the magic for which some of them ordered the killing of the sorcerer was magic that constitutes disbelief, which would be in accordance with the Sunnah of the Messenger of Allah (peace be upon him). It is also possible that Aisha (may Allah be pleased with her) ordered the sale of a sorceress whose magic was not disbelief. If someone argues with the hadith of Jundub from the Prophet (peace be upon him): "The punishment for a sorcerer is a strike with the sword," even if it were authentic, it could be interpreted as an order to kill a sorcerer whose magic constitutes disbelief. This would align with the reports from the Prophet (peace be upon him) where he said: "The blood of a Muslim man is not lawful except in one of three cases..."(6). I say: This is correct, and the blood of Muslims is sacred; it is not made lawful except with certainty, and there is no certainty amidst disagreement. And Allah Almighty knows best.

= We do not know it as a Marfu' [attributed directly to the Prophet] hadith except through this chain. Ismail bin Muslim al-Makki is considered weak in hadith. It is also narrated from Al-Hasan, and the correct version from Jundub is Mawquf [attributed to a companion]. (1) Reported by Abd al-Razzaq in Al-Musannaf (18752), and through him by Ibn Hazm in Al-Muhalla 11/396. (2) Al-Istidhkar 25/241. (3) Reported by Abd al-Razzaq (18749) (18750), Ibn Hazm in Al-Muhalla 11/395, and al-Bayhaqi 8/137. See Al-Istidhkar 25/238. (4) In (Kh), (Z), and (Dh): "if it were proven". (5) In (Z): "with

evidence". (6) Reported by Ahmad (3621), Al-Bukhari (6878), and Muslim (1676) from the hadith of Ibn Mas'ud. Also reported by Ahmad (452) from the hadith of Uthman, and (25475) from the hadith of Aisha, may Allah be pleased with them.

279 सूरह अल-बकराह: आयत 102

...मजबूत। इसे विशेष रूप से इस्माइल बिन मुस्लिम द्वारा वर्णित किया गया है, और उन्हें उनके बीच कमजोर माना जाता है। इब्न उयैना ने इसे इस्माइल बिन मुस्लिम से, अल-हसन से मुरसल के रूप में वर्णित किया है (1); दूसरों ने इसे अल-हसन से जुंदुब के माध्यम से बताया है (2)। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: हमने आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से वर्णन किया है कि उन्होंने एक जादूगरनी को बेच दिया जिसने उन पर जादू किया था, और उसकी कीमत को दास मुक्ति (गर्दन छुड़ाने) में लगा दिया (3)। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: यदि कोई व्यक्ति स्वीकार करता है कि उसने ऐसे शब्दों के साथ जादू किया है जो कुफ्र (अविश्वास) हैं, तो यदि वह तौबा नहीं करता है तो उसे मारना अनिवार्य है। इसी तरह, यदि उसके विरुद्ध स्पष्ट प्रमाण स्थापित हो जाता है (4)(5), और प्रमाण ऐसे शब्दों का वर्णन करता है जो कुफ्र हैं। यदि वे शब्द जिनका उसने जादू के रूप में उल्लेख किया है कुफ्र नहीं हैं, तो उसे मारना जायज़ नहीं है। हालाँकि, यदि उसने जादू किए गए व्यक्ति को ऐसी चोट पहुँचाई है जिसके लिए किसास (बदला) अनिवार्य है, तो यदि उसने जानबूझकर ऐसा किया है तो उससे किसास लिया जाएगा। यदि यह ऐसी चीज़ है जिसमें किसास नहीं है, तो उसके लिए दियत (रक्त धन) देय है। इब्न अल-मुन्ज़िर ने कहा: यदि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के सहाबा किसी मामले में असहमत होते थे, तो उनके बीच जो किताब और सुन्नत के सबसे करीब थे, उनका पालन करना अनिवार्य है। यह संभव है कि वह जादू जिसके लिए उनमें से कुछ ने जादूगर को मारने का आदेश दिया था, ऐसा जादू था जो कुफ्र था, जो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की सुन्नत के अनुरूप होगा। यह भी संभव है कि आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने उस जादूगरनी को बेचने का आदेश दिया हो जिसका जादू कुफ्र नहीं था। यदि कोई दलील के रूप में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से जुंदुब की हदीस पेश करता है: "जादूगर की सज़ा तलवार की एक चोट है", तो भले ही वह सही हो, इसका अर्थ यह निकाला जा सकता है कि उन्होंने उस जादूगर को मारने का आदेश दिया था जिसका जादू कुफ्र हो। यह नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) की उन खबरों के अनुरूप होगा जिसमें उन्होंने कहा था: "किसी मुसलमान का खून तीन स्थितियों के अलावा हलाल नहीं है..." (6)। मैंने कहा: यह सही है, और मुसलमानों का खून सुरक्षित है; यह बिना निश्चितता के जायज़ नहीं ठहराया जा सकता, और मतभेद की स्थिति में कोई निश्चितता नहीं होती। और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

= हम इसे केवल इसी श्रृंखला के माध्यम से मरफ़ू(सीधे नबी से संबंधित) के रूप में जानते हैं। इस्माइल बिन मुस्लिम अल-मक्की हदीस में कमजोर माने जाते हैं। इसे अल-हसन से भी वर्णित किया गया है, और जुंदुब से सही संस्करण मौकूफ है। (1) इसे अब्द अल-रज्जाक ने अल-मुसन्नफ (18752) में निकाला है, और उनके माध्यम से इब्न हज़म ने अल-मुहल्ला 11/396 में। (2) अल-इस्तिज़कार 25/241। (3) इसे अब्द अल-रज्जाक (18749) (18750), इब्न हज़म ने अल-मुहल्ला 11/395 में, और अल-बैहकी 8/137 में निकाला है। देखिए अल-इस्तिज़कार 25/238। (4) (ख), (ज़), और (ज़ो) में: "यदि प्रमाणित हो"। (5) (ज़) में: "सबूत के साथ"। (6) इसे अहमद (3621), अल-बुखारी (6878), और मुस्लिम (1676) ने इब्न मसूद की हदीस से निकाला है। इसे अहमद (452) ने उस्मान की हदीस से, और (25475) ने आयशा की हदीस से निकाला है, अल्लाह उन सब से प्रसन्न हो।

۲۷۹ سورة البقرہ: آیت ۱۰۲

بالقوی، اسے اسماعیل بن مسلم نے اکیلے روایت کیا ہے اور وہ ان کے نزدیک ضعیف ہیں، اسے ابن عیینہ نے اسماعیل بن مسلم سے، انہوں نے حسن سے مرسل کے طور پر روایت کیا ہے(۱)؛ اور بعض نے اسے حسن سے، انہوں نے جندب سے روایت کیا ہے(۲)۔ ابن المنذر نے کہا: اور ہم نے عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے ایک جادوگرنی کو بیچ دیا جس نے ان پر جادو کیا تھا، اور اس کی قیمت غلاموں کو آزاد کرانے (الرقاب) میں لگا دی(۳)۔ ابن المنذر نے کہا: اور جب کوئی شخص اقرار کرے کہ اس نے ایسے کلام سے جادو کیا ہے جو کفر ہے، تو اگر وہ توبہ نہ کرے تو اسے قتل کرنا واجب ہے، اور اسی طرح اگر اس کے خلاف گواہی (بینہ) قائم ہو جائے(۴)(۵)، اور گواہی ایسے کلام کی تفصیل دے جو کفر ہو۔ اور اگر وہ کلام جس کا اس نے ذکر کیا کہ اس سے جادو کیا ہے، کفر نہ ہو، تو اسے قتل کرنا جائز نہیں، پھر اگر اس نے مسحور (جس پر جادو ہوا) کے حق میں ایسا جرم کیا ہو جس پر قصاص واجب ہو، تو اس سے قصاص لیا جائے گا اگر اس نے جان بوجھ کر ایسا کیا ہو، اور اگر وہ ایسی چیز ہو جس میں قصاص نہیں، تو اس میں اس کی دیت ہو گی۔ ابن المنذر نے کہا: اور جب رسول اللہ ﷺ کے صحابہ کا کسی مسئلے میں اختلاف ہو جائے، تو ان میں سے جو کتاب اور سنت کے سب سے زیادہ مشابہ ہوں ان کی پیروی واجب ہے، اور یہ جائز ہے کہ وہ جادو جس کے بارے میں ان میں سے جس نے جادوگر کے قتل کا حکم دیا وہ ایسا جادو ہو جو کفر ہو، تو یہ رسول اللہ ﷺ کی سنت کے موافق ہو گا، اور یہ احتمال ہے کہ عائشہ رضی اللہ عنہا نے اس جادوگرنی کو بیچنے کا حکم دیا ہو جس کا جادو کفر نہ تھا۔ پس اگر کوئی احتجاج کرنے والا نبی ﷺ سے جندب کی حدیث سے دلیل پکڑے کہ: «جادوگر کی حد تلوار کی ایک ضرب ہے»، تو اگر یہ صحیح بھی ہو تو اس میں اس جادوگر کے قتل کے

حکم کا احتمال ہو سکتا ہے جس کا جادو کفر ہو، تو یہ ان خبروں کے موافق ہو گا جو نبی ﷺ سے آئی ہیں کہ آپ نے فرمایا: «کسی مسلمان کا خون حلال نہیں سوائے تین صورتوں میں سے ایک کے...»(۶)۔ میں کہتا ہوں: اور یہ صحیح ہے، اور مسلمانوں کا خون محظور (محفوظ) ہے اسے یقین کے بغیر حلال نہیں کیا جا سکتا، اور اختلاف کے ساتھ یقین نہیں ہوتا۔ اور اللہ تعالی بہتر جانتا ہے۔

= ہم اسے اس طریق کے علاوہ مرفوع نہیں جانتے، اور اسماعیل بن مسلم المکی حدیث میں ضعیف ہیں، اور حسن سے بھی روایت کیا گیا ہے، اور صحیح یہ ہے کہ جندب سے موقوف ہے۔ (۱) اسے عبد الرزاق نے المصنف (۱۸۷۵۲) میں روایت کیا ہے، اور ان کے واسطے سے ابن حزم نے المحلی ۳۹۶/۱۱ میں۔ (۲) الاستذکار ۲۴۱/۲۵۔ (۳) اسے عبد الرزاق (۱۸۷۴۹) (۱۸۷۵۰) نے، اور ابن حزم نے المحلی ۳۹۵/۱۱ میں، اور بیہقی نے ۱۳۷/۸ میں روایت کیا ہے۔ اور دیکھئے الاستذکار ۲۳۸/۲۵۔ (۴) (خ)، (ز) اور (ظ) میں: "لو ثبت" (اگر ثابت ہو جائے)۔ (۵) (ز) میں: "بالبینۃ" (ثبوت کے ساتھ)۔ (۶) اسے احمد (۳۶۲۱)، بخاری (۶۸۷۸) اور مسلم (۱۶۷۶) نے ابن مسعود کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور احمد (۴۵۲) نے عثمان کی حدیث سے، اور (۲۵۴۷۵) نے عائشہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، رضی اللہ عنہم۔

280 Surah Al-Baqarah: Verse 102

Some scholars said: If the practitioners [of magic] say that magic is not completed except with disbelief and arrogance, or the glorification of Satan, then magic thus indicates disbelief based on this estimation, and Allah Almighty knows best.

It was narrated from Ash-Shafi'i: A magician is not killed unless he kills with his magic and says, "I intended to kill." If he says, "I did not intend it," he is not killed, and blood money is due from him as in accidental killing; if he caused harm, he is disciplined according to the extent of the harm (1).

Ibn al-Arabi said (2): This is void for two reasons: First: That he did not know magic, and its reality is that it is composed speech by which someone other than Allah Almighty is glorified, and predestinations and entities are attributed to it. Second: That Allah, Glory be to Him, has stated in His book that it is disbelief, saying: {Solomon did not disbelieve} by the practice of magic {but the devils disbelieved} by it and by teaching it (3). And Harut and Marut say: {We are only a trial, so do not disbelieve}. This is a confirmation of the explanation.

The followers of Malik argued that his repentance is not accepted; because magic is hidden and its practitioner does not reveal it, so his repentance is not known, just like a heretic (Zindiq); only the one who openly shows disbelief as an apostate is asked to repent. Malik said: If the magician or the heretic comes repentant before witnesses testify against them, their repentance is accepted, and the evidence for that is the Almighty's saying: {But their faith was not to benefit them when they saw Our punishment} [Ghafir: 85]. This indicates that their faith would have benefited them before the descent of punishment, and the same applies to these two (4).

Twelfth: As for the magician from among the Dhimmis (protected non-Muslims); it was said: He is killed. Malik said: He is not killed unless he kills (5) with his magic, and he is liable for what he perpetrated, and he is killed if something comes from him that he did not contract for (6).

(1) Al-Istidhkar 25/242 and 243, Ikmal al-Mu'allim 7/89, and Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/31. (2) Ahkam al-Quran 1/31. (3) In (D) and (Z): and by learning it. (4) See Ahkam al-Quran by al-Jassas 1/51. (5) In (D), (Za), and (M): that he is killed. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186.

२८० सूरा अल-बक़रह: आयत १०२

कुछ विद्वानों ने कहा: यदि इस शिल्प (जादू) के लोग कहते हैं कि जादू केवल कुफ़्र (अविश्वास) और अहंकार, या शैतान की महिमा के साथ ही पूरा होता है, तो जादू इस अनुमान के आधार पर कुफ़्र को दर्शाता है, और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

अल-शाफ़ेई से वर्णित है: जादूगर को तब तक नहीं मारा जाता जब तक कि वह अपने जादू से हत्या न कर दे और कहे, "मैंने जानबूझकर हत्या की।" यदि वह कहे, "मेरा इरादा हत्या का नहीं था," तो उसे नहीं मारा जाता, और उसमें रक्त-धन (दियत) देना होता है जैसा कि गलती से हुई हत्या में होता है; और यदि उसने नुकसान पहुँचाया हो, तो नुकसान की सीमा के अनुसार उसे दंडित किया जाता है (१)।

इब्न अल-अरबी ने कहा (२): यह दो कारणों से गलत है: पहला: कि वह जादू को नहीं जानता था, और इसकी वास्तविकता यह है कि यह रचित शब्द हैं जिनके माध्यम से अल्लाह सर्वशक्तिमान के अलावा अन्य की महिमा की जाती है, और नियति और प्राणियों को उसी से जोड़ा जाता है। दूसरा: कि अल्लाह सुभानहु ने अपनी किताब में स्पष्ट कर दिया है कि यह कुफ़्र है, तो फरमाया: {सुलेमान ने कुफ़्र नहीं किया} जादू कहने से {बल्कि शैतानों ने कुफ़्र किया} उसके कारण और उसे सिखाने के कारण (३)। और हारूत और मारूत कहते हैं: {हम तो केवल एक परीक्षा हैं, अतः तुम कुफ़्र मत करो}। और यह स्पष्टीकरण की पुष्टि है।

मलिक के अनुयायियों ने तर्क दिया कि उसकी तौबा (पश्चाताप) स्वीकार नहीं की जाती; क्योंकि जादू छिपा हुआ होता है और उसका करने वाला उसे प्रकट नहीं करता, इसलिए ज़ुन्दीप (पाखंडी) की तरह उसकी तौबा नहीं जानी जा सकती; केवल उसी से तौबा कराई जाती है जिसने धर्मत्यागी के रूप में कुफ़्र प्रकट किया हो। मलिक ने कहा: यदि जादूगर या ज़ुन्दीप गवाही देने से पहले तौबा करते हुए आए, तो उनकी तौबा स्वीकार की जाएगी, और इसके लिए प्रमाण अल्लाह का यह कथन है: {परन्तु जब उन्होंने हमारी सज़ा देख ली, तो उनका ईमान उन्हें लाभ पहुँचाने वाला न था} [ग़ाफ़िर: ८५]। तो यह दर्शाता है कि अज़ाब के उतरने से पहले उनका ईमान उनके काम आता, तो इन दोनों का मामला भी वैसा ही है (४)।

बारहवीं: जहाँ तक धिम्मी (संरक्षित गैर-मुस्लिम) जादूगर का सवाल है; तो कहा गया: उसे मार दिया जाएगा। मलिक ने कहा: उसे तब तक नहीं मारा जाता जब तक कि वह अपने जादू से हत्या न कर दे

(५), और वह अपने किए हुए अपराध का उत्तरदायी होगा, और उसे मार दिया जाएगा यदि उसकी ओर से कुछ ऐसा हो जाए जिसका उसने अनुबंध नहीं किया था (६)।

(१) अल-इस्तिधकार २५/२४२ और २४३, और इकमाल अल-मुअल्लिम ७/८९, और अहकाम अल-कुरान इब्न अल-अरबी १/३१ द्वारा। (२) अहकाम अल-कुरान १/३१। (३) (द) और (ज़) में: "उसे सीखने के द्वारा"। (४) अल-जस्सास १/५१ द्वारा अहकाम अल-कुरान देखें। (५) (द), (ज़), और (म) में: "कि वह मारा जाए"। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८६।

۲۸۰ سورہ البقرہ: آیت ۱۰۲

اور بعض علماء نے کہا: اگر اس فن (جادو) والے یہ کہیں کہ جادو کفر اور تکبر، یا شیطان کی تعظیم کے بغیر مکمل نہیں ہوتا، تو جادو اس تقدیر پر کفر کی دلیل ہے، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

اور امام شافعی سے روایت ہے: جادوگر کو قتل نہیں کیا جائے گا سوائے اس کے کہ وہ اپنے جادو سے قتل کر دے، اور کہے: میں نے جان بوجھ کر قتل کیا، اور اگر وہ کہے: میں نے اسے جان بوجھ کر نہیں کیا، تو اسے قتل نہیں کیا جائے گا، اور اس میں دیت ہوگی جیسے قتلِ خطا میں ہوتی ہے؛ اور اگر اس نے نقصان پہنچایا تو نقصان کی مقدار کے مطابق اسے سزا دی جائے گی (۱)۔

ابن العربی (۲) نے کہا: اور یہ دو وجوہات سے باطل ہے: پہلی: یہ کہ اس نے جادو کو نہیں جانا، اور اس کی حقیقت یہ ہے کہ یہ ایسی تالیف شدہ کلام ہے جس کے ذریعے غیر اللہ کی تعظیم کی جاتی ہے: اور اسی کی طرف مقادیر اور کائنات کو منسوب کیا جاتا ہے۔ دوسری: یہ کہ اللہ سبحانہ نے اپنی کتاب میں صراحت فرمائی ہے کہ وہ کفر ہے، پس فرمایا: {سلیمان نے کفر نہیں کیا} جادو کے قول سے {لیکن شیطانوں نے کفر کیا} اس کے ذریعے اور اس کی تعلیم کے ذریعے (۳)۔ اور ہاروت و ماروت کہتے ہیں: {ہم تو محض ایک آزمائش ہیں، پس تم کفر نہ کرو}۔ اور یہ بیان کی تاکید ہے۔

امام مالک کے اصحاب نے دلیل دی کہ اس کی توبہ قبول نہیں کی جائے گی؛ کیونکہ جادو ایک باطنی چیز ہے جسے اس کا کرنے والا ظاہر نہیں کرتا، لہٰذا زندیق کی طرح اس کی توبہ معلوم نہیں ہو سکتی؛ توبہ تو صرف اس سے کرائی جاتی ہے جس نے مرتد ہو کر کفر ظاہر کیا ہو۔ مالک نے فرمایا: اگر جادوگر یا زندیق ان کے خلاف گواہی دینے سے پہلے تائب ہو کر آئیں، تو ان کی

توبہ قبول کر لی جائے گی، اور اس کی دلیل اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {پس ان کا ایمان انہیں نفع دینے والا نہ تھا جب انہوں نے ہمارا عذاب دیکھ لیا} [غافر: ۸۵]۔ پس یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ عذاب نازل ہونے سے پہلے ان کا ایمان انہیں نفع دیتا، تو ان دونوں کا معاملہ بھی ایسا ہی ہے (۴)۔

بارہویں بات: رہا ذمی جادوگر؛ تو کہا گیا: اسے قتل کیا جائے گا۔ اور امام مالک نے فرمایا: اسے قتل نہیں کیا جائے گا سوائے اس کے کہ وہ اپنے جادو سے قتل کر دے (۵)، اور وہ اپنے جرم کا ضامن ہوگا، اور اگر اس سے ایسی بات سرزد ہو جس پر کوئی معاہدہ نہ تھا تو اسے قتل کیا جائے گا (۶)۔

(۱) الاستذکار ۲۴۲/۲۵ و ۲۴۳، اور اکمال المعلم ۸۹/۷، اور احکام القرآن لابن العربی ۳۱/۱۔ (۲) احکام القرآن ۳۱/۱۔ (۳) (د) اور (ز) میں: "اور اسے سیکھنے کے ذریعے"۔ (۴) دیکھئے احکام القرآن للجصاص ۵۱/۱۔ (۵) (د) اور (ظ) اور (م) میں: "کہ اسے قتل کیا جائے"۔ (۶) المحرر الوجیز ۱۸۶/۱۔

Page 281 Surah Al-Baqarah: Verse 102

Ibn Khuwayz Mindad(1) said: As for a Dhimmi (non-Muslim citizen), the reports from Malik differ; he once said: he is asked to repent, and his repentance is Islam. Another time he said: he is killed even if he becomes Muslim. As for a Harbi (enemy in war), he is not killed if he repents. Malik said similarly regarding a Dhimmi who insults the Prophet (peace be upon him): he is asked to repent and his repentance is Islam. Another time he said: he is killed and not asked to repent, like a Muslim.

Malik also said regarding a Dhimmi who practices magic: he is punished unless he kills with his magic or causes some injury, in which case he is held accountable accordingly. Others said: he is killed because he has broken the covenant.

A magician does not inherit from his heirs, because he is a disbeliever, unless his magic is not called disbelief(2).

Malik said regarding a woman who ties (bewitches) her husband from herself or from another: she is exemplary punished but not killed(3).

Thirteenth: They differed on whether a magician can be asked to undo magic for the bewitched. Sa'id ibn al-Musayyib permitted it as mentioned by Al-Bukhari(4), Al-Muzani inclined towards it, while Al-Hasan al-Basri disliked it(5). Al-Sha'bi said: There is no harm in Nushrah (incantation to undo magic)(6).

Ibn Battal said: In the book of Wahb ibn Munabbih: one should take seven green leaves of Sidr (Lote tree), crush them between two stones, then mix with water, and recite(7) Ayat al-Kursi over it. Then take three sips from it and bathe with it, then everything affecting him will go away, God willing. This is good for a man who is kept from his family (prevented from intimacy)(8).

(1) In (M): Khuwayz Mindad, see 1/180. (2) See Al-Nawadir wal-Ziyadat 14/532-535, and Al-Muntaqa Sharh Muwatta Malik by Al-Baji 7/117-118. (3) Al-Istidhkar 25/244. (4) In the chapter: Can magic be extracted, before Hadith (5765). (5) Al-Mufhim 5/575, and Abu Dawud reported in Al-Marasil (453) through Abu Raja who said: I asked Al-Hasan about Nushrah - which is a type of incantation used to treat someone thought to be possessed by Jinn - he said: It was mentioned to me from the Prophet (peace be upon him) that he said: "It is from the work of Satan." (6) Reported by Abd al-Razzaq in Al-Musannaf (19763), and the author will mention Nushrah more extensively than here when explaining verse (82) of Surah Al-Isra. (7) In (D) and (M): over it. (8)

Mentioned by Abd al-Razzaq in his Musannaf 11/13 from Wahb ibn Munabbih. See Fath al-Bari 10/237.

पृष्ठ २८१ सूरह अल-बक़रह: आयत १०२

इब्न खुवैज़ मिंदाद(1) ने कहा: जहाँ तक धिम्मी (गैर-मुस्लिम नागरिक) की बात है, मलिक से रिपोर्टें अलग-अलग हैं; उन्होंने एक बार कहा: उससे पश्चाताप करने के लिए कहा जाता है, और उसका पश्चाताप इस्लाम है। दूसरी बार उन्होंने कहा: उसे मार दिया जाता है भले ही वह मुस्लिम हो जाए। जहाँ तक हरबी (युद्ध में दुश्मन) की बात है, तो पश्चाताप करने पर उसे नहीं मारा जाता है। मलिक ने पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का अपमान करने वाले धिम्मी के बारे में भी इसी तरह कहा: उससे पश्चाताप करने के लिए कहा जाता है और उसका पश्चाताप इस्लाम है। दूसरी बार उन्होंने कहा: उसे मार दिया जाता है और पश्चाताप करने के लिए नहीं कहा जाता, एक मुस्लिम की तरह।

मलिक ने जादू करने वाले धिम्मी के बारे में यह भी कहा: उसे दंडित किया जाता है जब तक कि वह अपने जादू से किसी को न मार दे या कोई चोट न पहुँचाए, ऐसी स्थिति में उसे उसी के अनुसार जवाबदेह ठहराया जाएगा। दूसरों ने कहा: उसे मार दिया जाता है क्योंकि उसने संधि तोड़ दी है।

जादूगर अपने वारिसों से विरासत नहीं पाता है, क्योंकि वह काफिर है, जब तक कि उसके जादू को कुफ्र न कहा जाए(2)।

मलिक ने उस महिला के बारे में कहा जो अपने पति को खुद से या किसी और से बांध (जादू) देती है: उसे कठोर दंड दिया जाता है लेकिन मारा नहीं जाता(3)।

तेरहवाँ: इस बात पर मतभेद था कि क्या जादूगर से जादू से प्रभावित व्यक्ति के लिए जादू तोड़ने के लिए कहा जा सकता है? सईद इब्न अल-मुसय्यिब ने इसकी अनुमति दी जैसा कि अल-बुखारी(4) द्वारा उल्लेख किया गया है, अल-मुजानी इसके पक्ष में झुके, जबकि अल-हसन अल-बसरी ने इसे नापसंद किया(5)। अल-शाबी ने कहा: नुशराह (जादू तोड़ने का मंत्र) में कोई बुराई नहीं है(6)।

इब्न बत्तल ने कहा: वहब इब्न मुनाबिह की किताब में है: कि सिद्र (बेर) के सात हरे पत्ते लें, उन्हें दो पत्थरों के बीच पीस लें, फिर इसे पानी के साथ मिला लें, और उसमें(7) आयत अल-कुर्सी पढ़ें। फिर उसमें से तीन घूँट पिएं और उससे स्नान करें, तो इंशा अल्लाह उससे जो कुछ भी है वह दूर हो जाएगा। यह उस व्यक्ति के लिए अच्छा है जिसे उसके परिवार से दूर रखा गया है (यौन रूप से बाधित)(8)।

(१) (म) में: खुवैज़ मिंदाद, देखें १/१८०। (२) देखें अल-नवादिर वल-ज़ियादात १४/५३२-५३५, और अल-मुंतका शरह मुवत्ता मलिक लिल-बाजी ७/११७-११८। (३) अल-इस्तिधकर २५/२४४। (४) अध्याय में: क्या जादू निकाला जा सकता है, हदीस (५७६५) से पहले। (५) अल-मुफ्हिम ५/५७५, और अबू दाऊद ने अल-मरासील (४५३) में अबू रजा के माध्यम से रिपोर्ट किया जिन्होंने कहा: मैंने अल-हसन से नुशराह के बारे में पूछा - जो एक प्रकार का मंत्र है जिसका उपयोग जिन्न के साये वाले व्यक्ति के इलाज के लिए किया जाता है - उन्होंने कहा: पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से मुझे बताया गया कि उन्होंने कहा: "यह शैतान के काम से है।" (६) अल-मुसन्नफ़ (१९७६३) में अब्द अल-रज्जाक द्वारा रिपोर्ट किया गया, और लेखक सूरह अल-इसरा की आयत (८२) की व्याख्या करते समय नुशराह का उल्लेख यहाँ से अधिक विस्तार से करेंगे। (७) (द) और (म) में: उस पर। (८) वहब इब्न मुनाबिह से उनके मुसन्नफ़ ११/१३ में अब्द अल-रज्जाक द्वारा उल्लेख किया गया। फतह अल-बारी १०/२३७ देखें।

صفحہ ۲۸۱ سورہ البقرہ: آیت ۱۰۲

ابن خویز منداد^{(1)} نے کہا: جہاں تک ذمی کا تعلق ہے، تو مالک سے روایت مختلف ہے؛ انہوں نے ایک بار کہا: اس سے توبہ کرائی جائے گی اور اس کی توبہ اسلام ہے۔ اور ایک بار کہا: اسے قتل کیا جائے گا اگرچہ وہ اسلام لے آئے۔ جہاں تک حربی کا تعلق ہے تو اگر وہ توبہ کر لے تو اسے قتل نہیں کیا جائے گا۔ اور اسی طرح مالک نے اس ذمی کے بارے میں کہا جس نے نبی ﷺ کو سب (برا بھلا) کہا: اس سے توبہ کرائی جائے گی اور اس کی توبہ اسلام ہے۔ اور ایک بار کہا: اسے قتل کیا جائے گا اور توبہ نہیں کرائی جائے گی، ایک مسلمان کی طرح۔

مالک نے ذمی کے بارے میں یہ بھی کہا جب وہ جادو کرے: اسے سزا دی جائے گی الا یہ کہ اس نے اپنے جادو سے کسی کو قتل کیا ہو، یا کوئی حادثہ پیش کیا ہو، تو اس سے اس کی بقدر بدلہ لیا جائے گا۔ اور دوسروں نے کہا: اسے قتل کیا جائے گا؛ کیونکہ اس نے عہد توڑ دیا ہے۔

اور ساحر اپنے وارثوں کا وارث نہیں بنتا؛ کیونکہ وہ کافر ہے الا یہ کہ اس کے جادو کو کفر نہ کہا جائے^{(2)}۔

اور مالک نے اس عورت کے بارے میں کہا جو اپنے شوہر کو اپنے آپ سے یا کسی اور سے باندھ (سحر زدہ) دے: اسے عبرت ناک سزا دی جائے گی اور قتل نہیں کیا جائے گا^{(3)}۔

تیرہویں بات: اور انہوں نے اس میں اختلاف کیا کہ کیا جادوگر سے مسحور (جس پر جادو ہوا ہو) کا جادو کھولنے کا کہا جائے؟ تو سعید بن المسیب نے اسے جائز قرار دیا جیسا کہ بخاری نے ذکر کیا^{(4)}، اور مزنی اسی کی طرف مائل ہوئے، اور حسن بصری نے اسے ناپسند کیا^{(5)}۔ اور شعبی نے کہا: نشرہ (جھاڑ پھونک) میں کوئی حرج نہیں^{(6)}۔

ابن بطال نے کہا: اور وہب بن منبہ کی کتاب میں ہے: کہ بیری (سدر) کے سات سبز پتے لے، پھر انہیں دو پتھروں کے درمیان کوٹے، پھر اسے پانی میں ڈالے، اور اس میں^{(7)} آیت الکرسی پڑھے، پھر اس میں سے تین گھونٹ پئے، اور اس سے غسل کرے، تو ان شاء اللہ تعالیٰ اس سے وہ سب دور ہو جائے گا جو اسے لاحق ہے، اور یہ اس شخص کے لیے اچھا ہے جو اپنی اہلیہ سے روک دیا گیا ہو (مردانہ کمزوری یا جادو کی وجہ سے)^{(8)}۔

(١) (م) میں: خویز منداد، دیکھیے ١ / ١٨٠۔ (٢) دیکھیے النوادر والزیادات ١٤ / ٥٣٢-٥٣٥، والمنتقى شرح موطأ مالك للباجي ٧ / ١١٧-١١٨۔ (٣) الاستذكار ٢٥ / ٢٤٤۔ (٤) باب میں: کیا جادو نکالا جا سکتا ہے، حدیث (٥٧٦٥) سے پہلے۔ (٥) المفهم ٥ / ٥٧٥، اور ابوداؤد نے المراسیل (٤٥٣) میں ابورجاء کے واسطے سے نقل کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے حسن سے نشرہ کے بارے میں پوچھا - جو ایک قسم کی رقیہ (دم) ہے جس سے اس شخص کا علاج کیا جاتا ہے جس پر جن کا سایہ سمجھا جائے - تو انہوں نے کہا: مجھے نبی ﷺ سے یہ ذکر کیا گیا ہے کہ آپ نے فرمایا: «یہ شیطان کے عمل میں سے ہے»۔ (٦) اسے عبدالرزاق نے المصنف (١٩٧٦٣) میں روایت کیا ہے، اور مصنف سورہ اسراء کی آیت (٨٢) کی تفسیر میں نشرہ کا تذکرہ یہاں سے زیادہ تفصیل سے کریں گے۔ (٧) (د) اور (م) میں: علیہ (اس پر)۔ (٨) اسے عبدالرزاق نے اپنی مصنف ١١ / ١٣ میں وہب بن منبہ سے ذکر کیا ہے۔ اور دیکھیے فتح الباری ١٠ / ٢٣٧۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 282

Fourteenth: Most of the Mu'tazilites denied devils and jinn, and their denial indicates their lack of concern and the weakness of their religious convictions. There is no rational impossibility in affirming their existence, and the texts of the Book and the Sunnah have indicated their affirmation. It is incumbent upon the intelligent person who holds onto the rope of Allah to affirm what reason has judged permissible and what the Law has explicitly stated as proven (1). Allah Almighty said: "But the devils disbelieved," and He said: "And of the devils were those who dove for him" [Al-Anbiya: 82], among other verses. Surah Al-Jinn also dictates this. The Prophet (peace be upon him) said: "Indeed, Satan flows through the son of Adam like the flowing of blood" (2). Many people have denied this report, considering two souls in one body to be impossible. However, reason does not deem their entry into humans impossible, since (3) their bodies are thin and simple according to what some people, or rather most of them, say. Even if they were dense, it would also be possible for them, just as it is possible for food and drink to enter the cavities of the body, and likewise worms may be in the children of Adam while they are alive.

Fifteenth: His Almighty's saying: "And that which was revealed to the two angels," "ma" is a negation, and the "waw" (and) is for conjunction with His saying: "And Solomon did not disbelieve." This is because the Jews said: Indeed, Allah sent down Gabriel and Michael with magic, so Allah denied that (4). In the speech, there is advancement and delay; the intended order is: Solomon did not disbelieve, and nothing was revealed to the two angels, but the devils disbelieved, teaching people magic in Babylon, Harut and Marut. So Harut and Marut are substitutes for the devils in His saying: "But the devils disbelieved" (5). This is the best interpretation the verse has been given, and the most correct of what has been said about it, and nothing else should be paid attention to (6).

(1) Al-Irshad by Al-Juwayni, p. 272. (2) Narrated by Al-Bukhari (2039) and Muslim (2175), and it contains a story, which is that Safiyyah, the wife of the Prophet (peace be upon him), came to him while he was in seclusion (I'tikaf). When she returned, he walked with her, and a man from the Ansar saw him. When he saw him, he called him and said: "Come, she is Safiyyah, for Satan flows through the son of Adam like the flowing of blood." Abu al-Abbas al-Qurtubi said in Al-Mufhim 5/505: The majority believe that the meaning of this hadith is to inform about Satan's constant accompaniment of humans, and his dominance over them through his whispering and misguidance, and his keenness to mislead them and corrupt their affairs.

Therefore, one must beware of him, guard against his tricks, and block the paths of his whispering and misguidance, even if they seem remote. (3) In (D) and (M): if. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186. (5) Tafsir al-Tabari 2/331. (6) In (Z): to anything else.

सूरा अल-बकरा: आयत 102 282

चौदहवां: अधिकांश मुताज़िलाओं ने शैतानों और जिन्नों का खंडन किया, और उनका खंडन उनकी लापरवाही और उनके धार्मिक विश्वासों की कमजोरी को दर्शाता है। उनके अस्तित्व की पुष्टि में कोई तर्कसंगत असंभवता नहीं है, और किताब और सुन्नत के ग्रंथों ने उनकी पुष्टि का संकेत दिया है। अल्लाह की रस्सी को थामे रहने वाले बुद्धिमान व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य है कि वह उस बात की पुष्टि करे जिसे तर्क ने स्वीकार्य माना है और जिसे शरीयत ने स्पष्ट रूप से सिद्ध बताया है (1)। अल्लाह तआला ने कहा: "लेकिन शैतानों ने कुफ्र किया," और उसने कहा: "और शैतानों में से कुछ उसके लिए गोता लगाते थे" [अल-अंबिया: 82], अन्य आयतों के बीच। सूरा अल-जिन्न भी यही हुक्म देती है। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "बेशक शैतान आदम की संतान के शरीर में खून की तरह दौड़ता है" (2)। कई लोगों ने इस खबर का खंडन किया है, और एक शरीर में दो आत्माओं को असंभव माना है। हालाँकि, तर्क उनके मनुष्यों में प्रवेश को असंभव नहीं मानता है, क्योंकि (3) उनके शरीर पतले और सरल होते हैं जैसा कि कुछ लोग, बल्कि उनमें से अधिकांश कहते हैं। अगर वे घने भी होते, तो भी उनके लिए यह संभव होता, ठीक वैसे ही जैसे भोजन और पेय का शरीर के रिक्त स्थानों में प्रवेश संभव है, और इसी तरह कीड़े आदम की संतान में हो सकते हैं जबकि वे जीवित होते हैं।

पंद्रहवां: अल्लाह तआला का कहना: "और जो दो फरिश्तों पर उतारा गया," इसमें "मा" निषेध है, और "वाव" (और) उनके इस कथन पर संयोजन के लिए है: "और सुलेमान ने कुफ्र नहीं किया।" ऐसा इसलिए है क्योंकि यहूदियों ने कहा था: अल्लाह ने जिब्रील और मीकाईल को जादू के साथ उतारा था, इसलिए अल्लाह ने उसका खंडन किया (4)। इस कथन में शब्दों का क्रम आगे-पीछे है; अपेक्षित अर्थ यह है: सुलेमान ने कुफ्र नहीं किया, और दो फरिश्तों पर कुछ भी नहीं उतारा गया, लेकिन शैतानों ने कुफ्र किया, वे बाबुल में लोगों को जादू सिखाते थे, हारूत और मारूत। तो हारूत और मारूत उनके इस कथन में शैतानों के विकल्प हैं: "लेकिन शैतानों ने कुफ्र किया" (5)। इस आयत की यही सबसे बेहतर व्याख्या है, और इसके बारे में जो कुछ कहा गया है उसमें सबसे सही है, और इसके अलावा किसी और बात पर ध्यान नहीं दिया जाना चाहिए (6)।

(1) अल-इरशाद अल-जुवैनी द्वारा, पृष्ठ 272। (2) इसे बुखारी (2039) और मुस्लिम (2175) ने निकाला है, और इसमें एक कहानी है, वह यह कि नबी ﷺ की पत्नी सफिया उनके पास आईं जब वे ऐतिकाफ में थे, जब वह लौटने लगीं तो वे उनके साथ चले, तो अंसार के एक व्यक्ति ने उन्हें देखा,

जब उन्होंने उसे देखा तो उसे बुलाया और कहा: "आओ, यह सफिया है, क्योंकि शैतान आदम की संतान में खून की तरह दौड़ता है।" अबू अल-अब्बास अल-कुर्तुबी ने 'अल-मुफ़्हिम' 5/505 में कहा: अधिकांश का मानना है कि इस हदीस का अर्थ शैतान के मनुष्य के साथ लगातार रहने, और उसके वसवसे और गुमराह करने के माध्यम से उस पर हावी होने, और उसे गुमराह करने और उसके मामलों को बिगाड़ने की उसकी उत्सुकता के बारे में सूचित करना है। इसलिए उससे सावधान रहना चाहिए, उसकी चालों से बचना चाहिए, और उसके वसवसे और गुमराह करने के रास्तों को बंद करना चाहिए, चाहे वे कितने ही दूर क्यों न हों। (3) (द) और (म) में: यदि। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/186। (5) तफ़सीर अल-तबरी 2/331। (6) (ज़) में: उसके अलावा किसी और की तरफ।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۲ ۲۸۲

چودھویں بات: اکثر معتزلہ نے شیاطین اور جنات کا انکار کیا ہے، اور ان کا انکار ان کی بے پروائی اور ان کے مذہبی عقائد کی کمزوری پر دلالت کرتا ہے۔ ان کے وجود کے اثبات میں کوئی عقلی محال نہیں ہے، اور کتاب و سنت کی نصوص ان کے اثبات پر دلالت کرتی ہیں۔ اللہ کی رسی کو مضبوطی سے تھامنے والے عقلمند پر لازم ہے کہ وہ اس بات کا اثبات کرے جسے عقل نے جائز قرار دیا ہے اور شرع نے اس کے ثبوت پر نص بیان کی ہے (۱)؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَلَٰكِنَّ الشَّيَاطِينَ كَفَرُوا﴾ (لیکن شیطانوں نے کفر کیا)، اور فرمایا: ﴿وَمِنَ الشَّيَاطِينِ مَن يَغُوصُونَ لَهُ﴾ (اور شیطانوں میں سے بعض اس کے لیے غوطہ لگاتے تھے) [الانبیاء: ۸۲] دیگر آیات تک، اور سورۃ الجن بھی اسی کا فیصلہ کرتی ہے۔ اور آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "بے شک شیطان انسان کی رگوں میں خون کی طرح دوڑتا ہے" (۲)۔ بہت سے لوگوں نے اس خبر کا انکار کیا ہے، اور ایک جسم میں دو روحوں کو ناممکن قرار دیا ہے۔ حالانکہ عقل انسانوں میں ان کے داخل ہونے کو محال نہیں قرار دیتی، کیونکہ (۳) ان کے اجسام لطیف اور سادہ ہیں جیسا کہ بعض بلکہ اکثر لوگ کہتے ہیں، اور اگر وہ کثیف (گاڑھے) بھی ہوتے تب بھی ان کا داخلہ درست ہوتا، جس طرح جسم کے خالی حصوں میں کھانے پینے کا داخل ہونا درست ہے، اسی طرح کیڑے مکوڑے بھی انسانوں کے اندر زندہ حالت میں ہوتے ہیں۔

پندرھویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَمَا أُنزِلَ عَلَى الْمَلَكَيْنِ﴾ (اور جو دو فرشتوں پر نازل کیا گیا) میں "ما" نفی کے لیے ہے، اور "واؤ" عطف کے لیے ہے اس قول پر: ﴿وَمَا كَفَرَ سُلَيْمَانُ﴾ (اور سلیمان نے کفر نہیں کیا)۔ اور یہ اس لیے کہ یہودیوں نے کہا تھا: اللہ نے جبرائیل اور میکائیل کو جادو کے ساتھ نازل کیا ہے، تو اللہ نے اس کی نفی فرمائی (۴)۔ اور اس کلام میں تقدیم و تاخیر ہے، اصل

ترتیب یہ ہے: سلیمان نے کفر نہیں کیا، اور نہ ہی ان دو فرشتوں پر کچھ نازل کیا گیا، بلکہ شیطانوں نے کفر کیا جو لوگوں کو بابل میں جادو سکھاتے تھے، یعنی ہاروت اور ماروت| پس ہاروت اور ماروت شیطانوں سے بدل ہیں اللہ کے اس قول ﷻ: ﴿وَلَكِنَّ الشَّيَاطِينَ كَفَرُوا﴾ (۵)۔ اس آیت کی تاویل میں یہ سب سے بہتر بات ہے، اور اس بارے میں کہی گئی باتوں میں سب سے زیادہ صحیح ہے، اور اس کے علاوہ کسی اور بات کی طرف توجہ نہیں دی جائے گی (۶)۔

(۱) الارشاد للجوینی ص ۲۷۲۔ (۲) اسے بخاری (۲۰۳۹) اور مسلم (۲۱۷۵) نے روایت کیا ہے، اور اس میں ایک قصہ ہے، وہ یہ کہ نبی ﷺ کی زوجہ صفیہ آپ کے پاس آئیں جب کہ آپ اعتکاف میں تھے، جب وہ واپس ہوئیں تو آپ ان کے ساتھ چلے، تو انصار کے ایک شخص نے آپ کو دیکھا، جب آپ نے اسے دیکھا تو اسے بلایا اور فرمایا: "ادھر آؤ، یہ صفیہ ہے، کیوں کہ شیطان انسان کی رگوں میں خون کی طرح دوڑتا ہے"۔ ابو العباس القرطبی نے المفہم ۵/۵۰۵ میں کہا: اکثر کی رائے یہ ہے کہ اس حدیث کا مطلب شیطان کی انسان کے ساتھ ہمہ وقت وابستگی، اور اپنے وسوسوں اور گمراہی کے ذریعے اس پر غلبہ پانے، اور اسے گمراہ کرنے اور اس کے حالات بگاڑنے کی حرص کے بارے میں خبر دینا ہے، لہذا اس سے ہوشیار رہنا، اس کے مکر و فریب سے بچنا، اور اس کے وسوسوں اور گمراہی کے راستوں کو بند کرنا واجب ہے، چاہے وہ دور ہی کیوں نہ ہوں۔ (۳) (د) اور (م) میں: "إذا"۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۱۸۶۔ (۵) تفسیر الطبری ۲/۳۳۱۔ (۶) (ظ) میں: "إلى ما سواه"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 / 283

Magic is extracted by devils due to the subtlety of their essence and the sharpness of their understanding. Most humans who practice it are women, especially during their menstruation; Allah Almighty said: {And from the evil of the blowers in knots} [Al-Falaq: 4], and a poet said: I seek refuge in my Lord from the blowers (1)

Sixteenth: If someone says: How can two be a substitute for a plural, when a substitute must be in accordance with the substituted thing? The answer is from three perspectives:

First: The dual (two) can sometimes be referred to by a plural noun, as Allah Almighty said: {And if he has brothers, his mother shall have a sixth} [An-Nisa: 11], and nothing excludes her from a third to a sixth except two or more brothers, as will be explained in "An-Nisa" (2).

Second: Since they were the heads in teaching, they were specifically mentioned rather than their followers, as Allah Almighty said: {Over it are nineteen} [Al-Muddathir: 30].

Third: They were specifically mentioned among them because of their rebellion, as Allah Almighty said: {In both of them are fruit and palm trees and pomegranates} [Ar-Rahman: 68] and His saying: {and Gabriel and Michael} [Al-Baqarah: 98]. This is frequent in the Quran and in the speech of the Arabs; sometimes specific individuals of a general group are mentioned by name, either due to their honor and virtue (3), like Allah Almighty's saying: {Indeed, the most worthy of Ibrahim among the people are those who followed him and this Prophet} [Aal-Imran: 68] and His saying: {and Gabriel and Michael}, or due to its goodness, like His saying: {fruit and palm trees and pomegranates}, or due to its majority, like the saying of the Prophet ﷺ: "The earth has been made for me a place of prayer and its soil a means of purification" (4), or due to their rebellion and insolence as in this verse, and Allah Almighty knows best.

---

(1) And its completion: in the limb of the offensive biter, and it was previously mentioned on 2/273. (2) In the interpretation of verse (13) thereof. (3) In (D) and (M): either for his honor or for his virtue, and in (Z): either for his honor and virtue, and what is confirmed is from (Kh) and (Z). (4) Narrated by Ahmad (14263), Al-Bukhari (335), and Muslim (521) from the hadith of Jabir, may Allah be pleased with him, and Ahmad (7266), and Muslim (523) from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be

pleased with him, without his saying: "and its soil." It was also narrated by Muslim (522) from the hadith of Hudhayfah, may Allah be pleased with him, with a wording similar to the author's. It was also narrated by Ahmad (2742), (7068), (19735), and (21299) from the hadith of Ibn Abbas, Ibn Amr, Abu Musa, and Abu Dharr, may Allah be pleased with them (in that order), without his saying: "and its soil."

सूरा अल-बकरा: आयत 102 / 283

जादू शैतानों द्वारा उनके तत्व की सूक्ष्मता और उनकी समझ की तीव्रता के कारण निकाला जाता है। मनुष्यों में इसे करने वाले अधिकांश महिलाएँ होती हैं, विशेष रूप से उनके मासिक धर्म के दौरान; अल्लाह तआला ने फरमाया: {और गांठों में फूँकने वाली (जादूगरनियों) की बुराई से} [अल-फलक: 4], और एक कवि ने कहा: मैं अपने रब की शरण लेता हूँ फूँकने वालियों से (1)

सोलहवाँ: यदि कोई कहे: दो बहुवचन का विकल्प कैसे हो सकते हैं, जबकि विकल्प को उसी के अनुसार होना चाहिए जिसके बदले में वह है? तो उत्तर तीन पहलुओं से है:

पहला: कभी-कभी 'दो' के लिए 'बहुवचन' संज्ञा का प्रयोग किया जाता है, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {फिर यदि उसके भाई हों, तो उसकी माँ का छठा हिस्सा होगा} [अन-निसा: 11], और दो या दो से अधिक भाई ही उसे एक-तिहाई से छठे हिस्से पर ले आते हैं, जैसा कि "अन-निसा" (2) में स्पष्ट किया जाएगा।

दूसरा: चूंकि वे शिक्षण में प्रमुख थे, इसलिए उनके अनुयायियों के बजाय केवल उनका उल्लेख किया गया, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {उस पर उन्नीस (फरिश्ते नियुक्त) हैं} [अल-मुद्दस्सिर: 30]।

तीसरा: उनका विशेष रूप से उल्लेख उनके विद्रोह के कारण किया गया है, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {उन दोनों में मेवे और खजूर और अनार हैं} [अर-रहमान: 68] और उनका कथन: {और जिब्रील और मीकाल} [अल-बकरा: 98]। कुरान और अरबों की भाषा में ऐसा अक्सर होता है; कभी-कभी सामान्य समूह के कुछ व्यक्तियों का नाम लेकर उल्लेख किया जाता है, या तो उनके सम्मान और गुण (3) के कारण, जैसे कि अल्लाह तआला का कथन: {निस्संदेह इब्राहीम के सबसे निकट वे लोग हैं जिन्होंने उनका अनुसरण किया और यह नबी} [आल-इमरान: 68] और उनका कथन: {और जिब्रील और मीकाल}, या इसकी शुद्धता के कारण, जैसे उनका कहना: {मेवे और खजूर और अनार}, या इसकी बहुलता के कारण, जैसे पैगंबर ﷺ का कथन: "मेरे लिए पूरी पृथ्वी को मस्जिद (प्रार्थना का स्थान) और इसकी मिट्टी को शुद्ध करने वाला बना दिया गया है" (4), या उनके विद्रोह और अहंकार के कारण जैसा कि इस आयत में है, और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

(1) और इसकी पूर्णता: आक्रामक काटने वाले के अंग में, और यह पहले 2/273 पर आ चुका है। (2) इसकी आयत (13) की व्याख्या में। (3) (द) और (म) में: या तो उसके सम्मान के लिए या उसके गुण के लिए, और (ज़) में: या तो उसके सम्मान और गुण के लिए, और जो पुष्ट है वह (ख़) और (ज़) से है। (4) इसे अहमद (14263), बुखारी (335), और मुस्लिम (521) ने जाबिर (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है, और अहमद (7266), और मुस्लिम (523) ने अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से। उनके इस कथन के बिना: "और इसकी मिट्टी"। इसे मुस्लिम (522) ने हुज़ैफ़ा (रज़ि.) की हदीस से लेखक के शब्दों के समान शब्दों के साथ भी उद्धृत किया है। इसे अहमद (2742), (7068), (19735), और (21299) ने इब्न अब्बास, इब्न अम्र, अबू मूसा और अबू ज़र (रज़ि.) की हदीसों से भी उद्धृत किया है (क्रमशः), उनके इस कथन के बिना: "और इसकी मिट्टी"।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۲ / ۲۸۳

جادو شیطانوں کے جوہر کی لطافت اور ان کے فہم کی باریکی کی وجہ سے ان کا استخراج ہے، اور انسانوں میں سے اسے زیادہ تر عورتیں اختیار کرتی ہیں، خاص طور پر اپنی حیض کی حالت میں؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَمِن شَرِّ النَّفَّاثَاتِ فِي الْعُقَدِ﴾ (اور گرہوں میں پھونکنے والیوں کے شر سے)، اور شاعر نے کہا: أعوذ بربي من النَّافثات (۱)

سولہویں بات: اگر کوئی کہنے والا کہے: دو جمع کا بدل کیسے ہو سکتے ہیں، جبکہ بدل تو مبدل منہ کے مطابق ہی ہوتا ہے؟ تو اس کا جواب تین وجوہ سے ہے:

پہلی وجہ: یہ کہ دو پر بھی جمع کا نام بول دیا جاتا ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَإِن كَانَ لَهُ إِخْوَةٌ فَلِأُمِّهِ السُّدُسُ﴾ [النساء: ۱۱] (پھر اگر اس کے بھائی ہوں تو اس کی ماں کے لیے چھٹا حصہ ہے) اور دو یا اس سے زیادہ بھائی ہی اسے تہائی سے چھٹے حصے کی طرف لے جاتے ہیں، جیسا کہ "سورہ نساء" (۲) میں اس کا بیان آئے گا۔

دوسری وجہ: یہ کہ چونکہ وہ تعلیم میں پیشوا تھے، اس لیے ان کے متبعین کے بجائے ان ہی کا ذکر کیا گیا، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿عَلَيْهَا تِسْعَةَ عَشَرَ﴾ [المدثر: ۳۰] (اس پر انیس کارندے مقرر ہیں)۔

تیسری وجہ: ان کو ان کے درمیان سے خاص طور پر ذکر کرنا ان کی سرکشی کی وجہ سے ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فِيهِمَا فَاكِهَةٌ وَنَخْلٌ وَرُمَّانٌ﴾ [الرحمن: ۶۸] (ان دونوں میں میوے اور کھجوریں اور انار ہیں) اور اس کا قول: ﴿وَجِبْرِيلَ وَمِيكَالَ﴾ [البقرة: ۹۸] (اور جبریل اور میکال)۔ اور یہ قرآن میں اور عربوں کے کلام میں بکثرت ہے، بسا اوقات عموم کے بعض افراد کو ذکر کے

ساتھ خاص کیا جاتا ہے، یا تو ان کے شرف اور فضیلت (۳) کی وجہ سے، جیسے اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِنَّ أَوْلَى النَّاسِ بِإِبْرَاهِيمَ لَلَّذِينَ اتَّبَعُوهُ وَهَذَا النَّبِيُّ﴾ [آل عمران: ۶۸] اور اس کا قول: ﴿وَجِبْرِيلَ وَمِيكَالَ﴾، یا اس کی عمدگی کی وجہ سے، جیسے اس کا قول: ﴿فَاكِهَةٌ وَنَخْلٌ وَرُمَّانٌ﴾، یا اس کی کثرت کی وجہ سے، جیسے نبی کریم ﷺ کا ارشاد: "میرے لیے زمین مسجد اور اس کی مٹی پاک کرنے والی بنا دی گئی ہے" (۴)، یا ان کی سرکشی اور تکبر کی وجہ سے جیسا کہ اس آیت میں ہے، واللہ تعالیٰ اعلم۔

---

(۱) اور اس کا تتمہ ہے: "فی عِضَوِ العاضِهِ المُغضِبهِ"، اور یہ پہلے ۲/۲۷۳ پر گزر چکا ہے۔ (۲) اسی کی آیت (۱۳) کی تفسیر میں۔ (۳) نسخہ (د) اور (م) میں ہے: یا تو اس کے شرف کی وجہ سے یا اس کی فضیلت کی وجہ سے، اور نسخہ (ظ) میں ہے: یا تو اس کے شرف اور فضیلت کی وجہ سے، اور جو متن میں ہے وہ (خ) اور (ز) سے ماخوذ ہے۔ (۴) اسے احمد (۱۴۲۶۳)، بخاری (۳۳۵) اور مسلم (۵۲۱) نے جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور احمد (۷۲۶۶) اور مسلم (۵۲۳) نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے، بجز اس قول کے: "اور اس کی مٹی پاک کرنے والی ہے"۔ اسے مسلم (۵۲۲) نے بھی حذیفہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے مصنف کے الفاظ کے قریب روایت کیا ہے۔ نیز اسے احمد (۲۷۴۲)، (۷۰۶۸)، (۱۹۷۳۵) اور (۲۱۲۹۹) نے ابن عباس، ابن عمرو، ابوموسیٰ اور ابوذر رضی اللہ عنہم (بالترتیب) کی حدیث سے روایت کیا ہے، بجز اس قول کے: "اور اس کی مٹی پاک کرنے والی ہے"۔

284 Surah Al-Baqarah: Verse 102

It has been said: "mā" is conjoined with "magic," and it is an object. Accordingly, "mā" takes the meaning of "that which." Thus, magic was sent down to the two angels as a trial and an examination for the people(1). Allah examines His servants with whatever He wills, just as He examined with the river of Talut. Therefore, the two angels say: "We are only a trial," meaning: a test from Allah. We inform you that the practice of magic is disbelief (kufr). If you obey us, you are saved; if you disobey us, you are ruined(2).

It was narrated from Ali, Ibn Mas'ud, Ibn Abbas, Ibn Umar, Ka'b al-Ahbar, al-Suddi, and al-Kalbi to the effect: When corruption increased among the descendants of Adam (peace be upon him) – during the time of Idris (peace be upon him) – the angels reproached them. Allah the Almighty said: "If you were in their place and I placed in you what I placed in them, you would surely have committed deeds like theirs." They said: "Glory be to You! It would not befit us to do so." He said: "Choose two angels from among your best." So they chose Harut and Marut. Allah sent them down to earth and placed desire in them. Not a month had passed when they were tempted by a woman named "Baydhakht" in Nabataean, "Nahid" in Persian(4), and "Az-Zuhara" (Venus) in Arabic. She brought a dispute to them, and they solicited her. She refused unless they entered her religion, drank wine, and killed a soul which Allah had forbidden. They complied, drank wine, and approached her. A man saw them, so they killed him. She asked them about the name with which they ascend to heaven, so they taught it to her. She spoke it and ascended, then she was transformed into a star(5).

Salim narrated from his father Abdullah(6): "Ka'b al-Habr told me that they did not complete their day before they did what Allah had forbidden them." In another narration: They were given a choice between the punishment of this world...

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186. (2) Al-Wasit by Al-Wahidi 1/185. (3) In (Zha): "wa rakkabtum" (and you placed), which is an error. (4) In (Dal) and (Mim): "Nahil," and in (Zha): "Yahind," and the text is established from (Kha) and (Zay). (5) A false story, and its content is objectionable. It is one of the stories of Ka'b al-Ahbar from what he narrated from the books of the Children of Israel, as stated in the Tafsir of Abd al-Razzaq 1/53-54, and from him by al-Tabari 2/343-344. Ibn Kathir mentioned in Al-Bidaya wa'l-Nihaya 1/37-38 that these reports are among the myths of the Children of Israel that cannot be relied upon. (6) In (Zay): Salim ibn Abdullah narrated to me,

and in (Mim): Salim from his father from Abdullah, which is an error. The text is established from (Kha), (Dal), and (Zha).

284 सूरह अल-बकरा: आयत 102

यह कहा गया है: "मा" "जादू" के साथ जुड़ा हुआ है, और यह एक कर्म है। इस आधार पर, "मा" का अर्थ "जो" होगा। इस प्रकार, लोगों के लिए एक आज़माइश और परीक्षा के रूप में दोनों फ़रिश्तों पर जादू उतारा गया था(1)। अल्लाह अपने बंदों की परीक्षा वैसे ही लेता है जैसे वह चाहता है, जैसे कि उसने तालूत की नदी के साथ परीक्षा ली थी। इसीलिए दोनों फ़रिश्ते कहते हैं: "हम तो केवल एक आज़माइश हैं," जिसका अर्थ है: अल्लाह की ओर से एक परीक्षा। हम तुम्हें सूचित करते हैं कि जादूगर का काम कुफ़्र (अविश्वास) है। यदि तुम हमारी बात मानोगे, तो तुम बच जाओगे, और यदि तुम हमारी अवज्ञा करोगे, तो तुम नष्ट हो जाओगे(2)।

अली, इब्न मसूद, इब्न अब्बास, इब्न उमर, काब अल-अहबार, अल-सुद्दी और अल-कल्बी से इस आशय का वर्णन किया गया है: जब आदम (अलैहिस्सलाम) की संतानों के बीच भ्रष्टाचार बढ़ गया - और यह इदरीस (अलैहिस्सलाम) के समय में हुआ था - तो फ़रिश्तों ने उन्हें ताना दिया। अल्लाह तआला ने कहा: "अगर तुम उनकी जगह होते और मैंने तुममें वही गुण रखे होते जो मैंने उनमें रखे हैं, तो तुम निश्चित रूप से उनके जैसे काम करते।" उन्होंने कहा: "आप पवित्र हैं! हमारे लिए ऐसा करना उचित नहीं होगा।" उसने कहा: "अपने सबसे अच्छे लोगों में से दो फ़रिश्ते चुनो।" तो उन्होंने हारूत और मारूत को चुना। अल्लाह ने उन्हें धरती पर उतारा और उनमें वासना डाल दी। अभी एक महीना भी नहीं बीता था कि वे एक महिला द्वारा मोहित हो गए, जिसका नाम नबातियन भाषा में "बैदख्त", फ़ारसी में "नाहिद"(4), और अरबी में "अज़-जुहरा" (शुक्र) था। वह उनके पास एक विवाद लेकर आई, और उन्होंने उसके साथ छेड़छाड़ की। उसने तब तक इनकार किया जब तक कि वे उसके धर्म में प्रवेश न कर लें, शराब न पी लें, और उस जान को न मार दें जिसे अल्लाह ने मना किया था। उन्होंने उसकी बात मान ली, शराब पी और उसके पास गए। एक आदमी ने उन्हें देख लिया, तो उन्होंने उसे मार डाला। उसने उनसे उस नाम के बारे में पूछा जिससे वे स्वर्ग की ओर चढ़ते थे, तो उन्होंने उसे वह नाम सिखा दिया। उसने वह नाम बोला और ऊपर चढ़ गई, फिर वह एक तारे में बदल गई(5)।

सलीम ने अपने पिता अब्दुल्ला(6) से रिवायत की: "काब अल-हब्र ने मुझे बताया कि उन्होंने अपना दिन भी पूरा नहीं किया था कि उन्होंने वह काम कर दिया जिसे अल्लाह ने उनके लिए मना किया था।" दूसरी रिवायत में है: उन्हें दुनिया की सज़ा के बीच चुनने का विकल्प दिया गया...

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/186। (2) अल-वासित अल-वाहिदी द्वारा 1/185। (3) (ज़) में: "वा रक्कबतुम", जो एक त्रुटि है। (4) (द) और (म) में: "नाहिल", और (ज़) में: "याहिंद", और पाठ (ख) और (ज) से प्रमाणित है। (5) एक झूठी कहानी, और इसकी विषय-वस्तु आपत्तिजनक है। यह काब अल-अहबार की कहानियों में से एक है जिसे उन्होंने बनी इस्राइल की किताबों से उद्धृत किया है, जैसा कि अब्द अल-रज्जाक की तफ़सीर 1/53-54 में वर्णित है, और उनसे अल-तबरी 2/343-344 द्वारा। इब्न कथीर ने अल-बिदाया वल-निहाया 1/37-38 में उल्लेख किया है कि ये खबरें बनी इस्राइल की उन कहानियों में से हैं जिन पर भरोसा नहीं किया जा सकता। (6) (ज) में: सलीम इब्न अब्दुल्ला ने मुझे बताया, और (म) में: सलीम अपने पिता से, अब्दुल्ला से, जो एक त्रुटि है। पाठ (ख), (द) और (ज़) से प्रमाणित है।

284 سورة البقرہ: آیت 102

اور یہ کہا گیا ہے کہ: "ما" کا عطف "سحر" پر ہے، اور یہ مفعول ہے، اس بنا پر "ما" بمعنی "الذی" ہوگا۔ پس سحر دونوں فرشتوں پر لوگوں کے لیے فتنہ اور آزمائش کے طور پر اتارا گیا تھا(1)۔ اور اللہ اپنے بندوں کو جس چیز سے چاہے آزماتا ہے، جیسا کہ اس نے طالوت کی نہر سے آزمایا تھا۔ اسی لیے دونوں فرشتے کہتے ہیں: "ہم تو صرف ایک آزمائش ہیں،" یعنی: اللہ کی طرف سے ایک امتحان۔ ہم تمہیں بتاتے ہیں کہ جادوگر کا عمل کفر ہے، پس اگر تم نے ہماری اطاعت کی تو نجات پا گئے، اور اگر ہماری نافرمانی کی تو ہلاک ہو گئے(2)۔

حضرت علی، ابن مسعود، ابن عباس، ابن عمر، کعب الاحبار، السدی اور الکلبی سے مروی ہے کہ: جب اولادِ آدم (علیہ السلام) میں فساد بڑھ گیا - اور یہ ادریس (علیہ السلام) کے زمانے میں ہوا - تو فرشتوں نے ان پر عار دلائی۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "اگر تم ان کی جگہ ہوتے اور میں تم میں وہی کچھ رکھ دیتا جو میں نے ان میں رکھا ہے، تو تم بھی یقیناً ان ہی جیسے اعمال کرتے۔" انہوں نے عرض کیا: "پاک ہے تیری ذات! ہمارے لیے ایسا کرنا مناسب نہ ہوتا۔" اللہ نے فرمایا: "اپنے بہترین لوگوں میں سے دو فرشتے منتخب کرو۔" تو انہوں نے ہاروت اور ماروت کو منتخب کیا۔ اللہ نے انہیں زمین پر اتار دیا اور ان میں خواہشِ نفسانی رکھ دی۔ ابھی ان پر ایک مہینہ بھی نہ گزرا تھا کہ وہ ایک عورت کے فتنے میں مبتلا ہو گئے جس کا نام نبطی زبان میں "بیذخت"، فارسی میں "ناہید"(4) اور عربی میں "الزہرہ" تھا۔ وہ ان کے پاس ایک جھگڑا لے کر آئی، اور انہوں نے اسے اپنی طرف مائل کرنا چاہا۔ اس نے انکار کر دیا سوائے اس کے کہ وہ اس کے دین میں داخل ہو جائیں، شراب پئیں اور اس جان کو قتل کریں جسے اللہ نے حرام کیا ہے۔ پس انہوں نے اسے مان لیا، شراب پی اور اس کے پاس گئے۔ ایک آدمی نے انہیں دیکھ لیا تو انہوں نے اسے قتل کر دیا۔ اس

نے ان سے وہ نام پوچھا جس کے ذریعے وہ آسمان پر چڑھتے تھے، تو انہوں نے اسے وہ سکھا دیا۔ اس نے وہ نام پکارا اور اوپر چڑھ گئی، پھر وہ مسخ ہو کر ایک ستارہ بن گئی(5)۔

سالم نے اپنے والد عبداللہ(6) سے روایت کی: "کعب الحبر نے مجھے بتایا کہ ان کا دن ابھی مکمل نہیں ہوا تھا کہ انہوں نے وہ عمل کر لیا جو اللہ نے ان پر حرام کیا تھا۔" اور ایک دوسری روایت میں ہے: انہیں دنیا کے عذاب کے درمیان اختیار دیا گیا...

---

(1) المحرر الوجیز 186/1۔ (2) الوسیط للواحدی 185/1۔ (3) نسخہ (ظ) میں: "ورکبتم" ہے، جو کہ غلط ہے۔ (4) نسخہ (د) اور (م) میں: "ناہیل"، اور (ظ) میں "یاہند" ہے، اور متن (خ) اور (ز) سے ثابت ہے۔ (5) یہ ایک باطل قصہ ہے اور اس کے متن میں نکارت ہے، یہ کعب الاحبار کے قصوں میں سے ہے جو انہوں نے بنی اسرائیل کی کتب سے نقل کیے ہیں، جیسا کہ تفسیر عبد الرزاق 53/1-54 میں اس کی صراحت ہے، اور ان سے طبری نے 343/2-344 میں نقل کیا ہے۔ ابن کثیر نے البدایہ والنہایہ 37/1-38 میں ذکر کیا ہے کہ یہ خبریں بنی اسرائیل کی خرافات میں سے ہیں جن پر اعتماد نہیں کیا جا سکتا۔ (6) نسخہ (ز) میں: "سالم بن عبد اللہ فحدثنی" ہے، اور (م) میں: "سالم عن ابیہ عن عبد اللہ" ہے، جو کہ غلط ہے، اور متن (خ)، (د) اور (ظ) سے ثابت ہے۔

285 Surat Al-Baqarah: Verse 102

...and the punishment of the Hereafter, so they chose the punishment of this world. Thus, they are being punished in Babylon, in a tunnel within the earth. It is said: Babylon of Iraq. And it is said: Babylon of Nahavand (1).

It was narrated from Ibn Umar, on the authority of Ata, that whenever he saw Venus (Az-Zuhara) and Canopus (Suhail), he would insult and curse them, saying: “Suhail was an unjust tax collector in Yemen who oppressed people, and Venus was the companion of Harut and Marut” (2).

We say: All of this is weak and far-fetched regarding Ibn Umar and others; nothing of it is authentic. It is a statement refuted by the fundamental principles concerning the angels, who are Allah’s trustees over His revelation and His ambassadors to His messengers: {They do not disobey Allah in what He commands them and do what they are commanded} [At-Tahrim: 6], {Rather, they are honored servants. They do not precede Him in speech, and they act by His command} [Al-Anbiya: 26-27], {They exalt [Him] night and day [and] do not slacken} [Al-Anbiya: 20]. As for reason, it does not deny the possibility of disobedience occurring from angels, or the existence of things within them (3) contrary to what they were tasked with, or the creation of desires in them; for in the power of Allah Almighty is everything imaginable. From this comes the fear of the noble and knowledgeable prophets and saints. However, the occurrence of this possibility cannot be known except through revelation (auditory evidence), and nothing authentic has been established. Among the proofs of its inauthenticity is that Allah Almighty created the stars and these planets when He created the heavens. It is mentioned in a report: When the sky was created, seven wandering bodies were created in it: Saturn, Jupiter, Bahram (Mars), Mercury, Venus, the Sun, and the Moon (4). This is the meaning of Allah Almighty's saying: {and each is floating in an orbit} [Ya-Sin: 40].

Thus, it is proven that Venus and Canopus existed before the creation of Adam. Furthermore, the angels' saying: "It was not fitting for us" is a flaw; its meaning (5) is "You cannot tempt us," and this is disbelief from which we seek refuge in Allah, and from attributing it to...

(1) Sahih Ibn Hibban (6186), and Tafsir al-Tabari 2/350, and it was previously mentioned that the report is damaged (corrupt). His saying: Nahavand, as in the copies, but what is in the sources: Dunbawand, and Damavand. (2) A damaged (corrupt) report, narrated by Abu al-Shaykh in Al-'Azama (703) from Umar, and in its

chain of narration is Talha ibn Amr al-Makki, whom Ibn Ma'in and others weakened. Imam Ahmad and an-Nasa'i said: his hadith is abandoned (matruk), and al-Bukhari and Ibn al-Madini said: he is nothing. Mizan al-I'tidal 2/340. And as-Suyuti mentioned it in Al-La'ali al-Masnu'a 1/147. (3) In (D) and (M): from them. (4) We did not find its source. His saying: Bahram, meaning Mars. (5) The word: its meaning, is from (Z).

285 सूरह अल-बकराह: आयत 102

...और आख़िरत का अज़ाब, इसलिए उन्होंने दुनिया का अज़ाब चुना। तो वे बाबुल में, ज़मीन के अंदर एक सुरंग में दंडित किए जा रहे हैं। कहा गया है: इराक़ का बाबुल। और कहा गया है: नहावंद का बाबुल (1)।

इब्न उमर से अता के हवाले से रिवायत है कि जब भी वे ज़ुहरा (शुक्र) और सुहैल (अगस्त्य) को देखते, तो उन्हें भला-बुरा कहते और कोसते थे; वे कहते थे: "सुहैल यमन में एक ज़ालिम कर वसूलने वाला था जो लोगों पर ज़ुल्म करता था, और ज़ुहरा हारूत और मारूत की साथी थी" (2)।

हम कहते हैं: यह सब इब्न उमर और अन्य लोगों के संबंध में कमज़ोर और निराधार है; इसमें से कुछ भी सही नहीं है। यह एक ऐसी बात है जिसे फ़रिश्तों के बारे में बुनियादी सिद्धांतों द्वारा नकारा जाता है, जो अपनी वही पर अल्लाह के अमीन (अमानतदार) हैं, और उसके रसूलों के पास उसके दूत हैं: {वे अल्लाह की अवज्ञा नहीं करते जो वह उन्हें हुक्म देता है और वही करते हैं जिसका उन्हें हुक्म दिया जाता है} [अत-तहरीम: 6], {बल्कि, वे सम्मानित बंदे हैं। वे उससे पहले बोल नहीं पाते, और वे उसके आदेश पर अमल करते हैं} [अल-अंबिया: 26-27] {वे रात और दिन उसकी महिमा करते हैं और सुस्ती नहीं करते} [अल-अंबिया: 20]। जहाँ तक बुद्धि का प्रश्न है, वह फ़रिश्तों से अवज्ञा होने की संभावना से इनकार नहीं करती, या उनमें (3) उनके सौंपे गए कार्यों के विपरीत चीज़ों के होने, या उनमें इच्छाएँ पैदा होने से इनकार नहीं करती; क्योंकि अल्लाह तआला की शक्ति में हर कल्पनीय वस्तु संभव है। इसी कारण श्रेष्ठ और ज्ञानी नबियों और वलियों का डर होता है। हालाँकि, इस संभावना का घटित होना केवल श्रवण (नुसूस) के माध्यम से ही जाना जा सकता है और कुछ भी प्रामाणिक रूप से सिद्ध नहीं हुआ है। इसकी प्रमाणिकता की कमी के प्रमाणों में से एक यह है कि अल्लाह तआला ने सितारों और इन ग्रहों को तब बनाया जब उसने आसमान को बनाया। एक रिवायत में है: जब आसमान बनाया गया, तो उसमें सात घूमने वाले पिंड बनाए गए: ज़ुहल (शनि), मुश्तरी (बृहस्पति), बहराम (मंगल), अतारिद (बुध), ज़ुहरा (शुक्र), सूरज और चाँद (4)। और यही अल्लाह तआला के इस कथन का अर्थ है: {और हर एक अपनी कक्षा में तैर रहा है} [य-सीन: 40]।

तो इससे यह सिद्ध हुआ कि ज़ुहरा और सुहैल आदम के जन्म से पहले ही मौजूद थे। इसके अलावा, फ़रिश्तों का यह कहना: "हमारे लिए यह उचित नहीं था" एक दोष है, इसका अर्थ (5) है "आप हमें

गुमराह नहीं कर सकते," और यह कुफ़्र है जिससे हम अल्लाह की पनाह मांगते हैं, और इसे... की ओर जोड़ने से भी।

(1) सहीह इब्न हिब्बान (6186), और तफ़सीर अल-तबरी 2/350, और पहले कहा गया है कि यह ख़बर खराब है। उनका कहना: नहावंद, प्रतियों में ऐसा ही है, लेकिन स्रोतों में जो है वह है: दुनबावंद और दमावंद। (2) एक खराब ख़बर, जिसे अबू अल-शेख ने 'अल-अज़मा' (703) में उमर से निकाला है, और इसकी सनद में तल्हा बिन अम्र अल-मक्की है, जिसे इब्न मुईन और अन्य ने कमज़ोर बताया है, और इमाम अहमद और अल-नसाई ने कहा: उसकी हदीस त्याज्य (मतरूक) है, और अल-बुखारी और इब्न अल-मदीनी ने कहा: वह कुछ नहीं है। मिज़ान अल-इतदाल 2/340। और अल-सुयुति ने इसे 'अल-लाली अल-मस्नूअ' 1/147 में उद्धृत किया है। (3) (द) और (म) में: उनमें से। (4) हमने इसे नहीं पाया। उनका कहना: बहराम, यानी मंगल। (5) शब्द: इसका अर्थ, (ज़) से है।

۲۸۵ سورة البقرہ: آیت ۱۰۲

...اور آخرت کا عذاب، پس انہوں نے دنیا کا عذاب چن لیا، تو وہ بابل میں زمین کی ایک سرنگ میں عذاب دیے جا رہے ہیں۔ کہا گیا ہے: عراق کا بابل۔ اور کہا گیا ہے: نہاوند کا بابل (۱)۔

ابن عمر سے عطاء کی روایت میں مروی ہے کہ وہ جب زہرہ اور سہیل کو دیکھتے تو انہیں برا بھلا کہتے اور ان پر لعن طعن کرتے؛ اور کہتے: "سہیل یمن میں ایک ظالم ٹیکس وصول کرنے والا تھا جو لوگوں پر ظلم کرتا تھا، اور زہرہ ہاروت و ماروت کی ساتھی تھی" (۲)۔

ہم کہتے ہیں: یہ سب ابن عمر اور دیگر سے منسوب باتیں ضعیف اور بعید از قیاس ہیں؛ ان میں سے کچھ بھی صحیح نہیں؛ کیونکہ یہ وہ بات ہے جسے فرشتوں کے بارے میں بنیادی اصول مسترد کرتے ہیں جو کہ اللہ کی وحی کے امین اور اس کے رسولوں کی طرف اس کے سفراء ہیں: {وہ اللہ کی نافرمانی نہیں کرتے جس کا وہ انہیں حکم دیتا ہے اور وہی کرتے ہیں جس کا انہیں حکم دیا جاتا ہے} [التحریم: ۶]، {بلکہ وہ معزز بندے ہیں۔ وہ بات میں اس سے سبقت نہیں کرتے اور وہ اس کے حکم پر عمل کرتے ہیں} [الانبیاء: ۲۶-۲۷] {وہ رات دن تسبیح کرتے ہیں اور سستی نہیں کرتے} [الانبیاء: ۲۰]۔ جہاں تک عقل کا تعلق ہے، تو وہ فرشتوں سے نافرمانی کے وقوع کا انکار نہیں کرتی، اور ان میں (۳) ایسی چیزوں کا پایا جانا جو ان کی ذمہ داری کے خلاف ہوں، یا ان میں خواہشات کا پیدا ہونا؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ کی قدرت میں ہر ممکنہ چیز ہے؛ اور اسی وجہ سے فضلاء، علماء، انبیاء اور اولیاء کا خوف ہے، لیکن اس کا وقوع صرف سماعی دلیل (نص) سے جانا جا سکتا ہے اور کچھ بھی صحیح ثابت نہیں ہوا۔ اور اس کے صحیح نہ ہونے کی دلیلوں میں سے ایک یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے ستارے اور یہ سیارے اس وقت پیدا کیے جب آسمان پیدا کیا؛ چنانچہ روایت میں ہے: جب آسمان پیدا کیا گیا، تو اس میں سات گردش کرنے والے ستارے پیدا کیے گئے: زحل،

مشتری، بہرام، عطارد، زہرہ، سورج اور چاند (۴)۔ اور یہی اللہ تعالیٰ کے اس قول کا معنی ہے:

{اور ہر ایک اپنے مدار میں تیر رہا ہے} [یس: ۴۰]۔

پس اس سے ثابت ہوا کہ زہرہ اور سہیل حضرت آدم کی تخلیق سے پہلے موجود تھے، پھر فرشتوں کا یہ کہنا: "ہمارے لیے یہ مناسب نہ تھا" عیب ہے، اس کا معنی (۵) ہے "تو ہمیں فتنے میں نہیں ڈال سکتا،" اور یہ کفر ہے جس سے ہم اللہ کی پناہ مانگتے ہیں اور اس کی نسبت سے بھی...

(۱) صحیح ابن حبان (۶۱۸۶)، اور تفسیر الطبری ۲/ ۳۵۰، اور گزشتہ گفتگو سے یہ واضح ہوا کہ خبر تالف (خراب) ہے۔ ان کا قول: نہاوند، نسخوں میں اسی طرح ہے، لیکن مصادر میں: دنباوند، اور دماوند ہے۔ (۲) خبر تالف ہے، جسے ابو الشیخ نے العظمہ (۷۰۳) میں عمر سے روایت کیا ہے، اور اس کی سند میں طلحہ بن عمرو المکی ہے، جسے ابن معین وغیرہ نے ضعیف قرار دیا ہے، اور امام احمد اور نسائی نے کہا: یہ متروک الحدیث ہے، اور بخاری اور ابن المدینی نے کہا: یہ کچھ بھی نہیں ہے۔ میزان الاعتدال ۲/ ۳۴۰۔ اور سیوطی نے اسے اللآلئ المصنوعة ۱/ ۱۴۷ میں ذکر کیا ہے۔ (۳) (د) اور (م) میں: ان میں سے۔ (۴) ہمیں نہیں ملا۔ ان کا قول: بہرام، یعنی مریخ۔ (۵) لفظ: اس کا معنی، (ز) سے ہے۔

286 Surah Al-Baqarah: Verse 102

The noble angels, peace and blessings of Allah be upon them all. We have declared them innocent, and they are those who are far removed from everything that the commentators have mentioned and narrated. "Exalted is your Lord, the Lord of might, above what they describe." The seventeenth point: Ibn Abbas, Ibn Abza, Al-Dahhak, and Al-Hasan recited: "al-malikayn" (the two kings) with a kasra on the lam (1). Ibn Abza said: They are David and Solomon (2). According to this view, "ma" is also negatory. Ibn al-Arabi considered this view weak (3). Al-Hasan said: They were two powerful non-Arabs who were kings in Babylon. According to this view, "ma" is an object and not negatory (4). The eighteenth point: His saying, Exalted is He: {in Babylon}. "Babil" (Babylon) is indeclinable (diptote) due to femininity, being a proper noun, and being a foreign word. It is a region of the earth; it was said: it is Iraq and what surrounds it. Ibn Mas'ud said to the people of Kufa: You are between Al-Hirah and Babylon. Qatadah said: It is from Nusaybin to Ra's al-'Ayn. Some people said: It is in the Maghreb. Ibn Atiyyah said (5): This is weak. Some people said: It is the mountain of Nahavand (6), and Allah knows best. There was a difference of opinion regarding why it was named Babylon. It was said: It was named so because of the confusion (tabalbul) of tongues there when Nimrod's tower fell (7). It was said: It was named so because when Allah, Exalted is He, wanted to diversify the tongues of the children of Adam, He sent a wind. It gathered them from all horizons to Babylon, then Allah confused (balbala) their tongues there, and then that wind dispersed them throughout the lands (8). "Al-balbalah" means scattering; its meaning was stated by Al-Khalil (9).

---

(1) Al-Qira'at al-Shadhah by Ibn Khalawayh, p. 8, and Al-Muhtasib 1/100. (2) Tafsir Ibn Abi Hatim (1007). (3) Ahkam al-Qur'an 1/29. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/186-187, and the words before it are from it. (6) Thus in the manuscripts; it appears in Tafsir al-Tabari 2/350, and Mu'jam al-Buldan by Yaqut 2/475, and Taj al-'Arus 7/219: Dunba-vand. In Al-Muharrar al-Wajiz 1/187 and Tafsir al-Baghawi 1/99: Damavand, and it is a variation of it as mentioned by Yaqut in Mu'jam al-Buldan 2/462. (7) Tafsir al-Baghawi 1/99. (8) Tahdhib al-Lughah 15/343. (9) And Ibn al-Jawzi reported it from him in Zad al-Masir 1/125.

सम्मानित फ़रिश्ते, उन सब पर अल्लाह की रहमतें हों। हमने उन्हें उन सभी बातों से पाक (निर्दोष) ठहराया है जिनका उल्लेख और वर्णन व्याख्याकारों (मुफ़स्सिरों) ने किया है। "आपका रब, इज्ज़त का रब, उन बातों से पाक है जो ये लोग बयान करते हैं।" सत्रहवीं बात: इब्न अब्बास, इब्न अब्ज़ा, अल-दह्हाक और अल-हसन ने इसे "अल-मलिकैन" (दो राजा) लाम के नीचे कसरा (ज़ेर) के साथ पढ़ा है (1)। इब्न अब्ज़ा ने कहा: वे दाऊद और सुलेमान हैं (2)। इस राय के अनुसार, "मा" यहाँ भी निषेधात्मक (नफिया) है। इब्न अल-अरबी ने इस राय को कमज़ोर माना है (3)। अल-हसन ने कहा: वे दो शक्तिशाली गैर-अरब थे जो बाबुल में राजा थे। इस राय के अनुसार "मा" मफ़ऊल (कर्म) है और निषेधात्मक नहीं है (4)। अठारहवीं बात: अल्लाह तआला का कहना है: {बाबुल में}। "बाबुल" स्त्रीलिंग, संज्ञा और विदेशी नाम होने के कारण गैर-मुनसरिफ (अपरिवर्तनीय) है। यह धरती का एक क्षेत्र है; कहा गया है कि यह इराक़ और उसके आस-पास का इलाका है। इब्न मसूद ने कूफ़ा के लोगों से कहा: तुम अल-हीराह और बाबुल के बीच हो। क़तादा ने कहा: यह नुसैबिन से रास अल-ऐन तक है। कुछ लोगों ने कहा: यह मग़रिब (पश्चिम) में है। इब्न अतिय्या ने कहा (5): यह बात कमज़ोर है। कुछ ने कहा: यह नहावंड पर्वत है (6)। और अल्लाह ही बेहतर जानता है। बाबुल के नामकरण के बारे में मतभेद है। कहा गया: इसका नाम इसलिए पड़ा क्योंकि नमरूद की मीनार गिरने पर वहां भाषाओं में गड़बड़ी (तबल-बुल) पैदा हो गई थी (7)। और कहा गया: इसका नाम इसलिए पड़ा क्योंकि जब अल्लाह तआला ने आदम की संतानों की भाषाओं को अलग-अलग करना चाहा, तो एक हवा भेजी जिसने उन्हें दुनिया के कोनों से बाबुल में इकट्ठा कर दिया, फिर अल्लाह ने वहां उनकी ज़बानों में गड़बड़ी पैदा कर दी (उलझा दिया), फिर उस हवा ने उन्हें अलग-अलग देशों में बिखेर दिया (8)। "अल-बल-बला" का अर्थ है पृथक्करण (तफ़रीक़), जैसा कि अल-ख़लील ने कहा है (9)।

---

(1) इब्न खालवैह की अल-क़िराआत अल-शाज़ाह पृ. 8, और अल-मुहतसिब 1/100। (2) तफ़सीर इब्न अबी हातिम (1007)। (3) अहकाम अल-क़ुरआन 1/29। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/186। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/186-187, और इससे पहले की बातें उसी से हैं। (6) प्रतियों में ऐसा ही है, और तफ़सीर अल-तबरी 2/350, याक़ूत की मुअजम अल-बुलदान 2/475, और ताज अल-अरूस 7/219 में "दुनबावंद" आया है। अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/187 और तफ़सीर अल-बग़वी 1/99 में "दमावंद" है, जो कि इसकी एक भाषा (बोली) है जैसा कि याक़ूत ने मुअजम अल-बुलदान 2/462 में

उल्लेख किया है। (7) तफ़सीर अल-बग़वी 1/99। (8) तहज़ीब अल-लुग़ह 15/343। (9) इब्न अल-जौज़ी ने इसे ज़ाद अल-मसीर 1/125 में उनसे उद्धृत किया है।

286 سورة البقرہ: آیت 102

معزز فرشتے، ان سب پر اللہ کی رحمتیں ہوں۔ ہم نے انہیں ہر اس چیز سے پاک قرار دیا ہے جس کا مفسرین نے تذکرہ اور نقل کیا ہے، "آپ کا رب، عزت کا رب، ان باتوں سے پاک ہے جو یہ بیان کرتے ہیں۔" سترہویں بات: ابن عباس، ابن ابزیٰ، ضحاک اور حسن نے اسے "المَلِکَیْن" (دو بادشاہ) لام کے کسرہ (زیر) کے ساتھ پڑھا ہے (1)۔ ابن ابزیٰ نے کہا: وہ داؤد اور سلیمان علیہما السلام ہیں (2)۔ اس قول کے مطابق "ما" یہاں بھی نافیہ (نفی کے لیے) ہے۔ ابن العربی نے اس قول کو کمزور قرار دیا ہے (3)۔ حسن نے کہا: وہ دو طاقتور غیر عرب تھے جو بابل میں بادشاہ تھے۔ اس قول کے مطابق "ما" مفعول ہے، نافیہ نہیں (4)۔ اٹھارہویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿ بِبَابِلَ ﴾۔ "بابل" تانیث، معرفہ اور عجمہ (غیر عربی ہونے) کی وجہ سے غیر منصرف ہے۔ یہ زمین کا ایک خطہ ہے؛ کہا گیا ہے کہ یہ عراق اور اس کے گرد و نواح کا علاقہ ہے۔ ابن مسعود رضی اللہ عنہ نے اہل کوفہ سے کہا: تم حیرہ اور بابل کے درمیان ہو۔ قتادہ نے کہا: یہ نصیبین سے راس العین تک ہے۔ ایک گروہ نے کہا: یہ مغرب میں ہے۔ ابن عطیہ نے کہا (5): یہ قول ضعیف ہے۔ بعض نے کہا: یہ پہاڑ نہاوند ہے (6)، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ بابل کی وجہ تسمیہ میں اختلاف ہے، چنانچہ کہا گیا: اسے بابل اس لیے کہا گیا کیونکہ جب نمرود کا محل (برج) گرا تو وہاں زبانوں میں انتشار (تبلبل) پیدا ہو گیا تھا (7)۔ اور کہا گیا: اسے یہ نام اس لیے دیا گیا کیونکہ اللہ تعالیٰ نے جب بنی آدم کی زبانیں مختلف کرنی چاہیں تو ایک ہوا بھیجی جس نے انہیں آفاق سے بابل میں جمع کر دیا، پھر اللہ نے وہاں ان کی زبانوں کو خلط ملط کر دیا (بلبل کر دیا)، پھر اس ہوا نے انہیں ملکوں میں بکھیر دیا (8)۔ "البلبلۃ" کا معنی ہے تفریق (جدا کرنا)، یہ معنی خلیل نے بیان کیا ہے (9)۔

(1) القراءات الشاذة لابن خالویہ ص 8، اور المحتسب 1/100۔ (2) تفسیر ابن ابی حاتم (1007)۔ (3) احکام القرآن 1/29۔ (4) المحرر الوجیز 1/186۔ (5) المحرر الوجیز 1/186-187، اور اس سے پہلے کی کلام اسی سے ہے۔ (6) نسخوں میں اسی طرح ہے، جبکہ تفسیر طبری 2/350، معجم البلدان از یاقوت 2/475، اور تاج العروس 7/219 میں "دنباوند" آیا ہے۔ المحرر الوجیز 1/187 اور تفسیر بغوی 1/99 میں "دماوند" ہے، اور یہ اس کی ایک لغت ہے جیسا کہ یاقوت نے معجم البلدان 2/462 میں ذکر کیا ہے۔ (7) تفسیر بغوی 1/99۔ (8) تہذیب اللغۃ 15/343۔ (9) اسے ابن الجوزی نے زاد المسیر 1/125 میں ان سے نقل کیا ہے۔

287 Surah Al-Baqarah: Verse 102

Abu Umar bin Abdul-Barr (1) said: Among the most concise and best things said regarding confusion (balbalah) is what was narrated by Dawud bin Abi Hind, on the authority of Ilba bin Ahmar, on the authority of Ikrimah, on the authority of Ibn Abbas, that when Noah, peace be upon him, descended to the foot of Al-Judi, he built a village and named it 'Eighty'. Then one morning, their tongues became confused into eighty languages, one of which (2) was the Arabic tongue, and they could not understand one another.

Nineteenth: Abdullah bin Busr al-Mazini narrated that the Messenger of Allah ﷺ said: "Beware of the world, for by the One in Whose hand is my soul, it is more enchanting than Harut and Marut" (3). Our scholars said: The world was more enchanting than them because it enchants you with its deception and conceals its trial from you. It calls you to greed for it, competition in it, gathering it and withholding it, until it separates you from obedience to Allah Almighty, and separates you from seeing and observing the Truth. Thus, the world is more enchanting than them; it takes your heart away from Allah, from fulfilling His rights, and from His promise and threat. The magic of the world is its love, your delight in its desires, and its false hopes that mislead you until they take hold of your heart. For this reason, the Messenger of Allah ﷺ said: "Your love for something makes you blind and deaf" (4).

The twentieth point: The words of the Almighty: "Harut and Marut". "Harut" is indeclinable (diptote) because it is a non-Arabic proper noun, and similarly "Marut". Their plurals are 'hawarit' and 'mawarit', like 'tawaghit'. It is also said: 'hawaritah' and 'hawari', 'mawaritah' and 'mawari', similar to 'Jalut' and 'Talut', so know this (5). It has been previously mentioned (6) whether they were two angels (malakan), or two kings (malikan) (7), or something else; there is a difference of opinion.

Footnotes: (1) Al-Qasd wal-Amam, p. 25. (2) In (m): "one of them". (3) Nawadir al-Usul, p. 25. Recorded by Ibn Abi al-Dunya in 'Dhamm al-Dunya' (132), and al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' (10504) via Abu al-Darda al-Ruhawi, from the Prophet ﷺ. Al-Dhahabi said in 'al-Mizan' 4/522: This is rejected (munkar), the hadith has no basis. (4) Recorded by Ahmad (21694) from the hadith of Abu al-Darda, may Allah be pleased with him. The correct view is that it is mawquf (attributed to a companion), and it was mentioned previously in 1/457. This issue mentioned by the author is in 'Nawadir al-Usul', p. 26. (5) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas, 1/252. (6) In the fifteenth issue, p. 282. (7) His words: "or two kings", are not in (d) and (m).

287 सूरह अल-बकराह: आयत 102

अबू उमर बिन अब्दुल-बर्र (1) ने कहा: भ्रम (बलबाला) के संबंध में कही गई सबसे संक्षिप्त और सर्वोत्तम बातों में से वह है जिसे दाऊद बिन अबी हिंद ने इल्बा बिन अहमार के अधिकार पर, इकरीमा के अधिकार पर, इब्न अब्बास के अधिकार पर वर्णित किया है कि जब नूह (उन पर शांति हो) अल-जूदी की तलहटी में उतरे, तो उन्होंने एक गाँव बनाया और उसका नाम 'अस्सी' रखा। फिर एक सुबह उनकी ज़ुबानें अस्सी भाषाओं में भ्रमित हो गईं, जिनमें से एक (2) अरबी ज़ुबान थी, और वे एक-दूसरे को नहीं समझ पा रहे थे।

उन्नीसवीं बात: अब्दुल्ला बिन बुसर अल-माज़िनी ने वर्णन किया कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "दुनिया से डरो, क्योंकि उसकी कसम जिसके हाथ में मेरी जान है, यह हारूत और मारूत से भी अधिक जादुई (आकर्षक) है" (3)। हमारे विद्वानों ने कहा: दुनिया उन दोनों से अधिक जादुई इसलिए थी क्योंकि यह आपको अपने धोखे से मोहित करती है और अपनी परीक्षा को आपसे छुपाती है। यह आपको इसके प्रति लालच, इसमें प्रतिस्पर्धा, इसे इकट्ठा करने और इसे रोक कर रखने की ओर बुलाती है, यहाँ तक कि यह आपको सर्वशक्तिमान अल्लाह की आज्ञाकारिता से अलग कर देती है, और आपको सत्य को देखने और उसका पालन करने से अलग कर देती है। इस प्रकार, दुनिया उन दोनों से अधिक जादुई है; यह आपके दिल को अल्लाह से, उनके अधिकारों को पूरा करने से, और उनके वादे और चेतावनी से दूर ले जाती है। दुनिया का जादू उसका प्यार है, इसकी इच्छाओं में आपका आनंद है, और इसकी झूठी उम्मीदें जो आपको तब तक गुमराह करती हैं जब तक कि वे आपके दिल पर कब्ज़ा न कर लें। इसी कारण से अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "किसी चीज़ के प्रति आपका प्यार आपको अंधा और बहरा कर देता है" (4)।

बीसवीं बात: सर्वशक्तिमान का कथन: "हारूत और मारूत"। "हारूत" शब्द का रूप नहीं बदलता (diptote) क्योंकि यह एक गैर-अरबी संज्ञा है, और यही बात "मारूत" के लिए भी है। इनका बहुवचन 'हवारीत' और 'मवारीत' होता है, जैसे 'तावागीत'। यह भी कहा जाता है: 'हवारितह' और 'हवारी', 'मवारितह' और 'मवारी', जो 'जालूत' और 'तालूत' के समान है, तो इसे जान लें (5)। पहले उल्लेख किया जा चुका है (6) कि क्या वे दो फरिश्ते (मुलकान) थे, या दो राजा (मलिकान) (7), या कुछ और; इसमें मतभेद है।

पाद टिप्पणियाँ: (1) अल-क़स्द वल-अमम, पृ. 25. (2) (म) में: "उनमें से एक"। (3) नवादिद अल-उसूल, पृ. 25. इब्न अबी अल-दुनिया ने 'धम्म अल-दुनिया' (132) में और अल-बैहकी ने 'शुआब अल-ईमान' (10504) में अबू अल-दर्दा अल-रुहावी के माध्यम से पैगंबर ﷺ से इसे उद्धृत किया है। अल-धहाबी ने 'अल-मीज़ान' 4/522 में कहा: यह मुनकर (अस्वीकृत) है, हदीस का कोई आधार नहीं है। (4) अहमद (21694) द्वारा अबू अल-दर्दा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत। सही बात यह है कि यह मौक़ूफ़ (एक साथी का कथन) है, और इसका उल्लेख पहले 1/457 में किया गया था। लेखक द्वारा उल्लिखित यह विषय 'नवादिर अल-उसूल', पृ. 26 में है। (5) इराब अल-कुरान, अन-नहहास द्वारा, 1/252. (6) पंद्रहवें विषय में, पृ. 282. (7) उनके शब्द: "या दो राजा", (द) और (म) में नहीं हैं।

۲۸۷ سورة البقرہ: آیت ۱۰۲

ابو عمر بن عبد البر (۱) نے کہا: زبانوں کے خلط ملط ہونے (بلبلہ) کے بارے میں کہی گئی سب سے مختصر اور بہترین باتوں میں سے وہ ہے جو داؤد بن ابی ہند نے علباء بن احمر سے، انہوں نے عکرمہ سے اور انہوں نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ نوح علیہ السلام جب جودی پہاڑ کے دامن میں اترے تو انہوں نے ایک بستی بسائی اور اس کا نام 'ثمانین' (اسی) رکھا۔ پھر ایک صبح ان کی زبانیں اسی زبانوں میں خلط ملط ہوگئیں، جن میں سے ایک (۲) عربی زبان تھی، اور وہ ایک دوسرے کی بات نہیں سمجھ پا رہے تھے۔

انیسویں بات: عبداللہ بن بسر المازنی نے روایت کیا کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "دنیا سے بچو، کیونکہ اس ذات کی قسم جس کے ہاتھ میں میری جان ہے، یہ ہاروت اور ماروت سے بھی زیادہ جادوئی (دلکش) ہے" (۳)۔ ہمارے علماء نے کہا: دنیا ان دونوں سے زیادہ سحر انگیز اس لیے تھی کہ یہ تمہیں اپنے دھوکے سے مسحور کر دیتی ہے اور اپنے فتنے کو تم سے چھپاتی ہے۔ یہ تمہیں اس پر لالچ، اس میں مقابلے، اسے جمع کرنے اور روک کر رکھنے کی طرف بلاتی ہے، یہاں تک کہ یہ تمہیں اللہ تعالیٰ کی اطاعت سے جدا کر دیتی ہے اور تمہیں حق کو دیکھنے اور اس کی رعایت کرنے سے دور کر دیتی ہے۔ پس دنیا ان دونوں سے زیادہ سحر انگیز ہے؛ یہ تمہارے دل کو اللہ سے، اس کے حقوق کی ادائیگی سے اور اس کے وعدے و وعید سے ہٹا دیتی ہے۔ دنیا کا جادو اس کی محبت، اس کی خواہشات سے لذت اندوز ہونا اور اس کی جھوٹی امیدیں دلانا ہے یہاں تک کہ یہ تمہارے دل پر قابض ہو جائے؛ اسی لیے رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "تمہاری کسی چیز سے محبت تمہیں اندھا اور بہرا کر دیتی ہے" (۴)۔

بیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿هَرُوتَ وَمَرُوتَ﴾۔ لفظ "ہاروت" غیر منصرف ہے کیونکہ یہ عجمی معرفہ (عجمی نام) ہے، اور اسی طرح "ماروت" بھی۔ اس کی جمع ہواریت اور مواریت آتی ہے، جیسے: طواغیت۔ اور یہ بھی کہا جاتا ہے: ہوارِتہ اور ہوارٍ، اور موارِتہ اور موارٍ، اور اس کی مثال جالوت اور طالوت ہے، پس جان لو (۵)۔ اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۶) کہ آیا وہ دو فرشتے (مَلکان) تھے، یا دو بادشاہ (مَلِکان) (۷)، یا کوئی اور؛ اس میں اختلاف ہے۔

حواشی: (۱) القصد والأمم ص ۲۵۔ (۲) نسخہ (م) میں: "ان میں سے ایک"۔ (۳) نوادر الاصول ص ۲۵، اور اسے ابن ابی الدنیا نے ذم الدنیا (۱۳۲) میں اور بیہقی نے شعب الایمان (۱۰۵۰۴) میں ابو الدرداء الرہاوی کے طریق سے نبی ﷺ سے روایت کیا ہے۔ ذہبی نے المیزان ۴ / ۵۲۲ میں کہا: یہ منکر ہے، حدیث کی کوئی اصل نہیں ہے۔ (۴) اسے احمد (۲۱۶۹۴) نے ابو الدرداء رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور صحیح یہ ہے کہ یہ موقوف ہے، اور یہ پہلے ۱ / ۴۵۷ پر گزر چکا ہے۔ اور مصنف نے جو مسئلہ ذکر کیا ہے وہ نوادر الاصول ص ۲۶ میں ہے۔ (۵) اعراب القرآن للنحاس ۱ / ۲۵۲۔ (۶) پندرہویں مسئلے میں ص ۲۸۲۔ (۷) ان کا قول: "یا دو بادشاہ"، نسخہ (د) اور (م) میں نہیں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 288

Al-Zajjaj said: It was narrated from Ali (may Allah be pleased with him) that he said: Meaning: and that which was sent down to the two angels, and that the two angels were teaching the people a teaching of warning against magic, not a teaching of calling to it.

Al-Zajjaj (1) said: This is the view held by most linguists and theorists. Its meaning is that they teach people the prohibition. They say to them: Do not do this, and do not use such-and-such trick to separate between a man and his wife. What was sent down to them is the prohibition, as if they were saying to people: Do not do such-and-such. So, "yu'alliman" (they teach) means "yu'liman" (they inform), just as He said: {And We have certainly honored the children of Adam} [Al-Isra: 70], meaning: We honored them.

Twenty-first: His saying, the Almighty: {And they do not teach anyone} - the word "min" (anyone/from) is added for emphasis, and the meaning is: and they do not teach anyone.

{Until they say} - it is in the subjunctive case because of "hata", so the 'nun' was dropped. The dialect of Hudhayl and Thaqif is "atta" with the letter 'ayn' without a dot (2). The pronoun in "yu'alliman" refers to Harut and Marut (3).

There are two views regarding "yu'alliman": One: that it is in its original sense of teaching. Second: that it is from 'i'lam' (informing), not from 'ta'lim' (teaching), so "yu'alliman" means "yu'liman" (they inform).

In the speech of the Arabs, "ta'allam" (learn) has come to mean "i'lam" (know); this was mentioned by Ibn al-Arabi (4) and Ibn al-Anbari. Ka'b ibn Malik (5) said: "Know, O Messenger of Allah, that you will overtake me, and that a threat from you is like a firm grasp by the hand."

---

(1) We did not find it, nor the report before it. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/253. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/188. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/187, Al-Wasit by Al-Wahidi 1/184, see Tahdhib al-Lugha 2/416-417. (5) Likewise, Al-Samin al-Halabi attributed it to Ka'b ibn Malik in Al-Durr al-Masun 2/34, and Ibn 'Adil in Al-Lubab 2/342. Al-Murtada attributed it to Ka'b ibn Zuhayr in his Amali 1/418, and Al-Tabarsi in Majma' al-Bayan 1/385, and Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/187. Al-Sukkari attributed it in Sharh Ash'ar Hudhayl 2/627 to Usayd ibn Abi Iyas ibn Zunaym, and his narration is: "Know,

O Messenger of Allah, that you are capable over every living being, those from the lowlands and the highlands. And that you are like the night which overtakes me, and that a threat from you is like a firm grasp by the hand." Ibn Ishaq attributed it, as in Al-Sira 2/424, to Anas ibn Zunaym al-Dili.

सूरह अल-बकरा: आयत १०२ २८८

अल-ज़ज्जाज ने कहा: अली (रज़ी अल्लाहु अन्हु) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: अर्थात: और जो कुछ उन दो फ़रिश्तों पर उतारा गया, और यह कि वे दो फ़रिश्ते लोगों को जादू के ख़िलाफ़ चेतावनी देने के लिए सिखा रहे थे, न कि उसकी ओर बुलाने के लिए।

अल-ज़ज्जाज (१) ने कहा: यह वह मत है जिसे अधिकांश भाषाविद् और विचारक मानते हैं। इसका अर्थ यह है कि वे लोगों को निषेध (मनाही) के बारे में सिखाते हैं। वे उनसे कहते हैं: ऐसा मत करो, और पति-पत्नी के बीच अलगाव पैदा करने के लिए ऐसी तरकीबें मत अपनाओ। उन पर जो उतारा गया वह निषेध ही था, मानो वे लोगों से कह रहे हों: ऐसा मत करो। अतः, "यु'अल्लिमान" (वे सिखाते हैं) का अर्थ "यु'लिमान" (वे सूचित करते हैं) है, जैसे कि उन्होंने कहा: {और हमने आदम की संतानों को सम्मान दिया} [अल-इसरा: ७०] अर्थात: हमने उन्हें सम्मानित किया।

इक्कीसवीं बात: सर्वशक्तिमान का कथन: {और वे किसी को नहीं सिखाते} - "मिन" (किसी को/से) शब्द यहाँ बल देने के लिए जोड़ा गया है, और अर्थ है: और वे किसी को नहीं सिखाते।

{जब तक कि वे न कहें} (हत्ता यक़ूला) - यह "हत्ता" के कारण कर्मवाच्य (subjunctive) में है, इसलिए अंत का 'नून' हटा दिया गया है। हुज़ैल और सक़ीफ़ की बोली में "अत्ता" (ऐन के साथ बिना नुक्ते के) कहा जाता है (२)। "यु'अल्लिमान" में सर्वनाम हारूत और मारूत की ओर संकेत करता है (३)।

"यु'अल्लिमान" के संबंध में दो मत हैं: पहला: यह कि यह अपने मूल अर्थ 'शिक्षा' (टीचिंग) में है। दूसरा: यह कि यह 'इलाम' (सूचना देने) से है, न कि 'तालीम' (शिक्षा देने) से, अतः "यु'अल्लिमान" का अर्थ "यु'लिमान" (वे सूचित करते हैं) है।

अरबों की बातचीत में "तअल्लम" (सीखो) का अर्थ "इलम" (जान लो) के रूप में आया है; इब्न अल-अरबी (४) और इब्न अल-अंबारी ने इसका उल्लेख किया है। का'ब बिन मालिक (५) ने कहा: "जान लें ऐ अल्लाह के रसूल कि आप मुझे पकड़ लेंगे, और आपकी चेतावनी हाथ से कसकर पकड़ने जैसी है।"

---

(१) हमें यह और इससे पहले की रिपोर्ट नहीं मिली। (२) इराब अल-कुरान, अल-नहस द्वारा १/२५३। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८८। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८७, अल-वासित, अल-वाहिदी

द्वारा १/१८४, देखें तहजीब अल-लुगा २/४१६-४१७। (५) इसी प्रकार, अल-समीन अल-हलबी ने इसे अल-दुर्र अल-मसन २/३४ में का'ब बिन मालिक को, और इब्न आदिल ने अल-लुबाब २/३४२ में श्रेय दिया। अल-मुर्तज़ा ने अपनी अमाली १/४१८ में इसे का'ब बिन जुहैर को, अल-तबरसी ने मजमा अल-बयान १/३८५ में, और इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८७ में श्रेय दिया। अल-सुक्करी ने शरह अशआर हुज़ैल २/६२७ में इसे उसैद बिन अबी इयास बिन ज़ुनैम को श्रेय दिया, और उनकी रिवायत है: "जान लें ऐ अल्लाह के रसूल कि आप हर जीवित प्राणी पर समर्थ हैं, चाहे वे मैदानों के हों या पहाड़ों के। और यह कि आप उस रात की तरह हैं जो मुझे पकड़ लेती है, और आपकी चेतावनी हाथ से कसकर पकड़ने जैसी है।" इब्न इशाक ने अल-सिरा २/४२४ में इसे अनस बिन ज़ुनैम अल-दीली को श्रेय दिया है।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۲ ۲۸۸

زجاج نے کہا: اور حضرت علی رضی اللہ عنہ سے روایت ہے کہ انہوں نے فرمایا: یعنی: وہ جو ان دو فرشتوں پر اتارا گیا، اور یہ کہ دونوں فرشتے لوگوں کو جادو سے ڈرانے کی تعلیم دیتے تھے، نہ کہ اس کی طرف بلانے کی تعلیم۔

زجاج (۱) نے کہا: اور یہ وہ قول ہے جس پر اکثر اہل لغت اور اہل نظر کا اتفاق ہے، اور اس کا مطلب یہ ہے کہ وہ دونوں لوگوں کو ممانعت (منہیات) سکھاتے تھے، پس وہ ان سے کہتے تھے: ایسا نہ کرو، اور ایک مرد اور اس کی بیوی کے درمیان تفریق کے لیے اس طرح کی چال نہ چلو۔ اور ان پر جو نازل ہوا وہ ممانعت ہی تھی، گویا وہ لوگوں سے کہہ رہے تھے: ایسا نہ کرو۔ پس "يُعَلِّمَانِ" (وہ سکھاتے ہیں) بمعنی "يُعْلِمَانِ" (وہ مطلع کرتے ہیں) ہے، جیسا کہ فرمایا: ﴿وَلَقَدْ كَرَّمْنَا بَنِي آدَمَ﴾ [الاسراء: ۷۰] یعنی: ہم نے انہیں عزت دی۔

اکیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَمَا يُعَلِّمَانِ مِنْ أَحَدٍ﴾ (اور وہ کسی کو نہیں سکھاتے) یہاں "مِن" تاکید کے لیے زائد ہے، اور تقدیر یہ ہے: "وما يعلمان أحداً"۔

﴿حَتَّى يَقُولَا﴾ (یہاں تک کہ وہ کہہ دیں) یہ "حتى" کی وجہ سے حالت نصب میں ہے، اس لیے اس سے نون حذف کر دیا گیا، اور ہذیل اور ثقیف کی لغت میں "عَتَّى" (عین مہملہ کے ساتھ) ہے (۲)۔ "يُعَلِّمان" میں ضمیر ہاروت اور ماروت کی طرف ہے (۳)۔

"يُعَلِّمان" میں دو اقوال ہیں: پہلا: یہ کہ یہ اپنے باب 'تعلیم' (سکھانے) پر ہے۔ دوسرا: یہ کہ یہ 'اعلام' (باخبر کرنے) سے ہے، نہ کہ تعلیم سے، پس "يُعَلِّمان" بمعنی "يُعْلِمان" (وہ بتاتے ہیں) ہے۔

اور عربوں کے کلام میں "تَعَلَّمْ" (سیکھ لے) بمعنی "اعْلَمْ" (جان لے) آیا ہے؛ اس کا ذکر ابن العربی (۴) اور ابن الانباری نے کیا ہے۔ کعب بن مالک (۵) نے کہا: "جان لے اے اللہ کے رسول کہ آپ مجھے پانے والے ہیں، اور آپ کی دھمکی ہاتھ سے پکڑنے کی طرح (حتمی) ہے۔"

---

(۱) ہمیں یہ اور اس سے پہلے والی خبر نہیں ملی۔ (۲) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۵۳۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/ ۱۸۸۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۱۸۷، والوسیط للواحدي ۱/ ۱۸۴، وانظر تهذیب اللغة ۲/ ۴۱۶-۴۱۷۔ (۵) اور اسی طرح السمین الحلبی نے الدر المصون ۲/ ۳۴ میں اسے کعب بن مالک کی طرف منسوب کیا، اور ابن عادل نے اللباب ۲/ ۳۴۲ میں۔ اور المرتضی نے اپنی امالی ۱/ ۴۱۸ میں اسے کعب بن زہیر کی طرف منسوب کیا، اور الطبرسی نے مجمع البیان ۱/ ۳۸۵ میں، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/ ۱۸۷ میں۔ اور السکری نے شرح اشعار ہذیل ۲/ ۶۲۷ میں اسے اسید بن ابی ایاس بن زنیم کی طرف منسوب کیا، اور ان کی روایت ہے: "جان لے اے اللہ کے رسول کہ آپ قادر ہیں، ہر جاندار پر خواہ وہ میدان کے ہوں یا پہاڑوں کے۔ اور آپ اس رات کی طرح ہیں جو مجھے پا لیتی ہے، اور آپ کی دھمکی ہاتھ سے پکڑنے کی طرح ہے۔" اور ابن اسحاق نے السیرہ ۲/ ۴۲۴ میں اسے انس بن زنیم الدیلی کی طرف منسوب کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 102 289

Al-Qutami said (1): "Know that after error comes guidance, and that for that error there is a dispersal." (2)

Zuhair said: "Know, by God's life this is an oath, so measure your pace and see where you go." (3)

Another said: "Know that there is no omen except for the superstitious, and it is destruction." (4)

{We are only a test}: When they announced their trial, the world was more enchanting than them when it hid its trial.

{Do not disbelieve}: One group said: by teaching magic, and another group said: by using it. Al-Mahdawi reported that it is mockery; because they only say it to someone whose misguidance they have already confirmed (5).

Twenty-second: His words, the Almighty: {And they learn from them}: Sibawayh said: The estimation is: so they learn; he said: similar to {Be, and it is} [An-Nahl: 40] (6).

It was said: it is linked to the position of "what they teach"; because his saying: "and they do not teach" even if the negative "ma" entered it, its content is affirmation in teaching (7).

---

(1) With the Qaf dammah or fatha, and his name is 'Umayr ibn Shuyaym al-Taghlibi, and he is a minor but excellent Islamic poet. Al-Aghani 17/24, and Khizanat al-Adab 2/370. (2) His Diwan p. 35, and the verse is in praise of Zufar ibn al-Harith al-Kilabi, and his narration: "And for these clouds..." See Khizanat al-Adab 9/129. (3) His Diwan p. 182 (Thalab's commentary), and p. 88 (Al-A'lam al-Shantamari's commentary), and it is among Sibawayh's evidence 3/500, his saying: "measure your pace"; Al-Shantamari said: meaning: measure your steps, and the meaning: do not burden yourself with what you cannot endure from me, and "al-insilak": entering into the matter, and the meaning: do not involve yourself in what does not concern you and does not benefit you. (4) The verse is in Islah al-Mantiq p. 418, 'Uyun al-Akhbar 1/146, al-Mukhassas 3/29, and al-Jahiz attributed it in al-Bayan wa al-Tabyin 3/304-305 and al-Hayawan 3/447 and 5/555, and Abu Muhammad al-Sirafi in Sharh Abyat Islah al-Mantiq p. 578 to Ru'bah ibn Sayyar al-Fazari. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/187. (6) Al-Kitab 3/38-39, and the author quoted it from him via Ibn 'Atiyyah 1/188. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/188.

सूरा अल-बकरा: आयत १०२ २८९

अल-कुतामी ने कहा (१): "जान लो कि भटकाव के बाद मार्गदर्शन आता है, और उस भटकाव का अंत निश्चित है।" (२)

ज़ुहैर ने कहा: "जान लो, ईश्वर की शपथ, यह एक प्रतिज्ञा है, इसलिए अपनी गति को मापें और देखें कि आप कहाँ जा रहे हैं।" (३)

एक अन्य ने कहा: "जान लो कि अंधविश्वासी के अलावा कोई अपशकुन नहीं है, और यह विनाश है।" (४)

{हम केवल एक परीक्षा हैं}: जब उन्होंने अपनी परीक्षा की घोषणा की, तो दुनिया उनसे अधिक जादुई थी जब उसने अपनी परीक्षा को छुपाया था।

{अविश्वास मत करो}: एक समूह ने कहा: जादू सिखाने के द्वारा, और दूसरे समूह ने कहा: इसके उपयोग के द्वारा। अल-महदावी ने बताया कि यह उपहास है; क्योंकि वे इसे केवल उसी से कहते हैं जिसके भटकाव की उन्होंने पुष्टि कर ली हो (५)।

बाईसवीं: उनका कथन, सर्वशक्तिमान: {और वे उन दोनों से सीखते हैं}: सिबवेह ने कहा: अनुमान है: तो वे सीखते हैं; उन्होंने कहा: यह {हो जा, और वह हो जाता है} [अन-नहल: ४०] जैसा ही है (६)।

यह कहा गया था: यह "जो वे सिखाते हैं" की स्थिति से जुड़ा है; क्योंकि उनका कहना: "और वे नहीं सिखाते" भले ही नकारात्मक "मा" इसमें प्रवेश कर गया हो, इसकी सामग्री शिक्षण में पुष्टि है (७)।

---

(१) क़ाफ़ पर दम्मा या फथ के साथ, और उनका नाम 'उमैर इब्न शुयैम अल-तघलिबी है, और वे एक अल्पज्ञात लेकिन उत्कृष्ट इस्लामी कवि हैं। अल-अगानी १७/२४, और ख़िज़ानत अल-अदब २/३७०। (२) उनका दीवान पृ. ३५, और आयत ज़ुफ़र इब्न अल-हारिस अल-किलाबी की प्रशंसा में है, और उनका वर्णन है: "और इन बादलों के लिए..." देखें ख़िज़ानत अल-अदब ९/१२९। (३) उनका दीवान पृ. १८२ (थलाब की व्याख्या), और पृ. ८८ (अल-आलम अल-शंतमरी की व्याख्या), और यह सिबवेह के साक्ष्यों में से है ५००/३, उनका कहना: "अपनी गति मापें"; अल-शंतमरी ने कहा: अर्थात: अपने कदमों को मापें, और अर्थ: मुझ पर वह बोझ न डालें जो आप सहन नहीं कर सकते, और "अल-इंसिलाक": मामले में प्रवेश करना, और अर्थ: अपने आप को उस चीज़ में शामिल न करें जो आपसे संबंधित नहीं है और आपको लाभ नहीं पहुँचाती है। (४) यह आयत इस्लाह अल-मन्तिक पृ. ४१८, उयून अल-

अखबार १/१४६, अल-मुखास्सस ३/२९ में है, और अल-जाहिज़ ने इसे अल-बयान वा अल-तबीन ३/३०४-३०५ और अल-हयावान ३/४४७ और ५/५५५ में श्रेय दिया है, और अबू मुहम्मद अल-सीराफी ने शरह अयात इस्लाह अल-मन्तिक पृ. ५७८ में इसे रुबा इब्न सय्यार अल-फ़ज़ारी का बताया है। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१८७। (६) अल-किताब ३/३८-३९, और लेखक ने इसे इब्न अतियाह १/१८८ के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (७) अल-मुहर्र, अल-वजीज़ १/१८८।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۲ ۲۸۹

القطامی نے کہا (۱): "جان لو کہ گمراہی کے بعد ہدایت ہے، اور اس گمراہی کا چھٹ جانا یقینی ہے۔" (۲)

زہیر نے کہا: "جان لو، خدا کی قسم یہ ایک حلف ہے، پس اپنی بساط دیکھو اور دیکھو کہ تم کدھر جا رہے ہو۔" (۳)

ایک اور نے کہا: "جان لو کہ وہم کرنے والے کے سوا کوئی بدشگونی نہیں ہے اور وہی ہلاکت ہے۔" (۴)

{ہم تو بس ایک آزمائش ہیں}: جب ان دونوں نے اپنی آزمائش کی خبر دی، تو دنیا ان دونوں سے زیادہ جادوگرنی تھی جب اس نے اپنی آزمائش کو چھپایا۔

{پس کفر نہ کرو}: ایک گروہ نے کہا: جادو سکھانے کے ذریعے، اور ایک گروہ نے کہا: اس کے استعمال کے ذریعے۔ المہدوی نے ذکر کیا کہ یہ استہزاء ہے؛ کیونکہ وہ یہ بات صرف اسی کو کہتے ہیں جس کی گمراہی کا انہیں یقین ہو چکا ہو (۵)۔

بائیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {پس وہ ان دونوں سے سیکھتے ہیں}: سیبویہ نے کہا: اس کی تقدیر (اصل عبارت) ہے: "پس وہ سیکھتے ہیں"؛ انہوں نے کہا: اس کی مثال {ہو جا، پس وہ ہو جاتا ہے} [النحل: ۴۰] جیسی ہے (۶)۔

اور کہا گیا: یہ "جو وہ دونوں سکھاتے ہیں" کے محل پر معطوف ہے؛ کیونکہ اس کا قول "اور وہ دونوں نہیں سکھاتے" اگرچہ اس پر "ما" نافیہ داخل ہوا ہے، لیکن اس کا مفہوم تعلیم میں اثبات کا ہے (۷)۔

(۱) قاف کے ضمہ اور فتحہ کے ساتھ، ان کا نام عمیر بن شییم التغلبی ہے، وہ ایک کم گو لیکن بہت عمدہ اسلامی شاعر ہیں۔ الاغانی ۱۷/۲۴، اور خزانہ الادب ۲/۳۷۰۔ (۲) ان کا دیوان ص ۳۵، اور یہ شعر زفر بن الحارث الکلابی کی مدح میں ہے، اور ان کی روایت ہے: "اور ان بادلوں کے لیے..." دیکھئے خزانہ الادب ۹/۱۲۹۔ (۳) ان کا دیوان ص ۱۸۲ (ثعلب کی شرح کے ساتھ)، اور ص ۸۸ (الاعلم الشنتمری کی شرح کے ساتھ)، اور یہ سیبویہ کے شواہد میں سے ہے ۵۰۰/۳، ان کا قول: "اپنی بساط دیکھو"؛ الشنتمری نے کہا: یعنی: اپنے قدموں کا اندازہ کرو، اور مطلب یہ ہے کہ: مجھ سے ایسی بات کا مطالبہ نہ کرو جس کی تم طاقت نہیں رکھتے، اور "الانسلاک": معاملے میں داخل ہونا، اور مطلب ہے: اپنے آپ کو اس چیز میں نہ ڈالو جو تم سے متعلق نہیں اور تمہارے لیے مفید نہیں۔ (۴) یہ شعر اصلاح المنطق ص ۴۱۸، عیون الاخبار ۱/۱۴۶، اور المخصص ۳/۲۹ میں ہے، اور جاحظ نے اسے البیان والتبیین ۳/۳۰۴-۳۰۵ اور الحیوان ۳/۴۴۷ اور ۵/۵۵۵ میں، اور ابو محمد السیرافی نے شرح ابیات اصلاح المنطق ص ۵۷۸ میں رؤبہ بن سیار الفزاری کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/۱۸۷۔ (۶) الکتاب ۳/۳۸-۳۹، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ ۱/۱۸۸ کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۱۸۸۔

290 Surah Al-Baqarah: Ayah 102

Al-Farra' said (1): It refers back to His saying: {teaching people magic} so they learn, and "so they learn" is connected to His saying: "We are only a trial, so they refuse (2) and so they learn." As-Suddi said: They used to say to whoever came to them: "We are only a trial, so do not disbelieve." If he refused to return, they would say to him: "Go to this ash and urinate on it." When he urinated on it, a light would come out of it and shine up to the sky, which is faith, then a black smoke would come out of it and enter his ears, which is disbelief. When he informed them of what he saw of that, they taught him what separates (3) between a man and his wife (4). A group of scholars held the view that a sorcerer is not capable of more than what Allah informed about him regarding separation; because Allah mentioned that in the context of condemning magic, and the ultimate purpose in its teaching. If he were capable of more than that, He would have mentioned it. A group said: That was mentioned based on the majority [of cases], and it is not denied that magic has an effect on hearts, through love and hate, and by casting evils, until the sorcerer separates between a man and his wife, and intervenes between a man and his heart, and that is by introducing pains and great illnesses, and all of that is perceived through observation, and denying it is stubbornness (5). This has been mentioned previously (6), and praise be to Allah. Twenty-third: His saying, the Exalted: {But they do not harm anyone with it except by the permission of Allah}. "But they" is a reference to the sorcerers. It was said: to the Jews, and it was said: to the devils. "harm with it" meaning: with magic.

(1) Ma'ani al-Qur'an 1/64. (2) In (Kh), (D), (Z), and (M): "so they come," and it was dropped from (Zah), and what is confirmed is from "Ma'ani al-Qur'an" by Al-Farra', and Az-Zajjaj quoted it from him 1/185, and said: The meaning: "We are only a trial so do not disbelieve," so do not learn and do not practice magic, so they refuse and learn, and thus Abu Hayyan quoted it in "Al-Bahr al-Muhit" 1/333. And it occurred with a 'T' in "I'rab al-Qur'an" by An-Nahhas 1/253, and "Ad-Durr al-Masun" 2/39. (3) In (Kh) and (Zah): "they separate [dual]," and in (M): "they separate [plural]," and what is confirmed is from (D) and (Z). (4) Narrated by At-Tabari 2/355, and mentioned by Al-Baghawi in "Ma'alim at-Tanzil" 1/101. Abu Hayyan mentioned in "Al-Bahr" 1/331 that nothing of these dialogues and stories is authentic. (5) Al-Mufhim 5/569. (6) 2/276-278.

२९० सूरा अल-बकरा: आयत १०२

अल-फर्रा ने कहा (१): यह उनके इस कथन की ओर इशारा है: {लोगों को जादू सिखाते हैं} तो वे सीखते हैं, और "तो वे सीखते हैं" उनके इस कथन से जुड़ा है: "हम तो बस एक परीक्षा हैं, लेकिन वे इनकार करते हैं (२) और सीख लेते हैं।" अस-सुद्दी ने कहा: वे दोनों उनके पास आने वाले से कहते थे: "हम तो बस एक परीक्षा हैं, इसलिए कुफ्र न करो।" यदि वह वापस लौटने से इनकार कर देता, तो वे उससे कहते: "इस राख के पास जाओ और उस पर पेशाब करो।" जब वह उस पर पेशाब करता, तो उसमें से एक रोशनी निकलती जो आसमान तक चमकती, जो कि ईमान है, फिर उसमें से एक काला धुआं निकलता और उसके कानों में घुस जाता, जो कि कुफ्र है। जब वह उन्हें बताता कि उसने क्या देखा है, तो वे उसे वह सिखाते जिससे आदमी और उसकी पत्नी के बीच अलगाव (३) पैदा होता है (४)। विद्वानों के एक समूह का विचार था कि जादूगर अलगाव के संबंध में अल्लाह द्वारा बताए गए से अधिक करने में सक्षम नहीं है; क्योंकि अल्लाह ने इसका उल्लेख जादू की निंदा के संदर्भ में किया है, और इसे सिखाने का अंतिम उद्देश्य यही है। यदि वह इससे अधिक करने में सक्षम होता, तो वह (अल्लाह) उसका उल्लेख करता। एक अन्य समूह ने कहा: यह सामान्य स्थिति के आधार पर बताया गया है, और इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता है कि जादू का दिलों पर प्रभाव पड़ता है, प्रेम और घृणा के माध्यम से, और बुराइयों को डालकर, यहाँ तक कि जादूगर पति और पत्नी के बीच अलगाव पैदा कर देता है, और आदमी और उसके दिल के बीच आ जाता है, और यह पीड़ा और बड़ी बीमारियों को पैदा करके होता है, और यह सब अवलोकन के माध्यम से महसूस किया जाता है, और इसका इनकार करना हठ है (५)। यह पहले उल्लेख किया जा चुका है (६), और अल्लाह का शुक्र है। तेईसवीं बात: अल्लाह तआला का कथन: {और वे इसके द्वारा किसी को नुकसान नहीं पहुँचा सकते सिवाय अल्लाह की अनुमति के}। "वे" जादूगरों की ओर संकेत है। कहा गया है: यहूदियों की ओर, और कहा गया है: शैतानों की ओर। "इसके द्वारा नुकसान पहुँचाने वाले" अर्थात: जादू से।

(१) मानी अल-कुरान १/६४। (२) (ख), (द), (ज़), और (म) में: "तो वे आते हैं", और (ज़ह) से यह लुप्त है, और जो पुष्ट है वह अल-फर्रा की "मानी अल-कुरान" से है, और अज़-ज़ज्जाज ने इसे उनसे १/१८५ पर उद्धृत किया है, और कहा: अर्थ है: "हम केवल एक परीक्षा हैं इसलिए कुफ्र न करो", अर्थात मत सीखो और जादू के साथ काम मत करो, फिर वे मना कर देते हैं और सीख लेते हैं, और इसी तरह अबू हयान ने "अल-बहर अल-मुहीत" १/३३३ में इसे उद्धृत किया है। और यह अन-नहहास द्वारा "इराब अल-कुरान" १/२५३ में 'त' के साथ आया है, और "अद-दुर्र अल-मसून" २/३९ में। (३) (ख)

और (ज़ह) में: "वे अलग करते हैं [द्विवचन]", और (म) में: "वे अलग करते हैं [बहुवचन]", और जो पुष्ट है वह (द) और (ज़) से है। (४) अत-तबरी द्वारा २/३५५ पर उद्धृत, और अल-बगवी द्वारा "मआलिम अत-तन्ज़ील" १/१०१ में उल्लेखित। अबू हयान ने "अल-बहर" १/३३१ में उल्लेख किया कि इन वार्ताओं और कहानियों में से कुछ भी सही नहीं है। (५) अल-मुफ़हिम ५/५६९। (६) २/२७६-२७८।

۲۹۰ سورة البقرہ : آیت ۱۰۲

اور الفراء (۱) نے کہا: یہ ان کے قول: {لوگوں کو جادو سکھاتے ہیں} پر لوٹتا ہے تو وہ سیکھتے ہیں، اور "تو وہ سیکھتے ہیں" ان کے اس قول سے جڑا ہوا ہے: "ہم تو صرف ایک آزمائش ہیں، پس وہ انکار کرتے ہیں (۲) اور سیکھ لیتے ہیں۔" السدی نے کہا: وہ دونوں اپنے پاس آنے والے سے کہتے تھے: "ہم تو صرف ایک آزمائش ہیں، پس کفر نہ کر"۔ اگر وہ واپس جانے سے انکار کر دیتا، تو وہ اسے کہتے: "اس راکھ کے پاس جاؤ اور اس پر پیشاب کرو"۔ جب وہ اس پر پیشاب کرتا، تو اس سے ایک نور نکلتا جو آسمان تک بلند ہوتا، جو کہ ایمان ہے، پھر اس سے ایک سیاہ دھواں نکلتا اور اس کے کانوں میں داخل ہو جاتا، جو کہ کفر ہے۔ جب وہ انہیں بتاتا کہ اس نے اس میں سے کیا دیکھا ہے، تو وہ اسے وہ سکھاتے جس سے مرد اور اس کی بیوی کے درمیان جدائی (۳) پیدا کی جاتی ہے (۴)۔ علماء کی ایک جماعت اس طرف گئی ہے کہ جادوگر تفریق (جدائی) کے بارے میں اللہ تعالیٰ کی بتائی ہوئی حد سے زیادہ پر قادر نہیں ہے؛ کیونکہ اللہ نے اسے جادو کی مذمت کے موقع پر ذکر کیا ہے، اور اس کی تعلیم کی انتہا یہی ہے، پس اگر وہ اس سے زیادہ پر قادر ہوتا تو وہ اس کا ذکر فرماتا۔ ایک اور جماعت نے کہا: یہ زیادہ تر حالات کے لحاظ سے ہے، اور اس بات سے انکار نہیں کیا جا سکتا کہ جادو کا دلوں پر اثر ہوتا ہے، محبت اور نفرت کے ساتھ، اور شرور ڈالنے کے ساتھ، یہاں تک کہ جادوگر مرد اور اس کی بیوی کے درمیان تفریق کر دیتا ہے، اور مرد اور اس کے دل کے درمیان حائل ہو جاتا ہے، اور یہ تکلیفوں اور بڑی بیماریوں کو داخل کرنے کے ذریعے ہوتا ہے، اور یہ سب مشاہدے سے ثابت ہے، اور اس کا انکار ہٹ دھرمی ہے (۵)۔ یہ پہلے گزر چکا ہے (۶)، اور اللہ کا شکر ہے۔ تیئیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور وہ اس کے ذریعے کسی کو نقصان نہیں پہنچا سکتے مگر اللہ کے حکم سے}۔ "وہ"

جادوگروں کی طرف اشارہ ہے۔ اور کہا گیا: یہودیوں کی طرف، اور کہا گیا: شیطانوں کی طرف۔ "اس کے ذریعے نقصان پہنچانے والے" یعنی: جادو کے ذریعے۔

(١) معانی القرآن ١/٦٤۔ (٢) (خ)، (د)، (ز) اور (م) میں: "پس وہ آتے ہیں"، اور (ظ) سے گر گیا ہے، اور جو ثابت ہے وہ الفراء کی "معانی القرآن" سے ہے، اور زجاج نے اسے ان سے ١/١٨٥ پر نقل کیا ہے، اور کہا: معنی یہ ہے: "ہم صرف آزمائش ہیں پس کفر نہ کر"، یعنی نہ سیکھ اور نہ جادو پر عمل کر، تو وہ انکار کرتے ہیں اور سیکھ لیتے ہیں، اور اسی طرح ابو حیان نے "البحر المحیط" ١/٣٣٣ میں اسے نقل کیا ہے۔ اور نحاس کی "اعراب القرآن" ١/٢٥٣ اور "الدر المصون" ٢/٣٩ میں 'تا' کے ساتھ واقع ہوا ہے۔ (٣) (خ) اور (ظ) میں: "وہ دونوں جدا کرتے ہیں"، اور (م) میں: "وہ جدا کرتے ہیں"، اور ثابت (د) اور (ز) سے ہے۔ (٤) اسے طبری نے ٢/٣٥٥ پر روایت کیا ہے، اور بغوی نے "معالم التنزیل" ١/١٠١ میں ذکر کیا ہے۔ اور ابو حیان نے "البحر" ١/٣٣١ میں ذکر کیا ہے کہ ان مکالموں اور قصوں میں سے کچھ بھی صحیح نہیں ہے۔ (٥) المفہم ٥/٥٦٩۔ (٦) ٢/٢٧٦-٢٧٨۔

{of anyone} i.e., anyone, and "min" is extra (grammatically). {except by Allah's permission} i.e., by His will and decree, not by His command; because He, Exalted is He, does not command immorality and decrees it upon creation (1). Al-Zajjaj said (2): "{except by Allah's permission}": except by Allah's knowledge. Al-Nahhas said: The saying of Abu Ishaq (3): "{except by Allah's permission}": except by Allah's knowledge, is an error; because it is only said regarding knowledge: "adhina", and I have known (adhintu) an ear (adhan). However, since He did not intervene between them and it, and they were left (4) to do it, it was as if He permitted it (5) metaphorically. Twenty-fourth: His saying, Exalted is He: {And they learn what harms them} He means in the Hereafter even if they take a small benefit from it in this world. It was said: it harms them in this world; because the harm of magic and separation returns to the sorcerer in this world if he is caught; because he is disciplined and rebuked, and the ill omen of magic afflicts him. The rest of the verse is clear from previous meanings. The "lam" in {and they certainly knew} is a "lam" of emphasis. {whoever purchased it} The "lam" is for an oath, and it is also for emphasis. The position of "man" is nominative (raf') as a subject; because what comes before the "lam" does not affect what comes after it. And "man" means "the one who". Al-Farra' said: it is for reward/retribution. Al-Zajjaj said: This is not a place for a conditional statement, and "man" means "the one who", as you say: I certainly knew that whoever came to you has no intellect. WWW.NAFSEISLAM.COM {of share} "min" is extra, and the estimation is: he has no share in the Hereafter, and it is not added in the positive (6). This is the saying of the Basrans. The Kufans said: it can be extra in the positive, and they cited as evidence His saying, Exalted is He: {He may forgive you of your sins} [Al-Ahqaf: 31] (7).

(1) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/31. (2) Ma'ani al-Quran by him 1/186. (3) Meaning Al-Zajjaj, and Al-Nahhas's speech is in his book I'rab al-Quran 1/253. (4) In (m): "and they remained". (5) In (kh), (d) and (z): "permission". (6) I'rab al-Quran by Al-Nahhas 1/253, and the author quoted through him from Al-Farra' and Al-Zajjaj, see Ma'ani al-Quran by Al-Farra' 1/65, and Ma'ani al-Quran by Al-Zajjaj 1/187. (7) See for the addition of "min" Al-Azhayyah fi 'Ilm al-Huruf by Al-Harawi p. 228, Sharh al-Mufassal 8/13, and Mughni al-Labib p. 427.

{किसी को भी} यानी: किसी को, और "मिन" (अतिरिक्त) है। {अल्लाह की अनुमति के बिना नहीं} यानी: उसकी इच्छा और डिक्री से, उसके आदेश से नहीं; क्योंकि वह, महान और प्रतापी, अनैतिकता का आदेश नहीं देता है और सृष्टि के लिए इसे तय करता है (1)। अल-ज़ज्जाज ने कहा (2): "{अल्लाह की अनुमति के बिना नहीं}": अल्लाह के ज्ञान के बिना नहीं। अल-नहहास ने कहा: अबू इशाक (3) का कहना: "{अल्लाह की अनुमति के बिना नहीं}": अल्लाह के ज्ञान के बिना नहीं, एक त्रुटि है; क्योंकि यह केवल ज्ञान के संबंध में कहा जाता है: "अधिना", और मुझे पता चल गया (अधिंतु) एक कान (अधान)। हालांकि, चूंकि उसने उनके और इसके बीच हस्तक्षेप नहीं किया, और उन्हें इसे करने के लिए छोड़ दिया गया (4), यह ऐसा था जैसे उसने इसे रूपक रूप से अनुमति दी थी (5)। चौबीसवीं: उसका कहना, महान है वह: {और वे सीखते हैं जो उन्हें नुकसान पहुँचाता है} उसका मतलब परलोक में है भले ही वे दुनिया में इससे थोड़ा लाभ उठाएँ। यह कहा गया था: यह उन्हें दुनिया में नुकसान पहुँचाता है; क्योंकि जादू और अलगाव का नुकसान जादूगर पर दुनिया में लौटता है अगर वह पकड़ा जाता है; क्योंकि उसे अनुशासित और फटकार लगाई जाती है, और जादू का अपशकुन उसे घेर लेता है। आयत का शेष भाग पिछले अर्थों से स्पष्ट है। {और उन्होंने निश्चित रूप से जान लिया} में "लाम" पुष्टि (ताकीद) का "लाम" है। {जिसने इसे खरीदा} "लाम" कसम के लिए है, और यह भी पुष्टि के लिए है। "मन" का स्थान कर्ताकारक (रफ़) है; क्योंकि "लाम" से पहले जो आता है वह उसके बाद आने वाले को प्रभावित नहीं करता है। और "मन" का अर्थ है "वह जो"। अल-फर्रा ने कहा: यह प्रतिफल के लिए है। अल-ज़ज्जाज ने कहा: यह शर्त के लिए स्थान नहीं है, और "मन" का अर्थ है "वह जो", जैसा कि आप कहते हैं: मुझे निश्चित रूप से पता था कि जो कोई भी आपके पास आया है उसके पास बुद्धि नहीं है। WWW.NAFSEISLAM.COM {कोई हिस्सा} "मिन" अतिरिक्त है, और अनुमान है: परलोक में उसका कोई हिस्सा नहीं है, और इसे सकारात्मक वाक्यों में नहीं जोड़ा जाता है (6)। यह बसरावासियों का कहना है। कूफ़ियों ने कहा: यह सकारात्मक वाक्यों में अतिरिक्त हो सकता है, और उन्होंने प्रमाण के रूप में उनके कथन का हवाला दिया, वह महान है: {ताकि वह तुम्हारे पापों को क्षमा कर दे} [अल-अहकाफ़: 31] (7)।

(1) इब्न अल-अरबी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/31। (2) उनके द्वारा मानी अल-कुरान 1/186। (3) यानी अल-ज़ज्जाज, और अल-नहहास का भाषण उनकी पुस्तक एराब अल-कुरान 1/253 में है। (4) (m) में: "और वे बने रहे"। (5) (kh), (d) और (z) में: "अनुमति"। (6) अल-नहहास द्वारा एराब अल-

कुरान 1/253, और लेखक ने उनके माध्यम से अल-फर्रा और अल-ज़ज्जाज से उद्धृत किया, अल-फर्रा द्वारा मानी अल-कुरान 1/65, और अल-ज़ज्जाज द्वारा मानी अल-कुरान 1/187 देखें। (7) "मिन" को अतिरिक्त जोड़ने के लिए देखें अल-हरवी द्वारा अल-अज़हय्या फी इल्म अल-हुरुफ़ पृष्ठ 228, शरह अल-मुफस्सल 8/13, और मुगनी अल-लबीब पृष्ठ 427।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۲ ۲۹۱

﴿مِنْ أَحَدٍ﴾ یعنی: کسی کو، اور «مَنْ» زائد ہے۔ ﴿إِلَّا بِإِذْنِ اللَّهِ﴾ یعنی: اس کے ارادے اور فیصلے سے، اس کے حکم سے نہیں؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ فحاشی کا حکم نہیں دیتا اور مخلوق پر اس کا فیصلہ کرتا ہے (۱)۔ زجاج (۲) نے کہا: «إِلَّا بإذن الله»: اللہ کے علم کے سوا۔ النحاس نے کہا: ابو اسحاق (۳) کا قول: «إِلَّا بإذن الله»: اللہ کے علم کے سوا، غلط ہے؛ کیونکہ علم کے بارے میں صرف یہ کہا جاتا ہے: اذن، اور میں نے جان لیا (أَذِنْتُ) اذن۔ لیکن جب اس نے ان کے اور اس کے درمیان رکاوٹ نہیں ڈالی، اور انہیں چھوڑ دیا (۴) کہ وہ کریں، تو گویا اس نے اسے مجازی طور پر مباح قرار دیا (۵)۔ چوبیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَيَتَعَلَّمُونَ مَا يَضُرُّهُمْ﴾ اس سے مراد آخرت میں ہے اگرچہ وہ دنیا میں اس سے تھوڑا سا فائدہ حاصل کر لیں۔ اور کہا گیا: یہ انہیں دنیا میں نقصان پہنچاتا ہے؛ کیونکہ جادو اور تفریق کا نقصان جادوگر پر دنیا میں لوٹتا ہے اگر وہ پکڑا جائے؛ کیونکہ اسے ادب سکھایا جاتا ہے اور ڈانٹا جاتا ہے، اور جادو کی نحوست اسے لاحق ہوتی ہے۔ باقی آیت گزشتہ معانی کی وجہ سے واضح ہے۔ اور ﴿وَلَقَدْ عَلِمُوا﴾ میں لام تاکید کا ہے۔ ﴿لَمَنِ اشْتَرَاهُ﴾ لام قسم کا ہے، اور یہ تاکید کے لیے بھی ہے۔ اور «مَنْ» کی جگہ ابتدا کی وجہ سے رفع ہے؛ کیونکہ لام سے پہلے والا حصہ بعد والے حصے پر عمل نہیں کرتا| اور «مَن» بمعنی «الذی» (وہ جو) ہے۔ الفراء نے کہا: یہ جزا (بدلے) کے لیے ہے۔ زجاج نے کہا: یہ شرط کی جگہ نہیں ہے، اور «مَن» بمعنی «الذی» ہے، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: میں نے جان لیا کہ جو شخص تمہارے پاس آیا اس کے پاس عقل نہیں ہے۔ WWW.NAFSEISLAM.COM ﴿مِنْ خَلَاقٍ﴾ «مِنْ» زائد ہے، اور تقدیر (مفہوم) ہے: آخرت میں اس کا کوئی حصہ نہیں، اور اسے واجب (مثبت جملوں) میں زیادہ نہیں کیا جاتا

(۶)۔ یہ بصریوں کا قول ہے۔ اور کوفیوں نے کہا: یہ واجب میں زائد ہوتا ہے، اور انہوں نے اللہ تعالیٰ کے اس فرمان سے استدلال کیا: ﴿يَغْفِرْ لَكُم مِّن ذُنُوبِكُمْ﴾ [الاحقاف: ۳۱] (۷)۔

(۱) احکام القرآن لابن العربی ۳۱/۱۔ (۲) معانی القرآن ان کی ۱۸۶/۱۔ (۳) یعنی الزجاج، اور النحاس کا کلام ان کی کتاب اعراب القرآن ۲۵۳/۱ میں ہے۔ (۴) (م) میں: اور وہ رہے۔ (۵) (خ) اور (د) اور (ظ) میں: اباحت۔ (۶) اعراب القرآن للنحاس ۲۵۳/۱، اور مصنف نے ان کے واسطے سے الفراء اور الزجاج سے نقل کیا ہے، دیکھئے معانی القرآن للفراء ۶۵/۱، اور معانی القرآن للزجاج ۱۸۷/۱۔ (۷) «مِن» کی زیادتی کے لیے دیکھئے الازہیہ فی علم الحروف للھروی ص۲۲۸، وشرح المفصل ۱۳/۸، ومغنی اللبیب ص۴۲۷۔

292 Surah Al-Baqarah: Verse 103

And 'al-khalaq' (الخلاق): means share or portion; this was said by Mujahid (1). Al-Zajjaj said: It is also thus according to the linguists, except that it is hardly used except for a portion of good (2). And he was asked about the Almighty's saying: {And they certainly knew that whoever purchased the magic would not have in the Hereafter any share} [2:102], so He informed that they had known, then He said: {And wretched is that for which they sold themselves, if they only knew} [2:102], so He informed that they do not know. The answer - which is the opinion of Qutrub and Al-Akhfash (3) - is that those who know are the devils, and those who sold themselves - meaning traded them - are the humans who do not know. Al-Zajjaj said: And Ali bin Sulaiman said: The better view in my opinion is that "And they certainly knew" refers to the two angels; because they are more worthy of knowing. He said: "They knew" (plural form) is used just as it is said: "The two Zayds stood up" (using plural verb). Al-Zajjaj said: Those who knew are the scholars of the Jews, but it was said: {if they only knew} meaning: they entered the position of someone about whom it is said: "You are not a scholar"; because they abandoned acting upon their knowledge, and they sought guidance (4) from those who practiced magic.

Allah's saying: {And if they had believed and feared Allah, a reward from Allah would have been better, if they only knew (103)}

His saying: {And if they had believed and feared Allah} means: feared practicing magic. {a reward} (Lamathubatun): 'Al-mathuba' means reward, and it is the answer (apodosis) to "And if they had believed" according to some people. Sa'id Al-Akhfash (5) said: There is no verbal answer for "if" (law) here, but it is in the meaning, and the meaning is: they would have been rewarded. The position of "anna" (أنّ) in His saying: "And if they..." (wa law annahum) is the position of nominative (raf'), meaning: "if their faith occurred"; because "law" is only followed by a verb, either apparent or implied; because it is like a conditional letter (6), as it must have an answer and be followed by a verb. Muhammad bin Yazid (7) said: It is only not permissible with "law" because the way...

(1) Narrated by Al-Tabari 2/365. (2) Ma'ani al-Quran 1/186, and in it: Al-khalaq: the abundant share of good. (3) Ma'ani al-Quran for him 1/329, and Fakhr al-Din al-Razi mentioned their words in his Tafsir 3/222. (4) In (m): and they sought right guidance. (5) Ma'ani al-Quran 1/329, and the author quoted it from him via I'rab al-Quran 1/254.

(6) In (m): letters. (7) Al-Kamil pp. 361-362, and the author (and what precedes it) quoted it from him via I'rab al-Quran 1/253-254.

292 सूरह अल-बक़रह: आयत 103

और 'अल-ख़लाक़' (الخلاق): का अर्थ है हिस्सा या भाग्य; यह मुजाहिद (1) ने कहा है। अल-ज़ज्जाज ने कहा: भाषाविदों के अनुसार भी यही है, सिवाय इसके कि इसका उपयोग शायद ही कभी अच्छाई के हिस्से के अलावा किसी और चीज़ के लिए किया जाता हो (2)। और उनसे अल्लाह के इस कथन के बारे में पूछा गया: {और वे निश्चित रूप से जानते थे कि जिसने इसे (जादू को) खरीदा, उसके लिए आख़िरत (परलोक) में कोई हिस्सा नहीं है} [2:102], तो उसने सूचित किया कि वे जानते थे, फिर उसने कहा: {और वह बहुत बुरा है जिसके बदले उन्होंने अपने आप को बेच दिया, काश वे जानते होते} [2:102], तो उसने सूचित किया कि वे नहीं जानते। इसका उत्तर - जो क़ुतरुब और अल-अख़फ़श (3) का मत है - यह है कि जो जानते हैं वे शैतान हैं, और जिन्होंने खुद को बेचा - यानी उनका सौदा किया - वे इंसान हैं जो नहीं जानते। अल-ज़ज्जाज ने कहा: और अली बिन सुलेमान ने कहा: मेरे विचार में बेहतर यह है कि "और वे निश्चित रूप से जानते थे" उन दो फरिश्तों के लिए हो; क्योंकि वे जानने के अधिक योग्य हैं। उन्होंने कहा: "उन्होंने जाना" (बहुवचन) का प्रयोग वैसे ही किया गया है जैसे कहा जाता है: "दोनों ज़ैद खड़े हुए" (बहुवचन क्रिया का उपयोग करते हुए)। अल-ज़ज्जाज ने कहा: जो जानते थे वे यहूदियों के विद्वान थे, लेकिन कहा गया: {काश वे जानते होते} यानी: वे उस व्यक्ति की स्थिति में आ गए जिसके बारे में कहा जाता है: "तुम विद्वान नहीं हो"; क्योंकि उन्होंने अपने ज्ञान पर अमल करना छोड़ दिया, और जादू करने वालों से मार्गदर्शन मांगा (4)।

अल्लाह का कथन: {और यदि वे ईमान लाते और डरते, तो अल्लाह के पास से मिलने वाला बदला कहीं बेहतर होता, यदि वे जानते होते (103)}

उनका कथन: {और यदि वे ईमान लाते और डरते} का अर्थ है: जादू से बचते। {बदला} (लमसूबतुन): 'अल-मसूबा' का अर्थ है सवाब या प्रतिफल, और यह कुछ लोगों के अनुसार "और यदि वे ईमान लाते" का जवाब (शर्त का परिणाम) है। सईदुद अल-अख़फ़श (5) ने कहा: यहाँ "यदि" (लौ) के लिए कोई शाब्दिक जवाब नहीं है, बल्कि अर्थ में है, और अर्थ यह है: उन्हें बदला दिया जाता। और "अन्ना" (أنّ) का स्थान उनके कथन: "और यदि वे..." (व लौ अन्नाहुम) में रफ़ (nominative) का स्थान है, यानी: "यदि उनका ईमान वाक़े होता"; क्योंकि "लौ" के बाद केवल क्रिया (फ़ेल) ही आती है, चाहे वह ज़ाहिर हो या छिपी हुई; क्योंकि यह शर्तिया हर्फ़(6) के स्थान पर है, क्योंकि इसके लिए एक जवाब और उसके बाद एक क्रिया का होना ज़रूरी है। मुहम्मद बिन यज़ीद (7) ने कहा: यह "लौ" के साथ इसलिए जायज़ नहीं है क्योंकि रास्ता...

(1) अल-तबरी 2/365 द्वारा उद्धृत। (2) मआनी अल-क़ुरआन 1/186, और इसमें है: अल-ख़लाक़: अच्छाई का भरपूर हिस्सा। (3) उनके लिए मआनी अल-क़ुरआन 1/329, और फ़ख़्र अल-दीन अल-राज़ी ने अपनी तफ़सीर 3/222 में उनकी बातों का ज़िक्र किया है। (4) (m) में: और उन्होंने सही मार्गदर्शन मांगा। (5) मआनी अल-क़ुरआन 1/329, और लेखक ने इसे एराब अल-क़ुरआन 1/254 के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (6) (m) में: हुरूफ (अक्षर)। (7) अल-कामिल पृ. 361-362, और लेखक ने (और जो उससे पहले है) इसे एराब अल-क़ुरआन 1/253-254 के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है।

292 سورہ البقرہ: آیت 103

اور 'الخلاق': کا مطلب ہے حصہ؛ یہ مجاہد (1) نے کہا ہے۔ الزجاج نے کہا: اہل لغت کے نزدیک بھی ایسا ہی ہے، سوائے اس کے کہ یہ شاید ہی کبھی خیر (بھلائی) کے حصے کے علاوہ استعمال ہوتا ہو (2)۔ اور ان سے اللہ تعالیٰ کے اس قول کے بارے میں پوچھا گیا: {وَلَقَدْ عَلِمُوا لَمَنِ اشْتَرَاهُ مَا لَهُ فِي الْآخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ} (اور وہ یقیناً جانتے تھے کہ جس نے اسے خریدا اس کے لیے آخرت میں کوئی حصہ نہیں ہے) تو اللہ نے خبر دی کہ وہ جانتے تھے، پھر فرمایا: {وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهِ أَنْفُسَهُمْ لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ} (اور کتنا برا ہے وہ جس کے بدلے انہوں نے اپنی جانوں کو بیچ ڈالا، کاش وہ جانتے ہوتے) تو اللہ نے خبر دی کہ وہ نہیں جانتے۔ تو اس کا جواب - جو کہ قطرب اور الاخفش (3) کا قول ہے - یہ ہے کہ جو جانتے ہیں وہ شیاطین ہیں، اور جنہوں نے اپنی جانوں کو بیچا - یعنی ان کا سودا کیا - وہ انسان ہیں جو نہیں جانتے۔ الزجاج نے کہا: اور علی بن سلیمان نے کہا: میرے نزدیک زیادہ بہتر یہ ہے کہ "وَلَقَدْ عَلِمُوا" (اور یقیناً انہوں نے جان لیا) دونوں فرشتوں کے لیے ہو؛ کیونکہ وہ جاننے کے زیادہ حقدار ہیں۔ انہوں نے کہا: "علموا" (انہوں نے جانا - جمع) ایسے ہی کہا گیا ہے جیسے کہا جاتا ہے: "الزيدان قاموا" (دو زید کھڑے ہوئے - جمع کا فعل استعمال کرتے ہوئے)۔ الزجاج نے کہا: جنہوں نے جانا وہ یہودیوں کے علماء تھے، لیکن کہا گیا: {لَوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ} یعنی: وہ اس شخص کے مقام پر آگئے جس سے کہا جاتا ہے: "تم عالم نہیں ہو"؛ کیونکہ انہوں نے اپنے علم پر عمل کرنا چھوڑ دیا، اور جادو کرنے والوں سے رہنمائی طلب کی (4)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلَوْ أَنَّهُمْ آمَنُوا وَاتَّقَوْا لَمَثُوبَةٌ مِّنْ عِندِ اللَّهِ خَيْرٌ لَّوْ كَانُوا يَعْلَمُونَ ١٠٣} (اور اگر وہ ایمان لاتے اور تقویٰ اختیار کرتے تو اللہ کے پاس سے ملنے والا بدلہ بہت بہتر ہوتا، کاش وہ جانتے ہوتے)

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلَوْ أَنَّهُمْ آمَنُوا وَاتَّقَوْا} یعنی: جادو سے بچتے۔ {لَمَثُوبَةٌ} المثوبہ کا مطلب ہے ثواب (بدلہ)، اور یہ کچھ لوگوں کے نزدیک "وَلَوْ أَنَّهُمْ آمَنُوا" کا جواب (جزائے شرط) ہے۔ الاخفش سعید (5) نے کہا: یہاں "لو" کے لیے لفظوں میں کوئی جواب نہیں ہے، بلکہ معنی میں ہے، اور معنی یہ ہے: "انہیں ضرور بدلہ دیا جاتا"۔ اور قول باری تعالیٰ "وَلَوْ أَنَّهُم" میں "أنَّ" کا مقام رفع کا ہے، یعنی: "اگر ان کا ایمان واقع ہوتا"؛ کیونکہ "لو" کے بعد صرف فعل ہی آتا ہے خواہ ظاہر ہو یا پوشیدہ؛ کیونکہ یہ حرف شرط (6) کے قائم مقام ہے، کیونکہ اس کے لیے جواب اور اس کے بعد فعل کا ہونا ضروری ہے۔ محمد بن یزید (7) نے کہا: اور "لو" کے ساتھ یہ اس لیے جائز نہیں ہوا کیونکہ...

(1) اسے الطبری 2/365 نے روایت کیا ہے۔ (2) معانی القرآن 1/186، اور اس میں ہے: الخلاق: خیر کا وافر حصہ۔ (3) ان کے لیے معانی القرآن 1/329، اور فخر الدین الرازی نے اپنی تفسیر 3/222 میں ان دونوں کا کلام ذکر کیا ہے۔ (4) (م) میں ہے: "واسترشدوا" (اور انہوں نے صحیح رہنمائی چاہی)۔ (5) معانی القرآن 1/329، اور مصنف نے اسے "اعراب القرآن" 1/254 کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔ (6) (م) میں ہے: حروف۔ (7) الکامل ص 361-362، اور مصنف نے (اور جو اس سے پہلے ہے) اسے "اعراب القرآن" 1/253-254 کے واسطے سے ان سے نقل کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 104. Page 293.

All conditional particles (huruful mujazah) turn the past tense into a future meaning. Since this is not the case with "law" (if), it cannot be used as a conditional.

Allah Almighty says: {O you who have believed, do not say, "Rā'inā" but say, "Unthurnā" and listen. And for the disbelievers is a painful punishment.}

It contains five points: First: Allah Almighty's saying: {O you who have believed, do not say, "Rā'inā"} mentions another instance of the ignorance of the Jews, and the purpose is to forbid the Muslims from doing something similar. The linguistic reality of "Rā'inā" is: "observe us and we shall observe you"; because the verbal form [mufā'alah] implies participation from two parties. It would be derived from: "May God protect you," meaning: protect us and we shall protect you, and watch over us and we shall watch over you. It could also be from: "Give us your ear," meaning: devote your hearing to our speech. Using such a form of address involves a degree of harshness, so the believers were commanded (1) to choose the best of words and the most gentle of meanings (2).

Ibn Abbas said: The Muslims used to say to the Prophet ﷺ: "Rā'inā" as a request and desire (3) - derived from "murā'āt" (consideration) - meaning: turn towards us. However, in the language of the Jews, this was an insult, meaning: "Listen, may you not hear." They took advantage of it and said: "We used to insult him in secret, but now we insult him openly." They would address the Prophet ﷺ with it and laugh among themselves. Sa'd bin Mu'adh (4) - who knew their language - heard it and said to the Jews: "May Allah's curse be upon you! If I hear it from any man among you saying it to the Prophet ﷺ, I will strike his neck." They replied: "Don't you say it yourselves?" Then this verse was revealed, and they were forbidden from it so that the Jews would not follow (5) them in the wording while intending the corrupt meaning within it (6).

Footnotes: (1) In (ظ): The believers. (2) Tafsir al-Tabari 2/379-380. (3) In (ظ): Al-Tar'iyah, and in (د): Al-Ra'iyyah. (4) Abu Amr al-Ansari, al-Awsi, al-Ashali, al-Badri, the one for whose death the Throne shook. He was wounded on the Day of the Trench, lived for a month, then his wound reopened and he died. Al-Siyar 1/279. (5) In (م): you [feminine/plural] follow. (6) Al-Wasit 1/186, and the report in it is from the narration of al-Kalbi on the authority of Ibn Abbas. See also Tafsir al-Baghawi 1/102 and Tafsir al-Razi 3/224.

सूरह अल-बकरा: आयत 104. पृष्ठ 293.

सभी शर्त के अक्षर (حروف المجازاة) अतीत काल को भविष्य के अर्थ में बदल देते हैं। चूँकि "लौ" (لو) में ऐसा नहीं है, इसलिए इसे शर्त के लिए उपयोग नहीं किया जा सकता।

अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन है: {हे ईमान वालो! तुम (नबी से) 'रा-इना' न कहा करो, बल्कि 'उन-ज़ुरना' कहा करो और सुनते रहा करो, और काफ़िरों के लिए दुखदायी यातना है।}

इसमें पाँच मुख्य बातें हैं: पहली: अल्लाह तआला का फ़रमान: {हे ईमान वालो! तुम 'रा-इना' न कहा करो} यह यहूदियों की अज्ञानता का एक और उदाहरण बताता है, और इसका उद्देश्य मुसलमानों को वैसा ही करने से रोकना है। अरबी भाषा में 'रा-इना' (رَاعِنَا) की वास्तविकता है: 'हमारा ध्यान रखो और हम तुम्हारा ध्यान रखेंगे'; क्योंकि यह 'मुफा-अला' (مفاعلة) रूप से है जो दो पक्षों के बीच होता है। यह 'रआक-अल्लाह' (رعاك الله) से होगा, यानी: हमारी रक्षा करो और हम तुम्हारी रक्षा करेंगे, और हमारी निगरानी करो और हम तुम्हारी निगरानी करेंगे। इसका अर्थ 'अपने कान हमारी ओर लगाओ' भी हो सकता है, यानी: हमारी बातों को ध्यान से सुनो। संबोधन के इस तरीके में एक प्रकार की रूक्षता है, इसलिए ईमान वालों को आदेश दिया गया (1) कि वे शब्दों में से सबसे अच्छे और अर्थों में से सबसे कोमल का चयन करें (2)।

इब्न अब्बास ने कहा: मुसलमान नबी ﷺ से 'रा-इना' कहते थे, जिसका उद्देश्य अनुरोध और इच्छा (3) थी - यानी 'मुरा-आत' (मुरव्वत) के अर्थ में - जिसका मतलब था: हमारी ओर ध्यान दें। लेकिन यहूदियों की भाषा में यह एक अपशब्द था, जिसका अर्थ था: 'सुनो, ईश्वर करे तुम न सुनो'। उन्होंने इसे एक अवसर के रूप में लिया और कहा: "हम उन्हें गुप्त रूप से गाली देते थे, लेकिन अब हम उन्हें खुलेआम गाली देते हैं।" वे नबी ﷺ को इसी तरह संबोधित करते थे और आपस में हंसते थे। साद बिन मुअज़ (4) - जो उनकी भाषा जानते थे - ने इसे सुना और यहूदियों से कहा: "तुम पर अल्लाह की लानत हो! अगर मैंने तुम में से किसी आदमी को नबी ﷺ से यह कहते सुना, तो मैं उसकी गर्दन उड़ा दूँगा।" उन्होंने कहा: "क्या तुम खुद इसे नहीं कहते?" तब यह आयत नाजिल हुई, और उन्हें इससे मना कर दिया गया ताकि यहूदी उन शब्दों का अनुसरण (5) न करें और उनमें छिपे भ्रष्ट अर्थ का इरादा न रखें (6)।

पाद-टिप्पणियाँ: (1) (ظ) में: 'अल-मुमिनून' (ईमान वाले)। (2) तफ़सीर अल-तबरी 2/379-380। (3) (ظ) में: 'अल-तर-इयाह', और (د) में: 'अल-र-इयाह'। (4) अबू अम्र अल-अंसारी, अल-औसी, अल-

अशहाली, अल-बदरी, जिनके निधन पर (अल्लाह का) अर्श हिल गया था। वे खंदक के दिन घायल हो गए थे, एक महीने तक जीवित रहे, फिर उनका घाव फिर से खुल गया और उनकी मृत्यु हो गई। अस-सियार 1/279। (5) (म) में: 'तक्तादी' (तुम अनुसरण करो)। (6) अल-वसीत 1/186, और इसमें रिवायत इब्न अब्बास के अधिकार पर अल-कल्बी से है, देखें तफ़सीर अल-बगवी 1/102, और तफ़सीर अल-राज़ी 3/224।

سورة البقرہ: آیت 104۔ صفحہ 293۔

تمام حروفِ جزا (شرط) ماضی کو مستقبل کے معنی میں بدل دیتے ہیں۔ چونکہ "لَوْ" میں یہ بات نہیں ہے، اس لیے اس کے ذریعے جزا (شرط) درست نہیں ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿اے ایمان والو! تم (نبی ﷺ سے) 'رَاعِنَا' نہ کہا کرو، بلکہ 'انْظُرْنَا' کہا کرو اور (ان کی بات) توجہ سے سنا کرو، اور کافروں کے لیے دردناک عذاب ہے۔﴾

اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿اے ایمان والو! 'رَاعِنَا' نہ کہا کرو﴾ اس میں یہودیوں کی جہالتوں میں سے ایک اور چیز کا تذکرہ ہے، اور مقصد مسلمانوں کو اس جیسی بات سے روکنا ہے۔ لغت میں "رَاعِنَا" کی حقیقت یہ ہے: 'ہماری رعایت کرو اور ہم تمہاری رعایت کریں گے'؛ کیونکہ مفاعلہ دو کے درمیان ہوتا ہے، تو یہ 'رعاك الله' سے ہوگا، یعنی: ہماری حفاظت کرو اور ہم تمہاری حفاظت کریں گے، اور ہمارا دھیان رکھو اور ہم تمہارا دھیان رکھیں گے۔ یہ بھی ہو سکتا ہے کہ 'اپنا کان ہماری طرف لگاؤ' کے معنی میں ہو، یعنی: اپنی سماعت ہماری بات کے لیے فارغ کرو۔ اس طرح کے مخاطبے میں ایک طرح کی درشتی ہے، اس لیے مومنوں کو حکم دیا گیا (1) کہ وہ الفاظ میں سے بہترین اور معانی میں سے لطیف ترین کا انتخاب کریں (2)۔

ابن عباس فرماتے ہیں: مسلمان نبی ﷺ سے 'رَاعِنَا' کہا کرتے تھے، جو کہ مطالبہ اور رغبت (3) کے طور پر ہوتا تھا - یعنی رعایت کے معنی میں - جس کا مطلب تھا: ہماری طرف توجہ فرمائیے۔ لیکن یہودیوں کی زبان میں یہ ایک گالی تھی، جس کا مطلب تھا: 'سن، خدا کرے تو نہ سنے'۔ انہوں نے اسے غنیمت سمجھا اور کہا: "ہم انہیں چھپ کر گالی دیا کرتے تھے، اب کھلم کھلا گالی دیا کریں گے۔" وہ نبی ﷺ کو اسی لفظ سے مخاطب کرتے اور آپس میں ہنستے۔ سعد بن معاذ (4) نے یہ سن لیا - وہ ان کی زبان جانتے تھے - انہوں نے یہودیوں سے کہا: "تم پر اللہ کی لعنت ہو! اگر

میں نے تم میں سے کسی آدمی کو نبی ﷺ سے یہ لفظ کہتے سنا تو میں اس کی گردن اڑا دوں گا۔" انہوں نے کہا: "کیا تم خود یہ لفظ نہیں کہتے؟" تب یہ آیت نازل ہوئی، اور انہیں اس سے روک دیا گیا تاکہ یہودی ان الفاظ میں ان کی پیروی (5) نہ کریں اور اس میں موجود فاسد معنی کا ارادہ نہ کریں (6)۔

حواشی: (1) (ظ) میں: 'المؤمنون'۔ (2) تفسیر طبری 2/379-380۔ (3) (ظ) میں: 'الترعیۃ'، اور (د) میں: 'الرعیۃ'۔ (4) ابو عمرو الانصاری، الاوسی، الاشہلی، البدری، جن کی موت پر عرش کانپ اٹھا تھا۔ یومِ خندق ان کو تیر لگا تھا، ایک مہینہ زندہ رہے، پھر زخم پھٹ گیا اور انتقال کر گئے۔ السیر 1/279۔ (5) (م) میں: 'تقتدی'۔ (6) الوسیط 1/186، اور اس میں یہ روایت کلبی کی ابن عباس سے ہے، اور دیکھیے تفسیر بغوی 1/102، اور تفسیر رازی 3/224۔

294 Surah Al-Baqarah: Verse 104

Second: In this verse, there are two proofs: One of them: regarding the avoidance of ambiguous words that imply disparagement and belittlement. From this, the understanding of slander (qadhf) by insinuation is derived, and that necessitates the legal punishment (hadd) according to us, contrary to Abu Hanifa, Ash-Shafi'i, and their companions when they said: Insinuation is ambiguous, possibly meaning slander or something else, and the legal punishment is among those things waived in the presence of doubt (1). This will be explained in "An-Nur" (2), if Allah Almighty wills.

The second proof: Adhering to the principle of "blocking the means" (sadd al-dhara'i') and its protection, which is the school of thought (madhhab) of Malik and his companions, and Ahmad bin Hanbal in one report from him. This principle is supported by the Book (Quran) and the Sunnah. A "means" (dhari'ah) is an act that is not prohibited in itself but is feared that performing it might lead to falling into something prohibited.

As for the Book: this verse, and the aspect of adhering to it is that the Jews used to say that [word], and it was an insult in their language. When Allah knew that about them, He prohibited the use of that word because it was a means to insult. And the saying of the Almighty: "And do not insult those they invoke other than Allah, lest they insult Allah in enmity without knowledge" [Al-An'am: 108], so He prohibited insulting their gods for fear they would respond in kind. And the saying of the Almighty: "And ask them about the town that was by the sea" [Al-A'raf: 163] the verse, so Allah, Blessed and Exalted be He, prohibited them from fishing on Saturday. Then the fish would come to them on Saturday "shara'an," meaning visible, so they blocked them on Saturday and took them on Sunday. The blocking was a means for fishing, so Allah transformed them into monkeys and pigs, and Allah mentioned that to us by way of warning against it. And the saying of the Almighty to Adam and Eve: "And do not approach this tree" [Al-Baqarah: 35], and this has been discussed previously (3).

As for the Sunnah: there are many established and authentic hadiths, including the hadith of Aisha (may Allah be pleased with her), that Umm Habiba and Umm Salama (may Allah be pleased with them) mentioned a church—they saw it (4) in Abyssinia containing images—to the Messenger of Allah ﷺ. The Messenger of Allah ﷺ said: "Among those people, if there was a righteous man among them who died, they

would build a mosque over his grave and place those images in it. Those are the worst of creation in the sight of Allah." Narrated by Al-Bukhari and Muslim (5).

---

(1) Ahkam al-Quran 1/32. (2) In the commentary of verse (4) thereof. (3) 1/453. (4) In (Z): "ra'aynaha" (they saw it), and in (M): "ra'ayaha" (they both saw it). (5) Al-Bukhari (427), and Muslim (528) and the wording is his, and it is in Musnad Ahmad (24252).

२९४ सूरह अल-बकरा: आयत १०४

दूसरा: इस आयत में दो प्रमाण हैं: पहला: उन संदिग्ध शब्दों से बचने के बारे में जिनमें अपमान और कमतर दिखाने का संकेत हो। इससे अपरोक्ष रूप से दोषारोपण (क़ज़्फ़) की समझ निकलती है, और हमारे अनुसार इसके लिए हद्द (कानूनी सज़ा) अनिवार्य है, अबू हनीफ़ा, अल-शाफ़ी और उनके साथियों के विपरीत जिन्होंने कहा: अपरोक्ष संकेत संदिग्ध है, इसमें दोषारोपण या कुछ और भी हो सकता है, और हद्द उन चीज़ों में से है जो संदेह की स्थिति में समाप्त हो जाती हैं (१)। इंशा अल्लाह, इसका विवरण "अन-नूर" (२) में आएगा।

दूसरा प्रमाण: "बुराई के रास्तों को बंद करने" (सद्द अल-ज़राई) के सिद्धांत का पालन करना और उसकी सुरक्षा करना, जो मालिक और उनके साथियों का मत (मज़हब) है, और अहमद बिन हंबल से एक रिवायत में भी यही है। इस मूल सिद्धांत का प्रमाण किताब (क़ुरआन) और सुन्नत में मिलता है। "ज़रीआ" (साधन) एक ऐसा कार्य है जो स्वयं में निषिद्ध नहीं है, लेकिन डर होता है कि उसे करने से किसी निषिद्ध कार्य में पड़ने की संभावना है।

जहाँ तक किताब (क़ुरआन) की बात है; तो यह आयत है, और इससे प्रमाण लेने का पहलू यह है कि यहूदी वह शब्द कहते थे, जो उनकी भाषा में गाली थी। जब अल्लाह को उनके बारे में यह पता चला, तो उसने उस शब्द के प्रयोग से मना कर दिया; क्योंकि यह गाली देने का एक ज़रीआ (साधन) था। और अल्लाह तआला का कथन: "और उन लोगों को बुरा-भला न कहो जिन्हें वे अल्लाह के सिवा पुकारते हैं, कहीं ऐसा न हो कि वे शत्रुता और अज्ञानता वश अल्लाह को बुरा-भला कहने लगें" [अल-अनआम: १०८], अतः उनके देवताओं को बुरा-भला कहने से रोक दिया गया इस डर से कि वे भी वैसा ही करेंगे। और अल्लाह तआला का कथन: "और उनसे उस बस्ती के बारे में पूछो जो समुद्र के किनारे बसी थी" [अल-आराफ़: १६३] आयत, तो अल्लाह तबारक व तआला ने उन पर शनिवार के दिन शिकार करना हराम कर दिया था। फिर मछलियाँ उनके पास शनिवार के दिन "शराअन" यानी स्पष्ट रूप से आती थीं, तो उन्होंने शनिवार को उन्हें रोक दिया और रविवार को उन्हें पकड़ लिया। वह रोकना शिकार करने का एक ज़रीआ था, इसलिए अल्लाह ने उन्हें बंदर और सूअर बना दिया, और अल्लाह ने हमें इसके बारे में चेतावनी देने के उद्देश्य से इसका उल्लेख किया। और आदम और हव्वा के लिए अल्लाह तआला का कथन: "और इस वृक्ष के निकट न जाना" [अल-बकरा: ३५], और यह पहले आ चुका है (३)।

जहाँ तक सुन्नत की बात है; तो बहुत सी साबित और सही हदीसें हैं, जिनमें से आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस है कि उम्म हबीबा और उम्म सलमा (रज़ियल्लाहु अन्हुन्ना) ने रसूलुल्लाह ﷺ से एक गिरजाघर का ज़िक्र किया - जिसे उन्होंने हबशा (इथियोपिया) में देखा था (४) जिसमें तस्वीरें थीं - तो रसूलुल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: "उन लोगों में जब कोई नेक आदमी होता और वह मर जाता, तो वे उसकी क़ब्र पर मस्जिद बना लेते और उसमें वे तस्वीरें लगा देते। वे लोग अल्लाह के नज़दीक सृष्टि के सबसे बुरे लोग हैं।" इसे बुखारी और मुस्लिम ने उल्लेख किया है (५)।

---

(१) अहकामुल क़ुरआन १/३२। (२) इसकी आयत (४) की तफ़सीर में। (३) १/४५३। (४) (ज़) में: 'रऐनहा' (उन्होंने उसे देखा), और (म) में: 'रअयाहा' (उन दोनों ने उसे देखा)। (५) बुखारी (४२७), और मुस्लिम (५२८) और शब्द उन्हीं के हैं, और यह मुसनद अहमद (२४२५२) में है।

۲۹۴ سورہ البقرہ : آیت ۱۰۴

دوسری بات : اس آیت میں دو دلیلیں ہیں: ایک : ان مبہم الفاظ سے بچنے پر جو تنقیص اور تحقیر کا احتمال رکھتے ہوں ، اور اسی سے کنایہ (تعریض) کے ذریعے تہمت (قذف) لگانے کا حکم نکلتا ہے ، اور ہمارے نزدیک اس پر حد واجب ہوتی ہے، بخلاف ابو حنیفہ، شافعی اور ان کے اصحاب کے جب انہوں نے کہا: کنایہ میں قذف اور غیر قذف دونوں کا احتمال ہے، اور حد ان چیزوں میں سے ہے جو شبہ کی وجہ سے ساقط ہو جاتی ہیں(۱)۔ اور انشاء اللہ تعالیٰ «النور»(۲) میں اس کا بیان آئے گا۔

دوسری دلیل : سدِ ذرائع (برائی کے راستوں کو بند کرنا) اور ان کی حفاظت پر تمسک، اور یہ امام مالک اور ان کے اصحاب کا مذہب ہے، اور ایک روایت میں احمد بن حنبل کا بھی یہی قول ہے، اور اس اصل پر کتاب و سنت نے دلالت کی ہے۔ اور "ذریعہ" سے مراد وہ کام ہے جو اپنی ذات میں ممنوع نہ ہو، لیکن اس کے ارتکاب سے کسی ممنوع کام میں پڑ جانے کا خوف ہو۔

جہاں تک کتاب (قرآن) کا تعلق ہے؛ تو یہ آیت ہے، اور اس سے استدلال کی وجہ یہ ہے کہ یہودی وہ لفظ کہتے تھے، اور وہ ان کی زبان میں گالی تھی، پس جب اللہ نے ان سے یہ بات جانی تو اس لفظ کے بولنے سے منع فرما دیا؛ کیونکہ یہ گالی دینے کا ذریعہ تھا۔ اور اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے : ﴿وَلَا تَسُبُّوا الَّذِينَ يَدْعُونَ مِن دُونِ اللَّهِ فَيَسُبُّوا اللَّهَ عَدْوًا بِغَيْرِ عِلْمٍ﴾ [الأنعام : ۱۰۸]، پس ان کے معبودوں کو گالی دینے سے منع فرمایا اس خوف سے کہ وہ اس کے بدلے میں ایسا ہی کریں گے۔ اور اللہ تعالیٰ کا ارشاد : ﴿وَسْئَلْهُمْ عَنِ الْقَرْيَةِ الَّتِي كَانَتْ حَاضِرَةَ الْبَحْرِ﴾ [الأعراف : ۱۶۳] والی آیت، پس اللہ تبارک و تعالیٰ نے ان پر ہفتے کے دن شکار کرنا حرام کر دیا تھا، تو مچھلیاں ان کے پاس ہفتے کے دن "شرعاً" یعنی ظاہر ہو کر آتی تھیں، تو انہوں نے ہفتے کے دن انہیں روک لیا اور اتوار کے

دن پکڑ لیا، اور وہ روکنا شکار کرنے کا ذریعہ تھا، پس اللہ نے انہیں بندر اور سور بنا دیا، اور اللہ نے ہمارے لیے اس کا ذکر اس سے ڈرانے کے معنی میں کیا ہے۔ اور آدم و حوا کے لیے اللہ تعالیٰ کا ارشاد : ﴿وَلَا تَقْرَبَا هَذِهِ الشَّجَرَةَ﴾ [البقرة : ٣٥]، اور یہ پہلے گزر چکا ہے(٣)۔

اور رہی بات سنت کی؛ تو بہت سی ثابت اور صحیح احادیث ہیں، ان میں سے عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث ہے کہ ام حبیبہ اور ام سلمہ رضی اللہ عنہن نے رسول اللہ ﷺ سے ایک گرجے کا ذکر کیا - جو انہوں نے حبشہ میں دیکھا تھا(٤) جس میں تصویریں تھیں - تو رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ان لوگوں میں جب کوئی نیک آدمی ہوتا اور وہ فوت ہو جاتا تو وہ اس کی قبر پر مسجد بنا لیتے اور اس میں وہ تصویریں بنا دیتے، وہ لوگ اللہ کے نزدیک بدترین مخلوق ہیں۔" اسے بخاری اور مسلم نے روایت کیا ہے(٥)۔

---

(١) احکام القرآن ١/ ٣٢۔ (٢) اس کی آیت (٤) کی تفسیر میں۔ (٣) ١/ ٤٥٣۔ (٤) (ظ) میں : "رأينها" ، اور (م) میں : "رأياها" ہے۔ (٥) بخاری (٤٢٧)، اور مسلم (٥٢٨) اور یہ لفظ انہی کے ہیں، اور یہ مسند احمد (٢٤٢٥٢) میں ہے۔

Page 295 Surah Al-Baqarah: Ayah 104

Our scholars said(1): Their predecessors did that so they might find comfort in seeing those images, and remember their righteous states, thus striving as they strove and worshipping Allah, Mighty and Majestic is He, at their graves. Periods of time passed for them in that way, then they were succeeded by generations(2) who were ignorant of their purposes, and Satan whispered to them that 'your fathers and grandfathers(3) used to worship these images(4),' so they worshipped them. Thus, the Prophet ﷺ warned against the likes of that, and was stern in denouncing and threatening those who did so. He blocked the means leading to that, saying: "Allah's wrath is intensified against a people who take the graves of their prophets and righteous ones as places of worship." And he said: "O Allah, do not make my grave an idol that is worshipped."(5)

Muslim narrated from Al-Nu'man bin Bashir who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ say: "The lawful is clear and the unlawful is clear, and between them are matters of doubt; so whoever avoids doubtful matters has cleared himself in regard to his religion and his honor, and whoever falls into doubtful matters falls into the unlawful, like a shepherd who grazes around a sanctuary, being about to fall into it."(6) the hadith(7). Thus, he prohibited approaching doubtful matters for fear of falling into prohibitions, and that is a blocking of the means.(8)

Footnotes: (1) Al-Mufhim 2/127-128, and see Ikmal al-Mu'allim 2/450. (2) In Al-Mufhim: "khalaf" (successors). (3) In (Zha') and Al-Mufhim: "their fathers and grandfathers". (4) In (Meem): "the image". (5) This hadith and the one before it were narrated by Malik in Al-Muwatta 1/172, and through his chain by Ibn Sa'd in Al-Tabaqat 2/240-241 from 'Ata' bin Yasar as a mursal report. Its wording is: "O Allah, do not make my grave an idol that is worshipped; Allah's anger is severe against a people who took the graves of their prophets as places of worship." Ahmad narrated it in Al-Musnad (7358) and Ibn Sa'd in Al-Tabaqat 2/241-242 from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, and its wording is: "O Allah, do not make my grave an idol; Allah cursed a people who took the graves of their prophets as places of worship." It is a sahih (authentic) hadith. (6) In (Kha') and (Zha'): "yarta'" (grazes), and it is a narration in Muslim. (7) Sahih Muslim (1599) and its wording in it: "Indeed the lawful is clear and the unlawful is clear, and between them are doubtful matters which many people do not know, so whoever avoids doubtful matters..." Also narrated by Al-Bukhari (52) and (2051) similarly, and it is in Musnad Ahmad (18347).

(8) In (Zha') and (Dal): "Al-Dhari'ah" (the means), and in (Meem): "saddan lil-dhari'ah" (as a blocking of the means).

पृष्ठ २९५ सूरह अल-बकरा: आयत १०४

हमारे विद्वानों ने कहा(१): उनके पूर्वजों ने ऐसा इसलिए किया ताकि वे उन चित्रों को देखकर सुकून महसूस करें, और उनकी नेक स्थितियों को याद करें, इस प्रकार वे भी वैसी ही मेहनत करें और उनकी कब्रों के पास अल्लाह महान और प्रतापी की इबादत करें। उनके लिए इस तरह से लंबे समय बीत गए, फिर उनके बाद ऐसी पीढ़ियाँ(२) आईं जो उनके उद्देश्यों से अनभिज्ञ थीं, और शैतान ने उन्हें बहकाया कि 'तुम्हारे बाप-दादा(३) इन मूर्तियों(४) की पूजा करते थे,' तो उन्होंने उनकी पूजा शुरू कर दी। इसलिए, पैगंबर ﷺ ने इसके समान कार्यों के खिलाफ चेतावनी दी, और ऐसा करने वालों की कड़ी निंदा की और उन्हें डराया। उन्होंने उन रास्तों को बंद कर दिया जो इसकी ओर ले जाते थे, और कहा: "उन लोगों पर अल्लाह का प्रकोप तीव्र हो गया जिन्होंने अपने पैगंबरों और नेक लोगों की कब्रों को पूजा स्थल बना लिया।" और उन्होंने कहा: "ऐ अल्लाह, मेरी कब्र को ऐसा बुत न बनाना जिसकी पूजा की जाए।"(५)

मुस्लिम ने नुमान बिन बशीर से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को कहते सुना: "हलाल स्पष्ट है और हराम स्पष्ट है, और उन दोनों के बीच संदेहास्पद मामले हैं; अतः जिसने संदेहास्पद मामलों से परहेज किया, उसने अपने धर्म और अपने सम्मान की रक्षा की, और जो संदेहास्पद मामलों में पड़ा, वह हराम में पड़ गया, उस चरवाहे की तरह जो किसी सुरक्षित क्षेत्र (चरागाह) के आस-पास चराता है, और करीब है कि वह उसमें प्रवेश कर जाए।"(६) हदीस(७)। इस प्रकार, उन्होंने हराम में पड़ने के डर से संदेहास्पद मामलों की ओर जाने से मना किया, और यह बुराई के रास्तों को बंद करना (सद्द-ए-ज़रई) है।(८)

पाद-टिप्पणियाँ: (१) अल-मुफहिम २/१२७-१२८, और देखें इकमल अल-मुअल्लिम २/४५०। (२) अल-मुफहिम में: "खलफ़" (उत्तराधिकारी)। (३) (ज़ा) और अल-मुफहिम में: "उनके बाप-दादा"। (४) (मीम) में: "चित्र"। (५) यह हदीस और इससे पहले वाली हदीस मलिक ने अल-मुवत्ता १/१७२ में रिवायत की है, और उनके माध्यम से इब्न साद ने अल-तबाक़ात २/२४०-२४१ में अता बिन यसार से मुरसल के रूप में। इसके शब्द हैं: "ऐ अल्लाह, मेरी कब्र को ऐसा बुत न बनाना जिसकी पूजा की जाए; उन लोगों पर अल्लाह का गुस्सा बहुत सख्त है जिन्होंने अपने नबियों की कब्रों को मस्जिद बना लिया।" अहमद ने इसे अल-मुसनद (७३५८) में और इब्न साद ने अल-तबाक़ात २/२४१-२४२ में अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से रिवायत किया है और इसके शब्द हैं: "ऐ अल्लाह, मेरी कब्र को बुत न बनाना; अल्लाह ने उन लोगों पर लानत की जिन्होंने अपने नबियों की कब्रों को मस्जिद बना लिया।"

यह एक सहीह हदीस है। (६) (खा) और (ज़ा) में: "यरतअ" (चरता है), और यह मुस्लिम में एक रिवायत है। (७) सहीह मुस्लिम (१५९९) और इसमें इसके शब्द हैं: "बेशक हलाल वाज़ेह (स्पष्ट) है और हराम वाज़ेह है, और इन दोनों के बीच कुछ मुश्तबह (संदेहास्पद) चीज़ें हैं जिन्हें बहुत से लोग नहीं जानते, तो जो मुश्तबह चीज़ों से बचा..." इसे बुखारी (५२) और (२०५१) ने भी इसी तरह रिवायत किया है, और यह मुसनद अहमद (१८३४७) में है। (८) (ज़ा) और (दाल) में: "अल-ज़रिया", और (मीम) में: "सद्दन लिल-ज़रिया" (साधनों को रोकने के रूप में)।

صفحہ ۲۹۵ سورۃ البقرہ: آیت ۱۰۴

ہمارے علماء نے کہا(۱): پس ان کے پہلوں نے ایسا کیا تاکہ وہ ان تصویروں کو دیکھ کر مانوس ہوں، اور ان کے نیک حالات کو یاد کریں، چنانچہ وہ ان کی طرح محنت کریں اور ان کی قبروں کے پاس اللہ عزوجل کی عبادت کریں، تو ان پر اسی طرح ایک زمانہ بیت گیا، پھر ان کے بعد ایسے ناخلف(۲) آئے جو ان کے مقاصد سے جاہل تھے، اور شیطان نے انہیں وسوسہ ڈالا کہ 'تمہارے باپ دادا(۳) ان تصویروں(۴) کی عبادت کرتے تھے،' تو انہوں نے ان کی عبادت شروع کر دی۔ پس نبی ﷺ نے اس جیسی بات سے ڈرایا، اور ایسا کرنے والے پر سخت نکیر کی اور وعید سنائی، اور اس تک پہنچانے والے ذرائع کو بند کر دیا، چنانچہ فرمایا: "اللہ کا غصہ ان لوگوں پر سخت ہوا جنہوں نے اپنے انبیاء اور صالحین کی قبروں کو مسجدیں بنا لیا۔" اور فرمایا: "اے اللہ، میری قبر کو بت نہ بنانا جس کی عبادت کی جائے۔"(۵)

اور مسلم نے نعمان بن بشیر سے روایت کی ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے ہوئے سنا: "حلال ظاہر ہے، اور حرام ظاہر ہے، اور ان دونوں کے درمیان مشتبہ چیزیں ہیں، پس جو شبہات سے بچا اس نے اپنے دین اور اپنی عزت کو بچا لیا، اور جو شبہات میں پڑا وہ حرام میں پڑ گیا، اس چرواہے کی طرح جو کسی محفوظ چراگاہ کے ارد گرد چراتا ہے اور قریب ہے کہ اس میں جا پڑے"(۶) الحدیث(۷)۔ پس حرام میں پڑنے کے ڈر سے شبہات کی طرف پیش قدمی سے روک دیا، اور یہ سدِّ ذریعہ (ذرائع کا بند کرنا) ہے(۸)۔

حواشی: (۱) المفہم ۱۲۷/۲-۱۲۸، اور دیکھئے اکمال المعلم ۴۵۰/۲۔ (۲) المفہم میں ہے: خَلْف۔ (۳) (ظ) اور المفہم میں ہے: ان کے باپ دادا۔ (۴) (م) میں ہے: تصویر۔ (۵) یہ حدیث اور اس سے پہلی حدیث امام مالک نے الموطأ ۱۷۲/۱ میں روایت کی ہیں، اور ان کے طریق سے ابن سعد نے

الطبقات ٢/٢٤٠-٢٤١ میں عطاء بن یسار سے مرسلاً روایت کی ہے۔ اس کے الفاظ یہ ہیں: "اے اللہ، میری قبر کو بت نہ بنانا جس کی عبادت کی جائے، اللہ کا غصہ ان لوگوں پر سخت ہوا جنہوں نے اپنے انبیاء کی قبروں کو مسجدیں بنا لیا۔" اور اسے احمد نے المسند (٧٣٥٨) میں اور ابن سعد نے الطبقات ٢/٢٤١-٢٤٢ میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے اور اس کے الفاظ یہ ہیں: "اے اللہ، میری قبر کو بت نہ بنانا، اللہ نے ان لوگوں پر لعنت کی جنہوں نے اپنے انبیاء کی قبروں کو مسجدیں بنا لیا۔" اور یہ ایک صحیح حدیث ہے۔ (۶) (خ) اور (ظ) میں "یرتع" ہے، اور یہ مسلم کے ہاں ایک روایت ہے۔ (٧) صحیح مسلم (١٥٩٩) اور اس کے الفاظ یہ ہیں: "بے شک حلال واضح ہے، اور بے شک حرام واضح ہے، اور ان دونوں کے درمیان مشتبہ چیزیں ہیں جنہیں بہت سے لوگ نہیں جانتے، پس جو شبہات سے بچا..." اور اسے بخاری (٥٢) اور (٢٠٥١) نے بھی اسی طرح روایت کیا ہے، اور یہ مسند احمد (١٨٣٤٧) میں ہے۔ (٨) (ظ) اور (د) میں ہے: الذریعہ، اور (م) میں ہے: سدّاً للذریعہ۔

296

Surah Al-Baqarah: Verse 104

And he ﷺ said: "A servant does not reach the rank of the righteous until he leaves what is harmless for fear of (1) what is harmful." (2)

And he ﷺ said: "Indeed, among the major sins is for a man to insult his parents." They said: O Messenger of Allah, does a man insult his parents?! He said: "Yes, he insults another man's father, so that man insults his father; and he insults his mother, so that man insults his mother." (3). So he made exposure to the insult of fathers as if it were the father's own doing.

And he ﷺ said: "When you trade with 'Inah (a form of usurious transaction), and hold on to the tails of cows, and are content with farming, and abandon Jihad, Allah will inflict upon you a humiliation that He will not lift until you return to your religion." (4).

Abu Ubaid al-Harawi said: 'Inah is when a man sells an item to another man for a known price until a specified term, then buys it back from him for less than the price he sold it for. He said: If a person seeking 'Inah buys an item from another at a known price, takes possession of it, then sells it to the seeker of 'Inah for a higher price until a specified term, then the buyer sells it back to the first seller for cash at a lower price, this is also 'Inah. It is less severe than the first, and it is permissible according to some. It is called 'Inah because cash is obtained by the one seeking 'Inah, as 'Ayn is present wealth, and the buyer only buys it to sell it for present 'Ayn (cash) which he receives immediately (5).

Ibn Wahb narrated from Malik that an Umm Walad of Zaid bin Al-Arqam mentioned to Aisha, may Allah be pleased...

---

(1) In (Kh): "out of fear". (2) In (Z): "harm". The hadith was narrated by Al-Tirmidhi (2451), Ibn Majah (4215), and Al-Bayhaqi in As-Sunan al-Kubra 5/335 from the hadith of Attiyah al-Sa'di, and they have: "lima" instead of "mimma". Al-Tirmidhi said: This is a Hasan Gharib hadith, we do not know it except from this way. (3) Narrated by Ahmad (6529) and Muslim (90) from the hadith of Abdullah bin Amr bin al-Aas, may Allah be pleased with them both. (4) Narrated by Abu Dawood (3462), Ibn Adi in Al-Kamil 5/1998, and Abu Nu'aym in Al-Hilya 5/208-209 through Abu Abd al-Rahman al-Khorasani, from Ata al-Khorasani, from Nafi', from Ibn Umar, with it. Abu Nu'aym said: Gharib from the hadith of Ata from Nafi', only Haywah narrated it from Ishaq,

and Al-Dhahabi mentioned it in Mizan al-I'tidal 4/547 in the biography of Abu Abd al-Rahman al-Khorasani and mentioned that this hadith is among his rejected (munkar) narrations. Ahmad also narrated it similarly in Al-Musnad (4825) through Ata bin Abi Rabah, from Ibn Umar. And Ata did not hear from Ibn Umar. (5) Al-Azhari mentioned it in Tahdhib al-Lughah 3/207, and did not attribute it.

296

सूरा अल-बकरा: आयत 104

और उन्होंने ﷺ कहा: "एक बंदा तब तक मुत्तकियों (परहेजगारों) की श्रेणी में नहीं पहुँचता जब तक कि वह नुकसानदेह चीज़ के डर (1) से उस चीज़ को भी न छोड़ दे जिसमें कोई बुराई नहीं है।" (2)

और उन्होंने ﷺ कहा: "बड़े गुनाहों (कबीरा गुनाहों) में से यह है कि कोई आदमी अपने माता-पिता को गाली दे।" लोगों ने पूछा: ऐ अल्लाह के रसूल, क्या कोई आदमी अपने माता-पिता को गाली दे सकता है?! उन्होंने फरमाया: "हाँ, वह किसी दूसरे के पिता को गाली देता है, तो वह उसके पिता को गाली देता है; और वह उसकी माँ को गाली देता है, तो वह उसकी माँ को गाली देता है।" (3)। तो उन्होंने माता-पिता को गाली देने के अवसर पैदा करने को खुद माता-पिता को गाली देने जैसा करार दिया.

और उन्होंने ﷺ कहा: "जब तुम 'ईना' (एक प्रकार का ब्याज आधारित लेनदेन) का व्यापार करने लगोगे, और गायों की पूंछ थाम लोगे, और खेती-बाड़ी से संतुष्ट हो जाओगे, और जिहाद छोड़ दोगे, तो अल्लाह तुम पर ऐसी ज़िल्लत (अपमान) थोप देगा जिसे वह तब तक नहीं हटाएगा जब तक तुम अपने दीन (धर्म) की ओर नहीं लौट आओगे।" (4)।

अबू उबैद अल-हरवी ने कहा: 'ईना' यह है कि एक व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को एक वस्तु एक निश्चित मूल्य पर एक निश्चित अवधि के लिए बेचता है, फिर उसे उससे उस मूल्य से कम में खरीद लेता है जिस पर उसने उसे बेचा था। उन्होंने कहा: यदि 'ईना' चाहने वाला किसी दूसरे से एक निश्चित मूल्य पर कोई वस्तु खरीदता है, उस पर कब्जा कर लेता है, फिर उसे 'ईना' चाहने वाले को एक निश्चित अवधि के लिए अधिक मूल्य पर बेच देता है, फिर खरीदार उसे पहले विक्रेता को नकद कम मूल्य पर बेच देता है, तो यह भी 'ईना' है। यह पहले वाले से हल्का है, और कुछ के अनुसार यह जायज़ है। इसे 'ईना' इसलिए कहा जाता है क्योंकि 'ईना' चाहने वाले को नकद (ऐन) प्राप्त हो जाता है, क्योंकि 'ऐन' का अर्थ है मौजूद धन, और खरीदार इसे केवल इसलिए खरीदता है ताकि इसे नकद (ऐन) के लिए बेच सके जो उसे तुरंत प्राप्त हो जाए (5)।

इब्न वहब ने मालिक से रिवायत की है कि ज़ैद बिन अल-अरकम की एक उम्मे वलद ने आयशा (रज़ि.) से ज़िक्र किया...

(1) (ख) में: "डर से"। (2) (ज़) में: "बुराई"। हदीस को तिरमिज़ी (2451), इब्न माजह (4215) और बैहक़ी ने अस-सुनन अल-कुबरा 5/335 में अत्तिया अल-सादी की हदीस से उद्धृत किया है, और उनके पास "मिम्मा" के बजाय "लिमा" है। तिरमिज़ी ने कहा: यह हदीस हसन गरीब है, हम इसे केवल इसी तरीके से जानते हैं। (3) इसे अहमद (6529) और मुस्लिम (90) ने अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है। (4) इसे अबू दाऊद (3462), इब्न अदी ने अल-कामिल 5/1998 में, और अबू नुऐम ने अल-हिल्या 5/208-209 में अबू अब्दुर रहमान अल-खुरासानी के माध्यम से, अता अल-खुरासानी से, नाफ़े से, इब्न उमर से रिवायत किया है। अबू नुऐम ने कहा: अता की नाफ़े से रिवायत गरीब है, इसे केवल हयवा ने इसहाक़ से रिवायत किया है, और अज़-ज़हबी ने इसे मिज़ान अल-एतिदाल 4/547 में अबू अब्दुर रहमान अल-खुरासानी की जीवनी में उल्लेख किया है और कहा है कि यह हदीस उनकी मुनकर (अस्वीकृत) रिवायतों में से है। अहमद ने भी इसे अल-मुसनद (4825) में अता बिन अबी रबाह के माध्यम से इब्न उमर से रिवायत किया है। और अता ने इब्न उमर से नहीं सुना था। (5) अल-अज़हरी ने इसे तहज़ीब अल-लुग़ह 3/207 में उल्लेख किया है, और इसे किसी की ओर श्रेय नहीं दिया है।

296

سورة البقرہ: آیت 104

اور آپ ﷺ نے فرمایا: ”بندہ متقین کے درجے تک نہیں پہنچتا جب تک کہ وہ اس چیز کو جس میں کوئی حرج نہ ہو، اس چیز کے ڈر سے نہ چھوڑ دے جس میں حرج (برائی) ہو۔“ (1) (2)

اور آپ ﷺ نے فرمایا: ”کبیرہ گناہوں میں سے یہ ہے کہ آدمی اپنے والدین کو گالی دے۔“ صحابہ نے عرض کیا: اے اللہ کے رسول! کیا کوئی آدمی اپنے والدین کو گالی دیتا ہے؟! آپ ﷺ نے فرمایا: ”ہاں، وہ کسی دوسرے کے باپ کو گالی دیتا ہے، تو وہ اس کے باپ کو گالی دیتا ہے؛ اور وہ اس کی ماں کو گالی دیتا ہے، تو وہ اس کی ماں کو گالی دیتا ہے۔“ (3) پس آپ نے والدین کو گالی دینے کا سبب بننے کو خود والدین کو گالی دینے کے مترادف قرار دیا۔

اور آپ ﷺ نے فرمایا: ”جب تم بیع عینہ (سودی لین دین کی ایک قسم) کرنے لگو گے، اور بیلوں کی دمیں تھام لو گے، اور کھیتی باڑی پر راضی ہو جاؤ گے، اور جہاد چھوڑ دو گے، تو اللہ تم پر ایسی ذلت مسلط کر دے گا جسے وہ تم سے اس وقت تک نہیں ہٹائے گا جب تک تم اپنے دین کی طرف رجوع نہ کر لو۔“ (4)

ابو عبید ہروی کہتے ہیں: عینہ یہ ہے کہ آدمی کسی دوسرے سے ایک چیز معلوم قیمت پر ایک متعین مدت کے لیے فروخت کرے، پھر اسے اس قیمت سے کم میں خرید لے جس پر اس نے اسے فروخت کیا تھا۔ انہوں نے کہا: اگر عینہ کا طالب کسی دوسرے سے معلوم قیمت پر کوئی چیز خریدے، اس پر قبضہ کرے، پھر اسے عینہ کے طالب کو زیادہ قیمت پر متعین مدت کے لیے فروخت کر دے، پھر خریدار اسے پہلے بیچنے والے کو نقد کم قیمت پر بیچ دے، تو یہ بھی عینہ

ہے، اور یہ پہلی قسم سے کچھ ہلکی ہے، اور بعض کے نزدیک جائز ہے۔ اسے عینہ اس لیے کہا گیا کیونکہ عینہ والے کو نقد (عین) حاصل ہو جاتا ہے، اس لیے کہ 'عین' سے مراد موجود مال ہے، اور خریدار اسے صرف اس لیے خریدتا ہے تاکہ اسے نقد (عین) کے بدلے بیچ دے جو اسے فوراً حاصل ہو جائے۔ (5)

اور ابن وہب نے مالک سے روایت کی ہے کہ زید بن ارقم کی ایک ام ولد نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے ذکر کیا...

---

(1) (خ) میں: "خوف سے"۔ (2) (ز) میں: "بأس" (برائی)۔ اس حدیث کو ترمذی (2451)، ابن ماجہ (4215) اور بیہقی نے السنن الکبریٰ 335/5 میں عطیہ السعدی کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور ان کے پاس "مما" کی جگہ "لما" ہے۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن غریب ہے، ہم اسے صرف اسی طریق سے جانتے ہیں۔ (3) اسے احمد (6529) اور مسلم (90) نے عبداللہ بن عمرو بن العاص رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (4) اسے ابو داؤد (3462)، ابن عدی نے الکامل 1998/5 میں، اور ابو نعیم نے الحلیہ 208-209/5 میں ابوعبدالرحمن الخراسانی کے طریق سے، عطا الخراسانی سے، نافع سے، ابن عمر سے روایت کیا ہے۔ ابو نعیم نے کہا: عطا کی نافع سے روایت غریب ہے، اسے صرف حیوہ نے اسحاق سے روایت کیا ہے، اور ذہبی نے اسے میزان الاعتدال 547/4 میں ابوعبدالرحمن الخراسانی کے ترجمہ میں ذکر کیا ہے اور بتایا ہے کہ یہ حدیث ان کی منکر روایات میں سے ہے۔ احمد نے بھی اسے المسند (4825) میں عطا بن ابی رباح کے طریق سے ابن عمر سے روایت کیا ہے، جبکہ عطا نے ابن عمر سے نہیں سنا۔ (5) اسے ازہری نے تہذیب اللغۃ 207/3 میں ذکر کیا ہے، اور اسے کسی کی طرف منسوب نہیں کیا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 104 297

...from her, that she sold a slave to Zayd for eight hundred (dirhams) until the time of payment (ata'), then she bought him back from him for six hundred in cash. Aisha said: "How evil is what you sold, and how evil is what you bought! Tell Zayd that he has nullified his jihad with the Messenger of Allah (peace be upon him) unless he repents" (1). Something like this is not said based on mere opinion; because the knowledge of actions being nullified cannot be reached except through revelation (wahy). Thus, it is established that it is attributed (marfu') to the Prophet (peace be upon him). Umar ibn al-Khattab (may Allah be pleased with him) said: "Leave riba (usury) and doubt." And Ibn Abbas (may Allah be pleased with both) forbade exchange of dirhams for dirhams with a piece of silk (harira) between them (2). I say: These are the evidences we have for "blocking the means" (sadd al-dhara'i'). Upon this, the Malikis built the Book of Al-Ajal (Future Deliveries) and other issues in sales and so on. The Shafi'is do not have a Book of Al-Ajal because, to them, these are different independent contracts; they said: "The original state of things is based on outward appearance, not on conjecture." The Malikis made the commodity a mere legalizing intermediate (muhallilah) to reach a state where dirhams are exchanged for more dirhams, and this is riba itself, so know it. Thirdly: The Almighty's saying: {Do not say "Rā'inā"} is a prohibition that implies impermissibility (tahrim), as previously mentioned. Al-Hasan read it as "Rā'inan" with tanwin. He said: meaning, "scandalous speech," which is a gerund (masdar), and its accusative case (nasb) is by the verb "to say"; meaning: do not speak foolishness (ru'una) (3). Zirr ibn Hubaysh (4) and Al-A'mash read it as: "Rā'ūnā" (5). It is said for what protrudes from a mountain: "ra'n," and the mountain is "ar'an" (towering/peaked). And an "ar'an" army means scattered. Similarly, an "ar'an" man means his arguments are scattered, his intellect is not cohesive, according to Al-Nahhas (6). And Ibn...

(1) Narrated by Abd al-Razzaq (14813), al-Daraqutni in his Sunan 3/52, and al-Bayhaqi in al-Sunan al-Kubra 5/330-331. The author will mention it in full in the tafsir of verse (275), issue (21). (2) Meaning a piece of silk fabric, as in al-Mughni 6/261. In version (d) it appeared as "hariza", which is an error. The report was mentioned by Ibn Sahnun in al-Mudawwanah 4/118, and Ibn Qayyim al-Jawziyyah attributed it to Mutayyin in Tahdhib al-Sunan 5/101. Another narration mentioned by Ibn al-Qayyim clarifies the report: Ibn Abbas was asked about a man who sold a piece of silk to another for a hundred, then bought it back for fifty. He said: "Dirhams for dirhams with a difference, with silk in between." (3) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/254, and Al-

Qira'at al-Shadhah p. 9. (4) Abu Maryam al-Asadi, a reciter from Kufa, lived during the Jahiliyya period and died in 81 AH at the age of 120. Other things were said about his age. Al-Siyar 4/166. (5) We did not find it among the readings of Zirr ibn Hubaysh and Al-A'mash. What is in Al-Qira'at al-Shadhah p. 9 is that it's the reading of Ibn Mas'ud, and in Al-Bahr al-Muhit 1/339 it's the reading of Ibn Mas'ud and Ubayy. (6) I'rab al-Qur'an 1/254.

सूरा अल-बक़रा: आयत १०४ २९७

...उनसे कि उन्होंने जैद को एक गुलाम आठ सौ (दिरहम) में अता (भुगतान के समय) तक के लिए बेचा, फिर उन्होंने उसे उनसे छह सौ नकद में वापस खरीद लिया। आयशा ने कहा: "कितना बुरा है जो तुमने बेचा, और कितना बुरा है जो तुमने खरीदा! ज़ैद को बता दो कि उसने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के साथ अपना जिहाद शून्य कर दिया है, जब तक कि वह तौबा न करे" (१)। और ऐसी बात केवल राय के आधार पर नहीं कही जाती; क्योंकि कार्यों के शून्य होने का ज्ञान केवल वही (रहस्योद्घाटन) के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार, यह स्थापित होता है कि यह पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की ओर मरफ़ू(संबद्ध) है। उमर इब्न अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "रिबा (ब्याज) और संदेह को छोड़ दो।" और इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) ने उन दिरहमों के बदले दिरहमों के विनिमय से मना किया जिनके बीच एक रेशमी कपड़ा (हरीरा) हो (२)। मैंने कहा: ये वे प्रमाण हैं जो "साधनों को बंद करने" (सद्द अल-ज़राई) के लिए हमारे पास हैं। इसी पर मलिकियों ने 'किताब अल-अजाल' (भविष्य की सुपुर्दगी) और बिक्री आदि के अन्य मुद्दों का निर्माण किया। शाफियों के पास 'किताब अल-अजाल' नहीं है, क्योंकि उनके अनुसार, ये अलग-अलग स्वतंत्र अनुबंध हैं; उन्होंने कहा: "चीजों की मूल स्थिति उनके बाहरी स्वरूप पर आधारित होती है, अनुमान पर नहीं।" मलिकियों ने वस्तु को केवल एक वैध बनाने वाला माध्यम (मुहल्लिलाह) बनाया, ताकि उस स्थिति तक पहुँचा जा सके जहाँ दिरहमों का विनिमय अधिक दिरहमों के लिए किया जाए, और यही साक्षात् रिबा है, इसे जान लें। तीसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {ला तक़ूलू रा'इना (रा'इना मत कहो)} एक निषेध है जिसका अर्थ हराम (प्रतिबंध) है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है। अल-हसन ने इसे "रा'इनान" तनवीन के साथ पढ़ा। उन्होंने कहा: अर्थात, "घृणित कथन," जो एक संज्ञा (मस्दर) है, और इसका कर्मकारक (नस्ब) 'कहने' की क्रिया से है; अर्थात: मूर्खता (रु'ऊना) की बातें न कहें (३)। ज़िर्र इब्न हुबैश (४) और अल-आमश ने इसे पढ़ा: "रा'ऊना" (५); पहाड़ के उभरे हुए हिस्से के लिए "रअ'न" कहा जाता है, और पहाड़ "अर'अन" (ऊँचा/चोटीदार) होता है। और "अर'अन" सेना का अर्थ है बिखरी हुई। इसी प्रकार, "अर'अन" व्यक्ति का अर्थ है उसके तर्क बिखरे हुए हैं, उसकी बुद्धि एकजुट नहीं है, अल-नहहास (६) के अनुसार। और इब्न...

(१) इसे अब्द अल-रज्ज़ाक (१४८१३), अल-दाराकुत्नी ने अपनी सुनन ३/५२ में और अल-बैहकी ने अल-सुनन अल-कुबरा ५/३३०-३३१ में उद्धृत किया है। लेखक इसे आयत (२७५), मुद्दा (२१) की

व्याख्या में विस्तार से उल्लेख करेंगे। (२) यानी रेशमी कपड़े का एक टुकड़ा, जैसा कि अल-मुग़नी ६/२६१ में है। संस्करण (द) में यह "हरीज़ा" के रूप में दिखाई दिया, जो एक त्रुटि है। इस रिपोर्ट का उल्लेख इब्न सहनून ने अल-मुदव्वना ४/११८ में किया है, और इब्न कय्यिम अल-जौज़िया ने इसे तहज़ीब अल-सुनन ५/१०१ में मुतैयिन से जोड़ा है। इब्न अल-कय्यिम द्वारा उल्लेखित एक अन्य वर्णन इस रिपोर्ट को स्पष्ट करता है: इब्न अब्बास से एक ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछा गया जिसने दूसरे को एक सौ में रेशम का एक टुकड़ा बेचा, फिर उसे पचास में वापस खरीद लिया। उन्होंने कहा: "दिरहम के बदले दिरहम अंतर के साथ, बीच में रेशम के साथ।" (३) इराब अल-कुरान, अल-नहहास द्वारा १/२५४, और अल-किरात अल-शाज़ा पृष्ठ ९। (४) अबू मरियम अल-असदी, कूफ़ा के एक कारी (पाठक), जाहिलिया काल के दौरान रहे और ८१ हिजरी में १२० वर्ष की आयु में उनकी मृत्यु हुई। उनकी उम्र के बारे में अन्य बातें भी कही गई हैं। अल-सियार ४/१६६। (५) हमें यह ज़िर्र इब्न हुबैश और अल-आमश के पाठों में नहीं मिला। अल-किरात अल-शाज़ा पृष्ठ ९ में जो है वह यह है कि यह इब्न मसूद का पाठ है, और अल-बहर अल-मुहीत १/३३९ में यह इब्न मसूद और उबैय का पाठ है। (६) इराब अल-कुरान १/२५४।

سورة البقرہ: آیت ۱۰۴ ۲۹۷

...ان سے کہ انہوں نے زید سے ایک غلام آٹھ سو (درہم) میں عطاء (ادائیگی کے وقت) تک کے لیے بیچا، پھر اسے ان سے چھ سو نقد میں واپس خرید لیا۔ عائشہ نے کہا: "کتنا برا ہے جو تم نے بیچا، اور کتنا برا ہے جو تم نے خریدا! زید کو بتا دو کہ اس نے اللہ کے رسول ﷺ کے ساتھ اپنا جہاد باطل کر دیا ہے اگر وہ توبہ نہ کرے" (۱)۔ اور ایسی بات محض رائے سے نہیں کہی جاتی؛ کیونکہ اعمال کے باطل ہونے کا علم وحی کے بغیر حاصل نہیں ہو سکتا۔ چنانچہ ثابت ہوا کہ یہ نبی ﷺ کی طرف مرفوع ہے۔ اور عمر بن الخطاب رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "ربا (سود) اور شبہ کو چھوڑ دو۔" اور ابن عباس رضی اللہ عنہما نے درہموں کے بدلے درہموں کے تبادلے سے منع فرمایا جن کے درمیان ریشمی کپڑا (حریرہ) ہو (۲)۔ میں کہتا ہوں: تو یہ وہ دلائل ہیں جو "سد ذرائع" (ذرائع کو روکنے) کے لیے ہمارے پاس ہیں۔ اسی پر مالکیوں نے 'کتاب الآجال' (مستقبل کی ترسیل) اور بیع وغیرہ کے دیگر مسائل کی بنیاد رکھی۔ شافعیوں کے ہاں 'کتاب الآجال' نہیں ہے، کیونکہ ان کے نزدیک یہ مختلف آزاد معاہدے ہیں؛ انہوں نے کہا: "چیزوں کی اصل ظاہر پر ہے، گمان پر نہیں"۔ اور مالکیوں نے سامان کو محض ایک حلال کرنے والا ذریعہ (محللہ) بنا دیا، تاکہ اس کے ذریعے زیادہ درہموں تک پہنچا جا سکے، اور یہی بعینہ ربا ہے، پس اسے جان لو۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {لَا تَقُولُوا رَاعِنَا} ایک ایسی ممانعت ہے جو تحریم (حرام ہونے) کا تقاضا کرتی ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا۔ حسن نے اسے "راعناً" تنوین کے ساتھ پڑھا۔ انہوں نے کہا: یعنی، "فحش کلام،" جو کہ مصدر ہے، اور اس کا نصب 'کہنے' کی وجہ سے ہے؛ یعنی: بے ہودگی (رعونت) کی باتیں نہ کہو (۳)۔ اور زر بن حبیش (۴) اور اعمش نے اسے "راعونا" (۵) پڑھا؛ پہاڑ کے نکلے ہوئے حصے کو "رَعْن" کہا جاتا ہے، اور پہاڑ "ارْعَن" (بلند و چوٹی دار)

ہوتا ہے۔ اور "ارْعَن" لشکر کا مطلب ہے منتشر۔ اسی طرح "ارْعَن" آدمی کا مطلب ہے اس کے دلائل منتشر ہیں، اس کی عقل مجتمع نہیں ہے، نحاس (۶) سے منقول ہے۔ اور ابن...

(۱) اسے عبدالرزاق (۱۴۸۱۳)، دارقطنی نے اپنی سنن ۳/ ۵۲ میں اور بیہقی نے السنن الکبریٰ ۵/ ۳۳۰-۳۳۱ میں روایت کیا ہے۔ مصنف اسے آیت (۲۷۵) کی تفسیر، مسئلہ (۲۱) میں مکمل ذکر کریں گے۔ (۲) یعنی ریشمی کپڑے کا ٹکڑا، جیسا کہ المغنی ۶/ ۲۶۱ میں ہے۔ اور نسخہ (د) میں یہ "حریزہ" واقع ہوا ہے، جو کہ غلطی ہے۔ اس اثر کو ابن سحنون نے المدونہ ۴/ ۱۱۸ میں ذکر کیا ہے، اور ابن قیم الجوزیہ نے تہذیب السنن ۵/ ۱۰۱ میں اسے مطین کی طرف منسوب کیا ہے۔ ابن قیم نے ایک اور روایت ذکر کی ہے جو اس کی وضاحت کرتی ہے: ابن عباس سے ایک ایسے شخص کے بارے میں پوچھا گیا جس نے دوسرے شخص کو ایک سو میں ایک ریشمی کپڑا بیچا، پھر اسے پچاس میں واپس خرید لیا۔ تو انہوں نے فرمایا: "درہموں کے بدلے درہم کمی بیشی کے ساتھ، جن کے درمیان ریشمی کپڑا آ گیا۔" (۳) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۵۴، اور القراءات الشاذہ ص ۹۔ (۴) ابو مریم الاسدی، کوفہ کے قاری، انہوں نے جاہلیت کا زمانہ پایا، ۸۱ھ میں ۱۲۰ سال کی عمر میں وفات پائی۔ ان کی عمر کے بارے میں اور بھی اقوال ہیں۔ السیر ۴/ ۱۶۶۔ (۵) ہمیں یہ زر بن حبیش اور اعمش کی قرات میں نہیں ملی۔ القراءات الشاذہ ص ۹ میں جو ہے وہ یہ ہے کہ یہ ابن مسعود کی قرات ہے، اور البحر المحیط ۱/ ۳۳۹ میں ابن مسعود اور ابی کی قرات سے ہے۔ (۶) اعراب القرآن ۱/ ۲۵۴۔

Surah Al-Baqarah: Verse 104 298

Fars (1): The man became 'Ra'una' (foolish), meaning: reckless. A woman is called 'Ra'na'. Basra was called 'Ra'na' because it is compared to the 'Ra'n' (a peak or projecting part) of a mountain (2), as Ibn Durayd said (3), and he recited a verse by Al-Farazdaq: "If it weren't for Ibn Utbah, Amr, and the hope in him, the reckless Basra would not have been a homeland for me." (4)

Fourth: His words (Exalted is He): {And say: Unzurna [Look upon us]}. They were commanded to address Him ﷺ with reverence and exaltation. The meaning is: attend to us, and look at us. The preposition was omitted, as the poet said: "Manifest in beauty and goodness, they look... just as the gazelles look at the Arak trees." (5) Meaning: at the Arak trees. Mujahid said: The meaning is: help us understand and clarify for us (6). It was also said: The meaning is: wait for us, and be patient with us (7); he said: "For if you two wait for me for an hour of time, it will benefit me with Umm Jundub." (8)

The apparent meaning is seeking a gaze of the eye accompanied by consideration of the state, and this is the meaning of "Ra'ina" [listen to us]. So the word was changed for the believers, and the [malicious] connection of the Jews was removed (9).

Al-A'mash and others read it as: "Anzirna" [give us time] with the cutting Alif (Hamzat al-Qat') and a kasra under the 'Za', meaning: delay us, and give us respite until we understand from you, and receive from you (10); the poet said: "O Aba Hind, do not hasten against us, and give us time, we shall inform you of the certainty." (11)

(1) Mujmal al-Lughah 2/383-384. (2) In (Kh): "al-Habl" (the rope), in (D), (Z), and (Zha): "al-Khayl" (the horses). What is established is from (M) and original sources. (3) Jamharat al-Lughah 2/388. (4) We did not find it in his Diwan. It is in Jamharat al-Lughah, Mujmal al-Lughah, and Adab al-Katib p. 429, where "al-Hamqa'" (the foolish) is used instead of "al-Ra'na'", in which case there is no proof in it. (5) The verse is by Ubayd Allah ibn Qays al-Ruqayyat, in his Diwan p. 88, where "al-Sarw" is used instead of "al-Husn". (6) Tafsir Mujahid: 85, cited by al-Tabari in his Tafsir 2/383. Mentioned by al-Mawardi in his Tafsir 1/170. (7) Mentioned by al-Baghawi in his Tafsir 1/102. (8) The verse is by Imru' al-Qais, in his Diwan p. 41. (9) In (D): "wa dhak" (and that). (10) Al-Muharrar al-Wajiz 1/189. (11) The verse is from the Mu'allaqah of 'Amr ibn Kulthum, in Sharh al-Qasa'id al-Ashr by al-Tibrizi p. 225.

सूरह अल-बकरा: आयत 104 298

फ़ार्स (1): आदमी 'रअना' हो गया, यानी: बेवक़ूफ़। औरत को 'रअना' कहा जाता है। बसरा को 'रअना' कहा गया क्योंकि इसकी तुलना पहाड़ के'रअ'न' (शिखर या उभरे हुए हिस्से) से की जाती है (2), इब्न दुरैद ने यह कहा (3), और अल-फ़रज़दक़ का यह शेर पढ़ा: "अगर इब्न उत्बाह, अम्र और उनसे उम्मीद न होती, तो बेवक़ूफ़ बसरा मेरे लिए वतन न होता।" (4)

चौथा: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और कहो 'अनज़ुरना'} उन्हें हुक्म दिया गया कि आप ﷺ को सम्मान और गरिमा के साथ संबोधित करें। और अर्थ है: हमारी ओर मुड़ें, और हमें देखें, यहाँ प्रपोजीशन हटा दिया गया है, जैसा कि कवि ने कहा: "सुंदरता और अच्छाई में प्रकट, वे देखते हैं... जैसे हिरण अराक के पेड़ों की ओर देखते हैं।" (5) यानी: अराक के पेड़ों की ओर। मुजाहिद ने कहा: अर्थ है: हमें समझाएं और हमारे लिए स्पष्ट करें (6)। और यह भी कहा गया: अर्थ है: हमारा इंतज़ार करें, और हमारे साथ धैर्य रखें (7); कवि ने कहा: "अगर तुम दोनों ज़माने की एक घड़ी मेरा इंतज़ार करो, तो यह मुझे उम्म जुंदुब के पास फ़ायदा पहुँचाएगा।" (8)

स्पष्ट अर्थ आँखों से देखने का अनुरोध करना है जो स्थिति पर विचार करने के साथ जुड़ा हो, और यही "रा'इना" का अर्थ है। अतः मोमिनों के लिए शब्द बदल दिया गया, और यहूदियों का [गलत] संबंध खत्म हो गया (9)।

अल-अ'मश और अन्य ने इसे 'अनज़िरना' (हम्ज़त अल-क़त' और 'ज़ा' के नीचे कसरा के साथ) पढ़ा है, जिसका अर्थ है: हमें देर दें, और हमें मोहलत दें ताकि हम आपसे समझ सकें और आपसे प्राप्त कर सकें(10); कवि ने कहा: "ऐ अबा हिंद, हमारे विरुद्ध जल्दबाज़ी न करो, और हमें मोहलत दो, हम तुम्हें निश्चितता की ख़बर देंगे।" (11)

(1) मुजमल अल-लुग़ह 2/383-384. (2) (ख) में: 'अल-हबल', (द), (ज़) और (ज़) में: 'अल-खैल'। (म) और मूल स्रोतों से जो प्रमाणित है वह दिया गया है। (3) जमहरत अल-लुग़ह 2/388. (4) हमें यह उनके दीवान में नहीं मिला, यह जमहरत अल-लुग़ह, मुजमल अल-लुग़ह और अदब अल-कातिब पृष्ठ 429 में है, और उसमें: 'अल-रअना' के बजाय 'अल-हमका' है, ऐसी स्थिति में इसमें कोई प्रमाण नहीं है। (5) यह शेर उबैदुल्ला बिन क़ैस अल-रुक़य्यात का है, उनके दीवान पृष्ठ 88 में, जिसमें 'अल-हुस्न' के बजाय 'अल-सरू' है। (6) तफ़सीर मुजाहिद: 85, और इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/383 में उद्धृत किया है। अल-मावर्दी ने अपनी तफ़सीर 1/170 में इसका उल्लेख किया है। (7) अल-

बगवी ने अपनी तफ़सीर 1/102 में इसका उल्लेख किया है। (8) शेर इमरुल क़ैस का है, उनके दीवान पृष्ठ 41 में। (9) (द) में: 'व ज़ाक'। (10) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/189. (11) यह शेर अम्र बिन कुलथूम के मुअल्लक़ा से है, अल-तिब्रीज़ी द्वारा शरह अल-क़साईद अल-अश्र पृष्ठ 225 में।

سورہ البقرہ: آیت ۱۰۴ ۲۹۸

فارس (۱): رَعُنَ الرجلُ يرْعُنُ رَعْناً، پس وہ ارعن ہے، یعنی: بیوقوف۔ اور عورت کو رَعناء کہا جاتا ہے اور بصرہ کو رَعناء پکارا گیا کیونکہ اسے پہاڑ کے رَعن (چوٹی یا ابھرا ہوا حصہ) سے تشبیہ دی جاتی ہے (۲)، ابن دُرید نے یہ بات کہی (۳)، اور فرزدق کا یہ شعر پڑھا: لولا ابنُ عُتْبَةَ عمروٌ والرجاءُ له ما كانت البصرةُ الرَّعناءُ لي وَطَنا (٤)

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَقُولُوا انْظُرْنَا﴾ انہیں حکم دیا گیا کہ آپ ﷺ کو احترام اور عظمت کے ساتھ مخاطب کریں۔ اور معنی ہے: ہماری طرف متوجہ ہوں، اور ہمیں دیکھیں، پس حرفِ تعدیہ کو حذف کر دیا گیا، جیسا کہ شاعر نے کہا: ظاهراتُ الجمال والحُسْنِ يَنْظُر نَ كما ينظُرُ الأراك الظِّباء (٥) یعنی: اراک کے درختوں کی طرف۔ اور مجاہد نے کہا: معنی ہے: ہمیں سمجھائیں اور ہمارے لیے واضح کریں (٦)۔ اور کہا گیا: معنی ہے: ہمارا انتظار کریں، اور ہمارے ساتھ نرمی برتیں (٧)؛ شاعر نے کہا: فإنَّكما إن تَنْظُراني ساعةً من الدَّهْر يَنْفَعْني لَدَى أُمِّ جُنْدَبِ (٨)

اور ظاہر یہ ہے کہ ایسی نگاہ کی درخواست ہے جو حال پر تدبر کے ساتھ ہو، اور یہی "راعنا" کا معنی ہے، پس مومنوں کے لیے یہ لفظ بدل دیا گیا، اور یہودیوں کا [غلط] تعلق ختم ہو گیا (٩)۔

اور الاعمش وغیرہ نے "أنظِرْنا" (ہمزہ کے قطع اور ظاء کے کسرہ کے ساتھ) پڑھا ہے، بمعنی: ہمیں تاخیر دیں، اور ہمیں مہلت دیں تاکہ ہم آپ سے سمجھ سکیں، اور آپ سے حاصل کر سکیں (١٠)؛ شاعر نے کہا: أبا هند فلا تعجل علينا وأنظِرنا نخبرك اليقينا (١١)

(١) مجمل اللغة ٢/ ٣٨٣-٣٨٤۔ (٢) (خ) میں: الحبل، اور (د)، (ز) اور (ظ) میں: الخيل، اور (م) اور مصادر سے جو ثابت ہے وہ درج ہے۔ (٣) جمهرة اللغة ٢/ ٣٨٨۔ (٤) ہمیں ان کے دیوان میں

نہیں ملا، یہ جمهرة اللغة، مجمل اللغة اور ادب الکاتب ص۴۲۹ میں ہے، اور اس میں 'الرعناء' کی جگہ 'الحمقاء' ہے، تب اس میں کوئی دلیل نہیں رہتی۔ (۵) یہ شعر عبید اللہ بن قیس الرقیات کا ہے، ان کے دیوان ص۸۸ میں، اس میں 'الحسن' کی جگہ 'السرو' ہے۔ (٦) تفسیر مجاہد: ۸۵، اور اسے طبری نے اپنی تفسیر ۲/ ۳۸۳ میں نکالا ہے۔ اور ماوردی نے اپنی تفسیر ۱/ ۱۷۰ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۷) بغوی نے اپنی تفسیر ۱/ ۱۰۲ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۸) شعر امرؤ القیس کا ہے، ان کے دیوان ص۴۱ میں۔ (۹) (د) میں: وذاک۔ (۱۰) المحرر الوجیز ۱/ ۱۸۹۔ (۱۱) یہ شعر عمرو بن کلثوم کے معلقہ سے ہے، تبریزی کی شرح القصائد العشر ص۲۲۵ میں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 105 299

Fifth: His saying, the Almighty: {And listen}: When He, the Exalted and Mighty, prohibited and commanded, He urged [people] to listen, which includes obedience, and made it known that for whoever disobeyed His command and disbelieved, there is a painful punishment (1).

His saying, the Almighty: {Neither those who disbelieve from the People of the Scripture nor the polytheists wish that any good should be sent down to you from your Lord. But Allah selects for His mercy whom He wills, and Allah is the possessor of great bounty (105)}.

His saying, the Almighty: {Neither... wish} i.e., they do not desire, and it has been mentioned before (2). {those who disbelieve from the People of the Scripture nor the polytheists} is conjoined to "People". It is also permissible to say: "nor the polytheists" [in the nominative case], conjoining it to "those who". This was stated by Al-Nahhas (3).

{that any good should be sent down to you}: "Min" (from/any) is extra/pleonastic, "good" is the subject of the passive verb (na'ib al-fa'il). And "an" (that) is in the position of the accusative, meaning: by being sent down.

{But Allah selects for His mercy whom He wills}: Ali bin Abi Talib, may Allah be pleased with him, said: "selects for His mercy" means: for His prophethood; He specifically chose Muhammad ﷺ for it (4). A group said: Mercy is the Quran (5).

It was also said: Mercy in this verse is general for all its types that Allah has granted to His servants, past and present (6). It is said: He had mercy (rahima) when he softened. "Al-Ruhm", "al-Marhamah", and "al-Rahmah" have the same meaning, as stated by Ibn Faris (7). Allah's mercy for His servants is His blessing upon them and His forgiveness for them.

{And Allah is the possessor of great bounty}: "Dhu" means possessor.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/189-190. (2) 2/259. (3) I'rab al-Qur'an 1/254, and the speech after it is also from him. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190, and he did not attribute it, but Al-Tabarsi mentioned it in Majma' al-Bayan 1/404. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190. Al-Bukhari extracted it from Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/321 from Mujahid's saying. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190. (7) In Mujmal al-Lughah 2/424, and Maqayis al-Lughah 2/498.

सूरह अल-बकरा: आयत 105 299

पांचवीं बात: अल्लाह तआला का फरमान: {और सुनो}: जब अल्लाह रब्बुल इज़्ज़त ने मना किया और हुक्म दिया, तो उसने सुनने पर ज़ोर दिया, जिसमें आज्ञाकारिता शामिल है, और यह बता दिया कि जो कोई उसके हुक्म की मुख़ालिफ़त (अवज्ञा) करेगा और कुफ्र करेगा, उसके लिए दर्दनाक अज़ाब (सजा) है (1)।

अल्लाह तआला का फरमान: {अहले किताब में से वे लोग जो काफ़िर हुए और न मुशरिक ही यह चाहते हैं कि तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से तुम पर कोई भलाई नाज़िल हो। और अल्लाह अपनी रहमत के लिए जिसे चाहता है चुन लेता है, और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल (अनुग्रह) वाला है (105)}।

अल्लाह तआला का फरमान: {नहीं चाहते} यानी: वे तमन्ना नहीं करते, और यह पहले गुज़र चुका है (2)। {अहले किताब में से वे लोग जो काफ़िर हुए और न मुशरिक} "अहल" पर आधारित है। और यह भी जायज़ है: "और न मुशरिक" [पेश के साथ], इसे "उन लोगों" पर आधारित करते हुए। यह नह्हास ने कहा है (3)।

{कि तुम पर कोई भलाई नाज़िल हो}: "मिन" (से/कोई) ज़ायद (अतिरिक्त) है, "भलाई" कर्मवाच्य क्रिया का कर्ता (नाइबुल फाइल) है। और "अन" (कि) नसब (कर्म) के स्थान पर है, यानी: नाज़िल होने के साथ।

{और अल्लाह अपनी रहमत के लिए जिसे चाहता है चुन लेता है}: अली बिन अबी तालिब (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "अपनी रहमत के लिए चुन लेता है" यानी: अपनी नुबुव्वत (पैगंबरी) के लिए; उसने इसके लिए विशेष रूप से मुहम्मद ﷺ को चुना (4)। कुछ लोगों ने कहा: रहमत से मुराद कुरान है (5)।

और कहा गया है: इस आयत में रहमत अपनी तमाम किस्मों के लिए आम है जो अल्लाह ने अपने बंदों को पहले और अब प्रदान की हैं (6)। कहा जाता है: उसने रहम (दया) की जब वह नरम हुआ। "अर-रुह्म", "अल-मरह़म" और "अर-रह़मत" एक ही अर्थ में हैं, जैसा कि इब्न फ़ारिस ने कहा है (7)। बंदों के लिए अल्लाह की रहमत: उन पर उसका एहसान और उनके लिए उसकी माफ़ी है।

{और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है}: "ज़ू" का अर्थ है वाला या मालिक।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/189-190. (2) 2/259. (3) इराब अल-कुरान 1/254, और इसके बाद की बात भी उन्हीं की है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190, और उन्होंने इसे किसी के नाम नहीं किया, और तबारसी ने मजमा अल-बयान 1/404 में इसका ज़िक्र किया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190. और इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/321 में इसे मुजाहिद के कौल (कथन) से नक़्ल किया है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190. (7) मुजमल अल-लुगा 2/424, और मकायीस अल-लुगा 2/498 में।

سورة البقرہ: آیت 105 299

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَاسْمَعُوا﴾ (اور سنو): جب اللہ تعالیٰ نے منع کیا اور حکم دیا، تو اس نے سننے پر ابھارا جس میں اطاعت شامل ہے، اور بتا دیا کہ جس نے اس کے حکم کی مخالفت کی اور کفر کیا، اس کے لیے دردناک عذاب ہے(1)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿مَّا يَوَدُّ الَّذِينَ كَفَرُوا مِنْ أَهْلِ الْكِتَابِ وَلَا الْمُشْرِكِينَ أَن يُنَزَّلَ عَلَيْكُم مِّنْ خَيْرٍ مِّن رَّبِّكُمْ وَاللَّهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهِ مَن يَشَاءُ وَاللَّهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيمِ (١٠٥)﴾

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿مَّا يَوَدُّ﴾ یعنی: وہ نہیں چاہتے یا تمنا نہیں کرتے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے(2)۔ ﴿الَّذِينَ كَفَرُوا مِنْ أَهْلِ الْكِتَابِ وَلَا الْمُشْرِكِينَ﴾ کا عطف "أهل" پر ہے۔ اور یہ بھی جائز ہے: "ولا المشركون" [رفع کے ساتھ]، اس کا عطف "الذين" پر کرتے ہوئے۔ یہ نحاس نے کہا ہے(3)۔

﴿أَن يُنَزَّلَ عَلَيْكُم مِّنْ خَيْرٍ﴾ میں "من" زائد ہے، "خير" نائب فاعل ہے۔ اور "أن" نصب کے محل میں ہے، یعنی: اس کے نازل کیے جانے کے ساتھ

﴿وَاللَّهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهِ مَن يَشَاءُ﴾ حضرت علی بن ابی طالب رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "اپنی رحمت کے لیے خاص کر لیتا ہے" یعنی: اپنی نبوت کے لیے؛ اللہ نے اس کے لیے محمد ﷺ کو خاص فرمایا(4)۔ ایک گروہ نے کہا: رحمت سے مراد قرآن ہے(5)۔

اور کہا گیا ہے: اس آیت میں رحمت اپنی تمام اقسام کے لیے عام ہے جو اللہ نے اپنے بندوں کو قدیم و جدید میں عطا فرمائی ہیں(6)، کہا جاتا ہے: "رَحِمَ يَرْحَمُ" یعنی جب دل نرم ہوا۔ "الرُّحْمُ"، "المَرْحَمَةُ" اور "الرَّحمةُ" ہم معنی ہیں، یہ ابن فارس نے کہا ہے(7)۔ اللہ کی رحمت اپنے بندوں کے لیے: ان پر اس کا انعام اور ان کے لیے اس کی معافی ہے۔

﴿وَاللَّهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيمِ﴾ "ذو" بمعنی صاحب (والا) ہے۔

(1) المحرر الوجيز 189/1-190- (2) 259/2- (3) إعراب القرآن 254/1، اور اس کے بعد والی کلام بھی ان کی ہی ہے۔ (4) المحرر الوجيز 190/1، اور انہوں نے اسے منسوب نہیں کیا، اور طبرسی نے مجمع البيان 404/1 میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (5) المحرر الوجيز 190/1- اور ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 321/1 میں اسے مجاہد کے قول سے نقل کیا ہے۔ (6) المحرر الوجيز 190/1- (7) مجمل اللغة 424/2، اور مقاييس اللغة 498/2 میں۔

300 Surah Al-Baqarah: Verse 106

Allah Almighty says: {Whatever verse We abrogate or cause to be forgotten, We bring [one] better than it or similar to it. Do you not know that Allah is over all things competent?} [106]

In it are fifteen issues:

First: Allah Almighty's saying: {Whatever verse We abrogate or cause to be forgotten}. "Nunsiha" (cause to be forgotten) is conjoined with "nansakh" (abrogate), and the 'yaa' is omitted due to the jussive (jazm) case. Whoever reads it as "nansa'aha" (delay it), has omitted the dammah from the hamza due to jazm; its meaning will follow (1). "Na'ti" (We bring) is the apodosis of the conditional statement.

This is a great verse regarding rulings. Its occasion was that when the Jews envied the Muslims for turning towards the Kaaba and criticized Islam for that, saying: Muhammad commands his companions with something, then forbids them from it; so this Quran was only from his side, and for this reason, parts of it contradict other parts. So Allah revealed: {And when We substitute a verse in place of a verse} [An-Nahl: 101] and He revealed: {Whatever verse We abrogate} (2).

Second: Knowledge of this chapter is imperative, and its benefit is great. Scholars cannot do without knowing it, and only the ignorant and fools deny it, because of the rulings and knowledge of halal and haram that depend on it in new situations. Abu Al-Bakhtari narrated: Ali (may Allah be pleased with him) entered the mosque, and there was a man scaring the people. He said, "What is this?!" They said, "A man reminding the people." He said, "He is not a man reminding the people, but he is saying: I am so-and-so, son of so-and-so, so know me." Then he sent for him and said: "Do you know the abrogator from the abrogated?" He replied: "No." He said: "Get out of our mosque, and do not remind [people] in it" (3).

In another narration: "Do you know the abrogator and the abrogated?" He said: "No." He said: "You have perished and caused [others] to perish" (4)! The same is narrated from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) (5).

(1) On page 309. (2) Mentioned by Al-Wahidi in Al-Waseet 1/187, and Al-Baghawi in his tafsir 1/103 similarly. (3) Narrated by Abu Ja'far Al-Nahhas in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh' 1/409, and abbreviated 1/416. (4) Narrated by Abu Ubaid in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh' (1), and Abu Ja'far Al-Nahhas in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh' 1/410-411, and Al-Bayhaqi in As-Sunan al-Kubra 10/117 on the authority of Abu Abdurrahman Al-Sulami from Ali (may Allah be pleased with him). Al-Suyuti added in Ad-Durr al-Manthur 1/106 its attribution to Abu Dawud in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh'. (5) Narrated by Abu Ubaid in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh' (2), and Abu Ja'far Al-Nahhas in 'An-Nasikh wa Al-Mansukh' 1/414, and Al-Tabarani in Al-Kabir 10/ (10603).

पृष्ठ ३०० सूरा अल-बकरा: आयत १०६

अल्लाह तआला का फरमान है: {हम जो भी आयत मंसूख (रद्द) करते हैं या उसे भुला देते हैं, तो उससे बेहतर या उसके जैसी ले आते हैं। क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर (शक्तिशाली) है?} [१०६]

इसमें पंद्रह मसायल (विषय) हैं:

पहला: अल्लाह तआला का फरमान: {हम जो भी आयत मंसूख करते हैं या उसे भुला देते हैं}। यहाँ "नुनसिहा" (भुला देते हैं) शब्द "नन्सख़" (मंसूख करते हैं) से जुड़ा है, और जज़्म की वजह से 'या' हटा दिया गया है। जो लोग इसे "नन्सा-अहा" (उसे टाल देते हैं) पढ़ते हैं, उन्होंने जज़्म के कारण हमज़ा से धम्मा हटा दिया है, इसका अर्थ आगे आएगा (१)। "ना-ती" (हम ले आते हैं) शर्त का जवाब है।

और यह अहकाम (नियमों) के संबंध में एक महान आयत है। इसका कारण यह था कि जब यहूदियों ने काबा की ओर मुख करने पर मुसलमानों से ईर्ष्या की और इस पर इस्लाम की आलोचना की, और कहा: मुहम्मद अपने साथियों को एक बात का आदेश देते हैं, फिर उन्हें उससे रोक देते हैं; तो यह कुरान केवल उनकी ओर से था, और इसी कारण इसका एक हिस्सा दूसरे का खंडन करता है। तो अल्लाह ने नाज़िल किया: {और जब हम एक आयत की जगह दूसरी आयत बदल देते हैं} [अन-नह्ल: १०१] और नाज़िल किया: {हम जो भी आयत मंसूख करते हैं} (२)।

दूसरा: इस अध्याय का ज्ञान अत्यंत आवश्यक है, और इसका लाभ बहुत बड़ा है। विद्वान इसके ज्ञान के बिना नहीं रह सकते, और केवल अज्ञानी और मूर्ख ही इसका खंडन करते हैं, क्योंकि अहकाम में आने वाली नई स्थितियों और हलाल और हराम की पहचान इसी पर निर्भर करती है। अबू अल-बख्तरी ने रिवायत की है कि: अली (रज़िअल्लाहु अन्हु) मस्जिद में दाखिल हुए, तो देखा कि एक आदमी लोगों को डरा रहा है। उन्होंने पूछा: यह क्या है?! लोगों ने कहा: एक आदमी लोगों को नसीहत कर रहा है। उन्होंने कहा: वह लोगों को नसीहत करने वाला आदमी नहीं है, बल्कि वह कह रहा है: मैं फलां का बेटा फलां हूँ, मुझे पहचानो। फिर उन्होंने उसे बुलाया और पूछा: क्या तुम नासिख़ (निरस्त करने वाला) और मंसूख़ (निरस्त किया हुआ) को जानते हो? उसने कहा: नहीं। उन्होंने कहा: हमारी मस्जिद से निकल जाओ, और इसमें नसीहत मत करो (३)।

एक अन्य रिवायत में है: क्या तुमने नासिख़ और मंसूख़ को जान लिया है? उसने कहा: नहीं। उन्होंने कहा: तुम खुद भी हलाक (बर्बाद) हुए और दूसरों को भी हलाक किया (४)! इसी तरह इब्ने अब्बास (रज़िअल्लाहु अन्हुमा) से भी वर्णित है (५)।

(१) पृष्ठ ३०९ पर। (२) अल-वाहिदी ने अल-वसीत १/१८७ में इसका उल्लेख किया है, और अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर १/१०३ में इसी तरह। (३) इसे अबू जाफ़र अल-नह्हास ने 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' १/४०९ में और संक्षिप्त रूप में १/४१६ में उद्धृत किया है। (४) इसे अबू उबैद ने 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' (१) में, और अबू जाफ़र अल-नह्हास ने 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' १/४१०-४११ में, और अल-बैहक़ी ने अस-सुनन अल-कुबरा १०/११७ में अबू अब्दुर्रहमान अल-सुलमी के माध्यम से अली (रज़िअल्लाहु अन्हु) से उद्धृत किया है। अस-सुयूती ने अद-दुर्र अल-मंसूर १/१०६ में इसका श्रेय अबू दाऊद को 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' में दिया है। (५) इसे अबू उबैद ने 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' (२) में, अबू जाफ़र अल-नह्हास ने 'अन-नासिख़ वल-मंसूख़' १/४१४ में, और अल-तबरानी ने अल-कबीर १०/ (१०६०३) में उद्धृत किया है।

۳۰۰ سورة البقرہ: آیت ۱۰۶

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿مَا نَنسَخْ مِنْ ءَايَةٍ أَوْ نُنسِهَا نَأْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَا أَوْ مِثْلِهَا ۗ أَلَمْ تَعْلَمْ أَنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿١٠٦﴾﴾ ترجمہ: "ہم جو بھی آیت منسوخ کریں یا اسے بھلا دیں تو اس سے بہتر یا اس جیسی لاتے ہیں۔ کیا تم نہیں جانتے کہ اللہ ہر چیز پر قادر ہے؟"

اس میں پندرہ مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿مَا نَنسَخْ مِنْ ءَايَةٍ أَوْ نُنسِهَا﴾۔ لفظ "نُنسِہا" (بھلا دیں) کا عطف "ننسخ" (منسوخ کریں) پر ہے، اور جزم کی وجہ سے 'یاء' حذف کر دی گئی ہے۔ اور جس نے "نَنسَأہا" (اسے مؤخر کر دیں) پڑھا ہے، اس نے جزم کی وجہ سے ہمزہ سے ضمہ حذف کیا ہے، اس کا معنی آگے آئے گا (۱)۔ "نَأْتِ" (ہم لاتے ہیں) شرط کا جواب ہے۔

اور یہ احکام میں ایک عظیم آیت ہے۔ اس کا سبب یہ تھا کہ جب یہودیوں نے مسلمانوں کے کعبہ کی طرف رخ کرنے پر حسد کیا اور اس بنیاد پر اسلام پر اعتراض کیا اور کہا: محمد اپنے صحابہ کو ایک چیز کا حکم دیتے ہیں، پھر انہیں اس سے روک دیتے ہیں؛ تو یہ قرآن محض ان کی طرف سے تھا، اسی وجہ سے اس کا بعض حصہ دوسرے کے متضاد ہے، تو اللہ نے نازل فرمایا: ﴿وَإِذَا بَدَّلْنَا ءَايَةً مَّكَانَ ءَايَةٍ﴾ [النحل: ۱۰۱] اور نازل فرمایا: ﴿مَا نَنسَخْ مِنْ ءَايَةٍ﴾ (۲)۔

دوسرا: اس باب کی معرفت نہایت ضروری ہے، اور اس کا فائدہ عظیم ہے، علماء اس کی معرفت سے مستغنی نہیں ہو سکتے، اور جاہل بیوقوفوں کے علاوہ کوئی اس کا انکار نہیں کرتا، اس لیے کہ احکام میں پیش آنے والے واقعات اور حلال و حرام کی پہچان اسی پر منحصر ہے۔ ابو البختری نے روایت کیا کہ: حضرت علی رضی اللہ عنہ مسجد میں داخل ہوئے تو دیکھا کہ ایک شخص

لوگوں کو (خوف خدا سے) ڈرا رہا ہے، آپ نے پوچھا: یہ کیا ہے؟! لوگوں نے کہا: ایک شخص لوگوں کو نصیحت کر رہا ہے۔ آپ نے فرمایا: یہ نصیحت کرنے والا شخص نہیں ہے، بلکہ یہ کہہ رہا ہے: میں فلاں کا بیٹا فلاں ہوں، مجھے پہچانو۔ پھر آپ نے اسے بلا بھیجا اور پوچھا: کیا تم ناسخ اور منسوخ کو جانتے ہو؟ اس نے کہا: نہیں۔ آپ نے فرمایا: ہماری مسجد سے نکل جاؤ اور اس میں نصیحت مت کرو (۳)۔

ایک اور روایت میں ہے: کیا تم نے ناسخ اور منسوخ کو جان لیا ہے؟ اس نے کہا: نہیں۔ آپ نے فرمایا: تم خود بھی ہلاک ہوئے اور دوسروں کو بھی ہلاک کیا (۴)! اسی طرح کی روایت ابن عباس رضی اللہ عنہما سے بھی مروی ہے (۵)۔

(۱) صفحہ ۳۰۹ پر۔ (۲) اسے الواحدی نے الوسیط ۱۸۷/۱ میں، اور البغوی نے اپنی تفسیر ۱۰۳/۱ میں اسی طرح ذکر کیا ہے۔ (۳) اسے ابو جعفر النحاس نے 'الناسخ والمنسوخ' ۴۰۹/۱ میں اور مختصراً ۴۱۶/۱ میں روایت کیا ہے۔ (۴) اسے ابو عبید نے 'الناسخ والمنسوخ' (۱) میں، ابو جعفر النحاس نے 'الناسخ والمنسوخ' ۴۱۰/۱ - ۴۱۱ میں، اور البیہقی نے السنن الکبری ۱۱۷/۱۰ میں ابو عبد الرحمن السلمی کے واسطے سے حضرت علی رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے۔ اور سیوطی نے الدر المنثور ۱۰۶/۱ میں اسے ابو داؤد کی طرف 'الناسخ والمنسوخ' میں منسوب کیا ہے۔ (۵) اسے ابو عبید نے 'الناسخ والمنسوخ' (۲) میں، ابو جعفر النحاس نے 'الناسخ والمنسوخ' ۴۱۴/۱ میں، اور الطبرانی نے الکبیر ۱۰/ (۱۰۶۰۳) میں روایت کیا ہے۔

301 Surat Al-Baqarah: Verse 106

Third: Abrogation (Al-Naskh) in the speech of the Arabs is of two types: One of them: Transferring, such as copying a book from another. According to this, the entire Qur'an is copied (mansukh), meaning from the Preserved Tablet (Al-Lawh Al-Mahfuz), and its descent to the House of Glory (Bayt al-'Izzah) in the lowest heaven. This has no place in this verse. From it is the Almighty's saying: {Indeed, We were recording what you used to do} [Al-Jathiya: 29], meaning: We command its copying and recording (1). The second: Invalidation and removal, and this is what is intended here. It is divided into two types in language: One of them: Invalidating a thing and its removal, and establishing another in its place. From this is the phrase: "the sun abrogated (replaced) the shadow" if it made it go away and took its place (2). This is the meaning of the Almighty's saying: {We do not abrogate a verse or cause it to be forgotten except that We bring forth [one] better than it}. And in "Sahih" Muslim: There has never been a prophethood except that it was succeeded (successively changed) (3). Meaning: it shifted from one state to another, referring to the affairs of the nation. Ibn Faris said: Al-Naskh: copying a book, and Al-Naskh: to remove a matter that was previously practiced, then you abrogate it with a newer one, such as a verse being revealed with an order, then it is abrogated by another. Everything that succeeds something has abrogated it. It is said: the sun abrogated the shadow, and gray hair [abrogated] youth. The succession (tanasukh) of heirs: is for heirs to die one after another while the original inheritance remains undivided. Likewise is the succession of times and centuries (4). The second: Removing a thing without another taking its place, as they say: "the wind abrogated (erased) the track" (5). From this meaning is the Almighty's saying: {Then Allah abolishes what Satan throws in} [Al-Hajj: 52], meaning: He removes it, so it is neither recited nor established in the Mus'haf in its place. Abu 'Ubaid (6) claimed that this second type of abrogation: a Surah used to be revealed to the Prophet (PBUH), then it would be lifted, so it was neither recited nor written.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190. (2) Same source. (3) (2967) and it is from the saying of 'Utbah bin Ghazwan in a long Hadith, and it is in Al-Musnad (17575). (4) Mujmal al-Lughah 4/866-867. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190. (6) Al-Nasikh wal-Mansukh by al-Nahhas 1/429, and see Al-Nasikh wal-Mansukh by Abu 'Ubaid p. 14.

३०१ सूरा अल-बकरा: आयत १०६

तीसरी बात: अरबों की भाषा में 'नस्ख' (निरसन/नकल) के दो अर्थ हैं: पहला: नकल करना, जैसे एक किताब से दूसरी में नकल करना। इस आधार पर पूरा कुरान 'मनसूख' (नकल किया हुआ) है, यानी 'लौह-ए-महफूज' से, और दुनिया के आसमान में 'बैत अल-इज्ज़ह' तक इसका उतारा जाना। इस आयत में इसका कोई दखल नहीं है। इसी से अल्लाह तआला का यह फरमान है: {बेशक हम लिखवाते थे जो तुम करते थे} [अल-जाथिया: २९], यानी: हम उसके नकल करने और उसे साबित रखने का आदेश देते हैं (१)। दूसरा: रद्द करना और खत्म करना, और यही यहाँ अभिप्रेत है। भाषा में इसके दो प्रकार हैं: पहला: किसी चीज को रद्द करना और उसे हटा देना, और उसके स्थान पर दूसरी चीज स्थापित करना। इसी से यह मुहावरा है: "सूरज ने साये को मनसूख (खत्म) कर दिया," जब वह उसे हटा देता है और उसकी जगह ले लेता है (२)। अल्लाह तआला के इस फरमान का यही अर्थ है: {हम जो भी आयत मनसूख (निरस्त) करते हैं या उसे भुला देते हैं, तो उससे बेहतर ले आते हैं}। और "सहीह" मुस्लिम में है: कोई भी नुबुव्वत (पैगम्बरी) ऐसी नहीं रही जो निरंतर बदलती (तनासुख) न रही हो (३)। यानी: वह एक हाल से दूसरे हाल में बदलती रही, जिसका अर्थ उम्मत के मामलात हैं। इब्न फारिस ने कहा: नस्ख: किताब की नकल करना, और नस्ख: किसी ऐसी बात को हटा देना जिस पर पहले अमल किया जाता था, फिर आप उसे किसी नयी बात से बदल दें, जैसे कोई आयत किसी हुक्म के साथ उतरे, फिर उसे दूसरी आयत से बदल दिया जाए। हर वह चीज जो किसी दूसरी चीज की जगह आती है, उसने उसे मनसूख कर दिया है। कहा जाता है: सूरज ने साये को, और बुढ़ापे ने जवानी को मनसूख कर दिया। वारिसों का तनासुख (उत्तराधिकार): इसका मतलब है एक के बाद एक वारिसों का मर जाना जबकि मूल विरासत अभी तक बांटी न गई हो; इसी तरह समय और सदियों का तनासुख होता है (४)। दूसरा प्रकार: किसी चीज को हटाना बिना उसके स्थान पर किसी और को लाए, जैसा कि वे कहते हैं: "हवा ने निशान को मिटा दिया" (५)। इसी अर्थ से अल्लाह तआला का यह फरमान है: {फिर अल्लाह शैतान की डाली हुई बात को मिटा देता है} [अल-हज्ज: ५२], यानी: वह उसे हटा देता है, तो न तो वह पढ़ी जाती है और न ही कुरान में उसके बदले कोई और चीज साबित की जाती है। अबू उबैद (६) ने दावा किया कि यह दूसरा नस्ख है: नबी ﷺ पर सूरा उतरती थी, फिर उसे उठा लिया जाता था, तो वह न पढ़ी जाती थी और न लिखी जाती थी।

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१९०। (२) पिछला स्रोत। (३) (२९६७) और यह उत्बा बिन गजवान का कथन है एक लम्बी हदीस में, और यह अल-मुसनद (१७५७५) में है। (४) मुजमल अल-लुगह

४/८६६-८६७। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१९०। (६) अन-नासिख वल-मनसूख (नहहास द्वारा) १/४२९, और देखें अन-नासिख वल-मनसूख (अबू उबैद द्वारा) पृ. १४।

۳۰۱ سورة البقرہ: آیت ۱۰۶

تیسری بات: عرب کے کلام میں نسخ دو معنوں میں مستعمل ہے: پہلا: نقل کرنا، جیسے ایک کتاب کو دوسری سے نقل کرنا۔ اسی بنیاد پر پورا قرآن منسوخ (نقل شدہ) ہے، یعنی لوح محفوظ سے، اور آسمان دنیا میں بیت العزہ تک اس کا نازل کیا جانا، اور اس آیت میں اس کا کوئی دخل نہیں ہے۔ اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان ہے: ﴿إِنَّا كُنَّا نَسْتَنسِخُ مَا كُنتُمْ تَعْمَلُونَ﴾ [الجاثیہ: ۲۹]، یعنی: ہم اس کے نقل کرنے اور اسے ثبت کرنے کا حکم دیتے ہیں(۱)۔ دوسرا: باطل کرنا اور ختم کرنا، اور یہی یہاں مقصود ہے، اور لغت میں اس کی دو قسمیں ہیں: پہلی قسم: کسی چیز کو باطل کر کے ختم کر دینا، اور اس کی جگہ دوسری چیز قائم کرنا، اسی سے ہے: "سورج نے سائے کو منسوخ کر دیا" یعنی جب اسے ختم کر کے اس کی جگہ لے لی(۲)۔ اللہ تعالیٰ کے اس قول کا یہی معنی ہے: ﴿مَا نَنسَخْ مِنْ ءَايَةٍ أَوْ نُنسِهَا نَأْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَا﴾۔ اور "صحیح" مسلم میں ہے: کوئی نبوت ایسی نہیں ہوئی جو بدلتی (تناسخ) نہ رہی ہو(۳)۔ یعنی: وہ ایک حال سے دوسرے حال میں بدلتی رہی، یعنی امت کا معاملہ۔ ابن فارس نے کہا: النسخ: کتاب کی نقل کرنا، اور النسخ: کسی ایسے معاملے کو ختم کر دینا جس پر پہلے عمل ہوتا تھا، پھر آپ اسے کسی نئے حکم سے بدل دیں، جیسے کوئی آیت کسی حکم کے ساتھ نازل ہو، پھر اسے دوسری آیت سے بدل دیا جائے۔ ہر وہ چیز جو کسی دوسری چیز کے پیچھے آئے، اس نے اسے منسوخ کر دیا۔ کہا جاتا ہے: سورج نے سائے کو، اور بڑھاپے نے جوانی کو منسوخ کر دیا۔ وارثوں کا تناسخ: یہ ہے کہ ایک کے بعد دوسرے وارث انتقال کر جائیں جبکہ اصل میراث ابھی تقسیم نہ ہوئی ہو؛ اسی طرح زمانوں اور صدیوں کا تناسخ ہوتا ہے(۴)۔ دوسری قسم: کسی چیز کو ختم کر دینا بغیر اس کے کہ اس کے قائم مقام کوئی اور چیز آئے، جیسا کہ عرب کہتے ہیں: "ہوا نے نشان کو مٹا (منسوخ کر) دیا"(۵)۔ اسی معنی سے اللہ تعالیٰ کا یہ قول

ہے: ﴿فَيَنسَخُ اللَّهُ مَا يُلْقِي الشَّيْطَٰنُ﴾ [الحج: ٥٢] یعنی: اسے مٹا دیتا ہے، تو نہ وہ تلاوت کی جاتی ہے اور نہ ہی مصحف میں اس کے بدلے کچھ ثبت کیا جاتا ہے۔ ابو عبید(۶) کا خیال ہے کہ یہ دوسرا نسخ ہے: نبی ﷺ پر سورت نازل ہوتی تھی، پھر وہ اٹھا لی جاتی تھی، تو نہ وہ تلاوت کی جاتی تھی اور نہ لکھی جاتی تھی۔

(۱) المحرر الوجیز ۱۹۰/۱۔ (۲) پچھلا حوالہ۔ (۳) (۲۹۶۷) اور یہ عتبہ بن غزوان کا قول ہے ایک طویل حدیث میں، جو المسند (۱۷۵۷۵) میں ہے۔ (۴) مجمل اللغة ۸۶۶/۴-۸۶۷۔ (۵) المحرر الوجیز ۱۹۰/۱۔ (۶) الناسخ والمنسوخ (للّحاس) ۴۲۹/۱ ، اور دیکھئے الناسخ والمنسوخ (لابی عبید) ص۱۴۔

Page 302, Surah Al-Baqarah: Verse 106.

I say: Included in this is what was narrated from Ubayy ibn Ka'b and Aisha, may Allah be pleased with them both, that Surah Al-Ahzab used to be equal to Surah Al-Baqarah in length; as will be explained there, if Allah Almighty wills (1).

Evidence for this is what Abu Bakr al-Anbari mentioned: My father told us, Nasr ibn Dawud told us, Abu Ubayd told us, Abdullah ibn Salih told us, from al-Layth, from Yunus and Uqayl, from Ibn Shihab who said: Abu Umamah ibn Sahl ibn Hunayf told me in the gathering of Sa'id ibn al-Musayyib, that a man stood up at night to recite a surah of the Quran, but was unable to remember any of it. Another man stood up and was unable to remember any of it. A third man stood up and was unable to remember any of it. In the morning, they went to the Messenger of Allah (peace be upon him). One of them said, 'I stood up last night, O Messenger of Allah, to recite a surah of the Quran, but was unable to remember any of it.' Another stood up and said, 'By Allah, I was the same, O Messenger of Allah.' The third stood up and said, 'By Allah, I was the same, O Messenger of Allah.' The Messenger of Allah (peace be upon him) said, 'It is among what Allah abrogated last night.' In one of the narrations: Sa'id ibn al-Musayyib heard what Abu Umamah was narrating and did not object to it (2).

Fourth: Some groups among the later adherents to Islam denied its permissibility (of abrogation), and they are countered by the consensus of the early predecessors on its occurrence in the Shari'ah.

Some groups of Jews also denied it, and they are countered by what is mentioned in their Torah, according to their claim, that Allah Almighty said to Noah (peace be upon him) when he left the ark: 'I have made every beast food for you and your offspring, and I have allowed that for you like the vegetation of the grass, except for blood, so do not eat it.'

(1) The hadith of Ubayy (may Allah be pleased with him) was recorded by Ahmad (21207) and al-Nasa'i in al-Kubra (7112). The hadith of Aisha (may Allah be pleased with her) was recorded by Abu Ubayd in Fada'il al-Qur'an p. 190. The author will mention both hadiths at the beginning of the commentary on Surah Al-Ahzab. Abu Bakr al-Baqillani rejected such narrations, saying in al-Intisar 1/394 regarding Ubayy's narration: 'If this narration from Ubayy were authentic and established, it would have been as famous from Ubayy as is necessary for hearts to be certain of its establishment, and it could not be denied or rejected; because this is the norm for

such a claim from someone like Ubayy in his prominence and high standing among the memorizers of the Quran. Since it did not become apparent from him with the clarity that makes it an obligation of proof, it is known that the report is false and has no basis.' He said: 'If that is the case, we know that this saying narrated from Ubayy was not known among the Companions, nor circulated among them. We also do not know that anyone else said it or narrated it from him, nor is the authenticity of this narration itself known, let alone its fame and the necessity of mentioning it from him and others = it is known from this and certain that it is a lie attributed to Ubayy, and contempt for its fabricator due to the greatness of the sin and slander...' See the rest of his words. (2) Recorded by Abu Ubayd in al-Nasikh wa al-Mansukh pp. 14-15.

पृष्ठ 302, सूरह अल-बकराह: आयत 106।

मैंने कहा: इसी में वह भी शामिल है जो उबै बिन काब और आयशा (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत है कि सूरह अल-अहज़ाब लंबाई में सूरह अल-बकराह के बराबर हुआ करती थी; जैसा कि वहां स्पष्ट किया जाएगा, यदि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने चाहा (1)।

इसका प्रमाण वह है जो अबू बक्र अल-अंसारी ने उल्लेख किया है: मेरे पिता ने हमें बताया, नसर बिन दाऊद ने हमें बताया, अबू उबैद ने हमें बताया, अब्दुल्ला बिन सालेह ने हमें बताया, लैथ से, यूनुस और उकील से, इब्न शिहाब से जिन्होंने कहा: अबू उमामा बिन सहल बिन हुनैन ने मुझे सईद बिन अल-मुसय्यब की सभा में बताया कि एक आदमी रात में कुरान की एक सूरह पढ़ने के लिए खड़ा हुआ, लेकिन वह उसमें से कुछ भी नहीं पढ़ सका। दूसरा आदमी खड़ा हुआ, वह भी उसमें से कुछ भी नहीं पढ़ सका। एक और आदमी खड़ा हुआ, वह भी उसमें से कुछ भी नहीं पढ़ सका। सुबह वे अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास गए। उनमें से एक ने कहा: 'ऐ अल्लाह के रसूल, मैं आज रात कुरान की एक सूरह पढ़ने के लिए खड़ा हुआ, लेकिन मैं उसमें से कुछ भी नहीं पढ़ सका।' दूसरा खड़ा हुआ और कहा: 'अल्लाह की कसम, ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ।' तीसरा खड़ा हुआ और कहा: 'अल्लाह की कसम, ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे साथ भी ऐसा ही हुआ।' अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कहा: 'यह उन चीज़ों में से है जिन्हें अल्लाह ने कल रात निरस्त (मनसूख) कर दिया।' एक रिवायत में है: सईद बिन अल-मुसय्यब अबू उमामा की बात सुन रहे थे और उन्होंने इसका विरोध नहीं किया (2)।

चौथा: इस्लाम से जुड़े बाद के कुछ समूहों ने इसकी (निरसन/नस्ख की) अनुमति से इनकार किया है, और शरीयत में इसके होने पर पूर्वजों (सलफ) की आम सहमति उनके खिलाफ दलील है।

यहूदियों के कुछ समूहों ने भी इससे इनकार किया है, और उन्हें उनके अपने दावे के अनुसार तौरात में जो आया है उससे जवाब दिया जाता है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने नूह (अलैहिस्सलाम) से कहा था जब वे कश्ती से निकले थे: 'मैंने तुम्हारे और तुम्हारी संतान के लिए हर जानवर को भोजन बना दिया है, और मैंने तुम्हारे लिए उसे घास के पौधों की तरह वैध कर दिया है, सिवाय खून के, उसे मत खाना।'

(1) उबै (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस को अहमद (21207) और नसई ने अल-कुबरा (7112) में दर्ज किया है। आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस को अबू उबैद ने 'फ़ज़ाइल अल-कुरान'

पृष्ठ 190 में दर्ज किया है। लेखक सूरह अल-अहज़ाब की व्याख्या के शुरू में दोनों हदीसों का उल्लेख करेंगे। अबू बक्र अल-बाक़िलानी ने ऐसी रिवायतों को खारिज किया है, उन्होंने 'अल-इंतिसार' 1/394 में उबै की रिवायत के बारे में कहा: 'अगर उबै से यह रिवायत सही और प्रमाणित होती, तो उबै से इसकी इतनी प्रसिद्धि होनी चाहिए थी कि दिलों को इसके प्रमाण होने का यकीन हो जाता, और इसका खंडन या इनकार संभव न होता; क्योंकि उबै जैसे कुरान के हाफिज के लिए ऐसी बात का मशहूर होना सामान्य बात है। जब यह उनसे उस प्रसिद्धि के साथ ज़ाहिर नहीं हुआ जो इसे एक प्रमाण बनाती है, तो यह जान लिया गया कि यह खबर गलत है और इसका कोई आधार नहीं है।' उन्होंने कहा: 'और अगर ऐसा है, तो हमें पता चल गया कि उबै से रिवायत किया गया यह कथन सहाबा के बीच प्रसिद्ध नहीं था और न ही उनके बीच प्रचलित था। हमें यह भी नहीं पता कि किसी और ने इसे कहा हो या उनसे रिवायत किया गया हो, और न ही इस रिवायत की सत्यता ही पता है, प्रसिद्धि और उनके व दूसरों से इसके उल्लेख की आवश्यकता तो दूर की बात है = इससे यह जान लिया गया और यकीन हो गया कि यह उबै पर बोला गया झूठ है, और इसके गढ़ने वाले का तिरस्कार है क्योंकि यह एक बहुत बड़ा पाप और लांछन है...' उनकी बाकी बात देखें। (2) अबू उबैद ने 'अल-नाि़सिख वल-मनसूख' पृष्ठ 14-15 में दर्ज किया है।

صفحہ 302، سورۃ البقرہ: آیت 106۔

میں کہتا ہوں: اسی میں سے وہ بھی ہے جو ابی بن کعب اور عائشہ رضی اللہ عنہما سے مروی ہے کہ سورہ احزاب لمبائی میں سورہ بقرہ کے برابر تھی؛ جیسا کہ وہاں ان شاء اللہ تعالیٰ وضاحت کے ساتھ آئے گا (1)۔

اس پر دلالت کرنے والی چیزوں میں سے وہ بھی ہے جسے ابو بکر الانباری نے ذکر کیا ہے: ہمیں میرے والد نے بیان کیا، ہمیں نصر بن داؤد نے بیان کیا، ہمیں ابو عبید نے بیان کیا، ہمیں عبد اللہ بن صالح نے لیث سے، انہوں نے یونس اور عقیل سے، انہوں نے ابن شہاب سے روایت کیا، انہوں نے کہا: مجھ سے ابو امامہ بن سہل بن حنیف نے سعید بن المسیب کی مجلس میں بیان کیا کہ ایک آدمی رات کو قرآن کی ایک سورت پڑھنے کے لیے کھڑا ہوا، لیکن وہ اس میں سے کچھ بھی نہ پڑھ سکا۔ دوسرا کھڑا ہوا، وہ بھی اس میں سے کچھ نہ پڑھ سکا، پھر ایک اور کھڑا ہوا، وہ بھی اس میں سے کچھ نہ پڑھ سکا۔ صبح وہ رسول اللہ ﷺ کے پاس گئے، تو ان میں سے ایک نے کہا: اے اللہ کے رسول، میں آج رات قرآن کی ایک سورت پڑھنے کے لیے کھڑا ہوا، لیکن اس میں سے کچھ نہ پڑھ سکا۔ دوسرا کھڑا ہوا اور کہا: اللہ کی قسم اے اللہ کے رسول، میرا بھی یہی حال رہا۔ پھر تیسرا کھڑا ہوا اور کہا: اللہ کی قسم اے اللہ کے رسول، میرا بھی یہی حال رہا۔ تو رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: 'یہ ان چیزوں میں سے ہے جنہیں اللہ نے کل رات منسوخ کر دیا ہے'۔ ایک روایت میں ہے کہ سعید بن المسیب، ابو امامہ کی بیان کردہ بات سن رہے تھے اور انہوں نے اس کا انکار نہیں کیا (2)۔

چوتھی بات: اسلام سے منسوب متاخرین کے بعض گروہوں نے اس (نسخ) کے جواز کا انکار کیا ہے، اور ان کے خلاف شریعت میں اس کے وقوع پر سلف سابقین کا اجماع حجت ہے۔

اور یہودیوں کے بعض گروہوں نے بھی اس کا انکار کیا ہے، حالانکہ ان کے خلاف ان کی اپنی تورات میں موجود وہ بات حجت ہے جس کے مطابق ان کا دعویٰ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے نوح علیہ السلام سے کشتی سے نکلتے وقت فرمایا تھا: 'میں نے تمام جانوروں کو تمہارے اور تمہاری اولاد کے لیے کھانے کی چیز بنا دیا ہے، اور میں نے انہیں تمہارے لیے گھاس پھوس کے پودوں کی طرح مباح کر دیا ہے، سوائے خون کے، اسے مت کھاؤ۔'

(1) ابی رضی اللہ عنہ کی حدیث کو احمد (21207) اور نسائی نے الکبریٰ (7112) میں روایت کیا ہے۔ اور عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث کو ابو عبید نے فضائل القرآن ص 190 میں روایت کیا ہے، اور مصنف سورہ احزاب کی تفسیر کے شروع میں ان دونوں حدیثوں کو ذکر کریں گے۔ اور ابو بکر الباقلانی نے اس جیسی روایات کو رد کیا ہے، چنانچہ انہوں نے الانتصار 1/ 394 میں ابی کی روایت کے بارے میں کہا ہے: اگر ابی سے یہ روایت صحیح اور ثابت ہوتی تو ضروری تھا کہ یہ ابی سے اس طرح مشہور ہوتی کہ دلوں کو اس کے ثبوت کا یقین ہو جاتا، اور اس کا انکار ممکن نہ ہوتا؛ کیونکہ ابی جیسی نامور شخصیت اور قرآن کے حفاظ میں ان کے بلند مقام کے پیش نظر ایسی بات کا عام ہونا قاعدہ ہے۔ چنانچہ جب یہ ان سے اس شہرت کے ساتھ ظاہر نہیں ہوئی جو اسے حجت بناتی ہے، تو معلوم ہوا کہ یہ خبر باطل ہے اور اس کی کوئی اصل نہیں۔ انہوں نے کہا: اور جب صورتحال یہ ہے تو ہمیں معلوم ہوا کہ ابی سے مروی یہ قول صحابہ میں ظاہر نہیں تھا اور نہ ہی ان کے درمیان گردش کرتا تھا، اور ہمیں یہ بھی نہیں معلوم کہ کسی اور نے یہ بات کہی ہو اور ان سے روایت کی گئی ہو، اور نہ ہی اس روایت کی بذات خود صحت معلوم ہے، چہ جائیکہ اس کی شہرت اور ان سے یا دوسروں سے اس کے ذکر کا وجوب معلوم ہو = اس سے یہ بات معلوم اور یقینی ہو گئی کہ یہ ابی پر جھوٹ باندھا گیا ہے، اور اسے گھڑنے والا گناہ اور بہتان کی

عظمت کی وجہ سے قابل حقارت ہے... ان کا بقیہ کلام ملاحظہ کریں۔ (2) اسے ابو عبید نے الناسخ والمنسوخ ص 14-15 میں روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 106 303

Then He forbade for Moses and for the Children of Israel many of the animals. And whereas Adam (peace be upon him) used to marry brother to sister, Allah forbade that for Moses (peace be upon him) and for others (1). Also, Abraham al-Khalil was commanded to slaughter his son, then he was told: do not slaughter him. And Moses commanded the Children of Israel to kill those among them who worshipped the calf, then he commanded them to lift the sword from them. And his prophethood was not something to be followed in worship before his mission, then it was worshipped after that, and so on.

This is not a matter of Bada (change of divine will), but rather it is moving the servants from one act of worship to another, and from one ruling to another; for a kind of benefit, to demonstrate His wisdom and the perfection of His kingdom.

There is no dispute among the wise that the laws of the prophets were intended for the religious and worldly interests of creation. Bada would only be necessary if He were not aware of the outcome of matters. As for the Knower of that, His addresses only change according to the changing of interests, like a doctor who considers the conditions of the patient.

He observed this in His creation by His will and desire—there is no god but He. So His address changes, but His knowledge and will do not change, for that is impossible regarding Allah Almighty.

The Jews made abrogation (Naskh) and Bada one thing, and therefore they did not allow it and went astray (2).

Al-Nahhas (3) said: The difference between abrogation and Bada is that abrogation is shifting worship from one thing to another that was permissible and then forbidden, or was forbidden and then made permissible. As for Bada, it is abandoning what was intended, like your saying: "Go to so-and-so today," then you say: "Do not go to him," so it seems to you [different] from the first statement (4). This happens to humans because of their imperfection. Similarly, if you said: "Plant such-and-such in this year," then you said: "Do not do it." This is Bada (5).

Fifth: Know that the abrogator in reality is Allah Almighty, and the legal address is called an abrogator metaphorically, as by it abrogation occurs (6), just as it might be metaphorically used to call the person governed by it an abrogator.

(1) See Tafsir al-Razi 3/227, and al-Mahsul by him 3/295. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190. (3) In al-Nasikh wa al-Mansukh 1/441-442. (4) In (M): So it seems to you to deviate from the first statement. (5) In (Z) and (M): It is Bada. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/190.

सूरह अल-बकराह: आयत 106 303

फिर उसने मूसा और बनी इसराइल के लिए बहुत से जानवरों को वर्जित कर दिया। और जबकि आदम (उन पर शांति हो) भाई का विवाह बहन से कर दिया करते थे, अल्लाह ने मूसा (उन पर शांति हो) और दूसरों के लिए इसे वर्जित कर दिया (1)। इसी प्रकार, इब्राहिम अल-खलील को अपने बेटे की बलि देने का आदेश दिया गया, फिर उनसे कहा गया: उसकी बलि न दो। और मूसा ने बनी इसराइल को उन लोगों को मारने का आदेश दिया जिन्होंने बछड़े की पूजा की थी, फिर उन्हें उनसे तलवार हटाने का आदेश दिया। और उनके मिशन से पहले उनकी पैगम्बरी के अनुसार इबादत नहीं की जाती थी, फिर उसके बाद उसके अनुसार इबादत की गई, इत्यादि।

यह 'बदा' (ईश्वरीय इच्छा में परिवर्तन) का मामला नहीं है, बल्कि यह बंदों को एक इबादत से दूसरी इबादत की ओर, और एक हुक्म से दूसरे हुक्म की ओर ले जाना है; एक प्रकार के लाभ के लिए; ताकि उनकी हिकमत और उनके साम्राज्य की पूर्णता प्रदर्शित हो सके।

बुद्धिमानों के बीच इसमें कोई विवाद नहीं है कि पैगंबरों के कानूनों का उद्देश्य सृष्टि के धार्मिक और दुनियावी हितों को साधना था। 'बदा' केवल तब आवश्यक होता यदि वह मामलों के परिणाम से अवगत न होते। जहाँ तक उस जानने वाले का संबंध है, उनके संबोधन केवल हितों के बदलने के अनुसार बदलते हैं, जैसे एक डॉक्टर जो बीमार की स्थिति का ध्यान रखता है।

उन्होंने अपनी इच्छा और चाहत से अपनी सृष्टि में इसका ध्यान रखा—उनके सिवा कोई पूज्य नहीं। अतः उनका संबोधन बदलता है, लेकिन उनका ज्ञान और इच्छा नहीं बदलती, क्योंकि अल्लाह सर्वशक्तिमान के संबंध में ऐसा होना असंभव है।

यहूदियों ने 'नस्ख' (निरसन) और 'बदा' को एक ही चीज़ मान लिया, और इसीलिए उन्होंने इसे जायज़ नहीं माना और गुमराह हो गए (2)।

अल-नह़ह़ास (3) ने कहा: नस्ख और बदा के बीच अंतर यह है कि नस्ख इबादत को एक चीज़ से दूसरी चीज़ में बदलना है जो हलाल थी और फिर हराम कर दी गई, या हराम थी और फिर हलाल कर दी गई। जहाँ तक बदा का सवाल है, यह उस चीज़ को छोड़ देना है जिसका इरादा किया गया था, जैसे तुम्हारा कहना: "आज फलां के पास जाओ," फिर तुम कहते हो: "उसके पास मत जाओ," तो तुम्हें पहले वाले कथन के बारे में कुछ और सूझता है (4), और यह मनुष्यों के साथ उनकी कमी के

कारण होता है। इसी तरह अगर तुमने कहा: "इस साल ऐसा-वैसा बोओ," फिर तुमने कहा: "ऐसा मत करो।" तो यह बदा है (5)।

पाँचवाँ: जान लो कि वास्तव में निरस्त करने वाला अल्लाह सर्वशक्तिमान है, और शरीयत के संबोधन को लाक्षणिक रूप से निरस्त करने वाला (नाि़सिख) कहा जाता है, क्योंकि इसके द्वारा निरसन (नस्ख) होता है (6), जैसे कि लाक्षणिक रूप से शासित व्यक्ति को नाि़सिख कहा जा सकता है।

(1) देखें तफ़सीर अल-राज़ी 3/227, और अल-मह़सूल 3/295। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190। (3) अन-नाि़सिख वल-मंसूख़ 1/441-442 में। (4) (म) में: तो तुम्हें पहले वाले कथन से हटना सूझता है। (5) (ज़) और (म) में: तो यह बदा है। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190।

سورہ البقرہ: آیت ۱۰۶ ۳۰۳

پھر اللہ نے موسیٰ علیہ السلام اور بنی اسرائیل پر بہت سے جانور حرام کر دیے، اور اس بات کے ساتھ کہ آدم علیہ السلام بھائی کی بہن سے شادی کر دیا کرتے تھے، اللہ نے موسیٰ علیہ السلام اور ان کے علاوہ دیگر لوگوں پر اسے حرام کر دیا (۱)، اور اس کے ساتھ کہ ابراہیم خلیل علیہ السلام کو اپنے بیٹے کے ذبح کا حکم دیا گیا، پھر ان سے کہا گیا: اسے ذبح نہ کرو، اور اس کے ساتھ کہ موسیٰ علیہ السلام نے بنی اسرائیل کو حکم دیا کہ وہ ان لوگوں کو قتل کریں جنہوں نے ان میں سے بچھڑے کی عبادت کی تھی، پھر انہیں ان سے تلوار اٹھانے کا حکم دیا، اور اس کے ساتھ کہ ان کی نبوت ان کی بعثت سے پہلے واجب الاتباع نہیں تھی، پھر اس کے بعد اس کے ذریعے عبادت کی گئی، وغیرہ وغیرہ۔

اور یہ بداء (ارادے کی تبدیلی) کے باب سے نہیں ہے، بلکہ یہ بندوں کو ایک عبادت سے دوسری عبادت کی طرف، اور ایک حکم سے دوسرے حکم کی طرف منتقل کرنا ہے؛ ایک قسم کی مصلحت کے لیے؛ تاکہ اللہ کی حکمت اور اس کی سلطنت کا کمال ظاہر ہو۔

اور عقلمندوں کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے کہ انبیاء کی شریعتوں سے مخلوق کے دینی اور دنیاوی مفادات مقصود تھے، اور بداء تو صرف اس صورت میں لازم آتا اگر اللہ امور کے انجام سے واقف نہ ہوتا، رہا اس سے باخبر ہونے والا، تو اس کے خطاب تو مصلحتوں کی تبدیلی کے مطابق بدلتے رہتے ہیں، جیسے ایک طبیب جو بیمار کے حالات کی رعایت رکھتا ہے۔

چنانچہ اللہ نے اپنی مخلوق میں اپنی مشیت اور ارادے سے اس کی رعایت رکھی، اس کے سوا کوئی معبود نہیں، پس اس کا خطاب بدل جاتا ہے، مگر اس کا علم اور ارادہ تبدیل نہیں ہوتا، کیونکہ اللہ تعالیٰ کی ذات کے بارے میں ایسا ہونا محال ہے۔

اور یہودیوں نے نسخ اور بداء کو ایک ہی چیز قرار دیا، اسی لیے انہوں نے اسے جائز نہیں سمجھا اور گمراہ ہو گئے (۲)۔

نحاس (۳) نے کہا: نسخ اور بداء کے درمیان فرق یہ ہے کہ نسخ عبادت کو ایک چیز سے دوسری چیز کی طرف منتقل کرنا ہے جو پہلے حلال تھی پھر حرام کر دی گئی، یا حرام تھی پھر حلال کر دی گئی۔ رہا بداء، تو وہ اس چیز کو ترک کرنا ہے جس کا ارادہ کیا گیا ہو، جیسے تمہارا کہنا: "آج فلاں کے پاس جاؤ،" پھر تم کہو: "اس کے پاس نہ جاؤ،" تو تمہارے نزدیک پہلی بات سے رجوع ظاہر ہوتا ہے (۴)، اور یہ انسانوں کو ان کے نقص کی وجہ سے لاحق ہوتا ہے۔ اسی طرح اگر تم کہو: "اس سال ایسا کاشت کرو،" پھر تم کہو: "ایسا نہ کرو۔" تو یہ بداء ہے (۵)۔

پانچویں بات: جان لو کہ حقیقت میں ناسخ اللہ تعالیٰ ہے، اور شرعی خطاب کو مجازاً ناسخ کہا جاتا ہے، کیونکہ اس کے ذریعے نسخ واقع ہوتا ہے (۶)، جیسا کہ کبھی مجازاً اس کے ذریعے جس پر حکم لگایا گیا ہو اسے ناسخ کہہ دیا جاتا ہے۔

(۱) دیکھئے تفسیر رازی ۳/۲۲۷، اور ان کی کتاب المحصول ۳/۲۹۵۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۱۹۰۔ (۳) الناسخ والمنسوخ ۱/۴۴۱-۴۴۲ میں۔ (۴) (م) میں: تو تمہیں پہلی بات سے عدول ظاہر ہوتا ہے۔ (۵) (ظ) اور (م) میں: تو یہ بداء ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱/۱۹۰۔

Surah Al-Baqarah: Verse 106 [Page] 304

It is said: The fasting of Ramadan abrogated the fasting of 'Ashura. Thus, the abrogated (mansukh) is what was removed, and the one from whom it was abrogated is the worshiper of the removed worship, who is the mukallaf (obligated person).

Sixth: Our imams differed in the definition of the abrogator (nasikh). The position held by the skilled among the People of the Sunnah is that it is the removal of a settled Sharia ruling by a subsequent, delayed discourse. This is how it was defined by Judge Abdul Wahhab and Judge Abu Bakr, and they added (1): "were it not for it, the previous one would have remained established" (2), thus preserving (3) the linguistic meaning of naskh, which means lifting and removal, and as a precaution (4) against rational rulings. "Discourse" (khitab) was mentioned to encompass (5) aspects of indication from the text, apparent meaning, understood meaning, and others, and to exclude analogy (qiyas) and consensus (ijma'), since naskh is inconceivable in or by them. It was restricted (6) by delay (tarakhi); because if it were immediate, it would be a clarification of the ruling's extent, not an abrogator (7), or the end of the speech would negate its beginning, such as saying: "Stand, don't stand."

Seventh: The abrogated, according to our imams from the People of the Sunnah, is the established ruling itself, not something like it as the Mu'tazilites claim, saying that it is the discourse indicating that the likeness of the established ruling in what follows the preceding text is gone. What led them to this is their doctrine that commands are intended, and that goodness (husn) is an intrinsic attribute of what is good, and what God intends is good. This has been refuted by our scholars in their books (8).

Eighth: Our scholars differed regarding reports (akhbar): can they be subject to abrogation? The majority hold that abrogation is specifically for commands and prohibitions, and reports are not subject to abrogation because of the impossibility of lying being attributed to God Almighty (9).

(1) In the manuscript copies: "and added" [singular], and what is fixed is from (M). (2) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/190, and Al-Mahsul by al-Razi 3/282. (3) In (Kh), (D), and (Zha): "preserving" [differently inflected]. (4) In (Kh) and (D): "and as a metaphorical use." (5) In (D), (Z), and (Zha): "to encompass" [dual], and in (Kh): "to be blind" [likely a typo], and what is fixed is from (M). (6) In (Kh), (D), and (M): "and they restricted" [dual]. (7) See Al-Mahsul by al-Razi 3/283. (8) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/190-191. (9)

See Al-Muharrar al-Wajiz 1/191, and Al-Idah li-nasikh al-Qur'an wa mansukhih by Makki, p. 66.

सूरह अल-बकरा: आयत 106 [पृष्ठ] 304

कहा जाता है: रमज़ान के रोज़ों ने आशुरा के रोज़ों को निरस्त (नस्ख) कर दिया। अतः, 'मंसूख' (निरस्त) वह है जिसे हटा दिया गया, और जिससे निरस्त किया गया वह वह व्यक्ति है जो उस हटाई गई इबादत का पालन करने वाला था, यानी मुकल्लिफ (उत्तरदायी व्यक्ति)।

छठी बात: हमारे इमामों ने 'नासिख' (निरस्त करने वाले) की परिभाषा में मतभेद किया है। अहले सुन्नत के विद्वानों का मत यह है कि यह किसी स्थापित शरीयत के हुक्म को बाद में आने वाले किसी संबोधन के द्वारा हटाना है। काज़ी अब्दुल वहाब और काज़ी अबू बक्र ने इसे इसी तरह परिभाषित किया है, और उन्होंने जोड़ा (1): "यदि यह न होता, तो पिछला हुक्म स्थापित रहता" (2), इस प्रकार 'नस्ख' के भाषाई अर्थ को सुरक्षित रखा (3), क्योंकि इसका अर्थ उठाना और हटाना है, और तर्कसंगत फैसलों से बचाव के रूप में (4)। "संबोधन" (खिताब) का उल्लेख इसलिए किया गया ताकि इसमें पाठ (नस्स), स्पष्ट अर्थ (ज़ाहिर), निहित अर्थ (मफहूम) आदि के संकेत शामिल हों (5), और इसमें कयास (तर्क) और इज्मा (सहमति) शामिल न हों, क्योंकि उनमें न तो नस्ख हो सकता है और न ही उनके द्वारा नस्ख हो सकता है। इसे 'देरी' (तराखी) के साथ सीमित किया गया (6); क्योंकि यदि यह तुरंत जुड़ा होता, तो यह हुक्म की सीमा का स्पष्टीकरण होता, न कि नासिख (7), या बात का अंत उसके शुरूआती हिस्से को रद्द कर देता, जैसे आपका यह कहना: "खड़े हो जाओ, मत खड़े हो।"

सातवीं बात: हमारे अहले सुन्नत के इमामों के अनुसार, मंसूख (निरस्त) स्वयं स्थापित हुक्म है, न कि उसके जैसा कुछ, जैसा कि मुअतज़िला का कहना है कि यह वह संबोधन है जो यह दर्शाता है कि पहले के पाठ के अनुसार भविष्य में स्थापित हुक्म जैसा कुछ खत्म हो गया है। उन्हें इस ओर उनके इस सिद्धांत ने प्रेरित किया कि आदेशों का इरादा किया जाता है, और यह कि 'हुस्न' (अच्छाई) अच्छे की एक आंतरिक विशेषता है, और ईश्वर जो चाहता है वह अच्छा है। हमारे विद्वानों ने अपनी पुस्तकों में इसका खंडन किया है (8)।

आठवीं बात: हमारे विद्वानों के बीच समाचारों (अख़बार) के बारे में मतभेद है: क्या उनमें नस्ख हो सकता है? अधिकांश का मत यह है कि नस्ख केवल आदेशों और निषेधों के लिए विशिष्ट है, और समाचारों में नस्ख नहीं होता, क्योंकि अल्लाह तआला पर झूठ का आरोप लगाना असंभव है (9)।

(1) हस्तलिखित प्रतियों में: "और उसने जोड़ा", और जो निश्चित है वह (म) से है। (2) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190, और अल-महसूल अर-राज़ी द्वारा 3/282। (3) (ख़), (द) और (ज़) में:

"मुहाफ़िज़न्" (संरक्षण करते हुए)। (4) (ख़) और (द) में: "व तजवुज़न्" (और अलंकारिक रूप से)। (5) (द), (ज़) और (ज़) में: "लियअमा" (ताकि वे दोनों शामिल हों), और (ख़) में: "लियअमा" (अंधा होना), और जो निश्चित है वह (म) से है। (6) (ख़), (द) और (म) में: "व कुयिदा" (और उन दोनों को प्रतिबंधित किया गया)। (7) देखें अल-महसूल अर-राज़ी द्वारा 3/283। (8) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/190-191। (9) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/191, और अल-ईदाह लि-नासिख अल-कुरान व मंसूख़िही मक्की द्वारा, पृष्ठ 66।

سورہ البقرہ : آیت ۱۰٦ ۳۰٤

کہا جاتا ہے: رمضان کے روزوں نے عاشورہ کے روزے کو منسوخ کر دیا، تو منسوخ وہ ہے جسے ہٹا دیا گیا، اور جس سے منسوخ کیا گیا وہ وہ عابد ہے جو اس ہٹائی گئی عبادت کا مکلف تھا، یعنی انسان۔

چھٹی بات: ہمارے ائمہ نے 'ناسخ' کی تعریف میں اختلاف کیا ہے۔ اہل سنت کے ماہرین کا موقف یہ ہے کہ ناسخ وہ خطاب ہے جو کسی پہلے سے طے شدہ شرعی حکم کو بعد میں آ کر ختم کر دے۔ قاضی عبد الوہاب اور قاضی ابو بکر نے اسے اسی طرح بیان کیا ہے، اور انہوں نے اضافہ کیا (۱): "اگر یہ نہ ہوتا تو پہلا حکم باقی رہتا" (۲)، اس طرح انہوں نے 'نسخ' کے لغوی معنی کی حفاظت کی (۳)، کیونکہ اس کا معنی اٹھانا اور ختم کرنا ہے، اور تاکہ عقلی احکام سے احتراز کیا جا سکے (٤)۔ 'خطاب' کا لفظ اس لیے استعمال کیا گیا تاکہ اس میں نص، ظاہر، مفہوم وغیرہ کی تمام صورتیں شامل ہو جائیں (٥)، اور قیاس و اجماع اس سے باہر نکل جائیں، کیونکہ ان میں نہ تو نسخ ہو سکتا ہے اور نہ ہی ان کے ذریعے نسخ ہو سکتا ہے۔ اسے 'تراخی' (تاخیر) کے ساتھ مقید کیا گیا (٦)؛ کیونکہ اگر وہ متصل ہوتا تو وہ حکم کی انتہا کا بیان ہوتا نہ کہ ناسخ (۷)، یا پھر کلام کا آخری حصہ پہلے کو ختم کرنے والا ہوتا، جیسے آپ کہیں: "کھڑے ہو جاؤ، مت کھڑے ہو"۔

ساتویں بات: ہمارے ائمہ اہل سنت کے نزدیک منسوخ خود وہ حکمِ ثابت ہے، نہ کہ اس جیسا کوئی اور جیسا کہ معتزلہ کا قول ہے؛ کہ وہ ایسا خطاب ہے جو اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ پہلے حکم کی طرح کا کوئی حکم مستقبل میں نصِ متقدم کی وجہ سے ختم ہو چکا ہے۔ انہیں اس بات پر ان کے اس عقیدے نے ابھارا کہ اوامر (حکم) مراد ہوتے ہیں، اور یہ کہ 'حسن' (اچھائی) اچھے کی

ایک ذاتی صفت ہے، اور اللہ کی مراد حسن ہی ہے۔ ہمارے علماء نے اپنی کتابوں میں اسے باطل قرار دیا ہے (۸)۔

آٹھویں بات: ہمارے علماء کا خبروں (اخبار) کے بارے میں اختلاف ہے: کیا ان میں نسخ داخل ہو سکتا ہے؟ جمہور کا موقف یہ ہے کہ نسخ صرف اوامر و نواہی (حکم اور ممانعت) کے ساتھ خاص ہے، اور خبر میں نسخ داخل نہیں ہوتا، کیونکہ اللہ تعالیٰ پر جھوٹ کا محال ہونا یقینی ہے (۹)۔

(۱) خطی نسخوں میں ہے: "وزاد" (اور اس نے زیادہ کیا)، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے۔ (۲) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/۱۹۰، اور المحصول للرازی ۳/۲۸۲۔ (۳) (خ)، (د) اور (ظ) میں ہے: "محافظاً"۔ (٤) (خ) اور (د) میں ہے: "وتجوزاً"۔ (٥) (د)، (ز) اور (ظ) میں ہے: "لیعما" (تاکہ وہ دونوں شامل ہوں)، اور (خ) میں ہے: "لیعمی"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (٦) (خ)، (د) اور (م) میں ہے: "وقیدا" (اور ان دونوں نے قید لگائی)۔ (۷) دیکھیے المحصول للرازی ۳/۲۸۳۔ (۸) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/۱۹۰-۱۹۱۔ (۹) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/۱۹۱، اور الإیضاح لناسخ القرآن ومنسوخه لمکی ص ٦٦۔

Surah Al-Baqarah: Verse 106. Page 305.

It was said: If a report (khabar) includes a legal ruling (shari'i), its abrogation (naskh) is permissible (1), as in the saying of the Almighty: "And from the fruits of the palm trees and grapevines you take intoxicant..." [An-Nahl: 67]. The discussion on this will come there, God willing.

Ninth: Specification (takhsis) within a general statement ('umum) might mistakenly be thought of as abrogation, but it is not; because the specified part was never intended to be included in the general statement. If it were proven that the general statement applied to something, and then that thing was removed from the general statement, it would be abrogation, not specification (2). The predecessors used to call specification "abrogation" in a broad and metaphorical sense.

Tenth: Know that in the Sharia, reports may appear whose apparent meaning is absolute and all-encompassing, while their restriction (taqyid) appears in another place, thus lifting that absolute sense. For example, the saying of the Almighty: "And when My servants ask you concerning Me, indeed I am near. I respond to the invocation of the supplicant when he calls upon Me" [Al-Baqarah: 186]. The apparent meaning of this ruling is a report about answering every supplicant in every state, but it has been restricted elsewhere, as in His saying: "then He will remove that for which you invoked Him, if He wills" [Al-An'am: 41]. One who lacks insight might think this is a case of abrogation in reports, but it is not; rather, it is a matter of absolute and restricted (itlaq and taqyid). Further clarification of this issue will come in its place, God willing (3).

Eleventh: Our scholars, may God have mercy on them (4), said: It is permissible to abrogate a more difficult ruling with a lighter one, such as abrogating the requirement of standing firm for ten with standing firm for two (5). It is also permissible to abrogate a lighter ruling with a more difficult one, such as abrogating the fast of Ashura and the limited number of days with Ramadan, as will be explained in the verse on fasting (6). Similarly, a ruling can be abrogated by something of equal difficulty or ease, such as the direction of prayer (Qibla). And a thing can be abrogated without a replacement, such as the charity of confidential talk (Sadaqat al-Najwa).

---

(1) See An-Nasikh wa al-Mansukh by An-Nahhas 1/407. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/191. (3) In the interpretation of verse (186) of this Surah (The Third Issue). (4) Al-Muharrar

al-Wajiz 1/191. (5) Meaning in His saying: "If there are among you twenty [who are] steadfast, they will overcome two hundred. And if there are among you one hundred, they will overcome a thousand..." abrogation by His saying: "But if there are among you one hundred [who are] steadfast, they will overcome two hundred. And if there are among you a thousand, they will overcome two thousand..." [Al-Anfal: 65-66]. See Al-Idah li-Nasikh al-Qur'an wa Mansukhih, pp. 300-301. (6) Verse (183) of this Surah (The Fourth Issue).

सूरह अल-बकरा: आयत 106। पृष्ठ 305।

कहा गया है: यदि किसी विवरण (खबर) में कोई शरीयत का नियम शामिल है, तो उसका निरसन (नस्ख) जायज़ है(1), जैसे कि सर्वशक्तिमान का कथन है: "और खजूर के पेड़ों और अंगूरों के फलों से तुम नशा देने वाली चीज़ बनाते हो..." [अन-नहल: 67]। इस पर चर्चा वहाँ आएगी, यदि ईश्वर ने चाहा।

नौवाँ: एक सामान्य कथन ('उमूम) के भीतर विशेषीकरण (तख़्सीस) से यह भ्रम हो सकता है कि यह निरसन है, जबकि ऐसा नहीं है; क्योंकि जो विशेष किया गया है वह कभी भी सामान्य कथन के दायरे में था ही नहीं। यदि यह सिद्ध हो जाता कि सामान्य कथन किसी चीज़ पर लागू होता है, और फिर उस चीज़ को सामान्य कथन से बाहर कर दिया जाता, तो वह निरसन होता, न कि विशेषीकरण(2)। पूर्ववर्ती विद्वान व्यापक और लाक्षणिक अर्थ में विशेषीकरण को भी "निरसन" कह देते थे।

दसवाँ: जान लें कि शरीयत में ऐसे विवरण आ सकते हैं जिनका प्रत्यक्ष अर्थ निरपेक्ष और सर्वव्यापी है, जबकि उनका प्रतिबंध (तक़यीद) किसी अन्य स्थान पर आता है, जिससे वह निरपेक्षता समाप्त हो जाती है। जैसे कि सर्वशक्तिमान का कथन है: "और जब मेरे बंदे आपसे मेरे बारे में पूछें, तो मैं वास्तव में निकट हूँ। जब पुकारने वाला मुझे पुकारता है, तो मैं उसकी पुकार का उत्तर देता हूँ" [अल-बकरा: 186]। इस नियम का प्रत्यक्ष अर्थ हर स्थिति में हर पुकारने वाले को उत्तर देने की सूचना है, लेकिन अन्यत्र इसे प्रतिबंधित किया गया है, जैसे कि उनके कथन में: "फिर यदि वह चाहे, तो वह उस दुख को दूर कर देता है जिसके लिए तुम उसे पुकारते हो" [अल-अनाम: 41]। जिसे समझ की कमी हो, वह सोच सकता है कि यह सूचनाओं में निरसन का मामला है, लेकिन ऐसा नहीं है; बल्कि यह निरपेक्ष और प्रतिबंधित (इतलाक़ और तक़यीद) का मामला है। इस विषय का और अधिक स्पष्टीकरण इसके अपने स्थान पर आएगा, यदि ईश्वर ने चाहा(3)।

ग्यारहवाँ: हमारे विद्वानों (ईश्वर उन पर दया करे)(4) ने कहा है: एक भारी (कठिन) नियम को हल्के नियम से बदलना (निरस्त करना) जायज़ है, जैसे दस के मुक़ाबले डटे रहने की अनिवार्यता को दो के मुक़ाबले डटे रहने से बदलना(5)। हल्के नियम को भारी नियम से बदलना भी जायज़ है, जैसे आशूरा और कुछ गिने-चुने दिनों के उपवास को रमज़ान के रोज़ों से बदलना, जैसा कि रोज़े वाली आयत में विस्तार से आएगा(6)। इसी तरह, एक नियम को समान कठिनाई या आसानी वाले नियम से भी बदला जा सकता है, जैसे कि क़िबला। और किसी चीज़ को बिना किसी विकल्प के भी समाप्त (निरस्त) किया जा सकता है, जैसे कि गुप्त परामर्श के समय दी जाने वाली दान (सदक़ा अल-नजवा)।

(1) अन-नहहास की 'अन्-नासिख़ वल-मंसूख़' 1/407 देखें। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/191। (3) इस सूरह की आयत (186) की व्याख्या में (तीसरा मुद्दा)। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/191। (5) यानी उनके इस कथन में: "यदि तुममें से बीस सब्र करने वाले होंगे, तो वे दो सौ पर हावी होंगे। और यदि तुममें से सौ होंगे, तो वे एक हज़ार पर हावी होंगे..." का निरसन उनके इस कथन द्वारा हुआ: "अब यदि तुममें से सौ सब्र करने वाले होंगे, तो वे दो सौ पर हावी होंगे। और यदि तुममें से एक हज़ार होंगे, तो वे दो हज़ार पर हावी होंगे..." [अल-अनफाल: 65-66]। अल-ईदाह ली-नासिख़ अल-क़ुरआन व मन्सूख़िह, पृ. 300-301 देखें। (6) इस सूरह की आयत (183) (चौथा मुद्दा)।

سورہ البقرہ: آیت ۱۰۶۔ صفحہ ۳۰۵۔

اور کہا گیا: بے شک خبر جب کسی شرعی حکم پر مشتمل ہو تو اس کا نسخ (منسوخی) جائز ہے(۱)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: "اور کھجوروں اور انگوروں کے پھلوں سے تم نشہ آور چیز بناتے ہو..." [النحل: ۶۷]۔ اور وہاں اس پر گفتگو آئے گی ان شاء اللہ تعالیٰ۔

نویں بات: عام حکم میں تخصیص (مخصوص کرنا) سے یہ وہم ہوتا ہے کہ یہ نسخ ہے، حالانکہ ایسا نہیں ہے؛ کیونکہ جو مخصوص کیا گیا وہ کبھی بھی عام حکم میں شامل ہی نہیں تھا، اور اگر کسی چیز کا عام حکم میں شامل ہونا ثابت ہو جاتا، پھر اسے عام سے نکال دیا جاتا، تو وہ نسخ ہوتا نہ کہ تخصیص(۲)۔ اور متقدمین (قدیم علماء) وسعت اور مجاز کے طور پر تخصیص کو نسخ کہہ دیا کرتے تھے۔

دسویں بات: جان لو کہ شریعت میں ایسی خبریں آتی ہیں جن کا ظاہری مفہوم مطلق اور ہمہ گیر ہوتا ہے، اور دوسری جگہ ان کی قید (محدودیت) وارد ہوتی ہے، پس وہ اطلاق ختم ہو جاتا ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: "اور جب میرے بندے آپ سے میرے بارے میں پوچھیں تو میں قریب ہوں، جب کوئی پکارنے والا مجھے پکارتا ہے تو میں اس کی پکار سنتا ہوں" [البقرہ: ۱۸۶]۔ تو اس حکم کا ظاہری مفہوم ہر حال میں ہر پکارنے والے کی دعا کی قبولیت کی خبر دینا ہے، لیکن دوسری جگہ اس کی قید آ گئی ہے، جیسا کہ اللہ کا فرمان ہے: "تو جس تکلیف کے لیے تم اسے پکارتے ہو اگر وہ چاہے تو اسے دور کر دیتا ہے" [الانعام: ۴۱]۔ تو جسے بصیرت نہ ہو وہ یہ سمجھ سکتا ہے کہ یہ خبروں میں نسخ کے باب سے ہے، حالانکہ ایسا نہیں ہے، بلکہ یہ اطلاق اور تقیید کے باب سے ہے، اور اس مسئلے کی مزید وضاحت ان شاء اللہ تعالیٰ اپنے مقام پر آئے گی(۳)۔

گیارہویں بات: ہمارے علماء رحمہم اللہ تعالیٰ نے کہا(۴): بوجھل (مشکل) حکم کا ہلکے حکم سے نسخ جائز ہے، جیسے دس کے مقابلے میں ثابت قدمی کی جگہ دو کے مقابلے میں ثابت قدمی کا حکم(۵)۔ اور ہلکے حکم کا بوجھل حکم سے نسخ بھی جائز ہے، جیسے یوم عاشورہ اور گنتی کے چند دنوں کے روزوں کا رمضان سے نسخ، جیسا کہ روزے کی آیت میں اس کا بیان آئے گا(۶)۔ اور مثل کا مثل سے نسخ بھی ہوتا ہے بوجھ اور تخفیف میں، جیسے قبلہ، اور کسی چیز کا بغیر کسی بدل کے نسخ بھی ہوتا ہے، جیسے صدقۂ نجویٰ۔

---

(۱) ملاحظہ کریں "الناسخ والمنسوخ" للنحاس ۱/۴۰۷۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۱۹۱۔ (۳) اسی سورہ کی آیت (۱۸۶) کی تفسیر میں (تیسرا مسئلہ)۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۱۹۱۔ (۵) یعنی اللہ تعالیٰ کے اس فرمان میں: "اگر تم میں بیس صبر کرنے والے ہوں گے تو وہ دو سو پر غالب آئیں گے، اور اگر تم میں سے سو ہوں گے تو وہ ایک ہزار پر غالب آئیں گے..." اس کا نسخ اس قول سے ہوا: "پس اب اگر تم میں سو صبر کرنے والے ہوں گے تو وہ دو سو پر غالب آئیں گے، اور اگر تم میں سے ایک ہزار ہوں گے تو وہ دو ہزار پر غالب آئیں گے..." [الانفال: ۶۵-۶۶]۔ ملاحظہ کریں "الإیضاح لناسخ القرآن ومنسوخہ" ص ۳۰۰-۳۰۱۔ (۶) اسی سورہ کی آیت (۱۸۳) (چوتھا مسئلہ)۔

Page 306 Surah Al-Baqarah: Verse 106

The Quran is abrogated by the Quran, and the Sunnah by the Sunnah (1). This phrase refers to the definitive, mutawatir (consecutively reported) report, and a solitary report (khabar al-wahid) is abrogated by another solitary report.

The astute scholars among the leading Imams maintain that the Quran can be abrogated by the Sunnah, and this is present in the Prophet's (PBUH) saying: "There is no will for an heir" (2). This is evident in the legal issues discussed by Malik. However, Ash-Shafi'i (3) and Abu al-Faraj al-Maliki (4) rejected this. The former view is more correct, as all [revelation] is the decree of Allah Almighty and from Him, even if the terms differ. Furthermore, flogging is omitted from the prescribed punishment (hadd) for adultery for a previously married person who is stoned; nothing omits that except the Sunnah—specifically, the action of the Prophet (PBUH)—and this is clear.

The astute scholars also agree that the Sunnah can be abrogated by the Quran. This is found in the case of the Qibla, as facing ash-Sham (Syria/Jerusalem) for prayer was not mentioned in the Book of Allah Almighty. And in the words of Allah Almighty: {do not return them to the disbelievers} [Al-Mumtahanah: 10], for their return was only due to the peace treaty made by the Prophet (PBUH) with the Quraysh.

The astute scholars allow for the rational possibility of abrogating the Quran with a solitary report, but they differed on whether it legally occurred. Abu al-Ma'ali and others held that it occurred during the incident at Masjid Quba, as will be explained later (5), while others rejected it.

It is not valid to abrogate a text (nass) with an analogy (qiyas), because one of the conditions of analogy is that it must not contradict a text. All of this took place during the lifetime of the Prophet (PBUH). As for after his death and the stabilization of the Sharia, the Ummah reached a consensus that there is no more abrogation. For this reason, consensus (ijma') neither abrogates nor is it abrogated, since its formation occurs after the cessation of...

(1) In the manuscripts: "and the Sunnah by expression"; what is established is from Al-Muharrar al-Wajiz 1/191. (2) A portion of a hadith recorded by Ahmad (17663), at-Tirmidhi (2121), an-Nasa'i in al-Sunan al-Kubra (6435) and al-Mujtaba 6/247, and Ibn Majah (2712) from the hadith of 'Amr bin Kharijah (may Allah be pleased with him). At-Tirmidhi said: This is a hasan sahih (good and authentic) hadith. It was also recorded by Ahmad (22294), Abu Dawud (2870), at-Tirmidhi (2120), and Ibn Majah

(2713) from the hadith of Abu Umamah al-Bahili (may Allah be pleased with him). (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/191. (4) However, Makki bin Abi Talib noted in his clarification (p. 78) that Abu al-Faraj al-Maliki allowed the abrogation of the Quran by the Sunnah, which contradicts what the author reported from him. Abu al-Faraj al-Maliki: He is 'Amr bin Muhammad al-Laythi, the judge; he grew up in Baghdad and his origins are from Basra. He has the well-known book al-Hawi in the Maliki school, and the book al-Luma' on the principles of jurisprudence. He died in the year 330 AH, and it is said 331 AH. Al-Dibaj al-Mudhahhab 2/127. (5) 2/430.

पृष्ठ 306 सूरह अल-बकरा: आयत 106

कुरान को कुरान द्वारा और सुन्नत को सुन्नत द्वारा निरस्त (मंसूख) किया जाता है (1), और इस वाक्यांश से आशय निश्चित और मुतवातिर (लगातार रिपोर्ट की गई) रिपोर्ट से है। इसी तरह, एक 'खबर अल-वाहिद' (एकल रिपोर्ट) को दूसरी 'खबर अल-वाहिद' द्वारा निरस्त किया जाता है।

प्रमुख इमामों के प्रखर विद्वानों का मत है कि कुरान को सुन्नत द्वारा निरस्त किया जा सकता है, और यह पैगंबर (स.अ.व.) के इस कथन में पाया जाता है: "वारिस के लिए कोई वसीयत नहीं है" (2)। यह इमाम मालिक के मुद्दों में स्पष्ट है। हालाँकि, अल-शाफी (3) और अबू अल-फरज अल-मलिकी (4) ने इससे इनकार किया। पहला विचार अधिक सही है, इस प्रमाण के आधार पर कि सब कुछ अल्लाह सर्वशक्तिमान का निर्णय है और उसी की ओर से है, भले ही नाम भिन्न हों। इसके अलावा, व्यभिचार की सजा (हद) में उस विवाहित व्यक्ति के लिए कोड़े मारना छोड़ दिया जाता है जिसे पत्थर मार-मार कर मार दिया जाता है (रजम), और इसे सुन्नत के अलावा किसी और चीज़ ने नहीं हटाया है, जो पैगंबर (स.अ.व.) का कार्य था, और यह स्पष्ट है।

प्रखर विद्वानों का यह भी मत है कि सुन्नत को कुरान द्वारा निरस्त किया जा सकता है। यह किबला (प्रार्थना की दिशा) के मामले में पाया जाता है, क्योंकि शाम (सीरिया/यरुशलम) की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ना अल्लाह सर्वशक्तिमान की किताब में नहीं था। और अल्लाह सर्वशक्तिमान के इस कथन में: {उन्हें काफिरों की ओर वापस न भेजो} [अल-मुमतहाना: 10], क्योंकि उनकी वापसी केवल पैगंबर (स.अ.व.) द्वारा कुरैश के साथ किए गए शांति समझौते के कारण थी।

प्रखर विद्वान तर्कसंगत रूप से 'खबर अल-वाहिद' द्वारा कुरान के निरस्तीकरण की अनुमति देते हैं, लेकिन उनमें इस बात पर मतभेद है कि क्या यह कानूनी रूप से हुआ? अबू अल-माली और अन्य का मानना था कि यह मस्जिद कुबा की घटना के दौरान हुआ था, जैसा कि आगे बताया जाएगा (5), जबकि अन्य लोगों ने इससे इनकार किया।

किसी पाठ (नस्स) को 'कयास' (तर्क या सादृश्य) द्वारा निरस्त करना मान्य नहीं है, क्योंकि 'कयास' की शर्तों में से एक यह है कि वह किसी स्पष्ट पाठ का विरोध न करे। यह सब पैगंबर (स.अ.व.) के जीवनकाल के दौरान था। उनकी मृत्यु और शरीयत के स्थिर होने के बाद, उम्माह (मुस्लिम समुदाय) इस बात पर सहमत हो गया कि अब कोई और निरस्तीकरण नहीं होगा। इसी कारण से, 'इज्मा'

(सर्वसम्मति) न तो निरस्त करती है और न ही निरस्त की जाती है, क्योंकि इसका गठन... के रुकने के बाद होता है।

(1) पांडुलिपियों में: "और अभिव्यक्ति द्वारा सुन्नत"; जो स्थापित संस्करण है वह अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/191 से है। (2) हदीस का एक हिस्सा जिसे अहमद (17663), तिरमिज़ी (2121), अल-सुनन अल-कुबरा (6435) और अल-मुज्तबा 6/247 में निसाई, और इब्न माजह (2712) ने अम्र बिन खारिजा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। तिरमिज़ी ने कहा: यह एक 'हसन सहीह' हदीस है। इसे अहमद (22294), अबू दाऊद (2870), तिरमिज़ी (2120), और इब्न माजह (2713) ने अबू उमामा अल-बहिली (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से भी उद्धृत किया है। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/191। (4) हालाँकि, मक्की बिन अबी तालिब ने अपने स्पष्टीकरण (पृष्ठ 78) में उल्लेख किया है कि अबू अल-फरज अल-मलिकी ने सुन्नत द्वारा कुरान के निरस्तीकरण की अनुमति दी थी, जो लेखक द्वारा उनके बारे में बताई गई बात के विपरीत है। अबू अल-फरज अल-मलिकी: वे अम्र बिन मुहम्मद अल-लैथी हैं, न्यायाधीश; वे बगदाद में पले-बढ़े और मूल रूप से बसरा के थे। उनकी मालिकी संप्रदाय में प्रसिद्ध पुस्तक 'अल-हावी' और न्यायशास्त्र के सिद्धांतों पर 'अल-लुमा' पुस्तक है। उनकी मृत्यु 330 हिजरी में हुई, और कहा जाता है कि 331 हिजरी में हुई। अल-दीबाज़ अल-मुदहहब 2/127। (5) 2/430।

صفحہ 306 سورۃ البقرہ: آیت 106

قرآن کو قرآن سے اور سنت کو سنت سے منسوخ کیا جاتا ہے (1)، اور اس عبارت سے مراد خبرِ متواتر قطعی ہے، اور خبرِ واحد کو خبرِ واحد سے منسوخ کیا جاتا ہے۔

ماہر ائمہ اس بات پر متفق ہیں کہ قرآن کو سنت سے منسوخ کیا جا سکتا ہے، اور یہ نبی کریم ﷺ کے اس قول میں موجود ہے: "وارث کے لیے کوئی وصیت نہیں" (2)۔ اور یہ امام مالک کے مسائل میں ظاہر ہے۔ اور امام شافعی (3) اور ابو الفرج المالکی (4) نے اس کا انکار کیا ہے۔ پہلا قول زیادہ صحیح ہے، اس دلیل کے ساتھ کہ تمام (وحی) اللہ تعالی کا حکم ہے اور اسی کی طرف سے ہے، چاہے ناموں میں اختلاف ہو۔ اور یہ بھی کہ، رجم کیے جانے والے شادی شدہ زانی سے کوڑے مارنے کی سزا ساقط ہے، اور اس کو ساقط کرنے والی سوائے سنت یعنی نبی کریم ﷺ کے فعل کے اور کچھ نہیں ہے، اور یہ بات واضح ہے۔

ماہرین کا اس بات پر بھی اتفاق ہے کہ سنت قرآن سے منسوخ ہوتی ہے، اور یہ قبلہ کی تبدیلی میں موجود ہے، کیونکہ ملکِ شام کی طرف نماز پڑھنا اللہ تعالیٰ کی کتاب میں نہیں تھا۔ اور اللہ تعالیٰ کے اس قول میں: {فَلَا تَرْجِعُوهُنَّ إِلَى الْكُفَّارِ} [الممتحنہ: 10] کیونکہ ان کی واپسی صرف نبی کریم ﷺ کی قریش کے ساتھ صلح کی وجہ سے تھی۔

ماہرین عقل کے لحاظ سے خبرِ واحد کے ذریعے قرآن کے نسخ کو جائز قرار دیتے ہیں، لیکن ان میں اختلاف ہے کہ کیا یہ شرعاً واقع ہوا ہے؟ چنانچہ ابو المعالی اور دیگر کا خیال ہے کہ یہ مسجدِ قباء کے واقعہ میں واقع ہوا، جیسا کہ آگے بیان آئے گا (5)، اور ایک گروہ نے اس کا انکار کیا ہے۔

کسی نص کا نسخ قیاس سے جائز نہیں ہے، کیونکہ قیاس کی شرائط میں سے ایک یہ ہے کہ وہ نص کے خلاف نہ ہو۔ اور یہ سب نبی کریم ﷺ کی زندگی کے دور میں تھا، لیکن آپ ﷺ کی وفات اور شریعت کے استقرار کے بعد امت کا اس بات پر اجماع ہو گیا کہ اب کوئی نسخ نہیں ہے، اسی لیے اجماع نہ منسوخ ہوتا ہے اور نہ اس سے کوئی چیز منسوخ کی جاتی ہے، کیونکہ اس کا انعقاد (وحی کے) انقطاع کے بعد ہوتا ہے...

(1) نسخوں میں "والسنة بالعبارة" ہے، اور جو متن میں ہے وہ المحرر الوجیز 191/1 سے ماخوذ ہے۔ (2) حدیث کا ایک حصہ جسے احمد (17663)، ترمذی (2121)، نسائی نے السنن الکبری (6435) اور المجتبی 247/6 میں، اور ابن ماجہ (2712) نے عمرو بن خارجہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ امام ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ اور اسے احمد (22294)، ابوداؤد (2870)، ترمذی (2120)، اور ابن ماجہ (2713) نے ابوامامہ الباہلی رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (3) المحرر الوجیز 191/1۔ (4) لیکن مکی بن ابی طالب نے اپنی کتاب "ایضاح" ص 78 میں نقل کیا ہے کہ ابو الفرج المالکی نے سنت کے ذریعے قرآن کے نسخ کو جائز قرار دیا ہے، جو مصنف کے نقل کردہ قول کے خلاف ہے۔ ابو الفرج المالکی: یہ عمرو بن محمد اللیثی القاضی ہیں، بغداد میں پلے بڑھے اور ان کی اصل بصرہ سے ہے، ان کی مشہور کتاب "الحاوی" فقہ مالکی میں ہے، اور اصول فقہ میں "اللمع" ہے، وفات سن 330ھ یا 331ھ میں ہوئی۔ الدیباج المذہب 127/2۔ (5) 430/2۔

...revelation. If we find a consensus (ijma') that contradicts a text (nass), we know (1) that the consensus was based on an abrogating text unknown to us, and that the contradicting text's application has been abandoned, and its requirement abrogated. However, it remains as a tradition (sunnah) that is read and narrated, like the verse (2) regarding the year's waiting period in the Quran which is still recited (3). Reflect on this, for it is precious. This falls under the category of abrogation of the ruling without the recitation, similar to the charity associated with private consultation (sadaqat al-najwa). Sometimes the recitation is abrogated but the ruling remains, like the verse of stoning. And sometimes both recitation and ruling are abrogated, such as the statement of Al-Siddiq (may Allah be pleased with him): "We used to read: 'Do not turn away from your fathers, for it is disbelief'" (4), and many similar examples.

The view of the experts is that whoever the abrogating text has not reached is bound by the first ruling, as will be explained regarding the change of the Qibla (5).

Experts also allow for the abrogation of a ruling before it is performed, which is found in the story of the sacrifice (Dhabih), and in the obligation of fifty prayers before they were reduced to five, as will be explained in "Al-Isra" and "As-Saffat", God willing (6).

Twelfth: There are ways to identify the abrogating text:

Among them: for the wording to contain an indication of it, such as his (peace be upon him) saying: "I had forbidden you from visiting graves, so visit them; and I had forbidden you from drinks except in leather containers, so drink from any vessel, provided you do not drink anything intoxicating" (7) and similar statements.

---

(1) In (Kh), (D), and (M): "faya'lam" (so he knows). (2) In (Kh), (Z), (Za), and (M): "kama ayah" (like a verse), and the recorded version is from (D). (3) Meaning the Almighty's saying: {Provision for a year without expulsion} [Al-Baqarah: 240], for its ruling was abrogated by the Almighty's saying: {Wait for four months and ten [days]} [Al-Baqarah: 234], while its recitation remains. See Al-Mahsul 3/322. (4) It is part of the long Saqifa hadith, narrated by Ahmad (391) and Al-Bukhari (6830) from the hadith of Ibn Abbas from Umar ibn al-Khattab, and it is not a saying of Al-Siddiq, may Allah be pleased with them. (5) 431/2. (6) Al-Isra, verse (1), and As-Saffat, verses (102-107). This eleventh issue was cited by the author from Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/191 with a slight difference. (7) Narrated similarly by Ahmad (22958), Muslim (977), and

3/1584-1585 from the hadith of Buraydah al-Aslami (may Allah be pleased with him). Other reports on the subject are from Ali, Ibn Mas'ud, Abu Sa'id al-Khudri, and Anas ibn Malik (may Allah be pleased with them), appearing respectively in Musnad Ahmad (1236), (4319), (11329), and (13487).

सूरा अल-बकरा: आयत 106 | 307

...रहस्योद्घाटन (वही)। यदि हमें कोई ऐसी आम सहमति (इज्मा) मिलती है जो किसी पाठ (नस) के विपरीत है, तो हम जानते हैं (1) कि आम सहमति एक ऐसे निरस्त करने वाले पाठ (नासिख) पर आधारित थी जिसे हम नहीं जानते, और उस विरोधाभासी पाठ का पालन करना छोड़ दिया गया है, और इसकी आवश्यकता निरस्त कर दी गई है। हालाँकि, यह एक सुन्नत के रूप में बनी हुई है जिसे पढ़ा और सुनाया जाता है, जैसे कुरान में एक साल की इद्दत (प्रतीक्षा अवधि) वाली आयत (2) जिसे अभी भी पढ़ा जाता है (3)। इस पर विचार करें, क्योंकि यह बहुमूल्य है। यह पाठ (तिलावत) के बिना नियम (हुक्म) के निरस्त होने की श्रेणी में आता है, जैसे 'सदकत अल-नजवा' (निजी परामर्श का दान)। कभी-कभी पाठ निरस्त कर दिया जाता है लेकिन नियम बना रहता है, जैसे रज़्म (पत्थर मारने) की आयत। और कभी-कभी पाठ और नियम दोनों ही निरस्त कर दिए जाते हैं, जैसे अल-सिद्दीक (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कथन: "हम पढ़ा करते थे: 'अपने पिताओं से मुँह न मोड़ो, क्योंकि यह कुफ़्र है'" (4), और इसके जैसे कई उदाहरण हैं।

विशेषज्ञों का मत है कि जिस व्यक्ति तक निरस्त करने वाला पाठ नहीं पहुँचा है, वह पहले नियम से बाध्य है, जैसा कि किबला परिवर्तन (5) के विवरण में आएगा।

विशेषज्ञ किसी नियम को उसके क्रियान्वयन से पहले ही निरस्त करने की अनुमति भी देते हैं, जो 'ज़बीह' (बलिदान) की कहानी में और पचास नमाज़ों के अनिवार्य होने में पाया जाता है, इससे पहले कि वे पाँच कर दी गईं, जैसा कि 'अल-इसरा' और 'अस-साफ़्फ़ात' में स्पष्ट किया जाएगा, यदि अल्लाह ने चाहा (6)।

बारहवाँ: नासिख (निरस्त करने वाले) को पहचानने के तरीके

उनमें से: शब्दों में ही इसका कोई संकेत होना, जैसे कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का कहना: "मैंने तुम्हें कब्रों की ज़ियारत (दर्शन) से मना किया था, अब उनकी ज़ियारत करो; और मैंने तुम्हें चमड़े के बर्तनों के अलावा अन्य बर्तनों में पीने से मना किया था, तो अब तुम हर बर्तन में पियो, सिवाय इसके कि नशा करने वाली चीज़ न पियो" (7) और इसी तरह।

---

(1) (ख़), (द) और (म) में: "फया'लम" (तो वह जानता है)। (2) (ख़), (ज़), (ज़ॉ) और (म) में: "कमा आयह" (एक आयत की तरह), और दर्ज संस्करण (द) से है। (3) यानी अल्लाह तआला का कहना:

{एक साल के लिए प्रावधान बिना निकाले} [अल-बकरा: 240], क्योंकि इसके हुक्म को अल्लाह के इस कौल से निरस्त कर दिया गया था: {वे अपने आप को चार महीने और दस दिन रोके रखें} [अल-बकरा: 234], जबकि इसकी तिलावत बाकी है। देखिए अल-महसूल 3/322। (4) यह लंबी 'सकीफ़ा' हदीस का एक हिस्सा है, जिसे अहमद (391) और अल-बुखारी (6830) ने इब्न अब्बास की हदीस से उमर इब्न अल-खत्ताब के हवाले से रिवायत किया है, और यह अल-सिद्दीक का कहना नहीं है, अल्लाह उन सब से राज़ी हो। (5) 431/2. (6) अल-इसरा आयत (1), और अस-साफ़्फ़ात आयत (102-107)। इस ग्यारहवें मसले को लेखक ने इब्न अतिय्या से 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/191 में थोड़े अंतर के साथ उद्धृत किया है। (7) इसे अहमद (22958), मुस्लिम (977) और 3/1584-1585 ने बुरैदा अल-अस्लमी (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से रिवायत किया है। इस विषय पर अली, इब्न मसूद, अबू सईद अल-खुदरी और अनस इब्न मलिक (रज़ियल्लाहु अन्हु) से भी रिवायतें हैं, जो क्रमशः मुसनद अहमद (1236), (4319), (11329) और (13487) में हैं।

...وحی۔ پس اگر ہم ایسی اجماع پائیں جو کسی نص (تحریری حکم) کے خلاف ہو، تو ہمیں معلوم ہوتا ہے (۱) کہ اجماع کسی ایسی ناسخ نص پر مبنی تھا جسے ہم نہیں جانتے، اور اس مخالف نص پر عمل کرنا چھوڑ دیا گیا ہے، اور اس کا تقاضا منسوخ ہو چکا ہے۔ تاہم، وہ ایک ایسی سنت کے طور پر باقی ہے جو پڑھی اور روایت کی جاتی ہے، جیسے قرآن میں سال بھر کی عدت والی آیت (۲) جو تلاوت کی جاتی ہے (۳)۔ اس پر غور کریں، کیونکہ یہ بہت قیمتی بات ہے۔ یہ تلاوت کے بغیر حکم کے منسوخ ہونے کے باب سے ہے، جیسے صدقہ نجویٰ (سرگوشی کا صدقہ)۔ اور کبھی تلاوت منسوخ ہو جاتی ہے لیکن حکم باقی رہتا ہے، جیسے آیت رجم۔ اور کبھی تلاوت اور حکم دونوں منسوخ ہو جاتے ہیں، جیسا کہ صدیق رضی اللہ عنہ کا قول ہے: "ہم پڑھا کرتے تھے: 'اپنے باپوں سے منہ نہ موڑو کیونکہ یہ کفر ہے'" (۴) اور اس جیسی بہت سی مثالیں ہیں۔

ماہرین کا اس بات پر اتفاق ہے کہ جس شخص تک ناسخ (منسوخ کرنے والا حکم) نہیں پہنچا، وہ پہلے حکم کا پابند ہے، جیسا کہ تحویلِ قبلہ (۵) کے بیان میں آئے گا۔

اور ماہرین حکم پر عمل کرنے سے پہلے ہی اس کے نسخ کے جواز کے قائل ہیں، اور یہ ذبیح (حضرت اسماعیل علیہ السلام) کے قصے میں موجود ہے، اور پانچ نمازوں سے پہلے پچاس نمازیں فرض ہونے میں، جیسا کہ "الاسراء" اور "الصافات" میں بیان آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (۶)۔

بارہویں بات: ناسخ کی پہچان کے طریقے:

ان میں سے ایک یہ ہے: کہ لفظ میں ایسی بات ہو جو اس پر دلالت کرے، جیسے آپ صلی اللہ علیہ وسلم کا قول: "میں نے تمہیں قبروں کی زیارت سے منع کیا تھا، پس اب ان کی زیارت کرو؛ اور

میں نے تمہیں چمڑے کے برتنوں کے علاوہ پینے سے منع کیا تھا، پس اب ہر برتن میں پیو، سوائے اس کے کہ کوئی نشہ آور چیز نہ پیو" (۷) اور اس جیسی دیگر مثالیں۔

---

(۱) (خ)، (د) اور (م) میں: "فیعلم" (پس وہ جان لے)۔ (۲) (خ)، (ز)، (ظ) اور (م) میں: "کما آیۃ" (جیسے ایک آیت)، اور متن (د) سے ثابت ہے۔ (۳) یعنی اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿مَتَٰعًا إِلَى ٱلْحَوْلِ غَيْرَ إِخْرَاجٍ﴾ [البقرہ : ۲۴۰]، اس کا حکم اللہ تعالیٰ کے اس قول سے منسوخ ہو گیا: ﴿يَتَرَبَّصْنَ بِأَنفُسِهِنَّ أربعَةَ أَشْهُرٍ وَعَشْرًا﴾ [البقرہ : ۲۳۴]، جبکہ اس کی تلاوت باقی رہی۔ دیکھئے المحصول ۳۲۲/۳۔ (۴) یہ طویل حدیثِ سقیفہ کا ایک ٹکڑا ہے، جسے احمد (۳۹۱) اور بخاری (۶۸۳۰) نے ابن عباس کی حدیث سے حضرت عمر بن خطاب کے حوالے سے روایت کیا ہے، اور یہ صدیق (رضی اللہ عنہ) کا قول نہیں ہے، اللہ ان سب سے راضی ہو۔ (۵) ۲/۴۳۱۔ (۶) الاسراء آیت (۱)، اور الصافات آیات (۱۰۲-۱۰۷)۔ یہ گیارہواں مسئلہ مصنف نے ابن عطیہ سے المحرر الوجیز ۱۹۱/۱ میں معمولی فرق کے ساتھ نقل کیا ہے۔ (۷) اسے احمد (۲۲۹۵۸)، مسلم (۹۷۷) اور ۳/۱۵۸۴-۱۵۸۵ نے بریدہ الاسلمی رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اس باب میں حضرت علی، ابن مسعود، ابو سعید الخدری اور انس بن مالک رضی اللہ عنہم سے بھی روایات مروی ہیں، جو ترتیب وار مسند احمد (۱۲۳۶)، (۴۳۱۹)، (۱۱۳۲۹) اور (۱۳۴۸۷) میں موجود ہیں۔

Among them: that the narrator mentions the date, such as saying: "I heard in the year of the Trench (Al-Khandaq), and the abrogated rule was known before it," or saying: "The ruling of such-and-such was abrogated by such-and-such." Among them: that the Ummah (community) reaches a consensus on a ruling being abrogated, and that its abrogating text preceded it. This chapter is expanded upon in the Principles of Jurisprudence (Usul al-Fiqh); we have pointed out enough for those who limit themselves to this, and Allah is the grantor of guidance.

Thirteenth: The majority (al-Jumhur) recited: "ma nansakh" (what we abrogate) with a fatha on the [first] 'nun', from the verb 'nasakha'. This is the apparent and common usage, meaning: what we remove of a verse's ruling while its recitation remains, as previously mentioned. It is also possible that the meaning is: what we remove of a verse's ruling and its recitation, based on what we mentioned.

Ibn 'Amir recited: "nunsikh" with a damma on the [first] 'nun', from 'ansakhtu al-kitaba', in the sense of: "I found it abrogated." Abu Hatim said: "This is a mistake." Abu Ali al-Farisi said: "It is not a language [dialect]; because it is not said 'nasakha' and 'ansakha' with the same meaning, unless the meaning is: what we find abrogated, just as you say: 'ahmadtu al-rajula' (I found the man praiseworthy) and 'abkhaltuhu' (I found him miserly), meaning: I found him praiseworthy and miserly."

Abu Ali said: "And we do not find it abrogated unless we [actually] abrogate it, so the two recitations agree in meaning even if they differ in wording."

It was said: "ma nansakh" means: what we make its transcription for you; it is said: "nasakhtu al-kitaba" (I copied the book) when you write it, and "intasakhtuhu ghayri" (I had someone else copy it for me) if you made its transcription for him.

Makki said: "It is not permissible for the hamza [in 'nunsikh'] to be for transitivity; because the meaning would change, and the meaning would become: 'what we cause you to abrogate of a verse, O Muhammad'. And making him abrogate it would be its revelation upon him, so the meaning would become: what..."

---

(1) In (M): and we keep. (2) Al-Sab'ah p. 168. Al-Taysir p. 76. (3) In Al-Hujjah lil-Qurra' al-Sab'ah 2/184-185, and the author quoted it from him (in both places) via Al-Muharrar al-Wajiz 1/192. (4) In the manuscripts: they differed, and what is established is from (M), which corresponds to what is in Al-Muharrar al-Wajiz. (5) In

(Z) and (Zha): and I copied it. (6) Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at al-Sab' 1/257. And it occurred in (M): or miserly. (7) In Al-Kashf: what I copied for you.

सूरह अल-बकराह: आयत 106 | 308

उनमें से: यह कि वर्णनकर्ता तिथि का उल्लेख करे, जैसे कि कहे: "मैंने खंदक के वर्ष में सुना था, और निरस्त (मनसूख) नियम उससे पहले ज्ञात था," या कहे: "इस चीज़ का नियम उस चीज़ द्वारा निरस्त कर दिया गया था।" उनमें से: यह कि उम्मत (समुदाय) इस बात पर आम सहमति (इज्मा) व्यक्त करे कि कोई नियम निरस्त है, और उसका निरस्त करने वाला (नाि़सिख) पहले आया था। यह अध्याय 'उसूल अल-फिक्ह' (न्यायशास्त्र के सिद्धांतों) में विस्तार से वर्णित है; हमने यहाँ उनके लिए पर्याप्त संकेत दे दिए हैं जो इतने तक ही सीमित रहना चाहते हैं, और अल्लाह ही मार्गदर्शन देने वाला है।

तेरहवाँ: बहुमत (अल-जुम्हूर) ने "मा ननसाख" (مَا نَنْسَخْ) पढ़ा है, नून पर फथा के साथ, 'नसाखा' क्रिया से। यह स्पष्ट और प्रचलित अर्थ है: वह आयत जिसका नियम हम हटा देते हैं लेकिन उसका पाठ (तिलावत) बना रहता है, जैसा कि पहले बताया गया है। यह भी संभव है कि अर्थ हो: वह आयत जिसका नियम और पाठ दोनों हम हटा देते हैं, जैसा कि हमने उल्लेख किया है।

इब्न आमिर ने "नुनसिख" (نُنْسِخ) पढ़ा है, नून पर दम्मा के साथ, 'अनसाख्तु अल-किताब' से, इस अर्थ में कि: "मैंने इसे निरस्त पाया।" अबू हातिम ने कहा: "यह एक गलती है।" अबू अली अल-फ़ारसी ने कहा: "यह कोई भाषा (बोली) नहीं है; क्योंकि 'नसाखा' और 'अनसाखा' एक ही अर्थ में नहीं कहे जाते, जब तक कि अर्थ यह न हो: जो हम निरस्त पाते हैं, जैसे आप कहते हैं: 'अहमदतु अल-रजुल' (मैंने आदमी को प्रशंसनीय पाया) और 'अबखलतूहू' (मैंने उसे कंजूस पाया), अर्थात: मैंने उसे प्रशंसनीय और कंजूस पाया।"

अबू अली ने कहा: "और हम उसे निरस्त तब तक नहीं पाते जब तक कि हम उसे निरस्त न कर दें, इसलिए दोनों पाठ अर्थ में सहमत हैं भले ही उनके शब्दों में अंतर हो।"

और कहा गया है: "मा ननसाख" का अर्थ है: वह जिसकी नकल हम आपके लिए बना दें; कहा जाता है: "नसाख्तु अल-किताब" जब आप उसे लिखते हैं, और "इनतसाख्तुहू ग़ैरी" यदि आपने उसकी नकल किसी और के लिए बनवाई हो।

मक्की ने कहा: "यह जायज़ नहीं है कि हमज़ा [नुनसिख में] सकर्मकता (ट्रांज़िटिविटी) के लिए हो; क्योंकि अर्थ बदल जाएगा, और अर्थ हो जाएगा: 'हे मुहम्मद, हम आपसे किसी आयत को निरस्त करवाते हैं'। और उनसे इसे निरस्त करवाना उन पर इसका अवतरण (नुज़ूल) होगा, तो अर्थ हो जाएगा: क्या..."

(1) (M) में: और हम रखते हैं। (2) अल-सब'आ पृ. 168। अल-तयसीर पृ. 76। (3) अल-हुज्जाह लिल-कुर्रा अल-सब'आ 2/184-185 में, और लेखक ने इसे (दोनों स्थानों पर) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/192 के माध्यम से उनसे उद्धृत किया है। (4) पांडुलिपियों में: वे भिन्न थे, और जो स्थापित है वह (M) से है, जो अल-मुहर्रर अल-वजीज़ में जो है उसके अनुरूप है। (5) (Z) और (Zha) में: और मैंने इसकी नकल की। (6) अल-कशफ़ अन वुजूह अल-क़िरात अल-सब' 1/257। और (M) में आया है: या कंजूस। (7) अल-कशफ़ में: जो मैंने आपके लिए नकल किया।

ان میں سے (ایک طریقہ یہ ہے): کہ راوی تاریخ کا ذکر کرے، مثلاً یہ کہے: "میں نے غزوہ خندق کے سال سنا تھا، اور منسوخ حکم اس سے پہلے معلوم تھا،" یا یہ کہے: "فلاں حکم فلاں سے منسوخ ہو گیا۔" ان میں سے (ایک یہ ہے): کہ امت کا اس بات پر اجماع ہو جائے کہ یہ حکم منسوخ ہے، اور اس کا ناسخ پہلے گزر چکا ہے۔ یہ باب اصولِ فقہ میں تفصیل سے بیان کیا گیا ہے، ہم نے یہاں ان لوگوں کے لیے جو اسی پر اکتفا کرنا چاہیں، ضروری اشارہ کر دیا ہے، اور اللہ ہی ہدایت کی توفیق دینے والا ہے۔

تیرھویں بات: جمہور نے "ما نَنْسَخْ" (نون کے زبر کے ساتھ) پڑھا ہے، جو 'نَسَخَ' سے مشتق ہے۔ یہی ظاہر اور مستعمل ہے، اس معنی میں کہ: ہم کسی آیت کا حکم اٹھا لیتے ہیں اور اس کی تلاوت باقی رہتی ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا۔ اور یہ بھی احتمال ہے کہ معنی یہ ہو: ہم کسی آیت کا حکم اور اس کی تلاوت دونوں اٹھا لیتے ہیں، جیسا کہ ہم نے ذکر کیا۔

اور ابن عامر نے "نُنْسِخ" (نون کے پیش کے ساتھ) پڑھا ہے، جو 'أنسختُ الكتاب' سے ہے، اس معنی میں کہ: "میں نے اسے منسوخ پایا۔" ابو حاتم نے کہا: "یہ غلط ہے۔" اور ابو علی فارسی نے کہا: "یہ (لغت کے اعتبار سے) درست نہیں ہے؛ کیونکہ 'نَسَخَ' اور 'أنسخَ' ایک ہی معنی میں نہیں کہے جاتے، سوائے اس کے کہ معنی یہ ہو: جسے ہم منسوخ پاتے ہیں، جیسے آپ کہتے ہیں: 'أحمدتُ الرجلَ' (میں نے اس شخص کو قابلِ تعریف پایا) اور 'أبخلتُه' (میں نے اسے بخیل پایا)، یعنی: میں نے اسے قابلِ تعریف اور بخیل پایا۔"

ابو علی نے کہا: "اور ہم اسے منسوخ نہیں پاتے سوائے اس کے کہ ہم اسے منسوخ کر دیں، پس دونوں قرأتیں معنی میں متفق ہیں اگرچہ لفظ میں مختلف ہیں۔"

اور کہا گیا ہے: "ما ننسخ" کا مطلب ہے: جو ہم آپ کے لیے نقل (نسخہ) بنا دیں؛ کہا جاتا ہے: "نسختُ الكتاب" جب آپ اسے لکھیں، اور "انتسختُه غيري" جب آپ نے اس کی نقل کسی اور کے لیے بنائی ہو۔

مکی نے کہا: "یہ جائز نہیں ہے کہ حمزہ [نُنْسِخ میں] تعدیہ (transitivity) کے لیے ہو؛ کیونکہ معنی بدل جائے گا، اور معنی یہ ہو جائے گا: 'اے محمد، ہم آپ سے کسی آیت کو منسوخ کرواتے ہیں'۔ اور ان سے اسے منسوخ کروانا ان پر اس کا نزول ہو گا، تو معنی یہ ہو جائے گا: کیا..."

---

(١) (م) میں: اور ہم باقی رکھتے ہیں۔ (٢) السبعۃ ص ١٦٨۔ والتیسیر ص ٧٦۔ (٣) الحجۃ للقراء السبعۃ ٢/ ١٨٤-١٨٥ میں، اور مصنف نے ان سے (دونوں جگہوں پر) المحرر الوجیز ١/ ١٩٢ کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (٤) خطی نسخوں میں: وہ دونوں مختلف تھے، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے، جو المحرر الوجیز میں موجود عبارت کے موافق ہے۔ (٥) (ز) اور (ظ) میں: اور میں نے اس کی نقل کی۔ (٦) الکشف عن وجوہ القراءات السبع ١/ ٢٥٧۔ اور (م) میں واقع ہوا ہے: یا بخیل۔ (٧) الکشف میں: جو میں نے آپ کے لیے نقل کیا۔

309 Surah Al-Baqarah: Verse 106

“...We reveal to you a verse or cause it to be forgotten, We bring something better than it or the like of it,” so the meaning would lead to the conclusion that for every verse revealed, something better was brought, thus the entire Quran would become abrogated. This is not possible, because only a small part of the Quran was abrogated. Since it was impossible for “af'ala” (أفعل) and “fa'ala” (فعَل) to share the same meaning, as it was not heard (in usage), and it was impossible for the hamza to be for transitivity (ta'diya) because it would corrupt the meaning, nothing remained possible except that it belongs to the category of: “ahmadtuhu” (I found him praiseworthy) and “abkhaltuhu” (I found him miserly): meaning when you find someone to be praiseworthy or miserly.

Fourteenth: His saying, the Almighty: {or cause it to be forgotten} [aw nunsiha]. Abu 'Amr and Ibn Kathir read it with fatha on the nun, sin, and hamza (1) [aw nansa'aha], and this was read by Umar, Ibn Abbas, 'Ata', Mujahid, Ubayy ibn Ka'b, 'Ubayd ibn 'Umayr, al-Nakha'i, and Ibn Muhaysin. It's from 'delaying' (takhir), i.e., delaying the abrogation of its wording, meaning: We leave it in the Mother of the Book (2) so it does not occur (3). This is the opinion of 'Ata'. Others said: the meaning of “aw nansa'aha” is: We delay it from abrogation until a known time. Like their saying: “I delayed (nasa'tu) this matter” when you postpone it. From this is their saying: “I sold it on credit (nasa'an)” when you delay payment (4). Ibn Faris said: They say: “May Allah delay (nasa'a) your term of life,” and “Allah delayed (ansaya) your term.” And “the people retreated (intasa'a)” when they moved back and went far, and “I delayed them (nasa'tuhum)” means I postponed them (5).

The meaning is: We delay its revelation or its abrogation according to what we mentioned. It was also said: We take it away from you so you neither read nor remember it.

The rest read it: “nunsiha”, with damma on the nun (6), from forgetfulness (nisyan) which means abandonment (tark), i.e., We leave it and do not change or abrogate it. This was said by Ibn Abbas and al-Suddi (7), and from this is the Almighty's saying: {They have forgotten Allah, so He has forgotten them} [at-Tawbah: 67], meaning: they abandoned His worship, so He abandoned them in punishment. This reading was chosen by Abu...

(1) Al-Sab'ah p. 168, and Al-Taysir p. 76. (2) In (m) and (d): At the end of the Mother of the Book. (3) In (z): So there is no abrogation. See al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at al-Sab'

1/258. (4) Al-Mawardi attributed it in al-Nukat wa al-'Uyun 1/171 to 'Ata' and Ibn Abi Najih. See Tafsir al-Tabari 2/395. (5) Mujmal al-Lughah 4/866. (6) Al-Sab'ah p. 168, and Al-Taysir p. 76. (7) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/171, and Al-Tabari recorded them 2/393-394.

३०९ सूरा अल-बकराह: आयत १०६

“...हम आप पर कोई आयत उतारें या उसे भुला दें, तो हम उससे बेहतर या उसके जैसी लाते हैं,” तो अर्थ यह निकलेगा कि उतारी गई हर आयत के बाद उससे बेहतर आयत आई, जिससे पूरा कुरान निरस्त (mansukh) हो जाएगा, और यह संभव नहीं है, क्योंकि कुरान का केवल थोड़ा सा हिस्सा ही निरस्त हुआ है। चूंकि 'अफ़अला' (أفعل) और 'फ़अला' (فعَل) का एक ही अर्थ होना यहाँ असंभव है क्योंकि ऐसा सुना नहीं गया, और अर्थ बिगड़ने के कारण हमजा का 'तअदिया' (संक्रमण) के लिए होना भी असंभव है, तो एकमात्र संभावना यही बचती है कि यह इस पैटर्न पर हो: 'अहमदतुहू' (मैंने उसे प्रशंसनीय पाया) और 'अबखल्तुहू' (मैंने उसे कंजूस पाया): अर्थात जब आप किसी को प्रशंसनीय या कंजूस पाते हैं।

चौदहवीं बात: अल्लाह तआला का कथन: {या हम उसे भुला दें} [أَوْ نُنْسِهَا - अौ नुन्सिहा]। अबू अम्र और इब्न कसीर ने इसे नून, सीन और हमज़ा पर फत्हा के साथ पढ़ा है (१) [أَوْ نَنْسَأَهَا - अौ ननसा'अहा], और यही उमर, इब्न अब्बास, अता, मुजाहिद, उबैय बिन काब, उबैद बिन उमैर, अल-नखई और इब्न मुहैसिन ने पढ़ा है। यह 'देरी' (ताखीर) से है, यानी: उसके शब्दों के निरस्तीकरण में देरी करना, अर्थात: हम इसे 'उम्मुल किताब' (२) में छोड़ देते हैं, तो वह नहीं होता (३)। यह अता का मत है। अता के अलावा अन्य लोगों ने कहा: “अौ ननसा'अहा” का अर्थ है: हम इसे एक निश्चित समय तक निरस्तीकरण से टाल देते हैं। जैसे वे कहते हैं: “मैंने इस मामले को टाल दिया (नसअतु)” जब आप इसे स्थगित करते हैं। इसी से उनका यह कहना है: “मैंने इसे उधार (नसअन) पर बेचा” जब आपने भुगतान में देरी की (४)। इब्न फारिस ने कहा: वे कहते हैं: “अल्लाह तुम्हारी उम्र टाल दे (नसअ)” और “अल्लाह ने तुम्हारी उम्र टाल दी (अनसअ)”। और “लोग पीछे हट गए (इन्तसअ)” जब वे पीछे हट गए और दूर चले गए, और “मैंने उन्हें टाल दिया (नसअतुहुम)” यानी मैंने उन्हें पीछे धकेल दिया (५)।

तो अर्थ यह है: हम इसके उतरने या इसके निरस्तीकरण में देरी करते हैं जैसा कि हमने उल्लेख किया। और यह भी कहा गया है: हम इसे आपसे दूर ले जाते हैं ताकि आप इसे न पढ़ सकें और न ही याद रख सकें।

बाकी लोगों ने इसे पढ़ा: “नुन्सिहा”, नून पर धम्मा के साथ (६), उस भूलने (निस्यान) से जिसका अर्थ 'छोड़ना' (तर्क) है, यानी: हम इसे छोड़ देते हैं और इसे न बदलते हैं और न ही निरस्त करते हैं। यह

इब्न अब्बास और अल-सुद्दी ने कहा है (७), इसी से अल्लाह तआला का कथन है: {वे अल्लाह को भूल गए, तो अल्लाह ने उन्हें भुला दिया} [अत-तौबा: ६७], यानी: उन्होंने उसकी इबादत छोड़ दी, तो उसने उन्हें अज़ाब में छोड़ दिया। इस क़िरात को अबू... ने चुना।

(१) अस-सबअह पृ. १६८, और अत-तयसीर पृ. ७६। (२) (म) और (द) में: उम्मुल किताब के अंत में। (३) (ज़) में: तो कोई निरस्तीकरण नहीं होगा। देखिए अल-कश्फ़ अन वुजूह अल-किरात अस-सब' १/२५८। (४) अल-मावर्दी ने इसे अल-नुक़त वल-'उयून १/१७१ में अता और इब्न अबी नजीह के हवाले से बताया है। देखिए तफ़्सीर अत-तबरी २/३९५। (५) मुजमल अल-लुग़ह ४/८६६। (६) अस-सबअह पृ. १६८, और अत-तयसीर पृ. ७६। (७) अल-नुक़त वल-'उयून १/१७१, और अत-तबरी ने उन्हें २/३९३-३९४ पर दर्ज किया है।

۳۰۹ سورة البقرہ: آیت ۱۰۶

"...ہم تم پر کوئی آیت نازل کریں یا اسے بھلا دیں تو ہم اس سے بہتر یا اس جیسی لاتے ہیں"، تو معنی یہ نکلے گا کہ نازل ہونے والی ہر آیت کے بعد اس سے بہتر آیت آئی، جس سے پورا قرآن منسوخ ہو جائے گا، اور یہ ممکن نہیں، کیونکہ قرآن کا صرف تھوڑا سا حصہ منسوخ ہوا ہے۔ چونکہ 'افعل' (أفعل) اور 'فعل' (فعَل) کا ایک ہی معنی میں ہونا یہاں ناممکن ہے کیونکہ ایسا سنا نہیں گیا، اور معنی کے فساد کی وجہ سے ہمزہ کا تعدیہ (transitivity) کے لیے ہونا بھی ناممکن ہے، تو صرف یہی صورت ممکن رہ جاتی ہے کہ یہ اس باب سے ہو: 'احمدتہ' (میں نے اسے قابل تعریف پایا) اور 'ابخلتہ' (میں نے اسے بخیل پایا): یعنی جب آپ کسی کو قابل تعریف یا بخیل پائیں۔

چودہویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {أَوْ نُنْسِهَا} (یا ہم اسے بھلا دیں)۔ ابو عمرو اور ابن کثیر نے اسے نون، سین اور ہمزہ کے فتحہ کے ساتھ پڑھا ہے (۱) [نَنْسَأَهَا]، اور یہی عمر، ابن عباس، عطا، مجاہد، ابی بن کعب، عبید بن عمیر، نخعی اور ابن محیصن نے پڑھا ہے، جو کہ تاخیر کے معنی میں ہے، یعنی: اس کے لفظ کی منسوخی کو مؤخر کر دیا جائے، یعنی: ہم اسے ام الکتاب (۲) میں چھوڑ دیں تو وہ (منسوخ) نہ ہو (۳)۔ یہ عطا کا قول ہے۔ عطا کے علاوہ دوسروں نے کہا: "أو نَنْسَأها" کا مطلب ہے: ہم اسے ایک معلوم وقت تک منسوخی سے مؤخر کر دیتے ہیں، جیسے ان کا قول ہے: "نَسَأْتُ هذا الأمر" (میں نے اس معاملے کو مؤخر کر دیا) جب آپ اسے ملتوی کر دیں۔ اسی سے ان کا قول ہے: "بعتُه نَسْأً" (میں نے اسے ادھار بیچا) جب آپ نے ادائیگی میں تاخیر کی (۴)۔ ابن فارس نے کہا: وہ کہتے ہیں: "نَسَأَ الله في أجلك" (اللہ تیری عمر دراز کرے/تاخیر کرے)،

اور "أنسأ الله أجلك"۔ اور "انتسأ القوم" جب لوگ پیچھے ہٹ گئے اور دور ہو گئے، اور "نسأتُهم أنا" یعنی میں نے انہیں پیچھے کر دیا/تاخیر کر دی (۵)۔

تو معنی یہ ہے: ہم اس کے نزول یا اس کی منسوخی کو مؤخر کر دیتے ہیں جیسا کہ ہم نے ذکر کیا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: ہم اسے تم سے چھین لیتے ہیں یہاں تک کہ نہ تم اسے پڑھو اور نہ یاد رکھو۔

باقیوں نے اسے پڑھا: "نُنْسِها" (نون کے ضمہ کے ساتھ) (۶)، نسیان سے جس کا مطلب چھوڑ دینا (ترک) ہے، یعنی: ہم اسے چھوڑ دیتے ہیں اور اسے نہ بدلتے ہیں اور نہ منسوخ کرتے ہیں۔ یہ ابن عباس اور سدی نے کہا ہے (۷)، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {وہ اللہ کو بھول گئے تو اس نے انہیں بھلا دیا} [التوبہ: ۶۷] یعنی: انہوں نے اس کی عبادت چھوڑ دی، تو اس نے انہیں عذاب میں چھوڑ دیا۔ اس قرآت کو ابو... نے اختیار کیا۔

(۱) السبعۃ ص ۱۶۸، والتیسیر ص ۷۶۔ (۲) (م) اور (د) میں: ام الکتاب کے آخر میں۔ (۳) (ز) میں: تو منسوخی نہیں ہوگی۔ دیکھیے الکشف عن وجوہ القراءات السبع ۱/ ۲۵۸۔ (۴) ماوردی نے اسے النکت والعیون ۱۷۱/۱ میں عطا اور ابن ابی نجیح کی طرف منسوب کیا ہے، دیکھیے تفسیر طبری ۳۹۵/۲۔ (۵) مجمل اللغہ ۸۶۶/۴۔ (۶) السبعۃ ص ۱۶۸، والتیسیر ص ۷۶۔ (۷) النکت والعیون ۱۷۱/۱، اور طبری نے انہیں ۳۹۳/۲-۳۹۴ پر روایت کیا ہے۔

310 Surah Al-Baqarah: Verse 106

Ubaid (1) and Abu Hatim; Abu Ubaid said: I heard Abu Nu'aym al-Qari (2) say: I read to the Prophet ﷺ in a dream with the recitation of Abu Amr, and he did not correct me except for two characters; he said: I read to him "Arina" (show us), and he said: "Arina" (with a different vowel). Abu Ubaid said: I think the other character was: "or nansa'aha" (or we delay it), and he said: "or nunsilha" (or we cause it to be forgotten) (3).

Al-Azhari related: "nunsilha" means: we command it to be left; it is said: "ansaytuhu al-shay'", meaning: I commanded it to be left, and "nasaytuhu": I left it. The poet said: Indeed, I have a consequence to fulfill, I am not forgetting it nor causing it to be left (4) Meaning: and I do not command it to be left.

Al-Zajjaj said: The recitation with the 'damma' on the 'noon' [nunsilha] does not carry the meaning of leaving; it is not said 'ansaa' meaning 'taraka' (left) (5).

And what Ali bin Abi Talha narrated from Ibn Abbas: "or nansaha" [we forget it], he said: we leave it and do not replace it (6); this is not correct. Perhaps Ibn Abbas said: we leave it, but it was not recorded accurately.

What most linguists and scholars of reason agree upon is that the meaning of "or nunsilha" is: we allow you to leave it; from "nasiya": when he left, then it is made transitive.

Abu Ali and others said: That is plausible; because it means: We make you leave it (7).

It was also said: It is from forgetfulness in its literal sense, which is lack of remembrance, meaning: or we cause you to forget it, O Muhammad, so you do not remember it; it was moved by the 'hamza' [making it causative], so the verb becomes transitive to two objects: the Prophet and the pronoun 'ha' [referring to the verse], but the name of the Prophet is [implied] and omitted (8).

---

(1) Al-Nasikh wal-Mansukh p. 11. (2) He is Shuja' bin Abi Nasr al-Balkhi, then al-Baghdadi, one of the great companions of Abu Amr bin al-Ala, died in (190 AH). Tabaqat al-Qurra 1/324. (3) It is known and established in the principles of Sharia that dreams are not a source for rulings. (4) Tahdhib al-Lugha 13/80. (5) Ma'ani al-Quran 1/190, and the author quoted it from him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/193. (6) Narrated by al-Tabari 2/393, and see al-Nasikh wal-Mansukh by al-Nahhas

2/115. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/193. (8) Al-Kashf 'an Wujuh al-Qira'at al-Sab' 1/259, and what is between brackets is from it.

310 सूरा अल-बकरा: आयत 106

उबैद (1) और अबू हातिम; अबू उबैद ने कहा: मैंने अबू नुयैम अल-क़ारी (2) को यह कहते सुना: मैंने सपने में पैगंबर ﷺ को अबू अम्र के पाठ के साथ सुनाया और उन्होंने केवल दो अक्षरों को छोड़कर मुझमें कोई बदलाव नहीं किया; उन्होंने कहा: मैंने उनके सामने "अरना" (हमें दिखाओ) पढ़ा, तो उन्होंने कहा: "अरिना" (अलग स्वर के साथ), तो अबू उबैद ने कहा: मेरा मानना है कि दूसरा अक्षर था: "औ नंसाहा" (या हम उसे टाल दें), तो उन्होंने कहा: "औ नुंसिहा" (या हम उसे भुला दें) (3)।

अल-अज़हरी ने बताया: "नुंसिहा" का अर्थ है: हम इसे छोड़ने का आदेश देते हैं; कहा जाता है: "अंसयतुहु अल-शय'", यानी: मैंने इसे छोड़ने का आदेश दिया, और "नसीतुहु": मैंने इसे छोड़ दिया; कवि ने कहा है: निश्चित रूप से मुझ पर एक परिणाम है जिसे मुझे पूरा करना है, न तो मैं उसे भूलने वाला हूँ और न ही उसे छोड़ने का आदेश देने वाला हूँ (4) अर्थात: और मैं इसे छोड़ने का आदेश नहीं देता।

अल-ज़ज्जाज ने कहा: 'नून' पर 'दम्मा' [नुंसिहा] के साथ पाठ में छोड़ने का अर्थ नहीं निकलता; 'अंसा' का अर्थ 'तरका' (छोड़ दिया) नहीं कहा जाता (5)।

और अली बिन अबी तल्हा ने इब्न अब्बास से जो रिवायत की है: "औ नंसाहा" [हम उसे भूल जाते हैं], उन्होंने कहा: हम उसे छोड़ देते हैं, उसे बदलते नहीं (6); तो यह सही नहीं है। शायद इब्न अब्बास ने कहा: हम उसे छोड़ देते हैं, लेकिन इसे सही ढंग से दर्ज नहीं किया गया।

अधिकांश भाषाविदों और विचारकों का मत यह है कि "औ नुंसिहा" का अर्थ है: हम आपको उसे छोड़ने की अनुमति देते हैं; "नसीय" से: जब उसने छोड़ दिया, फिर उसे सकर्मक बनाया गया।

अबू अली और अन्यों ने कहा: यह तर्कसंगत है; क्योंकि इसका अर्थ है: हम आपसे उसे छुड़वाते हैं (7)।

कहा गया है: यह अपने शाब्दिक अर्थ में विस्मृति (भूलना) से है, जिसका अर्थ है याद न रहना, इस अर्थ में: या हम आपको उसे भुला दें, हे मुहम्मद, ताकि आप उसे याद न रखें; इसे 'हम्ज़ा' के साथ स्थानांतरित किया गया [प्रेरणात्मक बनाना], इसलिए क्रिया दो कर्मों के प्रति सकर्मक हो गई: पैगंबर और सर्वनाम 'हा', लेकिन पैगंबर का नाम [अनुमानित] और लुप्त है (8)।

(1) अल-नासिख वल-मनसूख पृ. 11। (2) वह शुजा बिन अबी नस्र अल-बल्खी हैं, फिर अल-बगदादी, अबू अम्र बिन अल-अला के महान साथियों में से एक, (190 हिजरी) में मृत्यु हुई। तबात अल-कुर्रा 1/324। (3) शरिया के सिद्धांतों में यह ज्ञात और स्थापित है कि सपने फैसलों का स्रोत नहीं होते हैं। (4) तहजीब अल-लुगा 13/80। (5) मानी अल-कुरान 1/190, और लेखक ने इसे इब्न अतिय्या के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/193 में उद्धृत किया है। (6) अल-तबरी 2/393 द्वारा उद्धृत, और नहहास द्वारा अल-नासिख वल-मनसूख 2/115 देखें। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/193। (8) अल-कश्फ अन वुजुह अल-क़िरात अल-सब 1/259, और कोष्ठक के बीच की सामग्री उसी से है।

۳۱۰ سورة البقرہ: آیت ۱۰۶

عبید (۱) اور ابو حاتم؛ ابو عبید نے کہا: میں نے ابو نعیم القاری (۲) کو کہتے ہوئے سنا: میں نے خواب میں نبی ﷺ کو ابو عمرو کی قرات کے ساتھ سنایا تو انہوں نے صرف دو حرفوں کے علاوہ مجھ پر کوئی تبدیلی نہیں کی؛ انہوں نے کہا: میں نے ان پر "أرنا" پڑھا، تو انہوں نے فرمایا: "أرِنا"، تو ابو عبید نے کہا: اور میرا خیال ہے کہ دوسرا حرف یہ تھا: "أو ننسأها" ، تو انہوں نے فرمایا: "أو نُنْسِها" (۳)۔

اور الازہری نے حکایت کی: "نُنْسِها" کا مطلب ہے: ہم اسے چھوڑنے کا حکم دیتے ہیں؛ کہا جاتا ہے: "أنسيتُه الشيء"، یعنی: میں نے اسے چھوڑنے کا حکم دیا، اور "نسيتُه": میں نے اسے چھوڑ دیا؛ شاعر نے کہا: یقیناً مجھ پر ایک انجام ہے جسے میں پورا کرتا ہوں، میں نہ تو اسے بھولنے والا ہوں اور نہ ہی اسے چھوڑنے کا حکم دینے والا ہوں (۴) یعنی: اور میں اسے چھوڑنے کا حکم نہیں دیتا۔

اور الزجاج نے کہا: 'نون' کے پیش [نُنْسِها] کے ساتھ قرات میں چھوڑنے کے معنی درست نہیں بیٹھتے؛ 'أنسی' کا مطلب 'ترک' (چھوڑنا) نہیں کہا جاتا (۵)۔

اور جو علی بن ابی طلحہ نے ابن عباس سے روایت کیا: "أو نَنْسَها"، انہوں نے کہا: ہم اسے چھوڑ دیتے ہیں بدلتے نہیں (۶)؛ تو یہ صحیح نہیں ہے۔ شاید ابن عباس نے کہا: ہم اسے چھوڑ دیتے ہیں، لیکن اسے صحیح طرح سے ضبط نہیں کیا گیا۔

اور جس پر اکثر اہل لغت اور اہل نظر کا اتفاق ہے وہ یہ ہے کہ "أو نُنْسِها" کے معنی ہیں: ہم تمہارے لیے اسے چھوڑنا مباح کر دیں؛ "نَسِيَ" سے: جب اس نے چھوڑ دیا، پھر اسے متعدی بنایا گیا۔

اور ابو علی وغیرہ نے کہا: یہ بات مدلل ہے؛ کیونکہ اس کا مطلب ہے: ہم تم سے اسے چھڑواتے ہیں (۷)۔

اور کہا گیا: یہ نسیان (بھولنے) سے اپنے اصلی معنی میں ہے جو کہ یاد نہ رہنا ہے، اس معنی پر: یا ہم آپ کو اسے بھلا دیں اے محمد، پس آپ اسے یاد نہ رکھیں، اسے ہمزہ کے ساتھ منتقل کیا گیا، پس فعل دو مفعولوں کی طرف متعدی ہو گیا: اور وہ نبی اور 'ہا' (ضمیر) ہیں، لیکن نبی کا نام [مقدّر] اور محذوف ہے (۸)۔

---

(۱) الناسخ والمنسوخ ص ۱۱۔ (۲) وہ شجاع بن ابی نصر البلخی ہیں، پھر البغدادی، ابو عمرو بن العلاء کے جلیل القدر اصحاب میں سے تھے، ان کی وفات سن (۱۹۰ھ) میں ہوئی۔ طبقات القراء ۱/ ۳۲۴۔ (۳) اصول شریعت میں یہ معلوم اور طے شدہ ہے کہ خواب احکام کا ماخذ نہیں ہوتے۔ (۴) تہذیب اللغۃ ۱۳/ ۸۰۔ (۵) معانی القرآن ۱/ ۱۹۰، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۳ میں نقل کیا ہے۔ (۶) اسے الطبری نے ۳۹۳/۲ میں روایت کیا ہے، اور النحاس کی کتاب الناسخ والمنسوخ ۲/ ۱۱۵ دیکھیں۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۳۔ (۸) الکشف عن وجوہ القراءات السبع ۲۵۹/۱، اور قوسین کے درمیان اسی سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 107 311

Fifteenthly: The Almighty's saying: {We bring something better than it} the word "better" (bi-khayr) here is a comparative adjective; and the meaning is "more beneficial for you, O people," in the immediate term if the abrogating (verse) is lighter, and in the hereafter if it is heavier, and with something similar to it if they are equal (1). Malik said: a definitive (verse) in place of an abrogated one.

And it was said: "better" does not intend comparison; because the words of Allah do not surpass each other in quality, but it is rather like His saying: {Whoever brings a good deed will have better than it} [An-Naml: 89] meaning: he will have goodness from it, i.e., benefit and reward, not "better" in the sense of superior quality. The first opinion is supported by His saying: {or similar to it}.

His saying, the Exalted: {Do you not know that to Allah belongs the dominion of the heavens and the earth? And you have besides Allah no protector or helper (107)}

His saying, the Exalted: {Do you not know} is in the jussive case because of "lam", and interrogative particles do not change the action of the operator. "Anna" was opened (vocalized with fatha) because it is in the position of the accusative. {To Him belongs the dominion of the heavens and the earth} meaning: through creation and invention, and ownership and sovereignty, and the implementation of command and will.

"Mulk" (dominion) is in the nominative case (marfu') as a subject (mubtada'), and the predicate (khabar) is "lahu" (to Him), and the sentence is the predicate of "anna".

The address is to the Prophet ﷺ, but intended for his nation; because of His saying: {And you have besides Allah no protector or helper} (2). It was said: The meaning is: say to them, O Muhammad: Do you not know that Allah is the Sovereign of the heavens and the earth.

{And you have besides Allah no protector (wali)} from: "Waliytu amra fulan," meaning: I took charge of it, hence "wali al-ahd" (crown prince/heir apparent), meaning the one who oversees what has been entrusted to him of the affairs of the Muslims. The meaning of {besides Allah} is: other than Allah, and after Allah, as Umayya ibn Abi al-Salt said (3):

O soul, you have no protector besides Allah And nothing remains against the accidents of time.

The majority reading is: "wa la naseer-in" with the genitive case (khafd) by conjunction with "wali-in," and it is permissible to say: "wa la naseer-un" with the nominative case by conjunction with the position (4); because the meaning is: You have besides Allah no protector and no helper.

---

(1) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/194. (2) An-Nukat wa al-Uyun 1/172. (3) His Diwan p. 91, and cited by Al-Tabari in his Tafsir 2/408. (4) Meaning other than in the Quran; see I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/255.

सूरह अल-बक़रह: आयत 107 311

पंद्रहवाँ: अल्लाह तआला का कथन: {हम उससे बेहतर लाते हैं} यहाँ "बेहतर" (बि-खैर) शब्द एक तुलनात्मक विशेषण है; और इसका अर्थ है "तुम्हारे लिए अधिक लाभकारी, ऐ लोगो," वर्तमान में यदि निरस्त करने वाली (आयत) हल्की है, और भविष्य (आख़िरत) में यदि वह भारी है, और उसके समान यदि वे बराबर हैं (1)। मालिक ने कहा: एक सुस्पष्ट (आयत) निरस्त की गई आयत के स्थान पर।

और यह भी कहा गया है: "बेहतर" का अर्थ तुलना नहीं है; क्योंकि अल्लाह के शब्द एक-दूसरे से श्रेष्ठ नहीं होते, बल्कि यह उनके इस कथन की तरह है: {जो कोई भलाई लाएगा, उसे उससे बेहतर मिलेगा} [अन-नम्ल: 89] अर्थात: उसे उससे भलाई मिलेगी, यानी लाभ और प्रतिफल, न कि श्रेष्ठता के अर्थ में "बेहतर"। पहले मत की पुष्टि उनके इस कथन से होती है: {या उसके समान}।

अल्लाह तआला का कथन: {क्या तुम नहीं जानते कि आसमानों और ज़मीन का राज्य अल्लाह ही का है? और अल्लाह के सिवा तुम्हारा न कोई संरक्षक है और न कोई सहायक (107)}

अल्लाह तआला का कथन: {क्या तुम नहीं जानते} "लम" के कारण जज़्म (jussive) स्थिति में है, और प्रश्नवाचक अक्षर कारक के कार्य को नहीं बदलते हैं। "अन्ना" पर फ़त्हा (fatha) है क्योंकि यह कर्म (accusative) के स्थान पर है। {आसमानों और ज़मीन का राज्य उसी का है} अर्थात: रचना और आविष्कार के माध्यम से, और स्वामित्व और प्रभुत्व, और आदेश और इच्छा के कार्यान्वयन के माध्यम से।

"मुल्क" (राज्य/स्वामित्व) कर्ता (mubtada) के रूप में रफ़अ (nominative) स्थिति में है, और इसकी खबर (khabar) "लहू" (उसके लिए) है, और यह वाक्य "अन्ना" की खबर है।

संबोधन पैगंबर ﷺ के लिए है, लेकिन अभिप्राय उनकी उम्मत (अनुयायियों) से है; क्योंकि उनका कथन है: {और अल्लाह के सिवा तुम्हारा न कोई संरक्षक है और न कोई सहायक} (2)। यह भी कहा गया है: इसका अर्थ है: ऐ मुहम्मद, उनसे कह दो: क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह आसमानों और ज़मीन का सुल्तान है।

{और अल्लाह के सिवा तुम्हारा न कोई संरक्षक (वली) है} "वली" शब्द "वलियतु अमरा फुलान" से है, जिसका अर्थ है: मैंने उसका कार्यभार संभाला, इसी से "वली अल-अहद" (उत्तराधिकारी) बना है, यानी वह जो मुसलमानों के मामलों में उसे सौंपे गए कार्य की देखरेख करता है। {अल्लाह के सिवा}

का अर्थ है: अल्लाह के अलावा, और अल्लाह के बाद, जैसा कि उमय्या बिन अबी अल-साल्त ने कहा है (3):

ऐ नफ़्स (आत्मा), अल्लाह के सिवा तेरा कोई रक्षक नहीं, और समय की घटनाओं के आगे कोई शेष नहीं रहता।

सामूहिक (प्रसिद्ध) पाठ है: "व ला नसीर-इन" जेर (genitive) के साथ "वली-इन" पर अत्फ़ (conjunction) के कारण, और "व ला नसीर-उन" पेश (nominative) के साथ भी जायज़ है स्थान (position) पर अत्फ़ के कारण (4); क्योंकि अर्थ है: अल्लाह के सिवा तुम्हारा न कोई संरक्षक है और न कोई सहायक।

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/194 देखें। (2) अन-नुकत वल-उयून 1/172। (3) उनका दीवान पृ. 91, और तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/408 में इसे उद्धृत किया है। (4) यानी कुरान के अलावा अन्यत्र; देखें नह़्हास द्वारा इअ़राब अल-कुरान 1/255।

سورہ البقرہ: آیت ۱۰۷ ۳۱۱

پندرہویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {ہم اس سے بہتر لاتے ہیں} یہاں لفظ "بخیر" صفتِ تفضیل ہے؛ اور اس کا مطلب ہے "اے لوگو! تمہارے لیے زیادہ نفع بخش"، دنیا میں اگر منسوخ کرنے والی (آیت) ہلکی ہو، اور آخرت میں اگر وہ بھاری ہو، اور اس جیسی (آیت) اگر دونوں برابر ہوں (۱)۔ امام مالک رحمہ اللہ نے فرمایا: منسوخ شدہ آیت کی جگہ محکم (واضح) آیت۔

اور یہ بھی کہا گیا ہے: "أخیر" سے مراد فضیلت یا برتری نہیں ہے؛ کیونکہ اللہ کا کلام ایک دوسرے سے برتر نہیں ہوتا، بلکہ یہ اللہ کے اس قول کی طرح ہے: {جو کوئی نیکی لے کر آئے گا تو اسے اس سے بہتر ملے گا} [النمل: ۸۹] یعنی: اسے اس سے خیر ملے گی، یعنی نفع اور اجر، نہ کہ وہ خیر جو برتری کے معنی میں ہے۔ پہلے قول کی دلیل اللہ کا یہ فرمان ہے: {یا اس جیسی}۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا تجھے معلوم نہیں کہ آسمانوں اور زمین کی بادشاہی اللہ ہی کی ہے؟ اور اللہ کے سوا تمہارا نہ کوئی ولی ہے اور نہ کوئی مددگار (۱۰۷)}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا تم نہیں جانتے} "لم" کی وجہ سے جزم کی حالت میں ہے، اور حروفِ استفہام عامل کے عمل کو تبدیل نہیں کرتے۔ "أنَّ" پر فتحہ ہے کیونکہ یہ نصب کے مقام پر ہے۔ {اسی کے لیے آسمانوں اور زمین کی بادشاہی ہے} یعنی: پیدا کرنے اور ایجاد کرنے، ملکیت اور سلطنت، اور حکم و ارادے کے نفاذ کے لحاظ سے۔

لفظ "مُلْكُ" مبتدا ہونے کی وجہ سے مرفوع ہے، اور خبر "له" ہے، اور یہ جملہ "أنَّ" کی خبر ہے۔

خطاب نبی کریم ﷺ سے ہے، لیکن مراد آپ کی امت ہے؛ کیونکہ اللہ کا فرمان ہے: {اور اللہ کے سوا تمہارا نہ کوئی ولی ہے اور نہ کوئی مددگار} (۲)۔ اور کہا گیا ہے: اس کا مطلب ہے: اے محمد! ان سے کہیے: کیا تم نہیں جانتے کہ اللہ ہی آسمانوں اور زمین کا بادشاہ ہے۔

{اور اللہ کے سوا تمہارا نہ کوئی ولی (سرپرست) ہے} "ولی" کا مادہ "وَلِيتُ أمْرَ فلان" سے ہے، یعنی: میں نے اس کے معاملے کی ذمہ داری لی، اسی سے "ولی عہد" ہے، یعنی وہ جو مسلمانوں کے معاملات میں اس کے سپرد کردہ کام کا ذمہ دار ہو۔ {اللہ کے سوا} کا مطلب ہے: اللہ کے علاوہ، اور اللہ کے بعد، جیسا کہ امیہ بن ابی الصلت نے کہا (۳):

اے نفس! اللہ کے سوا تیرا کوئی بچانے والا نہیں، اور زمانے کے حادثات کے سامنے کوئی باقی رہنے والا نہیں۔

جمہور کی قرات ہے: "ولا نصيرِ" (زیر کے ساتھ) "ولِيٍ" پر عطف کی وجہ سے، اور "ولا نصيرٌ" (پیش کے ساتھ) بھی جائز ہے محل پر عطف کی بنا پر (۴)؛ کیونکہ مطلب یہ ہے: اللہ کے سوا تمہارا نہ کوئی ولی ہے اور نہ کوئی مددگار۔

---

(۱) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۴۔ (۲) النکت والعیون ۱/ ۱۷۲۔ (۳) ان کا دیوان ص ۹۱، اور طبری نے اپنی تفسیر ۴۰۸/۲ میں اسے نقل کیا ہے۔ (۴) یعنی قرآن کے علاوہ میں، دیکھیے اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۵۵۔

312 Surah Al-Baqarah: Verse 108

Allah Almighty says: {Or do you intend to ask your Messenger as Moses was asked before? And whoever exchanges faith for disbelief has certainly strayed from the right path.}

The saying of Allah Almighty: {Or do you intend}: This "Or" (Am) is the disjunctive one which means "nay, rather", i.e., nay, you intend. The meaning of the speech is a rebuke. {To ask}: In the accusative case (Nasb) due to "intend". {As was asked}: The "Kaf" is in the accusative case as an attribute of a source, i.e., a questioning like. And "Moses" is in the nominative case (Raf') as the pro-agent (passive subject) (1). "Before": Their asking him to show them Allah openly. And they asked Muhammad to bring Allah and the angels before them. Reported from Ibn Abbas and Mujahid: They asked him to turn Mount Al-Safa into gold for them (2). Al-Hasan read: "as was asked" (seela), and this is according to the dialect of those who say: "siltu, as'alu" (I asked, I ask). It could also be substituting the Hamza with a silent Ya' against the rule, so the Seen before it took a Kasra. Al-Nahhas said: substituting the Hamza is far-fetched (3). "Al-Sawa'" (the right/middle) of everything: the middle. This was said by Abu Ubaida Ma'mar ibn al-Muthanna (4), and from it is His saying: {in the middle of the Hellfire} [As-Saffat: 55]. Isa ibn Umar related: "I kept writing until my middle gave out." And he recited the words of Hassan mourning the Messenger of Allah (peace be upon him): "O woe to the companions of the Prophet and his kin... after the one hidden in the middle of the grave." (5) It was said: Al-Sawa': the intended aim, from Al-Farra' (6), i.e., he went away from the intended path and its direction, i.e., the path of obedience to Allah, the Mighty and Majestic.

(1) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/255. (2) Tafsir al-Tabari 2/409, 410, and Asbab al-Nuzul by al-Wahidi p. 32. (3) I'rab al-Qur'an 1/255. Al-Hasan's reading was also mentioned by Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/195. (4) Majaz al-Qur'an 1/50. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/196, and it is in the Diwan of Hassan p. 154. Both have "Ansar" (Helpers) instead of "Ashab" (Companions). His saying: Al-Mulhad: means the grave. Mujmal al-Lugha 4/803. (6) Ma'ani al-Qur'an 1/73.

312 सूरह अल-बक़रह: आयत 108

अल्लाह तआला का फ़रमान है: {या क्या तुम अपने रसूल से सवाल करना चाहते हो जैसा कि इससे पहले मूसा से सवाल किया गया था? और जो कोई ईमान के बदले कुफ़्र अख्तियार करे, वह निश्चित रूप से सीधे रास्ते से भटक गया है।}

अल्लाह तआला का फ़रमान: {या क्या तुम चाहते हो}: यह "अम" मुनक़तिअ (विच्छिन्न) है जिसका अर्थ है "बल्कि", यानी: बल्कि तुम चाहते हो, और इस कलाम का अर्थ डांट-फटकार (तौबीह) है। {कि तुम सवाल करो}: "चाहते हो" (तुरीदून) की वजह से नसब (अक्यूज़ेटिव) की स्थिति में है। {जैसा कि सवाल किया गया}: "कफ़" मस्तर (संज्ञा) के विशेषण के रूप में नसब की स्थिति में है, यानी: ऐसा सवाल जैसा कि। और "मूसा" रफ़ (नॉमिनेटिव) की स्थिति में है क्योंकि वह फाइल (कर्ता) के स्थान पर है जिसका नाम नहीं लिया गया (कर्मवाच्य का कर्ता) (1)। "इससे पहले": उनका अल्लाह को प्रत्यक्ष रूप से दिखाने का सवाल करना। और उन्होंने मुहम्मद से अल्लाह और फरिश्तों को सामने लाने के लिए कहा। इब्न अब्बास और मुजाहिद से रिवायत है: उन्होंने मांग की थी कि वह उनके लिए सफ़ा पहाड़ को सोना बना दें (2)। हसन ने पढ़ा: "कमा सीला", और यह उन लोगों की भाषा के अनुसार है जो कहते हैं: "सील्तु, असअलु" (मैंने पूछा, मैं पूछता हूँ)। यह भी संभव है कि हमज़ा को नियम के विरुद्ध साकिन "या" से बदल दिया गया हो, जिससे उसके पहले "सीन" पर कसरा आ गया। नह़ास ने कहा: हमज़ा का बदलना दूर की बात है (3)। हर चीज़ का "सवा'": बीच का हिस्सा (मध्य)। यह अबू उबैदा माअमर बिन अल-मुथन्ना ने कहा है (4), और इसी से उनका कथन है: {जहन्नम के बीच में} [अस-साफ़्फ़ात: 55]। ईसा बिन उमर ने बयान किया: "मैं तब तक लिखता रहा जब तक मेरा मध्य भाग (कमर/हाथ) थक नहीं गया।" और उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के शोक में हस्सान के शेर पढ़े: "हाय अफ़सोस नबी के साथियों और उनके खानदान पर... उस हस्ती के बाद जो कब्र के बीच में छिप गई।" (5) और कहा गया है: "सवा'": उद्देश्य (क़स्द), अल-फर्रा से रिवायत है (6), यानी: वह रास्ते के उद्देश्य और उसकी दिशा से भटक गया, यानी: अल्लाह अज़्ज़ा व जल्ल की इबादत का रास्ता।

(1) इ'राब अल-कुरान, अल-नह़ास 1/255। (2) तफ़सीर अल-तबरी 2/409, 410, और अस्बाब अल-नुज़ूल, अल-वाहिदी पृ. 32। (3) इ'राब अल-कुरान 1/255। हसन की क़िरअत का ज़िक्र इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/195 में भी किया है। (4) मजाज़ अल-कुरान 1/50। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/196, और यह दीवान-ए-हस्सान पृ. 154 में है। दोनों जगहों पर "अशहाब"

(साथियों) के बजाय "अंसार" (मददगारों) शब्द है। उनका कहना: अल-मुल्हद: यानी कब्र। मुजमल अल-लुगा 4/803। (6) मा'आनी अल-कुरान 1/73।

۳۱۲ سورہ البقرہ: آیت ۱۰۸

قولہ تعالیٰ: ﴿أَمْ تُرِيدُونَ أَن تَسْئَلُوا رَسُولَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوسَىٰ مِن قَبْلُ وَمَن يَتَبَدَّلِ الْكُفْرَ بِالْإِيمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَاءَ السَّبِيلِ﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {یا کیا تم چاہتے ہو کہ تم اپنے رسول سے سوال کرو جیسے اس سے پہلے موسیٰ سے سوال کیا گیا تھا؟ اور جو شخص ایمان کے بدلے کفر اختیار کرے تو وہ سیدھے راستے سے بھٹک گیا۔}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿أَمْ تُرِيدُونَ﴾ یہ «أَمْ» منقطعہ ہے جو «بل» کے معنی میں ہے، یعنی: بلکہ تم چاہتے ہو، اور کلام کا معنی توبیخ (ڈانٹ ڈپٹ) ہے۔ ﴿أَن تَسْئَلُوا﴾ «تریدون» کی وجہ سے محلِ نصب میں ہے۔ ﴿كَمَا سُئِلَ﴾ کاف مصدر کی صفت ہونے کی بنا پر محلِ نصب میں ہے، یعنی: ایسا سوال جیسا کہ۔ اور «موسی» اس فعل کے نائب فاعل ہونے کی بنا پر محلِ رفع میں ہے جس کا فاعل مذکور نہیں (۱)۔ «من قبل»: ان کا اللہ کو اعلانیہ دیکھنے کا مطالبہ کرنا، اور انہوں نے محمد (ﷺ) سے مطالبہ کیا کہ اللہ اور فرشتوں کو سامنے لے آئیں۔ ابن عباس اور مجاہد سے مروی ہے: انہوں نے مطالبہ کیا کہ وہ ان کے لیے صفا پہاڑ کو سونا بنا دیں (۲)۔ حسن نے «کما سیل» پڑھا ہے، اور یہ ان لوگوں کی لغت کے مطابق ہے جو «سِلْتُ، أسألُ» کہتے ہیں۔ یہ بھی جائز ہے کہ ہمزہ کو خلافِ قیاس 'یا' ساکنہ سے بدل دیا گیا ہو، تو اس سے پہلے 'سین' مکسور ہو گیا۔ نحاس نے کہا: ہمزہ کا بدلنا بعید ہے (۳)۔ ہر چیز کا «السواء»: اس کا درمیان (وسط) ہے۔ یہ ابو عبیدہ معمر بن المثنیٰ نے کہا ہے (۴)، اور اسی سے اللہ کا فرمان ہے: ﴿فِي سَوَاءِ الْجَحِيمِ﴾ [الصافات: ۵۵]۔ عیسیٰ بن عمر نے بیان کیا: "میں لکھتا رہا یہاں تک کہ میرا درمیانی حصہ (کمر/ہاتھ) جواب دے گیا"، اور انہوں نے رسول اللہ ﷺ کے مرثیے میں حسان کے اشعار پڑھے: "ہائے افسوس نبی کے صحابہ اور ان کے خاندان پر... اس ہستی کے بعد جو قبر کے عین درمیان میں چھپ گئی۔" (۵) اور کہا گیا

ہے: «السواء»: قصد (نشانہ/ارادہ)، الفراء سے منقول ہے (۶)، یعنی: وہ راستے کے قصد اور اس کی سمت سے ہٹ گیا، یعنی: اللہ عزوجل کی اطاعت کا راستہ۔

(۱) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۵۵۔ (۲) تفسیر الطبری ۲/ ۴۰۹ ، ۴۱۰ ، اور اسباب النزول للواحدی ص ۳۲۔ (۳) اعراب القرآن ۱/ ۲۵۵۔ حسن کی قرأت کا ذکر ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۵ میں بھی کیا ہے۔ (۴) مجاز القرآن ۱/ ۵۰۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۶ ، اور یہ دیوانِ حسان ص ۱۵۴ میں ہے، اور ان دونوں کے پاس «أصحاب» کی جگہ «أنصار» ہے۔ ان کا قول: الملحد: یعنی قبر۔ مجمل اللغہ ۴/ ۸۰۳۔ (۶) معانی القرآن ۱/ ۷۳۔

And from Ibn Abbas as well: The reason for the revelation of this verse was that Rafi' ibn Huraymila (1) and Wahb ibn Zayd said to the Prophet (peace be upon him): "Bring us a book from heaven for us to read, and cause rivers to gush forth for us, and we will follow you."

The Almighty says: {Many of the People of the Book wish they could turn you back into disbelievers after you have believed, out of envy from their own selves, even after the truth has become clear to them. So pardon and overlook until Allah brings about His command. Indeed, Allah is over all things competent. (109) And establish prayer and give zakah, and whatever good you put forward for yourselves - you will find it with Allah. Indeed, Allah of what you do is Seeing. (110)}

The Almighty's saying: {Many of the People of the Book wish they could turn you back into disbelievers after you have believed, out of envy from their own selves, even after the truth has become clear to them} contains two issues:

The first: {wadda}: to desire, and this has been mentioned before (2). {kuffaran} is the second object of "yaruddunakum". {min 'indi anfusihim} (from their own selves): It was said: it is related to "wadda". And it was said: to "hasadan" (envy); so the pause is at His saying: "kuffaran". And "hasadan" is an object of reason (maf'ul lahu), meaning: they wished for that out of envy, or an infinitive (masdar) whose preceding words indicate the action.

The meaning of: "from their own selves" is: from their own volition without finding it in a book, nor being ordered to do it. The word envy gives this sense, so {min 'indi anfusihim} came as emphasis and confirmation, as the Almighty said: {They say with their mouths} [Al-Imran: 167] and {They write the book with their hands} [Al-Baqarah: 79], and {Nor a bird that flies with its wings} [Al-An'am: 38]. And the verse is regarding the Jews (3).

The second: Envy is of two types: blameworthy and praiseworthy. The blameworthy is: wishing for the removal of Allah's blessing from your Muslim brother, whether you wish for it to return to you or not. This is the type that Allah Almighty censured in His book by saying: {Or do they envy people for what Allah has given them of His bounty?} [An-Nisa: 54]. It was blameworthy because it involves mocking the Truth (Glorified be He), and suggesting that He bestowed blessings on someone who does not deserve them.

(1) In the manuscripts and (M): Rafi' ibn Khuzaymah, and what we have established is correct, as in Tafsir al-Tabari 2/409, and Sirat Ibn Hisham 1/548. (2) 2/259. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/196 with a slight difference.

सूरह अल-बकरा: आयत १०९, ११० | ३१३

और इब्न अब्बास से यह भी है कि: इस आयत के उतरने का कारण यह था कि राफे बिन हुरैमिला (१) और वहब बिन ज़ैद ने पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से कहा: "हमारे लिए आसमान से एक किताब लाओ जिसे हम पढ़ सकें और हमारे लिए नदियाँ बहा दो, तब हम तुम्हारा अनुसरण करेंगे।"

अल्लाह तआला का फरमान है: {अहले किताब में से बहुत से लोग चाहते हैं कि तुम्हारे ईमान लाने के बाद तुम्हें फिर काफ़िर बना दें, अपने दिलों की जलन के कारण, इसके बावजूद कि उन पर हक़ ज़ाहिर हो चुका है। सो तुम माफ़ करो और दरगुज़र करो यहाँ तक कि अल्लाह अपना हुक्म भेज दे। बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है। (१०९) और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो, और जो कुछ भलाई तुम अपने लिए आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के पास पाओगे। बेशक जो कुछ तुम करते हो अल्लाह उसे देख रहा है। (११०)}

अल्लाह तआला का फरमान: {अहले किताब में से बहुत से लोग चाहते हैं कि तुम्हारे ईमान लाने के बाद तुम्हें फिर काफ़िर बना दें, अपने दिलों की जलन के कारण, इसके बावजूद कि उन पर हक़ ज़ाहिर हो चुका है} इसमें दो बातें हैं:

पहली: {वद्दा}: यानी इच्छा की, और यह पहले बीत चुका है (२)। {कुफ़्फ़ारन}: "यरुद्दूनकुम" (तुम्हें वापस कर दें) का दूसरा कर्म (ऑब्जेक्ट) है। {मिन 'इन्दि अन्फ़ुसिहिम} (अपने दिलों की ओर से): कहा गया है: यह "वद्दा" से संबंधित है। और कहा गया है: "हसद" (जलन) से; तो ठहराव उसके इस शब्द पर है: "कुफ़्फ़ारन"। और "हसदन" कारण बताने वाला कर्म (मफ़ऊल लहू) है, यानी: उन्होंने जलन के कारण ऐसा चाहा, या यह एक स्रोत (मस्दर) है जिसकी क्रिया का संकेत उससे पहले के शब्दों में है।

"अपने दिलों की ओर से" का अर्थ है: अपनी ओर से, बिना किसी किताब में इसे पाए या इसके लिए आदेश दिए गए। 'हसद' शब्द ही यह अर्थ देता है, इसलिए {मिन 'इन्दि अन्फ़ुसिहिम} ज़ोर देने और पुख्ता करने के लिए आया है, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {वे अपने मुँह से कहते हैं} [आल इमरान: १६७] और {वे अपने हाथों से किताब लिखते हैं} [अल-बकरा: ७९], और {न कोई परिंदा जो अपने दो परों से उड़ता हो} [अल-अनआम: ३८]। और यह आयत यहूदियों के बारे में है (३)।

दूसरी: हसद (जलन/ईर्ष्या) दो प्रकार की होती है: निंदनीय और प्रशंसनीय। निंदनीय वह है: अपने मुसलमान भाई से अल्लाह की नेमत छिन जाने की इच्छा करना, चाहे आप यह चाहें कि वह आपको

मिल जाए या नहीं। यह वही प्रकार है जिसकी अल्लाह तआला ने अपनी किताब में निंदा की है: {या वे लोगों से उस पर जलन करते हैं जो अल्लाह ने उन्हें अपने फ़ज़्ल से दिया है?} [अन-निसा: ५४]। और यह निंदनीय इसलिए है क्योंकि इसमें सत्य (अल्लाह) की हिकमत पर उंगली उठाना है, कि उसने उसे नेमत दी जो उसका हक़दार नहीं था।

(१) हस्तलिखित प्रतियों और (म) में: राफे बिन खुज़ैमा, और जो हमने साबित किया है वही सही है, जैसा कि तफ़सीर अल-तबरी २/४०९ और सीरत इब्न हिशाम १/५४८ में है। (२) २/२५९। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१९६ थोड़े अंतर के साथ।

اور ابن عباس رضی اللہ عنہما سے یہ بھی مروی ہے کہ: اس آیت کے نزول کا سبب یہ تھا کہ رافع بن حریملہ (۱) اور وہب بن زید نے نبی اکرم ﷺ سے کہا: "ہمارے پاس آسمان سے ایک کتاب لائیں جسے ہم پڑھ سکیں، اور ہمارے لیے نہریں جاری کر دیں تو ہم آپ کی پیروی کریں گے۔"

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿اہلِ کتاب میں سے بہت سے لوگ چاہتے ہیں کہ تمہارے ایمان لانے کے بعد تمہیں پھر کافر بنا دیں، اپنے دلوں کے حسد کی بنا پر، اس کے باوجود کہ ان پر حق واضح ہو چکا ہے۔ سو تم معاف کرو اور درگزر کرو یہاں تک کہ اللہ اپنا حکم بھیج دے۔ بے شک اللہ ہر چیز پر قادر ہے۔ (۱۰۹) اور نماز قائم کرو اور زکوٰۃ دو، اور جو بھلائی تم اپنے لیے آگے بھیجو گے، اسے اللہ کے پاس پاؤ گے۔ بے شک جو کچھ تم کرتے ہو اللہ اسے دیکھ رہا ہے۔ (۱۱۰)﴾

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿اہلِ کتاب میں سے بہت سے لوگ چاہتے ہیں کہ تمہارے ایمان لانےके بعد تمہیں پھر کافر بنا دیں، اپنے دلوں کے حسد کی بنا پر، اس کے باوجود کہ ان پر حق واضح ہو چکا ہے﴾ اس میں دو مسائل ہیں:

پہلا: ﴿وَدَّ﴾: یعنی تمنا کی، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۲)۔ ﴿كُفَّاراً﴾: "یردّونکم" کا دوسرا مفعول ہے۔ ﴿مِّن عِندِ أَنفُسِهِم﴾: کہا گیا ہے کہ: یہ "وَدَّ" سے متعلق ہے۔ اور کہا گیا ہے کہ: "حَسَداً" سے متعلق ہے؛ تو وقف اللہ تعالیٰ کے اس قول "كُفَّاراً" پر ہے۔ اور "حَسَداً" مفعول لہ ہے، یعنی: انہوں نے حسد کی وجہ سے ایسا چاہا، یا یہ ایسا مصدر ہے جس کے فعل پر اس سے ماقبل کلام دلالت کرتا ہے۔

اور "مِن عِندِ أَنفُسِهِم" کا معنی ہے: یعنی ان کی اپنی طرف سے، بغیر اس کے کہ انہوں نے اسے کسی کتاب میں پایا ہو یا انہیں اس کا حکم دیا گیا ہو۔ حسد کا لفظ یہی معنی دیتا ہے، چنانچہ ﴿مِّن عِندِ

أَنفُسِهِم﴾ تاکید اور الزام کے لیے آیا ہے، جیسے اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وہ اپنی زبانوں سے کہتے ہیں﴾ [آلِ عمران: ۱۶۷] اور ﴿وہ اپنے ہاتھوں سے کتاب لکھتے ہیں﴾ [البقرہ: ۷۹]، اور ﴿نہ کوئی پرندہ جو اپنے پروں سے اڑتا ہو﴾ [الانعام: ۳۸]۔ اور یہ آیت یہودیوں کے بارے میں ہے (۳)۔

دوسرا: حسد کی دو قسمیں ہیں: مذموم اور محمود۔ پس مذموم یہ ہے کہ: تم اپنے مسلمان بھائی سے اللہ کی نعمت کے زوال کی تمنا کرو، خواہ تم اس کے ساتھ یہ چاہو کہ وہ نعمت تمہیں مل جائے یا نہ ملے۔ یہ وہ قسم ہے جس کی اللہ تعالیٰ نے اپنی کتاب میں مذمت کرتے ہوئے فرمایا: ﴿یا وہ لوگوں سے اس چیز پر حسد کرتے ہیں جو اللہ نے انہیں اپنے فضل سے دی ہے؟﴾ [النساء: ۵۴]۔ اور یہ اس لیے مذموم ہے کیونکہ اس میں حق سبحانہ کی حکمت پر اعتراض ہے کہ اس نے ایسے شخص پر انعام کیا جو اس کا مستحق نہیں تھا۔

(۱) خطی نسخوں اور (م) میں: رافع بن خزیمہ ہے، اور درست وہی ہے جو ہم نے ثابت کیا، جیسا کہ تفسیر طبری ۴۰۹/۲ اور سیرت ابن ہشام ۵۴۸/۱ میں ہے۔ (۲) ۲۵۹/۲۔ (۳) المحرر الوجیز ۱۹۶/۱ معمولی فرق کے ساتھ۔

314 Surah Al-Baqarah: Verses 109, 110

As for the praiseworthy (type of envy): it is what has been mentioned in the authentic Hadith from his (peace be upon him) saying: "There is no envy except in two (cases): a man whom Allah has given the Qur’an, so he stands by it throughout the night and throughout the day, and a man whom Allah has given wealth, so he spends it throughout the night and throughout the day."(1)

And this Hadith(2) means Ghibtah (admirable envy), and likewise(3) Al-Bukhari(4) titled it: Chapter of Ghibtah in Knowledge and Wisdom.

Its reality is: that you wish to have the same good and blessings as your Muslim brother, without his good being removed from him. This may also be called "competition" (munafasah), and from it is the saying of the Almighty: "And for this let those compete who [wish to] compete." Al-Mutaffifin: 26.

"[Even] after the truth has become clear to them" (Surah Al-Baqarah: 109), meaning: after the truth has become clear to them, which is Muhammad (peace be upon him), and the Qur’an that he brought.

His (The Almighty's) saying: "So pardon and overlook" contains two matters:

First: His saying: "So pardon" (Fa'fu). The original form was 'u'fu-u', the dammah was removed due to its heaviness, then the waw was removed due to the meeting of two silent letters (sakinayn).(6)

And Pardoning (Al-'Afw): is to forgo punishment for a sin. Overlooking (Al-Safh): is to remove its trace from the soul; I "safah-tu" from so-and-so: when you turn away from his sin. And "I struck away from him a turning away" (darabtu 'anhu safhan): when you turned away from him and left him. And from it is His (the Almighty's) saying: "Should We then take away the Reminder from you, turning away [safhan]?" [Az-Zukhruf: 5].

Second: This verse is abrogated by His saying: "Fight those who do not believe..." up to His saying:

---

(1) Narrated by Ahmad (4924), Al-Bukhari (5025) similarly, and Muslim (815) - and the wording is his - from the Hadith of Ibn Umar, may Allah be pleased with them both. And narrated by Ahmad (3651), Al-Bukhari (73), and Muslim (816) from the Hadith of Ibn Mas'ud, may Allah be pleased with him, similarly. And narrated by Ahmad (10214), and Al-Bukhari (5026) from the Hadith of Abu Huraira, may Allah be pleased

with him, in a longer version. (2) In (m): envy (al-hasad). (3) In (m): likewise. (4) Before Hadith (73). (5) See Al-Mufhim 2/445-446. (6) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/256.

३१४ सूरह अल-बक़रह: आयत १०९, ११०

जहाँ तक प्रशंसनीय (ईर्ष्या) का प्रश्न है: यह वह है जो सही हदीस में उनके(सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) इस कथन से आया है: "ईर्ष्या केवल दो स्थितियों में है: एक व्यक्ति जिसे अल्लाह ने कुरान दिया है, और वह रात और दिन के दौरान इसके साथ खड़ा होता है (अर्थात नमाज़ पढ़ता है), और एक व्यक्ति जिसे अल्लाह ने धन दिया है, और वह रात और दिन के दौरान उसे खर्च करता है।"(१)

और इस हदीस(२) का अर्थ ग़िबता (सराहनीय ईर्ष्या) है, और इसी तरह(३) अल-बुखारी(४) ने इसे शीर्षक दिया है: 'ज्ञान और हिकमत में ग़िबता का अध्याय'।

इसकी वास्तविकता यह है: कि आप कामना करें कि आपके पास भी वही अच्छाई और वरदान हों जो आपके मुस्लिम भाई के पास हैं, बिना उसकी अच्छाई के छिन जाने के। इसे 'प्रतिस्पर्धा' (मुनाफसाह) भी कहा जा सकता है, और इसी में से सर्वशक्तिमान का कथन है: "और इसी के लिए प्रतिस्पर्धा करने वालों को प्रतिस्पर्धा करनी चाहिए।" अल-मुतफ़्फ़िफ़ीन: २६।

"सत्य उनके सामने स्पष्ट हो जाने के बाद" (सूरह अल-बक़रह: १०९), अर्थात: सत्य उनके लिए स्पष्ट हो जाने के बाद, और वह मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) हैं, और वह कुरान जो वे लाए हैं।

अल्लाह तआला का कथन: "अतः क्षमा करो और दरगुज़र करो" (फा'फ़ू वस-फ़हू), इसमें दो बातें हैं:

पहली: अल्लाह का कथन: "क्षमा करो" (फा'फ़ू)। मूल रूप 'उ'फ़ू-ऊ' था, भारीपन के कारण दम्मा हटा दिया गया, फिर दो साकिन अक्षरों के मिलने के कारण वाव को हटा दिया गया।(६)

क्षमा (अल-अफ़्व): पाप के लिए सज़ा छोड़ देना है। दरगुज़र करना (अस-सफ़्ह): आत्मा से उसके प्रभाव को मिटाना है; 'मैंने अमुक को दरगुज़र (सफ़ह-तु) किया': जब आपने उसके पाप से मुँह मोड़ लिया। और 'मैंने उससे मुँह मोड़ लिया' (दरब्तु अनहु सफ़हन): जब आप उससे मुँह मोड़ लें और उसे छोड़ दें। और इसी में से अल्लाह का कथन है: "तो क्या हम तुमसे नसीहत को दरगुज़र करते हुए (सफ़हन) हटा लें?" [अज़-ज़ुखरुफ़: ५]।

दूसरी: यह आयत उनके इस कथन से निरस्त (मनसूख) है: "उन लोगों से लड़ो जो ईमान नहीं लाते..." उनके इस कथन तक:

(१) इसे अहमद (४९२४), अल-बुखारी (५०२५) ने इसी तरह, और मुस्लिम (८१५) ने - और शब्द उनके हैं - इब्न उमर (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है। और इसे अहमद (३६५१), अल-बुखारी (७३), और मुस्लिम (८१६) ने इब्न मसूद (रज़ि.) की हदीस से इसी तरह उद्धृत किया है। और इसे अहमद (१०२१४), और अल-बुखारी (५०२६) ने अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से इससे लंबे संस्करण में उद्धृत किया है। (२) (म) में: अल-हसद। (३) (म) में: इसी तरह। (४) हदीस (७३) से पहले। (५) देखें अल-मुफ्हिम २/४४५-४४६। (६) इ'राब अल-कुरान, अन-नह्हास १/२५६।

۳۱۴ سورہ البقرہ: آیات ۱۰۹ ، ۱۱۰

جہاں تک قابلِ تعریف (حسد) کا تعلق ہے: تو یہ وہ ہے جو صحیح حدیث میں آپ ﷺ کے اس قول سے مروی ہے: «حسد صرف دو صورتوں میں جائز ہے: ایک وہ شخص جسے اللہ نے قرآن عطا فرمایا، تو وہ رات اور دن کے اوقات میں اس کے ساتھ قیام کرتا ہے (تلاوت و نماز میں مصروف رہتا ہے)، اور ایک وہ شخص جسے اللہ نے مال عطا کیا، تو وہ اسے رات اور دن کے اوقات میں (نیک کاموں میں) خرچ کرتا ہے»(۱)۔

اور اس حدیث(۲) کا معنی 'غبطہ' (رشک) ہے، اور اسی طرح(۳) امام بخاری(۴) نے اس پر باب قائم کیا ہے: «علم اور حکمت میں رشک کا بیان»۔

اور اس کی حقیقت یہ ہے کہ: تم یہ تمنا کرو کہ تمہارے پاس بھی وہی خیر اور نعمت ہو جو تمہارے مسلمان بھائی کے پاس ہے، بغیر اس کے کہ اس سے وہ نعمت چھن جائے، اور کبھی اسے 'منافسہ' (مقابلہ) بھی کہا جاتا ہے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: ﴿وَفِي ذَٰلِكَ فَلْيَتَنَافَسِ الْمُتَنَافِسُونَ﴾ [المطففين: ۲۶] (۵)۔

﴿مِنْ بَعْدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ﴾ یعنی: اس کے بعد کہ ان پر حق واضح ہو گیا، اور حق سے مراد محمد ﷺ ہیں، اور وہ قرآن جو آپ ﷺ لے کر آئے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَاعْفُوا وَاصْفَحُوا﴾ اس میں دو مسئلے ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَاعْفُوا﴾ اور اصل میں یہ 'اعْفُوُوا' تھا، ضمہ کو بوجھل ہونے کی وجہ سے حذف کر دیا گیا، پھر دو ساکنوں کے اجتماع کی وجہ سے 'واؤ' کو حذف کر دیا گیا(۶)۔

اور 'العفو': گناہ پر گرفت کو چھوڑ دینا ہے۔ اور 'الصفح': نفس سے اس کے اثر کو زائل کر دینا ہے؛ (کہا جاتا ہے) 'صَفَحْتُ عن فلان': جب تم نے اس کے گناہ سے اعراض کیا۔ اور 'ضَرَبْتُ عنه صَفْحاً': جب تم نے اس سے کنارہ کشی اختیار کی اور اسے چھوڑ دیا، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا یہ قول ہے: ﴿أَفَنَضْرِبُ عَنْكُمُ الذِّكْرَ صَفْحًا﴾ [الزخرف: ۵]۔

دوسرا مسئلہ: یہ آیت اللہ تعالیٰ کے اس قول سے منسوخ ہے: ﴿قَتِلُوا الَّذِينَ لَا يُؤْمِنُونَ﴾ اس کے قول تک:

---

(۱) اسے احمد (۴۹۲۴)، بخاری (۵۰۲۵) نے اسی کی مانند، اور مسلم (۸۱۵) نے - اور الفاظ ان کے ہیں - حضرت ابن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور اسے احمد (۳۶۵۱)، بخاری (۷۳)، اور مسلم (۸۱۶) نے حضرت ابن مسعود رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور اسے احمد (۱۰۲۱۴)، اور بخاری (۵۰۲۶) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے جو اس سے لمبی ہے۔ (۲) (م) نسخہ میں: الحسد۔ (۳) (م) میں: اسی طرح۔ (۴) حدیث (۷۳) سے پہلے۔ (۵) دیکھئے المفہم ۲/ ۴۴۵-۴۴۶۔ (۶) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۵۶۔

"...humbled" [At-Tawbah: 29] on the authority of Ibn Abbas. And it was said: the abrogation for it is "Then kill the polytheists" [At-Tawbah: 5] (1). Abu Ubaidah said: Every verse in which there is an abandonment of fighting (2) is Meccan and was abrogated by fighting (3). Ibn Atiyyah said: His ruling that this verse is Meccan is weak; because the stubbornness of the Jews only occurred in Medina. I say: And this is correct; Al-Bukhari and Muslim narrated from Usama bin Zaid that the Messenger of Allah (PBUH) rode a donkey with a Fadaki velvet cloth on it - with Usama behind him - to visit Sa'd bin Ubadah in the Bani Al-Harith bin Al-Khazraj neighborhood before the Battle of Badr. They traveled until they passed a gathering in which was Abdullah bin Ubayy bin Salul - this was before Abdullah bin Ubayy had embraced Islam - and in the gathering were mixed groups of Muslims, polytheists who worshipped idols, and Jews. Among the Muslims was Abdullah bin Rawahah. When the dust from the animal covered the gathering, Ibn Ubayy covered his nose with his cloak and said, "Do not raise dust over us." The Messenger of Allah (PBUH) greeted them with peace, then stopped and dismounted. He invited them to Allah the Almighty and recited the Quran to them. Abdullah bin Ubayy bin Salul said to him, "O man, there is nothing better than what you say if it is true! But do not bother us with it in our gatherings; whoever comes to you, relate it to him." Abdullah bin Rawahah said, "Yes, O Messenger of Allah, visit us in our gatherings, for we love that." Then the polytheists, Muslims, and Jews began to insult each other (4) until they were almost ready to attack one another. The Messenger of Allah (PBUH) continued to calm them down until they became quiet (5). Then the Messenger of Allah (PBUH) rode his animal and traveled until he reached Sa'd bin Ubadah. The Messenger of Allah (PBUH) said, "[O Sa'd], did you not hear what Abu Hubab said? - meaning Abdullah bin Ubayy - he said such and such." He replied, "O Messenger of Allah, may my father and mother be sacrificed for you, forgive him and overlook it. By Him who sent down the Book to you with the truth, Allah has brought you the truth that He sent down to you, while the people of this 'Bahrah' (6) had agreed that..."

(1) Narrated by Al-Tabari 2/424, and Ibn Abi Hatim 1/334, see Tafsir Abd al-Razzaq 1/55. (2) In (M): to the fighting. (3) Majaz al-Qur'an 1/50, and the author quoted it from him via Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/197. (4) In (M): "fastabba" (they insulted each other), which is an error. (5) In (Z): "sakatu" (they became silent), which matches the narration of al-Kushmihani, as in Fath al-Bari 8/232. (6) In (D), (Z), (M) and a copy in the margin of (Kh): "Al-Buhairah", and what is established from (Kh) and

(Z) is what matches the narration of Al-Bukhari that the author relied on. It appeared in other narrations of Al-Bukhari and Muslim as: "Al-Buhairah". What is meant by it here is: Medina.

सूरह अल-बक़रह: आयत 109, 110 315

"...अपमानित" [अत-तौबा: 29] इब्न अब्बास के अधिकार पर। और यह कहा गया: इसके लिए नासिख (निरस्त करने वाली आयत) है "फिर मुशरिकों (बहुदेववादियों) को मार डालो" [अत-तौबा: 5] (1)। अबू उबैदाह ने कहा: प्रत्येक आयत जिसमें युद्ध छोड़ने का उल्लेख है (2), वह मक्की है और युद्ध के द्वारा निरस्त कर दी गई है (3)। इब्न अतिय्याह ने कहा: उनका यह निर्णय कि यह आयत मक्की है, कमज़ोर है; क्योंकि यहूदियों की हठधर्मिता केवल मदीना में ही हुई थी। मैं कहता हूँ: और यही सही है; अल-बुखारी और मुस्लिम ने उसामा बिन ज़ैद से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) एक गधे पर सवार हुए जिस पर फ़दकी मखमली कपड़ा बिछा था - और उसामा उनके पीछे थे - बद्र की लड़ाई से पहले बनी अल-हारिस बिन अल-खज़रज में साद बिन उबादा की इयादत (हालचाल पूछने) के लिए। वे चलते रहे यहाँ तक कि वे एक सभा के पास से गुज़रे जिसमें अब्दुल्ला बिन उबैय बिन सलूल था - और यह अब्दुल्ला बिन उबैय के इस्लाम स्वीकार करने से पहले की बात है - उस सभा में मुसलमानों, मूर्तिपूजा करने वाले मुशरिकों और यहूदियों का मिला-जुला समूह था। मुसलमानों में अब्दुल्ला बिन रवाहा भी थे। जब जानवर की उड़ती हुई धूल सभा पर पड़ी, तो इब्न उबैय ने अपनी चादर से अपनी नाक ढँक ली और कहा, "हम पर धूल मत उड़ाओ।" अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने उन्हें सलाम किया, फिर रुके और नीचे उतरे। उन्होंने उन्हें अल्लाह तआला की ओर बुलाया और उन्हें कुरान पढ़कर सुनाया। अब्दुल्ला बिन उबैय बिन सलूल ने उनसे कहा, "ओ व्यक्ति, यदि आप जो कहते हैं वह सच है, तो इससे बेहतर कुछ नहीं है! लेकिन हमारी सभाओं में हमें इससे परेशान न करें; जो आपके पास आए, उसे यह सुनाएँ।" अब्दुल्ला बिन रवाहा ने कहा, "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल, हमारी सभाओं में हमारे पास आएं क्योंकि हम इसे पसंद करते हैं।" फिर मुशरिक, मुसलमान और यहूदी एक-दूसरे को अपशब्द कहने लगे (4) यहाँ तक कि वे लगभग एक-दूसरे पर हमला करने को तैयार हो गए। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) उन्हें शांत करते रहे यहाँ तक कि वे चुप हो गए (5)। फिर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) अपने जानवर पर सवार हुए और चलते रहे यहाँ तक कि साद बिन उबादा के पास पहुँचे। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने कहा, "[ऐ साद], क्या तुमने नहीं सुना कि अबू हुबाब ने क्या कहा? - उनका मतलब अब्दुल्ला बिन उबैय से था - उसने ऐसा और वैसा कहा।" उन्होंने उत्तर दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे माता-पिता आप पर कुर्बान हों, उसे क्षमा कर दें और दरगुज़र करें। उस सत्ता की कसम जिसने आप पर सच्चाई के साथ किताब उतारी है,

अल्लाह आपके पास वह सच्चाई ले आया है जो उसने आप पर उतारी है, जबकि इस 'बहरा' (6) के लोग इस बात पर सहमत हो चुके थे कि..."

(1) इसे अल-तबरी 2/424, और इब्न अबी हातिम 1/334 ने निकाला है, देखें तफ़सीर अब्द अल-रज्ज़ाक 1/55। (2) (म) में: युद्ध के लिए। (3) मजाज़ अल-कुरान 1/50, और लेखक ने इसे इब्न अतिय्याह के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/197 में उद्धृत किया है। (4) (म) में: "फ़स्तब्बा" (उन्होंने एक-दूसरे को गाली दी), जो कि एक त्रुटि है। (5) (ज़) में: "सकतू" (वे शांत हो गए), जो अल-कुशमिहानी की रिवायत के अनुरूप है, जैसा कि फ़तह अल-बारी 8/232 में है। (6) (द), (ज़), (म) और (ख) के हाशिए वाली एक प्रति में: "अल-बुहैरा", और (ख) और (ज़) से जो स्थापित है वह अल-बुखारी की उस रिवायत के अनुरूप है जिस पर लेखक ने भरोसा किया है। अल-बुखारी की अन्य रिवायतों और मुस्लिम में यह "अल-बुहैरा" के रूप में आया है। और यहाँ इससे तात्पर्य है: मदीना मुनव्वरा।

سورة البقرہ: آیات ۱۰۹، ۱۱۰ ۳۱۵

﴿ صَٰغِرُونَ ﴾ [التوبہ: ۲۹] ابن عباس سے مروی ہے۔ اور کہا گیا: اس کے لیے ناسخ ﴿ فَاقْتُلُوا الْمُشْرِكِينَ ﴾ [التوبہ: ۵] ہے (۱)۔ ابو عبیدہ نے کہا: ہر وہ آیت جس میں قتال کو ترک کرنے کا ذکر ہے (۲)، وہ مکی ہے اور قتال (کے حکم) سے منسوخ ہے (۳)۔ ابن عطیہ نے کہا: ان کا یہ فیصلہ کہ یہ آیت مکی ہے، ضعیف ہے؛ کیونکہ یہودیوں کی دشمنی و ہٹ دھرمی تو صرف مدینہ میں ہوئی تھی۔ میں کہتا ہوں: اور یہی صحیح ہے؛ بخاری اور مسلم نے اسامہ بن زید سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ ایک گدھے پر سوار ہوئے جس پر فدکی مخملی کپڑا تھا - اور اسامہ آپ کے پیچھے تھے - جنگ بدر سے پہلے بنو حارث بن خزرج میں سعد بن عبادہ کی عیادت کے لیے جا رہے تھے۔ وہ دونوں چلے یہاں تک کہ ایک مجلس کے پاس سے گزرے جس میں عبداللہ بن ابی بن سلول موجود تھا - اور یہ عبداللہ بن ابی کے اسلام لانے سے پہلے کی بات ہے - اس مجلس میں مسلمانوں، بت پرست مشرکین اور یہودیوں کا ملا جلا گروہ تھا۔ مسلمانوں میں عبداللہ بن رواحہ بھی تھے۔ جب جانور کی گرد و غبار مجلس پر چھا گئی، تو ابن ابی نے اپنی ناک کو اپنی چادر سے ڈھانپ لیا اور کہا: ہم پر غبار نہ اڑاؤ۔ رسول اللہ ﷺ نے سلام کیا، پھر رکے اور نیچے اترے۔ آپ ﷺ نے انہیں اللہ تعالیٰ کی طرف بلایا اور انہیں قرآن پڑھ کر سنایا۔ عبداللہ بن ابی بن سلول نے آپ سے کہا: اے شخص، اگر جو تم کہہ رہے ہو سچ ہے، تو اس سے بہتر کوئی بات نہیں! لیکن ہماری مجلسوں میں ہمیں اس سے تکلیف نہ دو؛ جو تمہارے پاس آئے، اسے یہ سناؤ۔ عبداللہ بن رواحہ نے کہا: کیوں نہیں اے اللہ کے رسول، ہماری مجلسوں میں ہمارے پاس تشریف لایا کریں، کیونکہ ہم اسے پسند کرتے ہیں۔ پھر مشرکین، مسلمان اور یہودی ایک دوسرے کو برا بھلا کہنے لگے (۴) یہاں تک کہ وہ تقریباً ایک دوسرے پر حملہ آور ہونے والے تھے۔ رسول اللہ ﷺ مسلسل انہیں ٹھنڈا

کرتے رہے یہاں تک کہ وہ خاموش ہو گئے (۵)۔ پھر رسول اللہ ﷺ اپنے جانور پر سوار ہوئے اور چلے یہاں تک کہ سعد بن عبادہ کے پاس پہنچے۔ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "[اے سعد]، کیا تم نے نہیں سنا جو ابو حباب نے کہا؟ - آپ کی مراد عبداللہ بن ابی تھی - اس نے ایسا ایسا کہا۔" انہوں نے عرض کیا: اے اللہ کے رسول، میرے ماں باپ آپ پر قربان ہوں، اسے معاف کر دیں اور درگزر فرمائیں، اس ذات کی قسم جس نے آپ پر حق کے ساتھ کتاب نازل کی ہے، اللہ تعالیٰ آپ کے پاس وہ حق لے آیا ہے جو اس نے آپ پر نازل فرمایا، جبکہ اس 'بحرہ' (۶) کے لوگ اس بات پر متفق ہو چکے تھے کہ---

(۱) اسے طبری ۲/ ۴۲۴، اور ابن ابی حاتم ۱/ ۳۳۴ نے روایت کیا ہے، دیکھیں تفسیر عبد الرزاق ۱/ ۵۵۔ (۲) (م) میں ہے: قتال کے لیے۔ (۳) مجاز القرآن ۱/ ۵۰، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۷ میں نقل کیا ہے۔ (۴) (م) میں ہے: "فاستب" (اس نے گالی دی)، جو کہ غلطی ہے۔ (۵) (ظ) میں ہے: "سکتوا" (وہ خاموش ہو گئے)، جو کشمیہنی کی روایت کے مطابق ہے، جیسا کہ فتح الباری ۸/ ۲۳۲ میں ہے۔ (۶) (د)، (ظ)، (م) اور (خ) کے حاشیے میں ایک نسخہ میں ہے: "البحیرہ"، اور جو (خ) اور (ز) سے ثابت ہے وہی بخاری کی اس روایت کے مطابق ہے جس پر مصنف نے اعتماد کیا ہے۔ بخاری کی دیگر روایات اور مسلم میں یہ "البحیرہ" کے طور پر آیا ہے۔ اور یہاں اس سے مراد مدینہ منورہ ہے۔

316 Surah Al-Baqarah: Verses 109, 110

...to crown him and wrap him with a turban. But when Allah rejected that with the Truth He gave you, he became choked with it. That is why he did (1) what you saw. So the Messenger of Allah (peace be upon him) forgave him.

The Messenger of Allah (peace be upon him) and his companions used to forgive the polytheists and the People of the Book as Allah Almighty commanded them, and they were patient with harm. Allah Almighty said: {And you will surely hear from those who were given the Scripture before you} [Al-Imran: 186], and He said: {Many of the People of the Book wish}. So the Messenger of Allah (peace be upon him) used to interpret the forgiveness of them as Allah had commanded him until He permitted him concerning them. When the Messenger of Allah (peace be upon him) fought at Badr, and Allah killed therein (2) those of the leaders of the disbelievers and the lords (3) of Quraysh who were killed, the Messenger of Allah (peace be upon him) and his companions returned victorious with booty, bringing captives from the leaders of the disbelievers and the lords of Quraysh.

Abdullah bin Ubayy ibn Salul and those with him from the polytheists, idolaters (4), said: This is a matter that has turned out well. So they pledged allegiance to the Messenger of Allah (peace be upon him) on Islam, and they became Muslims (5).

His saying, Almighty: {Until Allah brings about His command} means the killing of Bani Qurayza and the expulsion of Bani al-Nadir.

{Indeed, Allah is over all things competent. And establish prayer and give zakah} - previously mentioned (6). And praise be to Allah Almighty.

His saying, Almighty: {And whatever good you send forth for yourselves, you will find it with Allah}. It came in the Hadith: When a servant dies, people say: 'What has he left behind?' and the angels say: 'What has he sent forward?' (7)

Al-Bukhari and An-Nasa'i narrated from Abdullah who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: 'Which of you loves the wealth of his heir more than his own wealth?' They said: 'O Messenger of Allah, there is not one of us but his own wealth is more beloved to him than...'

---

(1) His saying: "bihi" (with it), is not in (M). (2) In (M) and (Zh): "bihi", and what is established is from (Kh), (D), and (Z), which is consistent with the narration of Al-Bukhari adopted by the author. (3) In (M) and (D) in both places: "sadat" (lords). (4) In

(M): "wa 'abadat" (and idolaters). (5) Sahih al-Bukhari (6207), part of it in Sahih Muslim (1798), and what is between brackets is from them; it is in Musnad Ahmad (21767). (6) 1/253, 338 and 2/22 onwards. (7) Narrated as Mauquf and Marfu'. Those who narrated it as Mauquf are more reliable than those who narrated it as Marfu'. Ibn Abi Shaybah narrated it in Al-Musannaf 13/350 from Abd al-Rahman bin Mahdi, from Sufyan, from al-A'mash, from Abu Salih, from Abu Hurayrah as Mauquf. Al-Bayhaqi narrated it in Shu'ab al-Iman (10475) via Abd al-Rahman bin Muhammad al-Muharibi, from Sufyan, with the same chain, as Marfu'.

३१६ सूरह अल-बकरा: आयतें १०९, ११०

...उन्हें ताज पहनाएं और पगड़ी बांधें। लेकिन जब अल्लाह ने आपको दिए गए सत्य के साथ इसे ठुकरा दिया, तो वे इससे घबरा गए। यही कारण था कि उन्होंने वह किया (१) जो आपने देखा। इसलिए अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने उन्हें क्षमा कर दिया।

अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और उनके साथी मुशरिकों और अहले किताब (किताब वाले) को क्षमा कर देते थे जैसा कि अल्लाह तआला ने उन्हें आदेश दिया था, और वे तकलीफों पर धैर्य रखते थे। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {और तुम उन लोगों से जिन्हें तुमसे पहले किताब दी गई थी, बहुत सी कष्टदायक बातें सुनोगे} [आल इमरान: १८६], और फ़रमाया: {अहले किताब में से बहुत से लोग चाहते हैं}। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) उन्हें माफ करने के बारे में अल्लाह के आदेश का पालन करते रहे जब तक कि अल्लाह ने उनके बारे में अनुमति नहीं दे दी। जब अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने बद्र की लड़ाई लड़ी, और अल्लाह ने वहां (२) काफिरों के सरदारों और कुरैश के नेताओं (३) में से जिन्हें मारा जाना था उन्हें मारा, तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) और उनके साथी विजयी होकर लौटे, उनके साथ काफिरों के सरदारों और कुरैश के नेताओं के कैदी थे।

अब्दुल्ला बिन उबय इब्न सलूल और उनके साथ मुशरिकों, मूर्तिपूजकों (४) में से जो थे, उन्होंने कहा: यह एक ऐसा मामला है जो सफल हो गया है। इसलिए उन्होंने इस्लाम पर अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के प्रति निष्ठा की शपथ ली, और वे मुसलमान हो गए (५)।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {यहाँ तक कि अल्लाह अपना आदेश ले आए} इसका अर्थ है बनी कुरैज़ा की हत्या और बनी अन-नदीर का निष्कासन।

{निश्चय ही अल्लाह हर चीज़ पर सक्षम है। और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो} - पहले उल्लेख किया गया (६)। और अल्लाह तआला की प्रशंसा हो।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {और जो भी भलाई तुम अपने लिए आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के पास पाओगे}। हदीस में आया है: जब कोई बंदा मर जाता है, तो लोग कहते हैं: 'उसने क्या छोड़ा है?' और फरिश्ते कहते हैं: 'उसने आगे क्या भेजा है?' (७)

अल-बुखारी और अन-नसाई ने अब्दुल्ला से रिवायत की है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फ़रमाया: 'तुममें से किसे अपने वारिस का माल अपने माल से अधिक प्रिय है?' उन्होंने कहा: 'हे अल्लाह के रसूल, हममें से कोई ऐसा नहीं है जिसे अपना माल अधिक प्रिय न हो...'

---

(१) उनका कहना: 'bihi', (M) में नहीं है। (२) (M) और (Zh) में: 'bihi', और जो स्थापित है वह (Kh), (D) और (Z) से है, जो लेखक द्वारा अपनाई गई अल-बुखारी की रिवायत के अनुरूप है। (३) (M) और (D) में दोनों जगहों पर: 'sadat' (सरदार)। (४) (M) में: 'wa 'abadat' (और मूर्तिपूजक)। (५) सहीह अल-बुखारी (६२०७), इसका कुछ हिस्सा सहीह मुस्लिम (१७९८) में है, और उनके बीच कोष्ठक में जो है, वह मुसनद अहमद (२१७६७) में है। (६) १/२५३, ३३८ और २/२२ इसके बाद। (७) इसे मौकूफ़ और मरफ़ू' दोनों तरह से रिवायत किया गया है। जिन्होंने इसे मौकूफ़ के रूप में रिवायत किया है, वे मरफ़ू' के रूप में रिवायत करने वालों की तुलना में अधिक विश्वसनीय हैं। इब्न अबी शैबा ने इसे अल-मुसन्नफ़ १३/३५० में अब्द अल-रहमान बिन महदी से, सुफ़ियान से, अल-अअमाश से, अबू सालेह से, अबू हुरैरा से मौकूफ़ के रूप में रिवायत किया है। अल-बैहक़ी ने इसे शुअब अल-ईमान (१०४७५) में अब्द अल-रहमान बिन मुहम्मद अल-मुहारीबी के माध्यम से सुफ़ियान से मरफ़ू' के रूप में रिवायत किया है।

۳۱۶ سورہ البقرہ: آیات ۱۰۹، ۱ینو

...اسے تاج پہنائیں اور اس پر پگڑی باندھیں۔ لیکن جب اللہ نے اس (ارادے) کو اس حق کے ذریعے مسترد کر دیا جو اس نے آپ کو دیا، تو وہ اس سے جل بھن گیا۔ اسی وجہ سے اس نے وہ کیا (۱) جو آپ نے دیکھا۔ تو رسول اللہ ﷺ نے اسے معاف فرما دیا۔

رسول اللہ ﷺ اور آپ کے صحابہ مشرکین اور اہل کتاب کو معاف فرما دیتے تھے جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے انہیں حکم دیا تھا، اور وہ اذیت پر صبر کرتے تھے۔ اللہ عزوجل نے فرمایا: ﴿وَلَتَسْمَعُنَّ مِنَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ مِن قَبْلِكُمْ﴾ [آل عمران: ۱۸۶]، اور فرمایا: ﴿وَدَّ كَثِيرٌ مِّنْ أَهْلِ الْكِتَابِ﴾۔ پس رسول اللہ ﷺ ان کی معافی کے بارے میں اللہ کے حکم کی تاویل فرماتے رہے یہاں تک کہ اللہ نے ان کے بارے میں آپ کو اجازت دے دی۔ جب رسول اللہ ﷺ نے بدر کی جنگ لڑی، اور اللہ نے اس میں (۲) کفار کے بڑے بڑے سرداروں اور قریش کے رؤسا (۳) کو قتل کر دیا، تو رسول اللہ ﷺ اور آپ کے صحابہ مال غنیمت لے کر کامیاب و کامران واپس ہوئے، ان کے ساتھ کفار کے سردار اور قریش کے رؤسا قیدیوں کی صورت میں تھے۔

عبداللہ بن ابی ابن سلول اور اس کے ساتھ موجود مشرکوں اور بت پرستوں (۴) نے کہا: یہ معاملہ اب جم چکا ہے، چنانچہ انہوں نے اسلام پر رسول اللہ ﷺ کی بیعت کر لی اور مسلمان ہو گئے (۵)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿حَتَّىٰ يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ﴾ یعنی بنو قریظہ کا قتل اور بنو نضیر کی جلاوطنی۔

﴿إِنَّ اللَّهَ عَلَىٰ كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ﴾، اور ﴿أَقِيمُوا الصَّلَاةَ وَآتُوا الزَّكَاةَ﴾ پہلے گزر چکا (۶)۔ اور اللہ تعالیٰ ہی کے لیے تمام تعریفیں ہیں۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَمَا تُقَدِّمُوا لِأَنفُسِكُم مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوهُ عِندَ اللَّهِ﴾ حدیث میں آیا ہے کہ جب بندہ مر جاتا ہے تو لوگ کہتے ہیں: اس نے پیچھے کیا چھوڑا؟ اور فرشتے کہتے ہیں: اس نے آگے کیا بھیجا؟ (۷)

اور بخاری اور نسائی نے عبداللہ سے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: 'تم میں سے کسے اپنے وارث کا مال اپنے مال سے زیادہ پیارا ہے؟' انہوں نے کہا: اے اللہ کے رسول، ہم میں سے کوئی ایسا نہیں ہے مگر اسے اپنا مال ہی سب سے زیادہ پیارا ہے...

---

(۱) ان کا قول: 'بہ'، (م) میں نہیں ہے۔ (۲) (م) اور (ظ) میں: 'بہ'، اور جو ثابت ہے وہ (خ) اور (د) اور (ز) سے ہے، جو امام بخاری کی اس روایت کے موافق ہے جسے مصنف نے اختیار کیا ہے۔ (۳) (م) اور (د) میں دونوں جگہوں پر: 'سادات'۔ (۴) (م) میں: 'وعبدہ'۔ (۵) صحیح بخاری (۶۲۰۷)، اور اس کا کچھ حصہ صحیح مسلم (۱۷۹۸) میں ہے، اور ان دونوں سے جو کچھ قوسین (بریکٹ) کے درمیان ہے، وہ مسند احمد (۲۱۷۶۷) میں ہے۔ (۶) ۱/۲۵۳، ۳۳۸ اور ۲/۲۲ اس کے بعد۔ (۷) یہ موقوف اور مرفوع دونوں طرح مروی ہے، اور جس نے اسے موقوف روایت کیا وہ مرفوع روایت کرنے والے سے زیادہ ثقہ ہے، چنانچہ اسے ابن ابی شیبہ نے المصنف ۱۳/۳۵۰ میں عبدالرحمن بن مہدی سے، انہوں نے سفیان سے، انہوں نے اعمش سے، انہوں نے ابوصالح سے، انہوں نے ابوہریرہ سے موقوفاً روایت کیا ہے۔ اور اسے بیہقی نے شعب الایمان (۱۰۴۷۵) میں عبدالرحمن بن محمد المحاربی کے طریق سے، سفیان سے، انہی (سند) کے ساتھ مرفوعاً روایت کیا ہے۔

[The property of] his heir. The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "There is none of you for whom his heir's wealth is not more beloved to him than his own wealth. Your wealth is what you have sent forward, and your heir's wealth is what you have left behind." (This is the phrasing of An-Nasa'i). The phrasing of Al-Bukhari is: Abdullah said: The Prophet (peace be upon him) said: "Which of you loves his heir's wealth more than his own?" They said: "O Messenger of Allah, there is no one among us whose own wealth is not more beloved to him." He said: "His wealth is what he has sent forward, and his heir's wealth is what he has left behind." (1)

It is narrated from Umar ibn al-Khattab (may Allah be pleased with him) that he passed by the cemetery of Baqi' al-Gharqad and said: "Peace be upon you, O people of the graves. Our news is that your wives have married, your houses have been occupied, and your wealth has been divided." A voice called out to him: "O son of al-Khattab, our news is that what we sent forward, we found; what we spent, we gained; and what we left behind, we lost." (2)

How well the speaker said: Send forward good deeds for yourself before your death, and act, for there is no way to eternity. (3)

Another said (4): Send forward for yourself a hoped-for repentance before death and before the tongue is silenced.

Another said: Your mother gave birth to you weeping, while those around you were laughing with joy. So work for a day when they will be weeping, while on the day of your death, you will be laughing and joyful.

Another said: Race towards goodness and hasten to it, for what is behind you is what you know. Send forward good deeds, for every man arrives at what he has sent forward. (5)

---

(1) Sahih al-Bukhari (6442), and al-Mujtaba 6/237-238. It is in Musnad Ahmad (3626). Abdullah: He is Ibn Mas'ud (may Allah be pleased with him). (2) Mentioned by Ibn Abd al-Barr in At-Tamhid 20/242. (3) We did not find its source; it was mentioned by Ibn Adel in Al-Lubab 2/395. (4) He is Mahmoud al-Warraq. Ibn Abd al-Barr mentioned the verse in At-Tamhid 15/12, Bahjat al-Majalis 3/259, and the author mentioned it in At-Tadhkirah p. 46, and will repeat it in the commentary of verse (17) of Surah An-Nisa. (5) We did not find them; they were mentioned by Ibn Adel in Al-Lubab 2/395.

उसके वारिस का धन। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुममें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसके लिए उसके वारिस का धन उसके अपने धन से अधिक प्रिय न हो। तुम्हारा धन वह है जो तुमने आगे भेज दिया, और तुम्हारे वारिस का धन वह है जो तुमने पीछे छोड़ दिया।" (यह अन-नसाई के शब्द हैं)। अल-बुखारी के शब्द हैं: अब्दुल्लाह ने कहा: नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "तुममें से कौन है जिसे अपने वारिस का धन अपने धन से अधिक प्रिय है?" उन्होंने कहा: "हे अल्लाह के रसूल, हममें से कोई भी ऐसा नहीं है जिसे अपना धन अधिक प्रिय न हो।" उन्होंने फ़रमाया: "उसका धन वह है जो उसने आगे भेज दिया, और उसके वारिस का धन वह है जो उसने पीछे छोड़ दिया।" (1)

उमर इब्न अल-खत्ताब (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है कि वे बकी अल-ग़रक़द (क़ब्रिस्तान) के पास से गुज़रे और कहा: "तुम पर शांति हो, ऐ क़ब्रों वालों। हमारी ख़बर यह है कि तुम्हारी पत्नियों ने निकाह कर लिया है, तुम्हारे घरों में लोग बस गए हैं, और तुम्हारा धन बाँट दिया गया है।" एक आवाज़ ने उन्हें उत्तर दिया: "ऐ खत्ताब के बेटे, हमारी ख़बर यह है कि जो हमने आगे भेजा, उसे हमने पा लिया; जो हमने खर्च किया, उसमें हमने लाभ पाया; और जो हमने पीछे छोड़ा, उसमें हमने घाटा उठाया।" (2)

कहने वाले ने क्या खूब कहा है: अपनी मृत्यु से पहले अपने लिए नेक काम आगे भेजो, और कर्म करो, क्योंकि अमरता का कोई रास्ता नहीं है। (3)

एक अन्य ने कहा (4): मृत्यु से पहले और ज़ुबान बंद होने से पहले अपने लिए एक ऐसी तौबा तैयार करो जिसकी आशा की जा सके।

एक अन्य ने कहा: जब तुम्हारी माँ ने तुम्हें जन्म दिया तो तुम रो रहे थे, जबकि तुम्हारे आस-पास के लोग खुशी से हँस रहे थे। तो उस दिन के लिए कर्म करो जब वे रो रहे होंगे, जबकि तुम्हारी मृत्यु के दिन तुम हँस रहे और प्रसन्न होगे।

एक अन्य ने कहा: भलाई की ओर दौड़ो और इसमें जल्दी करो, क्योंकि तुम्हारे पीछे वही है जो तुम जानते हो। नेकी आगे भेजो, क्योंकि हर मनुष्य उसी चीज़ पर पहुँचेगा जो उसने आगे भेजी है। (5)

---

(1) सहीह अल-बुखारी (6442), और अल-मुजतबा 6/237-238। यह मसनद अहमद (3626) में भी है। अब्दुल्लाह: वे इब्न मसूद (रज़ियल्लाहु अन्हु) हैं। (2) इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तम्हीद 20/242 में

इसका उल्लेख किया है। (3) हमें इसका स्रोत नहीं मिला; इसका उल्लेख इब्न आदिल ने अल-लुबाब 2/395 में किया है। (4) वे महमूद अल-वर्रक हैं। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तम्हीद 15/12, बहजत अल-मजालिस 3/259 में इस छंद का उल्लेख किया है, और लेखक ने अत-तज़किराह पृ. 46 में इसका उल्लेख किया है, और सूरह अन-निसा की आयत (17) की व्याख्या में इसे फिर से दोहराएंगे। (5) हमें वे नहीं मिले; इब्न आदिल ने अल-लुबाब 2/395 में उनका उल्लेख किया है।

317 سورة البقرہ: آیات 109 ، 110

وارث کا مال۔ اللہ کے رسول صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: ”تم میں سے کوئی ایسا نہیں ہے جس کے لیے اس کے وارث کا مال اس کے اپنے مال سے زیادہ پیارا نہ ہو۔ تمہارا مال وہ ہے جو تم نے آگے بھیج دیا، اور تمہارے وارث کا مال وہ ہے جو تم نے پیچھے چھوڑ دیا۔“ (یہ نسائی کے الفاظ ہیں)۔ اور بخاری کے الفاظ ہیں: عبداللہ نے کہا: نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: ”تم میں سے کس کو اپنے وارث کا مال اپنے مال سے زیادہ محبوب ہے؟“ انہوں نے عرض کیا: ”اے اللہ کے رسول، ہم میں سے کوئی بھی ایسا نہیں ہے جسے اپنا مال زیادہ محبوب نہ ہو۔“ آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: ”پس اس کا مال وہ ہے جو اس نے آگے بھیج دیا، اور اس کے وارث کا مال وہ ہے جو اس نے پیچھے چھوڑ دیا۔“ (1)

اور عمر بن خطاب رضی اللہ عنہ سے مروی ہے کہ وہ بقیع الغرقد (قبرستان) سے گزرے تو فرمایا: ”اے اہل قبور، تم پر سلامتی ہو۔ ہماری خبر تو یہ ہے کہ تمہاری بیواؤں نے نکاح کر لیے، تمہارے گھروں میں لوگ آباد ہو گئے، اور تمہارے مال تقسیم کر دیے گئے۔“ تو ایک غیبی آواز نے جواب دیا: ”اے ابن خطاب، ہماری خبر یہ ہے کہ جو ہم نے آگے بھیجا وہ ہم نے پا لیا، اور جو ہم نے خرچ کیا اس میں نفع پایا، اور جو ہم نے پیچھے چھوڑا اس میں نقصان اٹھایا۔“ (2)

اور کہنے والے نے کیا خوب کہا ہے: اپنی موت سے پہلے اپنے لیے نیک اعمال آگے بھیجو، اور عمل کرو کیونکہ ہمیشگی کا کوئی راستہ نہیں۔ (3)

اور کسی دوسرے نے کہا (4): اپنی موت سے پہلے اور زبانوں کے بند ہونے سے پہلے اپنے لیے ایک امید بھری توبہ آگے بھیجو۔

اور کسی اور نے کہا: تیری ماں نے تجھے جنم دیا تو تو رو رہا تھا، جبکہ تیرے ارد گرد کے لوگ خوشی سے ہنس رہے تھے۔ پس اس دن کے لیے عمل کر جب وہ رو رہے ہوں گے، جبکہ اپنی موت کے دن تو ہنستا مسکراتا اور خوش ہوگا۔

اور کسی دوسرے نے کہا: نیکی کی طرف سبقت کر اور اس میں جلدی کر، کیونکہ تیرے پیچھے وہی ہے جو تو جانتا ہے۔ اور نیکی آگے بھیج، کیونکہ ہر انسان اسی چیز پر پہنچے گا جو اس نے آگے بھیجی ہے۔ (5)

---

(1) صحیح بخاری (6442)، اور المجتبیٰ 6/ 237-238۔ اور یہ مسند احمد (3626) میں بھی ہے۔ عبداللہ: یہ ابن مسعود رضی اللہ عنہ ہیں۔ (2) ابن عبد البر نے التمہید 20/242 میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (3) ہمیں اس کا مآخذ نہیں ملا، اور ابن عادل نے اللباب 2/ 395 میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (4) وہ محمود الوراق ہیں، اور ابن عبد البر نے التمہید 12/15 میں، اور بہجۃ المجالس 259/3 میں اس شعر کا ذکر کیا ہے، اور مصنف نے التذکرہ ص 46 میں اسے ذکر کیا ہے، اور وہ سورۃ النساء کی آیت (17) کی تفسیر میں اسے دوبارہ ذکر کریں گے۔ (5) ہمیں یہ دونوں نہیں ملے، اور ابن عادل نے اللباب 2/ 395 میں ان کا ذکر کیا ہے۔

And better than all this is the saying of Abu al-Atahiya: Be happy with your wealth in your life, for what remains behind you is either a reformer or a corruptor. And if you leave it to a corruptor, he will not preserve it, while the person of righteousness increases the little he has. And if you can, be your own heir; indeed, the one who bequeaths to himself is rightly guided. (1) “Indeed, Allah is All-Seeing of what you do” was mentioned previously (2). His statement, Most High: {And they say, "None will enter Paradise except one who is a Jew or a Christian." That is [merely] their wishful thinking. Say, "Produce your proof, if you should be truthful." (111) Yes [on the contrary], whoever submits his face in Islam to Allah while being a doer of good will have his reward with his Lord. And no fear will there be concerning them, nor will they grieve. (112)} His statement, Most High: {And they say, "None will enter Paradise except one who is a Jew or a Christian."} The meaning: The Jews said none will enter Paradise except those who were Jews. And the Christians said none will enter Paradise except those who were Christians. Al-Farra' allowed "Hudan" to mean a Jew; the extra letters were omitted, or for it to be the plural of "Ha'id" (a Jew). Sa'id al-Akhfash said: "Except one who was", he made "kana" (was) singular following the word "man" (who), then said "Hudan" (Jews) in plural because the meaning of "man" is plural. It is permissible: "Those are their desires" (3) and the discussion on this has preceded (4), and praise be to Allah.

---

(1) We did not find these verses in his collection, and Ibn Abd al-Barr cited them in "Bahjat al-Majalis" 3/259 without attribution. Ibn Abd al-Barr cited in "at-Tamhid" 20/243 - after mentioning the previous report of Umar - verses by Abu al-Atahiya other than those mentioned by the author, which are: O people of the graves, peace be upon you from me; I speak to you but you have no speech. Do not think that your loved ones, after you, found no pleasure in drink or food. No, indeed they have satisfied themselves and replaced you, and death has separated your bonds. All creation is like that; everyone who has died has no claim upon any living person. And they are in his collection, pp. 341-342. (2) 2/261. (3) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/256, and the author quoted through him the two previous statements of al-Farra' and al-Akhfash; see "Ma'ani al-Qur'an" by al-Farra' 1/73, and for al-Akhfash 1/331. (4) 2/217.

३१८ सूरा अल-बकराह: आयत १११, ११२

और इस सब से बेहतर अबू अल-अताहिया का कहना है: अपने जीवन में अपने धन से खुश रहो, क्योंकि तुम्हारे बाद जो बचेगा वह या तो सुधारक होगा या भ्रष्ट करने वाला। और यदि तुम इसे किसी भ्रष्ट व्यक्ति के लिए छोड़ते हो, तो वह इसे नहीं बचाएगा, जबकि सदाचारी व्यक्ति अपने थोड़े को भी बढ़ाता है। और यदि तुम कर सको, तो स्वयं के वारिस बनो; वास्तव में, जो स्वयं को वसीयत करता है वह सही मार्ग पर है। (१) “वास्तव में, अल्लाह जो तुम करते हो उसे देख रहा है” पहले उल्लेख किया गया था (२)। अल्लाह तआला का कहना है: {और वे कहते हैं, "स्वर्ग में केवल वही प्रवेश करेगा जो यहूदी या ईसाई हो।" यह उनकी अपनी इच्छाएं हैं। कहो, "अपना प्रमाण लाओ, यदि तुम सच्चे हो।" (१११) क्यों नहीं! जो कोई अपना मुख अल्लाह के सामने झुका देता है और वह सदाचारी है, तो उसके लिए उसका प्रतिफल उसके रब के पास है। उनके लिए न कोई भय होगा और न वे दुखी होंगे। (११२)} अल्लाह तआला का कहना है: {और वे कहते हैं, "स्वर्ग में केवल वही प्रवेश करेगा जो यहूदी या ईसाई हो।"} इसका अर्थ है: यहूदियों ने कहा कि स्वर्ग में केवल वही प्रवेश करेगा जो यहूदी था। और ईसाइयों ने कहा कि स्वर्ग में केवल वही प्रवेश करेगा जो ईसाई था। अल-फर्रा ने "हुदन" का अर्थ यहूदी होने की अनुमति दी; अतिरिक्त अक्षरों को हटाकर, या "हाइद" (यहूदी) का बहुवचन होने के लिए। सईद अल-अख़फ़श ने कहा: "सिवाय उसके जो था", उन्होंने "कान" (था) को एकवचन बनाया "मन" (जो) शब्द के अनुसार, फिर "हुदन" (यहूदी) बहुवचन में कहा क्योंकि "मन" का अर्थ बहुवचन है। यह जायज़ है: "वे उनकी आरज़ूएं हैं" (३) और इस पर चर्चा पहले हो चुकी है (४), और अल्लाह की प्रशंसा हो।

---

(१) हमें ये शेर उनके दीवान में नहीं मिले, और इब्न अब्द अल-बर्र ने उन्हें "बहजत अल-मजालिस" ३/२५९ में बिना श्रेय दिए उद्धृत किया है। इब्न अब्द अल-बर्र ने "अल-तमहीद" २०/२४३ में - उमर के ऊपर उल्लिखित कथन को उद्धृत करने के बाद - अबू अल-अताहिया के कुछ शेर उद्धृत किए हैं जो लेखक द्वारा बताए गए शेरों से अलग हैं, जो ये हैं: ऐ कब्र वालों, तुम पर मेरा सलाम हो; मैं तुमसे बात करता हूँ लेकिन तुम्हारी ओर से कोई बात नहीं होती। यह मत सोचो कि तुम्हारे बाद तुम्हारे प्रियजनों को पीने या खाने में कोई स्वाद नहीं आया। नहीं, वास्तव में उन्होंने खुद को संतुष्ट कर लिया है और तुम्हारी जगह दूसरों को ले लिया है, और मौत ने तुम्हारे बीच के रिश्तों को तोड़ दिया है। सारी सृष्टि ऐसी ही है; जो कोई मर जाता है उसका जीवितों पर कोई अधिकार नहीं रहता। ये शेर उनके दीवान, पृष्ठ ३४१-३४२ में हैं। (२) २/२६१। (३) "इ'राब अल-कुरान" अल-नहस द्वारा १/२५६, और

लेखक ने उनके माध्यम से अल-फर्रा और अल-अख़फ़श के पिछले दो कथनों को उद्धृत किया है; अल-फर्रा की "मानी अल-कुरान" १/७३ और अल-अख़फ़श की १/३३१ भी देखें। (४) २/२१७।

اور اس سب سے بہتر ابو العتاہیہ کا قول ہے: اپنی زندگی میں اپنے مال سے خوش رہو، کیونکہ تمہارے پیچھے جو بچتا ہے وہ یا تو اصلاح کرنے والا ہے یا بگاڑنے والا۔ اور اگر تم نے اسے کسی بگاڑنے والے کے لیے چھوڑا تو وہ اسے باقی نہیں رکھے گا، جبکہ نیک بندہ اپنے تھوڑے کو بھی بڑھاتا ہے۔ اور اگر تم کر سکو تو خود اپنے وارث بنو؛ بے شک وہ جس نے خود کو وارث بنایا وہی راہِ راست پر ہے۔ (۱) "بے شک اللہ جو تم کرتے ہو اسے دیکھ رہا ہے" پہلے گزر چکا (۲)۔ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {اور انہوں نے کہا، "جنت میں ہرگز کوئی داخل نہ ہوگا سوائے اس کے جو یہودی یا نصرانی ہو۔" یہ ان کی آرزوئیں ہیں۔ کہہ دو، "اپنی دلیل لاؤ اگر تم سچے ہو۔" (۱۱۱) کیوں نہیں! جس نے اپنا رخ اللہ کے لیے جھکا دیا اور وہ نکوکار ہے، تو اس کے لیے اس کا اجر اس کے رب کے پاس ہے، اور ان پر نہ کوئی خوف ہوگا اور نہ وہ غمگین ہوں گے۔ (۱۱۲)} اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {اور انہوں نے کہا، "جنت میں ہرگز کوئی داخل نہ ہوگا سوائے اس کے جو یہودی یا نصرانی ہو۔"} اس کا مطلب ہے: یہودیوں نے کہا کہ جنت میں وہی داخل ہوگا جو یہودی ہو، اور نصرانیوں نے کہا کہ جنت میں وہی داخل ہوگا جو نصرانی ہو۔ الفرہ نے "ہوداً" کو یہودی کے معنی میں جائز قرار دیا؛ اس سے زائد حروف حذف کر کے، یا اسے "ہائد" کی جمع قرار دیا۔ سعید الاخفش نے کہا: "سوائے اس کے جو تھا" یہاں "کان" (تھا) کو لفظ "من" (جو) کے مطابق واحد رکھا، پھر "ہوداً" (یہودی) جمع کہا کیونکہ "من" کا معنی جمع ہے۔ یہ جائز ہے: "یہ ان کی آرزوئیں ہیں" (۳) اور اس پر گفتگو پہلے ہو چکی ہے (۴)، اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں۔

---

(۱) ہمیں یہ اشعار ان کے دیوان میں نہیں ملے، اور ابن عبد البر نے انہیں "بہجۃ المجالس" ۲۵۹/۳ میں بغیر کسی نسبت کے ذکر کیا ہے۔ ابن عبد البر نے "التمہید" ۲۴۳/۲۰ میں - عمر رضی اللہ عنہ

کا مذکورہ اثر نقل کرنے کے بعد - ابو العتاہیہ کے وہ اشعار ذکر کیے ہیں جو مصنف کے ذکر کردہ اشعار سے الگ ہیں، اور وہ یہ ہیں: اے قبروں والو، تم پر میرا سلام ہو؛ میں تم سے کلام کرتا ہوں لیکن تمہاری طرف سے کوئی کلام نہیں۔ یہ نہ سمجھو کہ تمہارے بعد تمہارے پیاروں کو پینے یا کھانے کا ذائقہ نہیں ملا۔ نہیں، بلکہ انہوں نے خود کو مطمئن کر لیا اور تمہارا بدل ڈھونڈ لیا، اور موت نے تمہارے درمیان جدائی ڈال دی۔ تمام مخلوق کا یہی حال ہے؛ جو کوئی مر گیا اس کا زندوں پر کوئی حق نہیں رہا۔ اور یہ اشعار ان کے دیوان ص ۳۴۱-۳۴۲ میں ہیں۔ (۲) ۲۶۱/۲۔ (۳) "اعراب القرآن" للنحاس ۲۵۶/۱، اور مصنف نے ان کے واسطے سے الفراء اور الاخفش کے گزشتہ دو اقوال نقل کیے ہیں، اور دیکھیے "معانی القرآن" للفراء ۷۳/۱، اور للاخفش ۳۳۱/۱۔ (۴) ۲۱۷/۲۔

319 Surat Al-Baqarah: Verse 113

The Almighty's saying: {Say, "Produce your proof"} The origin of "Hātu" is "Hātiyu"; the dammah was deleted due to its heaviness, then the 'ya' was deleted due to the meeting of two silent letters (as-sākinayn). For a single male, one says: "Hāti" like "Rāmi", and for a female: "Hātī" like "Rāmī" (1).

And 'Al-Burhan' is the evidence that establishes certainty, its plural is 'Barāhīn', like 'Qurbān' and 'Qarābīn', and 'Sultān' and 'Salātīn'. Al-Tabari said: The request for proof here necessitates (2) the affirmation of logical reasoning (an-nazhar), and refutes those who deny it.

{If you are truthful} meaning in your faith, or in your saying: you will enter Paradise, i.e., clarify what you said with a proof. Then the Almighty said: {Nay (Bala)} as a rebuttal and a refutation of them, i.e., it is not as you say. And it was said: "Bala" is understood through the context, as if it was asked: Will no one enter Paradise? So it was said: {Nay, whoever submits his face to Allah}.

The meaning of "aslama": he surrendered and humbled himself, and it was said: he made his action sincere. The face was specifically mentioned because it is the most noble part seen of a person, and because it is the site of the senses, and in it pride and humiliation appear. The Arabs use "the face" to refer to the whole of a thing, and it is possible that "the face" in this verse means the "purpose/intention".

{And he is a doer of good} This sentence is in the position of a state (al-hāl). The pronouns in "wajhahu" (his face) and "lahu" (to Him) refer back to the word "man" (whoever), and likewise "ajruhu" (his reward). The pronouns in "alayhim" (upon them) refer back to the meaning, as well as in "yahzanun" (they grieve) (3), which has been mentioned before (4).

The Almighty's saying: {And the Jews say, "The Christians have nothing [true] to stand on," and the Christians say, "The Jews have nothing to stand on," although they [both] recite the Scripture. Thus the ignorant speak the same as their words. So Allah will judge between them on the Day of Resurrection concerning that over which they used to differ.}

Its meaning: each group claimed that its companion has nothing, and that they are more worthy of Allah's mercy than the other (5).

(1) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/256. (2) In (m) 'yaqdi', and in al-Muharrar al-Wajiz 1/198 (and the text is from it): 'yaqdi bi-ithbat' (determines with affirmation). (3) The previous source. (4) 1/489. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/198.

३१९ सूरह अल-बकरा: आयत ११३

अल्लाह तआला का कथन: {कह दो कि अपनी दलील लाओ} "हातू" का मूल "हातिवा" (hātiyuwā) है, भारीपन के कारण दम्मा (u स्वर) को हटा दिया गया, फिर दो साकिन (शांत) अक्षरों के मिलने के कारण 'या' को हटा दिया गया; एकवचन पुल्लिंग के लिए कहा जाता है: "हाति", जैसे "रामि", और स्त्रीलिंग के लिए: "हाती", जैसे "रामी" (१)।

और 'बुरहान' वह प्रमाण है जो निश्चितता उत्पन्न करता है, इसका बहुवचन 'बराहिन' है; जैसे 'क़ुरबान' और 'क़राबिन', और 'सुल्तान' और 'सलातीन'। तबरी ने कहा: यहाँ प्रमाण की माँग तर्क(नज़र) की पुष्टि की आवश्यकता (२) रखती है, और इसका खंडन करने वालों को जवाब देती है।

{यदि तुम सच्चे हो} अर्थात अपने ईमान में, या अपने इस कथन में कि: तुम जन्नत में प्रवेश करोगे, यानी जो तुमने कहा है उसे प्रमाण के साथ स्पष्ट करो। फिर अल्लाह तआला ने फरमाया: {क्यों नहीं (बला)} उनके उत्तर और उन्हें झुठलाने के रूप में, अर्थात वैसा नहीं है जैसा तुम कहते हो। और यह भी कहा गया है कि "बला" अर्थ पर आधारित है, मानो पूछा गया हो: क्या कोई जन्नत में प्रवेश नहीं करेगा? तो कहा गया: {क्यों नहीं, जिसने अपना चेहरा अल्लाह के प्रति समर्पित कर दिया}।

"अस्लमा" का अर्थ है: उसने आत्मसमर्पण कर दिया और झुक गया, और यह भी कहा गया है: उसने अपने कर्म को शुद्ध (ईखलास) कर लिया। चेहरे का विशेष रूप से उल्लेख इसलिए किया गया है क्योंकि यह मनुष्य का सबसे सम्माननीय दृश्य भाग है, और इसलिए कि यह इंद्रियों का स्थान है, और इसी में सम्मान और अपमान प्रकट होता है। अरब लोग चेहरे का उपयोग पूरी चीज़ को बताने के लिए करते हैं, और यह भी संभव है कि इस आयत में चेहरे का अर्थ "उद्देश्य" हो।

{और वह नेक (मुहसिन) हो} यह वाक्य हाल (अवस्था) के स्थान पर है, और "वजहहु" (उसका चेहरा) और "लहु" (उसके लिए) में सर्वनाम "मन" (जो कोई) की ओर लौटता है, और वैसे ही "अजरुहु" (उसका प्रतिफल)। जबकि "अलैहिम" (उन पर) और "यहज़नून" (वे दुखी होंगे) (३) में सर्वनाम अर्थ की ओर लौटता है, जो पहले बताया जा चुका है (४)।

अल्लाह तआला का कथन: {और यहूदी कहते हैं कि ईसाई किसी (सच्ची) चीज़ पर नहीं हैं, और ईसाई कहते हैं कि यहूदी किसी चीज़ पर नहीं हैं, जबकि वे किताब पढ़ते हैं। इसी तरह अज्ञानी लोग भी उनकी जैसी ही बात करते हैं। तो अल्लाह कयामत के दिन उनके बीच उन बातों का फैसला कर देगा जिनमें वे मतभेद करते थे}।

इसका अर्थ है: उनमें से प्रत्येक समूह ने दावा किया कि उसका साथी किसी (हक) चीज़ पर नहीं है, और वह दूसरे की तुलना में अल्लाह की दया का अधिक हकदार है (५)।

(१) इराब अल-कुरान, अल-नहस १/२५६। (२) (म) में 'यक़्दी' है, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१९८ में (और यह शब्द उसी से है): 'यक़्दी बि-इत्बात' (दृढ़ता के साथ निर्णय लेना)। (३) पूर्वोक्त स्रोत। (४) १/४८९। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/१९८।

۳۱۹ سورہ بقرہ: آیت ۱۱۳

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کہہ دو اپنی دلیل لاؤ} "ہاتوا" کی اصل "ہاتِیُوا" ہے، ثقالت کی وجہ سے ضمہ کو حذف کر دیا گیا، پھر دو ساکن حروف کے اکٹھا ہونے کی وجہ سے "یا" کو حذف کر دیا گیا؛ واحد مذکر کے لیے کہا جاتا ہے: "ہاتِ" جیسے "رامِ"، اور مؤنث کے لیے: "ہاتی" جیسے "رامی" (۱)۔

اور "برہان" وہ دلیل ہے جو یقین پیدا کرے، اس کی جمع "براہین" ہے؛ جیسے "قربان" اور "قرابین"، اور "سلطان" اور "سلاطین"۔ طبری نے کہا: یہاں دلیل کا مطالبہ استدلال (نظر) کے ثبوت کا متقاضی ہے (۲) اور اس کا انکار کرنے والوں کی تردید کرتا ہے۔

{اگر تم سچے ہو} یعنی اپنے ایمان میں، یا اپنے اس قول میں کہ: تم جنت میں داخل ہو گے، یعنی جو کچھ تم نے کہا ہے اسے دلیل سے واضح کرو۔ پھر اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {کیوں نہیں (بلی)} ان کی تردید اور تکذیب کے طور پر، یعنی ویسا نہیں ہے جیسا تم کہتے ہو۔ اور کہا گیا ہے کہ "بلی" معنی پر محمول ہے، گویا پوچھا گیا: کیا کوئی جنت میں داخل نہیں ہوگا؟ تو کہا گیا: {کیوں نہیں، جس نے اپنا چہرہ اللہ کے لیے جھکا دیا}۔

اور "اسلم" کے معنی ہیں: سرتسلیم خم کر دیا اور عاجزی اختیار کی، اور کہا گیا ہے کہ: اپنے عمل کو خالص کر لیا۔ چہرے کا خاص طور پر ذکر اس لیے کیا گیا کیونکہ یہ انسان کا سب سے معزز ظاہری حصہ ہے، اور اس لیے کہ یہ حواس کا مرکز ہے، اور اسی میں عزت اور ذلت ظاہر ہوتی ہے۔ عرب چہرے سے پوری چیز مراد لیتے ہیں، اور یہ بھی درست ہے کہ اس آیت میں چہرے سے مراد "مقصد" ہو۔

{اور وہ نیکوکار ہو} یہ جملہ حال کے مقام پر ہے، اور "وجہہ" (اس کا چہرہ) اور "لہ" (اس کے لیے) میں ضمیر "مَنْ" (جو کوئی) کی طرف لوٹتی ہے، اسی طرح "اجرہ" (اس کا اجر)۔ جبکہ "علیہم" (ان پر) اور "یحزنون" (وہ غمگین ہوں گے) میں ضمیر معنی کی طرف لوٹتی ہے (۳) اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۴)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور یہودی کہتے ہیں کہ عیسائی کسی (سچی) چیز پر نہیں ہیں، اور عیسائی کہتے ہیں کہ یہودی کسی چیز پر نہیں ہیں، حالانکہ وہ کتاب پڑھتے ہیں۔ اسی طرح نادان لوگ بھی ان جیسی ہی بات کرتے ہیں۔ پس اللہ قیامت کے دن ان کے درمیان ان باتوں کا فیصلہ کر دے گا جن میں وہ اختلاف کرتے تھے}۔

اس کا مطلب یہ ہے کہ: ان میں سے ہر گروہ نے دعویٰ کیا کہ اس کا ساتھی کسی (حق) چیز پر نہیں ہے، اور یہ کہ وہ اس سے زیادہ اللہ کی رحمت کا حقدار ہے (۵)۔

(۱) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۵۶۔ (۲) (م) میں "یقضی" ہے، اور المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۸ میں (اور یہ کلام وہیں سے ہے): "یقضی باثبات"۔ (۳) سابقہ حوالہ۔ (۴) ۱/ ۴۸۹۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۱۹۸۔

320 Surah Al-Baqarah: Verse 114

"And they recite the Scripture" meaning the Torah and the Gospel, and the sentence is in the state (hal). The meaning of "those who do not know" according to the majority is the disbelievers of the Arabs because they had no book. Ata said: It refers to nations that existed before the Jews and Christians(1). Al-Rabi' bin Anas: The meaning is: Likewise, the Jews said before the Christians. Ibn Abbas: People from Najran came to the Prophet ﷺ, and Jewish rabbis came to them, and they disputed before the Prophet ﷺ. Each group said to the other: "You are upon nothing," so the verse was revealed(2). The Almighty's saying: "And who are more unjust than those who prevent the mosques of Allah from having His name mentioned therein and strive for their destruction? Those - it was not for them to enter them except in fear. For them in this world is disgrace, and they will have in the Hereafter a great punishment." It contains seven issues: First: The Almighty's saying: "And who are more unjust than those who prevent the mosques of Allah from having His name mentioned therein?" "Who" (man) is in the nominative case as a subject (mubtada), and "more unjust" (azlam) is its predicate (khabar). The meaning is: No one is more unjust. And "that" (an) is in the accusative case as a substitute (badal) for "mosques". It is also possible that the underlying meaning is: "disliking that [His name] be mentioned," with "disliking" being omitted. It is also possible the meaning is: "from having His name mentioned in them," and the preposition is omitted with "an" due to the length of speech(3). By "mosques" here, he meant Jerusalem and its prayer niches. It was said: The Kaaba, and it was pluralized because it is the Qibla of mosques, or for glorification. And it was said: The meaning is all other mosques(4). The singular is "masjid", with a kasra on the "jeem", and some Arabs say: "masjad", with a fatha(5). Al-Farra said: Everything that follows the pattern "fa'ala yaf'ulu", like "dakhala yadkhulu" (to enter), its noun of place (maf'al) is with a fatha;

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/199. (2) Al-Tabari mentioned the three opinions in Tafsir 2/434-435 and 438, and Ibn Abi Hatim in Tafsir 1/338, 340, and 341. (3) See I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/257, and Majma' al-Bayan 1/427. (4) The attribution of these opinions will follow in the next issue. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/199.

320 सूरा अल-बकरा: आयत 114

"और वे किताब पढ़ते हैं" यानी तौरात और इंजील, और यह वाक्य 'हाल' (स्थिति) की स्थिति में है। बहुमत की राय में "जो नहीं जानते" का अर्थ अरब के काफिर हैं; क्योंकि उनके पास कोई किताब नहीं थी। अता ने कहा: इसका अर्थ यहूदी और ईसाइयों से पहले के राष्ट्र हैं(1)। अल-रबी बिन अनस: इसका अर्थ है: इसी तरह, यहूदियों ने ईसाइयों से पहले कहा था। इब्न अब्बास: नज़रान के लोग पैगंबर ﷺ के पास आए, और यहूदी रब्बी उनके पास आए, और उन्होंने पैगंबर ﷺ के सामने विवाद किया। हर समूह ने दूसरे से कहा: "तुम कुछ भी नहीं हो," तब यह आयत नाजिल हुई(2)। अल्लाह का फरमान: "और उस व्यक्ति से बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके और उन्हें वीरान करने की कोशिश करे? ऐसे लोगों को उनमें केवल डरते हुए ही दाखिल होना चाहिए था। उनके लिए दुनिया में रुसवाई है और आख़िरत में उनके लिए बड़ा अज़ाब है।" इसमें सात मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह का फरमान: "और उस व्यक्ति से बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके?" "कौन" (मन) मुब्तदा (विषय) के रूप में रफ़अ (प्रथमा विभक्ति) में है, और "ज़ालिम" (अज़लम) उसकी खबर (विधेय) है। इसका अर्थ है: कोई भी अधिक ज़ालिम नहीं है। और "कि" (अन) "मस्जिदों" के बदल (स्थानापन्न) के रूप में नसब (द्वितीया विभक्ति) की स्थिति में है। यह भी संभव है कि अनुमानित अर्थ हो: "इस नापसंदगी के कारण कि [अल्लाह का] नाम लिया जाए," फिर 'नापसंदगी' को हटा दिया गया। यह भी संभव है कि अर्थ हो: "उसमें नाम लिए जाने से," और कलाम (भाषण) की लंबाई के कारण "अन" के साथ हर्फ़ए-जर (पूर्वसर्ग) हटा दिया जाता है(3)। यहाँ 'मस्जिदों' से मुराद बैतुल मुक़द्दस और उसके मेहराब हैं। कहा गया: काबा, और इसे बहुवचन में इसलिए लाया गया क्योंकि यह मस्जिदों का क़िबला है, या महानता दर्शाने के लिए। और कहा गया: मुराद बाकी तमाम मस्जिदें हैं(4)। इसका एकवचन 'मस्जिद' है, 'जीम' के नीचे जेर (कसरह) के साथ, और कुछ अरब इसे 'मस्जद' कहते हैं, ज़बर (फतह) के साथ(5)। अल-फर्रा ने कहा: जो कुछ भी 'फ़-अ-ल यफ़-उ-लु' के वज़न पर है; जैसे: 'द-ख-ल यद-खु-लु', उसका 'मफ़-अ-ल' ज़बर (फतह) के साथ होता है;

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/199। (2) तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/434-435 और 438 में, और इब्न अबी हातिम ने तफ़सीर 1/338, 340 और 341 में तीनों राय दी हैं। (3) नहहास द्वारा इ'राब अल-कुरान 1/257, और मजमा अल-बयान 1/427 देखें। (4) इन कथनों का स्रोत अगले मसले में आएगा। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/199।

320 سورة البقرہ: آیت 114

﴿وَهُمْ يَتْلُونَ الْكِتَبَ﴾ یعنی تورات اور انجیل، اور یہ جملہ 'حال' کے مقام پر ہے۔ جمہور کے نزدیک «الذين لا يَعْلَمُونَ» سے مراد عرب کے کفار ہیں؛ کیونکہ ان کے پاس کوئی کتاب نہیں تھی، اور عطاء نے کہا: اس سے مراد وہ امتیں ہیں جو یہودیوں اور عیسائیوں سے پہلے گزری تھیں(1)۔ الربیع بن انس: معنی یہ ہے کہ: اسی طرح یہودیوں نے عیسائیوں سے پہلے کہا تھا۔ ابن عباس: اہل نجران نبی ﷺ کے پاس آئے، تو ان کے پاس یہودیوں کے علماء آئے، اور انہوں نے نبی ﷺ کے پاس جھگڑا کیا، اور ہر گروہ نے دوسرے سے کہا: "تمہاری کوئی بنیاد نہیں ہے"، تو یہ آیت نازل ہوئی(2)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن مَّنَعَ مَسَجِدَ اللَّهِ أَن يُذْكَرَ فِيهَا اسْمُهُ وَسَعَىٰ فِي خَرَابِهَا أُولَٰئِكَ مَا كَانَ لَهُمْ أَن يَدْخُلُوهَا إِلَّا خَائِفِينَ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَلَهُمْ فِي الْآخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيمٌ﴾ اس میں سات مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن مَّنَعَ مَسَجِدَ اللَّهِ أَن يُذْكَرَ فِيهَا اسْمُهُ﴾ «مَنْ» مبتدا ہونے کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے، اور «أظلم» اس کی خبر ہے، اور معنی یہ ہے کہ: کوئی بھی اس سے زیادہ ظالم نہیں۔ اور «أن» «مساجد» سے بدل ہونے کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ تقدیر یوں ہو: "اس ناپسندیدگی کی وجہ سے کہ ذکر کیا جائے"، پھر [ناپسندیدگی کا لفظ] حذف کر دیا گیا۔ اور یہ بھی جائز ہے کہ تقدیر ہو: "اس میں ذکر کیے جانے سے"، اور کلام کی طوالت کی وجہ سے «أن» کے ساتھ حرفِ جر حذف کر دیا جاتا ہے(3)۔ اور یہاں مساجد سے مراد بیت المقدس اور اس کے محراب ہیں۔ اور کہا گیا: کعبہ، اور اسے جمع لایا گیا کیونکہ یہ مساجد کا قبلہ ہے، یا تعظیم کے لیے۔ اور کہا گیا: مراد تمام دیگر مساجد ہیں(4)۔ اور واحد 'مَسْجِد' ہے، جیم کے کسرہ کے ساتھ، اور عربوں میں سے کچھ اسے 'مَسْجَد' کہتے ہیں، جیم

کے فتحہ کے ساتھ(5)۔ فراء نے کہا: ہر وہ فعل جو 'فَعَلَ يَفْعُلُ' کے وزن پر ہو؛ جیسے: 'دَخَلَ يَدْخُلُ'، تو اس کا 'مَفْعَل' فتحہ کے ساتھ آتا ہے؛

(1) المحرر الوجیز 1/199۔ (2) طبری نے اپنی تفسیر 2/434-435 اور 438 میں، اور ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/338، 340 اور 341 میں یہ تینوں اقوال نقل کیے ہیں۔ (3) دیکھیے نحاس کی إعراب القرآن 1/257، اور مجمع البیان 1/427۔ (4) ان اقوال کی تخریج اگلے مسئلے میں آئے گی۔ (5) المحرر الوجیز 1/199۔

Surah al-Baqarah: Ayah 114 (321)

[Whether] it is a noun or an infinitive (masdar), there is no difference in it, such as: "dakhal yadkhul madkhalan" (he entered, he enters, entering), and "this is his entry" (madkhaluhu). Except for a few nouns where they consistently used the 'kasra' on the 'ayn' [the second root letter]. These include: *al-masjid* (mosque), *al-matli'* (sunrise/ place of rising), *al-maghrib* (sunset/west), *al-mashriq* (sunrise/east), *al-masqit* (place of falling), *al-mafriq* (crossroads), *al-majzir* (slaughterhouse), *al-maskin* (dwelling), *al-marfiq* (elbow/benefit) - from *rafaqa yarfuqu* - *al-manbit* (place of growth), and *al-mansik* (place of ritual), from *nasaka yansuku*. So they made the 'kasra' a sign for the noun, though some Arabs might use the 'fatha' [a vowel] for the noun.

Al-masjad with a 'fatha' means: the forehead of a man where the marks of prostration appear. The seven limbs (of prostration) are also called *masajid*; this was stated by al-Jawhari (1).

Second: People differed regarding the intent of this verse and whom it was revealed about. Commentators mentioned that it was revealed about Nebuchadnezzar, because he was the one who destroyed the Temple (Bayt al-Maqdis). Ibn Abbas and others said: It was revealed about the Christians (2).

The meaning is: How can you claim, O Christians, that you are of the people of Paradise, when you have destroyed the Temple and prevented worshippers from praying in it?!

The meaning of the verse based on this is: Wonderment at the Christians' action towards the Temple despite their veneration for it. They only did what they did out of enmity towards the Jews. Sa'id narrated from Qatadah: Those are the enemies of Allah, the Christians; their hatred for the Jews led them to aid Nebuchadnezzar the Babylonian, the Magian, in destroying the Temple (3).

It is narrated that this destruction remained until the time of Umar, may Allah be pleased with him (4).

It was also said: It was revealed regarding the polytheists when they prevented the worshippers and the Prophet (PBUH) and turned them away from the Sacred Mosque (Al-Masjid al-Haram) in the year of Hudaybiyyah (5).

It was also said: The intent is whoever prevents from *any* mosque until the Day of Resurrection, and this is the correct view, because the wording...

(1) *Al-Sihah* (S-J-D), and *al-arab* is the plural of *irb*, which is a limb; what is meant here are the seven limbs upon which one prostrates. (2) Reported by al-Tabari in his *Tafsir* 2/442, and Ibn Abi Hatim in his *Tafsir* 1/341. (3) Reported by al-Tabari in his *Tafsir* 2/443. (4) Mentioned by al-Baghawi in his *Tafsir* 1/107, and al-Razi in his *Tafsir* 4/10. (5) Reported by al-Tabari in his *Tafsir* 2/444 from the saying of Abd al-Rahman bin Zayd.

सूरह अल-बकराह: आयत 114 (321)

चाहे वह संज्ञा (noun) हो या क्रियार्थक संज्ञा (masdar), इसमें कोई अंतर नहीं होता, जैसे: "दाखला यदखुल मदखलन" (वह दाखिल हुआ, वह दाखिल होता है, प्रवेश करना), और "यह उसका प्रवेश स्थान (मदखल) है"। सिवाय कुछ संज्ञाओं के जहाँ उन्होंने 'ऐन' (दूसरे मूल अक्षर) पर 'कसरा' (i की मात्रा) को अनिवार्य कर दिया। इनमें शामिल हैं: अल-मस्जिद, अल-मतलि (सूर्योदय), अल-मग़रिब (सूर्यास्त/पश्चिम), अल-मशरिक (पूर्व), अल-मस्क़ित (पतन का स्थान), अल-मफ़रिक (चौराहा), अल-मजज़िर (बूचड़खाना), अल-मस्किन (निवास), अल-मरफ़िक (कोहनी/लाभ) - 'रफ़क़ा यरफ़ुकु से - अल-मनबित (उगने का स्थान), और अल-मंसिक (इबादत का स्थान), 'नसका यंसुकु से। तो उन्होंने 'कसरा' को संज्ञा के लिए एक पहचान बना दिया, हालाँकि कुछ अरब संज्ञा के लिए 'फ़तहा' (a की मात्रा) का भी प्रयोग करते हैं।

अल-मसजद (फ़तहा के साथ) का अर्थ है: पुरुष का माथा जहाँ सजदे (सजदे के निशान) पड़ते हैं। सात अंगों को भी 'मसाजिद' कहा जाता है; यह अल-जौहरी (1) ने कहा है।

दूसरा: इस आयत के अर्थ और यह किसके बारे में अवतरित हुई, इस पर लोगों में मतभेद है। टीकाकारों ने उल्लेख किया है कि यह बुख़्तनसर (नेबुकदनेज़र) के बारे में अवतरित हुई थी; क्योंकि उसने बैत अल-मक़दिस (यरूशलेम का मंदिर) को नष्ट कर दिया था। इब्न अब्बास और अन्य लोगों ने कहा: यह ईसाइयों (2) के बारे में अवतरित हुई थी।

इसका अर्थ है: ऐ ईसाइयों, तुम यह दावा कैसे कर सकते हो कि तुम जन्नत वालों में से हो, जबकि तुमने बैत अल-मक़दिस को नष्ट कर दिया और नमाज़ियों को उसमें इबादत करने से रोक दिया?!

इस आधार पर आयत का अर्थ है: ईसाइयों के बैत अल-मक़दिस के प्रति व्यवहार पर आश्चर्य, बावजूद इसके कि वे उसका सम्मान करते थे। उन्होंने जो किया वह केवल यहूदियों के प्रति शत्रुता के कारण किया। सईद ने क़तादह से रिवायत की है: वे अल्लाह के दुश्मन ईसाई हैं; यहूदियों के प्रति उनकी नफरत ने उन्हें बैत अल-मक़दिस को नष्ट करने में बुख़्तनसर बाबिली (बाबिल का), जो कि एक पारसी (मजूसी) था, की मदद करने के लिए प्रेरित किया (3)।

रिवायत है कि यह विनाश हज़रत उमर रज़ियल्लाहु अन्हु (4) के समय तक बना रहा।

और यह भी कहा गया है: यह मुशरिकों (बहुदेववादियों) के बारे में अवतरित हुई जब उन्होंने नमाज़ियों और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को रोका, और उन्हें हुदैबिया के वर्ष मस्जिद अल-हरम से रोक दिया (5)।

और यह भी कहा गया है: इसका तात्पर्य कयामत तक किसी भी मस्जिद से रोकने वाले से है, और यही सही है; क्योंकि इसके शब्द...

(1) अल-सिहाह (सजदा), और 'आराब' 'इर्ब' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है अंग; यहाँ तात्पर्य उन सात अंगों से है जिन पर सजदा किया जाता है। (2) इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/442 में और इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/341 में उद्धृत किया है। (3) इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/443 में उद्धृत किया है। (4) अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर 1/107 में और अल-राज़ी ने अपनी तफ़सीर 4/10 में इसका उल्लेख किया है। (5) इसे अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर 2/444 में अब्दुर्रहमान बिन ज़ैद के कथन से उद्धृत किया है।

سورة البقرة: آیت 114 (321)

اسم ہو یا مصدر، اس میں کوئی فرق واقع نہیں ہوتا، جیسے: دخل یَدْخُل مَدْخَلاً، اور "یہ اس کا مدخل (داخل ہونے کی جگہ) ہے"، سوائے چند اسماء کے جن میں انہوں نے 'عین' کے نیچے کسرہ (زیر) کو لازم کر دیا، ان میں سے یہ ہیں: اَلْمَسْجِد، وَالْمَطْلِع، وَالْمَغْرِب، وَالْمَشْرِق، وَالْمَسْقِط، وَالْمَفْرِق، وَالْمَجْزِر، وَالْمَسْكِن، وَالْمَرْفِق - رَفَقَ يَرْفُق سے - وَالْمَنْبِت، اور اَلْمَنْسِك، نَسَكَ يَنْسُك سے۔ پس انہوں نے کسرہ کو اسم کی علامت بنا دیا، اور کبھی بعض عرب اسم میں فتحہ (زبر) بھی پڑھتے ہیں۔

اور اَلْمَسْجَد (فتحہ کے ساتھ) کے معنی ہیں: آدمی کی پیشانی جہاں سجدے کے نشان پڑتے ہیں۔ اور سات اعضاء بھی 'مساجد' کہلاتے ہیں؛ یہ جوہری (1) نے کہا ہے۔

دوسرا (نکتہ): اس آیت کی مراد اور یہ کس کے بارے میں نازل ہوئی، اس میں لوگوں کا اختلاف ہے؛ مفسرین نے ذکر کیا ہے کہ یہ بخت نصر کے بارے میں نازل ہوئی؛ کیونکہ اس نے بیت المقدس کو ویران کیا تھا۔ ابن عباس اور دیگر نے کہا: یہ نصاریٰ (عیسائیوں) کے بارے میں نازل ہوئی (2)۔

اور معنی یہ ہے: اے نصاریٰ! تم یہ دعویٰ کیسے کرتے ہو کہ تم اہل جنت میں سے ہو، حالانکہ تم نے بیت المقدس کو ویران کیا، اور نمازیوں کو اس میں نماز پڑھنے سے روکا؟!

اور اس پر آیت کا معنی یہ ہے: نصاریٰ کے بیت المقدس کے ساتھ اس عمل پر تعجب، باوجود اس کے کہ وہ اس کی تعظیم کرتے تھے، اور انہوں نے جو کچھ کیا وہ صرف یہودیوں کی دشمنی میں کیا؛ سعید نے قتادہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: وہ اللہ کے دشمن نصاریٰ ہیں، یہودیوں

کے بغض نے انہیں اس بات پر ابھارا کہ انہوں نے بخت نصر بابلی مجوسی کی بیت المقدس کو ویران کرنے میں مدد کی (3)۔

اور روایت ہے کہ یہ ویرانی حضرت عمر رضی اللہ عنہ (4) کے زمانے تک باقی رہی۔

اور کہا گیا ہے: یہ مشرکین کے بارے میں نازل ہوئی جب انہوں نے نمازیوں اور نبی ﷺ کو روکا، اور انہیں صلح حدیبیہ کے سال مسجد حرام سے باز رکھا (5)۔

اور کہا گیا ہے: اس سے مراد وہ شخص ہے جو قیامت تک کسی بھی مسجد سے روکے، اور یہی صحیح ہے؛ کیونکہ لفظ...

(1) الصحاح (سجد)، اور الآراب: إرْب کی جمع ہے، اور وہ عضو ہے، اور یہاں مراد وہ سات اعضاء ہیں جن پر سجدہ کیا جاتا ہے۔ (2) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/442 میں، اور ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر 1/341 میں روایت کیا ہے۔ (3) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/443 میں روایت کیا ہے۔ (4) اسے بغوی نے اپنی تفسیر 1/107 میں، اور رازی نے اپنی تفسیر 4/10 میں ذکر کیا ہے۔ (5) اسے طبری نے اپنی تفسیر 2/444 میں عبدالرحمن بن زید کے قول سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 114 322 General; it was mentioned in the plural form, so limiting it to some mosques and some individuals is weak (1), and Allah Almighty knows best. Third: The destruction of mosques may be literal, such as Nebuchadnezzar's and the Christians' destruction of the Bayt al-Maqdis (Holy House/ Jerusalem) as mentioned when they invaded the Children of Israel with some of their kings - it is said his name was Titus son of Vespasian the Roman, as mentioned by Al-Ghaznawi - so they killed, took captives, burned the Torah, threw filth in Bayt al-Maqdis and destroyed it (2). And it may be metaphorical, such as the polytheists preventing Muslims when they barred the Messenger of Allah ﷺ from the Sacred Mosque (Al-Masjid al-Haram). In summary, preventing mosques from prayer and demonstrating the rites of Islam in them is a form of their destruction. Fourth: Our scholars said: For this reason, we said: It is not permissible to prevent a woman from Hajj if she has not performed it before (Sarura) (3), whether she has a Mahram (male guardian) or not. Nor is she prevented from praying in mosques, as long as Fitna (temptation/harm) is not feared for her. Likewise, the Prophet ﷺ said: "Do not prevent the female servants of Allah from the mosques of Allah" (4). Therefore, we said: It is not permissible to demolish the mosque, sell it, or neglect it, even if the neighborhood becomes ruined. And the building of mosques is not prevented unless they intend discord and disagreement, by building a mosque next to or near another mosque, intending by that to split the congregation of the first mosque and cause its ruin and the division of words. In such a case, the second mosque is demolished and its construction is prevented. For this reason, we said: It is not permissible for there to be two Jami' (Friday mosques) in one city, nor for one mosque to have two Imams, nor for two congregations to pray in one mosque. More clarification for all of this will come in Surah Bara'ah (At-Tawbah) (5) if Allah Almighty wills, and in Surah "An-Nur" (6) regarding the ruling on mosques and their construction by the power of Allah Almighty.

(1) See Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/33. (2) See Tafsir al-Baghawi 1/107. (3) Meaning: She who has not performed Hajj; Al-Sihah (Sarr). (4) Narrated by Ahmad (4655), Al-Bukhari (900), and Muslim (442) (36) from the hadith of Ibn Umar, may Allah be pleased with them both. (5) In the interpretation of verse (107). (6) In the interpretation of verse (36).

सूरह अल-बकरा: आयत 114 322 सामान्य; यह बहुवचन रूप में आया है, इसलिए इसे कुछ मस्जिदों और कुछ व्यक्तियों तक सीमित करना कमज़ोर तर्क है (1), और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है। तीसरा: मस्जिदों का विनाश वास्तविक हो सकता है, जैसे बुख्तनसर (नेबूकदनेज़र) और ईसाइयों द्वारा बैत अल-मक़दिस का विनाश, जैसा कि उल्लेख किया गया है कि उन्होंने अपने कुछ राजाओं के साथ बनी इसराइल पर हमला किया था - कहा जाता है कि उसका नाम टाइटस बिन वेस्पेशियन रोमन था, जैसा कि अल-ग़ज़नवी ने उल्लेख किया है - उन्होंने हत्या की, बंदी बनाया, तौरात को जला दिया, बैत अल-मक़दिस में गंदगी फेंकी और उसे तबाह कर दिया (2)। और यह आलंकारिक भी हो सकता है, जैसे मुशरिकों (बहुदेववादियों) द्वारा मुसलमानों को रोकना जब उन्होंने अल्लाह के रसूल ﷺ को मस्जिद अल-हराम से रोका था। संक्षेप में, मस्जिदों को नमाज़ और इस्लाम के अनुष्ठानों के प्रदर्शन से रोकना उनका विनाश ही है। चौथा: हमारे विद्वानों ने कहा: इसी कारण हमने कहा: किसी महिला को हज से रोकना जायज़ नहीं है यदि उसने पहले हज नहीं किया है (सरूरा) (3), चाहे उसका कोई महरम हो या न हो। उसे मस्जिदों में नमाज़ पढ़ने से भी नहीं रोका जाएगा, जब तक कि उसके लिए फितना (अधर्म या हानि) का डर न हो। इसी तरह नबी ﷺ ने फरमाया: "अल्लाह की बंदियों को अल्लाह की मस्जिदों से न रोको" (4)। इसीलिए हमने कहा: मस्जिद को ढहाना, उसे बेचना या उसे बेकार छोड़ना जायज़ नहीं है, चाहे वह मोहल्ला वीरान ही क्यों न हो जाए। और मस्जिदों के निर्माण को तब तक नहीं रोका जाता जब तक कि उनका उद्देश्य फूट और मतभेद पैदा करना न हो, जैसे कि एक मस्जिद के पास या उसके बगल में दूसरी मस्जिद बनाना, जिससे पहली मस्जिद के लोगों में फूट डालना और उसे बर्बाद करना और एकता को तोड़ना उद्देश्य हो। ऐसी स्थिति में, दूसरी मस्जिद को ढहा दिया जाता है और उसके निर्माण को रोका जाता है। इसी कारण हमने कहा: एक शहर में दो जामे मस्जिदें नहीं होनी चाहिए, न ही एक मस्जिद में दो इमाम होने चाहिए, और न ही एक मस्जिद में दो जमातें नमाज़ पढ़ें। इन सबका और अधिक विस्तार सूरह बराअत (अत-तौबा) (5) में आएगा, इंशा अल्लाह, और सूरह "अन-नूर" (6) में मस्जिदों के हुक्म और उनके निर्माण के बारे में अल्लाह तआला की शक्ति से बताया जाएगा।

(1) देखें अहकाम अल-क़ुरान इब्न अल-अरबी द्वारा 1/33। (2) देखें तफ़सीर अल-बग़वी 1/107। (3) अर्थात: जिसने हज न किया हो; अल-सिहाह (सर्र)। (4) इसे अहमद (4655), बुखारी (900), और मुस्लिम (442) (36) ने इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से रिवायत किया है। (5) आयत (107) की तफ़सीर में। (6) आयत (36) की तफ़सीर में।

سورۃ البقرہ: آیت 114 322 عام؛ یہ جمع کے صیغے میں آیا ہے، اس لیے اسے بعض مساجد اور بعض اشخاص کے ساتھ خاص کرنا ضعیف (قول) ہے (1)، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ تیسرا: مساجد کی ویرانی حقیقی ہو سکتی ہے، جیسے بخت نصر اور نصاریٰ کا بیت المقدس کو تباہ کرنا جیسا کہ ذکر کیا گیا ہے کہ انہوں نے اپنے بعض بادشاہوں کے ساتھ بنی اسرائیل پر حملہ کیا تھا - کہا جاتا ہے کہ اس کا نام طیطوس بن اسبیسانوس رومی تھا جیسا کہ غزنوی نے ذکر کیا ہے - انہوں نے قتل کیا، قیدی بنایا، تورات کو جلایا، اور بیت المقدس میں گندگی پھینکی اور اسے ویران کر دیا (2)۔ اور یہ مجازی بھی ہو سکتا ہے، جیسے مشرکین کا مسلمانوں کو روکنا جب انہوں نے رسول اللہ ﷺ کو مسجد حرام سے روکا تھا۔ خلاصہ یہ کہ مساجد کو نماز اور شعائر اسلام کے اظہار سے روکنا ان کی ویرانی ہے۔ چوتھا: ہمارے علماء نے کہا: اسی لیے ہم نے کہا: عورت کو حج سے روکنا جائز نہیں ہے اگر وہ صرورہ (3) ہو (جس نے پہلے حج نہ کیا ہو)، خواہ اس کا کوئی محرم ہو یا نہ ہو، اور نہ ہی اسے مساجد میں نماز سے روکا جائے گا جب تک کہ اس پر فتنے کا خوف نہ ہو، اسی طرح نبی ﷺ نے فرمایا: "اللہ کی بندیوں کو اللہ کی مساجد سے نہ روکو" (4)۔ اسی لیے ہم نے کہا: مسجد کو ڈھانا، اسے بیچنا، یا اسے معطل کرنا جائز نہیں ہے، اگرچہ وہ محلہ ویران ہی کیوں نہ ہو جائے، اور مساجد کی تعمیر کو نہیں روکا جاتا مگر یہ کہ ان کا مقصد تفرقہ اور اختلاف ہو، یعنی ایک مسجد کے پہلو میں یا اس کے قریب دوسری مسجد بنانا؛ اس سے ان کا مقصد پہلی مسجد والوں میں تفریق پیدا کرنا، اسے ویران کرنا اور کلمہ میں اختلاف ڈالنا ہو، تو دوسری مسجد کو ڈھایا جائے گا اور اس کی تعمیر سے روکا جائے گا، اسی لیے ہم نے کہا: ایک شہر میں دو جامع مساجد نہیں ہونی چاہئیں، نہ ایک مسجد کے دو امام ہونے چاہئیں، اور نہ ایک مسجد میں دو

جماعتیں نماز پڑھیں۔ اس سب کی مزید تفصیل ان شاء اللہ تعالیٰ سورہ براءت (5) میں آئے گی، اور سورہ "النور" (6) میں اللہ تعالیٰ کے فضل سے مساجد کے احکام اور ان کی تعمیر کا ذکر ہوگا۔

(1) دیکھئے احکام القرآن لابن العربی 33/1۔ (2) دیکھئے تفسیر البغوی 107/1۔ (3) یعنی: جس نے حج نہ کیا ہو؛ الصحاح (صرر)۔ (4) اسے احمد (4655)، بخاری (900)، اور مسلم (442) (36) نے ابن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (5) آیت (107) کی تفسیر میں۔ (6) آیت (36) کی تفسیر میں۔

Page 323 Surah Al-Baqarah: Verse 114

The verse also indicates the glorification of the matter of prayer, and since it is the best of deeds and the greatest in reward, its prevention is the greatest in sin (1).

Fifthly: Every place where Allah can be worshipped and prostrated to is called a masjid (mosque); the Prophet ﷺ said: "The earth has been made for me a place of prayer (masjid) and a means of purification," narrated by the Imams (2).

The Ummah (Muslim community) has agreed that if a spot is designated for prayer by word, it exits the category of private property owned by its possessor and becomes public for all Muslims. Thus, if a man builds a masjid in his house, but restricts it from people and keeps it exclusively for himself, it remains his property and does not reach the status of a masjid. However, if he permits it for all people, its ruling would be the same as all other public masjids, and it exits the exclusivity of private ownership (3).

Sixthly: His (Allah's) saying: {Those, it was not for them that they should enter it except in fear} [Quran 2:114]. "Those" (Ula'ika) is the subject (mubtada'), and what follows is its predicate (khabar). "Fearful" (kha'ifeen) is a circumstantial state (hal).

Meaning: If the Muslims take control of them (the masjids) and they come under their authority, then the disbeliever is unable to enter them at that time. If they do enter, it is in fear of the Muslims expelling them and disciplining them for their entry.

In this is evidence that a disbeliever has no right to enter a masjid under any circumstances (4), as will come in Surah "Bara'ah" (At-Tawbah), if Allah wills.

And whoever applies the verse to the Christians related that a time passed after Umar's building of Bayt al-Maqdis (Jerusalem) in Islam when no Christian would enter it without being painfully beaten, after it had been their place of worship (5). And whoever applies it to...

(1) See Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi, 1/33. (2) Its documentation preceded in 2/283, and see al-Muharrar al-Wajiz, 1/199. (3) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi, 1/33. (4) Ahkam al-Quran, 1/33. (5) Narrated by al-Tabari, 2/446-447, similarly from the statements of Qatadah and al-Suddi.

पृष्ठ ३२३ सूरह अल-बकरा: आयत ११४

यह आयत नमाज़ (प्रार्थना) के मामले की महिमा को भी दर्शाती है, और चूंकि यह सबसे अच्छे कार्यों में से है और इसका प्रतिफल (पुण्य) सबसे बड़ा है, इसलिए इसे रोकना सबसे बड़ा पाप है (१)।

पाँचवाँ: हर वह स्थान जहाँ अल्लाह की इबादत की जा सकती है और उसे सजदा किया जा सकता है, उसे 'मस्जिद' कहा जाता है; नबी ﷺ ने फरमाया: "मेरे लिए पूरी ज़मीन को नमाज़ की जगह (मस्जिद) और पवित्रता का साधन बनाया गया है," इमामों द्वारा वर्णित (२)।

उम्मत का इस बात पर आम सहमति है कि यदि किसी स्थान को बोलकर नमाज़ के लिए निर्धारित कर दिया जाए, तो वह उसके मालिक की निजी संपत्ति के दायरे से बाहर निकल जाता है और सभी मुसलमानों के लिए सार्वजनिक हो जाता है। अत; यदि कोई व्यक्ति अपने घर में एक मस्जिद बनाता है, लेकिन उसे लोगों के लिए रोक देता है और उसे केवल अपने लिए सीमित रखता है, तो वह उसकी संपत्ति बनी रहेगी और मस्जिद के दर्जे तक नहीं पहुँचेगी। लेकिन, यदि वह इसे सभी लोगों के लिए अनुमति दे देता है, तो उसका नियम अन्य सभी सार्वजनिक मस्जिदों की तरह होगा, और वह निजी स्वामित्व की विशिष्टता से बाहर निकल जाएगा (३)।

छठा: अल्लाह का कथन: {वे लोग, उनके लिए यह उचित न था कि वे उनमें प्रवेश करें, सिवाय डरते हुए} [कुरान २:११४]। "वे लोग" (उलाइका) कर्ता (मुब्तदा) है, और उसके बाद वाला हिस्सा इसका कर्म (ख़बर) है। "डरते हुए" (ख़ाइफ़ीन) स्थिति (हाल) है।

अर्थात्: यदि मुसलमान उन (मस्जिदों) पर नियंत्रण कर लेते हैं और वे उनके अधिकार क्षेत्र में आ जाती हैं, तो उस समय काफ़िर उनमें प्रवेश नहीं कर पाएंगे। यदि वे प्रवेश करते भी हैं, तो इस डर से कि मुसलमान उन्हें बाहर निकाल देंगे और उनके प्रवेश के लिए उन्हें दंडित करेंगे।

इसमें यह प्रमाण है कि किसी भी स्थिति में काफ़िर का मस्जिद में प्रवेश करना उचित नहीं है (४), जैसा कि सूरह "बरायत" (अत-तौबा) में आएगा, इंशा अल्लाह।

और जिसने इस आयत को ईसाइयों के बारे में माना है, उसने रिवायत की है कि इस्लाम में उमर द्वारा बैत अल-मक़दिस (यरूशलेम) के निर्माण के बाद एक समय ऐसा बीता जब कोई ईसाई उसमें प्रवेश नहीं करता था, सिवाय इसके कि उसे ज़ोरदार मार दी जाती थी, इसके बाद कि वह उनका इबादतगाह रहा था (५)। और जिसने इसे... [अगले पृष्ठ पर जारी]

(१) देखें अहकाम अल-कुरान, इब्न अल-अरबी, १/३३। (२) इसका संदर्भ पहले २/२८३ में आ चुका है, और देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़, १/१९९। (३) अहकाम अल-कुरान, इब्न अल-अरबी, १/३३। (४) अहकाम अल-कुरान, १/३३। (५) इसे अल-तबरी ने २/४४६-४४७ में कतादा और अल-सुद्दी के कथनों के समान उद्धृत किया है।

صفحہ ۳۲۳ سورۃ البقرہ: آیت ۱۱۴

آیت اس بات پر بھی دلالت کرتی ہے کہ نماز کا معاملہ کتنا عظیم ہے، اور چونکہ یہ بہترین اعمال میں سے ہے اور اس کا اجر سب سے بڑا ہے، لہذا اس سے روکنا سب سے بڑا گناہ ہے (۱)۔

پانچواں: ہر وہ جگہ جہاں اللہ کی عبادت کی جا سکے اور اسے سجدہ کیا جا سکے 'مسجد' کہلاتی ہے؛ نبی ﷺ نے فرمایا: "میرے لیے زمین کو جائے نماز (مسجد) اور پاکیزگی کا ذریعہ بنا دیا گیا ہے"، اسے ائمہ نے روایت کیا ہے (۲)۔

امت کا اس بات پر اجماع ہے کہ اگر کسی جگہ کو قول کے ذریعے نماز کے لیے متعین کر دیا جائے، تو وہ اس کے مالک کی نجی ملکیت سے نکل جاتی ہے اور تمام مسلمانوں کے لیے عام ہو جاتی ہے۔ چنانچہ، اگر کوئی شخص اپنے گھر میں مسجد بنائے، لیکن لوگوں کو اس سے روک دے اور اسے اپنے لیے مخصوص رکھے، تو وہ اس کی ملکیت میں رہے گی اور مسجد کی حد تک نہیں پہنچے گی۔ لیکن، اگر وہ اسے تمام لوگوں کے لیے مباح (عام) کر دے، تو اس کا حکم باقی تمام عوامی مسجدوں جیسا ہو گا، اور وہ نجی ملکیت کی خصوصیت سے نکل جائے گی (۳)۔

چھٹا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {ان لوگوں کے لیے یہ جائز نہ تھا کہ وہ ان (مسجدوں) میں داخل ہوں مگر ڈرتے ہوئے} [قرآن ۲:۱۱۴]۔ "اولئک" (وہ لوگ) مبتدا ہے اور اس کے بعد والا حصہ اس کی خبر ہے۔ "خائفین" (ڈرتے ہوئے) حال ہے۔

یعنی: اگر مسلمان ان (مسجدوں) پر قابض ہو جائیں اور وہ ان کے اقتدار کے تحت آ جائیں، تو کافر اس وقت ان میں داخل نہیں ہو سکے گا۔ اگر وہ داخل ہوں گے بھی، تو مسلمانوں کی جانب سے نکالے جانے اور ان کے داخلے پر سزا دیے جانے کے خوف کے ساتھ۔

اس میں اس بات کی دلیل ہے کہ کافر کا کسی بھی حال میں مسجد میں داخل ہونا جائز نہیں (۴)، جیسا کہ ان شاء اللہ تعالیٰ سورہ "برائت" (التوبہ) میں آئے گا۔

اور جس نے اس آیت کو نصاریٰ (عیسائیوں) کے حق میں قرار دیا ہے، اس نے روایت کی ہے کہ اسلام میں عمرؓ کے بیت المقدس کی تعمیر کے بعد ایک وقت ایسا گزرا کہ کوئی نصرانی اس میں داخل نہیں ہوتا تھا مگر اسے دردناک مار پڑتی تھی، اس کے باوجود کہ وہ ان کی جائے عبادت رہا تھا (۵)۔ اور جس نے اسے... [متن

(۱) دیکھئے احکام القرآن لابن العربی ۱/۳۳۔ (۲) اس کی تخریج پہلے ۲/۲۸۳ میں گزر چکی ہے، اور دیکھئے المحرر الوجیز ۱/۱۹۹۔ (۳) احکام القرآن لابن العربی ۱/۳۳۔ (۴) احکام القرآن ۱/۳۳۔ (۵) اسے طبری نے ۲/۴۴۶-۴۴۷ میں قتادہ اور سدی کے قول کے ہم معنی نقل کیا ہے۔

324 Surah Al-Baqarah: Verse 115

Quraish said: Likewise it was proclaimed by order of the Prophet ﷺ: "Let no polytheist perform Hajj after this year, and let no one circumambulate the House (Kaaba) naked."(1)

It was also said: It is an informative statement intended as a command, meaning: strive against them and eradicate them so that none of them enters the Sacred Mosque except in fear(2), similar to His saying: "And it is not for you to harm the Messenger of Allah" [Al-Ahzab: 53], for it is a prohibition expressed in the form of a report.

Seventh: His Almighty saying: {For them in this world is disgrace} It was said: Killing for the combatant (Harbi), and Jizya (tribute) for the dhimmi (protected non-Muslim); on the authority of Qatadah. Al-Suddi said: The disgrace for them in this world is the rise of the Mahdi, and the conquest of Amorium, Rome, and Constantinople, and other of their cities; as we mentioned in the book "Al-Tadhkirah"(3). And whoever applies it to the Quraish, makes the disgrace upon them at the Conquest (of Mecca), and the punishment in the hereafter for those of them who died as disbelievers(4).

His Almighty saying: {And to Allah belongs the east and the west. So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah. Indeed, Allah is all-Encompassing and Knowing.} (115)

In it are five issues: First: His Almighty saying: {And to Allah belongs the east and the west} The east: the place of sunrise. And the west: the place of sunset, meaning: they are His dominion, and whatever lies between them of directions and creations through existence and origination, as previously mentioned(5). And He singled them out for mention and attribution to Him as a form of honor, such as: the House of Allah, the She-camel of Allah, and because the reason for the verse required that(6), as will follow.

---

(1) Reported by Ahmad (7977) in a similar manner, Al-Bukhari (1622), and Muslim (1347) from the hadith of Abu Huraira, may Allah be pleased with him. There are also reports on this subject from Abu Bakr and Ali, may Allah be pleased with them, in Ahmad (4) and (594), see Al-Muharrar al-Wajiz 1/199. (2) See Tafsir al-Baghawi 1/107, and Zad al-Masir 1/134. (3) P. 619 onwards. And Al-Baghawi mentioned Qatadah's opinion 1/107, and Al-Tabari reported Al-Suddi's opinion 2/448, see Al-Nukat wa

al-'Uyun 1/175. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/199. (5) 2/311. (6) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/200.

कुरैश ने कहा: इसी तरह नबी ﷺ के आदेश से घोषणा की गई थी: "इस वर्ष के बाद कोई भी मुशरिक (बहुदेववादी) हज न करे, और कोई भी नग्न होकर काबा की परिक्रमा न करे।"(1)

कहा गया है: यह एक सूचनात्मक कथन है जिसका उद्देश्य आदेश है, यानी: उनके खिलाफ संघर्ष करें और उन्हें जड़ से मिटा दें ताकि उनमें से कोई भी डर के सिवा पवित्र मस्जिद में प्रवेश न करे(2), जैसा कि उनके कथन में है: {और तुम्हारे लिए यह उचित नहीं है कि तुम अल्लाह के रसूल को कष्ट पहुँचाओ} [अल-अहज़ाब: 53], क्योंकि यह एक निषेध है जो सूचना के रूप में व्यक्त किया गया है।

सातवां: सर्वशक्तिमान का कथन: {उनके लिए दुनिया में अपमान है} कहा गया है: युद्धरत (हर्बी) के लिए वध, और धिम्मी (संरक्षित गैर-मुस्लिम) के लिए जजिया; कतादाह के अधिकार पर। अल-सुद्दी ने कहा: दुनिया में उनके लिए अपमान महदी का उदय है, और अमोरियम, रोम और कुस्तुनतुनिया और उनके अन्य शहरों की विजय है; जैसा कि हमने पुस्तक "अल-तज़किराह"(3) में उल्लेख किया है। और जिसने इसे कुरैश पर लागू किया, उसने उन पर अपमान को (मक्का की) विजय के समय बनाया, और उनमें से जो काफिर के रूप में मरे उनके लिए परलोक में दंड है(4)।

सर्वशक्तिमान का कथन: {और पूरब और पश्चिम अल्लाह ही के लिए हैं। तो तुम जिस ओर भी मुड़ो, वहीं अल्लाह का मुख है। निश्चय ही अल्लाह बड़ी समाई वाला, सर्वज्ञ है।} (115)

इसमें पांच मसले हैं: पहला: सर्वशक्तिमान का कथन: {और पूरब और पश्चिम अल्लाह ही के लिए हैं} पूर्व: सूर्योदय का स्थान। और पश्चिम: सूर्यास्त का स्थान, यानी: वे उनके स्वामित्व में हैं, और उनके बीच की दिशाएँ और रचनाएँ अस्तित्व और उत्पत्ति के माध्यम से, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है(5)। और उन्होंने सम्मान के रूप में उनका उल्लेख और अपने साथ संबंध को विशिष्ट बनाया, जैसे: अल्लाह का घर, अल्लाह की ऊँटनी, और इसलिए कि आयत के कारण ने इसकी आवश्यकता थी(6), जैसा कि आगे आएगा।

---

(1) अहमद (7977) ने इसी तरह, अल-बुखारी (1622), और मुस्लिम (1347) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से रिपोर्ट किया। इस विषय पर अबू बक्र और अली (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से अहमद (4) और (594) में भी रिपोर्टें हैं, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/199 देखें। (2) तफ़सीर अल-बगवी 1/107, और ज़ाद अल-मसीर 1/134 देखें। (3) पृष्ठ 619 और आगे। और अल-

बगवी ने कतादाह की राय 1/107 का उल्लेख किया, और अल-तबरी ने अल-सुद्दी की राय 2/448 की रिपोर्ट की, अल-नुकात वल-उयून 1/175 देखें। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/199। (5) 2/311। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200 देखें।

324 سورہ البقرہ: آیت 115

قریش نے کہا: اسی طرح نبی ﷺ کے حکم سے پکارا گیا: «اس سال کے بعد کوئی مشرک حج نہ کرے، اور کوئی ننگا ہو کر بیت اللہ کا طواف نہ کرے»(1)۔

اور کہا گیا: یہ ایک خبر ہے اور اس کا مقصد حکم ہے، یعنی: ان سے جہاد کرو اور انہیں جڑ سے اکھاڑ پھینکو یہاں تک کہ ان میں سے کوئی مسجد حرام میں داخل نہ ہو سوائے خوف زدہ حالت کے(2)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: {وَمَا كَانَ لَكُمْ أَن تُؤْذُوا رَسُولَ اللَّهِ} [الاحزاب: 53]، کیونکہ یہ ایک نہی ہے جو خبر کے لفظ کے ساتھ وارد ہوئی ہے۔

ساتویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ} «ان کے لیے دنیا میں رسوائی ہے»۔ کہا گیا: حربی کے لیے قتل، اور ذمی کے لیے جزیہ؛ قتادہ سے مروی ہے۔ السدی نے کہا: دنیا میں ان کے لیے رسوائی مہدی کا قیام، اور عموریہ، رومی اور قسطنطنیہ کی فتح، اور ان کے دیگر شہروں کی فتح ہے؛ جیسا کہ ہم نے اپنی کتاب «التذکرہ»(3) میں ذکر کیا ہے۔ اور جس نے اسے قریش پر محمول کیا، اس نے ان پر رسوائی فتح (مکہ) کے وقت قرار دی، اور ان میں سے جو کفر کی حالت میں مرے ان کے لیے آخرت میں عذاب ہے(4)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَلِلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ إِنَّ اللَّهَ وَاسِعٌ عَلِيمٌ} (115)

اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَلِلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ} مشرق: طلوع ہونے کی جگہ۔ اور مغرب: غروب ہونے کی جگہ، یعنی: یہ دونوں اس کی ملکیت ہیں، اور ان کے درمیان کی جہات اور مخلوقات ایجاد و اختراع کے لحاظ سے اس کی ہیں، جیسا کہ پہلے گزرا(5)۔ اور ان دونوں کو خاص طور پر ذکر کرنا اور اپنی طرف منسوب کرنا تعظیم کے طور پر ہے،

جیسے: بیت اللہ، اور اللہ کی اونٹنی، اور اس لیے کہ آیت کے سبب نے اس کا تقاضا کیا(6)، جیسا کہ آگے آئے گا۔

---

(1) اسے احمد (7977) نے اس طرح، بخاری (1622) اور مسلم (1347) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور اس باب میں حضرت ابوبکر اور علی رضی اللہ عنہما سے احمد (4) اور (594) میں مروی ہے، دیکھئے المحرر الوجیز 199/1- (2) دیکھئے تفسیر البغوی 107/1، اور زاد المسیر 134/1- (3) ص 619 اور اس کے بعد۔ اور بغوی نے قتادہ کا قول 107/1 ذکر کیا، اور طبری نے سدی کا قول 448/2 نقل کیا، دیکھئے النکت والعیون 175/1- (4) المحرر الوجیز 199/1- (5) 311/2- (6) دیکھئے المحرر الوجیز 200/1-

Surah Al-Baqarah: Verse 115 325

Second: His Almighty's saying: {Wherever you [might] turn} is a conditional clause, which is why the 'noon' was omitted. "Ayna" (wherever) is the operator, "ma" is extra (augmentative), and the result (apodosis) is: {there is the face of Allah}. Al-Hasan read it as "tawallaw" with a fatha on the 'ta' and 'lam', and the origin is "tatawallaw". "Thamma" (there) is in a state of accusative as an adverb of place (zarf), and its meaning is distance, except that it is indeclinable (mabni) on the fatha and not inflected because it is vague; it is like "hunaka" (there) for distance. If you want proximity, you say: "huna" (here) (1).

Third: Scholars differed on the meaning for which "Wherever you [might] turn" was revealed, into five opinions: Abdullah bin 'Amir bin Rabi'ah said: It was revealed concerning those who prayed towards a direction other than the Qiblah on a dark night. At-Tirmidhi narrated it from him on the authority of his father who said: We were with the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) on a journey on a dark night, and we did not know where the Qiblah was. So each man (2) among us prayed according to his own judgment. When morning came, we mentioned that to the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), and then it was revealed: {Wherever you [might] turn, there is the face of Allah}. Abu 'Isa said: This is a hadith whose chain of narration is not strong; we only know it through the hadith of Ash'ath as-Samman, and Ash'ath bin Sa'id Abu ar-Rabi' is weakened in hadith narration. However, most people of knowledge have taken this view; they said: If one prays in cloudy weather towards a direction other than the Qiblah, and it then becomes clear to him that he prayed towards a direction other than the Qiblah, his prayer is valid. This is the opinion of Sufyan, Ibn al-Mubarak, Ahmad, and Ishaq (3).

I say: This is the opinion of Abu Hanifa and Malik, except that Malik recommends (4) for him to repeat it within the time [of the prayer], but it is not obligatory for him; because he has performed his obligation as commanded, and perfection is sought within the time. This is inferred from the Sunnah regarding one who prays alone and then catches that prayer within its time in congregation, that he repeats it with them. He does not repeat within the time as a recommendation except for one who turned his back to the Qiblah, or went far east or far west after exercising judgment. As for one who leaned slightly to the right or left after exercising judgment, he does not have to repeat it within the time or otherwise. Al-Mughira and Al-Shafi’i said: It does not suffice him, because the Qiblah is a condition among the conditions of prayer.

(1) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas 1/257. Al-Hasan's reading was mentioned by Ibn Khalawayh in al-Qira'at al-Shadhdhah p. 9, and by Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/200. (2) In (d) and a copy in the margin of (z): "one". (3) Sunan al-Tirmidhi (345). (4) In (m): He said: it is recommended.

सूरा अल-बकराह: आयत 115 325

दूसरा: अल्लाह तआला का फ़रमान: {तुम जिधर भी मुड़ो} एक शर्त है, और इसी कारण 'नून' को हटा दिया गया है। "ऐना" (जहाँ भी) काम करने वाला शब्द है, "मा" अतिरिक्त है, और उत्तर है: {वहीं अल्लाह का मुख है}। अल-हसन ने इसे 'ता' और 'लाम' पर फ़तह के साथ "तवल्लौ" पढ़ा है, और मूल रूप "ततवल्लौ" है। "थम्मा" (वहाँ) स्थान के क्रियाविशेषण (ज़र्फ़) के रूप में नसब (accusative) की स्थिति में है, और इसका अर्थ दूर का स्थान है, सिवाय इसके कि यह फ़तह पर आधारित (मबनी) है और रूप-परिवर्तित नहीं होता क्योंकि यह अस्पष्ट है; यह दूरी के लिए "हुनाका" (वहाँ) के समान है। यदि आप निकटता चाहते हैं, तो आप कहते हैं: "हुना" (यहाँ) (1)।

तीसरा: विद्वानों के बीच उस अर्थ के बारे में मतभेद है जिसके लिए "तुम जिधर भी मुड़ो" अवतरित हुआ था, इसमें पाँच मत हैं: अब्दुल्लाह बिन आमिर बिन रबीअह ने कहा: यह उन लोगों के बारे में अवतरित हुआ जिन्होंने एक अंधेरी रात में क़िबला के अलावा किसी अन्य दिशा में नमाज़ पढ़ी। अत-तिर्मिज़ी ने इसे उनके पिता के हवाले से वर्णित किया है जिन्होंने कहा: हम एक अंधेरी रात में एक यात्रा पर नबी ﷺ के साथ थे, और हमें नहीं पता था कि क़िबला कहाँ है। तो हम में से प्रत्येक व्यक्ति (2) ने अपनी समझ के अनुसार नमाज़ पढ़ी। जब सुबह हुई, तो हमने नबी ﷺ से इसका ज़िक्र किया, तब यह अवतरित हुआ: {तुम जिधर भी मुड़ो, वहीं अल्लाह का मुख है}। अबू ईसा ने कहा: यह ऐसी हदीस है जिसकी सनद (वर्णन श्रृंखला) मज़बूत नहीं है; हम इसे केवल अशअथ अस-सम्मान की हदीस से जानते हैं, और हदीस वर्णन में अशअथ बिन सईद अबू अर-रबीअ को कमज़ोर माना जाता है। फिर भी, अधिकांश विद्वानों ने इसी मत को अपनाया है; उन्होंने कहा: यदि कोई बादलों वाले मौसम में क़िबला के अलावा किसी अन्य दिशा में नमाज़ पढ़ता है, और फिर उसे पता चलता है कि उसने गलत दिशा में नमाज़ पढ़ी है, तो उसकी नमाज़ जायज़ है। यही सुफ़यान, इब्न अल-मुबारक, अहमद और इसहाक़ का मत है (3)।

मैंने कहा: यह अबू हनीफ़ा और मालिक का मत है, सिवाय इसके कि मालिक उसके लिए वक़्त के अंदर इसे दोहराने को मुस्तहब (पसंदीदा) मानते हैं (4), लेकिन यह उन पर वाजिब (अनिवार्य) नहीं है; क्योंकि उन्होंने आदेश के अनुसार अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया है, और पूर्णता वक़्त के भीतर प्राप्त की जाती है। यह सुन्नत से उस व्यक्ति के बारे में अनुमान लगाया जाता है जो अकेले नमाज़ पढ़ता है और फिर उसी नमाज़ को उसके वक़्त में जमाअत के साथ पाता है, कि वह उनके साथ इसे दोहराता है। वक़्त के अंदर मुस्तहब के तौर पर वह व्यक्ति ही दोहराता है जिसने क़िबला की ओर पीठ कर ली हो,

या कोशिश (इज्तिहाद) करने के बाद बहुत अधिक पूर्व या पश्चिम की ओर मुड़ गया हो। जहाँ तक उस व्यक्ति की बात है जो कोशिश के बाद थोड़ा दाएं या बाएं मुड़ा हो, तो उसे वक़्त में या उसके बाद दोहराने की ज़रूरत नहीं है। अल-मुग़ीरा और अल-शाफ़ई ने कहा: यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है, क्योंकि क़िबला नमाज़ की शर्तों में से एक शर्त है।

(1) इराब अल-कुरआन, अन-नहहास द्वारा 1/257। अल-हसन के पाठ का उल्लेख इब्न खलवैह ने अल-किरात अल-शाज़्ज़ा पृ. 9 में, और इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200 में किया है। (2) (द) में और (ज़) के हाशिए में एक प्रति में: "एक"। (3) सुनन अत-तिर्मिज़ी (345)। (4) (म) में: उन्होंने कहा: यह मुस्तहब है।

سورہ البقرہ : آیت ۱۱۵ ۳۲۵

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا قول: {فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا} (تم جدھر بھی رخ کرو) شرط ہے، اور اسی وجہ سے 'نون' کو حذف کر دیا گیا ہے، اور «أين» عمل کرنے والا لفظ ہے، اور «ما» زائد ہے، اور جواب ہے: {فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ} (تو وہیں اللہ کا رخ ہے)۔ الحسن نے اسے «تَوَلَّوا» پڑھا ہے 'ت' اور 'ل' پر فتحہ کے ساتھ، اور اصل میں یہ «تتولوا» تھا۔ اور «ثَمَّ» (وہاں) ظرف ہونے کی بنا پر حالتِ نصب میں ہے، اور اس کا معنی دوری ہے، سوائے اس کے کہ یہ فتحہ پر مبنی ہے، معرب نہیں ہے کیونکہ یہ مبہم ہے، یہ دوری کے لیے «ہناک» (وہاں) کے درجے میں ہے۔ پس اگر تم قرب کا ارادہ کرو تو کہو: «ہنا» (یہاں) (۱)۔

تیسرا: علماء نے اس معنی میں اختلاف کیا ہے جس کے بارے میں «فأينما تُولُّوا» نازل ہوئی، اس میں پانچ اقوال ہیں: عبداللہ بن عامر بن ربیعہ نے کہا: یہ ان لوگوں کے بارے میں نازل ہوئی جنہوں نے اندھیری رات میں قبلہ کے علاوہ کسی اور سمت نماز پڑھی۔ امام ترمذی نے اسے ان سے، ان کے والد کے حوالے سے روایت کیا ہے جنہوں نے کہا: ہم ایک اندھیری رات میں سفر میں نبی ﷺ کے ساتھ تھے، ہمیں معلوم نہیں تھا کہ قبلہ کدھر ہے، تو ہم میں سے ہر شخص (۲) نے اپنی اپنی سمجھ کے مطابق نماز پڑھی۔ جب صبح ہوئی تو ہم نے نبی ﷺ سے اس کا ذکر کیا، تب یہ آیت نازل ہوئی: {فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ}۔ ابو عیسیٰ (ترمذی) نے کہا: یہ ایسی حدیث ہے جس کی سند اتنی مضبوط نہیں ہے، ہم اسے صرف اشعث السمان کی حدیث سے جانتے ہیں، اور اشعث بن سعید ابو الربیع حدیث میں ضعیف قرار دیے گئے ہیں۔ تاہم، اکثر اہل علم اسی طرف گئے ہیں؛ انہوں نے کہا: جب بادلوں کی وجہ سے قبلہ کے علاوہ نماز پڑھی، پھر اس پر واضح ہوا کہ اس نے غیر قبلہ کی

طرف نماز پڑھی ہے، تو اس کی نماز جائز ہے، اور سفیان، ابن المبارک، احمد اور اسحاق کا یہی قول ہے (۳)۔

میں کہتا ہوں: یہی قول ابو حنیفہ اور مالک کا ہے، سوائے اس کے کہ مالک اس کے لیے وقت کے اندر نماز دہرانے کو مستحب (۴) قرار دیتے ہیں، اور یہ ان پر واجب نہیں ہے؛ کیونکہ اس نے حکم کے مطابق اپنا فرض ادا کر دیا، اور کمال کی تلافی وقت کے اندر کی جاتی ہے؛ سنت سے اس شخص کے بارے میں استدلال کرتے ہوئے جس نے اکیلے نماز پڑھی، پھر اس نماز کو اس کے وقت میں جماعت کے ساتھ پا لیا، کہ وہ ان کے ساتھ دوبارہ پڑھے۔ وقت کے اندر مستحب کے طور پر وہی دہراتا ہے جس نے قبلہ کی طرف پیٹھ کر لی ہو، یا خوب کوشش (اجتہاد) کے باوجود بالکل مشرق یا مغرب کی طرف رخ کر لیا ہو۔ رہا وہ شخص جو اجتہاد کے بعد تھوڑا دائیں یا بائیں مڑا، تو اس پر وقت میں یا وقت کے بعد کوئی اعادہ (دہرانا) نہیں ہے۔ مغیرہ اور شافعی نے کہا: اسے کافی نہیں ہے، کیونکہ قبلہ نماز کی شرائط میں سے ایک شرط ہے۔

(۱) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۵۷۔ اور الحسن کی قرأت کا ذکر ابن خالویہ نے القراءات الشاذة ص ۹ میں، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/۲۰۰ میں کیا ہے۔ (۲) (د) اور (ز) کے حاشیے کے ایک نسخے میں: "واحد" (ایک)۔ (۳) سنن ترمذی (۳۴۵)۔ (۴) (م) میں ہے: انہوں نے کہا: مستحب ہے۔

326 Surat Al-Baqarah: Verse 115

What Malik said is more correct; because necessity allows abandoning the direction of the Qibla during intense combat (with swords)(1), and the concession also allows it during the state of travel(2). Ibn Umar said: This was revealed regarding a traveler performing voluntary prayers wherever his mount turned with him. Muslim narrated from him; he said: The Messenger of Allah (PBUH) used to pray while coming from Makkah to Madinah on his mount, whichever way it faced. He said: Concerning this, it was revealed: "So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah." (3) There is no disagreement among scholars regarding the permissibility of voluntary prayers on a mount based on this Hadith and similar ones. No one is permitted to intentionally abandon the Qibla in any way except in cases of intense fear(4), as will follow(5). Malik's opinion varied regarding a sick person praying on his litter (litter on a camel). Once he said: He does not pray an obligatory prayer on the back of a camel even if his illness intensifies. Sahnun said: If he does, he must repeat it; this was narrated by Al-Baji(6). Another time he said: If he is someone who can only pray on the ground by gesturing (imaa'); then let him pray on the camel after it is stopped for him and he faces the Qibla. They (scholars) agreed that it is not permissible for a healthy person to pray an obligatory prayer except on the ground, except specifically in cases of intense fear(7), as will be explained. The jurists differed regarding a traveler on a journey for which prayers are not shortened. Malik, his companions, and Al-Thawri said: He does not perform voluntary prayers on a mount except on a journey for which prayers are shortened; they said: Because the travels reported from the Messenger of Allah (PBUH) in which he performed voluntary prayers were(8) those in which prayers are shortened. Al-Shafi’i, Abu Hanifa and their companions, Al-Hasan bin Hayy, Al-Layth bin Sa’d, and Dawud bin...

---

(1) Meaning the state of combat with swords. (2) See Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi 1/34-35. (3) Muslim (700): (33), and also narrated by Al-Bukhari (1000) similarly, and it is in Musnad Ahmad (4714). (4) See Al-Tamhid 17/74, Ikmal al-Mu'allim 3/27, and Al-Mufhim 2/340. (5) In Surah An-Nisa, verses (101) and (102). (6) In Al-Muntaqa 1/269, and Al-Baji: He is Sulayman bin Khalaf, Abu al-Walid al-Qadi al-Tujibi, the Andalusian, author of many books, died in the year (474 AH). Al-Siyar 18/535. (7) See Al-Tamhid 17/74-75, and Al-Istidhkar 6/132. (8) In (m): was (feminine).

इमाम मलिक ने जो कहा वह अधिक सही है; क्योंकि आवश्यकता तीव्र युद्ध (तलवारों के साथ) के दौरान किबला की दिशा को छोड़ने की अनुमति देती है(१), और रियायत यात्रा की स्थिति में भी इसकी अनुमति देती है(२)। इब्न उमर ने कहा: यह एक यात्री के बारे में अवतरित हुआ था जो अपनी सवारी पर जहाँ भी वह उसे ले जाए, नफ़्ल (स्वैच्छिक) नमाज़ पढ़ता था। मुस्लिम ने उनके माध्यम से रिवायत की; उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मक्का से मदीना लौटते समय अपनी सवारी पर प्रार्थना करते थे, चाहे उसका चेहरा किसी भी तरफ हो। उन्होंने कहा: इसी के बारे में यह आयत उतरी: "तो तुम जिधर भी रुख करो, उधर ही अल्लाह का चेहरा है।"(३) इस हदीस और इसके समान अन्य हदीसों के आधार पर सवारी पर नफ़्ल नमाज़ की अनुमति के बारे में विद्वानों के बीच कोई मतभेद नहीं है। किसी के लिए भी किबला को जानबूझकर किसी भी तरह से छोड़ना जायज़ नहीं है सिवाय अत्यधिक भय की स्थिति के(४), जैसा कि आगे आएगा(५)। एक बीमार व्यक्ति के बारे में मलिक की राय अलग-अलग थी जो अपने पालकी (ऊंट पर रखी) पर नमाज़ पढ़ता है। एक बार उन्होंने कहा: वह ऊंट की पीठ पर फर्ज़ (अनिवार्य) नमाज़ नहीं पढ़ेगा, भले ही उसकी बीमारी तीव्र हो जाए। सहनून ने कहा: यदि वह ऐसा करता है, तो उसे उसे दोहराना होगा; इसे अल-बाजी ने उल्लेख किया है(६)। एक अन्य अवसर पर उन्होंने कहा: यदि वह उन लोगों में से है जो जमीन पर केवल इशारों (इमा) से नमाज़ पढ़ सकते हैं; तो उसे ऊंट को रुकवाकर और किबला की ओर मुंह करके उस पर नमाज़ पढ़ लेनी चाहिए। विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि एक स्वस्थ व्यक्ति के लिए जमीन के अलावा फर्ज़ नमाज़ पढ़ना जायज़ नहीं है, सिवाय विशेष रूप से अत्यधिक भय के(७), जैसा कि स्पष्ट किया जाएगा। फुकहा (कानूनविदों) के बीच उस यात्री के बारे में मतभेद है जो ऐसी यात्रा पर है जिसमें नमाज़ कम (कसर) नहीं की जाती है। मलिक, उनके साथियों और अल-थौरी ने कहा: वह सवारी पर नफ़्ल नमाज़ नहीं पढ़ेगा सिवाय ऐसी यात्रा के जिसमें नमाज़ कम की जाती है; उन्होंने कहा: क्योंकि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से जिन यात्राओं के बारे में बताया गया है कि उन्होंने उनमें नफ़्ल नमाज़ पढ़ी थी, वे(८) ऐसी थीं जिनमें नमाज़ कम की जाती है। अल-शाफी, अबू हनीफा और उनके साथियों, अल-हसन बिन हई, अल-लैथ बिन साद और दाऊद बिन...

---

(१) यानी तलवार से युद्ध की स्थिति। (२) देखें अहकाम अल-कुरान इब्न अल-अरबी १/३४-३५। (३) मुस्लिम (७००): (३३), और अल-बुखारी (१०००) ने भी इसी तरह रिवायत की है, और यह मुसनद अहमद (४७१४) में है। (४) देखें अल-तमहीद १७/७४, इकमल अल-मुअल्लिम ३/२७, और अल-

मुफहीम २/३४०। (५) सूरह अन-निसा आयत (१०१) और (१०२) में। (६) अल-मुंतका १/२६९ में, और अल-बाजी सुलेमान बिन खलफ़, अबू अल-वलीद अल-क़ाज़ी अल-तुजीबी, अंदालूसी हैं, जो कई रचनाओं के लेखक हैं, उनकी मृत्यु (४७४ हिजरी) में हुई। अल-सियार १८/५३५। (७) देखें अल-तमहीद १७/७४-७५, और अल-इस्तिधकार ६/१३२। (८) (म) में: 'थी' (स्त्रीलिंग)।

اور جو امام مالکؒ نے کہا وہ زیادہ صحیح ہے؛ کیونکہ ضرورت کے وقت دست بدست لڑائی (مسایفہ) کی حالت میں قبلہ کی جہت کو چھوڑنا جائز ہے(۱)، اور سفر کی حالت میں رخصت بھی اس کی اجازت دیتی ہے(۲)۔ حضرت ابن عمرؓ فرماتے ہیں: یہ آیت اس مسافر کے بارے میں نازل ہوئی جو اپنی سواری پر نفل نماز پڑھتا تھا جہاں بھی اس کی سواری کا رخ ہوتا۔ امام مسلم نے ان سے روایت کیا ہے؛ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ مکہ سے مدینہ کی طرف واپس آتے ہوئے اپنی سواری پر نماز پڑھتے تھے، خواہ آپ کا رخ کسی بھی طرف ہوتا۔ انہوں نے کہا: اسی کے بارے میں یہ آیت نازل ہوئی: ﴿فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ﴾ (پس تم جدھر بھی رخ کرو ادھر ہی اللہ کا چہرہ ہے)(۳)۔ اس حدیث اور اس جیسی دیگر احادیث کی بنا پر سواری پر نفل نماز کے جائز ہونے میں علماء کے درمیان کوئی اختلاف نہیں ہے۔ اور کسی کے لیے بھی جائز نہیں کہ وہ جان بوجھ کر کسی بھی طرح قبلہ کو چھوڑے سوائے شدید خوف کی حالت کے(۴)، جیسا کہ آگے آئے گا(۵)۔ اور مریض کے بارے میں جو اپنی محمل (کجاوے) پر نماز پڑھتا ہے، امام مالکؒ کے اقوال میں اختلاف ہے۔ ایک مرتبہ انہوں نے کہا: وہ اونٹ کی پیٹھ پر فرض نماز نہیں پڑھے گا اگرچہ اس کا مرض شدید ہو جائے۔ سحنون کہتے ہیں: اگر اس نے ایسا کیا تو وہ اسے لوٹائے گا؛ اسے باجی نے حکایت کیا ہے(۶)۔ اور ایک بار انہوں نے کہا: اگر وہ ایسا شخص ہے جو زمین پر صرف اشارے سے ہی نماز پڑھ سکتا ہے؛ تو وہ اونٹ پر ہی نماز پڑھ لے بشرطیکہ اونٹ اس کے لیے روک دیا جائے اور وہ قبلہ رخ ہو جائے۔ اور علماء کا اس پر اجماع ہے کہ تندرست آدمی کے لیے زمین کے علاوہ کسی اور جگہ فرض نماز پڑھنا جائز نہیں، سوائے خاص طور پر شدید خوف کے(۷)، جیسا کہ اس کا بیان آئے گا۔ فقہاء کا اس مسافر کے بارے میں اختلاف ہے جو ایسے سفر پر ہو جس میں

نماز قصر نہیں کی جاتی۔ امام مالکؒ، ان کے اصحاب اور ثوریؒ نے کہا: وہ سواری پر نفل نماز نہیں پڑھے گا سوائے ایسے سفر کے جس میں نماز قصر کی جاتی ہو۔ انہوں نے کہا: کیونکہ جن اسفار کے بارے میں رسول اللہ ﷺ سے منقول ہے کہ آپ ان میں نفل نماز پڑھتے تھے، وہ(۸) ایسے تھے جن میں نماز قصر کی جاتی تھی۔ اور امام شافعیؒ، امام ابوحنیفہؒ اور ان کے اصحاب، حسن بن حی، لیث بن سعد اور داؤد بن...

---

(۱) یعنی تلوار سے لڑائی کی حالت۔ (۲) دیکھیے احکام القرآن لابن العربی ۱/ ۳۴-۳۵۔ (۳) مسلم (۷۰۰): (۳۳)، اور اسے امام بخاری نے بھی (۱۰۰۰) اسی طرح روایت کیا ہے، اور یہ مسند احمد (۴۷۱۴) میں ہے۔ (۴) دیکھیے التمہید ۱۷/ ۷۴، اور اکمال المعلم ۳/ ۲۷، اور المفہم ۲/ ۳۴۰۔ (۵) سورۃ النساء کی آیات (۱۰۱) اور (۱۰۲) میں۔ (۶) المنتقی ۱/ ۲۶۹ میں، اور باجی: سلیمان بن خلف، ابو الولید القاضی التجیبی، اندلسی ہیں، صاحب تصانیف ہیں، وفات سن (۴۷۴ھ) میں ہوئی۔ السیر ۱۸/ ۵۳۵۔ (۷) دیکھیے التمہید ۱۷/ ۷۴-۷۵، اور الاستذکار ۶/ ۱۳۲۔ (۸) (م) میں: "کانت" (تھی) ہے۔

327 Surah Al-Baqarah: Verse 115

Ali: It is permissible to offer voluntary prayers on a mount outside the city in every journey, whether it is a journey where prayers are shortened or not, because the reports do not specify one journey over another. So, it is permissible in every journey, unless something is specifically excluded from the journeys by that which must be submitted to.

Abu Yusuf said: One prays within the city on an animal by gesturing; due to the Hadith of Yahya bin Said from Anas bin Malik, that he prayed on a donkey in the alleys of Madinah, gesturing(1).

Al-Tabari said: It is permissible for every rider and walker, whether resident or traveler, to perform voluntary prayers on their animal, mount, or on foot.

It is related from some of the companions of Ash-Shafi'i that their school of thought is the permissibility of voluntary prayer on an animal both at home (hadar) and while traveling.

Al-Athram(2) said: Ahmad bin Hanbal was asked: "Prayer on an animal while at home?" He said: "As for traveling, I have heard (of it), but I have not heard (of it) while at home."

Ibn al-Qasim said: Whoever performs voluntary prayer in his litter (palanquin), let him do it sitting, his standing is cross-legged, he bows by placing his hands on his knees, then raises his head(3).

Qatadah said: This was revealed regarding the Negus (Najashi), and that is because when he died, the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) called the Muslims to pray over him outside Madinah. They said: "How can we pray over a man who died while he was praying towards other than our Qibla?"(4). The Negus was the King of Abyssinia—and his name was Ashama, which in Arabic is:

(1) Al-Istidhkar 6/131. Ibn Abd al-Barr said following it: Malik mentioned this Hadith of Yahya bin Said from Anas, but he did not say in it: "in the alleys of Madinah"... And no one who is compared to Malik narrated it from Yahya bin Said. He said in [Al-Muwatta 1/151]: "while traveling," thus invalidating the statement of the one who said: "in the alleys of Madinah," meaning while at home. See Sahih Bukhari (1100) and Sahih Muslim (702). (2) He is Ahmad bin Muhammad bin Hani, Abu Bakr al-Iskafi al-Ta'i, a student of Imam Ahmad. He has a work on the defects of Hadith. He died around the

year 260 AH. Siyar 12/623. (3) Al-Tamhid 17/77-78, see Al-Istidhkar 6/127-132. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200. Al-Tabari recorded it 2/455 in a similar manner. The report of the Prophet's (peace and blessings of Allah be upon him) prayer over the Negus was narrated by Ahmad (7147, 14889), Al-Bukhari (1245, 1317), and Muslim (951, 952) from the Hadith of Abu Hurayrah and Jabir (may Allah be pleased with them). It was also narrated by Ahmad (19867) and Muslim (953) from the Hadith of Imran bin Husain (may Allah be pleased with him).

327 सूरह अल-बकरा: आयत 115

अली: हर यात्रा में शहर के बाहर वाहन पर नफ़्ल नमाज़ पढ़ना जायज़ है, चाहे वह ऐसी यात्रा हो जिसमें नमाज़ कम (क़स्र) की जाती है या नहीं, क्योंकि हदीसों में किसी खास यात्रा का ज़िक्र नहीं है। इसलिए, हर यात्रा में यह जायज़ है, जब तक कि किसी यात्रा को उस चीज़ से विशेष रूप से अलग न किया जाए जिसका पालन करना अनिवार्य है।

अबू यूसुफ़ ने कहा: शहर के भीतर जानवर पर इशारों से नमाज़ पढ़ी जा सकती है; अनस बिन मालिक से यह्या बिन सईद की हदीस के कारण कि उन्होंने मदीना की गलियों में गधे पर इशारों से नमाज़ पढ़ी थी(1)।

अल-तबरी ने कहा: हर सवार और पैदल चलने वाले के लिए, चाहे वह निवासी हो या यात्री, अपने जानवर, वाहन या अपने पैरों पर नफ़्ल नमाज़ पढ़ना जायज़ है।

शाफ़ई के कुछ साथियों से यह बताया गया है कि उनका मत घर (हज़र) पर और यात्रा के दौरान जानवर पर नफ़्ल नमाज़ की अनुमति देना है।

अल-अथरम(2) ने कहा: अहमद बिन हंबल से पूछा गया: "क्या घर पर रहते हुए जानवर पर नमाज़ पढ़ना जायज़ है?" उन्होंने कहा: "यात्रा के बारे में तो मैंने सुना है, लेकिन घर पर रहने के बारे में मैंने नहीं सुना।"

इब्न अल-कासिम ने कहा: जो कोई अपनी पालकी (महिल) में नफ़्ल नमाज़ पढ़ता है, वह बैठकर पढ़े, उसका खड़ा होना पालथी मारकर बैठना होगा, वह अपने हाथ घुटनों पर रखकर रुकू करेगा, फिर अपना सिर उठाएगा(3)।

क़तादाह ने कहा: यह आयत नजशी (इथियोपिया के राजा) के बारे में उतरी थी, और वह इसलिए कि जब उनकी मृत्यु हुई, तो पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) ने मुसलमानों को मदीना के बाहर उन पर नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ने के लिए बुलाया। उन्होंने कहा: "हम उस आदमी पर कैसे नमाज़ पढ़ सकते हैं जो मर गया जबकि वह हमारे क़िबला के अलावा किसी और तरफ नमाज़ पढ़ता था?"(4)। नजशी हबशा (इथियोपिया) के राजा थे—और उनका नाम अशहामा था, जो अरबी में है:

(1) अल-इस्तिज़कार 6/131। इब्न अब्द अल-बर्र ने इसके बाद कहा: मालिक ने अनस से यह्या बिन सईद की इस हदीस का ज़िक्र किया, लेकिन उन्होंने इसमें यह नहीं कहा: "मदीना की गलियों में"...

और मालिक की तुलना में किसी और ने इसे यह्या बिन सईद से बयान नहीं किया है। उन्होंने [अल-मुवत्ता 1/151] में कहा है: "यात्रा में," इस प्रकार उस व्यक्ति की बात को गलत साबित कर दिया जिसने कहा: "मदीना की गलियों में," जिसका अर्थ घर पर है। सहीह बुखारी (1100) और सहीह मुस्लिम (702) देखें। (2) वह अहमद बिन मुहम्मद बिन हानी, अबू बक्र अल-इस्काफ़ी अल-ताई हैं, जो इमाम अहमद के छात्र थे। उनकी हदीस के दोषों पर एक रचना है। उनकी मृत्यु लगभग 260 हिजरी में हुई। अल-सियर 12/623। (3) अल-तमहीद 17/77-78, अल-इस्तिज़कार 6/127-132 देखें। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200। अल-तबरी ने इसे इसी तरह 2/455 में दर्ज किया है। नजशी पर पैगंबर (उन पर अल्लाह की शांति और कृपा हो) की नमाज़ की रिपोर्ट अहमद (7147, 14889), अल-बुखारी (1245, 1317) और मुस्लिम (951, 952) द्वारा अबू हुरैरा और जाबिर (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) की हदीस से वर्णित है। इसे अहमद (19867) और मुस्लिम (953) ने इमरान बिन हुसैन (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से भी वर्णित किया है।

327 سورة البقرہ: آیت 115

علی: ہر سفر میں شہر سے باہر سواری پر نفل نماز پڑھنا جائز ہے، خواہ وہ ایسا سفر ہو جس میں نماز قصر کی جاتی ہو یا نہیں، کیونکہ احادیث میں کسی خاص سفر کی تخصیص نہیں ہے۔ لہٰذا، ہر سفر میں یہ جائز ہے، سوائے اس کے کہ کسی سفر کو اس چیز کے ذریعے خاص کیا جائے جس کی پیروی کرنا واجب ہے۔

ابو یوسف نے کہا: شہر کے اندر جانور پر اشارے سے نماز پڑھی جائے گی؛ انس بن مالک سے یحییٰ بن سعید کی حدیث کی وجہ سے کہ انہوں نے مدینہ کی گلیوں میں گدھے پر اشارہ کرتے ہوئے نماز پڑھی(1)۔

طبری نے کہا: ہر سوار اور پیدل چلنے والے کے لیے، خواہ وہ مقیم ہو یا مسافر، اپنے جانور، سواری یا اپنے پیروں پر نفل پڑھنا جائز ہے۔

امام شافعی کے بعض اصحاب سے مروی ہے کہ ان کا مذہب حضر (گھر) اور سفر میں جانور پر نفل پڑھنے کے جواز کا ہے۔

الاثرم(2) نے کہا: احمد بن حنبل سے پوچھا گیا: "کیا حضر میں جانور پر نماز جائز ہے؟" انہوں نے کہا: "سفر کے بارے میں تو میں نے سنا ہے، لیکن حضر کے بارے میں میں نے نہیں سنا۔"

ابن القاسم نے کہا: جو شخص اپنی کجاوے (محمل) میں نفل پڑھے، وہ بیٹھ کر پڑھے، اس کا قیام چار زانو (پالتی مار کر) بیٹھنا ہوگا، وہ اپنے ہاتھ گھٹنوں پر رکھ کر رکوع کرے، پھر اپنا سر اٹھائے(3)۔

قتادہ نے کہا: یہ آیت نجاشی کے بارے میں نازل ہوئی، اور وہ اس لیے کہ جب ان کا انتقال ہوا تو نبی کریم ﷺ نے مسلمانوں کو مدینہ سے باہر ان پر نماز جنازہ پڑھنے کے لیے بلایا۔ انہوں نے کہا: "ہم ایسے شخص پر کیسے نماز پڑھیں جو مر گیا جبکہ وہ ہمارے قبلہ کے علاوہ کسی اور طرف نماز پڑھتا تھا؟"(4)۔ نجاشی حبشہ کا بادشاہ تھا—اور اس کا نام اصحمہ تھا، جو عربی میں ہے:

(1) الاستذکار 131/6۔ ابن عبد البر نے اس کے بعد کہا: مالک نے انس سے یحییٰ بن سعید کی اس حدیث کا ذکر کیا، لیکن اس میں یہ نہیں کہا: "مدینہ کی گلیوں میں"۔۔۔ اور مالک کے ہم پلہ کسی اور نے اسے یحییٰ بن سعید سے روایت نہیں کیا۔ انہوں نے [الموطأ 1/ 151] میں کہا ہے: "سفر میں"، اس طرح اس شخص کی بات باطل ہوگئی جس نے کہا: "مدینہ کی گلیوں میں"، جس سے مراد حضر ہے۔ دیکھیے صحیح بخاری (1100) اور صحیح مسلم (702)۔ (2) وہ احمد بن محمد بن ہانی، ابو بکر الاسکافی، الطائی ہیں، جو امام احمد کے شاگرد تھے۔ ان کی علل الحدیث پر ایک تصنیف ہے۔ ان کی وفات تقریباً 260 ہجری میں ہوئی۔ السیر 12/ 623۔ (3) التمہید 17 / 77-78 ، اور دیکھیے الاستذکار 127/6 - 132۔ (4) المحرر الوجیز 1/ 200، اور اسے طبری نے 2/455 میں اسی طرح روایت کیا ہے۔ نبی کریم ﷺ کے نجاشی پر نماز پڑھنے کی خبر احمد (7147، 14889)، بخاری (1245، 1317) اور مسلم (951، 952) نے حضرت ابوہریرہ اور جابر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کی ہے۔ اسے احمد (19867) اور مسلم (953) نے بھی حضرت عمران بن حصین رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔

328 Surah Al-Baqarah: Verse 115

Attia (1) - he used to pray towards Jerusalem until he died, even after the Qibla had been shifted to the Kaaba. So the verse (2) was revealed, and regarding him it was revealed: {And indeed, among the People of the Scripture are those who believe in Allah} [Al Imran: 199] (3). This was an excuse for the Negus (Najashi), and the Prophet's ﷺ prayer with his companions was in the ninth year of the Hijra.

Those who allow the funeral prayer for an absent person have used this as evidence, and that is Al-Shafi'i (4).

Ibn al-Arabi said (5): "One of the strangest issues regarding the prayer for the deceased is what Al-Shafi'i said: the funeral prayer is performed for an absent person. I was in Baghdad in the assembly of Imam Fakhr al-Islam (6), and a man from Khorasan would enter and he [the Imam] would ask him: 'How is so-and-so?' The man would say: 'He died.' The Imam would say: 'To Allah we belong and to Him we shall return.' Then he would say to us: 'Stand up, so I may lead the prayer for you,' and he would stand and lead us in prayer for him, and that was six months after the duration [of death], and between him and his country was [a distance of] six months [travel]."

The basis for them in this is the Prophet's ﷺ prayer for the Negus.

Our scholars (may Allah have mercy on them) said: The Prophet ﷺ was specifically designated for that for three reasons:

First: That the earth was flattened for him south and north until he saw the bier of the Negus, just as it was flattened for him north and south until he saw Al-Aqsa Mosque. The opponent said: What is the benefit in seeing it? The benefit is only in his blessing reaching [him].

Second: That the Negus did not have a guardian from among the believers there to perform the prayer for him. The opponent said: This is habitually impossible; a king of a religion who has no followers! And interpretation by the impossible is impossible.

---

(1) Qadi Iyad mentioned that in Ikmal al-Mu'allim 3/413-414, and attributed it to Ibn Qutaybah, and Ibn Attia in al-Muharrar al-Wajiz 1/559, and attributed it to Sufyan bin Uyaynah, and Abu al-Abbas al-Qurtubi in al-Mufhim 2/609. Abd al-Razzaq mentioned in his Musannaf after the hadith of Jabir (6406) that the translation of Asahmah in

Arabic is: Attia (Gift). (2) Reported by Al-Wahidi in Asbab al-Nuzul p. 35-36 from the words of Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). (3) Reported by Al-Tabari 2/455 within the previous statement of Qatadah, and reported by Al-Wahidi in Asbab al-Nuzul p. 134 from the words of Jabir, Anas, Ibn Abbas, and Qatadah, and Ibn Attia 1/599 from the words of Jabir, Ibn Jurayj, and Qatadah (may Allah be pleased with them). (4) See Al-Mufhim 2/610. (5) Al-Qabas fi Sharh al-Muwatta p. 445-446. (6) He is Abu Bakr al-Shashi.

३२८ सूरह अल-बकरा: आयत ११५

अत्तिया (१) - वह अपनी मृत्यु तक बैतुल-मुक़द्दस (यरूशलेम) की ओर प्रार्थना करते रहे, जबकि किबला काबा की ओर बदल दिया गया था। तब यह आयत (२) अवतरित हुई, और उनके बारे में यह उतरा: {और निस्संदेह, ग्रंथ वालों में से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह पर ईमान लाते हैं} [आल इमरान: १९९] (३)। यह नजाशी के लिए एक बहाना (क्षमा) था, और नबी ﷺ की अपने साथियों के साथ यह प्रार्थना हिजरत के नौवें वर्ष में थी।

जिसने अनुपस्थित व्यक्ति की जनाज़ा की नमाज़ (सलात अल-ग़ाइब) की अनुमति दी है, उन्होंने इसे प्रमाण के रूप में इस्तेमाल किया है, और वह अल-शाफ़ी (४) हैं।

इब्न अल-अरबी (५) ने कहा: "मृतक पर प्रार्थना के संबंध में सबसे विचित्र मुद्दों में से एक वह है जो अल-शाफ़ी ने कहा है: अनुपस्थित व्यक्ति के लिए प्रार्थना की जाती है। मैं बगदाद में इमाम फखर अल-इस्लाम (६) की सभा में था, और खुरासान से एक व्यक्ति उनके पास आता और वे [इमाम] उससे पूछते: 'अमुक का क्या हाल है?' वह व्यक्ति कहता: 'उसकी मृत्यु हो गई।' इमाम कहते: 'बेशक हम अल्लाह के ही हैं और हमें उसी की ओर लौटना है।' फिर वे हमसे कहते: 'खड़े हो जाओ, ताकि मैं तुम्हारे लिए प्रार्थना करा सकूँ' और वे खड़े होते और हमारे साथ उसके लिए नमाज़ पढ़ते, और यह [मृत्यु की] अवधि के छह महीने बाद था, और उनके और उसके देश के बीच छह महीने [की यात्रा] का अंतर था।"

उनके लिए इसका आधार नबी ﷺ द्वारा नजाशी के लिए की गई प्रार्थना है।

हमारे विद्वानों (अल्लाह उन पर रहम करे) ने कहा: नबी ﷺ को तीन कारणों से इसके लिए विशेष रूप से चुना गया था:

पहला: यह कि उनके लिए धरती को दक्षिण और उत्तर की ओर सिकोड़ दिया गया था यहाँ तक कि उन्होंने नजाशी का ताबूत देख लिया, जैसे कि उनके लिए उत्तर और दक्षिण की ओर धरती सिकोड़ दी गई थी यहाँ तक कि उन्होंने मस्जिद अल-अक्सा को देख लिया था। विपक्षी ने कहा: उसे देखने में क्या लाभ है? लाभ तो केवल उसकी बरकत पहुँचने में है।

दूसरा: यह कि नजाशी का वहाँ मोमिनों (ईमान वालों) में से कोई संरक्षक नहीं था जो उनके लिए प्रार्थना कर सके। विपक्षी ने कहा: यह आदतन असंभव है; एक राजा एक धर्म पर हो और उसके अनुयायी न हों! और असंभव द्वारा व्याख्या करना असंभव है।

---

(१) काजी इयाद ने इकमल अल-मुअल्लिम ३/४१३-४१४ में इसका उल्लेख किया है, और इसे इब्न कुतैबा से जोड़ा है, और इब्न अत्तिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/५५९ में, और इसे सुफ़यान बिन उयैना से जोड़ा है, और अबू अल-अब्बास अल-कुर्तुबी ने अल-मुफिम २/६०९ में। अब्द अल-रज्जाक ने अपनी मुसन्निफ में जाबिर (६४०६) की हदीस के बाद उल्लेख किया है कि अरबी में असहमह का अनुवाद है: अत्तिया (उपहार)। (२) अल-वाहिदी ने अस्बाब अल-नुज़ूल पृ. ३५-३६ में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के शब्दों से उद्धृत किया है। (३) इसे अल-तबरी २/४५५ ने कतादा के पिछले कथन के भीतर निकाला है, और अल-वाहिदी ने अस्बाब अल-नुज़ूल पृ. १३४ में जाबिर, अनस, इब्न अब्बास और कतादा के शब्दों से, और इब्न अत्तिया १/५९९ ने जाबिर, इब्न जुरैज और कतादा (रज़ियल्लाहु अन्हुम) के शब्दों से उद्धृत किया है। (४) देखें अल-मुफिम २/६१०। (५) अल-क़बस फ़ी शरह अल-मुवत्त पृ. ४४५-४४६। (६) वह अबू बक्र अल-शाशी हैं।

عطیہ (۱) - وہ بیت المقدس کی طرف نماز پڑھتے رہے یہاں تک کہ ان کا انتقال ہو گیا، جبکہ قبلہ کعبہ کی طرف پھیرا جا چکا تھا۔ تو یہ آیت (۲) نازل ہوئی، اور ان کے بارے میں نازل ہوا: ﴿وَإِنَّ مِنْ أَهْلِ الْكِتَابِ لَمَن يُؤْمِنُ بِاللَّهِ﴾ [آل عمران: ۱۹۹] (۳)۔ تو یہ نجاشی کے لیے ایک عذر تھا، اور نبی ﷺ کی اپنے صحابہ کے ساتھ یہ نماز ہجرت کے نویں سال میں تھی۔

جس نے غائبانہ نماز جنازہ کی اجازت دی ہے، اس نے اسی سے استدلال کیا ہے، اور وہ امام شافعی (۴) ہیں۔

ابن العربی (۵) فرماتے ہیں: "میت پر نماز کے حوالے سے سب سے عجیب مسائل میں سے ایک وہ ہے جو شافعی نے کہا ہے: غائب پر نماز پڑھی جائے گی۔ میں بغداد میں امام فخر الاسلام (۶) کی مجلس میں تھا، تو خراسان سے ایک آدمی ان کے پاس آتا اور وہ [امام] اس سے پوچھتے: 'فلاں کا کیا حال ہے؟' وہ آدمی کہتا: 'وہ فوت ہو گیا'۔ امام کہتے: 'انا للہ وانا الیہ راجعون'۔ پھر ہمیں کہتے: 'کھڑے ہو جاؤ، تاکہ میں تمہارے لیے نماز پڑھوں'۔ پس وہ کھڑے ہوتے اور ہمارے ساتھ اس پر نماز پڑھتے، اور یہ [وفات کی] مدت کے چھ ماہ بعد ہوتا تھا، حالانکہ ان کے اور اس کے شہر کے درمیان چھ ماہ کی مسافت تھی۔"

ان کے نزدیک اس کی اصل نبی ﷺ کا نجاشی پر نماز پڑھنا ہے۔

اور ہمارے علماء (اللہ ان پر رحم فرمائے) نے کہا: نبی ﷺ اس معاملے میں تین وجوہات کی بنا پر مخصوص تھے:

پہلی: یہ کہ زمین ان کے لیے شمالاً و جنوباً سمیٹ دی گئی تھی یہاں تک کہ انہوں نے نجاشی کا جنازہ دیکھ لیا، جیسا کہ ان کے لیے زمین سمیٹ دی گئی تھی یہاں تک کہ انہوں نے مسجد اقصیٰ کو دیکھ لیا تھا۔ مخالف نے کہا: اسے دیکھنے میں کیا فائدہ ہے؟ فائدہ تو صرف اس کی برکت پہنچنے میں ہے۔

دوسری: یہ کہ نجاشی کا وہاں مومنین میں سے کوئی ایسا ولی (سرپرست) نہیں تھا جو ان پر نماز پڑھ سکے۔ مخالف نے کہا: یہ عادتاً محال ہے؛ ایک بادشاہ ایک دین پر ہو اور اس کے متبعین نہ ہوں! اور محال کے ذریعے تاویل کرنا محال ہے۔

---

(۱) قاضی عیاض نے اسے اکمال المعلم ۴۱۳/۳-۴۱۴ میں ذکر کیا ہے، اور اسے ابن قتیبہ کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۵۵۹/۱ میں، اور اسے سفیان بن عیینہ کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابو العباس القرطبی نے المفہم ۶۰۹/۲ میں۔ اور عبد الرزاق نے اپنی مصنف میں حدیث جابر (۶۴۰۶) کے بعد ذکر کیا ہے کہ عربی میں اصحمہ کی تفسیر 'عطیہ' (عطا) ہے۔ (۲) اسے الواحدی نے اسباب النزول ص ۳۵-۳۶ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما کے قول سے روایت کیا ہے۔ (۳) اسے طبری نے ۴۵۵/۲ میں قتادہ کے سابقہ قول کے ضمن میں روایت کیا ہے، اور الواحدی نے اسباب النزول ص ۱۳۴ میں جابر، انس، ابن عباس اور قتادہ سے روایت کیا ہے، اور ابن عطیہ نے ۵۹۹/۱ میں جابر، ابن جریج اور قتادہ رضی اللہ عنہم سے روایت کیا ہے۔ (۴) دیکھیے المفہم ۶۱۰/۲۔ (۵) القبس فی شرح الموطأ ص ۴۴۵-۴۴۶۔ (۶) وہ ابوبکر الشاشی ہیں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 115 [Page] 329

The third: That the Prophet ﷺ only intended by praying over the Negus to bring mercy upon him, and to win over the hearts of the remaining kings after him when they saw the concern for him alive and dead. The opponent said: The blessing of prayer from the Prophet ﷺ and others reaches the deceased by consensus.

Ibn al-Arabi said (1): What I have regarding the Prophet's ﷺ prayer over the Negus is: that he knew that the Negus and those who believed with him had no trace of the Sunnah of prayer over the dead, so he knew they would bury him without prayer, so he hastened to pray over him.

I say: The first interpretation is better; because if he saw him, then he did not pray over one who was absent, but rather prayed over one who was seen and present, and the absent is what is not seen. And Allah Almighty knows best.

The fourth opinion: Ibn Zayd said: The Jews had approved of the Prophet's ﷺ prayer towards Jerusalem and said: He was only guided through us. But when he was turned towards the Kaaba, the Jews said: What has turned them from their qibla which they used to face? So it was revealed: {To Allah belong the East and the West} (2).

The point of the arrangement according to this opinion is: that when the Jews denied the matter of the Qibla, Allah Almighty explained that He has the right to command His servants to worship Him as He wills. If He wills, He commands them to face Jerusalem, and if He wills, to face (3) the Kaaba. He performs an act for which there is no argument against Him, and He is not questioned about what He does, but they are questioned.

The fifth opinion: That the verse is abrogated by His saying: {And wherever you are, turn your faces toward it} [Al-Baqarah: 144], as mentioned by Ibn Abbas (4). It is as if it was permissible in the beginning for a person to pray however they wished, then that was abrogated.

Qatada said: The abrogator is His saying, Exalted is He: {So turn your face toward Al-Masjid Al-Haram} [Al-Baqarah: 144], meaning: towards it, as narrated by Abu Isa al-Tirmidhi (5).

A sixth opinion: It was narrated from Mujahid and ad-Dahhak that it is decisive (muhkamah), meaning: wherever you are from...

(1) Al-Qabas p. 446. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200. (3) In (z): "their faces", and in (m): "He commanded them to face". (4) Narrated by Ibn Abi Hatim 1/346, and mentioned by al-Wahidi in Asbab al-Nuzul p. 36. (5) See the Hadith (2958).

सूरह अल-बकरा: आयत 115 [पृष्ठ] 329

तीसरा: कि नबी ﷺ ने नजाशी पर नमाज़ (जनाज़ा) पढ़ने से केवल उन पर रहमत लाने का इरादा किया था, और उनके बाद के शेष राजाओं का दिल जीतने का इरादा किया था जब वे उन्हें जीवित और मृत अवस्था में दी जाने वाली अहमियत को देखें। विरोधी ने कहा: नबी ﷺ और अन्य लोगों की दुआ की बरकत सर्वसम्मति से मृत व्यक्ति तक पहुँचती है।

इब्न अल-अरबी (1) ने कहा: नजाशी पर नबी ﷺ की नमाज़ के बारे में मेरे पास जो जानकारी है वह यह है: उन्हें पता था कि नजाशी और उनके साथ ईमान लाने वालों के पास मुर्दे पर नमाज़ पढ़ने की सुन्नत का कोई निशान नहीं था, इसलिए वह जानते थे कि वे उन्हें बिना नमाज़ के दफना देंगे, इसलिए उन्होंने उन पर नमाज़ पढ़ने में जल्दी की।

मैं कहता हूँ: पहली व्याख्या बेहतर है; क्योंकि यदि उन्होंने उन्हें देखा, तो उन्होंने किसी अनुपस्थित (ग़ायब) पर नमाज़ नहीं पढ़ी, बल्कि एक देखे गए और उपस्थित व्यक्ति पर नमाज़ पढ़ी, और अनुपस्थित वह है जो दिखाई न दे। और अल्लाह ही सबसे बेहतर जानता है।

चौथा मत: इब्न जैद ने कहा: यहूदियों ने यरूशलेम (बैतुल मक़दिस) की ओर नबी ﷺ की नमाज़ को सराहा था और कहा था: वह हमारे माध्यम से ही मार्गदर्शित हुए। लेकिन जब उन्हें काबा की ओर मोड़ दिया गया, तो यहूदियों ने कहा: उन्हें उनके उस क़िबले से किसने मोड़ दिया जिस पर वे थे? तब यह आयत उतरी: {और अल्लाह ही के लिए पूर्व और पश्चिम हैं} (2)।

इस मत के अनुसार व्यवस्था का तर्क यह है: जब यहूदियों ने क़िबला के मामले का खंडन किया, तो अल्लाह तआला ने स्पष्ट किया कि उसे अधिकार है कि वह अपने बंदों को जैसे चाहे अपनी इबादत करने का आदेश दे। यदि वह चाहे, तो उन्हें यरूशलेम की ओर मुँह करने का आदेश दे, और यदि वह चाहे, तो काबा की ओर मुँह करने का (3) आदेश दे। वह ऐसा कार्य करता है जिसके विरुद्ध कोई तर्क नहीं है, और वह जो करता है उसके बारे में उससे सवाल नहीं किया जाता, बल्कि उनसे सवाल किया जाता है।

पाँचवां मत: कि यह आयत उनके इस कथन से निरस्त (मनसूख़) है: {और तुम जहाँ कहीं भी हो, अपने चेहरे उसकी ओर कर लो} [अल-बकरा: 144], जैसा कि इब्न अब्बास (4) ने उल्लेख किया है।

ऐसा लगता है कि शुरुआत में एक व्यक्ति के लिए अपनी इच्छानुसार नमाज़ पढ़ना जायज़ था, फिर उसे निरस्त कर दिया गया।

क़तादा ने कहा: निरस्त करने वाला (नासिख़) अल्लाह तआला का यह कथन है: {तो अपना चेहरा अल-मस्जिद अल-हराम की ओर मोड़ लें} [अल-बकरा: 144], यानी: उसकी ओर, जैसा कि अबू ईसा अल-तिर्मिज़ी (5) ने बताया है।

छठा मत: मुजाहिद और अद-दहाक से रिवायत है कि यह आयत मुहकम (सुदृढ़) है, अर्थ है: तुम जहाँ कहीं भी हो...

---

(1) अल-क़बास पृ. 446। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200। (3) (ज़) में: "उनके चेहरे", और (म) में: "उन्हें मुख करने का आदेश दिया"। (4) इब्न अबी हातिम 1/346 द्वारा वर्णित, और अल-वाहिदी द्वारा असबाब अल-नुज़ूल पृ. 36 में उल्लिखित। (5) हदीस देखें (2958)।

تیسرا: کہ نبی ﷺ کا نجاشی پر نماز جنازہ پڑھنے سے مقصد محض ان پر رحمت کا نزول اور ان کے بعد دیگر بادشاہوں کی تالیفِ قلب تھی جب وہ ان کی زندگی اور موت میں دی جانے والی اہمیت کو دیکھیں۔ مخالف نے کہا: نبی ﷺ اور دیگر لوگوں کی دعا کی برکت بالاتفاق میت کو پہنچتی ہے۔

ابن العربی (۱) نے کہا: میرے نزدیک نجاشی پر نبی ﷺ کی نماز کے بارے میں یہ ہے: کہ آپ ﷺ کو معلوم تھا کہ نجاشی اور ان کے ساتھ ایمان لانے والوں کے پاس میت پر نماز پڑھنے کی سنت کا کوئی اثر (علم) نہیں ہے، تو آپ ﷺ نے جان لیا کہ وہ انہیں بغیر نماز کے دفن کر دیں گے، چنانچہ آپ ﷺ نے ان پر نماز پڑھنے میں پہل فرمائی۔

میں کہتا ہوں: پہلی تاویل زیادہ بہتر ہے؛ کیونکہ اگر آپ ﷺ نے انہیں دیکھ لیا تھا، تو آپ نے کسی غائب پر نماز نہیں پڑھی، بلکہ ایک دیکھے ہوئے اور حاضر شخص پر نماز پڑھی، اور غائب وہ ہے جو دیکھا نہ جائے۔ اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

چوتھا قول: ابن زید نے کہا: یہودی بیت المقدس کی طرف نبی ﷺ کی نماز کو پسند کرتے تھے اور کہتے تھے: وہ صرف ہماری وجہ سے ہدایت یافتہ ہوئے۔ لیکن جب (قبلہ) کعبہ کی طرف موڑ دیا گیا تو یہودیوں نے کہا: انہیں ان کے اس قبلے سے کس چیز نے موڑ دیا جس پر وہ تھے؟ تو یہ آیت نازل ہوئی: {وَلِلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ} (اور اللہ ہی کے لیے مشرق اور مغرب ہے) (۲)۔

اس قول کے مطابق ربط کا رخ یہ ہے: کہ جب یہودیوں نے قبلہ کے معاملے کا انکار کیا تو اللہ تعالیٰ نے واضح فرمایا کہ اسے حق حاصل ہے کہ وہ اپنے بندوں کو جس طرح چاہے اپنی عبادت کا حکم دے، اگر وہ چاہے تو انہیں بیت المقدس کی طرف رخ کرنے کا حکم دے، اور اگر چاہے تو

کعبہ کی طرف رخ کرنے (۳) کا حکم دے۔ وہ ایسا کام کرتا ہے جس پر کوئی حجت نہیں، اور اس سے اس کے کاموں کے بارے میں نہیں پوچھا جاتا، بلکہ ان (بندوں) سے پوچھا جاتا ہے۔

پانچواں قول: کہ یہ آیت اللہ تعالیٰ کے اس فرمان سے منسوخ ہے: {وَحَيْثُ مَا كُنتُمْ فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ} [البقرہ: ۱۴۴]، اسے ابن عباس (۴) نے ذکر کیا ہے۔ گویا ابتدا میں انسان کے لیے جائز تھا کہ جیسے چاہے نماز پڑھے، پھر اسے منسوخ کر دیا گیا۔

قتادہ نے کہا: ناسخ اللہ تعالیٰ کا یہ فرمان ہے: {فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ} [البقرہ: ۱۴۴] یعنی: اس کی طرف، اسے ابو عیسیٰ الترمذی (۵) نے نقل کیا ہے۔

چھٹا قول: مجاہد اور ضحاک سے مروی ہے کہ یہ آیت محکم ہے، معنی یہ ہے: تم جہاں کہیں بھی ہو...

---

(۱) القبس ص ۴۴۶۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۰۔ (۳) (ز) میں ہے: "ان کے چہرے"، اور (م) میں ہے: "انہیں رخ کرنے کا حکم دیا"۔ (۴) اسے ابن ابی حاتم نے ۱/ ۳۴۶ میں روایت کیا، اور واحدی نے اسباب النزول ص ۳۶ میں ذکر کیا۔ (۵) حدیث ملاحظہ کریں (۲۹۵۸)۔

330 Surah Al-Baqarah: Verse 115

East and West, there is the Face of Allah which He commanded us to face, and it is the Kaaba (1). And also from Mujahid and Ibn Jubayr: When it was revealed: "Call upon Me; I will respond to you," they said: To where? So it was revealed: {So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah} (2). And from Ibn Umar and al-Nakha'i: Wherever you turn in your travels and departures, there is the Face of Allah (3). And it was said: It is connected to His saying: {And who is more unjust than he who forbids that in the places of worship of Allah His name should be celebrated...} the verse. The meaning is: The lands of Allah - O believers - are spacious for you, so the destruction by those who destroyed the mosques of Allah should not prevent you from turning your faces towards the Qibla of Allah wherever you are in His earth (4). And it was said: It was revealed when the Prophet ﷺ was barred from the House in the year of al-Hudaybiyyah, and the Muslims were grieved by that (5). These are ten sayings. And whoever considers it abrogated, there is no objection to him from the perspective of it being a report; because it is suggestive of the meaning of a command. It is possible that the meaning of {So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah} is: Turn your faces towards the Face of Allah. And this verse is the one which Sa'id ibn Jubayr, may Allah have mercy on him, recited when al-Hajjaj ordered him to be slaughtered on the ground (6). Fourth: People differed in the interpretation of the 'Face' attributed to Allah the Almighty in the Quran and Sunnah (7). The experts said: That refers to existence, and expressing it as 'Face' is figurative speech, since the face is the most apparent of the members in a witness and the most significant in value (8).

(1) Tafsir al-Tabari 2/457, Tafsir Ibn Abi Hatim 1/345, Al-Nasikh wa al-Mansukh by al-Nahhas 1/464, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/200. (2) Al-Tabari 2/457 reported Mujahid's saying, and Ibn 'Atiyyah 1/200 mentioned Ibn Jubayr's saying, and it is in Al-Nukat wa al-'Uyun 1/177 without attribution. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200. (4) Tafsir al-Tabari 2/460. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/201. (6) Reported by Abu Nu'aym in al-Hilyah 4/294. (7) The attribute of 'Face' is one of the established essential attributes of Allah, the Almighty, as befits His majesty and greatness. It is an evidentiary attribute established by the Book and Sunnah. This attribute is affirmed without distortion, denial, qualification, or resemblance. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200.

330 सूरह अल-बकरा: आयत 115

पूर्व और पश्चिम, वहां अल्लाह का चेहरा है जिसे उसने हमें सामने रखने का आदेश दिया है, और वह काबा है (1)। मुजाहिद और इब्न जुबैर से भी: जब 'मुझे पुकारो; मैं तुम्हें उत्तर दूँगा' अवतरित हुई, तो उन्होंने पूछा: कहाँ? तो 'तो तुम जिधर भी मुड़ोगे, उधर ही अल्लाह का चेहरा है' अवतरित हुई (2)। इब्न उमर और अल-नखाई से: आप अपनी यात्राओं और प्रस्थानों में जहाँ कहीं भी मुड़ें, वहीं अल्लाह का चेहरा है (3)। और यह कहा गया: यह उनके इस कथन से जुड़ा है: {और उससे बढ़कर अन्यायी कौन है जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके..} आयत। अर्थ यह है: अल्लाह की धरती - हे विश्वासियों - तुम्हारे लिए विशाल है, इसलिए अल्लाह की मस्जिदों को नष्ट करने वालों द्वारा विनाश तुम्हें अल्लाह के किबला की ओर अपना चेहरा मोड़ने से नहीं रोकना चाहिए, चाहे तुम उसकी धरती पर कहीं भी हों (4)। और यह कहा गया: यह तब अवतरित हुई थी जब पैगंबर ﷺ को अल-हुदैबिया के वर्ष में (काबा के) घर से रोक दिया गया था, और मुसलमान इससे दुखी थे (5)। ये दस बातें हैं। और जो कोई इसे निरस्त (मनसूख) मानता है, उसे इस दृष्टिकोण से कोई आपत्ति नहीं है कि यह एक समाचार (ख़बर) है; क्योंकि इसमें एक आदेश (अम्र) का अर्थ निहित है। यह संभव है कि {तो तुम जिधर भी मुड़ोगे, उधर ही अल्लाह का चेहरा है} का अर्थ यह हो: अपने चेहरे अल्लाह के चेहरे की ओर करो। और यही वह आयत है जिसे सईद इब्न जुबैर (अल्लाह उन पर रहम करे) ने तब पढ़ा था जब अल-हज्जाज ने उन्हें जमीन पर ज़िब्ह करने का आदेश दिया था (6)। चौथा: कुरान और सुन्नत (7) में अल्लाह सर्वशक्तिमान की ओर संकेत किए गए 'चेहरे' की व्याख्या में लोग असहमत थे। विशेषज्ञों ने कहा: वह अस्तित्व (वजूद) की ओर संकेत करता है, और इसे 'चेहरे' के रूप में व्यक्त करना अलंकारिक भाषा है, क्योंकि चेहरा एक गवाह में अंगों में सबसे अधिक प्रत्यक्ष और मूल्य में सबसे महत्वपूर्ण है (8)।

(1) तफ़्सीर अल-तबरी 2/457, तफ़्सीर इब्न अबी हातिम 1/345, अल-नादिख वा अल-मनसूख़ अन-नहस 1/464, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200। (2) तबरी 2/457 ने मुजाहिद का कथन उद्धृत किया, और इब्न अतिया 1/200 ने इब्न जुबैर का कथन उल्लेख किया, और यह अल-नुक़्त वा अल-'उयून 1/177 में बिना श्रेय के है। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200। (4) तफ़्सीर अल-तबरी 2/460। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/201। (6) अबू नुअैम द्वारा अल-हिल्या 4/294 में वर्णित। (7) 'चेहरे' का गुण अल्लाह सर्वशक्तिमान के स्थापित आवश्यक गुणों में से एक है, जैसा कि उसकी महिमा और महानता के अनुकूल है। यह किताब और सुन्नत द्वारा स्थापित एक वर्णनात्मक गुण है।

इस गुण की पुष्टि बिना किसी विकृति, इनकार, विशेषण या तुलना के की जाती है। (8) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200।

مشرق اور مغرب، وہاں اللہ کا چہرہ ہے جس کا اس نے ہمیں رخ کرنے کا حکم دیا ہے، اور وہ کعبہ ہے (۱)۔ اور مجاہد اور ابن جبیر سے بھی مروی ہے: جب 'مجھ سے دعا مانگو، میں تمہاری دعا قبول کروں گا' نازل ہوئی، تو انہوں نے پوچھا: کدھر؟ تو نازل ہوئی: {پس تم جدھر بھی رخ کرو وہیں اللہ کا چہرہ ہے} (۲)۔ اور ابن عمر اور النخعی سے: تم اپنے سفروں اور واپسیوں میں جہاں کہیں بھی رخ کرو وہاں اللہ کا چہرہ ہے (۳)۔ اور کہا گیا: یہ اللہ تعالیٰ کے اس قول سے جڑا ہوا ہے: {اور اس سے بڑھ کر ظالم کون ہے جو اللہ کی مسجدوں میں اس کا نام لیے جانے سے روکے...} آیت۔ پس معنی یہ ہے: اللہ کی زمین - اے مومنو - تمہارے لیے کشادہ ہے، لہٰذا اللہ کی مسجدوں کو ویران کرنے والوں کی تخریب کاری تمہیں اللہ کے قبلے کی طرف رخ کرنے سے نہ روکے تم اس کی زمین میں جہاں کہیں بھی ہو (۴)۔ اور کہا گیا: یہ اس وقت نازل ہوئی جب نبی ﷺ کو حدیبیہ والے سال بیت اللہ سے روک دیا گیا تھا، تو مسلمان اس پر غمزدہ ہوئے (۵)۔ تو یہ دس اقوال ہیں۔ اور جس نے اسے منسوخ قرار دیا، تو اس پر خبر ہونے کی جہت سے کوئی اعتراض نہیں ہے؛ کیونکہ یہ امر (حکم) کے معنی کا احتمال رکھتی ہے۔ یہ احتمال ہے کہ {پس تم جدھر بھی رخ کرو وہیں اللہ کا چہرہ ہے} کا معنی یہ ہو: اپنے چہروں کا رخ اللہ کے چہرے کی طرف کرو۔ اور یہ وہی آیت ہے جس کی تلاوت سعید بن جبیر رحمہ اللہ نے اس وقت کی جب الحجاج نے انہیں زمین پر ذبح کرنے کا حکم دیا (۶)۔ چوتھی بات: لوگوں نے قرآن اور سنت (۷) میں اللہ تعالیٰ کی طرف منسوب 'وجہ' (چہرہ) کی تاویل میں اختلاف کیا ہے، تو ماہرین نے کہا: یہ وجود کی طرف راجع ہے، اور اسے 'وجہ' سے تعبیر کرنا مجازی کلام ہے، کیونکہ چہرہ شاہد میں اعضاء میں سب سے زیادہ ظاہر اور قدر و منزلت میں سب سے زیادہ جلیل ہے (۸)۔

(۱) تفسیر الطبری ۲/ ۴۵۷، تفسیر ابن ابی حاتم ۱/ ۳۴۵، والناسخ والمنسوخ للنحاس ۱/ ۴۶۴، والمحرر الوجیز ۱/ ۲۰۰۔ (۲) الطبری ۲/ ۴۵۷ نے مجاہد کا قول نقل کیا، اور ابن عطیہ ۱/ ۲۰۰ نے ابن جبیر کا قول ذکر کیا، اور یہ النکت والعیون ۱/ ۱۷۷ میں بغیر نسبت کے ہے۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۰۔ (۴) تفسیر الطبری ۲/ ۴۶۰۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۱۔ (۶) اسے ابونعیم نے الحلیہ ۴/ ۲۹۴ میں روایت کیا ہے۔ (۷) صفت وجہ اللہ عزوجل کی ان ذاتی صفات میں سے ہے جو اس کے جلال اور عظمت کے شایانِ شان اس کے لیے ثابت ہیں، اور یہ ایک خبری صفت ہے جو کتاب و سنت سے ثابت ہے، پس اس صفت کا اثبات بغیر کسی تحریف، تعطیل، کیفیت بیان کرنے یا کسی چیز سے تشبیہ دیے بغیر کیا جاتا ہے۔ (۸) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۰۔

331 Surat Al-Baqarah: Verse 115

Ibn Furak said: Sometimes the attribute of a thing is mentioned while the intended meaning (1) is the thing described, as a figurative extension. For example, one might say: "I saw so-and-so's knowledge today," or "I looked at his knowledge," meaning: "I saw the scholar," or "I looked at the scholar." Similarly, when 'face' (Al-Wajh) is mentioned here, the intended meaning is the One who has the face, i.e., His Existence (Al-Wujud). Based on this, the word of Allah Almighty: {We feed you only for the face of Allah} [Al-Insan: 9] is interpreted as meaning: for the sake of Allah who has the face. Likewise, His word: {Except to seek the face of his Lord, Most High} [Al-Layl: 20] means: He who has the face (2).

Ibn Abbas said: The 'face' is an expression for Him, Mighty and Majestic, just as He said: {And there will remain the Face of your Lord, Owner of Majesty and Honor} [Ar-Rahman: 27] (3).

Some imams said: That is an attribute established by revelation (sam'), additional to what human reason necessitates for the attributes of the Eternal, Almighty. Ibn Atiyyah (4) said: Abu al-Ma'ali weakened this view (5), and it is indeed (6) weak; rather, the intended meaning is His existence.

It was said: What is meant by 'face' here is the direction we were turned towards, i.e., the Qiblah.

It was said: The 'face' means intent (Al-Qasd), as the poet said: "I ask Allah's forgiveness for a sin I have not counted; to the Lord of servants belong the intent (face) and the action." (7)

It was said: The meaning is that Allah's pleasure and reward are attained, as He said: {We feed you only for the face of Allah} [Al-Insan: 9] (8), i.e., for His pleasure (9) and seeking His reward. From this is the saying of the Prophet ﷺ: "Whoever builds a mosque seeking thereby the face of Allah..."

(1) In (m): "The attribute of a thing is mentioned while meaning it." (2) Mushkil al-Hadith wa Bayanuhu, p. 357. (3) Mentioned by al-Mawardi in al-Nukat wa al-'Uyun 1/177 without attribution; see Zad al-Masir 1/134-135. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200, and the speech before it is from him. (5) Al-Irshad, p. 146. (6) In (z) and (m): "And it is likewise." (7) It is in al-Kitab 1/37, Ma'ani al-Qur'an by al-Farra' 1/233, Tafsir al-Tabari 1/170, al-Wasit 1/194, and Khizanat al-Adab 3/111. Al-Baghdadi said: This verse is one

of Sibawayh's fifty verses whose author is unknown. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/200. (9) In (m): "for His pleasure."

331 सूरह अल-बक़रह: आयत 115

इब्न फुरक ने कहा: किसी वस्तु के गुण का उल्लेख किया जा सकता है जबकि उसका अर्थ (1) वह वस्तु ही हो जिसका वर्णन किया जा रहा है, विस्तार के रूप में। उदाहरण के लिए, कोई कह सकता है: "मैंने आज फलां का ज्ञान देखा," या "मैंने उसके ज्ञान की ओर देखा," जबकि उसका अर्थ होता है: "मैंने विद्वान को देखा," या "मैंने विद्वान की ओर देखा।" इसी तरह, जब यहाँ 'चेहरा' (वजह) का उल्लेख किया जाता है, तो अर्थ वह होता है जिसका चेहरा है, यानी: उसका अस्तित्व (वजूद)। इसी आधार पर, अल्लाह के कथन की व्याख्या की जाती है: {हम तुम्हें केवल अल्लाह के चेहरे के लिए खिलाते हैं} [अल-इंसान: 9] क्योंकि इसका अर्थ है: उस अल्लाह के लिए जिसका चेहरा है। इसी तरह, उसका कथन है: {सिवाय अपने सर्वोपरि रब के चेहरे की खोज के} [अल-लैल: 20] यानी: वह जिसका चेहरा है (2)।

इब्न अब्बास ने कहा: 'चेहरा' स्वयं अल्लाह सर्वशक्तिमान के लिए एक अभिव्यक्ति है, जैसा कि उन्होंने कहा: {और आपके रब का चेहरा ही शेष रहेगा, जो महिमा और सम्मान का स्वामी है} [अर-रहमान: 27] (3)।

कुछ इमामों ने कहा: वह एक ऐसा गुण है जो श्रुति (वही) द्वारा स्थापित है, जो उन गुणों के अतिरिक्त है जिन्हें बुद्धि अनादि सर्वशक्तिमान के गुणों के लिए आवश्यक मानती है। इब्न अतिय्या (4) ने कहा: अबू अल-मा'आली ने इस विचार को कमजोर बताया (5), और यह वास्तव में (6) कमजोर है; बल्कि, इसका अर्थ उसका अस्तित्व है।

कहा गया है: यहाँ 'वजह' (चेहरे) से तात्पर्य उस दिशा से है जिसकी ओर हमें मोड़ा गया था, यानी: क़िबला।

कहा गया है: 'वजह' का अर्थ है उद्देश्य (क़सद), जैसा कि कवि ने कहा: "मैं उस पाप के लिए अल्लाह से क्षमा माँगता हूँ जिसे मैंने नहीं गिना है; दासों के रब के लिए ही उद्देश्य (वजह) और कर्म हैं।" (7)

कहा गया है: इसका अर्थ है कि अल्लाह की प्रसन्नता और उसका पुरस्कार प्राप्त हो गया, जैसा कि उसने कहा: {हम तुम्हें केवल अल्लाह के चेहरे के लिए खिलाते हैं} [अल-इंसान: 9] (8) यानी: उसकी प्रसन्नता (9) और उसके पुरस्कार की प्राप्ति के लिए। इसी से नबी ﷺ का कथन है: "जिसने अल्लाह के चेहरे की खोज में एक मस्जिद बनाई..."

(1) (म) में: किसी वस्तु के गुण का उल्लेख किया जाता है और उसका अर्थ उससे ही होता है। (2) मुशकिल अल-हदीस व बयानुहु, पृ. 357। (3) अल-मावर्दी ने अन-नुकत वल-उयून 1/177 में इसका उल्लेख किया है और इसका श्रेय नहीं दिया है; ज़ाद अल-मसीर 1/134-135 देखें। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200, और इससे पहले की बात उन्हीं की है। (5) अल-इरशाद, पृ. 146। (6) (ज़) और (म) में: "और यह वैसा ही है।" (7) यह अल-किताब 1/37, मा'आनी अल-कुरआन अल-फर्रा' 1/233, तफसीर अल-तब़री 1/170, अल-वसीत 1/194 और खिज़ानत अल-अदब 3/111 में है। अल-बगदादी ने कहा: यह पद सिबवैह के उन पचास पदों में से एक है जिनके लेखक का पता नहीं है। (8) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/200। (9) (म) में: उसकी प्रसन्नता के लिए।

۳۳۱ سورة البقرہ: آیت ۱۱۵

ابن فورک نے کہا: کبھی کسی چیز کی صفت کا ذکر کیا جاتا ہے اور اس سے مراد (۱) وہ موصوف ہوتا ہے، وسعت کے طور پر۔ جیسا کہ کہنے والا کہتا ہے: "میں نے آج فلاں کا علم دیکھا،" اور "میں نے اس کے علم کی طرف دیکھا،" اور اس سے اس کی مراد یہ ہوتی ہے کہ: "میں نے عالم کو دیکھا،" اور "میں نے عالم کی طرف دیکھا۔" اسی طرح جب یہاں 'وجہ' (چہرے) کا ذکر کیا گیا ہے، تو مراد وہ ہے جس کا چہرہ ہے، یعنی: وجود۔ اسی بنیاد پر اللہ تعالیٰ کے قول کی تاویل کی جاتی ہے: {ہم تمہیں صرف اللہ کی وجہ کے لیے کھلاتے ہیں} [الانسان: ۹] کیونکہ اس سے مراد ہے: اللہ کے لیے جس کا چہرہ ہے۔ اور اسی طرح اس کا قول: {سوائے اپنے بلند و برتر رب کی وجہ کی تلاش کے} [اللیل: ۲۰] یعنی: وہ جس کا چہرہ ہے (۲)۔

ابن عباس نے کہا: 'وجہ' اللہ عزوجل کے لیے ایک تعبیر ہے، جیسا کہ اس نے فرمایا: {اور تمہارے رب کی وجہ باقی رہے گی جو صاحبِ جلال و اکرام ہے} [الرحمن: ۲۷] (۳)۔

بعض ائمہ نے کہا: وہ ایک ایسی صفت ہے جو سمع سے ثابت ہے، اور ان صفات پر زائد ہے جو عقلیں اللہ تعالیٰ قدیم کی صفات کے لیے واجب قرار دیتی ہیں۔ ابن عطیہ (۴) نے کہا: ابو المعالی نے اس قول کو ضعیف قرار دیا (۵)، اور اسی طرح وہ (۶) ضعیف ہے، بلکہ مراد اس کا وجود ہے۔

کہا گیا ہے: یہاں 'وجہ' سے مراد وہ سمت ہے جس کی طرف ہمیں متوجہ کیا گیا، یعنی: قبلہ۔

کہا گیا ہے: 'وجہ' سے مراد ارادہ (قصد) ہے، جیسا کہ شاعر نے کہا: "میں اللہ سے اس گناہ کی معافی مانگتا ہوں جسے میں نے شمار نہیں کیا؛ بندوں کے رب کی طرف ہی قصد (وجہ) اور عمل ہے۔" (۷)

کہا گیا ہے: اس کا معنی ہے کہ اللہ کی رضا اور اس کا ثواب حاصل ہو گیا، جیسا کہ اس نے فرمایا: {ہم تمہیں صرف اللہ کی وجہ کے لیے کھلاتے ہیں} [الانسان: ۹] (۸) یعنی: اس کی رضا (۹) اور اس کے ثواب کی طلب کے لیے۔ اور اسی سے نبی کریم ﷺ کا قول ہے: "جس نے اللہ کی وجہ چاہتے ہوئے کوئی مسجد بنائی..."

(۱) (م) میں: چیز کی صفت کا ذکر کیا جاتا ہے اور اس سے مراد وہ ہوتی ہے۔ (۲) مشکل الحدیث وبیانہ ص ۳۵۷۔ (۳) اسے الماوردی نے النکت والعیون ۱۷۷/۱ میں ذکر کیا ہے اور اسے منسوب نہیں کیا، اور دیکھئے زاد المسیر ۱۳۴/۱-۱۳۵۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۰، اور اس سے پہلے کی کلام انہی کی ہے۔ (۵) الارشاد، ص ۱۴۶۔ (۶) (ز) اور (م) میں: "اور وہ اسی طرح ہے"۔ (۷) یہ الکتاب ۳۷/۱، معانی القرآن للفراء ۲۳۳/۱، تفسیر الطبری ۱/ ۱۷۰، الوسیط ۱۹۴/۱ اور خزانۃ الادب ۱۱۱/۳ میں ہے۔ بغدادی نے کہا: یہ شعر سیبویہ کے ان پچاس اشعار میں سے ہے جن کے قائل کا پتہ نہیں ہے۔ (۸) المحرر الوجیز ۲۰۰/۱۔ (۹) (م) میں: اس کی رضا کے لیے۔

332 Surah Al-Baqarah: Verse 115

...Allah will build him a house like it in Paradise (1). And His saying: "On the Day of Resurrection, sealed scrolls will be brought and set up before Allah Almighty. Allah, the Mighty and Majestic, will say to His angels: 'Discard this and accept this.' The angels will say: 'By Your Glory, our Lord, we have seen nothing but good.' Then He will say—and He knows best—'Indeed, this (2) was for other than My sake, and I do not accept any action except that which was intended for My sake,'" meaning: sincerely for Me. Narrated by Al-Daraqutni (3).

It was said: The meaning is "there is Allah," and "the face" (Al-Wajh) is a connective (silah), which is like His saying: {And He is with you} [Al-Hadid: 4]. This was said by Al-Kalbi Al-Qutabi (4), and similar is the view of the Mu'tazilah (5).

Fifth: His saying, the Almighty: {Indeed, Allah is All-Encompassing, All-Knowing}, meaning: He makes religion easy for His servants and does not burden them with what is beyond their capacity. It was said: "All-Encompassing" (Wasi') means: His knowledge encompasses everything, as He said: {His knowledge encompasses all things} [Taha: 98] (6).

Al-Farra' said: "All-Encompassing" (Al-Wasi') is the Generous One whose giving encompasses everything (7). The evidence for this is His saying, the Almighty: {And My mercy encompasses all things} [Al-A'raf: 156].

It was said: He is All-Encompassing in forgiveness (8), meaning: no sin is too great for Him. And it was said: He is Gracious to His servants and independent of their deeds. It is said: "So-and-so encompasses what is asked of him," meaning he is not stingy. Allah Almighty said: {Let the man of means spend according to his means} [Al-Talaq: 7], meaning: let the rich man spend from what Allah has given him. We have covered this in the book "Al-Asma" (9), and praise be to Allah.

(1) Narrated by Ahmad (434), Al-Bukhari (450), and Muslim (533) (and the wording is theirs) from the hadith of Uthman, may Allah be pleased with him. (2) In the copies: "except good, and He knows best, so He says that this." What is established is from Sunan al-Daraqutni. (3) In his Sunan 1/51. (4) See Ta'wil Mushkil al-Qur'an p. 198, and Tafsir al-Baghawi 1/108. (5) See Maqalat al-Islamiyyin by al-Ash'ari p. 218, and Mushkil al-Hadith by Ibn Furak p. 356. (6) See Tafsir al-Razi 4/22. (7) Mentioned by al-Baghawi in his Tafsir 1/108. (8) Previous source, and attributed to al-Kalbi. (9) Page 263.

332 सूरह अल-बक़रह: आयत 115

...अल्लाह उसके लिए जन्नत में वैसा ही घर बनाएगा (1)। और उनका कहना है: "क़यामत के दिन सील बंद पुस्तकें लाई जाएँगी और अल्लाह तआला के सामने रखी जाएँगी। अल्लाह अज़्ज़ व जल अपने फ़रिश्तों से कहेगा: 'इसे फेंक दो और इसे स्वीकार करो।' फ़रिश्ते कहेंगे: 'ऐ हमारे रब, तेरी इज़्ज़त की क़सम, हमने तो केवल भलाई ही देखी है।' फिर वह कहेगा - जबकि वह बेहतर जानता है -: 'निश्चित रूप से यह (2) मेरे अलावा किसी और के लिए था, और मैं किसी भी कार्य को स्वीकार नहीं करता जब तक कि वह केवल मेरी प्रसन्नता के लिए न किया गया हो,'" अर्थात्: पूरी तरह से मेरे लिए। इसे अल-दाराकुतनी (3) ने उद्धृत किया है।

कहा गया है: इसका अर्थ है "वहाँ अल्लाह है," और "चेहरा" (वजह) एक अतिरिक्त शब्द (सिलाह) है, और यह उनके इस कथन के समान है: {और वह तुम्हारे साथ है} [अल-हदीद: 4]। यह अल-कल्बी अल-कुतबी (4) ने कहा है, और मुताज़िला (5) का दृष्टिकोण भी इसी के समान है।

पाँचवाँ: अल्लाह तआला का कथन: {निस्संदेह अल्लाह सर्वव्यापी, सर्वज्ञ है}, अर्थात्: वह अपने बंदों के लिए उनके धर्म में आसानी पैदा करता है, और उन पर वह बोझ नहीं डालता जो उनकी सामर्थ्य से बाहर हो। कहा गया है: "सर्वव्यापी" (वासिअ) का अर्थ है: उसका ज्ञान हर चीज़ को घेरे हुए है, जैसा कि उसने कहा: {उसका ज्ञान हर चीज़ को घेरे हुए है} [ताहा: 98] (6)।

अल-फर्रा ने कहा: "सर्वव्यापी" (अल-वासिअ) वह उदार है जिसकी दानशीलता हर चीज़ तक फैली हुई है (7), इसका प्रमाण अल्लाह तआला का यह कथन है: {और मेरी दया हर चीज़ को घेरे हुए है} [अल-अराफ़: 156]।

कहा गया है: वह क्षमा करने में व्यापक (8) है, अर्थात्: कोई भी पाप उसके लिए बहुत बड़ा नहीं है। और कहा गया है: वह बंदों पर कृपा करने वाला है, और उनके कार्यों से बेनयाज़ (स्वतंत्र) है। कहा जाता है: "अमुक व्यक्ति जो माँगा जाता है उसे समाहित कर लेता है," अर्थात् वह कंजूस नहीं है। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {सामर्थ्य रखने वाले को अपनी सामर्थ्य के अनुसार खर्च करना चाहिए} [अत-तलाक़: 7] अर्थात्: धनी व्यक्ति को उसमें से खर्च करना चाहिए जो अल्लाह ने उसे दिया है। हमने इसे "अल-अस्मा" (9) पुस्तक में विस्तार से बताया है, और अल्लाह की प्रशंसा है।

(1) इसे अहमद (434), अल-बुखारी (450), और मुस्लिम (533) ने उस्मान रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से उद्धृत किया है (शब्द उन्हीं के हैं)। (2) प्रतियों में: "भलाई के सिवा और वह बेहतर जानता

है, फिर वह कहता है कि यह।" जो स्थापित है वह सुनन अल-दाराकुतनी से है। (3) उनकी सुनन 1/51 में। (4) देखें तावील मुशकिल अल-क़ुरआन पृ. 198, और तफ़्सीर अल-बग़वी 1/108। (5) देखें मक़ालात अल-इस्लामिय्यीन अल-अशअरी पृ. 218, और मुशकिल अल-हदीस इब्न फ़ुरक पृ. 356। (6) देखें तफ़्सीर अल-राज़ी 4/22। (7) अल-बग़वी ने अपनी तफ़्सीर 1/108 में इसका उल्लेख किया है। (8) पिछला स्रोत, और इसे अल-कल्बी से जोड़ा गया है। (9) पृ. 263।

۳۳۲ سورة البقرہ: آیت ۱۱۵

...اللہ اس کے لیے جنت میں اس جیسا گھر بنائے گا (۱)۔ اور آپ کا ارشاد ہے: «قیامت کے دن مہر بند صحیفے لائے جائیں گے، پس وہ اللہ تعالیٰ کے سامنے رکھے جائیں گے، تو اللہ عزوجل اپنے فرشتوں سے فرمائے گا: اسے پھینک دو، اور اسے قبول کر لو، تو فرشتے کہیں گے: اے ہمارے رب! تیری عزت کی قسم، ہم نے تو صرف خیر ہی دیکھی ہے، تو وہ فرمائے گا - حالانکہ وہ خوب جانتا ہے -: بے شک یہ (۲) میرے علاوہ کسی اور کے لیے تھا، اور میں کسی عمل کو قبول نہیں کرتا مگر وہ جو خالص میری رضا کے لیے کیا گیا ہو» یعنی: خالص میرے لیے، اسے دارقطنی نے روایت کیا ہے (۳)۔

اور کہا گیا: مراد یہ ہے کہ وہاں اللہ ہے، اور "وجہ" (چہرہ) صلہ ہے، اور یہ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی طرح ہے: ﴿وَهُوَ مَعَكُمْ﴾ [الحدید: ۴]۔ یہ قول کلبی القتبی (۴) کا ہے، اور اسی طرح معتزلہ کا قول ہے (۵)۔

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿إِنَّ اللَّهَ وَاسِعٌ عَلِيمٌ﴾ یعنی: وہ اپنے بندوں پر ان کے دین میں وسعت پیدا کرتا ہے، اور انہیں ان کی طاقت سے زیادہ تکلیف نہیں دیتا۔ اور کہا گیا: «واسع» بمعنی: اس کا علم ہر چیز کو محیط ہے، جیسا کہ فرمایا: ﴿وَسِعَ كُلَّ شَيْءٍ عِلْمًا﴾ [طہ: ۹۸] (۶)۔

اور الفراء نے کہا: الواسع: وہ سخی ہے جس کی عطا ہر چیز کو محیط ہے (۷)، اس کی دلیل اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: ﴿وَرَحْمَتِي وَسِعَتْ كُلَّ شَيْءٍ﴾ [الاعراف: ۱۵۶]۔

اور کہا گیا: وہ مغفرت میں وسعت والا ہے (۸)، یعنی: اس کے نزدیک کوئی گناہ بڑا نہیں ہے۔ اور کہا گیا: وہ بندوں پر فضل کرنے والا ہے، اور ان کے اعمال سے بے نیاز ہے، کہا جاتا ہے: "فلاں

شخص جو مانگا جائے اسے پورا کرنے کی وسعت رکھتا ہے"، یعنی وہ بخل نہیں کرتا، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿لِيُنفِقْ ذُو سَعَةٍ مِّن سَعَتِهِۦ﴾ [الطلاق: ۷] یعنی: غنی آدمی کو اس میں سے خرچ کرنا چاہیے جو اللہ نے اسے دیا ہے۔ اور ہم نے اس کا ذکر کتاب «الاسنیٰ» (۹) میں کیا ہے، والحمد للہ۔

(۱) اسے احمد (۴۳۴)، بخاری (۴۵۰) اور مسلم (۵۳۳) نے (الفاظ ان دونوں کے ہیں) حضرت عثمان رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۲) نسخوں میں ہے: سوائے خیر کے اور وہ زیادہ جانتا ہے پس وہ کہتا ہے کہ یہ۔ اور ثابت شدہ متن سنن دارقطنی سے ہے۔ (۳) اپنی سنن ۵۱/۱ میں۔ (۴) دیکھئے تأویل مشکل القرآن ص ۱۹۸، اور تفسیر بغوی ۱۰۸/۱۔ (۵) دیکھئے مقالات الإسلاميين اشعری ص ۲۱۸، اور مشکل الحدیث ابن فورک ص ۳۵۶۔ (۶) دیکھئے تفسیر رازی ۲۲/۴۔ (۷) بغوی نے اپنی تفسیر ۱۰۸/۱ میں ذکر کیا ہے۔ (۸) سابقہ مصدر، اور اسے کلبی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۹) ص ۲۶۳۔

Surah Al-Baqarah: Verse 116 333

Allah the Almighty says: {And they say, "Allah has taken a son." Exalted is He! Rather, to Him belongs whatever is in the heavens and the earth. All are devoutly obedient to Him. [116]}

In it are five issues: First: His words, {And they say, "Allah has taken a son."} This is reporting about the Christians in their saying: "The Messiah is the son of God." It was said about the Jews in their saying: "Ezra is the son of God." And it was said about the disbelievers of the Arabs in their saying: "The angels are the daughters of God." (1) Similar reports about ignorant disbelievers have appeared in Surah Maryam and Al-Anbiya. (2)

Second: His words, {Exalted is He! Rather, to Him...} the verse. Al-Bukhari recorded (3) from Ibn Abbas, from the Prophet (peace be upon him) who said: "Allah the Almighty said: 'The son of Adam denied Me, and he had no right to do so; and he insulted Me, and he had no right to do so. As for his denial of Me, it is his claim that I am not able to recreate him as he was. As for his insulting Me, it is his saying that I have a son, while I am far removed from taking a companion or a son.'"

Third: "Subhana" (Exalted) is in the accusative case as a verbal noun (absolute object), and its meaning is clearance, sanctification, and distancing from their saying that Allah has taken a son. Rather, He, the Almighty, is One in His essence, Unique in His attributes, He did not beget so as to need a companion, {How can He have a son when He has no companion and He created all things?} [Al-An'am: 101], and He was not begotten so as to be preceded [by anyone]. Exalted and High is He far above what the wrongdoers and rejectors say.

{Rather, to Him belongs whatever is in the heavens and the earth} "Ma" (whatever) is in the nominative case as the subject, and the predicate is in the prepositional phrase. Meaning: All of that belongs to Him as property through creation and origination. The one who claims He has taken a son is included among those in the heavens and the earth. (4)

It was previously mentioned that the meaning of "Subhan-Allah" is clearing Allah from all evil.

Fourth: A son can only be from the same species as the parent. So how can the Truth, Exalted is He, take a son from His creations when nothing resembles Him? He said: {Indeed, there is no one in the heavens and the earth but...}

(1) See Al-Wasit 1/195, and Asbab al-Nuzul, both by Al-Wahidi p. 26, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/201. (2) Surah Maryam, Verse (92), and Surah Al-Anbiya, Verse (26). (3) Number (4482). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/201.

सूरा अल-बक़रा: आयत 116 333

अल्लाह तआला का फरमान: {और उन्होंने कहा, "अल्लाह ने बेटा बना लिया है।" वह पाक है! बल्कि जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है, वह उसी का है। सब उसी के आज्ञाकारी हैं। [116]}

इसमें पांच मुद्दे हैं: पहला: उनका कहना: {और उन्होंने कहा, "अल्लाह ने बेटा बना लिया है।"} यह ईसाइयों के बारे में जानकारी है कि वे कहते थे: "मसीह अल्लाह के बेटे हैं।" यह भी कहा गया है कि यह यहूदियों के बारे में है जो कहते थे: "उज़ैर अल्लाह के बेटे हैं।" और यह भी कहा गया कि यह अरब के काफ़िरों के बारे में है जो कहते थे: "फरिश्ते अल्लाह की बेटियाँ हैं।" (1) अज्ञानी काफ़िरों के बारे में ऐसी खबरें सूरा मरयम और अल-अंबिया में भी आई हैं। (2)

दूसरा: उनका कहना: {वह पाक है! बल्कि उसी का है...} आयत के अंत तक। अल-बुखारी ने रिवायत की है (3) इब्ने अब्बास से, पैगंबर (स.अ.व.) से कि आपने फरमाया: "अल्लाह तआला ने फरमाया: आदम के बेटे ने मुझे झुठलाया जबकि उसे इसका हक़ नहीं था, और उसने मुझे गाली दी जबकि उसे इसका हक़ नहीं था। जहाँ तक उसका मुझे झुठलाना है, तो वह उसका यह दावा है कि मैं उसे दोबारा वैसा ही पैदा करने में सक्षम नहीं हूँ जैसा वह था। और जहाँ तक उसका मुझे गाली देना है, तो वह उसका यह कहना है कि मेरा बेटा है, जबकि मैं इससे पाक हूँ कि मेरी कोई पत्नी या बेटा हो।"

तीसरा: "सुब्हाना" मफ़ऊल मुतलक होने के नाते मंसूब है, और इसका अर्थ है अल्लाह को उनके इस दावे से पाक, बेगुनाह और दूर बताना कि अल्लाह ने बेटा बनाया है। बल्कि अल्लाह तआला अपनी ज़ात में अकेला है, अपनी सिफ़ात में बेमिसाल है, न उसने किसी को जन्म दिया कि उसे पत्नी की ज़रूरत हो, {उसके बेटा कैसे हो सकता है जबकि उसकी कोई पत्नी नहीं है और उसने हर चीज़ को पैदा किया है?} [अल-अनाम: 101] और न वह पैदा हुआ कि उससे पहले कोई होता। वह ज़ालिमों और इन्कार करने वालों की बातों से बहुत बुलंद और आला है।

{बल्कि आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है वह उसी का है} यहाँ "मा" मुब्तदा है और ख़बर जार-मजरूर में है। मतलब यह कि यह सब वजूद और ईजाद के ज़रिए उसकी मिलकियत है। और वह जो कहता है कि उसने बेटा बनाया है, वह खुद आसमानों और ज़मीन की चीज़ों में शामिल है। (4)

पहले बताया जा चुका है कि सुभान-अल्लाह का मतलब है अल्लाह को हर बुराई से बरी करना।

चौथा: संतान हमेशा माता-पिता की नस्ल से होती है। फिर हक तआला (अल्लाह) के लिए यह कैसे मुमकिन है कि वह अपनी ही बनाई हुई चीज़ों में से किसी को बेटा बनाए, जबकि उसके जैसा कोई नहीं है। अल्लाह ने फरमाया: {आसमानों और ज़मीन में जो कोई भी है, वह...}

---

(1) अल-वसीत 1/195, और असबाब अल-नुज़ूल देखें, दोनों अल-वाहिदी द्वारा, पृष्ठ 26, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/201। (2) सूरा मरयम आयत (92), और सूरा अल-अंबिया आयत (26)। (3) संख्या (4482)। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/201।

سورة البقرہ: آیت ۱۱۶ ۳۳۳

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿وَقَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا سُبْحَانَهُ بَل لَّهُ مَا فِي السَّمَوَتِ وَالْأَرْضِ كُلٌّ لَّهُ قَنِتُونَ ١١٦﴾ (اور انہوں نے کہا کہ اللہ نے بیٹا بنا لیا ہے۔ وہ پاک ہے! بلکہ جو کچھ آسمانوں اور زمین میں ہے اسی کا ہے۔ سب اسی کے فرمانبردار ہیں۔)

اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَقَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا﴾ (اور انہوں نے کہا کہ اللہ نے بیٹا بنا لیا ہے)۔ یہ نصاریٰ کے بارے میں خبر ہے ان کے اس قول پر کہ "مسیح اللہ کے بیٹے ہیں"۔ اور کہا گیا ہے کہ یہ یہودیوں کے بارے میں ہے ان کے قول پر کہ "عزیر اللہ کے بیٹے ہیں"۔ اور کہا گیا کہ یہ عرب کے کفار کے بارے میں ہے ان کے اس قول پر کہ "فرشتے اللہ کی بیٹیاں ہیں" (۱)۔ جاہل کفار کے بارے میں ایسی خبریں سورہ مریم اور سورہ انبیاء میں بھی آئی ہیں (۲)۔

دوسرا مسئلہ: اللہ کا قول: ﴿سُبْحَانَهُ بَل لَّهُ﴾ الآیہ۔ بخاری نے روایت کی ہے (۳) ابن عباس سے، نبی کریم ﷺ سے کہ آپ نے فرمایا: "اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ابنِ آدم نے مجھے جھٹلایا حالانکہ اسے اس کا حق نہ تھا، اور اس نے مجھے گالی دی حالانکہ اسے اس کا حق نہ تھا۔ رہا اس کا مجھے جھٹلانا، تو وہ اس کا یہ دعویٰ ہے کہ میں اسے دوبارہ ویسا بنانے پر قادر نہیں ہوں جیسا وہ تھا، اور رہا اس کا مجھے گالی دینا، تو وہ اس کا یہ قول ہے کہ میرا بیٹا ہے، حالانکہ میں اس سے پاک ہوں کہ میری کوئی صاحبہ (بیوی) یا بیٹا ہو"۔

تیسرا مسئلہ: "سُبْحَانَ" مصدر ہونے کی بنا پر منصوب ہے، اور اس کا معنی برأت، پاکیزگی اور ان کے اس قول سے دوری ہے کہ اللہ نے بیٹا بنایا ہے، بلکہ اللہ تعالیٰ اپنی ذات میں واحد ہے، اپنی صفات میں یکتا ہے، نہ اس نے کسی کو جنا کہ اسے بیوی کی ضرورت ہو، ﴿أَنَّى يَكُونُ لَهُ وَلَدٌ وَلَمْ

تَكُن لَّهُ صَاحِبَةٌ وَخَلَقَ كُلَّ شَيْءٍ﴾ [الأنعام: ١٠١] (اس کے اولاد کیسے ہو سکتی ہے جبکہ اس کی کوئی بیوی نہیں اور اسی نے ہر چیز کو پیدا کیا ہے) اور نہ وہ جنا گیا کہ اس سے پہلے کوئی ہوتا۔ وہ ظالموں اور منکروں کی باتوں سے بہت بلند و برتر ہے۔

﴿بَل لَّهُ مَا فِي السَّمَوَتِ وَالْأَرْضِ﴾ (بلکہ آسمانوں اور زمین میں جو کچھ ہے وہ اسی کا ہے)۔ "ما" مبتدا ہونے کی وجہ سے مرفوع ہے، اور خبر جار مجرور میں ہے۔ یعنی: یہ سب وجود اور تخلیق کے اعتبار سے اس کی ملکیت ہے۔ اور وہ شخص جو کہتا ہے کہ اس نے بیٹا بنایا ہے، وہ خود آسمانوں اور زمین کے مجموعے میں داخل ہے (۴)۔

اور پہلے یہ ذکر ہو چکا ہے کہ "سبحان الله" کا معنی ہے اللہ کی برائی سے برأت۔

چوتھا مسئلہ: اولاد ہمیشہ والد کی جنس سے ہوتی ہے، تو حق سبحانہ کے لیے یہ کیسے ممکن ہے کہ وہ اپنی مخلوقات میں سے کسی کو بیٹا بنائے، حالانکہ اس جیسی کوئی چیز نہیں ہے، اور اس نے فرمایا ہے: ﴿إِن كُلُّ مَن فِي السَّمَوَتِ وَالْأَرْضِ إِلَّا﴾ (آسمانوں اور زمین میں جو کوئی بھی ہے وہ...)

---

(۱) دیکھئے الوسیط ۱/۱۹۵، اور اسباب النزول، دونوں الواحدی کی ہیں ص ۲۶، اور المحرر الوجیز ۱/۲۰۱۔ (۲) سورہ مریم آیت (۹۲)، اور سورہ انبیاء آیت (۲۶)۔ (۳) نمبر (۴۴۸۲)۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۲۰۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 116 Page 334

"There is none in the heavens and the earth but comes to the Most Merciful as a servant" [Maryam: 93], just as He said here: "Rather, to Him belongs whatever is in the heavens and the earth." Sonship implies sameness of kind and temporal occurrence (newness), while pre-existence (eternity) implies oneness and permanence. Glory be to Him, He is the Eternal, the Ancient, the One, the Unique, the Single, the Self-Sufficient, Who neither begat nor was begotten, and there is none comparable to Him.

Furthermore, sonship contradicts servitude and worship - as will be explained in Surah Maryam (1), God willing. How can a son be a servant?! This is impossible, and what leads to the impossible is itself impossible.

Fifth: His saying, Exalted is He: "all are devoutly obedient to Him" is a subject and predicate, and the intended meaning is: "all of them," then the "h" and "m" (plural pronoun ending) were omitted (2).

"Qanitun" (devoutly obedient) means: obedient and submissive. All creatures are 'qanit' to Allah, meaning they humble themselves and obey. As for inanimate objects, their 'qunut' (obedience/submission) is in the manifestation of creation upon and within them. So, 'qunut' is obedience (3). 'Qunut' also means silence; as Zaid bin Arqam said: "We used to talk during prayer, a man would speak to his companion beside him until it was revealed: 'And stand before Allah, devoutly obedient' [Al-Baqarah: 238]. Then we were commanded to be silent and forbidden from talking" (4).

And 'qunut' is prayer; the poet said: (5) Devoutly to Allah, reciting His books, and purposefully withdrawing from the people.

Al-Suddi (6) and others said regarding His saying: "all are devoutly obedient to Him," meaning: on the Day of Resurrection. Al-Hasan (7) said: Everyone stands bearing witness that they are His servants. In language, the origin of 'qunut' is standing, hence the hadith: "The best prayer is the length of qunut (standing)" (8), as stated by Al-Zajjaj (9). So, creatures are 'qanitun,' meaning standing in servitude either...

(1) At the commentary of verse (92) thereof. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/257. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/201. (4) Narrated by Ahmad (19278), Al-Bukhari (4534), and Muslim (539). (5) We did not come across it. (6) Narrated by Al-Tabari 2/462. (7)

Majma' al-Bayan 1/434. (8) Narrated by Ahmad (14368), and Muslim (756) from the hadith of Jabir, may Allah be pleased with him. (9) Ma'ani al-Qur'an 1/198, similarly.

सूरह अल-बकरा: आयत 116 पृष्ठ 334

"आकाशों और धरती में जो कोई भी है, वह परम कृपालु के पास एक दास के रूप में ही आता है" [मरयम: 93], जैसा कि यहाँ कहा गया है: "बल्कि, आकाशों और धरती में जो कुछ भी है, वह उसी का है।" पुत्रत्व (बेटा होना) एक ही जाति का होने और नवीनता (उत्पत्ति) की मांग करता है, जबकि अनादिता (शाश्वतता) एकता और स्थायित्व की मांग करती है। वह पवित्र है, वह प्राचीन, अनादि, एक, अद्वितीय, अकेला और निरपेक्ष है, जिसने न किसी को जना और न वह स्वयं जना गया, और न कोई उसके बराबर का है।

इसके अलावा, पुत्रत्व दासता और इबादत के विपरीत है - जैसा कि इंशाल्लाह सूरह मरयम (1) में स्पष्ट किया जाएगा। एक बेटा दास कैसे हो सकता है?! यह असंभव है, और जो असंभव की ओर ले जाए वह स्वयं असंभव है।

पाँचवाँ: अल्लाह तआला का कथन: "सब उसी के आज्ञाकारी हैं" (कल्लुल्लहू क़ानितून) उद्देश्य और विधेय है, और इसका अर्थ है: "वे सब," फिर 'ह' और 'म' (बहुवचन प्रत्यय) को हटा दिया गया (2)।

"क़ानितून" का अर्थ है: आज्ञाकारी और विनम्र। सभी प्राणी अल्लाह के लिए 'क़ुनूत' करते हैं, अर्थात वे विनम्र होते हैं और आज्ञा मानते हैं। निर्जीव वस्तुओं का 'क़ुनूत' उन पर और उनमें सृजन की कला के प्रकट होने में है। अतः क़ुनूत आज्ञाकारिता है (3)। क़ुनूत का अर्थ खामोशी भी है; ज़ैद बिन अरक़म ने कहा: "हम नमाज़ में बातें किया करते थे, एक आदमी अपने साथ वाले साथी से बात करता था, यहाँ तक कि यह आयत उतरी: 'और अल्लाह के सामने आज्ञाकारी होकर खड़े रहो' [अल-बकरा: 238]। तब हमें खामोश रहने का आदेश दिया गया और बात करने से मना किया गया" (4)।

और क़ुनूत का अर्थ नमाज़ भी है; कवि ने कहा: (5) अल्लाह के लिए आज्ञाकारी, उसकी किताबों की तिलावत करते हुए, और जानबूझकर लोगों से अलग होकर।

अल-सुद्दी (6) और अन्य ने अल्लाह के कथन "सब उसी के आज्ञाकारी हैं" के बारे में कहा: अर्थात क़ियामत के दिन। अल-हसन (7) ने कहा: हर कोई इस गवाही के साथ खड़ा है कि वह उसका दास है। भाषा में क़ुनूत का मूल अर्थ खड़ा होना है, इसी से हदीस है: "सबसे श्रेष्ठ नमाज़ वह है जिसमें क़ुनूत (खड़ा होना) लंबा हो" (8), यह अल-ज़ज्जाज (9) ने कहा है। अतः सृजन 'क़ानितून' है, अर्थात दासता में खड़ा है चाहे...

(1) उसकी आयत (92) की व्याख्या के समय। (2) इ'राब अल-कुरान, अल-नहहास द्वारा 1/257। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/201। (4) इसे अहमद (19278), बुखारी (4534) और मुस्लिम (539) ने उद्धृत किया है। (5) हमें यह नहीं मिला। (6) इसे अल-तबरी 2/462 ने उद्धृत किया है। (7) मजमा अल-बयान 1/434। (8) इसे अहमद (14368) और मुस्लिम (756) ने जाबिर (रज़ि.) की हदीस से उद्धृत किया है। (9) मानी अल-कुरान 1/198, इसी तरह।

سورہ البقرہ: آیت ۱۱٦ صفحہ ۳۳٤

"آسمانوں اور زمین میں جو کوئی بھی ہے، وہ رحمن کے پاس بندہ بن کر ہی آنے والا ہے" [مریم: ۹۳]، جیسا کہ یہاں فرمایا: "بلکہ جو کچھ آسمانوں اور زمین میں ہے، سب اسی کا ہے۔" بیٹا ہونا ہم جنسیت اور حادث (نئی چیز) ہونے کا تقاضا کرتا ہے، جبکہ قدیم ہونا وحدانیت اور ثبوت کا تقاضا کرتا ہے۔ وہ پاک ہے، وہ قدیم ازلی ہے، یکتا، اکیلا، فرد اور صمد ہے، جس نے نہ کسی کو جنا اور نہ وہ خود جنا گیا، اور کوئی اس کے برابر نہیں۔

مزید یہ کہ بیٹا ہونا غلامی اور بندگی کے منافی ہے - جیسا کہ ان شاء اللہ سورہ مریم (۱) میں اس کی وضاحت آئے گی۔ تو بیٹا بندہ کیسے ہو سکتا ہے؟! یہ محال ہے، اور جو چیز محال کی طرف لے جائے وہ بھی محال ہے۔

پانچواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: "سب اسی کے فرمانبردار ہیں" (كلٌّ له قانتون) مبتدا اور خبر ہے، اور اس کی اصل تقدیر (پوشیدہ معنی) "كلّهم" (وہ سب) ہے، پھر 'ہا' اور 'میم' کو حذف کر دیا گیا (۲)۔

"قانتون" کا مطلب ہے: فرمانبردار اور عاجزی کرنے والے۔ پس تمام مخلوقات اللہ کے لیے 'قنوت' کرتی ہیں، یعنی وہ عاجزی کرتی ہیں اور اطاعت کرتی ہیں۔ بے جان چیزوں کا قنوت ان پر اور ان میں اللہ کی کاریگری کے ظہور میں ہے۔ پس قنوت اطاعت ہے (۳)۔ اور قنوت خاموشی بھی ہے؛ زید بن ارقم فرماتے ہیں: "ہم نماز میں باتیں کیا کرتے تھے، ایک آدمی اپنے برابر والے ساتھی سے بات کرتا تھا یہاں تک کہ یہ آیت نازل ہوئی: 'اور اللہ کے لیے فرمانبردار بن کر کھڑے رہو' [البقرہ: ۲۳۸]، تو ہمیں خاموش رہنے کا حکم دیا گیا اور کلام کرنے سے روک دیا گیا" (٤)۔

اور قنوت کا مطلب نماز بھی ہے؛ شاعر نے کہا: (٥) اللہ کا فرمانبردار اس کی کتابوں کی تلاوت کرتا ہے، اور لوگوں سے الگ تھلگ رہنے کا پختہ ارادہ رکھتا ہے۔

سدی (٦) اور دیگر نے اللہ کے فرمان "سب اسی کے فرمانبردار ہیں" کے بارے میں کہا: یعنی قیامت کے دن۔ حسن (٧) نے کہا: ہر کوئی اس گواہی پر قائم ہے کہ وہ اس کا بندہ ہے۔ لغت میں قنوت کی اصل قیام (کھڑا ہونا) ہے، اسی سے حدیث ہے: "افضل نماز طویل قنوت (قیام) والی ہے" (٨)، یہ زجاج (٩) نے کہا ہے۔ پس مخلوق قانت ہے، یعنی بندگی میں کھڑی ہے خواہ...

(١) اس کی آیت (٩٢) کی تفسیر کے وقت۔ (٢) اعراب القرآن للنحاس ١/ ٢٥٧۔ (٣) المحرر الوجیز ١/ ٢٠١۔ (٤) اسے احمد (١٩٢٧٨)، بخاری (٤٥٣٤) اور مسلم (٥٣٩) نے روایت کیا ہے۔ (٥) ہمیں یہ نہیں ملا۔ (٦) اسے طبری نے ٤٦٢/٢ میں روایت کیا ہے۔ (٧) مجمع البیان ١/ ٤٣٤۔ (٨) اسے احمد (١٤٣٦٨) اور مسلم (٧٥٦) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٩) معانی القرآن ان کے لیے ١/ ١٩٨، اسی طرح۔

335 Surat Al-Baqarah: Verse 117

...acknowledgment, and either they should be in opposition to that, for the mark of craftsmanship is evident upon them. It was said: its origin is obedience, and from it is the saying of the Almighty: {and the obedient men and the obedient women} [Al-Ahzab: 35]. More explanation of this will come at the saying of the Almighty: {and stand before Allah, devoutly obedient}.

The saying of the Almighty: {Originator of the heavens and the earth. When He decrees a matter, He only says to it, "Be," and it is.} There are six issues regarding it:

First: His saying: {Originator of the heavens and the earth} - 'Badi" is a form for exaggeration (superlative), and it is raised as a news (predicative) for a hidden subject, and the name of the active subject is 'Mubdi' (Originator)', like 'Basir' from 'Mubsir'. He originated the thing without a prior example, so Allah, the Mighty and Sublime, is the Originator of the heavens and the earth, meaning: their Bringer-into-existence, their Maker, and their Inventor from non-existence and without an example. Everyone who creates what has not been preceded by others is called a 'Mubdi', and from it are the practitioners of innovations (Bid'ah). And innovation was called 'Bid'ah' because its author originated it without any prior action or saying from an Imam, and in Bukhari: "What a good bid'ah this is," meaning the standing of Ramadan.

Second: Every innovation (Bid'ah) that originates from a created being is either such that it has an origin in the Sharia or it does not. If it has an origin, it falls under the generality of what Allah called for and His Messenger encouraged, so it is in the realm of praise. Even if it did not have a present example like a type of generosity and benevolence, then this action of his is among the commendable deeds, even if the doer was not preceded in it. This is supported by the saying of Umar, may Allah be pleased with him: "What a good bid'ah this is," because that was among the good deeds and entered the realm of praise, even if the Prophet, peace and blessings of Allah be upon him, had performed it, but he did not persist in it, nor did he gather the people for it. So Umar's, may Allah be pleased with him, preservation of it and gathering people for it and calling them to it is a 'Bid'ah', but it is a 'praiseworthy bid'ah' (3). If it is in contradiction to what Allah and His Messenger commanded, it is in the realm of blame and rejection. Al-Khattabi and others said so (4).

(1) Al-Sihah (Qant). (2) Sahih Al-Bukhari (2010), and it is from the saying of Umar, may Allah be pleased with him, regarding gathering people under one reciter in the

standing of Ramadan. (3) Innovations in worship are all blameworthy, and the saying of Umar, may Allah be pleased with him, regarding gathering people in Tarawih prayer: "What a good bid'ah this is," the scholars have said that his intention is based on the linguistic origin of the word bid'ah, meaning anything newly invented. (4) Al-Nihaya fi Gharib Al-Hadith by Ibn Al-Athir 106/1, and see Ma'alim Al-Hadith by Al-Khattabi 2/984.

335 सूरत अल-बक़रह: आयत 117

...स्वीकृति, और या तो उन्हें इसके विपरीत होना चाहिए, क्योंकि कारीगरी का निशान उन पर स्पष्ट है। कहा गया: इसका मूल आज्ञाकारिता है, और इसी से सर्वशक्तिमान का कथन है: {और आज्ञाकारी पुरुष और आज्ञाकारी स्त्रियाँ} [अल-अहज़ाब: 35]। इसका और अधिक स्पष्टीकरण सर्वशक्तिमान के इस कथन पर आएगा: {और अल्लाह के सामने विनीत भाव से खड़े होओ}।

सर्वशक्तिमान का कथन: {आकाशों और पृथ्वी का अनूठा पैदा करने वाला। जब वह किसी बात का निर्णय कर लेता है, तो उसके लिए बस इतना कहता है, "हो जा," तो वह हो जाती है।} इसमें छह मुद्दे हैं:

पहला: उसका कथन: {आकाशों और पृथ्वी का अनूठा पैदा करने वाला} - 'बदी' (Badi') अतिशयोक्ति का एक रूप है, और यह एक छिपे हुए विषय के लिए समाचार (विधेय) के रूप में ऊपर उठाया गया है, और सक्रिय कर्ता का नाम 'मुब्दी' (Mubdi') है, जैसे 'मुब्सिर' से 'बसीर'। उसने किसी पूर्व उदाहरण के बिना चीज़ की शुरुआत की, इसलिए अल्लाह, जो पराक्रमी और महान है, आकाशों और पृथ्वी का अनूठा निर्माता है, जिसका अर्थ है: उन्हें अस्तित्व में लाने वाला, उनका बनाने वाला और उन्हें शून्यता से और बिना किसी उदाहरण के आविष्कार करने वाला। हर वह व्यक्ति जो वह बनाता है जो दूसरों से पहले नहीं किया गया है, 'मुब्दी' कहलाता है, और इसी से नवाचारों (बिदअत) के अभ्यासकर्ता आते हैं। और नवाचार को 'बिदअत' कहा गया क्योंकि इसके लेखक ने किसी इमाम की किसी पूर्व क्रिया या कथन के बिना इसकी शुरुआत की, और बुखारी में है: "यह कितनी अच्छी बिदअत है," यानी रमजान का कयाम (तरावीह)।

दूसरा: हर वह नवाचार (बिदअत) जो किसी प्राणी से उत्पन्न होता है, या तो ऐसा होता है जिसका शरिया में कोई आधार होता है या नहीं होता। यदि इसका कोई आधार है, तो यह उस व्यापकता के अंतर्गत आता है जिसे अल्लाह ने पुकारा और उसके रसूल ने प्रोत्साहित किया, इसलिए यह प्रशंसा के दायरे में है। भले ही उसका कोई वर्तमान उदाहरण न हो जैसे कि उदारता और परोपकार का एक प्रकार, तो उसका यह कार्य सराहनीय कार्यों में से है, भले ही कर्ता उससे पहले इसमें न रहा हो। यह उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) के इस कथन से समर्थित है: "यह कितनी अच्छी बिदअत है," क्योंकि वह अच्छे कार्यों में से था और प्रशंसा के दायरे में आता था, भले ही नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने इसे किया था, लेकिन उन्होंने इसे जारी नहीं रखा, और न ही इसके लिए लोगों को इकट्ठा किया।

इसलिए उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का इसे संरक्षित करना और इसके लिए लोगों को इकट्ठा करना और उन्हें इसके लिए बुलाना एक 'बिदअत' है, लेकिन यह एक 'प्रशंसनीय बिदअत' (3) है। यदि यह अल्लाह और उसके रसूल के आदेश के विपरीत है, तो यह निंदा और अस्वीकृति के दायरे में है। अल-खत्ताबी और अन्य लोगों ने ऐसा ही कहा है (4)।

(1) अल-सिहाह (क़न्त)। (2) सहीह अल-बुखारी (2010), और यह रमजान के कयाम में लोगों को एक कारी (पाठक) के पीछे इकट्ठा करने के संबंध में उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कथन है। (3) इबादत में नवाचार सभी निंदनीय हैं, और तरावीह की नमाज में लोगों को इकट्ठा करने के संबंध में उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) का कथन: "यह कितनी अच्छी बिदअत है," विद्वानों ने कहा है कि उनका उद्देश्य बिदअत शब्द के भाषाई मूल पर आधारित है, जिसका अर्थ है कोई भी नई खोजी गई चीज़। (4) इब्न अल-अथिर द्वारा अन-निहाया फाई गरीब अल-हदीस 106/1, और अल-खत्ताबी द्वारा मालिम अल-हदीस 2/984 देखें।

۳۳۵ سورة البقرہ: آیت ۱۱۷

...اقراراً، اور یا تو ان کو اس کے خلاف ہونا چاہیے، کیونکہ ان پر صنعت کا نشان ظاہر ہے۔ کہا گیا: اس کی اصل اطاعت ہے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: {وَالْقَانِتِينَ وَالْقَانِتَاتِ} [الاحزاب: ۳۵]۔ اور اس کی مزید وضاحت اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس آئے گی: {وَقُومُوا لِلَّهِ قَانِتِينَ}۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {بَدِيعُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ ۖ وَإِذَا قَضَىٰ أَمْرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُ كُن فَيَكُونُ} اس میں چھ مسائل ہیں:

پہلا: اس کا قول: {بَدِيعُ السَّمَاوَاتِ وَالْأَرْضِ} - 'بدیع' مبالغے کے لیے فعیل کے وزن پر ہے، اور یہ ایک محذوف مبتدا کی خبر ہونے کی بنا پر مرفوع ہے، اور اسم فاعل 'مبدع' ہے، جیسے 'مبصر' سے 'بصیر'۔ اس نے کسی چیز کو بغیر کسی سابقہ مثال کے ایجاد کیا، پس اللہ عزوجل آسمانوں اور زمین کا بدیع ہے، یعنی: ان کو وجود میں لانے والا، ان کو پیدا کرنے والا اور ان کو عدم سے اور بغیر کسی مثال کے ایجاد کرنے والا۔ ہر وہ شخص جو ایسی چیز ایجاد کرے جس میں اس سے پہلے کسی نے سبقت نہ کی ہو، اسے 'مبدع' کہا جاتا ہے، اور اسی سے بدعت والے ہیں۔ اور بدعت کو 'بدعت' اس لیے کہا گیا کیونکہ اس کے کہنے والے نے اسے کسی امام کے فعل یا قول کے بغیر ایجاد کیا، اور بخاری میں ہے: "نِعْمَتِ الْبِدْعَةُ هَذِهِ" (یہ کیا ہی اچھی بدعت ہے)، یعنی قیامِ رمضان۔

دوسرا: ہر وہ بدعت جو کسی مخلوق سے صادر ہو، اس کی دو صورتیں ہیں: یا تو اس کی شریعت میں کوئی اصل ہوگی یا نہیں۔ اگر اس کی کوئی اصل ہے تو وہ اس عموم کے تحت داخل ہے جس کی اللہ نے دعوت دی اور اس کے رسول نے اس پر ابھارا، پس وہ تعریف کے دائرے میں ہے۔ اگرچہ اس کی موجودہ مثال نہ ہو جیسے سخاوت اور احسان کی کوئی قسم، تو اس کا یہ فعل پسندیدہ

افعال میں سے ہے، اگرچہ اس سے پہلے اس میں کسی فاعل نے سبقت نہ کی ہو۔ اور اس کی تائید حضرت عمر رضی اللہ عنہ کے اس قول سے ہوتی ہے: "نِعْمَتِ الْبِدْعَةُ هَذِهِ"، کیونکہ یہ نیکی کے کاموں میں سے تھا اور تعریف کے دائرے میں داخل تھا، اگرچہ نبی صلی اللہ علیہ وسلم نے اسے ادا کیا تھا، لیکن آپ نے اسے ہمیشہ نہیں کیا تھا، اور نہ ہی لوگوں کو اس پر جمع کیا تھا۔ پس حضرت عمر رضی اللہ عنہ کا اس پر محافظت کرنا اور لوگوں کو اس پر جمع کرنا اور انہیں اس کی طرف بلانا ایک 'بدعت' ہے، لیکن یہ ایک 'پسندیدہ بدعت' (۳) ہے۔ اور اگر وہ اللہ اور اس کے رسول کے حکم کے خلاف ہے، تو وہ مذمت اور انکار کے دائرے میں ہے۔ خطابی وغیرہ نے یہی کہا ہے (۴)۔

(۱) الصحاح (قنت)۔ (۲) صحیح بخاری (۲۰۱۰)، اور یہ حضرت عمر رضی اللہ عنہ کا قول ہے جو انہوں نے قیامِ رمضان میں لوگوں کو ایک قاری پر جمع کرنے کے بارے میں کہا تھا۔ (۳) عبادات میں تمام بدعتیں مذموم ہیں، اور حضرت عمر رضی اللہ عنہ کا نمازِ تراویح میں لوگوں کو جمع کرنے کے بارے میں قول: "نِعْمَتِ الْبِدْعَةُ هَذِهِ" کے بارے میں علماء نے کہا ہے کہ ان کا مقصد لفظِ بدعت کے لغوی معنی پر محمول ہے، یعنی ہر وہ نئی چیز جو ایجاد کی جائے۔ (۴) النہایہ فی غریب الحدیث لابن الاثیر ۱۰۶/۱، اور دیکھئے اعلام الحدیث للخطابی ۲/ ۹۸۴۔

Surah Al-Baqarah: Verse 117 336

I said: This is the meaning of the Prophet's (peace and blessings be upon him) statement in his sermon: "The worst of matters are newly-invented ones, and every innovation (bid'ah) is misguidance." (1) This refers to what does not conform to the Book or the Sunnah, or the practice of the Companions (may Allah be pleased with them). He explained this by saying: "Whoever starts a good practice (sunnah) in Islam will have its reward and the reward of those who act upon it after him, without their rewards being diminished in the slightest. And whoever starts an evil practice in Islam will bear its burden and the burden of those who act upon it after him, without their burdens being diminished in the slightest." (2) This is an indication of what is innovated of the ugly and the good, and it is the basis of this chapter. With Allah lies protection and success; there is no Lord besides Him.

Third: His, the Exalted, saying: {When He decrees a matter, He only says to it, "Be," and it is.} [Al-Baqarah: 117]. That is: when He intends its perfection and completion - as preceded in His knowledge - He says to it: "Be." Ibn 'Arafah said: "Decreeing (qada') a thing is its perfection, execution, and finishing. From it, the judge (al-qadi) is named, because when he judges, he has finished what was between the two disputants." Al-Azhari (3) said: "'Qada'' in language has several facets, all referring back to the termination and completion of a thing. Abu Dhu'ayb said:

'And upon them are two woven coats [of mail] finished by ... David, or the work of the skilled maker of long coats, Tubba'.' (4)

And Ash-Shammaakh said regarding Umar ibn Al-Khattab (may Allah be pleased with him):

'You settled matters and then left behind ... calamities in their buds that had not yet bloomed.' (5)

Our scholars said: 'Qada'' is a homonymous term. It can mean creation; Allah the Exalted said: {Then He completed them as seven heavens in two days} [Fussilat: 12], meaning: He created them. It can mean informing; Allah the Exalted said: {And We decreed for the Children of Israel in the Scripture} [Al-Isra': 4], meaning: We informed [them]. And it can mean...

(1) It is part of a hadith from Jabir, narrated by Ahmad (14334) and Muslim (867). (2) Narrated by Ahmad (19174) and Muslim (1017) from the hadith of Jarir bin Abdullah (may Allah be pleased with him). (3) Tahdhib al-Lughah (9/211). (4) Diwan al-

Hudhaliyyin p. 19, Tahdhib al-Lughah, and Sirr Sina'at al-I'rab 2/760. His words 'masrudatan' mean: two coats of armor; 'qadahuma': David (peace be upon him) finished them; and 'as-san'': the one skilled in work, then he attributed Tubba' to 'san''. See the commentary on the Diwan. (5) His Diwan p. 449, and the commentary on Diwan al-Hamasa by al-Marzuqi p. 1091. The wording in them is 'bawa'ij' instead of 'bawa'iq', and it is with the author's wording in al-Aghani 9/159. His words 'bawa'iq' is the plural of 'ba'iqah', which means a calamity.

सूरह अल-बकरा: आयत ११७ ३३६

मैंने कहा: यह पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के उनके खुतबे (भाषण) में दिए गए कथन का अर्थ है: "सबसे बुरे मामले वे हैं जो नए आविष्कार किए गए हैं, और हर नवाचार (बिदअत) पथभ्रष्टता है।" (१) इसका अर्थ वह है जो किताब (कुरान) या सुन्नत, या सहाबा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के कार्यों के अनुरूप नहीं है। उन्होंने इसे यह कहकर स्पष्ट किया है: "जो इस्लाम में कोई अच्छी प्रथा (सुन्नत) शुरू करता है, उसे उसका प्रतिफल मिलेगा और उसके बाद उस पर चलने वालों का भी प्रतिफल मिलेगा, बिना उनके प्रतिफल में कोई कमी आए। और जो इस्लाम में कोई बुरी प्रथा शुरू करता है, तो उस पर उसका बोझ होगा और उसके बाद उस पर चलने वालों का भी बोझ होगा, बिना उनके बोझ में कोई कमी आए।" (२) यह बुरे और अच्छे आविष्कारों का संकेत है, और यही इस अध्याय का आधार है। अल्लाह ही से सुरक्षा और सफलता है; उसके सिवा कोई रब नहीं है।

तीसरी बात: अल्लाह तआला का कथन: {और जब वह किसी काम का निर्णय कर लेता है, तो वह उसके बारे में बस यही कहता है कि "हो जा," तो वह हो जाता है।} यानी: जब वह उसे दृढ़ और पूर्ण बनाने का इरादा करता है - जैसा कि उसके ज्ञान में पहले से था - तो वह उससे कहता है: "हो जा।" इब्न अराफ़ा ने कहा: "किसी चीज़ का 'कज़ा' (निर्णय) करना उसे दृढ़ करना, उसे लागू करना और उसे पूरा करना है। इसी से 'काज़ी' (न्यायाधीश) का नाम पड़ा है, क्योंकि जब वह निर्णय देता है, तो वह दो विवादियों के बीच के मामले को समाप्त कर देता है।" अल-अज़हरी (३) ने कहा: "भाषा में 'कज़ा' के कई अर्थ हैं, जो किसी चीज़ की समाप्ति और पूर्णता की ओर इशारा करते हैं। अबू ज़ुहैब ने कहा:

'और उन पर दो बुनी हुई ज़िरहें हैं जिन्हें पूरा किया ... दाऊद ने, या लंबी ज़िरहें बनाने वाले कुशल 'तुब्बा' का काम है।' (४)

और अश-शम्माख ने उमर बिन अल-खत्ताब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के बारे में कहा:

'आपने मामलों का फैसला किया और फिर उनके पीछे छोड़ गए ... कलियाँ जिनमें मुसीबतें थीं जो अभी खिली नहीं थीं।' (५)

हमारे विद्वानों ने कहा: 'कज़ा' एक अनेकार्थी शब्द है। यह सृजन (पैदा करना) के अर्थ में हो सकता है; अल्लाह तआला ने फरमाया: {फिर उसने दो दिनों में उन्हें सात आसमान बना दिया} [फुस्सिलत: १२], यानी: उन्हें पैदा किया। और यह सूचित करने के अर्थ में भी हो सकता है; अल्लाह तआला ने

फरमाया: {और हमने किताब में बनी इसराइल को सूचित कर दिया था} [अल-इसरा: ४], यानी: हमने उन्हें बता दिया था। और यह...

(१) यह जाबिर की एक हदीस का हिस्सा है जिसे अहमद (१४३३४) और मुस्लिम (८६७) ने उद्धृत किया है। (२) इसे अहमद (१९१७४) और मुस्लिम (१०१७) ने जरीर बिन अब्दुल्लाह (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। (३) तहज़ीब अल-लुग़ा (९/२११)। (४) दीवान अल-हुज़ालिय्यीन पृ. १९, तहज़ीब अल-लुग़ा, और सिर्र सिनाअत अल-इराब २/७६०। उनके शब्द 'मसरूदतान' का अर्थ है: दो ज़िरहें; 'कज़ाहमा': दाऊद (अलैहिस्सलाम) ने उन्हें पूरा किया; और 'अस-सन'': काम में कुशल व्यक्ति, फिर उन्होंने 'तुब्बा' को 'सन' की ओर वापस मोड़ा। दीवान की व्याख्या देखें। (५) उनका दीवान पृ. ४४९, और अल-मरज़ूकी द्वारा दीवान अल-हमासा की व्याख्या पृ. १०९१। उनमें शब्द 'बवाइज' है 'बवाइक' के बजाय, और यह अल-अघानी ९/१५९ में लेखक के शब्दों के साथ है। 'बवाइक' शब्द 'बाइका' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है विपत्ति।

سورة البقرہ: آیت ۱۱۷ ۳۳۶

میں نے کہا: یہ آپ ﷺ کے اپنے خطبے میں اس قول کا مفہوم ہے: "بدترین امور نو ایجاد شدہ ہیں، اور ہر بدعت گمراہی ہے۔" (۱) اس سے مراد وہ ہے جو کتاب یا سنت، یا صحابہ رضی اللہ عنہم کے عمل کے موافق نہ ہو۔ آپ نے اس کی وضاحت اپنے اس قول سے کی ہے: "جس نے اسلام میں کوئی اچھا طریقہ (سنتِ حسنہ) رائج کیا، اسے اس کا اجر ملے گا اور ان لوگوں کا بھی اجر ملے گا جو اس کے بعد اس پر عمل کریں گے، بغیر اس کے کہ ان کے اجروں میں کوئی کمی کی جائے۔ اور جس نے اسلام میں کوئی برا طریقہ رائج کیا، اس پر اس کا وبال ہوگا اور ان لوگوں کا بھی وبال ہوگا جو اس کے بعد اس پر عمل کریں گے، بغیر اس کے کہ ان کے بوجھ میں کوئی کمی کی جائے۔" (۲) یہ قبیح (بری) اور حسن (اچھی) ایجادات کی طرف اشارہ ہے، اور یہی اس باب کی اصل ہے، اور اللہ ہی کی طرف سے عصمت اور توفیق ہے، اس کے سوا کوئی رب نہیں۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَإِذَا قَضَى أَمْرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُ كُن فَيَكُونُ﴾ یعنی: جب وہ کسی کام کو مضبوط اور مکمل کرنے کا ارادہ فرماتا ہے - جیسا کہ اس کے علم میں پہلے سے تھا - تو وہ اس سے فرماتا ہے: "ہو جا"۔ ابن عرفہ نے کہا: کسی چیز کا "قضاء" اسے پختہ کرنا، اسے نافذ کرنا اور اس سے فارغ ہونا ہے۔ اسی سے "قاضی" کا نام مشتق ہے، کیونکہ جب وہ فیصلہ کرتا ہے، تو وہ دو فریقوں کے درمیان معاملے کو ختم کر دیتا ہے۔ الازہری (۳) نے کہا: "قضی" لغت میں کئی معنوں میں آتا ہے، جن کا مرجع کسی چیز کا ختم ہونا اور اس کا پورا ہونا ہے۔ ابو ذؤیب نے کہا:

وعليهما مَسْرُودتانِ قضاهما ... داودُ أو صَنْعُ السَّوابغِ تُبَّعُ (٤)

اور الشماخ نے عمر بن الخطاب رضی اللہ عنہ کے بارے میں کہا:

قضيتَ أموراً ثم غادَرْتَ بَعْدَها ... بَوَائقَ في أكمامها لم تُفَتَّقِ (٥)

ہمارے علماء نے کہا: "قَضَى" ایک مشترک لفظ ہے، یہ "خلق" (پیدا کرنے) کے معنی میں ہوتا ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَقَضَىٰهُنَّ سَبْعَ سَمَوَاتٍ فِي يَوْمَيْنِ﴾ [فصلت: ١٢]، یعنی: انہیں پیدا کیا، اور یہ "اعلام" (خبر دینے) کے معنی میں ہوتا ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَقَضَيْنَا إِلَى بَنِي إِسْرَاوِيلَ فِي الْكِتَابِ﴾ [الاسراء: ٤]، یعنی: ہم نے انہیں بتا دیا، اور یہ...

(١) یہ جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث کا ایک ٹکڑا ہے جسے احمد (١٤٣٣٤) اور مسلم (٨٦٧) نے روایت کیا ہے۔ (٢) اسے احمد (١٩١٧٤) اور مسلم (١٠١٧) نے جریر بن عبد اللہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٣) تہذیب اللغۃ (٩/٢١١)۔ (٤) دیوان الہذلیین ص ١٩، تہذیب اللغۃ، اور سر صناعۃ الاعراب ٢/٧٦٠۔ ان کا قول: 'مسرودتان'، یعنی: دو زرہیں، 'قضاہما': داؤد علیہ السلام ان سے فارغ ہوئے، اور 'الصَّنْع': کام میں ماہر، پھر انہوں نے 'تبع' کو 'صنع' کی طرف لوٹایا۔ دیوان کی شرح دیکھیں۔ (٥) ان کا دیوان ص ٤٤٩، اور المرزوقی کی شرح دیوان الحماسہ ص ١٠٩١، اور ان میں لفظ 'بوائج' ہے 'بوائق' کی جگہ، اور یہ مصنف کے لفظ کے ساتھ الاغانی ٩/١٥٩ میں ہے۔ 'بواتق' بائقہ کی جمع ہے، جس کے معنی مصیبت یا آفت کے ہیں۔

Command, such as the Almighty's saying: {And your Lord has decreed that you worship none but Him} [Al-Isra: 23]. It can be in the sense of obligation and execution of rulings; and from it, the ruler is called a judge (qadi). It can also be in the sense of fulfilling a right, as Allah the Almighty said: {And when Moses had fulfilled the term} [Al-Qasas: 29]. It can also be in the sense of will, as in His saying: {So when He decrees a matter, He only says to it, 'Be,' and it is} [Ghafir: 68], meaning: when He intends to create something.

Ibn Atiyyah (1) said: "Qada" means: preordained, and it may come in the sense of: executed. Both meanings are applicable to this verse according to the view of the People of the Sunnah: He preordained in eternity and executed therein. According to the Mu'tazilite view, it means "executed" at the time of creation and bringing into existence.

Fourth: His Almighty's saying: {a matter (Amran)}. 'Al-Amr' is the singular of 'al-umur' (affairs/matters), and it is not the verbal noun of 'amara ya'muru' (to command) (2).

Our scholars said: 'Al-Amr' in the Qur'an is used in fourteen ways:

First: Religion; Allah the Almighty said: {until the truth came and the command of Allah became manifest} [At-Tawbah: 48], meaning the religion of Allah, Islam.

Second: The word/speech, including His Almighty's saying: {So when Our command came} [Al-Mu'minun: 27] meaning Our word, and His saying: {So they disputed their matter among themselves} [Taha: 62] meaning their speech.

Third: Punishment, including His Almighty's saying: {When the matter is concluded} [Ibrahim: 22] meaning when the punishment became mandatory for the people of the Fire.

Fourth: Jesus, peace be upon him; Allah the Almighty said: {when He decrees a matter} [Maryam: 35] meaning Jesus, and it was in His knowledge that he would be without a father.

Fifth: Killing at Badr; Allah the Almighty said: {So when the command of Allah comes} [Ghafir: 78] meaning the killing at Badr, and His Almighty's saying: {so that Allah might accomplish a matter already ordained} [Al-Anfal: 42] meaning the killing of the disbelievers of Mecca.

Sixth: The conquest of Mecca; Allah the Almighty said: {so wait until Allah brings about His command} [At-Tawbah: 24] meaning the conquest of Mecca.

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/201-202. (2) The previous source.

आदेश, जैसे सर्वशक्तिमान का कहना है: {और आपके पालनहार ने यह आदेश दिया है कि आप उसके अलावा किसी की इबादत न करें} [अल-इसरा: 23]। यह दायित्व और निर्णयों के निष्पादन के अर्थ में हो सकता है; और इसी से शासक को 'काजी' (न्यायाधीश) कहा जाता है। इसका अर्थ किसी अधिकार को पूरा करना भी हो सकता है, जैसा कि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {और जब मूसा ने अपनी अवधि पूरी कर ली} [अल-क़सस: 29]। इसका अर्थ इच्छा या संकल्प भी हो सकता है, जैसे कि उनका कहना है: {जब वह किसी मामले का निर्णय करता है, तो वह उससे बस कहता है, 'हो जा,' और वह हो जाता है} [गाफिर: 68], अर्थात: जब वह किसी चीज़ को बनाने का इरादा करता है।

इब्न अतिय्याह (1) ने कहा: "क़ज़ा" का अर्थ है: पूर्व-निर्धारित, और यह "निष्पादित" के अर्थ में भी आ सकता है। अहलुस सुन्नत के मत के अनुसार इस आयत में दोनों अर्थ लागू होते हैं: उसने अनादि काल में पूर्व-निर्धारित किया और उसमें निष्पादित किया। मुअतज़िला मत के अनुसार, इसका अर्थ सृष्टि और अस्तित्व में लाने के समय "निष्पादित" करना है।

चौथा: सर्वशक्तिमान का कहना: {अमरा (एक मामला)}। 'अल-अम्र' (मामला) 'अल-उमूर' (मामलों) का एकवचन है, और यह 'अमरा यअमुरू' (आदेश देना) की क्रियावाचक संज्ञा नहीं है (2)।

हमारे विद्वानों ने कहा: कुरान में 'अल-अम्र' शब्द का प्रयोग चौदह अर्थों में किया गया है:

पहला: धर्म; अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {यहाँ तक कि सत्य आ गया और अल्लाह का आदेश प्रकट हो गया} [अत-तौबा: 48], जिसका अर्थ है अल्लाह का धर्म, इस्लाम।

दूसरा: बात/कथन; जिसमें सर्वशक्तिमान का कहना शामिल है: {फिर जब हमारा आदेश आया} [अल-मुमिनून: 27], जिसका अर्थ है हमारी बात, और उनका कहना: {तो उन्होंने आपस में अपने मामले पर विवाद किया} [ता-हा: 62], जिसका अर्थ है उनकी बात।

तीसरा: दंड; जिसमें सर्वशक्तिमान का कहना शामिल है: {जब मामला तय हो गया} [इब्राहिम: 22], जिसका अर्थ है जब आग के लोगों के लिए दंड अनिवार्य हो गया।

चौथा: ईसा (अलैहिस्सलाम); अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {जब वह किसी मामले का फैसला करता है} [मरयम: 35], जिसका अर्थ है ईसा, और यह उसके ज्ञान में था कि वह बिना पिता के होंगे।

पांचवां: बद्र में वध; अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {फिर जब अल्लाह का आदेश आएगा} [गाफिर: 78], जिसका अर्थ है बद्र में वध, और अल्लाह सर्वशक्तिमान का कहना: {ताकि अल्लाह उस मामले को पूरा करे जो पहले ही तय था} [अल-अनफाल: 42], जिसका अर्थ है मक्का के काफिरों का वध।

छठा: मक्का की विजय; अल्लाह सर्वशक्तिमान ने कहा: {तो प्रतीक्षा करो यहाँ तक कि अल्लाह अपना आदेश ले आए} [अत-तौबा: 24], जिसका अर्थ है मक्का की विजय।

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/201-202। (2) पूर्वोक्त स्रोत।

امر (حکم)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿وَقَضَى رَبُّكَ أَلَّا تَعْبُدُوا إِلَّا إِيَّاهُ﴾ [الإسراء: ۲۳]، اور یہ لازم کرنے اور احکامات کو نافذ کرنے کے معنی میں ہوتا ہے، اور اسی سے حاکم کو 'قاضی' کہا جاتا ہے۔ اور یہ حق پورا کرنے کے معنی میں بھی آتا ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَلَمَّا قَضَى مُوسَى الْأَجَلَ﴾ [القصص: ۲۹]، اور یہ ارادے کے معنی میں بھی آتا ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿فَإِذَا قَضَى أَمْرًا فَإِنَّمَا يَقُولُ لَهُ كُن فَيَكُونُ﴾ [غافر: ٦٨]، یعنی: جب وہ کسی چیز کو پیدا کرنے کا ارادہ کرتا ہے۔

ابن عطیہ (۱) نے کہا: «قَضَى» کا مطلب ہے: تقدیر بنانا، اور کبھی یہ «امضاء» (نافذ کرنا) کے معنی میں آتا ہے، اور اس آیت میں اہل سنت کے مذہب کے مطابق یہ دونوں معانی درست ہو سکتے ہیں: ازل میں تقدیر بنائی، اور اسی کے مطابق نافذ کیا۔ معتزلہ کے نزدیک تخلیق اور وجود بخشنے کے وقت «أَمْضَى» (نافذ کرنا) مراد ہے۔

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿أَمْرًا﴾۔ 'الامر' 'امور' کا واحد ہے، اور یہ 'امر یأمر' (حکم دینا) کا مصدر نہیں ہے (۲)۔

ہمارے علماء نے فرمایا: قرآن میں 'الامر' چودہ معانی میں استعمال ہوا ہے:

پہلا: دین؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿حَتَّى جَاءَ الْحَقُّ وَظَهَرَ أَمْرُ اللَّهِ﴾ [التوبة: ٤٨] یعنی اللہ کا دین اسلام۔

دوسرا: قول (بات)، اس میں اللہ تعالیٰ کا یہ قول شامل ہے: ﴿فَإِذَا جَاءَ أَمْرُنَا﴾ [المؤمنون: ۲۷] یعنی ہمارا قول (بات)، اور اس کا فرمان: ﴿فَتَنَازَعُوا أَمْرَهُم بَيْنَهُمْ﴾ [طه: ٦٢] یعنی ان کی بات۔

تیسرا: عذاب، اس میں اللہ تعالیٰ کا یہ قول شامل ہے: ﴿لَمَّا قُضِيَ الْأَمْرُ﴾ [إبراهيم: ٢٢] یعنی جب اہل جہنم پر عذاب واجب ہو گیا۔

چوتھا: عیسیٰ علیہ السلام، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿إِذَا قَضَى أَمْرًا﴾ [مریم: ٣٥] یعنی عیسیٰ علیہ السلام، اور اللہ کے علم میں تھا کہ وہ بغیر باپ کے ہوں گے۔

پانچواں: بدر میں قتل، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَإِذَا جَاءَ أَمْرُ اللَّهِ﴾ [غافر: ٧٨] یعنی بدر میں قتل، اور اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿لِيَقْضِيَ اللَّهُ أَمْرًا كَانَ مَفْعُولًا﴾ [الأنفال: ٤٢] یعنی کفارِ مکہ کا قتل۔

چھٹا: فتحِ مکہ، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَتَرَبَّصُوا حَتَّى يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ﴾ [التوبة: ٢٤] یعنی فتحِ مکہ۔

---

(١) المحرر الوجيز ١/ ٢٠١-٢٠٢۔ (٢) مصدر سابق۔

338 Surat Al-Baqarah: Verse 117

Seventh: The killing of Qurayza and the expulsion of Banu Nadir. Allah Almighty said: {Forgive and overlook until Allah brings about His command} [Al-Baqarah: 109]. Eighth: The Day of Judgment. Allah Almighty said: {The command of Allah is coming} [An-Nahl: 1]. Ninth: Decree (Qada'). Allah Almighty said: {He directs the command} [Ar-Ra'd: 2], meaning the decree. Tenth: Revelation (Wahy). Allah Almighty said: {He directs the command from the heaven to the earth} [As-Sajdah: 5], He says: He sends down revelation from heaven to earth, and His saying: {The command descends between them} [At-Talaq: 12], meaning revelation. Eleventh: Matters of creation. Allah Almighty said: {Indeed, to Allah all matters return} [Ash-Shura: 53], meaning the affairs of the creation. Twelfth: Victory (Nasr). Allah Almighty said: {They say, "Is there anything for us in the matter?"} [Al-Imran: 154], meaning victory. {Say, "Indeed, the matter belongs entirely to Allah"} [Al-Imran: 154], meaning victory. Thirteenth: Sin. Allah Almighty said: {So it tasted the consequence of its matter} [At-Talaq: 9], meaning the punishment for its sin. Fourteenth: Affair and deed. Allah Almighty said: {And the matter of Pharaoh was not right} [Hud: 97], i.e., his deed and affair. And He said: {So let those beware who dissent from his command} [An-Nur: 63], i.e., his deed. Fifth: His saying, the Almighty: {Be}. It was said: The 'Kaf' is from His existence (kaynunah), and the 'Nun' is from His light (1). This is what is meant by the peace be upon him's saying: "I seek refuge in the perfect words of Allah from the evil of what He has created" (2). And it is narrated: "By the perfect word of Allah" in the singular. The plural is used because this word is in [multiple] matters...

(1) Nawadir al-Usul by al-Hakim al-Tirmidhi p. 3, and these interpretations have no sound basis. (2) Reported by Ahmad (27122) and Muslim (2708) from the hadith of Khawlah bint Hakim al-Sulamiyyah, may Allah be pleased with her, who said: I heard the Messenger of Allah (peace be upon him) saying: "When any of you stops at a place, let him say: 'I seek refuge in the perfect words of Allah from the evil of what He has created,' for nothing will harm him until he departs from that place." It was also reported by Ahmad (7898) and Muslim (2709) from the hadith of Abu Hurayrah, may Allah be pleased with him, and in it is a story. And al-Hakim al-Tirmidhi mentioned it in Nawadir al-Usul p. 2.

३३८ सूरह अल-बक़रह: आयत ११७

सातवाँ: क़ुरैज़ा का क़त्ल और बनी नज़ीर का निष्कासन। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {तो माफ़ करो और दरगुज़र करो यहाँ तक कि अल्लाह अपना हुक्म (अम्र) ले आए} [अल-बक़रह: १०९] । आठवाँ: क़यामत। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {अल्लाह का हुक्म आ पहुँचा} [अन-नह्ल: १] । नवाँ: फ़ैसला (क़ज़ा)। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {वह हुक्म (अम्र) का प्रबंध करता है} [अर-रअद: २] यानी फ़ैसला। दसवाँ: वह्य (ईश्वरीय संदेश)। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {वह आकाश से पृथ्वी तक हुक्म (अम्र) का प्रबंध करता है} [अस-सजदा: ५] वह फ़रमाता है: वह आकाश से पृथ्वी तक वह्य उतारता है, और उसका कथन: {उनके बीच हुक्म (अम्र) उतरता है} [अत-तलाक़: १२], यानी वह्य। ग्यारहवाँ: सृष्टि के मामले। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {सुन लो, अल्लाह ही की ओर तमाम मामले पलटते हैं} [अश-शूरा: ५३], यानी मख्लूक़ात के मामले। बारहवाँ: जीत (नसर)। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {वे कहते हैं, क्या हमारे लिए भी इस मामले में कुछ अधिकार है?} [आल-इमरान: १५४] उनका तात्पर्य जीत से है, {कह दो कि सारा मामला अल्लाह ही के हाथ में है} [आल-इमरान: १५४] यानी जीत। तेरहवाँ: गुनाह। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {तो उसने अपने मामले के अंजाम का मज़ा चख लिया} [अत-तलाक़: ९], यानी अपने गुनाह की सज़ा। चौदहवाँ: मामला और कर्म। अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {और फ़िरऔन का मामला ठीक न था} [हूद: ९७], यानी उसका कर्म और मामला। और फ़रमाया: {तो उन लोगों को डरना चाहिए जो उसके हुक्म की खिलाफ़त करते हैं} [अन-नूर: ६३], यानी उसके कर्म की। पाँचवाँ: अल्लाह तआला का फ़रमान: {हो जा (कुन)}। कहा गया है: 'काफ़' उसकी हस्ती (कैनूनत) से है और 'नॉन' उसके नूर से है (१)। और यही मुराद है नबी (स.अ.व.) के इस क़ौल से: "मैं अल्लाह के मुकम्मल कलिमों की पनाह माँगता हूँ उस चीज़ की बुराई से जो उसने पैदा की" (२)। और रिवायत है: "अल्लाह के मुकम्मल कलिमे से" वाहिद (एकवचन) के साथ। जमा (बहुवचन) इसलिए इस्तेमाल हुआ क्योंकि यह कलिमा मामलों में...

(१) नवाद़िरुल उसूल, अल-हकीम अत-तिरमिज़ी, पृ. ३, और इन व्याख्याओं का कोई सही आधार नहीं है। (२) इसे अहमद (२७१२२) और मुस्लिम (२७०८) ने ख़ौला बिन्त हकीम अस-सुलमिय्या (रज़ि.) की हदीस से रिवायत किया है, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (स.अ.व.) को फ़रमाते हुए सुना: "जब तुममें से कोई किसी जगह उतरे तो कहे: 'मैं अल्लाह के मुकम्मल कलिमों की पनाह माँगता हूँ उस चीज़ की बुराई से जो उसने पैदा की,' तो उसे कोई चीज़ नुक्सान नहीं पहुँचाएगी यहाँ तक कि वह वहाँ से कूच कर जाए।" इसे अहमद (७८९८) और मुस्लिम (२७०९) ने अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से

भी रिवायत किया है, और इसमें एक वाक़या है। और अल-हकीम अत-तिरमिज़ी ने इसे नवाद़िरुल उसूल पृ. २ में ज़िक्र किया है।

۳۳۸ سورة البقرہ: آیت ۱۱۷

ساتواں: قتلِ قریظہ اور جلاءِ بنی النضیر۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَاعْفُوا وَاصْفَحُوا حَتَّى يَأْتِيَ اللَّهُ بِأَمْرِهِ﴾ [البقرہ: ۱۰۹]۔ (پس تم معاف کرو اور درگزر کرو یہاں تک کہ اللہ اپنا حکم لے آئے)۔ آٹھواں: قیامت۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿أَتَى أَمْرُ اللَّهِ﴾ [النحل: ۱]۔ (اللہ کا حکم آ گیا)۔ نواں: قضاء (فیصلہ)۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿يُدَبِّرُ الْأَمْرَ﴾ [الرعد: ۲] یعنی قضاء (فیصلہ)۔ دسواں: وحی۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿يُدَبِّرُ الْأَمْرَ مِنَ السَّمَاءِ إِلَى الْأَرْضِ﴾ [السجدہ: ۵] وہ فرماتا ہے: وہ آسمان سے زمین کی طرف وحی اتارتا ہے، اور اس کا قول: ﴿يَتَنَزَّلُ الْأَمْرُ بَيْنَهُنَّ﴾ [الطلاق: ۱۲]، یعنی وحی۔ گیارھواں: امرِ خلق (مخلوقات کے معاملات)۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿أَلَا إِلَى اللَّهِ تَصِيرُ الْأُمُورُ﴾ [الشوریٰ: ۵۳]، یعنی مخلوقات کے امور۔ بارھواں: نصر (نصرت و فتح)۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿يَقُولُونَ هَل لَّنَا مِنَ الْأَمْرِ مِن شَيْءٍ﴾ [آل عمران: ۱۵۴] ان کی مراد نصرت سے ہے، ﴿قُلْ إِنَّ الْأَمْرَ كُلَّهُ لِلَّهِ﴾ [آل عمران: ۱۵۴] یعنی نصرت و فتح۔ تیرھواں: ذنب (گناہ)۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فَذَاقَتْ وَبَالَ أَمْرِهَا﴾ [الطلاق: ۹]، یعنی اپنے گناہ کی سزا۔ چودھواں: شأن اور فعل۔ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَمَا أَمْرُ فِرْعَوْنَ بِرَشِيدٍ﴾ [ھود: ۹۷]، یعنی اس کا فعل اور شأن۔ اور فرمایا: ﴿فَلْيَحْذَرِ الَّذِينَ يُخَالِفُونَ عَنْ أَمْرِهِ﴾ [النور: ۶۳]، یعنی اس کے فعل کے۔ پانچواں: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿كُن﴾۔ کہا گیا ہے: 'کاف' اس کی کینونیت (ہستی) سے ہے، اور 'نون' اس کے نور سے ہے (۱)۔ اور یہی مراد ہے نبی علیہ السلام کے اس قول سے: "میں اللہ کے کلماتِ تامہ کی پناہ مانگتا ہوں اس چیز کے شر سے جو اس نے پیدا کی" (۲)۔ اور مروی ہے: "اللہ کے کلمہ تامہ سے" واحد کے صیغے کے ساتھ تو جمع کا صیغہ اس لیے استعمال ہوا کیونکہ یہ کلمہ امور میں...

(۱) نوادر الاصول للحکیم الترمذی ص ۳، اور ان تاویلات کی کوئی صحیح اصل نہیں ہے۔ (۲) اسے احمد (۲۷۱۲۲) اور مسلم (۲۷۰۸) نے خولہ بنت حکیم السلمیہ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے ہوئے سنا: "جب تم میں سے کوئی کسی جگہ ٹھہرے تو کہے: 'میں اللہ کے کلمات تامہ کی پناہ مانگتا ہوں اس کے شر سے جو اس نے پیدا کیا،' تو اسے کوئی چیز نقصان نہیں پہنچائے گی یہاں تک کہ وہ وہاں سے کوچ کر جائے۔" اسے احمد (۷۸۹۸) اور مسلم (۲۷۰۹) نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے بھی روایت کیا ہے، اور اس میں ایک واقعہ ہے۔ اور اسے حکیم ترمذی نے نوادر الاصول ص ۲ میں ذکر کیا ہے۔

339 Surah Al-Baqarah: Ayah 117 ...all of them. So when He says to every command: 'Be', and to everything: 'Be', then they are 'words'. This is indicated by what was narrated from Abu Dharr, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him), relating from Allah Almighty: "My giving is words, and My punishment is words." It was recorded by Al-Tirmidhi in a lengthy Hadith (1). The 'word' in the singular also carries the meaning of 'words'. However, when a single word was dispersed into various affairs at different times, they became 'words', while their source returns to a single word. It is described as 'complete' because, according to linguists, the minimum for speech is three letters: a starting letter, a middle letter that fills the word, and a letter to stop on. If it consists of two letters, it is considered deficient by them, like 'yad' (hand), 'dam' (blood), and 'fam' (mouth). They were only deficient due to a linguistic reason. Thus, words from humans are deficient because they consist of two letters and are words uttered with physical organs, whereas from our Blessed and Exalted Lord, it is 'complete' because it is without organs. Exalted is He above resembling created beings. Sixth: His Almighty's saying: {and it is (fa yakunu)}. It was recited with the 'nun' in the nominative case (dhamma) as a fresh start (3). Sibawayh said: its meaning (4) is: 'so it becomes', or: 'indeed it becomes'. Others said (5): it is conjoined to 'says'. According to the first view, it exists after the command, and even if it was non-existent, it is in the position of something existing, as it is known to Him, as will be explained later. According to the second view, it exists alongside the command, and Al-Tabari chose this (7), saying: His command to a thing with "Be" does not precede its existence nor follow it. So, a thing is not commanded to exist except that it exists by the command, and it does not exist except that it is commanded to exist, as will follow.

---

(1) Sunan al-Tirmidhi (2495) and he said: a good (hasan) hadith. It is also found in Ahmad (21367), and Al-Hakim al-Tirmidhi cited it in Nawadir al-Usul, p. 3. (2) Meaning the word: 'Kun' (Be). See Nawadir al-Usul, p. 3. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/202. The nominative recitation is that of the majority except Ibn 'Amir, who recited: 'fa-yakuna' with the subjunctive (nasb) of the nun. See Al-Sab'ah p. 168, and Al-Taysir p. 76. (4) The word: 'ma'nahu' (its meaning) is from (z). (5) He is Al-Zajjaj and his words are in Ma'ani al-Qur'an 1/199. The author and what precedes it cited him via Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/202. (6) In (z): 'huwa ka'in' (it is existing). (7) His Tafsir 2/470.

339 सूरा अल-बक़रह: आयत 117 ...वे सब। अतः जब वह प्रत्येक आदेश के लिए कहता है: 'हो जा', और प्रत्येक वस्तु के लिए: 'हो जा', तो वे 'शब्द' (कलमात) हैं। यह अबू ज़र्र से रिवायत उस हदीस से संकेतित होता है, जो उन्होंने नबी ﷺ से अल्लाह तआला के बारे में बयान की है: "मेरा देना शब्द है, और मेरा दण्ड शब्द है।" इसे अल-तिर्मिज़ी ने एक लम्बी हदीस में दर्ज किया है (1)। एकवचन में 'शब्द' (कलमा) का अर्थ 'शब्दों' (कलमात) के अर्थ में भी होता है। लेकिन जब एक ही शब्द विभिन्न समयों पर विभिन्न मामलों में विभाजित हो गया, तो वे 'शब्द' बन गए, जबकि उनका स्रोत एक ही शब्द पर लौटता है। इसे 'पूर्ण' कहा गया है; क्योंकि भाषाविदों के अनुसार, वाक् के लिए कम से कम तीन अक्षर होने चाहिए: एक प्रारंभिक अक्षर, एक मध्य अक्षर जिससे शब्द भरा जाता है, और एक अक्षर जिस पर विराम होता है। यदि यह दो अक्षरों का हो, तो उनके अनुसार यह न्यून (अपूर्ण) है, जैसे 'यद' (हाथ), 'दम' (रक्त), और 'फम' (मुँह)। वे केवल भाषाई कारणों से न्यून हुए। इस प्रकार, मनुष्यों के शब्द न्यून हैं क्योंकि वे दो अक्षरों के हैं और अंगों के साथ बोले जाने वाले शब्द हैं, जबकि हमारे धन्य और सर्वोच्च रब की ओर से यह 'पूर्ण' है क्योंकि यह अंगों के बिना है। वह सृजित प्राणियों के समान होने से बहुत ऊपर है। छठा: अल्लाह तआला का कथन: {और वह हो जाता है (फ़याकूनु)}। इसे नून पर 'रफ़' (धम्म) के साथ नये वाक्य के रूप में पढ़ा गया है (3)। सिबावैह ने कहा: इसका अर्थ (4) है: 'तो वह हो जाता है', या: 'निश्चित ही वह होता है'। अन्यों ने कहा (5): यह 'यकुलु' (कहता है) पर संयोजित है। पहले विचार के अनुसार, यह आदेश के बाद अस्तित्व में आता है, और भले ही वह अस्तित्वहीन था, वह अस्तित्ववान के स्थान पर है; क्योंकि वह उसके पास ज्ञात है, जैसा कि आगे स्पष्ट किया जाएगा। दूसरे विचार के अनुसार, यह आदेश के साथ ही अस्तित्व में आता है, और अल-तबरी ने इसे ही चुना है (7), यह कहते हुए कि: किसी वस्तु के लिए उसका "हो जा" का आदेश उसके अस्तित्व से पहले नहीं आता और न ही उसके बाद आता है। अत; किसी वस्तु को अस्तित्व में आने का आदेश तब तक नहीं दिया जाता जब तक कि वह आदेश द्वारा अस्तित्व में न हो, और वह अस्तित्व में नहीं होती जब तक कि उसे अस्तित्व में आने का आदेश न दिया जाए, जैसा कि आगे आएगा।

---

(1) सुनन अल-तिर्मिज़ी (2495) और उन्होंने कहा: यह एक हसन हदीस है। यह अहमद (21367) में भी है, और अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी ने इसे 'नवादिर अल-उसूल' पृष्ठ 3 में उल्लेख किया है। (2) अर्थात शब्द: 'कुन' (हो जा)। देखिए नवादिर अल-उसूल पृष्ठ 3। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/202, और 'रफ़' के साथ पढ़ना इब्न आमिर को छोड़कर बहुसंख्यक विद्वानों का है, क्योंकि उन्होंने नून के

'नस्ब' के साथ 'फ़याकूना' पढ़ा है, देखिए अल-सबआ पृष्ठ 168, और अल-तयसीर पृष्ठ 76। (4) शब्द: 'मा'नाहु' (इसका अर्थ) (ज़) से है। (5) वह अल-ज़ज्जाज हैं और उनके शब्द 'मआनी अल-कुरान' 1/199 में हैं, और लेखक ने इसे और इससे पहले की बातों को इब्न अतिय्या के माध्यम से 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/202 में उद्धृत किया है। (6) (ज़) में: 'हुवा काइन' (वह होने वाला है)। (7) उनकी तफ़सीर 2/470।

۳۳۹ سورة البقرہ: آیت ۱۱۷ ...سب کے سب، چنانچہ جب وہ ہر کام کے لیے کہتا ہے: 'ہو جا'، اور ہر چیز کے لیے: 'ہو جا'، تو وہ 'کلمات' ہیں۔ اس پر وہ روایت دلالت کرتی ہے جو حضرت ابوذر رضی اللہ عنہ نے نبی کریم ﷺ سے اللہ تعالیٰ کے بارے میں بیان کی ہے: "میرا عطا کرنا کلام ہے، اور میرا عذاب دینا کلام ہے۔" اسے امام ترمذی نے ایک طویل حدیث میں بیان کیا ہے (۱)۔ اور 'کلمہ' واحد کے معنی میں بھی 'کلمات' کے معنی میں استعمال ہوتا ہے، لیکن جب ایک کلمہ مختلف اوقات میں مختلف امور میں تقسیم ہوا تو وہ کلمات بن گئے، اور ان سب کا مرجع ایک ہی کلمہ ہے۔ اور اسے 'تامہ' (مکمل) اس لیے کہا گیا کہ اہل لغت کے نزدیک کلام کی کم از کم حد تین حروف ہیں: ایک حرف جس سے ابتدا کی جائے، ایک حرف جس سے کلمے کو پُر کیا جائے، اور ایک حرف جس پر خاموشی اختیار کی جائے (وقف کیا جائے)۔ اور اگر کلام دو حروف پر مشتمل ہو تو ان کے نزدیک وہ ناقص ہے، جیسے 'ید' (ہاتھ)، 'دم' (خون) اور 'فم' (منہ)؛ اور یہ صرف کسی علت کی وجہ سے ناقص ہوئے۔ پس انسانوں کی طرف سے یہ ناقص کلمات میں سے ہیں کیونکہ یہ دو حروف پر مشتمل ہیں اور اس لیے کہ یہ اعضاء کے ذریعے بولا جانے والا کلمہ ہے، جبکہ ہمارے رب تبارک و تعالیٰ کی طرف سے یہ 'تام' (مکمل) ہے کیونکہ یہ بغیر اعضاء کے ہے، وہ مخلوقات کی مشابہت سے بلند و برتر ہے۔ چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَيَكُونُ﴾، اسے نون کے رفع (پیش) کے ساتھ استیناف (نئے جملے) کے طور پر پڑھا گیا ہے (۳)۔ سیبویہ نے کہا: اس کا معنی (۴) یہ ہے: 'پس وہ ہوتا ہے'، یا 'بے شک وہ ہوتا ہے'۔ اور دوسروں نے کہا (۵): یہ 'یقول' پر معطوف ہے۔ پہلے قول کے مطابق، یہ حکم کے بعد ہونے والا ہے، اور اگرچہ وہ معدوم تھا لیکن وہ موجود کے درجے میں ہے؛ کیونکہ وہ اس کے نزدیک معلوم ہے، جیسا کہ اس کا بیان آگے آئے گا۔ اور دوسرے قول کے مطابق، یہ حکم کے ساتھ ہی ہونے والا ہے، اور اسی کو طبری نے اختیار

کیا ہے (۷) اور کہا: کسی چیز کے لیے اس کا حکم "کن" (ہو جا) اس کے وجود سے نہ مقدم ہوتا ہے اور نہ ہی اس سے مؤخر ہوتا ہے۔ چنانچہ کوئی چیز وجود کے حکم والی نہیں ہوتی مگر یہ کہ وہ حکم کی وجہ سے موجود ہو، اور نہ ہی موجود ہوتی ہے مگر یہ کہ وہ وجود کے حکم والی ہو، جیسا کہ آگے آئے گا۔

---

(۱) سنن ترمذی (۲۴۹۵) اور انہوں نے کہا: حدیث حسن ہے، اور یہ احمد (۲۱۳۶۷) کے ہاں بھی ہے، اور اسے حکیم ترمذی نے نوادر الاصول ص ۳ میں ذکر کیا ہے۔ (۲) یعنی کلمہ: 'کن'۔ اور دیکھئے نوادر الاصول ص ۳۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۲، اور رفع کی قرآت ابن عامر کے علاوہ جمہور کی قرآت ہے، انہوں نے نون کے نصب کے ساتھ 'فیکون' پڑھا ہے، دیکھئے السبعہ ص ۱۶۸، اور التیسیر ص ۷۶۔ (۴) لفظ: «معناه» (ز) سے ہے۔ (۵) وہ زجاج ہیں اور ان کا کلام معانی القرآن ۱/ ۱۹۹ میں ہے، اور اسے مصنف نے اور اس سے پہلے کے کلام کو ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۲ میں نقل کیا ہے۔ (۶) (ز) میں ہے: 'هو كائن'۔ (۷) ان کی تفسیر ۲/ ۴۷۰۔

Surat al-Baqarah: Verse 117 340 Its explanation. He said: And its parallel is people's rising from their graves; Allah's call neither precedes nor follows it, as He said: {Then when He calls you with a single call from the earth, behold, you will come forth} [Ar-Rum: 25]. Ibn Atiyyah weakened this opinion and said: It is an error in meaning, because it implies that the saying is concurrent with creation(1) and existence(2). The summary of the belief regarding this verse is: Allah, Mighty and Sublime, has always been the commander of non-existent things on the condition of their existence, being powerful despite the delay of what is decreed, and knowing despite the delay of what is known. Everything in the verse that implies the future refers to the things commanded, since created things come into being(3) after they were not. Everything attributed to Allah Almighty, such as power and knowledge, is eternal and beginningless(4). The meaning implied by the phrase "Be" (Kun) is eternal, existing in His essence. Abu al-Hasan al-Mawardi(5) said: If it is asked: At what stage does He say to it, 'Be', and it is? Is it in its state of non-existence, or in its state of existence? If it is(6) in its state of non-existence, it is impossible to command except a commander, just as it is impossible for a command to exist except from a commander. And if it is in its state of existence(7), then that is a state in which it is not permissible to command existence and coming into being, because it is already existing and created? It was said: There are three answers to this question: First: It is a report from Allah Almighty about the effectiveness of His commands in His existing creation, as He commanded the Children of Israel to be "despised apes", and this would not apply to bringing non-existent things into being. Second: That Allah, Mighty and Sublime, knows what will be before its being, so things that were not...

(1) In (D): from the perspective of creation. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/202. Abu Hayyan said in Al-Bahr al-Muhit 1/366: What Ibn Atiyyah rejected is only complete if the verse is understood to mean there was an eternal saying and command. But if it is figurative and metaphorical, it can be linked to "He says". (3) In (Zha) and (Zay): perceive. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/202. (5) Al-Nukat wa al-Uyun 1/178-179. (6) In (D): said. (7) In (Zha), (Zay), and (Kha): existence.

सूरह अल-बकरा: आयत 117 340 इसका स्पष्टीकरण। उन्होंने कहा: और इसका उदाहरण लोगों का अपनी कब्रों से उठना है; अल्लाह की पुकार न तो इससे पहले होती है और न ही इसके बाद, जैसा कि उन्होंने कहा: {फिर जब वह तुम्हें ज़मीन से एक ही पुकार से पुकारेगा, तो देखो, तुम निकल आओगे} [अर-रूम: 25]। इब्न अतिय्या ने इस राय को कमज़ोर बताया और कहा: यह अर्थ की दृष्टि से एक त्रुटि है; क्योंकि इसका तात्पर्य यह है कि कहना सृजन(1) और अस्तित्व(2) के साथ है। इस आयत के बारे में विश्वास का सारांश यह है: अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल हमेशा से उन चीज़ों का आदेश देने वाला रहा है जो अस्तित्व में नहीं हैं, उनके अस्तित्व की शर्त पर, वह सामर्थ्यवान है बावजूद इसके कि जिन चीज़ों का फ़ैसला किया गया है उनमें देरी हो, और वह ज्ञानी है बावजूद इसके कि जानकारी में देरी हो। आयत में जो कुछ भी भविष्य का संकेत देता है, वह आदेशित चीज़ों के अनुसार है; क्योंकि निर्मित चीज़ें तब अस्तित्व(3) में आती हैं जब वे पहले नहीं थीं। अल्लाह तआला की ओर जो कुछ भी श्रेय दिया जाता है जैसे कि शक्ति और ज्ञान, वह शाश्वत है(4)। "कुन" (हो जा) वाक्यांश द्वारा निहित अर्थ शाश्वत है, जो स्वयं अल्लाह की ज़ात में स्थित है। अबू अल-हसन अल-मावर्दी(5) ने कहा: यदि यह पूछा जाए कि: वह किस स्थिति में उससे कहता है: 'हो जा', और वह हो जाता है? क्या उसके अस्तित्वहीन होने की स्थिति में, या उसके अस्तित्व में होने की स्थिति में? यदि वह(6) उसके अस्तित्वहीन होने की स्थिति में है, तो यह असंभव है कि एक आदेशित चीज़ के बिना आदेश दिया जाए, जैसे कि एक आदेश देने वाले के बिना आदेश का होना असंभव है। और यदि यह उसके अस्तित्व में होने(7) की स्थिति में है, तो वह ऐसी स्थिति है जिसमें अस्तित्व और सृजन का आदेश देना अनुमेय नहीं है; क्योंकि वह पहले से ही मौजूद और सृजित है? कहा गया: इस प्रश्न के तीन उत्तर हैं: पहला: यह अल्लाह तआला की ओर से उसकी मौजूदा सृष्टि में उसके आदेशों के प्रभावी होने की एक रिपोर्ट है, जैसा कि उसने बनी इस्राइल को "अपमानित बंदर" होने का आदेश दिया था, और यह अस्तित्वहीन चीज़ों को अस्तित्व में लाने पर लागू नहीं होगा। दूसरा: अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल को उसके होने से पहले ही पता है कि क्या होने वाला है, इसलिए वे चीज़ें जो नहीं थीं...

(1) (द) में: सृजन के दृष्टिकोण से। (2) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ 1/202। और अबू हयान ने अल-बहर अल-मुहित 1/366 में कहा: इब्न अतिय्या ने जिसे खारिज किया है वह तभी पूरा होता है जब आयत को इस अर्थ में लिया जाए कि वहाँ एक प्राचीन कथन और आदेश था। लेकिन अगर यह रूपक और उदाहरण के तौर पर है, तो इसे "वह कहता है" पर जोड़ा जा सकता है। (3) (ज़) और (ज़े) में: महसूस

करना। (4) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ 1/202। (5) अन-नुकत वल-उयून 1/178-179। (6) (द) में: कहा। (7) (ज़), (ज़े) और (ख़) में: अस्तित्व।

سورة البقرہ: آیت 117 340 اس کا بیان۔ انہوں نے کہا: اور اس کی مثال لوگوں کا اپنی قبروں سے اٹھنا ہے، اللہ کی پکار نہ اس سے پہلے ہوتی ہے اور نہ ہی اس کے بعد، جیسا کہ اس نے فرمایا: ﴿ ثُمَّ إِذَا دَعَاكُمْ دَعْوَةً مِّنَ الْأَرْضِ إِذَا أَنتُمْ تَخْرُجُونَ ﴾ [الروم: 25] (پھر جب وہ تمہیں زمین سے ایک پکار کے ذریعے پکارے گا، تو دیکھو تم نکل کھڑے ہو گے)۔ ابن عطیہ نے اس قول کو ضعیف قرار دیا اور کہا: یہ معنی کے اعتبار سے غلط ہے؛ کیونکہ یہ اس بات کا تقاضا کرتا ہے کہ کہنا تخلیق(1) اور وجود(2) کے ساتھ ہے۔ اس آیت کے بارے میں عقیدے کا خلاصہ یہ ہے کہ: اللہ عزوجل ہمیشہ سے معدوم چیزوں کا ان کے وجود کی شرط پر حکم دینے والا رہا ہے، وہ مقدورات (جن کا فیصلہ ہو چکا ہے) کی تاخیر کے باوجود قادر ہے، اور معلومات کی تاخیر کے باوجود عالم ہے۔ چنانچہ آیت میں جو کچھ بھی مستقبل کا تقاضا کرتا ہے، وہ مامورات (جنہیں حکم دیا گیا) کے اعتبار سے ہے؛ کیونکہ حادث (نئی پیدا ہونے والی) چیزیں پہلے نہ ہونے کے بعد وجود(3) میں آتی ہیں۔ اور وہ سب کچھ جس کی نسبت اللہ تعالیٰ کی طرف قدرت اور علم کے طور پر کی جاتی ہے، وہ قدیم (ہمیشہ سے) ہے(4)۔ اور وہ معنی جس کا تقاضا کلمہ "کن" (ہو جا) کرتا ہے: وہ قدیم ہے جو اس کی ذات کے ساتھ قائم ہے۔ ابو الحسن الماوردی(5) نے کہا: اگر یہ سوال کیا جائے کہ: وہ کس حال میں اس سے کہتا ہے کہ: 'ہو جا'، تو وہ ہو جاتا ہے؟ کیا اس کے عدم کی حالت میں، یا اس کے وجود کی حالت میں؟ اگر وہ(6) اس کے عدم کی حالت میں ہو، تو یہ ناممکن ہے کہ وہ کسی مامور (جسے حکم دیا جائے) کے علاوہ کو حکم دے، جس طرح یہ ناممکن ہے کہ حکم دینے والے کے بغیر حکم ہو۔ اور اگر وہ اس کے وجود کی حالت(7) میں ہو؛ تو وہ ایسی حالت ہے جس میں وجود اور حادث ہونے کا حکم دینا جائز نہیں؛ کیونکہ وہ موجود اور حادث ہے؟ کہا گیا: اس سوال کے تین جوابات ہیں: پہلا: یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے اپنی موجودہ مخلوق میں اپنے احکامات کے نفوذ کی خبر ہے، جیسا کہ اس نے بنی اسرائیل کو حکم دیا کہ وہ "ذلیل بندر" ہو جائیں، اور یہ

معدومات کو وجود میں لانے کے بارے میں وارد نہیں ہوگا۔ دوسرا: اللہ عزوجل ہر ہونے والی چیز کے ہونے سے پہلے ہی اس کا عالم ہے، چنانچہ وہ چیزیں جو نہیں تھیں...

(1) (د) میں: تخلیق کی جہت سے۔ (2) المحرر الوجیز 202/1۔ اور ابو حیان نے البحر المحیط 366/1 میں کہا: ابن عطیہ نے جس چیز کو رد کیا وہ صرف تب مکمل ہوتی ہے جب آیت کو اس پر محمول کیا جائے کہ وہاں قدیم قول اور امر تھا۔ رہا جب یہ مجاز اور تمثیل کے طور پر ہو، تو اسے "یقول" پر عطف کرنا جائز ہے۔ (3) (ظ) اور (ز) میں: محسوس کرنا۔ (4) المحرر الوجیز 202/1۔ (5) النکت والعیون 178/1-179۔ (6) (د) میں: کہا۔ (7) (ظ)، (ز) اور (خ) میں: وجودا

Surah Al-Baqarah: Verse 118 341

- And it (the thing to be created) exists in His knowledge before its coming into being - similar to that (1) which is already existing. Thus, it was permissible for Him to say to it: "Be," and command it to come forth from the state of non-existence to the state of existence; because all of it is envisioned by Him, and because of His knowledge of it in the state of non-existence.

Third: That this is a general report from Allah the Almighty about everything He originates and brings into being. When He intends its creation and initiation, it happens and comes to exist, without there necessarily being a verbal utterance. It is rather a decree He wills, so He expressed it as speech even if it wasn't literally spoken, similar to the saying of Abi al-Najm:

"The girths said to the belly: 'Attach!'" (2)

And there was no literal speech there; he merely meant that the back had adhered to the belly. Similarly, the saying of Amr bin Humamah al-Dawsi (3):

"So I became like an eagle whose chicks have flown away; when it tries to fly, it is told: 'Stay!'"

And as another said:

"Its wings said to its legs: 'Attach!' and save your flesh from being torn apart." (4)

Allah's saying: {And those who do not know say, "Why does Allah not speak to us or a sign come to us?" Thus spoke those before them similarly to their speech. Their hearts are alike. We have certainly made clear the signs for a people who are certain [in faith]. (118)}

His saying: {And those who do not know say}, Ibn Abbas said: They are the Jews. Mujahid: [said something similar].

(1) In (Z), (Za), and (Kh): "al-lati". (2) It is in Rajaz meter, followed by: "Long ago, it was pressed like the honorable, well-fed stallion." We did not find it in his Diwan. It is in Tafsir al-Tabari 2/469, Al-Khasa'is 1/23, Al-Nukat wa al-'Uyun 1/179, Al-Kashshaf 1/307, and Majma' al-Bayan 1/438. In Al-Muharrar al-Wajiz 1/202, the wording is: "The flanks said." Explanation: "Al-Ansa' " is the plural of "Nis'", meaning a wide woven strap like sandal reins used to fasten saddles. "Lahiqa" means it became lean. "Al-Faniq" is a noble stallion that is neither harmed nor ridden out of respect for its owner. "Al-

Muhniq" is one whose back is stuck to its belly. See Al-Qamus al-Muhit. (3) From the tribe of Azd, one of the judges of the Arabs in the pre-Islamic era (Jahiliyya), and one of those who lived a long life. It is said he lived three hundred and ninety years. It is said he is "Dhu al-Hilm" (the possessor of forbearance) whom the Arabs set as an example. Mu'jam al-Shu'ara' p. 17. The verse is in Tafsir al-Tabari 2/469, Al-Nukat wa al-'Uyun 1/179, and Majma' al-Bayan 1/438. (4) We did not find its source, but Ibn Adil al-Hanbali cited it in Al-Lubab 2/430.

सूरा अल-बकरा: आयत 118 341

- और वह (सृजित होने वाली चीज़) उसके अस्तित्व में आने से पहले ही उसके ज्ञान में मौजूद है - वैसी ही (1) जैसी कि वह मौजूद है। अतः उसके लिए यह कहना जायज़ था: "हो जा," और उसे अभाव की स्थिति से अस्तित्व की स्थिति में आने का आदेश देना; क्योंकि वह सब उसके सामने कल्पित है, और अभाव की स्थिति में भी उसके बारे में उसके ज्ञान के कारण।

तीसरा: यह कि अल्लाह तआला की ओर से उन सभी चीज़ों के बारे में एक सामान्य सूचना है जिन्हें वह पैदा करता है और अस्तित्व में लाता है। जब वह इसके निर्माण और शुरुआत का इरादा करता है, तो वह हो जाता है और अस्तित्व में आ जाता है, बिना इसके कि वहां कोई कहा जाने वाला शब्द हो। बल्कि यह एक फैसला है जिसका वह इरादा करता है, इसलिए उसने इसे 'कहने' के रूप में व्यक्त किया, भले ही वह वास्तव में शब्द न हों, जैसे अबू अन-नज्म का कहना है:

"तंगियों (घोड़े की जीन की पट्टियों) ने पेट से कहा: 'चिपक जा!'" (2)

और वहां कोई वास्तविक बात नहीं थी, बल्कि उसका मतलब यह था कि पीठ पेट से चिपक गई है। और जैसा कि अम्र बिन हुममह अल-दौसी (3) का कहना है:

"तो मैं उस उकाब की तरह हो गया जिसके बच्चे उड़ गए हों; जब वह उड़ने की कोशिश करता है तो उससे कहा जाता है: 'बैठ जा!'"

और जैसा कि दूसरे ने कहा:

"उसके पंखों ने उसकी टांगों से कहा: 'चिपक जाओ!' और अपने मांस को फटने से बचाओ।" (4)

अल्लाह तआला का कथन: {और जो लोग ज्ञान नहीं रखते, वे कहते हैं, "अल्लाह हमसे बात क्यों नहीं करता या हमारे पास कोई निशानी क्यों नहीं आती?" इसी तरह उनके पूर्वजों ने भी वैसी ही बात कही थी जैसी उन्होंने कही। उनके दिल एक जैसे हैं। हमने उन लोगों के लिए निशानियाँ स्पष्ट कर दी हैं जो पक्का विश्वास रखते हैं। (118)}

उसका कथन: {और जो लोग ज्ञान नहीं रखते वे कहते हैं}, इब्न अब्बास ने कहा: वे यहूदी हैं। मुजाहिद: [ने भी ऐसा ही कहा]।

(1) (ज़), (ज़ा) और (ख़) प्रतियों में: "अल्-लती" (जो)। (2) यह 'रजज़' छंद में है, इसके बाद है: "पुराने समय से वह दबे हुए कनीक़ (एक प्रकार का ऊँट या घोड़ा) की तरह दब गया था।" हमें यह उनके दीवान में नहीं मिला, यह तफ़सीर अल-तबरी 2/469, अल-ख़साइस 1/23, अल-नुकत वल-उयून 1/179, अल-कश्शाफ़ 1/307, और मजमा अल-बयान 1/438 में है। और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/202 में इन शब्दों के साथ है: "कोखों ने कहा।" व्याख्या: 'अन्सा' 'निस' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है जीन कसने वाली चौड़ी पट्टी। 'लहिक़ा' का अर्थ है दुबला हो जाना। 'फ़नीक़' एक सम्मानित नर पशु है जिसे उसके मालिकों के सम्मान के कारण न तो सताया जाता है और न ही उस पर सवारी की जाती है। 'मुहनिक़' वह है जिसकी पीठ उसके पेट से चिपक गई हो। 'अल-क़ामूस अल-मुहीत' देखें। (3) अज़द कबीले से, जाहिलियत के समय अरबों के न्यायाधीशों में से एक, और लंबी आयु पाने वालों में से एक। कहा जाता है कि वह तीन सौ नब्बे वर्ष तक जीवित रहे। यह भी कहा जाता है कि वह 'ज़ुल हिल्म' (धैर्यवान) हैं जिनका अरब उदाहरण देते थे। 'मुजम अल-शुअरा' पृष्ठ 17। यह शेर तफ़सीर अल-तबरी 2/469, अल-नुकत वल-उयून 1/179 और मजमा अल-बयान 1/438 में है। (4) हमें इसका स्रोत नहीं मिला, और इब्न आदिल अल-हनबली ने इसे 'अल-लुबाब' 2/430 में उद्धृत किया है।

سورة البقرہ: آیت 118 341

• اور وہ (تخلیق ہونے والی چیز) اپنے وجود میں آنے سے پہلے ہی اس کے علم میں موجود ہے - اس جیسی (1) جو موجود ہے۔ چنانچہ اس کے لیے یہ کہنا جائز ہوا: "ہو جا،" اور اسے عدم کی حالت سے وجود کی حالت میں آنے کا حکم دینا؛ اس لیے کہ وہ سب اس کے پیشِ نظر ہے، اور عدم کی حالت میں بھی اس کے بارے میں اس کے علم کی وجہ سے۔

تیسرا: یہ کہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے ان تمام چیزوں کے بارے میں ایک عام خبر ہے جنہیں وہ پیدا کرتا ہے اور وجود میں لاتا ہے۔ جب وہ اس کی تخلیق اور ابتدا کا ارادہ کرتا ہے، تو وہ ہو جاتا ہے اور وجود میں آ جاتا ہے، بغیر اس کے کہ وہاں کوئی لفظ کہا جانے والا ہو۔ بلکہ یہ ایک فیصلہ ہے جس کا وہ ارادہ کرتا ہے، چنانچہ اس نے اسے 'قول' (کہنے) سے تعبیر کیا اگرچہ وہ (حقیقتاً) قول نہیں تھا، جیسا کہ ابو النجم کا قول ہے:

"تنگوں (گھوڑے کی زین کی پٹیوں) نے پیٹ سے کہا: 'چپک جا!'" (2)

اور وہاں کوئی کلام نہیں تھا، بلکہ اس کی مراد یہ تھی کہ کمر پیٹ کے ساتھ لگ گئی ہے۔ اور جیسا کہ عمرو بن حممہ الدوسی (3) کا قول ہے:

"تو میں اس عقاب کی مانند ہو گیا جس کے بچے اڑ گئے ہوں؛ جب وہ اڑنے کا ارادہ کرتا ہے تو اس سے کہا جاتا ہے: 'بیٹھ جا!'"

اور جیسا کہ دوسرے نے کہا:

"اس کے پروں نے اس کی ٹانگوں سے کہا: 'چپک جاؤ!' اور اپنے گوشت کو چیرے جانے سے بچاؤ۔" (4)

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور وہ لوگ جو علم نہیں رکھتے کہتے ہیں، "اللہ ہم سے کلام کیوں نہیں کرتا یا ہمارے پاس کوئی نشانی کیوں نہیں آتی؟" اسی طرح ان سے پہلے لوگوں نے بھی ان جیسی ہی بات کہی تھی۔ ان کے دل ایک جیسے ہیں۔ یقیناً ہم نے یقین رکھنے والوں کے لیے نشانیاں کھول کر بیان کر دی ہیں۔ (118)}

ارشادِ باری تعالیٰ: {اور وہ لوگ جو علم نہیں رکھتے کہتے ہیں}، ابن عباس نے فرمایا: وہ یہودی ہیں۔ مجاہد: [نے بھی ایسا ہی کہا]۔

(1) نسخہ (ظ)، (ز) اور (خ) میں: "التی" ہے۔ (2) یہ بحرِ رجز میں ہے، اس کے بعد ہے: "قدیم زمانے سے وہ کنیق (عمدہ اونٹ یا گھوڑا) کی طرح دب گیا تھا۔" ہمیں یہ ان کے دیوان میں نہیں ملا، یہ تفسیر الطبری 2/469، الخصائص 1/23، النکت والعیون 1/179، الکشاف 1/307، اور مجمع البیان 1/438 میں ہے۔ اور المحرر الوجیز 1/202 میں ان الفاظ کے ساتھ ہے: "کوکھوں نے کہا۔" تشریح: 'انساع' 'نسع' کی جمع ہے، جس کا مطلب ہے چوڑی بنی ہوئی پٹی جس سے کجاوے کسے جاتے ہیں۔ 'لحق' کا مطلب ہے دبلا ہو جانا۔ 'فنیق' وہ معزز نر جانور ہے جسے اس کے مالکوں کی عزت کی وجہ سے نہ تکلیف دی جاتی ہے اور نہ اس پر سواری کی جاتی ہے۔ 'محنق' وہ ہے جس کی کمر پیٹ سے لگی ہوئی ہو۔ القاموس المحیط دیکھیں۔ (3) قبیلہ ازد سے، زمانہ جاہلیت میں عربوں کے حکام (منصفوں) میں سے ایک، اور طویل عمر پانے والوں میں سے ایک۔ کہا جاتا ہے کہ وہ تین سو نوے سال زندہ رہے۔ یہ بھی کہا جاتا ہے کہ وہ 'ذو الحلم' (بردبار) ہیں جن کی عرب مثال دیتے تھے۔ معجم الشعراء صفحہ 17۔ یہ شعر تفسیر الطبری 2/469، النکت

والعیون 1/179 اور مجمع البیان 1/438 میں ہے۔ (4) ہمیں اس کا مآخذ نہیں ملا، اور ابن عادل الحنبلی نے اسے 'اللباب' 2/430 میں ذکر کیا ہے۔

342 Surah Al-Baqarah: Verse 118

...the Christians, as favored by Al-Tabari (1); because they are mentioned first in the verse. Al-Rabi', Al-Suddi, and Qatada said: the polytheists of the Arabs. And 'lawla' (if only) here means 'halla' (why not): for exhortation (2); as Al-Ash'ab bin Rumayla (3) said:

You count the slaughtering of old she-camels as your greatest glory ... O sons of Dhawtari, why not [slaughter] the armored brave warrior? (4)

This 'lawla' is not the one that indicates the non-existence of something due to the existence of another. The difference between them, according to linguists, is that 'lawla' in the sense of exhortation is followed only by a verb, either explicit or implied, while the one for prevention is followed by the subject (mubtada), and it is customary to omit the predicate (khabar) (5).

And the meaning of the speech is: Why does God not speak to us regarding the prophethood of Muhammad ﷺ, so that we may know he is a prophet and believe in him, or a sign comes to us as an evidence of his prophethood.

And 'Ayah' (sign): means the proof and the mark, and it has been mentioned before (6).

(Likewise said those before them): the Jews and Christians according to the opinion of those who considered "those who do not know" to be the Arab disbelievers, or the past nations according to the opinion of those who considered "those who do not know" to be the Jews.

(1) His Tafsir 2/475. (2) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/202, Al-Nukat wal-'Uyun 1/180, and Al-Tabari cited the previous opinions in his Tafsir 2/474-475. (3) He is a veteran Islamic poet who embraced Islam, but no companionship or meeting with the Prophet ﷺ is known of him. Al-Khizana 6/30, and Al-Isabah 1/174. (4) Thus Abu Ubaidah attributed it in Majaz al-Qur'an 1/52, Al-Tabari in Al-Tafsir 2/476, Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/202, Al-Mawardi in Al-Nukat wal-'Uyun 1/180, and Ibn al-Shajari in his Amali 1/426 and 2/84, 509. Abu Ubaidah also attributed it in Al-Naqa'id p. 833 to Jarir in a poem responding to Al-Farazdaq. Al-Baghdadi said in Khizanat al-Adab 3/59: The correct view is that it is from a poem by Jarir; there is no dispute among narrators that it is his. The verse is in Jarir's Diwan 2/907, and the narration of Al-Naqa'id and the Diwan: 'your effort' instead of 'your glory', and 'halla' instead of 'lawla'. His words: 'Al-Nib': plural of 'Nab', which is the old she-camel. 'Dhawtari': the large, fleshy man

who is useless. 'Al-Kami': the brave warrior clad in his weapons. The meaning: You consider slaughtering old she-camels that are no longer useful and whose offspring are no longer expected as your greatest glory; why do you not consider killing brave men as your greatest glory?! Al-Khizana 3/58. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/202-203. (6) 1/107-108.

342 सूरा अल-बक़रह: आयत 118

...ईसाई, जैसा कि अल-तबारी (1) द्वारा पसंद किया गया है; क्योंकि आयत में उनका उल्लेख सबसे पहले है। अल-रबी', अल-सुद्दी और क़तादा ने कहा: अरब के मुशरिक। और यहाँ 'लौला' (यदि केवल) का अर्थ 'हल्ला' (क्यों नहीं) है: प्रोत्साहन (2) के लिए; जैसा कि अल-अश'अब बिन रुमैला (3) ने कहा:

तुम बूढ़ी ऊंटनियों को मारना अपना सबसे बड़ा गौरव मानते हो... ऐ धौतरी के बेटों, कवचधारी बहादुर योद्धा को [क्यों नहीं मारते]? (4)

यह 'लौला' वह नहीं है जो किसी चीज़ के होने के कारण दूसरी चीज़ के न होने को दर्शाता है। भाषाविदों के अनुसार उनके बीच अंतर यह है कि प्रोत्साहन के अर्थ में 'लौला' के बाद केवल एक क्रिया आती है, चाहे वह स्पष्ट हो या निहित, जबकि निवारण वाला 'लौला' मुब्तदा (विषय) के बाद आता है, और खबर (विधेय) को छोड़ने का रिवाज है (5)।

और बात का अर्थ यह है: ईश्वर हमसे मुहम्मद ﷺ की नबूवत के बारे में बात क्यों नहीं करता, ताकि हम जान सकें कि वह एक नबी हैं और उन पर विश्वास करें, या हमारे पास उनकी नबूवत के प्रमाण के रूप में कोई संकेत (निशानी) आए।

और 'आयत' (संकेत): इसका अर्थ प्रमाण और चिन्ह है, और इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है (6)।

(इसी तरह उनके पूर्वजों ने भी कहा था): उन लोगों की राय के अनुसार जो 'जो नहीं जानते' उन्हें अरब काफ़िर मानते हैं, वे यहूदी और ईसाई हैं; या उन लोगों की राय के अनुसार जो 'जो नहीं जानते' उन्हें यहूदी मानते हैं, वे पिछली कौमें हैं।

(1) उनकी तफ़सीर 2/475। (2) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/202, अल-नुकात वल-'उयून 1/180, और अल-तबारी ने अपनी तफ़सीर 2/474-475 में पिछले मतों का उल्लेख किया है। (3) वह एक अनुभवी इस्लामी कवि हैं जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया था, लेकिन नबी ﷺ के साथ उनकी किसी सोहबत या मुलाकात की जानकारी नहीं है। अल-ख़िज़ाना 6/30, और अल-इसाबा 1/174। (4) अबू उबैदा ने मजाज़ अल-क़ुरआन 1/52 में, अल-तबारी ने अल-तफ़सीर 2/476 में, इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/202 में, अल-मावर्दी ने अल-नुकात वल-'उयून 1/180 में, और इब्न अल-शजारी ने अपनी अमाली 1/426 और 2/84, 509 में इसे इसी तरह श्रेय दिया है। अबू उबैदा ने

अल-नक़ायद पृष्ठ 833 में इसे अल-फरज़दक को जवाब देने वाली एक कविता में जरीर को भी श्रेय दिया है। अल-बग़दादी ने ख़िज़ानत अल-अदब 3/59 में कहा: सही बात यह है कि यह जरीर की एक कविता से है; वर्णनकर्ताओं के बीच इसमें कोई विवाद नहीं है कि यह उन्हीं की है। यह शेर जरीर के दीवान 2/907 में है, और अल-नक़ायद और दीवान का वर्णन है: 'सईकुम' (आपका प्रयास), 'मजदुकुम' (आपका गौरव) के बजाय, और 'हल्ला', 'लौला' के बजाय। उनके शब्द: 'अल-नीब': नाब का बहुवचन, जो बूढ़ी ऊंटनी है। 'धौतरी': वह विशाल, मांसल व्यक्ति जो बेकार है। 'अल-कामी': अपने हथियारों से लैस बहादुर योद्धा। अर्थ: तुम उन बूढ़ी ऊंटनियों को मारना अपना सबसे बड़ा गौरव मानते हो जो अब उपयोगी नहीं हैं और जिनसे संतान की उम्मीद नहीं है; तुम बहादुरों को मारना अपना सबसे बड़ा गौरव क्यों नहीं मानते?! अल-ख़िज़ाना 3/58। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/202-203। (6) 1/107-108।

342 سورة البقره : الآية ١١٨

...نصاریٰ، اور طبری (١) نے اسے ترجیح دی ہے؛ کیونکہ آیت میں ان کا ذکر پہلے ہے۔ اور ربیع، سدی اور قتادہ نے کہا: عرب کے مشرکین۔ اور «لولا» بمعنی «ھلا» ہے: تحضیض (ترغیب) (٢) کے لیے؛ جیسا کہ اشہب بن رُمَیْلَہ (٣) نے کہا:

تَعُدُّونَ عَقْرَ النِّیبِ أَفْضَلَ مَجْدِکُمْ ... بنی ضَوْطَرَی لولا الکَمِیَّ المُقَنَّعا (٤)

اور یہ وہ «لولا» نہیں ہے جو کسی چیز کے پائے جانے کی وجہ سے دوسری کے نہ ہونے کا فائدہ دیتا ہے، اور ماہرین لسان کے نزدیک ان دونوں میں فرق یہ ہے کہ تحضیض کے معنی میں «لولا» کے بعد صرف فعل آتا ہے خواہ ظاہر ہو یا مقدر، اور جو امتناع کے لیے ہے اس کے بعد مبتدا آتا ہے، اور عادت کے مطابق خبر کو حذف کر دیا جاتا ہے (٥)۔

اور کلام کا معنی یہ ہے: اللہ ہم سے محمد ﷺ کی نبوت کے بارے میں کلام کیوں نہیں کرتا، تاکہ ہم جان لیں کہ وہ نبی ہیں، پھر ہم ان پر ایمان لائیں، یا ہمارے پاس کوئی ایسی نشانی آئے جو ان کی نبوت کی علامت ہو۔

اور «الآیۃ»: دلیل اور علامت کو کہتے ہیں، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (٦)۔

﴿كَذَٰلِكَ قَالَ الَّذِينَ مِن قَبْلِهِم﴾ : ان لوگوں کے قول کے مطابق یہودی اور نصاریٰ جنہوں نے «الذین لا یعلمون» سے مراد کفارِ عرب لیے، یا ان لوگوں کے قول کے مطابق گزشتہ امتیں جنہوں نے «الذین لا یعلمون» سے مراد یہودی لیے۔

(١) ان کی تفسیر ٢/ ٤٧٥۔ (٢) دیکھیے المحرر الوجیز ١/ ٢٠٢، والنکت والعیون ١/ ١٨٠، اور طبری نے اپنی تفسیر ٢/ ٤٧٤-٤٧٥ میں سابقہ اقوال نقل کیے ہیں۔ (٣) وہ ایک مخضرم اسلامی

شاعر ہیں، جنہوں نے اسلام قبول کیا مگر ان کی نبی ﷺ سے صحابیت اور ملاقات معلوم نہیں ہے۔ الخزانہ ۶/ ۳۰، والاصابہ ۱/ ۱۷۴۔ (۴) اسی طرح ابو عبیدہ نے مجاز القرآن ۱/ ۵۲ میں، طبری نے تفسیر ۲/ ۴۷۶ میں، ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۲ میں، ماوردی نے النکت والعیون ۱/ ۱۸۰ میں، اور ابن الشجری نے اپنی امالی ۱/ ۴۲۶ اور ۲/ ۸۴، ۵۰۹ میں اس کی نسبت کی ہے۔ اور ابو عبیدہ نے اسے النقائض ص ۸۳۳ میں جریر کی طرف منسوب کیا ہے اس قصیدہ میں جو انہوں نے فرزدق کے جواب میں لکھا تھا۔ بغدادی نے خزانہ الادب ۳/ ۵۹ میں کہا: صحیح یہ ہے کہ یہ جریر کے قصیدے سے ہے، راویوں کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ یہ انہی کا ہے۔ اور یہ شعر دیوانِ جریر ۲/ ۹۰۷ میں ہے، اور نقائض اور دیوان کی روایت ہے: 'سعیکم' بجائے 'مجدکم'، اور 'ہلا' بجائے 'لولا'۔ ان کا قول: 'النیب': ناب کی جمع ہے، اور یہ بوڑھی اونٹنی ہے، اور 'ضوطری': وہ بھاری بھرکم اور گوشت والا آدمی جو کسی کام کا نہ ہو، اور 'الکمی': وہ بہادر جو اپنے اسلحہ میں چھپا ہوا ہو۔ اور معنی یہ ہے: تم بوڑھی اونٹنیوں کو ذبح کرنے کو اپنی بہترین بڑائی سمجھتے ہو جن سے کوئی فائدہ نہیں اٹھایا جاتا اور نہ ہی ان کی نسل کی امید ہوتی ہے، تم بہادروں کے قتل کو اپنی بہترین بڑائی کیوں نہیں سمجھتے؟! الخزانہ ۳/ ۵۸۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۲-۲۰۳۔ (٦) ۱/ ۱۰۷-۱۰۸۔

343

Surah Al-Baqarah: Verse 119

...and the Christians, or the Jews, according to the opinion of those who identify "those who do not know" as the Christians (1).

{Their hearts are alike} It was said: in obstinacy, making demands, and abandoning faith. Al-Farra' said (2): "Their hearts are alike" in their agreement upon disbelief.

{We have already made the signs clear for a people who are certain} This has been discussed before (3).

The Almighty's saying: {Indeed, We have sent you with the truth as a bringer of good tidings and a warner, and you will not be asked about the companions of Hellfire (119)}.

The Almighty's saying: {Indeed, We have sent you with the truth as a bringer of good tidings and a warner} "Bashiran" (bringer of good tidings) is in the accusative case as a circumstantial phrase (hal), and "Nadhiran" (warner) is coordinated with it; their meanings have been discussed before (4).

{And you will not be asked about the companions of Hellfire} Muqatil said: The Prophet ﷺ said: "If Allah had sent down His punishment upon the Jews, they would have believed," then Allah Almighty revealed: {And you will not be asked about the companions of Hellfire} (5) with "tus'alu" (being asked) in the nominative case (marfu'), which is the reading of the majority (6). It is in the position of a circumstantial phrase by being coordinated with "bashiran wa nadhiran". The meaning is: We have sent you with the truth as a bringer of good tidings and a warner, not being held responsible.

Sa'id al-Akhfash said: "Wa la tas'al" (and do not ask) with a fatha on the 'ta' and a damma on the 'lam', and it is in the position of a circumstantial phrase coordinated with "bashiran wa nadhiran" (7).

The meaning: We have sent you with the truth as a bringer of good tidings and a warner, not asking about them; because Allah's knowledge of their disbelief after their warning renders asking about them unnecessary. This is the meaning of "not asking". The meaning of "not being asked" is: he will not be held accountable for the disbelief of whoever disbelieved after the good news (8) and the warning.

Ibn Abbas and Muhammad ibn Ka'b said: The Messenger of Allah ﷺ said one day: "I wish I knew..."

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/203. (2) Ma'ani al-Quran 1/75. (3) 1/276. (4) 1/281 and 358. (5) Narrated by al-Wahidi in Asbab al-Nuzul p. 37, and in the Tafsir 1/198, and Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/137. (6) Al-Sab'ah p. 169, and al-Taysir p. 76. (7) Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 1/334, and the author quoted it from him via al-Nahhas in I'rab al-Quran 1/258. Ibn Atiyyah also mentioned this reading in al-Muharrar al-Wajiz 1/204. (8) In (m): At-Tabshir.

३४३

सूरह अल-बक़रह: आयत ११९

...और ईसाई, या यहूदी, उनके मत के अनुसार जिन्होंने "जो नहीं जानते" को ईसाई माना है (१)।

{उनके दिल एक जैसे हैं} कहा गया: हठधर्मिता, मांग करने और ईमान छोड़ने में। अल-फ़र्रा (२) ने कहा: "उनके दिल एक जैसे हैं" कुफ़्र (अविश्वास) पर उनकी सहमति में।

{हमने उन लोगों के लिए निशानियाँ स्पष्ट कर दी हैं जो यक़ीन रखते हैं} यह पहले आ चुका है (३)।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {बेशक हमने आपको हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है, और आपसे जहन्नम वालों के बारे में सवाल नहीं किया जाएगा (११९)}।

अल्लाह तआला का फ़रमान: {बेशक हमने आपको हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है} "बशीरन" (ख़ुशख़बरी देने वाला) हाल (अवस्था) के रूप में नसब (कर्म कारक) में है, और "नज़ीरन" (डराने वाला) उस पर अत्फ़ (संयोजन) है; उनके अर्थ पहले बताए जा चुके हैं (४)।

{और आपसे जहन्नम वालों के बारे में सवाल नहीं किया जाएगा} मुक़ातिल ने कहा: नबी ﷺ ने फ़रमाया: "अगर अल्लाह यहूदियों पर अपना अज़ाब (दंड) उतारता तो वे ईमान ले आते", तब अल्लाह तआला ने नाज़िल फ़रमाया: {और आपसे जहन्नम वालों के बारे में सवाल नहीं किया जाएगा} (५) "तसअलू" (सवाल किया जाना) के साथ रफ़ा (कर्ता कारक) में, जो कि बहुमत की क़िराअत (पाठ) है (६)। यह "बशीरन व नज़ीरन" पर अत्फ़ होने के कारण हाल के स्थान पर है। अर्थ यह है: बेशक हमने आपको हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है, जबकि आपसे (उनके बारे में) नहीं पूछा जाएगा।

सईद अल-अख़फ़श ने कहा: "व ला तसअल" (और मत पूछो) 'ता' पर फ़त्हा और 'लाम' पर ज़म्मा के साथ, और यह "बशीरन व नज़ीरन" पर अत्फ़ होने के कारण हाल के स्थान पर होगा (७)।

अर्थ: बेशक हमने आपको हक़ के साथ ख़ुशख़बरी देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है, जबकि आप उनके बारे में पूछने वाले नहीं हैं; क्योंकि उन्हें डराने के बाद उनके कुफ़्र का अल्लाह का ज्ञान उनके बारे में पूछने से बेनयाज़ (मुक्त) कर देता है। यह "न पूछने" का अर्थ है। और "सवाल न

किए जाने" का अर्थ है: जो कोई ख़ुशख़बरी (८) और डराने के बाद कुफ़्र करे, उसके कुफ़्र पर आपसे पूछताछ नहीं की जाएगी।

इब्ने अब्बास और मुहम्मद बिन काब ने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने एक दिन फ़रमाया: "काश मुझे मालूम होता..."

---

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०३। (२) मआनी अल-क़ुरआन १/७५। (३) १/२७६। (४) १/२८१ और ३५८। (५) इसे अल-वाहिदी ने असबाब अल-नुज़ूल पृ. ३७ में, और तफ़सीर १/१९८ में, और इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर १/१३७ में उद्धृत किया है। (६) अल-सबआ पृ. १६९, और अल-तयसीर पृ. ७६। (७) मआनी अल-क़ुरआन अल-अख़फ़श द्वारा १/३३४, और लेखक ने इसे नह़ास के माध्यम से एराब अल-क़ुरआन १/२५८ में उनसे उद्धृत किया है। इब्न अतिया ने भी अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०४ में इस क़िराअत का उल्लेख किया है। (८) (म) में: तबशीर।

۳۴۳

سورہ البقرہ : آیت ۱۱۹

اور نصاریٰ، یا یہودی ان لوگوں کے قول کے مطابق جنہوں نے «الذین لا یعلمون» (وہ جو نہیں جانتے) سے مراد نصاریٰ لیے ہیں(۱)۔

﴿تَشٰبَهَتْ قُلُوبُهُمْ﴾ (ان کے دل ایک جیسے ہو گئے) کہا گیا: ہٹ دھرمی، مطالبہ کرنے اور ایمان ترک کرنے میں۔ اور الفراء(۲) نے کہا: «تَشابَهَتْ قلوبُهم» کفر پر ان کے متفق ہونے میں۔

﴿قَدْ بَيَّنَّا الْآيَاتِ لِقَوْمٍ يُوقِنُونَ﴾ (بیشک ہم نے یقین رکھنے والوں کے لیے نشانیاں واضح کر دیں) یہ پہلے گزر چکا ہے(۳)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِنَّا أَرْسَلْنَاكَ بِالْحَقِّ بَشِيرًا وَنَذِيرًا ۖ وَلَا تُسْأَلُ عَنْ أَصْحَابِ الْجَحِيمِ ﴿١١٩﴾﴾

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِنَّا أَرْسَلْنَاكَ بِالْحَقِّ بَشِيرًا وَنَذِيرًا﴾ (بیشک ہم نے آپ کو حق کے ساتھ خوشخبری دینے والا اور ڈرانے والا بنا کر بھیجا ہے) «بشیراً» حال ہونے کی بنا پر منصوب ہے، اور «نذیراً» اس پر عطف ہے؛ ان دونوں کے معنی پہلے گزر چکے ہیں(۴)۔

﴿وَلَا تُسْأَلُ عَنْ أَصْحَابِ الْجَحِيمِ﴾ مقاتل نے کہا: نبی کریم ﷺ نے فرمایا: «اگر اللہ یہودیوں پر اپنا عذاب نازل کرتا تو وہ ایمان لے آتے»، تو اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: ﴿وَلَا تُسْأَلُ عَنْ أَصْحَابِ الْجَحِيمِ﴾(۵) «تُسأل» کے رفع کے ساتھ، اور یہی جمہور کی قرأت ہے(۶)، اور یہ «بشیراً ونذیراً» پر عطف ہونے کی وجہ سے حال کے مقام پر ہے۔ معنی یہ ہے: بیشک ہم نے آپ کو حق کے ساتھ خوشخبری دینے والا اور ڈرانے والا بنا کر بھیجا ہے اس حال میں کہ آپ سے باز پرس نہیں کی جائے گی۔

اور سعید الاخفش نے کہا: «ولا تسأَلْ» تاء کے فتحہ اور لام کے ضمہ کے ساتھ، اور یہ «بشیراً ونذیراً» پر عطف ہونے کی صورت میں حال کے مقام پر ہوگا(۷)۔

معنی: بیشک ہم نے آپ کو حق کے ساتھ خوشخبری دینے والا اور ڈرانے والا بنا کر بھیجا ہے اس حال میں کہ آپ ان کے بارے میں پوچھنے والے نہیں ہیں؛ کیونکہ ان کو ڈرانے کے بعد ان کے کفر کا اللہ کا علم ان کے بارے میں سوال کرنے سے بے نیاز کر دیتا ہے۔ یہ «نہ پوچھنے» کا معنی ہے۔ اور «نہ پوچھے جانے» کا معنی یہ ہے: جو خوشخبری(۸) اور ڈرانے کے بعد کفر کرے، اس کے کفر پر آپ کا مؤاخذہ نہیں ہوگا۔

اور ابن عباس اور محمد بن کعب نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے ایک دن فرمایا: «کاش مجھے معلوم ہوتا...»

---

(۱) المحرر الوجیز ۲۰۳/۱۔ (۲) معاني القرآن ۷۵/۱۔ (۳) ۲۷۶/۱۔ (۴) ۲۸۱/۱ اور ۳۵۸۔ (۵) اسے الواحدی نے اسباب النزول ص۳۷ میں، اور التفسیر ۱۹۸/۱ میں، اور ابن الجوزی نے زاد المسیر ۱۳۷/۱ میں ذکر کیا ہے۔ (۶) السبعة ص۱۶۹۔ اور التیسیر ص ۷۶۔ (۷) معاني القرآن للاخفش ۳۳۴/۱، اور مصنف نے اسے النحاس کے واسطے سے اعراب القرآن ۲۵۸/۱ میں ان سے نقل کیا ہے۔ ابن عطیہ نے بھی المحرر الوجیز ۲۰۴/۱ میں اس قرأت کا ذکر کیا ہے۔ (۸) (م) میں: التبشیر۔

... what became of my parents." Then this verse was revealed (1). This is based on the reading of those who recited: "wa la tas’al" (and do not ask) with a jussive ending (2), as a prohibition. This is the recitation of Nafi’ alone (3), and there are two interpretations of it: First: It is a prohibition against asking about those among the living who were disobedient and disbelievers, because their condition may change, transitioning from disbelief to faith and from disobedience to obedience. Second: And this is more apparent, it is a prohibition against asking about those who died in their disbelief and disobedience, out of solemnity for their state and as an emphasizing of the gravity of their condition. This is like when it is said: "Do not ask about so-and-so!" meaning: his state has reached beyond what you imagine. Ibn Mas'ud recited: "wa lan tus’ala" (and you shall never be asked), and Ubayy recited: "wa ma tus’alu" (and you are not asked) (4), and their meanings are consistent with the majority recitation; it negates that he (the Prophet) will be held responsible for them. It was said: He only asked which of his parents died more recently (5), and then it was revealed. We mentioned in the book "At-Tadhkirah" (6) that God Almighty brought his father and mother back to life for him and they believed in him (7), and we mentioned the saying of him, peace be upon him...

(1) The hadith of Muhammad bin Ka'b was cited by Abdul-Razzaq in at-Tafsir 1/59, and at-Tabari 2/481, and in its chain is Musa bin Ubaidah, who is weak. See Al-Mizan 4/213, and Ad-Du'afa by al-Uqayli 4/160. Abu al-Layth mentioned it in his tafsir 1/154 with the wording: "I wish I knew what was done with my parents." As-Suyuti said in ad-Durr al-Manthur 1/111: "Mursal (missing link) with a weak chain of transmission." As for the hadith of Ibn Abbas, it was mentioned by al-Baghawi in at-Tafsir 1/110, and Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/137, but we have not come across its chain of transmission. (2) In (D): jariyan. (3) Al-Sab'ah p. 169. At-Taisir p. 76. (4) Al-Qira'at al-Shadhah by Ibn Khalawayh p. 9. (5) Cited by Ibn Atiyyah in al-Muharrar al-Wajiz 1/203 from al-Mahdawi with the wording: "I wish I knew which of my parents died more recently." Ibn Atiyyah rejected it saying: "This is a error by whoever narrated it or assumed it; because his father died while he was in his mother's womb... and his mother died five years later while returning with him from Medina from visiting his maternal uncles, so this is not something that would be hidden from him, peace be upon him." (6) Pp. 14-15. (7) Cited by Ibn Shahin in Nasikh al-Hadith wa Mansukhuhu (656), and al-Ajluni attributed it in Kashf al-Khafa' 1/62 to al-Khatib al-Baghdadi, ad-Daraqutni, and Ibn Asakir, and it is from the hadith of Aisha, may Allah be pleased

with her, in which the Messenger of Allah, peace be upon him, said: "I asked my Lord, Mighty and Majestic, and He brought my mother back to life for me, so she believed in me, then He returned her." Al-Dhahabi said in Mizan al-I'tidal 2/684: "This hadith is a fabrication, contradicting what is established from him, peace and blessings be upon him, that he asked permission from his Lord to seek forgiveness for her, and He did not grant it to him." Ibn Kathir said in al-Bidayah wa al-Nihayah 3/429: "A very rejected (munkar) hadith, and although it is possible in view of God Almighty's power, what is established in the Sahih (authentic collections) contradicts it." See Al-Rawd al-Unuf 1/194, and Lisan al-Mizan 4/91.

सूरा अल-बक़राह: आयत 119 | पृष्ठ 344

... मेरे माता-पिता का क्या हुआ।" तब यह आयत नाज़िल हुई (1)। यह उन लोगों के पाठ (क़िरात) पर आधारित है जिन्होंने पढ़ा: "वला तस्अल" (और न पूछो) जज़्म (जज़्म के साथ अंत) के साथ (2), एक मनाही के रूप में। यह अकेले नाफे का पाठ है (3), और इसके दो पहलू (व्याख्याएँ) हैं: पहला: यह जीवित लोगों में से उन लोगों के बारे में पूछने की मनाही है जिन्होंने अवज्ञा की और इनकार किया; क्योंकि उनकी स्थिति बदल सकती है, जिससे वे कुफ्र (अविश्वास) से ईमान की ओर और अवज्ञा से आज्ञाकारिता की ओर बढ़ सकते हैं। दूसरा: और यह अधिक स्पष्ट है, यह उन लोगों के बारे में पूछने की मनाही है जिनकी मृत्यु कुफ्र और अवज्ञा की स्थिति में हुई, उनकी स्थिति की गंभीरता दर्शाने और उनके मामले की कठोरता को व्यक्त करने के लिए। यह वैसा ही है जैसे कहा जाता है: "फलां के बारे में मत पूछो!" अर्थात: उसकी स्थिति आपकी कल्पना से कहीं अधिक (बुरी) हो चुकी है। इब्न मसूद ने पढ़ा: "वलन तुस्अला" (और तुमसे कभी नहीं पूछा जाएगा), और उबई ने पढ़ा: "वमा तुस्अलु" (और तुमसे नहीं पूछा जाता) (4), और उनके अर्थ बहुसंख्यक पाठकों (जुमहूर) के पाठ के अनुकूल हैं; यह इस बात का खंडन करता है कि (पैगंबर) से उनके बारे में पूछा जाएगा। कहा गया है: उन्होंने केवल यह पूछा था कि उनके माता-पिता में से किसकी मृत्यु हाल ही में हुई थी (5), तब यह आयत उतरी। हमने पुस्तक "अत-तज़कीरा" (6) में उल्लेख किया है कि अल्लाह तआला ने उनके लिए उनके पिता और माता को जीवित किया और वे उन पर ईमान लाए (7), और हमने आप (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के इस कथन का उल्लेख किया...

(1) मुहम्मद बिन काब की हदीस को अब्द-अल-रज़्ज़ाक ने अत्तफ़सीर 1/59 में, और अत्तबरी ने 2/481 में उद्धृत किया है, और इसके इसनाद (श्रृंखला) में मूसा बिन उबैदा है जो कमज़ोर है। देखें अल-मीज़ान 4/213, और अल-उकैली द्वारा अज़-ज़ुआफ़ा' 4/160। अबू अल-लैस ने अपनी तफ़सीर 1/154 में इन शब्दों के साथ इसका उल्लेख किया है: "काश मुझे पता होता कि मेरे माता-पिता के साथ क्या हुआ।" अस-सुयुती ने अद-दुर्र अल-मन्सूर 1/111 में कहा: "मुरसल और कमज़ोर इसनाद।" जहाँ तक इब्न अब्बास की हदीस का सवाल है, अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर 1/110 में और इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर 1/137 में इसका उल्लेख किया है, लेकिन हमें इसका इसनाद नहीं मिला। (2) (द) में: जारियन। (3) अस-सबअह पृ. 169 और अत-तैसीर पृ. 76। (4) इब्न खालवैह द्वारा अल-किरात अश-शज़ह पृ. 9। (5) इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/203 में अल-महदवी से इन शब्दों के साथ उद्धृत किया है: "काश मुझे पता होता कि मेरे माता-पिता में से

किसकी मृत्यु हाल ही में हुई थी।" इब्न अतिय्या ने यह कहते हुए इसे खारिज कर दिया: "यह इसे सुनाने वाले या सोचने वाले की गलती है; क्योंकि उनके पिता की मृत्यु तब हुई जब वे अपनी माँ के गर्भ में थे... और उनकी माँ की मृत्यु उसके पाँच साल बाद हुई जब वे मदीना से अपने मामाओं के यहाँ से वापस आ रहे थे, तो यह ऐसी बात नहीं है जो उनसे छिपी हो, सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम।" (6) पृ. 14-15। (7) इब्न शाहीन ने नासिख अल-हदीस व मंसूखूह (656) में इसे उद्धृत किया है, और अल-अजलुनी ने कशफ अल-खफ़ा' 1/62 में इसे अल-खतीब अल-बग़दादी, अद-दारकुतनी और इब्न असाकिर की ओर मनसूब किया है। यह आयशा (रज़िअल्लाहु अन्हा) की हदीस है जिसमें अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने कहा: "मैंने अपने रब अज़्ज़ा व जल्ल से प्रार्थना की, तो उन्होंने मेरे लिए मेरी माँ को जीवित कर दिया, वह मुझ पर ईमान लाईं फिर उन्हें वापस ले लिया।" अज़-ज़हबी ने मीज़ान अल-एतिदाल 2/684 में कहा: "यह हदीस झूठ है, जो उनसे प्रमाणित बातों के खिलाफ है कि उन्होंने अपने रब से उनके लिए क्षमा माँगने की अनुमति मांगी थी, लेकिन उन्हें अनुमति नहीं दी गई।" इब्न कसीर ने अल-बिदाया व अन-निहाया 3/429 में कहा: "अत्यधिक अस्वीकार्य (मुनकर) हदीस, और हालाँकि अल्लाह तआला की शक्ति को देखते हुए यह संभव है, लेकिन जो सहीह हदीसों में प्रमाणित है वह इसका विरोध करता है।" देखें अल-रौद अल-उनुफ़ 1/194, और लिसान अल-मीज़ान 4/91।

سورة البقرہ: آیت 119 | صفحہ 344

... میرے والدین کا کیا بنا۔" تب یہ آیت نازل ہوئی (1)۔ یہ ان لوگوں کی قرأت پر مبنی ہے جنہوں نے جزم کے ساتھ "ولا تَسْأَلْ" (اور نہ پوچھو) پڑھا (2) جو کہ نہی (ممانعت) پر دلالت کرتا ہے۔ یہ اکیلے نافع کی قرأت ہے (3)، اور اس میں دو پہلو ہیں: پہلا: یہ زندوں میں سے ان لوگوں کے بارے میں پوچھنے سے ممانعت ہے جنہوں نے نافرمانی اور کفر کیا؛ کیونکہ ان کا حال بدل سکتا ہے، اور وہ کفر سے ایمان کی طرف، اور نافرمانی سے اطاعت کی طرف منتقل ہو سکتے ہیں۔ دوسرا: اور یہ زیادہ واضح ہے، یہ ان لوگوں کے بارے میں پوچھنے سے ممانعت ہے جو اپنے کفر اور نافرمانی پر مر گئے، ان کے حال کی سنگینی اور ان کے معاملے کی سختی کو ظاہر کرنے کے لیے۔ یہ ویسا ہی ہے جیسا کہا جاتا ہے: "فلاں کے بارے میں مت پوچھو!" یعنی: وہ تمہارے گمان سے بھی زیادہ (بری) حالت کو پہنچ چکا ہے۔ ابن مسعود نے پڑھا: "ولن تُسْأَلَ" (اور آپ سے ہرگز نہیں پوچھا جائے گا)، اور ابی نے پڑھا: "وما تُسْأَلُ" (اور آپ سے نہیں پوچھا جاتا) (4)۔ ان دونوں کے معنی جمہور کی قرأت کے موافق ہیں؛ اس میں اس بات کی نفی کی گئی ہے کہ (نبیﷺ) سے ان کے بارے میں پوچھا جائے گا۔ کہا گیا ہے: انہوں نے صرف یہ پوچھا تھا کہ ان کے والدین میں سے کس کی موت حال ہی میں ہوئی تھی (5)، تو یہ آیت اتری۔ ہم نے کتاب "التذکرہ" (6) میں ذکر کیا ہے کہ اللہ تعالیٰ نے ان کے لیے ان کے والد اور والدہ کو زندہ کیا اور وہ ان پر ایمان لائے (7)، اور ہم نے آپ ﷺ کا یہ قول ذکر کیا...

(1) محمد بن کعب کی حدیث کو عبدالرزاق نے التفسیر 1/59 میں، اور طبری نے 2/481 میں نکالا ہے، اور اس کی سند میں موسیٰ بن عبیدہ ہے جو ضعیف ہے۔ دیکھئے المیزان 4/213، اور عقیلی کی الضعفاء 4/160۔ ابو اللیث نے اپنی تفسیر 1/154 میں ان الفاظ کے ساتھ اس کا ذکر کیا

ہے: "کاش مجھے معلوم ہوتا کہ میرے والدین کے ساتھ کیا کیا گیا۔" سیوطی نے الدر المنثور 1/111 میں کہا: "مرسل، ضعیف الاسناد۔" جہاں تک ابن عباس کی حدیث کا تعلق ہے، بغوی نے التفسیر 1/110 میں اور ابن الجوزی نے زاد المسیر 1/137 میں اس کا ذکر کیا ہے، لیکن ہمیں اس کی سند نہیں ملی۔ (2) (د) میں: جریاً۔ (3) السبعہ ص 169 اور التیسیر ص 76۔ (4) ابن خالویہ کی القراءات الشاذہ ص 9۔ (5) ابن عطیہ نے المحرر الوجیز 1/203 میں مہدوی سے ان الفاظ کے ساتھ نقل کیا ہے: "کاش مجھے معلوم ہوتا کہ میرے والدین میں سے کس کی موت حال ہی میں ہوئی تھی۔" ابن عطیہ نے یہ کہہ کر اسے رد کر دیا: "یہ روایت کرنے والے یا ایسا گمان کرنے والے کی غلطی ہے؛ کیونکہ ان کے والد کا انتقال اس وقت ہوا جب وہ اپنی والدہ کے بطن میں تھے... اور ان کی والدہ کا انتقال اس کے پانچ سال بعد ہوا جب وہ مدینہ سے اپنے ننھیال کی زیارت سے واپس آ رہے تھے، تو یہ ایسی چیز نہیں ہے جو آپ ﷺ سے مخفی رہی ہو۔" (6) ص 14-15۔ (7) ابن شاہین نے ناسخ الحدیث و منسوخہ (656) میں اسے نکالا ہے، اور عجلونی نے کشف الخفاء 1/62 میں اسے خطیب بغدادی، دارقطنی اور ابن عساکر کی طرف منسوب کیا ہے۔ یہ عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث ہے جس میں رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "میں نے اپنے رب عز و جل سے دعا کی تو انہوں نے میرے لیے میری ماں کو زندہ کر دیا، وہ مجھ پر ایمان لائیں پھر انہیں واپس کر دیا۔" ذہبی نے میزان الاعتدال 2/684 میں کہا: "یہ حدیث جھوٹ ہے، جو آپ ﷺ سے ثابت شدہ باتوں کے خلاف ہے کہ آپ نے اپنے رب سے ان کے لیے مغفرت کی اجازت مانگی تھی، لیکن آپ کو اجازت نہیں دی گئی۔" ابن کثیر نے البدایہ والنہایہ 3/429 میں کہا: "انتہائی منکر حدیث ہے، اور اگرچہ اللہ تعالیٰ کی قدرت کے لحاظ سے یہ ممکن ہے، لیکن جو صحیح احادیث سے ثابت ہے وہ اس کے خلاف ہے۔" دیکھئے الروض الانف 1/194، اور لسان المیزان 4/91۔

Surah Al-Baqarah: Verse 120 345

To the man: "Indeed, my father and your father are in the Fire" (1) and we explained that, and praise be to Allah. Allah Almighty's saying: {And never will the Jews or the Christians be pleased with you until you follow their religion. Say, "Indeed, the guidance of Allah is the [only] guidance." If you were to follow their desires after what has come to you of knowledge, you would have against Allah no protector or helper.} [120] Allah Almighty's saying: {And never will the Jews or the Christians be pleased with you until you follow their religion}. In it are two matters: The first: Allah Almighty's saying: {And never will the Jews or the Christians be pleased with you until you follow their religion}. The meaning is: Their purpose, O Muhammad, in what they propose of signs is not to believe; rather, even if you brought them everything they asked for, they would not be pleased with you. What would please them (2) is your abandonment of what you are upon of Islam and following them. It is said: Radhiya, yardha, ridhan, waridhan, waridwanan, warudwanan, and mardhatan [different forms of the root for "to be pleased"]. It is from the roots containing the letter 'Waw'. In the dual form, it is said 'ridhawan'. Al-Kisa'i narrated 'ridhayan'. It is also narrated as 'ridha'a', extended, as if it were the verbal noun of 'radha, yuradhi, muradhatun, and ridha'an' (3). And "tattabi'a" [follow] is in the subjunctive case because of a hidden "an", but it does not appear with "hatta" [until], according to Al-Khalil. This is because "hatta" is a preposition for nouns, as in His saying: {Until the emergence of dawn} [Al-Qadr: 5], and what acts upon a noun does not act upon a verb at all, and what makes a noun genitive (4) does not make anything subjunctive (5). Al-Nahhas said (6): "tattabi'a" is in the subjunctive because of "hatta", and "hatta" replaces "an". The 'millah' (religion/creed): is a name for what Allah has legislated for His servants in His books and upon (7) the tongues of His messengers. Thus, 'millah' and 'sharia' (law) are the same. As for 'deen' (religion/faith), a distinction has been made between it and 'millah' and 'sharia' (8); in that (9) 'millah' and 'sharia' are what Allah called His servants to do, and 'deen' is what the servants did by His command.

---

(1) Narrated by Ahmad (12192) and (13834), and Muslim (203) from the hadith of Anas, may Allah be pleased with him. (2) In (Z): their purpose, and in its margin: pleases them. (3) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/258. (4) In (Z): nouns. (5) Ma'ani al-Qur'an by al-Zajjaj 1/201. (6) I'rab al-Qur'an 258/1. (7) In (D) and (Z): upon. (8) In (Kh) and (Z): and between the Sharia. (9) In (D) and (M): For.

सूरह अल-बकराह: आयत १२० ३४५

उस व्यक्ति के लिए: "निश्चित रूप से, मेरे पिता और आपके पिता आग में हैं" (१) और हमने उसे स्पष्ट किया, और अल्लाह की प्रशंसा हो। अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और यहूदी और ईसाई आपसे कभी प्रसन्न नहीं होंगे जब तक कि आप उनके धर्म का पालन न करें। कहो, "वास्तव में, अल्लाह का मार्गदर्शन ही [एकमात्र] मार्गदर्शन है।" यदि आपने अपने पास ज्ञान आने के बाद उनकी इच्छाओं का पालन किया, तो अल्लाह के विरुद्ध आपका कोई संरक्षक या सहायक नहीं होगा।} [१२०] अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और यहूदी और ईसाई आपसे कभी प्रसन्न नहीं होंगे जब तक कि आप उनके धर्म का पालन न करें}। इसमें दो विषय हैं: पहला: अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और यहूदी और ईसाई आपसे कभी प्रसन्न नहीं होंगे जब तक कि आप उनके धर्म का पालन न करें}। अर्थ यह है: हे मुहम्मद, वे जिन चमत्कारों का प्रस्ताव करते हैं, उनका उद्देश्य विश्वास करना नहीं है; बल्कि, यदि आप उनके पास वह सब कुछ ले आएं जो वे माँगते हैं, तब भी वे आपसे प्रसन्न नहीं होंगे। उन्हें जो चीज़ प्रसन्न करेगी (२) वह है आपका इस्लाम को छोड़ देना और उनका अनुसरण करना। कहा जाता है: रज़िया, यर्ज़ा, रिज़ान, व-रिज़ान, व-रिज़वानन, व-रुज़वानन, और मर्ज़ातन ["प्रसन्न होने" के मूल शब्द के विभिन्न रूप]। यह 'वाव' अक्षर वाले मूल शब्दों से है। द्विवचन में 'रिज़वान' कहा जाता है। अल-किसाई ने 'रिज़यान' का वर्णन किया है। इसे 'रिज़ाअ' के रूप में भी वर्णित किया गया है, विस्तारित, जैसे कि यह 'राज़ा, युराज़ी, मुराज़ातुन, और रिज़ान' (३) का क्रियात्मक संज्ञा हो। और "तत्तबि'आ" [अनुसरण करना] एक छिपे हुए "अन" के कारण कर्मवाच्य (subjunctive) में है, लेकिन अल-खलील के अनुसार यह "हत्ता" [जब तक] के साथ प्रकट नहीं होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि "हत्ता" संज्ञाओं के लिए पूर्वसर्ग है, जैसा कि उनके कथन में है: {भोर के उदय होने तक} [अल-क़द्र: ५], और जो संज्ञा पर कार्य करता है वह क्रिया पर बिल्कुल कार्य नहीं करता है, और जो संज्ञा को संबंध कारक (genitive) बनाता है (४) वह किसी चीज़ को कर्मवाच्य नहीं बनाता (५)। अल-नहस ने कहा (६): "तत्तबि'आ" "हत्ता" के कारण कर्मवाच्य में है, और "हत्ता" "अन" की जगह लेता है। 'मिल्लत' (धर्म/पंथ): वह नाम है जो अल्लाह ने अपने सेवकों के लिए अपनी किताबों में और अपने रसूलों (७) के माध्यम से निर्धारित किया है। इस प्रकार, 'मिल्लत' और 'शरीयत' (कानून) एक ही हैं। जहाँ तक 'दीन' (धर्म/आस्था) की बात है, तो इसके और 'मिल्लत' व 'शरीयत' (८) के बीच अंतर किया गया है; इस अर्थ में (९) कि 'मिल्लत' और 'शरीयत' वह है जिसके लिए अल्लाह ने अपने सेवकों को बुलाया, और 'दीन' वह है जो सेवकों ने उसके आदेश से किया।

(१) इसे अहमद (१२१९२) और (१३८३४) ने उद्धृत किया है, और मुस्लिम (२०३) ने अनस (रज़ी अल्लाहु अन्हु) की हदीस से। (२) (ज़) में: उनका उद्देश्य, और इसके हाशिये में: उन्हें प्रसन्न करता है। (३) इराब अल-कुरान, अल-नहस १/२५८ द्वारा। (४) (ज़) में: संज्ञाएं। (५) म'आनी अल-कुरान, अल-ज़ज्जाज १/२०१ द्वारा। (६) इराब अल-कुरान २५८/१। (७) (द) और (ज़) में: पर। (८) (ख) और (ज़) में: और शरीयत के बीच। (९) (द) और (म) में: क्योंकि।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۰ ۳۴۵

آدمی سے: «بے شک میرا باپ اور تیرا باپ آگ میں ہیں» (۱) اور ہم نے اسے واضح کر دیا، اور اللہ کا شکر ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَن تَرْضَىٰ عَنكَ الْيَهُودُ وَلَا النَّصَارَىٰ حَتَّىٰ تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ قُلْ إِنَّ هُدَى اللَّهِ هُوَ الْهُدَىٰ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ أَهْوَاءَهُم بَعْدَ الَّذِي جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ مَا لَكَ مِنَ اللَّهِ مِن وَلِيٍّ وَلَا نَصِيرٍ ۱۲۰﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَن تَرْضَىٰ عَنكَ الْيَهُودُ وَلَا النَّصَارَىٰ حَتَّىٰ تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ﴾ اس میں دو مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَن تَرْضَىٰ عَنكَ الْيَهُودُ وَلَا النَّصَارَىٰ حَتَّىٰ تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ﴾ معنی یہ ہے: اے محمد، ان نشانیوں کی تجویز سے ان کا مقصد ایمان لانا نہیں ہے، بلکہ اگر آپ ان کے پاس وہ سب کچھ لے آئیں جو وہ مانگتے ہیں تب بھی وہ آپ سے راضی نہیں ہوں گے، بلکہ جو چیز انہیں راضی کرے گی (۲) وہ آپ کا اس اسلام کو چھوڑ دینا ہے جس پر آپ ہیں اور ان کی پیروی کرنا ہے۔ کہا جاتا ہے: رَضِيَ يَرْضَى رِضاً ورِضاً ورِضواناً ورُضواناً ومَرْضاةً، اور یہ 'واؤ' والی جڑوں سے ہے۔ اور تثنیہ میں 'رِضَوانِ' کہا جاتا ہے، اور الکسائی نے 'رِضَيانِ' حکایت کیا ہے۔ اور 'رِضَاء' ممدود بھی حکایت کیا گیا ہے، گویا یہ 'راضى يُراضي مُراضاةً ورِضاءً' (۳) کا مصدر ہو۔ اور «تَتَّبِعَ» 'ان' کی وجہ سے منصوب ہے، لیکن وہ 'حتی' کے ساتھ ظاہر نہیں ہوتا، یہ الخلیل نے کہا ہے۔ اس کی وجہ یہ ہے کہ 'حتی' اسم کو جر دیتا ہے، جیسے اللہ کا ارشاد ہے: ﴿حَتَّىٰ مَطْلَعِ الْفَجْرِ﴾ [القدر: ۵]، اور جو اسم میں عمل کرتا ہے وہ فعل میں ہرگز عمل نہیں کرتا، اور جو اسم کو جر دیتا ہے (۴) وہ کسی چیز کو نصب نہیں دیتا (۵)۔ اور النحاس نے کہا (۶): «تَتَّبِعَ» 'حتی' کی وجہ سے منصوب ہے، اور 'حتی' 'ان' کا بدل ہے۔ اور 'ملت': اس چیز کا نام ہے جو اللہ نے اپنے بندوں کے لیے اپنی کتابوں میں اور اپنے رسولوں (۷) کی زبانوں پر مشروع فرمایا۔ چنانچہ ملت اور شریعت ایک ہی ہیں؛ رہا 'دین'، تو اس کے اور ملت و شریعت (۸) کے درمیان فرق کیا گیا ہے؛ بایں طور (۹) کہ

ملت اور شریعت وہ ہے جس کی طرف اللہ نے اپنے بندوں کو بلایا، اور دین وہ ہے جو بندوں نے اس کے حکم سے کیا۔

---

(١) اسے احمد (١٢١٩٢) اور (١٣٨٣٤) اور مسلم (٢٠٣) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٢) (ز) میں: غرضہم (ان کا مقصد)، اور اس کے حاشیہ میں: یرضیہم (انہیں راضی کرتا ہے)۔ (٣) اعراب القرآن للنحاس ٢٥٨/١۔ (٤) (ز) میں: الاسماء (اسماء)۔ (٥) معانی القرآن للزجاج ٢٠١/١۔ (٦) اعراب القرآن ٢٥٨/١۔ (٧) (د) اور (ز) میں: علی (پر)۔ (٨) (خ) اور (ز) میں: اور شریعت کے درمیان۔ (٩) (د) اور (م) میں: فإن (کیونکہ)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 120 346

Second: A group of scholars, including Abu Hanifa, Al-Shafi'i, Dawud, and Ahmad ibn Hanbal, held to this verse that all disbelief (Kufr) is one single creed (Millah); because of the Almighty's saying: {their creed (millatahum)} (1), so He used the singular for creed, and because of His saying: {For you is your religion, and for me is my religion}, and because of his saying, peace be upon him: "People of two different creeds do not inherit from each other" (2), meaning that what is intended is Islam and disbelief, as evidenced by his saying, peace be upon him: "A Muslim does not inherit from a disbeliever" (3).

Malik and Ahmad, in another narration, held that disbelief consists of multiple creeds; thus, a Jew does not inherit from a Christian, and neither of them inherits from a Magian (Zoroastrian); taking the literal meaning of his saying, peace be upon him: "People of two different creeds do not inherit from each other" (4).

As for His saying, the Almighty: "their creed," what is intended is plurality, even if it is singular in wording, evidenced by its addition to a plural pronoun, just as you say: I took from the scholars of the people of Medina - for example - their knowledge ('ilmahum), and I heard from them their narration (hadithahum), meaning their sciences and their narrations.

His saying, the Almighty: {Say, "Indeed, the guidance of Allah is the [only] guidance"} The meaning: What you are upon, O Muhammad, of the true guidance of Allah which He places in the heart of whomever He wills (6) is the true guidance, not what these people claim (7).

His saying, the Almighty: {And if you should follow their desires} Desires (Ahwa') is the plural of desire (Hawa), just as you say: jamal (camel) and ajmal (camels), and since they were diverse, it was pluralized, and if it were carried on the singularity of the creed, He would have said: their desire (8).

---

(1) In (Kh): for his saying, peace be upon him: The true religion is the Hanifiyyah, the religion of Abraham the Friend, and the Almighty said: their creed... (2) Narrated by Ahmad (6664) and (6844), Abu Dawud (2911), and Ibn Majah (2731), from the hadith of Abdullah ibn Amr, may Allah be pleased with them both. (3) Narrated by Ahmad (21747), Al-Bukhari (6764), and Muslim (1614) from the hadith of Usama ibn Zayd, may Allah be pleased with him. (4) See Al-Tamhid 9/169-172, and Al-Istidhkar 15/494.

(5) In (D): from them. (6) In (Z) and (Za): We place... we will. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/204. (8) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/204, and Ma'ani al-Qur'an by Al-Zajjaj 1/202.

सूरह अल-बकरा: आयत 120 346

दूसरा: विद्वानों के एक समूह ने, जिनमें अबू हनीफ़ा, अल-शाफ़ई, दाऊद और अहमद बिन हंबल शामिल हैं, इस आयत को इस बात का आधार बनाया कि सारा कुफ्र (अविश्वास) एक ही पंथ (मिल्लत) है; क्योंकि सर्वशक्तिमान का कथन है: {उनका पंथ (मिल्लतहुम)} (1), यहाँ पंथ शब्द एकवचन में प्रयुक्त हुआ है, और अल्लाह के इस कथन के कारण: {तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म है और मेरे लिए मेरा धर्म}, और उनके इस कथन के कारण, शांति उन पर हो: "दो अलग पंथों के लोग एक-दूसरे के वारिस नहीं होते" (2), इस आधार पर कि यहाँ तात्पर्य इस्लाम और कुफ्र से है, जैसा कि उनके इस कथन से सिद्ध होता है, शांति उन पर हो: "एक मुसलमान किसी काफिर का वारिस नहीं होता" (3)।

मलिक और अहमद ने एक अन्य कथन में यह माना है कि कुफ्र कई पंथों का समूह है; अतः एक यहूदी एक ईसाई का वारिस नहीं होता, और न ही वे दोनों किसी पारसी (मजूसी) के वारिस होते हैं; उन्होंने उनके इस कथन के स्पष्ट अर्थ को लिया है, शांति उन पर हो: "दो अलग पंथों के लोग एक-दूसरे के वारिस नहीं होते" (4)।

जहाँ तक उनके इस कथन का प्रश्न है, सर्वशक्तिमान: "उनका पंथ", तो इससे तात्पर्य बहुवचन है, भले ही शब्द एकवचन हो, क्योंकि इसे बहुवचन सर्वनाम के साथ जोड़ा गया है, जैसे आप कहते हैं: मैंने मदीना के विद्वानों से - उदाहरण के लिए - उनका ज्ञान ('इल्महुम) प्राप्त किया, और उनसे उनकी हदीस (हदीसहुम) सुनी, जिसका अर्थ है उनके विज्ञान और उनकी हदीसें।

अल्लाह का कथन: {कह दो, "निश्चित रूप से अल्लाह का मार्गदर्शन ही [असली] मार्गदर्शन है"} इसका अर्थ है: ऐ मुहम्मद, आप अल्लाह के उस सच्चे मार्गदर्शन पर हैं जिसे वह जिसके लिए चाहता है उसके दिल में डाल देता है (6), वही वास्तविक मार्गदर्शन है, न कि वह जिसका ये लोग दावा करते हैं (7)।

अल्लाह का कथन: {और यदि आप उनकी इच्छाओं का पालन करेंगे} इच्छाएँ(अहवा) 'हवा' (इच्छा) का बहुवचन है, जैसे आप कहते हैं: जमल (ऊँट) और अजमल (ऊँटें), और चूँकि वे विभिन्न थीं, इसलिए बहुवचन का प्रयोग किया गया, और यदि इसे पंथ के एकवचन होने पर आधारित किया जाता, तो वह कहता: उनकी इच्छा (8)।

(1) (ख़) में: उनके इस कथन के लिए, शांति उन पर हो: दीन हनीफ़िया इब्राहिम खलील का दीन है और अल्लाह ने फ़रमाया: उनका पंथ... (2) इसे अहमद (6664) और (6844), अबू दाऊद (2911), और इब्न माजाह (2731) ने अब्दुल्ला बिन अम्र (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। (3) इसे अहमद (21747), अल-बुखारी (6764), और मुस्लिम (1614) ने उसामा बिन ज़ैद (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। (4) देखें अल-तमहीद 9/169-172, और अल-इस्तिज़कार 15/494। (5) (द) में: उनसे। (6) (ज़) और (ज़़) में: हम रखते हैं... हम चाहते हैं। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/204। (8) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/204, और मा'नी अल-क़ुरान अज़-ज़ज्जाज 1/202।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۰ ۳۴۶

دوسرا: علماء کی ایک جماعت نے اس آیت سے استدلال کیا ہے، جن میں ابوحنیفہ، شافعی، داؤد اور احمد بن حنبل شامل ہیں، کہ کفر سارا ایک ہی ملت ہے؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿مِلَّتَهُمْ﴾ (۱) (ان کی ملت)، پس اس نے ملت کو واحد ذکر کیا، اور اللہ تعالیٰ کے اس قول کی وجہ سے: ﴿لَكُمْ دِينُكُمْ وَلِيَ دِينِ﴾ (تمہارے لیے تمہارا دین ہے اور میرے لیے میرا دین)، اور آپ صلی اللہ علیہ وسلم کے اس قول کی وجہ سے: "دو مختلف ملتوں والے ایک دوسرے کے وارث نہیں ہوتے"(۲) اس بنیاد پر کہ اس سے مراد اسلام اور کفر ہے، جیسا کہ آپ صلی اللہ علیہ وسلم کے اس قول سے ثابت ہے: "مسلمان کافر کا وارث نہیں ہوتا"(۳)۔

اور مالک اور احمد نے دوسری روایت میں یہ موقف اختیار کیا ہے کہ کفر کئی ملتیں ہیں، لہٰذا یہودی عیسائی کا وارث نہیں ہوگا، اور نہ ہی یہ دونوں مجوسی کے وارث ہوں گے؛ آپ صلی اللہ علیہ وسلم کے اس قول کے ظاہر کو لیتے ہوئے: "دو مختلف ملتوں والے ایک دوسرے کے وارث نہیں ہوتے"(۴)۔

جہاں تک اللہ تعالیٰ کے قول ﴿مِلَّتَهُمْ﴾ کا تعلق ہے، تو اس سے مراد کثرت ہے، اگرچہ لفظ واحد ہے، اس کی دلیل یہ ہے کہ اسے جمع کی ضمیر کی طرف مضاف کیا گیا ہے، جیسے آپ کہیں: میں نے اہل مدینہ کے علماء سے - مثال کے طور پر - ان کا علم (عِلْمَهُمْ) حاصل کیا، اور ان سے ان کی حدیث (حديثهم) سنی، یعنی ان کے علوم اور ان کی احادیث۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿قُلْ إِنَّ هُدَى اللَّهِ هُوَ الْهُدَى﴾ (کہہ دو کہ اللہ کی ہدایت ہی اصل ہدایت ہے) معنی یہ ہے کہ: اے محمد، آپ اللہ کی جس حق ہدایت پر ہیں جسے وہ جس کے دل میں چاہتا ہے ڈال دیتا ہے(۶) وہی حقیقی ہدایت ہے، نہ کہ وہ جس کا یہ لوگ دعویٰ کرتے ہیں(۷)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ أَهْوَاءَهُمْ﴾ (اور اگر آپ ان کی خواہشات کی پیروی کریں) 'اہواء' 'ہویٰ' کی جمع ہے، جیسے آپ کہیں: جمل اور اجمال، اور چونکہ وہ مختلف تھیں اس لیے جمع لایا گیا، اور اگر اسے ملت کے واحد ہونے پر محمول کیا جاتا تو فرماتا: 'ہواہم'(٨)۔

---

(١) (خ) میں: آپ صلی اللہ علیہ وسلم کے اس قول کے لیے: دین حنیفیت ابراہیم خلیل کا دین ہے اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ان کی ملت... (٢) اسے احمد (٦٦٦٤) اور (٦٨٤٤)، ابوداؤد (٢٩١١) اور ابن ماجہ (٢٧٣١) نے عبداللہ بن عمرو رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٣) اسے احمد (٢١٧٤٧)، بخاری (٦٧٦٤) اور مسلم (١٦١٤) نے اسامہ بن زید رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٤) دیکھئے التمہید ٩/ ١٦٩-١٧٢، اور الاستذکار ١٥/ ٤٩٤۔ (٥) (د) میں: عنہم (ان سے)۔ (٦) (ز) اور (ظ) میں: نضعہ (ہم اسے رکھتے ہیں)... نشاء (ہم چاہتے ہیں)۔ (٧) المحرر الوجیز ١/ ٢٠٤۔ (٨) دیکھئے المحرر الوجیز ١/ ٢٠٤، اور معانی القرآن للزجاج ١/ ٢٠٢۔

In this address, there are two interpretations: First: That it is directed to the Messenger, as the address is aimed at him. Second: That it is for the Messenger, but what is intended is his nation (Ummah). According to the first view, it contains a disciplinary lesson for his nation, since their status is lower than his. The reason for the verse is that they used to ask for peace and a truce, promising the Prophet (PBUH) that they would convert to Islam. So Allah informed him that they would never be satisfied with him until he followed their religion, and He commanded him to strive against them. His (the Almighty's) saying: "of knowledge": Ahmad ibn Hanbal was asked about someone who says: "The Quran is created." He said: "Disbeliever." It was asked: "For what reason did you label him a disbeliever?" He replied: "By verses from the Book of Allah the Almighty: 'And if you should follow their desires after what has come to you of knowledge...' (2:120). And the Quran (1) is from the knowledge of Allah; so whoever claims it is created has disbelieved (2)." His (the Almighty's) saying: "Those to whom We have given the Book recite it with its true recital. They are the ones who believe in it. And whoever disbelieves in it - it is those who are the losers. (121) O Children of Israel, remember My favor which I have bestowed upon you and that I preferred you over the worlds. (122) And fear a Day when no soul will suffice for another soul at all, nor will justice be accepted from it, nor will intercession benefit it, nor will they be helped. (123)" His (the Almighty's) saying: "Those to whom We have given the Book": Qatadah said: "They are the companions of the Prophet (PBUH), and the 'Book' according to this interpretation is the Quran." Ibn Zayd said: "They are those who converted to Islam from the Children of Israel, and the 'Book' according to this interpretation is the Torah, and the verse is general (3)." And "Those" (al-ladhina) is in the nominative case (raf') as the subject (mubtada'), "We have given them" (ataynahum) is its relative clause (silah), "recite it" (yatlunahu) is the predicate (khabar) of the subject. If you wish, the predicate could be: "They are the ones who believe in it" (4). There was a difference of opinion regarding the meaning of "recite it with its true recital": It was said: "They follow it with its true following, by following the commands..."

---

(1) In (Kh), (Z), and (Zh): "So the Quran". (2) See Masa'il al-Imam Ahmad, narrated by Ibn Hani 2/154. (3) See al-Muharrar al-Wajiz 1/204, and the statements of Qatadah and Abd al-Rahman ibn Zayd were recorded by al-Tabari 2/486. (4) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/258.

इस संबोधन में दो दृष्टिकोण हैं: पहला: कि यह रसूल (स.अ.व.) के लिए है, क्योंकि संबोधन उन्हीं की ओर है। दूसरा: कि यह रसूल के लिए है लेकिन इससे मुराद उनकी उम्मत है। पहले दृष्टिकोण के अनुसार, इसमें उनकी उम्मत के लिए एक अनुशासनात्मक शिक्षा है; क्योंकि उनका पद उनके पद से कम है। आयत का कारण यह है कि वे सुलह और युद्धविराम की माँग करते थे, और नबी (स.अ.व.) से इस्लाम स्वीकार करने का वादा करते थे। अतः अल्लाह ने उन्हें सूचित किया कि वे उनसे कभी संतुष्ट नहीं होंगे जब तक कि वह उनके धर्म का पालन न करें, और उन्हें उनके विरुद्ध जिहाद करने का आदेश दिया। अल्लाह तआला का कथन: "ज्ञान में से": अहमद बिन हंबल से उस व्यक्ति के बारे में पूछा गया जो कहता है: "क़ुरआन मखलूक (निर्मित) है।" उन्होंने कहा: "काफ़िर।" पूछा गया: "आपने उसे किस आधार पर काफ़िर कहा?" उन्होंने कहा: "अल्लाह तआला की किताब की आयतों के कारण: 'और यदि आप उस ज्ञान के आने के बाद उनकी इच्छाओं का पालन करेंगे जो आपके पास आ चुका है...' और क़ुरआन(1) अल्लाह के ज्ञान में से है, अतः जिसने यह दावा किया कि वह मखलूक है, उसने कुफ़्र किया(2)।" अल्लाह तआला का कथन: "जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे उसे वैसे ही पढ़ते हैं जैसा उसे पढ़ने का हक है। वही उस पर ईमान रखते हैं। और जो कोई इसका इनकार करेगा, तो वही घाटा उठाने वाले हैं। (121) ऐ बनी इसराईल! मेरी उस नेमत को याद करो जो मैंने तुम पर की थी और यह कि मैंने तुम्हें संसार वालों पर श्रेष्ठता दी थी। (122) और उस दिन से डरो जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के कुछ काम न आएगा, और न उससे कोई मुआवज़ा स्वीकार किया जाएगा और न ही उसे कोई सिफ़ारिश लाभ पहुँचाएगी और न ही उनकी सहायता की जाएगी। (123)" अल्लाह तआला का कथन: "जिन लोगों को हमने किताब दी है": क़तादा ने कहा: "वे नबी (स.अ.व.) के साथी हैं, और इस व्याख्या के अनुसार 'किताब' क़ुरआन है।" इब्न ज़ैद ने कहा: "वे बनी इसराईल के वे लोग हैं जो मुसलमान हुए, और इस व्याख्या के अनुसार 'किताब' तौरात है, और आयत आम (सामान्य) है (3)।" और "अल्लज़ीना" मुक्तदा (subject) होने के कारण रफ़अ (nominative) की स्थिति में है, "आतैनाहुम" उसका सिला (relative clause) है, "यतलूनहू" मुक्तदा की ख़बर (predicate) है, और यदि आप चाहें तो ख़बर यह भी हो सकती है: "वही उस पर ईमान रखते हैं" (4)। "यतलूनहू हक़्क़ा तिलावतहि" के अर्थ के बारे में मतभेद है: कहा गया: "वे उसका अनुसरण करते हैं जैसा उसका अनुसरण करने का हक है, आदेशों का पालन करके.."

(1) (ख़), (ज़), और (ज़ाह) में: "तो क़ुरआन"। (2) देखिए मसायल अल-इमाम अहमद, रिवायत इब्न हानी 2/154। (3) देखिए अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/204, और क़तादा तथा अब्द अल-रहमान बिन ज़ैद के कथनों को अल-तबरी ने 2/486 में उद्धृत किया है। (4) इ'राब अल-क़ुरआन लिन-नह़्ह़ास 1/258।

سورة البقرہ: آیات ۱۲۱ ، ۱۲۲ ، ۱۲۳ ۳۴۷

اس خطاب میں دو پہلو ہیں: پہلا: یہ کہ یہ رسول ﷺ کے لیے ہے، کیونکہ خطاب آپ کی طرف متوجہ ہے۔ دوسرا: یہ کہ یہ رسول ﷺ کے لیے ہے اور مراد اس سے آپ کی امت ہے۔ پہلے قول کی بنا پر اس میں آپ کی امت کے لیے تادیب ہے؛ کیونکہ ان کا مرتبہ آپ کے مرتبے سے کم ہے۔ آیت کا سبب یہ ہے کہ وہ صلح اور جنگ بندی کا مطالبہ کرتے تھے، اور نبی ﷺ سے اسلام لانے کا وعدہ کرتے تھے۔ تو اللہ نے آپ کو آگاہ کیا کہ وہ آپ سے ہرگز راضی نہیں ہوں گے یہاں تک کہ آپ ان کے مذہب کی پیروی کریں، اور آپ کو ان سے جہاد کرنے کا حکم دیا۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ مِنَ الْعِلْمِ ﴾ احمد بن حنبل سے اس شخص کے بارے میں پوچھا گیا جو کہتا ہے: "قرآن مخلوق ہے"۔ تو انہوں نے کہا: "کافر ہے"۔ پوچھا گیا: "آپ نے اسے کس وجہ سے کافر قرار دیا؟" انہوں نے کہا: "اللہ تعالیٰ کی کتاب کی آیات کی وجہ سے: ﴿ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ أَهْوَاءَهُم بَعْدَ الَّذِي جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ﴾ اور قرآن(۱) اللہ کے علم میں سے ہے، تو جس نے یہ دعویٰ کیا کہ وہ مخلوق ہے تو اس نے کفر کیا(۲)۔" اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ الَّذِينَ آتَيْنَاهُمُ الْكِتَابَ يَتْلُونَهُ حَقَّ تِلَاوَتِهِ أُولَٰئِكَ يُؤْمِنُونَ بِهِ ۗ وَمَن يَكْفُرْ بِهِ فَأُولَٰئِكَ هُمُ الْخَاسِرُونَ ﴿۱۲۱﴾ يَا بَنِي إِسْرَائِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ وَأَنِّي فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعَالَمِينَ ﴿۱۲۲﴾ وَاتَّقُوا يَوْمًا لَّا تَجْزِي نَفْسٌ عَن نَّفْسٍ شَيْئًا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَلَا تَنفَعُهَا شَفَاعَةٌ وَلَا هُمْ يُنصَرُونَ ﴿۱۲۳﴾ ﴾۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ الَّذِينَ آتَيْنَاهُمُ الْكِتَابَ ﴾ قتادہ نے کہا: "وہ نبی ﷺ کے اصحاب ہیں، اور اس تاویل کے مطابق 'کتاب' قرآن ہے۔" اور ابن زید نے کہا: "وہ بنی اسرائیل میں سے اسلام لانے والے لوگ ہیں، اور اس تاویل کے مطابق 'کتاب' تورات ہے، اور آیت عام ہے (۳)۔" اور «الذین» مبتدا ہونے کی وجہ سے رفع کی حالت میں ہے، «آتیناہم» اس کا صلہ ہے، «یَتْلُونَهُ» مبتدا کی خبر ہے، اور اگر آپ چاہیں تو خبر یہ ہو سکتی ہے: ﴿ أُولَٰئِكَ يُؤْمِنُونَ بِهِ ﴾ (۴)۔ اور ﴿ يَتْلُونَهُ

حَقَّ تِلَاوَتِهِ ﴾ کے معنی میں اختلاف کیا گیا ہے: تو کہا گیا: "وہ اس کی ویسی ہی پیروی کرتے ہیں جیسی پیروی کرنے کا حق ہے، حکم کی اتباع کرتے ہوئے..."

---

(۱) (خ)، (ز) اور (ظ) میں: "فالقرآن" ہے۔ (۲) دیکھیے مسائل الامام احمد بروایت ابن ہانئ ۱۵۴/۲۔ (۳) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۴، اور قتادہ و عبد الرحمن بن زید کا قول طبری نے ۴۸۶/۲ میں روایت کیا ہے۔ (۴) اعراب القرآن للنحاس ۲۵۸/۱ ۔

Surah Al-Baqarah: Verses 121, 122, 123 348

...and prohibition, so they declare lawful what He has made lawful, and declare forbidden what He has made forbidden, and they act upon what it contains. This was said by Ikrimah. Ikrimah said: Have you not heard the words of Allah Almighty: "And the moon as it follows it" [Ash-Shams: 2], meaning: followed it, which is the meaning of the statement of Ibn Abbas and Ibn Mas'ud, may Allah be pleased with them both (1). A poet said: "My bucket has begun to follow me" (2)

Nasr ibn Isa narrated from Malik, from Nafi', from Ibn Umar, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) regarding the words of the Almighty: "recite it with its true recital" [Al-Baqarah: 121]. He said: "They follow it with its true following." Among its chain of narrators are more than one unknown person, according to what Al-Khatib Abu Bakr Ahmad mentioned (3), except that its meaning is correct.

Abu Musa Al-Ash'ari said: Whoever follows the Qur'an, it will lead him down to the meadows of Paradise (4).

And from Umar ibn Al-Khattab (may Allah be pleased with him): They are those who, when they pass by a verse of mercy, ask it of Allah, and when they pass by a verse of punishment, they seek refuge from it (5).

This meaning has been narrated from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him): When he passed by a verse of mercy, he would ask, and when he passed by a verse of punishment, he would seek refuge (6).

Al-Hasan said: They are those who act upon its clear verses (Muhkam), believe in its ambiguous verses (Mutashabih), and entrust what is problematic for them to its Knower (7). And it was said: They recite it as it should be recited (8).

(1) See Tafsir al-Tabari 2/488, 489, 492. (2) Mentioned by al-Zajjaj in Ma'ani al-Qur'an 1/459, and al-Nahhas in Ma'ani al-Qur'an 3/292, and Ibn Manzur in al-Lisan (t-l-w), and its ending: and I do not want to follow the companion. (3) In the book of narrators from Malik as mentioned by al-Suyuti in al-Durr al-Manthur 1/111, and al-Dhahabi mentioned the hadith in Mizan al-I'tidal 4/253 and quoted from al-Khatib the statement mentioned by the author. (4) Narrated by Abu Ubayd in Fada'il al-Qur'an p. 34, and Sa'id ibn Mansur in his Sunan 1/49, and Ibn Abi Shaybah in his Musannaf 13/386-387, and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (2023). (5) Narrated by Ibn Abi Hatim in his Tafsir 1/357, and in it: if he passes by a mention of Paradise, he asks Allah for Paradise, and if he passes by a mention of the Fire, he seeks refuge in Allah from the

Fire. (6) Part of a long hadith, narrated by Ahmad (23261), and Muslim (772) from the hadith of Hudhayfah ibn al-Yaman (may Allah be pleased with him). And regarding the topic from Awf ibn Malik and Aisha (may Allah be pleased with them both), narrated by Ahmad (23980) and (24609). (7) Narrated by al-Tabari 2/491-492, and Ibn Abi Hatim 1/357. (8) Mentioned by al-Tabari 2/492.

सूरा अल-बकरा: आयतें 121, 122, 123 348

...और निषेध, इसलिए वे उसे वैध (हलाल) मानते हैं जिसे उसने वैध किया है, और उसे वर्जित (हराम) मानते हैं जिसे उसने वर्जित किया है, और वे उसमें जो शामिल है उस पर अमल करते हैं। यह इक्रमा ने कहा था। इक्रमा ने कहा: क्या आपने अल्लाह सर्वशक्तिमान के शब्दों को नहीं सुना: "और चाँद जब उसके पीछे आता है" [अश-शम्स: 2] यानी: उसका अनुसरण किया, जो इब्न अब्बास और इब्न मसूद (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) के कथन का अर्थ है (1)। कवि ने कहा: "मेरी बाल्टी ने मेरा पीछा करना शुरू कर दिया है" (2)

नसर इब्न ईसा ने मलिक से, उन्होंने नाफी' से, उन्होंने इब्न उमर से, उन्होंने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से अल्लाह सर्वशक्तिमान के इस कथन के बारे में रिवायत की: "वे उसकी वैसी ही तिलावत करते हैं जैसी तिलावत का हक़ है" [अल-बकरा: 121]। उन्होंने कहा: "वे उसका वैसा ही अनुसरण करते हैं जैसा अनुसरण का हक़ है।" इसके वर्णनकर्ताओं की श्रृंखला (इसनाद) में खतीब अबू बक्र अहमद (3) के उल्लेख के अनुसार एक से अधिक अज्ञात व्यक्ति हैं, सिवाय इसके कि इसका अर्थ सही है।

अबू मूसा अल-अशअरी ने कहा: जो कोई कुरान का अनुसरण करता है, वह उसे स्वर्ग (जन्नत) के बगीचों में ले जाएगा (4)।

और उमर इब्न अल-खत्ताब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत है: वे वे लोग हैं जो, जब वे दया (रहमह) की आयत से गुजरते हैं, तो वे अल्लाह से उसकी प्रार्थना करते हैं, और जब वे दंड (अज़ाब) की आयत से गुजरते हैं, तो वे उससे अल्लाह की शरण मांगते हैं (5)।

यही अर्थ नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से रिवायत किया गया है: जब वे दया की आयत से गुजरते, तो मांगते थे, और जब दंड की आयत से गुजरते, तो शरण मांगते थे (6)।

हसन ने कहा: वे वे हैं जो इसके सुस्पष्ट (मुहकम) आयतों पर अमल करते हैं, और इसके संदिग्ध (मुतशाबिह) आयतों पर विश्वास करते हैं, और जो उन्हें कठिन लगता है उसे उसके ज्ञाता (अल्लाह) पर छोड़ देते हैं (7)। और कहा गया: वे इसे वैसे ही पढ़ते हैं जैसा इसे पढ़ने का हक़ है (8)।

(1) देखें तफ़सीर अल-तबरी 2/488, 489, 492। (2) अल-ज़ज्जाज द्वारा 'मआनी अल-कुरान' 1/459 में उल्लेखित, और 'नहहास' द्वारा 'मआनी अल-कुरान' 3/292 में, और इब्न मंजूर द्वारा 'अल-लिसान'

(त-ल-व) में। (3) मलिक से रिवायत करने वालों की किताब में, जैसा कि सुयूती ने 'अल-दुर अल-मंसूर' 1/111 में उल्लेख किया है, और अल-ज़हबी ने हदीस का उल्लेख 'मिज़ान अल-इतिदाल' 4/253 में किया है। (4) अबू उबैद ने 'फ़ज़ाइल अल-कुरान' पृष्ठ 34 में, सईद बिन मंसूर ने अपनी 'सुनन' 1/49 में, और इब्न अबी शैबा ने अपनी 'मुसन्नफ़' 13/386-387 में संकलित किया है। (5) इब्न अबी हातिम ने अपनी तफ़सीर 1/357 में संकलित किया। (6) एक लंबी हदीस का हिस्सा, जिसे अहमद (23261) और मुस्लिम (772) ने हुज़ैफा बिन अल-यमान से रिवायत किया है। (7) अल-तबरी 2/491-492 और इब्न अबी हातिम 1/357 द्वारा संकलित। (8) अल-तबरी 2/492 द्वारा उल्लेखित।

سورة البقرہ: آیات ۱۲۱، ۱۲۲، ۱۲۳ ۳۴۸

...اور ممانعت، پس وہ اس کے حلال کو حلال جانتے ہیں، اور اس کے حرام کو حرام جانتے ہیں، اور جو اس میں شامل ہے اس پر عمل کرتے ہیں، یہ عکرمہ نے کہا۔ عکرمہ نے کہا: کیا آپ نے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد نہیں سنا: ﴿وَالْقَمَرِ إِذَا تَلَىٰهَا﴾ [الشمس: ۲] یعنی: اس کے پیچھے آیا، اور یہی ابن عباس اور ابن مسعود رضی اللہ عنہما کے قول کا معنی ہے (۱)۔ شاعر نے کہا: قد جَعَلَتْ دَلوي تَسْتَتْلِيني (۲)

اور نصر بن عیسیٰ نے مالک سے، انہوں نے نافع سے، انہوں نے ابن عمر سے، انہوں نے نبی ﷺ سے اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے بارے میں روایت کیا: ﴿يَتْلُونَهُ حَقَّ تِلَاوَتِهِ﴾ فرمایا: "وہ اس کی پیروی کرتے ہیں جیسا کہ اس کی پیروی کا حق ہے"۔ اس کی سند میں ایک سے زیادہ مجہول راوی ہیں جیسا کہ خطیب ابو بکر احمد نے ذکر کیا ہے (۳)، سوائے اس کے کہ اس کا معنی صحیح ہے۔

اور ابو موسیٰ اشعری نے فرمایا: جو قرآن کی پیروی کرتا ہے، وہ اسے جنت کے باغات میں لے جاتا ہے (۴)۔

اور عمر بن خطاب رضی اللہ عنہ سے روایت ہے: یہ وہ لوگ ہیں کہ جب وہ رحمت کی آیت سے گزرتے ہیں تو اللہ سے اس کا سوال کرتے ہیں، اور جب عذاب کی آیت سے گزرتے ہیں تو اس سے پناہ مانگتے ہیں (۵)۔

اور یہی معنی نبی ﷺ سے مروی ہے: آپ ﷺ جب رحمت کی آیت سے گزرتے تو سوال کرتے، اور جب عذاب کی آیت سے گزرتے تو پناہ مانگتے (۶)۔

اور حسن نے کہا: یہ وہ لوگ ہیں جو اس کے محکم (واضح) پر عمل کرتے ہیں، اور اس کے متشابہ پر ایمان لاتے ہیں، اور جو ان پر مشکل ہو اسے اس کے جاننے والے (اللہ) کے سپرد کرتے ہیں (۷)۔ اور کہا گیا: وہ اسے ویسے پڑھتے ہیں جیسا کہ اس کے پڑھنے کا حق ہے (۸)۔

(۱) دیکھئے تفسیر طبری ۲/ ۴۸۸، ۴۸۹، ۴۹۲۔ (۲) الزجاج نے معانی القرآن ۱/ ۴۵۹ میں ذکر کیا، اور النحاس نے معانی القرآن ۳/ ۲۹۲ میں، اور ابن منظور نے اللسان (تلو) میں۔ (۳) مالک سے روایت کرنے والوں کی کتاب میں جیسا کہ سیوطی نے الدر المنثور ۱/ ۱۱۱ میں ذکر کیا، اور ذہبی نے میزان الاعتدال ۴/ ۲۵۳ میں اس کا ذکر کیا۔ (۴) ابو عبید نے فضائل القرآن ص ۳۴ میں تخریج کی، اور سعید بن منصور نے اپنی سنن ۱/ ۴۹ میں، اور ابن ابی شیبہ نے اپنے مصنف ۱۳/ ۳۸۶-۳۸۷ میں۔ (۵) ابن ابی حاتم نے اپنی تفسیر ۱/ ۳۵۷ میں تخریج کی، اور اس میں ہے: جب جنت کے ذکر سے گزرتے تو اللہ سے جنت کا سوال کرتے۔ (۶) ایک طویل حدیث کا حصہ ہے، اسے احمد (۲۳۲۶۱) اور مسلم (۷۷۲) نے حذیفہ بن الیمان رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا۔ (۷) طبری نے ۲/ ۴۹۱-۴۹۲ میں اور ابن ابی حاتم نے ۱/ ۳۵۷ میں تخریج کی۔ (۸) طبری نے ۲/ ۴۹۲ میں اس کا ذکر کیا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 124 349

I said: And this is far-fetched, unless the meaning is: they recite its words and understand its meanings; for it is by understanding (1) the meanings that following [the path] occurs for those who are granted success.

His Almighty says: {And [mention, O Muhammad], when Abraham was tried by his Lord with commands and he fulfilled them. [Allah] said, "Indeed, I will make you a leader for the people." [Abraham] said, "And of my descendants?" [Allah] said, "My covenant does not include the wrongdoers."}

In it are twenty issues:

First: Since the mention of the Kaaba and the Qibla occurred, it was connected to the mention of Abraham, peace be upon him, and that he was the one who built the House. So it was the right of the Jews - being from the lineage of Abraham - not to desire [anything] other than his religion.

And 'ibtila' (trial): means examination and testing, and its meaning is: a command and an act of worship.

And 'Abraham' is interpreted in Syriac as mentioned by Al-Mawardi, and in Arabic as mentioned by Ibn Atiyyah: A merciful father (2).

Al-Suhayli said: Often there is an agreement between Syriac and Arabic or a similarity in pronunciation. Don't you see that the interpretation of 'Abraham' is: 'A compassionate father' because of his mercy towards children? Therefore, he and his wife Sarah were made guardians for the children of believers who die young until the Day of Resurrection (3).

I said: And what indicates this is what Al-Bukhari recorded from the long hadith of the vision from Samurah, in which: The Prophet (peace be upon him) saw in the garden Abraham (peace be upon him) and around him were the children of people (4). And we have covered it in the book "Al-Tadhkira" (5) and praise be to Allah.

And this Abraham is the son of Tarukh bin Nakhor in the words of some historians (6). And in the Revelation:

(1) In (z): 'their understanding', in (d): 'you understand', and in (zha): 'he understands'. (2) Al-Nukat wa al-Uyun 1/182, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/205. (3) Al-Ta'rif wa al-I'lam p. 20. (4) Sahih Al-Bukhari (7047), and it is in Musnad Ahmad (20094), and Samurah is Ibn Jundub bin Hilal Al-Fazari, from the scholars of the Sahaba (may Allah be pleased with them), he lived in Basra, died in the year (58 AH). Al-Siyar 3/183. (5) p. 511. (6) See Tarikh Al-Tabari 1/233, Tafsir Al-Baghawi 1/111, and Al-Ta'rif wa al-I'lam p. 55.

सूरह अल-बक़रह: आयत 124 349

मैंने कहा: और यह दूर की बात है, सिवाय इसके कि इसका अर्थ यह हो: वे इसके शब्दों का पाठ करते हैं, और इसके अर्थों को समझते हैं; क्योंकि अर्थों को समझने (1) से ही उन लोगों के लिए अनुसरण संभव होता है जिन्हें सफलता प्रदान की गई है।

अल्लाह का कथन है: {और (याद करो) जब इब्राहीम को उसके रब ने कुछ शब्दों (आदेशों) के साथ आज़माया, तो उसने उन्हें पूरा कर दिया। (अल्लाह ने) कहा, "निश्चय ही, मैं तुम्हें लोगों के लिए एक इमाम (नेता) बनाने वाला हूँ।" (इब्राहीम ने) कहा, "और मेरी संतान में से भी?" (अल्लाह ने) कहा, "मेरा वादा ज़ालिमों (अत्याचारियों) तक नहीं पहुँचता।" }

इसमें बीस मसले (विषय) हैं:

पहला: जब काबा और क़िबला का उल्लेख हुआ, तो यह इब्राहीम अलैहिस्सलाम के उल्लेख से जुड़ गया, और यह कि उन्होंने ही बैतुल्लाह (घर) का निर्माण किया था। तो यह यहूदियों का अधिकार था - क्योंकि वे इब्राहीम की संतान थे - कि वे उनके दीन से विमुख न हों।

और 'इब्तिला' (परीक्षा): इसका अर्थ आज़माइश और इम्तिहान है, और इसका भावार्थ है: आदेश और इबादत।

और अल-मावर्दी के अनुसार सीरियाई भाषा में 'इब्राहीम' की व्याख्या, और इब्न अतियाह के अनुसार अरबी में व्याख्या 'दयालु पिता' (2) है।

अल-सुहैली ने कहा: अक्सर सीरियाई और अरबी के बीच समानता होती है या उच्चारण में निकटता होती है। क्या आप नहीं देखते कि 'इब्राहीम' की व्याख्या 'दयालु पिता' है; बच्चों के प्रति उनकी दया के कारण, और इसीलिए उन्हें और उनकी पत्नी सारा को प्रलय के दिन तक उन मोमिनों (ईमानवालों) के बच्चों का संरक्षक बनाया गया है जो बचपन में मर जाते हैं (3)।

मैंने कहा: और जो इस ओर संकेत करता है वह है जो बुख़ारी ने समुरह से रिवायत लंबी 'ऱ्या' (स्वप्न) वाली हदीस में दर्ज किया है, जिसमें है: कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने जन्नत में इब्राहीम अलैहिस्सलाम को देखा और उनके चारों ओर लोगों के बच्चे थे (4)। और हमने इसे किताब "अल-तज़किरा" (5) में विस्तार से बताया है, और अल्लाह की स्तुति है।

और यह इब्राहीम, कुछ इतिहासकारों के अनुसार तारुख़ बिन नाखोर के पुत्र हैं (6)। और अवतरण (कुरान) में है:

(1) (ज़) में: उनका समझना, और (द) में: तुम समझना, और (ज़) में: वह समझना। (2) अल-नुकात वल-उयून 1/182, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/205। (3) अल-तारीफ़ वल-इलाम पृष्ठ 20। (4) सहीह अल-बुख़ारी (7047), और यह मसनद अहमद (20094) में है, और समुरह, इब्ने जुंदुब बिन हिलाल अल-फ़ज़ारी हैं, सहाबा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के विद्वानों में से, वे बसरा में रहते थे, वर्ष (58 हिजरी) में उनकी मृत्यु हुई। अल-सियार 3/183। (5) पृष्ठ 511। (6) देखें तारीख़ अल-तबरी 1/233, तफ़सीर अल-बग़वी 1/111, और अल-तारीफ़ वल-इलाम पृष्ठ 55।

سورة البقرہ : آیت ۱۲٤ ۳٤۹

میں نے کہا: اور یہ بعید (ناممکن) ہے، الّا یہ کہ اس کا معنی یہ ہو: وہ اس کے الفاظ کی تلاوت کرتے ہیں، اور اس کے معانی کو سمجھتے ہیں؛ کیونکہ معانی کو سمجھنے (۱) ہی سے ان لوگوں کے لیے اتباع ممکن ہوتا ہے جنہیں توفیق دی گئی ہو۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿اور (یاد کرو) جب ابراہیم کو ان کے رب نے چند کلمات سے آزمایا تو انہوں نے انہیں پورا کر دیا، (اللہ نے) فرمایا: یقیناً میں تمہیں لوگوں کا امام بنانے والا ہوں، (ابراہیم نے) کہا: اور میری اولاد میں سے بھی؟ (اللہ نے) فرمایا: میرا عہد ظالموں کو نہیں پہنچتا﴾۔

اس میں بیس مسائل ہیں:

پہلا: جب کعبہ اور قبلہ کا تذکرہ ہوا، تو اسے حضرت ابراہیم علیہ السلام کے تذکرے سے جوڑ دیا گیا، اور یہ کہ انہوں نے ہی بیت (اللہ) کو بنایا تھا۔ چنانچہ یہودیوں کا حق تھا - جو کہ ابراہیم کی نسل سے ہیں - کہ وہ ان کے دین سے بیزاری نہ برتیں۔

اور ابتلاء: امتحان اور آزمائش ہے، اور اس کا معنی ہے: حکم اور عبادت گزاری۔

اور 'ابراہیم' کی تفسیر سریانی میں جیسا کہ ماوردی نے ذکر کیا، اور عربی میں جیسا کہ ابن عطیہ نے ذکر کیا: مہربان باپ (۲) ہے۔

سہیلی نے کہا: بسا اوقات سریانی اور عربی کے درمیان اتفاق (یکسانیت) پایا جاتا ہے یا لفظ میں قربت ہوتی ہے، کیا تم نہیں دیکھتے کہ ابراہیم کی تفسیر 'رحم کرنے والا باپ' ہے؛ بچوں پر ان کی شفقت کی وجہ سے، اور اسی لیے انہیں اور ان کی زوجہ سارہ کو قیامت کے دن تک ان مومنین کے بچوں کا کفیل بنایا گیا ہے جو بچپن میں وفات پا جاتے ہیں (۳)۔

میں نے کہا: اور جو چیز اس پر دلالت کرتی ہے وہ ہے جو بخاری نے سمرہ سے روایت کردہ لمبی حدیثِ رویا میں نکالی ہے، جس میں ہے: کہ نبی کریم ﷺ نے روضہ (جنت) میں ابراہیم علیہ السلام کو دیکھا اور ان کے گرد لوگوں کے بچے تھے (٤)۔ اور ہم نے اسے اپنی کتاب "التذکرہ" (٥) میں بیان کیا ہے، اور تمام تعریفیں اللہ ہی کے لیے ہیں۔

اور یہ ابراہیم بعض مؤرخین کے قول کے مطابق تارخ بن ناخور کے بیٹے ہیں (٦)۔ اور تنزیل (قرآن) میں ہے:

(١) (ز) میں: ان کا سمجھنا، اور (د) میں: تم سمجھنا، اور (ظ) میں: وہ سمجھنا۔ (٢) النکت والعیون ١ / ١٨٢، اور المحرر الوجیز ١ / ٢٠٥۔ (٣) التعریف والإعلام ص ٢٠۔ (٤) صحیح البخاری (٧٠٤٧)، اور یہ مسند احمد (٢٠٠٩٤) میں ہے، اور سمرہ، ابن جندب بن ہلال الفزاری ہیں، جو جلیل القدر صحابہ کرام رضی اللہ عنہم میں سے ہیں، انہوں نے بصرہ میں سکونت اختیار کی، (٥٨ھ) میں وفات پائی۔ السیر ٣ / ١٨٣۔ (٥) ص ٥١١۔ (٦) دیکھیے تاریخ الطبری ١ / ٢٣٣، اور تفسیر البغوی ١ / ١١١، اور التعریف والإعلام ص ٥٥۔

350 Surah Al-Baqarah: Verse 124

"And [mention, O Muhammad], when Abraham said to his father Azar" [Al-An'am: 74], and likewise in "Sahih" Al-Bukhari (1). There is no contradiction in that, as will be explained in "Al-An'am," God Almighty willing (2). He had four sons: Ishmael, Isaac, Midian, and Madain, according to what Al-Suhayli mentioned (3). [The object] was placed before the subject for emphasis, as it is known that the Lord, Blessed and Exalted, is the One who tests. In Arabic, when the object pronoun is attached to the subject, it necessitates putting the object first. Thus, the speech was structured based on this emphasis (4), so know it. The common recitation is: "Ibrahima" (Abraham) in the accusative case, and "Rabbuhu" (his Lord) in the nominative case as we mentioned. It was narrated from Jabir bin Zayd (5) that he recited it the other way around, claiming that Ibn Abbas taught him so. The meaning then would be: Abraham called upon his Lord (6) and asked. This is unlikely because of the preposition "bi" (with/by) in His saying: "with words." Second: His saying, Exalted is He: "with words." "Words" (Kalimat) is the plural of "word" (kalimah). Its true essence refers to the Speech of the Creator, Exalted is He. However, it was used to express the duties with which Abraham, peace be upon him, was tasked. Since his tasking was through speech, it was named after it, just as Jesus was called a "Word" because he came into being through a word, which is: "Be!" Naming something by its precursor is one of the two types of metaphor. This was stated by Ibn al-Arabi (7). Third: Scholars differed regarding the intended meaning of "words" into several opinions: One of them: The laws of Islam; they are thirty portions. Ten of them are in Surah Al-Bara'ah (At-Tawbah): "The repentant, the worshippers..." [112] to its end. And ten in "Al-Ahzab": "Indeed, the Muslim men..."

Footnotes: (1) Number (3350) from the hadith of Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, which reads: "Abraham will meet his father Azar on the Day of Resurrection, and on Azar's face there will be darkness and dust..." the hadith. (2) In the commentary of verse (74). (3) Al-Rawd al-Unuf 1/15, and there is no one by the name of Madain in it. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/205. (5) He is Abu al-Sha'tha, al-Azdi, counted among al-Hasan and Ibn Sirin, and he is one of the senior students of Ibn Abbas. He died in the year (93 AH). Al-Siyar 4/481. (6) Al-Qira'at al-Shadhah p. 9. Al-Zamakhshari mentioned it in his Kashshaf 1/308, attributing it to Abu Hanifa and Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both. Al-Razi mentioned it in his Tafsir 4/40, attributing it to Ibn Abbas and Abu Haywah. (7) In Ahkam al-Qur'an 1/36, it says: "But he expressed by it the duties..."

350 सूरह अल-बकरा: आयत 124

"और [याद करो], जब इब्राहीम ने अपने पिता आज़र से कहा" [अल-अनाम: 74], और इसी तरह "सहीह" अल-बुखारी (1) में भी है। इसमें कोई विरोधाभास नहीं है, जैसा कि इंशा अल्लाह 'अल-अनाम' की व्याख्या में आएगा (2)। सुहैली (3) के अनुसार उनके चार पुत्र थे: इस्माइल, इसहाक, मदियन और मदैन। [कर्म] को कर्ता से पहले महत्व देने के लिए रखा गया है, क्योंकि यह ज्ञात है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान ही परीक्षा लेने वाला है। अरबी में, जब कर्म का सर्वनाम कर्ता से जुड़ा होता है, तो कर्म को पहले रखना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए, वाक्य की संरचना इसी महत्व पर आधारित थी (4), अतः इसे जान लें। आम पाठ (क़िरात) यह है: "इब्राहीमा" (इब्राहीम) कर्म कारक (नसब) में, और "रब्बुहू" (उसका रब) कर्ता कारक (रफ़ा) में, जैसा कि हमने उल्लेख किया है। जाबिर बिन ज़ैद (5) से रिवायत है कि उन्होंने इसे इसके विपरीत पढ़ा, और दावा किया कि इब्न अब्बास ने उन्हें ऐसा ही सिखाया था। तब इसका अर्थ होगा: इब्राहीम ने अपने रब को पुकारा (6) और प्रार्थना की। उनके कथन "शब्दों के साथ" में 'बि' उपसर्ग के कारण यह अर्थ दूर लगता है। दूसरा: अल्लाह तआला का कथन: "शब्दों के साथ"। 'कलिमात', 'कलिमा' (शब्द) का बहुवचन है। इसकी वास्तविकता अल्लाह तआला के कलाम (वाणी) की ओर लौटती है, लेकिन इसका उपयोग उन कर्तव्यों को व्यक्त करने के लिए किया गया है जो इब्राहीम (अ.) को सौंपे गए थे। चूँकि उन्हें शब्दों के माध्यम से ये कार्य सौंपे गए थे, इसलिए इसका नाम यही रखा गया, जैसे ईसा (अ.) को 'कलिमा' (शब्द) कहा गया क्योंकि वह एक शब्द "कुन" (हो जा) से अस्तित्व में आए थे। किसी चीज़ का उसके पूर्ववर्ती के नाम पर नामकरण करना रूपक (मजाज़) के दो प्रकारों में से एक है। यह इब्न अल-अरबी (7) ने कहा है। तीसरा: "शब्दों" के अर्थ के बारे में विद्वानों के अलग-अलग मत हैं: उनमें से एक: इस्लाम की शरीयतें; वे तीस हिस्से हैं। उनमें से दस सूरह अल-बरात (अत-तौबा) में हैं: "तौबा करने वाले, इबादत करने वाले..." [112] अंत तक। और दस "अल-अहज़ाब" में हैं: "निश्चय ही मुस्लिम पुरुष..."

पाद-टिप्पणियाँ: (1) संख्या (3350) अबू हुरैरा (रज़ि.) की हदीस से, जिसके शब्द हैं: "कयामत के दिन इब्राहीम अपने पिता आज़र से मिलेंगे, और आज़र के चेहरे पर स्याही और धूल होगी..." हदीस। (2) आयत (74) की व्याख्या में। (3) अल-रौद अल-उनुफ़ 1/15, और इसमें मदैन नाम का कोई व्यक्ति नहीं है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/205। (5) वह अबू अल-शअसा, अल-अज़दी हैं, उनकी गिनती अल-हसन और इब्न सिरीन के साथ की जाती है, और वह इब्न अब्बास के प्रमुख शिष्यों में से एक हैं। उनकी मृत्यु (93 हिजरी) में हुई। अल-सियार 4/481। (6) अल-किरात अल-शाज़ा पृष्ठ

9। अल-ज़मखशरी ने अपनी कशशाफ़ 1/308 में इसका उल्लेख किया है, और इसे अबू हनीफा और इब्न अब्बास (रज़ि.) की ओर संबंद्ध किया है, और अल-राज़ी ने अपनी तफ़सीर 4/40 में इसे इब्न अब्बास और अबू हयवाह की ओर संबंद्ध किया है। (7) अहकाम अल-कुरान 1/36 में, और इसमें है: "लेकिन उन्होंने इसके द्वारा कर्तव्यों को व्यक्त किया है..."

350 سوره البقره: آيت 124

﴿وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ لِأَبِيهِ آزَرَ﴾ [الأنعام: ٧٤]، وكذلك في «صحيح» البخاري (١)، ولا تَنَاقُضَ في ذلك، على ما يأتي في «الأنعام» بيانه إن شاء الله تعالى(٢). وكان له أربع بنين: إسماعيل، وإسحاق، ومَدْيَن، ومدائن، على ما ذكره السُهيلي(٣). وقُدِّم على الفاعل للاهتمام، إذ كونُ الربِّ تبارك وتعالى مُبتلياً معلومٌ، وكونُ الضمير المفعول في العربية متصلاً بالفاعل مُوجبٌ تقديم المفعول، فإنَّما بُني الكلامُ على هذا الاهتمام(٤)، فاعلمه. وقراءةُ العامَّة: «إبراهيم» بالنَّصب، «ربُّه» بالرفع على ما ذكرنا. ورُوي عن جابر بن زيد(٥) أنَّه قرأ على العكس، وزَعَم أنَّ ابن عباس أقرأه كذلك، والمعنى: دعا إبراهيمُ رَبَّه (٦) وسأل، وفيه بُعدٌ لأجل الباء في قوله: ﴿بِكَلِمَاتٍ﴾. الثانية: قوله تعالى: ﴿بِكَلِمَاتٍ﴾ الكلمات جمع كلمة، ويَرجِعُ تحقيقُها إلى كلام الباري تعالى، لكنه عبَّر عنها عن الوظائف التي كُلِّفَها إبراهيمُ عليه السلام، ولمَّا كان تكليفُها بالكلام سُمِّيَت به، كما سُمِّيَ عيسى كلمةً، لأنَّه صَدَرَ عن كلمة، وهي: «كُنْ». وتسمية الشيءِ بمقدمته أحدُ قسمي المجاز. قاله ابنُ العربي(٧). الثالثة: واختلف العلماء في المُراد بالكلمات على أقوال: أحدها: شرائع الإسلام؛ وهي ثلاثون سَهماً، عَشَرَةٌ منها في سورة براءة: ﴿التَّائِبُونَ الْعَابِدُونَ﴾ [١١٢] إلى آخرها، وعَشَرَةٌ في «الأحزاب»: ﴿إِنَّ الْمُسْلِمِينَ ...﴾

حواشى: (١) رقم (٣٣٥٠) من حديث أبي هريرة رضي الله عنه، ولفظه: «يلقى إبراهيم أباه آزر يوم القيامة، وعلى وجه آزر قترة وغبره...» الحديث. (٢) في تفسير الآية (٧٤). (٣) الروض الأنف ١/ ١٥، وليس فيه من اسمه مدائن. (٤) المحرر الوجيز ١/ ٢٠٥. (٥) هو أبو الشعثاء، الأزدي، يعدُّ مع الحسن وابن سيرين، وهو من كبار تلامذة ابن عباس. توفي سنة (٩٣هـ). السير ٤ / ٤٨١. (٦) القراءات الشاذة ص٩. وذكرها الزمخشري في كشافه ٣٠٨/١، ونسبها لأبي حنيفة وابن عباس رضي

الله عنهما، والرازي في تفسيره ٤٠/٤، ونسبها لابن عباس وأبي حيوة. (٧) في أحكام القرآن ١/ ٣٦، وفيه: لكنه عبر بها عن الوظائف...

and the Muslim women] [35] to its end, and ten in "Al-Mu'minun": {Certainly the believers have succeeded} to His saying: {and those who maintain their prayers} [1-9], and His saying in "Sa'ala Sa'il" (Al-Ma'arij): {Except those who pray} [22] to His saying: {and those who maintain their prayers 34}.

Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) said: Allah did not test anyone with them, and he fulfilled them all, except Abraham (peace be upon him). He was tested with Islam and he fulfilled it, so Allah wrote for him exoneration, saying: {And Abraham, who fulfilled [his obligations] 37} [An-Najm: 37].

Some said: with command and prohibition (2), others said: with the slaughter of his son (3), and others said: with delivering the message, and the meanings are close.

Mujahid said: It is the words of the Almighty: "I am testing you with a matter." He said: "Will You make me an imam for the people?" He said: "Yes." He said: "And from my offspring?" He said: "My covenant does not reach the wrongdoers." He said: "Will You make the House a resort for the people?" He said: "Yes." He said: "And a place of security?" He said: "Yes." He said: "And show us our rites, and accept our repentance?" He said: "Yes." He said: "And provide its people with fruits?" He said: "Yes."

According to this saying, it is Allah Almighty who completed [them] (4).

The most correct of this is what Abd al-Razzaq mentioned from Ma'mar, from Ibn Tawus [from his father], from Ibn Abbas regarding the words of the Almighty: {And when Abraham was tested by his Lord with certain commands and he fulfilled them} He said: Allah tested him with purification; five in the head and five in the body: trimming the mustache, rinsing the mouth, inhaling water into the nose, using the siwak, and parting the hair. And in the body: clipping (5) the nails, shaving the pubic hair, circumcision, plucking the armpit hair, and washing the places of excrement and urine with water (6).

According to this saying, the one who completed [them] is Abraham (7), and this is the apparent meaning of the Quran.

(1) Reported by Al-Tabari 2/498, see Al-Nukat wal-'Uyun 1/182-183. (2) Similar mentioned by Al-Razi 4/41. (3) Reported by Abd al-Razzaq in his Tafsir 1/57, Al-Tabari 2/506, and cited by Al-Razi 4/42 from Al-Hasan Al-Basri in length. (4) Al-Muharrar al-

Wajiz 1/206, Al-Nukat wal-'Uyun 1/183-184. Mujahid's saying reported by Al-Tabari 2/501-502, Ibn Abi Hatim 1/362-363 at greater length. (5) In (kh), (d), and (z): cutting. (6) Tafsir Abd al-Razzaq 1/57, reported via him by Al-Tabari 2/499 and what is between brackets is from them. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/206.

और मुस्लिम महिलाएँ [35] इसके अंत तक, और दस "अल-मुमिनून" में: {निश्चित रूप से मोमिन सफल हुए} उनके कहने तक: {और वे जो अपनी नमाज़ों की रक्षा करते हैं} [1-9], और "सअला साइल" (अल-मआरिज) में उनका कहना: {सिवाय उन नमाज़ियों के} [22] उनके कहने तक: {और वे जो अपनी नमाज़ की रक्षा करते हैं 34}।

इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) ने कहा: अल्लाह ने किसी को भी उनके साथ नहीं आज़माया और उसने उन सबको पूरा किया, सिवाय इब्राहीम (उन पर शांति हो) के। उन्हें इस्लाम के साथ आज़माया गया और उन्होंने इसे पूरा किया, तो अल्लाह ने उनके लिए दोषमुक्ति लिखी, कहा: {और इब्राहीम, जिसने [अपने दायित्वों को] पूरा किया 37} [अन-नज्म: 37] ।

कुछ ने कहा: आदेश और निषेध के साथ (2), और कुछ ने कहा: अपने बेटे के ज़िब्ह (बलिदान) के साथ (3), और कुछ ने कहा: संदेश पहुँचाने के साथ, और अर्थ करीब-करीब एक जैसे हैं।

मुजाहिद ने कहा: यह सर्वशक्तिमान के शब्द हैं: "मैं तुम्हें एक मामले से आज़मा रहा हूँ।" उन्होंने कहा: "क्या आप मुझे लोगों का इमाम बनाएंगे?" उन्होंने कहा: "हाँ।" उन्होंने कहा: "और मेरी संतान से भी?" उन्होंने कहा: "मेरा वादा ज़ालिमों तक नहीं पहुँचता।" उन्होंने कहा: "क्या आप इस घर को लोगों के लिए लौटने की जगह बनाएंगे?" उन्होंने कहा: "हाँ।" उन्होंने कहा: "और शांति की जगह?" उन्होंने कहा: "हाँ।" उन्होंने कहा: "और हमें हमारे इबादत के तरीके दिखाएं, और हमारी तौबा स्वीकार करें?" उन्होंने कहा: "हाँ।" उन्होंने कहा: "और इसके निवासियों को फलों से रोज़ी दें?" उन्होंने कहा: "हाँ।"

इस कथन के अनुसार, अल्लाह सर्वशक्तिमान ही है जिसने [उन्हें] पूरा किया (4)।

इनमें सबसे सही वह है जो अब्द अल-रज्जाक ने मामर से, इब्न ताऊस से [अपने पिता से], इब्न अब्बास से सर्वशक्तिमान के शब्दों के बारे में उल्लेख किया है: {और जब इब्राहीम को उनके रब ने कुछ बातों से आज़माया और उन्होंने उन्हें पूरा किया} उन्होंने कहा: अल्लाह ने उन्हें पवित्रता के साथ आज़माया; पाँच सिर में और पाँच शरीर में: मूंछें कतरना, कुल्ला करना, नाक में पानी डालना, मिस्वाक करना, और बालों की मांग निकालना। और शरीर में: नाखूनों को तराशना (5), जांघों के बाल साफ करना, खतना करना, बगल के बाल नोचना, और पानी से मल और मूत्र के स्थान को धोना (6)।

इस कथन के अनुसार, जिसने [उन्हें] पूरा किया वह इब्राहीम (7) हैं, और यही कुरान का ज़ाहिरी अर्थ है।

(1) अल-तबरी 2/498 द्वारा उद्धृत, अल-नुकात वल-उयून 1/182-183 देखें। (2) अल-राज़ी 4/41 द्वारा इसी तरह का उल्लेख किया गया है। (3) अब्द अल-रज्जाक ने अपनी तफ़सीर 1/57 में, और अल-तबरी 2/506 में उद्धृत किया है, और अल-राज़ी 4/42 ने अल-हसन अल-बसरी से विस्तार से इसे उद्धृत किया है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/206, अल-नुकात वल-उयून 1/183-184। मुजाहिद का कथन अल-तबरी 2/501-502, इब्न अबी हातिम 1/362-363 द्वारा और विस्तार से उद्धृत है। (5) (ख़), (द) और (ज़) में: काटना। (6) तफ़सीर अब्द अल-रज्जाक 1/57, उनके माध्यम से अल-तबरी 2/499 द्वारा उद्धृत और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उन्हीं से है। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/206।

اور مسلمان عورتیں] [۳۵] آخر تک، اور دس "المؤمنون" میں: {یقیناً مومن کامیاب ہوئے} اس قول تک: {اور وہ جو اپنی نمازوں کی حفاظت کرتے ہیں} [۱-۹]، اور "سأل سائل" (المعارج) میں اللہ کا قول: {سوائے ان نمازیوں کے} [۲۲] اس قول تک: {اور وہ جو اپنی نماز کی حفاظت کرتے ہیں ۳۴}۔

ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: اللہ نے کسی کو بھی ان کے ساتھ نہیں آزمایا، اور اس نے ان سب کو پورا کیا بجز ابراہیم علیہ السلام کے، انہیں اسلام کے ساتھ آزمایا گیا تو انہوں نے اسے پورا کیا، تو اللہ نے ان کے لیے براءت لکھ دی، فرمایا: {اور ابراہیم جس نے (حق) پورا کیا ۳۷} [النجم: ۳۷]۔

بعض نے کہا: امر و نہی کے ساتھ (۲)، اور بعض نے کہا: اپنے بیٹے کے ذبح کے ساتھ (۳)، اور بعض نے کہا: پیغام پہنچانے کے ساتھ، اور معنی قریب قریب ہیں۔

مجاہد نے کہا: یہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: "میں تجھے ایک معاملے سے آزمانے والا ہوں۔" انہوں نے کہا: "کیا تو مجھے لوگوں کا امام بنائے گا؟" فرمایا: "ہاں۔" انہوں نے کہا: "اور میری اولاد میں سے بھی؟" فرمایا: "میرا عہد ظالموں کو نہیں پہنچتا۔" انہوں نے کہا: "کیا تو اس گھر کو لوگوں کے لیے مرجع بنائے گا؟" فرمایا: "ہاں۔" انہوں نے کہا: "اور امن کی جگہ؟" فرمایا: "ہاں۔" انہوں نے کہا: "اور ہمیں ہمارے مناسک (عبادات کے طریقے) دکھا، اور ہماری توبہ قبول فرما؟" فرمایا: "ہاں۔" انہوں نے کہا: "اور اس کے رہنے والوں کو پھلوں سے رزق دے؟" فرمایا: "ہاں۔"

اس قول کے مطابق، اللہ تعالیٰ ہی وہ ہے جس نے مکمل کیا (۴)۔

ان میں سب سے زیادہ صحیح وہ ہے جو عبد الرزاق نے معمر سے، ابن طاؤس سے [اپنے والد سے]، ابن عباس سے اللہ تعالیٰ کے قول کے بارے میں ذکر کیا ہے: {اور جب ابراہیم کو ان کے رب نے چند کلمات سے آزمایا تو انہوں نے انہیں پورا کیا} انہوں نے کہا: اللہ نے انہیں طہارت (پاکیزگی) سے آزمایا؛ پانچ سر میں اور پانچ جسم میں: مونچھیں کترنا، کلی کرنا، ناک میں پانی چڑھانا، مسواک کرنا، اور بالوں کی مانگ نکالنا۔ اور جسم میں: ناخن تراشنا (۵)، زیر ناف بال صاف کرنا، ختنہ کرنا، بغل کے بال اکھاڑنا، اور پاخانہ اور پیشاب کی جگہ کو پانی سے دھونا (۶)۔

اس قول کے مطابق، جس نے مکمل کیا وہ ابراہیم (۷) ہیں، اور یہی قرآن کا ظاہری مفہوم ہے۔

(۱) اسے طبری نے ۴۹۸/۲ پر نکالا، اور النکت والعیون ۱۸۲/۱-۱۸۳ دیکھیں۔ (۲) رازی نے اسی طرح کا ذکر کیا ہے ۴۱/۴۔ (۳) اسے عبد الرزاق نے اپنی تفسیر ۵۷/۱ میں، اور طبری نے ۵۰۶/۲ میں نکالا، اور رازی نے ۴۲/۴ میں اسے حسن بصری سے طوالت کے ساتھ نقل کیا۔ (۴) المحرر الوجیز ۲۰۶/۱، اور النکت والعیون ۱۸۳/۱-۱۸۴۔ اور مجاہد کا قول طبری ۵۰۱/۲-۵۰۲ اور ابن ابی حاتم ۳۶۲/۱-۳۶۳ نے اس سے زیادہ طوالت کے ساتھ نکالا۔ (۵) (خ) اور (د) اور (ز) میں: کاٹنا۔ (۶) تفسیر عبد الرزاق ۵۷/۱، اور ان کے واسطے سے طبری نے ۴۹۹/۲ پر نکالا اور ان میں قوسین کے درمیان کا حصہ ان کا ہے۔ (۷) المحرر الوجیز ۲۰۶/۱۔

Page 352 Surah Al-Baqarah: Ayah 124

Matar narrated from Abu al-Jald that they are ten as well, except that he replaced the parting of the hair with washing the knuckles, and the place of Istinja' (cleaning after defecation) with Istihdad (shaving pubic hair)(2). Qatadah said: They are the rituals of Hajj specifically (3). Al-Hasan said: They are the six traits: the planet, the moon, the sun, fire, migration, and circumcision (4). Abu Ishaq al-Zajjaj said: These statements are not contradictory; because all of this is what Ibrahim (peace be upon him) was tested with (5). I say: In "Al-Muwatta" and others from Yahya bin Said that he heard Said bin al-Musayyib saying: Ibrahim (peace be upon him) was the first who circumcised, the first who hosted (6) guests, the first who shaved pubic hair, the first who trimmed nails, the first who trimmed the mustache, and the first who turned gray. When he saw the gray hair, he said: "What is this?" He said: "Dignity." He said: "O Lord, increase my dignity" (7). Abu Bakr bin Abi Shaybah mentioned from Sa'd (8) bin Ibrahim, from his father, who said: The first who delivered sermons on the pulpits was Ibrahim, the friend of Allah (9). Others said: And the first who made Tharid (a dish of bread and broth) (10), and the first...

Footnotes: (1) In (z): parting the hair. (2) Reported by al-Tabari 2/500, but he does not have the mention of Istihdad in place of Istinja' as mentioned by the author. Matar: he is Ibn Tahman al-Warraq, and Abu al-Jald: he is Jilan bin Abi Farwah. The author will mention the meaning of 'barajim' (knuckles) in the tenth issue, and the meaning of 'istihdad' in the ninth issue. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/206, and al-Nukat wa al-'Uyun 1/184, Ibn Atiyyah did not name Qatadah, and al-Tabari reported it 2/503-504 from the narration of Qatadah from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/206, and al-Nukat wa al-'Uyun 1/184, and reported by al-Tabari 2/505-506. (5) Ma'ani al-Qur'an 1/205 by al-Zajjaj, and it does not contain his saying: "And these statements are not contradictory." (6) In the manuscript copies: "daafa" (hosted), and the confirmed one is from (m). (7) Al-Muwatta 2/922, and Musannaf Ibn Abi Shaybah 11/522 and 14/69. It was also reported by al-Bukhari in "Al-Adab al-Mufrad" and al-Bayhaqi following the mawquf hadith from Abu Hurairah which the author will mention shortly, and we will mention its documentation there. (8) In (kh), (d), (t), and (m): Sa'id, which is an error, and the confirmed one is from (z) and sources of hadith. He is Sa'd bin Ibrahim bin Sa'd. (9) Musannaf Ibn Abi Shaybah 11/523 and 14/69. (10) Reported by Ibn Abi Shaybah 14/89 from the saying of al-Suddi.

पृष्ठ ३५२ सूरह अल-बकराह : आयत १२४

मतर ने अबू अल-जल्द से रिवायत की है कि वे दस भी हैं, सिवाय इसके कि उन्होंने बालों को अलग करने (१) के स्थान पर पोरों को धोने को रखा, और इस्तिंजा (शौच के बाद सफाई) के स्थान पर इस्तिहदाद (नाभि के नीचे के बाल काटना) को रखा (२)। क़तादाह ने कहा: वे विशेष रूप से हज के अनुष्ठान हैं (३)। अल-हसन ने कहा: वे छह लक्षण हैं: ग्रह, चंद्रमा, सूर्य, अग्नि, हिजरत (प्रवास), और खतना (४)। अबू इसहाक अल-जज्जाज ने कहा: ये कथन विरोधाभासी नहीं हैं; क्योंकि ये सब वही हैं जिनसे इब्राहीम (उन पर शांति हो) की परीक्षा ली गई थी (५)। मैं कहता हूँ: "अल-मुवत्ता" और अन्य में याह्या बिन सईद से रिवायत है कि उन्होंने सईद बिन अल-मुसय्यिब को यह कहते सुना: इब्राहीम (उन पर शांति हो) पहले व्यक्ति थे जिन्होंने खतना किया, पहले जिन्होंने मेहमान की मेजबानी (६) की, पहले जिन्होंने नाभि के नीचे के बाल काटे, पहले जिन्होंने नाखून काटे, पहले जिन्होंने मूंछें छोटी कीं, और पहले जिनके बाल सफेद हुए। जब उन्होंने सफ़ेद बाल देखे, तो पूछा: "यह क्या है?" उन्होंने कहा: "गरिमा।" उन्होंने कहा: "हे प्रभु, मेरी गरिमा बढ़ा दे" (७)। अबू बक्र बिन अबी शायबा ने साद (८) बिन इब्राहीम से, उनके पिता के माध्यम से उल्लेख किया, जिन्होंने कहा: मिंबरों पर उपदेश देने वाले पहले व्यक्ति अल्लाह के मित्र इब्राहीम थे (९)। अन्य लोगों ने कहा: और पहले व्यक्ति जिन्होंने थरीद (रोटी और शोरबा का व्यंजन) बनाया (१०), और पहले...

पादलेख (Footnotes): (१) (ज़) में: बालों को अलग करना। (२) अल-तबरी २/५०० द्वारा उद्धृत, लेकिन उनके पास इस्तिंजा के स्थान पर इस्तिहदाद का उल्लेख नहीं है जैसा कि लेखक ने उल्लेख किया है। मतर: वह इब्न तहमान अल-वर्राक हैं, और अबू अल-जल्द: वह जीलान बिन अबी फरवा हैं। लेखक दसवीं समस्या में 'बराजिम' (पोरों) का अर्थ और नौवीं समस्या में 'इस्तिहदाद' का अर्थ उल्लेख करेंगे। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/२०६, और अल-नुकात वल-उयून १/१८४, इब्न अतिया ने क़तादाह का नाम नहीं लिया, और अल-तबरी ने इसे २/५०३-५०४ में इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से क़तादाह की रिवायत से उद्धृत किया है। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/२०६, और अल-नुकात वल-उयून १/१८४, और अल-तबरी २/५०५-५०६ द्वारा उद्धृत। (५) अल-जज्जाज द्वारा मानी अल-कुरान १/२०५, और इसमें उनका यह कहना शामिल नहीं है: "और ये कथन विरोधाभासी नहीं हैं।" (६) हस्तलिखित प्रतियों में: "दाफा" (मेजबानी की), और पुष्ट प्रति (म) से है। (७) अल-मुवत्ता २/९२२, और मुसन्नफ़ इब्न अबी शायबा ११/५२२ और १४/६९। इसे अल-बुखारी ने "अल-अदब अल-मुफ़रद" में और अल-बैहकी ने अबू हुरैरा से मवक़ूफ़ हदीस के बाद भी उद्धृत किया है जिसे लेखक

शीघ्र ही उल्लेख करेंगे, और हम वहां इसके स्रोत का उल्लेख करेंगे। (८) (ख़), (द), (त) और (म) में: सईद, जो एक त्रुटि है, और पुष्ट नाम (ज़) और हदीस के स्रोतों से है। वह साद बिन इब्राहीम बिन साद हैं। (९) मुसन्नफ़ इब्न अबी शायबा ११/५२३ और १४/१९। (१०) अल-सुद्दी के कथन से इब्न अबी शायबा १४/८९ द्वारा उद्धृत।

صفحہ ۳۵۲ سورۃ البقرہ: آیت ۱۲۴

اور مطر نے ابوالجلد سے روایت کی ہے کہ وہ بھی دس ہیں، سوائے اس کے کہ انہوں نے بالوں کے مانگ نکالنے (۱) کی جگہ جوڑوں (پوریوں) کو دھونے کو رکھا، اور استنجاء کی جگہ استحداد (زیرِ ناف بال صاف کرنا) رکھا (۲)۔ اور قتادہ نے کہا: وہ خاص طور پر مناسکِ حج ہیں (۳)۔ حسن نے کہا: وہ چھ خصلتیں ہیں: ستارہ، چاند، سورج، آگ، ہجرت، اور ختنہ (۴)۔ ابو اسحاق الزجاج نے کہا: اور یہ اقوال متضاد نہیں ہیں؛ کیونکہ یہ سب ان چیزوں میں سے ہیں جن کے ساتھ ابراہیم علیہ السلام کو آزمایا گیا (۵)۔ میں نے کہا: "مؤطا" اور دیگر میں یحییٰ بن سعید سے مروی ہے کہ انہوں نے سعید بن المسیب کو کہتے سنا: ابراہیم علیہ السلام پہلے شخص ہیں جنہوں نے ختنہ کیا، پہلے جنہوں نے مہمان کی ضیافت (۶) کی، پہلے جنہوں نے استحداد کیا، پہلے جنہوں نے ناخن تراشے، پہلے جنہوں نے مونچھیں کتروائیں، اور پہلے جن کے بال سفید ہوئے۔ جب انہوں نے بڑھاپا (سفیدی) دیکھا تو پوچھا: یہ کیا ہے؟ انہوں نے کہا: وقار۔ انہوں نے کہا: اے رب، میرے وقار میں اضافہ فرما (۷)۔ اور ابو بکر بن ابی شیبہ نے سعد (۸) بن ابراہیم سے، اپنے والد کے حوالے سے ذکر کیا، جنہوں نے کہا: منبروں پر سب سے پہلے خطبہ دینے والے ابراہیم خلیل اللہ تھے (۹)۔ دوسروں نے کہا: اور پہلے شخص جنہوں نے ثرید (شوربے میں بھیگی روٹی) بنایا (۱۰)، اور پہلے---

حواشی: (۱) (ز) میں ہے: بالوں کی مانگ۔ (۲) اسے طبری نے ۵۰۰/۲ میں روایت کیا ہے، لیکن ان کے ہاں استنجاء کی جگہ استحداد کا ذکر نہیں ہے جیسا کہ مصنف نے ذکر کیا ہے۔ مطر: وہ ابن طہمان الوراق ہیں، اور ابوالجلد: وہ جیلان بن ابی فروہ ہیں۔ اور مصنف دسویں مسئلے میں 'براجم' کا معنی، اور نویں مسئلے میں 'استحداد' کا معنی ذکر کریں گے۔ (۳) المحرر الوجیز ۲۰۶/۱، اور

النکت والعیون ۱۸۴/۱، اور ابن عطیہ نے قتادہ کا نام نہیں لیا، اور طبری نے اسے ۵۰۳/۲-۵۰۴ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما سے قتادہ کی روایت سے نکالا ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۲۰۶/۱، اور النکت والعیون ۱۸۴/۱، اور اسے طبری نے ۵۰۵/۲-۵۰۶ میں نکالا ہے۔ (۵) معانی القرآن ۲۰۵/۱ للزجاج، اور اس میں ان کا یہ قول نہیں ہے: "اور یہ اقوال متضاد نہیں ہیں۔" (۶) قلمی نسخوں میں 'ضاف' ہے، اور جو ثابت کیا گیا وہ (م) سے ہے۔ (۷) مؤطا ۹۲۲/۲، اور مصنف ابن ابی شیبہ ۵۲۲/۱۱ اور ۶۹/۱۴۔ اور اسے بخاری نے الادب المفرد میں اور بیہقی نے حضرت ابوہریرہ سے مروی حدیثِ موقوف کے بعد بھی روایت کیا ہے جسے مصنف عنقریب ذکر کریں گے، اور ہم وہاں اس کی تخریج ذکر کریں گے۔ (۸) (خ)، (د)، (ط) اور (م) میں: سعید، اور وہ غلطی ہے، اور جو ثابت کیا گیا وہ (ز) اور حدیث کے مآخذ سے ہے۔ اور وہ سعد بن ابراہیم بن سعد ہیں۔ (۹) مصنف ابن ابی شیبہ ۵۲۳/۱۱ اور ۶۹/۱۴۔ (۱۰) اسے ابن ابی شیبہ نے ۸۹/۱۴ میں سدی کے قول سے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 124 353 ...who struck with the sword, the first to use the siwak (toothbrush), the first to cleanse himself with water after defecation, and the first to wear trousers (1). Muadh ibn Jabal narrated that the Prophet (PBUH) said: "If I take a pulpit, my father Ibrahim took it, and if I take a staff, my father Ibrahim took it" (2). I say: These are rulings that must be clarified, understood, and discussed. The first of these is circumcision and what has been narrated about it, which is the issue: Fourth: The scholars are in consensus that Ibrahim (peace be upon him) was the first to be circumcised (3). There is disagreement about the age at which he was circumcised. In 'Al-Muwatta' from Abu Hurairah it is narrated as a mauquf (attributed to him) statement: "And he was one hundred and twenty years old, and he lived eighty years after that" (4). Such a thing would not be an opinion, and Al-Awza'i narrated it as a marfu' (attributed to the Prophet) narration from Yahya ibn Sa'id, from Sa'id ibn al-Musayyib, from Abu Hurairah who said: The Messenger of Allah (PBUH) said: "Ibrahim (peace be upon him) was circumcised when he was one hundred and twenty years old, then he lived eighty years after that." Mentioned by Abu Umar (5). It was narrated as a marfu' chain through other than Yahya's narration from various routes: "that he was circumcised when he reached eighty years of age, and he was circumcised with an adze (al-qadum)", as in 'Sahih' Muslim and others: "son of eighty years", and it is...

---

(1) Ibn Abi Shaybah narrated in his 'Musannaf' 8/404 from Wasil, the mawla (freed slave) of Ibn 'Uyaynah who said: Allah revealed to Ibrahim: You are the most honored of creation to Me, so when you pray, the earth should not see your private parts, so he took trousers. See At-Tamhid 12/171. (2) Narrated by Al-Bazzar in his 'Musnad' (2632), and At-Tabarani in 'Al-Kabir' 20/(354), and Al-Haythami mentioned it in 'Majma' az-Zawa'id' 2/181, and said: In it is Musa ibn Ibrahim ibn al-Harith al-Taymi, and he is very weak. Abu Hatim said as in 'Ilal al-Hadith' 2/241: A munkar (denied) hadith, as if it were fabricated, and Musa is very weak in hadith. (3) At-Tamhid 21/59. (4) Thus it was mentioned from Malik by Ibn Abd al-Barr in 'At-Tamhid' 23/137 through Sa'id ibn al-Musayyib, from Abu Hurairah as a mauquf narration. It was also narrated through this path by: Al-Bukhari in 'Al-Adab al-Mufrad' (1250), and Al-Bayhaqi in 'Shu'ab al-Iman' (8640). It is in 'Al-Muwatta' (according to the narration of Abu Mus'ab az-Zuhri) (1929) as a maqtu' (disconnected) statement of Sa'id ibn al-Musayyib. (5) At-Tamhid 23/137, and Al-Istidhkar 26/244. Al-Hafiz Ibn Hajar said in 'Fath al-Bari' 6/391: It occurred in 'Al-Muwatta' as a mauquf narration from Abu Hurairah, and with Ibn Hibban as a marfu' narration [6204] that Ibrahim was circumcised when he was one

hundred and twenty years old. It appears that something was omitted from the text, as this amount is the length of his life.

सूरह अल-बकराह: आयत १२४ ३५३ ...जिसने तलवार से वार किया, वह पहला जिसने मिस्वाक का इस्तेमाल किया, वह पहला जिसने पानी से इस्तेंजा किया, और वह पहला जिसने पायजामा पहना (१)। मुआज़ बिन जबल ने रिवायत किया कि नबी ﷺ ने फरमाया: "अगर मैं मिंबर (प्रवचन मंच) अपनाता हूँ, तो मेरे पिता इब्राहिम ने इसे अपनाया था, और अगर मैं छड़ी अपनाता हूँ, तो मेरे पिता इब्राहिम ने इसे अपनाया था" (२)। मैंने कहा: ये वे नियम हैं जिन्हें स्पष्ट किया जाना, समझा जाना और उन पर चर्चा की जानी चाहिए। इनमें से पहला खतना और इसके बारे में जो आया है, वह है, और यह मसला है: चौथा: विद्वानों का इस बात पर आम सहमति है कि इब्राहिम (उन पर शांति हो) खतना करवाने वाले पहले व्यक्ति थे (३)। किस उम्र में उनका खतना हुआ, इस पर मतभेद है। 'अल-मुवत्ता' में अबू हुरैरा से रिवायत है (मौकूफ रूप में): "और वह एक सौ बीस साल के थे, और उसके बाद अस्सी साल तक जीवित रहे" (४)। इस तरह की बात केवल एक राय नहीं हो सकती, और अल-औज़ाई ने इसे याह्या बिन सईद, सईद बिन अल-मुसय्यिब के माध्यम से अबू हुरैरा से मरफू(नबी ﷺ से जुड़ी) रिवायत के रूप में वर्णित किया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "इब्राहिम (उन पर शांति हो) का खतना हुआ जब वह एक सौ बीस साल के थे, फिर वह उसके बाद अस्सी साल तक जीवित रहे।" अबू उमर ने इसका उल्लेख किया है (५)। यह याह्या की रिवायत के अलावा अन्य माध्यमों से मरफू मुसनद के रूप में वर्णित है: "कि उन्होंने अस्सी साल की उम्र में खतना किया, और उन्होंने 'कदुम' (एक प्रकार का कुल्हाड़ा) से खतना किया", जैसा कि 'सहीह' मुस्लिम और अन्य में है: "अस्सी साल के, और यह...

---

(१) इब्न अबी शयबा ने अपनी 'मुसन्निफ़' ८/४०४ में इब्न उययना के गुलाम वासिल से रिवायत किया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह ने इब्राहिम को संदेश भेजा: आप मेरे लिए सृष्टि में सबसे सम्मानित हैं, इसलिए जब आप प्रार्थना करें, तो धरती को आपके निजी अंग नहीं दिखने चाहिए, इसलिए उन्होंने पायजामा अपनाया। अत-तम्हीद १२/१७१ देखें। (२) इसे अल-बज़ार ने अपनी 'मुसनद' (२६३२) में, और अत-तबरानी ने 'अल-कबीर' २०/(३५४) में वर्णित किया है, और अल-हैथमी ने इसे 'मजमा अज़-ज़वाइद' २/१८१ में उल्लेख किया है, और कहा: इसमें मूसा बिन इब्राहिम बिन अल-हारिस अल-तैमी हैं, और वह बहुत कमजोर हैं। अबू हातिम ने 'इलाल अल-हदीस' २/२४१ में कहा: यह एक मुनकर (अस्वीकार्य) हदीस है, जैसे कि यह गढ़ी हुई हो, और मूसा हदीस में बहुत कमजोर हैं। (३) अत-तम्हीद २१/५९। (४) इब्न अब्द अल-बर्र ने 'अत-तम्हीद' २३/१३७ में सईद बिन अल-मुसय्यिब के माध्यम से अबू हुरैरा से मौकूफ रिवायत के रूप में मालिक से इसका उल्लेख किया है। इसे इसी मार्ग

से अल-बुखारी ने 'अल-अदब अल-मुफ़रद' (१२५०) में और अल-बैहकी ने 'शुअब अल-ईमान' (८६४०) में भी वर्णित किया है। यह 'अल-मुवत्ता' (अबू मुसाब अल-ज़ुहरी की रिवायत के अनुसार) (१९२९) में सईद बिन अल-मुसय्यिब का एक मकतु (कटा हुआ) कथन है। (५) अत-तम्हीद २३/१३७, और अल-इस्तिज़कार २१/२४४। हाफ़िज़ इब्न हजर ने 'फतह अल-बारी' ६/३९१ में कहा: यह अबू हुरैरा से मौकूफ रिवायत के रूप में 'अल-मुवत्ता' में आया है, और इब्न हिब्बान के पास एक मरफू रिवायत [६२०४] है कि इब्राहिम का खतना हुआ जब वह एक सौ बीस साल के थे। प्रत्यक्ष रूप से ऐसा लगता है कि मूल पाठ से कुछ छूट गया है, क्योंकि यह राशि उनके जीवन की अवधि है।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۴ ۳۵۳ ...جس نے تلوار سے حملہ کیا، اور پہلا جس نے مسواک کی، اور پہلا جس نے پانی سے استنجا کیا، اور پہلا جس نے پائجامہ پہنا (۱)۔ معاذ بن جبل رضی اللہ عنہ سے روایت ہے، انہوں نے کہا: نبی اکرم ﷺ نے فرمایا: "اگر میں منبر بناتا ہوں تو میرے والد ابراہیم نے اسے اپنایا تھا، اور اگر میں لاٹھی پکڑتا ہوں تو میرے والد ابراہیم نے اسے پکڑا تھا" (۲)۔ میں نے کہا: یہ وہ احکام ہیں جن کی وضاحت، تفہیم اور ان پر گفتگو ضروری ہے۔ ان میں سب سے پہلے ختنہ اور اس کے بارے میں وارد ہونے والی روایات ہیں، اور یہ مسئلہ ہے: چوتھا مسئلہ: علماء کا اس بات پر اتفاق ہے کہ ابراہیم علیہ السلام وہ پہلے شخص تھے جنہوں نے ختنہ کیا (۳)۔ ان کی ختنہ کی عمر کے بارے میں اختلاف ہے۔ 'الموطأ' میں ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے موقوفاً روایت ہے: "ان کی عمر ایک سو بیس سال تھی، اور وہ اس کے بعد اسی سال تک زندہ رہے" (۴)۔ اس طرح کی بات محض رائے نہیں ہو سکتی، اور اسے اوزاعی نے یحییٰ بن سعید، عن سعید بن المسیب، عن ابوہریرہ کے واسطے سے مرفوعاً روایت کیا ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ابراہیم علیہ السلام نے ختنہ کیا جب وہ ایک سو بیس سال کے تھے، پھر وہ اس کے بعد اسی سال تک زندہ رہے"۔ اسے ابو عمر نے ذکر کیا ہے (۵)۔ اور یحییٰ کی روایت کے علاوہ دیگر طرق سے بھی مرفوعاً مروی ہے: "کہ انہوں نے اس وقت ختنہ کیا جب ان کی عمر اسی سال ہو گئی تھی، اور انہوں نے قدوم (ایک آلہ) سے ختنہ کیا"، جیسا کہ 'صحیح' مسلم وغیرہ میں ہے: "اسی سال کے تھے"، اور وہ...

---

(۱) ابن ابی شیبہ نے اپنی 'مصنف' ۴۰۴/۸ میں ابن عیینہ کے مولیٰ واصل سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: اللہ تعالیٰ نے ابراہیم علیہ السلام کی طرف وحی فرمائی: آپ میرے نزدیک مخلوق میں سب سے زیادہ معزز ہیں، پس جب آپ نماز پڑھیں تو زمین آپ کی شرمگاہ نہ دیکھے، چنانچہ

انہوں نے پائجامہ اپنایا۔ دیکھیے التمهید ۱۷۱/۱۲۔ (۲) اسے البزار نے اپنی 'مسند' (۲۶۳۲) میں، اور الطبرانی نے 'الکبیر' ۲۰/(۳۵۴) میں روایت کیا ہے، اور الہیثمی نے اسے 'مجمع الزوائد' ۱۸۱/۲ میں ذکر کیا ہے، اور کہا: اس میں موسیٰ بن ابراہیم بن الحارث التیمی ہیں، اور وہ بہت ضعیف ہیں۔ ابو حاتم نے جیسا کہ 'علل الحدیث' ۲۴۱/۲ میں ہے، کہا: یہ منکر حدیث ہے، گویا کہ موضوع ہو، اور موسیٰ حدیث میں بہت ضعیف ہیں۔ (۳) التمهید ۵۹/۲۱۔ (۴) ابن عبد البر نے 'التمہید' ۱۳۷/۲۳ میں امام مالک سے سعید بن المسیب کے واسطے سے ابوہریرہ سے موقوفاً اسی طرح ذکر کیا ہے۔ اسے بخاری نے 'الادب المفرد' (۱۲۵۵) میں اور بیہقی نے 'شعب الایمان' (۸۶۴۰) میں بھی اسی طریق سے روایت کیا ہے۔ اور یہ الموطأ (روایت ابومصعب الزہری) (۱۹۲۹) میں سعید بن المسیب کا قول (مقطوع) ہے۔ (۵) التمهید ۱۳۷/۲۳، اور الاستذکار ۲۴۴/۲۶۔ حافظ ابن حجر نے 'فتح الباری' ۳۹۱/۶ میں کہا: 'الموطأ' میں یہ ابوہریرہ سے موقوفاً مروی ہے، اور ابن حبان کے ہاں مرفوعاً [۶۲۰۴] ہے کہ ابراہیم علیہ السلام نے ختنہ کیا جب وہ ایک سو بیس سال کے تھے۔ بظاہر متن سے کچھ گر گیا ہے، کیونکہ یہ مقدار ان کی کل عمر ہے۔

354 Surah Al-Baqarah: Verse 124 What is preserved in the hadith of Ibn 'Ajlan (1) and the hadith of Al-A'raj, from Abu Hurairah, from the Prophet (2) ﷺ. 'Ikrimah said: Ibrahim was circumcised when he was eighty years old. He said: No one performed Tawaf around the House after the religion of Ibrahim except a circumcised person. This is what 'Ikrimah said, and Al-Musayyib bin Rafi' (3) said it, mentioned by Al-Marwazi (4). And "Al-Qadum" is narrated with a shadda and without. Abu Al-Zinad said: Al-Qaddum with a shadda is a place (5). Fifth: Scholars differed regarding circumcision. The majority of them are of the opinion that it is among the confirmed Sunnahs (Mu'akkadat al-Sunan) and from the natural disposition (fitra) of Islam, which it is not permissible for men to abandon. A group said: It is an obligation (fard), based on the Almighty's saying: {Follow the religion of Ibrahim, the upright} [An-Nahl: 123]. Qatada said: It is circumcision, and some Malikis (6) leaned towards this, and it is the opinion of Al-Shafi'i. Ibn Surayj (7) used the consensus on the prohibition of looking at the private parts ('awrah) as evidence for its obligation. He said: If circumcision were not obligatory, looking at them would not be permitted from the circumcised person. This was answered by saying that such a thing is permitted for the benefit of the body, like a doctor's examination, and medicine is not obligatory by consensus (8), as will be explained in "An-Nahl" (9), God willing.

---

(1) Thus in the copies: Ibn 'Ajlan, and it is a slip of the pen. The one who narrates from Abu Hurairah is his father 'Ajlan, and the narration is through Ibn 'Ajlan from his father from Abu Hurairah. See At-Tamheed 23/140. (2) The narration of Al-A'raj from Abu Hurairah is in Ahmad (8281), Al-Bukhari (3356), and Muslim (2370). The narration of 'Ajlan from Abu Hurairah is in Ahmad (9622), and Al-Bukhari recorded it as a hanging narration (mu'allaq) following the narration of Al-A'raj. See At-Tamheed 23/137-140. (3) Abu Al-Ala Al-Asadi, Al-Kahili, the great jurist, of Kufa. It is said he died in the year 105 AH. As-Siyar 5/103. (4) At-Tamheed 23/139. Al-Marwazi is Muhammad bin Nasr bin Al-Hajjaj, Abu Abdullah Al-Hafiz, died in the year 294 AH. As-Siyar 14/33. (5) Sahih Al-Bukhari following hadith (6298). (6) At-Tamheed 21/59. (7) Ahmad bin Umar, Abu Al-Abbas Al-Baghdadi, the Shafi'i judge, author of works, died in the year 306 AH. As-Siyar 14/201. (8) Al-Mufhim 1/514. (9) In the interpretation of verse (69).

354 सूरा अल-बकराह: आयत 124 इब्न अजलान (1) की हदीस और अल-अराज की हदीस में अबू हुरैरा से, पैगंबर ﷺ से (2) जो संरक्षित है। इकरिमा ने कहा: इब्राहीम का खतना तब हुआ था जब वह अस्सी वर्ष के थे। उन्होंने कहा: इब्राहीम के धर्म के बाद खतना किए हुए व्यक्ति के अलावा किसी ने भी काबा का तवाफ़ नहीं किया। इकरिमा ने यही कहा, और अल-मुसय्यिब बिन रफ़ी (3) ने भी यही कहा, जिसका उल्लेख अल-मरवाज़ी (4) ने किया है। और "अल-कदुम" को शद्दा के साथ और बिना शद्दा के सुनाया जाता है। अबू अल-ज़िनाद ने कहा: अल-क़दुम शद्दा के साथ एक स्थान है (5)। पाँचवाँ: खतना के संबंध में विद्वानों में मतभेद था। उनमें से अधिकांश की राय है कि यह सुन्नत-ए-मुअक्कदा (पुष्ट सुन्नत) में से है और इस्लाम की फितरत (स्वभाव) से है, जिसे पुरुषों के लिए छोड़ना उचित नहीं है। एक समूह ने कहा: यह फर्ज (अनिवार्य) है; सर्वशक्तिमान के वचन के कारण: {इब्राहीम के धर्म का पालन करो, जो सीधे रास्ते पर थे} [अन-नहल: 123]; कतादा ने कहा: यह खतना है, और कुछ मालिकी (6) इसकी ओर झुके, और यह अल-शाफी का कथन है। इब्न सुरैज (7) ने इसकी अनिवार्यता के प्रमाण के रूप में सतर (गुप्त अंगों) को देखने की मनाही पर सर्वसम्मति (इज्मा) का उपयोग किया, और कहा: यदि खतना फर्ज न होता, तो खतना करने वाले के सतर को देखने की अनुमति नहीं दी जाती। इसका उत्तर यह दिया गया कि शरीर के लाभ के लिए ऐसी अनुमति दी जाती है, जैसे डॉक्टर का परीक्षण, और चिकित्सा सर्वसम्मति से अनिवार्य नहीं है (8), जैसा कि "अन-नहल" (9) में आएगा, इंशा अल्लाह।

---

(1) प्रतियों में इसी प्रकार है: इब्न अजलान, और यह लिखने में चूक है। जो अबू हुरैरा से रिवायत करते हैं वह उनके पिता अजलान हैं, और रिवायत इब्न अजलान के माध्यम से उनके पिता से अबू हुरैरा से है। अल-तमहीद 23/140 देखें। (2) अबू हुरैरा से अल-अराज की रिवायत अहमद (8281), बुखारी (3356) और मुस्लिम (2370) में है। अहमद (9622) में अबू हुरैरा से अजलान की रिवायत है, और बुखारी ने इसे अल-अराज की रिवायत के बाद एक टिप्पणी (मुअल्लाक़) के रूप में निकाला है। अल-तमहीद 23/137-140 देखें। (3) अबू अल-अला अल-असदी, अल-काहिली, महान फकीह, कूफी, कहा जाता है कि उनकी मृत्यु वर्ष 105 हिजरी में हुई थी। अस-सियार 5/103। (4) अल-तमहीद 23/139। और अल-मरवाज़ी: वह मुहम्मद बिन नस्र बिन अल-हज्जाज, अबू अब्दुल्ला अल-हाफिज़ हैं, जिनकी मृत्यु वर्ष 294 हिजरी में हुई थी। अस-सियार 14/33। (5) सहीह अल-बुखारी हदीस (6298) के बाद। (6) अल-तमहीद 21/59। (7) अहमद बिन उमर, अबू अल-अब्बास अल-बगदादी,

शाफी जज, कई रचनाओं के लेखक, वर्ष 306 हिजरी में मृत्यु हुई। अस-सियार 14/201। (8) अल-मुफ़हिम 1/514। (9) आयत (69) की व्याख्या में।

۳۵۴ سورة البقرہ: آیت ۱۲۴ ابنِ عجلان کی حدیث (۱) اور الاعرج کی حدیث میں ابو ہریرہ سے، نبی ﷺ سے (۲) جو محفوظ ہے۔ عکرمہ نے کہا: ابراہیم علیہ السلام کا ختنہ ہوا جب وہ اسی سال کے تھے، انہوں نے کہا: ملتِ ابراہیم کے بعد کسی نے بھی بیت اللہ کا طواف نہیں کیا سوائے ختنہ شدہ کے، عکرمہ نے ایسا ہی کہا، اور یہی بات المسیب بن رافع (۳) نے کہی، جسے المروزی (۴) نے ذکر کیا ہے۔ لفظ «القدوم» تشدید کے ساتھ اور اس کے بغیر دونوں طرح مروی ہے۔ ابو الزناد نے کہا: القَدُّوم تشدید کے ساتھ ایک جگہ کا نام ہے (۵)۔ پانچویں بات: ختنہ کے بارے میں علماء میں اختلاف رہا ہے، ان میں سے جمہور کی رائے یہ ہے کہ یہ سنتِ مؤکدہ میں سے ہے، اور اسلام کی اس فطرت میں سے ہے جسے مردوں کے لیے چھوڑنا گنجائش نہیں رکھتا۔ ایک گروہ نے کہا: یہ فرض ہے؛ اللہ تعالیٰ کے اس قول کی وجہ سے: ﴿أَنِ اتَّبِعْ مِلَّةَ إِبْرَاهِيمَ حَنِيفًا﴾ [النحل: ۱۲۳]؛ قتادہ نے کہا: اس سے مراد ختنہ ہے، اور بعض مالکیوں (۶) کا میلان اسی طرف ہے، اور یہی امام شافعی کا قول ہے۔ ابنِ سریج (۷) نے اس کے واجب ہونے پر ستر (شرمگاہ) کی طرف دیکھنے کی حرمت پر اجماع سے استدلال کیا، اور کہا: اگر ختنہ فرض نہ ہوتا تو ختنہ کرنے والے کے لیے اس کی طرف دیکھنا جائز نہ ہوتا۔ اس کا جواب یہ دیا گیا کہ اس طرح کی چیز جسمانی مصلحت کے لیے مباح ہے، جیسے ڈاکٹر کا دیکھنا، اور علاج معالجہ اجماعاً واجب نہیں ہے (۸) جیسا کہ «النحل» (۹) میں اس کا بیان آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ۔

---

(۱) نسخوں میں اسی طرح ہے: ابن عجلان، اور یہ قلم کی لغزش ہے، کیونکہ جو ابو ہریرہ سے روایت کرتے ہیں وہ ان کے والد عجلان ہیں، اور روایت ابن عجلان کے طریق سے ان کے والد سے، وہ ابو ہریرہ سے ہے۔ التمہید ۲۳/ ۱۴۰ دیکھیں۔ (۲) ابو ہریرہ سے الاعرج کی روایت احمد (۸۲۸۱)، بخاری (۳۳۵۶)، اور مسلم (۲۳۷۰) کے ہاں ہے۔ اور ابو ہریرہ سے عجلان کی روایت

احمد (۹۶۲۲) کے ہاں ہے، اور اسے بخاری نے الاعرج کی روایت کے بعد بطورِ تعلیق روایت کیا ہے۔ التمہید ۲۳/ ۱۳۷-۱۴۰ دیکھیں۔ (۳) ابو العلاء الاسدی، الکاہلی، بڑے فقیہ، کوفی، کہا جاتا ہے کہ ان کی وفات سال ۱۰۵ھ میں ہوئی۔ السیر ۵/ ۱۰۳۔ (۴) التمہید ۲۳/ ۱۳۹۔ اور المروزی: وہ محمد بن نصر بن الحجاج، ابو عبد اللہ الحافظ ہیں، وفات ۲۹۴ھ السیر ۱۴/ ۳۳۔ (۵) صحیح بخاری، حدیث نمبر (۶۲۹۸) کے بعد۔ (۶) التمہید ۲۱/ ۵۹۔ (۷) احمد بن عمر، ابو العباس البغدادی، قاضی شافعی، صاحبِ تصنیفات، وفات ۳۰۶ھ السیر ۱۴/ ۲۰۱۔ (۸) المفہم ۱/ ۵۱۴۔ (۹) آیت (۶۹) کی تفسیر میں۔

٣٥٥ Surah Al-Baqarah: Verse 124

Some of our companions argued with what was narrated by Al-Hajjaj ibn Artah from Abi Al-Malih, from his father, from Shaddad ibn Aws, that the Messenger of Allah ﷺ said: "Circumcision is a Sunnah for men and an honor for women," but Al-Hajjaj is not someone whose narration is relied upon for proof (1).

I say: The most reliable evidence in this matter is the hadith of Abu Hurayrah from the Prophet ﷺ, who said: "Fitrah (natural inclination) consists of five things: circumcision..." the hadith, which will come later (2).

Abu Dawood narrated from Umm Atiyyah that a woman used to perform female circumcision in Medina (3). The Prophet ﷺ said to her: "Do not cut deeply, for that is better for the woman and more beloved to the husband."

Abu Dawood said: This hadith is weak, its narrator is unknown (4).

In a narration mentioned by Razin: "Do not cut deeply, for it makes the face more radiant and is better liked by the man."

Sixth: If a boy is born circumcised, the burden (5) of circumcision has been spared.

Al-Maymuni (6) said: Ahmad said to me: There is a man here to whom a circumcised child was born, and he was greatly distressed by that. I said to him: Since Allah has spared you the burden, why does this distress you (7)?!

Seventh: Abu Al-Faraj Al-Jawzi said: I was told from Ka'b al-Ahbar that thirteen of the prophets were born circumcised: Adam, Seth, Idris, Noah, Shem, Lot, Joseph, Moses, Shu'ayb, Solomon, John, Jesus, and the Prophet ﷺ.

(1) See Al-Tamhid 21/59, and the hadith was recorded by Ahmad (20719). Abu Al-Malih is the son of Usamah bin Umair Al-Hudhali, his name is Amir, and it is said: Zaid, and it is said: Ziyad. (2) In the eleventh issue, and we will mention its derivation there. (3) In (D) and (M): in Medina. (4) Sunan Abi Dawood (5271). His saying: "Do not cut deeply," meaning: do not go to extremes in the extent of circumcision. Al-Nihayah fi Gharib al-Hadith 5/137. (5) In (D), (Zha), and (M): "mu'nah" (in both places), and they are the same. (6) Abdul-Malik bin Abdul-Hamid, Abu al-Hasan al-Raqqi, the Hafiz, the Jurist, a student of Imam Ahmad, died in the year (274 AH). Al-Siyar 13/89. (7) Al-Tamhid 21/ 60-61.

३५५ सूरह अल-बकरा : आयत १२४

हमारे कुछ साथियों ने अल-हज्जाज बिन अर्तह द्वारा अबी अल-मलीह से, उनके पिता से, शद्दाद बिन औस से वर्णित रिवायत के साथ तर्क दिया कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा: "खतना पुरुषों के लिए सुन्नत है और महिलाओं के लिए एक सम्मान है," लेकिन अल-हज्जाज उन लोगों में से नहीं हैं जिनके वर्णन को प्रमाण के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है (१)।

मैंने कहा: इस विषय में सबसे विश्वसनीय प्रमाण पैगंबर ﷺ से अबू हुरैरा की हदीस है, जिन्होंने कहा: "फितरत (प्राकृतिक झुकाव) में पांच चीजें शामिल हैं: खतना..." हदीस, जो आगे आएगी (२)।

अबू दाऊद ने उम्म अतिय्याह से रिवायत किया है कि मदीना में एक महिला महिलाओं का खतना किया करती थी (३)। पैगंबर ﷺ ने उससे कहा: "गहराई तक न काटो, क्योंकि यह महिला के लिए बेहतर है और पति के लिए अधिक प्रिय है।"

अबू दाऊद ने कहा: यह हदीस कमजोर है, इसका वर्णनकर्ता अज्ञात है (४)।

रज़ीन द्वारा वर्णित एक रिवायत में: "गहराई तक न काटो, क्योंकि यह चेहरे को अधिक चमकदार बनाता है और पुरुष को अधिक पसंद आता है।"

छठा: यदि कोई लड़का खतना के साथ पैदा होता है, तो खतना का बोझ (५) टल गया है।

अल-मैमुनी (६) ने कहा: अहमद ने मुझसे कहा: यहाँ एक आदमी है जिसके यहाँ खतना हुआ बच्चा पैदा हुआ, और वह इससे बहुत दुखी था। मैंने उससे कहा: जब अल्लाह ने तुम्हें बोझ से बचा लिया है, तो तुम इससे क्यों परेशान हो (७)?!

सातवां: अबू अल-फराज अल-जौज़ी ने कहा: मुझे काब अल-अहबर से बताया गया कि पैगंबरों में से तेरह खतना के साथ पैदा हुए थे: आदम, शीथ, इदरीस, नूह, साम, लूत, यूसुफ, मूसा, शुएब, सुलेमान, याह्या, ईसा और पैगंबर ﷺ।

(१) अल-तमहीद २१/५९ देखें, और हदीस अहमद (२०७१९) द्वारा दर्ज की गई थी। अबू अल-मलीह उसामा बिन उमैर अल-हुदाली के पुत्र हैं, उनका नाम आमिर है, और कहा जाता है: ज़ैद, और कहा जाता है: ज़ियाद। (२) ग्यारहवें मुद्दे में, और हम वहां इसके निष्कर्षण का उल्लेख करेंगे। (३) (D) और (M) में: मदीना में। (४) सुनन अबी दाऊद (५२७१)। उनका कहना: "गहराई तक न काटो," यानी: खतना की सीमा में अति न करें। अल-निहायत फी गरीब अल-हदीस ५/१३७। (५) (D), (Zha) और

(M) में: "मुनह" (दोनों स्थानों पर), और वे समान हैं। (६) अब्दुल-मलिक बिन अब्दुल-हमीद, अबू अल-हसन अल-रक्की, हाफिज, फकीह, इमाम अहमद के छात्र, वर्ष (२७४ हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार १३/८९। (७) अल-तमहीद २१/ ६०-६१।

۳۵۵ سورة البقرہ : آیت ۱۲۴

ہمارے بعض ساتھیوں نے الحجاج بن ارطاۃ کی روایت سے استدلال کیا ہے جو ابی الملیح سے، ان کے والد سے، شداد بن اوس سے مروی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «ختنہ مردوں کے لیے سنت اور عورتوں کے لیے عزت ہے»، لیکن الحجاج ان لوگوں میں سے نہیں ہیں جن کی روایت سے استدلال کیا جائے (۱)۔

میں نے کہا: اس باب میں سب سے اعلیٰ دلیل ابوہریرہ کی نبی ﷺ سے مروی حدیث ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: «فطرت پانچ چیزیں ہیں: ختنہ...» حدیث، جو آگے آئے گی (۲)۔

ابو داؤد نے ام عطیہ سے روایت کیا ہے کہ مدینہ میں ایک عورت عورتوں کا ختنہ کیا کرتی تھی (۳)، تو نبی ﷺ نے اس سے فرمایا: «گہرا نہ کاٹو، کیونکہ یہ عورت کے لیے زیادہ بہتر اور شوہر کے لیے زیادہ پسندیدہ ہے»۔

ابو داؤد نے کہا: یہ حدیث ضعیف ہے، اس کا راوی مجہول ہے (۴)۔

رزین کی ذکر کردہ ایک روایت میں ہے: «گہرا نہ کاٹو، کیونکہ یہ چہرے کو زیادہ روشن کرتا ہے اور مرد کے نزدیک زیادہ پسندیدہ ہے»۔

چھٹا: اگر لڑکا ختنہ شدہ پیدا ہو تو ختنہ کی مشقت (۵) ٹل گئی۔

میمونی (۶) نے کہا: احمد نے مجھ سے کہا: یہاں ایک شخص ہے جس کے ہاں ختنہ شدہ بچہ پیدا ہوا، تو وہ اس پر بہت غمگین ہوا۔ میں نے اس سے کہا: جب اللہ نے تمہاری مشقت دور کر دی ہے تو تمہیں اس پر غم کیوں ہے (۷)؟!

ساتواں: ابو الفرج الجوزی نے کہا: مجھے کعب الاحبار سے روایت پہنچی ہے کہ انبیاء میں سے تیرہ ختنہ شدہ پیدا ہوئے: آدم، شیث، ادریس، نوح، سام، لوط، یوسف، موسیٰ، شعیب، سلیمان، یحییٰ، عیسیٰ، اور نبی ﷺ۔

(۱) دیکھئے التمہید ۲۱/۵۹، اور حدیث کو احمد نے روایت کیا ہے (۲۰۷۱۹)۔ ابو المليح: اسامہ بن عمیر الہذلی کے بیٹے ہیں، ان کا نام عامر ہے، اور کہا گیا ہے: زید، اور کہا گیا ہے: زیاد۔ (۲) گیارہویں مسئلے میں، اور ہم وہاں اس کی تخریج ذکر کریں گے۔ (۳) (د) اور (م) میں: مدینہ میں۔ (۴) سنن ابی داؤد (۵۲۷۱)۔ ان کا قول: «لا تنہکی» یعنی: ختنہ کی حد میں مبالغہ نہ کرو۔ النہایہ فی غریب الحدیث ۵/۱۳۷۔ (۵) (د)، (ظ) اور (م) میں: مؤنة (دونوں جگہوں پر) اور دونوں ایک ہی ہیں۔ (۶) عبدالملک بن عبدالحمید، ابو الحسن الرقی، حافظ، فقیہ، امام احمد کے شاگرد، سنہ (۲۷۴ھ) میں وفات پائی۔ السیر ۱۳/۸۹۔ (۷) التمہید ۲۱/ ۶۰-۶۱۔

Muhammad ibn Habib al-Hashimi said (1): They are fourteen: Adam, Seth, Noah, Hud, Salih, Lot, Shuaib, Joseph, Moses, Solomon, Zechariah, Jesus, and Hanzala ibn Safwan, the prophet of the People of Rass, and Muhammad (peace and blessings be upon him), and peace be upon them all. I say: Narrations differ regarding the Prophet (peace and blessings be upon him). Abu Nu'aym the Hafiz mentioned in the book "al-Hilya" with his chain of transmission, that the Prophet (peace and blessings be upon him) was born circumcised (2). Abu Umar reported in "al-Tamhid" (3): Ahmad ibn Muhammad ibn Ahmad narrated to us, Muhammad ibn Isa narrated to us, Yahya ibn Ayyub ibn Badi' (4) al-'Allaf narrated to us, Muhammad ibn Abi al-Sari al-Asqalani narrated to us, al-Walid ibn Muslim narrated to us, from Shuaib, from 'Ata' al-Khurastani, from Ikrimah, from Ibn Abbas, that Abdul Muttalib circumcised the Prophet (peace and blessings be upon him) on his seventh day, prepared a banquet for him, and named him Muhammad. Abu Umar said: This is a strange supported hadith. Yahya ibn Ayyub said: I sought this hadith and did not find it with any of the people of hadith I met except with Ibn Abi al-Sari. Abu Umar said (5): It has been said that the Prophet (peace and blessings be upon him) was born circumcised. Eighth: They differed on when a boy should be circumcised. It is established in reports from a group of scholars that they said: Abraham circumcised Ishmael at thirteen years, and circumcised his son Isaac at seven days.

(1) Al-Muhabbar p. 131, and see also the previous statement of Ka'b al-Ahbar. Muhammad ibn Habib: He was a scholar of genealogy and Arab history, reliable in his narration. It is said that Habib was his mother's name, he died in the year (245 AH). Tarikh Baghdad 2/277. (2) Hilyat al-Awliya 3/24 from the hadith of Anas ibn Malik (may Allah be pleased with him) raised to the Prophet, and its wording: "Among my honors from my Lord, the Almighty, is that I was born circumcised, and no one saw my private parts." Abu Nu'aym said: Strange from the hadith of Yunus from al-Hasan, we only wrote it from this angle. Ibn al-Jawzi mentioned it in "al-'Ilal al-Mutanahiyah" 1/171. Al-Hakim said in "al-Mustadrak" 2/602: Reports have reached frequency (tawatur) that the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) was born circumcised and with his umbilical cord cut. Al-Dhahabi followed up in "al-Talkhis" by saying: I do not know the authenticity of that, so how can it be frequent?! Ibn al-Qayyim said in "Zad al-Ma'ad" 1/81: There is no sound hadith in it, and this is not among his specificities, for many people are born circumcised. Al-Munawi said in "Fayd al-Qadir" 6/16-17: Zayn al-Iraqi said from Ibn al-Adim: Reports of his birth

being circumcised are weak, rather nothing has been proven in it. (3) 21/61, and it is also in "al-Isti'ab" 1/100-101 (in the margin of al-Isaba). (4) In the manuscript copies: bin Ziyad, which is an error, and the corrected version is from al-Tamhid and al-Isti'ab. (5) Al-Isti'ab 1/100-101 (in the margin of al-Isaba).

356 सूरह अल-बकराह: आयत 124

मुहम्मद इब्न हबीब अल-हाशिमी ने कहा (1): वे चौदह हैं: आदम, शीथ, नूह, हूद, सालेह, लूत, शुऐब, यूसुफ, मूसा, सुलेमान, जकारिया, ईसा, और हंजला इब्न सफवान, जो असहाब अर-रस्स के नबी थे, और मुहम्मद ﷺ, और उन सब पर सलामती हो। मैंने कहा: नबी ﷺ के बारे में रिवायतों में मतभेद है। हाफ़िज़ अबू नुऐम ने किताब "अल-हिलिया" में अपनी सनद के साथ ज़िक्र किया है कि नबी ﷺ खतनाशुदा पैदा हुए थे (2)। अबू उमर ने "अत-तमहीद" (3) में सनद दी: हमसे अहमद इब्न मुहम्मद इब्न अहमद ने बयान किया, हमसे मुहम्मद इब्न ईसा ने बयान किया, हमसे यह्या इब्न अय्यूब इब्न बादी (4) अल-अल्लाफ़ ने बयान किया, हमसे मुहम्मद इब्न अबी अल-सरी अल-असकलानी ने बयान किया, हमसे अल-वलीद इब्न मुस्लिम ने बयान किया, शुऐब से, अता अल-खुरासानी से, इकरीमा से, इब्न अब्बास से कि अब्दुल मुत्तलिब ने नबी ﷺ का खतना उनके सातवें दिन किया, उनके लिए दावत दी और उनका नाम मुहम्मद रखा। अबू उमर ने कहा: यह एक अजीब मुसनद हदीस है। यह्या इब्न अय्यूब ने कहा: मैंने इस हदीस की तलाश की लेकिन मैंने इसे हदीस के उन लोगों में से किसी के पास नहीं पाया जिनसे मैं मिला, सिवाय इब्न अबी अल-सरी के। अबू उमर (5) ने कहा: और यह कहा गया है कि नबी ﷺ खतनाशुदा पैदा हुए थे। आठवीं बात: उनका इस बात में मतभेद है कि लड़के का खतना कब किया जाए। विद्वानों के एक समूह से खबरों में यह साबित है कि उन्होंने कहा: इब्राहिम ने इस्माइल का खतना तेरह साल की उम्र में किया था, और अपने बेटे इसहाक का खतना सात दिन की उम्र में किया था।

(1) अल-मुहब्बर पृष्ठ 131, और इसमें काब अल-अहबार का पिछला कथन भी देखें। मुहम्मद इब्न हबीब: वे वंशावली और अरबों की खबरों के विद्वान थे, अपनी रिवायत में विश्वसनीय थे। कहा जाता है कि हबीब उनकी माँ का नाम था, उनका इंतकाल साल (245 हिजरी) में हुआ। तारीख बगदाद 2/277। (2) हिल्या अल-औलिया 3/24, अनस इब्न मालिक (रज़ि.) की हदीस से जो मरफू है, और इसके शब्द हैं: "मेरे रब की ओर से मेरे लिए सम्मान की बात यह है कि मैं खतनाशुदा पैदा हुआ, और किसी ने मेरा सतर (निजी अंग) नहीं देखा।" अबू नुऐम ने कहा: यूनुस की हसन से रिवायत अजीब है, हमने इसे केवल इसी माध्यम से लिखा है। इब्न अल-जौज़ी ने इसे "अल-इलाल अल-मुतानाहिया" 1/171 में उद्धृत किया है। अल-हाकिम ने "अल-मुस्तदरक" 2/602 में कहा: खबरें तवातुर (लगातार) हैं कि अल्लाह के रसूल ﷺ खतनाशुदा और कटी हुई नाल के साथ पैदा हुए थे। अल-ज़हबी ने "अत-तलखीस" में उनका पीछा करते हुए कहा: मुझे इसकी प्रामाणिकता का पता नहीं है, तो फिर

यह तवातुर कैसे हो सकता है?! इब्न अल-कय्यिम ने "जाद अल-मआद" 1/81 में कहा: इसमें कोई सही हदीस नहीं है, और यह उनकी विशेषताओं में से नहीं है, क्योंकि बहुत से लोग खतनाशुदा पैदा होते हैं। अल-मुनावी ने "फ़ैज़ अल-क़दीर" 6/16-17 में कहा: ज़ैन अल-इराक़ी ने इब्न अल-अदीम से कहा: उनके खतनाशुदा पैदा होने की खबरें कमज़ोर हैं, बल्कि इसमें कुछ भी साबित नहीं है। (3) 21/61, और यह "अल-इस्तियाब" 1/100-101 (अल-इसाबा के हाशिए पर) में भी है। (4) हस्तलिखित प्रतियों में: इब्न ज़ियाद, जो एक गलती है, और सही "अत-तमहीद" और "अल-इस्तियाब" से लिया गया है। (5) अल-इस्तियाब 1/100-101 (अल-इसाबा के हाशिए पर)।

۳۵۶ سورۃ البقرہ : آیت ۱۲۴

اور محمد بن حبیب ہاشمی (۱) نے کہا: وہ چودہ ہیں: آدم، شیث، نوح، ہود، صالح، لوط، شعیب، یوسف، موسیٰ، سلیمان، زکریا، عیسیٰ، اور حنظلہ بن صفوان جو اصحاب الرس کے نبی تھے، اور محمد ﷺ اور ان سب پر سلامتی ہو۔ میں نے کہا: نبی ﷺ کے بارے میں روایات مختلف ہیں۔ حافظ ابو نعیم نے کتاب "الحلیہ" میں اپنی سند کے ساتھ ذکر کیا ہے کہ نبی ﷺ ختنہ شدہ پیدا ہوئے تھے (۲)۔ اور ابو عمر نے "التمہید" (۳) میں سند دی: ہم سے احمد بن محمد بن احمد نے بیان کیا، ہم سے محمد بن عیسیٰ نے بیان کیا، ہم سے یحییٰ بن ایوب بن بادی (۴) العلاف نے بیان کیا، ہم سے محمد بن ابی السری العسقلانی نے بیان کیا، ہم سے ولید بن مسلم نے بیان کیا، شعیب سے، عطاء الخراسانی سے، عکرمہ سے، ابن عباس سے کہ عبد المطلب نے نبی ﷺ کا ختنہ ان کے ساتویں دن کیا، اور ان کے لیے دعوت کی اور ان کا نام محمد رکھا۔ ابو عمر نے کہا: یہ ایک غریب مسند حدیث ہے۔ یحییٰ بن ایوب نے کہا: میں نے اس حدیث کو تلاش کیا لیکن میں نے اسے اہل حدیث میں سے کسی کے پاس نہیں پایا جن سے میں ملا، سوائے ابن ابی السری کے۔ ابو عمر (۵) نے کہا: اور یہ کہا گیا ہے کہ نبی ﷺ ختنہ شدہ پیدا ہوئے تھے۔ آٹھویں بات: اور انہوں نے اختلاف کیا کہ لڑکے کا ختنہ کب کیا جائے، تو علماء کی ایک جماعت سے خبروں میں یہ ثابت ہے کہ انہوں نے کہا: ابراہیم نے اسماعیل کا ختنہ تیرہ سال کی عمر میں کیا، اور اپنے بیٹے اسحاق کا ختنہ سات دن کی عمر میں کیا۔

(۱) المحبر ص ۱۳۱، اور اس میں کعب الاحبار کا سابقہ قول بھی دیکھیں۔ محمد بن حبیب: وہ علم انساب اور اخبار عرب کے عالم تھے، اپنی روایت میں ثقہ تھے۔ کہا جاتا ہے کہ حبیب ان کی ماں کا نام تھا، ان کی وفات سن (۲۴۵ھ) میں ہوئی۔ تاریخ بغداد ۲/ ۲۷۷۔ (۲) حلیۃ الاولیاء ۳/ ۲۴ انس بن

مالک رضی اللہ عنہ کی حدیث سے جو مرفوع ہے، اور اس کے الفاظ ہیں: "میرے رب کی طرف سے میری عزت افزائی یہ ہے کہ میں ختنہ شدہ پیدا ہوا، اور کسی نے میرے ستر کو نہیں دیکھا۔" ابو نعیم نے کہا: یونس کی حسن سے روایت غریب ہے، ہم نے اسے صرف اسی جہت سے لکھا ہے۔ اور ابن الجوزی نے اسے "العلل المتناہیہ" ۱/ ۱۷۱ میں ذکر کیا ہے۔ اور حاکم نے "المستدرک" ۲/ ۶۰۲ میں کہا: اور خبریں متواتر ہیں کہ رسول اللہ ﷺ ختنہ شدہ اور ناف بریدہ پیدا ہوئے تھے۔ اور ذہبی نے "التلخیص" میں ان کا تعاقب کرتے ہوئے کہا: مجھے اس کی صحت کا علم نہیں، تو پھر متواتر کیسے ہو سکتا ہے؟! اور ابن القیم نے "زاد المعاد" ۱/ ۸۱ میں کہا: اس میں کوئی صحیح حدیث نہیں ہے، اور یہ ان کی خصوصیات میں سے نہیں ہے، کیونکہ بہت سے لوگ ختنہ شدہ پیدا ہوتے ہیں۔ اور مناوی نے "فیض القدیر" ۶/ ۱۶-۱۷ میں کہا: زین العراقی نے ابن العدیم سے کہا: ان کے ختنہ شدہ پیدا ہونے کی خبریں ضعیف ہیں، بلکہ اس میں کچھ بھی ثابت نہیں ہوا۔ (۳) ۲۱/ ۶۱، اور یہ "الاستیعاب" ۱/ ۱۰۰-۱۰۱ (الاصابہ کے حاشیے پر) میں بھی ہے۔ (۴) قلمی نسخوں میں: بن زیاد، جو کہ غلطی ہے، اور درست "التمہید" اور "الاستیعاب" سے لیا گیا ہے۔ (۵) الاستیعاب ۱/ ۱۰۰-۱۰۱ (الاصابہ کے حاشیے پر)۔

It was narrated from Fatima that she used to circumcise her child on the seventh day, but Malik disapproved of that and said: "That is of the practice of the Jews." Ibn Wahb mentioned this from him. Al-Layth ibn Sa'd said: "A boy is circumcised between the ages of seven to ten years," and something similar was narrated by Ibn Wahb from Malik. Ahmad said: "I have not heard anything [authentic] regarding this."(1)

In Al-Bukhari, from Sa'id ibn Jubayr, he said: Ibn Abbas was asked: "At what stage were you when the Messenger of Allah (peace be upon him) passed away?" He said: "I was circumcised on that day." He [Sa'id] said: "And they did not use to circumcise a man until he reached puberty or was close to reaching puberty."(2)

The scholars recommended that an adult man who converts to Islam should be circumcised. 'Ata' used to say: "His Islam is not complete until he is circumcised, even if he has reached eighty years of age." It was narrated from Al-Hasan that he used to grant a concession to an elderly man who converts to Islam not to be circumcised, and he saw no problem with him, nor with his testimony, his slaughtered meat, his Hajj, or his prayer.

Ibn Abd al-Barr said(3): "The general consensus of the people of knowledge is upon this. And the hadith of Buraydah(4) regarding the Hajj of the uncircumcised is not established. It was narrated from Ibn Abbas, Jabir ibn Zayd, and 'Ikrimah: 'The slaughtered meat of an uncircumcised man is not eaten, and his testimony is not permissible.'"(5)

Ninth: His saying: "And the first who used iron for shaving [Istihdad]" - Istihdad is the use of iron for shaving pubic hair. Umm Salama narrated that when the Prophet (peace be upon him) applied depilatory cream, he would attend to his own pubic area with his hand.(6)

(1) See At-Tamheed 21/60-61. (2) Sahih al-Bukhari (6299), and it does not contain the phrase: "or was close to reaching puberty." (3) At-Tamheed 21/62, and the preceding speech is from it. (4) Thus in the manuscripts: Buraydah. In At-Tamheed: Yazid. Perhaps the correct name is Abu Barzah, for Abu Ya'la recorded it in his Musnad (7433) from his Marfu' hadith, saying: They asked the Messenger of Allah (peace be upon him) about an uncircumcised man, "Can he perform Hajj to the House of Allah?" He said: "No, Allah, Mighty and Majestic, forbade me from that until he is circumcised." An-Nawawi mentioned it in Al-Majmu' 7/47 (where it appeared as: Abu

Burdah) with the wording: "The uncircumcised person does not perform Hajj until he is circumcised" and he graded it as weak. He quoted Ibn al-Mundhir saying about it: "This hadith is not established, and its chain is unknown." (5) Recorded by Ibn Abi Shaybah 7/339 via Jabir ibn Zayd from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both). (6) Recorded by Ibn Majah (3752) and al-Bayhaqi 1/152. Al-Busiri said in Misbah al-Zujajah 4/121-122: "This chain's narrators are trustworthy, but it is disconnected (munqati'); Habib ibn Abi Thabit did not hear from Umm Salama. Abu Zur'ah said so."

फातिमा से रिवायत है कि वह सातवें दिन अपने बच्चे का खतना करती थीं, लेकिन मालिक ने इसे नापसंद किया और कहा: "यह यहूदियों का अमल है।" इब्न वाहब ने उनसे यह ज़िक्र किया। अल-लैथ बिन साद ने कहा: "लड़के का खतना सात से दस साल की उम्र के बीच किया जाता है," और इसी तरह इब्न वाहब ने मालिक से रिवायत की है। अहमद ने कहा: "मैंने इस बारे में कुछ भी [प्रामाणिक] नहीं सुना है।"(1)

बुखारी में सईद बिन जुबैर से रिवायत है, उन्होंने कहा: इब्न अब्बास से पूछा गया: "जब अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का इंतकाल हुआ तब आपकी उम्र क्या थी?" उन्होंने कहा: "मैं उस दिन खतना शुदा था।" उन्होंने [सईद ने] कहा: "और वे किसी मर्द का खतना तब तक नहीं करते थे जब तक कि वह बालिग न हो जाए या बालिग होने के करीब न पहुँच जाए।"(2)

विद्वानों ने सिफारिश की है कि जो वयस्क पुरुष इस्लाम स्वीकार करता है, उसे खतना करवाना चाहिए। अता' कहते थे: "उसका इस्लाम तब तक पूरा नहीं होता जब तक वह खतना न करवा ले, भले ही वह अस्सी साल की उम्र तक पहुँच गया हो।" अल-हसन से रिवायत है कि वह इस्लाम अपनाने वाले बुजुर्ग आदमी को खतना न करने की छूट देते थे, और वे उनमें, उनकी गवाही में, उनके द्वारा वध किए गए जानवर के मांस में, उनके हज या उनकी नमाज में कोई बुराई नहीं देखते थे।

इब्न अब्दुल बर्र ने कहा(3): "ज्ञानियों का आम तौर पर यही मत है। और बिना खतना वाले के हज के संबंध में बुरैदा(4) की हदीस साबित नहीं है। इब्न अब्बास, जाबिर बिन ज़ैद और इकरामा से रिवायत है: 'बिना खतना वाले व्यक्ति का ज़बीहा (वध किया हुआ मांस) नहीं खाया जाता है, और उसकी गवाही जायज़ नहीं है।'"(5)

नौवां: उनका कहना है: "और पहला वह जिसने इस्तिहदाद (बाल साफ करने के लिए लोहे का इस्तेमाल) किया" - इस्तिहदाद का मतलब है पेडू के बाल मुंडवाने के लिए लोहे का इस्तेमाल करना। उम्म सलमा ने रिवायत की है कि जब पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) शरीर के अनचाहे बाल हटाने वाला लेप लगाते थे, तो वे अपने हाथ से अपने पेडू के क्षेत्र की सफाई खुद करते थे।(6)

(1) देखिए अत-तम्हीद 21/60-61. (2) सहीह अल-बुखारी (6299), और इसमें यह वाक्यांश नहीं है: "या बालिग होने के करीब न पहुँच जाए।" (3) अत-तम्हीद 21/62, और इससे पहले की बात उसी से है। (4) पांडुलिपियों में ऐसा ही है: बुरैदा। अत-तम्हीद में: यजीद। शायद सही नाम अबू बरज़ा है,

क्योंकि अबू याला ने इसे अपनी मुसनद (7433) में अपनी मरफू हदीस से उद्धृत किया है, जिसमें कहा गया है: उन्होंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से एक बिना खतना वाले व्यक्ति के बारे में पूछा, "क्या वह अल्लाह के घर का हज कर सकता है?" उन्होंने कहा: "नहीं, अल्लाह, जो शक्तिशाली और प्रतापी है, उसने मुझे इससे मना किया है जब तक कि उसका खतना न हो जाए।" अन-नववी ने अल-मजमू' 7/47 में इसका उल्लेख किया है (जहां यह अबू बुरदा के रूप में दिखाई दिया) इन शब्दों के साथ: "बिना खतना वाला व्यक्ति तब तक हज नहीं करता जब तक कि उसका खतना न हो जाए" और उन्होंने इसे कमजोर (ज़ईफ़) बताया। उन्होंने इब्न अल-मुन्ज़िर को इसके बारे में कहते हुए उद्धृत किया: "यह हदीस साबित नहीं है, और इसकी श्रृंखला अज्ञात है।" (5) इसे इब्न अबी शयबा 7/339 ने जाबिर बिन ज़ैद के माध्यम से इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से उद्धृत किया है। (6) इसे इब्न माजाह (3752) और अल-बैहकी 1/152 ने उद्धृत किया है। अल-बूसीरी ने मिस्बाह अल-जुजाजाह 4/121-122 में कहा: "इस श्रृंखला के कथावाचक भरोसेमंद हैं, लेकिन यह टूटी हुई (मुनक़ति) है; हबीब बिन अबी साबित ने उम्म सलमा से नहीं सुना। अबू ज़ुरह ने ऐसा कहा है।"

حضرت فاطمہ رضی اللہ عنہا سے مروی ہے کہ وہ ساتویں دن اپنے بچے کا ختنہ کرتی تھیں، لیکن امام مالکؒ نے اس کا انکار کیا اور کہا: "یہ یہودیوں کا عمل ہے۔" ابن وہب نے ان سے یہ نقل کیا ہے۔ اور لیث بن سعدؒ نے کہا: "لڑکے کا ختنہ سات سے دس سال کی عمر کے درمیان کیا جاتا ہے،" اور اسی طرح ابن وہب نے امام مالکؒ سے روایت کی ہے، اور امام احمدؒ نے کہا: "میں نے اس بارے میں کچھ [مستند] نہیں سنا۔"(۱)

اور بخاری میں سعید بن جبیر سے مروی ہے، انہوں نے کہا: ابن عباسؓ سے پوچھا گیا: "جب رسول اللہ ﷺ کی وفات ہوئی تو آپ کس عمر میں تھے؟" انہوں نے کہا: "میں اس دن مختون (ختنہ شدہ) تھا۔" انہوں نے [سعید نے] کہا: "اور وہ کسی مرد کا ختنہ اس وقت تک نہیں کرتے تھے جب تک کہ وہ بالغ نہ ہو جائے، یا بلوغت کے قریب نہ پہنچ جائے۔"(۲)

اور علماء نے اسلام لانے والے بڑی عمر کے آدمی کے لیے ختنہ کروانے کو مستحب قرار دیا ہے، اور عطاءؒ کہتے تھے: "اس کا اسلام اس وقت تک مکمل نہیں ہوتا جب تک وہ ختنہ نہ کروا لے، چاہے وہ اسی سال کی عمر کو پہنچ گیا ہو۔" اور حسنؒ سے مروی ہے کہ وہ اسلام لانے والے بوڑھے آدمی کو ختنہ نہ کرنے کی رخصت دیتے تھے، اور وہ اس میں، اس کی گواہی، اس کے ذبیحہ، اس کے حج اور اس کی نماز میں کوئی حرج نہیں سمجھتے تھے۔

ابن عبد البرؒ نے کہا(۳): "عام اہل علم اسی پر ہیں، اور غیر مختون کے حج کے بارے میں بریدہ(۴) کی حدیث ثابت نہیں ہے، اور ابن عباسؓ، جابر بن زید اور عکرمہ سے مروی ہے کہ: 'اغلف (جس کا ختنہ نہ ہوا ہو) کا ذبیحہ نہیں کھایا جاتا، اور نہ ہی اس کی گواہی جائز ہے۔'"(۵)

نواں: ان کا قول: "اور پہلا شخص جس نے استحداد کیا" پس استحداد: زیر ناف بال کاٹنے کے لیے لوہے کا استعمال کرنا ہے۔ اور ام سلمہؓ نے روایت کی ہے کہ نبی ﷺ جب نورا (بال صفا پاؤڈر) لگاتے تھے تو اپنے ہاتھ سے اپنے زیر ناف حصے کی صفائی خود کرتے تھے۔(۶)

(۱) دیکھیے التمہید ۲۱/ ۶۰-۶۱۔ (۲) صحیح بخاری (۶۲۹۹)، اور اس میں "أو يقارب الاحتلام" (یا بلوغت کے قریب ہو) کے الفاظ نہیں ہیں۔ (۳) التمہید ۲۱/ ۶۲، اور اس سے پہلے کی بات اسی سے ہے۔ (۴) قلمی نسخوں میں اسی طرح ہے: بریدہ، اور التمہید میں: یزید، اور شاید صحیح نام ابو برزہ ہے، کیوں کہ ابو یعلیٰ نے اپنی مسند (۷۴۳۳) میں ان کی مرفوع حدیث سے اسے نکالا ہے، انہوں نے کہا: لوگوں نے رسول اللہ ﷺ سے ایک اغلف (بغیر ختنہ والے) آدمی کے بارے میں پوچھا کہ کیا وہ بیت اللہ کا حج کر سکتا ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "نہیں، اللہ عزوجل نے مجھے اس سے منع فرمایا ہے یہاں تک کہ وہ ختنہ کروا لے۔" اور نووی نے اسے المجموع ۷/ ۴۷ میں (اور اس میں ابو بردہ واقع ہوا ہے) ان الفاظ کے ساتھ ذکر کیا ہے: "اغلف اس وقت تک حج نہ کرے جب تک ختنہ نہ کروا لے" اور اسے ضعیف قرار دیا، اور ابن المنذر سے اس کے بارے میں ان کا قول نقل کیا: "یہ حدیث ثابت نہیں ہے، اور اس کی سند مجہول ہے۔" (۵) اسے ابن ابی شیبہ نے ۷/ ۳۳۹ میں جابر بن زید کے طریق سے ابن عباس رضی اللہ عنہما سے نکالا ہے۔ (۶) اسے ابن ماجہ (۳۷۵۲) اور بیہقی ۱/ ۱۵۲ نے نکالا ہے۔ بوصیری نے مصباح الزجاجہ ۴/ ۱۲۱-۱۲۲ میں کہا: یہ ایسی سند ہے جس کے رجال ثقات ہیں، لیکن یہ منقطع ہے، حبیب بن ابی ثابت نے ام سلمہ سے نہیں سنا۔ یہ بات ابو زرعہ نے کہی ہے۔

358 Surah Al-Baqarah: Verse 124

Ibn Abbas reported that a man was applying depilatory cream (tala) to the Messenger of Allah (peace be upon him). When he reached his pubic area, the Prophet said to him: "Leave me," then he applied it to his pubic area with his own hand (1).

Anas reported that the Prophet (peace be upon him) did not use depilatory cream, and when the hair on his pubic area (2) became abundant, he would shave it (3).

Ibn Khuwayz Mandad said: This indicates that most of his practice was shaving, and he only used depilatory cream (4) rarely, to reconcile the two hadiths.

Tenth: On clipping nails. Clipping nails (taqlim al-azfar): It is cutting them, and the parings (qulamah) are what is removed from them.

Malik said: I prefer for women the clipping of nails and the shaving of pubic hair to be the same as it is for men. This was mentioned by Al-Harith bin Miskin (5) and Sahnun from Ibn Al-Qasim (6).

Al-Tirmidhi Al-Hakim mentioned in his "Nawadir al-Usul" (7) — the twenty-ninth principle —: Umar bin Abi Umar narrated to us, he said: Ibrahim bin Al-Ala Al-Zubaydi narrated to us, from Umar bin Bilal Al-Fazari, who said: I heard Abdullah bin Busr (8) Al-Mazini say: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Clip your nails, bury your parings, clean your knuckles, clean your gums from food, use the tooth-stick (siwak), and do not enter upon me with yellowed teeth and foul breath" (9). Then he (Al-Tirmidhi) spoke about it and did well.

(1) Narrated by Abu Dawood in Al-Marasil (469) similarly from Abu Ma'shar Ziyad bin Kulayb Al-Hanzali Al-Kufi as a mursal report. We have not found it as a statement from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them). (2) In (Kh), (Zha), and a copy in the margin of (Z): his body. (3) Narrated by Al-Bayhaqi in Al-Sunan Al-Kubra 1/152, and Ibn Hajar said in Fath Al-Bari 10/344: Its chain of narration is very weak. (4) In (Z) and (Zha): uses depilatory cream. (5) Abu Amr, the jurist and memorizer, the chief judge of Egypt, took from Abdullah bin Wahb and Ibn Al-Qasim, and studied under them, died in the year (250 AH). Al-Siyar 12/54. (6) Al-Tamhid 21/61. (7) Page 45. (8) In the manuscripts, (M), and Nawadir al-Usul: Abdullah bin Bishr, which is an error. (9) In (Zha) an addition: yellowed. And the report is very weak; its three narrators are unknown, see Fayd al-Qadir 4/518.

358 सूरह अल-बकरा: आयत 124

इब्न अब्बास ने रिवायत की है कि एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर नूरा (बाल हटाने वाला लेप) लगा रहा था। जब वह उनके पेडू(गुप्तांग के क्षेत्र) तक पहुँचा, तो उन्होंने उससे कहा: "मुझसे दूर हो जाओ," फिर उन्होंने अपने हाथ से अपने पेडू पर लेप लगाया (1)।

अनस ने रिवायत की है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) नूरा का इस्तेमाल नहीं करते थे, और जब उनके पेडू के बाल (2) बढ़ जाते थे, तो वह उन्हें मूंडते थे (3)।

इब्न खुवैज़ मंदाद ने कहा: यह इस बात का संकेत है कि उनका अधिकांश कार्य मूंडना था, और उन्होंने नूरा (4) का उपयोग बहुत कम किया, ताकि दोनों हदीसों के बीच सामंजस्य बिठाया जा सके।

दसवाँ: नाखून काटने के बारे में। नाखून काटना (तक़्लीम अल-अज़फ़ार): यह उन्हें काटना है, और 'कुलामह' वह है जो उनसे निकाला जाता है।

मालिक ने कहा: मैं महिलाओं के लिए नाखून काटने और पेडू के बाल मूंडने को वैसा ही पसंद करता हूँ जैसा कि पुरुषों के लिए है। इसका उल्लेख अल-हारिस बिन मिस्कीन (5) और सहनून ने इब्न अल-कासिम (6) के माध्यम से किया है।

अत-तिर्मिज़ी अल-हकीम ने अपनी पुस्तक "नवादिर अल-उसूल" (7) में उल्लेख किया है - उनतीसवाँ सिद्धांत -: हमें उमर bin अबी उमर ने बताया, उन्होंने कहा: हमें इब्राहीम बिन अल-अला अल-ज़ुबैदी ने बताया, उमर बिन बिलाल अल-फ़ज़ारी से, उन्होंने कहा: मैंने अब्दुल्ला बिन बुस्र (8) अल-माज़िनी को कहते सुना: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "अपने नाखून काटो, अपनी कतरनें दफनाओ, अपनी उंगलियों के जोड़ों को साफ करो, अपने मसूड़ों को खाने से साफ करो, मिस्वाक करो, और मेरे पास गंदे दांतों और मुंह की बदबू के साथ मत आओ" (9)। फिर उन्होंने (तिर्मिज़ी) इस पर बात की और बहुत अच्छा बताया।

(1) इसे अबू दाऊद ने अल-मरासील (469) में इसी तरह अबू माशर ज़ियाद बिन कुलैब अल-हंज़ली अल-कूफ़ी से 'मुरसल' के रूप में निकाला है। हमें इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) के कथन के रूप में इसका पता नहीं चला। (2) (ख), (ज़) और (ज़) के हाशिये की एक प्रति में: उनका शरीर। (3) इसे अल-बैहक़ी ने अल-सुनन अल-कुबरा 1/152 में निकाला है, और इब्न हजर ने फतह अल-बारी 10/344 में कहा है: इसकी सनद (सूत्र) बहुत कमज़ोर है। (4) (ज़) और (ज़) में: नूरा लगाता है। (5)

अबू अम्र, फकीह और हाफिज़, मिस्र के मुख्य न्यायाधीश, अब्दुल्ला बिन वहब और इब्न अल-कासिम से ज्ञान प्राप्त किया, और उन दोनों से शिक्षा ली, उनकी मृत्यु वर्ष (250 हिजरी) में हुई। अस-सियार 12/54। (6) अल-तम्हीद 21/61। (7) पृष्ठ 45। (8) हस्तलिखित प्रतियों, (म) और नवादिर अल-उसूल में: अब्दुल्ला बिन बिश्र, जो कि एक त्रुटि है। (9) (ज़) में एक इज़ाफ़ा: पीले दांत। और हदीस बहुत कमज़ोर है; इसके तीन रावी (वर्णनकर्ता) अज्ञात हैं, देखें फ़ैज़ अल-क़दीर 4/518।

358 سورة البقرہ: آیت 124

ابن عباس رضی اللہ عنہما سے روایت ہے کہ ایک شخص رسول اللہ ﷺ کے جسم پر نورا (بال صفا لیپ) لگا رہا تھا، یہاں تک کہ جب وہ آپ کے زیر ناف حصے تک پہنچا تو آپ نے اس سے فرمایا: "مجھ سے ہٹ جاؤ"، پھر آپ ﷺ نے اپنے ہاتھ سے اپنے زیر ناف حصے پر لیپ کیا (1)۔

حضرت انس رضی اللہ عنہ سے روایت ہے کہ نبی کریم ﷺ نورا استعمال نہیں فرماتے تھے، اور جب آپ کے زیر ناف بال (2) زیادہ ہو جاتے تو آپ انہیں مونڈ دیتے تھے (3)۔

ابن خویزمنداد نے کہا: یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ آپ کا اکثر عمل مونڈنا تھا، اور آپ نے نورا (4) کا استعمال بہت کم کیا، تاکہ دونوں حدیثوں کے درمیان مطابقت پیدا ہو سکے۔

دسویں بات: ناخن کاٹنے کے بارے میں۔ تقلیم الاظفار: یعنی ناخن کاٹنا، اور 'قلامہ' وہ ہے جو ناخنوں سے کاٹ کر الگ کیا جائے۔

امام مالک رحمہ اللہ نے فرمایا: مجھے عورتوں کے لیے ناخن کاٹنا اور زیر ناف بال صاف کرنا اسی طرح پسند ہے جس طرح مردوں کے لیے ہے۔ اس کا تذکرہ حارث بن مسکین (5) اور سحنون نے ابن القاسم (6) کے حوالے سے کیا ہے۔

حکیم ترمذی نے اپنی کتاب "نوادر الاصول" (7) میں - انتیسویں اصل کے تحت - ذکر کیا ہے: ہم سے عمر بن ابی عمر نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہم سے ابراہیم بن العلاء الزبیدی نے بیان کیا، انہوں نے عمر بن بلال الفزاری سے، انہوں نے کہا: میں نے عبد اللہ بن بسر (8) المازنی کو یہ کہتے ہوئے سنا کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "اپنے ناخن کاٹو، ان کے تراشے دفن کر دو، اپنی انگلیوں کے جوڑوں کو صاف کرو، اپنے مسوڑھوں کو کھانے کے ذرات سے پاک کرو، مسواک

کیا کرو، اور میرے پاس گندے دانتوں اور منہ کی بو کے ساتھ نہ آیا کرو" (9)۔ پھر انہوں نے (حکیم ترمذی) اس پر گفتگو کی اور خوب کلام کیا۔

(1) اسے ابو داؤد نے المراسیل (469) میں اسی طرح ابو معشر زیاد بن کلیب الحنظلی الکوفی سے مرسلاً روایت کیا ہے۔ اور ہمیں ابن عباس رضی اللہ عنہما کے قول کے طور پر اس کی اصل نہیں ملی۔ (2) نسخہ (خ) اور (ظ) اور نسخہ (ز) کے حاشیے میں ہے: ان کا جسم۔ (3) اسے بیہقی نے السنن الکبریٰ 1/152 میں روایت کیا ہے، اور ابن حجر نے فتح الباری 10/344 میں کہا ہے: اس کی سند بہت کمزور ہے۔ (4) نسخہ (ز) اور (ظ) میں ہے: نورا استعمال کرتا ہے۔ (5) ابو عمرو، فقیہ اور حافظ، مصر کے قاضی القضاۃ، انہوں نے عبد اللہ بن وہب اور ابن القاسم سے علم حاصل کیا، ان کی وفات سنہ 250ھ میں ہوئی۔ السیر 12/54۔ (6) التمہید 21/61۔ (7) ص 45۔ (8) قلمی نسخوں اور نسخہ (م) اور نوادر الاصول میں ہے: عبد اللہ بن بشر، جو کہ غلطی ہے۔ (9) نسخہ (ظ) میں اضافہ ہے: پیلے دانت۔ اور یہ روایت بہت کمزور ہے؛ اس کے تینوں راوی مجہول ہیں، دیکھئے فیض القدیر 4/518۔

Surah Al-Baqarah: Verse 124 359

Al-Tirmidhi(1) said: As for cutting the nails, it is because long nails scratch, claw, and cause harm. They are a place where dirt accumulates. A person might become in a state of major ritual impurity (janaba), and water does not reach the skin because of the dirt. Thus, the person remains in a state of janaba. Whoever is in a state of janaba and even a spot the size of a needle head on their body remains unwashed after bathing, remains in that state until the washing covers their entire body. Therefore, they were encouraged to cut their nails(2).

The word "azafir" is the plural of "uzfur," and "azfar" is the plural of "zufr" (nail). In a hadith of the Messenger of Allah ﷺ, when he was distracted in his prayer, he said: "Why should I not be confused when the 'rufgh' (dirt under the nail) of one of you is between his nail and fingertips, and one of you asks me about the news of heaven while there is ritual impurity and filth in his nails?"(3)

This report was mentioned by Abu al-Hasan Ali bin Muhammad al-Tabari - known as al-Kiya - in his book "Ahkam al-Quran," from Sulayman bin Faraj(4) Abu Wasil, who said: I came to Abu Ayyub (may Allah be pleased with him), shook his hand, and he saw length in my nails. He said: A man came to the Prophet ﷺ asking him about news from heaven, so he said: "One of you comes asking about news from heaven while his nails are like the claws of birds, so that dirt and filth accumulate in them"(5).

As for the saying: "Bury your nail clippings," the body of a believer is sacred. Whatever falls from it or is removed, its share(6) of sanctity remains(7). It is appropriate to bury it, just as it would be buried if the person died. If a part of them dies (is removed), its sanctity is likewise established by burying it, so it does not scatter, or fall into fire, or in...

(1) Meaning Al-Hakim al-Tirmidhi in his book Nawadir al-Usul. (2) In (D), (Z), and (M): nails. (3) Nawadir al-Usul p. 45. His saying: al-rufgh, meaning: dirt under the nail. Al-Nihayah 2/224. (4) This is how it appeared in the manuscripts and Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Tabari 1/14, and it is a mistake. The correct name is Sulayman bin Farrukh, mentioned by Ibn Hibban in al-Thiqat 6/391, and mentioned by Ibn Hajar in Lisan al-Mizan 3/66, naming him Salman, and said: He is unknown. (5) Ahkam al-Quran 1/14, narrated by Ahmad (23542). The hadith is weak due to the anonymity of Abu Wasil as previously mentioned. Furthermore, it is a mursal report, as Abu Ayyub - who is al-Ataki al-Azdi - is one of the successors (Tabi'un), and not Abu Ayyub al-Ansari the Companion (may Allah be pleased with him). See Musnad Ahmad (23542), al-Ilal

2/288 by Ibn Abi Hatim, and al-Sunan al-Kubra by al-Bayhaqi 1/175-176. (6) In (M): his protection. (7) Nawadir al-Usul p. 45.

सूरह अल-बकराह: आयत 124 359

अल-तिर्मिज़ी(1) ने कहा: जहाँ तक नाखून काटने की बात है, तो यह इसलिए है क्योंकि वे खरोंचते हैं, चीरते हैं और नुकसान पहुँचाते हैं। वे गंदगी जमा होने की जगह हैं। हो सकता है कि कोई व्यक्ति जनाबत (बड़ी अशुद्धि) की स्थिति में हो, और गंदगी के कारण पानी त्वचा तक न पहुँचे। इस प्रकार, वह व्यक्ति जनाबत की स्थिति में ही रहता है। जो कोई जनाबत की स्थिति में हो और स्नान के बाद उसके शरीर पर सुई की नोक के बराबर भी जगह बिना धुली रह जाए, तो वह तब तक उसी स्थिति में रहता है जब तक कि स्नान उसके पूरे शरीर को ढक न ले। इसलिए, उन्हें नाखून काटने के लिए प्रोत्साहित किया गया(2)।

"अज़ाफ़िर" शब्द "उज़फ़ुर" का बहुवचन है, और "अज़फ़ार" "ज़ुफ़र" (नाखून) का बहुवचन है। अल्लाह के रसूल ﷺ की एक हदीस में, जब वे अपनी प्रार्थना में विचलित हो गए थे, तो उन्होंने कहा: "मैं भ्रमित क्यों न होऊँ जब तुम में से किसी के नाखून और उंगलियों के बीच 'रुफ़्ग' (नाखून के नीचे की गंदगी) हो, और तुम में से कोई मुझसे स्वर्ग की खबर के बारे में पूछे जबकि उसके नाखूनों में जनाबत और गंदगी हो?"(3)

इस वृत्तांत का उल्लेख अबू अल-हसन अली बिन मुहम्मद अल-तबरी - जिन्हें अल-किया के नाम से जाना जाता है - ने अपनी पुस्तक "अहकाम अल-कुरान" में सुलेमान बिन फ़राज(4) अबू वासिल के माध्यम से किया है, जिन्होंने कहा: मैं अबू अय्यूब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) के पास आया, उनसे हाथ मिलाया, और उन्होंने मेरे नाखूनों में लंबाई देखी। उन्होंने कहा: एक व्यक्ति नबी ﷺ के पास स्वर्ग की खबर पूछने आया, तो उन्होंने कहा: "तुम में से कोई स्वर्ग की खबर पूछने आता है जबकि उसके नाखून पक्षियों के पंजों की तरह होते हैं, जिससे उनमें गंदगी और मैल जमा हो जाता है"(5)।

जहाँ तक इस कहावत का सवाल है: "अपने नाखून के कतरन को दफना दो," तो एक मोमिन का शरीर पवित्र है। उससे जो कुछ भी गिरता है या अलग होता है, उसकी पवित्रता का हिस्सा(6) बना रहता है(7)। उसे दफनाना उचित है, ठीक वैसे ही जैसे मरने पर शरीर दफनाया जाता है। यदि शरीर का कोई हिस्सा मर जाता है (अलग हो जाता है), तो उसे दफनाकर उसकी पवित्रता उसी तरह कायम की जाती है, ताकि वह इधर-उधर न बिखरे, या आग में न गिरे, या...

(1) यानी हकीम अल-तिर्मिज़ी अपनी किताब नवादिद अल-उसूल में। (2) (द), (ज़), और (म) में: नाखून। (3) नवादिद अल-उसूल पृ. 45। उनका कहना: अल-रुफ़्ग, यानी: नाखून की गंदगी। अल-

निहाया 2/224। (4) यह प्रतियों और अल-किया अल-तबरी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/14 में इसी तरह आया है, और यह एक गलती है। सही नाम सुलेमान बिन फ़ारुख है, जिसका उल्लेख इब्न हिब्बान ने अल-थिकात 6/391 में किया है, और इब्न हजर ने लिसान अल-मिज़ान 3/66 में उनका नाम सलमान बताते हुए किया है और कहा है: वह अज्ञात है। (5) अहकाम अल-कुरान 1/14, अहमद (23542) द्वारा वर्णित। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, अबू वासिल की अज्ञातता के कारण हदीस कमजोर है। इसके अलावा, यह एक मुरसल रिवायत है, क्योंकि अबू अय्यूब - जो अल-अतकी अल-अज़दी हैं - ताबईन में से हैं, न कि सहाबी अबू अय्यूब अल-अंसारी (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो)। देखें मुसनद अहमद (23542), इब्न अबी हातिम द्वारा अल-इलाहल 2/288, और अल-बायहाकी द्वारा अल-सुनन अल-कुबरा 1/175-176। (6) (म) में: उसका संरक्षण। (7) नवादिद अल-उसूल पृ. 45।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۴ ۳۵۹

ترمذی(۱) نے کہا: جہاں تک ناخن تراشنے کا تعلق ہے، تو وہ اس لیے ہے کہ وہ کھرچتے ہیں، نوچتے ہیں اور نقصان پہنچاتے ہیں، اور وہ گندگی کے جمع ہونے کی جگہ ہیں۔ بسا اوقات آدمی پر جنابت طاری ہوتی ہے اور گندگی کی وجہ سے پانی کھال تک نہیں پہنچ پاتا، تو وہ مسلسل جنبی ہی رہتا ہے۔ اور جو جنبی ہو اور غسل کے بعد اس کے جسم سے سوئی کے ناکے کے برابر جگہ بھی بغیر دھلی رہ جائے تو وہ اپنی اسی حالت پر جنبی رہتا ہے یہاں تک کہ غسل اس کے پورے جسم کو ڈھانپ لے۔ اسی لیے انہیں ناخن تراشنے کی رغبت دلائی گئی ہے(۲)۔

اور "اَظافیر" اَظفور کی جمع ہے، اور "اَظفار" ظفر (ناخن) کی جمع ہے۔ رسول اللہ ﷺ کی ایک حدیث میں ہے جہاں آپ ﷺ اپنی نماز میں سہو فرما گئے تھے، تو فرمایا: "مجھے وہم کیوں نہ ہو جبکہ تم میں سے کسی کا 'رُفغ' (ناخن کے نیچے کی میل) اس کے ناخن اور پوروں کے درمیان ہو، اور تم میں سے کوئی مجھ سے آسمان کی خبر پوچھے جبکہ اس کے ناخنوں میں جنابت اور میل ہو"(۳)۔

اور اس خبر کا ذکر ابو الحسن علی بن محمد الطبری - جو الکیا کے نام سے مشہور ہیں - نے اپنی کتاب "احکام القرآن" میں سلیمان بن فرج(۴) ابو واصل سے کیا ہے، انہوں نے کہا: میں ابو ایوب رضی اللہ عنہ کے پاس آیا، ان سے مصافحہ کیا، تو انہوں نے میرے ناخنوں میں طوالت دیکھی۔ انہوں نے کہا: ایک آدمی نبی ﷺ کے پاس آسمان کی خبر پوچھنے آیا، تو آپ ﷺ نے فرمایا: "تم میں سے کوئی آسمان کی خبر پوچھنے آتا ہے اور اس کے ناخن پرندوں کے پنجوں کی طرح ہوتے ہیں یہاں تک کہ ان میں میل کچیل جمع ہو جاتا ہے"(۵)۔

اور رہا آپ ﷺ کا یہ قول: "اپنے ناخنوں کے تراشے دفن کیا کرو" تو مومن کا جسم قابلِ احترام ہے، تو جو اس سے گرے اور الگ ہو جائے، اس کی حرمت کا حصہ(۶) قائم رہتا ہے(۷)۔ چنانچہ اس پر حق ہے کہ اسے دفن کرے، جیسے کہ اگر وہ مر جائے تو دفن کیا جاتا ہے۔ پس جب اس کا کوئی حصہ مر جائے (جدا ہو جائے) تو اسی طرح اسے دفن کر کے اس کی حرمت قائم کی جاتی ہے، تاکہ وہ بکھرے نہیں، اور آگ میں نہ گرے، یا...

(۱) یعنی حکیم ترمذی اپنی کتاب نوادر الاصول میں۔ (۲) (د) اور (ظ) اور (م) میں: الاظفار۔ (۳) نوادر الاصول ص ۴۵۔ ان کا قول: الرفغ، یعنی: ناخن کی میل۔ النہایہ ۲/ ۲۲۴۔ (۴) نسخوں اور الکیا طبری کی احکام القرآن ۱/ ۱۴ میں اسی طرح واقع ہوا ہے، اور یہ غلط ہے، اور صحیح سلیمان بن فروخ ہے، ابن حبان نے الثقات ۶/ ۳۹۱ میں ان کا ذکر کیا ہے، اور ابن حجر نے لسان المیزان ۳/ ۶۶ میں ان کا ذکر کیا ہے، اور ان کا نام سلمان بتایا ہے، اور کہا ہے: وہ مجہول ہے۔ (۵) احکام القرآن ۱/ ۱۴، اور اسے احمد (۲۳۵۴۲) نے روایت کیا ہے، اور حدیث ابو واصل کی جہالت کی وجہ سے ضعیف ہے جیسا کہ پہلے ذکر ہوا، پھر یہ کہ یہ مرسل ہے، پس ابو ایوب - جو العتکی الازدی ہیں - تابعین میں سے ہیں، اور وہ صحابی ابو ایوب انصاری رضی اللہ عنہ نہیں ہیں، دیکھئے مسند احمد (۲۳۵۴۲)، اور ابن ابی حاتم کی العلل ۲/ ۲۸۸، اور بیہقی کی السنن الکبری ۱/ ۱۷۵-۱۷۶۔ (۶) (م) میں: فحفظہ (پس اس کی حفاظت)۔ (۷) نوادر الاصول ص ۴۵۔

dirty trash heaps. The Messenger of Allah ﷺ ordered the burial of his blood where he had hijama (cupping) performed so that dogs would not search for it. My father, may Allah have mercy on him, narrated this to us (1), saying: Musa ibn Isma'il narrated to us, saying: Al-Hunayd (2) ibn al-Qasim ibn Abd al-Rahman ibn Ma'iz narrated to us, saying: I heard 'Amir ibn Abd Allah ibn al-Zubayr say that (3) his father told him that he came to the Messenger of Allah ﷺ while he was being cupped. When he finished, he said: "O Abd Allah, take this blood and pour it where no one sees you." When he went away from the Messenger of Allah ﷺ, he intentionally took the blood and drank it. When he returned, he said: "O Abd Allah, what did you do with it?" He said: I put it in the most hidden place I thought was concealed (4) from people. He said: "Perhaps you drank it?" He said: Yes. He said: "Why did you drink the blood?! [Woe to people from you and] woe to you from people" (5).

My father narrated to me, saying: Malik ibn Sulayman al-Harawi narrated to us, saying: Dawud ibn Abd al-Rahman narrated to us, from Hisham ibn Urwah, from his father, from Aisha, who said: The Messenger of Allah ﷺ used to order the burial of seven things from a human: hair, nails, blood, menstrual blood, teeth, foreskin, and placenta (6).

As for his saying: "Clean your barajim (knuckles)," the barajim are those folds of the joints, and they are a collection (7) of dirt; its singular is burjumah. It is the back of the knot of each joint; the back of the knot is called burjumah, and what is between two knots is called rajibah, its plural is rawajib, and that is what follows its back, and it is the shaft of the finger.

(1) The speaker is Al-Hakim al-Tirmidhi, and similarly in the report that the author will mention after it. (2) In (Z) and (D): Al-Hind. (3) In (M): he says: Verily. (4) In the manuscripts and (M): khafiyan, which is an error. (5) Nawadir al-Usul p. 45, and what is between brackets is from it and from sources of Hadith. The Hadith was also narrated by Al-Bazzar (2436) (Zawa'id), Al-Hakim 3/554, and Abu Nu'aym in Al-Hilyah 1/330. Hunayd ibn al-Qasim is unknown; they did not mention among those who narrated from him other than Musa ibn Isma'il. Ibn Hibban mentioned him in Ath-Thiqat 6/515 according to his custom in authenticating unknown narrators. The author will quote from Al-Hakim al-Tirmidhi the meanings of his words. (6) In (Kh), (D), and (M): al-bashimah, and the word was not well-written in (Z). The Hadith is in Nawadir al-Usul p. 45. Malik ibn Sulayman al-Harawi; Al-Dhahabi said in Mizan al-

I'tidal 3/427: Ibn Hibban spoke about him, and Al-Uqayli said: He narrates rejected reports. Al-Suyuti mentioned the Hadith in Al-Jami' al-Saghir 2/315 and graded it weak. (7) In (D) and (M): mujtama'.

सूरह अल-बकरा: आयत १२४ ३६०

गंदे कूड़े के ढेर। अल्लाह के रसूल ﷺ ने अपने खून को दफनाने का आदेश दिया जहां उन्होंने हिजामा (पछना लगाना) करवाया था ताकि कुत्ते उसे न ढूंढें। मेरे पिता, अल्लाह उन पर रहम करे, ने हमें यह बताया (१), कहा: मूसा इब्न इस्माइल ने हमें बताया, कहा: अल-हुनैद (२) इब्न अल-कासिम इब्न अब्द अल-रहमान इब्न माइज ने हमें बताया, कहा: मैंने आमिर इब्न अब्द अल्लाह इब्न अल-जुबैर को यह कहते सुना कि (३) उनके पिता ने उन्हें बताया कि वह अल्लाह के रसूल ﷺ के पास आए जब उनका हिजामा किया जा रहा था। जब वह फारिग हुए, तो उन्होंने कहा: "ऐ अब्दुल्ला, इस खून को ले जाओ और इसे वहां डाल दो जहां कोई तुम्हें न देखे।" जब वह अल्लाह के रसूल ﷺ से दूर गए, तो उन्होंने जानबूझकर खून पिया। जब वह लौटे, तो उन्होंने पूछा: "ऐ अब्दुल्ला, तुमने इसके साथ क्या किया?" उन्होंने कहा: मैंने इसे सबसे गुप्त स्थान पर रख दिया जिसके बारे में मैंने सोचा कि वह लोगों से छिपा (४) हुआ है। उन्होंने कहा: "शायद तुमने इसे पी लिया?" उन्होंने कहा: हाँ। उन्होंने कहा: "तुमने खून क्यों पिया?! [लोगों के लिए तुमसे तबाही है और] तुम्हारे लिए लोगों से तबाही है" (५)।

मेरे पिता ने मुझसे कहा: मलिक इब्न सुलेमान अल-हरवी ने हमें बताया, कहा: दाऊद इब्न अब्द अल-रहमान ने हमें बताया, हिशाम इब्न उरवा से, उन्होंने अपने पिता से, उन्होंने आयशा से, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ मानव की सात चीजों को दफनाने का आदेश देते थे: बाल, नाखून, खून, मासिक धर्म का खून, दांत, खतना की खाल और प्लेसेंटा (आंवल) (६)।

जहाँ तक उनके इस कथन का सवाल है: "अपने बाराजिम (पोरों) को साफ करो," तो बाराजिम जोड़ों की वे तहें हैं, और वे गंदगी का संग्रह (७) हैं; इसका एकवचन बुरजुमा है। यह प्रत्येक जोड़ की गांठ का पिछला हिस्सा है; गांठ के पिछले हिस्से को बुरजुमा कहा जाता है, और दो गांठों के बीच के हिस्से को राजीबा कहा जाता है, इसका बहुवचन रजीब है, और वह उसके पीछे के हिस्से में होता है, और वह उंगली की नली है।

(१) कहने वाले अल-हाकिम अल-तिर्मिज़ी हैं, और इसी तरह उस रिवायत में भी जो लेखक इसके बाद उल्लेख करेंगे। (२) (ज़) और (द) में: अल-हिंद। (३) (म) में: वह कहता है: बेशक। (४) पांडुलिपियों और (म) में: खफियान, जो कि एक त्रुटि है। (५) नवादिर अल-उसूल पृ. ४५, और कोष्ठक के बीच जो है वह वहीं से और हदीस के स्रोतों से है। हदीस को अल-बज़ार (२४३६) (ज़वाइद), अल-हाकिम ३/५५४ और अबू नुऐम ने अल-हिल्या १/३३० में भी उद्धृत किया है। हुनैद इब्न अल-कासिम अज्ञात

हैं; उनके बारे में रिवायत करने वालों में मूसा इब्न इस्माइल के अलावा किसी का उल्लेख नहीं किया गया है। इब्न हिब्बान ने अज्ञात राविओं को प्रमाणित करने की अपनी आदत के अनुसार उन्हें अत-तिकात ६/५१५ में उल्लेख किया है। लेखक अल-हाकिम अल-तिर्मिज़ी से उनके शब्दों के अर्थ उद्धृत करेंगे। (६) (ख), (द) और (म) में: अल-बशीमा, और (ज़) में शब्द अच्छी तरह से नहीं लिखा गया था। हदीस नवादिर अल-उसूल पृ. ४५ में है। मलिक इब्न सुलेमान अल-हरवी; अल-धाबी ने मिजान अल-इतिदाल ३/४२७ में कहा: इब्न हिब्बान ने उनके बारे में बात की है, और अल-उकैली ने कहा: वह अस्वीकार्य रिवायतें बयान करते हैं। अल-सुयुति ने अल-जामी अल-सागीर २/३१५ में हदीस का उल्लेख किया और इसे कमजोर बताया। (७) (द) और (म) में: मुजतमा।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۴ ۳۶۰

گندے کوڑے کے ڈھیر۔ اور رسول اللہ ﷺ نے اپنا خون وہاں دفن کرنے کا حکم دیا جہاں آپ نے حجامہ کروایا تھا تاکہ کتے اسے تلاش نہ کریں۔ میرے والد رحمہ اللہ تعالیٰ نے ہمیں یہ بتایا (۱) ، کہا: ہمیں موسیٰ بن اسماعیل نے بتایا، کہا: ہمیں ہنید (۲) بن القاسم بن عبد الرحمن بن ماعز نے بتایا، کہا: میں نے عامر بن عبد اللہ بن الزبیر سے سنا کہ (۳) ان کے والد نے انہیں بتایا کہ وہ رسول اللہ ﷺ کے پاس آئے جبکہ آپ حجامہ کروا رہے تھے۔ جب آپ فارغ ہوئے تو فرمایا: "اے عبد اللہ، اس خون کو لے جاؤ اور اسے وہاں بہا دو جہاں تمہیں کوئی نہ دیکھ سکے۔" جب وہ رسول اللہ ﷺ سے دور ہوئے تو انہوں نے خون پینے کا ارادہ کیا، پس اسے پی لیا (یعنی خون پی لیا)۔ جب وہ واپس آئے تو آپ ﷺ نے پوچھا: "اے عبد اللہ، تم نے اس کا کیا کیا؟" انہوں نے کہا: میں نے اسے سب سے پوشیدہ جگہ پر رکھا ہے جہاں میرے خیال میں وہ لوگوں سے چھپا (۴) ہوا ہے۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "شاید تم نے اسے پی لیا؟" انہوں نے کہا: جی ہاں۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "تم نے خون کیوں پیا؟! [لوگوں کے لیے تم سے ہلاکت ہے اور] تمہارے لیے لوگوں سے ہلاکت ہے" (۵)۔

مجھ سے میرے والد نے بیان کیا، کہا: ہمیں مالک بن سلیمان الہروی نے بتایا، کہا: ہمیں داؤد بن عبد الرحمن نے ہشام بن عروہ سے، انہوں نے اپنے والد سے، انہوں نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کی کہ انہوں نے فرمایا: رسول اللہ ﷺ انسان کی سات چیزوں کو دفن کرنے کا حکم دیتے تھے: بال، ناخن، خون، حیض کا خون، دانت، ختنہ کی کھال اور نال (آونل) (۶)۔

اور آپ ﷺ کا فرمان: "اپنے براجِم (جوڑوں کے پوروں) کو صاف رکھو" تو براجم جوڑوں کے وہ شکن (تہیں) ہیں، اور وہ میل کچیل جمع ہونے کی جگہ (۷) ہیں؛ اس کا واحد برجمہ ہے۔ یہ ہر جوڑ کی گانٹھ کی پشت ہے؛ گانٹھ کی پشت کو برجمہ کہا جاتا ہے، اور دو گانٹھوں کے درمیانی حصے

کو راجبہ کہا جاتا ہے، اس کی جمع رواجب ہے، اور یہ اس کی پشت کی طرف ہوتا ہے، اور یہ انگلی کی نلی ہے۔

(١) کہنے والے الحکیم الترمذی ہیں، اور اسی طرح اس خبر میں بھی جو مصنف اس کے بعد ذکر کریں گے۔ (٢) (ز) اور (د) میں: الہند۔ (٣) (م) میں: وہ کہتے ہیں: بیشک۔ (٤) قلمی نسخوں اور (م) میں: خافیاً، جو کہ غلطی ہے۔ (٥) نوادر الاصول ص ٤٥، اور قوسین کے درمیان جو ہے وہ وہیں سے اور حدیث کے مآخذ سے ہے۔ حدیث کی تخریج البزار (٢٤٣٦) (زوائد)، الحاکم ٣/ ٥٥٤، اور ابو نعیم نے الحلیہ ١/ ٣٣٠ میں بھی کی ہے۔ ہنید بن القاسم مجہول ہیں؛ ان سے روایت کرنے والوں میں موسیٰ بن اسماعیل کے سوا کسی کا ذکر نہیں کیا گیا ہے۔ ابن حبان نے مجہول راویوں کی توثیق کرنے کی اپنی عادت کے مطابق انہیں الثقات ٦/ ٥١٥ میں ذکر کیا ہے۔ مصنف الحکیم الترمذی سے ان کے الفاظ کے معانی نقل کریں گے۔ (٦) (خ) اور (د) اور (م) میں: البشیمہ، اور (ظ) میں لفظ کی صحیح طور پر تحریر نہیں ہوئی۔ حدیث نوادر الاصول ص ٤٥ میں ہے۔ مالک بن سلیمان الہروی؛ الذہبی نے میزان الاعتدال ٣/ ٤٢٧ میں کہا: ان کے بارے میں ابن حبان نے کلام کیا ہے، اور العقیلی نے کہا: وہ منکر روایات بیان کرتے ہیں۔ السیوطی نے الجامع الصغیر ٢/ ٣١٥ میں حدیث کا ذکر کیا اور اسے ضعیف قرار دیا۔ (٧) (د) اور (م) میں: مجتمع۔

Surah Al-Baqarah: Verse 124 361

Each finger has two knuckles and three phalanges, except the thumb, which has one knuckle and two phalanges. He commanded their cleaning so they do not become encrusted with dirt, for ritual impurity (Janaba) remains in them, and the dirt prevents water from reaching the skin(1). As for his saying: "Clean your gums," gums (Litha) is singular, and Lithat is plural. It is the flesh above and below the teeth, their growing place. And 'Amur are the small pieces of flesh between the teeth, singular is 'Amr. He ordered their cleaning so that food residue (Wadhar)(2) does not remain in them, causing the breath to change and the smell to become offensive, bothering the two angels, for it is the path of the Quran. The seat of the two angels is at his canine teeth. It was narrated in the news regarding the words of the Almighty: "He utters no word but there is with him an observer ready [at hand]" [Qaf: 18], he said: at his canines(3). Muhammad bin Ali al-Shaqiqi(4) told us this, saying: I heard my father mentioning that from Sufyan bin 'Uyayna, and what he said was excellent. This is because "Lafdh" (utterance) is the action of the lips in pronouncing words from the tongue out into the open. His saying "ladayhi" means "with him". Al-Ladd(6) and Al-'Ind in their common language have the same meaning. Likewise, their saying "ladun", the 'nun' is extra. So it is as if the verse informs that the observer is ready at the point of utterance(7) of the speech, which is the canine tooth. As for his saying: "Tasannanu," it refers to the Siwak (toothbrushing), derived from "Sin" (tooth), meaning: clean the teeth. And his saying: "Do not come to me with dirty teeth and bad breath," what is preserved with me(8) is: "Qulan" and "Qulhan." I heard Al-Jarud mention from Al-Nadr, who said: "Al-Aflah" is the one whose teeth have turned yellow until his mouth smells from inside. I do not know "Al-Qakhar". And "Al-Bakhar" is the one(9) whose breath has an offensive odor, it is said:

(1) Nawadir al-Usul, p. 45. (2) Al-Wadhar: dirt and grease. (3) Al-Suyuti mentioned in Al-Durr Al-Manthur 6/103 another narration, which says: "on the premolars!" and there is nothing authentic in such narrations. (4) Abu Abdullah al-Marwazi, came to Baghdad, and narrated there from his father. He and his father are trustworthy men of Tahdhib. He died in the year (205 AH). (5) In (Kh) and (M): yalfidhu. (6) In (M): and al-Lada, they have the same meaning. See Al-Sahhah (ladun). (7) In (D): expressed by words, and in (Dh): at pronunciation, and it was distorted in (M) to: Maghlath. (8) The speaker is Al-Hakim Al-Tirmidhi in Nawadir Al-Usul, p. 45. (9) In (D) and Nawadir Al-Usul: except the one who.

सूरह अल-बकरा: आयत 124 361

प्रत्येक उंगली में दो पोर और तीन जोड़ होते हैं, अंगूठे को छोड़कर, जिसमें एक पोर और दो जोड़ होते हैं। उन्होंने इन्हें साफ करने का आदेश दिया ताकि उन पर गंदगी न जमे, क्योंकि उनमें जनाबत (अशुद्धि) रह जाती है और गंदगी पानी को त्वचा तक पहुँचने से रोकती है(1)। रहा उनका यह कहना: "अपने मसूड़ों को साफ करो," तो 'लिथा' एकवचन है और 'लितात' बहुवचन। यह दांतों के ऊपर और नीचे का मांस है, जहाँ वे उगते हैं। 'अमूर' दांतों के बीच का थोड़ा मांस है, जिसका एकवचन 'अम्र' है। उन्होंने इन्हें साफ करने का आदेश दिया ताकि उनमें भोजन का अवशेष (वधर)(2) न रहे, जिससे सांस बदल जाए और गंध अरुचिकर हो जाए, जिससे दो फरिश्तों को कष्ट हो, क्योंकि यह कुरान का मार्ग है। दो फरिश्तों का स्थान उसके रदनक दांतों (canines) के पास है। अल्लाह के इस कथन के संबंध में हदीस में वर्णित है: "वह कोई शब्द नहीं बोलता जिसके पास एक चौकस निगहबान न हो" [क़ाफ़: 18], उन्होंने कहा: उसके रदनकों के पास(3)। मुहम्मद बिन अली अल-शक़ीक़ी(4) ने हमें यह बताया, कहा: मैंने अपने पिता को सुफ़यान बिन उयाना से इसका उल्लेख करते सुना, और उन्होंने जो कहा वह बहुत अच्छा था। इसका कारण यह है कि 'लफ़्ज़' (बोलना) होंठों की क्रिया है जिसके द्वारा जीभ से शब्द बाहर निकलते हैं। उनका कहना "लदैही" का अर्थ है: उसके पास। उनकी प्रचलित भाषा में 'अल-लद'(6) और 'अल-इन्द' का अर्थ एक ही है। इसी तरह उनका कहना "लदुन" है, जिसमें 'नुन' अतिरिक्त है। मानो आयत यह सूचित कर रही है कि निगहबान शब्द के उच्चारण के स्थान(7) पर तैयार है, जो कि रदनक दांत है। जहाँ तक उनके शब्द "तसन्ननू" का प्रश्न है, तो यह मिसवाक करना है, जो 'सिन' (दांत) से लिया गया है, अर्थात: दांत साफ करो। और उनका कहना: "मेरे पास गंदे दांतों और दुर्गंध के साथ न आओ," मेरे पास सुरक्षित पाठ(8) यह है: "क़ुहलन व क़ुलहन"। मैंने अल-जारूद को अल-नज़र से उल्लेख करते हुए सुना, उन्होंने कहा: 'अल-अफ़लाह' वह है जिसके दांत पीले पड़ गए हों यहाँ तक कि उसके भीतर से दुर्गंध आने लगे। मैं 'अल-क़खर' को नहीं जानता। और 'अल-बखर' वह है(9) जिसकी सांस से दुर्गंध आती हो, कहा जाता है:

(1) नवादिर अल-उसूल, पृ. 45। (2) अल-वधर: गंदगी और चिकनाई। (3) अल-सुयुती ने अल-दुर अल-मंसूर 6/103 में एक अन्य रिवायत का उल्लेख किया है, जिसमें है: "दाढ़ों पर!" और ऐसी रिवायतों में कुछ भी प्रामाणिक नहीं है। (4) अबू अब्दुल्ला अल-मर्वज़ी, बगदाद आए और वहां अपने पिता से रिवायत की। वे और उनके पिता तहज़ीब के विश्वसनीय व्यक्तियों में से हैं। उनका निधन वर्ष (205 हिजरी) में हुआ। (5) (ख़) और (म) में: यल्फ़ु। (6) (म) में: अल-लदा, और दोनों का अर्थ एक ही

है। देखें अल-सिहह (लदुन)। (7) (द) में: शब्दों द्वारा व्यक्त, और (ज़) में: उच्चारण के समय, और (म) में यह बदलकर 'मगलत' हो गया। (8) नवादिर अल-उसूल पृ. 45 में वक्ता अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी हैं। (9) (द) और नवादिर अल-उसूल में: सिवाय उसके जो।

ہر انگلی کے دو جوڑ اور تین پورے ہوتے ہیں سوائے انگوٹھے کے، کیونکہ اس کا ایک جوڑ اور دو پورے ہوتے ہیں۔ پس آپؐ نے ان کی صفائی کا حکم دیا تاکہ ان پر میل نہ جمے، کیونکہ ان میں جنابت رہ جاتی ہے اور میل پانی اور جلد کے درمیان حائل ہو جاتا ہے(۱)۔ رہی بات ان کے اس قول کی: "اپنے مسوڑھوں کو صاف کرو،" تو 'لثۃ' واحد ہے اور 'لثات' جمع، اور یہ دانتوں کے اوپر اور نیچے کا گوشت ہے، جو ان کے اگنے کی جگہ ہے۔ 'عمور' دانتوں کے درمیان کا تھوڑا گوشت ہے، اس کی واحد 'عَمْر' ہے۔ آپؐ نے ان کی صفائی کا حکم دیا تاکہ ان میں کھانے کی آلائش (وضر)(۲) باقی نہ رہے، جس سے سانس بدل جائے اور بو ناگوار ہو جائے، اور اس سے دونوں فرشتے اذیت پائیں، کیونکہ یہ قرآن کا راستہ ہے۔ اور دونوں فرشتوں کے بیٹھنے کی جگہ اس کے کچلی کے دانتوں (canines) کے پاس ہے۔ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے بارے میں روایت میں آیا ہے: "وہ کوئی لفظ نہیں نکالتا مگر اس کے پاس ایک تیار نگہبان ہوتا ہے" [ق: ۱۸]، فرمایا: اس کے کچلی کے دانتوں کے پاس(۳)۔ ہمیں یہ محمد بن علی الشقیقی(۴) نے بیان کیا، انہوں نے کہا: میں نے اپنے والد کو سفیان بن عیینہ سے اس کا تذکرہ کرتے سنا، اور انہوں نے بہت عمدہ بات کہی۔ اس کی وجہ یہ ہے کہ 'لفظ' زبان سے کلام کو باہر نکالنے میں ہونٹوں کا عمل ہے۔ ان کا قول 'لَدَيْهِ' یعنی: اس کے پاس۔ ان کی رائج زبان میں 'اللَّدُّ'(۶) اور 'العِنْد' ایک ہی معنی میں ہیں۔ اسی طرح ان کا قول 'لدن' ہے، جس میں 'نون' زائد ہے۔ گویا آیت یہ بتا رہی ہے کہ نگہبان کلام کے نکلنے کی جگہ(۷) یعنی کچلی کے دانت کے پاس تیار موجود ہے۔ رہی بات ان کے قول 'تَسَنَّنُوا' کی، تو یہ مسواک کرنا ہے، جو 'سِنّ' (دانت) سے ماخوذ ہے، یعنی: دانت صاف کرو۔ اور ان کا قول: "میرے پاس گندے دانتوں اور بدبودار منہ کے ساتھ نہ آؤ،" تو میرے نزدیک محفوظ متن(۸)

'قُحْلاً وقُلْحاً' ہے۔ میں نے الجارود کو النضر سے نقل کرتے سنا، انہوں نے کہا: 'الافلح' وہ ہے جس کے دانت پیلے پڑ گئے ہوں یہاں تک کہ اس کے اندر سے بدبو آنے لگے۔ میں 'القخر' کو نہیں جانتا۔ اور 'البخر' وہ ہے(۹) جس کی سانس سے ناگوار بو آتی ہو، کہا جاتا ہے:

(۱) نوادر الاصول ص ۴۵۔ (۲) الوَضَر: میل کچیل اور چکنائی۔ (۳) السیوطی نے الدر المنثور ۱۰۳/۶ میں ایک دوسری روایت ذکر کی ہے، جس میں ہے: داڑھوں پر! اور ایسی روایات میں کچھ بھی صحیح نہیں ہے۔ (۴) ابو عبد اللہ المروزی، بغداد آئے اور وہاں اپنے والد سے روایت کی۔ وہ اور ان کے والد تہذیب کے رجال میں سے ثقہ ہیں۔ ان کی وفات سنہ (۲۰۵ھ) میں ہوئی۔ (۵) (خ) اور (م) میں: یلفظ (۶) (م) میں: واللَّدَی، اور دونوں ایک ہی معنی میں ہیں۔ دیکھیے الصحاح (لدن)۔ (۷) (د) میں: لفظ کے ذریعے تعبیر کیا، اور (ظ) میں: کلام نکلتے وقت، اور (م) میں یہ تحریف ہو کر 'مغلظ' ہو گیا۔ (۸) کہنے والے نوادر الاصول ص ۴۵ میں الحکیم الترمذی ہیں۔ (۹) (د) اور نوادر الاصول میں: سوائے اس کے جو۔

362 Surah Al-Baqarah: Verse 124

A man with bad breath, and men with bad breath; Al-Jarud told us: Jarir told us, on the authority of Mansur, on the authority of Abu Ali, on the authority of Ja'far (1) ibn Tammam ibn al-Abbas, on the authority of his father, who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Use the tooth-stick (siwak), why do you enter upon me with yellow teeth?" (2).

Eleventh: Regarding trimming the mustache, which is taking from it until the edge of the lip, the border, appears. He should not shave it off and mutilate himself (3), as Malik said (4).

Ibn Abd al-Hakam mentioned on his authority that he said: I believe that whoever shaves his mustache should be disciplined. Ashhab mentioned on his authority that he said regarding shaving the mustache: This is an innovation, and I believe that whoever does it should be beaten painfully.

Ibn Khuwayz Mindad said: Malik said: I believe that whoever shaves it should be beaten painfully. It is as if he sees it as self-mutilation. Similarly, plucking the hair, and shortening it, in his view, is better than shaving it.

It was also narrated from the Prophet (peace be upon him) that he had a 'limmah' (hair reaching the earlobes) (5), and his companions were either with thick hair or short hair, and they only shaved during pilgrimage rites.

It was narrated that the Messenger of Allah (peace be upon him) used to clip his nails and trim his mustache before going out for Friday prayer (6).

Al-Tahawi said: We did not find anything explicitly stated from Al-Shafi'i on this matter, and his companions who...

(1) In the manuscripts: "on the authority of Abu Ja'far," which is an error, the correction is from Hadith sources and biographical works. (2) Reported by Ahmad (1835) and (15656), and Al-Tabarani in Al-Kabir (1302) (1303). Abu Ali - the polisher - is unknown, as reported by Al-Dhahabi in Mizan al-I'tidal 4/554 from Abu al-Sakan. Furthermore, Tammam ibn al-Abbas's (Ja'far's father) narration from the Prophet (peace be upon him) is 'mursal' (unconnected), as reported by Al-Hafiz Ibn Hajar from Ibn Hibban in Al-Isabah 1/310. Al-Hafiz said: No narration is preserved for him from the Prophet (peace be upon him) through a sound route. Then he mentioned the differences in this Hadith. See Sunan al-Bayhaqi 1/36, and Ta'jil al-Manfa'ah 1/362. (3)

In the manuscripts: "himself," and what is established is from Al-Tamhid. (4) Al-Muwatta 2/922, and the author quoted it from him via Ibn Abd al-Barr in Al-Tamhid 21/63-64. (5) Reported by Ahmad (18558), Al-Bukhari (3551), and Muslim (2337) from the Hadith of Al-Bara ibn Azib (may Allah be pleased with him). 'Al-Limmah': hair that goes beyond the earlobe. Al-Sihah (lamam). (6) Reported by Al-Bazzar (623) (Zawa'id), and Al-Tabarani in Al-Awsat (846) from the Hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). Al-Haythami cited it in Majma' al-Zawa'id 2/170, and said: It contains Ibrahim ibn Qudamah. Al-Bazzar said: He is not an authority if he is the sole narrator of a Hadith, and he was the sole narrator of this one.

पृष्ठ ३६२ सूरह अल-बकराह: आयत १२४

एक व्यक्ति जिसकी सांस से दुर्गंध आती है, और वे पुरुष जिनकी सांस से दुर्गंध आती है; अल-जारूद ने हमें बताया: जरीर ने हमें बताया, मंसूर के माध्यम से, अबू अली के माध्यम से, जाफ़र (१) बिन तमाम बिन अल-अब्बास के माध्यम से, उनके पिता के माध्यम से, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (शांति उन पर हो) ने कहा: "सिवाक (दातुन) का प्रयोग करो, तुम मेरे पास पीले दांत लेकर क्यों आते हो?" (२)।

ग्यारहवीं: मूंछों को छोटा करने के संबंध में, जो कि उसे तब तक काटना है जब तक कि होंठ का किनारा, यानी सीमा, दिखाई न देने लगे। उसे इसे पूरी तरह नहीं मूंडना चाहिए और खुद को विकृत नहीं करना चाहिए (३), जैसा कि मलिक ने कहा (४)।

इब्न अब्द अल-हकम ने उनके हवाले से उल्लेख किया कि उन्होंने कहा: मेरा मानना है कि जो कोई अपनी मूंछें मूंडता है उसे अनुशासित किया जाना चाहिए। अशहब ने उनके हवाले से उल्लेख किया कि उन्होंने मूंछें मूंडने के बारे में कहा: यह एक नवाचार (बिदअत) है, और मेरा मानना है कि जो कोई ऐसा करता है उसे दर्दनाक तरीके से पीटा जाना चाहिए।

इब्न खुवैज़ मिंदाद ने कहा: मलिक ने कहा: मेरा मानना है कि जो कोई इसे मूंडता है उसे दर्दनाक तरीके से पीटा जाना चाहिए। ऐसा लगता है कि वह इसे आत्म-विकृति के रूप में देखते हैं। इसी तरह, बालों को नोचना, और उनके अनुसार इसे छोटा करना इसे मूंडने से बेहतर है।

यह भी रिवायत है कि पैगंबर (शांति उन पर हो) के बाल 'लिम्मा' (कान की लौ तक पहुँचने वाले बाल) थे (५), और उनके साथी या तो घने बालों वाले थे या छोटे बालों वाले, और उन्होंने केवल हज के अनुष्ठानों के दौरान ही बाल मुंडवाए थे।

यह रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (शांति उन पर हो) जुमे की नमाज़ के लिए निकलने से पहले अपने नाखून काटते थे और अपनी मूंछें छोटी करते थे (६)।

अल-तहावी ने कहा: हमें इस मामले में अल-शाफी से स्पष्ट रूप से कुछ भी नहीं मिला, और उनके साथी जो...

(१) पांडुलिपियों में: "अबू जाफ़र के माध्यम से," जो एक त्रुटि है, सुधार हदीस स्रोतों और जीवनी कार्यों से है। (२) अहमद (१८३५) और (१५६५६), और अल-तबरानी ने अल-कबीर (१३०२) (१३०३) में उद्धृत

किया है। अबू अली - जो पॉलिशर है - अज्ञात है, जैसा कि अल-धहाबी ने मिज़ान अल-इतिदाल ४/५५४ में अबू अल-सकन से उद्धृत किया है। इसके अलावा, तमाम बिन अल-अब्बास (जाफ़र के पिता) की पैगंबर (शांति उन पर हो) से रिवायत 'मुरसल' (अपूर्ण कड़ी) है, जैसा कि अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा १/३१० में इब्न हिब्बान से उद्धृत किया है। अल-हाफ़िज़ ने कहा: उनके लिए पैगंबर (शांति उन पर हो) से किसी भी विश्वसनीय मार्ग से कोई रिवायत संरक्षित नहीं है। फिर उन्होंने इस हदीस में मतभेदों का उल्लेख किया। देखें सुनन अल-बैहकी १/३६, और ताजील अल-मनफाह १/३६२। (३) पांडुलिपियों में: "स्वयं," और जो स्थापित है वह अल-तम्हीद से है। (४) अल-मुवत्ता २/९२२, और लेखक ने अल-तम्हीद २१/६३-६४ में इब्न अब्द अल-बर के माध्यम से उनके हवाले से इसे उद्धृत किया है। (५) अहमद (१८५५८), अल-बुखारी (३५५१), और मुस्लिम (२३३७) द्वारा अल-बारा इब्न अज़िब (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत। 'अल-लिम्मा': बाल जो कान की लौ से आगे निकल जाते हैं। अल-सिहाह (लमम)। (६) अल-बज्ज़ार (६२३) (ज़वैद), और अल-तबरानी ने अल-अवसत (८४६) में अबू हुरैरा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। अल-हैथमी ने इसे मजमा अल-ज़वैद २/१७० में उद्धृत किया है, और कहा: इसमें इब्राहिम बिन कुदामा है। अल-बज्ज़ार ने कहा: यदि वह किसी हदीस का एकमात्र वर्णनकर्ता है तो वह प्रमाण नहीं है, और वह इस हदीस का एकमात्र वर्णनकर्ता था।

صفحہ ٣٦٢ سورہ البقرہ: آیت ١٢٤

ایک شخص جس کے منہ سے بدبو آتی ہے، اور وہ مرد جن کے منہ سے بدبو آتی ہے؛ ہم سے الجارود نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہم سے جریر نے منصور کے واسطے سے، انہوں نے ابو علی سے، انہوں نے جعفر (١) بن تمام بن العباس سے، انہوں نے اپنے والد سے روایت کی، انہوں نے کہا: رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "مسواک کیا کرو، تمہیں کیا ہوا ہے کہ تم میرے پاس پیلے دانتوں کے ساتھ آتے ہو؟" (٢)۔

گیارہویں بات: مونچھیں تراشنے کے بارے میں، اور وہ اسے اس حد تک کاٹنا ہے کہ ہونٹ کا کنارہ، یعنی فریم، ظاہر ہو جائے۔ اسے اسے منڈوانا نہیں چاہیے اور اپنا حلیہ نہیں بگاڑنا چاہیے (٣)، یہ امام مالک نے کہا (٤)۔

ابن عبد الحکم نے ان کے حوالے سے ذکر کیا کہ انہوں نے کہا: میرا خیال ہے کہ جو شخص اپنی مونچھیں منڈوائے اسے سزا دی جانی چاہیے۔ اشہب نے ان سے ذکر کیا کہ انہوں نے مونچھیں منڈوانے کے بارے میں کہا: یہ بدعت ہے، اور میرا خیال ہے کہ جو ایسا کرے اسے دردناک مار ماری جائے۔

ابن خویز منداد نے کہا: مالک نے کہا: میرا خیال ہے کہ جو اسے منڈوائے اسے دردناک مار ماری جائے۔ گویا وہ اسے مثلہ (حلیہ بگاڑنا) سمجھتے ہیں، اور اسی طرح بالوں کو نوچنا، اور ان کے نزدیک اسے چھوٹا کرنا منڈوانے سے بہتر ہے۔

اسی طرح نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم سے مروی ہے کہ آپ 'لمہ' (کانوں کی لو تک بال) رکھتے تھے (۵)، اور آپ کے صحابہ یا تو گھنے بالوں والے تھے یا چھوٹے بالوں والے، اور انہوں نے صرف حج کے مناسک میں سر منڈوائے۔

اور مروی ہے کہ رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم جمعہ کی نماز کے لیے نکلنے سے پہلے اپنے ناخن تراشتے اور مونچھیں کاٹتے تھے (۶)۔

اور طحاوی نے کہا: ہمیں اس بارے میں امام شافعی سے کوئی صریح بات نہیں ملی، اور ان کے اصحاب جو...

(۱) نسخوں میں: "عن ابی جعفر" ہے، جو کہ غلط ہے، اور تصحیح حدیث کے ذرائع اور رجال کی کتب سے کی گئی ہے۔ (۲) اسے احمد (۱۸۳۵) اور (۱۵٦۵٦) نے، اور طبرانی نے الکبیر (۱۳۰۲) (۱۳۰۳) میں روایت کیا ہے۔ ابو علی - جو صیقل ہیں - مجہول ہیں، جیسا کہ ذہبی نے میزان الاعتدال ٤/ ٥٥٤ میں ابو السکن سے نقل کیا ہے۔ مزید برآں، تمام بن العباس (جعفر کے والد) کی نبی صلی اللہ علیہ وسلم سے روایت مرسل ہے، جیسا کہ حافظ ابن حجر نے ابن حبان سے الاصابہ ۱/ ۳۱۰ میں نقل کیا ہے۔ حافظ نے کہا: ان کے لیے نبی صلی اللہ علیہ وسلم سے کسی ثابت شدہ طریقے سے کوئی روایت محفوظ نہیں ہے۔ پھر انہوں نے اس حدیث میں اختلاف کا ذکر کیا۔ دیکھئے سنن البیہقی ۱/ ۳٦، اور تعجیل المنفعہ ۱/ ۳٦۲۔ (۳) نسخوں میں: "نفسہ" ہے، اور جو ثابت ہے وہ التمہید سے ہے۔ (٤) الموطأ ۲/ ۹۲۲، اور مصنف نے اسے ابن عبد البر کے واسطے سے التمہید ۲۱/ ٦۳-٦٤ میں نقل کیا ہے۔ (۵) اسے احمد (۱۸۵۵۸)، بخاری (۳۵۵۱) اور مسلم (۲۳۳۷) نے براء بن عازب رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اللمۃ: وہ بال جو کان کی لو سے نیچے تک جائیں۔ الصحاح (لمم)۔ (٦) اسے البزار (٦۲۳) (زوائد) نے، اور طبرانی نے الاوسط (۸٤٦) میں ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اسے ہیثمی نے

مجمع الزوائد ۲/ ۱۷۰ میں درج کیا ہے اور کہا ہے: اس میں ابراہیم بن قدامہ ہیں، بزار نے کہا: وہ حجت نہیں ہیں جب وہ حدیث بیان کرنے میں اکیلے ہوں، اور وہ اس میں اکیلے ہیں۔

We saw them: Al-Muzani and Al-Rabi' used to trim their mustaches closely, and this indicates that they took that from Al-Shafi'i, may Allah have mercy on him. He said: As for Abu Hanifa, Zufar, Abu Yusuf, and Muhammad, their school of thought regarding the hair of the head and the mustache was that trimming closely (ihfa') is better than shortening (taqsir). Ibn Khuwayz Mindad mentioned from Al-Shafi'i that his position on shaving the mustache was exactly like the position of Abu Hanifa.

Abu Bakr al-Athram said: I saw Ahmad ibn Hanbal trimming his mustache very closely, and I heard him being asked (1) about the Sunnah regarding trimming the mustache closely, and he said: It should be trimmed closely as the Prophet (peace be upon him) said: "Trim the mustaches closely" (2). Abu Omar (3) said: There are only two principles in this matter: one of them:

"Trim the mustaches closely" (4), which is an [ambiguous] term subject to interpretation (5). The second: clipping the mustache, which is explained, and the explained rule overrides the ambiguous one. This was the practice of the people of Medina, and it is the most appropriate of what has been said in this chapter. At-Tirmidhi narrated from Ibn Abbas who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) used to clip his mustache and say (6): Verily, Ibrahim, the Close Friend of the Most Merciful, used to do it. He said: This is a good and strange (hasan gharib) Hadith (7).

Muslim narrated (8) from Abu Hurayra, from the Prophet (peace be upon him) who said: "Natural dispositions (fitrah) are five: circumcision, shaving pubic hair, clipping the mustache, cutting the nails, and plucking the armpit hair."

And in it from Ibn Umar, he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Differ from the polytheists; trim [the mustaches closely]..."

(1) In (m): was asked. (2) Narrated by Ahmad (4654), Al-Bukhari (5892), and Muslim (259) from the hadith of Ibn Umar, may Allah be pleased with them both. (3) In At-Tamhid 21/66, and what precedes it 21/64. (4) His saying: "the mustaches" is not in (m). (5) In (d): subject to interpretation, and in (z): potential for interpretation, and in At-Tamhid 21/66: open to interpretation, and what is between brackets is from it. (6) Meaning Ibn Abbas. (7) Sunan al-Tirmidhi (2760), and it is in al-Musnad (2738). Its wording is: The Prophet (peace be upon him) used to clip or take from his mustache, and Ibrahim, the Close Friend of the Most Merciful, used to do it. It is from the

narration of Simak bin Harb, from Ikrimah, from Ibn Abbas. The narration of Simak from Ikrimah is inconsistent, as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Taqrib al-Tahdhib. (8) In his Sahih (257): (50), and it is with Ahmad (7139), and Al-Bukhari (5891).

सूरह अल-बकराह: आयत 124 | पृष्ठ 363

हमने उन्हें देखा: अल-मुज़ानी और अल-रबी अपनी मूँछों को बहुत छोटा करते थे, और यह इंगित करता है कि उन्होंने इसे अल-शफ़ीई (अल्लाह उन पर दया करे) से लिया था। उन्होंने कहा: जहाँ तक अबू हनीफ़ा, ज़ुफ़र, अबू यूसुफ़ और मुहम्मद का सवाल है; सिर के बालों और मूँछों के बारे में उनका मत था कि 'इहफ़ा' (बारीकी से काटना) 'तक़्सीर' (छोटा करने) से बेहतर है। इब्न खुवैज़ मिंदाद ने अल-शफ़ीई से उल्लेख किया है कि मूँछ मुंडवाने पर उनका मत अबू हनीफ़ा के मत के समान ही था।

अबू बक्र अल-अथराम ने कहा: मैंने अहमद बिन हंबल को अपनी मूँछें बहुत बारीकी से काटते हुए देखा, और मैंने उन्हें मूँछों को बारीकी से काटने की सुन्नत के बारे में पूछते हुए (1) सुना, तो उन्होंने कहा: इसे बारीकी से काटा जाना चाहिए जैसा कि नबी ﷺ ने कहा: "मूँछों को बारीकी से काटो" (2)। अबू उमर (3) ने कहा: इस विषय में केवल दो मूल बातें हैं: एक:

"मूँछों को बारीकी से काटो" (4), और यह एक [मोजमल] शब्द है जिसकी व्याख्या की जा सकती है (5)। दूसरा: मूँछों को कतरना, जो स्पष्ट है, और स्पष्ट नियम अस्पष्ट पर हावी होता है। यही मदीना के लोगों का व्यवहार था, और इस अध्याय में कही गई बातों में यह सबसे उपयुक्त है। अल-तिर्मिज़ी ने इब्न अब्बास से रिवायत की है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ अपनी मूँछों को कतरा करते थे और कहते थे (6): "बेशक इब्राहिम, रहमान के खलील (मित्र), ऐसा ही किया करते थे।" उन्होंने कहा: यह हदीस 'हसन ग़रीब' (अच्छी और अनोखी) है (7)।

और मुस्लिम (8) ने अबू हुरैरा से रिवायत की है, नबी ﷺ ने कहा: "फ़ितरत (प्राकृतिक स्वभाव) पाँच हैं: खतना करना, गुप्त अंगों के बाल साफ करना, मूँछें कतरना, नाखून काटना और बगल के बाल उखाड़ना।"

और इसमें इब्न उमर से रिवायत है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "मुशरिकों (बहुदेववादियों) का विरोध करो; [मूँछों को बारीकी से] काटो..."

(1) (म) में: पूछा गया। (2) इसे अहमद (4654), बुखारी (5892), और मुस्लिम (259) ने इब्न उमर (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से उद्धृत किया है। (3) अल-तमहीद 21/66 में, और उससे पहले 21/64 से। (4) उनका कहना: "मूँछें", (म) में नहीं है। (5) (द) में: व्याख्या की संभावना है, और (ज़) में: व्याख्या के योग्य है, और अल-तमहीद 21/66 में: व्याख्या के लिए संभव है, और कोष्ठक के बीच

का हिस्सा उसी से है। (6) यानी इब्न अब्बास। (7) सुनन अल-तिर्मिज़ी (2760), और यह अल-मुसनद (2738) में है। इसके शब्द हैं: नबी ﷺ अपनी मूँछों को कतरते या लेते थे, और इब्राहिम खलीलुर्रहमान ऐसा ही किया करते थे। यह सिमाक बिन हर्ब की रिवायत है, इक्रमा से, इब्न अब्बास के हवाले से। इक्रमा से सिमाक की रिवायत में विसंगति है, जैसा कि हाफ़िज़ इब्न हजर ने 'तक़रीब अल-तहज़ीब' में उल्लेख किया है। (8) उनके सहीह (257) में: (50), और यह अहमद (7139) और बुखारी (5891) के पास है।

ہم نے انہیں دیکھا: المزنی اور الربیع اپنی مونچھیں خوب پست (چھوٹی) کیا کرتے تھے، اور یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ انہوں نے یہ امام شافعی رحمہ اللہ تعالیٰ سے لیا تھا۔ انہوں نے کہا: رہا ابوحنیفہ، زفر، ابویوسف اور محمد کا معاملہ؛ تو سر کے بالوں اور مونچھوں کے بارے میں ان کا مذہب یہ تھا کہ 'احفاء' (خوب پست کرنا) 'تقصیر' (صرف چھوٹا کرنے) سے افضل ہے۔ ابن خویز منداد نے امام شافعی سے ذکر کیا ہے کہ مونچھیں منڈوانے کے بارے میں ان کا موقف بعینہٖ وہی تھا جو امام ابوحنیفہ کا تھا۔

اور ابوبکر الاثرم نے کہا: میں نے احمد بن حنبل کو دیکھا کہ وہ اپنی مونچھیں بہت زیادہ پست کرتے تھے، اور میں نے انہیں سنا کہ ان سے مونچھیں پست کرنے کی سنت کے بارے میں پوچھا (1) گیا، تو انہوں نے کہا: انہیں ویسے ہی پست کیا جائے گا جیسے نبی ﷺ نے فرمایا: "مونچھیں خوب پست کرو" (2)۔ ابو عمر (3) نے کہا: اس باب میں صرف دو ہی اصل (بنیادیں) ہیں: ایک یہ: "مونچھیں خوب پست کرو" (4)، اور یہ ایک [مجمل] لفظ ہے جس میں تاویل کا احتمال (5) ہے۔ دوسرا: مونچھیں کترنا، اور یہ مفسر (واضح) ہے، اور مفسر مجمل پر حاکم ہوتا ہے، اور یہی اہل مدینہ کا عمل ہے، اور اس باب میں کہی گئی باتوں میں سب سے زیادہ موزوں یہی ہے۔ ترمذی نے ابن عباس سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ اپنی مونچھیں کترتے تھے اور فرماتے تھے (6): "بے شک ابراہیم خلیل الرحمن بھی ایسا ہی کیا کرتے تھے۔" انہوں نے کہا: یہ حدیث حسن غریب (7) ہے۔

اور مسلم (8) نے ابوہریرہ سے روایت کی، انہوں نے نبی ﷺ سے کہ آپ نے فرمایا: "فطرت پانچ چیزیں ہیں: ختنہ کرنا، زیرِ ناف بال صاف کرنا، مونچھیں کترنا، ناخن کاٹنا اور بغل کے بال اکھیڑنا۔"

اور اس میں ابن عمر سے مروی ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "مشرکین کی مخالفت کرو؛ [مونچھیں] خوب پست کرو..."

(1) (م) میں: پوچھا گیا۔ (2) اسے احمد (4654)، بخاری (5892) اور مسلم (259) نے ابن عمر رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (3) التمہید 21/66 میں، اور اس سے پہلے 21/64 میں۔ (4) ان کا قول: "الشوارب" (مونچھیں)، (م) میں نہیں ہے۔ (5) (د) میں ہے: تاویل کا احتمال ہے، اور (ظ) میں ہے: تاویل پر محتمل ہے، اور التمہید 21/66 میں ہے: تاویل کے لیے محتمل ہے، اور بریکٹ کے درمیان والا حصہ اسی سے ہے۔ (6) یعنی ابن عباس۔ (7) سنن ترمذی (2760)، اور یہ مسند (2738) میں ہے۔ اس کے الفاظ یہ ہیں: نبی ﷺ اپنی مونچھیں کترتے یا لیتے تھے، اور ابراہیم خلیل الرحمن بھی ایسا ہی کرتے تھے۔ یہ سماک بن حرب کی عکرمہ سے اور ان کی ابن عباس سے روایت ہے۔ عکرمہ سے سماک کی روایت میں اضطراب ہے، جیسا کہ حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں ذکر کیا ہے۔ (8) اپنی صحیح (257) میں: (50)، اور یہ احمد (7139) اور بخاری (5891) کے ہاں بھی ہے۔

...mustaches, and let the beards grow"(1). The non-Arabs cut their beards and grow their mustaches, or grow both together, and that is the opposite of beauty and cleanliness(2). Razin mentioned from Nafi' that Ibn Umar used to trim his mustache until the skin was visible, and he would take [trim] these two, meaning what is between the mustache and the beard(3). In Al-Bukhari(4): Ibn Umar used to take from the length of his beard whatever exceeded a handful when he performed Hajj or Umrah. Al-Tirmidhi narrated from Abdullah bin Amr bin Al-Aas: That the Messenger of Allah ﷺ used to take from his beard from its width and length. He said: This is a strange (gharib) hadith(5). Twelfth: As for the armpits, the Sunnah is plucking, just as the Sunnah for the pubic hair is shaving. If one reversed them, it would be permissible for the sake of achieving cleanliness(6), but the former is preferable because it is the easy and customary method. Thirteenth: Parting the hair: Dividing it at the part. In his ﷺ description: If his braid (aqeesah) parted, he would part it(7). It is said: I parted the hair, I divide it as a parting. It means: if the hair of his head parted, he would part it in...

(1) Sahih Muslim (259) : (54), and it is in Al-Bukhari (5892). His saying: 'Awfu' (let grow): i.e., leave them full. Fath al-Bari 10/350. (2) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/37. (3) Al-Bukhari mentioned it as a comment before Hadith (5888), and Al-Tahawi extracted it in Sharh Ma'ani al-Athar 4/231 through Asim bin Muhammad from his father from Ibn Umar, without his saying: and he takes these two... and see Fath al-Bari 10/335. (4) In his Sahih after Hadith (5892). (5) Sunan al-Tirmidhi (2762) and in its chain is Umar bin Harun. Al-Tirmidhi said: I heard Muhammad bin Ismail saying: Umar bin Harun's hadith is moderate; I do not know of a hadith of his that has no basis - or he said: he is unique in it - except this hadith... and we do not know it except from the hadith of Umar bin Harun. And I saw good opinion regarding Umar bin Harun. (6) See Al-Mufhim 1/513. (7) Extracted by Ibn Sa'd in Al-Tabaqat 1/422, Ibn Qutaybah in Gharib al-Hadith (120), Ibn Hibban in Al-Thiqat 2/145, Al-Tabarani in Al-Kabir 22/ (414), and Al-Bayhaqi in Al-Shu'ab (1430). It is part of a long hadith describing the Prophet ﷺ from the hadith of Al-Hasan bin Ali from Hind bin Abi Hala. Ibn Hibban spoke about its chain saying: It has no weight in the heart. Al-Haythami said in Majma' al-Zawa'id 8/278: In it is someone who was not named. 'Al-Aqeesah': braided hair, which is a type of plaited hair. Al-Nihayah (Aqas). And according to Ibn Qutaybah: his 'aqiqah', and he said in its explanation: the root of aqiqah is the hair of the child

before it is shaved, so if it is shaved and grows a second time, the name 'aqiqah' is removed from it, =

३६४ | सूरह अल-बक़रह: आयत १२४

...मूँछें [कतरें], और दाढ़ी को बढ़ाएँ'(१)। गैर-अरब अपनी दाढ़ी काटते हैं और मूँछें बढ़ाते हैं, या दोनों को एक साथ बढ़ाते हैं, और यह सुंदरता और स्वच्छता के विपरीत है(२)। रज़ीन ने नाफ़ी से उल्लेख किया कि इब्न उमर अपनी मूँछों को तब तक तराशते थे जब तक कि खाल दिखाई न देने लगे, और वह इन दोनों को ले लेते [तराशते] थे, यानी मूँछ और दाढ़ी के बीच का हिस्सा(३)। और अल-बुखारी में(४): इब्न उमर हज या उमराह करते समय अपनी दाढ़ी की लंबाई में से वह हिस्सा काट लेते थे जो एक मुट्ठी से अधिक होता था। और तिरमिज़ी ने अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस से रिवायत किया है: कि अल्लाह के रसूल ﷺ अपनी दाढ़ी की चौड़ाई और लंबाई से कुछ हिस्सा लिया करते थे। उन्होंने कहा: यह एक गरीब (अपरिचित) हदीस है(५)। बारहवां: जहाँ तक बगल का सवाल है, सुन्नत उसे उखाड़ना है, जैसे प्यूविक बालों के लिए सुन्नत मुंडवाना है। यदि कोई इन्हें उलट दे, तो स्वच्छता प्राप्त करने के लिए यह जायज़ होगा(६), लेकिन पहला तरीका बेहतर है; क्योंकि यह आसान और सामान्य है। तेरहवां: बालों को बांटना: उन्हें माँग में विभाजित करना। उनके ﷺ विवरण में: यदि उनकी चोटी (अक़ीसा) विभाजित होती, तो वह उसे बांट देते थे(७)। कहा जाता है: मैंने बालों को बांटा, मैं उन्हें एक विभाजन के रूप में बांटता हूँ। वह कहते हैं: यदि उनके सिर के बाल विभाजित होते, तो वह उन्हें...

(१) सहीह मुस्लिम (२५९) : (५४), और यह अल-बुखारी (५८९२) के पास है। उनका कथन: 'औफ़ू': यानी उन्हें भरपूर छोड़ दें। फ़तह अल-बारी १०/३५०। (२) अहकाम अल-क़ुरान इब्न अल-अरबी १/३७। (३) अल-बुखारी ने इसे हदीस (५८८८) से पहले एक टिप्पणी के रूप में जोड़ा है, और अल-तहावी ने इसे शरह मानी अल-अथार ४/२३१ में आसिम बिन मुहम्मद के माध्यम से उनके पिता से इब्न उमर से निकाला है, बिना उनके इस कथन के और वह इन दोनों को लेते हैं... और देखें फ़तह अल-बारी १०/३३५। (४) उनकी सहीह में हदीस (५८९२) के बाद। (५) सुनन अल-तिरमिज़ी (२७६२) और इसके इसनाद में उमर बिन हारून हैं। तिरमिज़ी ने कहा: मैंने मुहम्मद बिन इस्माइल को यह कहते सुना: उमर बिन हारून हदीस के करीब हैं, मैं उनकी ऐसी कोई हदीस नहीं जानता जिसका कोई आधार न हो - या उन्होंने कहा: वह इसमें अकेले हैं - सिवाय इस हदीस के.. और हम इसे उमर बिन हारून की हदीस के अलावा और किसी से नहीं जानते। और मैंने उमर बिन हारून के बारे में अच्छी राय देखी। (६) देखें अल-मुफ़हिम १/५१३। (७) इसे इब्न साद ने अल-तबाक़त १/४२२ में, इब्न कुतैबा ने ग़रीब अल-हदीस (१२०) में, इब्न हिब्बान ने अल-थिकात २/१४५ में, अल-तबरानी ने अल-कबीर २२/(४१४) में, और अल-बैहक़ी ने अल-शुआब (१४३०) में निकाला है। यह हिंद बिन अबी हला से हसन

बिन अली की हदीस से पैगंबर ﷺ के वर्णन में एक लंबी हदीस का हिस्सा है। इब्न हिब्बान ने इसके इसनाद के बारे में बात करते हुए कहा: दिल में इसका कोई प्रभाव नहीं है। और अल-हैथमी ने मजमा अल-ज़वाइद ८/२७८ में कहा: इसमें वह है जिसका नाम नहीं लिया गया। और 'अक़ीसा': गुंथे हुए बाल, जो एक प्रकार के लट वाले बाल होते हैं। अल-निहाया (अक़स)। और इब्न कुतैबा के अनुसार: उनकी 'अक़ीक़ा', और उन्होंने इसकी व्याख्या में कहा: अक़ीक़ा का मूल बच्चे के बाल मुंडवाने से पहले के बाल हैं, इसलिए यदि इसे मुंडवा दिया जाए और दूसरी बार उग आए, तो उससे 'अक़ीक़ा' नाम हट जाता है, =

...مونچھیں [کتریں]، اور داڑھیوں کو بڑھائیں"(۱)۔ اور عجمی اپنی داڑھیاں کاٹتے ہیں، اور اپنی مونچھیں بڑھاتے ہیں، یا دونوں کو ایک ساتھ بڑھاتے ہیں، اور یہ خوبصورتی اور صفائی کے برعکس ہے(۲)۔ رزین نے نافع سے ذکر کیا کہ ابن عمر اپنی مونچھیں اس حد تک تراشتے تھے کہ جلد نظر آنے لگتی، اور ان دونوں کو لے لیتے [تراش لیتے] تھے، یعنی مونچھ اور داڑھی کے درمیان کا حصہ(۳)۔ اور بخاری میں ہے(۴): اور ابن عمر حج یا عمرہ کرتے وقت اپنی داڑھی کی لمبائی میں سے وہ حصہ کاٹ لیتے تھے جو ایک مٹھی سے زائد ہوتا تھا۔ اور ترمذی نے عبد اللہ بن عمرو بن العاص سے روایت کیا: کہ رسول اللہ ﷺ اپنی داڑھی کی چوڑائی اور لمبائی سے (کچھ حصہ) لیا کرتے تھے۔ انہوں نے کہا: یہ حدیث غریب ہے(۵)۔ بارہویں بات: جہاں تک بغلوں کا تعلق ہے تو ان کی سنت اکھاڑنا ہے، جیسا کہ زیرِ ناف بالوں کی سنت مونڈنا ہے، پس اگر کوئی اس کے برعکس کرے تو صفائی کے حصول کی وجہ سے جائز ہے(۶)، اور پہلا طریقہ بہتر ہے؛ کیونکہ وہ آسان اور معمول کے مطابق ہے۔ تیرہویں بات: بالوں کی مانگ نکالنا: انہیں مانگ میں الگ کرنا۔ اور آپ ﷺ کے اوصاف میں ہے: اگر آپ کی چوٹی (عقیقہ) جدا ہوتی تو آپ مانگ نکال لیتے(۷)۔ کہا جاتا ہے: میں نے بال جدا کیے، میں انہیں بطورِ مانگ جدا کرتا ہوں۔ وہ کہتا ہے: اگر آپ کے سر کے بال جدا ہوتے تو آپ انہیں...

(۱) صحیح مسلم (۲۵۹) : (۵۴)، اور یہ بخاری (۵۸۹۲) کے ہاں بھی ہے۔ ان کا قول: 'أوفوا' (بڑھاؤ): یعنی انہیں وافر چھوڑ دو۔ فتح الباری ۳۵۰/۱۰۔ (۲) احکام القرآن لابن العربی ۳۷/۱۔ (۳) بخاری نے اسے حدیث (۵۸۸۸) سے پہلے تعلیقاً ذکر کیا ہے، اور طحاوی نے اسے 'شرح معانی الآثار' ۲۳۱/۴ میں عاصم بن محمد کے واسطے سے ان کے والد سے انہوں نے ابن عمر سے

روایت کیا ہے، بغیر ان کے اس قول کے: اور وہ ان دونوں کو لیتے ہیں... اور دیکھیں فتح الباری ۳۳۵/۱۰۔ (۴) اپنی صحیح میں حدیث (۵۸۹۲) کے بعد۔ (۵) سنن ترمذی (۲۷۶۲) اور اس کی سند میں عمر بن ہارون ہے، ترمذی نے کہا: میں نے محمد بن اسماعیل کو کہتے سنا: عمر بن ہارون حدیث میں مقارب (درمیانہ) ہے، میں اس کی کوئی ایسی حدیث نہیں جانتا جس کی کوئی اصل نہ ہو - یا انہوں نے کہا: وہ اس میں اکیلا ہے - سوائے اس حدیث کے... اور ہم اسے عمر بن ہارون کی حدیث کے علاوہ نہیں جانتے۔ اور میں نے عمر بن ہارون کے بارے میں حسنِ رائے دیکھی۔ (۶) دیکھیے المفہم ۵۱۳/۱۔ (۷) اسے ابن سعد نے الطبقات ۴۲۲/۱ میں، ابن قتیبہ نے غریب الحدیث (۱۲۰) میں، ابن حبان نے الثقات ۱۴۵/۲ میں، طبرانی نے الکبیر ۲۲/ (۴۱۴) میں، اور بیہقی نے الشعب (۱۴۳۰) میں نکالا ہے، اور یہ حسن بن علی کی ہند بن ابی ہالہ سے روایت کردہ نبی ﷺ کے اوصاف پر مبنی ایک طویل حدیث کا حصہ ہے، اور ابن حبان نے اس کی سند کے بارے میں بات کرتے ہوئے کہا: اس کا دل میں کوئی مقام نہیں ہے۔ اور ہیثمی نے مجمع الزوائد ۲۷۸/۸ میں کہا: اس میں وہ شخص ہے جس کا نام نہیں لیا گیا۔ اور 'العقیصہ': بل کھائے ہوئے بال، جو گوندھے ہوئے بالوں کی ایک قسم ہے۔ النہایہ (عقص)۔ اور ابن قتیبہ کے ہاں: اس کا 'عقیقہ'، اور انہوں نے اس کی شرح میں کہا: عقیقہ کی اصل بچے کے وہ بال ہیں جو مونڈنے سے پہلے ہوں، پس جب اسے مونڈ دیا جائے اور وہ دوبارہ اگیں؛ تو اس سے عقیقہ کا نام ختم ہو جاتا ہے، =

...his parting (mafriq). If it did not part, he would leave it as a single mass (wafrah). Al-Nasa'i (1) narrated from Ibn 'Abbas that the Messenger of Allah (peace be upon him) used to let his hair hang down (sadl). The polytheists used to part their hair, and he liked to conform to the People of the Book in matters regarding which he had not been commanded anything. Then, after that, the Messenger of Allah (peace be upon him) parted [his hair]. Narrated by Al-Bukhari and Muslim from Anas (2).

Judge Iyad said: "Letting the hair hang down (sadl) means letting it fall naturally. What is meant here, according to scholars, is letting it fall over the forehead and making it like a fringe. Parting the hair is a Sunnah because it is what the Prophet (peace be upon him) eventually returned to."

It was narrated that Umar ibn Abd al-Aziz, upon leaving the Friday prayer, would station guards at the mosque door to cut the forelock of anyone who did not part their hair (3).

It was said that parting [the hair] was a Sunnah of Abraham (peace be upon him) (4), and Allah knows best.

Fourteenth: As for grey hair, it is light, and plucking it is disliked. In Al-Nasa'i and Abu Dawud, from the hadith of Amr ibn Shu'ayb, from his father, from his grandfather, he said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Do not pluck grey hair; no Muslim grows grey hair in Islam but it will be a light for him on the Day of Resurrection, and Allah records a good deed for him and removes (5) a sin from him." (6)

I say: Just as plucking it is disliked, so too is changing it with black dye. As for changing it with colors other than black...

= The sacrifice for a newborn on the seventh day is called 'aqiqah after the name of the hair, because it is shaved on that day. Sometimes the hair is called 'aqiqah after shaving by way of metaphor, and this is how the hadith came. (1) Al-Mujtaba 8/184, and it is in Musnad Ahmad (2605). (2) Sahih al-Bukhari (3558) and Muslim (2336). In both, it is from the hadith of Ibn Abbas, not from the hadith of Anas as mentioned by the author. It is in Musnad Ahmad (2605). Al-Hafiz Ibn Hajar said in Al-Fath 7/276: Hammad bin Khalid was strange in that he narrated it from Malik from Al-Zuhri from Anas. Ahmad bin Hanbal said: Hammad bin Khalid made a mistake in it; the

preserved version from Al-Zuhri is from Ubaidullah bin Abdullah bin Abbas. (3) Ikmal al-Mu'lim 7/302. The report about Umar ibn Abd al-Aziz was also extracted by Ibn Abd al-Barr in Al-Tamhid 6/76-77. (4) In (Z) there is an addition: "as previously mentioned in the characteristics of fitra (natural inclination)". This was mentioned before in the hadith of Ibn Abbas in the third issue. See Al-Tamhid 6/75. (5) In (Kh) and (Zha): "and it removes" (feminine form). (6) Sunan Abu Dawud (4202), and it is with Al-Nasa’i in Al-Mujtaba 8/136, and Al-Kubra (9285) abridged. Its wording is: The Messenger of Allah (peace be upon him) forbade plucking grey hair. It was extracted by Ahmad (6673) (6675).

सूरा अल-बकरा: आयत 124 | 365

...उनकी मांग (मफ़रिक)। यदि वह अलग नहीं होती थी, तो वे उसे एक गुच्छे (वफ़राह) के रूप में छोड़ देते थे। अल-नसाई (1) ने इब्न अब्बास से रिवायत किया है कि अल्लाह के रसूल ﷺ अपने बालों को खुला छोड़ देते थे (सद्ल)। मुशरिक (मूर्तिपूजक) अपने बालों की मांग निकालते थे, और वे उन मामलों में अहल-ए-किताब (ग्रंथ वालों) की सहमति पसंद करते थे जिनके बारे में उन्हें कुछ भी आदेश नहीं दिया गया था। फिर उसके बाद, अल्लाह के रसूल ﷺ ने मांग निकालना शुरू किया। इसे बुखारी और मुस्लिम ने अनस (2) से उद्धृत किया है।

काजी इयाद ने कहा: "बालों को खुला छोड़ना (सद्ल) का अर्थ है उन्हें स्वाभाविक रूप से गिरने देना। विद्वानों के अनुसार यहाँ इसका अर्थ है उन्हें माथे पर गिरने देना और उन्हें एक लट (फ्रिंज) की तरह बनाना। बालों की मांग निकालना सुन्नत है क्योंकि नबी ﷺ अंततः इसी की ओर लौटे थे।"

यह रिवायत है कि उमर बिन अब्दुल अजीज जब जुमे की नमाज से निकलते थे, तो मस्जिद के दरवाजे पर गार्ड तैनात कर देते थे ताकि उन लोगों की लटें काट दी जाएं जिन्होंने अपने बालों की मांग नहीं निकाली थी (3)।

कहा गया है कि मांग निकालना इब्राहीम अलैहिस्सलाम की सुन्नत थी (4), और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

चौदहवीं बात: जहां तक सफेद बालों की बात है, वे नूर (प्रकाश) हैं, और उन्हें उखाड़ना मकरूह (नापसंद) है। अल-नसाई और अबू दाऊद में अम्र बिन शुऐब की हदीस से है, जो अपने पिता से और वे अपने दादा से रिवायत करते हैं कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "सफेद बाल मत उखाड़ो; इस्लाम में किसी मुसलमान के बाल सफेद नहीं होते मगर वह कयामत के दिन उसके लिए नूर होगा, और अल्लाह उसके लिए एक नेकी लिखता है और उससे एक गुनाह मिटा देता है (5)" (6)।

मैं कहता हूँ: जैसे उन्हें उखाड़ना मकरूह है, वैसे ही उन्हें काले रंग से बदलना भी मकरूह है। जहाँ तक उन्हें काले रंग के अलावा किसी और रंग से बदलने का सवाल है...

= सातवें दिन बच्चे के लिए दी जाने वाली कुर्बानी को बालों के नाम पर 'अकीका' कहा जाता है, क्योंकि उस दिन बाल मुंडवाए जाते हैं। कभी-कभी रूपक के तौर पर मुंडवाने के बाद बालों को

अकीका कहा जाता है, और इसी तरह यह हदीस आई है। (1) अल-मुज्तबा 8/184, और यह मसनद अहमद (2605) में है। (2) सहीह अल-बुखारी (3558), और मुस्लिम (2336)। दोनों में यह इब्न अब्बास की हदीस से है, न कि अनस की हदीस से जैसा कि लेखक ने उल्लेख किया है। यह मसनद अहमद (2605) में है। हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-फ़तह 7/276 में कहा: हम्माद बिन खालिद ने इसे अलग तरह से रिवायत किया, उन्होंने इसे मालिक से, ज़ुहरी से, अनस के माध्यम से रिवायत किया। अहमद बिन हंबल ने कहा: हम्माद बिन खालिद ने इसमें गलती की है; ज़ुहरी से सुरक्षित रिवायत उबैदुल्लाह बिन अब्दुल्लाह बिन अब्बास से है। (3) इकमाल अल-मुल्लिम 7/302। उमर बिन अब्दुल अजीज के बारे में खबर इब्न अब्दुल बर्र ने अल-तम्हीद 6/76-77 में भी दी है। (4) (ज़) में अतिरिक्त है: "जैसा कि पहले फितरत के गुणों में बताया गया है।" इसका उल्लेख पहले तीसरी समस्या में इब्न अब्बास की हदीस में किया गया है। देखें अल-तम्हीद 6/75। (5) (ख़) और (ज़): "और वह मिटा देती है" (स्त्रीलिंग रूप)। (6) सुनन अबू दाऊद (4202), और यह अल-नसाई के अल-मुज्तबा 8/136 और अल-कुबरा (9285) में संक्षिप्त रूप में है। इसके शब्द हैं: अल्लाह के रसूल ﷺ ने सफेद बाल उखाड़ने से मना किया। इसे अहमद (6673) (6675) ने रिवायत किया है।

...ان کے مانگ (مفرق) سے، پس اگر وہ خود سے جدا نہ ہوتے تو وہ انہیں ایک گچھے (وفرہ) کی صورت میں چھوڑ دیتے۔ نسائی (1) نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ رسول اللہ ﷺ اپنے بالوں کو لٹکایا کرتے تھے (سدل)۔ مشرکین اپنے بالوں میں مانگ نکالا کرتے تھے، اور آپ ﷺ ان معاملات میں اہل کتاب کی موافقت پسند کرتے تھے جن کے بارے میں آپ کو کوئی حکم نہیں دیا گیا تھا۔ پھر اس کے بعد رسول اللہ ﷺ نے مانگ نکالنا شروع کیا۔ اسے بخاری اور مسلم نے انس (2) سے روایت کیا ہے۔

قاضی عیاض نے کہا: "بالوں کو لٹکانا (سدل) کا مطلب انہیں آزاد چھوڑنا ہے۔ علماء کے نزدیک یہاں اس سے مراد انہیں پیشانی پر لٹکانا اور اسے پیشانی کے بالوں (قصہ) کی طرح بنانا ہے۔ بالوں میں مانگ نکالنا سنت ہے کیونکہ نبی ﷺ نے آخر کار اسی کی طرف رجوع فرمایا۔"

روایت ہے کہ عمر بن عبد العزیز جب جمعہ کی نماز سے فارغ ہوتے تو مسجد کے دروازے پر پہرے دار کھڑے کر دیتے جو ہر اس شخص کی پیشانی کے بال کاٹ دیتے جو مانگ نہیں نکالتا تھا (3)۔

کہا گیا ہے کہ مانگ نکالنا حضرت ابراہیم علیہ السلام کی سنت تھی (4)، واللہ اعلم۔

چودہویں بات: رہا بڑھاپا (سفید بال) تو وہ نور ہے، اور اسے اکھاڑنا مکروہ ہے۔ نسائی اور ابو داؤد میں عمرو بن شعیب کی اپنے والد اور وہ اپنے دادا سے روایت ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "سفید بالوں کو مت اکھاڑو؛ کسی مسلمان کے بال اسلام میں سفید نہیں ہوتے مگر وہ

قیامت کے دن اس کے لیے نور ہوں گے، اور اللہ اس کے لیے ایک نیکی لکھتا ہے اور اس سے ایک گناہ مٹا دیتا ہے (5)" (6)۔

میں کہتا ہوں: جس طرح انہیں اکھاڑنا مکروہ ہے، اسی طرح انہیں سیاہ رنگ سے بدلنا بھی مکروہ ہے۔ رہا انہیں سیاہ کے علاوہ کسی اور رنگ سے بدلنا...

= ساتویں دن بچے کی طرف سے کیے جانے والے ذبح کو بالوں کے نام پر 'عقیقہ' کہا جاتا ہے کیونکہ اس دن بال مونڈے جاتے ہیں۔ کبھی کبھی استعارہ کے طور پر بال مونڈنے کے بعد بالوں کو عقیقہ کہا جاتا ہے، اور اسی طرح یہ حدیث آئی ہے۔ (1) المجتبیٰ 8/184، اور یہ مسند احمد (2605) میں ہے۔ (2) صحیح بخاری (3558) اور مسلم (2336)۔ دونوں کے ہاں یہ ابن عباس کی حدیث سے ہے، انس کی حدیث سے نہیں جیسا کہ مصنف نے ذکر کیا ہے۔ یہ مسند احمد (2605) میں ہے۔ حافظ ابن حجر نے الفتح 7/276 میں کہا: حماد بن خالد نے اسے غریب طریقے سے روایت کیا، انہوں نے اسے مالک سے، زہری سے، انس کے واسطے سے روایت کیا۔ احمد بن ہنبلی نے کہا: حماد بن خالد سے اس میں غلطی ہوئی ہے؛ زہری سے محفوظ روایت عبید اللہ بن عبد اللہ بن عباس سے ہے۔ (3) اکمال المعلم 7/302۔ عمر بن عبد العزیز کے بارے میں خبر ابن عبد البر نے التمہید 6/76-77 میں بھی روایت کی ہے۔ (4) (ز) میں اضافہ ہے: "جیسا کہ خصالِ فطرت میں پہلے گزر چکا ہے"۔ اور یہ پہلے تیسرے مسئلے میں ابن عباس کی حدیث میں گزر چکا ہے۔ التمہید 6/75 دیکھیں۔ (5) (خ) اور (ظ) میں: "وحطت" (مونث کا صیغہ)۔ (6) سنن ابو داؤد (4202)، اور یہ نسائی کی المجتبیٰ 8/136 اور الکبریٰ (9285) میں مختصراً ہے۔ اس کے الفاظ ہیں: رسول اللہ ﷺ نے سفید بال اکھاڑنے سے منع فرمایا۔ اسے احمد (6673) (6675) نے روایت کیا ہے۔

٣٦٧ Surah Al-Baqarah: Verse 124

It is permissible; because of the saying of the Prophet (peace be upon him) regarding Abu Quhafah - who was brought with his beard as white as a thaghamah (a plant with white flowers) -: "Change this with something, but avoid black" (1). And well-said is he who said: You blacken its top, yet its root stays white, There is no good in the top if the root is decayed (2). Another said: O you who dyes gray hair with henna to hide it, Ask the Sovereign King for a cover from the fire (3). Fifteenth: As for Tharid (a dish of bread and broth), it is the most wholesome and blessed of food, and it is the food of the Arabs. The Prophet (peace be upon him) testified to its excellence over other foods, saying: "The excellence of Aisha over other women is like the excellence of Tharid over other foods" (4). In Sahih al-Busti (5), it is narrated from Asma bint Abi Bakr that whenever she prepared Tharid, she would cover it for a while (6) until its steam subsided, and she would say: I heard the Messenger of Allah (peace be upon him) say: "It is greater for blessing." Sixteenth: I said: All of this is in the sense of what Abdul-Razzaq mentioned from Ibn Abbas, and what Said ibn al-Musayyib and others said (7). The mention of rinsing the mouth, sniffing water into the nose, and using the siwak will come in Surah "An-Nisa," the ruling on cleaning oneself after excretion (istinja) in "Bara'ah" (At-Tawbah), and the ruling on hospitality in "Hud," Allah willing (8).

---

(1) Narrated by Ahmad (14402) and Muslim (2102): (79), from the hadith of Jabir (may Allah be pleased with him). Abu Quhafah: he is Uthman ibn Amir, the father of Abu Bakr as-Siddiq (may Allah be pleased with him). Thaghamah: a plant with white flowers and fruit, compared to gray hair; it was said it is a tree that turns white as if it were snow. Al-Nihayah (th-gh-m). (2) In (Zh) and (M): "He blackens", and what is established in (D) and (Z), and Ibn Abd al-Barr cited it in al-Tamhid 21/85 and attributed it to Uqbah ibn Amir, and in it: "and its roots refuse..". (3) We did not find it, and al-Bayhaqi mentioned it in al-Zuhd, p. 248. (4) Narrated by Ahmad (13785) and Muslim (2446) from the hadith of Anas (may Allah be pleased with him). And narrated by al-Bukhari (3411) from the hadith of Abu Musa al-Ash’ari (may Allah be pleased with him). (5) Sahih Ibn Hibban (5207), and it is in Musnad Ahmad (26958). (6) In (Z) an addition: "a little". (7) These statements were mentioned previously in the third issue. (8) Verse (43) of Surah An-Nisa, Verse (108) of Surah Bara'ah, and Verse (69) of Surah Hud.

३६६ सूरह अल-बकराह: आयत १२४

तो यह जायज़ है; क्योंकि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने अबू कुहाफ़ा के बारे में कहा था - जब उन्हें लाया गया और उनकी दाढ़ी थगामा (एक सफेद फूलों वाला पौधा) की तरह सफेद थी -: "इसे किसी चीज़ से बदल दो, और काले रंग से बचो" (१)। और क्या खूब कहा है उसने जिसने कहा: तुम इसके ऊपरी हिस्से को काला करते हो जबकि इसकी जड़ सफेद रहती है, ऊपरी हिस्से में कोई भलाई नहीं है यदि जड़ ही खराब हो जाए (२)। दूसरे ने कहा: ऐ सफेद बालों को मेंहदी से रँगकर छुपाने वाले, बादशाह (अल्लाह) से आग से पर्दा (बचाव) मांग (३)। पंद्रहवीं बात: जहाँ तक थरीद (शोरबे में भिगोई हुई रोटी) का सवाल है, तो यह सबसे पवित्र और बरकत वाला भोजन है, और यह अरबों का भोजन है। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने अन्य सभी भोजनों पर इसकी श्रेष्ठता की गवाही देते हुए फरमाया: "आयशा की अन्य महिलाओं पर श्रेष्ठता वैसी ही है जैसे थरीद की अन्य सभी भोजनों पर श्रेष्ठता है" (४)। और सहीह अल-बुस्ती (५) में, असमा बिंत अबी बक्र से रिवायत है कि जब वह थरीद बनाती थीं, तो उसे थोड़ी देर के लिए ढँक देती थीं (६) जब तक कि उसकी भाप निकलना बंद न हो जाए, और कहती थीं: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को कहते सुना है: "यह बरकत के लिए बहुत बेहतर है।" सोलहवीं बात: मैंने कहा: यह सब उसी अर्थ में है जो अब्दुर रज्जाक ने इब्न अब्बास से उल्लेख किया है, और जो सईद इब्न अल-मुसय्यब और अन्य लोगों ने कहा है (७)। कुल्ला करने, नाक में पानी डालने और मिस्वाक का उल्लेख सूरह "अन-निसा" में आएगा, और शौच के बाद सफाई (इस्तिन्जा) का हुक्म "बाराअत" (तौबा) में, और आतिथ्य सत्कार का हुक्म "हूद" में आएगा, इंशा अल्लाह ताला (८)।

---

(१) इसे अहमद (१४४०२) और मुस्लिम (२१०२): (७९) ने जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से निकाला है। अबू कुहाफ़ा: वह उस्मान बिन आमिर हैं, जो अबू बक्र अस-सिद्दीक़ (रज़ियल्लाहु अन्हु) के पिता हैं। थगामा: सफेद फूलों और फलों वाला एक पौधा, जिससे बुढ़ापे (सफेद बालों) की तुलना की जाती है, और कहा गया: यह एक पेड़ है जो बर्फ की तरह सफेद हो जाता है। अन-निहाया (थ-ग-म)। (२) (ज़) और (म) में: "वह काला करता है", और जो (द) और (ज़) में साबित है, और इब्न अब्द अल-बर्र ने इसे अल-तमहीद २१/८५ में उद्धृत किया और इसे उकबा बिन आमिर से जोड़ा, और उसमें है: "और उसकी जड़ें मना करती हैं.."। (३) हमें यह नहीं मिला, और अल-बैहकी ने इसका उल्लेख अल-ज़ुहद पृ. २४८ में किया है। (४) इसे अहमद (१३७८५) और मुस्लिम (२४४६) ने अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से निकाला है। और अल-बुखारी (३४११) ने अबू मूसा अल-अशअरी

(रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से निकाला है। (५) सहीह इब्न हिब्बान (५२०७), और यह मसनद अहमद (२६९५८) में है। (६) (ज़) में एक इज़ाफ़ा: "थोड़ा सा"। (७) ये बातें तीसरे मसले में पहले आ चुकी हैं। (८) सूरह अन-निसा की आयत (४३), सूरह बाराअत की आयत (१०८), और सूरह हूद की आयत (६९)।

پس یہ جائز ہے؛ کیونکہ نبی ﷺ نے ابوقحافہ کے حق میں فرمایا تھا - جبکہ انہیں لایا گیا اور ان کی داڑھی ثغامہ (سفید پھولوں والا ایک پودا) کی طرح سفید تھی -: «اسے کسی چیز سے بدل دو، اور سیاہ رنگ سے بچو»(۱)۔ اور کیا ہی خوب کہا اس نے جس نے کہا: تو اس کے اوپر کے حصے کو سیاہ کرتا ہے جبکہ اس کی جڑ سفید رہتی ہے، اوپر کے حصے میں کوئی خیر نہیں جب جڑ ہی خراب ہو جائے (۲)۔ دوسرے نے کہا: اے بڑھاپے (سفید بالوں) کو مہندی سے رنگ کر چھپانے والے، مالکِ کائنات سے آگ سے پردہ (بچاؤ) مانگ (۳)۔ پندرھویں بات: رہا ثرید (شوربے میں بھیگی ہوئی روٹی) تو وہ سب سے پاکیزہ اور بابرکت کھانا ہے، اور وہ عربوں کا کھانا ہے۔ نبی ﷺ نے تمام کھانوں پر اس کی فضیلت کی گواہی دیتے ہوئے فرمایا: «عائشہ کی عورتوں پر فضیلت ایسی ہی ہے جیسے ثرید کی تمام کھانوں پر فضیلت ہے»(۴)۔ اور صحیح بستی (۵) میں، اسماء بنت ابی بکر سے مروی ہے کہ وہ جب ثرید بناتیں تو اسے تھوڑی دیر ڈھانپ دیتیں (۶) یہاں تک کہ اس کی بھاپ ختم ہو جاتی، اور کہتیں: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے سنا: «یہ برکت کے لیے زیادہ باعث ہے»۔ سولہویں بات: میں نے کہا: یہ سب اسی معنی میں ہے جو عبد الرزاق نے ابن عباس سے ذکر کیا ہے، اور جو سعید بن المسیب وغیرہ نے کہا (۷)۔ وضو میں کلی کرنے، ناک میں پانی ڈالنے اور مسواک کا ذکر سورہ «النساء» میں آئے گا، اور استنجا کا حکم «برأت» (التوبہ) میں، اور مہمانی کا حکم «ہود» میں آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (۸)۔

---

(۱) اسے احمد (۱۴۴۰۲)، اور مسلم (۲۱۰۲): (۷۹) نے حضرت جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ابوقحافہ: وہ عثمان بن عامر ہیں، ابوبکر صدیق رضی اللہ عنہ کے والد۔ اور ثغامہ: سفید پھولوں اور پھلوں والا ایک پودا ہے، جس سے بڑھاپے کی مشابہت دی جاتی ہے، اور

کہا گیا: یہ ایک درخت ہے جو برف کی طرح سفید ہو جاتا ہے۔ النہایہ (ثغم)۔ (۲) (ظ) اور (م) میں: «یسود» (وہ سیاہ کرتا ہے)، اور (د) اور (ز) سے ثابت ہے، اور ابن عبد البر نے اسے تمہید ۲۱/ ۸۵ میں ذکر کیا اور اسے عقبہ بن عامر کی طرف منسوب کیا، اور اس میں ہے: «وتأبي أصولها..» (اور اس کی جڑیں انکار کرتی ہیں)۔ (۳) ہمیں یہ نہیں ملا، اور بیہقی نے اسے الزہد ص ۲۴۸ میں ذکر کیا ہے۔ (۴) اسے احمد (۱۳۷۸۵)، اور مسلم (۲۴۴۶) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور بخاری (۳۴۱۱) نے حضرت ابوموسیٰ اشعری رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (۵) صحیح ابن حبان (۵۲۰۷)، اور یہ مسند احمد (۲۶۹۵۸) میں ہے۔ (۶) (ز) میں اضافہ: «یسیراً» (تھوڑا سا)۔ (۷) یہ اقوال تیسرے مسئلے میں پہلے گزر چکے ہیں۔ (۸) سورہ نساء کی آیت (۴۳)، اور سورہ برأت کی آیت (۱۰۸)، اور سورہ ہود کی آیت (۶۹)۔

Muslim (1) narrated from Anas who said: A time limit was set for us for clipping the mustache, trimming the nails, plucking the armpit hair, and shaving the pubic hair—that we should not leave them for more than forty nights (2). Our scholars said: This is a limit for the maximum period, and it is recommended to attend to this from Friday to Friday. This hadith is narrated by Ja'far ibn Sulayman. Al-Uqayli said: There is some issue in his hadith. Abu Umar said regarding it: It is not an authority due to his poor memory and frequent mistakes (3). This hadith is not strong in terms of transmission, but some people have acted upon it, while most are of the opinion that there is no specific timing for that. And with Allah is success (4). Seventeenth: His Almighty's saying: {Indeed, I will make you a leader for the people.} The "Imam" (leader) is an exemplar. From it, the builder's string is called "Imam," and the road is called "Imam" because it is headed for by travelers. The meaning is: We have made you a leader for the people whom they follow in these qualities, and the righteous take you as an example. So, Allah Almighty made him a leader for those obedient to Him. Therefore, nations have gathered in claiming kinship with him—and Allah knows best—that he was a "Hanif" (pure monotheist) (5). Eighteenth: His Almighty's saying: {And from my offspring.} A supplication in the form of desire towards Allah Almighty, meaning: "O Lord, make some of my offspring [leaders as well]." It was also said: This is from him by way of questioning about them, meaning: "And from my offspring, O Lord, what will become of them?" So, Allah Almighty informed him that among them would be disobedient and wrongdoers who do not deserve leadership (6). Ibn Abbas said: Ibrahim, peace be upon him, asked that a leader be made from his offspring, so Allah informed him that among his offspring are those who disobey, saying: {My covenant does not include the wrongdoers} (7).

---

(1) Number (258), and it is with Ahmad (12232). (2) In (D): a day and a night. (3) Al-Mufhim 1/515. Al-Uqayli's statement was not found in his "Ad-Du'afa" 1/188 under the biography of Ja'far ibn Sulayman. An-Nawawi followed up in "Sharh Muslim" 3/150 on the statement of Al-Uqayli and Abu Umar ibn Abd al-Barr, saying: Many of the early imams have authenticated Ja'far ibn Sulayman, and Muslim's use of him as evidence is sufficient authentication for him, and others have followed him. (4) Al-Istidhkar 26/243, and At-Tamhid 1/68. (5) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/206, and As-Sahah (Amm). (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/206, and An-Nukat wal-Uyun 1/185. (7) I'rab al-Qur'an by An-Nahhas 1/259, and in it: "So Allah knew" instead of: "So Allah informed him."

३६७ सूरा अल-बकरा: आयत १२४

मुस्लिम (१) ने अनस से रिवायत की है, उन्होंने कहा: मूंछें काटने, नाखून तराशने, बगल के बाल उखाड़ने और जेरे-नाफ बाल साफ करने के लिए हमारे लिए एक समय सीमा तय की गई थी—कि हम उन्हें चालीस रातों (२) से ज्यादा न छोड़ें। हमारे विद्वानों ने कहा: यह अधिकतम अवधि की एक सीमा है, और शुक्रवार से शुक्रवार तक इसकी जांच करना मुस्तहब (पसंदीदा) है। यह हदीस जाफर बिन सुलेमान द्वारा वर्णित है। अल-उकैली ने कहा: उनकी हदीस में कुछ विचारणीय बात है। अबू उमर ने इसके बारे में कहा: उनकी खराब याददाश्त और बार-बार होने वाली गलतियों के कारण यह दलील नहीं है (३)। यह हदीस रिवायत के लिहाज से मजबूत नहीं है, लेकिन कुछ लोगों ने इसे माना है, जबकि अधिकांश की राय है कि इसके लिए कोई निश्चित समय नहीं है। और सफलता अल्लाह की ओर से है (४)। सत्रहवां: अल्लाह तआला का कथन: {निस्संदेह, मैं तुम्हें लोगों के लिए एक इमाम बनाने वाला हूँ} इमाम का अर्थ है: आदर्श। इसी से राजगीर (मिस्त्री) की डोरी को 'इमाम' कहा जाता है, और रास्ते को 'इमाम' कहा जाता है, क्योंकि राही उस पर चलते हैं। इसका अर्थ है: हमने तुम्हें लोगों के लिए एक ऐसा इमाम बनाया है जिनका वे इन गुणों में अनुसरण करें, और नेक लोग तुम्हारा उदाहरण लें। इसलिए, अल्लाह तआला ने उन्हें अपनी आज्ञा मानने वालों के लिए एक इमाम बनाया, इसलिए जातियां उन पर दावा करने के लिए इकट्ठा हो गईं—और अल्लाह बेहतर जानता है—कि वह हनीफ़ (सच्चे एकेश्वरवादी) थे (५)। अठारहवां: अल्लाह तआला का कथन: {और मेरी संतान में से भी} यह अल्लाह तआला से प्रार्थना के तौर पर है, यानी: हे मेरे रब, मेरी संतान में से भी (इमाम) बना। और कहा गया है: यह उनकी ओर से उनके बारे में पूछताछ के रूप में था, यानी: हे मेरे रब, मेरी संतान में से क्या होगा? तो अल्लाह तआला ने उन्हें सूचित किया कि उनमें अवज्ञाकारी और अत्याचारी भी होंगे जो इमामत (नेतृत्व) के पात्र नहीं हैं (६); इब्न अब्बास ने कहा: इब्राहिम अलैहिस्सलाम ने प्रार्थना की थी कि उनकी संतान में से इमाम बनाया जाए, तो अल्लाह ने उन्हें सूचित किया कि उनकी संतान में वे भी हैं जो अवज्ञा करते हैं, तो फरमाया: {मेरा वादा अत्याचारियों को नहीं पहुँचता} (७)।

---

(१) नंबर (२५८), और यह अहमद (१२२३२) के पास है। (२) (द) में: एक दिन और एक रात। (३) अल-मुफ्हिम ५१५/१, और अल-उकैली का कथन हमें उनकी "अद-दुआफ़ा" १८८/१ में जाफर बिन सुलेमान की जीवनी के तहत नहीं मिला, और अन-नववी ने "शरह मुस्लिम" ३/१५० में अल-उकैली और अबू उमर बिन अब्दुल बर्र के कथन पर टिप्पणी करते हुए कहा: पहले के कई इमामों ने जाफर बिन सुलेमान को विश्वसनीय माना है, और मुस्लिम का उनसे दलील लेना ही उनके विश्वसनीय होने के

लिए काफी है, और दूसरों ने भी उनका अनुसरण किया है। (४) अल-इस्तिज़कार २६/२४३, और अत-तमहीद ६८/१। (५) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०६, और अस-सिहाह (अम्म)। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ २०६/१, और अन-नुकात वल-उयून १८५/१। (७) अन-नहास द्वारा इराब अल-कुरान २५९/१, और इसमें है: "तो अल्लाह ने जान लिया" के बजाय: "तो अल्लाह ने उन्हें सूचित किया"।

اور مسلم (۱) نے انس سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: ہمارے لیے مونچھیں کتروانے، ناخن تراشنے، بغل کے بال اکھاڑنے اور زیرِ ناف بال صاف کرنے کے لیے ایک وقت مقرر کیا گیا کہ ہم انہیں چالیس راتوں (۲) سے زیادہ نہ چھوڑیں۔ ہمارے علماء نے کہا: یہ زیادہ سے زیادہ مدت کی ایک حد ہے، اور مستحب یہ ہے کہ جمعہ سے جمعہ تک اس کی دیکھ بھال کی جائے۔ یہ حدیث جعفر بن سلیمان روایت کرتے ہیں۔ عقیلی نے کہا: ان کی حدیث میں کلام ہے۔ اور ابو عمر نے اس کے بارے میں کہا: یہ اپنی خراب یادداشت اور کثرتِ غلطی کی وجہ سے حجت نہیں ہے (۳)۔ یہ حدیث روایت کے لحاظ سے قوی نہیں ہے، لیکن بعض لوگوں نے اسے مانا ہے، جبکہ اکثر کی رائے یہ ہے کہ اس میں کوئی وقت مقرر نہیں ہے۔ اور توفیق اللہ ہی کی طرف سے ہے (۴)۔

سترہویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿اِنِّیۡ جَاعِلُکَ لِلنَّاسِ اِمَامًا﴾ امام سے مراد قدوہ (نمونہ) ہے۔ اسی سے معمار کی ڈوری کو 'امام' کہا جاتا ہے، اور راستے کو 'امام' کہا جاتا ہے، کیونکہ مسافر اس کا رخ کرتے ہیں۔ تو معنی یہ ہے کہ: ہم نے تمہیں لوگوں کے لیے ایسا امام بنایا ہے کہ وہ ان اوصاف میں تمہاری پیروی کریں، اور صالحین تمہاری اقتداء کریں۔ تو اللہ تعالیٰ نے انہیں اپنی اطاعت گزاروں کے لیے امام بنایا، اسی لیے تمام امتیں ان کی طرف نسبت کے دعوے پر جمع ہو گئیں - اور اللہ بہتر جانتا ہے - کہ وہ حنیف تھے (۵)۔ اٹھارہویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَ مِن ذُرِّیَّتِیۡ﴾ یہ اللہ تعالیٰ سے رغبت اور دعا کے طور پر ہے، یعنی: اے میرے رب! میری اولاد میں سے بھی (امام بنا)۔ اور کہا گیا: یہ ان کی طرف سے ان کے بارے میں بطور استفہام (پوچھنے) کے تھا، یعنی: اے میرے رب! میری اولاد میں سے کیا ہوگا؟ تو اللہ تعالیٰ نے انہیں خبر دی کہ ان میں نافرمان اور ظالم بھی ہوں گے جو امامت کے مستحق نہیں ہیں (۶)؛ ابن عباس نے کہا: ابراہیم علیہ السلام نے

سوال کیا تھا کہ ان کی اولاد میں سے امام بنایا جائے، تو اللہ نے انہیں بتا دیا کہ ان کی اولاد میں وہ بھی ہیں جو نافرمانی کرتے ہیں، پس فرمایا: ﴿لَا يَنَالُ عَهْدِي الظَّالِمِينَ﴾ (میرا عہد ظالموں کو نہیں پہنچتا) (۷)۔

---

(۱) نمبر (۲۵۸)، اور یہ احمد (۱۲۲۳۲) کے پاس ہے۔ (۲) (د) میں ہے: ایک دن اور ایک رات۔ (۳) المفہم ۵۱۵/۱، اور عقیلی کا قول ہمیں ان کی کتاب "الضعفاء" ۱۸۸/۱ میں جعفر بن سلیمان کے تذکرے میں نہیں ملا، اور نووی نے شرح مسلم ۳/ ۱۵۰ میں عقیلی اور ابو عمر بن عبد البر کے کلام پر تعاقب کرتے ہوئے کہا: متقدمین ائمہ میں سے بہت سے لوگوں نے جعفر بن سلیمان کی توثیق کی ہے، اور ان کی توثیق کے لیے مسلم کا ان سے احتجاج کرنا ہی کافی ہے، اور دوسروں نے بھی ان کی پیروی کی ہے۔ (۴) الاستذکار ۲۶/ ۲۴۳، اور التمہید ۶۸/۱۔ (۵) دیکھیے المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۶، اور الصحاح (أمم)۔ (۶) المحرر الوجیز ۲۰۶/۱، اور النکت والعیون ۱/ ۱۸۵۔ (۷) اعراب القرآن للنحاس ۲۵۹/۱، اور اس میں ہے: «فعلم الله » کے بجائے: «فأعلمه الله »۔

368 Surah Al-Baqarah: Verse 124

Nineteenth: His Almighty saying: {and of my offspring} The origin of *dhurriyya* (offspring) is *fu'liyya* from *al-dharr* (tiny ants/particles), because Allah Almighty brought forth the creation from the loins of Adam, peace be upon him, like small ants when He made them testify against themselves. It is said: it is taken from: *dhara'a Allah al-khalq yadhra'uhum dhar'an*: He created them, and from it comes *dhurriyya*, which is the progeny of the two heavy weights (humans and jinn), except that the Arabs dropped its hamza (glottal stop), and the plural is *dharari* (1).

Zaid bin Thabit recited: "dhirriyya" with a kasra on the *dhal* and "dharriyya" with a fatha; Ibn Jinni Abu al-Fath 'Uthman said: the origin of this word possibly comes from four terms: first: *dhara'a*, second: *dharara*, third: *dharawa*, and fourth: *dharaya*. As for the hamza, it is from: *dhara'a Allah al-khalq* (Allah created the creation). As for *dharara*, it is from the word *al-dharr* (particles) and its meaning, based on what was reported in the narration: "the creation were like particles." As for the *waw* and the *ya'*, it is from: *dharawtu al-habb* and *dharaytuhu* (I scattered/winnowed the seeds), both are said, and that is His Almighty saying: {it becomes chaff which the winds scatter} [Al-Kahf: 45], and this is due to its fineness and lightness, and that is also the state of particles (2).

Al-Jawhari said (3): the wind scattered (*dharat*) the dust and other things, it scatters them (*tadhruhu* and *tadhrihi*) as scattering (*dharwan* and *dharyan*), meaning: it blew them away (4). From it is their saying: the people winnowed (*dhara*) the wheat, and *adhraytu al-shay'*: when you throw it, like your throwing of seeds for planting. And he stabbed him and *adhrahu* from the back of his beast, meaning: he threw him off.

Al-Khalil said: they were called *dhurriyya* only because Allah Almighty scattered them on the earth just as the farmer scatters the seeds.

It was said: the origin of *dhurriyya* is *dhurrura*, but when the doubling increased, one of the *ra's* was replaced with a *ya'*, so it became *dhurruyya*, then the *waw* was assimilated into the *ya'*, so it became *dhurriyya* (5).

(1) Tahdhib al-Lugha 14/405, and al-Sihah (dhara'a). The mentioned narration was recorded by Ahmad (2455), al-Nasa'i in al-Kubra (11191), and al-Hakim 1/27 and 2/544, and he graded it as authentic from the hadith of Ibn Abbas as a marfu' (attributed to the Prophet) report. Al-Tabari recorded it 10/549 from Ibn Abbas as a mawquf (attributed to a companion) report. Ibn Kathir preferred, when interpreting

verse (172) of Surah al-A'raf, its attribution to Ibn Abbas. (2) Al-Muhtasib 1/156, and in it is the mention of Zaid bin Thabit's recitation, and Ibn Khalawayh also mentioned it in al-Qira'at al-Shadhah p.9, and the narration's documentation preceded. (3) Al-Sihah (dhara'a). (4) In (kh), (z), and (m): it swept it away, and what is established is from (d) and (z), which matches what is in al-Sihah (dhara'a). (5) Al-Muhtasib 1/159, and Tahdhib al-Lugha 14/405, and Ibn al-Jawzi attributed this saying in Zad al-Masir 1/124 to al-Zajjaj.

368 सूरा अल-बकरा: आयत 124

उन्नीसवीं बात: अल्लाह तआला का फ़रमान: {और मेरी औलाद में से} 'ज़ुर्रिय्याह' (औलाद) का मूल शब्द 'ज़र्र' से 'फ़ु'लिय्याह' है, क्योंकि अल्लाह तआला ने आदम अलैहिस्सलाम की पीठ से सृष्टि को नन्हीं चींटियों (ज़र्र) की तरह निकाला जब उसने उन्हें उनके अपने बारे में गवाह बनाया। और कहा गया है कि यह 'ज़रा'अल्लाह अल-खल्क यज़राउहुम ज़रअन्' से लिया गया है: यानी उसने उन्हें पैदा किया, और इसी से 'ज़ुर्रिय्याह' बना है, जो इंसानों और जिन्नों की नस्ल है, सिवाय इसके कि अरबों ने इसके हमज़ा को छोड़ दिया, और इसका बहुवचन 'ज़ुरारी' है (1)।

ज़ैद बिन साबित ने 'ज़ाल' के नीचे जेर (धिर्रिय्याह) और ज़बर (ज़र्रिय्याह) के साथ पढ़ा है। अबू अल-फतह उस्मान इब्न जिन्नी ने कहा: इस शब्द की उत्पत्ति चार शब्दों से संभव है: पहला: 'ज़रा', दूसरा: 'ज़रर', तीसरा: 'ज़रवा', और चौथा: 'ज़राया'। जहाँ तक हमज़ा का सवाल है, वह 'ज़रा'अल्लाह अल-खल्क' (अल्लाह ने सृष्टि पैदा की) से है। 'ज़रर' के बारे में, यह शब्द 'ज़र्र' (कण) और उसके अर्थ से है, जैसा कि रिवायत में आया है: "बेशक सृष्टि कणों (ज़र्र) के समान थी।" 'वाव' और 'या' के बारे में, यह 'ज़रवतु अल-हब्ब' और 'ज़रयतुहु' (मैंने अनाज को बिखेरा/फटकारा) से है, दोनों कहे जाते हैं, और वह अल्लाह तआला का फ़रमान है: {फिर वह चूरा-चूरा हो गया जिसे हवाएँ उड़ाती हैं} [अल-कहफ़: 45], और यह इसकी कोमलता और हल्केपन के कारण है, और यही कणों (ज़र्र) की भी स्थिति है (2)।

अल-जौहरी ने कहा (3): हवा ने धूल और दूसरी चीज़ों को बिखेर दिया (ज़रत), वह उन्हें बिखेरती है (तज़्रूहू और तज़्रीही), बिखेरना (ज़रवन और ज़रयन), यानी उसने उन्हें उड़ा दिया (4)। इसी से उनका कहना है: लोगों ने गेहूँ को फटकारा (ज़रा), और 'अज़रयतु अल-शय': जब आप उसे फेंकते हैं, जैसे बोने के लिए बीजों का फेंकना। और उसने उसे मार गिराया (अज़राहु) उसकी सवारी की पीठ से, यानी: उसे गिरा दिया।

अल-खलील ने कहा: उन्हें 'ज़ुर्रिय्याह' सिर्फ़ इसलिए कहा गया क्योंकि अल्लाह तआला ने उन्हें धरती पर उसी तरह बिखेर दिया जैसे किसान बीज बिखेरता है।

और कहा गया है: 'ज़ुर्रिय्याह' का मूल 'ज़ुरुरा' है, लेकिन जब दोहराव (तशदीद) बढ़ गया तो एक 'रा' को 'या' से बदल दिया गया, तो वह 'ज़ुरुय्या' हो गया, फिर 'वाव' को 'या' में मिला दिया गया, तो वह 'ज़ुर्रिय्याह' बन गया (5)।

(1) तहज़ीब अल-लुग़ा 14/405, और अस-सिहाह (ज़रा)। उल्लिखित रिवायत को अहमद (2455), नसई ने अल-कुबरा (11191) में, और हाकिम ने 1/27 और 2/544 में दर्ज किया है और उन्होंने इसे इब्न अब्बास की हदीस से मर्फ़ू (नबी से संबंधित) के रूप में सही कहा है। अल-तबरी ने इसे 10/549 पर इब्न अब्बास से मौक़ूफ़ (साहबी से संबंधित) के रूप में निकाला है। इब्न कथीर ने सूरह अल-अराफ़ की आयत (172) की व्याख्या करते समय इसे इब्न अब्बास तक ही सीमित रखने को प्राथमिकता दी। (2) अल-मुहतासिब 1/156, इसमें ज़ैद बिन साबित की क़िरात का ज़िक्र है, और इब्न ख़ालवैह ने भी 'अल-क़िरात अल-शाज़ा' पृ.9 में इसका उल्लेख किया है, और रिवायत का हवाला पहले आ चुका है। (3) अस-सिहाह (ज़रा)। (4) (ख़), (ज़), और (म) में: 'नसफ़तहू' (उसे उड़ा दिया), और जो स्थापित है वह (द) और (ज़) से है, जो अस-सिहाह (ज़रा) में मौजूद बात के अनुरूप है। (5) अल-मुहतासिब 1/159, और तहज़ीब अल-लुग़ा 14/405, और इब्न अल-जौज़ी ने 'ज़ाद अल-मसीर' 1/124 में इस कथन को ज़ज्जाज की ओर मंज़ूब किया है।

٣٦٨ سورہ البقرہ : آیت ١٢٤

انیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَمِن ذُرِّيَّتِي﴾ 'ذریت' کی اصل 'ذَرّ' سے 'فُعْلِيَّة' ہے، کیونکہ اللہ تعالیٰ نے آدم علیہ السلام کی پشت سے مخلوق کو چیونٹیوں (ذر) کی طرح نکالا جب انہیں ان کے اپنے بارے میں گواہ بنایا۔ اور کہا گیا ہے: یہ 'ذَرَأَ اللہ الخلق یذرؤھم ذَرْءاً' سے ماخوذ ہے: یعنی اس نے انہیں پیدا کیا، اور اسی سے ذریت ہے، جو کہ جن و انس کی نسل ہے، مگر یہ کہ عربوں نے اس کا ہمزہ چھوڑ دیا، اور اس کی جمع 'ذراری' ہے (١)۔

زید بن ثابت نے 'ذال' کے زیر اور زبر کے ساتھ 'ذِرِّيَّة' اور 'ذَرِّيَّة' پڑھا ہے؛ ابن جنی ابو الفتح عثمان نے کہا: اس حرف کی اصل چار الفاظ کا احتمال رکھتی ہے: پہلا: ذرا، دوسرا: ذرر، تیسرا: ذرو، اور چوتھا: ذری۔ جہاں تک ہمزہ کا تعلق ہے تو وہ 'ذَرَأَ اللہ الخلق' (اللہ نے مخلوق کو پیدا کیا) سے ہے۔ 'ذرر' کے متعلق، تو یہ لفظ 'ذر' (ذرہ) اور اس کے معنی سے ہے، جیسا کہ روایت میں آیا ہے: "بیشک مخلوق ذرے کے مانند تھی"۔ 'واؤ' اور 'یاء' کے بارے میں، تو یہ 'ذروْتُ الحَبَّ' اور 'ذریتُہ' (میں نے بیج بکھیرے/اڑائے) سے ہے، دونوں کہے جاتے ہیں، اور وہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿فَأَصْبَحَ هَشِيمًا تَذْرُوهُ الرِّيَاحُ﴾ [الکہف : ٤٥] (پس وہ ریزہ ریزہ ہو گیا جسے ہوائیں اڑاتی ہیں) اور یہ اس کی لطافت اور ہلکے پن کی وجہ سے ہے، اور یہی حال ذرے کا بھی ہوتا ہے (٢)۔

جوہری نے کہا (٣): ہوا نے مٹی وغیرہ کو اڑایا (ذرت)، وہ اسے اڑاتی ہے (تذروہ اور تذریہ) اڑانا (ذرواً اور ذریاً)، یعنی: اسے بکھیر دیا (٤)۔ اسی سے ان کا قول ہے: لوگوں نے گندم اڑائی (ذری)، اور 'اذریت الشیء': جب تم اسے پھینکو، جیسے تمہارا بیج بونا۔ اور اسے نیزہ مار کر اس کی سواری کی پیٹھ سے گرا دیا (اذراہ)، یعنی: اسے پھینک دیا۔

خلیل نے کہا: انہیں 'ذریت' صرف اس لیے کہا گیا کیونکہ اللہ تعالیٰ نے انہیں زمین پر اسی طرح بکھیر دیا جیسے کاشتکار بیج بکھیرتا ہے۔

اور کہا گیا ہے: 'ذریۃ' کی اصل 'ذُرُّورۃ' ہے، لیکن جب تضعیف (تکرار) زیادہ ہو گئی تو ایک 'راء' کو 'یاء' سے بدل دیا گیا، تو وہ 'ذُرُّویۃ' ہو گئی، پھر 'واؤ' کو 'یاء' میں مدغم کر دیا گیا، تو وہ 'ذُرِّیَّۃ' بن گئی (٥)۔

(١) تہذیب اللغۃ ١٤ / ٤٠٥، اور الصحاح (ذرأ)۔ مذکورہ روایت کو احمد (٢٤٥٥)، نسائی نے الکبریٰ (١١١٩١) میں، اور حاکم نے ١ / ٢٧ اور ٢ / ٥٤٤ میں روایت کیا ہے اور اسے ابن عباس کی حدیث سے مرفوعاً صحیح قرار دیا ہے۔ طبری نے ١٠ / ٥٤٩ پر اسے ابن عباس سے موقوفاً نکالا ہے۔ ابن کثیر نے سورہ اعراف کی آیت (١٧٢) کی تفسیر کے وقت اس کے ابن عباس پر موقوف ہونے کو ترجیح دی۔ (٢) المحتسب ١ / ١٥٦، اس میں زید بن ثابت کی قرات کا ذکر ہے، اور ابن خالویہ نے بھی القراءات الشاذۃ ص ٩ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور روایت کی تخریج پہلے گزر چکی۔ (٣) الصحاح (ذرأ)۔ (٤) (خ)، (ظ)، اور (م) میں: 'نسفتہ'، اور جو ثابت ہے وہ (د) اور (ز) سے ہے، جو الصحاح (ذرأ) کے موافق ہے۔ (٥) المحتسب ١ / ١٥٩، اور تہذیب اللغۃ ١٤ / ٤٠٥، اور ابن الجوزی نے زاد المسیر ١ / ١٢٤ میں اس قول کو زجاج کی طرف منسوب کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 124 369

And the meaning of "descendants" (dhurriyyah) here is specifically children, and it may be applied to fathers and children as well, from which is the saying of the Most High: "And a sign for them is that We carried their descendants" [Ya-Sin: 41], meaning their fathers(1). The twentieth [point]: His saying, the Most High: "My covenant does not reach the wrongdoers." There was disagreement regarding the meaning of the "covenant" (al-ahd), so Abu Salih narrated from Ibn Abbas that it is Prophethood, and as-Suddi said it. Mujahid: Imamate. Qatadah: Faith (Iman). 'Ata: Mercy. Ad-Dahhak: The religion of Allah the Most High. And it was said: His covenant is His command(2). The word "covenant" (ahd) is applied to a command; Allah the Most High said: "Indeed, Allah has covenanted with us" [Al-Imran: 183], meaning: He commanded us. And He said: "Did I not covenant with you, O children of Adam" [Ya-Sin: 60], meaning: Did I not present the command to you?(3) If Allah's covenant is His commands, then His saying: "My covenant does not reach the wrongdoers" means: it is not permissible for them to be in the position of those from whom Allah's commands are accepted, nor do they establish them, according to what will follow in its explanation shortly, Allah willing. Ma'mar narrated from Qatadah regarding the saying of the Most High: "My covenant does not reach the wrongdoers," he said: The covenant of Allah in the hereafter does not reach the wrongdoers(4). As for in this world, the wrongdoer has reached it, so he felt safe by it, ate, lived, and saw. Az-Zajjaj said: This is a good statement, meaning: it does not reach the security (amani) of the wrongdoers, meaning: I do not secure them from My punishment. Sa'id ibn Jubayr said: The "wrongdoer" here is the polytheist (mushrik)(5). Ibn Mas'ud and Talhah ibn Musarrif read: "My covenant does not reach the wrongdoers" with "the wrongdoers" (al-zalimun) in the nominative case(6), the rest read it in the accusative case (al-zalimin). Hamzah, Hafs, and Ibn Muhaysin made the 'ya' in "ahdi" silent, while the rest gave it a fatha(7).

---

(1) See Al-Wasit by Al-Wahidi 1/203. (2) At-Tabari 2/511-513, Ibn Abi Hatim 1/366, Al-Nukat wa al-Uyun 1/185, Zad al-Masir 1/140, and Qatadah's statement: "faith" (al-iman) is as such in the manuscripts, and perhaps it is a corruption of "security" (al-aman) as in At-Tabari and Al-Muharrar al-Wajiz 1/207. (3) See Tafsir Al-Baghawi 1/380, 4/16. (4) In the manuscripts: "wrongdoers" (al-zalimin), and what is established is from the Tafsir of Abd al-Razzaq 1/58, and Tafsir al-Tabari 2/514. (5) Narrated by Ibn Abi Hatim 1/367. (6) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 9, and we have not come across the reading of Talhah ibn Musarrif. (7) Tafsir Al-Baghawi 1/112. See Al-Sab'ah p. 196-197,

and Al-Taysir p. 66-67. Ibn Muhaysin is not among the ten reciters, rather he is one of the proponents of the four anomalous (shadhdh) readings.

सूरह अल-बकरा: आयत १२४ ३६९

और यहाँ "वंशज" (ज़ुर्रिय्याह) का अर्थ विशेष रूप से बच्चे हैं, और इसका प्रयोग पूर्वजों और वंशजों दोनों के लिए किया जा सकता है, जिससे अल्लाह तआला का यह कथन है: "और उनके लिए एक निशानी यह है कि हमने उनके वंशजों को ले लिया" [या-सीन: ४१], जिसका अर्थ है उनके पूर्वज(१)। बीसवां [बिंदु]: अल्लाह तआला का कथन: "मेरा वचन अत्याचारियों तक नहीं पहुँचता।" "वचन" (अहद) के अर्थ के संबंध में मतभेद था। अबू सालेह ने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि यह 'नुबुव्वत' (नबूवत) है, और अस-सुद्दी ने भी यही कहा है। मुजाहिद ने कहा: 'इमामत'। कतादाह ने कहा: 'ईमान'। अता ने कहा: 'रहमत'। अद-दह्हाक ने कहा: अल्लाह तआला का दीन। और यह भी कहा गया है: उसका अहद उसका आदेश है(२)। "अहद" शब्द का प्रयोग आदेश (अम्र) के लिए किया जाता है; अल्लाह तआला ने फरमाया: "बेशक अल्लाह ने हमसे वादा (अहद) किया है" [आल-इमरान: १८३], यानी: उसने हमें आदेश दिया। और उसने फरमाया: "ऐ आदम के बेटों, क्या मैंने तुमसे अहद नहीं लिया था" [या-सीन: ६०], यानी: क्या मैंने तुम्हें इसका आदेश नहीं दिया था?(३) और यदि अल्लाह का अहद उसके आदेश हैं, तो उसका कथन: "मेरा अहद अत्याचारियों तक नहीं पहुँचता" का अर्थ है: उनके लिए उस स्थिति में होना जायज़ नहीं है जहाँ उनसे अल्लाह के आदेश स्वीकार किए जाएँ और न ही वे उन पर कायम रहें, जैसा कि इसके स्पष्टीकरण में आगे आएगा, इंशाअल्लाह। मअमर ने कतादाह से अल्लाह तआला के कथन के बारे में रिवायत की: "मेरा अहद अत्याचारियों तक नहीं पहुँचता," उन्होंने कहा: आख़िरत में अल्लाह का अहद अत्याचारियों तक नहीं पहुँचेगा(४)। जहाँ तक दुनिया की बात है, तो अत्याचारी ने इसे प्राप्त कर लिया है, इसलिए वह इससे सुरक्षित महसूस करता है, खाता है, जीता है और देखता है। अज़-ज़ज्जाज ने कहा: यह एक अच्छा कथन है, यानी: यह अत्याचारियों की सुरक्षा (अमानी) तक नहीं पहुँचता, यानी: मैं उन्हें अपनी सज़ा से सुरक्षित नहीं रखता। सईद इब्न जुबैर ने कहा: यहाँ "अत्याचारी" (ज़ालिम) से तात्पर्य मुशरिक (मूर्तिपूजक) है(५)। इब्न मसूद और तल्हा इब्न मुसर्रिफ ने पढ़ा: "ला यनालु अहदी अल-ज़ालिमून" यानी 'ज़ालिमून' को पेश (रफ़ा) के साथ पढ़ा(६), बाकी सब ने इसे ज़बर (नस्ब) के साथ 'ज़ालिमिन' पढ़ा। हमज़ा, हफ़्स और इब्न मुहैसिन ने "अहदी" में 'या' को साकिन (मूक) रखा, जबकि बाकी ने इसे फत्हा (ज़बर) दिया(७)।

---

(१) देखिए अल-वाहिदी की अल-वसीत १/२०३। (२) अल-तबरी २/५११-५१३, इब्न अबी हातिम १/३६६, अल-नुकात वल-उयून १/१८५, ज़ाद अल-मसीर १/१४०, और कतादाह का कथन: "ईमान" पांडुलिपियों में इसी तरह है, और शायद यह "अमान" (सुरक्षा) का बिगड़ा हुआ रूप है जैसा कि अल-

तबरी और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०७ में है। (३) देखिए तफसीर अल-बगवी १/३८०, ४/१६। (४) पांडुलिपियों में: "ज़ालिमिन", और जो प्रमाणित है वह अब्दुल रज्जाक की तफसीर १/५८ और तफसीर अल-तबरी २/५१४ से है। (५) इब्न अबी हातिम ने इसे रिवायत किया १/३६७। (६) अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ा पृ. ९, और हमें तल्हा इब्न मुसर्रिफ की क़िरअत नहीं मिली। (७) तफसीर अल-बगवी १/११२। और देखिए अल-सबअ पृ. १९६-१९७, और अल-तयसीर पृ. ६६-६७। इब्न मुहैसिन दस क़ारियों में से नहीं हैं, बल्कि वे चार असामान्य (शाज़) क़िरअतों के धारकों में से एक हैं।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۴ ۳۶۹

اور یہاں "ذریت" سے مراد خاص طور پر اولاد ہے، اور کبھی اس کا اطلاق آباؤ اجداد اور اولاد دونوں پر ہوتا ہے، اسی میں سے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: "اور ان کے لیے ایک نشانی یہ ہے کہ ہم نے ان کی ذریت کو سوار کیا" [یس: ۴۱] یعنی ان کے آباؤ اجداد کو (۱)۔ بیسویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: "میرا عہد ظالموں تک نہیں پہنچتا۔" "عہد" سے کیا مراد ہے اس میں اختلاف پایا جاتا ہے۔ ابو صالح نے ابن عباس سے روایت کی ہے کہ اس سے مراد نبوت ہے، اور سدی نے بھی یہی کہا ہے۔ مجاہد نے کہا: امامت۔ قتادہ نے کہا: ایمان۔ عطا نے کہا: رحمت۔ ضحاک نے کہا: اللہ تعالیٰ کا دین۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے: اس کا عہد اس کا حکم ہے (۲)۔ لفظ "عہد" کا اطلاق حکم پر ہوتا ہے؛ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "بیشک اللہ نے ہم سے عہد کیا ہے" [آل عمران: ۱۸۳] یعنی: ہمیں حکم دیا۔ اور فرمایا: "اے بنی آدم، کیا میں نے تم سے عہد نہیں لیا تھا" [یس: ۶۰]، یعنی: کیا میں نے تمہیں اس کا حکم نہیں دیا تھا؟ (۳) اور جب اللہ کا عہد اس کے احکامات ہیں تو اس کا ارشاد: "میرا عہد ظالموں تک نہیں پہنچتا" یعنی: یہ جائز نہیں کہ وہ اس مقام پر ہوں جن سے اللہ کے احکامات قبول کیے جائیں اور نہ ہی وہ ان پر قائم ہوں، جیسا کہ ان شاء اللہ اس کی وضاحت آگے آئے گی۔ معمر نے قتادہ سے اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے بارے میں روایت کیا: "میرا عہد ظالموں تک نہیں پہنچتا،" انہوں نے کہا: آخرت میں اللہ کا عہد ظالموں تک نہیں پہنچے گا (۴)۔ رہا دنیا کا معاملہ، تو ظالم نے اسے پا لیا، پس اس نے اس کے ذریعے امن پایا، کھایا، جیا اور دیکھا۔ زجاج نے کہا: یہ قول اچھا ہے، یعنی: یہ ظالموں کی امانی (سلامتی) تک نہیں پہنچتا، یعنی: میں انہیں اپنے عذاب سے بے خوف نہیں کرتا۔ سعید بن جبیر نے کہا: یہاں "ظالم" سے مراد مشرک ہے (۵)۔ ابن مسعود اور طلحہ بن مصرف نے پڑھا: "لا ینالُ عهدي الظالمون" یعنی 'الظالمون' کو رفع (پیش) کے ساتھ

پڑھا (۶)، باقی سب نے اسے نصب (زبر) کے ساتھ پڑھا ہے۔ حمزہ، حفص اور ابن محیصن نے "عہدی" میں 'یا' کو ساکن پڑھا، اور باقی سب نے اسے فتحہ (زبر) دیا (۷)۔

---

(۱) دیکھئے الواحدی کی الوسیط ۱/۲۰۳۔ (۲) الطبری ۲/۵۱۱-۵۱۳، اور ابن ابی حاتم ۱/۳۶۶، والنکت والعیون ۱/۱۸۵، وزاد المسیر ۱/۱۴۰، اور قتادہ کا قول: "ایمان" نسخوں میں اسی طرح ہے، اور شاید یہ "الامان" کی بدلی ہوئی شکل ہے جیسا کہ الطبری اور المحرر الوجیز ۱/۲۰۷ میں ہے۔ (۳) دیکھئے تفسیر البغوی ۱/۳۸۰، ۴/۱۶۔ (۴) نسخوں میں: "الظالمین"، اور جو ثابت ہے وہ تفسیر عبد الرزاق ۱/۵۸ اور تفسیر الطبری ۲/۵۱۴ سے ہے۔ (۵) اسے ابن ابی حاتم نے روایت کیا ۱/۳۶۷۔ (۶) القراءات الشاذة ص ۹، اور ہمیں طلحہ بن مصرف کی قرات نہیں ملی۔ (۷) تفسیر البغوی ۱/۱۱۲۔ اور دیکھئے السبعہ ص ۱۹۶-۱۹۷، والتیسیر ص ۶۶-۶۷۔ ابن محیصن دس قراء میں سے نہیں ہیں، بلکہ وہ چار شاذ قراءات والوں میں سے ایک ہیں۔

370 Surah Al-Baqarah: Verse 124

Twenty-first: A group of scholars deduced from this verse that the Imam (leader) must be from the people of justice, benevolence, and excellence, along with the strength to perform that role. This is whom the Prophet ﷺ commanded not to dispute the matter with its rightful people, based on what was previously said about it(1). As for the people of immorality, tyranny, and oppression, they are not fit for it; because of the Almighty's saying: {My covenant does not reach the wrongdoers}. For this reason, Ibn al-Zubayr and al-Husayn ibn Ali (may Allah be pleased with them) revolted, and the best of the people of Iraq and their scholars revolted against al-Hajjaj, and the people of Medina expelled the Umayyads and rose against them; thus was the battle of al-Harrah which Muslim ibn Uqbah inflicted upon them(2). The position held by the majority of scholars is that patience in obedience to an unjust leader is better than revolting against him, because in disputing with him and revolting against him is the replacement of security with fear, the shedding of blood, the setting free of the hands of the foolish, the launching of raids against Muslims, and corruption on earth. The first is the view of a group of the Mu'tazilah, and it is the doctrine of the Khawarij, so know it(3). Twenty-second: Ibn Khuwayz Mindad said: Everyone who was a wrongdoer could not be a prophet, a caliph, a judge, a mufti, nor an imam of prayer. What he narrates from the Legislator (Prophet) is not accepted, nor is his testimony accepted in legal rulings, except that he is not deposed for his immorality until the people of 'loosing and binding' (the elite decision-makers) depose him. And whatever of his rulings preceded that were in accordance with the truth are binding and not overturned. Malik(4) stated this regarding the Khawarij and the rebels: that their rulings are not overturned if they correctly applied a form of ijtihad (legal reasoning), and did not breach consensus or contradict the texts. We only said this because of the consensus of the Companions; that is because the Khawarij revolted in their days and it was not reported that the Imams followed up on their rulings, nor did they overturn any of them, nor did they retake the Zakat or re-implement the Hudud (prescribed punishments) which they had taken and implemented. This proves that if they correctly applied the method of ijtihad, their rulings were not interfered with.

(1) 1/406. (2) In the manuscripts and (M): Uqbah ibn Muslim, which is an error; see the report in Tarikh al-Tabari 5/483, Al-Kamil by Ibn al-Athir 4/112, and Al-Bidayah wa al-Nihayah 6/234 and 8/218. This Muslim was the commander of the expedition sent by Yazid to the people of Medina when they deposed him, and the predecessors used

to call him: Musrif ibn Uqbah. (3) Al-Istidhkar 14/39-41, and see Al-Tamhid 23/278-279. (4) See Al-Mudawwanah 2/48.

370 सूरा अल-बक़रह: आयत 124

इक्कीसवां: विद्वानों के एक समूह ने इस आयत से यह निष्कर्ष निकाला है कि इमाम (नेता) न्याय, परोपकार और श्रेष्ठता वाले लोगों में से होना चाहिए, साथ ही उस भूमिका को निभाने की शक्ति भी होनी चाहिए। यह वही है जिसके बारे में पैगंबर ﷺ ने आदेश दिया था कि इसके योग्य लोगों के साथ इस मामले में विवाद न करें, जैसा कि पहले बताया जा चुका है(1)। रही बात अनैतिकता, अत्याचार और दमन करने वालों की, तो वे इसके पात्र नहीं हैं; क्योंकि सर्वशक्तिमान का कथन है: {मेरा वादा अत्याचारियों तक नहीं पहुँचता}। इसी कारण से, इब्न अल-जुबैर और अल-हुसैन इब्न अली (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) ने विद्रोह किया, और इराक के सबसे अच्छे लोगों और उनके विद्वानों ने अल-हज्जाज के खिलाफ विद्रोह किया, और मदीना के लोगों ने उमय्यदों को निष्कासित कर दिया और उनके खिलाफ खड़े हो गए; इस प्रकार अल-हर्रह की लड़ाई हुई जो मुस्लिम इब्न उकबा ने उन पर थोपी थी(2)। अधिकांश विद्वानों का मत है कि एक अन्यायी शासक की आज्ञाकारिता में धैर्य रखना उसके विरुद्ध विद्रोह करने से बेहतर है, क्योंकि उसके साथ विवाद करने और उसके विरुद्ध विद्रोह करने से सुरक्षा का स्थान भय ले लेता है, रक्तपात होता है, मूर्खों के हाथ खुले छोड़ दिए जाते हैं, मुसलमानों पर हमले शुरू हो जाते हैं और पृथ्वी पर भ्रष्टाचार फैलता है। पहला विचार मुताज़िला के एक समूह का है, और यह ख्वारिज का सिद्धांत है, इसलिए इसे जान लें(3)। बाईसवां: इब्न खुवेज़ मिंदाद ने कहा: जो कोई अत्याचारी था वह न तो नबी, न खलीफा, न न्यायाधीश, न मुफ्ती और न ही नमाज का इमाम हो सकता था। शरीयत के मालिक (पैगंबर) से वह जो कुछ भी वर्णन करता है उसे स्वीकार नहीं किया जाता है, और न ही कानूनी फैसलों में उसकी गवाही स्वीकार की जाती है, सिवाय इसके कि उसे उसकी अनैतिकता के लिए तब तक पदच्युत नहीं किया जाता जब तक कि 'अहल अल-हल्ल वल-अक़्द' (अभिजात निर्णय लेने वाले) उसे पदच्युत न कर दें। और उसके जो भी निर्णय सच्चाई के अनुरूप पहले हो चुके थे, वे लागू रहेंगे और उन्हें रद्द नहीं किया जाएगा। मलिक(4) ने ख्वारिज और विद्रोहियों के बारे में यह स्पष्ट किया है: कि उनके फैसलों को रद्द नहीं किया जाएगा यदि उन्होंने सही ढंग से इज्तिहाद (कानूनी तर्क) के किसी रूप को लागू किया है, और आम सहमति का उल्लंघन नहीं किया है या ग्रंथों का विरोध नहीं किया है। हमने यह केवल सहाबा (साथियों) की आम सहमति के कारण कहा है; वह इसलिए क्योंकि ख्वारिज उनके दिनों में विद्रोह कर चुके थे और यह रिपोर्ट नहीं किया गया था कि इमामों ने उनके फैसलों का पीछा किया, न ही उन्होंने उनमें से किसी को पलटा, न ही उन्होंने जकात को फिर से लिया और न ही उन हुदूद (निर्धारित दंडों) को फिर

से लागू किया जिन्हें उन्होंने लिया और लागू किया था। यह साबित करता है कि यदि उन्होंने इज्तिहाद के तरीके को सही ढंग से लागू किया, तो उनके फैसलों में हस्तक्षेप नहीं किया गया।

(1) 1/406. (2) पांडुलिपियों और (म) में: उकबा इब्न मुस्लिम, जो एक त्रुटि है; देखें तारीख़ अल-तबरी 5/483, इब्न अल-अथिर द्वारा अल-कामिल 4/112, और अल-बिदाया वा अल-निहाया 6/234 और 8/218 में रिपोर्ट। यह मुस्लिम उस अभियान का कमांडर था जिसे यज़ीद ने मदीना के लोगों के पास भेजा था जब उन्होंने उसे पदच्युत कर दिया था, और पूर्वज उसे पुकारते थे: मुसरिफ इब्न उकबा। (3) अल-इस्तिधकार 14/39-41, और देखें अल-तमहीद 23/278-279। (4) देखें अल-मुदव्वना 2/48।

370 سورة البقرہ: آیت 124

اکیسواں: علماء کی ایک جماعت نے اس آیت سے یہ استدلال کیا ہے کہ امام عدل، احسان اور فضیلت والوں میں سے ہونا چاہیے، اور اس کام کو انجام دینے کی قوت بھی رکھتا ہو۔ یہی وہ شخص ہے جس کے بارے میں نبی ﷺ نے حکم دیا کہ معاملے کے اہل لوگوں سے جھگڑا نہ کیا جائے، جیسا کہ اس بارے میں پہلے بات ہو چکی ہے(1)۔ جہاں تک فسق و فجور اور ظلم و ستم والوں کا تعلق ہے، تو وہ اس کے اہل نہیں ہیں؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: {میرا عہد ظالموں کو نہیں پہنچتا}۔ اسی وجہ سے ابن الزبیر اور حسین بن علی رضی اللہ عنہم نے خروج کیا، اور عراق کے بہترین لوگوں اور ان کے علماء نے حجاج کے خلاف خروج کیا، اور اہل مدینہ نے بنو امیہ کو نکال باہر کیا اور ان کے خلاف اٹھ کھڑے ہوئے؛ چنانچہ 'حرہ' کا واقعہ پیش آیا جو مسلم بن عقبہ نے ان پر مسلط کیا تھا(2)۔ اکثر علماء کا موقف یہ ہے کہ جابر امام کی اطاعت پر صبر کرنا اس کے خلاف خروج کرنے سے بہتر ہے، کیونکہ اس سے جھگڑا کرنے اور اس کے خلاف خروج کرنے میں امن کی جگہ خوف، خونریزی، بیوقوفوں کے ہاتھ کھل جانے، مسلمانوں پر حملے شروع ہونے اور زمین میں فساد کا اندیشہ ہوتا ہے۔ پہلا موقف معتزلہ کے ایک گروہ کا ہے، اور یہی خوارج کا مذہب ہے، پس اسے جان لو(3)۔ بائیسواں: ابن خویز منداد نے کہا: ہر وہ شخص جو ظالم ہو، وہ نہ نبی ہو سکتا ہے، نہ خلیفہ، نہ حاکم، نہ مفتی اور نہ ہی نماز کا امام۔ اس سے وہ بات قبول نہیں کی جاتی جو وہ صاحبِ شریعت سے روایت کرے، اور نہ ہی احکام میں اس کی گواہی قبول کی جاتی ہے، سوائے اس کے کہ اسے اس کے فسق کی وجہ سے تب تک معزول نہیں کیا جائے گا جب تک کہ اہل حل و عقد اسے معزول نہ کر دیں۔ اور اس کے جو احکام پہلے حق کے مطابق گزر چکے ہوں وہ نافذ رہیں گے، انہیں منسوخ نہیں کیا جائے گا۔ امام مالک(4) نے

خوارج اور باغیوں کے بارے میں یہ صراحت کی ہے کہ ان کے احکام منسوخ نہیں کیے جائیں گے اگر انہوں نے اجتہاد کی کوئی صحیح صورت اختیار کی ہو، اور اجماع کی خلاف ورزی نہ کی ہو یا نصوص کی مخالفت نہ کی ہو۔ ہم نے یہ بات صحابہ کے اجماع کی وجہ سے کہی ہے؛ وہ اس طرح کہ خوارج ان کے دور میں نکلے تھے اور یہ منقول نہیں ہے کہ ائمہ نے ان کے احکام کا تعاقب کیا، نہ ان میں سے کسی کو منسوخ کیا، نہ دوبارہ زکوۃ لی، اور نہ ہی ان حدود کو دوبارہ قائم کیا جو انہوں نے لی تھیں اور قائم کی تھیں۔ یہ اس بات کی دلیل ہے کہ اگر وہ اجتہاد کی صحیح سمت میں ہوں تو ان کے احکام سے تعرض نہیں کیا جائے گا۔

(1) 406/1۔ (2) خطی نسخوں اور (م) میں: عقبہ بن مسلم ہے، جو کہ غلط ہے؛ دیکھیں تاریخ الطبری 483/5، الکامل لابن الاثیر 112/4، اور البدایہ والنہایہ 234/6 اور 218/8۔ یہ مسلم اس لشکر کا کمانڈر تھا جسے یزید نے اہل مدینہ کی طرف بھیجا تھا جب انہوں نے اسے معزول کر دیا تھا، اور سلف اسے 'مسرف بن عقبہ' کہتے تھے۔ (3) الاستذکار 14/39-41، اور دیکھیں التمہید 23/278-279۔ (4) دیکھیں المدونہ 48/2۔

Twenty-third: Ibn Khuwayz Mindad said: As for taking provisions from unjust leaders, there are three conditions for that:

If everything in their hands was taken according to the requirements of Sharia, then it is permissible to take it. The Companions and the Successors took from the hands of Al-Hajjaj and others.

If it is mixed, lawful and oppressive, as is in the hands of the princes today, then piety is to leave it, but it is permissible for the needy to take it. He is like a thief who has stolen money in his hand, and good lawful money that a man entrusted him with. If the thief comes to give it as charity to a person, it is permissible to take the charity from him, even if it might be that the thief is giving as charity some of what he stole, as long as nothing is known to be looted. Likewise, if he sells or buys, the contract is valid and binding—even if piety is to abstain from it—and that is because wealth is not forbidden in itself, but rather it is forbidden because of how it was acquired.

If what is in their hands is blatant injustice, it is not permissible to take it from their hands. If the money in their hands is usurped but its owner or claimant is not known, then it is as if it were found in the hands of thieves and highwaymen; it should be placed in the public treasury (Bayt al-Mal), and its owner should be awaited according to the extent of effort. If no owner is found, the Imam spends it on the interests of Muslims.

Allah Almighty's saying: {And [remember] when We made the House a place of return for the people and [a place of] security. And take, [O believers], from the standing place of Abraham a place of prayer. And We charged Abraham and Ishmael, [saying], "Purify My House for those who perform Tawaf and those who are staying [there] for worship and those who bow and prostrate [in prayer]."} (125)

Allah Almighty's saying: {And [remember] when We made the House a place of return for the people and [a place of] security} contains two issues:

First: Allah's saying: {We made} (Ja'alna) means 'We turned' (Sayyarna), because it takes two objects, as previously mentioned (1).

{The House} means the Kaaba.

{A place of return} (Mathabatan) means: a place to go back to; it is said: thaba, yathubu, mathaban, mathabatan, thu'uban, and thubanan. Mathabah is a verbal

noun used as an adjective, and it refers to the place to which one returns, i.e., goes back to. Waraqah ibn Nawfal said about the Kaaba:

---

(1) 1/343.

तेईसवां: इब्न खुवायज़ मिन्दाद ने कहा: जहाँ तक अत्याचारी शासकों से रसद (प्रावधान) लेने का सवाल है, इसकी तीन स्थितियाँ हैं:

यदि उनके हाथों में जो कुछ भी है वह शरीयत की आवश्यकताओं के अनुसार लिया गया है, तो उसे लेना जायज़ है। सहाबा और ताबईन ने अल-हज्जाज और अन्य लोगों के हाथों से लिया है।

यदि वह मिश्रित है, हलाल और ज़ुल्म का, जैसा कि आज के राजकुमारों के हाथों में है, तो परहेज़गारी इसे छोड़ने में है, लेकिन ज़रूरतमंदों के लिए इसे लेना जायज़ है। वह उस चोर की तरह है जिसके हाथ में चोरी का माल है, और अच्छा हलाल माल भी है जो किसी व्यक्ति ने उसे सौंपा है। यदि चोर किसी व्यक्ति को दान देने आता है, तो उससे दान लेना जायज़ है, भले ही यह संभव हो कि चोर अपनी चोरी के कुछ हिस्से को दान कर रहा हो, जब तक कि वह माल लूट का न माना जाए। इसी तरह, यदि वह बेचता या खरीदता है, तो अनुबंध वैध और बाध्यकारी है - भले ही परहेज़गारी इससे बचने में हो - और ऐसा इसलिए है क्योंकि धन अपने आप में हराम नहीं है, बल्कि वह इसके प्राप्त करने के तरीकों के कारण हराम होता है।

यदि उनके हाथों में जो कुछ है वह स्पष्ट अन्याय है, तो उनके हाथों से इसे लेना जायज़ नहीं है। यदि उनके हाथों में जो धन है वह हड़पा हुआ है लेकिन उसका मालिक या दावेदार ज्ञात नहीं है, तो यह वैसा ही है जैसे चोरों और डकैतों के हाथों में पाया गया हो; इसे बैतुल-माल (सार्वजनिक खजाना) में रखा जाना चाहिए, और प्रयास के अनुसार इसके मालिक का इंतज़ार किया जाना चाहिए। यदि मालिक नहीं मिलता है, तो इमाम इसे मुसलमानों के हितों पर खर्च करता है।

अल्लाह तआला का कथन: {और (याद करो) जब हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए लौटने का स्थान और शांति का स्थान बनाया, और इब्राहीम के खड़े होने की जगह को नमाज़ की जगह बनाओ। और हमने इब्राहीम और इसमाईल को ताकीद की कि मेरे घर को तवाफ़ करने वालों, एतिकाफ़ करने वालों और रुकू और सजदा करने वालों के लिए पाक-साफ रखो।} (125)

अल्लाह तआला का कथन: {और जब हमने इस घर को लोगों के लिए लौटने का स्थान और शांति का स्थान बनाया} इसमें दो मसले हैं:

पहला: अल्लाह का कथन: {हमने बनाया} (जालना) का अर्थ है 'हमने कर दिया' (सय्यरना), क्योंकि यह दो कर्मों (objects) की ओर जाता है, जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है (1)।

{घर} (अल-बैत) से तात्पर्य काबा है।

{लौटने का स्थान} (मसाबातन) अर्थात: वापस जाने का स्थान; कहा जाता है: 'साबा, यसूबु, मसाबन, मसाबातन, सुऊबन और सुबाानन'। मसाबा एक मस्तर (verbal noun) है जिसे विशेषण के रूप में इस्तेमाल किया गया है, और इसका तात्पर्य उस स्थान से है जिसकी ओर लौटा जाता है, अर्थात जहाँ बार-बार आया जाता है। वरका बिन नौफ़ल ने काबा के बारे में कहा:

---

(1) 1/343।

تیئیسواں: ابن خویز منداد نے کہا: جہاں تک ظالم حکمرانوں سے رزق لینے کا تعلق ہے، تو اس کی تین حالتیں ہیں:

اگر ان کے قبضے میں موجود تمام مال شرعی تقاضوں کے مطابق لیا گیا ہو، تو اسے لینا جائز ہے۔ صحابہ اور تابعین نے حجاج اور دوسروں کے ہاتھوں سے مال لیا ہے۔

اور اگر وہ حلال اور ظلم کا مجموعہ ہو، جیسا کہ آج کے امراء کے ہاتھوں میں ہے، تو تقویٰ اسے چھوڑنے میں ہے، لیکن ضرورت مند کے لیے اسے لینا جائز ہے۔ وہ اس چور کی طرح ہے جس کے ہاتھ میں چوری کا مال بھی ہے، اور وہ حلال مال بھی ہے جو کسی شخص نے اسے سونپا ہے۔ اگر وہ چور کسی انسان کو اس میں سے صدقہ دینے آئے، تو اس سے صدقہ لینا جائز ہے، اگرچہ یہ ممکن ہے کہ چور اپنی چوری کردہ چیز میں سے کچھ صدقہ کر رہا ہو، جب تک کہ وہ مال لوٹ مار کا معلوم نہ ہو۔ اسی طرح، اگر وہ خرید و فروخت کرے، تو عقد (معاہدہ) صحیح اور لازم ہے - اگرچہ تقویٰ اس سے بچنے میں ہے - اور اس کی وجہ یہ ہے کہ مال بذات خود حرام نہیں ہوتا بلکہ اپنے ذرائع کی وجہ سے حرام ہوتا ہے۔

اگر ان کے ہاتھوں میں موجود مال صریح ظلم ہو، تو ان کے ہاتھوں سے اسے لینا جائز نہیں ہے۔ اگر ان کے قبضے میں موجود مال غصب شدہ ہو لیکن اس کا کوئی مالک یا دعویدار معلوم نہ ہو، تو یہ ایسا ہی ہے جیسے چوروں اور راہزنوں کے ہاتھوں میں پایا جائے؛ اسے بیت المال میں رکھا جائے گا، اور پوری کوشش کے ساتھ اس کے مالک کا انتظار کیا جائے گا۔ اگر مالک معلوم نہ ہو سکے تو امام اسے مسلمانوں کے مفادات میں خرچ کر دے گا۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور (یاد کرو) جب ہم نے اس گھر کو لوگوں کے لیے لوٹنے کی جگہ اور امن کا مقام بنایا اور (حکم دیا کہ) ابراہیم کے کھڑے ہونے کی جگہ کو نماز کی جگہ بناؤ۔ اور ہم نے ابراہیم اور اسماعیل کو تاکید کی کہ میرے گھر کو طواف کرنے والوں، اعتکاف کرنے والوں اور رکوع و سجود کرنے والوں کے لیے پاک رکھو۔} (125)

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ہم نے اس گھر کو لوگوں کے لیے لوٹنے کی جگہ اور امن کا مقام بنایا} اس میں دو مسائل ہیں:

پہلا: اللہ کا ارشاد: {ہم نے بنایا} (جعلنا) بمعنی 'ہم نے کر دیا' (صیرنا)، کیونکہ یہ دو مفعولوں کی طرف متعدی ہوتا ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (1)۔

{گھر} (البیت) سے مراد کعبہ ہے۔

{لوٹنے کی جگہ} (مثابةً) یعنی: مرجع؛ کہا جاتا ہے: ثاب یثوب مثاباً ومثابةً وثؤوباً وثُوباناً۔ پس 'مثابة' مصدر ہے جسے صفت کے طور پر استعمال کیا گیا ہے، اور اس سے مراد وہ جگہ ہے جس کی طرف لوٹا جاتا ہے، یعنی رجوع کیا جاتا ہے۔ ورقہ بن نوفل نے کعبہ کے بارے میں کہا:

---

(1) 1/343۔

372 Surah Al-Baqarah: Verse 125

A place of return (mathaban)(1) for all the various tribes *** towards which the swift, diligent she-camels hasten.(2) Al-A'mash read it as "mathabaatin" in the plural.(3). It is possible that it is derived from "thawab" (reward), meaning: they are rewarded there. Mujahid said: "No one ever satisfies their desire from it."(4); The poet said: The House was made a place of return for them *** they never satisfy their desire from it for all eternity.(5) The original form is: mathwabah, the vowel of the 'waw' was transferred to the 'tha', then the 'waw' was changed to an 'alif' following "thaba yathubu"(6), and it is in the accusative case as the second object. The suffix 'ha' was added for intensification (mubalagha), because of the many who return, meaning: they go back; for rarely does anyone leave the House except feeling they haven't fulfilled their desire from it, so it is like nassabah (great genealogist) and 'allamah (great scholar). This was stated by Al-Akhfash(7). Others said: It is the 'ha' of the feminine noun form (masdar), and not for intensification(8). If it is asked: Not everyone who comes to it returns to it? It is said: It is not restricted to everyone who arrived at it, but rather the meaning is that it is never devoid of a group, and never lacks people seeking it(9), and Allah Almighty knows best.

---

(1) In (Kh) and (Z): mathab, which is a variant reading in the verse. (2) The verse is in Al-Umm by Ash-Shafi'i 2/120, and Al-Nukat wa al-'Uyun by Al-Mawardi 1/186, and Ibn Manzur attributed it in Al-Lisan (th-w-b) to Abu Talib, the uncle of the Prophet (PBUH). It is also in Tafsir al-Tabari 3/26, Al-Muharrar al-Wajiz 1/207, Tafsir al-Tabarsi 1/458, Al-Bahr al-Muhit 1/380, and Al-Bidaya wa al-Nihaya 2/297 - within a poem - with the narration: Al-ya'milat al-tala'i'. Abu Hayyan said: And it is narrated: Al-dhawamil. Meaning instead of Al-tala'i'. Sheikh Mahmoud Shakir said in his commentary on Al-Tabari's Tafsir: It seems that Ash-Shafi'i (may Allah have mercy on him) erred in the narration of the verse, and the author of Al-Lisan erred in its attribution; it was confused with Abu Talib's poetry in his famous poem. "Afna' al-qaba'il" means their mixtures and various groups. A beast "khabba" (trots), which is a type of running. "Al-ya'milat" is the plural of ya'milah, which is a she-camel trained for work. "Al-'aml" means speed and haste. "Al-dhawamil" is the plural of dhamilah, which is a she-camel that travels with a soft yet fast pace. (3) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 9, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/207. (4) Narrated by Al-Tabari 2/518. (5) We did not find its source, and it is in Al-Durr al-Masun 2/104, and Al-Bahr al-Muhit 1/380. (6) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/259. (7) Ma'ani al-Qur'an 1/335, and the author quoted him via Ibn 'Atiyyah

in Al-Muharrar al-Wajiz 1/207. (8) Al-Muharrar al-Wajiz 1/207. (9) Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi 1/38.

372 सूरत अल-बकरा: आयत 125

तमाम कबीलों के लिए लौटने की एक जगह (मथाबन)(1) *** जिसकी ओर तेज़ रफ़्तार, मेहनती ऊँटनियां दौड़ती हैं।(2) अल-अअमश ने इसे बहुवचन में "मथाबातिन" पढ़ा है(3)। यह भी संभव है कि यह "थवाब" (पुण्य) से बना हो, यानी: उन्हें वहाँ पुण्य मिलता है। मुजाहिद ने कहा: "कोई भी उससे अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाता।"(4); कवि ने कहा: घर (काबा) को उनके लिए लौटने की जगह बनाया गया *** वे कभी भी युगों-युगों तक उससे अपनी इच्छा पूरी नहीं कर पाते।(5) मूल रूप है: मथवबह (mathwabah), 'वाव' की हरकत को 'था' पर स्थानांतरित कर दिया गया, फिर "थाब यथूबु"(6) के अनुसरण में 'वाव' को 'अलिफ़' में बदल दिया गया, और यह दूसरे कर्म के रूप में कर्म कारक में है। प्रत्यय 'हा' अतिशयोक्ति (मुबालग़ा) के लिए जोड़ा गया था, क्योंकि लौटने वालों की संख्या बहुत अधिक है, यानी: वे वापस जाते हैं; क्योंकि शायद ही कोई घर छोड़ता है सिवाय इसके कि वह महसूस करता है कि उसने अपनी इच्छा पूरी नहीं की है, इसलिए यह नस्साबह (महान वंशावली विशेषज्ञ) और अल्लामह (महान विद्वान) की तरह है। यह अल-अखफ़श द्वारा कहा गया था(7)। अन्य लोगों ने कहा: यह स्त्रीलिंग संज्ञा रूप (मस्दर) का 'हा' है, अतिशयोक्ति के लिए नहीं(8)। यदि पूछा जाए: क्या हर कोई जो वहां आता है वह वापस लौटता है? कहा जाता है: यह केवल उन्हीं तक सीमित नहीं है जो वहां पहुंचे, बल्कि इसका अर्थ यह है कि यह कभी भी लोगों के समूह से खाली नहीं होता, और वहां जाने वाले लोगों की कभी कमी नहीं होती(9), और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है।

---

(1) (ख़) और (ज़) में: मथाब, जो आयत में एक पाठ है। (2) यह पद्य अल-शाफई की अल-उम्म 2/120, और अल-मावर्दी की अल-नुकात व अल-उयून 1/186 में है, और इब्न मंजूर ने इसे लिसान अल-अरब (थ-व-ब) में पैगंबर (स.अ.व.) के चाचा अबू तालिब से जोड़ा है। यह तफ़्सीर अल-तबरी 3/26, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/207, तफ़्सीर अल-तबरसी 1/458, अल-बहर अल-मुहीत 1/380, और अल-बिदाया व अल-निहाया 2/297 में एक कविता के भीतर है - इस वर्णन के साथ: अल-यअमिलात अल-तलाई। अबू हयान ने कहा: और यह वर्णित है: अल-धवामिल। यानी अल-तलाई के बजाय। शेख महमूद शाकिर ने तबरी की तफ़्सीर पर अपनी टिप्पणी में कहा: ऐसा लगता है कि अल-शाफई (अल्लाह उन पर रहम करे) ने पद्य के वर्णन में गलती की, और लिसान के लेखक ने इसके श्रेय में गलती की; यह उनकी प्रसिद्ध कविता में अबू तालिब की शायरी के साथ भ्रमित हो गया। "अफ़ना अल-क़बइल" का अर्थ है उनका मिश्रण और विभिन्न समूह। एक जानवर "ख़ब्बा" (दुलकी

चलता है), जो दौड़ने का एक प्रकार है। "अल-यअमिलात" यअमिला का बहुवचन है, जो काम के लिए प्रशिक्षित ऊँटनी है। "अल-अमल" का अर्थ है गति और जल्दबाज़ी। "अल-धवामिल" धामिला का बहुवचन है, जो एक ऐसी ऊँटनी है जो नरम लेकिन तेज़ गति से चलती है। (3) अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह पृ. 9, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/207। (4) अल-तबरी द्वारा उद्धृत 2/518। (5) हमें इसका स्रोत नहीं मिला, और यह अल-दुर्र अल-मसूद 2/104 और अल-बहर अल-मुहीत 1/380 में है। (6) अल-नहस द्वारा इराब अल-कुरान 1/259। (7) मानी अल-कुरान 1/335, और लेखक ने इब्न अतिय्या के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/207 में उनका उद्धरण दिया है। (8) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/207। (9) इब्न अल-अरबी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/38।

372 سورة البقرہ: آیت 125

تمام قبائل کے لوگوں کے لیے لوٹنے کی ایک جگہ (مثاباً)(1) *** جس کی طرف تیز رفتار، محنتی اونٹنیاں دوڑتی ہیں۔(2) اور اعمش نے اسے جمع کے صیغے میں «مثابات» پڑھا ہے(3)۔ اور یہ بھی ممکن ہے کہ یہ ثواب سے ہو، یعنی: انہیں وہاں ثواب دیا جاتا ہے۔ اور مجاہد نے کہا: کوئی بھی اس سے اپنی حاجت پوری نہیں کر پاتا(4)؛ شاعر نے کہا: بیت (کعبہ) کو ان کے لیے لوٹنے کی جگہ بنایا گیا *** وہ کبھی بھی زمانے بھر میں اس سے اپنی حاجت پوری نہیں کر پاتے۔(5) اور اصل (لفظ) مَثْوَبَة ہے، واؤ کی حرکت کو ثاء پر منتقل کر دیا گیا، پھر «ثاب یثوب»(6) کے اتباع میں واؤ کو الف میں بدل دیا گیا، اور یہ مفعولِ ثانی ہونے کی بنا پر منصوب ہے۔ اور 'ہا' مبالغہ کے لیے داخل ہوئی، کیونکہ لوٹنے والوں کی کثرت ہے، یعنی: وہ بار بار رجوع کرتے ہیں؛ کیونکہ شاید ہی کوئی بیت اللہ سے جدا ہوتا ہے مگر وہ یہ دیکھتا ہے کہ اس نے ابھی تک اپنی حاجت پوری نہیں کی، پس یہ نَسّابة اور عَلّامة کی طرح ہے۔ یہ الاخفش نے کہا(7)۔ اور دوسروں نے کہا: یہ مصدر کی تانیث کی 'ہا' ہے، مبالغہ کے لیے نہیں ہے(8)۔ پس اگر کہا جائے کہ: کیا ہر وہ شخص جو وہاں آتا ہے، اس کی طرف دوبارہ لوٹتا ہے؟ تو جواب دیا جائے گا: یہ صرف ان لوگوں کے لیے خاص نہیں ہے جو وہاں پہنچے، بلکہ معنی یہ ہے کہ وہ لوگوں کی جماعت سے کبھی خالی نہیں رہتا، اور نہ ہی وہاں آنے والوں کی کبھی کمی ہوتی ہے(9)، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

---

(1) (خ) اور (ظ) میں: مثاب، اور یہ بیت میں ایک روایت ہے۔ (2) یہ شعر شافعی کی الام 2/120، اور ماوردی کی النکت والعیون 1/186 میں ہے، اور ابن منظور نے لسان العرب (ثوب) میں اسے نبی ﷺ کے چچا ابو طالب کی طرف منسوب کیا ہے۔ اور یہ تفسیر طبری 3/26، المحرر

الوجیز 1/207، تفسیر طبرسی 1/458، البحر المحیط 1/380، اور البدایہ والنہایہ 2/297 میں - ایک قصیدے کے ضمن میں - اس روایت کے ساتھ ہے: الیعملات الطلائع۔ ابو حیان نے کہا: اور روایت کیا گیا ہے: الذوامل۔ یعنی الطلائع کی جگہ۔ شیخ محمود شاکر نے تفسیر طبری پر اپنے حاشیے میں کہا: ظاہر یہ ہے کہ شافعی رحمہ اللہ نے بیت کی روایت میں غلطی کی، اور صاحبِ لسان نے اس کی نسبت میں غلطی کی، ان پر ابو طالب کے اپنے مشہور قصیدے کے اشعار سے شبہ ہوا۔ «افناء القبائل»: ان کے اختلاط اور مختلف گروہ۔ «خبت الدابة تخبُّ خبباً»: یہ دوڑنے کی ایک قسم ہے۔ «الیعملات»: یعملة کی جمع ہے، اور یہ وہ اونٹنی ہے جو کام کی عادی ہو۔ «العمل»: تیزی اور جلدی۔ «الذوامل»: ذاملة کی جمع ہے، اور یہ وہ اونٹنی ہے جو نرم لیکن تیز رفتاری سے چلے۔ (3) القراءات الشاذہ ص 9، اور المحرر الوجیز 1/207۔ (4) اسے طبری نے روایت کیا 2/518۔ (5) ہمیں اس کی تخریج نہیں ملی، اور یہ الدر المصون 2/104، اور البحر المحیط 1/380 میں ہے۔ (6) اعراب القرآن للنحاس 1/259۔ (7) معانی القرآن 1/335، اور مصنف نے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز 1/207 میں ان سے نقل کیا ہے۔ (8) المحرر الوجیز 1/207۔ (9) احکام القرآن لابن العربی 1/38۔

Page 373 Surah Al-Baqarah: Verse 125

The Second point: The words of the Almighty: {and a place of security} [Al-Baqarah: 125]. Abu Hanifa and a group of jurists from different regions used this to argue against carrying out legal punishments (Hudud) in the Sanctuary (Haram) for a married adulterer or a thief if they seek refuge in it. They supported this with the words of the Almighty: {and whoever enters it shall be safe} [Al-Imran: 97], as if He said: "Grant safety to whoever enters the House."

The correct view is that legal punishments should be carried out in the Sanctuary, and that this [provision] is abrogated. This is because there is consensus that one is not killed inside the House (the Kaaba), but is killed outside it. The disagreement is only over whether one is killed in the Sanctuary or not. The term "the House" does not literally apply to the entire Sanctuary. They have agreed that if someone kills within the Sanctuary, he is killed in retaliation (Qisas). Similarly, if he commits a crime requiring a punishment, it is carried out on him there. If he wages war in it, he is fought and killed in that place.

Abu Hanifa said: "Whoever seeks refuge in the Sanctuary is not killed in it nor pursued, but is continuously restricted until he dies or leaves." So we kill him with the sword, while he (Abu Hanifa's view) kills him with hunger and obstruction. Which killing is more severe than this? In His words: {and a place of security}, there is an emphasis on the command to face the Kaaba, meaning: this virtue is not found in the Holy House (Jerusalem), nor do people perform pilgrimage to it. Whoever seeks refuge in the Sanctuary is safe from being raided (1). Clarification of this will come in Surah Al-Ma'idah (2), God willing.

The words of the Almighty: {And take the station of Abraham as a place of prayer}. There are three issues regarding this: First: His words {And they took}. Nafi' and Ibn 'Amir read it with a 'fatha' on the 'kha' (Wattakhadhu) as a statement (past tense), referring to the followers of Abraham who took it. It is then conjoined to {We made}, meaning: We made the House a place of return and they took it as a place of prayer. It is also said: it is conjoined to an implied "when" (idh), as if He said: "And when We made the House a place of return and when they took..." According to the first, it is one sentence; according to the second, it is two sentences. The majority of reciters read: {And take} with a 'kasra' on the 'kha' (Wattakhidhu), as a command (3). They separated it from the preceding part and made it a sentence conjoined to another. Al-Mahdawi said: It is possible for it to be conjoined to {Remember My favor} [Al-

Baqarah: 122], as if He said that to the Jews; or conjoined to the meaning of "when We made the House," because its meaning is: "Remember when We made." Or conjoined to the meaning of {a place of return}, because its meaning is "repent" (4).

Footnotes: (1) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/38-39 and 284-285, and Ahkam al-Quran by al-Jassas 2/21-23. (2) In the interpretation of verse (97) thereof. (3) Al-Sab'ah p. 169, and Al-Taysir p. 76. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/207-208.

पृष्ठ ३७३ सूरा अल-बकरा: आयत १२५

दूसरा बिंदु: सर्वशक्तिमान के शब्द: {और सुरक्षा का स्थान} [अल-बकरा: १२५]। अबू हनीफा और विभिन्न क्षेत्रों के न्यायविदों के एक समूह ने इसका उपयोग यह तर्क देने के लिए किया कि यदि कोई विवाहित व्यभिचारी या चोर अभयारण्य (हरम) में शरण लेता है, तो वहां कानूनी सजा (हुदूद) नहीं दी जानी चाहिए। उन्होंने सर्वशक्तिमान के शब्दों के साथ इसका समर्थन किया: {और जो कोई भी इसमें प्रवेश करेगा वह सुरक्षित होगा} [आल-इमरान: ९७], जैसे कि उसने कहा: "जो कोई घर में प्रवेश करे उसे सुरक्षा प्रदान करो।"

सही विचार यह है कि अभयारण्य में कानूनी सजा दी जानी चाहिए, और यह [प्रावधान] निरस्त कर दिया गया है। ऐसा इसलिए है क्योंकि इस पर आम सहमति है कि किसी को घर (काबा) के अंदर नहीं मारा जाता है, लेकिन उसके बाहर मारा जाता है। असहमति केवल इस बात पर है कि अभयारण्य में किसी को मारा जाता है या नहीं। "घर" शब्द शाब्दिक रूप से पूरे अभयारण्य पर लागू नहीं होता है। वे इस बात पर सहमत हुए हैं कि यदि कोई अभयारण्य के भीतर किसी की हत्या करता है, तो उसे प्रतिशोध (किसास) में मार दिया जाता है। इसी तरह, यदि वह ऐसा कोई अपराध करता है जिसके लिए सजा की आवश्यकता होती है, तो उसे वहां वह सजा दी जाती है। यदि वह उसमें युद्ध करता है, तो उससे लड़ा जाता है और उसी स्थान पर मार दिया जाता है।

अबू हनीफा ने कहा: "जो कोई अभयारण्य में शरण लेता है उसे वहां न तो मारा जाता है और न ही उसका पीछा किया जाता है, बल्कि उसे तब तक प्रतिबंधित रखा जाता है जब तक कि वह मर न जाए या बाहर न निकल जाए।" तो हम उसे तलवार से मारते हैं, जबकि वह (अबू हनीफा का विचार) उसे भूख और बाधा से मारता है। इससे अधिक गंभीर हत्या और क्या हो सकती है? उसके शब्दों में: {और सुरक्षा का स्थान}, काबा की ओर मुख करने के आदेश पर जोर दिया गया है, जिसका अर्थ है: यह गुण पवित्र सदन (यरूशलेम) में नहीं पाया जाता है, और न ही लोग वहां तीर्थयात्रा करते हैं। जो कोई अभयारण्य में शरण मांगता है वह छापे मारे जाने से सुरक्षित है (१)। इसका स्पष्टीकरण सूरा अल-मायदा (२) में आएगा, ईश्वर ने चाहा तो।

सर्वशक्तिमान के शब्द: {और इब्राहिम के स्थान को प्रार्थना स्थल के रूप में अपनाओ}। इसके संबंध में तीन विषय हैं: पहला: उसके शब्द {और उन्होंने लिया}। नाफी' और इब्न आमिर ने इसे 'खा' पर 'फतहा' (वत्तखज़ू) के साथ एक बयान (भूतकाल) के रूप में पढ़ा है, जो इब्राहिम के उन अनुयायियों

की ओर इशारा करता है जिन्होंने इसे अपनाया था। फिर यह {हमने बनाया} से जुड़ा है, जिसका अर्थ है: हमने घर को लौटने का स्थान बनाया और उन्होंने इसे प्रार्थना स्थल के रूप में अपनाया। यह भी कहा गया है: यह एक निहित "जब" (इज़) से जुड़ा है, जैसे कि उसने कहा: "और जब हमने घर को लौटने का स्थान बनाया और जब उन्होंने लिया..." पहले के अनुसार, यह एक वाक्य है; दूसरे के अनुसार, ये दो वाक्य हैं। अधिकांश पाठकों ने पढ़ा है: {और अपनाओ} 'खा' पर 'कसरा' (वत्तखिज़ू) के साथ, एक आदेश के रूप में (३)। उन्होंने इसे पिछले भाग से अलग कर दिया और इसे दूसरे वाक्य से जुड़ा एक वाक्य बना दिया। अल-महदवी ने कहा: यह संभव है कि यह {मेरे अनुग्रह को याद करो} [अल-बकरा: १२२] से जुड़ा हो, जैसे कि उसने यहूदियों से कहा हो; या "जब हमने घर बनाया" के अर्थ से जुड़ा हो, क्योंकि इसका अर्थ है: "याद करो जब हमने बनाया।" या {लौटने का स्थान} के अर्थ से जुड़ा हो, क्योंकि इसका अर्थ है "तौबा करो" (४)।

पादलेख: (१) अहकाम अल-कुरान इब्न अल-अरबी द्वारा १/३८-३९ और २८४-२८५, और अहकाम अल-कुरान अल-जस्सास द्वारा २/२१-२३। (२) इसकी आयत (९७) की व्याख्या में। (३) अल-सब'आ पृ. १६९, और अल-तयसीर पृ. ७६। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०७-२०८।

صفحہ ۳۷۳ سورہ البقرہ: آیت ۱۲۵

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَأَمْنًا} (اور جائے امن)۔ امام ابوحنیفہ اور فقہاء کی ایک جماعت نے اس سے استدلال کیا ہے کہ اگر کوئی شادی شدہ زانی یا چور حرم میں پناہ لے لے تو وہاں اس پر حد قائم نہ کی جائے۔ انہوں نے اللہ تعالیٰ کے اس فرمان سے اس کی تائید کی: {وَمَن دَخَلَهُ كَانَ عَامِنًا} [آل عمران: ۹۷] (جو اس میں داخل ہوا وہ مامون ہو گیا) گویا اس کا مطلب یہ ہے کہ: جو گھر میں داخل ہو اسے امن دو۔

صحیح قول یہ ہے کہ حرم میں حدود قائم کی جائیں گی، اور یہ حکم منسوخ ہے۔ کیونکہ اس پر اتفاق ہے کہ بیت اللہ (کعبہ) کے اندر قتل نہیں کیا جائے گا، بلکہ بیت اللہ سے باہر قتل کیا جائے گا۔ اختلاف صرف اس میں ہے کہ حرم میں قتل کیا جائے گا یا نہیں؟ اور حرم پر حقیقت میں "بیت" (گھر) کا اطلاق نہیں ہوتا۔ فقہاء کا اس پر اجماع ہے کہ اگر کسی نے حرم میں قتل کیا تو اسے قصاص میں قتل کیا جائے گا، اور اگر اس نے کوئی ایسی حد والا کام کیا جس میں اس سے بدلہ لیا جانا ہو تو اس سے وہ بدلہ لیا جائے گا، اور اگر اس نے حرم میں لڑائی کی تو اس سے لڑا جائے گا اور وہیں قتل کیا جائے گا۔

امام ابوحنیفہ نے فرمایا: "جو شخص حرم میں پناہ لے لے اسے وہاں قتل نہیں کیا جائے گا اور نہ ہی اس کا پیچھا کیا جائے گا، بلکہ اس پر عرصہ حیات تنگ کر دیا جائے گا یہاں تک کہ وہ مر جائے یا باہر نکل آئے۔" (مؤلف کہتے ہیں کہ) تو ہم اسے تلوار سے قتل کرتے ہیں اور وہ (امام صاحب) اسے بھوک اور روکنے سے قتل کرتے ہیں، تو بھلا اس سے بڑھ کر کون سا قتل سخت ہوگا؟ اور اللہ کے فرمان "وأَمْناً" میں کعبہ کی طرف رخ کرنے کے حکم کی تاکید ہے، یعنی: بیت المقدس میں یہ فضیلت نہیں ہے، اور نہ ہی لوگ اس کا حج کرتے ہیں، اور جس نے حرم کی پناہ لی

وہ اس سے مامون ہو گیا کہ اس پر حملہ کیا جائے (۱)۔ ان شاء اللہ اس کا بیان "سورہ المائدہ" (۲) میں آئے گا۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَاتَّخِذُوا مِن مَّقَامِ إِبْرَاهِيمَ مُصَلًّى} (اور ابراہیم کے کھڑے ہونے کی جگہ کو نماز کا مقام بنا لو)۔ اس میں تین مسائل ہیں: پہلا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا فرمان "واتَّخَذُوا"۔ نافع اور ابن عامر نے اسے 'خا' کے زبر کے ساتھ (وَاتَّخَذُوا) خبریہ صیغے کے طور پر پڑھا ہے، ان لوگوں کے بارے میں جنہوں نے حضرت ابراہیم کی پیروی کرتے ہوئے اسے اپنایا۔ اور یہ "جعلنا" پر معطوف ہے، یعنی: ہم نے گھر کو جائے بازگشت بنایا اور انہوں نے اسے نماز کی جگہ بنا لیا۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ یہ "إذ" (جب) کے مقدر ہونے پر معطوف ہے، گویا فرمایا: اور جب ہم نے گھر کو جائے بازگشت بنایا اور جب انہوں نے اپنایا۔ تو پہلے قول کے مطابق یہ ایک ہی جملہ ہے، اور دوسرے قول کے مطابق دو جملے ہیں۔ اور جمہور قراء نے اسے 'خا' کے زیر کے ساتھ (وَاتَّخِذُوا) امر کے طور پر پڑھا ہے (۳)، انہوں نے اسے پہلے کلام سے الگ کر دیا اور اسے جملہ مستانفہ (نیا جملہ) بنا دیا جو پہلے جملے پر معطوف ہے۔ مہدوی نے کہا: یہ جائز ہے کہ یہ {أَذْكُرُوا نِعْمَتِيَ} [البقرة: ۱۲۲] پر معطوف ہو گویا اللہ نے یہ یہودیوں سے فرمایا ہے، یا "اذ جعلنا البيت" کے معنی پر معطوف ہو کیونکہ اس کا معنی ہے: یاد کرو جب ہم نے بنایا۔ یا "مثابةً" کے معنی پر معطوف ہو کیونکہ اس کا معنی ہے: توبہ کرو (۴)۔

حواشی: (۱) احکام القرآن لابن العربی ۱/۳۸-۳۹ اور ۲۸۴-۲۸۵، اور احکام القرآن للجصاص ۲/۲۱-۲۳۔ (۲) اس کی آیت (۹۷) کی تفسیر میں۔ (۳) السبعة ص ۱۶۹، اور التیسیر ص ۷۶۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۲۰۷-۲۰۸۔

374 Surah Al-Baqarah: Verse 125

Second: Ibn Umar narrated that Umar said: I agreed with my Lord in three things: regarding the Station of Ibrahim, regarding the Hijab, and regarding the captives of Badr. It was narrated by Muslim and others(1). And Bukhari(2) narrated it from Anas who said: Umar said: I agreed with Allah in three, or my Lord agreed with me in three... the hadith. And Abu Dawood Al-Tayalisi narrated it in his "Musnad"(3) saying: Hammad bin Salamah narrated to us, Ali bin Zaid narrated to us, from Anas bin Malik who said: Umar said: I agreed with my Lord in four: I said: O Messenger of Allah, if only you would pray behind the Station? So this verse was revealed: ﴿And take the station of Ibrahim as a place of prayer﴾. And I said: O Messenger of Allah, if only you would impose the hijab on your wives, for the righteous and the wicked enter upon them? So Allah revealed: ﴿And when you ask them for anything, ask them from behind a partition﴾ [Al-Ahzab: 53]. And this verse was revealed: ﴿And certainly did We create man from an extract of clay﴾ [Al-Mu'minun: 12], so when it was revealed, I said: "Blessed be Allah, the best of creators", so it was revealed: ﴿So blessed is Allah, the best of creators﴾ [Al-Mu'minun: 14]. And I entered upon the wives of the Prophet (PBUH) and said: "You must stop or Allah will replace you with wives better than you"; so the verse was revealed: ﴿Perhaps his Lord, if he divorces you...﴾ [At-Tahrim: 5]. I said: This narration does not mention the captives, so Umar's agreements were in five(4). Third: His saying (Exalted): ﴿from the Station (Maqam)﴾. Maqam in the language: the place of the two feet. An-Nahhas said(5): "Maqam" from "qama yaqumu" (to stand), it can be a verbal noun and a noun for the place. And "Muqam" is from "aqama" (to stay). As for the saying of Zuhair: And among them are stations whose faces are beautiful, and clubs frequented by speech and action(6).

---

(1) Sahih Muslim (2399). Also narrated by Ibn Abi Asim in As-Sunnah (1276), Ibn Qani' in Mu'jam al-Sahaba 2/223, Al-Tabarani in Al-Awsat (5896), and Abu Nu'aym in Hilyat al-Awliya 42/1. (2) In his Sahih (402) and (4483), and it is in Musnad Ahmad (157). (3) Number (43). (4) Al-Hafiz Ibn Hajar said in Fath al-Bari 505/1: At-Tirmidhi authenticated [3682] from the hadith of Ibn Umar that he said: No command ever came to the people that they spoke about, but the Quran was revealed according to what Umar said. This indicates the frequency of his agreements, and most of what we have found by specification is about ten, but that is according to the narration. (5) I'rab al-Quran 259/1. (6) Diwan p. 113 with commentary by Tha'lab, and it occurred in the narration of Al-A'lam Al-Shantmari p. 42: "wujuhohum" (their faces), substitute for: "wujuhoha".

374 सूरह अल-बकराह: आयत 125

दूसरा: इब्न उमर ने वर्णन किया कि उमर ने कहा: मैं तीन बातों में अपने रब से सहमत हुआ: इब्राहिम के स्थान (मकाम-ए-इब्राहिम) के बारे में, हिजाब के बारे में, और बद्र के कैदियों के बारे में। इसे मुस्लिम और अन्य ने रिपोर्ट किया है(1)। और बुखारी(2) ने अनस से रिवायत किया कि उमर ने कहा: मैं तीन चीजों में अल्लाह से सहमत हुआ, या मेरे रब ने तीन चीजों में मुझसे सहमति जताई... हदीस। और अबू दाऊद अल-तायालिसी ने अपने "मुसनद"(3) में इसे रिवायत किया और कहा: हमें हम्माद बिन सलमा ने बताया, हमें अली बिन ज़ैद ने बताया, अनस बिन मलिक से, जिन्होंने कहा: उमर ने कहा: मैं चार चीजों में अपने रब से सहमत हुआ: मैंने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, क्या ही अच्छा होता यदि आप मकाम (इब्राहिम) के पीछे नमाज़ पढ़ते? तो यह आयत उतरी: ﴿और इब्राहिम के स्थान को नमाज़ की जगह बना लो﴾। और मैंने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, यदि आप अपनी पत्नियों पर हिजाब लागू करते, क्योंकि उनके पास नेक और बुरे दोनों तरह के लोग आते हैं? तो अल्लाह ने उतारा: ﴿और जब तुम उनसे कोई चीज़ मांगो, तो पर्दे के पीछे से मांगो﴾ [अल-अहज़ाब: 53]। और यह आयत उतरी: ﴿और निश्चित रूप से हमने मनुष्य को मिट्टी के सत्व से बनाया है﴾ [अल-मुमिनून: 12], तो जब यह उतरी, तो मैंने कहा: "अल्लाह बहुत बरकत वाला है, जो सबसे उत्तम रचनाकार है", तो आयत उतरी: ﴿अत: अल्लाह बहुत बरकत वाला है, जो सबसे उत्तम रचनाकार है﴾ [अल-मुमिनून: 14]। और मैं नबी (स.अ.व.) की पत्नियों के पास गया और कहा: "तुम्हें रुक जाना चाहिए वरना अल्लाह तुम्हें तुमसे बेहतर पत्नियों से बदल देगा"; तब आयत उतरी: ﴿शायद उसका रब, यदि वह तुम्हें तलाक दे दे...﴾ [अत-तहरीम: 5]। मैंने कहा: इस रिवायत में कैदियों का उल्लेख नहीं है, इसलिए उमर की सहमतियाँ पाँच बातों में हुईं(4)। तीसरा: अल्लाह तआला का कहना: ﴿मकाम से﴾। भाषा में मकाम का अर्थ है: दोनों पैरों के खड़े होने की जगह। अन-नहस ने कहा(5): "मकाम" 'कामा यकूमू' (खड़े होना) से बना है, यह एक क्रियावाचक संज्ञा और स्थान का नाम दोनों हो सकता है। और "मुकाम" 'अकामा' (ठहरना) से बना है। जहाँ तक ज़ुहैर के कथन का प्रश्न है: और उनमें ऐसे स्थान हैं जिनके चेहरे सुंदर हैं, और ऐसी सभाएँ हैं जहाँ बातचीत और कार्य होते रहते हैं(6)।

---

(1) सहीह मुस्लिम (2399)। इब्न अबी आसिम ने अस-सुन्नाह (1276) में, इब्न कानी ने मुअजम अल-सहाबा 2/223 में, अल-तबरानी ने अल-अवसत (5896) में, और अबू नुऐम ने हिलियत अल-औलिया 42/1 में भी इसे रिवायत किया है। (2) अपनी सहीह (402) और (4483) में, और यह मुसनद अहमद (157) में है। (3) संख्या (43)। (4) अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने फ़तह अल-बारी 505/1 में कहा: अत-

तिर्मिज़ी ने इब्न उमर की हदीस [3682] से इसे प्रमाणित किया है कि उन्होंने कहा: लोगों के पास कभी कोई ऐसा आदेश नहीं आया जिसके बारे में उन्होंने बात की हो, लेकिन कुरान उसी के अनुसार उतरा जो उमर ने कहा था। यह उनकी सहमतियों की बहुलता को दर्शाता है, और हमने विशेष रूप से जो पाया है वह लगभग दस है, लेकिन यह रिवायत के अनुसार है। (5) इराब अल-कुरान 259/1। (6) दीवान पृष्ठ 113, थलाब की व्याख्या के साथ, और यह अल-आलम अल-शंतमरी की रिवायत पृष्ठ 42 में आया है: "वुजूहुहुम" (उनके चेहरे), इसके बदले में: "वुजूहुहा"।

374 سورہ البقرہ : آیت ۱۲۵

دوسری بات: ابن عمر رضی اللہ عنہ سے مروی ہے، انہوں نے کہا: حضرت عمر رضی اللہ عنہ نے فرمایا: میں نے تین چیزوں میں اپنے رب کی موافقت کی: مقامِ ابراہیم کے بارے میں، حجاب کے بارے میں، اور بدر کے قیدیوں کے بارے میں۔ اسے مسلم اور دیگر محدثین نے روایت کیا ہے(۱)۔ اور بخاری(۲) نے اسے حضرت انس رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے کہ حضرت عمر رضی اللہ عنہ نے فرمایا: میں نے تین چیزوں میں اللہ کی موافقت کی، یا میرے رب نے تین چیزوں میں میری موافقت کی... الحدیث۔ اور ابو داؤد الطیالسی نے اپنی "مسند"(۳) میں اسے روایت کیا اور کہا: ہمیں حماد بن سلمہ نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہمیں علی بن زید نے حضرت انس بن مالک رضی اللہ عنہ سے بیان کیا، انہوں نے کہا: حضرت عمر رضی اللہ عنہ نے فرمایا: میں نے چار چیزوں میں اپنے رب کی موافقت کی: میں نے کہا: اے اللہ کے رسول، کاش آپ مقامِ ابراہیم کے پیچھے نماز پڑھتے؟ تو یہ آیت نازل ہوئی: ﴿اور مقامِ ابراہیم کو نماز کی جگہ بنا لو﴾۔ اور میں نے کہا: اے اللہ کے رسول، کاش آپ اپنی ازواج مطہرات پر حجاب فرض کر دیتے، کیونکہ ان کے پاس نیک و بد ہر طرح کے لوگ آتے ہیں؟ تو اللہ تعالیٰ نے یہ آیت نازل فرمائی: ﴿اور جب تم ان سے کوئی سامان مانگو تو پردے کے پیچھے سے مانگو﴾ [الاحزاب: ۵۳]۔ اور یہ آیت نازل ہوئی: ﴿اور ہم نے انسان کو مٹی کے خلاصے سے پیدا کیا﴾ [المؤمنون: ۱۲]، تو جب یہ نازل ہوئی تو میں نے کہا: "اللہ بڑی برکت والا ہے جو سب سے بہترین خالق ہے"، تو آیت نازل ہوئی: ﴿پس بڑی برکت والا ہے اللہ جو سب سے بہترین خالق ہے﴾ [المؤمنون: ۱٤]۔ اور میں نبی کریم ﷺ کی ازواج مطہرات کے پاس گیا اور کہا: "تم باز آ جاؤ ورنہ اللہ تعالیٰ تمہیں تم سے بہتر بیویوں سے بدل دے گا"؛ تو یہ آیت نازل ہوئی: ﴿عنقریب اس کا رب، اگر وہ تمہیں طلاق دے دے...﴾ [التحریم: ۵]۔ میں

(مصنف) کہتا ہوں: اس روایت میں قیدیوں کا ذکر نہیں ہے، لہٰذا حضرت عمر رضی اللہ عنہ کی موافقتیں پانچ چیزوں میں بنتی ہیں(٤)۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿مقام سے﴾۔ لغت میں مقام کا معنی ہے: قدم رکھنے کی جگہ۔ نحاس(٥) نے کہا: "مقام" 'قام يقوم' (کھڑا ہونا) سے ہے، یہ مصدر بھی ہوتا ہے اور جگہ کا نام بھی۔ اور "مُقام" 'اقام' (ٹھہرنا) سے ہے۔ رہی بات زہیر کے قول کی: اور ان میں ایسی محفلیں ہیں جن کے چہرے حسین ہیں، اور ایسی انجمنیں ہیں جہاں قول و فعل کا تبادلہ ہوتا رہتا ہے(٦)۔

---

(١) صحیح مسلم (٢٣٩٩)۔ اسے ابن ابی عاصم نے السنۃ (١٢٧٦) میں، ابن قانع نے معجم الصحابہ ٢٢٣/٢ میں، طبرانی نے الاوسط (٥٨٩٦) میں، اور ابو نعیم نے حلیۃ الاولیاء ٤٢/١ میں بھی روایت کیا ہے۔ (٢) اپنی صحیح (٤٠٢) اور (٤٤٨٣) میں، اور یہ مسند احمد (١٥٧) میں ہے۔ (٣) نمبر (٤٣)۔ (٤) حافظ ابن حجر نے فتح الباری ٥٠٥/١ میں کہا ہے: ترمذی نے [٣٦٨٢] ابن عمر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے اسے صحیح قرار دیا کہ انہوں نے کہا: لوگوں کے پاس کبھی کوئی ایسا حکم نہیں آیا جس کے بارے میں انہوں نے کچھ کہا ہو، مگر قرآن اسی کے مطابق نازل ہوا جو عمر رضی اللہ عنہ نے کہا تھا۔ یہ ان کی موافقتوں کی کثرت پر دلالت کرتا ہے، اور جن چیزوں کی ہم نے وضاحت کے ساتھ نشاندہی کی ہے وہ تقریباً دس ہیں، لیکن یہ روایت کے حساب سے ہے۔ (٥) اعراب القرآن ٢٥٩/١۔ (٦) دیوان ص ١١٣ بشرح ثعلب، اور الاعلم الشنتمری کی روایت ص ٤٢ میں "وجوههم" (ان کے چہرے) آیا ہے، "وجوهها" کی جگہ۔

Surah Al-Baqarah: Verse 125 Page 375

Its meaning is: among them are people of ranks.

Opinions differed regarding the identification of the 'Maqam' (Station). The most correct of these is that it is the stone which people know today, near which they pray the two cycles (rak'ahs) of the Tawaf al-Qudum (Tawaf of Arrival). This is the opinion of Jabir ibn Abdullah, Ibn Abbas, Qatadah, and others (1).

In Sahih Muslim (2), from the long hadith of Jabir, when the Prophet ﷺ saw the House (Kaaba), he touched the Black Stone (Istilam), then jogged (ramal) for three rounds and walked for four. Then he proceeded (3) to the Station of Ibrahim and recited: "And take, [O believers], from the standing place of Abraham a place of prayer" [Quran 2:125]. He then prayed two rak'ahs in which he recited "Say, 'He is Allah, [who is] One'" [Surah Al-Ikhlas] and "Say, 'O disbelievers'" [Surah Al-Kafirun]. This indicates the two rak'ahs of Tawaf and other prayers. It also indicates (5) in one aspect that Tawaf is better for strangers (6), as will follow (7).

In Al-Bukhari: It is the stone upon which Ibrahim stood when he became weak from lifting stones that Isma'il was handing to him during the building of the House, and his feet sank into it (8).

Anas said: "I saw in the Station the marks of his toes, heels, and the arches of his feet, except that the rubbing of people's hands has worn them away." This was recounted by Al-Qushayri (9).

As-Suddi said: The Station is the stone that Isma'il's wife placed under Ibrahim's foot.

---

(1) Al-Tabari (2/527) recorded the saying of Ibn Abbas, and Ibn Abi Hatim (1205) recorded the saying of Jabir. Ibn Atiyyah mentioned the saying of Qatadah (1/208), and Abu Al-Abbas Al-Qurtubi mentioned the saying of Jabir and Qatadah in Al-Mufhim (3/325). (2) Number (1218), and it is in Musnad Ahmad (14440). (3) In manuscripts (d), (zha), and (m): "taqaddam" (advanced). In (z): "qasad" (aimed for). What is established in (kh) and the margin of (z) is what corresponds to Sahih Muslim. (4) In (d), (kh), (zha), and (m): "that the two rak'ahs", what is established is from (z). (5) In (d), (kh), (zha), and (m): "indicates", what is established is from (z). (6) Ahkam al-Quran by Al-Kiya Al-Harrasi (1/17). (7) In the sixth issue that follows. (8) It is part of a hadith from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them) recorded at length by Al-Bukhari (3365). The author cited it from him via Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz

(1/208). (9) Al-Wahidi recorded it in Al-Wasit (1/205-206), and Ibn Hajar mentioned it in Fath al-Bari (8/169). Al-Tabari (2/527) recorded something similar from Qatadah.

सूरा अल-बकरा: आयत १२५ पृष्ठ ३७५

इसका अर्थ है: उनके बीच पदों (स्थानों) वाले लोग हैं।

'मक़ाम' (स्थान) की पहचान के संबंध में अलग-अलग मत हैं। इनमें से सबसे सही यह है कि वह वही पत्थर है जिसे आज लोग जानते हैं, जिसके पास वे तवाफ़-ए-क़ुदूम (आगमन की परिक्रमा) की दो रकात नमाज़ पढ़ते हैं। यह जाबिर बिन अब्दुल्ला, इब्न अब्बास, क़तादा और अन्य लोगों का मत है (१)।

सहीह मुस्लिम (२) में जाबिर की लंबी हदीस में है कि जब पैगंबर ﷺ ने काबा देखा, तो उन्होंने हज्र-ए-अस्वद का चुंबन (इस्तिलाम) किया, फिर तीन चक्करों में तेज़ चले (रमल), और चार चक्करों में सामान्य चले। फिर वे हज़रत इब्राहिम के मक़ाम की ओर गए (३) और पढ़ा: "और इब्राहिम के खड़े होने के स्थान को नमाज़ की जगह बनाओ" [क़ुरान २:१२५]। फिर उन्होंने दो रकात नमाज़ पढ़ी जिसमें 'कुल हुवल्लाहु अहद' (सूरा इखलास) और 'कुल या अय्युहल काफ़िरून' (सूरा काफ़िरून) पढ़ा। यह तवाफ़ की दो रकातों और अन्य नमाज़ों की ओर संकेत करता है। यह एक पहलू से यह भी दर्शाता है (५) कि परदेशियों के लिए तवाफ़ करना बेहतर है (६), जैसा कि आगे आएगा (७)।

बुखारी में है: यह वह पत्थर है जिस पर इब्राहिम खड़े हुए थे जब वे काबा के निर्माण के दौरान इस्माइल द्वारा दिए गए पत्थरों को उठाने में थक गए थे, और उनके पैर उसमें धंस गए थे (८)।

अनस ने कहा: "मैंने मक़ाम (इब्राहिम) में उनकी उंगलियों, एड़ी और पैरों के तलवों के निशान देखे थे, सिवाय इसके कि लोगों के हाथों से छूने के कारण वे मिट गए हैं।" इसे अल-कुशैरी ने वर्णित किया है (९)।

अस-सुद्दी ने कहा: मक़ाम वह पत्थर है जिसे इस्माइल की पत्नी ने इब्राहिम के पैर के नीचे रखा था।

---

(१) अल-तबरी (२/५२७) ने इब्न अब्बास का कथन उद्धृत किया, और इब्न अबी हातिम (१२०५) ने जाबिर का कथन। इब्न अत्तिया ने क़तादा (१/२०८) का कथन उल्लेख किया, और अबू अल-अब्बास अल-कुर्तुबी ने अल-मुफ्हिम (३/३२५) में जाबिर और क़तादा का कथन उल्लेख किया। (२) संख्या (१२१८), और यह मसनद अहमद (१४४४०) में भी है। (३) पांडुलिपियों (द), (ज़), और (म) में: "तक़द्दम" (आगे बढ़े)। (ज़) में: "क़सद" (इरादा किया)। (ख) और (ज़) के हाशिये में जो दर्ज है, वह सहीह मुस्लिम के अनुरूप है। (४) (द), (ख), (ज़), और (म) में: "कि दो रकात", (ज़) से पुष्ट। (५) (द),

(ख), (ज़), और (म) में: "दर्शाता है", (ज़) से पुष्ट। (६) अल-किया अल-हर्रासी की अहकाम अल-क़ुरान (१/१७)। (७) आने वाले छठे मसले में। (८) यह इब्न अब्बास (रज़ि.) की एक लंबी हदीस का हिस्सा है जिसे बुखारी (३३६५) ने विस्तार से उद्धृत किया है। लेखक ने इसे इब्न अत्तिया के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ (१/२०८) से लिया है। (९) अल-वाहिदी ने अल-वसीत (१/२०५-२०६) में इसे उद्धृत किया, और इब्न हजर ने फतह अल-बारी (८/१६९) में इसका उल्लेख किया। अल-तबरी (२/५२७) ने क़तादा से इसी तरह की बात उद्धृत की है।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۵ صفحہ ۳۷۵

پس اس کا معنی ہے: ان میں مقامات والے لوگ ہیں۔

مقام (ابراہیم) کے تعین میں اقوال کا اختلاف ہے، ان میں سب سے صحیح یہ ہے: کہ یہ وہ پتھر ہے جسے آج لوگ پہچانتے ہیں، جس کے پاس وہ طوافِ قدوم کی دو رکعتیں پڑھتے ہیں۔ اور یہ حضرت جابر بن عبداللہ، ابن عباس، قتادہ اور دیگر کا قول ہے (۱)۔

اور «صحیح» مسلم (۲) میں حضرت جابر کی طویل حدیث سے مروی ہے کہ نبی کریم ﷺ نے جب بیت اللہ کو دیکھا تو رکن کا استلام کیا، پھر تین چکروں میں رمل کیا، اور چار میں (عام رفتار سے) چلے، پھر مقامِ ابراہیم کی طرف بڑھے (۳) اور پڑھا: ﴿وَاتَّخِذُوا مِن مَّقَامِ إِبْرَاهِمَ مُصَلًّى﴾ [البقرہ: ۱۲۵]۔ پھر دو رکعتیں پڑھیں جن میں ﴿قُلْ هُوَ اللَّهُ أَحَدٌ﴾ اور ﴿قُلْ يَا أَيُّهَا الْكَافِرُونَ﴾ کی تلاوت فرمائی| اور یہ طواف کی دو رکعتوں اور دیگر نمازوں پر دلالت کرتا ہے۔ اور یہ (۵) ایک پہلو سے اس پر بھی دلالت کرتا ہے کہ مسافروں کے لیے طواف کرنا افضل ہے (۶)، جیسا کہ آگے آئے گا (۷)۔

اور بخاری میں ہے: کہ یہ وہ پتھر ہے جس پر حضرت ابراہیم علیہ السلام بلند ہوئے تھے جب وہ بیت اللہ کی تعمیر کے دوران پتھر اٹھانے سے عاجز آ گئے تھے جو حضرت اسماعیل علیہ السلام انہیں تھما رہے تھے، اور ان کے قدم اس میں دھنس گئے تھے (۸)۔

حضرت انس رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "میں نے مقام (ابراہیم) میں ان کی انگلیوں، ایڑیوں اور تلووں کے نشان دیکھے تھے، سوائے اس کے کہ لوگوں کے اسے ہاتھوں سے چھونے نے انہیں مٹا دیا ہے؛ اسے قشیری نے نقل کیا ہے (۹)۔

اور سدی نے کہا: مقام وہ پتھر ہے جسے حضرت اسماعیل علیہ السلام کی زوجہ نے حضرت ابراہیم علیہ السلام کے قدم کے نیچے رکھا تھا۔

---

(۱) طبری ۵۲۷/۲ نے ابن عباس کا قول نکالا ہے، اور ابن ابی حاتم (۱۲۰۵) نے جابر کا قول، اور ابن عطیہ نے قتادہ کا قول ۲۰۸/۱ ذکر کیا ہے، اور ابو العباس قرطبی نے المفہم ۳۲۵/۳ میں جابر اور قتادہ کا قول ذکر کیا ہے۔ (۲) نمبر (۱۲۱۸)، اور یہ مسند احمد (۱۴۴۴۰) میں ہے۔ (۳) (د)، (ظ) اور (م) میں: "تقدم" (آگے بڑھے)، اور (ز) میں: "قصد" (ارادہ کیا)، اور (خ) اور (ز) کے حاشیہ میں جو ہے وہی صحیح ہے، اور یہ صحیح مسلم کے موافق ہے۔ (۴) (د)، (خ)، (ظ) اور (م) میں: "علی أن ركعتی" (کہ دو رکعتیں)، اور (ز) سے ثابت شدہ ہے۔ (۵) (د)، (خ)، (ظ) اور (م) میں: "يدل" (دلالت کرتا ہے)، اور (ز) سے ثابت شدہ ہے۔ (۶) احکام القرآن للکیا الهراسی ۱۷/۱۔ (۷) آنے والے چھٹے مسئلے میں۔ (۸) یہ ابن عباس رضی اللہ عنہما کی طویل حدیث کا ایک ٹکڑا ہے جسے بخاری (۳۳۶۵) نے مفصل نکالا ہے۔ اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۲۰۸/۱ میں نقل کیا ہے۔ (۹) اسے واحدی نے الوسیط ۲۰۵/۱-۲۰۶ میں نکالا ہے، اور ابن حجر نے فتح الباری ۱۶۹/۸ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ اور طبری ۵۲۷/۲ نے قتادہ سے اس کی مثل روایت کی ہے۔

...peace be upon him, when she washed his head (1). And from Ibn Abbas also, and Mujahid and 'Ata (2), that "the Maqam" (3) is the Hajj in its entirety. From 'Ata: Arafat, Muzdalifah, and the Jamarat; Ash-Sha'bi said the same. An-Nakha'i: The whole Sanctuary is the Station of Ibrahim; and Mujahid said so (4). I say: What is correct regarding "the Maqam" is the first opinion, according to what has been established in the Sahih (authentic tradition) (5). Abu Nu'aym (6) narrated from the hadith of Muhammad bin Suqah, from Muhammad bin al-Munkadir, from Jabir, who said: The Prophet ﷺ looked at a man between the Corner and the Maqam - or the Door and the Maqam - while he was supplicating and saying: "O Allah, forgive so-and-so." The Prophet ﷺ said to him: "What is this?" He replied: "A man entrusted me to supplicate for him in this station." So the Prophet said: "Return, for your companion has been forgiven." Abu Nu'aym (7) said: Ahmad bin Muhammad bin Ahmad bin Ibrahim (8) the judge narrated it to us, saying: Muhammad bin Asim bin Yahya al-Katib narrated to us, saying: Abdur-Rahman bin al-Qasim al-Qattan al-Kufi narrated to us, saying: Al-Harith bin 'Imran al-Ja'fari narrated to us, from Muhammad bin Suqah, and he mentioned it. Abu Nu'aym said: Thus it was narrated by Abdur-Rahman, from Al-Harith, from Muhammad, from Jabir (9). It is only known from the hadith of

(1) Reported by At-Tabari 2/528. (2) In (m): Mujahid, 'Ikrimah and 'Ata, and we have not found who attributed the report to 'Ikrimah. (3) His saying: "that the Maqam", is not in (m). (4) At-Tabari reported these reports 2/525-526, except for the report of An-Nakha'i, and Al-Baghawi mentioned it 1/113. (5) Meaning the aforementioned hadith of Jabir. (6) Hilyat al-Awliya 5/12, and Akhbar Asbahan 2/233. (7) Al-Hilya 5/12. (8) In (kh) and (z): Ahmad bin Muhammad bin Ibrahim, and what is established is from (d), (zha), and (m), which matches what is in the Maghribi manuscript of Al-Hilya as in its footnotes. Abu Nu'aym provided a biography for him in Akhbar Asbahan 2/283 (and he is his teacher), and named him: Muhammad bin Ahmad bin Ibrahim. Similarly, he named him in his narration of the mentioned report in Akhbar Asbahan 2/233, and he is Abu Ahmad al-Asbahani, the Hafiz, the Judge, known as Al-Assal, died in the year (349 AH). See also Siyar A'lam al-Nubala 6/16. Accordingly, the correct phrase might be: Abu Ahmad Muhammad bin Ahmad bin Ibrahim al-Qadi narrated it to us. And Allah knows best. (9) Thus in (d), (z), (zha), (m) and Al-Hilya. In (kh): Muhammad bin Muhammad from Jabir, and perhaps the correct form is: Muhammad from Muhammad from Jabir, as is evident in the men of the chain of transmission.

...उन पर शांति हो, जब उन्होंने उनका सिर धोया (१)। और इब्न अब्बास, मुजाहिद और अता (२) से भी यह वर्णन है कि "मक़ाम" (३) पूरा हज है। अता से: अराफ़ात, मुज़दलिफ़ा और जमारत; शअबी ने भी यही कहा है। नखई ने कहा: पूरा हरम इब्राहीम का मक़ाम है; और मुजाहिद ने भी यही कहा (४)। मैं कहता हूँ: "मक़ाम" के संबंध में सही बात पहली राय है, जैसा कि सहीह (प्रामाणिक परंपराओं) में सिद्ध है (५)। अबू नुएम (६) ने मुहम्मद बिन सुक़ा की हदीस से, मुहम्मद बिन अल-मुनकादिर से, जाबिर से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: पैगंबर ﷺ ने रुकन और मक़ाम के बीच - या दरवाजे और मक़ाम के बीच - एक व्यक्ति को देखा, जो दुआ कर रहा था और कह रहा था: "हे अल्लाह, फलां को क्षमा कर दे।" पैगंबर ﷺ ने उससे कहा: "यह क्या है?" उसने उत्तर दिया: "एक व्यक्ति ने मुझे इस स्थान पर उसके लिए दुआ करने का काम सौंपा था।" तो पैगंबर ने कहा: "वापस जाओ, तुम्हारे साथी को क्षमा कर दिया गया है।" अबू नुएम (७) ने कहा: अहमद बिन मुहम्मद बिन अहमद बिन इब्राहीम (८) क़ाज़ी ने हमें बताया, उन्होंने कहा: मुहम्मद बिन आसिम बिन यहया अल-कातिब ने हमें बताया, उन्होंने कहा: अब्दुर-रहमान बिन अल-क़ासिम अल-क़त्तान अल-कूफ़ी ने हमें बताया, उन्होंने कहा: अल-हारिस बिन इमरान अल-जफ़री ने हमें बताया, मुहम्मद बिन सुक़ा से, और उन्होंने इसका उल्लेख किया। अबू नुएम ने कहा: इस प्रकार इसे अब्दुर-रहमान ने अल-हारिस से, मुहम्मद से, जाबिर से (९) रिवायत किया है। यह केवल ... की हदीस से जाना जाता है।

(१) अल-तबरी २/५२८ द्वारा उद्धृत। (२) (म) में: मुजाहिद, इकरीमा और अता, और हमें ऐसा कोई नहीं मिला जिसने इकरीमा को यह खबर दी हो। (३) उनका यह कहना कि "मक़ाम", (म) में नहीं है। (४) अल-तबरी ने इन उल्लेखों को २/५२५-५२६ में उद्धृत किया है, सिवाय नखई के उल्लेख के, जिसे अल-बगवी ने १/११३ में उल्लेख किया है। (५) अर्थात जाबिर की उपरोक्त हदीस। (६) हिलयत अल-औलिया ५/१२, और अख़बार असबहान २/२३३। (७) अल-हिल्या ५/१२। (८) (ख) और (ज़) में: अहमद बिन मुहम्मद बिन इब्राहीम, और जो स्थापित है वह (द), (ज़) और (म) से है, जो अल-हिल्या की मोरक्कन प्रति में दी गई जानकारी से मेल खाता है। अबू नुएम ने अख़बार असबहान २/२८३ में उनकी जीवनी दी है (और वे उनके शिक्षक हैं), और उनका नाम मुहम्मद बिन अहमद बिन इब्राहीम बताया है। इसी तरह, उन्होंने अख़बार असबहान २/२३३ में उल्लिखित हदीस की रिवायत में उनका नाम यही बताया है, और वे अबू अहमद अल-असबहानी, हाफ़िज़, क़ाज़ी हैं, जिन्हें अल-असाल के नाम से जाना जाता है, उनकी मृत्यु वर्ष ३४९ हिजरी में हुई थी। सियार आलम अल-नुबला ६/१६ भी

देखें। इसके अनुसार, सही वाक्य संभवतः यह है: अबू अहमद मुहम्मद बिन अहमद बिन इब्राहीम अल-क़ाज़ी ने हमें यह हदीस सुनाई। और अल्लाह बेहतर जानता है। (९) (द), (ज़), (ज़) और (म) और अल-हिल्या में इसी तरह है। (ख) में: मुहम्मद बिन मुहम्मद जाबिर से, और शायद सही रूप है: मुहम्मद, मुहम्मद से, जाबिर से, जैसा कि रिवायत की श्रृंखला (इसनाद) के व्यक्तियों से स्पष्ट है।

علیہ السلام، جب انہوں نے ان کا سر دھویا(۱)۔ اور ابن عباس سے بھی، اور مجاہد اور عطاء(۲) سے کہ "مقام"(۳) پورا حج ہے۔ اور عطاء سے: عرفہ، مزدلفہ اور جمرات؛ یہی بات شعبی نے کہی ہے۔ نخعی: پورا حرم مقامِ ابراہیم ہے؛ اور مجاہد نے بھی یہی کہا(۴)۔ میں کہتا ہوں: "مقام" کے بارے میں صحیح بات پہلی رائے ہے، اس کے مطابق جو صحیح (روایات) میں ثابت ہے(۵)۔ اور ابو نعیم(۶) نے محمد بن سوقہ کی حدیث سے، محمد بن المنکدر سے، جابر سے روایت کی ہے، انہوں نے کہا: نبی ﷺ نے رکن اور مقام کے درمیان - یا دروازے اور مقام کے درمیان - ایک شخص کو دیکھا جو دعا کر رہا تھا اور کہہ رہا تھا: "اے اللہ، فلاں کو بخش دے۔" نبی ﷺ نے اس سے پوچھا: "یہ کیا ہے؟" اس نے عرض کیا: "ایک شخص نے مجھے اس مقام پر اس کے لیے دعا کرنے کا کام سونپا تھا۔" تو نبی ﷺ نے فرمایا: "واپس جاؤ، تمہارے ساتھی کی مغفرت ہو گئی۔" ابو نعیم(۷) نے کہا: ہمیں احمد بن محمد بن احمد بن ابراہیم(۸) قاضی نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہمیں محمد بن عاصم بن یحییٰ الکاتب نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہمیں عبدالرحمٰن بن القاسم القطان الکوفی نے بیان کیا، انہوں نے کہا: ہمیں حارث بن عمران الجعفری نے بیان کیا، محمد بن سوقہ سے، پس انہوں نے اس کا ذکر کیا۔ ابو نعیم نے کہا: اسی طرح اسے عبدالرحمٰن نے حارث سے، انہوں نے محمد سے، انہوں نے جابر سے(۹) روایت کیا ہے، اور یہ صرف ... کی حدیث سے جانا جاتا ہے۔

(۱) اسے طبری نے ۵۲۸/۲ میں روایت کیا ہے۔ (۲) (م) میں: مجاہد، عکرمہ اور عطاء، اور ہمیں کوئی ایسا نہیں ملا جس نے اس خبر کو عکرمہ کی طرف منسوب کیا ہو۔ (۳) ان کا قول: "کہ مقام"، (م) میں نہیں ہے۔ (۴) ان آثار کو طبری نے ۵۲۵/۲-۵۲۶ میں روایت کیا ہے، سوائے نخعی

کے اثر کے، اور اسے بغوی نے ۱۱۳/۱ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) یعنی جابر کی مذکورہ بالا حدیث۔ (۶) حلیۃ الاولیاء ۱۲/۵، اور اخبار اصبہان ۲۳۳/۲۔ (۷) الحلیہ ۱۲/۵۔ (۸) (خ) اور (ز) میں: احمد بن محمد بن ابراہیم، اور جو ثابت ہے وہ (د)، (ظ) اور (م) سے ہے، اور یہ حلیہ کے مراکشی نسخے کے حاشیے میں موجود معلومات کے مطابق ہے۔ ابو نعیم نے اخبار اصبہان ۲۸۳/۲ میں ان کا تذکرہ کیا ہے (اور وہ ان کے استاد ہیں)، اور ان کا نام محمد بن احمد بن ابراہیم بتایا ہے۔ اسی طرح انہوں نے اخبار اصبہان ۲۳۳/۲ میں مذکورہ روایت کی تخریج میں ان کا نام یہی بتایا ہے، اور وہ ابو احمد الاصبہانی، حافظ، قاضی ہیں جو العسال کے نام سے مشہور ہیں، ان کی وفات ۳۴۹ھ میں ہوئی۔ سیر اعلام النبلاء ۶/۱۶ بھی دیکھیں۔ اس بنا پر، صحیح عبارت غالباً یہ ہے: ہمیں ابو احمد محمد بن احمد بن ابراہیم القاضی نے بیان کیا۔ واللہ اعلم۔ (۹) اسی طرح (د)، (ز)، (ظ) اور (م) اور الحلیہ میں ہے، اور (خ) میں ہے: محمد بن محمد جابر سے، اور شاید صحیح عبارت یہ ہے: محمد عن محمد عن جابر، جیسا کہ رجالِ اسناد سے ظاہر ہے۔

Al-Harith, from Muhammad, from Ikrimah, from Ibn Abbas (1). And the meaning of "Musalla" is: a place of supplication where one supplicates, as stated by Mujahid. And it was said: a place of prayer where prayer is performed, as stated by Qatada (2). And it was said: a Qibla where the Imam stands, as stated by Al-Hasan (3). His Almighty's saying: {And We commanded Abraham and Ishmael, "Purify My House for those who perform Tawaf and those who stay [there] for devotion and those who bow and prostrate [in prayer]."} This contains six issues: The first: His Almighty's saying: {And We commanded} [Wa-'ahidna]; it was said: its meaning is we ordered. And it was said: we revealed (4). {That you two purify} [An tahhira]; "An" is in the position of accusative (nasb) based on the estimation of an omitted preposition. Sibawayh said (5): it is in the sense of "Ay" (meaning), an explanatory particle, so it has no position in grammatical parsing. The Kufans said: it is in the sense of speech (6). And "tahhira" (purify), it was said: its meaning is from idols, from Mujahid and Al-Zuhri. Ubayd ibn Umayr and Sa'id ibn Jubayr said: from calamities and doubt. And it was said: from the disbelievers. Al-Suddi said: build it and establish it on purity and an intention of purity, so it becomes like His saying: {founded on righteousness} [At-Tawbah: 108]. Yaman said (7): perfume it with incense and saffron (8). {My House} [Bayti]; He added the House to Himself as an addition of honor and veneration, and it is the addition of a created being to the Creator, and property to the Owner (9).

---

(1) Narrated through this path by At-Tabarani in Al-Mu'jam Al-Kabir (12299), and As-Saydawi in Mu'jam Shuyukhihi, p. 214. Al-Haythami mentioned it in Majma' Az-Zawa'id 10/152, and said: It contains Al-Harith ibn Imran Al-Ja'fari, who is weak. (2) Tafsir At-Tabari 2/529. (3) Mentioned by Al-Jassas in Ahkam Al-Quran 1/75, At-Tabarsi in Majma' Al-Bayan 1/462, and Al-Fakhr Ar-Razi 4/54. (4) An-Nukat wal-'Uyun 1/187-188. (5) Al-Kitab 3/162, and the author quoted it from him through Ibn Atiyyah in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/208. (6) I'rab Al-Quran by An-Nahhas 1/260. (7) Ibn Wathab, mentioned by Adh-Dhahabi in Al-Mizan 4/460, and quoted from Ad-Daraqutni his saying about him: weak from among the Kharijites. (8) Tafsir At-Tabari 2/532-533, Tafsir Ibn Abi Hatim 1/373 and 374, Al-Wasit by Al-Wahidi 1/207 and 208, Tafsir Al-Baghawi 1/114, An-Nukat wal-'Uyun 1/188, Al-Muharrar Al-Wajiz 1/208, and the saying of Ubayd ibn Umayr and Sa'id ibn Jubayr therein: from idols and doubt. (9) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/208.

377 सूरह अल-बक़रह: आयत 125

अल-हारिस से, मुहम्मद से, इकरीमा से, इब्न अब्बास से (1)। और "मुसल्ला" का अर्थ है: वह स्थान जहाँ दुआ माँगी जाती है, जैसा कि मुजाहिद ने कहा। और यह कहा गया: प्रार्थना (नमाज़) का वह स्थान जहाँ नमाज़ पढ़ी जाती है, क़तादा ने कहा (2)। और यह कहा गया: वह क़िब्ला जिसके पास इमाम खड़ा होता है, अल-हसन ने कहा (3)। अल्लाह तआला का फ़रमान: {और हमने इबराहीम और इसमाईल को ताकीद की कि "मेरे घर को तवाफ़ करने वालों, एतिकाफ़ करने वालों और रुकूअ व सज्दा करने वालों के लिए पाक रखो।"} इसमें छह मसले हैं: पहला: अल्लाह का फ़रमान {और हमने ताकीद की} (व-अहिदना); कहा गया: इसका अर्थ है हमने हुक्म दिया। और कहा गया: हमने वह्य (प्रकाशना) की (4)। {कि तुम दोनों पाक करो} (अन तहिरा); यहाँ "अन" मफ़ऊल (accusative) की जगह पर है, यह मानते हुए कि उससे पहले का हर्फ़ए-जर (preposition) हटा दिया गया है। सीबवैह ने कहा (5): यह "अय" (यानी) के अर्थ में है जो व्याख्या करता है, इसलिए व्याकरण के हिसाब से इसका कोई स्थान नहीं है। कूफ़ियों ने कहा: यह "क़ौल" (कहना) के अर्थ में है (6)। और "तहिरा" (पाक करो) के बारे में कहा गया: इसका अर्थ मुजाहिद और ज़ुहरी के अनुसार "बुतों से पाक करना" है। उबैद बिन उमैर और सईद बिन जुबैर ने कहा: आफतों और संदेहों से। और कहा गया: काफ़िरों से। सुद्दी ने कहा: इसे पाकीज़गी और पाक इरादे पर बनाओ और इसकी बुनियाद रखो, तो यह अल्लाह के इस फ़रमान की तरह होगा: {जिसकी बुनियाद तक़वा (धर्मपरायणता) पर रखी गई हो} [तौबा: 108]। यमान ने कहा (7): इसमें लोबान जलाओ और इसे खुशबू लगाओ (8)। {मेरा घर} (बैती); अल्लाह ने घर को अपनी ओर सम्मान और गौरव के तौर पर जोड़ा है, और यह सृजन (मख्लूक) का सृजनकर्ता (खालिक) की ओर, और मिल्कियत का मालिक की ओर संबंध है (9)।

---

(1) इसे इस रास्ते से अत-तबरानी ने 'अल-मुअजम अल-कबीर' (12299) में, और अस-सैदावी ने 'मुअजम शुयूखिही' (पृष्ठ 214) में निकाला है। अल-हैथमी ने इसे 'मजमा' अज़-ज़वाइद' 10/152 में ज़िक्र किया और कहा: इसमें अल-हारिस बिन इमरान अल-जाफ़री है, जो कमज़ोर (रावियों में) है। (2) तफ़सीर अत-तबरी 2/529। (3) इसे अल-जस्सास ने 'अहकाम अल-क़ुरान' 1/75 में, अत-तबरसी ने 'मजमा' अल-बयान' 1/462 में और अल-फख्र अर-राज़ी ने 4/54 में ज़िक्र किया है। (4) अन-नुकत वल-'उयून 1/187-188। (5) अल-किताब 3/162, और लेखक ने इसे इब्न अतिया के माध्यम से 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' 1/208 में उनसे उद्धृत किया है। (6) ए'राब अल-क़ुरान अन-नह़्हास 1/260। (7) इब्न वथाब, जिसका ज़िक्र अज़-ज़हबी ने 'अल-मीज़ान' 4/460 में किया है, और

अद-दाराक़ुतनी से उनके बारे में यह कथन उद्धृत किया है: ख़वारिज में से एक कमज़ोर रावी। (8) तफ़सीर अत-तबरी 2/532-533, तफ़सीर इब्न अबी हातिम 1/373 और 374, अल-वसीत लिल-वाहिदी 1/207 और 208, तफ़सीर अल-बग़वी 1/114, अन-नुकत वल-'उयून 1/188, अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/208, और इसमें उबैद बिन उमैर और सईद बिन जुबैर का कथन: बुतों और संदेहों से। (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/208।

۳۷۷ سورة البقرہ: آیت ۱۲۵

الحارث، عن محمد، عن عکرمہ، عن ابن عباس (۱)۔ اور "مُصلّٰی" کے معنی ہیں: وہ جگہ جہاں دعا کی جاتی ہے، یہ بات مجاہد نے کہی۔ اور کہا گیا: نماز کی جگہ جہاں نماز پڑھی جاتی ہے، یہ بات قتادہ نے کہی (۲)۔ اور کہا گیا: وہ قبلہ جس کے پاس امام کھڑا ہوتا ہے، یہ بات حسن (بصری) نے کہی (۳)۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَعَهِدْنَا إِلَىٰٓ إِبْرَٰهِيمَ وَإِسْمَٰعِيلَ أَن طَهِّرَا بَيْتِىَ لِلطَّآئِفِينَ وَٱلْعَٰكِفِينَ وَٱلرُّكَّعِ ٱلسُّجُودِ} (اور ہم نے ابراہیم اور اسماعیل کو تاکید کی کہ میرے گھر کو طواف کرنے والوں، اعتکاف کرنے والوں اور رکوع و سجود کرنے والوں کے لیے پاک رکھو)۔ اس میں چھ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان {وَعَهِدْنَا}؛ کہا گیا: اس کا معنی ہے ہم نے حکم دیا۔ اور کہا گیا: ہم نے وحی کی (۴)۔ {أَن طَهِّرَا}؛ "أن" یہاں نصب کے مقام پر ہے اس تقدیر پر کہ اس سے پہلے حرف جر حذف ہے۔ سیبویہ نے کہا (۵): یہ "أی" کے معنی میں مفسرہ ہے، لہذا اس کا اعراب میں کوئی مقام نہیں ہے۔ کوفیوں نے کہا: یہ "قول" (بات کہنے) کے معنی میں ہے (۶)۔ اور "طہّرا" (پاک کرو) کے بارے میں کہا گیا: اس سے مراد بتوں سے پاک کرنا ہے، یہ مجاہد اور زہری سے مروی ہے۔ عبید بن عمیر اور سعید بن جبیر نے کہا: آفات اور شکوک و شبہات سے۔ اور کہا گیا: کافروں سے۔ سدی نے کہا: اسے طہارت اور طہارت کی نیت پر تعمیر کرو اور اس کی بنیاد رکھو، تو یہ اللہ کے اس فرمان کی طرح ہوگا: {أُسِّسَ عَلَى ٱلتَّقْوَىٰ} (جس کی بنیاد تقویٰ پر رکھی گئی ہو) [التوبہ: ۱۰۸]۔ یمان نے کہا (۷): اسے دھونی دو (بخور جلاؤ) اور اسے خوشبو لگاؤ (۸)۔ {بَيْتِيَ} (میرا گھر)؛ اللہ نے گھر کو اپنی طرف تشریف اور تکریم کے طور پر منسوب کیا، اور یہ مخلوق کی خالق کی طرف، اور مملوک کی مالک کی طرف نسبت ہے (۹)۔

(۱) اسے اس طریق سے طبرانی نے 'المعجم الکبیر' (۱۲۲۹۹) میں، اور صیداوی نے 'معجم شیوخہ' صفحہ ۲۱۴ میں روایت کیا ہے۔ الہیثمی نے اسے 'مجمع الزوائد' ۱۰/۱۵۲ میں ذکر کیا اور کہا: اس میں حارث بن عمران الجعفری ہے جو کہ ضعیف ہے۔ (۲) تفسیر طبری ۲/۵۲۹۔ (۳) اسے جصاص نے 'احکام القرآن' ۱/۷۵، طبرسی نے 'مجمع البیان' ۱/۴۶۲ اور فخر رازی نے ۴/۵۴ میں ذکر کیا ہے۔ (۴) النکت والعیون ۱/۱۸۷-۱۸۸۔ (۵) الکتاب ۳/۱۶۲، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے 'المحرر الوجیز' ۱/۲۰۸ میں ان سے نقل کیا ہے۔ (۶) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۶۰۔ (۷) ابن وثاب، جن کا ذکر ذہبی نے 'المیزان' ۴/۴۶۰ میں کیا ہے، اور دارقطنی سے ان کے بارے میں یہ قول نقل کیا ہے: خوارج میں سے ضعیف راوی۔ (۸) تفسیر طبری ۲/۵۳۲-۵۳۳، تفسیر ابن ابی حاتم ۱/۳۷۳ اور ۳۷۴، الوسیط للواحدی ۱/۲۰۷ اور ۲۰۸، تفسیر بغوی ۱/۱۱۴، النکت والعیون ۱/۱۸۸، المحرر الوجیز ۱/۲۰۸، اور اس میں عبید بن عمیر اور سعید بن جبیر کا قول: بتوں اور شک سے۔ (۹) المحرر الوجیز ۱/۲۰۸۔

Al-Hasan, Ibn Abi Ishaq, the people of Medina, Hisham, and Hafs read: "bayti-ya" (My House) with a fatha on the ya, and the others read it with a sukun (1). Second: His saying, Exalted is He: {for those who perform Tawaf} — its apparent meaning is those who circumambulate it, which is the opinion of 'Ata'. Said ibn Jubayr said: it means strangers coming to Makkah (2), but this is far-fetched. {and those who stay there for worship}: the residents, whether local or foreign, according to 'Ata' (3), and likewise his saying: "for those who perform Tawaf". Al-ukuf (staying) in the language means remaining in a place and being devoted to something, as the poet said: Staying like the Nabateans playing Al-Fanzaj (4) Mujahid said: The Al-Akifun are the neighbors. Ibn Abbas said: Those who pray. It was said: Those sitting without performing Tawaf (5), and the meanings are close. {and those who bow and prostrate} meaning: those who pray at the Kaaba. Bowing and prostration were specifically mentioned because they are (6) the closest states of a worshipper to Allah Almighty (7). The linguistic meaning of bowing and prostration has been mentioned previously, and praise be to Allah (8). Third: When Allah Almighty said: {Purify My House}, it included in its meaning all of His houses, so their ruling is the same as its ruling regarding purification and cleanliness. The Kaaba was specifically mentioned because there were no others there, or because of its greater sanctity, and the former is more apparent, and Allah knows best. And in the revelation {in...

(1) Al-Sab'ah by Ibn Mujahid, p. 197, and Al-Taysir, p. 85. (2) Al-Tabari recorded both opinions (2/534) and rejected Sa'id's opinion. (3) Recorded by Ibn Abi Hatim, 1/375-376. (4) The poem is by Al-Ajjaj, and it is in Al-Qawafi by Al-Akhfash, p. 29, Adab al-Katib, p. 498, Jamharat al-Lughah, 3/325 and 500, Al-Sihah (fanzaj, 'akaf), Maqayis al-Lughah, 4/108 and 515, Al-'Iqd al-Farid, 5/499, Al-Mu'arrab by al-Jawaliqi, p. 285, Al-Muharrar al-Wajiz, 1/208, and Lisan al-Arab ('akaf, fanzaj). His saying: Al-Fanzaj: it is a dance of the non-Arabs where they hold each other's hands. Ibn al-Sikkit said: it is a game of theirs called 'banjkan' in Persian, so it was Arabized. Ibn al-A'rabi said: The Nabateans play it when they are insolent. Al-Lisan (fanzaj). (5) Al-Tabari recorded these reports (2/535 and 536). (6) In manuscripts (kh), (d), and (z): "because it is." (7) Al-Muharrar al-Wajiz, 1/208. (8) 2/25.

378 सूरा अल-बक़रह: आयत 125

अल-हसन, इब्न अबी इसहाक़, मदीना के निवासियों, हिशाम और हफ़्स ने 'बय्तिया' (मेरा घर) 'या' पर फ़तहा (ज़बर) के साथ पढ़ा है, और अन्य ने इसे सुकून (जज़्म) के साथ पढ़ा है (1)। दूसरा: अल्लाह तआला का कहना: {तवाफ़ करने वालों के लिए} - इसका स्पष्ट अर्थ वे लोग हैं जो इसकी परिक्रमा करते हैं, और यह अता का मत है। सईद इब्न जुबैर ने कहा: इसका अर्थ मक्का में आने वाले अजनबियों के लिए है (2), लेकिन यह दूर की बात है। {और वहाँ इबादत के लिए ठहरने वालों के लिए}: अता के अनुसार निवासी, चाहे वे स्थानीय हों या अजनबी (3), और इसी तरह उनका कहना "तवाफ़ करने वालों के लिए" के बारे में भी है। भाषा में 'अल-उकूफ़' का अर्थ है किसी स्थान पर टिके रहना और किसी चीज़ के प्रति समर्पित होना, जैसा कि कवि ने कहा: नबातियों की तरह ठहरना जो अल-फनज़ज खेल रहे हैं (4) मुजाहिद ने कहा: अल-आकिफ़ून पड़ोसी हैं। इब्न अब्बास ने कहा: नमाज़ पढ़ने वाले। यह भी कहा गया है: तवाफ़ के बिना बैठने वाले (5), और इनके अर्थ एक-दूसरे के निकट हैं। {और रुकू और सजदा करने वालों के लिए} यानी: काबा के पास नमाज़ पढ़ने वाले। रुकू और सजदे का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है क्योंकि वे (6) नमाज़ पढ़ने वाले की अल्लाह तआला के सबसे निकट की अवस्थाएँ हैं (7)। रुकू और सजदे का भाषाई अर्थ पहले बताया जा चुका है, और अल्लाह का शुक्र है (8)। तीसरा: जब अल्लाह तआला ने कहा: {मेरे घर को पवित्र करो}, तो अर्थ के अनुसार उसके सभी घर इसमें शामिल हो गए, इसलिए पवित्रता और स्वच्छता में उनका वही हुक्म होगा जो इसका है। काबा का विशेष रूप से उल्लेख इसलिए किया गया क्योंकि वहाँ उसके अलावा कोई और घर नहीं था, या उसकी अधिक गरिमा के कारण, और पहला कारण अधिक स्पष्ट है, और अल्लाह बेहतर जानता है। और नुज़ूल में {में...

(1) अल-सबआ इब्न मुजाहिद द्वारा, पृष्ठ 197, और अल-तयसीर, पृष्ठ 85। (2) अल-तबरी ने दोनों मतों (2/534) को दर्ज किया है और सईद के मत को खारिज कर दिया है। (3) इब्न अबी हातिम द्वारा दर्ज, 1/375-376। (4) यह कविता अल-अज्जाज की है, और यह अल-अखफ़श की अल-क़वाफ़ी, पृष्ठ 29, अदब अल-कातिब, पृष्ठ 498, जम्हरत अल-लुग़ह, 3/325 और 500, अल-सिहाह (फ़नज़ज, अकफ़), मक़ायिस अल-लुग़ह, 4/108 और 515, अल-इक़्द अल-फ़रीद, 5/499, अल-मुअर्रब अल-जवालिकी द्वारा, पृष्ठ 285, अल-मुहर्रर अल-वजीज़, 1/208, और लिसान अल-अरब (अकफ़, फ़नज़ज) में है। उनका कहना: अल-फ़नज़ज: यह अजम (गैर-अरबों) का एक नृत्य है जिसमें वे एक-दूसरे का हाथ पकड़ते हैं। इब्न अल-सिक्किट ने कहा: यह उनका एक खेल है जिसे फ़ारसी में

'पंजगान' कहा जाता है, इसलिए इसका अरबीकरण किया गया। इब्न अल-अरबी ने कहा: नबाती इसे तब खेलते हैं जब वे इतराते हैं। अल-लिसान (फ़नज़ज)। (5) अल-तबरी ने इन उल्लेखों को दर्ज किया है (2/535 और 536)। (6) पाण्डुलिपियों (ख), (द), और (ज़) में: "क्योंकि यह है।" (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़, 1/208। (8) 2/25।

۳۷۸ سورة البقرہ: آیت ۱۲۵

اور الحسن، ابن ابی اسحاق، اہل مدینہ، ہشام اور حفص نے پڑھا: «بَيْتِيَ» یاء کے فتحہ (زبر) کے ساتھ، اور دوسروں نے اسے ساکن (جزم) کے ساتھ پڑھا(۱)۔ دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ لِلطَّائِفِينَ ﴾ اس کا ظاہری مطلب وہ لوگ ہیں جو اس کا طواف کرتے ہیں، اور یہ عطاء کا قول ہے۔ سعید بن جبیر نے کہا: اس کا مطلب مکہ میں آنے والے پردیسی مسافر ہیں(۲)، لیکن اس میں بُعد (بعید از قیاس بات) ہے۔ ﴿ وَالْعَاكِفِينَ ﴾: مقیم لوگ خواہ وہ شہری ہوں یا مسافر، عطاء سے مروی ہے(۳)، اور اسی طرح ان کا قول: «للطائفين» کے بارے میں بھی ہے۔ لغت میں 'عكوف' کا مطلب ہے کسی جگہ جم جانا اور کسی چیز کی طرف متوجہ ہونا، جیسا کہ شاعر نے کہا: عُكُفَ النَّبيطِ يلعبونَ الفَنْزَجَا(۴) (نبطیوں کی طرح ٹھہرنا جو فنزج کھیل رہے ہیں) اور مجاہد نے کہا: العاكفون سے مراد پڑوسی ہیں۔ ابن عباس نے کہا: نماز پڑھنے والے۔ اور کہا گیا: طواف کے بغیر بیٹھنے والے(۵)، اور معانی ایک دوسرے کے قریب ہیں۔ ﴿ وَالرُّكَّعِ السُّجُودِ ﴾ یعنی: کعبہ کے پاس نماز پڑھنے والے۔ اور رکوع اور سجدہ کو خاص طور پر ذکر کیا گیا؛ کیونکہ وہ(۶) نمازی کی اللہ تعالیٰ سے قریب ترین حالتیں ہیں(۷)۔ اور رکوع اور سجدہ کے لغوی معنی پہلے بیان ہو چکے ہیں، والحمد للہ(۸)۔ تیسری بات: جب اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿ أَنْ طَهِّرَا بَيْتِيَ ﴾ تو اس کے معنی میں اللہ کے تمام گھر داخل ہو گئے، لہذا طہارت اور صفائی ستھرائی میں ان کا وہی حکم ہو گا جو اس (بیت اللہ) کا ہے۔ کعبہ کو خاص طور پر اس لیے ذکر کیا گیا کیونکہ وہاں اس کے سوا اور کوئی گھر نہ تھا، یا اس کی عظیم حرمت کی وجہ سے، اور پہلا قول زیادہ ظاہر ہے، واللہ اعلم۔ اور قرآن مجید میں ہے ﴿ فِي

(۱) السبعة لابن مجاهد ص ۱۹۷، والتیسیر ص ۸۵۔ (۲) الطبری نے (۲/۵۳۴) دونوں اقوال نقل کیے ہیں، اور سعید کے قول کو رد کیا ہے۔ (۳) اسے ابن ابی حاتم نے (۱/۳۷۵-۳۷۶) روایت کیا ہے۔ (۴) یہ رجز العجاج کا ہے، اور یہ الاخفش کی 'القوافی' ص ۲۹، 'أدب الکاتب' ص ۴۹۸، 'جمهرة اللغة' ۳/۳۲۵ اور ۵۰۰، 'الصحاح' (فنزج، عکف)، 'مقاییس اللغة' ۴/۱۰۸ اور ۵۱۵، 'العقد الفرید' ۵/۴۹۹، 'المعرب' للجوالیقی ص ۲۸۵، 'المحرر الوجیز' ۱/۲۰۸، اور 'اللسان' (عکف، فنزج) میں ہے۔ اس کا قول: 'الفنزج': یہ عجم کا ایک رقص ہے جس میں وہ ایک دوسرے کا ہاتھ پکڑتے ہیں، ابن السکیت نے کہا: یہ ان کا ایک کھیل ہے جسے فارسی میں 'پنجگاں' کہتے ہیں، جسے عربی بنا لیا گیا، ابن الاعرابی نے کہا: نبطی لوگ یہ کھیل اس وقت کھیلتے ہیں جب وہ اتراتے ہیں۔ اللسان (فنزج)۔ (۵) الطبری نے ان آثار کو (۲/۵۳۵ اور ۵۳۶) میں روایت کیا ہے۔ (۶) نسخہ (خ)، (د) اور (ز) میں ہے: کیونکہ وہ (مونث کے صیغے میں)۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۲۰۸۔ (۸) ۲/۲۵۔

"[In] houses [of worship] which Allah has ordered to be raised" [Al-Nur: 36], and there the ruling on mosques will follow, if Allah Almighty wills.

It was narrated from Umar ibn al-Khattab, may Allah be pleased with him, that he heard a man's voice in the mosque, so he said: "What is this? Do you know where you are(1)?!"

Hudhayfah said: The Prophet ﷺ said: "Allah revealed to me: 'O brother of the warners, O brother of the messengers, warn your people not to enter any of My houses except with sound hearts, truthful tongues, pure hands, and clean private parts. And they should not(2) enter any of My houses as long as they owe any injustice to anyone, for I curse him as long as he stands before Me, until he returns that injustice to its people. Then I become his hearing with which he hears, and his sight with which he sees, and he will be among My friends and elite, and he will be My neighbor with the Prophets, the truthful ones, the martyrs, and the righteous."(3)

Fourthly: Al-Shafi'i, Abu Hanifa, al-Thawri, and a group of the predecessors used this verse as evidence for the permissibility of performing obligatory and supererogatory prayers inside the House (the Kaaba). Al-Shafi'i (may Allah have mercy on him) said: "If he prays inside it facing one of its walls, his prayer is valid. If he prays towards the door while the door is open, his prayer is invalid. Likewise, whoever prays on its roof, because he did not face any part of it." Malik said: "Neither obligatory nor Sunnah prayers are performed in it; only voluntary prayers (Nafila) are performed. However, if he performs an obligatory prayer in it, he should repeat it within the time." Asbagh said: "He repeats it forever."(4)

I say: This is what is correct; because of what Muslim(5) narrated from Ibn Abbas, who said: "Usama ibn Zaid informed me that when the Prophet ﷺ entered the House, he supplicated in all its corners and did not pray until(6) he came out of it."

---

(1) Reported by Ibn al-Mubarak in Al-Zuhd (405), and mentioned by Al-Baghawi in Sharh al-Sunnah 2/375. (2) In (m): "And not". (3) Reported by Abu Nu'aym in Hilyat al-Awliya 6/116 without the words: "not to enter any of My houses except with sound hearts, truthful tongues, pure hands, and clean private parts." Ibn Rajab cited it in Jami' al-Ulum wa'l-Hikam 2/333 with the wording of Abu Nu'aym, attributing it to Al-Tabarani, saying: "This is a good chain, and it is very rare. See Kanz al-Ummal (43600)." (4) Al-Tamhid 15/319, Al-Istidhkar 13/125, Ikmal al-Mu'allim 4/421-422, and

Al-Mufhim 3/429 & 431. (5) Number (1330), also reported by Ahmad (21754) and Al-Bukhari (398). (6) In (m): "And he did not pray in it until".

सूरह अल-बक़रह: आयत 125 379

"[उन] घरों में जिन्हें ऊंचा करने का अल्लाह ने हुक्म दिया है" [अन-नूर: 36], और वहां मस्जिदों का हुक्म आएगा, इंशा अल्लाह (यदि अल्लाह चाहे)।

हज़रत उमर बिन अल-ख़त्ताब रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है कि उन्होंने मस्जिद में एक आदमी की आवाज़ सुनी, तो उन्होंने कहा: "यह क्या है? क्या तुम जानते हो कि तुम कहाँ हो(1)?!"

हुज़ैफ़ा ने कहा: नबी ﷺ ने फरमाया: "बेशक अल्लाह ने मेरी तरफ़ वह्य (प्रकाशना) की: ऐ डराने वालों के भाई, ऐ रसूलों के भाई, अपनी क़ौम को डराओ कि वे मेरे घरों में से किसी घर में दाखिल न हों सिवाय सलामत दिलों, सच्ची ज़बानों, पाक हाथों और पाक शर्मगाहों के साथ। और वे दाखिल न हों(2) मेरे घरों में से किसी घर में जब तक कि उन पर किसी का कोई ज़ुल्म (हक़) बाक़ी हो, क्योंकि जब तक वह मेरे सामने खड़ा रहता है, मैं उस पर लानत करता हूँ, यहाँ तक कि वह उस ज़ुल्म को उसके हक़दारों को लौटा दे। फिर मैं उसका वह कान बन जाता हूँ जिससे वह सुनता है, और उसकी वह आँख बन जाता हूँ जिससे वह देखता है, और वह मेरे औलिया और ख़ास बंदों में से हो जाता है, और वह नबियों, सिद्दीक़ीन, शहीदों और सालेहीन के साथ मेरा पड़ोसी होता है।" (3)

चौथा मसला: शाफ़ई, अबू हनीफ़ा, सौरी और सलफ़ के एक गिरोह ने इस आयत से बैतुल्लाह (काबा) के अंदर फ़र्ज़ और नफ़्ल नमाज़ के जायज़ होने पर दलील ली है। इमाम शाफ़ई (अल्लाह उन पर रहम करे) ने फरमाया: "अगर उसने इसके अंदर इसकी दीवारों में से किसी दीवार की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़ी, तो उसकी नमाज़ जायज़ है, और अगर उसने दरवाज़े की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़ी जबकि दरवाज़ा खुला था, तो उसकी नमाज़ बातिल (अमान्य) है। इसी तरह जिसने इसकी छत पर नमाज़ पढ़ी; क्योंकि उसने इसमें से किसी चीज़ का सामना नहीं किया।" इमाम मालिक ने कहा: "इसमें न फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ी जाएगी और न ही सुन्नत, बल्कि सिर्फ़ नफ़्ल (स्वैच्छिक) पढ़ी जाएगी, हाँ अगर उसने इसमें फ़र्ज़ नमाज़ पढ़ ली, तो वह समय के भीतर उसे दोहराए।" अस्बग़ ने कहा: "वह इसे हमेशा दोहराए।" (4)

मैं कहता हूँ: यही सही है; क्योंकि मुस्लिम(5) ने इब्न अब्बास से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: "मुझे उसामा बिन ज़ैद ने खबर दी कि जब नबी ﷺ बैतुल्लाह में दाखिल हुए, तो आपने उसके सभी कोनों में दुआ की और नमाज़ नहीं पढ़ी जब तक कि(6) आप वहाँ से बाहर नहीं आ गए।"

(1) इसे इब्न अल-मुबारक ने अज़-ज़ुहद (405) में निकाला है, और अल-बग़वी ने शरह अस-सुन्ना 2/375 में इसका उल्लेख किया है। (2) (म) में: "और न"। (3) इसे अबू नुऐम ने हिल्यत अल-औलिया 6/116 में इन शब्दों के बिना निकाला है: "वे मेरे घरों में से किसी घर में दाखिल न हों सिवाय सलामत दिलों, सच्ची ज़बानों, पाक हाथों और पाक शर्मगाहों के साथ।" इब्न रजब ने इसे जामे अल-उलूम वल-हिकम 2/333 में अबू नुऐम के शब्दों की तरह उल्लेख किया है और इसे तबरानी की ओर मनसूब किया है, और कहा: "यह सनद अच्छी है, और यह बहुत ग़रीब है, देखिए कंज अल-उम्माल (43600)।" (4) अत-तमहीद 15/319, अल-इस्तिज़कार 13/125, इकमल अल-मुअल्लिम 4/421-422, और अल-मुफ़हिम 3/429 और 431। (5) नंबर (1330), इसे अहमद (21754) और बुख़ारी (398) ने भी निकाला है। (6) (म) में: "और उसमें नमाज़ नहीं पढ़ी जब तक कि"।

سورة البقرہ: آیت 125 379

"[ان] گھروں میں جنہیں بلند کرنے کا اللہ نے حکم دیا ہے" [النور: 36]، اور وہاں مساجد کا حکم آئے گا، اگر اللہ تعالیٰ نے چاہا۔

حضرت عمر بن خطاب رضی اللہ عنہ سے مروی ہے کہ انہوں نے مسجد میں ایک شخص کی آواز سنی، تو فرمایا: "یہ کیا ہے؟ کیا تمہیں معلوم ہے کہ تم کہاں ہو(1)؟!"

حضرت حذیفہ رضی اللہ عنہ نے فرمایا: نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "بے شک اللہ نے میری طرف وحی کی: اے ڈرانے والوں کے بھائی، اے رسولوں کے بھائی، اپنی قوم کو ڈراؤ کہ وہ میرے گھروں میں سے کسی گھر میں داخل نہ ہوں مگر سلیم دلوں، سچی زبانوں، پاک ہاتھوں اور پاکیزہ شرمگاہوں کے ساتھ اور وہ داخل نہ ہوں(2) میرے گھروں میں سے کسی گھر میں جب تک ان پر کسی کا کوئی مظلمہ (حق) باقی ہو، کیونکہ جب تک وہ میرے سامنے کھڑا رہتا ہے میں اس پر لعنت کرتا ہوں، یہاں تک کہ وہ اس ظلم کو اس کے اہل تک لوٹا دے۔ پھر میں اس کا وہ کان بن جاتا ہوں جس سے وہ سنتا ہے، اور اس کی وہ آنکھ بن جاتا ہوں جس سے وہ دیکھتا ہے، اور وہ میرے اولیاء اور برگزیدہ بندوں میں سے ہو جاتا ہے، اور وہ نبیوں، صدیقین، شہداء اور صالحین کے ساتھ میرا پڑوسی ہوتا ہے۔"(3)

چوتھا مسئلہ: امام شافعی، امام ابو حنیفہ، امام ثوری اور سلف کی ایک جماعت نے اس آیت سے بیت اللہ (کعبہ) کے اندر فرض اور نفل نماز کے جواز پر استدلال کیا ہے۔ امام شافعی رحمہ اللہ نے فرمایا: اگر اس نے اس کے اندر اس کی دیواروں میں سے کسی دیوار کی طرف منہ کر کے نماز پڑھی تو اس کی نماز جائز ہے، اور اگر اس نے دروازے کی طرف منہ کر کے نماز پڑھی جبکہ

دروازہ کھلا ہوا تھا تو اس کی نماز باطل ہے، اور اسی طرح جس نے اس کی چھت پر نماز پڑھی؛ کیونکہ اس نے اس (کعبہ) میں سے کسی چیز کا استقبال (سامنا) نہیں کیا۔ امام مالک نے فرمایا: اس میں نہ فرض نماز پڑھی جائے گی اور نہ ہی سنن، بلکہ صرف نفل پڑھے جائیں گے، البتہ اگر اس نے اس میں فرض نماز پڑھ لی تو وہ وقت کے اندر اسے لوٹائے۔ اصبغ نے کہا: وہ ہمیشہ لوٹائے(4)۔

میں کہتا ہوں: یہی صحیح ہے؛ اس وجہ سے جو مسلم(5) نے ابن عباس سے روایت کیا، انہوں نے کہا: مجھے اسامہ بن زید نے خبر دی کہ جب نبی کریم ﷺ بیت اللہ میں داخل ہوئے تو آپ نے اس کے تمام گوشوں میں دعا فرمائی، اور نماز نہیں پڑھی یہاں تک کہ(6) وہاں سے باہر تشریف لائے۔

---

(1) اسے ابن المبارک نے الزہد (405) میں روایت کیا ہے، اور بغوی نے شرح السنہ 2/375 میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (2) نسخہ (م) میں ہے: "اور نہ"۔ (3) اسے ابو نعیم نے حلیۃ الاولیاء 6/116 میں ان الفاظ کے بغیر روایت کیا ہے: "وہ میرے گھروں میں سے کسی گھر میں داخل نہ ہوں مگر سلیم دلوں، سچی زبانوں، پاک ہاتھوں اور پاکیزہ شرمگاہوں کے ساتھ"۔ ابن رجب نے اسے جامع العلوم والحکم 2/333 میں ابو نعیم کے الفاظ کی طرح ذکر کیا ہے اور اسے طبرانی کی طرف منسوب کیا ہے، اور فرمایا: "یہ سند جید ہے، اور یہ نہایت غریب ہے، دیکھیے کنز العمال (43600)"۔ (4) التمہید 15/319، الاستذکار 13/125، اکمال المعلم 4/421-422، اور المفہم 3/429 و 431۔ (5) نمبر (1330)، اسے احمد (21754) اور بخاری (398) نے بھی روایت کیا ہے۔ (6) نسخہ (م) میں ہے: "اور اس میں نماز نہیں پڑھی یہاں تک کہ"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 125 380 When he came out, he performed two rak'ahs in front of the Kaaba and said: "This is the Qibla." And this is a text. If it is said: Al-Bukhari reported (1) from Ibn Umar who said: The Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) entered the House with Usama bin Zaid, Bilal, and Uthman bin Talha al-Hajabi, and they closed the door upon them. When they opened it, I was the first to enter, and I met Bilal and asked him: Did the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) pray in it? He said: Yes, between the two Yemeni pillars. And Muslim recorded it (2), and in it he said: He placed two pillars on his left, one pillar on his right, and three pillars behind him, and the House at that time had six pillars. We say: This could mean he prayed in the sense of supplicating (du'a), as Usama said, and it could mean he performed the conventional ritual prayer. When it is possible for it to be this or that, using it as an argument is invalidated. If it is said: Ibn al-Mundhir and others reported from Usama who said: The Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) saw images in the Kaaba, so I brought him water in a bucket, with which he struck those images (3). Abu Dawud al-Tayalisi (4) recorded it, saying: Ibn Abi Dhi'b narrated to us, from Abd al-Rahman bin Mehran who said: Umair, the freed slave of Ibn Abbas, narrated to me, from Usama bin Zaid who said: I entered upon the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) in the Kaaba, and he saw images. He said: He called for a bucket of water, so I brought it to him, and he began to erase them, saying: "May Allah fight a people who depict what they do not create." It is possible that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) prayed while Usama was gone seeking water, so Bilal witnessed what Usama did not witness. The one who affirms has priority over the one who denies. Usama himself said: So the people took Bilal's word and left my word. Mujahid reported from Abdullah bin Safwan who said: I said to Umar bin al-Khattab: What did the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) do when he entered the Kaaba? He said: He prayed two rak'ahs (6). We say: This is interpreted as a supererogatory prayer (nafilah), and we do not know of any disagreement among scholars regarding the validity of supererogatory prayers in...

---

(1) Number (1598), and also recorded by Ahmad (6019), and Muslim (1329): (393). (2) Number (1329): (388). (3) Ikmal al-Mu'allim 4/424, and al-Mufhim 3/431. (4) In his Musnad (622). (5) In (d), (z), and (m): Narrated to us. (6) Recorded by Ahmad (15553), and Abu Dawud (2026).

सूरह अल-बकरा: आयत 125 380 जब वे बाहर आए, तो उन्होंने काबा के सामने दो रकअत नमाज़ पढ़ी और कहा: "यह क़िबला है।" और यह एक स्पष्ट पाठ है। यदि यह कहा जाए: अल-बुखारी ने इब्न उमर से रिवायत की है (1), जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ओसामा बिन ज़ैद, बिलाल और उस्मान बिन तल्हा अल-हजबी के साथ (काबा के) घर में दाखिल हुए, और उन्होंने उनके लिए दरवाजा बंद कर दिया। जब उन्होंने इसे खोला, तो मैं सबसे पहले प्रवेश करने वाला था, और मैं बिलाल से मिला और उनसे पूछा: क्या अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने इसमें नमाज़ पढ़ी? उन्होंने कहा: हाँ, दो यमनी स्तंभों के बीच। और मुस्लिम ने इसे उद्धृत किया है (2), और इसमें उन्होंने कहा: उन्होंने अपने बाईं ओर दो स्तंभ, अपने दाईं ओर एक स्तंभ और अपने पीछे तीन स्तंभ रखे, और उस समय घर में छह स्तंभ थे। हम कहते हैं: इसका अर्थ यह हो सकता है कि उन्होंने दुआ (प्रार्थना) के अर्थ में नमाज़ पढ़ी, जैसा कि ओसामा ने कहा, और यह भी संभव है कि उन्होंने पारंपरिक औपचारिक नमाज़ पढ़ी हो। जब यह इस या उस होने की संभावना रखता है, तो इसे तर्क के रूप में उपयोग करना अमान्य हो जाता है। यदि यह कहा जाए: इब्न अल-मुन्ज़िर और अन्य लोगों ने ओसामा से रिवायत की है जिन्होंने कहा: पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने काबा में चित्र देखे, इसलिए मैं उनके लिए एक बाल्टी में पानी लाया, जिससे उन्होंने उन चित्रों को मिटा दिया (3)। अबू दाऊद अल-तयालिसी (4) ने इसे उद्धृत किया है, कहते हैं: इब्न अबी ज़ैब ने हमसे बयान किया, अब्दुर रहमान बिन मेहरान से (5), जिन्होंने कहा: इब्न अब्बास के स्वतंत्र दास उमेर ने मुझे बताया, ओसामा बिन ज़ैद से, जिन्होंने कहा: मैं काबा में अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के पास गया, और उन्होंने चित्र देखे। उन्होंने कहा: उन्होंने पानी की एक बाल्टी मंगवाई, इसलिए मैं उसे उनके पास ले आया, और वे उन्हें मिटाने लगे और कहने लगे: "अल्लाह उस कौम को नष्ट करे जो उन चीजों का चित्रण करते हैं जिन्हें वे नहीं बनाते।" यह संभव है कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने उस समय नमाज़ पढ़ी हो जब ओसामा पानी लेने गए थे, इसलिए बिलाल ने वह देखा जो ओसामा ने नहीं देखा था। पुष्टि करने वाले को नकारने वाले पर प्राथमिकता दी जाती है। ओसामा ने स्वयं कहा: इसलिए लोगों ने बिलाल की बात मान ली और मेरी बात छोड़ दी। मुजाहिद ने अब्दुल्ला बिन सफ़वान से रिवायत की है जिन्होंने कहा: मैंने उमर बिन अल-खत्ताब से कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने काबा में प्रवेश करते समय क्या किया? उन्होंने कहा: उन्होंने दो रकअत नमाज़ पढ़ी (6)। हम कहते हैं: इसे नफ़्ल (स्वैच्छिक) नमाज़ माना जाता है, और हम विद्वानों के बीच नफ़्ल नमाज़ की वैधता के संबंध में किसी भी असहमति के बारे में नहीं जानते हैं...

(1) संख्या (1598), और अहमद (6019) और मुस्लिम (1329): (393) द्वारा भी उद्धृत। (2) संख्या (1329): (388)। (3) इकमल अल-मुअल्लिम 4/424, और अल-मुफ्हिम 3/431। (4) उनके मुसनद (622) में। (5) (द), (ज़) और (म) में: हमसे बयान किया। (6) अहमद (15553) और अबू दाऊद (2026) द्वारा उद्धृत।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۵ ۳۸۰ پھر جب وہ نکلے تو کعبہ کے سامنے دو رکعتیں پڑھیں، اور فرمایا: "یہ قبلہ ہے"۔ اور یہ نص (واضح حکم) ہے۔ اگر یہ کہا جائے کہ: بخاری نے ابن عمر سے روایت کیا ہے (۱)، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ، اسامہ بن زید، بلال اور عثمان بن طلحہ الحجبی بیت اللہ میں داخل ہوئے، تو انہوں نے ان پر دروازہ بند کر دیا۔ جب انہوں نے دروازہ کھولا تو میں سب سے پہلے داخل ہونے والا تھا، تو میری ملاقات بلال سے ہوئی، میں نے ان سے پوچھا: کیا رسول اللہ ﷺ نے اس میں نماز پڑھی؟ انہوں نے کہا: ہاں، دو یمنی ستونوں کے درمیان۔ اور اسے مسلم نے نکالا ہے (۲)، اور اس میں ہے کہ: آپ نے دو ستون اپنی بائیں جانب، ایک ستون اپنی دائیں جانب اور تین ستون اپنے پیچھے رکھے، اور اس وقت بیت اللہ چھ ستونوں پر تھا۔ ہم کہتے ہیں: اس کا احتمال ہے کہ نماز سے مراد دعا ہو، جیسا کہ اسامہ نے کہا، اور یہ بھی احتمال ہے کہ اس سے مراد روایتی نماز ہو۔ جب اس کا اور اس کا احتمال ہو تو اس سے استدلال ساقط ہو جاتا ہے۔ اگر یہ کہا جائے کہ: ابن المنذر اور دوسروں نے اسامہ سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: نبی ﷺ نے کعبہ میں تصویریں دیکھیں، تو میں ڈول میں پانی لایا، جس سے ان تصویروں کو مٹایا گیا (۳)۔ اور اسے ابو داؤد الطیالسی (٤) نے نکالا ہے، کہا: ہمیں ابن ابی ذئب نے بیان کیا، عبد الرحمن بن مہران سے (٥)، انہوں نے کہا: مجھے ابن عباس کے مولیٰ عمیر نے بیان کیا، اسامہ بن زید سے، انہوں نے کہا: میں کعبہ میں رسول اللہ ﷺ کے پاس داخل ہوا، آپ نے تصویریں دیکھیں، تو آپ نے پانی کا ڈول منگوایا، میں اسے لایا، تو آپ انہیں مٹانے لگے اور فرمانے لگے: "اللہ ان لوگوں کو ہلاک کرے جو ایسی چیزوں کی تصویر کشی کرتے ہیں جو وہ پیدا نہیں کرتے"۔ تو یہ احتمال ہے کہ نبی ﷺ نے اسامہ کے پانی لانے کے دوران نماز پڑھی ہو، تو بلال نے وہ دیکھا جو اسامہ نے نہیں دیکھا تھا، چنانچہ جس نے ثابت کیا وہ اس سے بہتر ہے جس نے نفی کی۔ اور خود اسامہ نے

کہا: لوگوں نے بلال کی بات مان لی اور میری بات چھوڑ دی۔ اور مجاہد نے عبد اللہ بن صفوان سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے عمر بن الخطاب سے کہا: رسول اللہ ﷺ نے کعبہ میں داخل ہوتے وقت کیا کیا؟ انہوں نے کہا: دو رکعت نماز پڑھی (٦)۔ ہم کہتے ہیں: یہ نفل پر محمول ہے، اور ہم نفل کی صحت کے بارے میں علماء کے درمیان کوئی اختلاف نہیں جانتے...

---

(١) نمبر (١٥٩٨)، اور اسے احمد (٦٠١٩) اور مسلم (١٣٢٩): (٣٩٣) نے بھی نکالا ہے۔ (٢) نمبر (١٣٢٩): (٣٨٨)۔ (٣) إكمال المعلم ٤/ ٤٢٤، والمفهم ٣/ ٤٣١۔ (٤) اپنی مسند (٦٢٢) میں۔ (٥) (د)، (ز) اور (م) میں: حدثنا۔ (٦) اسے احمد (١٥٥٥٣) اور ابو داؤد (٢٠٢٦) نے نکالا ہے۔

the Kaaba. As for the obligatory prayer, no; because God Almighty specified the direction by His saying: {Turn your faces towards it} [Al-Baqarah: 144], as will be explained. And the Prophet's ﷺ saying when he came out: "This is the Qibla," thus he specified it as God Almighty specified it. If the obligatory prayer were valid inside it, he would not have said: "This is the Qibla." In this way, all the hadiths are harmonized, which is better than discarding some of them; so there is no contradiction, and praise be to God.

Fifth: They also differed regarding praying on its roof. Al-Shafi'i said what we mentioned. Malik said: Whoever prays on the roof of the Kaaba should repeat it within the time. It has been narrated from some of Malik's companions: he repeats it forever. Abu Hanifa said: Whoever prays on the roof of the Kaaba, there is nothing upon him (i.e., his prayer is valid) (1).

Sixth: They also differed: which is better: praying at the House (Kaaba) or circumambulating (Tawaf) it? Malik said: Tawaf is better for people from other cities, and prayer is better for the people of Mecca (2). This was mentioned from Ibn Abbas, Ata, and Mujahid (3). The majority hold that prayer is better. And in the report: "Were it not for humble men, bowing elders, nursing infants, and grazing animals, We would have poured punishment upon you in torrents" (4).

---

(1) Al-Tamhid 15/318-319, and Al-Istidhkar 13/125. (2) Al-Mudawwanah 1/407. (3) Ibn Abi Shaybah narrated these reports 4/429 (Al-Amrawi edition), and Al-Jassas mentioned them in Ahkam al-Qur'an 1/76, Al-Baghawi in Ma'alim al-Tanzil 1/114, and Al-Fakhr al-Razi 4/58. (4) Narrated by Ibn Abi Asim in Al-Ahad wal-Mathani (965), Al-Dulabi in Al-Kuna wal-Asma' (263), Al-Tabarani in Al-Kabir 22/(785), and Al-Awsat (6539), and Ibn Adi in Al-Kamil 4/1622 and 7/2377, and Al-Bayhaqi in Al-Kubra 3/345 through Abdul Rahman bin Saad bin Ammar bin Saad Al-Quradhi the Muadhin, from Malik bin Ubaydah Al-Daylami, from his father, from his grandfather Abu Ubaida Musa'fi', from the Prophet ﷺ. Ibn Abi Asim said: its chain of narration is good. Al-Tabarani said in Al-Awsat: This hadith is only narrated from Abu Ubaida Al-Dayli through this chain. Ibn Adi said: I do not think Malik bin Ubaydah has any other hadith besides this one. He quoted Ibn Ma'in saying: I do not know him. Al-Dhahabi said in Al-Mizan 3/427: He is unknown. Regarding Abdul Rahman bin Saad, Al-Dhahabi said in Al-Mizan 2/566: He is not reliable. Ibn Abi Khaythama quoted Ibn Ma'in as saying: Weak. It was also narrated by Al-Bazzar (3212) (Zawa'id), Abu Ya'la

(6402) and (6633), Al-Bayhaqi in Al-Kubra 3/345, and Al-Khatib in Tarikh Baghdad 6/64 through Ibrahim bin Khuthaym bin Irak bin Malik, from his father, from his grandfather, from Abu Hurairah, from the Prophet ﷺ. Al-Bayhaqi said: Ibrahim is not strong. Al-Khatib quoted Ibn Ma'in saying about him: He is nothing, he was not trustworthy nor reliable, an evil, wicked man. Al-Jawzajani said: Not convincing. Abu Zur'ah said: Not strong. Al-Nasa'i said: His hadith is abandoned. Ahmad prohibited Saeed al-Bardha'i from narrating from him.

काबा। जहाँ तक फ़र्ज़ (अनिवार्य) नमाज़ का सवाल है, तो नहीं; क्योंकि अल्लाह तआला ने अपने इस कथन से दिशा निर्धारित कर दी है: {तो अपना चेहरा उसी की ओर फेर लो} [अल-बकरा: 144], जैसा कि आगे स्पष्ट किया जाएगा। और नबी ﷺ का कथन जब वे बाहर निकले: "यह क़िबला है," तो उन्होंने इसे वैसे ही निर्धारित किया जैसे अल्लाह तआला ने निर्धारित किया था। यदि इसके भीतर फ़र्ज़ नमाज़ सही होती, तो वे यह नहीं कहते: "यह क़िबला है।" इस तरह, हदीसों के बीच सामंजस्य स्थापित होता है, जो उनमें से कुछ को छोड़ने से बेहतर है; इसलिए कोई अंतर्विरोध नहीं है, और अल्लाह का शुक्र है।

पाँचवाँ: उन्होंने इसकी छत पर नमाज पढ़ने के बारे में भी मतभेद किया है। अल-शाफ़ई ने वही कहा जो हमने उल्लेख किया है। मलिक ने कहा: जो कोई काबा की छत पर नमाज़ पढ़े, उसे समय रहते उसे दोहराना चाहिए। मलिक के कुछ साथियों से वर्णित है: वह इसे हमेशा के लिए दोहराता है। अबू हनीफ़ा ने कहा: जो कोई काबा की छत पर नमाज़ पढ़ता है, उस पर कोई दोष नहीं है (अर्थात उसकी नमाज़ मान्य है) (1)।

छठा: उन्होंने इसमें भी मतभेद किया है कि कौन सा बेहतर है: बैतुल्लाह (काबा) के पास नमाज़ पढ़ना या उसका तवाफ़ (परिक्रमा) करना? मलिक ने कहा: अन्य शहरों के लोगों के लिए तवाफ़ बेहतर है, और मक्का के लोगों के लिए नमाज़ बेहतर है (2)। इसका उल्लेख इब्न अब्बास, अता और मुजाहिद (3) से किया गया है। बहुसंख्यक विद्वानों का मत है कि नमाज़ बेहतर है। और रिवायत में है: "यदि विनम्र पुरुष, झुकने वाले (रुक्कू करने वाले) बुजुर्ग, दूध पीते बच्चे और चरने वाले जानवर न होते, तो हम तुम पर मूसलाधार अज़ाब (दंड) बरसा देते" (4)।

---

(1) अल-तमहीद 15/318-319, और अल-इस्तिदकार 13/125। (2) अल-मुदव्वना 1/407। (3) इब्न अबी शैबा ने इन रिवायतों को 4/429 (अल-अमरावी संस्करण) में उद्धृत किया है, और अल-जस्सास ने अहकाम अल-कुरान 1/76 में, अल-बग़वी ने मालिम अल-तंज़ील 1/114 में, और अल-फ़ख्र अल-राज़ी ने 4/58 में इनका उल्लेख किया है। (4) इसे इब्न अबी आसिम ने अल-आहाद वल-मथानी (965) में, अल-ऊलाबी ने अल-कुना वल-अस्मा (263) में, अल-तबरानी ने अल-कबीर 22/(785) और अल-अवसत (6539) में, और इब्न अदी ने अल-कामिल 4/1622 और 7/2377 में, और अल-बैहक़ी ने अल-कुबरा 3/345 में अब्दुर्रहमान बिन साद बिन अम्मार बिन साद अल-क़ुरज़ी मुअज़्ज़िन के माध्यम

से, मलिक बिन उबैदा अल-दैलामी से, उनके पिता से, उनके दादा अबू उबैदा मुसाफ़ि से, नबी ﷺ से रिवायत किया है। इब्न अबी आसिम ने कहा: इसकी सनद (सूत्र) हसन है। अल-तबरानी ने अल-अवसत में कहा: यह हदीस अबू उबैदा अल-दैली से केवल इसी सनद के साथ वर्णित है। इब्न अदी ने कहा: मुझे नहीं लगता कि मलिक बिन उबैदा की इस हदीस के अलावा कोई और हदीस है। उन्होंने इब्न मुईन का यह कथन उद्धृत किया: मैं उसे नहीं जानता। अल-ज़हबी ने अल-मीज़ान 3/427 में कहा: वह अज्ञात है। अब्दुर्रहमान बिन साद के बारे में अल-ज़हबी ने अल-मीज़ान 2/566 में कहा: वह विश्वसनीय नहीं है। इब्न अबी खैथमा ने इब्न मुईन के हवाले से कहा: कमज़ोर है। इसे अल-बज़ार (3212) (ज़वाइद), अबू याला (6402) और (6633), अल-बैहक़ी ने अल-कुबरा 3/345 में, और अल-ख़तीब ने तारीख़ बग़दाद 6/64 में इब्राहिम बिन खुथैम बिन इराक बिन मलिक के माध्यम से, उनके पिता से, उनके दादा से, अबू हुरैरा से, नबी ﷺ से रिवायत किया है। अल-बैहक़ी ने कहा: इब्राहिम मज़बूत नहीं है। अल-ख़तीब ने इब्न मुईन का उनके बारे में यह कथन उद्धृत किया: वह कुछ भी नहीं है, वह न तो विश्वसनीय था और न ही भरोसेमंद, एक बुरा, दुष्ट व्यक्ति था। अल-जौज़जानी ने कहा: आश्वस्त करने वाला नहीं। अबू ज़ुरा ने कहा: मज़बूत नहीं। अल-नसाई ने कहा: उसकी हदीस छोड़ दी गई है। अहमद ने सईद अल-बरदई को उससे रिवायत करने से मना किया।

کعبہ، رہا فرض تو نہیں؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ نے جہت کو اپنے اس قول کے ذریعے متعین فرمایا ہے: {فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ} [البقرہ: ١٤٤] جیسا کہ آگے بیان آئے گا، اور آپ ﷺ کا قول جب آپ باہر تشریف لائے: "یہ قبلہ ہے"، تو آپ نے اسے متعین فرمایا جیسے اللہ تعالیٰ نے اسے متعین فرمایا۔ اور اگر اس کے اندر فرض نماز درست ہوتی تو آپ یہ نہ فرماتے: "یہ قبلہ ہے"۔ اور اس طرح احادیث کے درمیان تطبیق درست ہو جاتی ہے، جو کہ بعض کو ساقط کرنے سے بہتر ہے؛ لہذا کوئی تعارض نہیں، اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں۔

پانچویں: انہوں نے کعبہ کی چھت پر نماز پڑھنے میں بھی اختلاف کیا ہے، تو شافعی نے وہی کہا جو ہم نے ذکر کیا۔ اور مالک نے کہا: جس نے کعبہ کی چھت پر نماز پڑھی وہ وقت کے اندر اس کا اعادہ کرے۔ اور مالک کے بعض اصحاب سے مروی ہے: وہ ہمیشہ کے لیے اعادہ کرے۔ اور ابو حنیفہ نے کہا: جس نے کعبہ کی چھت پر نماز پڑھی اس پر کچھ نہیں (یعنی نماز ہو گئی) (١)۔

چھٹی: انہوں نے اس میں بھی اختلاف کیا ہے کہ کیا افضل ہے: بیت اللہ کے پاس نماز پڑھنا یا اس کا طواف کرنا؟ تو مالک نے کہا: دوسرے شہروں کے لوگوں کے لیے طواف افضل ہے، اور اہل مکہ کے لیے نماز افضل ہے (٢)۔ اور یہ ابن عباس، عطا اور مجاہد سے ذکر کیا گیا ہے (٣)۔ اور جمہور کا موقف یہ ہے کہ نماز افضل ہے۔ اور روایت میں ہے: "اگر عاجزی کرنے والے مرد، رکوع کرنے والے بوڑھے، دودھ پیتے بچے اور چرنے والے چوپائے نہ ہوتے، تو ہم تم پر موسلا دھار عذاب برساتے" (٤)۔

(١) التمہید ١٥/٣١٨-٣١٩، والاستذکار ١٣/١٢٥۔ (٢) المدونہ ١/٤٠٧۔ (٣) ان آثار کو ابن ابی شیبہ ٤/٤٢٩ (العمروی ایڈیشن) نے روایت کیا ہے، اور جصاص نے احکام القرآن ١/٧٦ میں، بغوی نے معالم التنزیل ١/١١٤ میں، اور فخر رازی نے ٤/٥٨ میں ان کا ذکر کیا ہے۔ (٤) اسے ابن ابی عاصم نے الآحاد والمثانی (٩٦٥) میں، دولابی نے الکنی والاسماء (٢٦٣) میں، طبرانی نے الکبیر ٢٢/ (٧٨٥) اور الاوسط (٦٥٣٩) میں، اور ابن عدی نے الکامل ٤/ ١٦٢٢ اور ٧/ ٢٣٧٧ میں، اور بیہقی نے الکبری ٣/ ٣٤٥ میں عبدالرحمن بن سعد بن عمار بن سعد القرظی المؤذن کے واسطے سے، مالک بن عبیدہ الدیلمی سے، انہوں نے اپنے والد سے، انہوں نے اپنے دادا ابوعبیدہ مسافع سے، نبی ﷺ سے روایت کیا ہے۔ ابن ابی عاصم نے کہا: اس کی اسناد حسن ہے۔ طبرانی نے الاوسط میں کہا: یہ حدیث ابوعبیدہ الدیلی سے صرف اسی اسناد سے مروی ہے۔ ابن عدی نے کہا: میرا نہیں خیال کہ مالک بن عبیدہ کی اس کے علاوہ کوئی اور حدیث ہے، اور انہوں نے ابن معین کا قول نقل کیا: میں اسے نہیں جانتا۔ ذہبی نے المیزان ٣/ ٤٢٧ میں کہا: وہ مجہول ہے۔ اور عبدالرحمن بن سعد کے بارے میں ذہبی نے المیزان ٢/ ٥٦٦ میں کہا: وہ قابل اعتبار نہیں، ابن ابی خیثمہ نے ابن معین سے نقل کیا: ضعیف ہے۔ اور اسے بزار (٣٢١٢) (زوائد)، ابویعلی (٦٤٠٢) اور (٦٦٣٣)، بیہقی نے الکبری ٣/ ٣٤٥ میں، اور خطیب نے تاریخ بغداد ٦/ ٦٤ میں ابراہیم بن خثیم بن عراک بن مالک کے واسطے سے، انہوں نے اپنے والد سے، انہوں نے اپنے دادا سے، انہوں نے ابوہریرہ سے، نبی ﷺ سے روایت کیا ہے۔ بیہقی نے کہا: ابراہیم قوی نہیں ہے۔ اور خطیب نے ابن معین سے ان کے بارے میں قول نقل کیا: وہ کچھ نہیں، وہ نہ ثقہ تھا اور نہ ہی قابل اعتماد، برا اور خبیث آدمی تھا، اور جوزجانی سے قول نقل کیا: قابل اطمینان نہیں۔ اور ابوزرعہ سے قول نقل کیا: قوی نہیں۔ اور نسائی سے قول نقل کیا: متروک الحدیث ہے۔ اور احمد سے مروی ہے کہ انہوں نے سعید البردعی کو اس سے روایت کرنے سے منع فرمایا۔

Abu Bakr Ahmad bin Ali bin Thabit al-Khatib mentioned in the book "Al-Sabiq wal-Lahiq" from Abdullah bin Mas'ud, who said: The Messenger of Allah (PBUH) said: "Were it not for humble men among you, and grazing cattle, and suckling infants, punishment would have been poured upon the sinners in torrents." He did not mention: "and bowing elders" in it.

And in the Hadith of Abu Dharr: "Prayer is the best subject, so increase it or decrease it." Recorded by Al-Ajurri (1). The reports on the virtue of prayer and prostration are many, testifying to the majority opinion, and Allah Almighty knows best.

The words of the Almighty: {And when Abraham said, "My Lord, make this a secure city and provide its people with fruits - whoever of them believes in Allah and the Last Day." [Allah] said, "And whoever disbelieves - I will grant him enjoyment for a little; then I will force him to the punishment of the Fire, and wretched is the destination." (126)}

It contains three issues:

The first: His words, the Almighty: {a secure city} means Mecca. He prayed for his progeny and others for security and prosperity (2). It is narrated that when he made this prayer, Allah Almighty commanded Gabriel, and he uprooted Taif from Sham, circled with it around the House for a week, so it was named Taif for that reason (3), then he placed it down in Tihama. Mecca and its surroundings were then a wasteland with no water or plants, so Allah blessed what was around it like Taif and others, and grew various types of fruits in it, as will be explained in Surah Ibrahim (4), Allah Almighty willing.

(1) And recorded by Ahmad (21546), and in its chain is Ubaid bin Al-Khashkhash, who is unknown, and Abu Umar Al-Dimashqi, who is weak. And recorded by Ahmad also (22288) from the Hadith of Abu Umamah (RA), and in its chain is Ali bin Yazid Al-Alhani, whose weakness is agreed upon. And recorded by Al-Tabarani in Al-Awsat (243) from Abu Hurairah (RA), Al-Haythami said in Majma' al-Zawa'id 2/249: In it is Abd al-Mun'im bin Bashir, and he is weak. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/208-209. (3) Narrated similarly by Al-Tabari 2/544, and Ibn Abi Hatim (1231) from Muhammad bin Muslim Al-Ta'ifi, and Ibn Abi Hatim (1230), and Al-Azraqi in Akhbar Makkah 1/77 from Al-Zuhri, and it was also mentioned similarly by Al-Wahidi in Al-Waseet 1/210, Al-Baghawi 1/114, and Ibn Atiyyah in Al-Muharrar 1/209, and they are disconnected

reports, and there is no authentic Hadith in that. (4) In the interpretation of verse (37).

सूरा अल-बकरा: आयत १२६ | ३८२

अबू बक्र अहमद बिन अली बिन साबित अल-खातिब ने 'अल-साबिक वल-लाहिक' पुस्तक में अब्दुल्ला बिन मसूद से उल्लेख किया है, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "यदि तुममें विनीत पुरुष, चरने वाले पशु और स्तनपान करने वाले शिशु न होते, तो पापियों पर मूसलाधार अज़ाब उंडेल दिया जाता।" उन्होंने इसमें 'और झुकने वाले बुजुर्गों' का उल्लेख नहीं किया।

और अबू ज़र की हदीस में है: "नमाज़ सबसे अच्छी चीज़ है, तो इसे ज़्यादा करो या कम।" इसे अल-अजुर्री ने दर्ज किया है (१)। नमाज़ और सजदे की फज़ीलत में कई रिवायतें हैं जो जम्हूर (बहुमत) की राय की पुष्टि करती हैं, और अल्लाह तआला ही बेहतर जानता है।

अल्लाह तआला का कथन: {और जब इब्राहीम ने कहा, "ऐ मेरे रब, इसे एक सुरक्षित शहर बना दे और इसके रहने वालों में से जो अल्लाह और परलोक के दिन पर ईमान लाएं उन्हें फलों की जीविका प्रदान कर।" (अल्लाह ने) फरमाया, "और जो कोई कुफ्र करेगा, मैं उसे थोड़े समय के लिए आनंद दूँगा; फिर मैं उसे आग की सजा के लिए विवश कर दूँगा, और वह कितना बुरा ठिकाना है।" (१२६)}

इसमें तीन मसले हैं:

पहला: अल्लाह तआला का कथन: {सुरक्षित शहर} का अर्थ मक्का है। उन्होंने अपनी संतान और अन्य लोगों के लिए शांति और खुशहाल जीवन की प्रार्थना की (२)। यह रिवायत है कि जब उन्होंने यह दुआ की, तो अल्लाह तआला ने जिब्रील को आदेश दिया, उन्होंने शाम से ताइफ़ को उखाड़ लिया, और इसे एक हफ्ते तक बैतुल्लाह के चारों ओर घुमाया, इसलिए इसका नाम ताइफ़ पड़ा (३), फिर उन्होंने इसे तिहामा में रख दिया। उस समय मक्का और उसके आसपास का क्षेत्र बंजर था, न पानी था और न पौधे, इसलिए अल्लाह ने इसके आसपास के क्षेत्रों जैसे ताइफ़ आदि में बरकत दी और उसमें विभिन्न प्रकार के फल उगाए, जैसा कि सूरा इब्राहीम (४) की व्याख्या में आएगा, इंशा अल्लाह।

(१) और इसे अहमद (२१५४६) ने संकलित किया है, और इसके इसनाद में उबैद बिन अल-खशखाश है, जो अज्ञात है, और अबू उमर अल-दिमश्की है, जो कमज़ोर है। और इसे अहमद ने (२२२८८) अबू उमामा (रज़ि.) की हदीस से भी संकलित किया है, और इसके इसनाद में अली बिन यज़ीद अल-अल्हानी है, जिसकी कमज़ोरी पर सहमति है। और इसे अल-तबरानी ने अल-अवसत (२४३) में अबू हुरैरा (रज़ि.) से संकलित किया है, अल-हैथमी ने मजमा अल-ज़वाइद २/२४९ में कहा: इसमें अब्द

अल-मुनिम बिन बशीर है, और वह कमज़ोर है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०८-२०९। (३) इसी तरह अल-तबरी २/५४४, और इब्न अबी हातिम (१२३१) ने मुहम्मद बिन मुस्लिम अल-ताइफी से, और इब्न अबी हातिम (१२३०), और अल-अज़रकी ने अख़बार मक्का १/७७ में अल-ज़ुहरी से संकलित किया है, और अल-वाहिदी ने अल-वसीत १/२१० में, अल-बग़वी १/११४ में, और इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर १/२०९ में भी इसी तरह इसका ज़िक्र किया है, और ये कटी हुई (मकातू) खबरें हैं, और इस बारे में कोई सही हदीस नहीं है। (४) आयत (३७) की व्याख्या में।

ابوبکر احمد بن علی بن ثابت الخطیب نے کتاب "السابق واللاحق" میں عبداللہ بن مسعود سے ذکر کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "اگر تم میں عاجزی کرنے والے مرد، چرنے والے چوپائے اور دودھ پیتے بچے نہ ہوتے تو گناہگاروں پر موسلا دھار عذاب ڈالا جاتا۔" انہوں نے اس میں "اور رکوع کرنے والے بوڑھے" کا ذکر نہیں کیا۔

اور ابو ذر کی حدیث میں ہے: "نماز بہترین موضوع ہے، پس اسے زیادہ کرو یا کم۔" اسے الآجری نے روایت کیا ہے(١)۔ اور نماز اور سجدے کی فضیلت میں اخبار کثیر ہیں جو جمہور کے قول کی تائید کرتی ہیں، اور اللہ تعالیٰ بہتر جاننے والا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّ اجْعَلْ هَذَا بَلَدًا آمِنًا وَارْزُقْ أَهْلَهُ مِنَ الثَّمَرَاتِ مَنْ آمَنَ مِنْهُم بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ ۖ قَالَ وَمَن كَفَرَ فَأُمَتِّعُهُ قَلِيلًا ثُمَّ أَضْطَرُّهُ إِلَىٰ عَذَابِ النَّارِ ۖ وَبِئْسَ الْمَصِيرُ ١٢٦﴾

اس میں تین مسائل ہیں:

پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿بَلَدًا آمِنًا﴾ یعنی مکہ، پس انہوں نے اپنی ذریت اور دوسروں کے لیے امن اور خوشحالی کی دعا کی(٢)۔ روایت ہے کہ جب انہوں نے یہ دعا کی تو اللہ تعالیٰ نے جبرائیل کو حکم دیا، انہوں نے شام سے طائف کو اکھیڑ لیا، پھر اسے بیت اللہ کے گرد ایک ہفتہ تک گھمایا، اسی لیے اس کا نام طائف رکھا گیا(٣)، پھر اسے تہامہ میں اتار دیا، اور مکہ اور اس کے گردونواح اس وقت بنجر زمین تھی جہاں نہ پانی تھا اور نہ پودے، پس اللہ نے اس کے گردونواح جیسے طائف وغیرہ میں برکت دی، اور اس میں طرح طرح کے پھل اگائے، جیسا کہ سورہ ابراہیم(٤) کی تفسیر میں ان شاء اللہ بیان آئے گا۔

(١) اور اسے احمد (٢١٥٤٦) نے روایت کیا، اور اس کی سند میں عبید بن الخشخاش ہے جو مجہول ہے، اور ابو عمر الدمشقی ہے جو ضعیف ہے۔ اور اسے احمد نے بھی (٢٢٢٨٨) ابو امامہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا، اور اس کی سند میں علی بن یزید الالہانی ہے جس کے ضعف پر اتفاق ہے۔ اور اسے الطبرانی نے الاوسط (٢٤٣) میں ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا، ہیثمی نے مجمع الزوائد ٢/٢٤٩ میں کہا: اس میں عبدالمنعم بن بشیر ہے، اور وہ ضعیف ہے۔ (٢) المحرر الوجیز ١/٢٠٨-٢٠٩۔ (٣) اسی طرح طبری ٢/٥٤٤، اور ابن ابی حاتم (١٢٣١) نے محمد بن مسلم الطائفی سے، اور ابن ابی حاتم (١٢٣٠)، اور الازرقی نے اخبار مکہ ١/٧٧ میں زہری سے روایت کیا، اور اسے اسی طرح الواحدی نے الوسیط ١/ ٢١٠، اور البغوی ١/١١٤، اور ابن عطیہ نے المحرر ١/٢٠٩ میں ذکر کیا ہے، اور یہ مقاطیع خبریں ہیں، اور اس بارے میں کوئی صحیح حدیث نہیں ہے۔ (٤) آیت (٣٧) کی تفسیر میں۔

Surah Al-Baqarah: Verse 126 383 Second: Scholars disagreed regarding Mecca: Did it become a secure sanctuary because of Abraham's supplication, or was it already so before that? There are two opinions: One of them: It has always been a sanctuary, protected from domineering tyrants, eclipses, earthquakes, and other calamities that afflict countries. He instilled in rebellious souls such reverence and awe for it that its inhabitants (1) became distinguished by security compared to people of other towns. Glory be to Him, He has placed in it a great sign of His Oneness, as seen in the matter of hunting therein. A dog and the game animal gather together there, yet the dog does not agitate the game, nor does it flee from it. However, once they leave the sanctuary, the dog attacks it, and the instinct of flight and escape returns. Abraham only asked his Lord to make it safe from famine, drought, and raids, and to provide its people with fruits. This is not as some people thought—that it refers to the prohibition of shedding blood even for someone who deserves death. It is unlikely that this was Abraham's (peace be upon him) intention, to the extent that it is said: he asked God Almighty that in His law, it be forbidden to kill whoever seeks refuge in the Sanctuary (2); this is very far-fetched. Second: Mecca was permissible (non-sanctuary) like other lands before the supplication of Abraham (peace be upon him), and by his supplication, it became a secure sanctuary, just as Medina became a sanctuary by the prohibition of the Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) after it had been permissible (3). Proponents of the first view argue with the hadith of Ibn Abbas, who said: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said on the day of the conquest of Mecca: "Indeed, this city was made sacred by Allah on the day He created the heavens and the earth. So it is sacred by the sanctity of Allah until the Day of Resurrection. Fighting in it was not made lawful for anyone before me, nor was it made lawful for me except for one hour of a day. It is sacred by the sanctity of Allah until the Day of Resurrection. Its thorns shall not be cut, its game shall not be chased, its lost property shall not be picked up except by one who makes it known, and its fresh grass shall not be cut." Al-Abbas said: "O Messenger of Allah, except for Idhkhir (lemon grass), for it is for their smiths and their houses." He said: "Except for Idhkhir." A similar hadith is narrated by Abu Shurayh. (1) In (M): "its people became by it..." (2) Ahkam al-Qur'an by al-Harrasi 1/18. (3) See Al-Nukat wal-Uyun 1/189-190.

सूरा अल-बकराह: आयत 126 383 दूसरा: मक्का के बारे में विद्वानों में मतभेद है: क्या यह इब्राहीम की प्रार्थना के कारण एक सुरक्षित अभयारण्य बन गया, या यह उससे पहले भी ऐसा ही था? इसके दो विचार हैं: पहला: यह हमेशा से अत्याचारी शासकों, ग्रहणों, भूकंपों और अन्य आपदाओं से सुरक्षित एक अभयारण्य रहा है जो देशों पर आती हैं। उसने विद्रोही आत्माओं में इसके प्रति इतना सम्मान और भय पैदा कर दिया कि इसके निवासी (1) अन्य शहरों के लोगों की तुलना में सुरक्षा के मामले में विशिष्ट हो गए। ईश्वर ने इसमें अपनी एकता का एक महान चिन्ह रखा है, जैसा कि वहां शिकार के मामले में देखा गया है। कुत्ता और शिकार वहां एक साथ होते हैं, फिर भी कुत्ता शिकार को परेशान नहीं करता और न ही वह उससे भागता है। लेकिन जैसे ही वे अभयारण्य से बाहर निकलते हैं, कुत्ता उस पर हमला कर देता है, और भागने और बचने की प्रवृत्ति वापस आ जाती है। इब्राहीम ने अपने रब से केवल इसे अकाल, सूखे और हमलों से सुरक्षित बनाने और इसके लोगों को फलों से नवाजने की प्रार्थना की थी। यह वैसा नहीं है जैसा कुछ लोगों ने सोचा था—कि इसका अर्थ खून बहाने की मनाही है, यहाँ तक कि उस व्यक्ति के लिए भी जो मृत्युदंड का पात्र है। इसकी संभावना कम है कि इब्राहीम (उन पर शांति हो) का यह उद्देश्य था, यहाँ तक कि यह कहा जाए: उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की कि उनके कानून में, अभयारण्य में शरण लेने वाले को मारना वर्जित हो (2); यह बात बहुत दूर की लगती है। दूसरा: मक्का इब्राहीम (उन पर शांति हो) की प्रार्थना से पहले अन्य देशों की तरह सामान्य भूमि (गैर-अभयारण्य) थी, और उनकी प्रार्थना से यह एक सुरक्षित अभयारण्य बन गया, ठीक वैसे ही जैसे अल्लाह के रसूल (उन पर शांति और आशीर्वाद हो) द्वारा वर्जित किए जाने के बाद मदीना एक अभयारण्य बन गया, जबकि पहले वह सामान्य भूमि थी (3)। पहले मत के समर्थक इब्न अब्बास की हदीस से तर्क देते हैं, जिन्होंने कहा: मक्का की विजय के दिन अल्लाह के रसूल (उन पर शांति और आशीर्वाद हो) ने कहा: "निश्चित रूप से, इस शहर को अल्लाह ने उसी दिन पवित्र बनाया था जिस दिन उसने आकाश और पृथ्वी को बनाया था। इसलिए यह अल्लाह की पवित्रता के कारण प्रलय के दिन तक पवित्र है। इसमें लड़ना मुझसे पहले किसी के लिए वैध नहीं था, और न ही मेरे लिए दिन की एक घड़ी के अलावा वैध किया गया। यह अल्लाह की पवित्रता के कारण प्रलय के दिन तक पवित्र है। इसके कांटे नहीं काटे जाएंगे, इसके शिकार को नहीं भगाया जाएगा, इसकी खोई हुई वस्तु नहीं उठाई जाएगी सिवाय उस व्यक्ति के जो इसकी घोषणा करे, और इसकी ताजी घास नहीं काटी जाएगी।" अल-अब्बास ने कहा: "हे अल्लाह के रसूल, इधखिर (नींबू घास) को छोड़कर, क्योंकि यह उनके लुहारों और उनके घरों के काम आती है।" उन्होंने कहा: "इधखिर को छोड़कर।" अबू शुरैह से

भी इसी तरह की हदीस वर्णित है। (1) (M) में: "इसके निवासी इसके द्वारा बन गए..." (2) अल-हर्रासी द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/18। (3) देखें अल-नुकात वल-उयून 1/189-190।

سورة البقرہ: آیت 126 383 دوسرا: مکہ کے بارے میں علماء میں اختلاف ہے: کیا یہ ابراہیم علیہ السلام کی دعا سے حرمِ امن بنا، یا اس سے پہلے بھی ایسا ہی تھا؟ اس بارے میں دو اقوال ہیں: پہلا قول: یہ ہمیشہ سے جابر حکمرانوں، خسوف و زلزلوں اور دیگر آفات سے محفوظ حرم رہا ہے جو ملکوں پر آتی ہیں۔ اللہ تعالیٰ نے سرکش نفوس میں اس کی ایسی تعظیم اور ہیبت ڈال دی کہ اس کے باشندے (1) دوسرے بستیوں کے لوگوں کے مقابلے میں امن و سکون کے لحاظ سے ممتاز ہو گئے۔ اللہ سبحانہ وتعالیٰ نے اس میں اپنی توحید کی ایک عظیم نشانی رکھی ہے جیسا کہ وہاں شکار کے معاملے میں دیکھا گیا ہے۔ وہاں کتا اور شکار ایک ساتھ جمع ہو جاتے ہیں، کتا شکار کو نہیں چھیڑتا اور نہ ہی وہ اس سے بھاگتا ہے، لیکن جیسے ہی وہ حرم سے باہر نکلتے ہیں، کتا اس پر حملہ کر دیتا ہے اور وہ بھاگنے اور چھپنے کی وہی پرانی کیفیت لوٹ آتی ہے۔ ابراہیم علیہ السلام نے اپنے رب سے صرف یہ دعا کی تھی کہ وہ اسے قحط، خشک سالی اور غارت گری سے امن عطا فرمائے اور اس کے رہنے والوں کو پھلوں سے رزق دے۔ یہ ویسا نہیں ہے جیسا بعض لوگوں نے گمان کیا کہ اس سے مراد خون ریزی سے ممانعت ہے، خواہ وہ شخص قتل کا مستحق ہی کیوں نہ ہو۔ یہ بات بعید ہے کہ ابراہیم علیہ السلام کا یہ مقصد ہو، یہاں تک کہ یہ کہا جائے: انہوں نے اللہ تعالیٰ سے مطالبہ کیا کہ ان کی شریعت میں حرم میں پناہ لینے والے کا قتل حرام ہو (2)؛ یہ بہت بعید از قیاس ہے۔ دوسرا قول: مکہ ابراہیم علیہ السلام کی دعا سے پہلے دیگر شہروں کی طرح حلال (غیر حرم) تھا، اور ان کی دعا کی برکت سے یہ حرمِ امن بن گیا، بالکل اسی طرح جیسے مدینہ رسول اللہ ﷺ کی تحریم سے حرم بنا جبکہ وہ پہلے حلال (غیر حرم) تھا (3)۔ پہلے قول والوں نے ابن عباس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے استدلال کیا ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فتح مکہ کے دن فرمایا: "بے شک اس شہر کو اللہ تعالیٰ نے اس دن حرم قرار دیا تھا جس دن اس نے

آسمانوں اور زمین کو پیدا کیا، پس یہ اللہ کی حرمت کے ساتھ قیامت تک حرام (محترم) ہے۔ مجھ سے پہلے کسی کے لیے اس میں لڑائی حلال نہیں تھی، اور میرے لیے بھی دن کی صرف ایک گھڑی کے لیے حلال کی گئی۔ پس یہ اللہ کی حرمت کے ساتھ قیامت تک حرام ہے۔ نہ اس کے کانٹے کاٹے جائیں، نہ اس کے شکار کو بھڑکایا جائے، نہ اس کی گری پڑی چیز اٹھائی جائے سوائے اس کے جو اس کی پہچان کرائے (اعلان کرے)، اور نہ اس کی ہری گھاس کاٹی جائے۔" حضرت عباس رضی اللہ عنہ نے عرض کیا: اے اللہ کے رسول، سوائے اذخر (ایک قسم کی گھاس) کے، کیونکہ وہ ان کے لوہاروں اور گھروں کے کام آتی ہے۔ آپ ﷺ نے فرمایا: "سوائے اذخر کے"۔ اسی طرح کی حدیث ابو شریح رضی اللہ عنہ سے بھی مروی ہے۔ (1) (م) میں ہے: "اس کے باشندے اس کے ذریعے بن گئے..." (2) احکام القرآن للہراسی 18/1۔ (3) دیکھیے النکت والعیون 189/1-190۔

384 Surah Al-Baqarah: Verse 126

Reported by Muslim and others (1).

In the "Sahih" of Muslim also (2), on the authority of Abdullah bin Zaid bin Asim, that the Messenger of Allah (PBUH) said: "Indeed, Ibrahim made Makkah a sanctuary and prayed for its people, and I have made Madinah a sanctuary as Ibrahim made Makkah a sanctuary, and I have prayed for its Sa' and Mudd (measures) with twice as much as Ibrahim prayed for the people of Makkah."

Ibn Atiyyah (3) said: There is no contradiction between the two hadiths; because the first is an announcement of Allah's prior knowledge concerning it and His decree, and that the sanctity existed during the time of Adam and the times of the region's prosperity with faith. The second is an announcement of Ibrahim's renewal of its sanctity and his making it manifest after it had faded. The Prophet's (PBUH) first statement on the second day of the conquest was an announcement of the exaltation of the sanctity of Makkah for the believers by attributing the prohibition to Allah Almighty. He mentioned Ibrahim when he prohibited (4) Madinah as an example for himself, and it is inevitable (5) that the prohibition of Madinah is also from Allah Almighty, from His effective decree and prior knowledge.

At-Tabari (6) said: Makkah was sacred, but Allah did not command His creation to worship through that until Ibrahim asked Him, so He made it sacred.

Third: The words of Allah Almighty: {And provide its people with fruits—whoever of them believes...} The meaning of provision (Rizq) has been mentioned before. "Ath-Thamarat" (fruits) is the plural of "Thamarah" (fruit), and it has been mentioned before. "Whoever believes" is a substitute (Badal) for "people," a partial substitute (Badal al-Ba'd min al-Kull). Faith (Iman) is belief (Tasdiq), and it has been mentioned before (7).

{He said: And whoever disbelieves} "Whoever" in the phrase "and whoever disbelieves" is in the accusative position, and the estimation is: And I provide for whoever...

(1) Hadith of Ibn Abbas in Muslim (1353), and also reported by Ahmad (2353) and Al-Bukhari (1349). Hadith of Abu Shurayh in Muslim (1354), and also reported by Ahmad (16373) and Al-Bukhari (104). His saying: "Yu'dad": meaning: to be cut. "Khallaha": Khalla is restricted to tender, fresh plants as long as they are moist, and its "ikhtila" is its cutting. Al-Nihayah (Khalla, Adad). "Al-Qayn": The blacksmith. (2) Number (1360),

and it is in Musnad Ahmad (16446) and Sahih Al-Bukhari (2129). (3) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/209. (4) In (D), (Z), and (M): Prohibition. (5) Meaning: inevitably. (6) Tafsir al-Tabari 2/542. (7) 1/272, 345, and 251 respectively.

384 सूरह अल-बक़रह: आयत 126

इसे मुस्लिम और अन्य लोगों ने रिपोर्ट किया है (1)।

'सहीह' मुस्लिम में भी (2) अब्दुल्ला बिन ज़ैद बिन आसिम से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "बेशक, इब्राहिम ने मक्का को हराम (पवित्र) बनाया और उसके लोगों के लिए दुआ की, और मैंने मदीना को हराम बनाया है जैसे इब्राहिम ने मक्का को हराम बनाया था, और मैंने मदीना के सा' और मुद्द (मापों) में बरकत के लिए उससे दोगुनी दुआ की है जितनी इब्राहिम ने मक्का के लोगों के लिए की थी।"

इब्न अतिय्याह (3) ने कहा: इन दोनों हदीसों के बीच कोई विरोधाभास नहीं है; क्योंकि पहली हदीस अल्लाह के पूर्व ज्ञान और उसके फैसले के बारे में एक सूचना है, और यह कि इसकी पवित्रता आदम के समय और ईमान के साथ क्षेत्र की समृद्धि के समय से थी। दूसरी हदीस इब्राहिम द्वारा इसकी पवित्रता के नवीनीकरण और इसके मिट जाने के बाद इसे फिर से प्रकट करने की सूचना है। मक्का विजय के दूसरे दिन नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का पहला कथन अल्लाह तआला की ओर पवित्रता का श्रेय देकर मोमिनों के लिए मक्का की पवित्रता के सम्मान की घोषणा थी। उन्होंने मदीना को हराम (4) ठहराते समय इब्राहिम का ज़िक्र खुद के लिए एक उदाहरण के रूप में किया, और यह अपरिहार्य (5) है कि मदीना की पवित्रता भी अल्लाह तआला की ओर से है, उसके प्रभावी फैसले और पूर्व ज्ञान से।

अत-तब़री (6) ने कहा: मक्का पवित्र था, लेकिन अल्लाह ने अपनी मखलूक को इसके माध्यम से इबादत करने का आदेश तब तक नहीं दिया जब तक इब्राहिम ने उनसे नहीं पूछा, तो उन्होंने इसे पवित्र कर दिया।

तीसरी बात: अल्लाह तआला का फरमान: {और इसके रहने वालों को फलों की रोज़ी अता फ़रमा, उनमें से जो ईमान लाए...} रिज़्क़ (रोज़ी) का अर्थ पहले बताया जा चुका है। 'अथ-थमरात' (फल) 'थमराह' का बहुवचन है, और इसका उल्लेख पहले हो चुका है। "जो ईमान लाया" "लोगों" के लिए बदल (प्रतिस्थापन) है, यानी पूर्ण का अंश बदल (बदल अल-बा'ज़ मिन अल-कुल्ल)। ईमान तस्दीक़ (पुष्टि) है, और इसका उल्लेख पहले हो चुका है (7)।

{उसने कहा: और जिसने कुफ्र किया} "जिसने कुफ्र किया" में "जो" नसब (accusative) की स्थिति में है, और इसका अनुमानित अर्थ है: और मैं उसे रोज़ी देता हूँ जिसने...

(1) मुस्लिम (1353) में इब्न अब्बास की हदीस, और अहमद (2353) और अल-बुखारी (1349) द्वारा भी। मुस्लिम (1354) में अबू शुराय की हदीस, और अहमद (16373) और अल-बुखारी (104) द्वारा भी। उनका कहना है: 'यू'दद': यानी: काटा जाना। 'खल्लाहा': खल्ला ताज़ा, कोमल पौधों को कहा जाता है जब तक वे नम हों, और इसका 'इख़्तिला' इसे काटना है। अल-निहाया (खल्ला, अदद)। 'अल-कैन': लोहार। (2) संख्या (1360), और यह मुसनद अहमद (16446) और सहीह अल-बुखारी (2129) में है। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/209। (4) (द), (ज़) और (म) प्रतियों में: 'तहरीम' (निषेध)। (5) यानी: अनिवार्य रूप से। (6) तफ़सीर अल-तबरी 2/542। (7) क्रमशः 1/272, 345 और 251।

384 سورہ البقرہ: آیت ١٢٦

اسے مسلم اور دیگر نے روایت کیا ہے (١)۔

اور «صحیح» مسلم میں بھی (٢) عبد اللہ بن زید بن عاصم سے مروی ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «بے شک ابراہیم نے مکہ کو حرم قرار دیا اور اس کے رہنے والوں کے لیے دعا کی، اور میں نے مدینہ کو حرم قرار دیا ہے جس طرح ابراہیم نے مکہ کو حرم قرار دیا تھا، اور میں نے اس کے صاع اور مد میں اس سے دگنی دعا کی ہے جو ابراہیم نے مکہ والوں کے لیے کی تھی»۔

ابن عطیہ (٣) نے کہا: ان دونوں حدیثوں میں کوئی تعارض نہیں ہے؛ کیونکہ پہلی اللہ کے سابقہ علم اور اس کے فیصلے کی خبر ہے، اور یہ کہ اس کی حرمت آدم کے زمانے اور ایمان کے ساتھ علاقے کی آبادی کے اوقات میں تھی۔ اور دوسری ابراہیم کی طرف سے اس کی حرمت کی تجدید اور مٹ جانے کے بعد اسے ظاہر کرنے کی خبر ہے۔ اور فتح (مکہ) کے دوسرے دن نبی ﷺ کا پہلا ارشاد، حرمت کو اللہ تعالیٰ کی طرف منسوب کر کے مومنوں پر مکہ کی حرمت کی تعظیم کی خبر تھی۔ اور انہوں نے مدینہ کی تحریم (٤) کے وقت ابراہیم کا ذکر اپنے لیے ایک مثال کے طور پر کیا، اور یہ یقینی (٥) ہے کہ مدینہ کی تحریم بھی اللہ تعالیٰ ہی کی طرف سے ہے، اور اس کے نافذ ہونے والے فیصلے اور سابقہ علم سے ہے۔

اور طبری (٦) نے کہا: مکہ حرم تھا، لیکن اللہ نے مخلوق کو اس سے عبادت کا پابند نہیں کیا یہاں تک کہ ابراہیم نے اس سے سوال کیا تو اس نے اسے حرم بنا دیا۔

تیسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَارْزُقْ أَهْلَهُ مِنَ الثَّمَرَاتِ مَنْ آمَنَ﴾ رزق کا معنی پہلے گزر چکا ہے۔ اور الثمرات 'ثمرہ' کی جمع ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے۔ «مَنْ آمَنَ» 'أهل' سے بدل ہے، بدل البعض من الكل۔ اور ایمان تصدیق ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۷)۔

﴿قَالَ وَمَنْ كَفَرَ﴾ «مَنْ كَفَرَ» میں لفظ «مَنْ» محلِ نصب میں ہے، اور تقدیر (مرادی عبارت) یہ ہے: وَأَرْزُقُ مَنْ (اور میں اسے رزق دوں گا جس نے...)۔

(١) حديث ابن عباس عند مسلم (١٣٥٣)، وأخرجه أيضاً أحمد (٢٣٥٣)، والبخاري (١٣٤٩)، وحديث أبي شريح عند مسلم (١٣٥٤)، وأخرجه كذلك أحمد (١٦٣٧٣)، والبخاري (١٠٤) قوله: يُعضد: أي: يُقطع ، وخَلاها ؛ الخلا مقصور: النبات الرطب الرقيق مادام رطباً ، واختلاؤه: قطعه. النهاية (خلا، عضد). والقين : الحداد. (٢) برقم (١٣٦٠)، وهو في مسند أحمد (١٦٤٤٦)، وصحيح البخاري (٢١٢٩). (٣) المحرر الوجيز ١/ ٢٠٩. (٤) في (د) و(ز) و(م): تحريم. (٥) أي: لا بدّ. (٦) تفسير الطبري ٢/ ٥٤٢. (٧) ٢٧٢/١ و ٣٤٥ و ٢٥١ على الترتيب.

Surah Al-Baqarah: Verse 126 385

...disbelieved; it is permissible for it to be in the place of nominative (raf') as a subject (mubtada'), while it is a condition, and the predicate (khabar) is: "fa-umatti'uhu" (then I will grant him enjoyment), which is the response (jawab)(1).

And they differed whether this statement is from Allah Almighty or from Ibrahim (peace be upon him)? Ubayy ibn Ka'b, Ibn Ishaq, and others said: It is from Allah Almighty(2), and they recited: "fa-umatti'uhu" with a damma on the hamza, a fatha on the mim, and a shadda on the ta'.

{Then I will compel him} by cutting the alif (making it hamzat al-qat'), and a damma on the ra'. Likewise, the Seven [reciters] recited(3) except Ibn 'Amir, for he made the mim sukun and lightened the ta'(4). Abu Ishaq al-Zajjaj narrated that in the recitation of Ubayy it is: "fa-numatti'uhu qalilan thumma nadtarruhu" with the nun for "we".

Ibn Abbas, Mujahid, and Qatada said: This statement is from Ibrahim (peace be upon him), and they recited: "fa-amti'hu" with a fatha on the hamza, and sukun on the mim, "{thumma-dtarruhu}" by connecting the alif (hamzat al-wasl) and a fatha on the ra'. Thus, it is as if Ibrahim (peace be upon him) prayed for the believers and against the disbelievers(6). Accordingly, the pronoun in "qala" (He said) refers to Ibrahim, and "qala" was repeated because of the length of the speech, or because of moving from praying for one group to praying against another.

The subject in "qala" according to the majority recitation is the name of Allah Almighty, and Al-Nahhas chose this(7). He considered the recitation with a fatha on the hamza, sukun on the mim, and connecting the alif to be anomalous (shadhdhah). He said: The context of the speech and the interpretation both indicate something else(8). As for the context of the speech, Allah Almighty reported about Ibrahim...

---

(1) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/260. (2) Reported by Al-Tabari 2/545. (3) In (d): recitation, and in (z) and (m): the reciters, and what is fixed from (kh) and (z) is what matches Al-Muharrar al-Wajiz 1/209, and the speech is from it. (4) Al-Sab'a p. 170, and Al-Taysir p. 76. (5) We did not find Al-Zajjaj's statement, and Al-Farra' mentioned the recitation in Ma'ani al-Qur'an 1/78, Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/260, Al-Zamakhshari in Al-Kashshaf 1/310, and Ibn 'Atiyya in Al-Muharrar 1/209. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/209, and Al-Tabari reported the reports of Ibn Abbas and Mujahid 2/546, and Al-Zamakhshari mentioned Ibn Abbas's recitation in 1/310. (7)

I'rab al-Qur'an 1/261. (8) In the manuscripts: "other than them," and what is fixed is from (m) which matches what is in I'rab al-Qur'an.

सूरा अल-बकराह: आयत १२६ ३८५

...कुफ़्र किया; यह मुब्तदा (विषय) के रूप में रफ़ (कर्ता कारक) के स्थान पर हो सकता है, और यह एक शर्त है, और ख़बर (विधेय) है: "फ-उमत्तिउहु" (तो मैं उसे सुख दूँगा), जो कि जवाब (उत्तर) है(१)।

और इसमें मतभेद है कि क्या यह कथन अल्लाह तआला का है या इब्राहीम अलैहिस्सलाम का? उबई बिन का'ब, इब्न इस्हाक़ और अन्य लोगों ने कहा: यह अल्लाह तआला की ओर से है(२), और उन्होंने पढ़ा: "फ-उमत्तिउहु" हमज़ा पर दम्मा, मीम पर फ़तहा और ता पर शद्दा के साथ।

{फिर मैं उसे विवश करूँगा} अलिफ़ को अलग करके(हमज़तुल क़तअ) और रा पर दम्मा के साथ। इसी तरह सात [क़ारियों] ने पढ़ा(३), सिवाय इब्न आमिर के, क्योंकि उन्होंने मीम को साकिन किया और ता को हल्का (बिना शद्दा के) पढ़ा(४)। अबू इस्हाक़ अल-ज़ज्जाज ने बताया कि उबई की क़िरात में "फ-नुमत्तिउहु क़लीलन थुम्मा नद्तर्रुहु" नून के साथ है(५)।

इब्न अब्बास, मुजाहिद और क़तादा ने कहा: यह कथन इब्राहीम अलैहिस्सलाम की ओर से है, और उन्होंने पढ़ा: "फ-अम्तिह" हमज़ा पर फ़तहा और मीम पर सुकून के साथ, "थुम्मा-द्तर्रुहु" अलिफ़ को जोड़कर (हमज़तुल वस्ल) और रा पर फ़तहा के साथ। इस तरह, जैसे कि इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने मोमिनों के लिए दुआ की और काफ़िरों के ख़िलाफ़(६)। इसके अनुसार, "क़ाला" (उसने कहा) में ज़मीर (सर्वनाम) इब्राहीम के लिए है, और "क़ाला" शब्द का दोहराव बातचीत की लंबाई के कारण, या एक समूह के लिए दुआ से दूसरे के ख़िलाफ़ दुआ की ओर मुड़ने के कारण हुआ।

बहुमत की क़िरात के अनुसार "क़ाला" में फ़ाइल (कर्ता) अल्लाह तआला का नाम है, और अल-नहहास ने इसे चुना है(७)। उन्होंने हमज़ा पर फ़तहा, मीम पर सुकून और अलिफ़ को जोड़ने वाली क़िरात को शाज़ (अपवाद) माना है। उन्होंने कहा: कलाम (भाषण) का क्रम और तफ़्सीर (व्याख्या) दोनों इसके अलावा कुछ और संकेत करते हैं(८)। जहाँ तक कलाम के क्रम का सवाल है, अल्लाह तआला ने इब्राहीम के बारे में बताया...

---

(१) इराबुल क़ुरआन लिल-नहहास १/२६०। (२) इसे अल-तबरी ने २/५४५ में उद्धृत किया है। (३) (द) में: क़िरात, और (ज़) और (म) में: अल-क़ुर्रा, और (ख़) और (ज़) से जो प्रमाणित है वह अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०९ के अनुकूल है, और कथन उसी से है। (४) अल-सब्आ पृष्ठ १७०, और अल-तयसीर पृष्ठ ७६। (५) हमें अल-ज़ज्जाज का कथन नहीं मिला, और अल-फ़र्रा ने मआनी अल-क़ुरआन

१/७८ में, अल-नहहास ने इराबुल क़ुरआन १/२६० में, अल-ज़मख़शरी ने अल-कश्शाफ़ १/३१० में और इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर १/२०९ में इस क़िरात का ज़िक्र किया है। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२०९, और अल-तबरी ने इब्न अब्बास और मुजाहिद के प्रभाव को २/५४६ में उद्धृत किया है, और अल-ज़मख़शरी ने १/३१० में इब्न अब्बास की क़िरात का ज़िक्र किया है। (७) इराबुल क़ुरआन १/२६१। (८) हस्तलिखित प्रतियों में: "ग़ैरहुमा" है, और प्रमाणित (म) से है जो इराबुल क़ुरआन के अनुकूल है।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۶ ۳۸۵

...کفر کیا؛ اور جائز ہے کہ یہ مبتدا کی جگہ رفع میں ہو، اور یہ شرط ہے، اور خبر ہے: «فَأُمَتِّعُهُ» اور یہ جواب ہے(۱)۔

اور اس میں اختلاف ہوا ہے کہ کیا یہ قول اللہ تعالیٰ کی طرف سے ہے یا ابراہیم علیہ السلام کی طرف سے؟ پس ابی بن کعب، ابن اسحاق اور دیگر نے کہا: یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے ہے(۲)، اور انہوں نے پڑھا: «فَأُمَتِّعُهُ» ہمزہ کے ضمہ، میم کے فتحہ اور تاء کی تشدید کے ساتھ

﴿ثُمَّ أَضْطَرُّهُ﴾ الف کو الگ کر کے (ہمزہ قطعی)، اور راء کے ضمہ کے ساتھ اسی طرح ساتوں [قراء] نے پڑھا(۳) سوائے ابن عامر کے، کیونکہ انہوں نے میم کو ساکن کیا اور تاء کو ہلکا پڑھا(۴)۔ اور ابو اسحاق الزجاج نے حکایت کی کہ ابی کی قرأت میں «فنمتعه قليلاً ثم نضطره» نون کے ساتھ ہے(۵)۔

اور ابن عباس، مجاہد اور قتادہ نے کہا: یہ قول ابراہیم علیہ السلام کی طرف سے ہے، اور انہوں نے پڑھا: «فَأَمْتِعُه» ہمزہ کے فتحہ اور میم کے سکون کے ساتھ، «ثم اضطره» الف کو ملا کر (ہمزہ وصلی) اور راء کے فتحہ کے ساتھ۔ گویا ابراہیم علیہ السلام نے مومنین کے لیے دعا کی اور کافروں کے خلاف(۶)۔ اور اس کے مطابق «قال» میں ضمیر ابراہیم کی طرف لوٹتی ہے، اور کلام کی طوالت کی وجہ سے یا ایک قوم کے لیے دعا سے دوسری کے خلاف بددعا کی طرف نکلنے کی وجہ سے «قال» کا اعادہ کیا گیا۔

اور جمہور کی قرأت کے مطابق «قال» میں فاعل اللہ تعالیٰ کا نام ہے، اور النحاس نے اسی کو اختیار کیا ہے(۷)۔ اور ہمزہ کے فتحہ، میم کے سکون اور الف کے وصل والی قرأت کو شاذ قرار

دیا ہے، انہوں نے کہا: کلام کی ترتیب اور تفسیر دونوں مل کر اس کے علاوہ کسی اور چیز پر دلالت کرتے ہیں(۸)۔ جہاں تک کلام کی ترتیب کا تعلق ہے، پس اللہ تعالیٰ نے ابراہیم کے بارے میں خبر دی...

---

(۱) إعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۶۰۔ (۲) اسے طبری نے ۲ / ۵۴۵ میں نکالا ہے۔ (۳) (د) میں: قرأت، اور (ز) اور (م) میں: القراء، اور (خ) اور (ظ) سے جو ثابت ہے وہ المحرر الوجیز ۱/ ۲۰۹ کے موافق ہے، اور کلام اسی سے ہے۔ (۴) السبعة ص ۱۷۰، اور التیسیر ص ۷۶۔ (۵) ہم زجاج کے قول پر واقف نہیں ہو سکے، اور الفراء نے معانی القرآن ۱/ ۷۸ میں، النحاس نے إعراب القرآن ۱ / ۲۶۰ میں، الزمخشری نے الکشاف ۱ / ۳۱۰ میں، اور ابن عطیہ نے المحرر ۱/ ۲۰۹ میں اس قرأت کا ذکر کیا ہے۔ (۶) المحرر الوجیز ۱ / ۲۰۹، اور طبری نے ابن عباس اور مجاہد کے اثر کو ۲ / ۵۴۶ میں نکالا ہے، اور الزمخشری نے ۱ / ۳۱۰ میں ابن عباس کی قرأت کا ذکر کیا ہے۔ (۷) إعراب القرآن ۱ / ۲۶۱۔ (۸) قلمی نسخوں میں: "غیرهما" ہے، اور (م) سے جو ثابت ہے وہ إعراب القرآن کے موافق ہے۔

386 Surah Al-Baqarah: Verse 127

...upon him be peace, that he said: {My Lord, make this a secure city} then it followed with the words of the Mighty and Majestic: {and provide its people with fruits - whoever of them believes in Allah and the Last Day}. He did not separate it with "he said". Then He said afterwards: {He said, "And whoever disbelieves..."}, so this was a response from Allah the Almighty, and it did not say afterwards: "Abraham said".

As for the interpretation, it has been authentically reported from Ibn Abbas, Sa'id bin Jubayr, and Muhammad bin Ka'b - and this is the wording of Ibn Abbas -: Abraham, peace be upon him, supplicated specifically for those who believe, excluding other people. So Allah, the Mighty and Majestic, informed him that He provides for those who disbelieve just as He provides for those who believe, and that He lets them enjoy for a little while, then compels them to the punishment of the Fire (1). Abu Ja'far (2) said: And Allah, the Mighty and Majestic, said: {To each [group] we extend - these and those - from the gift of your Lord} [Al-Isra: 20], and the Most High, Exalted in praise, said: {and [other] nations We will grant enjoyment} [Hud: 48]. Abu Ishaq (3) said: Abraham, peace be upon him, only knew that there would be disbelievers among his offspring, so he specified the believers; because Allah the Almighty had said: {My covenant does not include the wrongdoers}.

His saying, the Almighty: {And [mention] when Abraham was raising the foundations of the House and [with him] Ishmael, [saying], "Our Lord, accept [this] from us. Indeed You are the Hearing, the Knowing."} (127)

His saying, the Almighty: {And [mention] when Abraham was raising the foundations of the House and [with him] Ishmael}: "The foundations" (Al-Qawa'id) means its base, according to the opinion of Abu Ubaida and Al-Farra' (4). Al-Kisa'i said: They are the walls (5). However, the well-known view is that they are the foundations.

In the Hadith: When the House was demolished, large stones were brought out from it, so Ibn al-Zubayr said: These are the foundations that Abraham, peace be upon him, raised.

It was said: The foundations had become effaced, so Allah made Abraham aware of them.

Ibn Abbas: The House was placed on pillars that he saw two thousand years before the world was created, then the earth was spread out from beneath it (6).

(1) Ibn Abi Hatim (1228) narrated the statement of Ibn Abbas through Sa'id bin Jubayr in a similar manner, and Al-Azraqi narrated the statement of Muhammad bin Ka'b Al-Qurazi in Akhbar Makkah 1/76. (2) Meaning Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/261. (3) He is Al-Zajjaj, and his words are in Ma'ani al-Qur'an 1/207, and the author quoted him via Al-Nahhas. (4) Majaz al-Qur'an by Abu Ubaida 1/54, and Ma'ani al-Qur'an by Al-Farra' 1/78. (5) We did not find it, and Abu Hayyan mentioned it in Al-Bahr 1/373. (6) Mentioned by Al-Jassas in Ahkam al-Qur'an 1/80 from Ibn Umar.

३८६ सूरा अल-बक़रह: आयत १२७

...उन पर शांति हो, कि उन्होंने कहा: {ऐ मेरे रब, इसे एक सुरक्षित शहर बना दे} फिर अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल के शब्द आए: {और इसके निवासियों को फलों से जीविका प्रदान कर - उनमें से जो अल्लाह और अंतिम दिन पर विश्वास करते हैं}। इसके बीच "उन्होंने कहा" नहीं लगाया गया। फिर उसने बाद में कहा: {उसने कहा, "और जिसने कुफ्र किया..."}, तो यह अल्लाह तआला की ओर से उत्तर था, और बाद में यह नहीं कहा गया: "इब्राहिम ने कहा"।

जहाँ तक व्याख्या (तफसीर) का प्रश्न है, यह इब्न अब्बास, सईद बिन जुबैर और मुहम्मद बिन काब से प्रमाणिकता के साथ वर्णित है - और ये इब्न अब्बास के शब्द हैं -: इब्राहिम अलैहिस्सलाम ने अन्य लोगों को छोड़कर विशेष रूप से उन लोगों के लिए प्रार्थना की जो ईमान लाए। तो अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने उन्हें सूचित किया कि वह उसे भी जीविका देता है जो कुफ्र करता है जैसा कि उसे देता है जो ईमान लाता है, और यह कि वह उसे थोड़े समय के लिए लाभ उठाने देता है फिर उसे अग्नि की यातना की ओर विवश कर देता है (१)। अबू जाफ़र (२) ने कहा: और अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल ने कहा: {हम इन और उन दोनों को आपके रब के दान से सहायता प्रदान करते हैं} [अल-इसरा: २०] और उसकी प्रशंसा महान है, उसने कहा: {और वे राष्ट्र हैं जिन्हें हम लाभ पहुँचाएँगे} [हूद: ४८]। अबू इसहाक (३) ने कहा: इब्राहिम अलैहिस्सलाम केवल यह जानते थे कि उनकी संतान में काफिर होंगे, इसलिए उन्होंने मोमिनों को विशिष्ट किया; क्योंकि अल्लाह तआला ने कहा था: {मेरा वादा ज़ालिमों के लिए नहीं है}।

अल्लाह तआला का कथन: {और याद करो जब इब्राहिम और इस्माईल घर (काबा) की नींव उठा रहे थे, (यह प्रार्थना करते हुए): "ऐ हमारे रब, हमसे यह स्वीकार कर। बेशक तू ही सब कुछ सुनने वाला और जानने वाला है"}

अल्लाह तआला का कथन: {और याद करो जब इब्राहिम और इस्माईल घर की नींव उठा रहे थे}: अबू उबैदा और अल-फर्रा (४) के अनुसार "अल-क़वाइद" का अर्थ इसकी नींव (आधार) है। अल-किसाई ने कहा: वे दीवारें हैं (५)। लेकिन प्रसिद्ध यह है कि वे नींव हैं।

हदीस में है: जब घर (काबा) गिराया गया, तो उससे बड़े पत्थर निकाले गए, तो इब्न अल-जुबैर ने कहा: ये वे नींव हैं जिन्हें इब्राहिम अलैहिस्सलाम ने उठाया था।

कहा गया है: नींव मिट चुकी थी, तो अल्लाह ने इब्राहिम को उनके बारे में बताया।

इब्न अब्बास: घर (काबा) को उन खंभों पर रखा गया था जिन्हें उन्होंने दुनिया के निर्माण से दो हज़ार साल पहले देखा था, फिर उसके नीचे से पृथ्वी बिछाई गई (६)।

(१) इब्न अबी हातिम (१२२८) ने सईद बिन जुबैर के माध्यम से इब्न अब्बास के कथन को इसी तरह उद्धृत किया है, और अल-अज़रकी ने 'अख़बार मक्का' १/७६ में मुहम्मद बिन काब अल-क़ुरज़ी के कथन को उद्धृत किया है। (२) यानी अल-नहस 'इराब अल-क़ुरआन' १/२६१ में। (३) वह अल-ज़ज्जाज हैं, और उनके शब्द 'मानी अल-क़ुरआन' १/२०७ में हैं, और लेखक ने उन्हें अल-नहस के माध्यम से उद्धृत किया है। (४) अबू उबैदा द्वारा 'मजाज़ अल-क़ुरआन' १/५४, और अल-फर्रा द्वारा 'मानी अल-क़ुरआन' १/७८। (५) हमें यह नहीं मिला, और अबू हय्यान ने 'अल-बहर' १/३७३ में इसका उल्लेख किया है। (६) अल-जस्सास ने इब्न उमर से 'अहकाम अल-क़ुरआन' १/८० में इसका उल्लेख किया है।

۳۸۶ سورة البقرہ: آیت ۱۲۷

...علیہ السلام کہ انہوں نے کہا: {اے میرے رب، اس (شہر) کو امن والا شہر بنا دے} پھر اللہ عزوجل کا قول آیا: {اور اس کے رہنے والوں کو پھلوں سے رزق عطا فرما، جو ان میں سے اللہ اور قیامت کے دن پر ایمان لائیں}۔ اس کے درمیان "انہوں نے کہا" کا فاصلہ نہیں رکھا۔ پھر بعد میں فرمایا: {فرمایا، "اور جس نے کفر کیا..."}، تو یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے جواب تھا، اور بعد میں یہ نہیں کہا گیا: "ابراہیم نے کہا"۔

جہاں تک تفسیر کا تعلق ہے، تو ابن عباس، سعید بن جبیر اور محمد بن کعب سے صحیح طور پر منقول ہے - اور یہ ابن عباس کے الفاظ ہیں -: ابراہیم علیہ السلام نے لوگوں میں سے خاص طور پر صرف ان لوگوں کے لیے دعا کی جو ایمان لائے، تو اللہ عزوجل نے انہیں بتایا کہ وہ اسے بھی رزق دیتا ہے جو کفر کرتا ہے جیسے اسے دیتا ہے جو ایمان لاتا ہے، اور یہ کہ وہ اسے تھوڑا فائدہ دیتا ہے پھر اسے آگ کے عذاب کی طرف مجبور کر دیتا ہے (۱)۔ ابو جعفر (۲) نے کہا: اور اللہ عزوجل نے فرمایا: {ہم ان کو اور ان کو سب کو آپ کے رب کی عطا سے مدد دیتے ہیں} [الاسراء: ۲۰] اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور کچھ قومیں ہیں جنہیں ہم فائدہ دیں گے} [ہود: ۴۸]۔ ابو اسحاق (۳) نے کہا: ابراہیم علیہ السلام کو صرف یہ معلوم تھا کہ ان کی اولاد میں کافر بھی ہوں گے، اس لیے انہوں نے مومنوں کو خاص کیا؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا تھا: {میرا عہد ظالموں کو نہیں پہنچتا}۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {اور (یاد کرو) جب ابراہیم اور اسماعیل بیت اللہ کی بنیادیں اٹھا رہے تھے (اور دعا کر رہے تھے) "اے ہمارے رب، ہم سے قبول فرما، بے شک تو ہی سننے والا اور جاننے والا ہے"}

اللہ تعالیٰ کا قول: {اور جب ابراہیم اور اسماعیل گھر کی بنیادیں اٹھا رہے تھے}: القواعد سے مراد اس کی بنیاد ہے، ابو عبیدہ اور الفراء (۴) کے قول کے مطابق۔ الکسائی نے کہا: یہ دیواریں ہیں (۵)۔ لیکن مشہور یہ ہے کہ یہ بنیادیں ہی ہیں۔

حدیث میں ہے: جب بیت اللہ منہدم ہوا تو اس سے بڑے بڑے پتھر نکلے، تو ابن الزبیر نے کہا: یہ وہ بنیادیں ہیں جنہیں ابراہیم علیہ السلام نے اٹھایا تھا۔

کہا گیا ہے کہ: بنیادیں مٹ چکی تھیں، تو اللہ نے ابراہیم کو ان پر مطلع کیا۔

ابن عباس: بیت اللہ کو ان ستونوں پر رکھا گیا تھا جنہیں انہوں نے دنیا کی تخلیق سے دو ہزار سال پہلے دیکھا تھا، پھر اس کے نیچے سے زمین بچھائی گئی (۶)۔

(۱) ابن ابی حاتم (۱۲۲۸) نے ابن عباس کا قول سعید بن جبیر کے واسطے سے اسی طرح روایت کیا ہے، اور الازرقی نے اخبار مکہ ۱/۷۶ میں محمد بن کعب القرظی کا قول نقل کیا ہے۔ (۲) یعنی النحاس، اعراب القرآن ۱/۲۶۱ میں۔ (۳) وہ الزجاج ہیں، اور ان کا کلام معانی القرآن ۱/۲۰۷ میں ہے، اور مصنف نے اسے النحاس کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (۴) مجاز القرآن ابو عبیدہ ۱/۵۴، اور معانی القرآن الفراء ۱/۷۸۔ (۵) ہمیں نہیں ملا، اور ابو حیان نے البحر ۱/۳۷۳ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۶) الجصاص نے احکام القرآن ۱/۸۰ میں ابن عمر سے اس کا ذکر کیا ہے۔

387

Surat Al-Baqarah: Verse 127

And 'al-qawa'id' (foundations): its singular is 'qa'idah', and 'al-qawa'id' regarding women, its singular is 'qa'id' (1).

People differed about who first built the House and founded it. It was said: the Angels. It was narrated from Ja'far ibn Muhammad that he said: My father was asked, and I was present, about the beginning of the creation of the House. He said: When Allah, the Mighty and Sublime, said: "Indeed, I am going to place a vicegerent on earth," the Angels said: "Will You place therein one who causes corruption therein and sheds blood, while we declare Your praise and sanctify You?" (Quran 2:30). Then He was angry with them, so they sought refuge at His Throne and circumambulated it seven times, seeking to please their Lord until Allah was pleased with them. He said to them: "Build for Me a house on earth, where whoever I am angry with among the children of Adam may seek refuge, and they shall circumambulate it as you circumambulated My Throne, and I will be pleased with them as I am pleased with you." So they built this House.

Abd al-Razzaq mentioned from Ibn Jurayj, from 'Ata and Ibn al-Musayyib and others, that Allah, the Mighty and Sublime, revealed to Adam when he was sent down (2): "Build for Me a house, then surround it as you saw the Angels surrounding My Throne which is in heaven." 'Ata said: People claimed that he built it from five mountains: from Hira, from Mount Sinai, from Lebanon, from Al-Judi, and from the Mount of Olives; and its base (rubḍ) was from Hira (3). Al-Khalil said: 'Rubḍ' here means the circular foundation of the house made of rock, and from it, what is around the city is called 'rabaḍ' (4).

Al-Mawardi mentioned from 'Ata, from Ibn Abbas who said: When Allah sent Adam down from Paradise to earth, He said to him: "O Adam, go and build for Me a house and circumambulate it, and remember Me there as you saw the Angels doing around My Throne." So Adam set out walking, and the earth was folded for him, and contracted for him.

(1) Mentioned by Abu Ubaydah in Majaz al-Qur'an 1/54, Al-Farra in Ma'ani al-Qur'an 1/78, Al-Tabari 2/548, and Al-Jawhari in Al-Sihah (qa'ada). (2) In (kh), (z), (dh), and (m): "when you are sent down", and the established text is from (d), which is consistent with what is in Al-Tamhid. The word "an" (that) is not in (m). (3) Musannaf Abd al-

Razzaq (9092), and the author cited it from him via Ibn Abd al-Barr in Al-Tamhid 10/30, and Al-Tabari also narrated it in 2/549. Ibn Kathir said in the Tafsir: "This is authentic up to 'Ata, but there is some oddity (nukara) in some of it, and Allah knows best." (4) Al-Tamhid 10/32, and see Kitab al-Ayn 7/36. Ibn al-Athir said in Al-Nihayah (rubḍ): 'Al-Rubḍ', with the damma on the 'ra' and sukun on the 'ba', is the foundation of the building. It was said: its middle, and it was said: it and 'al-rabaḍ' are the same, like 'suqm' and 'saqam'.

387

सूरा अल-बकरा: आयत 127

और 'अल-क़वाइद' (नींव): इसका एकवचन 'क़ाइदा' है, और महिलाओं के संदर्भ में 'अल-क़वाइद' का एकवचन 'क़ाइद' है (1)।

लोगों में इस बात पर मतभेद था कि सबसे पहले घर (काबा) किसने बनाया और उसकी नींव किसने रखी। कहा गया: फरिश्तों ने। जाफ़र बिन मुहम्मद से रिवायत है कि उन्होंने कहा: मेरे पिता से घर के निर्माण की शुरुआत के बारे में पूछा गया और मैं वहाँ मौजूद था। उन्होंने कहा: जब अल्लाह अज्ज़-व-जल्ल ने कहा: "बेशक मैं धरती पर एक खलीफा बनाने वाला हूँ," तो फरिश्तों ने कहा: "क्या तू उसमें उसे रखेगा जो उसमें फसाद मचाएगा और खून बहाएगा, जबकि हम तेरी प्रशंसा के साथ तेरी तस्बीह करते हैं और तेरी पवित्रता बयान करते हैं?" (कुरान 2:30)। तब अल्लाह उनसे नाराज हुआ, तो उन्होंने उसके अर्श (सिंहासन) की शरण ली और उसके चारों ओर सात चक्कर लगाए; अपने रब को प्रसन्न करने की कोशिश करते रहे जब तक कि अल्लाह उनसे प्रसन्न नहीं हो गया। अल्लाह ने उनसे कहा: "मेरे लिए धरती पर एक घर बनाओ, जहाँ आदम की संतानों में से जिससे मैं नाराज होऊँ वह शरण ले सके और वे उसके चारों ओर वैसे ही चक्कर लगाएँ जैसे तुमने मेरे अर्श के चारों ओर लगाए हैं, और मैं उनसे वैसे ही प्रसन्न होऊँगा जैसे मैं तुमसे प्रसन्न हुआ हूँ।" तो उन्होंने यह घर बनाया।

अब्दुल रज्ज़ाक़ ने इब्न जुरैज से, अता और इब्न अल-मुसय्यिब और अन्य लोगों से उल्लेख किया है कि अल्लाह अज्ज़-व-जल्ल ने आदम को तब वही (प्रकाशना) की जब उन्हें नीचे उतारा गया (2): "मेरे लिए एक घर बनाओ, फिर उसके चारों ओर घूमो जैसे तुमने फरिश्तों को स्वर्ग में मेरे अर्श के चारों ओर घूमते देखा है।" अता ने कहा: लोगों ने दावा किया कि उन्होंने इसे पांच पहाड़ों से बनाया: हिरा से, तूर सिनाई से, लेबनान से, अल-जूदी से, और ज़ैतून के पहाड़ (तूर ज़ैता) से; और इसका आधार (रूबज़) हिरा से था (3)। अल-खलील ने कहा: यहाँ 'रूबज़' का अर्थ पत्थर से बनी घर की गोलाकार नींव है, और इसी से शहर के चारों ओर के क्षेत्र को 'रबज़' कहा जाता है (4)।

अल-मावर्दी ने अता से, इब्न अब्बास के हवाले से उल्लेख किया है कि उन्होंने कहा: जब अल्लाह ने आदम को जन्नत से धरती पर उतारा, तो उनसे कहा: "ऐ आदम, जाओ और मेरे लिए एक घर बनाओ और उसके चारों ओर तवाफ़ (चक्कर) करो, और मुझे वहाँ वैसे ही याद करो जैसे तुमने फरिश्तों को

मेरे अर्श के पास करते देखा था।" तो आदम चल पड़े, और धरती उनके लिए समेट दी गई और छोटी कर दी गई।

(1) अबू उबैदा ने मजाज़ अल-कुरान 1/54 में, अल-फर्रा ने मा'आनी अल-कुरान 1/78 में, अल-तबरी ने 2/548 में और अल-जौहरी ने अल-सिहाह (क़ा'आदा) में इसका उल्लेख किया है। (2) (ख), (ज़), (ज़), और (म) प्रतियों में: "जब आप नीचे उतरें", और (द) से पुष्ट पाठ वही है जो अल-तम्हीद में है। शब्द 'अन' (कि) प्रति (म) में नहीं है। (3) मुसन्नफ़ अब्दुल रज्ज़ाक़ (9092), और लेखक ने इब्न अब्द अल-बर के माध्यम से अल-तम्हीद 10/30 में इसे उद्धृत किया है, और अल-तबरी ने भी इसे 2/549 में निकाला है। इब्न कथीर ने तफ़सीर में कहा: "यह अता तक सही है, लेकिन इसके कुछ हिस्सों में अजनबीयत (नुकारा) है, और अल्लाह ही बेहतर जानता है।" (4) अल-तम्हीद 10/32, और किताब अल-ऐन 7/36 देखें। इब्न अल-अथिर ने अल-निहाया (रूबज़) में कहा: 'अल-रूबज़', 'रा' पर पेश और 'बा' पर सुकून के साथ: इमारत की नींव है। कहा गया: इसका मध्य भाग, और कहा गया: यह और 'अल-रबज़' एक ही हैं, जैसे 'सुक़्म' और 'सक़म' (बीमारी)।

۳۸۷

سورة البقرہ: آیت ۱۲۷

اور 'القواعد' (بنیادیں): اس کا واحد 'قاعدہ' ہے، اور عورتوں کے حوالے سے 'القواعد' کا واحد 'قاعد' ہے (۱)۔

لوگوں میں اس بارے میں اختلاف ہوا کہ کس نے سب سے پہلے بیت اللہ کو بنایا اور اس کی بنیاد رکھی۔ کہا گیا: فرشتوں نے؛ جعفر بن محمد سے روایت ہے کہ انہوں نے کہا: میرے والد سے بیت اللہ کی تخلیق کی ابتدا کے بارے میں پوچھا گیا اور میں حاضر تھا۔ انہوں نے کہا: جب اللہ عزوجل نے فرمایا: "بے شک میں زمین میں ایک خلیفہ بنانے والا ہوں،" تو فرشتوں نے کہا: "کیا تو اس میں اسے بنائے گا جو اس میں فساد مچائے گا اور خون بہائے گا، جبکہ ہم تیری حمد کے ساتھ تسبیح کرتے ہیں اور تیری پاکیزگی بیان کرتے ہیں؟" (القرآن ۲:۳۰)۔ تو اللہ ان پر ناراض ہوا، چنانچہ انہوں نے اللہ کے عرش کی پناہ لی اور اس کے گرد سات چکر لگائے؛ وہ اپنے رب کو راضی کرتے رہے یہاں تک کہ اللہ ان سے راضی ہو گیا، اور ان سے فرمایا: "میرے لیے زمین میں ایک گھر بناؤ، جہاں بنی آدم میں سے جس پر میں ناراض ہوں وہ پناہ لے سکے، اور اس کا طواف کرے جیسا کہ تم نے میرے عرش کا طواف کیا ہے، تو میں اس سے ویسے ہی راضی ہو جاؤں گا جیسے میں تم سے راضی ہوا ہوں،" چنانچہ انہوں نے یہ گھر بنایا۔

اور عبد الرزاق نے ابن جریج سے، انہوں نے عطا اور ابن المسیب وغیرہ سے ذکر کیا کہ اللہ عزوجل نے آدم کی طرف وحی کی جب انہیں اتارا گیا (۲): "میرے لیے ایک گھر بناؤ، پھر اس کے گرد ویسے ہی گھومو جیسے تم نے فرشتوں کو آسمان میں میرے عرش کے گرد گھومتے

دیکھا ہے۔" عطا نے کہا: لوگوں کا خیال ہے کہ انہوں نے اسے پانچ پہاڑوں سے بنایا: حراء سے، طور سینا سے، لبنان سے، الجودی سے، اور طور زیتا سے؛ اور اس کی بنیاد (رُبض) حراء سے تھی (۳)۔ الخلیل نے کہا: 'الرُبض' سے یہاں مراد پتھر سے بنی گھر کی گول بنیاد ہے، اور اسی سے شہر کے گرد و نواح کو 'ربض' کہا جاتا ہے (۴)۔

اور الماوردی نے عطا سے، انہوں نے ابن عباس سے ذکر کیا کہ انہوں نے کہا: جب اللہ نے آدم کو جنت سے زمین کی طرف اتارا تو ان سے فرمایا: "اے آدم، جاؤ اور میرے لیے ایک گھر بناؤ اور اس کا طواف کرو، اور مجھے وہاں یاد کرو جیسا کہ تم نے فرشتوں کو میرے عرش کے گرد کرتے دیکھا تھا۔" چنانچہ آدم چل پڑے، اور ان کے لیے زمین سمیٹ دی گئی اور قبض کر لی گئی۔

(۱) اسے ابو عبیدہ نے مجاز القرآن ۱/ ۵۴ میں، الفراء نے معانی القرآن ۱/ ۷۸ میں، الطبری نے ۲/ ۵۴۸ میں، اور الجوہری نے الصحاح (قعد) میں ذکر کیا ہے۔ (۲) نسخوں (خ)، (ز)، (ظ) اور (م) میں: "جب آپ اتریں"، اور (د) سے ثابت شدہ متن وہی ہے جو التمہید میں ہے۔ لفظ "أن" نسخہ (م) میں نہیں ہے۔ (۳) مصنف عبد الرزاق (۹۰۹۲)، اور مصنف نے اسے ابن عبد البر کے واسطے سے التمہید ۱۰/ ۳۰ میں نقل کیا ہے، اور الطبری نے بھی اسے ۲/ ۵۴۹ میں روایت کیا ہے۔ ابن کثیر نے تفسیر میں کہا: "یہ عطا تک صحیح ہے، لیکن اس کے کچھ حصے میں نکارت ہے، واللہ اعلم۔" (۴) التمہید ۱۰/ ۳۲، اور دیکھیے کتاب العین ۷/ ۳۶۔ ابن الاثیر نے النہایہ (ربض) میں کہا: 'الرُبض'، راء کے ضمہ اور باء کے سکون کے ساتھ: عمارت کی بنیاد ہے، اور کہا گیا: اس کا درمیانی حصہ، اور کہا گیا: یہ اور 'الرَبض' برابر ہیں، جیسے 'سُقم' اور 'سَقم'۔

Surah Al-Baqarah: Verse 127 388

...the wilderness, so his foot did not fall on anything of the earth but it became inhabited, until he reached the site of the Sacred House. And [it is said] that Jibril (Gabriel), peace be upon him, struck the earth with his two wings (1), revealing a foundation fixed on the lowest seventh earth. The angels threw rocks to him; a single rock of them could not be carried by thirty men. And he built it from five mountains as we mentioned (2).

It has been narrated in some reports: that a tent from the tents of Paradise was lowered for Adam, peace be upon him. It was pitched in the place of the Kaaba for him to live in and circumambulate around it. It remained there until Allah, the Mighty and Sublime, took Adam's soul, then it was raised. This is from the path of Wahb bin Munabbih (3).

In another narration: a house was lowered with him (4), and he and the believers among his children would circumambulate it until the time of the Flood. Then Allah raised it, and it went into heaven. It is that which is called: Al-Bayt al-Ma'mur (The Frequented House). This was narrated from Qatada, mentioned by al-Halimi in his book "Minhaj al-Din" (5). He said: It is possible that the meaning of what Qatada said about a house being lowered with Adam is: that an amount equal to the dimensions of Al-Bayt al-Ma'mur in length, width, and height was lowered with him. Then it was said to him: build according to its measure (6). And it is possible (7) that it was in its alignment (8), so its alignment was the site of the Kaaba, and he built it there. As for the tent, it is possible that it was...

---

(1) In (Ẓ): with his wing, which matches the narration of al-Azraqi as we will mention. (2) Transmitted in full by al-Azraqi in "Akhbar Makka" 1/36, and transmitted in summary by Abu al-Shaykh in "Al-Azama" (1024), and Ibn Asakir in "Tarikh Dimashq" 2/637. Al-Halimi cited it in "Al-Minhaj fi Shu'ab al-Iman" 2/417. In its chain of narration is Talha bin Amr al-Hadrami; al-Dhahabi said in "Al-Mizan" 2/340: Ibn Ma'in and others weakened him, and Ahmad and al-Nasa'i said: his hadith is rejected (matruk), and al-Bukhari and Ibn al-Madini said: he is nothing. End. We did not find it with al-Mawardi in his Tafsir. "Al-Uss" (foundation) with three vowels: the origin of the building. Al-Qamus (Asas). (3) "Al-Minhaj fi Shu'ab al-Iman" by al-Halimi 2/416, and al-Azraqi transmitted it at length in "Akhbar Makka" 1/37 and 41. (4) In (Z): "and with him". (5) It is "Al-Minhaj fi Shu'ab al-Iman" 2/417. The report of Qatada was transmitted by al-Tabari 2/538 without his words: "and it is that which is called Al-Bayt al-Ma'mur". (6)

In (Z), (D), and (Kh): "its estimation". (7) In (Kh), (M), and the margin of (Z): "and he sought/checked", in (Z): "and check", and in (Z): "and it suffices", and what is established is from (D) which matches what is in Al-Minhaj. (8) Al-Bayhaqi transmitted in "Shu'ab al-Iman" (3994) from Abdullah bin Amr bin al-Aas (may Allah be pleased with them) who said: Al-Bayt al-Ma'mur is a house in heaven in alignment with the Kaaba; if it were to fall, it would fall upon it...

सूरह अल-बकरा: आयत 127 388

...मरुभूमि, इसलिए उसका पैर ज़मीन की किसी भी चीज़ पर नहीं पड़ता था सिवाय इसके कि वह आबाद हो जाती, यहाँ तक कि वह पवित्र घर (काबा) के स्थान पर पहुँच गया। और [कहा जाता है] कि जिब्रईल अलैहिस्सलाम ने अपने दो पंखों (1) से ज़मीन पर प्रहार किया, जिससे सातवीं निचली ज़मीन पर टिकी हुई एक बुनियाद प्रकट हुई। फरिश्तों ने उसकी ओर पत्थर फेंके, उनमें से एक पत्थर को तीस आदमी भी नहीं उठा सकते थे। और उसने इसे पाँच पहाड़ों से बनाया जैसा कि हमने उल्लेख किया है (2)।

कुछ वृत्तांतों में वर्णित है: कि आदम अलैहिस्सलाम के लिए जन्नत के खेमों (तंबुओं) में से एक खेमा उतारा गया था। उसे काबा के स्थान पर लगाया गया था ताकि वह उसमें रह सकें और उसके चारों ओर तवाफ़ (परिक्रमा) कर सकें। वह तब तक वहीं रहा जब तक कि अल्लाह अज़-व-जल ने आदम की रूह कब्ज़ नहीं कर ली, फिर उसे उठा लिया गया। यह वहब बिन मुनब्बिह (3) के माध्यम से है।

एक अन्य रिवायत में है: कि उनके साथ एक घर उतारा गया (4), और वह और उनकी संतानों में से ईमान वाले भी उसी तरह तवाफ़ करते थे जब तक कि नूह के तूफ़ान का समय नहीं आ गया। फिर अल्लाह ने उसे उठा लिया, और वह आसमान में चला गया। वह वही है जिसे 'अल-बैतुल मामूर' (आबाद घर) कहा जाता है। यह क़तादा से वर्णित है, जिसका उल्लेख अल-हलीमी ने अपनी पुस्तक 'मिन्हाज अद-दीन' (5) में किया है। उन्होंने कहा: यह संभव है कि क़तादा ने जो कहा कि आदम के साथ एक घर उतारा गया था, उसका अर्थ यह हो कि: अल-बैतुल मामूर के बराबर लंबाई, चौड़ाई और ऊंचाई वाला एक माप उनके साथ उतारा गया था। फिर उनसे कहा गया: इसके माप के अनुसार बनाओ (6)। और यह संभव है (7) कि यह उसकी सीध में हो (8), तो इसकी सीध काबा का स्थान थी, और उन्होंने इसे वहाँ बनाया। जहाँ तक खेमे का सवाल है, यह संभव है कि वह...

---

(1) (ज़) में: अपने पंख से, जो अल-अज़रक़ी के वृत्तांत के अनुरूप है जैसा कि हम उल्लेख करेंगे। (2) अल-अज़रक़ी द्वारा 'अखबार मक्का' 1/36 में पूर्ण रूप से उद्धृत, और अबू अल-शेख़ द्वारा 'अल-अज़मा' (1024) में और इब्न असाकिर द्वारा 'तारीख़ दमिश्क' 2/637 में संक्षिप्त रूप में। अल-हलीमी ने इसे 'अल-मिन्हाज फ़ी शुअब अल-ईमान' 2/417 में प्रस्तुत किया है। इसके वर्णनकर्ताओं की श्रृंखला में तल्हा बिन अम्र अल-हदरमी है; अल-धहाबी ने 'अल-मीज़ान' 2/340 में कहा: इब्न मुईन और अन्य लोगों ने उसे कमज़ोर (ज़ईफ़) कहा है, और अहमद और अल-नसाई ने कहा: उसकी

हदीस त्यागने योग्य (मतरूक) है, और अल-बुखारी और इब्न अल-मदीनी ने कहा: वह कुछ नहीं है। समाप्त। हमने इसे अल-मावर्दी की तफ़्सीर में नहीं पाया। "अल-उस्स" (बुनियाद) तीन हरकतों के साथ: इमारत की जड़। अल-क़ामूस (असास)। (3) अल-हलीमी की 'अल-मिन्हाज फ़ी शुअब अल-ईमान' 2/416, और अल-अज़रक़ी ने इसे 'अखबार मक्का' 1/37 और 41 में विस्तार से उद्धृत किया है। (4) (ज़) में: "और उनके साथ"। (5) यह 'अल-मिन्हाज फ़ी शुअब अल-ईमान' 2/417 है। क़तादा की रिपोर्ट को अल-तबरी ने 2/538 में बिना इस वाक्य के उद्धृत किया है: "और वह वही है जिसे अल-बैतुल मामूर कहा जाता है"। (6) (ज़), (द), और (ख़) में: "इसका अनुमान"। (7) (ख़), (म) और (ज़) के हाशिये में: "और उसने कोशिश की/तलाश की", (ज़) में: "और तलाश करो", और (ज़) में: "और काफी है", और जो स्थापित है वह (द) से है जो मिन्हाज में मौजूद बात के अनुरूप है। (8) अल-बैहकी ने 'शुअब अल-ईमान' (3994) में अब्दुल्ला बिन अम्र बिन अल-आस (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है कि उन्होंने कहा: अल-बैतुल मामूर आसमान में काबा की सीध में एक घर है; अगर वह गिरता तो उसी पर गिरता...

سورة البقرہ: آیت ۱۲۷ ۳۸۸

...بیابان، چنانچہ زمین کی کسی چیز پر ان کا قدم نہیں پڑتا تھا مگر وہ آباد ہو جاتی تھی، یہاں تک کہ وہ بیت اللہ (کعبہ) کے مقام تک پہنچ گئے۔ اور [کہا جاتا ہے] کہ جبرئیل علیہ السلام نے اپنے دو بازوؤں (۱) سے زمین پر ضرب لگائی، جس سے ساتویں نچلی زمین پر ثابت ایک بنیاد ظاہر ہوئی۔ فرشتوں نے ان کی طرف پتھر پھینکے؛ ان میں سے ایک پتھر کو تیس آدمی بھی نہیں اٹھا سکتے تھے۔ اور انہوں نے اسے پانچ پہاڑوں سے بنایا جیسا کہ ہم نے ذکر کیا (۲)۔

بعض روایات میں آیا ہے کہ: آدم علیہ السلام کے لیے جنت کے خیموں میں سے ایک خیمہ اتارا گیا تھا، جو کعبہ کے مقام پر لگایا گیا تاکہ وہ اس میں قیام کریں اور اس کے گرد طواف کریں، چنانچہ وہ وہیں رہا یہاں تک کہ اللہ عزوجل نے آدم کی روح قبض کر لی، پھر اسے اٹھا لیا گیا۔ یہ وہب بن منبہ (۳) کے واسطے سے ہے۔

ایک روایت میں ہے کہ: ان کے ساتھ ایک گھر اتارا گیا (۴)، چنانچہ وہ اور ان کی اولاد میں سے اہل ایمان اسی طرح طواف کرتے رہے یہاں تک کہ طوفان نوح کا وقت آ گیا۔ پھر اللہ نے اسے اٹھا لیا اور وہ آسمان میں چلا گیا۔ وہ وہی ہے جسے 'بیت المعمور' کہا جاتا ہے۔ یہ قتادہ سے مروی ہے، جسے حلیمی نے اپنی کتاب 'منہاج الدین' (۵) میں ذکر کیا ہے، اور کہا ہے: ممکن ہے کہ قتادہ کے اس قول کا مطلب کہ آدم کے ساتھ ایک گھر اتارا گیا یہ ہو کہ: بیت المعمور کے طول، عرض اور موٹائی کے برابر ایک پیمانہ ان کے ساتھ اتارا گیا، پھر ان سے کہا گیا: اس کی مقدار کے مطابق تعمیر کرو (۶)۔ اور یہ بھی ممکن ہے (۷) کہ وہ اس کے سامنے ہو (۸)، چنانچہ اس کا محاذ کعبہ کا مقام تھا، پس انہوں نے اسے وہیں تعمیر کیا۔ رہا خیمہ، تو یہ ممکن ہے کہ وہ...

(۱) (ظ) میں: اپنے بازو سے، اور یہ ازرقی کی روایت کے موافق ہے جیسا کہ ہم ذکر کریں گے۔ (۲) اسے مکمل طور پر ازرقی نے 'اخبار مکہ' ۳۶/۱ میں، اور اختصار کے ساتھ ابوالشیخ نے 'العظمہ' (۱۰۲۴) میں، اور ابن عساکر نے 'تاریخ دمشق' ۲/ ۶۳۷ میں روایت کیا ہے۔ حلیمی نے اسے 'المنہاج فی شعب الایمان' ۲/ ۴۱۷ میں درج کیا ہے، اور اس کی سند میں طلحہ بن عمرو حضرمی ہے؛ ذہبی نے 'المیزان' ۲/ ۳۴۰ میں کہا: ابن معین اور دیگر نے اسے ضعیف قرار دیا ہے، اور احمد اور نسائی نے کہا: اس کی حدیث متروک ہے، اور بخاری اور ابن مدینی نے کہا: وہ کچھ نہیں ہے۔ انتہی۔ ہمیں یہ ماوردی کی تفسیر میں نہیں ملا۔ اور "الاس" (بنیاد) اپنی تینوں حرکات کے ساتھ: عمارت کی جڑ۔ القاموس (اسس)۔ (۳) حلیمی کی 'المنہاج فی شعب الایمان' ۴۱۶/۲، اور ازرقی نے اسے 'اخبار مکہ' ۳۷/۱ اور ۴۱ میں تفصیل سے روایت کیا ہے۔ (۴) (ز) میں: "اور اس کے ساتھ"۔ (۵) وہ 'المنہاج فی شعب الایمان' ۴۱۷/۲ ہے۔ اور قتادہ کی روایت طبری نے ۵۳۸/۲ میں ان کے اس قول کے بغیر روایت کی ہے: "اور وہ وہی ہے جسے بیت المعمور کہا جاتا ہے"۔ (۶) (ز)، (د) اور (خ) میں: "اس کا اندازہ"۔ (۷) (خ)، (م) اور (ز) کے حاشیہ میں: "اور اس نے کوشش کی/تلاش کی"، اور (ز) میں: "اور تلاش کرو"، اور (ظ) میں: "اور کافی ہے"، اور جو ثابت ہے وہ (د) سے ہے جو المنہاج میں موجود بات کے موافق ہے۔ (۸) بیہقی نے 'شعب الایمان' (۳۹۹۴) میں عبداللہ بن عمرو بن العاص رضی اللہ عنہما سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: بیت المعمور آسمان میں کعبہ کے عین سامنے ایک گھر ہے، اگر وہ گرے تو اسی پر گرے گا...

Surah Al-Baqarah: Verse 127 389 [The Sakina] was sent down and placed at the site of the Kaaba. When [Adam] was commanded to build it, he did so, and it provided tranquility for the heart of Adam (peace be upon him) as long as he lived. Then it was raised, so these reports agree.

This was the construction by Adam (peace be upon him), then Ibrahim (peace be upon him) built it. Ibn Jurayj said: Some people said: Allah sent a cloud with a head, and the head said: O Ibrahim, your Lord commands you to take the measure of this cloud. So he began looking at it and drawing its extent. Then the head said: "I have done so." So he dug and uncovered a firm foundation in the earth (1).

It is narrated from Ali ibn Abi Talib (may Allah be pleased with him) that when Allah Almighty commanded Ibrahim to build the House, he set out from Sham with his son Ismail and his mother Hagar. Allah sent with him the Sakina, which had a tongue to speak with. Ibrahim would move with it when it moved and rest with it when it rested, until it brought him to Makkah. It said to Ibrahim: "Build the foundation on my spot." So he and Ismail raised the House until they reached the place of the corner (Al-Rukn). He said to his son: "O my son, seek a stone for me that I can make as a sign for the people." He brought a stone, but Ibrahim was not satisfied with it and said: "Seek another." He went to search, and when he returned, Ibrahim had already received the Corner Stone and placed it in its position. The son asked: "O father, who brought you this stone?" Ibrahim replied: "One who did not leave me dependent on you" (2). Ibn Abbas said: [The mountain of] Abu Qubais called out: "O Ibrahim, O friend of the Merciful, I have a trust for you, so take it." And there was a white stone made of paradise sapphire, which Adam had brought down with him from Paradise. When Ibrahim and Ismail raised the foundations of the House, a square cloud appeared with a head in it, and it called out: "Build according to my square shape" (3). This was the construction by Ibrahim (peace be upon him).

(1) Al-Tamheed 31/10, narrated by Abd al-Razzaq in his Musannaf (9094), and also by al-Azraqi in Akhbar Makkah 60/1 from Ibn Jurayj from Ali (may Allah be pleased with him). (2) Narrated similarly to what the author mentioned by al-Azraqi in Tarikh Makkah 61/1-62, al-Harith (388), al-Tabari 561/2-562, al-Hakim in al-Mustadrak 458/1, 292/2-293, and al-Bayhaqi in al-Shu'ab (3991), and al-Diya' in al-Ahadith al-Mukhtara (438), all through Simak ibn Harb, from Khalid ibn Ar'arah, from Ali (may Allah be pleased with him), and it contains a clear statement that the one who brought the stone was Gabriel (peace be upon him). Al-Hakim said: Sahih according to the criteria

of Muslim, though they did not record it. (3) Mentioned briefly by al-Baghawi in his Tafsir 115/1.

सूरह अल-बकरा: आयत 127 389 [सकीना] को काबा के स्थान पर उतारा और स्थापित किया गया था। जब आदम (उन पर शांति हो) को इसे बनाने का आदेश दिया गया, तो उन्होंने इसे बनाया, और जब तक वे जीवित रहे, यह उनके हृदय की शांति के लिए था। फिर इसे उठा लिया गया, इसलिए ये विवरण मेल खाते हैं।

यह आदम (उन पर शांति हो) का निर्माण था, फिर इब्राहिम (उन पर शांति हो) ने इसे बनाया। इब्न जुरैज ने कहा: और कुछ लोगों ने कहा: अल्लाह ने एक सिर वाला बादल भेजा, और उस सिर ने कहा: हे इब्राहिम, तेरा रब तुझे इस बादल के माप के अनुसार लेने का आदेश देता है। तो वे उसे देखने लगे और उसके घेरे को खींचने लगे। फिर सिर ने कहा: "मैंने कर दिया है।" तब उन्होंने खुदाई की और जमीन में एक स्थिर नींव प्रकट की (1)।

अली इब्न अबी तालिब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से वर्णित है कि जब अल्लाह तआला ने इब्राहिम को घर (काबा) बनाने का आदेश दिया, तो वे शाम से अपने बेटे इस्माइल और उनकी माँ हाजरा के साथ निकले। अल्लाह ने उनके साथ 'सकीना' को भेजा, जिसकी बोलने वाली जुबान थी। इब्राहिम उसके साथ चलते थे जब वह चलती, और उसके साथ रुकते जब वह रुकती, यहाँ तक कि वह उन्हें मक्का ले आई। उसने इब्राहिम से कहा: "मेरी जगह पर नींव बनाओ।" तो उन्होंने और इस्माइल ने घर की दीवारों को उठाया, यहाँ तक कि वे कोने (रुकन) की जगह तक पहुँच गए। उन्होंने अपने बेटे से कहा: "हे मेरे बेटे, मेरे लिए एक पत्थर लाओ जिसे मैं लोगों के लिए एक निशानी बना सकूँ।" वे एक पत्थर लाए लेकिन इब्राहिम को वह पसंद नहीं आया; उन्होंने कहा: "कोई दूसरा लाओ।" वे तलाशने चले गए, और जब लौटे तो इब्राहिम ने कोने का पत्थर (हज्रे अस्वद) पा लिया था और उसे उसके स्थान पर रख दिया था। बेटे ने पूछा: "हे पिता, आपके पास यह पत्थर कौन लाया?" उन्होंने उत्तर दिया: "वह जिसने मुझे तुम पर निर्भर नहीं छोड़ा" (2)। इब्न अब्बास ने कहा: अबू कुबैस (पहाड़) ने पुकारा: "हे इब्राहिम, हे रहमान के मित्र, मेरे पास आपके लिए एक अमानत है, इसे ले लें।" और वह स्वर्ग के नीलम से बना एक सफेद पत्थर था, जिसे आदम स्वर्ग से अपने साथ लाए थे। जब इब्राहिम और इस्माइल ने घर की नींव उठाई, तो एक चौकोर बादल आया जिसमें एक सिर था, उसने पुकारा: "मेरे चौकोर आकार के अनुसार निर्माण करो" (3)। तो यह इब्राहिम (उन पर शांति हो) का निर्माण था।

(1) अल-तमहीद 31/10, अब्द अल-रज्जाक ने अपने मुसन्नफ (9094) में इसे निकाला, और अल-अज़रकी ने भी अख़बार मक्का 60/1 में इब्न जुरैज के माध्यम से अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से निकाला। (2) लेखक द्वारा बताए गए तरीके के समान अल-अज़रकी ने तारीख मक्का 61/1-62 में,

अल-हारिस (388), अल-तबरी 561/2-562, अल-हाकिम ने अल-मुस्तदरक 458/1, 292/2-293 में, और अल-बैहकी ने अल-शुअब (3991) में, और अल-ज़िया ने अल-अहादीथ अल-मुख्तारा (438) में इसे निकाला, सभी सिमाक इब्न हर्ब के माध्यम से, खालिद इब्न अराराह से, अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से, और इसमें स्पष्ट उल्लेख है कि पत्थर लाने वाले जिब्रील (उन पर शांति हो) थे। अल-हाकिम ने कहा: मुस्लिम की शर्तों पर सही है, लेकिन उन्होंने इसे शामिल नहीं किया। (3) अल-बगवी ने अपनी तफ़सीर 115/1 में संक्षिप्त रूप में इसका उल्लेख किया है।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۷ ۳۸۹ [سکینہ] کو کعبہ کے مقام پر اتارا اور رکھا گیا، جب اسے بنانے کا حکم دیا گیا تو آدم علیہ السلام نے اسے بنایا، یہ ان کی زندگی بھر آدم علیہ السلام کے دل کے اطمینان کا باعث رہا، پھر اسے اٹھا لیا گیا، چنانچہ یہ روایات متفق ہیں۔

یہ آدم علیہ السلام کی تعمیر تھی، پھر ابراہیم علیہ السلام نے اسے بنایا۔ ابن جریج کہتے ہیں: اور کچھ لوگوں نے کہا: اللہ نے ایک بادل بھیجا جس میں ایک سر تھا، تو اس سر نے کہا: اے ابراہیم، آپ کا رب آپ کو حکم دیتا ہے کہ اس بادل کی پیمائش کے مطابق جگہ لیں۔ چنانچہ وہ اسے دیکھنے لگے اور اس کا نقشہ کھینچنے لگے، پھر سر نے کہا: "میں نے ایسا ہی کیا ہے"۔ تب انہوں نے کھدائی کی اور زمین میں ایک مضبوط بنیاد ظاہر کی (۱)۔

اور علی بن ابی طالب رضی اللہ عنہ سے روایت ہے کہ جب اللہ تعالیٰ نے ابراہیم علیہ السلام کو بیت اللہ کی تعمیر کا حکم دیا، تو وہ شام سے اپنے بیٹے اسماعیل اور ان کی والدہ ہاجرہ کے ساتھ روانہ ہوئے۔ اللہ نے ان کے ساتھ 'سکینہ' بھیجی جس کی ایک زبان تھی جس سے وہ کلام کرتی تھی۔ ابراہیم علیہ السلام اس کے ساتھ چلتے جب وہ چلتی اور اس کے ساتھ ٹھہرتے جب وہ ٹھہرتی، یہاں تک کہ وہ انہیں مکہ لے آئی۔ اس نے ابراہیم علیہ السلام سے کہا: "میری جگہ پر بنیاد تعمیر کرو"۔ چنانچہ انہوں نے اور اسماعیل علیہ السلام نے بیت اللہ کی دیواریں بلند کیں یہاں تک کہ وہ 'رکن' (کونے) کی جگہ تک پہنچ گئے۔ انہوں نے اپنے بیٹے سے کہا: "اے میرے بیٹے، میرے لیے ایک پتھر تلاش کرو جسے میں لوگوں کے لیے ایک علامت بناؤں"۔ وہ ایک پتھر لائے مگر ابراہیم علیہ السلام کو وہ پسند نہ آیا؛ انہوں نے کہا: "کوئی اور لاؤ"۔ وہ تلاش کرنے چلے گئے، اور جب واپس آئے تو ابراہیم علیہ السلام رکن (حجر اسود) لا چکے تھے اور اسے اس کی جگہ پر رکھ دیا تھا۔ بیٹے نے پوچھا: "اے ابا جان، آپ کے پاس یہ پتھر کون لایا؟" انہوں نے جواب دیا: "اس

نے جس نے مجھے تم پر نہیں چھوڑا" (۲)۔ ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: ابو قبیس (پہاڑ) نے پکارا: "اے ابراہیم، اے خلیل الرحمن، میرے پاس آپ کی ایک امانت ہے، اسے لے لیں"۔ تو وہ جنت کے یاقوت سے بنا ہوا ایک سفید پتھر تھا، جسے آدم علیہ السلام جنت سے اپنے ساتھ لائے تھے۔ جب ابراہیم اور اسماعیل علیہما السلام نے بیت اللہ کی بنیادیں اٹھائیں، تو ایک چوکور بادل آیا جس میں ایک سر تھا، اس نے پکارا: "میری چوکور شکل کے مطابق تعمیر کرو" (۳)۔ پس یہ ابراہیم علیہ السلام کی تعمیر تھی۔

(۱) التمہید ۳۱/۱۰، اور اسے عبد الرزاق نے اپنے مصنف (۹۰۹٤) میں نکالا ہے، اور اسے الازرقی نے اخبار مکہ ٦۰/۱ میں ابن جریج سے، انہوں نے علی رضی اللہ عنہ سے نقل کیا ہے۔
(۲) اسے اسی طرح نکالا ہے جیسا کہ مصنف نے ذکر کیا، الازرقی نے تاریخ مکہ ٦۱/۱-٦۲ میں، الحارث (۳۸۸)، طبری ٥٦۱/۲-٥٦۲، حاکم نے المستدرک ٤٥۸/۱، ۲۹۲/۲-۲۹۳ میں، اور بیہقی نے الشعب (۳۹۹۱) میں، اور ضیاء نے الاحادیث المختارہ (٤۳۸) میں، یہ سب سماک بن حرب کے واسطے سے خالد بن عرعرہ سے، وہ علی رضی اللہ عنہ سے روایت کرتے ہیں، اور اس میں یہ صراحت ہے کہ پتھر لانے والے جبرائیل علیہ السلام تھے۔ حاکم نے کہا: یہ مسلم کی شرط پر صحیح ہے لیکن انہوں نے اسے اپنی کتاب میں درج نہیں کیا۔ (۳) بغوی نے اپنی تفسیر ۱۱٥/۱ میں اسے اختصار کے ساتھ ذکر کیا ہے۔

Page 390 Surah Al-Baqarah: Verse 127

It was narrated that when Ibrahim and Ismail finished building the House (the Kaaba), Allah gave them horses as a reward for raising the foundations of the House. Al-Tirmidhi al-Hakim narrated (1): 'Umar ibn Abi 'Umar (3) narrated to us, Nu'aym ibn Hammad narrated to us, Abd al-Wahhab ibn Hammam, the brother of Abd al-Razzaq, narrated to us, from Ibn Jurayj, from Ibn Abi Mulayka, from Ibn Abbas who said: Horses were wild like other wild animals. When Allah gave permission to Ibrahim and Ismail to raise the foundations, Allah, Blessed be His Name, said: "I am giving you both a treasure that I have stored for you." Then He revealed to Ismail to go out to Ajyad and call out, and the treasure would come to him. So he went out to Ajyad—which was a homeland—and he did not know what the call was or what the treasure was (4). Then Allah inspired him, and not a single horse remained on the face of the earth in the land of the Arabs but that it came to him, allowing him to take hold of its forelocks and subduing it for him. Ride them and fodder them, for they are blessed, and they are the inheritance of your father Ismail. The horse was only called 'Arabic' because Ismail was commanded to call, and it came to him.

Abd al-Mun'im ibn Idris (5) narrated from Wahb ibn Munabbih who said: The first one to build the House with clay and stones was Seth, peace be upon him (6).

As for Quraysh's building of it, it is well-known, and the story of the snake in that regard is mentioned. It used to prevent them from demolishing it until Quraysh gathered at the Maqam and cried out to Allah Almighty, saying: "Our Lord, let us not be afraid (7)! We only intended to honor and adorn Your House. If You are pleased with that, fine; otherwise, do as You see fit."

---

(1) In (D), (Z), and (Kh): "So he narrated". (2) We did not find it in Al-Hakim al-Tirmidhi's works; Al-Suyuti mentioned it in Al-Durr al-Manthur 3/194 and attributed it to Al-Najad in his part. (3) In (Z): "Amr ibn Abi Amr". (4) In (D): "nor what the treasure is". (5) The Yamani, a famous storyteller, is not to be relied upon. More than one scholar abandoned his reports. Ahmad ibn Hanbal said: He used to lie about Wahb ibn Munabbih. Al-Bukhari said: His Hadith is gone (rejected). Ibn Hibban said: He used to fabricate reports and attribute them to his father and others. Al-Mizan 2/668. (6) Al-Tamhid 10/32, and Ibn Qutayba also mentioned it in the book Al-Ma'arif, p. 20. (7) In (D), (Z), and (Kh): "Why are we frightened?", and in (Za): "Turn us back while...". In Abd al-Razzaq's version: "We were not frightened". The confirmed version is from (M), which agrees with what is in Al-Tamhid and Sirat Ibn Hisham 1/195, and another

narration mentions: "We did not deviate". Al-Suhayli said in Al-Rawd al-Unuf 1/225 regarding the meaning of "Lam nura'": It is a word said to calm fear and to show gentleness and goodness in speech. There was no actual fear in this situation to be denied, but the word implies showing an intention of goodness, which is why they spoke it.

पृष्ठ 390 सूरह अल-बकराह: आयत 127

यह वर्णन किया गया है कि जब इब्राहिम और इस्माइल ने घर (काबा) का निर्माण पूरा किया, तो अल्लाह ने उन्हें घर की नींव बुलंद करने के पुरस्कार के रूप में घोड़े दिए। अल-तिर्मिज़ी अल-हकीम ने वर्णन किया (1): उमर इब्न अबी उमर (3) ने हमें बताया, नुयम इब्न हम्माद ने हमें बताया, अब्द अल-वहाब इब्न हम्माम (अब्द अल-रज्जाक के भाई) ने हमें इब्न जुरैज से, इब्न अबी मुलैका से, इब्न अब्बास के माध्यम से बताया कि उन्होंने कहा: घोड़े अन्य जंगली जानवरों की तरह जंगली थे। जब अल्लाह ने इब्राहिम और इस्माइल को नींव उठाने की अनुमति दी, तो अल्लाह, जिसका नाम धन्य है, ने कहा: "मैं तुम दोनों को एक खजाना दे रहा हूँ जो मैंने तुम्हारे लिए सहेज कर रखा है।" फिर उसने इस्माइल को वहि (प्रकाशना) भेजी कि अज्याद की ओर जाओ और पुकारो, तो खजाना तुम्हारे पास आ जाएगा। वह अज्याद गए - जो कि एक वतन था - और उन्हें नहीं पता था कि पुकार क्या है और खजाना क्या है (4)। फिर अल्लाह ने उन्हें प्रेरित किया, और अरब की धरती पर कोई ऐसा घोड़ा नहीं बचा जो उनके पास न आया हो, जिससे उन्हें उनके माथे के बालों को पकड़ने और उन्हें वश में करने का मौका मिला। उन पर सवारी करो और उन्हें चारा खिलाओ, क्योंकि वे धन्य हैं, और वे तुम्हारे पिता इस्माइल की विरासत हैं। घोड़े को 'अरबी' केवल इसलिए कहा गया क्योंकि इस्माइल को पुकारने का आदेश दिया गया था, और वह (घोड़ा) उनके पास आया।

अब्द अल-मुनीम इब्न इदरीस (5) ने वहाब इब्न मुनब्बिह से वर्णन किया कि उन्होंने कहा: मिट्टी और पत्थरों से सबसे पहले घर बनाने वाले शीथ (Seth) अलैहिस्सलाम (6) थे।

जहाँ तक कुरैश द्वारा इसके निर्माण की बात है, वह प्रसिद्ध है, और उस संबंध में सांप की कहानी का उल्लेख है। वह उन्हें इसे गिराने से रोकता था, यहाँ तक कि कुरैश मकाम पर इकट्ठा हुए और अल्लाह तआला से गुहार लगाई और कहा: "हे हमारे रब, हमें डराओ मत (7)! हम केवल तेरे घर का सम्मान करना और उसे सजाना चाहते थे। यदि तू इससे प्रसन्न है, तो ठीक है; अन्यथा, जो तुझे उचित लगे वही कर।"

फुटनोट्स: (1) (D), (Z) और (Kh) में: "तो उन्होंने वर्णन किया"। (2) हमें यह अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी के पास नहीं मिला; अल-सुयुती ने इसे अल-दुर अल-मंसूर 3/194 में उल्लेख किया है और इसे अल-नज्जाद के उनके हिस्से में जिम्मेदार ठहराया है। (3) (Z) में: "अम्र इब्न अबी अम्र"। (4) (D) में: "और न ही खजाना क्या है"। (5) अल-यमानी, एक प्रसिद्ध किस्सागो, भरोसेमंद नहीं है। कई

विद्वानों ने उसे छोड़ दिया। अहमद इब्न हंबल ने कहा: वह वहाब इब्न मुनब्बिह के बारे में झूठ बोलता था। अल-बुखारी ने कहा: उसकी हदीस खत्म हो गई है (अस्वीकार्य है)। इब्न हिब्बान ने कहा: वह अपने पिता और दूसरों के नाम पर झूठी खबरें गढ़ता था। अल-मीजान 2/668। (6) अल-तमहीद 10/32, और इब्न कुतैबा ने भी इसे किताब अल-मआरिफ, पृष्ठ 20 में उल्लेख किया है। (7) (D), (Z) और (Kh) में: "हम क्यों डरे हुए हैं?", और (Za) में: "हमें वापस करो जबकि..."। अब्द अल-रज्जाक के संस्करण में: "हम डरे नहीं थे"। पुष्टि किया गया संस्करण (M) से है, जो अल-तमहीद और सीरत इब्न हिशाम 1/195 में जो है उसके अनुरूप है, और एक अन्य वर्णन में उल्लेख है: "हम नहीं भटके"। अल-सुहैली ने अल-रौद अल-उनुफ 1/225 में "लम नुरा" के अर्थ के बारे में कहा: यह एक शब्द है जो डर को शांत करने और भाषण में कोमलता और अच्छाई दिखाने के लिए कहा जाता है। इस स्थान पर वास्तव में कोई डर नहीं था जिसे नकारा जाए, लेकिन यह शब्द अच्छाई के इरादे को दिखाने के लिए है, इसलिए उन्होंने ऐसा कहा।

صفحہ ۳۹۰ سورہ البقرہ: آیت ۱۲۷

روایت ہے کہ جب ابراہیم اور اسماعیل علیہ السلام بیت اللہ کی تعمیر سے فارغ ہوئے تو اللہ تعالیٰ نے انہیں بیت اللہ کی بنیادیں بلند کرنے کے صلے میں گھوڑے عطا کیے۔ ترمذی الحکیم نے روایت کیا (۱): ہمیں عمر بن ابی عمر (۳) نے حدیث بیان کی، ہمیں نعیم بن حماد نے حدیث بیان کی، ہمیں عبد الوہاب بن ہمام (عبد الرزاق کے بھائی) نے حدیث بیان کی، انہوں نے ابن جریج سے، انہوں نے ابن ابی ملیکہ سے، انہوں نے ابن عباس رضی اللہ عنہ سے روایت کی کہ انہوں نے کہا: گھوڑے دیگر وحشی جانوروں کی طرح وحشی تھے۔ جب اللہ تعالیٰ نے ابراہیم اور اسماعیل علیہ السلام کو بنیادیں بلند کرنے کی اجازت دی تو اللہ تبارک و تعالی نے فرمایا: "میں تم دونوں کو ایک خزانہ عطا کر رہا ہوں جو میں نے تمہارے لیے چھپا کر رکھا تھا۔" پھر اسماعیل علیہ السلام کی طرف وحی فرمائی کہ اجیاد کی طرف نکلو اور پکارو، خزانہ تمہارے پاس آ جائے گا۔ چنانچہ وہ اجیاد کی طرف نکلے - جو کہ ایک وطن تھا - اور وہ نہیں جانتے تھے کہ پکار کیا ہے اور خزانہ کیا ہے (۴)۔ پھر اللہ نے ان کے دل میں ڈالا، پس روئے زمین پر عرب کی سرزمین میں کوئی ایسا گھوڑا نہیں بچا جو ان کے پاس نہ آگیا ہو، یہاں تک کہ انہوں نے ان کی پیشانیوں سے انہیں پکڑ لیا اور انہیں اپنے لیے سدھا لیا۔ ان پر سواری کرو اور انہیں چارہ کھلاؤ، کیونکہ وہ برکت والے ہیں، اور وہ تمہارے باپ اسماعیل کی میراث ہیں۔ گھوڑے کو 'عربی' صرف اس لیے کہا گیا کیونکہ اسماعیل علیہ السلام کو پکارنے کا حکم دیا گیا تھا، اور وہ (گھوڑا) ان کے پاس آیا۔

اور عبد المنعم بن ادریس (۵) نے وہب بن منبہ سے روایت کی کہ انہوں نے کہا: مٹی اور پتھروں سے سب سے پہلے بیت اللہ تعمیر کرنے والے شیث علیہ السلام (۶) تھے۔

رہی بات قریش کی تعمیر کی، تو وہ مشہور ہے، اور اس سلسلے میں سانپ کا قصہ مذکور ہے، جو انہیں اسے ڈھانے سے روکتا تھا، یہاں تک کہ قریش مقامِ ابراہیم کے پاس جمع ہوئے اور اللہ تعالیٰ کے حضور گریہ و زاری کی اور کہا: "اے ہمارے رب، ہمیں خوفزدہ نہ کر (۷)! ہم نے تیرے گھر کی عزت اور زینت کا ارادہ کیا ہے، اگر تو اس سے راضی ہے تو ٹھیک؛ ورنہ جو تجھے منظور ہو وہی کر۔"

حواشی: (۱) نسخہ (د)، (ز) اور (خ) میں: "فروی" (پس روایت کیا)۔ (۲) ہمیں یہ حکیم ترمذی کے ہاں نہیں ملا؛ سیوطی نے اسے الدر المنثور ۱۹۴/۳ میں ذکر کیا ہے اور اسے نجاد کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۳) نسخہ (ز) میں: "عمرو بن ابی عمرو"۔ (۴) نسخہ (د) میں: "اور نہ ہی یہ کہ خزانہ کیا ہے"۔ (۵) الیمانی، مشہور قصہ گو، قابلِ اعتماد نہیں ہے، ایک سے زائد علماء نے اسے ترک کر دیا۔ احمد بن حنبل نے کہا: وہ وہب بن منبہ پر جھوٹ باندھتا تھا۔ بخاری نے کہا: اس کی حدیث ختم ہے (متروک ہے)۔ ابن حبان نے کہا: وہ اپنے باپ اور دوسروں کی طرف جھوٹی باتیں منسوب کرتا تھا۔ المیزان ۶۶۸/۲۔ (۶) التمہید ۳۲/۱۰، اور ابن قتیبہ نے بھی اسے کتاب المعارف ص ۲۰ میں ذکر کیا ہے۔ (۷) نسخہ (د)، (ز) اور (خ) میں: "لم نراعُ"، اور (ظ) میں: "تردنا وقد"، اور عبد الرزاق کے ہاں: "لم نُرْعَ"۔ ثابت شدہ نسخہ (م) سے ہے جو التمہید اور سیرت ابن ہشام ۱۹۵/۱ کے مطابق ہے، اور ایک دوسری روایت میں "لم نزغ" (ہم نہیں بھٹکے) مذکور ہے۔ سہیلی نے الروض الانف ۲۲۵/۱ میں "لم نُرَعْ" کے معنی میں کہا: یہ ایک لفظ ہے جو خوف کو دور کرنے اور کلام میں نرمی اور نیکی ظاہر کرنے کے لیے بولا جاتا ہے۔ اس مقام پر کوئی ایسا خوف نہیں تھا جس کی نفی کی جائے، لیکن یہ کلمہ نیکی کے ارادے کے اظہار کا متقاضی ہے، اس لیے انہوں نے یہ کلمات کہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 127 391

...they heard a sound (Khawat) (1) from the sky – and Khawat is the rustling sound of the wings of a large bird – and suddenly they saw a bird larger than an eagle, with a black back and white belly and legs; it dug its talons (3) into the neck of the snake, then flew off with it, dragging its tail larger than such and such, until it flew towards Ajyad. So Quraysh demolished it [the old building], and they began rebuilding it with stones from the valley, which Quraysh carried on their necks. They raised it twenty cubits into the sky. While the Prophet ﷺ was carrying stones from Ajyad wearing a Namirah (a small striped garment), the Namirah slipped. He went to pull the Namirah up onto his shoulder, and his nakedness was glimpsed due to the smallness of the Namirah. Then a voice called out: "O Muhammad, cover your nakedness." He was never seen naked after that. There were five years between the building of the Kaaba and what was revealed to him [the beginning of revelation], and fifteen years between his departure [from Mecca/migration] and its building. This was mentioned by Abd al-Razzaq, on the authority of Ma'mar, on the authority of Abdullah bin Uthman, on the authority of Abu al-Tufayl (4).

And it was mentioned from Ma'mar, from al-Zuhri (5): until when they had built it and reached the place of the [Black] Stone, Quraysh disputed over the Stone: which tribe would have the honor of lifting it? Until conflict broke out among them. They said: "Come, let us let the first person who comes upon us from this path be the judge." They agreed on that, and the Messenger of Allah ﷺ appeared before them, and he was a youth wearing a sash (6) and a Namirah. They appointed him as the judge. He ordered the Stone to be brought, and it was placed in a cloth. Then he ordered the leader of each tribe to take a corner of the cloth. Then he climbed up, and they lifted the Stone up to him, and it was he who placed it ﷺ.

Ibn Ishaq said: I was told that Quraysh found a writing in the Corner in Syriac, and they did not know what it was until a man from the Jews read it to them. It said: "I am Allah, the Lord of Bakka (Mecca); I created it on the day I created the heavens and the earth, and fashioned the sun and the moon, and I surrounded it with seven upright angels..."

(1) The word was not found in the manuscripts, and in the printed version of Musannaf Abd al-Razzaq, it appeared as "Khawaran," and what is established is from (M), which is consistent with what is in At-Tamheed. (2) In (Z) and (M): "And suddenly he [was]." (3) In (Z) and (M): "his talons." (4) Musannaf Abd al-Razzaq (9106). Abu al-

Tufayl is Amir bin Wathila al-Laythi al-Kinani, born after the Hijra. He saw the Prophet ﷺ and witnessed the wars with Ali. He died in the year (110 AH) and was the last of those who saw the Prophet ﷺ to pass away. Siyar 3/467 and 4/467. (5) Musannaf Abd al-Razzaq (9104). The author transmitted the two reports from him via Ibn Abd al-Barr in At-Tamheed 10/36, 38. (6) In (D), (Z), (Zha), and (M): "Wishaḥ" (without tanween), and what is established is from (Kh), which is consistent with what is in Musannaf Abd al-Razzaq and At-Tamheed.

सूरा अल-बक़रा: आयत 127 391

...उन्होंनें आसमान से एक आवाज़ (खवात) (1) सुनी - और खवात एक बड़े पक्षी के पंखों की फड़फड़ाहट की आवाज़ है - अचानक उन्हें एक पक्षी दिखा जो चील से भी बड़ा था, जिसकी पीठ काली और पेट और पैर सफ़ेद थे; उसने अपने पंजे (3) सांप की गर्दन में गड़ा दिए, फिर उसे लेकर उड़ गया, अपनी पूंछ को इतना बड़ा खींचते हुए जैसे कि ऐसा और वैसा, यहाँ तक कि वह अज्जाद की ओर उड़ गया। फिर कुरैश ने उसे [पुरानी इमारत] गिरा दिया, और वे उसे घाटी के पत्थरों से दोबारा बनाने लगे जिन्हें कुरैश अपनी गर्दन पर ढोते थे। उन्होंने इसे आसमान में बीस हाथ ऊंचा उठाया। जब नबी ﷺ अज्जाद से पत्थर ढो रहे थे और उन्होंने एक नमिरा (एक छोटी धारीदार चादर) पहनी हुई थी, तो नमिरा खिसक गई। वह नमिरा को अपने कंधे पर ऊपर करने गए, और नमिरा के छोटा होने के कारण उनके शरीर का गुप्त अंग दिख गया। फिर एक आवाज़ आई: "ऐ मुहम्मद, अपने गुप्त अंग को ढँक लो।" उसके बाद उन्हें कभी नग्न नहीं देखा गया। काबा के निर्माण और उन पर जो नाज़िल (वही) हुआ उसके बीच पांच साल का अंतर था, और उनके निकलने [मक्का से हिजरत] और इसके निर्माण के बीच पंद्रह साल थे। इसका उल्लेख अब्द अल-रज्जाक ने मा'मर के माध्यम से, अब्दुल्ला बिन उस्मान से, अबू अल-तुफैल (4) के हवाले से किया है।

और मा'मर से, अल-जुहरी (5) के हवाले से उल्लेख किया गया है: यहाँ तक कि जब उन्होंने इसे बना लिया और रुक्न (हज्र-ए-अस्वद का स्थान) तक पहुँच गए, तो कुरैश में रुक्न को लेकर विवाद हो गया: कौन सा कबीला इसे उठाने का सम्मान पाएगा? यहाँ तक कि उनके बीच झगड़ा बढ़ गया। उन्होंने कहा: "आओ, हम उस पहले व्यक्ति को फ़ैसला करने दें जो इस रास्ते से हमारे पास आएगा।" वे इस पर सहमत हो गए, और अल्लाह के रसूल ﷺ उनके सामने प्रकट हुए, और वह एक युवक थे जिन्होंने एक दुपट्टा (6) और एक नमिरा पहनी हुई थी। उन्होंने उन्हें न्यायाधीश नियुक्त किया। उन्होंने रुक्न को मंगाने का आदेश दिया, और उसे एक कपड़े में रखा गया। फिर उन्होंने प्रत्येक कबीले के सरदार को कपड़े का एक कोना पकड़ने का आदेश दिया। फिर वह ऊपर चढ़े, और उन्होंने रुक्न को उनकी ओर उठाया, और वह स्वयं ही थे जिन्होंने उसे रखा ﷺ।

इब्न इसहाक ने कहा: मुझे बताया गया कि कुरैश को रुक्न में सीरियाई भाषा में एक लेख मिला, और वे नहीं जानते थे कि वह क्या है, जब तक कि यहूदियों के एक व्यक्ति ने उन्हें उसे पढ़कर नहीं सुनाया। उसमें लिखा था: "मैं अल्लाह हूँ, बक्का (मक्का) का रब; मैंने इसे उस दिन बनाया था जिस

दिन मैंने आसमानों और ज़मीन को बनाया, और सूरज और चाँद को शक्ल दी, और मैंने इसे सात नेक फ़रिश्तों से घेर दिया..."

(1) यह शब्द पांडुलिपियों में नहीं मिला, और मुसन्निफ अब्द अल-रज्जाक के मुद्रित संस्करण में "खवारन" के रूप में आया है, और जो स्थापित है वह (एम) से है, जो अल-तमहीद में जो कुछ है उसके अनुरूप है। (2) (ज़ेड) और (एम) में: "अचानक वह [था]।" (3) (ज़ेड) और (एम) में: "उसके पंजे।" (4) मुसन्निफ अब्द अल-रज्जाक (9106)। अबू अल-तुफैल आमिर बिन वाथिला अल-लैथी अल-किनानी हैं, जिनका जन्म हिजरत के बाद हुआ था। उन्होंने नबी ﷺ को देखा और अली के साथ युद्धों में शामिल हुए। उनका निधन वर्ष (110 हिजरी) में हुआ और वह नबी ﷺ को देखने वालों में से सबसे अंत में वफ़ात पाने वाले थे। अल-सियर 3/467 और 4/467। (5) मुसन्निफ अब्द अल-रज्जाक (9104)। लेखक ने इब्न अब्द अल-बर के माध्यम से अल-तमहीद 10/36, 38 में उनसे दो खबरें प्रसारित कीं। (6) (डी), (ज़ेड), (ज़ाह), और (एम) में: "विशाख" (तनवीन के बिना), और जो स्थापित है वह (खा) से है, जो मुसन्निफ अब्द अल-रज्जाक और अल-तमहीद में जो है उसके अनुरूप है।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۷ ۳۹۱

...انہوں نے آسمان سے ایک آواز (خوات) (۱) سنی - اور خوات بڑے پرندے کے پروں کی پھڑپھڑاہٹ کی آواز ہے - اچانک انہوں نے ایک پرندہ دیکھا جو عقاب سے بڑا تھا، جس کی کمر کالی اور پیٹ اور ٹانگیں سفید تھیں؛ اس نے اپنے پنجے (۳) سانپ کی گدی میں گاڑ دیے، پھر اسے لے کر اڑ گیا، اس کی دم کو اتنا بڑا گھسیٹتے ہوئے جیسے کہ ایسا اور ویسا، یہاں تک کہ وہ اجیاد کی طرف اڑ گیا۔ چنانچہ قریش نے اسے [پرانی عمارت] گرا دیا، اور وہ اسے وادی کے پتھروں سے دوبارہ تعمیر کرنے لگے جسے قریش اپنی گردنوں پر ڈھوتے تھے۔ انہوں نے اسے آسمان میں بیس ہاتھ اونچا اٹھایا| جب نبی ﷺ اجیاد سے پتھر ڈھو رہے تھے اور انہوں نے ایک نمرہ (ایک چھوٹی دھاری دار چادر) اوڑھی ہوئی تھی، تو نمرہ سرک گئی۔ وہ نمرہ کو اپنے کندھے پر اوپر کرنے گئے، تو نمرہ کے چھوٹا ہونے کی وجہ سے آپ کا جسم نظر آگیا۔ پھر ایک آواز آئی: "اے محمد، اپنی شرمگاہ چھپاؤ۔" اس کے بعد آپ کو کبھی برہنہ نہیں دیکھا گیا۔ کعبہ کی تعمیر اور آپ پر جو نازل ہوا [وحی] کے درمیان پانچ سال کا فرق تھا، اور آپ کے خروج [مکہ سے ہجرت] اور اس کی تعمیر کے درمیان پندرہ سال تھے۔ اس کا ذکر عبد الرزاق نے معمر سے، انہوں نے عبداللہ بن عثمان سے، انہوں نے ابوالطفیل (٤) سے کیا ہے۔

اور معمر سے، زہری (٥) کے حوالے سے مروی ہے: یہاں تک کہ جب انہوں نے اسے تعمیر کر لیا اور رکن (حجر اسود کے مقام) تک پہنچ گئے، تو قریش میں رکن کے بارے میں جھگڑا ہو گیا: کون سا قبیلہ اسے اٹھانے کا شرف حاصل کرے گا؟ یہاں تک کہ ان کے درمیان لڑائی بڑھ گئی۔ انہوں نے کہا: "آؤ، ہم اس پہلے شخص کو فیصلہ کرنے دیں جو اس راستے سے ہمارے پاس آئے گا۔" وہ اس پر متفق ہو گئے، تو رسول اللہ ﷺ ان کے سامنے نمودار ہوئے، اور آپ ایک نوجوان

تھے جس پر ایک دوپٹہ (٦) اور نمرہ تھی۔ انہوں نے آپ کو حکم (فیصلہ کرنے والا) بنایا۔ آپ نے رکن کا حکم دیا، تو اسے ایک کپڑے میں رکھا گیا۔ پھر آپ نے ہر قبیلے کے سردار کو حکم دیا کہ وہ کپڑے کا ایک گوشہ پکڑ لے۔ پھر آپ اوپر چڑھے، اور انہوں نے رکن کو آپ کی طرف اٹھایا، اور آپ ﷺ نے ہی اسے اپنی جگہ پر رکھا۔

ابن اسحاق نے کہا: مجھے بتایا گیا کہ قریش کو رکن میں سریانی زبان میں ایک تحریر ملی، اور وہ نہیں جانتے تھے کہ وہ کیا ہے، یہاں تک کہ یہودیوں کے ایک آدمی نے انہیں وہ پڑھ کر سنائی۔ اس میں لکھا تھا: "میں اللہ ہوں، بکہ (مکہ) کا رب؛ میں نے اسے اس دن پیدا کیا جس دن میں نے آسمانوں اور زمین کو پیدا کیا، اور سورج اور چاند کی شکل بنائی، اور میں نے اسے سات نیک فرشتوں سے گھیر دیا..."

(١) یہ لفظ قلمی نسخوں میں نہیں ملا، اور مصنف عبد الرزاق کے مطبوعہ نسخے میں "خواراً" آیا ہے، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے، جو التمہید میں موجود لفظ کے مطابق ہے۔ (٢) (ز) اور (م) میں: "فإذا هو" (اچانک وہ ہے)۔ (٣) (ز) اور (م) میں: "مخالیبہ" (اس کے پنجے)۔ (٤) مصنف عبد الرزاق (٩١٠٦)۔ اور ابوالطفیل عامر بن واثلہ اللیثی الکنانی ہیں، ہجرت کے بعد پیدا ہوئے، نبی ﷺ کو دیکھا، اور علی کے ساتھ ان کی جنگوں میں شریک رہے۔ ان کی وفات سن (١١٠ھ) میں ہوئی، اور وہ نبی ﷺ کو دیکھنے والوں میں سب سے آخر میں وفات پانے والے تھے۔ السیر ٣/٤٦٧ اور ٤/٤٦٧۔ (٥) مصنف عبد الرزاق (٩١٠٤)، اور مصنف نے ان سے یہ دو خبریں ابن عبد البر کے واسطے سے التمہید ١٠/٣٦، ٣٨ میں نقل کی ہیں۔ (٦) (د)، (ز)، (ظ) اور (م) میں: "وشاح" (بغیر تنوین کے)، اور جو ثابت ہے وہ (خ) سے ہے، جو مصنف عبد الرزاق اور التمہید کے مطابق ہے۔

...it will not pass away until its two mountains [Al-Akhshaban] pass away, blessed for its people in water and milk (1). And on the authority of Abu Ja'far Muhammad bin Ali, he said: The door of the Kaaba was on the ground during the era of the Amalekites, Jurhum, and Ibrahim, peace be upon him, until the Quraysh rebuilt it (2). Muslim narrated from Aisha, may Allah be pleased with her, she said: I asked the Messenger of Allah ﷺ about the wall [Al-Jadr], is it part of the House? He said: "Yes." I said: Why didn't they include it in it? He said: "Your people ran short of funds." I said: What is the matter with its door being raised? He said: "Your people did that so they could let in whomever they wished and prevent whomever they wished. Were it not that your people are close to the era of ignorance, and I fear that their hearts would reject it, I would have considered including the wall into the House and making its door level with the ground" (3). And it was narrated from Abdullah bin al-Zubayr, may Allah be pleased with him, he said: My aunt—meaning Aisha, may Allah be pleased with her—told me: The Prophet ﷺ said: "O Aisha, were it not that your people were close to polytheism, I would have demolished the Kaaba and leveled it to the ground, and I would have made two doors for it, an eastern door and a western door, and I would have added six cubits from the Hijr into it, for the Quraysh shortened it when they built the Kaaba" (5). And on the authority of Urwa from Aisha, she said: The Messenger of Allah ﷺ said to me: "Were it not for the nearness of your people to disbelief, I would have torn down the Kaaba and built it on the foundations of Ibrahim, for when the Quraysh built the Kaaba they shortened it, and I would have made a rear door for it" (7).

---

(1) Sirat Ibn Hisham 1/196, Akhbar Makkah by al-Azraqi 1/80, al-Tamhid 10/44, narrated by al-Azraqi 1/78 on the authority of Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both, and also narrated by Abd al-Razzaq (9220) and (9221), and al-Azraqi 1/79 on the authority of Mujahid. His saying: "Akhshababa", meaning: its two mountains surrounding it, which are Abu Qubais and Al-Ahmar. Al-Nihaya (khashab). (2) Al-Tamhid 10/46-47, and the report is from the narration of al-Waqidi. (3) Sahih Muslim (1333) : (405), and it is in Bukhari (1584). His saying: "Al-Jadr" - with a fatha on the Jeem and a sukun on the Dal - is a language variant of "al-jidar" (the wall). Al-Hafiz said in Fath al-Bari 3/443: "He who vocalized it with a damma [Al-Judur] was mistaken; because what is meant is Al-Hijr." (4) In (Zh): "hina" (when), and it is likewise in Musnad Ahmad. (5) Sahih Muslim (1333) : (401), and it is in Ahmad (25463). (6) In (Zh): "wa ja'altu" (and I made). (7) Sahih Muslim (1333) (398). Ibn Hajar in Fath al-Bari

3/444 restricted "Khalfan" with a fatha on the letter Kha, a sukun on the Lam, followed by a Fa. It is in Ahmad (24297), and Bukhari (1585).

392 सूरह अल-बक़रह: आयत 127

...यह तब तक समाप्त नहीं होगा जब तक कि इसके दो पहाड़ [अल-अख्शबान] समाप्त न हो जाएं इसके लोगों के लिए पानी और दूध में बरकत है (1)। और अबू जाफ़र मुहम्मद बिन अली के अधिकार पर, उन्होंने कहा: काबा का दरवाज़ा अमालेकी, जुरहुम और इब्राहिम अलैहिस्सलाम के युग के दौरान ज़मीन पर था, जब तक कि कुरैश ने इसे (पुन) नहीं बनाया (2)। मुस्लिम ने आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा से रिवायत किया है, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ से दीवार [अल-जद्र] के बारे में पूछा, क्या यह घर का हिस्सा है? उन्होंने कहा: "हाँ।" मैंने कहा: तो उन्होंने इसे इसमें शामिल क्यों नहीं किया? उन्होंने कहा: "तुम्हारी कौम के पास धन की कमी हो गई थी।" मैंने कहा: इसके दरवाज़े के ऊँचे होने का क्या मामला है? उन्होंने कहा: "तुम्हारी कौम ने ऐसा इसलिए किया ताकि वे जिसे चाहें अंदर आने दें और जिसे चाहें रोक दें। यदि तुम्हारी कौम अज्ञानता (जाहिलियत) के दौर के करीब न होती, और मुझे डर है कि उनके दिल इसे अस्वीकार करेंगे, तो मैं दीवार को घर में शामिल करने और इसके दरवाज़े को ज़मीन के बराबर करने पर विचार करता" (3)। और अब्दुल्ला बिन अल-ज़ुबैर रज़ियल्लाहु अन्हु से रिवायत है, उन्होंने कहा: मेरी मौसी—यानी आयशा रज़ियल्लाहु अन्हा —ने मुझसे कहा: नबी ﷺ ने फरमाया: "हे आयशा, यदि तुम्हारी कौम शिर्क(बहुदेववाद) के करीब न होती, तो मैं काबा को गिरा देता और उसे ज़मीन के बराबर कर देता, और मैं इसके लिए दो दरवाज़े बना देता, एक पूर्वी दरवाज़ा और एक पश्चिमी दरवाज़ा, और मैं इसमें हिज्र से छह हाथ और जोड़ देता, क्योंकि कुरैश ने काबा बनाते समय इसे छोटा कर दिया था" (5)। और उर्वा से आयशा के अधिकार पर, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने मुझसे कहा: "यदि तुम्हारी कौम कुफ्र (अविश्वास) के करीब न होती, तो मैं काबा को गिरा देता और इसे इब्राहिम की नींव पर बनाता, क्योंकि जब कुरैश ने काबा बनाया तो उन्होंने इसे छोटा कर दिया था, और मैं इसके लिए एक पिछला दरवाज़ा बनाता" (7)।

---

(1) सीरत इब्न हिशाम 1/196, अख़बार मक्का अल-अज़राक़ी द्वारा 1/80, अल-तमहीद 10/44, इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा के अधिकार पर अल-अज़राक़ी 1/78 द्वारा रिवायत किया गया, और अब्दुल रज़्ज़ाक़ (9220) और (9221) द्वारा भी रिवायत किया गया, और मुजाहिद के अधिकार पर अल-अज़राक़ी 1/79। उनका कहना है: "अख्शबाहा", जिसका अर्थ है: इसके चारों ओर के इसके दो पहाड़, जो अबू कुबैस और अल-अहमर हैं। अल-निहाया (खशब)। (2) अल-तमहीद 10/46-47, और रिपोर्ट अल-वाक़िदी की रिवायत से है। (3) सहीह मुस्लिम (1333): (405), और यह बुखारी (1584)

में है। उनका कहना है: "अल-जद्र" - जीम पर फतह और दाल पर सुकून के साथ - "अल-जिदार" (दीवार) का एक भाषाई रूप है। अल-हाफ़िज़ ने फ़तह अल-बारी 3/443 में कहा: "जिसने इसे दम्मा [अल-जुदुर] के साथ पढ़ा वह गलत था; क्योंकि इसका अर्थ अल-हिज्र है।" (4) (ज़) में: "हीना" (जब), और यह मसनद अहमद में भी इसी तरह है। (5) सहीह मुस्लिम (1333): (401), और यह अहमद (25463) में है। (6) (ज़) में: "व जाअल्तु" (और मैंने बनाया)। (7) सहीह मुस्लिम (1333) (398)। इब्न हजर ने फ़तह अल-बारी 3/444 में "खल्फ़न" को खा पर फतह, लाम पर सुकून और उसके बाद फा के साथ सीमित किया है। यह अहमद (24297) और बुखारी (1585) में है।

392 سورة البقرہ: آیت 127

...یہ زائل نہیں ہوگا یہاں تک کہ اس کے دو پہاڑ [الاخشبین] زائل ہو جائیں، اس کے رہنے والوں کے لیے پانی اور دودھ میں برکت ہے (1)۔ اور ابو جعفر محمد بن علی سے روایت ہے، انہوں نے کہا: کعبہ کا دروازہ عمالیق، جرہم اور ابراہیم علیہ السلام کے زمانے میں زمین پر تھا، یہاں تک کہ قریش نے اسے (دوبارہ) تعمیر کیا (2)۔ مسلم نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ سے الجدر (دیوار) کے بارے میں پوچھا کہ کیا یہ بیت اللہ کا حصہ ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "ہاں۔" میں نے عرض کیا: تو انہوں نے اسے اس میں داخل کیوں نہیں کیا؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "تمہاری قوم کے پاس خرچہ کم پڑ گیا تھا۔" میں نے عرض کیا: اس کے دروازے کے بلند ہونے کا کیا معاملہ ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "تمہاری قوم نے ایسا اس لیے کیا تاکہ وہ جسے چاہیں داخل کریں اور جسے چاہیں روک دیں۔ اگر تمہاری قوم جاہلیت کے دور کے قریب نہ ہوتی، اور مجھے اندیشہ ہے کہ ان کے دل اس کا انکار کریں گے، تو میں الجدر (دیوار) کو بیت اللہ میں داخل کرنے اور اس کے دروازے کو زمین سے لگا دینے پر غور کرتا" (3)۔ اور عبداللہ بن زبیر رضی اللہ عنہ سے روایت ہے، انہوں نے کہا: میری خالہ—یعنی عائشہ رضی اللہ عنہا—نے مجھے بتایا: نبی ﷺ نے فرمایا: "اے عائشہ، اگر تمہاری قوم شرک کے دور کے قریب نہ ہوتی، تو میں کعبہ کو ڈھا دیتا اور اسے زمین کے برابر کر دیتا، اور میں اس کے دو دروازے بنا دیتا، ایک مشرقی دروازہ اور ایک مغربی دروازہ، اور میں اس میں حجر (حطیم) کی طرف سے چھ ہاتھ کا اضافہ کر دیتا، کیونکہ قریش نے کعبہ کی تعمیر کے وقت اسے چھوٹا کر دیا تھا" (5)۔ اور عروہ سے مروی ہے کہ حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے مجھ سے فرمایا: "اگر تمہاری قوم کا کفر کا زمانہ قریب نہ ہوتا، تو میں کعبہ کو توڑ دیتا اور اسے ابراہیم

(علیہ السلام) کی بنیادوں پر بنا دیتا، کیونکہ قریش نے جب کعبہ بنایا تو اسے چھوٹا کر دیا تھا، اور میں اس کے لیے ایک پچھلا دروازہ بنا دیتا" (7)۔

---

(1) سیرت ابن ہشام 1/196، اخبار مکہ للازرقی 1/80، التمہید 10/44، اور اسے ازرقی نے 1/78 میں ابن عباس رضی اللہ عنہما سے روایت کیا، اور اسے عبد الرزاق (9220) اور (9221) نے بھی روایت کیا، اور ازرقی 1/79 میں مجاہد سے۔ ان کا قول: "اخشباها"، یعنی: اس کے وہ دو پہاڑ جو اس کا احاطہ کیے ہوئے ہیں، اور وہ ابو قبیس اور الاحمر ہیں۔ النہایہ (خشب)۔ (2) التمہید 10/46-47، اور یہ خبر واقدی کی روایت سے ہے۔ (3) صحیح مسلم (1333): (405)، اور یہ بخاری (1584) میں بھی ہے۔ ان کا قول: "الجدر" - جیم کے فتحہ اور دال کے سکون کے ساتھ - یہ "الجدار" (دیوار) کی ایک لغت ہے۔ حافظ نے فتح الباری 3/443 میں کہا: "جس نے اسے ضمہ [الجدُر] کے ساتھ پڑھا اس سے غلطی ہوئی؛ کیونکہ مراد حجر (حطیم) ہے۔" (4) (ظ) میں: "حین" (جب)، اور مسند احمد میں بھی اسی طرح ہے۔ (5) صحیح مسلم (1333): (401)، اور یہ احمد (25463) میں ہے۔ (6) (ظ) میں: "وجعلت" (اور میں نے بنایا)۔ (7) صحیح مسلم (1333) (398)۔ ابن حجر نے فتح الباری 3/444 میں "خلفاً" کو خاء معجمہ کے فتحہ اور لام کے سکون کے ساتھ مقید کیا ہے جس کے بعد فاء ہے۔ یہ احمد (24297) اور بخاری (1585) میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 127 393

In Al-Bukhari (1): Hisham bin Urwa said: meaning a door. And in Al-Bukhari also: "I would have made two openings for it" (2), meaning two doors, and this was the construction of the Quraysh. Then, when the people of Sham (Levant) fought Abdullah bin Al-Zubayr, and the Kaaba was weakened by their fire, Ibn Al-Zubayr demolished it and rebuilt it according to what Aisha had told him. He added five cubits to it from the Hijr, until he revealed the foundation (3) that people saw. He built upon it, and the height of the Kaaba was eighteen cubits. When he added to its width, he found it too short, so he increased its height by ten cubits. He made two doors for it, one to enter and the other to exit. This is mentioned in Sahih Muslim (4), though the wording of the Hadith varies. Sufyan mentioned, on the authority of Dawud bin Shapur, from Mujahid, who said: When Ibn Al-Zubayr wanted to demolish the Kaaba and rebuild it, he said to the people: "Demolish it." He said: They refused to demolish it, fearing that punishment would descend upon them. Mujahid said: So we went out to Mina and stayed there for three days, waiting for the punishment. He said: Ibn Al-Zubayr himself climbed onto the wall of the Kaaba. When they saw that nothing happened to him, they grew bold and did the same. He said: So they demolished it (5). When he rebuilt it, he made two doors for it: a door through which they enter, and a door through which they exit. He added six cubits to the part adjacent to the Hijr and increased its height by nine cubits (6). Muslim said (7) in his narration: When Ibn Al-Zubayr was killed, Al-Hajjaj wrote to Abd al-Malik ibn Marwan informing him of that, and informing him that Ibn Al-Zubayr had placed the building on a foundation (8) seen by the trustworthy people of Mecca. Abd al-Malik wrote back to him: "We have nothing to do with Ibn Al-Zubayr's meddling. As for what..."

(1) Sahih (1585). (2) We did not find it in the printed edition of Sahih Al-Bukhari. Al-Qadi Ayyad mentioned it in 'Ikmal al-Mu'allim' (4/428), and the author quoted him. Abu al-Abbas also mentioned it in 'Al-Mufhim' (3/434). (3) In (D): 'The foundation appeared'. (4) Number (1333) : (402). (5) Narrated by Al-Azraqi in 'Akhbar Makkah' (1/214), Ibn Abd al-Barr in 'Al-Tamhid' (10/48), and summarized by Abd al-Razzaq (9182). (6) Al-Tamhid (10/48). (7) Sahih Muslim (1333) : (402). (8) In (D): 'A foundation had been'.

सूरा अल-बकराह: आयत 127 393

और अल-बुखारी (1) में है: हिशाम बिन उरवा ने कहा: यानी एक दरवाज़ा। और अल-बुखारी में यह भी है: "मैं इसके दो मुख (खलफ़ैन) बनाता" (2) यानी दो दरवाज़े, और यह कुरैश का निर्माण था। फिर जब शाम के लोगों ने अब्दुल्ला बिन अल-जुबैर से युद्ध किया और उनके आग लगाने से काबा कमज़ोर हो गया, तो इब्न अल-जुबैर ने उसे ढहा दिया और उसे वैसा ही बनाया जैसा आयशा ने उन्हें बताया था। उन्होंने हिज्र की तरफ से इसमें पांच हाथ बढ़ा दिए, यहाँ तक कि उन्होंने उस नींव (3) को प्रकट कर दिया जिसे लोगों ने देखा। उन्होंने उसी पर निर्माण किया, और काबा की ऊँचाई अठारह हाथ थी। जब उन्होंने इसकी चौड़ाई बढ़ाई, तो उन्हें यह छोटा लगा, इसलिए उन्होंने इसकी ऊँचाई में दस हाथ और बढ़ा दिए। उन्होंने इसके दो दरवाज़े बनाए, एक अंदर जाने के लिए और दूसरा बाहर निकलने के लिए। ऐसा सहीह मुस्लिम (4) में है, हालाँकि हदीस के शब्द अलग-अलग हैं। सुफ़यान ने दाऊद बिन शापुर के हवाले से, मुजाहिद से उल्लेख किया है, जिन्होंने कहा: जब इब्न अल-जुबैर ने काबा को ढहाकर उसे फिर से बनाना चाहा, तो उन्होंने लोगों से कहा: "इसे ढहा दो।" उन्होंने कहा: लोगों ने इसे ढहाने से इनकार कर दिया, और उन्हें डर था कि उन पर अज़ाब (प्रकोप) न उतर आए। मुजाहिद ने कहा: तो हम मिना चले गए और वहाँ तीन दिन तक अज़ाब का इंतज़ार करते रहे। उन्होंने कहा: इब्न अल-जुबैर खुद काबा की दीवार पर चढ़ गए। जब लोगों ने देखा कि उन्हें कुछ नहीं हुआ, तो उनमें हिम्मत आई। उन्होंने कहा: फिर उन्होंने उसे ढहा दिया (5)। जब उन्होंने इसे बनाया, तो इसके दो दरवाज़े रखे: एक दरवाज़ा जिससे वे अंदर आते और एक दरवाज़ा जिससे वे बाहर जाते। उन्होंने हिज्र के पास की तरफ से इसमें छह हाथ बढ़ा दिए, और इसकी ऊँचाई में नौ हाथ बढ़ा दिए (6)। मुस्लिम (7) ने अपनी हदीस में कहा: जब इब्न अल-जुबैर मारे गए, तो अल-हज्जाज ने अब्दुल मलिक बिन मरवान को पत्र लिखकर इसकी सूचना दी, और उसे बताया कि इब्न अल-जुबैर ने मक्का के विश्वसनीय लोगों द्वारा देखी गई नींव (8) पर निर्माण किया था। अब्दुल मलिक ने उन्हें लिखा: "इब्न अल-जुबैर की छेड़छाड़ से हमारा कोई लेना-देना नहीं है। जहाँ तक..."

(1) सहीह (1585)। (2) हमें यह सहीह अल-बुखारी के मुद्रित संस्करण में नहीं मिला। अल-कादी अयाद ने इसे 'इक़माल अल-मुअल्लिम' (4/428) में उल्लेख किया है, और लेखक ने उनसे उद्धृत किया है। अबू अल-अब्बास ने भी इसे 'अल-मुफहिम' (3/434) में उल्लेख किया है। (3) (द) में: 'बुनियाद ज़ाहिर हुई'। (4) नंबर (1333) : (402)। (5) इसे अल-अजरकी ने 'अख़बार मक्का' (1/214) में, इब्न अब्द अल-बर्र ने 'अल-तम्हीद' (10/48) में उद्धृत किया है, और अब्द अल-रज्ज़ाक

(9182) ने संक्षेप में इसे उद्धृत किया है। (6) अल-तम्हीद (10/48)। (7) सहीह मुस्लिम (1333) : (402)। (8) (द) में: 'एक बुनियाद जिसे'।

سورة البقرہ: آیت ۱۲۷ ۳۹۳

اور بخاری (۱) میں ہے: ہشام بن عروہ نے کہا: یعنی ایک دروازہ۔ اور بخاری ہی میں ہے: "میں اس کے دو پچھلے حصے (خلفین) بناتا" (۲) یعنی دو دروازے، تو یہ قریش کی تعمیر تھی۔ پھر جب اہل شام نے عبداللہ بن زبیر سے جنگ کی اور ان کی آتش زنی سے کعبہ کمزور ہو گیا، تو ابن زبیر نے اسے گرا دیا اور اسے اسی طرح تعمیر کیا جیسا کہ عائشہ رضی اللہ عنہا نے انہیں بتایا تھا۔ انہوں نے حجر کی طرف سے اس میں پانچ ہاتھ کا اضافہ کیا، یہاں تک کہ انہوں نے وہ بنیاد (۳) ظاہر کر دی جسے لوگوں نے دیکھا۔ انہوں نے اسی پر عمارت تعمیر کی، اور کعبہ کی بلندی اٹھارہ ہاتھ تھی۔ جب انہوں نے اس کی چوڑائی میں اضافہ کیا تو انہیں یہ پست محسوس ہوا، چنانچہ انہوں نے اس کی بلندی میں دس ہاتھ کا مزید اضافہ کر دیا۔ اور اس کے دو دروازے رکھے، ایک جس سے داخل ہوں اور دوسرا جس سے نکلیں، اسی طرح صحیح مسلم (۴) میں ہے، اور حدیث کے الفاظ مختلف ہیں۔ سفیان نے داؤد بن شاپور سے، انہوں نے مجاہد سے نقل کیا، انہوں نے کہا: جب ابن زبیر نے کعبہ کو گرا کر اسے دوبارہ تعمیر کرنا چاہا تو لوگوں سے کہا: "اسے گرا دو۔" انہوں نے کہا: تو لوگوں نے گرانے سے انکار کر دیا اور ڈرے کہ کہیں ان پر عذاب نازل نہ ہو جائے۔ مجاہد نے کہا: تو ہم منیٰ کی طرف نکل گئے اور وہاں تین دن عذاب کے انتظار میں ٹھہرے۔ انہوں نے کہا: ابن زبیر خود کعبہ کی دیوار پر چڑھے۔ جب لوگوں نے دیکھا کہ انہیں کچھ نہیں ہوا تو وہ اس پر دلیر ہو گئے۔ انہوں نے کہا: چنانچہ انہوں نے اسے گرا دیا (۵)۔ جب انہوں نے اسے تعمیر کیا تو اس کے دو دروازے رکھے: ایک دروازہ جس سے وہ داخل ہوتے اور ایک دروازہ جس سے وہ باہر نکلتے۔ اور حجر کے ساتھ والے حصے میں چھ ہاتھ کا اضافہ کیا، اور اس کی بلندی میں نو ہاتھ کا اضافہ کیا (۶)۔ مسلم (۷) نے اپنی حدیث میں کہا: جب ابن زبیر شہید کر دیے

گئے، تو حجاج نے عبدالملک بن مروان کو خط لکھ کر اس کی اطلاع دی، اور اسے بتایا کہ ابن زبیر نے عمارت کو اس بنیاد (۸) پر رکھا تھا جسے مکہ کے ثقہ لوگوں نے دیکھا تھا۔ عبدالملک نے اسے لکھا: "ہمارا ابن زبیر کی لیپا پوتی (چھیڑ چھاڑ) سے کوئی تعلق نہیں، رہا وہ جو..."

(۱) صحیح (۱۵۸۵)۔ (۲) ہمیں یہ صحیح بخاری کے مطبوعہ نسخے میں نہیں ملا، قاضی عیاض نے 'اکمال المعلم' ۴۲۸/۴ میں اس کا ذکر کیا ہے، اور مصنف نے ان سے اسے نقل کیا ہے، اور ابوالعباس نے بھی 'المفہم' ۴۳۴/۳ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۳) (د) میں ہے: 'اساس ظاہر ہوئی'۔ (۴) نمبر (۱۳۳۳) : (۴۰۲)۔ (۵) اسے الازرقی نے 'اخبار مکہ' ۲۱۴/۱ میں، اور ابن عبدالبر نے 'التمہید' ۴۸/۱۰ میں روایت کیا ہے، اور عبدالرزاق (۹۱۸۲) نے اسے مختصراً روایت کیا ہے۔ (۶) التمہید ۴۸/۱۰۔ (۷) صحیح مسلم (۱۳۳۳) : (۴۰۲)۔ (۸) (د) میں ہے: 'اساس قد' (پرانی بنیاد)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 127 394

He increased its height and kept it, but as for what he added to it from the Hijr (Ismail), he returned it to its original structure and blocked the door he had opened. So he demolished it and restored it to its [original] construction. In a narration: Abd al-Malik said: I did not think that Abu Khubayb - meaning Ibn al-Zubayr - had heard from Aisha what he claimed to have heard from her. Al-Harith bin Abdullah said (1): Yes, I heard it from her. He asked: What did you hear her say? He said: She said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Your people shortened the building of the House [the Kaaba], and were it not for their recent transition from polytheism, I would have restored what they left out of it. If it seems fit to your people after me to rebuild it, then come, I will show you what they left out of it." So he showed her nearly seven cubits (3). In another [narration]: Abd al-Malik said: Had I heard it before I demolished it, I would have left it as Ibn al-Zubayr had built it (4) (5). This is what has been narrated regarding the construction of the Kaaba from reports (6). It is narrated that [Harun] al-Rashid mentioned to Malik bin Anas that he wanted to demolish what al-Hajjaj had built of the Kaaba and restore it to Ibn al-Zubayr's construction because of what was reported from the Prophet (peace be upon him) and which Ibn al-Zubayr had followed. Malik said to him: I implore you by Allah, O Commander of the Faithful, do not make this House a plaything for kings, such that whenever one of them wishes, he demolishes the House and rebuilds it, whereby its sanctity would vanish from the hearts of the people (7). Al-Waqidi mentioned: Ma'mar narrated to us from Hammam bin Munabbih, who heard Abu Hurayrah saying: The Messenger of Allah (peace be upon him) forbade reviling As'ad al-Himyari, and he is Tubba', and he was the first to clothe the House [the Kaaba], and he is the latter Tubba' (8).

---

(1) Ibn Abi Rabi'ah al-Makhzumi al-Makki, the prince, governor of Basra for Ibn al-Zubayr, nicknamed al-Quba' after a measure he established for them. He was an eloquent and religious orator. Al-Siyar 4/181. (2) In (M): what they left. (3) Sahih Muslim (1333) : (403) (4) In (D): he built it. (5) Sahih Muslim (1333) : (404). (6) Abu Hayyan said in al-Bahr al-Muhit 1/387: One should only rely on what is authentic in the Book of Allah and the Sunnah of the Messenger of Allah (peace be upon him). (7) Al-Tamhid 10/49, Ikmal al-Mu'allim 4/428, and al-Mufhim 3/438-439. (8) In (Z): the Great. The hadith was recorded by al-Harith (390) (Zawa'id), Ibn Adi in al-Kamil 6/2249, al-Dhahabi in al-Siyar 9/469, and mentioned by Ibn Abd al-Barr in al-Tamhid 10/47. Al-Hafiz Ibn Hajar said in al-Matalib =

सूरह अल-बक़रह: आयत 127 394

उसने इसकी ऊंचाई बढ़ा दी और इसे स्थिर रखा, लेकिन हिज्र (इस्माइल) से जो कुछ उसने इसमें जोड़ा था, उसे उसने इसके(मूल) निर्माण पर वापस कर दिया, और उसके द्वारा खोले गए दरवाज़े को बंद कर दिया। फिर उसने इसे ढहा दिया और इसे इसके(मूल) निर्माण पर वापस कर दिया। एक रिवायत में है: अब्दुल मलिक ने कहा: मुझे नहीं लगता था कि अबू खुबैब - यानी इब्न अल-जुबैर - ने आयशा से वह सुना होगा जिसका उन्होंने दावा किया था कि उन्होंने उनसे सुना है। अल-हारिस बिन अब्दुल्ला ने कहा (1): हाँ, मैंने इसे उनसे सुना है। उन्होंने पूछा: आपने उन्हें क्या कहते सुना? उन्होंने कहा: उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "तुम्हारी कौम ने बैत (काबा) के निर्माण को छोटा कर दिया, और यदि वे हाल ही में शिर्क से न निकले होते, तो मैं उन हिस्सों को फिर से बना देता जो उन्होंने छोड़ दिए थे। यदि मेरे बाद तुम्हारी कौम को इसे फिर से बनाने का विचार आए, तो आओ, मैं तुम्हें दिखाऊं कि उन्होंने क्या छोड़ दिया था।" फिर उन्होंने उसे लगभग सात हाथ (3) दिखाया। एक अन्य रिवायत में है: अब्दुल मलिक ने कहा: यदि मैंने इसे ढहाने से पहले सुना होता, तो मैं इसे इब्न अल-जुबैर द्वारा बनाए गए (4) (5) के अनुसार ही रहने देता। यह काबा के निर्माण के संबंध में रिवायतों (6) में आया है। यह वर्णित है कि (हारून) अल-रशीद ने मलिक बिन अनस से उल्लेख किया कि वह काबा के उस हिस्से को ढहाना चाहते हैं जिसे अल-हज्जाज ने बनाया था और इसे इब्न अल-जुबैर के निर्माण पर वापस करना चाहते हैं क्योंकि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से यही रिवायत आई है और इब्न अल-जुबैर ने उसी का पालन किया था। मलिक ने उनसे कहा: ऐ अमीरुल मोमिनीन, मैं आपको अल्लाह की कसम देता हूँ, इस घर को राजाओं का खिलौना न बनायें, कि उनमें से जो कोई चाहे घर को गिरा दे और उसे फिर से बनाए, जिससे लोगों के दिलों से इसकी गरिमा ख़त्म हो जाएगी (7)। अल-वाकिदी ने उल्लेख किया: मअमर ने हमें हम्माम बिन मुनब्बिह से बयान किया, जिन्होंने अबू हुरैरा को यह कहते सुना: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने असद अल-हिम्यरी को बुरा-भला कहने से मना किया है, और वह तुब्बा' है, और वह पहला व्यक्ति था जिसने बैत (काबा) को कपड़े (गिलाफ) पहनाया था, और वह बाद वाला तुब्बा' (8) है।

---

(1) इब्न अबी रबीअ अल-मखज़ूमी अल-मक्की, राजकुमार, इब्न अल-जुबैर के लिए बसरा के गवर्नर, उन्हें उनके द्वारा स्थापित एक माप के नाम पर 'अल-कुबा' का उपनाम दिया गया था। वह एक वाकपटु और धार्मिक उपदेशक थे। अल-सियार 4/181। (2) (म) में: जो उन्होंने छोड़ा। (3) सहीह

मुस्लिम (1333): (403) (4) (द) में: उसने इसे बनाया। (5) सहीह मुस्लिम (1333): (404)। (6) अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत 1/387 में कहा: अल्लाह की किताब और अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत में जो सही है, उसके अलावा किसी और चीज़ पर भरोसा नहीं करना चाहिए। (7) अल-तमहीद 10/49, इकमल अल-मुअल्लिम 4/428, और अल-मुफहीम 3/438-439। (8) (ज़) में: अल-अकबर (बड़ा)। हदीस को अल-हारिस (390) (ज़वाइद), अल-कामिल 6/2249 में इब्न अदी, अल-सियार 9/469 में अल-धहाबी द्वारा दर्ज किया गया है, और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तमहीद 10/47 में इसका उल्लेख किया है। हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-मतालिब में कहा =

سورة البقرہ : آیت ۱۲۷ ۳۹٤

اس نے اس کی اونچائی میں اضافہ کیا اور اسے برقرار رکھا، لیکن حجر (اسماعیل) سے جو کچھ اس نے اس میں زیادہ کیا تھا، اسے اس کی (اصل) بناوٹ پر واپس کر دیا، اور وہ دروازہ بند کر دیا جو اس نے کھولا تھا۔ پھر اس نے اسے منہدم کر دیا اور اسے اس کی (اصل) تعمیر پر لوٹا دیا۔ ایک روایت میں ہے: عبدالملک نے کہا: میرا خیال نہیں تھا کہ ابوحبیب - یعنی ابن الزبیر - نے عائشہؓ سے وہ سنا ہوگا جس کا وہ دعویٰ کرتے تھے کہ انہوں نے ان سے سنا ہے۔ حارث بن عبداللہ نے کہا (1): جی ہاں، میں نے اسے ان سے سنا ہے۔ انہوں نے پوچھا: تم نے انہیں کیا کہتے سنا؟ انہوں نے کہا: انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "تمہاری قوم نے بیت (کعبہ) کی تعمیر کو مختصر کر دیا تھا، اور اگر ان کا کفر و شرک کا زمانہ قریب نہ ہوتا تو میں وہ سب کچھ لوٹا دیتا جو انہوں نے چھوڑ دیا تھا۔ پس اگر میرے بعد تمہاری قوم کو اسے دوبارہ تعمیر کرنا مناسب لگے، تو آؤ، میں تمہیں وہ دکھا دوں جو انہوں نے چھوڑ دیا تھا۔" پھر انہوں نے اسے تقریباً سات ہاتھ (3) کے قریب دکھایا۔ ایک دوسری روایت میں ہے: عبدالملک نے کہا: اگر میں نے اسے منہدم کرنے سے پہلے سنا ہوتا تو میں اسے اسی طرح رہنے دیتا جیسا کہ ابن الزبیر نے بنایا تھا (4) (5)۔ تو یہ کعبہ کی تعمیر کے بارے میں آثار (6) میں آیا ہے۔ روایت ہے کہ [ہارون] الرشید نے مالک بن انس سے ذکر کیا کہ وہ کعبہ کا وہ حصہ ڈھانا چاہتے ہیں جو حجاج نے بنایا تھا اور اسے ابن الزبیر کی تعمیر پر واپس لانا چاہتے ہیں کیونکہ نبی ﷺ سے یہی مروی ہے اور ابن الزبیر نے اسی پر عمل کیا تھا۔ مالک نے ان سے کہا: اے امیر المؤمنین، میں آپ کو اللہ کا واسطہ دیتا ہوں، اس گھر کو بادشاہوں کا کھلونا نہ بنائیں، کہ ان میں سے جو کوئی چاہے گھر کو گرائے اور اسے دوبارہ بنائے، جس سے لوگوں کے دلوں سے اس کی ہیبت ختم ہو جائے گی (7)۔ الواقدی نے ذکر کیا: ہمیں معمر

نے ہمام بن منبہ سے روایت کی، انہوں نے ابوہریرہ کو کہتے سنا: رسول اللہ ﷺ نے اسعد الحمیری کو برا بھلا کہنے سے منع فرمایا ہے، اور وہ تبع ہے، اور وہ پہلا شخص ہے جس نے بیت (کعبہ) کو غلاف پہنایا تھا، اور وہ تبع آخر (8) ہے۔

---

(1) ابن ابی ربیعہ المخزومی المکی، امیر، ابن الزبیر کی طرف سے بصرہ کے گورنر، ان کا لقب 'القباع' ایک پیمانہ کے نام پر تھا جو انہوں نے ان کے لیے رکھا تھا، وہ ایک فصیح و بلیغ خطیب اور دیندار شخص تھے۔ السیر 4/181۔ (2) (م) میں: جو انہوں نے چھوڑا۔ (3) صحیح مسلم (1333): (403) (4) (د) میں: اس نے اسے بنایا۔ (5) صحیح مسلم (1333): (404)۔ (6) ابو حیان نے البحر المحیط 1/387 میں کہا: کسی چیز پر بھروسہ نہیں کرنا چاہیے سوائے اس کے جو اللہ کی کتاب اور رسول اللہ ﷺ کی سنت میں صحیح ہو۔ (7) التمہید 10/49، إکمال المعلم 4/428، اور المفہم 3/438-439۔ (8) (ظ) میں: الاکبر۔ اور حدیث کو الحارث (390) (زوائد)، ابن عدی نے الکامل 6/2249 میں، اور الذہبی نے السیر 9/469 میں روایت کیا ہے، اور ابن عبد البر نے التمہید 10/47 میں اس کا ذکر کیا ہے، حافظ ابن حجر نے المطالب میں کہا =

395 Surah Al-Baqarah: Verse 127

Ibn Ishaq said: It (the Kaaba) used to be covered with Qubati (Egyptian linen), then it was covered with Burda (mantle), and the first to cover it with silk brocade was Al-Hajjaj(1).

The scholars said: Nothing should be taken from the Kaaba's covering, for it is gifted(2) to it, and nothing should be reduced from it. It was narrated from Sa'id bin Jubayr that he disliked taking perfume from the Kaaba for healing purposes. If he saw a servant taking some(3), he would slap them on the back of the neck (qafada) with the palm of his hand so hard it caused pain. 'Ata said: If one of us wanted to seek healing with it, he would bring perfume of his own, rub the Black Stone with it, then take it(4).

The words of the Almighty: {Our Lord, accept from us}. The meaning is: and they both say, "Our Lord", so it [the word "saying"] was omitted. It is similarly so in the recitation of Ubayy and Abdullah bin Mas'ud: "And when Abraham was raising the foundations of the House and Ishmael, and they both said, 'Our Lord, accept from us'"(5).

The interpretation of Ishmael is: "Hear, O Allah"; because "Il" in Syriac is Allah, as mentioned previously(6). It was said: When Abraham prayed to his Lord, he said: "Hear, O Il," so when his Lord answered him and granted him a son, he named him after what he had prayed(7). Mentioned by Al-Mawardi(8).

= Al-Aliya 1/364: Narrated uniquely by Al-Waqidi and he is weak. Al-Fakihi narrated it from Wahb bin Munabbih - as in Al-Fath 3/458 - he said: They claimed, and he mentioned it. Al-Azraqi recorded it in Akhbar Makkah 1/249 through the chain of Ibrahim bin Muhammad bin Abi Yahya, from Hammam bin Munabbih, from Abu Hurairah, and Al-Hafiz Ibn Hajar said about Ibrahim in Al-Taqrib: Abandoned (matruk). (1) Sirat Ibn Hisham 1/198-199, and Al-Tamhid 10/45. His saying: Al-Qubati: Plural of Qubtiyah, which are thin white linen clothes that were woven in Egypt, attributed to the Copts contrary to analogy. Al-Mu'jam Al-Wasit. (2) In (Kh) and (Z): yuhda (it is guided/gifted), and in (Zha): fa'innaha tuhda (for it is gifted). (3) In (D): from it (minha). (4) Ibn Abi Shaybah recorded both in Al-Musannaf "Nashrat Al-Amrawi" 4/257. And al-qafdah: it is slapping the back of the neck with the palm of the hand. Al-Mu'jam Al-Wasit. (5) Al-Nukat wa al-Uyun 1/190, and Al-Tabari also mentioned the recitation of Ibn Mas'ud in Al-Tafsir 2/556, and Ibn Khalawayh in Al-

Qira'at Al-Shadhah p. 10, and Ibn Jinni in Al-Muhtasib 1/108, and Ibn Atiyyah in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/211. (6) 2/265-266. (7) In (Kh), (D), (Z), and (M): called him (da'ahu), and what is established is from (Zha). (8) Al-Nukat wa al-Uyun 1/190.

WWW.NAFSEISLAM.COM

३९५ सूरह अल-बकरा: आयत १२७

इब्न इसहाक ने कहा: इसे (काबा को) कबाती (मिस्र के लिनन) से ढका जाता था, फिर बुर्द (चादर) से ढका गया, और सबसे पहले इसे रेशमी दीबा (ब्रोकेड) से ढकने वाला अल-हज्जाज था(१)।

विद्वानों ने कहा: काबा के परदे से कुछ भी नहीं लिया जाना चाहिए, क्योंकि यह उसके लिए उपहार(२) है, और इसमें से कुछ भी कम नहीं किया जाना चाहिए। सईद बिन जुबैर से रिवायत है कि वे इलाज के लिए काबा की खुशबू लेने को नापसंद करते थे। अगर वे किसी खादिम को उसमें से कुछ लेते देखते(३), तो वे उसकी गर्दन के पीछे हथेली से ज़ोर से मारते थे (कफ़दहा) जिससे दर्द होता था। अता ने कहा: हममें से कोई अगर उससे शिफ़ा हासिल करना चाहता, तो वह अपनी खुद की खुशबू लाता, उसे हजरे अस्वद पर मलता और फिर उसे ले लेता(४)।

अल्लाह का फरमान: {ऐ हमारे रब, हमसे स्वीकार कर}। अर्थ यह है: और वे दोनों कह रहे थे, ऐ हमारे रब, तो यहाँ 'कहना' शब्द लुप्त है। इसी तरह यह उबई और अब्दुल्ला बिन मसूद के पाठ में है: "और जब इब्राहिम बैतुल्लाह की बुनियादें उठा रहे थे और इस्माइल भी, और वे कह रहे थे: ऐ हमारे रब, हमसे स्वीकार कर"(५)।

इस्माइल की व्याख्या है: "सुन, ऐ अल्लाह"; क्योंकि सीरियाई भाषा में "इल" का अर्थ अल्लाह है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है(६)। कहा गया है: जब इब्राहिम ने अपने रब से दुआ की, तो उन्होंने कहा: "सुन, ऐ इल," फिर जब उनके रब ने उनकी दुआ कुबूल की और उन्हें बेटा अता किया, तो उन्होंने उसका नाम वही रखा जो उन्होंने दुआ की थी(७)। अल-मावर्दी ने इसका उल्लेख किया है(८)।

= अल-आलिया १/३६४: इसे विशेष रूप से अल-वाकिदी ने वर्णित किया है और वह कमजोर है। अल-फाकिही ने इसे वहाब बिन मुनाबिह से वर्णित किया है - जैसा कि अल-फतह ३/४५८ में है - उन्होंने कहा: उन्होंने दावा किया, और उन्होंने इसका उल्लेख किया। अल-अज़राकी ने इसे अख़बार मक्का १/२४९ में इब्राहिम बिन मुहम्मद बिन अबी याह्या के माध्यम से, हम्माम बिन मुनाबिह से, अबू हुरैरा से दर्ज किया है, और हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-तक़रीब में इब्राहिम के बारे में कहा: छोड़ दिया गया (मतरूक)। (१) सीरत इब्न हिशाम १/१९८-१९९, और अल-तम्हीद १०/४५। उनका कहना: अल-कबाती: कबतिया का बहुवचन, जो पतले सफेद लिनन के कपड़े हैं जो मिस्र में बुने जाते थे, सादृश्य के विपरीत कॉप्ट्स (Copts) के लिए जिम्मेदार हैं। अल-मुअजम अल-वसीत। (२) (ख) और (ज़) में: युहदा (उपहार दिया गया), और (ज़ा) में: फ़इन्नहा तुहदा (क्योंकि वह उपहार है)। (३) (द) में: मिन्हा

(उसमें से)। (४) इब्न अबी शैबा ने दोनों को अल-मुसन्नफ "नशरत अल-अमरावी" ४/२५७ में दर्ज किया। और अल-कफ़दाह: यह हथेली से गर्दन के पिछले हिस्से पर मारना है। अल-मुअजम अल-वसीत। (५) अल-नुकात व अल-उयून १/१९०, और अल-तबरी ने अल-तफ़सीर २/५५६ में इब्न मसूद के पाठ का भी उल्लेख किया है, और इब्न खलवैह ने अल-किराआत अल-शाज़ाह पृष्ठ १० में, और इब्न जिन्नी ने अल-मुहतसिब १/१०८ में, और इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२११ में। (६) २/२६५-२६६। (७) (ख), (द), (ज़), और (म) में: उसे पुकारा (दआहु), और जो स्थापित है वह (ज़ा) से है। (८) अल-नुकात व अल-उयून १/१९०।

WWW.NAFSEISLAM.COM

۳۹۵ سورة البقرہ: آیت ۱۲۷

ابن اسحاق نے کہا: اسے (کعبہ کو) قباطی (مصری کپڑے) پہنائے جاتے تھے، پھر اسے برد پہنائے گئے، اور سب سے پہلے جس نے اسے دیباج (ریشمی کپڑا) پہنایا وہ حجاج تھا(۱)۔

علماء نے کہا: کعبہ کے غلاف میں سے کچھ لینا مناسب نہیں، کیونکہ وہ اسے تحفہ(۲) دیا گیا ہے، اور اس میں سے کچھ بھی کم نہ کیا جائے۔ سعید بن جبیر سے مروی ہے کہ وہ کعبہ کی خوشبو سے شفا حاصل کرنے کے لیے اسے لینے کو ناپسند کرتے تھے۔ جب وہ کسی خادم کو اس میں سے کچھ لیتے دیکھتے(۳)، تو اسے گدی پر ہاتھ کی ہتھیلی سے اس زور سے مارتے (قفدھا) کہ اسے تکلیف ہوتی۔ عطاء نے کہا: ہم میں سے جب کوئی اس سے شفا حاصل کرنا چاہتا، تو وہ اپنے پاس سے خوشبو لاتا، اسے حجرِ اسود پر ملتا، پھر اسے لے لیتا(۴)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ﴾ معنی ہے: اور وہ دونوں کہہ رہے تھے اے ہمارے رب، پس (قول) کو حذف کر دیا گیا۔ اسی طرح ابی اور عبداللہ بن مسعود کی قرأت میں ہے: «وَإِذْ يَرْفَعُ إبراهيمُ القواعد من البيت وإسماعيلُ ويقولان ربَّنا تقبل مِنَّا»(۵)۔

اور اسماعیل کی تفسیر ہے: "اے اللہ سن"؛ کیونکہ سریانی میں «ایل» اللہ ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے(۶)۔ کہا گیا: جب ابراہیم نے اپنے رب سے دعا کی تو کہا: اے ایل سن، پھر جب ان کے رب نے ان کی دعا قبول کی اور انہیں بیٹا عطا کیا، تو انہوں نے اس کا نام اسی پر رکھا جو انہوں نے دعا کی تھی(۷)۔ اسے الماوردی نے ذکر کیا ہے(۸)۔

= العالية ۱ / ۳٦٤: اسے تنہا واقدی نے بیان کیا ہے اور وہ ضعیف ہے۔ اور اسے فاکہی نے وہب بن منبہ سے روایت کیا ہے - جیسا کہ الفتح ۳ / ٤٥٨ میں ہے - انہوں نے کہا: انہوں نے گمان کیا،

پس اسے ذکر کیا۔ اور اسے ازرقی نے اخبارِ مکہ ۱/ ۲۴۹ میں ابراہیم بن محمد بن ابی یحییٰ کے طریق سے، ہمام بن منبہ سے، ابوہریرہ سے روایت کیا ہے، اور حافظ ابن حجر نے التقریب میں ابراہیم کے بارے میں کہا ہے: متروک ہے۔ (۱) سیرت ابن ہشام ۱/ ۱۹۸-۱۹۹، اور التمہید ۱۰/ ۴۵۔ ان کا قول: القباطی: قبطیہ کی جمع، جو باریک سفید سوتی (کتان) کپڑے ہیں، جو مصر میں بنے جاتے تھے، یہ قبطیوں کی طرف منسوب ہے خلافِ قیاس۔ المعجم الوسیط۔ (۲) (خ) اور (ز) میں: یُہدیٰ (ہدیہ کیا گیا)، اور (ظ) میں: فانہا تُہدیٰ (پس بے شک وہ ہدیہ ہے)۔ (۳) (د) میں: منہا (اس میں سے)۔ (٤) ان دونوں کو ابن ابی شیبہ نے المصنف «نشرہ العمروی» ٤ / ۲۵۷ میں روایت کیا۔ اور القفدۃ: گدی پر ہتھیلی کے اندرونی حصے سے مارنا ہے۔ المعجم الوسیط۔ (۵) النکت والعیون ۱/ ۱۹۰، اور ابن مسعود کی قرأت کا ذکر طبری نے بھی التفسیر ۲/ ۵۵۶ میں، اور ابن خالویہ نے القراءات الشاذۃ ص ۱۰ میں، اور ابن جنی نے المحتسب ۱/ ۱۰۸ میں، اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱/ ۲۱۱ میں کیا ہے۔ (۶) ۲/ ۲۶۵-۲۶۶۔ (۷) (خ) اور (د) اور (ز) اور (م) میں: دعاہ (اسے پکارا)، اور ثابت وہی ہے جو (ظ) میں ہے۔ (۸) النکت والعیون ۱/ ۱۹۰۔

WWW.NAFSEISLAM.COM

Page 396 Surah Al-Baqarah: Verse 128

The Almighty's saying: {Indeed, You are the All-Hearing, the All-Knowing} These are two names from the names of Allah the Almighty, which we have already covered in "The Most Sublime Book on the Explanation of the Most Beautiful Names of Allah"(2).

The Almighty's saying: {Our Lord, and make us submissive to You and from our offspring a submissive nation to You. And show us our rites and accept our repentance. Indeed, You are the Accepting of repentance, the Merciful.}

The Almighty's saying: {Our Lord, and make us submissive to You} means: make us such, and "submissive" (muslimayn) is a second object; they asked for steadfastness and permanence(3). Islam in this context means: both faith and deeds together(4). From this is the Almighty's saying: {Indeed, the religion in the sight of Allah is Islam} [Al-Imran: 19]. This is evidence for those who say that faith (Iman) and Islam are the same thing; they supported this with the Almighty's saying in another verse: {So We brought out whoever was in it of the believers. But We did not find within it other than one house of Muslims} [Al-Dhariyat: 35-36].

Ibn Abbas and Awf Al-A'rabi read: "Muslimin" (plural) in the collective sense(5).

The Almighty's saying: {and from our offspring a submissive nation to You} means: and from our descendants, make [them submissive]. It is said that no prophet prayed except for himself and his own nation, except for Ibrahim, for he prayed along with his prayer for himself and his nation, for this nation (the Ummah of Muhammad)(6).

The "min" (from) in His saying: "and from our offspring" is for partitive purposes; because Allah the Almighty had already informed him that some of them would be wrongdoers. Al-Tabari narrated that he meant by his saying: "and from our offspring" the Arabs specifically(7).

Al-Suhayli said: Their offspring are the Arabs; because they are the descendants of Nabt son of Isma'il, or the descendants of Tayman son of Isma'il. It is said: Qaydar son of Nabt son of Isma'il. As for the Adnanites, they are from Nabt, and as for the Qahtanites, they are from Qaydar son of Nabt son of Isma'il, or Tayman according to one of the two opinions(8).

---

(1) In (Z): Book. (2) Page 277, and it contains an explanation of "the All-Hearing". (3) In (Z) there is an addition: upon Islam. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. Ibn Khalawayh attributed it in "Shadh Readings" p. 9 to Awf Al-A'rabi and

Al-Hasan. (6) In the manuscripts: "and for this nation", and what is established is from "Al-Nukat wal-Uyun" 1/191, and the author quoted from him. (7) Narrated by Al-Tabari in his Tafsir 2/565-566 and he rejected it, and the author quoted it from him via Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. The author will later mention Ibn Atiyyah's weakening of it as well. (8) Al-Ta'rif wal-I'lam p. 23, and in it Thabit instead of Nabt, and Qaydar instead of Qaydar.

पृष्ठ ३९६ सूरह अल-बक़रह: आयत १२८

अल्लाह तआला का कथन: {निस्संदेह तू ही सुनने वाला, जानने वाला है} ये अल्लाह तआला के नामों में से दो नाम हैं जिन्हें हम पहले ही "अल्लाह के सुंदर नामों की व्याख्या में सबसे उत्कृष्ट पुस्तक"(२) में स्पष्ट कर चुके हैं।

अल्लाह तआला का कथन: {हे हमारे रब! हम दोनों को अपना आज्ञाकारी बना और हमारी संतान में से भी एक ऐसी उम्मत (समुदाय) बना जो तेरी आज्ञाकारी हो, और हमें हमारी इबादत के तरीके दिखा और हमारी तौबा (क्षमा याचना) स्वीकार कर। निस्संदेह तू ही तौबा स्वीकार करने वाला, अत्यंत दयावान है।}

अल्लाह तआला का कथन: {हे हमारे रब! हम दोनों को अपना आज्ञाकारी बना} यानी: हमें बना दे, और "मुस्लिमैन" (आज्ञाकारी) दूसरा कर्म है; उन्होंने दृढ़ता और निरंतरता मांगी(३)। इस स्थान पर इस्लाम का अर्थ है: ईमान और कर्म दोनों साथ में(४)। इसी से अल्लाह तआला का कथन है: {निस्संदेह अल्लाह के निकट धर्म इस्लाम ही है} [आल-इमरान: १९]। इसमें उन लोगों के लिए प्रमाण है जो कहते हैं कि ईमान और इस्लाम एक ही चीज़ है; उन्होंने दूसरी आयत में अल्लाह तआला के इस कथन से इसका समर्थन किया: {तो हमने उन लोगों को निकाल दिया जो उसमें मोमिनों (ईमान वालों) में से थे। परन्तु हमने उसमें मुसलमानों के एक घर के अतिरिक्त और कोई न पाया} [अज़-ज़ारियात: ३५-३६]।

इब्न अब्बास और औफ़ अल-अरबी ने "मुस्लिमीन" (बहुवचन) पढ़ा है(५)।

अल्लाह तआला का कथन: {और हमारी संतान में से भी एक ऐसी उम्मत बना जो तेरी आज्ञाकारी हो} यानी: और हमारी संतान में से भी बना दे। कहा जाता है कि इब्राहीम के अलावा किसी भी नबी ने केवल अपने और अपनी उम्मत के लिए दुआ नहीं की, क्योंकि उन्होंने अपने और अपनी उम्मत के लिए दुआ करने के साथ-साथ इस उम्मत (मुहम्मद स.अ.व. की उम्मत) के लिए भी दुआ की(६)।

"और हमारी संतान में से" में 'मिन' (में से) विभाजन (कुछ भाग) के लिए है; क्योंकि अल्लाह तआला ने उन्हें पहले ही बता दिया था कि उनमें से कुछ ज़ालिम (अत्याचारी) होंगे। अल-तबरी ने उल्लेख किया है कि उनके"और हमारी संतान में से" कहने का तात्पर्य विशेष रूप से अरबों से था(७)।

अल-सुहैली ने कहा: उनकी संतान अरब हैं; क्योंकि वे इस्माईल के पुत्र नब्त के वंशज हैं, या इस्माईल के पुत्र तयमन के वंशज हैं। कहा जाता है: क़ैदर बिन नब्त बिन इस्माईल। जहाँ तक अदनानियों का सवाल है, वे नब्त से हैं, और जहाँ तक क़हतानियों का सवाल है, वे क़ैदर बिन नब्त बिन इस्माईल से हैं, या दो मतों में से एक के अनुसार तयमन से हैं(८)।

---

(१) (ज़) में: किताब। (२) पृ. २७७, और इसमें "अस-समी" (सुनने वाला) की व्याख्या है। (३) (ज़) में वृद्धि: इस्लाम पर। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२११। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२११। इब्न खालवैह ने इसे "शाज़ किराअत" पृ. ९ में औफ़ अल-अरबी और अल-हसन से संबंधित बताया है। (६) प्रतियों में: "और इस उम्मत के लिए", और जो स्थापित है वह "अन-नुकात वल-उयून" १/१९१ से है, और लेखक ने उनसे उद्धृत किया है। (७) अल-तबरी ने अपनी तफ़सीर २/५६५-५६६ में इसका वर्णन किया और इसे खारिज कर दिया, और लेखक ने इसे इब्न अतियाह के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२११ में उनसे उद्धृत किया है। लेखक बाद में इब्न अतियाह द्वारा इसे कमज़ोर बताए जाने का भी उल्लेख करेंगे। (८) अत-तारीफ़ वल-इलाम पृ. २३, और इसमें नब्त के स्थान पर साबित और क़ैदर के स्थान पर क़ैदार है।

صفحہ ۳۹۶ سورۃ البقرہ: آیت ۱۲۸

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿إِنَّكَ أَنتَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ﴾ (بے شک تو ہی سننے والا، جاننے والا ہے) یہ اللہ تعالیٰ کے اسماء میں سے دو نام ہیں جن کا ذکر ہم اللہ کے اسماء الحسنیٰ کی شرح میں اپنی کتاب "الأسنى"(۲) میں کر چکے ہیں۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِن ذُرِّيَّتِنَا أُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا إِنَّكَ أَنتَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ﴾

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ﴾ یعنی: ہمیں بنا دے، اور "مسلمين" مفعول ثانی ہے؛ انہوں نے ثبات اور دوام (ہمیشگی) کا سوال کیا(۳)۔ اور اس جگہ اسلام سے مراد: ایمان اور اعمال دونوں ہیں(۴)، اسی سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿إِنَّ الدِّينَ عِندَ اللَّهِ الْإِسْلَامُ﴾ [آل عمران: ۱۹]۔ پس اس میں ان لوگوں کے لیے دلیل ہے جو کہتے ہیں کہ ایمان اور اسلام ایک ہی چیز ہے؛ اور انہوں نے دوسری آیت میں اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد سے اس کی تائید کی: ﴿فأخرجنا من كان فيها من المؤمنين * فما وجدنا فيها غير بيت من المسلمين﴾ [الذاريات: ۳۵-۳۶]۔

ابن عباس اور عوف الاعرابی نے "مسلمين" (جمع کے ساتھ) پڑھا ہے(۵)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمِن ذُرِّيَّتِنَا أُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ﴾ یعنی: اور ہماری اولاد میں سے بھی (مسلمان) بنا، پس کہا جاتا ہے کہ ابراہیم علیہ السلام کے سوا کسی نبی نے صرف اپنی ذات اور اپنی امت کے لیے دعا نہیں کی، انہوں نے اپنی ذات اور اپنی امت کے ساتھ ساتھ اس امت (امت محمدیہ) کے لیے بھی دعا فرمائی(۶)۔

اور "من ذریتنا" میں "من" تبعیض (کچھ حصہ) کے لیے ہے؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ نے انہیں پہلے ہی مطلع فرما دیا تھا کہ ان میں سے کچھ ظالم ہوں گے۔ طبری نے روایت کیا ہے کہ انہوں نے اپنے قول "ومن ذریتنا" سے خاص طور پر عربوں کو مراد لیا تھا(۷)۔

سہیلی نے کہا: ان دونوں کی اولاد عرب ہیں؛ کیونکہ وہ نبت بن اسماعیل کی اولاد ہیں، یا تیمن بن اسماعیل کی اولاد ہیں۔ اور کہا جاتا ہے: قیدر بن نبت بن اسماعیل۔ جہاں تک عدنانیوں کا تعلق ہے تو وہ نبت سے ہیں، اور جہاں تک قحطانیوں کا تعلق ہے تو وہ قیدر بن نبت بن اسماعیل سے ہیں، یا ایک قول کے مطابق تیمن سے ہیں(۸)۔

حواشی: (۱) (ز) میں: کتاب۔ (۲) ص ۲۷۷، اور اس میں "السمیع" کی شرح ہے۔ (۳) (ز) میں اضافہ ہے: اسلام پر۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/۲۱۱۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/۲۱۱۔ اور ابن خالویہ نے اسے شاذ قرأتوں ص ۹ میں عوف الاعرابی اور حسن کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۶) نسخوں میں ہے: "اور اس امت کے لیے"، اور جو ثابت ہے وہ "النکت والعیون" ۱/۱۹۱ سے ہے، اور مصنف نے ان سے نقل کیا ہے۔ (۷) اسے طبری نے اپنی تفسیر ۲/۵۶۵-۵۶۶ میں بیان کیا اور اسے رد کیا، اور مصنف نے اسے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/۲۱۱ میں ان سے نقل کیا ہے۔ اور مصنف بعد میں ابن عطیہ کی طرف سے اس کی تضعیف کا بھی ذکر کریں گے۔ (۸) التعریف والإعلام ص ۲۳، اور اس میں نبت کی جگہ ثابت، اور قیدر کی جگہ قیدار ہے۔

Ibn 'Atiyyah (1) said: And this is weak; because his call appeared among the Arabs (2), and among those who believed from others.

And 'Al-Ummah': means 'the group' here, and it can be a single person if he is followed in goodness, among which is the saying of the Almighty: "Indeed, Abraham was a [comprehensive] community [Ummah], obedient to Allah" [An-Nahl: 120]. And the Prophet (peace and blessings be upon him) said regarding Zayd ibn 'Amr ibn Nufayl (3): "He will be resurrected as a community [Ummah] on his own" (4) because he did not associate anyone else with him in his religion, and Allah knows best.

The word 'Ummah' may also be applied to other meanings, including the saying of the Almighty: "Indeed, we found our fathers following a [certain] religion [Ummah]" [Az-Zukhruf: 22], meaning: upon a religion and creed; and the saying of the Almighty: "Indeed, this community of yours is one community [Ummah]" [Al-Anbiya: 92]. It may also mean time and period, including the saying of the Almighty: "and remembered after a time [Ummah]" [Yusuf: 45], meaning: after a while and time. It is said: this is the 'Ummah' of Zayd, meaning: the mother of Zayd. 'Al-Ummah' also means: stature, it is said: so-and-so has a good 'Ummah', meaning: good stature; he said: "And indeed Mu'awiyah, the most noble ones, have handsome faces and tall statures." (5) And it was said: 'Al-Ammah' is a head wound that reaches the membrane of the brain; it is said: a man is 'ma'mum' or 'amim' [one with such a wound] (6).

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. (2) In (Z): Among the Arabs specifically. (3) Al-'Adawi, the father of Sa'id ibn Zayd, one of the ten promised Paradise, and the cousin of 'Umar ibn al-Khattab. Ibn Hajar said in Al-Isabah 4/61: Al-Baghawi, Ibn Mandah, and others mentioned him among the Sahabah, but there is some doubt about this; because he died five years before the Prophetic mission. (4) Narrated by Al-Nasa'i in Al-Sunan al-Kubra (8131), and Ibn Abi 'Asim in Al-Ahad wal-Mathani (772) from the hadith of Asma (may Allah be pleased with her). Also narrated by Al-Nasa'i (8132), Al-Bazzar (2755), Abu Ya'la (7212), Al-Tabarani in Al-Kabir (4663), and Al-Hakim 3/216-217 from the hadith of Usama ibn Zayd from his father Zayd ibn Harithah. Al-Hakim said: Sahih according to the criteria of Muslim, though they did not record it. And also narrated by Al-Tayalisi (234), Ahmad (1648), Ibn Abi 'Asim (774), Al-Tabarani in Al-Mu'jam al-Kabir (350), Al-Hakim 3/439-440, Abu Nu'aym in Ma'rifat al-Sahabah (568), Al-Bayhaqi in Dala'il al-Nubuwwah 2/123-124, and Al-Diya in Al-Ahadith al-Mukhtarah (1111), from the hadith of Sa'id ibn Zayd (may Allah be pleased with him). Abu Ya'la

also narrated it (2047) from the hadith of Jabir (may Allah be pleased with him). Ibn Hazm said in Al-Ihkam 4/578: It has been authentically reported from the Prophet (peace and blessings be upon him) that Zayd ibn 'Amr ibn Nufayl will be resurrected on the Day of Judgment as an Ummah alone. (5) The verse is by Al-A'sha and is in his Diwan p. 91, with the narration: 'Great domes, tall statures', and it's in Mujmal al-Lughah 1/81, and Al-Sihah (umm) according to the author's narration. (6) In Al-Sihah: (umm): 'ammahu' - also - means: he struck his head, 'ammah' with 'madd' [long vowel], and it is that which reaches the 'umm' [mother/membrane] of the brain when only a thin skin remains between it and the brain. It is said: a man is 'amim' and 'ma'mum' for someone who is delirious due to a head injury.

397 सूरह अल-बक़रह: आयत 128

इब्न अतिया (1) ने कहा: और यह विचार कमज़ोर है; क्योंकि उनका आह्वान अरबों (2) और अन्य ईमान लाने वालों में प्रकट हुआ।

और 'उम्मा' (Ummah): यहाँ इसका अर्थ 'समूह' है, और यह एक व्यक्ति भी हो सकता है यदि भलाई में उसका अनुसरण किया जाए, जिसमें सर्वशक्तिमान का कथन है: "निस्संदेह इब्राहिम एक [आदर्श] समुदाय [उम्मा] थे, जो अल्लाह के आज्ञाकारी थे" [अन-नहल: 120], और पैगंबर ﷺ ने ज़ैद बिन अम्र बिन नुफ़ैल (3) के बारे में कहा: "उन्हें अकेले एक उम्मत के रूप में पुनर्जीवित किया जाएगा" (4) क्योंकि उन्होंने अपने धर्म में किसी और को शरीक नहीं किया था, और अल्लाह बेहतर जानता है।

और 'उम्मा' शब्द का प्रयोग इसके अलावा अन्य अर्थों में भी किया जा सकता है, जिसमें सर्वशक्तिमान का कथन है: "निस्संदेह हमने अपने पूर्वजों को एक [विशेष] धर्म [उम्मा] पर पाया" [अज़-ज़ुखरुफ़: 22], यानी: एक दीन और संप्रदाय पर; और सर्वशक्तिमान का कथन है: "निस्संदेह, तुम्हारा यह समुदाय एक ही समुदाय [उम्मा] है" [अल-अंबिया: 92]। यह समय और काल के अर्थ में भी हो सकता है, जिसमें सर्वशक्तिमान का कथन है: "और एक समय [उम्मा] के बाद उसे याद आया" [यूसुफ़: 45] यानी: कुछ समय और काल के बाद। और कहा जाता है: यह ज़ैद की 'उम्मा' है, अर्थात: ज़ैद की माँ। 'उम्मा' का अर्थ कद (क़द-काठी) भी होता है, कहा जाता है: अमुक व्यक्ति की 'उम्मा' अच्छी है; यानी: कद अच्छा है; कवि ने कहा: "और वास्तव में मुआ़विया, जो सबसे महान हैं, सुंदर चेहरे वाले और ऊँचे कद वाले हैं।" (5) और कहा गया: 'आम्मा' (Ammah) सिर का वह घाव है जो मस्तिष्क की झिल्ली तक पहुँचता है; कहा जाता है: एक आदमी 'मामूम' और 'अमीम' है [ऐसा घाव लगा व्यक्ति] (6)।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/211। (2) (ज़) में: विशेष रूप से अरबों में। (3) अल-अदवी, ज़ैद बिन ज़ैद के पिता, जो दस स्वर्ग के वादे वाले लोगों में से एक थे, और उमर बिन अल-खत्ताब के चचेरे भाई। इब्न हजर ने अल-इसाबा 4/61 में कहा: अल-बगवी, इब्न मंदा और अन्य लोगों ने उन्हें सहाबा में उल्लेख किया है, लेकिन इसमें कुछ संदेह है; क्योंकि पैगंबर के मिशन से पाँच साल पहले उनकी मृत्यु हो गई थी। (4) अल-नसाई ने अल-सुनन अल-कुबरा (8131) में, और इब्न अबी आसिम ने अल-अहद वल-मथानी (772) में असमा (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस से उद्धृत किया है। अल-नसाई

(8132), अल-बज्ज़ार (2755), अबू याला (7212), अल-तबरानी ने अल-कबीर (4663) में, और अल-हाकिम 3/216-217 में उसामा बिन ज़ैद की हदीस से उनके पिता ज़ैद बिन हारिथाह के माध्यम से इसे उद्धृत किया है। अल-हाकिम ने कहा: मुस्लिम की शर्तों के अनुसार सही है, हालांकि उन्होंने इसे रिकॉर्ड नहीं किया। इसे अल-तयालिसी (234), अहमद (1648), इब्न अबी आसिम (774), अल-तबरानी ने अल-मुअजम अल-कबीर (350) में, अल-हाकिम 3/439-440, अबू नुऐम ने मारिफत अल-सहाबा (568) में, अल-बैहकी ने दलाल अल-नुबुव्वह 2/123-124 में, और अल-दिया ने अल-अहादीथ अल-मुख्तारा (1111) में, सईद बिन ज़ैद (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। अबू याला ने भी जाबिर (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से इसे उद्धृत किया (2047)। इब्न हज़्म ने अल-इहकाम 4/578 में कहा: पैगंबर ﷺ से प्रमाणिक रूप से रिपोर्ट किया गया है कि ज़ैद बिन अम्र बिन नुफ़ैल कयामत के दिन अकेले एक उम्मा के रूप में उठाए जाएंगे। (5) यह शेर अल-अशा का है और उनके दीवान के पृष्ठ 91 पर है, जिसका वर्णन इस प्रकार है: 'विशाल गुंबद, ऊंचे कद', और यह मुजमल अल-लुगह 1/81 में और लेखक के वर्णन के अनुसार अल-सिहाह (उम्म) में है। (6) अल-सिहाह में: (उम्म): 'अम्माहु' का अर्थ यह भी है: उसने उसके सिर पर प्रहार किया, 'आम्मा' मद्द (लंबे स्वर) के साथ, और यह वह घाव है जो मस्तिष्क की 'उम्म' (झिल्ली) तक पहुँचता है जब उसके और मस्तिष्क के बीच केवल एक पतली त्वचा शेष रह जाती है। कहा जाता है: सिर की चोट के कारण प्रलाप करने वाले व्यक्ति के लिए 'अमीम' और 'मामूम' कहा जाता है।

ابن عطیہ (۱) نے کہا: اور یہ قول ضعیف ہے؛ اس لیے کہ ان کی دعوت عربوں (۲) اور ان کے علاوہ ایمان لانے والوں میں ظاہر ہوئی۔

اور 'الأمة' (امت): یہاں اس سے مراد 'جماعت' ہے، اور وہ ایک شخص بھی ہو سکتا ہے جب خیر میں اس کی پیروی کی جائے، اسی میں سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿إِنَّ إِبْرَاهِيمَ كَانَ أُمَّةً قَانِتًا لِلَّهِ﴾ [النحل: ۱۲۰] (بے شک ابراہیم ایک پوری امت تھے، اللہ کے فرمانبردار)، اور نبی ﷺ نے زید بن عمرو بن نفیل (۳) کے بارے میں فرمایا: "وہ قیامت کے دن اکیلے ایک امت بنا کر اٹھائے جائیں گے" (۴) کیونکہ انہوں نے اپنے دین میں کسی اور کو شریک نہیں کیا تھا، واللہ اعلم۔

اور لفظ 'امت' کا اطلاق اس کے علاوہ دیگر معانی پر بھی ہوتا ہے، جن میں اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿إِنَّا وَجَدْنَا ءَابَاءَنَا عَلَىٰ أُمَّةٍ﴾ [الزخرف: ۲۲]، یعنی: ایک دین اور ملت پر؛ اور اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿إِنَّ هَٰذِهِۦٓ أُمَّتُكُمْ أُمَّةً وَٰحِدَةً﴾ [الانبیاء: ۹۲]۔ اور یہ وقت اور زمانے کے معنی میں بھی ہو سکتا ہے، اس میں سے اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿وَٱدَّكَرَ بَعْدَ أُمَّةٍ﴾ [یوسف: ۴۵] یعنی: کچھ وقت اور زمانے کے بعد۔ اور کہا جاتا ہے: یہ زید کی 'امت' ہے، یعنی: زید کی ماں۔ اور 'امت' قد و قامت کو بھی کہتے ہیں، کہا جاتا ہے: فلاں شخص کی 'امت' اچھی ہے؛ یعنی: قد و قامت اچھی ہے؛ شاعر نے کہا: "اور بے شک معاویة جو سب سے معزز ہیں، خوبصورت چہروں والے اور لمبے قد والے ہیں۔" (۵) اور کہا گیا: 'الآمَّة' وہ زخم ہے جو دماغ کے پردے تک پہنچ جائے؛ کہا جاتا ہے: رجل مأموم اور أمیم (ایسا شخص جس کے سر پر ایسا زخم ہو) (۶)۔

(۱) المحرر الوجیز ۱/۲۱۱۔ (۲) نسخہ (ز) میں ہے: خاص طور پر عربوں میں۔ (۳) العدوی، جو سعید بن زید (عشرہ مبشرہ میں سے ایک) کے والد اور عمر بن الخطاب کے چچا زاد بھائی تھے،

ابن حجر نے الاصابۃ ۴/۶۱ میں کہا: بغوی، ابن مندہ اور دیگر نے انہیں صحابہ میں ذکر کیا ہے، لیکن اس میں کلام ہے؛ کیونکہ وہ بعثت سے پانچ سال پہلے وفات پا گئے تھے۔ (۴) اسے نسائی نے السنن الکبری (۸۱۳۱) میں، اور ابن ابی عاصم نے الآحاد والمثانی (۷۷۲) میں حضرت اسماء رضی اللہ عنہا کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور نسائی نے (۸۱۳۲)، بزار نے (۲۷۵۵)، ابو یعلیٰ نے (۷۲۱۲)، طبرانی نے الکبیر (۴۶۶۳) میں، اور حاکم نے ۳/۲۱۶-۲۱۷ میں اسامہ بن زید کی اپنے والد زید بن حارثہ سے روایت کردہ حدیث سے نکالا ہے۔ حاکم نے کہا: یہ مسلم کی شرط پر صحیح ہے لیکن انہوں نے اسے روایت نہیں کیا۔ اور اسے طیالسی (۲۳۴)، احمد (۱۶۴۸)، ابن ابی عاصم (۷۷۴)، طبرانی نے المعجم الکبیر (۳۵۰) میں، حاکم نے ۳/۴۳۹-۴۴۰، ابو نعیم نے معرفۃ الصحابہ (۵۶۸) میں، بیہقی نے دلائل النبوۃ ۲/۱۲۳-۱۲۴ میں، اور ضیاء نے الاحادیث المختارہ (۱۱۱۱) میں سعید بن زید رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور ابو یعلیٰ نے بھی اسے (۲۰۴۷) حضرت جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ابن حزم نے الاحکام ۴/۵۷۸ میں کہا: نبی ﷺ سے یہ بات ثابت ہے کہ زید بن عمرو بن نفیل قیامت کے دن اکیلے ایک امت کی حیثیت سے اٹھائے جائیں گے۔ (۵) یہ شعر اعشیٰ کا ہے اور ان کے دیوان صفحہ ۹۱ میں اس طرح ہے: 'عِظَامُ القِبَابِ طِوالُ الأمم'، اور یہ مجمل اللغۃ ۱/۸۱ اور صحاح (أمم) میں مصنف کی روایت کے مطابق ہے۔ (۶) الصحاح میں ہے: (أم): اور 'أمَّه' کا معنی ہے: اس کے سر پر ایسا زخم لگانا جو دماغ کے پردے تک پہنچ جائے۔ 'آمَّة' مد کے ساتھ، یہ وہ زخم ہے جو دماغ کے پردے تک پہنچ جائے جب ان دونوں کے درمیان باریک جھلی باقی رہ جائے۔ اور کہا جاتا ہے: 'رجل أميم ومأموم' اس شخص کے لیے جو سر کی چوٹ کی وجہ سے ہذیان بکتا ہو۔

398 Surah Al-Baqarah: Verse 128

His saying, the Exalted: ﴿وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا﴾ (And show us our rites). "Arina" (Show us) comes from visual sight, so it is transitive to two objects; and it was said: from the sight of the heart (inner vision), and whoever says this must consider the verb transitive to three objects. Ibn Atiyyah said (1): And it is distinguished by the fact that it is found transitive with a hamza from the sight of the heart to two objects (2). Hutait ibn Ya'far, the brother of al-Aswad ibn Ya'far, said:

Show me a generous person who died of emaciation, for I see What you see, or a miser who lived forever (3)

Umar ibn Abdul Aziz, Qatada, Ibn Kathir, Ibn Muhaysin, al-Suddi, and Rawh on the authority of Ya'qub, Ruways, and al-Susi read: "Arnā" (أَرْنَا), with a sukun on the 'ra' in the Quran (4); and Abu Hatim chose this reading. Abu Amr read with the concealment (ikhtilas) of the kasra on the 'ra', and the rest read it with a kasra (5), and Abu Ubaid chose it. Its origin is: "Ari'na" (أَرِئْنَا), with a hamza; so whoever read with sukun said: the hamza was omitted, and its vowel was omitted, and the 'ra' remained sukun as it was. They supported this with the saying of the poet:

Show us (Arna) the water-skin of Abdullah so we may fill it From Zamzam water, for the people are thirsty (6)

And whoever used the kasra transferred the vowel of the deleted hamza to the 'ra', while Abu Amr sought ease of pronunciation.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. (2) Abu Hayyan said in Al-Bahr al-Muhit 1/391: Meaning that it has been used in the Arabic language transitive to two with the hamza of transfer, just as it is used transitive to two without the hamza. (3) There is disagreement regarding the attribution of this verse. Abu Ubaidah attributed it to Hutait ibn Ya'far in Majaz al-Quran 1/55, Ibn Qutaiba in Al-Shi'r wa al-Shu'ara' 1/248 and 265, al-Isfahani in Al-Aghani 13/27, al-Tabari in Al-Tafsir 2/569, al-Tibrizi in Sharh Diwan al-Hamasa 4/125, al-Bakri in Simt al-La'ali 2/714, and al-Baghdadi in Al-Khizana 1/406. According to Abu Ubaidah and al-Tabari: "Li'anni" (because I), like the author's narration, and the narration of the rest: "La'allani" (perhaps I). Al-Tibrizi said: It is narrated as "Li'anni" with the meaning of "La'allani"; it is said: Come to the market because you are buying (meaning: perhaps you will buy) something for us. Al-Jawhari attributed it in Al-Sahah (علل) to Hatim al-Ta'i, and it is in his Diwan p. 40. Ibn Manzur said in Al-Lisan (علل): Abu Ubaidah mentioned that this verse is by Hutait ibn Ya'far,

and al-Hawfi mentioned it is by Durayd, and this verse is in a well-known poem by Hatim. (4) In (z): In all of the Quran. (5) Al-Sab'ah p. 170, al-Taysir 76, and al-Nashr 2/222. The reading of Abu Amr with the concealment (ikhtilas) of the kasra of the 'ra' is from the narration of al-Duri from him. (6) We did not find its author; Abu Hayyan mentioned it in Al-Bahr al-Muhit 1/391, al-Samin al-Halabi in Al-Durr al-Masun 2/119, and Ibn Adil al-Hanbali in Al-Lubab 2/487.

३९८ सूरा अल-बक़रह: आयत १२८

अल्लाह तआला का कथन: ﴿وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا﴾ (और हमें हमारी इबादत के तरीक़े दिखा)। "आरिना" आँखों से देखने से है, इसलिए यह दो कर्मों (मफ़ऊल) तक संक्रामक (transitive) होता है; और कहा गया है: यह दिल की दृष्टि से है, और ऐसा कहने वाले के लिए आवश्यक है कि इसका क्रिया रूप तीन कर्मों तक पहुँचे। इब्न अतिया ने कहा (१): यह इस तथ्य से भिन्न है कि यह हमज़ा के साथ दिल की दृष्टि से दो कर्मों तक संक्रामक पाया जाता है (२), हुतित बिन याफ़र, जो अल-अस्वद बिन याफ़र के भाई हैं, उन्होंने कहा:

मुझे एक उदार व्यक्ति दिखाओ जो दुबलेपन से मर गया, क्योंकि मैं वही देखता हूँ जो तुम देखती हो, या एक अमर कंजूस (३)

और उमर बिन अब्दुल अज़ीज़, क़तादा, इब्न कसीर, इब्न मुहयसिन, अल-सुद्दी और रूह ने याकूब से, रुवैस और अल-सूसी ने पढ़ा: "अरना" (أَرْنَا), क़ुरान में 'रा' पर सुकून के साथ (४); और इसे अबू हातिम ने चुना है। और अबू अम्र ने 'रा' की कसरा (इ-स्वर) को इख़्तिलास (जल्दी से बोलने) के साथ पढ़ा, और बाकियों ने इसे कसरा के साथ पढ़ा (५), और इसे अबू उबैद ने चुना। इसका मूल है: "अरि'ना" (أَرِئْنَا), हमज़ा के साथ; तो जिसने सुकून के साथ पढ़ा, उसने कहा: हमज़ा हट गया, और उसका स्वर भी हट गया, और 'रा' अपनी स्थिति में साकिन ही रहा, और उन्होंने कवि के कथन से प्रमाण दिया:

हमें अब्दुल्ला की मशक़ दिखाओ ताकि हम उसे भर दें ज़मज़म के पानी से, क्योंकि लोग प्यासे हो गए हैं (६)

और जिसने कसरा के साथ पढ़ा, उसने हटाए गए हमज़ा के स्वर को 'रा' पर स्थानांतरित कर दिया, और अबू अम्र ने उच्चारण में सुगमता चाही।

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२११। (२) अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत १/३९१ में कहा: इसका अर्थ है कि अरबी भाषा में इसे हमज़ा-ए-नक़ल के साथ दो की ओर संक्रामक के रूप में उपयोग किया गया है, जैसे इसे हमज़ा के बिना दो की ओर संक्रामक के रूप में उपयोग किया गया है। (३) इस शेर के श्रेय के बारे में मतभेद है। अबू उबैदा ने इसे मजाज़ अल-क़ुरान १/५५ में हुतित बिन याफ़र को श्रेय दिया है, इब्न क़ुतैबा ने अल-शेर वल-शुअरा १/२४८ और २६५ में, अल-अस्फहानी ने अल-अग़ानी १३/२७ में, अल-तबरी ने अल-तफ़्सीर २/५६९ में, अल-तिब्रिज़ी ने शरह दीवान अल-

हमासा ४/१२५ में, अल-बकरी ने सिम्त अल-लआली २/७१४ में, और अल-बग़दादी ने अल-खिज़ा़ना १/४०६ में। अबू उबैदा और अल-तबरी के अनुसार: "लअन्नी" (क्योंकि मैं), लेखक के वर्णन के समान, और अन्यों के वर्णन में: "लअल्लानी" (शायद मैं)। अल-तिब्रिज़ी ने कहा: और "लअन्नी" को "लअल्लानी" के अर्थ में भी वर्णित किया गया है; कहा जाता है: बाज़ार आओ क्योंकि तुम हमारे लिए कुछ ख़रीद रहे हो (अर्थात्: शायद ख़रीदोगे)। अल-जौहरी ने इसे अल-सिहाह (علل) में हातिम अल-ताई को श्रेय दिया, और यह उनके दीवान पृष्ठ ४० में है। इब्न मंज़ूर ने अल-लिसान (علل) में कहा: अबू उबैदा ने उल्लेख किया कि यह शेर हुतित बिन याफ़र का है, और अल-हौफ़ी ने उल्लेख किया कि यह दुरैद का है, और यह शेर हातिम की एक प्रसिद्ध और विख्यात कविता में है। (४) (ज़) में: पूरे क़ुरान में। (५) अल-सबआ पृष्ठ १७०, अल-तयसीर ७६, और अल-नश्र २/२२२। अबू अम्र का 'रा' की कसरा के इख़्तिलास के साथ पाठ अल-दूरी के उनके माध्यम से वर्णन से है। (६) हम इसके रचयिता तक नहीं पहुँच सके और इसे अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत १/३९१ में, अल-समीन अल-हलबी ने अल-दुर अल-मसन २/११९ में, और इब्न आदिल अल-हनबली ने अल-लुबाब २/४८७ में उद्धृत किया है।

۳۹۸ سورہ البقرہ: آیت ۱۲۸

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَأَرِنَا مَنَاسِكَنَا﴾ "أرنا" بصری رؤیت (آنکھ سے دیکھنا) سے ہے، پس یہ دو مفعولوں کی طرف متعدی ہوتا ہے؛ اور کہا گیا ہے: یہ قلبی رؤیت سے ہے، اور اس کے قائل پر لازم ہے کہ اس کا فعل تین مفعولوں کی طرف متعدی ہو۔ ابن عطیہ نے کہا(۱): اور یہ اس بات سے ممتاز ہے کہ یہ قلبی رؤیت سے ہمزہ کے ذریعے دو مفعولوں کی طرف متعدی پایا جاتا ہے(۲)، حطائط بن یعفر، اسود بن یعفر کے بھائی نے کہا:

مجھے وہ سخی دکھاؤ جو فاقہ کشی سے مرا ہو، کیونکہ میں وہی دیکھتا ہوں جو تم دیکھتی ہو، یا کوئی بخیل جو ہمیشہ زندہ رہا ہو(۳)

اور عمر بن عبدالعزیز، قتادہ، ابن کثیر، ابن محیصن، سدی، اور روح نے یعقوب سے، رویس، اور سوسی نے: "أَرْنَا" پڑھا ہے، قرآن میں 'را' کے سکون کے ساتھ(۴)؛ اور اسے ابو حاتم نے پسند کیا ہے۔ اور ابو عمرو نے 'را' کے زیر کے اختلاس (ہلکے سے اشارے) کے ساتھ پڑھا، اور باقیوں نے اسے زیر کے ساتھ پڑھا(۵)، اور اسے ابو عبید نے منتخب کیا۔ اور اس کی اصل ہے: "أَرِئْنَا"، ہمزہ کے ساتھ؛ پس جس نے سکون کے ساتھ پڑھا اس نے کہا: ہمزہ چلا گیا، اور اس کی حرکت چلی گئی، اور 'را' اپنی حال پر ساکن رہی، اور اس نے شاعر کے قول سے استدلال کیا:

ہمیں عبداللہ کا مشکیزہ دکھاؤ تاکہ ہم اسے بھر دیں زمزم کے پانی سے، کیونکہ لوگ پیاسے ہو گئے ہیں(۶)

اور جس نے زیر پڑھی اس نے محذوف ہمزہ کی حرکت کو 'را' کی طرف منتقل کر دیا، اور ابو عمرو نے تخفیف (آسانی) چاہی۔

(۱) المحرر الوجیز ۱/ ۲۱۱۔ (۲) ابو حیان نے البحر المحیط ۱/ ۳۹۱ میں کہا: یعنی یہ لسان عرب میں ہمزہ نقل کے ساتھ دو کی طرف متعدی مستعمل ہوا ہے، جیسا کہ ہمزہ کے بغیر دو کی طرف متعدی مستعمل ہوا ہے۔ (۳) اس شعر کی نسبت میں اختلاف ہے، ابو عبیدہ نے اسے مجاز القرآن ۱/ ۵۵ میں حطائط بن یعفر کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن قتیبہ نے الشعر والشعراء ۱/ ۲۴۸ اور ۲۶۵ میں، اور اصفہانی نے الاغانی ۱۳/ ۲۷ میں، اور طبری نے التفسیر ۲/ ۵۶۹ میں، اور تبریزی نے شرح دیوان الحماسہ ۴/ ۱۲۵ میں، اور بکری نے سمط اللآلی ۲/ ۷۱۴ میں، اور بغدادی نے الخزانہ ۱/ ۴۰۶ میں، اور ابو عبیدہ اور طبری کے نزدیک: "لأنني"، مصنف کی روایت کی طرح، اور باقیوں کی روایت: "لعلني"، تبریزی نے کہا: اور "لأنني" بھی روایت کیا گیا ہے، "لعلني" کے معنی میں؛ کہا جاتا ہے: بازار آؤ کیونکہ تم ہمارے لیے کچھ خرید رہے ہو (یعنی: شاید خریدو گے)۔ جوہری نے اسے الصحاح (علل) میں حاتم طائی کی طرف منسوب کیا، اور یہ ان کے دیوان ص ۴۰ میں ہے، اور ابن منظور نے اللسان (علل) میں کہا: ابو عبیدہ نے ذکر کیا کہ یہ شعر حطائط بن یعفر کا ہے، اور حوفی نے ذکر کیا کہ یہ درید کا ہے، اور یہ شعر حاتم کے ایک معروف و مشہور قصیدے میں ہے۔ (۴) (ز) میں: تمام قرآن میں۔ (۵) السبعہ ص ۱۷۰، والتیسیر ۷۶، والنشر ۲/ ۲۲۲۔ اور ابو عمرو کی 'را' کے زیر کے اختلاس کے ساتھ قرات ان سے دوری کی روایت سے ہے۔ (۶) ہم اس کے قائل تک نہیں پہنچ سکے، اور اسے ابو حیان نے البحر المحیط ۱/ ۳۹۱ میں، اور سمین حلبی نے الدر المصون ۲/ ۱۱۹ میں، اور ابن عادل حنبلی نے اللباب ۲/ ۴۸۷ میں ذکر کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 128 (399)

From Shuja' bin Abi Nasr (1) - and he was trustworthy and truthful - that he saw the Messenger of Allah ﷺ in a dream and discussed with him some matters regarding the recitations (qira'at) of Abu 'Amr. The Prophet did not respond to him except on two matters: this one, and the other: "Whatever verse We abrogate or cause to be forgotten" (ma nansakh min ayatin aw nunsa’aha) with a hamza (2).

The Almighty's saying: {our rites}: It is said that the root of *nusuk* (rite/devotion) in the language is washing. It is said: "He *nasaka* his garment" when he washed it. In Sharia, it is a name for worship. It is said: "A *nasik* man" if he is a worshiper (3).

Scholars differed regarding what is meant by *manasik* here. It was said: the rites and landmarks of Hajj; this was said by Qatadah and Al-Suddi. Mujahid, 'Ata, and Ibn Jurayj said: *Manasik* are the *madhabih* (slaughterhouses), i.e., locations for sacrifice. It was also said: all acts of worship (4). Everything used for worshiping Allah Almighty is called *mansak* or *mansik*. The *nasik* is the worshiper. Al-Nahhas said (5): It is said: *nasaka yansuku*, so based on this, it should have been said *mansuk*, except that the form *maf’ul* does not exist in the speech of the Arabs.

From Zuhair bin Muhammad (6) he said: When Ibrahim (peace be upon him) finished building the Sacred House, he said: "O Lord, I have finished, so show us our rites." Then Allah Almighty sent Gabriel to him, and he performed Hajj with him. When he returned from 'Arafah and the Day of Sacrifice came, Iblis appeared to him. Gabriel said to him: "Stone him," so he stoned him with seven pebbles. Then the next day, then the third day. Then he climbed Thabir and said: "O servants of Allah, respond!" Those between the seas who had an atom's weight of faith in their hearts heard his call and said: "Labbayk Allahumma Labbayk" (Here I am, O Allah, here I am). He said: There have always been seven Muslims or more on the face of the earth; if not for that, the earth and those on it would have been destroyed. And the first to respond to him were the people of Yemen (7).

---

(1) In (Kh), (Z), and (Zh): Basra; in (D): Nusrah. What is established is from (M), Tabaqat al-Qurra’ 1/324, and At-Taqrib. He is Abu Nu'aym al-Balkhi al-Muqri’, and his biography was previously mentioned in 2/310. (2) In (M): 'mahmuzan'. Ibn Mujahid mentioned the story in *As-Sab'ah* p. 82, and a similar narration preceded in 2/310. It is established in the principles of Sharia that dreams are not a source for legal rulings. (3) Ahkam al-Qur'an by al-Kiya al-Tabari 1/19. (4) See *An-Nukat wa al-'Uyun* 1/191, and

Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. Al-Tabari cited these opinions in 2/567-569. (5) *I'rab al-Qur'an* 1/262. (6) At-Tamimi, Abu al-Mundhir, al-Marwazi al-Khuraqi - with two fatha vowels - from the village of Kharaq, al-Khurasani, the Hafiz, resident of ash-Sham, then resident of Makkah, died in the year (162 AH). *As-Siyar* 8/187. (7) *Akhbar Makkah* by al-Azraqi 1/71.

सूरह अल-बकरा: आयत 128 (399)

शुजा बिन अबी नस्र (1) से - और वह भरोसेमंद और सच्चे थे - कि उन्होंने अल्लाह के रसूल ﷺ को सपने में देखा। उन्होंने उनसे अबू अम्र की किराअत (पढ़ने के तरीकों) के बारे में कुछ चीजों पर चर्चा की, और उन्होंने उन्हें केवल दो बातों के अलावा कोई जवाब नहीं दिया: यह, और दूसरा: "जो भी आयत हम निरस्त करते हैं या उसे भुला देते हैं" (मा ननसाख मिन आयातिन अव नुनसअहा) हमज़ा के साथ (2)।

अल्लाह तआला का कहना: {हमारे अनुष्ठान (मनासिकना)}: कहा जाता है कि भाषा में 'नुसुक' का मूल अर्थ 'धोना' है। कहा जाता है: 'उसने अपने कपड़े का नुसुक किया' यानी जब उसे धोया। शरीयत में, यह इबादत (पूजा) के लिए एक नाम है। कहा जाता है: 'एक नासिक व्यक्ति' यदि वह इबादत करने वाला हो (3)।

यहाँ 'मनासिक' के अर्थ के संबंध में विद्वानों में मतभेद है। कहा गया: हज के अनुष्ठान और उसके चिह्न; यह कतादा और अल-सुद्दी ने कहा। मुजाहिद, अता और इब्न ज़ुैराज ने कहा: मनासिक का अर्थ है 'मज़बह' (बलिदान स्थल), यानी ज़बह करने की जगहें। यह भी कहा गया: सभी इबादतें (4)। अल्लाह तआला की इबादत के लिए इस्तेमाल की जाने वाली हर चीज़ को 'मंसक' या 'मंसिक' कहा जाता है। 'नासिक' वह है जो इबादत करने वाला हो। अल-नहस ने कहा (5): कहा जाता है: 'नसका यंसुकु, तो इस आधार पर 'मंसुक' कहा जाना चाहिए था, सिवाय इसके कि अरबों की भाषा में 'मफ'उल' रूप नहीं है।

और जुहैर बिन मुहम्मद (6) से, उन्होंने कहा: जब इब्राहिम (उन पर शांति हो) ने काबा के निर्माण का काम पूरा कर लिया, तो उन्होंने कहा: "ऐ मेरे रब, मैंने काम पूरा कर लिया है, तो हमें हमारे अनुष्ठान दिखा।" तब अल्लाह तआला ने उनके पास जिब्रील को भेजा, और उन्होंने उनके साथ हज किया। जब वे अराफात से लौटे और कुर्बानी का दिन आया, तो इबलीस उनके सामने आया। जिब्रील ने उनसे कहा: "इसे कंकड़ मारो," तो उन्होंने उसे सात कंकड़ मारे। फिर अगले दिन, फिर तीसरे दिन। फिर वे थबीर पहाड़ पर चढ़े और कहा: "ऐ अल्लाह के बंदो, जवाब दो!" समुद्रों के बीच मौजूद हर उस व्यक्ति ने उनकी पुकार सुनी जिसके दिल में राई के दाने के बराबर भी ईमान था, और कहा: "लब्बैक अल्लाहहुम्मा लब्बैक" (हाज़िर हूँ ऐ अल्लाह, हाज़िर हूँ)। उन्होंने कहा: पृथ्वी पर हमेशा सात या

अधिक मुस्लिम रहे हैं; यदि ऐसा न होता, तो पृथ्वी और उस पर रहने वाले नष्ट हो जाते। और उन्हें सबसे पहले जवाब देने वाले यमन के लोग थे (7)।

---

(1) (ख), (ज़), और (ज़): बसरा में; (द) में: नुसरा। जो स्थापित है वह (म), तबक़ात अल-क़ुर्रा 1/324 और अल-तक़रीब से है। वह अबू नुअैम अल-बल्खी अल-मुकरी हैं, और उनकी जीवनी पहले 2/310 में आ चुकी है। (2) (म) में: 'महमुज़न', और इब्न मुजाहिद ने इस कहानी का उल्लेख अल-सब'आ पृष्ठ 82 में किया है, और इसी तरह की बात 2/310 में पहले आ चुकी है। शरीयत के सिद्धांतों में यह तय है कि सपने कानूनी फैसलों का स्रोत नहीं होते। (3) अहकाम अल-कुरान, अल-किया अल-तबरी 1/19। (4) देखें अन-नुक़त वल-'उयून 1/191, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/211। अल-तबरी ने इन मतों को 2/567-569 में उद्धृत किया है। (5) इ'राब अल-कुरान 1/262। (6) अल-तमीमी, अबू अल-मुन्ज़िर, अल-मरवज़ी अल-खुरकी - दो फतह स्वरों के साथ - खरक गाँव से, अल-खुरासानी, हाफ़िज़, शाम के निवासी, फिर मक्का के निवासी, वर्ष (162 हिजरी) में मृत्यु हुई। अल-सियार 8/187। (7) अख़बार मक्का, अल-अज़रकी 1/71।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۸ (۳۹۹)

شجاع بن ابی نصر (۱) سے روایت ہے - اور وہ امانت دار اور سچے تھے - کہ انہوں نے رسول اللہ ﷺ کو خواب میں دیکھا، تو انہوں نے آپ ﷺ سے ابو عمرو کے حروف (قرأت) کے بارے میں کچھ چیزوں کا تذکرہ کیا، تو آپ ﷺ نے صرف دو حروف کے علاوہ کسی پر جواب نہیں دیا: یہ، اور دوسرا «ما نَنْسَخْ مِنْ آيَةٍ أَوْ نُنْسَأَهَا» ہمزہ کے ساتھ (۲)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿مَنَاسِكَنَا﴾ کہا جاتا ہے: لغت میں 'نسک' کی اصل 'دھونا' ہے، کہا جاتا ہے: اس نے اپنا کپڑا 'نسک' کیا: جب اس نے اسے دھویا، اور شریعت میں یہ عبادت کا نام ہے، کہا جاتا ہے: ایک 'ناسک' آدمی: جب وہ عبادت گزار ہو (۳)۔

علماء کا یہاں 'مناسک' سے مراد کے بارے میں اختلاف ہے، تو کہا گیا: حج کے مناسک اور اس کی علامات؛ یہ قتادہ اور سدی نے کہا۔ اور مجاہد، عطا اور ابن جریج نے کہا: المناسک: المذابح، یعنی قربانی کے مقامات۔ اور کہا گیا: تمام عبادات (۴)۔ اور ہر وہ چیز جس کے ذریعے اللہ تعالیٰ کی عبادت کی جائے اسے 'مَنْسَک' اور 'مَنْسِک' کہا جاتا ہے۔ اور 'ناسک': عبادت گزار ہے۔ نحاس (۵) نے کہا: کہا جاتا ہے: نَسَكَ يَنْسُكُ، تو اس کے مطابق 'مَنْسُک' کہا جانا چاہیے تھا، سوائے اس کے کہ عربوں کے کلام میں 'مَفْعُل' کا وزن نہیں ہے۔

اور زہیر بن محمد (۶) سے روایت ہے، انہوں نے کہا: جب ابراہیم علیہ السلام بیت اللہ کی تعمیر سے فارغ ہوئے تو عرض کیا: اے میرے رب، میں فارغ ہو چکا ہوں، پس ہمیں ہمارے مناسک (طریقہ عبادت) دکھا، تو اللہ تعالیٰ نے ان کی طرف جبرئیل کو بھیجا، پس انہوں نے ان کے ساتھ حج کیا، یہاں تک کہ جب وہ عرفہ سے لوٹے اور یوم النحر (قربانی کا دن) آیا، تو ان کے سامنے ابلیس آگیا، تو جبرئیل نے ان سے کہا: اسے کنکریاں مارو، پس انہوں نے اسے سات کنکریاں

ماریں، پھر اگلے دن، پھر تیسرے دن، پھر وہ ثبیر (پہاڑ) پر چڑھے اور پکارا: اے اللہ کے بندو، جواب دو! تو سمندروں کے درمیان جس کے دل میں ذرہ برابر بھی ایمان تھا اس نے ان کی پکار سنی، تو کہا: لبیک اللہم لبیک؛ انہوں نے کہا: زمین پر ہمیشہ سات یا اس سے زیادہ مسلمان رہے ہیں، اگر ایسا نہ ہوتا تو زمین اور اس پر رہنے والے ہلاک ہو جاتے۔ اور سب سے پہلے جس نے انہیں جواب دیا وہ اہل یمن تھے (۷)۔

---

(۱) (خ) اور (ز) اور (ظ) میں: بصرہ، اور (د) میں: نصرہ، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے، اور طبقات القراء ۱/ ۳۲۴، والتقریب، وہ ابو نعیم البلخی المقرئ ہیں، اور ان کا تذکرہ ۲/ ۳۱۰ میں پہلے آ چکا ہے۔ (۲) (م) میں: 'مہموزاً'، اور ابن مجاہد نے السبعة ص ۸۲ میں یہ قصہ ذکر کیا ہے، اور اس طرح کا تذکرہ پہلے ۲/ ۳۱۰ میں گزر چکا ہے، اور اصول شریعت میں یہ طے شدہ ہے کہ خواب احکام کا ماخذ نہیں ہوتے۔ (۳) أحكام القرآن للكيا الطبرى ۱/ ۱۹۔ (۴) دیکھیے النکت والعیون ۱/ ۱۹۱، والمحرر الوجیز ۱/ ۲۱۱، اور طبری نے یہ اقوال ۲/ ۵۶۷-۵۶۹ میں نقل کیے ہیں۔ (۵) إعراب القرآن ۱/ ۲۶۲۔ (۶) التمیمی، ابو المنذر، المروزی الخُرَقی - دو زبر کے ساتھ - خرق گاؤں سے، الخراسانی، الحافظ، شام کے رہنے والے، پھر مکہ میں رہے، وفات ۱۶۲ھ میں ہوئی۔ السیر ۸/ ۱۸۷۔ (۷) أخبار مكة للأزرقي ۱/ ۷۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 128 400

On the authority of Abu Mijlaz, he said: When Ibrahim (Abraham) finished [building] the House, Gabriel, peace be upon him, came to him and showed him the circumambulation (Tawaf) around the House—he said: and I think he said: and Al-Safa and Al-Marwa—then they both set off to Al-Aqabah, and Satan appeared to them. Gabriel took seven pebbles and gave Ibrahim seven pebbles. Gabriel threw [one] and said "Allahu Akbar" (God is Greatest), and said to Ibrahim: "Throw and say Allahu Akbar." So they both threw and said Allahu Akbar with every throw until Satan disappeared. Then they set off to the Middle Jamrah, and Satan appeared to them. Gabriel took seven pebbles and gave Ibrahim seven pebbles, and said: "Throw and say Allahu Akbar." So they both threw and said Allahu Akbar with every throw until Satan disappeared. Then they came to the Final (Furthest) Jamrah, and Satan appeared to them. Gabriel took seven pebbles and gave Ibrahim seven pebbles, and said: "Throw and say Allahu Akbar." So they both threw and said Allahu Akbar with every throw until Satan disappeared. Then he [Gabriel] brought him to Jam' (Muzdalifah) and said: "Here people combine the prayers." Then he brought him to Arafat and said: "Do you recognize (arafta)?" He said: "Yes." Therefore, it was called Arafat(1). And it is narrated that he said to him: "Do you recognize, do you recognize, do you recognize?" meaning: Mina, Jam', and this? He said: "Yes." So that place was named Arafat.

And on the authority of Khusayf bin Abd al-Rahman(2) that Mujahid told him, saying: When Ibrahim, peace be upon him, said: "And show us our rites," he was shown(3) Al-Safa and Al-Marwa, and they are among the symbols of Allah by the text of the Quran. Then Gabriel went out with him, and when he passed by the jamrah of Al-Aqabah, Iblis (Satan) was upon it. Gabriel said to him: "Say Allahu Akbar and throw at him." So Iblis moved to the middle one, and Gabriel said: "Say Allahu Akbar and throw at him." Then the same at the furthest jamrah. Then he set off with him to the Sacred Monument (Al-Mash'ar al-Haram), then he brought him to Arafah and said to him: "Do you recognize what I have shown you?" He said: "Yes." So it was called Arafat for that reason, according to what is said. He said: "Then announce the Hajj among the people." Ibrahim said: "What should I say?" He said: "Say: O people, answer your Lord," three times(4). He did so, and they said: "Labbayk Allahumma Labbayk" (At Your service, O Allah, at Your service). He said: "So whoever answered on that day is a pilgrim(5)."

(1) Cited by Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/146. He added before mentioning 'Jam' his saying: Then he brought him to Mina, and said: Here people shave their heads, then he brought him to Jam'. (2) The Imam, the jurist, Abu Awn, al-Khudrami - with a kasrah under the dotted Kha - the Umayyad, their client, from Jazira and Harran, died in the year (136 AH) and it was said otherwise. Al-Siyar 6/145. (3) In (m): i.e. (4) In (kh), (d), (z), and (m): times (marar), and what is confirmed is from (zh), which is consistent with what is in Akhbar Makkah. (5) Narrated by al-Azraqi in Akhbar Makkah 1/69.

सूरह अल-बकरा: आयत 128 400

अबू मिजलाज़ से रिवायत है, उन्होंने कहा: जब इब्राहिम (अलैहिस्सलाम) ने बैतुल्लाह के निर्माण का कार्य पूरा कर लिया, तो जिब्रील (अलैहिस्सलाम) उनके पास आए और उन्हें बैतुल्लाह का तवाफ़ करना सिखाया - रावी कहते हैं: और मेरा मानना है कि उन्होंने सफ़ा और मरवा का भी ज़िक्र किया - फिर वे दोनों अक़बा की ओर चले, जहाँ शैतान उनके सामने आया। जिब्रील ने सात कंकड़ लिए और इब्राहिम को सात कंकड़ दिए। जिब्रील ने कंकड़ फेंका और 'अल्लाहु अकबर' कहा, और इब्राहिम से कहा: "कंकड़ फेंको और अल्लाहु अकबर कहो।" उन दोनों ने कंकड़ फेंके और हर फेंकने के साथ अल्लाहु अकबर कहा, यहाँ तक कि शैतान गायब हो गया। फिर वे बीच वाली जमराह (जमरा-ए-वुस्ता) की ओर चले, और वहाँ भी शैतान सामने आया। जिब्रील ने सात कंकड़ लिए और इब्राहिम को सात कंकड़ दिए, और कहा: "फेंको और अल्लाहु अकबर कहो।" तो उन दोनों ने हर कंकड़ फेंकने पर अल्लाहु अकबर कहा, यहाँ तक कि शैतान गायब हो गया। फिर वे आख़िरी जमराह (जमरा-ए-अक़बा) के पास आए, और वहाँ भी शैतान सामने आया। जिब्रील ने सात कंकड़ लिए और इब्राहिम को सात कंकड़ दिए और कहा: "फेंको और अल्लाहु अकबर कहो;" तो उन्होंने हर बार कंकड़ फेंकते हुए अल्लाहु अकबर कहा, यहाँ तक कि शैतान वहाँ से भी हट गया। फिर वे उन्हें 'जमअ' (मुज़दलिफ़ा) ले गए और कहा: "यहाँ लोग नमाज़ें जमा करते हैं।" फिर उन्हें अराफ़ात ले गए और पूछा: "क्या आपने पहचान लिया (अरफ़्ता)?" उन्होंने कहा: "हाँ।" इसी वजह से इसका नाम अराफ़ात पड़ा(1)। और रिवायत है कि उन्होंने उनसे पूछा: "क्या आपने पहचान लिया, क्या आपने पहचान लिया, क्या आपने पहचान लिया?" यानी: मिना, जमअ और इसे? उन्होंने कहा: "हाँ;" तो उस स्थान का नाम अराफ़ात रख दिया गया।

और खुसैफ़ बिन अब्दुर रहमान(2) से रिवायत है कि मुजाहिद ने उन्हें बताया: जब इब्राहिम (अलैहिस्सलाम) ने दुआ की: "और हमें हमारी इबादत के तरीके दिखा," तो उन्हें सफ़ा और मरवा दिखाए गए(3), जो कुरान के अनुसार अल्लाह की निशानियों में से हैं। फिर जिब्रील उन्हें लेकर निकले, और जब वे अक़बा की जमराह के पास से गुज़रे, तो वहाँ इबलीस मौजूद था। जिब्रील ने उनसे कहा: "तकबीर कहो (अल्लाहु अकबर कहो) और उसे कंकड़ मारो।" तो इबलीस बीच वाली जगह (वुस्ता) पर चला गया, जिब्रील ने कहा: "तकबीर कहो और उसे मारो।" फिर आख़िरी जमराह पर भी ऐसा ही हुआ। फिर वे उन्हें 'मशअरे हराम' ले गए, फिर अराफ़ा ले गए और उनसे पूछा: "क्या तुमने पहचान लिया जो मैंने तुम्हें दिखाया है?" उन्होंने कहा: "हाँ," तो कहा जाता है कि इसी कारण इसका

नाम अराफ़ात पड़ा। उन्होंने (जिब्रील ने) कहा: "अब लोगों में हज का एलान कर दो।" इब्राहिम ने पूछा: "मैं क्या कहूँ?" उन्होंने कहा: "कहो: ऐ लोगो, अपने रब की पुकार का उत्तर दो," तीन बार(4)। उन्होंने ऐसा ही किया, तो लोगों ने कहा: "लब्बैक अल्लाहम्मा लब्बैक।" उन्होंने कहा: "तो जिस किसी ने उस दिन जवाब दिया, वह हाजी है(5)।"

(1) इब्न अल-जौज़ी ने इसे 'ज़ाद अल-मसीर' 1/146 में उद्धृत किया है। और 'जमअ' के ज़िक्र से पहले उन्होंने यह जोड़ा है: फिर वे उन्हें मिना ले गए और कहा: यहाँ लोग अपने सिर मुंडवाते हैं, फिर उन्हें जमअ ले गए। (2) इमाम फकीह, अबू औन, अल-खुज़्रमी - 'खा' पर ज़ेर के साथ - उमय्यद, उनके मौला (आज़ाद किए हुए), जज़ीरी और हुर्रानी, उनकी मृत्यु वर्ष (136 हिजरी) में हुई और कुछ अन्य बातें भी कही गई हैं। अस-सियार 6/145। (3) (म) प्रति में: यानी। (4) (ख़), (द), (ज़) और (म) प्रतियों में: 'मरार' (कई बार) है, और जो यहाँ दिया गया है वह (ज़) प्रति से है जो 'अखबार मक्का' के अनुकूल है। (5) अल-अज़राक़ी ने इसे 'अखबार मक्का' 1/69 में निकाला है।

سورہ البقرہ: آیت ۱۲۸ ۴۰۰

ابو مجلز سے روایت ہے، انہوں نے کہا: جب حضرت ابراہیم علیہ السلام بیت اللہ کی تعمیر سے فارغ ہوئے تو حضرت جبریل علیہ السلام ان کے پاس آئے، اور انہیں بیت اللہ کا طواف دکھایا - راوی کہتے ہیں: میرا خیال ہے انہوں نے صفا و مروہ کا بھی ذکر کیا - پھر وہ دونوں عقبہ کی طرف چلے، وہاں شیطان ان کے سامنے آگیا۔ جبریل علیہ السلام نے سات کنکریاں لیں اور حضرت ابراہیم علیہ السلام کو سات کنکریاں دیں، خود کنکری ماری اور تکبیر کہی، اور ابراہیم علیہ السلام سے فرمایا: "کنکری ماریں اور تکبیر کہیں"۔ چنانچہ ان دونوں نے کنکریاں ماریں اور ہر کنکری کے ساتھ تکبیر کہی یہاں تک کہ شیطان غائب ہو گیا۔ پھر وہ دونوں جمرہ وسطیٰ کی طرف چلے، وہاں بھی شیطان سامنے آگیا۔ جبریل علیہ السلام نے سات کنکریاں لیں اور حضرت ابراہیم علیہ السلام کو سات کنکریاں دیں اور فرمایا: "کنکری ماریں اور تکبیر کہیں"۔ چنانچہ ان دونوں نے کنکریاں ماریں اور ہر کنکری کے ساتھ تکبیر کہی یہاں تک کہ شیطان غائب ہو گیا۔ پھر وہ دونوں جمرہ قصویٰ (جمرہ عقبہ) پر آئے، وہاں بھی شیطان سامنے آگیا، جبریل علیہ السلام نے سات کنکریاں لیں اور حضرت ابراہیم علیہ السلام کو سات کنکریاں دیں اور فرمایا: "کنکری ماریں اور تکبیر کہیں"؛ چنانچہ ان دونوں نے کنکریاں ماریں اور ہر کنکری کے ساتھ تکبیر کہی، یہاں تک کہ شیطان وہاں سے ہٹ گیا۔ پھر وہ انہیں 'جمع' (مزدلفہ) لے آئے اور کہا: "یہاں لوگ نمازیں جمع کر کے پڑھتے ہیں"۔ پھر انہیں عرفات لے گئے اور پوچھا: "کیا آپ نے پہچان لیا (عرفت)؟" انہوں نے کہا: "جی ہاں"؛ اسی لیے اس کا نام عرفات رکھا گیا(۱)۔ اور روایت ہے کہ جبریل نے ان سے پوچھا: "کیا پہچان لیا، کیا پہچان لیا، کیا پہچان لیا؟" یعنی: منیٰ، جمع، اور اس مقام کو؟ انہوں نے کہا: "جی ہاں"؛ تو اس مقام کا نام عرفات پڑ گیا۔

اور خصیف بن عبد الرحمن(۲) سے مروی ہے کہ مجاہد نے انہیں بتایا کہ: جب حضرت ابراہیم علیہ السلام نے کہا: "اور ہمیں ہماری عبادت کے طریقے دکھا"، تو انہیں صفا اور مروہ دکھائے گئے(۳) اور یہ دونوں قرآن کی نص سے اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں۔ پھر جبریل انہیں لے کر نکلے، جب وہ جمرہ عقبہ کے پاس سے گزرے تو وہاں ابلیس موجود تھا، جبریل نے ان سے کہا: "تکبیر کہیں اور اسے کنکری ماریں"۔ تو ابلیس جمرہ وسطیٰ کی طرف چلا گیا، جبریل نے کہا: "تکبیر کہیں اور اسے ماریں"۔ پھر جمرہ قصویٰ پر بھی ایسا ہی ہوا۔ پھر وہ انہیں مشعر حرام لے گئے، پھر انہیں عرفہ لے آئے اور ان سے پوچھا: "کیا آپ نے اس چیز کو پہچان لیا جو میں نے آپ کو دکھائی ہے؟" انہوں نے کہا: "جی ہاں"، تو کہا جاتا ہے کہ اسی وجہ سے اس کا نام عرفات پڑا۔ جبریل نے کہا: "اب لوگوں میں حج کا اعلان کر دیں"۔ حضرت ابراہیم نے پوچھا: "میں کیا کہوں؟" انہوں نے کہا: "کہیں: اے لوگو، اپنے رب کی پکار کا جواب دو،" تین مرتبہ(۴)۔ انہوں نے ایسا ہی کیا، تو لوگوں نے کہا: "لبیک اللہم لبیک"۔ فرمایا: "پس جس نے اس دن جواب دیا وہی حاجی ہے(۵)"۔

(۱) ابن الجوزی نے اسے زاد المسیر ۱/۱۴۶ میں ذکر کیا ہے۔ اور 'جمع' کے ذکر سے پہلے یہ اضافہ کیا ہے: پھر انہیں منیٰ لے آئے اور کہا: یہاں لوگ اپنے سر منڈواتے ہیں، پھر انہیں جمع لے آئے۔ (۲) امام فقیہ، ابو عون، الخضرمی - خاء کے کسرہ کے ساتھ - امویوں کے آزاد کردہ غلام، الجزری، الحرانی، ان کی وفات (۱۳۶ھ) میں ہوئی اور اس کے علاوہ بھی کہا گیا ہے۔ السیر ۶/۱۴۵۔ (۳) (م) میں ہے: یعنی۔ (۴) (خ)، (د)، (ز) اور (م) میں 'مرار' ہے، اور جو متن میں ہے وہ (ظ) سے ہے جو اخبار مکہ کے موافق ہے۔ (۵) الازرقی نے اسے اخبار مکہ ۱/۶۹ میں نقل کیا ہے۔

401 Surah Al-Baqarah: Verse 128

In another narration: When he called out, he turned around and prayed in every direction (1), and people from the east and west responded, and the mountains bowed down until his voice reached far (2). Muhammad bin Ishaq said: When Ibrahim, the close friend of the Most Merciful (peace be upon him), finished building the Sacred House, Jibreel (peace be upon him) came to him and said: "Circumambulate it seven times." So he and Ismail (peace be upon them) circumambulated it seven times, touching all the corners in every circuit. When they completed seven (3), they prayed two rak'ahs behind the Maqam (Station of Ibrahim). He said: Then Jibreel stood and showed him all the rituals: Al-Safa and Al-Marwa, Mina, and Al-Muzdalifah. He said: When he entered Mina and descended from Al-Aqaba, Iblis appeared to him. Then he mentioned something similar to what preceded. Ibn Ishaq said: It reached me that Adam (peace be upon him) used to touch all the corners before Ibrahim (peace be upon him). He said: Ishaq and Sarah performed Hajj from Sham (Greater Syria), and Ibrahim (peace be upon him) used to perform Hajj every year on Al-Buraq, and the prophets and nations performed Hajj after that (4). Muhammad bin Sabit narrated from the Prophet ﷺ that he said: If a prophet's nation perished, he would go to Makkah (5), and he and those who believed with him would worship there until they died. So Nuh, Hud, and Salih died there, and their graves are between Zamzam and Al-Hijr (6). Ibn Wahb mentioned that Shu'ayb died in Makkah along with the believers who were with him, and their graves are in western Makkah, between Dar al-Nadwa and Bani Sahm (7). Ibn Abbas said: In the Sacred Mosque there are two graves, none other than them: the grave of Ismail and the grave of...

(1) In (Z): direction. (2) Akhbar Makkah 1/69-70. (3) After it in (Z) is an addition: "he and Ismail (peace be upon them)". (4) Al-Azraqi related these two reports in Akhbar Makkah 1/66-68. (5) In (D), (Zah), and (M): Makkah, and what is established is from (Z), which matches what is with Al-Azraqi. (6) Al-Azraqi related it in Akhbar Makkah 1/68, and the narration of Muhammad bin Sabit from the Prophet ﷺ is Mursal (disconnected), as in Al-Tarikh al-Kabir 1/104. Al-Tabari related it 1/476 in a similar way, longer than it. Muhammad bin Sabit is the brother of Abdul Rahman bin Sabit; Abu Hatim said: I do not know him. See Al-Jarh wa al-Ta'dil 7/283. (7) Al-Azraqi related it in a similar way in Akhbar Makkah 1/73-74 and in it: Those are their graves in western Kaaba between Dar al-Nadwa and Dar Bani Hashim.

401 सूरह अल-बकरा: आयत 128

एक अन्य विवरण में: जब उन्होंने पुकारा, तो वे चारों ओर घूमे और हर दिशा में प्रार्थना की (1), और पूर्व और पश्चिम से लोगों ने जवाब दिया, और पहाड़ झुक गए जब तक कि उनकी आवाज़ दूर तक नहीं पहुँच गई (2)। मुहम्मद बिन इसहाक ने कहा: जब रहमान के खलील (मित्र) इब्राहिम (उन पर शांति हो) ने पवित्र घर (काबा) का निर्माण पूरा कर लिया, तो जिब्रील (उन पर शांति हो) उनके पास आए और कहा: "इसके सात चक्कर लगाओ।" तो उन्होंने और इस्माइल (उन पर शांति हो) ने सात चक्कर लगाए, हर चक्कर में सभी कोनों को छूते हुए। जब उन्होंने सात पूरे कर लिए (3) तो उन्होंने मकाम (मकाम-ए-इब्राहिम) के पीछे दो रकात नमाज़ पढ़ी। उन्होंने कहा: फिर जिब्रील खड़े हुए और उन्हें सभी अनुष्ठान दिखाए: सफ़ा और मरवा, मिना और मुज़दलिफ़ा। उन्होंने कहा: जब वे मिना में प्रवेश किया और अक़बा से नीचे उतरे, तो इबलीस उनके सामने प्रकट हुआ। फिर उन्होंने वैसा ही उल्लेख किया जैसा पहले बीत चुका है। इब्न इसहाक ने कहा: मुझे सूचना मिली है कि आदम (उन पर शांति हो) इब्राहिम (उन पर शांति हो) से पहले सभी कोनों को छूते थे। उन्होंने कहा: इसहाक और सारा ने शाम से हज किया, और इब्राहिम (उन पर शांति हो) हर साल बुराक पर सवार होकर हज करते थे, और उसके बाद नबियों और उम्मतों ने हज किया (4)। मुहम्मद बिन साबित ने पैगंबर ﷺ से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: जब किसी नबी की उम्मत नष्ट हो जाती थी, तो वे मक्का चले जाते थे (5), और वे और उनके साथ ईमान लाने वाले वहां तब तक इबादत करते थे जब तक कि उनकी मृत्यु न हो जाए। तो नूह, हूद और सालेह की मृत्यु वहीं हुई, और उनकी कब्रें ज़मज़म और अल-हिज्र के बीच हैं (6)। इब्न वहब ने उल्लेख किया कि शुऐब की मृत्यु मक्का में हुई थी और उनके साथ जो मोमिन थे, उनकी भी, और उनकी कब्रें पश्चिमी मक्का में दार अल-नदवा और बनी सहम के बीच हैं (7)। इब्न अब्बास ने कहा: मस्जिद अल-हरम में दो कब्रें हैं, उनके अलावा कोई और नहीं: इस्माइल की कब्र और...

(1) (ज़) में: दिशा। (2) अख़बार मक्का 1/69-70। (3) इसके बाद (ज़) में वृद्धि है: "वे और इस्माइल (उन पर शांति हो)"। (4) अल-अज़राक़ी ने इन दो ख़बरों को अख़बार मक्का 1/66-68 में उद्धृत किया है। (5) (द), (ज़ाह) और (म) में: मक्का, और जो स्थापित है वह (ज़) से है, जो अल-अज़राक़ी के पास मौजूद सामग्री के अनुरूप है। (6) अल-अज़राक़ी ने इसे अख़बार मक्का 1/68 में उद्धृत किया है, और मुहम्मद बिन साबित की पैगंबर ﷺ से रिवायत 'मुरसल' (टूटी हुई कड़ियों वाली) है, जैसा कि अल-तारीख अल-कबीर 1/104 में है। अल-तबरी ने इसे 1/476 में इसी तरह उद्धृत किया है जो

इससे लंबा है। मुहम्मद बिन साबित, अब्दुल रहमान बिन साबित के भाई हैं, अबू हातिम ने कहा: मैं उन्हें नहीं जानता। अल-जर्ह व अल-तादील 7/283 देखें। (7) अल-अज़राक़ी ने इसे अख़बार मक्का 1/73-74 में इसी तरह उद्धृत किया है और उसमें है: वे उनकी कब्रें काबा के पश्चिम में दार अल-नदवा और दार बनी हाशिम के बीच हैं।

401 سورہ البقرہ: آیت 128

اور ایک دوسری روایت میں ہے کہ: جب انہوں نے پکارا تو وہ چاروں طرف گھومے اور ہر سمت میں دعا کی (1)، تو مشرق و مغرب سے لوگوں نے لبیک کہا، اور پہاڑ جھک گئے یہاں تک کہ ان کی آواز دور تک پہنچ گئی (2)۔ اور محمد بن اسحاق نے کہا: جب خلیل الرحمن ابراہیم علیہ السلام بیت اللہ کی تعمیر سے فارغ ہوئے، تو جبرائیل علیہ السلام ان کے پاس آئے اور کہا: "اس کے سات چکر لگائیں۔" تو انہوں نے اور اسماعیل علیہما السلام نے سات چکر لگائے، ہر چکر میں تمام ارکان (کونوں) کا استلام کرتے (چھوتے) تھے۔ جب انہوں نے سات مکمل کر لیے (3) تو مقامِ ابراہیم کے پیچھے دو رکعت نماز پڑھی۔ کہا: پھر جبرائیل کھڑے ہوئے اور انہیں تمام مناسک دکھائے: صفا، مروہ، منیٰ اور مزدلفہ۔ کہا: جب وہ منیٰ میں داخل ہوئے اور عقبہ سے اترے، تو ابلیس ان کے سامنے آگیا۔ پھر انہوں نے اس طرح ذکر کیا جیسے پہلے گزر چکا ہے۔ ابن اسحاق نے کہا: اور مجھے یہ بات پہنچی ہے کہ آدم علیہ السلام ابراہیم علیہ السلام سے پہلے تمام ارکان کا استلام کیا کرتے تھے۔ اور کہا: اسحاق اور سارہ نے شام سے حج کیا، اور ابراہیم علیہ السلام ہر سال براق پر حج کے لیے آتے تھے، اور ان کے بعد انبیاء اور امتوں نے حج کیا (4)۔ اور محمد بن سابط نے نبی ﷺ سے روایت کیا کہ آپ نے فرمایا: انبیاء میں سے جب کسی کی امت ہلاک ہو جاتی، تو وہ مکہ آ جاتے (5)، اور وہ اور ان کے ساتھ ایمان لانے والے وہاں عبادت کرتے یہاں تک کہ ان کا انتقال ہو جاتا۔ چنانچہ نوح، ہود اور صالح وہیں فوت ہوئے، اور ان کی قبریں زمزم اور حجر کے درمیان ہیں (6)۔ اور ابن وہب نے ذکر کیا کہ شعیب مکہ میں فوت ہوئے وہ اور ان کے ساتھ موجود مومنین، تو ان کی قبریں مغربی مکہ میں دار الندوہ اور بنی سہم کے درمیان ہیں (7)۔ اور

ابن عباس نے کہا: مسجد حرام میں دو قبریں ہیں، ان کے علاوہ کوئی اور نہیں: اسماعیل کی قبر اور...

(1) (ز) میں: جہت (سمت)۔ (2) اخبار مکہ 1/69-70۔ (3) اس کے بعد (ز) میں اضافہ ہے: "وہ اور اسماعیل علیہما السلام"۔ (4) الازرقی نے ان دو خبروں کو اخبار مکہ 1/66-68 میں روایت کیا ہے۔ (5) (د)، (ظ) اور (م) میں: مکہ، اور جو ثابت ہے وہ (ز) سے ہے جو الازرقی کے پاس موجود روایت کے موافق ہے۔ (6) الازرقی نے اسے اخبار مکہ 1/68 میں نکالا ہے، اور محمد بن سابط کی نبی ﷺ سے روایت مرسل ہے، جیسا کہ التاریخ الکبیر 1/104 میں ہے۔ اور اسے طبری نے 1/476 میں اسی طرح لیکن اس سے لمبی روایت کے ساتھ نکالا ہے۔ اور محمد بن سابط، عبد الرحمن بن سابط کے بھائی ہیں، ابو حاتم نے کہا: میں انہیں نہیں جانتا۔ الجرح والتعدیل 7/283 دیکھیں۔ (7) الازرقی نے اسے اخبار مکہ 1/73-74 میں اسی طرح نکالا ہے اور اس میں ہے: وہ ان کی قبریں کعبہ کے مغرب میں دار الندوہ اور دار بنی ہاشم کے درمیان ہیں۔

Shuaib, peace be upon them. The grave of Ismail is in the Hijr, and the grave of Shuaib is opposite the Black Stone (1). Abdullah bin Damrah al-Saluli said: Between the Corner and the Station up to Zamzam are the graves of ninety-nine prophets who came as pilgrims and were buried there, may the blessings of Allah be upon them all (2). The Almighty's saying: {And turn to us in repentance}. There was disagreement over the meaning of the statement of Ibrahim and Ismail, peace be upon them: {And turn to us in repentance}, while they were infallible prophets. A group said: They sought steadfastness and permanence, not that they had committed a sin. I say: This is good, and even better is that when they learned the rituals and built the House, they wanted to establish a practice (3) for the people and let them know that this standing and those places are sites for purging sins and seeking repentance (4). And it was said: The meaning is "and turn in repentance to the wrongdoers among us." Discussion regarding the infallibility of the prophets, peace be upon them, already occurred in the story of Adam, peace be upon him, and the discussion (5) on the meaning of His saying: {Indeed, You are the Accepting of repentance, the Merciful} [Verse: 37] preceded, so it is sufficient without repetition. The Almighty's saying: {Our Lord, and send among them a messenger from themselves who will recite to them Your verses and teach them the Book and wisdom and purify them. Indeed, You are the Exalted in Might, the Wise (129)} The Almighty's saying: {Our Lord, and send among them a messenger from themselves} means Muhammad ﷺ. In the recitation of Ubayy: "and send in the last of them a messenger from them." Khalid bin Ma'dan narrated: that a group of the companions of the Prophet ﷺ said to him: O Messenger of Allah, tell us about yourself. He said: "Yes, I am the prayer of my father Ibrahim, and the good news of Jesus" (6).

(1) Reported by Ibn Asakir in Tarikh Dimashq 8/71. (2) Akhbar Makkah 1/68. (3) In (D), (Z), (Za), and (M): "to clarify," and the established version is from (Kh), which matches what is in Al-Muharrar al-Wajiz. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/211. (5) 1/459-460. (6) Al-Nukat wal-'Uyun 1/191. The hadith was reported by Ibn Ishaq as in Sirah Ibn Hisham 1/166, Ibn Sa'd in Al-Tabaqat 1/150, Al-Tabari in Tafsir 2/572-573, Al-Hakim in Al-Mustadrak 2/600, and Al-Bayhaqi in Al-Dala'il 1/83. Al-Hakim said: Khalid bin Ma'dan is among the best of the Tabi'un; he accompanied Mu'adh bin Jabal and those after him among the Sahaba. If he ascribes a hadith to the Sahaba, it has a sound chain of narration even if they (Bukhari and Muslim) did not include it.

शुएब (अलैहिस सलाम)। इस्माइल की कब्र हिज्र में है, और शुएब की कब्र हजरे अस्वद के सामने है (1)। अब्दुल्ला बिन दमरा अल-सलूली ने कहा: रुकन और मकाम से लेकर ज़मज़म के बीच निन्यानवे नबियों की कब्रें हैं जो हज करने आए थे और वहीं दफन हुए, उन सब पर अल्लाह की रहमत हो (2)। अल्लाह तआला का फरमान: {और हमारी तौबा कुबूल फरमा}। इब्राहिम और इस्माइल (अलैहिमुस्सलाम) के इस कथन के अर्थ में मतभेद है: {और हमारी तौबा कुबूल फरमा}, जबकि वे मासूम नबी थे। एक समूह ने कहा: उन्होंने स्थिरता और निरंतरता की प्रार्थना की, ऐसा नहीं कि उनसे कोई गुनाह हुआ था। मैंने कहा: यह बात अच्छी है, और इससे भी बेहतर यह है कि जब उन्होंने हज के तरीके जान लिए और काबा बना लिया, तो वे लोगों के लिए एक तरीका स्थापित (3) करना चाहते थे और उन्हें बताना चाहते थे कि वह स्थान और वे जगहें गुनाहों से पाक होने और तौबा करने का स्थान हैं (4)। और कहा गया: अर्थ है "और हमारे बीच के अत्याचारियों की तौबा कुबूल फरमा"। नबियों (अलैहिमुस्सलाम) की मासूमियत के बारे में चर्चा आदम (अलैहिस सलाम) की कहानी में हो चुकी है, और उनके इस कथन के अर्थ पर चर्चा (5) पहले हो चुकी है: {बेशक तू ही तौबा कुबूल करने वाला, निहायत रहम करने वाला है} [आयत: 37], इसलिए इसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। अल्लाह तआला का फरमान: {ऐ हमारे रब! और उनमें उन्हीं में से एक रसूल भेज जो उनके सामने तेरी आयतें पढ़े और उन्हें किताब और हिकमत सिखाए और उन्हें पाक करे, बेशक तू ही प्रभुत्वशाली, हिकमत वाला है (129)} अल्लाह तआला का फरमान: {ऐ हमारे रब! और उनमें उन्हीं में से एक रसूल भेज} का अर्थ मुहम्मद ﷺ है। उबैय की किरअत (पाठ) में है: "और उनके आख़िरी दौर में उन्हीं में से एक रसूल भेज"। खालिद बिन मादान ने रिवायत की है: नबी ﷺ के कुछ साथियों ने उनसे कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, हमें अपने बारे में बताएं। आपने फरमाया: "हाँ, मैं अपने पिता इब्राहिम की दुआ और ईसा की खुशखबरी हूँ" (6)।

(1) इब्न असाकिर ने तारीख़ दमिश्क 8/71 में इसे निकाला है। (2) अख़बार मक्का 1/68। (3) (द), (ज़), (ज़ह), और (म) में: "स्पष्ट करना", और (ख़) से प्रमाणित संस्करण अल-मुहर्रर अल-वजीज़ के अनुरूप है। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/211। (5) 1/459-460। (6) अन-नुकत वल-उयून 1/191। हदीस को इब्न इशाक ने सीरत इब्न हिशाम 1/166 में, इब्न साद ने अत-तबात 1/150 में, अत-तबरी ने तफसीर 2/572-573 में, अल-हाकिम ने अल-मुस्तदरक 2/600 में और अल-बैहकी ने अद-दलाईल 1/83 में दर्ज किया है। अल-हाकिम ने कहा: खालिद बिन मादान बेहतरीन ताबेईन में से

हैं; उन्होंने मुआज बिन जबल और उनके बाद के सहाबा की संगत की। यदि वे किसी हदीस को सहाबा से जोड़ते हैं, तो उसकी सनद सही है भले ही उन्होंने (बुखारी और मुस्लिम) इसे शामिल न किया हो।

شعیب علیہما السلام۔ پس اسماعیل کی قبر حجر میں ہے، اور شعیب کی قبر حجر اسود کے مقابل ہے(1)۔ عبداللہ بن ضمرہ السلولی نے کہا: رکن اور مقام سے زمزم کے درمیان ننانوے انبیاء کی قبریں ہیں جو حج کے لیے آئے تھے اور وہیں دفن ہوئے، اللہ کی رحمت ہو ان سب پر(2)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {وَتُبْ عَلَيْنَا} (اور ہماری توبہ قبول فرما)۔ ابراہیم اور اسماعیل علیہما السلام کے اس قول کے معنی میں اختلاف ہوا ہے: {وَتُبْ عَلَيْنَا}، حالانکہ وہ معصوم انبیاء تھے، تو ایک گروہ نے کہا: انہوں نے ثبات اور دوام طلب کیا، نہ یہ کہ ان سے کوئی گناہ ہوا تھا۔ میں نے کہا: یہ اچھا ہے، اور اس سے بہتر یہ ہے کہ جب انہوں نے مناسک کو جان لیا اور بیت اللہ کی تعمیر کر لی، تو انہوں نے چاہا کہ لوگوں کے لیے ایک طریقہ رائج کریں(3) اور انہیں بتائیں کہ وہ موقف اور وہ مقامات گناہوں سے چھٹکارا پانے اور توبہ طلب کرنے کی جگہ ہیں(4)۔ اور کہا گیا: معنی ہے "اور ہم میں سے ظالموں کی توبہ قبول فرما"۔ اور انبیاء علیہم السلام کی عصمت کے بارے میں کلام آدم علیہ السلام کے قصے میں گزر چکا ہے، اور اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد: {إِنَّكَ أَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ} (بے شک تو ہی توبہ قبول کرنے والا نہایت رحم والا ہے) [آیت: 37] کے معنی میں کلام (5) پہلے ہو چکا ہے، لہذا اسے دہرانے کی ضرورت نہیں۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِنْهُمْ يَتْلُوا عَلَيْهِمْ آيَاتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيهِمْ إِنَّكَ أَنْتَ الْعَزِيزُ الْحَكِيمُ (129)} اللہ تعالیٰ کا قول: {رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِنْهُمْ} سے مراد محمد ﷺ ہیں۔ اور ابی کی قرات میں ہے: "وابعث في آخرهم رسولاً منهم" (اور ان کے آخری حصے میں ان میں سے ایک رسول بھیج)۔ اور خالد بن معدان سے روایت ہے: نبی ﷺ کے صحابہ کی ایک جماعت نے آپ سے عرض کیا: یا رسول اللہ، ہمیں اپنے

بارے میں بتائیے، آپ نے فرمایا: "ہاں، میں اپنے باپ ابراہیم کی دعا، اور عیسیٰ کی بشارت ہوں"(6)۔

(1) اسے ابن عساکر نے تاریخ دمشق 8/71 میں روایت کیا ہے۔ (2) اخبار مکہ 1/68۔ (3) (د) اور (ز) اور (ظ) اور (م) میں ہے: "یبیّنا" (واضح کریں)، اور ثابت شدہ نسخہ (خ) سے ہے جو المحرر الوجیز کے موافق ہے۔ (4) المحرر الوجیز 1/211۔ (5) 1/459-460۔ (6) النکت والعیون 1/191، اور حدیث کی تخریج ابن اسحاق نے کی ہے جیسا کہ سیرت ابن ہشام 1/166 میں ہے، اور ابن سعد نے الطبقات 1/150 میں، اور الطبری نے التفسیر 2/572-573 میں، اور الحاکم نے المستدرک 2/600 میں، اور البیہقی نے الدلائل 1/83 میں۔ الحاکم نے کہا: خالد بن معدان بہترین تابعین میں سے ہیں، انہوں نے معاذ بن جبل اور ان کے بعد صحابہ کی صحبت اختیار کی، پس جب وہ صحابہ کی طرف حدیث کی نسبت کریں تو اس کی سند صحیح ہے اگرچہ ان دونوں (بخاری و مسلم) نے اسے روایت نہ کیا ہو۔

Surah Al-Baqarah: Verse 129 (403)

And "a Messenger" (rasulan) means: one sent; it is in the form of 'fa'ool' from 'al-risala' (message). Ibn al-Anbari said: It seems its origin is from their saying: 'naqatun mirsalun wa raslatun' (a swift and easy-going she-camel); when she is easy in walking, moving ahead of other camels. A neglected group sent forth is called 'rasal', plural 'arsal'. It is said: the people came 'arsalan', meaning one following another. From this, milk is called 'risl', because it is sent forth from the udder.

Allah's saying: {And teaches them the Book and wisdom}: "The Book" is the Quran. "Wisdom" is knowledge of religion, jurisprudence (fiqh) in interpretation, and understanding which is a natural disposition and light from Allah Almighty; this was stated by Malik, narrated (1) from him by Ibn Wahb, and stated by Ibn Zayd. Qatada said: Wisdom is the Sunnah, and the clarification of laws (sharia) (2). It was also said: it is judgment and decree specifically, and the meanings are close.

Teaching is attributed to the Prophet ﷺ as he provides the matters to be looked into, and teaches the way of reflection through what Allah casts to him of His revelation (3).

"And purifies them" (wa yuzakkihim) means: cleanses them from the filth of polytheism; from Ibn Jurayj (4) and others. Zakat is purification, as mentioned before (5).

It was said: The verses are the recitation of the outward words, the Book is the meanings of the words, and wisdom is the judgment (hukm); it is (6) Allah's intent in the discourse, covering absolute and restricted, explained and summarized, general and specific, which is the meaning of what preceded, and Allah Almighty knows best.

And "Al-Aziz" (The Almighty) means: The Invincible who cannot be reached or overcome. Ibn Kaysan said: it means the One whom nothing can frustrate/ incapacitate; his evidence: {And Allah is not such that anything in the heavens or on the earth should escape Him} [Fatir: 44]. Al-Kisa'i said: "Al-Aziz" is the Vanquisher, from which is Allah's saying: {and he overpowered me in speech} [Saad: 23],

========== = It has a witnessing report from the hadith of Al-Irbad ibn Sariyah in Ahmad (17150), and another from the hadith of Abu Umama in Ahmad as well (22261). (1) In (m): and he narrated it. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/212, and Al-Tabari cited the previous opinions 2/576. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/212. (4) Narrated by Al-Tabari 2/577-578. (5) 2/23. (6) In (kh), (d), and (z): "wa hiya" (she/it is).

सूरह अल-बकरा: आयत 129 (403)

और "एक रसूल" (रसूलन) का अर्थ है: भेजा गया; यह 'अल-रिसाला' (संदेश) से 'फा'ओल' के रूप में है। इब्न अल-अनबारी ने कहा: ऐसा लगता है कि इसका मूल उनकी इस कहावत से है: 'नाकतुन मिरसालुन वा रसलतुन' (एक तेज़ और आसानी से चलने वाली ऊँटनी); जब वह चलने में आसान हो, दूसरी ऊँटियों के आगे चल रही हो। उपेक्षित समूह जिसे आगे भेजा गया हो, उसे 'रसल' कहा जाता है, बहुवचन 'अरसाल'। कहा जाता है: लोग 'अरसालन' आए, यानी एक के बाद एक। इसी से दूध को 'रिस्ल' कहा जाता है, क्योंकि वह थन से भेजा (निकला) जाता है।

अल्लाह का कथन: {और उन्हें किताब और हिकमत सिखाता है}: "किताब" कुरान है। और "हिकमत": धर्म का ज्ञान, व्याख्या में न्यायशास्त्र (फ़िक़्ह), और समझ जो अल्लाह सर्वशक्तिमान की ओर से एक स्वभाव और नूर है; यह मालिक द्वारा कहा गया था, इब्न वहब द्वारा उनसे वर्णित (1), और इब्न ज़ैद द्वारा कहा गया। क़तादा ने कहा: हिकमत सुन्नत है, और शरीयत (2) का स्पष्टीकरण है। और यह भी कहा गया: यह विशेष रूप से निर्णय और हुक्म है, और अर्थ निकट हैं।

शिक्षण का श्रेय पैगंबर ﷺ को दिया जाता है क्योंकि वह उन मामलों को प्रदान करते हैं जिन्हें देखा जाना है, और अल्लाह की ओर से उन पर डाले गए रहस्योद्घाटन (वही) (3) के माध्यम से चिंतन का तरीका सिखाते हैं।

"और उन्हें पवित्र करता है" (व युज़क्कीहिम) का अर्थ है: उन्हें शिर्क(बहुदेववाद) की गंदगी से पाक करता है; इब्न जुराइज (4) और अन्य से। ज़कात का अर्थ पवित्रता है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (5)।

कहा गया है: आयतें बाहरी शब्दों का पाठ हैं, किताब शब्दों के अर्थ हैं, और हिकमत निर्णय (हुक्म) है; और वह (6) संबोधन में अल्लाह का उद्देश्य है, जिसमें निरपेक्ष और प्रतिबंधित, स्पष्ट और संक्षिप्त, सामान्य और विशिष्ट शामिल हैं, जो पहले बताई गई बात का अर्थ है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान बेहतर जानता है।

और "अल-अज़ीज़" (शक्तिशाली) का अर्थ है: अपराजेय जिसे प्राप्त नहीं किया जा सकता या जीता नहीं जा सकता। इब्न कैसान ने कहा: इसका अर्थ वह है जिसे कोई भी चीज़ असमर्थ नहीं कर सकती; उनका प्रमाण: {और अल्लाह ऐसा नहीं है कि आकाशों या पृथ्वी में कोई भी चीज़ उसे हरा सके}

[फातिर: 44]। अल-किसाई ने कहा: "अल-अज़ीज़" विजेता है, इसी से अल्लाह का कथन है: {और उसने बातचीत में मुझे दबा दिया} [साद: 23]।

========== = इसके लिए अहमद (17150) में अल-इरबाद बिन सारिया की हदीस से एक गवाह है, और अहमद (22261) में अबू उमामा की हदीस से एक और गवाह है। (1) (म) में: और उन्होंने इसे वर्णित किया। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/212, और अल-तबरी ने पिछले मतों को उद्धृत किया 2/576। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/212। (4) अल-तबरी द्वारा निकाला गया 2/577-578। (5) 2/23। (6) (ख), (द) और (ज़) में: "व हिया"।

سورة البقرہ: آیت 129 (403)

اور «رَسُولاً» (ایک رسول) سے مراد ہے: بھیجا ہوا؛ اور یہ 'رسالہ' سے 'فعول' کے وزن پر ہے؛ ابن الانباری نے کہا: ایسا لگتا ہے کہ اس کی اصل ان کے قول سے ہے: 'ناقةٌ مِرْسالٌ ورَسْلَة'؛ جب وہ اونٹنی تیز رفتار اور سہل الرفتار ہو، دوسرے اونٹوں کے آگے چل رہی ہو۔ اور اس بھیجے گئے لاوارث ریوڑ کو 'رَسَل' کہا جاتا ہے، جس کی جمع 'ارسال' ہے۔ اور کہا جاتا ہے: 'جاء القوم أرسالاً'، یعنی لوگ باری باری ایک کے پیچھے ایک آئے۔ اور اسی سے دودھ کو 'رِسْل' کہا جاتا ہے؛ کیونکہ اسے تھن سے بھیجا (نکالا) جاتا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتَبَ وَالْحِكْمَةَ﴾ "الکتاب" سے مراد قرآن ہے۔ اور "الحکمۃ" سے مراد دین کی معرفت، تاویل میں تفقہ، اور وہ سمجھ جو اللہ تعالیٰ کی طرف سے ایک فطری ملکہ اور نور ہو؛ یہ قول امام مالک کا ہے، ان سے ابن وہب نے روایت (1) کیا، اور ابن زید نے بھی یہی کہا| قتادہ نے کہا: حکمت سے مراد سنت ہے، اور شرعی احکام (2) کا بیان ہے۔ اور ایک قول یہ ہے کہ اس سے مراد خاص طور پر فیصلہ اور قضا ہے، اور معانی آپس میں قریب ہیں۔

تعلیم کی نسبت نبی ﷺ کی طرف اس اعتبار سے کی گئی ہے کہ آپ ان امور کو پیش کرتے ہیں جن میں غور و فکر کیا جائے، اور آپ اللہ کی طرف سے اپنی وحی (3) کے ذریعے غور و فکر کا طریقہ سکھاتے ہیں۔

«وَيُزَكِّيهِمْ» یعنی انہیں شرک کی گندگی سے پاک کرتے ہیں؛ یہ ابن جریج (4) وغیرہ سے منقول ہے۔ زکوٰۃ کا مطلب پاکیزگی ہے، اور یہ بات پہلے گزر چکی (5) ہے۔

اور کہا گیا ہے: آیات سے مراد ظاہری الفاظ کی تلاوت ہے، کتاب سے الفاظ کے معانی مراد ہیں، اور حکمت سے مراد حکم ہے؛ اور یہی (6) کلام میں اللہ کی مراد ہے جس میں مطلق و مقید، مفسر و مجمل، اور عام و خاص سب شامل ہیں، اور یہی اس کا مطلب ہے جو پہلے گزر چکا، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

اور «العزیز» کے معنی ہیں: وہ غالب جس تک رسائی نہ ہو سکے اور جس پر غلبہ نہ پایا جا سکے۔ ابن کیسان نے کہا: اس کا مطلب وہ ہے جسے کوئی چیز عاجز نہ کر سکے؛ اس کی دلیل یہ ہے: ﴿وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُعْجِزَهُ مِن شَيْءٍ فِي السَّمَواتِ وَلَا فِي الْأَرْضِ﴾ [فاطر: 44]۔ الکسائی نے کہا: «العزیز» کا مطلب غالب ہے، اور اسی سے اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَعَزَّنِي فِي الْخِطَابِ﴾ [ص: 23] یعنی اس نے گفتگو میں مجھ پر غلبہ پا لیا۔

========== = اس کی ایک گواہی احمد (17150) میں العرباض بن ساریہ کی حدیث سے ملتی ہے، اور دوسری احمد (22261) میں ابو امامہ کی حدیث سے۔ (1) (م) میں ہے: ورواه۔ (2) المحرر الوجيز 1/ 212، اور طبری نے سابقہ اقوال کو نقل کیا ہے 2/ 576۔ (3) المحرر الوجيز 1/ 212۔ (4) اسے طبری نے روایت کیا 2/ 577-578۔ (5) 23/2۔ (6) (خ)، (د) اور (ز) میں ہے: وهي۔

404 Surah Al-Baqarah: Verse 130

And in the proverb: "Whoever is mighty prevails" (1), meaning: whoever overcomes plunders. It is said: "Al-Aziz" (The Almighty) is He Who has no likeness; its explanation is: {There is nothing like Him} [Ash-Shura: 11]. We have further clarified this meaning regarding His name "Al-Aziz" in "Al-Kitab (2) Al-Asna fi Sharh Asma Allah al-Husna" (3). The meaning of "Al-Hakim" (The Wise) (4) has already been mentioned, and praise be to Allah.

Allah's saying: {And who turns away from the religion of Abraham except one who befools himself? Truly, We chose him in this world, and in the Hereafter, he will surely be among the righteous.} [130]

Allah's saying: {And who turns away from the religion of Abraham except one who befools himself?} "Man" (who) is an interrogative in the subjective case (raf') as a subject (mubtada'), and "yarghabu" (turns away) is the relative clause (silah) of "man". {except one who befools himself} is in the position of the predicate (khabar). It is a rebuke and reprimand, containing the meaning of negation; meaning: "No one turns away," as stated by Al-Nahhas (5). The meaning is: to be ascetic toward it and distance oneself from it, i.e., from the "millah" (religion), which is the religion and legislation.

{except one who befools himself} Qatadah said: They are the Jews and Christians; they turned away from the religion of Abraham and took Judaism and Christianity as innovations that are not from Allah Almighty (6).

Al-Zajjaj (7) said: "Safaha" means "jahila" (was ignorant), meaning: he was ignorant of his own self's matter, so he did not reflect upon it. Abu Ubaidah (8) said: The meaning is: he destroyed himself.

Tha'lab and Al-Mubarrad reported that "safiha" with a kasra on the "fa" is transitive like "saffaha" with a fatha and shadda on the "fa". It is reported from Abu al-Khattab and Yunus that it is a linguistic variant (9).

(1) Jamharat al-Amthal 2/288, Majma' al-Amthal 2/307, and al-Mustaqsa by al-Zamakhshari 2/357. Al-Kisa'i's saying was mentioned by al-Wahidi in al-Wasit 1/213. (2) In (Z): "our book", and in (D) and (M): "book". (3) P. 201. (4) 1/429. (5) Thus in the manuscripts. What Al-Nahhas mentioned in I'rab al-Qur'an 1/263 and elsewhere is that "yarghabu" is the predicate. As for what the author suggested that "yarghabu" is the "silah" (connection) of "man", we have not found it attributed to anyone; see Fath

al-Qadir 1/144. (6) Narrated by al-Tabari 2/579. (7) Ma'ani al-Qur'an 1/211. (8) Majaz al-Qur'an 1/56. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/212. He also mentioned the saying of Yunus al-Akhfash in Ma'ani al-Qur'an 1/337, and al-Zajjaj in...

404 सूरह अल-बक़रा: आयत 130

कहावत में है: "जो शक्तिशाली है वही जीतता है" (1), यानी: जो जीतता है वह लूटता है। कहा गया है कि: "अल-अज़ीज़" (शक्तिशाली) वह है जिसका कोई समान नहीं है; इसका स्पष्टीकरण है: {उसके जैसा कोई नहीं है} [अश-शूरा: 11]। हमने "अल-किताब (2) अल-अस्ना फी शरह अस्मा अल्लाह अल-हुस्ना" (3) में उनके नाम "अल-अज़ीज़" के बारे में इस अर्थ को और स्पष्ट किया है। "अल-हकीम" (बुद्धिमान) (4) का अर्थ पहले ही बताया जा चुका है, और अल्लाह की प्रशंसा हो।

अल्लाह का कहना है: {और इब्राहीम के दीन से कौन मुँह मोड़ता है सिवाय उसके जिसने अपने आप को मूर्ख बना लिया है? वास्तव में, हमने उसे इस दुनिया में चुन लिया, और परलोक में वह निश्चित रूप से नेक लोगों में से होगा।} [130]

अल्लाह का कहना है: {और इब्राहीम के दीन से कौन मुँह मोड़ता है सिवाय उसके जिसने अपने आप को मूर्ख बना लिया है?} "मन" (कौन) एक प्रश्नवाचक है जो कर्ता (मुब्तदा) के रूप में रफ़ (संबोधन कारक) में है, और "यरग़बू" (मुँह मोड़ना) "मन" का सिला (संबंध) है। {सिवाय उसके जिसने अपने आप को मूर्ख बना लिया} प्रेडिकेट (ख़बर) के स्थान पर है। यह एक झिड़की और निंदा है, जिसमें निषेध का अर्थ है; यानी: "कोई मुँह नहीं मोड़ता," जैसा कि अल-नहहास (5) ने कहा है। इसका अर्थ है: इसके प्रति उदासीन होना और खुद को इससे दूर करना, यानी "मिल्लत" (धर्म) से, जो कि धर्म और शरीयत है।

{सिवाय उसके जिसने अपने आप को मूर्ख बना लिया} क़तादा ने कहा: वे यहूदी और ईसाई हैं; उन्होंने इब्राहीम के दीन से मुँह मोड़ लिया और यहूदी धर्म और ईसाई धर्म को नवाचार (बिदअत) के रूप में अपना लिया जो अल्लाह तआला की ओर से नहीं है (6)।

अल-ज़ज्जाज (7) ने कहा: "सफ़ह" का अर्थ अज्ञानता है, यानी: वह अपने स्वयं के मामले से अनभिज्ञ था, इसलिए उसने उस पर विचार नहीं किया। अबू उबैदा (8) ने कहा: इसका अर्थ है: उसने खुद को तबाह कर लिया।

थलाब और अल-मुबर्रद ने बताया कि "फ़" पर कसरा के साथ "सफ़िहा" सकर्मक (transitive) है जैसे "फ़" पर फ़तहा और शद्दा के साथ "सफ़्फ़हा"। अबू अल-ख़त्ताब और यूनुस से यह बताया गया है कि यह एक भाषाई रूपांतर (लगत) है (9)।

(1) जमहरत अल-अमथाल 2/288, मजमा अल-अमथाल 2/307, और अल-ज़मख़शरी द्वारा अल-मुस्तक़्सा 2/357। अल-किसाई का कहना अल-वाहिदी द्वारा अल-वसीत 1/213 में उल्लेखित है। (2) (ज़) में: "हमारी किताब", और (द) और (म) में: "किताब"। (3) पृष्ठ 201। (4) 1/429। (5) पांडुलिपियों में ऐसा ही है। अल-नहहास ने इराब अल-कुरान 1/263 और अन्य जगहों पर जो उल्लेख किया है वह यह है कि "यरग़बू" ख़बर (प्रेडिकेट) है। जहाँ तक लेखक के इस मत का प्रश्न है कि "यरग़बू" "मन" का सिला है, तो हमने इसे किसी और के द्वारा समर्थित नहीं पाया है; फतह अल-कदीर 1/144 देखें। (6) अल-तबरी 2/579 द्वारा उद्धृत। (7) मानी अल-कुरान 1/211। (8) मजाज़ अल-कुरान 1/56। (9) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/212। उन्होंने मानी अल-कुरान 1/337 में यूनुस अल-अख़फ़श और अल-ज़ज्जाज के कथन का भी उल्लेख किया...

404 سورہ البقرہ : آیت ۱۳۰

اور مثال میں ہے: "جس کی لاٹھی اس کی بھینس" (1)، یعنی: جو غالب آیا اس نے چھین لیا۔ اور کہا گیا: "العزیز" وہ ہے جس کی کوئی مثال نہ ہو، اس کا بیان یہ ہے: {اس جیسی کوئی چیز نہیں ہے} [الشوریٰ: ۱۱]۔ اور ہم نے اس کے نام "العزیز" کے بارے میں اس معنی کی مزید وضاحت "الکتاب (2) الاسنی في شرح اسماء الله الحسنی" (3) میں کی ہے، اور "الحکیم" (4) کا معنی پہلے گزر چکا ہے، اور اللہ کا شکر ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور ابراہیم کے دین سے کون منہ موڑتا ہے سوائے اس کے جس نے خود کو بیوقوف بنا لیا؟ اور یقیناً ہم نے اسے دنیا میں چن لیا، اور بے شک وہ آخرت میں نیک لوگوں میں سے ہو گا۔} [130]

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور ابراہیم کے دین سے کون منہ موڑتا ہے سوائے اس کے جس نے خود کو بیوقوف بنا لیا؟} "مَن" (کون) مبتدا کے طور پر محلِ رفع میں اسم استفہام ہے، اور "یَرْغَبُ" "مَنْ" کا صلہ ہے، {إِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهُ} خبر کے مقام پر ہے۔ یہ ڈانٹ اور ملامت ہے، جس میں نفی کا معنی پایا جاتا ہے؛ یعنی: کوئی رغبت نہیں رکھتا، یہ النحاس (5) نے کہا ہے۔ اور معنی یہ ہے کہ: اس سے بیزاری اختیار کرتا ہے اور خود کو اس سے دور رکھتا ہے، یعنی ملت سے، جو کہ دین اور شریعت ہے۔

{إِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهُ} قتادہ نے کہا: وہ یہودی اور نصاریٰ ہیں، انہوں نے ملتِ ابراہیم سے منہ موڑا، اور یہودیت اور نصرانیت کو بطورِ بدعت اپنا لیا جو اللہ تعالیٰ کی طرف سے نہیں ہے (6)۔

الزجاج (7) نے کہا: "سفه" جہالت کے معنی میں ہے، یعنی: وہ اپنے نفس کے معاملے سے جاہل رہا، پس اس نے اس میں غور نہیں کیا۔ ابو عبیدہ (8) نے کہا: معنی یہ ہے کہ: اس نے خود کو ہلاک کر لیا۔

ثعلب اور المبرد نے حکایت کی ہے کہ "سفِه" (ف کے نیچے زیر کے ساتھ) متعدی ہے جیسے "سفَّه" (ف کے اوپر زبر اور شد کے ساتھ)۔ ابو الخطاب اور یونس سے منقول ہے کہ یہ ایک لغت (بول چال) ہے (9)۔

(۱) جمهرة الامثال ۲/۲۸۸، مجمع الامثال ۲/۳۰۷، المستقصی از زمخشری ۲/۳۵۷۔ الکسائی کا قول الواحدی نے الوسیط ۱/۲۱۳ میں ذکر کیا ہے۔ (۲) (ز) میں "ہماری کتاب"، اور (د) اور (م) میں "کتاب" ہے۔ (۳) ص ۲۰۱۔ (۴) ۱/۴۲۹۔ (۵) نسخوں میں ایسا ہی ہے۔ النحاس نے اعراب القرآن ۱/۲۶۳ اور دیگر مقامات پر جو ذکر کیا ہے وہ یہ ہے کہ "یرغب" خبر ہے، جہاں تک مصنف کا یہ موقف ہے کہ "یرغب" "من" کا صلہ ہے، تو ہمیں کسی سے اس کا علم نہیں ہوا؛ دیکھئے فتح القدیر ۱/۱۴۴۔ (۶) الطبری نے اسے ۲/۵۷۹ پر روایت کیا ہے۔ (۷) معانی القرآن ۱/۲۱۱۔ (۸) مجاز القرآن ۱/۵۶۔ (۹) المحرر الوجیز ۱/۲۱۲، انہوں نے معانی القرآن ۱/۳۳۷ میں یونس الاخفش اور الزجاج کا قول بھی ذکر کیا...

Surah Al-Baqarah: Verse 130 405

Al-Akhfash (1) said: "Safiha nafsahu" means: he did to it of foolishness what made him a fool. It is also reported from him: it is a dialect with the meaning of "saffaha"; related by Al-Mahdawi, and the first was mentioned by Al-Mawardi (2). As for "safuha" with a damma on the fa', it is intransitive; as stated by Al-Mubarrad and Tha'lab.

Al-Kisa'i related from Al-Akhfash (3) that the meaning is: he was ignorant within himself, so "in" was omitted and it became accusative. Al-Akhfash said (4): similar to it is ﴿the marriage tie﴾ [Al-Baqarah: 235], meaning: upon the marriage tie.

This follows the school of Sibawayh in what he related of their saying: "So-and-so was struck on the back and the belly"; meaning: in the back and the belly (5). Al-Farra' (6) said: it is specification (tamyiz).

Ibn Bahr said: Its meaning is that he was ignorant of himself and the indications and signs within it that point to the fact that it has a Maker whom nothing is like, thus knowing through it the oneness of God and His power.

I say: This is the meaning of Az-Zajjaj's saying, so he reflects on himself: from two hands with which he strikes, and two feet on which he walks, and an eye with which he sees, and an ear with which he hears, and a tongue with which he speaks, and molars that grow for him when he is no longer in need of suckling and needs food to grind the food with them, and a stomach prepared to cook the food (7), and a liver to which its pure part rises, and veins and passages through which it reaches the extremities, and intestines into which the dregs (8) of the food settle and emerge from (9) the lower part of the body, thus deducing from this that he has a Creator who is All-Powerful, All-Knowing, All-Wise; and this is the meaning of His Almighty's saying: ﴿And in yourselves, do you not...﴾

= Ma'ani al-Qur'an 1/209. (1) Ma'ani al-Qur'an by Al-Akhfash 1/337. (2) Al-Nukat wal-'Uyun 1/193, and the speech following it is from it. (3) In I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/263: Al-Kisa'i said, and it is one of the two sayings of Al-Akhfash. (4) Ma'ani al-Qur'an by him 1/338, and the author quoted it from him through Al-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/263. (5) Al-Kitab 1/159, and the author quoted it from him through Ibn Atiyyah in Al-Muharrar al-Wajiz 1/212. (6) Ma'ani al-Qur'an by him 1/79. (7) In (Zha'): food. (8) In (Zha'): waste. (9) In (Kha), (Zay), and (Zha'): from.

सूरह अल-बकराह: आयत १३० ४०५

अल-अखफश (१) ने कहा: "सफ़िहा नफ़्सहु" का अर्थ है: उसने इसके साथ मूर्खता का वह व्यवहार किया जिससे वह मूर्ख बन गया। उनके बारे में यह भी कहा गया है: यह "सफ़ाहा" के अर्थ में एक बोली है; अल-महदावी द्वारा वर्णित, और पहला अल-मावर्दी (२) द्वारा उल्लेख किया गया था। जहाँ तक "सफ़ुहा" (फा पर धम्मा के साथ) की बात है, यह अकर्मक है; जैसा कि अल-मुबर्रद और थलाब ने कहा है।

अल-किसाई ने अल-अखफश (३) से वर्णन किया कि अर्थ है: वह अपने आप में अज्ञानी था, इसलिए "में" हटा दिया गया और यह कर्म कारक (नसब) बन गया। अल-अखफश ने कहा (४): इसी के समान है ﴿निकाह का बंधन﴾ [अल-बकराह: २३५], अर्थात: निकाह के बंधन पर।

यह सिबावैह के मत के अनुसार है जो उन्होंने उनके इस कथन से वर्णित किया है: "अमुक व्यक्ति को पीठ और पेट पर मारा गया"; अर्थात: पीठ और पेट में (५)। अल-फर्रा (६) ने कहा: यह 'तमीज़' (विशेषता) है।

इब्न बहर ने कहा: इसका अर्थ यह है कि वह स्वयं से और उसमें मौजूद उन संकेतों और आयतों से अनभिज्ञ था जो इस बात की ओर इशारा करते हैं कि इसका एक निर्माता है जिसके जैसा कोई नहीं है, इस प्रकार इसके माध्यम से ईश्वर की एकता और उसकी शक्ति को जानना।

मैंने कहा: ज़ज्जाज के कथन का यही अर्थ है, इसलिए वह अपने बारे में विचार करता है: दो हाथों से जिनसे वह प्रहार करता है, और दो पैरों से जिन पर वह चलता है, और एक आँख जिससे वह देखता है, और एक कान जिससे वह सुनता है, और एक जीभ जिससे वह बोलता है, और दाढ़ें जो उसके लिए तब उगती हैं जब उसे स्तनपान की आवश्यकता नहीं रह जाती और भोजन पीसने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, और एक पेट जो भोजन पकाने (७) के लिए तैयार किया गया है, और एक यकृत जिस पर उसका शुद्ध अंश चढ़ता है, और नसें और मार्ग जिनसे होकर वह अंगों तक पहुँचता है, और आंतें जिनमें भोजन का मल (८) नीचे बैठ जाता है और शरीर के निचले हिस्से से (९) निकलता है, इस प्रकार इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उसका एक निर्माता है जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वज्ञ है; और यही अल्लाह के इस कथन का अर्थ है: ﴿और तुम्हारे स्वयं के भीतर, क्या तुम नहीं...﴾

= मानी अल-क़ुरआन १/२०९। (१) अल-अखफश द्वारा मानी अल-क़ुरआन १/३३७। (२) अन-नुकत वल-उयून १/१९३, और उसके बाद की बात उसी से है। (३) अन-नहस द्वारा इ'राब अल-क़ुरआन १/२६३ में: अल-किसाई ने कहा और यह अल-अखफश के दो कथनों में से एक है। (४) उनके द्वारा मानी अल-क़ुरआन १/३३८, और लेखक ने इसे अन-नहस के माध्यम से इ'राब अल-क़ुरआन १/२६३ में उनसे उद्धृत किया। (५) अल-किताब १/१५९, और लेखक ने इसे इब्न अतियाह के माध्यम से अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१२ में उनसे उद्धृत किया। (६) उनके द्वारा मानी अल-क़ुरआन १/७९। (७) (ज़) में: भोजन। (८) (ज़) में: अवशेष। (९) (ख), (ज़), और (ज़) में: से।

سورة البقرہ: آیت ۱۳۰ ۴۰۵

الاخفش (۱) نے کہا: «سَفِهَ نَفْسَه» یعنی: اس کے ساتھ بیوقوفی کا وہ کام کیا جس سے وہ بیوقوف بن گیا۔ ان سے یہ بھی مروی ہے کہ: یہ «سفّه» کے معنی میں ایک لغت (بولی) ہے؛ اسے المہدوی نے بیان کیا ہے، اور پہلے کا ذکر الماوردی (۲) نے کیا ہے۔ رہا «سفُہ» (فا کے ضمہ کے ساتھ)، تو یہ لازم ہے (متعدی نہیں)؛ یہ المبرد اور ثعلب نے کہا ہے۔

اور الکسائی نے الاخفش (۳) سے نقل کیا کہ معنی یہ ہے: وہ اپنے نفس میں جاہل رہا، پس «فی» کو حذف کر دیا گیا تو وہ منسوب ہو گیا۔ الاخفش نے کہا (۴): اس کی مثال ﴿عُقْدَةَ النِّكَاحِ﴾ [البقرۃ: ۲۳۵] ہے، یعنی: نکاح کے عقد پر۔

اور یہ سیبویہ کے مسلک پر چلتا ہے جو انہوں نے عربوں کے قول سے نقل کیا: "فلاں شخص کو پیٹھ اور پیٹ پر مارا گیا"؛ یعنی: پیٹھ اور پیٹ میں (۵)۔ الفراء (۶) نے کہا: یہ تمیز ہے۔

ابن بحر نے کہا: اس کا مطلب یہ ہے کہ وہ اپنے نفس اور اس میں موجود ان دلائل اور نشانیوں سے جاہل رہا جو اس بات پر دلالت کرتی ہیں کہ اس کا ایک خالق ہے جس کی مثل کوئی چیز نہیں، پس اس کے ذریعے اللہ کی توحید اور اس کی قدرت کو پہچان لے۔

میں نے کہا: زجاج کے قول کا یہی مطلب ہے، پس وہ اپنے نفس میں غور کرے: دو ہاتھ جن سے وہ پکڑتا ہے، اور دو پاؤں جن پر وہ چلتا ہے، اور آنکھ جس سے وہ دیکھتا ہے، اور کان جس سے وہ سنتا ہے، اور زبان جس سے وہ بولتا ہے، اور داڑھیں جو اس کے لیے اس وقت اگتی ہیں جب وہ دودھ پینے سے بے نیاز ہو جاتا ہے اور اسے غذا پیسنے کے لیے ان کی ضرورت ہوتی ہے، اور معدہ جو غذا پکانے (۷) کے لیے تیار کیا گیا ہے، اور جگر جس کی طرف غذا کا صاف حصہ

چڑھتا ہے، اور رگیں اور راستے جن سے وہ اطراف تک پہنچتا ہے، اور آنتیں جن میں غذا کا فضلہ (۸) نیچے بیٹھ جاتا ہے اور بدن کے نچلے حصے سے (۹) نکلتا ہے، پس اس سے یہ استدلال کیا جاتا ہے کہ اس کا ایک خالق ہے جو قادر، علیم اور حکیم ہے؛ اور یہی اللہ تعالی کے اس قول کا مطلب ہے: ﴿وَفِي أَنفُسِكُمْ أَفَلَا...﴾

= معانی القرآن ۱/۲۰۹۔ (۱) معانی القرآن الاخفش کے لیے ۱/۳۳۷۔ (۲) النکت والعیون ۱/۱۹۳، اور اس کے بعد کی بات اسی سے ہے۔ (۳) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۶۳ میں: الکسائی نے کہا اور یہ الاخفش کے دو اقوال میں سے ایک ہے۔ (۴) ان کے لیے معانی القرآن ۱/۳۳۸، اور مصنف نے اسے ان سے نحاس کے واسطے سے اعراب القرآن ۱/۲۶۳ میں نقل کیا ہے۔ (۵) الکتاب ۱/۱۵۹، اور مصنف نے اسے ان سے ابن عطیہ کے واسطے سے المحرر الوجیز ۱/۲۱۲ میں نقل کیا ہے۔ (۶) ان کے لیے معانی القرآن ۱/۷۹۔ (۷) (ظ) میں: الطعام (کھانا)۔ (۸) (ظ) میں: فضل (بچت/ فضلہ)۔ (۹) (خ) اور (ز) اور (ظ) میں: عن (سے)۔

406 Surah Al-Baqarah: Verse 130 "you see" [Al-Dhariyat: 21]. Al-Khattabi, may God Almighty have mercy on him, pointed this out. Further explanation will be provided in Surah "Al-Dhariyat", God Almighty willing. Some have used this verse to argue that the law of Abraham is a law for us, except for what has been abrogated (1). This is similar to His saying: "the religion of your father Abraham" [Al-Hajj: 78], and "Follow the religion of Abraham" [An-Nahl: 123]. Its explanation will follow. His saying, Exalted is He: "And We had already chosen him in this world" means: We chose him for the message, and made him pure from impurities. The original form of "Astafaynahu" (We chose him) was "Astafaynahu" (with a 'ta'), the 'ta' was replaced by 'tha' (the heavy 'T') to match the 'sad' in terms of emphasis (Itbaq). The word is derived from 'Safwa' (purity/best part), and its meaning is: choosing the purest (2). His saying, Exalted is He: "and indeed he, in the Hereafter, will be among the righteous." The righteous in the Hereafter is the winner (3). Then it was asked: How is it permissible to place "in the Hereafter" before the phrase it belongs to (the relative clause)? Al-Nahhas said (4): The answer is that the estimation is not "indeed he is among the righteous in the Hereafter", in a way that the relative clause would have come before. Grammarians have three opinions on this: one is that the meaning is: and indeed he is righteous in the Hereafter, then a word was omitted. It was also said: "in the Hereafter" is related to an omitted infinitive (Masdar), i.e., his righteousness is in the Hereafter. The third opinion is: "righteous" (As-Salihin) does not mean "those who acted righteously", but rather it is a noun standing on its own, like saying "the man" and "the boy". I say: A fourth opinion is that the meaning is: indeed he is among the righteous in the work of the Hereafter, so the speech involves the omission of a possessed noun (Mudaf) (5). Al-Husayn ibn al-Fadl said: There is advancement and delay in the speech; its figurative sense (Majaz) is: We have chosen him in this world and the Hereafter, and indeed he is among the righteous (6). (1) See Ahkam al-Qur'an by al-Jassas 1/81, and Ahkam al-Qur'an by al-Kiya al-Tabari 1/20. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/212. (3) Ma'ani al-Qur'an by al-Zajjaj 1/211. (4) I'rab al-Qur'an 1/263. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213. (6) Tafsir al-Baghawi 1/117.

४०६ सूरा अल-बकरा: आयत १३० "तुम देखते हो" [अद-धारियत: २१]। अल-खत्ताबी (ईश्वर उन पर दया करें) ने इसकी ओर संकेत किया है। सूरा "अद-धारियत" में इसका और विस्तार से वर्णन आएगा, यदि ईश्वर ने चाहा। इस आयत से कुछ लोगों ने यह प्रमाण दिया है कि: इब्राहीम की शरीयत हमारे लिए भी शरीयत है, सिवाय उसके जिसे निरस्त कर दिया गया हो (१), और यह उनके इस कथन की तरह है: "तुम्हारे पिता इब्राहीम का दीन" [अल-हज्ज: ७८], "इब्राहीम के दीन का अनुसरण करो" [अन-नहल: १२३]। इसका विवरण आगे आएगा। परमेश्वर का कथन: "और निश्चय ही हमने उसे दुनिया में चुन लिया" अर्थात: हमने उसे संदेश (रिसालत) के लिए चुना, और उसे गंदगी से पाक कर दिया। "अस्तफ़ैनाहु" (हमने उसे चुना) का मूल शब्द "अस्तफ़ैनाहु" (त के साथ) था, 'त' को 'त' में बदल दिया गया ताकि वह 'स' के साथ 'इतबाक' (भारीपन) में मेल खा सके। यह शब्द 'सफ़वा' (शुद्धता) से निकला है, और इसका अर्थ है: सबसे शुद्ध को चुनना (२)। परमेश्वर का कथन: "और निश्चय ही वह आखिरत (परलोक) में भी नेक लोगों में से होगा।" आखिरत में नेक वही है जो सफल है (३)। फिर पूछा गया: "आखिरत में" को इसके संबंधित उपवाक्य (सिला) से पहले रखना कैसे जायज़ हुआ? अल-नहहास ने कहा (४): उत्तर यह है कि इसका अनुमान यह नहीं है कि "निश्चय ही वह आखिरत में नेक लोगों में से है", जिससे सिला पहले आ जाए। अरबी भाषा के विद्वानों के इसमें तीन मत हैं: उनमें से एक यह है कि अर्थ है: और वह आखिरत में नेक है, फिर उसे हटा दिया गया (हज़फ़)। और कहा गया: "आखिरत में" एक लुप्त क्रियावाचक संज्ञा (मस्दर) से संबंधित है, अर्थात: उसकी नेकी आखिरत में है। तीसरा मत यह है कि: "नेक" (सालिहीन) का अर्थ "वे लोग जिन्होंने नेक काम किए" नहीं है, बल्कि यह अपने आप में एक स्वतंत्र संज्ञा है, जैसे 'आदमी' और 'लड़का' कहा जाता है। मैंने कहा: एक चौथा मत यह है कि अर्थ है: वह आखिरत के कार्यों में नेक लोगों में से है, तो यहाँ एक 'मुज़ाफ़' (संबद्ध शब्द) लुप्त है (५)। अल-हुसैन बिन अल-फ़ज़ल ने कहा: वाक्य में शब्दों के क्रम में बदलाव (तक़दीम-ओ-ताखीर) है, इसका भाव (मजाज़) है: हमने उसे दुनिया और आखिरत में चुन लिया, और वह नेक लोगों में से है (६)। (१) अल-जस्सास की अहकाम अल-कुरान १/८१ और अल-किया अल-तबारी की अहकाम अल-कुरान १/२० देखें। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१२। (३) अल-ज़ज्जाज की मआनी अल-कुरान १/२११। (४) एराब अल-कुरान १/२६३। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१३। (६) तफ़सीर अल-बग़वी १/११७।

۴۰۶ سورۃ البقرۃ: آیت ۱۳۰ تم دیکھتے ہو [الذاریات: ۲۱]۔ اس کی طرف الخطابی رحمہ اللہ تعالیٰ نے اشارہ کیا ہے۔ اور سورہ "والذاریات" میں اس کی مزید وضاحت آئے گی ان شاء اللہ تعالیٰ۔ اس آیت سے ان لوگوں نے استدلال کیا ہے جنہوں نے کہا کہ: ابراہیم کی شریعت ہمارے لیے بھی شریعت ہے سوائے اس کے جو منسوخ ہو گئی (۱)، اور یہ اللہ کے اس قول کی طرح ہے: "تمہارے باپ ابراہیم کا دین" [الحج: ۷۸]، "ابراہیم کے دین کی پیروی کرو" [النحل: ۱۲۳]۔ اس کا بیان آگے آئے گا۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَلَقَدِ اصْطَفَيْنَاهُ فِي الدُّنْيَا﴾ یعنی: ہم نے اسے رسالت کے لیے منتخب کیا، اور اسے گندگیوں سے پاک رکھا۔ "اصطفیناہ" کی اصل "اصتفیناہ" (ت کے ساتھ) تھی، تاء کو طاء سے بدل دیا گیا تاکہ وہ صاد کے ساتھ اِطباق (بھاری پن) میں ہم آہنگ ہو جائے۔ یہ لفظ "صفوہ" (خلاصہ/بہترین حصہ) سے مشتق ہے، اور اس کا معنی ہے: سب سے خالص کو منتخب کرنا (۲)۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَإِنَّهُ فِي الْآخِرَةِ لَمِنَ الصَّالِحِينَ﴾ آخرت میں صالح وہی ہے جو کامیاب ہے (۳)۔ پھر کہا گیا: "فی الآخرۃ" کو اس کے صلے سے پہلے لانا کیسے جائز ہوا؟ النحاس نے کہا (۴): جواب یہ ہے کہ اس کا مفہوم یہ نہیں ہے کہ "وہ آخرت میں نیک لوگوں میں سے ہے"، کہ صلہ پہلے آ جائے۔ اہل عرب کے اس میں تین اقوال ہیں: ایک یہ کہ معنی ہے: اور وہ آخرت میں صالح ہے، پھر اسے حذف کر دیا گیا۔ اور کہا گیا کہ: "فی الآخرۃ" ایک محذوف مصدر سے متعلق ہے، یعنی: اس کی صالحیت آخرت میں ہے۔ تیسرا قول یہ ہے کہ: "صالحین" سے مراد "وہ لوگ جنہوں نے نیک عمل کیے" نہیں ہے، بلکہ یہ اپنے آپ میں ایک اسم ہے، جیسے 'مرد' اور 'لڑکا' کہا جاتا ہے۔ میں نے کہا: چوتھا قول یہ ہے کہ معنی ہے: وہ آخرت کے عمل میں نیک لوگوں میں سے ہے، تو کلام میں مضاف محذوف ہے (۵)۔ الحسین بن الفضل نے کہا: کلام میں تقدیم و تاخیر ہے، اس کا مجاز یہ ہے: ہم نے اسے دنیا اور آخرت میں منتخب کیا، اور وہ نیک لوگوں میں سے ہے (۶)۔ (۱) ملاحظہ کریں احکام القرآن للجصاص ۱/۸۱، اور احکام القرآن للکیا الطبری ۱/۲۰۔

(٢) المحرر الوجيز ١/٢١٢. (٣) معانى القرآن للزجاج ١/٢١١. (٤) إعراب القرآن ١/٢٦٣. (٥) المحرر الوجيز ١/٢١٣. (٦) تفسير البغوى ١/١١٧.

407 Surah Al-Baqarah: Verse 131

Hajjaj bin Hajjaj narrated - and he is Hajjaj al-Aswad, and also Hajjaj al-Ahwal known as Ziq al-Asal - he said: I heard Muawiyah bin Qurra saying: O Allah, the righteous ones, You are the one who reformed them and provided for them so they could work in Your obedience, thus You were pleased with them. O Allah, as You reformed them, reform us, and as You provided for them so they could work in Your obedience and were pleased with them, provide for us that we may work in Your obedience and be pleased with us (1).

His (The Almighty's) saying: {When his Lord said to him, "Submit," he said, "I have submitted to the Lord of the worlds." (131)}

The agent acting on "when" (idh) is His saying: "We chose him," meaning: We chose him when his Lord said to him: Submit. This saying from Allah Almighty was when He tested him with the star, the moon, and the sun (2). Ibn Kaysan and al-Kalbi said: Meaning: dedicate your religion to Allah through monotheism (3). And it was said: Humbly submit and be fearful. Ibn Abbas said: He only said that to him when he emerged from the subterranean vault (4), according to what will be mentioned in "al-An'am" (5).

And Islam here is in its most complete form. Islam in the speech of the Arabs means: submission and obedience to the surrenderer. Not every Islam is faith (Iman), but every faith is Islam, because whoever believes in Allah has surrendered and submitted to Him. Not everyone who submits (aslama) believes in Allah; because one may speak out of fear of the sword, and that is not faith. This is contrary to the Qadariyyah and the Kharijites, who said: Islam is faith, so every believer is a Muslim, and every Muslim is a believer (6); due to the Almighty's saying: {Indeed, the religion in the sight of Allah is Islam} [Al-Imran: 19]. This indicates that Islam is the religion, and that whoever is not a Muslim is not a believer. Our proof is the Almighty's saying: {The bedouins say, "We have believed." Say, "You have not [yet] believed; but say [instead], 'We have submitted'"} [Al-Hujurat: 14], the verse. So Allah Almighty informed that not everyone who submits is a believer, proving that (7) not every Muslim is a believer.

And the Prophet ﷺ said to Sa'd bin Abi Waqqas when he said to him: Give to so-and-so, for he is a believer, the Prophet ﷺ said: [the text ends here].

(1) Narrated by Abu Nu'aym in al-Hilya 2/299, and cited by al-Mizzi in Tahdhib al-Kamal 28/214. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213. (3) Mentioned by al-Baghawi 1/118 from al-Kalbi. (4) Tafsir al-Baghawi 1/117, and narrated at length by al-Tabari in al-Tarikh 1/236. (5) Regarding the Almighty's saying: {And thus did We show Ibrahim the realm of the heavens and the earth that he might be of those who possess certainty.} Verse: 75. (6) After it in (Z): according to them. (7) In (Kh), (Z), and (Zh): that.

४०७ सूरह अल-बकराह : आयत १३१

हज्जाज बिन हज्जाज ने रिवायत की - और वह हज्जाज अल-असवद हैं, और वह हज्जाज अल-अहवाल भी हैं जिन्हें ज़िक अल-असाल के नाम से जाना जाता है - उन्होंने कहा: मैंने मुआविया बिन कुर्रा को यह कहते सुना: ऐ अल्लाह, जो नेक लोग हैं, तूने ही उन्हें सुधारा और उन्हें अपनी इबादत करने का साधन दिया ताकि वे तेरी आज्ञा का पालन करें, और तू उनसे प्रसन्न हो गया। ऐ अल्लाह, जैसे तूने उन्हें सुधारा, हमें भी सुधार दे, और जैसे तूने उन्हें अपनी आज्ञा मानने का साधन दिया और उनसे प्रसन्न हुआ, हमें भी अपनी आज्ञा मानने की तौफीक अता फरमा और हमसे प्रसन्न हो जा (१)।

अल्लाह तआला का कथन: {जब उसके रब ने उससे कहा, "आज्ञाकारी (मुस्लिम) हो जा," उसने कहा, "मैं सारे संसार के रब का आज्ञाकारी हो गया।" (१३१)}

"इज़" (जब) शब्द का संबंध "इस्तफयनाहु" (हमने उसे चुन लिया) से है, यानी: हमने उसे तब चुना जब उसके रब ने उससे कहा: आज्ञाकारी हो जा। अल्लाह तआला का यह आदेश तब था जब उसने उसे सितारों, चाँद और सूरज के माध्यम से आज़माया (२)। इब्न कैसान और अल-कल्बी ने कहा: अर्थात: तौहीद (एकेश्वरवाद) के साथ अपना धर्म अल्लाह के लिए समर्पित कर दो (३)। और कहा गया: विनम्रता और श्रद्धा के साथ झुक जाओ। इब्न अब्बास ने कहा: अल्लाह ने उससे ऐसा तब कहा जब वह तहखाने (सार्ब) से बाहर निकला (४), जैसा कि सूरह "अल-अनआम" (५) में उल्लेख आएगा।

यहाँ 'इस्लाम' अपने पूर्ण रूप में है। अरबों की भाषा में 'इस्लाम' का अर्थ है: अधीनता और समर्पण। हर इस्लाम 'ईमान' (श्रद्धा) नहीं होता, लेकिन हर ईमान इस्लाम है, क्योंकि जो कोई अल्लाह पर ईमान लाया उसने अल्लाह के प्रति आत्मसमर्पण और अधीनता स्वीकार की। हर वह व्यक्ति जिसने इस्लाम स्वीकार किया वह अल्लाह पर ईमान नहीं लाया; क्योंकि वह तलवार के डर से ऐसा कह सकता है, और वह ईमान नहीं होता। यह कदरिया और ख्वारिज के मत के विपरीत है, जिन्होंने कहा: इस्लाम ही ईमान है, इसलिए हर मोमिन (आस्थावान) मुस्लिम है, और हर मुस्लिम मोमिन है (६); अल्लाह तआला के इस कथन के कारण: {बेशक अल्लाह के नज़दीक धर्म केवल इस्लाम है} [आल-इमरान: १९]। यह दर्शाता है कि इस्लाम ही धर्म है, और जो मुसलमान नहीं वह मोमिन नहीं। हमारा प्रमाण अल्लाह तआला का यह कथन है: {देहातियों ने कहा, "हम ईमान लाए।" कहो, "तुम ईमान नहीं लाए; बल्कि कहो, 'हमने इस्लाम स्वीकार किया (हम आज्ञाकारी हुए)'"} [अल-हुजुरात: १४], आयत। अतः अल्लाह

तआला ने बताया कि हर आज्ञाकारी होने वाला मोमिन नहीं होता, जिससे सिद्ध होता है कि (७) हर मुस्लिम मोमिन नहीं होता।

और नबी ﷺ ने साद बिन अबी वक्कास से कहा जब उन्होंने उनसे कहा था: फलां व्यक्ति को दें क्योंकि वह मोमिन है, तो नबी ﷺ ने फरमाया: [पाठ यहाँ समाप्त होता है]।

---

(१) इसे अबू नुएम ने अल-हिल्या २/२९९ में निकाला है, और अल-मिज्जी ने तहजीब अल-कमाल २८/२१४ में इसका उल्लेख किया है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१३। (३) अल-बगवी ने १/११८ में अल-कल्बी के हवाले से इसका उल्लेख किया है। (४) तफ़सीर अल-बगवी १/११७, और अल-तबरी ने अल-तारीख १/२३६ में इसे विस्तार से दिया है। (५) अल्लाह तआला के इस कथन पर: {और इसी प्रकार हम इब्राहीम को आकाशों और पृथ्वी का साम्राज्य दिखाते थे ताकि वह विश्वास करने वालों में से हो जाए।} आयत: ७५। (६) इसके बाद (ज़) में: उनके अनुसार। (७) (ख), (ज़), और (झ) में: कि।

۴۰۷ سورہ البقرہ : آیت ۱۳۱

حجاج بن حجاج نے روایت کیا - اور وہ حجاج اسود ہیں، اور وہ حجاج احول بھی ہیں جو زق العسل کے نام سے مشہور ہیں - انہوں نے کہا: میں نے معاویہ بن قرہ کو کہتے سنا: اے اللہ، بے شک صالحین کو تو نے ہی سنوارا اور انہیں اپنی اطاعت کی توفیق دی، پس تو ان سے راضی ہوگیا۔ اے اللہ، جیسے تو نے انہیں سنوارا ہمیں بھی سنوار دے، اور جیسے تو نے انہیں اپنی اطاعت کی توفیق دی اور ان سے راضی ہوا، ہمیں بھی اپنی اطاعت کی توفیق عطا فرما اور ہم سے راضی ہو جا (۱)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {جب اس کے رب نے اس سے کہا، "فرمانبردار ہو جا،" اس نے کہا، "میں رب العالمین کا فرمانبردار ہو گیا" (۱۳۱)}

لفظ "اذ" (جب) میں عمل کرنے والا اللہ کا قول "اصطفیناہ" (ہم نے اسے چن لیا) ہے، یعنی: ہم نے اسے تب چنا جب اس کے رب نے اسے کہا: فرمانبردار ہو جا۔ اللہ تعالیٰ کا یہ قول اس وقت تھا جب اس نے اسے ستارے، چاند اور سورج کے ذریعے آزمایا (۲)۔ ابن کیسان اور کلبی نے کہا: یعنی: توحید کے ساتھ اپنا دین اللہ کے لیے خالص کر لے (۳)۔ اور کہا گیا: عاجزی اور خشوع اختیار کر۔ ابن عباس نے کہا: اللہ نے اسے یہ اس وقت فرمایا جب وہ سرنگ (سرب) سے باہر نکلا (۴)، جیسا کہ سورہ "الانعام" (۵) میں اس کا ذکر آئے گا۔

اور یہاں اسلام اپنی مکمل ترین صورت میں ہے، اور اہل عرب کے کلام میں اسلام کا معنی ہے: عاجزی اور اطاعت شعاری۔ ہر اسلام ایمان نہیں ہوتا، لیکن ہر ایمان اسلام ہے، کیونکہ جو اللہ پر ایمان لایا اس نے اللہ کے سامنے سر تسلیم خم کیا اور اس کی اطاعت کی۔ ہر وہ شخص جس نے

اسلام قبول کیا (فرمانبردار ہوا) وہ اللہ پر ایمان نہیں لایا؛ کیونکہ وہ تلوار کے ڈر سے ایسا کہہ سکتا ہے، اور وہ ایمان نہیں ہوتا۔ یہ قدریہ اور خوارج کے برعکس ہے جنہوں نے کہا: اسلام ہی ایمان ہے، لہٰذا ہر مومن مسلم ہے اور ہر مسلم مومن ہے (۶)؛ اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کی وجہ سے: {بے شک اللہ کے نزدیک دین اسلام ہی ہے} [آل عمران: ۱۹]۔ پس یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ اسلام ہی دین ہے، اور جو مسلمان نہیں وہ مومن نہیں۔ ہماری دلیل اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد ہے: {بدوی کہتے ہیں "ہم ایمان لائے"۔ آپ کہیے: "تم ایمان نہیں لائے، بلکہ یوں کہو کہ ہم نے اسلام قبول کر لیا ہے" } [الحجرات: ۱۴]، آیت۔ پس اللہ تعالیٰ نے خبر دی کہ ہر اسلام لانے والا مومن نہیں ہوتا، جس سے ثابت ہوا کہ (۷) ہر مسلم مومن نہیں ہوتا۔

اور نبی ﷺ نے سعد بن ابی وقاص سے فرمایا جب انہوں نے آپ سے کہا: فلاں کو دیں کیونکہ وہ مومن ہے، تو نبی ﷺ نے فرمایا: [یہاں عبارت ختم ہو جاتی ہے]۔

---

(۱) اسے ابو نعیم نے الحلیہ ۲/۲۹۹ میں روایت کیا ہے، اور المزی نے تہذیب الکمال ۲۸/۲۱۴ میں اس کا ذکر کیا ہے۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۲۱۳۔ (۳) اسے البغوی نے ۱/۱۱۸ میں الکلبی سے نقل کیا ہے۔ (۴) تفسیر البغوی ۱/۱۱۷، اور طبری نے تاریخ ۱/۲۳۶ میں اسے مفصل بیان کیا ہے۔ (۵) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس: {اور اسی طرح ہم ابراہیم کو آسمانوں اور زمین کی بادشاہت دکھاتے تھے تاکہ وہ یقین کرنے والوں میں سے ہو جائے۔} آیت: ۷۵۔ (۶) اس کے بعد نسخہ (ز) میں ہے: ان کے نزدیک۔ (۷) نسخہ (خ)، (ز) اور (ظ) میں ہے: کہ۔

408

Surah Al-Baqarah: Verse 132

"Or a Muslim," the Hadith, recorded by Muslim (1). This indicates that faith (Iman) is not [the same as] Islam; for faith is inward, and Islam is outward, and this is clear (2). Faith may be used with the meaning of Islam, and Islam may be intended to mean faith; because of the necessity of one for the other and its issuance from it, like Islam being the fruit of faith and an indication of its validity. Know this, and success is with Allah.

The Almighty's saying: {And Ibrahim (Abraham) enjoined the same upon his sons and so did Ya'qub (Jacob) [saying], "O my sons, indeed Allah has chosen for you this religion, so do not die except while you are Muslims." 132}

The Almighty's saying: {And Ibrahim (Abraham) enjoined the same} means: the creed (millah), and it was said: the word, which is his saying: {I have submitted to the Lord of the worlds}. This is more correct because it is the closest mentioned (3), meaning: say, we have submitted. "Wassa" and "Awsa" are two dialects for Quraish and others with the same meaning, like "Karramna" and "Akramna" (4), and both were read. In Abdullah's Mus'haf: "Wassa", and in Uthman's Mus'haf: "Awsa", which is the recitation of the people of Medina and Sham (Syria). The rest [read it as]: "Wassa", and it contains the meaning of intensification (5). "Ibrahim" is in the nominative case because of its verb, and "Ya'qub" is conjoined to it (6). It was also said: it is a detached, new sentence, and the meaning is: and Ya'qub enjoined and said: O my sons, Allah has chosen for you the religion (7). Thus, Ibrahim enjoined his sons, then Ya'qub enjoined his sons after him. And the sons of Ibrahim: Ismail, and his mother was Hajar the Copt, and he was his eldest son; Ibrahim moved him to Mecca when he was an infant. It was said: he was two years old, and it was said: he was fourteen years old, and the first is more correct, as will be explained in Surah Ibrahim, God willing (8),

---

(1) In his Sahih (150). (2) See Ikmal al-Mu'allim 1/461. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213. (4) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas 1/227. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213, and see As-Sab'ah p. 171. At-Taisir p. 77. (6) I'rab al-Qur'an by an-Nahhas 1/264. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213. (8) At verse 37 thereof.

४०८

सूरा अल-बक़रह: आयत १३२

"या एक मुस्लिम," हदीस, जिसे मुस्लिम ने दर्ज किया है (१)। इससे यह संकेत मिलता है कि ईमान (आस्था) इस्लाम नहीं है, क्योंकि ईमान आंतरिक है और इस्लाम बाहरी है, और यह स्पष्ट है (२)। कभी-कभी ईमान शब्द का प्रयोग इस्लाम के अर्थ में किया जाता है, और इस्लाम का अर्थ ईमान के रूप में लिया जाता है; क्योंकि एक का दूसरे के लिए होना आवश्यक है और यह उससे निकलता है, जैसे इस्लाम ईमान का फल है और इसकी वैधता का प्रमाण है। इसे जान लो, और सफलता अल्लाह की ओर से है।

अल्लाह तआला का कथन: {और इसी की वसीयत इब्राहीम ने अपने बेटों को की और याक़ूब ने भी [यही कहा], "ऐ मेरे बेटों, निस्संदेह अल्लाह ने तुम्हारे लिए इस धर्म को चुन लिया है, अतः तुम हरगिज़ न मरना मगर इस हाल में कि तुम मुस्लिम (आज्ञाकारी) हो।" १३२}

अल्लाह तआला का कथन: {और इब्राहीम ने इसी की वसीयत की} यानी: मिल्लत (पंथ) की, और कहा गया: उस शब्द की जो उनका यह कथन है: {मैंने विश्व के प्रतिपालक के आगे सिर झुका दिया}। यह अधिक सही है क्योंकि यह सबसे निकटतम वर्णित है (३), अर्थात: कहो कि हमने आज्ञा मान ली। "वस्सा" और "अव्सा" क़ुरैश और अन्य लोगों की दो बोलियाँ हैं जिनका अर्थ एक ही है, जैसे: "कर्रमना" और "अकरमना" (४), और दोनों तरह से पढ़ा गया है। अब्दुल्लाह के मुसहफ़ में: "वस्सा" है, और उस्मान के मुसहफ़ में: "अव्सा" है, और यह मदीना और शाम (सीरिया) के लोगों का पाठ (क़िरात) है। शेष लोग "वस्सा" पढ़ते हैं, और इसमें अधिकता का भाव है (५)। "इब्राहीम" क्रिया के कारण रफ़ा (पेश) की स्थिति में है, और "याक़ूब" उस पर अतफ़ (जुड़ा हुआ) है (६)। यह भी कहा गया है कि यह एक नया वाक्य है, और अर्थ यह है: और याक़ूब ने वसीयत की और कहा: ऐ मेरे बेटों, अल्लाह ने तुम्हारे लिए धर्म को चुन लिया है (७)। अतः इब्राहीम ने अपने बेटों को वसीयत की, फिर उनके बाद याक़ूब ने अपने बेटों को वसीयत की। इब्राहीम के पुत्र: इस्माइल, और उनकी माँ हाजरा किब्तिया थीं, और वे उनके सबसे बड़े पुत्र थे; इब्राहीम उन्हें मक्का ले गए जब वे दूध पीते बच्चे थे। कहा गया कि वे दो साल के थे, और कहा गया कि वे चौदह साल के थे, और पहला अधिक सही है, जैसा कि सूरा इब्राहीम में इसका विवरण आएगा, इंशा अल्लाह (८),

(१) उनकी सहीह में (१५०)। (२) देखें इकमल अल-मुअल्लिम १/४६१। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१३। (४) इराब अल-क़ुरान अन्नह़ास १/२२७। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१३, और देखें अस-सबा पृ. १७१। अत-तयसीर पृ. ७७। (६) इराब अल-क़ुरान अन्नह़ास १/२६४। (७) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१३। (८) उसकी आयत ३७ के पास।

۴۰۸

سورة البقرہ: آیت ۱۳۲

"یا ایک مسلمان،" حدیث، جسے مسلم نے روایت کیا ہے (۱)۔ پس یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ ایمان، اسلام نہیں ہے، کیونکہ ایمان باطنی ہے اور اسلام ظاہری ہے، اور یہ بات واضح ہے (۲)۔ کبھی ایمان کا اطلاق اسلام کے معنی میں ہوتا ہے، اور اسلام سے مراد ایمان لیا جاتا ہے؛ کیونکہ ایک کا دوسرے کے لیے لازم ہونا اور اس سے صادر ہونا ضروری ہے، جیسے اسلام ایمان کا ثمرہ اور اس کی صحت کی دلیل ہے۔ پس اسے جان لو، اور اللہ ہی توفیق دینے والا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور اسی کی وصیت ابراہیم نے اپنے بیٹوں کو کی اور یعقوب نے بھی (یہی کہا)، "اے میرے بیٹو، بے شک اللہ نے تمہارے لیے یہ دین منتخب کر لیا ہے، پس تم ہرگز نہ مرنا مگر اس حال میں کہ تم مسلمان ہو (فرماں بردار ہو)۔" ۱۳۲}

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور ابراہیم نے اسی کی وصیت کی} یعنی: ملت (دین) کی، اور کہا گیا: اس کلمے کی جو ان کا یہ قول ہے: {میں جہانوں کے رب کے آگے سر تسلیم خم کرتا ہوں}۔ اور یہ زیادہ درست ہے، کیونکہ یہ سب سے قریب مذکور ہے (۳)، یعنی: کہو کہ ہم نے اطاعت اختیار کی۔ "وصّی" اور "أوصی" قریش اور دوسروں کی دو زبانیں (لغات) ہیں جن کا معنی ایک ہی ہے، جیسے: "کرّمنا" اور "أکرمنا" (۴)، اور ان دونوں کے ساتھ پڑھا گیا ہے۔ عبداللہ کے مصحف میں: "وصّی" ہے، اور عثمان کے مصحف میں: "أوصی" ہے، اور یہ اہل مدینہ اور شام کی قرآت ہے۔ باقی سب: "وصّی" (پڑھتے ہیں)، اور اس میں کثرت کا معنی پایا جاتا ہے (۵)۔ اور "إبراهيمُ" اپنے فعل کی وجہ سے حالتِ رفع میں ہے، اور "یعقوب" کا اس پر عطف ہے (۶)۔ اور کہا گیا: وہ مقطوع مستأنف (نیا جملہ) ہے، اور معنی یہ ہے: اور یعقوب نے وصیت کی اور کہا: اے میرے

بیٹو، اللہ نے تمہارے لیے دین کو چن لیا ہے (۷)۔ پس ابراہیم نے اپنے بیٹوں کو وصیت کی، پھر ان کے بعد یعقوب نے اپنے بیٹوں کو وصیت کی۔ اور ابراہیم کے بیٹے: اسماعیل، اور ان کی والدہ ہاجرہ قبطیہ تھیں، اور وہ ان کے سب سے بڑے بیٹے تھے، ابراہیم انہیں مکہ لے گئے جبکہ وہ شیر خوار بچے تھے؛ کہا گیا کہ وہ دو سال کے تھے، اور کہا گیا کہ وہ چودہ سال کے تھے، اور پہلا قول زیادہ صحیح ہے، جیسا کہ سورہ ابراہیم میں اس کا بیان آئے گا، ان شاء اللہ (۸)۔

---

(۱) اپنی صحیح میں (۱۵۰)۔ (۲) دیکھیے إکمال المعلم ۱/۴۶۱۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/۲۱۳۔ (۴) إعراب القرآن للنحاس ۱/۲۲۷۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/۲۱۳، اور دیکھیے السبعة ص ۱۷۱۔ والتیسیر ص ۷۷۔ (۶) إعراب القرآن للنحاس ۱/۲۶۴۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۲۱۳۔ (۸) اس کی آیت ۳۷ کے پاس۔

Surah Al-Baqarah: Verse 132 409

Isaac was fourteen years old [at a certain event], and he died at the age of one hundred and thirty-seven, and it was said: one hundred and thirty. His age when his father Abraham, peace be upon them both, died was eighty-nine years, and he is the one intended for sacrifice according to one opinion. Isaac's mother was Sarah, and he is the one intended for sacrifice according to another opinion, which is more correct, as will be explained in Surah 'As-Saffat,' God willing (1).

From his descendants are the Romans, the Greeks, the Armenians, those who follow their path, and the Children of Israel.

Isaac lived for one hundred and eighty years, died in the Holy Land, and was buried near his father Abraham al-Khalil, peace be upon them both. Then, when Sarah died, Abraham, peace be upon him, married Qantura daughter of Yaqtan the Canaanite (2), and she bore him Midian, Madain, Nahshan, Zamran, Nashyiq, and Shuyukh. Then he (Abraham), peace be upon him, passed away. There were about two thousand six hundred years between his death and the birth of the Prophet ﷺ, while the Jews decrease that by about four hundred years. The mention of Jacob's children will come in Surah Yusuf, God willing (3).

Amr ibn Fa'id al-Aswari and Isma'il ibn Abdullah al-Makki (4) read: "and Jacob," in the accusative case (5), as a conjunction with "his sons," so Jacob would be included among those who were exhorted (6).

Al-Qushayri said: It was read: "and Jacob" in the accusative case as a conjunction with "his sons," but this is far-fetched because Jacob was not among Abraham's children when he exhorted them, and it has not been narrated that Jacob met his grandfather Abraham; rather, he was born after Abraham's death, and Jacob also exhorted his sons just as Abraham did. The naming of Jacob's children will come, God willing (7).

(1) Under verse 102 of it. Ibn Kathir mentioned in his Tafsir (4/1817) that the correct and certain view is that the intended sacrifice was Ishmael, peace be upon him. See Zad al-Ma'ad (1/71). (2) Tafsir al-Baghawi (1/118). (3) Under verse (7) of it. (4) Abu Ishaq al-Makhzumi, known as al-Qist, a reciter of Makkah, was trustworthy, and he was the last of those who recited to Ibn Kathir. He died in the year (170 AH). Ghayat al-Nihaya (1/165, 166). (5) Al-Muharrar al-Wajiz (1/213), and Al-Qira'at al-Shadhdhah, p. 9. (6) Al-Muharrar al-Wajiz (1/213). (7) Under verse (7) of Surah Yusuf.

सूरह अल-बकरा: आयत 132 409

इसाक चौदह वर्ष के थे [एक घटना के समय], और उनकी मृत्यु एक सौ सैंतीस वर्ष की आयु में हुई, और कहा गया: एक सौ तीस। जब उनके पिता इब्राहिम (उन दोनों पर शांति हो) की मृत्यु हुई, तब उनकी आयु नवासी वर्ष थी, और एक मत के अनुसार वे ही ज़बीह (बलिदान के लिए चुने गए) हैं। इसाक की माता सारा थीं, और एक अन्य मत के अनुसार वे ही ज़बीह हैं, जो अधिक सही है, जैसा कि इंशाअल्लाह सूरह 'अस-साफात' में स्पष्ट किया जाएगा (1)।

उनके वंशजों में रोमन, यूनानी, अर्मेनियाई, उनके मार्ग पर चलने वाले और बनी इसराइल (इजराइल की संतान) शामिल हैं।

इसाक एक सौ अस्सी वर्ष तक जीवित रहे, पवित्र भूमि में उनकी मृत्यु हुई और उन्हें उनके पिता इब्राहिम अल-खलील (उन दोनों पर शांति हो) के पास दफनाया गया। फिर, जब सारा की मृत्यु हुई, तो इब्राहिम (उन पर शांति हो) ने कनानी यक्तन की पुत्री क़ंतूरा से विवाह किया (2), और उसने मिद्यान, मदैन, नहशान, ज़मरान, नश्यीक और शुयुख को जन्म दिया। फिर उनकी (इब्राहिम की) मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु और नबी ﷺ के जन्म के बीच लगभग दो हजार छह सौ वर्ष का अंतर था, जबकि यहूदी इसमें लगभग चार सौ वर्ष की कमी करते हैं। याकूब की संतानों का उल्लेख इंशाअल्लाह सूरह यूसुफ में आएगा (3)।

अम्र इब्न फ़ैद अल-अस्वारी और इस्माइल इब्न अब्दुल्ला अल-मक्की (4) ने "और याकूब" को नसब (accusative case) में पढ़ा है (5), जो "उसके बेटों" के साथ जुड़ा हुआ है, जिससे याकूब वसीयत पाने वालों में शामिल हो जाते हैं (6)।

अल-कुशैरी ने कहा: "और याकूब" को "उसके बेटों" के साथ जोड़कर नसब में पढ़ा गया है, लेकिन यह दूर की बात लगती है, क्योंकि जब इब्राहिम ने अपने बेटों को वसीयत दी थी, तब याकूब उनके बीच नहीं थे, और यह प्रमाणित नहीं है कि याकूब ने अपने दादा इब्राहिम को देखा था; बल्कि उनका जन्म इब्राहिम की मृत्यु के बाद हुआ था, और याकूब ने भी अपने बेटों को वैसे ही वसीयत दी थी जैसे इब्राहिम ने दी थी। याकूब की संतानों के नाम इंशाअल्लाह आगे आएंगे (7)।

(1) इसकी आयत 102 के अंतर्गत। इब्न कसीर ने अपनी तफ़सीर (4/1817) में उल्लेख किया है कि सही और निश्चित मत यह है कि ज़बीह इस्माइल (उन पर शांति हो) थे। ज़ाद अल-माद (1/71) देखें। (2) तफ़सीर अल-बग़वी (1/118)। (3) इसकी आयत (7) के अंतर्गत। (4) अबू इशाक अल-मखज़ूमी,

जिन्हें अल-क़िस्त के नाम से जाना जाता है, मक्का के एक विश्वसनीय क़ारी थे, और वे इब्न कसीर से पढ़ने वाले अंतिम व्यक्ति थे। उनकी मृत्यु वर्ष (170 हिजरी) में हुई। ग़ायत अल-निहाया (1/165, 166)। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ (1/213), और अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ह, पृष्ठ 9। (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ (1/213)। (7) सूरह यूसुफ की आयत (7) के अंतर्गत।

سورة البقرہ: آیت 132 409

اسحاق چودہ سال کے تھے [ایک واقعے کے وقت]، اور ان کا انتقال ایک سو سینتیس سال کی عمر میں ہوا، اور کہا گیا: ایک سو تیس۔ جب ان کے والد ابراہیم علیہما السلام کا انتقال ہوا تو ان کی عمر نواسی برس تھی، اور ایک قول کے مطابق وہی ذبیح ہیں۔ اسحاق کی والدہ سارہ تھیں، اور ایک دوسرے قول کے مطابق وہی ذبیح ہیں، جو کہ زیادہ صحیح ہے، جیسا کہ انشاء اللہ سورہ 'والصافات' میں اس کی وضاحت آئے گی (1)۔

ان کی اولاد میں رومی، یونانی، آرمینیائی، اور جو ان کے راستے پر چلے، اور بنی اسرائیل شامل ہیں۔

اسحاق ایک سو اسی سال تک زندہ رہے، ارض مقدسہ میں وفات پائی اور اپنے والد ابراہیم خلیل علیہما السلام کے پاس دفن ہوئے۔ پھر جب سارہ کا انتقال ہوا تو ابراہیم علیہ السلام نے قنطورا بنت یقطن کنعانی سے شادی کی (2)، تو ان سے مدین، مدائن، نہشان، زمران، نشیق اور شیوخ پیدا ہوئے۔ پھر آپ (ابراہیم علیہ السلام) کی وفات ہوئی۔ آپ کی وفات اور نبی کریم ﷺ کی ولادت کے درمیان تقریباً دو ہزار چھ سو سال کا فاصلہ تھا، جب کہ یہودی اس میں سے تقریباً چار سو سال کم کرتے ہیں۔ یعقوب کی اولاد کا ذکر انشاء اللہ تعالیٰ سورہ یوسف میں آئے گا (3)۔

عمرو بن فائد الاسواری اور اسماعیل بن عبد اللہ المکی (4) نے «ویعقوبَ» کو زبر (نصب) کے ساتھ پڑھا ہے (5) جس کا عطف «بنیہ» پر ہے، اس صورت میں یعقوب بھی وصیت کیے گئے لوگوں میں شامل ہوں گے (6)۔

القشیری نے کہا: «یعقوبَ» کو «بنیه» پر عطف کرتے ہوئے نصب (زبر) کے ساتھ پڑھا گیا ہے، لیکن یہ بات بعید ہے، کیونکہ جب ابراہیم نے اپنے بیٹوں کو وصیت کی تھی تو یعقوب ان کے درمیان نہیں تھے، اور یہ منقول نہیں ہے کہ یعقوب نے اپنے دادا ابراہیم کو پایا ہو؛ بلکہ وہ ابراہیم کی موت کے بعد پیدا ہوئے تھے، اور یعقوب نے بھی اپنے بیٹوں کو ویسے ہی وصیت کی تھی جیسے ابراہیم نے کی تھی۔ یعقوب کی اولاد کے نام انشاء اللہ تعالیٰ آئیں گے (7)۔

(1) اس کی آیت 102 کے پاس۔ ابن کثیر نے اپنی تفسیر (1817/4) میں ذکر کیا ہے کہ صحیح اور یقینی قول یہ ہے کہ ذبیح اسماعیل علیہ السلام ہیں، اور دیکھئے زاد المعاد (71/1)۔ (2) تفسیر البغوی (118/1)۔ (3) اس کی آیت (7) کے پاس۔ (4) ابو اسحاق المخزومی، جو القسط کے نام سے مشہور ہیں، مکہ کے قاری تھے، ثقہ تھے، اور وہ آخری شخص تھے جنہوں نے ابن کثیر سے قرأت کی۔ ان کی وفات سال (170ھ) میں ہوئی۔ غایۃ النہایۃ (165/1، 166)۔ (5) المحرر الوجیز (213/1)، اور القراءات الشاذة ص 9۔ (6) المحرر الوجیز (213/1)۔ (7) سورہ یوسف کی آیت (7) کے پاس۔

410 Surah Al-Baqarah: Verse 132

Al-Kalbi said: When Jacob entered Egypt, he saw them worshipping idols, fire, and cows. So he gathered his children, fearing for them, and said: "What will you worship after me?"(1) It is said: He was named Jacob (Ya'qub) because he and Esau (Al-Eis) were twins, and he came out of his mother's womb holding his brother Esau's heel (2). There is a critique of this view because this is an Arabic derivation, while Jacob is a non-Arabic name, even if it coincided with the Arabic language in naming him, such as the term for the male sandgrouse (3). He (peace be upon him) lived for one hundred and forty-seven years and died in Egypt. He willed to be carried to the Holy Land to be buried near his father Isaac, so Joseph carried him and buried him there. The words of the Exalted: {يَبَنِيَّ} (O my sons) means: 'O my sons', and it is similarly so in the recitation of Ubayy, Ibn Mas'ud, and Al-Dahhak (4). Al-Farra' said (5): The particle 'an' (that) was omitted because a testament is like a statement, and every statement that returns (6) to speech (qawl) permits the inclusion of 'an' or its omission. He said: The grammarians' claim that he intended 'an' and then it was omitted is insignificant. Al-Nahhas (7) said: "{يَا بَنِيَّ}" is a vocative in a possessive construct, and this 'ya' of the self (first person singular) must be vocalized with a fatha here; because if it were silent, two consonants would meet, and a similar case is {بِمُصْرِخِيَّ} [Ibrahim: 22]. {إِنَّ اللهَ} (Indeed Allah): The 'inna' begins with a kasra because 'awsa' (commanded/willed) and 'qala' (said) are treated as one. It is also said that it is based on an implicit 'qawl' (saying). {اصْطَفَى} (Chose): Selected. The Rajiz (poet) said (8): O son of kings who inherited kingdoms, the caliphate of Allah that was given to you He chose it for you and chose you for it.

---

(1) Mentioned by Abu al-Layth al-Samarqandi in his Tafsir 1/160 from Muqatil similarly. (2) Mentioned by al-Baghawi in his Tafsir 1/118, and al-Tabarsi in Majma' al-Bayan 1/482 on the authority of Ibn Abbas (may Allah be pleased with him). (3) Al-Hajjal: Female sandgrouse (Ya'aqeeb). Tahdhib al-Lugha (4/143). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213, and Tafsir al-Razi 3/81. (5) Ma'ani al-Qur'an 1/80, where it appears as "al-qiyat" with a 'qaf' instead of "ul-ghiyat", and similarly in other upcoming places. (6) In (m): "yarji'u", in (d): "raji'", and the fixed version from (z), (zha), and (kh) matches Ma'ani al-Qur'an. (7) I'rab al-Qur'an 1/264. (8) We did not find it, and Ibn Adil mentioned it in Al-Lubab 2/503.

410 सूरा अल-बकरा: आयत 132

अल-कल्बी ने कहा: जब याकूब मिस्र में दाखिल हुए, तो उन्होंने उन्हें मूर्तियों, आग और गायों की पूजा करते देखा। इसलिए उन्होंने अपनी संतानों को इकट्ठा किया और उनके बारे में डर महसूस किया और कहा: "मेरे बाद तुम किसकी इबादत करोगे?" (1) कहा जाता है: उनका नाम याकूब इसलिए रखा गया क्योंकि वे और ऐसौ (Al-Eis) जुड़वां पैदा हुए थे, और वह अपनी माँ के गर्भ से अपने भाई ऐसौ की एड़ी पकड़े हुए निकले थे (2)। इस विचार पर एक आलोचना है क्योंकि यह एक अरबी व्युत्पत्ति (derivation) है, जबकि याकूब एक गैर-अरबी नाम है, भले ही यह नामकरण में अरबी भाषा के साथ मेल खाता हो, जैसे कि नर सैंडग्राउस (sandgrouse) का नाम (3)। वह (उन पर शांति हो) एक सौ सैंतालीस वर्ष तक जीवित रहे और मिस्र में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने वसीयत की थी कि उन्हें पवित्र भूमि (Holy Land) ले जाया जाए और उनके पिता इसहाक के पास दफनाया जाए, इसलिए यूसुफ उन्हें ले गए और वहीं दफनाया। अल्लाह तआला का कथन: {يَبَنِيَّ} (हे मेरे बेटों) का अर्थ है: 'हे मेरे बेटों', और उबैय, इब्न मसूद और अद-दह्हाक के पाठ (क़िरात) में भी ऐसा ही है (4)। अल-फर्रा ने कहा (5): शब्द 'अन' (कि) को हटा दिया गया क्योंकि वसीयत एक कथन की तरह है, और हर कथन जो भाषण (कौल) की ओर लौटता है (6), उसमें 'अन' का प्रवेश या उसका लोप स्वीकार्य है। उन्होंने कहा: वैयाकरणों का यह कहना कि उन्होंने 'अन' का इरादा किया था और फिर उसे हटा दिया गया, कोई बड़ी बात नहीं है। अन-नहहास (7) ने कहा: "{يَا بَنِيَّ}" एक संबंधपरक संबोधन (vocative) है, और यहाँ 'या' (स्वयं के लिए) पर फथ़ा होना अनिवार्य है; क्योंकि यदि यह शांत होता, तो दो व्यंजन मिलते, और इसका एक उदाहरण {بِمُصْرِخِيَّ} [इब्राहिम: 22] है। {إِنَّ اللهَ} (बेशक अल्लाह): 'इन्ना' में कसरा है क्योंकि 'औसा' (वसीयत की/आदेश दिया) और 'क़ाला' (कहा) को एक माना गया है। और यह भी कहा गया है: एक अंतर्निहित 'कौल' (कहना) के आधार पर। {اصْطَفَى} (चुना): चयन किया। राजीज़ (कवि) ने कहा (8): हे राजाओं के पुत्र जिन्होंने साम्राज्यों को विरासत में पाया, अल्लाह का खिलाफत जो तुम्हें दिया गया है उसने इसे तुम्हारे लिए चुना और तुम्हें इसके लिए चुना।

---

(1) अबू अल-लैथ अस-समरकंदी ने अपनी तफ़सीर 1/160 में मुक़ातिल के हवाले से इसी तरह इसका उल्लेख किया है। (2) अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर 1/118 में और अत-तबरसी ने मजमा अल-बयान 1/482 में इब्न अब्बास (रज़िअल्लाहु अन्हु) के हवाले से इसका उल्लेख किया है। (3) अल-हज्जाल: मादा सैंडग्राउस (याअक़ीब)। तहज़ीब अल-लुग़ा (4/143)। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़

1/213, और तफ़सीर अल-राज़ी 3/81। (5) उनके लिए मआनी अल-क़ुरान 1/80, और इसमें: 'उलघियात' के बजाय 'क़ाफ़' के साथ 'अलक़ियात' है, और इसी तरह अन्य आने वाले स्थानों में भी। (6) (m) में: 'यरजीउ', और (d) में: 'राजी', और जो (z), (zha) और (kh) से प्रमाणित है वह मआनी अल-क़ुरान के अनुकूल है। (7) इराब अल-क़ुरान 1/264। (8) हमने इसे नहीं पाया, और इब्न आदिल ने अल-लुबाब 2/503 में इसका उल्लेख किया है।

410 سورہ البقرہ : آیت 132

کلبی نے کہا: جب یعقوب علیہ السلام مصر میں داخل ہوئے تو انہوں نے دیکھا کہ لوگ بتوں، آگ اور گایوں کی پوجا کر رہے ہیں۔ چنانچہ انہوں نے اپنی اولاد کو جمع کیا اور ان کے بارے میں ڈرے اور فرمایا: تم میرے بعد کس کی عبادت کرو گے؟(1) اور کہا جاتا ہے: آپ کا نام یعقوب اس لیے رکھا گیا کیونکہ آپ اور عیص جڑواں تھے، اور آپ اپنی ماں کے پیٹ سے اپنے بھائی عیص کی ایڑی (عقب) پکڑے ہوئے نکلے تھے (2)۔ اس رائے میں کلام ہے، کیونکہ یہ ایک عربی مشتق ہے، جبکہ یعقوب ایک عجمی نام ہے، اگرچہ نام رکھنے میں یہ عربی زبان کے موافق آ گیا ہو، جیسے نر تیتر (حجل) کا نام (3)۔ آپ علیہ السلام ایک سو سینتالیس سال زندہ رہے اور مصر میں وفات پائی، اور وصیت کی کہ انہیں سرزمینِ مقدس لے جایا جائے اور ان کے والد اسحاق علیہ السلام کے پاس دفن کیا جائے، چنانچہ یوسف علیہ السلام انہیں لے گئے اور وہیں دفن کیا۔ اللہ تعالیٰ کا قول: {يَبَنِيَّ} اس کا معنی ہے: اے میرے بیٹو، اور اسی طرح ابی، ابن مسعود اور ضحاک کی قراءت میں ہے(4)۔ الفراء نے کہا (5): لفظ 'أن' کو حذف کر دیا گیا کیونکہ وصیت قول کی مانند ہے، اور ہر وہ کلام جو قول کی طرف لوٹے (6) اس میں 'أن' کا داخل ہونا اور اسے حذف کرنا دونوں جائز ہیں۔ انہوں نے کہا: نحویوں کا یہ کہنا کہ اصل میں 'أن' ہی مراد تھا جسے حذف کیا گیا، کوئی وزنی بات نہیں ہے۔ النحاس (7) نے کہا: "{يَا بَنِيَّ}" منادیٰ مضاف ہے، اور یہ 'یائے متکلم' ہے، یہاں اس کا مفتوح ہونا ہی جائز ہے؛ کیونکہ اگر یہ ساکن ہوتی تو دو ساکن جمع ہو جاتے، اور اس کی مثال {بِمُصْرِخِيَّ} [ابراہیم: 22] ہے۔ {إِنَّ اللهَ}: 'ان' کو مکسور پڑھا گیا کیونکہ 'اوصی' (وصیت کی) اور 'قال' (کہا) ایک ہی حکم میں ہیں۔ اور کہا گیا: قول کے مقدر ہونے کی بنا پر۔ {اصْطَفَى}: منتخب کیا۔ راجز (شاعر) نے کہا (8): اے بادشاہوں کے بیٹے جنہوں نے حکومتوں کو

وراثت میں پایا، اللہ کی وہ خلافت جو آپ کو عطا کی گئی اسی نے اسے آپ کے لیے منتخب کیا اور آپ کو اس کے لیے منتخب کیا۔

---

(1) ابواللیث سمرقندی نے اپنی تفسیر 1/160 میں مقاتل سے اسی طرح ذکر کیا ہے۔ (2) بغوی نے اپنی تفسیر 1/118 میں، اور طبرسی نے مجمع البیان 1/482 میں ابن عباس رضی اللہ عنہ سے ذکر کیا ہے۔ (3) الحجل: مادہ تیتر (یعاقیب)۔ تہذیب اللغۃ (4/143)۔ (4) المحرر الوجیز 1/213، اور تفسیر رازی 3/81۔ (5) معانی القرآن 1/80، اور اس میں 'الغیت' کی بجائے 'قاف' کے ساتھ 'القیت' ہے، اور اسی طرح دیگر مقامات پر بھی جو آئیں گے۔ (6) (م) میں 'یرجع'، اور (د) میں 'راجع'، اور جو (ز)، (ظ) اور (خ) سے ثابت ہے وہی معانی القرآن کے موافق ہے۔ (7) اعراب القرآن 1/264۔ (8) ہمیں یہ شعر نہیں ملا، اور ابن عادل نے اللباب 2/503 میں اسے ذکر کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 133 411

"The Religion for you" means: Islam, and the "Alif" and "Lam" (definite article) in "al-Din" is for specific reference, because they already knew it. "So do not die except as Muslims" is an eloquent conciseness, and the meaning is: adhere to Islam, persist in it, and do not leave it until you die. Thus, He used a brief term that contains the intended meaning, and includes an exhortation and a reminder of death. This is because a person realizes that they will die but does not know when. So, when commanded with a matter where death should not come to them except while they are upon it, the address is directed as a constant and necessary matter from that moment(1). And "La" is for prohibition, "tamutunna" is in the state of jasm due to the prohibition, emphasized by the heavy 'nun', and the 'waw' was omitted to avoid the meeting of two sakin letters. "Except while you are Muslims" is a subject and predicate in the position of "hal" (state/circumstance)(2), meaning: having a good opinion of your Lord. It is also said: sincere ones, and said: those who entrust their affairs to God, and said: believers(3). Allah Almighty says: "Or were you witnesses when death approached Jacob, when he said to his sons, 'What will you worship after me?' They said, 'We will worship your God and the God of your fathers, Abraham and Ishmael and Isaac - one God. And we are Muslims [in submission] to Him.'" His saying: "Or were you witnesses": "Shuhada" (witnesses) is the predicate of 'kana', and it is not inflected (is a diptote) because it contains the alif of femininity, and it was included for the femininity of the group just as the 'ha' is included(4). The address is to the Jews and Christians who attribute to Abraham what he did not enjoin upon his sons, and claim they are on Judaism and Christianity. So Allah refuted their claim and their lie, and said to them by way of rebuke: Did you witness Jacob and know what he enjoined, so that you claim out of knowledge?! Meaning: You did not witness, rather you are fabricating. And "Am" means "Bal" (Nay/Rather), meaning: Rather, did your ancestors witness Jacob?! The operator for the first "idh" is the meaning of witnessing, and the second "idh" is a substitute for the first. And "Shuhada" is the plural of "Shahid", meaning: present. And the meaning of "death approached Jacob" is: its precursors and causes, for if death itself had arrived, it would not have been possible for him to say anything. (1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213. (2) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/264. (3) Tafsir al-Baghawi 1/118. (4) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/264.

सूरह अल-बक़रह: आयत 133 411

"तुम्हारे लिए दीन" का अर्थ है: इस्लाम, और "दीन" में 'अलिफ़' और 'लाम' (निश्चित लेख) संदर्भ के लिए है, क्योंकि वे इसे पहले से जानते थे। "अतः तुम मुस्लिम होने के अलावा मत मरना" एक संक्षिप्त और प्रभावशाली कथन है, जिसका अर्थ है: इस्लाम पर टिके रहो, उस पर डटे रहो, और मरने तक उसे मत छोड़ो। इस प्रकार, उन्होंने एक संक्षिप्त शब्द का प्रयोग किया जिसमें अभीष्ट अर्थ समाहित है, और इसमें मृत्यु का उपदेश और स्मरण भी शामिल है। इसका कारण यह है कि मनुष्य निश्चित रूप से जानता है कि वह मरेगा, लेकिन यह नहीं जानता कि कब। इसलिए, जब किसी ऐसे मामले का आदेश दिया जाता है जहाँ मृत्यु उस स्थिति के अलावा न आए, तो संबोधन उस समय से एक निरंतर, आवश्यक दायित्व के रूप में निर्देशित होता है(1)। और "ला" निषेध के लिए है, "तामुतुन्ना" निषेध के कारण जज़्म की स्थिति में है, जिसे भारी "नुन" द्वारा बल दिया गया है, और दो साकिन अक्षरों के मिलन के कारण "वाव" को हटा दिया गया था। "मुस्लिम होने के अलावा" 'हाल' (स्थिति) की स्थिति में मुब्तदा और ख़बर है(2), जिसका अर्थ है: अपने रब के बारे में अच्छा सोचना, और कहा गया है: निष्ठावान, और कहा गया है: सुपुर्द करने वाले, और कहा गया है: मोमिन (विश्वासी)(3)। अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन है: "क्या तुम उस समय मौजूद थे जब याकूब की मृत्यु का समय आया, जब उसने अपने बेटों से कहा, 'मेरे बाद तुम किसकी इबादत करोगे?' उन्होंने कहा, 'हम आपके ईश्वर और आपके पूर्वजों - इब्राहीम, इस्माईल और इसहाक - के ईश्वर की इबादत करेंगे, जो एक ही ईश्वर है। और हम उसी के आज्ञाकारी (मुस्लिम) हैं।'" उनका कथन, "क्या तुम गवाह थे": "शुहदा" (गवाह) 'काना' की ख़बर है, और यह 'ममनूअ मिनस-सर्फ़ (अपरिवर्तनीय) है क्योंकि इसमें स्त्रीत्व का अलिफ़ है, और यह समूह के स्त्रीत्व के लिए आया है जैसे 'हा' आता है(4)। यह संबोधन उन यहूदियों और ईसाइयों के लिए है जो इब्राहीम की ओर उन बातों को जोड़ते हैं जिनका उन्होंने अपने बेटों को आदेश नहीं दिया था, और दावा करते हैं कि वे यहूदी और ईसाई धर्म पर हैं। तो अल्लाह ने उनकी बात और उनके झूठ का खंडन किया, और उन्हें फटकारते हुए कहा: क्या तुम याकूब के पास मौजूद थे और जानते थे कि उसने क्या वसीयत की थी, जो तुम ज्ञान के साथ दावा कर रहे हो?! अर्थात: तुम मौजूद नहीं थे, बल्कि तुम झूठ गढ़ रहे हो। और "अम" का अर्थ "बल" (बल्कि) है, अर्थात: क्या तुम्हारे पूर्वजों ने याकूब को देखा था?! पहले "इज़" में कार्य करने वाला कारक गवाही का अर्थ है, और दूसरा "इज़" पहले वाले का बदल (विकल्प) है। और "शुहदा" 'शाहिद' का बहुवचन है, जिसका अर्थ है: उपस्थित। और "याकूब के पास मौत आई" का अर्थ है: इसके लक्षण और कारण, अन्यथा यदि स्वयं

मृत्यु आ गई होती, तो उनके लिए कुछ भी कहना संभव नहीं होता। (1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/213। (2) इ'राब अल-कुरान, अल-नहस द्वारा 1/264। (3) तफ़सीर अल-बगवी 1/118। (4) इ'राब अल-कुरान, अल-नहस द्वारा 1/264।

سورہ البقرہ: آیت ۱۳۳ ٤١١

﴿لَكُمُ ٱلدِّينَ﴾ یعنی: اسلام، اور «الدین» میں الف اور لام عہد کے لیے ہے، کیونکہ وہ اسے پہلے سے جانتے تھے۔ ﴿فَلَا تَمُوتُنَّ إِلَّا وَأَنتُم مُّسْلِمُونَ﴾ ایک بلیغ ایجاز ہے، اور معنی یہ ہے کہ: اسلام پر قائم رہو، اس پر ہمیشگی اختیار کرو، اور اسے نہ چھوڑو یہاں تک کہ تم مر جاؤ۔ پس ایک مختصر لفظ لایا گیا جس میں مقصد شامل ہے، اور اس میں موت کی نصیحت اور یاد دہانی بھی شامل ہے، اور وہ یہ کہ انسان کو یقین ہوتا ہے کہ وہ مر جائے گا، لیکن وہ نہیں جانتا کہ کب، لہذا جب اسے کسی ایسی بات کا حکم دیا گیا جس پر موت نہ آئے مگر یہ کہ وہ اسی حالت میں ہو، تو خطاب اس وقت سے ایک دائمی اور لازمی امر کے طور پر متوجہ ہو گیا(١)۔ اور «لا» نہی (ممانعت) کے لیے ہے، «تَمُوتُنَّ» نہی کی وجہ سے جزم کی جگہ پر ہے، نون ثقیلہ سے اس کی تاکید کی گئی ہے، اور دو ساکنوں کے اکٹھا ہونے کی وجہ سے «واؤ» کو حذف کر دیا گیا ہے۔ «إلا وأنتُم مُّسْلِمُونَ» حال کی جگہ پر مبتدا اور خبر ہے(٢)، یعنی: اپنے رب کے بارے میں اچھا گمان رکھنے والے، اور کہا گیا: مخلصین، اور کہا گیا: سپرد کرنے والے، اور کہا گیا: مومنین(٣)۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿أَمْ كُنتُمْ شُهَدَاءَ إِذْ حَضَرَ يَعْقُوبَ الْمَوْتُ إِذْ قَالَ لِبَنِيهِ مَا تَعْبُدُونَ مِن بَعْدِي قَالُوا نَعْبُدُ إِلَهَكَ وَإِلَهَ آبَائِكَ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ وَإِسْحَاقَ إِلَهًا وَاحِدًا وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ﴾ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿أَمْ كُنتُمْ شُهَدَاءَ﴾ «شہداء» كَانَ کی خبر ہے، اور اسے منصرف نہیں کیا گیا (غیر منصرف ہے) کیونکہ اس میں الف تانیث ہے، اور یہ جماعت کی تانیث کے لیے داخل ہوا جیسے «ہاء» داخل ہوتی ہے(٤)۔ اور یہ خطاب ان یہودیوں اور عیسائیوں کے لیے ہے جو ابراہیم علیہ السلام کی طرف وہ باتیں منسوب کرتے ہیں جس کی انہوں نے اپنے بیٹوں کو وصیت نہیں کی تھی، اور یہ کہ وہ یہودیت اور نصرانیت پر ہیں، تو اللہ نے ان کی بات اور ان کے جھوٹ کو رد کر دیا، اور ان سے توبیخ کے طور پر فرمایا: کیا تم یعقوب کے

پاس حاضر تھے، اور تم نے جان لیا کہ انہوں نے کیا وصیت کی تھی کہ اب تم علم کے ساتھ دعویٰ کر رہے ہو؟! یعنی: تم حاضر نہیں تھے، بلکہ تم بہتان تراشی کر رہے ہو۔ اور «أم» بمعنی «بل» ہے، یعنی: کیا تمہارے اسلاف یعقوب کے پاس حاضر تھے؟! اور پہلی «إذ» میں عمل کرنے والا شہادت (حاضر ہونے) کا معنی ہے، اور دوسری «إذ» پہلی سے بدل ہے۔ اور «شہداء» شاہد کی جمع ہے، یعنی: حاضر۔ اور «حضر يعقوب الموت» کا معنی ہے: اس کے مقدمات اور اسباب، ورنہ اگر موت آ چکی ہوتی، تو ان کے لیے کچھ کہنا ممکن نہ ہوتا۔ (١) المحرر الوجيز ١/ ٢١٣۔ (٢) إعراب القرآن للنحاس ١/ ٢٦٤۔ (٣) تفسير البغوي ١/١١٨۔ (٤) إعراب القرآن للنحاس ١/ ٢٦٤۔

Surah Al-Baqarah: Verse 133 412

And he referred to the worshipped [entities] using "ma" (what), and did not say "man" (who), because he wanted to test them. If he had said "man", his intention would have been to see who among them was guided, but he only wanted to test them, so he said "ma". Also, the well-known objects of worship besides Allah are inanimate, such as idols, fire, the sun, and stones, so he inquired about what they worship from among these.

The meaning of "after me" is: after my death. It is narrated that when Jacob was given a choice, as prophets are, he chose death and said: Give me time until I advise my sons and my family. So he gathered them and said this to them, and they were guided and said: "We will worship your God" (the verse). They showed him their steadfastness in religion and their knowledge of Allah Almighty (1).

The words of the Almighty: "They said, 'We will worship your God and the God of your fathers, Abraham and Ishmael and Isaac.'" "Abraham, Ishmael, and Isaac" are in the genitive case as apposites (badal), and they are indeclinable because they are non-Arabic names. Al-Kisa'i said: If you wish, you can decline "Isaac" and derive it from "as-sahq" (crushing), and decline "Jacob" and derive it from "at-tayr" (bird) (2).

Allah called each of the uncle and the grandfather "father", starting with the grandfather, then Ishmael the uncle, because he is older than Isaac. And "ilah" (a God) is an apposite for "ilahak" (your God), an indefinite noun substituting for a definite one, and he repeated it for the benefit of the attribute of oneness. It was said: "ilah" is a circumstantial accusative (hal). Ibn Atiyah said (3): It is a good statement, because the purpose is to establish the state of oneness.

Al-Hasan, Yahya bin Ya'mur, Al-Jahdari, and Abu Raja' al-Utaridi read: "and the God of your father" (4), and it has two aspects:

One: That it is singular, and he meant Abraham alone, and disliked making Ishmael a father because he is an uncle. Al-Nahhas said (5): This is not necessary; because the Arabs call an uncle a father.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/213-214, and Al-Wahidi mentioned the report in Al-Wasit 1/217, and Al-Razi in his interpretation 4/84 on the authority of Ibn Abbas, may Allah be pleased with them both. (2) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/265. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/214. (4) Al-Muhtasab by Ibn Jinni 1/112, and The Anomalous Recitations by Ibn Khalawayh p. 9. (5) I'rab al-Qur'an 1/265.

सूरा अल-बक़रह: आयत 133 412

और उन्होंने पूजे जाने वालों के लिए "मा" (क्या) शब्द का प्रयोग किया, और "मन" (कौन) नहीं कहा, क्योंकि वह उनका परीक्षण करना चाहते थे। यदि उन्होंने "मन" कहा होता, तो उनका उद्देश्य यह देखना होता कि उनमें से कौन मार्गदर्शन प्राप्त है, लेकिन वह केवल उन्हें परखना चाहते थे, इसलिए उन्होंने "मा" कहा। साथ ही, अल्लाह के अलावा पूजी जाने वाली प्रसिद्ध चीज़ें निर्जीव हैं, जैसे मूर्तियाँ, आग, सूरज और पत्थर, इसलिए उन्होंने इनके बारे में पूछा कि वे क्या पूजते हैं।

"मेरे बाद" का अर्थ है: मेरी मृत्यु के बाद। यह वर्णित है कि जब याकूब को विकल्प दिया गया, जैसा कि नबियों को दिया जाता है, तो उन्होंने मृत्यु को चुना और कहा: मुझे समय दें ताकि मैं अपने बेटों और अपने परिवार को वसीयत कर सकूँ। इसलिए उन्होंने उन्हें इकट्ठा किया और उनसे यह कहा, और उन्होंने मार्गदर्शन पाया और कहा: "हम आपके ईश्वर की पूजा करेंगे" (आयत)। उन्होंने उन्हें धर्म पर अपनी अडिगता और अल्लाह सर्वशक्तिमान के बारे में अपना ज्ञान दिखाया (1)।

अल्लाह तआला का कथन: "उन्होंने कहा, 'हम आपके ईश्वर और आपके पूर्वजों, इब्राहीम और इस्माईल और इसहाक के ईश्वर की पूजा करेंगे'।" "इब्राहीम, इस्माईल और इसहाक" बदल (apposite) होने के कारण मजरूर (genitive case) में हैं, और वे मुनसरिफ नहीं हैं क्योंकि वे गैर-अरबी नाम हैं। अल-किसाई ने कहा: यदि आप चाहें, तो "इसहाक" को मुनसरिफ बना सकते हैं और इसे "अस-सहक़" (कुचलना) से ले सकते हैं, और "याकूब" को मुनसरिफ बना सकते हैं और इसे "अत-तैर" (पक्षी) से ले सकते हैं (2)।

अल्लाह ने चाचा और दादा प्रत्येक को "पिता" कहा, और दादा के ज़िक्र से शुरुआत की, फिर इस्माईल चाचा का, क्योंकि वह इसहाक से बड़े हैं। और "इलाहन" (एक ईश्वर), "इलाहक" (आपके ईश्वर) का बदल है, एक मारिफ़ा (definite) के स्थान पर नकिरा (indefinite) का बदल, और इसे एकत्व के गुण के लाभ के लिए दोहराया। कहा गया है कि: "इलाहन" 'हाल' (state) है। इब्न अतिया ने कहा (3): यह एक अच्छी बात है, क्योंकि उद्देश्य एकत्व की स्थिति को स्थापित करना है।

अल-हसन, यहया बिन यअमुर, अल-जहदूरी, और अबू रजा अल-उतारिदी ने पढ़ा है: "और आपके पिता के ईश्वर" (4), और इसके दो पहलू हैं:

पहला: यह कि यह एकवचन है, और उनका इरादा केवल इब्राहीम से था, और उन्होंने इस्माईल को पिता बनाना नापसंद किया क्योंकि वह चाचा हैं। अल-नहहास ने कहा (5): यह आवश्यक नहीं है; क्योंकि अरब लोग चाचा को पिता कहते हैं।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/213-214, और अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/217 में रिपोर्ट का उल्लेख किया है, और अल-राज़ी ने अपनी व्याख्या 4/84 में इब्न अब्बास (रज़ि.) से उल्लेख किया है। (2) इ'राब अल-कुरान अल-नहहास द्वारा 1/265। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/214। (4) इब्न जिन्नी द्वारा अल-मुह्तसब 1/112, और इब्न खलवैह द्वारा असामान्य पाठ पृ. 9। (5) इ'राब अल-कुरान 1/265।

سورہ البقرہ: آیت ۱۳۳ ٤١٢

اور انہوں نے معبود کے لیے لفظ "ما" (کیا) استعمال کیا، اور "من" (کون) نہیں کہا، کیونکہ وہ ان کا امتحان لینا چاہتے تھے۔ اگر وہ "من" کہتے تو ان کا مقصد یہ دیکھنا ہوتا کہ ان میں سے کون ہدایت یافتہ ہے، لیکن وہ صرف ان کا تجربہ کرنا چاہتے تھے، اس لیے انہوں نے "ما" کہا۔ نیز، اللہ کے علاوہ معروف معبودات جمادات (بے جان چیزیں) ہیں، جیسے بت، آگ، سورج اور پتھر، چنانچہ انہوں نے ان کے بارے میں دریافت کیا کہ وہ کیا پوجتے ہیں۔

"میرے بعد" کا مطلب ہے: میری موت کے بعد۔ روایت ہے کہ حضرت یعقوب علیہ السلام کو جب اختیار دیا گیا، جیسے کہ انبیاء کو دیا جاتا ہے، تو انہوں نے موت کو پسند کیا اور کہا: مجھے مہلت دو تاکہ میں اپنے بیٹوں اور اپنے گھر والوں کو وصیت کر سکوں۔ چنانچہ انہوں نے انہیں جمع کیا اور ان سے یہ بات کہی، تو وہ ہدایت پا گئے اور کہا: "ہم آپ کے الٰہ کی عبادت کریں گے" (آیت)۔ انہوں نے انہیں دین پر اپنی ثابت قدمی اور اللہ تعالیٰ کی معرفت دکھائی (۱)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: "انہوں نے کہا ہم آپ کے معبود اور آپ کے باپ دادا ابراہیم، اسماعیل اور اسحاق کے معبود کی عبادت کریں گے"۔ "ابراہیم، اسماعیل اور اسحاق" بدل کی وجہ سے جر کی حالت میں ہیں، اور یہ غیر منصرف ہیں کیونکہ یہ عجمی (غیر عربی) نام ہیں۔ کسائی نے کہا: اگر تم چاہو تو "اسحاق" کو منصرف بنا لو اور اسے "سحق" (رگڑنا/کچلنا) سے نکلا ہوا مانو، اور "یعقوب" کو منصرف بنا لو اور اسے "طیر" (پرندہ) سے نکلا ہوا مانو (۲)۔

اور اللہ نے چچا اور دادا ہر ایک کو "باپ" کا نام دیا، اور دادا کے ذکر سے ابتدا کی، پھر اسماعیل چچا کا ذکر کیا؛ کیونکہ وہ اسحاق سے بڑے ہیں۔ اور "الٰهاً" (ایک معبود)، "الٰهک" (آپ کا معبود) سے بدل ہے، معرفہ کے بدلے نکرہ کا بدل، اور اسے وحدانیت کی صفت کے فائدے کے لیے

دہرایا گیا۔ اور کہا گیا کہ: "الٰهاً" حال ہے۔ ابن عطیہ نے کہا (۳): یہ ایک اچھی بات ہے، کیونکہ مقصد وحدانیت کی حالت کا اثبات ہے۔

اور حسن، یحییٰ بن یعمر، جحدری، اور ابو رجاء عطاردی نے پڑھا: "اور آپ کے باپ کا معبود" (۴) اور اس میں دو پہلو ہیں:

پہلا: یہ کہ یہ واحد ہو، اور اس سے مراد اکیلے ابراہیم ہوں، اور انہوں نے اسماعیل کو باپ قرار دینا ناپسند کیا کیونکہ وہ چچا ہیں۔ نحاس نے کہا (۵): یہ ضروری نہیں ہے؛ کیونکہ عرب چچا کو باپ کہتے ہیں۔

(۱) المحرر الوجیز ۲۱۳/۱-۲۱٤، اور واحدی نے الوسیط ۲۱۷/۱ میں یہ روایت ذکر کی ہے، اور رازی نے اپنی تفسیر ۸٤/٤ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما سے۔ (۲) اعراب القرآن للنحاس ۲٦٥/۱۔ (۳) المحرر الوجیز ۲۱٤/۱۔ (۴) المحتسب لابن جنی ۱۱۲/۱، والقراءات الشاذة لابن خالویہ ص ۹۔ (۵) اعراب القرآن ۲٦٥/۱۔

413 Surat Al-Baqarah: Verse 134

Second: According to Sibawayh's school of thought (1), "Abika" is a sound plural (Jam' Salamah). Sibawayh narrated: "Ab", "Abun", and "Abin", as the poet said: "So we said: Submit, for we are your brothers (2)"

And another said: "When our voices became clear, they wept and sacrificed for us with the fathers (3)"

The Almighty's saying: {And to Him we are submissive} is a subject and predicate, and it could be in the position of a state (Hal), and the operating factor is: "we worship" (4).

The Almighty's saying: {That was a nation that has passed away. For it is what it earned, and for you is what you have earned. And you will not be asked about what they used to do. 134}

The Almighty's saying: {That was a nation that has passed away} "Tilka" (That) is a subject, and "Ummatun" (a nation) is a predicate. "Qad khalat" (has passed away) is an attribute (Na't) for "Ummatun". If you wish, it could be the predicate of the subject, and "Ummatun" would be an appositive (Badal) for "Tilka". {For it is what it earned} "Ma" (what) is in the position of nominative as a subject, or as an attribute according to the Kufan grammarians' view. {And for you is what you have earned} is like it (5), meaning of good and evil (6). This is evidence that deeds and acquisitions are attributed to the servant, even though God Almighty empowered him for that; if it is good, then by His grace, and if it is evil, then by His justice. This is the doctrine of the People of the Sunnah (Ahl al-Sunnah), and verses in the Quran with this meaning are many. So the servant is an acquirer of his actions, in the sense that a power was created for him concurrent with the action, by which he realizes the difference between the movement of choice and the movement of a tremor, for example, and that empowerment is the basis of religious obligation (Taklif). And the Jabriyya (determinists) said...

(1) Al-Kitab 3/405. (2) Said by Al-Abbas bin Mirdas, and the second half of the verse: "For the chests have been cleared of grudges," and it is in his Diwan p. 52, in Al-Muqtadab 2/174, and Al-Khizana 4/478. (3) It is in Al-Kitab 3/405, Al-Muhtasib 1/112, Al-Muqtadab 2/174, and Al-Khasais 1/346 without attribution. Al-Sirafi attributed it in Sharrh Abyat Sibawayh 2/284, and Al-Baghdadi in Khizanat al-Adab 4/474 to Ziyad bin

Wasil Al-Aslami. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/214. (5) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/266. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/214.

४१३ सूरा अल-बकरा: आयत १३४

दूसरा: सिबावैह के मत के अनुसार (१) "अबीका" एक स्वस्थ बहुवचन (जमा सलामा) है। सिबावैह ने उल्लेख किया है: "अब्ब", "अब्बून", और "अब्बीन", जैसा कि कवि ने कहा: "तो हमने कहा: आत्मसमर्पण करो, क्योंकि हम तुम्हारे भाई हैं (२)"

और दूसरे ने कहा: "जब हमारी आवाज़ें स्पष्ट हुईं, तो वे रोए और पिताओं के साथ हमारे लिए बलिदान दिया (३)"

सर्वशक्तिमान का कथन: {और हम उसी के प्रति समर्पित हैं} एक उद्देश्य (मुबत्तदा) और विधेय (खबर) है, और यह संभव है कि यह 'हाल' (स्थिति) की स्थिति में हो, और कार्य करने वाला कारक है: "हम इबादत करते हैं" (४)।

सर्वशक्तिमान का कथन: {वह एक उम्मत (समुदाय) थी जो गुज़र चुकी। उसके लिए वह है जो उसने कमाया और तुम्हारे लिए वह है जो तुमने कमाया। और तुम से उनके कर्मों के बारे में नहीं पूछा जाएगा। १३४}

सर्वशक्तिमान का कथन: {वह एक उम्मत थी जो गुज़र चुकी} "तिल्का" (वह) मुबत्तदा है, और "उम्मतुन" (एक उम्मत) खबर है। "क़द खलत" (गुज़र चुकी) "उम्मतुन" के लिए एक विशेषण (नअत) है। यदि आप चाहें, तो यह मुबत्तदा की खबर हो सकती है, और "उम्मतुन" "तिल्का" के लिए एक 'बदल' (समानाधिकरण) होगा। {उसके लिए वह है जो उसने कमाया} "मा" (जो) मुबत्तदा के रूप में रफ़अ (कर्ता कारक) की स्थिति में है, या कूफ़ियों के मत के अनुसार विशेषण के रूप में। {और तुम्हारे लिए वह है जो तुमने कमाया} भी उसी की तरह है (५), जिसका अर्थ है अच्छाई और बुराई से (६)। इसमें इस बात का प्रमाण है कि कर्म और अर्जन बंदे की ओर मंसूब (जुड़े) किए जाते हैं, भले ही अल्लाह तआला ने उसे उस पर सक्षम बनाया हो; यदि वह अच्छा है तो उसके अनुग्रह से, और यदि वह बुरा है तो उसके न्याय से। यह सुन्नत संप्रदाय (अहल-ए-सुन्नत) का मत है, और कुरान में इस अर्थ की कई आयतें हैं। अतः बंदा अपने कर्मों का अर्जन करने वाला है, इस अर्थ में कि उसके लिए कर्म के साथ-साथ एक शक्ति उत्पन्न की गई है, जिसके द्वारा वह उदाहरण के लिए स्वैच्छिक गति और कंपन (कंपकंपी) की गति के बीच अंतर को समझता है, और वह सक्षमता ही धार्मिक दायित्व (तकलीफ) का आधार है। और जब्रिया (भाग्यवादी) ने कहा...

(१) अल-किताब ३/४०५। (२) इसके कवि अल-अब्बास बिन मिरदास हैं, और शेर का दूसरा भाग है: "सीने द्वेष से मुक्त हो गए हैं," और यह उनके दीवान पृष्ठ ५२, अल-मुक्तदब २/१७४, और अल-खिजाना ४/४७८ में है। (३) यह अल-किताब ३/४०५, अल-मुहतासिब १/११२, अल-मुक्तदब २/१७४, और अल-खसाइस १/३४६ में बिना किसी श्रेय के है। अल-सीराफी ने इसे शरह अबयात सिबावैह २/२८४ में श्रेय दिया है, और अल-बगदादी ने खिजानात अल-अदब ४/४७४ में जियाद बिन वासिल अल-असलामी को दिया है। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/२१४। (५) नहस द्वारा इराब अल-कुरान १/२६६। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज १/२१४।

۴۱۳ سورة البقرہ: آیت ۱۳۴

دوسرا: سیبویہ کے مذہب (۱) کے مطابق «أبيك» جمعِ سالم ہو، سیبویہ نے حکایت کی ہے: «أبٌ» اور «أبون» اور «أبين»، جیسا کہ شاعر نے کہا: فقلنا أسلموا إنا أخوكم (۲) (پس ہم نے کہا اسلام لے آؤ، بے شک ہم تمہارے بھائی ہیں)

اور دوسرے نے کہا: فلما تبين أصواتنا بكين وفدينا بالأبينا (۳) (جب ہماری آوازیں واضح ہوئیں تو وہ رو پڑیں اور انہوں نے باپوں کے ذریعے ہمارا فدیہ دیا)

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ﴾ مبتدا اور خبر ہے، اور احتمال ہے کہ یہ حال کے محل میں ہو، اور عامل «نعبد» ہے (۴)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَا كَسَبْتُمْ وَلَا تُسْأَلُونَ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ ١٣٤﴾۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ﴾ میں «تلك» مبتدا ہے، اور «أمة» خبر ہے، «قَدْ خَلَتْ» صفت (نعت) ہے «أمة» کے لیے۔ اور اگر تم چاہو تو یہ مبتدا کی خبر ہو سکتی ہے، اور «أمة» «تلك» سے بدل ہو گا۔ ﴿لَهَا مَا كَسَبَتْ﴾ میں «ما» ابتدا کی وجہ سے محلِ رفع میں ہے، یا کوفیوں کے قول کے مطابق صفت کی بنا پر ا ﴿وَلَكُمْ مَا كَسَبْتُمْ﴾ بھی اسی طرح ہے (۵)، اس سے مراد خیر و شر ہے (۶)۔ اور اس میں اس بات کی دلیل ہے کہ بندے کی طرف اعمال اور کسب کی نسبت کی جاتی ہے، اگرچہ اللہ تعالیٰ نے اسے اس پر قدرت عطا کی ہے، اگر وہ خیر ہو تو اس کے فضل سے ہے، اور اگر شر ہو تو اس کے عدل سے، اور یہی اہل سنت کا مذہب ہے، اور قرآن میں اس معنی کی آیات کثرت سے ہیں۔ پس بندہ اپنے افعال کا کاسب ہے، اس معنی میں کہ اس کے لیے فعل کے ساتھ ہی ایک ایسی قدرت پیدا کی گئی ہے، جس کے ذریعے وہ مثلاً اختیاری حرکت اور لرزہ (رعشہ) کی

حرکت کے درمیان فرق محسوس کرتا ہے، اور وہی تمکن تکلیف (شرعی ذمہ داری) کا مدار ہے۔

اور جبریہ نے کہا...

(۱) الکتاب ۳ / ۴۰۵۔ (۲) اس کے قائل العباس بن مرداس ہیں، اور شعر کا دوسرا مصرعہ ہے: «فقد برئت من الإحن الصدور»، اور یہ ان کے دیوان ص ۵۲، المقتضب ۲ / ۱۷۴، اور الخزانہ ۴ / ۴۷۸ میں ہے۔ (۳) یہ الکتاب ۳/ ۴۰۵، المحتسب ۱/ ۱۱۲، المقتضب ۲ / ۱۷۴، اور الخصائص ۱ / ۳۴۶ میں بغیر کسی نسبت کے ہے، اور سیرافی نے شرح ابیات سیبویہ ۲/ ۲۸۴ میں اس کی نسبت کی ہے، اور بغدادی نے خزانہ الادب ۴ / ۴۷۴ میں زیاد بن واصل الاسلمی کی طرف منسوب کیا ہے۔ (۴) المحرر الوجیز ۱ / ۲۱۴۔ (۵) إعراب القرآن للنحاس ۱ / ۲۶۶۔ (۶) المحرر الوجیز ۱ / ۲۱۴|

Surah Al-Baqarah: Verse 135 414

...by denying the servant's acquisition, and that he is like a plant moved by the winds. The Qadariyah and Mu'tazilah stated the opposite of these two opinions, saying that the servant creates his own actions. The Almighty's saying: {And you will not be asked about what they used to do} means: No one will be held accountable for the sin of another, similar to the Almighty's saying: {And no bearer of burdens will bear the burden of another} [Al-An'am: 164], meaning: no carrying soul carries the weight of another, and this will be discussed later. The Almighty's saying: {They say, "Be Jews or Christians [so] you will be guided." Say, "Rather, [we follow] the religion of Abraham, inclining toward truth, and he was not of the polytheists."} The Almighty's saying: {They say, "Be Jews or Christians [so] you will be guided."} Each group called to what they were upon, so Allah Almighty refuted them, saying: {Rather, [we follow] the religion...} meaning: Say, O Muhammad: Rather, we follow the religion [of Abraham]. For this reason, "religion" (milla) is in the accusative case (nasb). It was also said: The meaning is: Rather, we are guided by the religion of Abraham, and when the preposition was omitted, it became accusative (1). Al-A'raj and Ibn Abi Ablah recited: "Rather, [it is] the religion" (bal millatun), in the nominative case (raf') (2), and the estimation is: Rather, guidance is the religion, or our religion is the religion of Abraham. And "inclining toward truth" (hanifan) means turning away from disliked religions toward the truth, the religion of Abraham, and it is in the position of an accusative of state (hal), as said by Al-Zajjaj. That is: Rather, we follow the religion of Abraham in this state. Ali ibn Sulayman (3) said: It is in the accusative case due to an implied "I mean," and the state (hal) interpretation is incorrect; it is not permissible [to say] "The boy of Hind came to me fast (in feminine form)" (4). Abraham was called "Hanif" because he turned (hanafa) toward the religion of Allah, which is Islam. "Hanif" means "inclination," and from it comes a "hanfa'" woman and an "ahnaf" man, who is one whose feet each tilt toward the other with their toes (5). The mother of Al-Ahnaf said:

(1) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/194. (2) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 10, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/214. (3) Abu al-Hasan, Al-Akhfash al-Saghir. (4) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/266. (5) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/194.

सूरह अल-बकरा: आयत 135 414

...दास के उपार्जन (acquisition) का खंडन करके और वह उस पौधे के समान है जिसे हवाएं चलाती हैं। क़दरिया और मुअतज़िला ने इन दो मतों के विपरीत कहा कि दास अपने कार्यों का स्वयं निर्माण करता है। अल्लाह तआला का कथन: {और तुमसे उनके कार्यों के बारे में नहीं पूछा जाएगा} का अर्थ है: किसी को दूसरे के पाप के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जाएगा, जैसे अल्लाह तआला का कथन है: {और कोई बोझ उठाने वाला दूसरे का बोझ नहीं उठाएगा} [अल-अनाम: 164], अर्थात्: कोई बोझ उठाने वाली आत्मा दूसरे का भार नहीं उठाएगी, और यह आगे आएगा। अल्लाह तआला का कथन: {वे कहते हैं, "यहूदी या ईसाई बन जाओ [तो] तुम मार्गदर्शन पाओगे।" कहो, "बल्कि, [हम] इब्राहीम के धर्म [का अनुसरण करते हैं], जो सत्य की ओर झुका हुआ था, और वह बहुदेववादियों में से नहीं था।"} अल्लाह तआला का कथन: {वे कहते हैं, "यहूदी या ईसाई बन जाओ [तो] तुम मार्गदर्शन पाओगे।"} प्रत्येक समूह ने उसी की ओर बुलाया जिस पर वे थे, तो अल्लाह तआला ने उनका खंडन किया और कहा: {बल्कि धर्म...} अर्थात्: ऐ मुहम्मद कहो: बल्कि हम इब्राहीम के धर्म का पालन करते हैं। इसी कारण "धर्म" (मिल्लत) शब्द कर्म कारक (नस्ब) में है। यह भी कहा गया है: इसका अर्थ है: बल्कि हम इब्राहीम के धर्म द्वारा मार्गदर्शन प्राप्त करते हैं, और जब पूर्वसर्ग (preposition) हटा दिया गया, तो यह कर्म कारक बन गया (1)। अल-अ'रज और इब्न अबी अबलाह ने इसे "बल मिल्लतुन" (बल्कि धर्म है) के रूप में कर्ता कारक (रफ़अ) में पढ़ा है (2), और इसका अनुमान है: बल्कि मार्गदर्शन ही धर्म है, या हमारा धर्म इब्राहीम का धर्म है। और "हनीफ़न" (सत्य की ओर झुका हुआ) का अर्थ है नापसंद धर्मों से विमुख होकर सत्य की ओर मुड़ना, जो इब्राहीम का धर्म है, और यह 'हाल' (अवस्था सूचक) के स्थान पर कर्म कारक में है, जैसा कि अज़्-ज़ज्जाज ने कहा है। अर्थात्: बल्कि हम इस अवस्था में इब्राहीम के धर्म का पालन करते हैं। अली बिन सुलेमान (3) ने कहा: यह "मैं अर्थ लेता हूँ" (आनी) पर आधारित कर्म कारक है, और 'हाल' की व्याख्या गलत है; यह कहना जायज नहीं है कि "हिन्द का लड़का मेरे पास जल्दी (स्त्रीलिंग रूप में) आया" (4)। इब्राहीम को "हनीफ़" कहा गया क्योंकि वे अल्लाह के धर्म की ओर झुक गए थे, जो इस्लाम है। "हनफ़" का अर्थ है "झुकाव", और इसी से "हन्फ़ा" स्त्री और "अहनफ़" पुरुष शब्द बने हैं, जो वह व्यक्ति है जिसके दोनों पैर की उंगलियाँ एक-दूसरे की ओर झुकी होती हैं (5)। अल-अहनफ़ की माँ ने कहा:

(1) अल-नुकात वल-उयून 1/194। (2) अल-क़िरात अल-शाज़ा पृ. 10, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/214। (3) अबू अल-हसन, अल-अख़फ़श अल-सगीर। (4) इराब अल-क़ुरआन लिल-नह़्ह़ास 1/266। (5) अल-नुकात वल-उयून 1/194।

سورہ البقرہ: آیت 135 414

...بندے کے اکتساب کی نفی کرتے ہوئے، اور یہ کہ وہ اس پودے کی طرح ہے جسے ہوائیں چلاتی ہیں۔ قدریہ اور معتزلہ نے ان دو اقوال کے خلاف کہا ہے کہ بندہ اپنے افعال خود تخلیق کرتا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَا تُسْأَلُونَ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ﴾ یعنی: کسی کا دوسرے کے گناہ پر مواخذہ نہیں کیا جائے گا، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَلَا تَزِرُ وَازِرَةٌ وِزْرَ أُخْرَى﴾ [الانعام: 164] یعنی: کوئی بوجھ اٹھانے والی جان دوسرے کا بوجھ نہیں اٹھائے گی، اور یہ آگے آئے گا۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَقَالُوا كُونُوا هُودًا أَوْ نَصَارَى تَهْتَدُوا قُلْ بَلْ مِلَّةَ إِبْرَاهِمَ حَنِيفًا وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِينَ﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَقَالُوا كُونُوا هُودًا أَوْ نَصَارَى تَهْتَدُوا﴾ ہر فرقے نے اس چیز کی طرف بلایا جس پر وہ تھے، تو اللہ تعالیٰ نے ان پر رد کرتے ہوئے فرمایا: ﴿بَلْ مِلَّةَ﴾ یعنی: اے محمد! کہو: بلکہ ہم ملتِ ابراہیمی کی پیروی کرتے ہیں، اسی لیے لفظ "ملت" منسوب (نصب کی حالت میں) ہے۔ اور کہا گیا ہے: اس کا معنی ہے: بلکہ ہم ملتِ ابراہیم کے ذریعے ہدایت پاتے ہیں، پھر جب حرفِ جار حذف کر دیا گیا تو یہ منسوب ہو گیا (1)۔ اور الاعرج اور ابن ابی عبلہ نے "بَلْ مِلَّةٌ" رفع (پیش) کے ساتھ پڑھا ہے (2)، اور اس کی تقدیر (پوشیدہ عبارت) یہ ہے: بلکہ ہدایت ملت ہے، یا ہماری ملت دینِ ابراہیم ہے۔ اور لفظ "حنیفاً" کا مطلب ہے ناپسندیدہ ادیان سے منہ موڑ کر حق یعنی دینِ ابراہیم کی طرف مائل ہونا، اور یہ "حال" ہونے کی بنا پر نصب کی جگہ پر ہے، جیسا کہ الزجاج نے کہا ہے۔ یعنی: بلکہ ہم اس حال میں ملتِ ابراہیم کی پیروی کرتے ہیں۔ اور علی بن سلیمان (3) نے کہا: یہ "أعني" (یعنی میری مراد ہے) پر منسوب ہے، اور "حال" قرار دینا غلط ہے، یہ جائز نہیں کہ کہا جائے "جاءني غلام هند مسرعة" (ہند کا غلام میرے پاس تیزی سے (مونث صیغے میں) آیا) (4)۔ اور ابراہیم علیہ السلام کا نام "حنیف" اس لیے رکھا گیا کیونکہ وہ اللہ کے دین یعنی اسلام کی طرف مائل ہوئے

تھے۔ اور "حنف" کا مطلب ہے مائل ہونا، اور اسی سے "رجل حنفاء" (ٹیڑھے پاؤں والی عورت) اور "رجل أحنف" (ٹیڑھے پاؤں والا مرد) ہے، اور یہ وہ شخص ہے جس کے دونوں پاؤں کی انگلیاں ایک دوسرے کی طرف مائل ہوں (5)۔ احنف کی ماں نے کہا:

(1) النکت والعیون 1/ 194۔ (2) القراءات الشاذة ص 10، اور المحرر الوجیز 1/ 214۔ (3) ابو الحسن، الاخفش الصغیر۔ (4) اعراب القرآن للنحاس 1/ 266۔ (5) النکت والعیون 1/ 194۔

415 Surah Al-Baqarah: Ayah 136

By Allah, were it not for a slight curvature in his leg, there would be none among your youths like him.(1) And the poet said(2): When the evening shifts the shadow, you see it as a 'Hanif' (turning towards), and at the horn of the morning it turns towards the East (like Christians). Meaning: the chameleon; it faces the Qibla (direction of prayer) in the evening, and the East in the morning, which is the Qibla of the Christians. A group of people said: 'Al-Hanaf' means uprightness, so the religion of Abraham was called 'Hanif' for its uprightness. And the person with crooked legs was called 'Ahnaf', as an optimistic expression for uprightness, just as a person bitten by a snake is called 'Salim' (safe/healthy), and a perilous desert is called 'Mafazah' (place of safety/success)(3), according to the majority of them. The Almighty's saying: {Say, [O believers], "We have believed in Allah and what has been revealed to us and what has been revealed to Abraham and Ishmael and Isaac and Jacob and the Descendants and what was given to Moses and Jesus and what was given to the prophets from their Lord. We make no distinction between any of them, and we are Muslims [in submission] to Him." 136} The Almighty's saying: {Say, "We have believed in Allah"}. Al-Bukhari(4) narrated from Abu Huraira, may Allah be pleased with him, who said: The People of the Book used to read the Torah in Hebrew and explain it in Arabic to the people of Islam. So the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Do not believe the People of the Book nor disbelieve them, but say: {We have believed in Allah and what has been revealed...}" to the end of the verse. Muhammad ibn Sirin said: If it is said to you: Are you a believer? Say: {We have believed in Allah and what has been revealed to us and what has been revealed to Abraham, Ishmael, and Isaac} (5) to the end of the verse.

---

(1) The verse is mentioned in 'Ma'ani al-Qur'an' by al-Zajjaj 1/214, 'Tafsir al-Razi' 4/93, and 'Zad al-Masir' 1/150 with an addition after the first half: And a thinness in his leg from his leanness. It is in the author's wording in 'Majma' al-Bayan' 1/486, 'al-Lisan' (h-n-f), 'al-Durr al-Masun' 2/137, and 'al-Lubab' 2/517. (2) He is Dhu al-Rumma, and the verse is in his Diwan 2/632. (3) 'al-Nukat wa al-'Uyun' 1/194. (4) Number (4485). (5) Narrated by Abdullah ibn Ahmad in the Book of Sunnah (648).

415 सूरा अल-बकराह: आयत 136

अल्लाह की कसम, अगर उसके पैर में थोड़ी सी वक्रता (हनफ़) न होती, तो तुम्हारे नौजवानों में उसके जैसा कोई नहीं होता।(1) और कवि ने कहा(2): जब शाम की छाया बदलती है, तो आप उसे 'हनीफ़' (मुड़ने वाला) के रूप में देखते हैं, और सुबह की किरण के समय वह पूर्व की ओर मुड़ जाता है (ईसाइयों की तरह)। अर्थ: गिरगिट; वह शाम को किबला की ओर मुँह करता है, और सुबह पूर्व की ओर, जो ईसाइयों का किबला है। एक समूह ने कहा: 'अल-हनफ़' का अर्थ है सीधापन, इसलिए इब्राहीम के धर्म को उसकी सीधापन के कारण 'हनीफ़' कहा गया। और टेढ़े पैर वाले व्यक्ति को 'अहनफ़' कहा गया, सीधेपन की आशा के रूप में (तफ़ाओल), जैसे सांप द्वारा काटे गए व्यक्ति को 'सलीम' (स्वस्थ) कहा जाता है, और विनाशकारी रेगिस्तान को 'मफ़ाज़ा' (सफलता का स्थान) कहा जाता है(3), उनमें से अधिकांश के अनुसार। अल्लाह तआला का कथन: {कहो, "हम अल्लाह पर और जो हम पर उतारा गया और जो इब्राहीम, इसमाईल, इसहाक, याकूब और उनकी संतान पर उतारा गया, और जो मूसा और ईसा को दिया गया और जो नबियों को उनके रब की ओर से दिया गया, उन सब पर ईमान लाए। हम उनमें से किसी के बीच अंतर नहीं करते और हम उसी के आज्ञाकारी हैं।" 136} अल्लाह तआला का कथन: {कहो, "हम अल्लाह पर ईमान लाए" }। बुखारी(4) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: किताब वाले (यहूदी और ईसाई) तौरात इब्रानी (हिब्रू) भाषा में पढ़ते थे और मुसलमानों को अरबी में उसका अर्थ समझाते थे। तो अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "किताब वालों की न तो पुष्टि करो और न ही उन्हें झुठलाओ, बल्कि कहो: {हम अल्लाह पर और जो उतारा गया... ईमान लाए}" आयत के अंत तक। मुहम्मद बिन सीरीन ने कहा: यदि आपसे कहा जाए: क्या आप आस्तिक (मोमिन) हैं? तो कहें: {हम अल्लाह पर और जो हम पर उतारा गया और जो इब्राहीम, इसमाईल और इसहाक पर उतारा गया, ईमान लाए}(5) आयत के अंत तक।

---

(1) यह शेर अल-ज़ज्जाज की 'मआनी अल-क़ुरआन' 1/214, 'तफ़सीर अल-राज़ी' 4/93 और 'ज़ाद अल-मसीर' 1/150 में पहले मिसरे के बाद इस वृद्धि के साथ आया है: और उसके पैर में उसकी दुबलापन के कारण पतलापन है यह लेखक के शब्दों में 'मजमा अल-बयान' 1/486, 'अल-लिसान' (हनफ़), 'अल-दुर अल-मसून' 2/137 और 'अल-लुबाब' 2/517 में है। (2) वह ज़ू अल-रुम्मा है, और शेर उसके दीवान 2/632 में है। (3) 'अल-नुकात वल-उयून' 1/194। (4) संख्या (4485)। (5) इसे अब्दुल्ला बिन अहमद ने सुन्नत की किताब (648) में रिवायत किया है।

415 سورة البقرہ: آیت 136

خدا کی قسم، اگر اس کے پاؤں میں تھوڑا سا کجی (حنف) نہ ہوتی تو تمہارے جوانوں میں اس جیسا کوئی نہ ہوتا۔(1) اور شاعر نے کہا(2): جب شام کا سایہ بدلتا ہے تو تم اسے 'حنیف' (مائل ہونے والا) دیکھتے ہو، اور صبح کے وقت وہ مشرق کی طرف مائل ہوتا ہے (عیسائیوں کی طرح)۔ یعنی: گرگٹ؛ وہ شام کو قبلہ کی طرف رخ کرتا ہے، اور صبح مشرق کی طرف، جو عیسائیوں کا قبلہ ہے۔ ایک گروہ نے کہا: 'الحنف' کا معنی استقامت (سیدھا ہونا) ہے، چنانچہ ابراہیم علیہ السلام کے دین کو اس کی استقامت کی وجہ سے 'حنیف' کہا گیا۔ اور ٹیڑھے پاؤں والے کو 'احنف' کہا گیا، استقامت کے تفاؤل (نیک شگون) کے طور پر، جیسے سانپ کے ڈسے ہوئے کو 'سلیم' (صحیح و سالم) کہا جاتا ہے، اور ہلاکت کی جگہ (صحرا) کو 'مفازہ' (کامیابی کی جگہ) کہا جاتا ہے(3)، ان میں سے اکثر کے قول کے مطابق۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: {کہہ دو: "ہم اللہ پر ایمان لائے اور اس پر جو ہماری طرف نازل کیا گیا اور جو ابراہیم، اسماعیل، اسحاق، یعقوب اور ان کی اولاد پر نازل کیا گیا، اور جو موسیٰ اور عیسیٰ کو دیا گیا اور جو انبیاء کو ان کے رب کی طرف سے دیا گیا۔ ہم ان میں سے کسی کے درمیان فرق نہیں کرتے اور ہم اسی کے فرمانبردار ہیں۔" 136} اللہ تعالیٰ کا فرمان: {کہہ دو: "ہم اللہ پر ایمان لائے"}۔ بخاری(4) نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: اہل کتاب تورات کو عبرانی میں پڑھتے تھے اور مسلمانوں کے لیے عربی میں اس کی تفسیر کرتے تھے، تو رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "اہل کتاب کی نہ تصدیق کرو اور نہ انہیں جھٹلاؤ، بلکہ کہو: {ہم اللہ پر اور جو نازل کیا گیا... ایمان لائے}" آیت کے آخر تک۔ محمد بن سیرین نے کہا: اگر تم سے کہا جائے: کیا تم مومن ہو؟ تو کہو:

{ہم اللہ پر ایمان لائے اور اس پر جو ہماری طرف نازل کیا گیا اور جو ابراہیم، اسماعیل اور اسحاق پر نازل کیا گیا}(5) آیت کے آخر تک۔

---

(1) یہ شعر زجاج کی 'معانی القرآن' 1/214، 'تفسیر رازی' 4/93 اور 'زاد المسیر' 1/150 میں پہلے مصرعے کے بعد اس اضافے کے ساتھ وارد ہوا ہے: اور اس کی پنڈلی میں اس کے لاغرے پن کی وجہ سے باریکی ہے یہ مصنف کے الفاظ میں 'مجمع البیان' 1/486، 'اللسان' (حنف)، 'الدر المصون' 2/137 اور 'اللباب' 2/517 میں ہے۔ (2) وہ ذوالرمہ ہے، اور شعر اس کے دیوان 2/632 میں ہے۔ (3) 'النکت والعیون' 1/194۔ (4) نمبر (4485)۔ (5) اسے عبداللہ بن احمد نے 'کتاب السنہ' (648) میں روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 136 416

Most of the predecessors (Salaf) disliked for a man to say: "I am a true believer" (1), and its explanation will come in "Al-Anfal", God willing (2).

Some of the predecessors were asked about a man who was asked: "Do you believe in so-and-so the prophet?" and he was named with a name he did not recognize. If he said: "Yes," perhaps he was not a prophet, thus he would have testified to prophethood for a non-prophet. If he said: "No," perhaps he was a prophet, thus he would have denied one of the prophets. So what should he do? He said: He should say: "If he was a prophet, then I have believed in him."

The address in this verse is to this Ummah (nation), teaching them faith (3). Ibn Abbas said: A group of Jews came to the Prophet ﷺ and asked him about which prophets he believes in, so the verse was revealed. When Jesus was mentioned, they said: "We do not believe in Jesus, nor in whoever believed in him" (4).

His Almighty's saying: {And what was revealed to us and what was revealed to Abraham and Ishmael and Isaac and Jacob and the Descendants}: The plural of Ibrahim is: Brahim, and Ismail is: Smail, as said by Al-Khalil and Sibawayh, and as said by the Kufans, and they narrated: Brahimah and Smailah, and they narrated: Brahim and Smacl. Muhammad ibn Yazid said: This is a mistake, because this is not the place for the Hamza to be added, but I say: Abarih and Asami', and it is permissible: Abarih and Asami'. Ahmad ibn Yahya allowed: Brah, as is said in the diminutive form: Burayh.

The plural of Ishaq (Isaac) is: Asahiq, and the Kufans narrated: Asahiqah and Asahiq, and likewise Ya'qub (Jacob) is Ya'aqib, Ya'aqibah, and Ya'aqib.

Al-Nahhas (5) said: As for Isra'il (Israel), we do not know anyone who allows deleting the Hamza from its beginning, but rather it is said: Asaril, and the Kufans narrated: Asarilah and Asaril. The rule in all of this is to make a regular (salim) plural, so it is said: Ibrahimun, Ishaqun, [Isma'ilun] and Ya'qubun, and there is no work (morphological change) in the regular plural.

(1) See the reports transmitted in this regard in "Kitab al-Sunnah" by Abdullah ibn Ahmad (743, 744), and "Al-Sunnah" by al-Khallal (966, 972, 974, 975). (2) At His Almighty's saying: {Those are the believers in truth. For them are ranks with their Lord} [Verse: 8]. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/215. (4) Narrated by at-Tabari 2/596-597 in detail. (5) I'rab al-Qur'an 1/266, and the speech before it and what is between

brackets is from it. Muhammad ibn Yazid: he is Abu al-Abbas al-Mubarrad, and Ahmad ibn Yahya: he is Abu al-Abbas Tha'lab.

सूरह अल-बकरा: आयत 136 416

अधिकांश पूर्वजों (सलफ़) ने एक व्यक्ति के लिए यह कहना नापसंद किया: "मैं सच्चा मोमिन (आस्तिक) हूँ" (1), और इसका स्पष्टीकरण "अल-अनफ़ाल" में आएगा, यदि ईश्वर ने चाहा (2)।

कुछ पूर्ववर्तियों से एक ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछा गया जिससे पूछा गया था: "क्या आप फलां नबी (पैगंबर) पर विश्वास करते हैं?" और उसे ऐसे नाम से पुकारा गया जिसे वह नहीं जानता था। यदि वह कहता: "हाँ," तो शायद वह नबी न हो, इस प्रकार उसने एक गैर-नबी के लिए नबूवत (पैगंबर होने) की गवाही दी होगी। यदि वह कहता: "नहीं," तो शायद वह नबी हो, इस प्रकार उसने नबियों में से एक का खंडन किया होगा। तो उसे क्या करना चाहिए? उन्होंने कहा: उसे कहना चाहिए: "यदि वह नबी थे, तो मैं उन पर ईमान लाया (विश्वास किया)।"

इस आयत में संबोधन इस उम्मा (समुदाय) के लिए है, उन्हें ईमान (विश्वास) सिखाते हुए (3)। इब्न अब्बास ने कहा: यहूदियों का एक समूह पैगंबर ﷺ के पास आया और उनसे पूछा कि वह किन नबियों पर विश्वास करते हैं, तो यह आयत उतरी। जब ईसा (यीशु) का ज़िक्र आया, तो उन्होंने कहा: "हम न तो ईसा पर विश्वास करते हैं और न ही उन पर जिन्होंने उन पर विश्वास किया" (4)।

अल्लाह तआला का कथन: {और जो हमारी ओर उतारा गया और जो इब्राहीम, इस्माईल, इसहाक़, याकूब और उनकी संतान की ओर उतारा गया}: इब्राहीम का बहुवचन है: ब्राहिम, और इस्माईल का: स्माईल, जैसा कि अल-खलील और सिबवैह ने कहा है, और जैसा कि कुफ़ियों ने कहा है, और उन्होंने ब्राहिमह और स्माईलह का वर्णन किया है, और उन्होंने ब्राहिम और स्माएल का भी वर्णन किया है। मुहम्मद बिन यज़ीद ने कहा: यह गलत है, क्योंकि हमज़ा को जोड़ने का यह स्थान नहीं है, लेकिन मैं कहता हूँ: अबारिह और असामिअ, और यह भी जायज़ है: अबारीह और असामीअ। अहमद बिन यह्या ने 'ब्राह' की अनुमति दी, जैसा कि लघु रूप (diminutive) में 'बुरैह' कहा जाता है।

इसहाक़ का बहुवचन है: असाहीक़, और कुफ़ियों ने असाहीक़ह और असाहीक़ का वर्णन किया है, और इसी तरह याकूब के लिए यआक़ीब, यआक़िबह और यआक़िब।

अन-नहहास (5) ने कहा: जहाँ तक इसराईल का सवाल है, हम किसी को नहीं जानते जो इसके आरंभ से हमज़ा को हटाने की अनुमति देता हो, बल्कि इसे असारील कहा जाता है, और कुफ़ियों ने असारीलह और असारील का वर्णन किया है। इस सब में नियम यह है कि नियमित (सालिम) बहुवचन

बनाया जाए, इसलिए कहा जाता है: इब्राहीमून, इसहाक़ून, [इस्माईलून] और याक़ूबून, और नियमित बहुवचन में कोई (रूपात्मक) कार्य नहीं होता है।

(1) इस संबंध में रिवायतों के लिए देखें अब्दुल्ला बिन अहमद की "किताब अल-सुन्ना" (743, 744), और अल-खल्लाल की "अल-सुन्ना" (966, 972, 974, 975)। (2) अल्लाह तआला के इस कथन पर: {वे ही सच्चे मोमिन हैं। उनके लिए उनके रब के पास ऊँचे दर्जे हैं} [आयत: 8]। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/215। (4) इसे अत्तबरी ने 2/596-597 में विस्तार से उद्धृत किया है। (5) इअराब अल-कुरान 1/266, और इससे पहले की बात और कोष्ठकों के बीच की बात उसी से है। मुहम्मद बिन यज़ीद: वह अबू अल-अब्बास अल-मुबर्रद हैं, और अहमद बिन यह्या: वह अबू अल-अब्बास सालब हैं।

سورہ البقرہ: آیت 136 416

اکثر سلف نے اسے ناپسند کیا کہ آدمی کہے: "میں سچا مومن ہوں"(1)، اور اس کا بیان انشاء اللہ «الانفال» میں آئے گا(2)۔

متقدمین میں سے کسی سے ایک ایسے شخص کے بارے میں پوچھا گیا جس سے کہا گیا: "کیا تم فلاں نبی پر ایمان لاتے ہو؟" اور اس کا ایسا نام لیا گیا جسے وہ نہیں جانتا تھا۔ اگر وہ کہتا: "ہاں،" تو شاید وہ نبی نہ ہو، تو اس نے غیر نبی کے لیے نبوت کی گواہی دی، اور اگر وہ کہتا: "نہیں،" تو شاید وہ نبی ہو، تو اس نے انبیاء میں سے ایک نبی کا انکار کر دیا۔ تو وہ کیا کرے؟ انہوں نے کہا: اسے کہنا چاہیے: "اگر وہ نبی تھے، تو میں ان پر ایمان لایا۔"

اس آیت میں خطاب اس امت سے ہے، انہیں ایمان کی تعلیم دی گئی ہے(3)؛ ابن عباس فرماتے ہیں: یہودیوں کی ایک جماعت نبی کریم ﷺ کے پاس آئی، اور آپ سے پوچھا کہ آپ کن انبیاء پر ایمان رکھتے ہیں، تو یہ آیت نازل ہوئی، پھر جب عیسیٰ (علیہ السلام) کا ذکر آیا، تو انہوں نے کہا: "ہم عیسیٰ پر ایمان نہیں لاتے، اور نہ ہی اس پر جو ان پر ایمان لایا"(4)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمَا أُنزِلَ إِلَيْنَا وَمَا أُنزِلَ إِلَى إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَاعِيلَ وَإِسْحَقَ وَيَعْقُوبَ وَالْأَسْبَاطِ﴾: ابراہیم کی جمع: براہیم، اور اسماعیل کی: سماعیل، یہ خلیل اور سیبویہ نے کہا ہے، اور کوفیوں نے بھی یہی کہا ہے، اور انہوں نے براهِمة اور سماعِلة نقل کیا ہے، اور انہوں نے براهِم اور سماعل بھی نقل کیا ہے۔ محمد بن یزید نے کہا: یہ غلط ہے، کیونکہ یہ حمزہ کی زیادتی کا مقام نہیں ہے، لیکن میں کہتا ہوں: ابارِہ اور أسامع، اور اباریہ اور أساميع بھی جائز ہے۔ احمد بن یحییٰ نے براہ کی اجازت دی ہے، جیسا کہ تصغیر میں بَریہ کہا جاتا ہے۔

اور اسحاق کی جمع: أساحيق ہے، اور کوفیوں نے أساحيقة اور أساحيق نقل کیا ہے، اور اسی طرح یعقوب کی یعاقیب، یعاقبة اور یعاقب۔

نحاس(5) نے کہا: جہاں تک اسرائیل کا تعلق ہے، ہم کسی کو نہیں جانتے جو اس کے شروع سے حمزہ حذف کرنے کی اجازت دیتا ہو، بلکہ اسے أساریل کہا جاتا ہے، اور کوفیوں نے أساریلة اور أسارل نقل کیا ہے۔ اور اس سب میں قاعدہ یہ ہے کہ اسے جمع سالم بنایا جائے، چنانچہ کہا جائے گا: إبراهيمون اور إسحاقون [اور إسماعيلون] اور یعقوبون، اور جمع سالم میں کوئی تغیر نہیں ہوتا۔

(1) اس بارے میں مروی آثار کے لیے دیکھیں عبداللہ بن احمد کی "کتاب السنہ" (743) (744)، اور خلال کی "السنہ" (966)، (972)، (974)، (975)۔ (2) اللہ تعالیٰ کے ارشاد: ﴿أُوْلَٰٓئِكَ هُمُ ٱلْمُؤْمِنُونَ حَقًّاۚ لَّهُمْ دَرَجَٰتٌ عِندَ رَبِّهِمْ﴾ [آیت: 8] کے پاس۔ (3) المحرر الوجيز 1/ 215۔ (4) اسے طبری نے 2/ 596-597 پر تفصیل سے روایت کیا ہے۔ (5) اعراب القرآن 1/ 266، اور اس سے پہلے کی بات اور جو قوسین (brackets) کے درمیان ہے اسی سے ہے۔ محمد بن یزید: یہ ابو العباس المبرد ہیں، اور احمد بن یحییٰ: یہ ابو العباس ثعلب ہیں۔

417 Surah Al-Baqarah: Verse 137

And the tribes (Al-Asbat): They are the offspring of Jacob, peace be upon him, and they were twelve sons. From each of them, a nation of people was born; the singular is 'sibt'. The 'sibt' among the Children of Israel is equivalent to the 'tribe' among the children of Ishmael (1). They were called Al-Asbat from 'al-sabat', which means succession, so they are a group following one after another. It was also said: its origin is from 'al-sabatu' - with the vowel movement - which refers to trees, meaning: they are in abundance like trees, the singular is 'sabatah'. Abu Ishaq al-Zajjaj said: What Muhammad bin Ja'far al-Anbari told us clarifies this for you; he said: Abu Nujayd (2) al-Daqqaq told us, he said: Al-Aswad bin 'Amir told us, he said: Isra'il told us, from Simak, from 'Ikrimah, from Ibn 'Abbas who said: All prophets are from the Children of Israel except ten: Noah, Shu'ayb, Hud, Salih, Lot, Abraham, Isaac, Jacob, Ishmael, and Muhammad ﷺ, and no one had two names except Jesus and Jacob (3).

And 'al-sabat': the group and the tribe that go back to one origin, and 'sha'run sabtun' or 'sabitun': hair that is not curly.

﴿We make no distinction between any of them﴾ Al-Farra' (4) said: meaning: we do not believe in some of them and disbelieve in others as the Jews and Christians did.

His, the Almighty's, saying: ﴿So if they believe in the like of that which you believe, then they are rightly guided; but if they turn away, then they are only in dissension. So Allah will suffice you against them. And He is the Hearing, the Knowing (137)﴾.

His, the Almighty's, saying: ﴿So if they believe in the like of that which you believe, then they are rightly guided﴾ The address is to Muhammad ﷺ and his nation. Meaning: if they believe with a faith like yours, and confirm with a confirmation like yours, then they are guided. So the similarity occurred between the two faiths. It is also said: the letter 'ba' is extra for emphasis (5). And Ibn 'Abbas used to recite...

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/215. (2) In (D): Majid, and in (Zha'): Muhammad, and what is established is from (Kha') and (Zay), and it might be a corruption of Ibn al-Junayd al-Daqqaq, whose name is Muhammad bin Ahmad Abu Ja'far, and he reported in Anbar, see Tarikh Baghdad 1/285-286. (3) Narrated by al-Tabarani in al-Kabir (11723), al-Hakim 2/373, and al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (133) through two paths from Isra'il from him. Al-Hakim said: A hadith with a sound chain of narration, but they (Bukhari and Muslim) did not include it. We say: Al-Hafiz Ibn Hajar said in Taqrib al-Tahdhib regarding Simak (who is Ibn Harb): his narration from 'Ikrimah is particularly

unstable, and he changed towards the end of his life, so he would sometimes be prompted. (4) Ma'ani al-Qur'an for him 1/82. (5) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/215, and Tafsir al-Razi 3/93.

417 सूरह अल-बकरा: आयत 137

और अल-अस्बात: वे याकूब (अलैहिस्सलाम) की संतान हैं, और वे बारह बेटे थे। उनमें से प्रत्येक से लोगों का एक राष्ट्र पैदा हुआ; एकवचन 'सिब्त' है। बनी इसराइल में 'सिब्त' का वही स्थान है जो इस्माइल की संतान में 'कबीले' का है (1)। उन्हें 'अस्बात' 'सबत' से कहा गया, जिसका अर्थ है उत्तराधिकार, इसलिए वे एक के बाद एक आने वाले समूह हैं। यह भी कहा गया है: इसकी उत्पत्ति 'सबत' - हरक़त (स्वर) के साथ - से हुई है जिसका अर्थ वृक्ष है, यानी: वे संख्या में वृक्षों के समान हैं, एकवचन 'सबता' है। अबू इसहाक अल-ज़ज्जाज ने कहा: मुहम्मद बिन जाफर अल-अंबारी ने जो हमें बताया वह इसे स्पष्ट करता है; उन्होंने कहा: हमें अबू नुजैद (2) अल-दक्काक ने बताया, उन्होंने कहा: हमें अल-अस्वद बिन आमिर ने बताया, उन्होंने कहा: हमें इसराइल ने बताया, सिमाक से, इकरीमा से, इब्न अब्बास से जिन्होंने कहा: दस को छोड़कर सभी नबी बनी इसराइल से हैं: नूह, शुऐब, हूद, सालेह, लूत, इब्राहीम, इसहाक, याकूब, इस्माइल और मुहम्मद ﷺ, और ईसा और याकूब के अलावा किसी के दो नाम नहीं थे (3)।

और 'अल-सबत': वह समूह और कबीला जो एक ही मूल की ओर लौटते हैं, और 'शअरुन सब्तुन' या 'सबितुन': वे बाल जो घुंघराले न हों।

﴿हम उनमें से किसी के बीच भेदभाव नहीं करते﴾ अल-फर्रा (4) ने कहा: अर्थात: हम उनमें से कुछ पर विश्वास नहीं करते और कुछ का इनकार नहीं करते जैसा कि यहूदियों और ईसाइयों ने किया।

अल्लाह तआला का कथन: ﴿तो यदि वे उसके जैसा विश्वास करें जैसा तुमने किया है, तो वे निश्चित रूप से मार्ग पा गए; और यदि वे मुँह फेर लें, तो वे केवल विरोध में हैं। तो अल्लाह तुम्हारे लिए उनके विरुद्ध पर्याप्त होगा। और वह सुनने वाला, जानने वाला है (137)﴾।

अल्लाह तआला का कथन: ﴿तो यदि वे उसके जैसा विश्वास करें जैसा तुमने किया है, तो वे निश्चित रूप से मार्ग पा गए﴾ यह संबोधन मुहम्मद ﷺ और उनकी उम्मत के लिए है। अर्थ है: यदि वे तुम्हारे ईमान जैसा ईमान लाएँ और तुम्हारे तस्दीक (सत्यापन) जैसा तस्दीक करें, तो वे हिदायत पा गए। तो समानता दो ईमानों के बीच हुई। यह भी कहा गया है: 'बा' अक्षर ताकीद (ज़ोर) के लिए अतिरिक्त है (5)। और इब्न अब्बास पढ़ते थे...

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/215। (2) (द) में: मजीद, और (ज़) में: मुहम्मद, और जो (ख) और (ज़ै) से पुष्ट है, और शायद यह इब्न अल-जुनैद अल-दक्काक से विकृत है, जिनका नाम मुहम्मद बिन

अहमद अबू जाफर है, और उन्होंने अनबार में हदीस सुनाई, देखें तारीख बगदाद 1/285-286। (3) इसे अल-तबरानी ने अल-कबीर (11723) में, अल-हाकिम ने 2/373 में और अल-बैहकी ने शुअब अल-ईमान (133) में इसराइल के माध्यम से दो रास्तों से उद्धृत किया है। अल-हाकिम ने कहा: यह सही सनद वाली हदीस है, लेकिन उन्होंने (बुखारी और मुस्लिम ने) इसे नहीं निकाला। हमने कहा: अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने तक़रीब अल-तहज़ीब में सिमाक (जो इब्न हर्ब हैं) के बारे में कहा: इकरीमा से उनकी रिवायत विशेष रूप से अस्थिर है, और वह अंत में बदल गए थे, इसलिए कभी-कभी उन्हें सिखाया जाता था। (4) मआनी अल-कुरान उनके लिए 1/82। (5) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/215, और तफ़सीर अल-राज़ी 3/93।

٤١٧ سورہ البقرہ : آیت ١٣٧

اور الاسباط: یہ یعقوب علیہ السلام کی اولاد ہیں، اور وہ بارہ بیٹے تھے، ان میں سے ہر ایک سے لوگوں کی ایک امت پیدا ہوئی، ان کا واحد 'سبط' ہے۔ بنی اسرائیل میں 'سبط' کا وہی درجہ ہے جو اولاد اسماعیل میں 'قبیلہ' کا ہے(١)۔ انہیں سبط سے 'اسباط' کہا گیا، جس کے معنی ہیں تسلسل، پس وہ ایک کے بعد ایک آنے والی جماعت ہیں۔ اور کہا گیا: اس کی اصل 'سَبَط' - تحر یک کے ساتھ - سے ہے جو کہ درخت ہے، یعنی: وہ کثرت میں درختوں کے مانند ہیں، واحد 'سَبَطَة' ہے۔ ابو اسحاق الزجاج نے کہا: محمد بن جعفر الانباری نے ہمیں جو بتایا وہ تمہارے لیے اس کی وضاحت کرتا ہے؛ انہوں نے کہا: ہمیں ابو نجید(٢) الدقاق نے بتایا، انہوں نے کہا: ہمیں الاسود بن عامر نے بتایا، انہوں نے کہا: ہمیں اسرائیل نے بتایا، سماک سے، انہوں نے عکرمہ سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی کہ: تمام انبیاء بنی اسرائیل سے ہیں سوائے دس کے: نوح، شعیب، ہود، صالح، لوط، ابراہیم، اسحاق، یعقوب، اسماعیل، اور محمد ﷺ، اور عیسیٰ اور یعقوب کے علاوہ کسی کے دو نام نہیں تھے(٣)۔

اور السَّبَط: وہ جماعت اور قبیلہ جو ایک ہی اصل کی طرف لوٹتے ہوں، اور 'شعر سبط' یا 'سبط': وہ بال جو گھنگھریالے نہ ہوں۔

﴿ہم ان میں سے کسی کے درمیان فرق نہیں کرتے﴾ الفراء(٤) نے کہا: یعنی: ہم ان میں سے بعض پر ایمان لائیں اور بعض کا کفر کریں ایسا نہیں کرتے جیسا کہ یہودیوں اور عیسائیوں نے کیا۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿پس اگر وہ اسی طرح ایمان لائیں جس طرح تم ایمان لائے ہو تو یقیناً وہ ہدایت پا گئے اور اگر وہ منہ موڑ لیں تو وہ محض مخالفت میں ہیں۔ پس عنقریب اللہ ان کے مقابلے میں تمہارے لیے کافی ہوگا، اور وہی سب کچھ سننے والا، جاننے والا ہے (١٣٧)﴾۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿پس اگر وہ اسی طرح ایمان لائیں جس طرح تم ایمان لائے ہو تو یقیناً وہ ہدایت پا گئے﴾ یہ خطاب محمد ﷺ اور آپ کی امت سے ہے۔ مطلب یہ ہے کہ: اگر وہ تمہارے ایمان جیسا ایمان لائیں، اور تمہاری تصدیق جیسی تصدیق کریں، تو وہ ہدایت پا گئے۔ پس مماثلت دو ایمانوں کے درمیان واقع ہوئی، اور کہا گیا ہے کہ 'باء' زائدہ تاکید کے لیے ہے(٥)۔ اور ابن عباس پڑھتے تھے...

(١) المحرر الوجيز ١/ ٢١٥۔ (٢) (د) میں: مجید، اور (ظ) میں: محمد، اور جو (خ) اور (ز) سے ثابت ہے، اور شاید یہ ابن الجنید الدقاق سے تحریف شدہ ہے، اور ان کا نام محمد بن احمد ابو جعفر ہے، اور انہوں نے انبار میں حدیث بیان کی، دیکھئے تاریخ بغداد ١/ ٢٨٥-٢٨٦۔ (٣) اسے الطبرانی نے الکبیر (١١٧٢٣) میں، الحاکم نے ٣٧٣/٢ میں، اور البیہقی نے شعب الایمان (١٣٣) میں اسرائیل کے واسطے سے دو طریقوں سے روایت کیا ہے۔ الحاکم نے کہا: یہ صحیح الاسناد حدیث ہے، لیکن انہوں نے (بخاری و مسلم نے) اسے نقل نہیں کیا۔ ہم کہتے ہیں: الحافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں سماک (جو ابن حرب ہیں) के बारे में कहा: عکرمہ سے ان کی روایت خاص طور پر مضطرب ہے، اور وہ آخر عمر میں بدل گئے تھے، تو بسا اوقات انہیں تلقین کی جاتی تھی۔ (٤) معانی القرآن ان کی ١/ ٨٢۔ (٥) دیکھئے المحرر الوجیز ١/ ٢١٥، اور تفسیر الرازی ٣/ ٩٣۔

418 Surah Al-Baqarah: Verse 137

As reported by Al-Tabari: "If they believe in that which you believe, then they are rightly guided"(1). This is the meaning of the recitation even if it differs from the Mushaf (written Quran); thus the word "mithl" (like/similar) is extra, just as it is in His saying: {There is nothing like His likeness} [Ash-Shura: 11], meaning: there is nothing like Him. And the poet said: "They were made like [like] eaten straw"(2) Baqiyyah narrated: Shu’bah told us, on the authority of Abu Hamza, on the authority of Ibn Abbas, who said: Do not say: "If they believe in the like of what you believe in," for Allah has no like, but say: "in that which you believe in." Ali bin Nasr al-Jahdami followed him, on the authority of Shu'bah, as mentioned by Al-Bayhaqi(3). The meaning is: that if they believe in your Prophet and all the prophets, and do not distinguish between them as you do not distinguish, then they are guided. But if they refuse except to distinguish, then they are those who have deviated from the religion into schism, {But Allah will suffice you against them}. And it was reported(4) from a group of people of insight that they said: It is possible that the 'kaaf' in His saying: {There is nothing like His likeness} is extra; he said: What was narrated from Ibn Abbas regarding his prohibition of the general recitation is something he resorted to for exaggeration in negating anthropomorphism (likening) for Allah, the Almighty. Ibn Atiyyah said(5): This from Ibn Abbas is by way of interpretation, meaning: this is how it should be interpreted. It has been said: The 'baa' means "upon," and the meaning is: If they believe upon the like of your faith(6).

(1) Tafsir al-Tabari 2/600. (2) Its author is Ru'ba bin al-Ajjaj, and the verse is in the appendix of his Diwan p. 181, and Khizanat al-Adab 10/189. Sibawayh attributed it in Al-Kitab 1/408 to Humayd bin al-Arqat, and it appeared in Al-Muqtadab 4/141, and in Sirr Sina'at al-I'rab 1/296, and Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 2/523 without attribution. The beginning of the verse is: "Striking them with stones of baked clay" Al-'Asf: Al-Farra' said it is the greens of the crops, and Al-Hasan said: The crop whose grain has been eaten, and its straw remains. Khizanat al-Adab 10/190. (3) In Al-Asma wa al-Sifat 2/34, and also narrated by Al-Tabari 2/600 through Muhammad bin Ja'far from Shu'bah with it. Baqiyyah: He is Ibn al-Walid, trustworthy but a mudallis (one who conceals sources). Abu Hamza: He is Imran bin Abi Ata al-Qassab, truthful but has errors. (4) Meaning Al-Bayhaqi in Al-Asma wa al-Sifat 2/34, 37. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/215. (6) Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 1/491.

४१८ सूरा अल-बकरा: आयत १३७

जैसा कि अल-तबारी ने उल्लेख किया है: "तो यदि वे वैसा ही ईमान लाएँ जैसा तुम लाए हो, तो वे हिदायत (मार्गदर्शन) पा गए"(१)। यही पाठ (क़िरात) का अर्थ है, भले ही यह मुसहफ़ (लिखित क़ुरान) के विरुद्ध हो, तो "मिस्ल" (जैसे) शब्द अतिरिक्त है, जैसा कि उनके इस कथन में है: {उसके जैसा कोई नहीं है} [अश-शूरा: ११], अर्थात: उसके जैसा कुछ भी नहीं है। और कवि ने कहा: "तो वे खाए हुए भूसे के समान [समान] हो गए"(२) बक़िय्या ने रिवायत की: हमें शुअबा ने अबू हमज़ा के माध्यम से इब्न अब्बास से बताया, उन्होंने कहा: यह मत कहो: "यदि वे तुम्हारे ईमान के समान ईमान लाएँ" क्योंकि अल्लाह का कोई समान नहीं है, बल्कि कहो: "जिस पर तुम ईमान लाए हो।" अली बिन नस्र अल-जहदमी ने शुअबा के माध्यम से उनका अनुसरण किया, जिसका उल्लेख अल-बैहक़ी(३) ने किया है। अर्थ यह है: अर्थात: यदि वे तुम्हारे नबी और सभी नबियों पर ईमान लाते हैं, और उनके बीच भेदभाव नहीं करते जैसा कि तुमने नहीं किया, तो वे हिदायत पा गए, और यदि वे भेदभाव के अलावा सब कुछ अस्वीकार करते हैं, तो वे धर्म से विमुख होकर विरोध में पड़ गए हैं, {तो अल्लाह उनके विरुद्ध तुम्हारे लिए पर्याप्त होगा}। और अंतर्दृष्टि रखने वाले लोगों के एक समूह से रिवायत है(४) कि उन्होंने कहा: यह संभव है कि अल्लाह के इस कथन में 'काफ़' अक्षर: {उसके जैसा कोई नहीं है} अतिरिक्त हो; उन्होंने कहा: इब्न अब्बास से सामान्य पाठ के निषेध के बारे में जो रिवायत है, वह अल्लाह सर्वशक्तिमान के लिए सादृश्य (तशबीह) के निषेध में अतिशयोक्ति के लिए अपनाई गई चीज़ है। इब्न अतिया ने कहा(५): इब्न अब्बास का यह कथन व्याख्या के तौर पर है, अर्थात: इसकी इस तरह व्याख्या की जानी चाहिए। और कहा गया है: 'बा' का अर्थ "पर" (अला) है, और अर्थ है: यदि वे तुम्हारे ईमान जैसे ईमान पर विश्वास करें(६)।

(१) तफ़सीर अल-तबारी २/६००। (२) इसके लेखक रुबा बिन अल-अज्जाज हैं, और यह छंद उनके दीवान के परिशिष्ट पृष्ठ १८१ में है, और ख़िज़ानत अल-अदब १०/१८९ में है। सिबावैह ने अल-किताब १/४०८ में इसे हुमैद बिन अल-अरक़त से संबंधित बताया है, और यह अल-मुक़्तदब ४/१४१ में, और सिर्र सिनाअत अल-इराब १/२९६ में, और अल-अख़फ़श द्वारा मानी अल-कुरान २/५२३ में बिना किसी श्रेय के आया है। छंद का पूर्वार्ध है: "उन पर पकी हुई मिट्टी के पत्थर बरसाते हुए" अल-अस्फ़: अल-फ़र्रा ने कहा कि यह फसलों का हरा भाग है, और अल-हसन ने कहा: वह फसल जिसका अनाज खा लिया गया हो और उसका भूसा बच गया हो। ख़िज़ानत अल-अदब १०/१९०। (३) अल-अस्मा वल-सिफ़ात २/३४ में, और अल-तबारी २/६०० द्वारा मुहम्मद बिन जाफ़र के माध्यम से शुअबा से भी

उद्धृत किया गया है। बक़िय्या: वह इब्न अल-वलीद है, विश्वसनीय है लेकिन मुदल्लिस है। अबू हमज़ा: वह इमरान बिन अबी अता अल-क़साब है, सच्चा है लेकिन उसे भ्रम होते हैं। (४) यानी अल-अस्मा वल-सिफ़ात २/३४, ३७ में अल-बैहक़ी। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१५। (६) अल-तबरसी द्वारा मजमा अल-बयान १/४९१।

۴۱۸ سورة البقرہ: آیت ۱۳۷

جیسا کہ طبری نے نقل کیا ہے: "پھر اگر وہ اسی طرح ایمان لائیں جس طرح تم ایمان لائے ہو تو وہ ہدایت پا گئے"(۱)۔ اور یہی قرأت کا معنی ہے اگرچہ یہ مصحف کے خلاف ہو، پس لفظ "مثل" زائد ہے، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کے اس قول میں ہے: ﴿لَيْسَ كَمِثْلِهِ شَيْءٌ﴾ [الشوریٰ: ۱۱] یعنی: اس کی مثل کوئی چیز نہیں ہے۔ اور شاعر نے کہا: فَصِيّرُوا مثل كعَصْفٍ مأكولٍ(۲) (پس وہ کھائے ہوئے بھوسے کی مثل ہو گئے) اور بقیہ نے روایت کیا: ہم سے شعبہ نے، انہوں نے ابو حمزہ سے، انہوں نے ابن عباس سے روایت کی کہ انہوں نے فرمایا: یہ نہ کہو: "اگر وہ اس کی مثل ایمان لائیں جس پر تم ایمان لائے ہو"، کیونکہ اللہ کی کوئی مثل نہیں ہے، بلکہ کہو: "جس پر تم ایمان لائے ہو"۔ علی بن نصر الجہضمی نے شعبہ سے ان کی متابعت کی، اسے بیہقی(۳) نے ذکر کیا ہے۔ اور معنی یہ ہے: یعنی: اگر وہ تمہارے نبی پر اور تمام انبیاء پر ایمان لائیں، اور ان کے درمیان تفریق نہ کریں جیسا کہ تم نے تفریق نہیں کی، تو وہ ہدایت پا گئے، اور اگر وہ تفریق کے سوا ہر بات سے انکار کریں، تو وہ دین سے ہٹ کر مخالفت میں پڑ گئے، ﴿فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ﴾۔ اور اہل نظر کی ایک جماعت سے منقول ہے(۴) کہ انہوں نے کہا: یہ احتمال ہے کہ اللہ کے قول ﴿لَيْسَ كَمِثْلِهِ شَيْءٌ﴾ میں 'کاف' زائد ہو؛ انہوں نے کہا: اور ابن عباس سے عام قرأت کی جو ممانعت مروی ہے، وہ ایک ایسی چیز ہے جس کی طرف وہ اللہ عزوجل سے تشبیہ کی نفی میں مبالغے کے لیے گئے ہیں۔ ابن عطیہ(۵) نے کہا: ابن عباس کا یہ قول تفسیر کے طور پر ہے، یعنی: اس طرح تاویل کی جانی چاہیے۔ اور یہ بھی کہا گیا ہے کہ: 'باء' 'علی' کے معنی میں ہے، اور معنی یہ ہے: پس اگر وہ تمہارے ایمان جیسی مثال پر ایمان لائیں(۶)۔

(۱) تفسیر الطبری ۲/ ۶۰۰۔ (۲) اس کے قائل رؤبہ بن العجاج ہیں، اور یہ بیت ان کے دیوان کے ملحقہ ص ۱۸۱ پر ہے، اور خزانہ الادب ۱۰/ ۱۸۹، اور سیبویہ نے الکتاب ۱/ ۴۰۸ میں اسے حمید بن الارقط کی طرف منسوب کیا ہے، اور یہ المقتضب ۴/ ۱۴۱، اور سر صناعۃ الاعراب ۱/ ۲۹۶، اور معانی القرآن للاخفش ۲/ ۵۲۳ میں بغیر نسبت کے وارد ہوا ہے، اور بیت کا مصرعہ اولیٰ ہے: ترمیہم حجارۃ من سجیل اور العصف: الفراء نے کہا کہ یہ کھیتی کا سبزہ ہے، اور حسن نے کہا: وہ کھیتی جس کا دانہ کھا لیا گیا ہو اور اس کا بھوسا باقی رہ گیا ہو۔ خزانہ الادب ۱۰/ ۱۹۰۔ (۳) الاسماء والصفات ۲/ ۳۴ میں، اور اسے طبری ۲/ ۶۰۰ نے بھی محمد بن جعفر کے واسطے سے شعبہ سے روایت کیا ہے۔ بقیہ: یہ ابن الولید ہے جو ثقہ مدلس ہے، اور ابو حمزہ: یہ عمران بن ابی عطاء القصاب ہے، صدوق ہے لیکن اسے اوہام ہوتے ہیں۔ (۴) یعنی بیہقی الاسماء والصفات ۲/ ۳۴، ۳۷ میں۔ (۵) المحرر الوجیز ۱/ ۲۱۵۔ (۶) مجمع البیان للطبرسی ۱/ ۴۹۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 137 419

It was said: "mithl" (like) remains in its literal sense, i.e., with something like what was revealed. Evidence for this is His saying: {And say: "I believe in whatever Book Allah has sent down"} [Ash-Shura: 15], and His saying: {And say: "We believe in that which has been revealed to us and revealed to you"} [Al-'Ankabut: 46].

Regarding the verse: {But if they turn away} i.e., from faith {then they are only in opposition (shiqaq)}. Zayd ibn Aslam said(1): Shiqaq means contention. It was also said: Shiqaq means arguing, opposing, and persisting. Its root is from 'shaqq', which means 'side' or 'direction', as if each of the two parties is in a side different from the side of the other(2).

A poet said(3): "How many scholars will you kill by force, and act wickedly with discord and hypocrisy?"

Another said(4): "Otherwise, know that we and you are transgressors as long as we remain in discord."

It was also said: Indeed, 'shiqaq' is derived from doing what is 'ya-shuqqu' (hard/burdensome) and difficult, as if each of the two parties is keen on what makes things difficult for the other(5).

His saying: {And Allah will suffice you against them} i.e., Allah will suffice His Messenger against his enemy. This was a promise from Allah the Almighty to His Prophet (peace be upon him) that He would suffice him against whoever opposed him and differed from him among those who turned away, through those He guides from among the believers. He fulfilled the promise to him, and that was in the killing of Banu Qaynuqa' and Banu Qurayzah, and the expulsion of Banu an-Nadir(6). The 'kaf', 'ha', and 'mim' [in fasayakfikahum] are two objects in the accusative case. It is permissible outside the Quran to say: 'fasayakfika [iyyahum]'(7).

---

(1) Thus in the manuscripts, and Al-Tabari included it (2/601-602) from the saying of Abd al-Rahman ibn Zayd ibn Aslam, and likewise Al-Razi mentioned it in his exegesis (4/94). (2) See Al-Muharrar al-Wajiz (1/216) and Tafsir Al-Razi (4/94). (3) We did not find its source. (4) He is Bishr ibn Khazim al-Asadi, and the verse is in 'Al-Kitab' (2/156), 'Ma'ani al-Quran' by Al-Farra' (1/311), 'Dala'il al-I'jaz' p. 32, 'Al-Insaf' (1/190), and 'Khizanat al-Adab' (10/293). (5) Tafsir Al-Tabari (2/602). (6) See Al-Muharrar al-Wajiz

(1/216) and Al-Wasit (1/222). (7) I'rab al-Quran by Al-Nahhas (1/267), and what is between brackets is from it.

सूरह अल-बकरा: आयत 137 419

और कहा गया: "मिस्ल" (जैसे) अपने मूल अर्थ में है, यानी: उसी के समान जो अवतरित किया गया है। इसका प्रमाण अल्लाह का यह कथन है: {और कहो: "मैं उस पुस्तक पर ईमान लाया जो अल्लाह ने उतारी है"} [अश-शूरा: 15], और उसका कथन: {और कहो: "हम उस पर ईमान लाए जो हमारी ओर उतारा गया और तुम्हारी ओर उतारा गया"} [अल-अनकबूत: 46]।

अल्लाह का कथन: {फिर यदि वे मुँह फेर लें} यानी: ईमान से {तो वे केवल विरोध (शिकाक़) में हैं}। ज़ैद बिन असलम ने कहा(1): शिकाक़ का अर्थ है विवाद। और कहा गया: शिकाक़ का अर्थ है तर्क वितर्क, विरोध और हठधर्मिता। इसका मूल 'शक्क़' (पक्ष या दिशा) से है, मानो दोनों पक्षों में से प्रत्येक अपने साथी के पक्ष से अलग पक्ष में है(2)।

एक कवि ने कहा(3): "कितने विद्वानों को तुम ज़बरदस्ती मार डालोगे, और फूट और कपट के साथ दुराचार करोगे?"

एक अन्य ने कहा(4): "वरना जान लो कि हम और तुम विद्रोही हैं जब तक हम फूट में रहेंगे।"

और कहा गया: शिकाक़ उस काम को करने से लिया गया है जो 'यशुक्कु' (कठिन/भारी) और मुश्किल हो, मानो दोनों पक्षों में से प्रत्येक उस चीज़ के लिए उत्सुक है जो उसके साथी के लिए कठिन हो(5)।

अल्लाह का कथन: {तो अल्लाह उनके विरुद्ध तुम्हारे लिए पर्याप्त होगा} यानी: अल्लाह अपने रसूल के लिए उनके शत्रुओं के विरुद्ध पर्याप्त होगा। यह अल्लाह तआला की ओर से अपने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के लिए एक वादा था कि वह उन्हें उन लोगों के विरुद्ध पर्याप्त होगा जिन्होंने उनका विरोध किया और मुँह फेरने वालों में से उनके विरुद्ध रहे, उन ईमान वालों के माध्यम से जिन्हें वह हिदायत देता है। अल्लाह ने उनसे वादा पूरा किया, और वह बनू क़ैनुक़ा और बनू क़ुरैज़ा के वध और बनू अल-नदीर के निष्कासन में था(6)। [फ़स-यक्फ़ीकहुम] में 'काफ़', 'हा' और 'मीम' कर्म (मफ़ऊल) के स्थान पर हैं। कुरान के बाहर 'फ़स-यक्फ़ीका [इय्याहुम]' कहना जायज़ है(7)।

---

(1) प्रतियों में ऐसा ही है, और अल-तबरी (2/601-602) ने इसे अब्दुर्रहमान बिन ज़ैद बिन असलम के कथन से उद्धृत किया है, और इसी तरह अल-राज़ी ने अपनी तफ़सीर (4/94) में इसका उल्लेख किया है। (2) देखिए अल-मुहर्रर अल-वजीज़ (1/216), और तफ़सीर अल-राज़ी (4/94)। (3) हमें

इसका स्रोत नहीं मिला। (4) वह बिश्र बिन ख़ाज़िम अल-असदी हैं, और यह शेर 'अल-किताब' (2/156), अल-फ़र्रा की 'मआनी अल-क़ुरान' (1/311), 'दलायल अल-इज्ज़ाज़' पृ. 32, 'अल-इंसाफ़' (1/190), और 'खिज़ानतुल अदब' (10/293) में है। (5) तफ़सीर अल-तबरी (2/602)। (6) देखिए अल-मुहर्र, अल-वजीज़ (1/216), और अल-वसीत (1/222)। (7) अल-नहहास द्वारा इआरब अल-क़ुरान (1/267), और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उसी से है।

سورہ البقرہ: آیت 137 419

اور کہا گیا: «مثل» اپنے لغوی معنی پر ہے یعنی: نازل شدہ کی مثل، اس کی دلیل اللہ کا یہ قول ہے: ﴿وَقُلْ ءَامَنتُ بِمَا أَنزَلَ اللَّهُ مِن كِتَٰبٍ﴾ [الشوری: 15]، اور اس کا قول: ﴿وَقُولُوا ءَامَنَّا بِالَّذِي أُنزِلَ إِلَيْنَا وَأُنزِلَ إِلَيْكُمْ﴾ [العنکبوت: 46]۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَإِن تَوَلَّوْا﴾ یعنی: ایمان سے ﴿فَإِنَّمَا هُمْ فِي شِقَاقٍ﴾ زید بن اسلم نے کہا(1): شقاق سے مراد جھگڑا ہے۔ اور کہا گیا: شقاق سے مراد مجادلہ، مخالفت اور ہٹ دھرمی ہے، اور اس کی اصل 'شق' سے ہے، جس کے معنی جانب (طرف) کے ہیں، گویا دونوں فریقوں میں سے ہر ایک اپنے ساتھی کی جانب کے علاوہ دوسری جانب میں ہے(2)۔

شاعر نے کہا(3): "کتنے علماء کو تم جبراً قتل کرو گے اور شقاق (پھوٹ) اور نفاق کے ساتھ بدکاری کرو گے"

دوسرے نے کہا(4): "ورنہ جان لو کہ ہم اور تم باغی ہیں جب تک ہم شقاق میں رہیں گے"

اور کہا گیا: بے شک شقاق اس فعل سے ماخوذ ہے جو 'یشق' (مشکل/بوجھل) اور دشوار ہو، گویا دونوں فریقوں میں سے ہر ایک اس چیز پر حریص ہے جو اس کے ساتھی پر گراں گزرتی ہے(5)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ﴾ یعنی: پس اللہ اپنے رسول کے لیے ان کے دشمن کے خلاف کافی ہوگا۔ پس یہ اللہ تعالیٰ کی طرف سے اپنے نبی علیہ السلام کے لیے وعدہ تھا کہ وہ ان کے خلاف کافی ہوگا جو ان سے دشمنی کریں اور منہ پھیرنے والوں میں سے جو ان کی مخالفت کریں، ان مومنوں کے ذریعے جنہیں وہ ہدایت دیتا ہے۔ پس اس نے ان سے وعدہ پورا کیا، اور یہ بنو قینقاع اور بنو قریظہ کے قتل اور بنو نضیر کی جلاوطنی میں ہوا تھا(6)۔ اور [فسیکفیکہم میں] کاف، ہا

اور میم مفعول ہونے کی وجہ سے محلِ نصب میں ہیں، اور قرآن کے علاوہ 'فسیکفیک [ایاہم]' جائز ہے(7)۔

---

(1) نسخوں میں اسی طرح ہے، اور اسے الطبری نے (2/601-602) میں عبدالرحمن بن زید بن اسلم کے قول سے نقل کیا ہے، اور اسی طرح الرازی نے اپنی تفسیر (4/94) میں اسے ذکر کیا ہے۔ (2) دیکھیے المحرر الوجیز (1/216)، اور تفسیر الرازی (4/94)۔ (3) ہمیں اس کا پتہ نہیں چلا۔ (4) وہ بشر بن خازم الاسدی ہیں، اور یہ شعر 'الکتاب' (2/156)، فراء کی 'معانی القرآن' (1/311)، 'دلائل الاعجاز' ص 32، 'الانصاف' (1/190)، اور 'خزانۃ الادب' (10/293) میں ہے۔ (5) تفسیر الطبری (2/602)۔ (6) دیکھیے المحرر الوجیز (1/216)، اور الوسیط (1/222)۔ (7) نحاس کی 'اعراب القرآن' (1/267)، اور بریکٹ کے درمیان والا حصہ اسی سے ہے۔

٤٢٠ Surah Al-Baqarah: Verse 138

And this word: {So Allah will suffice you against them}, is what the blood of Uthman fell upon when he was killed, as informed by the Prophet (1) ﷺ. And {the All-Hearing} of the words of every speaker, {the All-Knowing} of what He implements regarding His servants and carries out upon them (2). It is narrated that Abu Dulama entered upon Al-Mansur wearing a long cap and a outer garment with {So Allah will suffice you against them, and He is the All-Hearing, the All-Knowing} written between its shoulders, and a sword hanging at his waist. Al-Mansur had ordered the soldiers to wear this uniform. He said to him: "How are you, O Abu Dulama?" He said: "In a bad state, O Commander of the Faithful!" He asked: "How so?" He said: "What do you think of a man whose face is in his middle, his sword is at his buttocks, and he has cast the Book of Allah behind his back!" Al-Mansur laughed at him and ordered the uniform changed from that time (3).

His Saying, Exalted be He: {The religion (sibghah) of Allah, and who is better than Allah in religion? And we are worshippers of Him (138)}. In it are two issues: The first: His Saying, Exalted be He: {The religion (sibghah) of Allah}, Al-Akhfash (4) and others said: The religion of Allah, and it is an appositive for 'millah' (creed). Al-Kisa'i said: It is in the accusative case assuming: 'Follow'. Or as an incitement, i.e., 'Adhere to' (5). If it were read in the nominative case, it would be permissible, i.e., 'This is the religion of Allah'. And Shaiban narrated from Qatada that he said: "Indeed, the Jews dye their children as Jews, and the Christians dye their children as Christians, but the dye of Allah is Islam" (6). Al-Zajjaj (7) said: "And what indicates this to you is that..."

(1) Al-Hakim narrated (3/103) from the hadith of Ibn Abbas, may Allah be pleased with them, who said: "I was sitting with the Prophet ﷺ when Uthman bin Affan approached. When he drew near, he said: 'O Uthman, you will be killed while you are reciting: {So Allah will suffice you against them, and He is the All-Hearing, the All-Knowing}.'" Al-Dhahabi critiqued it saying: "It is a pure lie; in the chain of narration is Ahmad bin Muhammad bin Abdul-Hamid Al-Ju'fi, who is the one accused of it." (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/216. (3) Al-Aghani 10/236, and Abu Dulama is Zand bin Al-Jawn, the poet and companion, known for his anecdotes, died in (261 AH). Al-Siyar 7/374. Al-Durra'ah: A type of clothing worn, usually made of wool. Tahdhib al-Lugha 2/201. (4) Ma'ani al-Qur'an 1/340, and I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/267, from which the author quoted. (5) See Al-Wasit 1/222, Tafsir Al-Baghawi 1/121, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/216; we did not find the statement of Al-Kisa'i. (6) Narrated by Al-Tabari 2/603 via Sa'id from Qatada. (7) Ma'ani al-Qur'an 1/215.

४२० सूरह अल-बक़रह: आयत १३८

और यह शब्द: {तो अल्लाह आपके लिए उनके विरुद्ध पर्याप्त होगा}, वह है जिस पर उस्मान का खून गिरा जब उन्हें शहीद किया गया, जैसा कि नबी ﷺ ने उन्हें इसके बारे में सूचित किया था (१)। और {सब कुछ सुनने वाला} हर कहने वाले की बात का, {सब कुछ जानने वाला} उसका जो वह अपने बंदों पर लागू करता है और उन पर चलाता है (२)। वर्णित है कि अबू दुलामा मंसूर के पास एक लंबी टोपी और एक लबादा पहनकर आए, जिसके कंधों के बीच {तो अल्लाह आपके लिए उनके विरुद्ध पर्याप्त होगा, और वह सब कुछ सुनने वाला, सब कुछ जानने वाला है} लिखा था, और उनकी कमर में एक तलवार लटकी थी। मंसूर ने सैनिकों को इस वर्दी का आदेश दिया था। उसने उनसे कहा: "अबू दुलामा, आपका क्या हाल है?" उन्होंने कहा: "बुरा हाल है, ऐ अमीरुल मोमिनीन!" उसने पूछा: "वह कैसे?" उन्होंने कहा: "उस व्यक्ति के बारे में आपका क्या ख्याल है जिसका चेहरा उसके बीच में है, उसकी तलवार उसके कूल्हों पर है, और उसने अल्लाह की किताब को अपनी पीठ पीछे फेंक दिया है!" मंसूर उन पर हँसा और उसी समय से उस वर्दी को बदलने का आदेश दिया (३)।

अल्लाह तआला का कथन: {अल्लाह का रंग (दीन), और अल्लाह से बेहतर रंग किसका हो सकता है? और हम उसी की इबादत करने वाले हैं (१३८)}। इसमें दो मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: {अल्लाह का रंग}, अल-अख़फ़श (४) और अन्य ने कहा: अल्लाह का दीन, और यह 'मिल्लत' का बदल (Appositive) है। अल-किसाई ने कहा: यह इस अनुमान पर नसब (Accusative) में है: 'अनुसरण करो'। या उकसाने (Incitement) के तौर पर, यानी: 'इससे चिपके रहो' (५)। यदि इसे रफ़अ (Nominative) के साथ पढ़ा जाता तो भी जायज़ होता, यानी: 'यह अल्लाह का रंग है'। और शैबान ने क़तादा से रिवायत की, उन्होंने कहा: "यहूदी अपने बच्चों को यहूदी रंग में रंगते हैं, और ईसाई अपने बच्चों को ईसाई रंग में रंगते हैं, और अल्लाह का रंग इस्लाम है" (६)। अल-ज़ज्जाज (७) ने कहा: "और जो चीज़ आपको इसकी ओर संकेत करती है वह यह है कि..."

(१) अल-हाकिम (३/१०३) ने इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा की हदीस से निकाला है कि उन्होंने कहा: "मैं नबी ﷺ के पास बैठा था जब उस्मान बिन अफ़ान आए। जब वह करीब आए, तो आपने कहा: 'ऐ उस्मान, तुम शहीद किए जाओगे जबकि तुम पढ़ रहे होगे: {तो अल्लाह आपके लिए उनके विरुद्ध पर्याप्त होगा, और वह सब कुछ सुनने वाला, सब कुछ जानने वाला है}।'" अल-ज़हबी ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा: "यह कोरा झूठ है, इसके सनद में अहमद बिन मुहम्मद बिन अब्दुल हमीद अल-जुफ़ी है, जिस पर इसका आरोप है।" (२) अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/२१६। (३) अल-

अघानी १०/२३६, और अबू दुलामा ज़ंद बिन अल-जौन हैं, जो कवि और मजलिस के साथी थे, लतीफों के मालिक थे, जिनका निधन (२६१ हिजरी) में हुआ। अल-सियर ७/३७४। अल-दुर्राअह: पहनने के कपड़ों का एक प्रकार, जो केवल ऊन का होता है। तहज़ीब अल-लुग़ा २/२०१। (४) मआनी अल-क़ुरआन १/३४०, और इराब अल-क़ुरआन अन-नह़ास १/२६७, जहाँ से लेखक ने उद्धृत किया है। (५) अल-वसीत १/२२२, तफ़सीर अल-बग़वी १/१२१, और अल-मुहर्रर अल-वाजीज़ १/२१६ देखें; हमें अल-किसाई का कथन नहीं मिला। (६) अल-तब़री २/६०३ ने सईद के माध्यम से क़तादा से इसे निकाला है। (७) मआनी अल-क़ुरआन १/२१५।

٤٢٠ سورہ البقرہ: آیت ١٣٨

اور یہ کلمہ: ﴿فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ﴾ (پس اللہ آپ کے لیے ان کے مقابلے میں کافی ہوگا)، وہی ہے جس پر حضرت عثمان کا خون گرا جب وہ شہید کیے گئے، نبی ﷺ کی انہیں اس بارے میں خبر دینے کے مطابق (١)۔ اور ﴿السَّمِيعُ﴾ ہر کہنے والے کے قول کو سننے والا، ﴿الْعَلِيمُ﴾ اس چیز کا علم رکھنے والا جو وہ اپنے بندوں میں نافذ فرماتا ہے اور ان پر جاری کرتا ہے (٢)۔ اور حکایت کی گئی ہے کہ ابو دلامہ منصور کے پاس آئے، ان کے سر پر ایک لمبی ٹوپی تھی، اور ایک جبہ پہنا ہوا تھا جس کے دونوں کندھوں کے درمیان لکھا تھا: ﴿فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ وَهُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ﴾، اور ان کی کمر میں ایک تلوار لٹکی ہوئی تھی۔ منصور نے فوج کو اسی لباس کا حکم دیا تھا۔ منصور نے ان سے کہا: اے ابو دلامہ! تمہارا کیا حال ہے؟ انہوں نے کہا: اے امیر المومنین، بہت برا حال ہے! اس نے پوچھا: وہ کیسے؟ انہوں نے کہا: آپ کا اس شخص کے بارے میں کیا خیال ہے جس کا چہرہ اس کے بیچ میں ہو، اس کی تلوار اس کی پیٹھ پر ہو، اور اس نے اللہ کی کتاب کو پسِ پشت ڈال دیا ہو! منصور ان کی بات پر ہنس پڑا اور اسی وقت اس لباس کو تبدیل کرنے کا حکم دے دیا (٣)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿صِبْغَةَ اللَّهِ وَمَنْ أَحْسَنُ مِنَ اللَّهِ صِبْغَةً وَنَحْنُ لَهُ عَابِدُونَ ١٣٨﴾ (اللہ کا رنگ (دین)، اور اللہ کے رنگ سے بہتر کس کا رنگ ہو سکتا ہے؟ اور ہم اسی کی عبادت کرنے والے ہیں)۔ اس میں دو مسئلے ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿صِبْغَةَ اللَّهِ﴾، اخفش (٤) اور دوسروں نے کہا: اللہ کا دین، اور یہ لفظ 'ملة' سے بدل ہے۔ کسائی نے کہا: یہ اس تقدیر پر منصوب ہے: 'تم پیروی کرو'۔ یا بطورِ تحریض و ترغیب، یعنی: 'اسے لازم پکڑو' (٥)۔ اور اگر یہ رفع (پیش) کے ساتھ پڑھا جاتا تو بھی جائز ہوتا، یعنی: 'یہ اللہ کا رنگ ہے'۔ اور شیبان نے قتادہ سے روایت کیا، انہوں نے کہا: "بے شک یہودی اپنے بچوں کو یہودی بناتے ہیں (رنگتے ہیں)، اور نصاریٰ اپنے بچوں کو نصرانی

بناتے ہیں، اور اللہ کا رنگ اسلام ہے" (٦)۔ زجاج (٧) نے کہا: اور اس پر تمہاری رہنمائی یہ بات کرتی ہے کہ...

(١) الحاکم نے ٣/١٠٣ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا، انہوں نے کہا: میں نبی ﷺ کے پاس بیٹھا تھا کہ عثمان بن عفان تشریف لائے۔ جب وہ قریب ہوئے تو آپ ﷺ نے فرمایا: "اے عثمان، تم قتل کیے جاؤ گے اس حال میں کہ تم پڑھ رہے ہو گے: ﴿فَسَيَكْفِيكَهُمُ اللَّهُ وَهُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ﴾"۔ ذہبی نے اس پر جرح کرتے ہوئے کہا: یہ صریح جھوٹ ہے، اس کی سند میں احمد بن محمد بن عبد الحمید الجعفی ہے، وہی اس پر متہم ہے۔ (٢) المحرر الوجیز ١/٢١٦۔ (٣) الاغانی ١٠/٢٣٦، اور ابو دلامہ زند بن الجون ہیں، شاعر اور مصاحب، لطائف و نوادر کے مالک، ان کا انتقال سنہ (٢٦١ھ) میں ہوا۔ السیر ٧/٣٧٤۔ الدرّاعۃ: پہننے کے کپڑوں کی ایک قسم، جو صرف اون کی ہوتی ہے۔ تہذیب اللغۃ ٢/٢٠١۔ (٤) معانی القرآن (للاخفش) ١/٣٤٠، اور اعراب القرآن للنحاس ١/٢٦٧، اور اسی سے مصنف نے نقل کیا ہے۔ (٥) دیکھئے الوسیط ١/٢٢٢، تفسیر البغوی ١/١٢١، اور المحرر الوجیز ١/٢١٦؛ اور ہمیں کسائی کا قول نہیں ملا۔ (٦) اسے طبری نے ٢/٦٠٣ میں سعید کے واسطے سے قتادہ سے روایت کیا ہے۔ (٧) معانی القرآن (للزجاج) ١/٢١٥۔

Surah Al-Baqarah: Verse 138 / 421

"Sibghah" (Dye/Coloring) is a substitute for "Millah" (Religion/Way). Mujahid (1) said: Meaning: the natural disposition (fitrah) of Allah upon which He created people. Abu Ishaq Al-Zajjaj (2) said: This statement of Mujahid refers back to Islam, because fitrah is the beginning of creation, and the beginning of what they were created upon is Islam. It is narrated from Mujahid, Al-Hasan, Abu al-Aliyah, and Qatadah: "The Sibghah" is the religion (3). The origin of this is that the Christians used to dye their children in water, which they call baptism, and they say: this is a purification for them. Ibn Abbas said: When a child was born to the Christians and seven days had passed, they would immerse him in water called "the water of baptism", dyeing him with it to purify him instead of circumcision, because circumcision is a purification. When they did this, they would say: "Now he has become a true Christian." So Allah Almighty refuted them by saying: "[The Sibghah of Allah]", meaning: the Sibghah of Allah is the best Sibghah, and it is Islam (4). Thus, the religion was called a "Sibghah" (dye) metaphorically, since its deeds and marks appear on the religious person just as the effect of dye appears on a garment (5). Some poets of the Hamdan kings said: And every people has a dye, and the dye of Hamdan is the best of dyes. We dyed our sons upon that, so how noble is our dye among dyes! (6) It was also said: The Sibghah is the ritual bath (ghusl) for one who wishes to enter Islam, instead of the baptism of the Christians; this was mentioned by Al-Mawardi (7). I say: According to this interpretation, the ghusl of a disbeliever (upon entering Islam) would be obligatory as an act of worship. This leads to the: Second issue: Because the meaning of "Allah's Sibghah" is Allah's washing; i.e., take the bath (ghusl) upon your [acceptance of] Islam that Allah has made obligatory upon you.

(1) Reported by At-Tabari 2/605-606. (2) See Ma'ani al-Quran by him 1/215. (3) The statements of Mujahid, Abu al-Aliyah, and Qatadah were reported by At-Tabari 2/604, and Al-Hasan's statement was cited by Al-Baghawi in his Tafsir 1/121. (4) Cited by Al-Baghawi in his Tafsir 1/121, and Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/151; see also An-Nukat wal-'Uyun 1/195. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/216. (6) We did not find it, and Ibn Adil al-Hanbali cited it in Al-Lubab 2/527. (7) We did not find it.

सूरह अल-बक़रह: आयत 138 / 421

"सिबग़ह" (रंग) "मिल्लत" (पंथ/मार्ग) के स्थान पर है। मुजाहिद (1) ने कहा: इसका अर्थ है: अल्लाह का वह स्वभाव (फितरत) जिस पर उसने लोगों को पैदा किया। अबू इशाक अल-ज़ज्जाज (2) ने कहा: मुजाहिद का यह कथन इस्लाम की ओर इशारा करता है, क्योंकि फितरत सृष्टि की शुरुआत है, और जिस पर उन्हें बनाया गया उसकी शुरुआत इस्लाम है। मुजाहिद, अल-हसन, अबू अल-अलियाह और क़तादाह से वर्णित है: 'सिबग़ह' दीन (धर्म) है (3)। इसका मूल यह है कि ईसाई अपने बच्चों को पानी में डुबोते थे, जिसे वे बपतिस्मा (बैप्टिस्म) कहते हैं, और कहते हैं: यह उनके लिए शुद्धि है। इब्न अब्बास ने कहा: जब ईसाइयों के यहाँ बच्चा पैदा होता और सात दिन बीत जाते, तो वे उसे 'बपतिस्मा के पानी' में डुबोते, उसे खतने के स्थान पर शुद्ध करने के लिए उस रंग में रंगते, क्योंकि खतना एक शुद्धि है। जब वे ऐसा कर लेते, तो वे कहते: 'अब वह सच्चा ईसाई बन गया है।' तो अल्लाह सर्वशक्तिमान ने यह कहकर उनका खंडन किया: "[अल्लाह का सिबग़ह]", यानी: अल्लाह का सिबग़ह सबसे अच्छा सिबग़ह है, और वह इस्लाम है (4)। इस प्रकार, धर्म को रूपक के रूप में 'सिबग़ह' (रंग) कहा गया, क्योंकि इसके कार्य और निशान धार्मिक व्यक्ति पर उसी तरह दिखाई देते हैं जैसे कपड़े पर रंग का प्रभाव दिखाई देता है (5)। हम्दान राजाओं के कुछ कवियों ने कहा: और हर जाति का अपना एक रंग होता है, और हम्दान का रंग रंगों में सबसे श्रेष्ठ है। हमने अपने बेटों को उसी पर रंगा, तो रंगों में हमारा रंग कितना श्रेष्ठ है! (6) यह भी कहा गया है: ईसाइयों के बपतिस्मा के बदले इस्लाम में प्रवेश करने वाले के लिए सिबग़ह स्नान (ग़ुस्ल) है, इसका उल्लेख अल-मावर्दी ने किया है (7)। मैंने कहा: इस व्याख्या के अनुसार, एक काफ़िर का ग़ुस्ल (इस्लाम स्वीकार करने पर) इबादत के रूप में अनिवार्य होगा। यह विषय है: दूसरा: क्योंकि 'अल्लाह के सिबग़ह' का अर्थ अल्लाह का स्नान है; यानी: अपने इस्लाम स्वीकार करने पर वह स्नान (ग़ुस्ल) करें जिसे अल्लाह ने आप पर अनिवार्य किया है।

(1) अत-तबरी 2/605-606 द्वारा निकाला गया। (2) उनके द्वारा रचित मा'नी अल-क़ुरआन 1/215 देखें। (3) मुजाहिद, अबू अल-अलियाह और क़तादाह के कथन अत-तबरी 2/604 द्वारा निकाले गए, और अल-हसन का कथन अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर 1/121 में उद्धृत किया। (4) अल-बग़वी ने अपनी तफ़सीर 1/121 में और इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर 1/151 में उद्धृत किया; अन-नुकात वल-'उयून 1/195 भी देखें। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/216। (6) हमने इसे नहीं पाया, और इब्न आदिल अल-हंबली ने इसे अल-लुबाब 2/527 में उद्धृत किया। (7) हमने इसे नहीं पाया।

سورة البقرہ: آیت 138 / 421

«صِبْغَةَ» (رنگ) «مِلَّةَ» (دین/طریقہ) کا بدل ہے۔ اور مجاہد(1) نے کہا: یعنی: اللہ کی وہ فطرت جس پر اس نے لوگوں کو پیدا کیا۔ ابو اسحاق الزجاج(2) نے کہا: مجاہد کا یہ قول اسلام کی طرف لوٹتا ہے، کیونکہ فطرت تخلیق کی ابتدا ہے، اور جس چیز پر وہ پیدا کیے گئے اس کی ابتدا اسلام ہے۔ اور مجاہد، حسن، ابو العالیہ اور قتادہ سے مروی ہے: صِبغہ سے مراد 'دین' ہے(3)۔ اس کی اصل یہ ہے کہ نصاریٰ (عیسائی) اپنی اولاد کو پانی میں رنگتے (ڈبوتے) تھے، جسے وہ بپتسمہ کہتے ہیں، اور کہتے ہیں: یہ ان کے لیے پاکیزگی ہے۔ ابن عباس نے کہا: نصاریٰ کے ہاں جب بچہ پیدا ہوتا اور اسے سات دن گزر جاتے، تو وہ اسے ایک پانی میں غوطہ دیتے جسے 'پانیِ بپتسمہ' کہا جاتا ہے، وہ اسے ختنے کی جگہ پاک کرنے کے لیے اس سے رنگتے، کیونکہ ختنہ پاکیزگی ہے، جب وہ ایسا کر لیتے تو کہتے: اب یہ سچا نصرانی ہو گیا۔ تو اللہ تعالیٰ نے یہ فرما کر ان کی تردید کی: «صِبْغَةَ اللہ» یعنی: اللہ کا رنگ سب سے بہترین رنگ ہے، اور وہ اسلام ہے(4)۔ چنانچہ دین کو استعارتاً اور مجازاً 'صِبغہ' (رنگ) کہا گیا کیونکہ اس کے اعمال اور نشانات دین دار شخص پر اس طرح ظاہر ہوتے ہیں جیسے کپڑے پر رنگ کا اثر ظاہر ہوتا ہے(5)۔ اور ہمدان کے بادشاہوں کے بعض شعراء نے کہا: اور ہر قوم کا ایک رنگ ہوتا ہے اور ہمدان کا رنگ تمام رنگوں میں بہترین ہے۔ ہم نے اپنے بیٹوں کو اسی پر رنگا، تو رنگوں میں ہمارا رنگ کتنا ہی معزز ہے! (6) اور کہا گیا: صبغہ سے مراد وہ غسل ہے جو اسلام میں داخل ہونے والے کے لیے نصاریٰ کے بپتسمہ کے بدلے میں ہے، اس کا ذکر الماوردی نے کیا ہے(7)۔ میں (مصنف) کہتا ہوں: اس تاویل کے مطابق کافر کا غسل (قبولِ اسلام پر) عبادت کے طور پر واجب ہو گا، اور یہ

مسئلہ ہے: دوسرا: کیونکہ «صبغة الله» کا معنی اللہ کا غسل ہے؛ یعنی: اپنے اسلام کے وقت وہ غسل کرو جو اللہ نے تم پر واجب کیا ہے۔

(1) اسے الطبری نے 606-605/2 میں روایت کیا ہے۔ (2) ان کی کتاب معانی القرآن 215/1 دیکھیں۔ (3) مجاہد، ابو العالیہ اور قتادہ کے قول کو الطبری نے 604/2 میں روایت کیا ہے، اور حسن کا قول البغوی نے اپنی تفسیر 121/1 میں ذکر کیا ہے۔ (4) اسے البغوی نے اپنی تفسیر 121/1 میں، اور ابن الجوزی نے زاد المسیر 151/1 میں ذکر کیا ہے، اور النکت والعیون 195/1 دیکھیں۔ (5) المحرر الوجیز 216/1۔ (6) ہمیں یہ نہیں ملا، اور ابن عادل الحنبلی نے اسے اللباب 527/2 میں ذکر کیا ہے۔ (7) ہمیں یہ نہیں ملا۔

422 Surat Al-Baqarah: Verse 139

In this sense, the established Sunnah came regarding Qais bin Asim and Thumama bin Uthal when they converted to Islam. Abu Hatim Al-Basti narrated in his Sahih Musnad (1) from Abu Hurairah, may Allah be pleased with him: that Thumama al-Hanafi was captured, and the Prophet (peace be upon him) passed by him one day, so he embraced Islam. He sent him to the garden of Abu Talha and commanded him to wash (perform ghusl), so he washed and prayed two rak'ahs. Then the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Your companion's Islam is good." He also narrated (2) about Qais bin Asim that he converted to Islam, so the Prophet (peace be upon him) commanded him to wash with water and sidr (lotus leaves); mentioned by An-Nasa'i, and authenticated by Abu Muhammad Abd al-Haqq (3). It was said: Indeed, closeness to Allah Almighty is called 'sibghah' (dye/coloring); mentioned by Ibn Faris in "Al-Mujmal" (4). Al-Jawhari said (5): "Sibghatullah" means His religion. It was also said: Indeed, 'sibghah' is circumcision; Abraham was circumcised, so 'sibghah' was applied to circumcision because they used to dye boys in water, as said by Al-Farra' (6). {And we are worshippers of Him} Subject and predicate. The Almighty's saying: {Say, "Do you argue with us about Allah while He is our Lord and your Lord? For us are our deeds, and for you are your deeds. And we are sincere to Him." 139} Al-Hasan said (7): The argument was that they said: "We are closer to Allah than you, because we are the children of Allah and His beloved ones." And it was said: "Because of the precedence of our fathers and our books, and because we did not worship idols." So the meaning of the verse is: Say to them, O Muhammad, i.e., say to these Jews and Christians who claimed that they are the children of Allah and His beloved ones, and claimed that they are closer to Allah than you due to the seniority of their fathers and books: Do you argue with us, i.e., do you dispute with us...

(1) Number (1238) (Al-Ihsan), and the origin of the Hadith was narrated by Ahmad (9833), Al-Bukhari (462), and Muslim (1764). Thumama bin Uthal is Abu Umamah, al-Yamami. He remained steadfast in his Islam when the people of Yamamah apostatized. He fought alongside Al-Ala al-Hadrami against the apostates, and they prevailed over them. Then he was killed by people from Banu Qais bin Tha'labah. Al-Isabah 2/27. (2) Number (1240) (Al-Ihsan), and it is with Ahmad (20611). (3) Al-Mujtaba 1/109, and Al-Ahkam al-Sughra 1/135. Qais bin Asim: He is the Tamimi Al-Minqari. He came to the Prophet (peace be upon him) in the delegation of Banu Tamim, and when the Messenger of Allah (peace be upon him) saw him, he said:

"This is the master of the tent-dwellers." Al-Isabah 8/197. (4) 2/550. (5) Al-Sahah (Sabagha). (6) Ma'ani al-Qur'an 1/83. (7) Majma' al-Bayan by Al-Tabarsi 1/494.

४२२ सूरा अल-बकरा: आयत १३९

इसी अर्थ में, क़ैस बिन आसिम और थुमामा बिन उथल के बारे में स्थापित सुन्नत आई है जब उन्होंने इस्लाम स्वीकार किया था। अबू हातिम अल-बस्ती ने अपनी सहीह मुसनद (१) में अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है: कि थुमामा अल-हनफी को बंदी बना लिया गया था, तो पैगंबर ﷺ एक दिन उनके पास से गुजरे, तो उन्होंने इस्लाम स्वीकार कर लिया। उन्होंने उन्हें अबू तल्हा के बाग में भेजा और उन्हें स्नान (ग़ुस्ल) करने का आदेश दिया, तो उन्होंने स्नान किया और दो रकात नमाज़ पढ़ी। तब अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "तुम्हारे साथी का इस्लाम अच्छा है।" उन्होंने (२) क़ैस बिन आसिम के बारे में भी रिवायत की है कि उन्होंने इस्लाम स्वीकार किया, तो पैगंबर ﷺ ने उन्हें पानी और सिद्र (बेरी के पत्तों) से स्नान करने का आदेश दिया; इसे अन-नसाई ने उल्लेख किया है, और अबू मुहम्मद अब्द अल-हक़ (३) द्वारा इसे प्रमाणित किया गया है। कहा गया है: वास्तव में अल्लाह तआला की निकटता को 'सिबग़ा' (रंग/दीन) कहा जाता है; इब्न फारिस ने "अल-मुजमल" (४) में इसका उल्लेख किया है। अल-जौहरी ने कहा (५): "सिबगतुल्लाह" का अर्थ है उनका दीन। और यह भी कहा गया है: वास्तव में 'सिबग़ा' खतना है; इब्राहिम का खतना हुआ था, इसलिए खतने पर 'सिबग़ा' शब्द का प्रयोग होने लगा, क्योंकि वे लड़कों को पानी में डुबोते (रंगते) थे, जैसा कि अल-फर्रा (६) ने कहा है। {और हम उसी की इबादत करने वाले हैं} यह वाक्य का आरंभ और समाचार है। अल्लाह तआला का फरमान: {कहो, "क्या तुम हमसे अल्लाह के बारे में बहस करते हो जबकि वह हमारा रब है और तुम्हारा भी रब है? हमारे लिए हमारे कर्म हैं और तुम्हारे लिए तुम्हारे कर्म। और हम उसी के लिए निष्ठावान हैं।" १३९} हसन (७) ने कहा: बहस यह थी कि उन्होंने कहा: "हम अल्लाह के तुमसे अधिक निकट हैं, क्योंकि हम अल्लाह के बेटे और उसके प्रिय हैं।" और कहा गया है: "हमारे पूर्वजों और हमारी किताबों की प्राचीनता के कारण, और क्योंकि हमने मूर्तियों की पूजा नहीं की।" तो आयत का अर्थ है: ऐ मुहम्मद, उनसे कहो, यानी इन यहूदियों और ईसाइयों से कहो जिन्होंने दावा किया कि वे अल्लाह के बेटे और उसके प्रिय हैं, और दावा किया कि वे अपने पूर्वजों और किताबों की प्राचीनता के कारण अल्लाह के तुमसे अधिक करीब हैं: क्या तुम हमसे बहस करते हो, यानी क्या तुम हमसे झगड़ते हो...

(१) संख्या (१२३८) (अल-इहसान), और हदीस का मूल अहमद (९८३३), बुखारी (४६२), और मुस्लिम (१७६४) द्वारा उद्धृत किया गया है। थुमामा बिन उथल अबू उमामा, अल-यामामी हैं। जब यमामा के लोग धर्मत्यागी (मुरतद) हो गए तो वह अपने इस्लाम पर अडिग रहे। उन्होंने अल-अला अल-हदरामी

के साथ धर्मत्यागियों के खिलाफ लड़ाई लड़ी और उन पर जीत हासिल की। फिर उन्हें बनू क़ैस बिन सालबा के लोगों ने मार डाला। अल-इसाबा २/२७। (२) संख्या (१२४०) (अल-इहसान), और यह अहमद (२०६११) के पास है। (३) अल-मुज्तबा १/१०९, और अल-अहकाम अल-सुग़रा १/१३५। क़ैस बिन आसिम: वह तमीमी अल-मिनक़री हैं। वह बनू तमीम के प्रतिनिधिमंडल में पैगंबर ﷺ के पास आए थे, और जब अल्लाह के रसूल ﷺ ने उन्हें देखा तो फरमाया: "यह तंबू वालों का सरदार है।" अल-इसाबा ८/१९७। (४) २/५५०। (५) अस-सिहाह (सबग़ा)। (६) मआनी अल-कुरआन ८३/१। (७) मजमा अल-बयान लित-तबरसी ४९४/१।

اسی معنی میں قیس بن عاصم اور ثمامہ بن اثال کے بارے میں ثابت سنت وارد ہوئی ہے جب وہ اسلام لائے۔ ابو حاتم البستی نے اپنی صحیح مسند (۱) میں حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کی ہے: کہ ثمامہ الحنفی کو قید کیا گیا، تو نبی کریم ﷺ ایک دن ان کے پاس سے گزرے، پس وہ اسلام لے آئے۔ آپ ﷺ نے انہیں ابو طلحہ کے باغ میں بھیجا اور انہیں غسل کرنے کا حکم دیا، تو انہوں نے غسل किया اور دو رکعت نماز پڑھی۔ پس رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "تمہارے ساتھی کا اسلام اچھا ہے۔" اور (۲) قیس بن عاصم کے بارے میں بھی روایت کیا ہے کہ وہ اسلام لائے، تو نبی کریم ﷺ نے انہیں پانی اور سدر (بیری کے پتوں) سے غسل کرنے کا حکم دیا؛ اسے نسائی نے ذکر کیا اور ابو محمد عبدالحق (۳) نے اسے صحیح قرار دیا ہے۔ کہا گیا ہے: اللہ تعالیٰ سے قربت کو 'صبغہ' کہا جاتا ہے؛ اسے ابن فارس نے "المجمل" (۴) میں نقل کیا ہے۔ جوہری نے کہا (۵): صبغۃ اللہ سے مراد اس کا دین ہے۔ اور کہا گیا: صبغہ سے مراد ختنہ ہے؛ حضرت ابراہیم علیہ السلام نے ختنہ کیا، تو ختنہ پر صبغہ کا اطلاق ہونے لگا، کیونکہ وہ لڑکوں کو پانی میں رنگتے (غوطہ دیتے) تھے، یہ قول الفراء (۶) کا ہے۔ ﴿ وَنَحْنُ لَهُۥ عَٰبِدُونَ ﴾ مبتدا اور خبر ہے۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ قُلْ أَتُحَآجُّونَنَا فِى ٱللَّهِ وَهُوَ رَبُّنَا وَرَبُّكُمْ وَلَنَآ أَعْمَٰلُنَا وَلَكُمْ أَعْمَٰلُكُمْ وَنَحْنُ لَهُۥ مُخْلِصُونَ ١٣٩ ﴾ حسن (۷) نے کہا: بحث یہ تھی کہ انہوں نے کہا: "ہم تم سے زیادہ اللہ کے قریب ہیں، کیونکہ ہم اللہ کے بیٹے اور اس کے پیارے ہیں۔" اور کہا گیا: "ہمارے آباؤ اجداد اور ہماری کتابوں کی قدامت کی وجہ سے، اور اس لیے کہ ہم نے بتوں کی پوجا نہیں کی۔" تو آیت کا معنی ہے: اے محمد، ان سے کہو، یعنی ان یہودیوں اور عیسائیوں سے کہو جنہوں نے دعویٰ کیا کہ وہ اللہ کے

بیٹے اور اس کے محبوب ہیں، اور دعویٰ کیا کہ وہ اپنے آباؤ اجداد اور کتابوں کی قدامت کی بنا پر تم سے زیادہ اللہ کے قریب ہیں: کیا تم ہم سے بحث کرتے ہو، یعنی کیا تم ہم سے جھگڑتے ہو...

(۱) نمبر (۱۲۳۸) (الاحسان)، اور حدیث کی اصل کو احمد (۹۸۳۳)، بخاری (۴۶۲) اور مسلم (۱۷۶۴) نے روایت کیا ہے۔ ثمامہ بن اثال ابو امامہ الیمامی ہیں۔ جب اہل یمامہ مرتد ہو گئے تو وہ اپنے اسلام پر ثابت قدم رہے۔ انہوں نے العلاء الحضرمی کے ساتھ مل کر مرتدین سے جنگ کی اور ان پر غالب آئے۔ پھر انہیں بنو قیس بن ثعلبہ کے لوگوں نے شہید کر دیا۔ الاصابہ ۲/۲۷۔ (۲) نمبر (۱۲۴۰) (الاحسان)، اور یہ احمد (۲۰۶۱۱) کے پاس ہے۔ (۳) المجتبیٰ ۱/۱۰۹، اور الاحکام الصغریٰ ۱/۱۳۵۔ قیس بن عاصم: یہ تمیمی المنقری ہیں۔ یہ بنو تمیم کے وفد میں نبی کریم ﷺ کی بارگاہ میں حاضر ہوئے تھے، جب رسول اللہ ﷺ نے انہیں دیکھا تو فرمایا: "یہ دیہاتیوں (خیمہ نشینوں) کا سردار ہے۔" الاصابہ ۸/۱۹۷۔ (۴) ۲/۵۵۰۔ (۵) الصحاح (صبغ)۔ (۶) معانی القرآن ۸۳/۱۔ (۷) مجمع البیان للطبرسی ۴۹۴/۱۔

Surah Al-Baqarah: Verse 139 423

The argument against your claim, while the Lord is One, and everyone is rewarded for their deed, so what effect does the antiquity of the religion have? And the meaning of "concerning Allah" is: concerning His religion, closeness to Him, and favor with Him (1). The recitation of the majority is: "atuhajjunana" (do you argue with us). It is permissible for two identical moving letters of the same type to meet; because the second is like the separate one, and Ibn Muhaysin read: "atuhajjuna" with assimilation (idgham) due to the meeting of two identical letters (2). Al-Nahhas (3) said: This is permissible, except that it contradicts the standard script (the Uthmanic codex), and it is permissible to say: "atuhajjuni", by deleting the second nun, as Nafi' read: {So in what do you give me good tidings?} (4) [Al-Hijr: 54].

His Almighty's saying: {And we are sincere to Him} means: sincere in worship, and it contains a sense of rebuke, i.e.: you were not sincere, so how do you claim what we are more worthy of than you (5)?! Sincerity in its reality is purifying the action from the observation of creatures (6); The Prophet ﷺ said: "Indeed, Allah Almighty says: I am the best partner, so whoever associates a partner with me, it is for my partner. O people, make your deeds sincere for Allah Almighty, for Allah Almighty does not accept except what is purely for Him, and do not say: This is for Allah and for the womb (relatives), for it is for the womb, and none of it is for Allah, and do not say: This is for Allah and for your faces (status), for it is for your faces, and none of it belongs to Allah Almighty." Narrated by Al-Dahhak bin Qais Al-Fihri who said: The Messenger of Allah ﷺ said... then he mentioned it, and Al-Daraqutni (7) extracted it.

Ruwaym said: Sincerity in action is that its owner does not want a reward for it in the two abodes (this world and the hereafter), nor a share from the two angels. Al-Junayd said: Sincerity is a secret between the servant and Allah, not known by an angel to record it, nor by a devil to corrupt it.

(1) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/216, and in it: "and favor with him." (2) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 10. And he added its attribution to Zaid bin Thabit, may Allah be pleased with him. (3) I'rab al-Qur'an 1/267, and the speech before it is from him. (4) And Ibn Kathir read it with a kasra and shadda. Al-Sab'ah 366, and Al-Taysir 136. (5) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/216. (6) Al-Risala al-Qushayriyya 3/132. (7) In his Sunan 1/51, and it was also extracted by Al-Bazzar (3567) (Zawa'id), and Ibn Qani' in Mu'jam al-Sahaba 2/32, and Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (6836). Al-Mundhiri said in Al-Targhib

wa Al-Tarhib 1/61: Al-Bazzar narrated it with a chain that is not bad, but there is disagreement regarding the companionship of Al-Dahhak bin Qais.

सूरा अल-बक़रा: आयत 139 423

आपके दावे के खिलाफ दलील, जबकि रब एक है, और हर किसी को उसके कर्म के अनुसार बदला दिया जाता है, तो धर्म की प्राचीनता का क्या प्रभाव है? और "अल्लाह के विषय में" का अर्थ है: उसके धर्म के बारे में, उसके करीब होना, और उसके पास कृपा पाना (1)। बहुमत का पाठ है: "अतुहाज्जूनाना" (क्या तुम हमसे बहस करते हो)। एक ही प्रकार के दो गतिशील अक्षरों का मिलना जायज़ है; क्योंकि दूसरा अलग माना जाता है, और इब्न मुहयसिन ने दो समान अक्षरों के मिलने के कारण इदगाम (एकीकरण) के साथ "अतुहाज्जूना" पढ़ा (2)। अल-नहहास (3) ने कहा: यह जायज़ है, सिवाय इसके कि यह मानक लिपि के विरुद्ध है, और दूसरा नून हटाकर "अतुहाज्जूनी" कहना भी जायज़ है, जैसा कि नाफ़े ने पढ़ा: {तो तुम मुझे किस बात की खुशखबरी देते हो?} (4) [अल-हिज्र: 54]।

अल्लाह का कथन: {और हम उसके प्रति निष्ठावान हैं} अर्थात: इबादत में निष्ठावान, और इसमें फटकार का भाव है, यानी: आपने निष्ठा नहीं दिखाई, तो आप उस चीज़ का दावा कैसे करते हैं जिसके हम आपसे अधिक हकदार हैं (5)?! निष्ठा की वास्तविकता कर्म को सृष्टि के संज्ञान से शुद्ध करना है (6); पैगंबर ﷺ ने कहा: "वास्तव में, अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: मैं सबसे अच्छा साथी हूँ, इसलिए जो कोई मेरे साथ किसी को शरीक (साझेदार) करता है, वह मेरे शरीक के लिए है। ऐ लोगों, अपने कर्मों को अल्लाह सर्वशक्तिमान के लिए शुद्ध करो, क्योंकि अल्लाह सर्वशक्तिमान केवल उसी को स्वीकार करता है जो शुद्ध रूप से उसके लिए हो, और यह न कहो: यह अल्लाह के लिए है और रिश्तेदारों के लिए है, क्योंकि यह रिश्तेदारों के लिए है, और इसमें से अल्लाह के लिए कुछ भी नहीं है, और यह न कहो: यह अल्लाह के लिए है और तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिए है, क्योंकि यह तुम्हारी प्रतिष्ठा के लिए है, और इसमें से अल्लाह के लिए कुछ भी नहीं है।" अल-दह्हाक बिन क़ैस अल-फ़िहरी द्वारा वर्णित है कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने कहा... फिर उन्होंने इसका उल्लेख किया, और अल-दाराक़ुतनी (7) ने इसे उद्धृत किया।

रुवैम ने कहा: कर्म में निष्ठा यह है कि उसका कर्ता दोनों लोकों (इस दुनिया और परलोक) में उसके लिए कोई प्रतिफल न चाहे, और न ही दो फरिश्तों से कोई हिस्सा चाहे। अल-जुनैद ने कहा: निष्ठा बंदे और अल्लाह के बीच एक रहस्य है, जिसे कोई फरिश्ता रिकॉर्ड करने के लिए नहीं जानता, और न ही कोई शैतान इसे भ्रष्ट करने के लिए जानता है।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 216/1, और इसमें है: और उसके पास कृपा। (2) अल-क़िरात अल-शाज़्ह पृष्ठ 10। और उन्होंने जैद बिन साबित (रज़ि.) की ओर इसके श्रेय को जोड़ा। (3) इराब अल-कुरान 267/1, और इससे पहले का भाषण उन्हीं का है। (4) और इब्न कसीर ने इसे कसरा और शद्दा के साथ पढ़ा। अल-सबअह 366, और अल-तयसीर 136। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 216/1। (6) अल-रिसाला अल-कुशायरिया 132/3। (7) अपनी सुनन 51/1 में, और इसे अल-बज़्ज़ार (3567) (ज़वैद), और इब्न क़ानि ने मुअजम अल-सहाबा 32/2 में, और अल-बैहक़ी ने शुअब अल-ईमान (6836) में निकाला। अल-मुन्ज़िरी ने अल-तरगीब व अल-तरहीब 61/1 में कहा: अल-बज़्ज़ार ने इसे एक ऐसी श्रृंखला के साथ सुनाया है जो बुरी नहीं है, लेकिन अल-दह्हाक बिन क़ैस की सहाबियत के बारे में मतभेद है।

سورة البقرہ: آیت 139 423

تمہارے دعوے پر حجت، اور رب ایک ہے، اور ہر ایک کو اس کے عمل کا بدلہ دیا جاتا ہے، تو دین کی قدامت کا کیا اثر ہے؟ اور "اللہ میں" کا معنی ہے: اس کے دین میں، اس کے قرب میں، اور اس کے ہاں مقام و مرتبے میں (1)۔ جماعت کی قراءت: "أتحاجُّوننا" ہے۔ اور ایک ہی جنس کے دو متحرک حرفوں کا اجتماع جائز ہے؛ کیونکہ دوسرا منفصل کی طرح ہے، اور ابن محیصن نے دو حرفوں کے اجتماع کی وجہ سے ادغام کے ساتھ "أتحاجُّونَّا" پڑھا ہے (2)۔ النحاس (3) نے کہا: یہ جائز ہے سوائے اس کے کہ یہ رسم الخط کے خلاف ہے، اور دوسرے نون کو حذف کر کے "أتحاجُّونِ" پڑھنا بھی جائز ہے، جیسا کہ نافع نے پڑھا ہے: {تو تم مجھے کس چیز کی خوشخبری دیتے ہو؟} (4) [الحجر: 54]۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {اور ہم اسی کے لیے مخلص ہیں} یعنی: عبادت میں مخلص، اور اس میں ملامت کا پہلو ہے، یعنی: تم نے اخلاص اختیار نہیں کیا، تو تم اس چیز کا دعویٰ کیسے کرتے ہو جس کے ہم تم سے زیادہ حقدار ہیں (5)؟! اخلاص کی حقیقت یہ ہے کہ عمل کو مخلوق کی نظر سے پاک کیا جائے (6)؛ نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "بیشک اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: میں بہترین شریک ہوں، پس جس نے میرے ساتھ کسی کو شریک کیا، تو وہ میرے شریک کے لیے ہے، اے لوگو! اپنے اعمال اللہ تعالیٰ کے لیے مخلص کر لو، کیونکہ اللہ تعالیٰ صرف وہی قبول کرتا ہے جو خالص اس کے لیے ہو، اور یہ نہ کہو: یہ اللہ کے لیے ہے اور رشتہ داری کے لیے، کیونکہ یہ رشتہ داری کے لیے ہے اور اس میں سے اللہ کے لیے کچھ نہیں، اور یہ نہ کہو: یہ اللہ کے لیے ہے اور تمہاری وجاہت کے لیے، کیونکہ یہ تمہاری وجاہت کے لیے ہے اور اللہ کے لیے اس میں سے کچھ نہیں"۔ اسے ضحاک

بن قیس الفہری نے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا... پھر اسے ذکر کیا، اور دارقطنی (7) نے اسے نکالا ہے۔

رویم نے کہا: عمل میں اخلاص یہ ہے کہ اس کا صاحب دونوں جہانوں میں اس پر کوئی بدلہ نہ چاہے، اور نہ ہی دونوں فرشتوں سے کوئی حصہ چاہے۔ الجنید نے کہا: اخلاص بندے اور اللہ کے درمیان ایک راز ہے، جسے نہ کوئی فرشتہ جانتا ہے کہ اسے لکھے، اور نہ کوئی شیطان کہ اسے خراب کرے۔

(1) المحرر الوجیز 216/1، اور اس میں ہے: اور اس کے ہاں مقام و مرتبہ۔ (2) القراءات الشاذة ص 10۔ اور اسے زید بن ثابت رضی اللہ عنہ کی طرف منسوب کرنے کا اضافہ کیا۔ (3) إعراب القرآن 267/1، اور اس سے پہلے کی گفتگو انہی کی ہے۔ (4) اور ابن کثیر نے اسے مکسور اور مشدد پڑھا ہے۔ السبعة 366، اور التیسیر 136۔ (5) المحرر الوجیز 216/1۔ (6) الرسالة القشیریة 132/3۔ (7) اپنی سنن 51/1 میں، اور اسے البزار (3567) (زوائد)، اور ابن قانع نے معجم الصحابہ 32/2 میں، اور بیہقی نے شعب الایمان (6836) میں نکالا۔ منذری نے الترغیب والترہیب 61/1 میں کہا: اسے بزار نے ایسی سند کے ساتھ روایت کیا ہے جس میں کوئی حرج نہیں، لیکن ضحاک بن قیس کی صحابیت میں اختلاف ہے۔

424 Surah Al-Baqarah: Verse 140

...nor any devil can corrupt it, nor any passion can sway it (1). Abu al-Qasim al-Qushayri and others mentioned from the Prophet ﷺ that he said: "I asked Gabriel about sincerity (Ikhlas), what it is, and he said: I asked the Lord of Might about sincerity, what it is, and He said: It is a secret from My secret that I have entrusted to the heart of whomever I love among My servants" (2).

His saying Almighty: {Or do you say that Abraham and Ishmael and Isaac and Jacob and the Descendants were Jews or Christians? Say, "Are you more knowing or is Allah?" And who is more unjust than one who conceals a testimony he has from Allah? And Allah is not unaware of what you do.} [Quran 2:140]

His saying: {Or do you say} means "they said". Hamza, al-Kisa'i, and 'Asim in the narration of Hafs read it as: "taquluna" (you say), with a 'taa' (3), which is a good reading because the speech is consistent; as if the meaning is: Do you argue with us about Allah, or do you say that the prophets were following your religion?! So it is the "am" (or) that is connected (al-muttasilah). According to the reading of those who read it with a 'yaa' (yaquluna - they say), it is disconnected (munqati'ah); so there are two statements, and "am" means "bal" (rather).

{Hudann} (Jews) is the predicate (khabar) of "kana" (were), and the predicate of "inna" in the sentence. Outside of the Quran, it is permissible to put "Hudun" in the nominative case (raf') as the predicate of "inna", making "kana" redundant, as mentioned by an-Nahhas (4).

His saying: {Say, "Are you more knowing or is Allah?"} is a confirmation and a rebuke for their claim that they were Jews or Christians. So Allah replied to them that He knows more about them than you do, meaning: they were neither Jews nor Christians.

His saying: {And who is more unjust} its form is a question, but the meaning is: none is more unjust (5).

{than one who conceals a testimony} means their knowledge that the prophets were upon Islam. It is also said: what...

(1) Al-Risala al-Qushayriyya 3/135, and Ruwaym is Abu al-Hasan bin Ahmad bin Yazid al-Baghdadi, the jurist, the reciter, the worshiper, died in the year (303 AH). As-Siyar 14/235. (2) Al-Risala al-Qushayriyya 3/133. According to him, it is from the hadith of

Hudhayfah, may Allah be pleased with him. Al-Ghazali mentioned it in al-Ihya 4/376 from al-Hasan as a mursal report. Al-Iraqi said in its extraction: We narrated it in a part of the musalsalat of al-Qazwini, and it is from the narration of Ahmad bin 'Ata from Abdul Wahid bin Zaid from Hudhayfah from the Prophet ﷺ from Gabriel from Allah Almighty. Ahmad bin 'Ata and Abdul Wahid bin Zaid are both abandoned (matruk). Abu al-Qasim al-Qushayri narrated it in al-Risala from the hadith of Ali bin Abi Talib with a weak chain. Al-Hafiz Ibn Hajar said in Fath al-Bari 4/109: A very weak hadith, mentioned by Ibn al-Arabi in al-Musalsalat. (3) It is also the reading of Ibn 'Amir. See al-Sab'ah p. 171, and al-Taysir p. 77. (4) I'rab al-Qur'an 1/268. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/217.

पेज हेडर: 424 सूरह अल-बकराह: आयत 140

मुख्य पाठ: ...और न ही कोई शैतान इसे बिगाड़ सकता है, और न ही कोई वासना इसे झुका सकती है (1)। अबू अल-कासिम अल-कुशायरी और अन्य लोगों ने पैगंबर ﷺ से उल्लेख किया है कि उन्होंने कहा: "मैंने जिब्रील से इखलास (निष्ठा) के बारे में पूछा कि वह क्या है, तो उन्होंने कहा: मैंने पराक्रमी रब (ईश्वर) से इखलास के बारे में पूछा कि वह क्या है, तो उन्होंने कहा: यह मेरे रहस्यों में से एक रहस्य है जिसे मैंने अपने बंदों में से जिसे मैं प्यार करता हूँ उसके दिल में अमानत रखा है" (2)।

अल्लाह तआला का फरमान है: {या क्या तुम कहते हो कि इब्राहिम और इस्माइल और इसहाक और याकूब और उनकी संतान यहूदी या ईसाई थे? कहो, "क्या तुम अधिक जानते हो या अल्लाह?" और उस व्यक्ति से बड़ा अन्यायी कौन है जो उस गवाही को छुपाए जो उसके पास अल्लाह की ओर से हो? और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो तुम करते हो।} [कुरान 2:140]

उनका कहना: {या क्या तुम कहते हो} का अर्थ है "उन्होंने कहा"। हमज़ा, अल-किसाई और आसिम ने हफ़्स की रिवायत में इसे 'ता' के साथ "तकुलूना" (तुम कहते हो) पढ़ा है (3), और यह एक अच्छी क़िरात (पठन) है; क्योंकि बात सुसंगत है; मानो इसका अर्थ है: क्या तुम अल्लाह के बारे में हमसे बहस करते हो, या तुम कहते हो कि नबी तुम्हारे धर्म पर थे?! तो यह 'जुड़ा हुआ' (मुत्तसिला) "अम" (या) है। और जो लोग इसे 'या' (यकुलूना - वे कहते हैं) के साथ पढ़ते हैं, उनके अनुसार यह 'अलग' (मुनकातिअह) है; तो ये दो अलग कथन होंगे, और "अम" का अर्थ "बल" (बल्कि) होगा।

{हूदन्न} (यहूदी) "काना" (थे) की खबर (विधेय) है, और वाक्य में "इन्ना" की खबर है। कुरान के अलावा अन्य स्थानों पर "हूद" को "इन्ना" की खबर के रूप में पेश (रफ़्अ) करना जायज़ है, जिससे "काना" निरर्थक हो जाता है, जैसा कि अन-नहहास ने उल्लेख किया है (4)।

उनका कहना: {कहो, "क्या तुम अधिक जानते हो या अल्लाह?"} उनके इस दावे पर एक पुष्टि और फटकार है कि वे यहूदी या ईसाई थे। तो अल्लाह ने उन्हें उत्तर दिया कि वह उनके बारे में तुमसे अधिक जानता है, अर्थात: वे न तो यहूदी थे और न ही ईसाई।

उनका कहना: {और कौन अधिक अन्यायी है} इसका रूप प्रश्नवाचक है, लेकिन अर्थ है: कोई भी अधिक अन्यायी नहीं है (5)।

{उससे जिसने गवाही छिपाई} का अर्थ है उनका यह ज्ञान कि नबी इस्लाम पर थे। और कहा गया है कि: क्या...

फुटनोट्स: (1) अल-रिसाला अल-कुशायरिया 3/135, और रुवेम अबू अल-हसन बिन अहमद बिन यज़ीद अल-बगदादी हैं, फकीह, मुकरी, आबिद, जिनकी मृत्यु वर्ष (303 हिजरी) में हुई। अल-सियार 14/235। (2) अल-रिसाला अल-कुशायरिया 3/133। उनके पास यह हुज़ैफ़ा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से है। अल-गज़ाली ने इसे अल-इहया 4/376 में अल-हसन से मुरसल के रूप में उद्धृत किया है। अल-इराकी ने इसके स्रोत की जांच में कहा: हमने इसे अल-कज़विनी के मुसलसलात के एक भाग में रिवायत किया है, और यह अहमद बिन अता की रिवायत से है, अब्दुल वाहिद बिन ज़ैद से, हुज़ैफ़ा से, पैगंबर ﷺ से, जिब्रील से, अल्लाह तआला से। अहमद बिन अता और अब्दुल वाहिद बिन ज़ैद दोनों 'मतरूक' (छोड़े हुए/अविश्वसनीय) हैं। अबू अल-कासिम अल-कुशायरी ने इसे रिसाला में अली बिन अबी तालिब की हदीस से एक कमज़ोर सनद के साथ रिवायत किया है। अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने फ़तह अल-बारी 4/109 में कहा: यह बहुत ही कमज़ोर हदीस है, इब्न अल-अरबी ने इसे अल-मुसलसलात में उद्धृत किया है। (3) यह इब्न आमिर की भी क़िरात है। देखिए अल-सबआ पृष्ठ 171, और अल-तयसीर पृष्ठ 77। (4) इराब अल-कुरान 1/268। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/217।

صفحہ کی سرخی: 424 سورہ البقرہ: آیت 140

عبارت: ...اور نہ کوئی شیطان اسے بگاڑ سکتا ہے، اور نہ کوئی خواہش اسے مائل کر سکتی ہے (1)۔ اور ابو القاسم القشیری وغیرہ نے نبی ﷺ سے ذکر کیا ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "میں نے جبرئیل سے اخلاص کے بارے میں پوچھا کہ وہ کیا ہے، تو انہوں نے کہا: میں نے رب العزت سے اخلاص کے بارے میں پوچھا کہ وہ کیا ہے، تو اللہ نے فرمایا: یہ میرے رازوں میں سے ایک راز ہے جسے میں نے اپنے بندوں میں سے جس سے محبت کی اس کے دل میں ودیعت کر دیا ہے" (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿أَمْ تَقُولُونَ إِنَّ إِبْرَاهِيمَ وَإِسْمَعِيلَ وَإِسْحَقَ وَيَعْقُوبَ وَالْأَسْبَاطَ كَانُوا هُودًا أَوْ نَصَارَىٰ قُلْ أَأَنتُمْ أَعْلَمُ أَمِ اللَّهُ وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّن كَتَمَ شَهَادَةً عِندَهُ مِنَ اللَّهِ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ ١٤٠﴾ ترجمہ: {یا تم کہتے ہو کہ ابراہیم اور اسماعیل اور اسحاق اور یعقوب اور ان کی اولاد یہودی یا نصرانی تھے؟ کہو: "کیا تم زیادہ جانتے ہو یا اللہ؟" اور اس سے بڑھ کر ظالم کون ہے جو اس گواہی کو چھپائے جو اس کے پاس اللہ کی طرف سے ہو؟ اور اللہ ان کاموں سے بے خبر نہیں جو تم کرتے ہو۔}

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿أَمْ تَقُولُونَ﴾ "قالوا" (انہوں نے کہا) کے معنی میں ہے۔ اور حمزہ، کسائی اور عاصم نے حفص کی روایت میں اسے "تَقُولُونَ" تاء کے ساتھ پڑھا ہے (3)، اور یہ ایک اچھی قرأت ہے؛ کیونکہ کلام مربوط ہے؛ گویا معنی یہ ہے: کیا تم ہم سے اللہ کے بارے میں جھگڑتے ہو، یا تم کہتے ہو کہ انبیاء تمہارے دین پر تھے؟! تو یہ "ام" متصلہ ہے۔ اور ان کی قرأت کے مطابق جنہوں نے اسے یاء کے ساتھ (یقولون) پڑھا ہے، یہ منقطع ہے؛ تو یہ دو الگ کلام ہوں گے، اور "ام" یہاں "بل" (بلکہ) کے معنی میں ہوگا۔

﴿هُودًا﴾ لفظ "کان" کی خبر ہے، اور جملے میں "انّ" کی خبر ہے۔ اور قرآن کے علاوہ "ہود" کو "انّ" کی خبر کے طور پر مرفوع پڑھنا جائز ہے، اور ایسی صورت میں "کان" لغو ہو جائے گا، اسے نحاس نے ذکر کیا ہے (4)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿قُلْ أَأَنتُمْ أَعْلَمُ أَمِ اللَّهُ﴾ ان کے اس دعوے پر کہ وہ یہودی یا نصرانی تھے، ایک اقرار اور سرزنش ہے۔ تو اللہ نے ان پر رد فرمایا کہ وہ ان کے بارے میں تم سے زیادہ جانتا ہے، یعنی: وہ نہ یہودی تھے اور نہ نصرانی۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَمَنْ أَظْلَمُ﴾ اس کے الفاظ استفہامیہ ہیں، مگر معنی یہ ہے کہ: کوئی بھی اس سے زیادہ ظالم نہیں (5)۔

﴿مِمَّن كَتَمَ شَهَدَةً﴾ اس سے مراد ان کا یہ علم ہے کہ انبیاء اسلام پر تھے۔ اور کہا گیا ہے کہ: کیا...

حواشی: (1) الرسالہ القشیریہ 3/ 135، اور رویم سے مراد ابو الحسن بن احمد بن یزید البغدادی ہیں، جو فقیہ، مقری اور عابد تھے، ان کی وفات سن (303ھ) میں ہوئی۔ السیر 14/ 235۔ (2) الرسالہ القشیریہ 3/ 133۔ اور یہ ان کے نزدیک حضرت حذیفہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے ہے۔ اور اسے غزالی نے احیاء 4/ 376 میں حسن بصری سے مرسل روایت کیا ہے، اور عراقی نے اس کی تخریج میں کہا ہے: ہم نے اسے قزوینی کی "مسلسلات" کے ایک جزو میں روایت کیا ہے، اور یہ احمد بن عطا کی روایت سے ہے، وہ عبد الواحد بن زید سے، وہ حذیفہ سے، وہ نبی ﷺ سے، وہ جبرئیل سے، وہ اللہ تعالیٰ سے روایت کرتے ہیں۔ احمد بن عطا اور عبد الواحد بن زید دونوں متروک الحدیث ہیں۔ اور ابو القاسم القشیری نے اسے الرسالہ میں حضرت علی بن ابی طالب کی حدیث سے ضعیف سند کے ساتھ روایت کیا ہے۔ اور حافظ ابن حجر نے فتح الباری 4/ 109 میں فرمایا: یہ بہت ہی واہی (کمزور) حدیث ہے، اسے ابن العربی نے "مسلسلات" میں ذکر کیا ہے۔ (3)

اور یہ ابن عامر کی بھی قرأت ہے۔ دیکھیے: السبعہ ص 171، اور التیسیر ص 77۔ (4) اعراب القرآن 1/ 268۔ (5) المحرر الوجیز 1/ 217۔

Page 425 Surat Al-Baqarah: Verses 141, 142

...they concealed from the description of Muhammad ﷺ, as stated by Qatadah (1), and the first [opinion] is more similar to the context of the verse. "And Allah is not unaware of what you do" [Al-Baqarah: 140] is a threat and a notification that He does not (2) leave their matter in vain, and that He will recompense them for their deeds. Al-Ghafil (the unaware): He who does not pay attention to matters due to negligence on his part; derived from "al-ard al-ghufl" (3) (neglected land), which is land that has no marks or signs of cultivation. A "naqah ghuful" (neglected camel) is one with no brand on it, and a "rajul ghuful" (neglected man) is one who has not experienced matters. Al-Kisa'i said: "Ard ghuful" is land that hasn't received rain. "Ghafaltu 'an al-shay' ghaflatan wa ghufulan" (I was unaware of the thing), and "aghfaltu al-shay'" means I left it while you were remembering it (4).

Allah Almighty says: "That was a nation that has passed away. It will have [the consequence of] what it earned, and you will have what you have earned. And you will not be asked about what they used to do." [Al-Baqarah: 141]. He repeated it because it included the meaning of threat and intimidation, meaning: if those prophets, despite their leadership and virtue, are recompensed for what they earned, then you are more so [deserving of being held accountable]. Therefore, emphasis was necessary, and thus He repeated it (5).

Allah Almighty says: "The foolish among the people will say, 'What has turned them away from their qiblah, which they used to face?' Say, 'To Allah belongs the east and the west. He guides whom He wills to a straight path.'" [Al-Baqarah: 142]. In it [this verse] there are eleven issues: The first: Allah Almighty's saying: "The foolish among the people will say" – Allah Almighty informed [the Prophet] that they would say regarding the turning of the believers from Sham (Jerusalem) to the Kaaba: "What turned them away?" And "say-aqulu" (will say) has the meaning of "qala" (said), placing the future in the position of the past, indicating its continuity, and that they would continue with that saying. And He specified with His saying: "from the people" because foolishness (safah) can occur in inanimate objects and animals. And what is meant by "the foolish" are all those who said: "What turned them away?" (6).

Footnotes: (1) Narrated by Al-Tabari 2/612. (2) In (d) and (m): "did not". (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/217. (4) Al-Sihah (gh-f-l), and Mujmal al-Lughah 3/683. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/217. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/218.

पृष्ठ ४२५ सूरह अल-बकरा: आयतें १४१, १४२

...उन्होंने मुहम्मद ﷺ के गुणों को छिपाया, जैसा कि क़तादा (१) ने कहा, और पहला विचार आयत के संदर्भ के अधिक निकट है। "और जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह उससे बेखबर नहीं है" [अल-बकरा: १४०] एक चेतावनी और सूचना है कि वह (२) उनके मामले को व्यर्थ नहीं छोड़ता, और वह उन्हें उनके कर्मों का प्रतिफल देगा। 'ग़ाफ़िल' (असावधान): वह जो अपनी लापरवाही के कारण मामलों पर ध्यान नहीं देता; यह 'अल-अर्ज़ अल-गुफ़्ल' (३) (उपेक्षित भूमि) से लिया गया है, जो ऐसी भूमि है जिसमें खेती का कोई निशान या चिन्ह नहीं है। 'नाक़ाह ग़ुफ़ुल' (उपेक्षित ऊँटनी) वह है जिस पर कोई निशान न हो, और 'रजुल ग़ुफ़ुल' (असावधान व्यक्ति) वह है जिसे मामलों का अनुभव न हो। अल-किसाई ने कहा: 'अर्ज़ ग़ुफ़ुल' वह भूमि है जहाँ बारिश नहीं हुई है। 'ग़फ़ल्तु अनिश-शैइ ग़फ़्लतन व ग़ुफ़ूलन' (मैं चीज़ से बेखबर हो गया), और 'अग़फ़ल्तुल-शैअ' का अर्थ है मैंने इसे छोड़ दिया जबकि तुम इसे याद कर रहे थे (४)।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "वह एक समुदाय था जो गुज़र गया। उसके लिए वह है जो उसने कमाया, और तुम्हारे लिए वह है जो तुमने कमाया। और जो कुछ वे करते थे, उसके बारे में तुमसे नहीं पूछा जाएगा।" [अल-बकरा: १४१]। इसे दोहराया गया क्योंकि इसमें धमकी और डराने का अर्थ शामिल था, यानी: यदि उन नबियों को, उनके नेतृत्व और श्रेष्ठता के बावजूद, उनके कर्मों का बदला दिया जाता है, तो तुम तो और भी अधिक इसके पात्र हो। इसलिए, इस बात पर ज़ोर देना आवश्यक था, और इसीलिए इसे दोहराया गया (५)।

अल्लाह तआला फ़रमाता है: "लोगों में से मूर्ख कहेंगे, 'उन्हें उनके उस क़िबले से किस चीज़ ने फेर दिया जिस पर वे थे?' कहो, 'पूरब और पश्चिम अल्लाह ही का है। वह जिसे चाहता है सीधे मार्ग की ओर निर्देशित करता है।'" [अल-बकरा: १४२]। इसमें ग्यारह मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: "लोगों में से मूर्ख कहेंगे" - अल्लाह तआला ने सूचित किया कि वे मोमिनों के शाम (यरूशलेम) से काबा की ओर मुड़ने के संबंध में कहेंगे: "उन्हें किस चीज़ ने फेर दिया?" और 'सयकुलु' (कहेंगे) 'क़ाला' (कहा) के अर्थ में है, भविष्य को भूतकाल के स्थान पर रखा गया है, जो इसकी निरंतरता को दर्शाता है, और यह कि वे उस कथन पर डटे रहेंगे। और उन्होंने अपने कथन "लोगों में से" के साथ विशिष्ट किया क्योंकि मूर्खता (सफ़ह) निर्जीव वस्तुओं और जानवरों में भी हो सकती है। और "मूर्ख" से तात्पर्य उन सभी से है जिन्होंने कहा: "उन्हें किस चीज़ ने फेर दिया?" (६)।

पाद टिप्पणियाँ: (१) अल-तबरी २/६१२ द्वारा उद्धृत। (२) (द) और (म) में: "नहीं"। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१७। (४) अल-सिहाह (ग़-फ़-ल), और मुज्मल अल-लुग़ह ३/६८३। (५) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१७। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१८।

صفحہ ۴۲۵ سورۃ البقرہ: آیات ۱۴۱ ، ۱۴۲

...انہوں نے محمد ﷺ کی صفت کو چھپایا، یہ قتادہ (۱) کا قول ہے، اور پہلا قول آیت کے سیاق کے زیادہ مشابہ ہے۔ ﴿وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُونَ﴾ (اور جو کچھ تم کر رہے ہو اللہ اس سے غافل نہیں ہے) یہ ایک وعید (دھمکی) اور اطلاع ہے کہ وہ (۲) ان کے معاملے کو بے کار نہیں چھوڑے گا، اور وہ انہیں ان کے اعمال کا بدلہ دے گا۔ اور غافل: وہ جو اپنی لاپرواہی کی وجہ سے امور پر توجہ نہ دے؛ یہ 'ارض الغُفْل' (۳) (غیر آباد زمین) سے ماخوذ ہے، اور یہ وہ زمین ہے جس میں آبادی کا کوئی نشان یا علم نہ ہو۔ 'ناقۃ غُفُل' (وہ اونٹنی جس پر کوئی نشان نہ ہو)، اور 'رجل غُفُل' (وہ آدمی جسے تجربہ نہ ہو)۔ الکسائی نے کہا: 'ارض غُفُل' وہ زمین ہے جس پر بارش نہ ہوئی ہو۔ 'غفلت عن الشیء غفلۃ وغفولاً' (میں چیز سے غافل ہو گیا)، اور 'اغفلت الشیء' کا مطلب ہے کہ میں نے اسے تمہارے ذکر (یاد) کے باوجود چھوڑ دیا (۴)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿تِلْكَ أُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُم مَّا كَسَبْتُمْ وَلَا تُسْأَلُونَ عَمَّا كَانُوا يَعْمَلُونَ ١٤١﴾ (یہ ایک امت تھی جو گزر گئی، اس کے لیے وہ ہے جو اس نے کمایا اور تمہارے لیے وہ ہے جو تم نے کمایا، اور تم سے ان کے اعمال کے بارے میں سوال نہیں کیا جائے گا)۔ اسے مکرر (دوبارہ) بیان کیا گیا کیونکہ اس میں دھمکی اور خوف دلانے کا مفہوم شامل تھا، یعنی: جب وہ انبیاء اپنی امامت اور فضیلت کے باوجود اپنے کسب (اعمال) کے مطابق جزا پائیں گے، تو تم تو بدرجہ اولیٰ مستحق ہو، لہٰذا تاکید ضروری تھی، اسی لیے اسے دہرایا گیا (۵)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿سَيَقُولُ السُّفَهَاءُ مِنَ النَّاسِ مَا وَلَّاهُمْ عَن قِبْلَتِهِمُ الَّتِي كَانُوا عَلَيْهَا قُل لِّلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ يَهْدِي مَن يَشَاءُ إِلَىٰ صِرَاطٍ مُّسْتَقِيمٍ ١٤٢﴾ (نادان لوگ اب کہیں گے کہ انہیں ان کے اس قبلہ سے کس چیز نے پھیر دیا جس پر وہ تھے؟ آپ کہہ دیجیے کہ مشرق اور مغرب سب اللہ ہی کا ہے،

وہ جسے چاہتا ہے سیدھی راہ کی طرف ہدایت دیتا ہے)۔ اس میں گیارہ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿سَيَقُولُ السُّفَهَاءُ مِنَ النَّاسِ﴾ اللہ تعالیٰ نے پہلے ہی بتا دیا کہ وہ (نادان لوگ) مومنین کے قبلہ کی شام (بیت المقدس) سے کعبہ کی طرف تبدیلی کے بارے میں کہیں گے: انہیں کس چیز نے پھیر دیا؟ اور "سیقول" (عنقریب کہیں گے) یہاں "قال" (کہا) کے معنی میں ہے، مستقبل کو ماضی کی جگہ لایا گیا ہے تاکہ اس کے دوام (ہمیشگی) پر دلالت کرے، اور یہ کہ وہ اس بات پر قائم رہیں گے۔ اور "من الناس" (لوگوں میں سے) کی قید اس لیے لگائی کہ 'سفہ' (نادانی) جمادات اور حیوانات میں بھی ہوتی ہے۔ اور "سفہاء" سے مراد وہ تمام لوگ ہیں جنہوں نے کہا: "انہیں کس چیز نے پھیر دیا؟" (۶)۔

حواشی: (۱) الطبری نے اسے ۶۱۲/۲ میں روایت کیا ہے۔ (۲) نسخہ (د) اور (م) میں: "لم" (نہیں چھوڑا)۔ (۳) المحرر الوجیز ۲۱۷/۱۔ (۴) الصحاح (غفل)، اور مجمل اللغۃ ۶۸۳/۳۔ (۵) المحرر الوجیز ۲۱۷/۱۔ (۶) المحرر الوجیز | ۲۱۸/۱

426 Surah Al-Baqarah: Verse 142

And 'the foolish' (al-sufahā') is a plural, its singular is 'foolish' (safīh), which refers to one who is light-minded; from their saying: 'a foolish garment', when it is light-woven, as mentioned previously (1). And for women, it's 'safāhah' (foolishness). Al-Mu'arrij said: 'The foolish one is the slandering liar, who intentionally opposes what he knows.' Qutrub said: 'The very unjust and very ignorant.'

The intended meaning of 'the foolish' here are the Jews in Medina; said Mujahid. Al-Suddi said: The hypocrites (2). Al-Zajjaj (3): The disbelievers of Quraysh when they denied the change of the Qibla; they said: 'Muhammad has longed for his birthplace, and will soon return to your religion.' The Jews said: 'His matter has become confused for him and he is bewildered.' And the hypocrites said: 'What has turned them away from their Qibla?!' and they mocked the Muslims. 'Wallaahum' (turned them) means: turned them away and diverted them.

Second: The Imams narrated - and the wording is for Malik - from Ibn Umar who said: While the people were at Quba in the morning prayer, someone came to them and said: 'Indeed (4) a revelation was sent down to the Messenger of Allah ﷺ tonight, and he has been commanded to face the Kaaba, so face it.' Their faces were towards the Sham (Jerusalem), so they turned towards the Kaaba (5).

And Al-Bukhari (6) related from Al-Bara: That the Prophet ﷺ prayed towards Bait al-Maqdis (Jerusalem) for sixteen months or seventeen months, and he liked that his Qibla should be towards the House (the Kaaba). He prayed the first prayer he ever prayed (7) the Asr prayer, and some people prayed with him. Then a man who had prayed with the Prophet ﷺ went out and passed by some people in a mosque while they were bowing (in Ruku'), and said: 'I bear witness by Allah that I have prayed with the Prophet ﷺ towards Mecca.' So they turned around as they were towards the House. And some men had died facing the old Qibla before it was changed, and we did not know what to say about them, so Allah, the Mighty and Sublime, revealed: {And Allah would never let your faith go to waste} [Al-Baqarah: 143].

So in this narration it is the Asr prayer, and in the narration of Malik it is the morning prayer.

---

(1) 311/1. (2) Narrated by Al-Tabari 617/2 and 618. (3) Ma'ani al-Quran by him 218/1. (4) The word: 'Inna' (Indeed), from (Kh) and (Z). (5) Al-Muwatta 195/1, Musnad Ahmad (4642), Sahih Bukhari (403), and Sahih Muslim (526). (6) Under number (40), also

narrated by Ahmad (18496), and Muslim (525) in abridged form. (7) The word: 'Salah' (prayer), is not in (D) and (M).

426 सूरह अल-बकरा: आयत 142

और 'मूर्ख' (अस-सुफ़हा) बहुवचन है, जिसका एकवचन 'सफ़ह' है, और यह कम बुद्धि वाले को कहते हैं; जैसे वे कहते हैं: 'एक मूर्ख कपड़ा', जब वह हल्का बुना हुआ हो, जैसा कि पहले बताया गया है (1)। और महिलाओं के लिए यह 'सफ़ाहा' (मूर्खता) है। अल-मुअरीज ने कहा: 'मूर्ख वह है जो झूठा और अपमानजनक है, जो जानबूझकर उस बात का विरोध करता है जिसे वह जानता है।' कुत्रुब ने कहा: 'अत्यधिक अत्याचारी और अज्ञानी।'

यहाँ 'मूर्ख' से तात्पर्य मदीना के यहूदियों से है; मुजाहिद ने यह कहा। अल-सुद्दी ने कहा: पाखंडी (मुनाफ़िक़ीन) (2)। अल-ज़ज्जाज (3): कुरैश के काफिर जब उन्होंने क़िब्ला बदलने का विरोध किया; उन्होंने कहा: 'मुहम्मद अपने जन्मस्थान के लिए लालायित हो गए हैं, और जल्द ही तुम्हारे धर्म में लौट आएंगे।' यहूदियों ने कहा: 'उनका मामला उनके लिए उलझ गया है और वह भ्रमित हैं।' और पाखंडियों ने कहा: 'उन्हें उनके क़िब्ला से किसने मोड़ दिया?!' और उन्होंने मुसलमानों का मज़ाक उड़ाया। 'वल्लाहहुम' (उन्हें मोड़ दिया) का अर्थ है: उन्हें हटा दिया और विमुख कर दिया।

दूसरा: इमामों ने उल्लेख किया है - और शब्द मालिक के हैं - इब्न उमर से, जिन्होंने कहा: जब लोग क़ुबा में सुबह की नमाज़ पढ़ रहे थे, तो एक व्यक्ति उनके पास आया और कहा: 'निश्चित रूप से (4) आज रात अल्लाह के रसूल ﷺ पर कुरान की आयत उतरी है, और उन्हें काबा की ओर मुंह करने का आदेश दिया गया है, इसलिए आप लोग भी उसकी ओर मुड़ जाएं।' उनके चेहरे शाम (यरूशलेम) की ओर थे, तो वे काबा की ओर मुड़ गए (5)।

और अल-बुखारी (6) ने अल-बरा से उल्लेख किया है: कि नबी ﷺ ने सोलह या सत्रह महीनों तक बैत अल-मक़दिस की ओर नमाज़ पढ़ी, और उन्हें यह पसंद था कि उनका क़िब्ला बैत (काबा) की ओर हो। उन्होंने जो पहली नमाज़ पढ़ी वह (7) अस्र की नमाज़ थी, और कुछ लोगों ने उनके साथ नमाज़ पढ़ी। फिर उन लोगों में से एक व्यक्ति निकला जिसने नबी ﷺ के साथ नमाज़ पढ़ी थी, और वह एक मस्जिद के पास से गुज़रा जहाँ लोग रुकू(झुके हुए) में थे, तो उसने कहा: 'मैं अल्लाह की गवाही देता हूँ कि मैंने नबी ﷺ के साथ मक्का की ओर मुड़कर नमाज़ पढ़ी है।' तो वे वैसे ही बैत (काबा) की ओर मुड़ गए। और कुछ लोग क़िब्ला बदलने से पहले ही मर गए थे, हमें नहीं पता था कि उनके बारे में क्या कहें, तो अल्लाह सर्वशक्तिमान ने यह आयत उतारी: {और अल्लाह तुम्हारे ईमान को व्यर्थ नहीं करेगा} [अल-बकरा: 143]।

तो इस रिवायत में यह अस्र की नमाज़ है, और मालिक की रिवायत में यह सुबह की नमाज़ है।

---

(1) 311/1. (2) इसे अल-तबरी 617/2 और 618 ने उद्धृत किया है। (3) उनके द्वारा रचित 'मआनी अल-क़ुरआन' 218/1। (4) शब्द: 'इन' (निश्चित रूप से), (ख) और (ज़) प्रतियों से। (5) अल-मुवत्ता 195/1, मुसनद अहमद (4642), सहीह बुखारी (403), और सहीह मुस्लिम (526)। (6) संख्या (40) के अंतर्गत, और इसे अहमद (18496) और मुस्लिम (525) ने संक्षिप्त रूप में उद्धृत किया है। (7) शब्द: 'नमाज़' (सलात), (द) और (म) प्रतियों में नहीं है।

426 سورة البقرہ: آیت ۱۴۲

اور 'سفہاء' جمع ہے، اس کا واحد 'سفیہ' ہے، اور اس سے مراد کم عقل ہے؛ اہل عرب کے اس قول سے ماخوذ ہے: 'ثوب سفیہ' (بے وقوف لباس)، جب وہ ہلکا بنا ہوا ہو، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (1)۔ اور عورتوں کے لیے 'سفاہہ' (بے وقوفی) استعمال ہوتا ہے۔ المؤرج نے کہا: سفیہ وہ بہتان تراش جھوٹا ہے جو جانتے بوجھتے حق کی مخالفت کرے۔ قطرب نے کہا: بہت زیادہ ظلم کرنے والا اور جاہل۔

اور یہاں 'سفہاء' سے مراد مدینہ کے یہودی ہیں؛ یہ مجاہد کا قول ہے۔ السدی نے کہا: منافقین (2)۔ الزجاج (3): قریش کے کفار جب انہوں نے تحویلِ قبلہ کا انکار کیا؛ انہوں نے کہا: 'محمد اپنے مولد (پیدائش گاہ) کے مشتاق ہو گئے ہیں، اور عنقریب تمہارے دین کی طرف لوٹ آئیں گے۔' یہودیوں نے کہا: 'ان پر ان کا معاملہ مشتبہ ہو گیا ہے اور وہ حیران و پریشان ہیں۔' اور منافقین نے کہا: 'انہیں ان کے قبلہ سے کس چیز نے پھیر دیا؟!' اور انہوں نے مسلمانوں کا مذاق اڑایا۔ 'ولّاھم' (انہیں پھیر دیا) کا مطلب ہے: انہیں موڑ دیا اور ہٹا دیا۔

دوسری بات: ائمہ نے روایت کیا ہے - اور الفاظ مالک کے ہیں - ابن عمر سے، انہوں نے کہا: جب لوگ قباء میں صبح کی نماز پڑھ رہے تھے کہ اچانک ایک آنے والا آیا اور کہا: 'بے شک (4) اللہ کے رسول ﷺ پر آج رات قرآن نازل ہوا ہے، اور آپ کو حکم دیا گیا ہے کہ کعبہ کی طرف رخ کریں، پس تم بھی اس کی طرف رخ کر لو۔' ان کے چہرے شام (بیت المقدس) کی طرف تھے، تو وہ کعبہ کی طرف گھوم گئے (5)۔

اور امام بخاری (6) نے براء سے روایت کی ہے: کہ نبی ﷺ نے سولہ یا سترہ ماہ تک بیت المقدس کی طرف نماز پڑھی، اور آپ ﷺ کو یہ پسند تھا کہ آپ کا قبلہ بیت اللہ (کعبہ) کی طرف ہو، اور

پہلی نماز جو آپ نے (کعبہ کی طرف) پڑھی وہ (7) عصر کی نماز تھی، اور کچھ لوگوں نے آپ کے ساتھ نماز پڑھی۔ پھر ان لوگوں میں سے ایک شخص نکلا جس نے نبی ﷺ کے ساتھ نماز پڑھی تھی، وہ ایک مسجد والوں کے پاس سے گزرا جبکہ وہ رکوع میں تھے، تو اس نے کہا: 'میں اللہ کی گواہی دیتا ہوں کہ میں نے نبی ﷺ کے ساتھ مکہ کی طرف رخ کر کے نماز پڑھی ہے۔' تو وہ اسی حال میں کعبہ کی طرف گھوم گئے۔ اور کچھ لوگ قبلہ تبدیل ہونے سے پہلے ہی وفات پا چکے تھے، ہمیں معلوم نہ تھا کہ ان کے بارے میں کیا کہیں، تو اللہ عزوجل نے یہ آیت نازل فرمائی: {اور اللہ تمہارے ایمان کو ضائع نہیں کرے گا} [البقرہ: ۱۴۳]۔

چنانچہ اس روایت میں عصر کی نماز کا ذکر ہے، اور امام مالک کی روایت میں صبح کی نماز کا ذکر ہے۔

---

(1) ۳۱۱/۱۔ (2) اسے طبری نے ۶۱۷/۲ اور ۶۱۸ میں روایت کیا ہے۔ (3) ان کی کتاب معانی القرآن ۲۱۸/۱۔ (4) لفظ: 'إن' (بے شک)، نسخہ (خ) اور (ز) سے۔ (5) الموطأ ۱۹۵/۱، اور مسند احمد (۴۶۴۲)، اور صحیح بخاری (۴۰۳)، اور صحیح مسلم (۵۲۶)۔ (6) نمبر (۴۰) کے تحت، اور اسے احمد (۱۸۴۹۶) اور مسلم (۵۲۵) نے مختصراً روایت کیا ہے۔ (7) لفظ: 'صلاۃ' (نماز)، نسخہ (د) اور (م) میں نہیں ہے۔

427 Surah Al-Baqarah: Verse 142

It is said: This was revealed to the Prophet ﷺ in the mosque of Banu Salimah; while he was in the Dhuhr prayer after two rak'ahs of it. He turned during the prayer, and that mosque was named the Mosque of the Two Qiblas (1).

Abu al-Faraj mentioned that Abbad ibn Nahik was with the Prophet ﷺ in this prayer (2).

Abu Umar mentioned in "Al-Tamheed" on the authority of Tuwayla (3) bint Aslam - and she was among those who gave the pledge of allegiance - she said: We were in the Dhuhr prayer, then Abbad ibn Bishr ibn Qayzi (4) approached and said: Indeed, the Messenger of Allah ﷺ has faced the Qibla - or he said: the Sacred House - so the men moved to the women's place, and the women moved to the men's place.

It is said: The verse was revealed outside of prayer, which is the majority view, and the first prayer towards the Kaaba was Asr (5). And Allah knows best.

It is narrated that the first person to pray towards the Kaaba when the Qibla was changed from Jerusalem was Abu Sa'id bin Al-Mu'alla. That is because he was passing by the mosque and heard the Messenger of Allah ﷺ addressing the people about the change of Qibla on the pulpit, and he was reading this verse: {We have certainly seen the turning of your face, [O Muhammad], toward the heaven} until he finished the verse. So I said to my companion: Come, let us bow two rak'ahs before the Messenger of Allah ﷺ descends, so that we may be the first to pray. So we hid and prayed them (6), then the Messenger of Allah ﷺ descended.

---

(1) Mentioned by Ibn Sa'd 1/241-242, and he quoted Al-Waqidi as saying: This is more established with us. It was also mentioned by Al-Baji in Al-Muntaqa 1/339, and Al-Baghawi in Ma'alim al-Tanzil 1/125 from Mujahid. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/222. Abbad ibn Nahik: He is the Ansari al-Khatmi. Ibn Abd al-Barr said in Al-Isti'ab 5/321 (in the margin of Al-Isaba): He is the one who warned Banu Haritha when he found them praying towards Jerusalem, and informed them that the Qibla had been changed. (3) In (Z): Thuwaylah, which is an error. In (M) and Al-Tamheed 17/46: Nuwaylah (with 'N'). Ibn Abd al-Barr mentioned her in Al-Isti'ab 13/170 (in the margin of Al-Isaba): Nawlah (not diminutive). Al-Hafiz Ibn Hajar mentioned her in Al-Isaba 12/166: Tuwaylah (with 'T'), and said: It is said about her: Tawlah, without diminutive, and it is said: Its first letter is 'N'. He mentioned her in 13/156: Nuwaylah (with 'N') and said: It is said its first letter is 'T' above. This 'N' version is the narration of Ishaq bin Idris

from Ja'far bin Mahmoud, and the one mentioned before (meaning with 'T') is the narration of Ibrahim bin Hamzah, which is more reliable. (4) He is the same Abbad ibn Nahik mentioned above. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/222. (6) It occurred in (Kh), (Z), and (M): "So we hid ourselves well and prayed them," and in (Z): "So we hid together." This extra word did not appear in (D) or sources of Hadith.

427 सूरह अल-बकरा: आयत 142

कहा गया है: यह पैगंबर ﷺ पर बनू सलीमा की मस्जिद में अवतरित हुआ था; जबकि वह ज़ुहर की नमाज़ की दो रकातों के बाद थे। वह नमाज़ के दौरान मुड़ गए, और उस मस्जिद का नाम 'मस्जिद अल-क़िब्लतैन' (दो क़िबलों वाली मस्जिद) रखा गया (1)।

अबू अल-फ़रज ने उल्लेख किया है कि अब्बाद बिन नहिक इस नमाज़ में पैगंबर ﷺ के साथ थे (2)।

अबू उमर ने "अल-तमहीद" में तुवैला (3) बिन्त असलम - जो बैअत (शपथ) लेने वाली महिलाओं में से थीं - के हवाले से उल्लेख किया है, उन्होंने कहा: हम ज़ुहर की नमाज़ में थे, तभी अब्बाद बिन बिश्र बिन क़ैज़ी (4) आए और कहा: निश्चय ही अल्लाह के रसूल ﷺ ने क़िबला - या उन्होंने कहा: बैत अल-हराम - की ओर मुख कर लिया है। तो पुरुष महिलाओं के स्थान पर चले गए, और महिलाएँ पुरुषों के स्थान पर चली गईं।

कहा गया है: यह आयत नमाज़ के बाहर अवतरित हुई थी, जो कि बहुसंख्यक राय है, और काबा की ओर पहली नमाज़ असर की थी (5)। और अल्लाह बेहतर जानता है।

यह वर्णित है कि जब क़िबला को बैतुल मक़दिस (यरूशलेम) से बदला गया, तो काबा की ओर सबसे पहले नमाज़ पढ़ने वाले व्यक्ति अबू सईद बिन अल-मुअल्ला थे। ऐसा इसलिए क्योंकि वह मस्जिद के पास से गुज़र रहे थे और उन्होंने अल्लाह के रसूल ﷺ को मिम्बर पर क़िबला बदलने के बारे में लोगों को संबोधित करते हुए सुना, और वह इस आयत को पढ़ रहे थे: {निश्चय ही हम आपके चेहरे का आसमान की ओर मुड़ना देख रहे हैं} जब तक कि उन्होंने आयत पूरी नहीं कर ली। तो मैंने अपने साथी से कहा: आओ, अल्लाह के रसूल ﷺ के उतरने से पहले हम दो रकात नमाज़ पढ़ लें, ताकि हम सबसे पहले नमाज़ पढ़ने वाले बनें। तो हम छिप गए और हमने उन्हें पढ़ा (6), फिर अल्लाह के रसूल ﷺ उतरे।

---

(1) इब्न साद 1/241-242 द्वारा उल्लेखित, और उन्होंने अल-वाकिदी का यह कहते हुए उद्धरण दिया: यह हमारे पास अधिक प्रमाणित है। इसका उल्लेख अल-बाजी ने अल-मुंतक़ा 1/339 में और अल-बगवी ने मआलिम अल-तंज़ील 1/125 में मुजाहिद से किया है। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/222। अब्बाद बिन नहिक: वह अंसारी अल-ख़तमी हैं। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तियाब 5/321 में कहा (अल-इसाबा के हाशिये पर): वह वही हैं जिन्होंने बनू हारिथ को आगाह किया था जब उन्होंने

उन्हें बैतुल मक़दिस की ओर नमाज़ पढ़ते हुए पाया, और उन्हें सूचित किया कि क़िबला बदल दिया गया है। (3) (ज़) में: थुवैला, जो कि एक त्रुटि है। (म) और अल-तमहीद 17/46 में: नुवैला ('न' के साथ)। इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तियाब 13/170 (अल-इसाबा के हाशिये पर) में उनका उल्लेख किया है: नवला (बिना लघु रूप के)। हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा 12/166 में उनका उल्लेख किया है: तुवैला ('त' के साथ), और कहा: उनके बारे में कहा गया है: तवला, बिना लघु रूप के, और कहा गया है: इसका पहला अक्षर 'न' है। उन्होंने 13/156 में उनका उल्लेख किया है: नुवैला ('न' के साथ) और कहा: कहा जाता है कि इसका पहला अक्षर ऊपर दो बिंदुओं वाला 'त' है। 'न' वाला संस्करण जाफ़र बिन महमूद से इसहाक बिन इदरीस का वर्णन है, और जो पहले उल्लेख किया गया है (यानी 'त' के साथ) इब्राहिम बिन हमज़ा का वर्णन है, जो अधिक विश्वसनीय है। (4) वह वही अब्बाद बिन नहिक हैं जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/222। (6) (ख़), (ज़) और (म) में यह आया है: "तो हम अच्छी तरह छिप गए और उन्हें पढ़ा", और (ज़) में: "तो हम एक साथ छिप गए"। यह अतिरिक्त शब्द (द) या हदीस के स्रोतों में नहीं मिला।

427 سورہ البقرہ: آیت 142

اور کہا گیا: یہ (حکم) نبی ﷺ پر مسجدِ بنی سلمہ میں نازل ہوا؛ جب کہ آپ ﷺ ظہر کی نماز کی دو رکعتوں کے بعد (کی حالت میں) تھے۔ آپ ﷺ نماز ہی میں (قبلہ کی طرف) گھوم گئے، چنانچہ اس مسجد کا نام 'مسجد القبلتین' (دو قبلوں والی مسجد) پڑ گیا (1)۔

اور ابو الفرج نے ذکر کیا ہے کہ عباد بن نہیک اس نماز میں نبی ﷺ کے ساتھ تھے (2)۔

اور ابو عمر نے "التمہید" میں تُویلہ (3) بنت اسلم - جو بیعت کرنے والی خواتین میں سے تھیں - کے واسطے سے ذکر کیا ہے کہ انہوں نے کہا: ہم ظہر کی نماز میں تھے کہ عباد بن بشر بن قیظی (4) آئے اور کہا: بے شک رسول اللہ ﷺ نے قبلہ - یا انہوں نے کہا: بیت الحرام - کی طرف رخ کر لیا ہے۔ تو مرد عورتوں کی جگہ اور عورتیں مردوں کی جگہ منتقل ہو گئیں۔

اور کہا گیا ہے: یہ آیت نماز کے علاوہ حالت میں نازل ہوئی تھی، اور یہی (قول) زیادہ مشہور ہے، اور کعبہ کی طرف پہلی نماز عصر کی تھی (5)۔ واللہ اعلم۔

اور روایت ہے کہ جب قبلہ بیت المقدس سے پھیرا گیا تو کعبہ کی طرف سب سے پہلے نماز پڑھنے والے ابو سعید بن المعلیٰ تھے۔ اس کی وجہ یہ تھی کہ وہ مسجد کے پاس سے گزر رہے تھے تو انہوں نے رسول اللہ ﷺ کو منبر پر لوگوں کو قبلہ کی تبدیلی کے بارے میں خطاب کرتے ہوئے سنا، اور آپ ﷺ یہ آیت تلاوت فرما رہے تھے: {بے شک ہم آپ کے چہرے کا بار بار آسمان کی طرف اٹھنا دیکھ رہے ہیں} یہاں تک کہ آپ ﷺ آیت سے فارغ ہو گئے۔ تو میں نے اپنے ساتھی سے کہا: آؤ، اس سے پہلے کہ رسول اللہ ﷺ (منبر سے) اتریں، ہم دو رکعتیں پڑھ لیں تاکہ ہم سب سے پہلے

نماز پڑھنے والے بن جائیں۔ چنانچہ ہم چھپ گئے اور ہم نے وہ دونوں رکعتیں پڑھیں (6)، پھر رسول اللہ ﷺ (منبر سے) اترے۔

حواشی: (1) اسے ابن سعد نے 241/1-242 پر ذکر کیا ہے، اور الواقدی سے ان کا یہ قول نقل کیا ہے: یہ ہمارے نزدیک زیادہ ثابت ہے۔ اسے باجی نے المنتقیٰ 339/1 میں اور بغوی نے معالم التنزیل 125/1 میں مجاہد سے بھی ذکر کیا ہے۔ (2) المحرر الوجیز 222/1۔ عباد بن نہیک: یہ انصاری خطمی ہیں۔ ابن عبد البر نے الاستیعاب 321/5 میں (الاصابة کے حاشیہ پر) کہا: یہ وہ ہیں جنہوں نے بنو حارثہ کو اس وقت آگاہ کیا تھا جب انہوں نے انہیں بیت المقدس کی طرف رخ کر کے نماز پڑھتے ہوئے پایا، اور انہیں خبر دی کہ قبلہ بدل دیا گیا ہے۔ (3) (ظ) میں: ثویلہ، جو کہ غلطی ہے، اور (م) اور التمہید 46/17 میں: نویلہ ('ن' کے ساتھ)۔ ابن عبد البر نے الاستیعاب 170/13 میں (الاصابة کے حاشیہ پر) ان کا تذکرہ 'نولہ' (بغیر تصغیر کے) کے طور پر کیا ہے۔ حافظ ابن حجر نے الاصابة 166/12 میں ان کا ذکر 'تُویلہ' ('ت' کے ساتھ) کیا ہے، اور کہا: ان کے بارے میں تَوْلہ (بغیر تصغیر) بھی کہا گیا ہے، اور یہ بھی کہا گیا کہ اس کا پہلا حرف 'ن' ہے۔ انہوں نے 156/13 میں ان کا ذکر 'نویلہ' ('ن' کے ساتھ) کیا ہے اور کہا: کہا جاتا ہے اس کا پہلا حرف اوپر دو نقطوں والا 'ت' ہے۔ یہ 'ن' والی روایت جعفر بن محمود سے اسحاق بن ادریس کی ہے، اور جو پہلے ذکر ہوئی (یعنی 'ت' کے ساتھ) وہ ابراہیم بن حمزہ کی روایت ہے، جو زیادہ معتبر ہے۔ (4) یہ وہی عباد بن نہیک ہیں جن کا پہلے ذکر گزر چکا ہے۔ (5) المحرر الوجیز 222/1۔ (6) (خ)، (ز) اور (م) میں یہ لفظ آئے ہیں: "تو ہم اچھی طرح چھپ گئے اور ہم نے وہ دونوں رکعتیں پڑھیں"، اور (ظ) میں: "پس ہم مل کر چھپ گئے"۔ یہ اضافی لفظ (د) یا حدیث کے مصادر میں نہیں آیا۔

428

Surah Al-Baqarah: Verse 142

So he led the people(1) in Dhuhr prayer on that day(2).

Abu 'Umar(3) said: Abu Sa'id bin al-Mu'alla has no other hadith but this one and the hadith: "I was praying," regarding the virtue of al-Fatihah, which was narrated by al-Bukhari, as previously mentioned(4).

Third: There is disagreement regarding the time of the changing of the Qiblah after his arrival in Medina. It was said: it was changed after sixteen months or seventeen months, as in al-Bukhari(5).

Al-Daraqutni(6) also narrated from al-Bara', who said: We prayed with the Messenger of Allah ﷺ after his arrival in Medina for sixteen months towards Bait al-Maqdis, then Allah knew the desire of His Prophet, so it was revealed: {We have certainly seen the turning of your face, [O Muhammad], toward the heaven} [Al-Baqarah: 144]. So in this narration, it is sixteen months without doubt.

Malik(7) narrated from Yahya bin Sa'id, from Sa'id bin al-Musayyib, that its change was two months before Badr(8). Ibrahim bin Ishaq said: That was in Rajab of the year two(9).

Abu Hatim al-Busti(10) said: The Muslims prayed towards Bait al-Maqdis for seventeen months and exactly three days; that is because his arrival in Medina was on a Monday, twelve nights having passed of the month of Rabi' al-Awwal, and Allah Almighty commanded him to face the Kaaba on Tuesday, the middle of Sha'ban.

Fourth: Scholars also disagreed on the nature of his facing Bait al-Maqdis according to three opinions:

Al-Hasan said: That was based on his own opinion and ijtihad (independent legal reasoning), and this was also said by 'Ikrimah and Abu al-'Aliyah.

---

(1) In (M): for the people. (2) Narrated by Al-Qasim bin Sallam in Al-Nasikh wal-Mansukh (23), Al-Nasa'i in Al-Kubra (10937), Al-Bazzar in his Musnad (419) (Zawa'id), and Al-Tabarani in Al-Kabir 22/ (770). (3) Al-Isti'ab 11/280 (on the margin of Al-Isabah). (4) Sahih Al-Bukhari (4474), and previously mentioned 1/167. (5) Number (40), and previously mentioned shortly. (6) In his Sunan 1/273-274. (7) In Al-Muwatta 1/196, and Al-Shafi'i narrated it from him in Al-Risalah (366). (8) In (M): before the Battle of

Badr. (9) Al-Muharrar al-Wajiz 1/218. (10) He is Ibn Hibban, and his words are in his Sahih (Al-Ihsan) following hadith (1716).

४२८

सूरह अल-बकराह : आयत १४२

फिर उन्होंने उस दिन ज़ुहर की नमाज़ लोगों(१) को पढ़ाई(२)।

अबू उमर(३) ने कहा: अबू सईद बिन अल-मुअल्ला की इस हदीस के अलावा और कोई हदीस नहीं है, और एक हदीस: "मैं नमाज़ पढ़ रहा था," अल-फातिहा की फज़ीलत के बारे में, जिसे अल-बुखारी ने रिवायत किया है, और यह पहले भी आ चुका है(४)।

तीसरा: मदीना आने के बाद किबला बदलने के समय के बारे में मतभेद है। कहा गया है: यह सोलह महीने या सत्रह महीने बाद बदला गया था, जैसा कि अल-बुखारी में है(५)।

अल-दाराकुतनी(६) ने अल-बारा' से भी रिवायत की है, उन्होंने कहा: हमने अल्लाह के रसूल ﷺ के साथ मदीना आने के बाद सोलह महीने तक बैत अल-मक़दिस की तरफ़ मुँह करके नमाज़ पढ़ी, फिर अल्लाह ने अपने नबी की इच्छा को जान लिया, तो यह आयत नाज़िल हुई: {हम निश्चित रूप से आपके चेहरे का बार-बार आकाश की ओर मुड़ना देख रहे हैं} [सूरह अल-बकराह: १४४]। इस रिवायत में बिना किसी शक के सोलह महीने का ज़िक्र है।

मलिक(७) ने यहया बिन सईद से, उन्होंने सईद बिन अल-मुसय्यिब से रिवायत की है कि यह बदलाव बद्र(८) से दो महीने पहले हुआ था। इब्राहिम बिन इसहाक ने कहा: और वह सन दो हिजरी के रजब के महीने में था(९)।

अबू हातिम अल-बुस्ती(१०) ने कहा: मुसलमानों ने सत्रह महीने और पूरे तीन दिनों तक बैत अल-मक़दिस की तरफ़ नमाज़ पढ़ी; ऐसा इसलिए क्योंकि उनका मदीना आगमन रबी-उल-अव्वल महीने की बारह रातें बीत जाने के बाद सोमवार के दिन हुआ था, और अल्लाह तआला ने उन्हें शाबान के मध्य में मंगलवार के दिन काबा की ओर मुँह करने का आदेश दिया।

चौथा: बैत अल-मक़दिस की ओर मुख करने की प्रकृति के बारे में भी विद्वानों में तीन राय हैं:

अल-हसन ने कहा: वह उनकी अपनी राय और इज्तिहाद (स्वतंत्र कानूनी तर्क) पर आधारित था, और यही बात इकरीमा और अबू अल-आलिया ने भी कही थी।

(१) (म) में: लोगों के लिए। (२) अल-कासिम बिन सल्लम ने अल-नाि़सिख वल-मंसूख (२३) में, अल-नसाई ने अल-कुबरा (१०९३७) में, अल-बज्ज़ार ने अपनी मुसनद (४१९) (ज़वाइद) में, और अल-तबरानी ने अल-कबीर २२/ (७७०) में रिवायत किया है। (३) अल-इस्तिआब ११/२८० (अल-इसाबा के हाशिये पर)। (४) सहीह अल-बुखारी (४४७४), और पहले १/१६७। (५) संख्या (४०), और हाल ही में पहले उल्लेख किया गया। (६) उनकी सुनन १/२७३-२७४ में। (७) अल-मुवत्ता १/१९६ में, और अल-शफ़ई ने उनसे अल-रिसाला (३६६) में इसे रिवायत किया है। (८) (म) में: बद्र के युद्ध से पहले। (९) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२१८। (१०) वह इब्न हिब्बान हैं, और उनकी बात उनकी सहीह (अल-इहसान) में हदीस (१७१६) के बाद है।

۴۲۸

سورة البقرہ : آیت ۱۴۲

پس آپ نے اس دن لوگوں(۱) کو ظہر کی نماز پڑھائی(۲)۔

ابو عمر(۳) نے کہا: ابو سعید بن المعلی کی اس حدیث کے علاوہ کوئی اور حدیث نہیں ہے، اور حدیث: «میں نماز پڑھ رہا تھا»، سورہ فاتحہ کی فضیلت میں، اسے بخاری نے روایت کیا ہے، اور یہ پہلے گزر چکی ہے(۴)۔

تیسرا: مدینہ آنے کے بعد قبلہ کی تبدیلی کے وقت کے بارے میں اختلاف ہے، چنانچہ کہا گیا: مدینہ آنے کے سولہ ماہ بعد یا سترہ ماہ بعد قبلہ تبدیل کیا گیا، جیسا کہ بخاری میں ہے(۵)۔

اور دارقطنی(۶) نے براء سے بھی روایت کی ہے، انہوں نے کہا: ہم نے رسول اللہ ﷺ کے ساتھ مدینہ آنے کے بعد سولہ ماہ تک بیت المقدس کی طرف نماز پڑھی، پھر اللہ نے اپنے نبی کی خواہش کو جان لیا، تو یہ آیت نازل ہوئی: ﴿یقیناً ہم دیکھ رہے ہیں آپ کے چہرے کا بار بار آسمان کی طرف اٹھنا﴾۔ پس اس روایت میں بلا شک و شبہ سولہ ماہ کا ذکر ہے۔

اور مالک(۷) نے یحییٰ بن سعید سے، انہوں نے سعید بن المسیب سے روایت کی ہے کہ قبلہ کی تبدیلی بدر(۸) سے دو ماہ پہلے ہوئی تھی۔ ابراہیم بن اسحاق نے کہا: اور وہ سن دو ہجری کے رجب میں تھا(۹)۔

اور ابو حاتم البستی(۱۰) نے کہا: مسلمانوں نے سترہ ماہ اور پورے تین دن بیت المقدس کی طرف نماز پڑھی، اور وہ اس لیے کہ آپ کی مدینہ آمد ربیع الاول کے بارہ دن گزرنے کے بعد پیر کے

دن ہوئی تھی، اور اللہ عزوجل نے آپ کو شعبان کے پندرہویں دن منگل کے روز کعبہ کی طرف رخ کرنے کا حکم دیا۔

چوتھا: علماء کا بیت المقدس کی طرف رخ کرنے کی کیفیت کے بارے میں بھی تین اقوال پر اختلاف ہے:

حسن بصری نے کہا: آپ کا یہ عمل اپنی رائے اور اجتہاد سے تھا، اور یہی بات عکرمہ اور ابو العالیہ نے کہی ہے۔

حواشی: (۱) (م) میں: بالناس۔ (۲) اسے القاسم بن سلام نے الناسخ والمنسوخ (۲۳) میں، نسائی نے الکبریٰ (۱۰۹۳۷) میں، بزار نے اپنی مسند (۴۱۹) (زوائد) میں، اور طبرانی نے الکبیر ۲۲/ (۷۷۰) میں روایت کیا ہے۔ (۳) الاستیعاب ۱۱/۲۸۰ (الاصابہ کے حاشیہ پر)۔ (۴) صحیح بخاری (۴۴۷۴)، اور پیچھے گزر چکا ۱/۱۶۷۔ (۵) نمبر (۴۰)، اور پیچھے قریب ہی ذکر ہوا۔ (۶) اپنی سنن ۱/ ۲۷۳-۲۷۴ میں۔ (۷) الموطا ۱/ ۱۹۶ میں، اور اسے شافعی نے الرسالہ (۳۶۶) میں ان سے روایت کیا ہے۔ (۸) (م) میں: غزوہ بدر سے پہلے۔ (۹) المحرر الوجیز ۱/ ۲۱۸۔ (۱۰) وہ ابن حبان ہیں، اور ان کی بات اپنی صحیح (الاحسان) میں حدیث (۱۷۱۶) کے بعد ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 142 429

Second: That he was given a choice between it and the Kaaba, so he chose Jerusalem (Al-Quds) hoping for the faith of the Jews and to win them over. This was stated by Al-Tabari (1). Al-Zajjaj said (2): As a test for the polytheists because they were accustomed to the Kaaba.

Third: This is the view held by the majority - Ibn Abbas (3) and others - that facing it was mandatory for him by the command and revelation of God Almighty inevitably. Then God abrogated that and commanded him to face the Kaaba in his prayer. They cited as evidence the words of the Almighty: "And We did not make the qiblah which you used to face except that We might make evident who follows the Messenger from who turns back on his heels" the verse.

Fifth: They also differed when prayer was first prescribed for him in Mecca; was it towards Jerusalem or towards Mecca? There are two opinions:

One group said: towards Jerusalem, and in Medina for seventeen months, then God Almighty turned him towards the Kaaba (4). This was stated by Ibn Abbas (5).

Others said: The first time prayer was prescribed for him, it was towards the Kaaba, and he continued to pray towards it throughout his stay in Mecca, following the way of the prayer of Abraham and Ishmael. When he arrived in Medina, he prayed towards Jerusalem for sixteen months, or seventeen months, according to the disagreement, then God turned him towards the Kaaba (6). Abu Omar said: And this is the more correct of the two opinions in my view (7).

Others said: That is because when the Prophet ﷺ arrived in Medina, he wanted to win over the hearts of the Jews, so he faced their Qibla, so that it might be more inviting to them. When their stubbornness became clear and he despaired of them, he wished to turn towards the Kaaba, so he would look towards the sky.

(1) In his Tafsir 2/623, and it was quoted from him by Al-Mawardi in Al-Nukat wal-Uyun 1/198. (2) Ma'ani al-Quran 1/218. (3) Narrated by Al-Qasim ibn Sallam in Al-Nasikh wal-Mansukh (21), Al-Tabari 2/450, Al-Jassas in Ahkam al-Quran 1/85, Ibn Abd al-Barr in Al-Istidhkar 7/213, and Al-Tamhid 17/53. (4) Al-Tamhid 17/49, and Al-Istidhkar 7/211. (5) Narrated by Ahmad (2991), and Ibn Abd al-Barr in Al-Tamhid 17/49, and Al-Istidhkar 7/211. (6) Al-Tamhid 17/49-50, and Al-Istidhkar 7/211. (7) We did not find these words of his.

सूरह अल-बकरा: आयत 142 429

दूसरा: यह कि उन्हें इसके और काबा के बीच चुनाव दिया गया था, इसलिए उन्होंने यहूदियों के ईमान की उम्मीद में और उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने के लिए यरूशलेम (अल-क़ुद्स) को चुना। यह अल-तबरी (1) द्वारा कहा गया था। अल-ज़ज्जाज ने कहा (2): मुशरिकों (बहुदेववादियों) की परीक्षा के रूप में क्योंकि वे काबा के आदी थे।

तीसरा: और यही वह विचार है जिस पर बहुमत - इब्न अब्बास (3) और अन्य - सहमत हैं - कि अल्लाह तआला के आदेश और उनकी वही (प्रकाशना) द्वारा इसकी ओर मुँह करना उनके लिए अनिवार्य था, फिर अल्लाह ने उसे निरस्त कर दिया, और अल्लाह ने उन्हें अपनी नमाज़ में काबा की ओर मुँह करने का आदेश दिया। और उन्होंने अल्लाह तआला के इस कथन से प्रमाण दिया: "और हमने वह किबला जिस पर आप थे नहीं बनाया था सिवाय इसके कि हम जान लें कि कौन रसूल का अनुसरण करता है उस व्यक्ति से जो अपनी एड़ियों के बल फिर जाता है" आयत।

पाँचवाँ: और वे इस बात पर भी असहमत थे कि जब मक्का में पहली बार नमाज़ फर्ज की गई थी; क्या वह बैतुल मक़दिस की ओर थी या मक्का की ओर? इसके दो मत हैं:

एक समूह ने कहा: बैतुल मक़दिस की ओर, और मदीना में सत्रह महीनों तक, फिर अल्लाह तआला ने उन्हें काबा (4) की ओर फेर दिया। यह इब्न अब्बास (5) ने कहा था।

दूसरों ने कहा: नमाज़ पहली बार जब उन पर फर्ज की गई थी, तो वह काबा की ओर थी, और वे मक्का में अपने पूरे प्रवास के दौरान उसकी ओर नमाज़ पढ़ते रहे, जैसा कि इब्राहिम और इस्माइल की नमाज़ थी। फिर जब वे मदीना आए, तो उन्होंने मतभेद के आधार पर सोलह महीने या सत्रह महीने तक बैतुल मक़दिस की ओर नमाज़ पढ़ी, फिर अल्लाह ने उन्हें काबा (6) की ओर फेर दिया। अबू उमर ने कहा: और मेरे अनुसार यह दोनों मतों में से अधिक सही है (7)।

अन्यों ने कहा: ऐसा इसलिए था क्योंकि जब नबी ﷺ मदीना आए, तो उन्होंने यहूदियों का दिल जीतना चाहा, इसलिए उन्होंने उनके किबला की ओर रुख किया; ताकि यह उनके लिए अधिक आमंत्रित करने वाला हो। फिर जब उनकी हठधर्मी स्पष्ट हो गई, और वे उनसे निराश हो गए, तो उन्होंने काबा की ओर मुड़ने की इच्छा की, इसलिए वे आसमान की ओर देखा करते थे।

(1) उनकी तफ़सीर 2/623 में, और इसे अल-मावर्दी ने अल-नुकत वल-यून 1/198 में उनसे उद्धृत किया है। (2) मानी अल-क़ुरआन 1/218। (3) अल-कासिम बिन सलाम ने अल-नासिख वल-मनसूख (21) में, अल-तबरी 2/450, अल-जस्सासा ने अहकाम अल-क़ुरआन 1/85 में, और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-इस्तिज़कार 7/213, और अल-तमहीद 17/53 में इसे संकलित किया है। (4) अल-तमहीद 17/49, और अल-इस्तिज़कार 7/211। (5) अहमद (2991) ने इसे संकलित किया है, और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तमहीद 17/49, और अल-इस्तिज़कार 7/211 में। (6) अल-तमहीद 17/49-50, और अल-इस्तिज़कार 7/211। (7) हमें उनकी ये बातें नहीं मिलीं।

سورہ البقرہ: آیت ۱٤۲ ٤۲۹

دوسرا: یہ کہ انہیں اس (بیت المقدس) اور کعبہ کے درمیان اختیار دیا گیا تھا، تو انہوں نے یہودیوں کے ایمان کی امید اور انہیں اپنی طرف مائل کرنے کے لیے بیت المقدس کو منتخب کیا۔ یہ طبری (۱) نے کہا ہے، اور زجاج (۲) نے کہا: مشرکین کی آزمائش کے طور پر کیونکہ وہ کعبہ سے مانوس تھے۔

تیسرا: اور یہی وہ قول ہے جس پر جمہور - ابن عباس (۳) اور دیگر - ہیں کہ اللہ تعالیٰ کے حکم اور اس کی وحی سے اس کی طرف رخ کرنا ناگزیر طور پر واجب تھا، پھر اللہ نے اسے منسوخ کر دیا، اور اللہ نے انہیں حکم دیا کہ وہ اپنی نماز میں کعبہ کی طرف رخ کریں۔ اور انہوں نے اللہ تعالیٰ کے اس قول سے استدلال کیا: "اور ہم نے وہ قبلہ جس پر تم تھے نہیں بنایا تھا مگر اس لیے کہ ہم جان لیں کہ کون رسول کی پیروی کرتا ہے اس سے جو اپنی ایڑیوں کے بل پھر جاتا ہے" آیت۔

پانچواں: اور انہوں نے اس وقت بھی اختلاف کیا جب مکہ میں پہلی بار نماز فرض ہوئی؛ کیا وہ بیت المقدس کی طرف تھی یا مکہ کی طرف؟ اس میں دو قول ہیں:

ایک جماعت نے کہا: بیت المقدس کی طرف، اور مدینہ میں سترہ ماہ تک، پھر اللہ تعالیٰ نے انہیں کعبہ (٤) کی طرف پھیر دیا۔ یہ ابن عباس (٥) نے کہا۔

دوسروں نے کہا: سب سے پہلے جب ان پر نماز فرض ہوئی تو وہ کعبہ کی طرف تھی، اور وہ مکہ میں اپنے قیام کے دوران برابر اس کی طرف نماز پڑھتے رہے، جیسا کہ ابراہیم اور اسماعیل کی نماز تھی۔ پھر جب وہ مدینہ تشریف لائے تو اختلاف کے مطابق سولہ ماہ یا سترہ ماہ تک بیت

المقدس کی طرف نماز پڑھی، پھر اللہ نے انہیں کعبہ (٦) کی طرف پھیر دیا۔ ابو عمر نے کہا: اور میرے نزدیک یہ دونوں قولوں میں سے زیادہ صحیح ہے (٧)۔

دوسروں نے کہا: وہ اس لیے کہ جب نبی ﷺ مدینہ تشریف لائے، تو انہوں نے یہودیوں کی دلجوئی کرنی چاہی، چنانچہ ان کے قبلہ کی طرف رخ کیا؛ تاکہ یہ ان کے لیے زیادہ دعوت دینے والا ہو، پھر جب ان کی ہٹ دھرمی واضح ہو گئی اور آپ ﷺ ان سے مایوس ہو گئے، تو آپ نے کعبہ کی طرف پھرنا پسند کیا، چنانچہ آپ آسمان کی طرف دیکھتے تھے۔

(١) اپنی تفسیر ٢/ ٦٢٣ میں، اور ماوردی نے اسے النکت والعیون ١/ ١٩٨ میں ان سے نقل کیا ہے۔ (٢) معانی القرآن ان کی تصنیف ١/ ٢١٨۔ (٣) اسے قاسم بن سلام نے الناسخ والمنسوخ (٢١) میں، اور طبری نے ٢/ ٤٥٠ میں، اور جصاص نے احکام القرآن ١/ ٨٥ میں، اور ابن عبد البر نے الاستذکار ٧/ ٢١٣ اور التمہید ١٧/ ٥٣ میں روایت کیا ہے۔ (٤) التمہید ١٧/ ٤٩، اور الاستذکار ٧/ ٢١١۔ (٥) اسے احمد نے (٢٩٩١) روایت کیا ہے، اور ابن عبد البر نے التمہید ١٧/ ٤٩ اور الاستذکار ٧/ ٢١١ میں۔ (٦) التمہید ١٧/ ٤٩ - ٥٠، اور الاستذکار ٧/ ٢١١۔ (٧) ہمیں ان کا یہ کلام نہیں ملا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 142 430

And his love was for the Kaaba(1), because it was the Qibla of Ibrahim, on the authority of Ibn Abbas(2). And it was said: because it was more appealing for the Arabs to embrace Islam. And it was said: to differ from the Jews, on the authority of Mujahid(3). It was narrated from Abu al-Aliyah al-Riyahi that he said: I saw(4) the mosque of Salih, peace be upon him, and its Qibla was towards the Kaaba. He said: And Moses, peace be upon him, used to pray towards the Rock in the direction of the Kaaba(5), and it is the Qibla of all the prophets, may the prayers of Allah be upon them all. Sixth: In this verse there is clear evidence that in the rulings of Allah the Almighty and His Book there is abrogating (nasikh) and abrogated (mansukh), and the Ummah has reached a consensus on this except for those who deviated, as previously mentioned(6). The scholars have reached a consensus that the Qibla was the first thing to be abrogated from the Quran(7), and that it was abrogated twice, according to one of the two opinions mentioned in the matter before. Seventh: It also indicated the permissibility of abrogating the Sunnah by the Quran, and that is because the Prophet ﷺ prayed towards(8) Bait al-Maqdis (Jerusalem), and there is no Quranic text for that, so the ruling was only from the perspective of the Sunnah, then that was abrogated by the Quran(9), and according to this, "you were upon it" means: you are upon it. Eighth: In it is evidence for the permissibility of being certain(10) through a solitary report (khabar al-wahid), and that is because facing Bait al-Maqdis was definitively established from the Sharia for them, then when the messenger came to the people of Quba,

---

(1) In (m): to the Kaaba. (2) It is a part of the hadith of Ibn Abbas which the author referred to recently. (3) Narrated by al-Tabari 2/657-658, and mentioned by al-Mawardi 1/202, and Ibn Atiyyah 1/221. (4) In the copies: was, and what is established is from the margin of (z), and it has a mark of correctness. (5) Narrated by al-Tabari 2/690, and mentioned by Ibn Abd al-Barr in al-Istidhkar 7/215. (6) 2/306. (7) Al-Tamhid 17/47 and 49, and al-Istidhkar 7/204 and 210. (8) In (d) and (m): towards. (9) Ahkam al-Quran by al-Jassas 1/86. (10) In (kh) and (z): the decisive.

सूरह अल-बकरा: आयत 142 430

और उनका प्रेम काबा (1) के लिए था, क्योंकि वह इब्राहिम का किबला था, इब्न अब्बास (2) के अधिकार पर। और कहा गया: क्योंकि यह अरबों को इस्लाम की ओर बुलाने के लिए अधिक प्रभावी था, और कहा गया: यहूदियों से भिन्न होने के लिए, मुजाहिद (3) के अधिकार पर। अबू अल-आलिया अल-रियाही से वर्णित है कि उन्होंने कहा: मैंने सालेह (अलैहिस्सलाम) की मस्जिद देखी (4) और उसका किबला काबा की ओर था। उन्होंने कहा: और मूसा (अलैहिस्सलाम) काबा की ओर चट्टान की दिशा में प्रार्थना किया करते थे (5), और यह सभी नबियों का किबला है, उन सभी पर अल्लाह की कृपा हो। छठा: इस आयत में स्पष्ट प्रमाण है कि अल्लाह तआला के निर्णयों और उसकी पुस्तक में निरस्त करने वाला (नासिख) और निरस्त (मंसूख) है, और उम्मा ने इस पर सर्वसम्मति (इज्मा) बनाई है सिवाय उन लोगों के जो भटक गए, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (6)। विद्वानों ने इस बात पर सहमति व्यक्त की है कि कुरान से निरस्त होने वाली पहली चीज़ किबला थी (7), और यह कि इसे दो बार निरस्त किया गया था, जैसा कि पहले के मामले में वर्णित दो मतों में से एक के अनुसार है। सातवाँ: इसने कुरान द्वारा सुन्नत को निरस्त करने की अनुमेयता का भी संकेत दिया, और वह यह है कि पैगंबर ﷺ ने बैत अल-मक़दिस (यरूशलेम) की ओर प्रार्थना की (8), और इसके लिए कोई कुरानिक पाठ नहीं है, इसलिए निर्णय केवल सुन्नत के दृष्टिकोण से था, फिर उसे कुरान द्वारा निरस्त कर दिया गया (9), और इसके अनुसार "कुंत अलैहा" का अर्थ है: तुम उस पर हो। आठवां: इसमें खबर-ए-वाहिद (एकल रिपोर्ट) के माध्यम से निश्चितता (10) की अनुमेयता का प्रमाण है, और वह यह है कि बैत अल-मक़दिस का सामना करना उनके लिए शरिया से निश्चित रूप से स्थापित था, फिर जब कुबा के लोगों के पास आने वाला आया,

---

(1) (m) में: काबा की ओर। (2) यह इब्न अब्बास की हदीस का एक हिस्सा है जिसका लेखक ने हाल ही में उल्लेख किया है। (3) अल-तबरी 2/657-658 द्वारा उद्धृत, और अल-मावर्दी 1/202, और इब्न अतिया 1/221 द्वारा उल्लेख किया गया। (4) प्रतियों में: 'था', और जो स्थापित है वह (z) के हाशिये से है, और उस पर शुद्धता का चिन्ह है। (5) अल-तबरी 2/690 द्वारा उद्धृत, और इब्न अब्द अल-बर्र द्वारा अल-इस्तिधकर 7/215 में उल्लेख किया गया। (6) 2/306. (7) अल-तमहीद 17/47 और 49, और अल-इस्तिधकर 7/204 और 210. (8) (d) और (m) में: की ओर। (9) अल-जस्सास द्वारा अहकाम अल-कुरान 1/86. (10) (kh) और (z) में: निर्णायक।

سورة البقرہ: آیت ۱۴۲ ۴۳۰

اور ان کی محبت کعبہ (۱) کے لیے تھی، کیونکہ وہ حضرت ابراہیم علیہ السلام کا قبلہ تھا، ابن عباس (۲) سے مروی ہے۔ اور کہا گیا: اس لیے کہ یہ عربوں کو اسلام کی طرف زیادہ مائل کرنے والا تھا، اور کہا گیا: یہودیوں کی مخالفت کے لیے، مجاہد (۳) سے مروی ہے۔ اور ابو العالیہ الریاحی سے مروی ہے کہ انہوں نے کہا: میں نے حضرت صالح علیہ السلام کی مسجد دیکھی (٤) اور اس کا قبلہ کعبہ کی طرف تھا۔ انہوں نے کہا: اور حضرت موسیٰ علیہ السلام صخرہ (چٹان) کی طرف کعبہ کے رخ پر نماز پڑھا کرتے تھے (٥)، اور یہ تمام انبیاء کا قبلہ ہے، ان سب پر اللہ کی رحمتیں ہوں۔ چھٹا: اس آیت میں واضح دلیل ہے کہ اللہ تعالیٰ کے احکام اور اس کی کتاب میں ناسخ اور منسوخ موجود ہے، اور امت نے اس پر اتفاق کیا ہے سوائے ان کے جو الگ ہو گئے، جیسا کہ پہلے ذکر ہوا (٦)۔ اور علماء کا اس بات پر اتفاق ہے کہ قرآن سے سب سے پہلے جو چیز منسوخ ہوئی وہ قبلہ تھا (۷)، اور یہ کہ اسے دو بار منسوخ کیا گیا، جیسا کہ مسئلہ میں پہلے ذکر کردہ دو اقوال میں سے ایک کے مطابق ہے۔ ساتواں: اور اس نے قرآن کے ذریعے سنت کو منسوخ کرنے کے جواز پر بھی دلالت کی، اور وہ اس لیے کہ نبی ﷺ نے بیت المقدس کی طرف نماز پڑھی (۸)، اور اس کے بارے میں کوئی قرآن نازل نہیں ہوا تھا، تو حکم صرف سنت کی طرف سے تھا، پھر اسے قرآن کے ذریعے منسوخ کر دیا گیا (۹)، اور اس بنا پر "كُنْتَ عَلَيْهَا" کا معنی ہے: تم اس پر ہو۔ آٹھواں: اور اس میں خبر واحد کے ذریعے قطعیت (۱۰) کے جواز پر دلیل ہے، اور وہ اس طرح کہ بیت المقدس کی طرف رخ کرنا ان کے ہاں شریعت سے یقینی طور پر ثابت تھا، پھر جب اہل قباء کے پاس آنے والا آیا،

(١) (م) میں: کعبہ کی طرف۔ (٢) یہ ابن عباس کی حدیث کا ایک حصہ ہے جس کی طرف مصنف نے حال ہی میں اشارہ کیا ہے۔ (٣) اسے طبری نے ٦٥٧/٢-٦٥٨ میں روایت کیا ہے، اور ماوردی نے ٢٠٢/١ میں اور ابن عطیہ نے ٢٢١/١ میں ذکر کیا ہے۔ (٤) نسخوں میں: "کانت" ہے، اور جو ثابت ہے وہ (ز) کے حاشیے سے ہے، اور اس پر درستی کی علامت ہے۔ (٥) اسے طبری نے ٦٩٠/٢ میں روایت کیا ہے، اور ابن عبد البر نے الاستذکار ٢١٥/٧ میں ذکر کیا ہے۔ (٦) ٣٠٦/٢۔ (٧) التمہید ٤٧/١٧ اور ٤٩، اور الاستذکار ٢٠٤/٧ اور ٢١٠۔ (٨) (د) اور (م) میں: کی طرف۔ (٩) جصاص کی احکام القرآن ٨٦/١۔ (١٠) (خ) اور (ظ) میں: القاطع۔

Page 431

Surah Al-Baqarah: Verse 142

So he informed them that the Qiblah had been changed to the Sacred Mosque; they accepted his word and turned towards the Kaaba, thus leaving the Mutawatir (mass-transmitted report) for the Khabar al-Wahid (solitary report), which is Maznun (presumptive).

Scholars have differed regarding its intellectual permissibility and its occurrence. Abu Hamid (1) said: The chosen view is its intellectual permissibility if the Shariah prescribed it, and its occurrence (2) during the time of the Messenger of Allah ﷺ, based on the evidence of the story of Quba, and because he ﷺ used to send individual governors to the outskirts, and they would convey both the abrogator (Nasikh) and the abrogated (Mansukh) together. However, this is forbidden after his ﷺ death, based on the consensus (Ijma) of the Sahaba that the Quran and the known Mutawatir are not abrogated by a Khabar al-Wahid. Thus, none from the predecessors (Salaf) or the successors (Khalaf) go towards permitting it.

Those who forbade it argued that it leads to the impossible, which is the removal of the certain (Maqtu') by the presumptive (Maznun). As for the story of the people of Quba and the governors of the Prophet ﷺ, it is interpreted based on circumstantial evidence that provided (3) knowledge (Ilm); either through transmission and verification, or through probability and estimation. The completion of this as a question and answer is in Usul al-Fiqh (4).

Ninthly: In it is evidence that whoever hasn't received the abrogator (Nasikh) is still bound by the initial ruling, contrary to those who said: The initial ruling is lifted by the existence of the abrogator, not by knowledge of it. The first view is more correct; because the people of Quba continued praying towards Jerusalem until the informer reached them and told them of the abrogator, then they turned towards the Kaaba. So, the abrogator, when it occurred in existence, is undoubtedly a lifter [of the previous ruling], but on the condition of knowledge about it. Because the abrogator is a discourse (Khittab), and it is not a discourse for one who hasn't been reached by it.

The benefit of this difference is in acts of worship performed after the abrogation but before the message reached [the person]; should they be repeated or not? On this depends the issue of the agent's (Wakil) actions after being dismissed by his principal

(Muwakkil) or after his death, before he knows of that, based on two views. Similarly, for the one in a profit-sharing partnership (Muqarid) (5), and the judge if the one who appointed him dies or is dismissed. The correct view is that what...

(1) In (D) and (M): Abu Hatim, which is a mistake. What is established from (Kh), (Z), and (Zha) is correct, and it agrees with what is in al-Mufhim 2/125 (and the speech is from him). Abu Hamid is al-Ghazali, and his mentioned speech is in al-Mustasfa 1/240. (2) In (Zha) and (M): "wa wuqu'an" (and occurring). (3) In (D) and (M): "ifadah" (providing). (4) See al-Mustasfa 1/240-241. (5) In al-Qamus: Al-Muqaradah is al-Mudarabah, as if it is a contract on traveling in the land and striving in it. Its form is: that he gives him money to trade with, and the profit is between them according to what they agree upon.

पृष्ठ 431

सूरह अल-बकरा: आयत 142

तो उसने उन्हें सूचित किया कि किबला (प्रार्थना की दिशा) को मस्जिद अल-हराम की ओर बदल दिया गया है; उन्होंने उसकी बात मान ली और काबा की ओर मुड़ गए, इस प्रकार मुतवातिर (निश्चित रिपोर्ट) को ख़बर अल-वाहिद (एकल रिपोर्ट) के लिए छोड़ दिया, जो कि मज़नून (संदिग्ध/अनुमानित) है।

विद्वानों ने इसकी बौद्धिक अनुमति और इसके घटित होने के बारे में मतभेद किया है। अबू हामिद (1) ने कहा: पसंदीदा विचार इसकी बौद्धिक अनुमति है यदि शरीयत ने इसे निर्धारित किया है, और अल्लाह के रसूल ﷺ के समय में इसका घटित होना (2) कुबा के[लोगों] की कहानी के प्रमाण के आधार पर, और क्योंकि वह ﷺ बाहरी इलाकों में व्यक्तिगत राज्यपालों को भेजा करते थे, और वे नासिख (निरस्त करने वाले) और मनसूख (निरस्त किए गए) दोनों आदेशों को एक साथ पहुँचाते थे। लेकिन उनकी ﷺ मृत्यु के बाद यह वर्जित है, सहाबा की सर्वसम्मति (इज्मा) के आधार पर कि कुरान और ज्ञात मुतवातिर को ख़बर अल-वाहिद द्वारा नहीं हटाया जाता है। इसलिए, पूर्ववर्तियों (सलफ) या उत्तराधिकारियों (खलफ) में से कोई भी इसे अनुमति देने की ओर नहीं जाता है।

जिन्होंने इसे वर्जित किया, उन्होंने तर्क दिया कि यह असंभव की ओर ले जाता है, जो कि संदिग्ध (मज़नून) द्वारा निश्चित (मकतू) को हटाना है। जहाँ तक कुबा के लोगों और पैगंबर ﷺ के राज्यपालों की कहानी का सवाल है, इसकी व्याख्या उन परिस्थितियों के आधार पर की जाती है जिनसे (3) निश्चित ज्ञान (इल्म) प्राप्त हुआ; या तो प्रत्यक्ष संचरण और सत्यापन के माध्यम से, या संभावना और अनुमान के माध्यम से। एक प्रश्न और उत्तर के रूप में इसका समापन उसूल अल-फिक्ह (4) में है।

नौवां: इसमें प्रमाण है कि जिस तक नासिख (निरस्त करने वाला आदेश) नहीं पहुँचा है, वह अभी भी पहले के आदेश का पाबंद है, उन लोगों के विपरीत जिन्होंने कहा: पहला आदेश नासिख के अस्तित्व से हट जाता है, न कि उसके ज्ञान से। पहला विचार अधिक सही है; क्योंकि कुबा के लोग तब तक यरूशलेम की ओर प्रार्थना करते रहे जब तक कि आने वाला उनके पास नहीं पहुँचा और उन्हें नासिख के बारे में सूचित नहीं किया, फिर वे काबा की ओर मुड़ गए। इसलिए, नासिख जब अस्तित्व में आया, तो वह निस्संदेह हटाने वाला है, लेकिन उसके ज्ञान की शर्त पर। क्योंकि नासिख एक संबोधन (खिताब) है, और यह उस व्यक्ति के लिए संबोधन नहीं है जिस तक यह नहीं पहुँचा है।

इस मतभेद का लाभ उन इबादतों में है जो निरस्तीकरण के बाद लेकिन संदेश पहुँचने से पहले की गई थीं; क्या उन्हें दोहराया जाना चाहिए या नहीं? इसी पर मुवक्किल (स्वामी) द्वारा अपने वकील को बर्खास्त करने या उसकी मृत्यु के बाद, और वकील को इसका पता चलने से पहले उसके कार्यों का मुद्दा दो विचारों पर आधारित है। इसी तरह, मुकारिज़ (लाभ-साझाकरण भागीदारी में रहने वाला) (5) के लिए, और न्यायाधीश के लिए यदि उसे नियुक्त करने वाला मर जाता है या बर्खास्त कर दिया जाता है। सही विचार यह है कि जो...

(1) (द) और (म) में: अबू हातिम, जो एक गलती है। (ख), (ज़), और (ज़हा) से जो स्थापित है वह सही है, और यह अल-मुफहिम 2/125 में जो है उसके अनुरूप है (और भाषण उन्हीं का है)। अबू हामिद अल-ग़ज़ाली हैं, और उनका उल्लेख किया गया भाषण अल-मुस्तसफा 1/240 में है। (2) (ज़हा) और (म) में: "वा वुक़ूअन" (और घटित होना)। (3) (द) और (म) में: "इफादा" (प्रदान करना)। (4) अल-मुस्तसफा 1/240-241 देखें। (5) अल-कामूस में: अल-मुकारदा अल-मुदारबा है, जैसे कि यह ज़मीन में यात्रा करने और उसमें प्रयास करने का एक अनुबंध है। इसका रूप यह है: कि वह उसे व्यापार करने के लिए पैसा देता है, और लाभ उनके बीच वैसा ही होता है जैसा वे शर्त लगाते हैं।

صفحہ ٤٣١

سورہ بقرہ : آیت ١٤٢

پس اس نے انہیں خبر دی کہ قبلہ مسجد حرام کی طرف پھیر دیا گیا ہے؛ انہوں نے اس کی بات مان لی، اور کعبہ کی طرف مڑ گئے، پس انہوں نے خبر واحد کی وجہ سے متواتر کو چھوڑ دیا، حالانکہ وہ ظنی (مظنون) ہے۔

اور علماء نے اس کے عقلاً جائز ہونے اور اس کے وقوع میں اختلاف کیا ہے، پس ابو حامد(١) نے کہا: اور مختار یہ ہے کہ اگر شریعت اسے لازم قرار دیتی تو عقلاً اس کا جواز ہے، اور رسول اللہ ﷺ کے زمانے میں اس کا وقوع(٢) قصہ قبا کی دلیل سے ہے، اور اس دلیل سے کہ آپ ﷺ اطراف میں اکیلے گورنروں کو روانہ فرماتے تھے، اور وہ ناسخ و منسوخ دونوں کی تبلیغ ایک ساتھ کرتے تھے۔ لیکن آپ ﷺ کی وفات کے بعد یہ ممنوع ہے، صحابہ کے اس اجماع کی دلیل سے کہ قرآن اور معلوم متواتر کو خبر واحد سے ختم نہیں کیا جا سکتا، پس سلف اور خلف میں سے کوئی بھی اس کے جواز کا قائل نہیں ہے۔

جس نے اس سے منع کیا اس نے یہ دلیل دی کہ یہ محال (ناممکن) کی طرف لے جاتا ہے، جو کہ قطعی کو ظنی کے ذریعے ختم کرنا ہے۔ رہی بات اہل قبا اور نبی ﷺ کے گورنروں کے قصے کی، تو اسے ایسے قرائن پر محمول کیا گیا ہے جنہوں نے (٣) علم کا فائدہ دیا؛ خواہ وہ نقلی و تحقیقی ہو، یا احتمالی و تقدیری۔ اور اصول فقہ(٤) میں سوال و جواب کے طور پر اس کی تکمیل ہے۔

نویں بات: اس میں اس بات کی دلیل ہے کہ جس تک ناسخ نہیں پہنچا وہ پہلے حکم کا ہی مکلف ہے، ان لوگوں کے برعکس جنہوں نے کہا: پہلا حکم ناسخ کے وجود سے ختم ہو جاتا ہے، نہ کہ اس

کے علم سے۔ اور پہلا قول زیادہ صحیح ہے؛ کیونکہ اہل قبا مسلسل بیت المقدس کی طرف نماز پڑھتے رہے یہاں تک کہ ان کے پاس آنے والا آیا، اور انہیں ناسخ کی خبر دی، تو وہ کعبہ کی طرف مڑ گئے۔ پس ناسخ جب وجود میں آگیا، تو وہ بلا شبہ ختم کرنے والا ہے، لیکن اس کے علم کی شرط کے ساتھ، کیونکہ ناسخ ایک خطاب ہے، اور وہ اس شخص کے حق میں خطاب نہیں ہوتا جس تک وہ پہنچا ہی نہ ہو۔

اور اس اختلاف کا فائدہ ان عبادات میں ہے جو نسخ کے بعد لیکن اطلاع ملنے سے پہلے کی گئی ہوں؛ کیا انہیں دہرایا جائے گا یا نہیں؟ اور اسی پر وکیل کے اپنے موکل کی معزولی یا اس کی وفات کے بعد اور اس کے علم سے پہلے اس کے تصرف کا مسئلہ دو قولوں پر مبنی ہے، اور اسی طرح مقارض(٥)، اور قاضی جب اسے مقرر کرنے والا مر جائے یا معزول کر دیا جائے۔ اور صحیح یہ ہے کہ جو...

(١) (د) اور (م) میں: ابو حاتم، اور یہ غلط ہے، اور جو (خ)، (ز) اور (ظ) سے ثابت ہے وہ صحیح ہے، اور یہ المفہم ٢/ ١٢٥ کے موافق ہے (اور کلام ان ہی کا ہے)، اور ابو حامد: وہ غزالی ہیں، اور ان کا مذکورہ کلام المستصفی ١/٢٤٠ میں ہے۔ (٢) (ظ) اور (م) میں: و وقوعاً۔ (٣) (د) اور (م) میں: إفادة۔ (٤) دیکھیے المستصفی ١ / ٢٤٠ - ٢٤١۔ (٥) القاموس میں ہے: المقارضة: مضاربت، گویا کہ یہ زمین میں چلنے پھرنے اور اس میں دوڑ دھوپ کرنے کا معاہدہ ہے، اور اس کی صورت یہ ہے: کہ وہ اسے تجارت کے لیے مال دے، اور نفع ان کے درمیان اس بنیاد پر ہو جس پر وہ شرط لگائیں۔

Page 432 Surah Al-Baqarah: Verse 142

...the action of each one of these is valid, and their judgment is not rejected (1). Al-Qadi 'Iyad said (2): The school of thought (Madhhab) does not differ regarding the rulings of someone who was manumitted (freed) without knowing of their manumission, that these are the rulings of a free person between them and other people, while between them and Allah Almighty, they are valid. And they do not differ that a freed slavewoman does not repeat the prayers she performed after her manumission and before her knowledge of it without a covering. They only differed regarding someone who encounters a cause that changes the ruling of their worship while they are in the middle of it, based (3) on the issue of Quba. So, whoever prayed in a certain state and then their state changed before completing their prayer, they should complete it and not break it, and what has passed of it is sufficient for them. That is (4) like one who prayed naked and then found a garment during prayer, or began their prayer healthy and then fell ill, or was ill and then became healthy, or was sitting and then became able to stand, or a slavewoman who was manumitted while in prayer, she takes her head-covering and continues (5). I say: And like one who entered prayer with Tayammum (dry ablution) and then water became available, they do not break it, as said by Malik and Al-Shafi'i - may Allah have mercy on them - and others. And it was said: They should break it, which is the opinion of Abu Hanifa - may Allah Almighty have mercy on him (6), and it will be discussed later (7). Tenth: This contains evidence for the acceptance of a solitary report (Khabar al-Wahid), which is a matter of consensus among the predecessors (Salaf), known through mass transmission (Tawatur), from the habit of the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) in sending his governors and messengers individually to different regions; to teach people their religion, thus conveying to them the Sunnah of their Messenger (peace and blessings of Allah be upon him) regarding commands and prohibitions. Eleventh: This contains evidence that the Quran was revealed to the Messenger of Allah (peace and blessings of Allah be upon him) bit by bit, and in state after state, according to the need for it, until Allah completed His religion (8), as He said: "This day I have perfected for you your religion" [Al-Ma'idah: 3].

Footnotes: (1) See Al-Mufhim 2/126. (2) Ikmal Al-Mu'lim 2/446. (3) In (m): by analogy (Qiyasan). (4) In (m): and likewise. (5) Al-Tamhid 17/47, and Ahkam Al-Quran by Al-Jassas 1/87. (6) See Al-Tamhid 19/291-292, and Ikmal Al-Mu'lim 2/446-447. (7) In the interpretation of verse (43) of Surah Al-Nisa', issue (39). (8) Al-Tamhid 17/46, and Al-Istidhkar 7/201-202.

पृष्ठ 432 सूरह अल-बक़रह: आयत 142

...इनमें से प्रत्येक का कार्य प्रभावी है, और उनका निर्णय रद्द नहीं किया जाता है (1)। अल-क़ादी अयाज़ ने कहा (2): उस व्यक्ति के नियमों के बारे में मज़हब में कोई मतभेद नहीं है जिसे आज़ाद कर दिया गया और उसे अपनी आज़ादी के बारे में पता नहीं था, कि ये उसके और लोगों के बीच एक आज़ाद व्यक्ति के नियम हैं, जहाँ तक उसके और अल्लाह तआला के बीच की बात है, तो वे वैध हैं। और इसमें भी कोई मतभेद नहीं है कि एक आज़ाद की गई दासी उन नमाज़ों को नहीं दोहराएगी जो उसने अपनी आज़ादी के बाद और इसके बारे में जानने से पहले बिना परदे के पढ़ी थीं। उनमें केवल उन लोगों के बारे में मतभेद था जिनके साथ कोई ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है जो उनकी इबादत के नियम को बदल देती है जबकि वे इबादत के बीच में हों, जो क़ुबा के मुद्दे पर आधारित (3) है। तो, जिसने किसी एक अवस्था में नमाज़ पढ़ी और फिर नमाज़ पूरी करने से पहले उसकी वह अवस्था बदल गई, तो वह उसे पूरा करे और उसे न तोड़े, और जो बीत चुका है वह उसके लिए पर्याप्त है। वह (4) उस व्यक्ति की तरह है जिसने निर्वस्त्र नमाज़ पढ़ी, फिर नमाज़ में कपड़ा पा लिया, या अपनी नमाज़ स्वस्थ अवस्था में शुरू की और बीमार हो गया, या बीमार था और स्वस्थ हो गया, या बैठा था और फिर खड़े होने में सक्षम हो गया, या एक दासी जो नमाज़ की स्थिति में आज़ाद हो गई, तो वह अपना सिर ढंक लेती है और नमाज़ जारी रखती है (5)। मैं कहता हूँ: और उस व्यक्ति की तरह जिसने तयम्मुम के साथ नमाज़ शुरू की, फिर पानी उपलब्ध हो गया, तो वह नमाज़ नहीं तोड़ेगा, जैसा कि मालिक और शाफ़ई - अल्लाह उन पर रहम करे - और दूसरों ने कहा है। और कहा गया है: वह नमाज़ तोड़ देगा, और यह अबू हनीफ़ा - अल्लाह उन पर रहम करे (6) का कहना है, और यह आगे आएगा (7)। दसवीं: इसमें खबर-ए-वाहिद (एक व्यक्ति की रिपोर्ट) को स्वीकार करने का प्रमाण है, जो पूर्वजों (सलफ़) के बीच सर्वसम्मत है, जो तवातुर (निरंतरता) से ज्ञात है, पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की अपने राज्यपालों और दूतों को अलग-अलग क्षेत्रों में अकेले भेजने की आदत से; ताकि वे लोगों को उनके धर्म की शिक्षा दें, और उन्हें उनके रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की सुन्नत के आदेशों और निषेधों को पहुँचाएँ। ग्यारहवीं: इसमें इस बात का प्रमाण है कि कुरान रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) पर थोड़ा-थोड़ा करके अवतरित हुआ था, और समय-समय पर आवश्यकता के अनुसार, यहाँ तक कि अल्लाह ने अपने धर्म को पूर्ण कर दिया (8), जैसा कि उसने कहा: "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा धर्म पूर्ण कर दिया" [अल-माइदाह: 3]।

पाद लेख: (1) अल-मुफ़हिम 126/2 देखें। (2) इकमल अल-मुअल्लिम 446/2। (3) (m) में: क़ियासन (तुलना के आधार पर)। (4) (m) में: और उसी तरह। (5) अल-तम्हीद 17/47, और अहकाम अल-कुरान अल-जस्सास 87/1 द्वारा। (6) अल-तम्हीद 19/291-292, और इकमल अल-मुअल्लिम 446/2-447 देखें। (7) सूरह अल-निसा की आयत (43) की व्याख्या में, मसला (39)। (8) अल-तम्हीद 46/17, और अल-इस्तिज़कार 201/7-202।

صفحہ 432 سورۃ البقرہ: آیت 142

ان میں سے ہر ایک کا فعل نافذ ہوتا ہے، اور ان کا حکم رد نہیں کیا جاتا (1)۔ قاضی عیاض نے کہا (2): اس شخص کے احکام کے بارے میں مذہب میں کوئی اختلاف نہیں ہے جسے آزاد کر دیا گیا اور اسے اپنی آزادی کا علم نہیں تھا، کہ یہ اس کے اور لوگوں کے درمیان ایک آزاد شخص کے احکام ہیں، جہاں تک اس کے اور اللہ تعالیٰ کے درمیان تعلق کا تعلق ہے تو وہ جائز ہیں۔ اور اس میں بھی کوئی اختلاف نہیں کہ آزاد شدہ لونڈی ان نمازوں کو نہیں دہرائے گی جو اس نے اپنی آزادی کے بعد اور اس کے علم سے پہلے بغیر پردے کے پڑھی تھیں، ان میں صرف اس شخص کے بارے میں اختلاف ہے جس پر کوئی ایسی وجہ طاری ہو جائے جو اس کی عبادت کے حکم کو بدل دے جبکہ وہ اس عبادت میں ہو، جو کہ مسئلہ قباء پر مبنی (3) ہے۔ چنانچہ جس نے کسی ایک حالت میں نماز پڑھی پھر نماز مکمل کرنے سے پہلے اس کی وہ حالت بدل گئی، تو وہ اسے مکمل کرے اور اسے نہ توڑے، اور جو گزر چکا ہے وہ اس کے لیے کافی ہے۔ وہ (4) اس شخص کی طرح ہے جس نے برہنہ نماز پڑھی، پھر نماز کے دوران کپڑا پا لیا، یا اپنی نماز تندرست حالت میں شروع کی اور بیمار ہو گیا، یا بیمار تھا اور تندرست ہو گیا، یا بیٹھا تھا اور کھڑے ہونے پر قادر ہو گیا، یا ایک لونڈی جو نماز کی حالت میں آزاد ہو گئی، تو وہ اپنا سر ڈھانپ لیتی ہے اور نماز جاری رکھتی ہے (5)۔ میں کہتا ہوں: اور اس شخص کی طرح جس نے تیمم کے ساتھ نماز شروع کی، پھر پانی دستیاب ہو گیا، تو وہ نماز نہیں توڑے گا، جیسا کہ امام مالک اور امام شافعی - اللہ ان پر رحم کرے - اور دوسروں کا قول ہے۔ اور کہا گیا ہے کہ: وہ نماز توڑ دے گا، اور یہ امام ابوحنیفہ - اللہ تعالیٰ ان پر رحم کرے (6) کا قول ہے، اور یہ آگے آئے گا (7)۔ دسویں: اس میں خبر واحد کی قبولیت کی دلیل ہے، جو سلف کے ہاں متفقہ ہے، جو تواتر سے معلوم ہے، نبی کریم صلی اللہ علیہ

وسلم کی اپنے گورنروں اور رسولوں کو مختلف علاقوں میں تنہا بھیجنے کی عادت سے؛ تاکہ وہ لوگوں کو ان کا دین سکھائیں، اور انہیں ان کے رسول صلی اللہ علیہ وسلم کی سنت کے احکامات اور منہیات پہنچائیں۔ گیارہویں: اس میں اس بات کی دلیل ہے کہ قرآن رسول اللہ صلی اللہ علیہ وسلم پر تھوڑا تھوڑا کر کے نازل ہوا، اور حالات کے مطابق ضرورت کے تحت، یہاں تک کہ اللہ نے اپنا دین مکمل کر دیا (8)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿الْيَوْمَ أَكْمَلْتُ لَكُمْ دِينَكُمْ﴾ [المائدہ: 3]۔

حواشی: (1) دیکھئے المفہم 2/126۔ (2) إكمال المعلم 2/446۔ (3) (م) میں: قیاساً۔ (4) (م) میں: اور اسی طرح۔ (5) التمہید 17/47، اور احکام القرآن للجصاص 1/87۔ (6) دیکھئے التمہید 19/291-292، اور إكمال المعلم 2/446-447۔ (7) سورہ نساء کی آیت (43) کی تفسیر میں، مسئلہ (39)۔ (8) التمہید 17/46، اور الاستذکار 7/201-202۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 433

His Almighty's saying: {To Allah belong the east and the west} is an establishment of proof, meaning: to Him belongs the dominion of the easts and the wests and what is between them, so He has the right to command turning towards any direction He wishes, and this has been mentioned before(1). His Almighty's saying: {He guides whom He wills} is an indication of Allah Almighty guiding this nation to the Qibla (direction of prayer) of Abraham, and Allah Almighty knows best. 'As-Sirat' is the path(2). And 'al-Mustaqim' is that which has no crookedness in it, and it has been mentioned before(3).

His Almighty's saying: {And thus we have made you a just community that you will be witnesses over the people and the Messenger will be a witness over you. And We did not make the qibla which you used to face except that We might make evident who would follow the Messenger from who would turn back on his heels. And its change was a great thing except for those whom Allah has guided. And never would Allah have caused you to lose your faith. Indeed Allah is, to the people, Kind and Merciful. 143}

There are four issues regarding it: The first: His Almighty's saying: {And thus we have made you a just community}. The meaning is: just as the Kaaba is the center (middle) of the earth, likewise We have made you a middle community, meaning: We have made you below the prophets and above the other nations. And 'Al-Wasat' (the middle) means justice, and the origin of this is that the most praised of things is their middle. At-Tirmidhi(4) narrated from Abu Sa'id al-Khudri, from the Prophet ﷺ regarding His Almighty's saying: {And thus we have made you a just community}, he said: "Just." He said: This is a Hasan Sahih Hadith. And in the Revelation: {The most moderate (just) of them said} [Al-Qalam: 28]. Meaning: the most just and best of them. And Zuhair said: They are middle (just) ones, the people are satisfied with their judgment If one of the nights descends with a great calamity(5) Another:

---

(1) 2/324. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/218. (3) 1/226. (4) In his Sunan (2961), and it is with Ahmad (11068). (5) Tafsir al-Tabari 2/626, Ahkam al-Quran by al-Jassas 1/88, al-Nukat wa al-Uyun 1/199, and the verse is in the Diwan of Zuhair p. 27, and its narration is: For a noble tribe people preserve their matter if one of the nights... occurred...

सूरह अल-बक़रह: आयत 143 433

अल्लाह तआला का फरमान: {पूरब और पश्चिम अल्लाह ही के हैं} यह दलील पेश करना है, अर्थात: पूरबों और पश्चिमों और उनके बीच जो कुछ भी है, उसी का साम्राज्य है, इसलिए उसे अधिकार है कि वह जिस दिशा में चाहे मुड़ने का आदेश दे, और यह पहले बताया जा चुका है(1)। अल्लाह तआला का फरमान: {वह जिसे चाहता है मार्गदर्शन देता है} यह अल्लाह तआला द्वारा इस उम्मत को इब्राहीम अलैहिस्सलाम के किबला की ओर मार्गदर्शन करने का संकेत है, और अल्लाह तआला बेहतर जानता है। 'अस्-सिरात' का अर्थ रास्ता है(2)। और 'अल-मुस्तकीम' वह है जिसमें कोई टेढ़ापन न हो, और यह पहले बताया जा चुका है(3)।

अल्लाह तआला का फरमान: {और इसी तरह हमने तुम्हें एक न्यायप्रिय उम्मत बनाया ताकि तुम लोगों पर गवाह बनो और रसूल तुम पर गवाह बने। और जिस किबला पर तुम पहले थे, उसे हमने केवल इसलिए निर्धारित किया था कि हम जान लें कि कौन रसूल का अनुसरण करता है और कौन अपनी एड़ियों के बल फिर जाता है। और निश्चय ही यह बात बड़ी भारी थी, सिवाय उन लोगों के जिन्हें अल्लाह ने मार्गदर्शन दिया। और अल्लाह ऐसा नहीं है कि तुम्हारे ईमान को व्यर्थ कर दे। निस्संदेह अल्लाह लोगों के साथ अत्यंत स्नेही और दयावान है। 143}

इसमें चार मसले हैं: पहला: अल्लाह तआला का फरमान: {और इसी तरह हमने तुम्हें एक न्यायप्रिय (वस्त) उम्मत बनाया}। अर्थ यह है: जिस प्रकार काबा पृथ्वी का केंद्र (मध्य) है, उसी प्रकार हमने तुम्हें एक मध्यम उम्मत बनाया, अर्थात: हमने तुम्हें नबियों से नीचे और अन्य उम्मतों से ऊपर रखा। और 'वस्त' का अर्थ न्याय है, और इसका आधार यह है कि चीजों में सबसे प्रशंसनीय उनका मध्य होता है। तिर्मिज़ी(4) ने अबू सईद अल-खुदरी से रिवायत की है, नबी ﷺ से अल्लाह के इस फरमान: {और इसी तरह हमने तुम्हें एक न्यायप्रिय (वस्त) उम्मत बनाया} के बारे में, उन्होंने कहा: "न्यायप्रिय (अदल)"। उन्होंने कहा: यह हदीस हसन सहीह है। और कुरआन में है: {उनमें से जो सबसे संतुलित (वस्त) था उसने कहा} [अल-कलम: 28]। अर्थात: उनमें से सबसे न्यायप्रिय और सबसे बेहतर। और ज़ुहैर ने कहा: वे मध्यवर्ती (न्यायप्रिय) हैं, लोग उनके फैसले से संतुष्ट रहते हैं जब रातों में से कोई एक बड़ी विपत्ति के साथ आती है(5) अन्य:

---

(1) 2/324. (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/218. (3) 1/226. (4) अपनी सुनन (2961) में, और यह अहमद (11068) के पास भी है। (5) तफ़सीर अल-तबरी 2/626, अहकाम अल-क़ुरआन अल-

जस्सास 1/88, अल-नुकात व अल-उयून 1/199, और यह शेर ज़ुहैर के दीवान पृष्ठ 27 में है, और इसकी रिवायत है: एक महान कबीले के लिए लोग अपने मामलों की रक्षा करते हैं जब रातों में से कोई... घटित होती है...

سورہ البقرہ: آیت 143 433

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {مشرق اور مغرب اللہ ہی کے ہیں} یہ دلیل قائم کرنا ہے، یعنی: تمام مشرقوں اور مغربوں اور ان کے درمیان کی ہر چیز کی بادشاہی اسی کی ہے، لہٰذا اسے حق ہے کہ وہ جس طرف چاہے رخ کرنے کا حکم دے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے(1)۔ اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وہ جسے چاہتا ہے ہدایت دیتا ہے} اس میں اشارہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے اس امت کو قبلہ ابراہیم کی طرف ہدایت دی، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ 'الصراط' کا مطلب راستہ ہے(2)۔ اور 'المستقیم' وہ ہے جس میں کوئی ٹیڑھ نہ ہو، اور یہ پہلے گزر چکا ہے(3)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور اسی طرح ہم نے تمہیں ایک معتدل (بیچ کی) امت بنایا تاکہ تم لوگوں پر گواہ رہو اور رسول تم پر گواہ رہے۔ اور تم پہلے جس قبلے پر تھے اسے ہم نے محض اس لیے مقرر کیا تھا کہ ہم جان لیں کہ کون رسول کی پیروی کرتا ہے اور کون اپنی ایڑیوں کے بل پھر جاتا ہے۔ اور یقیناً یہ بات گراں تھی سوائے ان لوگوں کے جنہیں اللہ نے ہدایت دی۔ اور اللہ ایسا نہیں کہ تمہارے ایمان کو ضائع کر دے۔ بے شک اللہ لوگوں کے ساتھ نہایت مہربان اور رحم فرمانے والا ہے۔ 143}

اس میں چار مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {اور اسی طرح ہم نے تمہیں ایک معتدل (وسط) امت بنایا}۔ معنی یہ ہے: جس طرح کعبہ زمین کا مرکز (وسط) ہے، اسی طرح ہم نے تمہیں ایک معتدل امت بنایا، یعنی: ہم نے تمہیں انبیاء سے نیچے اور دوسری امتوں سے اوپر رکھا۔ اور 'الوسط' کا مطلب عدل ہے، اور اس کی اصل یہ ہے کہ بہترین چیزیں ان کا درمیانہ حصہ ہوتی ہیں۔ ترمذی(4) نے ابو سعید الخدری سے، نبی ﷺ سے روایت کی ہے اللہ کے اس فرمان: {اور اسی طرح ہم نے تمہیں ایک معتدل (وسط) امت بنایا} کے بارے میں، آپ ﷺ نے فرمایا: "عدل"۔ انہوں

نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ اور قرآن میں ہے: {ان میں سے جو سب سے معتدل (وسط) تھا اس نے کہا} [القلم: 28]۔ یعنی: ان میں سب سے عادل اور بہتر۔ اور زہیر نے کہا: وہ معتدل (عادل) ہیں، لوگ ان کے فیصلے پر راضی ہوتے ہیں جب راتوں میں سے کوئی بڑی مصیبت کے ساتھ اترتی ہے(5) دیگر:

---

(1) 2/324. (2) المحرر الوجیز 1/218. (3) 1/226. (4) اپنی سنن (2961) میں، اور یہ احمد (11068) کے پاس ہے۔ (5) تفسیر الطبری 2/626، احکام القرآن للجصاص 1/88، النکت والعیون 1/199، اور یہ شعر دیوان زہیر ص 27 میں ہے، اور اس کی روایت ہے: ایک بزرگ قبیلے کے لیے لوگ اپنے معاملات کو سنبھالتے ہیں جب راتوں میں سے کوئی... پیش آتی ہے...

Surah Al-Baqarah: Verse 143 434

You are the best tribe ever known... in small matters or in one of the great ones. (1) And another said: Do not go to excess in matters... do not ask, if you ask, for what is outrageous. And be, among all people, moderate. (2)

The middle (wasat) of the valley is the best place in it, and the one with the most pasture and water. And since the 'middle' avoids both excess (ghuluw) and negligence (taqsir), it is praised. That is: this nation did not go to excess like the Christians did regarding their prophets, nor did they fall short like the Jews did regarding their prophets.

In the Hadith: "The best of matters are their middle ones." (3). And in it from Ali (may Allah be pleased with him): "Stick to the middle path, for to it the high descends, and to it the low rises." (4).

And so-and-so is from the 'middle' (wasat) of his people, and he is a 'wasita' (central figure) of his people, and 'wasat' of his people: meaning from their best and those of noble lineage among them. And he performed 'wasata', 'wasatan', 'wisatatan' [linguistic forms], and it is not from the 'wasat' that is between two things in anything.

And 'al-wast' with a sukun on the 'ayn (5): as an adverb of place; you say: I prayed 'wast' (in the midst of) the people, and I sat 'wast' (in the middle of) the house.

(1) We have not come across it. (2) Al-Bayan wa al-Tabyin 1/255, and Al-Mubarrad mentioned the first and third of them in Al-Fadil, p. 7. (3) In (Z) and (M): 'awsatuha' (its middle). The Hadith was mentioned by Al-Sakhawi in Al-Maqasid Al-Hasana, p. 332, and he mentioned that it is narrated with a chain containing an unknown narrator on the authority of Ali (RA), and without a chain on the authority of Ibn Abbas (RA). We say: Ibn Abi Shayba recorded it in 13/479, and Ibn Sa'd in 7/142, with a sahih chain from Mutarrif bin Abdullah bin al-Shikhkhir as his own saying. Al-Tabari recorded it in 17/500 from the saying of Yazid bin Murra al-Ju'fi, and Abu Nu'aym recorded it in Hilyat al-Awliya 2/281 from the saying of Abu Qilaba. See Sunan al-Bayhaqi 3/273, Jamharat al-Amthal 1/419, and al-Mustaqsa by al-Zamakhshari (280). (4) Ibn Abi Shayba recorded it in 13/282 through Muhammad bin Talha bin Musarrif, from Zubayd al-Yami, who said: Ali said: "The best of people are this middle group; the one coming after catches up to them, and the one who has gone ahead returns to them." Its chain is broken because Zubayd al-Yami did not meet Ali (RA). Abu Ubayd

recorded it in Gharib al-Hadith 3/482, and its chain is also broken. Al-Jawhari mentioned it in al-Sihah, Ibn al-Athir in al-Nihaya (under 'Namat'), Ibn Faris in Mujmal al-Lugha 3/866, al-Azhari in Tahdhib al-Lugha 13/377-378, al-Zamakhshari in al-Faiq 4/27, and Ibn al-Jawzi in Gharib al-Hadith 2/438. Ibn al-Athir said regarding its meaning: 'Namat' means a way among ways, or a type among types. It is said: "This is not of that namat," meaning: of that type. 'Namat' also means a group of people whose affair is one. Ali disliked excess and negligence in religion. (5) Meaning the middle letter of the word, which is the 'Sin', and it appeared as such in (M).

सूरह अल-बकराह: आयत 143 434

तुम अब तक के ज्ञात सबसे श्रेष्ठ (मध्यम) कबीले हो... छोटे मामलों में या बड़े मामलों में से किसी एक में। (1) और दूसरे ने कहा: मामलों में अति न करो... यदि पूछो तो अनुचित बात न पूछो। और सभी लोगों के बीच मध्यम मार्ग अपनाने वाले बनो। (2)

घाटी का मध्य (वसत) भाग उसका सबसे अच्छा स्थान है, और वह स्थान है जहाँ सबसे अधिक चारा और पानी होता है। और चूँकि 'मध्य' (वसत) अतिवाद (गुलुव) और लापरवाही (तक़्सीर) दोनों से दूर रहता है, इसलिए इसकी प्रशंसा की गई है। अर्थात्: इस उम्मत ने ईसाइयों की तरह अपने नबियों के बारे में अति नहीं की, और न ही यहूदियों की तरह अपने नबियों के प्रति कमी की।

हदीस में है: "मामलों में सबसे अच्छे वे हैं जो मध्यम हैं।" (3)। और इसमें अली (रजि.) से वर्णित है: "तुम मध्यम मार्ग अपनाओ, क्योंकि ऊँचा उसी की ओर झुकता है और नीचा उसी की ओर उठता है।" (4)।

और फलां अपने लोगों के'मध्य' (वसत) से है, और वह अपने लोगों का 'वासिता' (केंद्रीय व्यक्ति) है, और अपने लोगों का 'वसत' है: यानी उनके सबसे अच्छे और कुलीन वंश के लोगों में से। और उसने 'वसता', 'वसातन', 'विसिततन' [भाषाई रूप] किया, और यह उस 'वसत' से नहीं है जो किसी भी चीज़ में दो चीज़ों के बीच होता है।

और 'अल-वस्त'; ऐन (5) पर सुकून के साथ: एक क्रियाविशेषण के रूप में; आप कहते हैं: मैंने लोगों के'वस्त' (बीच में) प्रार्थना की, और मैं घर के'वस्त' (मध्य में) बैठा।

(1) हमने इसे नहीं पाया है। (2) अल-बयान वा अल-तबीन 1/255, और अल-मुबर्रद ने अल-फादिल पृष्ठ 7 में इनमें से पहले और तीसरे का उल्लेख किया है। (3) (ज़) और (म) में: 'औसतुहा' (इसका मध्य)। हदीस का उल्लेख अल-सखावी ने अल-मक़ासिद अल-हसना पृष्ठ 332 में किया है, और उन्होंने उल्लेख किया है कि यह अली (रजि.) से एक ऐसी श्रृंखला के साथ वर्णित है जिसमें एक अज्ञात कथावाचक है, और इब्न अब्बास (रजि.) से बिना श्रृंखला के। हम कहते हैं: इब्न अबी शैबा ने इसे 13/479 में, और इब्न साद ने 7/142 में, मुतर्रिफ बिन अब्दुल्ला बिन अल-शिखखीर से उनके अपने कथन के रूप में एक सहीह श्रृंखला के साथ दर्ज किया है। अल-तबरी ने इसे 17/500 में यज़ीद बिन मुर्वा अल-जुफी के कथन से दर्ज किया, और अबू नुऐम ने इसे हिल्या अल-औलिया 2/281 में अबू क़िलाबा के कथन से दर्ज किया। सुनन अल-बैहकी 3/273, जमहरात अल-अमथाल 1/419, और

अल-ज़मखशरी द्वारा अल-मुस्तक़सा (280) देखें। (4) इब्न अबी शैबा ने इसे 13/282 में मुहम्मद बिन तल्हा बिन मुसर्रिफ के माध्यम से ज़ुबैर अल-यामी से दर्ज किया है, जिन्होंने कहा: अली ने कहा: "लोगों में सबसे अच्छे यह मध्यम समूह हैं; बाद में आने वाला उनसे मिल जाता है, और जो आगे निकल गया है वह उनके पास लौट आता है।" इसकी श्रृंखला टूटी हुई है क्योंकि ज़ुबैर अल-यामी अली (रजि.) से नहीं मिले थे। अबू उबैद ने इसे ग़रीब अल-हदीस 3/482 में दर्ज किया है, और इसकी श्रृंखला भी टूटी हुई है। अल-जौहरी ने इसे अल-सिहह में, इब्न अल-अथीर ने अल-निहाया ('नमट' के तहत), इब्न फारिस ने मुजमल अल-लुगा 3/866 में, अल-अज़हरी ने तहज़ीब अल-लुगा 13/377-378 में, अल-ज़मखशरी ने अल-फ़ाइक 4/27 में, और इब्न अल-जौज़ी ने ग़रीब अल-हदीस 2/438 में इसका उल्लेख किया है। इब्न अल-अथीर ने इसके अर्थ के बारे में कहा: 'नमट' का अर्थ है रास्तों में से एक रास्ता, या प्रकारों में से एक प्रकार। कहा जाता है: "यह उस नमट का नहीं है," अर्थात्: उस प्रकार का। 'नमट' का अर्थ लोगों का एक समूह भी है जिनका मामला एक हो। अली ने धर्म में अति और लापरवाही को नापसंद किया। (5) यानी शब्द का मध्य अक्षर, जो 'सीन' है, और (म) में भी ऐसा ही हुआ है।

سورہ البقرہ: آیت 143 434

تم سب سے بہتر (معتدل) قبیلہ ہو جو اب تک معلوم ہوا... چھوٹے معاملے میں یا بڑے معاملات میں سے کسی ایک میں۔ (1) اور دوسرے نے کہا: امور میں غلو نہ کرو... اگر تم پوچھو تو حد سے بڑھی ہوئی بات نہ پوچھو۔ اور تمام لوگوں میں اعتدال پسند بنو۔ (2)

وادی کا 'وسط' اس کا بہترین مقام ہے، اور وہ جگہ ہے جہاں سب سے زیادہ چارہ اور پانی ہوتا ہے۔ اور چونکہ 'وسط' غلو اور تقصیر دونوں سے دور ہوتا ہے، اس لیے یہ پسندیدہ ٹھہرا۔ یعنی: اس امت نے اپنے نبیوں کے بارے میں عیسائیوں کی طرح غلو نہیں کیا، اور نہ ہی یہودیوں کی طرح اپنے نبیوں کے حق میں کوتاہی کی۔

حدیث میں ہے: "بہترین امور وہ ہیں جو میانہ روی والے ہوں۔" (3)۔ اور اسی میں حضرت علی رضی اللہ عنہ سے مروی ہے: "تم درمیانہ راستہ اختیار کرو، کیونکہ بلند اسی کی طرف جھکتا ہے اور نیچے والا اسی کی طرف بلند ہوتا ہے۔" (4)۔

اور فلاں اپنے لوگوں کے 'وسط' میں سے ہے، اور وہ اپنے لوگوں کا 'واسطہ' (مرکزی شخصیت) ہے، اور اپنے لوگوں کا 'وسط' ہے: یعنی ان کے بہترین اور معزز لوگوں میں سے۔ اور اس نے 'وسط'، 'وساطۃ'، 'وسطۃ' [لسانی اشکال] کیا، اور یہ اس 'وسط' سے نہیں ہے جو کسی بھی چیز میں دو چیزوں کے درمیان ہوتا ہے۔

اور 'الوَسْط'؛ 'عین' (5) کے سکون کے ساتھ: ظرف کے طور پر؛ آپ کہتے ہیں: میں نے لوگوں کے 'وَسْط' (درمیان) میں نماز پڑھی، اور میں گھر کے 'وَسْط' (بیچ) میں بیٹھا۔

(1) ہم نے اسے نہیں پایا۔ (2) البیان والتبیین 1/255، اور المبرد نے ان میں سے پہلے اور تیسرے کا ذکر 'الفاضل' ص 7 میں کیا ہے۔ (3) (ظ) اور (م) میں: 'اوسطہا' (اس کا درمیانی حصہ)۔ حدیث کا ذکر السخاوی نے 'المقاصد الحسنہ' ص 332 میں کیا ہے، اور انہوں نے ذکر کیا ہے کہ یہ ایک ایسی سند کے ساتھ مروی ہے جس میں حضرت علی رضی اللہ عنہ سے ایک مجہول راوی ہے، اور ابن عباس رضی اللہ عنہما سے بغیر سند کے مروی ہے۔ ہم کہتے ہیں: اسے ابن ابی شیبہ نے 13/479 میں، اور ابن سعد نے 7/142 میں، مطرف بن عبداللہ بن الشخیر کے قول کے طور پر صحیح سند کے ساتھ روایت کیا ہے۔ الطبری نے اسے 17/500 میں یزید بن مرہ الجعفی کے قول سے، اور ابو نعیم نے 'حلیۃ الاولیاء' 2/281 میں ابو قلابہ کے قول سے روایت کیا ہے۔ دیکھئے سنن البیہقی 3/273، جمہرۃ الامثال 1/419، اور المستقصی للزمخشری (280)۔ (4) اسے ابن ابی شیبہ نے 13/282 میں محمد بن طلحہ بن مصرف کے طریق سے زبید الیامی سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: علی نے فرمایا: "لوگوں میں سب سے بہتر یہ درمیانہ گروہ (نمط) ہے؛ بعد میں آنے والا ان سے آ ملتا ہے، اور جو آگے نکل گیا ہے وہ ان کی طرف لوٹ آتا ہے۔" اس کی سند منقطع ہے کیونکہ زبید الیامی نے حضرت علی رضی اللہ عنہ سے ملاقات نہیں کی۔ ابو عبید نے اسے 'غریب الحدیث' 3/482 میں روایت کیا ہے، اور اس کی سند بھی منقطع ہے۔ اسے الجوہری نے 'الصحاح' میں، ابن الاثیر نے 'النہایہ' (لفظ نمط کے تحت)، ابن فارس نے 'مجمل اللغہ' 3/866 میں، الازہری نے 'تہذیب اللغہ' 13/377-378 میں، الزمخشری نے 'الفائق' 4/27 میں، اور ابن الجوزی نے 'غریب الحدیث' 2/438 میں ذکر کیا ہے۔ ابن الاثیر نے اس کے معنی کے بارے میں کہا: نمط کے معنی طریقوں میں سے ایک طریقہ یا قسموں میں سے ایک قسم ہے۔ کہا جاتا ہے: "یہ اس نمط کا نہیں ہے" یعنی اس قسم کا نہیں۔ نمط لوگوں کی اس جماعت کو بھی کہتے ہیں جن کا معاملہ ایک ہو۔ حضرت علی نے دین میں غلو اور تقصیر کو ناپسند کیا۔ (5) یعنی کلمہ کا عین، جو کہ حرف 'سین' ہے، اور (م) میں بھی ایسا ہی ہوا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 435

The abode; with vocalization (vowel marks); because it is a noun. Al-Jawhari said(1): Every place where 'bayn' (between) is suitable, it is 'wast' (middle), and if 'bayn' is not suitable, then it is 'wasat', with vocalization, and sometimes it is made quiescent (without a vowel), but it is not the standard way.

Second: The Almighty's saying: {That you may be} is in the accusative case due to the 'lam' of 'kay' (so that), i.e., so that you may be.

{witnesses} is the predicate (khabar) of 'kana'.

{over mankind} i.e., at the Place of Gathering for the prophets over their nations, as established in Al-Bukhari(2) on the authority of Abu Sa'id al-Khudri who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Noah (peace be upon him) will be called on the Day of Resurrection, and he will say: 'At Your service and at Your pleasure, O Lord.' He will ask: 'Did you convey [the message]?' He will say: 'Yes.' Then it will be said to his nation: 'Did he convey it to you?' They will say: 'No warner came to us.' He will ask: 'Who will testify for you?' He will say: 'Muhammad and his nation.' So you will testify that he has conveyed it, and the Messenger will be a witness over you. That is the word of the Mighty and Majestic: {And thus We have made you a just community that you may be witnesses over the people and the Messenger may be a witness over you}."

Ibn al-Mubarak(4) mentioned this Hadith(3) at length with its meaning, and in it: "Those nations will say: 'How can those who did not reach our time testify against us?' Then the Lord, Glorified is He, will say to them: 'How do you testify over those you did not reach?' They will say: 'Our Lord, You sent a Messenger to us, sent down Your covenant and Your Book to us, and narrated to us that they had conveyed [the message], so we testified to what You entrusted to us.' The Lord will say: 'They have spoken the truth.' That is the word of the Mighty and Majestic: {And thus We have made you a just community}. And 'al-wasat' means justice {that you may be witnesses over the people and the Messenger may be a witness over you}." Ibn An'um said: "It reached me that on that day, the nation of Muhammad (peace be upon him) will testify, except for those who had a grudge (hinna) in their heart against their brother(5)."

---

(1) Al-Sahhah (wast). (2) In (M): Sahih al-Bukhari. The Hadith is therein under number (4487), and it is in Musnad Ahmad (11283). (3) In (Kh), (Zha), and a copy in the margin

of (Z): the report. (4) In Al-Zuhd (1598). (5) Related by Al-Tabari 2/635-636 through the way of Ibn al-Mubarak, from Rushdin bin Sa'd, from Ibn An'um, from Habban bin Abi Jabalah, from the Prophet (peace be upon him) as a 'mursal' report. Rushdin bin Sa'd is weak, as mentioned by Al-Hafiz in Al-Taqrib, and the author cited Al-Tabari's wording, and Ibn An'um's saying did not appear in Al-Zuhd. His word 'hinna' means enmity, and it is a rare linguistic variant for 'ihnah'. Ibn Al-Athir mentioned it in Al-Nihayah.

सूरह अल-बकरा: आयत 143 435

घर; स्वर (तहरीक) के साथ; क्योंकि यह एक संज्ञा (नाम) है। अल-जौहरी ने कहा(1): हर वह स्थान जहाँ 'बैन' (बीच) उपयुक्त हो, वह 'वस्त' (मध्य) है, और यदि 'बैन' उपयुक्त नहीं है, तो वह 'वसत' है, स्वर के साथ, और कभी-कभी यह व्यंजन-रहित (साकिन) होता है, लेकिन यह मानक रूप नहीं है।

दूसरा: अल्लाह का कथन: {ताकि तुम बनो} 'कय' (ताकि) के'लाम' के कारण कर्म कारक (नसब) में है, अर्थात्: ताकि तुम बनो।

{गवाह} 'काना' का विधेय (खबर) है।

{लोगों पर} अर्थात: हश्र (मैदान-ए-हश्र) में पैगंबरों के लिए उनकी उम्मतों पर, जैसा कि बुखारी(2) में अबू सईद अल-खुदरी से साबित है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: 'कयामत के दिन नूह (अलैहिस्सलाम) को पुकारा जाएगा, तो वे कहेंगे: "मैं हाजिर हूँ, मेरे रब!" अल्लाह पूछेगा: "क्या तुमने संदेश पहुँचा दिया था?" वे कहेंगे: "हाँ।" फिर उनकी उम्मत से कहा जाएगा: "क्या उन्होंने तुम्हें संदेश पहुँचाया था?" वे कहेंगे: "हमारे पास कोई डराने वाला नहीं आया।" अल्लाह पूछेगा: "तुम्हारे लिए गवाही कौन देगा?" वे कहेंगे: "मुहम्मद और उनकी उम्मत।" तो तुम गवाही दोगे कि उन्होंने संदेश पहुँचा दिया था, और रसूल तुम पर गवाह होंगे। यही अल्लाह का फरमान है: {और इसी तरह हमने तुम्हें एक न्यायप्रिय (वसत) उम्मत बनाया ताकि तुम लोगों पर गवाह बनो और रसूल तुम पर गवाह हो}।'

इब्न अल-मुबारक(4) ने इस हदीस(3) का विस्तृत अर्थ के साथ उल्लेख किया है, और इसमें है: 'तो वे उम्मतें कहेंगी: जिन्होंने हमें नहीं पाया, वे हम पर गवाही कैसे दे सकते हैं? अल्लाह सुब्हानहू उनसे पूछेगा: तुम उन पर गवाही कैसे देते हो जिन्हें तुमने नहीं पाया? वे कहेंगे: हमारे रब! तूने हमारी ओर एक रसूल भेजा, हम पर अपना अहद (वचन) और अपनी किताब उतारी, और हमें बताया कि उन्होंने संदेश पहुँचा दिया है, तो हमने उस पर गवाही दी जिसका तूने हमें वचन दिया था। अल्लाह फरमाएगा: उन्होंने सच कहा है। यही अल्लाह का फरमान है: {और इसी तरह हमने तुम्हें एक न्यायप्रिय (वसत) उम्मत बनाया}। और 'वसत' का अर्थ न्यायप्रिय (अदल) है {ताकि तुम लोगों पर गवाह बनो और रसूल तुम पर गवाह हो}।' इब्न अन'उम ने कहा: 'मुझे यह खबर मिली है कि उस दिन मुहम्मद ﷺ की उम्मत गवाही देगी, सिवाय उनके जिनके दिल में अपने भाई के लिए कोई कीना (दुश्मनी) हो(5)।'

(1) अस-सिहाह (वस्त)। (2) (म) में: सहीह अल-बुखारी। हदीस नंबर (4487), और यह मुसनद अहमद (11283) में भी है। (3) (ख), (ज़) और (ज़) के हाशिये की एक प्रति में: 'अल-खबर' (समाचार)। (4) अज़-जुहद (1598) में। (5) इसे अल-तबरी (2/635-636) ने इब्न अल-मुबारक के माध्यम से, रुश्दीन बिन साद से, इब्न अन'उम से, हब्बान बिन अबी जबला से, नबी ﷺ से मुरसल के रूप में निकाला है। रुश्दीन बिन साद कमजोर है, जैसा कि हाफ़िज़ ने 'तकरीब' में उल्लेख किया है। लेखक ने तबरी के शब्दों को उद्धृत किया है, और इब्न अन'उम का कथन 'अल-जुहद' में नहीं आया है। उनका शब्द 'हिन्ना' का अर्थ दुश्मनी है, और यह 'इहना' शब्द का एक दुर्लभ भाषाई रूप है। इब्न अल-असीर ने 'अल-निहाया' में इसका उल्लेख किया है।

سورہ بقرہ: آیت ۱۴۳ ۴۳۵

الدار؛ تحریک کے ساتھ؛ کیونکہ یہ اسم ہے۔ جوہری(۱) نے کہا: اور ہر وہ جگہ جہاں «بین» درست ہو، وہ «وَسْط» ہے، اور اگر «بین» درست نہ ہو تو وہ «وَسَط» ہے، تحریک کے ساتھ، اور کبھی اسے ساکن بھی کیا جاتا ہے، لیکن یہ فصیح نہیں ہے۔

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ لِتَكُونُوا ﴾ لام «کی» کی وجہ سے منصوب ہے، یعنی: تاکہ تم بن جاؤ۔

﴿ شُهَدَاءَ ﴾ 'کان' کی خبر ہے۔

﴿ عَلَى النَّاسِ ﴾ یعنی: میدانِ محشر میں انبیاء کے لیے ان کی امتوں پر، جیسا کہ بخاری(۲) میں حضرت ابوسعید خدری رضی اللہ عنہ سے ثابت ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: 'قیامت کے دن نوح علیہ السلام کو بلایا جائے گا، تو وہ کہیں گے: لبیک و سعدیک اے میرے رب! اللہ فرمائے گا: کیا تم نے پیغام پہنچا دیا تھا؟ وہ کہیں گے: جی ہاں۔ پھر ان کی امت سے کہا جائے گا: کیا انہوں نے تم تک پیغام پہنچایا تھا؟ وہ کہیں گے: ہمارے پاس کوئی ڈرانے والا نہیں آیا۔ اللہ فرمائے گا: تمہارے لیے گواہی کون دے گا؟ وہ کہیں گے: محمد ﷺ اور ان کی امت۔ پس تم گواہی دو گے کہ انہوں نے پیغام پہنچا دیا تھا، اور رسول تم پر گواہ ہوں گے۔ پس یہی اللہ عزوجل کا قول ہے: ﴿ وَكَذَٰلِكَ جَعَلْنَاكُمْ أُمَّةً وَسَطًا لِتَكُونُوا شُهَدَاءَ عَلَى النَّاسِ وَيَكُونَ الرَّسُولُ عَلَيْكُمْ شَهِيدًا ﴾۔'

اور اس حدیث(۳) کو ابن المبارک(۴) نے مفصل طور پر اس کے ہم معنی الفاظ میں ذکر کیا ہے، جس میں ہے: 'پس وہ امتیں کہیں گی: وہ ہم پر کیسے گواہی دے سکتے ہیں جنہوں نے ہمیں پایا ہی نہیں؟ پس رب سبحانہ ان سے فرمائے گا: تم ان پر کیسے گواہی دو گے جنہیں تم نے نہیں پایا؟ وہ

کہیں گے: اے ہمارے رب! تو نے ہماری طرف رسول بھیجا، ہم پر اپنا عہد اور اپنی کتاب نازل کی، اور ہمیں بتایا کہ انہوں نے پیغام پہنچا دیا ہے، پس ہم نے اس بات کی گواہی دی جس کا تو نے ہم سے عہد لیا تھا۔ اللہ تعالیٰ فرمائے گا: انہوں نے سچ کہا۔ پس یہی اللہ عزوجل کا قول ہے: ﴿ وَكَذَٰلِكَ جَعَلْنَاكُمْ أُمَّةً وَسَطًا ﴾۔ اور وسط سے مراد عدل (انصاف پسند) ہے ﴿ لِتَكُونُوا شُهَدَاءَ عَلَى النَّاسِ وَيَكُونَ الرَّسُولُ عَلَيْكُمْ شَهِيدًا ﴾۔' ابن انعم نے کہا: 'مجھے یہ خبر پہنچی ہے کہ اس دن امتِ محمد ﷺ گواہی دے گی، سوائے اس کے جس کے دل میں اپنے بھائی کے لیے کوئی کینہ (عداوت) ہو(۵)۔'

---

(۱) الصحاح (وسط)۔ (۲) (م) میں: صحیح بخاری۔ اور حدیث اس میں نمبر (۴۴۸۷) پر ہے، اور یہ مسند احمد (۱۱۲۸۳) میں بھی ہے۔ (۳) (خ) اور (ظ) اور (ز) کے حاشیہ کے ایک نسخے میں: الخبر۔ (۴) الزہد (۱۵۹۸) میں۔ (۵) اسے طبری نے ۲/۶۳۵-۶۳۶ میں ابن المبارک کے واسطے سے، رشدین بن سعد سے، انہوں نے ابن انعم سے، انہوں نے حبان بن ابی جبلہ سے، انہوں نے نبی ﷺ سے مرسلاً روایت کیا ہے۔ رشدین بن سعد ضعیف ہے جیسا کہ حافظ نے 'التقریب' میں ذکر کیا ہے، اور مصنف نے طبری کے الفاظ نقل کیے ہیں، جبکہ ابن انعم کا قول 'الزہد' میں نہیں آیا। ان کا قول 'حنة' بمعنی عداوت (کینہ) ہے، اور یہ لفظ 'إحنة' کی ایک قلیل لغت ہے۔ اسے ابن الاثیر نے 'النہایہ' میں ذکر کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 436 A group said: The meaning of the verse is: Some of you will bear witness against others after death (1), as established in "Sahih" Muslim (2) from Anas, from the Prophet ﷺ, that he said when a funeral procession passed by him, and it was praised for its goodness, he said: "It has become mandatory, it has become mandatory, it has become mandatory." Then another passed by, and it was spoken of ill, he said: "It has become mandatory, it has become mandatory, it has become mandatory." Umar said: May my father and mother be sacrificed for you (3), a funeral passed by and it was praised for its goodness (4), and you said: "It has become mandatory, it has become mandatory, it has become mandatory." And another funeral passed by, and it was spoken of ill, and you said: "It has become mandatory, it has become mandatory, it has become mandatory"? The Messenger of Allah ﷺ said: "Whomever you praise for goodness, Paradise has become mandatory for him, and whomever you speak of ill, the Fire has become mandatory for him. You are Allah's witnesses on earth, you are Allah's witnesses on earth, you are Allah's witnesses on earth." Al-Bukhari reported it with its meaning (5). In some of its paths outside the two Sahihs: And he recited: {That you may be witnesses over mankind and the Messenger may be a witness over you} (6). Aban and Layth narrated from Shahr ibn Hawshab, from Ubada ibn al-Samit, who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ saying: "My nation has been given three things that were not given except to Prophets: When Allah sent a Prophet, He said to him: Call upon Me, I will respond to you. And He said to this nation: {Call upon Me; I will respond to you} [Ghafir: 60]. And when Allah sent a Prophet, He said to him: He has not placed upon you in religion any hardship. And He said to this nation: {and has not placed upon you in the religion any hardship} [Al-Hajj: 78]. And when Allah sent a Prophet, He made him a witness over his people, and He made this nation witnesses over mankind." Al-Tirmidhi Al-Hakim Abu Abdullah cited it in "Nawadir al-Usul" (7).

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/219. (2) Number (949). It is in Musnad Ahmad (12938). (3) In (M): "Fida laka". (4) In (Zah): "They praised it for goodness". (5) Number (1367) and (2642). (6) Mentioned by Al-Hakim Al-Tirmidhi in Nawadir al-Usul, p. 104. (7) P. 391, summarized without chain of narration in the edition we have.

सूरह अल-बकरा: आयत 143 436 एक समूह ने कहा: आयत का अर्थ है: मृत्यु के बाद आप में से कुछ दूसरों के विरुद्ध गवाही देंगे (1), जैसा कि "सहीह" मुस्लिम (2) में अनस से, नबी ﷺ से प्रमाणित है, कि उन्होंने कहा जब उनके पास से एक जनाज़ा निकला, और उसकी भलाई के लिए प्रशंसा की गई, तो उन्होंने कहा: "अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया।" फिर एक और जनाज़ा निकला, और उसके बारे में बुराई की गई, तो उन्होंने कहा: "अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया।" उमर ने कहा: मेरे माता-पिता आप पर न्योछावर हों (3), एक जनाज़ा निकला और उसकी भलाई के लिए प्रशंसा की गई (4), और आपने कहा: "अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया।" और एक और जनाज़ा निकला, और उसके बारे में बुराई की गई, और आपने कहा: "अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया, अनिवार्य हो गया"? अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "जिसकी तुम भलाई की प्रशंसा करते हो, उसके लिए जन्नत अनिवार्य हो गई, और जिसके बारे में तुम बुराई करते हो, उसके लिए आग अनिवार्य हो गई। तुम धरती पर अल्लाह के गवाह हो, तुम धरती पर अल्लाह के गवाह हो, तुम धरती पर अल्लाह के गवाह हो।" अल-बुखारी ने इसे इसके अर्थ के साथ रिपोर्ट किया (5)। और 'सहीहैन' (बुखारी और मुस्लिम) के बाहर इसके कुछ मार्गों में: और उन्होंने पढ़ा: {ताकि तुम लोगों पर गवाह रहो और रसूल तुम पर गवाह रहे} (6)। अबान और लैथ ने शहर इब्न हौशब से, उबादा इब्न अल-सामित से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को यह कहते सुना: "मेरी उम्मत को तीन ऐसी चीजें दी गई हैं जो केवल नबियों को दी गई थीं: जब अल्लाह किसी नबी को भेजता था, तो वह उससे कहता था: मुझे पुकारो, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा। और इस उम्मत से कहा गया: {मुझे पुकारो, मैं तुम्हें उत्तर दूंगा} [गाफिर: 60]। और जब अल्लाह किसी नबी को भेजता था, तो वह उससे कहता था: उसने धर्म में तुम पर कोई कठिनाई नहीं डाली। और इस उम्मत से कहा गया: {और धर्म में तुम पर कोई कठिनाई नहीं डाली} [अल-हज्ज: 78]। और जब अल्लाह किसी नबी को भेजता था, तो वह उसे उसकी कौम पर गवाह बनाता था, और उसने इस उम्मत को लोगों पर गवाह बनाया।" अल-तिर्मिज़ी अल-हकीम अबू अब्दुल्लाह ने इसे "नवादिर अल-उसूल" (7) में दर्ज किया है।

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/219। (2) नंबर (949)। और यह मुसनद अहमद (12938) में है। (3) (म) में: "फिदा लका"। (4) (ज़ह) में: "उन्होंने उसकी भलाई के लिए प्रशंसा की"। (5) नंबर (1367) और (2642)। (6) अल-हकीम अल-तिर्मिज़ी ने नवादिर अल-उसूल, पृ. 104 में इसका उल्लेख किया है। (7) पृ. 391, हमारे पास मौजूद संस्करण में बिना किसी इसनाद के संक्षिप्त।

سورہ البقرہ : آیت ١٤٣ ٤٣٦ اور ایک جماعت نے کہا: آیت کا معنی ہے: تم میں سے بعض موت کے بعد بعض پر گواہی دیں گے (١)، جیسا کہ "صحیح" مسلم (٢) میں انس سے، نبی ﷺ سے ثابت ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا جب آپ کے پاس سے ایک جنازہ گزرا، اور اس کی بھلائی کے ساتھ تعریف کی گئی، تو آپ ﷺ نے فرمایا: «وجبت، وجبت، وجبت» (واجب ہوگئی، واجب ہوگئی، واجب ہوگئی)، پھر دوسرے کا گزر ہوا، اور اس کی برائی کے ساتھ تعریف کی گئی، تو آپ ﷺ نے فرمایا: «وجبت، وجبت، وجبت»۔ عمر رضی اللہ عنہ نے عرض کیا: میرے ماں باپ آپ پر فدا ہوں (٣)، ایک جنازہ گزرا اور اس کی بھلائی کے ساتھ تعریف کی گئی (٤) تو آپ نے فرمایا: «وجبت، وجبت، وجبت»، اور ایک اور جنازہ گزرا، اور اس کی برائی کے ساتھ تعریف کی گئی، تو آپ نے فرمایا: «وجبت، وجبت، وجبت»؟ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: «جس کی تم نے بھلائی کے ساتھ تعریف کی اس کے لیے جنت واجب ہوگئی، اور جس کی تم نے برائی کے ساتھ تعریف کی اس کے لیے آگ واجب ہوگئی، تم زمین میں اللہ کے گواہ ہو، تم زمین میں اللہ کے گواہ ہو، تم زمین میں اللہ کے گواہ ہو»۔ اسے بخاری نے اس کے معنی کے ساتھ روایت کیا ہے (٥)۔ اور صحیحین کے علاوہ اس کے بعض طرق میں ہے: اور آپ ﷺ نے تلاوت فرمائی: ﴿تاکہ تم لوگوں پر گواہ رہو اور رسول تم پر گواہ رہے﴾ (٦)۔ اور ابان اور لیث نے شہر بن حوشب سے، عبادہ بن صامت رضی اللہ عنہ سے روایت کیا، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے ہوئے سنا: «میری امت کو تین ایسی چیزیں دی گئی ہیں جو انبیاء کے علاوہ کسی کو نہیں دی گئیں: جب اللہ کسی نبی کو بھیجتا تھا تو اس سے فرماتا تھا: مجھ سے دعا کرو میں تمہاری دعا قبول کروں گا، اور اس امت کے لیے فرمایا: ﴿مجھ سے دعا کرو، میں تمہاری (دعا) قبول کروں گا﴾ [غافر: ٦٠]، اور جب اللہ کسی نبی کو بھیجتا تھا تو اس سے فرماتا تھا: دین میں تم پر کوئی تنگی نہیں کی، اور اس امت کے لیے فرمایا: ﴿اور دین میں تم پر کوئی تنگی نہیں کی﴾ [الحج: ٧٨]، اور جب اللہ کسی نبی کو بھیجتا تھا تو

اسے اپنی قوم پر گواہ بناتا تھا، اور اس امت کو لوگوں پر گواہ بنایا»۔ اسے ترمذی حکیم ابو عبد اللہ نے «نوادر الاصول» میں روایت کیا ہے (۷)۔

---

(۱) المحرر الوجیز ۲۱۹/۱۔ (۲) نمبر (۹٤۹)۔ اور یہ مسند احمد (۱۲۹۳۸) میں ہے۔ (۳) (م) میں ہے: "فدی لک"۔ (٤) (ظ) میں ہے: "پس انہوں نے اس کی بھلائی کے ساتھ تعریف کی"۔ (٥) نمبر (۱۳٦۷) اور (۲٦٤۲)۔ (٦) اسے حکیم ترمذی نے نوادر الاصول ص ۱۰٤ میں ذکر کیا ہے۔ (۷) ص ۳۹۱، ہمارے پاس موجود ایڈیشن میں بغیر سند کے مختصر طور پر۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 / 437

Third: Our scholars said: Our Lord, Blessed and Exalted be He, informed us in His book of what He has bestowed upon us by preferring us with the name of justice (adl), and entrusting us with the serious responsibility of witnessing over all His creation. He made us first in status, even if we are last in time, as the Prophet (peace be upon him) said: "We are the last, yet the first" (1). This is evidence that only the upright (just) may testify, and the word of one person against another is not valid unless they are just (2). The clarification of justice and its ruling will come at the end of the Surah, God Almighty willing (3).

Fourth: In this is evidence for the validity of consensus (ijma') and the obligation to rule by it. Because if they are just witnesses over people, then every generation is a witness over those who come after them. Thus, the words of the Companions are an authoritative proof and a witness over the Successors (Tabi'un), and the words of the Successors over those after them. Since the nation (Ummah) has been made witnesses, it is obligatory to accept their word. There is no meaning to the statement of those who said: "it refers to the entire Ummah [throughout all time]," because then no consensus could be established until the Day of Resurrection (4). The explanation of this is in the books of the Principles of Jurisprudence (Usul al-Fiqh).

Regarding His word: "And that the Messenger may be a witness over you": It was said: It means: regarding your deeds on the Day of Resurrection. And it was said: "over you" means "for you," i.e., he testifies to your faith. And it was said: i.e., he testifies against you that he conveyed the message to you (5).

Regarding His word: "And We did not make the Qiblah which you used to face": It was said: What is meant by the Qiblah here is the first Qiblah, because of His saying: "you used to face [it]." And it was said: the second, so the "kaf" (in 'kunta') is extra, meaning: you are now upon it, as mentioned before (6), and as He said: "You are the best nation produced for mankind" [Aal-Imran: 110], meaning: "you are [now]", according to some of them (7), and it will come [later].

Regarding His word: "Except that We might make evident who follows the Messenger": Ali bin Abi Talib (may Allah be pleased with him) said:

(1) Reported by Ahmad (7310), Al-Bukhari (238), and Muslim (855) from the hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). (2) Ahkam al-Qur'an by Ibn al-Arabi 1/40-41. (3) In the interpretation of the Verse of Debt (282). (4) See Ahkam al-Qur'an

by al-Jassas 1/88-90. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/219. (6) 2/430. (7) See Majma' al-Bayan by al-Tabarsi 2/11, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/220.

सूरह अल-बकराह: आयत 143 / 437

तीसरा: हमारे विद्वानों ने कहा: हमारे रब, धन्य और महान, ने हमें अपनी किताब में उस चीज़ के बारे में सूचित किया है जो उन्होंने हमें न्याय (अदल) के नाम से वरीयता देकर प्रदान की है, और अपनी पूरी सृष्टि पर गवाही की गंभीर जिम्मेदारी हमें सौंपी है। उन्होंने हमें स्थान में प्रथम बनाया, भले ही हम समय में अंतिम हों, जैसा कि पैगंबर (उन पर शांति हो) ने कहा: "हम अंत में आने वाले हैं लेकिन (दर्जे में) पहले हैं" (1)। यह इस बात का प्रमाण है कि केवल न्यायप्रिय (सच्चे) लोग ही गवाही दे सकते हैं, और किसी दूसरे के विरुद्ध किसी की बात तब तक मान्य नहीं होती जब तक वह न्यायप्रिय न हो (2)। न्याय और उसके नियम का स्पष्टीकरण सूरह के अंत में आएगा, इंशा अल्लाह (3)।

चौथा: इसमें सर्वसम्मति (इज्मा) की वैधता और उसके अनुसार निर्णय लेने की अनिवार्यता का प्रमाण है। क्योंकि यदि वे लोगों पर न्यायप्रिय गवाह हैं, तो प्रत्येक युग अपने बाद आने वालों पर गवाह है। अतः सहाबा (पैगंबर के साथी) के कथन बाद में आने वाले ताबईन (सहाबा के शिष्य) के लिए प्रमाण और गवाह हैं, और ताबईन के कथन उनके बाद वालों पर। चूँकि इस उम्मत (समुदाय) को गवाह बनाया गया है, इसलिए उनकी बात मानना अनिवार्य है। उन लोगों के कथन का कोई अर्थ नहीं है जिन्होंने कहा: "इससे पूरी उम्मत (कयामत तक की) अभिप्रेत है," क्योंकि तब कयामत तक कोई सर्वसम्मति (इज्मा) स्थापित नहीं हो पाएगी (4)। इसका विवरण उसूल अल-फ़िक़्ह (न्यायशास्त्र के सिद्धांतों) की पुस्तकों में है।

अल्लाह का कथन: "और ताकि रसूल तुम पर गवाह हों": कहा गया है: इसका अर्थ है: कयामत के दिन तुम्हारे कार्यों के बारे में। और कहा गया है: "तुम पर" का अर्थ है "तुम्हारे लिए", अर्थात: वह तुम्हारे ईमान की गवाही देंगे। और कहा गया है: अर्थात: वह तुम्हारे विरुद्ध गवाही देंगे कि उन्होंने तुम तक संदेश पहुँचा दिया था (5)।

अल्लाह का कथन: "और हमने वह किबला (नमाज़ की दिशा) जिस पर आप पहले थे, इसलिए नहीं बनाया था...": कहा गया है: यहाँ किबला से तात्पर्य पहले किबला से है, क्योंकि अल्लाह ने कहा: "जिस पर आप [पहले] थे"। और कहा गया है: दूसरा [किबला], तो "काफ़" (कुंता में) अतिरिक्त है, जिसका अर्थ है: आप अब उस पर हैं, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (6), और जैसा कि उन्होंने कहा: "तुम वह बेहतरीन उम्मत हो जो लोगों (के मार्गदर्शन) के लिए निकाली गई है" [आल-इमरान: 110], यानी: "तुम [अब] हो", उनमें से कुछ के अनुसार (7), और यह आगे आएगा।

अल्लाह का कथन: "मगर इसलिए कि हम जान लें कि कौन रसूल का अनुसरण करता है": अली बिन अबी तालिब (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने कहा:

(1) इसे अहमद (7310), अल-बुखारी (238), और मुस्लिम (855) ने अबू हुरैरा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से उद्धृत किया है। (2) इब्न अल-अरबी की अहकाम अल-क़ुरान 1/40-41। (3) ऋण की आयत (282) की व्याख्या में। (4) अल-जस्सास की अहकाम अल-क़ुरान 1/88-90 देखें। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/219। (6) 2/430। (7) अल-तबरसी की मजमा अल-बयान 2/11, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/220 देखें।

سورة البقرہ: آیت 143 / 437

تیسرا نکتہ: ہمارے علماء نے کہا: ہمارے رب تبارک و تعالیٰ نے اپنی کتاب میں ہمیں اس نعمت کی خبر دی ہے جو اس نے ہمیں "عدالت" (انصاف) کے نام سے فضیلت دے کر عطا کی ہے، اور اپنی تمام مخلوق پر گواہی کی اہم ذمہ داری ہمیں سونپی ہے۔ پس اس نے ہمیں رتبے میں اول بنایا اگرچہ ہم زمانے کے لحاظ سے سب سے آخر میں آئے، جیسا کہ آپ صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "ہم آخر میں آنے والے ہیں لیکن (فضیلت میں) اول ہیں" (1)۔ اور یہ اس بات کی دلیل ہے کہ صرف عادل (سچے اور نیک) ہی گواہی دے سکتے ہیں، اور کسی شخص کا قول دوسرے کے حق میں اس وقت تک نافذ نہیں ہوتا جب تک کہ وہ عادل نہ ہو (2)۔ عدالت کی وضاحت اور اس کا حکم سورہ کے آخر میں آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (3)۔

چوتھا نکتہ: اس میں اجماع کی صحت اور اس کے مطابق فیصلہ کرنے کے وجوب کی دلیل ہے۔ کیونکہ جب وہ لوگوں پر عادل گواہ ہوں گے، تو ہر دور اپنے بعد آنے والوں پر گواہ ہے۔ چنانچہ صحابہ کا قول تابعین پر حجت اور گواہ ہے، اور تابعین کا قول ان کے بعد والوں پر۔ اور جب اس امت کو گواہ بنا دیا گیا ہے، تو ان کی بات قبول کرنا واجب ہو گیا ہے۔ ان لوگوں کے قول کا کوئی مطلب نہیں جنہوں نے کہا کہ "اس سے پوری امت (قیامت تک کی) مراد ہے"، کیونکہ اس صورت میں قیامت تک کسی بات پر اجماع ثابت نہیں ہو سکے گا (4)۔ اس کی وضاحت اصولِ فقہ کی کتابوں میں موجود ہے۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَيَكُونَ الرَّسُولُ عَلَيْكُمْ شَهِيداً﴾: کہا گیا: اس کا مطلب ہے: قیامت کے دن تمہارے اعمال کے بارے میں (گواہی دیں گے)۔ اور کہا گیا: "علیکم" کا مطلب ہے "تمہارے لیے"، یعنی:

تمہارے ایمان کی گواہی دیں گے۔ اور یہ بھی کہا گیا کہ: یعنی تمہارے خلاف گواہی دیں گے کہ انہوں نے پیغام پہنچا دیا تھا (5)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِي كُنتَ عَلَيْهَا﴾: کہا گیا: یہاں قبلہ سے مراد پہلا قبلہ ہے، کیونکہ فرمایا: "جس پر آپ (پہلے) تھے"۔ اور کہا گیا: دوسرا (قبلہ مراد ہے)، تو "کاف" (کنت میں) زائد ہے، یعنی: آپ اب اس پر ہیں، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے (6)، اور جیسا کہ فرمایا: ﴿كُنتُمْ خَيْرَ أُمَّةٍ أُخْرِجَتْ لِلنَّاسِ﴾ [آل عمران: 110]، یعنی: "تم (اب) ہو"، بعض کے قول کے مطابق (7)، اور یہ آگے آئے گا۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿إِلَّا لِنَعْلَمَ مَن يَتَّبِعُ الرَّسُولَ﴾: علی بن ابی طالب رضی اللہ تعالیٰ عنہ نے فرمایا:

(1) اسے احمد (7310)، بخاری (238)، اور مسلم (855) نے ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (2) احکام القرآن از ابن العربی 1/ 40-41۔ (3) آیتِ دین (282) کی تفسیر میں۔ (4) دیکھئے احکام القرآن از جصاص 1/ 88-90۔ (5) المحرر الوجیز 1/ 219۔ (6) 2/ 430۔ (7) دیکھئے مجمع البیان از طبرسی 2/ 11، اور المحرر الوجیز 1/ 220۔

438 Surah Al-Baqarah: Verse 143

Regarding it: The meaning of "li-na'lam" (so that we may know) is "to see" (1). The Arabs place knowledge in place of vision, and vision in place of knowledge, as in the Almighty's saying: "Have you not seen how your Lord dealt" [Al-Fil: 1], meaning: "Do you not know" (2).

It was said: The meaning is: Except so that you may know that We know, for the hypocrites were in doubt about Allah Almighty's knowledge of things before they existed (3).

It was said: The meaning is: To distinguish the people of certainty from the people of doubt; this was related by Ibn Furak (4) and mentioned by Al-Tabari from Ibn Abbas (5).

It was said: The meaning is: Except so that the Prophet and his followers may know, and the Almighty informed of that about Himself, just as it is said: "The Prince did such and such," while in fact his followers did it; this was mentioned by Al-Mahdawi, and it is good.

It was said: Its meaning is: So that Muhammad may know, so He attributed his knowledge to His Almighty Self as a distinction and preference, just as He, Glory be to Him, alluded to Himself in His saying: "O son of Adam, I was ill and you did not visit Me" (6) - the Hadith.

The first [interpretation] is more apparent, and its meaning is the knowledge of direct observation which necessitates reward, while He, Glory be to Him, is the Knower of the unseen and the witnessed; He knew what would be before it happened. Circumstances differ for the known things, but His knowledge does not differ; rather, it relates to everything with a single connection. Thus is everything mentioned in the Book with this meaning, from His saying: "And so that Allah may know those who believe and take martyrs from among you" [Al-Imran: 140], and "And We will surely test you until We know the strivers among you and the patient" [Muhammad: 31], and what is similar to it (7).

---

(1) Ibn al-Jawzi (1/150) attributed it to Ibn Abbas, and the commentators mentioned it without attribution. (2) Al-Nukat wal-'Uyun (1/200). Al-Tabari refuted this interpretation (2/644), saying: "Ra'aytu" (I saw) meaning "Alimtu" (I knew) exists in the speech of the Arabs, but "Alimtu" meaning "Ra'aytu" does not exist. (3) Al-Nukat

wal-'Uyun (1/200). (4) Ibn 'Atiyyah narrated it from him in Al-Muharrar al-Wajiz (1/220). (5) In his Tafsir (2/643). (6) Narrated by Al-Bukhari in Al-Adab al-Mufrad (517), and Muslim (2569) from the hadith of Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him), and see Musnad Ahmad (9242). (7) In (Z) and (M): "ashbah" (similar).

पृष्ठ: 438 सूरह अल-बक़रह : आयत 143

इसके बारे में: "लि-ना'लम" (ताकि हम जान लें) का अर्थ "देखना" है (1)। अरब लोग ज्ञान के स्थान पर दृष्टि रखते हैं, और दृष्टि के स्थान पर ज्ञान, जैसा कि अल्लाह तआला के इस कथन में है: "क्या आपने नहीं देखा कि आपके रब ने कैसा व्यवहार किया" [अल-फ़ील: 1], अर्थात: "क्या आप नहीं जानते" (2)।

और कहा गया है: अर्थ यह है: सिवाय इसके कि तुम जान लो कि हम जानते हैं, क्योंकि पाखंडी लोग चीजों के होने से पहले उनके बारे में अल्लाह तआला के ज्ञान के प्रति संदेह में थे (3)।

और कहा गया है: अर्थ यह है: ताकि यकीन (दृढ़ विश्वास) रखने वालों को संदेह करने वालों से अलग किया जा सके; इसे इब्न फूरक (4) ने बताया है, और अल-तबरी ने इब्न अब्बास (5) के हवाले से इसका उल्लेख किया है।

और कहा गया है: अर्थ यह है: सिवाय इसके कि नबी और उनके अनुयायी जान लें, और अल्लाह तआला ने अपने बारे में इसकी सूचना दी है, जैसा कि कहा जाता है: "अमीर ने ऐसा-ऐसा किया," जबकि वास्तव में उनके अनुयायियों ने किया था; इसे अल-महदवी ने उल्लेख किया है, और यह उत्तम है।

और कहा गया है: इसका अर्थ है: ताकि मुहम्मद जान लें, इसलिए उन्होंने विशिष्टता और श्रेष्ठता के रूप में उनके ज्ञान को अपने स्वयं से जोड़ दिया, जैसा कि उन्होंने अपने बारे में इस कथन में संकेत दिया है: "ऐ आदम के बेटे, मैं बीमार था और तूने मेरी खबर नहीं ली" (6) - हदीस।

और पहला [व्याख्या] अधिक स्पष्ट है, और इसका अर्थ प्रत्यक्ष दर्शन का ज्ञान है जो प्रतिफल (जज़ा) को अनिवार्य करता है, जबकि वह, महिमावान, अदृश्य और दृश्य का ज्ञाता है; वह जानता था कि क्या होने वाला है इससे पहले कि वह घटित हो। ज्ञात वस्तुओं की स्थितियाँ बदलती रहती हैं, लेकिन उसका ज्ञान नहीं बदलता; बल्कि, यह सब कुछ से एक ही संबंध के साथ जुड़ा हुआ है। और इसी प्रकार किताब (कुरान) में इस अर्थ में जो कुछ भी आया है, उसके कथन से: "और ताकि अल्लाह उन लोगों को जान ले जो ईमान लाए और तुम में से शहीद बनाए" [आल-इमरान: 140], और "और हम निश्चित रूप से तुम्हारी परीक्षा लेंगे यहाँ तक कि हम तुम में से जिहाद करने वालों और धैर्य रखने वालों को जान लें" [मुहम्मद: 31], और इसके समान (7)।

(1) इब्न अल-जौज़ी (1/150) ने इसे इब्न अब्बास से जोड़ा है, और व्याख्याकारों ने बिना किसी श्रेय के इसका उल्लेख किया है। (2) अल-नुकत वल-उयून (1/200)। अल-तबरी (2/644) ने इस व्याख्या का खंडन किया है, और कहा है: अरबों की बातचीत में "रैतु" (मैंने देखा) जिसका अर्थ "अलितु" (मैंने जाना) है, मौजूद है, लेकिन "अलितु" जिसका अर्थ "रैतु" है, मौजूद नहीं है। (3) अल-नुकत वल-उयून (1/200)। (4) और इब्न अत्तिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ (1/220) में उनके हवाले से इसे उद्धृत किया है। (5) अपनी तफ़सीर (2/643) में। (6) अल-बुखारी ने अल-अदब अल-मुफ़्रद (517) में, और मुस्लिम (2569) ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से इसे निकाला है, और मुसनद अहमद (9242) देखें। (7) (ज़) और (म) में: "अशबहा" (समान)।

صفحہ: 438 سورۃ البقرہ: آیت 143

اس سے متعلق: "لنعلم" کا معنی "تاکہ ہم دیکھ لیں" ہے (1)۔ اور اہل عرب علم کو رویت (دیکھنے) کی جگہ اور رویت کو علم کی جگہ استعمال کرتے ہیں، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: "أَلَمْ تَرَ كَيْفَ فَعَلَ رَبُّكَ" [الفيل: 1]، یعنی: کیا تم نے نہیں جانا (2)۔

اور کہا گیا ہے: معنی یہ ہے: مگر اس لیے تاکہ تم جان لو کہ ہم جانتے ہیں، کیونکہ منافقین چیزوں کے ہونے سے پہلے ان کے بارے میں اللہ تعالیٰ کے علم کے متعلق شک میں تھے (3)۔

اور کہا گیا ہے: معنی यह ہے: تاکہ ہم اہل یقین کو اہل شک سے ممتاز کر دیں، اسے ابن فورک (4) نے بیان کیا ہے، اور طبری نے اسے ابن عباس (5) سے ذکر کیا ہے۔

اور کہا گیا ہے: معنی یہ ہے: مگر اس لیے تاکہ نبی اور ان کے متبعین جان لیں، اور اللہ تعالیٰ نے اس کی خبر اپنی ذات کے بارے میں دی ہے، جیسا کہ کہا جاتا ہے: "امیر نے ایسا کیا،" حالانکہ اسے ان کے متبعین نے کیا ہوتا ہے، اسے المہدوی نے ذکر کیا ہے، اور یہ بہتر ہے۔

اور کہا گیا ہے: اس کا معنی ہے: تاکہ محمد جان لیں، چنانچہ اللہ تعالیٰ نے ان کے علم کو اپنی طرف منسوب کیا بطورِ تخصیص و فضیلت، جیسا کہ اللہ سبحانہ نے اپنی ذات کے بارے میں اس قول میں کنایہ فرمایا: "اے ابن آدم، میں بیمار ہوا اور تو نے میری عیادت نہ کی" (6) - الحدیث۔

اور پہلا [قول] زیادہ ظاہر ہے، اور اس کا معنی علمِ معاینہ (براہِ راست مشاہدے کا علم) ہے جو جزا کو واجب کرتا ہے، حالانکہ وہ سبحانہ غیب اور ظاہر کا جاننے والا ہے، وہ جانتا تھا جو ہونے والا ہے اس سے پہلے کہ وہ ہوتا۔ معلومات کے حوالے سے حالات بدلتے رہتے ہیں مگر اس کا علم نہیں بدلتا، بلکہ وہ سب کے ساتھ ایک ہی تعلق سے وابستہ ہے۔ اور اسی طرح کتاب میں اس

معنی میں جو کچھ وارد ہوا ہے، جیسے اللہ تعالیٰ کا فرمان: "اور تاکہ اللہ ان لوگوں کو جان لے جو ایمان لائے اور تم میں سے گواہ (شہید) بنائے" [آل عمران: 140]، اور "اور ہم ضرور تمہیں آزمائیں گے یہاں تک کہ ہم تم میں سے جہاد کرنے والوں اور صبر کرنے والوں کو جان لیں" [محمد: 31]، اور اسی طرح کی دیگر آیات (7)۔

---

(1) ابن الجوزی (1/ 150) نے اسے ابن عباس کی طرف منسوب کیا ہے، اور مفسرین نے اسے بغیر کسی نسبت کے ذکر کیا ہے۔ (2) النکت والعیون 1/ 200۔ اور طبری (2/ 644) نے اس تاویل کو رد کیا ہے، اور کہا ہے: اہل عرب کے کلام میں "رأیت" بمعنی "علمت" موجود ہے، لیکن "علمت" بمعنی "رأیت" موجود نہیں ہے۔ (3) النکت والعیون 1/ 200۔ (4) اور ابن عطیہ نے المحرر الوجیز (1/ 220) میں ان سے اسے نقل کیا ہے۔ (5) اپنی تفسیر 2/ 643 میں۔ (6) اسے بخاری نے الادب المفرد (517) میں، اور مسلم نے (2569) ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور دیکھئے مسند احمد (9242)۔ (7) (ظ) اور (م) میں ہے: "أشبه"۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 439 The verse is an answer to the Quraysh when they said: {What has turned them from their qiblah (direction of prayer) to which they used to face?}. The Quraysh were accustomed to the Kaaba, so Allah, Mighty and Majestic, wanted to test them with something different from what they were used to, so that those who follow the Messenger would be distinguished from those who do not (1). Al-Zuhri read: "illa liyu'lama" (unless it be known) (2). In this reading, "man" (whoever) is in the nominative case because it is the subject of a passive verb (3). In the general reading (of the community), it is in the accusative case as the object. {Follows the Messenger} means in what he was commanded regarding facing the Kaaba. {From those who turn back on their heels} means from those who apostatize from their religion, because when the Qibla was changed, a group of Muslims apostatized and a group became hypocrites (4). For this reason, He said: {And indeed, it was difficult}, meaning its changing. This was stated by Ibn Abbas, Mujahid, and Qatadah (5). The linguistic implication in Arabic is: "and indeed the change was..." Allah's saying: {And indeed, it was difficult}. Al-Farra' was of the opinion that "in" and the "lam" have the meaning of "ma" (not) and "illa" (except). The Basrans say it is the "inna" (heavy) which has been lightened. Al-Akhfash said (6): Meaning: and though the Qibla - or the change, or the turning - was difficult. {Except for those whom Allah has guided} means: He created guidance, which is faith, in their hearts, as He said (7): {Those - He has written faith in their hearts} [Al-Mujadilah: 22]. Allah's saying: {And Allah would never let your faith be lost}. The scholars agreed that it was revealed concerning those who died while praying towards Bayt al-Maqdis (Jerusalem), as established in Al-Bukhari from the hadith of Al-Bara' bin 'Azib, as mentioned previously (8).

---

(1) Ma'ani al-Qur'an by Al-Zajjaj 1/218. (2) Al-Qira'at al-Shadhdhah p. 10, and Al-Muhtasib 1/111. (3) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/269. (4) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/200. (5) These reports were extracted by Al-Tabari 2/647-648, and mentioned by Al-Mawardi in Al-Nukat wa al-'Uyun 1/201. (6) Ma'ani al-Qur'an 1/342, and the author quoted it from him and Al-Farra' via Al-Nahhas 1/269. (7) In (M): Allah Almighty said. (8) 2/426.

सूरह अल-बक़रह: आयत 143 439 यह आयत कुरैश के इस कथन का उत्तर है: {उन्हें उनके उस क़िबला (प्रार्थना की दिशा) से किसने फेर दिया जिस पर वे थे?}। कुरैश काबा के आदी थे, इसलिए अल्लाह अज़्ज़ा व जल्ला ने उन्हें उस चीज़ से अलग करके परखना चाहा जिसके वे आदी थे; ताकि यह स्पष्ट हो जाए कि रसूल का अनुसरण करने वाला कौन है और कौन नहीं (1)। अल-ज़ुहरी ने इसे "इल्ला लियुअलामा" (ताकि जाना जा सके) पढ़ा है (2), तो इस पाठ के अनुसार "मन" (जो कोई) रफ़' (प्रथमा विभक्ति) की स्थिति में है; क्योंकि यह उस क्रिया का कर्ता है जिसका नाम नहीं लिया गया (कर्मवाच्य का कर्ता) (3)। और आम समुदाय के पाठ के अनुसार यह मफ़ऊल (कर्म) के रूप में नसब (द्वितीया विभक्ति) की स्थिति में है। {रसूल का अनुसरण करता है} का अर्थ है कि काबा की ओर मुँह करने के बारे में उन्हें जो आदेश दिया गया था। {उनमें से जो अपनी एड़ियों के बल फिर जाते हैं} का अर्थ है जो अपने धर्म से फिर गए (मुरतद हो गए), क्योंकि जब क़िबला बदला गया, तो मुसलमानों के एक समूह ने धर्म त्याग दिया और एक समूह ने कपट (निफ़ाक़) अपनाया (4)। इसीलिए अल्लाह ने कहा: {और निस्संदेह, यह बहुत भारी (कठिन) था}, यानी इसका बदलना; यह बात इब्न अब्बास, मुजाहिद और क़तादा ने कही है (5)। अरबी में इसका भावार्थ है: "और यदि वह बदलाव भारी था।" अल्लाह का कथन: {और निस्संदेह, यह बहुत भारी था}। अल-फ़र्रा का मत है कि "इन" और "लाम" का अर्थ "मा" और "इल्ला" (नहीं... के अलावा) के समान है। बसरा के विद्वान कहते हैं कि यह भारी "इन्ना" है जिसे हल्का किया गया है। अल-अख़फ़श ने कहा (6): यानी: और भले ही क़िबला - या बदलाव, या मोड़ना - भारी (कठिन) था। {सिवाय उन लोगों के जिन्हें अल्लाह ने मार्गदर्शन दिया} यानी: उनके दिलों में मार्गदर्शन पैदा किया जो कि ईमान है, जैसा कि अल्लाह ने कहा (7): {वही हैं जिनके दिलों में उसने ईमान लिख दिया है} [अल-मुजादिला: 22]। अल्लाह का कथन: {और अल्लाह कभी तुम्हारे ईमान को नष्ट नहीं करेगा}। विद्वानों ने सहमति व्यक्त की है कि यह उन लोगों के बारे में अवतरित हुई जो बैत अल-मक़दिस की ओर नमाज़ पढ़ते हुए मर गए थे, जैसा कि बुखारी में अल-बरा बिन आज़िब की हदीस में प्रमाणित है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (8)।

---

(1) मा'नी अल-क़ुरान, अल-ज़ज्जाज 1/218। (2) अल-क़िरात अल-शाज़ा, पृ. 10, और अल-मुहतासिब 1/111। (3) एराब अल-क़ुरान, अल-नहहास 1/269। (4) अल-नुक़त वल-'उयून 1/200। (5) इन रिवायतों को अल-तबरी 2/647-648 ने उद्धृत किया है, और अल-मावर्दी ने अल-नुक़त वल-'उयून 1/201 में इनका उल्लेख किया है। (6) मा'नी अल-क़ुरान 1/342, और लेखक ने इसे

अल-नहहास 1/269 के माध्यम से उनसे और अल-फ़र्रा से उद्धृत किया है। (7) (M) में: अल्लाह तआला ने कहा। (8) 2/426।

سورة البقرہ: آیت 143 439 یہ آیت قریش کے اس قول کا جواب ہے: ﴿مَا وَلَّىٰهُمْ عَن قِبْلَتِهِمُ الَّتِي كَانُوا عَلَيْهَا﴾۔ قریش کعبہ کے مانوس تھے، تو اللہ عزوجل نے چاہا کہ انہیں اس کے علاوہ کسی اور چیز سے آزمائے جس کے وہ عادی تھے؛ تاکہ ظاہر ہو جائے کہ کون رسول کی پیروی کرتا ہے اور کون نہیں (1)۔ اور زہری نے پڑھا: «إلا ليُعلم» (2)، تو اس قرأت پر «مَنْ» حالتِ رفع میں ہے؛ کیونکہ یہ نائب فاعل ہے (3)۔ اور جمہور کی قرأت پر یہ مفعول ہونے کی وجہ سے حالتِ نصب میں ہے۔ ﴿يَتَّبِعُ الرَّسُولَ﴾ یعنی کعبہ کی طرف رخ کرنے کے بارے میں جس کا انہیں حکم دیا گیا تھا۔ ﴿مِمَّن يَنقَلِبُ عَلَىٰ عَقِبَيْهِ﴾ یعنی ان میں سے جو اپنے دین سے پھر جائیں، کیونکہ جب قبلہ تبدیل ہوا تو مسلمانوں میں سے ایک گروہ مرتد ہو گیا اور ایک گروہ نے منافقت اختیار کی (4)؛ اسی لیے اللہ نے فرمایا: ﴿وَإِن كَانَتْ لَكَبِيرَةً﴾ یعنی: اس کا تبدیل ہونا؛ یہ بات ابن عباس، مجاہد اور قتادہ نے کہی (5)۔ اور عربی میں اس کا پوشیدہ مفہوم ہے: اگرچہ یہ تبدیلی گراں تھی۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَإِن كَانَتْ لَكَبِيرَةً﴾ فراء اس طرف گئے ہیں کہ «إن» اور «لام» کے معنی «ما» اور «إلا» (نفی اور استثناء) کے ہیں۔ اور اہل بصرہ کہتے ہیں کہ یہ «إن» ثقیلہ ہے جسے مخفف کر دیا گیا ہے۔ اور اخفش نے کہا (6): یعنی: اگرچہ قبلہ - یا تبدیلی، یا رخ پھیرنا - گراں (بھاری) تھا۔ ﴿إِلَّا عَلَى الَّذِينَ هَدَى اللَّهُ﴾ یعنی: ہدایت پیدا کر دی جو کہ ان کے دلوں میں ایمان ہے، جیسا کہ اللہ نے فرمایا (7): ﴿أُولَٰئِكَ كَتَبَ فِي قُلُوبِهِمُ الْإِيمَانَ﴾ [المجادلہ: 22]۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمَانَكُمْ﴾ علماء کا اس پر اتفاق ہے کہ یہ آیت ان لوگوں کے بارے میں نازل ہوئی جو بیت المقدس کی طرف نماز پڑھتے ہوئے فوت ہو گئے تھے، جیسا کہ بخاری میں براء بن عازب کی حدیث سے ثابت ہے، جس کا ذکر پہلے گزر چکا ہے (8)۔

(1) معانی القرآن للزجاج 1/ 218۔ (2) القراءات الشاذة ص 10، اور المحتسب 1/ 111۔ (3) إعراب القرآن للنحاس 1/ 269۔ (4) النکت والعیون 1/ 200۔ (5) ان آثار کی تخریج طبری نے 2/ 647-648 میں کی ہے، اور ماوردی نے النکت والعیون 1/ 201 میں ان کا تذکرہ کیا ہے۔ (6) معانی القرآن 1/ 342، اور مصنف نے اسے ان سے اور فراء سے نحاس 1/ 269 کے واسطے سے نقل کیا ہے۔ (7) نسخہ (م) میں ہے: قال تعالیٰ۔ (8) 2/ 426۔

Surah Al-Baqarah: Verse 143 / 440

At-Tirmidhi (1) narrated from Ibn Abbas who said: When the Prophet ﷺ was directed towards the Kaaba, they said: O Messenger of Allah, what about our brothers who died while they were praying towards Bait al-Maqdis? So Allah the Almighty revealed: "And Allah would never let your faith go to waste." [2:143] He said: This is a good and authentic hadith. Thus, He called prayer 'faith' because it includes intention, speech, and action. (2)

Malik said: By this verse, I am reminded of the saying of the Murji'ah: that prayer is not part of faith. Muhammad bin Ishaq said: "And Allah would never let your faith go to waste" means: by your facing the Qibla and your belief in your Prophet. Most Muslims and scholars of jurisprudence are of this view. Ibn Wahb, Ibn al-Qasim, Ibn Abd al-Hakam, and Ashhab narrated from Malik regarding "And Allah would never let your faith go to waste," he said: your prayers (3).

The Almighty's saying: "Indeed, Allah is to the people Kind and Merciful." [2:143] Ra'fa (Kindness/Compassion) is more intense than Rahma (Mercy). Abu Amr bin al-Ala said: Ra'fa is more than Rahma (4), and the meanings are close. We have covered its linguistics, poetry, and meanings in 'Al-Kitab al-Asna fi Sharh Asma' Allah al-Husna' (5), so let it be looked for there.

The Kufans and Abu Amr recited: "la-ra'ufun" on the pattern of 'fa'ul' (6), which is the dialect of Bani Asad, and from it is the saying of al-Walid bin 'Uqba:

And the worst of seekers, so do not be him... he fights his uncle, the Kind, the Merciful. (7)

---

(1) No. (2964), and it is in Musnad Ahmad (3249). (2) In (Kh) and (Z): "for its combination". (3) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/41, and Aridat al-Ahwadhi by him 11/8887. (4) Al-Nukat wa al-Uyun 1/201. (5) P. 395 and following, and we did not find the meaning of "Al-Ra'uf" in its printed version. (6) This is the recitation of Asim in the narration of Shu'bah, Hamzah, and Al-Kisa'i from the Kufans, and Abu Amr. As for the narration of Hafs from Asim, it is like the recitation of the rest: (Ra'uf). See Al-Sab'ah p. 171, and Al-Taysir p. 77. (7) Mentioned by Abu Ali al-Farsi in Al-Hujjah 2/230, Al-Wahidi in Al-Wasit 1/228, and Al-Samin in Al-Durr al-Masun 2/158, and their narration: "he fights his uncle, the Kind, the Merciful." It was mentioned by al-Tabari 2/655, Ibn Atiyyah 1/221, and al-Tabarsi 2/8 with the narration: "he fights his uncle, the Kind, the Merciful."

सूरह अल-बक़रह: आयत 143 / 440

तिर्मिज़ी (1) ने इब्न अब्बास से रिवायत की है, उन्होंने कहा: जब नबी ﷺ को काबा की ओर रुख करने का आदेश दिया गया, तो लोगों ने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, हमारे उन भाइयों का क्या होगा जो बैत अल-मक़दिस की तरफ़ नमाज़ पढ़ते हुए मर गए? तब अल्लाह तआला ने नाज़िल फ़रमाया: "और अल्लाह ऐसा नहीं है कि तुम्हारे ईमान को ज़ाया कर दे।" (आयत), उन्होंने कहा: यह एक हदीस हसन सहीह है। अतः उन्होंने नमाज़ को ईमान का नाम दिया क्योंकि इसमें नीयत, शब्द और कर्म शामिल हैं। (2)

मलिक ने कहा: मैं इस आयत से मुरजिया के कथन को याद करता हूँ: कि नमाज़ ईमान का हिस्सा नहीं है। मुहम्मद बिन इसहाक़ ने कहा: "और अल्लाह ऐसा नहीं है कि तुम्हारे ईमान को ज़ाया कर दे" यानी: क़िबला की ओर रुख करने और अपने नबी की पुष्टि करने के द्वारा। और इसी पर अधिकांश मुसलमान और उसूल के जानकार हैं। इब्न वहब, इब्न अल-क़ासिम, इब्न अब्द अल-हकम और अशहब ने मलिक से रिवायत की है "और अल्लाह ऐसा नहीं है कि तुम्हारे ईमान को ज़ाया कर दे" उन्होंने कहा: तुम्हारी नमाज़ें (3)।

अल्लाह तआला का फ़रमान: "बेशक अल्लाह लोगों पर बहुत मेहरबान, निहायत रहम करने वाला है।" रअफ़त (Compassion) रहमत (Mercy) से ज़्यादा तीव्र है। अबू अम्र बिन अल-अला ने कहा: रअफ़त, रहमत से ज़्यादा है (4), और अर्थ करीब हैं। हमने इसके भाषाई पहलू, शायरी और अर्थों को 'अल-किताब अल-अस्ना फी शरह अस्मा अल्लाह अल-हुस्ना' (5) में विस्तार से बताया है, अतः वहाँ देखा जाए।

कूफ़ियों और अबू अम्र ने 'ल-रउफ़ुन' (فَعُل के वज़न पर) पढ़ा है (6), जो बनी असद की भाषा है, और इसी से वलीद बिन उक़्बा का कथन है:

"और चाहने वालों में सबसे बुरा, तो वह मत बनो... वह अपने चाचा से लड़ता है, जो बहुत मेहरबान, निहायत रहम करने वाला है।" (7)

---

(1) नंबर (2964), और यह मुसनद अहमद (3249) में है। (2) (ख़) और (ज़) में: "इसके मिलन के कारण"। (3) इब्न अल-अरबी की अहकाम अल-क़ुरआन 1/41, और उनकी आरिदत अल-अहवज़ी 11/8887। (4) अन-नुकत वल-उयून 1/201। (5) पृ. 395 और उसके बाद, और हमें इसके मुद्रित

संस्करण में 'अर-रऊफ़' का अर्थ नहीं मिला। (6) यह कूफ़ियों में से शुअबा की रिवायत में आसिम, हमज़ा और किसाई की, और अबू अम्र की क़िरत है। जहाँ तक आसिम से हफ़्स की रिवायत है, वह बाक़ी लोगों की क़िरत की तरह है: (रऊफ़)। देखें अल-सबआ पृ. 171, और अल-तयसीर पृ. 77। (7) इसका उल्लेख अबू अली अल-फ़ारसी ने अल-हुज्जह 2/230 में, अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/228 में, और अल-समीन ने अल-दुर अल-मसूद 2/158 में किया है, और उनके पास रिवायत है: "वह अपने चाचा से लड़ता है, जो रऊफ़ और रहीम है।" और इसका उल्लेख तबरी 2/655, इब्न अतिया 1/221 और तबरसी 2/8 ने इस रिवायत के साथ किया है: "वह अपने चाचा से लड़ता है, जो रऊफ़ और रहीम है।"

سورة البقرہ: آیت 143 / 440

ترمذی (1) نے ابن عباس سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: جب نبی ﷺ کو کعبہ کی طرف متوجہ کیا گیا تو لوگوں نے کہا: اے اللہ کے رسول، ہمارے ان بھائیوں کا کیا حال ہوگا جو بیت المقدس کی طرف نماز پڑھتے ہوئے فوت ہو گئے؟ تو اللہ تعالیٰ نے یہ آیت نازل فرمائی: ﴿وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمَانَكُمْ﴾ "اور اللہ ایسا نہیں ہے کہ تمہارے ایمان کو ضائع کر دے"۔ انہوں نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ پس (اللہ نے) نماز کو 'ایمان' کا نام دیا کیونکہ یہ نیت، قول اور عمل پر مشتمل ہوتی ہے (2)۔

مالک نے کہا: میں اس آیت کے ذریعے مرجئہ کے اس قول کو یاد کرتا ہوں کہ نماز ایمان کا حصہ نہیں ہے۔ محمد بن اسحاق نے کہا: ﴿وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمَانَكُمْ﴾ یعنی: قبلہ کی طرف رخ کرنے اور اپنے نبی کی تصدیق کرنے کے ذریعے۔ اور اسی پر اکثر مسلمان اور اہل اصول ہیں۔ ابن وہب، ابن القاسم، ابن عبد الحکم، اور اشہب نے مالک سے ﴿وَمَا كَانَ اللَّهُ لِيُضِيعَ إِيمَانَكُمْ﴾ کے بارے میں روایت کیا، انہوں نے کہا: تمہاری نمازیں (3)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿إِنَّ اللَّهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوفٌ رَّحِيمٌ﴾ "بے شک اللہ لوگوں پر بہت شفقت کرنے والا، نہایت رحم کرنے والا ہے"۔ 'رأفت' 'رحمت' سے زیادہ شدید ہے۔ ابو عمرو بن العلاء نے کہا: رأفت رحمت سے زیادہ ہے (4)، اور معنی ایک دوسرے کے قریب ہیں۔ ہم نے اس کی لغت، اشعار اور معانی 'الکتاب الأسنی فی شرح أسماء اللہ الحسنیٰ' (5) میں بیان کر دیے ہیں، پس وہاں دیکھا جائے۔

کوفیوں اور ابو عمرو نے 'لرَؤُفٌ' پڑھا ہے 'فَعُل' کے وزن پر (6)، اور یہ بنی اسد کی لغت ہے، اور اسی سے ولید بن عقبہ کا قول ہے:

وشَرُّ الطالبين فلا تَكُنْهُ ... يقاتلُ عمَّه ، الرؤوفُ الرحيمُ (٧) "اور طلب کرنے والوں میں سب سے برا، پس تم وہ نہ بنو... جو اپنے چچا سے لڑتا ہے، جو نہایت شفیق اور رحم دل ہے۔"

---

(1) نمبر (2964)، اور یہ مسند احمد (3249) میں ہے۔ (2) نسخہ (خ) اور (ظ) میں: "اس کے اجتماع کی وجہ سے"۔ (3) ابن العربی کی احکام القرآن 1/41، اور ان کی عارضۃ الاحوذی 11/8887۔ (4) النکت والعیون 1/201۔ (5) ص 395 اور اس کے بعد، اور ہمیں اس کے مطبوعہ نسخے میں 'الرؤوف' کے معنی پر دسترس حاصل نہیں ہوئی۔ (6) یہ کوفیوں میں سے شعبہ کی روایت میں عاصم، حمزہ، اور کسائی کی، اور ابو عمرو کی قرأت ہے۔ جہاں تک عاصم سے حفص کی روایت ہے تو وہ باقی قراء کی قرأت کی طرح ہے: (رؤوف)۔ دیکھئے السبعہ ص 171، اور التیسیر ص 77۔ (7) اسے ابو علی الفارسی نے الحجہ 2/230 میں، الواحدی نے الوسیط 1/228 میں، اور السمین نے الدر المصون 2/158 میں ذکر کیا ہے، اور ان کے ہاں روایت ہے: "وہ اپنے چچا الرؤوف الرحیم سے لڑتا ہے"۔ اور اسے طبری 2/655، ابن عطیہ 1/221، اور طبرسی 2/8 نے اس روایت کے ساتھ ذکر کیا ہے: "وہ اپنے چچا سے لڑتا ہے، جو نہایت شفیق اور رحم دل ہے"۔

441 Surah Al-Baqarah: Verse 144

Al-Kisa'i narrated that the dialect of Banu Asad is "lara'f" (لَرَأف), on the pattern of "fa'l" (فَعْل) (1). Abu Ja'far bin Al-Qa'qa' read "lara'uf" (لَرَؤُف) heavy without a hamza (2), and likewise, he eased every hamza in the Book of Allah the Almighty, whether it was silent or moving.

Allah the Almighty's words: {We have certainly seen the turning of your face, [O Muhammad], toward the heaven, and We will surely turn you to a qiblah with which you will be pleased. So turn your face toward al-Masjid al-Haram. And wherever you [believers] are, turn your faces toward it [in prayer]. Indeed, those who have been given the Scripture well know that it is the truth from their Lord. And Allah is not unaware of what they do.} (144)

The scholars said: This verse was revealed before the Almighty's words: {The foolish among the people will say...}. The meaning of "the turning of your face" is: the turning of your face towards the heaven, as stated by At-Tabari (3). Az-Zajjaj (4) said: The turning of your eyes looking towards the heaven, and the meanings are close. The heaven was specifically mentioned because it is distinguished by the glorification of what is attributed to it, and things come from it like rain, mercy, and revelation. The meaning of "with which you will be pleased" is: you love it (5). As-Suddi said: When he prayed towards Jerusalem, he would raise his head to the heaven, looking for what he was commanded to do, and he loved to pray towards the Kaaba. So Allah the Almighty revealed: {We have certainly seen the turning of your face toward the heaven} (6).

Abu Ishaq narrated from Al-Bara' who said: The Messenger of Allah ﷺ prayed towards Jerusalem for sixteen months, or seventeen months, and the Messenger of Allah ﷺ loved to be directed towards the Kaaba, so Allah the Almighty revealed: {We have certainly seen the turning of your face toward the heaven} (7). This meaning and the discussion about it have preceded, and praise be to Allah (8).

(1) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/269. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/221, and Abu Hayyan also mentioned it 1/427, and see Ithaf Fudala' al-Bashar p. 194-195. It is an irregular recitation (shadhdhah), as for the famous recitation from Abu Ja'far - who is one of the ten - it is: la-ra'uf. (3) In his Tafsir 2/656. (4) Ma'ani al-Qur'an by him 1/221, and the author quoted it from him through al-Mawardi in al-Nukat wal-'Uyun 1/202. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/221. (6) Narrated by at-Tabari 2/657. (7) Narrated by al-Bukhari

(7252), and Muslim (525), and Abu Ishaq is 'Amr bin 'Abdullah al-Sabi'i. Al-Taqrib. (8) 2/426.

441 सूरा अल-बकराह: आयत 144

अल-किसाई ने वर्णन किया है कि बनी असद की बोली "लरा'फ़" (لَرَأف) है, "फ़अ्ल" (فَعْل) के पैटर्न पर (1)। अबू जाफ़र बिन अल-क़ाक़ा ने बिना हमज़ा के भारी "लरा'उफ़" (لَرَؤُف) पढ़ा (2), और इसी तरह, उन्होंने अल्लाह सर्वशक्तिमान की पुस्तक में प्रत्येक हमज़ा को आसान बना दिया, चाहे वह शांत (साकिन) हो या चलायमान (मुतहर्रिक)।

अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {हम बार-बार आपके चेहरे को आकाश की ओर मुड़ते हुए देख रहे हैं, अतः हम आपको निश्चित रूप से उस क़िबले की ओर मोड़ देंगे जिसे आप पसंद करते हैं। तो आप अपना चेहरा मस्जिद-अल-हराम की ओर फेर लीजिए। और आप जहाँ कहीं भी हों, अपने चेहरों को उसी की ओर फेरें। और वास्तव में जिन्हें किताब दी गई है, वे अच्छी तरह जानते हैं कि यह उनके रब की ओर से सत्य है। और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो वे करते हैं।} (144)

विद्वानों ने कहा: यह आयत सर्वशक्तिमान के कथन {लोगों में से मूर्ख कहेंगे...} से पहले अवतरित हुई थी। "आपके चेहरे के पलटने" का अर्थ है: आपके चेहरे का आकाश की ओर मुड़ना, जैसा कि अत-तबरी (3) ने कहा है। अज़्-ज़ज्जाज (4) ने कहा: आकाश की ओर देखते हुए आपकी आँखों का पलटना, और अर्थ करीब-करीब एक ही हैं। आकाश का विशेष उल्लेख किया गया क्योंकि यह उससे जुड़ी चीज़ों की महिमा से विशिष्ट है, और उससे बारिश, दया और रहस्योद्घाटन (वही) जैसी चीज़ें आती हैं। "जिसे आप पसंद करते हैं" का अर्थ है: आप जिससे प्रेम करते हैं (5)। अस-सुद्दी ने कहा: जब वह बैतुल मक़दिस की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ते थे, तो वह अपना सिर आकाश की ओर उठाते थे, यह देखने के लिए कि उन्हें क्या आदेश दिया गया है, और वह काबा की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ना पसंद करते थे। तो अल्लाह सर्वशक्तिमान ने अवतरित किया: {हम बार-बार आपके चेहरे को आकाश की ओर मुड़ते हुए देख रहे हैं} (6)।

अबू इसहाक़ ने अल-बरा से वर्णन किया, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने सोलह महीने या सत्रह महीने बैतुल मक़दिस की ओर मुख करके नमाज़ पढ़ी, और अल्लाह के रसूल ﷺ को काबा की ओर मुख करना पसंद था, तो अल्लाह सर्वशक्तिमान ने अवतरित किया: {हम बार-बार आपके चेहरे को आकाश की ओर मुड़ते हुए देख रहे हैं} (7)। यह अर्थ और इस पर चर्चा पहले हो चुकी है, और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है (8)।

(1) इ'राब अल-क़ुरआन अल-नहस 1/269 द्वारा। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/221, और अबू हय्यान ने भी इसका उल्लेख 1/427 में किया है, और इत्हाफ़ फ़ुदाला अल-बशर पृष्ठ 194-195 देखें। यह एक अनियमित पाठ (शाज़) है, जहाँ तक अबू जाफ़र से प्रसिद्ध पाठ का संबंध है - जो दस में से एक हैं - वह है: ल-रऊफ़। (3) उनकी तफ़्सीर 2/656 में। (4) उनके द्वारा मआनी अल-क़ुरआन 1/221, और लेखक ने इसे अल-मावर्दी के माध्यम से अल-नुकत वल-उयून 1/202 में उद्धृत किया है। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/221। (6) अत-तबरी 2/657 द्वारा उद्धृत। (7) अल-बुखारी (7252), और मुस्लिम (525) द्वारा उद्धृत, और अबू इसहाक अम्र बिन अब्दुल्ला अल-सबी'ई हैं। अल-तक़रीब। (8) 2/426।

٤٤١ سورة البقرہ: آیت ١٤٤

الکسائی نے روایت کی ہے کہ بنی اسد کی لغت «لَرَأف» ہے، «فَعْل» کے وزن پر (١)۔ اور ابو جعفر بن القعقاع نے «لَرَؤُف» بغیر ہمزہ کے بھاری پڑھا (٢)، اور اسی طرح انہوں نے اللہ تعالیٰ کی کتاب میں ہر ہمزہ کو سہل کر دیا، خواہ وہ ساکن ہو یا متحرک۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿قَدْ نَرَىٰ تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَاءِ ۖ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضَاهَا ۚ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۚ وَحَيْثُ مَا كُنتُمْ فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ ۗ وَإِنَّ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ لَيَعْلَمُونَ أَنَّهُ الْحَقُّ مِن رَّبِّهِمْ ۗ وَمَا اللَّهُ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُونَ (١٤٤)﴾

علماء نے کہا: یہ آیت نزول میں اللہ تعالیٰ کے اس قول: ﴿سَيَقُولُ السُّفَهَاءُ مِنَ النَّاسِ﴾ سے مقدم ہے۔ اور «تَقَلُّبَ وَجْهِكَ» کے معنی ہیں: آپ کے چہرے کا آسمان کی طرف پھرنا، یہ طبری نے کہا ہے (٣)۔ الزجاج (٤): آسمان کی طرف دیکھتے ہوئے آپ کی آنکھوں کا پھرنا، اور معنی قریب قریب ہیں۔ اور آسمان کا خاص طور پر ذکر کیا گیا کیونکہ اس میں منسوب چیزوں کی عظمت کی خصوصیت ہے، اور وہیں سے بارش، رحمت اور وحی جیسی چیزیں آتی ہیں، اور «تَرْضَاهَا» کے معنی ہیں: جسے آپ پسند کرتے ہیں (٥)۔ السُّدِّي نے کہا: آپ ﷺ جب بیت المقدس کی طرف نماز پڑھتے تو اپنا سر آسمان کی طرف اٹھاتے، یہ دیکھنے کے لیے کہ کیا حکم دیا جاتا ہے، اور آپ ﷺ کو پسند تھا کہ کعبہ کی طرف نماز پڑھیں، تو اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: ﴿قَدْ نَرَىٰ تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَاءِ﴾ (٦)۔

اور ابو اسحاق نے براء سے روایت کی، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے سولہ ماہ یا سترہ ماہ بیت المقدس کی طرف نماز پڑھی، اور رسول اللہ ﷺ پسند کرتے تھے کہ کعبہ کی طرف رخ کیا جائے،

تو اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: ﴿قَدْ نَرَىٰ تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَاءِ﴾ (٧)۔ اور یہ معنی اور اس پر کلام پہلے گزر چکا ہے، اور تمام تعریفیں اللہ کے لیے ہیں (٨)۔

(١) إعراب القرآن للنحاس ٢٦٩/١۔ (٢) المحرر الوجيز ٢٢١/١، اور ابو حیان نے بھی اسے ٤٢٧/١ پر ذکر کیا ہے، اور دیکھئے إتحاف فضلاء البشر ص ١٩٤-١٩٥۔ اور یہ شاذ قراءت ہے، جہاں تک ابو جعفر سے مشہور قراءت کا تعلق ہے - اور وہ دس قراء میں سے ہیں - تو وہ ہے: لَرؤُوف۔ (٣) اپنی تفسیر ٦٥٦/٢ میں۔ (٤) معاني القرآن ان کی ٢٢١/١، اور اسے مصنف نے الماوردی کے واسطے سے النكت والعيون ٢٠٢/١ میں نقل کیا ہے۔ (٥) المحرر الوجيز ٢٢١/١۔ (٦) اسے طبری نے ٦٥٧/٢ میں روایت کیا ہے۔ (٧) اسے بخاری (٧٢٥٢) اور مسلم (٥٢٥) نے روایت کیا، اور ابو اسحاق عمرو بن عبد اللہ السبیعی ہیں۔ التقریب۔ (٨) | ٤٢٦/٢

442 Surah Al-Baqarah: Verse 144

Allah says: {So turn your face toward Al-Masjid Al-Haram} (verse 144). There are five matters regarding this: First: The word of Allah: {So turn} is a command, and {your face toward} means in the direction of {Al-Masjid Al-Haram}, i.e., the Kaaba. There is no disagreement on this. It was said: [It means] facing the entire House (Kaaba), narrated from Ibn Abbas (1). Ibn Umar (2) said: [It means] facing the water spout (al-mizab) of the Kaaba. Ibn Atiyyah (3)(4) said: The water spout is the Qibla for [the people of] Medina and the people of Sham (Levant), and there is the Qibla for the people of Andalusia. I say: Ibn Jurayj narrated from Ata, from Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) that the Messenger of Allah (peace be upon him) said: "The Kaaba is the Qibla for the people of the Masjid, and the Masjid is the Qibla for the people of the Haram (Sanctuary), and the Haram is the Qibla for the people of the earth in its east and west among my Ummah (community)" (5). Second: The word of Allah: {toward Al-Masjid Al-Haram}. "Shatr" (toward) has several meanings: It can mean direction or orientation, as in this verse. It is an adverb of place (zarf makan), just as you would say: facing it or towards it. The adverb is in the accusative case (mansub) because it functions like an object, and also because the action occurs within it (6). Dawud bin Abi Hind said: In the reading of Ibn Mas'ud, it is: "So turn your face facing Al-Masjid Al-Haram" (7). A poet (8) said:

(1) Narrated by Al-Tabari 2/660 in a similar manner. (2) Thus in the copies and Al-Muharrar al-Wajiz 1/222. The report was narrated by Abd al-Razzaq in his Tafsir 1/62, Al-Tabari 2/662, and Al-Hakim 2/296 as a saying of Abdullah bin Amr. (3) In (M): "he said it", and in (D): "and he said". (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/222. (5) Narrated by Al-Bayhaqi 2/9, who said: "Umar bin Hafs al-Makki [from Ibn Jurayj] was unique in reporting it, and he is weak and not to be used as evidence. It was also narrated through another weak chain from Abdullah bin Habshi as a Marfu' (elevated to Prophet) report, and it is not to be used as evidence like its predecessor." (6) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/269, and what is between brackets is from it. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/222. (8) He is Sa'dah bin Ju'yah Abu Dhiba' al-Judhami. The verse is in Mujmal al-Lughah 2/503, Al-Sihah (shatr), Al-Muharrar al-Wajiz 1/222, and Al-Lisan (shatr). Abu al-Faraj attributed it in Al-Aghani 21/224 to Abu Jundub, the brother of Abu Khirash al-Hudhali.

442 सूरह अल-बकरा: आयत 144

अल्लाह का कथन: {तो अपना चेहरा अल-मस्जिद अल-हराम की ओर फेर लें}। इसमें पाँच विषय हैं: पहला: अल्लाह का कथन: {फेर लें} एक आदेश है, और {अपना चेहरा... की ओर} का अर्थ है: {अल-मस्जिद अल-हराम} की दिशा में, यानी काबा। इसमें कोई मतभेद नहीं है। कहा गया है: [इसका अर्थ है] पूरे काबा के सामने, इब्न अब्बास (1) से वर्णित है। इब्न उमर (2) ने कहा: [इसका अर्थ है] काबा के मिज़ाब (पानी के परनाले) के सामने। इब्न अतिय्या (3)(4) ने कहा: मिज़ाब मदीना और शाम (लेवेंट) के लोगों का क़िबला है, और वहीं अंडालूसिया के लोगों का क़िबला है। मैं कहता हूँ: इब्न जुरैज ने अता से, उन्होंने इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से रिवायत की है कि अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फरमाया: "काबा मस्जिद के लोगों के लिए क़िबला है, और मस्जिद हरम (अभयारण्य) के लोगों के लिए क़िबला है, और हरम मेरी उम्मत के पूर्व और पश्चिम में रहने वाले दुनिया के लोगों के लिए क़िबला है" (5)। दूसरा: अल्लाह का कथन: {अल-मस्जिद अल-हराम की ओर}। "शतर" (ओर) के कई अर्थ हैं: इसका अर्थ दिशा या तरफ हो सकता है, जैसा कि इस आयत में है। यह स्थान का क्रिया-विशेषण (ज़र्फ़ मकान) है, जैसे आप कहते हैं: उसके सामने या उसकी तरफ। यह क्रिया-विशेषण 'मंसूब' (accusative case) में है क्योंकि यह कर्म (ऑब्जेक्ट) के समान कार्य करता है, और इसलिए भी कि क्रिया इसके भीतर होती है (6)। दाऊद बिन अबी हिंद ने कहा: इब्न मसूद के क़िरात (पठन) में है: "तो अपना चेहरा मस्जिद-ए-हराम के सामने फेर लें" (7)। एक कवि (8) ने कहा:

(1) अल-तबरी 2/660 द्वारा इसी प्रकार वर्णित। (2) प्रतियों और अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/222 में इसी प्रकार है। यह कथन अब्द अल-रज्ज़ाक ने अपनी तफ़सीर 1/62 में, अल-तबरी 2/662 में और अल-हाकिम 2/296 में अब्दुल्ला बिन अम्र के कथन के रूप में वर्णित किया है। (3) (म) में: "उसने यह कहा", और (द) में: "और उसने कहा"। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/222। (5) अल-बैहकी 2/9 द्वारा वर्णित, जिन्होंने कहा: "उमर बिन हफ़्स अल-मक्की [इब्न जुरैज से] इसे रिपोर्ट करने में अकेले थे, और वे कमज़ोर हैं और प्रमाण के रूप में स्वीकार्य नहीं हैं। इसे अब्दुल्ला बिन हबशी से एक अन्य कमज़ोर श्रृंखला के साथ मरफ़ू (पैगंबर तक पहुँचा हुआ) के रूप में भी वर्णित किया गया है, और इसे भी पिछले वाले की तरह प्रमाण के रूप में नहीं लिया जा सकता।" (6) इ'राब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/269, और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उसी से है। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/222। (8) वे सा'दा बिन जुअया अबू धिबा' अल-जुधमी हैं। यह पद्य मुजमल अल-लुग़ह 2/503,

अल-सिहाह (शतर), अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/222, और अल-लिसान (शतर) में है। अबू अल-फ़रज ने अल-अग़ानी 21/224 में इसे अबू जुंदुब, अबू खिराश अल-हुधली के भाई, का बताया है।

442 سورہ البقرہ: آیت 144

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ﴾ [پس اپنا رخ مسجد حرام کی طرف پھیر لیں] اس میں پانچ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿فَوَلِّ﴾ امر (حکم) ہے، اور ﴿وَجْهَكَ شَطْرَ﴾ یعنی: ﴿الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ﴾ کی سمت میں، یعنی کعبہ کی طرف۔ اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے۔ کہا گیا: [اس سے مراد] پورے بیت اللہ کے سامنے ہونا ہے، یہ ابن عباس (1) سے مروی ہے۔ اور ابن عمر (2) نے کہا: [اس سے مراد] کعبہ کے میزاب (پرنالے) کے سامنے ہونا ہے۔ ابن عطیہ (3)(4) نے کہا: میزاب مدینہ اور اہل شام کا قبلہ ہے، اور وہیں اہل اندلس کا قبلہ ہے۔ میں کہتا ہوں: ابن جریج نے عطا سے، انہوں نے ابن عباس (رضی اللہ عنہما) سے روایت کیا ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "بیت اللہ مسجد والوں کے لیے قبلہ ہے، اور مسجد حرم والوں کے لیے قبلہ ہے، اور حرم میری امت کے مشارق و مغارب میں بسنے والے اہل زمین کے لیے قبلہ ہے" (5)۔ دوسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ﴾۔ لفظ "شطر" کے کئی معنی ہیں: یہ سمت اور جہت کے معنی میں ہوتا ہے، جیسا کہ اس آیت میں ہے، اور یہ ظرف مکان ہے، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: اس کے سامنے اور اس کی طرف۔ اور ظرف منسوب ہے کیونکہ یہ مفعول [بہ] کے درجے میں ہے، اور اس لیے بھی کہ فعل اس میں واقع ہو رہا ہے (6)۔ داؤد بن ابی ہند نے کہا: ابن مسعود کے نسخے میں یوں ہے: "فَوَلِّ وَجْهَكَ تِلقاء المسجدِ الحرام" [پس اپنا رخ مسجد حرام کے سامنے پھیر لیں] (7)۔ اور شاعر (8) نے کہا:

حواشی: (1) اسے طبری 2/660 نے اسی طرح نکالا ہے۔ (2) نسخوں اور المحرر الوجیز 1/222 میں اسی طرح ہے۔ یہ اثر عبد الرزاق نے اپنی تفسیر 1/62، طبری 2/662 اور حاکم 2/296 میں عبد اللہ بن عمرو کے قول سے نقل کیا ہے۔ (3) (م) میں ہے: "قاله"، اور (د) میں ہے: "وقال"۔ (4)

المحرر الوجيز 1/222۔ (5) اسے بیہقی 2/9 نے نکالا ہے، اور کہا: اسے عمر بن حفص المکی نے [ابن جریج سے] اکیلے روایت کیا ہے، اور وہ ضعیف ہے اس سے احتجاج (دلیل) نہیں لیا جا سکتا۔ اسے ایک اور ضعیف سند کے ساتھ عبد اللہ بن حبشی سے بھی مرفوعاً روایت کیا گیا ہے، اور اس جیسی روایت سے بھی احتجاج نہیں کیا جاتا۔ (6) إعراب القرآن للنحاس 1/269، اور قوسین کے درمیان کا حصہ اسی سے ہے۔ (7) المحرر الوجیز 1/222۔ (8) وہ ساعدہ بن جؤیہ ابو ذباع الجذامی ہے، اور یہ شعر مجمل اللغہ 2/503، الصحاح (شطر)، المحرر الوجیز 1/222، اور اللسان (شطر) میں موجود ہے۔ ابو الفرج نے اسے الاغانی 21/224 میں ابی جندب، ابی خراش الہذلی کے بھائی، کی طرف منسوب کیا ہے۔

443

Surah Al-Baqarah: Verse 144

I say to Umm Zinba': "Stay... the chests of the white camels towards Banu Tamim." Another said (1): And there has overshadowed you from the direction of your frontier... a terror that has darkness covering you in pieces. Another said (2): Oh, who will convey a message to 'Amr... for the message does not avail towards 'Amr. The "shatr" of a thing: its half, and from this is the hadith: "Purification is half of faith" (3). And it can be from the opposites (contranyms). It is said: "shatara ila" (he moved towards) such-and-such: if he approached its direction; and "shatara 'an" (he moved away from) such-and-such: if he distanced himself from it and turned away. As for the "shatir" (rascal/clever one) among men, it is because he has taken a path other than the straight one (4), and he is the one who exhausted his family with his wickedness. It is said "shatara" and "shatura" - with the damma - "shatarah" in both (5). Some were asked about the "shatir," and they said: He is the one who has taken to distancing himself from what Allah has forbidden. Third: There is no disagreement among scholars that the Kaaba is the Qibla in every horizon. They agreed that whoever observes it and witnesses it, it is obligatory for him to face it. If he leaves facing it while witnessing it and knowing its direction, then his prayer is invalid, and he must repeat all that he prayed; this was mentioned by Abu 'Umar (6). They agreed that everyone who is absent from it must face its side, its direction (shatraha), and its front. If it is hidden from him, he must seek guidance for that with everything possible such as stars, winds, mountains, and other things that can be used to seek guidance for its direction. And whoever sits in the Sacred Mosque, let his face be towards the Kaaba, and let him look at it with faith and seeking reward, for it is narrated that looking at the Kaaba is worship, as said by 'Ata and Mujahid (7).

(1) He is Laqit bin Ya'mur al-Iyadi, and the verse is in his Diwan p. 43. (2) He is Khufaf bin Nudbah, and the verse is in al-Muharrar al-Wajiz 1/222, and Tafsir al-Razi 4/126. (3) It is part of a hadith narrated by Ahmad (22902), and Muslim (223) from Abu Malik al-Ash'ari, may Allah be pleased with him. (4) Al-Nukat wal-'Uyun 1/203. (5) Al-Sihah (shatr). (6) Al-Tamhid 17/54, and what follows it is also from him. (7) Narrated by Abd al-Razzaq 5/135, and Ibn Abi Shaybah 4/390.

443

सूरह अल-बक़रह: आयत 144

मैं उम्म ज़िनबा' से कहता हूँ: "रुको... सफेद ऊँटों के सीने बनू तमीम की दिशा में।" दूसरे ने कहा (1): और तुम्हारी सरहद की दिशा से तुम पर साया पड़ा है... एक ऐसा आतंक जिसकी काली घटाएं तुम पर छाई हुई हैं। एक और ने कहा (2): ओह, कौन 'अम्र' तक मेरा संदेश पहुँचाएगा... क्योंकि संदेश 'अम्र' की दिशा में कोई लाभ नहीं देता। किसी चीज़ का "शत्र" (Shatr): उसका आधा हिस्सा, और इसी से हदीस है: "पवित्रता ईमान का आधा हिस्सा है" (3)। और यह विलोम शब्दों (अददाद) में से हो सकता है। कहा जाता है: "शतर इला" (वह उसकी ओर मुड़ा): यदि वह उसकी दिशा की ओर आया; और "शतर अन" (वह उससे दूर चला गया): यदि उसने उससे दूरी बनाई और मुँह मोड़ लिया। जहाँ तक पुरुषों में "शातिर" (Shatir - धूर्त/चालाक) का सवाल है, तो इसलिए कि उसने सीधे रास्ते के अलावा दूसरा रास्ता चुना है (4), और वह वह है जिसने अपनी दुष्टता से अपने परिवार को थका दिया। इसके लिए "शतर" और "शतुर" (धम्मा के साथ) दोनों का उपयोग किया जाता है - "शतारह" (5)। उनमें से कुछ से "शातिर" के बारे में पूछा गया, तो उन्होंने कहा: वह वह है जिसने अल्लाह द्वारा वर्जित चीज़ों से दूरी बनाना शुरू कर दिया है। तीसरा: विद्वानों के बीच इस बात पर कोई मतभेद नहीं है कि काबा हर क्षितिज में क़िबला है। वे इस बात पर सहमत हुए कि जिसने भी इसे प्रत्यक्ष रूप से देखा और उसका अवलोकन किया, उस पर उसका सामना करना अनिवार्य है। यदि वह प्रत्यक्ष रूप से देखते हुए और उसकी दिशा जानते हुए उसका सामना करना छोड़ देता है, तो उसकी प्रार्थना मान्य नहीं है, और उसे अपनी पढ़ी हुई सभी प्रार्थनाओं को दोहराना होगा; इसका उल्लेख अबू उमर (6) ने किया है। वे इस बात पर सहमत हुए कि जो कोई भी उससे दूर है, उसे उसके किनारे, उसकी दिशा (शत्रहा) और उसके सामने का रुख करना चाहिए। यदि वह उस पर ओझल है, तो उसे सितारों, हवाओं, पहाड़ों और अन्य चीज़ों के माध्यम से इसकी दिशा का पता लगाना चाहिए। और जो कोई मस्जिद अल-हरम में बैठे, उसका चेहरा काबा की ओर होना चाहिए, और उसे विश्वास और सवाब की नियत के साथ उसे देखना चाहिए, क्योंकि यह वर्णित है कि काबा को देखना इबादत (पूजा) है, जैसा कि अता और मुजाहिद (7) ने कहा है।

(1) वह लक़ीत बिन या'मुर अल-इयादी हैं, और पद्य उनके दीवान पृष्ठ 43 में है। (2) वह खुफाफ बिन नुदबा हैं, और पद्य अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/222 और तफसीर अल-राज़ी 4/126 में है। (3) यह अहमद (22902) और मुस्लिम (223) द्वारा अबू मलिक अल-अश'अरी (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित

एक हदीस का हिस्सा है। (4) अल-नुकात वल-'उयून 1/203। (5) अल-सिहाह (शत्र)। (6) अल-तम्हीद 17/54, और इसके बाद वाला भी उन्हीं का है। (7) अब्दुल रज्जाक 5/135 और इब्न अबी शैबा 4/390 द्वारा वर्णित।

443

سورة البقرہ: آیت 144

میں ام زنباع سے کہتا ہوں: "ٹھہرو... سفید اونٹوں کے سینے بنو تمیم کی طرف۔" دوسرے نے کہا (1): اور تمہاری سرحد کی جانب سے تم پر سایہ فگن ہوا ہے... ایک ایسا خوف جس کی تاریکی کے ٹکڑے تم پر چھائے ہوئے ہیں۔ ایک اور نے کہا (2): بھلا کون عمرو تک میرا پیغام پہنچائے گا... کیونکہ پیغام عمرو کی طرف کوئی فائدہ نہیں دیتا۔ کسی چیز کا "شطر": اس کا آدھا حصہ، اور اسی سے حدیث ہے: "پاکیزگی ایمان کا آدھا حصہ ہے" (3)۔ اور یہ اضداد (الٹ معنی والے الفاظ) میں سے ہو سکتا ہے، کہا جاتا ہے: "شطر الی کذا": جب وہ اس کی جانب متوجہ ہوا؛ اور "شطر عن کذا": جب وہ اس سے دور ہوا اور اعراض کیا۔ جہاں تک مردوں میں "شاطر" (چالاک/عیار) کا تعلق ہے، تو وہ اس لیے کہ وہ سیدھے راستے کے علاوہ کسی اور سمت نکل گیا ہے (4)، اور وہ وہ ہے جس نے اپنی خباثت سے اپنے گھر والوں کو تھکا دیا ہو۔ "شطر" اور "شطر" (ضمہ کے ساتھ) دونوں میں "شطارہ" کہا جاتا ہے (5)۔ ان میں سے بعض سے "شاطر" کے بارے میں پوچھا گیا تو انہوں نے کہا: وہ ہے جس نے اللہ کی منع کردہ چیزوں سے دوری اختیار کی۔ تیسرا: علماء کے درمیان اس بات پر کوئی اختلاف نہیں ہے کہ کعبہ ہر افق میں قبلہ ہے، اور انہوں نے اس بات پر اتفاق کیا ہے کہ جس نے اسے بچشم سر دیکھا اور اس کا مشاہدہ کیا اس پر اس کا استقبال (رخ کرنا) فرض ہے، اور اگر اس نے اس کی طرف رخ کرنا چھوڑ دیا، حالانکہ وہ اسے دیکھ رہا ہو اور اس کی سمت سے واقف ہو، تو اس کی نماز نہیں ہوگی، اور اسے اپنی تمام پڑھی ہوئی نمازیں لوٹانی ہوں گی، اسے ابو عمر (6) نے ذکر کیا ہے۔ اور انہوں نے اس بات پر اتفاق کیا کہ جو شخص کعبہ سے غائب ہو وہ اس کی جانب، اس کی سمت اور اس کے سامنے کا رخ کرے، پس

اگر وہ اس پر پوشیدہ ہو جائے تو اسے ستاروں، ہواؤں، پہاڑوں اور ان کے علاوہ دیگر چیزوں سے اس کی سمت پر استدلال کرنا چاہیے جن سے اس کی سمت کا پتہ چل سکے۔ اور جو شخص مسجد حرام میں بیٹھے، تو چاہیے کہ اس کا رخ کعبہ کی طرف ہو، اور وہ ایمان اور ثواب کی نیت سے اس کی طرف دیکھے، کیونکہ روایت ہے کہ کعبہ کی طرف دیکھنا عبادت ہے، یہ عطاء اور مجاہد (7) نے کہا ہے۔

(1) یہ لقیط بن یعمر الایادی ہے، اور یہ شعر ان کے دیوان ص 43 میں ہے۔ (2) یہ خفاف بن ندبہ ہے، اور یہ شعر المحرر الوجیز 1 / 222، اور تفسیر الرازی 4 / 126 میں ہے۔ (3) یہ ایک حدیث کا ٹکڑا ہے جسے احمد (22902)، اور مسلم (223) نے حضرت ابو مالک اشعری رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے۔ (4) النکت والعیون 203/1۔ (5) الصحاح (شطر)۔ (6) التمہید 17/ 54، اور اس کے بعد والا حصہ بھی اسی کا ہے۔ (7) اسے ان دونوں سے عبد الرزاق 5/ 135، اور ابن ابی شیبہ 4 / 390 نے روایت کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 144 444

Fourth: They disagreed whether the obligation for someone who is absent (from the Kaaba) is to face the exact essence of it (the building itself) or its general direction. Some held the first view. Ibn al-Arabi said: This is weak because it is a command for something unattainable (1). Others said it is the general direction, which is correct for three reasons: First: It is what is possible and what the legal obligation is linked to. Second: It is what is commanded in the Quran, according to the Almighty's saying: {So turn your face towards Al-Masjid Al-Haram. And wherever you [believers] are, turn your faces toward it [in prayer]} meaning from any part of the earth, east or west, {turn your faces toward it}. Third: The scholars argued based on the long row (of worshippers) which is definitively known to be many times the width of the House (the Kaaba).

Fifth: In this verse, there is a clear proof for what Malik and those who agreed with him held, that the rule for the person praying is to look straight ahead, not at the place of prostration. Al-Thawri, Abu Hanifah, Al-Shafi'i, and Al-Hasan bin Hayy said: It is recommended that his gaze be towards the place of his prostration. Sharik al-Qadi said: He looks while standing at the place of prostration, in bowing at the place of his feet, in prostration at the place of his nose, and in sitting at his lap (2). Ibn al-Arabi said (3): He should only look straight ahead, for if he bows his head, some of the obligatory standing for the head is lost, and it is the most noble of organs. If he keeps his head upright and forces his eyes to look at the ground, that is a great hardship and difficulty, and no hardship has been placed upon us in religion. However, that is better for whoever is capable of it.

The Almighty's saying: {And indeed, those who were given the Scripture} refers to the Jews and Christians {know that it is the truth from their Lord} meaning the changing of the Qiblah (4) from the Holy House (Bayt al-Maqdis) (5). If it is asked: How do they know that, when it is not part of their religion nor in their book?

(1) Ahkam al-Quran 1/43, and in it: "yasila ilayhi" instead of "yusala ilayhi". (2) Al-Tamhid 17/393. (3) In Ahkam al-Quran 3/1296 and he reported it from Malik. (4) In the copies: "the Kaaba", and what is established is from "m". (5) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/203.

सूरा अल-बकराह: आयत 144 444

चौथा: उन्होंने इस बात पर असहमति जताई कि क्या (काबा से) अनुपस्थित व्यक्ति के लिए उसका मुख काबा के वास्तविक भवन की ओर होना अनिवार्य है या उसकी सामान्य दिशा की ओर। कुछ ने पहला विचार रखा। इब्न अल-अरबी ने कहा: यह कमजोर विचार है क्योंकि यह ऐसी चीज़ का आदेश देना है जो अप्राप्य है (1)। अन्य लोगों ने कहा कि यह दिशा है, और यह तीन कारणों से सही है: पहला: यह वह है जो संभव है और जिससे कानूनी दायित्व जुड़ा हुआ है। दूसरा: यह वही है जिसका कुरान में आदेश दिया गया है; सर्वशक्तिमान के वचन के अनुसार: {तो अपना मुख मस्जिद अल-हरम की ओर फेर लें। और तुम [मोमिन] जहाँ कहीं भी हो, अपने चेहरों को उसी की ओर फेर लिया करो} जिसका अर्थ है पृथ्वी के किसी भी हिस्से से, पूर्व या पश्चिम से, {अपने चेहरों को उसी की ओर फेर लिया करो}। तीसरा: विद्वानों ने (नमाजियों की) लंबी कतार के आधार पर तर्क दिया, जिसके बारे में निश्चित रूप से ज्ञात है कि वह काबा की चौड़ाई से कई गुना अधिक लंबी होती है।

पाँचवां: इस आयत में, मलिक और उनके साथ सहमत होने वालों के विचार के लिए एक स्पष्ट प्रमाण है, कि नमाज़ पढ़ने वाले का नियम यह है कि वह अपने सामने देखे, न कि सजदे के स्थान पर। अल-थौरी, अबू हनीफा, अल-शाफ़ई और अल-हसन बिन हय्य ने कहा: यह अनुशंसित (मुस्तहब) है कि उसकी दृष्टि उसके सजदे के स्थान की ओर हो। शरीक अल-कादी ने कहा: वह खड़े होने की स्थिति में सजदे के स्थान को देखता है, रुकू(झुकने) में अपने पैरों के स्थान को, सजदे में अपनी नाक के स्थान को और बैठने में अपनी गोद को देखता है (2)। इब्न अल-अरबी ने कहा (3): उसे केवल अपने सामने देखना चाहिए, क्योंकि यदि वह अपना सिर झुकाता है, तो सिर के लिए अनिवार्य खड़े होने का कुछ हिस्सा खो जाता है, और यह अंगों में सबसे श्रेष्ठ है। यदि वह अपना सिर सीधा रखता है और अपनी आंखों को जमीन की ओर देखने के लिए मजबूर करता है, तो यह एक बड़ी कठिनाई और परेशानी है, और धर्म में हम पर कोई कठिनाई नहीं डाली गई है। हालाँकि, जो इसके सक्षम है उसके लिए यह बेहतर है।

सर्वशक्तिमान का वचन: {और वास्तव में, जिन्हें किताब दी गई थी} से तात्पर्य यहूदियों और ईसाइयों से है {वे जानते हैं कि यह उनके रब की ओर से सत्य है} यानी किबला का बदलना (4) पवित्र सदन (बैत अल-मक़दिस) से (5)। यदि पूछा जाए: वे यह कैसे जानते हैं, जबकि यह न तो उनके धर्म का हिस्सा है और न ही उनकी किताब में है?

(1) अहकाम अल-कुरान 1/43, और इसमें: "यसिला इलैही" के बजाय "युसाला इलैही" है। (2) अल-तमहीद 17/393। (3) अहकाम अल-कुरान 3/1296 में और उन्होंने इसे मलिक से उद्धृत किया है। (4) प्रतियों में: "काबा", और जो स्थापित है वह "म" से है। (5) अल-नुकत वल-उयून 1/203।

سورۃ البقرہ: آیت 144 444

چوتھی بات: علماء میں اس بات پر اختلاف ہوا کہ (کعبہ سے) غیر موجود شخص کے لیے فرض عین کعبہ کی طرف رخ کرنا ہے یا محض اس کی جہت (سمت) کی طرف۔ بعض نے پہلے قول کو اختیار کیا۔ ابن العربی کہتے ہیں: یہ قول ضعیف ہے، کیونکہ یہ ایسی چیز کا مکلف بنانا ہے جس تک رسائی ممکن نہیں (1)۔ اور بعض نے کہا کہ جہت کا رخ کرنا ہی فرض ہے، اور یہی تین وجوہات کی بنا پر صحیح ہے: پہلی وجہ: یہی وہ ممکن صورت ہے جس سے شرعی حکم وابستہ ہوتا ہے۔ دوسری وجہ: قرآن میں اسی کا حکم دیا گیا ہے، اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ وَحَيْثُ مَا كُنتُمْ فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ ﴾ یعنی زمین کے جس حصے میں بھی ہو، مشرق ہو یا مغرب ﴿فَوَلُّوا وُجُوهَكُمْ شَطْرَهُ ﴾ (اپنے چہرے اسی کی طرف پھیر لو)۔ تیسری وجہ: علماء نے طویل صف سے استدلال کیا ہے جس کے بارے میں یقینی طور پر معلوم ہے کہ وہ کعبہ کی چوڑائی سے کئی گنا زیادہ ہوتی ہے۔

پانچویں بات: اس آیت میں امام مالک اور ان کے ہم نواؤں کے موقف کی واضح دلیل ہے کہ نمازی کا حکم یہ ہے کہ وہ اپنے سامنے دیکھے، نہ کہ اپنے سجدہ کی جگہ کی طرف۔ سفیان ثوری، ابو حنیفہ، شافعی اور حسن بن حی نے کہا: مستحب یہ ہے کہ اس کی نظر سجدہ گاہ پر ہو۔ شریک قاضی نے کہا: قیام کی حالت میں سجدہ گاہ کی طرف دیکھے، رکوع میں اپنے قدموں کی جگہ کی طرف، سجدہ میں اپنی ناک کی جگہ کی طرف، اور قعدہ میں اپنی گود کی طرف دیکھے (2)۔ ابن العربی (3) کہتے ہیں: وہ صرف اپنے سامنے دیکھے، کیونکہ اگر اس نے اپنا سر جھکا لیا تو سر کا وہ قیام جو اس پر فرض تھا فوت ہو جائے گا، حالانکہ سر تمام اعضاء میں سب سے معزز ہے۔ اور اگر وہ اپنا سر سیدھا رکھے اور اپنی نظر کو زمین کی طرف کرنے کی تکلیف اٹھائے تو یہ

ایک بڑی مشقت اور حرج ہے، اور دین میں ہم پر کوئی حرج نہیں رکھا گیا۔ البتہ جو شخص اس پر قادر ہو اس کے لیے یہ افضل ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِنَّ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَابَ﴾ اس سے مراد یہودی اور عیسائی ہیں ﴿لَيَعْلَمُونَ أَنَّهُ الْحَقُّ مِن رَّبِّهِمْ﴾ یعنی بیت المقدس (5) سے قبلہ کی تبدیلی (4) کا حق ہونا۔ اگر یہ سوال کیا جائے کہ: وہ یہ کیسے جانتے ہیں حالانکہ یہ نہ ان کے دین میں ہے اور نہ ان کی کتاب میں؟

(1) احکام القرآن 1/43، اور اس میں "یصل الیہ" کی بجائے "یُوصل الیہ" ہے۔ (2) التمہید 17/393۔ (3) احکام القرآن 3/1296 میں، اور انہوں نے اسے امام مالک سے نقل کیا ہے۔ (4) نسخوں میں "الکعبہ" ہے، اور جو ثابت ہے وہ "م" سے ہے۔ (5) النکت والعیون 1/203

Two answers were given about it: First: When they knew from their book that Muhammad (PBUH) is a prophet, they knew he says nothing but the truth, and commands nothing but it. Second: They knew from their religion the permissibility of abrogation, even if some of them denied it, so they became aware of the permissibility of the [change of] Qibla (1).

Allah's saying: {And Allah is not unaware of what you do} its meaning was mentioned before (2). Ibn Amir, Hamzah, and Al-Kisa'i read it as "ta'maluna" (you do) with the 'ta' addressing the People of the Book, or the Ummah of Muhammad (PBUH). In both cases, it is an announcement that Allah Almighty does not neglect the deeds of His servants, nor is He unaware of them, and it includes a warning. The rest read it with the 'ya' below [i.e., ya'maluna - they do] (3).

Allah's saying: {And if you were to bring to those who were given the Scripture every sign, they would not follow your qiblah. Nor will you be a follower of their qiblah. Nor would some of them follow the qiblah of others. And if you should follow their desires after what has come to you of knowledge, indeed, you would then be among the wrongdoers. (145)}

Allah's saying: {And if you were to bring to those who were given the Scripture every sign, they would not follow your qiblah} because they disbelieved, and the truth has become clear to them, and signs—i.e., evidences—do not benefit them. The broken plural of 'Qibla' is 'qibal', and in pluralization for 'taslim' it is 'qiblat'. It is permissible to replace the kasra with a fatha, so you say: 'qabalat', and it is permissible to omit the kasra and vocalize the 'ba' with a sukun, so you say: 'qiblat' (4).

And the particle "la-in" (if) was answered with the response of "law" (if/had), which is its opposite in that "law" seeks the past and occurrence in its response, while "la-in" seeks the future. Al-Farra' and Al-Akhfash said (5): It was answered with the response of "law" because the meaning is: "And even if you brought". Similarly, "law" can be answered with the response of "la-in", for example, you say: "If you did good, he did good [as a consequence]" (meaning he will surely do good).

---

(1) Zad al-Masir 1/157. (2) 2/210. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/222, and see Al-Sab'a pp. 160-162, and Al-Taysir p. 77. (4) I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/269-270. (5) Ma'ani al-Quran by al-Farra' 1/84, Ma'ani al-Quran by al-Akhfash 1/342, and I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/270, from whom the author quoted.

सूरा अल-बकरा: आयत 145 | पृष्ठ 445

इसके बारे में दो उत्तर दिए गए हैं: पहला: जब उन्हें अपनी पुस्तक से पता चला कि मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) एक नबी हैं, तो वे जान गए कि वह केवल सत्य ही कहते हैं, और केवल उसी का आदेश देते हैं। दूसरा: उन्हें अपने धर्म से मंसूख (निरसन) की अनुमति का ज्ञान था, भले ही उनमें से कुछ ने इसका खंडन किया, इसलिए वे किबला के परिवर्तन की वैधता से अवगत हो गए (1)।

अल्लाह का कथन: {और अल्लाह उससे बेखबर नहीं है जो तुम करते हो} इसका अर्थ पहले बताया जा चुका है (2)। इब्न आमिर, हमज़ह और अल-किसाई ने इसे 'तामलून' (तुम करते हो) पढ़ा है, जो अहले किताब या मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की उम्मत को संबोधित करता है। दोनों ही स्थितियों में, यह एक सूचना है कि अल्लाह सर्वशक्तिमान अपने बंदों के कार्यों की उपेक्षा नहीं करता है, और न ही वह उनसे बेखबर है, और इसमें चेतावनी भी शामिल है। बाकी लोगों ने इसे 'यामलून' (वे करते हैं) पढ़ा है (3)।

अल्लाह का कथन: {और यदि आप उन लोगों के पास, जिन्हें किताब दी गई है, हर प्रकार की निशानी ले आएँ, तब भी वे आपके किबला का अनुसरण नहीं करेंगे। और न आप उनके किबला के अनुयायी हैं और न उनमें से कुछ दूसरों के किबला के अनुयायी हैं। और यदि आप उस ज्ञान के पश्चात जो आपके पास आ चुका है, उनकी इच्छाओं का पालन करेंगे, तो निश्चय ही आप अत्याचारियों में से होंगे। (145)}

अल्लाह का कथन: {और यदि आप उन लोगों के पास, जिन्हें किताब दी गई है, हर प्रकार की निशानी ले आएँ, तब भी वे आपके किबला का अनुसरण नहीं करेंगे} क्योंकि उन्होंने कुफ़्र किया, जबकि सत्य उन पर स्पष्ट हो चुका था, और आयतें (अर्थात प्रमाण) उन्हें लाभ नहीं पहुँचातीं। 'किबला' का बहुवचन 'क़िबल' है, और 'किबलात' भी है। यह भी जायज़ है कि कसरा के स्थान पर फत्हा लगा दिया जाए, तो आप कहेंगे: 'क़बलात', और कसरा को हटाकर 'बा' को साकिन करना भी जायज़ है, तो आप कहेंगे: 'क़िब्लात' (4)।

और "ल-इन" का उत्तर "लौ" के उत्तर के साथ दिया गया है, जो इसके विपरीत है क्योंकि "लौ" अपने उत्तर में अतीत और घटित होने की माँग करता है, जबकि "ल-इन" भविष्य की माँग करता है। अल-फ़र्रा और अल-अखफ़श ने कहा (5): इसका उत्तर "लौ" के उत्तर के साथ दिया गया है क्योंकि अर्थ

है: "और भले ही आप ले आएँ"। इसी प्रकार, "लौ" का उत्तर "ल-इन" के उत्तर के साथ दिया जा सकता है।

---

(1) ज़ाद अल-मसीर 1/157। (2) 2/210। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/222, और देखें अल-सबआ पृष्ठ 160-162, और अल-तयसीर पृष्ठ 77। (4) इराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/269-270। (5) मानी अल-कुरान, अल-फर्रा 1/84, मानी अल-कुरान, अल-अखफश 1/342, और इराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/270, जिनसे लेखक ने उद्धृत किया है।

سورة البقرہ: آیت ۱۴۵ | صفحہ ۴۴۵

اس کے بارے میں دو جوابات دیے گئے ہیں: پہلا: یہ کہ جب انہوں نے اپنی کتاب سے جان لیا کہ محمد ﷺ نبی ہیں، تو انہیں معلوم ہو گیا کہ وہ صرف حق ہی کہتے ہیں اور صرف حق کا ہی حکم دیتے ہیں۔ دوسرا: یہ کہ وہ اپنے دین سے نسخ کے جواز کو جانتے تھے، اگرچہ ان میں سے بعض نے اس کا انکار کیا، چنانچہ وہ قبلہ کی تبدیلی کے جواز سے واقف ہو گئے (۱)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَمَا اللَّهُ بِغَٰفِلٍ عَمَّا يَعْمَلُونَ﴾ اس کا معنی پہلے گزر چکا ہے (۲)۔ ابن عامر، حمزہ اور کسائی نے اسے 'تا' کے ساتھ 'تعملون' (تم کرتے ہو) پڑھا ہے، جو اہل کتاب یا امتِ محمد ﷺ سے خطاب ہے۔ دونوں صورتوں میں، یہ اس بات کی اطلاع ہے کہ اللہ تعالیٰ اپنے بندوں کے اعمال سے غافل نہیں ہے اور نہ ہی انہیں نظر انداز کرتا ہے، اور اس میں وعید (ڈراوا) بھی شامل ہے۔ باقی قراء نے اسے 'یا' کے ساتھ 'یعلمون' پڑھا ہے (۳)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَلَئِنْ أَتَيْتَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَٰبَ بِكُلِّ ءَايَةٍ مَا تَبِعُوا قِبْلَتَكَ وَمَا أَنتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ وَمَا بَعْضُهُم بِتَابِعٍ قِبْلَةَ بَعْضٍ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ أَهْوَاءَهُم مِّنْ بَعْدِ مَا جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ إِنَّكَ إِذًا لَّمِنَ الظَّٰلِمِينَ ﴿١٤٥﴾﴾ (ترجمہ: اور اگر آپ ان لوگوں کے پاس جنہیں کتاب دی گئی ہے، ہر قسم کی نشانی لے آئیں، تب بھی وہ آپ کے قبلہ کی پیروی نہیں کریں گے، اور نہ آپ ان کے قبلہ کی پیروی کرنے والے ہیں، اور نہ ان میں سے بعض بعض کے قبلہ کی پیروی کرنے والے ہیں۔ اور اگر آپ نے اس علم کے بعد جو آپ کے پاس آ چکا ہے، ان کی خواہشات کی پیروی کی، تو یقیناً آپ اس وقت ظالموں میں سے ہوں گے۔)

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَئِنْ أَتَيْتَ الَّذِينَ أُوتُوا الْكِتَبَ بِكُلِّ ءَايَةٍ مَّا تَبِعُوا قِبْلَتَكَ﴾ کیونکہ انہوں نے کفر کیا حالانکہ حق ان پر واضح ہو چکا تھا، اور نشانیاں (یعنی دلائل) انہیں فائدہ نہیں دیتیں۔ قبلہ کی جمع مکسر 'قِبَل' آتی ہے، اور جمع سالم 'قِبْلات' آتی ہے۔ یہ بھی جائز ہے کہ کسرہ کو فتحہ سے بدل دیا جائے، تو آپ کہیں 'قَبَلات' اور کسرہ کو حذف کر کے با کو ساکن کرنا بھی جائز ہے، تو آپ کہیں 'قِبْلات' (۴)۔

اور 'لئن' کا جواب 'لو' کے جواب جیسا دیا گیا ہے، حالانکہ یہ اس کی ضد ہے کیونکہ 'لو' اپنے جواب میں ماضی اور وقوع کا تقاضا کرتا ہے، جبکہ 'لئن' استقبال کا تقاضا کرتا ہے۔ فراء اور اخفش نے کہا (۵): اس کا جواب 'لو' کے جواب جیسا اس لیے دیا گیا کیونکہ معنی یہ ہے: 'اور اگرچہ آپ لے آئیں'۔ اسی طرح 'لو' کا جواب 'لئن' کے جواب جیسا بھی دیا جا سکتا ہے۔

---

(۱) زاد المسیر ۱/۱۵۷۔ (۲) ۲/۲۱۰۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/۲۲۲، اور دیکھئے السبعہ ص ۱۶۲-۱۶۰، والتیسیر ص ۷۷۔ (۴) اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۶۹-۲۷۰۔ (۵) معانی القرآن للفراء ۱/ ۸۴، معانی القرآن للاخفش ۱/ ۳۴۲، اعراب القرآن للنحاس ۱/ ۲۷۰، جس سے مصنف نے نقل کیا ہے۔

446 Surat Al-Baqarah: Verse 146

...to you, and like it is the saying of the Almighty: "And if We sent a wind [and] they saw it turned yellow, they would surely continue..." [Ar-Rum: 51] meaning: even if We sent a wind. Sibawayh disagreed with both of them, and said(1): Indeed, the meaning of "la'in" (if) is different from the meaning of "law" (if/would), so neither of them enters upon the other. The meaning is: And if you were to bring to those who were given the Scripture every sign, they would not follow your qiblah. Sibawayh said: And the meaning of "And if We sent a wind [and] they saw it turned yellow, they would surely continue..." [Ar-Rum: 51] is: they will surely continue. His saying, the Almighty: "And you are not a follower of their qiblah" is a statement in form, but it implies a command, meaning: do not lean towards anything of that. Then the Almighty informed that the Jews do not follow the qiblah of the Christians, nor do the Christians follow the qiblah of the Jews, according to al-Suddi and Ibn Zayd(2). This is an announcement of their differences, their turning away from each other, and their misguidance. And a group said: The meaning is: None of those who followed you among those who submitted (to Islam) follows the qiblah of those who did not submit, nor does anyone who did not submit follow the qiblah of those who submitted. The first view is more apparent, and Allah Almighty knows best. His saying, the Almighty: "And if you should follow their desires after what has come to you of knowledge, indeed, you would then be among the wrongdoers." The address is to the Prophet (peace be upon him), and what is meant is his Ummah (nation) among whom it is possible for someone to follow his desires and thus become a wrongdoer. It is not possible for the Prophet (peace be upon him) to do what would make him a wrongdoer, so it is understood as intending his Ummah due to the Prophet's (peace be upon him) infallibility and our certainty that such a thing will not happen from him. The Prophet (peace be upon him) was addressed to magnify the matter, and because it was revealed to him(3). And "Al-ahwa'" (desires) is the plural of "hawa" (desire), and it has already been mentioned, and likewise "from knowledge" has also been mentioned(4), so there is no point in repeating. His saying, the Almighty: "Those to whom We gave the Scripture know him as they know their own sons. But indeed, a party of them conceal the truth while they know [it]." (146) His saying, the Almighty: "Those to whom We gave the Scripture know him as they know their own sons." "Alladhina" (Those) is in the position of nominative (raf') by inception (ibtida'), and the predicate (khabar) is "ya'rifunahu" (they know him), and it is also valid for it to be in the position of genitive (khafd) as an adjective...

Footnotes: (1) Al-Kitab 3/108, and I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/270, from which the author quoted. (2) At-Tabari 2/668. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/223. (4) 2/346-347.

४४६ सूरा अल-बक़रह: आयत १४६

...तुम्हारे पास, और उसी की तरह अल्लाह तआला का कहना है: "और अगर हम एक हवा भेजते [और] वे उसे पीला पड़ा हुआ देखते, तो वे उसके बाद अवश्य [कुफ़्र] करने लगते।" [अर-रूम: ५१] यानी: भले ही हम एक हवा भेजें। सिबावैह ने उन दोनों से असहमति जताई, और कहा(१): वास्तव में "ल-इन" (यदि) का अर्थ "लौ" (यदि/होता) के अर्थ से अलग है, इसलिए उनमें से कोई भी दूसरे के स्थान पर नहीं आता। तो अर्थ है: और यदि आप उन लोगों के पास जिन्हें किताब दी गई है, हर निशानी ले आएं तब भी वे आपके क़िबला का अनुसरण नहीं करेंगे। सिबावैह ने कहा: और अल्लाह तआला के इस कथन का अर्थ "और अगर हम एक हवा भेजते [और] वे उसे पीला पड़ा हुआ देखते, तो वे अवश्य..." [अर-रूम: ५१] यह है कि: वे अवश्य ही जारी रहेंगे। अल्लाह तआला का कथन: "और आप उनके क़िबला के अनुयायी नहीं हैं" शब्द के रूप में एक सूचना है, लेकिन इसमें एक आदेश निहित है, यानी: इनमें से किसी भी चीज़ की ओर न झुकें। फिर अल्लाह तआला ने सूचित किया कि यहूदी ईसाइयों के क़िबला का अनुसरण नहीं करते हैं और न ही ईसाई यहूदियों के क़िबला का अनुसरण करते हैं, अल-सुद्दी और इब्न ज़ैद(२) के अनुसार। यह उनके मतभेदों, एक-दूसरे से विमुख होने और उनकी गुमराहियों की घोषणा है। और एक समूह ने कहा: इसका अर्थ यह है: उन लोगों में से जिन्होंने आपका अनुसरण किया जो इस्लाम लाए, कोई भी उन लोगों के क़िबला का पालन करने वाला नहीं है जो इस्लाम नहीं लाए, और न ही वह जो इस्लाम नहीं लाया, इस्लाम लाने वालों के क़िबला का पालन करने वाला है। पहला विचार अधिक स्पष्ट है, और अल्लाह तआला सबसे बेहतर जानता है। अल्लाह तआला का कथन: "और यदि आप आपके पास ज्ञान आ जाने के बाद उनकी इच्छाओं का पालन करेंगे, तो वास्तव में आप अत्याचारियों में से होंगे।" यह संबोधन नबी ﷺ के लिए है, और इसका तात्पर्य उनकी उम्मत (समुदाय) से है, जिनमें से किसी के लिए अपनी इच्छाओं का पालन करना संभव है और इस तरह वह अत्याचारी बन जाएगा। यह संभव नहीं है कि नबी ﷺ ऐसा कुछ करें जिससे वह अत्याचारी बनें, इसलिए इसे नबी ﷺ की मासूमियत (निष्पापता) के कारण उनकी उम्मत के इरादे के रूप में लिया जाता है, और हमारा यह विश्वास है कि उनसे ऐसा नहीं होगा। नबी ﷺ को इस मामले की महत्ता जताने के लिए और इसलिए संबोधित किया गया क्योंकि यह उन पर अवतरित किया गया था(३)। और "अल-अहवा" (इच्छाएं) "हवा" (इच्छा) का बहुवचन है, और इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, और इसी तरह "ज्ञान से" का भी उल्लेख पहले हो चुका है(४), इसलिए दोहराने का कोई अर्थ नहीं है। अल्लाह तआला का कथन: "जिन लोगों को हमने किताब दी

है, वे उसे वैसे ही पहचानते हैं जैसे वे अपने बेटों को पहचानते हैं। और वास्तव में उनमें से एक दल जान-बूझकर सत्य को छुपाता है।" (१४६) अल्लाह तआला का कथन: "जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे उसे वैसे ही पहचानते हैं जैसे वे अपने बेटों को पहचानते हैं।" "अल्लज़ीना" (वे जो) इब्तिदा (प्रारंभ) के कारण रफ़अ (कर्ता कारक) की स्थिति में है, और इसकी ख़बर "या'रिफ़ूनहु" (वे उसे पहचानते हैं) है, और यह भी सही है कि यह सिफ़त (विशेषण) के रूप में ख़फ़्द (सम्बन्ध कारक) की स्थिति में हो...

पाद टिप्पणियां: (१) अल-किताब ३/१०८, और अन-नह़्हास की ए'राब अल-क़ुरआन १/२७०, जिससे लेखक ने उद्धृत किया है। (२) अत-तबरी २/६६८। (३) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२३। (४) २/३४६-३४७।

۴۴۶ سورة البقرہ: آیت ۱۴۶

تمہاری طرف، اور اسی طرح اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿وَلَئِنْ أَرْسَلْنَا رِيحًا فَرَأَوْهُ مُصْفَرًّا لَّظَلُّوا﴾ [الروم: ۵۱] یعنی: اگرچہ ہم ہوا بھیجیں۔ سیبویہ نے ان دونوں سے اختلاف کیا، اور کہا(۱): بے شک «لئن» کا معنی «لو» کے معنی سے مختلف ہے، لہٰذا ان میں سے کوئی ایک دوسرے پر داخل نہیں ہوتا، پس معنی یہ ہے: اور اگر آپ ان لوگوں کے پاس جنہیں کتاب دی گئی ہے، ہر نشانی لے آئیں، تب بھی وہ آپ کے قبلہ کی پیروی نہیں کریں گے۔ سیبویہ نے کہا: اور اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کا معنی ﴿وَلَئِنْ أَرْسَلْنَا رِيحًا فَرَأَوْهُ مُصْفَرًّا لَّظَلُّوا﴾ [الروم: ۵۱] یہ ہے: کہ وہ ضرور (کفر پر) برقرار رہیں گے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَمَا أَنتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ﴾ لفظی طور پر خبر ہے، لیکن اس میں حکم شامل ہے، یعنی: ان کی کسی چیز کی طرف مائل نہ ہوں۔ پھر اللہ تعالیٰ نے خبر دی کہ یہودی عیسائیوں کے قبلہ کی پیروی نہیں کرتے اور نہ ہی عیسائی یہودیوں کے قبلہ کی پیروی کرتے ہیں، جیسا کہ السدی اور ابن زید(۲) سے مروی ہے، پس یہ ان کے اختلاف، ایک دوسرے سے پیٹھ پھیرنے اور ان کی گمراہی کا اعلان ہے۔ اور ایک گروہ نے کہا: معنی یہ ہے: کہ جو لوگ آپ کے پیچھے چلے یعنی اسلام لائے، ان میں سے کوئی بھی ان لوگوں کے قبلہ کی پیروی کرنے والا نہیں جو اسلام نہیں لائے، اور نہ ہی جو اسلام نہیں لایا وہ اسلام لانے والوں کے قبلہ کی پیروی کرنے والا ہے۔ اور پہلا قول زیادہ ظاہر ہے، واللہ تعالیٰ اعلم۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ أَهْوَاءَهُم مِّن بَعْدِ مَا جَاءَكَ مِنَ الْعِلْمِ إِنَّكَ إِذًا لَّمِنَ الظَّالِمِينَ﴾ خطاب نبی ﷺ سے ہے، اور مراد آپ کی امت ہے جن میں سے کسی کا اپنی خواہش کی پیروی کرنا ممکن ہے، تو وہ اپنی پیروی کی وجہ سے ظالم بن جائے گا، اور یہ ممکن نہیں کہ نبی ﷺ ایسا کام کریں جس سے وہ ظالم بن جائیں، پس اسے نبی ﷺ کی عصمت کے پیشِ نظر آپ کی امت کے ارادے پر محمول کیا گیا ہے، اور ہمارا یقین ہے کہ ایسا آپ

ﷺ سے نہیں ہوگا، اور نبی ﷺ کو اس معاملے کی عظمت کے پیشِ نظر مخاطب کیا گیا، اور اس لیے کہ یہ آپ پر نازل کیا گیا تھا(۳)۔ اور «الأهواء»: «ہویٰ» کی جمع ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے، اور اسی طرح «مِنَ العِلم» بھی پہلے گزر چکا ہے(۴)، اس لیے اسے دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿الَّذِينَ ءَاتَيْنَٰهُمُ الْكِتَٰبَ يَعْرِفُونَهُۥ كَمَا يَعْرِفُونَ أَبْنَآءَهُمْ ۖ وَإِنَّ فَرِيقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُونَ الْحَقَّ وَهُمْ يَعْلَمُونَ (١٤٦)﴾ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿الَّذِينَ ءَاتَيْنَٰهُمُ الْكِتَٰبَ يَعْرِفُونَهُۥ كَمَا يَعْرِفُونَ أَبْنَآءَهُمْ﴾ لفظ «الذين» یہاں ابتدا کی بنا پر رفع کی جگہ پر ہے، اور «يعرفونه» اس کی خبر ہے، اور یہ بھی جائز ہے کہ یہ صفت ہونے کی وجہ سے جر (خفض) کی جگہ پر ہو...

حواشی: (۱) الکتاب ۳/۱۰۸، اور اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۷۰، اور اسی سے مصنف نے نقل کیا ہے۔ (۲) الطبری ۲/۶۶۸۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/۲۲۳۔ (۴) ۲/۳۴۶-۳۴۷۔

to the "wrongdoers", and "they know" is in the position of the circumstantial state (hal), i.e., they know his prophethood and the truth of his message.

The pronoun refers back to Muhammad ﷺ, as stated by Mujahid, Qatadah, and others. It was also said: "they know" refers to the changing of the Qibla from Bayt al-Maqdis to the Kaaba being the truth. This was said by Ibn Abbas, Ibn Jurayj, al-Rabi', and also Qatadah (1).

He specifically mentioned "sons" in the context of knowledge, rather than "themselves," even though oneself is closer; because a person passes through a period in time when they do not know themselves, but no time passes when they do not know their son.

It is narrated that Umar said to Abdullah bin Salam: "Do you know Muhammad ﷺ as you know your son?" He said: "Yes, and more. Allah sent His trustworthy one in His heaven to His trustworthy one on His earth with his description, so I recognized him, but as for my son, I do not know what transpired with his mother" (2).

Allah's saying: {And indeed, a party of them surely conceal the truth} means Muhammad ﷺ, as said by Mujahid, Qatadah, and Khasif (3). And it was said: facing the Kaaba, as we mentioned earlier.

Allah's saying: {while they know} is evident in the validity of disbelief out of stubbornness (4), and similar to it: {And they rejected them, while their inner selves were convinced thereof} [An-Naml: 14] and His saying: {But when there came to them that which they recognized, they disbelieved in it} [Al-Baqarah: 89].

Allah's saying: {The truth is from your Lord, so never be among the doubters (147)}

Allah's saying: {The truth is from your Lord} means facing the Kaaba, not what the Jews informed you of regarding their Qibla (5).

It is narrated from Ali (may Allah be pleased with him) that he read: "al-Haqqa" (the truth), in the accusative case (mansub) governed by "ya'lamuna" (they know), meaning: they know the truth.

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/223, 224, and the reports were cited by al-Tabari 2/670-671 and 672. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/223, the story in it is brief, and al-Baghawi 1/126 and al-Razi 4/144 cited it in full. (3) The statement of Mujahid and Qatadah was cited

by al-Tabari 2/672, and the statement of Khasif was cited by Ibn Abi Hatim 1/254. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/224. (5) Al-Nukat wa al-Uyun 1/205.

४४७ सूरह अल-बक़रह : आयत १४७

"अत्याचारियों" के लिए, और "वे जानते हैं" हाल (अवस्था) के स्थान पर है, यानी: वे उनके नबूवत और उनके संदेश की सच्चाई को जानते हैं।

और सर्वनाम मुहम्मद ﷺ की ओर लौटता है, यह मुजाहिद, क़तादा और उनके अलावा अन्य लोगों ने कहा है। और कहा गया: "वे जानते हैं" बैत अल-मक़दिस से काबा की ओर क़िबला बदलने की सच्चाई के बारे में है। यह इब्न अब्बास, इब्न जुरैज, अर-रबी' और क़तादा ने भी कहा है (१)।

और उन्होंने ज्ञान के संदर्भ में स्वयं के बजाय "पुत्रों" का विशेष रूप से उल्लेख किया, हालांकि स्वयं अधिक निकट है; क्योंकि एक व्यक्ति अपने जीवन में एक ऐसे समय से गुज़रता है जब वह स्वयं को नहीं जानता, लेकिन ऐसा कोई समय नहीं गुज़रता जब वह अपने पुत्र को न जानता हो।

और यह वर्णित है कि उमर ने अब्दुल्ला बिन सलाम से कहा: "क्या आप मुहम्मद ﷺ को वैसे ही जानते हैं जैसे आप अपने पुत्र को जानते हैं?" उन्होंने कहा: "हाँ, और उससे भी अधिक। अल्लाह ने अपने आकाश में अपने अमानतदार को अपने पृथ्वी पर अपने अमानतदार के पास उनके विवरण के साथ भेजा, तो मैंने उन्हें पहचान लिया, और जहाँ तक मेरे पुत्र की बात है, मैं नहीं जानता कि उसकी माँ के साथ क्या हुआ था" (२)।

अल्लाह का कथन: {और उनमें से एक समूह निश्चित रूप से सत्य को छुपाता है} का अर्थ मुहम्मद ﷺ है, यह मुजाहिद, क़तादा और खसीफ़ ने कहा है (३)। और यह भी कहा गया: काबा की ओर मुख करना, जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है।

अल्लाह का कथन: {जबकि वे जानते हैं} हठ के कारण कुफ्र (अविश्वास) की सत्यता में स्पष्ट है (४), और इसी के समान है: {और उन्होंने उनका खंडन किया, जबकि उनके अंतर्मन को उनका विश्वास था} [अन्-नमल: १४] और उनका कथन: {फिर जब उनके पास वह आ गया जिसे उन्होंने पहचान लिया था, तो उन्होंने उसका इनकार कर दिया} [अल-बक़रह: ८९] ।

अल्लाह का कथन: {सत्य तुम्हारे रब की ओर से है, अतः संदेह करने वालों में से न होना (१४७)}

अल्लाह का कथन: {सत्य तुम्हारे रब की ओर से है} का अर्थ काबा की ओर मुख करना है, न कि वह जिसके बारे में यहूदियों ने तुम्हें उनके क़िबला के बारे में बताया था (५)।

और अली (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से वर्णित है कि उन्होंने पढ़ा: "अल-हक्का" (सत्य), "य'लमून" (वे जानते हैं) द्वारा मन्सूब (कर्म कारक) के रूप में, यानी: वे सत्य को जानते हैं।

(१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/ २२३, २२४, और अल-तब़री ने २/ ६७०-६७१ और ६७२ में उल्लेख किया है। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/ २२३, कहानी इसमें संक्षिप्त है, और अल-बग़वी १/ १२६ और अल-राज़ी ४/ १४४ ने इसे पूर्ण रूप में उद्धृत किया है। (३) मुजाहिद और क़तादा का कथन अल-तब़री २/ ६७२ द्वारा उद्धृत है, और खसीफ़ का कथन इब्न अबी हातिम १/ २५४ द्वारा उद्धृत है। (४) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/ २२४। (५) अल-नुक़्त व अल-उयून १/ २०५।

٤٤٧ سورة البقرہ: آیت ١٤٧

لفظ «الظالمین» کے لیے، اور «يَعْرِفُونَ» حال کے محل میں ہے، یعنی: وہ آپ ﷺ کی نبوت اور آپ کی رسالت کی سچائی کو جانتے ہیں۔

اور ضمیر محمد ﷺ کی طرف لوٹتی ہے، یہ مجاہد، قتادہ اور ان کے علاوہ دیگر نے کہا ہے۔ اور یہ بھی کہا گیا: «یعرفون» سے مراد بیت المقدس سے کعبہ کی طرف قبلہ کی تبدیلی کا حق ہونا ہے، یہ ابن عباس، ابن جریج، ربیع اور قتادہ نے بھی کہا ہے (١)۔

اور انہوں نے معرفت میں خود کے بجائے "بیٹوں" کا خاص طور پر ذکر کیا حالانکہ انسان خود سے زیادہ قریب ہوتا ہے؛ اس لیے کہ انسان پر اس کی زندگی میں ایک ایسا وقت گزرتا ہے جس میں وہ خود کو نہیں جانتا، لیکن ایسا کوئی وقت نہیں گزرتا جس میں وہ اپنے بیٹے کو نہ جانتا ہو۔

اور مروی ہے کہ عمر رضی اللہ عنہ نے عبداللہ بن سلام سے کہا: کیا آپ محمد ﷺ کو ویسے ہی پہچانتے ہیں جیسے آپ اپنے بیٹے کو پہچانتے ہیں؟ تو انہوں نے کہا: ہاں، اور اس سے بھی بڑھ کر، اللہ نے اپنے آسمان کے امانت دار کو زمین کے امانت دار کے پاس آپ ﷺ کی نعت (اوصاف) کے ساتھ بھیجا تو میں نے آپ ﷺ کو پہچان لیا، اور میرا بیٹا، میں نہیں جانتا کہ اس کی ماں کا کیا معاملہ تھا (٢)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَإِنَّ فَرِيقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُونَ الْحَقَّ﴾ اس سے مراد محمد ﷺ ہیں، یہ مجاہد، قتادہ اور خصیف نے کہا ہے (٣)۔ اور کہا گیا: استقبالِ کعبہ (کعبہ کی طرف رخ کرنا)، جیسا کہ ہم نے ابھی ذکر کیا ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَهُمْ يَعْلَمُونَ﴾ یہ عناد کی وجہ سے کفر کے درست ہونے میں ظاہر ہے (٤)، اور اسی طرح: ﴿وَجَحَدُوا بِهَا وَاسْتَيْقَنَتْهَا أَنفُسُهُمْ﴾ [النمل: ١٤] اور اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَلَمَّا جَاءَهُم مَّا عَرَفُوا كَفَرُوا بِهِ﴾ [البقرة: ٨٩]۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿الْحَقُّ مِن رَّبِّكَ فَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِينَ (١٤٧)﴾

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿الْحَقُّ مِن رَّبِّكَ﴾ یعنی استقبالِ کعبہ، نہ کہ وہ جس کی خبر یہودیوں نے تمہیں اپنے قبلہ کے بارے میں دی (٥)۔

اور علی رضی اللہ عنہ سے مروی ہے کہ انہوں نے پڑھا: «الحقَّ»، «یعلمون» کی وجہ سے منسوب، یعنی: وہ حق کو جانتے ہیں۔

(١) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٣، ٢٢٤، اور طبری نے ان آثار کو ٢/ ٦٧٠-٦٧١ اور ٦٧٢ میں نقل کیا ہے۔ (٢) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٣، اور قصہ اس میں مختصر ہے، اور اسے مکمل طور پر بغوی ١/ ١٢٦ اور رازی ٤/ ١٤٤ نے نقل کیا ہے۔ (٣) مجاہد اور قتادہ کا قول طبری ٢/ ٦٧٢ نے، اور خصیف کا قول ابن ابی حاتم ١/ ٢٥٤ نے نقل کیا ہے۔ (٤) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٤۔ (٥) النکت والعیون ١/ ٢٠٥۔

448 Surah Al-Baqarah: Verse 147 ...the Truth. It is correct to put it in the accusative case (nasb) based on the estimation: "Stick to the Truth." It can be in the nominative case (raf') based on being a subject (mubtada'), or on a hidden subject, making the estimation: "It is the Truth"(1), or on a hidden verb, meaning: "The Truth has come to you." An-Nahhas(2) said: As for the one in "Al-Anbiya" [the verse]: {the Truth, yet they turn away} [Verse: 24], we do not know of anyone who recited it except in the accusative case. The difference between them is that the one in Surah "Al-Baqarah" is the beginning of a verse, whereas the one in "Al-Anbiya" is not. His words, the Exalted: {So do not be among the doubters} meaning: among those who doubt. The address is to the Prophet ﷺ, and the intention is his nation (Ummah). It is said: "So-and-so doubted (imtara) about such-and-such" when certainty occurs to him once, and doubt another time, so he pushes one with the other. From it comes "al-mira'" (disputation), because each of them doubts the words of his companion(3). "Imtira'" regarding something is to doubt it, and so is "tamari"(4). Al-Tabari(5) recited as evidence that "al-mumtarin" means "doubters" the saying of Al-A'sha: It flows upon the shanks of the doubters (al-mumtarin), galloping when the mirage wavers(6). Ibn Atiyyah(7) said: He erred in this, because Abu Ubaydah and others said: "al-mumtarin" in the verse are those who urge horses (yamruna) with their legs by spurring them to run, as if they are extracting the run from them. There is no meaning of doubt in the verse as Al-Tabari stated. I say: The meaning of doubt in it is present; because it is possible that the owner is testing the horse, is it still as he knew its running to be or not? Lest something has happened to it, or this is at the time of its first purchase, so he makes it run to know the extent of its running. Al-Jawhari said: "Marytu al-farasa" (I urged the horse): when you extract what it has of running with a whip or...

---

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/224; the reading was mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira’at al-Shadhdhah p. 10, An-Nahhas in I'rab al-Qur'an 1/270, and Al-Zamakhshari in Al-Kashshaf 1/322. (2) I'rab al-Qur'an 1/270-271. (3) Al-Nukat wal-Uyun 1/205, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/224. (4) Al-Sihah (m-r-a). (5) In his Tafsir 2/674. (6) His Diwan p. 73, and in it: as-wuq, which is the plural of saq (leg). (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/224, and what precedes it is from it.

448 सूरा अल-बक़रह: आयत 147 ...सत्य। इसे 'नसब' (नपुंसक लिंग/कर्म कारक) के रूप में पढ़ना सही है, इस अनुमान पर: "सत्य पर टिके रहो।" या यह 'रफ़' (कर्ता कारक) के रूप में हो सकता है एक अदृश्य कर्ता के आधार पर, जिसका अनुमान है: "वह सत्य है"(1), या एक अदृश्य क्रिया के आधार पर, अर्थात: "सत्य तुम्हारे पास आ गया है।" अल-नहहास(2) ने कहा: जहाँ तक "अल-अंबिया" वाली आयत {सत्य, फिर भी वे मुँह फेर लेते हैं} [आयत: 24] का प्रश्न है, तो हम किसी को नहीं जानते जिसने इसे 'नसब' के अलावा किसी और रूप में पढ़ा हो। उन दोनों के बीच अंतर यह है कि "अल-बक़रह" वाली आयत एक आयत की शुरुआत है, जबकि "अल-अंबिया" वाली वैसी नहीं है। अल्लाह ताला का कथन: {तो तुम संशय करने वालों में से न होना} अर्थात: संदेह करने वालों में से। यह संबोधन नबी ﷺ के लिए है, और इसका उद्देश्य उनकी उम्मत है। कहा जाता है: "फलां व्यक्ति ने अमुक चीज़ में संदेह (इमतरा) किया": जब उसे एक बार यकीन हो और दूसरी बार संदेह, तो वह एक को दूसरे से धकेलता है। इसी से 'अल-मिरा' (वाद-विवाद) बना है; क्योंकि उनमें से हर एक अपने साथी की बात पर संदेह करता है(3)। किसी चीज़ के बारे में "इमतिरा" करना उसमें संदेह करना है, और ऐसा ही "तमारी" भी है(4)। अल-तबरी(5) ने इस बात के प्रमाण के रूप में कि 'मुमत्तरीन' का अर्थ 'संदेह करने वाले' है, अल-अशा का यह शेर उद्धृत किया: यह बहता है संशय करने वालों (अल-मुमत्तरीन) की पिंडली पर, सरपट दौड़ते हुए जब मृगतृष्णा डगमगाती है(6)। इब्न अतियाह(7) ने कहा: उन्होंने इसमें गलती की है, क्योंकि अबू उबैदा और अन्य लोगों ने कहा: शेर में "अल-मुमत्तरीन" वे हैं जो घोड़ों को अपनी टांगों से एड़ लगाकर दौड़ने के लिए उकसाते (यम्रून) हैं, जैसे कि वे उनसे दौड़ निकलवा रहे हों। शेर में संदेह का वह अर्थ नहीं है जैसा अल-तबरी ने कहा है। मैंने कहा: इसमें संदेह का अर्थ मौजूद है; क्योंकि यह संभव है कि मालिक घोड़े का परीक्षण कर रहा हो कि क्या वह उसकी दौड़ वैसी ही है जैसा वह जानता था या नहीं? कहीं उसे कुछ हो तो नहीं गया, या यह पहली बार खरीदने के समय हो, तो वह उसे दौड़ता है ताकि उसकी दौड़ की सीमा जान सके। अल-जौहरी ने कहा: "मरस्तुल फरसा" (मैंने घोड़े को उकसाया): जब आप चाबुक या... से उसकी दौड़ को बाहर निकालते हैं।

---

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/224, और इस क़िरात का ज़िक्र इब्न खालवैय ने 'अल-क़िरात अल-शाज़ा' पृ. 10 में, अन-नहहास ने 'इराब अल-क़ुरआन' 1/270 में और अल-ज़मख़्शारी ने 'अल-कश्शाफ़' 1/322 में किया है। (2) इराब अल-क़ुरआन 1/270-271। (3) अल-नुकत वल-उयून 1/205, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/224। (4) अल-सिहाह (म-र-अ)। (5) उनके तफ़सीर 2/674

में। (6) उनका दीवान पृ. 73, और इसमें है: अस-वुक, जो साक़ (टांग) का बहुवचन है। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/224, और जो इससे पहले है वह इसी से है।

٤٤٨ سورة البقرہ: آیت ١٤٧ الحقُّ۔ اور اس کا نصب پڑھنا درست ہے اس تقدیر پر: "حق کو لازم پکڑو"۔ اور رفع مبتدا ہونے کی بنا پر، یا مبتدا کے محذوف ہونے پر، اور تقدیر یہ ہے: "وہ حق ہے"(١)، یا فعل کے محذوف ہونے پر، یعنی: "تمہارے پاس حق آگیا"۔ النحاس(٢) نے کہا: رہا وہ جو سورۃ "الانبیاء" میں ہے ﴿الْحَقِّ فَهُم مُّعْرِضُونَ﴾ [آیت: ٢٤]، تو ہم کسی کو نہیں جانتے جس نے اسے نصب کے علاوہ پڑھا ہو، اور ان دونوں میں فرق یہ ہے کہ جو سورۃ "البقرہ" میں ہے وہ آیت کی ابتدا ہے، اور جو سورۃ "الانبیاء" میں ہے وہ ایسی نہیں ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَلَا تَكُونَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِينَ﴾ یعنی: شک کرنے والوں میں سے۔ اور خطاب نبی ﷺ سے ہے، اور مراد آپ کی امت ہے، کہا جاتا ہے: "فلاں نے اس چیز میں شک (امتری) کیا": جب اسے ایک بار یقین آئے اور دوسری بار شک، تو وہ ایک کو دوسرے سے دفع کرتا ہے، اور اسی سے 'مراء' (جھگڑا) نکلا ہے؛ کیونکہ ان میں سے ہر ایک اپنے ساتھی کی بات میں شک کرتا ہے(٣)۔ کسی چیز میں "امتراء" اس میں شک کرنا ہے، اور اسی طرح "تماری" بھی ہے(٤)۔ اور طبری(٥) نے اس بات پر کہ 'ممترین' شک کرنے والے ہیں، اعشی کا یہ شعر بطور شاہد پیش کیا: تَدُرُّ على أسُوْقِ الممترِيـــنَ رَكْضاً إذا ما السَّرابُ ارْجَحَنَّ(٦) (وہ شک کرنے والوں کی پنڈلیوں پر دوڑتے ہوئے بہتا ہے جب سراب لہرا جائے) ابن عطیہ(٧) نے کہا: اور ان سے یہاں وہم ہوا ہے، کیونکہ ابو عبیدہ اور دیگر نے کہا ہے: اس شعر میں "ممترون" وہ ہیں جو گھوڑوں کو اپنی ٹانگوں سے مہمیز لگا کر دوڑاتے (یمرون) ہیں تاکہ وہ دوڑیں، گویا وہ ان سے دوڑ کو نکال رہے ہیں، اور اس شعر میں شک کا وہ معنی نہیں ہے جیسا طبری نے کہا۔ میں نے کہا: اس میں شک کا معنی موجود ہے؛ کیونکہ یہ احتمال ہے کہ گھوڑے کا مالک اسے آزما رہا ہو، کہ کیا وہ اپنی اسی رفتار پر ہے جیسا وہ اسے جانتا تھا یا نہیں؟ تاکہ اسے کوئی تکلیف نہ پہنچی ہو، یا یہ اس کی پہلی خریداری کے وقت ہو، تو وہ اسے دوڑاتا ہے

تاکہ اس کی دوڑ کی مقدار جان سکے۔ جوہری نے کہا: "مَرَيْتُ الفرسَ": جب تم اس کی دوڑ کو کوڑے یا... کے ذریعے نکالو۔

---

(١) المحرر الوجيز ١/ ٢٢٤، اور اس قرات کا ذکر ابن خالویہ نے 'القراءات الشاذة' ص ١٠ میں، النحاس نے 'اعراب القرآن' ١/ ٢٧٠ میں، اور زمخشری نے 'الکشاف' ١/ ٣٢٢ میں کیا ہے۔ (٢) اعراب القرآن ١/ ٢٧٠ - ٢٧١۔ (٣) النکت والعیون ١/ ٢٠٥، اور المحرر الوجیز ١/ ٢٢٤۔ (٤) الصحاح (مرا)۔ (٥) اپنی تفسیر ٢/ ٦٧٤ میں۔ (٦) ان کا دیوان ص ٧٣، اور اس میں ہے: أسوُق، جو ساق (پنڈلی) کی جمع ہے۔ (٧) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٤، اور اس سے پہلے والا حصہ اسی سے ہے۔

Surah Al-Baqarah: Ayah 148 [Page] 449

...others, and the noun is "Al-Miryah" - with a kasra (short 'i' vowel) - and it may be pronounced with a damma (short 'u' vowel). And "maraytu al-naqata maryan": when you stroke its udder so that it yields milk, and "amrat" means: when its milk flowed. The noun is "al-miryah" with a kasra - and pronouncing it with a damma is an error (1). "Al-miryah" means doubt; it may be pronounced with a damma, and both have been recited (2).

Allah the Almighty said: {And for every [religious nation] is a direction of which He is the directer. So race to [all that is] good. Wherever you may be, Allah will bring you forth [for judgement] all together. Indeed, Allah is over all things competent.} [2:148]

In this verse, there are four issues: First: His saying: {And for every [nation] is a direction}. "Al-Wijhah" (direction), its linguistic weight is "fi'lah", from "al-muwajahah" (facing). "Al-Wijhah", "al-Wujah", and "al-Wajh" have the same meaning, and what is meant is the Qiblah. Meaning: they do not follow your Qiblah, and you do not follow theirs. For everyone, there is a direction, either based on truth or based on desire.

Second: His saying: {He is the directer of it}. "He" (huwa) refers back to the wording of "every" (kull), not its plural meaning; because if it were based on the meaning, it would have said: "they are the directers of it towards their faces". Thus, the suffix "ha" (it) is the first object, and the second object is omitted, meaning: He is directing his face and himself towards it (3). The meaning is: for every follower of a creed there is a Qiblah; the owner of the Qiblah directs his face towards it, based on the wording of "kull" (every). This is the opinion of Al-Rabi', 'Ata, and Ibn 'Abbas (4). Ali bin Sulayman said: "muwalliha" means "mutawalliha" (the one taking charge of it).

Ibn 'Abbas and Ibn 'Amir recited it as: "mawllaha" in the passive voice (5). According to this recitation, the pronoun refers to a single individual, meaning: for every single person there is a Qiblah, the person is "mawllaha" i.e., turned towards it. This was stated by Az-Zajjaj (6).

It is also possible that in the recitation of the majority, "He" (huwa) is a pronoun referring to the name of Allah, Mighty and Majestic, even if it was not previously mentioned...

(1) Meaning regarding "miryat al-naqa" (the milking of the camel); it is only with a kasra, as Al-Jawhari narrated in his "Sahah" from Tha'lab. (2) As-Sahah (m-r-a), and the recitation with a damma was mentioned by Abu Hayyan in Al-Bahr al-Muhit 7/205 from Al-Hasan, and it is not among the ten canonical recitations. (3) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/271. (4) Al-Tabari cited these reports 2/675. (5) Al-Sab'ah p.171, and Al-Taysir p.77. (6) See his "Ma'ani al-Qur'an" 1/225.

सूरह अल-बकरा: आयत 148 [पृष्ठ] 449

...अन्य, और संज्ञा 'अल-मिर्याह' है - कसरा (इ की मात्रा) के साथ - और इसे धम्मा (उ की मात्रा) के साथ भी पढ़ा जा सकता है। और 'मरायतु अल-नाक़ता मर्यन्': जब आप ऊँटनी के थन को सहलाते हैं ताकि वह दूध दे, और 'अमरात' का अर्थ है: जब उसका दूध बहने लगा। संज्ञा 'अल-मिर्याह' कसरा के साथ है - और इसे धम्मा के साथ पढ़ना एक त्रुटि है (1)। 'अल-मिर्याह' का अर्थ संदेह है; इसे धम्मा के साथ भी पढ़ा जा सकता है, और दोनों तरह से पढ़ा गया है (2)।

अल्लाह तआला का कथन है: {और हर (उम्मत) के लिए एक दिशा है जिसकी ओर वह मुँह करता है। तो तुम नेक कामों में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करो। तुम जहाँ कहीं भी होगे, अल्लाह तुम सबको इकट्ठा कर लाएगा। बेशक अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है।} [2:148]

इसमें चार मसले हैं: पहला: अल्लाह का यह कहना: {और हर एक के लिए एक दिशा है}। 'अल-विज्हा' (दिशा) का वज़न 'फिअ्लह' है, जो 'अल-मुवाजाहा' (सामना करना) से बना है। 'अल-विज्हा', 'अल-वुज्हा' और 'अल-वज्ह' का अर्थ एक ही है, और यहाँ मुराद क़िबला है। यानी: वे आपके क़िबले का पालन नहीं करते, और आप उनके क़िबले का पालन नहीं करते। हर एक के लिए एक दिशा है, चाहे वह सत्य पर आधारित हो या इच्छा (हवा) पर।

दूसरा: अल्लाह का यह कहना: {वह उसका रुख़ करने वाला है}। यहाँ 'वह' (हुवा) शब्द 'कुल' (प्रत्येक) की ओर लौटता है, न कि उसके बहुवचन अर्थ की ओर; क्योंकि यदि यह अर्थ पर आधारित होता, तो कहा जाता: 'वे अपने चेहरों को उसकी ओर करने वाले हैं'। अतः 'हा' (वह) पहला मफ़ऊल (कर्म) है, और दूसरा मफ़ऊल लुप्त है, यानी: 'वह अपना चेहरा और स्वयं को उसकी ओर करने वाला है' (3)। इसका अर्थ है: हर मज़हब वाले के लिए एक क़िबला है; क़िबले वाला अपना चेहरा उसकी ओर करता है, 'कुल' शब्द के आधार पर। यह अल-रबी, अता और इब्न अब्बास का मत है (4)। अली बिन सुलेमान ने कहा: 'मुवल्लीहा' का अर्थ है 'मुतवल्लीहा' (उसका कार्यभार संभालने वाला)।

इब्न अब्बास और इब्न आमिर ने इसे मज़हूल (कर्मवाच्य) में 'मौल्लाहा' पढ़ा है (5)। इस क़िरात (पठन) के अनुसार, ज़मीर (सर्वनाम) एक व्यक्ति के लिए है, यानी: हर एक व्यक्ति के लिए एक क़िबला है, वह व्यक्ति 'मौल्लाहा' है यानी उसकी ओर मोड़ा गया है। यह अज़-ज़ज्जाज ने कहा है (6)।

और यह भी संभव है कि जमाअत (बहुमत) की क़िरात में 'हुवा' अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल के नाम की ज़मीर हो, भले ही उसका उल्लेख पहले न हुआ हो...

(1) यानी 'मिर्यात अल-नाक़ा' (ऊँटनी के दूध दुहने) के संदर्भ में; इसमें केवल कसरा ही है, जैसा कि अल-जौहरी ने अपनी 'सिहाह' में सालब से उद्धृत किया है। (2) अल-सिहाह (म-र-अ), और धम्मा के साथ पढ़ने का उल्लेख अबू हय्यान ने अल-बहर अल-मुहीत 7/205 में अल-हसन से किया है, और यह दस प्रसिद्ध क़िरात में से नहीं है। (3) इराब अल-कुरान, अल-नहहास 1/271। (4) अल-तबरी ने इन उल्लेखों को 2/675 में उद्धृत किया है। (5) अल-सबआ पृष्ठ 171, और अल-तयसीर पृष्ठ 77। (6) देखें उनकी किताब 'मआनी अल-कुरान' 1/225।

سورہ البقرہ: آیت 148 [صفحہ] 449

...دوسرے، اور اسم "المِرِيَّة" ہے - کسرہ (زیر) کے ساتھ - اور کبھی اسے ضمہ (پیش) کے ساتھ بھی پڑھا جاتا ہے۔ اور "مَرَيْتُ الناقة مَرْياً": جب تم اونٹنی کے تھن کو سہلاؤ تاکہ وہ دودھ دے، اور "أمرت" کا مطلب ہے: جب اس کا دودھ بہہ نکلا۔ اسم "المِرية" کسرہ کے ساتھ ہے - اور اسے ضمہ کے ساتھ پڑھنا غلط ہے (1)۔ "المِرية" کا مطلب شک ہے؛ اسے ضمہ کے ساتھ بھی پڑھا جا سکتا ہے، اور دونوں طرح سے پڑھا گیا ہے (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَلِكُلٍّ وِجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيهَا فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرَاتِ أَيْنَ مَا تَكُونُوا يَأْتِ بِكُمُ اللَّهُ جَمِيعًا إِنَّ اللَّهَ عَلَى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيرٌ ﴿١٤٨﴾﴾

اس میں چار مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلِكُلٍّ وِجْهَةٌ﴾۔ "الوجهة" کا وزن "فِعْلَة" ہے، جو "المواجهة" (سامنا کرنے) سے ماخوذ ہے۔ "الوجهة"، "الوجهة" (ضمہ کے ساتھ) اور "الوجه" ایک ہی معنی میں ہیں، اور یہاں مراد قبلہ ہے، یعنی: وہ تمہارے قبلے کی پیروی نہیں کرتے، اور نہ تم ان کے قبلے کی پیروی کرتے ہو۔ ہر ایک کے لیے ایک رخ ہے، چاہے وہ حق پر مبنی ہو یا خواہشِ نفس پر۔

دوسرا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿هُوَ مُوَلِّيهَا﴾۔ "ھو" کی ضمیر لفظ "کل" کی طرف لوٹتی ہے، نہ کہ اس کے معنی (جمع) کی طرف؛ کیونکہ اگر معنی کے اعتبار سے ہوتی تو کہا جاتا: "ہم مولّوھا وجوھہم" (وہ اپنے چہروں کو اس کی طرف پھیرنے والے ہیں)۔ پس "ھا" پہلا مفعول ہے، اور دوسرا مفعول محذوف ہے، یعنی: وہ اپنا چہرہ اور اپنی ذات اس کی طرف پھیرنے والا ہے (3)۔ مطلب یہ ہے کہ: ہر ملت والے کے لیے ایک قبلہ ہے؛ صاحبِ قبلہ اپنا چہرہ اس کی طرف پھیرتا

ہے، لفظ "کل" کے اعتبار سے۔ یہی قول ربیع، عطاء اور ابن عباس کا ہے (4)۔ علی بن سلیمان نے کہا: "مولیھا" کا مطلب ہے "متولیھا" (اس کا متولی ہونے والا)۔

ابن عباس اور ابن عامر نے اسے مجہول کے صیغے میں "مَوْلَاھا" پڑھا ہے (5)۔ اس قرات کے مطابق ضمیر ایک فرد کے لیے ہے، یعنی: ہر ایک شخص کے لیے ایک قبلہ ہے، وہ شخص "مَوْلَاھا" ہے یعنی اسے اس کی طرف پھیرا گیا ہے۔ یہ بات زجاج نے کہی ہے (6)۔

اور یہ بھی ممکن ہے کہ جمہور کی قرات میں "ھو" اللہ عزوجل کے نام کی ضمیر ہو، اگرچہ اس کا ذکر پہلے نہ ہوا ہو...

(1) یعنی "مریة الناقة" (اونٹنی کا دودھ دوہنے) کے بارے میں؛ اس میں سوائے کسرہ کے اور کچھ نہیں، جیسا کہ جوہری نے اپنی "صحاح" میں ثعلب سے نقل کیا ہے۔ (2) الصحاح (مرا)، اور ضمہ کے ساتھ قرات کا ذکر ابو حیان نے البحر المحیط 205/7 میں حسن سے کیا ہے، اور یہ عشرہ (دس متواتر) قرات میں سے نہیں ہے۔ (3) إعراب القرآن للنحاس 271/1۔ (4) طبری نے ان آثار کو 675/2 میں نقل کیا ہے۔ (5) السبعة ص 171، اور التیسیر ص 77۔ (6) دیکھئے ان کی کتاب "معانی القرآن" 225/1۔

Surah Al-Baqarah: Verse 148 | 450

...has a mention, as it is known that Allah, Mighty and Majestic is He, is the doer of that. The meaning is: for every follower of a faith, there is a direction (Qiblah) that Allah has turned him towards.

Al-Tabari narrated (1): that some people read: "walikullun wijhatin" (and for each a direction) by adding "kull" (each/every) to "wijhah" (direction).

Ibn Atiyyah said: Al-Tabari considered it an error, but it is plausible, meaning: so race towards good deeds for every direction and for you, and do not object to what He has commanded you between this and that, meaning: your duty is only obedience in everything. He placed His saying: {To each is a direction} before the command in His saying: {So race towards good deeds} to emphasize the direction, just as the object is placed first. Abu Amr Al-Dani mentioned this reading from Ibn Abbas, may Allah be pleased with them. The 'waw' was preserved in 'wijhah' to distinguish it from 'iddah' and 'zinah', because 'jihah' is an adverb of place/time, while those are verbal nouns (masdar). Abu Ali said: Some people thought it was a verbal noun that deviated from the standard rule, so it remained. Others thought it was a noun and not a verbal noun. Someone other than Abu Ali said: If you want the verbal noun, you say: 'jihah', and 'al-jihah' may be used for the adverb (2).

Third: His saying, Exalted is He: {So race towards good deeds}, meaning: towards good things, so the preposition was omitted, meaning: hasten to what Allah, Mighty and Majestic is He, has commanded you regarding facing the Sacred House (3), even if it includes an encouragement to initiate and hasten towards all acts of obedience in general. The intended meaning is what was mentioned regarding facing [the Qiblah] due to the context of the verses. The intended meaning is: hastening to pray at the beginning of its time, and Allah Almighty knows best. Al-Nasa'i narrated (4) from Abu Huraira, may Allah be pleased with him, that the Messenger of Allah ﷺ said: "The likeness of the one who goes early to the [Friday] prayer is like the one who offers a camel as a sacrifice, then the one after him is like the one who offers a cow, then the one after him is like the one who offers a ram, then the one after him is like the one who offers a chicken, then the one after him is like the one who offers an egg."

And Al-Daraqutni narrated from Abu Huraira, may Allah be pleased with him, that he said: The Messenger of Allah ﷺ said: "Indeed...

(1) In his Tafsir 2/678. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/224, and the reading of Ibn Abbas was mentioned by Ibn Khalawayh in "The Deviant Readings" p. 10. (3) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/271. (4) Al-Mujtaba 2/116, and it is in Ahmad (10568), Al-Bukhari (929), and Muslim (24) p. 587.

सूरह अल-बक़रह: आयत 148 | 450

...का उल्लेख है, क्योंकि यह ज्ञात है कि अल्लाह, महान और प्रतापी है, वह ऐसा करने वाला है। अर्थ यह है: धर्म के प्रत्येक अनुयायी के लिए एक दिशा (किबला) है, जिसकी ओर अल्लाह ने उसे मोड़ा है।

अल-तबरी ने उल्लेख किया है (1): कि कुछ लोगों ने पढ़ा: "वलिकुल्लुन विज्हतिन" (और प्रत्येक के लिए एक दिशा है) "कुल्ल" (प्रत्येक) को "विज्ह" (दिशा) के साथ जोड़कर।

इब्न अतिय्याह ने कहा: अल-तबरी ने इसे एक गलती माना, लेकिन यह तर्कसंगत है, अर्थात: हर दिशा के लिए और आपके लिए अच्छे कार्यों में आगे बढ़ें, और इस और उसके बीच जो उसने आपको आदेश दिया है उसमें आपत्ति न करें, अर्थात: आपका कर्तव्य केवल सभी में आज्ञाकारिता है। उन्होंने अपने कथन: {प्रत्येक के लिए एक दिशा है} को अपने कथन: {इसलिए अच्छे कार्यों में दौड़ें} में आदेश से पहले रखा ताकि दिशा पर ज़ोर दिया जा सके, जैसे कि कर्म को पहले रखा जाता है। अबू अम्र अद-दानी ने इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से इस पाठ का उल्लेख किया है। 'विज्ह' में 'वाव' को 'इद्दा' और 'ज़िना' से अलग करने के लिए सुरक्षित रखा गया था, क्योंकि 'जिह' एक क्रिया विशेषण (स्थान/समय) है, जबकि वे भाववाचक संज्ञाएं(मस्दर) हैं। अबू अली ने कहा: कुछ लोग मानते थे कि यह एक भाववाचक संज्ञा है जो मानक नियम से भटक गई थी, इसलिए यह बनी रही। दूसरों का मानना था कि यह एक संज्ञा है और भाववाचक संज्ञा नहीं है। अबू अली के अलावा किसी अन्य ने कहा: यदि आप भाववाचक संज्ञा चाहते हैं, तो आप कहते हैं: 'जिह', और 'अल-जिह' का उपयोग क्रिया विशेषण के लिए किया जा सकता है (2)।

तीसरा: अल्लाह तआला का कथन: {इसलिए अच्छे कार्यों की ओर दौड़ें}, अर्थात: अच्छे कार्यों की ओर, इसलिए पूर्वसर्ग को हटा दिया गया था, अर्थात: अल्लाह, महान और प्रतापी, ने पवित्र घर (काबा) की ओर मुख करने का जो आदेश दिया है, उस पर जल्दी करें (3), भले ही इसमें सामान्य रूप से आज्ञाकारिता के सभी कार्यों के प्रति पहल करने और शीघ्रता करने का प्रोत्साहन शामिल हो। आयतों के संदर्भ के कारण मुख करने (क़िबला) के संबंध में जो उल्लेख किया गया है, वही अर्थ अभिप्रेत है। अभिप्रेत अर्थ है: समय के प्रारंभ में नमाज़ पढ़ने के लिए जल्दी करना, और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। अन-नसाई ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत किया (4) कि अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "जो व्यक्ति [जुमे की] नमाज़ के लिए जल्दी जाता है, उसका उदाहरण उस व्यक्ति की तरह है जो एक ऊँट की कुर्बानी देता है, फिर उसके बाद वाला उस व्यक्ति की तरह है जो एक गाय

की कुर्बानी देता है, फिर उसके बाद वाला उस व्यक्ति की तरह है जो एक मेढ़े की कुर्बानी देता है, फिर उसके बाद वाला उस व्यक्ति की तरह है जो एक मुर्गी की कुर्बानी देता है, फिर उसके बाद वाला उस व्यक्ति की तरह है जो एक अंडे की कुर्बानी देता है।"

और अद-दारकुतनी ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की कि उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "बेशक...

(1) अपनी तफ़सीर 2/678 में। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/224, और इब्न अब्बास के पाठ का उल्लेख इब्न खालवायह ने "असामान्य पाठ" पृष्ठ 10 में किया है। (3) इराब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/271। (4) अल-मुजतबा 2/116, और यह अहमद (10568), अल-बुखारी (929), और मुस्लिम (24) पृष्ठ 587 में है।

...کا ذکر ہے، کیونکہ یہ معلوم ہے کہ اللہ عزوجل ایسا کرنے والا ہے، اور معنی یہ ہے: ہر صاحبِ ملت کے لیے ایک قبلہ ہے، اللہ اسے اس کی طرف پھیرنے والا ہے۔

اور طبری نے حکایت کی ہے (۱): کہ ایک قوم نے پڑھا: «ولكلٌّ وجهةٍ» 'کل' کی 'وجہہ' کی طرف اضافت کے ساتھ۔

ابن عطیہ نے کہا: طبری نے اسے غلط قرار دیا ہے، حالانکہ یہ درست ہے، یعنی: ہر سمت کے لیے اور تمہارے لیے نیکیوں میں سبقت لے جاؤ، اور جو اس نے تمہیں حکم دیا ہے اس میں اس اور اس کے درمیان اعتراض نہ کرو، یعنی: تم پر صرف تمام معاملات میں اطاعت لازم ہے۔ اور آپ ﷺ نے اپنے قول: ﴿وَلِكُلٍّ وِجْهَةٌ﴾ کو اپنے قول: ﴿فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرَاتِ﴾ میں حکم پر مقدم کیا تاکہ سمت (وجہہ) کی اہمیت واضح ہو، جیسا کہ مفعول کو مقدم کیا جاتا ہے۔ اور ابو عمرو الدانی نے یہ قرأت ابن عباس رضی اللہ عنہما سے ذکر کی ہے۔ اور 'وجہہ' میں 'واؤ' سلامت رہی تاکہ 'عدہ' اور 'زنہ' کے درمیان فرق کیا جا سکے، کیونکہ 'جہہ' ظرف ہے اور وہ مصدر ہیں۔ ابو علی نے کہا: ایک گروہ کا خیال ہے کہ یہ ایک ایسا مصدر ہے جو قیاس سے ہٹ کر ہے، اس لیے سلامت رہا۔ اور ایک گروہ کا خیال ہے کہ یہ اسم ہے، مصدر نہیں ہے۔ اور ابو علی کے علاوہ دیگر نے کہا: اگر تم مصدر چاہو تو کہو: 'جہہ'، اور کبھی ظرف میں 'الجہہ' بھی کہا جاتا ہے (۲)۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرَاتِ﴾ یعنی: نیکیوں کی طرف، پس حرف (جار) حذف کر دیا گیا، یعنی اس چیز کی طرف جلدی کرو جس کا اللہ عزوجل نے تمہیں بیت اللہ کے استقبال (کی طرف رخ کرنے) کا حکم دیا ہے (۳)، اگرچہ اس میں عمومی طور پر تمام اطاعتوں کی طرف

پہل اور جلدی کرنے کی ترغیب شامل ہے، لیکن آیات کے سیاق و سباق کی وجہ سے مراد استقبال (قبلہ رخ ہونا) ہی ہے۔ اور مراد یہ ہے: نماز کو اس کے اول وقت میں پڑھنے کے لیے جلدی کرنا، واللہ تعالیٰ اعلم؛ نسائی نے (٤) حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "نماز کے لیے جلدی جانے والے کی مثال اس شخص کی سی ہے جو اونٹ کا ہدیہ (قربانی) پیش کرتا ہے، پھر اس کے بعد والے کی مثال اس شخص کی سی ہے جو گائے کا ہدیہ پیش کرتا ہے، پھر اس کے بعد والے کی مثال اس شخص کی سی ہے جو مینڈھے کا ہدیہ پیش کرتا ہے، پھر اس کے بعد والے کی مثال اس شخص کی سی ہے جو مرغی کا ہدیہ پیش کرتا ہے، پھر اس کے بعد والے کی مثال اس شخص کی سی ہے جو انڈا ہدیہ پیش کرتا ہے۔"

اور دارقطنی نے حضرت ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "بیشک...

(١) اپنی تفسیر ٦٧٨/٢ میں۔ (٢) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٤، اور ابن عباس کی قرأت ابن خالویہ نے القراءات الشاذہ ص ١٠ میں ذکر کی ہے۔ (٣) اعراب القرآن للنحاس ١/ ٢٧١۔ (٤) المجتبی ١١٦/٢، اور یہ احمد (١٠٥٦٨)، بخاری (٩٢٩)، اور مسلم (٢٤) ص ٥٨٧ میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 148 451

...one of you prays the prayer at its time, while he has left from the first part of the time that which is better for him than his family and his wealth."(1). Malik reported it from Yahya bin Sa'id as his saying (2).

And Al-Daraqutni also narrated from Ibn Umar who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "The best of deeds is prayer at its earliest time."(3). And in the hadith of Ibn Mas'ud: "its earliest time" by omitting "at" (4).

And he also narrated from Ibrahim bin Abdul Malik bin (5) Abi Mahdhura, from his father, from his grandfather who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "The beginning of the time is the pleasure of Allah, the middle of the time is the mercy of Allah, and the end of the time is the forgiveness of Allah."(6).

(1) Sunan al-Daraqutni 1/248. In its chain is Ibrahim bin al-Fadl al-Makhzumi, who is abandoned in hadith, as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Taqrib al-Tahdhib. It was also reported by Abdul Razzaq in Al-Musannaf (2225) from Talq bin Habib in a disconnected form (mursal), and in its chain is Abu Bakr bin Abi Sabra; Al-Hafiz Ibn Hajar said in Al-Taqrib: They accused him of fabrication. It was also reported by Ibn al-Mundhir in Al-Awsat 2/357 with an authentic chain from the path of Al-Walid bin Abdul Rahman Al-Jurashi, from Ibn Umar, similarly, as a stopped (mawquf) narration. (2) Al-Muwatta 1/12. Yahya bin Sa'id: is Al-Ansari. (3) Sunan al-Daraqutni 1/247. In the chain of this hadith from Ibn Umar is Yaqub bin al-Walid, and Ahmad and others considered him a liar, as mentioned by Al-Hafiz Ibn Hajar in Taqrib al-Tahdhib. However, this wording: "its earliest time" is narrated from Ibn Mas'ud through authentic paths, and the author will refer to it. (4) Sunan al-Daraqutni 1/246, and its wording is: I asked the Messenger of Allah (peace be upon him): Which deeds are best? He said: "Prayer at its earliest time." Its chain is authentic. It is in the Musnad (3890), Sahih al-Bukhari (527), and Sahih Muslim (85) with the wording: "Prayer at its time," and see other narrations for the word "first" in the commentary on the Musnad. (5) In (d) and (m): "from", and what is established is from (z) and the margin of (z), which is correct. (6) Sunan al-Daraqutni 1/249-250, and it is through the path of Ibrahim bin Zakariya, from Ibrahim bin Abdul Malik. It was also reported by Ibn Adi in Al-Kamil 1/255, and Al-Bayhaqi 1/435. Ibn Adi said: Ibrahim bin Zakariya narrated falsehoods from reliable narrators. End quote. Al-Bayhaqi weakened the hadith then said: This hadith was narrated from Ibn Abbas, Jarir bin Abdullah, and Anas as a raised (marfu') narration, but it is nothing, and it has an origin in the saying of Al-

Baqir. Ibn al-Jawzi said in Al-Tahqiq 1/287: Abu Hatim al-Razi said: Ibrahim bin Zakariya is unknown, and the hadith he narrated is rejected (munkar). Ibn al-Mulaqqin said in Khulasat al-Badr al-Munir 1/90: It is a hadith that is not authentic from any of its paths. Ahmad said: This is not established. Al-Hakim said: I do not know it from any authentic source, nor from any of the companions; rather the narration is from Abu Ja'far al-Baqir. The narration referred to by Al-Hakim was reported by Al-Bayhaqi 1/436.

सूरह अल-बकरा: आयत 148 451

...आप में से एक अपनी नमाज़ उसके समय पर पढ़ता है, जबकि उसने शुरू के समय का वह हिस्सा छोड़ दिया है जो उसके लिए उसके परिवार और धन से बेहतर है।"(1)। और इसे मालिक ने याह्या बिन सईद के कथन के रूप में उद्धृत किया है (2)।

और दारक़ुतनी ने इब्न उमर से भी रिवायत की है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "सबसे अच्छा काम नमाज़ को उसके पहले वक्त में पढ़ना है।"(3)। और इब्न मसूद की हदीस में: "उसका पहला वक्त" बिना शब्द "में" के है (4)।

और उन्होंने इब्राहिम बिन अब्दुल मलिक बिन (5) अबी महज़ूरा से, उन्होंने अपने पिता से, उन्होंने अपने दादा से रिवायत की, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "वक्त की शुरुआत अल्लाह की खुशी है, वक्त का मध्य अल्लाह की रहमत है, और वक्त का अंत अल्लाह की माफ़ी है।"(6)।

(1) सुनन अल-दारक़ुतनी 1/248, और इसकी श्रृंखला में इब्राहिम बिन अल-फ़दल अल-मखज़ूमी है, जिसे हदीस में छोड़ दिया गया (मतरूक) है, जैसा कि अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने तक़रीब अल-तहज़ीब में उल्लेख किया है। इसे अब्दुल रज़ाक ने अल-मुसन्नफ़ (2225) में तलक़ बिन हबीब से मुरसल के रूप में उद्धृत किया है, और इसकी श्रृंखला में अबू बक्र बिन अबी सबरा है; अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने तक़रीब में कहा: उन पर हदीस गढ़ने का आरोप लगाया गया। इब्न अल-मुन्ज़िर ने अल-औसत 2/357 में अल-वलीद बिन अब्दुल रहमान अल-जुरशी के माध्यम से इब्न उमर से एक सही श्रृंखला के साथ इसी तरह मौक़ूफ़ (कथन) के रूप में उद्धृत किया है। (2) अल-मुवत्ता 1/12। याह्या बिन सईद: अल-अंसारी हैं। (3) सुनन अल-दारक़ुतनी 1/247, और इब्न उमर की इस हदीस की श्रृंखला में याकूब बिन अल-वलीद है, जिसे अहमद और अन्य ने झूठा कहा है जैसा कि अल-हाफ़िज़ इब्न हजर ने तक़रीब अल-तहज़ीब में उल्लेख किया है, हालांकि यह शब्द: "उसका पहला वक्त" इब्न मसूद से सही रास्तों से वर्णित है, और लेखक इसका संदर्भ देंगे। (4) सुनन अल-दारक़ुतनी 1/246, और इसके शब्द हैं: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ से पूछा: कौन से कार्य सर्वोत्तम हैं? उन्होंने कहा: "नमाज़ उसके पहले वक्त में।" और इसकी श्रृंखला सही है। यह मुसनद (3890), सही बुखारी (527), और सही मुस्लिम (85) में इन शब्दों के साथ है: "नमाज़ उसके समय पर", और मुसनद पर टिप्पणी में शब्द "पहला" के लिए अन्य रिवायतों को देखें। (5) (द) और (म) में: "से", और जो स्थापित है वह (ज़) और

(ज़) के हाशिये से है, जो सही है। (6) सुनन अल-दारक़ुतनी 1/249-250, और यह इब्राहिम बिन ज़कारिया के माध्यम से इब्राहिम बिन अब्दुल मलिक से है। इसे इब्न अदी ने अल-कामिल 1/255 में और अल-बैहकी ने 1/435 में भी उद्धृत किया है। इब्न अदी ने कहा: इब्राहिम बिन ज़कारिया ने विश्वसनीय लोगों से झूठी बातें बयान कीं। अल-बैहकी ने हदीस को कमज़ोर बताया फिर कहा: यह हदीस इब्न अब्बास, जरीर बिन अब्दुल्ला और अनस से मरफ़ू(पैगंबर तक पहुँची हुई) के रूप में वर्णित है, लेकिन यह कुछ भी नहीं है, और इसका आधार अल-बाकिर के कथन में है। इब्न अल-जौज़ी ने अल-तहक़ीक़ 1/287 में कहा: अबू हातिम अल-राज़ी ने कहा: इब्राहिम बिन ज़कारिया अज्ञात है, और जो हदीस उसने बयान की वह मुनकर (अस्वीकार्य) है। इब्न अल-मुलाक़िन ने खुलासत अल-बद्र अल-मुनीर 1/90 में कहा: यह ऐसी हदीस है जो इसके सभी रास्तों से सही नहीं है। अहमद ने कहा: यह स्थापित नहीं है। हाकिम ने कहा: मैं इसे किसी भी सही तरीके से या किसी भी सहाबी से याद नहीं करता, बल्कि रिवायत केवल अबू जाफर अल-बाकिर से है। वह रिवायत जिसकी ओर हाकिम ने संकेत किया, उसे अल-बैहकी ने 1/436 में उद्धृत किया है।

سورة البقرہ: آیت ۱۴۸ ٤٥١

...تم میں سے کوئی نماز کو اس کے وقت پر پڑھتا ہے حالانکہ اس نے شروع کے وقت کا وہ حصہ چھوڑ دیا ہے جو اس کے لیے اس کے گھر والوں اور مال سے بہتر ہے۔"(1)۔ اور اسے مالک نے یحییٰ بن سعید کے قول کے طور پر روایت کیا ہے (2)۔

اور دارقطنی نے ابن عمر سے بھی روایت کیا ہے کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "بہترین عمل نماز کو اس کے اول وقت میں ادا کرنا ہے۔"(3)۔ اور ابن مسعود کی حدیث میں لفظ "في" (میں) کے بغیر "اول وقتها" ہے۔ (4)۔

اور انہوں نے ابراہیم بن عبد الملک بن (5) ابی محذورہ، اپنے والد سے، وہ اپنے دادا سے روایت کرتے ہیں کہ رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "وقت کا آغاز اللہ کی خوشنودی ہے، وقت کا درمیانی حصہ اللہ کی رحمت ہے، اور وقت کا آخری حصہ اللہ کی معافی ہے۔"(6)۔

(۱) سنن الدارقطنی ۲٤۸/۱، اور اس کی سند میں ابراہیم بن الفضل المخزومی ہے، جو متروک الحدیث ہے، جیسا کہ حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں ذکر کیا ہے۔ اور اسے عبد الرزاق نے المصنف (۲۲۲۵) میں طلق بن حبیب سے مرسل روایت کیا ہے، اور اس کی سند میں ابوبکر بن ابی سبرہ ہے؛ حافظ ابن حجر نے تقریب میں کہا: ان پر وضع (حدیث گھڑنے) کی تہمت لگائی گئی۔ اور اسے ابن المنذر نے الاوسط ۳٥۷/۲ میں ولید بن عبد الرحمن الجُرشی کے طریق سے ابن عمر سے صحیح سند کے ساتھ اس کی مانند موقوفاً روایت کیا ہے۔ (۲) الموطأ ۱۲/۱۔ یحییٰ بن سعید: یہ الانصاری ہیں۔ (۳) سنن الدارقطنی ۲٤۷/۱، اور ابن عمر کی اس حدیث کی سند میں یعقوب بن الولید ہے، جس کی امام احمد اور دیگر نے تکذیب کی ہے جیسا کہ حافظ ابن حجر نے تقریب التہذیب میں ذکر کیا ہے، سوائے اس کے کہ یہ لفظ: "اول وقتها" ابن مسعود سے صحیح طرق سے

مروی ہے، اور مصنف اس کی طرف اشارہ کریں گے۔ (٤) سنن الدارقطنی ٢٤٦/١، اور اس کے لفظ ہیں: میں نے رسول اللہ ﷺ سے پوچھا: کون سے اعمال افضل ہیں؟ آپ نے فرمایا: "نماز اول وقت میں۔" اور اس کی سند صحیح ہے۔ یہ مسند (٣٨٩٠)، صحیح بخاری (٥٢٧)، اور صحیح مسلم (٨٥) میں اس لفظ کے ساتھ ہے: "نماز اس کے وقت پر"، اور مسند کے حاشیے میں لفظ "اول" کی دیگر روایات کو دیکھیں۔ (٥) نسخہ (د) اور (م) میں: "عن" (سے) ہے، اور جو ثابت ہے وہ نسخہ (ظ) اور (ز) کے حاشیے سے ہے، اور وہی درست ہے۔ (٦) سنن الدارقطنی ٢٤٩/١-٢٥٠، اور یہ ابراہیم بن زکریا کے طریق سے ہے، وہ ابراہیم بن عبد الملک سے روایت کرتے ہیں۔ اور اسے ابن عدی نے الکامل ٢٥٥/١ میں، اور بیہقی نے ٤٣٥/١ میں بھی روایت کیا ہے۔ ابن عدی نے کہا: ابراہیم بن زکریا ثقہ لوگوں سے باطل باتیں روایت کرتا تھا۔ انتہیٰ۔ بیہقی نے حدیث کو ضعیف قرار دیا پھر کہا: یہ حدیث ابن عباس، جریر بن عبد اللہ اور انس سے مرفوع مروی ہے، لیکن یہ کچھ بھی نہیں ہے، اور اس کی اصل قولِ باقر میں ہے۔ ابن الجوزی نے التحقیق ٢٨٧/١ میں کہا: ابو حاتم الرازی نے کہا: ابراہیم بن زکریا مجہول ہے، اور جو حدیث اس نے روایت کی وہ منکر ہے۔ ابن الملقن نے خلاصۃ البدر المنیر ٩٠/١ میں کہا: یہ ایسی حدیث ہے جو اپنے تمام طرق سے صحیح نہیں ہے۔ امام احمد نے کہا: یہ ثابت نہیں ہوتی۔ حاکم نے کہا: میں اسے کسی صحیح پہلو سے یا کسی صحابی سے یاد نہیں کرتا، بلکہ روایت صرف ابوجعفر الباقر سے ہے۔ وہ روایت جس کی طرف حاکم نے اشارہ کیا اسے بیہقی نے ٤٣٦/١ میں روایت کیا ہے۔

Ibn al-Arabi added (1): Abu Bakr said: "Allah's pleasure is more beloved to us than His forgiveness, for His pleasure is for the doers of good and His forgiveness is for the negligent." This is the choice of Al-Shafi'i. Abu Hanifa said: "The end of the time is better because it is the time of obligation."

As for Malik, he detailed the statement: as for Fajr (Dawn) and Maghrib (Sunset), the beginning of the time is better for them. Regarding Fajr, it is due to the hadith of Aisha (may Allah be pleased with her) who said: "The Messenger of Allah ﷺ used to pray Fajr, and the women would leave wrapped in their garments, unrecognizable due to the darkness." In another narration: "wrapped up." As for Maghrib, it is due to the hadith of Salama bin al-Akwa' that the Messenger of Allah ﷺ used to pray Maghrib when the sun had set and disappeared behind the veil. Both were narrated by Muslim (2).

Regarding Isha (Evening); delaying it is better for whoever is able to do so. Ibn Umar narrated: "We stayed one night waiting for the Messenger of Allah ﷺ for the later Isha prayer. He came out to us when a third of the night had passed, or after that, and we did not know if something occupied him with his family or something else. He said when he came out: 'You are waiting for a prayer that the followers of no other religion are waiting for except you. Were it not that it would be difficult for my Ummah, I would have prayed with them at this hour'" (3). And in Al-Bukhari (4) from Anas who said: "The Prophet ﷺ delayed the Isha prayer until midnight, then he prayed...", and he mentioned the hadith. Abu Barzah (5) said: "The Prophet ﷺ used to prefer delaying it."

Regarding Dhuhr (Noon), it comes upon people suddenly, so it is recommended to delay it a little so they can prepare and gather. Abu al-Faraj said: Malik said (6): "The beginning of the time is better in every prayer except Dhuhr" (7).

---

(1) Ahkam al-Qur'an 1/44. (2) Hadith of Aisha No. (645): (232), and it is with Ahmad (24096), and Al-Bukhari (867). Hadith of Salama bin al-Akwa' No. (636), and it is with Ahmad (16550), and Al-Bukhari (561). (3) Narrated with this wording by Muslim (639), and similar to it with Ahmad (4826), (5611), and Al-Bukhari (570). (4) No. (572), and it is with Ahmad (12880), and Muslim (640). (5) Al-Bukhari mentioned it after hadith (571), and Abu Barzah is Nadla bin Ubayd, a companion of the Prophet ﷺ, who converted to Islam early, witnessed the conquest of Mecca, and died in Merv in the

year (64 AH). As-Siyar 3/40. (6) Al-Istidhkar 1/190. Abu al-Faraj: he is Amr bin Muhammad al-Maliki, author of the well-known book 'al-Hawi' in the Maliki school, died in the year (331 AH). Ad-Dibaj al-Mudhahhab 2/127. (7) In (D), (Z), and (M): for Dhuhr, and what is established is from (Zah), which is consistent with Al-Istidhkar.

सूरह अल-बकरा: आयत 148 | 452

इब्न अल-अरबी ने जोड़ा (1): अबू बक्र ने कहा: "अल्लाह की प्रसन्नता हमें उसकी क्षमा से अधिक प्रिय है, क्योंकि उसकी प्रसन्नता नेक काम करने वालों के लिए है और उसकी क्षमा लापरवाही करने वालों के लिए है।" यह अल-शाफ़ई की पसंद है। अबू हनीफ़ा ने कहा: "समय का अंत बेहतर है क्योंकि यह दायित्व का समय है।"

जहाँ तक मलिक का सवाल है, उन्होंने इस कथन का विस्तार से वर्णन किया: फज्र (भोर) और मग़रिब (सूर्यास्त) के लिए, समय की शुरुआत उनके लिए बेहतर है। फज्र के संबंध में, यह आयशा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस के कारण है जिन्होंने कहा: "अल्लाह के रसूल ﷺ फज्र की नमाज पढ़ते थे, और महिलाएं अपने कपड़ों में लिपटी हुई निकलती थीं, अंधेरे के कारण पहचानी नहीं जा सकती थीं।" एक अन्य वर्णन में: "लिपटी हुई।" मग़रिब के लिए, यह सलमा बिन अल-अकवा की हदीस के कारण है कि अल्लाह के रसूल ﷺ मग़रिब की नमाज तब पढ़ते थे जब सूरज डूब जाता था और ओझल हो जाता था। दोनों को मुस्लिम (2) द्वारा वर्णित किया गया है।

ईशा (शाम) के संबंध में; जो कोई ऐसा करने में सक्षम हो उसके लिए इसमें देरी करना बेहतर है। इब्न उमर ने वर्णन किया: "हम एक रात अल्लाह के रसूल ﷺ की बाद वाली ईशा की नमाज के लिए प्रतीक्षा करते रहे। वह हमारे पास तब निकले जब रात का एक तिहाई हिस्सा बीत चुका था, या उसके बाद, और हमें नहीं पता था कि वह अपने परिवार के साथ किसी काम में व्यस्त थे या कुछ और। उन्होंने बाहर आने पर कहा: 'तुम एक ऐसी नमाज का इंतजार कर रहे हो जिसका इंतजार तुम्हारे सिवा किसी और धर्म के अनुयायी नहीं कर रहे हैं। यदि यह मेरी उम्मत के लिए कठिन न होता, तो मैं इसी घड़ी उनके साथ नमाज पढ़ता'" (3)। और अल-बुखारी (4) में अनस से रिवायत है कि: "नबी ﷺ ने ईशा की नमाज में आधी रात तक देरी की, फिर नमाज पढ़ी...", और उन्होंने हदीस का जिक्र किया। अबू बरज़ा (5) ने कहा: "नबी ﷺ इसमें देरी करना पसंद करते थे।"

जुहर (दोपहर) के बारे में, यह लोगों पर अचानक आती है, इसलिए इसमें थोड़ी देरी करने की सिफारिश की जाती है ताकि वे तैयारी कर सकें और इकट्ठा हो सकें। अबू अल-फ़रज ने कहा: मलिक ने कहा (6): "जुहर (7) को छोड़कर हर नमाज में समय की शुरुआत बेहतर है।"

---

(1) अहकाम अल-कुरान 1/44। (2) आयशा की हदीस नंबर (645): (232), और यह अहमद (24096) और अल-बुखारी (867) के पास है। सलमा बिन अल-अकवा की हदीस नंबर (636), और

यह अहमद (16550) और अल-बुखारी (561) के पास है। (3) इन शब्दों के साथ मुस्लिम (639) द्वारा वर्णित, और अहमद (4826), (5611) और अल-बुखारी (570) के पास इसके समान। (4) नंबर (572), और यह अहमद (12880) और मुस्लिम (640) के पास है। (5) अल-बुखारी ने इसे हदीस (571) के बाद उल्लेख किया, और अबू बरज़ा नदला बिन उबैद हैं, जो नबी ﷺ के एक साथी थे, जिन्होंने जल्दी इस्लाम कुबूल किया, मक्का की विजय के साक्षी बने और साल (64 हिजरी) में मर्व में उनकी मृत्यु हुई। अस-सियार 3/40। (6) अल-इस्तिधकार 1/190। अबू अल-फ़रज: वह अम्र बिन मुहम्मद अल-मलिकी हैं, मलिकी स्कूल में प्रसिद्ध पुस्तक 'अल-हावी' के लेखक, वर्ष (331 हिजरी) में उनकी मृत्यु हुई। अद-दीबाज अल-मुधहब 2/127। (7) (द), (ज़) और (म) में: ज़ुहर के लिए, और जो स्थापित है वह (ज़ह) से है, जो अल-इस्तिधकार के अनुरूप है।

ابن العربی (1) نے مزید کہا: ابوبکر نے کہا: "اللہ کی رضا ہمیں اس کی معافی سے زیادہ پیاری ہے، کیونکہ اس کی رضا محسنین (نیک لوگوں) کے لیے ہے اور اس کی معافی کوتاہی کرنے والوں کے لیے ہے۔" یہ شافعی کا اختیار ہے۔ امام ابوحنیفہ نے فرمایا: "آخری وقت افضل ہے کیونکہ یہ وجوب کا وقت ہے۔"

جہاں تک امام مالک کا تعلق ہے، انہوں نے تفصیل سے بیان کیا: فجر اور مغرب کے لیے اول وقت افضل ہے، جہاں تک فجر کا تعلق ہے، یہ عائشہ رضی اللہ عنہا کی حدیث کی وجہ سے ہے جس میں انہوں نے فرمایا: "رسول اللہ ﷺ فجر کی نماز پڑھتے تھے، اور عورتیں اپنی چادروں میں لپٹی ہوئی واپس جاتیں، اندھیرے کی وجہ سے پہچانی نہ جاتیں۔" ایک روایت میں ہے: "لپٹی ہوئی"۔ مغرب کے بارے میں، سلمہ بن اکوع کی حدیث ہے کہ رسول اللہ ﷺ مغرب کی نماز اس وقت پڑھتے تھے جب سورج غروب ہو جاتا اور پردے میں چھپ جاتا۔ دونوں کو مسلم (2) نے روایت کیا ہے۔

اور رہا عشاء؛ تو اس میں تاخیر اس کے لیے افضل ہے جو اس پر قادر ہو۔ ابن عمر رضی اللہ عنہ نے روایت کیا، انہوں نے کہا: "ہم ایک رات رسول اللہ ﷺ کا عشاء کی نماز کے لیے انتظار کرتے رہے، آپ ﷺ ہمارے پاس اس وقت نکلے جب تہائی رات گزر چکی تھی یا اس کے بعد، ہمیں نہیں معلوم تھا کہ آپ ﷺ کو اہل خانہ کے کسی کام نے مشغول کر دیا تھا یا کسی اور چیز نے۔ آپ ﷺ نے نکلتے ہی فرمایا: 'تم ایسی نماز کا انتظار کر رہے ہو جس کا انتظار تمہارے سوا کسی دوسرے دین والے نہیں کر رہے، اور اگر میری امت پر گراں نہ ہوتا تو میں انہیں اسی وقت نماز پڑھاتا'" (3)۔ اور بخاری (4) میں انس رضی اللہ عنہ سے مروی ہے، انہوں نے کہا: "نبی ﷺ نے عشاء کی نماز

آدھی رات تک مؤخر کی، پھر نماز پڑھی..."، اور انہوں نے حدیث ذکر کی۔ ابو برزہ (5) نے کہا: "نبی ﷺ اسے مؤخر کرنا پسند فرماتے تھے۔"

اور رہا ظہر، تو وہ لوگوں پر غفلت (بے خبری) میں آتی ہے، لہذا اسے تھوڑا مؤخر کرنا مستحب ہے تاکہ لوگ تیاری کر لیں اور جمع ہو جائیں۔ ابوالفرج نے کہا: امام مالک (6) نے فرمایا: "ظہر (7) کے علاوہ ہر نماز میں اول وقت افضل ہے۔"

---

(1) احکام القرآن 1/44۔ (2) حدیث عائشہ نمبر (645): (232)، اور یہ احمد (24096)، اور بخاری (867) کے پاس ہے۔ اور سلمہ بن اکوع کی حدیث نمبر (636)، اور یہ احمد (16550)، اور بخاری (561) کے پاس ہے۔ (3) اسے ان الفاظ کے ساتھ مسلم (639) نے روایت کیا ہے، اور اس کے مانند احمد (4826)، (5611)، اور بخاری (570) کے پاس ہے۔ (4) نمبر (572)، اور یہ احمد (12880)، اور مسلم (640) کے پاس ہے۔ (5) بخاری نے اسے حدیث (571) کے بعد تعلیقاً ذکر کیا ہے، اور ابو برزہ نضلہ بن عبید ہیں، صحابی رسول ﷺ ہیں، قدیم الاسلام ہیں، فتح مکہ میں حاضر ہوئے، مرو میں سنہ (64ھ) میں وفات پائی۔ السیر 3/40۔ (6) الاستذکار 1/190۔ اور ابوالفرج: یہ عمرو بن محمد المالکی ہیں، ان کی مذہب مالکی میں مشہور کتاب الحاوی ہے، سنہ (331ھ) میں وفات پائی۔ الدیباج المذھب 127/2۔ (7) (د)، (ز) اور (م) میں: ظہر کے لیے، اور جو ثابت ہے وہ (ظ) سے ہے، جو الاستذکار کے موافق ہے۔

٤٥٣ Surah Al-Baqarah: Verse 148

...in intense heat. Ibn Abi Uwais said: Malik disliked praying Dhuhr exactly at the sun's meridian (Zawal), but rather after that, and he would say: "That is the prayer of the Khawarij"(1).

In Sahih al-Bukhari and Sahih al-Tirmidhi, from Abu Dharr al-Ghifari, who said: We were with the Prophet (PBUH) on a journey, and the Mu'adhin wanted to call the Adhan for Dhuhr. The Prophet (PBUH) said: "Wait for it to cool down." Then he wanted to call the Adhan again, and he said to him: "Wait for it to cool down," until we saw the shadows of the hills. Then the Prophet (PBUH) said: "Indeed, the intensity of the heat is from the exhaling of Hellfire; so when the heat becomes intense, delay the prayer until it cools down"(2). In Sahih Muslim, from Anas, it is narrated that the Prophet (PBUH) used to pray Dhuhr when the sun passed its meridian(3). What reconciles the two hadiths is what Anas narrated: that when it was hot, he would delay the prayer for cooling, and when it was cold, he would hasten it(4).

Abu Isa al-Tirmidhi said(5): A group of scholars chose to delay the Dhuhr prayer during intense heat, which is the opinion of Ibn al-Mubarak, Ahmad, and Ishaq. Al-Shafi'i said(6): Delaying Dhuhr prayer for cooling is only when it is at a [mosque] that people come to from afar. As for one praying alone or in a local congregation, I prefer that he does not delay the prayer during intense heat. Abu Isa said: The meaning for those who chose to delay the prayer(7) in intense heat is more appropriate and closer to following [the Sunnah]. As for what Al-Shafi'i (may Allah have mercy on him) held—that the concession is for those coming from afar and due to hardship for people—Abu Dharr's (RA) hadith contains what points to the contrary of what Al-Shafi'i said. Abu Dharr said: We were with the Prophet (PBUH) on a journey, and Bilal called the Adhan for Dhuhr prayer. The Prophet (PBUH) said: "[O Bilal,] wait for it to cool down, then wait for it to cool down." If it were as Al-Shafi'i held, there would be no meaning for cooling down at that time, since they were gathered during the journey and did not need to come from afar.

---

(1) See Al-Istidhkar 1/349. (2) Sahih al-Bukhari (539), Sunan al-Tirmidhi (158), also in Ahmad (21376), Muslim (616). "Al-Ibrad bi-l-Salah" means delaying it from the intense heat until the day cools down, breezes blow, and shadows extend. "Al-Fayh" means the rising of heat. Ikmal al-Mu'allim 2/580-582. (3) Sahih Muslim (2359): (136) similar but longer; also in Ahmad (12311) (12659) and Al-Bukhari (540). (4) Narrated by An-Nasa'i in Al-Kubra (1497) and Ibn Abd al-Barr in Al-Tamhid 7/5. (5) Al-Sunan 1/296-297,

and what is between brackets is from it. (6) Al-Umm 1/63. (7) In Sunan al-Tirmidhi: "Dhuhr".

४५३ सूरा अल-बकराह: आयत १४८

...अत्यधिक गर्मी में। इब्न अबी उवैस ने कहा: मालिक ज़वाल (सूर्य के मध्य में होने) के ठीक समय पर ज़ुहर की नमाज़ पढ़ना नापसंद करते थे, बल्कि उसके बाद, और कहते थे: "यह खवारिज की नमाज़ है"(१)।

सहीह अल-बुखारी और सहीह अल-तिर्मिज़ी में अबू ज़र अल-ग़िफ़ारी से वर्णित है, उन्होंने कहा: हम एक यात्रा पर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साथ थे, तो मुअज़्ज़िन ने ज़ुहर की अज़ान देनी चाही। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फ़रमाया: "ठंडा होने दो।" फिर उसने अज़ान देनी चाही, तो आपने उससे फ़रमाया: "ठंडा होने दो," यहाँ तक कि हमने टीलों की परछाईं देखी। फिर नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फ़रमाया: "बेशक गर्मी की तीव्रता जहन्नम की साँस से है; इसलिए जब गर्मी तीव्र हो जाए, तो नमाज़ को ठंडा करके(देर से) पढ़ो"(२)। सहीह मुस्लिम में अनस से रिवायत है कि नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ज़ुहर की नमाज़ तब पढ़ते थे जब सूरज ढल जाता था(३)। दोनों हदीसों के बीच जो समन्वय करता है वह अनस की रिवायत है: कि जब गर्मी होती तो आप नमाज़ में देरी करते (ठंडा होने के लिए), और जब सर्दी होती तो जल्दी करते(४)।

अबू ईसा अल-तिर्मिज़ी ने कहा(५): विद्वानों के एक समूह ने अत्यधिक गर्मी में ज़ुहर की नमाज़ में देरी करने को चुना है, और यही इब्न अल-मुबारक, अहमद और इसहाक़ का मत है। अल-शाफ़ई ने कहा(६): ज़ुहर की नमाज़ में इबराद (ठंडा करने के लिए देरी) केवल तब है जब वह [मस्जिद] ऐसी हो जहाँ लोग दूर से आते हों। जहाँ तक अकेले नमाज़ पढ़ने वाले या अपनी बस्ती की मस्जिद में पढ़ने वाले का सवाल है, तो मेरे नज़दीक बेहतर यह है कि वह अत्यधिक गर्मी में नमाज़ में देरी न करे। अबू ईसा ने कहा: अत्यधिक गर्मी में नमाज़ में देरी करने वालों(७) का मत ही अधिक उचित और सुन्नत के अनुसरण के करीब है। जहाँ तक अल-शाफ़ई (रह.) के मत का सवाल है कि यह रियायत दूर से आने वालों और लोगों की कठिनाई के कारण है, तो अबू ज़र (रज़ि.) की हदीस में वह बात है जो अल-शाफ़ई के कहे के विपरीत है। अबू ज़र ने कहा: हम यात्रा में नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के साथ थे, तो बिलाल ने ज़ुहर की अज़ान दी। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) ने फ़रमाया: "[ऐ बिलाल!] ठंडा होने दो, फिर ठंडा होने दो।" अगर बात वैसी होती जैसी अल-शाफ़ई ने कही, तो उस समय इबराद (ठंडा करने) का कोई मतलब नहीं होता, क्योंकि वे यात्रा में एक साथ थे और उन्हें दूर से आने की ज़रूरत नहीं थी।

(१) देखें अल-इस्तिज़कार ३४९/१। (२) सहीह अल-बुखारी (५३९), सुनन अल-तिर्मिज़ी (१५८), और यह अहमद (२१३७६), मुस्लिम (६१६) के पास भी है। नमाज़ के साथ 'इबराद' का अर्थ है: गर्मी और उसकी तीव्रता के कारण नमाज़ में देरी करना यहाँ तक कि दिन ठंडा हो जाए, हवाएँ चलने लगें और परछाइयाँ फैल जाएँ। 'फ़ैह' का अर्थ है गर्मी की चमक। इकमल अल-मुअल्लिम २/५८०-५८२। (३) सहीह मुस्लिम (२३५९): (१३६) इसी तरह विस्तार से, और यह अहमद (१२३११) (१२६५९) और बुखारी (५४०) के पास भी है। (४) इसे अन-नसाई ने अल-कुबरा (१४९७) में और इब्न अब्द अल-बर्र ने अल-तमहीद ५/७ में उद्धृत किया है। (५) अल-सुनन १/२९६-२९७, और कोष्ठक के बीच का हिस्सा उसी से है। (६) अल-उम्म १/६३। (७) सुनन अल-तिर्मिज़ी में: "ज़ुहर"।

453 سورة البقرة: آیت 148

...شدتِ حرارت میں۔ اور ابن ابی اویس نے کہا: مالک (رح) زوال کے وقت ظہر پڑھنا ناپسند کرتے تھے، بلکہ اس کے بعد، اور کہتے تھے: وہ خوارج کی نماز ہے(1)۔

اور صحیح بخاری اور صحیح ترمذی میں ابو ذر غفاری سے مروی ہے، انہوں نے کہا: ہم نبی ﷺ کے ساتھ ایک سفر میں تھے، تو مؤذن نے ظہر کی اذان دینی چاہی۔ نبی ﷺ نے فرمایا: "ٹھنڈا ہونے دو"۔ پھر اس نے اذان دینی چاہی، تو آپ ﷺ نے اس سے فرمایا: "ٹھنڈا ہونے دو" یہاں تک کہ ہم نے ٹیلوں کا سایہ دیکھا۔ پھر نبی ﷺ نے فرمایا: "بیشک گرمی کی شدت جہنم کے سانس سے ہے؛ پس جب گرمی شدید ہو جائے تو نماز کو ٹھنڈا کر کے (تاخیر سے) پڑھو"(2)۔ اور صحیح مسلم میں انس سے مروی ہے کہ نبی ﷺ ظہر کی نماز اس وقت پڑھتے تھے جب سورج ڈھل جاتا تھا(3)۔ اور جو ان دونوں حدیثوں کو جمع کرتا ہے وہ انس کی روایت ہے: کہ جب گرمی ہوتی تو آپ نماز میں ٹھنڈا کرنے کے لیے تاخیر فرماتے، اور جب سردی ہوتی تو جلدی فرماتے(4)۔

ابوعیسیٰ ترمذی نے کہا(5): اہل علم کی ایک جماعت نے شدید گرمی میں ظہر کی نماز میں تاخیر کو پسند کیا ہے، اور یہی ابن المبارک، احمد اور اسحاق کا قول ہے۔ امام شافعی نے کہا(6): ظہر کی نماز میں 'ابراڈ' (ٹھنڈا کرنا) صرف اس صورت میں ہے جب وہ [مسجد] ایسی ہو جہاں لوگ دور سے آتے ہوں۔ رہا تنہا نماز پڑھنے والا اور اپنی قوم کی مسجد میں پڑھنے والا، تو میرے نزدیک بہتر یہ ہے کہ وہ شدید گرمی میں نماز میں تاخیر نہ کرے۔ ابوعیسیٰ نے کہا: شدید گرمی میں نماز میں تاخیر(7) کرنے والوں کا موقف ہی زیادہ بہتر اور اتباع (سنت) کے مشابہ ہے۔ رہا امام شافعی (رحمۃ اللہ علیہ) کا یہ موقف کہ یہ رخصت دور سے آنے والوں اور لوگوں کی مشقت کی وجہ سے ہے، تو ابو ذر (رضی اللہ عنہ) کی حدیث میں وہ بات موجود ہے جو امام شافعی کے

قول کے خلاف پر دلالت کرتی ہے۔ ابو ذر نے کہا: ہم نبی ﷺ کے ساتھ سفر میں تھے، تو بلال نے ظہر کی نماز کے لیے اذان دی، نبی ﷺ نے فرمایا: "[اے بلال!] ٹھنڈا ہونے دو، پھر ٹھنڈا ہونے دو"۔ پس اگر معاملہ ویسا ہی ہوتا جیسا امام شافعی نے کہا، تو اس وقت 'ابراڈ' کا کوئی معنی نہ ہوتا، کیونکہ وہ سفر میں اکٹھے تھے اور انہیں دور سے آنے کی ضرورت نہ تھی۔

---

(1) دیکھیے الاستذکار 1/349۔ (2) صحیح بخاری (539)، سنن ترمذی (158)، اور یہ احمد (21376)، مسلم (616) کے ہاں بھی ہے۔ اور نماز میں 'ابراڈ' کا مطلب ہے: گرمی اور اس کی شدت کی وجہ سے اسے مؤخر کرنا یہاں تک کہ دن ٹھنڈا ہو جائے، ہوائیں چلنے لگیں اور سائے پھیل جائیں۔ اور 'فیح' کا مطلب ہے گرمی کی چمک۔ اکمال المعلم 2/ 580-582۔ (3) صحیح مسلم (2359): (136) اسی طرح تفصیلاً، اور یہ احمد (12311) (12659) اور بخاری (540) کے ہاں بھی ہے۔ (4) اسے نسائی نے الکبریٰ (1497) میں اور ابن عبد البر نے التمہید 5/ 7 میں روایت کیا ہے۔ (5) السنن 1/ 296-297، اور بریکٹوں کے درمیان والا حصہ اسی سے ہے۔ (6) الام 1/ 63۔ (7) سنن ترمذی میں: "الظہر"۔

As for the Asr prayer, performing it early is better. There is no disagreement in our school that delaying prayer in hope of a congregation is better than performing it early [alone], because the virtue of the congregation is known, whereas the virtue of the beginning of the time [for a single person] is unknown, and achieving what is known is more appropriate, as said by Ibn al-Arabi (1).

Fourth: The words of the Almighty: "Wherever you may be" (Ayna ma takunu) is a condition, and its response is: "Allah will bring you all together" meaning on the Day of Resurrection. Then He, the Almighty, described Himself with power over all things so that the attribute would suit what was mentioned about restoration after death and decay (2).

The words of the Almighty: "And from wherever you go out, turn your face toward Al-Masjid Al-Haram, and indeed, it is the truth from your Lord. And Allah is not unaware of what you do. (149) And from wherever you go out, turn your face toward Al-Masjid Al-Haram, and wherever you may be, turn your faces toward it, so that people will not have any argument against you except those who are wrongdoers among them. So fear them not, but fear Me, that I may complete My favor upon you and that you may be guided." (150)

The words of the Almighty: "And from wherever you go out, turn your face toward Al-Masjid Al-Haram." It is said: This is a confirmation of the command to face the Kaaba and an emphasis on it, because the occasion of the change [of direction] was very difficult (3) in their souls. Thus, He confirmed the command so that people would see the great concern (4) for it, so it would become easier for them and their souls would find rest in it.

It was [also] said: By the first [part], He meant: Turn your face toward the Kaaba, i.e., look at it if you pray in front of it. Then He said: "And wherever you may be" O community of Muslims, in the rest of the mosques in Medina and elsewhere, "turn your faces toward it." Then He said: "And from wherever you go out" meaning the obligation of facing it during travels. Thus, this was a command to turn toward the Kaaba in all locations from all regions of the earth (5).

I say: This view is better than the first, because in it every verse is assigned a specific benefit.

Al-Daraqutni narrated from Anas ibn Malik who said: When the Prophet ﷺ was on a journey...

---

(1) Ahkam al-Quran 1/45. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/225. (3) In the manuscripts: "mu'tana" (cared for), but what is established from Al-Muharrar al-Wajiz 1/225, and the text is from it. (4) In (m): "al-ihtimam" (the concern). (5) See Tafsir al-Razi 4/154.

४५४ सूरह अल-बक़रह: आयत १४९, १५०

जहाँ तक अस्र की नमाज़ का सवाल है, तो उसे जल्दी पढ़ना बेहतर है। हमारे मज़हब (विचारधारा) में इस पर कोई मतभेद नहीं है कि जमाअत (समूह) की उम्मीद में नमाज़ में देरी करना उसे [अकेले] जल्दी पढ़ने से बेहतर है, क्योंकि जमाअत की फज़ीलत (श्रेष्ठता) ज्ञात है, जबकि समय के शुरुआत की फज़ीलत अज्ञात है, और जो ज्ञात है उसे प्राप्त करना अधिक उचित है, जैसा कि इब्न अल-अरबी (१) ने कहा है।

चौथा: सर्वशक्तिमान का कथन: "तुम जहाँ कहीं भी होगे" (ऐना मा तकुनू) एक शर्त है, और इसका उत्तर है: "अल्लाह तुम सबको एक साथ ले आएगा" यानी क़यामत के दिन। फिर उसने, सर्वशक्तिमान ने, स्वयं को हर चीज़ पर शक्ति रखने वाला बताया ताकि यह गुण मृत्यु और गलने-सड़ने के बाद पुनः जीवित करने के उल्लेख के अनुरूप हो (२)।

सर्वशक्तिमान का कथन: "और तुम जहाँ से भी निकलो, अपना मुँह अल-मस्जिद अल-हराम की ओर फेर लो, और निःसंदेह यह तुम्हारे रब की ओर से सत्य है। और जो कुछ तुम करते हो, अल्लाह उससे बेख़बर नहीं है। (१४९) और तुम जहाँ से भी निकलो, अपना मुँह अल-मस्जिद अल-हराम की ओर फेर लो, और तुम जहाँ कहीं भी हो, अपने मुँह उसी की ओर फेर लो, ताकि लोगों के पास तुम्हारे विरुद्ध कोई दलील न रहे, सिवाय उनके जो उनमें से अत्याचारी हैं। तो उनसे न डरो, बल्कि मुझसे डरो, ताकि मैं तुम पर अपनी नेमत (कृपा) पूरी कर दूँ और ताकि तुम हिदायत (मार्गदर्शन) पाओ।" (१५०)

सर्वशक्तिमान का कथन: "और तुम जहाँ से भी निकलो, अपना मुँह अल-मस्जिद अल-हराम की ओर फेर लो।" कहा गया है: यह काबा की ओर मुँह करने के आदेश की पुष्टि और उस पर ज़ोर देने के लिए है, क्योंकि क़िबला बदलने का मामला उनके दिलों पर बहुत भारी था (३)। इसलिए, उसने आदेश की पुष्टि की ताकि लोग इसके प्रति गहरी चिंता (४) देखें, जिससे यह उनके लिए आसान हो जाए और उनके दिलों को इसमें शांति मिले।

कहा गया है: पहले हिस्से से उनका अभिप्राय था: अपना मुँह काबा की ओर करो, यानी यदि तुम उसके सामने नमाज़ पढ़ रहे हो तो उसे देखो। फिर उसने कहा: "और तुम जहाँ कहीं भी हो" ऐ मुसलमानों के समूह, मदीना और अन्य जगहों की बाकी मस्जिदों में, "अपने मुँह उसी की ओर फेर लो।" फिर उसने कहा: "और तुम जहाँ से भी निकलो" यानी यात्राओं के दौरान उसकी ओर मुँह करने

की अनिवार्यता। इस प्रकार, यह पृथ्वी के सभी कोनों से सभी स्थानों में काबा की ओर मुँह करने का आदेश था (५)।

मैं कहता हूँ: यह विचार पहले वाले से बेहतर है, क्योंकि इसमें प्रत्येक आयत का एक विशेष लाभ माना गया है।

अल-दारकुतनी ने अनस बिन मालिक से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: नबी ﷺ जब सफ़र (यात्रा) पर होते थे...

---

(१) अहकाम अल-क़ुरआन १/४५। (२) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२५। (३) पांडुलिपियों में: "मुअताना", लेकिन जो अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२५ से स्थापित है, और पाठ उसी से है। (४) (म) में: "अल-इहतिमाम" (चिंता)। (५) देखें तफ़्सीर अल-राज़ी ४/१५४।

جہاں تک عصر کی نماز کا تعلق ہے تو اسے جلدی ادا کرنا بہتر ہے۔ ہمارے مذہب (مسلک) میں اس میں کوئی اختلاف نہیں کہ جماعت کی امید میں نماز میں تاخیر کرنا اسے (اکیلے) جلدی ادا کرنے سے بہتر ہے، کیونکہ جماعت کی فضیلت معلوم ہے، جبکہ وقت کے آغاز کی فضیلت مجہول (نامعلوم) ہے، اور معلوم چیز کا حصول زیادہ بہتر ہے، جیسا کہ ابن العربی (١) نے کہا ہے۔

چوتھا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: "تم جہاں کہیں بھی ہو گے" (أين ما تكونوا) شرط ہے، اور اس کا جواب ہے: "اللہ تم سب کو لے آئے گا" یعنی قیامت کے دن۔ پھر اللہ تعالیٰ نے اپنی ذات کو ہر چیز پر قدرت رکھنے والا بیان کیا تاکہ یہ صفت موت اور بوسیدگی کے بعد دوبارہ زندہ کرنے کے ذکر کے مناسب ہو (٢)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: "اور آپ جہاں سے بھی نکلیں، اپنا رخ مسجد حرام کی طرف پھیر لیں، اور یقیناً یہ آپ کے رب کی طرف سے حق ہے، اور اللہ ان کاموں سے بے خبر نہیں جو تم کرتے ہو۔ (١٤٩) اور آپ جہاں سے بھی نکلیں، اپنا رخ مسجد حرام کی طرف پھیر لیں، اور تم جہاں کہیں بھی ہو، اپنے چہرے اسی کی طرف پھیر لو، تاکہ لوگوں کے پاس تمہارے خلاف کوئی دلیل نہ رہے، سوائے ان کے جو ان میں سے ظالم ہیں، پس ان سے نہ ڈرو اور مجھ ہی سے ڈرو، تاکہ میں تم پر اپنی نعمت تمام کر دوں اور تاکہ تم ہدایت پاؤ۔" (١٥٠)

اللہ تعالیٰ کا فرمان: "اور آپ جہاں سے ؐھی نکلیں، اپنا رخ مسجد حرام کی طرف پھیر لیں۔" کہا گیا ہے: یہ کعبہ کی طرف رخ کرنے کے حکم کی تاکید اور اس پر اہتمام کے لیے ہے، کیونکہ (قبلہ

کی) تبدیلی کا معاملہ ان کے دلوں پر بہت گراں (مشکل) تھا (۳)۔ چنانچہ اس حکم کی تاکید فرمائی تاکہ لوگ اس کے بارے میں گہری فکر (۴) دیکھیں، جس سے یہ ان پر آسان ہو جائے اور ان کے دلوں کو اس پر سکون ملے۔

اور کہا گیا ہے: پہلے (جملے) سے مراد یہ ہے کہ: اپنا رخ کعبہ کی طرف کریں، یعنی جب آپ اس کے سامنے نماز پڑھیں تو اسے دیکھیں۔ پھر فرمایا: "اور تم جہاں کہیں بھی ہو" اے گروہِ مسلمین، مدینہ اور دیگر جگہوں کی باقی مساجد میں، "اپنے چہرے اسی کی طرف پھیر لو"۔ پھر فرمایا: "اور آپ جہاں سے بھی نکلیں" یعنی سفر کے دوران رخ کرنے کا وجوب۔ تو یہ زمین کے تمام حصوں سے ہر مقام پر کعبہ کی طرف رخ کرنے کا حکم تھا (۵)۔

میں کہتا ہوں: یہ قول پہلے قول سے بہتر ہے، کیونکہ اس میں ہر آیت کو ایک (جداگانہ) فائدے پر محمول کیا گیا ہے۔

اور دارقطنی نے انس بن مالک سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: نبی ﷺ جب سفر میں ہوتے تھے...

---

(۱) احکام القرآن ۱/۴۵۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۲۲۵۔ (۳) نسخوں میں "معتنی" ہے، اور ثابت شدہ لفظ المحرر الوجیز ۱/۲۲۵ سے ہے، اور عبارت وہیں سے ہے۔ (۴) (م) میں: "الاہتمام" ہے۔ (۵) دیکھئے تفسیر رازی ۴/۱۵۴۔

Page 455

Surah Al-Baqarah: Verses 149, 150

If he wanted to pray on his mount, he would face the Qibla and say the Takbir, then pray wherever it headed. Abu Dawud also recorded it(1), and this was stated by Al-Shafi'i, Ahmad, and Abu Thawr. Malik went with the opinion that facing the Qibla is not obligatory(2); based on the hadith of Ibn Umar, who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) used to pray while coming from Mecca to Medina on his mount. He said: And about this, the verse was revealed: "So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah" (3). And it has been mentioned before(4). I say: There is no contradiction between the two hadiths; because this is from the category of the absolute and the restricted. So the saying of Al-Shafi'i is more appropriate, and the hadith of Anas regarding that is a Sahih (authentic) hadith. It is narrated that Ja'far ibn Muhammad was asked: What is the meaning of repeating stories in the Quran? He said: Allah knew that not all people memorize the Quran, so if the story were not repeated, it might be with some people and not with others; so it was repeated so that it would be with those who memorized [only] some [parts]. His saying, the Exalted: "Lest there be for people an argument against you except those of them who do wrong" Mujahid said(5): They are the polytheists of the Arabs, and their argument was their saying: You have returned to our Qibla. And they have been answered for this by His saying: "Say, 'To Allah belongs the east and the west.'" And it was said: the meaning of "Lest there be for people an argument against you" is so they wouldn't say to you: You have been commanded to face the Kaaba while you do not see it. So when He, the Almighty, said: "And wherever you are, turn your faces toward it," this [argument] ceased. Abu Ubaidah said(6): Indeed "illa" (except) here is in the sense of "waw" (and), meaning: and those who did wrong. So it is an exception in the sense of "and", and from it is the saying of the poet(7): "There is no house in Medina except one, the house of the Caliph, and (illa) the house of Marwan."

(1) Sunan al-Daraqutni 1/396, Sunan Abi Dawud (1225), and it is in Musnad Ahmad (13109). (2) See al-Mufhim 2/340. (3) Narrated by Ahmad (4714) and Muslim (700). (4) 2/324. (5) Narrated by al-Tabari 2/687. (6) Majaz al-Qur'an 1/60. (7) He is Al-Farazdaq, and the verse is in Al-Kitab 2/340, and Al-Muqtadab 4/425.

पृष्ठ ४५५

सूरा अल-बकरा: आयत १४९, १५०

यदि वे अपनी सवारी पर नमाज़ पढ़ना चाहते, तो क़िबला की ओर रुख करते और तकबीर कहते, फिर जहाँ सवारी ले जाती वहीं नमाज़ पढ़ते। इसे अबू दाऊद ने भी उद्धृत किया है(१), और यही बात अल-शाफ़ई, अहमद और अबू थौर ने कही है। मलिक का मत था कि क़िबला की ओर मुख करना अनिवार्य नहीं है(२); इब्न उमर की हदीस के आधार पर, जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) मक्का से मदीना लौटते समय अपनी सवारी पर नमाज़ पढ़ते थे। उन्होंने कहा: और इसी विषय में यह आयत उतरी: "तो तुम जिधर भी रुख करो उधर ही अल्लाह का चेहरा (सत्ता) है" (३)। और यह पहले उल्लेखित हो चुका है(४)। मैं कहता हूँ: दोनों हदीसों के बीच कोई अंतर्विरोध नहीं है; क्योंकि यह सामान्य (मुतलक़) और प्रतिबंधित (मुक़य्यद) की श्रेणी में आता है। अतः अल-शाफ़ई का कथन अधिक उपयुक्त है, और उस संबंध में अनस की हदीस एक सही (प्रामाणिक) हदीस है। वर्णित है कि जाफ़र बिन मुहम्मद से पूछा गया: कुरान में कहानियों को दोहराने का क्या अर्थ है? उन्होंने कहा: अल्लाह जानता था कि सभी लोग कुरान याद नहीं करते, इसलिए यदि कहानी दोहराई न जाती, तो हो सकता था कि वह कुछ लोगों के पास होती और कुछ के पास नहीं; इसलिए इसे दोहराया गया ताकि यह उन लोगों के पास भी रहे जिन्होंने [कुरान का] कुछ हिस्सा ही याद किया है। अल्लाह तआला का कथन: "ताकि लोगों के पास तुम्हारे विरुद्ध कोई तर्क न रहे, सिवाय उन लोगों के जिन्होंने उनमें से ज़ुल्म किया" मुजाहिद ने कहा(५): वे अरब के मुशरिक (मूर्तिपूजक) हैं, और उनका तर्क उनका यह कहना था: तुम हमारे क़िबला की ओर लौट आए हो। और उन्हें इस बात का उत्तर अल्लाह के इस कथन से दिया गया है: "कह दो, पूर्व और पश्चिम अल्लाह ही का है।" और कहा गया है: "ताकि लोगों के पास तुम्हारे विरुद्ध कोई तर्क न रहे" का अर्थ है कि वे तुमसे यह न कहें: तुम्हें काबा की ओर मुख करने का आदेश दिया गया है जबकि तुम उसे देख नहीं रहे हो। तो जब अल्लाह ने फ़रमाया: "और तुम जहाँ कहीं भी हो, अपने चेहरे उसी (काबा) की ओर फेर लो," तो यह बात (तर्क) समाप्त हो गई। अबू उबैदा ने कहा(६): यहाँ "इल्ला" (सिवाय) "वाव" (और) के अर्थ में है, अर्थात: और वे लोग जिन्होंने ज़ुल्म किया। अतः यह "और" के अर्थ में एक अपवाद है, और इसी में से कवि का कथन है(७): "मदीना में केवल एक ही घर है, खलीफा का घर, और (इल्ला) मरवान का घर।"

(१) सुनन अल-दाराकुतनी १/३९६, सुनन अबी दाऊद (१२२५), और यह मसनद अहमद (१३१०९) में है। (२) देखें अल-मुफहिम २/३४०। (३) अहमद (४७१४) और मुस्लिम (७००) द्वारा उद्धृत। (४) २/३२४। (५) अल-तबरी २/६८७ द्वारा उद्धृत। (६) मजाज अल-कुरान १/६०। (७) वह अल-फ़रज़दक़ हैं, और यह शेर अल-किताब २/३४० और अल-मुक़्तदब ४/४२५ में है।

صفحہ ٤٥٥

سورۃ البقرہ: آیات ۱۴۹، ۱۵۰

پس اگر آپ ﷺ اپنی سواری پر نماز پڑھنا چاہتے تو قبلہ کی طرف رخ کرتے اور تکبیر کہتے، پھر جہاں سواری کا رخ ہوتا وہیں نماز پڑھ لیتے۔ اسے ابوداؤد نے بھی روایت کیا ہے(۱)، اور امام شافعی، احمد اور ابو ثور کا یہی قول ہے۔ امام مالک اس طرف گئے ہیں کہ قبلہ رخ ہونا لازم نہیں ہے(۲)؛ ابن عمر کی حدیث کی وجہ سے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ مکہ سے مدینہ آتے ہوئے اپنی سواری پر نماز پڑھتے تھے، انہوں نے کہا: اور اسی بارے میں یہ آیت نازل ہوئی: ﴿پس تم جدھر ؜ رخ کرو ادھر ہی اللہ کی توجہ ہے﴾(۳)۔ اور یہ پہلے گزر چکا ہے(۴)۔ میں کہتا ہوں: دونوں حدیثوں کے درمیان کوئی تعارض نہیں ہے؛ کیونکہ یہ مطلق اور مقید کے باب سے ہے۔ پس امام شافعی کا قول زیادہ اولیٰ ہے، اور اس بارے میں حضرت انس کی حدیث صحیح ہے۔ اور روایت کیا جاتا ہے کہ جعفر بن محمد سے پوچھا گیا: قرآن میں قصوں کی تکرار کا کیا مطلب ہے؟ تو انہوں نے کہا: اللہ کو معلوم تھا کہ تمام لوگ قرآن حفظ نہیں کرتے، پس اگر قصہ مکرر نہ ہوتا تو ہو سکتا تھا کہ وہ کچھ لوگوں کے پاس ہوتا اور کچھ کے پاس نہ ہوتا؛ پس اسے مکرر لایا گیا تاکہ یہ ان کے پاس بھی ہو جنہوں نے کچھ حصہ حفظ کیا ہو۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿تاکہ لوگوں کے پاس تمہارے خلاف کوئی حجت نہ رہے سوائے ان لوگوں کے جنہوں نے ان میں سے ظلم کیا﴾ مجاہد نے کہا(۵): وہ عرب کے مشرکین ہیں، اور ان کی حجت ان کا یہ قول تھا: تم ہمارے قبلہ کی طرف رجوع کر گئے ہو، اور انہیں اس کا جواب اس قول سے دیا گیا: ﴿کہہ دیجیے کہ مشرق اور مغرب اللہ ہی کے لیے ہے﴾۔ اور کہا گیا: ﴿تاکہ لوگوں کے پاس تمہارے خلاف کوئی حجت نہ رہے﴾ کا مطلب یہ ہے کہ وہ تم سے یہ نہ کہیں: تمہیں کعبہ کی طرف رخ کرنے کا حکم دیا گیا ہے

حالانکہ تم اسے دیکھ نہیں رہے ہو۔ پس جب اللہ عزوجل نے فرمایا: ﴿اور تم جہاں کہیں بھی ہو اپنے چہرے اسی کی طرف پھیر لو﴾ تو یہ (بات) ختم ہوگئی۔ اور ابو عبیدہ نے کہا(۶): یہاں "إلا" (بجز/سوائے) "واؤ" کے معنی میں ہے، یعنی: اور وہ لوگ جنہوں نے ظلم کیا۔ پس یہ "واؤ" کے معنی میں استثنا ہے، اور اسی میں سے شاعر کا قول ہے(۷): شہر مدینہ میں ایک کے سوا کوئی گھر نہیں ہے، خلیفہ کا گھر اور (إلا) مروان کا گھر۔

(۱) سنن دارقطنی ۱/۳۹۶، سنن ابی داؤد (۱۲۲۵)، اور یہ مسند احمد (۱۳۱۰۹) میں ہے۔ (۲) دیکھئے المفہم ۲/۳۴۰۔ (۳) اسے احمد (۴۷۱۴) اور مسلم (۷۰۰) نے روایت کیا ہے۔ (۴) ۲/۳۲۴۔ (۵) اسے طبری نے ۶۸۷/۲ میں روایت کیا ہے۔ (۶) مجاز القرآن ۱/۶۰۔ (۷) وہ فرزدق ہے، اور یہ شعر الکتاب ۲/۳۴۰ اور المقتضب ۴/۴۲۵ میں ہے۔

As if he said: Except for the Caliph's house and Marwan's house. Similarly, it was said regarding Allah's statement: "Except those who believe and do righteous deeds, for them is an unfailing reward" [At-Tin: 6], meaning: And those (1) who believe.

Al-Zajjaj invalidated this view (2) and said: This is a mistake according to expert grammarians, and it entails the invalidation of meanings, where "except" and what follows it would be unnecessary to mention. Their view is that this is an exception not related to the first part, meaning: "but those among them who did wrong will argue."

Abu Ishaq al-Zajjaj (3) said: That is: Allah has informed you about the matter of arguing regarding the Qiblah in His statement: "Everyone has a direction to which he turns," [and] "so that people may have no argument against you, except those who do wrong," by their arguing about what has become clear to them, just as you say: "You have no argument against me except injustice," or "except that you wrong me," meaning: you have no argument whatsoever, but you are wronging me. He called his wrongdoing an "argument" because the one arguing with it (4) called it an argument, even if it is a refuted one.

Qutrub (5) said: It is possible that the meaning is: "so that people may have no argument against you except against those who did wrong," where "those" (alladhina) is a substitute for the "k" and "m" (kum - you plural) in "alaykum" (against you).

A group said: "Except those" is a connected exception; its meaning was narrated from Ibn Abbas and others, and Al-Tabari (6) chose it, saying: Allah denied that anyone has an argument against the Prophet ﷺ and his companions for their facing the Kaaba.

The meaning is: No one has an argument against you except a refuted argument; as they said: "What has turned them [from their Qiblah]?" and "Muhammad is confused in his religion, and he only turned towards our Qiblah because we were more guided than him," and other statements that only came from an idolater, a Jew, or a hypocrite.

(1) In (M): those. (2) We did not find his words in his Ma'ani al-Qur'an; see Ma'ani al-Qur'an by al-Farra' 1/89, and al-Tabari 2/687-689. (3) Ma'ani al-Qur'an by him 1/227. (4) In the manuscripts: "with her" [biha], and what is established is from (M). (5) Tafsir al-Razi 4/158. (6) In his Tafsir 2/687-689.

456 सूरह अल-बकरा: आयत 149, 150

जैसे कि उसने कहा: खलीफा के घर और मरवान के घर को छोड़कर। इसी तरह अल्लाह के इस कथन के बारे में कहा गया है: "उन लोगों को छोड़कर जो ईमान लाए और जिन्होंने नेक काम किए, उनके लिए कभी न खत्म होने वाला बदला है" [अत-तीन: 6], यानी: और वे (1) जो ईमान लाए।

अल-ज़ज्जाज ने इस विचार को अमान्य कर दिया (2) और कहा: विशेषज्ञ व्याकरणविदों के अनुसार यह एक गलती है, और इसमें अर्थों की अमान्यता शामिल है, जहाँ "इल्ला" (सिवाय) और उसके बाद जो कुछ भी है उसका उल्लेख अनावश्यक हो जाएगा। उनका कहना यह है कि यह एक ऐसा अपवाद (istithna) है जो पहले वाले से संबंधित नहीं है, अर्थात: लेकिन उनमें से जिन्होंने ज़ुल्म किया, वे बहस करेंगे।

अबू इशाक अल-ज़ज्जाज (3) ने कहा: यानी: अल्लाह ने आपको क़िबला के बारे में बहस के मामले से अवगत कराया है, उनके इस कथन में: "प्रत्येक के लिए एक दिशा है जिसकी ओर वह मुड़ता है," [और] "ताकि लोगों के पास आपके विरुद्ध कोई दलील न रहे, सिवाय उन लोगों के जिन्होंने ज़ुल्म किया," अपनी बहस के ज़रिए उस चीज़ में जो उनके लिए स्पष्ट हो चुकी है, जैसा कि आप कहते हैं: "मेरे खिलाफ तुम्हारे पास अन्याय के अलावा कोई दलील नहीं है," या "सिवाय इसके कि तुम मुझ पर ज़ुल्म करो," यानी: तुम्हारे पास कोई दलील नहीं है, लेकिन तुम मुझ पर ज़ुल्म कर रहे हो। उन्होंने उनके ज़ुल्म को "दलील" (हज्जह) कहा; क्योंकि बहस करने वाले ने (4) इसे दलील कहा, भले ही वह निराधार हो।

कुतरुब (5) ने कहा: यह संभव है कि अर्थ यह हो: "ताकि लोगों के पास आपके विरुद्ध कोई दलील न रहे, सिवाय उन लोगों के खिलाफ जिन्होंने ज़ुल्म किया," जहाँ "अल्लज़ीना" (जो लोग) "अलैकुम" (आप पर/आपके विरुद्ध) में 'क' और 'म' (कुम - तुम सब) का स्थानापन्न (बदल) है।

एक समूह ने कहा: "इल्लाल्लज़ीना" (सिवाय उन लोगों के) एक जुड़ा हुआ अपवाद (istithna muttasil) है; इसका अर्थ इब्न अब्बास और अन्य लोगों से वर्णित है, और अल-तबरी (6) ने इसे चुना है, और कहा: अल्लाह ने इस बात से इनकार किया है कि काबा की ओर मुड़ने के संबंध में नबी ﷺ और उनके साथियों के खिलाफ किसी की कोई दलील है।

इसका अर्थ यह है: किसी के पास आपके खिलाफ कोई दलील नहीं है, सिवाय एक निराधार दलील के, जैसा कि उन्होंने कहा: "उन्हें किसने मोड़ा [उनके क़िबला से]?" और "मुहम्मद अपने धर्म में

भ्रमित हैं, और वह हमारे क़िबला की ओर केवल इसलिए मुड़े क्योंकि हम उनसे अधिक हिदायत वाले थे," और अन्य बातें जो केवल एक मूर्तिपूजक, यहूदी या पाखंडी (मुनाफिक़) से ही निकल सकती हैं।

(1) (म) में: वे जो। (2) हमें उनकी पुस्तक 'मआनी अल-कुरान' में उनके ये शब्द नहीं मिले, देखें फर्रा की 'मआनी अल-कुरान' 1/89, और अल-तब़री 2/687-689। (3) उनकी पुस्तक 'मआनी अल-कुरान' 1/227। (4) हस्तलिखित प्रतियों में: 'बिहा' (उसके द्वारा - स्त्रीलिंग), और जो स्थापित है वह (म) से है। (5) तफ़सीर अल-राज़ी 4/158। (6) उनकी तफ़सीर 2/687-689 में।

456 سورہ البقرہ : آیت 149 ، 150

گویا اس نے کہا: سوائے خلیفہ کے گھر اور مروان کے گھر کے، اور اسی طرح اللہ تعالیٰ کے اس قول کے بارے میں کہا گیا ہے: ﴿إِلَّا الَّذِينَ آمَنُوا وَعَمِلُوا الصَّالِحَاتِ فَلَهُمْ أَجْرٌ غَيْرُ مَمْنُونٍ﴾ [التين: 6] یعنی: اور وہ لوگ (1) جو ایمان لائے۔

اور الزجاج نے اس قول کو باطل قرار دیا (2)، اور کہا: ماہرینِ نحو کے نزدیک یہ ایک غلطی ہے، اور اس میں معانی کا ابطال ہے، اور "الا" اور اس کے بعد والا حصہ ذکر کرنے سے مستغنی (بے نیاز) ہو جائے گا۔ اور ان کے نزدیک قول یہ ہے کہ یہ ایسا استثناء ہے جو پہلے سے (متصل) نہیں ہے، یعنی: لیکن ان میں سے جنہوں نے ظلم کیا تو وہ جھگڑیں گے۔

ابو اسحاق الزجاج (3) نے کہا: یعنی: اللہ نے تمہیں قبلہ کے بارے میں احتجاج (دلیل بازی) کے معاملے سے آگاہ کر دیا، اپنے اس قول میں: ﴿وَلِكُلٍّ وِجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيهَا﴾، ﴿لِئَلَّا يَكُونَ لِلنَّاسِ عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ إِلَّا مَن ظَلَمَ﴾ اپنی اس بحث کے ذریعے جو ان پر واضح ہو چکی ہے، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: "تیری مجھ پر کوئی حجت (دلیل) نہیں سوائے ظلم کے"، یا "سوائے اس کے کہ تو مجھ پر ظلم کرے"، یعنی: تیری سرے سے کوئی حجت نہیں ہے، لیکن تو مجھ پر ظلم کر رہا ہے، پس اس نے اپنے ظلم کو حجت کا نام دیا؛ کیونکہ احتجاج کرنے والے نے (4) اسے حجت کا نام دیا خواہ وہ باطل ہی کیوں نہ ہو۔

اور قُطْرُب (5) نے کہا: یہ جائز ہے کہ معنی یہ ہو: تاکہ لوگوں کی تمہارے خلاف کوئی حجت نہ رہے سوائے ان لوگوں کے جنہوں نے ظلم کیا، پس "الذين" (وہ لوگ) "عليكم" میں کاف اور میم (تم سب) سے بدل ہے۔

اور ایک گروہ نے کہا: "اِلَّا الَّذِینَ" استثناء متصل ہے، اس کا معنی ابن عباس وغیرہ سے مروی ہے، اور طبری (6) نے اسے اختیار کیا ہے، اور کہا: اللہ نے اس بات کی نفی فرمائی کہ کعبہ کی طرف رخ کرنے میں نبی ﷺ اور ان کے صحابہ پر کسی کی کوئی حجت (دلیل) ہو۔

اور معنی یہ ہے: کسی کی تمہارے خلاف کوئی حجت نہیں سوائے لغو (باطل) حجت کے؛ جب انہوں نے کہا: "انہیں کس چیز نے پھیرا؟" اور "محمد اپنے دین میں پریشان ہیں، اور وہ ہمارے قبلہ کی طرف صرف اس لیے متوجہ ہوئے کیونکہ ہم ان سے زیادہ ہدایت یافتہ تھے"، اور اس کے علاوہ دیگر اقوال جو صرف بت پرست، یہودی یا منافق ہی کی طرف سے صادر ہوئے ہیں۔

(1) (م) میں: الذین (وہ جو)۔ (2) ہمیں ان کی کتاب "معانی القرآن" میں ان کا یہ کلام نہیں ملا، دیکھئے فراء کی "معانی القرآن" 1/89، اور الطبری 2/687-689۔ (3) ان کی کتاب "معانی القرآن" 1/227۔ (4) قلمی نسخوں میں: "بھا"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (5) تفسیر الرازی 158/4۔ (6) اپنی تفسیر 2/687-689 میں۔

Page: 457 Surah Al-Baqarah: Verses 149, 150

"Al-Hujjah" (argument) means "muhajjah," which is disputation and debate. Allah called it an argument and ruled it invalid since it came from wrongdoers.

Ibn Atiyyah (1) said: It was said: The exception is disconnected (munqati'), based on the assumption that "people" refers to the Jews, and then an exception is made for the disbelievers of the Arabs, as if saying: But those who do wrong will argue with you. His saying "from them" refutes this interpretation. The meaning is: "But those who do wrong," referring to the disbelievers of Quraysh in their saying: Muhammad has returned to our Qibla and will return to our entire religion. This includes everyone other than the Jews who spoke about the situation.

Ibn Abbas, Zayd ibn Ali, and Ibn Zayd read: {Alā alladhīna dhalmū - Verily, those who did wrong} with a fatha on the hamza and a light lam (without shadda) as a means of opening the speech (istiftāh). In this case, "those who did wrong" would be the subject (mubtada'), or it could be for incitement (ighrā'), in which case "those" would be in the accusative case (mansub) due to an implicit verb (2).

The Almighty's saying: {So fear them not} refers to people {but fear Me}. Fear (khashya) is essentially a tranquility in the heart that leads to caution, while "khawf" (fear) is a panic in the heart that makes the limbs feel light (or tremble), and because of the lightness of the limbs, it is called "khawf."

The meaning of the verse is to belittle everyone besides Allah Almighty, and the command is to cast aside their orders and observe the command of Allah Almighty (3).

The Almighty's saying: {and that I may complete My favor upon you} is conjoined to "lest there should be," meaning: and so that I may complete [it], as stated by Al-Akhfash (4).

It was also said: It is a separate clause in the nominative position as a subject (mubtada'), and the predicate (khabar) is implicit. The estimation is: "And my completing my favor upon you is [that] I have made you know my Qibla," as stated by Al-Zajjaj (5).

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/225, and the preceding speech is from it. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/225. This reading was mentioned by Ibn Khalawayh in "Al-Qira'at al-Shadhdhah" p. 10, and Ibn Jinni in "Al-Muhtasab" 1/114 on the authority of Zayd ibn

Ali. Abu Hayyan mentioned it in "Al-Bahr al-Muhit" 1/441, attributing it to Ibn Amir instead of Ibn Abbas. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/226. (4) Ma'ani al-Quran by him, 1/344, similarly. (5) Ma'ani al-Quran by him, 1/27, similarly; see Al-Muharrar al-Wajiz 1/226.

पृष्ठ: 457 सूरा अल-बक़राह: आयत 149, 150

"अल-हुज्जाह" का अर्थ "मुहज्जाह" है, जो विवाद और बहस है। अल्लाह ने इसे दलील (हुज्जत) कहा है, और इसे अमान्य घोषित किया है क्योंकि यह ज़ालिमों (अन्यायियों) की ओर से थी।

इब्न अतिय्याह (1) ने कहा: यह कहा गया है कि अपवाद कटा हुआ (मुनक़ति') है, इस आधार पर कि "लोग" से तात्पर्य यहूदी हैं, और फिर अरब के काफ़िरों (अविश्वासियों) के लिए अपवाद बनाया गया है, जैसे कि वह कह रहे हों: लेकिन जो लोग अन्याय करते हैं वे तुम से बहस करेंगे। उनका यह कहना कि "उनमें से" इस व्याख्या का खंडन करता है। इसका अर्थ है: "लेकिन वे जिन्होंने अन्याय किया," यानी कुरैश के काफ़िर, उनके इस कथन में: मुहम्मद हमारे क़िबले की ओर लौट आए हैं और हमारे पूरे धर्म की ओर लौट आएंगे। इसमें यहूदियों के अलावा वे सभी लोग शामिल हैं जिन्होंने इस घटना के बारे में बात की।

इब्न अब्बास, ज़ैद बिन अली और इब्न ज़ैद ने पढ़ा: {अला अल्लज़ीना ज़लमू - वास्तव में, वे जिन्होंने अन्याय किया} हमज़ा पर फ़तहा और लाम को बिना तशदीद के पढ़ने के साथ, बात शुरू करने (इस्तिफ़्ताह) के अर्थ में। इस स्थिति में "अल्लज़ीना ज़लमू" मुब्तदा (विषय) होगा, या यह 'इग़रा' (उकसाने) के अर्थ में हो सकता है, जिस स्थिति में "अल्लज़ीना" एक छिपी हुई क्रिया के कारण मन्सूब (कर्म कारक) होगा (2)।

सर्वशक्तिमान का कथन: {तो उनसे न डरो} इसका अर्थ लोग हैं {बल्कि मुझसे डरो}। 'ख़श्या' (भय) मूल रूप से दिल में एक शांति है जो सावधानी बरतने के लिए प्रेरित करती है, जबकि 'ख़ौफ़' (डर) दिल की घबराहट है जिससे शरीर के अंग हल्के(कांपने) लगते हैं, और अंगों के हल्केपन के कारण ही इसे 'ख़ौफ़' कहा जाता है।

आयत का अर्थ अल्लाह सर्वशक्तिमान के अलावा हर किसी को तुच्छ समझना है, और आदेश यह है कि उनके आदेशों को छोड़ दिया जाए और अल्लाह सर्वशक्तिमान के आदेश का पालन किया जाए (3)।

सर्वशक्तिमान का कथन: {ताकि मैं तुम पर अपनी नेमत (कृपा) पूरी कर दूँ} इसका संबंध "ताकि न हो" से है, यानी: "और इसलिए ताकि मैं पूरा कर दूँ," जैसा कि अल-अख़फ़श ने कहा है (4)।

और यह भी कहा गया है: यह मुब्तदा (विषय) के रूप में रफ़अ की स्थिति में एक अलग वाक्य है, और ख़बर (विधेय) छिपी हुई है। अनुमान यह है: "और मेरा तुम पर अपनी नेमत को पूरा करना [यह है कि] मैंने तुम्हें अपने क़िबले से अवगत कराया," जैसा कि अल-ज़ज्जाज ने कहा है (5)।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 225/1, और इससे पहले की बात भी उसी से है। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 225/1। इब्न खालवेह ने इसे "अल-क़िरात अल-शाज़्ज़ाह" पृ. 10 में उल्लेख किया है, और इब्न जिन्नी ने ज़ैद बिन अली के हवाले से "अल-मुह्तसब" 114/1 में। अबू हय्यान ने इसका उल्लेख "अल-बह्र अल-मुहीत" 441/1 में किया है, और इसे इब्न अब्बास के बजाय इब्न आमिर से जोड़ा है। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 226/1। (4) मा'नी अल-कुरान, उनके द्वारा, 344/1 इसी तरह। (5) मा'नी अल-कुरान, उनके द्वारा, 27/1 इसी तरह; अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 226/1 देखें।

صفحہ: 457 سورۃ البقرہ: آیات 149 ، 150

"الحجۃ" کے معنی "محاجہ" کے ہیں، جو کہ جھگڑا اور بحث ہے، اور اللہ نے اسے حجت (دلیل) کا نام دیا ہے، اور اس کے باطل ہونے کا حکم دیا ہے کیونکہ یہ ظالموں کی طرف سے تھی۔

ابن عطیہ (1) نے کہا: کہا گیا ہے کہ استثناء منقطع ہے، اور یہ اس بنیاد پر ہے کہ لوگوں سے مراد یہودی ہوں، پھر عرب کے کافروں کو مستثنیٰ کیا گیا، گویا اس نے کہا: لیکن جو لوگ ظلم کرتے ہیں وہ تم سے بحث کریں گے۔ ان کا قول "ان میں سے" اس تاویل کی تردید کرتا ہے۔ اور معنی یہ ہے کہ: "لیکن وہ جنہوں نے ظلم کیا،" یعنی کفار قریش، ان کے اس قول میں: محمد ہمارے قبلے کی طرف لوٹ آئے ہیں اور وہ ہمارے پورے دین کی طرف لوٹ آئیں گے۔ اس میں وہ تمام لوگ شامل ہیں جنہوں نے یہودیوں کے علاوہ اس واقعے کے بارے میں بات کی۔

ابن عباس، زید بن علی اور ابن زید نے پڑھا: {أَلَا الَّذِينَ ظلموا} (خبردار! وہ جنہوں نے ظلم کیا) ہمزہ کے فتحہ اور لام کی تخفیف کے ساتھ، کلام کے آغاز (استفتاح) کے معنی میں۔ اس صورت میں "الذین ظلموا" مبتدا ہوگا، یا یہ ابھارنے (اغراء) کے معنی میں ہوگا، جس صورت میں "الذین" ایک مقدر فعل کی وجہ سے منصوب ہوگا (2)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {فَلَا تَخْشَوْهُمْ} (پس ان سے نہ ڈرو) اس سے مراد لوگ ہیں {وَاخْشَوْنِي} (اور مجھ ہی سے ڈرو)۔ 'خشیہ' کی اصل دل میں وہ اطمینان ہے جو احتیاط پر ابھارتا ہے، اور 'خوف' دل کی وہ گھبراہٹ ہے جس سے اعضاء ہلکے (لرزنے) لگتے ہیں، اور اعضاء کے ہلکا ہونے کی وجہ سے اسے 'خوف' کہا گیا ہے۔

آیت کا مطلب اللہ تعالیٰ کے علاوہ ہر ایک کی تحقیر کرنا ہے، اور حکم یہ ہے کہ ان کے حکم کو چھوڑ دیا جائے اور اللہ تعالیٰ کے حکم کا خیال رکھا جائے (3)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَلِأُتِمَّ نِعْمَتِي عَلَيْكُمْ} (اور تاکہ میں اپنی نعمت تم پر پوری کر دوں) اس کا عطف "لئلا یکون" پر ہے، یعنی: اور اس لیے تاکہ میں پوری کروں، یہ الاخفش نے کہا ہے (4)۔

اور کہا گیا ہے: یہ مبتدا ہونے کی وجہ سے محل رفع میں مقطوع (الگ) جملہ ہے، اور خبر پوشیدہ ہے، اور تقدیرِ کلام یہ ہے: "اور میرا تم پر اپنی نعمت کو پورا کرنا [یہ ہے کہ] میں نے تمہیں اپنے قبلے کی پہچان کروا دی،" یہ الزجاج نے کہا ہے (5)۔

(1) المحرر الوجیز 225/1، اور اس سے پہلے کا کلام بھی اسی سے ہے۔ (2) المحرر الوجیز 225/1، اور اس قرأت کا ذکر ابن خالویہ نے القراءات الشاذہ ص 10 میں کیا ہے، اور ابن جنی نے المحتسب 114/1 میں زید بن علی سے۔ اور ابو حیان نے اسے البحر المحیط 441/1 میں ذکر کیا ہے، اور اسے ابن عباس کے بجائے ابن عامر کی طرف منسوب کیا ہے۔ (3) المحرر الوجیز 226/1۔ (4) معانی القرآن ان کی تصنیف، 344/1 اسی طرح۔ (5) معانی القرآن ان کی تصنیف، 27/1 اسی طرح؛ دیکھیے المحرر الوجیز 226/1۔

Completing the favor is being guided to the Qibla. It is also said: entry into Paradise (1). Sa'id ibn Jubayr said: "Allah's favor is not complete upon a servant until He admits him into Paradise" (2). {And that you may be guided} has been mentioned previously (3).

His Almighty's saying: {Just as We have sent among you a messenger from yourselves reciting to you Our verses and purifying you and teaching you the Book and wisdom and teaching you that which you did not know}.

His Almighty's saying: {Just as We have sent}, the "Kaaf" (particle of comparison) is in the position of an accusative (Nasb) as a description (Na't) for a hidden verbal noun (Masdar). The meaning: "And that I may complete My favor upon you with a completion like We sent," as said by Al-Farra' (4).

Ibn Atiyyah said (5): "And this is the best of opinions, meaning: And that I may complete My favor upon you by clarifying the tradition (Sunnah) of Ibrahim, peace be upon him, just as We sent."

And it is said: The meaning is: "And so that you may be guided with a guidance like We sent."

And it is said: It is in the position of an accusative of state (Haal), and the meaning: "And that I may complete My favor upon you in this state" (6). The comparison is based on the favor of the Qibla being like the favor of the message, and that the remembrance commanded is in its greatness like the greatness of the favor.

And it is said: The meaning of the speech follows a sequence of advancement and deferment, meaning: "So remember Me just as We sent." This was narrated from Ali, may Allah be pleased with him (7), and chosen by Al-Zajjaj (8). Meaning: Just as We sent among you a messenger whom you know for his truthfulness, so remember Me with monotheism and believing in him.

The pause on {you may be guided} according to this opinion is permissible (9).

(1) See Al-Nukat wa al-'Uyun 1/207. (2) Al-Baghawi mentioned it in his Tafsir 1/128. (3) 1/246. (4) We did not find it in his "Ma'ani" in the commentary of this verse; see I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/271. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/226. (6) I'rab al-Qur'an by Al-Nahhas 1/271. (7) Mentioned by Ibn al-Jawzi in Zad al-Masir 1/160. (8) Ma'ani al-Qur'an 1/227. (9) See "Al-Waqf wa al-Ibtida'" by Al-Anbari 1/536, and "Al-Muktafa fi al-

Waqf wa al-Ibtida'" by Al-Dani p. 177; in both, the pause is considered complete according to this opinion.

कृपा (नेमत) का पूर्ण होना किबला की ओर मार्गदर्शन पाना है। और यह भी कहा गया है: स्वर्ग (जन्नत) में प्रवेश (1), सईद बिन जुबैर ने कहा: "किसी बंदे पर अल्लाह की नेमत तब तक पूरी नहीं होती जब तक वह उसे जन्नत में दाखिल न कर दे" (2)। {और ताकि तुम मार्गदर्शन पाओ} इसका उल्लेख पहले हो चुका है (3)।

अल्लाह तआला का कथन: {जैसा कि हमने तुम में तुम ही में से एक रसूल भेजा है, जो तुम्हें हमारी आयतें पढ़कर सुनाता है, और तुम्हें पवित्र करता है और तुम्हें किताब और हिकमत (बुद्धिमत्ता) सिखाता है, और तुम्हें वह बातें सिखाता है जो तुम नहीं जानते थे}।

अल्लाह तआला का कथन: {जैसा कि हमने भेजा}, इसमें 'काफ' (तुलना के लिए) एक छिपे हुए क्रिया विशेषण (मसदर) के विशेषण (नअत) के रूप में नसब (accusative) की स्थिति में है। अर्थ यह है: "और ताकि मैं अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दूँ वैसी ही पूर्णता के साथ जैसी हमने (रसूल को) भेजा", यह अल-फर्रा ने कहा है (4)।

इब्न अतिय्या ने कहा (5): "और यह मतों में सबसे उत्तम है, अर्थात: और ताकि मैं इब्राहिम अलैहिस्सलाम की सुन्नत (परंपरा) को स्पष्ट करके तुम पर अपनी नेमत पूरी कर दूँ, जैसा कि हमने भेजा।"

और कहा गया है: अर्थ है: "और ताकि तुम वैसा मार्गदर्शन प्राप्त करो जैसा हमने भेजा है।"

और कहा गया है: यह 'हाल' (अवस्था) के स्थान पर नसब की स्थिति में है, और अर्थ है: "और ताकि मैं इस अवस्था में तुम पर अपनी नेमत पूरी कर दूँ" (6)। तुलना इस बात पर आधारित है कि किबला की नेमत संदेश (रिसालत) की नेमत की तरह है, और जिसका ज़िक्र करने का आदेश दिया गया है, वह अपनी महानता में नेमत की महानता के समान है।

और कहा गया है: कलाम (वाणी) का अर्थ आगे-पीछे करने (तकदीम व ताखीर) पर आधारित है, अर्थात: "तो मुझे याद करो जैसा हमने भेजा।" यह अली (रज़ियल्लाहु अन्हु) से वर्णित है (7) और अल-जज्जाज ने इसे चुना है (8)। अर्थात: जैसा कि हमने तुम में एक रसूल भेजा जिसे तुम सच्चाई के साथ जानते हो, तो मुझे तौहीद (एकेश्वरवाद) और उनकी पुष्टि के साथ याद करो।

इस विचार के अनुसार {ताकि तुम मार्गदर्शन पाओ} पर रुकना (वक़्फ़) जायज़ है (9)।

(1) देखें अन-नुकात वल-'उयून 1/207। (2) अल-बग़वी ने इसे अपनी तफसीर 1/128 में उद्धृत किया है। (3) 1/246। (4) हमें इस आयत की व्याख्या में उनके"मआनी" में यह नहीं मिला; देखें इराब अल-कुरान अल-नहस 1/271 द्वारा। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/226। (6) इराब अल-कुरान अल-नहस द्वारा 1/271। (7) इब्न अल-जौज़ी ने ज़ाद अल-मसीर 1/160 में इसका उल्लेख किया है। (8) मआनी अल-कुरान 1/227। (9) देखें अल-अनबारी द्वारा अल-वक़्फ़ वल-इब्तिदा 1/536, और अल-दानी द्वारा अल-मुक्तफा फि अल-वक़्फ़ वल-इब्तिदा पृष्ठ 177; दोनों में इस विचार के अनुसार वक़्फ़ ताम (पूर्ण) है।

نعمت کا اتمام قبلہ کی طرف ہدایت پانا ہے۔ اور کہا گیا ہے: جنت میں داخلہ (1)، سعید بن جبیر نے کہا: "کسی بندے پر اللہ کی نعمت اس وقت تک مکمل نہیں ہوتی جب تک کہ وہ اسے جنت میں داخل نہ کر دے" (2)۔ ﴿وَلَعَلَّكُمْ تَهْتَدُونَ﴾ (اور تاکہ تم ہدایت پاؤ) پہلے گزر چکا ہے (3)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿كَمَا أَرْسَلْنَا فِيكُمْ رَسُولًا مِّنكُمْ يَتْلُوا عَلَيْكُمْ آيَاتِنَا وَيُزَكِّيكُمْ وَيُعَلِّمُكُمُ الْكِتَابَ وَالْحِكْمَةَ وَيُعَلِّمُكُم مَّا لَمْ تَكُونُوا تَعْلَمُونَ ﴾ (جس طرح ہم نے تم میں تمہی میں سے ایک رسول بھیجا جو تم پر ہماری آیتیں تلاوت کرتا ہے اور تمہیں پاک کرتا ہے اور تمہیں کتاب و حکمت کی تعلیم دیتا ہے اور تمہیں وہ باتیں سکھاتا ہے جو تم نہیں جانتے تھے)۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿كَمَا أَرْسَلْنَا﴾ (جس طرح ہم نے بھیجا)، کاف یہاں ایک محذوف مصدر کی صفت (نعت) ہونے کی بنا پر محلِ نصب میں ہے؛ معنی یہ ہے: "اور تاکہ میں تم پر اپنی نعمت کو اس طرح مکمل کروں جیسا کہ ہم نے رسول بھیجا"، یہ بات الفراء نے کہی ہے (4)۔

ابن عطیہ نے کہا (5): "اور یہ اقوال میں سب سے بہتر ہے، یعنی: اور تاکہ میں ابراہیم علیہ السلام کی سنت کے بیان کے ذریعے تم پر اپنی نعمت پوری کر دوں جیسا کہ ہم نے بھیجا۔"

اور کہا گیا ہے: معنی یہ ہے: "اور تاکہ تم ویسی ہدایت پاؤ جیسی ہم نے بھیجی۔"

اور کہا گیا ہے: یہ حال کے محل میں نصب ہے، اور معنی ہے: "اور تاکہ میں تم پر اس حال میں اپنی نعمت پوری کر دوں" (6)۔ تشبیہ اس بات پر مبنی ہے کہ قبلہ کی نعمت رسالت کی نعمت کی طرح ہے، اور جس ذکر کا حکم دیا گیا ہے وہ اپنی عظمت میں نعمت کی عظمت کی طرح ہے۔

اور کہا گیا ہے: کلام کا معنی تقدیم و تاخیر پر مبنی ہے، یعنی: "پس میرا ذکر کرو جیسا کہ ہم نے بھیجا۔" یہ حضرت علی رضی اللہ عنہ سے مروی ہے (7) اور زجاج نے اسے اختیار کیا ہے (8)۔ یعنی: جیسا کہ ہم نے تم میں ایسا رسول بھیجا جسے تم سچائی کے ساتھ جانتے ہو، پس مجھے توحید اور ان کی تصدیق کے ساتھ یاد کرو۔

اس قول کے مطابق ﴿تَهْتَدُونَ﴾ پر وقف جائز ہے (9)۔

(1) ملاحظہ فرمائیں النکت والعیون 1/207۔ (2) اسے بغوی نے اپنی تفسیر 1/128 میں ذکر کیا ہے۔ (3) 1/246۔ (4) ہمیں ان کی کتاب "معانی" میں اس آیت کی تفسیر کے تحت یہ نہیں ملا؛ دیکھیے اعراب القرآن للنحاس 1/271۔ (5) المحرر الوجیز 1/226۔ (6) اعراب القرآن للنحاس 1/271۔ (7) اسے ابن الجوزی نے زاد المسیر 1/160 میں ذکر کیا ہے۔ (8) معانی القرآن 1/227۔ (9) دیکھیے الوقف والابتداء للانباری 1/536، اور المکتفی فی الوقف والابتداء للدانی ص 177؛ ان دونوں میں اس قول پر وقف تام (کامل) ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verses 152, 153 (459)

I say: This is the choice of Al-Tirmidhi Al-Hakim in his book, meaning: Just as I have done this for you of the favors I have enumerated for you, so remember Me with gratitude, I will remember you with increase; because in your remembering that there is gratitude to Me, and I have promised you increase(1) upon gratitude, which is His saying: {If you are grateful, I will surely increase you} [Ibrahim: 7]; so the 'kaaf' in His saying: "كما" (as/just as) here, and in Al-Anfal {Just as your Lord caused you to leave} [5] and at the end of Al-Hijr {As We sent down on the dividers} is related to what follows it; according to what will be explained later.

Allah Almighty says: {So remember Me; I will remember you. And be grateful to Me and do not deny Me.} {O you who have believed, seek help through patience and prayer. Indeed, Allah is with the patient.}

His saying Almighty: {So remember Me; I will remember you} is a command and its response, and it contains the meaning of recompense, therefore it is in the jussive form. The root of remembrance (dhikr) is the heart's awareness of the remembered and wakefulness to it, and remembrance with the tongue was called dhikr because it is an indication of the heart's remembrance, except that since the application of dhikr to the tongue's speech became frequent, it became the first to be understood(2).

The meaning of the verse: Remember Me with obedience, I will remember you with reward and forgiveness, said Sa'id ibn Jubayr(3). He also said: Remembrance is obedience to Allah, so whoever does not obey Him has not remembered Him, even if he increases glorification (tasbeeh), saying 'la ilaha illa Allah' (tahlil), and reading the Quran(4).

And it was narrated from the Prophet ﷺ: "Whoever obeys Allah has remembered Allah even if his prayer, fasting, and good deeds are few, and whoever disobeys Allah has forgotten Allah even if his prayer, fasting, and good deeds are many"(5); mentioned by Abu Abdullah Muhammad ibn Khuwayzmindad in his "Ahkam al-Quran".

(1) In (M): with increase. (2) In (Z): to understanding. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/226, reported by al-Tabari 2/695, and mentioned by al-Wahidi in al-Wasit 1/234. (4) Mentioned by al-Wahidi in al-Wasit 1/234. (5) Reported by al-Tabarani in al-Kabir 22/154 from the hadith of Waqid, the client of the Messenger of Allah ﷺ, and mentioned by al-Haythami in Majma' al-Zawa'id 2/258 and he said: in it is al-Haytham

ibn Jammaz, and he is abandoned. And reported by Nu'aym ibn Hammad in his additions to Zuhd Ibn al-Mubarak (70), and al-Wahidi in al-Wasit 1/234, and al-Bayhaqi in al-Shu'ab (687) from the hadith of Khalid ibn Abi Imran from the Prophet ﷺ, as a mursal report.

सूरह अल-बकरा: आयतें 152, 153 (459)

मैंने कहा: यह अपनी पुस्तक में अल-तिर्मिज़ी अल-हकीम का चुनाव है, अर्थात: जैसा कि मैंने आपके लिए उन एहसानों में से किया है जिन्हें मैंने आपके लिए गिना है, इसलिए मुझे कृतज्ञता के साथ याद करें, मैं आपको और अधिकता के साथ याद रखूँगा; क्योंकि आपके उस स्मरण में मेरे लिए कृतज्ञता है, और मैंने कृतज्ञता पर और अधिक देने का वादा किया है(1), जो उनका कहना है: {यदि तुम कृतज्ञ होगे, तो मैं तुम्हें अवश्य और अधिक दूँगा} [इब्राहिम: 7]; इसलिए उनके कथन "كما" (जैसा कि) में 'काफ' यहाँ, और अल-अनफाल में {जैसा कि तुम्हारे रब ने तुम्हें (तुम्हारे घर से सत्य के साथ) निकाला} [5] और अल-हिज्र के अंत में {जैसा कि हमने उन बांटने वालों पर उतारा} उसके बाद आने वाली चीज़ से संबंधित है; जैसा कि बाद में स्पष्ट किया जाएगा।

अल्लाह तआला का फरमान है: {अतः मुझे याद करो, मैं तुम्हें याद करूँगा। और मेरा आभार प्रकट करो और मेरी नाशुकी मत करो।} {ऐ ईमान लाने वालो! धैर्य और नमाज़ से मदद चाहो। निस्संदेह अल्लाह धैर्यवानों के साथ है।}

उनका कथन: {अतः मुझे याद करो, मैं तुम्हें याद करूँगा} एक आदेश और उसका उत्तर है, और इसमें बदले का अर्थ है, इसलिए यह जज्म (व्याकरणिक रूप) में है। ज़िक्र (स्मरण) का मूल याद किए जाने वाले के प्रति हृदय की जागरूकता और उसके प्रति जागृति है, और ज़ुबान से ज़िक्र को ज़िक्र इसलिए कहा गया क्योंकि यह हृदय के ज़िक्र का संकेत है, सिवाय इसके कि जब ज़ुबान के ज़िक्र का प्रयोग अधिक होने लगा, तो यही सबसे पहले समझ में आने लगा(2)।

आयत का अर्थ है: मुझे आज्ञाकारिता के साथ याद करो, मैं तुम्हें प्रतिफल और क्षमा के साथ याद रखूँगा, यह सईद बिन जुबैर(3) ने कहा। उन्होंने यह भी कहा: ज़िक्र अल्लाह की आज्ञाकारिता है, अतः जिसने उसकी आज्ञा नहीं मानी उसने उसे याद नहीं किया, चाहे वह तस्बीह, तहलील और कुरान का पाठ कितना ही अधिक क्यों न करे(4)।

और नबी ﷺ से वर्णित है: "जिसने अल्लाह की आज्ञा मानी उसने अल्लाह को याद किया चाहे उसकी नमाज़, रोज़ा और अच्छे काम कम हों, और जिसने अल्लाह की अवज्ञा की उसने अल्लाह को भुला दिया चाहे उसकी नमाज़, रोज़ा और अच्छे काम अधिक हों"(5); इसका उल्लेख अबू अब्दुल्ला मुहम्मद बिन खुवैज़मिनदाद ने अपनी "अहकाम अल-कुरान" में किया है।

(1) (म) में: वृद्धि के साथ। (2) (ज़) में: समझ तक। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/226, इसे अल-तब़री ने 2/695 में उद्धृत किया है, और अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/234 में इसका उल्लेख किया है। (4) अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/234 में इसका उल्लेख किया है। (5) इसे अल-तबरानी ने अल-कबीर 22/154 में अल्लाह के रसूल ﷺ के गुलाम वाक़िद की हदीस से उद्धृत किया है, और अल-हैथमी ने मजमा अल-ज़वाइद 2/258 में इसका उल्लेख किया है और कहा: इसमें अल-हैथम बिन जम्माज़ है, और वह परित्यक्त है। और इसे नुऐम बिन हम्माद ने ज़ुहद इब्न अल-मुबारक (70) के अपने परिशिष्टों में, और अल-वाहिदी ने अल-वसीत 1/234 में, और अल-बैहक़ी ने अल-शुअब (687) में खालिद बिन अबी इमरान की नबी ﷺ से रिवायत की गई मुरसल हदीस से उद्धृत किया है।

سورة البقرہ: آیات ۱۵۲ ، ۱۵۳ (۴۵۹)

میں نے کہا: اور یہ اپنی کتاب میں الترمذی الحکیم کا اختیار ہے، یعنی: جیسا کہ میں نے تمہارے ساتھ ان احسانات کا معاملہ کیا جو میں نے تم پر شمار کیے ہیں، تو مجھے شکر کے ساتھ یاد کرو، میں تمہیں مزید (اضافے) کے ساتھ یاد کروں گا؛ کیونکہ تمہارے اس ذکر میں میرے لیے شکر ہے، اور میں نے تم سے شکر پر زیادتی کا وعدہ کیا ہے(۱)، جیسا کہ اللہ تعالیٰ کا قول ہے: ﴿لَئِن شَكَرْتُمْ لَأَزِيدَنَّكُمْ﴾ (اگر تم شکر کرو گے تو میں تمہیں ضرور زیادہ دوں گا) [ابراہیم: ۷]؛ پس ان کے قول "کما" (جیسا کہ) میں 'کاف' یہاں، اور الانفال میں ﴿كَمَا أَخْرَجَكَ رَبُّكَ﴾ (جیسا کہ تیرے رب نے تجھے نکالا) [۵] اور الحجر کے آخر میں ﴿كَمَا أَنزَلْنَا عَلَى الْمُقْتَسِمِينَ﴾ (جیسا کہ ہم نے تقسیم کرنے والوں پر اتارا) اپنے مابعد سے متعلق ہے؛ اس کی وضاحت آگے آئے گی۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿فَاذْكُرُونِي أَذْكُرْكُمْ وَاشْكُرُوا لِي وَلَا تَكْفُرُونِ﴾ (پس تم میرا ذکر کرو میں تمہارا ذکر کروں گا اور میرا شکر ادا کرو اور میری ناشکری نہ کرو) ﴿يَا أَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا اسْتَعِينُوا بِالصَّبْرِ وَالصَّلَاةِ إِنَّ اللَّهَ مَعَ الصَّابِرِينَ﴾ (اے ایمان والو! صبر اور نماز کے ذریعے مدد چاہو، بے شک اللہ صبر کرنے والوں کے ساتھ ہے)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَاذْكُرُونِي أَذْكُرْكُمْ﴾ امر اور اس کا جواب ہے، اور اس میں بدلے کا معنی پایا جاتا ہے، اسی لیے یہ جزم کے ساتھ ہے۔ اور ذکر کی اصل مذکور کی طرف دل کا متوجہ ہونا اور اس کے لیے بیدار ہونا ہے، اور زبان سے ذکر کو ذکر اس لیے کہا گیا کیونکہ یہ قلبی ذکر کی علامت ہے، سوائے اس کے کہ جب زبانی قول پر ذکر کا اطلاق کثرت سے ہونے لگا تو یہی فہم میں سب سے پہلے آنے لگا(۲)۔

اور آیت کا معنی ہے: تم مجھے اطاعت کے ذریعے یاد کرو، میں تمہیں ثواب اور مغفرت کے ذریعے یاد کروں گا، یہ سعید بن جبیر(۳) نے کہا ہے۔ اور انہوں نے یہ بھی کہا: ذکر اللہ کی اطاعت ہے، پس جس نے اس کی اطاعت نہیں کی اس نے اسے یاد نہیں کیا، اگرچہ وہ کثرت سے تسبیح، تہلیل اور تلاوتِ قرآن کیوں نہ کرے(۴)۔

اور نبی کریم ﷺ سے مروی ہے: "جس نے اللہ کی اطاعت کی اس نے اللہ کو یاد کیا اگرچہ اس کی نماز، روزہ اور نیک اعمال کم ہوں، اور جس نے اللہ کی نافرمانی کی اس نے اللہ کو بھلا دیا اگرچہ اس کی نماز، روزہ اور نیک اعمال کثرت سے ہوں"(۵)؛ اسے ابو عبداللہ محمد بن خویزمنداد نے اپنی کتاب "احکام القرآن" میں ذکر کیا ہے۔

(۱) (م) میں: بالمزید (زیادتی کے ساتھ)۔ (۲) (ظ) میں: الی الفہم (فہم کی طرف)۔ (۳) المحرر الوجیز ۱/ ۲۲۶، اور اسے الطبری نے ۲/ ۶۹۵ میں روایت کیا ہے، اور الواحدی نے الوسیط ۱/ ۲۳۴ میں اس کا تذکرہ کیا ہے۔ (۴) الواحدی نے الوسیط ۱/ ۲۳۴ میں اس کا تذکرہ کیا ہے۔ (۵) اسے الطبرانی نے الکبیر ۲۲/ ۱۵۴ میں رسول اللہ ﷺ کے مولیٰ واقد کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور الہیثمی نے مجمع الزوائد ۲/ ۲۵۸ میں اسے ذکر کیا اور کہا: اس میں الہیثم بن جماز ہے، اور وہ متروک ہے۔ اور اسے نعیم بن حماد نے زہد ابن المبارک کے زوائد (۷۰) میں روایت کیا ہے، اور الواحدی نے الوسیط ۱/ ۲۳۴ میں، اور البیہقی نے الشعب (۶۸۷) میں خالد بن ابی عمران کی نبی ﷺ سے مروی مرسل حدیث سے روایت کیا ہے۔

Page 460 Surah Al-Baqarah: Verses 152, 153

Abu Uthman al-Nahdi said: "I know the hour in which Allah remembers us." It was said to him: "How do you know it?" He replied: "Allah Almighty says: {So remember Me; I will remember you}(1)." Al-Suddi said: "There is no servant who remembers Allah but Allah Almighty remembers him. No believer remembers Him except that Allah remembers him with His mercy, and no disbeliever remembers Him except that Allah remembers him with punishment(2)." Abu Uthman was asked: "We remember Allah but do not find sweetness in our hearts?" He replied: "Praise Allah Almighty for beautifying one of your limbs with His obedience(3)." Dhul-Nun al-Misri (may Allah have mercy on him) said: "Whoever remembers Allah Almighty with true remembrance forgets everything else in comparison to His remembrance, and Allah preserves everything for him, and becomes a substitute for him for everything else(4)." Mu'adh ibn Jabal (may Allah be pleased with him) said: "The son of Adam has done no deed more saving for him from the punishment of Allah than the remembrance of Allah(5)." The hadiths regarding the virtue of dhikr (remembrance) and its reward are many; they were narrated by the Imams. Ibn Majah narrated(6) from Abdullah ibn Busr that a Bedouin said to the Messenger of Allah (peace be upon him): "The laws of Islam have become many for me, so inform me of something I can cling to(8)." He said: "Keep your tongue moist with the remembrance of Allah Almighty." And it was narrated from Abu Huraira that the Prophet (peace be upon him) said: "Indeed, Allah Almighty says: 'I am with My servant when he remembers Me and his lips move with Me'(9)."

(1) Narrated by Ibn Abi Shaybah in Al-Musannaf 13/547. (2) Narrated by Al-Tabari 2/696. (3) Al-Risala al-Qushayriyya 3/159. (4) Narrated by Al-Bayhaqi in Shu'ab al-Iman (707). And Al-Qushayri in Al-Risala al-Qushayriyya 3/158. (5) It is with Al-Tirmidhi (3377), and Ibn Majah (3790). It is from the narration of Ziyad ibn Abi Ziyad from Mu'adh (may Allah be pleased with him) as stated in Malik 1/211, and Ziyad did not meet Mu'adh. See Musnad Ahmad (22079). (6) Number (3793), and it is with Ahmad (17698), and Al-Tirmidhi (3375). (7) In (Z) and (Zha): O Messenger of Allah. (8) In (D): Atathabbatu bihi (to be firm in it), which is consistent with some narrations as in Musnad Ahmad. (9) Sunan Ibn Majah (3792), and also narrated by Ahmad (10968), and Al-Bukhari recorded it in his Sahih in a definitive form before hadith (7524).

पृष्ठ 460 सूरह अल-बकरा: आयत 152, 153

अबू उस्मान अल-नहदी ने कहा: "मैं उस समय को जानता हूँ जिसमें अल्लाह हमें याद करता है।" उनसे पूछा गया: "आप इसे कैसे जानते हैं?" उन्होंने कहा: "अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {अतः तुम मुझे याद करो, मैं तुम्हें याद रखूँगा}(1)।" अस-सुद्दी ने कहा: "कोई भी बंदा ऐसा नहीं है जो अल्लाह को याद करे और अल्लाह सर्वशक्तिमान उसे याद न करे। कोई भी मोमिन उसे याद नहीं करता सिवाय इसके कि अल्लाह उसे अपनी दया के साथ याद करता है, और कोई काफिर उसे याद नहीं करता सिवाय इसके कि अल्लाह उसे दंड के साथ याद करता है(2)।" अबू उस्मान से पूछा गया: "हम अल्लाह को याद करते हैं लेकिन अपने दिलों में मिठास नहीं पाते?" उन्होंने उत्तर दिया: "अल्लाह सर्वशक्तिमान की प्रशंसा करो कि उसने तुम्हारे अंगों में से एक को अपनी आज्ञाकारिता से सुशोभित किया है(3)।" ज़ुन-नुन अल-मिस्री (अल्लाह उन पर दया करे) ने कहा: "जिसने वास्तव में अल्लाह सर्वशक्तिमान को याद किया, वह उसके स्मरण की तुलना में सब कुछ भूल गया, और अल्लाह ने उसके लिए सब कुछ सुरक्षित रखा, और वह उसके लिए हर चीज़ का विकल्प बन गया(4)।" मुआज़ इब्न जबल (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) ने कहा: "आदम की संतान ने अल्लाह के स्मरण से बढ़कर अल्लाह के दंड से बचाने वाला कोई कार्य नहीं किया है(5)।" ज़िक्र (स्मरण) के गुण और उसके पुरस्कार के बारे में बहुत सी हदीसें हैं; इन्हें इमामों ने संकलित किया है। इब्न माजाह ने अब्दुल्ला इब्न बुस्र से रिवायत की है कि एक ग्रामीण ने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) से कहा: "इस्लाम के नियम मुझ पर बहुत हो गए हैं, इसलिए मुझे ऐसी चीज़ बताओ जिसे मैं मजबूती से पकड़ लूँ(8)।" आपने फ़रमाया: "अपनी ज़बान को अल्लाह सर्वशक्तिमान के ज़िक्र से तर रखो।" और अबू हुरैरा से रिवायत है कि पैगंबर (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया: "निश्चित रूप से, अल्लाह सर्वशक्तिमान फ़रमाता है: 'मैं अपने बंदे के साथ होता हूँ जब वह मुझे याद करता है और उसके होंठ मेरे ज़िक्र से हिलते हैं'(9)।"

(1) इब्न अबी शायबा ने अल-मुसन्नफ़ 13/547 में निकाला है। (2) अल-तबरी ने 2/696 में निकाला है। (3) अल-रिसाला अल-कुशयरीया 3/159। (4) अल-बैहकी ने शुआब अल-ईमान (707) में निकाला है। और अल-कुशयरी ने अल-रिसाला अल-कुशयरीया 3/158 में। (5) यह तिरमिज़ी (3377) और इब्न माजाह (3790) के पास है। यह ज़ियाद इब्न अबी ज़ियाद की मुआज़ (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) से रिवायत है जैसा कि मालिक 1/211 में स्पष्ट है, और ज़ियाद ने मुआज़ को नहीं पाया। मसनद अहमद (22079) देखें। (6) संख्या (3793), और यह अहमद (17698) और तिरमिज़ी (3375) के

पास है। (7) (ज़) और (ज़): हे अल्लाह के रसूल। (8) (द) में: 'अतथब्बतु बिही' (मैं इसमें दृढ़ रहूँ), जो मसनद अहमद जैसी कुछ रिवायतों के अनुकूल है। (9) सुनन इब्न माजाह (3792), और इसे अहमद (10968) ने भी निकाला है, और बुखारी ने अपनी सहीह में हदीस (7524) से पहले निश्चित रूप से उल्लेख किया है।

صفحہ ٤٦٠ سورة البقرہ: آیت ١٥٢، ١٥٣

ابوعثمان النہدی نے کہا: "میں اس وقت کو جانتا ہوں جس میں اللہ ہمیں یاد کرتا ہے،" ان سے کہا گیا: "تمہیں یہ کہاں سے معلوم ہوا؟" انہوں نے کہا: "اللہ عزوجل فرماتا ہے: {پس تم مجھے یاد کرو میں تمہیں یاد کروں گا}(١)۔" سدی نے کہا: "کوئی ایسا بندہ نہیں ہے جو اللہ کو یاد کرے مگر اللہ عزوجل اسے یاد کرتا ہے، کوئی مومن اسے یاد نہیں کرتا مگر اللہ اسے اپنی رحمت کے ساتھ یاد کرتا ہے، اور کوئی کافر اسے یاد نہیں کرتا مگر اللہ اسے عذاب کے ساتھ یاد کرتا ہے(٢)۔" ابوعثمان سے پوچھا گیا: "ہم اللہ کو یاد کرتے ہیں لیکن اپنے دلوں میں مٹھاس نہیں پاتے؟" انہوں نے کہا: "اللہ تعالیٰ کا شکر ادا کرو کہ اس نے تمہارے اعضاء میں سے ایک عضو کو اپنی اطاعت سے زینت بخشی ہے(٣)۔" ذوالنون مصری رحمہ اللہ نے فرمایا: "جس نے اللہ تعالیٰ کا ذکر حقیقت میں کیا وہ اس کے ذکر کے سامنے ہر چیز کو بھول گیا، اور اللہ نے اس کے لیے ہر چیز کی حفاظت کی، اور وہ اس کے لیے ہر چیز کا نعم البدل بن گیا(٤)۔" معاذ بن جبل رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "ابن آدم نے اللہ کے ذکر سے بڑھ کر اللہ کے عذاب سے نجات دلانے والا کوئی عمل نہیں کیا(٥)۔" ذکر کی فضیلت اور اس کے ثواب میں احادیث کثیر ہیں؛ جنہیں ائمہ نے روایت کیا ہے؛ ابن ماجہ(٦) نے عبداللہ بن بسر سے روایت کی ہے کہ ایک اعرابی نے رسول اللہ ﷺ سے کہا: "اسلام کے قوانین مجھ پر بہت زیادہ ہو گئے ہیں، لہذا مجھے کسی ایسی چیز کے بارے میں بتائیں جس سے میں وابستہ ہو جاؤں(٨)۔" آپ ﷺ نے فرمایا: "تمہاری زبان اللہ عزوجل کے ذکر سے ہمیشہ تر رہے۔" اور ابوہریرہ سے روایت ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "اللہ عزوجل فرماتا ہے: 'میں اپنے بندے کے ساتھ ہوتا ہوں جب وہ مجھے یاد کرتا ہے اور اس کے ہونٹ میرے ذکر سے ہلتے ہیں'(٩)۔"

(١) اسے ابن ابی شیبہ نے المصنف ٥٤٧/١٣ میں روایت کیا ہے۔ (٢) اسے طبری نے ٦٩٦/٢ میں روایت کیا ہے۔ (٣) الرسالة القشيرية ١٥٩/٣۔ (٤) اسے بیہقی نے شعب الایمان (٧٠٧) میں روایت کیا ہے۔ اور قشیری نے الرسالة القشيرية ١٥٨/٣ میں۔ (٥) یہ ترمذی (٣٣٧٧) اور ابن ماجہ (٣٧٩٠) کے ہاں ہے۔ اور یہ زیاد بن ابی زیاد کی معاذ رضی اللہ عنہ سے روایت ہے جیسا کہ مالک ٢١١/١ میں صراحت ہے، اور زیاد نے معاذ کو نہیں پایا۔ دیکھئے مسند احمد (٢٢٠٧٩)۔ (٦) نمبر (٣٧٩٣)، اور یہ احمد (١٧٦٩٨) اور ترمذی (٣٣٧٥) کے ہاں ہے۔ (٧) (ز) اور (ظ) میں: یا رسول اللہ۔ (٨) (د) میں: 'اتثبت به' (میں اس پر ثابت قدم رہوں)، اور یہ بعض روایات کے مطابق ہے جیسا کہ مسند احمد میں ہے۔ (٩) سنن ابن ماجہ (٣٧٩٢)، اور اسے احمد (١٠٩٦٨) نے بھی روایت کیا ہے، اور بخاری نے اپنی صحیح میں حدیث (٧٥٢٤) سے پہلے صیغہ جزم کے ساتھ اسے روایت کیا ہے۔

More explanation for this topic will come regarding the Almighty's saying: "O you who believe! Remember Allah with much remembrance" [Al-Ahzab: 41], and that what is meant is the remembrance of the heart which must be sustained in all circumstances. His saying, the Almighty: "And be grateful to Me and do not be ungrateful to Me." Al-Farra' said: It is said: "Shakartuka" (I thanked you) and "Shakartu laka" (I gave thanks to you), and "Nasahtuka" (I advised you) and "Nasahtu laka" (I gave advice to you), and the first is more eloquent (1). Gratitude (Shukr) is the recognition of kindness and speaking about it; its root in the language is "appearance," as previously mentioned (2). So, the servant's gratitude to Allah Almighty is his praise of Him by mentioning His kindness to him, and the Truth's (Allah's) gratitude to the servant is His praise of him for his obedience to Him, except that the servant's gratitude is utterance by the tongue and acknowledgement by the heart of the Lord's blessings along with acts of obedience (3). His saying, the Almighty: "and do not be ungrateful to Me" is a prohibition, and therefore the "nun" of the plural was omitted from it. This is the "nun" of the speaker, and the "ya" was omitted because it is the end of a verse, and its inclusion is better outside the Quran (4), meaning: do not be ungrateful for My blessings and favors. Disbelief (kufr) here is the concealment of blessings, not denial. The discussion of "kufr" linguistically has already passed (5). The discussion on the meaning of seeking help through patience and prayer has already passed (6), so there is no point in repeating it. His saying, the Almighty: "And do not say of those who are killed in the way of Allah, 'They are dead.' Rather, they are alive, but you perceive [it] not." (154) This is like His saying in another verse: "And never think of those who have been killed in the cause of Allah as dead. Rather, they are alive with their Lord, receiving provision" [Al-Imran: 169], and there the discussion about martyrs and their rulings will come, God willing. And if Allah Almighty brings them to life after death to provide for them - as will come - then it is permissible for Him to bring to life...

(1) In (D): "and the first is correct," and in (Z): "and the first is more correct," see Meanings of the Quran by Al-Farra' 1/92, where it says: The Arabs hardly say: "Shakartuka," they only say: "Shakartu laka," and "Nasahtu laka," and they do not say: "Nasahtuka," though sometimes both are said. (2) 2/104. (3) Al-Risala al-Qushayriyya 3/66. (4) I'rab al-Qur'an by al-Nahhas 1/272. (5) 1/280. (6) 2/65.

इस विषय पर और स्पष्टीकरण अल्लाह के इस कथन के तहत आएगा: "ऐ ईमान वालों! अल्लाह को बहुत याद करो" [अल-अहज़ाब: 41], और इसका अर्थ दिल से याद करना है जिसे हर हाल में जारी रखा जाना चाहिए। अल्लाह का कहना: "और मेरा शुक्र करो और मेरी नाशुक्र मत करो।" अल-फर्रा ने कहा: कहा जाता है: "शकरतुका" (मैंने तुम्हारा शुक्रिया अदा किया) और "शकरतु लका" (मैंने तुम्हारे लिए शुक्रिया अदा किया), और "नसहतुका" (मैंने तुम्हें नसीहत दी) और "नसहतु लका" (मैंने तुम्हारे लिए नसीहत दी), और पहला अधिक सुवक्ता (faseeh) है (1)। कृतज्ञता (शुक्र) एहसान को पहचानना और उसके बारे में बात करना है; भाषा में इसका मूल "प्रकट होना" है, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (2)। अतः, अल्लाह के प्रति बंदे की कृतज्ञता उनकी प्रशंसा करना है उनके द्वारा किए गए एहसानों का उल्लेख करके और अल्लाह की बंदे के प्रति कृतज्ञता बंदे की आज्ञाकारिता के लिए उसकी प्रशंसा करना है, सिवाय इसके कि बंदे की कृतज्ञता ज़बान से कहना और दिल से रब की कृपा को स्वीकार करना है, साथ ही आज्ञाओं का पालन करना है (3)। अल्लाह का कहना: "और मेरी नाशुक्र मत करो" एक मनाही है, और इसलिए इससे जमा का 'नू' हटा दिया गया है। यह बोलने वाले का 'नू' है, और 'या' को हटा दिया गया है क्योंकि यह आयत का अंत है, और कुरान के बाहर इसे रखना बेहतर है (4), यानी: मेरी कृपाओं और उपकारों की नाशुक्र मत करो। यहाँ 'कुफ्र' (नाशुक्र) का अर्थ नेमत को छिपाना है, झुठलाना नहीं। भाषा के तौर पर 'कुफ्र' पर चर्चा पहले हो चुकी है (5)। सब्र और नमाज़ के ज़रिए मदद माँगने के अर्थ पर चर्चा पहले हो चुकी है (6), इसलिए इसे दोहराने का कोई मतलब नहीं है। अल्लाह का कहना: "और जो लोग अल्लाह की राह में मारे जाएँ उन्हें मुर्दा न कहो; बल्कि वे जीवित हैं, परंतु तुम्हें (इसका) एहसास नहीं।" (154) यह अल्लाह के दूसरी आयत में कहे गए शब्दों के समान है: "और जो लोग अल्लाह की राह में मारे गए हैं, उन्हें हरगिज़ मुर्दा न समझो। बल्कि वे अपने रब के पास जीवित हैं, उन्हें रिज़्क (आजीविका) दिया जा रहा है" [आल-इमरान: 169], और वहाँ शहीदों और उनके नियमों के बारे में चर्चा आएगी, यदि अल्लाह ने चाहा। और यदि अल्लाह तआला उन्हें मरने के बाद जीवित करता है ताकि उन्हें रिज़्क दे - जैसा कि आगे आएगा - तो यह मुमकिन है कि वह जीवित करे..

(1) (द) में: "और पहला सही है," और (ज़) में: "और पहला अधिक सही है," अल-फर्रा की मानी अल-कुरान 1/92 देखें, जहाँ लिखा है: अरब शायद ही कभी "शकरतुका" कहते हैं, वे केवल "शकरतु लका" और "नसहतु लका" कहते हैं, और "नसहतुका" नहीं कहते, हालाँकि कभी-कभी दोनों ही कह

दिए जाते हैं। (2) 2/104। (3) अल-रिसाला अल-कुशयरीया 3/66। (4) नहस द्वारा एराब अल-कुरान 1/272। (5) 1/280। (6) 2/65।

اس باب کے لیے مزید وضاحت اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس آئے گی: ﴿يَأَيُّهَا الَّذِينَ ءَامَنُوا اذْكُرُوا اللَّهَ ذِكْرًا كَثِيرًا﴾ [الاحزاب: ۴۱] اور یہ کہ مراد دل کا ذکر ہے جس کا تمام حالات میں برقرار رکھنا واجب ہے۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَٱشْكُرُوا لِي وَلَا تَكْفُرُونِ﴾ الفراء نے کہا: کہا جاتا ہے: شکرتک (میں نے تیرا شکر ادا کیا) اور شکرت لک (میں نے تیرے لیے شکر ادا کیا)، اور نصحتک (میں نے تجھے نصیحت کی) اور نصحت لک (میں نے تیرے لیے نصیحت کی)، اور فصیح پہلا ہے(۱)۔ اور شکر احسان کو پہچاننا اور اس کا تذکرہ کرنا ہے؛ اور لغت میں اس کی اصل "ظہور" ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے(۲)۔ پس بندے کا اللہ تعالیٰ کا شکر ادا کرنا: اس کے احسانات کا ذکر کر کے اس کی ثناء کرنا ہے، اور حق سبحانہ کا بندے کا شکر ادا کرنا: اس کی اطاعت پر اس کی ثناء کرنا ہے، سوائے اس کے کہ بندے کا شکر زبان سے بولنا اور دل سے رب کے انعامات کا اقرار کرنا ہے اطاعتوں کے ساتھ(۳)۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَا تَكْفُرُونِ﴾ یہ نہی (ممانعت) ہے، اسی لیے اس سے نونِ جمع حذف کر دیا گیا، اور یہ نونِ متکلم ہے، اور 'یا' حذف کر دی گئی کیونکہ یہ آیت کا سرا (اختتام) ہے، اور اسے ثابت رکھنا قرآن کے علاوہ میں زیادہ بہتر ہے(۴)، یعنی: میری نعمتوں اور میرے احسانات کا کفر (ناشکری) نہ کرو۔ پس یہاں کفر سے مراد نعمت کا چھپانا ہے نہ کہ جھٹلانا۔ اور لغوی طور پر کفر کے بارے میں بات پہلے گزر چکی ہے(۵)۔ صبر اور نماز کے ذریعے مدد طلب کرنے کے معنی کے بارے میں بات پہلے گزر چکی ہے(۶)، لہٰذا اسے دہرانے کا کوئی فائدہ نہیں۔ اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَلَا تَقُولُوا لِمَن يُقْتَلُ فِي سَبِيلِ اللَّهِ أَمْوَاتٌ بَلْ أَحْيَاءٌ وَلَكِن لَّا تَشْعُرُونَ ١٥٤﴾ یہ دوسری آیت میں اللہ تعالیٰ کے اس قول کی طرح ہے: ﴿وَلَا تَحْسَبَنَّ الَّذِينَ قُتِلُوا فِي سَبِيلِ اللَّهِ أَمْوَاتًا بَلْ أَحْيَاءٌ عِندَ رَبِّهِمْ يُرْزَقُونَ﴾ [آل عمران: ۱۶۹]، اور وہاں شہداء اور ان کے احکام کے بارے

میں بات آئے گی انشاء اللہ تعالیٰ۔ اور جب اللہ تعالیٰ انہیں موت کے بعد زندہ کرتا ہے تاکہ انہیں رزق دے - جیسا کہ آگے آئے گا - تو جائز ہے کہ وہ زندہ کرے...

(۱) (د) میں ہے: "اور صحیح پہلا ہے،" اور (ظ) میں ہے: "اور اصح پہلا ہے،" اور الفراء کی معانی القرآن ۱/۹۲ دیکھیں جس میں ہے: عرب شاذ و نادر ہی شکرتک کہتے ہیں، وہ صرف شکرت لک، اور نصحت لک کہتے ہیں، اور نصحتک نہیں کہتے، اور کبھی کبھار دونوں کہہ دیے جاتے ہیں۔ (۲) ۲/۱۰۴۔ (۳) الرسالہ القشیریہ ۳/۶۶۔ (۴) اعراب القرآن للنحاس ۱/۲۷۲۔ (۵) ۱/۲۸۰۔ (۶) ۲/۶۵۔

Surah Al-Baqarah: Verse 155 [Page] 462

...the disbelievers, to punish them, and in it is evidence for the punishment of the grave (1). And martyrs are alive as God Almighty said, and its meaning is not that they will live; for if it were so, there would be no difference between the martyrs and others; since everyone will live. This is indicated by His Almighty saying: {but you perceive [it] not}. And the believers perceive that they will live.

The word "amwat" (dead) is in the nominative case (marfu') due to a hidden subject, and likewise "bal ahya'" (but alive), i.e.: they are dead, and they are alive. It is not correct to apply "qawl" (saying) to it - because there is no correspondence between them - as it is correct in your saying: I said words and an argument (2).

His Almighty saying: {And We will surely test you with something of fear and hunger and a loss of wealth and lives and fruits, but give good tidings to the patient 155}.

His Almighty saying: {Wa-lanabluwannakum} this 'waw' is open (with fatha) according to Sibawayh due to the meeting of two silent letters (3). Others said: when it was joined to the heavy 'nun' (4), the verb was constructed and became like "khamasata 'ashara" (fifteen).

Trial (bala') can be good and can be bad. Its origin is ordeal (mihna), and it has been mentioned before (5). The meaning is: We will surely test you so that We may know the striver and the patient with a knowledge of observation, until reward befalls him, as mentioned before.

It was said: they were only tested (6) with this so it would be a sign for those after them, so they would know that they only endured this when the truth became clear to them.

It was said: He informed them of this so they would be certain that it will afflict them, so they would prepare (7) themselves for it, and it would be (8) further for them from anxiety, and in it is the hastening of God Almighty's reward for determination and preparing the soul (9).

(1) Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Tabari 1/23. (2) al-Muharrar al-Wajiz 1/227. (3) al-Kitab 3/528, and the author quoted it from him via al-Nahhas in I'rab al-Quran 1/272. (4) In (Zh): to the waw nun. (5) 2/88-89. (6) In (D): we test. (7) In (D): so they prepare. (8) In (M): so they would be. (9) Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Tabari 1/23-24.

सूरह अल-बकरा: आयत 155 [पृष्ठ] 462

...काफिरों को, उन्हें दंडित करने के लिए, और इसमें कब्र की सजा का प्रमाण है (1)। और शहीद जीवित हैं जैसा कि अल्लाह तआला ने कहा है, और इसका अर्थ यह नहीं है कि वे जीवित रहेंगे; क्योंकि यदि ऐसा होता, तो शहीदों और अन्य लोगों के बीच कोई अंतर नहीं होता; क्योंकि हर कोई जीवित रहेगा। यह अल्लाह तआला के इस कथन से सूचित होता है: {लेकिन तुम नहीं समझते}। और आस्तिक समझते हैं कि वे जीवित रहेंगे।

शब्द "अमवात" (मृत) एक छिपे हुए कर्ता के कारण प्रथमा विभक्ति (मरफ़ू) में है, और इसी तरह "बल अहया" (बल्कि जीवित), यानी: वे मृत हैं, और वे जीवित हैं। इसमें "कौल" (कथन) का प्रयोग करना सही नहीं है - क्योंकि उनके बीच कोई समानता नहीं है - जैसा कि आपके कथन में सही है: मैंने शब्द और तर्क कहे (2)।

अल्लाह तआला का कथन: {और हम निश्चय ही तुम्हें कुछ डर और भूख से, और धन और प्राणों और फलों की कमी से आजमाएंगे, लेकिन धैर्य रखने वालों को खुशखबरी दे दो 155}।

अल्लाह तआला का कथन: {व-लनबलुवन्नकुम} सिबावैह के अनुसार यह 'वाव' दो शांत अक्षरों के मिलने के कारण खुला (फतहा के साथ) है (3)। दूसरों ने कहा: जब इसे भारी 'नून' (4) के साथ जोड़ा गया, तो क्रिया का निर्माण हुआ और वह "खमसाता अशरा" (पंद्रह) की तरह हो गया।

परीक्षा (बला) अच्छी भी हो सकती है और बुरी भी। इसका मूल अर्थ संकट (मिहना) है, और इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है (5)। इसका अर्थ है: हम निश्चय ही तुम्हारी परीक्षा लेंगे ताकि हम संघर्ष करने वाले और धैर्य रखने वाले को प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ जान सकें, जब तक कि उस पर प्रतिफल न आ जाए, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है।

कहा गया: उन्हें केवल इसके साथ इसलिए आजमाया गया (6) ताकि यह उनके बाद आने वालों के लिए एक निशानी हो, ताकि उन्हें पता चल सके कि उन्होंने इस पर तभी धैर्य रखा जब उनके सामने सत्य स्पष्ट हो गया।

कहा गया: उसने उन्हें इसके बारे में सूचित किया ताकि वे इस बारे में आश्वस्त हों कि यह उन्हें प्रभावित करेगा, ताकि वे स्वयं को इसके लिए तैयार करें (7), और यह (8) उनके लिए घबराहट से दूर

हो, और इसमें दृढ़ संकल्प और स्वयं को तैयार करने पर अल्लाह तआला के प्रतिफल में शीघ्रता है (9)।

(1) अहकाम अल-कुरान, अल-किया अल-तबरी 1/23। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/227। (3) अल-किताब 3/528, और लेखक ने इसे अल-नहहास के माध्यम से इराब अल-कुरान 1/272 में उद्धृत किया है। (4) (ज़) में: वाव नून तक। (5) 2/88-89। (6) (द) में: हम आजमाते हैं। (7) (द) में: ताकि वे तैयार हों। (8) (म) में: ताकि वे हों। (9) अहकाम अल-कुरान, अल-किया अल-तबरी 1/23-24।

سورہ البقرہ: آیت 155 [صفحہ] 462

...کفار کو، تاکہ انہیں عذاب دے، اور اس میں عذابِ قبر کی دلیل ہے (1)۔ اور شہداء زندہ ہیں جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا، اور اس کا مطلب یہ نہیں ہے کہ وہ (آئندہ) زندہ ہوں گے؛ کیونکہ اگر ایسا ہوتا تو شہداء اور دوسروں کے درمیان کوئی فرق نہ ہوتا؛ کیونکہ ہر کوئی زندہ ہوگا۔ اور اس پر اللہ تعالیٰ کا یہ قول دلالت کرتا ہے: {ولكن لا تشعرون} (لیکن تم شعور نہیں رکھتے)۔ اور مؤمنین شعور رکھتے ہیں کہ وہ زندہ ہوں گے۔

لفظ "اموات" (مردہ) ایک پوشیدہ مبتدا کی وجہ سے مرفوع ہے، اور اسی طرح "بل احياء" (بلکہ زندہ)، یعنی: وہ مردہ ہیں، اور وہ زندہ ہیں، اور اس میں "قول" کا عمل کرنا صحیح نہیں ہے - کیونکہ اس کے اور اس کے درمیان کوئی مناسبت نہیں ہے - جیسا کہ آپ کے اس قول میں صحیح ہے: میں نے بات اور حجت کہی (2)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِنَ الْخَوْفِ وَالْجُوعِ وَنَقْصٍ مِنَ الْأَمْوَالِ وَالْأَنْفُسِ وَالثَّمَرَاتِ وَبَشِّرِ الصَّابِرِينَ} (اور ہم تمہیں ضرور آزمائیں گے کچھ خوف اور بھوک سے اور مالوں اور جانوں اور پھلوں کی کمی سے، اور صبر کرنے والوں کو خوشخبری دے دو)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: {ولنبلوّنكم} یہ 'واو' سیبویہ کے نزدیک دو ساکنوں کے ملاپ کی وجہ سے مفتوح ہے (3)۔ اور دوسروں نے کہا: جب اسے نونِ ثقیلہ (4) کے ساتھ ملایا گیا تو فعل مبنی ہو گیا اور وہ "خمسۃ عشر" (پندرہ) کے درجے میں آ گیا۔

اور بلاء (آزمائش) اچھی بھی ہوتی ہے اور بری بھی۔ اور اس کی اصل محنت (آزمائش) ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (5)۔ اور معنی یہ ہے: ہم تمہیں ضرور آزمائیں گے تاکہ ہم مجاہد اور صابر

کو مشاہدے کے علم سے جان لیں، یہاں تک کہ اس پر جزا واقع ہو جائے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے۔

اور کہا گیا: انہیں اس سے اس لیے آزمایا گیا (6) تاکہ یہ ان کے بعد آنے والوں کے لیے نشانی ہو، پس وہ جان لیں کہ انہوں نے اس پر اسی وقت صبر کیا جب ان کے لیے حق واضح ہو گیا۔

اور کہا گیا: انہیں اس سے اس لیے باخبر کیا تاکہ انہیں اس پر یقین ہو جائے کہ یہ انہیں پہنچے گا، پس وہ اپنے آپ کو اس کے لیے تیار کر لیں (7)، پس یہ (8) ان کے لیے جزع (بے صبری) سے دور تر ہو، اور اس میں پختہ ارادے اور نفس کی تیاری پر اللہ تعالیٰ کے ثواب کی جلدی ہے (9)۔

(1) احکام القرآن للکیا الطبری 1/23۔ (2) المحرر الوجیز 1/227۔ (3) الکتاب 3/528، اور مصنف نے اسے نحاس کے واسطے سے اعراب القرآن 1/272 میں نقل کیا ہے۔ (4) (ظ) میں: الی الواو النون۔ (5) 2/88-89۔ (6) (د) میں: نبلو۔ (7) (د) میں: فیوطئوا۔ (8) (م) میں: فیکونوا۔ (9) احکام القرآن للکیا الطبری 1/23-24۔

Surah Al-Baqarah: Verse 155 [Page] 463

His word, Exalted is He: {With something} is a singular word with a plural meaning. Ad-Dahhak read it as: "With things" in the plural form (1). The majority read it in the singular form, meaning: with something of this and something of that, and were content with the first for brevity.

{Of fear} i.e.: fear of the enemy and panic in fighting; this was said by Ibn Abbas. Ash-Shafi'i said: It is the fear of Allah, Mighty and Majestic is He.

{And hunger} means famine due to drought and scarcity, according to Ibn Abbas. Ash-Shafi'i said: It is the hunger in the month of Ramadan.

{And loss of wealth} due to being occupied with fighting the disbelievers. It is also said: through devastating calamities. Ash-Shafi'i said: through the obligatory Zakat (2).

{And lives} Ibn Abbas said: through killing and death in Jihad (3). Ash-Shafi'i said: meaning through illnesses.

{And fruits} Ash-Shafi'i said: What is meant is the death of children, for a man's child is the fruit of his heart, as stated in the narration that follows (4). Ibn Abbas said: What is meant is the scarcity of vegetation and the cessation of blessings (5).

His word, Exalted is He: {And give good tidings to the patient} meaning: of reward for patience. Patience (As-Sabr) originally means restraint, and its reward is unmeasured, as previously mentioned (6). However, this is only achieved through patience at the first shock (7), as Bukhari narrated from Anas, from the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) who said: "Patience is only at the first shock" (8).

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/228. (2) In (M): with Zakat. (3) In (D): and Jihad, and in (Z): with Jihad. (4) The author will mention it in the fifth issue, from the hadith of Abu Musa al-Ash'ari, may Allah be pleased with him. (5) See the previous statements in the interpretation of His word: {And We will surely test you with something of fear and hunger} in Ahkam al-Quran by Ash-Shafi'i 1/39, Al-Wasit 1/236, Tafsir al-Baghawi 1/130, and Zad al-Masir 1/162. What is in Ahkam al-Quran: And fruits: charities: and give good tidings to the patient by performing them. (6) 2/65. (7) His word: the first, is not in (Kh) and (Z). (8) Sahih Bukhari (1283).

सूरह अल-बकरा: आयत 155 [पृष्ठ] 463

अल्लाह तआला का फरमान: {किसी चीज़ से} यह एकवचन शब्द है और इसका अर्थ बहुवचन है। अद-दह्हाक ने इसे बहुवचन के रूप में "अश्याअ" पढ़ा है (1)। अधिकांश ने इसे एकवचन (तौहीद) में पढ़ा है, अर्थात: इस चीज़ में से कुछ और उस चीज़ में से कुछ, इसलिए संक्षिप्तता के लिए पहले पर ही संतोष किया।

{डर में से} अर्थात: शत्रु का डर और युद्ध में घबराहट; यह इब्न अब्बास ने कहा है। इमाम शाफ़ई ने कहा: यह अल्लाह अज़्ज़ व जल्ल का डर है।

{और भूख} इब्न अब्बास के अनुसार, सूखे और अकाल के कारण भुखमरी है। इमाम शाफ़ई ने कहा: यह रमज़ान के महीने की भूख है।

{और धन की कमी} काफ़िरों से लड़ने में व्यस्त रहने के कारण। और कहा गया: विनाशकारी आपदाओं के कारण। इमाम शाफ़ई ने कहा: अनिवार्य ज़कात (2) के कारण।

{और जानों की} इब्न अब्बास ने कहा: जिहाद में कत्ल और मृत्यु के कारण (3)। इमाम शाफ़ई ने कहा: अर्थात बीमारियों के कारण।

{और फलों की} इमाम शाफ़ई ने कहा: इसका अर्थ बच्चों की मृत्यु है, और आदमी की संतान उसके दिल का फल है, जैसा कि आने वाली रिवायत (4) में है। इब्न अब्बास ने कहा: इसका अर्थ वनस्पतियों की कमी और बरकतों का रुक जाना (5) है।

अल्लाह तआला का फरमान: {और धैर्य रखने वालों को खुशखबरी दे दो} अर्थात: धैर्य पर मिलने वाले इनाम की। 'सब्र' (धैर्य) का मूल अर्थ है रोकना (खुद को वश में रखना), और इसका प्रतिफल अनिर्धारित है, जैसा कि पहले बताया जा चुका है (6)। लेकिन यह केवल पहली चोट (सदमे) के समय धैर्य रखने से ही होता है (7), जैसा कि बुखारी ने अनस से, नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत किया है कि आपने फ़रमाया: "सब्र (धैर्य) तो पहली चोट (सदमे) के समय ही होता है" (8)।

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/228. (2) (म) में: ज़कात के साथ। (3) (द) में: और जिहाद, और (ज़) में: जिहाद के साथ। (4) लेखक इसे पांचवें मुद्दे में उल्लेख करेंगे, जो अबू मूसा अल-अशअरी (रज़ि.) की हदीस से है। (5) अल्लाह तआला के फरमान: {और हम तुम्हें कुछ डर और भूख से ज़रूर आज़माएंगे} की व्याख्या में पिछले कथनों को देखें: अहकाम अल-कुरान लिश-शाफ़ई 1/39, अल-

वसीत 1/236, तफ़्सीर अल-बग़वी 1/130, और ज़ाद अल-मसीर 1/162 में। अहकाम अल-कुरान में है: और फल: दान (सदक़ात): और उन्हें अदा करने वाले धैर्यवानों को खुशखबरी दें। (6) 2/65. (7) शब्द: "पहली", (ख़) और (ज़) में नहीं है। (8) सहीह बुखारी (1283)।

سورہ البقرہ: آیت ۱۵۵ ٤٦٣

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿بِشَيْءٍ﴾ یہ لفظ مفرد ہے اور اس کے معنی جمع کے ہیں۔ اور الضحاک نے اسے جمع کے طور پر "بأشياء" پڑھا ہے (۱)۔ جمہور نے اسے توحید (واحد) کے ساتھ پڑھا ہے، یعنی: اس چیز میں سے کچھ اور اس چیز میں سے کچھ، پس اختصار کی خاطر پہلے پر ہی اکتفا کیا۔

﴿مِنَ الْخَوْفِ﴾ یعنی: دشمن کا خوف اور لڑائی میں گھبراہٹ؛ یہ ابن عباس نے کہا ہے۔ امام شافعی نے فرمایا: یہ اللہ عزوجل کا خوف ہے۔

﴿وَالْجُوعِ﴾ ابن عباس کے قول میں خشک سالی اور قحط کی وجہ سے بھوک مراد ہے۔ امام شافعی نے فرمایا: یہ ماہِ رمضان کی بھوک ہے۔

﴿وَنَقْصٍ مِّنَ الْأَمْوَالِ﴾ کافروں کے ساتھ قتال میں مشغولیت کی وجہ سے۔ اور کہا گیا: ہلاک کر دینے والی آفات کے ذریعے۔ امام شافعی نے فرمایا: فرض زکوٰۃ (۲) کے ذریعے۔

﴿وَالْأَنفُسِ﴾ ابن عباس نے کہا: جہاد میں قتل اور موت کے ذریعے۔ امام شافعی نے فرمایا: یعنی بیماریوں کے ذریعے۔

﴿وَالثَّمَرَاتِ﴾ امام شافعی نے فرمایا: اس سے مراد اولاد کی موت ہے، اور آدمی کی اولاد اس کے دل کا پھل ہے، جیسا کہ آنے والی روایت (٤) میں ہے۔ ابن عباس نے کہا: اس سے مراد نباتات کی کمی اور برکتوں کا رک جانا (٥) ہے۔

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وَبَشِّرِ الصَّابِرِينَ﴾ یعنی: صبر پر ثواب کی خوشخبری دے دو۔ صبر کی اصل 'حبس' (روکنا) ہے، اور اس کا ثواب غیر معینہ ہے، جیسا کہ پہلے گزر چکا ہے (٦)۔ لیکن یہ اسی وقت ہوتا ہے جب پہلے صدمے کے وقت صبر کیا جائے (۷)، جیسا کہ بخاری نے انس رضی اللہ

عنہ سے روایت کیا کہ نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: "صبر تو پہلے صدمے کے وقت ہی (معتبر) ہوتا ہے" (٨)۔

(١) المحرر الوجيز ٢٢٨/١۔ (٢) (م) میں: بالزكاة۔ (٣) (د) میں: والجهاد، اور (ظ) میں: بالجهاد۔ (٤) مصنف پانچویں مسئلے میں اس کا ذکر کریں گے، اور وہ ابو موسیٰ اشعری رضی اللہ عنہ کی حدیث سے ہے۔ (٥) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد: ﴿وَلَنَبْلُوَنَّكُم بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوعِ﴾ کی تفسیر میں گزشتہ اقوال کو دیکھیں: احكام القرآن للشافعی ٣٩/١، الوسيط ٢٣٦/١، تفسیر بغوی ١٣٠/١، اور زاد المسير ١٦٢/١ میں۔ اور جو احکام القرآن میں ہے: والثمرات: الصدقات: وبشر الصابرين بأدائها (یعنی ثمرات سے مراد صدقات ہیں، اور ان کی ادائیگی کرنے والے صابرین کو خوشخبری دیں)۔ (٦) ٦٥/٢۔ (٧) لفظ: 'الأولى' (پہلے)، (خ) اور (ظ) میں نہیں ہے۔ (٨) صحیح بخاری (١٢٨٣)۔

٤٦٤ Surah Al-Baqarah: Verse 155

Muslim narrated it (1) more completely; meaning: the patient endurance that is difficult for the soul and for which the reward is great is only at the onset of a calamity and its heat; for it indicates strength of heart and steadfastness in the state of patience. As for when the heat of the calamity cools down, everyone is patient then. Therefore, it is said: the wise person (2) must commit himself at the onset of a calamity to what the fool must inevitably do after three days (3).

Sahl bin Abdullah al-Tustari said: When Allah Almighty said: {And give good tidings to the patient}, patience became a way of life. Patience is of two types: patience against disobeying Allah—this person is a Mujahid (striver); and patience in obeying Allah—this person is an Abid (worshipper). If he is patient against disobeying Allah and patient in obeying Allah, Allah grants him contentment (Ridha) with His decree. The sign of contentment is the tranquility of the heart regarding what befalls the soul, whether disliked or liked.

Al-Khawwas (4) said: Patience is steadfastness upon the rulings of the Book and the Sunnah.

Ruwaym said: Patience is the abandonment of complaining (5).

Dhu al-Nun al-Misri said: Patience is seeking help from Allah Almighty (6).

Teacher Abu Ali (7) said: The limit of patience is that you do not object to destiny. As for showing affliction without complaining, it does not contradict patience; Allah Almighty said in the story of Job: {Indeed, We found him patient, an excellent servant} [Saad: 44] despite what He informed about him saying: {Indeed, adversity has touched me}.

(1) Sahih Muslim (926), and it is with Ahmad (12458). (2) In (m) and (d): every wise person. (3) Al-Mufhim 2/579. (4) Ibrahim bin Ahmad bin Ismail, Abu Ishaq, the unique scholar of his time, from the peers of Abu al-Qasim al-Junayd, died in Ray in the year (291 AH). Tabaqat al-Sufiyya p. 284. His saying was mentioned by al-Qushayri in al-Risala al-Qushayriyya 3/86. (5) Al-Hilya 10/301, Shu'ab al-Iman (10078), Tarikh Baghdad 8/430, and al-Risala al-Qushayriyya 3/86. (6) Al-Risala al-Qushayriyya 3/86. (7) Al-Hasan bin Ali bin Muhammad al-Daqqaq, the Nishapuri Sufi ascetic, studied under al-Khidri and al-Qaffal, and he is the teacher of Teacher Abu al-Qasim al-Qushayri. Died in the year (406 AH). Tabaqat al-Shafi'iyya 4/329. And his saying is in al-Risala al-Qushayriyya 3/91.

४६४ सूरा अल-बकरा: आयत १५५

मुस्लिम ने इसे (१) अधिक पूर्णता से उद्धृत किया है; अर्थात: वह धैर्य जो आत्मा पर कठिन है और जिस पर प्रतिफल महान है, वह केवल मुसीबत के हमले और उसकी गर्मी के समय होता है; क्योंकि यह हृदय की शक्ति और धैर्य की स्थिति में स्थिरता का संकेत देता है। जहाँ तक उस समय की बात है जब मुसीबत की गर्मी ठंडी हो जाती है, तो उस समय हर कोई धैर्य रख लेता है। इसलिए कहा गया है: बुद्धिमान व्यक्ति (२) को मुसीबत के समय वह करने के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए जो मूर्ख को तीन दिन बाद अनिवार्य रूप से करना पड़ता है (३)।

सह्ल बिन अब्दुल्ला अल-तुस्तरी ने कहा: जब अल्लाह तआला ने कहा: {और धैर्य रखने वालों को खुशखबरी दे दो}, तो धैर्य जीवन बन गया। धैर्य दो प्रकार के होते हैं: अल्लाह की अवज्ञा से बचने का धैर्य, तो वह मुजाहिद (संघर्षकर्ता) है; और अल्लाह की आज्ञाकारिता पर धैर्य, तो वह आबिद (उपासक) है। यदि वह अल्लाह की अवज्ञा से बचता है और उसकी आज्ञाकारिता पर धैर्य रखता है, तो अल्लाह उसे अपने फैसले पर संतोष (रज़ा) प्रदान करता है। संतोष का लक्षण नापसंद और पसंद की जाने वाली चीज़ों के आने पर दिल का शांत रहना है।

अल-खव्वास (४) ने कहा: धैर्य किताब (कुरान) और सुन्नत के फैसलों पर अडिग रहना है।

रुवयम ने कहा: धैर्य शिकायत छोड़ना है (५)।

ज़ुन्नून अल-मिसरी ने कहा: धैर्य अल्लाह तआला से मदद माँगना है (६)।

उस्ताद अबू अली (७) ने कहा: धैर्य की सीमा यह है कि आप नियति पर आपत्ति न करें। जहाँ तक शिकायत के बिना विपत्ति को प्रकट करने की बात है, तो यह धैर्य के विपरीत नहीं है; अल्लाह तआला ने अय्यूब की कहानी में कहा है: {निश्चित रूप से हमने उसे धैर्यवान पाया, वह कितना अच्छा सेवक था} [साद: ४४] इसके बावजूद जो उसने बताया कि उन्होंने कहा था: {निश्चित रूप से मुझे विपत्ति ने छुआ है}।

(१) सहीह मुस्लिम (९२६), और यह अहमद (१२४५८) के पास है। (२) (म) और (द) में: हर बुद्धिमान व्यक्ति। (३) अल-मुफ्हिम २/५७९। (४) इब्राहिम बिन अहमद बिन इस्माइल, अबू इसहाक, अपने समय के अद्वितीय विद्वान, अबू अल-कासिम अल-जुनैद के साथियों में से, राय शहर में वर्ष (२९१ हिजरी) में मृत्यु हुई। तबात अल-सूफिया पृ. २८४। उनके कथन का उल्लेख अल-कुशैरी ने अल-

रिसाला अल-कुशैरिया ३/८६ में किया है। (५) अल-हिल्या १०/३०१, शुअब अल-ईमान (१००७८), तारीख बगदाद ८/४३०, और अल-रिसाला अल-कुशैरिया ३/८६। (६) अल-रिसाला अल-कुशैरिया ३/८६। (७) अल-हसन बिन अली बिन मुहम्मद अल-दक्काक, निशापुरी सूफी तपस्वी, अल-खिदरी और अल-कफाल से शिक्षा प्राप्त की, और वे उस्ताद अबू अल-कासिम अल-कुशैरी के शिक्षक हैं। वर्ष (४०६ हिजरी) में मृत्यु हुई। तबात अल-शाफइया ४/३२९। और उनका कथन अल-रिसाला अल-कुशैरिया ३/९१ में है।

۴۶۴ سورة البقرہ: آیت ۱۵۵

مسلم (۱) نے اسے مکمل طور پر روایت کیا ہے؛ یعنی: وہ صبر جو نفس پر گراں گزرتا ہے اور جس پر اجر عظیم ہے وہ مصیبت کے حملے اور اس کی تپش کے وقت ہی ہوتا ہے؛ کیونکہ یہ دل کی مضبوطی اور صبر کے مقام پر استقامت کی دلیل ہے، اور رہا وہ وقت جب مصیبت کی تپش ٹھنڈی ہو جائے تو اس وقت ہر کوئی صبر کر ہی لیتا ہے، اسی لیے کہا گیا ہے: عقل مند (۲) پر لازم ہے کہ وہ مصیبت کے وقت وہی طرزِ عمل اختیار کرے جو احمق تین دن بعد اختیار کرنے پر مجبور ہوتا ہے (۳)۔

سہل بن عبداللہ تستری نے کہا: جب اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {اور صبر کرنے والوں کو خوشخبری دے دیجئے} تو صبر زندگی بن گیا۔ اور صبر کی دو قسمیں ہیں: اللہ کی معصیت (گناہ) سے بچنے پر صبر، تو یہ مجاہد ہے، اور اللہ کی اطاعت پر صبر، تو یہ عابد ہے۔ جب وہ اللہ کی معصیت سے بچے اور اللہ کی اطاعت پر صبر کرے تو اللہ اسے اپنی قضا پر رضا عطا فرماتا ہے، اور رضا کی علامت ناپسندیدہ اور پسندیدہ چیزوں کے وارد ہونے پر دل کا سکون ہے۔

خواص (۴) نے کہا: صبر کتاب و سنت کے احکام پر ثابت قدمی ہے۔

رویم نے کہا: صبر شکایت ترک کرنے کا نام ہے (۵)۔

ذوالنون مصری نے کہا: صبر اللہ تعالیٰ سے مدد مانگنا ہے (۶)۔

استاد ابو علی (۷) نے کہا: صبر کی حد یہ ہے کہ آپ تقدیر پر اعتراض نہ کریں، رہی بات شکایت کے بغیر بلا و مصیبت کو ظاہر کرنے کی، تو یہ صبر کے منافی نہیں ہے؛ اللہ تعالیٰ نے ایوب علیہ

السلام کے قصے میں فرمایا: {بیشک ہم نے انہیں صابر پایا، وہ بہترین بندے تھے} [ص: ۴۴] اس کے باوجود جو ان کے بارے میں خبر دی کہ انہوں نے کہا: {مجھے تکلیف پہنچی ہے}۔

(۱) صحیح مسلم (۹۲۶)، اور یہ احمد (۱۲۴۵۸) کے ہاں موجود ہے۔ (۲) نسخہ (م) اور (د) میں ہے: ہر عقلمند۔ (۳) المفہم ۵۷۹/۲۔ (۴) ابراہیم بن احمد بن اسماعیل، ابو اسحاق، اپنے وقت کے جید علماء میں سے، ابوالقاسم جنید کے ہم عصروں میں سے، مقامِ رے میں سنہ (۲۹۱ھ) میں وفات پائی۔ طبقات الصوفیہ ص ۲۸۴۔ ان کا قول قشیری نے الرسالة القشیریة ۸۶/۳ میں ذکر کیا ہے۔ (۵) الحلیة ۳۰۱/۱۰، شعب الایمان (۱۰۰۷۸)، تاریخ بغداد ۴۳۰/۸، اور الرسالة القشیریة ۸۶/۳۔ (۶) الرسالة القشیریة ۸۶/۳۔ (۷) الحسن بن علی بن محمد الدقاق، نیشاپوری صوفی زاہد، خضری اور قفال سے علم حاصل کیا، اور آپ استاد ابوالقاسم قشیری کے استاد ہیں۔ سنہ (۴۰۶ھ) میں وفات پائی۔ طبقات الشافعیة ۳۲۹/۴۔ ان کا قول الرسالة القشیریة ۹۱/۳ میں ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verses 156, 157 465

The words of Allah the Almighty: {Who, when disaster strikes them, say, "Indeed we belong to Allah, and indeed to Him we will return." ۝ Those are the ones upon whom are blessings from their Lord and mercy. And it is those who are the [rightly] guided. ۝}

There are six issues regarding this: First: Allah's saying: {musibatun} (a disaster). A disaster (al-musiba) is everything that harms a believer and afflicts them. It is said: "asabahu isabatan, wa musaban, wa musabatan" (he was afflicted, an affliction, a tragedy).

'Musiba' is the singular of 'masa'ib'. 'Musuba' - with a damma on the 'saad' - is like 'musiba'. The Arabs agreed (1) on the hamza in 'masa'ib', its root being 'waw', as if they likened the original to the added letter. It is also pluralized as 'masawib', which is the original form. 'Musab' means 'isaba' (affliction). A poet said: "O Sulaym, indeed your afflicting a man who offered peace as a greeting is an injustice." (2) And "the arrow hit (saba) the target, it hits (yasibu) it (3) with a hit (sayban)"; this is a dialectal variation of 'asabahu' (4).

A disaster (musiba) is a calamity that befalls a person, even if it is small, and it is used for evil. Ikrimah narrated that the lamp of the Messenger of Allah (peace be upon him) went out one night, so he said: "Indeed we belong to Allah, and indeed to Him we will return." It was said: "Is this a disaster, O Messenger of Allah?" He said: "Yes, everything that harms the believer is a disaster." (5).

I say: This meaning is established in the Sahih collections. Muslim narrated from Abu Sa'id and Abu (6) Hurayrah (may Allah be pleased with them) that they heard the Messenger of Allah (peace be upon him) saying: "Whatever afflicts a believer of fatigue,

(1) In (D), (Z), and (M): "And agreed". (2) Its speaker is Al-Harith bin Khalid Al-Makhzumi as in Al-Aghani 9/229, and Al-Khizana 1/454. Ibn Hisham attributed it in Al-Mughni p. 697 to Al-Arji. It is in Majalis Tha'lab p. 224, Tafsir Al-Tabari 1/115, and Amali Ibn Al-Shajari 1/161 without attribution. Some have "Azhulaym" or "Azhaloom" instead of "Asulaym". See Al-Lisan (S-W-B). (3) In (M): "yusib". (4) Al-Sihah: (S-W-B). (5) Al-Muharrar Al-Wajiz 1/228. The report was mentioned by Al-Suyuti in Ad-Durr Al-Manthur 1/157 and attributed to Abd bin Humayd and Ibn Abi Al-Dunya in 'Al-Aza',

and Abu Dawood recorded something similar in Al-Marasil (412) from Imran Al-Qasir.
(6) In (M) and (D): "and from Abu".

सूरह अल-बक़रह: आयतें 156, 157 465

अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {वे जिन्हें जब कोई मुसीबत पहुँचती है, तो वे कहते हैं: "निश्चय ही हम अल्लाह ही के हैं और निश्चय ही हम उसी की ओर लौटने वाले हैं।" ۝ यही वे लोग हैं जिन पर उनके रब की ओर से कृपाएँ और दया है, और यही वे लोग हैं जो सीधे मार्ग पर हैं। ۝}

इसमें छह मसले हैं: पहला: अल्लाह का कथन: {मुसीबत}। मुसीबत: वह सब कुछ जो मोमिन (आस्तिक) को कष्ट पहुँचाता है और उसे प्रभावित करता है। कहा जाता है: "असाबहु इसाबतन व मुसाबन व मुसावतन" (उसे विपत्ति पहुँची)।

'मुसीबत' का बहुवचन 'मसाइब' है। 'मुसूबा' - 'साद' पर पेश के साथ - मुसीबत जैसा ही है। अरबों ने 'मसाइब' में 'हम्ज़ा' के उच्चारण पर सहमति (1) व्यक्त की, जबकि इसका मूल 'वाव' है, मानो उन्होंने मूल अक्षर को अतिरिक्त के समान माना हो। इसे 'मसाविब' के रूप में भी इकट्ठा किया जाता है, जो मूल रूप है। 'मुसाब' का अर्थ 'इसाबा' (प्रभावित होना) है; कवि ने कहा है: "हे सुलैम, वास्तव में तुम्हारा उस आदमी को दुख पहुँचाना जिसने शांति को अभिवादन के रूप में दिया था, एक अन्याय है।" (2) और "तीर निशाने पर लगा (साबा), वह उसे मारता है (3) सइबन"; यह 'असाबहु' की एक उपभाषा है (4)।

मुसीबत एक आपदा है जो इंसान पर आती है चाहे वह छोटी ही क्यों न हो, और इसका उपयोग बुराई के अर्थ में किया जाता है। इकरामा से रिवायत है कि एक रात अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) का दीपक बुझ गया, तो आपने कहा: "इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन" (निश्चय ही हम अल्लाह ही के हैं और निश्चय ही हम उसी की ओर लौटने वाले हैं)। पूछा गया: "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या यह भी एक मुसीबत है?" आपने कहा: "हाँ, हर वह चीज़ जो मोमिन को कष्ट पहुँचाती है वह मुसीबत है।" (5)।

मैं कहता हूँ: यह अर्थ 'सहीह' हदीसों में प्रमाणित है। मुस्लिम ने अबू सईद और अबू (6) हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) से रिवायत किया है कि उन दोनों ने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) को कहते सुना: "मोमिन को जो भी थकान पहुँचती है,

(1) (द), (ज़) और (म) में: "और सहमति व्यक्त की"। (2) इसके वक्ता अल-हारिस बिन खालिद अल-मखज़ूमी हैं जैसा कि अल-अग़ानी 9/229 और अल-खिज़ाना 1/454 में है। इब्न हिशाम ने अल-मुग़नी पृष्ठ 697 में इसे अल-उर्जी से जोड़ा है। यह मजालिस थालाब पृष्ठ 224, तफ़सीर अल-तबरी 1/115

और अमाली इब्न अल-शजरी 1/161 में बिना किसी श्रेय के है। कुछ के पास "अज़ुलैम" या "अज़लूम" है, "असुलैम" के बजाय। अल-लिसान देखें (S-W-B)। (3) (म) में: "यूसिब"। (4) अस-सिहाह: (S-W-B)। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/228। सुयूती ने 'अद-दुर अल-मंसूर' 1/157 में इस खबर का उल्लेख किया है और इसे अब्द बिन हुमैद और इब्न अबी अल-दुनिया को 'अल-अज़ा' में श्रेय दिया है, और अबू दाऊद ने इसे अल-मरासील (412) में इमरान अल-क़सीर से इसी तरह निकाला है। (6) (म) और (द) में: "और अबू से"।

سورہ البقرہ: آیات 156 ، 157 465

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وہ لوگ کہ جب انہیں کوئی مصیبت پہنچتی ہے تو کہتے ہیں: "بیشک ہم اللہ ہی کے ہیں اور بیشک ہم اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں۔" ۝ یہی وہ لوگ ہیں جن پر ان کے رب کی طرف سے عنایات اور رحمت ہے، اور یہی لوگ ہدایت پانے والے ہیں۔ ۝}

اس میں چھ مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {مصیبت}۔ مصیبت: ہر وہ چیز جو مومن کو تکلیف دے اور اسے پہنچے؛ کہا جاتا ہے: "أصابه إصابة ومُصاباً ومُصابةً" (اسے صدمہ پہنچا)۔

'مصیبت' کی جمع 'مصائب' ہے، اور 'مُصوبہ' - صاد کے ضمہ کے ساتھ - مصیبت کی طرح ہے۔ عربوں نے 'مصائب' میں ہمزہ پر اتفاق (1) کیا، جبکہ اس کی اصل 'واؤ' ہے، گویا انہوں نے اصلی کو زائد کے مشابہ قرار دیا۔ اس کی جمع 'مصاوب' بھی آتی ہے جو اصل ہے۔ 'مصاب' کا مطلب 'اصابت' (پہنچنا) ہے؛ شاعر نے کہا: "اے سلیم، بیشک تمہارا اس شخص کو تکلیف پہنچانا جس نے سلامتی کا تحفہ پیش کیا، سراسر ظلم ہے۔" (2) اور "تیر نشانے پر لگا (صاب)، وہ اسے لگتا ہے (3) صیباً"؛ یہ 'أصابه' کی ایک لغت (بولی) ہے (4)۔

مصیبت وہ آفت ہے جو انسان پر پڑتی ہے خواہ وہ چھوٹی ہی کیوں نہ ہو، اور یہ برائی میں استعمال ہوتی ہے۔ عکرمہ سے مروی ہے کہ ایک رات اللہ کے رسول ﷺ کا چراغ بجھ گیا، تو آپ ﷺ نے فرمایا: «إِنَّا لِلَّهِ وَإِنَّا إِلَيْهِ رَاجِعُونَ»۔ پوچھا گیا: اے اللہ کے رسول! کیا یہ بھی مصیبت ہے؟ آپ ﷺ نے فرمایا: "ہاں، ہر وہ چیز جو مومن کو تکلیف دے وہ مصیبت ہے" (5)۔

میں کہتا ہوں: یہ معنی صحیح (احادیث) میں ثابت ہے، مسلم نے ابوسعید اور ابو (6) ہریرہ رضی اللہ عنہما سے روایت کیا ہے کہ ان دونوں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے سنا: "مومن کو جو بھی تھکن پہنچتی ہے،

(1) (د)، (ز) اور (م) میں: "اور اتفاق کیا"۔ (2) اس کے کہنے والے الحارث بن خالد المخزومی ہیں جیسا کہ الاغانی 229/9 اور الخزانہ 454/1 میں ہے۔ ابن ہشام نے المغنی ص 697 میں اسے العرجی کی طرف منسوب کیا ہے، یہ مجالس ثعلب ص 224، تفسیر طبری 115/1، اور امالی ابن الشجری 161/1 میں بغیر نسبت کے موجود ہے۔ بعض کے ہاں 'أَسُلَيْم' کے بجائے 'أَظُلَيم' یا 'أَظَلُوم' آیا ہے۔ لسان (صوب) دیکھیں۔ (3) (م) میں: "یصیب"۔ (4) الصحاح: (صوب)۔ (5) المحرر الوجیز 228/1۔ سیوطی نے الدر المنثور 157/1 میں اس کا ذکر کیا ہے اور اسے عبد بن حمید اور ابن ابی الدنیا کی طرف العزاء میں منسوب کیا ہے، اور اسے ابو داؤد نے المراسیل (412) میں عمران القصیر سے اسی طرح روایت کیا ہے۔ (6) (م) اور (د) میں: "اور ابو سے"۔

Surah Al-Baqarah: Verses 156, 157 466 ...nor fatigue, nor illness, nor grief, even the worry that preoccupies him (1) except that He expiates some of his sins by it (2). The Second: Ibn Majah narrated in his Sunan: Abu Bakr ibn Abi Shaybah told us, Waki' ibn al-Jarrah told us, from Hisham ibn Ziyad, from his mother, from Fatimah bint al-Husayn, from her father who said: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "Whoever is afflicted with a calamity and then remembers it and says: 'To Allah we belong and to Him we shall return' (isturja'), even if it was a long time ago, Allah will record for him a reward equal to that (3) of the day he was afflicted" (4). The Third: One of the greatest calamities is the calamity in religion. Abu Umar (5) mentioned from al-Firyabi who said: Fitr ibn Khalifah told us, 'Ata ibn Abi Rabah told us, saying: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) said: "If one of you is afflicted with a calamity, let him remember his calamity through me (my death), for it is one of the greatest calamities" (6). Al-Samarqandi Abu Muhammad (7) narrated it in his Musnad, Abu Nu'aym informed us saying: Fitr informed us; then he mentioned the same thing exactly. He also attributed something similar to Makhul as a mursal report (8). Abu Umar said: The Messenger of Allah (peace and blessings be upon him) spoke the truth; because (9) the calamity concerning him is greater than any other calamity.

---

(1) In (ظ) and (د): "yah-tammahu" (worries him). (2) Sahih Muslim (2573), and it is with Ahmad (8424), and al-Bukhari (5641). (3) In (د): "He wrote for him from the reward like." (4) Sunan Ibn Majah (1600). Also narrated by Ahmad (1734), and Ibn Hibban in al-Majruhin 3/88, and in it is Hisham ibn Ziyad; Ibn Hibban said: He was among those who narrated fabricated reports from reliable narrators, and inverted reports from established ones until the listener thinks he intended it; it is not permissible to use him as evidence. (5) Al-Tamhid 19/322. (6) Also narrated from the path of Fitr from 'Ata, by Ibn Sa'd in al-Tabaqat 2/275, al-Darimi (85), and al-'Uqayli in al-Du'afa' 3/465. Narrated by Ibn 'Adi 6/2056 from Fitr from Ibn Abbas. (7) Al-Hasan ibn Ahmad ibn Muhammad al-Kawkhamithni, the traveling memorizer. Al-Nasafi mentioned he has a book: Bahr al-Asanid fi Sihah al-Masanid in which he collected a hundred thousand hadiths. He died in the year (491 AH). Al-Siyar 19/205. (8) Narrated by al-Darimi (85). It was narrated as marfu' in what was narrated by Ibn Qani' in Mu'jam al-Sahaba 1/323, al-Tabarani in al-Mu'jam al-Kabir (6718), and al-Bayhaqi in al-Shu'ab (10153) from the path of Abu Burdah Amr ibn Yazid, from 'Alqamah ibn Marthad, from Abd al-Rahman ibn Sabit, from his father, from the Prophet ﷺ. Ibn Abi Hatim said in al-Jarh wa al-Ta'dil 4/320: Sufyan al-Thawri narrated from 'Alqamah from Ibn Sabit who said: The

Prophet ﷺ said, it does not mention Sabit's father. We say: Ibn al-Mubarak narrated the mursal report in Zawa'id Nu'aym ibn Hammad 'ala al-Marwazi in Kitab al-Zuhd (271). The hadith has supporting evidences narrated by Ibn Abd al-Barr in al-Tamhid 19/324-325. (9) In (د): "fa'inna" (for indeed).

सूरह अल-बकरा: आयत 156, 157 466 ...न थकान, न बीमारी, न दुख, यहाँ तक कि वह चिंता जो उसे परेशान करती है (1) मगर अल्लाह इसके ज़रिए उसके पापों को मिटा देता है (2)। दूसरी बात: इब्न माजा ने अपनी सुनन में उल्लेख किया है: हमसे अबू बक्र बिन अबी शैबा ने बयान किया, हमसे वक़ीअ बिन अल-जर्राह ने बयान किया, हिशाम बिन ज़ियाद से, उनकी माँ से, फातिमा बिंत अल-हुसैन से, उनके पिता से जिन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "जिसे कोई मुसीबत पहुँचे, फिर वह उसे याद करे और 'इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन' कहे (इस्तुरजा), चाहे वह बहुत पहले की ही क्यों न हो, अल्लाह उसके लिए वैसा ही सवाब लिख देता है (3) जैसा उस दिन लिखा गया था जब उसे वह मुसीबत पहुँची थी" (4)। तीसरी बात: सबसे बड़ी मुसीबतों में से एक दीन (धर्म) में मुसीबत है। अबू उमर (5) ने अल-फर्याबी के हवाले से उल्लेख किया है कि: हमसे फ़ित्र बिन खलीफा ने बयान किया, हमसे अता बिन अबी रबाह ने बयान किया, कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "जब तुम में से किसी को कोई मुसीबत पहुँचे, तो उसे मेरे ज़रिए (मेरी मृत्यु के कारण) अपनी मुसीबत को याद करना चाहिए, क्योंकि यह सबसे बड़ी मुसीबतों में से एक है" (6)। इसे अल-समरकंदी अबू मुहम्मद (7) ने अपनी मसनद में निकाला है, अबू नुऐम ने हमें बताया: हमें फ़ित्र ने खबर दी; फिर उन्होंने वैसा ही उल्लेख किया। और इसी तरह मखुल से भी एक मुरसल रिवायत के रूप में इसे वर्णित किया (8)। अबू उमर ने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने सच कहा; क्योंकि (9) उनके बारे में मुसीबत हर मुसीबत से बड़ी है।

---

(1) (ظ) और (ऽ) में: "यह-तम्महु" (वह चिंता करता है)। (2) सहीह मुस्लिम (2573), और यह अहमद (8424) और अल-बुखारी (5641) के पास भी है। (3) (ऽ) में: "उसके लिए सवाब से लिखा गया जैसे।" (4) सुनन इब्न माजा (1600)। और इसे अहमद (1734) और अल-मजरूहीन 3/88 में इब्न हिब्बान ने भी उद्धृत किया है, और इसमें हिशाम बिन ज़ियाद है; इब्न हिब्बान ने कहा: वह उन लोगों में से था जो विश्वसनीय लोगों से मनगढ़ंत बातें और स्थापित लोगों से उलट बातें सुनाता था यहाँ तक कि सुनने वाले को लगता था कि उसने जानबूझकर ऐसा किया है; उस पर दलील देना जायज़ नहीं है। (5) अल-तमहीद 19/322। (6) इसे फ़ित्र के ज़रिए अता से, इब्न साद ने अल-तबाक़ात 2/275 में, अल-दारिमी (85) ने और अल-उकैली ने अल-ज़ुआफ़ा 3/465 में भी उद्धृत किया है। इब्न आदि 6/2056 ने इसे फ़ित्र से इब्न अब्बास के ज़रिए निकाला है। (7) अल-हसन बिन अहमद बिन मुहम्मद अल-कौखमीसनी, यात्री हाफिज़। अल-नसाफी ने उल्लेख किया कि उनके पास एक किताब है: 'बह्र अल-असानीद फी सिहाह अल-मसानीद' जिसमें उन्होंने एक लाख हदीसें जमा की हैं। उनकी

मृत्यु वर्ष (491 हिजरी) में हुई। अल-सियार 19/205। (8) अल-दारिमी (85) द्वारा उद्धृत। और इसे मरफ़ू के रूप में भी रिवायत किया गया है जिसे इब्न क़ानि ने मुअजम अल-सहाबा 1/323 में, अल-तबरानी ने अल-मुअजम अल-कबीर (6718) में और अल-बैहकी ने अल-शुअब (10153) में अबू बुरदा अम्र बिन यज़ीद के ज़रिए, अलकमा बिन मर्सद से, अब्दुल रहमान बिन साबित से, उनके पिता से, नबी ﷺ से निकाला है। इब्न अबी हातिम ने अल-जरह वल-तादील 4/320 में कहा: सुफ़यान अल-सौरी ने अलकमा से, इब्न साबित से रिवायत किया, कहा: नबी ﷺ ने फरमाया, इसमें साबित के पिता का ज़िक्र नहीं है। हम कहते हैं: इब्न अल-मुबारक ने किताब अल-ज़ुहद (271) में अल-मरवाज़ी पर नुऐम बिन हम्माद के ज़वाइद में मुरसल रिवायत निकाली है। हदीस के समर्थन में अन्य रिवायतें भी हैं जिन्हें इब्न अब्दुल बर्र ने अल-तमहीद 19/324-325 में निकाला है। (9) (ب) में: "फ़इन्ना" (क्योंकि वास्तव में)।

سورة البقرہ: آیات 156 ، 157 466 ...اور نہ تھکاوٹ، نہ بیماری، نہ غم، یہاں تک کہ وہ پریشانی جو اسے لاحق ہو (1) مگر اللہ اس کے ذریعے اس کے گناہوں کو مٹا دیتا ہے (2)۔ دوسری بات: ابن ماجہ نے اپنی سنن میں روایت کیا ہے: ہمیں ابوبکر بن ابی شیبہ نے بتایا، ہمیں وکیع بن الجراح نے بتایا، ہشام بن زیاد سے، انہوں نے اپنی والدہ سے، انہوں نے فاطمہ بنت الحسین سے، انہوں نے اپنے والد سے روایت کیا کہ: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جس شخص کو کوئی مصیبت پہنچے، پھر وہ اپنی مصیبت کو یاد کرے اور استرجاع (إنا لله وإنا إليه راجعون) کرے، خواہ وہ مصیبت پرانی ہو چکی ہو، اللہ اس کے لیے اتنا ہی اجر لکھ دیتا ہے (3) جتنا اسے اس دن ملا تھا جب وہ مصیبت پہنچی تھی" (4)۔ تیسری بات: عظیم ترین مصائب میں سے ایک مصیبت دین میں ہے، ابو عمر (5) نے الفریابی کے حوالے سے ذکر کیا ہے کہ: ہمیں فطر بن خلیفہ نے بتایا، ہمیں عطا بن ابی رباح نے بتایا، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "جب تم میں سے کسی کو کوئی مصیبت پہنچے، تو وہ میری وفات کی مصیبت کو یاد کرے، کیونکہ یہ عظیم ترین مصائب میں سے ہے" (6)۔ اسے سمرقندی ابو محمد (7) نے اپنی مسند میں روایت کیا ہے، ہمیں ابو نعیم نے بتایا، انہوں نے کہا: ہمیں فطر نے خبر دی؛ پھر انہوں نے اسی کی طرح ذکر کیا۔ اور اسی طرح مکحول سے بھی مرسل طور پر روایت کیا (8)۔ ابو عمر نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے سچ فرمایا؛ کیونکہ (9) آپ ﷺ کی مصیبت ہر مصیبت سے بڑی ہے۔

---

(1) نسخہ (ظ) اور (د) میں: "یہتمہ" (اسے غمزدہ کرے)۔ (2) صحیح مسلم (2573)، اور یہ احمد (8424) اور بخاری (5641) کے ہاں بھی ہے۔ (3) نسخہ (د) میں: "كتب له من الأجر مثل" (لکھا اس کے لئے اجر میں سے مثل)۔ (4) سنن ابن ماجہ (1600)۔ اور اسے احمد (1734) اور ابن حبان نے المجروحین 3/88 میں بھی روایت کیا ہے، اور اس میں ہشام بن زیاد ہے؛ ابن حبان نے

کہا: وہ ان لوگوں میں سے تھا جو ثقہ راویوں سے من گھڑت اور معتبر لوگوں سے الٹ پلٹ روایتیں بیان کرتا تھا یہاں تک کہ سننے والے کو گمان ہوتا تھا کہ اس نے جان بوجھ کر ایسا کیا ہے، اس سے احتجاج (دلیل لینا) جائز نہیں ہے۔ (5) التمہید 19/322۔ (6) اور اسے فطر کے واسطے سے عطا سے، ابن سعد نے الطبقات 2/275 میں، دارمی (85) نے، اور عقیلی نے الضعفاء 3/465 میں بھی روایت کیا ہے۔ اور ابن عدی نے 6/2056 میں فطر سے ابن عباس کے واسطے سے اسے نقل کیا ہے۔ (7) الحسن بن احمد بن محمد الکوخمیتنی، حافظ اور کثیر سفر کرنے والے، نسفی نے ذکر کیا کہ ان کی ایک کتاب 'بحر الاسانید فی صحاح المسانید' ہے جس میں انہوں نے ایک لاکھ احادیث جمع کی ہیں، ان کی وفات سال (491ھ) میں ہوئی۔ السیر 19/205۔ (8) اسے دارمی (85) نے روایت کیا۔ اور یہ مرفوع طور پر بھی روایت کی گئی ہے جیسا کہ ابن قانع نے معجم الصحابہ 1/323 میں، طبرانی نے المعجم الکبیر (6718) میں، اور بیہقی نے الشعب (10153) میں ابو بردہ عمرو بن یزید کے واسطے سے، علقمہ بن مرثد سے، عبد الرحمن بن سابط سے، ان کے والد سے، اور انہوں نے نبی ﷺ سے روایت کیا ہے۔ ابن ابی حاتم نے الجرح والتعدیل 4/320 میں کہا: سفیان ثوری نے علقمہ سے، انہوں نے ابن سابط سے روایت کیا، کہا: نبی ﷺ نے فرمایا، اس میں سابط کے والد کا ذکر نہیں ہے۔ ہم کہتے ہیں: ابن مبارک نے کتاب الزہد (271) میں نعیم بن حماد کے مروزی پر زوائد میں مرسل روایت نکالی ہے۔ اور حدیث کے شواہد ہیں جنہیں ابن عبد البر نے التمہید 19/324-325 میں نقل کیا ہے۔ (9) نسخہ (د) میں: "فإن" (کیونکہ)۔

...which affects the Muslim after him until the Day of Resurrection; revelation ceased, and prophethood ended. It was the first appearance of evil with the apostasy of the Arabs and other things, and it was the first interruption of good and its first decrease. Abu Sa'id said: "We had not yet dusted our hands off from the grave of the Messenger of Allah ﷺ before we felt a change in our hearts"(1). Abu al-Atahiya beautifully versified the meaning of this hadith, saying: Be patient with every calamity and endure... and know that man is not immortal. Do you not see that calamities are many... and you see death lying in wait for the servants? Who among those you see has not been afflicted by a calamity?... This is a path in which you are not alone(2). So when you remember Muhammad and his affliction... then measure your affliction by that of the Prophet Muhammad(3).

Fourth: His Almighty's saying: {Who say, "Indeed we belong to Allah, and indeed to Him we will return"} Allah Almighty made these words a refuge for those in calamity and a protection for those tested; because of the blessed meanings they contain. For his saying: "Indeed we belong to Allah" is tawhid (monotheism) and an acknowledgement of servitude and ownership. And his saying: "and indeed to Him we will return" is an acknowledgement of death for ourselves, resurrection from our graves, and the certainty that the return of all matters is to Him as it belongs to Him. Sa'id ibn Jubayr, may Allah Almighty have mercy on him, said: "These words were not given to any prophet before our Prophet, and if Yaqub (Jacob) had known them, he would not have said: {O, my sorrow over Joseph!}"(4) [Yusuf: 84]. Fifth: Abu Sinan(5) said: "I buried my son Sinan, and Abu Talha al-Khawlani(6) was at..."

(1) At-Tamhid 19/322, and narrated similarly by al-Bazzar in "Kashf al-Astar" (853). Al-Hafiz Ibn Hajar graded its chain as good in "Al-Fath" 8/149. It was also narrated by Ahmad (13312) and (13830), at-Tirmidhi (3618), and Ibn Majah (1631) from the hadith of Anas, may Allah be pleased with him. At-Tirmidhi said: This is a Gharib Sahih hadith. (2) In the copies: "from him", and what is established is from At-Tamhid, which matches the Diwan. (3) Diwan Abi al-Atahiya pp. 110-111, and in it: "So remember your calamity..." (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/228, and at-Tabari narrated the saying of Sa'id ibn Jubayr 2/708. (5) Isa ibn Sinan al-Hanafi, al-Filastini, al-Qasmali, resident of Basra, one of the men of At-Tahdhib. Adh-Dhahabi said in Al-Mizan: Ahmad and Ibn Ma'in weakened him, and he is one whose hadith is written despite its weakness. (6) Shami, narrated as a Mursal from the Prophet ﷺ, mentioned by Abu Ahmad al-Hakim among those whose name is not known. At-Tabarani mentioned that his name is

Dhara' with the letter Thal, and Ibn Abi Hatim said: Dar' with the letter Dal, and Ibn Makula said: Dir' ibn 'Abdullah al-Khawlani fought with Malik ibn 'Abdullah al-Khath'ami. See Tahdhib al-Tahdhib 4/542.

सूरा अल-बक़रह: आयत 156, 157 467

...जो उसके बाद कयामत के दिन तक मुसलमान को प्रभावित करता है; वह्य (प्रकाशना) रुक गई और नबूवत (पैग़म्बरी) समाप्त हो गई। यह अरबों के धर्मत्याग और अन्य चीजों के साथ बुराई की पहली उपस्थिति थी, और यह अच्छाई की पहली रुकावट और उसकी पहली कमी थी। अबू सईद ने कहा: "हमने अभी अल्लाह के रसूल ﷺ की कब्र से अपने हाथों की धूल भी नहीं झाड़ी थी कि हमने अपने दिलों में बदलाव महसूस किया"(1)। अबू अल-अताहिया ने इस हदीस के अर्थ को अपनी कविता में बहुत सुंदर ढंग से पिरोया है, जहाँ वह कहते हैं: हर विपत्ति पर धैर्य रखो और सहन करो... और जान लो कि मनुष्य अमर नहीं है। क्या तुम नहीं देखते कि मुसीबतें बहुत हैं... और तुम देखते हो कि मृत्यु बंदों की घात में बैठी है? तुम जिन्हें देखते हो उनमें से कौन मुसीबत में नहीं पड़ा है?... यह एक ऐसा रास्ता है जिसमें तुम अकेले नहीं हो(2)। तो जब तुम मुहम्मद और उनकी विपत्ति को याद करो... तो अपनी विपत्ति की तुलना पैग़ंबर मुहम्मद की विपत्ति से करो(3)।

चौथा: अल्लाह तआला का फरमान: {जो कहते हैं, "निस्संदेह हम अल्लाह के हैं और निस्संदेह हम उसी की ओर लौटने वाले हैं"} अल्लाह तआला ने इन शब्दों को विपत्तिग्रस्त लोगों के लिए एक शरणस्थली और परीक्षा में पड़े लोगों के लिए एक सुरक्षा कवच बनाया है; क्योंकि इनमें धन्य अर्थ समाहित हैं। उनका कथन: "निस्संदेह हम अल्लाह के हैं" तौहीद (एकेश्वरवाद) और दासता तथा स्वामित्व की स्वीकारोक्ति है। और उनका कथन: "और निस्संदेह हम उसी की ओर लौटने वाले हैं" स्वयं के लिए मृत्यु, अपनी कब्रों से पुनरुत्थान और इस निश्चितता की स्वीकारोक्ति है कि सभी मामलों का लौटना उसी की ओर है जैसा कि वह उसी का है। सईद बिन जुबैर (अल्लाह उन पर रहम करे) ने कहा: "ये शब्द हमारे पैग़ंबर से पहले किसी पैग़ंबर को नहीं दिए गए थे, और अगर याकूब (अलैहिस्सलाम) को ये पता होते, तो वह यह न कहते: {हाय, यूसुफ पर मेरा दुख!}"(4) [यूसुफ: 84]। पाँचवाँ: अबू सिनान(5) ने कहा: "मैंने अपने बेटे सिनान को दफनाया, और अबू तल्हा अल-खौलानी(6) वहाँ..."

(1) अत-तमीद 19/322, और अल-बज़ार ने "कश्फ़ अल-अस्तर" (853) में इसी तरह का उल्लेख किया है, और अल-हाफिज़ इब्न हजर ने "अल-फतह" 8/149 में इसके इसनाद को अच्छा बताया है। इसे अहमद (13312) और (13830), तिरमिज़ी (3618), और इब्न माजाह (1631) ने अनस (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। तिरमिज़ी ने कहा: यह हदीस गरीब सहीह है। (2) प्रतियों में: "अन्हु" (उससे), और जो प्रमाणित है वह अत-तमीद से है जो दीवान के अनुरूप है। (3)

दीवान अबी अल-अताहिया पृष्ठ 110-111, और इसमें है: "तो अपनी मुसीबत को याद करो..." (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/228, और तबरी ने सईद बिन जुबैर का कथन 2/708 उद्धृत किया है। (5) ईसा बिन सिनान अल-हनफी, फ़िलिस्तीनी, अल-क़समली, बसरा के निवासी, तहज़ीब के लोगों में से। ज़हबी ने अल-मीज़ान में कहा: अहमद और इब्न मुईन ने उन्हें कमज़ोर बताया है, और वह उनमें से हैं जिनकी हदीस उनकी कमज़ोरी के बावजूद लिखी जाती है। (6) शामी, पैग़ंबर ﷺ से मुरसल रिवायत की, अबू अहमद अल-हाकिम ने उन लोगों में उनका ज़िक्र किया है जिनका नाम ज्ञात नहीं है। तबरानी ने उल्लेख किया है कि उनका नाम ज़ाल (ذ) के साथ ज़रा' (ذرع) है, और इब्न अबी हातिम ने कहा: दाल (ड) के साथ दर' (درع), और इब्न माकूला ने कहा: दिर' बिन अब्दुल्लाह अल-खौलानी ने मालिक बिन अब्दुल्लाह अल-खशअमी के साथ युद्ध किया। देखिए तहज़ीब अल-तहज़ीब 4/542।

سورۃ البقرہ: آیات ۱۵۶، ۱۵۷ ۴۶۷

---جو اس کے بعد قیامت تک مسلمان کو پہنچتی ہے؛ وحی کا سلسلہ منقطع ہو گیا اور نبوت کا خاتمہ ہو گیا، اور یہ عربوں کے مرتد ہونے اور دیگر واقعات کے ساتھ شر (برائی) کا پہلا ظہور تھا، اور یہ خیر کے انقطاع اور اس کی پہلی کمی تھی۔ ابو سعید رضی اللہ عنہ فرماتے ہیں: "ہم نے ابھی رسول اللہ ﷺ کی قبر مبارک سے اپنے ہاتھ نہیں جھاڑے تھے کہ ہم نے اپنے دلوں میں تبدیلی محسوس کی"(۱)۔ اور ابو العتاہیہ نے اپنی نظم میں اس حدیث کے معنی کو بہت خوبصورتی سے بیان کیا ہے جہاں وہ کہتے ہیں: ہر مصیبت پر صبر کر اور ہمت نہ ہار--- اور جان لے کہ انسان ہمیشہ رہنے والا نہیں ہے۔ کیا تو نہیں دیکھتا کہ مصائب بہت زیادہ ہیں--- اور تو دیکھتا ہے کہ موت بندوں کی گھات میں لگی ہوئی ہے؟ تیرے گرد و پیش میں کون ہے جو کسی مصیبت کا شکار نہ ہوا ہو؟--- یہ ایک ایسا راستہ ہے جس میں تو تنہا نہیں ہے(۲)۔ پس جب تو محمد ﷺ اور ان کی جدائی کی مصیبت کو یاد کرے--- تو اپنی مصیبت کا موازنہ نبی کریم ﷺ کے صدمے سے کر(۳)۔

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {جو کہتے ہیں، "بے شک ہم اللہ ہی کے ہیں اور بے شک ہم اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں"} اللہ تعالیٰ نے ان الفاظ کو مصیبت زدہ لوگوں کے لیے پناہ گاہ اور آزمائش میں پڑے ہوئے لوگوں کے لیے ڈھال بنایا ہے؛ کیونکہ ان میں بابرکت معنی جمع ہیں۔ پس ان کا قول: "بے شک ہم اللہ کے ہیں" توحید ہے اور بندگی و ملکیت کا اقرار ہے۔ اور ان کا قول: "اور بے شک ہم اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں" اپنی موت، قبروں سے دوبارہ اٹھنے اور اس یقین کا اقرار ہے کہ تمام معاملات کا لوٹنا اسی کی طرف ہے جیسا کہ وہ اسی کا ہے۔ سعید بن جبیر رحمہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: "یہ الفاظ ہمارے نبی سے پہلے کسی نبی کو نہیں دیے گئے، اور اگر یعقوب (علیہ السلام) انہیں جانتے ہوتے تو وہ یہ نہ کہتے: {ہائے، یوسف پر میرا غم!}"(۴)

[یوسف: ۸۴]۔ پانچویں بات: ابو سنان(۵) نے کہا: "میں نے اپنے بیٹے سنان کو دفن کیا، اور ابو طلحہ الخولانی(۶) وہیں--"

(۱) التمہید ۳۲۲/۱۹، اور البزار نے اسے "کشف الاستار" (۸۵۳) میں اسی طرح روایت کیا ہے، اور حافظ ابن حجر نے الفتح ۱۴۹/۸ میں اس کی سند کو جید قرار دیا ہے۔ اسے احمد (۱۳۳۱۲) اور (۱۳۸۳۰)، ترمذی (۳۶۱۸)، اور ابن ماجہ (۱۶۳۱) نے حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ترمذی نے کہا: یہ حدیث غریب صحیح ہے۔ (۲) نسخوں میں: "عنه" ہے، اور جو ثابت ہے وہ التمہید سے ہے جو دیوان کے مطابق ہے۔ (۳) دیوان ابی العتاہیہ ص ۱۱۰-۱۱۱، اور اس میں ہے: "تو اپنی مصیبت کو یاد کر--" (۴) المحرر الوجیز ۲۲۸/۱، اور طبری نے سعید بن جبیر کا قول ۷۰۸/۲ روایت کیا ہے۔ (۵) عیسیٰ بن سنان الحنفی، فلسطینی، القسملی، بصرہ کے رہائشی، تہذیب کے رجال میں سے ہیں۔ ذہبی نے المیزان میں کہا: احمد اور ابن معین نے انہیں ضعیف قرار دیا ہے، اور وہ ان میں سے ہیں جن کی حدیث ان کی کمزوری کے باوجود لکھی جاتی ہے۔ (۶) شامی، نبی کریم ﷺ سے مرسل روایت کی، ابو احمد الحاکم نے ان لوگوں میں ذکر کیا ہے جن کا نام معلوم نہیں۔ طبرانی نے ذکر کیا کہ ان کا نام ذال (ذ) کے ساتھ ذرع ہے، ابن ابی حاتم نے کہا: دال (د) کے ساتھ درع، اور ابن ماکولہ نے کہا: درع بن عبد اللہ الخولانی نے مالک بن عبد اللہ الخثعمی کے ساتھ جہاد کیا۔ دیکھیے تہذیب التہذیب ۴/ ۵۴۲۔

the edge of the grave. When I wanted to leave, he took my hand, invigorated me(1), and said: "Shall I not give you glad tidings, O Abu Sinan? Al-Dahhak told me from Abu Musa that the Prophet ﷺ said: 'When the child of a servant (of Allah) dies, Allah says to His angels: "Have you taken the child of My servant?" They say: "Yes." He says: "Have you taken the fruit of his heart?" They say: "Yes." He says: "What did My servant say?" They say: "He praised You and sought return (to You by saying 'Inna lillahi wa inna ilayhi raji'un')." Then Allah the Almighty says: "Build for My servant a house in Paradise and name it the House of Praise."(2)'

And Muslim(3) narrated from Umm Salama who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ say: 'There is no Muslim who is afflicted by a calamity and says what Allah Almighty has commanded: "To Allah we belong and to Him we shall return. O Allah, reward me in my calamity and replace it for me with something better than it," except that Allah will replace it for him with something better than it.' This is an indication of His Almighty saying: 'And give glad tidings to the patient.' Either by replacement, as Allah replaced for Umm Salama the Messenger of Allah ﷺ; for he married her when her husband Abu Salama died. Or with a great reward, as in the hadith of Abu Musa. And it could be both.

Sixth: His Almighty's saying: {Those are the ones upon whom are blessings from their Lord and mercy.} These are favors from Allah Almighty upon(4) the patient who seek return (to Him). Allah's blessing upon His servant(5) is His forgiveness, mercy, and blessing, and His honoring him in this world and the hereafter(6).

Al-Zajjaj(7) said: 'Blessing (Salah) from Allah Almighty is forgiveness and good praise, and from this is the prayer over the deceased, which is only praising him and supplicating for him.' And Mercy (Rahmah) was repeated because the wording differed, for emphasis and enrichment(8) of the meaning; just as He said: {of the clear proofs and guidance} [Al-Baqarah: 159], and His saying...

(1) In Al-Mu'jam al-Wasit: 'Anshata fulanan' means made him energetic/active. In (Za): 'Fa-absatani' (made me cheerful/relaxed). (2) Reported by Ahmad (19725) and al-Tirmidhi (1021). Its chain is weak; Abu Sinan was discussed previously, and Al-Dahhak's narration from Abu Musa al-Ash'ari is mursal as in Al-Jarh wa al-Ta'dil 4/459. Al-Tirmidhi said: Hasan gharib hadith, and Al-Baghawi said the same in Sharh al-Sunnah (1549). (3) Sahih Muslim (918), and it is in Ahmad (26635). (4) In (Kha) and (Zay): bestowed them upon... (5) In (Za): bestowed both of them upon the obedient

ones, and Allah's blessing upon a man His servant... (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/228. (7) Similarly in Ma'ani al-Qur'an 1/231. (8) In (Za): and following.

क़ब्र के किनारे। जब मैंने बाहर निकलना चाहा, तो उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा, मुझे उत्साहित किया(१) और कहा: "क्या मैं तुम्हें खुशखबरी न दूँ, ऐ अबू सिनान? मुझसे अल-दह्हाक ने अबू मूसा के हवाले से बयान किया कि नबी ﷺ ने फरमाया: 'जब किसी बंदे की संतान मर जाती है, तो अल्लाह अपने फरिश्तों से कहता है: "क्या तुमने मेरे बंदे की संतान को कब्ज़ कर लिया?" वे कहते हैं: "हाँ।" वह कहता है: "क्या तुमने उसके दिल का फल ले लिया?" वे कहते हैं: "हाँ।" वह पूछता है: "मेरे बंदे ने क्या कहा?" वे कहते हैं: "उसने तेरी प्रशंसा की और रुजू किया (इन्ना लिल्लाहि व इन्ना इलैहि राजिऊन कहा)।" तब अल्लाह तआला फरमाता है: "मेरे बंदे के लिए जन्नत में एक घर बनाओ और उसका नाम 'बैतुल हम्द' (प्रशंसा का घर) रखो।"'(२)

और मुस्लिम(३) ने उम्म सलमा से रिवायत की है, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को फरमाते हुए सुना: 'कोई भी मुसलमान जिसे कोई मुसीबत पहुँचे और वह वही कहे जिसका अल्लाह तआला ने हुक्म दिया है: "बेशक हम अल्लाह ही के हैं और हमें उसी की तरफ लौटकर जाना है। ऐ अल्लाह! मुझे मेरी इस मुसीबत में अजर (पुण्य) दे और मुझे इसका बेहतर बदला अता फरमा," तो अल्लाह उसे उससे बेहतर बदला अता करता है।' यह अल्लाह के इस फरमान की ओर संकेत है: 'और सब्र करने वालों को खुशखबरी सुना दो।' या तो बदले के ज़रिए, जैसा कि अल्लाह ने उम्म सलमा को अल्लाह के रसूल ﷺ का बदला दिया; क्योंकि जब उनके पति अबू सलमा की मृत्यु हुई तो उन्होंने उनसे निकाह कर लिया। या फिर बड़े सवाब (पुण्य) के ज़रिए, जैसा कि अबू मूसा की हदीस में है। और ये दोनों भी हो सकते हैं।

छठा: अल्लाह तआला का फरमान: {वही लोग हैं जिन पर उनके रब की ओर से दुआएँ(आशीर्वाद) और रहमत है।} ये अल्लाह तआला की ओर से उन सब्र करने वालों पर नेमतें (वरदान) हैं जो रुजू करते हैं। और अल्लाह का अपने बंदे पर 'सलात' (आशीर्वाद) भेजने का अर्थ है: उसका क्षमा करना, उसकी दया और उसकी बरकत, और दुनिया और आखिरत में उसका सम्मान करना(६)।

अल-ज़ज्जाज(७) ने कहा: 'अल्लाह तआला की ओर से सलात का अर्थ है: मगफिरत (क्षमा) और अच्छी प्रशंसा, और इसी से मैयत (मृतक) पर नमाज़े जनाज़ा है जो कि केवल उसकी प्रशंसा और उसके लिए दुआ करना है।' और 'रहमत' शब्द को दोबारा इसलिए लाया गया क्योंकि शब्द अलग

होने से अर्थ में ज़ोर और पूर्णता(८) पैदा हो, जैसा कि उसने फरमाया: {स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन में से} [अल-बक़रह: १५९], और उसका फरमान...

(१) अल-मुअजम अल-वसीत में: 'अनशता फुलानन' का अर्थ है उसे सक्रिय/फुर्तीला बनाना। (ज़) में 'फ-अबसतनी' (मुझे प्रसन्न किया) आया है। (२) इसे अहमद (१९७२५) और तिरमिज़ी (१०२१) ने संकलित किया है। इसकी इसनाद कमज़ोर है; अबू सिनान पर पहले चर्चा हो चुकी है, और अबू मूसा अल-अशअरी से अल-दह्हाक की रिवायत मुरसल है जैसा कि अल-जर्ह व अल-तादील ४/४५९ में है। तिरमिज़ी ने कहा: यह हदीस हसन गरीब है, और इसी तरह अल-बग़वी ने शरह अल-सुन्नाह (१५४९) में कहा है। (३) सहीह मुस्लिम (९१८), और यह अहमद (२६६३५) के पास भी है। (४) (ख) और (ज़) में: इनके ज़रिए उन पर एहसान किया... (५) (ज़) में: आज्ञाकारी लोगों पर इन दोनों के ज़रिए एहसान किया और एक बंदा आदमी पर अल्लाह का सलात (आशीर्वाद)... (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२८। (७) उनके द्वारा मा'नी अल-कुरआन १/२३१ में इसी तरह। (८) (ज़) में: 'वत्तबाअन' (अनुसरण करते हुए)।

٤٦٨ سورة البقرہ: آیت ١٥٦ ، ١٥٧

قبر کا کنارہ، پس جب میں نے نکلنا چاہا تو انہوں نے میرا ہاتھ پکڑا، مجھے چست کر دیا(١) اور کہا: اے ابو سنان! کیا میں تمہیں خوشخبری نہ دوں؟ مجھے ضحاک نے ابو موسیٰ سے روایت کرتے ہوئے بتایا کہ نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "جب بندے کی اولاد فوت ہو جاتی ہے تو اللہ تعالیٰ اپنے فرشتوں سے فرماتا ہے: کیا تم نے میرے بندے کے بچے کی روح قبض کر لی؟ وہ کہتے ہیں: ہاں۔ اللہ فرماتا ہے: کیا تم نے اس کے جگر گوشے (دل کے پھل) کو چھین لیا؟ وہ کہتے ہیں: ہاں۔ اللہ فرماتا ہے: پھر میرے بندے نے کیا کہا؟ وہ کہتے ہیں: اس نے تیری حمد بیان کی اور 'انا للہ وانا الیہ راجعون' پڑھا۔ تب اللہ تعالیٰ فرماتا ہے: میرے بندے کے لیے جنت میں ایک گھر بناؤ اور اس کا نام 'بیت الحمد' (تعریف کا گھر) رکھو۔"(٢)

اور مسلم(٣) نے ام سلمہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے ہوئے سنا: "جس مسلمان کو بھی کوئی مصیبت پہنچے اور وہ وہی کہے جس کا اللہ عزوجل نے اسے حکم دیا ہے: 'انا للہ وانا الیہ راجعون، اے اللہ! مجھے میری اس مصیبت میں اجر عطا فرما اور مجھے اس کا بہتر نعم البدل عطا فرما'، تو اللہ تعالیٰ اسے اس کا بہتر نعم البدل عطا فرما دیتا ہے۔" تو یہ اللہ تعالیٰ کے اس فرمان کی طرف اشارہ ہے: "اور صبر کرنے والوں کو خوشخبری سنا دیں" خواہ نعم البدل کے ذریعے ہو جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے ام سلمہ کو رسول اللہ ﷺ کی صورت میں نعم البدل عطا فرمایا؛ کیونکہ جب ان کے شوہر ابو سلمہ فوت ہوئے تو رسول اللہ ﷺ نے ان سے نکاح فرما لیا۔ یا پھر بڑے ثواب کے ذریعے ہو جیسا کہ ابو موسیٰ کی حدیث میں ہے۔ اور کبھی دونوں صورتیں بھی ہو سکتی ہیں۔

چھٹی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿أُولَٰئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوَاتٌ مِّن رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ﴾ (یہی وہ لوگ ہیں جن پر ان کے رب کی طرف سے عنایتیں اور رحمت ہے) یہ اللہ عزوجل کی طرف سے ان صبر کرنے والوں پر نعمتیں ہیں جو رجوع کرنے والے ہیں۔ اور اللہ کا اپنے بندے پر درود (صلوٰۃ) بھیجنے کا مطلب ہے: اس کی بخشش، رحمت، برکت اور دنیا و آخرت میں اس کی عزت و تکریم(٦)۔

اور زجاج(٧) نے کہا: اللہ عزوجل کی طرف سے صلوٰۃ کا مطلب مغفرت اور اچھی ثنا (تعریف) ہے، اور اسی سے میت پر نماز جنازہ ہے جو کہ درحقیقت اس کی ثنا اور اس کے لیے دعا ہے۔ اور لفظ 'رحمت' کو دوبارہ ذکر کیا گیا کیونکہ لفظ بدلنے سے معنی میں تاکید اور وسعت(٨) پیدا ہو جائے؛ جیسا کہ اللہ نے فرمایا: ﴿مِنَ الْبَيِّنَاتِ وَالْهُدَىٰ﴾ [البقرة: ١٥٩]، اور اللہ کا فرمان...

(١) المعجم الوسيط میں ہے: 'أنشط فلاناً' یعنی اسے چست و توانا بنا دیا۔ اور (ظ) کے نسخہ میں 'فأبسطني' (پس اس نے مجھے خوش کر دیا/سکون دیا) واقع ہوا ہے۔ (٢) اسے احمد (١٩٧٢٥) اور ترمذی (١٠٢١) نے روایت کیا ہے۔ اس کی سند ضعیف ہے؛ ابو سنان کے بارے میں پہلے بات ہو چکی ہے، اور ضحاک کی ابو موسیٰ اشعری سے روایت مرسل ہے جیسا کہ 'الجرح والتعدیل' ٤/٤٥٩ میں ہے۔ اور ترمذی نے کہا: یہ حدیث حسن غریب ہے، اور اسی طرح بغوی نے 'شرح السنہ' (١٥٤٩) میں کہا ہے۔ (٣) صحیح مسلم (٩١٨)، اور یہ مسند احمد (٢٦٦٣٥) میں بھی ہے۔ (٤) نسخہ (خ) اور (ز) میں ہے: ان کے ذریعے ان پر احسان فرمایا... (٥) نسخہ (ظ) میں ہے: اطاعت گزاروں پر ان دونوں کے ذریعے احسان فرمایا اور کسی بندہ آدمی پر اللہ کی صلوٰۃ... (٦) المحرر الوجیز ١/ ٢٢٨۔ (٧) اسی طرح ان کی کتاب 'معاني القرآن' ١/ ٢٣١ میں ہے۔ (٨) نسخہ (ظ) میں ہے: 'واتباعاً' (اور پیروی کرتے ہوئے)۔

469 Surah Al-Baqarah: Verse 158

"Or do they think that We hear not their secrets and their private counsels?" [Az-Zukhruf: 80], and the poet said: A generous Lord and an obeyed intercessor prayed for Yahya and his followers (1) It was said: He meant by mercy the relief of distress and the fulfillment of need. And in Bukhari (2): Umar, may Allah be pleased with him, said: "What excellent two equals (balanced loads) and what an excellent extra (load) they are: 'Who, when a misfortune befalls them, say: "Indeed we belong to Allah, and indeed to Him we will return." Those are the ones upon whom are blessings from their Lord and mercy. And it is those who are the [rightly] guided.' [2:156-157]". He meant by the two equals (loads) the blessings (3) and mercy, and by the extra (load), the guidance (4). It was said: to the entitlement of reward and the abundance (5) of compensation, and it was said: to the easing of misfortunes and the lightening of grief (6).

Allah Almighty's saying: "Indeed, as-Safa and al-Marwah are among the symbols of Allah. So whoever makes Hajj to the House or performs 'umrah - there is no blame upon him for walking between them. And whoever volunteers good - then indeed, Allah is appreciative and Knowing." (158) In it are nine issues: The first: Al-Bukhari (7) narrated from Asim bin Sulayman who said: I asked Anas bin Malik about Safa and Marwah, so he said: We used to see them (8) as matters of the pre-Islamic period (Jahiliyyah), so when Islam came, we refrained from them (9); then Allah Mighty and Majestic revealed: "Indeed, as-Safa and al-Marwah are among the symbols of Allah. So whoever makes Hajj to the House or performs 'umrah - there is no blame upon him for walking between them."

(1) Al-Mufaddaliyat p. 322, Ma'ani al-Quran by Al-Zajjaj 1/232, Al-Nukat wa al-Uyun 1/210, Al-Khizanah 1/290 and 6/96. Al-Baghdadi said: The verse is from a poem by Al-Saffah bin Bukayr al-Yarbu'i elegizing Yahya bin Shaddad bin Tha'labah... Abu Ubaida said: It is for a man from Bani Quray' elegizing Yahya bin Maysarah, the companion of Mus'ab bin Al-Zubayr. (2) Kitab al-Jana'iz, Bab al-Sabr 'ind al-Sadmah al-Ula (Al-Fath 3/171), and Al-Hakim 2/270 connected it, and Al-Wahidi in Al-Wasit 1/241, see Taghliq al-Ta'liq 2/470. (3) In (Kh) and (Zha) and the margin of (Zay): The prayers (Al-Salawat). (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/228. See Shu'ab al-Iman by Al-Halimi 2/135. (5) In (Zha): And achieving (Ihraz). (6) Al-Nukat wa al-Uyun 1/210. (7) Sahih Bukhari (4496). (8) His saying: "them both" (dual), is not in (Kh), (Dal), and (Zha), and in (Zay): "them" (singular). The established is from (Meem) which matches the printed Sahih Bukhari.

(9) In (Kh), (Dal), and (Zay): "from it", and in (Zha): "upon them both". The established is from (Meem).

469 सूरह अल-बक़रह: आयत 158

"क्या वे समझते हैं कि हम उनके भेदों और उनकी गुप्त मंत्रणाओं को नहीं सुनते?" [अज़-ज़ुख़रुफ़: 80], और कवि ने कहा: एक उदार रब और एक आज्ञाकारी सिफ़ारिशकर्ता ने यहया और उसके अनुयायियों के लिए प्रार्थना की (1) कहा गया: उनका रहमत से तात्पर्य संकट का निवारण और आवश्यकता की पूर्ति थी। और बुखारी (2) में है: उमर (रज़ियल्लाहु अन्हु) ने कहा: "कितने अच्छे दो बराबर बोझ हैं और कितना अच्छा अतिरिक्त उपहार है: 'वे लोग जिन पर जब कोई विपदा आती है, तो वे कहते हैं: "निस्संदेह हम अल्लाह ही के हैं और निस्संदेह हम उसी की ओर लौटने वाले हैं।" ये वे लोग हैं जिन पर उनके रब की ओर से आशीर्वाद और दया है। और यही वे हैं जो मार्गदर्शन पाने वाले हैं।' [2:156-157]"। उनका दो बराबर बोझों से तात्पर्य आशीर्वाद (3) और दया था, और अतिरिक्त उपहार से तात्पर्य मार्गदर्शन (4) था। कहा गया: इनाम की पात्रता और प्रतिफल की प्रचुरता (5) की ओर, और कहा गया: विपदाओं को आसान करने और शोक को कम करने की ओर (6)।

अल्लाह तआला का कथन: "निस्संदेह सफ़ा और मरवा अल्लाह के प्रतीकों में से हैं। अतः जो कोई घर का हज करे या उमराह करे, तो उस पर इन दोनों के बीच चलने में कोई दोष नहीं है। और जो कोई स्वेच्छा से कोई भलाई करे, तो निस्संदेह अल्लाह कद्रदान और सर्वज्ञ है।" (158) इसमें नौ मसले हैं: पहला: बुखारी (7) ने आसिम बिन सुलैमान से रिवायत किया कि उन्होंने कहा: मैंने अनस बिन मालिक से सफ़ा और मरवा के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा: हम उन्हें (8) जाहिलियत (इस्लाम से पूर्व का समय) के मामलों में से समझते थे, फिर जब इस्लाम आया, तो हम उनसे रुक गए (9); तब अल्लाह अज़्ज़-व-जल्ल ने नाज़िल किया: "निस्संदेह सफ़ा और मरवा अल्लाह के प्रतीकों में से हैं। अतः जो कोई घर का हज करे या उमराह करे, तो उस पर इन दोनों के बीच चलने में कोई दोष नहीं है।"

(1) अल-मुफ़द्दलियत पृष्ठ 322, मआनी अल-कुरान अज़-ज़ज्जाज 1/232, अल-नुकात वल-उयून 1/210, अल-खिज़ाना 1/290 और 6/96। अल-बगदादी ने कहा: यह शेर अल-सफ़ाह बिन बुकैर अल-यरबुई की एक कविता से है जिसमें उन्होंने यहया बिन शद्दाद बिन सालबा का शोक मनाया... अबू उबैदा ने कहा: यह बनी कुरै के एक आदमी का है जिसने मुसाब बिन अल-जुबैर के साथी यहया बिन मयसरा का शोक मनाया। (2) किताब अल-जनाइज़, बाब अल-सब्र इंद अल-सदमा अल-उला (अल-फ़तह 3/171), और हाकिम 2/270 ने इसे जोड़ा है, और वाहिदी ने अल-वसीत 1/241 में, देखें तगलीक अल-तअलीक 2/470। (3) (ख) और (ज़) और (ज़) के हाशिए में: दुआएंनमाज़ें। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/228। और देखें शोअब अल-ईमान अज़-हलीमी 2/135। (5) (ज़) में: और प्राप्त

करना। (6) अल-नुकात वल-उयून 1/210। (7) सहीह बुखारी (4496)। (8) उनका कहना: "वे दोनों", (ख), (द) और (ज़) में नहीं है, और (ज़) में: "वह" है। स्थापित पाठ (म) से है जो सहीह बुखारी के मुद्रित संस्करण के अनुरूप है। (9) (ख), (द) और (ज़) में: "उससे", और (ज़) में: "उन दोनों पर"। स्थापित पाठ (म) से है।

469 سورہ البقرہ: آیت 158

﴿کیا وہ گمان کرتے ہیں کہ ہم ان کے راز اور ان کی سرگوشیاں نہیں سنتے؟﴾ [الزخرف : 80]، اور شاعر نے کہا: ایک کریم رب اور ایک فرمانبردار سفارشی نے یحییٰ اور ان کے پیروکاروں کے لیے دعا کی (1) کہا گیا: ان کی رحمت سے مراد مصیبت کا دور ہونا اور ضرورت کا پورا ہونا تھا۔ اور بخاری (2) میں ہے: عمر رضی اللہ عنہ نے فرمایا: "کیا ہی بہترین دو بوجھ (عدلان) اور کیا ہی بہترین اضافی بوجھ (علاوہ) ہیں: ﴿جن پر جب کوئی مصیبت آتی ہے تو وہ کہتے ہیں: "بیشک ہم اللہ ہی کے ہیں اور بیشک ہم اسی کی طرف لوٹنے والے ہیں۔" یہی وہ لوگ ہیں جن پر ان کے رب کی طرف سے نوازشیں اور رحمت ہیں اور یہی لوگ ہدایت یافتہ ہیں۔﴾ [2:156-157]"۔ آپ کی دو بوجھوں سے مراد نمازیں (3) اور رحمت تھی، اور اضافی بوجھ سے مراد ہدایت (4) تھی۔ کہا گیا: ثواب کے استحقاق اور اجر کی کثرت (5) کی طرف، اور کہا گیا: مصائب کی سہولت اور غم کی تخفیف (6) کی طرف۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿بیشک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں۔ سو جو شخص بیت اللہ کا حج کرے یا عمرہ کرے تو اس پر ان دونوں کے درمیان چکر لگانے میں کوئی گناہ نہیں۔ اور جو کوئی اپنی خوشی سے نیکی کرے تو بیشک اللہ قدر شناس اور سب کچھ جاننے والا ہے۔﴾ (158) اس میں نو مسائل ہیں: پہلا: بخاری (7) نے عاصم بن سلیمان سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے کہا: میں نے انس بن مالک رضی اللہ عنہ سے صفا اور مروہ کے بارے میں پوچھا، تو انہوں نے فرمایا: ہم انہیں (8) دورِ جاہلیت کے امور میں سے سمجھتے تھے، پھر جب اسلام آیا تو ہم ان سے رک گئے (9)؛ تب اللہ عزوجل نے نازل فرمایا: ﴿بیشک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں۔ سو

جو کوئی گھر کا حج کرے یا عمرہ کرے تو اس پر ان دونوں کے درمیان چکر لگانے میں کوئی گناہ نہیں ہے﴾۔

(1) المفضليات صفحہ 322، معانی القرآن للزجاج 1/232، النکت والعیون 1/210، الخزانہ 1/290 اور 6/96۔ البغدادی نے کہا: یہ شعر السفاح بن بکیر الیربوعی کے قصیدے سے ہے جس میں انہوں نے یحییٰ بن شداد بن ثعلبہ کا مرثیہ کہا... ابو عبیدہ نے کہا: یہ بنو قریع کے ایک شخص کا ہے جس نے مصعب بن زبیر کے ساتھی یحییٰ بن میسرہ کا مرثیہ کہا۔ (2) کتاب الجنائز، باب الصبر عند الصدمہ الاولی (الفتح 3/171)، اور حاکم 2/270 نے اسے موصول کیا ہے، اور واحدی نے الوسیط 1/241 میں، ملاحظہ ہو تغلیق التعلیق 2/470۔ (3) (خ) اور (ظ) اور (ز) کے حاشیے میں: الصلوات (نمازیں)۔ (4) المحرر الوجیز 1/228۔ اور ملاحظہ ہو شعب الایمان للحلیمی 2/135۔ (5) (ظ) میں: اور پانا (احراز)۔ (6) النکت والعیون 1/210۔ (7) صحیح بخاری (4496)۔ (8) ان کا قول: "ان دونوں"، (خ)، (د) اور (ظ) میں نہیں ہے، اور (ز) میں: "وہ" ہے۔ ثابت شدہ (م) سے ہے جو صحیح بخاری کے مطبوعہ نسخے کے مطابق ہے۔ (9) (خ)، (د) اور (ز) میں: "اس سے"، اور (ظ) میں: "ان دونوں پر"۔ ثابت شدہ (م) سے ہے۔

At-Tirmidhi narrated from 'Urwah, who said: "I said to 'A'ishah: 'I do not see any harm on anyone who does not perform Sa'y between Safa and Marwah, and I would not care if I did not perform Sa'y between them.'(1) She said: 'How bad is what you have said, O son of my sister! The Messenger of Allah (ﷺ) performed Sa'y and the Muslims performed Sa'y. It was only those who assumed Ihram for the idol Manat at al-Mushallal(2) who would not perform Sa'y between Safa and Marwah. So Allah revealed: "So whoever performs Hajj to the House or performs 'Umrah, there is no sin upon him for walking between them." If it were as you say, it would have been: "there is no sin upon him for not walking between them."'

Az-Zuhri said: 'I mentioned that to Abu Bakr bin 'Abd ar-Rahman bin al-Harith bin Hisham, and he was pleased by it and said: "This is indeed knowledge. I have heard men from the people of knowledge say: Our performing Sa'y between these two rocks is a matter from the Pre-Islamic Period (Jahiliyyah)." Others from the Ansar said: "We were only commanded to perform Tawaf (around the Ka'bah), and we were not commanded to do it between Safa and Marwah." So Allah revealed: "Indeed, as-Safa and al-Marwah are among the symbols of Allah." Abu Bakr bin 'Abd ar-Rahman said: "I see that it was revealed concerning both these groups." He said: "This is a good, authentic hadith."(3)'

Al-Bukhari(4) recorded it with its meaning, and in it, after the words "Allah revealed: 'Indeed, as-Safa and al-Marwah are among the symbols of Allah'", 'A'ishah said: "And the Messenger of Allah (ﷺ) established the tradition of Sa'y between them, so no one should abandon Sa'y between them." Then I informed Abu Bakr bin 'Abd ar-Rahman, and he said: "This is indeed knowledge I had not heard before. I have heard men from the people of knowledge mention that the people—except those mentioned by 'A'ishah who assumed Ihram for Manat—all used to perform Sa'y at Safa(5) and Marwah. When Allah mentioned the Tawaf around the House and did not mention Safa and Marwah in the Quran, they said: 'O Messenger of Allah, we used to perform Sa'y at Safa and Marwah, and Allah revealed the Tawaf around the House but did not mention Safa(6). Is there any harm upon us if we perform Sa'y between Safa and Marwah?' So Allah revealed: 'Indeed, as-Safa and al-Marwah are from..."

(1) In the manuscripts: "between them", and what is established is from (m), which matches the printed versions of Sunan and Sahih Muslim. (2) It is a mountain from which one descends to Qudayd (a place between the Two Harams). Al-Qamus

(Shalal). (3) Sunan at-Tirmidhi (2965), and it is in Musnad Ahmad (25112), and Sahih Muslim (1277): (261). (4) Number (1643), and Muslim recorded it in brief (1277): (262). (5) In (z) and (dh): "between as-Safa". (6) In (dh): "as-Safa and al-Marwah".

सूरा अल-बक़रा: आयत १५८ | पृष्ठ ४७०

अत्त-तिर्मिज़ी ने उर्वा से रिवायत की है, जिन्होंने कहा: "मैंने आयशा से कहा: 'मैं किसी ऐसे व्यक्ति पर कोई दोष नहीं देखता जो सफा और मरवा के बीच सई (चक्कर) न लगाए, और मुझे इसकी परवाह नहीं होगी अगर मैं उनके बीच चक्कर न लगाऊं।'(१) उन्होंने कहा: 'तुमने कितनी बुरी बात कही, ऐ मेरे भांजे! अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने सई की और मुसलमानों ने सई की। केवल वे लोग जो अल-मुशल्लल(२) में स्थित बुत 'मनात' के लिए एहराम बांधते थे, सफा और मरवा के बीच सई नहीं करते थे। इसलिए अल्लाह तआला ने नाज़िल फरमाया: "तो जो कोई काबा का हज करे या उमरा करे, उस पर इन दोनों के बीच चक्कर लगाने में कोई गुनाह नहीं है।" अगर वैसा होता जैसा तुम कह रहे हो, तो आयत यों होती: "उस पर चक्कर न लगाने में कोई गुनाह नहीं है।"'

अज़-ज़ुहरी ने कहा: 'मैंने इसका ज़िक्र अबू बक्र बिन अब्दुर्रहमान बिन अल-हारिस बिन हिशाम से किया, तो उन्हें यह बहुत पसंद आया और उन्होंने कहा: "यह वाकई इल्म (ज्ञान) है। मैंने अहल-ए-इल्म में से कई लोगों को कहते सुना है: इन दो पत्थरों के बीच हमारा चक्कर लगाना जाहिलियत (इस्लाम पूर्व काल) के कामों में से है।" अंसार में से कुछ दूसरों ने कहा: "हमें केवल (काबा का) तवाफ़ करने का हुक्म दिया गया था, और हमें सफा और मरवा के बीच चक्कर लगाने का हुक्म नहीं दिया गया था।" तो अल्लाह तआला ने नाज़िल फरमाया: "बेशक सफा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं।" अबू बक्र बिन अब्दुर्रहमान ने कहा: "मैं देखता हूँ कि यह इन दोनों समूहों के बारे में नाज़िल हुई है।" उन्होंने कहा: "यह हदीस हसन सहीह है।"(३)'

अल-बुखारी(४) ने इसे इसके अर्थ के साथ उद्धृत किया है, और उसमें इस कथन के बाद: 'अल्लाह तआला ने नाज़िल फरमाया: "बेशक सफा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं"', आयशा ने कहा: "और अल्लाह के रसूल (ﷺ) ने उनके बीच सई की सुन्नत (परंपरा) स्थापित की है, इसलिए किसी के लिए भी उनके बीच सई छोड़ना जायज़ नहीं है।" फिर मैंने अबू बक्र बिन अब्दुर्रहमान को बताया, तो उन्होंने कहा: "यह वास्तव में वह इल्म है जो मैंने पहले नहीं सुना था। मैंने अहल-ए-इल्म के लोगों को यह कहते सुना है कि लोग - सिवाय उनके जिनका ज़िक्र आयशा ने किया जो मनात के लिए एहराम बांधते थे - सभी सफा(५) और मरवा पर सई करते थे। जब अल्लाह ने कुरान में काबा के तवाफ़ का ज़िक्र किया और सफा और मरवा का ज़िक्र नहीं किया, तो उन्होंने कहा: 'ऐ अल्लाह के रसूल, हम सफा और मरवा पर चक्कर लगाया करते थे, और अल्लाह ने काबा का तवाफ़ नाज़िल

किया लेकिन सफा(६) का ज़िक्र नहीं किया। तो क्या हम पर सफा और मरवा के बीच चक्कर लगाने में कोई हर्ज है?' तो अल्लाह अज़-व-जल्ल ने नाज़िल फरमाया: "बेशक सफा और मरवा..."

(१) प्रतियों में: "उन दोनों के बीच", और जो स्थापित है वह (म) से है, जो सुनन और सहीह मुस्लिम के छपे हुए संस्करणों के अनुकूल है। (२) यह एक पहाड़ है जहाँ से कुदैद (दो हरमों के बीच एक स्थान) की ओर उतरा जाता है। अल-क़ामूस (शलल)। (३) सुनन तिर्मिज़ी (२९६५), और यह मसनद अहमद (२५११२), और सहीह मुस्लिम (१२७७): (२६१) में है। (४) संख्या (१६४३), और मुस्लिम ने इसे संक्षेप में निकाला है (१२७७): (२६२)। (५) (ज़) और (ज़): "सफा के बीच" में। (६) (ज़) में: "सफा और मरवा"।

ترمذی نے عروہ سے روایت کی ہے کہ انہوں نے کہا: "میں نے حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا سے کہا: 'میں کسی پر کوئی گناہ نہیں دیکھتا جو صفا اور مروہ کے درمیان چکر (سعی) نہ لگائے، اور مجھے پروا نہیں اگر میں ان کے درمیان چکر نہ لگاؤں۔'(۱) انہوں نے فرمایا: 'اے میرے بھانجے! تم نے کتنی بری بات کہی۔ اللہ کے رسول ﷺ نے سعی کی اور مسلمانوں نے بھی سعی کی۔ بات صرف اتنی تھی کہ جو لوگ مقامِ مشلل(۲) پر نصب بت 'منات' کے لیے احرام باندھتے تھے وہ صفا اور مروہ کے درمیان سعی نہیں کرتے تھے۔ پس اللہ تعالیٰ نے یہ آیت نازل فرمائی: "پس جو شخص بیت اللہ کا حج کرے یا عمرہ کرے تو اس پر ان دونوں کا چکر لگانے میں کوئی گناہ نہیں۔" اگر بات ایسی ہوتی جیسا تم کہہ رہے ہو تو آیت اس طرح ہوتی: "اس پر ان کا چکر نہ لگانے میں کوئی گناہ نہیں ہے۔"'

زہری کہتے ہیں: 'میں نے اس کا ذکر ابوبکر بن عبدالرحمن بن الحارث بن ہشام سے کیا تو انہیں یہ بات بہت پسند آئی اور انہوں نے کہا: "بے شک یہ ایک علم ہے۔ میں نے علم والوں میں سے کئی لوگوں کو یہ کہتے ہوئے سنا ہے کہ ان دو پتھروں (صفا و مروہ) کے درمیان ہمارا چکر لگانا زمانہ جاہلیت کے کاموں میں سے ہے۔" انصار میں سے کچھ دوسروں نے کہا: "ہمیں صرف (کعبہ کا) طواف کرنے کا حکم دیا گیا تھا اور ہمیں صفا و مروہ کے درمیان سعی کا حکم نہیں دیا گیا تھا۔" چنانچہ اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: "بیشک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں۔" ابوبکر بن عبدالرحمن نے کہا: "میرا خیال ہے کہ یہ آیت ان دونوں گروہوں کے بارے میں نازل ہوئی ہے۔" انہوں نے کہا: "یہ حدیث حسن صحیح ہے۔"(۳)'

بخاری(٤) نے اسے اس کے معنی کے ساتھ روایت کیا ہے اور اس میں اس قول کے بعد: 'اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: "بیشک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں"' حضرت عائشہ نے فرمایا: "اور اللہ کے رسول ﷺ نے ان دونوں کے درمیان سعی کی سنت قائم کی ہے، چنانچہ کسی کے لیے بھی ان کے درمیان سعی چھوڑنا جائز نہیں۔" پھر میں نے ابوبکر بن عبدالرحمن کو بتایا تو انہوں نے کہا: "بے شک یہ وہ علم ہے جو میں نے پہلے نہیں سنا تھا۔ میں نے علم والوں کو یہ ذکر کرتے ہوئے سنا ہے کہ لوگ—ماسوائے ان کے جن کا ذکر عائشہ نے کیا جو منات کے لیے احرام باندھتے تھے—سب صفا(٥) اور مروہ پر سعی کرتے تھے۔ پھر جب اللہ تعالیٰ نے قرآن میں بیت اللہ کے طواف کا ذکر کیا اور صفا و مروہ کا ذکر نہیں کیا تو انہوں نے کہا: 'اے اللہ کے رسول! ہم صفا و مروہ کے درمیان چکر لگایا کرتے تھے اور اللہ نے بیت اللہ کا طواف نازل فرمایا ہے مگر صفا(٦) کا ذکر نہیں کیا، تو کیا ہم پر صفا و مروہ کے درمیان سعی کرنے میں کوئی حرج ہے؟' تو اللہ عزوجل نے نازل فرمایا: "بیشک صفا اور مروہ...۔"

(١) نسخوں میں ہے: "ان دونوں کے درمیان"، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے جو سنن اور صحیح مسلم کے مطبوعہ نسخوں کے مطابق ہے۔ (٢) یہ ایک پہاڑ ہے جس سے قدید (حرمین کے درمیان ایک مقام) کی طرف اترا جاتا ہے۔ القاموس (شلل)۔ (٣) سنن ترمذی (٢٩٦٥)، اور یہ مسند احمد (٢٥١١٢) اور صحیح مسلم (١٢٧٧): (٢٦١) میں ہے۔ (٤) نمبر (١٦٤٣)، اور مسلم نے اسے مختصراً روایت کیا ہے (١٢٧٧): (٢٦٢)۔ (٥) (ز) اور (ظ) میں: "صفا کے درمیان"۔ (٦) (ظ) میں: "صفا اور مروہ"۔

Surat Al-Baqarah: Verse 158 471

"Symbols of Allah" the verse. Abu Bakr said: So I hear this verse was revealed regarding both groups: those who used to feel hesitant to circumambulate (perform Tawaf) between Al-Safa and Al-Marwah during the days of ignorance (Jahiliyyah), and those who used to perform Tawaf and then felt hesitant to perform Tawaf between them in Islam; because Allah Almighty commanded Tawaf around the House (Kaaba) and did not mention Al-Safa until He mentioned that after mentioning the Tawaf around the House.

And At-Tirmidhi (1) narrated from 'Asim bin Sulaiman Al-Ahwal who said: I asked Anas bin Malik about Al-Safa and Al-Marwah, and he said: They were among the rituals of Jahiliyyah, so when Islam came, we refrained from them. Then Allah Almighty revealed: {Verily, As-Safa and Al-Marwah are among the symbols of Allah. So it is no sin on him who performs Hajj or 'Umrah to the House to perform the going (Tawaf) between them.} He said: They are voluntary {And whoever does good voluntarily, then verily, Allah is All-Recogniser, All-Knower}. He said: This is a Hasan Sahih Hadith. Al-Bukhari also narrated it (2).

And from Ibn Abbas, he said: In the Jahiliyyah, there were devils playing music all night long between Al-Safa and Al-Marwah, and there were (3) idols between them. So when Islam prevailed, the Muslims said: O Messenger of Allah, we will not perform Tawaf between Al-Safa and Al-Marwah, for they are Shirk (polytheism). So it was revealed (4).

And Ash-Sha'bi said: In the Jahiliyyah, there was an idol on Al-Safa called Isaf, and an idol on Al-Marwah called Na'ila. They used to touch them when they performed Tawaf, so the Muslims refrained from performing Tawaf between them because of that, and the verse was revealed (5).

Second: The origin of "As-Safa" in the language is a smooth stone; here it refers to a well-known mountain in Mecca, and similarly Al-Marwah is also a mountain, therefore they are mentioned with the definite article.

And As-Safa was named masculine because Adam the Chosen ﷺ stood upon it, so it was named after him, and Hawa (Eve) stood on Al-Marwah, so it was named after woman (female), thus it was made feminine for that reason, and Allah knows best (6).

(1) In his Sunan (2966). (2) Number (1648). (3) In (D) and (M): "wa kana" (singular masculine). (4) Narrated by At-Tabari 2/716, and Ibn Abi Dawud in Al-Masahif pp.

100-101. (5) Narrated by At-Tabari 2/714, and Al-Wahidi in Al-Waseet 1/242-243. (6) Mentioned by Al-Mawardi in An-Nukat wal-'Uyun 1/211 and attributed it to Ja'far bin Muhammad, and also mentioned by Ibn 'Atiyyah in Al-Muharrar Al-Wajiz 1/229.

सूरा अल-बकरा: आयत १५८ ४७१

"अल्लाह की निशानियाँ" आयत। अबू बक्र ने कहा: मैंने सुना है कि यह आयत दोनों समूहों के बारे में अवतरित हुई थी: वे जो अज्ञानता के काल (जाहिलियत) में सफा और मरवा के बीच तवाफ (चक्कर लगाने) में हिचकिचाहट महसूस करते थे, और वे जो तवाफ करते थे और फिर इस्लाम में उनके बीच तवाफ करने में हिचकिचाने लगे; क्योंकि अल्लाह सर्वशक्तिमान ने घर (काबा) के चारों ओर तवाफ करने का आदेश दिया था, और सफा का उल्लेख तब तक नहीं किया जब तक कि उसने घर के चारों ओर तवाफ का उल्लेख करने के बाद उसका उल्लेख नहीं किया।

और अत-तिर्मिज़ी (१) ने आसिम बिन सुलेमान अल-अहवाल से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: मैंने अनस बिन मलिक से सफा और मरवा के बारे में पूछा, तो उन्होंने कहा: वे जाहिलियत के प्रतीकों में से थे, फिर जब इस्लाम आया, तो हमने उनसे परहेज किया। तब अल्लाह सर्वशक्तिमान ने अवतरित किया: {निस्संदेह सफ़ा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं। अतः जो व्यक्ति घर (काबा) का हज या उमराह करे, उसके लिए उनके बीच चक्कर (तवाफ़) लगाने में कोई पाप नहीं है।} उन्होंने कहा: वे स्वैच्छिक हैं {और जो कोई स्वेच्छा से कोई भलाई का काम करे, तो निस्संदेह अल्लाह कद्रदान और जानने वाला है}। उन्होंने कहा: यह एक हसन सहीह हदीस है। अल-बुखारी ने भी इसे उद्धृत किया है (२)।

और इब्न अब्बास से रिवायत है, उन्होंने कहा: जाहिलियत में सफा और मरवा के बीच रात भर शैतान संगीत बजाते थे, और उनके बीच मूर्तियाँ थीं (३)। इसलिए जब इस्लाम का बोलबाला हुआ, तो मुसलमानों ने कहा: हे अल्लाह के रसूल, हम सफा और मरवा के बीच तवाफ नहीं करेंगे, क्योंकि वे शिर्क(बहुदेववाद) हैं। तो यह अवतरित हुई (४)।

और अश्-शाबी ने कहा: जाहिलियत में सफा पर 'इ़साफ' नामक एक मूर्ति थी और मरवा पर 'नाइला' नामक एक मूर्ति थी। जब वे तवाफ करते थे तो उन्हें छूते थे, इसलिए मुसलमानों ने उस कारण उनके बीच तवाफ करने से परहेज किया, और आयत अवतरित हुई (५)।

दूसरा: भाषा में 'सफा' का मूल अर्थ चिकना पत्थर है; यहाँ यह मक्का में एक प्रसिद्ध पहाड़ है, और इसी तरह मरवा भी एक पहाड़ है, इसलिए उन्हें निश्चित लेख (The) के साथ व्यक्त किया गया है।

और सफा का उल्लेख पुल्लिंग के रूप में किया गया क्योंकि आदम अलैहिस्सलाम उस पर खड़े हुए थे, इसलिए उनके नाम पर इसका नाम रखा गया, और हव्वा अलैहिस्सलाम मरवा पर खड़ी हुई थीं,

इसलिए इसका नाम स्त्री के नाम पर रखा गया, इसलिए इसे स्त्रीलिंग बनाया गया, और अल्लाह ही बेहतर जानता है (६)।

(१) अपनी सुनन (२९६६) में। (२) संख्या (१६४८) के तहत। (३) (द) और (म) प्रतियों में: "व काना" (एकवचन पुल्लिंग)। (४) अत-तब़री २/७१६ और इब्न अबी दाऊद ने अल-मसाहिफ पृ. १००-१०१ में इसे उद्धृत किया है। (५) अत-तब़री २/७१४ और अल-वाहिदी ने अल-वसीत १/२४२-२४३ में इसे उद्धृत किया है। (६) अल-मावर्दी ने अन-नुकत वल-उयून १/२११ में इसका उल्लेख किया है और इसे जाफ़र बिन मुहम्मद से जोड़ा है, और इब्न अतिय्या ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२९ में भी इसका उल्लेख किया है।

سورة البقرہ: آیت ۱۵۸ ۴۷۱

"اللہ کی نشانیاں" آیت۔ ابوبکر نے کہا: پس میں سنتا ہوں کہ یہ آیت دونوں گروہوں کے بارے میں نازل ہوئی: ان کے بارے میں جو جاہلیت میں صفا اور مروہ کے درمیان طواف کرنے میں حرج محسوس کرتے تھے، اور وہ جو طواف کرتے تھے پھر اسلام میں ان کے درمیان طواف کرنے میں حرج محسوس کرنے لگے؛ اس لیے کہ اللہ تعالیٰ نے بیت اللہ کے طواف کا حکم دیا تھا، اور صفا کا ذکر تب تک نہیں کیا جب تک کہ بیت اللہ کے طواف کے ذکر کے بعد اس کا ذکر نہیں کیا۔

اور ترمذی (۱) نے عاصم بن سلیمان الاحول سے روایت کیا کہ انہوں نے کہا: میں نے انس بن مالک سے صفا اور مروہ کے بارے میں پوچھا، تو انہوں نے کہا: وہ جاہلیت کے شعائر (علامات) میں سے تھے، پھر جب اسلام آیا تو ہم ان سے رک گئے، تب اللہ عزوجل نے نازل فرمایا: {بے شک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں، پس جو کوئی بیت اللہ کا حج یا عمرہ کرے تو اس پر کوئی گناہ نہیں کہ وہ ان دونوں کے درمیان طواف کرے}۔ انہوں نے کہا: وہ نفل (رضاکارانہ) ہیں {اور جو کوئی خوشی سے نیکی کرے تو بے شک اللہ قدردان اور جاننے والا ہے}۔ انہوں نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے۔ بخاری نے بھی اسے روایت کیا ہے (۲)۔

اور ابن عباس سے مروی ہے، انہوں نے کہا: جاہلیت میں صفا اور مروہ کے درمیان ساری رات شیطان موسیقی بجایا کرتے تھے، اور ان کے درمیان بت تھے (۳)، پس جب اسلام غالب آگیا تو مسلمانوں نے کہا: اے اللہ کے رسول، ہم صفا اور مروہ کے درمیان طواف نہیں کریں گے کیونکہ وہ شرک ہیں، تو یہ آیت نازل ہوئی (۴)۔

اور شعبی نے کہا: جاہلیت میں صفا پر 'اساف' نامی بت تھا اور مروہ پر 'نائلہ' نامی بت تھا، وہ طواف کرتے وقت انہیں چھوا کرتے تھے، چنانچہ مسلمانوں نے اس وجہ سے ان کے درمیان طواف کرنے سے پرہیز کیا، تو یہ آیت نازل ہوئی (۵)۔

دوسرا: لغت میں 'صفا' کی اصل ہموار پتھر ہے؛ اور یہاں اس سے مراد مکہ کا ایک معروف پہاڑ ہے، اور اسی طرح مروہ بھی ایک پہاڑ ہے، اس لیے ان دونوں کو حرفِ تعریف (الف لام) کے ساتھ ذکر کیا گیا۔

اور صفا کو مذکر ذکر کیا گیا کیونکہ آدم صفی اللہ ﷺ اس پر کھڑے ہوئے تھے، چنانچہ ان کی نسبت سے اسے یہ نام دیا گیا، اور حوا مروہ پر کھڑی ہوئی تھیں، چنانچہ اسے عورت کے نام پر موسوم کیا گیا، پس اسی لیے اسے مؤنث لایا گیا، واللہ اعلم (۶)۔

(۱) اپنی سنن (۲۹۶۶) میں۔ (۲) نمبر (۱۶۴۸) کے تحت۔ (۳) (د) اور (م) کے نسخوں میں: "وکان" (واحد مذکر)۔ (۴) اسے طبری ۲/۷۱۶، اور ابن ابی داؤد نے المصاحف ص ۱۰۰-۱۰۱ میں روایت کیا ہے۔ (۵) اسے طبری ۲/۷۱۴، اور واحدی نے الوسیط ۱/۲۴۲-۲۴۳ میں روایت کیا ہے۔ (۶) اس کا ذکر ماوردی نے النکت والعیون ۱/۲۱۱ میں کیا ہے اور اسے جعفر بن محمد کی طرف منسوب کیا ہے، اور ابن عطیہ نے بھی المحرر الوجیز ۱/۲۲۹ میں اس کا ذکر کیا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 158 472 Al-Sha'bi said: On Safa there was an idol called (1) Isaf, and on Marwa there was an idol called Na'ilah. Thus, the rule of masculine and feminine genders was followed, and the masculine was put first (2), and this is good; because the mentioned hadiths indicate this meaning, and the dislike of those who disliked performing Sa'i between them was only because of this, until Allah removed the hardship in that. The People of the Book claimed that they committed adultery in the Kaaba, so Allah transformed them into two stones, and placed them on Safa and Marwa so that people might take heed from them. When a long time had passed, they were worshipped besides Allah (3), and Allah Almighty knows best. And Al-Safa, a shortened noun: the plural of Safah, which is smooth stones. It is also said: Al-Safa is a singular noun, and its plural is Sufiyy, with a damma on the Sād, and Asfā', like Arhā'. The Rajiz poet said: As if his two flanks from the spray (4) are like the places where birds land on the smooth rocks (5) It was said: Among the conditions of Safa are whiteness and hardness (6); and its derivation is from "safā yasfū", meaning: it became clear from dust and mud. And Al-Marwa: a single unit of Marw, which are small pebbles that have some softness. It has been said: It is...

---

(1) In (D) and (M): is named. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/229, and recorded similarly by al-Tabari 2/714. Abu Hayyan mentioned in al-Bahr al-Muhit 1/456 these two sayings and said: If this had not been recorded in a book, I would not have mentioned it. He said: Safa and Marwa are names for these two mountains, and proper names do not take into account the masculinity or femininity of the word; do you not see their sayings Talhah and Hind. (3) Mentioned by al-Zamakhshari in al-Kashshaf 1/324. (4) In the copies: "min" (from), and what is established is from (M), which is consistent with the sources. (5) Its speaker is al-Akhyal al-Ta'i, as in Jamharat al-Lughah by Ibn Durayd 3/135, al-Lisan (Safa) (Nafa), and it is also in Majalis Tha'lab p. 207, al-Hayawan by al-Jahiz 2/339, Tafsir al-Tabari 2/709, Tahdhib al-Lughah 3/37, and al-Sihah (Safa). The verse is in describing the water-carrier as mentioned by Tha'lab, and he said: It is as if when the water dried on his back, it was like bird droppings; because it turned white, so he likened it to that. According to Ibn Durayd, the narration is: "As if my two flanks from the spray from the length of my overlooking the well are the landing places of..." And the author of al-Lisan quoted from Ibn Sidah that: "matnayya" (my two flanks) is more correct; because of his saying after it: "from the length of my overlooking..." and it is in al-Sihah with the narration: "...matnayhi... ishrāf..." (6) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/228.

सूरह अल-बकरा: आयत 158 472 अश-शाबी ने कहा: सफा पर इसाफ़ (1) नामक एक मूर्ति थी, और मरवा पर नाइला नामक एक मूर्ति थी। इस प्रकार, पुल्लिंग और स्त्रीलिंग के नियम का पालन किया गया, और पुल्लिंग को पहले रखा गया (2), और यह अच्छा है; क्योंकि उल्लेखित हदीसें इस अर्थ की ओर संकेत करती हैं, और जो लोग उनके बीच सई करने को नापसंद करते थे, उनकी नापसंदगी केवल इसी कारण से थी, यहाँ तक कि अल्लाह ने उस मामले में कठिनाई को दूर कर दिया। अहले किताब (किताब वाले) का दावा है कि उन दोनों ने काबा में व्यभिचार किया था, इसलिए अल्लाह ने उन्हें दो पत्थरों में बदल दिया, और उन्हें सफा और मरवा पर रख दिया ताकि लोग उनसे सबक लें। जब एक लंबा समय बीत गया, तो अल्लाह के सिवा उनकी पूजा की जाने लगी (3), और अल्लाह ही बेहतर जानता है। और अल-सफा, एक संक्षिप्त संज्ञा है: 'सफह' का बहुवचन, जिसका अर्थ है चिकने पत्थर। यह भी कहा गया है: अल-सफा एक एकवचन संज्ञा है, और इसका बहुवचन 'सुफ़िय्य' है, 'साद' पर दम्मा के साथ, और 'असफ़ा', जैसे 'अर्हा'। राज़िज़ कवि ने कहा: मानो उसके दोनों पहलू फुहार (4) से वैसे ही हों जैसे चिकनी चट्टानों पर पक्षियों के बैठने के स्थान (5) यह कहा गया: सफा की शर्तों में सफेदी और कठोरता (6) शामिल हैं; और इसकी व्युत्पत्ति "सफा यसफ़ू' से हुई है, जिसका अर्थ है: धूल और मिट्टी से साफ होना। और अल-मरवा: 'मर्व' की एक इकाई, जो छोटे कंकड़ होते हैं जिनमें कुछ कोमलता होती है। यह कहा गया है कि यह...

---

(1) (द) और (म) में: 'युसम्मा' (नाम दिया गया है)। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/229, और अल-तबारी 2/714 द्वारा इसी तरह दर्ज किया गया है। अबू हयान ने अल-बहर अल-मुहीत 1/456 में इन दो कथनों का उल्लेख किया और कहा: यदि यह किसी पुस्तक में दर्ज नहीं होता, तो मैं इसका उल्लेख नहीं करता। उन्होंने कहा: सफा और मरवा इन दो पहाड़ों के नाम हैं, और व्यक्तिवाचक संज्ञाओं में शब्द के पुल्लिंग या स्त्रीलिंग होने पर ध्यान नहीं दिया जाता; क्या आप उनके'तलहा' और 'हिंद' कहने को नहीं देखते। (3) अल-ज़मख्शारी द्वारा अल-कश्शाफ 1/324 में उल्लेखित। (4) प्रतियों में: 'मिन' (से), और जो स्थापित है वह (म) से है, जो स्रोतों के अनुरूप है। (5) इसके वक्ता अल-अखयल अल-ताई हैं, जैसा कि इब्न दुरैद की जमहरात अल-लुगा 3/135 में, अल-लिसान (सफा) (नफा) में है, और यह थलाब की मजलिस पृ. 207, अल-जाहिज की अल-हैवान 2/339, तफसीर अल-तबारी 2/709, तहज़ीब अल-लुगा 3/37, और अल-सिहाह (सफा) में भी है। पद पानी पिलाने वाले के वर्णन में है जैसा कि थलाब ने उल्लेख किया है, और उन्होंने कहा: ऐसा लगता है जैसे जब पानी उसकी पीठ पर सूख गया, तो वह पक्षियों की बीट की तरह था; क्योंकि वह सफेद हो गया था,

इसलिए उन्होंने उससे इसकी तुलना की। इब्न दुरैद के अनुसार रिवायत है: "मानो मेरे दोनों पहलू फुहार से कुएं पर मेरे लंबे समय तक झांकने के कारण... के बैठने के स्थान हों।" और अल-लिसान के लेखक ने इब्न सिदाह से उद्धृत किया कि: "मतनय्या" (मेरे दोनों पहलू) अधिक सही है; उसके बाद उनके यह कहने के कारण: "मेरे लंबे समय तक झांकने के कारण..." और यह अल-सिहाह में इस रिवायत के साथ है: "...मतनयही... इश्राफ..." (6) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/228 देखें।

سورہ البقرہ : آیت ۱۵۸ ۴۷۲ اور شعبی نے کہا: صفا پر ایک بت تھا جسے (۱) اساف کہا جاتا تھا، اور مروہ پر ایک بت تھا جسے نائلہ کہا جاتا تھا، تو تذکیر و تانیث میں اسی کا اعتبار کیا گیا، اور مذکر کو مقدم کیا گیا (۲)، اور یہ حسن (اچھا) ہے؛ کیونکہ مذکورہ احادیث اسی معنی پر دلالت کرتی ہیں، اور جن لوگوں نے ان دونوں کے درمیان طواف (سعی) کو ناپسند کیا ان کی ناپسندیدگی صرف اسی وجہ سے تھی، یہاں تک کہ اللہ نے اس بارے میں حرج (تنگی) کو دور فرما دیا۔ اور اہل کتاب کا دعویٰ ہے کہ ان دونوں نے کعبہ میں زنا کیا تھا، تو اللہ نے انہیں دو پتھروں کی صورت میں مسخ کر دیا، اور انہیں صفا اور مروہ پر رکھ دیا تاکہ ان سے عبرت حاصل کی جائے، پھر جب لمبی مدت گزر گئی تو اللہ کے سوا ان کی عبادت کی جانے لگی (۳)، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ اور الصفا، مقصور ہے: صفاۃ کی جمع، اور وہ ہموار (چکنے) پتھر ہیں۔ اور کہا گیا: الصفا اسم مفرد ہے، اور اس کی جمع صفی ہے، صاد کے ضمہ کے ساتھ، اور اصفاء، جیسے: ارحاء۔ راجز (شاعر) نے کہا: گویا اس کے دونوں پہلو چھینٹوں (٤) کی وجہ سے پرندوں کے چکنے پتھروں پر بیٹھنے کی جگہوں (٥) کی طرح ہیں اور کہا گیا: صفا کی شرائط میں سفیدی اور سختی (٦) شامل ہے؛ اور اس کا اشتقاق "صفا یصفو" سے ہے، یعنی: مٹی اور کیچڑ سے پاک و صاف ہونا۔ اور المروہ: مرو کا واحد ہے، اور یہ وہ چھوٹے پتھر ہیں جن میں نرمی ہوتی ہے۔ اور کہا گیا ہے کہ یہ...

---

(۱) (د) اور (م) میں: یسمی (نام دیا جاتا ہے)۔ (۲) المحرر الوجیز ۱ / ۲۲۹، اور اسے اسی طرح الطبری ۲ / ۷۱٤ نے روایت کیا ہے۔ اور ابو حیان نے البحر المحیط ٤٥٦/١ میں ان دو اقوال کا ذکر کیا اور کہا: اگر یہ کسی کتاب میں درج نہ ہوتا تو میں اس کا ذکر نہ کرتا۔ اور کہا: صفا اور مروہ ان دو پہاڑوں کے نام ہیں، اور علام (ناموں) میں لفظ کی تذکیر یا تانیث کا لحاظ نہیں کیا جاتا، کیا

آپ ان کے قول طلحہ اور ہند کو نہیں دیکھتے۔ (۳) اسے الزمخشری نے الکشاف ۱ / ۳۲٤ میں ذکر کیا ہے۔ (٤) نسخوں میں: "من" ہے، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے جو کہ مصادر کے موافق ہے۔ (٥) اس کے قائل الاخیل الطائی ہیں، جیسا کہ جمهرة اللغة لابن درید ۳/ ۱۳٥ میں ہے، اور اللسان (صفا) (نفا) میں، اور یہ مجالس ثعلب ص ۲۰۷، اور الحیوان للجاحظ ۲/ ۳۳۹، اور تفسیر الطبري ۷۰۹/۲، اور تهذیب اللغة ۳/ ۳۷، اور الصحاح (صفا) میں بھی ہے۔ اور یہ شعر پانی پلانے والے کے وصف میں ہے جیسا کہ ثعلب نے ذکر کیا، اور کہا: گویا جب پانی اس کی پیٹھ پر خشک ہوا تو وہ پرندوں کی بیٹ کی طرح تھا؛ کیونکہ وہ سفید ہو گیا تھا، تو اس نے اس سے تشبیہ دی۔ اور ابن درید کے ہاں روایت ہے: "كأن متني من النُّفَيِّ من طول إشرافي على الطوي مواقع ..." اور صاحب اللسان نے ابن سیدہ سے نقل کیا کہ: "متني" زیادہ صحیح ہے؛ کیونکہ اس کے بعد اس کا قول ہے: "من طول إشرافي ..." اور یہ الصحاح میں اس روایت کے ساتھ ہے: "... متنبه ... إشراف..." (٦) دیکھئے المحرر الوجیز ۲۲۸/۱۔

473 Surah Al-Baqarah: Verse 158

Hard [stones]. The correct view is that 'Al-Marwa' refers to stones, both hard and soft ones that shatter and have thin edges. Regarding this, 'Al-Marwa' is used more often, and it is said regarding hard stones (1). A poet said: "And she places a withered hoof upon the earth, and if it encounters Al-Marwa (flint stones), it shatters/crushes them (2)." Abu Dhu'aib said: "Until it is as if I am, for the sake of calamities, a Marwa (flint stone) on the rock of Al-Mushaqqar, struck every day (3)." It has also been said: They are black stones. And it was said: They are white, sparkling stones containing fire [flint]. Third: His words (The Exalted): {among the symbols (Sha'air) of Allah}, meaning: from His landmarks and places of worship. It is the plural of 'Sha'irah' (4). The symbols (Sha'air) are the acts of worship that Allah (The Exalted) has marked out, i.e., made them signs for people, such as the standing [at Arafat], the Sa'i, and the slaughter (5). 'Shi'ar' means a sign; it is said: 'Ash'ara al-Hady' (he marked the sacrificial animal), meaning he marked it by piercing a piece of iron into its hump. From your saying: 'Ash'artu', meaning: I informed/marked. Al-Kumayt said: "We kill them generation after generation; you see them as sacrificial symbols by which (6) closeness [to Allah] is sought (7)."

(1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/229. (2) In (Kh), (Z), (Th), and (M): 'radakh' (with the letter kha). What is established in (D) is 'radah' (with the letter ha), which is the correct one. The verse belongs to Al-A'sha Maymun bin Qays, and it is in his Diwan p. 291 from a poem ending in 'ha' with the narration: 'mujmaran' instead of 'dhabilan'. In Tabari's exegesis 2/709 it says: 'za'ilan' instead of 'dhabilan'. His saying: 'radah'; it is said in Al-Sahah (radah): 'Radah' is like 'radakh', which is breaking pebbles or date pits. The verse is describing a she-camel. (3) It is in Diwan al-Hudhaliyin p. 3, with the narration: 'Al-Mushriq' instead of 'Al-Mushaqqar'. Al-Tabari mentioned it 2/708 and said: It is also called 'Al-Mushaqqar'. Yaqut mentioned it in Mu'jam al-Buldan in both places and mentioned that 'Al-Mushaqqar' is a great fortress in Bahrain belonging to [the tribe of] Abd al-Qays, adjacent to another fortress of theirs called Al-Safa. Then he said: Al-Asma'i said: For Hudhayl there is a mountain called Al-Mushaqqar, and this is the one about which Abu Dhu'aib said... and he mentioned the verse. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/229. (5) In (Th): 'Al-Manhar'. (6) In (Th): 'biha' (with it), which matches the narration in Lisan al-Arab (under 'sh-'-r'). (7) In (D) and (Z): 'nataqarrabu' (we seek closeness). The verse is in Al-Hashimiyyat p. 35, Al-Tabari's exegesis 2/710, and Majma' al-Bayan 2/43. In the commentary of Al-Hashimiyyat p. 67, it says: 'generation after generation' means army after army, and creation after creation. He

says: We make the killing of the Kharijites a means of seeking nearness to Allah, just as sacrificial animals are offered as symbols to Allah.

473 सूरह अल-बकरा: आयत 158

[पत्थर] कठोर हैं। सही विचार यह है कि 'अल-मरवा' का अर्थ पत्थर है, चाहे वे कठोर हों या नरम, जो बिखर जाते हैं और उनके किनारे पतले होते हैं। इस संबंध में, 'अल-मरवा' का अधिक उपयोग किया जाता है, और यह कठोर पत्थरों के संबंध में कहा जाता है (1)। एक कवि ने कहा: "और वह जमीन पर एक मुरझाया हुआ खुर रखती है, और यदि उसका सामना अल-मरवा (चकमक पत्थरों) से होता है, तो वह उन्हें चकनाचूर कर देती है (2)।" अबू ज़ुअैब ने कहा: "यहाँ तक कि ऐसा लगता है जैसे मैं विपत्तियों के लिए, अल-मुशक्कर की चट्टान पर एक मरवा (चकमक पत्थर) हूँ, जिसे हर दिन मारा जाता है (3)।" यह भी कहा गया है: वे काले पत्थर हैं। और कहा गया: वे सफेद, चमकते हुए पत्थर हैं जिनमें आग होती है [चकमक पत्थर]। तीसरा: अल्लाह (सर्वोच्च) का वचन: {अल्लाह के प्रतीकों (शआयर) में से}, अर्थात: उसके चिह्नों और इबादत के स्थानों में से। यह 'शईरा' का बहुवचन है (4)। 'शआयर' वे इबादत के कार्य हैं जिन्हें अल्लाह (सर्वोच्च) ने चिह्नित किया है, यानी उन्हें लोगों के लिए संकेत बनाया है, जैसे अराफात में ठहरना, सई और क़ुरबानी (5)। 'शआर' का अर्थ संकेत है; कहा जाता है: 'अशअरा अल-हद्य' (उसने क़ुरबानी के जानवर को चिह्नित किया), यानी उसने उसके कूबड़ में लोहे का एक टुकड़ा चुभाकर उसे चिह्नित किया। आपके कहने से: 'अशअर्तु', जिसका अर्थ है: मैंने सूचित किया/चिह्नित किया। अल-कुमैत ने कहा: "हम उन्हें पीढ़ी-दर-पीढ़ी मारते हैं; आप उन्हें क़ुरबानी के प्रतीकों के रूप में देखते हैं जिनके द्वारा (6) समीपता [अल्लाह की] खोजी जाती है (7)।"

(1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/229। (2) (ख़), (ज़), (ज़) और (म) में: 'रदख़' (ख़ा अक्षर के साथ)। (द) में जो स्थापित है वह 'रदह' (हा अक्षर के साथ) है, जो सही है। यह शेर अल-आशा मैमुन बिन क़ैस का है, और यह उनके दीवान पृष्ठ 291 में एक 'हा' पर समाप्त होने वाली कविता में है, जिसमें वर्णन है: 'मुजमरन' के स्थान पर 'धाबिलन'। तबरी की तफ़सीर 2/709 में यह है: 'ज़ाइलन' के स्थान पर 'धाबिलन'। उनका कहना: 'रदह'; अल-साहाह (रदह) में कहा गया है: 'रदह' 'रदख़' की तरह है, जिसका अर्थ कंकड़ या खजूर की गुठली तोड़ना है। यह शेर एक ऊंटनी के वर्णन में है। (3) यह दीवान अल-हुदैलियिन पृष्ठ 3 में है, वर्णन के साथ: 'अल-मुशर्रिक' के स्थान पर 'अल-मुशक्कर'। अल-तबरी ने इसका उल्लेख 2/708 में किया है और कहा: इसे 'अल-मुशक्कर' भी कहा जाता है। याकूत ने मोजम अल-बुलदान में दोनों स्थानों पर इसका उल्लेख किया है और उल्लेख किया है कि 'अल-मुशक्कर' बहरीन में अब्दुल क़ैस [कबीले] का एक विशाल किला है, जो उनके अल-सफ़ा नामक एक अन्य किले के बगल में है। फिर उन्होंने कहा: अल-असमी ने कहा: हुदैल के लिए एक पहाड़ है जिसे

अल-मुशक्कर कहा जाता है, और यह वही है जिसके बारे में अबू ज़ुअैब ने कहा... और उन्होंने शेर का उल्लेख किया। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/229। (5) (ज़) में: अल-मनहर। (6) (ज़) में: 'बिहा' (उसके साथ), जो लिसान अल-अरब (श-अ-र के तहत) के वर्णन से मेल खाता है। (7) (द) और (ज़) में: 'नतकर्रबु' (हम निकटता चाहते हैं)। यह शेर अल-हाशिमियात पृष्ठ 35, अल-तबरी की तफ़सीर 2/710 और मजमा अल-बयान 2/43 में है। अल-हाशिमियात के स्पष्टीकरण पृष्ठ 67 में कहा गया है: 'पीढ़ी-दर-पीढ़ी' का अर्थ सेना-दर-सेना और सृष्टि-दर-सृष्टि है। वे कहते हैं: हम खवारिजों की हत्या को अल्लाह के करीब आने का एक साधन बनाते हैं, जैसे क़ुरबानी के जानवरों को अल्लाह के प्रतीकों के रूप में पेश किया जाता है।

٤٧٣ سورة البقرہ: آیت ١٥٨

سخت پتھر۔ اور صحیح یہ ہے کہ 'المرو' سے مراد وہ پتھر ہیں، خواہ وہ سخت ہوں یا نرم، جو ٹکڑے ٹکڑے ہو جاتے ہیں اور ان کے کنارے باریک ہوتے ہیں۔ اس بارے میں، 'المرو' کا لفظ زیادہ استعمال ہوتا ہے، اور یہ سخت پتھروں کے بارے میں کہا جاتا ہے (١)۔ شاعر نے کہا: "اور وہ زمین پر ایک مرجھایا ہوا کھر رکھتی ہے، پس جب اس کا سامنا المرو (چقماق پتھروں) سے ہوتا ہے، تو وہ انہیں کچل دیتی ہے (٢)۔" اور ابو ذویب نے کہا: "یہاں تک کہ گویا میں مصائب کے لیے المشرق کی چٹان پر ایک مروہ (چقماق پتھر) ہوں جسے ہر روز مارا جاتا ہے (٣)۔" اور یہ بھی کہا گیا ہے: یہ سیاہ پتھر ہیں۔ اور کہا گیا: یہ سفید، چمکدار پتھر ہیں جن میں آگ ہوتی ہے [چقماق پتھر]۔ تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: {اللہ کی نشانیوں (شعائر) میں سے} یعنی: اس کی علامتوں اور عبادت گاہوں میں سے۔ یہ 'شعیرہ' کی جمع ہے (٤)۔ 'شعائر' وہ عبادات ہیں جنہیں اللہ تعالیٰ نے نشان زد کیا ہے، یعنی انہیں لوگوں کے لیے علامتیں بنایا ہے، جیسے موقف (عرفات)، سعی اور نحر (قربانی) (٥)۔ 'شعار' کا مطلب علامت ہے؛ کہا جاتا ہے: 'اشعر الہدی' (اس نے قربانی کے جانور کو نشان زد کیا)، یعنی اس نے اس کے کوہان میں لوہے کا ایک ٹکڑا چبھو کر اسے نشان زد کیا۔ آپ کے قول سے: 'اشعرتُ' یعنی: میں نے آگاہ کیا/نشان زد کیا۔ اور الکمیت نے کہا: "ہم انہیں نسل در نسل قتل کرتے ہیں؛ آپ انہیں قربانی کی نشانیوں کے طور پر دیکھتے ہیں جن کے ذریعے (٦) قرب حاصل کیا جاتا ہے (٧)۔"

(١) المحرر الوجیز ٢٢٩/١۔ (٢) (خ)، (ز)، (ظ) اور (م) میں: 'رضخ' (خا کے ساتھ)۔ اور (د) میں جو ثابت ہے وہ 'رضح' (حا کے ساتھ) ہے اور یہی صحیح ہے۔ یہ شعر الاعشی میمون بن قیس کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ٢٩١ میں ایک ایسی نظم میں ہے جس کے قافیے 'حا' پر ختم ہوتے

ہیں، اور روایت ہے: 'مجمراً' بجائے 'ذابلاً'۔ اور تفسیر طبری ۷۰۹/۲ میں ہے: 'زائلاً' بجائے 'ذابلاً'۔ اس کا قول: 'رضح'؛ الصحاح (رضح) میں کہا گیا ہے: الرضح، الرضخ کی طرح ہے، جس کا مطلب کنکر یا گٹھلیوں کو توڑنا ہے۔ یہ شعر ایک اونٹنی کی تعریف میں ہے۔ (۳) یہ دیوان الہذلیین ص ۳ میں ہے، جس کی روایت ہے: 'المشرق' بجائے 'المشقر'۔ اور طبری نے اسے ۷۰۸/۲ میں ذکر کیا ہے اور کہا: اسے 'المشقر' بھی کہا جاتا ہے۔ یاقوت نے اسے معجم البلدان میں دونوں جگہوں پر ذکر کیا ہے اور بتایا ہے کہ 'المشقر' بحرین میں عبد القیس کا ایک عظیم قلعہ ہے، جو ان کے ایک دوسرے قلعے کے قریب ہے جسے الصفا کہا جاتا ہے۔ پھر انہوں نے کہا: الاصمعی نے کہا: ہذیل کے لیے ایک پہاڑ ہے جسے المشقر کہا جاتا ہے، اور یہ وہی ہے جس کے بارے میں ابو ذویب نے کہا... اور شعر ذکر کیا۔ (٤) المحرر الوجیز ۲۲۹/۱۔ (٥) (ظ) میں: والمنحر۔ (٦) (ظ) میں: 'بھا' (اس کے ذریعے)، جو لسان العرب کی روایت کے مطابق ہے۔ (۷) (د) اور (ز) میں: 'نتقرب'۔ یہ شعر الہاشمیات ص ۳۵، تفسیر طبری ۷۱۰/۲، اور مجمع البیان ٤۳/۲ میں ہے۔ شرح الہاشمیات ص ٦۷ میں کہا گیا ہے: 'جیلاً فجیلاً' سے مراد لشکر در لشکر اور مخلوق در مخلوق ہے۔ وہ کہتے ہیں: ہم خوارج کے قتل کو اللہ کے قریب ہونے کا ذریعہ بناتے ہیں، جیسے قربانی کے جانور اللہ کی نشانیوں کے طور پر پیش کیے جاتے ہیں۔

474 Surah Al-Baqarah: Verse 158

Fourth: His Almighty's saying: {Whoever performs Hajj to the House} meaning: intended it. The original meaning of Hajj is 'intention'. The poet said: “I bear witness to many settlements of 'Awf... They frequent (hajjun) the saffroned turban (sibb) of Al-Zibriqan (1)” 'Al-Sibb' is a polysemous word. Abu 'Ubaydah said: Al-Sibb, with a kasra, means one who insults frequently. And your 'sibb' is also the one who insults you (2); the poet said: “Do not insult me (3) for I am not your equal in insult (sibbi)... Indeed, my equal in insult among men is the noble one (4)” 'Al-Sibb' also means a veil (khimar), and likewise a turban; Al-Mukhabbal Al-Sa'di said: “They frequent (hajjun) the saffroned turban (sibb) of Al-Zibriqan (5)”

---

(1) Its author is Al-Mukhabbal Al-Sa'di. The author will repeat its second half after the next verse. It is in "Islah al-Mantiq" p. 411, "al-Bayan wa-l-Tabyin" 3/97, "al-Ishtiqaq" by Ibn Durayd 1/123, "al-Sihah" (s-b-b), "Tafsir al-Tabari" 2/711, "al-Muharrar al-Wajiz" 1/229, "Majma' al-Bayan" 2/43, and "al-Khizanah" 8/89. Ibn Qutaybah mentioned it in "al-Ma'ani al-Kabir" p. 478 with the narration: "And I bear witness of Qays...". It is with all of them with the narration: "And I bear witness" with a 'waw'. Al-Baghdadi restricted "wa-ashhada" with nasb (accusative) as a conjunction to what came in the verse before it, which is: “Did you not know, O Umm Ghamra, that... the calamities of time missed me so that I might grow old.” His saying: 'Awf is the forefather of a tribe, who is 'Awf ibn Ka'b ibn Zayd Manat ibn Tamim. 'al-Hulul' are the people residing. 'Al-Sibb', with a kasra on the letter 'sin', is the turban. The masters of the Arabs used to dye their turbans with saffron. Some have interpreted this verse in a way not worth mentioning. See "al-Khizanah" 8/99. Al-Tabari said: He means by his saying "they frequent": they often visit him because of his lordship and leadership. Al-Zibriqan: He is Husayn ibn Badr, the companion. The Prophet ﷺ appointed him over the charities of Bani Tamim. It is said: He was named Al-Zibriqan for his beauty, as the Zibriqan is the moon before it is full. It is also said: because he used to dye his turban in war, meaning: make it yellow. "al-Khizanah" 8/100. And see "al-Lisan" (s-b-b). (2) In (kh), (d), and (zh): yasubbuk. (3) In the copies: tasubbani, and the confirmed is from (m), which is consistent with the sources. (4) Ibn Hisham mentioned it in "al-Sirah" 2/150 among a poem by Hassan said on the day of Uhud, its opening being: “Anxieties prevented sleep in the evening... and a specter when the stars disappear.” The poem exists in "al-Diwan" p. 432, and this verse is not in it. Ibn Durayd also attributed it to Hassan in "Jamharat al-Lughah" 1/31, and Al-Baghdadi in "al-Khizanah" 9/478. In "al-Lisan" (s-b-b), it is attributed to Abd al-Rahman ibn Hassan lampooning Miskin al-Darimi. It is in

"Islah al-Mantiq" p. 16, and "Jamharat al-Amthal" 1/511 without attribution. See "al-Khizanah" 11/158. (5) The verse preceded in full recently. Al-Mukhabbal Al-Sa'di is Al-Rabi' ibn Rabi'ah Al-Tamimi, Abu Yazid. Ibn Hajar mentioned him in =

४७४ सूरा अल-बकरा: आयत १५८

चौथा: महामहिम का कथन: {तो जिसने घर का हज किया} यानी: उसका इरादा किया। हज का मूल अर्थ है 'इरादा', कवि ने कहा: "मैं 'औफ़ की कई बस्तियों का गवाह हूँ... वे अल-ज़िब्रिक़ान की केसरिया पगड़ी (सिब्ब) का चक्कर लगाते (यहुज्जून) हैं (१)" 'अल-सिब्ब' एक अनेकार्थी शब्द है। अबू उबैदाह ने कहा: अल-सिब्ब, 'सि' के नीचे जेर (कसरा) के साथ, का अर्थ है बहुत गाली देने वाला। और आपका 'सिब्ब' वह भी है जो आपको गाली देता है (२); कवि ने कहा: "मुझे गाली मत दो (३) क्योंकि मैं तुम्हारा गाली में समान (सिब्बी) नहीं हूँ... वास्तव में, पुरुषों में मेरा गाली में समान वह है जो उदार है (४)" 'अल-सिब्ब' का अर्थ घूंघट (खिमार) भी है, और इसी तरह पगड़ी भी; अल-मुख़ब्बल अल-सादी ने कहा: "वे अल-ज़िब्रिक़ान की केसरिया पगड़ी (सिब्ब) का चक्कर लगाते (यहुज्जून) हैं (५)"

---

(१) इसके रचयिता अल-मुख़ब्बल अल-सादी हैं। लेखक अगले शेर के बाद इसके दूसरे भाग को दोहराएगा। यह "इस्लाह अल-मंतिक़" पृ. ४११, "अल-बयान वल-तबीन" ३/९७, इब्न दुरैद द्वारा "अल-इश्तिक़ाक़" १/१२३, "अल-सिहाह" (स-ब-ब), "तफ़सीर अल-तबरी" २/७११, "अल-मुहर्रर अल-वजीज़" १/२२९, "मजमा अल-बयान" २/४३ और "अल-खिज़ाना" ८/८९ में है। इब्न कुतैबा ने "अल-मआनी अल-कबीर" पृ. ४७८ में इस वर्णन के साथ इसका उल्लेख किया है: "और मैं कैस का गवाह हूँ..."। यह उन सभी के पास इस वर्णन के साथ है: "और मैं गवाह हूँ" 'वाव' (और) के साथ। अल-बगदादी ने "वा-अशहदा" को नसब (कर्मकारक) के साथ प्रतिबंधित किया, जो उससे पहले वाले शेर में आई बात के संयोजन के रूप में है, जो है: "क्या तुम नहीं जानतीं, ऐ उम्म ग़मरा, कि... समय की विपत्तियाँ मुझे छोड़ गईं ताकि मैं बूढ़ा हो सकूँ।" उनका कहना है: 'औफ़, एक कबीले का पूर्वज है, जो 'औफ़ इब्न काब इब्न ज़ैद मनात इब्न तमीम है। 'अल-हुलूल' रहने वाले लोग हैं। 'अल-सिब्ब', सीन पर कसरा के साथ, पगड़ी है। अरबों के सरदार अपनी पगड़ियों को केसर से रंगा करते थे। कुछ लोगों ने इस शेर की व्याख्या इस तरह की है जो उल्लेखनीय नहीं है। "अल-खिज़ाना" ८/९९ देखें। अल-तबरी ने कहा: उनके कहने "वे चक्कर लगाते हैं" का अर्थ है: वे उनके प्रभुत्व और नेतृत्व के कारण बार-बार उनके पास जाते हैं। और अल-ज़िब्रिक़ान: वह हुसैन इब्न बद्र सहाबी हैं। पैगंबर ﷺ ने उन्हें बनी तमीम के दान (सदक़ात) पर नियुक्त किया था। कहा जाता है: उनकी सुंदरता के कारण उनका नाम अल-ज़िब्रिक़ान रखा गया था, क्योंकि ज़िब्रिक़ान पूर्ण होने से पहले का चंद्रमा है। यह भी कहा जाता है: क्योंकि वह युद्ध में अपनी पगड़ी को रंगते थे, अर्थात: उसे पीला करते थे। "अल-खिज़ाना" ८/१००।

और देखें "अल-लिसान" (स-ब-ब)। (२) (ख़), (द) और (ज़) में: यसुब्बुक। (३) प्रतियों में: तसुब्बानी, और जो पुष्ट है वह (म) से है, जो स्रोतों के अनुरूप है। (४) इब्न हिशाम ने इसे "अल-सीरा" २/१५० में हसान द्वारा उहुद के दिन कहे गए एक कविता के हिस्से के रूप में उल्लेख किया है, जिसकी शुरुआत है: "शाम की चिंताओं ने नींद को रोक दिया... और एक साया जब सितारे गायब हो जाते हैं।" कविता "अल-दीवान" पृ. ४३२ में मौजूद है, और यह शेर उसमें नहीं है। इब्न दुरैद ने भी इसे "जम्हरत अल-लुग़ह" १/३१ में हसान का बताया है, और अल-बगदादी ने "अल-खिज़ाना" ९/४७८ में। "अल-लिसान" (स-ब-ब) में, इसे अब्द अल-रहमान इब्न हसान का बताया गया है जो मिसकीन अल-दारीमी की निंदा कर रहे हैं। यह "इस्लाह अल-मंतिक़" पृ. १६ और "जम्हरत अल-अमशाल" १/५११ में बिना किसी श्रेय के है। "अल-खिज़ाना" ११/१५८ देखें। (५) पूरा शेर हाल ही में आया है। अल-मुख़ब्बल अल-सादी, अल-रबी इब्न रबीआ अल-तमीमी, अबू यज़ीद हैं। इब्न हजर ने उनका उल्लेख किया है =

٤٧٤ سورہ البقرہ: آیت ١٥٨

چوتھی بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {پس جس نے گھر کا حج کیا} یعنی: اس کا قصد کیا۔ اور حج کی اصل 'قصد' ہے، شاعر نے کہا: فأشهدُ من عَوفٍ حُلولاً كثيرةً ... يَحُجُّونَ سبَّ الزِّبْرِقانِ المُزَعْفَرا (١) 'السب' ایک مشترک لفظ ہے۔ ابو عبیدہ نے کہا: السب، کسرہ (زیر) کے ساتھ، بہت گالیاں دینے والا۔ اور تمہارا 'سب' وہ بھی ہے جو تمہیں گالی دے (٢)؛ شاعر نے کہا: لا تَسُبَّنِّي (٣) فلستُ بسِبِّي ... إنَّ سِبِّي من الرجال الكريمُ (٤) اور 'السب' کا معنی اوڑھنی (خمار) بھی ہے، اور اسی طرح عمامہ بھی؛ مخبل السعدی نے کہا: يَحُجُّونَ سبَّ الزِّبْرِقانِ المُزَعْفَرا (٥)

---

(١) اس کے قائل مخبل السعدی ہیں، اور مصنف اگلے شعر کے بعد اس کا دوسرا مصرعہ دہرائیں گے۔ یہ "اصلاح المنطق" ص ٤١١، "البيان والتبيين" ٣/ ٩٧، ابن درید کی "الاشتقاق" ١/ ١٢٣، "الصحاح" (سبب)، "تفسير الطبري" ٢/ ٧١١، "المحرر الوجيز" ١/ ٢٢٩، "مجمع البيان" ٢/ ٤٣ اور "الخزانة" ٨/ ٨٩ میں ہے۔ ابن قتیبہ نے اسے "المعاني الكبير" ص ٤٧٨ میں اس روایت کے ساتھ ذکر کیا ہے: "وأشهد من قيس ...". یہ ان سب کے پاس اس روایت کے ساتھ ہے: "وأشهد" واؤ کے ساتھ۔ البغدادی نے "وأشهدَ" کو نصب (زبر) کے ساتھ مقید کیا جو اس سے پہلے والے شعر میں آنے والی بات پر عطف ہے، اور وہ ہے: ألم تعلمي يا أُمَّ غَمْرَةَ أنَّني ... تخاطأني ريب الزمان لأكبرا ان کا قول: 'عوف'، ایک قبیلے کا جدِ امجد ہے، اور وہ عوف بن کعب بن زید مناۃ بن تمیم ہے۔ 'الحلول' مقیم لوگ ہیں۔ اور 'السب'، سین کے کسرہ کے ساتھ، عمامہ ہے۔ عربوں کے سردار عماموں کو زعفران سے رنگتے تھے۔ بعض لوگوں نے اس شعر کی ایسی تشریح کی ہے جو قابل ذکر نہیں۔ "الخزانة" ٨/ ٩٩ دیکھیں۔ طبری نے کہا: ان کے قول "يحجون" سے مراد ہے: وہ ان کی سیادت اور سرداری کی وجہ سے کثرت سے ان کے پاس آتے ہیں۔ اور الزبرقان: یہ حصین بن بدر

صحابی ہیں، نبی ﷺ نے انہیں بنی تمیم کے صدقات پر مقرر فرمایا تھا۔ کہا گیا: ان کی خوبصورتی کی وجہ سے ان کا نام الزبرقان رکھا گیا، کیونکہ الزبرقان پورے ہونے سے پہلے کے چاند کو کہتے ہیں۔ یہ بھی کہا گیا: کیونکہ وہ جنگ میں اپنے عمامے کو رنگتے تھے، یعنی: اسے زرد کرتے تھے۔ "الخزانة" ٨/ ١٠٠۔ اور دیکھئے "اللسان" (سبب)۔ (٢) (خ)، (د) اور (ظ) میں ہے: يسبك۔ (٣) نسخوں میں ہے: تسبنی، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے جو کہ مصادر کے موافق ہے۔ (٤) ابن ہشام نے اسے "السيرة" ٢/ ١٥٠ میں حسان کے ایک قصیدے کے حصے کے طور پر ذکر کیا ہے جو انہوں نے غزوہ احد کے دن کہا تھا، اس کا مطلع ہے: مَنَعَ النومَ بالعشاء الهمومُ ... وخيالٌ إذا تغور النجومُ یہ قصیدہ "الديوان" ص ٤٣٢ میں موجود ہے، اور اس میں یہ شعر نہیں ہے۔ ابن درید نے بھی اسے "جمهرة اللغة" ١/ ٣١ میں حسان کی طرف منسوب کیا ہے، اور البغدادی نے "الخزانة" ٩/ ٤٧٨ میں۔ "اللسان" (سبب) میں اسے عبد الرحمن بن حسان کی طرف منسوب کیا گیا ہے جو مسکین الدارمی کی ہجو کر رہے ہیں۔ یہ "اصلاح المنطق" ص ١٦ اور "جمهرة الأمثال" ١/ ٥١١ میں بغیر کسی نسبت کے ہے۔ "الخزانة" ١١/ ١٥٨ دیکھیں۔ (٥) پورا شعر ابھی گزرا ہے، اور مخبل السعدی سے مراد الربيع بن ربيعة التميمي، ابو یزید ہیں۔ ابن حجر نے ان کا ذکر کیا ہے =

Surah Al-Baqarah: Verse 158. Page 475.

And *Al-Subb* also means a rope in the language of Hudhayl; Abu Dhu'ayb said: "He descended upon it between a rope (*subb*) and a cord (*khayta*), on a barren land like a tanned hide (*wakf*) where the crow stumbles." (1) And *al-suboob* means ropes. *Al-subb* is a piece of fine linen, and *al-sabiyba* is like it; the plural is *al-suboob* and *al-saba'ib*, as stated by Al-Jawhari (2). And a doctor performs *hajj* on a head wound: when he probes it with a probe; the poet said: "He probes (*yahujju*) a deep head wound (*ma'muma*) in whose depth there is a hollow (*lajaf*)." (3) *Al-lajf* means a cave-in or collapse. A well is said to have "talajjafat" when its bottom has collapsed (4). Then this name (Hajj) became specifically associated with the intention to visit the Sacred House for specific acts. Fifthly: His, the Almighty's, words: {OR PERFORMS 'UMRAH} means: visited. And *Al-Umrah* is the visit; the poet said: "Ibn Ma'mar indeed ascended when he performed *Umrah* (visited), to a distant raiding goal from afar and he leaped (*dabara*)." (5)

= *Al-Isabah* in the first section of the letter Ra', mentioned the disagreement about his name, and quoted Al-Asbahani as saying: Al-Mukhabbal was a Mukhadram (one who lived both before and during Islam) from the master poets, lived a long life, and died during the caliphate of Umar or Uthman. (1) *Diwan al-Hudhaliyin*, part one, p. 79. *Al-subb* and *al-khayta*: the rope and the peg. Similarly in *Jamharat al-Lugha* 1/31. The second half of the verse in it is: "He who is strong of advice, an archer and the son of an archer." The poet describes a honey gatherer; he meant that he lowered himself from the top of a mountain to a beehive to gather honey with a rope tied around his waist, which he had secured at the top of a mountain. *Bi-jarda'*: meaning a smooth land that grows nothing, where the crow of the pickaxe stumbles from its hardness when dug. *Al-wakf*: the tanned hide. See *Al-Lisan* (s-b-b) and (w-k-f). (2) *Al-Sihah* (s-b-b). (3) It is the first half of a verse by Yu'adhar ibn Durra al-Ta'i as in *Al-Lisan* (l-j-f). He named him in *Al-Jamhara* 1/49: 'Iyad ibn Dhura; he said: it is also called Udhar. Its second half is: "So the doctor treated its grime like magharid." It is in *Tahdhib al-Lugha* 3/390, *Al-Mujmal* 3/803 (l-j-f), *Al-Sihah* (h-j-j) (l-j-f), *Ahkam al-Qur'an* by Al-Jassas 1/96, and *Al-Muharrar al-Wajiz* 1/229. He said in *Al-Jamhara*: He describes a doctor treating a blow or a deep head wound; he is terrified by its horror, so the filth falls from his buttocks like *magharid*, which are small black truffles. (4) *Mujmal al-Lugha* 3/803 (l-j-f). (5) *Tafsir al-Tabari* 2/712, *Ma'ani al-Qur'an* by Al-Zajjaj 1/234, *Al-Nukat wa al-'Uyun* 1/212. They mentioned that the meaning of "i'tamara" in the verse is: intended. As for 'Umrah meaning a visit, it was mentioned by Al-Mawardi who cited

the poet - who is A'sha Bahila as in *Al-Lisan* (a-m-r) - : "And the soul was agitated when their defeated party came, and a rider who came from Tathlith intending a visit (*mu'tamira*)." In (m) it came as: *dabar* (with the letter Dad), and it is also thus in Tabari, Zajjaj, and Al-Lisan (d-b-r). And it came in =

सूरह अल-बक़रह: आयत 158. पृष्ठ 475.

और अस-सुब्ब का अर्थ हुज़ैल की भाषा में रस्सी भी है; अबू ज़ुऐब ने कहा: "वह एक रस्सी (सुब्ब) और एक डोरी (खैता) के बीच उस पर उतरा, एक बंजर भूमि (जरदा) पर जो चमड़े (वक़्फ़) के समान है जहाँ कौआ लड़खड़ाता है।" (1) और अल-सुबूब का अर्थ रस्सियाँ है। अस-सुब्ब सन के कपड़े का एक बारीक टुकड़ा है, और अस-सबीबा उसी के समान है; इसका बहुवचन अल-सुबूब और अस-सबाईब है, जैसा कि अल-जौहरी ने कहा है (2)। और डॉक्टर घाव पर हज करता है: जब वह उसे जांचने वाली सुई से जांचता है; कवि ने कहा: "वह एक गहरे घाव (मामूमा) की जांच करता है (यहुज्जु) जिसकी गहराई में एक खोखलापन (लजफ़) है।" (3) अल-लजफ़: धंसना। कुएँ के लिए "तलज्जफ़त" कहा जाता है जब उसका तल धंस गया हो (4)। फिर यह नाम (हज) विशिष्ट कार्यों के लिए पवित्र घर की यात्रा के इरादे के साथ विशेष रूप से जुड़ गया। पांचवाँ: अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {या उमराह किया} अर्थात: यात्रा की। और अल-उमराह यात्रा है; कवि ने कहा: "इब्न मामर वास्तव में ऊपर उठा जब उसने उमराह किया (यात्रा की), दूर से एक दूर के हमले के लक्ष्य की ओर और उसने छलांग लगाई (दबरा)।" (5)

= अल-इसबा रा अक्षर के पहले भाग में, उसके नाम के बारे में मतभेद का उल्लेख किया गया है, और अल-असबहानी से उद्धृत किया गया है: अल-मुखब्बल प्रमुख कवियों में से एक मुखदराम (वह व्यक्ति जो इस्लाम से पहले और बाद में जीवित रहा) था, उसने एक लंबा जीवन व्यतीत किया और उमर या उस्मान के खिलाफत के दौरान उसकी मृत्यु हुई। (1) दीवान अल-हुज़ालियीन भाग एक पृ. 79। अस-सुब्ब और अल-खैता: रस्सी और खूंटी। जमहरात अल-लुगा 1/31 में भी इसी प्रकार है। इसमें कविता के दूसरे भाग का पाठ है: "वह जो सलाह में दृढ़ है, एक तीरंदाज़ और एक तीरंदाज़ का पुत्र है।" कवि एक शहद इकट्ठा करने वाले का वर्णन करता है; उसका अर्थ था: वह शहद इकट्ठा करने के लिए पहाड़ की चोटी से अपनी कमर में बंधी रस्सी के सहारे मधुमक्खी के छत्ते तक नीचे उतरा, जिसे उसने पहाड़ की चोटी पर सुरक्षित कर लिया था। बि-जरदा': अर्थ एक समतल भूमि जहाँ कुछ नहीं उगता, जहाँ खुदाई करते समय कुदाल का कौआ उसकी कठोरता के कारण लड़खड़ा जाता है। अल-वक़्फ़: चमड़ा। देखें अल-लिसान (s-b-b) और (w-k-f)। (2) अस-सिहाह (s-b-b)। (3) यह लीज़ार बिन दुर्रा अल-ता'ई की एक कविता का पहला भाग है जैसा कि अल-लिसान (l-j-f) में है। उसने अल-जमहरा 1/49 में उसका नाम अयाद बिन धुरा बताया; उसने कहा: इसे उज़ार भी कहा जाता है। इसका दूसरा भाग है: "तो डॉक्टर ने उसकी गंदगी का इलाज मग़ारीद की तरह किया।" यह

तहज़ीब अल-लुगा 3/390, अल-मुजमल 3/803 (l-j-f), अस-सिहाह (h-j-j) (l-j-f), अल-जस्सास द्वारा अहकाम अल-क़ुरआन 1/96, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/229 में है। उसने अल-जमहरा में कहा: वह एक डॉक्टर का वर्णन करता है जो एक चोट या गहरे घाव का इलाज कर रहा है; वह इसके आतंक से घबरा जाता है, इसलिए गंदगी उसके नितंबों से मग़ारीद की तरह गिरती है, जो छोटे काले मशरूम (कवक) होते हैं। (4) मुजमल अल-लुगा 3/803 (l-j-f)। (5) तफ़सीर अल-तबरी 2/712, अल-ज़ज्जाज द्वारा मानी अल-क़ुरआन 1/234, अल-नुक़ात व अल-'उयून 1/212। उन्होंने उल्लेख किया कि कविता में "इ़तमरा" का अर्थ है: इरादा किया। जहाँ तक यात्रा के अर्थ में उमराह का संबंध है, इसका उल्लेख अल-मावर्दी ने किया था जिन्होंने कवि का प्रमाण दिया - जो अल-लिसान (a-m-r) के अनुसार आशा बहिला है - : "और आत्मा विचलित हो गई जब उनकी पराजित पार्टी आई, और एक सवार जो ततलीथ से यात्रा के इरादे (मुतमिरा) से आया था।" (m) में यह इस रूप में आया: दबर (अक्षर दाद के साथ), और तबरी, ज़ज्जाज और अल-लिसान (d-b-r) में भी ऐसा ही है। और यह = में आया।

سورة البقرہ: آیت ۱۵۸۔ صفحہ ۴۷۵۔

اور السب لغت ہذیل میں رسی کو بھی کہتے ہیں؛ ابو ذؤیب نے کہا: "وہ اس پر ایک رسی (سب) اور ایک ڈوری (خیطہ) کے درمیان اترا، ایک ایسی بنجر زمین (جرداء) پر جو دباغت شدہ کھال (وکف) کی طرح ہے جہاں کوا لڑکھڑا جاتا ہے۔" (۱) اور السبوب کا معنی رسیاں ہے۔ السب سن کے کپڑے کا ایک باریک ٹکڑا ہے، اور السبیبہ اسی کی طرح ہے؛ اس کی جمع السبوب اور السبائب ہے، یہ جوہری نے کہا ہے (۲)۔ اور ڈاکٹر زخم کا حج کرتا ہے: جب وہ اسے سلائی کے ذریعے جانچتا ہے؛ شاعر نے کہا: "وہ ایک گہرے زخم (ماموما) کو جانچتا ہے (یحج) جس کی گہرائی میں ایک سوراخ (لجف) ہے۔" (۳) اللجف: دھنسنا۔ کنویں کے بارے میں "تلجفت" کہا جاتا ہے جب اس کا نچلا حصہ دھنس گیا ہو (۴)۔ پھر یہ نام (حج) مخصوص اعمال کے لیے بیت اللہ کے ارادے کے ساتھ مخصوص ہو گیا۔ پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {یا عمرہ کرے} یعنی: زیارت کی۔ اور العمرہ زیارت ہے؛ شاعر نے کہا: "ابن معمر یقیناً بلند ہوا جب اس نے عمرہ کیا (زیارت کی)، دور سے ایک دور کے حملے کے مقصد کی طرف اور اس نے چھلانگ لگائی (ضبر)۔" (۵)

= الاصابہ حرف "ر" کی پہلی قسم میں، اس کے نام کے بارے میں اختلاف کا ذکر کیا گیا ہے، اور اصبہانی سے نقل کیا گیا ہے کہ: مخبل بڑے شعراء میں سے مخضرم (وہ جو جاہلیت اور اسلام دونوں میں رہا) تھا، اس نے لمبی عمر پائی، اور اس کا انتقال عمر یا عثمان رضی اللہ عنہما کی خلافت میں ہوا۔ (۱) دیوان الہذلیین حصہ اول صفحہ ۷۹۔ السب اور الخیطہ: رسی اور کھونٹی۔ اسی طرح جمہرۃ اللغہ ۳۱/۱ میں ہے۔ اس میں مصرع ثانی کی روایت ہے: "وہ جو نصیحت میں پختہ ہے، تیر انداز اور تیر انداز کا بیٹا ہے۔" شاعر شہد نکالنے والے کا وصف بیان کر رہا ہے؛ اس کی

مراد یہ ہے کہ: وہ شہد کے چھتے تک پہنچنے کے لیے پہاڑ کی چوٹی سے نیچے اترا ایک ایسی رسی کے ذریعے جسے اس نے اپنی کمر میں باندھ رکھا تھا اور اسے پہاڑ کی چوٹی پر مضبوط کر لیا تھا۔ بجرداء: یعنی ہموار زمین جہاں کچھ نہیں اگتا، جس کی سختی کی وجہ سے کھدائی کے وقت کلہاڑی کا کوا لڑکھڑا جاتا ہے۔ الوکف: دباغت شدہ کھال۔ دیکھئے اللسان (سبب) اور (وکف)۔ (۲) الصحاح (سبب)۔ (۳) یہ یعذار بن درہ الطائی کے ایک شعر کا پہلا مصرع ہے جیسا کہ اللسان (لجف) میں ہے، اور اسے الجمہرہ ۴۹/۱ میں عیاض بن ذرہ کہا گیا ہے؛ اس نے کہا: اسے عذار بھی کہا جاتا ہے۔ اس کا دوسرا مصرع ہے: "چنانچہ ڈاکٹر نے اس کی گندگی کا علاج مغارید کی طرح کیا۔" یہ تہذیب اللغہ ۳/ ۳۹۰، المجمل ۸۰۳/۳ (لجف)، الصحاح (حج) (لجف)، جصاص کی احکام القرآن ۹۶/۱، اور المحرر الوجیز ۲۲۹/۱ میں ہے۔ الجمہرہ میں کہا: وہ ایک ایسے ڈاکٹر کا وصف بیان کرتا ہے جو کسی چوٹ یا گہرے زخم کا علاج کر رہا ہو؛ وہ اس کی ہولناکی سے گھبرا جاتا ہے، پس گندگی اس کے مقعد سے مغارید کی طرح گرتی ہے، جو چھوٹے سیاہ کھمبی (کماہ) ہوتے ہیں۔ (۴) مجمل اللغہ ۸۰۳/۳ (لجف)۔ (۵) تفسیر الطبری ۷۱۲/۲، زجاج کی معانی القرآن ۲۳۴/۱، النکت والعیون ۲۱۲/۱۔ انہوں نے ذکر کیا کہ شعر میں "اعتمر" کا معنی ہے: ارادہ کیا۔ جہاں تک زیارت کے معنی میں عمرہ کا تعلق ہے، تو اسے ماوردی نے ذکر کیا ہے اور اس پر شاعر کے قول سے استدلال کیا ہے - اور وہ اعشی باہلہ ہے جیسا کہ اللسان (عمر) میں ہے - : "اور جان مضطرب ہو گئی جب ان کی شکست خوردہ جماعت آئی، اور ایک سوار جو تثلیث سے زیارت کے ارادے (معتمرا) سے آیا تھا۔" اور (م) میں یہ اس طرح آیا: ضبر (ضاد کے ساتھ) اور طبری، زجاج اور اللسان (ضبر) میں بھی اسی طرح ہے، اور یہ = میں آیا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 158 ... 476

Sixth Point: Regarding Allah's saying: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ﴾ [there is no blame upon him]: i.e., there is no sin. Its root is from al-junuh, which means inclination. From it comes al-jawanih for body parts because of their curvature. Aishah's interpretation of this verse has been mentioned before(1).

Ibn al-Arabi said(2): The verification of this statement is that someone saying "There is no blame upon you to do [something]" is a permission to act. And saying "There is no blame upon you to not do [something]" is a permission to omit the act. So when 'Urwah heard Allah's saying: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ [there is no blame upon him to perform tawaf between them], he said: "This is evidence that omitting tawaf is permissible." Then he saw the Sharia universally applied that there is no concession in omitting tawaf. So he sought a reconciliation between these two apparent contradictions. Aishah said to him: "His saying(3) ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ is not evidence for omitting tawaf. The evidence(4) for omitting it would have been if it had been(5): 'There is no blame upon him not to perform tawaf between them'. This wording did not come to permit omitting tawaf, nor is there evidence for it in this verse. Rather, it came to state the permissibility of tawaf for those who felt uneasy about it during the period of Jahiliyyah (Ignorance), or for those who used to perform tawaf in Jahiliyyah intending the idols that were there. So Allah, glorified be He, informed them that tawaf is not prohibited if the one performing it does not intend a false purpose."

If it is said: "It has been narrated by Ata from Ibn Abbas that he recited: 'There is no blame upon him not to perform tawaf between them', which is the recitation of Ibn Mas'ud, and it is reported to be in Ubayy's Mushaf as well, and similar is reported from Anas(6)."

The answer is: That contradicts what is in the Mushaf (standard Quranic text). What has been established in the Mushaf is not abandoned for a recitation whose authenticity is unknown(7). Ata used to frequently report narrations from Ibn Abbas mursal (without a continuous chain) without...

= Marginal note (Z) text: Al-Zajjaj said: Sabr with the letter Sad (ص), and he said: It is permissible with Dhad (ض), but with Sad is more common. We did not find this statement in his book Al-Ma'ani. Dabr al-faras means the horse gathered its legs and jumped. The rajaz poem is by Al-Ajjaj praising Umar ibn Ubaydillah ibn Ma'mer,

saying: "His status rose when he raided a distant place from Sham, and gathered an army for it." See Lisan al-Arab (d-b-r). (1) In the first issue. (2) Ahkam al-Quran 1/47. (3) In some copies: "your saying", and what is established is from (m), which aligns with Ahkam al-Quran. (4) In (m): "evidence". (5) In some copies: "it was (feminine)", and what is established is from (m), which aligns with Al-Ahkam. (6) Al-Muharrar al-Wajiz 1/229, Al-Qira'at al-Shadhah p.11, and Al-Muhtasib 1/115. (7) See Tafsir al-Tabari 2/725-726, Al-Tamhid 2/98, Al-Istidhkar 12/206, and Al-Muharrar al-Wajiz 1/230.

सूरा अल-बकरा: आयत १५८ ... ४७६

छठा बिंदु: अल्लाह तआला का कथन: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ﴾ यानी: "उस पर कोई पाप नहीं है।" इसका मूल 'अल-जुनूह' से है जिसका अर्थ है झुकाव। इसी से अंगों के लिए 'जवानिह' आता है क्योंकि वे मुड़े हुए होते हैं। इस आयत की आयशा की व्याख्या पहले आ चुकी है(१)।

इब्न अल-अरबी ने कहा(२): इस कथन की पुष्टि यह है कि किसी कहने वाले का यह कहना कि "तुम्हारे लिए [कुछ] करने में कोई दोष नहीं है," कार्य करने की अनुमति है। और उसका कहना कि "तुम्हारे लिए [कुछ] न करने में कोई दोष नहीं है," कार्य न करने की अनुमति है। तो जब उरवा ने अल्लाह का यह कथन सुना: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ [तो उस पर कोई दोष नहीं कि वह उन दोनों के बीच तवाफ करे], तो उन्होंने कहा: "यह इस बात का प्रमाण है कि तवाफ छोड़ना जायज़ है।" फिर उन्होंने देखा कि शरीयत पूरी तरह से इस पर लागू है कि तवाफ छोड़ने की कोई छूट नहीं है। तो उन्होंने इन दो विरोधाभासों के बीच समन्वय चाहा। आयशा ने उनसे कहा: "उनका यह कथन(३) ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ तवाफ छोड़ने का प्रमाण नहीं है। इसे छोड़ने का प्रमाण तब होता(४) यदि यह शब्द होता(५): 'उस पर कोई दोष नहीं कि वह उन दोनों का तवाफ न करे'। यह शब्द तवाफ छोड़ने की अनुमति देने के लिए नहीं आया है, न ही इसमें इसका कोई प्रमाण है। बल्कि यह उन लोगों के लिए तवाफ की अनुमति बताने के लिए आया है जो जाहिलियत (अज्ञानता के काल) में इसके बारे में संकोच करते थे, या उन लोगों के लिए जो जाहिलियत में वहां मौजूद मूर्तियों के इरादे से तवाफ करते थे। अतः अल्लाह सुब्हानहु व तआला ने उन्हें सूचित किया कि तवाफ वर्जित नहीं है यदि तवाफ करने वाला गलत इरादा न रखे।"

यदि कहा जाए: "अता ने इब्न अब्बास से रिवायत किया है कि उन्होंने पढ़ा: 'उस पर कोई दोष नहीं कि वह उन दोनों का तवाफ न करे', और यही इब्न मसूद की किरअत (पाठ) है, और रिवायत है कि यह उबै के मुसहफ में भी इसी तरह है, और अनस से भी ऐसा ही रिवायत है(६)।"

उत्तर यह है: "यह मुसहफ (प्रामाणिक कुरान पाठ) में जो है उसके विरुद्ध है। मुसहफ में जो सिद्ध हो चुका है, उसे ऐसी किरअत के लिए नहीं छोड़ा जाता जिसकी सत्यता का पता न हो(७)। अता, इब्न अब्बास से अक्सर मुरसल (बिना निरंतर श्रृंखला के) रिवायत करते थे बिना..."

= हाशिए (ज़) का पाठ: अल-ज़ज्जाज: सब्र (ص के साथ), उन्होंने कहा: यह दाद (ض) के साथ भी जायज़ है, लेकिन साद (ص) के साथ अधिक प्रचलित है। हमें उनकी पुस्तक 'अल-मा'आनी' में यह

बात नहीं मिली। दबर अल-फ़रस: घोड़े ने अपने पैर समेटे और छलांग लगाई। अल-अज्जाज का रजज़ उमर इब्न उबैदिल्लाह इब्न मा'मर की प्रशंसा में है, वह कहता है: "उनका रुतबा तब बढ़ गया जब उन्होंने शाम से दूर एक स्थान पर हमला किया, और इसके लिए एक सेना इकट्ठा की।" लिसान अल-अरब (द-ब-र) देखें। (१) पहले मसले में। (२) अहकाम अल-कुरान १/४७। (३) प्रतियों में: "आपका कहना", और जो स्थापित है वह (म) से है, जो अहकाम अल-कुरान के अनुरूप है। (४) (म) में: "प्रमाण"। (५) प्रतियों में: "थी (स्त्रीलिंग)", और जो स्थापित है वह (म) से है, जो अहकाम अल-कुरान के अनुरूप है। (६) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२२९, अल-क़िराअत अल-शाद्दाह पृष्ठ ११, और अल-मुहतसिब १/११५। (७) देखें तफ़्सीर अल-तबरी २/७२५-७२६, अल-तम्हीद २/९८, अल-इस्तिज़कार १२/२०६, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/२३०।

سورة البقرہ : آیت ۱۵۸ ... ٤٧٦

چھٹا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ﴾ یعنی: اس پر کوئی گناہ نہیں۔ اس کی اصل 'الجنُوح' سے ہے جس کے معنی میلان (جھکاؤ) کے ہیں۔ اسی سے اعضاء کے لیے 'جوانح' کا لفظ آتا ہے کیونکہ وہ خمیدہ (مڑے ہوئے) ہوتے ہیں۔ اس آیت کی حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا کی تاویل پہلے گزر چکی ہے(۱)۔

ابن العربی نے کہا(۲): اس قول کی تحقیق یہ ہے کہ کہنے والے کا یہ کہنا کہ: "تم پر [کچھ] کرنے میں کوئی حرج نہیں"، اس فعل کی اباحت (اجازت) ہے۔ اور اس کا قول: "تم پر [کچھ] نہ کرنے میں کوئی حرج نہیں"، فعل چھوڑنے کی اباحت ہے۔ چنانچہ جب عروہ نے اللہ تعالیٰ کا یہ ارشاد سنا: ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ [تو اس پر کوئی گناہ نہیں کہ وہ ان دونوں کے درمیان طواف کرے]، تو انہوں نے کہا: "یہ اس بات کی دلیل ہے کہ طواف چھوڑنا جائز ہے۔" پھر انہوں نے دیکھا کہ شریعت کا اس پر اتفاق ہے کہ طواف چھوڑنے کی کوئی رخصت نہیں ہے۔ چنانچہ انہوں نے ان دو متضاد باتوں کے درمیان مطابقت چاہی۔ تو حضرت عائشہ نے ان سے فرمایا: "اللہ تعالیٰ کا یہ فرمانا(۳) ﴿فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ أَن يَطَّوَّفَ بِهِمَا﴾ طواف چھوڑنے کی دلیل نہیں ہے۔ اسے چھوڑنے کی دلیل تب ہوتی(٤) اگر یہ لفظ ہوتا(۵): 'اس پر کوئی گناہ نہیں کہ وہ ان دونوں کا طواف نہ کرے'۔ پس یہ لفظ طواف چھوڑنے کی اباحت کے لیے نہیں آیا، اور نہ ہی اس میں اس کی کوئی دلیل ہے۔ بلکہ یہ اس طواف کی اباحت بیان کرنے کے لیے آیا ہے جو لوگ جاہلیت کے دور میں اس سے کتراتے تھے، یا ان لوگوں کے لیے جو جاہلیت میں وہاں موجود بتوں کے ارادے سے طواف کرتے تھے۔ چنانچہ اللہ سبحانہ نے انہیں مطلع فرمایا کہ طواف ممنوع نہیں ہے بشرطیکہ طواف کرنے والا باطل ارادہ نہ رکھے۔"

اگر یہ کہا جائے: "عطاء نے ابن عباس رضی اللہ عنہما سے روایت کی ہے کہ انہوں نے پڑھا: 'اس پر کوئی گناہ نہیں کہ وہ ان دونوں کا طواف نہ کرے'، اور یہی ابن مسعود کی قرأت ہے، اور روایت ہے کہ یہ ابیّ کے مصحف میں بھی اسی طرح ہے، اور انس سے بھی اسی طرح مروی ہے(٦)۔"

تو جواب یہ ہے: "یہ اس کے خلاف ہے جو مصحف (قرآن کے مستند متن) میں ہے، اور جو مصحف میں ثابت ہو چکا ہے اسے ایسی قرأت کے لیے نہیں چھوڑا جاتا جس کی صحت کا علم نہ ہو(٧)۔ اور عطاء ابن عباس سے کثرت سے مرسل روایات بیان کرتے تھے بغیر...

= حاشیہ (ز) کی عبارت: الزجاج: 'صبر' صاد مہملہ (ص) کے ساتھ، انہوں نے کہا: ضاد معجمہ (ض) کے ساتھ بھی جائز ہے، لیکن مہملہ کے ساتھ زیادہ مشہور ہے۔ ہمیں ان کی کتاب 'المعانی' میں یہ بات نہیں ملی۔ 'ضبر الفرس': گھوڑے نے اپنے پاؤں اکٹھے کیے اور چھلانگ لگائی۔ عجاج کا رجز عمر بن عبید اللہ بن معمر کی تعریف میں ہے، وہ کہتا ہے: "جب اس نے شام کے ایک دور دراز مقام پر حملہ کیا تو اس کا مرتبہ بلند ہو گیا، اور اس نے اس کے لیے لشکر جمع کیا۔" لسان العرب (ضبر) دیکھیں۔ (١) پہلے مسئلے میں۔ (٢) احکام القرآن ١/٤٧۔ (٣) نسخوں میں: "آپ کا قول"، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے جو 'احکام القرآن' کے موافق ہے۔ (٤) (م) میں: "دلیل"۔ (٥) نسخوں میں: "کانت" (مونث)، اور جو متن میں ہے وہ (م) سے ہے جو 'الاحکام' کے موافق ہے۔ (٦) المحرر الوجیز ١/٢٢٩، والقراءات الشاذة ص١١، والمحتسب ١/١١٥۔ (٧) دیکھیں تفسیر الطبری ٢/٧٢٥-٧٢٦، والتمہید ٢/٩٨، والاستذکار ١٢/٢٠٦، والمحرر الوجیز ١/٢٣٠۔

Surah Al-Baqarah: Verse 158 - 477

...by hearing. The narration regarding this from Anas has been said to be not precisely recorded. Or "la" (no/not) could be extra for emphasis; as he said: And I do not blame the fair ones for not mocking, when they saw the gray-haired, ugly-looking man.(1)

Seventh: At-Tirmidhi(2) narrated from Jabir that when the Prophet ﷺ arrived in Mecca, he performed Tawaaf around the House seven times, then recited: {And take the station of Ibrahim as a place of prayer} [Al-Baqarah: 125], and prayed behind the station. Then he came to the Stone (Al-Hajar), touched it, and then said: "We begin with what Allah began with," so he started with As-Safa and said: {Indeed, As-Safa and Al-Marwah are among the symbols of Allah}. He said: This is a Hasan Sahih (good authentic) hadith, and the practice is upon this according to the people of knowledge, that one starts with As-Safa before Al-Marwah. If one starts with Al-Marwah before As-Safa, it does not count, and he must start with As-Safa.

Eighth: The scholars differed on the obligation of Sa'i between As-Safa and Al-Marwah. Ash-Shafi'i and Ibn Hanbal said: It is a pillar (Rukn), and this is the well-known position in the school of Malik(3); because of his saying (peace be upon him): "Perform Sa'i, for Allah has prescribed (kataba) Sa'i for you." Narrated by Ad-Daraqutni(4). And "kataba" means: obligated; because of Allah's saying: {Fasting is prescribed (kutiba) for you} [Al-Baqarah: 183], and his saying (peace be upon him): "Five prayers Allah has prescribed upon the servants."(5) Ibn Majah narrated from an Umm Walad of Shaybah who said: I saw the Messenger of Allah ﷺ performing Sa'i between As-Safa and Al-Marwah while he was saying: "One does not cross the Al-Abtah except by running (shadda)."(6) So whoever leaves it or a part of it, whether out of forgetfulness or intentionally, must return from his country, or from wherever he remembered, to Mecca, to perform Tawaaf and Sa'i; because

(1) The rajaz (poetry) is by Abu al-Najm al-'Ajli, found in his Diwan p. 121. Ash-shamat: is the whiteness of the head hair mixing with its blackness. Al-qafandar: the ugly-looking one. As-Sihah (shamat) (قفندر). Ibn Atiyyah mentioned the meaning the author pointed to with the verse in Al-Muharrar al-Wajiz 1/230. (2) Sunan at-Tirmidhi (862), and Ahmad (14440) and Muslim (1218) narrated it more extensively. (3) See At-Tamhid 2/97, and Al-Istidhkar 2/201 onwards. (4) In his Sunan 2/256, and Ahmad (27367) and Ibn Abd al-Barr in At-Tamhid 2/99-102 also narrated it, from the hadith of Habiba bint Abi Tajrah (may Allah be pleased with her). (5) At-Tamhid 2/99, and the

hadith was narrated by Ahmad (22693), Abu Dawud (1420), Ibn Majah (1401), and An-Nasa'i in Al-Mujtaba 1/230 from the hadith of Ubadah ibn as-Samit (may Allah be pleased with him). (6) Sunan Ibn Majah (2987), and it is with Ahmad (27280) and Ibn Abd al-Barr in At-Tamhid 2/102. Ash-shadd: running. An-Nihayah (shadd). As for the Umm Walad of Shaybah, Al-Hafiz Ibn Hajar said in Al-Isabah 12/165: Tamluk al-Abdariyyah ash-Shaybiyyah from Banu Shaybah ibn Uthman, considered among the people of Mecca, Safiyyah bint Shaybah narrated the hadith of Sa'i from her, Abu Umar said... I (Ibn Hajar) say: and she will be mentioned under Habiba bint Abi Tajrah, God willing.

सूरा अल-बकरा: आयत 158 - 477

...सुनने से। अनस से इस बारे में रिवायत कही गई है कि वह सटीक रूप से दर्ज नहीं है। या "ला" (नहीं) ताकीद (ज़ोर देने) के लिए अतिरिक्त हो सकता है; जैसा कि उसने कहा: और मैं गोरी स्त्रियों को उपहास न करने के लिए दोष नहीं देता, जब उन्होंने सफेद बालों वाले, कुरूप दिखने वाले आदमी को देखा।(1)

सातवीं: तिरमिज़ी(2) ने जाबिर से रिवायत की है कि नबी ﷺ जब मक्का आए, तो उन्होंने सात बार घर (काबा) का तवाफ़ किया, फिर पढ़ा: {और इब्राहीम के खड़े होने की जगह को नमाज़ की जगह बनाओ} [अल-बकरा: 125], और मकाम के पीछे नमाज़ पढ़ी। फिर वे पत्थर (हज्रे अस्वद) के पास आए, उसका चुंबन लिया और फिर कहा: "हम वहीं से शुरू करते हैं जहाँ से अल्लाह ने शुरू किया," तो उन्होंने सफ़ा से शुरू किया और कहा: {बेशक, सफ़ा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं}। उन्होंने कहा: यह एक हसन सहीह हदीस है, और विद्वानों के अनुसार इसी पर अमल किया जाता है कि मरवा से पहले सफ़ा से शुरुआत की जाए। यदि कोई सफ़ा से पहले मरवा से शुरू करता है, तो यह पर्याप्त नहीं होगा, और उसे सफ़ा से शुरू करना चाहिए।

आठवीं: सफ़ा और मरवा के बीच सई (दौड़ना) की अनिवार्यता पर विद्वानों में मतभेद है। शाफ़ई और इब्न हंबल ने कहा: यह एक स्तंभ (रुकन) है, और मलिक(3) के मज़हब में यही प्रसिद्ध है; क्योंकि उनका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कहना है: "सई करो, क्योंकि अल्लाह ने तुम पर सई अनिवार्य (लिखा) की है।" दाराकुतनी(4) ने इसे निकाला है। और "कतबा" (लिखा) का अर्थ है: अनिवार्य किया; क्योंकि अल्लाह का कथन है: {तुम पर रोज़ा अनिवार्य (लिखा) किया गया है} [अल-बकरा: 183], और उनका (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) कहना है: "पाँच नमाज़ें अल्लाह ने बंदों पर अनिवार्य (लिखीं) की हैं।"(5) इब्न माजाह ने शैबा की एक उम्मे वलद से रिवायत की है कि उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को सफ़ा और मरवा के बीच सई करते देखा और वह कह रहे थे: "अल-अबताह को केवल दौड़कर (शद्दन) ही पार किया जाता है।"(6) तो जो कोई इसे या इसके किसी हिस्से को भूलवश या जानबूझकर छोड़ देता है, उसे अपने देश से, या जहाँ उसे याद आए, मक्का वापस लौटना होगा, तवाफ़ और सई करने के लिए; क्योंकि...

(1) यह रज्ज़ (कविता) अबू अल-नज्म अल-इजली की है, जो उनके दीवान के पृ. 121 पर है। शमद: सिर के बालों की सफेदी जो उसकी कालिमा के साथ मिल जाती है। कफंदर: कुरूप दिखने वाला।

अल-सिहाह (शमद) (कफंदर)। इब्न अतिया ने अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/230 में कविता के साथ लेखक द्वारा बताए गए अर्थ का उल्लेख किया है। (2) सुनन अत-तिरमिज़ी (862), और इसे अहमद (14440) और मुस्लिम (1218) ने विस्तार से निकाला है। (3) देखें अल-तमहीद 2/97, और अल-इस्तिज़कार 2/201 और उसके बाद। (4) उनकी सुनन 2/256 में, और अहमद (27367) और इब्न अब्दुल बर्र ने अल-तमहीद 2/99-102 में हबीबा बिन्त अबी तजराह (रज़ियल्लाहु अन्हा) की हदीस से इसे निकाला है। (5) अल-तमहीद 2/99, और हदीस को अहमद (22693), अबू दाऊद (1420), इब्न माजाह (1401), और अल-मुजतबा 1/230 में नसाई ने उबादा बिन सामित (रज़ियल्लाहु अन्हु) की हदीस से निकाला है। (6) सुनन इब्न माजाह (2987), और यह अहमद (27280) और इब्न अब्दुल बर्र के पास अल-तमहीद 2/102 में है। शद्द: दौड़ना। अल-निहाया (शद्द)। शैबा की उम्मे वलद के बारे में हाफ़िज़ इब्न हजर ने अल-इसाबा 12/165 में कहा है: बनू शैबा बिन उस्मान से तामलुक अल-अब्दरिया अल-शैबिया, जो मक्का के लोगों में गिनी जाती हैं, सफ़िया बिन्त शैबा ने उनसे सई की हदीस रिवायत की है, अबू उमर ने कहा... मैंने (इब्न हजर ने) कहा: और वह इंशाअल्लाह हबीबा बिन्त अबी तजराह के तहत आएँगी।

سورة البقرہ : آیت ۱۵۸ - ٤٧٧

سماع۔ اور اس بارے میں انس سے روایت کے متعلق کہا گیا ہے کہ وہ پختہ طور پر محفوظ نہیں ہے۔ یا "لا" تاکید کے لیے زائد ہو سکتی ہے؛ جیسا کہ اس نے کہا: اور میں گوری عورتوں کو ملامت نہیں کرتا کہ وہ تمسخر نہ کریں جب انہوں نے سفید بالوں والے، بدصورت آدمی کو دیکھا۔ (۱)

ساتویں: ترمذی(۲) نے جابر سے روایت کی ہے کہ نبی ﷺ جب مکہ تشریف لائے، تو بیت اللہ کا سات مرتبہ طواف کیا، پھر پڑھا: ﴿وَاتَّخِذُوا مِن مَّقَامِ إِبْرَٰهِيمَ مُصَلًّى﴾ [البقرة: ۱۲۵] اور مقام (ابراہیم) کے پیچھے نماز پڑھی۔ پھر حجر (اسود) کے پاس آئے، اس کا استلام کیا، پھر فرمایا: "ہم اسی سے شروع کرتے ہیں جس سے اللہ نے شروع کیا"، چنانچہ آپ نے صفا سے آغاز کیا اور فرمایا: ﴿إِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِن شَعَائِرِ اللَّهِ﴾۔ انہوں نے کہا: یہ حدیث حسن صحیح ہے، اور اہل علم کے نزدیک عمل اسی پر ہے کہ مروہ سے پہلے صفا سے شروع کیا جائے۔ اگر کسی نے صفا سے پہلے مروہ سے شروع کیا تو وہ کافی نہ ہوگا، اور اسے صفا سے شروع کرنا چاہیے۔

آٹھویں: علما کا صفا اور مروہ کے درمیان سعی کے واجب ہونے میں اختلاف ہے۔ شافعی اور ابن حنبل نے کہا: یہ رکن ہے، اور امام مالک(۳) کے مذہب میں یہی مشہور ہے؛ کیونکہ آپ (علیہ السلام) کا فرمان ہے: "سعی کرو، کیونکہ اللہ نے تم پر سعی لکھی (فرض کی) ہے"۔ اسے دارقطنی(۴) نے روایت کیا ہے۔ اور "کتب" (لکھا) کا معنی ہے: واجب کیا؛ کیونکہ اللہ تعالیٰ کا فرمان ہے: ﴿كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ﴾ [البقرة: ۱۸۳]، اور آپ (علیہ السلام) کا فرمان ہے: "پانچ نمازیں اللہ نے بندوں پر لکھی (فرض کی) ہیں" (۵)۔ اور ابن ماجہ نے شیبہ کی ایک ام ولد سے روایت کیا، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو صفا اور مروہ کے درمیان سعی کرتے ہوئے دیکھا اور

آپ فرما رہے تھے: "ابطح کو نہیں پار کیا جاتا مگر دوڑ کر (شدّاً)" (۶)۔ چنانچہ جس نے اسے یا اس کے کسی حصے کو بھولے سے یا جان بوجھ کر چھوڑ دیا، تو وہ اپنے ملک سے، یا جہاں اسے یاد آئے، مکہ واپس آئے، پھر طواف اور سعی کرے؛ کیونکہ

(۱) یہ رجز (شعر) ابو النجم العجلی کا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ۱۲۱ میں ہے۔ اور شمط: سر کے بالوں کی سفیدی جو سیاہی کے ساتھ ملی ہوئی ہو۔ اور قفندر: بدصورت۔ الصحاح (شمط) (قفندر)۔ اور مصنف نے اس شعر کے ساتھ جس معنی کی طرف اشارہ کیا ہے اسے ابن عطیہ نے المحرر الوجیز ۱ / ۲۳۰ میں ذکر کیا ہے۔ (۲) سنن الترمذی (۸۶۲)، اور اسے احمد (۱٤٤٤۰) اور مسلم (۱۲۱۸) نے مفصل بیان کیا ہے۔ (۳) دیکھیے التمہید ۲/۹۷، والاستذکار ۲/۲۰۱ اور اس کے بعد۔ (٤) اپنی سنن ۲/۲٥٦ میں، اور اسے احمد (۲۷۳٦۷) نے بھی روایت کیا ہے، اور ابن عبد البر نے التمہید ۲/۹۹-۱۰۲ میں، حضرت حبیبہ بنت ابی تجراۃ رضی اللہ عنہا کی حدیث سے۔ (٥) التمہید ۲/۹۹، اور حدیث کو احمد (۲۲٦۹۳)، ابو داؤد (۱٤۲۰)، ابن ماجہ (۱٤۰۱)، اور نسائی نے المجتبی ۱/۲۳۰ میں حضرت عبادہ بن صامت رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (٦) سنن ابن ماجہ (۲۹۸۷)، اور یہ احمد (۲۷۲۸۰) اور ابن عبد البر کے پاس التمہید ۲/۱۰۲ میں ہے۔ اور الشدّ: دوڑنا۔ النہایۃ (شد)۔ اور ام ولد شیبہ؛ حافظ ابن حجر نے الاصابۃ ۱۲/۱٦٥ میں کہا: بنو شیبہ بن عثمان کی العبدریہ الشیبیہ کی باندی، ان کا شمار اہل مکہ میں ہوتا ہے، ان سے صفیہ بنت شیبہ نے سعی کی حدیث روایت کی ہے، ابو عمر نے کہا... میں (ابن حجر) کہتا ہوں: اور ان کا ذکر حبیبہ بنت ابی تجراۃ کے ذیل میں انشاء اللہ تعالیٰ آئے گا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 158 478

Sa'y (the walk between Safa and Marwa) only occurs in connection with Tawaf. According to Malik, this is the same whether it is in Hajj or Umrah. Even if it were not obligatory in Umrah, if a person had marital relations, he must perform a new Umrah and offer a sacrifice (hady) according to Malik, while completing his rituals. Ash-Shafi'i said: He must offer a sacrifice, and there is no meaning to a second Umrah if he returns, performs Tawaf, and Sa'y (1).

Abu Hanifa, his companions, and Al-Thawri said: Sa'y (2) is not obligatory (wajib). If a pilgrim leaves it until he returns to his country, he compensates for it with a blood sacrifice (damm); because it is one of the Sunnahs of Hajj (3). This is also the opinion of Malik in Al-'Utbiyyah (4). It was narrated from Ibn Abbas, Ibn al-Zubayr, Anas bin Malik, and Ibn Sirin that it is voluntary (5); because of the words of the Almighty: {And whoever volunteers good}.

Hamza and Al-Kisa'i read "yattawwa'" as a jussive present tense, and likewise {Then whoever volunteers good, it is better for him} [Al-Baqarah: 184]. The others read "tatawwa'" as a past tense (6), which is what a believer does from himself. Whoever performs any voluntary act (nawafil), God thanks him, and God's thanks to the servant is rewarding him for obedience.

The correct view is that of Ash-Shafi'i, may God Almighty have mercy on him, for what we mentioned, and because of the saying of the Prophet (peace be upon him): "Take your rituals from me" (7). So it became an explanation of the general aspects of Hajj; what is necessary is that it be obligatory (fard), like his explanation of the number of rak'ahs and such things, since (8) it was not agreed upon that it is a Sunnah or voluntary (9). Kulayb (10) said: Ibn Abbas saw people circumambulating between Safa and Marwa and said: "This is what your mother, the mother of Ismail, bequeathed to you" (11).

---

(1) See Al-Tamhid 2/104-105, and Al-Istidhkar 12/201-203. (2) In (d), (z), and (m): "And Al-Sha'bi," and what is established is from (z), which matches Al-Tamhid. (3) Al-Tamhid 2/97. (4) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/48. (5) Al-Tamhid 2/97, and Al-Tabari recorded their opinions in 2/723-724. (6) Al-Sab'ah p. 172, and Al-Taysir p. 77. (7) Recorded by Ahmad (14419) and Muslim (1297) from the hadith of Jabir, may God be pleased with him, and previously mentioned in 1/67. (8) In (z): "if," and in (m): "when." (9) Al-Tamhid 2/98. (10) In (d) and (m): "Tayyib," and the word was not clear in (z), and

what is established is from (z). (11) Recorded by Al-Hakim 2/271 from the route of Asim bin Kulayb, from his father, from Ibn Abbas, and he said: Its chain of transmission is authentic (sahih) although they (Bukhari and Muslim) did not record it.

सूरह अल-बक़रह: आयत 158 478

सई (सफ़ा और मरवा के बीच दौड़ना) केवल तवाफ़ से जुड़े होने पर ही होती है। मालिक के अनुसार, यह हज या उमराह दोनों में समान है। यदि यह उमराह में अनिवार्य (फ़र्ज़) न भी हो, और यदि किसी ने स्त्रियों के साथ संसर्ग किया हो, तो मालिक के अनुसार उसे अपने अनुष्ठानों को पूरा करने के साथ-साथ एक उमराह और कुर्बानी (हद्दी) देनी होगी। अल-शाफ़ई ने कहा: उसे कुर्बानी देनी होगी, और यदि वह वापस आकर तवाफ़ और सई करता है तो दोबारा उमराह करने का कोई अर्थ नहीं है (1)।

अबू हनीफ़ा, उनके साथियों और अल-थौरी ने कहा: सई (2) अनिवार्य (वाजिब) नहीं है। यदि कोई हाजी इसे अपने देश लौटने तक छोड़ देता है, तो वह इसकी भरपाई रक्त की कुर्बानी (दम) से करता है; क्योंकि यह हज की सुन्नतों में से एक है (3)। यही मत अल-'उतबिय्याह में मालिक का भी है (4)। इब्न अब्बास, इब्न अल-जुबैर, अनस बिन मालिक और इब्न सीरीन से वर्णित है कि यह ऐच्छिक (ततव्वो) है (5); अल्लाह तआला के इस कथन के कारण: {और जो कोई स्वेच्छा से नेक काम करे}।

हमज़ा और अल-किसाई ने "यत्तव्वअ" (yattawwa') को वर्तमान काल के रूप में पढ़ा है, और इसी तरह {फिर जो कोई स्वेच्छा से नेक काम करे, वह उसके लिए बेहतर है} [अल-बक़रह: 184]। बाकियों ने "ततव्वअ" (tatawwa') को भूतकाल (6) के रूप में पढ़ा है, जो वह है जो एक आस्तिक स्वयं की ओर से करता है। जो कोई भी नवाफ़िल (नफ़्ल इबादत) में से कुछ करता है, तो अल्लाह उसका शुक्रगुज़ार होता है, और अल्लाह का बंदे के प्रति शुक्रगुज़ार होने का अर्थ उसे आज्ञाकारिता का प्रतिफल (इनाम) देना है।

सही वह है जो अल-शाफ़ई (अल्लाह उन पर रहम करे) ने कहा है, जैसा कि हमने उल्लेख किया है, और नबी (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) के इस कथन के कारण: "मुझसे अपने हज के तरीके (मनासिक) सीख लो" (7)। अतः यह हज के सामान्य विवरणों का स्पष्टीकरण बन गया; तो जो आवश्यक है वह फ़र्ज़ होना चाहिए, जैसे रकातों की संख्या का उनका स्पष्टीकरण और ऐसी अन्य चीजें, क्योंकि (8) इस पर सहमति नहीं थी कि यह सुन्नत है या ऐच्छिक (9)। कुलैब (10) ने कहा: इब्न अब्बास ने लोगों को सफ़ा और मरवा के बीच चक्कर लगाते हुए देखा और कहा: "यह वह है जो तुम्हारी माँ, इस्माइल की माँ ने तुम्हें विरासत में दिया है" (11)।

---

(1) देखें अल-तमहीद 2/104-105, और अल-इस्तिज़कार 12/201-203। (2) (द), (ज़), और (म) में: "और अल-शअबी," और जो स्थापित है वह (ज़) से है, जो अल-तमहीद के अनुरूप है। (3) अल-

तमहीद 2/97। (4) अहकाम अल-क़ुरआन लिल-इब्न अल-अरबी 1/48। (5) अल-तमहीद 2/97, और अल-तबरी ने उनके कथनों को 2/723-724 में उद्धृत किया है। (6) अल-सबअह पृ. 172, और अल-तयसीर पृ. 77। (7) इसे अहमद (14419) और मुस्लिम (1297) ने जाबिर (रज़िअल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है, और पहले 1/67 में ज़िक्र आ चुका है। (8) (ज़) में: "यदि" (in), और (म) में: "जब" (idha)। (9) अल-तमहीद 2/98। (10) (द) और (म) में: "तय्यब", और (ज़) में शब्द स्पष्ट नहीं था, और जो स्थापित है वह (ज़) से है। (11) इसे अल-हाकिम ने आसिम बिन कुलैब के माध्यम से, उनके पिता से, इब्न अब्बास से 2/271 में उद्धृत किया है, और उन्होंने कहा: इसकी सनद सही है, हालाँकि उन्होंने (बुखारी और मुस्लिम) इसे उद्धृत नहीं किया।

سورہ البقرہ: آیت 158 478

سعی (صفا و مروہ کے درمیان دوڑنا) طواف کے ساتھ متصل ہونے پر ہی ہوتی ہے۔ امام مالک کے نزدیک حج ہو یا عمرہ دونوں میں یہی حکم ہے، اور اگر عمرہ میں سعی فرض نہ بھی ہو، تو اگر کسی نے عورتوں سے قربت کر لی ہو تو امام مالک کے نزدیک اس پر اپنے مناسک کی تکمیل کے ساتھ ایک عمرہ اور قربانی (ہدی) واجب ہے۔ امام شافعی نے کہا: اس پر قربانی واجب ہے، اور اگر وہ واپس آ کر طواف اور سعی کر لیتا ہے تو دوبارہ عمرہ کرنے کا کوئی مطلب نہیں (1)۔

امام ابو حنیفہ، ان کے اصحاب اور ثوری نے کہا: سعی (2) واجب نہیں ہے، پس اگر کوئی حاجی اسے اپنے وطن واپس لوٹنے تک چھوڑ دے تو وہ اسے خون (قربانی/دم) کے ذریعے پورا کرے؛ کیونکہ یہ حج کی سنتوں میں سے ایک سنت ہے (3)۔ 'عتبیہ' میں امام مالک کا قول بھی یہی ہے (4)۔ ابن عباس، ابن زبیر، انس بن مالک اور ابن سیرین سے روایت ہے کہ یہ نفلی (تطوع) ہے (5)؛ اللہ تعالیٰ کے اس قول کی وجہ سے: {اور جو کوئی اپنی خوشی سے نیکی کرے}۔

حمزہ اور کسائی نے "يَطَّوَّع" مضارع مجزوم پڑھا ہے، اور اسی طرح {پس جو کوئی خوشی سے نیکی کرے تو وہ اس کے لیے بہتر ہے} [البقرة: 184]۔ باقیوں نے "تَطَوَّع" ماضی (6) پڑھا ہے، اور وہ وہ عمل ہے جو مومن اپنی مرضی سے کرتا ہے، پس جو کوئی نفلی کاموں میں سے کچھ کرتا ہے تو اللہ اس کا شکر گزار ہوتا ہے، اور بندے کے لیے اللہ کے شکر گزار ہونے کا مطلب اسے اس کی اطاعت پر ثواب دینا ہے۔

صحیح وہ ہے جس کی طرف امام شافعی رحمہ اللہ تعالیٰ گئے ہیں جیسا کہ ہم نے ذکر کیا، اور آپ علیہ السلام کا قول: "مجھ سے اپنے مناسک سیکھ لو" (7)۔ پس یہ حج کے مجمل احکام کا بیان بن

گیا؛ تو واجب یہ ہے کہ وہ فرض ہو، جیسے نماز کی رکعتوں کی تعداد کا بیان اور اس طرح کی چیزیں، کیونکہ (8) اس پر اتفاق نہیں ہوا کہ یہ سنت ہے یا نفلی (9)۔ کلیب (10) نے کہا: ابن عباس نے کچھ لوگوں کو صفا اور مروہ کے درمیان طواف کرتے دیکھا تو فرمایا: "یہ وہ ہے جو تمہاری ماں، اسماعیل کی ماں نے تمہارے لیے ورثے میں چھوڑا ہے" (11)۔

---

(1) دیکھیے التمهيد 2/104-105، اور الاستذكار 12/201-203۔ (2) (د)، (ظ) اور (م) میں ہے: "والشعبي"، اور جو (ز) سے ثابت ہے وہی التمهيد کے موافق ہے۔ (3) التمهيد 2/97۔ (4) أحكام القرآن لابن العربي 1/48۔ (5) التمهيد 2/97، اور طبری نے ان کے اقوال 2/723-724 میں نقل کیے ہیں۔ (6) السبعة ص 172، اور التيسير ص 77۔ (7) اسے احمد (14419) اور مسلم (1297) نے جابر رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور سابقہ حوالہ 1/67۔ (8) (ظ) میں ہے: "إن" (اگر)، اور (م) میں ہے: "إذا" (جب)۔ (9) التمهيد 2/98۔ (10) (د) اور (م) میں: "طيب" ہے، اور (ظ) میں لفظ کی وضاحت نہیں تھی، اور جو ثابت ہے وہ (ز) سے ہے۔ (11) اسے الحاکم نے 2/271 میں عاصم بن کلیب کے واسطے سے، ان کے والد سے، ابن عباس سے روایت کیا ہے، اور کہا: اس کی اسناد صحیح ہے اگرچہ انہوں نے (بخاری و مسلم) اسے روایت نہیں کیا۔

Surah Al-Baqarah: Verse 159 479

I said: This is established in "Sahih" Al-Bukhari, as will be explained later in Surah Ibrahim (1).

The Ninth [point]: It is not permissible for anyone to perform Tawaf around the House or between Safa and Marwa riding, except for a [valid] excuse. If an excused person performs Tawaf [riding], he must offer a sacrifice (dam). If a person without an excuse performs it [riding], he must repeat it if he is still near the House; if he has left, he must offer a sacrifice. We only said this because the Prophet ﷺ performed Tawaf by himself and said: "Take your rituals from me" (2). We only allowed it in case of an excuse because the Prophet ﷺ performed Tawaf on his camel and touched the [Black] Stone with his crooked staff (mihjan) (4). And he said to Aisha—after she said to him: "I am complaining [of an illness]" (5)—: "Perform Tawaf from behind the people while you are riding" (6).

Our companions distinguished between performing Tawaf on a camel and performing it on a person's back. If he performs it on a person's back, it does not suffice him, because in that case, he is not the one performing Tawaf; rather, the one carrying him is. But if he performs it on a camel, he is the one performing Tawaf. Ibn Khuwayz Mandad said: This is a distinction of preference. As for sufficiency, it does suffice. Don't you see that if he faints and is carried around for Tawaf, or is made to stand at Arafat while carried, it would suffice him?

Allah Almighty's saying: {Indeed, those who conceal what We sent down of clear proofs and guidance after We made it clear for the people in the Scripture - those are cursed by Allah and cursed by those who curse. 159}

There are seven issues in it: The first: Allah Almighty informed that whoever conceals what has been sent down of clear proofs and guidance is cursed. They differed as to who is meant by this. It was said: the rabbis of the Jews and the monks of the Christians, who concealed the matter of...

---

(1) At verse (37) of it, and the author refers by this to the long hadith narrated by Al-Bukhari (3364) regarding the story of Ibrahim with Hagar, which the author will mention in full there. (2) Mentioned recently. (3) In (m): from. (4) Narrated by Ahmad (1841), Al-Bukhari (1607), and Muslim (1272) from the hadith of Ibn Abbas, may Allah be pleased with them. A mihjan is a staff with a curved head like a scepter. Al-Nihaya (h-j-n). (5) In (m): I am complaining, so he said. (6) The hadith is for Umm Salama, not

Aisha as mentioned by the author. Narrated by Ahmad (26485), Al-Bukhari (464), and Muslim (1276). See Al-Tamheed 2/94-95, and Al-Istidhkar 12/186.

सूरह अल-बकराह: आयत 159 479

मैंने कहा: और यह "सहीह" बुखारी में साबित है, जैसा कि सूरह इब्राहिम (1) में इसका विवरण आएगा।

नौवां: किसी के लिए भी काबा का तवाफ़ करना या सफा और मरवा के बीच सवारी पर चलना जायज़ नहीं है सिवाय किसी उज़्र (बहाने/मजबूरी) के। यदि कोई मजबूर व्यक्ति सवारी पर तवाफ़ करता है, तो उस पर दम (बलि) अनिवार्य है। और यदि बिना किसी उज़्र के सवारी पर तवाफ़ करता है, तो यदि वह काबा के पास है तो उसे दोहराना चाहिए, और यदि वह चला गया है, तो उसे कुर्बानी देनी चाहिए। हमने ऐसा इसलिए कहा क्योंकि नबी ﷺ ने स्वयं पैदल तवाफ़ किया और फरमाया: "मुझसे अपने हज के तरीके सीखो" (2)। हमने इसे केवल उज़्र के मामले में ही जायज़ माना है क्योंकि नबी ﷺ ने अपने ऊँट पर बैठकर तवाफ़ किया था और अपने मुड़े हुए डंडे (मिहजन) (4) से रुक्न (हजरे अस्वद) को छुआ था। और उन्होंने आयशा से कहा - जब उन्होंने उनसे कहा था: "मुझे शिकायत है [बीमारी की]" (5) -: "लोगों के पीछे से तवाफ़ करो जबकि तुम सवारी पर हो" (6)।

हमारे साथियों ने ऊँट पर तवाफ़ करने और किसी व्यक्ति की पीठ पर तवाफ़ करने के बीच अंतर किया है। यदि वह किसी व्यक्ति की पीठ पर तवाफ़ करता है, तो यह उसके लिए पर्याप्त नहीं है; क्योंकि उस स्थिति में वह तवाफ़ करने वाला नहीं होता, बल्कि उठाने वाला ही तवाफ़ करने वाला होता है। लेकिन यदि वह ऊँट पर तवाफ़ करता है, तो वह स्वयं तवाफ़ करने वाला होता है। इब्न खुवैज़ मंदाद ने कहा: यह अंतर प्राथमिकता का है। जहाँ तक पर्याप्त होने की बात है, तो यह पर्याप्त है। क्या आप नहीं देखते कि यदि वह बेहोश हो जाए और उसे उठाकर तवाफ़ कराया जाए, या उसे उठाकर अराफात में ठहराया जाए, तो क्या वह उसकी ओर से पर्याप्त नहीं होगा?

अल्लाह तआला का फरमान: {बेशक जो लोग उन स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन को छिपाते हैं जिन्हें हमने उतारा है, इसके बाद कि हमने उन्हें किताब में लोगों के लिए स्पष्ट कर दिया है, उन पर अल्लाह लानत भेजता है और लानत भेजने वाले भी उन पर लानत भेजते हैं। 159}

इसमें सात मसले (विषय) हैं: पहला: अल्लाह तआला ने सूचित किया कि जो कोई स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन को छिपाता है जो उतारा गया है, वह अभिशप्त है। इसमें मतभेद है कि इससे कौन मुराद है। कहा गया है: यहूदियों के विद्वान और ईसाइयों के पादरी, जिन्होंने इस मामले को छिपाया...

(1) इसकी आयत (37) पर, और लेखक इसके द्वारा बुखारी (3364) द्वारा वर्णित लंबी हदीस की ओर इशारा कर रहे हैं जो हाजरा के साथ इब्राहिम की कहानी के बारे में है, जिसे लेखक वहां पूरी तरह से उल्लेख करेंगे। (2) हाल ही में उल्लेख किया गया। (3) (m) में: से। (4) इसे अहमद (1841), बुखारी (1607) और मुस्लिम (1272) ने इब्न अब्बास रज़ियल्लाहु अन्हुमा की हदीस से निकाला है। और अल-मिहजन: मुड़े हुए सिर वाला एक डंडा जैसे राजदंड। अल-निहाया (ह-ज-न)। (5) (m) में: मुझे शिकायत है, तो उन्होंने कहा। (6) हदीस उम्मे सलमा की है, न कि आयशा की जैसा कि लेखक ने उल्लेख किया है। इसे अहमद (26485), बुखारी (464) और मुस्लिम (1276) ने निकाला है। देखें अल-तमहीद 2/94-95, और अल-इस्तिज़कार 12/186।

سورة البقرہ: آیت ۱۵۹ ٤٧٩

میں نے کہا: اور یہ "صحیح" بخاری میں ثابت ہے، جیسا کہ سورہ ابراہیم (۱) میں اس کی وضاحت آئے گی۔

نویں بات: کسی کے لیے جائز نہیں کہ وہ بیت اللہ کا طواف کرے یا صفا اور مروہ کے درمیان سوار ہو کر چلے سوائے کسی عذر کے۔ اگر معذور شخص سوار ہو کر طواف کرے تو اس پر دم (قربانی) واجب ہے۔ اور اگر بغیر عذر کے سوار ہو کر طواف کرے تو اگر وہ بیت اللہ کے پاس ہے تو اعادہ کرے (دوبارہ کرے)، اور اگر وہ چلا گیا ہے تو ہدی (قربانی) دے۔ ہم نے یہ اس لیے کہا کیونکہ نبی ﷺ نے خود پیدل طواف کیا اور فرمایا: "مجھ سے اپنے حج کے طریقے سیکھ لو" (۲)۔ ہم نے اس کی اجازت صرف عذر کی صورت میں دی ہے کیونکہ نبی ﷺ نے اپنے اونٹ پر طواف کیا اور اپنے خمیدہ لاٹھی (محجن) (٤) سے رکن (حجر اسود) کو چھوا۔ اور آپ ﷺ نے حضرت عائشہ سے فرمایا - جبکہ انہوں نے آپ سے کہا تھا: "میں شکایت کر رہی ہوں [بیماری کی]" (٥) -: "لوگوں کے پیچھے سے طواف کرو اس حال میں کہ تم سوار ہو" (٦)۔

ہمارے اصحاب نے اونٹ پر طواف کرنے اور کسی انسان کی پیٹھ پر طواف کرنے کے درمیان فرق کیا ہے۔ اگر وہ کسی انسان کی پیٹھ پر طواف کرے تو یہ اس کے لیے کافی نہیں ہے؛ کیونکہ اس صورت میں وہ طواف کرنے والا نہیں ہوتا، بلکہ اٹھانے والا طواف کرنے والا ہوتا ہے۔ لیکن جب وہ اونٹ پر طواف کرتا ہے تو وہ خود طواف کرنے والا ہوتا ہے۔ ابن خویز منداد نے کہا: یہ فرق اختیار (بہتری) کا ہے، رہا کفایت کا معاملہ تو یہ کافی ہو جاتا ہے۔ کیا آپ نہیں دیکھتے کہ اگر وہ بے ہوش ہو جائے اور اسے اٹھا کر طواف کرایا جائے، یا اسے اٹھا کر عرفات میں وقوف کرایا جائے، تو کیا وہ اس کی طرف سے کافی نہ ہوگا؟

اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {بے شک وہ لوگ جو چھپاتے ہیں ان واضح دلیلوں اور ہدایت کو جو ہم نے نازل کی ہیں، اس کے بعد کہ ہم نے انہیں کتاب میں لوگوں کے لیے واضح کر دیا ہے، یہی لوگ ہیں جن پر اللہ لعنت کرتا ہے اور لعنت کرنے والے بھی ان پر لعنت کرتے ہیں۔ ۱۵۹}

اس میں سات مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ نے خبر دی کہ جو شخص نازل کردہ واضح دلیلوں اور ہدایت کو چھپاتا ہے وہ ملعون ہے۔ اس بارے میں اختلاف ہے کہ اس سے کون مراد ہے، تو کہا گیا: یہودیوں کے علماء اور عیسائیوں کے راہب، جنہوں نے اس معاملے کو چھپایا...

---

(۱) اس کی آیت (۳۷) کے پاس، اور مصنف اس سے بخاری (۳۳٦٤) کی اس طویل حدیث کی طرف اشارہ کر رہے ہیں جو حضرت ابراہیم اور حضرت ہاجرہ کے قصے میں ہے، اور مصنف اسے وہاں مکمل ذکر کریں گے۔ (۲) حال ہی میں گزرا۔ (۳) (م) میں: سے۔ (٤) اسے احمد (۱۸٤۱)، بخاری (۱٦۰۷) اور مسلم (۱۲۷۲) نے ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ اور المحجن: مڑے ہوئے سر والی لاٹھی جیسے شاہی عصا۔ النہایۃ (حجن)۔ (٥) (م) میں: میں شکایت کر رہی ہوں، تو انہوں نے کہا۔ (٦) یہ حدیث ام سلمہ کی ہے، نہ کہ عائشہ کی جیسا کہ مصنف نے ذکر کیا ہے، اور اسے احمد (۲٦٤٨٥)، بخاری (٤٦٤)، اور مسلم (۱۲۷٦) نے روایت کیا ہے۔ دیکھیے التمہید ۲/ ۹٤-۹٥، اور الاستذکار ۱۲/ ۱۸٦۔

Surah Al-Baqarah: Verse 159 480

...Muhammad ﷺ, and the Jews concealed the matter of stoning. And it was said: It means everyone who conceals the truth, so it is general to everyone who conceals knowledge of the religion of Allah that needs to be spread (1), and that is explained in his saying ﷺ: "Whoever is asked about knowledge and conceals it, Allah will bridle him on the Day of Resurrection with a bridle of fire." Narrated by Abu Hurairah and Amr ibn al-Aas, reported by Ibn Majah (2).

And it is countered by the saying of Abdullah bin Mas'ud: "You do not tell a people a narration that their intellects cannot grasp except that it will be a trial (fitnah) for some of them (3)." And he (peace be upon him) said: "Speak to the people with what they understand. Would you like Allah and His Messenger to be denied?" (4). This is applied to some sciences, such as theology (ilm al-kalam) or what common people do not equal in understanding. So the rule for the scholar is to speak what is understood from him, and to treat each person according to their status, and Allah knows best.

The second (point): This verse is what Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, intended in his saying: "If it were not for a verse in the Book of Allah, I would not have narrated any hadith to you" (5).

By it, scholars inferred the obligation of conveying true knowledge, and the clarification (6) of knowledge in general, without taking a wage for it; because one does not deserve a wage for what they are obliged to do, just as one does not deserve a wage...

Footnotes: (1) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/231. (2) In his Sunan No. (266), and also reported by Ahmad (7571), Abu Dawood (3658), and Al-Tirmidhi (2649) who said: a good (hasan) hadith. It is with them from the narration of Abu Hurairah alone, and we did not find it from the narration of Amr ibn al-Aas, but it was narrated from the hadith of Abdullah bin Amr bin al-Aas, reported by Nu'aim bin Hammad in his additions to the Zuhd of Ibn al-Mubarak (399), Ibn Hibban (96), and al-Hakim 1/101 and he authenticated it. (3) Reported by Muslim (5). (4) Sahih Mawquf, for Al-Bukhari (127) reported it from Ali, may Allah be pleased with him, who said: "Talk to people about what they know..." and Al-Daylami narrated it in Musnad al-Firdous as a marfu' (attributed to the Prophet) narration as mentioned by al-Munawi in Fayd al-Qadir 3/378, and its chain is weak. See Kashf al-Khafa 1/421. (5) Al-Muharrar al-Wajiz 1/321. The saying of Abu Hurairah was reported by Ahmad (7276), Al-Bukhari (118), and Muslim (2492), with the wording: "If it were not for two verses...", and reported with

the wording of the author by Muslim (227) from the hadith of Uthman, may Allah be pleased with him. Abu Hurairah, may Allah be pleased with him, had said that when people said: "Abu Hurairah has narrated too much," as it is in the hadith. (6) In the manuscript copies: "bayyinat" (clear proofs), and what is established is from (M), and in Ahkam al-Quran: "bayan" (clarification).

सूरह अल-बकरा: आयत 159 480

...मुहम्मद ﷺ, और यहूदियों ने पत्थर मारने (रज़्म) के मामले को छुपाया। और यह कहा गया: इसका अर्थ वह हर कोई है जिसने सत्य को छुपाया, इसलिए यह उन सभी के लिए सामान्य है जिसने अल्लाह के धर्म के उस ज्ञान को छुपाया जिसे प्रसारित करने की आवश्यकता है (1), और यह उनके ﷺ के इस कथन में स्पष्ट है: "जिससे ज्ञान के बारे में पूछा गया और उसने उसे छुपाया, अल्लाह कयामत के दिन उसे आग की लगाम पहनाएगा।" इसे अबू हुरैरा और अम्र इब्न अल-आस ने वर्णित किया है, और इब्न माजा (2) ने इसे उद्धृत किया है।

और इसका विरोध अब्दुल्लाह बिन मसूद के इस कथन से होता है: "तुम लोगों को ऐसी कोई बात नहीं बताते जिसकी उनकी बुद्धि समझ नहीं पाती, सिवाय इसके कि वह उनमें से कुछ के लिए एक आज़माइश (फ़ितना) बन जाए (3)।" और उन्होंने (शांति उन पर हो) कहा: "लोगों से उनकी समझ के अनुसार बात करो। क्या तुम चाहते हो कि अल्लाह और उसके रसूल को झुठलाया जाए?" (4)। यह कुछ विज्ञानों पर लागू होता है, जैसे धर्मशास्त्र (इल्म अल-कलाम) या वह जिसमें आम लोगों की समझ एक समान नहीं होती। इसलिए विद्वान के लिए नियम यह है कि वह वही कहे जो उससे समझा जाए, और प्रत्येक व्यक्ति को उसके पद के अनुसार दर्जा दे, और अल्लाह ही बेहतर जानता है।

दूसरा (बिंदु): यह आयत वही है जिसका इरादा अबू हुरैरा (रज़िअल्लाहु अन्हु) ने अपने इस कथन में किया था: "यदि अल्लाह की किताब में एक आयत न होती, तो मैं तुम्हें कोई हदीस नहीं सुनाता" (5)।

इसके द्वारा, विद्वानों ने सच्चे ज्ञान को पहुँचाने और सामान्य रूप से ज्ञान के स्पष्टीकरण (6) के दायित्व का अनुमान लगाया, बिना इसके लिए कोई शुल्क लिए; क्योंकि कोई भी उस काम के लिए शुल्क का हकदार नहीं है जिसे करना उसका कर्तव्य है, जैसा कि कोई भी शुल्क का हकदार नहीं है...

पादलेख (फुटनोट्स): (1) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/231 देखें। (2) उनकी सुनन संख्या (266) में, और अहमद (7571), अबू दाऊद (3658), और अल-तिर्मिज़ी (2649) द्वारा भी उद्धृत किया गया जिन्होंने कहा: एक हसन हदीस। यह उनके पास अकेले अबू हुरैरा के वर्णन से है, और हमें यह अम्र इब्न अल-आस के वर्णन से नहीं मिला, लेकिन यह अब्दुल्लाह बिन अम्र बिन अल-आस की हदीस से वर्णित है, जिसे नुअैम बिन हम्माद ने इब्न अल-मुबारक (399) के जुहद के अपने परिशिष्टों में, इब्न हिब्बान (96), और अल-हाकिम 1/101 में उद्धृत किया और इसे प्रमाणित किया। (3) मुस्लिम (5) द्वारा उद्धृत। (4) सहीह मौकूफ़, क्योंकि अल-बुखारी (127) ने इसे अली (रज़िअल्लाहु अन्हु) से

उद्धृत किया है जिन्होंने कहा: "लोगों को वह बताओ जो वे जानते हैं..." और अल-दयलमी ने मुसनद अल-फिरदौस में इसे मरफ़ू(पैगंबर के लिए जिम्मेदार) के रूप में वर्णित किया है जैसा कि अल-मुनावी ने फैज़ अल-कादिर 3/378 में उल्लेख किया है, और इसकी श्रृंखला कमजोर है। कशफ अल-ख़फ़ा 1/421 देखें। (5) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/321। अबू हुरैरा के कथन को अहमद (7276), अल-बुखारी (118), और मुस्लिम (2492) ने इन शब्दों के साथ उद्धृत किया है: "यदि दो आयतें न होतीं...", और लेखक के शब्दों के साथ मुस्लिम (227) ने उस्मान (रज़िअल्लाहु अन्हु) की हदीस से उद्धृत किया है। अबू हुरैरा (रज़िअल्लाहु अन्हु) ने यह तब कहा था जब लोगों ने कहा था: "अबू हुरैरा ने बहुत अधिक हदीसें सुनाई हैं," जैसा कि हदीस में है। (6) पांडुलिपि प्रतियों में: "बय्यिनात" (स्पष्ट प्रमाण), और जो स्थापित है वह (M) से है, और अहकाम अल-कुरान में: "बयान" (स्पष्टीकरण)।

سورہ البقرہ: آیت ۱۵۹ ٤٨٠

...محمد ﷺ، اور یہودیوں نے رجم کے معاملے کو چھپایا۔ اور یہ کہا گیا: اس سے مراد ہر وہ شخص ہے جس نے حق کو چھپایا، پس یہ ان تمام لوگوں کے لیے عام ہے جس نے اللہ کے دین کے اس علم کو چھپایا جسے پھیلانے کی ضرورت ہے (۱)، اور اس کی وضاحت آپ ﷺ کے اس قول میں ہے: "جس سے علم کے بارے میں پوچھا گیا اور اس نے اسے چھپایا، اللہ قیامت کے دن اسے آگ کی لگام پہنائے گا۔" اسے ابو ہریرہ اور عمرو بن العاص نے روایت کیا ہے، اور ابن ماجہ (۲) نے اسے نقل کیا ہے۔

اور اس کی تردید عبداللہ بن مسعود کے اس قول سے ہوتی ہے: "تم لوگوں کو ایسی کوئی بات نہیں بتاتے جس تک ان کی عقلیں نہیں پہنچ پاتیں مگر یہ کہ وہ ان میں سے کچھ کے لیے آزمائش (فتنہ) بن جائے (۳)۔" اور آپ (علیہ السلام) نے فرمایا: "لوگوں سے ان کی سمجھ کے مطابق بات کرو۔ کیا تم چاہتے ہو کہ اللہ اور اس کے رسول کو جھٹلایا جائے؟" (٤)۔ یہ بعض علوم پر لاگو ہوتا ہے، جیسے علم الکلام یا وہ جس میں عام لوگوں کی سمجھ برابر نہیں ہوتی۔ چنانچہ عالم کے لیے حکم یہ ہے کہ وہ وہی کہے جو اس سے سمجھا جائے، اور ہر انسان کو اس کے مرتبے کے مطابق درجہ دے، اور اللہ ہی بہتر جانتا ہے۔

دوسرا (نکتہ): یہ آیت وہی ہے جس کا ارادہ ابو ہریرہ رضی اللہ عنہ نے اپنے اس قول میں کیا تھا: "اگر اللہ کی کتاب میں ایک آیت نہ ہوتی تو میں تمہیں کوئی حدیث نہ سناتا" (٥)۔

اس سے علماء نے سچے علم کی تبلیغ کے وجوب، اور عمومی طور پر علم کی وضاحت (٦) پر استدلال کیا ہے، بغیر اس پر اجرت لیے؛ کیونکہ کوئی اس کام پر اجرت کا مستحق نہیں ہے جو اس پر فرض ہے، جیسا کہ کوئی اجرت کا مستحق نہیں ہے...

حواشی: (١) المحرر الوجیز ٢٣١/١ دیکھیں۔ (٢) اپنی سنن میں نمبر (٢٦٦)، اور اسے احمد (٧٥٧١)، ابوداؤد (٣٦٥٨)، اور ترمذی (٢٦٤٩) نے بھی روایت کیا ہے اور کہا: یہ حدیث حسن ہے۔ یہ ان کے نزدیک صرف ابوہریرہ کی روایت سے ہے، اور ہم اسے عمرو بن العاص کی روایت سے نہیں پاسکے، لیکن یہ عبداللہ بن عمرو بن العاص کی حدیث سے مروی ہے، جسے نعیم بن حماد نے زہد ابن المبارک کے اضافات میں (٣٩٩)، ابن حبان (٩٦)، اور الحاکم ١٠١/١ نے روایت کیا اور اسے صحیح قرار دیا۔ (٣) اسے مسلم (٥) نے روایت کیا ہے۔ (٤) صحیح موقوف، کیونکہ بخاری (١٢٧) نے اسے علی رضی اللہ عنہ سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے فرمایا: "لوگوں کو وہ بتاؤ جو وہ جانتے ہیں..." اور اسے دیلمی نے مسند الفردوس میں مرفوعاً روایت کیا جیسا کہ مناوی نے فیض القدیر ٣٧٨/٣ میں ذکر کیا ہے، اور اس کی سند ضعیف ہے۔ کشف الخفا ٤٢١/١ دیکھیں۔ (٥) المحرر الوجیز ٣٢١/١۔ اور ابوہریرہ کا قول احمد (٧٢٧٦)، بخاری (١١٨)، اور مسلم (٢٤٩٢) نے ان الفاظ کے ساتھ روایت کیا ہے: "اگر دو آیتیں نہ ہوتیں..."، اور مصنف کے الفاظ کے ساتھ مسلم (٢٢٧) نے عثمان رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے یہ اس وقت کہا تھا جب لوگوں نے کہا تھا: "ابوہریرہ نے بہت زیادہ حدیثیں بیان کی ہیں،" جیسا کہ حدیث میں ہے۔ (٦) قلمی نسخوں میں: بینات، اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے، اور احکام القرآن میں: بیان۔

Surah Al-Baqarah: Verse 159 (Page 481)

...on Islam (1). And the statement regarding this has already passed (2). The realization of the verse is: that the scholar, if he intends to conceal knowledge, has committed a sin; and if he does not intend it, then conveying it is not mandatory for him if he knows that it is with someone else. As for the one who is asked, conveying it becomes obligatory for him because of this verse and because of the Hadith (3). Indeed, it is not permissible to teach a disbeliever the Quran and knowledge until he becomes a Muslim. Likewise, it is not permissible to teach an innovator argumentation and debating so that he may use it to debate the people of truth. One should not teach an adversary a proof against his opponent by which he takes away his property, nor should a ruler be taught an interpretation through which he can find a way to inflict harm on his subjects. Nor should legal concessions be spread among the foolish, lest they make that a path to committing prohibitions and abandoning obligations, and the like. It is narrated from the Prophet (peace and blessings be upon him) that he said: "Do not withhold wisdom from those who deserve it, for you would then wrong them; and do not give it to those who do not deserve it, for you would then wrong it (the wisdom)" (4). And it was narrated from him (peace and blessings be upon him) that he said: "Do not hang pearls on the necks of pigs" (5), meaning the teaching of jurisprudence to those who are not suited for it. Sahnun said: The Hadith of Abu Hurairah and Amr ibn al-Aas only concerns testimony.

Footnotes: (1) See Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/49, and Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Harrasi 1/25. (2) 2/12. (3) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 1/49, and his statement "because of the Hadith" refers to the Marfu' Hadith of Abu Hurairah: "Whoever is asked about knowledge..." and it has preceded. (4) Reported by Ibn Abd al-Barr in Jami' Bayan al-Ilm p. 146, and reported by Ibn Asakir in Tarikh Dimashq 14/77 from the Prophet (PBUH) from Jesus (peace be upon him) similarly. (5) Reported by Ibn Adi in al-Kamil 7/2680, al-Khalili in al-Irshad 2/493, al-Khatib in Tarikh Baghdad 9/350, 11/310, and Ibn al-Jawzi in al-Mawdu'at 1/168 from the Hadith of Anas (may Allah be pleased with him), and in its chain of narration is Yahya bin Uqbah, who was alone in narrating it as transmitted by Ibn al-Jawzi from al-Daraqutni, who said: "He is suspected of it," and Ibn Hibban said: "He narrates fabrications from trustworthy narrators." And reported by Ibn Majah (224) from Anas with the wording: "The one who places knowledge with those not worthy of it is like one who hangs jewels, pearls, and gold on pigs," and al-Busiri weakened it in Misbah

al-Zujajah 1/74. And al-Khatib narrated it in Tarikh Baghdad 7/281 from Ka'b who said: "Some of the Prophets said...", and he mentioned it similarly. And reported by Ibn Abd al-Barr in Jami' Bayan al-Ilm p. 146 from Ikrimah, and Ibn Asakir in Tarikh Dimashq 14/77 from Wahb, both of them from Jesus (peace be upon him) similarly.

सूरह अल-बक़रह: आयत 159 (पृष्ठ 481)

...इस्लाम पर (1)। और इस विषय में बात पहले हो चुकी है (2)। आयत का सार यह है: कि विद्वान यदि ज्ञान छिपाने का इरादा रखता है, तो उसने पाप किया; और यदि उसका ऐसा इरादा नहीं है, तो उसे पहुँचाना उसके लिए अनिवार्य नहीं है यदि उसे ज्ञात हो कि वह किसी अन्य के पास है। जहाँ तक उस व्यक्ति का प्रश्न है जिससे पूछा जाए, तो इस आयत और हदीस के कारण उसके लिए ज्ञान पहुँचाना अनिवार्य हो जाता है (3)। वास्तव में, किसी काफ़िर को क़ुरान और ज्ञान सिखाना तब तक उचित नहीं है जब तक कि वह इस्लाम स्वीकार न कर ले। इसी प्रकार, किसी नवाचारी (बिदअती) को तर्क और बहस सिखाना उचित नहीं है ताकि वह इसका उपयोग सत्य के लोगों के साथ बहस करने के लिए न करे। किसी विरोधी को उसके प्रतिद्वंद्वी के विरुद्ध ऐसी दलील नहीं सिखानी चाहिए जिससे वह उसका धन हड़प ले, और न ही किसी शासक को ऐसी व्याख्या सिखानी चाहिए जिसके माध्यम से वह अपनी प्रजा पर अत्याचार करने का मार्ग पा सके। न ही अज्ञानियों के बीच कानूनी रियायतों को फैलाना चाहिए, कहीं वे इसे निषिद्ध कार्यों को करने और कर्तव्यों को छोड़ने का मार्ग न बना लें, इत्यादि। नबी ﷺ से रिवायत है कि उन्होंने फ़रमाया: "बुद्धि और ज्ञान के पात्र लोगों से इसे मत रोको, अन्यथा तुम उन पर अन्याय करोगे; और इसे उन लोगों को न दो जो इसके पात्र नहीं हैं, अन्यथा तुम इस (ज्ञान) पर अन्याय करोगे" (4)। और उनसे ﷺ यह भी रिवायत है कि उन्होंने फ़रमाया: "सूअरों के गले में मोती मत लटकाओ" (5), जिसका अर्थ उन लोगों को फ़िक़्ह (धर्मशास्त्र) सिखाना है जो इसके योग्य नहीं हैं। सहनून ने कहा: अबू हुरैरा और अम्र इब्न अल-आस की हदीस केवल गवाही के संदर्भ में आई है।

पाद-टिप्पणियाँ: (1) देखें अहकाम अल-क़ुरान इब्न अल-अरबी 1/49, और अहकाम अल-क़ुरान अल-किया अल-हर्रासी 1/25। (2) 2/12। (3) अहकाम अल-क़ुरान इब्न अल-अरबी 1/49, और उनका कथन "हदीस के कारण" अबू हुरैरा की मरफ़ू हदीस की ओर संकेत करता है: "जिससे किसी ज्ञान के बारे में पूछा गया..." और यह पहले आ चुका है। (4) इसे इब्न अब्द अल-बर्र ने जामे बयान अल-इल्म पृष्ठ 146 में उद्धृत किया है, और इब्न असाकिर ने तारीख़ दमिश्क 14/77 में नबी ﷺ के हवाले से ईसा अलैहिस्सलाम से इसी प्रकार उद्धृत किया है। (5) इसे इब्न अदी ने अल-कामिल 7/2680 में, खलीली ने अल-इरशाद 2/493 में, खतीब ने तारीख़ बग़दाद 9/350, 11/310 में, और इब्न अल-जौज़ी ने अल-मौज़ूआत 1/168 में हज़रत अनस रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से उद्धृत किया है, इसकी सनद में यहया बिन उक़्बा है, जो इसमें अकेला है जैसा कि इब्न अल-जौज़ी ने दारक़ुत्नी से

उद्धृत किया है, उन्होंने कहा: "वह इसमें संदिग्ध है," और इब्न हिब्बान ने कहा: "वह विश्वसनीय रावियों से गढ़ी हुई रिवायतें बयान करता है।" और इसे इब्न माजह (224) ने अनस से इन शब्दों में उद्धृत किया: "नाअहल को ज्ञान सिखाने वाला ऐसा है जैसे सूअरों को रत्न, मोती और सोना पहनाने वाला," और अल-बुसीरी ने मिस्बाह अल-ज़ुजाजह 1/74 में इसे कमज़ोर बताया है। और खतीब ने इसे तारीख़ बग़दाद 7/281 में काब से रिवायत किया जिन्होंने कहा: "कुछ नबियों ने फ़रमाया..." फिर उन्होंने इसी प्रकार उल्लेख किया। और इसे इब्न अब्द अल-बर्र ने जामे बयान अल-इल्म पृष्ठ 146 में इक्रमा से, और इब्न असाकिर ने तारीख़ दमिश्क 14/77 में वहब से उद्धृत किया, दोनों ने ईसा अलैहिस्सलाम से इसी प्रकार उद्धृत किया है।

سورہ البقرہ: آیت ۱۵۹ (صفحہ ٤٨١)

...اسلام پر (۱)۔ اور اس کے بارے میں بات پہلے گزر چکی ہے (۲)۔ آیت کی وضاحت یہ ہے: کہ عالم جب علم چھپانے کا ارادہ کرے تو وہ گنہگار ہے، اور اگر اس کا ایسا ارادہ نہ ہو تو اس پر تبلیغ لازم نہیں ہے بشرطیکہ اسے معلوم ہو کہ یہ علم کسی دوسرے کے پاس ہے۔ رہا وہ شخص جس سے سوال کیا جائے، تو اس پر اس آیت اور حدیث کی بنا پر تبلیغ واجب ہو جاتی ہے (۳)۔ بے شک کافر کو قرآن اور علم سکھانا جائز نہیں جب تک کہ وہ اسلام نہ لے آئے، اسی طرح بدعتی کو بحث و مباحثہ سکھانا جائز نہیں تاکہ وہ اس کے ذریعے اہل حق سے جھگڑا نہ کرے، اور نہ ہی کسی فریق کو اس کے حریف کے خلاف ایسی دلیل سکھائی جائے جس سے وہ اس کا مال ہتھیا لے، اور نہ ہی حاکم کو ایسی تاویل سکھائی جائے جس کے ذریعے وہ اپنی رعایا پر ظلم کرنے کا راستہ نکالے، اور نہ ہی جاہلوں میں رخصتیں عام کی جائیں، مبادا وہ اسے حرام کاموں کے ارتکاب اور واجبات کو ترک کرنے کا ذریعہ بنا لیں، وغیرہ۔ نبی کریم ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے فرمایا: "اہلِ حکمت سے حکمت کو نہ روکو ورنہ تم ان پر ظلم کرو گے، اور اسے نااہلوں کو نہ دو ورنہ تم اس (حکمت) پر ظلم کرو گے" (٤)۔ اور آپ ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے فرمایا: "خنزیروں کی گردنوں میں موتی نہ لٹکاؤ" (٥)، اس سے مراد نااہلوں کو فقہ سکھانا ہے۔ سحنون نے کہا: ابوہریرہ اور عمرو بن العاص کی حدیث صرف گواہی کے بارے میں آئی ہے۔

حواشی: (۱) دیکھئے احکام القرآن ابن العربي ۱/٤٩، اور احکام القرآن الکیا الہراسی ۱/۲٥۔ (۲) ۲/۱۲۔ (۳) احکام القرآن ابن العربي ۱/٤٩، اور ان کا قول "للحدیث" سے مراد ابوہریرہ کی مرفوع حدیث ہے: "جس سے علم کے بارے میں پوچھا گیا..." اور یہ پہلے گزر چکی ہے۔ (٤) اسے ابن عبد البر نے جامع بیان العلم صفحہ ١٤٦ میں نقل کیا، اور ابن عساکر نے تاریخ دمشق ١٤/٧٧ میں

نبی ﷺ کے حوالے سے عیسیٰ علیہ السلام سے اسی طرح نقل کیا ہے۔ (٥) اسے ابن عدی نے الکامل ٧/٢٦٨٠ میں، خلیلی نے الارشاد ٢/٤٩٣ میں، خطیب نے تاریخ بغداد ٩/٣٥٠، ١١/٣١٠ میں، اور ابن الجوزی نے الموضوعات ١/١٦٨ میں حضرت انس رضی اللہ عنہ کی حدیث سے نقل کیا، اس کی سند میں یحییٰ بن عقبہ ہے، جو اس میں منفرد ہے جیسا کہ ابن الجوزی نے دارقطنی سے نقل کیا، انہوں نے کہا: "وہ اس میں متہم ہے،" اور ابن حبان نے کہا: "وہ ثقہ راویوں سے موضوع روایات بیان کرتا ہے۔" اور اسے ابن ماجہ (٢٢٤) نے انس سے ان الفاظ میں نقل کیا: "نااہلوں کو علم سکھانے والا ایسا ہے جیسے خنزیروں کو جواہر، موتی اور سونا پہنانے والا،" اور بوصیری نے مصباح الزجاجہ ١/٧٤ میں اسے ضعیف قرار دیا۔ اور خطیب نے تاریخ بغداد ٧/٢٨١ میں کعب سے نقل کیا جنہوں نے کہا: "بعض انبیاء نے فرمایا..." پھر انہوں نے اسی طرح ذکر کیا۔ اور اسے ابن عبد البر نے جامع بیان العلم صفحہ ١٤٦ میں عکرمہ سے، اور ابن عساکر نے تاریخ دمشق ١٤/٧٧ میں وہب سے نقل کیا، دونوں نے عیسیٰ علیہ السلام سے اسی طرح نقل کیا ہے۔

Ibn al-Arabi said (1): The correct view is contrary to it; because the hadith says: "Whoever is asked about knowledge" and does not say: about testimony. One should remain with the apparent meaning until something comes to remove it, and Allah knows best.

Third point: The Almighty's saying: {of the clear proofs and the guidance} includes what is explicitly stated and what is deduced, because the name 'guidance' encompasses everything. It contains proof of the obligation to act upon the report of a single person; because clarification is not obligatory for him unless the acceptance of his word is already obligatory. He said: {Except those who repent and reform and clarify}, so He ruled that clarification occurs through their report.

If it is said: It is possible that each of them was forbidden from concealing and commanded to clarify so that the reporters would increase and the report would become tawatur (successive narration).

We say: This is a mistake; because they were not forbidden from concealment except that they are among those for whom collusion is possible. And those for whom collusion on concealment is possible, their report does not necessitate action, and Allah knows best (2).

Fourth point: When He said: {of the clear proofs and the guidance}, it indicated that concealing anything other than that is permissible, especially if accompanied by fear. Indeed, that makes concealment more emphasized. Abu Huraira refrained from it when he feared, saying: I memorized from the Messenger of Allah (peace be upon him) two vessels of knowledge; as for one of them, I have disseminated it, but as for the other, if I were to disseminate it, this throat would be cut (3). It was narrated by al-Bukhari (4). Abu Abdullah said: The throat is the passage of food.

Our scholars said: This which Abu Huraira did not disseminate, fearing fitna (strife) or being killed, was only regarding matters of fitna and specifying the identities of apostates and hypocrites, and similar things that do not pertain to clear proofs and guidance, and Allah knows best.

Fifth point: The Almighty's saying: {after We have clarified it}. The pronoun in "We have clarified it" refers back to what was revealed of clear proofs and guidance. 'The Book' is a generic noun, so what is meant is all revealed books (5).

(1) Ahkam al-Quran by him, 1/49, and in it is the mentioned saying of Sahnun. (2) Ahkam al-Quran by al-Kiya al-Harrasi, 1/25, and see Ahkam al-Quran by al-Jassas, 1/101. (3) Al-Muharrar al-Wajiz, 1/231. (4) Number (120). (5) Majma' al-Bayan, 2/47, and al-Muharrar al-Wajiz, 1/231.

सूरह अल-बकराह: आयत 159 482

इब्न अल-अरबी ने कहा (1): सही विचार इसके विपरीत है; क्योंकि हदीस में है: "जिससे ज्ञान के बारे में पूछा जाए" और यह नहीं कहा: गवाही के बारे में। ज़ाहिरी (स्पष्ट) अर्थ पर टिके रहना चाहिए जब तक कि उसे हटाने वाला कुछ न आए, और अल्लाह बेहतर जानता है।

तीसरा बिंदु: सर्वशक्तिमान का कथन: {स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन में से} इसमें वह शामिल है जो स्पष्ट रूप से कहा गया है और जो निकाला गया है, क्योंकि 'मार्गदर्शन' नाम में सब कुछ समाहित है। इसमें एक व्यक्ति की बात पर अमल करने के अनिवार्य होने का प्रमाण है; क्योंकि स्पष्टीकरण उसके लिए तब तक अनिवार्य नहीं है जब तक कि उसकी बात को स्वीकार करना पहले से ही अनिवार्य न हो। उसने कहा: {सिवाय उनके जिन्होंने तौबा की और सुधार किया और स्पष्ट किया}, इसलिए उसने उनके समाचार के माध्यम से स्पष्टीकरण होने का फैसला सुनाया।

यदि यह कहा जाए: यह संभव है कि उनमें से प्रत्येक को छुपाने से मना किया गया हो और स्पष्ट करने का आदेश दिया गया हो ताकि सूचना देने वाले बढ़ें और उनकी रिपोर्ट मुतवातिर (लगातार वर्णन) हो जाए।

हम कहते हैं: यह गलत है; क्योंकि उन्हें छुपाने से तब तक मना नहीं किया गया जब तक कि वे उनमें से न हों जिनसे मिलीभगत संभव है। और जिनसे छुपाने पर मिलीभगत संभव है, उनका समाचार कार्रवाई के लिए अनिवार्य नहीं होता, और अल्लाह बेहतर जानता है (2)।

चौथा बिंदु: जब उसने कहा: {स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन में से}, तो इसने संकेत दिया कि इसके अलावा कुछ भी छुपाना जायज़ है, खासकर यदि उसके साथ डर हो। वास्तव में, यह छुपाने पर अधिक जोर देता है। अबू हुरैरा ने इसे तब छोड़ दिया जब उन्हें डर लगा, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) से ज्ञान के दो बर्तन याद किए; जहाँ तक एक का सवाल है, मैंने उसे फैला दिया है, लेकिन जहाँ तक दूसरे का सवाल है, अगर मैं उसे फैला दूँ, तो यह गला काट दिया जाएगा (3)। इसे बुखारी ने उद्धृत किया है (4)। अबू अब्दुल्ला ने कहा: गला भोजन का मार्ग है।

हमारे विद्वानों ने कहा: यह जिसे अबू हुरैरा ने नहीं फैलाया, अपने ऊपर फ़ितना (फसाद) या हत्या का डर होने के कारण, वह केवल फ़ितनों के मामलों और धर्मत्यागियों और पाखंडियों की पहचान बताने से संबंधित था, और इसी तरह की चीजें जो स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन से संबंधित नहीं हैं, और अल्लाह बेहतर जानता है।

पांचवां बिंदु: सर्वशक्तिमान का कथन: {इसके बाद कि हमने इसे स्पष्ट कर दिया}। "हमने इसे स्पष्ट किया" में सर्वनाम उन स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन की ओर वापस जाता है जो उतारे गए थे। 'किताब' एक जातिवाचक संज्ञा है, इसलिए इसका अर्थ सभी उतारी गई किताबें हैं (5)।

---

(1) उनकी अहकाम अल-कुरान, 1/49, और इसमें सहनून का उल्लेखित कथन है। (2) अल-किया अल-हर्रासी द्वारा अहकाम अल-कुरान, 1/25, और अल-जस्सास द्वारा अहकाम अल-कुरान, 1/101 देखें। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़, 1/231। (4) संख्या (120)। (5) मजमा अल-बयान, 2/47, और अल-मुहर्रर अल-वजीज़, 1/231।

سورة البقرہ: آیت ۱۵۹ ٤٨٢

ابن العربی (۱) نے کہا: صحیح قول اس کے خلاف ہے؛ کیونکہ حدیث میں ہے: "جس سے علم کے بارے میں پوچھا جائے" اور یہ نہیں کہا: گواہی کے بارے میں۔ ظاہر پر قائم رہنا چاہیے یہاں تک کہ کوئی ایسی چیز آ جائے جو اسے ختم کر دے، اور اللہ بہتر جانتا ہے۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿مِنَ الْبَيِّنَاتِ وَالْهُدَى﴾ (کھلی نشانیوں اور ہدایت میں سے) یہ منصوص علیہ اور مستنبط دونوں کو شامل ہے، کیونکہ لفظ ہدایت سب کو شامل ہے۔ اس میں ایک شخص کی خبر پر عمل کے واجب ہونے کی دلیل ہے؛ کیونکہ کسی کے ذمے بیان اس وقت تک واجب نہیں ہوتی جب تک اس کے قول کی قبولیت واجب نہ ہو چکی ہو، اور اللہ نے فرمایا: ﴿إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا وَأَصْلَحُوا وَبَيَّنُوا﴾ (سوائے ان لوگوں کے جنہوں نے توبہ کی اور اصلاح کی اور واضح کیا) پس ان کی خبر کے ذریعے بیان کے وقوع کا حکم لگایا۔

اگر یہ کہا جائے کہ: یہ جائز ہے کہ ان میں سے ہر ایک کو چھپانے سے منع کیا گیا ہو اور بیان کا حکم دیا گیا ہو تاکہ خبر دینے والے زیادہ ہو جائیں اور خبر متواتر ہو جائے۔

ہم کہتے ہیں: یہ غلط ہے؛ کیونکہ انہیں چھپانے سے منع ہی اس وقت کیا گیا جب وہ ان لوگوں میں سے ہوں جن کی طرف سے ملی بھگت ممکن ہو۔ اور جن کی طرف سے چھپانے پر ملی بھگت ممکن ہو، ان کی خبر عمل کو واجب کرنے والی نہیں ہوتی، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے (۲)۔

چوتھی بات: جب اللہ نے فرمایا: ﴿مِنَ الْبَيِّنَاتِ وَالْهُدَى﴾ تو یہ اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ اس کے علاوہ کسی چیز کو چھپانا جائز ہے، خاص طور پر اگر اس کے ساتھ خوف بھی ہو۔ بے شک خوف کی صورت میں چھپانا زیادہ مؤکد ہو جاتا ہے، اور حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے خوف کے

وقت اسے چھوڑ دیا تھا، چنانچہ انہوں نے فرمایا: میں نے رسول اللہ ﷺ سے دو برتن (علم کے) محفوظ کیے؛ ایک تو میں نے پھیلا دیا، اور دوسرا ایسا ہے کہ اگر میں اسے پھیلا دوں تو یہ حلقوم کاٹ دیا جائے (۳)۔ اسے بخاری نے روایت کیا ہے (٤)۔ ابو عبداللہ نے کہا: حلقوم کھانے کی نالی ہے۔

ہمارے علماء نے کہا: یہ وہ علم ہے جسے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ نے نہیں پھیلایا اور انہیں اپنی جان پر فتنہ یا قتل کا خوف تھا، یہ دراصل فتنوں کے معاملات اور مرتدین اور منافقین کے ناموں کی وضاحت وغیرہ سے متعلق تھا، جو بینات اور ہدایت سے متعلق نہیں تھا، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

پانچویں بات: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿مِن بَعْدِ مَا بَيَّنَّٰهُ﴾ (اس کے بعد کہ ہم نے اسے واضح کر دیا)۔ "بيّناه" میں ضمیر ان بینات اور ہدایت کی طرف لوٹتی ہے جو نازل کی گئیں۔ اور 'کتاب' اسمِ جنس ہے، پس اس سے مراد تمام نازل شدہ کتابیں ہیں (٥)۔

---

(١) احکام القرآن از ابن العربی ١/٤٩، اور اس میں سحنون کا مذکورہ قول ہے۔ (٢) احکام القرآن از کیا ہراسی ١/٢٥، اور دیکھئے احکام القرآن از جصاص ١/١٠١۔ (٣) المحرر الوجیز ١/٢٣١۔ (٤) نمبر (١٢٠)۔ (٥) مجمع البیان ٢/٤٧، اور المحرر الوجیز ١/٢٣١۔

Sixth point: The words of the Almighty: "Those - Allah curses them" [2:159] mean: He disassociates Himself from them, distances them from His reward, and says to them: My curse be upon you, just as He said to the cursed one [Satan]: "And indeed, upon you is My curse" [Sad: 78]. The linguistic origin of 'curse' (la'n) is distancing and expulsion, as previously mentioned (1).

Seventh point: The words of the Almighty: "and those who curse curse them" [2:159]. Qatadah and Al-Rabi' said: What is meant by "those who curse" are the angels and the believers. Ibn Atiyyah (2) said: This is clear and follows the context of the speech.

Mujahid and Ikrimah said: They are the insects and animals that are afflicted by drought due to the sins of the wicked scholars who conceal [the truth], so they curse them.

Al-Zajjaj (3) said: The correct view is of those who said: "those who curse" are the angels and the believers; as for it referring to the beasts of the earth, its truth cannot be established except by a text or an obligatory report, and we have found nothing of that sort.

I say: A report concerning this has been transmitted by Al-Bara' bin 'Azib (may Allah be pleased with him), who said: The Messenger of Allah (peace be upon him) said regarding the words of the Almighty: "Allah curses them and those who curse curse them": [They are] "the beasts of the earth." It was narrated by Ibn Majah from Muhammad bin Al-Sabbah, who said: Ammar bin Muhammad informed us, from Layth, from Al-Minhal (4), from Zadhan, from Al-Bara', with a good (hasan) chain of transmission (5).

If it is asked: How can those who do not possess intellect be grouped together like those who do? It is answered: Because an action belonging to those who possess intellect was attributed to them, just as He said: "I saw them prostrating to me" [Yusuf: 4] and did not say "prostrating (feminine plural)," and He said: "Why have you testified against us?" [Fussilat: 21], and He said: "And you see them looking at you" [Al-A'raf: 198], and many such examples exist (6), and it will be discussed further, Allah willing.

(1) At verse: 88 of this Surah, p. 247 of this part. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/231, and what precedes it, and the mentioned narrations were narrated by Al-Tabari 2/733-736. (3) We did not find his statement, see Tafsir al-Tabari 2/737. (4) In (z), (z),

and (m): "Abi Al-Minhal", and in (d): "Ibn Al-Minhal", which is an error, the correction is from the sources of verification. (5) Ibn Majah (4021), and it was also narrated by Ibn Abi Hatim 1/269 through Al-Hasan bin Arafa from Ammar bin Muhammad in a lengthy form. Al-Busiri said in Misbah al-Zujajah 4/187: This chain is weak due to the weakness of Layth bin Abi Sulaym. (6) See Al-Muharrar al-Wajiz 1/231, Majma' al-Bayan 2/47, and Tafsir al-Razi 4/185.

सूरह अल-बक़रह: आयत 159 | 483

छठा बिंदु: अल्लाह तआला का फरमान: ﴿उन पर अल्लाह लानत भेजता है﴾ यानी: वह उनसे बरी हो जाता है, उन्हें अपने सवाब से दूर कर देता है, और उनसे कहता है: तुम पर मेरी लानत हो, जैसा कि उसने लानत के मारे हुए (शैतान) से कहा था: ﴿और वास्तव में, तुझ पर मेरी लानत है﴾ [साद: 78]। भाषा में 'लानत' का मूल अर्थ दूरी और निष्कासन है, और यह पहले भी बताया जा चुका है (1)।

सातवां बिंदु: अल्लाह तआला का फरमान: ﴿और लानत करने वाले उन पर लानत भेजते हैं﴾ कतादह और अर-रबी' ने कहा: "लानत करने वाले" से मुराद फरिश्ते और मोमिन हैं। इब्न अतिया (2) ने कहा: यह स्पष्ट है और बातचीत के संदर्भ के अनुसार है।

मुजाहिद और इक्रिमा ने कहा: वे कीड़े और जानवर हैं जिन्हें बुरे उलेमाओं (विद्वानों) के गुनाहों के कारण सूखे का सामना करना पड़ता है जो सच छिपाते हैं, इसलिए वे उन पर लानत भेजते हैं।

अज़-ज़ज्जाज (3) ने कहा: सही विचार उन लोगों का है जिन्होंने कहा: "लानत करने वाले" फरिश्ते और मोमिन हैं; जहाँ तक इसका जमीन के जानवरों से संबंधित होने की बात है, तो इसकी सच्चाई को किसी स्पष्ट प्रमाण (नस्) या अनिवार्य रिपोर्ट के बिना स्थापित नहीं किया जा सकता, और हमें ऐसा कुछ नहीं मिला।

मैं कहता हूँ: इस संबंध में अल-बरा बिन आज़िब (रज़ि.) से एक रिवायत आई है, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने अल्लाह तआला के इस फरमान के बारे में फरमाया: ﴿अल्लाह उन पर लानत करता है और लानत करने वाले उन पर लानत भेजते हैं﴾ : [वे] "जमीन के जानवर" हैं। इसे इब्न माजाह ने मुहम्मद बिन अल-सब्बाह से, उन्होंने अम्मार बिन मुहम्मद से, उन्होंने लैथ से, उन्होंने अल-मिन्हाद (4) से, उन्होंने जादान से, उन्होंने अल-बरा से रिवायत किया है, इसकी सनद (परंपरा की कड़ी) हसन (अच्छी) है (5)।

यदि यह पूछा जाए: बेअक्ल (बुद्धिहीन) चीजों को अक्ल वालों की तरह कैसे जमा (बहुवचन) किया जा सकता है? तो उत्तर यह है: क्योंकि उन्हें अक्ल वालों का काम सौंपा गया है, जैसा कि अल्लाह ने फरमाया: ﴿मैंने उन्हें अपने सामने सजदा करते हुए देखा﴾ [यूसुफ: 4] और 'साजदात' (स्त्रीलिंग बहुवचन) नहीं कहा, और उसने फरमाया: ﴿तुमने हमारे खिलाफ गवाही क्यों दी?﴾ [फुस्सिलत: 21], और उसने फरमाया: ﴿और तुम उन्हें अपनी ओर देखते हुए देखोगे﴾ [अल-अराफ: 198], और ऐसे कई उदाहरण हैं (6), और इंशा अल्लाह तआला आगे और विवरण आएगा।

(1) इस सूरह की आयत 88 पर, इस हिस्से के पृष्ठ 247 पर। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/231, और उससे पहले का हिस्सा, और वर्णित रिवायतें अल-तबरी 2/733-736 द्वारा संकलित की गई हैं। (3) हमें उनका कथन नहीं मिला, देखें तफसीर अल-तबरी 2/737। (4) (ज़), (ज़) और (म) में: "अबी अल-मिन्हाद", और (द) में: "इब्न अल-मिन्हाद", जो एक त्रुटि है, संशोधन सत्यापन के स्रोतों से है। (5) इब्न माजाह (4021), और इसे इब्न अबी हातिम 1/269 ने अल-हसन बिन अरफा के माध्यम से अम्मार बिन मुहम्मद से विस्तार से रिवायत किया है। अल-बुसीरी ने मिस्बाह अल-जुजाजाह 4/187 में कहा: लैथ बिन अबी सुलेम की कमजोरी के कारण यह सनद कमजोर है। (6) देखें अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/231, मजमा अल-बयान 2/47, और तफसीर अल-राज़ी 4/185।

چھٹا نکتہ: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ أُولَٰئِكَ يَلْعَنُهُمُ اللَّهُ ﴾ یعنی: وہ ان سے بیزار ہوتا ہے، اور انہیں اپنے ثواب سے دور کرتا ہے، اور ان سے کہتا ہے: تم پر میری لعنت ہو، جیسا کہ اس نے لعنت زدہ (شیطان) سے کہا: ﴿ وَإِنَّ عَلَيْكَ لَعْنَتِي ﴾ [ص: ۷۸]۔ لغت میں لعنت کی اصل دوری اور دھتکارنا ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (۱)۔

ساتواں نکتہ: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿ وَيَلْعَنُهُمُ اللَّاعِنُونَ ﴾ قتادہ اور ربیع نے کہا: «اللاعینون» سے مراد فرشتے اور مومن ہیں۔ ابن عطیہ (۲) نے کہا: یہ واضح ہے اور کلام کے تقاضے کے مطابق ہے۔

اور مجاہد و عکرمہ نے کہا: یہ وہ کیڑے مکوڑے اور چوپائے ہیں جنہیں ان بدکردار علماء کے گناہوں کی وجہ سے قحط کا سامنا کرنا پڑتا ہے جو حق چھپاتے ہیں، چنانچہ وہ ان پر لعنت بھیجتے ہیں۔

زجاج (۳) نے کہا: درست قول ان کا ہے جنہوں نے کہا: «اللاعون» فرشتے اور مومن ہیں؛ رہا زمین کے جانوروں کا اس میں شامل ہونا، تو اس کی حقیقت بغیر کسی نص یا قطعی خبر کے معلوم نہیں کی جا سکتی، اور ہمیں ایسی کوئی چیز نہیں ملی۔

میں کہتا ہوں: اس سلسلے میں براء بن عازب رضی اللہ عنہ سے ایک روایت مروی ہے، انہوں نے کہا: رسول اللہ ﷺ نے اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے بارے میں فرمایا: ﴿ يَلْعَنُهُمُ اللَّهُ وَيَلْعَنُهُمُ اللَّاعِنُونَ ﴾ : [وہ] "زمین کے جانور" ہیں۔ اسے ابن ماجہ نے محمد بن الصباح سے، انہوں نے عمار بن محمد سے، انہوں نے لیث سے، انہوں نے المنہال (۴) سے، انہوں نے زاذان سے، انہوں نے البراء سے روایت کیا ہے، یہ حسن اسناد ہے (۵)۔

اگر یہ کہا جائے: بے عقل چیزوں کو عقل والوں کی طرح جمع کیسے کیا گیا؟ تو جواب دیا گیا: کیونکہ ان کی طرف عقل والوں کا فعل منسوب کیا گیا ہے، جیسا کہ اللہ نے فرمایا: ﴿ رَأَيْتُهُمْ لِي سَاجِدِينَ ﴾ [یوسف : ۴] اور 'ساجدات' نہیں کہا، اور فرمایا: ﴿ لِمَ شَهِدتُّمْ عَلَيْنَا ﴾ [فصلت : ۲۱]، اور فرمایا: ﴿ وَتَرَاهُمْ يَنظُرُونَ إِلَيْكَ ﴾ [الأعراف : ۱۹۸]، اور اس جیسی بہت سی مثالیں ہیں (۶)، اور یہ ان شاء اللہ تعالیٰ آگے آئے گا۔

(۱) اس سورہ کی آیت ۸۸ پر، اس حصے کے صفحہ ۲۴۷ پر۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/ ۲۳۱، اور اس سے پہلے کا کلام، اور مذکورہ آثار طبری نے ۲/ ۷۳۳-۷۳۶ میں نکالے ہیں۔ (۳) ہمیں ان کا قول نہیں ملا، دیکھئے تفسیر طبری ۲/ ۷۳۷۔ (۴) (ز)، (ظ) اور (م) میں: «أبي المنهال»، اور (د) میں: «ابن المنهال»، جو کہ غلط ہے، درستی تخریج کے مصادر سے کی گئی ہے۔ (۵) ابن ماجہ (۴۰۲۱)، اور اسے ابن ابی حاتم نے ۱/ ۲۶۹ میں حسن بن عرفہ کے واسطے سے عمار بن محمد سے تفصیلاً روایت کیا ہے۔ بوصیری نے مصباح الزجاجہ ۴/ ۱۸۷ میں کہا: لیث بن ابی سلیم کے ضعف کی وجہ سے یہ اسناد ضعیف ہے۔ (۶) دیکھئے المحرر الوجیز ۱/ ۲۳۱، مجمع البیان ۲/ ۴۷، اور تفسیر الرازی ۴/ ۱۸۵۔

Surah Al-Baqarah: Verse 160 484

Al-Bara' bin 'Azib and Ibn Abbas said: "The cursers" are all creatures except for the two weights: Jinn and humans(1). This is because the Prophet ﷺ said: "Indeed(2), when a disbeliever is struck in his grave and screams, everyone hears him except the two weights, and every hearer curses him"(3). Ibn Mas'ud and Al-Suddi said: It is a man who curses his companion, so the curse rises to the sky, then descends and finds that the one it was said about is not deserving of it, so it returns to the one who spoke it. If it finds him not deserving, it goes and falls upon the Jews who concealed what Allah Almighty revealed, so it is His saying: {and cursed by those who curse} So whoever among them died, the curse was lifted from him, and it was upon those who remained of the Jews(4).

The Almighty's saying: {Except for those who repent and correct themselves and make evident [what they concealed]. Those - I will accept their repentance, and I am the Accepting of repentance, the Merciful. 160} The Almighty's saying: {Except for those who repent} Allah Almighty exempted the righteous repentant ones in their deeds and words, who return in their repentance. According to our scholars, it is not enough for repentance to merely say: "I have repented," until a change from the first state is apparent in the second. If he was an apostate, he returns to Islam, manifesting its laws. If he was from the people of disobedience, righteous deeds appear from him, and he distances himself from the people of corruption and the conditions he was in. If he was from the people of idols, he avoids them and mixes with the people of Islam, and thus the opposite of what he was upon becomes apparent. The explanation of repentance and its rulings will come in Surah An-Nisa', if Allah Almighty wills(5).

(1) The saying of Al-Bara' was recorded by Al-Tabari 2/736, and the saying of Ibn Abbas was mentioned by Al-Zajjaj in Ma'ani Al-Quran 1/235, and Al-Baghawi 1/134. (2) The word "Indeed" is not in (m). (3) Recorded by Ibn Abi Hatim 1/269 from the Hadith of Al-Bara' bin 'Azib, may Allah be pleased with him, and see Musnad Ahmad (18614). (4) The saying of Ibn Mas'ud was recorded by Al-Bayhaqi in Shu'ab Al-Iman (5192) in a similar manner, and mentioned by Al-Zajjaj in Ma'ani Al-Quran 1/235, Al-Baghawi 1/134, and Al-Mawardi in Al-Nukat wa Al-'Uyun 1/215, and the saying of Al-Suddi was recorded by Al-Tabari 2/742 in a similar manner. (5) At the Almighty's saying: {Repentance with Allah is only for those who...} Verses: 17-18.

सूरह अल-बक़रह: आयत 160 484

अल-बराह बिन आज़िब और इब्न अब्बास ने कहा: "शाप देने वाले" वे सभी प्राणी हैं सिवाय दो समूहों के जिन्न और मनुष्य (1)। ऐसा इसलिए है क्योंकि पैगंबर ﷺ ने कहा: "बेशक (2), जब एक काफ़िर को उसकी कब्र में मारा जाता है और वह चिल्लाता है, तो दो समूहों के अलावा हर कोई उसे सुनता है, और हर सुनने वाला उसे शाप देता है" (3)। इब्न मसूद और अल-सुद्दी ने कहा: यह वह व्यक्ति है जो अपने साथी को शाप देता है, तो शाप आकाश की ओर उठता है, फिर नीचे उतरता है और उस व्यक्ति को जिसे वह कहा गया था, उसके योग्य नहीं पाता है, इसलिए वह उसे बोलने वाले के पास वापस लौट आता है। यदि वह उसे भी योग्य नहीं पाता है, तो वह उन यहूदियों पर जाकर गिरता है जिन्होंने अल्लाह द्वारा अवतरित बात को छुपाया था, जैसा कि उनका कहना है: {और शाप देने वाले उन्हें शाप देते हैं} तो उनमें से जो मर गया, उससे शाप हट गया, और वह उन यहूदियों पर रहा जो बाकी रह गए थे (4)।

अल्लाह का कथन: {सिवाय उन लोगों के जिन्होंने तौबा की और सुधार किया और [जो उन्होंने छुपाया था उसे] स्पष्ट कर दिया। तो वही लोग हैं जिनकी तौबा मैं स्वीकार करता हूँ, और मैं ही तौबा स्वीकार करने वाला, अत्यंत दयालु हूँ। 160} अल्लाह का कथन: {सिवाय उन लोगों के जिन्होंने तौबा की} अल्लाह तआला ने उन नेक तौबा करने वालों को अलग किया है जो अपने कर्मों और वचनों में सुधार करते हैं और अपनी तौबा की ओर लौटते हैं। हमारे विद्वानों के अनुसार, तौबा के लिए केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है: "मैंने तौबा कर ली," जब तक कि उसके दूसरे हाल में पहले के विपरीत परिवर्तन स्पष्ट न हो जाए। यदि वह धर्मत्यागी था, तो वह इस्लाम में लौट आता है और उसके कानूनों को प्रकट करता है। यदि वह अवज्ञाकारी लोगों में से था, तो उससे नेक काम प्रकट होते हैं, और वह भ्रष्टाचार के लोगों और उन स्थितियों से दूर हो जाता है जिनमें वह था। यदि वह मूर्तियों को पूजने वालों में से था, तो वह उनसे बचता है और इस्लाम के लोगों के साथ मिलता-जुलता है, और इस प्रकार वह जिस पर था उसका विपरीत प्रकट हो जाता है। तौबा और उसके नियमों का विवरण सूरह अन-निसा में आएगा, इंशा अल्लाह (5)।

(1) अल-बराह का कथन अल-तबरी 2/736 द्वारा संकलित किया गया है, और इब्न अब्बास का कथन अल-ज़ज्जाज द्वारा 'मआनी अल-कुरान' 1/235 और अल-बग़वी 1/134 में उल्लेख किया गया है। (2) शब्द: "बेशक" (म) में नहीं है। (3) अल-बराह बिन आज़िब रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से इब्न अबी हातिम 1/269 द्वारा संकलित, और मुसनद अहमद (18614) देखें। (4) इब्न मसूद का कथन अल-

बैहकी ने 'शुअब अल-ईमान' (5192) में इसी तरह संकलित किया है और अल-ज़ज्जाज ने 'मआनी अल-कुरान' 1/235, अल-बग़वी 1/134 और अल-मावर्दी ने 'अल-नुकात व अल-उयून' 1/215 में उल्लेख किया है, और अल-सुद्दी का कथन अल-तबरी 2/742 द्वारा इसी तरह संकलित किया गया है।
(5) अल्लाह के कथन पर: {अल्लाह के यहाँ तौबा केवल उन लोगों के लिए है जो...} आयत: 17-18।

سورہ البقرہ: آیت 160 484

البراء بن عازب اور ابن عباس نے کہا: "لعنت کرنے والے" تمام مخلوقات ہیں سوائے ثقلین کے: جن اور انس (1)۔ یہ اس لیے ہے کہ نبی ﷺ نے فرمایا: "بیشک (2) کافر جب اپنی قبر میں مارا جاتا ہے اور وہ چیختا ہے، تو ثقلین کے سوا ہر کوئی اسے سنتا ہے، اور ہر سننے والا اس پر لعنت کرتا ہے" (3)۔ ابن مسعود اور السدی نے کہا: یہ وہ آدمی ہے جو اپنے ساتھی پر لعنت کرتا ہے، تو لعنت آسمان کی طرف بلند ہوتی ہے، پھر نیچے اترتی ہے اور اس شخص کو جس کے بارے میں کہی گئی تھی اس کا اہل نہیں پاتی، تو وہ اس شخص کی طرف لوٹ آتی ہے جس نے اسے کہا تھا۔ اگر وہ اسے بھی اہل نہیں پاتی، تو وہ ان یہودیوں پر جا پڑتی ہے جنہوں نے اللہ تعالیٰ کی نازل کردہ باتوں کو چھپایا تھا، جیسا کہ اس کا فرمان ہے: ﴿وَيَلْعَنُهُمُ اللَّاعِنُونَ﴾ چنانچہ ان میں سے جو مر گیا، اس سے لعنت اٹھ گئی، تو وہ ان یہودیوں میں رہی جو باقی رہ گئے تھے (4)۔

اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا وَأَصْلَحُوا وَبَيَّنُوا فَأُوْلَٰئِكَ أَتُوبُ عَلَيْهِمْ وَأَنَا التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ١٦٠﴾ اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا﴾ اللہ تعالیٰ نے ان نیک توبہ کرنے والوں کو مستثنیٰ قرار دیا جو اپنے اعمال اور اقوال میں اصلاح کرتے ہیں اور اپنی توبہ کی طرف رجوع کرتے ہیں۔ ہمارے علماء کے نزدیک توبہ میں صرف کہنے والے کا یہ قول کافی نہیں ہے: "میں نے توبہ کر لی،" یہاں تک کہ اس کی دوسری حالت میں پہلی کے خلاف ظاہر نہ ہو جائے۔ پس اگر وہ مرتد تھا تو وہ اسلام کی طرف لوٹ آئے اور اس کے شعائر کو ظاہر کرے، اور اگر وہ گناہ گاروں میں سے تھا، تو اس سے نیک عمل ظاہر ہو، اور وہ اہل فساد اور ان حالات سے کنارہ کش ہو جائے جن پر وہ تھا۔ اور اگر وہ بت پرستوں میں سے تھا، تو ان سے الگ ہو جائے اور اہل اسلام کے ساتھ میل جول رکھے، اور

اس طرح اس کی سابقہ حالت کا عکس ظاہر ہو جائے۔ اور توبہ اور اس کے احکام کا بیان "النساء" میں آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (5)۔

(1) البراء کا قول طبری 2/736 نے نقل کیا ہے، اور ابن عباس کا قول زجاج نے معانی القرآن 1/235 اور بغوی 1/134 میں ذکر کیا ہے۔ (2) لفظ "إنَّ" (م) میں نہیں ہے۔ (3) اسے ابن ابی حاتم 1/269 نے البراء بن عازب رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور دیکھئے مسند احمد (18614)۔ (4) ابن مسعود کا قول بیہقی نے شعب الایمان (5192) میں اسی طرح روایت کیا ہے اور اسے زجاج نے معانی القرآن 1/235، بغوی 1/134 اور ماوردی نے النکت والعیون 1/215 میں ذکر کیا ہے، اور سدی کا قول طبری 2/742 نے اسی طرح روایت کیا ہے۔ (5) اللہ تعالیٰ کے اس ارشاد کے پاس: ﴿إِنَّمَا التَّوْبَةُ عَلَى اللَّهِ لِلَّذِينَ﴾ آیت: 17-18۔

485 Surah Al-Baqarah: Verses 161, 162

Some scholars said regarding His saying: {and made clear}: meaning: by breaking the wine vessels and spilling it. And it was said: "made clear" means what is in the Torah regarding the prophethood of Muhammad ﷺ and the obligation of following him(1), and generality is more appropriate according to what we have explained, meaning: they made clear the opposite of what they were upon, and Allah Almighty knows best. {For those, I will accept their repentance, and I am the Accepter of Repentance, the Merciful} has been mentioned previously, praise be to Allah(2).

His saying Almighty: {Indeed, those who disbelieve and die while they are disbelievers - upon them is the curse of Allah and of the angels and of the people, all together [161] Abiding eternally therein. The punishment will not be lightened for them, nor will they be reprieved [162]}

There are three issues in it: The first: His saying Almighty: {and they are disbelievers} the waw is the waw of the state (waw al-hal). Ibn al-Arabi said(3): Many of my teachers told me: It is not permissible to curse a specific disbeliever, because his state at the time of death is not known. Allah Almighty has stipulated in this verse for the absolute release of the curse that one meets death upon disbelief. As for what was narrated from the Prophet ﷺ that he cursed specific groups of disbelievers(4), that was only because of his knowledge of their outcome. Ibn al-Arabi said: The correct view in my opinion is the permissibility of cursing him due to the outward appearance of his state and the permissibility of killing and fighting him. It has been narrated from the Prophet ﷺ that he said: "O Allah, indeed 'Amr ibn al-'As satirized me though he knew I am not a poet, so curse him and satirize him according to the number of times he satirized me"(5). So he cursed him even though faith, religion, and Islam were his outcome. He sought justice by saying: "according to the number of times he satirized me," and did not exceed it, so that justice and fairness might be known.

(1) Al-Nukat wal-'Uyun 1/214. (2) 1/483. (3) In Ahkam al-Qur'an 1/50. (4) Among them: what was narrated by Ahmad (5674), and al-Bukhari (4069) from the hadith of Ibn 'Umar, who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ say: O Allah, curse so-and-so, O Allah, curse al-Harith ibn Hisham... And see also the hadith of Abu Hurayrah in al-Bukhari (4560), and Muslim (675). (5) Narrated by Ibn Abi Hatim in al-'Ilal 2/344 via 'Adi ibn Thabit from al-Bara' ibn 'Azib. Ibn Abi Hatim said: My father said: This is an error; they only narrate it from 'Adi from the Prophet ﷺ as a mursal report. It was

also narrated by Ibn Abi Hatim in al-'Ilal 2/344 from the hadith of Hudhayfah (may Allah be pleased with him). In its chain is Jabir al-Ju'fi, who is weak as in al-Taqrib p. 76.

४८५ सूरा अल-बकरा: आयतें १६१, १६२

कुछ विद्वानों ने उनके इस कथन के बारे में कहा: {और स्पष्ट किया}: यानी: शराब (के बर्तनों) को तोड़ने और उसे बहाने के द्वारा। और कहा गया: "स्पष्ट किया" का अर्थ है वह जो तौरात में मुहम्मद ﷺ की नबूवत और उनके अनुसरण की अनिवार्यता के बारे में है (१), और व्यापकता अधिक उपयुक्त है जैसा कि हमने स्पष्ट किया है, अर्थात: उन्होंने उसके विपरीत स्पष्ट किया जिस पर वे थे, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे अच्छा जानता है। {तो वे वही हैं जिनकी तौबा मैं स्वीकार करता हूँ, और मैं ही तौबा स्वीकार करने वाला, अत्यंत दयावान हूँ} पहले आ चुका है, और अल्लाह की प्रशंसा है (२)।

अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {निस्संदेह, जो लोग काफ़िर हुए और काफ़िर होने की स्थिति में ही मर गए - उन्हीं पर अल्लाह, फ़रिश्तों और सभी मनुष्यों की लानत है [१६१] वे उसमें सदैव रहेंगे। न तो उनसे अज़ाब हल्का किया जाएगा और न ही उन्हें मोहलत दी जाएगी [१६२]}

इसमें तीन मसले हैं: पहला: अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {और वे काफ़िर हैं} यहाँ 'वाव' हाल (स्थिति) का 'वाव' है। इब्न अल-अरबी ने कहा (३): मेरे कई उस्तादों ने मुझसे कहा: किसी विशिष्ट काफ़िर पर लानत करना जायज़ नहीं है, क्योंकि मौत के समय उसकी स्थिति ज्ञात नहीं होती है। अल्लाह सर्वशक्तिमान ने इस आयत में लानत को सामान्य रूप से लागू करने के लिए कुफ्र (अविश्वास) पर मृत्यु की शर्त रखी है। जहाँ तक नबी ﷺ से वर्णित है कि उन्होंने काफ़िरों के कुछ विशिष्ट समूहों पर लानत की (४), तो वह केवल उनके अंत के बारे में उनके ज्ञान के कारण था। इब्न अल-अरबी ने कहा: मेरे अनुसार सही बात यह है कि उसकी ज़ाहिरी हालत के कारण और उसे मारने और उससे लड़ने की अनुमति के कारण उस पर लानत करना जायज़ है। और नबी ﷺ से वर्णित है कि उन्होंने कहा: "ऐ अल्लाह, वास्तव में अम्र इब्न अल-आस ने मेरा उपहास किया जबकि वह जानता था कि मैं कोई कवि नहीं हूँ, इसलिए उस पर लानत कर और उसका उसी संख्या में उपहास कर जितनी बार उसने मेरा उपहास किया" (५)। तो उन्होंने उन पर लानत की भले ही उनका परिणाम ईमान, दीन और इस्लाम था। और उन्होंने अपने इस कथन से न्याय किया: "जितनी बार उसने मेरा उपहास किया", और इससे अधिक नहीं किया, ताकि न्याय और निष्पक्षता जानी जा सके।

(१) अल-नुकात वल-उयून १/२१४। (२) १/४८३। (३) अहकाम अल-क़ुरान १/५० में। (४) उनमें से: जिसे अहमद (५६७४) और बुखारी (४०६९) ने इब्न उमर की हदीस से निकाला है, उन्होंने कहा: मैंने

अल्लाह के रसूल ﷺ को यह कहते सुना: ऐ अल्लाह, फलां पर लानत कर, ऐ अल्लाह, हारिस इब्न हिशाम पर लानत कर... और बुखारी (४५६०) और मुस्लिम (६७५) में अबू हुरैरा की हदीस भी देखें। (५) इसे इब्न अबी हातिम ने 'अल-इलाल' २/३४४ में अदी इब्न साबित के माध्यम से अल-बारा इब्न आज़िब से उद्धृत किया है। इब्न अबी हातिम ने कहा: मेरे पिता ने कहा: यह गलत है, वे इसे केवल अदी से नबी ﷺ के माध्यम से मुरसल (बिना सहाबी के नाम के) के रूप में वर्णित करते हैं। इसे इब्न अबी हातिम ने 'अल-इलाल' २/३४४ में हुजैफ़ा (रज़िअल्लाहु अन्हु) की हदीस से भी उद्धृत किया है। इसकी इसनाद में जाबिर अल-जुफ़ी है, जो 'अल-तक़रीब' पृष्ठ ७६ के अनुसार कमज़ोर (ज़ईफ़) है।

٤٨٥ سورة البقرہ: آیات ١٦١ ، ١٦٢

بعض علماء نے اللہ تعالیٰ کے اس قول: ﴿وَبَيَّنُوا﴾ کے بارے میں کہا: یعنی شراب کے برتن توڑنے اور اسے بہانے کے ذریعے۔ اور کہا گیا: "بیان کیا" سے مراد تورات میں محمد ﷺ کی نبوت اور آپ کی پیروی کے وجوب کے بارے میں جو کچھ ہے (١)، اور عموم زیادہ بہتر ہے جیسا کہ ہم نے بیان کیا ہے، یعنی: انہوں نے اس کے برعکس بیان کیا جس پر وہ تھے، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ ﴿تو یہی وہ لوگ ہیں جن کی توبہ میں قبول کرتا ہوں اور میں ہی توبہ قبول کرنے والا، نہایت رحم والا ہوں﴾ یہ پہلے گزر چکا ہے اور الحمد للہ (٢)۔

اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿بے شک جو لوگ کافر ہوئے اور کفر کی حالت میں ہی مر گئے، انہی پر اللہ، فرشتوں اور تمام انسانوں کی لعنت ہے [١٦١] وہ ہمیشہ اس میں رہیں گے، ان سے عذاب ہلکا نہیں کیا جائے گا اور نہ ہی انہیں مہلت دی جائے گی [١٦٢]﴾

اس میں تین مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا قول: ﴿وَهُمْ كُفَّارٌ﴾ میں واؤ 'واؤ حال' ہے۔ ابن العربی (٣) نے کہا: میرے بہت سے اساتذہ نے مجھ سے کہا: کسی معین (مخصوص) کافر پر لعنت کرنا جائز نہیں ہے، کیونکہ وفات کے وقت اس کی حالت معلوم نہیں ہوتی۔ اللہ تعالیٰ نے اس آیت میں لعنت کے اطلاق کے لیے کفر پر وفات کی شرط رکھی ہے، جہاں تک نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے کافروں کے کچھ معین گروہوں پر لعنت کی (٤)، تو وہ آپ کے ان کے انجام کے بارے میں علم کی وجہ سے تھا۔ ابن العربی نے کہا: میرے نزدیک صحیح بات یہ ہے کہ اس کی ظاہری حالت کی وجہ سے اور اسے قتل کرنے اور اس سے لڑنے کے جواز کی وجہ سے اس پر لعنت کرنا جائز ہے۔ اور نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے فرمایا: "اے اللہ، بیشک عمرو بن العاص نے میری ہجو کی حالانکہ وہ جانتا تھا کہ میں شاعر نہیں ہوں، پس اس پر لعنت کر اور اس کی اتنی ہی ہجو کر

جتنی اس نے میری کی" (٥)۔ پس آپ نے ان پر لعنت کی حالانکہ ایمان، دین اور اسلام ان کا انجام تھا۔ اور آپ نے اپنے اس قول سے انصاف کیا: "جتنی اس نے میری ہجو کی"، اور اس سے زیادہ نہیں کیا، تاکہ عدل و انصاف معلوم ہو سکے۔

(١) النکت والعیون ٢١٤/١۔ (٢) ٤٨٣/١۔ (٣) احکام القرآن ٥٠/١ میں۔ (٤) ان میں سے: جسے احمد (٥٦٧٤) اور بخاری (٤٠٦٩) نے ابن عمر کی حدیث سے روایت کیا ہے، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے سنا: اے اللہ، فلاں پر لعنت کر، اے اللہ، حارث بن ہشام پر لعنت کر... اور بخاری (٤٥٦٠) اور مسلم (٦٧٥) میں ابوہریرہ کی حدیث بھی دیکھیں۔ (٥) اسے ابن ابی حاتم نے العلل ٣٤٤/٢ میں عدی بن ثابت کے طریق سے براء بن عازب سے روایت کیا ہے۔ ابن ابی حاتم نے کہا: میرے والد نے کہا: یہ غلط ہے، وہ اسے صرف عدی سے نبی ﷺ سے مرسل روایت کرتے ہیں۔ اور اسے ابن ابی حاتم نے العلل ٣٤٤/٢ میں حذیفہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے بھی روایت کیا ہے۔ اس کی سند میں جابر الجعفی ہے، جو تقریب ص٧٦ کے مطابق ضعیف ہے۔

He attributed mockery to Allah Almighty in the context of recompense, rather than initiation with such a description, just as plotting, mockery, and deception are attributed to Him. Glorified and Exalted is He far above what the wrongdoers say. I said: As for cursing the disbelievers in general without specifying individuals, there is no disagreement on that, according to what Malik narrated from Dawood bin Al-Husain that he heard Al-A'raj saying: "I did not find the people except that they were cursing the disbelievers in Ramadan."(1) Our scholars said: Whether they have a covenant of protection (dhimma) or not, it is not obligatory, but it is permissible for whoever does it, because of their rejection of the truth and their enmity toward the religion and its people. Likewise, everyone who openly commits sins, such as drinkers of wine, consumers of usury, women who imitate men, and men who imitate women, and others mentioned in the hadiths as being cursed. Second: Cursing the disbeliever is not by way of deterring him from (2) disbelief, but rather it is a recompense for disbelief and to manifest the ugliness of his disbelief, whether the disbeliever is dead or insane. A group of the Salaf said: There is no benefit in cursing those among them who are insane or dead, neither by way of recompense nor by way of deterrence, as they are not affected by it. The meaning of the verse according to this view is that people will curse them on the Day of Resurrection so that they may be affected by it, harmed, and their hearts pained, so that it becomes a recompense for their disbelief, as the Almighty said: {Then on the Day of Resurrection you will deny one another and curse one another} [Al-Ankabut: 25]. This view is supported by the fact that the verse indicates reporting from Allah Almighty about His cursing them, not a command. Ibn al-Arabi mentioned (3) that cursing a specific sinner is not permissible by consensus, due to what was narrated from the Prophet ﷺ that a wine drinker was brought to him several times, and some of those present said: "May Allah curse him, how often he is brought!" So the Prophet ﷺ said: "Do not be Satan's helpers against your brother." Thus, he established for him the sanctity of brotherhood, and this necessitates compassion, and this is a sahih (authentic) hadith.

(1) Al-Muwatta 1/115, and it was also narrated by Abd al-Razzaq in Al-Musannaf (7734), and Al-Bayhaqi 2/497. (2) In (z) and (z): "upon". (3) In Ahkam al-Quran 1/50.

४८६ सूरह अल-बकरा: आयत १६१, १६२

और उन्होंने अल्लाह तआला की ओर मज़ाक (इस्तेहज़ा) का श्रेय प्रतिफल के अध्याय में दिया है न कि इस गुण के साथ आरंभ करने में, जैसे कि उसकी ओर चाल (मक्र), मज़ाक और धोखे का श्रेय दिया जाता है। वह पवित्र है और उन बातों से बहुत ऊँचा है जो ज़ालिम कहते हैं। मैंने कहा: जहाँ तक बिना किसी विशेष पहचान के सामान्य रूप से काफ़िरों पर लानत करने की बात है, तो इसमें कोई मतभेद नहीं है, क्योंकि इमाम मालिक ने दाऊद बिन अल-हुसैन से रिवायत की है कि उन्होंने अल-आरज को यह कहते हुए सुना: "मैंने लोगों को इसी हाल में पाया कि वे रमज़ान में काफ़िरों पर लानत करते थे।" (१) हमारे विद्वानों ने कहा: चाहे वे ज़िम्मी हों या न हों, यह अनिवार्य नहीं है, बल्कि ऐसा करने वाले के लिए वैध (मुबाह) है, क्योंकि उन्होंने सत्य को झुठलाया और धर्म तथा धर्म के लोगों से शत्रुता की। इसी प्रकार हर वह व्यक्ति जो खुलेआम पाप करता है, जैसे शराब पीने वाले, ब्याज खाने वाले, और वे महिलाएँ जो पुरुषों की नकल करती हैं और वे पुरुष जो महिलाओं की नकल करते हैं, और अन्य जिनके बारे में हदीसों में लानत आई है। दूसरा: काफ़िर पर लानत करना उसे कुफ़्र से (२) रोकने के तरीके के रूप में नहीं है, बल्कि यह कुफ़्र का बदला है और उसके कुफ़्र की बुराई को प्रकट करना है, चाहे काफ़िर मर चुका हो या पागल हो। सलफ़ के एक समूह ने कहा: उनके बीच जो पागल हैं या मर चुके हैं, उन पर लानत करने का कोई लाभ नहीं है, न तो प्रतिफल के रूप में और न ही रोकने के रूप में, क्योंकि वे इससे प्रभावित नहीं होते। और इस अर्थ के आधार पर आयत का उद्देश्य यह है कि लोग क़ियामत के दिन उन पर लानत करेंगे ताकि वे उससे प्रभावित हों, उन्हें नुकसान पहुँचे और उनके दिल को पीड़ा हो, तो यह उनके कुफ़्र का बदला होगा, जैसा कि अल्लाह तआला ने फरमाया: {फिर क़ियामत के दिन तुममें से कुछ कुछ का इनकार करेंगे और कुछ कुछ पर लानत करेंगे} [अल-अंकबूत: २५]। और यह कथन इस बात का संकेत देता है कि आयत अल्लाह तआला की ओर से उन पर लानत की खबर देने पर आधारित है, न कि आदेश पर। और इब्न अल-अरबी ने उल्लेख किया (३) कि किसी विशेष पापी (आसी) पर लानत करना सर्वसम्मति से जायज़ नहीं है, उस रिवायत के कारण जो नबी ﷺ से मरुवी है कि उनके पास एक शराब पीने वाले को कई बार लाया गया, तो वहाँ मौजूद किसी व्यक्ति ने कहा: अल्लाह उस पर लानत करे, इसे कितनी बार लाया जाता है! तो नबी ﷺ ने फरमाया: "तुम अपने भाई के खिलाफ शैतान के मददगार न बनो।" इस प्रकार उन्होंने उसके लिए भाईचारे की पवित्रता बनाए रखी, और यह दया (शफक़त) को अनिवार्य बनाता है, और यह एक सही हदीस है।

(१) अल-मुवत्ता १/११५, और इसे अब्द अल-रज्जाक ने अल-मुसन्नफ (७७३४) में और अल-बैहकी ने २/४९७ में भी उद्धृत किया है। (२) (ज़) और (ज़) में: "अ़ला" (पर) है। (३) अहकाम अल-क़ुरआन १/५० में।

٤٨٦ سورة البقرہ: آیات ١٦١، ١٦٢

اور اللہ تعالیٰ کی طرف استہزاء (مذاق) کی نسبت جزا کے باب میں کی گئی ہے نہ کہ وصف کے طور پر ابتدا کرتے ہوئے، جیسا کہ اس کی طرف مکر، استہزاء اور دھوکہ دہی کی نسبت کی جاتی ہے۔ وہ پاک ہے اور ان باتوں سے بہت بلند ہے جو ظالم کہتے ہیں۔ میں نے کہا: جہاں تک کفار پر عمومی طور پر لعنت کرنے کا تعلق ہے بغیر کسی خاص تعین کے، تو اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے، کیونکہ امام مالک نے داؤد بن الحسین سے روایت کیا ہے کہ انہوں نے الاعرج کو یہ کہتے ہوئے سنا: "میں نے لوگوں کو نہیں پایا مگر وہ رمضان میں کفار پر لعنت کرتے تھے۔"(١) ہمارے علماء نے کہا: خواہ وہ ذمی ہوں یا نہ ہوں، یہ واجب نہیں ہے، بلکہ ایسا کرنے والے کے لیے مباح (جائز) ہے، کیونکہ انہوں نے حق کا انکار کیا اور دین اور اہل دین سے دشمنی کی، اور اسی طرح ہر وہ شخص جو کھلم کھلا گناہوں کا ارتکاب کرے، جیسے شراب پینے والے، سود کھانے والے، اور وہ عورتیں جو مردوں کی مشابہت اختیار کریں اور وہ مرد جو عورتوں کی مشابہت اختیار کریں، اور ان کے علاوہ جن پر لعنت احادیث میں وارد ہوئی ہے۔ دوسری بات: کافر پر لعنت کرنا اسے کفر سے (٢) روکنے کے طریقے کے طور پر نہیں ہے، بلکہ یہ کفر کی جزا اور اس کے کفر کی قباحت کو ظاہر کرنے کے لیے ہے، خواہ کافر مردہ ہو یا مجنوں۔ سلف کی ایک جماعت نے کہا: ان میں سے جو مجنون ہو یا مر گیا ہو، اس پر لعنت کرنے کا کوئی فائدہ نہیں، نہ جزا کے طور پر اور نہ ہی روکنے کے طور پر، کیونکہ وہ اس سے متاثر نہیں ہوتا۔ اور اس معنی کی بنیاد پر آیت کا مقصود یہ ہے کہ لوگ قیامت کے دن ان پر لعنت کریں گے تاکہ وہ اس سے متاثر ہوں، انہیں نقصان پہنچے اور ان کے دلوں کو تکلیف ہو، تو یہ ان کے کفر کی جزا ہوگی، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿پھر قیامت کے دن تم میں سے بعض بعض کا انکار کریں گے اور بعض بعض پر

لعنت کریں گے﴾ [العنکبوت: ۲۵]۔ اور یہ قول اس بات پر دلالت کرتا ہے کہ آیت اللہ تعالیٰ کی طرف سے ان پر لعنت کی خبر دینے پر دلالت کر رہی ہے، نہ کہ حکم پر۔ اور ابن العربی نے ذکر کیا (۳) کہ معین (خاص) گنہگار پر لعنت کرنا اتفاقی طور پر جائز نہیں ہے، اس کی وجہ وہ روایت ہے جو نبی کریم ﷺ سے مروی ہے کہ آپ کے پاس ایک شراب پینے والے کو کئی بار لایا گیا، تو حاضرین میں سے کسی نے کہا: اللہ اس پر لعنت کرے، یہ کتنا زیادہ لایا جاتا ہے! تو نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "تم اپنے بھائی کے خلاف شیطان کے مددگار نہ بنو۔" پس آپ ﷺ نے اس کے لیے اخوت کی حرمت کو برقرار رکھا، اور یہ شفقت کو واجب کرتی ہے، اور یہ ایک صحیح حدیث ہے۔

(۱) الموطأ ۱۱۵/۱، اور اسے عبدالرزاق نے المصنف (۷۷۳۴) میں اور بیہقی نے ۴۹۷/۲ میں بھی روایت کیا ہے۔ (۲) نسخہ (ز) اور (ظ) میں: "علی" (پر) ہے۔ (۳) احکام القرآن ۱/۵۰ میں۔

Surah Al-Baqarah: Verses 161, 162. Page 487.

I say: It was narrated by Al-Bukhari and Muslim (1). Some scholars mentioned a disagreement regarding cursing a specific sinner.

He said: The Prophet (peace be upon him) only said: "Do not be the Devil's helpers against your brother" regarding Nu'ayman (2) after the legal punishment (hadd) was carried out upon him. Whoever has had Allah's legal punishment established upon him, it is not appropriate to curse him. And whoever has not had the legal punishment established upon him, then cursing him is permissible, whether he is named or identified or not; because the Prophet (peace be upon him) does not curse except someone upon whom a curse is mandatory as long as he remains in that state necessitating the curse. If he repents from it, desists, and is purified by the legal punishment, then no curse is directed at him (3). This is clarified by his saying (peace be upon him): "If the slave-girl of one of you commits adultery, let him lash her with the legal punishment and not reproach her" (4). This hadith, along with its authenticity, indicates that reproaching and cursing only occur before the legal punishment is taken and before repentance, and Allah Almighty knows best.

Ibn al-Arabi (5) said: As for cursing sinners in general, it is permissible by consensus, due to what was narrated from the Prophet (peace be upon him) that he said: "May Allah curse the thief who steals an egg and his hand is cut off" (6).

Third: Allah's saying: {They are the ones upon whom is the curse of Allah, the angels, and all people} means: their distancing from His mercy. The root of the word 'la'n' (curse) is: expulsion and distancing, as mentioned previously (7). Thus, cursing from servants is expulsion; and from Allah, it is punishment.

Al-Hasan al-Basri read: "wal-mala'ikatu wan-nasu ajma'un" (and the angels and all people) in the nominative case. Its interpretation is: those ones, their reward is that Allah curses them, the angels curse them, and all people curse them, just as you say: I hated...

(1) Al-Bukhari (6780) from the hadith of Umar ibn al-Khattab, and (6781) from the hadith of Abu Hurayrah, and Muslim (1706) narrated similar from Anas ibn Malik (may Allah be pleased with them). (2) He is the son of Umar ibn Rifa'ah al-Ansari, he witnessed al-'Aqaba, Badr, Uhud, al-Khandaq, and all the scenes, he died during the caliphate of Mu'awiyah. Al-Isabah 1/181. (3) See al-Mufhim 5/74, where he mentioned this opinion and refuted it. (4) Narrated by Ahmad (7395), Al-Bukhari (2234), and

Muslim (1703) from the hadith of Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him). His saying: "do not reproach" means: do not scold or rebuke for adultery after the flogging. It is also said: he meant do not settle for reproaching as her punishment, but rather strike her with the legal punishment. Al-Nihayah (Tharb). (5) Ahkam al-Qur'an 1/50. (6) Narrated by Ahmad (7436), Al-Bukhari (6783), and Muslim (1687) from the hadith of Abu Hurayrah (may Allah be pleased with him). (7) 2/247.

सूरह अल-बकराह: आयतें 161, 162। पृष्ठ 487।

मैंने कहा: इसे अल-बुखारी और मुस्लिम ने उल्लेखित किया है (1)। कुछ विद्वानों ने एक विशिष्ट पापी को अभिशाप देने के संबंध में मतभेद का उल्लेख किया है।

उन्होंने कहा: पैगंबर (उन पर शांति हो) ने नुमान (2) के बारे में कानूनी सजा (हद) लागू होने के बाद केवल इतना कहा था: "अपने भाई के खिलाफ शैतान के मददगार मत बनो"। जिस किसी पर अल्लाह की कानूनी सजा स्थापित हो गई है, उसे अभिशाप देना उचित नहीं है। और जिस पर कानूनी सजा स्थापित नहीं हुई है, उसे अभिशाप देना जायज है, चाहे उसका नाम लिया गया हो या उसकी पहचान की गई हो या नहीं; क्योंकि पैगंबर (उन पर शांति हो) केवल उसी को अभिशाप देते हैं जिस पर अभिशाप अनिवार्य है जब तक वह उस स्थिति में रहता है जो अभिशाप का कारण बनती है। यदि वह उससे तौबा (पश्चाताप) कर लेता है, रुक जाता है, और कानूनी सजा से पवित्र हो जाता है, तो उस पर कोई अभिशाप नहीं लगाया जाता (3)। यह उनके इस कथन (उन पर शांति हो) से स्पष्ट होता है: "यदि तुम में से किसी की लौंडी व्यभिचार करती है, तो उसे कानूनी सजा के रूप में कोड़े मारो और उसे धिक्कारो मत" (4)। यह हदीस, अपनी प्रमाणिकता के साथ, संकेत देती है कि धिक्कारना और अभिशाप देना केवल कानूनी सजा मिलने और तौबा करने से पहले होता है, और अल्लाह सर्वशक्तिमान सबसे बेहतर जानता है।

इब्न अल-अरबी (5) ने कहा: जहाँ तक सामान्य तौर पर पापियों को अभिशाप देने की बात है, तो यह सर्वसम्मति से जायज है, क्योंकि पैगंबर (उन पर शांति हो) से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "अल्लाह उस चोर पर लानत करे जो अंडा चुराता है और उसका हाथ काट दिया जाता है" (6)।

तीसरा: अल्लाह का कथन: {उन्हीं पर अल्लाह, फरिश्तों और तमाम इंसानों की लानत है} का अर्थ है: उन्हें अपनी दया से दूर करना। 'लानत' (अभिशाप) शब्द का मूल अर्थ है: निष्कासन और दूरी, जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है (7)। इस प्रकार, बंदों की ओर से लानत का अर्थ निष्कासन है; और अल्लाह की ओर से, यह सजा है।

अल-हसन अल-बसरी ने इसे "वल-मलईकतु वन-नासु अजमऊन" (और फरिश्ते और सभी लोग) प्रथमा विभक्ति (रफ़) में पढ़ा। इसकी व्याख्या यह है: वे लोग, उनका बदला यह है कि अल्लाह उन पर लानत करता है, फरिश्ते उन पर लानत करते हैं, और सभी लोग उन पर लानत करते हैं, जैसे आप कहते हैं: मुझे नफरत थी...

(1) अल-बुखारी (6780) उमर इब्न अल-खत्ताब की हदीस से, और (6781) अबू हुरैरा की हदीस से, और मुस्लिम (1706) ने अनस इब्न मलिक (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) से इसी तरह का उल्लेख किया है। (2) वह उमर इब्न रिफाआ अल-अंसारी के पुत्र हैं, वह अल-अकाबा, बद्र, उहुद, अल-खंदक और सभी दृश्यों के गवाह थे, उनकी मृत्यु मुआविया के खिलाफत के दौरान हुई थी। अल-इसाबा 1/181। (3) अल-मुफिम 5/74 देखें, जहाँ उन्होंने इस राय का उल्लेख किया है और इसका खंडन किया है। (4) इसे अहमद (7395), अल-बुखारी (2234), और मुस्लिम (1703) ने अबू हुरैरा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उल्लेखित किया है। उनका कहना: "धिक्कारो मत" का अर्थ है: कोड़े मारने के बाद व्यभिचार के लिए डांटना या फटकारना नहीं। यह भी कहा गया है: उनका मतलब था कि उसकी सजा के रूप में केवल धिक्कारने पर ही संतोष न करें, बल्कि उसे कानूनी सजा दें। अल-निहाया (थर्ब)। (5) अहकाम अल-कुरान 1/50। (6) इसे अहमद (7436), अल-बुखारी (6783), और मुस्लिम (1687) ने अबू हुरैरा (अल्लाह उन पर प्रसन्न हो) की हदीस से उल्लेखित किया है। (7) 2/247।

سورہ البقرہ: آیات 161، 162۔ صفحہ 487۔

میں نے کہا: اسے بخاری اور مسلم نے روایت کیا ہے (1)۔ اور بعض علماء نے معین (خاص) گنہگار پر لعنت کرنے کے بارے میں اختلاف کا ذکر کیا ہے۔

کہا: آپ ﷺ نے نعیمان (2) کے حق میں حد قائم ہونے کے بعد صرف یہ فرمایا تھا: "اپنے بھائی کے خلاف شیطان کے مددگار نہ بنو"۔ اور جس پر اللہ تعالیٰ کی حد قائم کر دی جائے، اسے لعنت کرنا مناسب نہیں ہے، اور جس پر حد قائم نہ کی گئی ہو تو اس پر لعنت جائز ہے خواہ اس کا نام لیا گیا ہو یا اسے معین کیا گیا ہو یا نہ کیا گیا ہو؛ کیونکہ نبی ﷺ صرف اس پر لعنت کرتے ہیں جس پر لعنت واجب ہو جب تک وہ اس لعنت کو واجب کرنے والی حالت پر قائم رہے۔ پس جب وہ اس سے توبہ کر لے اور باز آ جائے اور حد اسے پاک کر دے، تو اس پر کوئی لعنت متوجہ نہیں ہوتی (3)۔ اور آپ ﷺ کے اس قول نے اسے واضح کر دیا: "جب تم میں سے کسی کی لونڈی زنا کرے تو اسے حد (کوڑے) لگائے اور اسے ملامت نہ کرے" (4)۔ پس یہ حدیث اپنی صحت کے ساتھ اس بات پر دلالت کرتی ہے کہ ملامت اور لعنت صرف حد لینے اور توبہ سے پہلے ہوتی ہے، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔

ابن العربی (5) نے کہا: اور رہا علی الاطلاق گنہگار پر لعنت کرنا، تو وہ بالاتفاق جائز ہے، اس وجہ سے جو نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "اللہ اس چور پر لعنت کرے جو انڈا چراتا ہے تو اس کا ہاتھ کاٹ دیا جاتا ہے" (6)۔

تیسری بات: اللہ تعالیٰ کا قول: {انہی پر اللہ، فرشتوں اور تمام انسانوں کی لعنت ہے} یعنی: انہیں اپنی رحمت سے دور کرنا۔ اور لعنت کی اصل: دھتکارنا اور دور کرنا ہے، اور یہ پہلے گزر چکا ہے (7)۔ پس بندوں کی طرف سے لعنت: دھتکارنا ہے؛ اور اللہ کی طرف سے: عذاب ہے۔

اور حسن بصری نے: "والملائكةُ والناسُ أجمعون" (اور فرشتے اور سب لوگ) رفع (پیش) کے ساتھ پڑھا ہے۔ اور اس کی تاویل یہ ہے: وہ لوگ، ان کا بدلہ یہ ہے کہ اللہ ان پر لعنت کرتا ہے اور فرشتے ان پر لعنت کرتے ہیں اور سب لوگ ان پر لعنت کرتے ہیں، جیسا کہ آپ کہتے ہیں: میں نے ناپسند کیا...

(1) بخاری (6780) عمر بن الخطاب کی حدیث سے، اور (6781) ابوہریرہ کی حدیث سے، اور مسلم (1706) نے اسی طرح کی روایت انس بن مالک رضی اللہ عنہم سے کی ہے۔ (2) وہ ابن عمر بن رفاعہ الانصاری ہیں، وہ عقبہ، بدر، احد، خندق اور تمام مشاہد (جنگوں) میں حاضر ہوئے، ان کی وفات معاویہ کی خلافت میں ہوئی۔ الاصابہ 1/181۔ (3) دیکھئے المفہم 5/74، جہاں اس قول کا ذکر کر کے اسے رد کیا گیا ہے۔ (4) اسے احمد (7395)، بخاری (2234)، اور مسلم (1703) نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ آپ کا قول: "ملامت نہ کرے" یعنی: کوڑے مارنے کے بعد زنا کی وجہ سے اسے عار نہ دلائے اور نہ جھڑکے، اور کہا گیا ہے: مراد یہ ہے کہ اس کی سزا میں صرف ملامت پر اکتفا نہ کرے بلکہ اسے حد مارے۔ النہایہ (ثرب)۔ (5) احکام القرآن 1/50۔ (6) اسے احمد (7436)، بخاری (6783)، اور مسلم (1687) نے ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے روایت کیا ہے۔ (7) 2/247۔

488 Surah Al-Baqarah: Verse 163

...the standing of Zayd, Amr, and Khalid, because the meaning is: I disliked that Zayd stood (1). This recitation by Al-Hasan is contrary to the Mushafs (2). If it is asked: Not all people curse them because their own people do not curse them, it is said: there are three answers to this: First: That the curse from most people is referred to as the curse of "all" (3) people, giving preponderance to the rule of the majority over the minority. Second: Al-Suddi said (4): Everyone curses the oppressor, and if the disbeliever curses the oppressor, he has cursed himself. Third: Abu Al-Aliyah said (5): What is meant by it is the Day of Resurrection when their people will curse them along with all people, as He, the Almighty, said: {Then on the Day of Resurrection you will deny one another and curse one another} [Al-Ankabut: 25]. Then He, the Mighty and Majestic, said: {Abiding eternally therein} meaning in the curse, i.e., in its recompense. And it was said: their eternity in the curse is that it is perpetual upon them. {Nor will they be reprieved} meaning: they are not delayed from the punishment for any amount of time (6). And "Khalidin" (abiding) is in the accusative case (mansub) as a state (hal) from the pronouns "ha" and "mim" in "alayhim" (upon them), and the governing agent in it is the prepositional phrase (zarf) from His saying: "alayhim"; because it contains the meaning of the persistence of the curse. The word of the Almighty: {And your God is one God. There is no deity [worthy of worship] except Him, the Entirely Merciful, the Especially Merciful 163} It contains two issues: The first: His word, the Almighty: {And your God is one God}. When the Almighty warned against concealing the truth, He clarified...

---

(1) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/215, I'rab al-Quran by al-Nahhas 1/275, and al-Hasan's recitation was mentioned by Ibn Khalawayh in Al-Qira'at al-Shadhah p. 11, and Ibn Jinni in al-Muhtasib 1/116. (2) Ma'ani al-Quran by al-Farra 1/96, Ma'ani al-Quran by al-Zajjaj 1/236. (3) The word "jami'" (all), from (Z) and (Zh). (4) Cited by Al-Razi in his exegesis 4/188. (5) Reported by Al-Tabari similarly 2/742. (6) Al-Nukat wa al-'Uyun 1/215-216, and Tafsir al-Razi 4/187-188.

488 सूरह अल-बकरा: आयत 163

...ज़ैद, अम्र और खालिद का खड़ा होना, क्योंकि इसका अर्थ है: मुझे ज़ैद का खड़ा होना बुरा लगा (1)। और हसन का यह पाठ मुसहफ़ों (पवित्र लिपियों) के विपरीत है (2)। यदि यह कहा जाए: सभी लोग उन पर लानत नहीं भेजते क्योंकि उनके अपने लोग उन पर लानत नहीं भेजते, तो कहा गया: इसके तीन उत्तर हैं: पहला: यह कि अधिकांश लोगों की लानत को "सभी" (3) लोगों की लानत कह दिया जाता है, अल्पमत पर बहुमत के नियम को प्राथमिकता देते हुए। दूसरा: अल-सुद्दी ने कहा (4): हर कोई ज़ालिम पर लानत भेजता है, और जब कोई काफ़िर ज़ालिम पर लानत भेजता है, तो वह वास्तव में स्वयं पर ही लानत भेज रहा होता है। तीसरा: अबू अल-आलिया ने कहा (5): इसका तात्पर्य प्रलय (क़यामत) के दिन से है, जब उनके अपने लोग भी सभी लोगों के साथ मिलकर उन पर लानत भेजेंगे, जैसा कि अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {फिर प्रलय के दिन तुम में से कुछ कुछ का इनकार करेंगे और तुम में से कुछ कुछ पर लानत भेजेंगे} [अल-अंकबूत: 25]। फिर अल्लाह महान और प्रतापी ने फ़रमाया: {उसमें सदैव रहने वाले} यानी लानत में, अर्थात उसके प्रतिफल (सज़ा) में। और कहा गया: लानत में उनका हमेशा रहना यह है कि वह उन पर स्थायी है। {और न ही उन्हें मोहलत दी जाएगी} यानी: उन्हें किसी भी समय सज़ा से विलंबित नहीं किया जाएगा (6)। और 'खालिदीन' (सदैव रहने वाले) 'अलैहिम' (उन पर) के सर्वनाम से 'हाल' (अवस्था) के रूप में कर्म कारक (मन्सूब) है, और इसमें क्रिया का कारक 'अलैहिम' में निहित अव्यय है; क्योंकि इसमें लानत की निरंतरता का भाव है। अल्लाह तआला का कथन: {और तुम्हारा पूज्य एक ही पूज्य है, उसके सिवा कोई सच्चा पूज्य नहीं, वह अत्यंत दयावान, परम कृपालु है 163} इसमें दो विषय हैं: पहला: अल्लाह तआला का कथन: {और तुम्हारा पूज्य एक ही पूज्य है}। जब अल्लाह तआला ने सत्य को छिपाने के विरुद्ध चेतावनी दी, तो स्पष्ट किया...

---

(1) अल-नुकात वल-उयून 1/215, और नह्हास द्वारा एराब अल-क़ुरान 1/275, और हसन का पाठ इब्न खालवैह ने अल-किरात अल-शाज़्ज़ा पृ. 11 में और इब्न जिन्नी ने अल-मुह्तसिब 1/116 में उल्लेख किया है। (2) फरा द्वारा मआनी अल-क़ुरान 1/96, और ज़ज्जाज द्वारा मआनी अल-क़ुरान 1/236। (3) शब्द 'जमी' (सभी), प्रतियों (ज़) और (ज़्) से। (4) राजी ने अपनी तफ़सीर 4/188 में इसे उद्धृत किया है। (5) तबरी ने इसे 2/742 में इसी तरह वर्णित किया है। (6) अल-नुकात वल-उयून 1/215-216, और तफ़सीर अल-राजी 4/187-188।

488 سورہ البقرہ: آیت 163

...زید، عمرو اور خالد کا قیام، کیونکہ معنی یہ ہے کہ: مجھے زید کا کھڑا ہونا ناپسند لگا (1)۔ اور حسن کی یہ قرات مصاحف کے خلاف ہے (2)۔ اگر کہا جائے کہ: تمام لوگ ان پر لعنت نہیں کرتے کیونکہ ان کی اپنی قوم ان پر لعنت نہیں کرتی، تو کہا گیا: اس کے تین جوابات ہیں: پہلا: یہ کہ اکثر لوگوں کی لعنت کو "تمام" (3) لوگوں کی لعنت کہہ دیا جاتا ہے، اکثریت کے حکم کو اقلیت پر غلبہ دیتے ہوئے۔ دوسرا: السدی نے کہا (4): ہر کوئی ظالم پر لعنت کرتا ہے، اور جب کافر ظالم پر لعنت کرتا ہے تو وہ درحقیقت خود پر لعنت کر رہا ہوتا ہے۔ تیسرا: ابو العالیہ نے کہا (5): اس سے مراد قیامت کا دن ہے، جب ان کی قوم تمام لوگوں کے ساتھ مل کر ان پر لعنت کرے گی، جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {پھر قیامت کے دن تم ایک دوسرے کا انکار کرو گے اور ایک دوسرے پر لعنت کرو گے} [العنکبوت: 25]۔ پھر اللہ عزوجل نے فرمایا: {خالدین فیہا} یعنی لعنت میں، مراد اس کی جزا میں۔ اور کہا گیا: لعنت میں ان کا ہمیشہ رہنا یہ ہے کہ وہ ان پر دائمی ہے۔ {ولا ہم ینظرون} یعنی: انہیں کسی بھی لمحے عذاب سے مہلت نہیں دی جائے گی (6)۔ اور "خالدین" حال ہونے کی وجہ سے "علیہم" میں 'ہ' اور 'م' سے منسوب ہے، اور اس میں عامل "علیہم" میں موجود ظرف ہے؛ کیونکہ اس میں لعنت کے استقرار کا معنی پایا جاتا ہے۔ اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور تمہارا معبود ایک ہی معبود ہے، اس کے سوا کوئی معبود (برحق) نہیں، وہ نہایت مہربان، بہت رحم کرنے والا ہے 163} اس میں دو مسائل ہیں: پہلا: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور تمہارا معبود ایک ہی معبود ہے}۔ جب اللہ تعالیٰ نے حق چھپانے سے ڈرایا، تو واضح فرمایا...

---

(1) النکت والعیون 1/215، اور اعراب القرآن للنحاس 1/275، اور حسن کی قرات ابن خالویہ نے القراءات الشاذہ ص 11 میں ذکر کی ہے، اور ابن جنی نے المحتسب 1/116 میں۔ (2) معانی القرآن

للفراء 1/96، اور معانی القرآن للزجاج 1/236۔ (3) لفظ "جمیع"، (ز) اور (ظ) کے نسخوں سے۔ (4) اسے رازی نے اپنی تفسیر 4/188 میں نقل کیا ہے۔ (5) اسے طبری نے اسی طرح 2/742 میں روایت کیا ہے۔ (6) النکت والعیون 1/215-216، اور تفسیر الرازی 4/187-188۔

489 Surah Al-Baqarah: Verse 163

The first thing that must be manifested and may not be concealed is the matter of monotheism (Tawhid), and connecting that with the mention of evidence and the science of the path of observation, which is reflection on the wonders of creation; to know that it must have a Maker whom nothing resembles. Ibn Abbas (may Allah be pleased with them both) said: The disbelievers of Quraysh said (1): "O Muhammad, trace the lineage of your Lord for us," so Allah Almighty revealed Surah al-Ikhlas and this verse. The polytheists had three hundred and sixty idols, so Allah clarified that He is One (2).

Second: His Almighty saying: {There is no deity except Him} is a negation and an affirmation. Its beginning is disbelief, and its end is faith, and its meaning is: There is none worthy of worship except Allah.

It was narrated about Al-Shibli (may Allah have mercy on him) that he used to say: "Allah, Allah" (3), and he would not say: "There is no deity except Allah." When asked about that, he said: "I fear that I might be taken (4) during the word of denial [negation] and not reach the word of affirmation."

I say: This is from their subtle sciences that have no reality, for Allah—Glory be to His Name—mentioned this meaning in His book as a negation and an affirmation and repeated it, and promised a great reward to its sayer through the tongue of His Prophet ﷺ; as narrated by Al-Muwatta, Al-Bukhari, Muslim, and others (5). And he ﷺ said: "He whose last words (6) are 'There is no deity except Allah' shall enter Paradise." Narrated by Muslim (7). What is intended is the heart, not the tongue; so if he said "There is no deity," and died while his belief and conscience held Oneness and what is necessary for Him of attributes, he would be among the people of Paradise by the consensus of the people of the Sunnah.

We have covered the meaning of His name "The One" (Al-Wahid), "There is no deity except Him," and "The Most Merciful, the Especially Merciful" in "Al-Kitab al-Asna fi Sharh Asma' Allah al-Husna" (8). And praise be to Allah.

(1) In (Z): The disbelievers of Quraysh used to say. (2) Al-Wasit 1/245, and Zad al-Masir 1/167. (3) The word "Allah" was not repeated in (Kh), (Z), and (M). (4) In (Kh) and (Z): 'Awkhadh' (to be taken). (5) Al-Muwatta 1/209, Al-Bukhari (3293), and Muslim (2691) from the hadith of Abu Hurairah (may Allah be pleased with him). (6) In (Z): His last

words at death. (7) Number (26) from the hadith of Uthman (may Allah be pleased with him) similarly, and it is with Ahmad (464). (8) Pages 61, 307, 395.

489 सूरा अल-बकराह: आयत 163

पहली बात जिसे प्रकट किया जाना चाहिए और जिसे छुपाया नहीं जाना चाहिए, वह है एकेश्वरवाद (तौहीद) का मामला, और इसे प्रमाण के उल्लेख और अवलोकन के पथ के विज्ञान के साथ जोड़ना, जो सृष्टि के चमत्कारों पर विचार करना है; यह जानने के लिए कि इसका एक कर्ता होना चाहिए जिसके समान कुछ भी नहीं है। इब्न अब्बास (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) ने कहा: कुरैश के काफिरों ने कहा (1): "हे मुहम्मद, हमारे लिए अपने रब का वंश बताएं" तो अल्लाह सर्वशक्तिमान ने सूरा अल-इखलास और यह आयत उतारी। मुशरिकों के पास तीन सौ साठ मूर्तियां थीं, तो अल्लाह ने स्पष्ट किया कि वह एक है (2)।

दूसरा: अल्लाह सर्वशक्तिमान का कथन: {उसके सिवा कोई पूज्य नहीं है} एक निषेध और एक पुष्टि है। इसका आरंभ कुफ्र (अविश्वास) है, और इसका अंत ईमान (विश्वास) है, और इसका अर्थ है: अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है।

अल-शिब्ली (अल्लाह उन पर दया करे) के बारे में बताया गया है कि वे कहा करते थे: "अल्लाह, अल्लाह" (3), और वे यह नहीं कहते थे: "अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है।" जब उनसे इसके बारे में पूछा गया, तो उन्होंने कहा: "मुझे डर है कि मैं इनकार (निषेध) के शब्द के दौरान ले लिया जाऊं (4) और पुष्टि के शब्द तक न पहुँचूँ।"

मैं कहता हूँ: यह उनके उन सूक्ष्म विज्ञानों में से है जिनकी कोई वास्तविकता नहीं है, क्योंकि अल्लाह - महिमा हो उसके नाम की - ने अपनी पुस्तक में निषेध और पुष्टि के रूप में इस अर्थ का उल्लेख किया है और इसे दोहराया है, और अपने नबी ﷺ की ज़ुबान से इसे कहने वाले के लिए महान प्रतिफल का वादा किया है; जैसा कि अल-मुवत्ता, अल-बुखारी, मुस्लिम और अन्य ने उल्लेख किया है (5)। और उन्होंने ﷺ फरमाया: "जिसके अंतिम शब्द (6) 'अल्लाह के सिवा कोई पूज्य नहीं है' होंगे, वह जन्नत में प्रवेश करेगा।" इसे मुस्लिम ने उल्लेख किया है (7)। और उद्देश्य हृदय है न कि केवल ज़ुबान; इसलिए यदि उसने कहा: "कोई पूज्य नहीं है," और मर गया जबकि उसके विश्वास और अंतरात्मा में एकता और उसके लिए आवश्यक गुण थे, तो वह अहलुस सुन्नत की सहमति से जन्नत वालों में से होगा।

हमने "अल-किताब अल-अस्ना फी शरह असमा' अल्लाह अल-हुस्ना" (8) में उनके नाम "अल-वाहिद" (एक), "उसके सिवा कोई पूज्य नहीं है", और "परम कृपालु, अत्यंत दयालु" के अर्थ को कवर किया है। और सारी प्रशंसा अल्लाह के लिए है।

(1) (ज़) में: कुरैश के काफिर कहते थे। (2) अल-वसीत 1/245, और ज़ाद अल-मसीर 1/167। (3) (ख़), (ज़) और (म) में शब्द 'अल्लाह' को दोहराया नहीं गया है। (4) (ख़) और (ज़) में: 'औखज़' (ले लिया जाना)। (5) अल-मुवत्ता 1/209, अल-बुखारी (3293), और मुस्लिम (2691) अबू हुरैरा (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से। (6) (ज़) में: मृत्यु के समय उसके अंतिम शब्द। (7) उस्मान (अल्लाह उनसे प्रसन्न हो) की हदीस से संख्या (26) इसी तरह, और यह अहमद (464) के पास है। (8) पृष्ठ 61, 307, 395।

489 سورة البقرہ: آیت 163

پہلی چیز جس کا ظاہر کرنا واجب ہے اور اسے چھپانا جائز نہیں، وہ توحید کا معاملہ ہے، اور اسے دلیل کے ذکر اور غور و فکر کے راستے کے علم کے ساتھ جوڑنا، جو کہ تخلیق کے عجائبات میں سوچ بچار ہے؛ تاکہ یہ معلوم ہو جائے کہ اس کا کوئی کرنے والا (خالق) ضرور ہے جس کی مانند کوئی چیز نہیں۔ ابن عباس رضی اللہ عنہما نے فرمایا: کفارِ قریش نے کہا (1): اے محمد! اپنے رب کا نسب ہمارے لیے بیان کریں، تو اللہ تعالیٰ نے سورہ اخلاص اور یہ آیت نازل فرمائی، اور مشرکین کے پاس تین سو ساٹھ بت تھے، تو اللہ نے واضح کر دیا کہ وہ ایک ہے (2)۔

دوسری بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿لَا إِلَهَ إِلَّا هُوَ﴾ نفی اور اثبات ہے۔ اس کا اول کفر ہے، اور اس کا آخر ایمان ہے، اور اس کا معنی ہے: اللہ کے سوا کوئی معبود نہیں۔

اور شبلی رحمہ اللہ سے مروی ہے کہ وہ کہا کرتے تھے: اللہ، اللہ (3)، اور وہ "لا إله إلا الله" نہیں کہتے تھے۔ جب ان سے اس بارے میں پوچھا گیا تو انہوں نے کہا: مجھے ڈر ہے کہ میں انکار (نفی) کے کلمے میں ہی اٹھا لیا جاؤں (4) اور اقرار کے کلمے تک نہ پہنچ سکوں۔

میں کہتا ہوں: یہ ان کے ان باریک علوم میں سے ہے جن کی کوئی حقیقت نہیں، کیونکہ اللہ عزوجل نے اپنی کتاب میں اس معنی کو نفی اور اثبات کے طور پر ذکر کیا ہے اور اسے دہرایا ہے، اور اپنے نبی ﷺ کی زبان پر اس کے کہنے والے کے لیے عظیم ثواب کا وعدہ کیا ہے؛ اسے مؤطا، بخاری، مسلم وغیرہ نے روایت کیا ہے (5)۔ اور آپ ﷺ نے فرمایا: "جس کا آخری کلام (6) 'لا إله إلا الله' ہوا وہ جنت میں داخل ہو گا۔" اسے مسلم نے روایت کیا ہے (7)۔ اور مقصود دل ہے نہ کہ محض زبان؛ چنانچہ اگر اس نے کہا: "لا إله" (کوئی معبود نہیں)، اور اس حال میں مر گیا کہ اس

کا عقیدہ اور ضمیر توحید اور اللہ کی واجب صفات پر قائم تھا، تو وہ اہل سنت کے اتفاق سے اہل جنت میں سے ہو گا۔

اور ہم اللہ کے نام "الواحد" (ایک)، "لا إله إلا هو" اور "الرحمن الرحيم" کے معنی «الكتاب الأسنى في شرح أسماء الله الحسنى» (8) میں بیان کر چکے ہیں۔ والحمد للہ۔

(1) (ظ) میں ہے: کفارِ قریش کہتے تھے۔ (2) الوسیط 1/ 245، اور زاد المسير 1/ 167۔ (3) (خ)، (ظ) اور (م) میں لفظِ جلالہ کی تکرار نہیں ہے۔ (4) (خ) اور (ظ) میں: "أوخذ" (پکڑ لیا جاؤں/اٹھا لیا جاؤں)۔ (5) الموطأ 1/ 209، والبخاري (3293)، ومسلم (2691) ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے۔ (6) (ظ) میں ہے: موت کے وقت اس کا آخری کلام۔ (7) رقم (26) عثمان رضی اللہ عنہ کی حدیث سے اسی کی مانند، اور یہ احمد (464) کے ہاں ہے۔ (8) ص 61، 307، 395۔

490 Surah Al-Baqarah: Verse 164

Allah Almighty's saying: {Indeed, in the creation of the heavens and the earth, and the alternation of the night and the day, and the [great] ships which sail through the sea with that which benefits people, and what Allah has sent down from the heavens of rain, giving life thereby to the earth after its lifelessness and dispersing therein every [kind of] moving creature, and [in] His directing of the winds and the clouds controlled between the heaven and the earth are signs for a people who use reason.}

In it are fourteen issues:

The first: Ata' said: When {And your god is one God} was revealed, the disbelievers of Quraysh said: How can one God encompass all people?! So, {Indeed, in the creation of the heavens and the earth} was revealed (1). Sufyan narrated it from his father from Abu al-Duha, who said: When {And your god is one God} was revealed, they said: Is there any evidence for that? So Allah Almighty revealed: {Indeed, in the creation of the heavens and the earth} (2). It was as if they had asked for a sign, so He showed them the evidence of Monotheism (Tawhid), and that this world and marvelous structure must have a builder and a maker. He used the plural "heavens" because they are of different types, each heaven being of a type different from the others. And He used the singular "earth" because it is all soil (3), and Allah Almighty knows best.

The sign of the heavens: their height without pillars beneath them or attachments above them, and that indicated power and the breaking of habits. If a prophet came and challenged by making a mountain stand in the air without any attachment, it would be a miracle. Then what is in them of the sun, the moon, the wandering stars, and the shining planets, rising and setting, luminous and erased, is a second sign.

And the sign of the earth: its seas, rivers, minerals, trees, plains, and rugged terrains.

The second: Allah Almighty's saying: {and the alternation of the night and the day}. It was said: Their alternation is by the arrival of one...

(1) Narrated by al-Tabari 3/5, and Abu al-Shaykh in al-Azamah (118). (2) Narrated by al-Tabari 3/6 through Sufyan, and also by Sa'id in his Sunan (239), Abu al-Shaykh in al-Azamah (31), and al-Bayhaqi in al-Shu'ab (104) through Sa'id bin Masrouq. Sufyan: he

is al-Thawri, and his father: he is Sa'id bin Masrouq, and Abu al-Duha: he is Muslim bin Subayh. (3) Tafsir al-Baghawi 1/135.

490 सूरह अल-बक़रा: आयत 164

अल्लाह तआला का फरमान है: {बेशक आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में, और रात और दिन के अदल-बदल में, और उन जहाज़ों में जो दरिया में लोगों के फायदे के लिए चलते हैं, और उस पानी में जिसे अल्लाह ने आसमान से उतारा, फिर उसके ज़रिए ज़मीन को उसकी मौत के बाद ज़िंदा कर दिया और उसमें हर किस्म के जानवर फैला दिए, और हवाओं के रुख बदलने में और उन बादलों में जो आसमान और ज़मीन के दरमियान हुक्म के ताबे (काम में लगे) हैं, अक़्लमन्दों के लिए यकीनन (बड़ी) निशानियाँ हैं।}

इसमें चौदह मसाइल (मुद्दे) हैं:

पहला: अता ने कहा: जब आयत {और तुम्हारा माबूद (ईश्वर) अकेला माबूद है} नाज़िल हुई, तो कुरैश के काफिरों ने कहा: एक खुदा सब लोगों के लिए कैसे काफी हो सकता है?! तो आयत {बेशक आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में} नाज़िल हुई (1)। सुफियान ने अपने वालिद से, उन्होंने अबू अल-दुहा से रिवायत की, उन्होंने कहा: जब आयत {और तुम्हारा माबूद अकेला माबूद है} नाज़िल हुई, तो उन्होंने कहा: क्या इसका कोई सबूत है? तो अल्लाह तआला ने नाज़िल फरमाया: {बेशक आसमानों और ज़मीन की पैदाइश में} (2)। गोया उन्होंने कोई निशानी मांगी थी, तो उनके लिए तौहीद (एकेश्वरवाद) की दलील पेश की गई, और यह कि इस दुनिया और इस हैरतअंगेज़ तामीर का कोई बनाने वाला और संवारने वाला ज़रूर है। और 'आसमानों' (बहुवचन) का ज़िक्र किया क्योंकि वे मुख्तलिफ किस्मों के हैं, हर आसमान दूसरे से अलग जिंस का है। और 'ज़मीन' (एकवचन) का ज़िक्र किया क्योंकि वह सब मिट्टी है (3), और अल्लाह तआला बेहतर जानता है।

आसमानों की निशानी: उनका बगैर सुतूनों के ऊपर उठा होना और न ही ऊपर से किसी चीज़ से बंधा होना, और यह कुदरत और आदतों के खिलाफ होने पर दलालत करता है। अगर कोई नबी आकर किसी पहाड़ को हवा में बगैर किसी सहारे के खड़ा करके दिखा देता, तो वह एक मोजज़ा (चमत्कार) होता। फिर उनमें सूरज, चाँद, गर्दिश करने वाले सितारे और चमकते हुए ग्रह, जो निकलते और डूबते हैं, रोशन होते हैं और कभी छुप जाते हैं, यह दूसरी निशानी है।

ज़मीन की निशानी: उसके समंदर, नदियाँ, मादनियात (खनिज), दरख्त, समतल ज़मीन और ऊबड़-खाबड़ इलाके।

दूसरा: अल्लाह तआला का फरमान: {और रात और दिन के अदल-बदल में}। कहा गया: उनका इख्तिलाफ (बदलाव) एक के आने...

(1) इसे अल-तबरी (3/5) और अबू अल-शेख ने 'अल-अज़मा' (118) में रिवायत किया है। (2) इसे अल-तबरी (3/6) ने सुफियान के ज़रिए रिवायत किया है, और इसे सईद ने अपनी 'सुनन' (239), अबू अल-शेख ने 'अल-अज़मा' (31) और अल-बैहक़ी ने 'अल-शुअब' (104) में सईद बिन मसरूक के ज़रिए रिवायत किया है। सुफियान: वह अल-थौरी हैं, और उनके वालिद: वह सईद बिन मसरूक हैं, और अबू अल-दुहा: वह मुस्लिम बिन सुबैह हैं। (3) तफ़सीर अल-बगवी 1/135।

490 سورة البقرہ: آیت 164

اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿بے شک آسمانوں اور زمین کی پیدائش میں اور رات اور دن کے ہیر پھیر میں اور ان کشتیوں میں جو سمندر میں لوگوں کے نفع کی چیزیں لے کر چلتی ہیں اور اس پانی میں جو اللہ نے آسمان سے اتارا پھر اس کے ذریعے زمین کو اس کی موت کے بعد زندہ کر دیا اور اس میں ہر قسم کے جانور پھیلا دیے اور ہواؤں کے رخ بدلنے میں اور ان بادلوں میں جو آسمان اور زمین کے درمیان حکم کے تابع (کام میں لگے) ہیں، عقل والوں کے لیے یقیناً (بڑی) نشانیاں ہیں۔﴾

اس میں چودہ مسائل ہیں:

پہلا مسئلہ: عطا نے کہا: جب آیت ﴿اور تمہارا معبود ایک ہی معبود ہے﴾ نازل ہوئی تو کفارِ قریش نے کہا: ایک خدا سب لوگوں کے لیے کیسے کافی ہو سکتا ہے؟! تو آیت ﴿بے شک آسمانوں اور زمین کی پیدائش میں﴾ نازل ہوئی (1)۔ اور سفیان نے اپنے والد سے، انہوں نے ابوالضحیٰ سے روایت کی، انہوں نے کہا: جب آیت ﴿اور تمہارا معبود ایک ہی معبود ہے﴾ نازل ہوئی تو انہوں نے کہا: کیا اس پر کوئی دلیل ہے؟ تو اللہ تعالیٰ نے نازل فرمایا: ﴿بے شک آسمانوں اور زمین کی پیدائش میں﴾ (2)۔ گویا انہوں نے کوئی نشانی مانگی تھی، تو ان کے لیے توحید کی دلیل بیان کر دی گئی، اور یہ کہ اس کائنات اور اس عجیب و غریب عمارت کا کوئی بنانے والا اور پیدا کرنے والا ضرور ہے۔ اور 'آسمانوں' کو جمع کے صیغے میں ذکر کیا کیونکہ وہ مختلف اقسام کے ہیں، ہر آسمان دوسرے آسمان کی جنس سے الگ جنس کا ہے۔ اور 'زمین' کو واحد ذکر کیا کیونکہ وہ سب مٹی ہے (3)، واللہ تعالیٰ اعلم۔

پس آسمانوں کی نشانی: ان کا نیچے سے کسی ستون کے بغیر اور اوپر سے کسی بندھن کے بغیر بلند ہونا ہے، اور یہ قدرت اور خلافِ عادت بات پر دلالت کرتا ہے۔ اگر کوئی نبی آتا اور ہوا میں بغیر کسی سہارے کے پہاڑ کھڑا کر دینے کا چیلنج کرتا تو وہ ایک معجزہ ہوتا۔ پھر ان میں سورج، چاند، گردش کرنے والے ستارے اور چمکتے ہوئے سیارے، جو طلوع اور غروب ہوتے ہیں، روشن ہوتے ہیں اور کبھی بے نور، یہ دوسری نشانی ہے۔

اور زمین کی نشانی: اس کے سمندر، نہریں، معدنیات، درخت، ہموار زمین اور دشوار گزار راستے ہیں۔

دوسرا مسئلہ: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿اور رات اور دن کے ہیر پھیر میں﴾ کہا گیا ہے: ان کا اختلاف ایک کے آنے...

(1) اسے الطبری (3/5) اور ابوالشیخ نے 'العظمۃ' (118) میں نکالا ہے۔ (2) اسے الطبری (3/6) نے سفیان کے واسطے سے نکالا ہے، اور اسے سعید نے اپنی 'سنن' (239)، ابوالشیخ نے 'العظمۃ' (31) اور البیہقی نے 'الشعب' (104) میں سعید بن مسروق کے واسطے سے روایت کیا ہے۔ سفیان: یہ الثوری ہیں، ان کے والد: سعید بن مسروق ہیں، اور ابوالضحیٰ: مسلم بن صُبیح ہیں۔ (3) تفسیر البغوی ا 1/135

Surah Al-Baqarah: Verse 164 491

...and the departure of the other from where it is not known (1). And it was said: their difference is in qualities such as light and darkness, and length and shortness. 'Al-Layl' (night) is the plural of 'laylah' (a night), like 'tamrah' and 'tamr' (date palm fruit), and 'nakhlah' and 'nakhl' (date palm tree). It is also pluralized as 'layali' and 'layalin' in meaning, which is irregular from the standard plural patterns, like 'shabah' and 'mashabah', 'hajah' and 'hawaij', and 'dhakar' and 'madhakir' (2); as if 'layali' is the plural of 'laylah' (3) by analogy. They have used this in poetry, one said: 'In every day and every Laylah' (4) And another said (5): 'In every day and every Laylah, until every seer says when he sees him (6): Oh, woe to him! What an unhappy camel!' Ibn Faris said in 'Al-Mujmal' (7): It is said that some birds are called 'layl', but I do not know it. And 'al-nahar' (daytime) is pluralized as 'nuhur' and 'anhirah' (8). Ahmad bin Yahya Tha'lab said: 'Nahar' is the plural of 'nuhur', and it is a plural of the plural [the plural] for 'nahar' (9). And it was said: 'Al-nahar' is a singular noun that is not pluralized; because it has the meaning of an infinitive (masdar), like your saying 'al-diya' (light), which applies to both small and large amounts (10). The first view is more common.

---

(1) Al-Nukat wal-Uyun 1/216, 217. (2) In (m): 'madhakir'. And it is an error. (3) Al-Sihah (layl). (4) This is how it appeared in the copies, and perhaps it is what follows it. (5) He is Dulam Abu Zughayb, and the rajaz is in Al-Khasa'is 1/267, Al-Mukhassas 9/44, Sharh Al-Mufassal 5/73, and Al-Lisan (layl). And Sharh Shawahid Sharh al-Shafiya by Al-Baghdadi p. 102. (6) It is by omitting the hamza, which is the 'ayn of the word, and the origin is: 'idh ra'ahu'. Sharh Shawahid Sharh al-Shafiya 3/799. (7) 3/799. (8) See Tahdhib al-Alfaz by Ibn al-Sikkit 1/422. (9) Transmitted from him by Ibn Manzur in Al-Lisan (nahr), and what is between brackets is from him. (10) See Al-Sihah (nahr), Tahdhib al-Lugha 6/276, and Al-Mukhassas 9/51.

सूरह अल-बकरा: आयत १६४ ४९१

...और दूसरे का जाना जहाँ से ज्ञात न हो (१)। और कहा गया है: उनका अंतर प्रकाश और अंधकार, और लंबाई और छोटेपन जैसे गुणों में है। 'अल-लैल' (रात) 'लैलाह' (एक रात) का बहुवचन है, जैसे 'तमराह' और 'तमर' (खजूर), और 'नखलाह' और 'नखल' (खजूर का पेड़)। इसका बहुवचन अर्थ के रूप में 'लयाली' और 'लयालिन' भी होता है, जो बहुवचन के मानक नियमों से हटकर है, जैसे 'शबाह' और 'मशाबह', 'हाजा' और 'हवाइज', और 'धकर' और 'मधाकिर' (२); जैसे कि सादृश्य के आधार पर 'लयाली' 'लैलाह' का बहुवचन हो (३)। उन्होंने कविता में इसका प्रयोग किया है, एक ने कहा: 'हर दिन और हर लैला में' (४) और दूसरे ने कहा (५): 'हर दिन और हर लैला में, यहाँ तक कि हर देखने वाला कहता है जब वह उसे देखता है (६): ओह, उस पर अफ़सोस! कितना दुखी ऊँट है!' इब्न फारिस ने 'अल-मुजमल' (७) में कहा: कहा जाता है कि कुछ पक्षियों को 'लैल' कहा जाता है, लेकिन मैं इसे नहीं जानता। और 'अल-नहार' (दिन) का बहुवचन 'नुहुर' और 'अन्हिराह' होता है (८)। अहमद बिन यह्या थलाब ने कहा: 'नहर', 'नुहुर' का बहुवचन है, और यह 'नहार' के लिए बहुवचन का बहुवचन [जमुअ अल-जमुअ] है (९)। और कहा गया: 'अल-नहार' एक एकवचन संज्ञा है जिसका बहुवचन नहीं बनाया जाता; क्योंकि इसका अर्थ एक भाववाचक संज्ञा (मस्दर) की तरह है, जैसे आपका कहना 'अल-दिया' (प्रकाश), जो कम और अधिक दोनों मात्राओं पर लागू होता है (१०)। पहला विचार अधिक प्रचलित है।

---

(१) अल-नुकत वल-उयून १/२१६, २१७। (२) (म) में: मधाकिर। और यह एक त्रुटि है। (३) अल-सिहाह (लैल)। (४) प्रतियों में ऐसा ही आया है, और शायद इसके बाद जो है वह वही है। (५) वह दुलम अबू जुग़ैब है, और रज़ज़ अल-ख़साइस १/२६७, अल-मुख़स्सस ९/४४, शरह अल-मुफ़स्सल ५/७३, और अल-लिसान (लैल) में है। और शरह शवाहिद शरह अल-शाफिया अल-बग़दादी द्वारा पृष्ठ १०२। (६) यह हमजा को हटाने के द्वारा है, जो शब्द का 'ऐन' है, और मूल है: 'इध रआहु'। शरह शवाहिद शरह अल-शाफिया ३/७९९। (७) ३/७९९। (८) इब्न अल-सिक्किट द्वारा तहज़ीब अल-अल्फ़ाज़ १/४२२ देखें। (९) इसे इब्न मंजूर ने अल-लिसान (नहर) में उनसे उद्धृत किया है, और कोष्ठक के बीच वाला हिस्सा उन्हीं का है। (१०) अल-सिहाह (नहर), तहज़ीब अल-लुग़ा ६/२७६, और अल-मुख़स्सस ९/५१ देखें।

سورة البقرہ: آیت ١٦٤ ٤٩١

...اور دوسرے کا پیٹھ پھیر کر جانا جہاں سے معلوم نہ ہو (١)۔ اور کہا گیا: ان دونوں کا اختلاف صفات میں ہے جیسے روشنی اور اندھیرا، اور لمبائی اور چوڑائی۔ اور 'اللیل' (رات) 'لیلة' کی جمع ہے، جیسے 'تمرة' اور 'تمر'، اور 'نخلة' اور 'نخل'۔ اور اس کی جمع 'لیالی' اور 'لیالٍ' بھی آتی ہے معنی کے اعتبار سے، اور یہ وہ ہے جو جمع کے قیاسی اوزان سے الگ ہے، جیسے 'شبہ' اور 'مشابہ'، 'حاجة' اور 'حوائج'، اور 'ذکر' اور 'مذاکیر' (٢)؛ گویا 'لیالی' قیاس کے مطابق 'لیلاة' کی جمع ہے (٣)۔ اور انہوں نے اسے شاعری میں استعمال کیا ہے، شاعر نے کہا: 'ہر دن میں اور ہر لیلاة (رات) میں' (٤) اور دوسرے نے کہا (٥): 'ہر دن میں اور ہر لیلاة میں، یہاں تک کہ ہر دیکھنے والا کہتا ہے جب وہ اسے دیکھتا ہے (٦): ہائے افسوس اس اونٹ پر، وہ کتنا بدبخت ہے!' ابن فارس نے 'المجمل' (٧) میں کہا: اور کہا جاتا ہے کہ بعض پرندوں کا نام 'لیل' رکھا جاتا ہے، اور میں اسے نہیں جانتا، اور 'النہار' (دن) کی جمع 'نُہُر' اور 'اَنہِرة' آتی ہے (٨)۔ احمد بن یحییٰ ثعلب نے کہا: 'نَہَر'، 'نُہُر' کی جمع ہے، اور وہ 'نہار' کے لیے جمع الجمع ہے (٩)۔ اور کہا گیا: 'النہار' اسم مفرد ہے جس کی جمع نہیں لائی جاتی؛ کیونکہ یہ مصدر کے معنی میں ہے، جیسے تمہارا کہنا: 'الضیاء' (روشنی)، یہ تھوڑی اور زیادہ دونوں پر صادق آتی ہے (١٠)۔ اور پہلا قول زیادہ مشہور ہے۔

---

(١) النکت والعیون ٢١٦/١، ٢١٧۔ (٢) (م) میں: مذاکر۔ اور یہ غلط ہے۔ (٣) الصحاح (لیل)۔ (٤) نسخوں میں اسی طرح واقع ہوا ہے، اور شاید یہ اس کے بعد والا ہے۔ (٥) وہ دلم ابو زغیب ہے، اور رجز الخصائص ٢٦٧/١، المخصص ٤٤/٩، شرح المفصل ٧٣/٥، اور اللسان (لیل) میں ہے۔ اور شرح شواہد شرح الشافیہ بغدادی ص ١٠٢۔ (٦) یہ ہمزہ کے حذف کے ساتھ ہے، جو کلمہ کا

عین ہے، اور اصل 'إذ رآه' ہے۔ شرح شواہد شرح الشافیہ ۷۹۹/۳۔ (۷) ۷۹۹/۳۔ (۸) دیکھیے تہذیب الالفاظ لابن السکیت ۴۲۲/۱۔ (۹) اسے ابن منظور نے اللسان (نہر) میں ان سے نقل کیا ہے، اور جو قوسین کے درمیان ہے وہ انہی کا ہے۔ (۱۰) دیکھیے الصحاح (نہر)، تہذیب اللغۃ ۲۷۶/۶، اور المخصص ۵۱/۹۔

492 Surah Al-Baqarah: Verse 164

The poet said (1): Were it not for the two tharids, we would have perished from leanness: a tharid at night and a tharid in the daytime (nuhur).

Ibn Faris said (2): "An-Nahr" (the river) (3) is well-known, and its plural is 'nuhur' and 'anhar'. It is said that 'an-nahar' (the day) is pluralized as 'nuhur'. Day (an-nahar) is the light between dawn and sunset. A 'nahr' man is a man of the day. It is said that 'an-nahar' is the chick of the bustard bird.

Al-Nadr bin Shumayl said (4): "The beginning of the day is the rising of the sun, and what precedes it is not counted as part of the day."

Tha'lab said: "Its beginning according to the Arabs is the rising of the sun (5)," and he cited the words of Umayyah bin Abi al-Salt (6).

And the sun rises at the end of every night, red, its color becoming rosy.

He recited the words of Adi bin Zayd: And the Maker of the sun as a boundary (misran) with no obscurity, between the day and the night it has separated (7).

Al-Kisa'i recited:

---

(1) We did not find its author, and the rajaz (meter) appeared in Tahdhib al-Alfaz 1/442, in Tafsir al-Tabari 3/10, al-Sihah (nahr), Tahdhib al-Lugha 6/277, al-Mukhassas 9/51, and al-Azmina wa al-Amkina 1/146 without attribution. (2) In Mujmal al-Lugha 3/845. (3) In (M): Al-Nahar. (4) Tahdhib al-Alfaz by Ibn al-Sikkit 1/422. (5) We did not find Tha'lab's saying, see al-Mukhassas 9/52. (6) In his Diwan p. 50, and Khizanat al-Adab 1/250. (7) Its attribution is disputed; it was attributed to Adi bin Zayd as mentioned by the author Ibn Faris in Mujmal al-Lugha 4/833, Maqayis al-Lugha 5/330, and al-Azhari in Tahdhib al-Lugha 12/183, and it is in his Diwan p. 159. Ibn Sidah attributed it in al-Mukhassas 13/164, and Ibn Manzur in al-Lisan (misr) to Umayya bin Abi al-Salt, and it is in his Diwan p. 180. And his saying: 'misran', meaning: a limit. Mujmal al-Lugha.

४९२ सूरह अल-बकरा: आयत १६४

कवि ने कहा (१): यदि वे दो थरीद न होते, तो हम दुबलेपन से नष्ट हो जाते: एक रात का थरीद और एक दिन का थरीद।

इब्न फारिस ने कहा (२): "अल-नहर" (नदी) (३) प्रसिद्ध है, और इसका बहुवचन 'नुहुर' और 'अन्हार' है। कहा जाता है कि 'अन-नहार' (दिन) का बहुवचन भी 'नुहुर' होता है। दिन (अन-नहार) भोर और सूर्यास्त के बीच का प्रकाश है। एक 'नहर' व्यक्ति वह है जो दिन का साथी हो। यह भी कहा जाता है कि 'अन-नहार' हुबारा पक्षी का चूजा है।

अल-नद्र बिन शुमैल ने कहा (४): "दिन की शुरुआत सूर्योदय है, और उससे पहले जो कुछ भी है उसे दिन का हिस्सा नहीं माना जाता है।"

थलब ने कहा: "अरबों के अनुसार इसकी शुरुआत सूर्योदय है (५)," और उन्होंने उमय्या बिन अबी अल-सल्त (६) के शब्दों का उल्लेख किया:

और सूर्य हर रात के अंत में लाल उगता है, उसका रंग गुलाबी हो जाता है।

उन्होंने अदी बिन ज़ैद के शब्दों का पाठ किया: और सूर्य का निर्माता इसे एक सीमा (मिस्रन) के रूप में बनाता है जिसमें कोई अस्पष्टता नहीं है, दिन और रात के बीच उसने अलग कर दिया है (७)।

अल-किसाई ने पाठ किया:

---

(१) हमें इसके लेखक का पता नहीं चला, और यह छंद तहज़ीब अल-अल्फ़ाज़ ४४२/१, तफ़सीर अल-तबरी १०/३, अल-सिहह (नहर), तहज़ीब अल-लुग़ा २७७/६, अल-मुख़स्सस ५१/९, और अल-अज़मिना व अल-अमकिना १४६/१ में बिना किसी श्रेय के मिलता है। (२) मुजमल अल-लुग़ा ३/८४५ में। (३) (म) में: अल-नहार। (४) इब्न अल-सिक्किट द्वारा तहज़ीब अल-अल्फ़ाज़ ४२२/१। (५) हमें थलब का कथन नहीं मिला, अल-मुख़स्सस ५२/९ देखें। (६) उनके दीवान पृ. ५०, और ख़िज़ानत अल-अदब १/२५० में। (७) इसके श्रेय के बारे में विवाद है; इसे अदी बिन ज़ैद के नाम से संदर्भित किया गया है जैसा कि लेखक इब्न फारिस ने मुजमल अल-लुग़ा ४/८३३, मक़ायिस अल-लुग़ा ५/३३०, और अल-अज़हरी ने तहज़ीब अल-लुग़ा १२/१८३ में उल्लेख किया है, और यह उनके दीवान पृ. १५९ में है। इब्न सिदाह ने इसे अल-मुख़स्सस १३/१६४ में, और इब्न मंज़ूर ने अल-लिसान (मिस्र) में उमय्या बिन अबी

अल-सल्त के नाम से संदर्भित किया है, और यह उनके दीवान पृ. १८० में है। और उनका कहना: 'मिस्रन', यानी: एक सीमा। मुजमल अल-लुग़ा।

۴۹۲ سورة البقرہ: آیت ۱۶۴

شاعر نے کہا (۱): اگر وہ دو ثرید نہ ہوتے تو ہم لاغری سے ہلاک ہو جاتے: ایک رات کا ثرید اور ایک دن کا ثرید۔

ابن فارس نے کہا (۲): "النہر" (دریا) (۳) معروف ہے، اور اس کی جمع 'نُہُر' اور 'انہار' ہے۔ کہا جاتا ہے کہ 'النہار' (دن) کی جمع بھی 'نُہُر' آتی ہے۔ اور دن (النہار) طلوع فجر سے غروب آفتاب کے درمیان کی روشنی ہے۔ ایک 'نَہَر' آدمی وہ ہے جو دن والا ہو۔ اور یہ بھی کہا جاتا ہے کہ 'النہار' حباری (پرندے) کا بچہ ہے۔

النضر بن شمیل نے کہا (۴): "دن کا آغاز سورج نکلنا ہے، اور اس سے پہلے کا وقت دن میں شمار نہیں ہوتا۔"

ثعلب نے کہا: "عربوں کے نزدیک اس کا آغاز سورج کا نکلنا ہے (۵)،" اور انہوں نے امیہ بن ابی الصلت (۶) کے اس قول سے استدلال کیا:

اور سورج ہر رات کے آخر میں سرخ طلوع ہوتا ہے، اس کا رنگ گلابی ہو جاتا ہے۔

اور انہوں نے عدی بن زید کا قول پڑھا: اور سورج کو ایک واضح حد (مِصْراً) بنانے والا، جس کے ذریعے دن اور رات کے درمیان فرق کر دیا گیا ہے (۷)۔

اور الکسائی نے پڑھا:

---

(۱) ہمیں اس کے کہنے والے کا علم نہیں ہو سکا، اور یہ رجز (بحر) تہذیب الالفاظ ۴۴۲/۱، تفسیر الطبری ۱۰/۳، الصحاح (نہر)، تہذیب اللغۃ ۲۷۷/۶، المخصص ۵۱/۹، اور الازمنۃ والامکنۃ

۱۴۶/۱ میں بغیر کسی نسبت کے مذکور ہے۔ (۲) مجمل اللغۃ ۳/ ۸۴۵ میں۔ (۳) (م) میں: النهار۔ (۴) تہذیب الالفاظ لابن السکیت ۴۲۲/۱۔ (۵) ہمیں ثعلب کا قول نہیں ملا، دیکھئے المخصص ۵۲/۹۔ (۶) ان کے دیوان ص ۵۰، اور خزانۃ الادب ۱/ ۲۵۰ میں۔ (۷) اس کی نسبت میں اختلاف ہے، ابن فارس نے مجمل اللغۃ ۴/ ۸۳۳، مقاییس اللغۃ ۵/ ۳۳۰، اور الازہری نے تہذیب اللغۃ ۱۲/ ۱۸۳ میں اسے عدی بن زید کی طرف منسوب کیا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ۱۵۹ پر ہے۔ جبکہ ابن سیدہ نے المخصص ۱۳/ ۱۶۴، اور ابن منظور نے اللسان (مصر) میں اسے امیہ بن ابی الصلت کی طرف منسوب کیا ہے، اور یہ ان کے دیوان ص ۱۸۰ پر ہے۔ اور ان کا قول: 'مِصْراً' یعنی: حد۔ مجمل اللغۃ۔

493 Surah Al-Baqarah: Verse 164

When the sun of the day rises, it is a sign of my salutation to you, so return the salutation (1)

Al-Zajjaj said in 'Kitab al-Anwa': "The beginning of the day is the rising of the sun (2)." Ibn al-Anbari divided time into three parts: a part he made purely night, which is from sunset to dawn; a part he made purely day, which is from sunrise to sunset; and a part he made shared between day and night, which is between dawn and sunrise, due to the remnants of the darkness of night and the beginnings of daylight. I say: The correct view is that the day is from dawn until sunset, as narrated by Ibn Faris in 'Al-Mujmal (3)'; this is supported by what is established in Sahih Muslim (4) from 'Adi ibn Hatim who said: When the verse "Until the white thread becomes distinct to you from the black thread of the dawn" was revealed, 'Adi said to him: O Messenger of Allah, I placed (5) under my pillow two cords: a white cord and a black cord, to distinguish the night (6) from the day. The Messenger of Allah (peace be upon him) said: "Your pillow must be very wide; it is only the darkness of the night and the whiteness of the day." This hadith dictates that the day is from dawn until sunset, which is the requirement of jurisprudence regarding oaths, and upon which rulings are linked. Whoever swears not to speak to someone during the day and speaks to him before sunrise has broken his oath; according to the first view, he has not. The word of the Prophet (peace be upon him) is the criterion and the judge in this matter. As for the literal linguistic meaning and its derivation from 'breadth' (7), it is from the time of dawn's glow when it spreads...

(1) The speaker of this verse is Qais ibn Dharih, and the verse is in Al-Aghani 9/202, and his Diwan p. 194 with the wording: When the sun of the day rises, salute me, for the sign of my salutation to you is its rising. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233. (3) 3/845. (4) No. (1090), and it is in Ahmad (19370), and Al-Bukhari (1916). (5) In (M): "I place." (6) In (M): "To know the night by them." (7) In (M): "The Sunnah," and what is fixed from the manuscript copies, which is consistent with Al-Muharrar al-Wajiz 1/233, and the speech is from it.

493 सूरह अल-बक़रह: आयत 164

जब दिन का सूरज निकलता है, तो वह तुम्हारे लिए मेरे अभिवादन का संकेत होता है, इसलिए अभिवादन करो (1)

अल-ज़ज्जाज ने 'किताब अल-अनवा' में कहा: "दिन की शुरुआत सूरज का उदय होना है (2)।" इब्न अल-अंबारी ने समय को तीन भागों में विभाजित किया: एक हिस्सा जिसे उन्होंने शुद्ध रात माना, जो सूर्यास्त से भोर (फ़ज्र) तक है; एक हिस्सा जिसे उन्होंने शुद्ध दिन माना, जो सूर्योदय से सूर्यास्त तक है; और एक हिस्सा जिसे उन्होंने दिन और रात के बीच साझा माना, जो भोर और सूर्योदय के बीच का समय है, क्योंकि इसमें रात का अंधेरा बाकी रहता है और दिन की रोशनी की शुरुआत होती है। मैं कहता हूँ: सही बात यह है कि दिन भोर (फ़ज्र) के उदय से सूर्यास्त तक है; जैसा कि इब्न फारिस ने 'अल-मुजमल (3)' में वर्णित किया है; यह सही मुस्लिम (4) में अदी इब्न हातिम से प्रमाणित बात से सिद्ध होता है, जिन्होंने कहा: जब यह आयत उतरी: "यहाँ तक कि तुम्हारे लिए भोर का सफेद धागा काले धागे से स्पष्ट हो जाए", तो अदी ने उनसे कहा: ऐ अल्लाह के रसूल, मैंने अपने तकिए के नीचे दो रस्सियाँ रखीं (5): एक सफेद रस्सी और एक काली रस्सी, ताकि मैं दिन (6) और रात में अंतर कर सकूँ। अल्लाह के रसूल (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फरमाया: "तुम्हारा तकिया बहुत चौड़ा है; यह तो केवल रात की काली और दिन की सफेदी है।" अतः यह हदीस यह निर्णय देती है कि दिन भोर से सूर्यास्त तक है, और यही शपथों के संबंध में न्यायशास्त्र की आवश्यकता है, और इसी से नियम जुड़े हुए हैं। जो कोई शपथ लेता है कि वह दिन के समय किसी से बात नहीं करेगा और सूर्योदय से पहले उससे बात कर लेता है, तो उसकी शपथ टूट गई; पहले मत के अनुसार, नहीं टूटती। नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) का वचन ही इस मामले में अंतिम निर्णय और फैसला है। जहाँ तक भाषा के प्रत्यक्ष अर्थ और इसकी व्यापकता (7) से उत्पत्ति का प्रश्न है, तो यह भोर की रोशनी के फैलने के समय से है...

(1) इस शेर के कवि क़ैस बिन धरीह हैं, और यह शेर अल-अग़ानी 202/9 में है, और उनके दीवान पृ. 194 में इन शब्दों के साथ है: जब दिन का सूरज निकले तो मुझे सलाम करो, क्योंकि मेरा तुम पर सलाम का संकेत उसका निकलना है। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 233/1। (3) 845/3। (4) नंबर (1090), और यह अहमद (19370) और बुखारी (1916) में है। (5) (M) में: "मैं रखता हूँ"। (6) (M) में: "उन दोनों से रात को जानूँ"। (7) (M) में: "सुन्नत", और जो हस्तलिखित प्रतियों से प्रमाणित है, वह अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 233/1 के अनुकूल है, और कथन उसी से है।

493 سورہ البقرہ: آیت 164

جب دن کا سورج طلوع ہوتا ہے تو وہ تجھ پر میرے سلام کا نشان ہے، پس تو بھی سلام کر (1)

الزجاج نے 'کتاب الانواء' میں کہا: "دن کا آغاز سورج کا نکلنا ہے (2)۔" ابن الانباری نے وقت کو تین حصوں میں تقسیم کیا: ایک حصہ جسے انہوں نے خالص رات قرار دیا، اور وہ غروب آفتاب سے طلوع فجر تک ہے؛ ایک حصہ جسے انہوں نے خالص دن قرار دیا، اور وہ طلوع آفتاب سے اس کے غروب تک ہے؛ اور ایک حصہ جسے انہوں نے دن اور رات کے درمیان مشترک قرار دیا، اور وہ طلوع فجر سے طلوع آفتاب کے درمیان کا وقت ہے، کیونکہ اس میں رات کی تاریکی کے بقایا اثرات اور دن کی روشنی کی ابتدا ہوتی ہے۔ میں کہتا ہوں: اور صحیح بات یہ ہے کہ دن طلوع فجر سے غروب آفتاب تک ہے؛ جیسا کہ ابن فارس نے 'المجمل (3)' میں روایت کیا ہے؛ اس پر وہ بات دلالت کرتی ہے جو صحیح مسلم (4) میں عدی بن حاتم سے ثابت ہے، انہوں نے کہا: جب یہ آیت نازل ہوئی: "یہاں تک کہ تمہارے لیے فجر کا سفید دھاگہ سیاہ دھاگے سے واضح ہو جائے" تو عدی نے آپ سے کہا: اے اللہ کے رسول، میں نے اپنے تکیے کے نیچے دو رسیاں رکھی تھیں (5): ایک سفید رسی اور ایک سیاہ رسی، تاکہ میں رات (6) کو دن سے پہچان سکوں۔ تو رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "تمہارا تکیہ تو بہت چوڑا ہے، یہ تو صرف رات کی سیاہی اور دن کی سفیدی ہے"۔ پس یہ حدیث یہ فیصلہ کرتی ہے کہ دن طلوع فجر سے غروب آفتاب تک ہے، اور یہی قسموں کے بارے میں فقہ کا تقاضا ہے، اور اسی سے احکام وابستہ ہیں۔ چنانچہ جس نے قسم کھائی کہ وہ فلاں سے دن میں بات نہیں کرے گا، پھر اس نے طلوع آفتاب سے پہلے اس سے بات کر لی تو اس کی قسم ٹوٹ گئی، جبکہ پہلے قول کے مطابق نہیں ٹوٹتی۔ اور نبی ﷺ کا قول ہی اس میں

فیصلہ کن اور حکم ہے۔ اور رہا زبان کے ظاہر اور اس کے لفظ 'سعت' (وسعت) (7) سے ماخوذ ہونے پر، تو وہ پو پھٹنے کے وقت سے ہے جب وہ پھیل جائے...

(1) اس شعر کا کہنے والا قیس بن ذریح ہے، اور یہ شعر الاغانی 9/202 میں ہے، اور اس کا دیوان ص 194 میں ان الفاظ کے ساتھ ہے: جب دن کا سورج طلوع ہو تو سلام کر، کیونکہ تجھ پر میرے سلام کی علامت اس کا طلوع ہونا ہے۔ (2) المحرر الوجیز 1/233۔ (3) 3/845۔ (4) نمبر (1090)، اور یہ احمد (19370) اور بخاری (1916) کے ہاں بھی ہے۔ (5) (م) میں ہے: "میں رکھتا ہوں"۔ (6) (م) میں ہے: "ان دونوں کے ذریعے رات کو پہچان سکوں"۔ (7) (م) میں ہے: "السنۃ"، اور جو قلمی نسخوں سے ثابت ہے، وہ المحرر الوجیز 1/233 کے موافق ہے، اور کلام اسی سے ہے۔

٤٩٤ Surah Al-Baqarah: Verse 164

...daytime, as he (1) said: "My palm possessed it, so I caused its opening to flow; a standing person behind it sees what is beyond it." And what has come from Hudhayfah indicates this saying, narrated by Al-Nasa'i (2). It will come under the verses of fasting, God willing (3). Third: The Almighty's saying: {and the ships which sail through the sea} [2:164]. Al-Fulk: ships, and its singular and plural are the same word. It can be masculine or feminine. The movements in the singular are not identical to those in the plural; rather, it is as if the plural is built on a different structure. This is indicated by the middle dual form in their saying: Fulkaan. The singular 'Fulk' is masculine; the Almighty said: {in the laden ship} (4) [Ya-Sin: 41], so it came as masculine. And He said: {and the ships which sail through the sea}, so it was feminine, and it could mean one or many. And He said: {until, when you are in ships and they sail with them by a good wind} [Yunus: 22], so it was plural. It is as if when it is one, it is referred to as 'Al-Markab' (vessel - masculine), and when it is 'Al-Safinah' (ship - feminine). It was also said: its singular is 'Falak', like 'Asad' (lion) and 'Usud' (lions), or 'Khashab' (wood) and 'Khushb' (woods) (5). Its origin is from rotation (dawaran), and from it comes: 'Falak al-sama' (the celestial sphere) on which the stars rotate. And the young girl 'fallakat' when her breasts rounded. From it also: 'Falkat al-mighzal' (the whorl of a spindle). The ship was named 'Fulk' because it rotates/moves in water with the easiest motion (6). The aspect of the verse regarding ships is God's subjugation of them so that they run on the surface of the water and stay afloat despite their weight (7). The first to build it was Noah, peace be upon him, as the Almighty informed, and Gabriel said to him: "Make it on..."

---

(1) He is Qays bin al-Khatim, and the verse is in his Diwan p. 46, and in it: "sees someone standing from behind it." And it preceded in 1/360. (2) In Al-Mujtaba 4/142, and in Al-Kubra (2473), and it is with Ahmad (23400). (3) At the Almighty's saying: {O you who have believed, decreed upon you is fasting}. (4) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233. (5) Al-Sahah (Falk). (6) Tafsir al-Razi 4/220. (7) Al-Wasit 1/247.

६१६ सूरह अल-बक़रह: आयत 164

...दिन का समय, जैसा कि उसने (1) कहा: "मेरी हथेली ने इसे प्राप्त कर लिया, तो मैंने इसकी दरार को बहा दिया; इसके पीछे खड़ा व्यक्ति वह देखता है जो इसके पार है।" और हुजैफा से जो आया है वह इस कथन की ओर संकेत करता है, जिसे अल-नसाई (2) ने उद्धृत किया है। और यह उपवास की आयतों में आएगा, यदि ईश्वर ने चाहा (3)। तीसरा: सर्वशक्तिमान का कथन: {और वे जहाज़ जो समुद्र में चलते हैं}। अल-फ़ुल्क: जहाज़, और इसके एकवचन और बहुवचन के लिए एक ही शब्द है। यह पुल्लिंग और स्त्रीलिंग दोनों हो सकता है। एकवचन में मात्राएँ बहुवचन के समान नहीं होती हैं, बल्कि ऐसा लगता है जैसे बहुवचन एक अलग संरचना पर बना है; यह उनके इस कथन में द्विवचन के बीच में आने से सिद्ध होता है: फ़ुल्कान (Fulkān)। एकवचन 'फ़ुल्क' पुल्लिंग है, अल्लाह तआला ने फ़रमाया: {भरे हुए जहाज़ में} (4) [या-सीन: 41], तो यहाँ यह पुल्लिंग के रूप में आया। और उसने फ़रमाया: {और वे जहाज़ जो समुद्र में चलते हैं}, तो यहाँ स्त्रीलिंग आया, और यह एक या अनेक दोनों का अर्थ रख सकता है। और उसने फ़रमाया: {यहाँ तक कि जब तुम जहाज़ों में होते हो और वे उन्हें लेकर एक अनुकूल हवा के साथ चलते हैं} [यूनुस: 22], तो यहाँ बहुवचन आया। ऐसा लगता है कि जब यह एक हो, तो इसे 'अल-मर्कब' (वाहन - पुल्लिंग) माना जाता है, और जब 'अल-सफ़ीना' (जहाज़ - स्त्रीलिंग)। यह भी कहा गया है कि इसका एकवचन 'फ़लक' है, जैसे 'असद' (शेर) और 'उसद' (शेर - बहुवचन), या 'ख़शब' (लकड़ी) और 'ख़ुशब' (लकड़ियाँ) (5)। इसका मूल 'दौरान' (घूमने) से है, और इसी से है: 'फ़लक अल-समा' (आकाश का गोला) जिस पर तारे घूमते हैं। और 'फ़ल्लकत अल-जारिया' जब लड़की के स्तन गोल हो गए। इसी से है: 'फ़लकत अल-मिगज़ल' (तर्कू का चक्का)। जहाज़ को 'फ़ुल्क' इसलिए कहा गया क्योंकि यह पानी में सबसे आसान गति से घूमता/चलता है (6)। जहाज़ों के संबंध में आयत का पहलू यह है कि अल्लाह ने उन्हें वश में कर दिया है ताकि वे पानी की सतह पर चलें और अपने भारी होने के बावजूद उस पर टिके रहें (7)। इसे सबसे पहले नूह अलैहिस्सलाम ने बनाया था जैसा कि अल्लाह तआला ने बताया, और जिब्रील ने उनसे कहा: "इसे बनाओ..."

---

(1) वह क़ैस बिन अल-ख़तीम है, और शेर उसके दीवान पृष्ठ 46 में है, और उसमें है: "अपने पीछे से खड़े व्यक्ति को देखता है।" और यह 1/360 में पहले आ चुका है। (2) अल-मुज्तबा 4/142 में, और अल-कुबरा (2473) में, और यह अहमद (23400) के पास है। (3) अल्लाह तआला के इस कथन पर:

{ऐ ईमान वालो! तुम पर रोज़े फ़र्ज़ किए गए हैं}। (4) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/233। (5) अल-सिहाह (फ़ल्क)। (6) तफ़्सीर अल-राज़ी 4/220। (7) अल-वसीत 1/247।

دن کا وقت، جیسا کہ اس نے (١) کہا: "میرے ہاتھ نے اسے قابو میں کیا تو میں نے اس کے شگاف کو بہا دیا؛ اس کے پیچھے کھڑا شخص وہ دیکھتا ہے جو اس کے ماورا ہے۔" اور حضرت حذیفہ سے وہ مروی ہے جو اس قول پر دلالت کرتا ہے، اسے نسائی (٢) نے روایت کیا ہے۔ اور یہ روزوں کی آیات میں آئے گا، ان شاء اللہ تعالیٰ (٣)۔ تیسرا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَالْفُلْكِ الَّتِي تَجْرِي فِي الْبَحْرِ﴾ الفلک: کشتیاں، اور اس کا واحد اور جمع ایک ہی لفظ ہے۔ اسے مذکر اور مؤنث دونوں طرح استعمال کیا جاتا ہے۔ واحد میں حرکات (اعراب) بعینہ وہ نہیں ہیں جو جمع میں ہیں، بلکہ ایسا لگتا ہے جیسے جمع ایک اور بناوٹ پر مبنی ہے؛ ان کے اس قول میں تثنیہ (دو کے لیے لفظ) کا درمیانی ہونا اس پر دلالت کرتا ہے: فُلْکَان۔ واحد 'فُلک' مذکر ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿فِي الْفُلْكِ الْمَشْحُونِ﴾ (٤) [یس: ٤١] تو یہاں یہ مذکر آیا، اور فرمایا: ﴿وَالْفُلْكِ الَّتِي تَجْرِي فِي الْبَحْرِ﴾ تو مؤنث لایا، اور یہ واحد اور جمع دونوں کا احتمال رکھتا ہے۔ اور فرمایا: ﴿حَتَّىٰ إِذَا كُنتُمْ فِي الْفُلْكِ وَجَرَيْنَ بِهِم بِرِيحٍ طَيِّبَةٍ﴾ [یونس: ٢٢] تو یہاں جمع کا صیغہ لایا۔ تو گویا جب وہ ایک ہو تو اسے 'المرکب' (سواری - مذکر) کی طرف پھیرا جاتا ہے تو مذکر استعمال ہوتا ہے، اور جب 'السفینہ' (کشتی - مؤنث) کی طرف تو مؤنث۔ اور کہا گیا ہے: اس کا واحد 'فَلَک' ہے، جیسے 'اَسَد' (شیر) اور 'اُسُد' (جمع)، یا 'خَشَب' (لکڑی) اور 'خُشْب' (جمع) (٥)۔ اور اس کی اصل 'دوران' (گھومنے) سے ہے، اور اسی سے ہے: 'فلک السماء' (آسمان کا دائرہ) جس پر ستارے گردش کرتے ہیں۔ اور 'فلّکت الجاریہ' جب لڑکی کی چھاتی گول ہو گئی۔ اور اسی سے ہے: 'فلکۃ المغزل' (تکلے کا چکر)۔ اور کشتی کو 'فُلک' اس لیے کہا گیا کیونکہ وہ پانی میں نہایت آسانی سے گردش کرتی (چلتی) ہے (٦)۔ اور کشتی کے بارے میں آیت کا پہلو یہ ہے کہ اللہ نے اسے مسخر کر دیا ہے یہاں تک کہ وہ پانی

کی سطح پر چلتی ہے، اور اپنے بوجھ کے باوجود اس کے اوپر ٹھہری رہتی ہے (۷)۔ اور اسے سب سے پہلے حضرت نوح علیہ السلام نے بنایا تھا جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے خبر دی، اور حضرت جبرائیل نے ان سے کہا: اسے بناؤ...

---

(۱) وہ قیس بن الخطیم ہے، اور شعر اس کے دیوان ص ۴۶ میں ہے، اور اس میں ہے: یریٰ قائماً من خلفہا۔ اور پہلے گزر چکا ۱/ ۳۶۰۔ (۲) المجتبیٰ ۴/ ۱۴۲ میں، اور الکبریٰ (۲۴۷۳) میں، اور یہ احمد (۲۳۴۰۰) کے ہاں ہے۔ (۳) اللہ تعالیٰ کے اس قول کے پاس: ﴿يَأَيُّهَا الَّذِينَ ءَامَنُوا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ﴾۔ (۴) المحرر الوجیز ۱/ ۲۳۳۔ (۵) الصحاح (فلک)۔ (۶) تفسیر الرازی ۴/ ۲۲۰۔ (۷) الوسیط ۱/ ۲۴۷۔

Page 495 Surah Al-Baqarah: Verse 164

...the chest of a bird, so Noah (peace be upon him) built it as an inheritance for the worlds as shown to him by Gabriel. The ship is like an inverted bird, and the water at its bottom is like the air at its top, as said by Ibn al-Arabi (1).

Fourth: This verse and its like are evidence for the permissibility of sailing the sea in general, whether for trade or worship like Hajj and Jihad. From the Sunnah is the hadith of Abu Hurairah who said: A man came to the Messenger of Allah (peace be upon him) and said: O Messenger of Allah, we sail the sea and carry a little water with us... the hadith. And the hadith of Anas bin Malik in the story of Umm Haram, both recorded by the Imams: Malik and others (2).

A group narrated the hadith of Anas from him, on the authority of Ishaq bin Abdullah bin Abi Talha, on the authority of Anas.

It was narrated by Bishr bin Umar, on the authority of Malik, on the authority of Ishaq, on the authority of Anas, on the authority of Umm Haram (3), who categorized it as part of Umm Haram's Musnad, not Anas's Musnad. This is how Bundar Muhammad bin Bashar narrated it from him.

In it is clear evidence for sailing the sea for Jihad for both men and women, and if sailing for Jihad is permissible, then sailing for the obligatory Hajj is more appropriate and necessary. It was narrated from Umar bin al-Khattab and Umar bin Abdul Aziz (may Allah be pleased with them both) that they prohibited sailing it. But the Quran and Sunnah refute this saying; for if sailing it were disliked or not permissible, the Prophet (peace be upon him) would have forbidden those who said to him: "We sail the sea." This verse and its like are explicit texts for this purpose, and to them is the resort. What was narrated from the two Umars in that regard has been interpreted as being based on precaution and avoiding risking lives in pursuit of worldly gain and accumulation; as for performing obligatory duties, it is not so (4). Among what indicates the permissibility of sailing it from the aspect of...

(1) In Ahkam al-Quran 3/1036, and "al-Ju'ju'" means the chest. Al-Qamus (Ja'ja'). (2) The hadith of Abu Hurairah was recorded by Malik 1/22, Ahmad (8735), Abu Dawud (83), al-Tirmidhi (69), al-Nasa'i 1/50, and Ibn Majah (386). The hadith of Anas was recorded by Malik 2/464, 465, Ahmad (13520), (13790), al-Bukhari (2788), and Muslim (1912). (3) Recorded by Ahmad (27032), al-Bukhari (2799), (2800), and Muslim (1912) (161) from the path of Muhammad bin Yahya bin Habban on the authority of Anas.

(4) See At-Tamheed 1/226-233, 234, and the report of Umar bin al-Khattab was recorded by Ibn Abi Shaybah 5/315, and at-Tabarani=

पृष्ठ ४९५ सूरा अल-बकरा: आयत १६४

...पक्षी का सीना, इसलिए नूह (उन पर शांति हो) ने इसे दुनिया के लिए एक विरासत के रूप में बनाया जैसा कि उन्हें जिब्रील ने दिखाया था। जहाज एक उल्टे पक्षी की तरह है, और इसके तल का पानी इसके शीर्ष पर हवा के समान है, जैसा कि इब्न अल-अरबी (१) ने कहा है।

चौथा: यह आयत और इसके जैसी आयतें व्यापार या हज और जिहाद जैसी इबादत के लिए समुद्र की यात्रा करने की सामान्य अनुमति का प्रमाण हैं। सुन्नत से अबू हुरैरा की हदीस है जिन्होंने कहा: एक व्यक्ति अल्लाह के रसूल (उन पर शांति हो) के पास आया और कहा: हे अल्लाह के रसूल, हम समुद्र की यात्रा करते हैं और अपने साथ थोड़ा पानी ले जाते हैं... हदीस। और उम्मे हराम की कहानी में अनस बिन मलिक की हदीस, जिसे इमामों ने दर्ज किया है: मालिक और अन्य (२)।

अनस की हदीस को उनसे एक समूह ने इशाक बिन अब्दुल्ला बिन अबी तल्हा के माध्यम से अनस के अधिकार से वर्णित किया है।

इसे बिश्र बिन उमर ने मालिक के माध्यम से, इशाक के माध्यम से, अनस के माध्यम से, उम्मे हराम (३) के अधिकार से वर्णित किया है, जिन्होंने इसे अनस के मुसनद के बजाय उम्मे हराम के मुसनद का हिस्सा माना है। बुंदार मुहम्मद बिन बशर ने उनसे इसी तरह इसका वर्णन किया है।

इसमें पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए जिहाद के लिए समुद्र की यात्रा करने का स्पष्ट प्रमाण है, और यदि जिहाद के लिए इसकी यात्रा करना जायज़ है, तो अनिवार्य हज के लिए इसकी यात्रा करना अधिक उपयुक्त और आवश्यक है। उमर बिन अल-खत्ताब और उमर बिन अब्दुल अजीज (अल्लाह उन दोनों से प्रसन्न हो) से यह वर्णित है कि उन्होंने इसकी यात्रा करने से मना किया था। लेकिन कुरान और सुन्नत इस बात का खंडन करते हैं; क्योंकि यदि इसकी यात्रा करना नापसंद या जायज़ नहीं होता, तो नबी (उन पर शांति हो) उन लोगों को मना कर देते जिन्होंने उनसे कहा था: "हम समुद्र की यात्रा करते हैं।" यह आयत और इसके जैसी आयतें इस उद्देश्य के लिए स्पष्ट पाठ हैं, और उन्हीं की शरण ली जानी चाहिए। उस संबंध में दो उमरों से जो वर्णित किया गया है, उसकी व्याख्या इस प्रकार की गई है कि वह एहतियात और दुनिया के लाभ और संचय की तलाश में जान जोखिम में डालने से बचने पर आधारित था; जहाँ तक अनिवार्य कर्तव्यों के पालन की बात है, तो ऐसा नहीं है (४)। इसके पक्ष से इसकी यात्रा करने की अनुमति का संकेत देने वाली चीजों में से...

(१) अहकाम अल-कुरान ३/१०३६ में, और "अल-जुजु" का अर्थ है छाती। अल-कामूस (जाजा)। (२) अबू हुरैरा की हदीस को मालिक १/२२, अहमद (८७३५), अबू दाऊद (८३), अल-तिर्मिज़ी (६९), अल-नसाई १/५० और इब्न माजह (३८६) ने दर्ज किया है। अनस की हदीस को मालिक २/४६४, ४६५, अहमद (१३५२०), (१३७९०), अल-बुखारी (२७८८) और मुस्लिम (१९१२) ने दर्ज किया है। (३) इसे अहमद (२७०३२), अल-बुखारी (२७९९), (२८००) और मुस्लिम (१९१२) (१६१) ने मुहम्मद बिन याह्या बिन हब्बान के माध्यम से अनस के अधिकार से दर्ज किया है। (४) देखें अल-तमहीद १/२२६-२३३, २३४, और उमर बिन अल-खत्ताब की रिपोर्ट इब्न अबी शयबा ५/३१५ और अल-तबरानी द्वारा दर्ज की गई है=

صفحہ ٤٩٥ سورة البقرہ : آیت ١٦٤

...پرندے کا سینہ، چنانچہ نوح علیہ السلام نے اسے جہانوں کے لیے بطور وراثت بنایا جیسا کہ انہیں جبریل نے دکھایا تھا۔ پس کشتی ایک الٹے پرندے کی مانند ہے، اور اس کے نیچے کا پانی اس کے اوپر کی ہوا کے مشابہ ہے، یہ ابن العربی (١) نے کہا ہے۔

چوتھی بات: یہ آیت اور اس جیسی دیگر آیات مطلق طور پر سمندری سفر کے جواز کی دلیل ہیں، خواہ وہ تجارت کے لیے ہو یا حج اور جہاد جیسی عبادت کے لیے۔ سنت سے ابو ہریرہ کی حدیث ہے، انہوں نے کہا: ایک شخص رسول اللہ ﷺ کی خدمت میں حاضر ہوا اور عرض کیا: اے اللہ کے رسول، ہم سمندر کا سفر کرتے ہیں اور اپنے ساتھ تھوڑا پانی لے جاتے ہیں... حدیث۔ اور قصہ ام حرام میں انس بن مالک کی حدیث، ان دونوں کو ائمہ: مالک اور دیگر نے روایت کیا ہے (٢)۔

انس کی حدیث کو ان سے ایک جماعت نے اسحاق بن عبداللہ بن ابی طلحہ کے واسطے سے انس سے روایت کیا ہے۔

اور اسے بشر بن عمر نے مالک سے، انہوں نے اسحاق سے، انہوں نے انس سے، انہوں نے ام حرام (٣) سے روایت کیا، انہوں نے اسے مسند انس کے بجائے مسند ام حرام کا حصہ قرار دیا۔ بندار محمد بن بشار نے ان سے اسی طرح روایت کی ہے۔

پس اس میں مردوں اور عورتوں کے لیے جہاد میں سمندری سفر کی واضح دلیل ہے، اور যখন جہاد کے لیے اس کا سفر جائز ہے تو فرض حج کے لیے اس کا سفر زیادہ اولیٰ اور واجب ہے۔ اور عمر بن الخطاب اور عمر بن عبدالعزیز رضی اللہ عنہما سے اس کے سفر کی ممانعت مروی ہے۔ لیکن قرآن و سنت اس قول کو رد کرتے ہیں؛ کیونکہ اگر اس کا سفر ناپسندیدہ یا ناجائز ہوتا تو نبی

ﷺ ان لوگوں کو منع فرما دیتے جنہوں نے آپ سے کہا تھا: "ہم سمندر کا سفر کرتے ہیں۔" اور یہ آیت اور اس جیسی دیگر آیات اس مقصد میں نص (واضح حکم) ہیں، اور انہی کی طرف رجوع کیا جاتا ہے۔ اور اس بارے میں جو دونوں عمروں سے مروی ہے اس کی تاویل یہ کی گئی ہے کہ اسے احتیاط اور دنیا کی طلب اور اس کی کثرت کے لیے جانوں کو خطرے میں ڈالنے سے بچنے پر محمول کیا گیا ہے، لیکن فرائض کی ادائیگی میں ایسا نہیں ہے (۴)۔ اور اس کے جواز پر دلالت کرنے والی چیزوں میں سے...

(۱) احکام القرآن ۳/ ۱۰۳۶ میں، اور الجؤجؤ: سینہ۔ القاموس (جأجأ)۔ (۲) ابو ہریرہ کی حدیث کو مالک ۱/ ۲۲، احمد (۸۷۳۵)، ابو داؤد (۸۳)، ترمذی (۶۹)، نسائی ۱/ ۵۰ اور ابن ماجہ (۳۸۶) نے روایت کیا ہے۔ اور انس کی حدیث کو مالک ۲/ ۴۶۴، ۴۶۵، احمد (۱۳۵۲۰)، (۱۳۷۹۰)، بخاری (۲۷۸۸) اور مسلم (۱۹۱۲) نے روایت کیا ہے۔ (۳) اسے احمد (۲۷۰۳۲)، بخاری (۲۷۹۹)، (۲۸۰۰) اور مسلم (۱۹۱۲) (۱۶۱) نے محمد بن یحییٰ بن حبان کے واسطے سے انس سے روایت کیا ہے۔ (۴) دیکھئے التمہید ۱/ ۲۲۶-۲۳۳، ۲۳۴، اور عمر بن الخطاب کا اثر ابن ابی شیبہ ۵/ ۳۱۵ اور طبرانی نے روایت کیا ہے=

496 Surah Al-Baqarah: Verse 164

The meaning is that Allah Almighty placed the sea in the middle of the earth, and placed the creation on the two sides (al-udwatayn), and divided the benefits between the two sides. Thus, these benefits cannot be reached except by crossing the sea. So Allah facilitated its path by ships (al-fulk), as said by Ibn al-Arabi (1).

Abu Umar (2) said: Malik used to dislike the Hajj (3) for women by sea, and he disliked it even more for Jihad (4). The Quran and Sunnah refute his opinion, except that some of our companions from the people of Basra said: Malik only disliked that because the ships in the Hijaz were small, and women were unable to veil themselves when using the toilet due to their narrowness and the crowding of people; and the road from Medina to Mecca by land was possible, so Malik disliked it for that reason. As for the large ships like those of the people of Basra, there is no harm in that. He said: The basic principle is that Hajj is obligatory for everyone who is able to find a way to it among the free adults, whether they are women or men, if the majority of the road is safe, and He did not specify sea over land.

I say: So the Book, the Sunnah, and the meaning indicate the permissibility of riding it for both purposes: worship and trade, for it is the proof and there is an example in it. However, people's conditions in riding the sea differ; for some riders it is easy and not difficult, while for others it is difficult and makes them weak, like the one who suffers excessively from sea sickness (5), and those who are unable to perform the obligatory prayer and other duties; for the first, it is permissible, and for the second, it is forbidden and prohibited. There is no disagreement among the scholars, and it is:

Fifth: If the sea becomes rough (6), it is not permissible for anyone to ride it in any way during...

= In Al-Kabir (8334), and the report of Umar ibn Abd al-Aziz was cited by Ibn Abd al-Barr in At-Tamhid 1/233, and Al-Qadi Iyad in Al-Ikmal 6/339. (1) Ahkam al-Quran 3/1036, and his saying: "Al-Udwatayn" is the dual of "udwa": the side of the valley and its edge. Al-Sihah (adaa). (2) At-Tamhid 1/233. (3) In (m): He dislikes the woman riding for Hajj. (4) In (d): in Jihad. (5) Al-Ma'id: One who suffers from nausea and dizziness from intoxication or riding the sea. Al-Qamus (mayd). (6) Artajja al-bahr: The sea became agitated and its water increased so it submerged everything. Al-Qamus (ratj).

४९६ सूरह अल-बक़रह: आयत १६४

अर्थ यह है कि अल्लाह तआला ने समुद्र को पृथ्वी के मध्य में रखा, और सृष्टि को दोनों किनारों (अल-उदवतन) पर बनाया, और दोनों पक्षों के बीच लाभों को विभाजित किया। इसलिए, इन लाभों को समुद्र पार किए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है। तो अल्लाह ने जहाजों (अल-फ़ुल्क) के माध्यम से इसका मार्ग सुगम बना दिया, जैसा कि इब्न अल-अरबी (१) ने कहा है।

अबू उमर (२) ने कहा: मालिक महिलाओं के लिए समुद्र के रास्ते हज (३) करना नापसंद करते थे, और उन्होंने जिहाद (४) के लिए इसे और भी अधिक नापसंद किया। कुरान और सुन्नत उनकी बात का खंडन करते हैं, सिवाय इसके कि बसरा के लोगों में से हमारे कुछ साथियों ने कहा: मालिक ने इसे केवल इसलिए नापसंद किया क्योंकि हिजाज़ में जहाज छोटे थे, और महिलाएं तंग जगह और लोगों की भीड़ के कारण शौचालय जाते समय खुद को ढंकने में असमर्थ थीं; और मदीना से मक्का तक का रास्ता ज़मीन से संभव था, इसलिए मालिक ने उस कारण से इसे नापसंद किया। जहाँ तक बसरा के लोगों जैसे बड़े जहाजों का सवाल है, तो इसमें कोई बुराई नहीं है। उन्होंने कहा: मूल सिद्धांत यह है कि हज उन सभी के लिए अनिवार्य है जो स्वतंत्र वयस्कों में से इसके लिए रास्ता पा सकें, चाहे वे महिलाएं हों या पुरुष, यदि अधिकांश रास्ता सुरक्षित हो, और उन्होंने समुद्र को ज़मीन पर प्राथमिकता नहीं दी।

मैंने कहा: तो किताब, सुन्नत और अर्थ दोनों उद्देश्यों के लिए इसकी सवारी की अनुमति का संकेत देते हैं: इबादत और व्यापार, क्योंकि यह प्रमाण है और इसमें उदाहरण है। हालाँकि, समुद्र की सवारी करने में लोगों की स्थितियाँ अलग-अलग होती हैं; कुछ सवारों के लिए यह आसान है और कठिन नहीं है, जबकि दूसरों के लिए यह कठिन है और उन्हें कमज़ोर बना देता है, जैसे कि वह व्यक्ति जो अत्यधिक समुद्री बीमारी (५) से ग्रस्त है, और जो इसके साथ अनिवार्य प्रार्थना और अन्य कर्तव्यों को निभाने में असमर्थ है; पहले के लिए, यह जायज़ है, और दूसरे के लिए, यह हराम और प्रतिबंधित है। विद्वानों के बीच कोई मतभेद नहीं है, और वह है:

पांचवां: यदि समुद्र अशांत (६) हो जाए, तो किसी भी स्थिति में किसी के लिए इसकी सवारी करना जायज़ नहीं है...

= अल-कबीर (८३३४) में, और उमर बिन अब्दुल अजीज की रिवायत इब्न अब्दुल बर्र ने अत-तमहीद १/२३३ में और अल-क़ादी अयाज़ ने अल-इकमल ६/३३९ में उद्धृत की है। (१) अहकाम अल-कुरान

३/१०३६, और उनका कहना: "अल-उदवतन" उदवा का द्विवचन है: घाटी का किनारा और उसका तट। अल-सिहाह (अदा)। (२) अत-तमहीद १/२३३। (३) (म) में: वह महिला के हज के लिए सवारी करने को नापसंद करता है। (४) (द) में: जिहाद में। (५) अल-माइद: वह जिसे नशे या समुद्र की सवारी से मतली और चक्कर आता हो। अल-क़ामूस (मयद)। (६) अर्तज्जा अल-बहर: समुद्र उद्वेलित हो गया और उसका पानी बढ़ गया जिससे सब कुछ डूब गया। अल-क़ामूस (रतज)।

۴۹۶ سورہ البقرہ: آیت ۱۶۴

مطلب یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے سمندر کو زمین کے درمیان میں رکھا، اور مخلوق کو دونوں کناروں (العُدْوَتَین) پر بنایا، اور دونوں اطراف کے درمیان فوائد کو تقسیم کیا، چنانچہ سمندر کو چیرے بغیر ان فوائد کے حصول تک رسائی ممکن نہیں، تو اللہ نے بحری جہازوں (بالفُلْک) کے ذریعے اس کا راستہ آسان کر دیا، جیسا کہ ابن العربی (۱) نے کہا۔

ابو عمر (۲) نے کہا: امام مالک عورت کے لیے سمندر کے ذریعے حج (۳) کرنے کو ناپسند کرتے تھے، اور جہاد (۴) کے لیے وہ اسے اس سے بھی زیادہ ناپسند کرتے تھے۔ قرآن اور سنت ان کے اس قول کی تردید کرتے ہیں، سوائے اس کے کہ بصرہ کے رہنے والے ہمارے بعض اصحاب نے کہا: امام مالک نے اسے صرف اس لیے ناپسند کیا تھا کیونکہ حجاز میں کشتیاں چھوٹی تھیں، اور عورتیں ان کی تنگی اور لوگوں کے ہجوم کی وجہ سے قضائے حاجت کے وقت پردہ کرنے پر قادر نہیں تھیں؛ اور مدینہ سے مکہ تک کا راستہ خشکی کے ذریعے ممکن تھا، اس لیے مالک نے اسے ناپسند کیا۔ جہاں تک بڑے جہازوں کا تعلق ہے جیسے اہل بصرہ کے جہاز، تو اس میں کوئی حرج نہیں۔ انہوں نے کہا: اصل یہ ہے کہ حج ہر اس شخص پر واجب ہے جو اس کی استطاعت رکھتا ہو، خواہ وہ آزاد بالغ مرد ہوں یا عورتیں، بشرطیکہ راستے کا اکثر حصہ پرامن ہو، اور اللہ نے خشکی کے مقابلے میں سمندر کو خاص نہیں کیا۔

میں نے کہا: پس کتاب و سنت اور مفہوم ان دونوں مقاصد کے لیے سمندر کی سواری کے جائز ہونے پر دلالت کرتے ہیں: عبادت اور تجارت، پس یہی دلیل ہے اور اس میں پیروی ہے۔ مگر یہ کہ سمندر کی سواری میں لوگوں کے احوال مختلف ہوتے ہیں، پس کوئی سوار ایسا ہوتا ہے جس پر یہ آسان ہوتا ہے اور دشوار نہیں ہوتا، اور دوسرا وہ ہے جس پر یہ شاق گزرتا ہے اور اسے کمزور

کر دیتا ہے، جیسے بہت زیادہ متلی اور چکر آنے والا (۵)، اور وہ شخص جو اس کے ساتھ فرض نماز اور دیگر فرائض ادا کرنے کی قدرت نہ رکھتا ہو؛ تو پہلے شخص کے لیے یہ جائز ہے، اور دوسرے کے لیے یہ حرام اور ممنوع ہے۔ اور اہل علم کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے، اور وہ یہ ہے:

پانچویں بات: یہ کہ جب سمندر میں تلاطم (۶) برپا ہو، تو کسی بھی صورت میں کسی کے لیے اس کی سواری جائز نہیں ہے...

= الکبیر (۸۳۳۴) میں، اور عمر بن عبدالعزیز کا اثر ابن عبدالبر نے التمہید ۱/ ۲۳۳ میں اور قاضی عیاض نے الاکمال ۶/ ۳۳۹ میں ذکر کیا ہے۔ (۱) احکام القرآن ۳/ ۱۰۳۶، اور ان کا قول: «العُدْوَتَین» عدوہ کا تثنیہ ہے: وادی کی جانب اور اس کا کنارہ۔ الصحاح (عدا)۔ (۲) التمہید ۱/ ۲۳۳۔ (۳) (م) میں ہے: وہ عورت کے لیے حج کے لیے سواری کو ناپسند کرتا ہے۔ (۴) (د) میں ہے: جہاد میں۔ (۵) المائد: وہ شخص جسے نشے یا سمندر کی سواری سے متلی اور چکر آئے۔ القاموس (مید)۔ (۶) أرتجَّ البحر: سمندر میں جوش آیا اور پانی کی کثرت ہوگئی یہاں تک کہ ہر چیز کو ڈھانپ لیا۔ القاموس (رتج)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 164 497

...its agitation, nor in times when safety is mostly absent. Rather, they consider it permissible to ride [the sea] in times when safety is most likely. For those who ride it in times of safety and survive are countless, while those who perish in it are limited(1).

Sixth: His Almighty's words: {with what benefits people}, i.e., with that which benefits them in trade and other needs through which their conditions are improved. By seafaring, profits are gained, and those to whom goods are carried also benefit(2).

Someone who criticized the religion said: God Almighty says in your book: {We have not neglected anything in the Book} [Al-An'am: 38]. So where is the mention of spices that improve food, such as salt, pepper, and so on? It was said to him in His words: {with what benefits people}.

Seventh: His Almighty's words: {and what Allah sent down from the sky of water}, meaning the rains through which the world is revived and plants and provisions are brought forth(3). He made stored water from it as a preparation for use at times other than when it falls; as His Almighty said: {and We caused it to dwell in the earth} [Al-Mu'minun: 18].

Eighth: His Almighty's words: {and scattered therein of every moving creature}, i.e., dispersed and spread out. From this is {like moths scattered} [Al-Qari'ah: 4]. "Dabbah" (creature) includes all animals. Some people excluded birds, which is rejected. Allah Almighty said: {And there is no creature on earth but that upon Allah is its provision} [Hud: 6]. For birds crawl/walk on their feet in some of their states. Al-A'sha said: The crawling of the sandgrouse of the valley at every watering hole (4) And 'Alqama ibn 'Abada said: Its thunderbolts are a crawling sound for their birds (5)

(1) Ahkam al-Quran by Ibn al-Arabi 3/1036. (2) See Al-Waseet 1/247. (3) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233. (4) His Diwan p. 403, and the beginning of the verse: "Tall like a branch of Ban tree, it trembles when she walks." His words: "Niyaf": long in height, "Al-Qata": a bird, "Al-Manhal": the place where there is drinking water, and the station in the wilderness. Al-Qamus al-Muhit. (5) His Diwan p. 46, and its beginning: "As if a cloud poured upon them."

सूरा अल-बकरा: आयत 164 497

...उसका हिलना-डुलना, और न ही उस समय में जब सुरक्षा का अभाव सबसे अधिक हो। बल्कि उनके अनुसार इसे उस समय चलाना जायज़ है जब सुरक्षा की संभावना सबसे अधिक हो। क्योंकि जो लोग सुरक्षा की स्थिति में इस पर सवारी करते हैं और बच जाते हैं, वे अनगिनत हैं, और जो इसमें नष्ट हो जाते हैं वे सीमित हैं(1)।

छठा: सर्वशक्तिमान अल्लाह का कथन: {उस चीज़ के साथ जो लोगों को लाभ पहुँचाती है} यानी, उस चीज़ के साथ जो उन्हें व्यापार और अन्य ज़रूरतों में लाभ पहुँचाती है जिससे उनकी स्थिति सुधरती है। समुद्री यात्रा से लाभ प्राप्त होता है, और जिसे सामान पहुँचाया जाता है उसे भी लाभ होता है(2)।

धर्म की आलोचना करने वाले कुछ लोगों ने कहा: अल्लाह तआला तुम्हारी किताब में कहता है: {हमने किताब में कोई चीज़ नहीं छोड़ी} [अल-अनआम: 38]। तो नमक, काली मिर्च आदि जैसे भोजन को बेहतर बनाने वाले मसालों का उल्लेख कहाँ है? तो उनसे उनके इस कथन में कहा गया: {उस चीज़ के साथ जो लोगों को लाभ पहुँचाती है}।

सातवाँ: सर्वशक्तिमान अल्लाह का कथन: {और जो अल्लाह ने आसमान से पानी उतारा}, इससे अभिप्राय वे वर्षाएं हैं जिनसे संसार को नवजीवन मिलता है और वनस्पतियां तथा जीविका निकलती हैं(3)। उसने उसमें से संचित जल को वर्षा न होने के समय उपयोग के लिए एक साधन बनाया; जैसा कि सर्वशक्तिमान ने कहा: {तो हमने उसे धरती में टिका दिया} [अल-मुमिनून: 18]।

आठवां: सर्वशक्तिमान अल्लाह का कथन: {और उसमें हर प्रकार के जीव फैला दिए}, यानी बिखेर दिए और फैला दिए। इसी से {बिखरे हुए पतंगों की तरह} [अल-कारिआ: 4] है। और "दाब्बा" (जीव) में सभी जानवर शामिल हैं। कुछ लोगों ने पक्षियों को इससे बाहर रखा है, जो कि अस्वीकार्य है। अल्लाह तआला ने फरमाया: {और धरती पर कोई ऐसा जीव नहीं जिसकी जीविका अल्लाह के ज़िम्मे न हो} [हूद: 6]। क्योंकि पक्षी अपनी कुछ स्थितियों में अपने पैरों पर चलते (रेंगते) हैं। अल-आशा ने कहा: हर घाट पर घाटी के कता (एक पक्षी) की रेंगन (4) और अलक़मा बिन अब्दा ने कहा: उनकी बिजली उनके पक्षियों के लिए रेंगने वाली है (5)

(1) अहकाम अल-कुरान, इब्न अल-अरबी 3/1036। (2) अल-वसीत 1/247 देखें। (3) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/233। (4) उनका दीवान पृ. 403, और शेर का पहला भाग: "बान की टहनी की तरह लंबी, चलते समय कांपती है।" उनके शब्द: "नियाफ़": ऊंचाई में लंबी, "अल-क़ता": एक पक्षी, "अल-

मन्हाल": वह स्थान जहाँ पीने का पानी हो, और वह पड़ाव जो जंगल में हो। अल-क़ामूस अल-मुहीत।
(5) उनका दीवान पृ. 46, और इसका पहला भाग: "जैसे उन पर कोई बादल बरस पड़ा हो।"

سورہ بقرہ: آیت 164 497

...اس کا مضطرب ہونا، اور نہ ہی اس وقت میں جس میں عام طور پر سلامتی مفقود ہو، بلکہ ان کے نزدیک اسے اس وقت استعمال کرنا جائز ہے جب سلامتی کے امکانات زیادہ ہوں۔ کیونکہ جو لوگ سلامتی کی حالت میں اس پر سوار ہوتے ہیں اور بچ جاتے ہیں وہ بے شمار ہیں، اور جو اس میں ہلاک ہوتے ہیں وہ محدود ہیں(1)۔

چھٹا: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {بِمَا يَنفَعُ النَّاسَ} یعنی اس چیز کے ساتھ جو انہیں تجارت اور دیگر ضروریات میں فائدہ پہنچاتی ہے جس سے ان کے حالات درست ہوتے ہیں۔ سمندری سفر سے منافع حاصل ہوتا ہے، اور جسے مال پہنچایا جاتا ہے اسے بھی فائدہ ہوتا ہے(2)۔

دین پر اعتراض کرنے والے بعض لوگوں نے کہا: اللہ تعالیٰ تمہاری کتاب میں فرماتا ہے: {مَّا فَرَّطْنَا فِي الْكِتَابِ مِن شَيْءٍ} [الأنعام: 38] تو کھانے کو درست کرنے والے مصالحہ جات جیسے نمک، کالی مرچ وغیرہ کا ذکر کہاں ہے؟ تو ان سے اس قول میں کہا گیا: {بِمَا يَنفَعُ النَّاسَ}۔

ساتواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَمَا أَنزَلَ اللَّهُ مِنَ السَّمَاءِ مِن مَّاءٍ} یعنی اس سے مراد وہ بارشیں ہیں جن سے دنیا کی زندگی بحال ہوتی ہے اور نباتات و رزق نکلتے ہیں(3)۔ اور اس نے اس میں سے ذخیرہ شدہ پانی کو بارش نہ ہونے کے وقت استعمال کے لیے ایک ذریعہ بنایا؛ جیسا کہ اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {فَأَسْكَنَّاهُ فِي الْأَرْضِ} [المؤمنون: 18]۔

آٹھواں: اللہ تعالیٰ کا فرمان: {وَبَثَّ فِيهَا مِن كُلِّ دَابَّةٍ} یعنی بکھیر دیئے اور پھیلا دیئے، اسی سے {كَالْفَرَاشِ الْمَبْثُوثِ} [القارعة: 4] ہے۔ اور "دابہ" میں تمام جانور شامل ہیں، بعض لوگوں نے پرندوں کو اس سے نکال دیا ہے جو کہ مردود ہے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: {وَمَا مِن دَابَّةٍ فِي الْأَرْضِ

إِلَّا عَلَى اللَّهِ رِزْقُهَا} [هود: 6]، کیونکہ پرندہ اپنی بعض حالتوں میں اپنے پاؤں پر چلتا (رینگتا) ہے، اعشی نے کہا: ہر گھاٹ پر وادی کے قطا (ایک پرندہ) کی چال (4) اور علقمہ بن عبدہ نے کہا: ان کی بجلیاں ان کے پرندوں کے لیے رینگنا ہیں (5)

(1) احکام القرآن لابن العربی 1036/3۔ (2) دیکھیے الوسیط 247/1۔ (3) المحرر الوجیز 233/1۔ (4) ان کا دیوان ص 403، اور بیت کا پہلا مصرع: "نیاف کغصن البان ترتج إن مشت"۔ ان کا قول: "نیاف": اونچی لمبی، "القطا": ایک پرندہ، "المنہل": وہ جگہ جہاں پانی پینے کا مقام ہو، اور وہ منزل جو ریگستان میں ہو۔ القاموس المحیط (5) ان کا دیوان ص 46، اور اس کا پہلا مصرع: "کأنهم صابت علیهم سحابة"۔

498

Surah Al-Baqarah: Verse 164

Ninth: His, the Almighty's, saying: {And the changing of the winds}. Its "changing" refers to sending it barren or fertilizing, as a biting cold, as a victory, as a destruction, hot and cold, gentle and storming. It is said: its "changing" is sending it southerly, northerly, westerly (dabur), easterly (saba), and nakba (inclined), which is that which comes between the blowings of two winds(1). It is also said: its "changing" is that it comes to large ships in proportion to what they can bear, and likewise for small ones, and it diverts away from them what would harm them. There is no consideration for the size or smallness of the sails, for if the wind came as a single body, it would strike the sails and drown [the ships].

And riyāḥ (winds) is the plural of rīḥ; it is so named because it often comes with rawḥ (relief/mercy) predominantly.

Abu Dawud narrated from Abu Hurayrah who said: I heard the Messenger of Allah ﷺ say: "The wind is from the rawḥ of Allah - Salama said: farawḥu Allah (the relief of Allah) - it comes with mercy and it comes with punishment, so when you see it, do not curse it, but ask Allah for its good, and seek refuge in Allah from its evil"(3).

Ibn Majah also included it in his Sunan: Abu Bakr bin Abi Shaybah told us, Yahya bin Sa'id told us, from al-Awza'i, from al-Zuhri, Thabit al-Zurqi told us, from Abu Hurayrah who said: The Messenger of Allah ﷺ said: "Do not curse the wind, for it is from the rawḥ of Allah, it comes with mercy and punishment, but ask Allah for its good, and seek refuge in Allah from its evil"(4).

And it is narrated from the Prophet ﷺ that he said: "Do not curse the wind, for it is from the breath of the Most Merciful"(5).

= And the meaning of the verse (poetry): It is as if the devastating killing that befell them was a cloud that came with thunderbolts and killed the birds it hit, and what escaped from it remained crawling, unable to fly. Said by al-Shantamari. (1) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233, al-Wasit 1/247, and see Tafsir al-Razi 4/227. (2) The word "min" (from) is not in (M). (3) Sunan Abi Dawud (5097). His saying: "Salama said: farawḥu Allah", means that Salama - who is Ibn Shabib, one of the two sheikhs of Abu Dawud for this hadith - added the word: farawḥu Allah. As for his other sheikh in the hadith - who is Ahmad bin Muhammad al-Marwazi - he does not have this addition.

(4) Sunan Ibn Majah (3727), and it is in Ahmad (7413) through the path of Yahya bin Sa'id - who is al-Qattan - with it. (5) We did not find it attributed to the Prophet with this exact wording except what Ibn Qutayba mentioned in Ta'wil Mukhtalif al-Hadith, p. 212, without mentioning its narrator. Ahmad recorded it (21139) from the hadith of Ubayy attributed to the Prophet with the wording: "Do not curse the wind, for it is from the ruh (spirit/mercy) of Allah...". It was also recorded by Abdullah bin Ahmad in al-Sunnah (1196), al-Nasa'i in al-Kubra (10705), and al-Hakim 2/272.

४९८

सूरह अल-बक़रा: आयत १६४

नौवां: अल्लाह तआला का कथन: {तथा हवाओं का फेरना}। इसका "फेरना" है: उन्हें बांझ (बिना वर्षा के) या गर्भाधान करने वाला (वर्षा के लिए), कष्टदायी और विजयी और विनाशकारी, गर्म और ठंडी, नरम और तूफानी बनाकर भेजना। और यह कहा गया: इसका फेरना इसे दक्षिण, उत्तर, पश्चिम (दबूर) और पूर्व (सबा) से, और 'नकबा' (तिरछा) भेजना है, जो वह हवा है जो दो हवाओं के चलने के स्थानों के बीच आती है(१)। और यह भी कहा गया: इसका फेरना यह है कि यह बड़े जहाजों के पास उतना ही आए जितना वे सहन कर सकें, और छोटे जहाजों के पास भी वैसा ही, और उनसे वह चीज़ दूर हटा दे जो उन्हें नुकसान पहुँचाए। पाल (सैल) के बड़े या छोटे होने का कोई विचार नहीं है, क्योंकि यदि हवा एक शरीर के रूप में आती, तो वह पाल से टकराती और उन्हें डुबो देती।

और 'रियाह' (हवाएं) 'रीह' (हवा) का बहुवचन है; इसका नाम इसलिए रखा गया क्योंकि यह अक्सर 'रौह' (राहत/दया) के साथ आती है।

अबू दाऊद ने अबू हुरैरा से रिवायत की है, उन्होंने कहा: मैंने अल्लाह के रसूल ﷺ को कहते सुना: "हवा अल्लाह की 'रौह' (दया) से है - सलमा ने कहा: फ़रौह उल्लाह (अल्लाह की राहत) - वह दया लेकर आती है और अज़ाब लेकर आती है, इसलिए जब तुम इसे देखो तो इसे गाली न दो, बल्कि अल्लाह से इसकी भलाई मांगो, और इसके बुराई से अल्लाह की पनाह मांगो"(३)।

इब्न माजह ने भी इसे अपनी 'सुनन' में निकाला है: हमें अबू बक्र बिन अबी शैबा ने बताया, हमें यहया बिन सईद ने अल-औज़ाई से, उन्होंने ज़ुहरी से, हमें साबित अल-ज़ुरकी ने अबू हुरैरा से बताया, उन्होंने कहा: अल्लाह के रसूल ﷺ ने फरमाया: "हवा को गाली न दो, क्योंकि यह अल्लाह की 'रौह' से है, यह दया और अज़ाब के साथ आती है, लेकिन अल्लाह से इसकी भलाई मांगो, और अल्लाह से इसकी बुराई से पनाह मांगो"(४)।

और नबी ﷺ से रिवायत है कि उन्होंने फरमाया: "हवा को गाली न दो, क्योंकि यह रहमान (परम कृपालु) की सांस (नफ़स) से है"(५)।

= और छंद का अर्थ है: मानो उन्हें जो भारी कत्लेआम हुआ, वह एक बादल था जो बिजली के साथ आया और उसने जिन पक्षियों को मारा वह मारे गए, और जो उससे बच निकले वे रेंगते रहे, उड़ने में

असमर्थ। यह अल-शंतमरी ने कहा है। (१) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ १/ २३३, और अल-वसीत १/ २४७, और देखें तफ़सीर अल-राज़ी ४/ २२७। (२) शब्द "मिन" (से) (म) प्रति में नहीं है। (३) सुनन अबू दाऊद (५०९७)। और उनका कहना: "सलमा ने कहा: फ़रौह उल्लाह", इसका मतलब है कि सलमा - जो इब्न शबीब हैं, हदीस में अबू दाऊद के दो गुरुओं में से एक - ने यह शब्द जोड़ा: फ़रौह उल्लाह। जहाँ तक हदीस में उनके दूसरे गुरु का सवाल है - जो अहमद बिन मुहम्मद अल-मरवाज़ी हैं - उनके पास यह वृद्धि नहीं है। (४) सुनन इब्न माजह (३७२७), और यह अहमद (७४१३) के पास यहया बिन सईद - जो अल-क़त्तान हैं - के माध्यम से है। (५) हमें इस शब्द के साथ नबी से संबंधित यह नहीं मिला सिवाय उसके जो इब्न कुतैबा ने 'तावील मुख्तलिफ अल-हदीस' पृष्ठ २१२ में इसके वर्णनकर्ता का उल्लेख किए बिना उद्धृत किया है। और अहमद ने इसे (२११३९) उबैद की हदीस से इन शब्दों के साथ निकाला है: "हवा को गाली न दो, क्योंकि यह अल्लाह की रूह (दया) से है..."। और अब्दुल्ला बिन अहमद ने 'अस-सुन्ना' (११९६) में, अन-नसाई ने 'अल-कुबरा' (१०७०५) में, और अल-हाकिम २/२७२ में इसे निकाला है।

٤٩٨

سورة البقرة : الآية ١٦٤

نویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَتَصْرِيفِ الرِّيَاحِ﴾ (ہواؤں کا پھیرنا)۔ ان کا پھیرنا یہ ہے: انہیں بانجھ (بغیر بارش کے) یا حاملہ (بارش کے لیے)، تکلیف دہ اور نصرت والی اور تباہ کن، گرم اور ٹھنڈی، نرم اور طوفانی بنا کر بھیجنا۔ اور کہا گیا: ان کا پھیرنا انہیں جنوب، شمال، پچھوا (دبور) اور پوروا (صبا) سے، اور 'نکباء' (ترچھی) بھیجنا ہے، اور یہ وہ ہوا ہے جو دو ہواؤں کے چلنے کے مقامات کے درمیان سے آتی ہے(١)۔ اور یہ بھی کہا گیا: ان کا پھیرنا یہ ہے کہ وہ بڑے جہازوں کے پاس اس قدر آئے جتنا وہ اٹھا سکیں، اور چھوٹے جہازوں کے پاس بھی اسی طرح، اور ان سے وہ چیز پھیر دے جو انہیں نقصان پہنچائے۔ بادبانوں کے بڑے یا چھوٹے ہونے کا کوئی اعتبار نہیں، کیونکہ اگر ہوا ایک ہی وجود بن کر آتی تو وہ بادبانوں سے ٹکراتی اور انہیں ڈبو دیتی۔

اور 'رياح' (ہوائیں) 'ريح' (ہوا) کی جمع ہے؛ اس کا نام اس لیے رکھا گیا ہے کیونکہ یہ اکثر 'رَوْح' (راحت/رحمت) کے ساتھ آتی ہے غالباً۔

ابوداؤد نے ابوہریرہ سے روایت کیا، انہوں نے کہا: میں نے رسول اللہ ﷺ کو فرماتے سنا: "ہوا اللہ کی 'روح' (رحمت) سے ہے - سلمہ نے کہا: فروح اللہ (اللہ کی راحت) - یہ رحمت لے کر آتی ہے اور عذاب لے کر آتی ہے، پس جب تم اسے دیکھو تو اسے گالی نہ دو، اور اللہ سے اس کی خیر مانگو، اور اللہ سے اس کے شر سے پناہ مانگو"(٣)۔

اسے ابن ماجہ نے بھی اپنی سنن میں نکالا ہے: ہمیں ابوبکر بن ابی شیبہ نے بتایا، ہمیں یحییٰ بن سعید نے اوزاعی سے، انہوں نے زہری سے، ہمیں ثابت الزرقی نے ابوہریرہ سے بتایا، انہوں نے

کہا: رسول اللہ ﷺ نے فرمایا: "ہوا کو گالی نہ دو، کیونکہ یہ اللہ کی 'روح' سے ہے، یہ رحمت اور عذاب کے ساتھ آتی ہے، لیکن اللہ سے اس کی خیر مانگو، اور اللہ سے اس کے شر سے پناہ مانگو"(۴)۔

اور نبی ﷺ سے مروی ہے کہ آپ نے فرمایا: "ہوا کو گالی نہ دو، کیونکہ یہ رحمن کے سانس (نفس) میں سے ہے"(۵)۔

= اور شعر کا مطلب ہے: گویا انہیں جو شدید قتل و غارت پہنچی وہ ایک بادل تھا جو بجلیوں کے ساتھ آیا اور اس نے جن پرندوں کو نشانہ بنایا انہیں مار دیا، اور جو اس سے بچ گئے وہ رینگتے رہ گئے، اڑنے پر قادر نہ رہے۔ یہ بات الشنتمری نے کہی ہے۔ (۱) المحرر الوجیز ۱/ ۲۳۳، اور الوسیط ۱/ ۲٤۷، اور دیکھیے تفسیر الرازی ٤/ ۲۲۷۔ (۲) لفظ "من" (م) نسخے میں نہیں ہے۔ (۳) سنن ابوداؤد (۵۰۹۷)۔ اور ان کا کہنا: "سلمہ نے کہا: فروح اللہ"، یعنی سلمہ - جو ابن شبیب ہیں، حدیث میں ابوداؤد کے دو شیخوں میں سے ایک - نے اس لفظ کا اضافہ کیا: فروح اللہ۔ جہاں تک حدیث میں ان کے دوسرے شیخ کا تعلق ہے - جو احمد بن محمد المروزی ہیں - تو ان کے پاس یہ اضافہ نہیں ہے۔ (۴) سنن ابن ماجہ (۳۷۲۷)، اور یہ احمد (۷٤۱۳) کے پاس یحییٰ بن سعید - جو القطان ہیں - کے طریق سے ہے۔ (۵) ہمیں یہ لفظ مرفوعا نہیں ملا سوائے اس کے جو ابن قتیبہ نے 'تاویل مختلف الحدیث' ص ۲۱۲ میں ذکر کیا ہے، بغیر اس کے راوی کا تذکرہ کیے۔ اور احمد نے اسے (۲۱۱۳۹) ابی کی حدیث سے ان الفاظ کے ساتھ نکالا ہے: "ہوا کو گالی نہ دو، کیونکہ یہ اللہ کی روح سے ہے..."۔ اور اسے عبداللہ بن احمد نے 'السنہ' (۱۱۹٦) میں، النسائی نے 'الکبریٰ' (۱۰۷۰۵) میں، اور الحاکم ۲/۲۷۲ میں نکالا ہے۔

Surah Al-Baqarah: Verse 164 499

The meaning: That God Almighty made in it relief, venting, and refreshing, and the addition is by way of action. The meaning: That God Almighty made it so (1).

In Sahih Muslim (2) from Ibn Abbas from the Prophet (peace and blessings of God be upon him) that he said: "I was supported by the east wind (As-Saba) and 'Ad was destroyed by the west wind (Ad-Dabur)." This is the meaning of what came in the report that God, Glory be to Him, relieved His Prophet (peace and blessings of God be upon him) by the wind on the Day of Al-Ahzab (the Battle of the Trench), as He said: "Then We sent upon them a wind and armies you did not see" [Al-Ahzab: 9]. And it is said: God relieved someone of a distress among the distresses of this world, i.e., He comforted him.

In Sahih Muslim (3) from the hadith of Abu Hurairah (may God be pleased with him): "Whoever relieves a Muslim of a distress among the distresses of this world, God will relieve him of a distress among the distresses of the Day of Resurrection," i.e., He will comfort him.

The poet said: It is as if the east wind (As-Saba), when it breathes gently ... upon a worried heart, its worries are dispelled (4).

Ibn al-A'rabi said: The breeze (An-Naseem) is the beginning of the blowing of the wind (5). The root of 'reeh' (wind) is 'rawh', and for this reason, the plural of paucity is said to be 'arwah', and 'aryah' is not said, because it is among those having 'waw'. It was only said 'riyah' because of the kasrah (6), and seeking the harmony of the 'ya' with it (7). In the Mushaf of Hafsah: "and the movement of the winds (Al-Arwah)" (8).

Tenth: His saying, the Exalted: "and [the] movement of the winds" Hamza and al-Kisa'i read: "the wind" (Ar-Reeh) in the singular, and similarly in "Al-A'raf," "Al-Kahf," "Ibrahim," "An-Naml," "Ar-Rum," "Fatir," "Ash-Shura," and "Al-Jathiyah" (9), there is no disagreement between them on that. Ibn Kathir agreed with them in "Al-A'raf".

= And Al-Bayhaqi in As-Sma' wa as-Sifat 2/392 from Abu [Ubayy ibn Ka'b] as a mawquf report with the wording mentioned by the author. Al-Bayhaqi said: This is mawquf on Ubayy, and he only meant - and God knows best - the wind from the Mercy (rawh) of God. (1) See the opinion of Ahl al-Sunnah on this issue in Majmu' Fatawa Ibn Taymiyyah 9/290. (2) No. (900), and it is with Ahmad (2013), and Al-Bukhari (1035). (3) No. (2699), and it is with Ahmad (7427). (4) Its speaker is Majnun Layla, and it is in his

Diwan p. 251, and Al-Aghani 2/26, and in both: "a sad soul" instead of: "a worried heart". (5) Tahdhib al-Lugha 13/18. (6) In (D), (Zha), and (M): abundance (al-kathra), and the established from (Kha) and (Za), which is in accordance with Al-Muharrar al-Wajiz. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233. (8) An-Nukat wa al-'Uyun 1/217. (9) And likewise in "Al-Isra", "Al-Anbiya", "Saba", and "Saad".

सूरा अल-बकरा: आयत 164 499

अर्थ: कि अल्लाह ताला ने इसमें राहत, शांति और शीतलता रखी है, और इसका संबंध क्रिया के माध्यम से है। अर्थ: कि अल्लाह ताला ने इसे ऐसा ही बनाया है (1)।

सहीह मुस्लिम (2) में इब्न अब्बास से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फरमाया: "मेरी मदद पुरवा हवा (अस-सबा) से की गई और कौम-ए-आद को पछुआ हवा (अद-दबूर) से तबाह कर दिया गया।" और यह उस बात का अर्थ है जो खबर में आई है कि अल्लाह सुब्हानहु व ताला ने अपने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को अहज़ाब के दिन हवा के ज़रिए राहत दी, तो फरमाया: "तो हमने उन पर हवा और ऐसे लश्कर भेजे जिन्हें तुमने नहीं देखा" [अल-अहज़ाब: 9]। और कहा जाता है: अल्लाह ने फलां शख्स की दुनिया की परेशानियों में से एक परेशानी दूर कर दी, यानी: उसे राहत दी।

सहीह मुस्लिम (3) में अबू हुरैरा रज़ियल्लाहु अन्हु की हदीस से है: "जिसने किसी मुसलमान की दुनिया की परेशानियों में से कोई परेशानी दूर की, अल्लाह क़यामत के दिन की उसकी परेशानियों में से कोई परेशानी दूर कर देगा" यानी: उसे राहत देगा।

शायर ने कहा है: गोया कि पुरवा हवा (अस-सबा) जब धीरे से चलती है ... एक गमगीन दिल पर, तो उसके गम दूर हो जाते हैं (4)।

इब्न अल-अराबी ने कहा: नसीम (मंद समीर) हवा के चलने की शुरुआत है (5)। और 'रीह' (हवा) की जड़ 'रौह' है, और इसी कारण अल्प बहुवचन (जमा किल्लत) में 'अरवाह' कहा जाता है, और 'अरियाह' नहीं कहा जाता, क्योंकि यह 'वाव' वाले शब्दों में से है। 'रियाह' केवल कसरा (ज़ेर) की वजह से कहा गया (6), और 'या' की उसके साथ अनुकूलता चाहने के लिए (7)। हफसा के मुसहफ में है: "और हवाओं का चलना (अल-अरवाह)" (8)।

दसवीं बात: अल्लाह ताला का फरमान: "और हवाओं का चलना" हमज़ा और अल-किसाई ने इसे एकवचन में "अर-रीह" (हवा) पढ़ा है, और इसी तरह "अल-अराफ़", "अल-कहफ़", "इब्राहिम", "अन-नम्ल", "अर-रूम", "फ़ातिर", "अश-शूरा" और "अल-जासिया" (9) में भी, उनके बीच इसमें कोई मतभेद नहीं है। और इब्न कसीर ने "अल-अराफ़" में उनके साथ सहमति व्यक्त की है।

= और अल-बैहकी ने 'अल-अस्मा व अल-सिफ़ात' 392/2 में अबू [उबैय इब्न काब] से मौक़ूफ़ रिवायत के रूप में उन्हीं शब्दों के साथ उल्लेख किया है जो लेखक ने बताए हैं। अल-बैहकी ने कहा: यह उबैय पर मौक़ूफ़ है, और उनका इरादा - और अल्लाह ही बेहतर जानता है - अल्लाह की रहमत (रौह) वाली हवा से था। (1) इस मसले पर अहलुस सुन्नाह की राय के लिए देखें 'मजमू' फ़तावा इब्न तैमिया' 290/9। (2) नंबर (900), और यह अहमद (2013) और बुखारी (1035) के पास भी है। (3) नंबर (2699), और यह अहमद (7427) के पास भी है। (4) इसके कहने वाले मजनू लैला हैं, और यह उनके दीवान पृष्ठ 251 और अल-अघानी 26/2 में है, और दोनों में "नफ़सु महज़ून" (दुखी आत्मा) है बजाय "कबिदिन मह्मूम" (गमगीन दिल) के। (5) तहज़ीब अल-लुग़ा 18/13। (6) (द), (ज़ह), और (म) में: बहुलता (अल-कसरा), और जो (ख) और (ज़) से स्थापित है, वह 'अल-मुहर्रर अल-वजीज़' के अनुरूप है। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/233। (8) अन-नुकात व अल-उयून 1/217। (9) और इसी तरह "अल-इसरा", "अल-अंबिया", "सबा" और "साद" में।

سورہ بقرہ: آیت ١٦٤ ٤٩٩

معنی: کہ اللہ تعالیٰ نے اس میں کشادگی، آسانی اور راحت رکھی ہے، اور اضافت فعل کے طریقے سے ہے۔ اور معنی یہ ہے: کہ اللہ تعالیٰ نے اسے اسی طرح بنایا ہے (١)۔

اور صحیح مسلم (٢) میں ابن عباس سے مروی ہے کہ نبی کریم صلی اللہ علیہ وسلم نے فرمایا: «میری مدد بادِ صبا (مشرقی ہوا) سے کی گئی اور قومِ عاد بادِ دبور (مغربی ہوا) سے ہلاک کی گئی»۔ اور یہ اس خبر کا معنی ہے کہ اللہ سبحانہ و تعالیٰ نے اپنے نبی صلی اللہ علیہ وسلم کو غزوہ احزاب کے دن ہوا کے ذریعے کشادگی عطا فرمائی، چنانچہ فرمایا: ﴿فَأَرْسَلْنَا عَلَيْهِمْ رِيحًا وَجُنُودًا لَّمْ تَرَوْهَا﴾ [الاحزاب: ٩] (پھر ہم نے ان پر ہوا بھیجی اور ایسے لشکر جنہیں تم نے نہ دیکھا)۔ اور کہا جاتا ہے: اللہ نے فلاں شخص کی دنیا کی تکالیف میں سے ایک تکلیف دور کر دی، یعنی: اسے راحت دی۔

اور صحیح مسلم (٣) میں ابوہریرہ رضی اللہ عنہ کی حدیث سے مروی ہے: «جس نے کسی مسلمان کی دنیا کی تکالیف میں سے کوئی تکلیف دور کی، اللہ تعالیٰ قیامت کے دن کی اس کی تکالیف میں سے کوئی تکلیف دور فرمائے گا» یعنی: اسے راحت دے گا۔

اور شاعر نے کہا ہے: گویا بادِ صبا وہ ہوا ہے کہ جب وہ چلتی ہے ... کسی غمگین دل پر تو اس کے غم دور ہو جاتے ہیں (٤)

ابن اعرابی نے کہا: نسیم (ہلکی ہوا) ہوا کے چلنے کی ابتدا ہے (٥)۔ اور ریح کی اصل 'رَوْح' ہے، اسی لیے جمع قلت میں 'ارواح' کہا جاتا ہے، 'ارياح' نہیں کہا جاتا کیونکہ یہ واؤ والے کلمات میں سے ہے، اور 'رياح' صرف کسرہ (زیر) کی وجہ سے کہا گیا (٦)، اور یاء کی اس کے ساتھ

مناسبت طلب کرنے کے لیے (۷)۔ اور مصحف حفصہ میں ہے: «وتصريف الأرواح» (اور ہواؤں کا پھیرنا) (۸)۔

دسویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿وَتَصۡرِيفِ ٱلرِّيَاحِ﴾ حمزہ اور کسائی نے «الريح» واحد پڑھا ہے، اور اسی طرح «الاعراف»، «الکہف»، «ابراہیم»، «النمل»، «الروم»، «فاطر»، «الشوری» اور «الجاثیہ» (۹) میں، ان کے درمیان اس میں کوئی اختلاف نہیں ہے۔ اور ابن کثیر نے «الاعراف» میں ان کی موافقت کی ہے۔

= اور بیہقی نے الاسماء والصفات ۳۹۲/۲ میں ابی [ابی بن کعب] سے موقوفاً ان الفاظ کے ساتھ روایت کیا ہے جو مصنف نے ذکر کیے۔ بیہقی نے کہا: یہ ابی پر موقوف ہے، اور ان کی مراد - واللہ اعلم - اللہ کی رحمت کی ہوا تھی۔ (۱) اس مسئلے میں اہل سنت کی رائے کے لیے ملاحظہ کریں مجموع فتاوی ابن تیمیہ ۲۹۰/۹۔ (۲) نمبر (۹۰۰)، اور یہ احمد (۲۰۱۳) اور بخاری (۱۰۳۵) کے ہاں بھی ہے۔ (۳) نمبر (۲۶۹۹)، اور یہ احمد (۷٤۲۷) کے ہاں بھی ہے۔ (٤) اس کا کہنے والا مجنون لیلیٰ ہے، اور یہ اس کے دیوان ص ۲۵۱، اور الاغانی ۲٦/۲ میں ہے، اور ان دونوں میں «نفس محزون» ہے بجائے «کبد مهموم» کے۔ (٥) تہذیب اللغۃ ۱۸/۱۳۔ (٦) (د)، (ظ)، اور (م) میں: کثرت، اور جو (خ) اور (ز) سے ثابت ہے، وہ المحرر الوجیز کے موافق ہے۔ (۷) المحرر الوجیز ۲۳۳/۱۔ (۸) النکت والعیون ۲۱۷/۱۔ (۹) اور اسی طرح «الاسراء»، «الانبیاء»، «سبا» اور «ص» میں۔

and [Surahs] "Al-Naml", "Al-Rum", "Fatir", and "Ash-Shura" (1). Hamzah read as singular: {the wind as fertilizers} [Al-Hijr: 22]. Ibn Kathir read as singular {And He it is who sends the wind} [Al-Furqan: 48]. The rest read it as plural in all of them except for what is in "Ibrahim" and "Ash-Shura" (2), for they did not read them as plural except for Nafi', and the seven [readers] did not differ in other than these places. What we mentioned in "Al-Rum" is the second: {Allah is He who sends the winds} [Al-Rum: 48]. There is no disagreement among them regarding {the winds as heralds of glad tidings} [Al-Rum: 46].

Abu Ja'far Yazid bin al-Qa'qa' used to use the plural for "winds" whenever it had the definite article (alif and lam) in the entire Quran, except for {the wind carries him away} [Al-Hajj: 31] and {the barren wind} [Al-Dhariyat: 41]. If it did not have the definite article, he would use the singular.

Whoever used the singular "wind"; it is because it is a generic noun indicating both small and large amounts. Whoever used the plural did so due to the possibility of various directions from which the winds blow. Whoever used the plural with mercy and the singular (5) with punishment did so considering what is most prevalent in the Quran, such as: {the winds as heralds of glad tidings} [Al-Rum: 46] and {the barren wind} [Al-Dhariyat: 41]. Thus, in the Quran, it appears as plural with mercy and singular with punishment, except in Surah Yunus where it says: {and they sailed with them with a fair wind} [Yunus: 22].

It is narrated that the Messenger of Allah ﷺ used to say when the wind blew: "O Allah, make it winds (riyah) and do not make it a wind (rih)" (6). This is because the wind of punishment is intense and compact as if it were a single body, while the wind of mercy is gentle and intermittent, which is why it is "winds". It was made singular with ships in "Yunus" [Verse: 22] because the wind for sailing ships is a single, continuous wind; then it was described as "fair" (good), so the commonality between it and the wind of punishment was removed (7).

(1) And they both also agreed with him in "Ibrahim", "Al-Isra", "Al-Anbiya", "Saba", and "Sad". (2) And likewise, except for what is in "Al-Isra", "Al-Anbiya", "Saba", and "Sad". (3) See Al-Sab'ah pp. 172-173, Al-Taysir p. 78, and Al-Nashr 2/223. (4) Al-Nashr 2/223-224; there is a difference reported from him regarding: {or the wind carries him away}. (5) In the manuscripts: "mercy singular", and what is fixed is from (M). (6) Narrated by Abu Ya'la (2456), Al-Tabarani in Al-Kabir (11533), Ibn 'Adi 2/763, Abu al-

Shaykh in Al-'Azama (874), and Al-Khatib in Tarikh Baghdad 7/100 from the hadith of Ibn 'Abbas (may Allah be pleased with them). In its chain is Abu 'Ali al-Rahbi, al-Husayn bin Qays; Al-Haythami said in Majma' al-Zawa'id 10/136: he is abandoned (matruk), though Husayn bin Numayr considered him reliable, and the rest of its men are the men of Sahih. (7) Al-Muharrar al-Wajiz 1/233.

सूरह अल-बकरा: आयत 164 | 500

और "अन-नम्ल", "अर-रूम", "फ़ातिर" और "अश-शूरा" (1)। हमज़ा ने इसे एकवचन में पढ़ा: {हवा उपजाऊ बनाने वाली} [अल-हिज्र: 22]। इब्न कसीर ने एकवचन में पढ़ा: {और वही है जिसने हवा भेजी} [अल-फ़ुरक़ान: 48]। बाकियों ने "इब्राहिम" और "अश-शूरा" (2) के अलावा इन सभी में बहुवचन में पढ़ा, क्योंकि नाफ़े के अलावा किसी ने भी उन्हें बहुवचन में नहीं पढ़ा, और सात [पाठकों] ने इन स्थानों के अलावा अन्य स्थानों पर मतभेद नहीं किया। "अर-रूम" में हमने जिसका उल्लेख किया है वह दूसरा है: {अल्लाह वह है जो हवाएँ भेजता है} [अर-रूम: 48]। उनके बीच {हवाएँ खुशखबरी देने वाली} [अर-रूम: 46] के बारे में कोई मतभेद नहीं है।

अबू जाफ़र यज़ीद बिन अल-क़ाक़ा' पूरे कुरान में जब भी "हवाएँ' (अल-रियाह) में 'अलिफ़ और लाम' (निश्चित उपपद) होता था, तो उसे बहुवचन में पढ़ते थे, सिवाय {हवा उसे उड़ा ले जाती है} [अल-हज्ज: 31] और {बाँझ हवा} [अज़-ज़ारियात: 41] के। यदि इसमें 'अलिफ़ और लाम' नहीं होता, तो वे इसे एकवचन में पढ़ते थे।

जिसने 'हवा' को एकवचन के रूप में इस्तेमाल किया; वह इसलिए क्योंकि यह एक जातिवाचक संज्ञा है जो कम और अधिक दोनों को दर्शाती है। और जिसने बहुवचन का उपयोग किया, वह उन दिशाओं की संभावना के कारण था जहाँ से हवाएँ चलती हैं। और जिसने दया (रहमत) के साथ बहुवचन और दंड (अज़ाब) के साथ एकवचन (5) का उपयोग किया, उसने कुरान में सबसे प्रचलित चीज़ को ध्यान में रखते हुए ऐसा किया, जैसे: {हवाएँ खुशखबरी देने वाली} [अर-रूम: 46] और {बाँझ हवा} [अज़-ज़ारियात: 41]। इस प्रकार, कुरान में यह दया के साथ बहुवचन में और दंड के साथ एकवचन में आता है, सिवाय सूरह यूनुस के जहाँ कहा गया है: {और वे उनके साथ एक अच्छी हवा के साथ चलीं} [यूनुस: 22]।

वर्णित है कि अल्लाह के रसूल ﷺ हवा चलने पर कहा करते थे: "हे अल्लाह, इसे हवाएँ(रियाह) बना और इसे एक हवा (रीह) न बना" (6)। ऐसा इसलिए है क्योंकि दंड की हवा तीव्र और सघन होती है, जैसे कि वह एक शरीर हो, जबकि दया की हवा कोमल और रुक-रुक कर चलने वाली होती है, इसलिए वह "हवाएँ' है। इसे "यूनुस" [आयत: 22] में जहाजों के साथ एकवचन में रखा गया है; क्योंकि जहाजों को चलाने वाली हवा एक निरंतर चलने वाली हवा होती है, फिर इसे "अच्छी"

(तय्यिबा) के रूप में वर्णित किया गया, जिससे इसके और दंड की हवा के बीच की समानता समाप्त हो गई (7)।

(1) और उन दोनों ने "इब्राहिम", "अल-इसरा", "अल-अम्बिया", "सबा" और "साद" में भी उनसे सहमति व्यक्त की। (2) और इसी तरह "अल-इसरा", "अल-अम्बिया", "सबा" और "साद" के अलावा। (3) देखें 'अस-सबआ' पृष्ठ 172-173, 'अत-तयसीर' पृष्ठ 78, और 'अन-नश्र' 2/223। (4) 'अन-नश्र' 2/223-224, और उनके बारे में इस पर मतभेद है: {या हवा उसे उड़ा ले जाती है}। (5) हस्तलिखित प्रतियों में: "रहमत एकवचन" और जो स्थिर है वह (M) से है। (6) इसे अबू यअला (2456), अत-तबरानी ने 'अल-कबीर' (11533), इब्न अदी 2/763, अबू अल-शेख ने 'अल-अज़मा' (874), और अल-खतीब ने 'तारीख बगदाद' 7/100 में इब्न अब्बास (रज़ियल्लाहु अन्हुमा) की हदीस से उद्धृत किया है। इसकी श्रृंखला में अबू अली अल-रहबी, अल-हुसैन बिन क़ैस है; अल-हैथमी ने 'मजमा' अल-ज़वाइद' 10/136 में कहा: वह परित्यक्त (मतरूक) है, हालांकि हुसैन बिन नुमैर ने उसे विश्वसनीय माना है, और इसके बाकी लोग 'सहीह' के लोग हैं। (7) अल-मुहर्रर अल-वजीज़ 1/233।

اور «النمل» اور «الروم» اور «فاطر» اور «الشوری»(۱)۔ اور حمزہ نے اسے واحد پڑھا: ﴿الرِّيحَ لَوَاقِحَ﴾ [الحجر: ۲۲]۔ اور ابن کثیر نے واحد پڑھا: ﴿وَهُوَ الَّذِي أَرْسَلَ الرِّيحَ﴾ [الفرقان: ٤٨]۔ اور باقیوں نے ان تمام میں جمع پڑھا سوائے ان کے جو «ابراہیم» اور «الشوری»(۲) میں ہیں، چنانچہ نافع کے علاوہ کسی نے انہیں جمع نہیں پڑھا، اور ساتوں [قراء] نے ان مقامات کے علاوہ میں اختلاف نہیں کیا۔ اور جس کا ہم نے «الروم» میں ذکر کیا وہ دوسرا ہے ﴿اللَّهُ الَّذِي يُرْسِلُ الرِّيحَ﴾ [الروم: ٤٨]۔ اور ان کے درمیان ﴿الرِّيَاحَ مُبَشِّرَاتٍ﴾ [الروم: ٤٦] میں کوئی اختلاف نہیں ہے۔

اور ابو جعفر یزید بن القعقاع پورے قرآن میں جہاں بھی «الریاح» میں الف اور لام ہوتا تھا اسے جمع پڑھتے تھے، سوائے ﴿تَهْوِي بِهِ الرِّيحُ﴾ [الحج: ۳۱] اور ﴿الرِّيحَ الْعَقِيمَ﴾ [الذاریات: ٤١] کے، پس اگر اس میں الف اور لام نہ ہوتا تو وہ واحد پڑھتے تھے۔

جس نے «الریح» کو واحد پڑھا؛ وہ اس لیے کہ یہ اسم جنس ہے جو تھوڑے اور زیادہ دونوں پر دلالت کرتا ہے۔ اور جس نے جمع پڑھا وہ ان اطراف کے احتمال کی وجہ سے ہے جہاں سے ہوائیں چلتی ہیں۔ اور جس نے رحمت کے ساتھ جمع اور عذاب کے ساتھ واحد(۵) پڑھا، اس نے قرآن میں غالب صورت کا اعتبار کرتے ہوئے ایسا کیا، جیسے: ﴿الرِّيَاحَ مُبَشِّرَاتٍ﴾ [الروم: ٤٦] اور ﴿الرِّيحَ الْعَقِيمَ﴾ [الذاریات: ٤١]۔ چنانچہ قرآن میں رحمت کے ساتھ جمع آئی ہے، اور عذاب کے ساتھ واحد، سوائے یونس میں ان کے قول کے: ﴿وَجَرَيْنَ بِهِم بِرِيحٍ طَيِّبَةٍ﴾ [یونس: ۲۲]۔

اور روایت ہے کہ رسول اللہ ﷺ جب ہوا چلتی تھی تو فرماتے تھے: «اے اللہ، اسے ہوائیں (ریاح) بنانا، اور اسے ایک ہوا (ریح) نہ بنانا»(٦)۔ اور وہ اس لیے کہ عذاب کی ہوا شدید اور جڑی ہوئی ہوتی ہے گویا کہ وہ ایک ہی جسم ہو، اور رحمت کی ہوا نرم اور وقفے وقفے سے ہوتی ہے، اسی

لیے وہ «ریاح» (ہوائیں) ہیں۔ پس «یونس» [آیت: ۲۲] میں کشتیوں کے ساتھ اسے واحد لایا گیا؛ کیونکہ کشتیوں کو چلانے والی ہوا ایک ہی مسلسل ہوا ہوتی ہے، پھر اسے پاکیزہ (طیب) کے ساتھ موصوف کیا گیا، تو اس کے اور عذاب کی ہوا کے درمیان اشتراک ختم ہو گیا(۷)۔

(۱) اور ان دونوں نے «ابراہیم»، «الإسراء»، «الأنبیاء»، «سبأ» اور «ص» میں بھی ان کی موافقت کی۔ (۲) اور اسی طرح «الإسراء»، «الأنبیاء»، «سبأ» اور «ص» کے علاوہ۔ (۳) دیکھئے السبعۃ ص ۱۷۲-۱۷۳، اور التیسیر ص ۷۸، اور النشر ۲/۲۲۳۔ (٤) النشر ۲/۲۲۳-۲۲٤، اور ان سے اس میں اختلاف مروی ہے: ﴿أَوْ تَهْوِي بِهِ الرِّيحُ﴾۔ (۵) خطی نسخوں میں: «الرحمة وحد» اور جو ثابت ہے وہ (م) سے ہے۔ (٦) اسے ابو یعلی (۲٤٥٦)، اور طبرانی نے الکبیر (۱۱٥۳۳)، اور ابن عدی ۲/۷٦۳، اور ابو الشیخ نے العظمۃ (۸۷٤)، اور خطیب نے تاریخ بغداد ۷/۱۰۰ میں ابن عباس رضی اللہ عنہما کی حدیث سے روایت کیا ہے، اور اس کی سند میں ابو علی الرحبی، الحسین بن قیس ہے؛ ہیثمی نے مجمع الزوائد ۱۰/۱۳٦ میں کہا: متروک ہے، اور حسین بن نمیر نے اسے ثقہ قرار دیا ہے، اور اس کے باقی رجال صحیح کے رجال ہیں۔ (۷) المحرر الوجیز ۱/۷۳۳۔

Surah Al-Baqarah: Verse 164 501 Eleventh: The scholars said: Wind is the movement of air, and it may strengthen or weaken. If the movement of the air appears from the direction of the Qibla (front) going towards the zenith of the Qibla, that wind is called: Al-Saba (East wind). If the movement of the air appears from behind the Qibla and is going towards the direction of the Qibla, that wind is called: Al-Dabur (West wind). If the movement of the air appears from the right of the Qibla going towards its left, it is called: The South wind. And if the movement of the air appears from the left of the Qibla going towards its right, it is called: The North wind. Each of these winds has a nature, so its benefit is according to its nature: Al-Saba is hot and dry, Al-Dabur is cold and moist, the South wind is hot and moist, and the North wind is cold and dry. The difference in their natures is like the difference in the natures of the seasons of the year. This is because God Almighty established four seasons for time, the reference for which is the change in the conditions of the air. He made Spring, which is the first of the seasons, hot and moist, and arranged in it growth and development. In it, waters descend, the earth brings forth its blossom and shows its plants, people take to planting trees and many crops(1), animals reproduce, and milk increases. When Spring passes, it is followed by Summer, which is similar to Spring in one of its two natures, which is heat, and different from it in the other, which is moisture; because the air in summer is hot and dry, so fruits ripen in it, and the grains planted in Spring dry up in it. When Summer passes, it is followed by Autumn, which is similar to Summer in one of its two natures, which is dryness, and different from it in the other, which is heat; because the air in autumn is cold and dry, so the ripening of fruits reaches its end and they dry up, becoming fit for storage. Then fruits are picked, grapes are harvested, and trees are emptied of all of them(2). When Autumn passes, it is followed by Winter, which is suitable for Autumn in one of its two natures, which is coldness, and different from it in the other, which is dryness; because the air in winter is cold and moist, so rains and snows increase, and the earth becomes dormant like a resting body, not moving until God returns...

---

(1) In (M): "the crop". (2) In (D) and (M): "gathering them".

सूरह अल-बकराह: आयत 164 501 ग्यारहवीं: विद्वानों ने कहा: हवा हवा की गति है, और यह तेज़ या कमज़ोर हो सकती है। यदि हवा की गति किबला (सामने) की दिशा से किबला के शिखर की ओर जाती हुई दिखाई देती है, तो उस हवा को कहा जाता है: अस-सबा (पूर्वी हवा)। और यदि हवा की गति किबला के पीछे से दिखाई देती है और किबला की दिशा की ओर जा रही है, तो उस हवा को कहा जाता है: अद-दबूर (पश्चिमी हवा)। और यदि हवा की गति किबला के दाईं ओर से उसके बाईं ओर जाती हुई दिखाई देती है, तो उसे कहा जाता है: दक्षिणी हवा। और यदि हवा की गति किबला के बाईं ओर से उसके दाईं ओर जाती हुई दिखाई देती है, तो उसे कहा जाता है: उत्तरी हवा। इनमें से प्रत्येक हवा की एक प्रकृति होती है, इसलिए उसका लाभ उसकी प्रकृति के अनुसार होता है: सबा गर्म और शुष्क होती है, दबूर ठंडी और नम होती है, दक्षिणी गर्म और नम होती है, और उत्तरी ठंडी और शुष्क होती है। उनकी प्रकृतियों में अंतर वर्ष के मौसमों की प्रकृतियों में अंतर के समान है। ऐसा इसलिए है क्योंकि ईश्वर सर्वशक्तिमान ने समय के लिए चार मौसम निर्धारित किए हैं, जिनका संदर्भ हवा की स्थितियों में परिवर्तन है। उसने वसंत को, जो मौसमों में पहला है, गर्म और नम बनाया, और इसमें विकास और वृद्धि की व्यवस्था की। इसमें पानी बरसता है, धरती अपने फूल निकालती है और अपने पौधे दिखाती है, लोग पेड़ और कई फसलें(1) लगाना शुरू करते हैं, इसमें जानवर पैदा होते हैं और दूध बढ़ जाता है। जब वसंत बीत जाता है, तो उसके बाद ग्रीष्म (गर्मी) आता है, जो अपनी दो प्रकृतियों में से एक में वसंत के समान है, जो गर्मी है, और दूसरी में उससे अलग है, जो नमी है; क्योंकि गर्मियों में हवा गर्म और शुष्क होती है, इसलिए इसमें फल पकते हैं और वसंत में बोए गए अनाज इसमें सूख जाते हैं। जब गर्मी बीत जाती है, तो उसके बाद शरद (पतझड़) आता है, जो अपनी दो प्रकृतियों में से एक में गर्मी के समान है, जो शुष्कता है, और दूसरी में उससे अलग है, जो गर्मी है; क्योंकि शरद ऋतु में हवा ठंडी और शुष्क होती है, इसलिए इसमें फलों की परिपक्वता अपने अंत तक पहुँच जाती है और वे सूख जाते हैं, और भंडारण की स्थिति में आ जाते हैं। फिर फल तोड़े जाते हैं, अंगूरों की कटाई होती है, और पेड़ों को उन सभी(2) से खाली कर दिया जाता है। जब शरद ऋतु बीत जाती है, तो उसके बाद शीत (सर्दी) आता है, जो अपनी दो प्रकृतियों में से एक में शरद ऋतु के अनुकूल है, जो ठंडक है, और दूसरी में उससे अलग है, जो शुष्कता है; क्योंकि सर्दियों में हवा ठंडी और नम होती है, इसलिए बारिश और बर्फ बढ़ जाती है, और धरती आराम करते हुए शरीर की तरह शांत हो जाती है, हिलती नहीं है जब तक कि ईश्वर उसे वापस न लाए...

---

(1) (म) में: "फसल"। (2) (द) और (म) में: "उन्हें इकट्ठा करना"।

سورۃ البقرہ: آیت 164 501 گیارھویں بات: علماء نے فرمایا: ہوا کا چلنا ہی ہوا ہے، اور یہ تیز اور کمزور بھی ہو سکتی ہے۔ پس جب ہوا کی حرکت قبلہ کی سمت سے قبلہ کی طرف جاتی ہوئی ظاہر ہو تو اس ہوا کو 'صبا' کہا جاتا ہے۔ اور جب ہوا کی حرکت قبلہ کے پیچھے سے ظاہر ہو اور قبلہ کی سمت جا رہی ہو تو اس ہوا کو 'دبور' کہا جاتا ہے۔ اور جب ہوا کی حرکت قبلہ کے دائیں سے اس کے بائیں طرف جاتی ہوئی ظاہر ہو تو اسے 'جنوبی ہوا' کہا جاتا ہے۔ اور جب ہوا کی حرکت قبلہ کے بائیں سے اس کے دائیں طرف جاتی ہوئی ظاہر ہو تو اسے 'شمالی ہوا' کہا جاتا ہے۔ ان ہواؤں میں سے ہر ایک کی اپنی فطرت ہے، اس کا فائدہ اس کی فطرت کے مطابق ہوتا ہے۔ صبا گرم اور خشک ہے، دبور ٹھنڈی اور نم ہے، جنوب گرم اور نم ہے، اور شمال ٹھنڈی اور خشک ہے۔ ان کی طبائع کا اختلاف سال کے موسموں کی طبائع کے اختلاف کی طرح ہے۔ اس کی وجہ یہ ہے کہ اللہ تعالیٰ نے وقت کے لیے چار موسم مقرر کیے ہیں جن کا مرجع ہوا کے احوال کی تبدیلی ہے۔ پس اس نے موسمِ بہار کو، جو کہ موسموں میں پہلا ہے، گرم اور نم بنایا، اور اس میں نشوونما اور بڑھوتری رکھی۔ اس میں پانی برستا ہے، زمین اپنے پھول نکالتی ہے اور اپنے پودے ظاہر کرتی ہے، لوگ درخت اور بہت سی فصلیں(1) لگانا شروع کرتے ہیں، اس میں جانور بچے پیدا کرتے ہیں اور دودھ کی کثرت ہوتی ہے۔ پس جب بہار گزر جاتی ہے تو اس کے بعد گرمی (موسم گرما) کا موسم آتا ہے جو اپنی دو فطرتوں میں سے ایک میں بہار کے مشابہ ہے، اور وہ ہے گرمی، اور دوسری میں اس کے مخالف ہے، اور وہ ہے نمی؛ کیونکہ گرمیوں میں ہوا گرم اور خشک ہوتی ہے، اس لیے اس میں پھل پکتے ہیں اور بہار میں بوئی ہوئی فصلیں اس میں خشک ہو جاتی ہیں۔ پس جب گرمی گزر جاتی ہے تو اس کے پیچھے خزاں (موسمِ سرما سے پہلے کا موسم) آتا ہے جو اپنی دو فطرتوں میں سے ایک میں گرمی کے مشابہ ہے اور وہ ہے خشکی، اور دوسری

میں اس کے مخالف ہے اور وہ ہے گرمی؛ کیونکہ خزاں میں ہوا ٹھنڈی اور خشک ہوتی ہے، پس اس میں پھلوں کی پختگی اپنی انتہا کو پہنچ جاتی ہے اور وہ خشک ہو جاتے ہیں، اور ذخیرہ کرنے کی حالت میں آ جاتے ہیں۔ پس پھل توڑ لیے جاتے ہیں، انگوروں کی کٹائی ہوتی ہے، اور درختوں کو ان تمام(2) سے خالی کر دیا جاتا ہے۔ پس جب خزاں گزر جاتی ہے تو اس کے بعد سردی (موسمِ سرما) کا موسم آتا ہے جو اپنی دو فطرتوں میں سے ایک میں خزاں کے موافق ہے اور وہ ہے ٹھنڈک، اور دوسری میں اس کے مخالف ہے اور وہ ہے خشکی؛ کیونکہ سردیوں میں ہوا ٹھنڈی اور نم ہوتی ہے، پس بارشیں اور برف باری کثرت سے ہوتی ہے، اور زمین ایک آرام کرتے ہوئے جسم کی طرح بے حس و حرکت ہو جاتی ہے، وہ حرکت نہیں کرتی جب تک کہ اللہ اسے دوبارہ نہ لوٹائے...

---

(1) (م) میں: 'الزرع' (کھیتی)۔ (2) (د) اور (م) میں: 'جمعها' (انہیں جمع کرنا)۔

Blessed and Exalted is He, to it [the earth] comes the heat of spring, and when it meets with moisture, growth and development occur by the permission of Allah, Glorified and Exalted is He.

Many winds may blow other than what we have mentioned, but the primary ones are these four. Every wind that blows between two winds takes the ruling of the wind to which it is closer in its blowing direction, and it is called "An-Nakba" (the deviant wind).

Twelfth: The saying of Allah the Almighty: {And the clouds controlled between the sky and the earth}. Clouds (Sahab) are so called because they drag (yansahibu) in the air. I dragged my hem (sahabtu dhayli) a dragging (sahban). And so-and-so dragged (tasahhaba) over so-and-so: meaning he dared against him. And "as-sahb" (dragging/pulling) also means intensity in eating and drinking(1).

"Musakh-khar" (controlled/subjugated) means humbled; its being controlled is its sending from one place to another. It was also said: its control is its steadiness between the sky and the earth without pillars or attachments(2), and the former is more apparent.

And it [clouds] can be with water and with punishment:

Muslim narrated from Abu Hurairah (may Allah be pleased with him) that the Prophet (peace and blessings of Allah be upon him) said: "While a man was in a desert land, he heard a voice in a cloud [saying]: 'Water the garden of so-and-so.' That cloud then moved aside and poured its water onto a stony ground (Harrah). Then one of the channels (Sharjah) of those stony grounds absorbed all that water. He followed the water and found a man standing in his garden, directing the water with his shovel. He said to him: 'O servant of Allah, what is your name?' He said: '[Name]', the same name he had heard from the cloud. Then the man asked him: 'O servant of Allah, why do you ask me(3) my name?' He said(4): 'I heard a voice in the cloud from which this water came, saying: "Water the garden of so-and-so," mentioning your name. What do you do [with it]?' He said: 'Since you have asked this, I look at what it produces, and I give one-third in charity, I and my family eat one-third, and I return one-third back into it.' In another narration: 'And I put one-third for the poor, the needy, and the wayfarer'"(5).

(1) Mujmal al-Lughah by Ibn Faris 2/489. (2) Al-Muharrar al-Wajiz 1/234, and Al-Nukat wa al-'Uyun 1/218. (3) In (M): "tasa'aluni" (you are asking me). (4) In (M): "fa-qala" (so he said). (5) Muslim (2984), and what is in brackets is from it, and the hadith is also in Ahmad (7941). His saying: "Harrah": i.e., land with black, porous stones. "Sharjah": a watercourse from a Harrah to a plain. Al-Qamus al-Muhit (harra), (sharaj).

वह धन्य और उच्च है, इसमें [पृथ्वी में] वसंत की गर्मी आती है, और जब यह नमी के साथ मिलती है, तो अल्लाह सुब्हानहु व तआला की अनुमति से उत्पत्ति और विकास होता है।

जैसा कि हमने उल्लेख किया है, उसके अलावा कई हवाएं चल सकती हैं, लेकिन मुख्य ये चार हैं। जो हवा दो हवाओं के बीच चलती है, उसका फैसला उस हवा के अनुसार होता है जिसके वह चलने में सबसे करीब होती है, और इसे 'अन-नकबा' (विचलित हवा) कहा जाता है।

बारहवां: अल्लाह तआला का कथन: {और वे बादल जो आकाश और पृथ्वी के बीच अधीन हैं}। बादलों को 'सहाब' इसलिए कहा जाता है क्योंकि वे हवा में खिंचते (इंसिहाब) हैं। मैंने अपना दामन खींचा (सहबतू ज़ैली सहबन)। और फलां व्यक्ति फलां पर 'तसहबा' हुआ: यानी उसने उसके खिलाफ हिम्मत की। 'अस-सहब' का अर्थ खाने-पीने में तीव्रता भी है(1)।

'मुसख्खर' (अधीन/नियंत्रित) का अर्थ है विनम्र किया हुआ; इसका अधीन होना इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना है। यह भी कहा गया है कि: इसका अधीन होना खंभों या बंधनों के बिना आकाश और पृथ्वी के बीच इसकी स्थिरता है(2), और पहला अधिक स्पष्ट है।

और यह [बादल] पानी के साथ और अज़ाब (दंड) के साथ हो सकता है:

मुस्लिम ने अबू हुरैरा (रज़ियल्लाहु अन्हु) से रिवायत की है कि पैगंबर ﷺ ने फरमाया: "जब एक आदमी जंगल में था, तो उसने बादल में एक आवाज सुनी [कहते हुए]: 'फलां के बगीचे को पानी दो।' वह बादल एक तरफ हट गया और अपना पानी एक पथरीली जमीन (हर्रह) पर गिरा दिया। फिर उन पथरीली जमीनों के रास्तों (शरजह) में से एक ने उस पूरे पानी को सोख लिया। उसने पानी का पीछा किया और एक आदमी को अपने बगीचे में खड़ा पाया, जो फावड़े से पानी का रुख मोड़ रहा था। उसने उससे कहा: 'ऐ अल्लाह के बंदे, तुम्हारा नाम क्या है?' उसने कहा: '[नाम]', वही नाम जो उसने बादल में सुना था। फिर उस आदमी ने उससे पूछा: 'ऐ अल्लाह के बंदे, तुम मुझसे(3) मेरा नाम क्यों पूछ रहे हो?' उसने कहा(4): 'मैंने उस बादल में एक आवाज सुनी जिससे यह पानी आया है, वह कह रहा था: "फलां के बगीचे को पानी दो," तुम्हारा नाम लेकर। तुम [इसमें] क्या करते हो?' उसने कहा: 'चूंकि तुमने यह पूछा है, तो मैं देखता हूं कि इससे क्या निकलता है, और मैं उसका एक तिहाई दान (सदका) करता हूं, एक तिहाई मैं और मेरा परिवार खाते हैं, और एक तिहाई मैं उसी में वापस डाल

देता हूं।' एक अन्य रिवायत में है: 'और मैं एक तिहाई गरीबों, मांगने वालों और यात्रियों के लिए रखता हूं'"(5)।

(1) मुजमल अल-लुगह इब्न फारिस द्वारा 2/489। (2) अल-मुहर्रर अल-वजीज 1/234, और अल-नुकत व अल-'उयुन 1/218। (3) (M) में: "तसाअलुनी" (तुम मुझसे पूछ रहे हो)। (4) (M) में: "फा-क़ाला" (तो उसने कहा)। (5) मुस्लिम (2984), और कोष्ठक में जो है वह उसी से है, और हदीस अहमद (7941) में है। उनका कहना है: "हर्रह": यानी काली, छेददार पत्थरों वाली जमीन। "शरजह": हर्रह से मैदान की ओर बहने वाला पानी का रास्ता। अल-क़ामूस अल-मुहीत (हर्र), (शरज)।

تبارک و تعالیٰ ہے وہ، اس [زمین] کی طرف موسم بہار کی حرارت آتی ہے، پس جب یہ رطوبت (نمی) کے ساتھ جمع ہو جاتی ہے تو اس وقت اللہ سبحانہ و تعالیٰ کے حکم سے نشوونما اور بڑھوتری ہوتی ہے۔

اور جو ہم نے ذکر کیا اس کے علاوہ بھی بہت سی ہوائیں چل سکتی ہیں، سوائے اس کے کہ بنیادی اصول یہ چار ہیں۔ پس ہر وہ ہوا جو دو ہواؤں کے درمیان چلتی ہے، اس کا حکم اس ہوا کا ہے جس کے وہ اپنے چلنے میں سب سے زیادہ قریب ہو، اور اسے 'النكباء' (ٹیڑھی ہوا) کہا جاتا ہے۔

بارہویں بات: اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {وَالسَّحَابِ الْمُسَخَّرِ بَيْنَ السَّمَاءِ وَالْأَرْضِ} (اور وہ بادل جو آسمان اور زمین کے درمیان مسخر/تابع فرمان ہیں)۔ بادل کو 'سحاب' اس کے ہوا میں کھنچنے (انسحاب) کی وجہ سے کہا جاتا ہے۔ اور میں نے اپنا دامن کھینچا (سحبتُ ذيلي سحباً)۔ اور فلاں فلاں پر 'تسحب' ہوا: یعنی اس پر جرات کی۔ اور 'السَّحب' کا مطلب کھانے پینے میں شدت بھی ہے(١)۔

'المسخر' کا مطلب ہے ذلیل کیا ہوا (تابع فرمان)؛ اور اس کی تسخیر اسے ایک جگہ سے دوسری جگہ بھیجنا ہے۔ اور کہا گیا: اس کی تسخیر بغیر ستونوں اور سہارا دینے والی چیزوں کے آسمان اور زمین کے درمیان اس کا ٹھہراؤ ہے(٢)، اور پہلا قول زیادہ واضح ہے۔

اور یہ [بادل] پانی کے ساتھ بھی ہوتا ہے اور عذاب کے ساتھ بھی:

امام مسلم نے حضرت ابوہریرہ رضی اللہ عنہ سے روایت کیا کہ نبی کریم ﷺ نے فرمایا: "ایک شخص جنگل میں تھا کہ اس نے بادل میں ایک آواز سنی [کہتے ہوئے]: 'فلاں کے باغ کو پانی دو'۔ پس وہ بادل ایک طرف ہٹ گیا اور اپنا پانی ایک سنگلاخ زمین (حَرّہ) میں انڈیل دیا۔ پس ان نالیوں

(شَرجہ) میں سے ایک نالی نے اس تمام پانی کو جذب کر لیا، تو وہ شخص پانی کے پیچھے پیچھے چلا، وہاں دیکھا کہ ایک آدمی اپنے باغ میں کھڑا اپنے بیلچے سے پانی کا رخ موڑ رہا ہے۔ اس نے اس سے کہا: 'اے اللہ کے بندے، تمہارا نام کیا ہے؟' اس نے کہا: '[نام]'، وہی نام جو اس نے بادل میں سنا تھا۔ پھر اس نے کہا: 'اے اللہ کے بندے، تم نے مجھ سے(۳) میرا نام کیوں پوچھا؟' اس نے کہا(۴): 'میں نے اس بادل میں جس کا یہ پانی ہے ایک آواز سنی جو کہہ رہی تھی: "فلاں کے باغ کو پانی دو،" تمہارا نام لے کر۔ پس تم اس میں کیا کرتے ہو؟' اس نے کہا: 'اب جب تم نے یہ کہہ ہی دیا ہے، تو میں دیکھتا ہوں کہ اس سے کیا نکلتا ہے، پس میں اس کا ایک تہائی صدقہ کر دیتا ہوں، ایک تہائی میں اور میرے اہل و عیال کھاتے ہیں، اور ایک تہائی اسی میں واپس لوٹا دیتا ہوں'۔ ایک اور روایت میں ہے: 'اور میں اس کا ایک تہائی مسکینوں، مانگنے والوں اور مسافروں کے لیے رکھتا ہوں'"(۵)۔

(۱) مجمل اللغہ لابن فارس ۲/۴۸۹۔ (۲) المحرر الوجیز ۱/۲۳۴، والنکت والعیون ۱/۲۱۸۔ (۳) (م) میں ہے: تسألنی (تم مجھ سے پوچھ رہے ہو)۔ (۴) (م) میں ہے: فقال (تو اس نے کہا)۔ (۵) مسلم (۲۹۸۴)، اور قوسین (بریکٹ) کے درمیان والا حصہ اسی سے ہے، اور یہ حدیث احمد (۷۹۴۱) کے پاس بھی ہے۔ قول: 'حرّہ': یعنی کالی، سوراخ دار پتھروں والی زمین، اور 'الشرجہ': حرّہ سے ہموار زمین کی طرف پانی کے بہنے کا راستہ۔ القاموس المحیط (حرر)، (شرج)۔

In the Revelation: "It is Allah who sends the winds, and they stir the clouds and We drive them to a dead land" [Fatir: 9]. And He said: "Until when they have carried heavy-laden clouds, We drive them to a dead land" [Al-A'raf: 57]. Such examples are numerous in the Revelation.

Ibn Majah narrated from Aisha that whenever the Prophet (ﷺ) saw a cloud approaching from any horizon, he would leave what he was doing, even if he was in prayer, until he faced it, and say: "O Allah, we seek refuge in You from the evil of what it has been sent with." If it rained, he would say: "O Allah, [make it] a beneficial downpour," twice or thrice. And if Allah cleared it and it did not rain, he would praise Allah for that (1). Muslim narrated a similar meaning from Aisha, the wife of the Prophet (ﷺ), who said: Whenever there was a day of wind and clouds, it could be seen on the face of the Messenger of Allah (ﷺ); he would come and go. When it rained, he was pleased and that [worry] left him. Aisha said: I asked him, and he said: "I feared it might be a punishment inflicted upon my nation." And he would say when he saw rain: "[It is a] mercy" (2). In a narration (3), he said: "Perhaps, O Aisha, it is as the people of 'Aad said: 'Then, when they saw it as a cloud approaching their valleys, they said: This is a cloud bringing us rain' [Al-Ahqaf: 24]."

These Hadiths and verses indicate the correctness of the first opinion, and that their subjection (task-orientation) does not mean their permanence. Allah knows best. For permanence indicates a lack of movement.

If permanence is intended to mean their being in the air, neither in the sky nor on the earth, then it is correct; because of His saying: "between". Despite that, they are subjected and carried, and that is a greater sign of power, like birds in the air. Allah Almighty said: "Do they not see the birds controlled in the atmosphere of the sky? None holds them up except Allah" [Al-Nahl: 79]. And He said: "Have they not seen the birds above them, spreading their wings and folding them? None holds them up except the Most Merciful" [Al-Mulk: 19].

(1) Sunan Ibn Majah (3889), and also narrated by Al-Bukhari in Al-Adab al-Mufrad (686), Abu Dawood (5099), and An-Nasa'i in Al-Kubra (1843). Narrated by Ahmad (24144), and Al-Bukhari (1032) in brief, and in some narrations of the hadith "Sayyiban" instead of "Sayyiban". (2) Sahih Muslim (899), and it is with Ahmad (24369), Al-Bukhari (3206) (4829) without her saying: and he says when he sees the rain: "mercy". (3) With Muslim (899): (15).

और वह्य (प्रकाशना) में है: "और अल्लाह वह है जो हवाओं को भेजता है, फिर वे बादलों को उठाती हैं और हम उन्हें एक मृत भूमि की ओर ले जाते हैं" [फातिर: ९]। और उसने कहा: "यहाँ तक कि जब वे भारी बादलों को उठा लेते हैं, तो हम उन्हें एक मृत भूमि की ओर ले जाते हैं" [अल-अराफ: ५७]। और वह्य में इसके कई उदाहरण हैं।

इब्न माजाह ने आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से रिवायत की है कि जब भी नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) क्षितिज से बादल आते देखते, तो वे जो कुछ कर रहे होते उसे छोड़ देते, भले ही वे नमाज़ में हों, यहाँ तक कि वे उसका सामना करते और कहते: "ऐ अल्लाह, हम तेरी पनाह माँगते हैं उस बुराई से जिसके साथ उसे भेजा गया है।" यदि बारिश होती, तो वे दो या तीन बार कहते: "ऐ अल्लाह, [इसे] लाभदायक बारिश बना।" और यदि अल्लाह उसे हटा देता और बारिश न होती, तो वे इसके लिए अल्लाह की प्रशंसा करते (१)। मुस्लिम ने नबी (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) की पत्नी आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) से इसी आशय की रिवायत की है, उन्होंने कहा: जब भी हवा और बादलों का दिन होता, तो रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) के चेहरे पर इसका प्रभाव देखा जा सकता था; वे आगे-पीछे टहलते। जब बारिश हो जाती, तो वे प्रसन्न होते और वह [चिंता] उनसे दूर हो जाती। आयशा (रज़ियल्लाहु अन्हा) ने कहा: मैंने उनसे पूछा, तो उन्होंने कहा: "मुझे डर था कि कहीं यह मेरी उम्मत पर भेजा गया कोई अज़ाब न हो।" और जब वे बारिश देखते तो कहते: "[यह] रहमत है" (२)। एक रिवायत (३) में उन्होंने कहा: "शायद, ऐ आयशा, यह वैसा ही हो जैसा आद की कौम ने कहा था: 'फिर जब उन्होंने उसे अपनी वादियों की ओर आता हुआ बादल देखा, तो बोले: यह बादल हम पर बरसने वाला है' [अल-अहकाफ: २४]।"

अतः ये हदीसें और आयतें पहले मत की सत्यता की ओर इशारा करती हैं, और यह कि उनकी ताबेदारी (तस्ख़ीर) का अर्थ उनका स्थिर होना नहीं है। और अल्लाह सबसे बेहतर जानता है। क्योंकि स्थिरता का अर्थ गतिहीनता है।

यदि स्थिरता से तात्पर्य हवा में होना है, न आकाश में और न पृथ्वी पर, तो यह सही है; क्योंकि अल्लाह का फरमान है: "बीच में"। इसके बावजूद वे ताबे (अधीन) और उठाई हुई हैं, और यह कुदरत की अधिक महान निशानी है, जैसे हवा में पक्षी। अल्लाह तआला ने फरमाया: "क्या उन्होंने पक्षियों को नहीं देखा जो आकाश के वातावरण में वश में किए हुए हैं? उन्हें अल्लाह के सिवा कोई नहीं थामे हुए

है" [अन-नहल: ७९]। और फरमाया: "क्या उन्होंने अपने ऊपर उड़ते पक्षियों को नहीं देखा जो पर फैलाते हैं और समेटते हैं? उन्हें रहमान के सिवा कोई नहीं थामे हुए है" [अल-मुल्क: १९] ।

(१) सुनन इब्न माजाह (३८८९), और इसे बुखारी ने अल-अदब अल-मुफ़रद (६८६) में, अबू दाऊद (५०९९) ने और नसाई ने अल-कुबरा (१८४३) में भी रिवायत किया है। और अहमद (२४१४४) और बुखारी (१०३२) ने इसे संक्षिप्त रूप में रिवायत किया है, और हदीस की कुछ रिवायतों में "सय्यिबन" की जगह "सय्यिबन" है। (२) सहीह मुस्लिम (८९९), और यह अहमद (२४३६९) और बुखारी (३२०६) (४८२९) के यहाँ है, सिवाय उनके इस कथन के और वे कहते जब वे बारिश देखते: "रहमत"। (३) मुस्लिम (८९९) के यहाँ: (१५)।

اور وحی (قرآن) میں ہے: ﴿وَاللَّهُ الَّذِي أَرْسَلَ الرِّيَاحَ فَتُثِيرُ سَحَابًا فَسُقْنَاهُ إِلَى بَلَدٍ مَيِّتٍ﴾ [فاطر: ۹]، اور فرمایا: ﴿حَتَّى إِذَا أَقَلَّتْ سَحَابًا ثِقَالًا سُقْنَاهُ لِبَلَدٍ مَيِّتٍ﴾ [الأعراف: ۵۷]، اور قرآن میں ایسی مثالیں بہت ہیں۔

ابن ماجہ نے عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے کہ نبی ﷺ جب کسی افق سے بادلوں کو آتے دیکھتے تو جو کام کر رہے ہوتے اسے چھوڑ دیتے خواہ نماز میں ہوتے یہاں تک کہ اس کا استقبال کرتے اور فرماتے: "اے اللہ، ہم اس چیز کی برائی سے تیری پناہ مانگتے ہیں جس کے ساتھ اسے بھیجا گیا ہے۔" پھر اگر بارش ہوتی تو دو یا تین بار فرماتے: "اے اللہ اسے نفع بخش بارش بنا۔" اور اگر اللہ اسے ہٹا دیتا اور بارش نہ ہوتی تو اس پر اللہ کا شکر ادا کرتے (۱)۔ مسلم نے اسی مفہوم میں نبی ﷺ کی زوجہ عائشہ رضی اللہ عنہا سے روایت کیا ہے، وہ کہتی ہیں: جب ہوا اور بادلوں کا دن ہوتا تو رسول اللہ ﷺ کے چہرے پر اس کے اثرات دیکھے جا سکتے تھے؛ آپ ﷺ بے قرار ہو کر ادھر ادھر آتے جاتے، پھر جب بارش ہو جاتی تو خوش ہو جاتے اور وہ کیفیت دور ہو جاتی۔ حضرت عائشہ رضی اللہ عنہا نے کہا: میں نے آپ ﷺ سے اس بارے میں پوچھا تو آپ ﷺ نے فرمایا: "مجھے ڈر ہوا کہ کہیں یہ میری امت پر مسلط کیا گیا عذاب نہ ہو"۔ اور جب بارش دیکھتے تو فرماتے: "(یہ) رحمت ہے" (۲)۔ ایک روایت (۳) میں فرمایا: "اے عائشہ، شاید یہ ویسا ہی ہو جیسا قومِ عاد نے کہا تھا: ﴿فَلَمَّا رَأَوْهُ عَارِضًا مُسْتَقْبِلَ أَوْدِيَتِهِمْ قَالُوا هَذَا عَارِضٌ مُمْطِرُنَا﴾ [الاحقاف: ۲۴] (پھر جب انہوں نے اسے اپنی وادیوں کی طرف بادل کی صورت میں آتے دیکھا تو کہنے لگے یہ بادل ہم پر برسنے والا ہے)۔"

پس یہ احادیث اور آیات پہلے قول کی صحت پر دلالت کرتی ہیں، اور یہ کہ ان کی تسخیر کا مطلب ان کا ایک جگہ ٹھہرنا نہیں ہے، اور اللہ تعالیٰ بہتر جانتا ہے۔ کیونکہ ثبوت (ٹھہراؤ) حرکت نہ کرنے پر دلالت کرتا ہے۔

اگر ثبوت سے مراد ہوا میں ان کا ہونا ہے کہ وہ نہ آسمان میں ہیں نہ زمین پر، تو یہ درست ہے؛ کیونکہ اللہ کا قول ہے "بین" (درمیان)۔ اس کے باوجود وہ مسخر اور اٹھائی ہوئی ہیں، اور یہ قدرت کی زیادہ بڑی نشانی ہے، جیسے فضا میں پرندے، اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿أَلَمْ يَرَوْا إِلَى الطَّيْرِ مُسَخَّرَاتٍ فِي جَوِّ السَّمَاءِ مَا يُمْسِكُهُنَّ إِلَّا اللَّهُ﴾ [النحل: ٧٩] (کیا انہوں نے پرندوں کو نہیں دیکھا جو آسمان کی فضا میں مسخر ہیں؟ انہیں اللہ کے سوا کوئی نہیں تھامے ہوئے)۔ اور فرمایا: ﴿أَوَلَمْ يَرَوْا إِلَى الطَّيْرِ فَوْقَهُمْ صَافَّاتٍ وَيَقْبِضْنَ مَا يُمْسِكُهُنَّ إِلَّا الرَّحْمَنُ﴾ [الملک: ١٩] (کیا انہوں نے اپنے اوپر اڑتے پرندوں کو نہیں دیکھا جو پر پھیلائے ہوئے ہیں اور سکیڑتے ہیں؟ انہیں رحمن کے سوا کوئی نہیں تھامے ہوئے)۔

(١) سنن ابن ماجہ (٣٨٨٩)، اور اسے بخاری نے الادب المفرد (٦٨٦) میں، ابو داؤد (٥٠٩٩) نے اور نسائی نے الکبریٰ (١٨٤٣) میں بھی نکالا ہے۔ اور احمد (٢٤١٤٤) اور بخاری (١٠٣٢) نے مختصراً اسے نکالا ہے، اور حدیث کی بعض روایات میں "صَيِّباً" کی جگہ "سَيِّباً" ہے۔ (٢) صحیح مسلم (٨٩٩)، اور یہ احمد (٢٤٣٦٩) اور بخاری (٣٢٠٦) (٤٨٢٩) کے ہاں ہے سوائے ان کے اس قول کے: اور وہ کہتے جب بارش دیکھتے: "رحمت"۔ (٣) مسلم (٨٩٩) کے ہاں: (١٥)۔

Surah Al-Baqarah: Verse 164 504 Thirteenth: Ka'b al-Ahbar said: The clouds are the sieve for rain; if it weren't for the clouds when water descends from the sky, it would spoil whatever it falls upon on earth. This was narrated from him by Ibn Abbas. Al-Khatib Abu Bakr Ahmad ibn Ali mentioned it from Mu'adh ibn Abd Allah ibn Khabib (1) al-Juhani who said: I saw Ibn Abbas passing by on a mule while I was in Bani Salamah. Tubay', the son of Ka'b's wife, passed by him and greeted Ibn Abbas. Ibn Abbas asked him: Did you hear Ka'b al-Ahbar say anything about the clouds? He said: Yes, he said: The clouds are the sieve for rain; if it weren't for the clouds when water descends from the sky, it would spoil whatever it falls upon on the earth. He said: Did you hear Ka'b saying about the earth sprouting one kind of plant one year and a different kind the next? He said: Yes, I heard him say: Indeed, the seeds descend from the sky. Ibn Abbas said: I have also heard that from Ka'b (2). Fourteenth: His Almighty's saying: {for signs} i.e., indications that point to His oneness and power. Therefore, He mentioned these matters after His saying: {And your God is one God} to indicate by them the truth of the news of what He mentioned before it about His oneness, glory be to Him, and He mentioned His mercy and kindness towards His creation. It was narrated from the Prophet ﷺ that he said: "Woe to him who reads this verse and then spits it out" (3), meaning: he did not reflect upon it, and did not take heed from it (4). If it is asked: why do you deny that they [the signs/creation] brought themselves into existence? It is said to him: This is impossible; because if they had brought themselves into existence, they would either have brought themselves into existence while they existed or while they did not exist. If they brought themselves into existence while they did not exist, it would be impossible; because bringing into existence can only come from a living, knowing, powerful, and willing being, and that which does not exist cannot be described as such. And if they already existed, their existence makes their being brought into existence redundant. (1) In the manuscripts: Habib, and it is an error. (2) We did not find it with Al-Khatib, and it was also narrated by Ibn Abi Hatim 1/275, and Abu al-Shaykh in Al-'Azama (717), and Al-Bayhaqi in Al-Asma wa al-Sifat 2/268, and Al-Mizzi in Tahdhib al-Kamal 4/315. Tubay' is the son of 'Amir al-Himyari, the scholar. He witnessed the Jahiliyyah and converted to Islam during the days of Abu Bakr or Umar. He died in the year 101 AH. Al-Siyar 4/413. (3) Narrated by Ibn Hibban (620) (Al-Ihsan), and Abu al-Shaykh in Akhlaq al-Nabi ﷺ p. 186 from the hadith of Aisha at length with the wording: "Woe to the one who reads it and does not reflect upon it." (4) In (Zh): "takes heed from it".

सूरह अल-बकरा: आयत 164 504 तेरहवाँ: कअब अल-अहबार ने कहा: बादल बारिश की छलनी हैं, अगर आसमान से पानी उतरते समय बादल न होते, तो वह ज़मीन पर जिस चीज़ पर भी गिरता उसे खराब कर देता। इसे इब्न अब्बास ने उनसे रिवायत किया है। अल-खतीब अबू बक्र अहमद बिन अली ने मुआज बिन अब्दुल्ला बिन खबीब (1) अल-जुहनी से इसका उल्लेख किया है, जिन्होंने कहा: मैंने इब्न अब्बास को एक खच्चर पर सवार होकर जाते हुए देखा जब मैं बनी सलमा में था। कअब की पत्नी का बेटा तुबैअ उनके पास से गुज़रा और इब्न अब्बास को सलाम किया। इब्न अब्बास ने उससे पूछा: क्या तुमने कअब अल-अहबार को बादलों के बारे में कुछ कहते सुना है? उसने कहा: हाँ, उन्होंने कहा: बादल बारिश की छलनी हैं, अगर आसमान से पानी उतरते समय बादल न होते, तो वह ज़मीन पर जिस चीज़ पर भी गिरता उसे खराब कर देता। उन्होंने कहा: क्या तुमने कअब को ज़मीन के बारे में यह कहते सुना है कि वह एक साल एक तरह की वनस्पति उगाती है और दूसरे साल दूसरी तरह की? उसने कहा: हाँ, मैंने उन्हें कहते सुना है: दरअसल बीज आसमान से उतरते हैं। इब्न अब्बास ने कहा: मैंने भी कअब से यह सुना है (2)। चौदहवाँ: अल्लाह तआला का कहना: {निशानियां} यानी: ऐसे संकेत जो उसकी एकता और शक्ति को दर्शाते हैं। इसीलिए उसने इन बातों का उल्लेख अपने इस कथन के बाद किया: {और तुम्हारा ईश्वर एक ही ईश्वर है} ताकि उनके ज़रिए उस खबर की सच्चाई को साबित किया जा सके जिसका उल्लेख उसने इससे पहले अपनी तौहीद (एकता) के बारे में किया था, वह पाक है, और उसने अपनी रचना के प्रति अपनी दया और करुणा का उल्लेख किया। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से रिवायत है कि उन्होंने कहा: "तबाही है उस शख़्स के लिए जिसने इस आयत को पढ़ा और उसे उगल दिया (अनसुना कर दिया)" (3) यानी: उसने इसमें सोच-विचार नहीं किया और उससे सबक नहीं लिया (4)। यदि यह पूछा जाए: तो आपने इस बात से इनकार क्यों किया कि उन्होंने (निशानियों/सृष्टि ने) खुद को पैदा किया है? उनसे कहा जाएगा: यह असंभव है; क्योंकि अगर उन्होंने खुद को पैदा किया होता, तो वे या तो अस्तित्व में होते हुए खुद को पैदा करते या अस्तित्वहीन होते हुए। यदि उन्होंने अस्तित्वहीन होते हुए खुद को पैदा किया होता, तो यह असंभव होता; क्योंकि अस्तित्व में लाना केवल एक जीवित, ज्ञानी, शक्तिशाली और इच्छाशक्ति रखने वाली हस्ती से ही संभव है, और जो अस्तित्व में ही नहीं है उसे ऐसा नहीं बताया जा सकता। और यदि वे पहले से ही अस्तित्व में थे, तो उनका अस्तित्व उन्हें दोबारा पैदा करने की ज़रूरत को खत्म कर देता है। (1) प्रतियों में: हबीब, और यह एक गलती है। (2) हमें यह अल-खतीब के पास नहीं मिला, और इसे इब्न अबी हातिम 1/275, और अबू अल-शेख ने 'अल-अज़मा' (717) में, और अल-बैहकी ने 'अल-अस्मा व अल-सिफ़त' 2/268 में, और अल-मिज्जी ने 'तहरीब अल-कमाल' 4/315 में उद्धृत

किया है। तुबैअ, आमिर अल-हिम्यरी का बेटा और एक विद्वान था। उसने जाहिलियत का दौर देखा था और अबू बक्र या उमर के दिनों में इस्लाम कबूल किया था। उसकी मृत्यु 101 हिजरी में हुई थी। अल-सियार 4/413। (3) इब्न हिब्बान (620) (अल-इहसान) ने इसे उद्धृत किया है, और अबू अल-शेख ने 'अखलाक अल-नबी ﷺ' पृष्ठ 186 पर आयशा की हदीस से विस्तार से इन शब्दों के साथ उद्धृत किया है: "तबाही है उस व्यक्ति के लिए जिसने इसे पढ़ा और इस पर विचार नहीं किया।" (4) (ज़) में: "उससे सबक लेता है"।

سورہ البقرہ: آیت 164 504 تیرہویں بات: کعب الاحبار نے کہا: بادل بارش کی چھلنی ہیں، اگر آسمان سے پانی اترتے وقت بادل نہ ہوتے تو وہ زمین پر جس چیز پر بھی گرتا اسے تباہ کر دیتا۔ ابن عباس نے ان سے یہ روایت کیا ہے۔ اسے خطیب ابوبکر احمد بن علی نے معاذ بن عبداللہ بن حبیب (1) الجہنی سے نقل کیا، انہوں نے کہا: میں نے ابن عباس کو ایک خچر پر گزرتے دیکھا جب میں بنی سلمہ میں تھا۔ ان کے پاس سے کعب کی بیوی کا بیٹا تبیع گزرا، اس نے ابن عباس کو سلام کیا۔ ابن عباس نے اس سے پوچھا: کیا تم نے کعب الاحبار کو بادلوں کے بارے میں کچھ کہتے سنا ہے؟ اس نے کہا: جی ہاں، انہوں نے کہا: بادل بارش کی چھلنی ہیں، اگر آسمان سے پانی اترتے وقت بادل نہ ہوتے تو وہ زمین پر جس چیز پر بھی گرتا اسے خراب کر دیتا۔ انہوں نے پوچھا: کیا تم نے کعب کو زمین کے بارے میں یہ کہتے سنا ہے کہ وہ ایک سال ایک طرح کی نباتات اگاتی ہے اور اگلے سال دوسری طرح کی؟ اس نے کہا: جی ہاں، میں نے انہیں کہتے سنا: بے شک بیج آسمان سے اترتے ہیں۔ ابن عباس نے کہا: میں نے بھی کعب سے یہ سنا ہے (2)۔ چودھویں بات: اللہ تعالیٰ کا فرمان: ﴿ لَآيَاتٍ ﴾ یعنی: وہ نشانیاں جو اس کی وحدانیت اور قدرت پر دلالت کرتی ہیں، اسی لیے اللہ نے ان باتوں کا تذکرہ اپنے اس قول کے بعد کیا: ﴿ وَإِلَٰهُكُمْ إِلَٰهٌ وَاحِدٌ ﴾ تاکہ ان کے ذریعے اس خبر کی سچائی پر دلیل پیش کی جائے جو اس نے اس سے پہلے اپنی توحید کے بارے میں بیان کی، وہ پاک ہے، اور اس نے اپنی مخلوق پر اپنی رحمت اور رافت (مہربانی) کا ذکر کیا۔ نبی اکرم ﷺ سے مروی ہے کہ آپ ﷺ نے فرمایا: "ہلاکت ہے اس شخص کے لیے جس نے یہ آیت پڑھی اور اسے اگل دیا (یعنی عمل نہ کیا)" (3) یعنی: اس میں غور و فکر نہیں کیا، اور اس سے عبرت حاصل نہیں کی (4)۔ اگر یہ کہا جائے: تو آپ نے اس بات کا انکار کیوں کیا کہ انہوں (نشانیوں/ مخلوقات) نے خود کو پیدا کیا؟ تو اس سے کہا جائے گا: یہ محال (ناممکن) ہے؛ کیونکہ اگر وہ خود

کو پیدا کرتیں تو اس سے خالی نہ ہوتا کہ انہوں نے خود کو اس وقت پیدا کیا جب وہ موجود تھیں یا جب وہ معدوم (ناپید) تھیں، پس اگر انہوں نے خود کو اس وقت پیدا کیا جب وہ معدوم تھیں تو یہ محال تھا؛ کیونکہ پیدا کرنا صرف اسی سے ممکن ہے جو حی (زندہ)، عالم، قادر اور مرید (ارادہ رکھنے والا) ہو، اور جو موجود ہی نہیں اس کا ان اوصاف سے متصف ہونا صحیح نہیں، اور اگر وہ پہلے سے موجود تھیں تو ان کا وجود ہی ان کی دوبارہ تخلیق سے بے نیاز کر دیتا ہے۔ (1) نسخوں میں: حبیب، اور یہ غلطی ہے۔ (2) ہمیں یہ خطیب کے ہاں نہیں ملا، اور اسے ابن ابی حاتم 1/275، اور ابو الشیخ نے 'العظمہ' (717) میں، اور بیہقی نے 'الاسماء والصفات' 2/268 میں، اور مزی نے 'تہذیب الکمال' 4/315 میں نکالا ہے۔ تبیع، ابن عامر الحمیری ہے، جو ایک بڑے عالم تھے، انہوں نے جاہلیت کا زمانہ پایا اور ابوبکر یا عمر رضی اللہ عنہما کے دور میں اسلام لائے، سنہ 101ھ میں وفات پائی۔ السیر 4/413۔ (3) اسے ابن حبان نے (620) (الاحسان) میں نکالا ہے، اور ابو الشیخ نے 'اخلاق النبی ﷺ' ص 186 میں حضرت عائشہ کی طویل حدیث سے ان الفاظ میں نقل کیا ہے: "ہلاکت ہے اس کے لیے جس نے اسے پڑھا اور اس میں غور و فکر نہیں کیا۔" (4) (ظ) میں ہے: "اس سے عبرت حاصل کرتا ہے"۔

itself. Also, if what they said were possible, it would be possible for the building to create itself; and likewise carpentry and weaving, and that is impossible, and what leads to the impossible is impossible.

Furthermore, God Almighty did not limit [proving] His Oneness to mere reports, until He coupled that with observation and contemplation in verses of the Qur'an. He said to His Prophet ﷺ: "Say, 'Observe what is in the heavens and the earth.'" And the address is to the disbelievers, because of His saying: "But signs and warnings do not avail a people who do not believe" [Yunus: 101]. And He said: "Have they not looked into the dominion of the heavens and the earth" [Al-A'raf: 185], meaning by 'dominion' (malakut) the signs. And He said: "And in yourselves; do you not then see?" [Adh-Dhariyat: 21]. He says: Did they not look into that with the gaze of reflection and contemplation so that they might deduce from its being a locus for events and changes that they are created things, and that the created thing cannot do without a maker who makes it, and that this maker is Wise, Knowing, Powerful, Willing, Hearing, Seeing, Speaking; because if He were not characterized by these attributes, man would be more perfect than Him, and that is impossible. And He, the Almighty, said: "And certainly We created man from an extract of clay," meaning Adam, peace be upon him, "Then We made him" i.e., made his progeny and offspring "a drop in a firm lodging" until His saying: "[you] will be resurrected" [Al-Mu’minun: 11-16].

So when a human being contemplates with this reminder, using the intellect bestowed upon him, he sees his soul as being governed and directed through various states; he was a drop of fluid (nutfah), then a clinging clot ('alaqah), then a chewed-like lump (mudghah), then flesh and bone. Thus, he knows that he did not move himself from a state of deficiency to a state of perfection; for he is unable to create for himself, in the best state which is the perfection of his intellect and reaching maturity, even one of his organs, nor can he add a limb to his body. This indicates to him that in his state of deficiency and time of weakness, he was even more incapable of doing so. He may see himself as a youth, then middle-aged, then an old man, and he did not move himself from the state of youth and strength to the state of old age and senility, nor did he choose it for himself, nor is it within his power to depart from the state of gray hair and return to the strength of youth. He knows through this that it is not he who performed those actions upon himself, and that he has a Maker who made him, and a Mover who moved him from one state to another. Were it not for that, his states would not change without a mover and a governor.

Some wise men said: Everything in the Great World (the macrocosm) has a counterpart in the Small World (the microcosm), which is the human body. Therefore, the Almighty said: "We have indeed created man in the best of forms" [At-Tin: 4] and said: "And in yourselves; do you not then see?"

सूरह अल-बक़रह: आयत 164 505

स्वयं। साथ ही, यदि उनकी कही हुई बात संभव होती, तो भवन के लिए स्वयं को अस्तित्व में लाना संभव होता; और इसी तरह बढ़ईगीरी और बुनाई भी, और यह असंभव है, और जो असंभव की ओर ले जाता है वह असंभव है।

इसके अलावा, ईश्वर सर्वशक्तिमान ने अपनी एकता [को सिद्ध करने] को केवल सूचनाओं तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे कुरान की आयतों में अवलोकन और चिंतन के साथ जोड़ा। उन्होंने अपने नबी ﷺ से कहा: 'कहो, "देखो कि आकाशों और पृथ्वी में क्या है।"' और यह संबोधन अविश्वासियों के लिए है, क्योंकि उनके इस कथन के कारण: 'किन्तु आयतें और चेतावनियाँ उन लोगों के काम नहीं आतीं जो विश्वास नहीं करते' [यूनुस: 101]। और उन्होंने कहा: 'क्या उन्होंने आकाशों और पृथ्वी के साम्राज्य (मलिकूत) में नहीं देखा' [अल-अराफ़: 185], मलिकूत से उनका तात्पर्य आयतों से है। और उन्होंने कहा: 'और स्वयं तुम्हारे भीतर भी; तो क्या तुम देखते नहीं?' [अज़-धारियात: 21]। वे कहते हैं: क्या उन्होंने चिंतन और मनन की दृष्टि से उस पर नहीं देखा ताकि वे घटनाओं और परिवर्तनों का स्थान होने से यह निष्कर्ष निकाल सकें कि वे रचित चीजें हैं, और रचित चीज उस बनाने वाले के बिना नहीं रह सकती जो उसे बनाता है, और वह बनाने वाला बुद्धिमान, सर्वज्ञ, शक्तिशाली, इच्छावान, सुनने वाला, देखने वाला, बोलने वाला है; क्योंकि यदि वह इन गुणों से युक्त न होता, तो मनुष्य उससे अधिक पूर्ण होता, और यह असंभव है। और अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'और वास्तव में हमने मनुष्य को मिट्टी के सत से बनाया,' जिसका अर्थ है आदम अलैहिस्सलाम, 'फिर हमने उसे बनाया' अर्थात उसके वंश और संतान को बनाया 'एक सुरक्षित स्थान में एक बूंद' उनके इस कथन तक: 'तुम उठाए जाओगे' [अल-मुमिनून: 11-16]।

अतः जब मनुष्य इस चेतावनी के साथ, उसे प्रदान की गई बुद्धि का उपयोग करते हुए चिंतन करता है, तो वह अपनी आत्मा को विभिन्न अवस्थाओं के माध्यम से शासित और निर्देशित पाता है; वह एक बूंद (नुत्फ़ा) था, फिर एक थक्का ('अ़लक़ा), फिर एक मांस का लोथड़ा (मुदग़ा), फिर मांस और हड्डियाँ। इस प्रकार, वह जानता है कि उसने स्वयं को कमी की अवस्था से पूर्णता की अवस्था में नहीं पहुँचाया; क्योंकि वह अपनी बुद्धि की पूर्णता और परिपक्वता की सर्वश्रेष्ठ अवस्था में भी अपने लिए अपने अंगों में से एक अंग भी बनाने में असमर्थ है, और न ही वह अपने अंगों में कोई अंग बढ़ा सकता है। यह उसे संकेत देता है कि अपनी कमी की अवस्था और कमजोरी के समय वह ऐसा करने में और भी असमर्थ था। वह स्वयं को एक युवक, फिर मध्यम आयु वर्ग, फिर एक वृद्ध व्यक्ति के रूप में देख

सकता है, जबकि उसने स्वयं को युवावस्था और शक्ति की अवस्था से बुढ़ापे और जर्जरता की अवस्था में नहीं पहुँचाया, न ही उसने इसे अपने लिए चुना, और न ही यह उसके वश में है कि वह बुढ़ापे की अवस्था को छोड़ दे और युवावस्था की शक्ति की ओर लौट आए। वह इसके द्वारा जानता है कि वह स्वयं नहीं है जिसने अपने ऊपर वे कार्य किए, और उसका एक बनाने वाला है जिसने उसे बनाया, और एक परिवर्तन करने वाला है जिसने उसे एक अवस्था से दूसरी अवस्था में पहुँचाया। यदि ऐसा न होता, तो उसकी अवस्थाएँ किसी परिवर्तन करने वाले और शासक के बिना नहीं बदलतीं।

कुछ विद्वानों ने कहा: महान जगत (मैक्रोकोस्म) में हर चीज का एक प्रतिरूप छोटे जगत (माइक्रोकोस्म) में होता है, जो कि मानव शरीर है। इसीलिए अल्लाह तआला ने फ़रमाया: 'निश्चय ही हमने मनुष्य को सर्वोत्तम रूप में पैदा किया' [अत-तीन: 4] और फ़रमाया: 'और स्वयं तुम्हारे भीतर भी; तो क्या तुम देखते नहीं?'।

سورہ البقرہ: آیت 164 505

وہ بذات خود۔ نیز اگر ان کی بات ممکن ہوتی تو عمارت کے لیے خود بخود وجود میں آنا ممکن ہوتا؛ اور اسی طرح بڑھئی کا کام اور بنائی بھی، اور یہ محال ہے، اور جو محال کی طرف لے جائے وہ بھی محال ہے۔

پھر یہ کہ اللہ تعالیٰ نے اپنی وحدانیت کو محض خبروں تک محدود نہیں رکھا یہاں تک کہ اسے قرآن کی آیات میں غور و فکر اور عبرت کے ساتھ جوڑ دیا، چنانچہ اپنے نبی ﷺ سے فرمایا: ﴿قُلِ انظُرُوا مَاذَا فِي السَّمَوَاتِ وَالْأَرْضِ﴾ (کہہ دیجئے کہ دیکھو آسمانوں اور زمین میں کیا کچھ ہے)۔ اور یہ خطاب کفار کے لیے ہے، کیونکہ اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: ﴿وَمَا تُغْنِي الْآيَاتُ وَالنُّذُرُ عَن قَوْمٍ لَّا يُؤْمِنُونَ﴾ [یونس: 101] (اور نشانیاں اور ڈرانے والے ان لوگوں کو کچھ فائدہ نہیں دیتے جو ایمان نہیں لاتے)۔ اور فرمایا: ﴿أَوَلَمْ يَنظُرُوا فِي مَلَكُوتِ السَّمَوَاتِ وَالْأَرْضِ﴾ [الاعراف: 185] (کیا انہوں نے آسمانوں اور زمین کی بادشاہت میں غور نہیں کیا)، ملکوت سے مراد آیات (نشانیاں) ہیں۔ اور فرمایا: ﴿وَفِي أَنفُسِكُمْ أَفَلَا تُبْصِرُونَ﴾ [الذاریات: 21] (اور خود تمہارے اپنے وجود میں بھی، کیا تم دیکھتے نہیں؟)۔ وہ فرماتا ہے: کیا انہوں نے اس میں غور و فکر اور تدبر کی نظر سے نہیں دیکھا تاکہ وہ ان کے حوادث اور تبدیلیوں کا محل ہونے سے اس بات پر استدلال کریں کہ وہ پیدا کی ہوئی چیزیں ہیں، اور پیدا کی ہوئی چیز کسی بنانے والے سے بے نیاز نہیں ہو سکتی جو اسے بنائے، اور یہ کہ وہ بنانے والا حکیم، علیم، قدیر، مرید، سمیع، بصیر اور متکلم ہے؛ کیونکہ اگر وہ ان صفات سے متصف نہ ہوتا تو انسان اس سے زیادہ مکمل ہوتا، اور یہ محال ہے۔ اور اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنسَانَ مِن سُلَالَةٍ مِّن طِينٍ﴾ (اور یقیناً ہم نے انسان کو مٹی کے خلاصے سے پیدا کیا) یعنی آدم علیہ السلام کو، ﴿ثُمَّ جَعَلْنَاهُ﴾ یعنی ہم نے ان کی نسل اور ذریت کو بنایا ﴿نُطْفَةً فِي قَرَارٍ

مَّكِينٍ﴾ (ایک بوند ایک محفوظ جگہ میں) اس کے ارشاد تک: ﴿تُبْعَثُونَ﴾ [المؤمنون: 11-16] (تم اٹھائے جاؤ گے)۔

پس انسان جب اس تنبیہ کے ساتھ اس عقل کے ذریعے جو اسے عطا کی گئی ہے، اپنے نفس میں غور و فکر کرتا ہے تو اسے (اپنے نفس کو) تدبیر کے تحت اور مختلف حالتوں میں پاتا ہے؛ وہ نطفہ تھا، پھر علقہ (لوتھڑا) بنا، پھر مضغہ بنا، پھر گوشت اور ہڈی بنا، پس وہ جان لیتا ہے کہ اس نے خود کو نقص کی حالت سے کمال کی حالت کی طرف منتقل نہیں کیا؛ کیونکہ وہ اس قابل نہیں ہے کہ اپنے لیے بہترین حالت میں، جو کہ اس کی عقل کا کمال اور جوانی کی انتہا ہے، اپنے اعضاء میں سے کوئی ایک عضو بھی بنا سکے، اور نہ ہی اس کے لیے ممکن ہے کہ وہ اپنے جوارح (اعضاء) میں کوئی اضافہ کر سکے۔ پس یہ بات اسے اس پر دلالت کرتی ہے کہ وہ اپنے نقص کی حالت اور کمزوری کے وقت اس کام سے اور زیادہ عاجز تھا۔ اور وہ خود کو جوان دیکھتا ہے، پھر ادھیڑ عمر، پھر بوڑھا، حالانکہ اس نے خود کو جوانی اور قوت کی حالت سے بڑھاپے اور کبر سنی کی حالت کی طرف منتقل نہیں کیا، اور نہ ہی اسے اپنے لیے پسند کیا، اور نہ ہی اس کے بس میں ہے کہ وہ بڑھاپے کی حالت کو چھوڑ دے اور جوانی کی قوت کی طرف لوٹ آئے۔ پس وہ اس سے جان لیتا ہے کہ وہ وہ نہیں ہے جس نے وہ افعال خود اپنے نفس کے ساتھ کیے، اور یہ کہ اس کا ایک بنانے والا ہے جس نے اسے بنایا، اور ایک منتقل کرنے والا ہے جس نے اسے ایک حال سے دوسرے حال کی طرف منتقل کیا، اور اگر ایسا نہ ہوتا تو اس کے حالات کسی منتقل کرنے والے اور مدبر کے بغیر نہ بدلتے۔

اور بعض حکماء نے کہا: بڑے عالم (کائنات) میں ہر چیز کی ایک مثال چھوٹے عالم میں موجود ہے، جو کہ انسان کا بدن ہے، اور اسی لیے اللہ تعالیٰ نے فرمایا: ﴿لَقَدْ خَلَقْنَا الْإِنسَانَ فِي أَحْسَنِ تَقْوِيمٍ﴾

[التين: 4] (یقیناً ہم نے انسان کو بہترین صورت میں پیدا کیا) اور فرمایا: ﴿وَفِي أَنفُسِكُمْ أَفَلَا تُبْصِرُونَ﴾۔

Page 506 Surah Al-Baqarah: Verse 164

The human senses are more noble than the shining stars; hearing and sight among them are like the sun and the moon in perceiving what is perceived through them. Upon decay, his limbs turn into dust of the same nature as the earth. Within him, sweat and other bodily fluids are of the nature of water. The spirit (ruh) and breath are of the nature of air, and yellow bile is of the nature of fire. His veins are like rivers on the earth, and his liver is like the springs from which rivers draw; for the veins draw from the liver. His bladder is like the sea, for what is in the body's vessels pours into it just as rivers pour into the sea. His bones are like the mountains which are the stakes of the earth. His limbs are like trees; just as every tree has leaves or fruit, so too every limb has an action or an effect. The hair on the body is like the plants and grass on the earth. Furthermore, man mimics with his tongue the sound of every animal and emulates with his limbs the actions of every animal. Thus, he is the microcosm alongside the macrocosm, a created being brought into existence by a single Creator; there is no god but He.

The second volume of the Tafsir of al-Qurtubi is completed, followed by the third volume, the beginning of which is the interpretation of the words of the Almighty: "And among the people are those who take other than Allah as equals [to Him], loving them as they [should] love Allah" [Verse: 165].

पृष्ठ 506 सूरा अल-बकरा: आयत 164

मनुष्य की इंद्रियाँ चमकदार सितारों से अधिक श्रेष्ठ हैं; उनमें से श्रवण और दृष्टि सूरज और चाँद के समान हैं, जिनके माध्यम से बोधगम्य वस्तुओं का बोध होता है। क्षय होने पर उसके अंग पृथ्वी की प्रकृति की मिट्टी बन जाते हैं। उसके भीतर पसीना और शरीर के अन्य तरल पदार्थ पानी की प्रकृति के हैं। आत्मा (रूह) और श्वास हवा की प्रकृति के हैं, और पीला पित्त (येलो बाइल) आग की प्रकृति का है। उसकी नसें पृथ्वी पर नदियों के समान हैं, और उसका जिगर उन सोतों के समान है जिनसे नदियाँ निकलती हैं; क्योंकि नसें जिगर से ऊर्जा प्राप्त करती हैं। उसका मूत्राशय समुद्र के समान है, क्योंकि शरीर की नलिकाओं में जो कुछ भी है वह उसमें उसी तरह गिरता है जैसे नदियाँ समुद्र में गिरती हैं। उसकी हड्डियाँ उन पहाड़ों के समान हैं जो पृथ्वी की खूँटियाँ हैं। उसके अंग पेड़ों के समान हैं; जैसे प्रत्येक पेड़ में पत्ते या फल होते हैं, वैसे ही प्रत्येक अंग का कोई कार्य या प्रभाव होता है। शरीर पर बाल पृथ्वी पर पौधों और घास के समान हैं। इसके अलावा, मनुष्य अपनी जीभ से प्रत्येक जानवर की आवाज़ की नकल करता है और अपने अंगों से प्रत्येक जानवर के कार्यों का अनुकरण करता है। इस प्रकार, वह बड़े ब्रह्मांड के साथ छोटा ब्रह्मांड (सूक्ष्म जगत) है, जो एक ही निर्माता द्वारा बनाया गया है; उसके सिवा कोई ईश्वर नहीं है।

तफ़सीर अल-कुर्तुबी का दूसरा भाग पूरा हुआ, इसके बाद तीसरा भाग है, जिसकी शुरुआत सर्वशक्तिमान के इन शब्दों की व्याख्या से होती है: "और लोगों में से कुछ ऐसे हैं जो अल्लाह के सिवा दूसरों को शरीक बना लेते हैं, वे उनसे वैसा ही प्रेम करते हैं जैसा अल्लाह से प्रेम करना चाहिए" [आयत: 165]।

صفحہ 506 سورۃ البقرہ: آیت 164

انسانی حواس چمکتے ہوئے ستاروں سے زیادہ معزز ہیں، اور ان میں سماعت اور بصارت سورج اور چاند کے درجے میں ہیں جن کے ذریعے محسوسات کا ادراک ہوتا ہے۔ اس کے اعضاء بوسیدہ ہو کر زمین کی جنس سے مٹی بن جاتے ہیں۔ اور اس میں پسینہ اور بدن کی دیگر رطوبتیں پانی کی جنس سے ہیں، اور روح و نفس ہوا کی جنس سے ہیں، اور صفراء (پیلا پِت) آگ کی جنس سے ہے۔ اس کی رگیں زمین میں نہروں کے مانند ہیں، اور اس کا جگر ان چشموں کے مانند ہے جن سے نہریں نکلتی ہیں، کیونکہ رگیں جگر سے اپنی غذا لیتی ہیں۔ اس کا مثانہ سمندر کی مانند ہے، کیونکہ بدن کے برتنوں (رگوں) میں جو کچھ ہے وہ اس میں اسی طرح گرتا ہے جیسے نہریں سمندر میں گرتی ہیں۔ اس کی ہڈیاں پہاڑوں کے مانند ہیں جو زمین کی میخیں ہیں۔ اور اس کے اعضاء درختوں کی مانند ہیں؛ جس طرح ہر درخت کے پتے یا پھل ہوتے ہیں، اسی طرح ہر عضو کا کوئی فعل یا اثر ہوتا ہے۔ بدن پر بال زمین پر نباتات اور گھاس کے مانند ہیں۔ پھر انسان اپنی زبان سے ہر جانور کی آواز نکالتا ہے اور اپنے اعضاء سے ہر جانور کے کام کی نقل کرتا ہے، پس وہ عالمِ صغیر ہے عالمِ کبیر کے ساتھ، جو ایک ہی پیدا کرنے والے کی مخلوق ہے؛ اس کے سوا کوئی معبود نہیں۔

تفسیر قرطبی کا دوسرا حصہ مکمل ہوا، اس کے بعد تیسرا حصہ ہے، جس کا آغاز اللہ تعالیٰ کے اس قول کی تفسیر سے ہوتا ہے: "اور لوگوں میں سے بعض ایسے ہیں جو اللہ کے سوا دوسروں کو (اللہ کا) شریک ٹھہراتے ہیں، وہ ان سے اللہ جیسی محبت کرتے ہیں" [آیت: 165]۔

Index of Part Two 508

- Words of the Almighty: {He said, 'He says, 'It is a cow neither trained to till the soil nor water the fields...'} [71] 188
- Words of the Almighty: {And [remember] when you slew a man and fell into dispute among yourselves concerning it; but Allah was to bring forth that which you were hiding.} [72] 193
- Words of the Almighty: {So We said, "Strike him with a part of it." Thus does Allah bring the dead to life...} [73] 195
- Words of the Almighty: {Then your hearts became hardened after that, being like stones or even harder...} [74] 204
- Words of the Almighty: {Do you covet [O believers] that they would believe for you while a party of them used to hear the words of Allah and then distort it...} [75] 210
- Words of the Almighty: {And when they meet those who believe, they say, "We have believed"; but when they are alone with one another...} [76] 214
- Words of the Almighty: {Do they not know that Allah knows what they conceal and what they declare?} [77] 214
- Words of the Almighty: {And among them are unlettered ones who do not know the Scripture except in wishful thinking...} [78] 216
- Words of the Almighty: {So woe to those who write the "scripture" with their own hands, then say, "This is from Allah"...} [79] 220
- Words of the Almighty: {And they say, "Never will the Fire touch us, except for a few numbered days"...} [80] 224
- Words of the Almighty: {Yes, whoever earns evil and his sin has encompassed him - those are the companions of the Fire...} [81] 226
- Words of the Almighty: {And those who believe and do righteous deeds - those are the companions of Paradise...} [82] 227
- Words of the Almighty: {And [recall] when We took the covenant from the Children of Israel, [enjoining upon them], "Do not worship except Allah...} [83] 235
- Words of the Almighty: {And [recall] when We took your covenant, [saying], "Do not shed each other's blood...} [84] 237
- Words of the Almighty: {Then, you are those [same ones who are] killing one another and evicting a party of your people from their homes...} [85] 237

- Words of the Almighty: {Those are the ones who have bought the life of this world [in exchange] for the Hereafter, so the punishment will not be lightened for them...} [86] 237
- Words of the Almighty: {And We did certainly give Moses the Scripture and followed up after him with messengers...} [87] 243
- Words of the Almighty: {And they said, "Our hearts are wrapped"; but, [in fact], Allah has cursed them for their disbelief...} [88] 246
- Words of the Almighty: {And when there came to them a Book from Allah confirming that which was with them...} [89] 248
- Words of the Almighty: {How wretched is that for which they sold themselves - that they would disbelieve in what Allah has revealed...} [90] 249
- Words of the Almighty: {And when it is said to them, "Believe in what Allah has revealed," they say, "We believe [only] in what was revealed to us." And they disbelieve in what came after it...} [91] 252
- Words of the Almighty: {And Moses had certainly brought you clear proofs. Then you took the calf [in worship] after him...} [92] 254
- Words of the Almighty: {And [recall] when We took your covenant and raised over you the mount, [saying], "Take what We have given you with determination...} [93] 254
- Words of the Almighty: {Say, "If the home of the Hereafter with Allah is for you alone and not the [other] people...} [94] 257
- Words of the Almighty: {But they will never wish for it, ever, because of what their hands have put forth...} [95] 257
- Words of the Almighty: {And you will surely find them the most greedy of people for life...} [96] 258
- Words of the Almighty: {Say, "Whoever is an enemy to Gabriel - it is [none but] he who has brought it [the Quran] down upon your heart...} [97] 261
- Words of the Almighty: {Whoever is an enemy to Allah and His angels and His messengers and Gabriel and Michael...} [98] 262
- Words of the Almighty: {And We have certainly revealed to you verses [which are] clear proofs, and no one would deny them except the defiantly disobedient.} [99] 266
- Words of the Almighty: {Is it not [true] that every time they took a covenant a party of them threw it away?} [100] 268

भाग दो की अनुक्रमणिका 508

- अल्लाह तआला का फरमान: {उसने कहा, 'वह कहता है, 'वह एक ऐसी गाय है जिससे कोई काम नहीं लिया जाता कि वह ज़मीन जोते या खेतों को पानी दे...} [71] 188
- अल्लाह तआला का फरमान: {और याद करो जब तुमने एक व्यक्ति की हत्या कर दी, फिर उसके बारे में एक-दूसरे पर दोष मढ़ने लगे, और जो कुछ तुम छिपा रहे थे अल्लाह उसे प्रकट करने वाला था।} [72] 193
- अल्लाह तआला का फरमान: {तो हमने कहा, "उसे (गाय के) एक टुकड़े से मारो।" इसी तरह अल्लाह मुर्दों को जीवित करता है...} [73] 195
- अल्लाह तआला का फरमान: {फिर इसके बाद तुम्हारे दिल कठोर हो गए, सो वे पत्थरों के समान या उससे भी अधिक कठोर हो गए...} [74] 204
- अल्लाह तआला का फरमान: {क्या तुम (ईमान वालों) यह इच्छा रखते हो कि वे तुम्हारे लिए ईमान ले आएंगे जबकि उनमें से एक समूह अल्लाह की वाणी सुनता था फिर उसे बदल देता था...} [75] 210
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब वे ईमान वालों से मिलते हैं तो कहते हैं, "हम ईमान लाए"; और जब वे आपस में एक-दूसरे के साथ अकेले होते हैं...} [76] 214
- अल्लाह तआला का फरमान: {क्या वे नहीं जानते कि अल्लाह जानता है जो वे छिपाते हैं और जो वे प्रकट करते हैं?} [77] 214
- अल्लाह तआला का फरमान: {और उनमें से कुछ अनपढ़ हैं जो किताब का ज्ञान नहीं रखते सिवाय झूठी उम्मीदों के..} [78] 216
- अल्लाह तआला का फरमान: {तो उन लोगों के लिए तबाही है जो अपने हाथों से किताब लिखते हैं फिर कहते हैं, "यह अल्लाह की ओर से है"...} [79] 220
- अल्लाह तआला का फरमान: {और उन्होंने कहा, "आग हमें कभी नहीं छुएगी सिवाय गिनती के कुछ दिनों के"...} [80] 224
- अल्लाह तआला का फरमान: {हाँ, जिसने बुराई कमाई और उसके पाप ने उसे घेर लिया - वही लोग आग वाले हैं...} [81] 226
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जो लोग ईमान लाए और उन्होंने नेक काम किए - वही लोग जन्नत (स्वर्ग) वाले हैं...} [82] 227

- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब हमने बनी इसराईल से वादा लिया कि, "अल्लाह के सिवाय किसी की इबादत न करना...} [83] 235
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब हमने तुमसे वादा लिया कि, "तुम एक-दूसरे का खून न बहाना...} [84] 237
- अल्लाह तआला का फरमान: {फिर तुम वही हो जो अपनों की हत्या करते हो और अपने में से एक समूह को उनके घरों से निकालते हो...} [85] 237
- अल्लाह तआला का फरमान: {यही वे लोग हैं जिन्होंने आखिरत (परलोक) के बदले दुनिया के जीवन को खरीद लिया, सो न उनसे अज़ाब हल्का किया जाएगा...} [86] 237
- अल्लाह तआला का फरमान: {और हमने मूसा को किताब दी और उनके बाद एक के बाद एक रसूल भेजे...} [87] 243
- अल्लाह तआला का फरमान: {और उन्होंने कहा, "हमारे दिल ढके हुए हैं"; बल्कि अल्लाह ने उनके कुफ्र (अविश्वास) के कारण उन पर लाित की है...} [88] 246
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब उनके पास अल्लाह की ओर से एक किताब आई जो उसकी पुष्टि करती है जो उनके पास है...} [89] 248
- अल्लाह तआला का फरमान: {कितना बुरा है वह जिसके बदले उन्होंने अपने आप को बेच डाला कि वे अल्लाह के उतारे हुए का इनकार करें...} [90] 249
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब उनसे कहा जाता है, "उस पर ईमान लाओ जो अल्लाह ने उतारा है," तो वे कहते हैं, "हम तो उसी पर ईमान लाते हैं जो हम पर उतारा गया है।" और वे उसके बाद वाली किताब का इनकार करते हैं...} [91] 252
- अल्लाह तआला का फरमान: {और मूसा तुम्हारे पास स्पष्ट निशानियाँ लेकर आए। फिर तुमने उनके बाद बछड़े को (माबूद) बना लिया...} [92] 254
- अल्लाह तआला का फरमान: {और जब हमने तुमसे वादा लिया और तुम्हारे ऊपर तूर (पहाड़) को खड़ा कर दिया (और कहा), "जो हमने तुम्हें दिया है उसे मजबूती से पकड़ो...} [93] 254
- अल्लाह तआला का फरमान: {कहो, "यदि अल्लाह के यहाँ आखिरत का घर दूसरों को छोड़कर केवल तुम्हारे लिए ही है...} [94] 257
- अल्लाह तआला का फरमान: {और वे कभी भी उसकी कामना नहीं करेंगे उन कामों के कारण जो उनके हाथ पहले भेज चुके हैं...} [95] 257

- अल्लाह तआला का फरमान: {और तुम निश्चित रूप से उन्हें जीवन के लिए सब लोगों से अधिक लालची पाओगे...} [96] 258
- अल्लाह तआला का फरमान: {कहो, "जो जिब्रील का दुश्मन है - तो उसने तो उसे तुम्हारे दिल पर अल्लाह के हुक्म से उतारा है...} [97] 261
- अल्लाह तआला का फरमान: {जो अल्लाह और उसके फरिश्तों और उसके रसूलों और जिब्रील और मीकाइल का दुश्मन है...} [98] 262
- अल्लाह तआला का फरमान: {और हमने तुम्हारी ओर स्पष्ट आयतें उतारी हैं और उनका इनकार केवल वही करते हैं जो अवज्ञाकारी हैं।} [99] 266
- अल्लाह तआला का फरमान: {क्या ऐसा नहीं है कि जब भी उन्होंने कोई वादा किया, तो उनमें से एक समूह ने उसे तोड़ दिया?} [100] 268

فہرست پارہ دوم 508

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اس نے کہا، 'وہ کہتا ہے، 'وہ ایسی گائے ہے جو نہ زمین جوتنے کے لیے سدھائی ہوئی ہے اور نہ کھیتوں کو پانی دیتی ہے...} [71] 188
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور یاد کرو جب تم نے ایک شخص کو قتل کر دیا، پھر اس میں جھگڑنے لگے، اور اللہ اسے ظاہر کرنے والا تھا جسے تم چھپا رہے تھے-} [72] 193
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {تو ہم نے کہا، "اسے (گائے کے) کسی ٹکڑے سے مارو-" اسی طرح اللہ مردوں کو زندہ کرتا ہے...} [73] 195
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {پھر اس کے بعد تمہارے دل سخت ہو گئے، پس وہ پتھروں کی طرح یا ان سے بھی زیادہ سخت ہو گئے...} [74] 204
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا تم (مسلمان) یہ توقع رکھتے ہو کہ وہ تمہاری خاطر ایمان لے آئیں گے جبکہ ان میں سے ایک گروہ اللہ کا کلام سنتا تھا پھر اسے بدل دیتا تھا...} [75] 210
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب وہ ایمان والوں سے ملتے ہیں تو کہتے ہیں، "ہم ایمان لائے"؛ اور جب وہ آپس میں ایک دوسرے کے ساتھ اکیلے ہوتے ہیں...} [76] 214
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا وہ نہیں جانتے کہ اللہ جانتا ہے جو وہ چھپاتے ہیں اور جو وہ ظاہر کرتے ہیں؟} [77] 214
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور ان میں سے کچھ ان پڑھ ہیں جو کتاب کا علم نہیں رکھتے سوائے آرزوؤں کے...} [78] 216
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {پس ہلاکت ہے ان لوگوں کے لیے جو اپنے ہاتھوں سے کتاب لکھتے ہیں پھر کہتے ہیں، "یہ اللہ کی طرف سے ہے"...} [79] 220

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور انہوں نے کہا، "آگ ہمیں ہرگز نہیں چھوئے گی سوائے گنتی کے چند دنوں کے"...} [80] 224
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیوں نہیں، جس نے برائی کمائی اور اس کی خطا نے اسے گھیر لیا - پس وہی آگ والے ہیں...} [81] 226
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور وہ لوگ جو ایمان لائے اور انہوں نے نیک کام کیے - وہی جنت والے ہیں...} [82] 227
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ہم نے بنی اسرائیل سے عہد لیا کہ، "اللہ کے سوا کسی کی عبادت نہ کرنا...} [83] 235
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ہم نے تم سے عہد لیا کہ، "تم آپس میں خون نہ بہانا...} [84] 237
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {پھر تم وہی ہو جو اپنوں کو قتل کرتے ہو اور اپنے میں سے ایک گروہ کو ان کے گھروں سے نکالتے ہو...} [85] 237
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {یہی وہ لوگ ہیں جنہوں نے آخرت کے بدلے دنیا کی زندگی خرید لی، پس نہ ان سے عذاب ہلکا کیا جائے گا...} [86] 237
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور ہم نے موسیٰ کو کتاب دی اور ان کے بعد پے در پے رسول بھیجے...} [87] 243
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور انہوں نے کہا، "ہمارے دل غلافوں میں ہیں"؛ بلکہ اللہ نے ان کے کفر کی وجہ سے ان پر لعنت کی ہے...} [88] 246
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ان کے پاس اللہ کی طرف سے ایک کتاب آئی جو اس کی تصدیق کرنے والی ہے جو ان کے پاس ہے...} [89] 248

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کتنی بری ہے وہ چیز جس کے بدلے انہوں نے اپنی جانوں کو بیچ ڈالا کہ وہ اللہ کے نازل کردہ کا انکار کریں...} [90] 249
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ان سے کہا جاتا ہے، "اس پر ایمان لاؤ جو اللہ نے نازل کیا ہے،" تو وہ کہتے ہیں، "ہم تو اسی پر ایمان لاتے ہیں جو ہم پر نازل ہوا ہے۔" اور وہ اس کے علاوہ کا انکار کرتے ہیں...} [91] 252
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور موسیٰ تمہارے پاس واضح نشانیاں لے کر آئے۔ پھر تم نے ان کے بعد بچھڑے کو (معبود) بنا لیا...} [92] 254
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور جب ہم نے تم سے عہد لیا اور تمہارے اوپر طور (پہاڑ) کو بلند کر دیا (اور کہا)، "جو ہم نے تمہیں دیا ہے اسے مضبوطی سے پکڑو...} [93] 254
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کہہ دو، "اگر اللہ کے ہاں آخرت کا گھر دوسروں کو چھوڑ کر صرف تمہارے ہی لیے ہے...} [94] 257
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور وہ کبھی بھی اس کی تمنا نہیں کریں گے ان اعمال کی وجہ سے جو ان کے ہاتھ آگے بھیج چکے ہیں...} [95] 257
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور تم یقیناً انہیں زندگی کے لیے سب لوگوں سے زیادہ حریص پاؤ گے...} [96] 258
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کہہ دو، "جو جبریل کا دشمن ہے - تو اس نے تو اسے تیرے دل پر اللہ کے حکم سے اتارا ہے...} [97] 261
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {جو اللہ اور اس کے فرشتوں اور اس کے رسولوں اور جبریل اور میکائیل کا دشمن ہے...} [98] 262
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {اور ہم نے تیری طرف واضح آیات نازل کی ہیں اور ان کا انکار صرف وہی کرتے ہیں جو نافرمان ہیں۔} [99] 266

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: {کیا ایسا نہیں ہے کہ جب بھی انہوں نے کوئی عہد کیا، تو ان میں سے ایک گروہ نے اسے توڑ دیا؟} [100] 268

Index of Part Two 509 266 ..... - Allah the Almighty says: {And when there came to them a Messenger from Allah confirming that which was with them...} [101] 268 ..... - Allah the Almighty says: {And they followed [instead] what the devils had recited during the reign of Solomon...} [102] 269 ..... - Allah the Almighty says: {And if they had believed and feared Allah, a reward from Allah would have been better...} [103] 293 ..... - Allah the Almighty says: {O you who have believed, do not say [to the Prophet], 'Ra'ina' but say, 'Unthurna'...} [104] 299 ..... - Allah the Almighty says: {Neither those who disbelieve from the People of the Scripture nor the polytheists wish that any good should be sent down to you from your Lord...} [105] 300 ..... - Allah the Almighty says: {We do not abrogate a verse or cause it to be forgotten except that We bring forth [one] better than it or similar to it...} [106] 311 ..... - Allah the Almighty says: {Do you not know that to Allah belongs the dominion of the heavens and the earth...} [107] 312 ..... - Allah the Almighty says: {Or do you intend to ask your Messenger as Moses was asked before...} [108] 313 ..... - Allah the Almighty says: {Many of the People of the Scripture wish they could turn you back to disbelief after you have believed...} [109] 313 ..... - Allah the Almighty says: {And establish prayer and give zakah, and whatever good you put forward for yourselves - you will find it with Allah...} [110] 313 ..... - Allah the Almighty says: {And they say, 'None will enter Paradise except one who is a Jew or a Christian'...} [111] 318 ..... - Allah the Almighty says: {Yes [on the contrary], whoever submits his face in Islam to Allah while being a doer of good will have his reward with his Lord...} [112] 318 ..... - Allah the Almighty says: {The Jews say 'The Christians have nothing [true] to stand on'...} [113] 319 ..... - Allah the Almighty says: {And who are more unjust than those who prevent the name of Allah from being mentioned in His mosques and strive for their destruction...} [114] 320 ..... - Allah the Almighty says: {And to Allah belongs the east and the west. So wherever you [might] turn, there is the Face of Allah...} [115] 324 ..... - Allah the Almighty says: {And they say, 'Allah has taken a son.' Exalted is He...} [116] 333 ..... - Allah the Almighty says: {Originator of the heavens and the earth...} [117] 335 ..... - Allah the Almighty says: {Those who do not know say, 'Why does Allah not speak to us or a sign come to us?'...} [118] 341 ..... - Allah the Almighty says: {Indeed, We have sent you with the truth as a bringer of good tidings and a warner...} [119] 343 ..... - Allah the Almighty says: {And never will the Jews or the Christians be pleased with you until you follow their religion...} [120] 345 ..... - Allah the Almighty says: {Those to whom We have given the Book recite it with its true recital. They [are the ones who] believe in it...} [121] 347 ..... - Allah the Almighty says: {O Children of Israel,

remember My favor which I have bestowed upon you...} [122] 347 ..... - Allah the Almighty says: {And fear a Day when no soul will suffice for another soul at all, nor will compensation be accepted from it...} [123] 347 ..... - Allah the Almighty says: {And [mention, O Muhammad], when Abraham was tried by his Lord with commands and he fulfilled them...} [124] 349 ..... - Allah the Almighty says: {And [mention] when We made the House a place of return for the people and [a place of] security...} [125] 371 ..... - Allah the Almighty says: {And [mention] when Abraham said, 'My Lord, make this a secure city'...} [126] 382 ..... - Allah the Almighty says: {And [mention] when Abraham was raising the foundations of the House and [with him] Ishmael...} [127] 386 ..... - Allah the Almighty says: {Our Lord, and make us Muslims [in submission] to You and from our descendants a Muslim nation [in submission] to You...} [128] 396 ..... - Allah the Almighty says: {Our Lord, and send among them a messenger from themselves who will recite to them Your verses...} [129] 402 ..... - Allah the Almighty says: {And who would be averse to the religion of Abraham except one who makes a fool of himself...} [130]

भाग दो की अनुक्रमणिका 509 266 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जब उनके पास अल्लाह की ओर से एक रसूल आया, जो उस (किताब) की पुष्टि करने वाला था जो उनके पास थी...} [101] 268 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और उन्होंने उस चीज़ का अनुसरण किया जो शैतान सुलेमान के राज्य के दौरान पढ़ते थे...} [102] 269 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और यदि वे ईमान लाते और डरते तो अल्लाह के यहाँ से उसका बदला बेहतर होता...} [103] 293 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {ऐ ईमान वालों! (नबी से) 'रा-इना' न कहो, बल्कि 'उन्ज़ुरना' कहो...} [104] 299 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {अहले किताब में से काफ़िर और न ही मुशरिक यह चाहते हैं कि तुम्हारे रब की ओर से तुम पर कोई भलाई उतारी जाए...} [105] 300 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {हम जो भी आयत मनसूख़ (रद्द) करते हैं या उसे भुला देते हैं, तो उससे बेहतर या उसके समान लाते हैं...} [106] 311 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {क्या तुम्हें मालूम नहीं कि आकाशों और पृथ्वी का राज्य अल्लाह ही के लिए है...} [107] 312 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {या तुम अपने रसूल से वैसे ही सवाल करना चाहते हो जैसे पहले मूसा से किए गए थे...} [108] 313 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {अहले किताब में से बहुत से लोग चाहते हैं कि वे तुम्हारे ईमान लाने के बाद तुम्हें फिर से काफ़िर बना दें...} [109] 313 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात दो, और जो भी भलाई तुम अपने लिए आगे भेजोगे, उसे अल्लाह के पास पाओगे...} [110] 313 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और वे कहते हैं कि स्वर्ग में वही प्रवेश करेगा जो यहूदी या ईसाई हो...} [111] 318 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {हाँ, जिसने भी अपना चेहरा अल्लाह के लिए झुका दिया और वह नेक हो, तो उसका बदला उसके रब के पास है...} [112] 318 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {यहूदी कहते हैं कि ईसाइयों के पास (सत्य का) कोई आधार नहीं है...} [113] 319 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और उस व्यक्ति से बड़ा ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह की मस्जिदों में उसका नाम लिए जाने से रोके और उन्हें उजाड़ने की कोशिश करे...} [114] 320 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और पूरब और पश्चिम अल्लाह ही का है, तो तुम जिधर भी मुँह करो, उधर अल्लाह का चेहरा है...} [115] 324 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और उन्होंने कहा कि अल्लाह ने बेटा बना लिया है, वह (इससे) पवित्र है...} [116] 333 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {आकाशों और पृथ्वी का पैदा करने वाला...} [117] 335 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जो लोग नहीं जानते वे कहते हैं कि अल्लाह हमसे बात क्यों नहीं करता या हमारे पास कोई निशानी क्यों नहीं आती?...} [118] 341 ..... - अल्लाह तआला का कथन:

{निश्चय ही हमने तुम्हें सत्य के साथ खुशखबरी देने वाला और डराने वाला बनाकर भेजा है...} [119] 343 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और यहूदी और ईसाई तुमसे कभी प्रसन्न नहीं होंगे जब तक कि तुम उनके धर्म का अनुसरण न करने लगो...} [120] 345 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे उसे वैसा ही पढ़ते हैं जैसा उसे पढ़ने का हक़ है, वही उस पर ईमान रखते हैं...} [121] 347 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {ऐ इस्राईल की संतान! मेरी उस नेमत को याद करो जो मैंने तुम पर की...} [122] 347 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और उस दिन से डरो जब कोई किसी के काम न आएगा और न ही उसकी ओर से कोई बदला स्वीकार किया जाएगा...} [123] 347 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जब इब्राहीम को उसके रब ने कुछ शब्दों से आज़माया और उसने उन्हें पूरा कर दिया...} [124] 349 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जब हमने इस घर (काबा) को लोगों के लिए लौटने का स्थान और शांति का केंद्र बनाया...} [125] 371 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जब इब्राहीम ने कहा, ऐ मेरे रब! इसे शांति वाला शहर बना दे...} [126] 382 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और जब इब्राहीम और इसमाईल इस घर की बुनियादें उठा रहे थे...} [127] 386 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {ऐ हमारे रब! हम दोनों को अपना आज्ञाकारी बना और हमारी संतान से भी एक ऐसी उम्मत पैदा कर जो तेरी आज्ञाकारी हो...} [128] 396 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {ऐ हमारे रब! उनमें उन्हीं में से एक रसूल भेज जो उन्हें तेरी आयतें पढ़कर सुनाए...} [129] 402 ..... - अल्लाह तआला का कथन: {और इब्राहीम के धर्म से वही विमुख होगा जिसने स्वयं को मूर्ख बना लिया हो...} [130]

فہرست حصہ دوم ۵۰۹ ٢٦٦ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَلَمَّا جَاءَهُمْ رَسُولٌ مِنْ عِنْدِ اللَّهِ مُصَدِّقٌ لِمَا مَعَهُمْ...﴾ [١٠١] ٢٦٨ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَاتَّبَعُوا مَا تَتْلُوا الشَّيَاطِينُ عَلَى مُلْكِ سُلَيْمَنَ ...﴾ [١٠٢] ٢٦٩ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَلَوْ أَنَّهُمْ آمَنُوا وَاتَّقَوْا لَمَثُوبَةٌ مِنْ عِنْدِ اللَّهِ خَيْرٌ ...﴾ [١٠٣] ٢٩٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿يَأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا لَا تَقُولُوا رَاعِنَا وَقُولُوا انْظُرْنَا ...﴾ [١٠٤] ٢٩٩ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿مَا يَوَدُّ الَّذِينَ كَفَرُوا مِنْ أَهْلِ الْكِتَبِ وَلَا الْمُشْرِكِينَ أَنْ يُنَزَّلَ عَلَيْكُمْ مِنْ خَيْرٍ مِنْ رَبِّكُمْ ...﴾ [١٠٥] ٣٠٠ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿مَا نَنْسَخْ مِنْ ءَايَةٍ أَوْ نُنْسِهَا نَأْتِ بِخَيْرٍ مِنْهَا أَوْ مِثْلِهَا ...﴾ [١٠٦] ٣١١ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿أَلَمْ تَعْلَمْ أَنَّ اللَّهَ لَهُ مُلْكُ السَّمَوَاتِ وَالْأَرْضِ ...﴾ [١٠٧] ٣١٢ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿أَمْ تُرِيدُونَ أَنْ تَسْئَلُوا رَسُولَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوسَى مِنْ قَبْلُ﴾ [١٠٨] ٣١٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَدَّ كَثِيرٌ مِنْ أَهْلِ الْكِتَبِ لَوْ يَرُدُّونَكُمْ مِنْ بَعْدِ إِيمَنِكُمْ كُفَّارًا...﴾ [١٠٩] ٣١٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَأَقِيمُوا الصَّلَوةَ وَءَاتُوا الزَّكَوةَ وَمَا تُقَدِّمُوا لِأَنْفُسِكُمْ مِنْ خَيْرٍ تَجِدُوهُ عِنْدَ اللَّهِ...﴾ [١١٠] ٣١٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَقَالُوا لَنْ يَدْخُلَ الْجَنَّةَ إِلَّا مَنْ كَانَ هُودًا أَوْ نَصرَى...﴾ [١١١] ٣١٨ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿بَلَى مَنْ أَسْلَمَ وَجْهَهُ لِلَّهِ وَهُوَ مُحْسِنٌ فَلَهُ أَجْرُهُ عِنْدَ رَبِّهِ...﴾ [١١٢] ٣١٨ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَقَالَتِ الْيَهُودُ لَيْسَتِ النَّصرَى عَلَى شَيْءٍ...﴾ [١١٣] ٣١٩ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَمَنْ أَظْلَمُ مِمَّنْ مَنَعَ مَسَجِدَ اللَّهِ أَنْ يُذْكَرَ فِيهَا اسْمُهُ وَسَعَى فِي خَرَابِهَا...﴾ [١١٤] ٣٢٠ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَلِلَّهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ فَأَيْنَمَا تُوَلُّوا فَثَمَّ وَجْهُ اللَّهِ...﴾ [١١٥] ٣٢٤ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَقَالُوا اتَّخَذَ اللَّهُ وَلَدًا سُبْحَنَهُ...﴾ [١١٦] ٣٣٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿بَدِيعُ السَّمَوَاتِ وَالْأَرْضِ ...﴾ [١١٧] ٣٣٥ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَقَالَ الَّذِينَ لَا يَعْلَمُونَ لَوْلَا يُكَلِّمُنَا اللَّهُ أَوْ تَأْتِينَا ءَايَةٌ...﴾ [١١٨] ٣٤١ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿إِنَّا أَرْسَلْنَاكَ بِالْحَقِّ بَشِيرًا وَنَذِيرًا...﴾ [١١٩] ٣٤٣ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَلَنْ تَرْضَى عَنْكَ الْيَهُودُ وَلَا النَّصرَى حَتَّى تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ...﴾ [١٢٠] ٣٤٥ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿الَّذِينَ ءَاتَيْنَهُمُ الْكِتَبَ يَتْلُونَهُ حَقَّ تِلَاوَتِهِ أُولَئِكَ يُؤْمِنُونَ بِهِ...﴾ [١٢١]

٣٤٧ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿يَبَنِي إِسْرَاءِيلَ اذْكُرُوا نِعْمَتِيَ الَّتِي أَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ...﴾ [١٢٢]
٣٤٧ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَاتَّقُوا يَوْمًا لَا تَجْزِي نَفْسٌ عَنْ نَفْسٍ شَيْئًا وَلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ﴾ [١٢٣]
٣٤٧ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَإِذِ ابْتَلَى إِبْرَاهِمَ رَبُّهُ بِكَلِمَتٍ فَأَتَمَّهُنَّ...﴾ [١٢٤] ٣٤٩ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَإِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ مَثَابَةً لِلنَّاسِ وَأَمْنًا ...﴾ [١٢٥] ٣٧١ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَإِذْ قَالَ إِبْرَاهِيمُ رَبِّ اجْعَلْ هَذَا بَلَدًا ءَامِنًا...﴾ [١٢٦] ٣٨٢ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَإِذْ يَرْفَعُ إِبْرَاهِمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَإِسْمَعِيلُ...﴾ [١٢٧] ٣٨٦ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَا أُمَّةً مُسْلِمَةً لَكَ...﴾ [١٢٨] ٣٩٦ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِنْهُمْ يَتْلُوا عَلَيْهِمْ ءَايَتِكَ...﴾ [١٢٩] ٤٠٢ ..... - قولہ تعالیٰ: ﴿وَمَنْ يَرْغَبُ عَنْ مِلَّةِ إِبْرَاهِمَ إِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهُ ...﴾ [١٣٠]

Index of the Second Part - Page 510

- Allah the Almighty says: {When his Lord said to him, "Submit," he said "I have submitted to the Lord of the worlds."} [131] 404
- Allah the Almighty says: {And Abraham instructed his sons [to do the same] and [so did] Jacob, [saying], "O my sons, indeed Allah has chosen for you this religion..."} [132] ... 408
- Allah the Almighty says: {Or were you witnesses when death approached Jacob...} [133] 411
- Allah the Almighty says: {That was a nation which has passed on. It will have [the consequence of] what it earned, and you will have what you have earned...} [134] 413
- Allah the Almighty says: {And they say, "Be Jews or Christians [so] you will be guided."} [135] 414
- Allah the Almighty says: {Say, [O believers], "We have believed in Allah and what has been revealed to us and what was revealed to Abraham..."} [136] 415
- Allah the Almighty says: {So if they believe in the same as you believe in, then they have been [rightly] guided...} [137] 417
- Allah the Almighty says: {[And say, "Ours is] the religion of Allah. And who is better than Allah in [ordaining] religion?..."} [138] 420
- Allah the Almighty says: {Say, "Do you argue with us about Allah while He is our Lord and your Lord?..."} [139] 422
- Allah the Almighty says: {Or do you say that Abraham and Ishmael and Isaac and Jacob and the Descendants were Jews or Christians? Say, "Are you more knowing or is Allah?..."} [140] 424
- Allah the Almighty says: {That was a nation which has passed on. It will have [the consequence of] what it earned, and you will have what you have earned...} [141] 425
- Allah the Almighty says: {The foolish among the people will say, "What has turned them away from their qiblah, which they used to face?..."} [142] 425
- Allah the Almighty says: {And thus we have made you a just community that you will be witnesses over the people...} [143] 433
- Allah the Almighty says: {We have certainly seen the turning of your face, [O Muhammad], toward the heaven, and We will surely turn you to a qiblah with which you will be pleased...} [144] 441

- Allah the Almighty says: {And if you were to bring to those who were given the Scripture every sign, they would not follow your qiblah...} [145] 445
- Allah the Almighty says: {Those to whom We gave the Scripture know him as they know their own sons...} [146] 446
- Allah the Almighty says: {The truth is from your Lord, so never be among the doubters.} [147] 447
- Allah the Almighty says: {For each [religious following] is a direction toward which it faces. So race to [all that is] good...} [148] 449
- Allah the Almighty says: {And from wherever you go out [for prayer, O Muhammad], turn your face toward al-Masjid al-Haram, and indeed, it is the truth from your Lord...} [149] 454
- Allah the Almighty says: {And from wherever you go out [for prayer], turn your face toward al-Masjid al-Haram. And wherever you [believers] may be, turn your faces toward it...} [150] 454
- Allah the Almighty says: {Just as We have sent among you a messenger from yourselves reciting to you Our verses and purifying you...} [151] 458
- Allah the Almighty says: {So remember Me; I will remember you. And be grateful to Me and do not deny Me.} [152] 459
- Allah the Almighty says: {O you who have believed, seek help through patience and prayer. Indeed, Allah is with the patient.} [153] 459
- Allah the Almighty says: {And do not say about those who are killed in the way of Allah, "They are dead." Rather, they are alive, but you perceive [it] not.} [154] 461
- Allah the Almighty says: {And We will surely test you with something of fear and hunger and a loss of wealth and lives and fruits, but give good tidings to the patient,} [155] 462
- Allah the Almighty says: {Who, when disaster strikes them, say, "Indeed we belong to Allah, and indeed to Him we will return."} [156] 465
- Allah the Almighty says: {Those are the ones upon whom are blessings from their Lord and mercy...} [157] 465
- Allah the Almighty says: {Indeed, as-Safa and al-Marwah are among the symbols of Allah...} [158] 469
- Allah the Almighty says: {Indeed, those who conceal what We sent down of clear proofs and guidance after We made it clear for the people...} [159] 479

दूसरे भाग की अनुक्रमणिका - पृष्ठ ५१०

- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {जब उसके पालनहार ने उससे कहा, "आज्ञाकारी बन जा!" उसने कहा, "मैं समस्त जगत के पालनहार का आज्ञाकारी बन गया।"} [131] 404
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और इब्राहीम ने अपने बेटों को इसी की वसीयत की और याकूब ने भी [यही कहा], "ऐ मेरे बेटों, बेशक अल्लाह ने तुम्हारे लिए यह दीन (धर्म) चुन लिया है..."} [132] ... 408
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {क्या तुम उस समय मौजूद थे जब याकूब की मृत्यु का समय आया...} [133] 411
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {वह एक उम्मत (समुदाय) थी जो गुजर चुकी। जो उसने कमाया वह उसका है, और जो तुमने कमाया वह तुम्हारा है...} [134] 413
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और वे कहते हैं, "यहूदी या ईसाई हो जाओ तो मार्ग पा जाओगे।"} [135] 414
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {कहो, "हम ईमान लाए अल्लाह पर और उस पर जो हमारी ओर उतारा गया और जो इब्राहीम की ओर उतारा गया..."} [136] 415
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {फिर यदि वे भी वैसे ही ईमान लाएं जैसा तुम लाए हो, तो वे मार्ग पा गए...} [137] 417
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {[कहो, "हमने] अल्लाह का रंग ग्रहण कर लिया है। और अल्लाह से अच्छा रंग किसका हो सकता है?..."} [138] 420
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {कहो, "क्या तुम अल्लाह के विषय में हमसे झगड़ते हो जबकि वह हमारा भी रब है और तुम्हारा भी रब है?..."} [139] 422
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {या तुम कहते हो कि इब्राहीम, इसमाईल, इसहाक, याकूब और उनकी संतान यहूदी या ईसाई थे? कहो, "क्या तुम अधिक जानते हो या अल्लाह?..."} [140] 424
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {वह एक उम्मत थी जो गुजर चुकी। जो उसने कमाया वह उसका है, और जो तुमने कमाया वह तुम्हारा है...} [141] 425
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {लोगों में से जो मूर्ख हैं वे कहेंगे, "उन्हें उनके उस क़िब्ले से किसने फेर दिया जिस पर वे थे?..."} [142] 425

- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और इसी प्रकार हमने तुम्हें एक मध्यम (सर्वश्रेष्ठ) समुदाय बनाया है ताकि तुम लोगों पर गवाह रहो...} [143] 433
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {हम तुम्हारे चेहरे का बार-बार आकाश की ओर उठना देख रहे हैं। अतः हम तुम्हें अवश्य उस क़िब्ले की ओर फेर देंगे जिसे तुम पसंद करते हो...} [144] 441
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और यदि तुम उन लोगों के पास, जिन्हें किताब दी गई है, हर प्रकार की निशानी ले आओ, तब भी वे तुम्हारे क़िब्ले का अनुसरण नहीं करेंगे...} [145] 445
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {जिन लोगों को हमने किताब दी है, वे उसे (सत्य को) वैसे ही पहचानते हैं जैसे अपने बेटों को पहचानते हैं...} [146] 446
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {सत्य तुम्हारे रब की ओर से है, अतः तुम संशय करने वालों में से न होना।} [147] 447
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और हर एक के लिए एक दिशा है जिसकी ओर वह मुख करता है। अतः तुम भलाई के कामों में एक-दूसरे से आगे बढ़ो...} [148] 449
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और तुम जहाँ से भी निकलो, अपना मुख मस्जिद-ए-हराम की ओर फेर लो। और निश्चय ही यह तुम्हारे रब की ओर से सत्य है...} [149] 454
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और तुम जहाँ से भी निकलो, अपना मुख मस्जिद-ए-हराम की ओर फेर लो। और तुम जहाँ कहीं भी हो, अपने मुख उसी की ओर फेरो...} [150] 454
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {जैसा कि हमने तुम्हारे बीच तुम्हीं में से एक रसूल भेजा जो तुम्हें हमारी आयतें सुनाता है और तुम्हें शुद्ध करता है...} [151] 458
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {अतः तुम मुझे याद रखो, मैं तुम्हें याद रखूँगा। और मेरा आभार व्यक्त करो और मेरी नाशुक्रगुज़ारी (अकृतज्ञता) न करो।} [152] 459
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {ऐ ईमान लाने वालो! धैर्य और नमाज़ के द्वारा सहायता प्राप्त करो। निस्संदेह अल्लाह धैर्यवानों के साथ है।} [153] 459
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और जो अल्लाह की राह में मारे जाएँ उन्हें मृत न कहो। बल्कि वे जीवित हैं, परन्तु तुम्हें इसका अहसास नहीं।} [154] 461

- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {और हम किसी न किसी प्रकार के भय, भूख और धन, प्राणों एवं फलों की हानि से तुम्हारी परीक्षा अवश्य लेंगे। और धैर्यवानों को शुभ समाचार दे दो,} [155] 462
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {कि जब उन पर कोई मुसीबत आती है, तो वे कहते हैं, "निस्संदेह हम अल्लाह ही के हैं और हम उसी की ओर लौटने वाले हैं।"} [156] 465
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {ये वे लोग हैं जिन पर उनके रब की ओर से कृपाएँ और दया है...} [157] 465
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {निस्संदेह सफ़ा और मरवा अल्लाह की निशानियों में से हैं...} [158] 469
- अल्लाह सर्वशक्तिमान कहता है: {बेशक जो लोग उन स्पष्ट प्रमाणों और मार्गदर्शन को छिपाते हैं जिसे हमने उतारा है, इसके बाद कि हमने उसे लोगों के लिए स्पष्ट कर दिया है...} [159] 479

فہرست حصہ دوم - صفحہ ۵۱۰

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {جب اس کے رب نے اس سے کہا، "فرمانبردار ہو جا،" تو اس نے عرض کیا، "میں رب العالمین کا فرمانبردار ہو گیا۔"} [131] 404
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور اسی کی وصیت کی ابراہیم نے اپنے بیٹوں کو اور یعقوب نے (بھی)، "اے میرے بیٹو! بیشک اللہ نے تمہارے لیے یہ دین چن لیا ہے..."} [132] ... 408
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {کیا تم اس وقت موجود تھے جب یعقوب کی موت کا وقت آیا...} [133] 411
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {یہ ایک امت تھی جو گزر چکی، اس کے لیے وہ ہے جو اس نے کمایا اور تمہارے لیے وہ ہے جو تم کماؤ گے...} [134] 413
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور وہ کہتے ہیں کہ یہودی ہو جاؤ یا عیسائی تو ہدایت پا جاؤ گے...} [135] 414
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {کہو کہ ہم ایمان لائے اللہ پر اور اس پر جو ہماری طرف اتارا گیا اور جو ابراہیم کی طرف اتارا گیا...} [136] 415
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {پس اگر وہ بھی اسی طرح ایمان لائیں جس طرح تم لائے ہو تو وہ ہدایت پا گئے...} [137] 417
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {(کہو کہ ہم نے) اللہ کا رنگ اختیار کر لیا ہے، اور اللہ کے رنگ سے بہتر کس کا رنگ ہو سکتا ہے؟...} [138] 420
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {کہو کہ کیا تم ہم سے اللہ کے بارے میں جھگڑتے ہو حالانکہ وہی ہمارا بھی رب ہے اور تمہارا بھی رب ہے؟...} [139] 422

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {یا تم کہتے ہو کہ ابراہیم اور اسماعیل اور اسحاق اور یعقوب اور ان کی اولاد یہودی یا عیسائی تھے؟ کہو، "کیا تم زیادہ جانتے ہو یا اللہ؟"...} [140] 424
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {یہ ایک امت تھی جو گزر چکی، اس کے لیے وہ ہے جو اس نے کمایا اور تمہارے لیے وہ ہے جو تم کماؤ گے...} [141] 425
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {نادان لوگ عنقریب کہیں گے کہ انہیں ان کے اس قبلے سے کس چیز نے پھیر دیا جس پر وہ تھے؟...} [142] 425
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور اسی طرح ہم نے تمہیں ایک امت وسط بنایا ہے تاکہ تم لوگوں پر گواہ بنو...} [143] 433
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {ہم آپ کے چہرے کا بار بار آسمان کی طرف اٹھنا دیکھ رہے ہیں، سو ہم ضرور آپ کو اس قبلے کی طرف پھیر دیں گے جسے آپ پسند کرتے ہیں...} [144] 441
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور اگر آپ اہل کتاب کے پاس ہر طرح کی نشانی لے آئیں تب بھی وہ آپ کے قبلے کی پیروی نہیں کریں گے...} [145] 445
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {جنہیں ہم نے کتاب دی ہے وہ اسے (حق کو) اسی طرح پہچانتے ہیں جس طرح اپنے بیٹوں کو پہچانتے ہیں...} [146] 446
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {حق تمہارے رب کی طرف سے ہے، پس تم ہرگز شک کرنے والوں میں سے نہ ہونا} [147] 447
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور ہر ایک کے لیے ایک سمت ہے جس کی طرف وہ رخ کرتا ہے، پس تم نیکیوں میں ایک دوسرے سے آگے بڑھو...} [148] 449
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور آپ جہاں سے بھی نکلیں اپنا رخ مسجد حرام کی طرف کر لیں، اور بیشک یہ آپ کے رب کی طرف سے حق ہے...} [149] 454

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور آپ جہاں سے بھی نکلیں اپنا رخ مسجد حرام کی طرف کر لیں، اور تم جہاں کہیں بھی ہو اپنے رخ اسی کی طرف رکھو...} [150] 454
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {جس طرح ہم نے تمہارے درمیان تم ہی میں سے ایک رسول بھیجا جو تمہیں ہماری آیتیں سنا کر سناتا ہے اور تمہیں پاک کرتا ہے...} [151] 458
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {پس تم مجھے یاد کرو میں تمہیں یاد کروں گا، اور میرا شکر ادا کرو اور میری ناشکری نہ کرو۔} [152] 459
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اے ایمان والو! صبر اور نماز کے ذریعے مدد چاہو، بیشک اللہ صبر کرنے والوں کے ساتھ ہے۔} [153] 459
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور جو اللہ کی راہ میں مارے جائیں انہیں مردہ نہ کہو، بلکہ وہ زندہ ہیں لیکن تم شعور نہیں رکھتے۔} [154] 461
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {اور ہم ضرور تمہیں آزمائیں گے کچھ خوف اور بھوک سے اور مالوں، جانوں اور پھلوں کی کمی سے، اور صبر کرنے والوں کو خوشخبری دے دیجئے،} [155] 462
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {وہ کہ جب انہیں کوئی مصیبت پہنچتی ہے تو کہتے ہیں، "بیشک ہم اللہ ہی کے ہیں اور ہم اسی کی طرف لوٹ کر جانے والے ہیں۔"} [156] 465
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {یہ وہ لوگ ہیں جن پر ان کے رب کی طرف سے عنایتیں اور رحمت ہے...} [157] 465
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {بیشک صفا اور مروہ اللہ کی نشانیوں میں سے ہیں...} [158] 469
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد ہے: {بیشک جو لوگ ہماری اتاری ہوئی واضح دلیلوں اور ہدایت کو چھپاتے ہیں اس کے بعد کہ ہم نے اسے لوگوں کے لیے واضح کر دیا ہے...} [159] 479

Index of Part Two

511

- The word of the Almighty: ﴿Except for those who repent, correct themselves and make evident [what they concealed]. Those - I will accept their repentance...﴾ [160] 484
- The word of the Almighty: ﴿Indeed, those who disbelieve and die while they are disbelievers...﴾ [161] 485
- The word of the Almighty: ﴿Abiding eternally therein. The punishment will not be lightened for them, nor will they be reprieved.﴾ [162] 485
- The word of the Almighty: ﴿And your god is one God. There is no deity [worthy of worship] except Him, the Entirely Merciful, the Especially Merciful...﴾ [163] 488
- The word of the Almighty: ﴿Indeed, in the creation of the heavens and the earth, and the alternation of the night and the day...﴾ [164] 490
- Index 507

भाग दो की अनुक्रमणिका

५११

- सर्वशक्तिमान का कथन: ﴾उन लोगों के सिवाय जिन्होंने तौबा (पश्चात्ताप) कर ली और सुधार कर लिया और (सत्य को) स्पष्ट कर दिया, तो वही लोग हैं जिनकी तौबा मैं स्वीकार करता हूँ...﴿ [१६०] ४८४
- सर्वशक्तिमान का कथन: ﴾निश्चय ही, जिन लोगों ने कुफ़्र (अविश्वास) किया और इस अवस्था में मरे कि वे काफ़िर (अविश्वासी) थे...﴿ [१६१] ४८५
- सर्वशक्तिमान का कथन: ﴾वे उसमें सदैव रहेंगे। न उन पर से यातना हल्की की जाएगी और न उन्हें मोहलत दी जाएगी।﴿ [१६२] ४८५
- सर्वशक्तिमान का कथन: ﴾और तुम्हारा पूज्य अकेला एक ही पूज्य है। उस अत्यंत कृपाशील और दयावान के सिवाय कोई पूज्य नहीं...﴿ [१६३] ४८८
- सर्वशक्तिमान का कथन: ﴾निश्चय ही आकाशों और धरती की रचना में और रात और दिन के बारी-बारी से आने में...﴿ [१६४] ४९०
- अनुक्रमणिका ५०७

فہرست حصہ دوم

۵۱۱

- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿مگر وہ لوگ جنہوں نے توبہ کی اور اصلاح کر لی اور (حق کو) ظاہر کر دیا، تو یہی لوگ ہیں جن کی توبہ میں قبول کرتا ہوں...﴾ [۱۶۰] ۴۸۴
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿بیشک جن لوگوں نے کفر کیا اور اسی حالت میں مرے کہ وہ کافر تھے...﴾ [۱۶۱] ۴۸۵
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿وہ اس میں ہمیشہ رہیں گے۔ نہ ان پر سے عذاب ہلکا کیا جائے گا اور نہ انہیں مہلت دی جائے گی۔﴾ [۱۶۲] ۴۸۵
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿اور تمہارا معبود ایک ہی معبود ہے، اس نہایت مہربان اور بہت رحم فرمانے والے کے سوا کوئی معبود نہیں...﴾ [۱۶۳] ۴۸۸
- اللہ تعالیٰ کا ارشاد: ﴿بیشک آسمانوں اور زمین کی پیدائش میں اور رات اور دن کے باری باری آنے میں...﴾ [۱۶۴] ۴۹۰
- فہرست ۵۰۷